C.No-1770

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

015,1A1 1770
M3.7
Shrimadvalmikiya
Ramayan: Balkanda

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

015,1A1
M3.7

1770

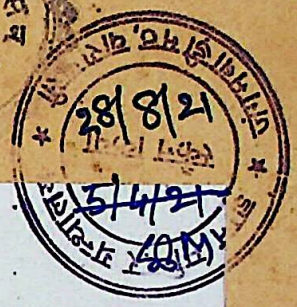

SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
(LIBRARY)
JANGAMAWADIMATH, VARANASI

Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

4-4-6

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला—सातवाँ पुष्प

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

बालकाण्ड

(मूल संस्कृत हिन्दी अनुवाद सहित)

टीकाकार

अनेक ग्रन्थोंके प्रणेता

शिक्षा, शारदा आदि पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादक

साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री

1880

प्रकाशक

सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला कार्यालय

बनारस सिटी

प्रथमावृत्ति] होली, सं० १९८३ वि० [मूल्य ॥)

सम्पूर्ण ग्रन्थ इसी साइज़के लगभग २७०० पृष्ठोंका होगा ।

मूल्य इसी हिसाबसे रहेगा; किन्तु अभीसे ग्राहक बनजानेसे लगभग ७) के देना होगा ।

CC-0: Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

015,1A1
M3·7

☞ सोल एजेण्ट

मुकुन्ददास गुप्त एण्ड कम्पनी

पुस्तक-भवन, बनारस सिटी ।

1989

आप स्वयं स्थायी ग्राहक बनिए

अपने मित्रोंको भी बनाइए

सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला

सस्ती पुस्तकों द्वारा सर्वसाधारणको लाभ तभी पहुँच सकता है जब कि पुस्तकोंके **विषय बढ़िया, और दाम बहुत माकूल हों** । हमने ऐसे कई प्रयत्न करने-वालोंको देखा, पर हमें ऐसी पुस्तक-माला 'हिन्दी ससार' में दिखायी न दी । एकाध जगहसे ऐसी कोशिश हो रही है, पर

हम दावेके साथ

कह सकते हैं कि आप हमारी पुस्तकोंको लीजिए, उनकी दीर्घ कायाको देखिए और साथ ही **उनका दाम भी मिलाइए** तो

आप देखेंगे कि

इनसे बढ़िया, इनसे सस्ती और अधिक शिक्षाप्रद पुस्तकें बहुत ही कम हैं । **पर कमी है**

स्थायी ग्राहकोंकी.

पर्याप्त ग्राहक मिलते ही, हम इतने ही नहीं

१००० पृष्ठ १) रु०में

देनेकी व्यवस्था कर सकते हैं ।

JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY,
Jangamwadi Math, VARANASI,
Acc. No. 8774

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. .....1770.....

प्रकाशक—
पन्नालाल गुप्त, व्यवस्थापक,
स० सा० पुस्तकमाला कार्यालय,
बनारस सिटी ।

मुद्रक—
बी. एल्. पावगी,
हितचिन्तक प्रेस, रामघाट,
बनारस सिटी ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशकका निवेदन

हिन्दी-प्रेमियो,

हमारी इच्छा बहुत दिनोंसे इस मालामें प्राचीन धार्मिक पुस्तकें, वेद, पुराण, रामायण आदि, प्रकाशित करनेकी थी। ईश्वरकी कृपासे उसका श्रीगणेश हो गया है। आज सस्ती साहित्य-पुस्तकमालाके सातवें पुष्पके रूपमें यह वाल्मीकीय रामायणका बालकांड आपकी सेवामें भेट कर रहा हूँ। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ इसी साइज़के लगभग २७०० पृष्ठोंमें समाप्त होगा। इसके प्रत्येक कांडका एक-एक खंड होगा। इस प्रकार इसके सात खंड होंगे। अन्तिम आठवें खंडमें इस ग्रन्थ-पर एक आलोचनात्मक गवेषणापूर्ण निबन्ध रहेगा। उसीमें महर्षि वाल्मीकिके सम्बन्धमें देशी तथा विदेशी विद्वानोंकी सम्मतियाँ आदि भी रहेगीं। 'रामायण-माहात्म्य' महर्षि वाल्मीकि-प्रणीत न होनेके कारण, सातवें खंडके अंतमें परिशिष्ट-रूपमें दिया जायगा।

इस बृहद् ग्रन्थका प्रत्येक खंड हर तीसरे महीने प्रकाशित हुआ करेगा, किन्तु यदि आप महानु-भावोंकी कृपासे इस ग्रन्थके ग्राहकोंकी संख्या पर्याप्त हो गयी, तो प्रति दूसरे मास ही एक-एक खंड प्रकाशित करनेका आयोजन किया जायगा। इस ग्रन्थकी अभी लिमिटेड कापियाँ ही छप रही हैं। अतः ग्राहक बननेवाले सज्जनोंको चाहिए कि तुरत ग्राहकोंमें अपना नाम लिखा लें। सात रुपये एक मुश्त पेशगी भेज देनेपर, खंड छपते ही भेज दिया जाया करेंगे। और प्रतिबारके रजिस्ट्री, मनीआर्डर आदि खर्च भी बच जायँगे। इस सम्बन्धमें विशेष जानकारीके लिए, कार्ड लिखकर, विवरण-पत्रिका मँगाइए।

निवेदक—

व्यवस्थापक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्थायी ग्राहकोंकी आवश्यकता

है, इसलिए कि दूकानदार, छोटे-बड़े, प्रसद्ध-अप्रसिद्ध प्रायः सभी हमसे अधिक-से-अधिक कमीशन चाहते हैं। साधारण कमीशनपर बेचनेको तैयार नहीं हैं। इसलिए आपसे निवेदन है कि आप इस मालाके स्थायी ग्राहक अवश्य बनें।

हमारी मालाकी प्रत्येक पुस्तकका मूल्य एक रुपयेमें साधारण साइज़के ५१२ पृष्ठके हिसाबसे होता है। स्थायी ग्राहकोंको तो वह लगभग ७०० पृष्ठके पड़ जाता है।

इस पुस्तक-मालाके ग्राहक बननेके नियम

१—एक रुपया प्रवेश-शुल्क देकर प्रत्येक सज्जन स्थायी ग्राहक बन सकता है। यह शुल्क लौटाया नहीं जाता।

२—स्थायी ग्राहकोंको मालाकी प्रत्येक पुस्तककी एक-एक प्रति पौने मूल्यमें मिलती है।

३—मालाकी प्रत्येक पुस्तक लेने, न लेनेका अधिकार ग्राहकोंको होगा। इसमें हमारा किसी तरहका बन्धन नहीं है।

४—पुस्तकके प्रकाशित होनेपर उसके मूल्य आदिकी सूचना ग्राहकोंको दे दी जायगी और उसके १५ दिन बाद पुस्तक वी० पी० से भेज दी जायगी।

५—जिन लोगोंको जो पुस्तक न लेनी हो, वे सूचना पाते ही उत्तर दें, जिसमें वी०पी० न भेजी जाय। वी० पी० लौटानेसे उनके नाम ग्राहक-श्रेणीसे पृथककर दिये जायँगे। यदि वे पुनः नाम लिखाना चाहेंगे, तो वी० पी० खर्च देकर लिखा सकेंगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाल्मीकीय रामायणकी विषयसूची

बालकाण्ड

सर्ग	विवरण	पृष्ठ
१	आदिकवि वाल्मीकिका नारदसे प्रश्न। उसके उत्तरमें रामचरितका संक्षिप्त वर्णन। चरित-श्रवणका फल।	१–९
२	वाल्मीकिके द्वारा नारदकी पूजा। वाल्मीकिका तमसा-तीरपर जाना। वहाँ क्रौंच-दम्पतिको देखना। व्याधके द्वारा पुरुषके मारे जानेसे दुःखी क्रौंचीका विलाप। ऋषिके हृदयसे अनायास श्लोक निकलना। वाल्मीकिका अपने शिष्यके साथ आश्रमपर लौट आना। ब्रह्माका वाल्मीकि-आश्रमपर आना और रामचरित-वर्णनका उपदेश देना।	९–१३
३	वाल्मीकिके द्वारा रामायण-वर्णित विषयोंका संक्षेपमें उल्लेख।	१३–१६
४	भूमिकाके रूपमें राज्यप्राप्तिके बाद पुत्र-मुखसेही रामचन्द्रका अपना चरित सुनना।	१६–१९
५	कोसलदेशकी नगरी अयोध्याका मुनि द्वारा वर्णन।	१९–२१
६	समस्त अयोध्यावासियोंके सुखका वर्णन।	२१–२३
७	राजाके आठ सचिवोंकी नीति।	२३–२५
८	अपुत्रक होनेके कारण अश्वमेध यज्ञ करनेके सम्बन्धमें राजाका सुमन्त्रसे परामर्श। सब सचिवोंके सामने अश्वमेध यज्ञ करनेके विचारका रखा जाना। उसके करनेके लिए वसिष्ठ आदिकी सम्मति। घोड़ाका छोड़ा जाना। सरयूके उत्तर तीरपर यज्ञभूमिका बनाया जाना। पुत्र-प्राप्तिके लिए दीक्षा ग्रहण करनेके सम्बन्धमें विचार।	२५–२७
९	राजा और सुमन्त्रका संवाद।	२७–२९
१०	सनत्कुमार-कथित ऋष्यशृंगकी कथाका वर्णन। राजाके पूछनेपर सुमन्त्रके द्वारा उस कथाका कहा जाना।	२९–३२
११	सनत्कुमारोक्त ऋष्यशृंगकी कथा।	३२–३४
१२	पुत्रप्राप्तिके लिए राजाका अश्वमेध यज्ञ करनेका निश्चय।	३४–३६
१३	राजाकी आज्ञासे अन्य राजाओं तथा माण्डलिक राजाओंका निमन्त्रण, यज्ञके लिए मण्डप-निर्माणकी आज्ञा।	३६–३९
१४	दशरथके द्वारा अश्वमेध यज्ञका वर्णन। ऋष्यशृङ्ग द्वारा चार पुत्र होनेका वरदान।	३९–४४
१५	अश्वमेधसे प्रसन्न रावणसे डरे देवताओंके द्वारा ब्रह्माकी स्तुति और उसकी कथा। ब्रह्माका रावणवधके लिए देवताओंसे उपाय पूछना। विष्णुका आगमन। रावणवधके लिए दशरथके यहाँ जन्म लेनेकी देवताओं-की प्रार्थना।	४४–४७
१६	विष्णु और देवताओंमें रावणके वध-संबन्धी बातचीत। रावणने ब्रह्मासे वर पाया है इसका वर्णन। यज्ञाग्निसे उत्पन्न पुरुषके द्वारा दशरथको चरु प्राप्ति। उस चरुको अपनी स्त्रियोंमें राजा दशरथका बांटना।	४७–५०
१७	ब्रह्मा और देवोंका संवाद।	५०–५३
१८	रावणवधके लिए अवतार लेनेवाले रामचन्द्र-की सहायताके लिए ब्रह्माका देवोंको वानर रूपमें पृथिवीमें उत्पन्न होनेका आदेश।	

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्ग	विवरण	पृष्ठ
	दशरथका अयोध्या आना। पुत्रप्राप्ति। देवता तथा सबका आनन्दित होना। नामकरण। उनका प्रेम। धनुर्विद्या आदिमें निपुणता-लाभ। उनके विवाहकी दशरथकी चिन्ता। विश्वामित्रका आना। दशरथकृत स्तुति।	९३–९८
१९	विश्वामित्र-दशरथ संवाद। विघ्नकारी मारीच और सुबाहुका वर्णन। विघ्न-निवारण के लिए रामचन्द्रका भेजना और रामके प्रतापका वर्णन करना।	९९–६०
२०	दशरथ-विश्वामित्र संवाद।	६१–६३
२१	दशरथ-विश्वामित्र संवाद।	६३–६५
२२	विश्वामित्रका क्रोध। वसिष्ठके कहनेसे विश्वामित्रके साथ रामचन्द्रको भेजनेका दशरथका निश्चय। राम लक्ष्मणका जाना।	६५–६७
२३	विश्वामित्रसे बला और अतिबला विद्याओं-की प्राप्ति। विश्वामित्रसे राम और लक्ष्मण-से संवाद।	६७–६९
२४	उनका शिवाश्रमका दर्शन। कथोपकथन। विश्वामित्रके द्वारा सरयू वर्णन। ताड़का-की कथा। उसके वधकी आज्ञा।	६९–७२
२५	राम-विश्वामित्रका संवाद। ताड़काकी उत्पत्ति। पुत्रोत्पत्ति। मारीच कथा। विवाह। पुत्रोत्पत्ति। मारीचको अगस्त्यका शाप। ताडका वधके लिए रामको प्रोत्साहित करना।	७२–७४
२६.	विश्वामित्र-राम संवाद। राम द्वारा ताटेका वध। ताटकावनमें विश्वामित्र-के साथ राम लक्ष्मणका वास करना।	७४–७७
२७.	विश्वामित्र-राम संवाद। विश्वामित्र द्वारा समस्त अस्त्रोंका रामको दिया जाना।	७७–७९
२८.	रामका विश्वामित्रसे उन अस्त्रोंके संहा-रके बारेमें पूछना। विश्वामित्रका रामके प्रश्नका समुचित उत्तर देना।	८०–८१
२९.	सिद्धाश्रमकी कथा।	८१–८४
३०.	राम और लक्ष्मणका रक्षाके विषयका विश्वामित्रसे प्रश्न। छ रातके लिए रक्षा करनेकी अनुमति। सपरिवार मारीच और सुबाहुका आगमन। रामचन्द्रके द्वारा उनका निवारण।	८४–८६
३१	रामचन्द्रका विश्वामित्रके साथ मिथिलापुरी जाना। सोनके किनारे वास करना।	८६–८८
३२.	राजा कुशनाभकी कथा।	८८–९०
३३.	कुशनाभको अपनी सौ कन्याओंको चूली महर्षिको दान देना।	९१–९२
३४.	गाधिकी उत्पत्ति। विश्वामित्रकी भगिनी सत्यवतीका वर्णन।	९३–९४
३५.	विश्वामित्र-राम संवाद। गंगा और उमाकी उत्पत्ति-कथा।	९५–९६
३६.	ब्रह्माको सेनापति बनानेकी इच्छासे देवताओंका उनके समीप जाना।	९६–९८
३७.	कार्तिकेयकी उत्पत्तिकी कथा।	९९–१०१
३८.	राजा सगरकी कथा।	१०१–१०३
३९.	सगरके पुत्रोंकी उत्पत्ति। उनके यज्ञका विस्तारपूर्वक वर्णन	१०३–१०५
४०.	सगरके यज्ञका घोड़ा इन्द्रके द्वारा चुराया जाना। सगर-सन्तानका कपिल-देवजीके हुंकारसे भस्म हो जाना।	१०५–१०७
४१.	सगरकी आज्ञासे अंशुमानका अश्व लाना। सगरके यज्ञकी समाप्ति।	१०७–१०९
४२.	अंशुमानकी राज्यपद प्राप्ति। भगीरथ-का गंगाके लिए तप करना। ब्रह्मा द्वारा प्रसन्न होकर वरका मिलना।	१०९–१११
४३.	शिवकी उपासना करना। शिवका प्रसन्न होकर 'गंगाको मैं धारण करूंगा' ऐसा कहना। गंगाका शिवकी जटामें प्रवेश करना। प्रार्थना करनेपर भगीरथके साथ गंगाका चलना। जह्नु-चरित्र-वर्णन। भगीरथके साथ पातालमें जा कर उनके पितामहोंको पवित्र करना।	१११–११४
४४.	गंगा वर्णन। सगरके सन्तानोंका विस्तार। रामचन्द्र-विश्वामित्र संवाद।	११५–११६

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्ग	विवरण	पृष्ठ
४५.	विश्वामित्रसे रामका 'यह किसकी विशाल नगरी है', ऐसा पूछना। उनके प्रश्नका उत्तर देना। क्षीरसागरका मन्थन। विषका उत्पन्न होना। समस्त संसारके नाशका वर्णन। देवताओंकी प्रार्थनापर विष्णुका अवतीर्ण होना। शिवद्वारा हलाहल विषका पान करना। देव दानवोंकी उत्पत्ति। देव दानवोंका युद्ध। दैत्योंका पराजय।	११७–१२०
४६.	इन्द्र-दिति संवाद। दितिका इन्द्रके पराजयके लिए व्रतका करना।	१२०–१२२
४७.	इन्द्रके यहां मरुतोंका रहना। सुमति राजाका वंश वर्णन।	१२२–१२३
४८.	रामचन्द्रके चरणस्पर्शसे गौतमनारी अहिल्याके उद्धार होनेकी कथा। अहिल्याकी कथा। गौतम-चरित्र।	१२४–१२६
४९.	गौतमके शापसे इन्द्रका वृषण होनेकी बातको देवताओंसे कहना। विश्वामित्रके कहनेसे रामका उस आश्रममें जाना। अहिल्याका उद्धार।	१२६–१२८
५०.	ऋषियोंके साथ विश्वामित्रका जनकके यहां जाना। जनक द्वारा विश्वामित्रकी अर्चना। जनकका 'ये दोनों कौन हैं' ऐसा प्रश्न विश्वामित्रसे करना।	१२८–१३०
५१.	शतानन्दसे विश्वामित्रकी बातचीत।	१३०–१३२
५२.	पहले देखे हुए वशिष्ठाश्रमका वर्णन। उसी समय वसिष्ठ-विश्वामित्रका संवाद	१३२–१३४
५३.	वशिष्ठसे विश्वामित्रका कामधेनुका मांगना। वशिष्ठका न देना।	१३४–१३६
५४.	वशिष्ठके कामधेनुके न देनेपर विश्वामित्रका बलपूर्वक उसका हरण करना।	१३६–१३८
५५.	विश्वामित्रकी सेनाका नाश। महादेवसे वर प्राप्त कर वशिष्ठसे विश्वामित्रका युद्ध करना।	१३८–१४०
५६.	विश्वामित्र और वशिष्ठका युद्ध। ब्रह्मदंडसे विश्वामित्रका पराजय।	१४०–१४२
५७.	क्रुद्ध होकर विश्वामित्रका दक्षिण दिशामें तप करने जाना। वशिष्ठके यहां त्रिशंकुका यज्ञ करानेके लिए जाना। वशिष्ठके न जानेपर उनके पुत्रोंके पास जाना।	१४२–१४४
५८.	वशिष्ठके पुत्रों द्वारा त्रिशंकुका चाण्डाल होना। विश्वामित्रके पास त्रिशंकुका जाना।	१४४–१४६
५९.	सशरीर 'स्वर्ग पहुंचानेके लिए' विश्वामित्रका त्रिशंकुको यज्ञ करनेके लिए प्रतिज्ञा करना। उस यज्ञमें सम्मिलित न होनेवालोंको शाप देना।	१४६–१४८
६०.	त्रिशंकुके यज्ञका वर्णन। उस यज्ञमें देवताओंके न आनेपर 'मैं सशरीर त्रिशंकुको स्वर्ग पहुंचाऊंगा,' ऐसी विश्वामित्रका कहना। त्रिशंकुका स्वर्गसे गिरना, ऋषिका बीचहीमें रोक देना।	१४८–१५०
६१	अम्बरीषके यज्ञका वर्णन। इन्द्रके द्वारा उनके घोड़ेको चुराना।	१५१–१५२
६२	शुनःशेपका विश्वामित्रके यहां जाना और उनसे मंत्र प्राप्त करना।	१५२–१५४
६३	तपस्या करते समय विश्वामित्रके पास मेनकाका आना। तपस्यासे सन्तुष्ट होकर ब्रह्माका वर देना।	१५५–१५६
६४	विश्वामित्रका फिर तप करना, इन्द्रका उनकी तपस्या भंग करनेके लिए अप्सराओंको भेजना। विश्वामित्रका क्रुद्ध होकर उन्हें शिला होनेका शाप देना।	१५७–१५८
६५	विश्वामित्रके उग्र तपस्यासे ब्रह्मर्षिपदका प्राप्त होना।	१५८–१६१
६६	जनकसे रामचन्द्रके आनेका हेतु कहना। सीताकी उत्पत्ति, ऊर्मिला आदिकी	

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्ग	विवरण	पृष्ठ
	उत्पत्ति। 'जो कोई धनुषपर रौंदा चढ़ा देगा, उसे मैं सीता दूंगा' ऐसा जनकका प्रण करना।	१६१–१६३
६७	विश्वामित्रके प्रोत्साहित करनेपर रामचन्द्रका आसानीसेही धनुषका तोड़ देना। इससे संतुष्ट होकर जनक विश्वामित्रसे कहते हैं कि मैं सीताको रामको देता हूं, आप अयोध्या दूत भेजें।	१६३–१६५
६८	अयोध्यामें जाकर दशरथसे दूतका मिथिलापुरीका समाचार कहना।	१६६–१६७
६९	दशरथका बारात लेकर जनकपुरमें जाना	१६७–१६८
७०	जनककी आज्ञासे कुशध्वजको बुलाना। वसिष्ठका सूर्यवंशकी वंशावलीका वर्णन करना।	१६९–१७२
७१	जनक द्वारा अपने वंशका वर्णन। सुधन्वा और जनकका पहले युद्धका वर्णन। सुधन्वाका पराजय।	१७२–१७४
७२	जनक-विश्वामित्र संवाद। जनकका गोदान करना।	१७४–१७६
७३	रामचन्द्र आदि चारो भाइयोंका जनकपुरमें विवाह। विवाह-महोत्सव वर्णन।	१७६–१७९
७४	रामके विवाहके बाद विश्वामित्रका उत्तर पर्वतपर जाना। जनकसे विदा होकर दशरथका अयोध्या जाना। मार्गमें परशुरामका मिलना।	१७९–१८१
७५	रामचंद्र-परशुराम संवाद।	२८१–१८३
७६	वैष्णव धनुषपर रामका बाण चढ़ाना। परशुरामका जाना।	१८३–१८५
७७	दशरथका रामचन्द्रके साथ और अपने समाजके साथ अयोध्यामें आना। युधाजित नगरमें भरत और शत्रुघ्नका अपने मामाके यहां जाना।	१८५–१८७

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे

बालकाण्डम्

C. M. V. Sharma Nalgonda

प्रथमः सर्गः १

तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम् । नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुंगवम् ॥ १ ॥
को न्वस्मिन्सांप्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान् । धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥ २ ॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः । विद्वान्कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः ॥ ३ ॥
आत्मवान्को जितक्रोधो द्युतिमान्कोऽनसूयकः । कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥ ४ ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे । महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरम् ॥ ५ ॥
श्रुत्वा चैतत्त्रिकालज्ञो वाल्मीकेर्नारदो वचः । श्रूयतामिति चामन्त्र्य प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥
बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः । मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः ॥ ७ ॥

तपस्वी वाल्मीकिने सदा तपस्या और शास्त्र-चिन्तन करनेवाले, सर्वप्रधान विद्वान् और मुनियोंमें श्रेष्ठ नारदसे पूछा ॥ १ ॥ इस समय इस लोकमें कौन गुणी है कौन वीर है, कौन धर्मका ज्ञाता है, कौन कृतज्ञ (उपकारों) का बदला देनेवाला है, कौन अपने वचनोंका पालन करनेवाला है और अपनी प्रतिज्ञा का पालन करनेवाला कौन है ॥ २ ॥ कौन चरित्रवान् है, कौन सब प्राणियोंका हित करनेवाला है, कौन विद्वान् है, कौन शक्तिमान् है, कौन सुन्दर है ॥ ३ ॥ कौन ऐसा है जिसने अपनी आत्मापर अधिकार किया है, किसने क्रोधको जीता है, कौन द्युतिमान है और कौन ऐसा है जो दूसरोंके गुणोंमें दोष नहीं ढूँढता (किसीसे ईर्षा नहीं रखता), युद्धमें किसके क्रोधसे देवगण भयभीत हो जाते हैं ॥ ४ ॥ ऐसे पुरुषके विषयमें मैं सुनना चाहता हूँ, अर्थात् जानना चाहता हूँ, मुझे ऐसे पुरुषके जाननेका बड़ा कुतूहल है । आप ऐसे पुरुषके विषयमें अवश्य ज्ञान रखते हैं, क्योंकि आप समर्थ हैं ॥ ५ ॥

त्रिकालज्ञ-भूत भविष्यद् वर्तमान कालकी बातें जाननेवाले नारद मुनि वाल्मीकिकी यह बात सुनकर प्रसन्न हुए और वाल्मीकिके प्रश्नोंके उत्तरमें बोले ॥ ६ ॥ मुने, आपने जिन गुणोंका नाम लिया है वे बड़े दुर्लभ हैं, उन गुणोंसे युक्त मनुष्य विरले ही होते हैं, इसलिए समझबूझ कर मैं वैसा मनुष्य आपको बतलाता हूँ, सुनिए ॥ ७ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः । नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान्वशी ॥ ८ ॥
बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः । विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ॥ ९ ॥
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिंदमः । आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः ॥१०॥
समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् । पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः ॥११॥
धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः । यशस्वी ज्ञानसंपन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ॥१२॥
प्रजापतिसमः श्रीमान्धाता रिपुनिषूदनः । रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ॥१३॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ॥१४॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान्प्रतिभानवान् । सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ॥१५॥
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः । आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥१६॥
स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः । समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥१७॥

वे पुरुष राम-नामसे जनतामें प्रसिद्ध हैं और उनकी उत्पत्ति इक्ष्वाकु-वंशमें हुई है। उनकी आत्मा उनके वशमें है, वे महावीर हैं, द्युतिमान् हैं, धीर हैं, और इन्द्रियाँ उनके वशमें हैं ॥ ८ ॥ वे बुद्धिमान्, न्यायी, वक्ता, शोभायुक्त और शत्रुओंको परास्त करनेवाले हैं, उनके कन्धे विशाल हैं, भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं शंखके समान-सुराहीदार-गला है और हनु (ओठ) के नीचेवाला भाग बड़ा है ॥ ९ ॥ उनकी विशाल छाती है, उनका धनुष बड़ा है-शरीरके सन्धिस्थान घुटना केहुनी आदि-की हड्डियाँ छिपी हुई हैं और वे शत्रुओंका दमन करनेवाले हैं, उनकी भुजाएँ जानु तक लम्बी हैं, सुन्दर सिर है, प्रशस्त ललाट है और सुन्दर पराक्रम अर्थात् उत्तम कामोंमें उपयोग की जाने-वाली वीरता है ॥ १० ॥ उनके अंगोंका विन्यास समान है अर्थात् जिस अंगको जितना छोटा-बड़ा होना चाहिए वह अंग उतना ही छोटा-बड़ा है, उनके शरीरका वर्ण बड़ाही सुन्दर है और वे प्रतापी है, उनका वक्ष-स्थल (छाती) चौड़ा और मोटा है, आँखें बड़ी बड़ी हैं, वे शोभायुक्त हैं और अन्य उत्तम लक्षण भी उनमें हैं ॥ ११ ॥ वे धर्मके रहस्योंको जाननेवाले हैं, वे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते हैं और प्रजाके कल्याण करनेमें सदा तत्पर रहा करते हैं। वे यशस्वी, ज्ञानी, शुद्ध, वशी और सावधान हैं उनका चित्त उनके अधीन है ॥ १२ ॥

वे श्रीमान्, ब्रह्माके समान प्रजाकी रक्षा करनेवाले हैं और शत्रुओंकी जड़ खोदनेवाले हैं, वे प्राणियोंके रक्षक हैं और धर्मके भी ॥ १३ ॥ अपने धर्मकी और अपने स्वजन (बन्धु-बान्धव तथा परिजन आदि) की भी रक्षा करनेवाले हैं, वेद तथा उसके अंग-उपाङ्गोंके तत्त्वके वे ज्ञाता हैं और धनुर्वेदमें भी प्रवीण हैं अर्थात् शास्त्र और शस्त्रविद्या दोनोंमें वे प्रवीण हैं ॥ १४ ॥ वे सब शास्त्रोंके अर्थ और तत्त्व जाननेवाले हैं, उनकी स्मृति-शक्ति अच्छी है अर्थात् वे भूलनेवाले नहीं हैं, और उनमें नयी-नयी बातोंकी सूझ भी है, वे सबके प्रिय हैं, सज्जन हैं, दीन नहीं हैं, और बुद्धिमान् है ॥ १५ ॥ जिस तरह समुद्र नदियोंसे मिला करता है उसी तरह वे सज्जनोंसे मिला करते हैं, सज्जनोंकी भीड़ उनके यहां लगी रहती है, श्रेष्ठपुरुष उनको श्रेष्ठ मानते हैं, वे सबको समान भावसे देखते हैं और सदैव प्रियदर्शन हैं, उनको देखनेसे कभी किसीको भी भय नहीं मालूम पड़ता ॥ १६ ॥ वे आपके बतलाये सब गुणोंसे युक्त हैं, वे कौसल्याके आनन्द-दाता हैं अर्थात् उनकी माताका नाम कौसल्या

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः । कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥१८॥
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः । तमेवंगुणसंपन्नं रामं सत्यपराक्रमम् ॥१९॥
ज्येष्ठं श्रेष्ठगुणैर्युक्तं प्रियं दशरथः सुतम् । प्रकृतीनां हितैर्युक्तं प्रकृतिप्रियकाम्यया ॥२०॥
यौवराज्येन संयोक्तुमैच्छत्प्रीत्या महीपतिः । तस्याभिषेकसंभारान्दृष्ट्वा भार्याऽथ कैकयी ॥२१॥
पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेनमयाचत । विवासनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम् ॥२२॥
स सत्यवचनाद्राजा धर्मपाशेन संयतः । विवासयामास सुतं रामं दशरथः प्रियम् ॥२३॥
स जगाम वनं वीरः प्रतिज्ञामनुपालयन् । पितुर्वचननिर्देशात्कैकेय्याः प्रियकारणात् ॥२४॥
तं व्रजन्तं प्रियो भ्राता लक्ष्मणोऽनुजगाम ह । स्नेहाद्विनयसंपन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥२५॥
भ्रातरं दयितो भ्रातुः सौभ्रात्रमनुदर्शयन् । रामस्य दयिता भार्या नित्यं प्राणसमा हिता ॥२६॥
जनकस्य कुले जाता देवमायेव निर्मिता । सर्वलक्षणसंपन्ना नारीणामुत्तमा वधूः ॥२७॥
सीताऽप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणी यथा । पौरैरनुगतो दूरं पित्रा दशरथेन च ॥२८॥

है, वे समुद्रके समान गम्भीर और हिमवान् पर्वतके समान धीर हैं ॥ १७ ॥ विष्णुके समान पराक्रमी और चन्द्रमाके समान देखनेमें सुन्दर हैं, प्रलयकालकी अग्निके समान उनका क्रोध है और पृथ्वीके समान उनमें क्षमा है ॥ १८ ॥ वे कुबेरके समान त्यागी हैं और सत्यमें द्वितीय धर्म हैं. वे श्रीरामचन्द्र सच्चे वीर (अपनी वीरताका उपयोग परोपकारकेलिए करनेवाला, न कि दूसरों को डरवाकर अपना मतलब साधनेवाला) हैं और आपके बतलाये गुणोंसे युक्त हैं ॥ १९ ॥

वे अपने भाइयोंमें सबसे बड़े हैं वे उत्तम-उत्तम गुणोंसे विभूषित हैं, पिताके प्रिय हैं, प्रजाके कल्याणमें तत्पर रहा करते हैं, इसलिए प्रजाको सुखी बनानेकी इच्छासे महाराज दशरथने॥ २० ॥ उन्हें प्रेमपूर्वक युवराज बनानेकी इच्छा प्रकट की । युवराज बनानेके लिए जो सामग्रियाँ एकत्र की गयी थीं, जो तयारी हुई थी, उसको देखकर महाराज दशरथकी रानी कैकयीने राजासे वर मांगे, क्योंकि उसे वर मांगनेका अधिकार राजाने पहलेसे ही दे रक्खा था । उसने रामचन्द्रका वनवास और भरतका राज्याभिषेक ये दो वर माँगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ सत्यवादी राजा दशरथ धर्मपाश (धर्म-बन्धन) से बँधे हुए थे, अतएव उन्होंने अपने प्रिय पुत्र रामचन्द्रको वनमें भेजा ॥ २३ ॥ पिताकी आज्ञासे और ककयीको प्रसन्न करनेकी इच्छासे वह वीर अपनी प्रतिज्ञाका पालन करता हुआ वनमें गया ॥ २४ ॥ रामचन्द्रको वनमें जाते देख उनके प्रिय छोटे भाई लक्ष्मण भी स्नेहके कारण उनके साथ चले । वे विनयी थे और सुमित्राके पुत्र थे ॥ २५ ॥ लक्ष्मण रामचन्द्रके प्रिय थे, इस कारण उन्होंने भी इस समय अपने भ्रातृ-कर्तव्यका पालन किया । रामकी प्रिय स्त्री सीता, जो उन्हें प्राणोंके समान प्यारी थीं ॥ २६ ॥ जिनका जन्म राजा जनकके कुलमें हुआ था और जो देवमायाके समान थीं, उत्तम स्त्रियोंके सब लक्षण जिनमें थे, जो स्त्रियोंमें श्रेष्ठ स्त्री थीं ॥ २७ ॥ और जिनका नाम सीता था. वे भी रामचन्द्रके साथ वनमें गयीं, जिस प्रकार रोहिणी चन्द्रमाका अनुगमन करती है, उसी प्रकार सीताने रामचन्द्रका अनुगमन किया । वन जानेके समय नगर-वासी दूर तक रामचन्द्रके साथ आये, महाराज दशरथ भी कुछ दूर तक साथ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शृङ्गवेरपुरे सूतं गङ्गाकूले व्यसर्जयत् । गुहमासाद्य धर्मात्मा निषादाधिपतिं प्रियम् ॥२९॥
गुहेन सहितो रामो लक्ष्मणेन च सीतया । ते वनेन वनं गत्वा नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः ॥३०॥
चित्रकूटमनुप्राप्य भरद्वाजस्य शासनात् । रम्यमावसथं कृत्वा रममाणा वने त्रयः ॥३१॥
देवगन्धर्वसंकाशास्तत्र ते न्यवसन्सुखम् । चित्रकूटं गते रामे पुत्रशोकातुरस्तथा ॥३२॥
राजा दशरथः स्वर्गं जगाम विलपन्सुतम् । गते तु तस्मिन्भरतो वसिष्ठप्रमुखैर्द्विजैः ॥३३॥
नियुज्यमानो राज्याय नैच्छद्राज्यं महाबलः । स जगाम वनं वीरो रामपादप्रसादकः ॥३४॥
गत्वा तु स महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् । अयाचद्भ्रातरं राममार्यभावपुरस्कृतः ॥३५॥
त्वमेव राजा धर्मज्ञ इति रामं वचोऽब्रवीत् । रामोऽपि परमोदारः सुमुखः सुमहायशाः ॥३६॥
न चैच्छत्पितुरादेशाद्राज्यं रामो महाबलः । पादुके चास्य राज्याय न्यासं दत्त्वा पुनःपुनः॥३७॥
निवर्तयामास ततो भरतं भरताग्रजः । स काममनवाप्यैव रामपादावुपस्पृशन् ॥३८॥
नन्दिग्रामेऽकरोद्राज्यं रामागमनकाङ्क्षया । गते तु भरते श्रीमान्सत्यसंधो जितेन्द्रियः ॥३९॥
रामस्तु पुनरालक्ष्य नागरस्य जनस्य च । तत्रागमनमेकाग्रो दण्डकान्प्रविवेश ह ॥४०॥
प्रविश्य तु महारण्यं रामो राजीवलोचनः । विराधं राक्षसं हत्वा शरभङ्गं ददर्श ह ॥४१॥

आये ॥ २८ ॥ शृङ्गवेरपुरनामक नगरमें गंगाके तीरपर आकर रामचन्द्रने, सारथिको लौटा दिया अर्थात् जिस रथपर ये लोग आये थे उस रथको लौटा दिया । निषादोंके राजा गुहसे रामचन्द्रकी यहीं मैत्री हुई ॥ २९ ॥ गुह, लक्ष्मण और सीताके साथ रामचन्द्र एक वनसे होकर दूसरे वनमें गये और बहुत जलवाली नदियाँ इन लोगोंने पार कीं ॥ ३० ॥ भरद्वाजकी आज्ञासे रामचन्द्र चित्रकूट पहुँचे और वहीं रमणीक घर बनाकर तीनों (राम, लक्ष्मण और सीता) रहने लगे ॥ ३१ ॥ देवता और गन्धर्व के समान वे तीनों वहाँ निवास करने लगे ।

रामचन्द्र जब चित्रकूट पहुँचे तब पुत्रशोकसे दुःखी राजा दशरथ ॥ ३२ ॥ पुत्रके लिए विलाप करते हुए स्वर्ग-गामी हुए । राजा दशरथके मरनेपर वसिष्ठ प्रभृति ब्राह्मणोंके कहनेपर भी महाबली भरतने ॥ ३३ ॥ राज्य स्वीकार नहीं किया । वीर भरत रामचन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए वन गये ॥ ३४ ॥ वनमें जाकर सत्य-पराक्रमी महात्मा और भाई रामचन्द्रसे भरतने शुद्ध भावसे प्रार्थना की ॥ ३५ ॥ "धर्मज्ञ, आपही राजा हैं" यह भरतने रामचन्द्रसे कहा, रामचन्द्र भी महायशस्वी और उदार थे, इन घटनाओंके कारण उनके मुँहपर कोई विकार नहीं उत्पन्न हुआ था, इसीलिए वे प्रसन्नमुख थे ॥ ३६ ॥ महाबली रामचन्द्रने पिताकी आज्ञा पालनके लिए राज्य नहीं लिया । भरतके बार-बार कहनेपर रामचन्द्रने अपनी चरणपादुका धरोहरके तौरपर राज्य करनेके लिए दी ॥ ३७ ॥ पुनः भरतके बड़े भाई (रामचन्द्र) ने भरतको लौटा दिया । भरतका मनोरथ पूरा नहीं हुआ, उन्होंने रामचन्द्रके चरण छूकर ॥ ३८ ॥ नन्दीग्राममें राज्य करना प्रारम्भ किया. इस आशासे कि रामचन्द्र यहाँ लौटकर आवेंगे । भरतके चले जानेपर सत्यप्रतिज्ञ और जितेन्द्रिय ॥ ३९ ॥ रामचन्द्र अयोध्यावासियोंके यहाँ आ जानेके भयसे दूर एकान्त दण्डकारण्यमें चले गये ॥ ४० ॥ उस भयानक वनमें जाकर कमलनयन रामचन्द्रने विराध नामक राक्षसको मारा और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुतीक्ष्णं चाप्यगस्त्यं च अगस्त्यभ्रातरं तथा । अगस्त्यवचनाच्चैव जग्राहैन्द्रं शरासनम् ॥४२॥
खड्गं च परमप्रीतस्तूणी चाक्षयसायकौ । वसतस्तस्य रामस्य वने वनचरैः सह ॥४३॥
ऋषयोऽभ्यागमन्सर्वे वधायासुररक्षसाम् । स तेषां प्रतिशुश्राव रात्तसानां तदा वने ॥४४॥
प्रतिज्ञातश्च रामेण वधः संयति रक्षसाम् । ऋषीणामग्निकल्पानां दण्डकारण्यवासिनाम्॥४५॥
तेन तत्रैव वसता जनस्थाननिवासिनी । विरूपिता शूर्पणखा राक्षसी कामरूपिणी ॥४६॥
ततः शूर्पणखावाक्यादुद्युक्तान्सर्वराक्षसान् । खरं त्रिशिरसं चैव दूषणं चैव राक्षसम् ॥४७॥
निजघान रणे रामस्तेषां चैव पदानुगान् । वने तस्मिन्निवसता जनस्थाननिवासिनाम् ॥४८॥
रक्षसां निहतान्यासन्सहस्राणि चतुर्दश । ततो ज्ञातिवधं श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः॥४९॥
सहायं वरयामास मारीचं नाम रात्तसम् । वार्यमाणः सुबहुशो मारीचेन स रावणः ॥५०॥
न विरोधो बलवता क्षमो रावण तेन ते । अनादृत्य तु तद्वाक्यं रावणः कालचोदितः ॥५१॥
जगाम सहमारीचस्तस्याश्रमपदं तदा । तेन मायाविना दूरमपवाह्य नृपात्मजौ ॥५२॥
जहार भार्यां रामस्य गृध्रं हत्वा जटायुषम् । गृध्रं च निहतं दृष्ट्वा हृतां श्रुत्वा च मैथिलीम् ॥५३॥

शरभंग ऋषिका दर्शन किया ॥ ४१ ॥ सुतीक्ष्ण, अगस्त्य और अगस्त्यके भाईका भी दर्शन रामचन्द्रने किया, अगस्त्यकी आज्ञासे इन्द्रका धनुष रामचन्द्रने ग्रहण किया ॥ ४२ ॥ एक तलवार और बाण रखनेके अक्षय (जिसमेंके बाण कभी घटते ही न थे) तरकस पाकर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए । वनवासियोंके साथ रामचन्द्र उसी वनमें निवास करने लगे ॥ ४३ ॥

उस वनमें सब ऋषि मिलकर एक दिन रामचन्द्रजीके पास आये और उन्होंने राक्षसोंका वध करनेकी प्रार्थना की । रामचन्द्रने उसी वनमें उन ऋषियोंसे रात्तसोंके वध करनेका वचन दिया । उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं राक्षसोंका वध करूँगा ॥ ४४ ॥ अग्निके समान तेजस्वी दण्डकारण्यमें रहनेवाले ऋषियोंके सामने रामचन्द्रने प्रतिज्ञा की कि युद्धमें मैं रात्तसोंका वध करूंगा ॥ ४५ ॥ दण्डकारण्यमें रहनेके समय ही जनस्थानमें रहनेवाली शूर्पणखा नामकी रात्तसीके नाक-कान रामचन्द्रने कटवा लिये । यह रात्तसी कामरूपिणी थी, इच्छाके अनुसार रूप धरकर विचरा करती थी ॥ ४६ ॥ शूर्पणखाके कहनेसे रामचन्द्रसे युद्ध करनेके लिए जो रात्तस आये थे, उनसब राक्षसोंको, और खर त्रिशिरा, दूषण इन राक्षसों तथा इनके अनुयायियोंको रामचन्द्रने रणमें मार डाला ॥ ४७ ॥ उस वनमें रहनेके समय जनस्थानमें रहनेवाले चौदह हजार रात्तसोंको रामचन्द्रने माराथा ॥ ४८ ॥ इस तरह अपने ज्ञातिवालोंका मारा जाना सुनकर रावण बहुत क्रोधित हुआ ॥ ४९ ॥ उसने अपनी सहायताके लिए मारीच नामक रात्तसको चुना, मारीचको सहायक बनाकर रामचन्द्रसे बदला लेनेका विचार उसने निश्चित किया । मारीचने रावणको रोका ॥ ५० ॥ उसने कहा—रावण, तुमको अपनेसे बलवानसे विरोध करना उचित नहीं पर रावणने मारीचकी बातोंपर ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वह कालसे प्रेरित था, उसके सिरपर मृत्यु नाच रही थी ॥ ५१ ॥ वह मारीचके साथ रामचन्द्रके आश्रमपर गया । मायावी (मायामृग बनकर) मारीच राम और लक्ष्मणको आश्रमसे दूर ले गया ॥ ५२ ॥ रावणने सीता हरण किया । रास्तेमें जटायुने रोका, रावणने उसे मार दिया । मरे हुए जटायुको देख कर और सीता हरी गयीं यह सुनकर ॥ ५३ ॥ रामचन्द्र बहुत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राघवः शोकसंतप्तो विललापाकुलेन्द्रियः । ततस्तेनैव शोकेन गृध्रं दग्ध्वा जटायुषम् ॥५४॥
मार्गमाणो वने सीतां राक्षसं संददर्श ह । कबन्धं नाम रूपेण विकृतं घोरदर्शनम् ॥५५॥
तं निहत्य महाबाहुर्ददाह स्वर्गतश्च सः । ततोऽस्य कथयामास शबरीं धर्मचारिणीम् ॥५६॥
श्रमणां धर्मनिपुणामभिगच्छेति राघव । सोऽभ्यगच्छन्महातेजाः शबरीं शत्रुसूदनः ॥५७॥
शबर्या पूजितः सम्यग्रामो दशरथात्मजः । पम्पातीरे हनुमता सङ्गतो वानरेण ह ॥५८॥
हनुमद्वचनाच्चैव सुग्रीवेण समागतः । सुग्रीवाय च तत्सर्वं शंसद्रामो महाबलः ॥५९॥
आदितस्तद्यथावृत्तं सीतायाश्च विशेषतः । सुग्रीवश्चापि तत्सर्वं श्रुत्वा रामस्य वानरः ॥६०॥
चकार सख्यं रामेण प्रीतश्चैवाग्निसाक्षिकम् । ततो वानरराजेन वैरानुकथनं प्रति ॥६१॥
रामायावेदितं सर्वं प्रणयाद्दुःखितेन च । प्रतिज्ञातं च रामेण तदा वालिवधं प्रति ॥६२॥
वालिनश्च बलं तत्र कथयामास वानरः । सुग्रीवः शङ्कितश्चासीन्नित्यं वीर्येण राघवे ॥६३॥
राघवप्रत्ययार्थं तु दुन्दुभेः कायमुत्तमम् । दर्शयामास सुग्रीवो महापर्वतसंनिभम् ॥६४॥
उत्स्मयित्वा महाबाहुःप्रेक्ष्य चास्थि महाबलः । पादाङ्गुष्ठेन चिक्षेप संपूर्णं दशयोजनम् ॥६५॥
बिभेद च पुनः सालान्सप्तैकेन महेषुणा । गिरिं रसातलं चैव जनयन्प्रत्ययं तदा ॥६६॥

दुखी हुए, वे विलापकरने लगे, उनकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं । रामचन्द्रने उसी शोककी दशामें ही जटायु नामक गृध्रके दाह आदि संस्कार किये ॥ ५४ ॥ पुनः वनमें सीताको ढूंढ़ते-ढूंढ़ते उन्होंने एक राक्षस देखा, उस राक्षसका नाम कबन्ध था, उसका रूप बड़ाही विकृत था, और वह देखनेमें भयानक था ॥५५॥ रामचन्द्रने उसका वध किया तथा अन्तिम संस्कार (दाह आदि) किया, और वह राक्षस स्वर्गगामी हुआ । उस राक्षसने रामचन्द्रको धर्मचारिणी शबरीका पता बतलाया और उस संन्यासिनीके पास जानेके लिए उसने रामचन्द्रको परामर्श दिया ॥५६॥ वे महातेजस्वी और शत्रु-संहारक रामचन्द्र शबरीके समीप गये ॥ ५७ ॥ दशरथके पुत्र रामचन्द्रकी शबरीने यथोचित पूजा की । पम्पा नामक सरोवरके तीरपर हनुमान नामक वानरसे उनकी भेंट हुई ॥ ५८ ॥ हनुमान-के कहनेसे वे सुग्रीवके पास गये । रामचन्द्रने अपना समस्त वृत्तान्त सुग्रीवको सुनाया ॥ ५९ ॥ पहलेसे जो कुछ हुआ था वह सब सुनाया, विशेष कर सीताकी बातें कहीं । वानर सुग्रीवने रामचन्द्रकी सब बात सुनीं ॥ ६० ॥ अग्निको साक्षी बनाकर उसने प्रसन्नतापूर्वक रामके साथ मित्रता की ।

वानरराज वालिके साथ उसका वैर कैसे हुआ ॥६१॥ यह बात दुःखित होकर उसने रामचन्द्रसे बतलायी । उसी समय रामचन्द्रने वालिका वध करनेकी प्रतिज्ञा की ॥६२॥ सुग्रीवने वालिके बलका वर्णन किया । सुग्रीव रामचन्द्रके पराक्रमके विषयमें शंकित था, उसे ऐसा विश्वास नहीं था कि रामचन्द्र वालिका वध कर सकेंगे ॥६३॥ रामचन्द्रके बलकी परीक्षा करनेकी इच्छासे सुग्रीवने बहुत बड़े पर्वतके समान ऊँचा दुन्दुभिका शरीर दिखाया ॥ ६४ ॥ महाबली रामचन्द्रने हड्डियोंकी उस ढेरको देखा, वे हँसे, उन सबको पैरके अंगूठेसे दस योजन (४० कोस) पर फेंक दिया ॥६५॥ पुनः रामचन्द्रने एक बाणसे सात साल वृक्षोंको भेदा और उनका वह बाण पर्वतको छेदता हुआ पातालमें चला गया । सुग्रीवको अपने बलका विश्वास दिलानेके लिए रामचन्द्रजीने ऐसा किया ॥ ६६ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततः प्रीतमनास्तेन विश्वस्तः स महाकपिः । किष्किन्धां रामसहितो जगाम च गुहां तदा ॥६७॥
ततोऽगर्जद्धरिवरः सुग्रीवो हेमपिङ्गलः । तेन नादेन महता निर्जगाम हरीश्वरः ॥६८॥
अनुमान्य तदा तारां सुग्रीवेण समागतः । निजघान च तत्रैनं शरेणैकेन राघवः ॥६९॥
ततः सुग्रीववचनाद्धत्वा वालिनमाहवे । सुग्रीवमेव तद्राज्ये राघवः प्रत्यपादयत् ॥७०॥
स च सर्वान्समानीय वानरान्वानरर्षभः । दिशः प्रस्थापयामास दिदृक्षुर्जनकात्मजाम् ॥७१॥
ततो गृध्रस्य वचनात्संपातेर्हनुमान्बली । शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे लवणार्णवम् ॥७२॥
तत्र लङ्कां समासाद्य पुरीं रावणपालिताम् । ददर्श सीतां ध्यायन्तीमशोकवनिकां गताम् ॥७३॥
निवेदयित्वाऽभिज्ञानं प्रवृत्तिं विनिवेद्य च । समाश्वास्य च वैदेहीं मर्दयामास तोरणम् ॥७४॥
पञ्च सेनाग्रगान्हत्वा सप्त मंत्रिसुतानपि । शूरमक्षं च निष्पिष्य ग्रहणं समुपागमत् ॥७५॥
अस्त्रेणोन्मुक्तमात्मानं ज्ञात्वा पैतामहाद्वरात् । मर्षयन्राक्षसान्वीरो यंत्रिणस्तान्यदृच्छया ॥७६॥
ततो दग्ध्वा पुरीं लङ्कामृते सीतां च मैथिलीम् । रामाय प्रियमाख्यातुं पुनरायान्महाकपिः ॥७७॥
सोऽभिगम्य महात्मानं कृत्वा रामं प्रदक्षिणम् । न्यवेदयदमेयात्मा दृष्टा सीतेति तत्त्वतः ॥७८॥
ततः सुग्रीवसहितो गत्वा तीरं महोदधेः । समुद्रं क्षोभयामास शरैरादित्यसन्निभैः ॥७९॥
दर्शयामास चात्मानं समुद्रः सरितां पतिः । समुद्रवचनाच्चैव नलं सेतुमकारयत् ॥८०॥

रामचन्द्रके इस कामसे सुग्रीवको उनके बलका विश्वास हुआ और वह प्रसन्न होता हुआ रामचन्द्रके साथ किष्किन्धामें गया और तदन्तर गुफामें ॥६७॥ गुफाके पास जाकर सुवर्णके समान पीले सुग्रीवने गर्जन किया । उस भयानक शब्दको सुनकर वालि बाहर निकल आया ॥६८॥ तारा नामकी अपनी स्त्रीको समझाकर वालि सुग्रीवसे भिड़ा, उसी समय एक बाणसे रामचन्द्रने उसे मार डाला ॥६९॥ सुग्रीवके कहनेसे युद्धमें वालिको मारकर रामचन्द्रने उसका राज्य सुग्रीवको ही दे डाला ॥७०॥ वानरराज सुग्रीवने सब वानरोंको बुलाया और चारों दिशाओंमें सीताको ढूंढनेके लिए उन लोगोंको भेजा ॥ ७१ ॥ सम्पाति नामक गृध्रके पता बतलानेपर बली हनुमानने सौ योजन लम्बा चौड़ा समुद्र पार किया ॥ ७२ ॥ समुद्र पार जानेपर रावणके द्वारा पालित लंकापुरी हनुमानने देखी, वहीं अशोकवाटिकामें ध्यानमग्न सीताको भी उन्होंने देखा ॥ ७३ ॥ हनुमानने अपने रामचन्द्रके यहाँ से आनेका अभिज्ञान (पहिचान=सहिदानी) दिखाया और पुनः वहाँके समाचार कहे, जानकीको धैर्य दिलाया, पुनः वे वाटिका उजाड़ने लगे ॥ ७४ ॥ हनुमानने पांच सेनापतियों, सात मन्त्रिपुत्रों और रावणके पुत्रको मारा, पुनः वे खुद बँध गये ॥ ७५ ॥ " यह बंधन छूट जायगा " यह बात हनुमानने ब्रह्माके वरसे जानली और इसी कारण पीड़ा पहुँचानेवाले राक्षसोंको भी उन्होंने क्षमा की ॥ ७६ ॥ सीताके स्थानको छोड़कर और समस्त लङ्कापुरीको जलाकर रामचन्द्रको प्रिय सन्देश सुनानेकेलिए हनुमान लौट आये ॥ ७७ ॥ हनुमान महात्मा रामचन्द्रके पास गये, उन्होंने उनकी प्रदक्षिणा की और उस वीरने जिस तरह सीताको देखा था वहकह सुनाया ॥ ७८ ॥ तदनन्तर रामचन्द्र सुग्रीवको साथ लेकर समुद्र तीरपर गये और वहाँ उन्होंने सूर्यके समान तेजस्वी बाणोंसे समुद्रको क्षुभित कर डाला ॥ ७९ ॥ उस समय समुद्र प्रकट हुआ, और उसके कहनेके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तेन गत्वा पुरीं लङ्कां हत्वा रावणमाहवे । रामः सीतामनुप्राप्य परां व्रीडामुपागमत् ॥८१॥
तामुवाच ततो रामः परुषं जनसंसदि । अमृष्यमाणा सा सीता विवेश ज्वलनं सती ॥८२॥
ततोऽग्निवचनात्सीतां ज्ञात्वा विगतकल्मषाम् । कर्मणा तेन महता त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥८३॥
सदेवर्षिगणं तुष्टं राघवस्य महात्मनः । बभौ रामः संप्रहृष्टः पूजितः सर्वदैवतैः ॥८४॥
अभिषिच्य च लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् । कृतकृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह ॥८५॥
देवताभ्यो वरं प्राप्य समुत्थाप्य च वानरान् । अयोध्यां प्रस्थितो रामः पुष्पकेण सुहृद्वृतः॥८६॥
भरद्वाजाश्रमं गत्वा रामः सत्यपराक्रमः । भरतस्यान्तिके रामो हनूमन्तं व्यसर्जयत् ॥८७॥
पुनराख्यायिकां जल्पन्सुग्रीवसहितस्तदा । पुष्पकं तत्समारुह्य नन्दिग्रामं ययौ तदा ॥८८॥
नन्दिग्रामे जटां हित्वा भ्रातृभिः सहितोऽनघः । रामः सीतामनुप्राप्य राज्यं पुनरवाप्तवान् ॥८९॥
प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः । निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः ॥९०॥
न पुत्रमरणं केचिद्द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः क्वचित् । नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः ॥९१॥
न चाग्निजं भयं किञ्चिन्नाप्सु मज्जन्ति जन्तवः । न वातजं भयं किंचिन्नापि ज्वरकृतं तथा ॥९२॥
न चापि क्षुद्भयं तत्र न तस्करभयं तथा । नगराणि च राष्ट्राणि धनधान्ययुतानि च ॥९३॥

अनुसार रामचन्द्रने नल नामक वानरसे समुद्रपर सेतु बनवाया ॥ ८० ॥ उसी सेतुसे समुद्र पारकर रामचन्द्र लङ्का गये, युद्धमें रावणको उन्होंने मारा और सीता पायी । सीताको पानेपर रामचन्द्रको बड़ी लज्जा मालुम हुई ॥ ८१ ॥ रामचन्द्रने सभाके बीचमें सीताको कठोर वचन कहे, सीता उन वचनोंको सह न सकीं और उन्होंने अग्निमें प्रवेश किया ॥ ८२ ॥ अग्निके कहनेसे रामचन्द्रने सीताको पवित्र जाना, रामचन्द्रके इस कामसे स्थावर-जंगम, समस्त त्रिलोक ॥ ८३ ॥ देवता, ऋषि, मुनि आदि उनपर प्रसन्न हुए । इस प्रकार देवता और ऋषियोंसे प्रशंसित होनेपर रामचन्द्र भी बहुत प्रसन्न हुए ॥ ८४ ॥

राक्षसराजके पदपर रामचन्द्रने लङ्कामें विभीषणको बैठाया । उस समय रामचन्द्रकी प्रतिज्ञा पूरी हुई, जो उन्होंने विभीषणसे की थी । उनके मनका सब दुःख जाता रहा और वे बहुत प्रसन्न हुए ॥ ८५ ॥ देवताओंसे वर पाकर और वानरोंको लेकर अपने मित्रोंके साथ पुष्पक विमानसे रामचन्द्रने अयोध्याके लिए प्रस्थान किया ॥ ८६ ॥ सत्यपराक्रमी रामचन्द्र भरद्वाजके आश्रमपर गये और वहाँसे उन्होंने भरतके पास हनुमानको दूत बनाकर भेजा ॥ ८७ ॥ पुनः सुग्रीवके साथ बातचीत करते हुए रामचन्द्र पुष्पक विमानपर चढ़कर नन्दीग्राममें गये । पवित्र रामचन्द्रने भाइयोंके साथ जटा उतरवायी, रामचन्द्रने सीता पायी और पुनः राज्य पाया ॥ ८९ ॥

रामचन्द्रके राज्यमें सभी शरीर और मनसे प्रसन्न थे, सभी सन्तुष्ट थे, सभी पुष्ट थे, सभी धार्मिक थे । किसी प्रकारका रोग न था और न दुर्भिक्ष (अकाल) का ही भय था ॥ ९० ॥ उस राज्यमें कोई भी पुत्र-मरणके दुःखको न देखेगा, स्त्रियाँ विधवा न होगी और वे पतिव्रता रहेंगी ॥ ९१ ॥ आगका भय न रहेगा और जलकी बाढ़से डूबनेका भी भय न रहेगा । हवा आँधीका भय न रहेगा और न ज्वरकी पीड़ा ही रहेगी ॥ ९२ ॥ क्षुधाका भय और चोरोंका भय भी न रहेगा ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नित्यं प्रमुदिताः सर्वे यथा कृतयुगे तथा । अश्वमेधशतैरिष्ट्वा तथा बहुसुवर्णकैः ॥९४॥
गवां कोट्ययुतं दत्त्वा विद्वद्भ्यो विधिपूर्वकम् । असंख्येयं धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो महायशाः ॥९५॥
राजवंशाञ्छतगुणान्स्थापयिष्यति राघवः । चातुर्वर्ण्यं च लोकेऽस्मिन्स्वे स्वे धर्मे नियोक्ष्यति॥९६॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च । रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥९७॥
इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च संमितम् । यः पठेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९८॥
एतदाख्यानमायुष्यं पठन्रामायणं नरः । सपुत्रपौत्रः सगणः प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥९९॥

पठन्द्विजो वागृषभत्वमीयात्स्यात्क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात् ।
वणिग्जनः पण्यफलत्वमीयाज्जनश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात् ॥ १०० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २

नारदस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वाक्यविशारदः । पूजयामास धर्मात्मा सहशिष्यो महामुनिम् ॥ १ ॥
यथावत्पूजितस्तेन देवर्षिर्नारदस्तथा । आपृच्छ्यैवाभ्यनुज्ञातः स जगाम विहायसम् ॥२॥
स मुहूर्ते गते तस्मिन्देवलोकं मुनिस्तदा । जगाम तमसातीरं जाह्नव्यास्त्वविदूरतः ॥ ३ ॥

सभी नगर और राज्य धनधान्यसे पूर्ण रहेंगे ॥ ९३ ॥ सतयुगके मनुष्य जैसे प्रसन्न रहते थे, वैसे ही रामराज्यके मनुष्य भी प्रसन्न रहेंगे । जिसमें बहुत सुवर्ण खर्च हुआ है वैसे सौ अश्वमेध यज्ञ करके ॥ ९४ ॥ ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक दस हजार करोड़ गौ दानमें वे देंगे महायशस्वी रामचन्द्र ब्राह्मणोंको बहुत अधिक धन देंगे ॥ ९५ ॥

रामचन्द्र सैकड़ों राज्योंकी स्थापना करेंगे और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रको अपने-अपने धर्ममें दृढ़ रहनेके लिए उद्युक्त करेंगे ॥ ९६ ॥ रामचन्द्र दस हजार और दस सौ वर्ष अर्थात् ग्यारह हजार वर्ष राज्य करके ब्रह्मलोकमें जायँगे ॥ ९७ ॥ इस रामचरितको, जो पवित्र है, पापोंको दूर करनेवाला है और वेदके अनुकूल है, जो पढ़ता है उसके सब पाप दूर हो जाते हैं ॥ ९८ ॥ यह कथा आयु बढ़ानेवाली है । जो मनुष्य रामायणका निरन्तर पाठ करता है, वह पुत्र, पौत्र आदिसे युक्त रहता है, और परलोकमें स्वर्ग पाता है ॥ ९९ ॥ जो ब्राह्मण इस कथाका पाठ करेगा वह महापण्डित होगा, क्षत्रिय राजा होगा, वैश्य अपने व्यापारमें सफल होगा और शूद्र महत्त्व पावेगा ॥ १०० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका पहला सर्ग समाप्त ॥ १ ॥

नारदके ये वचन सुनकर धर्मात्मा और वचनोंके अर्थ समझनेवाले वाल्मीकिने महामुनि नारदकी अपने शिष्योंके साथ पूजा की ॥ १ ॥ विधिपूर्वक पूजित होनेपर देवर्षि नारदने वाल्मीकिसे अपने जानेके लिए आज्ञा माँगी और उन्होंने आज्ञा दी । तब नारदजी आकाशमार्गसे चले गये ॥ २ ॥ नारदमुनिके देवलोकके लिए प्रस्थान करनेके थोड़ी ही देर बाद वाल्मीकि तमसा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स तु तीरं समासाद्य तमसाया मुनिस्तदा । शिष्यमाह स्थितं पार्श्वे दृष्ट्वा तीर्थमकर्दमम् ॥ ४ ॥
अकर्दममिदं तीर्थं भरद्वाज निशामय । रमणीयं प्रसन्नाम्बु सन्मनुष्यमनो यथा ॥ ५ ॥
न्यस्यतां कलशस्तात दीयतां वल्कलं मम । इदमेवावगाहिष्ये तमसातीर्थमुत्तमम् ॥ ६ ॥
एवमुक्तो भरद्वाजो वाल्मीकेन महात्मना । प्रायच्छत मुनेस्तस्य वल्कलं नियतो गुरोः ॥ ७ ॥
स शिष्यहस्तादादाय वल्कलं नियतेन्द्रियः । विचचार ह पश्यंस्तत्सर्वतो विपुलं वनम् ॥ ८ ॥
तस्याभ्याशे तु मिथुनं चरन्तमनपायिनम् । ददर्श भगवांस्तत्र क्रौञ्चयोश्चारुनिस्वनम् ॥ ९ ॥
तस्मात्तु मिथुनादेकं पुमांसं पापनिश्चयः । जघान वैरनिलयो निषादस्तस्य पश्यतः ॥१०॥
तं शोणितपरीताङ्गं चेष्टमानं महीतले । भार्या तु निहतं दृष्ट्वा रुराव करुणां गिरम् ॥११॥
वियुक्ता पतिना तेन द्विजेन सहचारिणा । ताम्रशीर्षेण मत्तेन पत्रिणा सहितेन वै ॥१२॥
तथाविधं द्विजं दृष्ट्वा निषादेन निपातितम् । ऋषेर्धर्मात्मनस्तस्य कारुण्यं समपद्यत ॥१३॥
ततः करुणवेदित्वादधर्मोऽयमिति द्विजः । निशाम्य रुदतीं क्रौञ्चीमिदं वचनमब्रवीत ॥१४॥
मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समाः । यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥१५॥
तस्येत्थं ब्रुवतश्चिन्ता बभूव हृदि वीक्षतः । शोकार्तेनास्य शकुनेः किमिदं व्याहृतं मया ॥१६॥
चिन्तयन्स महाप्राज्ञश्चकार मतिमान्मतिम् । शिष्यं चैवाब्रवीद्वाक्यमिदं स मुनिपुंगवः ॥१७॥

नदीके तीरपर गये, यह नदी गङ्गासे बहुत दूर न थी ॥ ३ ॥ मुनि तमसा-तीरपर गये, नदीके घाटपर कींचड़ नहीं था, यह देखकर उन्होंने अपने शिष्यसे कहा ॥ ४ ॥ भरद्वाज, देखो, यह घाट विना कीचड़का है और यहाँका जल भी सज्जन मनुष्योंके मनके समान स्वच्छ और रमणीय है ॥ ५ ॥ भाई घड़ा रख दो, मेरा वल्कल वस्त्र दो, तमसाके इसी घाटपर मैं स्नान करूँगा ॥ ६ ॥ महात्मा वाल्मीकिका यह वचन सुनकर गुरुभक्त भरद्वाजने गुरुको वल्कल वस्त्र दिया ॥ ७ ॥ शिष्यके हाथसे वल्कल वस्त्र लेकर जितेन्द्रिय वाल्मीकि उस बड़े वनको देखते हुए इधर-उधर विचरण करने लगे ॥ ८ ॥ वहाँ पास ही सदा साथ रहनेवाले और मधुर शब्द बोलनेवाले क्रौञ्च पक्षीका जोड़ा भगवान् वाल्मीकिने देखा ॥ ९ ॥ उनके देखते ही देखते उस जोड़ेके पुरुषको एक पापी व्याधने मारडाला ॥ १० ॥ वह खूनसे लथपथ होकर पृथिवीपर गिर पड़ा, और छटपटाने लगा, पतिको मरा देखकर उसकी स्त्री बड़े ही दुःखसे विलाप करने लगी ॥ ११ ॥ वह पक्षिणी अपने उस पतिपक्षीसे सदाके लिए अलग हुई जो सदा साथ रहता था, जिसके मस्तकपर लाल चिन्ह था और जो सदा मस्त रहता था ॥ १२ ॥ ऐसे पक्षीको व्याधने मारडाला यह देखकर उन धर्मात्मा ऋषिके मनमें बड़ी दया उत्पन्न हुई ॥ १३ ॥ वे मुनि दूसरोंका दुःख समझनेवाले थे, ऐसा अधर्म देखकर और क्रौंचीका विलाप सुनकर बोले ॥ १४ ॥

निषाद ! तुम बहुत दिनों तक इस संसारमें जीवित न रहो, क्योंकि क्रौंचके जोड़ेमेंके एकको, जो कामसे मोहित था, तुमने मारा है ॥ १५ ॥ सहसा उनके मुँहसे ऊपरकी यह बात निकल गयी । जब उन्होंने सोचा तब उन्हें चिन्ता हुई । उन्होंने कहा, पक्षी के दुःखसे व्याकुल होकर मैंने यह क्या कह दिया ? ॥ १६ ॥ महाबुद्धिमान् वाल्मीकिने विचार करके यह निश्चय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः । शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा ॥१८॥
शिष्यस्तु तस्य ब्रुवतो मुनेर्वाक्यमनुत्तमम् । प्रतिजग्राह संतुष्टस्तस्य तुष्टोऽभवन्मुनिः ॥१९॥
सोऽभिषेकं ततः कृत्वा तीर्थे तस्मिन्यथाविधि । तमेव चिन्तयन्नर्थमुपावर्तत वै मुनिः ॥२०॥
भरद्वाजस्ततः शिष्यो विनीतः श्रुतवान्गुरोः । कलशं पूर्णमादाय पृष्ठतोऽनुजगाम ह ॥२१॥
स प्रविश्याश्रमपदं शिष्येण सह धर्मवित् । उपविष्टः कथाश्चान्याश्चकार ध्यानमास्थितः॥२२॥
आजगाम ततो ब्रह्मा लोककर्ता स्वयंप्रभुः । चतुर्मुखो महातेजा द्रष्टुं तं मुनिपुंगवम् ॥२३॥
वाल्मीकिरथ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय वाग्यतः । प्राञ्जलिः प्रयतो भूत्वा तस्थौ परमविस्मितः ॥२४॥
पूजयामास तं देवं पाद्यार्घ्यासनवन्दनैः । प्रणम्य विधिवच्चैनं पृष्ट्वा चैव निरामयम् ॥२५॥
अथोपविश्य भगवानासने परमार्चिते । वाल्मीकये च ऋषये संदिदेशासनं ततः ॥२६॥
ब्रह्मणा समनुज्ञातः सोऽप्युपाविशदासने । उपविष्टे तदा तस्मिन्साक्षाल्लोकपितामहे ॥२७॥
तद्गतेनैव मनसा वाल्मीकिर्ध्यानमास्थितः । पापात्मना कृतं कष्टं वैरग्रहणबुद्धिना ॥२८॥

किया और उन मुनिश्रेष्ठने अपने शिष्यसे यह कहा कि ॥ १७ ॥ मेरे मुखसे जो वाणी निकली है वह पादबद्ध है अर्थात् वह वाणी चार पादोंमें बँटी है, उनमें समान अक्षर हैं और लयसे युक्त हैं। शोककी दशामें मेरे मुँहसे इस तरहकी जो वाणी सहसा निकल गयी है, वह श्लोक हो अर्थात् इस छन्दका नाम श्लोक हो ॥ १८ ॥ (लौकिक छन्दोंमें पहला श्लोक

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।—

यही है। इसके पहले वैदिक छन्द थे। अतएव पहले पहल, सहसा विना जाने-बूझे एक छन्दके प्रकाशित होजानेसे उन्हें आश्चर्य हुआ)। मुनिकी इस बातका अर्थ शिष्यने समझा और वह प्रसन्न हुआ, मुनि भी उस शिष्यपर प्रसन्न हुए ॥ १९ ॥ उसी घाटपर विधिपूर्वक स्नान करके मुनि घर लौटे। घाटपर पक्षीकी जो घटना हुई थी वह उनके चित्तसे दूर न हुई, वे उसपर विचार करते ही रहे ॥ २० ॥ मुनिका शिष्य भरद्वाज विनयी था और उसने गुरुसे ग्रन्थ पढ़े थे, वह जलसे भरा घड़ा लेकर मुनिके पीछे-पीछे चला ॥ २१ ॥ धर्मात्मा वाल्मीकि शिष्यके साथ अपने आश्रममें आये और बैठकर दूसरी बातें करने लगे, पर मुनि उस समय भी ध्यानस्थ थे, वे उसी घाटवाली बातका विचार करते रहे ॥२२॥ उसी समय मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिको देखनेके लिए चतुर्मुख महातेजस्वी, सृष्टिके रचयिता ब्रह्मा वहाँ आये। ब्रह्मा स्वयं प्रभु हैं, इन्होंने स्वयं प्रभाव प्राप्त किया है। दूसरेकी शक्तिसे ये शक्तिमान् नहीं हैं ॥ २३ ॥ ब्रह्माको देखते ही वाल्मीकि बड़ी शीघ्रतासे उठे। उन्होंने बोलना बन्द करदिया, बड़ी नम्रताके साथ हाथ जोड़कर वे खड़े हुए, ब्रह्माके एकाएक आजानेसे वे बड़े विस्मित थे ॥ २४ ॥ पाद्य, अर्घ्य, आसन और स्तुतिके द्वारा उन्होंने ब्रह्माकी पूजा की और विधिवत् प्रणाम करके उनसे कुशल-प्रश्न पूछा ॥ २५ ॥ उत्तम आसनपर भगवान् ब्रह्मा बैठे और उन्होंने दूसरे आसनपर वाल्मीकिको भी बैठनेके लिए कहा ॥ २६ ॥ ब्रह्मासे आज्ञा पाकर वाल्मीकि भी, पितामह ब्रह्माके आसन ग्रहण करलेनेपर, अपने आसनपर बठे ॥ २७ ॥ वाल्मीकिका मन उसी घटनाकी ओर लगा था, वे ध्यान लगाकर उसीकी बात सोचने लगे। उस पापात्मा और वैर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यत्त्वादृशं चारुरवं क्रौञ्चं हन्यादकारणात् । शोचन्नेव पुनः क्रौञ्चीमुपश्लोकमिमं जगौ ॥२९॥
पुनरन्तर्गतमना भूत्वा शोकपरायणः । तमुवाच ततो ब्रह्मा प्रहसन्मुनिपुंगवम् ॥३०॥
श्लोक एवास्त्वयं बद्धो नात्र कार्या विचारणा । मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन्प्रवृत्तेयं सरस्वती ॥३१॥
रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम । धर्मात्मनो भगवतो लोके रामस्य धीमतः ॥३२॥
वृत्तं कथय धीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम् । रहस्यं च प्रकाशं च यदवृत्तं तस्य धीमतः ॥३३॥
रामस्य सहसौमित्रे राक्षसानां च सर्वशः । वैदेह्याश्चैव यद्वृत्तं प्रकाशं यदि वा रहः ॥३४॥
तच्चाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति । न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति ॥३५॥
कुरु रामकथां पुण्यां श्लोकबद्धां मनोरमाम् । यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ॥३६॥
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचारिष्यति । यावद्रामस्य च कथा त्वत्कृता प्रचरिष्यति ॥३७॥
तावदूर्ध्वमधश्च त्वं मल्लोकेषु निवत्स्यसि । इत्युक्त्वा भगवान्ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ॥
ततः सशिष्यो भगवान्मुनिर्विस्मयमाययौ ॥ ३ ॥
तस्य शिष्यास्ततः सर्वे जगुः श्लोकमिमं पुनः । मुहुर्मुहुः प्रीयमाणाः प्राहुश्च भृशंविस्मिताः ॥३९॥
समाक्षरैश्चतुर्भिर्यः पादैर्गीतो महर्षिणा । सोऽनुव्याहरणाद्भूयःशोकःश्लोकत्वमागतः॥४०॥

मोल लेनेवालेने यह बहुत बुरा किया ॥ २८ ॥ मीठा बोलनेवाले उस क्रौञ्चको विना कारण ही उसने मारा और क्रौंची दुःखनी हुई, इस बातको सोचते हुए उन्होंने पुनः वह श्लोक पढ़ा ॥ २९ ॥ मुनि पुनः शोकके कारण ध्यानस्थ हो गये, उनका बाहरी ज्ञान जाता रहा । मुनिश्रेष्ठको ऐसा विह्वल देखकर ब्रह्माने हँसकर कहा ॥ ३० ॥ यह जो आपके मुखसे वाणी छन्दरूपसे निकली है वह श्लोक ही रहे, वह श्लोक ही कहा जाय । ब्रह्मन्, मेरी इच्छासे ही आपके द्वारा इस वाणीका निर्माण हुआ है ॥ ३१ ॥ हे ऋषिश्रेष्ठ ! आप धर्मात्मा भगवान् रामचन्द्रके समस्त चरितका वर्णन करें, क्योंकि रामचन्द्र लोकमें धर्मात्मा और बुद्धिमान् हैं ॥ ३२ ॥ धीर रामचन्द्रके उस चरितका आप वर्णन करें जो आपने नारदसे सुना है । बुद्धमान् रामचन्द्रके चरितमें जो गुप्त हों और जो प्रकाश हों, उन सबका आप वर्णन करें ॥३३॥ रामचन्द्र, लक्ष्मण, राक्षस और सीताका जो कुछ गुप्त और प्रकाश वृत्तान्त है उसका आप वर्णन करें ॥३४॥ जो चरित आपको मालूम नहीं हैं वे भी मालूम हो जायँगे, काव्यमें जो कुछ आप लिखेंगे वह असत्य न होगा ॥३५॥ रामचन्द्रकी पवित्र कथाका श्लोकोंमें आप निर्माण करें, पृथिवीतलमें जब तक पर्वत रहेंगे और नदियाँ रहेंगी ॥३६॥ तब तक रामायणकी कथाका प्रचार रहेगा । आपकी बनाई रामायणका जब तक लोक में प्रचार रहेगा ॥ ३७ ॥ तब तक आप मेरे लोक (ब्रह्मलोक)में निवास करेंगे । इतना कहकर भगवान् ब्रह्मा वहीं अन्तर्धान होगये, (इतनी शीघ्रतासे गये कि उनको जाते किसीने देखा नहीं)। इससे अपने शिष्यके साथ मुनि विस्मित हुए, ब्रह्माके सहसा अन्तर्धान होनेसे मुनिको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३८ ॥ मुनिके सब शिष्य उनके बनाये श्लोकको बार-बार पढ़ने लगे । वे प्रसन्न और विस्मित होकर आपसमें कहने लगे ॥ ३९ ॥ समान अक्षरवाले चार पदोंमें मुनिने यह श्लोक बनाया है । क्रौंचकी घटनाका जो उनका शोक प्रकाशित हुआ वही श्लोक बनगया ॥ ४० ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्य बुद्धिरियं जाता महर्षेर्भावितात्मनः । कृत्स्नं रामायणं काव्यमीदृशैः करवाण्यहम् ॥४१॥
उदारवृत्तार्थपदैर्मनोरमैस्तदास्य रामस्य चकार कीर्तिमान् ।
समाक्षरैः श्लोकशतैर्यशस्विनो यशस्करं काव्यमुदारदर्शनः ॥ ४२ ॥
तदुपगतसमाससंधियोगं सममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ।
रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम् ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३

श्रुत्वा वस्तु समग्रं तद्धर्मार्थसहितं हितम् । व्यक्तमन्वेषते भूयो यदवृत्तं तस्य धीमतः ॥ १ ॥
उपस्पृश्योदकं सम्यङ्मुनिःस्थित्वा कृताञ्जलिः। प्राचीनाग्रेषु दर्भेषु धर्मेणान्वेषते गतिम् ॥ २ ॥
रामलक्ष्मणसीताभी राज्ञा दशरथेन च । सभार्येण सराष्ट्रेण यत्प्राप्तं तत्र तत्त्वतः ॥ ३ ॥
हसितं भाषितं चैव गतिर्यावच्च चेष्टितम् । तत्सर्वं धर्मवीर्येण यथावत्संप्रपश्यति ॥ ४ ॥
स्त्रीतृतीयेन च तथा यत्प्राप्तं चरता वने । सत्यसंधेन रामेण तत्सर्वं चान्ववैक्षत ॥ ५ ॥
ततः पश्यति धर्मात्मा तत्सर्वं योगमास्थितः । पुरा यत्तत्र निर्वृत्तं पाणावामलकं यथा ॥ ६ ॥
तत्सर्वं तत्त्वतो दृष्ट्वा धर्मेण स महामतिः । अभिरामस्य रामस्य तत्सर्वं कर्तुमुद्यतः ॥ ७ ॥
कामार्थगुणसंयुक्तं धर्मार्थगुणविस्तरम् । समुद्रमिव रत्नाढ्यं सर्वश्रुतिमनोहरम् ॥ ८ ॥

विशुद्धात्मा मुनिने अब यह विचार किया है कि ऐसे ही श्लोकोंमें मैं समस्त रामायण बनाऊँ ॥४१॥ यशस्वी रामचन्द्रका चरित उन महर्षिने सौ श्लोकोंमें बनाया, उसमें छन्द मनोहर हैं अर्थ और पद भी मनोहर हैं, श्लोक समवृत्त हैं ॥४२॥ मुनि-प्रणीत रामचन्द्रका चरित और रावणका वध सुनिए। रामचन्द्रका चरित व्याकरणके समास सन्धिसे युक्त है, अर्थ भी मनोहर और उत्तम हैं ॥ ४३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका दूसरा सर्ग समाप्त ।

वाल्मीकि मुनिने धर्मार्थ युक्त वह समूची कथा सुनी, पुनः धीमान् रामचन्द्रके चरितमें और जो घटनाएँ प्रकाशित हुई थीं उन्हें ढूंढा ॥ १ ॥ आचमन करके तथा कुशासनपर बैठकर और दोनों हाथ जोड़कर मुनि नियमपूर्वक राम-चरितका संग्रह करने लगे ॥ २ ॥ राम, लक्ष्मण, सीता, दशरथ और उनकी रानियाँ और राज्य इनका जो कुछ सत्य वृत्तान्त है वह, ॥ ३ ॥ और रामचन्द्रका हँसना, बोलना, चलना आदि भी अपने धर्म-प्रभावसे वाल्मीकि मुनिने जान लिया ॥ ४ ॥ वनमें रहनेके समय सीता और लक्ष्मणके साथ सत्यप्रतिज्ञ रामचन्द्रपर जो बातें बीतीं, उन सबको भी वाल्मीकिने जाना ॥ ५ ॥ धर्मात्मा वाल्मीकिने इन बातोंके अतिरिक्त, चरित-संबन्धी अन्य बातें, जो पहले होचुकी थीं उन्हें, योग बलके द्वारा जानीं। हाथमें रखे हुए आँवलेका ज्ञान जैसे मनुष्यको होता है, उसी प्रकारका ज्ञान वाल्मीकिको रामचरितका होगया ॥६॥ इस प्रकार रामचन्द्रके चरित-का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करके रामचरितका वर्णन करनेके लिए वे उद्यत हुए ॥७॥ इस रामचरितमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स यथा कथितं पूर्वं नारदेन महात्मना । रघुवंशस्य चरितं चकार भगवान्मुनिः ॥ ९ ॥
जन्म रामस्य सुमहद्वीर्यं सर्वानुकूलताम् ।लोकस्य प्रियतां क्षान्तिं सौम्यतां सत्यशीलताम्॥१०॥
नाना चित्राः कथाश्चान्या विश्वामित्रसहायने । जानक्याश्च विवाहं च धनुषश्च विभेदनम् ॥११॥
रामरामविवादं च गुणान्दाशरथेस्तथा । तथाभिषेकं रामस्य कैकेय्या दुष्टभावताम् ॥१२॥
विघातं चाभिषेकस्य रामस्य च विवासनम् । राज्ञः शोकं विलापं च परलोकस्य चाश्रयम् ॥१३॥
प्रकृतीनां विषादं च प्रकृतीनां विसर्जनम् । निषादाधिपसंवादं सूतोपावर्तनं तथा ॥१४॥
गङ्गायाश्चापि सन्तारं भरद्वाजस्य दर्शनम् । भरद्वाजाभ्यनुज्ञानाच्चित्रकूटस्य दर्शनम् ॥१५॥
वास्तुकर्मनिवेशं च भरतागमनं तथा । प्रसादनं च रामस्य पितुश्च सलिलक्रियाम् ॥१६॥
पादुकाभ्याभिषेकं च नन्दिग्रामनिवासनम् । दण्डकारण्यगमनं विराधस्य वधं तथा ॥१७॥
दर्शनं शरभङ्गस्य सुतीक्ष्णेन समागमम् । अनसूयासमास्यां च अङ्गरागस्य चार्पणम् ॥१८॥
दर्शनं चाप्यगस्त्यस्य धनुषो ग्रहणं तथा । शूर्पणख्याश्च संवादं विरूपकरणं तथा ॥१९॥
वधं खरत्रिशिरसोरुत्थानं रावणस्य च । मारीचस्य वधं चैव वैदेह्या हरणं तथा ॥२०॥
राघवस्य विलापं च गृध्रराजनिबर्हणम् । कबन्धदर्शनं चैव पम्पायाश्चापि दर्शनम् ॥२१॥
शबरीदर्शनं चैव फलमूलाशनं तथा । प्रलापं चैव पम्पायां हनूमद्दर्शनं तथा ॥२२॥

काम और अर्थका वर्णन है, धर्म और अथका वर्णन विस्तारके साथ इसमें हैं, जैसे समुद्रमें रत्न होते हैं इसमें भी उसी प्रकार अनेक रत्न हैं और यह रामचरित सुननेमें मनोहर है ॥८॥ महात्मा नारदने जैसा पहले रघुवंशका चरित कहाथा, वैसाही मुनिने बनाया ॥९॥ रामचन्द्रका प्रभावशाली जन्म उनका पराक्रम, सबपर उनका प्रेम तथा उनपर सबका प्रेम, उनकी क्षमा और सत्यशीलता ॥ १० ॥ इनके अतिरिक्त अन्य सब कथाएँ जैसे विश्वामित्रकी सहायता, सीताका विवाह, धनुषका तोड़ना ॥ ११ ॥ रामचन्द्र और परशुरामका विवाद, रामचन्द्रका महत्व, रामचन्द्रके अभिषेकका उद्योग, कैकयीकी कुटिलता, ॥१२॥ अभिषेकका रुकजाना, रामचन्द्रका बन जाना राजादशरथका शोक विलाप तथा परलोक-गमन ॥१३॥ प्रजाका दुःख, रामचन्द्रके साथ जानेवाले नगरवासियोंको लौटाना, निषादराजके साथ संवाद, सारथिको लौटाना ॥ १४ ॥ गंगाका पार करना, भरद्वाजका दर्शन, भरद्वाजकी आज्ञासे चित्रकूट जाना ॥ १५ ॥ वहाँ घर बनाकर रहना, भरतका आना और लौटनेके लिए रामचन्द्रको मनाना, पिताको जलाञ्जलि देना, ॥१६॥ राज्यपर रामचन्द्रकी चरणपादुकाका स्थापन, नन्दिग्राममें उनका निवास, रामचन्द्रका दण्डकारण्यमें जाना, विराधका वध करना, ॥ १७ ॥ शरभंगका दर्शन होना, और सुतीक्ष्णके साथ भेंट, अनसूयाका दर्शन और उनसे अङ्गराग (एक तरहका उबटन) का पाना, ॥ १८ ॥ अगस्त्यका दर्शन और धनुष-ग्रहण, शूर्पणखाके साथ संवाद और उसको विरूप बनाना (कान-नाक काटना) ॥१९॥ खर और त्रिशिराका वध करना, रावणका बदलाके लिए तयार होना, मारीचका वध होना, सीताका हरण ॥ २० ॥ रामचन्द्रका विलाप, गृध्रराज जटायुकी मृत्यु, कबन्धका दर्शन और पम्पाका दर्शन ॥ २१ ॥ शबरीके यहाँ जाना और उसका फलमूल ग्रहण करना, पम्पाके तीरपर रामचन्द्रका विह्वल होना और वहीं हनुमानका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ऋष्यमूकस्य गमनं सुग्रीवेण समागमम् । प्रत्ययोत्पादनं सख्यं वालिसुग्रीवविग्रहम् ॥२३॥
वालिप्रमथनं चैव सुग्रीवप्रतिपादनम् । ताराविलापं समयं वर्षरात्रनिवासनम् ॥२४॥
कोपं राघवसिंहस्य बलानामुपसंग्रहम् । दिशः प्रस्थापनं चैव पृथिव्याश्च निवेदनम् ॥२५॥
अङ्गुलीयकदानं च ऋक्षस्य बिलदर्शनम् । प्रायोपवेशनं चैव संपातेश्चापि दर्शनम् ॥२६॥
पर्वतारोहणं चैव सागरस्यापि लङ्घनम् । समुद्रवचनाच्चैव मैनाकस्य च दर्शनम् ॥२७॥
राक्षसीतर्जनं चैव छायाग्राहस्य दर्शनम् । सिंहिकायाश्च निधनं लङ्कामलयदर्शनम् ॥२८॥
रात्रौ लङ्काप्रवेशं च एकस्यापि विचिन्तनम् । आपानभूमिगमनमवरोधस्य दर्शनम् ॥२९॥
दर्शनं रावणस्यापि पुष्पकस्य च दर्शनम् । अशोकवनिकायानं सीतायाश्चापि दर्शनम् ॥३०॥
अभिज्ञानप्रदानं च सीतायाश्चापि भाषणम् । राक्षसीतर्जनं चैव त्रिजटास्वप्नदर्शनम् ॥३१॥
मणिप्रदानं सीताया वृक्षभङ्गं तथैव च । राक्षसीविद्रवं चैव किंकराणां निबर्हणम् ॥३२॥
ग्रहणं वायुसूनोश्च लङ्कादाहाभिगर्जनम् । प्रतिप्लवनमेवाथ मधूनां हरणं तथा ॥३३॥
राघवाश्वासनं चैव मणिनिर्यातनं तथा । संगमं च समुद्रेण नलसेतोश्च बन्धनम् ॥३४॥
प्रतारं च समुद्रस्य रात्रौ लङ्कावरोधनम् । विभीषणेन संसर्गं वधोपायनिवेदनम् ॥३५॥
कुम्भकर्णस्य निधनं मेघनादनिबर्हणम् । रावणस्य विनाशं च सीतावाप्तिमरेः पुरे ॥३६॥

दर्शन होना, ॥२२॥ ऋष्यमूक पर्वतपर जाना और सुग्रीवसे भेंट करना, रामचन्द्रका सुग्रीवको अपने बलका विश्वास दिलाना, सुग्रीवसे रामचन्द्रकी मित्रता, और बालि-सुग्रीवका विरोध, ॥ २३ ॥ बालिको मारना और सुग्रीवको राज्य देना, बालिकी स्त्री ताराका विलाप, सुग्रीवको एक वर्षका अवकाश, ॥ २४ ॥ रामचन्द्रका क्रोध करना, सुग्रीवका सेना-संग्रह करना, सब दिशाओं और समस्त पृथिवीपर ढूंढ़नेके लिए दूत भेजना, ॥२५॥ पहचानके लिए अँगूठीका देना, जाम्बवानका गुफा देखना, धरना देना, सम्पातिसे भेंट होना, ॥२६॥ पर्वतपर चढ़ना, समुद्रको लांघना, और समुद्रके कहने से मैनाक पर्वतको देखना, ॥२७॥ राक्षसीके द्वारा भयभीत किया जाना, छायाग्राही राक्षससे भेंट, सिंहिका राक्षसीको मारना और लङ्कामें पहुँचना, ॥२८॥ रातमें लंकामें जाना, एकान्तमें विचार करना, आपानभूमि (शराब पीनेकी जगह) में जाना, रावणकी स्त्रियोंको देखना, ॥२९॥ रावणको देखना, पुष्पक विमानको देखना, अशोक-वाटिकामें जाना और वहाँ सीताको देखना, ॥ ३० ॥ रामचन्द्रका दिया हुआ पहिचान सीताको देना, सीताका बात करना, राक्षसियोंका भय प्रदर्शन, त्रिजटाका स्वप्न देखना, ॥३१॥ रामचन्द्रको देनेके लिए सीताका मणि देना, हनुमानका वाटिकामें वृक्षोंको तोड़ना, राक्षसियोंका घबड़ाना और राक्षसोंका वध करना, ॥३२॥ हनुमानका बाँधा जाना, लंका-दहन, हनुमानका गर्जन, वहाँसे लौटना, सुग्रीवके बागका फल खाना ॥३३॥ रामचन्द्रको धैर्य देना, और सीताकी दी हुई मणि देना, समुद्र-तीरपर जाना और नलके द्वारा सेतु बँधवाना, ॥३४॥ समुद्रका पार करना, रातमें लङ्कापर घेरा डालना, विभीषणका आना और उनका रावणके वधका उपाय बतलाना, ॥ ३५ ॥ कुम्भकर्णका मारा जाना, मेघनादका वध, रावणका नाश और लङ्कामें सीताकी प्राप्ति, ॥ ३६ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विभीषणाभिषेकं च पुष्पकस्य च दर्शनम् । अयोध्यायाश्च गमनं भरद्वाजसमागमम् ॥३७॥
प्रेषणं वायुपुत्रस्य भरतेन समागमम् । रामाभिषेकाभ्युदयं सर्वसैन्यविसर्जनम् ॥
स्वराष्ट्ररञ्जनं चैव वैदेह्याश्च विसर्जनम् ॥ ३८ ॥
अनागतं च यत्किंचिद्रामस्य वसुधातले । तच्चकारोत्तरे काव्ये वाल्मीकिर्भगवानृषिः ॥३९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४

प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः । चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत् ॥ १ ॥
चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवानृषिः । तथा सर्गशतान्पञ्च षट्काण्डानि तथोत्तरम् ॥ २ ॥
कृत्वा तु तन्महाप्राज्ञः सभविष्यं सहोत्तरम् । चिन्तयामास को न्वेतत्प्रयुञ्जीयादिति प्रभुः ॥ ३ ॥
तस्य चिन्तयमानस्य महर्षेर्भावितात्मनः । अग्रहीतां ततः पादौ मुनिवेषौ कुशीलवौ ॥ ४ ॥
कुशीलवौ तु धर्मज्ञौ राजपुत्रौ यशस्विनौ । भ्रातरौ स्वरसंपन्नौ ददर्शाश्रमवासिनौ ॥ ५ ॥
स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ । वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः ॥ ६ ॥
काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत् । पौलस्त्यवधमित्येवं चकार चरितव्रतः ॥ ७ ॥
पाठ्ये गेये च मधुरं प्रमाणैस्त्रिभिरन्वितम् । जातिभिः सप्तभिर्युक्तं तन्त्रीलयसमन्वितम् ॥ ८ ॥

लङ्काके राज्यपर विभीषणका अभिषेक, पुष्पक विमानका दर्शन, अयोध्याके लिए प्रस्थान करना, भरद्वाज मुनिसे भेंट, ॥ ३७ ॥ भरतके पास हनुमानका जाना, भरतमिलाप, रामचन्द्रका राज्याभिषेक, सैनिकोंकी विदाई, राज्यका पालन और सीताका त्याग, ॥३८॥ इन सब चरितोंके अतिरिक्त रामचन्द्रके चरितकी जो अन्य घटनाएँ होनेको बाकी थीं उनका वर्णन भगवान् वाल्मीकि ऋषिने उत्तरकाण्डमें किया है ॥ ३९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका तीसरा सर्ग समाप्त ॥ ३ ॥

भगवान् वाल्मीकि ऋषिने राजा रामचन्द्रका समस्त चरित बनाया, जिसके पद उत्तम तथा अर्थयुक्त हैं ॥१॥ चौबीस हजार श्लोकोंमें भगवान् वाल्मीकिने वह चरित लिखा, पाँचसौ सर्ग, छ काण्ड और उत्तरकाण्ड इसप्रकार सातकांडोंमें रामचरितका उन्होने निर्माण किया ॥२॥ छ काण्डोंमें वर्णित और उत्तरकाण्डमें, होनेवाले चरितका वर्णन करके मुनिने सोचा कि कौन इस काव्यका गान करेगा ॥ ३ ॥ विशुद्धात्मा ऋषि इसप्रकार सोच रहे थे, उसी समय मुनिवेषधारी कुश और लवने मुनिके चरण ग्रहण किये ॥४॥ कुश और लव धर्मात्मा थे, राजपुत्र थे, यशस्वी थे, दोनो भाई थे, उनके गलेका स्वर मीठा था, वे आश्रममें रहनेवाले थे, मुनिने उन्हे देखा ॥५॥ वे बुद्धिमान् हैं और वेदोंका भी उन्हें ज्ञान है, इसकारण वेदोंके प्रचारकी इच्छासे मुनिने उन्हें अपना रामचरितकाव्य पढ़ाया ॥ ६ ॥ समस्त रामायणकाव्य, जिसमें सीताके महान् चरितका वर्णन है और रावण-वधका वर्णन है, चरितवर्णन करनेमें तत्पर मुनिने बनाया ॥७॥ यह काव्य पढ़ने और गाने में मधुर है, तीन प्रमाणोंसे युक्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रसैः शृङ्गारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः । वीरादिभी रसैर्युक्तं काव्यमेतदगायताम् ॥ ९ ॥
तौ तु गान्धर्वतत्त्वज्ञौ स्थानमूर्च्छनकोविदौ । भ्रातरौ स्वरसंपन्नौ गन्धर्वाविव रूपिणौ ॥१०॥
रूपलक्षणसंपन्नौ मधुरस्वरभाषिणौ । विम्बादिवोत्थितौ बिम्बौ रामदेहात्तथापरौ ॥११॥
तौ राजपुत्रौ कार्त्स्न्येन धर्म्यमाख्यानमुत्तमम् । वाचोविधेयं तत्सर्वं कृत्वा काव्यमनिन्दितौ ॥१२॥
ऋषीणां च द्विजातीनां साधूनां च समागमे । यथोपदेशं तत्त्वज्ञौ जगतुः सुसमाहितौ ॥१३॥
महात्मानौ महाभागौ सर्वलक्षणलक्षितौ । तौ कदाचित्समेतानामृषीणां भावितात्मनाम् ॥१४॥
मध्येसभं समीपस्थाविदं काव्यमगायताम् । तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे बाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥१५॥
साधु साध्विति तावूचुः परं विस्मयमागताः । ते प्रीतमनसः सर्वे मुनयो धर्मवत्सलाः ॥१६॥
प्रशशंसुः प्रशस्तव्यौ गायमानौ कुशीलवौ । अहो गीतस्य माधुर्यं श्लोकानां च विशेषतः ॥१७॥
चिरनिर्वृत्तमप्येतत्प्रत्यक्षमिव दर्शितम् । प्रविश्य तावुभौ सुष्ठु तथाभावमगायताम् ॥१८॥
सहितौ मधुरं रक्तं संपन्नं स्वरसंपदा । एवं प्रशस्यमानौ तौ तपःश्लाघ्यैर्महर्षिभिः ॥१९॥
संयुक्ततरमत्यर्थं मधुरं तावगायताम् । प्रीतःकाश्चिन्मुनिस्ताभ्यां संस्थितःकलशं ददौ॥२०॥
प्रसन्नौ वल्कलं काश्चिद्ददौ ताभ्यां महायशाः । अन्यः कृष्णाजिनमदाद्यज्ञसूत्रं तथापरः ॥२१॥
काश्चित्कमण्डलुं प्रादान्मौञ्जीमन्यो महामुनिः । बृसीमन्यस्तदा प्रादात्कौपीनमपरो मुनिः ॥२२॥

है, सात जातियोंसे तन्त्री और लयसे (गानेके गुण) यह युक्त है॥८॥ शृङ्गार, करुण, हास्य, रौद्र भयानक और वीर आदि रसोंसे युक्त इस काव्यका गान कुश और लवने किया ॥ ९ ॥ वे गान–विद्यामें निपुण थे, स्थान और मूर्च्छनाका ज्ञान रखते थे, दोनों भाइयोंका गला बड़ाही मधुर था और वे गन्धर्वके समान सुन्दर थे ॥१०॥ वे रूपवान सुलक्षण, मधुरभाषी, छायाकी प्रतिच्छायाके समान रामचन्द्रके शरीरसे दूसरे रामचन्द्रके समान उत्पन्न हुए थे ॥ ११ ॥ उन अनिन्दित दोनों राजपुत्रोंने इस धार्मिक उत्तम आख्यानको कण्ठस्थ किया ॥ १२ ॥ ऋषियों, द्विजातियों और साधुओंका जहाँ समागम था, वहाँ उनलोगोने गुरुके उपदेशके अनुसार सावधान होकर उस काव्यका गान किया ॥१३॥ उन दोनों महाभागी और सब उत्तम लक्षणोंसे युक्त राजपुत्रोंने किसी समय एकत्र हुए शुद्धात्मा ऋषियोंकी ॥ १४ ॥ सभामें जाकर इस काव्यका गान किया । उस गानको सुनकर मुनियोंकी आँखें जलसे भर आयीं ॥१५॥ विस्मित होकर सबलोग उन बालकोंकी प्रशंसा करनेलगे । वे धर्मात्मामुनि बहुत प्रसन्न हुए ॥ १६ ॥ प्रशंसा करने-योग्य गायक कुश और लवकी उन लोगोंने प्रशंसा की। उनलोगोंने कहा गान कितना मधुर है, श्लोकोंकी मधुरता तो और भी बढ़ी हुई है ॥१७॥ ये घटनाएँ पहले होचुकी हैं, पर प्रत्यक्षके समान मालूम पड़ती हैं। इन दोनों बालकोंने ऐसी सुन्दरताके साथ गाया है॥१८॥ बडे बडे तपस्वी महर्षियोंने उनके मधुर स्वर और मधुर गानकी प्रशंसा की ॥१९॥ इस प्रशंसासे प्रसन्न होकर वे और भी मधुर गाने लगे, जिससे प्रसन्न होकर किसी मुनिने उन्हें एक घड़ा दिया॥२०॥ किसी मुनिने प्रसन्न होकर उनलोगोंको वल्कल वस्त्र दिया । एकने काला मृगचर्म दिया और दूसरेने यज्ञसूत्र ॥ २१ ॥ एकने कमण्डलु दिया और दूसरेने मौजी (मूंजकी बनी रस्सी जो कमरमें लपेटनेके काममें आती थी)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ताभ्यां ददौ तदा हृष्टः कुठारमपरो मुनिः । काषायमपरो वस्त्रं चीरमन्यो ददौ मुनिः ॥२३॥
जटाबन्धनमन्यस्तु काष्ठरज्जुं मुदान्वितः । यज्ञभाण्डमृषिः कश्चित्काष्ठभारं तथा परः ॥२४॥
औदुम्बरीं बृसीमन्यः स्वस्ति केचित्तदावदन् । आयुष्यमपरे प्राहुर्मुदा तत्र महर्षयः ॥२५॥
ददुश्चैवं वरान्सर्वे मुनयः सत्यवादिनः । आश्चर्यमिदमाख्यानं मुनिना संप्रकीर्तितम् ॥२६॥
परं कवीनामाधारं समाप्तं च यथाक्रमम् । अभिगीतामिदं गीतं सर्वगीतिषु कोविदौ ॥२७॥
आयुष्यं पुष्टिजननं सर्वश्रुतिमनोहरम् । प्रशस्यमानौ सर्वत्र कदाचित्तत्र गायकौ ॥२८॥
रथ्यासु राजमार्गेषु ददर्श भरताग्रजः । स्ववेश्म चानीय ततो भ्रातरौ स कुशीलवौ॥२९॥
पूजयामास पूजार्हौ रामः शत्रुनिबर्हणः । आसीनः काञ्चने दिव्ये स च सिंहासने प्रभुः ॥३०॥
उपोपविष्टैः सचिवैर्भ्रातृभिश्च समन्वितः । दृष्ट्वा तु रूपसंपन्नौ विनीतौ भ्रातरावुभौ ॥३१॥
उवाच लक्ष्मणं रामः शत्रुघ्नं भरतं तथा । श्रुयतामेतदाख्यानमनयोर्देववर्चसोः ॥३२॥
विचित्रार्थपदं सम्यग्गायकौ समचोदयत् । तौ चापि मधुरं रक्तं स्वचित्तायतनिःस्वनम् ॥३३॥
तन्त्रीलयवदत्यर्थं विश्रुतार्थमगायताम् । ह्लादयत्सर्वगात्राणि मनांसि हृदयानि च ॥
श्रोत्राश्रयसुखं गेयं तद्बभौ जनसंसदि ॥३४॥
इमौ मुनी पार्थिवलक्षणान्वितौ कुशीलवौ चैव महातपस्विनौ ।

दी । एक मुनिने आसन दिया तथा दूसरेने कौपीन ॥ २२ ॥ प्रसन्न होकर किसी मुनिने उनलोगोंको एक कुठार दिया, किसी मुनिने कषायवस्त्र दिया और किसी मुनिने वस्त्र दिया ॥२३॥ एकने जटा-बाँधनेकी वस्तु दी और दूसरेने लकड़ी बाँधनेकी रस्सी, किसी ऋषिने यज्ञभाण्ड दिया और किसीने लकड़ीका बोझ ॥ २४ ॥ किसीने गूलरकी लकड़ीका बना हुआ आसन दिया, और किसीने केवल आशीर्वाद दिया । अन्य ऋषियोंने प्रसन्न होकर उनके दीर्घजीवी होनेकी कामना की ॥ २५ ॥ उन सत्यवादी मुनियोंने इस प्रकार उन राजपुत्रोंको आशीर्वाद दिये। वाल्मीकि मुनिकी बनाई यह कथा बड़ी ही आश्चर्यप्रद है, ॥ २६ ॥ यह कवियोंका आश्रय है, यथाक्रम इसकी समाप्ति हुई है । सब प्रकारके गानमें निपुण उन दोनों राजपुत्रोंने इसका कथागान किया ॥ २७ ॥ यह कथा आयु बढ़ाने-वाली और प्रसन्नता देनेवाली है, उन दोनों गायकोंकी सर्वत्र प्रशंसा होने लगी । किसी समय ॥२८॥ रास्तेमें रामचन्द्रने उनको देखा । कुश और लव दोनों भाइयोंको वे अपने घर लेआये ॥ २९ ॥ दिव्य सुवर्णके सिंहासनपर बैठे हुए उन शत्रुविजयी रामचन्द्रने पूजाके योग्य उन राजपुत्रोंकी पूजा की ॥ ३० ॥ भाइयों और मंत्रियोंके साथ रामचन्द्र वहां बैठे हुए थे, उन्होंने रूपवान् और विनयी दोनों भाइयोंको देखा ॥ ३१ ॥ लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नसे रामचन्द्रने कहा, देवताके समान तेजस्वी इनसे आपलोग यह आख्यान सुनें ॥ ३२ ॥ सुन्दर अर्थ और पदवाले उस आख्यानको सुनानेके लिए रामचन्द्रने उनलोगोंसे कहा, उनलोगोंने भी मधुर तथा अपने चित्तके समान विशाल स्वरमें ॥३३॥ तन्त्री-लयसे युक्त उस प्रसिद्ध काव्यका गान प्रारम्भ किया, जिससे सबके शरीर, मन और हृदय प्रसन्न हुए । उस समाजने उस समय समझा कि श्रवणसुखही सब सुखोंसे बड़ा है ॥ ३४ ॥ ये दोनों कुश और लव मुनि हैं पर इनमें राजाओंके लक्षण वर्तमान हैं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ममापि तद्भूतिकरं प्रचक्षते महानुभावं चरितं निबोधत ॥३५॥
ततस्तु तौ रामवचःप्रचोदितावगायतां मार्गविधानसंपदा ।
स चापि रामः परिषद्गतः शनैर्बुभूषयासक्तमना बभूव ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः ५

सर्वा पूर्वमियं येषामासीत्कृत्स्ना वसुंधरा । प्रजापतिमुपादाय नृपाणां जयशालिनाम् ॥ १ ॥
येषां स सगरो नाम सागरो येन खानितः । षष्टिपुत्रसहस्राणि यं यान्तं पर्यवारयन् ॥ २ ॥
इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम् । महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम् ॥ ३ ॥
तदिदं वर्तयिष्यावः सर्वं निखिलमादितः । धर्मकामार्थसहितं श्रोतव्यमनसूयया ॥ ४ ॥
कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान् । निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान् ॥ ५ ॥
अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता । मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम् ॥ ६ ॥
आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी । श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्तमहापथा ॥ ७ ॥
राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता । मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः ॥ ८ ॥
तां तु राजा दशरथो महाराष्ट्रविवर्धनः । पुरीमावासयामास दिवि देवपतिर्यथा ॥ ९ ॥
कपाटतोरणवतीं सुविभक्तान्तरापणाम् । सर्वयन्त्रायुधवतीमुषितां सर्वशिल्पिभिः ॥१०॥

और ये बड़े तपस्वी हैं । वह उत्तम आख्यान मेरे लिए भी कल्याणकारी है ऐसा आपलोग समझें ॥ ३५ ॥ उन दोनोंने रामचन्द्रकी आज्ञासे गानके नियमोंके अनुसार गाना प्रारम्भ किया, सभामें बैठे हुए रामचन्द्र भी बड़े ध्यानसे उसे सुनने लगे ॥ ३६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका चौथा सर्ग समाप्त ॥ ४ ॥

प्रजापति (मनु) से लेकर राजन विजयी राजाओंके अधिकारमें यह समस्त पृथिवी थी ॥ १ ॥ जिस वंशमें सगर नामक राजा थे जिन्होंने सागर खुदवाया था, जिनके साठ हजार पुत्र थे ॥२॥ उन महात्मा इक्ष्वाकुवंशी राजाओंके वंशमें यह महान् कथा उत्पन्न हुई है जो रामायण-नामसे प्रसिद्ध है ॥३॥ वह कथा प्रारम्भसे लेकर अन्ततक हमलोग कहेंगे, ईर्ष्या छोड़कर आप लोग सुनें वह कथा धर्म, अर्थ और कामसे युक्त है ॥ ४ ॥

कोशल नामक एक बहुत बड़ा प्रान्त था, वह सरयूके तीरपर बसा था, वह धन-धान्यसे पूर्ण था ॥ ५ ॥ उस कोशलप्रान्तमें लोकप्रसिद्ध अयोध्या नामक नगरी थी, जो नगरी मानवश्रेष्ठ मनुने स्वयं बसाई थी ॥६॥ वह महानगरी बारह योजन लम्बी थी, उसमें लम्बी चौड़ी सड़कें बनी थीं, वह नगरी बड़ी सुन्दर थी ॥७॥ उस नगरीकी प्रधान सड़कें बड़ी सुन्दर और लम्बी-चौड़ी थीं, उनपर प्रतिदिन जलका छिड़काव होता था और फूल बखेरे जाते थे, महाराज दशरथ उस नगरीके राजा थे, जिस प्रकार इन्द्र देवलोकके राजा हैं, महाराज दशरथ राज्य बढ़ानेवाले थे ॥ ९ ॥ उस नगरीमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सूतमागधसंबाधां श्रीमतीमतुलप्रभाम् । उच्चाट्टालध्वजवतीं शतघ्नीशतसंकुलाम् ॥११॥
वधूनाटकसंघैश्च संयुक्तां सर्वतः पुरीम् । उद्यानाम्रवणोपेतां महतीं सालमेखलाम् ॥१२॥
दुर्गगम्भीरपरिखां दुर्गामन्यैर्दुरासदाम् । वाजिवारणसंपूर्णां गोभिरुष्ट्रैः खरैस्तथा ॥१३॥
सामन्तराजसंघैश्च बलिकर्मभिरावृताम् । नानादेशनिवासैश्च वणिग्भिरुपशोभिताम् ॥१४॥
प्रासादै रत्नविकृतैः पर्वतैरिव शोभिताम् । कूटागारैश्च संपूर्णामिन्द्रस्येवामरावतीम् ॥१५॥
चित्रामष्टापदाकारां वरनारीगणायुताम् । सर्वरत्नसमाकीर्णां विमानगृहशोभिताम् ॥१६॥
गृहगाढामविच्छिद्रां समभूमौ निवेशिताम् । शालितण्डुलसंपूर्णामिक्षुकाण्डरसोदकाम् ॥१७॥
दुन्दुभीभिर्मृदङ्गैश्च वीणाभिः पणवैस्तथा । नादितां भृशमत्यर्थं पृथिव्यां तामनुत्तमाम् ॥१८॥
विमानामिव सिद्धानां तपसाधिगतं दिवि । सुनिवेशितवेश्मान्तां नरोत्तमसमावृताम् ॥१९॥
ये च बाणैर्न विध्यन्ति विविक्तमपरापरम् । शब्दवेध्यं च विततं लघुहस्ता विशारदाः ॥२०॥
सिंहव्याघ्रवराहाणां मत्तानां नदतां वने । हन्तारो निशितैः शस्त्रैर्बलाद्बाहुबलैरपि ॥२१॥
तादृशानां सहस्रैस्तामभिपूर्णां महारथैः । पुरीमावासयामास राजा दशरथस्तदा ॥२२॥

किवाड़ लगे हुए थे और तोरणसे वह नगरी शोभित थी। नगरीके भीतर बाजार लगे थे, सब प्रकारके यन्त्र और शस्त्र (युद्धके सामान) उस नगरीमें थे और शिल्पी भी उस नगरीमें वास करते थे॥१॥ सूत और मागध (स्तुति करनेवाले) उस नगरीमें बहुत थे वह नगरी बड़ी सुन्दर थी, बड़ी-बड़ी अटारियोंपर ध्वजा लगी हुई थी, सैकड़ों शतघ्नी (एक अस्त्र जिससे सैकड़ों आदमी मरें) उस नगरीकी चारदिवारीपर लगी हुई थी ॥११॥ वेश्याएँ और नाटक करनेवालोंका दल भी उस नगरीमें जहां-तहां था, उसमें बगीचे थे, आमका तो वन ही था। नगरीके चारो ओर साल वृक्षकी चारदीवारी थी ॥ १२ ॥ उसी नगरीमें राजाका किला था, उसके चारो ओर गहरी खाई थी, वहां तक शत्रुओंका पहुँचना कठिन था। हाथी, घोड़े, गौ, ऊँट, गधे आदि भी थे ॥ १३ ॥ महाराज दसरथके अधीन सामन्त राजा भी वहाँ रहते थे, वहाँ पशुपक्षियोंके खानेकी अच्छी व्यवस्था थी, और अनेक देशोंके रहनेवाले व्यापारी वहां रहा करते थे॥१४॥ राजाके महलोंमें रत्न जड़े हुए थे, वे पर्वतके समान मालूम होते थे, उस नगरीमें अनेक गुप्तगृह भी थे। वह नगरी इन्द्रकी अमरावतीपुरीके समान थी॥१५॥वह नगरी बड़े सुन्दर ढंगसे बसी हुई थी, उसके आठ कोने थे, वहां हजारों वेश्याएँ थीं, वहां सब प्रकारके रत्न थे और सतमहले मकान थे॥१६॥ बस्ती सघन थी, कहींसे अवकाश न था, समतल भूमिमें बसी हुई थी, वहां खूब धान होता था और ईखका रस भी अधिक होता था ॥ १७॥ दुन्दुभी, मृदङ्ग, वीणा, पणव आदि बाजे वहां सदा बजा करते थे, वह नगरी पृथिवीमें सबसे श्रेष्ठ थी ॥१८॥ जिस प्रकार सिद्धों (एक प्रकारके देवता) ने तपस्याके द्वारा आकाशमें विमान प्राप्त किया है, उसी प्रकार इस नगरीके भी गृह बड़े ही सुन्दर बने थे और उन गृहोंमें उत्तम पुरुष निवास करते थे ॥ १९ ॥ जो दूसरोंके बाणोंसे नहीं बेधे जासकते थे, जो शब्दवेधी बाण चला सकते थे और जो बड़ी शीघ्रतासे बाण चला सकते थे ॥ २० ॥ वनमें मस्त विचरनेवाले सिंह, बाघ और शूकरोंको तीखे शस्त्रोंसे और बाहुबलसे भी मारनेवाले ॥२१॥ महारथी उस नगरीमें हजारों थे। राजा दशरथ उसी नगरीमें निवास करते थे,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तामग्निमद्भिर्गुणवद्भिरावृतां द्विजोत्तमैर्वेदषडङ्गपारगैः ।
सहस्रदैः सत्यरतैर्महात्मभिर्महर्षिकल्पैर्ऋषिभिश्च केवलैः ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६

तस्यां पुर्यामयोध्यायां वेदवित्सर्वसंग्रहः । दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपदप्रियः ॥ १ ॥
इक्ष्वाकूणामतिरथो यज्वा धर्मपरो वशी । महर्षिकल्पो राजर्षिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ २ ॥
बलवान्निहतामित्रो मित्रवान्विजितेन्द्रियः । धनैश्च संचयैश्चान्यैः शक्रवैश्रवणोपमः ॥ ३ ॥
यथा मनुर्महातेजा लोकस्य परिरक्षिता । तथा दशरथो राजा लोकस्य परिरक्षिता ॥ ४ ॥
तेन सत्याभिसंधेन त्रिवर्गमनुतिष्ठता । पालिता सा पुरी श्रेष्ठा इन्द्रेणेवामरावती ॥ ५ ॥
तस्मिन्पुरवरे हृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुताः । नरास्तुष्टा धनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः ॥६॥
नाल्पसंनिचयः कश्चिदासीत्तस्मिन्पुरोत्तमे । कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थोऽगवाश्वधनधान्यवान् ॥ ७॥
कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित् । द्रष्टुशक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः ॥ ८ ॥
सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयताः । मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः ॥ ९ ॥

॥ २२ ॥ वेदवेदाङ्गके ज्ञाता अग्निहोत्री और गुणी पुरुष उस नगरीमें निवास करते थे, वे हजारोंका दान करते थे, सत्यवादी थे, महर्षियोंके समान महात्मा भी वहाँ रहा करते थे ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका पाँचवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५ ॥

उस अयोध्यापुरीमें राजा दसरथ राज्य करते थे, वे वेदोंके ज्ञाता थे, और सब प्रकारकी वस्तुओंके संग्रह करनेवाले थे । वे दूरन्देश, तेजस्वी और नगरवासी तथा राज्यकी प्रजाके प्रिय थे ॥ १ ॥ वे इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए थे, बड़े वीर थे, यज्ञ किया करते थे, जितेन्द्रिय थे, वे राजर्षि महर्षियोंके समान थे और तीनों लोकोंमें उनकी प्रसिद्धि थी ॥२॥ वे बली थे, उन्होंने शत्रुओंको परास्त किया था, उनके बड़े अच्छे मित्र थे और वे जितेन्द्रिय थे । धन तथा अन्य वस्तुओंके संग्रहके कारण वे इन्द्र और कुबेरके समान थे ॥ ३ ॥ महातेजस्वी मनुने जिस प्रकार लोककी रक्षा की थी, उसीप्रकार महाराज दसरथ भी लोकके रक्षक थे ॥ ४ ॥ धर्म, अर्थ और कामका पालन करनेवाले वह सत्यप्रतिज्ञ राजा उस नगरी-का पालन करता था, जिसप्रकार इन्द्र अमरावती पुरीका पालन करते हैं ॥५॥ उस श्रेष्ठ नगरीमें अनेक धर्मात्मा बहुश्रुत, प्रसन्नता पूर्वक रहते थे, मनुष्य सब अपने-अपने धनसे सन्तुष्ट थे, लोभी न थे और सत्यवादी थे ॥ ६ ॥ उस नगरीमें ऐसा कोई नहीं था जिसका संचय आवश्यकतासे कम हो । वहाँ कोई गृहस्थ ऐसा नहीं था, जिसके मनोरथ पूरे न होते हों, सभीके घर गौ, घोड़े धन, धान्य आदिसे पूर्ण थे ॥७॥ कामी, कृपण और क्रूर मनुष्यका अयोध्यामें मिलना असम्भव था, वहां न तो कोई मूर्ख था और न कोई नास्तिक ॥८॥ वहांके सभी स्त्री-पुरुष धर्मात्मा थे, संयमी थे, वे सभी शीलवान्

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नाकुण्डली नामुकुटी नास्रग्वी नाल्पभोगवान् । नामृष्टो न निलिप्ताङ्गो नासुगन्धश्च विद्यते ॥१०॥
नामृष्टभोजी नादाता नाप्यनङ्गदनिष्कधृक् । नाहस्ताभरणो वापि दृश्यते नाप्यनात्मवान् ॥११॥
नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः । कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृत्तो न संकरः ॥१२॥
स्वकर्मनिरता नित्यं ब्राह्मणा विजितेन्द्रियाः । दानाध्ययनशीलाश्च संयताश्च प्रतिग्रहे ॥ १३ ॥
नास्तिको नानृती वापि न कश्चिदबहुश्रुतः । नासूयको न चाशक्तो नाविद्वान्विद्यते क्वचित् ॥१४॥
नाषडङ्गविदत्रास्ति नाव्रतो नाबहुश्रुतः । न दीनः क्षिप्तचित्तो वा व्यथितो वापि कश्चन ॥१५॥
कश्चिन्नरो वा नारी वा नाश्रीमान्नाप्यरूपवान् । द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नापि राजन्यभक्तिमान् ॥१६॥
वर्णेष्वग्र्यचतुर्थेषु देवतातिथिपूजकाः । कृतज्ञाश्च वदान्याश्च शूरा विक्रमसंयुताः ॥१७॥
दीर्घायुषी नराः सर्वे धर्मं सत्यं च संश्रिताः । सहिताः पुत्रपौत्रैश्च नित्यं स्त्रीभिः पुरोत्तमे ॥१८॥
क्षत्रं ब्रह्ममुखं चासीद्वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः । शूद्राः स्वकर्मनिरतास्त्रीन्वर्णानुपचारिणः ॥१९॥
सा तेनेक्ष्वाकुनाथेन पुरी सुपरिरक्षिता । यथा पुरस्तान्मनुना मानवेन्द्रेण धीमता ॥२०॥
योधानामग्निकल्पानां पेशलानाममर्षिणाम् । संपूर्णा कृतविद्यानां गुहा केसरिणामिव ॥२१॥
काम्बोजविषये जातैर्वाह्लीकैश्च हयोत्तमैः । वनायुजैर्नदीजैश्च पूर्णा हरिहयोत्तमैः ॥२२॥

और चरित्रवान् थे, वे सब महर्षियोंके समान शुद्ध थे ॥९॥ वहांके पुरुष कुण्डल, मुकुट और माला धारण करते थे, उनके पास काफी भोगकी सामग्रियाँ थीं, सभी स्नान करते थे, सभी शरीरमें सुगन्धित वास्तुओंका लेप करते थे ॥ १० ॥ वहांके वासी उत्तम भोजन करते थे, दान करते थे, वे अंगद (विजायठ), निष्क (गलेका गहना) और कंकण धारण करते थे, पर वे सबके सब आत्मवान थे, उनका मन उनके वशमें था ॥११॥ वहाँवाले सभी अग्निहोत्री थे, सभी यज्ञ करनेवाले थे, कोई ओछे विचारका न था, कोई चोर न था अयोध्यापुरीमें कोई चरित्रहीन न था और न कोई वर्णशंकर ही था ॥ १२ ॥ वहांके जितेन्द्रिय ब्राह्मण अपने कर्ममें सदा लगे रहते थे, दान देते थे और विद्याध्ययन करते थे, दान लेना पसन्द नहीं करते थे ॥ १३ ॥ वहां कोई नास्तिक न था, कोई झूठा न था, कोई ऐसा न था जो बहुश्रुत न हो, इर्ष्या करनेवाला, असमर्थ और मूर्ख वहां कोई न था ॥१४॥ वहां कोई ऐसा न था जो वेदके छ अंगोंको न जानता हो, ऐसा कोई न था जो व्रत आदि न करता हो और जो बहुश्रुत न हो। दीन पागल या किसी दुःखसे दुःखी वहां कोई न था ॥ १५ ॥ अयोध्यामें कोई स्त्री या पुरुष ऐसा नहीं था जो सुन्दर न हो और जो राजामें भक्ति न रखता हो ॥ १६ ॥ चारो वर्णोंके स्त्री और पुरुष देवता तथा अतिथिकी पूजा करनेवाले थे, वे सभी दानी थे, कृतज्ञ थे और पराक्रमी वीर थे ॥१७॥ वहांके वासी धर्म और सत्यके अनुयायी थे और दीर्घजीवी थे, स्त्री, पुत्र, पौत्र आदिसे भरे-पूरे थे ॥१८॥ वहाँके क्षत्रिय ब्राह्मणोंके अनुयायी थे, वैश्य क्षत्रियोंके अनुयायी थे, और शूद्र अपने कर्मका पालन करते थे, वे तीनों वर्णोंकी सेवा करते थे॥१९॥ जिस प्रकार पहले मनुने इस नगरीकी रक्षा की थी उसी प्रकार महाराज दसरथ भी इस नागरीकी रक्षा करते थे, ॥ २० ॥ अग्निके समान तेजस्वी, क्रोधी योद्धा इस नगरीमें रहते थे, वे अपनी विद्यामें बड़े प्रवीण थे। जिस प्रकार सिंह गुफाओंमें रहा करते हैं उसी प्रकार वे वीर भी इस नगरीमें रहा करते थे ॥२१॥ काम्बोज,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विन्ध्यपर्वततजैर्मत्तैः पूर्णा हैमवतैरपि । मदान्वितैरतिबलैर्मातङ्गैः पर्वतोपमैः ॥२३॥
ऐरावतकुलीनैश्च महापद्मकुलैस्तथा । अञ्जनादपि निष्क्रान्तैर्वामनादपि च द्विपैः ॥२४॥
भद्रैर्मन्द्रैर्मृगैश्चैव भद्रमन्द्रमृगैस्तथा । भद्रमन्द्रैर्भद्रमृगैर्मृगमन्द्रैश्च सा पुरी ॥२५॥
नित्यमत्तैः सदा पूर्णा नागैरचलसंनिभैः । सा योजने द्वे च भूयः सत्यनामा प्रकाशते ॥२६॥
तां पुरीं स महातेजा राजा दशरथो महान् । शशास शमितामित्रो नक्षत्राणीव चन्द्रमाः ॥२७॥
तां सत्यनामां दृढतोरणार्गलां गृहैर्विचित्रैरुपशोभितां शिवाम् ।
पुरीमयोध्यां नृसहस्रसंकुलां शशास वै शक्रसमो महीपतिः ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तम सर्गः ७

तस्यामात्या गुणैरासन्निक्ष्वाकोः सुमहात्मनः । मन्त्रज्ञाश्चेङ्गितज्ञाश्च नित्यं प्रियहिते रताः ॥ १ ॥
अष्टौ बभूवुर्वीरस्य तस्यामात्या यशस्विनः । शुचयश्चानुरक्ताश्च राजकृत्येषु नित्यशः ॥ २ ॥
धृष्टिर्जयन्तो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः । अकोपो धर्मपालश्च सुमंत्रश्चाष्टमोऽर्थवित् ॥ ३ ॥
ऋत्विजौ द्वावभिमतौ तस्यास्तामृषिसत्तमौ । वसिष्ठो वामदेवश्च मन्त्रिणश्च तथापरे ॥ ४ ॥

वाल्हीक और वनायु (अरब) देशोंमें होनेवाले घोड़ों तथा नदीसे उत्पन्न (कच्छी) घोड़ोंसे वह नगरी भरी थी॥२२॥विन्ध्य पर्वत,हिमवान् पर्वतमें उत्पन्न,पर्वतके समान ऊँचे मतवाले हाथी वहां थे॥२३॥ ऐरावत, महापद्म, अंजन और वामन (ये चारों दिग्गज हैं) इनके वंशवाले भी हाथी वहाँ थे ॥ २४॥ भद्रमन्द्र और मृग, भद्रमन्द्रमृग, भद्रमन्द्र, भद्रमृग, और मृगमन्द्र जातिके भी हाथी वहां थे ॥ २५॥ पर्वतके समान ऊंचे मतवाले हाथियोंसे वह नगरी पूर्ण थी, इस प्रकार वह दो योजन और भी लम्बी होगयी थी, उसका अयोध्या नाम सार्थक था, क्योंकि कोई शत्रु वहां युद्धके लिए नहीं आ सकता था॥ २६ ॥ महा तेजस्वी राजा दसरथ शत्रुओंको परास्त करके उस नगरीका शासन करते थे, जिस प्रकार चन्द्रमा नक्षत्रोंका शासन करते हैं ॥ २७ ॥ उस नगरीका अयोध्या नाम यथार्थ था, तोरण और अर्गला (किल्ली, किवाड़ बन्द करनेकी) दृढ़ थे, उसमें बड़े सुन्दर-सुन्दर घर थे, वहां हजारो मनुष्य रहते थे, राजा दशरथ इन्द्रके समान उस नगरीका पालन करते थे ॥ २८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका छठाँ सर्ग समाप्त ॥ ६ ॥

उस महात्मा इक्ष्वाकुवंशी राजाके मन्त्री बड़े गुणी थे, वे गुप्त बातें जानते थे, उनकी रक्षा करते थे, राजाके अभिप्राय समझते थे और राजाके कल्याण करनेमें तत्पर रहा करते थे ॥ १ ॥ उस यशस्वी वीरके आठ मन्त्री थे, वे सभी शुद्ध थे और राजकार्योंमें प्रेम रखते थे ॥२॥ उन मन्त्रियोंके नाम ये थे-धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त्र । सुमन्त्र राजाके सब प्रयोजनोंको जानते थे, वे प्रधान मन्त्री थे ॥ ३ ॥ वसिष्ठ और वामदेव नामक दो ऋषि राजाके ऋत्विज (धर्म-कार्य करनेवाले) थे, वे राजाके बड़े प्रिय थे, इनके अतिरिक्त और ऋषि भी थे ॥४॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुयज्ञोऽप्यथ जाबालिः काश्यपोऽप्यथ गौतमः । मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुस्तथा कात्यायनो द्विजः॥ ५ ॥
एतैर्ब्रह्मर्षिभिर्नित्यमृत्विजस्तस्य पौर्वकाः । विद्याविनीता ह्रीमन्तः कुशला नियतेन्द्रियाः॥६॥
श्रीमन्तश्च महात्मानः शस्त्रज्ञा दृढविक्रमाः । कीर्तिमन्तः प्रणिहिता यथावचनकारिणः ॥ ७॥
तेजःक्षमायशःप्राप्ताः स्मितपूर्वाभिभाषिणः । क्रोधात्कामार्थहेतोर्वा न ब्रूयुरनृतं वचः ॥ ८ ॥
तेषामविदितं किंचित्स्वेषु नास्ति परेषु वा । क्रियमाणं कृतं वापि चारेणापि चिकीर्षितम्॥९॥
कुशला व्यवहारेषु सौहृदेषु परीक्षिताः । प्राप्तकालं यथादण्डं धारयेयुः सुतेष्वपि ॥१०॥
कोशसंग्रहणे युक्ता बलस्य च परिग्रहे । अहितं चापि पुरुषं न हिंस्युरविदूषकम् ॥११॥
वीराश्च नियतोत्साहा राजशास्त्रमनुष्ठिताः । शुचीनां रक्षितारश्च नित्यं विषयवासिनाम्॥१२॥
ब्रह्मक्षत्रमहिंसन्तस्ते कोशं समपूरयन् । सुतीक्ष्णदण्डाः संप्रेक्ष्य पुरुषस्य बलाबलम् ॥१३॥
शुचीनामेकबुद्धीनां सर्वेषां संप्रजानताम् । नासीत्पुरे वा राष्ट्रे वा मृषावादी नरःक्वचित् ॥१४॥
क्वचिन्न दुष्टस्तत्रासीत्परदाररतिर्नरः । प्रशान्तं सर्वमेवासीद्राष्ट्रं पुरवरं च तत् ॥१५॥
सुवाससः सुवेषाश्च ते च सर्वे शुचिव्रताः । हितार्थाश्च नरेन्द्रस्य जाग्रतो नयचक्षुषा ॥१६॥
गुरोर्गुणगृहीताश्च प्रख्याताश्च पराक्रमैः । विदेशेष्वपि विज्ञाताःसर्वतो बुद्धिनिश्चयाः ॥१७॥
अभितो गुणवन्तश्च न चासन्गुणवर्जिताः । संधिविग्रहतत्त्वज्ञाः प्रकृत्या संपदान्विताः ॥१८॥

सुयज्ञ, जावालि, काश्यप, गौतम, मार्कण्डेय, दीर्घायु, कात्यायन ये ऋषि राजाके ऋत्विज थे॥५॥ ये सब मन्त्री राजाकी परम्परासे आये थे, ये विद्वान लज्जाशील, प्रवीण और जितेन्द्रिय थे॥६॥ सभी श्रीमान् थे, महात्मा थे, शास्त्रज्ञ थे, विक्रमी थे, कीर्तिमान् थे, सावधान थे, और जो कहें वही करनेवाले थे ॥ ७ ॥ सभी तेजस्वी, सभी क्षमाशील और सभी यशस्वी थे, सभी हँसकर बोलते थे, क्रोधसे या किसी अपने मतलबके लिए वे असत्य नहीं बोलते थे॥८॥ अपने राज्य तथा पर-राज्यकी कोई बात उनको अज्ञात न थी, जो काम होगये हैं और जो होनेवाले हैं तथा दूसरे राज्यके गुप्त दूतोंकी गुप्त बातें भी वे जानते थे॥९॥ वे व्यवहारमें बड़े दक्ष थे, मित्रतामें पक्के थे, समय आनेपर शास्त्रके अनुसार वे अपने पुत्रोंको भी दण्ड दे सकते थे॥१०॥ वे खजाना और सेना बढ़ानेमें तत्पर रहा करते थे, अपने प्रति बुरे विचार रखनेवाला भी पुरुष यदि अपनी प्रत्यक्ष कोई हानि न करता हो तो उसको वे दण्ड न देते थे ॥ ११ ॥ वे वीर थे, उत्साही थे, राजनीतिके पण्डित थे, राज्यमें रहनेवाले सज्जनोंके रक्षक थे, ॥१२॥ ब्राह्मण और क्षत्रियको पीड़ा न देकर वे खजाना भरते थे, वे कड़ा दण्ड देते थे पर दण्डनीयके बलाबलको देखकर, जो जैसे दण्डके योग्य होता था उसको वैसाही दण्ड देते थे ॥१३॥ वे सब मन्त्री पवित्रचेता थे, एक विचारके थे, एक दूसरेकी बातें जानते थे। उस नगरमें तथा राज्यमें कोई भी मनुष्य झूठ बोलनेवाला न था ॥१४॥ उस नगरमें कोई भी ऐसा दुष्ट न था जो दूसरेकी स्त्रीको बुरी निगाहसे देखे। वह समस्त राज्य तथा नगर सुखी था॥१५॥ वहांवाले सुन्दर वस्त्र पहनते थे, सुन्दर वेष रखते थे और शुद्ध आचार-विचार रखते थे और प्रसिद्ध न्यायी उस राजाके वे हितेच्छु थे ॥ १६ ॥ वे श्रेष्ठ गुण ग्रहण करते थे, प्रसिद्ध पराक्रमी थे, विदेशोंमें भी उनकी प्रसिद्धि थी, तथा उनके विचार निश्चित होते थे ॥ १७ ॥ वे सभी तरहसे गुणवान् थे, कोई गुणहीन न था, सन्धि-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मन्त्रसंवरणे शक्ताः शक्ताः सूक्ष्मासु बुद्धिषु । नीतिशास्त्रविशेषज्ञाः सततं प्रियवादिनः ॥१९॥
ईदृशैस्तैरमात्यैश्च राजा दशरथोऽनघः । उपपन्नो गुणोपेतैरन्वशासद्वसुन्धराम् ॥२०॥
अवेक्ष्यमाणश्चारेण प्रजा धर्मेण रक्षयन् । प्रजानां पालनं कुर्वन्नधर्मं परिवर्जयन् ॥२१॥
विश्रुतस्त्रिषु लोकेषु वदान्यः सत्यसंगरः । स तत्र पुरुषव्याघ्रः शशास पृथिवीमिमाम् ॥२२॥
नाध्यगच्छद्विशिष्टं वा तुल्यं वा शत्रुमात्मनः । मित्रवान्नतसामन्तः प्रतापहतकण्टकः ॥

स शशास जगद्राजा दिवि देवपतिर्यथा ॥ २३ ॥
तैर्मन्त्रिभिर्मन्त्रहिते निविष्टैर्दृतोऽनुरक्तैः कुशलैः समर्थैः ।
स पार्थिवो दीप्तिमवाप युक्तस्तेजोमयैर्गोभिरिवोदितोऽर्कः ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८

तस्य चैवंप्रभावस्य धर्मज्ञस्य महात्मनः । सुतार्थं तप्यमानस्य नासीद्वंशकरः सुतः ॥ १ ॥
चिन्तयानस्य तस्यैवं बुद्धिरासीन्महात्मनः । सुतार्थं वाजिमेधेन किमर्थं न यजाम्यहम् ॥ २ ॥
स निश्चितां मतिं कृत्वा यष्टव्यमिति बुद्धिमान् । मन्त्रिभिः सह धर्मात्मा सर्वैरपि कृतात्मभिः ॥ ३ ॥

विग्रहके रहस्योंको जाननेवाले थे, प्रजा उनमें अनुरक्त थी और वे धन-धान्यसे युक्त थे ॥१८॥ किसी सलाहको गुप्त रखनेमें वे बड़े प्रवीण थे और सूक्ष्म विचार करना जानते थे, बड़े पण्डित थे और प्रिय-वादी थे ॥१९॥ पापहीन राजा दशरथके वे मन्त्री थे और वे ऐसे गुणी थे, उन्हींके साथ राजा राज्यका पालन करते थे ॥ २० ॥ गुप्त दूतोंके द्वारा वे प्रजाके दुःख सुख जाना करते थे, धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा करते थे, और अधर्म का नाश करते थे ॥२१॥ वे तीनों लोकोंमें दाता तथा सत्यप्रतिज्ञ प्रसिद्ध थे, वे ही पुरुषसिंह इस पृथिवीका शासन करते थे ॥२२॥ समान बलवाला या अधिक बली कोई उनका शत्रु न था, हां उनके सच्चे मित्र थे, अधीनके राजा उनमें प्रेम रखते थे, उनके प्रतापसे छोटे-छोटे शत्रु आप ही दब गये थे, वह राजा पृथिवीका शासन करता था जिस प्रकार देवलोकका शासन इन्द्र करता है ॥ २३ ॥ उन उत्तम सलाह देनेवाले अनुरागी, प्रवीण और शक्तिमान् मन्त्रियोंके साथ राजा बड़ेही प्रतापी मालूम होते थे, जिस प्रकार अपनी उज्ज्वल किरणोंसे उदित सूर्य ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका सातवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

राजा दशरथ ऐसे प्रभावशाली थे, धर्मात्मा थे, पर वे पुत्रके लिए सदा दुःखित रहा करते थे, उनके कोई पुत्र न था जिससे आगेके वंश चलनेकी संभावना होती ॥१॥ महात्मा राजाने विचारकर निश्चित किया कि पुत्रके लिए अश्वमेधयज्ञ मैं करूं ॥ २ ॥ बुद्धिमान् राजाने यज्ञ करनेका विचार निश्चित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततोऽब्रवीन्महातेजाः सुमन्त्रं मन्त्रिसत्तम । शीघ्रमानय मे सर्वान्गुरूंस्तान्सपुरोहितान् ॥ ४ ॥
ततः सुमन्त्रस्त्वरितं गत्वा त्वरितविक्रमः । समानयत्स तान्सर्वान्समस्तान्वेदपारगान् ॥ ५ ॥
सुयज्ञं वामदेवं च जाबालिमथ काश्यपम् । पुरोहितं वसिष्ठं च ये चाप्यन्ये द्विजोत्तमाः ॥ ६ ॥
तान्पूजयित्वा धर्मात्मा राजा दशरथस्तदा । इदं धर्मार्थसहितं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत ॥ ७ ॥
मम लालप्यमानस्य सुतार्थं नास्ति वै सुखम् । तदर्थं हयमेधेन यक्ष्यामीति मतिर्मम ॥ ८ ॥
तदहं यष्टुमिच्छामि शास्त्रदृष्टेन कर्मणा । कथं प्राप्स्याम्यहं कामं बुद्धिरत्र विचिन्त्यताम् ॥९॥
ततः साध्विति तद्वाक्यं ब्राह्मणाःप्रत्यपूजयन् । वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे पार्थिवस्य मुखेरितम् ॥१०॥
ऊचुश्च परमप्रीताः सर्वे दशरथं वचः । संभाराःसंभ्रियन्तां ते तुरगश्च विमुच्यताम् ॥११॥
सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् । सर्वथा प्राप्स्यसे पुत्रानभिप्रेतांश्च पार्थिव ॥१२॥
यस्य ते धार्मिकी बुद्धिरियं पुत्रार्थमागता । ततस्तुष्टोऽभवद्राजा श्रुत्वैतद्द्विजभाषितम् ॥१३॥
अमात्यानब्रवीद्राजा हर्षव्याकुललोचनः । संभाराः संभ्रियन्तां मे गुरूणां वचनादिह ॥१४॥
समर्थाधिष्ठितश्चाश्वः सोपाध्यायो विमुच्यताम् । सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् ॥१५॥
शान्तयश्चापि वर्धन्तां यथाकल्पं यथाविधि । शक्यः प्राप्तुमयं यज्ञः सर्वेणापि महीक्षिता ॥१६॥
नापराधो भवेत्कष्टो यज्ञस्मिन्क्रतुसत्तमे । छिद्रं हि मृगयन्ते स्म विद्वांसो ब्रह्मराक्षसाः ॥१७॥

किया और अपने बुद्धिमान मन्त्रियोंसे भी सम्मति ली ॥ ३ ॥ राजाने सुमन्त्रसे कहा, हे मन्त्रिश्रेष्ठ, मेरे गुरुओं और पुरोहितोंको शीघ्र बुलाइए ॥ ४ ॥ शीघ्रता करनेवाले सुमन्त्र बहुत शीघ्रही उन वेदके ज्ञाता गुरुओं और पुरोहितोंको बुलालाये ॥ ५ ॥ सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, पुरोहित-वसिष्ठ तथा अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको वे बुलालाये ॥ ६ ॥ धर्मात्मा राजा दशरथने उन सबकी पूजाकी और वे धर्मार्थ-युक्त यह कोमल वचन बोले ॥७॥ पुत्रके लिए मैं बहुतही दुःखित रहा करता हूं, मुझे थोड़ा भी सुख नहीं है, इस कारण पुत्रके लिए मैं अश्वमेध यज्ञ करना चाहता हूं ॥८॥ मैं वह शास्त्रीय विधानके अनुसार करना चाहता हूं। कृपाकर बतलाइए वे साधन मुझे कहां मिलेंगे, मुझे शास्त्रीय विधिके अनुसार कौन यज्ञ करावेगा ॥ ९ ॥ राजा दशरथने जो विचार प्रकट किये थे उनकी ब्राह्मणोंने बड़ी प्रशंसा की ॥ १० ॥ वे सब अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—सामग्रियांएकत्र करवाइए, और घोड़ा छोड़ दीजिये ॥ ११ ॥ सरयूके उत्तर तीरपर यज्ञभूमि बनवाइए, निश्चय आप पुत्र पावेंगे और आपके अन्य मनोरथ भी पूरे होंगे ॥ १२ ॥ क्योंकि आपने पुत्र-प्राप्तिके लिए जो उपाय निश्चित किये हैं वे धर्मानुकूल हैं। ब्राह्मणोंकी बात सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १३ ॥ प्रसन्नताके कारण राजाकी आंखें जलसे भर गयीं, उन्होंने मन्त्रियोंसे कहा—गुरुओंकी आज्ञाके अनुसार आप लोग सामग्री एकत्र कीजिए ॥ १४ ॥ घोड़ा छोड़ दीजिए, उसकी रक्षाके लिए वीरोंको नियुक्त कीजिए, उपाध्यायको भी साथ जाने दीजिए, और सरयूके उत्तर तीरपर यज्ञके लिए भूमि नियत कीजिए ॥ १५ ॥ शास्त्र और पद्धतिके अनुसार विघ्न दूर करनेके लिए शान्ति प्रयोग किये जांय, ऐसे यज्ञका सम्पादन सब राजाओंके लिए सम्भव होसकता था ॥१६॥ यदि इसमें अशुद्धि (क्रिया में अशुद्धि) होनेका भय न होता और कठिनता न होती, क्योंकि ब्रह्मराक्षस और यज्ञ-कर्ता विद्वान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यः कर्ता विनश्यति । तद्यथा विधिपूर्वं मे क्रतुरेष समाप्यते ॥१८॥
तथा विधानं क्रियतां समर्थाः साधनेष्विति । तथेति चाब्रुवन्सर्वे मन्त्रिणः प्रतिपूजिताः ॥१९॥
पार्थिवेन्द्रस्य तद्वाक्यं यथापूर्वं निशम्य ते । तथा द्विजास्ते धर्मज्ञा वर्धयन्तो नृपोत्तमम् ॥२०॥
अनुज्ञातास्ततः सर्वे पुनर्जग्मुर्यथागतम् । विसर्जयित्वा तान्विप्रान्सचिवानिदमब्रवीत् ॥२१॥
ऋत्विग्भिरुपसंदिष्टो यथावत्क्रतुराप्यताम् । इत्युक्त्वा नृपशार्दूलःसचिवान्समुपस्थितान्॥२२॥
विसर्जयित्वा स्वं वेश्म प्रविवेश महामतिः । ततः स गत्वा ताः पत्नीर्नरेन्द्रो हृदयंगमाः ॥२३॥
उवाच दीक्षां विशत यक्ष्येऽहं सुतकारणात् । तासां तेनातिकान्तेन वचनेन सुवर्चसाम् ।
मुखपद्मान्यशोभन्त पद्मानीव हिमात्यये ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९

एतच्छ्रुत्वा रहः सूतो राजानमिदमब्रवीत् । श्रूयतां तत्पुरावृत्तं पुराणे च मया श्रुतम् ॥ १ ॥
ऋत्विग्भिरुपदिष्टोऽयं पुरावृत्तो मया श्रुतः । सनत्कुमारो भगवान्पूर्वं कथितवान्कथाम् ॥ २ ॥
ऋषीणां संनिधौ राजंस्तव पुत्रागमं प्रति । काश्यपस्य च पुत्रोऽस्ति विभाण्डक इति श्रुतः ॥३॥

त्रुटियाँ देखा करते हैं और त्रुटियोंके होनेपर यज्ञ ही नष्टभ्रष्ट करदेते हैं ॥१७॥ अविधिपूर्वक यज्ञका कर्ता शीघ्रही नष्ट होजाता है उसे फल नहीं होता, इसलिए आपलोग ऐसा उपाय करें जिससे मेरा यह यज्ञ विधिपूर्वक समाप्त हो ॥ १८ ॥ राजाने मन्त्रियोंका सम्मान करके कहा-आप लोग निपुण हैं ऐसा कीजिए जिसमें सब सामग्रियां एकठ्ठी हो जांय, कोई त्रुटि न रहने पावे, मन्त्रियोंने हां कहकर राजाकी आज्ञा स्वीकृत की ॥१९॥ धर्म जाननेवाले ब्राह्मणोंने राजाकी सब बातें यथावत् सुनीं और राजाके कल्याण-के लिए उन लोगोंने उन्हें आशीर्वाद दिये ॥ २० ॥ राजासे आज्ञा लेकर वे ब्राह्मण अपने-अपने स्था-नको गये, उन ब्राह्मणोंको विदा करके राजा मन्त्रियोंसे बोले ॥ २१ ॥ ऋत्विक् (यज्ञ करनेवाले) की आज्ञाके अनुसार आप लोग यज्ञकी सामग्रियां एकत्र करें। ऐसा कहकर राजश्रेष्ठ दशरथ आये हुए मन्त्रियोंको ॥ २२ ॥ विदा करके महलमें गये, अपनी प्रिय स्त्रियोंसे वे ॥ २३ ॥ बोले, मैं पुत्रके लिए यज्ञ करूँगा, आप लोग दीक्षा लें, यज्ञके लिए नियम ग्रहण करें, इस प्रिय वचनके सुननेसे उनलोगोंके मुख-कमल खिल उठे, जिस तरह सरदी बीतनेपर कमल खिल जाता है ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका आठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८ ॥

राजाके इस विचारको सुनकर सुमन्त्रने एकान्तमें कहा, महाराज सुनिए, जो बात पहले हो चुकी है वह मैंने पुराणोंमें सुनी हैं आप भी सुनें ॥ १ ॥ यज्ञ करनेवाले ऋत्विजोंके द्वारा मैंने यह पुरानी कथा सुनी। भगवान् सनत्कुमारने यह कथा कही थी ॥ २ ॥ ऋषियोंसे तुम्हारे पुत्र उत्पन्न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ऋष्यशृङ्ग इति ख्यातस्तस्य पुत्रो भविष्यति । स वने नित्यसंवृद्धो मुनिर्वनचरः सदा ॥ ४ ॥
नान्यं जानाति विप्रेन्द्रो नित्यं पित्रानुवर्तनात् । द्वैविध्यं ब्रह्मचर्यस्य भविष्यति महात्मनः ॥ ५ ॥
लोकेषु प्रथितं राजन्विप्रैश्च कथितं सदा । तस्यैवंवर्तमानस्य कालः समभिवर्तत ॥ ६ ॥
अग्निं सुश्रूषमाणस्य पितरं च यशस्विनम् । एतस्मिन्नेव काले तु रोमपादः प्रतापवान् ॥ ७ ॥
अङ्गेषु प्रथितो राजा भविष्यति महाबलः । तस्य व्यतिक्रमाद्राज्ञो भविष्यति सुदारुणा ॥ ८ ॥
अनावृष्टिः सुघोरा वै सर्वलोकभयावहा । अनावृष्ट्यां तु वृत्तायां राजा दुःखसमन्वितः ॥९॥
ब्राह्मणाञ्छ्रुतसंवृद्धान्समानीय प्रवक्ष्यति । भवन्तः श्रुतकर्माणो लोकचारित्रवेदिनः ॥१०॥
समादिशन्तु नियमं प्रायश्चित्तं यथा भवेत् । इत्युक्तास्ते ततो राज्ञा सर्वे ब्राह्मणसत्तमाः ॥११॥
वक्ष्यन्ति ते महीपालं ब्राह्मणा वेदपारगाः । विभाण्डकसुतं राजन्सर्वोपायैरिहानय ॥१२॥
आनाय्य तु महीपाल ऋष्यशृङ्गं सुसत्कृतम् । विभाण्डकसुतं राजन्ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥१३॥
प्रयच्छ कन्यां शान्तां वै विधिना सुसमाहितः । तेषां तु वचनं श्रुत्वा राजा चिन्तां प्रपत्स्यते ॥
केनोपायेन वै शक्यमिहानेतुं स वीर्यवान् ॥ १४ ॥
ततो राजा विनिश्चित्य सह मन्त्रिभिरात्मवान् । पुरोहितममात्यांश्च प्रेषयिष्यति सत्कृतान् ॥१५॥
ते तु राज्ञो वचः श्रुत्वा व्यथितावनताननाः । न गच्छेम ऋषेर्भीता अनुनेष्यंति तं नृपम् ॥१६॥

होनेकी कथा उन्होंने कही थी । काश्यपका पुत्र विभाण्डक है जो प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥ ऋष्यशृङ्ग नामसे प्रसिद्ध उसका पुत्र होगा । वह वनमें ही पालित होगा और सदा वनमें ही विचरण करेगा ॥ ४ ॥ वह अपने पिताके ही साथ रहेगा, इस कारण वह किसी दूसरेको न जान सकेगा । वह शरीर और मन दोनोंसे ब्रह्मचर्यका पालन करेगा ॥ ५ ॥ जो ब्रह्मचर्य प्रसिद्ध है और ब्राह्मण जिसका उपदेश करते हैं उस ब्रह्मचर्यका पालन करेगा । इस प्रकार ब्रह्मचर्य पालन करनेके कारण उनका विवाहका समय बीत जायगा ॥६॥ वे अग्नि और पिताकी सेवा करेंगे । उसी समय अंगदेशमें रोमपाद नामका एक प्रतापी राजा ॥ ७ ॥ होगा, वह राजा बड़ा बली होगा । उसके अपराधोंके कारण उनके राज्यमें बड़ाही भयानक ॥ ८ ॥ अवर्षण होगा, जिससे लोग भयभीत हो जायँगे । इस अवर्षणसे राजा भी बड़े दुःखी होंगे ॥ ९ ॥ बड़े-बड़े ज्ञानी ब्राह्मणोंको बुलाकर राजा उनसे पूछेंगे, आपलोग मेरे कर्म जानते हैं जिससे यह अवर्षण हुआ है आप लोगोंको लोक-व्यवहारका भी ज्ञान है ॥ १० ॥ आपलोग मेरे लिए नियम बतलावें, प्रायश्चित्त बतलावें । राजाके ऐसा कहनेपर वे सब ॥११॥ वेदज्ञ ब्राह्मण राजाका यह कहेंगे कि किसी उपायसे विभाण्डक मुनिके पुत्र ऋष्यशृङ्गको आप यहां ले आवें ॥ १२ ॥ उनको (ऋष्यशृङ्गको) सत्कार पूर्वक यहां बुलवाइए ॥१३॥ सावधान होकर अपनी शान्ता नामकी कन्या उन्हें विधिपूर्वक दान दीजिए । ब्राह्मणोंकी यह बात सुनकर राजा चिन्तित होजायँगे कि वे शक्तिमान् ऋष्यशृङ्ग किस उपायसे यहां लाये जा सकते हैं ॥१४॥ पुनः बुद्धिमान् राजा अपने मन्त्रियोंके साथ विचार करेंगे और अपने पुरोहित तथा मन्त्रियोंको ऋष्यशृङ्गको ले आनेके लिए भेजेंगे ॥१५॥ वे राजाकी इस ऋष्यशृङ्गको ले आनेकी आज्ञाको सुनकर बहुत दुःखी होंगे, उनका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वक्ष्यन्ति चिन्तयित्वा ते तस्योपायांश्च तान्क्षमान्। आनेष्यामो वयं विप्रं न च दोषो भविष्यति ॥१७॥
एवमङ्गाधिपेनैव गणिकाभिर्ऋषेः सुतः। आनीतोऽवर्षयद्देवः शान्ता चास्मै प्रदीयते ॥१८॥
ऋष्यशृङ्गस्तु जामाता पुत्रांस्तव विधास्यति। सनत्कुमारकथितमेतावद्व्याहृतं मया ॥१९॥
अथ हृष्टो दशरथः सुमन्त्रं प्रत्यभाषत। यथर्ष्यशृङ्गस्त्वानीतो येनोपायेन सोच्यताम् ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०

सुमन्त्रश्चोदितो राज्ञा प्रोवाचेदं वचस्तदा। यथर्ष्यशृङ्गस्त्वानीतो येनोपायेन मन्त्रिभिः।
तन्मे निगदितं सर्वं शृणु मे मन्त्रिभिः सह ॥ १ ॥
रोमपादमुवाचेदं सहामात्यः पुरोहितः। उपायो निरपायोयमस्माभिरभिचिन्तितः ॥ २ ॥
ऋष्यशृङ्गो वनचरस्तपःस्वाध्यायसंयुतः। अनभिज्ञस्तु नारीणां विषयाणां सुखस्य च ॥ ३ ॥
इन्द्रियार्थैरभिमतैर्नरचित्तप्रमाथिभिः। प्रलोभनार्थमिष्यामः क्षिप्रं चाध्यवसीयताम् ॥ ४ ॥
गणिकास्तत्र गच्छन्तु रूपवत्यः स्वलंकृताः। प्रलोभ्य विविधोपायैरानेष्यन्तीह सत्कृताः ॥ ५ ॥

सिर झुक जायगा, ऋषिके भयसे भीत होकर वे राजासे प्रार्थना करेंगे कि हमलोग वहाँ न जांयगे ॥१६॥ और सोच-विचारकर ऐसे उपाय बतलावेंगे जिनसे मुनि यहां (राजधानीमें) आसकें। वे कहेंगे, इस उपायसे हमलोग ऋषिको ला सकेंगे और कोई अपराध भी न होगा ॥१७॥ इस प्रकार वेश्याओंको भेजकर राजा ऋषिको अपने नगरमें बुलवावेंगे, उनके आनेसे वृष्टि होगी और शान्ता नामकी अपनी कन्या राजा उन ऋषिको देंगे ॥ १८ ॥ वेही जामाता ऋष्यशृङ्ग तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होनेके विधान करेंगे। यह बात सनत्कुमारकी कही हुई मैंने आपसे कही ॥ १९ ॥ दसरथ इस बातको सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सुमन्त्रसे कहा-ऋष्यशृङ्ग किस उपायसे आवेंगे वह बतलाइए ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका नवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९ ॥

राजाके पूछनेपर सुमन्त्रने यह कहा-राजा रोमपादने अपने मन्त्रियोंसे परामर्श करके जिस उपायसे ऋष्यशृङ्गको अपनी राजधानीमें बुलाया था वह आप अपने मन्त्रियोंके साथ सुनें, मैं कहता हूं ॥ १ ॥ मन्त्रियोंके साथ पुरोहितोंने राजा रोमपादसे कहा कि हमलोगोंने ऐसा उपाय सोचा है जो निष्फल नहीं हो सकता ॥ २ ॥ ऋष्यशृङ्ग वनवासी हैं, वे तपस्या और वेदाध्ययनमें लगे रहते हैं, स्त्रीसुख तथा अन्य विषयसुखका ज्ञान उन्हें नहीं है ॥३॥ इन्द्रियोंके प्रिय मालूम होनेवाले विषयों से मनुष्योंका मन व्यथित होजाता है, वे उन विषयोंके वशमें होजाते हैं। इस प्रकार हमलोग ऋष्यशृङ्गको भी ला सकेंगे, आप इसीका प्रबन्ध करें ॥ ४ ॥ सुन्दरी वेश्याएं अलंकृत होकर वहां जायँ और अनेक उपायोंसे उन्हें वश करके यहां ले आवें, ले आनेपर वेश्याओंको इनाम दिया जायगा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रुत्वा तथेति राजा च प्रत्युवाच पुरोहितम् । पुरोहितो मन्त्रिणश्च तदा चक्रुश्च ते तथा ॥ ६ ॥
वारमुख्यास्तु तच्छ्रुत्वा वनं प्रविविशुर्महत् । आश्रमस्याविदूरेऽस्मिन्यत्नं कुर्वन्ति दर्शने ॥ ७ ॥
ऋषेः पुत्रस्य धीरस्य नित्यमाश्रमवासिनः । पितुः स नित्यसंतुष्टो नातिचक्राम चाश्रमात् ॥८॥
न तेन जन्मप्रभृति दृष्टपूर्वं तपस्विना । स्त्री वा पुमान्वा यच्चान्यत्सत्त्वं नगरराष्ट्रजम् ॥९॥
ततः कदाचित्तं देशमाजगाम यदृच्छया । विभाण्डकसुतस्तत्र ताश्चापश्यद्वराङ्गनाः ॥१०॥
ताश्चित्रवेषाः प्रमदा गायन्त्यो मधुरस्वरम् । ऋषिपुत्रमुपागम्य सर्वा वचनमब्रुवन् ॥११॥
कस्त्वं किं वर्तसे ब्रह्मञ्ज्ञातुमिच्छामहे वयम् । एकस्त्वं विजने दूरे वने चरसि शंस नः ॥१२॥
अदृष्टरूपास्तास्तेन काम्यरूपा वने स्त्रियः । हार्दात्तस्य मतिर्जाता आख्यातुं पितरं स्वकम् ॥१३॥
पिता विभाण्डकोऽस्माकं तस्याहं सुत औरसः । ऋष्यशृङ्ग इति ख्यातं नाम कर्म च मे भुवि ॥१४॥
इहाश्रमपदोऽस्माकं समीपे शुभदर्शनाः । करिष्ये वोऽत्र पूजां वै सर्वेषां विधिपूर्वकम् ॥१५॥
ऋषिपुत्रवचः श्रुत्वा सर्वासां मतिरास वै । तदाश्रमपदं द्रष्टुं जग्मुः सर्वास्ततोऽङ्गनाः ॥१६॥
गतानां तु ततः पूजामृषिपुत्रश्चकार ह । इदमर्घ्यमिदं पाद्यमिदं मूलं फलं च नः ॥१७॥
प्रतिगृह्य तु तां पूजां सर्वा एव समुत्सुकाः । ऋषेर्भीताश्च शीघ्रं तु गमनाय मतिं दधुः ॥१८॥
अस्माकमपि मुख्यानि फलानीमानि हे द्विज । गृहाण विप्र भद्रं ते भक्षयस्व च मा चिरम् ॥१९॥

॥ ५ ॥ सुनकर राजाने भी पुरोहितके बतलाये उपाय करनेकी सम्मति दी, पुरोहित और मन्त्रियोंने वे सब उपाय किये ॥६॥ वेश्याएँ मन्त्री और पुरोहितके कहनेसे उस बड़े वनमें गयीं और महर्षिके आश्रमके थोड़ीही दूरपर ठहरकर मुनिको देखनेका प्रयत्न करने लगीं ॥ ७ ॥ वह ऋषिपुत्र बड़ाही धीर था, सदा आश्रममेंही रहा करता था, वह अपने पितासे बड़ा प्रसन्न रहा करता था इस कारण वह आश्रमके बाहर निकलताही न था ॥ ८ ॥ उस तपस्वीने जन्मसे लेकर शहर या गांवमें उत्पन्न होनेवाले किसी प्राणीको नहीं देख था, वनवासियोंको छोड़कर अन्य स्त्री-पुरुषोंको भी उसने नहीं देखा था ॥९॥ एक वार अकस्मात् विभाण्डकपुत्र ऋष्यशृङ्ग वहां आया, जहाँ वेश्याएँ ठहरी थी और वहाँउन्होंने उन वेश्याओंको देखा ॥१०॥ उनके वेश बड़ेही सुन्दर थे वे मीठे स्वरमें गारहीं थीं, ऋषि-पुत्रके पास आकर वे बोलीं ॥११॥ ब्रह्मन्, आप कौन हैं, क्या करते हैं—यह हमलोग जानना चाहती हैं, इस दूर वनमें आप अकेले भ्रमण करते हैं, हमलोगोंसे कहिए ॥ १२ ॥ ऋष्यशृङ्गने वैसी सुन्दर स्त्रियां नहीं देखी थीं, आज वनमें वैसी स्त्रियोंको देखकर उनके मनमें उनके प्रति स्नेह उत्पन्न हुआ और अपने पिताका परिचय देनेके लिए वे उद्यत हुए ॥ १३ ॥ मेरे पिताका नाम विभाण्डक है, मैं उन्हींसे उत्पन्न हुआ हूँ। मैं ऋष्यशृङ्ग नामसे प्रसिद्ध हूं, मेरे तपस्या आदि कर्म भी प्रसिद्ध हैं ॥ १४ ॥ सुन्दरियो, यही मेरा आश्रम है, मैं वहां आप सब लोगोंकी पूजा करूँगा ॥१५॥ ऋषिपुत्र की बातें सुनकर उन सबकी इच्छा हुई और वे स्त्रियां उनका आश्रम देखनेके लिए वहां गयीं ॥१६॥ वहां जानेपर ऋषिपुत्रने उनलोगोंकी पूजा की, अर्घ्य, पाद्य, फल मूल उनको दिये ॥ १७ ॥ ऋषि-पुत्रकी पूजा लेकर वे स्त्रियां बहुत उत्सुक हुईं, वे ऋषिसे डर रही थीं, इसलिए उन लोगोंने शीघ्र वहाँसे जानेकी इच्छा प्रगट की ॥ १८ ॥ उनलोगोंने कहा-महाराज, हमलोगोंके भी ये

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततस्तास्तं समालिङ्ग्य सर्वा हर्षसमन्विताः । मोदकान्प्रददुस्तस्मैभक्ष्यांश्च विविधाञ्शुभान् ॥२०॥
तानि चास्वाद्य तेजस्वी फलानीतिस्म मन्यते । अनास्वादितपूर्वाणि वने नित्यनिवासिनाम् ॥२१॥
आपृच्छ्य च तदा विप्रं व्रतचर्यां निवेद्य च । गच्छन्ति स्मापदेशात्ता भीतास्तस्य पितुः स्त्रियः॥२२॥
गतासु तासु सर्वासु काश्यपस्यात्मजो द्विजः । अस्वस्थहृदयश्चासीद्दुःखाच्च परिवर्तते ॥२३॥
ततोऽऽपरेद्युस्तं देशमाजगाम स वीर्यवान् । विभाण्डकसुतः श्रीमान्मनसा चिन्तयन्मुहुः ॥२४॥
मनोज्ञा यत्र ता दृष्टा वारमुख्याः स्वलंकृताः । दृष्ट्वैव च ततो विप्रमायान्तं हृष्टमानसाः ॥२५॥
उपसृत्य ततः सर्वास्तास्तमूचुरिदं वचः । एह्याश्रमपदं सौम्य अस्माकमिति चाब्रुवन् ॥२६॥
चित्राण्यत्र बहूनि स्युर्मूलानि च फलानि च । तत्राप्येष विशेषेण विधिर्हि भविता ध्रुवम् ॥२७॥
श्रुत्वा तु वचनं तासां सर्वासां हृदयंगमम् । गमनाय मतिं चक्रे तं च निन्युस्तथा स्त्रियः ॥२८॥
तत्र चानीयमाने तु विप्रे तस्मिन्महात्मनि । ववर्ष सहसा देवो जगत्प्रह्लादयंस्तदा ॥२९॥
वर्षेणैवागतं विप्रं तापसं स नराधिपः । प्रत्युद्गम्य मुनिं प्रह्वः शिरसा च मही गतः॥३०॥
अर्घ्यं च प्रददौ तस्मै न्यायतः सुसमाहितः । वव्रे प्रसादं विप्रेन्द्रान्मा विप्रं मन्युराविशेत् ॥३१॥
अन्तःपुरं प्रवेश्यास्मै कन्यां दत्त्वा यथाविधि । शान्तां शान्तेन मनसा राजा हर्षमवाप सः ॥३२॥

उत्तम फल हैं, इन्हें आप लें और शीघ्र खाजांय, विलम्ब न करें ॥ १९ ॥ फिर उन सब स्त्रियोंने प्रसन्न होकर उन ऋषिकुमारका आलिङ्गन किया, लड्डू तथा खानेकी और भी उत्तम-उत्तम वस्तु उनलोगोंने ऋषिपुत्रको दीं ॥२०॥ उन सब वस्तुओंको खाकर ऋषिपुत्रने समझा कि ये सब फल ही हैं, क्योंकि वे सदा बनमें रहते थे और इसके पहले उन्होंने ऐसी चीज़ें खाई भी न थीं ॥२१॥ अपने व्रतानुष्ठानके बहानेसे उन स्त्रियोंने मुनिपुत्रसे जानेकी आज्ञा ली, क्योंकि वे स्त्रियां मुनिके पितासे डर रही थीं ॥ १२ ॥ उन स्त्रियोंके चली जानेपर विभाण्डकपुत्र ऋष्यशृङ्गका मन दुखी हुआ, वे दुःखसे इधर-उधर घूमने लगे ॥ २३ ॥ दूसरे दिन विभाण्डकपुत्र ऋष्यशृङ्ग मनसे उन स्त्रियोंकी बातें सोचते हुए वहां आये, जहां उन्होंने उन स्त्रियोंको देखा था ॥२४॥ अलङ्कारवती सुन्दरी स्त्रियों को जहां उन्होंने देखा था, वहां आये, मुनिको आते हुए देखकर वे बहुत प्रसन्न हुईं ॥ २५ ॥ आगे जाकर उन लोगोंने मुनिसे कहा—महाराज हमलोगोंके आश्रममें आइए ॥ २६ ॥ वहां अनेक प्रकारके उत्तम फल मूल मिलते हैं, वहां भी इसी तरहका सत्कार होता है, इसी तरह फल मूल मिलते हैं ॥ २७ ॥ उन सब स्त्रियोंके सुन्दर वचन सुनकर मुनिपुत्र जानेके लिए तयार होगये और वे स्त्रियां उनको लेकर आयीं ॥२८॥ उन महात्मा ब्राह्मणके उस राज्यमें आनेपर सहसा पानी बरसने लगा। जिससे सब लोग सुखी हुए, जगत् प्रसन्न हुआ ॥ २९ ॥ पानी बरसनेसे ही राजा रोमपादने जाना कि मुनि आगये। राजा आगे गये और भूमिष्ठ होकर उन्होंने प्रणाम किया ॥३०॥ सावधान होकर विधि पूर्वक उन्होंने मुनिको अर्घ्य दिया और उन ऋषिसे वर मांगा, जिससे उन्हें क्रोध न हो, क्योंकि वे छल करके यहां लाये गये थे ॥ ३१ ॥ राजा उनको अपने महलमें अपने साथ लेगये और विधिपूर्वक अपनी कन्या उन्होंने ऋषिको दी, शान्त चित्तसे शान्ता नामक कन्याको देकर राजा प्रसन्न हुए ॥ ३२ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं स न्यवसत्तत्र सर्वकामैः सुपूजितः । ऋष्यशृङ्गो महातेजाः शान्तया सह भार्यया ॥ ३३ ॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादश सर्गः ११

भूय एव हि राजेन्द्र शृणु मे वचनं हितम् । यथा स देवप्रवरः कथयामास बुद्धिमान् ॥ १ ॥
इक्ष्वाकूणां कुले जातो भविष्यति सुधार्मिकः । नाम्ना दशरथो राजा श्रीमान्सत्यप्रतिश्रवः ॥ २ ॥
अङ्गराजेन सख्यं च तस्य राज्ञो भविष्यति । कन्या चास्य महाभागा शान्ता नाम भविष्यति ॥ ३ ॥
पुत्रस्त्वङ्गस्य राज्ञस्तु रोमपाद इति श्रुतः । तं स राजा दशरथो गमिष्यति महायशाः ॥ ४ ॥
अनपत्योऽस्मि धर्मात्मञ्शान्ताभर्ता मम क्रतुम् । आहरेत त्वयाज्ञप्तः संतानार्थं कुलस्य च ॥ ५ ॥
श्रुत्वा राज्ञोऽथ तद्वाक्यं मनसा च विचिन्त्य च । प्रदास्यते पुत्रवन्तं शान्ताभर्तारमात्मवान् ॥ ६ ॥
प्रतिगृह्य च तं विप्रं स राजा विगतज्वरः । आहरिष्यति तं यज्ञं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ७ ॥
तं च राजा दशरथो यशस्कामः कृताञ्जलिः । ऋष्यशृङ्गं द्विजश्रेष्ठं वरयिष्यति धर्मवित् ॥ ८ ॥
यज्ञार्थं प्रसवार्थं च स्वर्गार्थं च नरेश्वरः । लभते च स तं कामं द्विजमुख्याद्विशांपतिः ॥ ९ ॥
पुत्राश्चास्य भविष्यन्ति चत्वारोऽमितविक्रमाः । वंशप्रतिष्ठानकराः सर्वभूतेषु विश्रुताः ॥ १० ॥

इस प्रकार वे महातेजस्वी ऋष्यशृङ्ग अपनी शान्ता नामकी स्त्रीके साथ वहां रहने लगे, उन्हें सब आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हुईं ॥ ३३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका दसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १० ॥

सुमन्त्रने राजासे पुनः कहा-महाराज आप अपने हितकी वे बातें सुनिए, जो देवप्रवर बुद्धिमान् सनत्कुमारने कही थी ॥ १ ॥ उन्होंने कहा था, इक्ष्वाकुके कुलमें परमधार्मिक सत्यप्रतिज्ञ राजा दसरथ उत्पन्न होंगे ॥ २ ॥ अङ्गदेशके राजाके साथ उनकी मित्रता होगी, उनके शान्ता नामकी एक कन्या होगी ॥ ३ ॥ अङ्गदेशके राजपुत्रका नाम रोमपाद होगा, राजा दसरथ उनके पास जायँगे ॥ ४ ॥ राजा दसरथ कहेंगे, महाराज मैं सन्तान-हीन हूं, शान्ताके पति ऋष्यशृङ्ग मेरा यज्ञ करावें, आप उन्हें ऐसी आज्ञा दें, जिससे मेरे सन्तान हो और कुलकी रक्षा हो ॥ ५ ॥ राजा दसरथकी बात सुनकर तथा स्वयं विचारकर राजा रोमपाद, पुत्रवान शान्ताके पतिको भेजेंगे ॥ ६ ॥ ऋष्यशृङ्गको पानेसे राजा दशरथकी चिन्ता दूर होगी, वे प्रसन्नचित्त होकर यज्ञ करेंगे ॥ ७ ॥ द्विजश्रेष्ठ ऋष्यशृङ्गका राजा दसरथ वरण करेंगे अर्थात् यज्ञ करानेके लिए उन्हें चुनेंगे, धर्म और यशकी इच्छा रखने वाले राजा दसरथ हाथ जोड़कर उनका वरण करेंगे ॥ ८ ॥ यज्ञ, पुत्र और स्वर्गके लिए राजा दशरथ उनका वरण करेंगे, उन श्रेष्ठ ब्राह्मणके द्वारा राजाके सभी मनोरथ पूरे होंगे ॥ ९ ॥ उन राजाके चार परम पराक्रमी पुत्र होंगे, उनसे राजाके वंशकी प्रतिष्ठा होगी राजाका वंश चलेगा और वे पुत्र सर्वत्र

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं स देवप्रवरः पूर्वं कथितवान्कथाम् । सनत्कुमारो भगवान्पुरा देवयुगे प्रभुः ॥११॥
स त्वं पुरुषशार्दूल समानय सुसत्कृतम् । स्वयमेव महाराज गत्वा सबलवाहनः ॥१२॥
सुमन्त्रस्य वचः श्रुत्वा हृष्टो दशरथोऽभवत् । अनुमान्य वसिष्ठं च सूतवाक्यं निशाम्य च ॥१३॥
सान्तःपुरः सहामात्यः प्रययौ यत्र स द्विजः । वनानि सरितश्चैव व्यतिक्रम्य शनैः शनैः ॥१४॥
अभिचक्राम तं देशं यत्र वै मुनिपुंगवः । आसाद्य तं द्विजश्रेष्ठं रोमपादसमीपगम् ॥१५॥
ऋषिपुत्रं ददर्शाथो दीप्यमानमिवानलम् । ततो राजा यथान्यायं पूजां चक्रे विशेषतः ॥१६॥
सखित्वात्तस्य वै राज्ञः प्रहृष्टेनान्तरात्मना । रोमपादेन चाख्यातमृषिपुत्राय धीमते ॥१७॥
सख्यं संबन्धकं चैव तदा तं प्रत्यपूजयत् । एवं सुसत्कृतस्तेन सहोषित्वा नरर्षभः ॥१८॥
सप्ताष्टदिवसान्राजा राजानमिदमब्रवीत् । शान्ता तव सुता राजन्सह भर्त्रा विशांपते ॥१९॥
मदीयं नगरं यातु कार्यं हि महदुद्यतम् । तथेति राजा संश्रुत्य गमनं तस्य धीमतः ॥२०॥
उवाच वचनं विप्रं गच्छ त्वं सह भार्यया । ऋषिपुत्रः प्रतिश्रुत्य तथेत्याह नृपं तदा ॥२१॥
स नृपेणाभ्यनुज्ञातः प्रययौ सह भार्यया । तावन्योन्याञ्जलिं कृत्वा स्नेहात्संश्लिष्य चोरसा॥२२॥
ननन्दतुर्दशरथो रोमपादश्च वीर्यवान् । ततः सुहृदमापृच्छ्य प्रस्थितो रघुनन्दनः ॥२३॥
पौरेषु प्रेषयामास दूतान्वै शीघ्रगामिनः । क्रियतां नगरं सर्वं क्षिप्रमेव स्वलंकृतम् ॥२४॥

प्रसिद्ध होंगे ॥ १० ॥ उन देवश्रेष्ठ सनत्कुमारने ऐसी कथा पहले कही थी ॥ ११ ॥ इस कारण हे पुरुषश्रेष्ठ, सेना-वाहन लेकर आप स्वयं जांय और आदरपूर्वक उनको ले आवें ॥ १२ ॥ सुमन्त्रकी बात सुनकर राजा दसरथ बहुत प्रसन्न हुए, सुनकी कही बात उन्होंने वसिष्ठको सुनायी और उनकी सम्मति ली ॥१३॥ वन नदियोंको धीरे-धीरे पार कर राजा दसरथ अपनी महारानियां और मन्त्रियोंके साथ ऋष्यशृङ्गके पास गये ॥ १४ ॥ राजा उस स्थानपर पहुंचे जहां मुनि राजा रोमपादके आश्रयमें रहते थे ॥ १५ ॥राजाने अग्निके समान दीप्तिमान् उस ऋषिपुत्रको देखा, तदनन्तर विधानपूर्वक उन्होंने ऋषिकी पूजा की ॥ १६ ॥ राजा रोमपाद और दसरथकी मित्रता थी, इस कारण प्रसन्नतापूर्वक राजा रोमपादने उन बुद्धिमान् ऋषिपुत्रसे ॥ १७ ॥ राजा दसरथके साथ अपनी मित्रता तथा सम्बन्धकी बात कही, राजा दसरथके सम्बन्धकी बात (शान्ता राजा दसरथकी कन्या थी) मालूम होनेपर उन्होंने राजा दसरथकी पूजा की । इस प्रकार ऋषिके द्वारा सत्कृत होनेपर राजा दसरथने ॥१८॥ वहां अठारह दिन रहकर राजा रोमपादसे कहा कि, महाराज आपकी कन्या शान्ता अपने पतिके साथ ॥१९॥ मेरे नगरमें चले, वहां बहुत बड़ा आवश्यक काम है । राजा रोमपादने मुनिपुत्रका वहां जाना स्वीकार किया ॥२०॥ राजा रोमपादने ऋषिपुत्रसे कहा कि आप अपनी स्त्रीके साथ राजा दशरथकी राजधानीमें जांय ऋष्यश्रृङ्गने भी जाने की प्रतिज्ञा की ॥२१॥ राजा रोमपाद की आज्ञा पाकर ऋष्यश्रृङ्ग जानेके लिए तयार हुए । जानेके समय रोमपाद और ऋषि दोनोंने आपसमें प्रणाम किया, परस्पर अलिङ्गन किया ॥२२॥ ऋष्यशृङ्ग राजा दशरथकी राजधानीमें जारहे हैं, इससे रोमपाद और राजा दसरथ दोनों प्रसन्न हुए, पुनः अपने मित्र रोमपादसे आज्ञा लेकर रघुनन्दन राजा दसरथने प्रस्थान किया ॥२३॥ तेज चलनेवाले दूत राजा दशरथने अपनी राजधानीमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धूपितं सिक्तसंसृष्टं पताकाभिरलंकृतम् । ततः प्रहृष्टाः पौरास्ते श्रुत्वा राजानमागतम् ॥२५॥
तथा चक्रुश्च तत्सर्वं राज्ञा यत्प्रेषितं तदा । ततः स्वलंकृतं राजा नगरं प्रविवेश ह ॥२६॥
शङ्खदुन्दुभिनिर्हादैः पुरस्कृत्वा द्विजर्षभम् । ततः प्रमुदिताः सर्वे दृष्ट्वा वै नागरा द्विजम् ॥२७॥
प्रवेश्यमानं सत्कृत्य नरेन्द्रेणेन्द्रकर्मणा । यथा दिवि सुरेन्द्रेण सहस्राक्षेण काश्यपम् ॥२८॥
अन्तःपुरं प्रवेश्यैनं पूजां कृत्वा च शास्त्रतः । कृतकृत्यं तदात्मानं मेने तस्योपवाहनात् ॥२९॥
अन्तःपुराणि सर्वाणि शान्तां दृष्ट्वा तथागताम् । सह भर्त्रा विशालाक्षीं प्रीत्यानन्दमुपागमन् ॥३०॥
पूज्यमाना तु ताभिः सा राज्ञा चैव विशेषतः । उवास तत्र सुखिता कंचित्कालं सहद्विजा ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२

ततः काले बहुतिथे कस्मिंश्चित्सुमनोहरे । वसन्ते समनुप्राप्ते राज्ञो यष्टुं मनोऽभवत् ॥ १ ॥
ततः प्रणम्य शिरसा तं विप्रं देववर्णिनम् । यज्ञाय वरयामास संतानार्थं कुलस्य च ॥ २ ॥
तथेति च स राजानमुवाच वसुधाधिपम् । संभाराः संभ्रियन्तां ते तुरगश्च विमुच्यताम् ॥ ३ ॥

नगर निवासियोंके पास भेजा और कहवाया कि शीघ्रही नगरको सजा दो ॥२४॥ राजा आगये हैं यह सुनकर नगरवासियोंने नगरमें पानीका छिड़काव किया, सुगन्ध धूप उन लोगोंने जलादी, पताकाएँ लगायीं, प्रसन्नता पूर्वक उन लोगोंने नगर सजाया ॥२५॥ राजाने जैसा कहा था, नगरवासियोंने वैसाही नगर सजाया । राजाने सजे-सजाये नगरमें प्रवेश किया ॥ २६ ॥ शंख, दुन्दुभी आदि मङ्गल वाद्य बजने लगे, ऋष्यशृङ्गको आगे करके मुनिने नगरमें प्रवेश किया । नगरवासी मुनिको देखकर बड़े प्रसन्न हुए ॥२७॥ इन्द्रके समान पराक्रमी राजा दसरथके साथ नगरमें ऋषिको प्रवेश करते देख नगरवासी प्रसन्न हुए, जैसे देवता देवलोकमें इन्द्रके साथ वामनको प्रवेश करते देख प्रसन्न हुए थे ॥ २८ ॥ राजा ऋषिको महलमें लेगये, उन्होंने शास्त्रविधानके अनुसार उनकी पूजा की । ऋषिको ले आनेके कारण राजाने अपनेको कृतकृत्य समझा ॥ २९ ॥ शान्ता अपने पतिके साथ आयी है, यह देखकर सब महारानियां विशेष आनन्दित हुईं ॥ ३० ॥ महारानियों तथा विशेषकर राजाके द्वारा सत्कृत होकर कुछ दिनों तक शान्ताने वहीं राजमहलमें ही निवास किया ॥ ३१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११ ॥

इस प्रकार बहुत समय बीत जानेपर बड़ाही मनोहर वसन्तकाल आया और उसी समय राजाने यज्ञ करनेकी इच्छा की ॥ १ ॥ राजाने देवताके समान तेजस्वी उस ब्राह्मणको प्रणाम किया और सन्तान तथा कुलकी प्रतिष्ठाके लिए उनका वरण किया, यज्ञ करनेके लिए उनको चुना ॥ २ ॥ मुनिने यज्ञ कराना स्वीकार किया और उन्होंने राजासे कहा-सामग्रियां एकत्र करवाइए, तथा घोड़ा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् । ततोऽब्रवीन्नृपो वाक्यं ब्राह्मणान्वेदपारगान्॥ ४ ॥
सुमन्त्रावाहय क्षिप्रमृत्विजो ब्रह्मवादिनः । सुयज्ञं वामदेवं च जाबालिमथ काश्यपम् ॥ ५ ॥
पुरोहितं वसिष्ठं च ये चान्ये द्विजसत्तमाः । ततः सुमन्त्रस्त्वरितं गत्वा त्वरितविक्रमः ॥ ६ ॥
समानयत्स तान्सर्वान्समस्तान्वेदपारगान् । तान्पूजयित्वा धर्मात्मा राजा दशरथस्तदा ॥ ७ ॥
धर्मार्थसहितं युक्तं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् । मम तातप्यमानस्य पुत्रार्थे नास्ति वै सुखम् ॥ ८ ॥
पुत्रार्थं हयमेधेन यक्ष्यामीति मतिर्मम । तदहं यष्टुमिच्छामि हयमेधेन कर्मणा ॥ ९ ॥
ऋषिपुत्रप्रभावेण कामान्प्राप्स्यामि चाप्यहम् । ततःसाध्विति तद्वाक्यं ब्राह्मणाःप्रत्यपूजयन् ॥१०॥
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे पार्थिवस्य मुखाच्च्युतम् । ऋष्यशृङ्गपुरोगाश्च प्रत्यूचुर्नृपतिं तदा ॥११॥
संभाराः संभ्रियन्तां ते तुरगश्च विमुच्यताम् । सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् ॥१२॥
सर्वथा प्राप्स्यसे पुत्रांश्चतुरोऽमितविक्रमान् । यस्य ते धार्मिकी बुद्धिरियं पुत्रार्थमागता ॥१३॥
ततःप्रीतोऽभवद्राजा श्रुत्वा तु द्विजभाषितम् । अमात्यानब्रवीद्राजा हर्षेणेदं शुभाक्षरम् ॥१४॥
गुरूणां वचनाच्छीघ्रं संभाराः संभ्रियन्तु मे । समर्थाधिष्ठितश्चाश्वःसोपाध्यायो विमुच्यताम्॥१५॥
सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् । शान्तयश्चाभिवर्धन्तां यथाकल्पं यथाविधि ॥१६॥
शक्यः कर्तुमयं यज्ञः सर्वेणापि महीक्षिता । नापराधो भवेत्कष्टो यद्यस्मिन्क्रतुसत्तमे ॥१७॥
छिद्रं हि मृगयन्त्येते विद्वांसो ब्रह्मराक्षसाः । विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यःकर्ता विनश्यति ॥१८॥

छोड़िये ॥ ३ ॥ सरयूके उत्तर तीरपर यज्ञभूमि बनवाइए, राजाने यह वेदज्ञ ब्राह्मणोंसे कहा ॥ ४ ॥ अनन्तर उन्होंने सुमन्तसे कहा-ब्रह्मवेत्ता ऋत्विजोंको शीघ्र ले आओ, सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि, काश्यपको ले आओ ॥५॥ पुरोहित वसिष्ठको तथा और जो श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं उन सबको लेआओ, सुमन्त्र शीघ्रही वहां जाकर ॥ ६ ॥ उन समस्त वेदज्ञ ब्राह्मणोंको ले आये । धर्मात्मा राजा दसरथने उन सबकी पूजा की ॥ ७ ॥ राजा दसरथ धर्मार्थ युक्त बहुतही मधुर वचन बोले, पुत्रके लिए मैं बहुतही दुःखी हूँ, मुझे सुख नहीं है ॥८॥ पुत्रके लिए अश्वमेध यज्ञ करूं ऐसा मैंने निश्चय किया है, अब वही यज्ञ करना चाहता हूँ ॥९॥ ऋषि पुत्र-ऋष्यशृङ्गके प्रभावसे मेरे मनोरथ पूरेंगे । ब्राह्मणोंने राजाकी बातकी प्रशंसा की ॥१०॥ वसिष्ठ, ऋष्यशृङ्ग आदि सभीने राजाके मुंहसे जो बात निकली थी वही राजासे पुनः कहीं ॥११॥ वह बात यह थी कि यज्ञकी तयारी कराओ, घोड़ा छोड़ो और सरयूके उत्तर तीरपर यज्ञभूमि बनवाओ ॥१२॥ निश्चय परम पराक्रमी चार पुत्र आपके होंगे, क्योंकि पुत्रप्राप्तिके लिए आपको यह धर्मबुद्धि उत्पन्न हुई है ॥१३॥ ब्राह्मणोंकी बात सुनकर राजा प्रसन्न हुए । प्रसन्न होकर राजाने मन्त्रियोंसे कहा ॥ १४ ॥ गुरुओंकी आज्ञाके अनुसार आपलोग सब सामग्रियां एकत्र कीजिए वीरोंकी सेनाके साथ घोड़ा छोड़िए, घोड़ेके साथ उपाध्याय भी जांय, ॥१५॥ सरयूके उत्तर तीरपर यज्ञभूमि बनवाइए, शास्त्रानुसार विधिपूर्वक विघ्न दूर करनेके लिए शान्तिविधान हों ॥१६॥ यदि इसमें अनेक विघ्नों और अनेक कठिनाइयोंकी सम्भावना न होती तो इस यज्ञको सभी राजा कर सकते थे, उन्हीं विघ्नोंके कारण अन्य राजा इस यज्ञको नहीं करते ॥ १७ ॥ विद्वान् और ब्रह्मराक्षस सदा त्रुटियां देखा करते हैं, विधिहीन यज्ञ करनेवाला मनुष्य शीघ्रही नष्ट होजाता है

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तद्यथा विधिपूर्वं मे क्रतुरेष समाप्यते । तथा विधानं क्रियतां समर्थाः करणेष्विह ॥१९॥
तथेति च ततः सर्वे मन्त्रिणः प्रत्यपूजयन् । पार्थिवेन्द्रस्य तद्वाक्यं यथाज्ञप्तमकुर्वत ॥२०॥
ततो द्विजास्ते धर्मज्ञमस्तुवन्पार्थिवर्षभम् । अनुज्ञातास्ततः सर्वे पुनर्जग्मुर्यथागतम् ॥२१॥
गतानां तेषु विप्रेषु मन्त्रिणस्तान्नराधिपः । विसर्जयित्वा स्वं वेश्म प्रविवेश महामतिः ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिय आदिकाव्ये बालकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३

पुनः प्राप्ते वसन्ते तु पूर्णः संवत्सरोऽभवत् । प्रसवार्थं गतो यष्टुं हयमेधेन वीर्यवान् ॥ १ ॥
अभिवाद्य वसिष्ठं च न्यायतः प्रतिपूज्य च । अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं प्रसवार्थं द्विजोत्तमम् ॥ २ ॥
यज्ञो मे क्रियतां ब्रह्मन्यथोक्तं मुनिपुंगव । यथा न विघ्नाः क्रियन्ते यज्ञाङ्गेषु विधीयताम् ॥ ३ ॥
भवान्स्निग्धः सुहृन्मह्यं गुरुश्च परमो महान् । वोढव्यो भवता चैव भारो यज्ञस्य चोद्यतः॥ ४ ॥
तथेति च स राजानमब्रवीद्द्विजसत्तमः । करिष्ये सर्वमेवैतद्भवता यत्समर्थितम् ॥ ५ ॥
ततोऽब्रवीद्द्विजान्वृद्धान्यज्ञकर्मसु निष्ठितान् । स्थापत्ये निष्ठितांश्चैव वृद्धान्परमधार्मिकान् ॥ ६ ॥
कर्मान्तिकाञ्शिल्पकारान्वर्धकीन्खनकानपि । गणकाञ्शिल्पिनश्चैव तथैव नटनर्तकान् ॥ ७ ॥
तथा शुचीञ्शास्त्रविदः पुरुषान्सुबहुश्रुतान् । यज्ञकर्म समीहन्तां भवन्तो राजशासनात् ॥ ८ ॥

॥ १८ ॥ इस कारण मेरा यज्ञ विधिपूर्वक समाप्त हो वैसा उपाय आपलोग करें, क्योंकि आपलोग वैसा करनेमें समर्थ हैं ॥ १९ ॥ राजाकी बातें सुनकर मन्त्रियोंने उसीके अनुसार काम करना स्वीकार किया और उन लोगोंने वैसा किया भी ॥ २० ॥ ब्राह्मणोंने धर्मज्ञ राजा दसरथकी बड़ी प्रशंसा की और राजासे आज्ञा लेकर वे अपने स्थानको गये ॥२१॥ ब्राह्मणोंके चले जानेपर राजाने मन्त्रियोंको भी जानेकी आज्ञा दी और वे स्वयं महलमें गये ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका बारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १२ ॥

पुनः वसन्तके आनेपर एक वर्ष पूरा हुआ, राजा दसरथ भी पुत्रप्राप्तिके लिए अश्वमेध यज्ञ करनेके लिए गये ॥ १ ॥ वसिष्ठको उन्होंने प्रणाम किया और पूजा की, और पुत्रप्राप्तिके हेतु विनय युक्त वचन वे बोले ॥ २ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ, शास्त्रविधिके अनुसार आप यज्ञ करायें, जिससे यज्ञमें इन्द्र आदि विघ्न न करने पावें ॥३॥ आप मेरे परमस्नेही हैं, मित्र हैं तथा गुरु हैं, यज्ञका जो भार उपस्थित हुआ है आप उसे सभालें ॥ ४ ॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ वसिष्ठने राजासे कहा—जैसा आपने कहा है वह सब मैं करूंगा ॥ ५ ॥ यज्ञ करानेका भार लेकर वसिष्ठने, यज्ञ करानेमें निपुण वृद्ध ब्राह्मणोंको, परम धार्मिक बूढे यज्ञसम्बन्धी वस्तुओंको ले आने वालोंको, काममें सहायता देनेवाले भृत्योंको, चित्रकारोंको, बढइयों और खोदनेवालोंको, ज्योतिषियों, चमारो तथा नट, नर्तक आदिको, विशुद्ध शास्त्रवेत्ता और बहुज्ञोंको आज्ञा दी कि आप लोग राजाकी आज्ञासे यज्ञका प्रबन्ध करावें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इष्टका बहुसाहस्रीः शीघ्रमानीयतामिति । उपकार्याःक्रियन्तां च राज्ञो बहुगुणान्विताः॥ ९ ॥
ब्राह्मणावसथाश्चैव कर्तव्याः शतशः शुभाः । भक्ष्यान्नपानैर्बहुभिः समुपेताः सुनिष्ठिताः ॥१०॥
तथा पौरजनस्यापि कर्तव्याश्च सुविस्तराः । आगतानां सुदूराच्च पार्थिवानां पृथक्पृथक् ॥११॥
वाजिवारणशालाश्च तथा शय्यागृहाणि च । भटानां महदावासा वैदेशिकनिवासिनाम् ॥१२॥
आवासा बहुभक्ष्या वै सर्वकामैरुपस्थिताः । तथा पौरजनस्यापि जनस्य बहुशोभनम् ॥१३॥
दातव्यमन्नं विधिवत्सत्कृत्य न तु लीलया । सर्वे वर्णा यथा पूजां प्राप्नुवन्ति सुसत्कृताः ॥१४॥
न चावज्ञा प्रयोक्तव्या कामक्रोधवशादपि । यज्ञकर्मसु येऽव्यग्राः पुरुषाः शिल्पिनस्तथा ॥१५॥
तेषामपि विशेषेण पूजा कार्या यथाक्रमम् । ये स्युः संपूजिताः सर्वे वसुभिर्भोजनेन च ॥१६॥
यथा सर्वं सुविहितं न किंचित्परिहीयते । तथा भवन्तः कुर्वन्तु प्रीतियुक्तेन चेतसा ॥१७॥
ततः सर्वे समागम्य वसिष्ठमिदमब्रुवन् । यथेष्टं तत्सुविहितं न किंचित्परिहीयते ॥१८॥
यथोक्तं तत्करिष्यामो न किंचित्परिहास्यते । ततः सुमन्त्रमाहूय वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥१९॥
निमन्त्रयस्व नृपतीन्पृथिव्यां ये च धार्मिकाः । ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्याञ्शूद्रांश्चैव सहस्रशः ॥२०॥
समानयस्व सत्कृत्य सर्वदेशेषु मानवान् । मिथिलाधिपतिं शूरं जनकं सत्यवादिनम् ॥२१॥
तमानय महाभागं स्वयमेव सुसत्कृतम् । पूर्वसंबन्धिनं ज्ञात्वा ततः पूर्वं ब्रवीमि ते ॥२२॥

॥६-७-८॥ कई हजार ईंटे मगवाइए, राजाओंके लिए उपकार्या(कपड़ेका घर) बनवाइए, जिसमें सब तरहकी सुबिधा हो ॥ ९ ॥ ब्राह्मणोंके रहनेके लिए भी सैकड़ों सुन्दर मकान बनवाइए, जिसमें अन्न जलकी अच्छी व्यवस्थाहो, ॥ १० ॥ नगर-वासियोंके लिए भी अच्छे-अच्छे घर बनवाये जाँय, दूरसे आये राजाओंके लिए भी अलग-अलग घर होने चाहिएँ ॥ ११ ॥ घोड़े और हाथियोंके लिए भी घर बनवाइए; । शयनगृह भी बनवाइए, विदेशी पहलवानोंके लिए भी बड़े-बड़े घर होने चाहिएँ ॥ १२ ॥ जो घर बनवाये जांय उनमें खानेकी सामग्री अधिक रखी जाँय, अन्य आवश्यक वास्तुओंका भी प्रबन्ध किया जाय, नगरवासियोंको जो अन्न दिया जाय वह ॥ १३ ॥ विधिपूर्वक आदरके साथ दिया जाय, रुखाईके साथ नहीं । सब वर्णवालोंका सत्कार किया जाय और उनकी पूजा हो ॥ १४ ॥ किसी कारणवश या क्रोधवश भी किसीका तिरस्कार न हो । जो शिल्पी यज्ञके कार्योंमें विशेष नहीं लगे हुए हैं ॥ १५ ॥ उनका भी अच्छी तरहसे आदर-सत्कार हो, जब वे धन तथा भोजनके द्वारा सन्तुष्ट किये जायँगे ॥ १६ ॥ तब यज्ञके सभी काम विधिवत् सम्पन्न होंगे, कोई भी त्रुटि न होने पावेगी, इस कारण मेरे ऊपर प्रेम करके आप लोग वैसा ही करें ॥ १७ ॥

वे सब वसिष्ठके यहाँ पुनः आकर बोले-महाराज सब प्रबन्ध होगया, किसी बातकी कमी नहीं है ॥ १८ ॥ अब आपकी आज्ञाके अनुसार और सब प्रबन्ध हमलोग करेंगे, किसी बातकी त्रुटि न होने पावेगी । तब सुमन्तको बुलाकर वसिष्ठने कहा ॥ १९ ॥ सब राजाओंको निमन्त्रित करो, पृथिवीमें जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र धार्मिक हैं उन सबको भी निमन्त्रण दो ॥२०॥ सब देशोंसे आदरपूर्वक मनुष्योंको लेआओ । वीर सत्यवादी मिथिलाके राजा जनकको ॥ २१ ॥ स्वयं जाकर आदरपूर्वक लेआओ, क्योंकि वे पुराने सबन्धी हैं, इसलिए मैं ऐसा कह रहा हूँ ॥ २२ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तथा काशिपतिं स्निग्धं सततं प्रियवादिनम् । सद्वृत्तं देवसंकाशं स्वयमेवानयस्व ह ॥२३॥
तथा केकयराजानं वृद्धं परमधार्मिकम् । श्वशुरं राजसिंहस्य सपुत्रं तमिहानय ॥२४॥
अङ्गेश्वरं महेष्वासं रोमपादं सुसत्कृतम् । वयस्यं राजसिंहस्य सपुत्रं तमिहानय ॥२५॥
तथा कोसलराजानं भानुमन्तं सुसत्कृतम् । मगधाधिपतिं शूरं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥२६॥
प्राप्तिज्ञं परमोदारं सत्कृतं पुरुषर्षभम् । राज्ञः शासनमादाय चोदयस्व नृषर्षभान् ।
प्राचीनान्सिन्धुसौवीरान्सौराष्ट्रेयांश्च पार्थिवान् ॥ २७ ॥
दाक्षिणात्यान्नरेन्द्रांश्च समस्तानानयस्व ह । सन्ति स्निग्धाश्च ये चान्ये राजानःपृथिवीतले॥२८॥
तानानय यथा क्षिप्रं सानुगान्सहबान्धवान् । एतान्दूतैर्महाभागैरानयस्व नृपाज्ञया ॥२९॥
वसिष्ठवाक्यं तच्छ्रुत्वा सुमन्त्रस्त्वरितं तदा । व्यादिशत्पुरुषांस्तत्र राज्ञामानयने शुभान् ॥३०॥
स्वयमेव हि धर्मात्मा प्रयातो मुनिशासनात् । सुमन्त्रस्त्वरितो भूत्वा समानेतुं महामतिः ॥३१॥
ते च कर्मान्तिकाः सर्वे वसिष्ठाय महर्षये । सर्वं निवेदयन्तिस्म यज्ञे यदुपकल्पितम् ॥३२॥
ततः प्रीतो द्विजश्रेष्ठस्तान्सर्वान्मुनिरब्रवीत् । अवज्ञया न दातव्यं कस्यचिल्लीलयापि वा ॥३३॥
अवज्ञया कृतं हन्यादातारं नात्र संशयः । ततः कैश्चिदहोरात्रैरुपयाता महीक्षितः ॥३४॥
बहूनि रत्नान्यादाय राज्ञो दशरथस्य ह । ततो वसिष्ठः सुप्रीतो राजानमिदमब्रवीत् ॥३५॥

काशीके महाराजको भी स्वयं जाकर ले आओ, क्योंकि वे हमलोगोंके स्नेही हैं, प्रियवादी हैं, सदाचारी हैं और देवचरित्र हैं ॥ २३ ॥ केकय देशके बूढ़े राजाको और उनके पुत्रको भी जाकर ले आओ, वे परम धार्मिक हैं और महाराज दसरथके श्वसुर हैं ॥ २४ ॥ अङ्गदेशके राजा धनुर्धारी पुत्रके साथ रोमपादको जाकर आदरपूर्वक ले आओ, वे महाराज दसरथके मित्र हैं ॥ २५ ॥ कोशल देशके राजा भानुमानको, सर्व शास्त्र-ज्ञाता और वीर मगधराजको बड़े आदरके साथ ले आओ। राजाकी आज्ञा लेकर पूर्वदेशके राजा ॥ ६ ॥ सिन्धुदेश सौवीर और सौराष्ट्र देशके राजाओंको भी निमन्त्रित करो ॥ २७ ॥ दक्षिणके देशके सब राजाओंको बुलाओ, पृथिवीमें हमलोगोंके स्नेही और जो राजा हों उनको भी बुलाओ ॥ २८ ॥ भाईबन्द, नौकर-चाकरके साथ इन सबको शीघ्रही बुलवाओ। प्रतिष्ठत दूत भेजकर इन सबको राजाकी आज्ञासे बुलवाओ ॥ २९ ॥

वसिष्ठकी आज्ञा पाकर सुमन्त्रने शीघ्रही राजाओंको निमन्त्रित करनेके लिए श्रेष्ठ दूतोंको आज्ञा दी ॥३०॥ मुनिकी आज्ञासे अन्य राजाओंके यहां स्वयं जानेके लिए धर्मात्मा और बुद्धिमान् सुमन्त्र स्वयं शीघ्रतापूर्वक चलपड़े ॥ ३१ ॥

उन कारीगरोंने, जिनको वसिष्ठने यज्ञ-सम्बन्धी काम करनेकी आज्ञा दी थी, आकर यज्ञके लिए जो जो तयारी होचुकी थी वह सब वसिष्ठको कहीं ॥३२॥ मुनि वसिष्ठ इससे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा-जो कोई तुम लोगोंसे कुछ माँगे, उसे तिरस्कारके साथ मत दो और उपहास करके भी मत दो ॥३३॥ तिरस्कारके साथ जो काम किया जाता है, उससे अवश्यही दाताका नाश होता है।

थोड़े दिनोंके बाद राजा लोग अयोध्यामें आने लगे ॥३४॥ वे लोग राजा दसरथके लिए बहुतसा रत्न लेकर आये। उनके आनेसे वसिष्ठ बहुत प्रसन्न हुए और वे राजा दसरथसे बोले ॥ ३५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उपयाता नरव्याघ्र राजानस्तव शासनात् । मयापि सत्कृताः सर्वे यथार्हं राजसत्तम ॥३६॥
यच्चियं च कृतं सर्वं पुरुषैः सुसमाहितैः । निर्यातु च भवान्यष्टुं यज्ञायतनमन्तिकात् ॥३७॥
सर्वकामैरुपहृतैरुपेतं वै सपन्ततः । द्रष्टुमर्हसि राजेन्द्र मनसैव विनिर्मितम् ॥३८॥
तथा वसिष्ठवचनादृष्यशृङ्गस्य चोभयोः । दिवसे शुभनक्षत्रे निर्यातो जगतीपतिः ॥३९॥
ततो वसिष्ठप्रमुखाः सर्व एव द्विजोत्तमाः । ऋष्यशृङ्गं पुरस्कृत्य यज्ञकर्माण्यमंस्तदा ॥४०॥
यज्ञवाटं गताः सर्वे यथाशास्त्रं यथाविधि । श्रीमांश्च सह पत्नीभी राजा दीक्षामुपाविशत् ॥४१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४

अथ संवत्सरे पूर्णे तस्मिन्प्राप्ते तुरङ्गमे । सरय्वाश्चोत्तरे तीरे राज्ञो यज्ञोऽभ्यवर्तत ॥ १ ॥
ऋष्यशृङ्गं पुरस्कृत्य कर्म चक्रुर्द्विजर्षभाः । अश्वमेधे महायज्ञे राज्ञोऽस्य सुमहात्मनः ॥ २ ॥
कर्म कुर्वन्ति विधिवद्याजका वेदपारगाः । यथाविधि यथान्यायं परिक्रामन्ति शास्त्रतः ॥ ३ ॥
प्रवर्ग्यं शास्त्रतः कृत्वा तथैवोपसदं द्विजाः । चक्रुश्च विधिवत्सर्वमधिकं कर्म शास्त्रतः ॥ ४ ॥

महाराज, आपकी आज्ञासे ये सब राजा लोग आये हैं, राजश्रेष्ठ ! मैंने भी जो जिस योग्य है उसका वैसा सत्कार किया है ॥ ३६ ॥ हमारे आदमियोंने सावधानीसे यज्ञकी सब सामग्रियाँ (स्रुक् स्रुवा आदि) एकत्र कर दी हैं, आप यज्ञ करनेके लिए चलें, यज्ञ-मण्डप पासही है ॥३७॥ सब आवश्यक सामग्रियां यथास्थान रखी गयी हैं, राजश्रेष्ठ, आप चलकर देखें, इतनी शीघ्र तयारी हुई है, मानो मनके ही द्वारा ये तयारियां हुई हों ॥३८॥ इस प्रकार वसिष्ठ और ऋष्यशृङ्गके कहनेसे उत्तम दिनके शुभ नक्षत्रमें राजा अपने घरसे निकले (यज्ञ भूमिमें जानेके लिए उन्होंने प्रस्थान किया) ॥३९॥ तब वसिष्ठ आदि अनेक श्रेष्ठ ब्राह्मण ऋष्यशृङ्गको आगे करके यज्ञभूमिमें गये ॥ ४० ॥ उन लोगोंने शास्त्र और विधिके अनुसार यज्ञ प्रारम्भ किया, महाराजने भी अपनी महारानियोंके साथ यज्ञकी दीक्षा (यज्ञसम्बन्धी यजमानके नियम) ली ॥ ४१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका तेरहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १३ ॥

इस प्रकार एक वर्ष पूरा होनेपर घोड़ा लौट आया और सरयू नदीके उत्तर तीरपर राजाका यज्ञ प्रारम्भ हुआ ॥१॥ सर्वत्र प्रसिद्ध राजा दसरथके बड़ी श्रद्धा और तयारीसे किये जानेवाले यज्ञमें श्रेष्ठ ब्राह्मण ऋष्यशृङ्गकी देख-भालमें अपना काम करने लगे ॥२॥ वेदज्ञ याजक (यज्ञ करानेवाले) विधान क्रम और शिक्षाके अनुसार (जैसी उत्तम शिक्षा उन्हें मिली था) अपना-अपना कर्म सम्पादन करने लगे ॥३॥ शास्त्रके अनुसार प्रवर्ग्य (इस नामका अश्वमेध यज्ञमें किया जानेवाला एक कर्म) और उपसद (यह भी उसी यज्ञका एक अङ्ग है) कर्मोंको पहले करके यज्ञ-सम्बन्धी अन्य सब कर्म ब्राह्मणोंने किये ॥४॥ इस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अभिपूज्य तदा हृष्टाः सर्वे चक्रुर्यथाविधि । प्रातःसवनपूर्वाणि कर्माणि मुनिपुंगवाः ॥ ५ ॥
ऐन्द्रश्च विधिवद्दत्तो राजा चाभिषुतोऽनघः । माध्यंदिनं च सवनं प्रावर्तत यथाक्रमम् ॥ ६ ॥
तृतीयसवनं चैव राज्ञोऽस्य सुमहात्मनः । चक्रुस्ते शास्त्रतो दृष्ट्वा यथा ब्राह्मणपुंगवाः ॥ ७ ॥
आव्हयांचीक्रिरे तत्र शक्रादीन्विबुधोत्तमान् । ऋष्यशृङ्गादयो मन्त्रैः शिक्षाक्षररसमन्वितैः ॥ ८ ॥
गीतिर्भिर्मधुरैः स्निग्धैर्मन्त्राह्वानैर्यथार्हतः । होतारो ददुरावाह्य हविर्भागान्दिवौकसाम् ॥ ९ ॥
न चाहुतमभूत्तत्र स्खलितं वा न किंचन । दृश्यते ब्रह्मवत्सर्वं क्षेमयुक्तं हि चक्रिरे ॥१०॥
न तेष्वहःसु श्रान्तो वा क्षुधितो वा न दृश्यते । नाविद्वान्ब्राह्मणः कश्चिन्नाशतानुचरस्तथा ॥११॥
ब्राह्मणा भुञ्जते नित्यं नाथवन्तश्च भुञ्जते । तापसा भुञ्जते चापि श्रमणाश्चैव भुञ्जते ॥१२॥
वृद्धाश्च व्याधिताश्चैव स्त्रीबालाश्च तथैव च । अनिशं भुञ्जमानानां न तृप्तिरुपलभ्यते ॥१३॥
दीयतां दीयतामन्नं वासांसि विविधानि च । इति संचोदितास्तत्र तथा चक्रुरनेकशः ॥१४॥
अन्नकूटाश्च दृश्यन्ते बहवः पर्वतोपमाः । दिवसे दिवसे तत्र सिद्धस्य विधिवत्तदा ॥१५॥
नानादेशादनुप्राप्ताः पुरुषाः स्त्रीगणास्तथा । अन्नपानैः सुविहितास्तस्मिन्यज्ञे महात्मनः ॥१६॥
अन्नं हि विधिवत्स्वादु प्रशंसन्ति द्विजर्षभाः । अहो तृप्ताःस्म भद्रं ते इति शुश्राव राघवः ॥१७॥

यज्ञमें किये जानेवाले कर्मोंके देवताओंका विधिपूर्वक पूजन करके प्रसन्न होकर मुनिप्रवरोंने प्रातःसवन (इस नामका एक कर्म) करके अन्य सब कर्म विधिपूर्वक किये ॥५॥ पवित्र राजाने इन्द्रको विधिवत् उनका भाग-हवि दी और सोमलताका रस निकाला, तदनन्तर क्रमपूर्वक प्रातःसवन करनेके पश्चात् माध्यन्दिन (मध्याह्नमें होनेवाला) सवन प्रारम्भ हुआ ॥६॥ उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने उन महात्मा राजा दसरथका तीसरा सवन भी शास्त्रोंसे जानकर विधिपूर्वक कराया ॥७॥ ऋष्यशृङ्ग आदि ऋषियोंने स्वरवर्ण आदिसे शुद्ध मन्त्रोंके द्वारा इन्द्र आदि उत्तम देवताओंका उस यज्ञमें आवाहन किया ॥८॥ मधुर सामवेदके मंत्रोंके गानसे तथा मनोरम मन्त्रोंसे देवताओंका आवाहन करके जिसका जो भाग था वह होताओंने उन-उन देवताओंको दिये ॥९॥ वहां अहुत (शास्त्रोक्त हवनके विरुद्ध) कुछ भी नहीं हुआ, किसी कर्ममें कोई त्रुटि भी नहीं हुई, क्योंकि वहांके सभी कर्म मन्त्रोंके द्वारा हुए, इस कारण सभी कर्म पूर्ण हुए ॥१०॥ यज्ञके दिनोंमें कोई भी अपने कामसे थका नहीं, कोई भी भूखा दिखायी न पड़ा वहां कोई भी मूर्ख ब्राह्मण न था, सभी पण्डित थे, और ऐसा कोई न था जिसके सौ शिष्य न हों ॥११॥ वहाँ ब्राह्मणोंको नित्य भोजन दिया जाता था, शूद्रोंको भी भोजन दिया जाता था, सनातनी तपस्वियों और श्रमणों (बौद्ध संन्यासियों) को भी भोजन दिया जाता था ॥१२॥ वृद्ध रोगी स्त्री और बालकोंको भी उसी प्रकार भोजन दिया जाता था, वहांका भोजन इतना स्वादिष्ठ था कि दिनरात खानेपर भी खानेवाले तृप्त नहीं होते थे ॥ १३ ॥ अन्न तथा अनेक प्रकारके वस्त्र याचकोंको दो, अधिकारियोंकी ऐसी आज्ञा पाकर उन लोगोंने वैसाही किया अर्थात् अन्न और वस्त्र दिये ॥१४॥ वहां प्रतिदिन अनेक पर्वतके समान अन्नकी राशि दीख पड़ती थी, और पके अन्नकी भी राशि उसी प्रकार पर्वतके समान ऊंची दीख पड़ती थी ॥ १५ ॥ महात्मा दसरथके उस यज्ञमें अनेक देशोंसे आये हुए अन्नपानसे खूब तृप्त किये गये ॥१६॥ भोजन बहुत उत्तम बना है और स्वादिष्ट

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वलंकृताश्च पुरुषा ब्राह्मणान्पर्यवेषयन् । उपासन्ते च तानन्ये सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥१८॥
कर्मान्तरे तदा विप्रा हेतुवादान्बहूनपि । प्राहुः सुवाग्मिनो धीराः परस्परजिगीषया ॥१९॥
दिवसेदिवसे तत्र संस्तरे कुशला द्विजाः । सर्वकर्माणि चक्रुस्ते यथाशास्त्रं प्रचोदिताः ॥२०॥
नाषडङ्गविदत्रासीन्नाव्रतो नाबहुश्रुतः । सदस्यास्तस्य वै राज्ञो नावादकुशलो द्विजः ॥२१॥
प्राप्ते यूपोच्छ्रये तस्मिन्षड्बैल्वाःखादिरास्तथा । तावन्तो बिल्वसहिताःपार्ष्णिनश्च तथाऽपरे ॥२२॥
श्लेष्मातकमयोदिष्टो देवदारुमयस्तथा । द्वावेव तत्र विहितौ बाहुव्यस्तपरिग्रहौ ॥२३॥
कारिता सर्व एवैते शास्त्रज्ञैर्यज्ञकोविदैः । शोभार्थं तस्य यज्ञस्य काञ्चनालङ्कृता भवन् ॥२४॥
एकविंशतियूपास्ते एकविंशत्यरत्नयः । वासोभिरेकविंशद्भिरेकैकं समलङ्कृताः ॥२५॥
विन्यस्ता विधिवत्सर्वे शिल्पिभिः सुकृता दृढाः । अष्टास्रयः सर्व एव श्लक्ष्णरूपसमन्विताः ॥२६॥
आच्छादितास्ते वासोभिःपुष्पैर्गन्धैश्च पूजिताः। सप्तर्षयो दीप्तिमन्तो विराजन्ते यथा दिवि ॥२७॥
इष्टकाश्च यथान्यायं कारिताश्च प्रमाणतः । चितोऽग्निर्ब्राह्मणैस्तत्र कुशलैःशिल्पकर्मणि ॥२८॥
स चित्यो राजसिंहस्य संचितः कुशलैर्द्विजैः । गरुडो रुक्मपक्षो वै त्रिगुणोऽष्टादशात्मकः ॥२९॥

है, ब्राह्मण भोजनकी इस प्रकार प्रशंसा करते थे, 'हमलोग खूब तृप्त हुए, आपका कल्याण हो', राजा ऐसे शब्द वहां सुनते थे ॥ १७ ॥ ब्राह्मणोंको अन्न परोसनेवाले अलङ्कृत थे, राजासे जो अलङ्कार आदि मिले थे वे सब उन लोगोंने पहने थे। उन परोसनेवालोंकी सहायता करनेवाली जो स्त्रियां थीं वे मणिका कुण्डल धारण किये हुई थीं ॥ १८ ॥

एक कर्मकी समाप्ति और दूसरे कर्मके प्रारम्भमें जो समय मिलता था, उसमें वक्ता और धीर ब्राह्मण परस्पर जीतनेकी इच्छासे भिन्न-भिन्न शास्त्रोंकी युक्तियोंसे शास्त्रार्थ करते थे ॥ १९ ॥ उस यज्ञमें नियुक्त ब्राह्मणोंने शास्त्रीय आज्ञाओंके अनुसार सब कर्म किये ॥२०॥ राजाके उस यज्ञमें कोई भी ऐसा निरीक्षक ऐसा ब्राह्मण न था जो षडङ्ग न जानता हो, जो व्रत न रखता हो, जो बहुश्रुत न हो और जो शास्त्रार्थ करनेमें निपुण न हो ॥ २१ ॥ यज्ञमें यूप (एक प्रकारका स्तम्भ) गाड़नेके समय, बेल-वृक्षकी लकड़ीके छ यूप गाड़े गये, उनके पासही छ यूप खैरकी लकड़ीके गाड़े गये और छ पलासकी लकड़ीके यूप गाड़े गये ॥२२॥ श्लेष्मातक (इस नामका कोई वृक्ष) और देवदारुके दो यूप वहां गाड़े गये, इनका विस्तार दोनों हाथ फैलानेके बराबर था, अथवा ये दो-दो हाथकी दूरीपर गाड़े गये थे ॥२३॥ शास्त्रज्ञ और यज्ञ करानेमें निपुण विद्वानोंके द्वारा ये सब कर्म कराये गये और शोभाके लिए यज्ञमण्डप सोनेसे सुशोभित किया गया ॥ २४ ॥ इस प्रकार उस यज्ञमें इक्कीस यूप गाड़े गये, उनका परिमाण इक्कीस अरत्नि (चौबीस अंगुलका परिमाण) था, उन एक्कीसोंपर एक वस्त्र डाला गया ॥ २५ ॥ वे यूप शिल्पियोंके द्वारा उत्तम बने हुए थे, उनपर चित्र बने हुए थे, वे मजबूत बने हुए थे, उनमें आठ कोने थे और वे बड़ेही चिकने और सुन्दर थे ॥२६॥ वस्त्रोंसे ढक जानेपर, फूल और गन्धसे पूजित होनेपर वे यूप बड़े ही सुन्दर मालूम होने लगे, जिस प्रकार आकाशमें सप्तर्षि शोभित होते हैं ॥२७॥ यज्ञ-कर्ममें निपुण ब्राह्मणोंने विधान और प्रमाणके अनुसार ईंटे बनवायीं, और उसमें अग्निकी स्थापना की ॥२८॥ प्रवीण ब्राह्मणोंने राजश्रेष्ठ दसरथके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नियुक्तास्तत्र पशवस्तत्तदुद्दिश्य दैवतम् । उरगाः पक्षिणश्चैव यथाशास्त्रं प्रचोदिताः ॥३०॥
शामित्रे तु हयस्तत्र तथा जलचराश्च ये । ऋषिभिः सर्वमेवैतन्नियुक्तं शास्त्रतस्तदा ॥३१॥
पशूनां त्रिशतं तत्र यूपेषु नियतं तदा । अश्वरत्नोत्तमं तत्र राज्ञो दशरथस्य ह ॥३२॥
कौसल्या तं हयं तत्र परिचर्य समन्ततः । कृपाणैर्विंशशासैनं त्रिभिः परमया मुदा ॥३३॥
पतत्रिणा तदा सार्धं सुस्थितेन च चेतसा । अवसद्रजनीमेकां कौसल्या धर्मकाम्यया ॥३४॥
होताऽध्वर्युस्तथोद्गाता हयेन समयोजयन् । महिष्या परिवृत्त्याथ वावातामपरां तथा ॥३५॥
पतत्रिणस्तस्य वपामुद्धृत्य नियतेन्द्रियः । ऋत्विक्परमसंपन्नः श्रपयामास शास्त्रतः ॥३६॥
धूमगन्धं वपायास्तु जिघ्रति स्म नराधिपः । यथाकालं यथान्यायं निर्णुदन्पापमात्मनः ॥३७॥
हयस्य यानि चाङ्गानि तानि सर्वाणि ब्राह्मणाः । अग्नौ प्रास्यन्ति विधिवत्समस्ताःषोडशर्त्विजः॥३८॥
प्लक्षशाखासु यज्ञानामन्येषां क्रियते हविः । अश्वमेधस्य यज्ञस्य वैतसो भाग इष्यते ॥३९॥
त्र्यहोऽश्वमेधः संख्यातः कल्पसूत्रेण ब्राह्मणैः । चतुष्टोममहस्तस्य प्रथमं परिकल्पितम् ॥४०॥
उक्थ्यं द्वितीयं संख्यातमतिरात्रं तथोत्तरम् । कारितास्तत्र बहवो विहिताः शास्त्रदर्शनात् ॥४१॥

यज्ञके लिए चयनके द्वारा प्राप्त अग्निकी स्थापना की, अग्निस्थापनकी जो वेदी बनी थी वह पंख फैलाये उस गरुड़के समान थी, जिसके पंख सुवर्णके हों, उस वेदीपर त्रिगुण (तीन ईंटे) रखी थीं और अठारह प्रस्तार थे ॥ २९ ॥ अधिष्ठाता देवताके स्थानपर उनके पशु रखे गये थे, साँप, पक्षी आदि, शास्त्रोंमें जिन पशु-पक्षियोंके रखनेकी आज्ञा है ॥३०॥ यज्ञमें वध करनेके लिए घोड़ा तथा अन्य जल-चर प्राणियोंको शास्त्रानुसार ऋषियोंने यूपोंमें बांधा ॥ ३१ ॥ उस यज्ञमें तीन सौ पशु यूपोंमें बांधे गये, राजा दसरथका वह श्रेष्ठ घोड़ा (जो भ्रमण करके लौटा है) भी बांधा गया ॥३२॥ महारानी कौशल्याने उस घोड़ेको पोंछकर प्रदक्षिणा करके प्रसन्नता पूर्वक तलवारकी तीन वारसे मारा॥३३॥ उस वध किये हुए घोड़ेके पास सावधान चित्त होकर धर्मकी कामनासे महारानी कौशल्याने एक रात निवास किया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर होता, उद्गाता तथा अध्वर्युने माहषी, परिवृत्ति और वावाता श्रेणिकी रानियोंका घोड़ेके अंगसे स्पर्श कराया, (महिषी उस रानीको कहते हैं जिसका राजाके साथ राज्याभिषेक किया गया हो, शूद्र जातिकी राजाकी स्त्री परिवृत्ति कही जाती है, और वैश्य जातिकी राजाकी स्त्री वावाता कही जाती है) ॥३५ ॥ जितेन्द्रिय ऋत्विक्ने उस घोड़ेकी चर्बी निकाली और श्रौत-प्रयोगमें निपुण उन ऋत्विक्ने उसे शास्त्रानुसार पकाया ॥३६॥ राजा दसरथने हवनके धूमकी गन्ध और हवन की हुई उस चर्बीकी गन्ध, समयपर विधानके अनुसार सूंघी, जिससे राजाके पाप दूर हुए ॥ ३७ ॥ घोड़ेके समस्त अंगोंको सोलह ऋत्विक् ब्राह्मणोंने अग्निमें हवन किया ॥ ३८ ॥ अन्य यज्ञोंकी हवि पकड़ीकी लकड़ीपर रखकर दीजाती है, पर अश्वमेध की हवि वेतकी लकड़ीपर रखकर दीजाती है ॥ ३९ ॥ कल्पसूत्र और ब्राह्मण वचनों के द्वारा अश्वमेध तीन दिनोंका बतलाया गया है। उसका पहले दिनका कृत्य अग्निष्टोम नामक यज्ञ किया गया ॥ ४० ॥ दूसरे दिनका कृत्य उक्थ्य (ज्योतिष्टोमका अंग) और तीसरे दिनका कृत्य अतिरात्र नामका कृत्य ब्राह्मणोंने कराये। अश्वमेध यज्ञके समाप्त होनेपर ब्राह्मणोंने और भी अनेक यज्ञ शास्त्रा-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्योतिष्टोमायुषी चैवमातिरात्रौ च निर्मितौ । अभिजिद्विश्वजिच्चैवमाप्तोर्यामौ महाक्रतुः ॥४२॥
प्राचीं होत्रे ददौ राजा दिशं स्वकुलवर्धनः । अध्वर्यवे प्रतीचीं तु ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम् ॥४३॥
उद्गात्रे तु तथोदीचीं दक्षिणैषा विनिर्मिता । अश्वमेधे महायज्ञे स्वयंभूविहिते पुरा ॥४४॥
क्रतुं समाप्य तु तदा न्यायतः पुरुषर्षभः । ऋत्विग्भ्यो हि ददौ राजा धरां तां कुलवर्धनः॥४५॥
एवं दत्त्वा प्रहृष्टोऽभूच्छ्रीमानिक्ष्वाकुनन्दनः । ऋत्विजस्त्वब्रुवन्सर्वे राजानं गतकिल्बिषम् ॥४६॥
भवानेव महीं कृत्स्नामेको रक्षितुमर्हति । न भूम्या कार्यमस्माकं न हि शक्ताः स्म पालने॥४७॥
रताः स्वाध्यायकरणे वयं नित्यं हि भूमिप । निष्क्रयं किंचिदेवेह प्रयच्छतु भवानिति ॥४८॥
मणिरत्नं सुवर्णं वा गावो यद्वा समुद्यतम् । तत्प्रयच्छ नृपश्रेष्ठ धरण्या न प्रयोजनम् ॥४९॥
एवमुक्तो नरपतिर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । गवां शतसहस्राणि दश तेभ्यो ददौ नृपः ॥५०॥
दशकोटिं सुवर्णस्य रजतस्य चतुर्गुणम् । ऋत्विजस्तु ततः सर्वे प्रददुः सहिता वसु ॥५१॥
ऋष्यशृङ्गाय मुनये वसिष्ठाय च धीमते । ततस्ते न्यायतःकृत्वा प्रविभागं द्विजोत्तमाः ॥५२॥
सुप्रीतमनसः सर्वे प्रत्यूचुर्मुदिता भृशम् । ततः प्रसर्पकेभ्यस्तु हिरण्यं सुसमाहितः ॥५३॥
जाम्बूनदं कोटिसंख्यं ब्राह्मणेभ्यो ददौ तदा । दरिद्राय द्विजायाथ हस्ताभरणमुत्तमम् ॥५४॥

नुसार कराये ॥ ४१ ॥ ज्योतिष्टोम अग्निष्टोम और अतिरात्र नामक यज्ञ कराये, अभिजित् और विश्वजित् नामक यज्ञ भी कराये, ये सातवें और आठवें थे ॥ ४२ ॥

अपने कुलकी वृद्धि चाहनेवाले राजाने पूर्व दिशा होताको दक्षिणामें दी, अध्वर्युको पश्चिम दिशा और ब्रह्माको दक्षिण दिशा दी (अपने राज्यके उन दिशाओंका भाग दिया) ॥ ४३ ॥ उद्गाताको उत्तर दिशा दक्षिणामें राजाने दी, ब्रह्माके द्वारा प्रकाशित इस अश्वमेध यज्ञमें राजाने ये दक्षिणाएँ दीं ॥४४॥ पुरुष-श्रेष्ठ राजा दसरथने शास्त्रानुसार यज्ञ समाप्त करके कुलवृद्धिकी कामना रखनेवाले राजाने ऋत्विक् आदि यज्ञकर्ताओंको दक्षिणामें पृथिवी दी ॥४५॥ इस प्रकार दक्षिणा देकर इक्ष्वाकुनन्दन राजा दसरथ बहुत प्रसन्न हुए । यज्ञ-कर्तागण पापरहित राजासे बोले ॥ ४६ ॥ इस समस्त पृथिवीकी रक्षा केवल आपही कर सकते हैं, पृथिवीकी हमलोगोंको आवश्यकता नहीं है, हमलोग उसका पालन नहीं कर सकते ॥ ४७ ॥ महाराज हमलोग सदा पढ़ने-पढ़ानेमें लगे रहते हैं, इसलिए आप दक्षिणाके बदले कोई ऐसी वस्तु दें जिसके लिए हमलोगोंको कुछ प्रयत्न करना न पड़े ॥४८॥ महाराज ! मणि, रत्न, सुवर्ण, गौ तथा और जो कुछ वर्तमान हो वह आप हमलोगोंको दक्षिणामें दें, पृथिवीकी जरूरत नहीं है ॥४९॥ वेदज्ञ ब्राह्मणोंके ऐसा कहनेपर राजाने दस लाख गौएँ ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दीं ॥५०॥ दस करोड़ सोना (सोनेका सिक्का) और चालीस करोड़ चांदीके सिक्के ब्राह्मणोंको राजाने दिये । सब ऋत्विजोंने मिलकर वह समस्त धन ॥ ५१ ॥ बुद्धिमान वसिष्ठ और ऋष्यशृङ्गके सामने रख दिये, उन लोगोंने भी न्यायपूर्वक उस धनका सब ब्राह्मणोंमें विभागकर दिया ॥ ५२ ॥ दक्षिणा पानेपर ब्राह्मणोंने कहा कि हमलोग प्रसन्न हैं । जो ब्राह्मण केवल यज्ञ देखने आये थे उनको भी सावधान होकर राजाने ॥ ५३ ॥ एक करोड़ सोनेके सिक्के दिये और एक दरिद्र ब्राह्मण जो हाथका उत्तम गहना मांग रहा था राजाने उसे वही दिया ॥ ५४ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कस्मैचिद्याचमानाय ददौ राघवनन्दनः । ततः प्रीतेषु विधिवद्द्विजेषु द्विजवत्सलः ॥५५॥
प्रणाममकरोत्तेषां हर्षव्याकुलितेन्द्रियः । तस्याशिषोऽथ विविधाब्राह्मणैः समुदाहृताः॥५६॥
उदारस्य नृवीरस्य धरण्यां पतितस्य च । ततः प्रीतमना राजा प्राप्य यज्ञमनुत्तमम् ॥५७॥
पापापहं स्वर्ग्यनं दुस्तरं पार्थिवर्षभैः । ततोऽब्रवीद्दृष्यशृङ्गं राजा दशरथस्तदा ॥५८॥
कुलस्य वर्धनं तत्तु कर्तुमर्हसि सुव्रत । तथेति च स राजानमुवाच द्विजसत्तमः ॥
भविष्यन्ति सुता राजंश्चत्वारस्ते कुलोद्वहाः ॥ ५९ ॥
स तस्य वाक्यं मधुरं निशम्य प्रणम्य तस्मै प्रयतो नृपेन्द्रः ।
जगाम हर्षं परमं महात्मा तमृष्यशृङ्गं पुनरप्युवाच ॥ ६० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः १५

मेधावी तु ततो ध्यात्वा स किंचिदिदमुत्तरम् । लब्धसंज्ञस्ततस्तं तु वेदज्ञो नृपमब्रवीत् ॥ १ ॥
इष्टिं तेऽहं करिष्यामि पुत्रीयां पुत्रकारणात् । अथर्वशिरसि प्रोक्तैर्मन्त्रैः सिद्धां विधानतः॥ २ ॥
ततः प्राक्रामदिष्टिं तां पुत्रीयां पुत्रकारणात् । जुहावाग्नौ च तेजस्वी मन्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ ३ ॥

इसप्रकार ब्राह्मण-भक्त राजाने ब्राह्मणोंको प्रसन्न किया ॥ ५५ ॥ हर्षसे राजाकी आंखोंमें जल भर आया था, उन्होंने ब्राह्मणोंको प्रणाम किये, ब्राह्मणोंने उनको अनेक प्रकारके आशीर्वाद दिये ॥ ५६ ॥ उदार वीर राजाने ब्राह्मणोंको पृथिवीमें पड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया ।

तदनन्तर पाप दूर करनेवाले, स्वर्ग लेजानेवाले और दूसरे राजाओंके द्वारा न करने योग्य उस श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञको समाप्त कर राजा दसरथने ऋष्यशृङ्गसे कहा ॥ ५८ ॥ महाराज कुल बढ़ानेवाला कर्म (पुत्रेष्टि यज्ञ) आप करें, उन ब्राह्मणप्रवरने राजाकी बात स्वीकार की और कहा—राजन् आपके चार पुत्र होंगे, जिनसे आपका कुल प्रसिद्ध होगा ॥ ५९ ॥ ब्रह्मचारी राजाने ऋष्यशृङ्गके वे मधुर वचन सुने, उनको प्रणाम किया और वे राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए । ऋष्यशृङ्ग राजासे पुनः बोले ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका चौदहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १४ ॥

बुद्धिमान् और वेदज्ञ (ऋष्यशृङ्गने) ध्यान (समाधि) लगाकर राजा दसरथके प्रश्नका उत्तर सोचा, पुनः ध्यान टूटनेपर (जब उन्हें बाहरी विषयोंका ज्ञान हुआ तब) वे राजासे बोले ॥१॥ राजन् पुत्र उत्पन्न होनेके लिए मैं पुत्रेष्टि यज्ञ करूंगा, अथर्ववेदमें जो मंत्र कहे गये हैं उन्हींके द्वारा मैं यज्ञ करूंगा । विधान पूर्वक उस यज्ञके करनेसे अवश्यही सिद्धि होती है, अवश्यही फल होता है ॥२॥ तदनन्तर उस पुत्रीय यज्ञका (जिससे पुत्र उत्पन्न होता हो) पुत्र उत्पन्न होनेके लिए करना प्रारम्भ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः । भावप्रतिग्रहार्थं वै समवेता यथाविधि ॥ ४ ॥
ताः समेत्य यथान्यायं तस्मिन्सदसि देवताः । अब्रुवँल्लोककर्तारं ब्रह्माणं वचनं ततः ॥ ५ ॥
भगवंस्त्वत्प्रसादेन रावणो नाम राक्षसः । सर्वान्नो बाधते वीर्याच्छासितुं तं न शक्नुमः ॥ ६ ॥
त्वया तस्मै वरो दत्तः प्रीतेन भगवंस्तदा । मानयन्तश्च तं नित्यं सर्वं तस्य क्षमामहे ॥ ७ ॥
उद्वेजयति लोकांस्त्रीनुच्छ्रितान्द्वेष्टि दुर्मतिः । शक्रं त्रिदशराजानं प्रधर्षयितुमिच्छति ॥ ८ ॥
ऋषीन्यक्षान्सगन्धर्वान्ब्राह्मणानसुरांस्तदा । अतिक्रामति दुर्धर्षो वरदानेन मोहितः ॥ ९ ॥
नैनं सूर्यः प्रतपति पार्श्वे वाति न मारुतः । चलोर्मिमाली तं दृष्ट्वा समुद्रोऽपि न कम्पते ॥१०॥
तन्महन्नो भयं तस्माद्राक्षसाद्घोरदर्शनात् । वधार्थं तस्य भगवन्नुपायं कर्तुमर्हसि ॥११॥
एवमुक्तः सुरैः सर्वैश्चिन्तयित्वा ततोऽब्रवीत् । हन्तायं विदितस्तस्य वधोपायो दुरात्मनः ॥१२॥
तेन गन्धर्वयक्षाणां देवतानां च रक्षसाम् । अवध्योऽस्मीति वागुक्ता तथेत्युक्तं च तन्मया॥१३॥
नाकीर्तयदवज्ञानात्तद्रक्षो मानुषांस्तदा । तस्मात्स मानुषाद्वध्यो मृत्युर्नान्योऽस्य विद्यते॥१४॥
एतच्छ्रुत्वा प्रियं वाक्यं ब्रह्मणा समुदाहृतम् । देवा महर्षयः सर्वे प्रहृष्टास्तेऽभवंस्तदा ॥१५॥

किया। तेजस्वी ऋष्यशृङ्गने वेदोक्त विधानके अनुसार अग्निमें हवन किया॥३॥ गन्धर्व, देवता, सिद्ध (एक देवयोनि) और ऋषि अपने-अपने भाग लेनेके लिए मिलकर सब उस यज्ञमें आये ॥ ४ ॥ वे सब देवगण विधिपूर्वक उस सभामें आये और शिष्टाचारके अनुसार लोक-सृष्टि-कर्ता ब्रह्माके पास जाकर बोले ॥ ५ ॥

महाराज, आपके वरके प्रभावसे रावण नामका राक्षस हम सब लोगोंको पीड़ा देता है, हमलोग स्वयं या और किसी उपायसे उसका शासन नहीं कर सकते ॥ ६ ॥ महाराज, प्रसन्न होकर आपने उसे वर दिया है, आपके वरकी प्रतिष्ठा रखनेके लिए हमलोग उसके सब अपराधोंको क्षमा करते हैं ॥ ७ ॥ तीनों लोकवासियोंको वह दुःख देता है, वह दुर्बुद्धि जो बड़े हैं उनसे द्वेष करता है और देवराज इन्द्रको भी परास्त करना चाहता है॥८॥ आपके वरदानसे वह उद्दण्ड होगया है, वह ऋषि यक्ष, गन्धर्व, ब्राह्मण और असुरोंको भी पीड़ा देता है ॥ ९ ॥ सूर्य भी उसके सामने नहीं तपता, उसके पास हवा जोरसे नहीं बहती, रावणको देखकर समुद्र भी नहीं काँपता, जिसमें सदा लहरियां उठा करती हैं ॥१०॥ उस घोरदर्शन (जिसको देखनेसे भय मालूम हो) राक्षससे हमलोगोंको बड़ाही भय है, भगवन्! उसके वधके लिए आप कोई उपाय कीजिए ॥ ११ ॥ सब देवताओंके ऐसा कहनेपर (वर देनेके समयकी बात) सोच-विचार कर ब्रह्माने कहा-उस दुरात्मा राक्षसको मारनेका उपाय पहलेसेही निश्चित है ॥ १२ ॥ उस समय वर लेनेके समय उस राक्षसने कहा था कि गन्धर्व, यक्ष, देवता और राक्षसोंके द्वारा मैं अवध्य होऊं, ये मुझे मार न सकें, मैंने भी उसकी बात स्वीकार करली थी ॥१३॥ उसने मनुष्यसे अवध्य होनेका वर नहीं माँगा था इसलिए कि वह मनुष्योंको छोटा समझता था, इस कारण वह मनुष्यके ही द्वारा मारा जायगा, उसकी मृत्युका और दूसरा उपाय नहीं है ॥ १४ ॥

ब्रह्माकी कही इस प्रिय बातको सुनकर देवता और ऋषि उस समय बड़ेही प्रसन्न हुए ॥ १५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः । शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः ॥१६॥
वैनतेयं समारुह्य भास्करस्तोयदं यथा । तप्तहाटककेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः ॥१७॥
ब्रह्मणा च समागत्य तत्र तस्थौ समाहितः । तमब्रुवन्सुराः सर्वे समभिष्टूय संनताः ॥१८॥
त्वां नियोक्ष्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया। राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो ॥१९॥
धर्मज्ञस्य वदान्यस्य महर्षिसमतेजसः । अस्य भार्यासु तिसृषु ह्रीश्रीकीर्त्युपमासु च ॥२०॥
विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वात्मानं चतुर्विधम् । तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम्॥२१॥
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम् । स हि देवान्सगन्धर्वान्सिद्धांश्च ऋषिसत्तमान्॥२२॥
राक्षसो रावणो मूर्खो वीर्योद्रेकेण बाधते । ऋषयश्च ततस्तेन गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥२३॥
क्रीडन्तो नन्दनवने रौद्रेण विनिपातिताः । वधार्थं वयमायातास्तस्य वै मुनिभिः सह ॥२४॥
सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गताः । त्वं गतिः परमा देव सर्वेषां नः परन्तप ॥२५॥
वधाय देवशत्रूणां नृणां लोके मनः कुरु । एवं स्तुतस्तु देवेशो विष्णुस्त्रिदशपुंगवः ॥२६॥
पितामहपुरोगांस्तान्सर्वलोकनमस्कृतः । अब्रवीत्रिदशान्सर्वान्समेतान्धर्मसंहितान् ॥२७॥
भयं त्यजत भद्रं वो हितार्थं युधि रावणम् । सपुत्रपौत्रं सामात्यं समन्त्रिज्ञातिबान्धवम् ॥२८॥

इसी समय महातेजस्वी विष्णु वहां आये, उनके हाथोंमें शंख, चक्र और गदा थी, पीत वस्त्र वे पहने थे ॥ १६ ॥ जिस तरह मेघपर चढ़कर सूर्य आते हैं, उसी तरह गरुड़पर चढ़कर विष्णु आये, चमकीले सोनेका उनका केयूर (हाथका एक गहना) था, सभी देवताओंने उन्हें प्रणाम किया ॥१७॥ विष्णु आकर ब्रह्माके साथ मिले अर्थात् राक्षसको मारनेका उपाय उन्होंने सोचा और वे वहां सावधान होकर बैठ गये । नम्रतापूर्वक सब देवताओंने उनकी स्तुति की और वे बोले ॥ १८ ॥ विष्णो, लोक-कल्याणके लिए हमलोग यह भार आपपर देते हैं। विभो, अयोध्याके राजा महाराज दसरथकी,॥१९॥ जो धर्मज्ञ हैं, दाता हैं तथा महर्षिके समान तेजस्वी हैं उनकी, तीनों रानियोंके जो श्री, ह्री और कीर्तिके समान है ॥२०॥ विष्णो, आप अपना चार भाग करके उनके पुत्र बनें। वहां मनुष्य बनकर आप उस बढ़े हुए समस्त संसारके शत्रु ॥ २१ ॥ रावणको युद्धमें अवश्य मारें, क्यों कि वह देवताओंके द्वारा अवध्य है । वह देवता, गन्धर्व, सिद्ध तथा ऋषियोंको, ॥२२॥ मूर्ख राक्षस रावण बलकी अधिकताके कारण, पीड़ा देता है । ऋषि, गन्धर्व तथा अप्सराओंको ॥२३॥ नन्दनवनमें क्रीड़ा करते समय उस क्रूर राक्षसने मारा है । मुनियोंके साथ मिलकर हमलोग उसके वधके लिए आये हैं, अर्थात् वधका उपाय सोचनेके लिए एकत्र हुए हैं ॥२४॥ सिद्ध, गन्धर्व आदि सभी आपकी शरण आये हैं, क्योंकि, हे शत्रुनाशन भगवान्, आपही हम सब लोगों रक्षक हैं ॥२५॥ देवशत्रुओंके नाश करनेके लिए आप मनुष्योंके लोकमें आवें, आप मनुष्य-शरीर धारण करें। देवताओने देवश्रेष्ठ विष्णुकी इस प्रकार स्तुति की ॥२६॥ सबके द्वारा पूजित विष्णु, ब्रह्मा आदि देवताओंसे-जो धर्मपूर्वक उपस्थित हुए थे-बोले ॥२७॥ आपलोग भय छोड़दें, आपका कल्याण होगा, आपके कल्याणके लिए, दुःख दूर करनेके लिए पुत्र, पौत्र, अमात्य, मन्त्री, भाई, बन्धुके साथ ॥२८॥ उस अजेय और देवता तथा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हत्वा क्रूरं दुराधर्षं देवर्षीणां भयावहम् । दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥२९॥
वत्स्यामि मानुषे लोके पालयन्पृथिवीमिमाम् । एवं दत्त्वा वरं देवो देवानां विष्णुरात्मवान् ॥३०॥
मानुष्ये चिन्तयामास जन्मभूमिमथात्मनः । ततः पद्मपलाशाक्षः कृत्वात्मानं चतुर्विधम् ॥३१॥
पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम् । ततो देवर्षिगन्धर्वाः सरुद्राः साप्सरोगणाः ॥
स्तुतिभिर्दिव्यरूपाभिस्तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥ ३२ ॥
तमुद्धतं रावणमुग्रतेजसं प्रवृद्धदर्पं त्रिदशेश्वराद्विषम् ।
विरावणं साधुतपस्विकण्टकं तपस्विनामुद्धरतं भयावहम् ॥ ३३ ॥
तमेव हत्वा सबलं सबान्धवं विरावणं रावणमुग्रपौरुषम् ।
स्वर्लोकमागच्छ गतज्वरश्चिरं सुरेन्द्रगुप्तं गतदोषकल्मषम् ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥१५॥

षोडशः सर्गः १६

ततो नारायणो विष्णुर्नियुक्तः सुरसत्तमैः । जानन्नपि सुरानेवं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
उपायः को वधे तस्य राक्षसाधिपतेः सुराः । यमहं तं समास्थाय निहन्यामृषिकण्टकम् ॥ २ ॥

ऋषियोंको भय देनेवाले क्रूर राक्षसका मैं वध करूंगा । दस हजार और दस सौ वर्षों तक ॥ २९ ॥ इस पृथिवीका पालन करता हुआ मैं इस पृथिवीमें निवास करूंगा । विष्णुने देवताओंको ऐसा वर दिया, क्योंकि वे आत्मवान हैं, स्वाधीन हैं, वे अपनी इच्छाके अनुसार जन्म धारणकर सकते हैं, उनके जन्म धारण करनेके लिए कर्मकी आवश्यकता नहीं है ॥ ३० ॥ विष्णुने मनुष्य-लोकमें अपने जन्मग्रहण करनेके योग्य स्थान ढूंढा, उन्होंने निश्चय किया कि अयोध्यामें जन्मधारण करूंगा । ऐसा निश्चय करके भगवान् विष्णुने अपना चार भाग (चार रूप) किया ॥ ३१ ॥ राजा दसरथको अपना पिता बनाना निश्चित किया अर्थात् दसरथके यहां जन्म-ग्रहण करनेका विचार पक्का किया, पुनः देवता, ऋषि, गन्धर्व, रुद्र तथा अप्सराओंने भगवान्के शुद्ध रूपके वर्णन करनेवाली स्तुतियोंसे उनको स्तुति की ॥ ३२ ॥ उस प्रसिद्ध पराक्रमी, अहङ्कारी और इन्द्रके शत्रु रावणको मारिए, वह सबको तंग करता है, वह तपस्वियोंका शत्रु है और उनके लिए भयदायी है ॥ ३३ ॥ उस परम पराक्रमी और सबको पीड़ा देनेवाले रावणका बान्धवोंके साथ वध करके दोष-पापसे रहित इन्द्रके द्वारा रक्षित स्वर्गलोकमें आप आनन्दपूर्वक आवें, शत्रुओंका नाश करके आप अपने लोकमें जांय ॥ ३४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १५ ॥

देवताओंकी ऐसी प्रार्थना सुनकर नारायण, रावणके वधका उपाय जानते हुए भी इस प्रकार मधुर वचन बोले ॥१॥ हे देवगण, उस राक्षसके वधका उपाय क्या है, जिस उपायके अवलम्बन-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमुक्ताः सुराः सर्वे प्रत्यूचुर्विष्णुमव्ययम् । मानुषं रूपमास्थाय रावणं जहि संयुगे ॥ ३ ॥
स हि तेपे तपस्तीव्रं दीर्घकालमरिन्दमः । येन तुष्टोऽभवद्ब्रह्मा लोककृल्लोकपूर्वजः ॥ ४ ॥
संतुष्टः प्रददौ तस्मै राक्षसाय वरं प्रभुः । नानाविधेभ्यो भूतेभ्यो भयं नान्यत्र मानुषात्॥ ५ ॥
अवज्ञाताः पुरा तेन वरदाने हि मानवाः । एवं पितामहात्तस्माद्वरदानेन गर्वितः ॥ ६ ॥
उत्सादयति लोकांस्त्रीन्स्त्रियश्चाप्युपकर्षति । तस्मात्तस्य वधो दृष्टो मानुषेभ्यः परंतप ॥ ७ ॥
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा सुराणां विष्णुरात्मवान् । पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम् ॥ ८ ॥
स चाप्यपुत्रो नृपतिस्तस्मिन्काले महाद्युतिः । अयजत्पुत्रियामिष्टिं पुत्रेप्सुररिसूदनः ॥ ९ ॥
स कृत्वा निश्चयं विष्णुरामन्त्र्य च पितामहम् । अन्तर्धानं गतो देवैः पूज्यमानो महर्षिभिः ॥१०॥
ततो वै यजमानस्य पावकादतुलप्रभम् । प्रादुर्भूतं महद्भूतं महावीर्यं महाबलम् ॥११॥
कृष्णं रक्ताम्बरधरं रक्तास्यं दुन्दुभिस्वनम् । स्निग्धहर्यक्षतनुजश्मश्रुप्रवरमूर्धजम् ॥१२॥
शुभलक्षणसंपन्नं दिव्याभरणभूषितम् । शैलशृङ्गसमुत्सेधं दृप्तशार्दूलविक्रमम् ॥१३॥

से मैं उस ऋषियोंके शत्रु रावणको मार सकूंगा ॥ २ ॥ विष्णुकी यह बात सुनकर सभी देवता अविनाशी विष्णुसे इस प्रकार बोले, आप मनुष्य-रूप धरकर युद्धमें रावणको मारें ॥३॥ उस शत्रुओंका दमन करनेवाले राक्षसने बहुत दिनों तक बड़ी कठोर तपस्या की है, उसकी तपस्यासे संसारकी सृष्टि करनेवाले लोकपितामह-ब्रह्मा उसपर प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ प्रभु ब्रह्माने प्रसन्न होकर उस राक्षसको वरदान दिया कि मनुष्यको छोड़कर और किसी प्राणीसे तुमको भय न होगा, तुम मारे न जाओगे ॥ ५ ॥ रावणने जान-बूझकर मनुष्यसे रक्षा पानेका वर नहीं मांगा था, क्योंकि उसका विश्वास था कि ये तो हमलोगोंके भोजन हैं, इनसे क्या बुराई हो सकती है। इस प्रकार ब्रह्मासे वर पाकर वह बहुत अहङ्कारी होगया है, ॥ ६ ॥ और तीनों लोकोंको पीड़ा देता है, स्त्रियोंका भी हरण करता है, अतएव हे शत्रुविनाशन, मनुष्यके ही द्वारा उसका वध होसकेगा ॥ ७ ॥ देवताओंकी ऐसी बात सुनकर आत्मवान्ने (इच्छानुसार जन्म-धारण करनेकी शक्ति रखनेवाले) दसरथको ही अपना पिता बनाना निश्चित किया, अर्थात् उन्हींके यहां जन्म लेना निश्चित किया ॥ ८ ॥

महाप्रतापी राजा दसरथ भी उस समय तक अपुत्र थे, उस समय पुत्र-प्राप्तिकी इच्छासे उन्होंने भी पुत्रेष्टि नामक यज्ञ किया ॥९॥ विष्णुने मनुष्य जन्म-धारण करना निश्चित किया, तदनन्तर ब्रह्मासे बात-चीत उन्होंनेकी, ऋष्यशृङ्ग आदि महर्षियों तथा देवताओंने उनकी पूजा की, पुनः विष्णु वहांसे अन्तर्धान होगये ॥ १० ॥

तदनन्तर यजमान राजा दसरथकी यज्ञाग्निसे बड़ा तेजस्वी, महाबली, और महापराक्रमी (अलौकिक कार्य भी पराक्रम द्वारा करदेनेवाला) विष्णु प्रकट हुए ॥ ११ ॥ वे काले थे, लाल वस्त्र पहने हुए थे, मुँह लाल था, नक्कारेकी आवाजके समान आवाज थी, सिंहके बालके समान जिनकी दाढ़ी और मस्तकके बाल थे ॥ १२ ॥ उस पुरुषमें सभी उत्तम लक्षण विद्यमान थे, दिव्य आभरण वे धारण किये हुए थे, पर्वतके शिखरके समान ऊंचे थे। दृप्त सिंहके समान जिनकी गति थी, सूर्यके समान जिनका तेज चारो ओर फैल रहा था, पासवालोंके लिए जिनका ॥१३॥ तेज जलती अग्नि-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दिवाकरसमाकारं दीप्तानलशिखोपमम् । तप्तजाम्बूनदमयीं राजतान्तपरिच्छदाम् ॥१४॥
दिव्यपायससंपूर्णां पात्रीं पत्नीमिव प्रियाम् । प्रगृह्य विपुलां दोर्भ्यां स्वयं मायामयीमिव ॥१५॥
समवेक्ष्याब्रवीद्वाक्यमिदं दशरथं नृपम् । प्राजापत्यं नरं विद्धि मामिहाभ्यागतं नृप ॥१६॥
ततः परं तदा राजा प्रत्युवाच कृताञ्जलिः । भगवन्स्वागतं तेऽस्तु किमहं करवाणि ते ॥१७॥
अथो पुनरिदं वाक्यं प्राजापत्यो नरोऽब्रवीत् । राजन्नर्चयता देवानद्य प्राप्तमिदं त्वया ॥१८॥
इदं तु नृपशार्दूल पायसं देवनिर्मितम् । प्रजाकरं गृहाण त्वं धन्यमारोग्यवर्धनम् ॥१९॥
भार्याणामनुरूपाणामश्नीतेति प्रयच्छ वै । तासु त्वं लप्स्यसे पुत्रान्यदर्थं यजसे नृप ॥२०॥
तथेति नृपतिः प्रीतः शिरसा प्रतिगृह्य ताम् । पात्रीं देवान्नसंपूर्णां देवदत्तां हिरण्मयीम् ॥२१॥
अभिवाद्य च तद्भूतमद्भुतं प्रियदर्शनम् । मुदा परमया युक्तश्चकाराभिप्रदक्षिणम् ॥२२॥
ततो दशरथः प्राप्य पायसं देवनिर्मितम् । बभूव परमप्रीतः प्राप्य वित्तमिवाधनः ॥२३॥
ततस्तदद्भुतप्रख्यं भूतं परमभास्वरम् । संवर्तयित्वा तत्कर्म तत्रैवान्तरधीयत ॥२४॥
हर्षरश्मिभिरुद्द्योतं तस्यान्तःपुरमाबभौ । शारदस्याभिरामस्य चन्द्रस्येव नभोऽशुभिः ॥२५॥
सोऽन्तःपुरं प्रविश्यैव कौसल्यामिदमब्रवीत् । पायसं प्रतिगृह्णीष्व पुत्रीयं त्विदमात्मनः ॥२६॥

शिखाके समान असह्य था—वे तेजस्वी पुरुष—एक उत्तम सुवर्णके पात्रको जो चांदीके पात्रसे ढँका हुआ था ॥ १४ ॥ जो दिव्य पायस (तस्मै) से भरा था, उस बड़े पात्रको दोनों हाथोंसे पकड़ कर प्रकट हुए। मानो कोई मायामयी (अद्भुत) प्रिय स्त्रीको दोनों हाथोंसे पकड़कर प्रकट हुआ हो ॥ १५ ॥ दसरथको देखकर उन्होंने उनसे यह कहा, राजन् मैं प्राजापत्य ब्रह्माके यहांसे आया हुआ हूं, मैं आपके यहां आया हूँ ऐसा आप समझें ॥ १६ ॥ उनकी बात सुनकर राजा दसरथने हाथ जोड़कर उत्तर दिया, भगवन्, मैं आपको यहां स्वागत करता हूँ, आपके लिए मैं क्या करूं ? ॥ १७ ॥ राजाके उत्तरमें उस प्राजापत्य मनुष्यने कहा, राजन् देवताओंके लिए आपने यज्ञ किया है और आपको यह मिला है ॥ १८ ॥ महाराज, यह पायस है और देवताओंका बनाया है, इसे आप लें, इससे आपको पुत्र होगा और आरोग्य-वृद्धिके लिए यह उत्तम वस्तु है ॥१९॥ आप अपनी योग्य स्त्रियों महारानियोंको यह खानेके लिए दें, उनसे आपको पुत्र होगा. राजन्, जिस पुत्रप्राप्तिके लिए आप यज्ञ कर रहे हैं ॥ २० ॥ राजा दसरथने प्रसन्न होकर उस देवताके यहांसे आए, देवान्नसे पूर्ण, सुवर्ण पात्र लेकर प्रणाम किया ॥२१॥ वह प्राणी अद्भुत था, पर देखनेमें भयानक न था किन्तु सुन्दर था, उसकी राजा दसरथने बड़ी प्रसन्नतासे प्रदक्षिणा की ॥ २२ ॥

देवताओंका बनाया पायस पाकर राजा दसरथ बहुत प्रसन्न हुए, वे वैसेही प्रसन्न हुए जिस प्रकार दरिद्र धन पाकर प्रसन्न होता है॥२३॥ वह अद्भुत शरीर-धारी परम तेजस्वी प्राणी यह सब काम समाप्तकर वहीं अन्तर्धान होगया॥ २४ ॥ राजा दसरथकी महारानियाँ बहुतही शोभित हुईं, जिस प्रकार शरद् ऋतुके रमणीय चन्द्रमाकी किरणोंसे आकाशकी शोभा होती है ॥ २५ ॥ राजा रानियोंके महलमें गये और उन्होंने कौसल्यासे कहा—यह पायस लो, इससे तुम्हे पुत्र उत्पन्न होगा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कौसल्यायै नरपतिः पायसार्धं ददौ तदा । अर्धादर्धं ददौ चापि सुमित्रायै नराधिपः ॥२७॥
कैकेय्यै चावशिष्टार्धं ददौ पुत्रार्थकारणात् । प्रददौ चावशिष्टार्धं पायसस्यामृतोपमम् ॥२८॥
अनुचिन्त्य सुमित्रायै पुनरेव महामतिः । एवं तासां ददौ राजा भार्याणां पायसं पृथक् ॥२९॥
ताश्चैवं पायसं प्राप्य नरेन्द्रस्योत्तमस्त्रियः । संमानं मेनिरे सर्वाः प्रहर्षोदितचेतसः ॥३०॥

ततस्तु ताः प्राश्य तमुत्तमस्त्रियो महीपतेरुत्तमपायसं पृथक् ।
हुताशनादित्यसमानतेजसोऽचिरेण गर्भान्प्रतिपेदिरे तदा ॥ ३१ ॥
ततस्तु राजा प्रतिवीक्ष्य ताः स्त्रियः प्ररूढगर्भाः प्रतिलब्धमानसः ।
बभूव हृष्टस्त्रिदिवे यथा हरिः सुरेन्द्रसिद्धर्षिगणाभिपूजितः ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः १७

पुत्रत्वं तु गते विष्णौ राज्ञस्तस्य महात्मनः । उवाच देवताः सर्वाः स्वयंभूर्भगवानिदम् ॥ १ ॥
सत्यसंधस्य वीरस्य सर्वेषां नो हितैषिणः । विष्णोः सहायान्बलिनः सृजध्वं कामरूपिणः॥ २ ॥
मायाविदश्च शूरांश्च वायुवेगसमाञ्जवे । नयज्ञान्बुद्धिसंपन्नान्विष्णुतुल्यपराक्रमान् ॥ ३ ॥

॥ २६ ॥ उस पात्रमेंको आधा पायस राजाने कौसल्याको दिया और उस आधेका आधा सुमित्रा को ॥२७॥ बचा हुआ आधा भाग राजाने कैकयीको दिया। पुनः उस पायसके बचे हुए आधे भागको ॥ २८ ॥ सोचकर सुमित्राको महाबुद्धिमान राजाने दिया । इस प्रकार राजाने अपनी महारानियों में वह पायस बाँट दिया ॥२९॥ राजा दसरथकी महारानियाँ पायस पाकर बहुत प्रसन्न हुईं और उन्होंने समझा कि महाराजने पायस देनेमें पक्षपात नहीं किया ॥ ३० ॥ महाराजकी महारानियोंने अलग-अलग उस पायसको खाकर शीघ्र ही अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी गर्भ धारण किया ॥३१॥ राजाने अपनी महारानियोंको गर्भवती देखा और उन्होंने अपना मनोरथ पूर्ण हुआ समझा । वे वैसे ही प्रसन्न हुए जैसे इन्द्र, सिद्ध और ऋषियोंके द्वारा पूजित होनेपर भगवान विष्णु प्रसन्न होते हैं ॥ ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका सोलहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १६ ॥

महात्मा राजा दसरथके यहां, जब भगवान् विष्णुने पुत्र-रूपसे उत्पन्न होना स्वीकार किया, उस समय ब्रह्माने सब देवताओंसे ऐसा कहा ॥ १ ॥ सत्यप्रतिज्ञ, वीर और हमलोगोंके हितैषी विष्णुके सहायकों की (मर्त्यलोकमें) आपलोग सृष्टि करें, जो बलवान हों और अपनी इच्छाके अनुसार अपने रूपमें परिवर्तन कर सकते हों ॥२॥ जो माया (राक्षसोंके छल कपटको) जान सकें, वीर हों, वायुके समान वीर हों, नीति जाननेवाले हों बुद्धिमान् हों, और जो पराक्रममें विष्णुके समान हों, ॥ ३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

असंहार्यानुपायज्ञान्दिव्यसंहननान्वितान् । सर्वास्त्रगुणसंपन्नानमृतप्राशनानिव ॥ ४ ॥
अप्सरःसु च मुख्यासु गन्धर्वीणां तनूषु च । यक्षपन्नगकन्यासु ऋक्षविद्याधरीषु च ॥ ५ ॥
किन्नरीणां च गात्रेषु वानरीणां तनूषु च । सृजध्वं हरिरूपेण पुत्रांस्तुल्यपराक्रमान् ॥ ६ ॥
पूर्वमेव मया सृष्टो जाम्बवानृक्षपुंगवः । जृम्भमाणस्य सहसा मम वक्त्रादजायत ॥ ७ ॥
ते तथोक्ता भगवता तत्प्रतिश्रुत्य शासनम् । जनयामासुरेवं ते पुत्रान्वानररूपिणः ॥ ८ ॥
ऋषयश्च महात्मानः सिद्धविद्याधरोरगाः । चारणाश्च सुतान्वीरान्ससृजुर्वनचारिणः ॥ ९ ॥
वानरेन्द्रं महेन्द्राभमिन्द्रो वालिनमात्मजम् । सुग्रीवं जनयामास तपनस्तपतां वरः ॥१०॥
बृहस्पतिस्त्वजनयत्तारं नाम महाकपिम् । सर्ववानरमुख्यानां बुद्धिमन्तमनुत्तमम् ॥११॥
धनदस्य सुतः श्रीमान्वानरो गन्धमादनः । विश्वकर्मा त्वजनयन्नलं नाम महाकपिम् ॥१२॥
पावकस्य सुतः श्रीमान्नीलोऽग्निसदृशप्रभः । तेजसा यशसावीर्यादत्यरिच्यत वीर्यवान् ॥१३॥
रूपद्रविणसंपन्नावश्विनौ रूपसंमतौ । मैन्दं च द्विविदं चैव जनयामासतुः स्वयम् ॥१४॥
वरुणो जनयामास सुषेणं नाम वानरम् । शरभं जनयामास पर्जन्यस्तु महाबलः ॥१५॥
मारुतस्यौरसः श्रीमान्हनूमान्नाम वानरः । वज्रसंहननोपेतो वैनतेयसमो जवे ॥१६॥

जो शत्रुके द्वारा अपने पक्षसे हटाये न जासकें, अवसरके अनुसार उपाय करनेकी बुद्धि रखते हों, जिनके शरीरकी गठन अलौकिक हो, अस्त्र-विद्याका पूरा ज्ञान रखते हों, वे सहायक देवताके समान हों ॥ ४ ॥ प्रधान अप्सराओं, गन्धर्वकी स्त्रयों, यक्ष और नागकी कन्याओं, भालुकी स्त्रियों, विद्याधरियों, किन्नरियों और वानरियोंमें अपने पराक्रमके तुल्य पुत्र आपलोग उत्पन्न करें, पर उनका वानरका रूप होना चाहिए ॥५-६॥ मैंने (ब्रह्माने) पहले ही जाम्बवान्को उत्पन्न किया है, वह भालुओंका प्रधान है, मैं एक बार जँभाई ले रहा था कि सहसा मेरे मुंहसे वह उत्पन्न होगया ॥७॥

देवताओंने ब्रह्माकी बातें सुनीं और उसके अनुसार काम करनेका उन लोगोंने वचन दिया, तथा वानर-रूपधारी पुत्र उत्पन्न किये ॥ ८ ॥ ऋषि, महात्मा, सिद्ध, विद्याधर, नाग, चारण इन सबने वानर पुत्र उत्पन्न किये और जो सबके सब वीर थे, ॥ ९ ॥ महेन्द्र पर्वतके समान विशाल काय बालिको इन्द्रने उत्पन्न किया जो वानरोंका राजा हुआ। तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ सूर्यने सुग्रीवको उत्पन्न किया ॥१०॥ वृहस्पतिने तार नामक एक बहुत बड़े वानरको उत्पन्न किया, यह सब वानरों से अधिक बुद्धिमान् था, इससे बढ़कर बुद्धिमान् दूसरा वानर नहीं था ॥ ११ ॥ गन्धमादन नामक वानरको कुवेरने उत्पन्न किया। विश्वकर्माने नल नामक एक बहुत बड़े वानरको उत्पन्न किया ॥१२॥ अग्निका पुत्र नील हुआ जो अग्निके समानही तेजस्वी था। वह तेज, यश और पराक्रमके कारण एक विलक्षण ही मालुम होता था ॥१३॥ अपने रूपके लिए प्रसिद्ध रूपवान् और धनवान् अश्विनोंने मन्द और द्विविद नामक वानराँको स्वयं उत्पन्न किया ॥ १४ ॥ वरुणने सुषेण नामक वानरको उत्पन्न किया। महाबलवान् पर्जन्य (इस नामका मेघोंका एक देवता) ने शरभको उत्पन्न किया ॥ १५ ॥ हनुमान् नामक वानर वायुके द्वारा उत्पन्न हुए, जिनका शरीर वज्रके समान गठा

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
1776
CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्ववानरमुख्येषु बुद्धिमान्बलवानपि । ते सृष्टा बहुसाहस्रा दशग्रीववधोद्यताः ॥१७॥
अप्रमेयबला वीरा विक्रान्ताः कामरूपिणः । ते गजाचलसंकाशा वपुष्मन्तो महाबलाः ॥१८॥
ऋक्षवानरगोपुच्छाः क्षिप्रमेवाभिजज्ञिरे । यस्य देवस्य यद्रूपं वेषो यश्च पराक्रमः ॥१९॥
अजायत समं तेन तस्य तस्य पृथक्पृथक् । गोलाङ्गूलेषु चोत्पन्नाः किंचिदुन्नतविक्रमाः ॥२०॥
ऋक्षीषु च तथा जाता वानराः किन्नरीषु च । देवा महर्षिगन्धर्वास्तार्क्ष्ययक्षा यशस्विनः ॥२१॥
नागाः किंपुरुषाश्चैव सिद्धविद्याधरोरगाः । बहवो जनयामासुर्हृष्टास्तत्र सहस्रशः ॥२२॥
चारणाश्च सुतान्वीरान्ससृजुर्वनचारिणः । वानरान्सुमहाकायान्सर्वान्वै वनचारिणः ॥२३॥
अप्सरःसु च मुख्यासु तथा विद्याधरीषु च । नागकन्यासु च तदा गन्धर्वीणां तनूषु च ॥
कामरूपबलोपेता यथाकामविचारिणः ॥ २४ ॥
सिंहशार्दूलसदृशा दर्पेण च बलेन च । शिलाप्रहरणाः सर्वे सर्वे पर्वतयोधिनः ॥२५॥
नखदंष्ट्रायुधाः सर्वे सर्वे सर्वास्त्रकोविदाः । विचालयेयुः शैलेन्द्रान्भेदयेयुः स्थिरान्द्रुमान् ॥२६॥
क्षोभयेयुश्च वेगेन समुद्रं सरितां पतिम् । दारयेयुः क्षितिं पद्भ्यामाप्लवेयुर्महार्णवान् ॥२७॥
नभस्तलं विशेयुश्च गृह्णीयुरपि तोयदान् । गृह्णीयुरपि मातङ्गान्मत्तान्प्रव्रजतो वने ॥२८॥

हुआ था और वे गरुड़के समान वेगवान थे ॥ १६ ॥ ये सब श्रेष्ठ वानरोंमें बुद्धिमान् और बलवान् थे। ऐसे कई हजार वानर उत्पन्न हुए, ये सब रावणके वधके लिए उद्यत होंगे ॥ १७ ॥ इनके बलका अन्दाजा कोई नहीं कर सकेगा, ये सभी वीर अनेक प्रकारसे चलनेवाले, अपनी इच्छासे अनेक रूप धरनेवाले और हाथी तथा पर्वतके समान विशालकाय होंगे । १८॥ भालु और गोपुच्छ वानर (जिनकी पूंछ गौकी पूंछके समान थी) शीघ्रही उत्पन्न हुए। जिस देवताका जैसा वेष, जैसा रूप और जैसा पराक्रम था ॥ १९ ॥ उसीके अनुसार वे सब वानर उत्पन्न हुए । गोपुच्छ जातिके वानरोंमें भी बड़े पराक्रमी वानर उत्पन्न हुए ॥ २० ॥ भालुकी स्त्रियों तथा किन्नरियोंके गर्भसेभी वानर उत्पन्न हुए। देवता, महर्षि, गन्धर्व, गरुड, यथा ॥ २१ ॥ नाग, किंपुरुष, सिद्ध, विद्याधर, उरग (मालूम होता है कि इस नामसे प्रसिद्ध नाग जातिकी कोई शाखा हो) इन सबने प्रसन्नता पूर्वक जहां-तहां हजारों पुत्र उत्पन्न किये ॥ २२ ॥ चारणोंने वीर पुत्र उत्पन्न किये, जो वनचारी वानर थे, जिनका शरीर बड़ाही विशाल था ॥ २३ ॥ प्रधान अप्सराओं, विद्याधरियों, नागकन्याओं और गन्धर्वकी स्त्रियोंमें इच्छानुसार रूपधारी, बली और इच्छानुसार भ्रमण करनेवाले चारणोंने पुत्र उत्पन्न किये ॥ २४ ॥ ये सिंह और बाघके समान घमंडी तथा बलवान् थे, शिला (पत्थर) इनका अस्त्र होगा और पर्वतोंको अस्त्र बनाकर ये युद्ध करेंगे ॥ २५ ॥ नख और आयुध इन सबके अस्त्र होंगे, ये सब, सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको जाननेवाले होंगे । ये पर्वतोंको भी उखाड़ सकेंगे और स्थिर वृक्षोंको भी तोड़ सकेंगे ॥ २६ ॥ अपने वेगसे समुद्रको भी क्षुभित कर सकेंगे, पैरोंके आघातसे पृथिवीको फोड़ सकेंगे और बड़े-बड़े समुद्रोंको पार कर सकेंगे ॥ २७ ॥ आकाशमें जा सकेंगे, मेघोंको रोक सकेंगे, वनमें घूमते हुए मतवाले हाथियोंको भी पकड़ सकेंगे ॥ २८ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नर्दमानांश्च नादेन पातयेयुर्विहंगमान् । ईदृशानां प्रसूतानि हरीणां कामरूपिणाम् ॥२९॥
शतं शतसहस्राणि यूथपानां महात्मनाम् । ते प्रधानेषु यूथेषु हरीणां हरियूथपाः ॥३०॥
बभूवुर्यूथपश्रेष्ठान्वीरांश्चाजनयन्हरीन् । अन्ये ऋक्षवतः प्रस्थानुपतस्थुः सहस्रशः ॥३१॥
अन्ये नानाविधाञ्छैलान्काननानि च भेजिरे । सूर्यपुत्रं च सुग्रीवं शक्रपुत्रं च वालिनम् ॥३२॥
भ्रातरावुपतस्थुस्ते सर्वे च हरियूथपाः । नलं नीलं हनूमन्तमन्यांश्च हरियूथपान् ॥३३॥
ते तार्क्ष्यबलसंपन्नाः सर्वे युद्धविशारदाः । विचरन्तोऽदयन्सर्वान्सिंहव्याघ्रमहोरगान् ॥३४॥
महाबलो महाबाहुर्वाली विपुलविक्रमः । जुगोप भुजवीर्येण ऋक्षगोपुच्छवानरान् ॥३५॥
तैरियं पृथिवी शूरैः सपर्वतवनार्णवा । कीर्णा विविधसंस्थानैर्नानाव्यञ्जनलक्षणैः ॥३६॥
तैर्मेघपृन्दाचलकूटसंनिभैर्महाबलैर्वानरयूथपाधिपैः ।
बभूव भूर्भीमशरीररूपैः समावृता रामसहायहेतोः ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८

निर्वृत्ते तु क्रतौ तस्मिन्हयमेधे महात्मनः । प्रतिगृह्यामरा भागान्प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥ १ ॥

जब ये गर्जन करेंगे तो आकाशमें उड़ते हुए पक्षी भी नीचे गिर जायँगे । स्वेच्छारूपधारी ऐसे वानर उत्पन्न किये गये ॥ २९ ॥ जिनकी संख्या एक करोड़ थी । वे वानर प्रधान-प्रधान वानर यूथोंके अधिपति हुए ॥ ३० ॥ इन प्रधान यूथपतियोंने भी वीर वानर उत्पन्न किये । इन वानरोंमेंसे हजारो ऋक्षवान् पर्वतपर चले गये ॥ ३१ ॥ अन्य वानर भिन्न-भिन्न पर्वतों और वनोंमें जाकर रहने लगे । सूर्यपुत्र सुग्रीव और इन्द्रके पुत्र बालि ॥ ३२ ॥ इन दोनों भाइयोंकी सेवामें अनेक यूथपति वानर रह गये । नल, नील, हनुमान् तथा अन्य वानर सेनापतियोंकी सेवामें भी अनेक वानर रहे ॥ ३३ ॥ वे सब-के-सब गरुड़के समान बलवान् थे युद्धविद्यामें निपुण थे, इधर-उधर विचरण करनेके समय सिंह, व्याघ्र तथा बड़े-बड़े सांप, जो कुछ भी उन्हें मिल जाता, उसे मार डालते ॥ ३४ ॥ महाबाहु बालि बड़ा पराक्रमी था, वह अपने पराक्रमसे ऋक्ष और गोपुच्छ जातिके वानरोंकी रक्षा करता था ॥ ३५ ॥ शूर (युद्धमें उत्साह रखनेवाले), अनेक प्रकारकी सूरत शकलवाले, परस्पर पहिचानके लक्षणवाले उन वानरोंसे पर्वत वन और समुद्र सहित समस्त पृथिवी भर गयी ॥ ३६ ॥ मेघ-समूह तथा पर्वतशिखरके समान शरीर-वाले महाबलवान् वानर यूथपतियोंसे यह समस्त पृथिवी भर गयी । ये सब रामचन्द्रकी सहायता-के लिए अवतीर्ण हुए थे और इनका शरीर बड़ा ही भयानक था ॥ ३७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका सतरहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १७ ॥

——:**:——

महात्मा दसरथके उस अश्वमेध यज्ञके समाप्त होनेपर देवगण अपना-अपना यज्ञीय भाग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समाप्तदीक्षानियमः पत्नीगणसमन्वितः । प्रविवेश पुरीं राजा सभृत्यबलवाहनः ॥ २ ॥
यथार्हं पूजितास्तेन राज्ञा च पृथिवीश्वराः । मुदिताः प्रययुर्देशान्प्रणम्य मुनिपुंगवम् ॥ ३ ॥
श्रीमतां गच्छतां तेषां स्वगृहाणि पुरात्ततः । बलानि राज्ञां शुभ्राणि प्रहृष्टानि चकाशिरे ॥ ४ ॥
गतेषु पृथिवीशेषु राजा दशरथः पुनः । प्रविवेश पुरीं श्रीमान्पुरस्कृत्य द्विजोत्तमान् ॥ ५ ॥
शान्तया प्रययौ सार्धमृष्यशृङ्गः सुपूजितः । अनुगम्यमानो राज्ञा च सानुयात्रेण धीमता ॥ ६ ॥
एवं विसृज्य तान्सर्वान्राजा संपूर्णमानसः । उवास सुखितस्तत्र पुत्रोत्पत्तिं विचिन्तयन् ॥ ७ ॥
ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः । ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ ॥ ८ ॥
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु । ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह ॥ ९ ॥
प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम् । कौसल्याजनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम् ॥१०॥
विष्णोरर्धं महाभागं पुत्रमैक्ष्वाकुनन्दनम् । लोहिताक्षं महाबाहुं रक्तोष्ठं दुन्दुभिस्वनम् ॥११॥
कौसल्या शुशुभे तेन पुत्रेणामिततेजसा । यथा वरेण देवानामदितिर्वज्रपाणिना ॥१२॥
भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः । साक्षाद्विष्णोश्चतुर्भागःसर्वैःसमुदितो गुणैः ॥१३॥

लेकर जहांसे आये थे वहां गये, अर्थात् अपने-अपने घर गये ॥ १ ॥ यज्ञके लिए जो दीक्षा राजाने ली थी, वह भी समाप्त हुई, वे अपनी महारानियोंके साथ भृत्य, सेना, सवारी आदिके साथ अयोध्यापुरीमें गये ॥ २ ॥ राजा दसरथने निमन्त्रित राजाओंका यथायोग्य आदर-सत्कार किया और वे वसिष्ठको प्रणाम करके अपने-अपने देशोंको गये ॥ ३ ॥ जब वे बड़े-बड़े ऐश्वर्यशाली राजा अयोध्यासे अपने घरके लिए चले उस समय उनकी स्वच्छ और प्रसन्न सेनाकी बड़ी शोभा हुई ॥ ४ ॥ राजा लोगोंके विदा होनेपर राजा दसरथने ब्राह्मणोंको आगे करके अपनी नगरीमें प्रवेश किया ॥५॥ अपनी पत्नी शान्ताके साथ ऋष्यशृङ्ग गये, राजाने इनका बड़ा ही आदर सत्कार किया था, वे स्वयं अपने भृत्योंके साथ ऋषिके साथ गये ॥ ६ ॥ इस प्रकार राजाका मनोरथ पूरा हुआ, उन्होंने निमंत्रित राजाओंको विदा कर दिया, वे सुखपूर्वक अयोध्यामें रहने लगे और पुत्रोत्पत्तिकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ ७ ॥

यज्ञ समाप्त होनेपर छ ऋतुएँ और तीनों अर्थात् एक वर्ष बीता, बारहवें चैत महीनेमें नवमी तिथि को ॥८॥ जब पुनर्वसु नक्षत्र था, पांच (रवि, मंगल, शनि, गुरु, शुक्र) ग्रह अपने उच्च स्थानमें वर्तमान थे, बृहस्पति चन्द्रमाके साथ थे. कर्कट लग्नमें ॥९॥ कौसल्याने अलौकिक लक्षणोंसे युक्त रामको उत्पन्न किया, वे जगन्नाथ थे, वे सबसे नमस्कृत थे अथवा वे रावणादि वधके द्वारा सब लोगोंके दुःख दूर करेंगे उस समय सब लोगोंकी पूजा प्राप्त करेंगे ॥१०॥ इक्ष्वाकुवंशमें विष्णुके आधे भागसे पुत्र उत्पन्न हुआ अर्थात् विष्णुका अंशभूत पुत्र हुआ। उसकी आंखें लाल थीं, हाथ लम्बे थे, ओठ लाल थे और स्वर नगारेके शब्दके समान दूर तक फैलनेवाला था ॥११॥ उस अद्भुत तेजस्वी पुत्रको पानेसे कौसल्याकी बड़ी शोभा हुई, जिस प्रकार देवराज वज्रपाणि इन्द्रसे अदितिकी शोभा हुई थी ॥१२॥ महारानी कैकयीने भरत नामक पुत्र उत्पन्न किया, यह पुत्र रामचन्द्रके समान पराक्रमी था, यह विष्णुके चौथे भागसे उत्पन्न हुआ था तथा अन्य समस्त गुण इसमें वर्तमान थे ॥१३॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राजनयत्सुतौ । वीरौ सर्वास्त्रकुशलौ विष्णोरर्धसमन्वितौ ॥१४॥
पुष्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसन्नधीः । सार्पे जातौ तु सौमित्री कुलीरेऽभ्युदिते रवौ ॥१५॥
राज्ञः पुत्रा महात्मानश्चत्वारो जज्ञिरे पृथक् । गुणवन्तोऽनुरूपाश्च रुच्या प्रोष्ठपदोपमाः ॥१६॥
जगुः कलं च गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः । देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत् ॥१७॥
उत्सवश्च महानासीदयोध्यायां जनाकुलः । रथ्याश्च जनसंबाधा नटनर्तकसंकुलाः ॥१८॥
गायनैश्च विराविण्यो वादनैश्च तथापरैः । विरेजुर्विपुलास्तत्र सर्वरत्नसमन्विताः ॥१९॥
प्रदेयांश्च ददौ राजा सूतमागधबन्दिनाम् । ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं गोधनानि सहस्रशः ॥२०॥
अतीत्यैकादशाहं तु नामकर्म तथाकरोत् । ज्येष्ठं रामं महात्मानं भरतं कैकयीसुतम् ॥२१॥
सौमित्रिं लक्ष्मणमिति शत्रुघ्नमपरं तथा । वसिष्ठः परमप्रीतो नामानि कुरुते तदा ॥२२॥
ब्राह्मणान्भोजयामास पौरजानपदानपि । अददद्ब्राह्मणानां च रत्नौघममलं बहु ॥२३॥
तेषां जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्यकारयत् । तेषां केतुरिव ज्येष्ठो रामो रतिकरः पितुः ॥२४॥
बभूव भूयो भूतानां स्वयंभूरिव संमतः । सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे लोकहिते रताः ॥२५॥

लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामक दो पुत्रोंको सुमित्राने उत्पन्न किया, ये बड़ेही वीर, अस्त्र-विद्यामें बड़े प्रवीण और रामचन्द्रके अनुयायी हुए ॥१४॥ सुन्दर बुद्धिवाले भरत पुष्य नक्षत्र और मीन लग्नमें उत्पन्न हुए, सुमित्राके दोनों पुत्र श्लेषा नक्षत्रमें उत्पन्न हुए जब कि सूर्य कर्कट लग्नमें उदित हुआ था ॥ १५ ॥ इस प्रकार महात्मा राजा दसरथके चार पुत्र उत्पन्न हुए, उन बारोंमें पृथक्-पृथक् अनन्य साधारण गुण थे, उनमें योग्य व्यवहार था, बड़े छोटेका जैसा व्यवहार होना चाहिए वैसा था, वे प्रोष्ठपदके समान कान्तिमान् थे (पूर्वाभाद्रपद और उत्तराभाद्रपदको प्रोष्ठपद कहते हैं, इन दोनों नक्षत्रोंमें दो-दो ताराएँ होती हैं, दो-दो आपसमें मिली हुई होती हैं और फिर चारो मिली हुई होती हैं, इसी तरह यहां भी दो-दो भाई साथ थे और चारो एक थे) ॥ १६ ॥

इस प्रसन्नताके समय गन्धर्वगण मधुर स्वरसे गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं, देवताओंके नगाड़े बजने लगे और आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी ॥ १७ ॥ अयोध्यामें बहुत बड़ा उत्सव हुआ, बहुत आदमियोंकी भीड़ हुई । रास्ते मनुष्योंसे तथा नट-नर्तकोंसे भरगये ॥१८॥ गानेवाले, बजानेवाले तथा वेदपाठ करनेवालेके कारण वे मार्ग बोलते हुए मालूम होते थे और वे मार्ग रत्नोंसे भरे हुए थे (विक्रीके लिए रत्न रखे गये होंगे या राजाकी ओरसे लोगोंके लूटनेके लिए रखे गये होंगे) ॥ १९ ॥ सूत, मागध वन्दियों (यश गानेवाले) को जो देना था, वह राजाने दिया, ब्राह्मणोंको धन तथा हजारो गौ दक्षिणामें दीं ॥ २० ॥ ग्यारह दिन बीतनेपर राजाने उन पुत्रोंके नाम-संस्कार किये, ज्येष्ठ पुत्रका नाम राम, और कैकयीके पुत्रका नाम भरत रखा गया ॥ २१ ॥ सुमित्राके एक लड़केका नाम लक्ष्मण और दूसरेका शत्रुघ्न रखा गया। महर्षि वसिष्ठने प्रसन्नतापूर्वक इनका नामकरण-संस्कार किया ॥ २२ ॥ ब्राह्मणों, नगरवासियों तथा राज्यके अन्य मनुष्योंको भोजन कराया गया और ब्राह्मणोंको उज्ज्वल बहुतसा रत्न दिया गया ॥२३॥ उन पुत्रोंके जन्म-संबन्धी अन्य कृत्य भी राजाने कराये । ज्येष्ठ रामचन्द्र उन सबमें पताकाके समान थे, पिताको बहुतही प्रिय थे ॥२४॥ रामचन्द्र अन्य प्राणियोंको भी ब्रह्माके समान आदरणीय हुए । वे चारो वेदज्ञ थे, चारो शूर थे और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्वे ज्ञानोपसंपन्नाः सर्वे समुदिता गुणैः । तेषामपि महातेजा रामः सत्यपराक्रमः ॥२६॥
इष्टः सर्वस्य लोकस्य शशाङ्क इव निर्मलः । गजस्कन्धेऽश्वपृष्ठे च रथचर्यासु संमतः ॥२७॥
धनुर्वेदे च निरतः पितुः शुश्रूषणे रतः । बाल्यात्प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः॥२८॥
रामस्य लोकरामस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः । सर्वप्रियकरस्तस्य रामस्यापि शरीरतः ॥२९॥
लक्ष्मणो लक्ष्मिसंपन्नो बहिःप्राण इवापरः । न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः ॥३०॥
मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति न हि तं विना । यदा हि हयमारूढो मृगयां याति राघवः ॥३१॥
अथैनं पृष्ठतोऽभ्येति सधनुः परिपालयन् । भरतस्यापि शत्रुघ्नो लक्ष्मणावरजो हि सः॥३२॥
प्राणैः प्रियतरो नित्यं तस्य चासीत्तथा प्रियः । स चतुर्भिर्महाभागैः पुत्रैर्दशरथः प्रियैः ॥३३॥
बभूव परमप्रीतो देवैरिव पितामहः । ते यदा ज्ञानसंपन्नाः सर्वे समुदिता गुणैः ॥३४॥
ह्रीमन्तः कीर्तिमन्तश्च सर्वज्ञा दीर्घदर्शिनः । तेषामेवंप्रभावाणां सर्वेषां दीप्ततेजसाम् ॥३५॥
पिता दशरथो हृष्टो ब्रह्मा लोकाधिपो यथा । ते चापि मनुजव्याघ्रा वैदिकाध्ययने रताः ॥३६॥
पितृशुश्रूषणरता धनुर्वेदे च निष्ठिताः । अथ राजा दशरथस्तेषां दाराक्रियां प्रति ॥३७॥
चिन्तयामास धर्मात्मा सोपाध्यायः सबान्धवः । तस्य चिन्तयमानस्य मन्त्रिमध्ये महात्मनः ॥३८॥

चारो लोक-कल्याण करनेवाले थे ॥२५॥ वे सभी ज्ञानी थे, सभी गुणवान् थे, फिर भी उनमें सत्य पराक्रमी तेजस्वी रामचन्द्र ॥ २६ ॥ सबको प्रिय थे, जिस प्रकार निर्मल (पूर्णिमाका) चन्द्रमा सबको प्रिय होता है । हाथी और घोड़ेकी सवारी तथा रथ हांकनेमें रामचन्द्र बड़े निपुण हुए॥२७॥ धनुर्वेदके अभ्यासमें सदा लगे रहते थे और पिताकी सेवा करते थे। अपने आश्रितोंको धन देनेवाले लक्ष्मण बाल्यावस्थासे ही रामचन्द्रके अनुगत थे, उनकी सेवा-शुश्रूषा किया करते थे । २८॥ सबको आनन्द देनेवाले बड़े भाई रामचन्द्रके सब प्रिय कार्य लक्ष्मण अपने शरीरसे करते थे ॥२९॥ लक्ष्मण भी रामचन्द्रके बाहर चलनेवाले प्राणोंके समान प्रिय थे, पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्र लक्ष्मणके विना सो भी नहीं सकते थे ॥३०॥ रामचन्द्रके लिए जो उत्तम भोजन आता था, उसे वे लक्ष्मण के विना नहीं खाते थे । जब रामचन्द्र घोड़ेपर चढ़कर शिकारके लिए जाते थे ॥ ३१ ॥ तब लक्ष्मण धनुष लेकर उनके पीछे-पीछे उनके शरीरकी रक्षा करते हुए जाते थे। लक्ष्मणका छोटा भाई शत्रुघ्न भी भरतके ॥ ३२ ॥ प्राणोंके समान प्रिय था और भरत उसके प्राणोंके समान प्रिय थे। राजा दसरथ अपने गुणवान् इन चारों पुत्रोंसे बहुतही प्रसन्न थे, जैसे चारो देवता (दिक्पाल) से ब्रह्मा प्रसन्न रहते हैं । वे सब जब ज्ञानसम्पन्न हुए, गुणोंसे युक्त हुए ॥ ३४ ॥ लोकापवादसे डरनेवाले, मर्यादाका पालन करनेवाले, सब विषयोंकी जानकारी रखनेवाले तथा भूत भविष्यके जानकार हुए। उन सबका ऐसा प्रभाव तथा तेजस्विता ॥३५॥ देखकर पिता राजा दसरथ प्रसन्न हुए। पुरुष-सिंह वे भी वेदोंका अध्ययन करने लगे ॥ ३६ ॥ वे पिताकी सेवामें तत्पर रहा करते थे, धनुर्वेदमें प्रवीण होगये थे। अब राजा दसरथ उन लोगोंके विवाहके लिए ॥ ३७ ॥ अपने पुरोहित तथा बान्धवोंके साथ विचारने लगे। महात्मा राजा दसरथ मन्त्रियोंके साथ इसका विचार करने लगे ॥३८॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अभ्यागच्छन्महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः । स राज्ञो दर्शनाकांक्षी द्वाराध्यक्षानुवाच ह ॥३९॥
शीघ्रमाख्यात मां प्राप्तं कौशिकं गाधिनः सुतम्। तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य राज्ञो वेश्म प्रदुद्रुवुः ॥४०॥
संभ्रान्तमनसः सर्वे तेन वाक्येन चोदिताः । ते गत्वा राजभवनं विश्वामित्रमृषिं तदा ॥४१॥
प्राप्तमावेदयामासुर्नृपायेक्ष्वाकवे तदा । तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सपुरोधाः समाहितः ॥४२॥
प्रत्युज्जगाम संहृष्टो ब्रह्माणमिव वासवः । स दृष्ट्वा ज्वलितं दीप्त्या तापसं संशितव्रतम् ॥४३॥
प्रहृष्टवदनो राजा ततोऽर्घ्यमुपहारयत् । स राज्ञः प्रतिगृह्यार्घ्यं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥४४॥
कुशलं चाव्ययं चैव पर्यपृच्छन्नराधिपम् । पुरे कोशे जनपदे बान्धवेषु सुहृत्सु च ॥४५॥
कुशलं कौशिको राज्ञः पर्यपृच्छत्सुधार्मिकः । अपि ते संनताः सर्वे सामन्तरिपवो जिताः॥४६॥
दैवं च मानुषं चैव कर्म ते साध्वनुष्ठितम् । वासिष्ठं च समागम्य कुशलं मुनिपुंगवः ॥४७॥
ऋषींश्च तान्यथान्यायं महाभाग उवाच ह । ते सर्वे हृष्टमनसस्तस्य राज्ञो निवेशनम् ॥४८॥
विविशुः पूजितास्तेन निषेदुश्च यथार्हतः । अथ हृष्टमना राजा विश्वामित्रं महामुनिम् ॥४९॥
उवाच परमोदारो हृष्टस्तमभिपूजयन् । यथामृतस्य संप्राप्तिर्यथा वर्षमनूदके ॥५०॥
यथा सदृशदारेषु पुत्रजन्माप्रजस्य वै । प्रनष्टस्य यथा लाभो यथा हर्षो महोदयः ॥५१॥

उसी समय महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्र आये । उन्होंने द्वारपालसे कहा कि मैं राजाको देखना चाहता हूँ ॥ ३९ ॥ राजासे शीघ्र कहो कि मैं गाधिका पुत्र और कौशिकगोत्र विश्वामित्र आया हूँ । मुनिकी यह बात सुनकर द्वारपाल, राजा दसरथके घरकी ओर दौड़े ॥ ४० ॥ मुनिके उस वाक्यसे वे सबके सब घबड़ा गये, वे सब उस समय राजाके घरमें जाकर-विश्वामित्र ऋषि ॥ ४१ ॥ आये हैं.-यह उन लोगोंने इक्ष्वाकुवंशी राजा दसरथसे कहा । द्वारपालोंकी बात सुनकर राजा पुरोहितके साथ सावधान हो प्रसन्नतापूर्वक उनकी अगवानीके लिए चले, जैसे ब्रह्माकी अगवानी इन्द्र कर रहे हों । राजाने उन तपस्वीको देखा, जो तपस्याके प्रकाशसे प्रकाशित हो रहे थे और जो बड़े उग्र नियमोंका पालन करनेवाले थे ॥ ४३ ॥ राजा प्रसन्न हुए और उन्होंने मुनिको अर्घ्य दिया । मुनिने शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार दिया हुआ अर्घ्य ग्रहण किया ॥ ४४ ॥ मुनिने राजासे नित्य-कुशल पूछी, नगर, खजाना, राज्य, भाईबन्द, मित्रोंकी ॥ ४५ ॥ कुशल धार्मिक कौशिकने पूछी । तुम्हारे अधीनके राजा जो तुम्हारे शत्रु होगये थे और जिनको तुमने परास्त किया था क्या वे तुम्हारी शरण आये ? ॥ ४६ ॥ होम, देवता, पूजा आदि तथा सामवेद आदि मनुष्य-कर्म तुम्हारे चल रहे हैं ? पुनः मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रने वसिष्ठके पास जाकर उनकी कुशल पूछी ॥ ४७ ॥ तदनन्तर राजाकी सभामें वर्तमान अन्य ऋषियोंसे भी कुशल पूछी, वे सब बहुत प्रसन्न हुए । पुनः वे सब राजाके घरमें ॥ ४८ ॥ राजाके द्वारा पूजा की जाने पर वे योग्य आसनोंपर बैठे । प्रसन्न होकर राजा विश्वामित्र मुनिसे ॥ ४९ ॥ बोले। परम उदार प्रसन्न राजाने उनकी पूजा भी की । जैसे किसीको अमृत मिलजाय, जैसे सूखे देशमें पानी हो जाय, ॥ ५० ॥ जैसे किसी पुत्रहीनको अपनी विवाहिता स्त्रीसे पुत्र उत्पन्न हो, जैसे खोई हुई चीज मिलजाय,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तथैवागमनं मन्ये स्वागतं ते महामुने । कं च ते परमं कामं करोमि किमु हर्षितः ॥५२॥
पात्रभूतोऽसि मे ब्रह्मन्दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मानद । अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ॥५३॥
यस्माद्विप्रेन्द्रमद्राक्षं सुप्रभाता निशा मम । पूर्वं राजर्षिशब्देन तपसा द्योतितप्रभः ॥५४॥
ब्रह्मर्षित्वमनुप्राप्तः पूज्योऽसि बहुधा मया । तदद्भुतमभूद्विप्र पवित्रं परमं मम ॥५५॥
शुभक्षेत्रगतश्चाहं तव संदर्शनात्प्रभो । ब्रूहि यत्प्रार्थितं तुभ्यं कार्यमागमनं प्रति ॥५६॥
इच्छाम्यनुगृहीतोऽहं त्वदर्थं परिचोदये । कार्यस्य न विमर्शं च गन्तुमर्हसि सुव्रत ॥५७॥
कर्ता चाहमशेषेण दैवतं हि भवान्मम । मम चायमनुप्राप्तो महानभ्युदयो द्विज ॥
तवागमनजः कृत्स्नो धर्मश्चानुत्तमो द्विज ॥ ५८ ॥

इति हृदयसुखं निशम्य वाक्यं श्रुतिसुखमात्मवता विनीतमुक्तम् ।
प्रथितगुणयशा गुणैर्विशिष्टः परमऋषिः परमं जगाम हर्षम् ॥५९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डेऽष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

जैसे पुत्र-विवाह आदि उत्सवोंमें हर्ष होता हो ॥ ५१ ॥ आपके आगमनको भी मैं वैसे ही समझता हूं । महामुने, आपका स्वागत । मैं प्रसन्न होकर आपके किस ऊँचे मनोरथको पूरा करूं ॥ ५२ ॥ महाराज, आप मेरी सब सेवाओंके योग्य, मानद (अपने आगमनसे मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले) हैं, प्रसन्नताकी बात है कि आप आगये हैं । आज मेरा जन्म सफल हुआ और जीवन धन्य हुआ ॥ ५३ ॥ आज मैंने उस ब्राह्मणश्रेष्ठको देखा है जिसने पहले राजर्षि शब्द और तपस्याके द्वारा अपना गौरव फैलाया है । अब मेरी रात समाप्त हुई, मेरे दुःख दूर हुए ॥ ५४ ॥ आपने ब्रह्मर्षिका पद पाया और राजर्षि थे ही इन दोनों ही कारणोंसे आप मेरे पूज्य हैं । महाराज, आपका जो यह परम पवित्र आगमन है वह मेरे लिए आश्चर्य है ॥ ५५ ॥ महाराज आपके दर्शन होनेसे मैं पुण्यतीर्थक्षेत्रमें वर्तमान हूं (आपके आगमनसे मेरा घर तीर्थ हो गया है) महाराज, कहिए, क्या चाहते हैं जिसके लिए आपका यह आगमन है ॥ ५६ ॥ मैं आपके द्वारा अनुगृहीत होकर आपके आनेका उद्देश्य जानकर उसको पूर्ण करनेका प्रयत्न करूंगा । हे सुव्रत, कार्यके विषयमें-वह सिद्ध होगा कि नहीं—आप विचार न करें ॥ ५७ ॥ मैं आपके सब मनोरथोंको पूरा करूंगा, आप मेरे आराध्य हैं, यह (आपका आना) मेरे लिए बड़ा अभ्युदय है । और महान धर्म है (जो मैंने पाया है) ॥ ५८ ॥ कान और हृदयको सुख देनेवाले आत्मवान् (अपनी बातके पक्के) राजाके वचन सुनकर श्रेष्ठ ऋषि विश्वामित्र बड़े प्रसन्न हुए । इन ऋषिके गुण-सम्बन्धी यश चारों ओर फैले हुए हैं ॥ ५९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका अट्ठारहवां सर्ग समाप्त ॥ १८ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकोनविंशः सर्गः १९

तच्छ्रुत्वा राजसिंहस्य वाक्यमद्भुतविस्तरम् । हृष्टरोमा महातेजा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥ १ ॥
सदृशं राजशार्दूल तवैव भुवि नान्यतः । महावंशप्रसूतस्य वसिष्ठव्यपदेशिनः ॥ २ ॥
यत्तु मे हृद्गतं वाक्यं तस्य कार्यस्य निश्चयम् । कुरुष्व राजशार्दूल भव सत्यप्रतिश्रवः ॥ ३ ॥
अहं नियममातिष्ठे सिद्ध्यर्थं पुरुषर्षभ । तस्य विघ्नकरौ द्वौ तु राक्षसौ कामरूपिणौ ॥ ४ ॥
व्रते तु बहुशश्चीर्णे समाप्त्यां रक्षसाविमौ । मारीचश्च सुबाहुश्च वीर्यवन्तौ सुशिक्षितौ ॥ ५ ॥
तौ मांसरुधिरौघेण वेदिं तामभ्यवर्षताम् । अवधूते तथाभूते तस्मिन्नियमनिश्चये ॥ ६ ॥
कृतश्रमो निरुत्साहस्तस्मादेशादपाक्रमे । न च मे क्रोधमुत्स्रष्टुं बुद्धिर्भवति पार्थिव ॥ ७ ॥
तथाभूता हि सा चर्या न शापस्तत्र मुच्यते । स्वपुत्रं राजशार्दूल रामं सत्यपराक्रमम् ॥ ८ ॥
काकपक्षधरं वीरं ज्येष्ठं मे दातुमर्हसि । शक्तो ह्येष मया गुप्तो दिव्येन स्वेन तेजसा ॥ ९ ॥
राक्षसा ये विकर्तारस्तेषामपि विनाशने । श्रेयश्चास्मै प्रदास्यामि बहुरूपं न संशयः ॥१०॥
त्रयाणामपि लोकानां येन ख्यातिं गमिष्यति । न च तौ राममासाद्य शक्तौ स्थातुं कथंचन ॥११॥
न च तौ राघवादन्यो हन्तुमुत्सहते पुमान् । वीर्योत्सिक्तौ हि तौ पापौ कालपाशवशं गतौ ॥१२॥

विस्तारके साथ कही हुई राजा दसरथकी बातें सुनकर महातेजस्वी विश्वामित्र रोमांचित हुए और वे बोले ॥ १ ॥ महाराज, इस पृथिवीमें ऐसी बातें आपके ही द्वारा कही जानी योग्य हैं, दूसरेके योग्य नहीं हैं, क्योंकि आपका जन्म बड़े कुलमें हुआ है और आपको वसिष्ठका उपदेश प्राप्त हुआ है ॥ २ ॥ राजन्, जो बात मेरे हृदयमें है, जिसके लिए मैं आया हूं, राजश्रेष्ठ, आप उसे स्वीकार करें और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करें (राजाने कहा है कि जो कहिए सो दूं, कार्य-सिद्धि न होगी ऐसा सन्देह न करें) ॥ ३ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ, मैं सिद्धिके लिए यागकी दीक्षा लिया करता हूं, पर कामरूपी दो राक्षस विघ्न कर दिया करते हैं ॥ ४ ॥ मेरे यज्ञ आदि नियम प्रारम्भ होते हैं, और जब उनकी समाप्तिका समय आता है तब ये मारीच और सुबाहु जो बलवान् हैं और सुशिक्षित हैं (विघ्न करते हैं) ॥ ५ ॥ उस वेदिपर माँस और रुधिरकी वृष्टि कर देते हैं, और मेरे व्रत, संकल्प आदि नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं ॥ ६ ॥ मेरा परिश्रम व्यर्थ हुआ, मैं उत्साहहीन होकर उस देशसे निकला हूँ, आपके यहां आया हूँ, राजन्, उनपर क्रोध करनेकी भी इच्छा नहीं होती ॥ ७ ॥ क्योंकि यज्ञका समय क्रोध करने और शाप देनेका नहीं है। इसलिए, राजन्, आप सच्चे वीर अपने ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्रको मुझे दें, यद्यपि वे काकपक्ष धारण करते हैं, (कानोंके पास रखी जानेवाली चोटी, क्षत्रियोंके बालकोंको ऐसी चोटी रखी जाती है) अर्थात् बालक हैं, फिर भी वीर हैं और मैं अपने अलौकिक तेजसे इनकी रक्षा करूंगा ॥ ९ ॥ और ये उन राक्षसोंका नाश कर सकेंगे, जो मेरे यज्ञमें विघ्न करते हैं और इनको (रामका) अनेक कल्याण भी मैं करूंगा, इसमें आप सन्देह न करें ॥ १० ॥ मेरे द्वारा जो कल्याण प्राप्त होगा उससे रामचन्द्रकी ख्याति तीनों लोकोंमें होगी, और वे राक्षस रामचन्द्रके सामने कभी ठहर न सकेंगे ॥११॥ महाराज रामचन्द्रको छोड़कर दूसरा कोई उन दोनों राक्षसोंको मार नहीं सकता, उनको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रामस्य राजशार्दूल न पर्याप्तौ महात्मनः । न च पुत्रगतं स्नेहं कर्तुमर्हसि पार्थिव ॥१३॥
अहं ते प्रतिजानामि हतौ तौ विद्धि राक्षसौ । अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् ॥१४॥
वसिष्ठोऽपि महातेजा ये चेमे तपसि स्थिताः । यदि ते धर्मलाभं तु यशश्च परमं भुवि ॥१५॥
स्थिरमिच्छसि राजेन्द्र रामं मे दातुमर्हसि । यद्यभ्यनुज्ञां काकुत्स्थ ददते तव मन्त्रिणः ॥१६॥
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे ततो रामं विसर्जय । अभिप्रेतमसंसक्तमात्मजं दातुमर्हसि ॥१७॥
दशरात्रं हि यज्ञस्य रामं राजीवलोचनम् । नात्येति कालो यज्ञस्य यथायं मम राघव ॥१८॥
तथा कुरुष्व भद्रं ते मा च शोके मनः कृथाः । इत्येवमुक्त्वा धर्मात्मा धर्मार्थसहितं वचः ॥१९॥
विरराम महातेजा विश्वामित्रो महामतिः । स तन्निशम्य राजेन्द्रो विश्वामित्रवचःशुभम् ॥२०॥
शोकेन महताविष्टश्चचाल च मुमोह च । लब्धसंज्ञस्ततोत्थाय व्यषीदत भयान्वितः ॥२१॥

इति हृदयमनोविदारणं मुनिवचनं तदतीव शुश्रुवान् ।
नरपतिरभवन्महान्महात्मा व्यथितमनाः प्रचचाल चासनात् ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्ड एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

अपनी वीरताका बड़ा घमण्ड है । वे इस समय पापी हो रहे हैं, उनके सिरपर काल नाच रहा है ॥ १२ ॥ राजन्, वे महात्मा रामचन्द्रके सामने ठहर न सकेंगे, आप पुत्रका स्नेह न करें । रामचन्द्र मेरे पुत्र हैं, बालक हैं, वे कैसे इन राक्षसोंका सामना करेंगे, इन बातोंका विचार न करें ॥ १३॥ राजन्, मैं आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूं कि वे राक्षस रामचन्द्रके द्वारा अवश्य मारे जायँगे, राजन्, सत्यपराक्रमी रामचन्द्रको मैं जानता हूँ अर्थात् ये विष्णु हैं, इन्होंने राक्षसोंके नाशके लिए ही आपके घर अवतार धारण किया है ॥१४॥ महातेजस्वी वसिष्ठ तथा तपस्या करनेवाले ये सब ऋषि भी रामचन्द्रको जानते हैं । राजन्, धर्मकी प्राप्ति (याचककी मनोरथ-पूर्ति तथा अपनी प्रतिज्ञाके पालनसे होनेवाला धर्म) और यश यदि आप पृथिवीमें ॥ १५ ॥ स्थिर रखना चाहते हैं तो आप अवश्यही रामचन्द्रको मुझे दें, राजन्, यदि आपके मन्त्री आपको वैसा करनेकी सलाह दें ॥ १६ ॥ वसिष्ठ आदि मन्त्रियोंसे आप पूछ लें यदि वे कहें तो आप मुझे अपने उस पुत्रको दें जिसे मैं चाहता हूं और बड़ा होनेके कारण आपकी भी जिसमें वैसी आसक्ति नहीं है ॥ १७ ॥ दस रातके लिए आप मुझे राजीवलोचन रामचन्द्रको दें, मेरे यज्ञको दस ही दिन बाकी हैं । यज्ञका जो समय मैंने बतलाया है उससे विलम्ब न होगा, दस रातके बाद ये लौट आवेंगे ॥ १८ ॥ राजन्, जैसा मैं कहता हूं वैसा आप करें, आपका कल्याण होगा, आप मनमें शोक न करें, इस प्रकार धर्म और अर्थयुक्त वचन ॥ १९ ॥ धर्मात्मा, महातेजस्वी, बुद्धिमान् विश्वामित्र कहकर चुप हुए । विश्वामित्रके उन उत्तम वचनोंको सुनकर ॥ २० ॥ राजाको बहुत बड़ा दुःख हुआ, वे विचलित हो गये और उन्हें मूर्च्छा आगयी, होश आनेपर राजा बहुत डर गये और विषाद करने लगे ॥ २१ ॥ राजा हृदय और मनको विदारण करनेवाले वैसे मुनिके वचन सुनकर बहुतही व्यथित हुए और अपने स्थानसे डोलगये ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका उन्नीसवां सर्ग समाप्त ॥ १९ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विंशः सर्गः २०

तच्छ्रुत्वा राजशार्दूलो विश्वामित्रस्य भाषितम् । मुहूर्तमिव निःसंज्ञः संज्ञावानिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः । न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः ॥ २ ॥
इयमक्षौहिणी सेना यस्याहं पतिरीश्वरः । अनया सहितो गत्वा योद्धाहं तैर्निशाचरैः ॥ ३ ॥
इमे शूराश्च विक्रान्ता भृत्या मेऽस्त्रविशारदाः । योग्या रक्षोगणैर्योद्धुं न रामं नेतुमर्हसि ॥ ४ ॥
अहमेव धनुष्पाणिर्गोप्ता समरमूर्धनि । यावत्प्राणान्धरिष्यामि तावद्योत्स्ये निशाचरैः ॥ ५ ॥
निर्विघ्ना व्रतचर्या सा भविष्यति सुरक्षिता । अहं तत्र गमिष्यामि न रामं नेतुमर्हसि ॥ ६ ॥
बालो ह्यकृतविद्यश्च न च वेत्ति बलाबलम् । न चास्त्रबलसंयुक्तो न च युद्धविशारदः ॥ ७ ॥
न चासौ रक्षसां योग्यः कूटयुद्धा हि राक्षसाः । विप्रयुक्तो हि रामेण मुहूर्तमपि नोत्सहे ॥ ८ ॥
जीवितुं मुनिशार्दूल न रामं नेतुमर्हसि । यदि वा राघवं ब्रह्मन्नेतुमिच्छसि सुव्रत ॥ ९ ॥
चतुरङ्गसमायुक्तं मया सह च तं नय । षष्टिर्वर्षसहस्राणि जातस्य मम कौशिक ॥ १० ॥
कृच्छ्रेणोत्पादितश्चायं न रामं नेतुमर्हसि । चतुर्णामात्मजानां हि प्रीतिः परमिका मम ॥ ११ ॥
ज्येष्ठे धर्मप्रधाने च न रामं नेतुमर्हसि । किंवीर्या राक्षसास्ते च कस्य पुत्राश्च के च ते ॥ १२ ॥

राजश्रेष्ठ राजा दसरथ विश्वामित्रकी बातें सुनकर थोड़ी देरके लिए बेहोश हो गये, जब उन्हें होश आया तब वे बोले ॥ १ ॥ मेरा कमलनयन अभी सोलह वर्षसे भी कम अर्थात् पन्द्रह वर्षका है। राक्षसोंसे युद्ध करनेकी शक्ति मैं उसमें नहीं देखता ॥ २ ॥ यह मेरी अक्षौहिणी सेना है, जिसका मैं सेनापति और स्वामी हूँ, इस सेनाके साथ जाकर मैं स्वयं उन राक्षसोंसे युद्ध कर सकता हूं ॥ ३ ॥ ये मेरे नौकर बड़े पराक्रमी, युद्धमें उत्साह रखनेवाले और अस्त्र-विद्याके पूरे ज्ञाता हैं, ये राक्षसोंसे युद्ध कर सकते हैं। अतः आप रामचन्द्रको न ले जायँ ॥ ४ ॥ जब तक मैं हाथोंमें धनुष लेकर युद्धक्षेत्रमें आगे रक्षा करनेके लिए तयार हूँ, जबतक मेरे प्राण वर्तमान हैं, तबतक मैं ही राक्षसोंसे युद्ध करूंगा ॥ ५ ॥ महाराज, मैं चलूंगा, यज्ञके लिए आपकी दीक्षा भी निर्विघ्नतापूर्वक सुरक्षित होगी, आप रामको न ले जायँ ॥ ६ ॥ रामचन्द्र बालक हैं, अस्त्रविद्याका इन्हें पूरा-पूरा अभ्यास नहीं है, शत्रुकी बलवत्ता और निर्बलता भी ये नहीं समझ सकते, और न इन्हें अस्त्रोंका बल है और न ये युद्ध-विद्यामें निपुण हैं ॥ ७ ॥ ये राक्षसोंके साथ युद्ध करनेके योग्य नहीं हैं, क्योंकि राक्षस छलसे युद्ध किया करते हैं और मैं रामचन्द्रके बिना एक क्षण भी जीना नहीं चाहता ॥ ८ ॥ अतएव हे मुनिश्रेष्ठ, आप रामचन्द्रको न ले जायँ। हे सुव्रत ब्रह्मन्, आप रामचन्द्रको ले जाना ही चाहते हों ॥ ९ ॥ तो सेना और मेरे साथ आप रामचन्द्रको ले जाँय। कौशिक, साठ हजार वर्ष मुझे उत्पन्न हुए बीत गये ॥ १० ॥ बड़े कष्टोंसे रामचन्द्रका जन्म हुआ है, आप रामचन्द्रको न ले जाँय, यद्यपि मेरे चार पुत्र हैं, पर मेरी सबसे अधिक प्रीति ॥ ११ ॥ धर्मात्मा जेठे पुत्रमें ही है, अतः आप रामचन्द्रको न ले जाँय, वे राक्षस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कथंप्रमाणाः के चैतान्रक्षन्ति मुनिपुंगव । कथं च प्रतिकर्तव्यं तेषां रामेण रक्षसाम् ॥१३॥
मामकैर्वा बलैर्ब्रह्मन्मया वा कूटयोधिनाम् । सर्वं मे शंस भगवन्कथं तेषां मया रणे ॥१४॥
स्थातव्यं दुष्टभावानां वीर्योत्सिक्ता हि राक्षसाः । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥१५॥
पौलस्त्यवंशप्रभवो रावणो नाम राक्षसः । स ब्रह्मणा दत्तवरस्त्रैलोक्यं बाधते भृशम् ॥१६॥
महाबलो महावीर्यो राक्षसैर्बहुभिर्वृतः । श्रूयते च महाराज रावणो राक्षसाधिपः ॥१७॥
साक्षाद्वैश्रवणभ्राता पुत्रो विश्रवसो मुनेः । यदा न खलु यज्ञस्य विघ्नकर्ता महाबलः ॥१८॥
तेन संचोदितौ तौ तु राक्षसौ च महाबलौ । मारीचश्च सुबाहुश्च यज्ञविघ्नं करिष्यतः ॥१९॥
इत्युक्तो मुनिना तेन राजोवाच मुनिं तदा । नहि शक्तोऽस्मि सङ्ग्रामे स्थातुं तस्य दुरात्मनः॥२०॥
स त्वं प्रसादं धर्मज्ञ कुरुष्व मम पुत्रके । मम चैवाल्पभाग्यस्य दैवतं हि भवान्गुरुः ॥२१॥
देवदानवगन्धर्वा यक्षाः पतगपन्नगाः । न शक्ता रावणं सोढुं किं पुनर्मानवा युधि ॥२२॥
स तु वीर्यवतां वीर्यमादत्ते युधि रावणः । तेन चाहं न शक्तोऽस्मि संयोद्धुं तस्य वा बलैः ॥२३॥
सबलो वा मुनिश्रेष्ठ सहितो वा ममात्मजैः । कथमप्यमरप्रख्यं सङ्ग्रामाणामकोविदम् ॥२४॥
बालं मे तनयं ब्रह्मन्नैव दास्यामि पुत्रकम् । अथ कालोपमौ युद्धे सुतौ सुन्दोपसुन्दयोः ॥२५॥

(जो आपके यज्ञमें विघ्न पहुंचाते हैं) कैसे बली हैं, वे किसके पुत्र हैं ॥ १२ ॥ मुनिश्रेष्ठ, वे कितने लम्बे चौड़े हैं, उनका रक्षक कौन है, रामचन्द्र उन राक्षसोंका संहार कैसे कर सकेंगे, ॥ १३ ॥ मेरी सेना या मुझसे ही उन कपटसे युद्ध करनेवाले राक्षसोंका संहार कैसे हो सकेगा, भगवन् यह सब आप कहें । मैं ही उनके साथ युद्धमें ॥ १४ ॥ कैसे ठहर सकूँगा, क्योंकि वे बड़े ही दुष्ट विचारवाले होते हैं और बड़े बलवान् होते हैं । राजाके ये वचन सुनकर विश्वामित्र बोले ॥ १५ ॥

रावण नामका राक्षस है, पुलस्त्यके वंशमें उसका जन्म हुआ है. ब्रह्मासे, उसने वर पाया है और वह त्रिलोकको बड़ी पीड़ा दे रहा है ॥ १६ ॥ महाराज, सुना जाता है, कि वह बड़ा बली है बड़ा पराक्रमी है बहुतसे राक्षस उसके अनुचर हैं, वह राक्षसोंका राजा है ॥ १७ ॥ वह कुबेरका भाई है और विश्रवा मुनिका पुत्र है । वह स्वयं तो मेरे यज्ञमें विघ्न नहीं करता ॥ १८ ॥ पर मारीच और सुबाहु नामक दो बलवान् राक्षसोंको उसने प्रेरित किया है, वे ही दोनों मेरे यज्ञमें विघ्न करते हैं । ॥१९॥ मुनिके इतना कहनेपर राजाने मुनिसे कहा कि मैं उन दुष्टोंके साथ युद्धमें नहीं ठहर सकता हूं ॥ २० ॥ सो हे धर्मज्ञ, आप मेरे इस दयनीय पुत्रपर दया करें । यद्यपि आपकी आज्ञाके पालन न करनेके कारण मैं अल्पभाग्य हूं, आप मेरे गुरु हैं, देवता हैं ॥ २१ ॥ देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, पक्षी और सर्प इनमें भी कोई रावणसे युद्ध नहीं कर सकता, फिर मनुष्य उसके सामने क्या है ॥ २२ ॥ वह रावण पराक्रमियोंका पराक्रम नष्ट कर देता है, उसके सामने जानेसे पराक्रमी भी हिम्मत हार बैठता है, उस रावण या उसकी सेनाके साथ मैं युद्ध नहीं कर सकता ॥ २३ ॥ मुनिश्रेष्ठ, मेरी सेना और मेरे पुत्रोंको साथ लेकर आप स्वयं युद्ध करना चाहें तो आप भी नहीं कर सकते । देवताके समान सुन्दर और रणका पूरा-पूरा ज्ञान न रखनेवाले ॥२४॥ बालक पुत्रको, ब्रह्मन्, मैं न दूंगा । सुन्द, उपसुन्दके दोनों लड़के युद्धमें कालके समान हैं ॥ २५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यज्ञविघ्नकरौ तौ ते नैव दास्यामि पुत्रकम् । मारीचश्च सुबाहुश्च वीर्यवन्तौ सुशिक्षितौ ॥२६॥
तयोरन्यतरं योद्धुं यास्यामि ससुहृद्गणः । अन्यथा त्वनुनेष्यामि भवन्तं सहबान्धवः ॥२७॥
इति नरपतिजल्पनाद्द्विजेन्द्रं कुशिकसुतं समहान्विवेश मन्युः ।
सुहुत इव मखेऽग्निराज्यासिक्तः समभवदुज्ज्वलितो महर्षिवह्निः ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः २१

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य स्नेहपर्याकुलाक्षरम् । समन्युः कौशिको वाक्यं प्रत्युवाच महीपतिम् ॥ १ ॥
पूर्वमर्थं प्रतिश्रुत्य प्रतिज्ञां हातुमिच्छसि । राघवाणामयुक्तोऽयं कुलस्यास्य विपर्ययः ॥ २ ॥
यदीदं ते क्षमं राजन्गमिष्यामि यथागतम् । मिथ्याप्रतिज्ञः काकुत्स्थ सुखी भव सुहृद्वृतः ॥ ३ ॥
तस्य रोषपरीतस्य विश्वामित्रस्य धीमतः । चचाल वसुधा कृत्स्ना देवानां च भयं महत् ॥ ४ ॥
त्रस्तरूपं तु विज्ञाय जगत्सर्वं महानृषिः । नृपतिं सुव्रतो धीरो वासिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥
इक्ष्वाकूणां कुले जातः साक्षाद्धर्म इवापरः । धृतिमान्सुव्रतः श्रीमान्न धर्मं हातुमर्हसि ॥ ६ ॥

और वे ही आपके यज्ञमें विघ्न करते हैं, उन्हींसे सामना है, मैं अपना दयनीय पुत्र न दूंगा, मारीच और सुबाहु दोनों पराक्रमी और शिक्षित हैं ॥ २६ ॥ इन दोनोंमेंके किसी एकसे मैं अपने मित्रोंके साथ युद्ध करनेके लिए जा सकता हूं । यदि आपको यह स्वीकार न हो तो मैं आपसे प्रार्थना करूंगा, आपकी आज्ञा-पालन न करनेके अपराधकी क्षमा कराऊंगा, अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ आपकी विनती करूंगा ॥ २७ ॥ राजा दरसथकी इन बातोंसे कुशिकगोत्री ब्राह्मणश्रेष्ठ विश्वामित्रको क्रोध आया, ऋषि क्रोधसे आग-बबूला होगये, जिस प्रकार यज्ञकी अग्निमें हवन किया गया हो, घी डाला गया हो और वह अग्नि जिस तरह प्रज्वलित होगयी हो, वैसे ही मुनि भी प्रज्वलित हुए ॥ २८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २० ॥

जिसमें स्नेहके कारण अक्षर स्पष्ट रूपमें नहीं हैं राजाके ऐसे वचन सुनकर कौशिक क्रोधित हुए और वे राजासे बोले ॥ १ ॥ पहले प्रतिज्ञा करके, अब आप अपनी उस प्रतिज्ञाको तोड़ना चाहते हैं । रघुवंशियोंकी यह रीति नहीं है । ऐसा होना तो इस कुलका ही नाश है ॥ २ ॥ राजन्, यदि आप प्रतिज्ञा तोड़नेको उचित समझते हैं, उससे होनेवाले फलको उचित समझते हैं, तो मैं अपने स्थानपर जाता हूं, काकुत्स्थवंशकी प्रतिज्ञा झूठी हुई, महाराज आप अपने मित्रोंके साथ सुखी हों ॥ ३ ॥ विश्वामित्रको बड़ा क्रोध आया, फिर भी बुद्धिमत्ताके कारण उन्होंने राजाका कोई अनिष्ट नहीं किया । समूची पृथिवी हिलने लगी, और देवता भी बड़े भयभीत हुए ॥४॥ समस्त जगत् डरगया है, यह देखकर ईश्वरके भी पूज्य (रामचन्द्रके पूज्य) सर्वज्ञ और धीर वसिष्ठ राजासे बोले ॥ ५ ॥ महाराज, आप इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुए हैं, आप शरीरधारी धर्मके समान हैं,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्रिषु लोकेषु विख्यातो धर्मात्मा इति राघवः । स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व नाधर्मं वोढुमर्हसि ॥ ७ ॥
प्रतिश्रुत्य करिष्येति उक्तं वाक्यमकुर्वतः । इष्टापूर्तवधो भूयात्तस्माद्रामं विसर्जय ॥ ८ ॥
कृतास्त्रमकृतास्त्रं वा नैनं शक्ष्यन्ति राक्षसाः । गुप्तं कुशिकपुत्रेण ज्वलनेनामृतं यथा ॥ ९ ॥
एष विग्रहवान्धर्म एष वीर्यवतां वरः । एष विद्याधिको लोके तपसश्च परायणम् ॥१०॥
एषोऽस्त्रान्विविधान्वेत्ति त्रैलोक्ये सचराचरे । नैनमन्यः पुमान्वेत्ति न च वेत्स्यन्ति केचन ॥११॥
न देवा नर्षयः केचिन्नामरा न च राक्षसाः । गन्धर्वयक्षप्रवराः सकिन्नरमहोरगाः ॥१२॥
सर्वास्त्राणि कृशाश्वस्य पुत्राः परमधार्मिकाः । कौशिकाय पुरा दत्ता यदा राज्यं प्रशासति ॥१३॥
तेऽपि पुत्राः कृशाश्वस्य प्रजापतिसुतासुताः । नैकरूपा महावीर्या दीप्तिमन्तो जयावहाः ॥१४॥
जया च सुप्रभा चैव दक्षकन्ये सुमध्यमे । ते सूतेऽस्त्राणि शस्त्राणि शतं परमभास्वरम् ॥१५॥
पञ्चाशतं सुतांल्लेभे जया लब्धवरा वरान् । वधायासुरसैन्यानामप्रमेयानरूपिणः ॥१६॥
सुप्रभाजनयच्चापि पुत्रान्पञ्चाशतं पुनः । संहारान्नाम दुर्धर्षान्दुराक्रामान्बलीयसः ॥१७॥

आप धीर हैं, आपको धर्मका त्याग न करना चाहिए ॥६॥ रघुवंशी राजा दसरथ धर्मात्मा हैं, यह बात तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है, आप अपने धर्मका पालन करें, आप अपने स्वरूपका स्मरण करें, अधर्म न करें अपने स्वभावके विरुद्ध काम न करें॥७॥'करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा करके जो अपनी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता उसके अश्वमेध आदि यज्ञ तथा कुंआ, तालाब आदि खुदवाना निष्फल होजाता है, इसलिए राजन्, आप रामचन्द्रको ऋषिके साथ विदा करें॥८॥रामचन्द्रको अस्त्रोंका ज्ञान हो या न हो, राक्षस इनसे युद्ध न कर सकेंगे, क्योंकि विश्वामित्र इनकी रक्षा करेंगे, जिस प्रकार अग्निके द्वारा रक्षित अमृत कोई राक्षस नहीं ले सकता ॥ ९ ॥ ये रामचन्द्र (और विश्वामित्र भी) शरीरधारी धर्म हैं, पराक्रमियोंमें श्रेष्ठ हैं. इनका ज्ञान स्वाभाविक है और तपस्याके द्वारा इनको प्राप्ति (ज्ञान) होती है ॥ १० ॥ ये रामचन्द्र अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र जानते हैं, त्रिलोकमें स्थावर, जंगम आदि कोई भी इनके स्वरूपको नहीं जानता और कोई जानेगा भी नहीं ॥११॥ देवता, ऋषि, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर तथा नाग ये भी नहीं जानते (रामचन्द्र विष्णुके अवतार हैं, इनका यथार्थ रूप गुप्त है इसलिए उसे सब नहीं जान सकते) ॥१२॥ विश्वामित्रके पास जो विद्या है वह दुर्ज्ञेय है, देवता यक्ष राक्षस आदि को भी उनका ज्ञान नहीं है।) फिर विश्वामित्रके द्वारा रक्षित होनेपर भगवान्के अवतार रामचन्द्रका सामना संसारमें कौन कर सकता है ? इसलिए आप निर्भय रामचन्द्रको जानें) । परम धार्मिक कृशाश्व ऋषिके पुत्रोंने ये सब अस्त्र कौशिकको दिये, जब वे राज्यशासन करते थे॥ १३ ॥ वे अस्त्र भी कृशाश्वके पुत्र ही हैं, वे प्रजापतिकी कन्याके पुत्र हैं, वे कई तरहके हैं, वे बड़े बलवान् हैं, उनमें बड़ा तेज है, उनसे युद्धमें अवश्य विजय होती है ॥ १४ ॥ दक्ष प्रजापतिकी दो सुन्दरी कन्याएँ थीं, जया और सुप्रभा । उनलोगोंने सौ अस्त्र और शस्त्र उत्पन्न किये हैं, वे बड़े ही प्रकाशमान हैं ॥ १५ ॥ जयाने वर पाकर पचास पुत्र उत्पन्न किये, ये बड़े ही उत्तम हैं, इनका प्रभाव बहुत बड़ा है और ये शरीरधारी नहीं हैं, राक्षसों की सेनाको वध करनेके लिए ये उत्पन्न हुए हैं ॥ १६ ॥ सुप्रभाने भी पचास पुत्र उत्पन्न किये, उनके नाम संहार है, वे बड़े बलवान् हैं कोई, उनपर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तानि चास्त्राणि वेत्त्येष यथावत्कुशिकात्मजः । अपूर्वाणां च जनने शक्तो भूयश्च धर्मवित् ॥१८॥
तेनास्य मुनिमुख्यस्य धर्मज्ञस्य महात्मनः । न किंचिदस्त्यविदितं भूतं भव्यं च राघव ॥१९॥
एवंवीर्यो महातेजा विश्वामित्रो महायशाः । न रामगमने राजन्संशयं गन्तुमर्हसि ॥२०॥
तेषां निग्रहणे शक्तः स्वयं च कुशिकात्मजः । तव पुत्रहितार्थाय त्वामुपेत्याभियाचते ॥२१॥

इति मुनिवचनात्प्रसन्नचित्तो रघुवृषभश्च मुमोद पार्थिवः ।
गमनमभिरुरोच राघवस्य प्रथितयशाः कुशिकात्मजाय बुद्ध्या ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः २२

तथा वासिष्ठं ब्रुवति राजा दशरथः स्वयम् । प्रहृष्टवदनो राममाजुहाव सलक्ष्मणम् ॥ १ ॥
कृतस्वस्त्ययनं मात्रा पित्रा दशरथेन च । पुरोधसा वसिष्ठेन मङ्गलैरभिमन्त्रितम् ॥ २ ॥
स पुत्रं मूर्ध्न्युपाघ्राय राजा दशरथस्तदा । ददौ कुशिकपुत्राय सुप्रीतेनान्तरात्मना ॥ ३ ॥
ततो वायुः सुखस्पर्शो नीरजस्को ववौ तदा । विश्वामित्रगतं रामं दृष्ट्वा राजीवलोचनम् ॥ ४ ॥
पुष्पवृष्टिर्महत्यासीद्देवदुन्दुभिनिःस्वनैः । शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषः प्रयाते तु महात्मनि ॥ ५ ॥

आक्रमण नहीं कर सकता और न कोई उनका सामना ही कर सकता है ॥ १७ ॥ ये कुशिकगोत्री विश्वामित्र उन अस्त्रोंको जानते हैं, ये धर्मात्मा अन्य नये-नये अस्त्रोंको उत्पन्न करनेकी भी शक्ति रखते हैं ॥ १८ ॥ हे दसरथ, ये विश्वामित्र प्रधान ऋषियोंमेंसे हैं, ये धर्म जाननेवाले हैं, महात्मा हैं, भूत और भविष्य कुछ भी इनसे अविदित नहीं है ॥१९॥ विश्वामित्र ऐसे पराक्रमी हैं, बड़े यशस्वी हैं, इनके साथ रामचन्द्रके जानेमें आप किसी प्रकारका सन्देह न करें ॥२०॥ उन राक्षसोंका दमन स्वयं विश्वामित्र ही कर सकते हैं, पर तुम्हारे पुत्रके कल्याणकी इच्छासे ये तुम्हारे पुत्रको मांग रहे हैं ॥ २१ ॥ वसिष्ठजीके वचनोंको सुनकर राजाओंमें अग्रगामी, रघुश्रेष्ठ राजा दसरथ प्रसन्न हुए, उनके मनके सन्देह जाते रहे । यशस्वी राजाने विश्वामित्रको प्रसन्न करनेके लिए रामचन्द्रको भेजना मन ही मन स्वीकार किया ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका एकीसवां सर्ग समाप्त ॥ २१ ॥

वसिष्ठके वैसा कहनेपर राजा दसरथने स्वयं प्रसन्न होकर लक्ष्मणके साथ रामचन्द्रको बुलाया ॥१॥ माता और पिताने रामचन्द्रके लिए स्वस्तिवाचन (रक्षाके लिए की जानेवाली एक धार्मिक क्रिया) किये, पुरोहित वसिष्ठने माङ्गलिक मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित किया ॥ २ ॥ तदनन्तर पुत्र रामचन्द्रका सिर सूंघकर राजा दसरथने प्रसन्नतापूर्वक विश्वामित्रको समर्पित किया ॥ ३ ॥ उस समय वायु बड़ी सुहावनी बहने लगी, जिसमें धूलिके कण न थे, राजीव-लोचन रामचन्द्र जब विश्वामित्रके पास आये ॥ ४ ॥ तब देवताओंके नगाड़ेकी ध्वनिके साथ बड़ी पुष्प-वृष्टि हुई । जब महात्मा विश्वामित्र अयोध्यासे विदा हुए, उस समय शंख और नगाड़ेका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विश्वामित्रो ययावग्रे ततो रामो महायशाः । काकपक्षधरो धन्वी तं च सौमित्रिरन्वगात् ॥ ६ ॥
कलापिनौ धनुष्पाणी शोभयानौ दिशो दश । विश्वामित्रं महात्मानं त्रिशीर्षाविव पन्नगौ ॥ ७ ॥
अनुजग्मतुरक्षुद्रौ पितामहमिवाश्विनौ । अनुयातौ श्रिया दीप्तौ शोभयन्तावनिन्दितौ ॥ ८ ॥
तदा कुशिकपुत्रं तु धनुष्पाणी स्वलंकृतौ । बद्धगोधाङ्गुलित्राणौ खड्गवन्तौ महाद्युती ॥ ९ ॥
कुमारौ चारुवपुषौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । अनुयातौ श्रिया दीप्तौ शोभयेतामनिन्दितौ ॥१०॥
स्थाणुं देवमिवाचिन्त्यं कुमाराविव पावकी । अध्यर्धयोजनं गत्वा सरय्वा दक्षिणे तटे ॥११॥
रामेति मधुरां वाणीं विश्वामित्रोऽभ्यभाषत । गृहाण वत्स सलिलं मा भूत्कालस्य पर्ययः ॥१२॥
मन्त्रग्रामं गृहाण त्वं बलामतिबलां तथा । न श्रमो न ज्वरो वा ते न रूपस्य विपर्ययः ॥१३॥
न च सुप्तं प्रमत्तं वा धर्षयिष्यन्ति नैर्ऋताः । न बाह्वोः सदृशो वीर्ये पृथिव्यामस्ति कश्चन ॥१४॥
त्रिषु लोकेषु वा राम न भवेत्सदृशस्तव । बलामतिबलां चैव पठतस्तात राघव ॥१५॥
न सौभाग्ये न दाक्षिण्ये न ज्ञाने बुद्धिनिश्चये । नोत्तरे प्रतिवक्तव्ये समो लोके तवानघ ॥१६॥
एतद्विद्याद्वये लब्धे न भवेत्सदृशस्तव । बला चातिबला चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ ॥१७॥

मङ्गल-सूचक शब्द हुआ ॥ ५ ॥ आगे-आगे विश्वामित्र जारहे थे, उनके पीछे महायशस्वी रामचन्द्र और बालक लक्ष्मण धनुष लेकर रामचन्द्रके पीछे जा रहे थे ॥६॥ राम और लक्ष्मण धनुष धारण किये हुए थे पीठकी ओर दोनों कन्धोंपर बाण रखनेका तूणीर बँधा हुआ था, इससे दशों दिशाएँ शोभित होरही थीं, मालूम होता था कि महात्मा विश्वामित्रके पीछे-पीछे तीन सिरवाले दो सांप जा रहे हैं ॥ ७॥ जिस प्रकार ब्रह्माको अनुगमन दोनों अश्विनीकुमार करते हैं, उसी प्रकार श्रेष्ठ वीर राम और लक्ष्मण विश्वामित्रका अनुगमन करने लगे, ये दोनों श्रीमान् थे, दीप्तिमान् थे, इनमें कोई दोष न था, शरीर और मन दोनो ही दोषहीन थे ॥ ८ ॥ ये दोनों धनुष लिये हुए थे, वीर वेषसे सजे हुए थे, अँगुलित्राण (अँगुलियोंकी रक्षा करनेकी एक वस्तु दस्तानेकी तरहकी) पहने हुए थे, तलवार लिये हुए थे, बड़ेही सुन्दर मालूम होते थे ॥ ९ ॥ सुन्दर शरीरवाले कुमार राम और लक्ष्मण दोनों भाई शोभा और दीप्तिसे युक्त थे, निर्दोष थे, इनसे विश्वामित्र शोभित होरहे थे ॥ १० ॥ अचिन्तनीय प्रभाववाले महादेवके दोनों स्कन्द और विशाखके समान दोनों राम और लक्ष्मण अयोध्यासे आधा योजन (दो कोश) जाकर सरयूके दक्षिण तटपर पहुंचे ॥ ११ ॥ उस समय विश्वामित्रने बड़े कोमल स्वरमें "राम" ऐसा कहा और कहा, वत्स, जल लेओ, जिसमें समय न बीतने पावे । (जो विद्या मैं देना चाहता हूँ उसके लिए योग्य मुहूर्त आया है, वह बीतने न पावे) ॥१२॥ यह मन्त्र लो, ये मन्त्र बला और अतिबला नामक अस्त्र-विद्याके हैं। इस विद्याके प्रभावसे तुम्हें न कोई शारीरिक परिश्रम ही और न मानसिक ही कष्ट होगा और न रूप में ही किसी प्रकारका परिवर्तन होगा ॥१३॥ सोते या असावधान किसी भी दशामें राक्षस तुम्हारा अपकार नहीं कर सकते, तुम्हारे समान बलवान् पृथिवीमें कोई न रहेगा ॥१४॥ बला और अतिबला इन विद्याओंके जान लेनेसे, हे रामचन्द्र, तीनों लोकोंमें तुम्हारे समान कोई न रहेगा ॥ १५ ॥ सौभाग्य, अधिक पराक्रम, ज्ञान, बुद्धि-सम्बन्धी विचार और किसी प्रकारके संशयके मिटाने आदिमें, हे अनघ, हे निष्पाप, तुम्हारे समान कोई न होगा ॥ १६ ॥ इन दोनों विद्याओंके पाजानेपर तुम्हारे समान कोई न होगा, क्योंकि ये बला और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्षुत्पिपासे न ते राम भविष्येते नरोत्तम । बलामतिबलां चैव पठतस्तात राघव ॥१८॥
विद्याद्वयमधीयाने यशश्चाथ भवेद्भुवि । पितामहसुते ह्येते विद्ये तेजःसमन्विते ॥१९॥
प्रदातुं तव काकुत्स्थ सदृशस्त्वं हि पार्थिव । कामं बहुगुणाः सर्वे त्वय्येते नात्र संशयः ॥२०॥
तपसा संभृते चैते बहुरूपे भविष्यतः । ततो रामो जलं स्पृष्ट्वा प्रहृष्टवदनः शुचिः ॥२१॥
प्रतिजग्राह ते विद्ये महर्षेर्भावितात्मनः । विद्यासमुदितो रामः शुशुभे भीमविक्रमः ॥२२॥
सहस्ररश्मिर्भगवाञ्शरदीव दिवाकरः । गुरुकार्याणि सर्वाणि नियुज्य कुशिकात्मजः ।
ऊषुस्तां रजनीं तत्र सरय्वां ससुखं त्रयः ॥२३॥
दशरथनृपसूनुसत्तमाभ्यां तृणशयनेऽनुचिते तदोषिताभ्याम् ।
कुशिकसुतवचोनुलालिताभ्यां सुखमिव सा विबभौ विभावरी च ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः २३

प्रभातायां तु शर्वर्यां विश्वामित्रो महामुनिः । अभ्यभाषत काकुत्स्थौ शयानौ पर्णसंस्तरे ॥ १ ॥
कौसल्या सुप्रजा राम पूर्वा संध्या प्रवर्तते । उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्तव्यं दैवमाह्निकम् ॥ २ ॥

अतिबला विद्याएँ सब प्रकारके ज्ञानकी माताएँ हैं ॥ १७ ॥ हे नरोत्तम राम, विद्याओंके प्रभावसे तुम्हें भूख-प्यासका कष्ट न होगा । सबकी रक्षाके लिए इन विद्याओंको ग्रहण करो ॥ १८ ॥ इन विद्याओंके अध्ययनसे मनुष्यका संसारमें यश भी होता है, क्योंकि ये दोनों विद्याएँ ब्रह्माकी पुत्री (उत्पन्न की हुई) हैं और बड़ी तेजस्विनी हैं ॥१९॥ हे काकुत्स्थ, राजन्, तुम इन विद्याओंके ग्रहण करनेके सर्वथा योग्य हो, इसलिए तुम्हें देनेके लिए मेरी इच्छा हुई है । इन विद्याओंके तुम्हारे पास जानेसे बड़े-बड़े लाभ होंगे, इसमें सन्देह नहीं ॥ २० ॥ इन विद्याओंको मैंने तपस्याके द्वारा प्राप्त किया है, तुम्हारे यहां जानेसे इनका बहुत विस्तार होगा । रामचन्द्रने आचमन किया और शुद्ध होकर प्रसन्नता पूर्वक ॥ २१ ॥ उन ब्रह्मज्ञानी मुनिसे उन विद्याओंको ग्रहण किया । विद्यासे युक्त होनेपर बड़े भारी पराक्रमीके समान वे उसीप्रकार शोभित होने लगे ॥२२॥ जिस प्रकार हजार किरणों-वाले भगवान् सूर्य शरद् ऋतुमें शोभित होते हैं । गुरु विश्वामित्रके पैर दबाना आदि सब काम करके, उस रात्रिमें सरयूके तीरपर तीनोंने सुखपूर्वक निवास किया ॥२३॥ दशरथ राजाके दुलारे दोनों पुत्र उस रात्रिमें तृण-शयनपर सोये, यद्यपि उनके लिए तृणकी शय्या अनुचित है । फिर भी विश्वामित्रके वचनों (कथा आदि)से वे प्रसन्न रहे और इस प्रकार वह रात आनन्दसे बीती॥२४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका बाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २२॥

रातके बीतनेपर महामुनि विश्वामित्रने राम-लक्ष्मणसे जो तृणके बिछौनेपर सो रहे थे, कहा ॥ १ ॥ राम, तुम्हारे समान पुत्र पाकर कौसल्या सुपुत्रवती है (ऐसे सुपुत्रको इस समय न सोना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ । स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जपेतुः परमं जपम् ॥ ३ ॥
कृताह्निकौ महावीर्यौ विश्वामित्रं तपोधनम् । अभिवाद्यातिसंहृष्टौ गमनायाभितस्थतुः ॥ ४ ॥
तौ प्रयान्तौ महावीर्यौ दिव्यां त्रिपथगां नदीम् । ददृशाते ततस्तत्र सरय्वाः संगमे शुभे ॥ ५ ॥
तत्राश्रमपदं पुण्यमृषीणां भावितात्मनाम् । बहुवर्षसहस्राणि तप्यतां परमं तपः ॥ ६ ॥
तं दृष्ट्वा परमप्रीतौ राघवौ पुण्यमाश्रमम् । ऊचतुस्तं महात्मानं विश्वामित्रमिदं वचः ॥ ७ ॥
कस्यायमाश्रमः पुण्यः को न्वस्मिन्वसते पुमान् । भगवञ्छ्रोतुमिच्छावः परं कौतूहलं हि नौ ॥ ८ ॥
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुंगवः । अब्रवीच्छ्रूयतां राम यस्यायं पूर्व आश्रमः ॥ ९ ॥
कन्दर्पो मूर्तिमानासीत्काम इत्युच्यते बुधैः । तपस्यन्तमिह स्थाणुं नियमेन समाहितम् ॥१०॥
कृतोद्वाहं तु देवेशं गच्छन्तं समरुद्गणम् । धर्षयामास दुर्मेधा हुंकृतश्च महात्मना ॥११॥
अवध्यातश्च रुद्रेण चक्षुषा रघुनन्दन । व्यशीर्यन्त शरीरात्स्वात्सर्वगात्राणि दुर्मतेः ॥१२॥
तत्र गात्रं हतं तस्य निर्दग्धस्य महात्मनः । अशरीरः कृतः कामः क्रोधादेवेश्वरेण ह ॥१३॥
अनङ्ग इति विख्यातस्तदाप्रभृति राघव । स चाङ्गविषयः श्रीमान्यत्राङ्गं स मुमोच ह ॥१४॥
तस्यायमाश्रमः पुण्यस्तस्येमं मुनयः पुरा । शिष्या धर्मपरा वीर तेषां पापं न विद्यते ॥१५॥

चाहिए) । प्रातःकालकी सन्ध्या (रात और दिनकी सन्धि) होरही है, हे नरश्रेष्ठ, उठो प्रतिदिन किये जानेवाले देवकर्मोंको करो ॥ २ ॥ उन ऋषिके अत्यन्त उदार वचन सुनकर उन दोनों नरपुङ्गवोंने स्नान किया, अर्घ्य दिया और गायत्रीका जप किया ॥ ३ ॥ वे महापराक्रमी वीर आन्हिक कृत्य करके और विश्वामित्र मुनिको प्रणाम करके जानेके लिए तयार हुए ॥ ४ ॥ उन वीरोंने चलते-चलते दिव्य गङ्गानदीका दर्शन सरयू नदीके सङ्गमस्थान पर किया ॥ ५ ॥ वहां ब्रह्मज्ञानी महर्षिका पवित्र आश्रम था, जिसमें ऋषि हजारों वर्षोंसे तपस्या कर रहे थे ॥ ६ ॥ उस पवित्र आश्रमको देखकर राम और लक्ष्मण दोनों बहुत प्रसन्न हुए, उन लोगोंने महात्मा विश्वामित्रसे यह बात पूछी ॥७॥ यह किसका पवित्र आश्रम है, और इसमें कौन पुरुष रहता है यह हमलोग जानना चाहते हैं, इसके जाननेकी हमलोगोंकी बड़ी उत्कण्ठा है ॥ ८ ॥ उन दोनोंके वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र हँसकर बोले, राम, सुनो, जिसका यह पूर्व आश्रम है ॥ ९ ॥ जो 'काम' इस नामसे प्रसिद्ध है वह कन्दर्प (काम) पहले मूर्तिमान् (शरीरधारी) थे, । शिव इस आश्रममें चित्त स्थिर करके नियमसे तपस्या करते थे । विवाह करके देवताओंके साथ जाते हुए उन महादेवका चित्त मूर्ख कामदेवने विकृत कर दिया । महात्मा शिवने उसे हुँकार किया (हुँ करके उसे डरवाया) ॥ ११ ॥ हे रघुनन्दन, महादेवने एक आंखसे उसे देखा और उस मूर्खके शरीरके सब अङ्ग नष्ट होगये ॥१२॥ महात्मा शिवके द्वारा जलाये जानेपर उसका समस्त शरीर जल गया, क्रोधसे महादेवने कामको शरीर-हीन कर दिया ॥१३॥ हे राघव, तभीसे कामदेव 'अनङ्ग' नामसे प्रसिद्ध हुआ । जिस देशमें कामदेवने अपना शरीर छोड़ा है वह देश अङ्गदेश कहा जाता है ॥१४॥ उन्हीं शिवका यह पवित्र आश्रम है, हे वीर, ये सब धर्मपरायण मुनि उन्हींके शिष्य हैं, ये मुनि निष्पाप हैं ॥ १५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इहाद्य रजनीं राम वसेम शुभदर्शन । पुण्ययोः सरितोर्मध्ये श्वस्तरिष्यामहे वयम् ॥१६॥
अभिगच्छामहे सर्वे शुचयः पुण्यमाश्रमम् । इह वासःपरोऽस्माकं सुखं वत्स्यामहे निशाम् ॥१७॥
स्नाताश्च कृतजप्याश्च हुतहव्या नरोत्तम । तेषां संवदतां तत्र तपोदीर्घेण चक्षुषा ॥१८॥
विज्ञाय परमप्रीता मुनयो हर्षमागमन् । अर्घ्यं पाद्यं तथातिथ्यं निवेद्य कुशिकात्मजे ॥१९॥
रामलक्ष्मणयोः पश्चादकुर्वन्नातिथिक्रियाम् । सत्कारं समनुप्राप्य कथाभिरभिरञ्जयन् ॥२०॥
यथार्हमजपन्संध्यामृषयस्ते समाहिताः । तत्र वासिभिरानीता मुनिभिः सुव्रतैः सह ॥२१॥
न्यवसत्स सुखं तत्र कामाश्रमपदे तथा । कथाभिरभिरामाभिरभिरामौ नृपात्मजौ ।
रमयामास धर्मात्मा कौशिको मुनिपुंगवः ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः २४

ततः प्रभाते विमले कृताह्निकमरिंदमौ । विश्वामित्रं पुरस्कृत्य नद्यास्तीरमुपागतौ ॥ १ ॥
ते च सर्वे महात्मानो मुनयः संशितव्रताः । उपस्थाप्य शुभां नावं विश्वामित्रमथाब्रुवन् ॥ २ ॥

हे शुभदर्शन राम, इन पवित्र नदियोंके सङ्गमपर यहीं शिवाश्रममें आज रातको हमलोग निवास करें और कल नदी पार करें ॥ १६ ॥ हमलोग पवित्र होकर इस पवित्र आश्रममें चलें, यहाँ हमलोगोंका निवास बड़ा उत्तम होगा, रातको हमलोग सुखपूर्वक यहां रहेंगे ॥ १७ ॥ हमलोग स्नान करेंगे, और जप करके हवन करगे (इस स्थानपर इन बातोंकी सुविधा है) । इस प्रकार आपसमें सलाह करनेवाले विश्वामित्र आदिका आगमन उन ऋषियोंने दूरकी बात जान लेनेवाले ज्ञान-चक्षुके द्वारा ॥ १८ ॥ जानलिया (जान लिया कि ये लोग ताड़का आदिका नाश करनेके लिए आये हैं), इससे वे बड़े प्रसन्न हुए और वे पुलकित होगये, विश्वामित्रको अर्घ्य, पाद्य, आतिथ्य दिये ॥ १९ ॥ तदनन्तर राम-लक्ष्मणके भी उन लोगोंने अतिथि-सत्कार किये । सत्कार करके मुनियोंने वचनके द्वारा उन लोगोंको प्रसन्न किया ॥ २० ॥ उन सब ऋषियोंने चित्तको स्थिर करके यथोचित सन्ध्योपासन किया और उन लोगोंने विश्वामित्र आदिको शयन करनेके स्थानपर पहुंचा दिया ॥ २१ ॥ मुनिने सुखपूर्वक वहां निवास किया, धर्मात्मा मुनिपुंगव कौशिकने उन राजपुत्रोंको सुन्दर कथाओंके द्वारा प्रसन्न किया ।

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका तेईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २३ ॥

दूसरे दिन प्रातः काल विश्वामित्रने गङ्गाके विमल जलमें प्रातःकालका स्नान-तर्पण कर लिया । उनको आगे करके राम और लक्ष्मण गंगानदीके तीर आये ॥१॥ उस आश्रमके वासी सब महात्मा मुनि उत्तम (दृढ़, न डूबनेवाली) नाव लेआकर मुनिसे बोले ॥ २ ॥ आप नौकापर चढ़ें, राजपुत्रोंको भी साथ लेलें, मार्गमें निर्विघ्नतापूर्वक जांय, विलम्ब न करें ॥ ३ ॥ विश्वामित्रने उनलोगोंकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आरोहतु भवान्नावं राजपुत्रपुरस्कृतः । अरिष्टं गच्छ पन्थानं मा भूत्कालस्य पर्ययः ॥ ३ ॥
विश्वामित्रस्तथेत्युक्त्वा तानृषीन्प्रतिपूज्य च । ततार सहितस्ताभ्यां सरितं सागरंगमाम् ॥ ४ ॥
तत्र शुश्राव वै शब्दं तोयसंरम्भवर्धितम् । मध्यमागम्य तोयस्य तस्य शब्दस्य निश्चयम् ॥ ५ ॥
ज्ञातुकामो महातेजाः सह रामः कनीयसा । अथ रामः सरिन्मध्ये पप्रच्छ मुनिपुंगवम् ॥ ६ ॥
वारिणो भिद्यमानस्य किमयं तुमुलो ध्वनिः । राघवस्य वचः श्रुत्वा कौतूहलसमन्वितम् ॥ ७ ॥
कथयामास धर्मात्मा तस्य शब्दस्य निश्चयम् । कैलासपर्वते राम मनसा निर्मितं परम् ॥ ८ ॥
ब्रह्मणा नरशार्दूल तेनेदं मानसं सरः । तस्मात्सुस्राव सरसः सायोध्यामुपगूहते ॥ ९ ॥
सरःप्रवृत्ता सरयूः पुण्या ब्रह्मसरश्च्युता । तस्यायमतुलः शब्दो जाह्नवीमभिवर्तते ॥१०॥
वारिसंक्षोभजो राम प्रणामं नियतः कुरु । ताभ्यांतु तावुभौ कृत्वा प्रणाममतिधार्मिकौ ॥११॥
तीरं दक्षिणमासाद्य जग्मतुर्लघुविक्रमौ । स वनं घोरसंकाशं दृष्ट्वा नरवरात्मजः ॥१२॥
अविप्रहतमैक्ष्वाकः पप्रच्छ मुनिपुंगवम् । अहो वनमिदं दुर्गं झिल्लिकागणसंयुतम् ॥१३॥
भैरवैः श्वापदैः कीर्णं शकुन्तैर्दारुणारवैः । नानाप्रकारैः शकुनैर्वाश्यद्भिर्भैरवस्वनैः ॥१४॥
सिंहव्याघ्रवराहैश्च वारणैश्चापि शोभितम् । धवाश्वकर्णककुभैर्बिल्वतिन्दुकपाटलैः ॥१५॥

बात मानी, और उन ऋषियोंकी प्रतिपूजा (पूजाके बदलेमें पूजा) की, तदनन्तर समुद्र तक जानेवाली नदीको पार करने लगे ॥४॥ नदीके बीचमें आनेपर उन लोगोंने कोई शब्द सुना, जो जलके साथ टकराकर बड़ा होगया था, वह कैसा शब्द है इस बातको निश्चित रूपसे ॥ ५ ॥ जाननेकी इच्छा रामचन्द्रने की, लक्ष्मण भी जानना चाहते थे, इस कारण वहीं नदीके बीचमें रामचन्द्रने मुनिपुङ्गव विश्वामित्रसे पूछा ॥ ६ ॥ जलके टकरानेके कारण क्या यह तुमुल ध्वनि होरही है ? रामचन्द्रकी बातमें उनकी उत्कण्ठा टपकती थी । उस वचनको सुनकर ॥७॥ धर्मात्मा मुनि उस शब्दका निर्णय (कैसा शब्द है) कहने लगे । कैलास पर्वतपर ब्रह्माने अपने मानसिक सङ्कल्पसे अति उत्तम सर (तालाब) बनाया ॥८ ॥ हे नरश्रेष्ठ, ब्रह्माने वह सर मानसिक सङ्कल्पसे बनाया, इस कारण उसका नाम " मानससर " हुआ । उस तालाब (झील) से एक सोता बहकर चला जो अयोध्या होकर आगे गया ॥ ९ ॥ उसी मानससरका निर्मल सोता सरयू नदीके नामसे विख्यात हुआ, वह नदी बड़ी पवित्र है, वही नदी गंगामें मिलरही है, और उसीका यह बड़ा शब्द होरहा है ॥ १० ॥ राम, यह शब्द दो नदियोंके टकरानेसे उत्पन्न हो रहा है, सावधान होकर इन नदियोंको प्रणाम करो । उन दोनों नदियोंको धर्मात्मा राम और लक्ष्मणने प्रणाम किये ॥ ११ ॥ गंगाके दक्षिण तीरपर आकर वे शीघ्रतासे चले । रामचन्द्रने मार्गमें एक बड़ा भयानक वन देखा ॥ १२ ॥ उस वनको देखकर इक्ष्वाकुवंशी रामचन्द्रने मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रसे पूछा-महाराज, यह बड़ा भयानक वन है, इसमें मनुष्योंके आने-जानेके भी चिन्ह नहीं मालूम पड़ते, इसमें झिल्ली (इस नामके एक कीड़े) के शब्द होरहे हैं ॥१३॥ भयानक हिंस्रजन्तु और शकुन्त (भास नामका पक्षी) यहां भरे पड़े हैं, डरावने शब्दवाले बहुतसे पक्षी भयानक स्वरमें बोल रहे हैं, उनका बोलना बहुत बुरा मालूम पड़ता है ॥ १४ ॥ सिंह, बाघ, सूकर और हाथी इस वनमें अधिक हैं, धव, अश्वकर्ण, ककुभ, बिल्व,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संकीर्णं बदरीभिश्च किं न्विदं दारुणं वनम् । तमुवाच महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः ॥१६॥
श्रूयतां वत्स काकुत्स्थ यस्यैतद्दारुणं वनम् । एतौ जनपदौ स्फीतौ पूर्वमास्तां नरोत्तम ॥१७॥
मलदाश्च करूषाश्च देवनिर्माणनिर्मितौ । पुरा वृत्रवधे राम मलेन समभिप्लुतम् ॥१८॥
क्षुधा चैव सहस्राक्षं ब्रह्महत्या समाविशत् । तमिन्द्रं मलिनं देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥१९॥
कलशैः स्नापयामासुर्मलं चास्य प्रमोचयन् । इह भूम्यां मलं दत्त्वा देवाः कारूषमेव च ॥२०॥
शरीरजं महेन्द्रस्य ततो हर्षं प्रपेदिरे । निर्मलो निष्करूषश्च शुद्ध इन्द्रो यथाभवत् ॥२१॥
ततो देशस्य सुप्रीतो वरं प्रादादनुत्तमम् । इमौ जनपदौ स्फीतौ ख्यातिं लोके गमिष्यतः॥२२॥
मलदाश्च करूषाश्च ममाङ्गमलधारिणौ । साधु साध्विति तं देवाः पाकशासनमब्रुवन् ॥२३॥
देशस्य पूजां तां दृष्ट्वा कृतां शक्रेण धीमता । एतौ जनपदौ स्फीतौ दीर्घकालमरिंदम ॥२४॥
मलदाश्च करूषाश्च मुदिता धनधान्यतः । कस्यचित्त्वथ कालस्य यक्षिणी कामरूपिणी ॥२५॥
बलं नागसहस्रस्य धारयन्ती तदा ह्यभूत् । ताटका नाम भद्रं ते भार्या सुन्दस्य धीमतः॥२६॥
मारीचो राक्षसः पुत्रो यस्याः शक्रपराक्रमः । वृत्तबाहुर्महाशीर्षो विपुलास्यतनुर्महान् ॥२७॥
राक्षसो भैरवाकारो नित्यं त्रासयते प्रजाः । इमौ जनपदौ नित्यं विनाशयति राघव ॥२८॥

तिन्दुक, पाटल आदि वृक्ष इस वनमें हैं ॥ १५ ॥ बैरके पेड़ भी बहुत हैं । यह भयानक वन कौन है इसका क्या नाम है ? महातेजस्वी, महामुनि विश्वामित्र रामचन्द्रसे बोले ॥ १६ ॥ बेटा काकुत्स्थ (वंशका नाम), सुनो, जिसका यह भयानक वन है । हे नरोत्तम, यहां पहले दो बड़े ऐश्वर्यशाली प्रान्त थे, ॥ १७ ॥ उनके नाम मलद और करुष थे, देवताओंके प्रयत्नसे उनका निर्माण हुआ था । राम, बहुत पहले समयमें, वृत्रासुरके वध होजानेपर इन्द्रको पाप लगा ॥ १८ ॥ भूख और ब्रह्महत्या भी उन्हें लगी । उन मलिन इन्द्रको तपस्वी ऋषियों और देवताओंने ॥१९॥ घड़ेसे स्नान कराया और उनका पाप दूर किया । देवताओंने इन्द्रका मल(पाप) और कारुष(भूख)इस भूमिको दी और उनको पवित्र बनाया ॥ २० ॥ इन्द्र निर्मल (निष्पाप) निष्करुष (अबुभुक्षित) होकर शुद्ध होगये. उनके शरीर-का मल दूर होगया, इससे देवता बहुत प्रसन्न हुए ॥ २१ ॥ उनके मल धारण करने के कारण इन्द्र इन देशोंपर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने वर दिया कि ये दोनों देश बड़े समृद्धिशाली होंगे, ॥२२क्योंकि इन देशोंने हमारे शरीर का मल धारण किया है । इनके नाम मलद और कारुष होंगे । देवताओंने इन्द्रको साधुवाद दिया ॥ २३ ॥ क्योंकि बुद्धिमान इन्द्रने इन दोनों देशोंकी प्रतिष्ठा की थी । इस तरह ये दोनों देश बहुत दिनों तक समृद्धिशाली रहे ॥ २४ ॥ मलद और कारुष देशके रहनेवाले धन-धान्यसे भरे-पूरे थे, प्रसन्न थे । थोड़े दिनोंके बाद अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण करनेवाली एक यक्षिणी ॥ २५ ॥–आयी, उसका बल हजार हाथियोंके बराबर था, ताड़का उसका नाम है, आपका कल्याण हो (ताड़काके भयसे मुनिके मनमें आशङ्का उत्पन्न हुई और उसे दूर करनेके लिए उन्होंने रामचन्द्रको आशीर्वाद दिया), वह सुन्द नामक राक्षसकी स्त्री है ॥२६॥ मारीच नामका राक्षस उसीका पुत्र है जो इन्द्रके समान पराक्रमी है । उस राक्षसकी भुजा गोली है, लम्बी है, माथा बहुत बड़ा है, मुंह भी बड़ा है उसका शरीर भी बड़ा विशाल है ॥ २७ ॥ वह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मलदांश्च करूषांश्च ताटका दुष्टचारिणी । सेयं पन्थानमावृत्य वसत्यत्यर्धयोजने ॥२९॥
अतएव च गन्तव्यं ताटकाया वनं यतः । स्वबाहुबलमाश्रित्य जहीमां दुष्टचारिणीम् ॥३०॥
मन्नियोगादिमं देशं कुरु निष्कण्टकं पुनः । नहि कश्चिदिमं देशं शक्तो ह्यागन्तुमीदृशम् ॥३१॥
यक्षिण्या घोरया राम उत्सादितमसह्यया । एतत्ते सर्वमाख्यातं यथैतद्दारुणं वनम् ।
यक्ष्या चोत्सादितं सर्वमद्यापि न निवर्तते ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशः सर्गः २५

अथ तस्याप्रमेयस्य मुनेर्वचनमुत्तमम् । श्रुत्वा पुरुषशार्दूलः प्रत्युवाच शुभां गिरम् ॥ १ ॥
अल्पवीर्या यदा यक्षी श्रूयते मुनिपुंगव । कथं नागसहस्रस्य धारयत्यबला बलम् ॥ २ ॥
इत्युक्तं वचनं श्रुत्वा राघवस्यामितौजसः । हर्षयञ्श्लक्ष्णया वाचा सलक्ष्मणमरिंदमम् ॥ ३ ॥
विश्वामित्रोऽब्रवीद्वाक्यं शृणु येन बलोत्कटा । वरदानकृतं वीर्यं धारयत्यबला बलम् ॥ ४ ॥
पूर्वमासीन्महायक्षः सुकेतुर्नाम वीर्यवान् । अनपत्यः शुभाचारः स च तेपे महत्तपः ॥ ५ ॥

भयानक राक्षस प्रजाको सदा त्रास (दुःख) देता रहता है, रामचन्द्र, इन दोनों देशोंका विनाश भी वही करता है ॥ २८ ॥ दुष्टा ताड़का भी मलद और कारुष देशोंका विनाश किया करती है। यहाँसे आधे योजनपर वह रास्ता रोककर बैठी है ॥ २९ ॥ अतएव ताड़कावनसे (जिधर ताड़का है उधरसे ही) हमलोग चलें, और रामचन्द्र, तुम अपने बाहुबलसे इस दुष्टाको मार डालो ॥ ३० ॥ मेरी आज्ञासे यह काम करो (स्त्रीको मारना पाप है, रामचन्द्रके इस विचारको दबानेके लिए विश्वामित्रने कहा मेरी आज्ञासे । गुरुकी आज्ञाका पालन अवश्य करना चाहिए, चाहे वह कैसी ही हो, उसमें पाप नहीं होता), इस देशका सङ्कट दूर कर दो, यह ऐसा भयानक देश है कि कोई भी यहां आ नहीं सकता ॥३१॥ उस भयानक यक्षिणीने इस देशको उजाड़ा है, इस वनके सम्बन्धकी सब बातें मैंने कहीं जैसा यह भयानक वन है । यक्षिणीने इस देशको उजाड़ा वह आज भी नहीं पनापा ॥ ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका चौबीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २४ ॥

महाप्रभावशाली उन मुनिके इस वचनको सुनकर पुरुषसिंह रामचन्द्रने उत्तर दिया ॥ १ ॥ महाराज, यक्ष जाति तो बलवान नहीं होती, सुना जाता है कि वह दुर्बल होती है, फिर इसने हजार हाथियोंका बल कहांसे पाया ॥२॥ अमितपराक्रमी रामचन्द्रके इस वचनको सुनकर विश्वामित्रने राम और लक्ष्मणसे कहा, मुनि बड़े प्रसन्न थे इस कारण उनकी वाणी बड़ी मनोहर होगयी थी ॥ ३ ॥ मुनिने कहा, सुनो, जिस कारणसे यह बलवान् होगयी, यह अबला वरदान पाकर बलवती हुई है, यह इसका स्वाभाविक बल नहीं है ॥ ४ ॥ पहले सुकेतु नामका एक यक्ष था, वह पराक्रमी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पितामहस्तु सुप्रीतस्तस्य यक्षपतेस्तदा । कन्यारत्नं ददौ राम ताटकां नाम नामतः ॥ ६ ॥
ददौ नागसहस्रस्य बलं चास्याः पितामहः । नत्वेव पुत्रं यक्षाय ददौ चासौ महायशाः ॥ ७ ॥
तां तु बालां विवर्धन्तीं रूपयौवनशालिनीम् । जम्भपुत्राय सुन्दाय ददौ भार्यां यशस्विनीम् ॥ ८ ॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य यक्षी पुत्रं व्यजायत । मारीचं नाम दुर्धर्षं यः शापाद्राक्षसोऽभवत् ॥ ९ ॥
सुन्दे तु निहते राम अगस्त्यमृषिसत्तमम् । ताटका सह पुत्रेण प्रधर्षयितुमिच्छति ॥१०॥
भक्षार्थं जातसंरम्भा गर्जन्ती साभ्यधावत । आपतन्तीं तु तां दृष्ट्वा अगस्त्यो भगवानृषिः ॥११॥
राक्षसत्वं भजस्वेति मारीचं व्याजहार सः । अगस्त्यः परमामर्षस्ताटकामपि शप्तवान् ॥१२॥
पुरुषादी महायक्षी विकृता विकृतानना । इदं रूपं विहायाशु दारुणं रूपमस्तु ते ॥१३॥
सैषा शापकृतामर्षात्ताटका क्रोधमूर्च्छिता । देशमुत्सादयत्येनमगस्त्याचरितं शुभम् ॥१४॥
एनां राघव दुर्वृत्तां यक्षीं परमदारुणाम् । गोब्राह्मणहितार्थाय जहि दुष्टपराक्रमाम् ॥१५॥
नह्येनां शापसंसृष्टां कश्चिदुत्सहते पुमान् । निहन्तुं त्रिषु लोकेषु त्वामृते रघुनन्दन ॥१६॥
नहि ते स्त्रीवधकृते घृणा कार्या नरोत्तम । चातुर्वर्ण्यहितार्थं हि कर्तव्यं राजसूनुना ॥१७॥
नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षणकारणात् । पातकं वा सदोषं वा कर्तव्यं रक्षता सदा ॥१८॥
राज्यभारनियुक्तानामेष धर्मः सनातनः । अधर्म्यां जहि काकुत्स्थ धर्मो ह्यस्यां न विद्यते ॥१९॥

था, वह पुत्रहीन था, धर्मात्मा था, उसने कठिन तपस्या की ॥५॥ ब्रह्मा उस यक्षराजपर प्रसन्न हुए और प्रसन्न होकर ताड़का नामक कन्यारत्न उन्होंने यक्षराजको दिया ॥६॥ इस कन्याको हजार हाथियोंका बल भी ब्रह्माने ही दिया, पर सुकेतुको ब्रह्माने पुत्र न दिया ॥७॥ वह कन्या बढ़कर युवती हुई सुन्दरी हुई और वह जम्भ राक्षसके पुत्र सुन्दको व्याही गयी ॥८॥ कुछ दिनोंके पश्चात् उस ताड़काने एक पुत्र उत्पन्न किया, उसका नाम मारीच हुआ, वह बड़ा बलवान था। वह मारीच शापके कारण राक्षस होगया ॥९॥ रामचन्द्र, जब सुन्द मारा गया (अगस्त्य मुनिने शाप देकर इसे मारा), तब यह ताड़का अपने पुत्रके साथ ऋषिश्रेष्ठ अगस्त्यको पीड़ा पहुंचानेका प्रयत्न करने लगी ॥ १० ॥ क्रोध करके ऋषिको खानेके लिए वह उनकी ओर दौड़ी, अगस्त्य मुनिने उसको दौड़ी हुई आती देखकर ॥ ११ ॥ मारीचको "तुम राक्षस होजाओ" यह शाप दिया। बहुत क्रोधित होकर ऋषिने ताड़काको भी शाप दिया ॥ १२ ॥ यक्षी, तू मनुष्य खानेवाली है, इस कारण तेरा रूप भी वैसाही होजाय, तुम्हारा मुँह विकृत हो, तुम वर्तमान रूप छोड़कर भयानक रूप धारण करो ॥ १३ ॥ इस शापसे ताड़काको भी बड़ा क्रोध हुआ और वह इस देशको उजाड़ने लगी, क्योंकि पहले अगस्त्यका यहां आश्रम था ॥१४॥ रामचन्द्र, यह राक्षसी बड़ी दुराचारिणी है, बडी भयानक है। गौ और ब्राह्मणोंके कल्याणके लिए इसका वध करो, इसका पराक्रम बड़ा भयदायी है ॥१५॥ अगस्त्यके द्वारा शापित इस राक्षसीका वध तीनों लोकोंमें तुमको छोड़कर कोई पुरुष नहीं कर सकता है ॥१६॥ स्त्री-वध समझकर तुमको इस कामकी ओर घृणा न करनी चाहिए। तुम राजपुत्र हो, चतुर्वर्णकी रक्षा तुमको करनी चाहिए। तुम इसको मारकर चातुर्वर्ण्यकी रक्षा करो ॥ १७ ॥ प्रजाकी रक्षाके लिए बुरा-भला, सदोष-निर्दोष सभी काम राजाको करने चाहिए ॥१८॥ जिन लोगोंने राज्य-भार ग्रहण किया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रूयते हि पुरा शक्रो विरोचनसुतां नृप । पृथिवीं हन्तुमिच्छन्तीं मन्थरामभ्यसूदयत ॥२०॥
विष्णुना च पुरा राम भृगुपत्नी पतिव्रता । अनिद्रं लोकमिच्छन्ती काव्यमाता निषूदिता ॥२१॥
एतैश्चान्यैश्च बहुभी राजपुत्रैर्महात्मभिः । अधर्मसहिता नार्यो हताः पुरुषसत्तमैः ।
तस्मादेनां घृणां त्यक्त्वा जहि मच्छासनान्नृप ॥५२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः २६

मुनेर्वचनमक्लीबं श्रुत्वा नरवरात्मजः । राघवः प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रत्युवाच दृढव्रतः ॥ १ ॥
पितुर्वचननिर्देशात्पितुर्वचनगौरवात् । वचनं कौशिकस्येति कर्तव्यमविशङ्कया ॥ २ ॥
अनुशिष्टोऽस्म्ययोध्यायां गुरुमध्ये महात्मना । पित्रा दशरथेनाहं नावज्ञेयं हि तद्वचः ॥ ३ ॥
सोऽहं पितुर्वचः श्रुत्वा शासनाद् ब्रह्मवादिनः । करिष्यामि न संदेहस्ताटकावधमुत्तमम् ॥ ४ ॥
गोब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय च । तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः ॥ ५ ॥
एवमुक्त्वा धनुर्मध्ये बद्ध्वा मुष्टिमरिंदमः । ज्याघोषमकरोत्तीव्रं दिशः शब्देन नादयन् ॥ ६ ॥

है, उनका यही धर्म है। हे काकुत्स्थ, यह अधर्मकारिणी है, इसका वध करो, इसका कोई धर्म नहीं है ॥ १९ ॥ राजन्, पहलेके समयमें विरोचनकी पुत्री मन्थरा पृथिवीको मारनेके लिए उद्यत हुई थी, उसको इन्द्रने मारडाला था ॥ २० ॥ सुना जाता है कि भृगुऋषिकी स्त्री और शुक्राचार्यकी माता अनिद्र (जहां निद्राका सुख न हो) लोक चाहती थी, विष्णुने उसे मारडाला ॥२१॥ ये तथा इसी प्रकार अन्य भी अनेक राजपुत्र, पुरुषश्रेष्ठ महात्माओंने अधर्मचारिणी स्त्रियोंका वध किया है। इस कारण दया छोड़कर मेरी आज्ञासे इस ताड़काका वध करो ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका पच्चीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २५ ॥

वीरता उत्पन्न करनेवाले मुनिके वचन सुनकर अपने सङ्कल्पके दृढ़ राजपुत्र रामचन्द्रने हाथ जोड़कर कहा ॥ १ ॥ पिताकी आज्ञाके कारण और पिताके वचनोंमें जो मेरी श्रद्धा है उसके कारण विश्वामित्रके वचनोंका पालन बिना विचारे मुझे करना चाहिए ॥ २ ॥ अयोध्यामें गुरुओंके बीचमें महात्मा पिता दसरथने मुझे यह उपदेश दिया है कि विश्वामित्रके वचनोंका कभी तिरस्कार मत करना, उनकी आज्ञाओंका पालन करना ॥३॥ पिताका ऐसा वचन सुनकर मैं आया हूँ। आप ब्रह्मवादी हैं, आपकी आज्ञासे मैं ताड़काका वध करूँगा, क्योंकि यह उत्तम काम है (यदि ऐसा न होता तो आपके समान ब्रह्मवादी इस कामके लिए आज्ञा ही क्यों देते) ॥४॥ गौ, ब्राह्मण और देशके हितके लिए मैं महान् प्रभावशाली आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिए उद्यत हूं ॥५॥ ऐसा कहकर शत्रु-संहारी रामचन्द्रने धनुषके बीचमें मुट्ठी बाँधा, धनुष पकड़ा, और उसका तीव्र शब्द किया,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तेन शब्देन वित्रस्तास्ताटकावनवासिनः । ताटका च सुसंक्रुद्धा तेन शब्देन मोहिता ॥ ७ ॥
तं शब्दमभिनिध्याय राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता । श्रुत्वा चाभ्यद्रवत्क्रुद्धा यत्र शब्दो विनिःसृतः॥ ८ ॥
तां दृष्ट्वा राघवः क्रुद्धां विकृतां विकृताननाम् । प्रमाणेनातिवृद्धां च लक्ष्मणं सोऽभ्यभाषत ॥ ९ ॥
पश्य लक्ष्मण यक्षिण्या भैरवं दारुणं वपुः । भिद्येरन्दर्शनादस्या भीरूणां हृदयानि च ॥१०॥
एतां पश्य दुराधर्षां मायाबलसमन्विताम् । विनिवृत्तां करोम्यद्य हृतकर्णाग्रनासिकाम् ॥११॥
नह्येनामुत्सहे हन्तुं स्त्रीस्वभावेन रक्षिताम् । वीर्यं चास्या गतिं चैव हन्यामिति हि मे मतिः ॥१२॥
एवं ब्रुवाणे रामे तु ताटका क्रोधमूर्च्छिता । उद्यम्य बाहुं गर्जन्ती राममेवाभ्यधावत ॥१३॥
विश्वामित्रस्तु ब्रह्मर्षिर्हुंकारेणाभिभर्त्स्य ताम् । स्वस्ति राघवयोरस्तु जयं चैवाभ्यभाषत ॥१४॥
उद्धुन्वाना रजो घोरं ताटका राघवावुभौ । रजोमेघेन महता मुहूर्तं सा व्यमोहयत् ॥१५॥
ततो मायां समास्थाय शिलावर्षेण राघवौ । अवाकिरत्सुमहता ततश्चुक्रोध राघवः ॥१६॥
शिलावर्षं महत्तस्याः शरवर्षेण राघवः । प्रतिवार्योपधावन्त्याः करौ चिच्छेद पत्रिभिः ॥१७॥
ततश्छिन्नभुजां श्रान्तामभ्याशे परिगर्जतीम् । सौमित्रिरकरोत्क्रोधाद्धृतकर्णाग्रनासिकाम् ॥१८॥
कामरूपधरा सा तु कृत्वा रूपाण्यनेकशः । अन्तर्धानं गता यक्षी मोहयन्ती स्वमायया ॥१९॥

जिससे दिशाएँ प्रतिध्वनित होगयीं ॥६॥ उस शब्दसे ताड़कावनमें रहनेवाले प्राणी डर गये, ताड़का इस शब्दसे क्रोधित हुई, और वह किंकर्तव्यविमूढ होगयी (कहांसे यह शब्द आरहा है, यह शब्द किसके द्वारा उत्पन्न हुआ, इसका कारण क्या है, आदि बातोंका निर्णय वह न कर सकी) ॥७॥ उस शब्दसे राक्षसीको बड़ा क्रोध आया, उस शब्दको सुनकर वह उधर चली, जहांसे वह शब्द निकला था ॥८॥ उस क्रोधित राक्षसीको रामचन्द्रने देखा, उसका स्वरूप भयानक था, मुँह तो और भी अधिक भयानक था, मनुष्यके प्रमाणसे उसका शरीर बड़ा था। उसको देखकर रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा ॥९॥ लक्ष्मण, यक्षिणी (ताड़का) का यह भयानक शरीर देखो, इसको देखते ही भीरुओंका हृदय कांप जायगा ॥१०॥ देखो तो इसको जीतना कितना कठिन है, यह माया भी जानती है और बलवान भी है, कान और नाक काटकर मैं इसे भगा देता हूं ॥११॥ इसका वध करना मैं नहीं चाहता, क्योंकि यह स्त्री है, अतएव दूसरोंको पीड़ा देनेकी जो इसकी शक्ति है उसको और आकाश आदिमें उड़नेकी जो इसकी शक्ति है उसको मैं नष्ट कर देना चाहता हूँ (इस तरह मुनिकी आज्ञाका पालन भी होजायगा और धर्म-शास्त्रके वचनका भी तिरस्कार न होगा) ॥ १२ ॥ रामचन्द्र इधर ऐसी बातें कर रहे थे, उधर ताड़का बड़े क्रोधसे दोनों हाथोंको उठाकर गरजती हुई रामकी ही ओर दौड़ी ॥१३॥ विश्वामित्रने हुंकार करके उसे डांटा, और 'राम, लक्ष्मणका कल्याण हो, इनकी जय हो' ऐसा कहा ॥१४॥ ताड़काने धूल उड़ाकर धूलका मेघ बना दिया और इससे राम-लक्ष्मणको आश्चर्यमें डाल दिया ॥१५॥ फिर उसने मायाके द्वारा राम और लक्ष्मणपर पत्थरोंकी वृष्टि की, जिससे रामचन्द्रको क्रोध आया, रामचन्द्रने अपने बाणोंकी वृष्टिके द्वारा ताड़काके घोर पत्थर-वृष्टिको ॥१६॥ रोका और अपनी ओर दौड़कर आती हुई ताड़काके हाथ बाणसे काट लिये ॥१७॥ उसके हाथ कट गये, वह थककर पासही पड़ी गरजने लगी, उसी समय क्रोधसे लक्ष्मणने उसके कान-नाक काट लिये ॥१८॥ वह कामरूपिणी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अश्मवर्षं विमुञ्चन्ती भैरवं विचचार सा । ततस्तावश्मवर्षेण कीर्यमाणौ समन्ततः ॥२०॥
दृष्ट्वा गाधिसुतः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत । अलं ते घृणया राम पापैषा दुष्टचारिणी ॥२१॥
यज्ञविघ्नकरी यक्षी पुरा वर्धत मायया । वध्यतां तावदेवैषा पुरासंध्या प्रवर्तते ॥२२॥
रक्षांसि संध्याकाले तु दुर्धर्षाणि भवन्ति हि । इत्युक्तः स तु तां यक्षीमश्मवृष्ट्याभिवर्षिणीम्॥२३॥
दर्शयञ्शब्दवेधित्वं तां रुरोध स सायकैः । सा रुद्धा बाणजालेन मायाबलसमन्विता ॥२४॥
अभिदुद्राव काकुत्स्थं लक्ष्मणं च विनेदुषी । तामापतन्तीं वेगेन विक्रान्तामशनीमिव ॥२५॥
शरेणोरसि विव्याध पपात च ममार च । तां हतां भीमसंकाशां दृष्ट्वा सुरपतिस्तदा ॥२६॥
साधु साध्विति काकुत्स्थं सुराश्चाप्यभिपूजयन् । उवाच परमप्रीतः सहस्राक्षः पुरंदरः ॥२७॥
सुराश्च सर्वे संहृष्टा विश्वामित्रमथाब्रुवन् । मुने कौशिक भद्रं ते सेन्द्राः सर्वे मरुद्गणाः ॥२८॥
तोषिताः कर्मणानेन स्नेहं दर्शय राघवे । प्रजापतेः कृशाश्वस्य पुत्रान्सत्यपराक्रमान् ॥२९॥
तपोबलभृतो ब्रह्मन्राघवाय निवेदय । पात्रभूतश्च ते ब्रह्मँस्तवानुगमने रतः ॥३०॥
कर्तव्यं सुमहत्कर्म सुराणां राजसूनुना । एवमुक्त्वा सुराः सर्वे जग्मुर्हृष्टा विहायसम् ॥३१॥

थी, इच्छानुसार अनेक रूप धर सकती थी, उसने अनेक रूप धारण किये, वह छिप गयी, इस प्रकार भी मायासे उसने राम और लक्ष्मणको मोहित करलिया, ये अपना कर्तव्य निश्चय न कर सके॥ १९ ॥ वह पत्थरकी भयानक वृष्टि करती हुई घूमने लगी। राम और लक्ष्मण पत्थरोंसे घिर गये ॥ २० ॥ रामचन्द्रकी यह दशा देखकर विश्वामित्रने कहा—रामचन्द्र, इसपर दया करना व्यर्थ है, क्योंकि यह पापिनी है, दुराचारिणी है॥ २१ ॥ यह यक्षिणी यज्ञमें विघ्न करती है, अपनी मायासे यह आगे भी बढ़ सकती है (इस समय हाथ आदिके कटनेसे यह कमजोर अवश्य हो गयी है, पर वह कमजोरी दूर कर फिर यह उपद्रव कर सकती है), इसलिए इसको मारो, नहीं तो शीघ्र सन्ध्या हुआ चाहती है (रात्रिमें राक्षसोंका बल बढ़ जाता है, तब भला यह कैसे मरेगी) ॥२२॥ विश्वामित्रकी यह बात सुनकर पत्थरोंकी वृष्टि करनेवाली उस ताड़काको ॥२३॥ शब्दवेधी बाणके द्वारा रामचन्द्रने रोक दिया, मायाविनी और बली ताड़काको रामचन्द्रने बाणजालसे घेर लिया ॥ २४ ॥ घोर गर्जन करती हुई वह रामचन्द्र और लक्ष्मणकी ओर दौड़ी। बिजलीके समान बड़े वेगसे अपनी ओर आती हुई उसके, ॥ २५ ॥ रामचन्द्रने बाणसे, कलेजेमें मारा, वह गिरी और मर गयी। भयानक रूपधारी उसको मरी देखकर इन्द्रने ॥ २६ ॥ और देवताओंने 'साधु-साधु' कह-कर रामचन्द्रका अभिनन्दन किया, उनकी पूजा की। बहुत प्रसन्न होकर सहस्राक्ष इन्द्र बोले ॥२७॥ और प्रसन्न होकर देवता भी विश्वामित्रसे बोले—हे कौशिक, आपका कल्याण हो, इन्द्र आदि सभी देवता और देवगण ॥ २८ ॥ आपके इस कामसे आपपर प्रसन्न हैं। आप रामचन्द्रपर स्नेह दिखाइए, अर्थात् ऐसे उत्तम काम करनेके लिए उनको पारितोषिक दीजिए। कृशाश्व प्रजापति-के जो पुत्र हैं, जो अमोघ हैं (बाण-विद्या, जो विश्वामित्रने राम-लक्ष्मणको अयोध्यासे चलनेके समय सिखायी थी), ॥ २९ ॥ ब्रह्मन्, रामचन्द्र ज्ञानी और बलवान् हैं उन्हे, यह कृशाश्वकी उत्पन्न की हुई विद्या दीजिए ; क्योंकि वे सर्वथा योग्य हैं और आपके सर्वथा सेवक हैं ॥३०॥ देवताओंने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विश्वामित्रं पूजयन्तस्ततः संध्या प्रवर्तते । ततो मुनिवरः प्रीतस्ताटकावधतोषितः ॥३२॥
मूर्ध्नि राममुपाघ्राय इदं वचनमब्रवीत् । इहाद्य रजनीं राम वसाम शुभदर्शन ॥३३॥
श्वः प्रभाते गमिष्यामस्तदाश्रमपदं मम । विश्वामित्रवचः श्रुत्वा हृष्टो दशरथात्मजः ॥३४॥
उवास रजनीं तत्र ताटकाया वने सुखम् । मुक्तशापं वनं तच्च तस्मिन्नेव तदाहनि ।
रमणीयं विबभ्राज यथा चैत्ररथं वनम् ॥३५॥
निहत्य तां यक्षसुतां स रामः प्रशस्यमानः सुरसिद्धसंघैः ।
उवास तस्मिन्मुनिना सहैव प्रभातवेलां प्रतिबोध्यमानः ॥३६॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे षड्विंशः सर्गः ॥२६॥

सप्तविंशः सर्गः २७

अथ तां रजनीमुष्य विश्वामित्रो महायशाः । प्रहस्य राघवं वाक्यमुवाच मधुरस्वरम् ॥ १ ॥
परितुष्टोऽस्मि भद्रं ते राजपुत्र महायशः । प्रीत्या परमया युक्तो ददाम्यस्त्राणि सर्वशः ॥ २ ॥
देवासुरगणान्वापि सगन्धर्वोरगान्भुवि । यैरमित्रान्प्रसह्याजौ वशीकृत्य जयिष्यसि ॥ ३ ॥
तानि दिव्यानि भद्रं ते ददाम्यस्त्राणि सर्वशः । दण्डचक्रं महद्दिव्यं तव दास्यामि राघव ॥ ४ ॥

कहा–इस राजपुत्रको देवताओंके अनेक काम करने हैं । इतना कहकर प्रसन्नतापूर्वक देवता आकाशमार्गसे गये ॥ ३१ ॥ वे देवता विश्वामित्रकी स्तुति करते हुए गये । उस समय सन्ध्या हो गयी । ताड़काके वधके कारण मुनि भी बहुत प्रसन्न थे ॥ ३२ ॥ उन्होने रामका सिर सूंघकर कहा–हे शुभदर्शन, आजकी रातको हमलोग यहीं रहें ॥ ३३ ॥ कल प्रातःकाल यहांसे अपने आश्रममें जांयगे । विश्वामित्रकी बात सुनकर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३४ ॥ उसी ताड़कावनमें ही रातको निवास किया और वह वन उसी दिनसे शापमुक्त हुआ तथा चैत्ररथवनके समान शोभित होने लगा ॥ ३५ ॥ यक्षकी कन्या ताड़काको रामचन्द्रने मारा, देवता, सिद्ध आदिने रामचन्द्रकी प्रशंसा की । उनलोगोंने उसीके वनमें उस रातको निवास किया और प्रातः मुनिने दोनों भाइयोंको जगाया ॥ ३६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २६ ॥

महायशस्वी विश्वामित्र मुनिने उस रातको वहीं निवास किया, पुनः प्रातःकाल होनेपर हँसकर मीठे स्वरमें उन्होंने रामचन्द्रसे कहा ॥ १ ॥ हे राजपुत्र, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ (क्योंकि तुमने ताड़काका वध किया है), तुम्हारा कल्याण हो, मैं बड़ी प्रसन्नतासे तुमको अपने अस्त्र दे रहा हूं ॥ २ ॥ इन अस्त्रोंके प्रभावसे तुम युद्धमें देवता, असुर गण (वसु, रुद्र आदि), गन्धर्व, नाग आदिको भी बलपूर्वक वश करके जीत लोगे ॥ ३ ॥ वे समस्त दिव्य अस्त्र मैं तुमको दे रहा हूँ, अत्यन्त अलौकिक दण्डचक्र भी मैं तुमको देता हूं (दण्डचक्र एक अस्त्रका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धर्मचक्रं ततो वीर कालचक्रं तथैव च । विष्णुचक्रं तथात्युग्रमैन्द्रं चक्रं तथैव च ॥ ५ ॥
वज्रमस्त्रं नरश्रेष्ठ शैवं शूलवरं तथा । अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव ऐषीकमपि राघव ॥ ६ ॥
ददामि ते महाबाहो ब्राह्ममस्त्रमनुत्तमम् । गदे द्वे चैव काकुत्स्थ मोदकी शिखरी शुभे ॥ ७ ॥
प्रदीप्ते नरशार्दूल प्रयच्छामि नृपात्मज । धर्मपाशमहं राम कालपाशं तथैव च ॥ ८ ॥
वारुणं पाशमस्त्रं च ददाम्यहमनुत्तमम् । अशनी द्वे प्रयच्छामि शुष्कार्द्रे रघुनन्दन ॥ ९ ॥
ददामि चास्त्रं पैनाकमस्त्रं नारायणं तथा । आग्नेयमस्त्रं दयितं शिखरं नाम नामतः ॥१०॥
वायव्यं प्रथनं नाम ददामि तव चानघ । अस्त्रं हयशिरो नाम क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च ॥११॥
शक्तिद्वयं च काकुत्स्थ ददामि तव राघव । कङ्कालं मुसलं घोरं कापालमथ किङ्किणीम् ॥१२॥
वधार्थं रक्षसां यानि ददाम्येतानि सर्वशः । वैद्याधरं महास्त्रं च नन्दनं नाम नामतः ॥१३॥
असिरत्नं महाबाहो ददामि नृवरात्मज । गान्धर्वमस्त्रं दयितं मोहनं नाम नामतः ॥१४॥
प्रस्वापनं प्रशमनं दाक्षे सौम्यं च राघव । वर्षणं शोषणं चैव संतापनविलापने ॥१५॥
मादनं चैव दुर्धर्षं कन्दर्पदयितं तथा । गान्धर्वमस्त्रं दयितं मानवं नाम नामतः ॥१६॥
पैशाचमस्त्रं दयितं मोहनं नाम नामतः । प्रतीच्छ नरशार्दूल राजपुत्र महायशः ॥१७॥

नाम होगा, या एक तरहका चक्र होगा) ॥ ४ ॥ हे वीर, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र और अत्यन्त भयानक ऐन्द्रचक्र (इन्द्रका चक्र) देता हूँ (ये अस्त्रों के नाम हैं) ॥ ५ ॥ हे नरश्रेष्ठ राघव, वज्र अस्त्र, शिवजीका (जिसके देवता शिव हैं) श्रेष्ठ शूल, ब्रह्मशिर नामक अस्त्र (ब्रह्मास्त्र उससे अलग है) तथा ऐषीक (एक तरहका बाण) भी देता हूँ। हे महाबाहो, सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मास्त्र भी मैं तुम्हें देता हूँ। तुमको दो गदाएँ भी देता हूं जिनके नाम मोदकी और शिखरी हैं और वे बड़ी उज्ज्वल हैं ॥ ७ ॥ हे नरश्रेष्ठ राजपुत्र, कालपाश और धर्मपाश नामक अस्त्र भी मैं तुमको देता हूँ ॥८॥ हे रघुनन्दन, वरुणका पाश अस्त्र भी मैं तुमको देता हूँ, दो अशनी (एक तरहका वज्र) भी देता हूँ, एक शुष्क अशनी और दूसरी आर्द्र (भींगी) अशनी ॥ ९ ॥ शिव और नारायणका अस्त्र (जिन अस्त्रोंके देवता शिव और नारायण हैं) मैं तुमको देता हूं। अग्निका प्रिय अस्त्र भी मैं तुमको देता हूं जिसका नाम शिखर है ॥ १० ॥ हे निष्पाप, वायव्य (वायुका) नामक मुख्य अस्त्र मैं तुमको देता हूं, हयशिर नामक अस्त्र तथा क्रौञ्च अस्त्र भी देता हूं ॥११॥ हे काकुत्स्थ रामचन्द्र, मैं तुमको दो शक्ति भी देता हूं। कङ्काल, भयानक मुशल, कपाल और किंकिणी नामक (ये अस्त्र देवताओंके हैं) अस्त्र देता हूँ ॥१२॥ ये सब अस्त्र मैं तुमको राक्षसोंका वध करनेके लिए देता हूं। विद्याधरोंका महास्त्र जिसका नाम नन्दन है ॥१३॥ वह तलवार भी हे महाबाहो राजपुत्र, मैं तुमको देता हूं और गन्धर्वोंका प्रिय मोहन नामक अस्त्र भी देता हूं ॥ १४ ॥ हे राघव, प्रस्वापन और प्रशमन नामक दो सुखायम अस्त्र भी देता हूं (सुखायम इसलिए कि इनसे किसीको जान नहीं जाती)। वर्षण, शोषण, सन्तापन और विलापन अस्त्र भी देता हूँ (ये अस्त्रोंके गुण हैं नाम नहीं) ॥१५॥ कामदेवका मादन नामक अस्त्र जो दुर्धर्ष है (जो निवारित न होसके) मैं तुमको देता हूँ, गन्धर्वोंका प्यारा मानव नामका अस्त्र भी देता हूँ ॥ १६ ॥ हे महायशस्वी नर-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तामसं नरशार्दूल सौमनं च महाबलम् । संवर्तं चैव दुर्धर्षं मौसलं च नृपात्मज ॥१८॥
सत्यमस्त्रं महाबाहो तथा मायामयं परम् । सारं तेजःप्रभं नाम परतेजोपकर्षणम् ॥१९॥
सोमास्त्रं शिशिरं नाम त्वाष्ट्रमस्त्रं सुदारुणम् । दारुणं च भगस्यापि शीतेषुमथ मानवम् ॥२०॥
एतान्राम महाबाहो कामरूपान्महाबलान् । गृहाण परमोदारान्क्षिप्रमेव नृपात्मज ॥२१॥
स्थितस्तु प्राङ्मुखो भूत्वा शुचिर्मुनिवरस्तदा । ददौ रामाय सुप्रीतो मन्त्रग्राममनुत्तमम् ॥२२॥
सर्वसंग्रहणं येषां दैवतैरपि दुर्लभम् । तान्यस्त्राणि तदा विप्रो राघवाय न्यवेदयत् । २३॥
जपतस्तु मुनेस्तस्य विश्वामित्रस्य धीमतः । उपतस्थुर्महार्हाणि सर्वाण्यस्त्राणि राघवम् ॥२४॥
ऊचुश्च मुदिता रामं सर्वे प्राञ्जलयस्तदा । इमे च परमोदार किंकरास्तव राघव ॥२५॥
यद्यदिच्छासि भद्रं ते तत्सर्वं करवाम वै । ततो रामः प्रसन्नात्मा तैरित्युक्तो महाबलैः ॥२६॥
प्रतिगृह्य च काकुत्स्थः समालभ्य च पाणिना । मानसा मे भविष्यध्वमिति तान्यभ्यचोदयत्॥२७॥
ततः प्रीतमना रामो विश्वामित्रं महामुनिम् । अभिवाद्य महातेजा गमनायोपचक्रमे ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

श्रेष्ठ राजपुत्र, पिशाचोंका प्यारा मोहन नामक अस्त्र ग्रहण करो ॥ १७ ॥ हे राजपुत्र, तामस, महाबली सौमन, संवर्त और दुर्धर्ष मौसल नामक अस्त्र भी देता हूँ ॥ १८ ॥ हे महाबाहो, सत्य और मायामय अस्त्र मैं तुमको देता हूँ, सूर्यका तेजःप्रभ नामक अस्त्र भी देता हूँ, जो दूसरेके तेज (पराक्रम) को खींच लेता है ॥१९॥ चन्द्रका शिशिरनामक अस्त्र और दारुण त्वाष्ट्र (विश्वकर्माका बनाया अस्त्र), भगदेवताका भयानक शीतेषु नामक और मानव अस्त्र ॥२०॥ हे महाबाहो राजपुत्र, इन अस्त्रोंको शीघ्र ग्रहण करो, ये कामरूपी हैं, इच्छानुसार रूप धरनेवाले हैं, बड़े बली हैं और मनोरथ पूरा करनेवाले हैं ॥ २१ ॥

इतना कहकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र पूर्व ओर मुँह करके बैठे और प्रसन्न होकर रामचन्द्रको अस्त्रोंके समस्त मन्त्र दिये ॥ २२ ॥ इन सब अस्त्रोंका संग्रह करना देवताओंके लिए भी कठिन है, ब्राह्मणने वे ही अस्त्र रामचन्द्रको दे दिये ॥२३॥ बुद्धिमान विश्वामित्र मुनिके जप करते ही वे सब अस्त्र रामचन्द्रके पास आगये अर्थात् रामचन्द्रने उन अस्त्रोंके चलानेकी विद्या सीखली ॥ २४ ॥ वे सब अस्त्र (अस्त्रोंके स्वामी देवता) हाथ जोड़कर बोले—हे परमोदार रामचन्द्र, हम सब लोग आपके दास हैं ॥ २५ ॥ आप जो चाहें (आज्ञा करें) वह सब हमलोग करें । उन बलवान अस्त्रोंकी यह बात सुनकर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए ॥२६॥ रामचन्द्रने इन अस्त्रोंको हाथसे छूआ, और उनसे कहा कि आपलोग सदा मेरे मानस बने रहें, आप सदा स्मरण रहें ॥२७॥ तदनन्तर रामचन्द्रने महामुनि विश्वामित्रको प्रणाम किया और वे महातेजस्वी आगे जानेके लिए तयार हुए ॥ २८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका सत्ताईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २७ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अष्टाविंशः सर्गः २८

प्रतिगृह्य ततोऽस्त्राणि प्रहृष्टवदनः शुचिः । गच्छन्नेव च काकुत्स्थो विश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥१॥
गृहीतास्त्रोऽस्मि भगवन्दुराधर्षः सुरैरपि । अस्त्राणां त्वहमिच्छामि संहारान्मुनिपुंगव ॥ २ ॥
एवं ब्रुवति काकुत्स्थे विश्वामित्रो महातपाः । संहारान्व्याजहाराथ धृतिमान्सुव्रतः शुचिः ॥ ३ ॥
सत्यवन्तं सत्यकीर्तिं धृष्टं रभसमेव च । प्रतिहारतरं नाम पराङ्मुखमवाङ्मुखम् ॥ ४ ॥
लक्ष्यालक्ष्याविमौ चैव दृढनाभसुनाभकौ । दशाक्षशतवक्त्रौ च दशशीर्षशतोदरौ ॥ ५ ॥
पद्मनाभमहानाभौ दुन्दुनाभस्वनाभकौ । ज्योतिषं शकुनं चैव नैरास्यविमलावुभौ ॥ ६ ॥
यौगंधरविनिद्रौ च दैत्यप्रमथनौ तथा । शुचिबाहुर्महाबाहुर्निष्कलिर्विरुचस्तथा ।
सार्चिमाली धृतिमाली वृत्तिमान्रुचिरस्तथा ॥ ७ ॥
पित्र्यः सौमनसश्चैव विधूतमकरावुभौ । परवीरं रतिं चैव धनधान्यौ च राघव ॥ ८ ॥
कामरूपं कामरुचिं मोहमावरणं तथा । जृम्भकं सर्पनाथं च पन्थानवरुणौ तथा ॥ ९ ॥
कृशाश्वतनयान्राम भास्वरान्कामरूपिणः । प्रतीच्छ मम भद्रं ते पात्रभूतोऽसि राघव ॥१०॥
बाढमित्येव काकुत्स्थः प्रहृष्टेनान्तरात्मना । दिव्यभास्वरदेहाश्च मूर्तिमन्तः सुखप्रदाः ॥११॥
केचिदङ्गारसदृशाः केचिद्धूमोपमास्तथा । चन्द्रार्कसदृशाः केचित्प्रह्वाञ्जलिपुटास्तथा ॥१२॥
रामं प्राञ्जलयो भूत्वा ब्रुवन्मधुरभाषिणः । इमे स्म नरशार्दूल शाधि किं करवाम ते ॥१३॥

रामचन्द्र उन अस्त्रोंको पाकर बहुत प्रसन्न हुए, वे चलते-चलते ही विश्वामित्रसे बोले ॥१॥ महाराज, मैंने अस्त्र-विद्या सीखली, अब मैं देवताओंके लिए भी अजेय होगया हूं। मुनिश्रेष्ठ मैं अस्त्रोंका संहार (चलाये बाणोंको लौटा लेना) भी सीखना चाहता हूं ॥ २ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर महातपस्वी विश्वामित्रने रामचन्द्रको नीचे लिखे नामवाले अस्त्रोंके संहार दिये। विश्वामित्र मुनि बड़े धीर, दृढ़व्रत और पवित्र हैं ॥ ३ ॥ उन्होंने इन नामोंके संहार-मन्त्र बतलाये। सत्यवान्, सत्यकीर्ति, धृष्ट, रभस, प्रतिहारतर, पराङ्मुख, अवाङ्मुख, लक्ष्य, अलक्ष्य, दृढ़नाभ, सुनाभ, दशाक्ष, शतवक्त्र, दशशीर्ष, शतोदर, ॥५॥ पद्मनाभ, महानाभ, दुन्दुनाभ, स्वनाभ, ज्योतिष, शकुन, विमल और नैमाश्य, ॥६॥ दैत्यप्रमाथी, यौगन्धर और विनिद्र, शुचिबाहु, महाबाहु निष्कलि, विरुच, सार्चिमाली, धृतिमाली, वृत्तिमान् और रुचिर ॥७॥ पित्र्य, सौमनस, विधूत, मकर, परवीर, रति, धनधान्य ॥८॥ कामरूप, कामरुचि, मोह, आवरण, जृम्भक, सर्पनाथ, पन्था और वरुण ॥९॥ हे रामचन्द्र, ये कृशाश्व महर्षिके पुत्र हैं, तेजोमय और कामरूपी हैं तुम मुझसे इन सबका मन्त्र लेलो, क्योंकि तुम इसके पात्र हो, योग्य हो ॥ १० ॥

रामचन्द्रने प्रसन्न मनसे विश्वामित्रकी आज्ञा स्वीकार की। उनका शरीर अलौकिक तेजोमय था, वे शरीरधारी और सुखदायी थे ॥ ११ ॥ उन अस्त्रोंमेंसे कोई अंगारके समान था और कोई धूंआके समान, कई चन्द्रमा और सूर्यके समान थे, कई विनयसे हाथ जोड़े हुए थे ॥१२॥ वे अस्त्र अपना हाथ जोड़कर मधुर स्वरमें रामचन्द्रसे बोले—हे नरश्रेष्ठ, हमलोग आये हैं, आपके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गम्यतामिति तानाह यथेष्टं रघुनन्दनः । मानसाः कार्यकालेषु साहाय्यं मे करिष्यथ ॥१४॥
अथ ते राममामन्त्र्य कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् । एवमस्त्विति काकुत्स्थमुक्त्वा जग्मुर्यथागतम् ॥१५॥
स च तान्राघवो ज्ञात्वा विश्वामित्रं महामुनिम् । गच्छन्नेवाथ मधुरं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ॥१६॥
किमेतन्मेघसंकाशं पर्वतस्याविदूरतः । वृक्षखण्डमितो भाति परं कौतूहलं हि मे ॥१७॥
दर्शनीयं मृगाकीर्णं मनोहरमतीव च । नानाप्रकारैः शकुनैर्वल्गुभाषैरलंकृतम् ॥१८॥
निःसृताः स्म मुनिश्रेष्ठ कान्ताराद्रोमहर्षणात् । अनया त्ववगच्छामि देशस्य सुखवत्तया ॥१९॥
सर्वं मे शंस भगवन्कस्याश्रमपदं त्विदम् । संप्राप्ता यत्र ते पापा ब्रह्मघ्ना दुष्टचारिणः ॥२०॥
तव यज्ञस्य विघ्नाय दुरात्मानो महामुने । भगवंस्तस्य को देशः सा यत्र तव याज्ञिकी ॥२१॥
रक्षितव्या क्रिया ब्रह्मन्मया वध्याश्च राक्षसाः । एतत्सर्वं मुनिश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डेऽष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः २९

अथ तस्याप्रमेयस्य वचनं परिपृच्छतः । विश्वामित्रो महातेजा व्याख्यातुमुपचक्रमे ॥ १ ॥
इह राम महाबाहो विष्णुर्देवनमस्कृतः । वर्षाणि सुबहूनीह तथा युगशतानि च ॥ २ ॥

लिए क्या करें ॥ १३ ॥ रामचन्द्रने उन अस्त्रोंसे कहा, तुम लोग अपनी इच्छाके अनुसार जाओ, पर मेरे मनमें सदा स्थित रहो, हम तुमलोगोंको भूल न जांय और समय पड़नेपर हमारी सहायता करो ॥ १४ ॥

तदनन्तर रामचन्द्रसे पूछकर उनकी प्रदक्षिणा कर और आपकी आज्ञा शिरोधार्य है–ऐसा रामचन्द्रसे कह वे सब अपने-अपने स्थानको गये ॥ १५ ॥ रामचन्द्रने इन अस्त्रोंको जान लिया, पुनः वे चलते-चलते ही मधुर और प्रिय वचन मुनि विश्वामित्रसे बोले ॥१६॥ महाराज, पर्वतके पास ही मेघके समान काला और सघन जो दीख पड़ता है वह क्या है, क्या वृक्ष हैं ? इसको जाननेकी मेरी बड़ी उत्कण्ठा है ॥ १७ ॥ वह स्थान दर्शनीय मालूम होता है क्योंकि पशुओंसे यह स्थान भरा है, मधुर बोलनेवाले पक्षी मधुर बोल रहे हैं, इससे यह स्थान बड़ा ही रमणीय मालूम होता है, ॥ १८ ॥ महाराज, भयानक वनसे हमलोग निकल आये, ताड़कावन खतम हुआ, यह बात इस देशके सुखी होनेसे मालूम होती है ॥ १९ ॥ महाराज, आप सब बातें मुझसे कहें, यह देखिए आश्रम मालूम पड़ता है, यह किसका है ? ब्रह्मघ्न दुष्ट पापी जहां एकत्र हैं, ॥ २० ॥ आपके यज्ञमें विघ्न करनेके लिए राक्षस जहां एकट्ठे हैं, वह आपकी यज्ञभूमि कहां है ॥ २१ ॥ जहां मैं आपके यज्ञकी रक्षा करूंगा और राक्षसोंको मारूंगा वह स्थान कहां है, हे मुनिश्रेष्ठ मैं इन सबको जानना चाहता हूँ ॥ २२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका अट्ठाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २८ ॥

रामचन्द्रके ऐसा पूछनेपर महातेजस्वी विश्वामित्र कहने लगे ॥ १ ॥ हे महाबाहो राम,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तपश्चरणयोगार्थमुवास सुमहातपाः । एष पूर्वाश्रमो राम वामनस्य महात्मनः ॥ ३ ॥
सिद्धाश्रम इति ख्यातः सिद्धो ह्यत्र महातपाः । एतस्मिन्नेव काले तु राजा वैरोचनिर्बलिः ॥ ४ ॥
निर्जित्य दैवतगणान्सेन्द्रान्सहमरुद्गणान् । कारयामास तद्राज्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ ५ ॥
यज्ञं चकार सुमहानसुरेन्द्रो महाबलः । बलेस्तु यजमानस्य देवाः साग्निपुरोगमाः
समागम्य स्वयं चैव विष्णुमूचुरिहाश्रमे ॥ ६ ॥
बलिर्वैरोचनिर्विष्णो यजते यज्ञमुत्तमम् । असमाप्तव्रते तस्मिन्स्वकार्यमभिपद्यताम् ॥ ७ ॥
ये चैनमभिवर्तन्ते याचितार इतस्ततः । यच्च यत्र यथावच्च सर्वं तेभ्यः प्रयच्छति ॥ ८ ॥
स त्वं सुरहितार्थाय महायोगमुपाश्रितः । वामनत्वं गतो विष्णो कुरु कल्याणमुत्तमम् ॥ ९ ॥
एतस्मिन्नन्तरे राम कश्यपोऽग्निसमप्रभः । आदित्या सहितो राम दीप्यमान इवौजसा ॥१०॥
देवीसहायो भगवान्दिव्यं वर्षसहस्रकम् । व्रतं समाप्य वरदं तुष्टाव मधुसूदनम् ॥११॥
तपोमयं तपोराशिं तपोमूर्तिं तपात्मकम् । तपसा त्वां सुतप्तेन पश्यामि पुरुषोत्तमम् ॥१२॥
शरीरे तव पश्यामि जगत्सर्वमिदं प्रभो । त्वमनादिरनिर्देश्यस्त्वामहं शरणं गतः ॥१३॥
तमुवाच हरिः प्रीतः कश्यपं धृतकल्मषम् । वरं वरय भद्रं ते वरार्होऽसि मतो मम ॥१४॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य मारीचः कश्यपोऽब्रवीत् । आदित्या देवतानां च मम चैवानुयाचितम् ॥१५॥

देवताओंके पूजित विष्णुने, बहुत वर्षों तक सौ युगों तक ॥ २ ॥ तपस्या करनेके लिए महातपस्वी विष्णुने यहाँ निवास किया । हे रामचन्द्र, यह महात्मा वामनका पूर्वाश्रम है ॥ ३ ॥ यह सिद्धाश्रम कहा जाता है, महातपस्वी विष्णु यहीं सिद्ध हुए थे । इसी समयमें विरोचनका पुत्र बलि नामक दैत्यराज ॥ ४ ॥ देवताओं, गणों और मरुतोंको जीतकर उनका राज्य स्वयं कर रहा था, और त्रिलोकमें प्रसिद्ध था ॥ ५ ॥ दैत्यराजने एक यज्ञ करना प्रारंभ किया । जब राजा बलि यज्ञ करने लगे उस समय अग्नि आदि देवता विष्णुके पास गये और बोले ॥ ६ ॥ विष्णो, विरोचनका पुत्र बलि यज्ञ कर रहा है, जब तक उसका यज्ञ समाप्त न हो तभी तक अपना काम बना लेना चाहिए ॥ ७ ॥ जो कोई याचक होकर जाता है और जो कुछ, जितना जैसा मांगता है वैसा ही वह याचकको दे देता है ॥ ८ ॥ अतः हे विष्णो, देवताओंके कल्याणके लिए तुम मायाद्वारा वामन रूप धारण करो, इससे देवताओंका बड़ा कल्याण होगा ॥ ९ ॥ इसी समय अग्निके समान तेजस्वी कश्यप मुनि अपनी स्त्री अदितिके साथ आये ॥ १० ॥ वे महर्षि अपनी धर्मपत्नीके साथ दिव्य हजारों वर्षका व्रत समाप्त कर, वरदेनेवाले मधुसूदनकी स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥ तपोमय, तपोराशि, तपोमूर्ति और तपःस्वरूप आपको मैं कठिन तपस्याके द्वारा देख रहा हूं ॥१२॥ प्रभो, आपके शरीरमें यह समस्त जगत मैं देख रहाहूं, आप अनादि हैं, अनिर्देश्य (जिसके विषयमें निश्चित रूपसे कुछ कहा न जा सके) हैं । मैं आपकी शरण हूं ॥ १३ ॥ प्रसन्न होकर भगवानने निष्पाप कश्यपसे कहा-वर मांगिए, आप मुझसे वर पानेके योग्य हैं ॥ १४ ॥ भगवानके ये वचन सुनकर मरीचि मुनिके पुत्र कश्यप मुनि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वरं वरद सुप्रीतो दातुमर्हसि सुव्रत । पुत्रत्वं गच्छ भगवन्नदित्या मम चानघ ॥१५॥
भ्राता भव यवीयांस्त्वं शक्रस्यासुरसूदन । शोकार्तानां तु देवानां साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥१७॥
अयं सिद्धाश्रमो नाम प्रसादात्ते भविष्यति । सिद्धे कर्मणि देवेश उत्तिष्ठ भगवन्नितः ॥१८॥
अथ विष्णुर्महातेजा अदित्यां समजायत । वामनं रूपमास्थाय वैरोचनिमुपागमत् ॥१९॥
त्रीन्पदानथ भिक्षित्वा प्रतिगृह्य च मेदिनीम् । आक्रम्य लोकांल्लोकार्थी सर्वलोकहिते रतः॥२०॥
महेन्द्राय पुनः प्रादान्नियम्य बलिमोजसा । त्रैलोक्यं स महातेजाश्चक्रे शक्रवशं पुनः ॥२१॥
तेनैव पूर्वमाक्रान्त आश्रमः श्रमनाशनः । मयापि भक्त्या तस्यैव वामनस्योपभुज्यते ॥२२॥
एनमाश्रममायान्ति राक्षसा विघ्नकारिणः । अत्र ते पुरुषव्याघ्र हन्तव्या दुष्टचारिणः ॥२३॥
अद्य गच्छामहे राम सिद्धाश्रममनुत्तमम् । तदाश्रमपदं तात तवाप्येतद्यथा मम ॥२४॥
इत्युक्त्वा परमप्रीतो गृह्य रामं सलक्ष्मणम् । प्राविशन्नाश्रमपदं व्यरोचत महामुनिः ।
शशीव गतनीहारः पुनर्वसुसमन्वितः ॥२५॥
तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे सिद्धाश्रमनिवासिनः । उत्पत्योत्पत्य सहसा विश्वामित्रमपूजयन् ॥२६॥
यथार्हं चक्रिरे पूजां विश्वामित्राय धीमते । तथैव राजपुत्राभ्यामकुर्वन्नातिथिक्रियाम् ॥२७॥
मुहूर्तमथ विश्रान्तौ राजपुत्रावरिंदमौ । प्राञ्जली मुनिशार्दूलमूचतू रघुनन्दनौ ॥२८॥

बोले, अदिति, देवता तथा मेरी भी यही प्रार्थना है ॥ १५ ॥ हे सुव्रत, आप प्रसन्न होकर वही वर दें । हे निष्पाप, अदिति और मेरे तुम पुत्र हो—यही वर है ॥ १६ ॥ हे शत्रुसूदन, तुम इन्द्रके छोटे भाई बनो, और दुःखी देवताओंकी सहायता करो ॥ १७ ॥ तुम्हारी कृपासे यह स्थान सिद्धाश्रम हो जायगा, यहीं तुम्हारी तपस्याकी सिद्धि होगी, तुम यहाँ से उठो ॥ १८ ॥

विष्णुने अदितिके गर्भसे वामन रूपमें जन्म लिया था, वे वामन रूपसे बलिके यज्ञमें गये ॥ १९ ॥ तीन पैर भर उन्होंने भूमि मांगी और पैर फैला दिये तीनों लोकोंमें । सर्वलोकहितकारी भगवान सब लोकोंपर देवताओंका अधिकार चाहते थे ॥२०॥ इस प्रकार बलिको अपने तेजके द्वारा परास्त करके उसका राज्य इन्द्रको उन्होंने दे दिया । तीनों लोकोंपर इन्द्रका अधिकार हो गया । शान्तिदायी इस आश्रममें उन्हीं वामनने ही निवास किया था और मैं भी उनके प्रति अपनी भक्तिके कारण यहीं रहता हूं ॥ २२ ॥ इस आश्रममें विघ्न करनेवाले राक्षस आया करते हैं, उन दुष्टात्माओंका वध होना चाहिए ॥ २३ ॥ हे रामचन्द्र, तो हमलोग आज उस श्रेष्ठ सिद्धाश्रममें ही चलें । यह आश्रम जैसा मेरे लिए है वैसा ही तुम्हारे लिए भी ॥ २४ ॥ अत्यन्त प्रसन्न होकर महामुनि विश्वामित्र राम और लक्ष्मणको लेकर आश्रममें गये, उस समय मेघमुक्त पुनर्वसु (इस नामके दो नक्षत्र) से युक्त चन्द्रमाके समान वे शोभित हुए ॥ २५ ॥ विश्वामित्रको देखकर सिद्धाश्रममें रहनेवाले मुनि आ-आकर उनकी पूजा करने लगे ॥ २६ ॥ बुद्धिमान् विश्वामित्रकी उन लोगोंने यथायोग्य पूजा की और उसी प्रकार राम और लक्ष्मणका अतिथि-सत्कार किया ॥ २७ ॥ राम और लक्ष्मणने थोड़ी देर विश्राम किया, पुनः वे हाथ जोड़कर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रसे बोले

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अद्यैव दीक्षां प्रविश भद्रं ते मुनिपुंगव । सिद्धाश्रमोऽयं सिद्धः स्यात्सत्यमस्तु वचस्तव॥२९॥
एवमुक्तो महातेजा विश्वामित्रो महानृषिः । प्रविवेश तदा दीक्षां नियतो नियतेन्द्रियः ॥३०॥
कुमाराविव तां रात्रिमुषित्वा सुसमाहितौ । प्रभातकाले चोत्थाय पूर्वां संध्यामुपास्य च॥३१॥
प्रशुची परमं जाप्यं समाप्य नियमेन च । हुताग्निहोत्रमासीनं विश्वामित्रमवन्दताम् ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे,एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः ३०

अथ तौ देशकालज्ञौ राजापुत्रावरिंदमौ । देशे काले च वाक्यज्ञावब्रूतां कौशिकं वचः ॥ १ ॥
भगवञ्छ्रोतुमिच्छावो यस्मिन्काले निशाचरौ । संरक्षणीयौ तौ ब्रूहि नातिवर्तेत तत्क्षणम् ॥ २ ॥
एवं ब्रुवाणौ काकुत्स्थौ त्वरमाणौ युयुत्सया । सर्वे ते मुनयः प्रीताः प्रशशंसुर्नृपात्मजौ ॥ ३ ॥
अद्यप्रभृति षड्रात्रं रक्षतां राघवौ युवाम् । दीक्षां गतो ह्येष मुनिर्मौनित्वं च गमिष्यति ॥ ४ ॥
तौ तु तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रौ यशस्विनौ । अनिद्रं षडहोरात्रं तपोवनमरक्षताम् ॥ ५ ॥
उपासांचक्रतुर्वीरौ यत्तौ परमधन्विनौ । ररक्षतुर्मुनिवरं विश्वामित्रमरिंदमम् ॥ ६ ॥

॥ २८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ, आप आज ही यज्ञकी दीक्षा लें, आपका मंगल हो. यह सिद्धाश्रम है यहां सब काम ठीक होगा–यह वचन सत्य हो ॥ २९ ॥ रामचन्द्रकी इस बातके सुनते ही महातेजस्वी जितेन्द्रिय नियमपरायण विश्वामित्रने उसी समय दीक्षा ली, यज्ञ करना प्रारम्भ किया ॥ ३० ॥ स्कन्द और विशाखके समान उन राजकुमारोंने, सावधानीसे वहीं रात बितायी, प्रातःकाल उठकर सन्ध्योपासन किया ॥ ३१ ॥ परम पवित्र नियमपूर्वक गायत्रीका जप समाप्त करके उन लोगोंने विश्वामित्रको प्रणाम किया, विश्वामित्र अग्निहोत्र करके बैठे थे, उन दोनों भाइयोंने मुनिको प्रणाम किया ॥ ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका उनतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २९ ॥

देशकालके उचित कर्तव्य जाननेवाले, अपने आश्रितोंके शत्रुओंका भी संहार करनेवाले, और देशकालोचित वचन बोलनेवाले राम और लक्ष्मण दोनों राजपुत्र, कौशिक विश्वामित्रसे बोले ॥१॥ महाराज, हमलोग यह जानना चाहते हैं कि किस समय आपके यज्ञकी रक्षा उन राक्षसोंसे करनी होगी, कहीं ऐसा न हो कि वह समय ही बीत जाय, राक्षस आपके यज्ञका विघ्न कर जांय और हमलोगोंको मालूम ही न हो ॥ २ ॥ इसप्रकार उन दोनों राजपुत्रोंको बोलते और युद्धके लिए शीघ्रता करते देखकर उस आश्रमके सब मुनि बड़े प्रसन्न हुए और उनलोगोंने राजपुत्रोंकी प्रशंसा की ॥ ३ ॥ मुनिने कहा–आजसे लेकर छ रातक आपलोग यज्ञकी रक्षा करें, इन विश्वामित्र मुनिने यज्ञके लिए दीक्षा ली है और छ रात तक वे न बोलेंगे ॥ ४ ॥ यशस्वी उन दोनों राजपुत्रोंने मुनियों के वचन सुनकर विना सोये छ दिन-रात उस तपोवनकी रक्षा की ॥ ५ ॥ परम धनुर्धारी दोनों वीर, राम और लक्ष्मण, मुनिके पास बैठे और इस प्रकार उनलोगोंने मुनिवर की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ काले गते तस्मिन्षष्ठेऽहनि तथागते । सौमित्रिमब्रवीद्रामो यत्तो भव समाहितः ॥ ७ ॥
रामस्यैवं ब्रुवाणस्य त्वरितस्य युयुत्सया । प्रजज्वाल ततो वेदिः सोपाध्यायपुरोहिता ॥ ८ ॥
सदर्भचमसस्रुक्का ससमित्कुसुमोच्चया । विश्वामित्रेण सहिता वेदिर्जज्वाल सर्त्विजा ॥ ९ ॥
मन्त्रवच्च यथान्यायं यज्ञोऽसौ संप्रवर्तते । आकाशे च महाञ्छब्दः प्रादुरासीद्भयानकः ॥१०॥
आवार्य गगनं मेघो यथा प्रावृषि दृश्यते । तथा मायां विकुर्वाणौ राक्षसावभ्यधावताम् ॥११॥
मारीचश्च सुबाहुश्च तयोरनुचरास्तथा । आगम्य भीमसंकाशा रुधिरौघानवासृजन् ॥१२॥
तां तेन रुधिरौघेण वेदीं वीक्ष्य समुक्षिताम् । सहसाभिद्रुतो रामस्तानपश्यत्ततो दिवि ॥१३॥
तावापतन्तौ सहसा दृष्ट्वा राजीवलोचनः । लक्ष्मणं त्वभिसंप्रेक्ष्य रामो वचनमब्रवीत् ॥१४॥
पश्य लक्ष्मण दुर्वृत्तान्राक्षसान्पिशिताशनान् । मानवास्त्रसमाधूताननिलेन यथा घनान् ॥१५॥
करिष्यामि न संदेहो नोत्सहे हन्तुमीदृशान् । इत्युक्त्वा वचनं रामश्चापे संधाय वेगवान् ॥१६॥
मानवं परमोदारमस्त्रं परमभास्वरम् । चिक्षेप परमक्रुद्धो मारीचोरसि राघवः ॥१७॥
स तेन परमास्त्रेण मानवेन समाहतः । संपूर्णं योजनशतं क्षिप्तः सागरसंप्लवे ॥१८॥
विचेतनं विघूर्णन्तं शीतेषुबलपीडितम् । निरस्तं दृश्य मारीचं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥१९॥
पश्य लक्ष्मण शीतेषुं मानवं मनुसंहितम् । मोहयित्वा नयत्येनं न च प्राणैर्वियुज्यते ॥२०॥

रक्षा की ॥ ६ ॥ कुछ दिन बीतनेपर—छठवें दिनके आनेपर—रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा कि सावधान होजाओ और तयार होजाओ ॥ ७ ॥ राम ऐसा कह ही रहे थे और युद्धके लिए शीघ्रता कर रहे थे, उसी समय उपाध्याय और पुरोहितके साथ वेदी जल उठी ॥ ८ ॥ कुश, चमस, स्रुवा, समिध, पुष्प (यज्ञकी सामग्रीके ये नाम हैं) तथा विश्वामित्र और ऋत्विक्के साथ वेदी जल उठी ॥९॥ मन्त्रोंके द्वारा, शास्त्रीय विधानके अनुसार यज्ञ होरहा था, उसी समय आकाशमें बड़ा भयानक शब्द हुआ ॥ १० ॥ वर्षाऋतुमें मेघोंसे आकाश जिस प्रकार ढँक जाता है उसी प्रकार वे राक्षस अनेक प्रकारकी माया करते हुए दौड़े ॥ ११ ॥ मारीच, सुबाहु तथा उन दोनोंके अनुयायी आकर रुधिरकी धारा बरसाने लगे ॥ १२ ॥ उस रुधिरकी धारासे वेदी भीगी देखकर रामचन्द्र शीघ्रता पूर्वक दौड़े और उन राक्षसोंको उन्होंने आकाशमें देखा ॥ १३ ॥ वे शीघ्रतापूर्वक दौड़े आरहे हैं यह देखकर, कमलनयन राम लक्ष्मणकी ओर देखकर यह वचन बोले ॥१४॥ लक्ष्मण ! माँस खानेवाले इन पापी राक्षसोंको देखो । इनको मानवास्त्रसे मैं उड़ा दूंगा, जिस प्रकार वायु मेघको उड़ा देता है ॥ १५ ॥ इसमें सन्देह नहीं, पर ऐसे दुर्बलोंको मैं मारना नहीं चाहता; ऐसा कहकर रामचन्द्रने शीघ्रतापूर्वक धनुषपर बाण चढ़ाया ॥१६॥ बहुतही चमकीला, इच्छित काम करनेवाला, मानव अस्त्र रामचन्द्रने बड़े क्रोधसे मारीचकी छातीमें मारा ॥ १७ ॥ उस उत्तम मानव अस्त्रसे मारे जानेपर वह समुद्रके बीचमें–सौ योजनपर–चला गया ॥ १८ ॥ शीतेषु नामक अस्त्रके लगनेसे मारीच बेहोश होगया और घूमने लगा । मारीच हटगया, यह देखकर रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा ॥ १९ ॥ लक्ष्मण ! देखो, मनुके द्वारा निर्मित, यह शीतेषु नामक मानवास्त्र इसको बेहोश

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इमानपि वधिष्यामि निर्घृणान्दुष्टचारिणः । राक्षसान्पापकर्मस्थान्यज्ञघ्नान्रुधिराशनान् ॥२१॥
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं चाशु लाघवं दर्शयन्निव । विगृह्य सुमहच्चास्त्रमाग्नेयं रघुनन्दनः ॥२२॥
सुबाहूरसि चिक्षेप स विद्धः प्रापतद्भुवि । शेषान्वायव्यमादाय निजघान महायशाः ।
राघवः परमोदारो मुनीनां मुदमावहन् ॥ २३ ॥
स हत्वा राक्षसान्सर्वान्यज्ञघ्नान्रघुनन्दनः । ऋषिभिः पूजितस्तत्र यथेन्द्रो विजये पुरा ॥२४॥
अथ यज्ञे समाप्ते तु विश्वामित्रो महामुनिः । निरीतिका दिशो दृष्ट्वा काकुत्स्थमिदमब्रवीत् ॥२५॥
कृतार्थोऽस्मि महाबाहो कृतं गुरुवचस्त्वया । सिद्धाश्रमामिदं सत्यं कृतं वीर महायशः ।
स हि रामं प्रशस्यैवं ताभ्यां संध्यामुपागमत् ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ३१

अथ तां रजनीं तत्र कृतार्थौ रामलक्ष्मणौ । ऊषतुर्मुदितौ वीरौ प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ १ ॥
प्रभातायां तु शर्वर्यां कृतपौर्वाह्णिकक्रियौ । विश्वामित्रमृषींश्चान्यान्सहितावभिजग्मतुः ॥ २ ॥
अभिवाद्य मुनिश्रेष्ठं ज्वलन्तमिव पावकम् । ऊचतुः परमोदारं वाक्यं मधुरभाषिणौ ॥ ३ ॥
इमौ स्म मुनिशार्दूल किंकरौ समुपागतौ । आज्ञापय मुनिश्रेष्ठ शासनं करवाव किम् ॥ ४ ॥

करके लेजारहा है और यह मरेगा नहीं ॥ २० ॥ इन क्रूर, दुष्ट राक्षसोंको भी मैं मारूँगा । ये पाप किया करते हैं, यज्ञमें विघ्न डाला करते हैं और रुधिर पीया करते हैं ॥२१॥ ऐसा कहकर और बाण चलानेमें अपने हाथकी शीघ्रता दिखलाते हुए, क्रोध करके बड़ा भारी आग्नेय अस्त्र ॥२२॥ रामचन्द्रने सुबाहुकी छातीमें मारा । वह उससे घायल हुआ और भूमिमें गिर पड़ा । बचे हुए अन्य राक्षसों को महायशस्वी रामचन्द्रने वायव्य अस्त्रसे मारा । रामचन्द्रने अपने इस कृत्यसे मुनियोंको बहुत प्रसन्न किया ॥ २३ ॥ यज्ञ नष्ट करनेवाले समस्त राक्षसोंको रामचन्द्रने मारा । ऋषियोंने उनकी पूजा की, जिस प्रकार पहले-असुर-विजय होनेपर-इन्द्रकी की गयी थी ॥ २४ ॥ यज्ञ पूरा होने-पर महामुनि विश्वामित्रने, दिशाओंको बाधा-विघ्नसे रहित देखकर रामचन्द्रसे यह कहा ॥ २५ ॥ महाबाहो ! मैं आज कृतार्थ हुआ । तुमने आज गुरुकी आज्ञाका पालन किया । हे वीर ! सत्य-सत्य तुमने इसको सिद्धाश्रम बनाया । मुनि, रामचन्द्रकी इस तरह प्रशंसा कर, उन दोनोंको साथ ले संध्या करने गये ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३० ॥

मुनिके यज्ञकी रक्षा करनेके कारण रामचन्द्र और लक्ष्मण दोनों वीरोंने प्रसन्न चित्तसे इस रात-में वहीं निवास किया ॥ १ ॥ रात बीतनेपर प्रातःकालके कृत्य-सन्ध्या आदि समाप्त करके अन्य ऋषियोंके साथ वे दोनों विश्वामित्रके पास गये ॥ २ ॥ मुनिश्रेष्ठ अग्निके समान प्रकाशित होरहे थे, उनको प्रणाम करके मधुरभाषी राम और लक्ष्मण बोले ॥ ३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ, हमलोग आपके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमुक्ते तयोर्वाक्ये सर्व एव महर्षयः । विश्वामित्रं पुरस्कृत्य रामं वचनमब्रुवन् ॥ ५ ॥
मैथिलस्य नरश्रेष्ठ जनकस्य भविष्यति । यज्ञः परमधर्मिष्ठस्तत्र यास्यामहे वयम् ॥ ६ ॥
त्वं चैव नरशार्दूल सहास्माभिर्गमिष्यसि । अद्भुतं च धनूरत्नं तत्र त्वं द्रष्टुमर्हसि ॥ ७ ॥
तद्धि पूर्वं नरश्रेष्ठ दत्तं सदसि दैवतैः । अप्रमेयबलं घोरं मखे परमभास्वरम् ॥ ८ ॥
नास्य देवा न गन्धर्वा नासुरा न च राक्षसाः । कर्तुमारोपणं शक्ता न कथंचन मानुषाः ॥ ९ ॥
धनुषस्तस्य वीर्यं हि जिज्ञासन्तो महीक्षितः । न शेकुरारोपयितुं राजपुत्रा महाबलाः ॥१०॥
तद्धनुर्नरशार्दूल मैथिलस्य महात्मनः । तत्र द्रक्ष्यसि काकुत्स्थ यज्ञं च परमाद्भुतम् ॥११॥
तद्धि यज्ञफलं तेन मैथिलेनोत्तमं धनुः । याचितं नरशार्दूल सुनाभं सर्वदैवतैः ॥१२॥
आयागभूतं नृपतेस्तस्य वेश्मनि राघव । अर्चितं विविधैर्गन्धैर्धूपैश्चागुरुगन्धिभिः ॥१३॥
एवमुक्त्वा मुनिवरः प्रस्थानमकरोत्तदा । सर्षिसङ्घः सकाकुत्स्थ आमन्त्र्य वनदेवताः ॥१४॥
स्वस्तिवोऽस्तुगमिष्यामिसिद्धःसिद्धाश्रमादहम्। उत्तरे जाह्नवीतीरे हिमवन्तं शिलोच्चयम् ॥१५॥
इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलः कौशिकः स तपोधनः । उत्तरां दिशमुद्दिश्य प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥१६॥
तं व्रजन्तं मुनिवरमन्वगादनुसारिणाम् । शकटीशतमात्रं तु प्रयाणे ब्रह्मवादिनाम् ॥१७॥

दास हैं, आपकी सेवामें आये हैं, आज्ञा दीजिए, किस आज्ञाका हमलोग पालन करें ॥ ४ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर आश्रमके सब महर्षि विश्वामित्रको आगे करके बोले अर्थात् उनके द्वारा बोले ॥ ५ ॥

हे नरश्रेष्ठ, मिथिलाके राजा जनकका शुद्ध धार्मिक यज्ञ होरहा है, हमलोग वहां जायंगे ॥६॥ हे नरश्रेष्ठ, हमलोगोंके साथ तुम भी वहां चलोगे। वह धनुष बड़ाही अपूर्व है, उसे तुम देखना॥७॥ वह धनुष देवताओंने यज्ञमें जनकके किसी पूर्व पुरुषको दिया था, उसमें बड़ा बल है वह बड़ाही भयानक और चमकीला है ॥ ८ ॥ इस धनुषपर प्रत्यंचा देवता, गंधर्व, असुर, राक्षस आदि कोई भी नहीं चढ़ा सकता, मनुष्य तो किसी प्रकार भी वह नहीं चढ़ा सकता है ॥ ९ ॥ उस धनुषके बलका पता लगाते हुए राजा और महाबली राजपुत्र उसकी प्रत्यंचा नहीं चढ़ा सके ॥ १० ॥ वह धनुष मिथिलाके राजा महात्मा जनकका है, तुम उस धनुषको देखोगे और विलक्षण वह यज्ञ भी देखोगे ॥ ११ ॥ उस उत्तम धनुषको मिथिलाके राजाने यज्ञ-समाप्तिके समय, यज्ञके फलमें माँगा। उस सुनाभ (जिसके बीचका स्थान अच्छा बँधा हुआ हो) धनुषको सब देवताओंने प्रसन्न होकर शत्रुविजयके लिए दिया ॥ १२ ॥ हे रामचन्द्र, उस राजा जनकके घरमें अनेक प्रकारके गन्ध, धूप, अगरु आदिसे पूजित वह धनुष, यज्ञस्थानमें ही रक्खा हुआ है ॥ १३॥ इतना कहकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रने ऋषियों और राम, लक्ष्मणके साथ, वन-देवताओंसे आज्ञा लेकर प्रस्थान किया ॥ १४ ॥ वहाँसे चलनेके समय, उन्होंने वनदेवताओंसे कहा—तुम लोगोंका कल्याण हो ॥ मैं सिद्ध होकर, (यज्ञ समाप्त कर) इस सिद्धाश्रमसे जा रहा हूँ। गंगाके उत्तर तीर, हिमवान पर्वतकी ओर मैं जाऊँगा ॥ १५ ॥ तपोधन मुनिश्रेष्ठ कौशिकने ऐसा कहकर उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान किया ॥१६॥ मुनिके साथ चलनेवाले अन्य महर्षि सौ गाड़ियोंमें भर-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मृगपक्षिगणाश्चैव सिद्धाश्रमनिवासिनः । अनुजग्मुर्महात्मानो विश्वामित्रं तपोधनम् ॥१८॥
निवर्तयामास ततः सर्षिसङ्घः स पक्षिणः । ते गत्वा दूरमध्वानं लम्बमाने दिवाकरे ॥१९॥
वासं चक्रुर्मुनिगणाः शोणाकूले समाहिताः । तेऽस्तं गते दिनकरे स्नात्वा हुतहुताशनाः ॥२०॥
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य निषेदुरमितौजसः । रामोऽपि सहसौमित्रिर्मुनींस्तानभिपूज्य च ॥२१॥
अग्रतो निषसादाथ विश्वामित्रस्य धीमतः । अथ रामो महातेजा विश्वामित्रं तपोधनम् ॥२२॥
पप्रच्छ मुनिशार्दूलं कौतूहलसमन्वितम् । भगवन्को न्वयं देशः समृद्धवनशोभितः ॥२३॥
श्रोतुमिच्छामि भद्रं ते वक्तुमर्हसि तत्त्वतः । चोदितो रामवाक्येन कथयामास सुव्रतः ।
तस्य देशस्य निखिलमृषिमध्ये महातपाः ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्ड एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ३२

ब्रह्मयोनिर्महानासीत्कुशो नाम महातपाः । अक्लिष्टव्रतधर्मज्ञः सज्जनप्रतिपूजकः ॥ १ ॥
स महात्मा कुलीनायां युक्तायां सुमहाबलान् । वैदर्भ्यां जनयामास चतुरः सदृशान्सुतान् ॥ २ ॥
कुशाम्बं कुशनाभं च असूर्तरजसं वसुम् । दीप्तियुक्तान्महोत्साहान्क्षत्रधर्मचिकीर्षया ॥ ३ ॥

कर उनके साथ चले॥१७॥ सिद्धाश्रमके रहनेवाले पशु, पक्षी आदिने भी जाते हुए तपोधन विश्वामित्रका अनुगमन किया अर्थात् वे भी उनके पीछे पीछे चले ॥ १८ ॥ कुछ दूर आनेपर मुनिने पशुपक्षियोंको लौट जानेके लिए कहा । अन्य महर्षियोंने भी उनको लौटनेको कहा । इस प्रकार वे बहुत दूर चले गये । सूर्य अस्ताचलपर गये ॥ १९ ॥ उस समय शोणनदके तीरपर उन महर्षियोंने सावधान होकर निवास किया । सूर्यके अस्त होजानेपर, स्नान करके उन लोगोंने अग्निहोत्र किया ॥२०॥ वे तेजस्वी महर्षि विश्वामित्रको आगे करके बैठे । रामचन्द्र भी, लक्ष्मणके साथ, महर्षियोंकी पूजा करके ॥ २१ ॥ बुद्धिमान् महर्षि विश्वामित्रके आगे बैठे । उन्होंने, महातेजस्वी तपोधन विश्वामित्रसे ॥ २२ ॥ पूछा । रामचन्द्रको बड़ी उत्कण्ठा थी । उन्होंने कहा—भगवन् ! यह कौन देश है, जो धन-धान्यसे समृद्ध और वनोंसे सुशोभित है ॥ २३ ॥ महाराज, मैं यह जानना चाहता हूँ, इसकी सब यथार्थ बातें आप कहें । रामचन्द्रके वाक्यसे प्रेरित होकर व्रतधारी महातपस्वी विश्वामित्रने उस देशका सब वृत्तान्त ऋषियोंके बीच कहना प्रारंभ किया ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका एकतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३१ ॥

महातपस्वी ब्रह्मपुत्र कुश नामक राजा थे । उनके सभी संकल्प पूरे होते थे और वे धर्म जानते थे । वे सज्जनोंके पूजक थे ॥ १ ॥ उन महात्मा कुशने अपने अनुरूप वैदर्भी नामकी स्त्रीसे चार पुत्र उत्पन्न किये । वे चारो पुत्र पिताके समान हुए ॥२॥ कुशाम्ब, कुशनाभ, असूर्तरजस और वसु, बड़े उत्साही और तेजस्वी ये चार पुत्र क्षात्र-धर्मकी वृद्धिके लिए, राजाने उत्पन्न किये ॥ ३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तानुवाच कुशः पुत्रान्धर्मिष्ठान्सत्यवादिनः । क्रियतां पालनं पुत्रा धर्म प्राप्स्यथ पुष्कलम् ॥ ४ ॥
कुशस्य वचनं श्रुत्वा चत्वारो लोकसत्तमाः । निवेशं चक्रिरे सर्वे पुराणां नृवरास्तदा ॥ ५ ॥
कुशाम्बस्तु महातेजाः कौशाम्बीमकरोत्पुरीम् । कुशनाभस्तु धर्मात्मा पुरं चक्रे महोदयम् ॥ ६ ॥
असूर्तरजसो नाम धर्मारण्यं महामतिः । चक्रे पुरवरं राजा वसुर्नाम गिरिव्रजम् ॥ ७ ॥
एषा वसुमती नाम वसोस्तस्य महात्मनः । एते शैलवराः पञ्च प्रकाशन्ते समन्ततः ॥ ८ ॥
सुमागधी नदी रम्या मागधान्विश्रुताऽऽययौ । पञ्चानां शैलमुख्यानां मध्ये मालेव शोभते ॥ ९ ॥
सैषा हि मागधी राम वसोस्तस्य महात्मनः । पूर्वाभिचरिता राम सुक्षेत्रा सस्यमालिनी ॥१०॥
कुशनाभस्तु राजर्षिः कन्याशतमनुत्तमम् । जनयामास धर्मात्मा घृताच्यां रघुनन्दन ॥११॥
तास्तु यौवनशालिन्यो रूपवत्यः स्वलंकृताः । उद्यानभूमिमागम्य प्रावृषीव शतह्रदाः ॥१२॥
गायन्त्यो नृत्यमानाश्च वादयन्त्यस्तु राघव । आमोदं परमं जग्मुर्वराभरणभूषिताः ॥१३॥
अथ ताश्चारुसर्वाङ्ग्यो रूपेणाप्रतिमा भुवि । उद्यानभूमिमागम्य तारा इव घनान्तरे ॥१४॥
ताः सर्वा गुणसंपन्ना रूपयौवनसंयुताः । दृष्ट्वा सर्वात्मको वायुरिदं वचनमब्रवीत् ॥१५॥
अहं वः कामये सर्वा भार्या मम भविष्यथ । मानुषस्त्यज्यतां भावो दीर्घमायुरवाप्स्यथ ॥१६॥
चलं हि यौवनं नित्यं मानुषेषु विशेषतः । अक्षयं यौवनं प्राप्ता अमर्यश्च भविष्यथ ॥१७॥

कुशने अपने धर्मात्मा और सत्यवादी पुत्रोंसे कहा—तुमलोग प्रजाका पालन करो। बड़ा धर्म होगा ॥ ४ ॥ कुशके वचन सुनकर लोकश्रेष्ठ उन चारो पुत्रोंने भिन्न-भिन्न नगरोंमें अपने उपनिवेश बसाये ॥ ५ ॥ महातेजस्वी कुशाम्बने कौशाम्बी नगरी बसायी। धर्मात्मा कुशनाभने महोदय (कन्नौज) नामक नगर बसाया ॥ ६ ॥ बुद्धिमान असूर्त्तरजसने धर्मारण्य नामक नगर बसाया और राजा वसुने गिरिव्रज नामक नगर बसाया ॥ ७ ॥ यह भूमि उसी महात्मा वसुकी है। ये पाँच पर्वत जो दीख पड़ते हैं, उसीके हैं ॥ ८ ॥ यह सुमागधी नामक रमणीय और प्रसिद्ध नदी, मगधमें होकर निकली है और इन पाँचो पर्वतोंके बीचमें मालाके समान मालूम पड़ती है ॥९॥ यह मागधी नदी (शोण) उसी महात्मा वसुकी है। यह पूर्वकी ओर गयी है। इसके दोनों तीर पर उपजाऊ खेत हैं, जिनमें खूब अन्न होता है ॥ १० ॥

राजर्षि कुशनाभने सौ उत्तम कन्याएँ घृताची अप्सरासे उत्पन्न कीं ॥ ११ ॥ रूप-यौवन-सम्पन्न वे कन्याएँ अलङ्कृत होकर बागमें गयीं। वर्षाके समयकी बिजलीके समान वे मालूम पड़ती थीं ॥ १२ ॥ उत्तम आभरणोंसे भूषित वे कन्याएँ गाने, नाचने और बजानेके द्वारा बहुत सन्तुष्ट हुईं ॥ १३ ॥ सर्वाङ्गसुन्दरी और अलौकिक रूपवाली वे कन्याएँ बागमें आकर मेघसे छिपी ताराओंके समान हो गयीं ॥ १४ ॥ वे सभी गुणवती थीं, सभी रूपवती और युवती थीं। उनको देखकर सब स्थानपर विचरण करनेवाला वायु बोला ॥ १५ ॥ मैं तुम लोगोंको चाहता हूँ। तुम लोग मेरी स्त्री बनो। तुम लोग अपना मानवी भाव छोड़ दो; लम्बी आयु पाओगी ॥ १६ ॥ यौवन चञ्चल है—विशेषकर मनुष्योंका तो वह और भी चञ्चल है। मेरे साथ विवाह करनेपर तुम लोग अक्षय (सदा रहनेवाला) यौवन पाओगी और तुम लोग देवस्त्री हो जाओगी ॥ १७ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वायोरक्लिष्टकर्मणः । अपहास्य ततो वाक्यं कन्याशतमथाब्रवीत् ॥१८॥
अन्तश्चरसि भूतानां सर्वेषां सुरसत्तम । प्रभावज्ञाश्च ते सर्वाः किमर्थमवमन्यसे ॥१९॥
कुशनाभसुता देव समस्ताः सुरसत्तम । स्थानाच्च्यावयितुं देवं रक्षामस्तु तपो वयम् ॥२०॥
मा भूत्स कालो दुर्मेधः पितरं सत्यवादिनम् । अवमन्य स्वधर्मेण स्वयंवरमुपास्महे ॥२१॥
पिता हि प्रभुरस्माकं दैवतं परमं च सः । यस्य नो दास्यति पिता स नो भर्ता भविष्यति ॥२२॥
तासां तु वचनं श्रुत्वा हरिः परमकोपनः । प्रविश्य सर्वगात्राणि वभञ्ज भगवान्प्रभुः ॥२३॥
ताः कन्या वायुना भग्ना विविशुर्नृपतेर्गृहम् । प्रविश्य च सुसंभ्रान्ताःसलज्जाःसास्रलोचनाः॥२४॥
स च ता दयिता भग्नाः कन्याः परमशोभनाः । दृष्ट्वा दीनास्तदा राजा संभ्रान्त इदमब्रवीत् ॥२५॥
किमिदं कथ्यतां पुत्र्यः को धर्ममवमन्यते । कुब्जाः केन कृताः सर्वाश्चेष्टन्त्यो नाभिभाषथ ।
एवं राजा विनिःश्वस्य समाधिं संदधे ततः ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

उन परम पराक्रमी वायुके वे वचन सुनकर कन्याओंने हँसकर उनका तिरस्कार किया और कहा ॥१८॥ हे देवश्रेष्ठ ! तुम सब प्राणियोंके भीतर निवास करते हो, इससे किसके मनमें क्या है, यह भी जानते हो । फिर, हमलोगों के मनकी बात जानकर भी क्यों हमलोगोंका अपमान कर रहे हो ॥ १९ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! हम सब कुशनाभकी कन्याएँ हैं । तुमको तुम्हारे वर्तमान पदसे हटा सकती हैं, पर तपस्याकी हानिके भयसे वैसा नहीं करतीं ॥ २० ॥ हे मूर्ख, हमलोगोंके पिता तुम्हारे लिए काल न हों, सत्यवादी पिताका तिरस्कार मत करो । अपने धर्मके अनुसार, पिताकी आज्ञासे, हमलोग स्वयंवर करेंगी ॥२१॥ पिता ही हमलोगोंके स्वामी हैं, वे ही देवता हैं । वे जिसको देंगे, वही हमलोगोंका पति होगा ॥ २२ ॥ उन कन्याओंके वचन सुनकर वायु बड़े क्रोधित हुए और उन कन्याओंके शरीरमें घुसकर उन्होंने उनके शरीरको तोड़ दिया । वे एक बित्तेभरकी हो गयीं । उनके अङ्ग टूट गये और उनमें बड़ी वेदना होने लगी ॥ २३ ॥ वायुके द्वारा तोड़ी हुई वे कन्याएँ राजाके घरमें गयीं । वे बहुत ही घबड़ायी हुई और लज्जित थीं । उनकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे ॥ २४ ॥ अपनी प्यारी और सुन्दरी कन्याओंको टूटी हुई और दुखी देखकर राजा घबड़ाए और बोले ॥ २५ ॥ यह क्या है, बेटियो, कहो कौन धर्मका तिरस्कार कर रहा है ? किस कारणसे तुमलोग कुबड़ी हो गयी हो कि प्रयत्न करनेपर भी बोल नहीं सकतीं ? इस प्रकार दुखसे साँस छोड़कर राजाने समाधि लगायी ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३२ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ३३

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कुशनाभस्य धीमतः । शिरोभिश्चरणौ स्पृष्ट्वा कन्याशतमभाषत ॥ १ ॥
वायुः सर्वात्मको राजन्प्रधर्षयितुमिच्छति । अशुभं मार्गमास्थाय न धर्मं प्रत्यवेक्षते ॥ २ ॥
पितृपत्यः स्म भद्रं ते स्वच्छन्दे न वयं स्थिताः । पितरं नो वृणीष्व त्वं यदि नो दास्यते तव ॥ ३ ॥
तेन पापानुबन्धेन वचनं न प्रतीच्छता । एवं ब्रुवन्त्यः सर्वाः स्म वायुनाभिहता भृशम् ॥ ४ ॥
तासां तु वचनं श्रुत्वा राजा परमधार्मिकः । प्रत्युवाच महातेजाः कन्याशतमनुत्तमम् ॥ ५ ॥
क्षान्तं क्षमावतां पुत्र्यः कर्तव्यं सुमहत्कृतम् । ऐकमत्यमुपागम्य कुलं चावेक्षितं मम ॥ ६ ॥
अलंकारो हि नारीणां क्षमा तु पुरुषस्य वा । दुष्करं तच्च वै क्षान्तं त्रिदशेषु विशेषतः ॥ ७ ॥
यादृशी वः क्षमा पुत्र्यः सर्वासामविशेषतः । क्षमा दानं क्षमा सत्यं क्षमा यज्ञाश्च पुत्रिकाः ॥ ८ ॥
क्षमा यशः क्षमा धर्मः क्षमायां विष्ठितं जगत् । विसृज्य कन्याः काकुत्स्थ राजा त्रिदशविक्रमः ॥९॥
मन्त्रज्ञो मन्त्रयामास प्रदानं सह मन्त्रिभिः । देशे काले च कर्तव्यं सदृशे प्रतिपादनम् ॥१०॥
एतस्मिन्नेव काले तु चूली नाम महाद्युतिः । ऊर्ध्वरेताः शुभाचारो ब्राह्मं तप उपागमत् ॥११॥
तपस्यन्तमृषिं तत्र गन्धर्वी पर्युपासते । सोमदा नाम भद्रं ते ऊर्मिलातनया तदा ॥१२॥
सा च तं प्रणता भूत्वा शुश्रूषणपरायणा । उवास काले धर्मिष्ठा तस्यास्तुष्टोऽभवद्गुरुः ॥१३॥

बुद्धिमान् कुशनाभकी ये बातें सुनकर उनके चरणोंमें प्रणाम कर सौ कन्याएँ बोलीं ॥ १ ॥ सब स्थानपर विचरण करनेवाला वायु हम लोगोंको नष्ट करना चाहता था, सो भी अधर्मके द्वारा, वह धर्मका कुछ भी ख्याल नहीं करता ॥ २ ॥ हमलोगोंने वायुसे कहा—हमारे पिता वर्तमान हैं, हमलोग स्वाधीन नहीं हैं, आप हम लोगोंके पितासे मांगें यदि वे दें ॥ ३ ॥ पर पापकी इच्छा रखनेवाले वायुने हमलोगोंकी बात न सुनी, हम लोग ऐसा कहती ही रह गयीं और उसने हमारी यह दशा कर दी ॥ ४ ॥ उन कन्याओंके वचन सुनकर महातेजस्वी परमधार्मिक राजाने कहा ॥५॥ पुत्रियों, क्षमावानोंकी क्षमा बहुत बड़ा काम है, एकमत होकर तुम लोगोंने वह क्षमा की है यह बहुत बड़ा काम तुम लोगोंने किया है, यह काम मेरे कुलके उचित हुआ है ॥ ६ ॥ पुरुष हो या स्त्री, क्षमा उसका भूषण है, पर वह क्षमा कठिन है, देवताओंके लिए भी कठिन है ॥ ७ ॥ पुत्रियो, तुम लोगोंकी जसी क्षमा है वैसी क्षमा हमारे कुलमें औरोंकी भी हो, पुत्रियो, क्षमा दान है, सत्य है और यज्ञ है ॥८॥ क्षमा ही यश है, धर्म है, उसमें समस्त संसार वर्तमान है । ऐसा कहकर देवताओंके समान पराक्रमी राजाने कन्याओंको जानेके लिए कहा ॥ ९ ॥ विचारका महत्व जाननेवाले राजाने मंत्रियोंके साथ विचार किया कि उपयुक्त समय, उचित कालमें योग्य वरको इन कन्याओंका दान करना चाहिए ॥१०॥ इसी समयमें (राजाके विचारकालमें) ही महातेजस्वी, ऊर्ध्वरेता, सदाचारी चूली नामक ऋषिने वेद-विहित तपस्या प्रारम्भ की ॥ ११ ॥ ये ऋषि जब तपस्या कर रहे थे उस समय उर्मिलाकी कन्या सोमदा नामकी गन्धर्वी उनकी सेवा करने लगी ॥ १२ ॥ वह सोमदा बड़ी नम्रतासे मुनिकी सेवा करती थी, इस तरह उसके कुछ समय बीत गये,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स च तां कालयोगेन प्रोवाच रघुनन्दन । परितुष्टोऽस्मि भद्रं ते किं करोमि तव प्रियम् ॥१४॥
परितुष्टं मुनिं ज्ञात्वा गन्धर्वी मधुरस्वरम् । उवाच परमप्रीता वाक्यज्ञा वाक्यकोविदम् ॥१५॥
लक्ष्म्या समुदितो ब्राह्म्या ब्रह्मभूतो महातपाः । ब्राह्मेण तपसा युक्तं पुत्रमिच्छामि धार्मिकम् ॥१६॥
अपतिश्चास्मि भद्रं ते भार्या चास्मि न कस्यचित् । ब्राह्मेणोपगतायाश्च दातुमर्हसि मे सुतम् ॥१७॥
तस्याः प्रसन्नो ब्रह्मर्षिर्ददौ ब्राह्ममनुत्तमम् । ब्रह्मदत्त इति ख्यातं मानसं चूलिनः सुतम् ॥१८॥
स राजा ब्रह्मदत्तस्तु पुरीमध्यवसत्तदा । काम्पिल्यां परया लक्ष्म्या देवराजो यथा दिवम्॥१९॥
स बुद्धिं कृतवान्राजा कुशनाभः सुधार्मिकः । ब्रह्मदत्ताय काकुत्स्थ दातुं कन्याशतं तदा ॥२०॥
तमाहूय महातेजा ब्रह्मदत्तं महीपतिः । ददौ कन्याशतं राजा सुप्रीतेनान्तरात्मना ॥२१॥
यथाक्रमं तदा पाणिं जग्राह रघुनन्दन । ब्रह्मदत्तो महीपालस्तासां देवपतिर्यथा ॥२२॥
स्पृष्टमात्रे तदा पाणौ विकुब्जा विगतज्वराः । युक्तं परमया लक्ष्म्या बभौ कन्याशतं तदा ॥२३॥
स दृष्ट्वा वायुना मुक्ताः कुशनाभो महीपतिः । बभूव परमप्रीतो हर्षं लेभे पुनः पुनः ॥२४॥
कृतोद्वाहं तु राजानं ब्रह्मदत्तं महीपतिम् । सदारं प्रेषयामास सोपाध्यायगणं तदा ॥२५॥
सोमदापि सुतं दृष्ट्वा पुत्रस्य सदृशीं क्रियाम् । यथान्यायं च गन्धर्वी स्नुषास्ताः प्रत्यनन्दत ।
स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च ताः कन्याः कुशनाभं प्रशस्य च ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

मुनि उसपर प्रसन्न हुए ॥१३॥ वे मुनि उचित समयपर उससे बोले, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कौनसा प्रिय काम करूं ॥ १४ ॥ मुनिको प्रसन्न जानकर समयोचित बोलनेमें निपुण गन्धर्वी प्रसन्न होकर वाक्योंके मर्म समझनेवाले मुनिसे बोली ॥ १५ ॥ महाराज आप ब्राह्मी विभूतिसे युक्त हैं अतएव ब्रह्मस्वरूप हैं, आप महातपस्वी हैं । मैं ब्राह्म तपस्यासे युक्त धार्मिक पुत्र चाहती हूँ ॥ १६ ॥ मैं अविवाहिता हूँ, किसीकी स्त्री नहीं हूँ, मैं वैदिक विधानोंके अनुसार आपकी सेवा करती हूँ, ब्राह्म उपायसे ही (सनकादिके समान मानस) पुत्र आप मुझे दें ॥ १७ ॥ प्रसन्न होकर महर्षिने उसको ब्राह्म (मानस) पुत्र दिया । चूली ऋषिके उस मानस पुत्रका ब्रह्मदत्त नाम पड़ा ॥ १८ ॥ वह ब्रह्मदत्त बड़े ऐश्वर्यके साथ काम्पिल्य नगरमें राज्य करता है, जिस तरह देव लोकमें इन्द्र ॥ १९ ॥ इस बातके स्मरण आनेपर परम धार्म्मिक राजा कुशनाभने निश्चय किया कि ब्रह्मदत्तको ही ये सब कन्याएँ दी जाँय ॥ २० ॥ महातेजस्वी राजाने उन ब्रह्मदत्तको बुलाया और प्रसन्नता पूर्वक सौ कन्याएँ उनको दानमें दीं ॥ २१ ॥ राजा ब्रह्मदत्तने क्रमसे उन सब कन्याओंका पाणिग्रहण किया, मानो इन्द्र पाणिग्रहण करता हो ॥ २२ ॥ ब्रह्मदत्तके स्पर्श होते ही उन कन्याओंका कूबड़ दूर हो गया । उनके सब दुःख दूर होगये । वे सब कन्याएँ बड़ी शोभासे युक्त होकर शोभने लगीं ॥ २३ ॥ राजा कुशनाभने देखा कि कन्याएँ वायुरोगसे मुक्त हो गयीं, यह देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए और बार-बार प्रसन्न हुए ॥ २४ ॥ राजा कुशनाभने विवाह हो जानेपर राजा ब्रह्मदत्तको और उनके पुरोहितोंको आदर पूर्वक विदा किया ॥२५॥ सोमदा भी पुत्रका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चतुस्त्रिंशः सर्गः ३४

कृतोद्वाहे गते तस्मिन्ब्रह्मदत्ते च राघव । अपुत्रः पुत्रलाभाय पौत्रीमिष्टिमकल्पयत् ॥ १ ॥
इष्ट्वां तु वर्तमानायां कुशनाभं महीपतिम् । उवाच परमोदारः कुशो ब्रह्मसुतस्तदा ॥ २ ॥
पुत्रस्ते सदृशः पुत्र भविष्यति सुधार्मिकः । गाधिं प्राप्स्यसि तेन त्वं कीर्तिं लोके च शाश्वतीम्॥३॥
एवमुक्त्वा कुशो राम कुशनाभं महीपतिम् । जगामाकाशमाविश्य ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ४ ॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य कुशनाभस्य धीमतः । जज्ञे परमधर्मिष्ठो गाधिरित्येव नामतः ॥ ५ ॥
स पिता मम काकुत्स्थ गाधिः परमधार्मिकः । कुशवंशप्रसूतोऽस्मि कौशिको रघुनन्दन ॥ ६ ॥
पूर्वजा भगिनी चापि मम राघव सुव्रता । नाम्ना सत्यवती नाम ऋचीके प्रतिपादिता ॥ ७ ॥
सशरीरा गता स्वर्गं भर्तारमनुवर्तिनी । कौशिकी परमोदारा प्रवृत्ता च महानदी ॥ ८ ॥
दिव्या पुण्योदका रम्या हिमवन्तमुपाश्रिता । लोकस्य हितकार्यार्थं प्रवृत्ता भगिनी मम ॥ ९ ॥
ततोऽहं हिमवत्पार्श्वे वसामि नियतः सुखम् । भगिन्यां स्नेहसंयुक्तः कौशिक्यां रघुनन्दन ॥१०॥
सा तु सत्यवती पुण्या सत्ये धर्मे प्रतिष्ठिता । पतिव्रता महाभागा कौशिकी सरितां वरा ॥११॥
अहं हि नियमाद्राम हित्वा तां समुपागतः । सिद्धाश्रममनुप्राप्तः सिद्धोऽस्मि तव तेजसा ॥१२॥

कर्म (विवाह आदि) देखकर प्रसन्न हुई और उन बहुओंपर भी प्रसन्न हुई और उसने उन कन्याओंको बारबार प्यारसे छूआ । राजा कुशनाभकी भी उसने प्रशंसा की ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका तेंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३३ ॥

विश्वामित्रने रामचन्द्रसे कहा–विवाह कर जब राजा ब्रह्मदत्त चले गये, तब राजा कुशनाभने पुत्रेष्टि यज्ञ करना प्रारम्भ किया ॥ १ ॥ राजा कुशनाभ जब दीक्षित थे उसी समय ब्रह्मपुत्र कुशने (कुशनाभके पिताने) कहा, ॥ २ ॥ पुत्र, तुम्हारेही समान धार्मिक पुत्र तुमको होगा, उसका गाधि नाम होगा और उससे तुम संसारमें अक्षय कीर्ति पावोगे ॥ ३ ॥ राजा कुशनाभसे ऐसा कहकर कुश आकाशमें होकर सनातन ब्रह्मलोकमें गये ॥ ४ ॥ कुछ दिनोंके पश्चात् राजा कुशनाभके गाधि नामका परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥५॥ विश्वामित्रने कहा, रामचन्द्र, ये परमधार्मिक गाधि ही मेरे पिता हैं, मैं कुश-वंशमें उत्पन्न हुआ हूँ इसलिए कौशिक कहा जाता हूँ ॥ ६ ॥

रामचन्द्र, मुझसे बड़ी, व्रतनिष्ठ मेरी बड़ी बहिन थी, जिसका नाम सत्यवती था और जो ऋचिकको दीगयी थी ॥७॥ पतिकी सर्वात्मना सेवा करनेवाली वह मेरी बहिन इस शरीरसे ही स्वर्ग गयी और उसके नामसे कौशिकी नामकी एक महानदी बही ॥८॥ वह मेरी बहिन मनुष्योंके लौकिक और पारलौकिक कामोंके लिए पवित्र और रमणीय जल होकर बही । वह स्वर्गसे हिमालयमें गयी ॥ ९ ॥ तभीसे मैं हिमवान पर्वतकी तराईमें सुखपूर्वक निवास करता हूँ, क्योंकि मेरी बहिन कौशिकी नदी रूपसे वहाँ वर्तमान है ॥ १० ॥ वह सत्यवती बड़ी पवित्र और सत्य धर्मका पालन करनेवाली थी । वह पतिव्रता, आज कौशिकी नामसे एक श्रेष्ठ नदी है ॥ ११ ॥ यज्ञ करनेके लिए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एषा राम ममोत्पत्तिः स्वस्य वंशस्य कीर्तिता । देशस्य हि महाबाहो यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥१३॥
गतोऽर्धरात्रः काकुत्स्थ कथाः कथयतो मम । निद्रामभ्येहि भद्रं ते मा भूद्विघ्नोऽध्वनीह नः ॥१४॥
निष्पन्दास्तरवः सर्वे निलीना मृगपक्षिणः । नैशेन तमसा व्याप्ता दिशश्च रघुनन्दन ॥१५॥
शनैर्विसृज्यते संध्या नभो नेत्रैरिवावृतम् । नक्षत्रतारागहनं ज्योतिर्भिरवभासते ॥१६॥
उत्तिष्ठते च शीतांशुः शशी लोकतमोनुदः । ह्लादयन्प्राणिनां लोके मनांसि प्रभया स्वया ॥१७॥
नैशानि सर्वभूतानि प्रचरन्ति ततस्ततः । यक्षराक्षससङ्घाश्च रौद्राश्च पिशिताशनाः ॥१८॥
एवमुक्त्वा महातेजा विरराम महामुनिः । साधुसाध्विति ते सर्वे मुनयो ह्यभ्यपूजयन् ॥१९॥
कुशिकानामयं वंशो महान्धर्मपरः सदा । ब्रह्मोपमा महात्मानः कुशवंश्या नरोत्तमाः ॥२०॥
विशेषेण भवानेन विश्वामित्र महायशः । कौशिकी सरितां श्रेष्ठा कुलोद्द्योतकरी तव ॥२१॥
मुदितैर्मुनिशार्दूलैः प्रशस्तः कुशिकात्मजः । निद्रामुपागमच्छ्रीमानस्तंगत इवांशुमान् ॥२२॥
रामोऽपि सहसौमित्रिः किंचिदागतविस्मयः । प्रशस्य मुनिशार्दूलं निद्रां समुपसेवते ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

मैं अपनी बहिनको छोड़कर यहाँ, सिद्धाश्रममें आया और तुम्हारे पराक्रमसे मुझे सिद्धि भी मिली॥१२॥ रामचन्द्र, यही मेरे वंशकी उत्पत्तिकी कथा है। अपने देशकी भी कथा मैंने कही, जो तुमने मुझसे पूछी थी ॥ १३ ॥ रामचन्द्र, बातें करते हुए मुझे आधी रात बीत गयी। सोओ, जिससे कल मार्ग चलनेमें रुकावट न हो ॥१४॥ पत्ती भी नहीं डोलती, पशु-पक्षी सो रहे हैं। रातका अन्धकार सब दिशाओंमें फैल गया है ॥ १५ ॥ सन्ध्या दूर चली गयी, आकाश, नक्षत्र और ताराओंसे भर गया, मालूम होता था कि वह प्रकाशमान आखोंसे भरा हुआ है ॥ १६ ॥ अन्धकार दूर करनेवाले ये शीतल किरणोंवाले चन्द्रमा उदित होरहे हैं और अपनी प्रभासे प्राणियोंके मनको आह्लादित कर रहे हैं ॥ १७ ॥ रातमें चलनेवाले प्राणी इधर-उधर विचर रहे हैं, मांस खानेवाले और भयानक यक्ष और राक्षसोंका समूह, इधर-उधर फिर रहा है ॥ १८ ॥ महातेजस्वी विश्वामित्र ऐसा कहकर चुप होगये और साधु-साधु कहकर मुनियोंने उनके वचनकी प्रशंसा की ॥ १९ ॥ महर्षियोंने कहा—यह कुशिक वंश सदासे बड़ा धर्मात्मा है। कुशवंशी नरश्रेष्ठ बड़े महात्मा और ब्रह्मर्षि हुए हैं ॥ २० ॥ विश्वामित्र, विशेषकर आपने और नदीश्रेष्ठ कौशिकीने इस कुलकी मर्यादा और बढ़ाई है ॥ २१ ॥ प्रसन्न मुनियोंसे प्रशंसित होकर विश्वामित्र अस्तगामी सूर्यके समान निद्राके वशीभूत हुए ॥ २२ ॥ लक्ष्मणके साथ रामचन्द्र भी मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रकी प्रशंसा कर सोये। उनको मुनिके वृत्तान्त सुननेसे आश्चर्य हुआ था ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका चौंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३४ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चत्रिंशः सर्गः ३५

उपास्य रात्रिशेषं तु शोणाकूले महर्षिभिः । निशायां सुप्रभातायां विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥ १ ॥
सुप्रभाता निशा राम पूर्वा संध्या प्रवर्तते । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते गमनायाभिरोचय ॥ २ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कृतपौर्वाह्णिकक्रियः । गमनं रोचयामास वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ३ ॥
अयं शोणः शुभजलोऽगाधः पुलिनमण्डितः । कतरेण पथा ब्रह्मन्संतरिष्यामहे वयम् ॥ ४ ॥
एवमुक्तस्तु रामेण विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम् । एष पन्था मयोद्दिष्टो येन यान्ति महर्षयः ॥ ५ ॥
ते गत्वा दूरमध्वानं गतेऽर्धदिवसे तदा । जाह्नवीं सरितां श्रेष्ठां ददृशुर्मुनिसेविताम् ॥ ६ ॥
तां दृष्ट्वा पुण्यसलिलां हंससारससेविताम् । बभूवुर्मुनयः सर्वे मुदिताः सहराघवाः ॥ ७ ॥
तस्यास्तीरे तदा सर्वे चक्रुर्वासपरिग्रहम् । ततः स्नात्वा यथान्यायं संतर्प्य पितृदेवताः ॥ ८ ॥
हुत्वा चैवाग्निहोत्राणि प्राश्य चामृतवद्धविः । विविशुर्जाह्नवीतीरे शुभा मुदितमानसाः ॥ ९ ॥
विश्वामित्रं महात्मानं परिवार्य समन्ततः । विष्ठिताश्च यथान्यायं राघवौ च यथार्हतः ।
संप्रहृष्टमना रामो विश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥ १० ॥
भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि गङ्गां त्रिपथगां नदीम् । त्रैलोक्यं कथमाक्रम्य गता नदनदीपतिम् ॥ ११ ॥
चोदितो रामवाक्येन विश्वामित्रो महामुनिः । वृद्धिं जन्म च गङ्गाया वक्तुमेवोपचक्रमे ॥ १२ ॥
शैलेन्द्रो हिमवान्राम धातूनामाकरो महान् । तस्य कन्याद्वयं राम रूपेणाप्रतिमं भुवि ॥ १३ ॥

बची हुई रातको, महर्षियोंके साथ सोनके तीरपर बिताकर, रात्रिके बीत जानेपर (अच्छी तरह प्रातःकाल होने पर) मुनि विश्वामित्रने कहा ॥१॥ रामचन्द्र, रात्रि बीत गयी । प्रातःकालकी सन्ध्या हो रही है । उठो, उठो, तुम्हारा कल्याण हो । चलनेकी तयारी करो ॥ २ ॥ महर्षि के वचन सुनकर राम और लक्ष्मणने प्रातःकालके धार्मिक कृत्य किये, तदनन्तर चलनेके लिए तयार हुए और बोले ॥३॥ महराज, यह सुन्दर जलवाला शोण अगाध है, इसके दोनों तरफ करारे हैं, किस मार्गसे हमलोग इसको पार करेंगे ॥४॥ रामचन्द्रके यह पूछनेपर विश्वामित्रने कहा—यह मार्ग मैंने बतलाया है, जिससे महर्षिलोग भी जायेंगे ॥५॥ वे बड़ी दूर चले गये, मध्यान्ह हो गया, उस समय मुनियोंके द्वारा सेवित नदीश्रेष्ठ गंगाको हमलोगोंने देखा ॥ ६ ॥ गंगाका पवित्र जल और हंस, सारस आदि पक्षियोंकी क्रीड़ा देखकर रामचन्द्रके साथ अन्य महर्षि भी प्रसन्न हुए ॥७॥ उस नदीके तीरपर उन सबने डेरा डाला । स्नान करके विधिपूर्वक देवता और पितरोंका, उनलोगोंने, तर्पण किया ॥ ८ ॥ अग्निहोत्र करके और अमृतके समान हविष्य खाकर वे सब प्रसन्नतापूर्वक गंगाके तीरपर आये ॥९॥ बीचमें विश्वामित्र थे और चारो ओरसे मुनिगण उन्हें घेरे हुए थे । सब योग्य स्थानोंपर बैठे थे और राम लक्ष्मण भी अपने योग्य स्थानपर विराजमान थे । प्रसन्न होकर रामचन्द्र विश्वामित्रसे बोले ॥१०॥ भगवन्, मैं जानना चाहता हूँ, कि यह त्रिपथगा (तीन धारावाली) गंगा, किस प्रकार तीनों लोकोंमें घूमकर समुद्रसे मिली ॥ ११ ॥ रामचन्द्रके वचनसे प्रेरित होकर महामुनि विश्वामित्र, गंगाके जन्म और उनकी वृद्धिका वृत्तान्त कहने लगे ॥ १२ ॥ हे रामचन्द्र, हिम-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

या मेरुदुहिता राम तयोर्माता सुमध्यमा । नाम्ना मेना मनोज्ञा वै पत्नी हिमवतः प्रिया ॥१४॥
तस्यां गङ्गेयमभवज्ज्येष्ठा हिमवतः सुता । उमा नाम द्वितीयाऽभूत्कन्या तस्यैव राघव ॥१५॥
अथ ज्येष्ठां सुराः सर्वे देवकार्यचिकीर्षया । शैलेन्द्रं वरयामासुर्गङ्गां त्रिपथगां नदीम् ॥१६॥
ददौ धर्मेण हिमवांस्तनयां लोकपावनीम् । स्वच्छन्दपथगां गङ्गां त्रैलोक्यहितकाम्यया ॥१७॥
प्रतिगृह्य त्रिलोकार्थं त्रिलोकहितकाङ्क्षिणः । गङ्गामादाय तेऽगच्छन्कृतार्थेनान्तरात्मना ॥१८॥
या चान्या शैलदुहिता कन्यासीद्रघुनन्दन । उग्रं सुव्रतमास्थाय तपस्तेपे तपोधना ॥१९॥
उग्रेण तपसा युक्तां ददौ शैलवरः सुताम् । रुद्रायाप्रतिरूपाय उमां लोकनमस्कृताम् ॥२०॥
एते ते शैलराजस्य सुते लोकनमस्कृते । गङ्गा च सरितां श्रेष्ठा उमादेवी च राघव ॥२१॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं यथा त्रिपथगामिनी । खं गता प्रथमं तात गतिं गतिमतां वर ।
सुरलोकं समारूढा विपापा जलवाहिनी ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः ३६

उक्तवाक्ये मुनौ तस्मिन्नुभौ राघवलक्ष्मणौ । प्रतिनन्द्य कथां वीरावूचतुर्मुनिपुंगवम् ॥ १ ॥
धर्मयुक्तमिदं ब्रह्मन्कथितं परमं त्वया । दुहितुः शैलराजस्य ज्येष्ठाया वक्तुमर्हसि ।
विस्तरं विस्तरज्ञोऽसि दिव्यमानुषसंभवम् ॥ २ ॥

वान नामका एक पर्वत है, वह सब धातुओं की खान है । उसकी दो बड़ी सुन्दरी कन्याएँ थीं ॥ १३ ॥ मेरु पर्वतकी कन्या, मेना, उन कन्याओंकी माता है और वह हिमवानकी स्त्री है ॥ १४ ॥ उसी मेनासे इस गंगा नामकी कन्याकी उत्पत्ति हुई है । यह हिमवानकी बड़ी कन्या है । रामचन्द्र, छोटी कन्याका नाम उमा है ॥ १५ ॥ अनन्तर सब देवताओंने देवकार्यकी सिद्धिके लिए त्रिपथगा गंगा नदीको हिमवानसे माँगा ॥ १६ ॥ हिमवानने त्रिलोकका हित करनेकी इच्छासे, स्वेच्छानुसार चलनेवाली और लोकोंको पवित्र करनेवाली अपनी गंगा नामकी पुत्रीका धर्मपूर्वक दान किया ॥ १७ ॥ त्रिलोकके लिए, त्रिलोक-हिताकांक्षी देवगण, गंगाको लेकर चले गये, क्योंकि उनका मनोरथ सिद्ध होगया ॥ १८ ॥ रामचन्द्र, हिमवानकी दूसरी जो कन्या थी, उस तपस्विनीने कठिन व्रत ग्रहण कर, तपस्या प्रारम्भ की ॥ १९ ॥ सबके द्वारा पूजित उग्रतपस्विनी अपनी कन्याका दान हिमवानने अद्वितीय महादेवको दिया ॥२०॥ रामचन्द्र, हिमवानके येही दो, नदियोंमें श्रेष्ठ गंगा और उमा नामकी लोकपूजित कन्याएँ हैं ॥२१॥ हे मानवश्रेष्ठ, जिसप्रकार, निष्पाप और जलरूपसे बहनेवाली, यह गंगा नदी पहले आकाशमें जाकर फिर देवलोकमें चली गयी, यह सब मैंने कहा ॥२२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका पैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३५ ॥

——:**:——

मुनिके चुप होजानेपर राम और लक्ष्मण दोनोंने विश्वामित्रकी कथाकी प्रशंसा की और वे बोले ॥ १ ॥ महाराज, पर्वतराज हिमवानकी जो कथा आपने कही वह बहुतही धर्मयुक्त है, अर्थात्

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्रीन्पथो हेतुना केन प्लावयेल्लोकपावनी । कथं गङ्गा त्रिपथगा विश्रुता सरिदुत्तमा ॥ ३ ॥
त्रिषु लोकेषु धर्मज्ञ कर्मभिः कैः समन्विता । तथा ब्रुवति काकुत्स्थे विश्वामित्रस्तपोधनः ॥ ४ ॥
निखिलेन कथां सर्वामृषिमध्ये न्यवेदयत् । पुरा राम कृतोद्वाहः शितिकण्ठो महातपाः ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा च भगवान्देवीं मैथुनायोपचक्रमे । तस्य संक्रीडमानस्य महादेवस्य धीमतः ।
शितिकण्ठस्य देवस्य दिव्यं वर्षशतं गतम् ॥ ६ ॥
न चापि तनयो राम तस्यामासीत्परंतप । सर्वे देवाः समुद्युक्ताः पितामहपुरोगमाः ॥ ७ ॥
यदिहोत्पद्यते भूतं कस्तत्प्रतिसहिष्यति । अभिगम्य सुराः सर्वे प्रणिपत्येदमब्रुवन् ॥ ८ ॥
देवदेव महादेव लोकस्यास्य हिते रत । सुराणां प्रणिपातेन प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ९ ॥
न लोका धारयिष्यन्ति तव तेजः सुरोत्तम । ब्राह्मेण तपसा युक्तो देव्या सह तपश्चर ॥१०॥
त्रैलोक्यहितकामार्थं तेजस्तेजसि धारय । रक्ष सर्वानिमाँल्लोकान्नालोकं कर्तुमर्हसि ॥११॥
देवतानां वचः श्रुत्वा सर्वलोकमहेश्वरः । बाढमित्यब्रवीत्सर्वान्पुनश्चेदमुवाच ह ॥१२॥
धारयिष्याम्यहं तेजस्तेजसैव सहोमया । त्रिदशाः पृथिवी चैव निर्वाणमधिगच्छतु ॥१३॥
यदिदं क्षुभितं स्थानान्मम तेजो ह्यनुत्तमम् । धारयिष्यति कस्तन्मे ब्रुवन्तु सुरसत्तमाः ॥१४॥
एवमुक्तास्ततो देवाः प्रत्यूचुर्वृषभध्वजम् । यत्तेजः क्षुभितं ह्यद्य तद्धरा धारयिष्यति ॥१५॥

वे सब काम धर्मानुसारी हैं, अब उनकी बड़ी कन्या गङ्गाके विषयकी बात कहिए। देवता और मनुष्यसम्बन्धी सब विषयोंका आपको ज्ञान है, इस कारण विश्वासपूर्वक कहिए ॥ २ ॥ लोकोंको पवित्र करनेवाली वह गङ्गा तीन धाराओंमें क्यों बहती है, किस कारण उस श्रेष्ठ नदीका नाम त्रिपथगा गङ्गा पड़ा ॥ ३ ॥ हे धर्मज्ञ, तीनों लोकोंमें गङ्गाकी तीन धाराओंके क्या काम हैं, रामचन्द्र ऐसा कह ही रहे थे, उसी समय तपस्वी विश्वामित्रने ॥ ४ ॥ ऋषियोंके बीचमें आदिसे लेकर सब कथाएँ कहीं। उन्होंने कहा—रामचन्द्र, महातपस्वी महादेवने पहले विवाह किया था ॥ ५ ॥ भगवान महादेव देवीको देखकर उनके साथ रमण करने लगे। इस प्रकार रमण करते-करते उनको देवताओंके सौ वर्ष बीत गये ॥ ६ ॥ परहे रामचन्द्र, उस देवीको कोई पुत्र नहीं हुआ। शिवको इस प्रकार रमण करते जान ब्रह्मा आदि सब देवता बड़े व्याकुल हुए ॥ ७ ॥ वे सब देवता शिवके यहां गये और हाथ जोड़कर बोले-महाराज, इतने दिनोंके रमणके बाद आप जो पुत्र उत्पन्न करेंगे उसका तेज कौन सहेगा ॥ ८ ॥ हे देवताओंके देव, हे महादेव, हे संसारके कल्याण करनेवाले, देवताओंकी प्रार्थनासे हमलोगोंपर कृपा कीजिए ॥९॥ महाराज, आपके तेजको ये लोक धारण नहीं कर सकते, आप वैदिक विधानके अनुसार देवीके साथ तपस्या करें ॥ १० ॥ त्रिलोकके कल्याणके लिए तेजको तेजमें ही रहने दें, इन सब लोकोंकी रक्षा करें। इस संसारको लोकहीन न बनाइए ॥११॥ सब लोकोंके प्रधान स्वामी महादेवने देवताओंकी बातें सुनकर और अच्छा कहकर पुनः कहा ॥ १२ ॥ उमाके साथ मैं भी तेजको तेजमें ही धारण करूंगा, ये देवता और पृथिवी सब सुखी हों ॥ १३ ॥ हे देवश्रेष्ठ, मेरा यह सर्वश्रेष्ठ तेज अपने स्थानसे च्युत हुआ तो उसका धारण कौन करेगा, यह आपलोग बतलावें ॥ १४ ॥ देवताओंने महादेवको उत्तर दिया-स्थानसे च्युत तुम्हारे तेजको यह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमुक्तः सुरपतिः प्रमुमोच महाबलः । तेजसा पृथिवी येन व्याप्ता सगिरिकानना ॥१६॥
ततो देवाः पुनरिदमूचुश्चापि हुताशनम् । आविश त्वं महातेजो रौद्रं वायुसमन्वितः ॥१७॥
तदग्निना पुनर्व्याप्तं संजातं श्वेतपर्वतम् । दिव्यं शरवणं चैव पावकादित्यसंनिभम् ॥१८॥
यत्र जातो महातेजाः कार्तिकेयोऽग्निसंभवः । अथोमां च शिवं चैव देवाः सर्षिगणास्तथा ॥१९॥
पूजयामासुरत्यर्थं सुप्रीतमनसस्तदा । अथ शैलसुता राम त्रिदशानिदमब्रवीत् ॥२०॥
समन्युरशपत्सर्वान्क्रोधसंरक्तलोचना । यस्मान्निवारिता चाहं संगता पुत्रकाम्यया ॥२१॥
अपत्यं स्वेषु दारेषु नोत्पादयितुमर्हथ । अद्यप्रभृति युष्माकमप्रजाः सन्तु पत्नयः ॥२२॥
एवमुक्त्वा सुरान्सर्वाञ्शशाप पृथिवीमपि । अबले नैकरूपा त्वं बहुभार्या भविष्यसि ॥२३॥
न च पुत्रकृतां प्रीतिं मत्क्रोधकलुषीकृता । प्राप्स्यसे त्वं सुदुर्मेधो मम पुत्रमनिच्छती ॥२४॥
तान्सर्वान्पीडितान्दृष्ट्वा सुरान्सुरपतिस्तदा । गमनायोपचक्राम दिशं वरुणपालिताम् ॥२५॥
स गत्वा तप आतिष्ठत्पार्श्वे तस्योत्तरे गिरेः । हिमवत्प्रभवे शृङ्गे सह देव्या महेश्वरः ॥२६॥
एष ते विस्तरो राम शैलपुत्र्या निवेदितः । गङ्गायाः प्रभवं चैव शृणु मे सहलक्ष्मण ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

पृथिवी धारण करेगी ॥ १५ ॥ देवताओंकी ऐसी प्रार्थना सुनकर महादेवने अपने तेजका त्याग किया और उससे पर्वत, वन आदिके साथ समूची पृथिवी भरगयी ॥ १६ ॥ तब देवताओंने पुनः अग्निसे कहा कि वायुके साथ इस भयानक महातेजमें तुम प्रवेश करो ॥ १७ ॥ अग्निसे व्याप्त होने-पर वह तेज श्वेत पर्वतके समान होगया और पुनः अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी शर्वण (एक तरहकी घास) हुआ ॥ १८ ॥ वहाँ महातेजस्वी और अग्निके पुत्र कार्तिकेय उत्पन्न हुए। इसके अनन्तर उमा देवी और शिवकी, ऋषियों और गणोंके साथ, देवताओंने ॥१९॥ प्रसन्नतापूर्वक पूजा की। हे रामचन्द्र, तब उमा देवताओंसे बोलीं ॥२०॥ क्रोधसे उनकी आँखें लाल होगयी थीं, क्रोध-कर उन्होंने शाप दिया-पुत्रकी इच्छासे मैं पतिके पास गयी थी, पर तुमलोगोंने बीचमें ही रोका ॥ २१ ॥ तुमलोग भी अपनी-अपनी स्त्रियोंमें पुत्र उत्पन्न नहीं कर सकोगे । आजसे तुमलोगोंकी स्त्रियाँ पुत्रहीना होंगी ॥२२॥ इस प्रकार देवताओंको शाप देकर उमाने पृथिवीको भी शाप दिया। पृथिवी, तुम अनेकोंकी भार्या बनोगी और तुम्हारा अनेक रूप होगा ॥ २३ ॥ हे मूर्खे, मेरी कोखसे पुत्र न चाहनेवाली तुम मेरे क्रोधके कारण उसमें (कार्तिकेयमें) पुत्रके समान प्रेम न कर सकोगी ॥ २४ ॥ शापके सुननेसे देवताओंको दुखी देखकर इन्द्र वरुणकी दिशा (पश्चिम दिशा) की ओर चले गये ॥ २५ ॥ महादेवजी देवी उमाके साथ उस पर्वतकी उत्तर ओर, हिमवानके एक शिखरपर, तपस्या करने लगे ॥ २६ ॥ हे रामचन्द्र, पर्वत-पुत्री उमाका यह वृत्तान्त विस्तारपूर्वक मैंने कहा। अब गंगाका महात्म्य, लक्ष्मणके साथ, मुझसे सुनो ॥ २७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका छत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३६॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सप्तत्रिंशः सर्गः ३७

तप्यमाने तदा देवे सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः । सेनापतिमभीप्सन्तः पितामहमुपागमन् ॥ १ ॥
ततोऽब्रुवन्सुराः सर्वे भगवन्तं पितामहम् । प्रणिपत्य सुरा राम सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥ २ ॥
येन सेनापतिर्देव दत्तो भगवता पुरा । स तपः परमास्थाय तप्यते स्म सहोमया ॥ ३ ॥
यदत्रानन्तरं कार्यं लोकानां हितकाम्यया । संविधत्स्व विधानज्ञ त्वं हि नः परमा गतिः ॥ ४ ॥
देवतानां वचः श्रुत्वा सर्वलोकपितामहः । सान्त्वयन्मधुरैर्वाक्यैस्त्रिदशानिदमब्रवीत् ॥ ५ ॥
शैलपुत्र्या यदुक्तं तन्न प्रजाः स्वासु पत्निषु । तस्या वचनमक्लिष्टं सत्यमेव न संशयः ॥ ६ ॥
इयमाकाशगङ्गा च यस्यां पुत्रं हुताशनः । जनयिष्यति देवानां सेनापतिमरिंदमम् ॥ ७ ॥
ज्येष्ठा शैलेन्द्रदुहिता मानयिष्यति तं सुतम् । उमायास्तद्बहुमतं भविष्यति न संशयः ॥ ८ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कृतार्था रघुनन्दन । प्रणिपत्य सुराः सर्वे पितामहमपूजयन् ॥ ९ ॥
ते गत्वा परमं राम कैलासं धातुमण्डितम् । अग्निं नियोजयामासुः पुत्रार्थं सर्वदेवताः ॥१०॥
देवकार्यमिदं देव समाधत्स्व हुताशन । शैलपुत्र्यां महातेजो गङ्गायां तेज उत्सृज ॥११॥
देवतानां प्रतिज्ञाय गङ्गामभ्येत्य पावकः । गर्भं धारय वै देवि देवतानामिदं प्रियम् ॥१२॥
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा दिव्यं रूपमधारयत् । स तस्या महिमां दृष्ट्वा समन्तादवशीर्यत ॥१३॥

जिस समय महादेव तपस्या कर रहे थे, उस समय अग्नि, इन्द्र आदि देवता सेनापतिकी खोजमें पितामह ब्रह्माजीके पास गये ॥१॥ हे रामचन्द्र ! अग्नि, इन्द्र आदि सब देवता पितामहको प्रणाम करके बोले ॥ २ ॥ जिस भगवान् शिवजीने सेनापति (बीज रूपसे) दिया था वे इस समय उमाके साथ बड़ी कठिन तपस्या कर रहे हैं ॥ ३ ॥ संसारके कल्याणके लिए उनकी तपस्यामें विघ्न डालना उचित है । हे विधानज्ञ, आप कोई उपाय कीजिए । आपही हमलोगोंके परम रक्षक हैं ॥ ४ ॥ सब लोकोंके पितामह ब्रह्माजीने देवताओंके वचन सुनकर मधुर वचनोंसे उन्हें धैर्य धराया और कहा ॥५॥ उमाने जो कहा है कि अपनी स्त्रियोंमें तुम्हें पुत्र न होंगे, उनका यह वचन झूठा न होगा, सत्य ही होगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ६ ॥ यह आकाशगंगा है, इसमें अग्नि पुत्र उत्पन्न करेंगे और वही देवताओंका शत्रुविनाशी सेनापति होगा ॥ ७ ॥ हिमवानकी बड़ी कन्या गंगा उसको अपना पुत्र समझेगी और वह पुत्र उमाका भी प्यारा होगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥ उनके वे वचन सुनकर देवता कृतार्थ हुए और उनलोगोंने प्रणाम करके पितामह ब्रह्माकी पूजा की ॥९॥ हे राम, धातुओंकी खान कैलाश पर्वतपर वे सब देवता गये और सब देवताओंने मिलकर अग्निको पुत्र उत्पन्न करनेके लिए नियुक्त किया ॥१०॥ देवताओंने कहा—हे अग्निदेव, यह देवताओंका कार्य है । आप सावधान होजायँ ! हिमवानकी पुत्री गंगामें आप अपना तेज डालें ॥ ११ ॥ देवताओंको वचन देकर वे गंगाके पास आये और बोले—हे देवि, तुम गर्भ धारण करो । तुम्हारा यह गर्भ धारण करना देवताओंको अत्यन्त प्रिय है ॥ १२ ॥ अग्निके ये वचन सुनकर गंगाने अपना जलरूप त्यागकर दिव्य रूप धारण किया । गंगाका वह रूप-वैभव देखकर वह (शिवजीका तेज, पारा) बिखर गया,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समन्ततस्तदा देवीमभ्यषिञ्चत पावकः । सर्वस्रोतांसि पूर्णानि गङ्गाया रघुनन्दन ॥१४॥
तमुवाच ततो गङ्गा सर्वदेवपुरोगमम् । अशक्ता धारणे देव तेजस्तव समुद्धतम् ॥१५॥
दह्यमानाग्निना तेन संप्रव्यथितचेतना । अथाब्रवीदिदं गङ्गां सर्वदेवहुताशनः ॥१६॥
इह हैमवते पार्श्वे गर्भोऽयं संनिवेश्यताम् । श्रुत्वा त्वग्निवचो गङ्गा तं गर्भमतिभास्वरम् ॥१७॥
उत्ससर्ज महातेजाः स्रोतोभ्यो हि तदानघ । यदस्या निर्गतं तस्मात्तप्तजाम्बूनदप्रभम् ॥१८॥
काञ्चनं धरणीं प्राप्तं हिरण्यमतुलप्रभम् । ताम्रं काष्णायसं चैव तैक्ष्ण्यादेवाभिजायत ॥१९॥
मलं तस्याभवत्तत्र त्रपु सीसकमेव च । तदेतद्धरणीं प्राप्य नानाधातुरवर्धत ॥२०॥
निक्षिप्तमात्रे गर्भे तु तेजोभिरभिरञ्जितम् । सर्वं पर्वतसंनद्धं सौवर्णमभवद्वनम् ॥२१॥
जातरूपमिति ख्यातं तदाप्रभृति राघव । सुवर्णं पुरुषव्याघ्र हुताशनसमप्रभम् ॥२२॥
तं कुमारं ततो जातं सेन्द्राः सह मरुद्गणाः । क्षीरसंभावनार्थाय कृत्तिकाः समयोजयन् ॥२३॥
ताः क्षीरं जातमात्रस्य कृत्वा समयमुत्तमम् । ददुः पुत्रोऽयमस्माकं सर्वासामिति निश्चिताः ॥२४॥
ततस्तु देवताः सर्वाः कार्तिकेय इति ब्रुवन् । पुत्रस्त्रैलोक्यविख्यातो भविष्यति न संशयः ॥२५॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा स्कन्नं गर्भपरिस्रवे । स्नापयन्परया लक्ष्म्या दीप्यमानं यथानलम् ॥२६॥

जिसे अग्निने धारण किया था (कहा जाता है कि उत्तम स्त्रीको देखकर पारा उसे पकड़नेके लिए दो योजन तक उछलता है) ॥१३॥ रामचन्द्र, अग्निने शिवके उस तेजसे गंगाका अभिषेक किया, जिससे गंगाकी सब सोतें भरगयीं ॥ १४ ॥ सब देवताओंके आगे चलनेवाले अग्निसे तब गंगा बोलीं-हे देव, तुम्हारे इस उद्धत तेजको ग्रहण करनेके लिए मैं असमर्थ हूँ ॥ १५ ॥ उस जलती हुई आगसे मैं नितान्त व्यथित हूँ, गंगाने अग्निसे ऐसा कहा । उस अग्निसे कहा जो देवताओंका मुख है ॥१६॥ अग्निने कहा-यहीं हिमवानकी तराईमें आपलोग यह गर्भ रख दें । अग्निका वचन सुनकर गंगाने अत्यन्त चमकीले उस गर्भको ॥१७॥ अपनी सोतोंमें से उठाकर छोड़ दिया । जो गंगाका वह गर्भ निकला, वह स्वर्णके समान उज्ज्वल और चमकीला था ॥१८॥ पृथिवीपर जहाँ वह गर्भ गिरा, वहाँकी वस्तु सोना होगयी । उस स्थानसे पासवाली चीज़ चाँदी हुई, उससे कुछ दूरकी चीज़ें ताँबा और उससे दूरकी लोहा हुईं, क्योंकि वह गर्भ बड़ा ही तीक्ष्ण था ॥ १९ ॥ उस गर्भका जो मल हुआ वह राँगा और सीसा हुआ । इस प्रकार पृथिवीमें गिरकर उस गर्भने अनेक धातु बढ़ायीं ॥ २० ॥ गंगाने जिस समय उस गर्भको पृथिवीपर गिराया, उस समय उसके तेजसे, वह पर्वत और समूचा वन, जगमगा गया और सोनेका होगया ॥२१॥ रामचन्द्र, उसी समयसे अग्निके समान चमकीले सुवर्णका नाम जातरूप पड़ा, क्योंकि उसने अपना अपूर्व रूप प्रकाशित किया था ॥ २२ ॥ जब उस गर्भमेंसे कुमारकी उत्पत्ति हुई, इन्द्र और देवताओंने उसके दूध पिलानेके लिए कृत्तिकाओंको नियुक्त किया ॥ ३३ ॥ यह पुत्र हम सबको मिला है, अतएव यह सबका पुत्र होगा, ऐसा आपसमें ठहरावकर उस जन्मे हुए बच्चेको वे दूध पिलाने लगीं (कृत्तिकाकी छ ताराएँ होती हैं) २४ ॥ तब देवताओंने उस लड़केको कार्तिकेय (कृत्तिकाका बेटा) कहा और कहा कि यह लड़का त्रिलोकमें प्रसिद्ध होगा ॥ २५ ॥ देवताओंके यह वचन (यह कृत्तिकाओंका पुत्र होगा)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्कन्द इत्यब्रुवन्देवाः स्कन्नं गर्भपरिस्रवे । कार्तिकेयं महाबाहुं काकुत्स्थ ज्वलनोपमम् ॥२७॥
प्रादुर्भूतं ततः क्षीरं कृत्तिकानामनुत्तमम् । षण्णां षडाननो भूत्वा जग्राह स्तनजं पयः ॥२८॥
गृहीत्वा क्षीरमेकाह्ना सुकुमारवपुस्तदा । अजयत्स्वेन वीर्येण दैत्यसैन्यगणान्विभुः ॥२९॥
सुरसैनागणपतिमभ्यषिञ्चन्महाद्युतिम् । ततस्तममराः सर्वे समेत्याग्निपुरोगमाः ॥३०॥
एष ते राम गङ्गाया विस्तरोऽभिहितो मया । कुमारसंभवश्चैव धन्यः पुण्यस्तथैव च ॥३१॥
भक्तश्च यः कार्तिकेये काकुत्स्थ भुवि मानवः । आयुष्मान्पुत्रपौत्रैश्च स्कन्दसालोक्यतां व्रजेत् ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशः सर्गः ३८

तां कथां कौशिको रामे निवेद्य मधुराक्षराम् । पुनरेवापरं वाक्यं काकुत्स्थमिदमब्रवीत् ॥१॥
अयोध्याधिपतिर्वीर पूर्वमासीन्नराधिपः । सगरो नाम धर्मात्मा प्रजाकामः स चाप्रजः ॥२॥
वैदर्भदुहिता राम केशिनी नाम नामतः । ज्येष्ठा सगरपत्नी सा धर्मिष्ठा सत्यवादिनी ॥३॥
अरिष्टनेमेर्दुहिता सुपर्णभगिनी तु सा । द्वितीया सगरस्यासीत्पत्नी सुमतिसंज्ञिता ॥४॥
ताभ्यां सह महाराजः पत्नीभ्यां तप्तवांस्तपः । हिमवन्तं समासाद्य भृगुप्रस्रवणे गिरौ ॥५॥

सुनकर शिव और पार्वतीसे गिरे हुए और गंगाके द्वारा छोड़े हुए अग्निके समान अद्भुत तेजसे प्रकाशित उस पुत्रको उनलोगोंने स्नान कराया ॥२६॥ स्कन्न (गिरा) गर्भस्रवसे वह कुमार उत्पन्न हुआ था, इसलिए देवताओंने अग्निके समान प्रकाशमान उस कार्तिकेयका स्कन्द नाम रक्खा॥२७॥ तब उन कृत्तिकाओंके स्तनमें उत्तम दूध उत्पन्न हुआ और छ मुखवाला होकर वह बालक छओंका दूध पीने लगा ॥२८॥ दूध पीकर एक दिनकी ही अवस्थामें उस कोमल-शरीर बालकने अपने पराक्रमसे दैत्य-सेनाको जीत लिया ॥२९॥ तदनन्तर अग्निप्रभृति सब देवताओंने इकट्ठा होकर उस महान तेजस्वी बालकको देव-सेनाका सेनापति बनाया ॥ ३० ॥ विश्वामित्रने कहा-राम, यह मैंने गंगाकी कथा विस्तारके साथ कही और कुमारके जन्मका वृत्तान्त भी मैंने वर्णन किया, जो पवित्र है ॥३१॥ जो मनुष्य कार्तिकेयकी भक्ति करेगा, उसकी आयु बढ़ेगी, पुत्र-पौत्रोंके साथ निवास कर वह स्कन्दलोकमें जायगा ॥ ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३७ ॥

विश्वामित्रने मीठे अक्षरोंमें इस कथाका वर्णन कर पुनः रामचन्द्रसे उन्होंने ये बातें कहीं ॥ १ ॥ हे वीर, पहले अयोध्याके राजा सगर नामक एक राजा थे, वे बड़े धर्मात्मा थे, पर पुत्र न होनेके कारण पुत्रकी प्राप्तिकी कामना करते थे ॥ २ ॥ राजा सगरकी बड़ी स्त्रीका नाम केशिनी था, ये विदर्भराजकी कन्या थीं, बड़ी ही धर्मिष्ठ और सत्यवादिनी थीं ॥ ३ ॥ सगरकी दूसरी स्त्रीका नाम सुमति था, ये अरिष्टनेमिकी कन्या और सुवर्णकी बहिन थीं ॥ ४ ॥ उन दोनों स्त्रियोंके साथ महाराज सगर

Jangamwadi Math, VARANASI,
Acc. No. 1989
CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ वर्षशते पूर्णे तपसाराधितो मुनिः । सगराय वरं प्रादादृभृगुः सत्यवतां वरः ॥ ६ ॥
अपत्यलाभः सुमहान्भविष्यति तवानघ । कीर्तिं चाप्रतिमां लोके प्राप्स्यसे पुरुषर्षभ ॥ ७ ॥
एका जनयिता तात पुत्रं वंशकरं तव । षष्टिं पुत्रसहस्राणि अपरा जनयिष्यति ॥ ८ ॥
भाषमाणं नरव्याघ्रं राजपुत्र्यौ प्रसाद्य तम् । ऊचतुः परमप्रीते कृताञ्जलिपुटे तदा ॥ ९ ॥
एकः कस्याःसुतो ब्रह्मन्का बहून्जनयिष्यति । श्रोतुमिच्छावहे ब्रह्मन्सत्यमस्तु वचस्तव ॥१०॥
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा भृगुः परमधार्मिकः । उवाच परमां वाणीं स्वच्छन्दोऽत्र विधीयताम् ॥११॥
एको वंशकरो वास्तु बहवो वा महाबलाः । कीर्तिमन्तो महोत्साहाः का वा कं वरमिच्छति ॥१२॥
मुनेस्तु वचनं श्रुत्वा केशिनी रघुनन्दन । पुत्रं वंशकरं राम जग्राह नृपसंनिधौ ॥१३॥
षष्टिं पुत्रसहस्राणि सुपर्णभगिनी तदा । महोत्साहान्कीर्तिमतो जग्राह सुमतिःसुतान् ॥१४॥
प्रदक्षिणमृषिं कृत्वा शिरसाभिप्रणम्य तम् । जगाम स्वपुरं राजा सभार्यो रघुनन्दन ॥१५॥
अथ काले गते तस्य ज्येष्ठा पुत्रं व्यजायत । असमञ्ज इति ख्यातं केशिनी सगरात्मजम् ॥१६॥
सुमतिस्तु नरव्याघ्र गर्भस्तुम्बं व्यजायत । षष्टिः पुत्रसहस्राणि तुम्बभेदाद्विनिःसृता ॥१७॥
घृतपूर्णेषु कुम्भेषु धात्र्यस्तान्समवर्धयन् । कालेन महता सर्वे यौवनं प्रतिपेदिरे ॥१८॥
अथ दीर्घेण कालेन रूपयौवनशालिनः । षष्टिः पुत्रसहस्राणि सगरस्याभवंस्तदा ॥१९॥
स च ज्येष्ठो नरश्रेष्ठः सगरस्यात्मसंभवः । बालान्गृहीत्वा तु जले सरय्वा रघुनन्दन ॥२०॥

हिमवान् पर्वतपर गये और वे भृगु ऋषिके सोनेवाले पर्वतपर तपस्या करने लगे ॥ ५ ॥ सौ वर्ष बीतनेपर सगरकी तपस्यासे भृगु मुनि प्रसन्न हुए और सत्यवादियोंमें श्रेष्ठ उन ऋषिने उनको वर दिया ॥ ६ ॥ हे निष्पाप, तुम्हे पुत्र होंगे, हे पुरुषश्रेष्ठ, संसारमें तुम्हारी बड़ी कीर्ति होगी ॥७॥ मुनिने कहा-राजन्, आपकी एक स्त्रीको एक ही पुत्र होगा और उससे वंशकी वृद्धि होगी, दूसरी स्त्री हजार पुत्र उत्पन्न करेगी। नरश्रेष्ठ भृगु ऐसा कह रहे थे, रानियोंने उनकी स्तुति की और वे हाथ जोड़कर प्रसन्नतापूर्वक बोलीं ॥ ९ ॥ महाराज, किसके एक पुत्र होगा और किसके बहुत, यह हमलोग जानना चाहती हैं आपका वचन सत्यहो ॥१०॥ उन दोनों रानियोंकी वह बात सुनकर परम धार्मिक भृगु बोले-जैसा चाहो वैसा कर लो, जो एक पुत्र उत्पन्न करना चाहे वह एक उत्पन्न करे और जो बहुत उत्पन्न करना चाहे वह बहुत उत्पन्न करे ॥११॥ एक लड़का वंश बढ़ानेवाला होगा और बहुत लड़के बड़े बली, कीर्तिमान् और उत्साही होंगे, इन दोनोंमेंसे कौन वर तुममें कौन चाहती है ॥ १२ ॥ रामचन्द्र, मुनिके वचन सुनकर केशिनीने राजाके सामने वंश चलानेवाला एक पुत्र मांगा ॥१३॥ तब सुवर्णकी बहिन सुमतिने महाउत्साही और कीर्तिमान साठ हजार पुत्र मांगे ॥ १४ ॥ मुनिकी प्रदक्षिणा और प्रणाम करके राजा सगर अपनी स्त्रियोंके साथ अपने नगरमें गये ॥ १५ ॥ कुछ दिनोंके बीतनेपर सगरकी जेठी महारानी केशिनीने असमञ्ज नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥१६॥ सुमतिने एक गर्भ-तुम्ब (गर्भकी पोटली) जनमाया, जिसके फोड़नेपर उससे साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए ॥१७॥ घीसे भरे घड़ेमें रखकर, धात्रियोंने उन बालकोंका पालन किया ॥ बहुत दिनोंके बाद वे सब युवा हुए ॥१८॥ सगरके वे साठ हजार पुत्र युवा हुए ॥१९॥ राजा सगरका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रक्षिप्य प्राहसन्नित्यं मज्जतस्तान्निरीक्ष्य वै । एवं पापसमाचारः सज्जनप्रतिबाधकः ॥२१॥
पौराणामहिते युक्तः पित्रा निर्वासितः पुरात् । तस्य पुत्रोऽशुमान्नाम असमञ्जस्य वीर्यवान् ॥२२॥
संमतः सर्वलोकस्य सर्वस्यापि प्रियंवदः । ततः कालेन महता मतिः समभिजायत ॥२३॥
सगरस्य नरश्रेष्ठ यजेयमिति निश्चिता । स कृत्वा निश्चयं राजा सोपाध्यायगणस्तदा ।
यज्ञकर्मणि वेदज्ञो यष्टुं समुपचक्रमे ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डेऽष्टात्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ३९

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा कथान्ते रघुनन्दनः । उवाच परमप्रीतो मुनिं दीप्तमिवानलम् ॥ १ ॥
श्रोतुमिच्छामि भद्रं ते विस्तरेण कथामिमाम् । पूर्वजो मे कथं ब्रह्मन्यज्ञं वै समुपाहरत् ॥ २ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कौतूहलसमन्वितः । विश्वामित्रस्तु काकुत्स्थमुवाच प्रहसन्निव ॥ ३ ॥
श्रूयतां विस्तरो राम सगरस्य महात्मनः । शंकरश्वशुरो नाम्ना हिमवानिति विश्रुतः ॥ ४ ॥
विन्ध्यपर्वतमासाद्य निरीक्षेते परस्परम् । तयोर्मध्ये समभवद्यज्ञः स पुरुषोत्तम ॥ ५ ॥
स हि देशो नरव्याघ्र प्रशस्तो यज्ञकर्मणि । तस्याश्वचर्यां काकुत्स्थ दृढधन्वा महारथः ॥ ६ ॥
अंशुमानकरोत्तात सगरस्य मते स्थितः । तस्य पर्वणि तं यज्ञं यजमानस्य वासवः ॥ ७ ॥

जेठा लड़का असमञ्ज लड़कोंको लेकर सरयूके जलमें ॥ २० ॥ डाल देता और जब वे डूबने लगते तब वह हँसता । वह ऐसा पापी और सज्जनोंका विघ्नकर्ता हुआ ॥ २१ ॥ वह नगरनिवासियोंको सदा दुःख दिया करता था, इसलिए पिताने उसे अपने नगरसे निकाल दिया, उस असमञ्जका एक पराक्रमी पुत्र था, उसका नाम अंशुमान था ॥ २२ ॥ वह सबको प्रिय था, सबसे प्रिय बोलता था ॥ २३ ॥ इस प्रकार बहुत दिन बीतनेके पश्चात् सगर राजाने निश्चय किया कि मैं यज्ञ करूँ । इस प्रकार निश्चय करके वेदज्ञ उपाध्यायोंके साथ यज्ञ करनेके लिए तयार हुए ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका अड़तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३८ ॥

विश्वामित्रके वचन सुनकर कथाके अन्तमें अत्यन्त प्रसन्न रामचन्द्र अग्निके समान प्रकाशमान मुनिसे बोले ॥ १ ॥ महाराज, आपका कल्याण हो, मैं यह सम्पूर्ण कथा सुनना चाहता हूँ कि मेरे पूर्वजोंने किस प्रकार यज्ञ किया ॥ २ ॥ रामचन्द्रके कौतूहल युक्त वचन सुनकर वे हँसे और उनसे कहने लगे ॥ ३ ॥ राम, महात्मा सगरकी कथा विस्तारके साथ सुनो, महादेवके श्वशुर हिमवान् नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ४ ॥ वह और विन्ध्य पर्वत दोनों पास-पास हैं, मानों वे एक दूसरेको देखते हैं। हे पुरुषोत्तम, वह यज्ञ उन्हीं पर्वतोंके बीचमें हुआ था ॥ ५ ॥ हे नरश्रेष्ठ, यज्ञके लिए वह स्थान बहुत ही उत्तम है । उस यज्ञके अश्वकी रक्षाका भार दृढ़ धनुर्धारी और महारथ ॥ ६ ॥ सगरकी आज्ञाओंको माननेवाले अंशुमान्ने ग्रहण किया। पर्वमें यज्ञ करनेवाले यजमान सगरके यज्ञीय अश्व-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राक्षसीं तनुमास्थाय यज्ञियाश्वमपाहरत् । ह्रियमाणे तु काकुत्स्थ तस्मिन्नश्वे महात्मनः ॥ ८ ॥
उपाध्यायगणाः सर्वे यजमानमथाब्रुवन् । अयं पर्वणि वेगेन यज्ञियाश्वोऽपनीयते ॥ ९ ॥
हर्तारं जहि काकुत्स्थ हयश्चैवोपनीयताम् । यज्ञश्छिद्रं भवत्येतत्सर्वेषामशिवाय नः ॥१०॥
तत्तथा क्रियतां राजन्यज्ञोऽच्छिद्रः कृतो भवेत् । सोपाध्यायवचः श्रुत्वा तस्मिन्सदसि पार्थिवः॥११॥
षष्टिं पुत्रसहस्राणि वाक्यमेतदुवाच ह । गतिं पुत्रा न पश्यामि रक्षसां पुरुषर्षभाः ॥१२॥
मन्त्रपूतैर्महाभागैरास्थितोऽपि महाक्रतुः । तद्गच्छथ विचिन्वध्वं पुत्रका भद्रमस्तु वः ॥१३॥
समुद्रमालिनीं सर्वां पृथिवीमनुगच्छथ । एकैकं योजनं पुत्रा विस्तारमभिगच्छत ॥१४॥
यावत्तुरगसंदर्शस्तावत्खनत मेदिनीम् । तमेव हयहर्तारं मार्गमाणा ममाज्ञया ॥१५॥
दीक्षितः पौत्रसहितः सोपाध्यायगणस्त्वहम् । इह स्थास्यामि भद्रं वो यावत्तुरगदर्शनम् ॥१६॥
ते सर्वे हृष्टमनसो राजपुत्रा महाबलाः । जग्मुर्महीतलं राम पितुर्वचनयन्त्रिताः ॥१७॥
योजनायामविस्तारमेकैको धरणीतलम् । बिभिदुः पुरुषव्याघ्रा वज्रस्पर्शसमैर्भुजैः ॥१८॥
शूलैरशनिकल्पैश्च हलैश्चापि सुदारुणैः । भिद्यमाना वसुमती ननाद रघुनन्दन ॥१९॥
नागानां वध्यमानानामसुराणां च राघव । राक्षसानां दुराधर्षसत्त्वानां निनदोऽभवत् ॥२०॥
योजनानां सहस्राणि षष्टिं तु रघुनन्दन । विभिदुर्धरणीं राम रसातलमनुत्तमम् ॥२१॥

को इन्द्रने ॥ ७ ॥ राक्षसका वेष बनाकर चुरा लिया । महात्मा सगरके उस घोड़ेके चुराये जानेपर ॥ ८ ॥ सभी उपाध्यायोंने यजमानसे कहा-इस यज्ञीय घोड़ेको कोई शीघ्रता पूर्वक चुराये ले जारहा है ॥ ९ ॥ घोड़ा लेजानेवालेको मारो और घोड़ा ले आओ, यह यज्ञका विघ्न है और इससे हम सब लोगोंका अकल्याण होगा ॥ १० ॥ राजन्, आप ऐसा करें, जिससे यह यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण हो । सभामें उपाध्यायोंके ये वचन सुनकर राजाने ॥ ११ ॥ अपने साठ हजार पुत्रोंसे कहा हे पुरुषश्रेष्ठो, यह काम (घोड़ा चुराना) यदि राक्षसोंने किया हो तो घोड़ा लौटा लाना हमारे वशकी बात नहीं ॥१२॥ वैदिक मंत्रोंके द्वारा पवित्र यह यज्ञ हमने प्रारंभ किया है । मायावी राक्षसोंने इसमें भी यदि विघ्न किया तो उनसे पार पाना हमारे लिए कठिन है, इसलिए तुम लोग जाओ और घोड़ेको ढूँढ़ो। तुमलोगोंका कल्याण हो ॥ १३ ॥ समुद्रसे घिरी हुई इस समस्त पृथिवीको ढूँढ़ो, पुनः एक एक योजनपर बँटकर घोड़ेको ढूँढ़ो, ॥ १४ ॥ जब तक घोड़ा न देखो, तब तक उस घोड़ेके चोरका मेरी आज्ञासे पता लगानेके लिए पृथिवीको खोदो ॥ १५ ॥ मैंने यज्ञकी दीक्षा ली है, मैं पौत्र और उपाध्यायोंके साथ, यहीं रहूँगा, जब तक कि घोड़ा दिखायी न पड़े ॥ १६ ॥ वे महाबली राजपुत्र बड़े प्रसन्न हुए और पिताकी आज्ञासे घोड़ा ढूँढ़नेके लिए पृथिवीपर गये ॥१७॥ उन पुरुषसिंहोंने वज्रके समान अपनी कठिन भुजाओंसे एक एक योजनकी लम्बाईमें पृथिवी खोदी ॥ १८ ॥ हे रामचन्द्र, वज्रके समान शूल (अस्त्र) और भयानक हलोंके द्वारा जब पृथिवी खोदी जाने लगी, तब वह चिल्लाने लगी ॥ १९ ॥ उस समय पृथिवीके खुदनेसे पृथिवीतल-वासी नाग, असुर और राक्षसोंको पीड़ा हुई । उनमें बहुतसे मारेगये, अतएव वे लोग बड़े करुणस्वरसे चिल्लाने लगे ॥२०॥ हे रामचन्द्र,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं पर्वतसंबाधं जम्बूद्वीपं नृपात्मजाः । खनन्तो नृपशार्दूल सर्वतः परिचक्रमुः ॥२२॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सासुराः सहपन्नगाः । संभ्रान्तमनसः सर्वे पितामहमुपागमन् ॥२३॥
ते प्रसाद्य महात्मानं विषण्णवदनास्तदा । ऊचुः परमसंत्रस्ताः पितामहमिदं वचः ॥२४॥
भगवन्पृथिवी सर्वा खन्यते सगरात्मजैः । बहवश्च महात्मानो वध्यन्ते जलचारिणः ॥२५॥
अयं यज्ञहरोऽस्माकमनेनाश्वोऽपनीयते । इति ते सर्वभूतानि हिंसन्ति सगरात्मजाः ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्ड एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्गः ४०

देवतानां वचः श्रुत्वा भगवान्वै पितामहः । प्रत्युवाच सुसंत्रस्तान्कृतान्तबलमोहितान् ॥ १ ॥
यस्येयं वसुधा कृत्स्ना वासुदेवस्य धीमतः । महिषी माधवस्यैषा स एव भगवान्प्रभुः ॥ २ ॥
कापिलं रूपमास्थाय धारयत्यनिशं धराम् । तस्य कोपाग्निना दग्धा भविष्यन्ति नृपात्मजाः॥३॥
पृथिव्याश्चापि निर्भेदो दृष्ट एव सनातनः । सगरस्य च पुत्राणां विनाशोऽदीर्घदर्शिनाम् ॥ ४ ॥
पितामहवचः श्रुत्वा त्रयस्त्रिंशदरिंदमाः । देवाः परमसंहृष्टाः पुनर्जग्मुर्यथागतम् ॥ ५ ॥
सगरस्य च पुत्राणां प्रादुरासीन्महास्वनः । पृथिव्यां भिद्यमानायां निर्घातसमनिःस्वनः ॥ ६ ॥

इस प्रकार उन राजपुत्रोंने उत्तम रसातलको देखनेके लिए साठ हजार योजन तक पृथिवी खोद डाली ॥ २१ ॥ वे राजपुत्र पर्वतोंसे भरे हुए जम्बूद्वीपको खोदकर उसके चारो ओर घूम आये ॥ २२ ॥ तब घबड़ाकर देवता, गन्धर्व, असुर, नाग आदि ब्रह्माके पास पहुँचे ॥ २३ ॥ वे बहुत घबड़ाये हुए थे. उनका मुँह उतरा हुआ था । ब्रह्माकी स्तुति कर, और उनको प्रसन्न जानकर वे लोग बोले ॥ २४ ॥ भगवन्, सगरके पुत्र समूची पृथिवी खोद रहे हैं और जलचारी अनेक महात्माओंको मार रहे हैं ॥ २५ ॥ यह हमारे यज्ञका घातक है, इसने हमारा घोड़ा चुराया है, इस आशंकासे वे सगरके पुत्र सब प्राणियोंको मार रहे हैं ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका उनतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३९ ॥

देवताओंकी बात सुनकर भगवान् पितामहने यमराजके दूत-रूपी सगरपुत्रोंकी सेनासे घबड़ाये हुए उनको इसप्रकार उत्तर दिया ॥ १ ॥ सबकी बुद्धिको प्रेरित करनेवाले जिस वासुदेवकी यह पृथिवी है, उन्हींकी यह महारानी हैं, वेही इसके स्वामी हैं ॥ २ ॥ वे ही भगवान् कपिलका रूप धरकर सदा पृथिवीका धारण करते हैं, उन्हींके कोपकी आगसे वे सब सगरपुत्र जल जायँगे ॥३॥ पृथिवीका खोदाजाना तो स्वाभाविक है, यह प्रत्येक कल्पमें होता आया है और सगरपुत्रोंका विनाश भी दीर्घदर्शियोंने पहलेही जान लिया है ॥ ४ ॥ पितामहके वचन सुनकर शत्रुसंहारकारी देवता बहुत प्रसन्न हुए और वे अपने-अपने स्थानको गये ॥ ५ ॥

सगरके पुत्र पृथिवी खोद रहे थे, उस समय बहुत बड़ा भयानक शब्द उनके आगे हुआ ॥ ६ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततो भित्त्वा महीं सर्वां कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् । सहिताः सागराः सर्वे पितरं वाक्यमब्रुवन् ॥ ७ ॥
परिक्रान्ता मही सर्वा सत्त्ववन्तश्च सूदिताः । देवदानवरक्षांसि पिशाचोरगपन्नगाः ॥ ८ ॥
न च पश्यामहेऽश्वं ते अश्वहर्तारमेव च । किं करिष्याम भद्रं ते बुद्धिरत्र विचार्यताम् ॥ ९ ॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा पुत्राणां राजसत्तमः । समन्युरब्रवीद्वाक्यं सगरो रघुनन्दन ॥१०॥
भूयः खनत भद्रं वो विभेद्य वसुधातलम् । अश्वहर्तारमासाद्य कृतार्थाश्च निवर्तत ॥११॥
पितुर्वचनमासाद्य सगरस्य महात्मनः । षष्टिः पुत्रसहस्राणि रसातलमभिद्रवन् ॥१२॥
खन्यमाने ततस्तस्मिन्ददृशुः पर्वतोपमम् । दिशागजं विरूपाक्षं धारयन्तं महीतलम् ॥१३॥
सपर्वतवनां कृत्स्नां पृथिवीं रघुनन्दन । धारयामास शिरसा विरूपाक्षो महागजः ॥१४॥
यदा पर्वणि काकुत्स्थ विश्रमार्थं महागजः । खेदाच्चालयते शीर्षं भूमिकम्पस्तदा भवेत् ॥१५॥
ते तं प्रदक्षिणां कृत्वा दिशापालं महागजम् । मानयन्तो हि ते राम जग्मुर्भित्त्वा रसातलम् ॥१६॥
ततः पूर्वां दिशं भित्त्वा दक्षिणां बिभिदुः पुनः । दक्षिणस्यामपि दिशि ददृशुस्ते महागजम् ॥१७॥
महापद्मं महात्मानं सुमहत्पर्वतोपमम् । शिरसा धारयन्तं गां विस्मयं जग्मुरुत्तमम् ॥१८॥
ते तं प्रदक्षिणं कृत्वा सगरस्य महात्मनः । षष्टिः पुत्रसहस्राणि पश्चिमां विभिदुर्दिशम् ॥१९॥
पश्चिमायामपि दिशि महान्तमचलोपमम् । दिशागजं सौमनसं ददृशुस्ते महाबलाः ॥२०॥

पृथिवी खोदकर और उसके चारो ओर घूमकर वे सगरके पुत्र लौट आये और उन सबोंने पितासे कहा ॥७॥ समूची पृथिवी ढूँढ़ डाली, देवता, दानव, राक्षस, पिशाच और उरग आदिमें जो बलवान थे उन्हें मार डाला ॥८॥ पर, आपके घोड़ेको न देखा, न घोड़ा चुरानेवालेको ही देखा। हमलोग क्या करें, कृपा कर हमलोगोंका कर्तव्य निश्चय कर दीजिए ॥ ९ ॥ रामचन्द्र, राजश्रेष्ठ सगरने पुत्रोंके ये वचन सुनकर बड़े क्रोधसे कहा ॥ १० ॥ फिर खोदो, पृथिवीको फाड़ डालो। घोड़ा चुरानेवाले को पकड़ो और इस प्रकार सफल होकर लौटो ॥ ११ ॥ महात्मा पिताके ये वचन सुनकर साठों हज़ार पुत्र पृथिवीकी ओर दौड़े ॥१२॥ पृथिवीतलके खोदनेके समय पर्वतके समान ऊँचा विरूपाक्ष नामक दिग्गजको उनलोगोंने देखा, वह पृथिवीको धारण किये हुए था ॥ १३ ॥ रामचन्द्र, वह विरूपाक्ष नामक बड़ा हाथी, पर्वत, वनके साथ इस समूची पृथिवीको माथापर धरे हुए था ॥ १४ ॥ हे राम, विश्रामके लिए जिस समय वह हाथी दुःखसे अपना सिर हिलाता है, उस समय भूमिकम्प होने लगता है, पृथिवी डोलने लगती है ॥ १५ ॥ सगरपुत्रोंने दिक्पाल उस महागजकी प्रदक्षिणा की, उसका आदर किया, पुनः वे पृथिवीको फोड़कर रसातलमें गये ॥१६॥ इस प्रकार पूर्व दिशा-को खोदकर वे लोग दक्षिण दिशाकी ओर गये। वहाँ भी उनलोगोंने एक बहुत बड़ा हाथी देखा ॥ १७ ॥ उसका महापद्म नाम था और वह बहुत बड़े पर्वतके समान ऊँचा था, उसने पृथिवीको मस्तकसे धारण किया था, उसको देखकर उन राजपुत्रोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ १८ ॥ सगरके उन साठ हज़ार पुत्रोंने उस दिग्गजको प्रदक्षिणा की और वे पश्चिम दिशाको तोड़ने लगे ॥ १९ ॥ पश्चिम दिशामें भी उनलोगोंने एक बहुत बड़े पर्वतके समान हाथी देखा। उस दिग्गजका नाम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ते तं प्रदक्षिणं कृत्वा पृष्ट्वा चापि निरामयम् । खनन्तः सधुपाक्रान्ता दिशं सोमवतीं तदा ॥२१॥
उत्तरस्यां रघुश्रेष्ठ ददृशुर्हिमपाण्डुरम् । भद्रं भद्रेण वपुषा धारयन्तं महीमिमाम् ॥२२॥
समालभ्य ततः सर्वे कृत्वा चैनं प्रदक्षिणम् । षष्टिः पुत्रसहस्राणि विभिदुर्वसुधातलम् ॥२३॥
ततः प्रागुत्तरां गत्वा सागराः प्रथितां दिशम् । रोषादभ्यखनन्सर्वे पृथिवीं सगरात्मजाः ॥२४॥
ते तु सर्वे महात्मानो भीमवेगा महाबलाः । ददृशुः कपिलं तत्र वासुदेवं सनातनम् ॥२५॥
हयं च तस्य देवस्य चरन्तमविदूरतः । प्रहर्षमतुलं प्राप्ताः सर्वे ते रघुनन्दन ॥२६॥
ते तं यज्ञहनं ज्ञात्वा क्रोधपर्याकुलेक्षणाः । खनित्रलाङ्गलधरा नानावृक्षशिलाधराः ॥२७॥
अभ्यधावन्त संक्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रुवन् । अस्माकं त्वं हि तुरगं यज्ञियं हृतवानसि ॥२८॥
दुर्मेधस्त्वं हि संप्राप्तान्विद्धि नः सगरात्मजान् । श्रुत्वा तद्वचनं तेषां कपिलो रघुनन्दन ॥२९॥
रोषेण महताविष्टो हुंकारमकरोत्तदा । ततस्तेनाप्रमेयेण कपिलेन महात्मना ।
भस्मराशीकृताः सर्वे काकुत्स्थ सगरात्मजाः ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ४१

पुत्रांश्चिरगताञ्ज्ञात्वा सगरो रघुनन्दन । नप्तारमब्रवीद्राजा दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ १ ॥
शूरश्च कृतविद्यश्च पूर्वैस्तुल्योऽसि तेजसा । पितॄणां गतिमन्विच्छ येन चाश्वोऽपवाहितः ॥ २ ॥

सौमनस था ॥ २० ॥ उनलोगोंने उस दिग्गजकी प्रदाक्षणा की और उसकी कुशल पूछी, पुनः पृथिवी खोदते हुए वे उत्तर दिशाकी ओर गये ॥ २१ ॥ उत्तर दिशामें भी श्वेत हाथी उनलोगोंने देखा। उसका भद्र नाम था। वह बड़ा ही सुन्दर था और पृथिवीको धारण किये हुए था ॥ २२ ॥ उसका स्पर्श और प्रदक्षिणा करके वे साठ हज़ार वीर पृथिवीको खोदने लगे ॥ २३ ॥ प्रसिद्ध उत्तर दिशामें जाकर वे सगरके पुत्र बड़े क्रोधसे पृथिवी खोदने लगे ॥ २४ ॥ बड़े उद्योगी, महाबलवान और अत्यन्त वेगवान उन सगरके पुत्रोंने वहाँ (उत्तर दिशामें) सनातन भगवान वासुदेवको कपिलके रूपमें बैठे देखा ॥ २५ ॥ और, उनसे थोड़ीही दूरपर घोड़ेको चरते हुए देखा। हे रामचन्द्र, इससे वे सब बहुत प्रसन्न हुए ॥ २६ ॥ उनको ही उनलोगोंने यज्ञका विघातक समझा। क्रोधसे उनकी आँखें लाल होगयीं। खनती, हल तथा अनेकों वृक्ष लेकर ॥ २७ ॥ बड़े क्रोधसे वे दौड़े और उनलोगोंने कहा– ठहरो, ठहरो, तुमने हमलोगोंके यज्ञका घोड़ा चुराया है ॥२८॥ मूर्ख, हमलोग, सगरके पुत्र, आगये हैं, यह तू जानले। हे रामचन्द्र, उनके ये वचन सुनकर कपिलने ॥२९॥ बड़े क्रोधसे हुँकार किया। उन परम प्रभावशाली महात्मा कपिलके हुँकारसे वे सगरके पुत्र भस्म होगये ॥ ३० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका चालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४० ॥

हे रामचन्द्र, पुत्रोंके आनेमें विलम्ब देखकर राजा सगरने अपने पौत्र अंशुमानसे कहा, जो स्वयं अपने तेजसे ही तेजस्वी था ॥ १ ॥ तुम वीर हो, विद्वान हो और पूर्वजोंके समान तेजस्वी हो। तुम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्तर्भौमानि सत्त्वानि वीर्यवन्ति महान्ति च । तेषां तु प्रतिघातार्थं सासिं गृह्णीष्व कार्मुकम् ॥ ३ ॥
अभिवाद्यांभिवाद्यांस्त्वं हत्वा विघ्नकरानपि । सिद्धार्थः संनिवर्तस्व मम यज्ञस्य पारगः ॥ ४ ॥
एवमुक्तोऽशुमान्सम्यक्सगरेण महात्मना । धनुरादाय खड्गं च जगाम लघुविक्रमः ॥ ५ ॥
स खातं पितृभिर्मार्गमन्तर्भौमं महात्मभिः । प्रापद्यत नरश्रेष्ठ तेन राज्ञाभिचोदितः ॥ ६ ॥
देवदानवरक्षोभिः पिशाचपतगोरगैः । पूज्यमानं महातेजा दिशागजमपश्यत ॥ ७ ॥
स तं प्रदक्षिणं कृत्वा पृष्ट्वा चैव निरामयम् । पितॄन्स परिपप्रच्छ वाजिहर्तारमेव च ॥ ८ ॥
दिशागजस्तु तच्छ्रुत्वा प्रत्युवाच महामतिः । आसमञ्ज कृतार्थस्त्वं सहाश्वः शीघ्रमेष्यसि ॥ ९ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सर्वानेव दिशागजान् । यथाक्रमं यथान्यायं प्रष्टुं रंशुपचक्रमे ॥ १० ॥
तैश्च सर्वैर्दिशापालैर्वाक्यज्ञैर्वाक्यकोविदैः । पूजितः सहयश्चैवागन्तासीत्यभिचोदितः ॥ ११ ॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा जगाम लघुविक्रमः । भस्मराशीकृता यत्र पितरस्तस्य सागराः ॥ १२ ॥
स दुःखवशमापन्नस्त्वसमञ्जसुतस्तदा । चुक्रोश परमार्तस्तु वधात्तेषां सुदुःखितः ॥ १३ ॥
यज्ञियं च हयं तत्र चरन्तमविदूरतः । ददर्श पुरुषव्याघ्रो दुःखशोकसमन्वितः ॥ १४ ॥
स तेषां राजपुत्राणां कर्तुकामो जलक्रियाम् । स जलार्थी महातेजा न चापश्यज्जलाशयम् ॥ १५ ॥
विसार्य निपुणां दृष्टिं ततोऽपश्यत्खगाधिपम् । पितॄणां मातुलं राम सुपर्णमनिलोपमम् ॥ १६ ॥

अपने पिताओंको पिताके समान पूज्य पिताके भाइयोंको ढूँढ़ो और घोड़ेके चोरको भी ढूँढ़ो ॥ २ ॥ पृथिवीतलके प्राणी बड़े पराक्रमी और विशालकाय होते हैं । उनको मारनेके लिए तलवार और धनुष लेलो ॥ ३ ॥ बड़ोंको प्रणाम कर, विघ्न करनेवालोंको मारकर, सफल होकर लौटो । तुम मेरे यज्ञका पार लगानेवाले बनो ॥४॥ इस प्रकार महात्मा सगरने अंशुमानसे कहा । धनुष और तलवार लेकर वह बड़ी शीघ्रतासे चला ॥५॥ राजा सगरकी आज्ञासे अपने पिताओं द्वारा खोदे हुए पृथिवीके भीतरी रास्तेपर वह पहुँचा ॥६॥ उसमें महातेजस्वी अंशुमानने दिग्गजको देखा, जिसकी पूजा देवता, दानव, राक्षस, पिशाच, पक्षी और नाग आदि करते थे ॥ ७ ॥ अंशुमानने उस दिग्गजकी प्रदक्षिणा की और उसकी कुशल पूछी । अपने पिताओं तथा घोड़ा चुरानेवालेके विषयमें भी पूछा ॥ ८ ॥ महाबुद्धिमान् उस दिग्गजने उत्तर दिया—हे असमंजके पुत्र, तुम सफल होओगे । घोड़ेके साथ शीघ्र लौटोगे ॥ ९ ॥ उस दिग्गजके वचन सुनकर अंशुमानने सब दिशाओंके, सब दिग्गजोंसे यथा क्रम, विधिपूर्वक, पूछनेका निश्चय किया ॥ १० ॥ वचनोंका अर्थ समझनेवाले और बोलनेमें निपुण, उन सब दिग्गजोंने अंशुमानके द्वारा पूजित होनेपर यही कहा कि तुम घोड़ेके साथ लौट आओगे ॥ ११ ॥ उनके वचन सुनकर अंशुमान वहाँ गये, जहाँ जले हुए उनके पिताओंकी भस्म पड़ी हुई थी ॥ १२ ॥ अपने पिताओंकी मृत्युसे उनको बड़ा दुःख हुआ, दुःखसे वे पृथिवीमें लोटकर रोनेलगे ॥ १३ ॥ दुःख और शोकसे उद्विग्न उस पुरुषश्रेष्ठने वहाँसे थोड़ी दूरपर, चरते हुए, उस यज्ञके घोड़ेको देखा ॥१४॥ अंशुमानने अपने पिताओंको जलाञ्जलि देना निश्चय किया । उन्होंने जल ढूँढ़ा, पर वहाँ कहीं जल दिखायी न पड़ा ॥१५॥ बड़ी सावधनीसे आँख फैलाकर उन्होंने चारों ओर देखा, वायुके समान वेगवान पक्षिराज गरुड़ उनको दिखायी पड़े जो उनके पिताओंके मामा थे ॥ १६ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स चैनमब्रवीद्वाक्यं वैनतेयो महाबलः । मा शुचः पुरुषव्याघ्र वधोऽयं लोकसंमतः ॥१७॥
कपिलेनाप्रमेयेण दग्धा ह्येते महाबलाः । सलिलं नार्हसे प्राज्ञ दातुमेषां हि लौकिकम् ॥१८॥
गङ्गा हिमवतो ज्येष्ठा दुहिता पुरुषर्षभ । तस्यां कुरु महाबाहो पितॄणां सलिलक्रियाम् ॥१९॥
भस्मराशीकृतानेतान्प्लावयेल्लोकपावनी । तया क्लिन्नमिदं भस्म गङ्गया लोककान्तया ।
षष्टिं पुत्रसहस्राणि स्वर्गलोकं गमिष्यति ॥ २० ॥
निर्गच्छाश्वं महाभाग संगृह्य पुरुषर्षभ । यज्ञं पैतामहं वीर निर्वर्तयितुमर्हसि ॥२१॥
सुपर्णवचनं श्रुत्वा सोंऽशुमानतिवीर्यवान् । त्वरितं हयमादाय पुनरायान्महातपाः ॥२२॥
ततो राजानमासाद्य दीक्षितं रघुनन्दन । न्यवेदयद्यथावृत्तं सुपर्णवचनं तथा ॥२३॥
तच्छ्रुत्वा घोरसंकाशं वाक्यमंशुमतो नृपः । यज्ञं निर्वर्तयामास यथाकल्पं यथाविधि ॥२४॥
स्वपुरं त्वगमच्छ्रीमानिष्टयज्ञो महीपतिः । गङ्गायाश्चागमे राजा निश्चयं नाध्यगच्छत ॥२५॥
अगत्वा निश्चयं राजा कालेन महता महान् । त्रिंशद्वर्षसहस्राणि राज्यं कृत्वा दिवं गतः ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्ड एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ४२

कालधर्मं गते राम सगरे प्रकृतीजनाः । राजानं रोचयामासुरंशुमन्तं सुधार्मिकम् ॥ १ ॥
स राजा सुमहानासीदंशुमान्रघुनन्दन । तस्य पुत्रो महानासीद्दिलीप इति विश्रुतः ॥ २ ॥

महाबलवान गरुड़ने अंशुमानसे कहा—हे पुरुषसिंह, शोक मत करो । यह वध लोकके कल्याणके लिए हुआ है ।। १७ ॥ महाप्रभावशाली कपिलने इन बलवानोंको जलाया है । इनको तुम साधारण जल नहीं दे सकते ॥१८॥ हे पुरुषश्रेष्ठ, हिमवानकी बड़ी कन्या गंगा नामकी नदी है । उसीमें तुम अपने पितरोंको जलांजलि दो ।। १९ ।। भस्म हुए इन तुम्हारे पितरोंको लोकप्रिय और लोक-पवित्रकारिणी गंगा जब अपने जलसे भिगोवेगी, तब ये साठो हज़ार वीर स्वर्गलोकको जायँगे ॥२०॥ हे पुरुषश्रेष्ठ, घोड़ा लेकर तुम लौट जाओ और अपने पितामहका यज्ञ समाप्त कराओ ॥२१॥ वैनतेयके कहनेके अनुसार, पराक्रमी अंशुमान, घोड़ा लेकर, शीघ्रही वहाँसे लौट आये ।।२२।। आकर यज्ञकी दीक्षा लिये हुए अपने पितामहसे, वहाँका समाचार और वैनतेयकी बातें सुनायीं ।। २३ ।। अंशुमानके ये कठोर वचन राजाने सुने । वैदिक विधानके अनुसार विधिपूर्वक उन्होंने यज्ञ समाप्त किया ।। २४ ।। यज्ञ समाप्त करके राजा अपने नगरमें गये । गंगाके आनेके संबन्धमें वे कुछ निश्चय न करसके ॥ २५ ॥ बहुत दिनोंमें भी वे इसका कुछ निश्चय न करसके । तदनन्तर, तीस हज़ार वर्ष प्रजापालन करके वे स्वर्गगामी हुए ।। २६ ।।

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका एकतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४१ ॥

रामचन्द्र, राजा सगरके स्वर्गवासी होनेपर प्रजाने परमधार्मिक अंशुमानको राजा बनानेका निश्चय किया ॥१॥ रामचन्द्र, प्रजाके द्वारा राजा बनाये गये वे अंशुमान बहुत बड़े धार्मिक राजा थे । उनके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्मै राज्यं समादिश्य दिलीपे रघुनन्दन । हिमवच्छिखरे रम्ये तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ ३ ॥
द्वात्रिंशच्छतसाहस्रं वर्षाणि सुमहायशाः । तपोवनगतो राजा स्वर्गं लेभे तपोधनः ॥ ४ ॥
दिलीपस्तु महातेजाः श्रुत्वा पैतामहं वधम् । दुःखोपहतया बुद्ध्या निश्चयं नाध्यगच्छत ॥ ५ ॥
कथं गङ्गावतरणं कथं तेषां जलक्रिया । तारयेयं कथं चैतानिति चिन्तापरोऽभवत् ॥ ६ ॥
तस्य चिन्तयतो नित्यं धर्मेण विदितात्मनः । पुत्रो भगीरथो नाम जज्ञे परमधार्मिकः ॥ ७ ॥
दिलीपस्तु महातेजा यज्ञैर्बहुभिरिष्टवान् । त्रिंशद्वर्षसहस्राणि राजा राज्यमकारयत् ॥ ८ ॥
अगत्वा निश्चयं राजा तेषामुद्धरणं प्रति । व्याधिना नरशार्दूल कालधर्ममुपेयिवान् ॥ ९ ॥
इन्द्रलोकं गतो राजा स्वार्जितेनैव कर्मणा । राज्ये भगीरथं पुत्रमभिषिच्य नरर्षभः ॥१०॥
भगीरथस्तु राजर्षिर्धार्मिको रघुनन्दन । अनपत्यो महाराजः प्रजाकामः स चप्रजाः ॥११॥
मन्त्रिष्वाधाय तद्राज्यं गङ्गावतरणे रतः । तपो दीर्घं समातिष्ठद्गोकर्णे रघुनन्दन ॥१२॥
ऊर्ध्वबाहुः पञ्चतपा मासाहारो जितेन्द्रियः । तस्य वर्षसहस्राणि घोरे तपसि तिष्ठतः ॥१३॥
अतीतानि महाबाहो तस्य राज्ञो महात्मनः । सुप्रीतो भगवान्ब्रह्मा प्रजानां प्रभुरीश्वरः ॥१४॥
ततः सुरगणैः सार्धमुपागम्य पितामहः । भगीरथं महात्मानं तप्यमानमथाब्रवीत् ॥१५॥
भगीरथ महाराज प्रीतस्तेऽहं जनाधिप । तपसा च सुतप्तेन वरं वरय सुव्रत ॥१६॥

पुत्र दिलीप भी बहुत बड़े राजा थे और प्रसिद्ध थे ॥ २ ॥ अपने पुत्र दिलीपको राज्य देकर हिमवान पर्वतके शिखरपर, अंशुमान बड़ा कठोर तप करने लगे ॥ ३ ॥ महायशस्वी राजा अंशुमान बत्तीस हज़ार वर्ष तपोवनमें रहकर स्वर्गगामी हुए ॥४॥ महातेजस्वी दिलीपने अपने पितामहोंके वधकी बात सुनी । दुःखसे उनकी बुद्धि जड़ होगयी और वे कुछ कर न सके ॥ ५ ॥ कैसे गंगा आवेंगी, कैसे इनकी जल-क्रिया होगी और कैसे इनका उद्धार होगा, यही उनकी प्रधान चिन्ता हुई ॥ ६ ॥ इस प्रकार नित्य चिन्ता करनेवाले और प्रसिद्ध धार्मिक उन राजाको भगीरथ नामका पुत्र हुआ, जो बड़ा ही धार्मिक था ॥७॥ तेजस्वी राजा दिलीपने अनेक यज्ञ किये और तीस हज़ार वर्ष तक उन्होंने राज्यशासन किया ॥८॥ पर, वे अपने पितरोंके उद्धारका कोई उपाय निश्चित नहीं करसके । अन्तमें बीमार होकर वे स्वर्गगामी हुए ॥ ९ ॥ अपने पुत्र, भगीरथको राज्य देकर नरश्रेष्ठ राजा दिलीप अपने कर्मोंसे ही इन्द्रलोकमें गये ॥ १० ॥ हे रामचन्द्र, राजर्षि भगीरथ बड़े धार्मिक थे । कोई पुत्र न होनेके कारण, वे पुत्रप्राप्तिके लिए उपाय करनेकी इच्छा रखते थे ॥११॥ मंत्रियोंको राज्य देकर, गंगावतरणके लिए दृढ़प्रतिज्ञ राजा भगीरथने गोकर्ण नामक स्थानमें घोर तपस्या प्रारंभ की ॥१२॥ ऊर्ध्वबाहु होकर, पंचाग्नि लेकर, एक महीने के उपवासके बाद भोजन कर, उस जितेन्द्रियने तपस्या की । ऐसी कठिन तपस्या करते हुए उनको एक हज़ार वर्ष बीत गये ॥ १३ ॥ उन महात्मा राजा-पर प्रजाओंके स्वामी भगवान् ब्रह्मा प्रसन्न हुए ॥ १४ ॥ देवताओंके साथ पितामह ब्रह्मा वहाँ आये और तपस्या करते हुए, महात्मा भगीरथसे वे बोले ॥ १५ ॥ हे महाराज भगीरथ, हे जननायक, आपकी सुन्दर तपस्यासे मैं प्रसन्न हुआ हूँ । हे सुन्दरव्रतकरनेवाले, वर लीजिए ॥ १६ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तमुवाच महातेजाः सर्वलोकपितामहम् । भगीरथो महाबाहुः कृताञ्जलिपुटः स्थितः ॥१७॥
यदि मे भगवान्प्रीतो यद्यस्ति तपसः फलम् । सगरस्यात्मजाः सर्वे मत्तः सलिलमाप्नुयुः ॥१८॥
गङ्गायाः सलिलक्लिन्ने भस्मन्येषां महात्मनाम् । स्वर्गं गच्छेयुरत्यन्तं सर्वे च प्रपितामहाः ॥१९॥
देव याचे ह संतत्यै नावसीदेत्कुलं च नः । इक्ष्वाकूणां कुले देव एष मेऽस्तु वरः परः ॥२०॥
उक्तवाक्यं तु राजानं सर्वलोकपितामहः । प्रत्युवाच शुभां वाणीं मधुरां मधुराक्षराम् ॥२१॥
मनोरथो महानेष भगीरथ महारथ । एवं भवतु भद्रं ते इक्ष्वाकुकुलवर्धन ॥२२॥
इयं हैमवती ज्येष्ठा गङ्गा हिमवतः सुता । तां वै धारयितुं राजन्हरस्तत्र नियुज्यताम् ॥२३॥
गङ्गायाः पतनं राजन्पृथिवी न सहिष्यते । तां वै धारयितुं राजन्नान्यं पश्यामि शूलिनः ॥२४॥
तमेवमुक्त्वा राजानं गङ्गां चाभाष्य लोककृत् । जगाम त्रिदिवं देवैः सर्वैः सह मरुद्गणैः ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥४२॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ४३

देवदेवे गते तस्मिन्सोऽङ्गुष्ठाग्रनिपीडिताम् । कृत्वा वसुमतीं राम वत्सरं समुपासत ॥ १ ॥
अथ संवत्सरे पूर्णे सर्वलोकनमस्कृतः । उमापतिः पशुपतिः राजानमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥
प्रीतस्तेऽहं नरश्रेष्ठ करिष्यामि तव प्रियम् । शिरसा धारयिष्यामि शैलराजसुतामहम् ॥ ३ ॥

महातेजस्वी, महाबाहु भगीरथने हाथ जोड़कर पितामहसे कहा ॥१७॥ भगवन्, यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, यदि आप मेरी तपस्यासे प्रसन्न हैं, तो मैं यह वर माँगता हूं कि सगरके पुत्रोंको मैं जल दे सकूँ ॥१८॥ गंगाके जलसे जब उनकी भस्म भीगेगी, तभी वे मेरे प्रपितामह स्वर्ग पा सकेंगे ॥१९॥ देव, मैं पुत्रकी भी प्रार्थना करता हूँ, जिससे मेरे कुलका नाश न हो । इक्ष्वाकुकुलमें, इसी वरको आप अन्तिम वर समझें ॥ २० ॥ राजाके कहनेपर पितामह ब्रह्माने बहुत ही सुन्दर और मधुर वाणीमें उत्तर दिया ॥ २१ ॥ महावीर भगीरथ, यह तुम्हारा बहुत बड़ा मनोरथ है, पर यह पूर्ण होगा । हे इक्ष्वाकुकुलको बढ़ानेवाले, तुम्हारा कल्याण हो ॥ २२ ॥ यह गंगा हैमवती है अर्थात् हिमवानकी बड़ी कन्या है । उसको धारण करनेके लिए शिवको नियुक्त कीजिए ॥ २३ ॥ गंगाके गिरनेके वेगको यह पृथिवी न सह सकेगी । उसको धारण करनेकी शक्ति रखनेवाला शिवको छोड़कर मैं दूसरेको नहीं देख रहा हूँ ॥ २४ ॥ राजा भगीरथसे इस प्रकार कहकर और गंगाको भी भगीरथका मनोरथ पूर्ण करनेकी आज्ञा देकर, विधाता सब देवताओंके साथ स्वर्ग चले गये ॥२५॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका बयालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४२ ॥

देवताओंके देव ब्रह्माके जानेपर राजा भगीरथने पृथिवीको एक अगूठेसे दबाकर अर्थात् एक अँगूठेपर खड़े होकर एक वर्ष तक उपासना की ॥ १ ॥ एक वर्षके पूरे होनेपर उमापति महादेव राजासे बोले ॥ २ ॥ नरश्रेष्ठ, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हारा मनोरथ सिद्ध करूँगा, हिमवान्की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततो हैमवती ज्येष्ठा सर्वलोकनमस्कृता । तदा सातिमहद्रूपं कृत्वा वेगं च दुःसहम् ॥ ४ ॥
आकाशादपतद्राम शिवे शिवशिरस्युत । अचिन्तयच्च सा देवी गङ्गा परमदुर्धरा ॥ ५ ॥
विशाम्यहं हि पातालं स्रोतसा गृह्य शंकरम् । तस्यावलेपनं ज्ञात्वा क्रुद्धस्तु भगवान्हरः ॥ ६ ॥
तिरोभावयितुं बुद्धिं चक्रे त्रिनयनस्तदा । सा तास्मिन्पतिता पुण्या पुण्ये रुद्रस्य मूर्धनि॥ ७ ॥
हिमवत्प्रतिमे राम जटामण्डलगह्वरे । सा कथंचिन्महीं गन्तुं नाशक्नोद्यत्नमास्थिता॥ ८ ॥
नैव सा निर्गमं लेभे जटामण्डलमन्ततः । तत्रैवाऽबभ्रमद्देवी संवत्सरगणान्बहून् ॥ ९ ॥
तामपश्यत्पुनस्तत्र तपः परममास्थितः । स तेन तोषितश्चासीदत्यन्तं रघुनन्दन ॥१०॥
विससर्ज ततो गङ्गां हरो बिन्दुसरः प्रति । तस्यां विसृज्यमानायां सप्त स्रोतांसि जज्ञिरे ॥११॥
ह्लादिनी पावनी चैव नलिनी च तथैव च । तिस्रः प्राचीं दिशं जग्मुर्गङ्गाः शिवजलाः शुभाः॥१२॥
सुचक्षुश्चैव सीता च सिन्धुश्चैव महानदी । तिस्रश्चैता दिशं जग्मुः प्रतीचीं तु दिशं शुभाः॥१३॥
सप्तमी चान्वगात्तासां भगीरथरथं तदा । भगीरथोऽपि राजर्षिर्दिव्यं स्यन्दनमास्थितः॥१४॥
प्रायादग्रे महातेजा गङ्गा तं चाप्यनुव्रजत् । गगनाच्छंकरशिरस्ततो धरणिमागता ॥१५॥
असर्पत जलं तत्र तीव्रशब्दपुरस्कृतम् । मत्स्यकच्छपसङ्घैश्च शिंशुमारगणैस्तथा ॥१६॥
पतद्भिः पतितैश्चैव व्यरोचत वसुंधरा । ततो देवर्षिगन्धर्वा यक्षसिद्धगणास्तथा ॥१७॥

कन्या गङ्गाको मैं अपने सिरपर रोकूंगा ॥ ३ ॥ तदनन्तर सब लोकोंसे पूजित हैमवती गङ्गा बहुत बड़ा रूप बनाकर बड़े दुःसह वेगसे ॥४॥ आकाशसे शिवके मस्तकपर गिरीं। परम दुर्धरा (जिनके वेगको रोकना कठिन है) गङ्गादेवीने सोचा ॥५॥ अपनी धाराओंके साथ महादेवको लेकर मैं पाताल में घुस जाऊंगी। गङ्गाका यह अभिमान जानकर भगवान् शिव बड़े क्रुद्ध हुए ॥ ६ ॥ त्रिनयन शिवने गङ्गाको छिपालेनेका विचार किया। वह पवित्र गङ्गा शिवके पवित्र मस्तकपर गिरीं ॥ ७ ॥ हिमवान्के समान शिवकी जटाओंकी गुफामें गङ्गा गिरीं, पृथिवीपर आनेका उन्होंने बहुत प्रयत्न किया, पर वे आ न सकीं ॥ ८ ॥ शिवकी जटासे गङ्गा नहीं निकल सकीं, वे वहीं बहुत वर्षों तक घूमती रहीं ॥ ९ ॥ गङ्गाको पृथिवीतलपर न देखकर भगीरथने पुनः तपस्या प्रारम्भ की। भगवान् शङ्कर उस तपस्यासे अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥१०॥ तब शिवने विन्दुसरमें (हिमवानकी तराईके एक तालाबका नाम) गंगाको छोड़ा, उस छोड़ी हुई गंगाकी सात धाराएँ हुईं ॥ ११ ॥ (उन धाराओंके नाम) ह्लादिनी, पावनी और नलिनी, ये सुन्दर जलवाली गंगाकी तीन धाराएँ पूर्व दिशाकी ओर गयीं ॥ १२ ॥ सुचक्षु, सीता और सिन्धु, ये पवित्र तीन धाराएँ महानदीके नामसे प्रसिद्ध होकर पश्चिम दिशाकी ओर गयीं ॥ १३ ॥ और उन धाराओंमेंकी सातवीं धारा भगीरथके पीछे-पीछे गयी। राजर्षि भगीरथ भी अलौकिक रथपर बैठकर ॥ १४ ॥ आगे-आगे चले और महातेजस्वी भगीरथके पीछे-पीछे आकाशसे गिरकर शिवके मस्तकपर और वहाँसे पृथिवीपर आयी हुई गंगा चलीं ॥ १५ ॥ बड़े शब्दसे जल चला, मछलियाँ, कछुए और मगरोंसे ॥ १६ ॥ जो जलमें गिर गये थे, और गिरते थे पृथिवी शोभने लगी। तब देवता, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष और सिद्धोंने ॥१७॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

व्यलोकयन्त ते तत्र गगनाद्गां गतां तदा । विमानैर्नगराकारैर्हयैर्गजवरैस्तदा ॥१८॥
परिप्लवगताश्चापि देवतास्तत्र विष्ठिताः । तदद्भुतमिमं लोके गङ्गावतरमुत्तमम् ॥१९॥
दिदृक्षवो देवगणाः समीयुरमितौजसः । संपतद्भिः सुरगणैस्तेषां चाभरणौजसा ॥२०॥
शतादित्यमिवाभाति गगनं गततोयदम् । शिंशुमारोरगगणैर्मीनैरपि च चञ्चलैः ॥२१॥
विद्युद्भिरिव विक्षिप्तैराकाशमभवत्तदा । पाण्डुरैः सलिलोत्पीडैः कीर्यमाणैः सहस्रधा ॥२२॥
शारदाभ्रैरिवाकीर्णं गगनं हंससंप्लवैः । क्वचिदुद्ततरं याति कुटिलं क्वचिदायतम् ॥२३॥
विनतं क्वचिदुद्भूतं क्वचिद्याति शनैः शनैः । सलिलेनैव सलिलं क्वचिदभ्याहतं पुनः ॥२४॥
मुहुरूर्ध्वपथं गत्वा पपात वसुधां पुनः । तच्छंकराशिरोभ्रष्टं भ्रष्टं भूमितले पुनः ॥२५॥
व्यरोचत तदा तोयं निर्मलं गतकल्मषम् । तत्रर्षिगणगन्धर्वा वसुधातलवासिनः ॥२६॥
भवाङ्गपतितं तोयं पावित्रमिति पस्पृशुः । शापात्प्रपतिता ये च गगनाद्वसुधातलम् ॥२७॥
कृत्वा तत्राभिषेकं ते बभूवुर्गतकल्मषाः । धूतपापाः पुनस्तेन तोयेनाथ शुभान्विताः ॥२८॥
पुनराकाशमाविश्य स्वाँल्लोकान्प्रतिपेदिरे । मुमुदे मुदितो लोकस्तेन तोयेन भास्वता ॥२९॥
कृताभिषेको गङ्गायां बभूव गतकल्मषः । भगीरथो हि राजर्षिर्दिव्यं स्यन्दनमास्थितः॥३०॥
प्रायादग्रे महाराजस्तं गङ्गा पृष्ठतोऽन्वगात् । देवाः सर्षिगणाः सर्वे दैत्यदानवरात्तसाः ॥३१॥

देखा कि गंगा आकाशसे (अपने लोकसे) पृथिवीमें चली। नगरके समान बड़े-बड़े विमानों, हाथियों और घोड़ोंपर ॥ १८ ॥ घबड़ाए हुए देवताओंने आश्रय लिया, यह गंगावतरण, लोकमें एक अद्भुत कार्य हुआ ॥ १९ ॥ गंगावतरण देखनेके लिए पराक्रमी देवता इकट्ठे हुए। उन आये हुए देवताओंके आभूषणोंके प्रकाशसे ॥ २० ॥ मालूम हुआ कि निर्मल आकाशमें सौ सूर्य उदित हुए हैं। शिंशुमार, उरगगण और मीन (जलजंतु) की चंचलतासे ॥ २१ ॥ मालूम होता था कि आकाश बिजलियोंसे भरगया है। उस समय वेगके कारण, पीले गंगाके जलप्रवाहसे समूचा आकाश भरगया ॥ २२ ॥ जिस प्रकार शरदृतुमें हंसोंसे आकाश भरजाता है, उसी तरह गंगाके जलसे भरगया। गंगाकी धारा, कहीं तेज़, कहीं टेढ़ी और कहीं सीधी जारही थी ॥२३॥ जल कहीं नम गया था, कहीं ऊंचा उठ गया था, कहीं धीरे-धीरे जाता था और कहीं जलका जलसेही टक्कर होता था ॥ २४ ॥ थोड़ी दूर ऊपर जाकर वह गंगाकी धारा पुनः पृथिवीकी ओर आयी और शिवके मस्तकपर गिरी तथा वहाँसे गिरकर पृथिवीपर आयी ॥ २५ ॥ वह विशुद्ध और फेन-रहित जल बड़ाही सुन्दर मालूम होता था। पृथिवीके निवासी, ऋषि और गन्धर्वोंने ॥२६॥ शिवजीके अंगसे गिरनेके कारण, पवित्र समझकर, उस जलका आचमन किया। जो देवता शापके कारण स्वर्गसे पृथिवीतलपर आगये थे ॥२७॥ वे गंगामें स्नान कर निष्पाप होगये। निष्पाप होकर उस जलके प्रभावसे पुनः पुण्यात्मा हुए ॥२८॥ और आकाशमें जाकर, अपने-अपने लोकोंमें गये। उस उज्ज्वल जलको देखकर जो प्रसन्न हुए थे, वे स्नान आदिसे और भी प्रसन्न हुए ॥ २९ ॥ राजा भगीरथ भी गंगामें स्नान कर निष्पाप होगये, वे राजर्षि दिव्य रथपर बैठकर ॥३०॥ आगे-आगे चले और गंगा उनके पीछे चलीं। देवता,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गन्धर्वयक्षप्रवराः सकिंनरमहोरगाः । सर्पाश्चाप्सरसो राम भगीरथरथानुगाः ॥३२॥
गङ्गामन्वगमन्प्रीताः सर्वे जलचराश्च ये । यतो भगीरथो राजा ततो गङ्गा यशस्विनी ॥३३॥
जगाम सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी । ततो हि यजमानस्य जह्नोरद्भुतकर्मणः ॥३४॥
गङ्गां संप्लावयामास यज्ञवाटं महात्मनः । तस्यावलेपनं ज्ञात्वा क्रुद्धो जह्नुश्च राघव ॥३५॥
अपिबत्तु जलं सर्वं गङ्गायाः परमाद्भुतम् । ततो देवाः सगन्धर्वाऋषयश्च सुविस्मिताः ॥३६॥
पूजयन्ति महात्मानं जह्नुं पुरुषसत्तमम् । गङ्गां चापि नयन्ति स्म दुहितृत्वे महात्मनः ॥३७॥
ततस्तुष्टो महातेजाः श्रोत्राभ्यामसृजत्प्रभुः । तस्माज्जह्नुसुता गङ्गा प्रोच्यते जाह्नवीति च ॥३८॥
जगाम च पुनर्गङ्गा भगीरथरथानुगा । सागरं चापि संप्राप्ता सा सरित्प्रवरा तदा ॥३९॥
रसातलमुपागच्छत्सिद्ध्यर्थं तस्य कर्मणः । भगीरथोऽपि राजर्षिर्गङ्गामादाय यत्नतः ॥४०॥
पितामहान्भस्मकृतानपश्यद्गतचेतनः । अथ तद्भस्मनां राशिं गङ्गासलिलमुत्तमम् ।
प्लावयत्पूतपाप्मानः स्वर्गं प्राप्ता रघूत्तम ॥४१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

ऋषिगण, दैत्य, दानव, राक्षस, ॥ ३१ ॥ गन्धर्व, श्रेष्ठ यक्ष, किन्नर, बड़े बड़े और छोटे-छोटे साँप और अप्सराएँ भगीरथके रथके पीछे चलीं ॥ ३२ ॥ सब जलचर प्रसन्नतापूर्वक गंगाके पीछे-पीछे चले । जिधर-जिधर राजा भगीरथ जाते थे, उधर-उधर यशस्विनी, ॥३३॥ सबके पापोंको नाश करने वाली और नदियोंमें श्रेष्ठ गंगा जाती थीं । उस समय अद्भुत कर्म करनेवाले जह्नु मुनि यज्ञ कर रहे थे ॥ ३४ ॥ गंगाने उनकी सब यज्ञसामग्रियाँ बहा दीं । रामचन्द्र, गंगाके इस अहंकारको देखकर जह्नु मुनि बड़े क्रुद्ध हुए ॥ ३५ ॥ उन्होंने अद्भुत काम किया । गंगाका समस्त जल पी लिया । यह देखकर देवता, गन्धर्व और ऋषियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३६ ॥ पुरुषश्रेष्ठ, महात्मा जह्नुकी उन लोगोंने पूजा की और कहा कि गंगा आपकी कन्याके नामसे प्रसिद्ध होगी ॥ ३७ ॥ इससे तेजस्वी मुनि प्रसन्न हुए और उन्होंने कानकी राहसे गंगाको निकाल दिया । इसीसे गंगा, जह्नुसुता और जान्हवी कही जाती हैं ॥ ३८ ॥ वहाँसे गंगा पुनः भगीरथके रथके पीछे चलीं । इस प्रकार वह श्रेष्ठ नदी समुद्रसे जाकर मिली ॥ ३९ ॥ भगीरथकी मनोरथसिद्धिके लिए, वे रसातलमें भी गयीं । राजा भगीरथने भी, बड़े प्रयत्नसे गंगाके साथ ॥ ४० ॥ कपिल-क्रोधसे भस्म अपने पितामहोंको देखा और वे दुःखी हुए । अनन्तर, वह भस्मराशि गंगाके जलसे सिंचित हुई, उनके पाप दूर हुए और वे साठो हज़ार सगरके पुत्र स्वर्गलोकमें गये ॥ ४१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका तेंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ४४

स गत्वा सागरं राजा गङ्गयानुगतस्तदा । प्रविवेश तलं भूमेर्यत्र ते भस्मसात्कृताः ॥ १ ॥
भस्मन्यथाप्लुते राम गङ्गायाः सलिलेन वै । सर्वलोकप्रभुर्ब्रह्मा राजानमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥
तारिता नरशार्दूल दिवं याताश्च देववत् । षष्टिः पुत्रसहस्राणि सगरस्य महात्मनः ॥ ३ ॥
सागरस्य जलं लोके यावत्स्थास्यति पार्थिव । सगरस्यात्मजाः सर्वे दिवि स्थास्यन्ति देववत् ॥ ४ ॥
इयं च दुहिता ज्येष्ठा तव गङ्गा भविष्यति । त्वत्कृतेनचनाम्नाथ लोके स्थास्यति विश्रुता ॥ ५ ॥
गङ्गा त्रिपथगा नाम दिव्या भागीरथीति च । त्रीन्पथो भावयन्तीति तस्मात्त्रिपथगा स्मृता ॥ ६ ॥
पितामहानां सर्वेषां त्वमत्र मनुजाधिप । कुरुष्व सलिलं राजन्प्रतिज्ञामपवर्जय ॥ ७ ॥
पूर्वकेण हि ते राजंस्तेनातियशसा तदा । धर्मिणां प्रवरेणाथ नैष प्राप्तो मनोरथः ॥ ८ ॥
तथैवांशुमता वत्स लोकेऽप्रतिमतेजसा । गङ्गां प्रार्थयता नेतुं प्रतिज्ञा नापवर्जिता ॥ ९ ॥
राजर्षिणा गुणवता महर्षिसमतेजसा । मत्तुल्यतपसा चैव क्षत्रधर्मस्थितेन च ॥१०॥
दिलीपेन महाभाग तव पित्रातितेजसा । पुनर्न शकिता नेतुं गङ्गां प्रार्थयतानघ ॥११॥
सा त्वया समतिक्रान्ता प्रतिज्ञा पुरुषर्षभ । प्राप्तोऽसि परमं लोके यशः परमसंमतम् ॥१२॥
तच्च गङ्गावतरणं त्वया कृतमरिंदम । अनेन च भवान्प्राप्तो धर्मस्यायतनं महत् ॥१३॥

राजा भगीरथ, गंगाके साथ समुद्रतीरपर पहुँचे । वहाँसे उन्होंने पातालमें प्रवेश किया, जहाँ उनके पितामह भस्म हुए थे ॥ १॥ गंगाके जलसे भस्मके सिंचित होनेपर, सब लोकोंके स्वामी ब्रह्मा आये और वे राजासे बोले ॥ २ ॥ हे नरश्रेष्ठ, आपने महात्मा सगरके साठ हज़ार पुत्रोंका उद्धार किया और वे देवताओंके समान स्वर्गमें गये ॥ ३ ॥ राजन्, जब तक संसारमें समुद्रका जल वर्तमान रहेगा, तब तक ये सगरके पुत्र, स्वर्गमें, देवताके समान स्थान पावेंगे ॥ ४ ॥ ये गंगा आपकी बड़ी कन्या समझी जायगी क्योंकि आपके ही प्रयत्नसे यह भूतलमें आयी है, इस कारण आपकेही नामसे यह प्रसिद्ध होगी ॥ ५ ॥ गंगा, त्रिपथगा और भागीरथी ये इसके नाम होंगे । तीन धाराओंसे बहनेके कारण, इसका नाम त्रिपथगा होगा ॥६॥ राजन्, आप अपने पितामहोंको, यहीं जलाञ्जलि दें, और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करें ॥ ७ ॥ राजन्, अत्यन्त यशस्वी और श्रेष्ठ धर्मात्मा आपके पूर्वज (सगर) का भी यही मनोरथ था, पर उन्हें सफलता न मिली ॥ ८ ॥ पुत्र, उसी प्रकार अंशुमानने भी (जो मर्त्यलोकमें बड़ा तेजस्वी था) गंगाको लेआनेका प्रयत्न किया, पर वह सफल न हुआ ॥ ९ ॥ राजन्, आपके पिता राजर्षि दिलीप बलवान् और महर्षियोंके समान तेजस्वी थे, वे तपस्यामें मेरे बराबर थे तथा क्षत्रियोंके धर्मका पालन करते थे ॥ १० ॥ अतितेजस्वी उन्होंने भी गङ्गाको लेआना चाहा था, पर वे अपना मनोरथ सफल न कर सके ॥ ११ ॥ पुरुषश्रेष्ठ, आपने आज वह प्रतिज्ञा पूरी करदी, और लोकमें बड़ा भारी यश भी कमाया ॥ १२ ॥ शत्रुनाशन, आप जो पृथिवीतलमें गङ्गाको लेआनेमें समर्थ हुए है, उससे आप बहुत बड़े धर्मके भी भागी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्लावयस्व त्वमात्मानं नरोत्तम सदोचिते । सलिले पुरुषश्रेष्ठ शुचिः पुण्यफलो भव ॥१४॥
पितामहानां सर्वेषां कुरुष्व सलिलक्रियाम् । स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि स्वंलोकं गम्यतां नृप ॥१५॥
इत्येवमुक्त्वा देवेशः सर्वलोकपितामहः । यथागतं तथागच्छद्देवलोकं महायशाः ॥१६॥
भगीरथस्तु राजर्षिः कृत्वा सलिलमुत्तमम् । यथाक्रमं यथान्यायं सागराणां महायशाः ॥१७॥
कृतोदकः शुची राजा स्वपुरं प्रविवेश ह । समृद्धार्थो नरश्रेष्ठ स्वराज्यं प्रशशास ह ॥१८॥
प्रमुमोद च लोकस्तं नृपमासाद्य राघव । नष्टशोकः समृद्धार्थो बभूव विगतज्वरः ॥१९॥
एष ते राम गङ्गाया विस्तरोऽभिहितो मया । स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते संध्याकालोऽतिवर्तते ॥२०॥
धन्यं यशस्यमत्युष्यं पुत्र्यं स्वर्ग्यमथापि च । यः श्रावयति विप्रेषु क्षत्रियेष्वितरेषु च ॥२१॥
प्रीयन्ते पितरस्तस्य प्रीयन्ते दैवतानि च । इदमाख्यानमायुष्यं गङ्गावतरणं शुभम् ॥२२॥
यःशृणोति च काकुत्स्थ सर्वान्कामानवाप्नुयात् । सर्वे पापाः प्रणश्यन्ति आयुः कीर्तिश्च वर्धते ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

हुए हैं ॥ १३ ॥ गङ्गामें स्नान करना सदा ही उचित है, इसमें स्नान करनेके लिए किसी समय, तिथि, मुहूर्त, पर्व आदिका नियम नहीं है । नरश्रेष्ठ, आप इसमें सदा स्नान करें, इससे आप स्वयं पवित्र और दूसरोंको पवित्र कर सकेंगे ॥ १४ ॥ अब आप अपने सब पितामहोंको जलाञ्जलि दें, आपका कल्याण हो, अब मैं अपने लोक जाता हूँ, आप भी जांय ॥ १५ ॥ ऐसा कहकर सब लोकोंके पितामह ब्रह्मा जहांसे आये थे वहां (अपने लोकमें) देवलोक होकर गये ॥ १६ ॥ राजा भगीरथने भी सगरके पुत्र अपने पितामहोंको क्रमके अनुसार (छुटाई बड़ाई) और शास्त्रीय विधिके अनुसार जलाञ्जलि दी ॥ १७ ॥ जल देकर तथा पवित्र होकर राजाने अपने नगरमें प्रवेश किया, राजाके सब मनोरथ सिद्ध होगये थे, उन्होंने राज्यपालनका भार ग्रहण किया ॥ १८ ॥ राजा भगीरथके समान राजाको पाकर प्रजा बहुत प्रसन्न हुई, राजाके दुःख दूर हुए, उनके मनोरथकी सिद्धि हुई, उनकी सब चिन्ताएँ मिटगयीं ॥१९॥ विश्वामित्रने कहा— रामचन्द्र, यह गङ्गाकी कथा तुमसे विस्तारके साथ कही, अब जाओ तुम्हारा कल्याणहो, सायंकालके कृत्योंका समय बीत रहा है ॥ २० ॥ गङ्गाका यह आख्यान पवित्र करनेवाला, यश देनेवाला, आयु बढ़ानेवाला, पुत्र देनेवाला तथा स्वर्ग लेजानेवाला है । जो इस आख्यानको क्षत्रियों, ब्राह्मणों तथा दूसरोंको सुनाता है ॥२१॥ उसपर पितर प्रसन्न होते हैं, देवता प्रसन्न होते हैं । आयु देनेवाले पवित्र इस गङ्गावतरणको ॥२२॥ जो सुनता है उसके सब मनोरथ पूरे होते हैं, सब पाप नष्ट होते हैं, आयु और कीर्ति बढ़ती है॥२३॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका चौआलीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४४ ॥

—:*******:—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ४५

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा राघवः सहलक्ष्मणः । विस्मयं परमं गत्वा विश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥ १ ॥
अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन्कथितं परमं त्वया । गङ्गावतरणं पुण्यं सागरस्यापि पूरणम् ॥ २ ॥
क्षणभूतेव नौ रात्रिः संवृत्तेयं परंतप । इमां चिन्तयतः सर्वां निखिलेन कथां तव ॥ ३ ॥
तस्य सा शर्वरी सर्वा मम सौमित्रिणा सह । जगाम चिन्तयानस्य विश्वामित्र कथां शुभाम् ॥ ४ ॥
ततः प्रभाते विमले विश्वामित्रं तपोधनम् । उवाच राघवो वाक्यं कृताह्निकमरिंदमः ॥ ५ ॥
गता भगवती रात्रिः श्रोतव्यं परमाद्भुतम् । तराम सरितां श्रेष्ठां पुण्यां त्रिपथगां नदीम् ॥ ६ ॥
नौरेषा हि सुखास्तीर्णा ऋषीणां पुण्यकर्मणाम् । भगवन्तमहि प्राप्तं ज्ञात्वा त्वरितमागता ॥ ७ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः । संतारं कारयामास सर्षिसङ्घस्य कौशिकः ॥ ८ ॥
उत्तरं तीरमासाद्य संपूज्यर्षिगणं ततः । गङ्गाकूले निविष्टास्ते विशालां ददृशुः पुरीम् ॥ ९ ॥
ततो मुनिवरस्तूर्णं जगाम सहराघवः । विशालां नगरीं रम्यां दिव्यां स्वर्गोपमां तदा ॥१०॥
अथ रामो महाप्राज्ञो विश्वामित्रं महामुनिम् । पप्रच्छ प्राञ्जलिर्भूत्वा विशालामुत्तमां पुरीम् ॥११॥
कतमो राजवंशोऽयं विशालायां महामुने । श्रोतुमिच्छामि भद्रं ते परं कौतूहलं हि मे ॥१२॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामस्य मुनिपुंगवः । आख्यातुं तत्समारेभे विशालायाः पुरातनम् ॥१३॥
श्रूयतां राम शक्रस्य कथां कथयतः श्रुताम् । अस्मिन्देशे हि यद्वृत्तं शृणु तत्त्वेन राघव ॥१४॥

विश्वामित्रकी बातें सुनकर राम और लक्ष्मणको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे विश्वामित्रसे बोले ॥१॥ महाराज, आपने यह बड़ी आश्चर्यकथा कही, पवित्र गंगावतरण और समुद्रकी पूर्ति, सचमुच बड़े अद्भुत व्यापार हैं ॥ २ ॥ महाराज, आपकी इस कथापर विचार करनेके कारण, यह समूची रात एक क्षणके समान बीतगयी ॥३॥ लक्ष्मणके साथ, आपकी सुन्दर कथापर विचार करते हुए मैंने यह समूची रात बितादी ॥४॥ विश्वामित्रने प्रातःकृत्य समाप्त किये। उस समय भी बड़ा ही रमणीय प्रातःकाल था। रामचन्द्रने तपोधन विश्वामित्रसे कहा ॥ ५ ॥ रात बीतगयी, गंगावतरणकी अद्भुत कथा भी हमलोगोंने सुनी; अब हमलोग नदीश्रेष्ठ त्रिपथगा गंगाको पार करें ॥ ६ ॥ पुण्य कर्मवाले ऋषियोंकी यह नौका है। इसपर बठनेके लिए अच्छा बिछौना है। आपके आनेके कारण, शीघ्रता पूर्वक, यह यहाँ लायी गयी है ॥ ७ ॥ महात्मा राघवके वे वचन सुनकर विश्वामित्रने महर्षियोंको पार कराना प्रारंभ किया ॥ ८ ॥ गंगाके दूसरे तीरपर आकर, ऋषियोंको (जो उन्हें विदा करनेके लिए आये थे) सत्कार पूर्वक विदा करके, वहीं निवास किया और वहींसे विशाला नामकी नगरी देखी ॥९॥ मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र, राम लक्ष्मणके साथ, स्वर्गके समान दिव्य और रमणीय विशाला नगरीमें गये ॥ १० ॥ महाबुद्धिमान रामचन्द्रने महामुनि विश्वामित्रसे, हाथ जोड़कर, विशाला नगरीके संबन्धमें पूछा ॥ ११ ॥ इस विशाला नगरीमें किस वंशके राजा हैं, मैं यह जाननेके लिए उत्कण्ठित हूँ। महाराज, आपका कल्याण हो ॥ १२ ॥ रामचन्द्रके वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रने, विशालाकी प्राचीन कथा कहनी प्रारंभ की ॥ १३ ॥ रामचन्द्र, इन्द्रकी कथा जो मैंने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वं कृतयुगे राम दितेः पुत्रा महाबलाः । अदितेश्च महाभागा वीर्यवन्तःसुधार्मिकाः ॥१५॥
ततस्तेषां नरव्याघ्र बुद्धिरासीन्महात्मनाम् । अमरा विजराश्चैव कथं स्यामो निरामयाः ॥१६॥
तेषां चिन्तयतां तत्र बुद्धिरासीद्विपश्चिताम् । क्षीरोदमथनं कृत्वा रसं प्राप्स्याम तत्र वै ॥१७॥
ततो निश्चित्य मथनं योक्त्रं कृत्वा च वासुकिम् । मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुरमितौजसः ॥१८॥
अथ वर्षसहस्रेण योक्त्रसर्पशिरांसि च । वमन्तोऽतिविषं तत्र ददंशुर्दशनैः शिलाः ॥१९॥
उत्पपाताग्निसंकाशं हालाहलमहाविषम् । तेन दग्धं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥२०॥
अथ देवा महादेवं शंकरं शरणार्थिनः । जग्मुः पशुपतिं रुद्रं त्राहि त्राहीति तुष्टुवुः ॥२१॥
एवमुक्तस्ततो देवैर्देवदेवेश्वरः प्रभुः । प्रादुरासीत्ततोऽत्रैव शङ्खचक्रधरो हरिः ॥२२॥
उवाचैनं स्मितं कृत्वा रुद्रं शूलधरं हरिः । दैवतैर्मथ्यमाने तु यत्पूर्वं समुपस्थितम् ॥२३॥
तत्त्वदीयं सुरश्रेष्ठ सुराणामग्रतो हि यत् । अग्रपूजामिह स्थित्वा गृहाणेदं विषं प्रभो ॥२४॥
इत्युक्त्वा च सुरश्रेष्ठस्तत्रैवान्तरधीयत । देवतानां भयं दृष्ट्वा श्रुत्वा वाक्यं तु शार्ङ्गिणः॥२५॥
हालाहलं विषं घोरं संजग्राहामृतोपमम् । देवान्विसृज्य देवेशो जगाम भगवान्हरः ॥२६॥
ततो देवासुराः सर्वे ममन्थू रघुनन्दन । प्रविवेशाथ पातालं मन्थानः पर्वतोत्तमः ॥२७॥

सुनी है, वह सुनो। इस देशमें जो हुआ है, उसका तत्त्व सुनो ॥ १४ ॥ रामचन्द्र, पहले सत्ययुगमें दितिके पुत्र दैत्य बड़े बली थे और अदितिके पुत्र (देवता) भी बड़े पराक्रमी तथा धार्मिक थे ॥ १५ ॥ हे नरश्रेष्ठ, उनलोगोंने विचार किया कि किस प्रकार हमलोग अमर (मृत्यु-हीन) और नीरोग होंगे, अर्थात् हमलोगोंको कोई रोग न होगा और हमलोग कभी मरेंगे नहीं ॥१६॥ इस प्रकार विचारकर उन बुद्धिमानोंने निश्चय किया कि क्षीरसमुद्रका मथन कर हमलोग रस (अमृत) प्राप्त करें ॥ १७ ॥ ऐसा निश्चय कर उन तेजस्वियोंने वासुकी सर्पको मथनेकी रस्सी बनाया और मन्दर पर्वतको मथनी, अनन्तर क्षीरसमुद्रका मथना प्रारंभ किया ॥१८॥ इस प्रकार एक हज़ार वर्ष बीतनेपर रस्सी बने हुए वासुकीके मस्तकोंसे उग्र विष निकलने लगा और उन्होंने दाँतोंसे पर्वतको काटा ॥ १९ ॥ अग्निके समान महाउग्र हालाहल विष निकला, जिससे देवता, असुर, मनुष्य आदि समस्त संसार जलने लगा ॥ २० ॥ देवता, शरणकी इच्छासे, शंकर महादेवके यहाँ गये और उनलोगोंने त्राहि-त्राहि कहकर पशुपतिकी स्तुति की ॥२१॥ पर देवताओंके ऐसा कहनेपर, देवदेवेश्वर भगवान् हरि शङ्ख-चक्र धारण करके वहीं प्रकट हुए ॥ २२ ॥ उन्होंने मुस्कुराकर शूलधारी रुद्रसे कहा—देवताओंके समुद्र मथन करनेसे, जो पहले प्राप्त हुआ है ॥२३॥ हे देवश्रेष्ठ, वह आपका है, क्योंकि आप देवताओंके अग्रगामी हैं। महाराज, यहाँ ठहरकर आप इस अग्रपूजाको (विषरूपी) ग्रहण करें ॥२४॥ इतना कहकर भगवान विष्णु वहीं अन्तर्धान होगये। देवताओंको भयभीत देखकर और विष्णुकी बात सुनकर ॥ २५ ॥ उस भयानक हालाहल विषको, अमृतके समान भगवान शिवने पीलिया और देवताओंको विदाकर वे स्वयं भी चलेगये ॥ २६ ॥ हे रघुनन्दन, देवता और असुर मिलकर पुनः समुद्र-मथन करने लगे, अनन्तर मथनी-रूप पर्वत, पातालमें घुस गया ॥ २७ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वास्तुष्टुवुर्मधुसूदनम् । त्वं गतिः सर्वभूतानां विशेषेण दिवौकसाम् ॥२८॥
पालयास्मान्महाबाहो गिरिमुद्धर्तुमर्हसि । इति श्रुत्वा हृषीकेशः कामठं रूपमास्थितः ॥२९॥
पर्वतं पृष्ठतः कृत्वा शिश्ये तत्रोदधौ हरिः । पर्वताग्रं तु लोकात्मा हस्तेनाक्रम्य केशवः ॥३०॥
देवानां मध्यतः स्थित्वा ममन्थ पुरुषोत्तमः । अथ वर्षसहस्रेण आयुर्वेदमयः पुमान् ॥३१॥
उदतिष्ठत्सुधर्मात्मा सदण्डः सकमण्डलुः । अथ धन्वन्तरिर्नाम अप्सराश्च सुवर्चसः ॥३२॥
अप्सु निर्मथनादेव रसात्तस्माद्वरस्त्रियः । उत्पेतुर्मनुजश्रेष्ठ तस्मादप्सरसोऽभवन् ॥३३॥
षष्टिःकोट्योऽभवंस्तासामप्सराणां सुवर्चसाम् । असंख्येयास्तु काकुत्स्थ यास्तासां परिचारिकाः ॥३४॥
न ताः स्म प्रतिगृह्णन्ति सर्वे ते देवदानवाः । अप्रतिग्रहणादेव ता वै साधारणाः स्मृताः ॥३५॥
वरुणस्य ततः कन्या वारुणी रघुनन्दन । उत्पपात महाभागा मार्गमाणा परिग्रहम् ॥३६॥
दितेः पुत्रा न तां राम जगृहुर्वरुणात्मजाम् । अदितेस्तु सुता वीर जगृहुस्तामनिन्दिताम् ॥३७॥
असुरास्तेन दैतेयाः सुरास्तेनादितेः सुताः । हृष्टाः प्रमुदिताश्चासन्वारुणीग्रहणात्सुराः ॥३८॥
उच्चैःश्रवा हयश्रेष्ठो मणिरत्नं च कौस्तुभम् । उदतिष्ठन्नरश्रेष्ठ तथैवामृतमुत्तमम् ॥३९॥
अथ तस्य कृते राम महानासात्कुलक्षयः । अदितेस्तु ततः पुत्रा दितिपुत्रानयोधयन् ॥४०॥

तब गन्धर्व, देवता आदि मिलकर मधुसूदनकी स्तुति करनेलगे—महाराज, आप सब प्राणियोंके रक्षक हैं, विशेषकर देवताओंके ॥२८॥ हे महाबाहो, हमलोगोंकी रक्षा कीजिए, पातालसे पर्वत निकालिए। यह सुनकर, भगवान्‌ने कछुएका रूप धारण किया ॥२९॥ भगवान् विष्णुने कछुएका रूप धारणकर अपनी पीठपर पर्वतको धरकर, वहीं (समुद्रमें) सोगये, और लोकात्मा केशवने पर्वतके सिरेपर अपना हाथ रक्खा (जिससे वह ऊपर न चला जाय) ॥ ३० ॥ इस प्रकार देवोंके बीचमें रहकर पुरुषोत्तम विष्णु समुद्र-मथन करने लगे। हज़ार वर्ष बीतनेपर, आयुर्वेदमय पुरुष (धन्वन्तरि) ॥३१॥ उत्पन्न हुए। वे धर्मात्मा, दण्ड-कमण्डलु धारण किये हुए थे। उनका नाम धन्वन्तरि था। अनन्तर सुन्दरी अप्सराएँ भी निकलीं ॥ ३२ ॥ हे नरश्रेष्ठ, अप् (दूध) के मथनेसे सुन्दर स्त्रियाँ उत्पन्न हुईं, इस कारण उनका नाम अप्सरा पड़ा ॥ ३३ ॥ उन सुन्दरी अप्सराओंकी संख्या साठ हजार हुई और उनकी सेवा करनेवाली दासियोंकी संख्या तो असंख्य थी ॥३४॥ देव, दानव आदिमें किसीने भी उन स्त्रियोंका ग्रहण नहीं किया, उनसे विवाह नहीं किया, इस कारण वे सर्वसाधारण की स्त्री बनीं ॥ ३५ ॥ हे रघुनन्दन, वरुणकी कन्या वारुणी तदनन्तर समुद्रसे निकली और उसने पतिकी खोज की ॥ ३६ ॥ उस वरुणकी पुत्रीको दितिके पुत्रोंने ग्रहण नहीं किया, किन्तु उस सुन्दरीका अदितिके पुत्रोंने ग्रहण किया ॥ ३७ ॥ इसी कारण दितिके पुत्र असुर कहे जाते हैं और अदितिके पुत्र सुर (वारुणी, शराबको कहते हैं, समुद्रसे शराब निकला, उसका दूसरा नाम सुरा है, दैत्योंने उसका त्याग किया, इसलिए वे असुर कहलाये और देवताओंने उसे ग्रहण किया, इसलिए वे सुर) उस वारुणीको लेकर देवतागण बहुतही प्रसन्न हुए॥३८॥ उसके बाद उच्चैःश्रवा घोड़ा निकला, जो घोड़ोंमें सर्वश्रेष्ठ था, मणिश्रेष्ठ कौस्तुभ निकला और हे नरश्रेष्ठ उत्तम अमृत भी निकला ॥ ३९ ॥ अनन्तर उस अमृतके लिए गृह-कलह प्रारम्भ हुआ। देवताओंने दैत्योंसे युद्ध

एकतामगमन्सर्वे असुरा राक्षसैः सह । युद्धमासीन्महाघोरं वीरत्रैलोक्यमोहनम् ॥४१॥
यदा क्षयं गतं सर्वं तदा विष्णुर्महाबलः । अमृतं सोऽहरच्चूर्णं मायामास्थाय मोहिनीम् ॥४२॥
ये गताभिमुखं विष्णुमक्षरं पुरुषोत्तमम् । संपिष्टास्ते तदा युद्धे विष्णुना प्रभविष्णुना ॥४३॥
अदितेरात्मजा वीरा दीतेः पुत्रान्निजघ्निरे । अस्मिन्घोरे महायुद्धे दैतेयादित्ययोर्भृशम् ॥४४॥
निहत्य दितिपुत्रांस्तु राज्यं प्राप्य पुरंदरः । शशासमुदितोलोकान्सर्षिसङ्घान्सचारणान् ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ४६

हतेषु तेषु पुत्रेषु दितिः परमदुःखिता । मारीचं कश्यपं नाम भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
हतपुत्रास्मि भगवंस्तव पुत्रैर्महात्मभिः । शक्रहन्तारमिच्छामि पुत्रं दीर्घतपोर्जितम् ॥ २ ॥
साहं तपश्चरिष्यामि गर्भं मे दातुमर्हसि । ईश्वरं शक्रहन्तारं त्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥ ३ ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा मारीचः कश्यपस्तदा । प्रत्युवाच महातेजा दितिं परमदुःखिताम् ॥ ४ ॥
एवं भवतु भद्रं ते शुचिर्भव तपोधने । जनयिष्यसि पुत्रं त्वं शक्रहन्तारमाहवे ॥ ५ ॥
पूर्णे वर्षसहस्रे तु शुचिर्यदि भविष्यसि । पुत्रं त्रैलोक्यहन्तारं मत्तस्त्वं जनयिष्यसि ॥ ६ ॥
एवमुक्त्वा महातेजाः पाणिना संममार्ज ताम् । तामालभ्य ततः स्वस्ति इत्युक्त्वा तपसे ययौ ॥ ७ ॥

करना प्रारम्भ किया ॥ ४० ॥ असुर राक्षसोंसे मिलकर युद्ध करने लगे । वह युद्ध बड़ा ही भयानक हुआ, जिसको देखकर त्रिलोक क्षुभित हुआ ॥ ४१ ॥ जब सब लोग कट मरे, तब महाबली विष्णुने मोहिनीका रूप धरकर वह समस्त अमृत ले लिया ॥४२॥ अविनाशी विष्णुके सामने बलपूर्वक उस अमृतको लेनेकी इच्छासे जो गये उनको प्रभावशाली विष्णुने युद्धमें चूर्ण कर दिया ॥४३॥ दैत्य और देवताओंके इस महाभयानक युद्धमें, वीर देवताओंने दानवोंको मारा ॥ ४४ ॥ उन्हें मारकर और अपना राज्य पाकर देव, ऋषि, चारण आदिका शासन इन्द्र करने लगे ।

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका पैंतालीसवां सर्ग समाप्त ॥ ४५ ॥

दैत्योंके मारे जानेपर उनकी माता दिति अत्यन्त दुःखित हुई और वे अपने पति मरीचिके पुत्र कश्यपसे बोलीं ॥ १ ॥ भगवन्, आपके महात्मा पुत्रोंने मेरे पुत्रोंको मार डाला, इस कारण मैं एक ऐसा पुत्र चाहती हूँ जो इन्द्रका वध करसके, और उसके लिए मैं कठोर तपस्या करना चाहती हूँ ॥ २ ॥ मैं तपस्या करती हूं, आप गर्भ धारण करावें, मैं चाहती हूँ कि इन्द्रहन्ता पुत्र मेरे हो, आप इसकी आज्ञा दें ॥ ३ ॥ दितिकी प्रार्थना सुनकर कश्यपने परम दुःखिनी दितिको उत्तर दिया ॥ ४ ॥ तुम्हारा मनोरथ पूरा हो, तुम्हारा कल्याण हो, तुम इन्द्रको मारनेवाला पुत्र उत्पन्न करोगी ॥ ५ ॥ एक हजार वर्षों तक यदि तुम पवित्रता पूर्वक रह सको तो अवश्यही इन्द्रको मारनेवाला पुत्र पा सकोगी ॥ ६ ॥ महातेजस्वी कश्यपने दितिका मार्जन किया (गर्भ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गते तस्मिन्नरश्रेष्ठ दितिः परमहर्षिता । कुशप्लवं समासाद्य तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ ८ ॥
तपस्तस्यां हि कुर्वत्यां परिचर्यां चकार ह । सहस्राक्षो नरश्रेष्ठ परया गुणसंपदा ॥ ९ ॥
अग्निं कुशान्काष्ठमपः फलं मूलं तथैव च । न्यवेदयत्सहस्राक्षो यच्चान्यदपि काङ्क्षितम् ॥१०॥
गात्रसंवाहनैश्चैव श्रमापनयनैस्तथा । शक्रः सर्वेषु कालेषु दितिं परिचचार ह ॥११॥
पूर्णे वर्षसहस्रे सा दशोने रघुनन्दन । दितिः परमसंहृष्टा सहस्राक्षमथाब्रवीत् ॥१२॥
तपश्चरन्त्या वर्षाणि दश वीर्यवतां वर । अवशिष्टानि भद्रं ते भ्रातरं द्रक्ष्यसे ततः ॥१३॥
यमहं त्वत्कृते पुत्र तमाधास्ये जयोत्सुकम् । त्रैलोक्यविजयं पुत्र सह भोक्ष्यसि विज्वरः ॥१४॥
याचितेन सुरश्रेष्ठ पित्रा तव महात्मना । वरो वर्षसहस्रान्ते मम दत्तः सुतं प्रति ॥१५॥
इत्युक्त्वा च दितिस्तत्र प्राप्ते मध्यं दिनेश्वरे । निद्रयापहृता देवी पादौ कृत्वाथ शीर्षतः ॥१६॥
दृष्ट्वा तामशुचिं शक्रः पदायोः कृतमूर्धजाम् । शिरःस्थाने कृतौ पादौ जहास च मुमोद च ॥१७॥
तस्याः शरीरविवरं प्रविवेश पुरंदरः । गर्भं च सप्तधा राम चिच्छेद परमात्मवान् ॥१८॥
भिद्यमानस्ततो गर्भो वज्रेण शतपर्वणा । रुरोद सुस्वरं राम ततो दितिरबुध्यत ॥१९॥
मा रुदो मा रुदश्चेति गर्भं शक्रोऽभ्यभाषत । विभेद च महातेजा रुदन्तमपि वासवः ॥२०॥
न हन्तव्यं न हन्तव्यमित्येव दितिरब्रवीत् । निष्पपात ततः शक्रो मातुर्वचनगौरवात् ॥२१॥

विघ्नोंको मन्त्रोंके द्वारा दूर किया), पुनः हाथसे दितिका स्पर्श किया और 'कल्याण हो' कहकर आशीर्वाद दिया, तदनन्तर वे तपस्या करने चलेगये ॥ ७ ॥ कश्यप चलेगये । दिति भी बहुत प्रसन्न होकर कुशप्लवमें (विशालाके पासवाले तपोवनमें) कठोर तपस्या करनेलगीं ॥८॥ दिति जब तपस्या करने लगीं तब बड़ी योग्यता और विनयसे इन्द्र उनकी सेवा करने लगे ॥ ॥९॥ आग, कुश, लकड़ी, जल, फल, मूल तथा और जब जिस चीजकी जरूरत होती इन्द्रही वह जुटाया करते थे ॥ १० ॥ पैर दबाना, थकावट दूर करना आदि सेवाओंसे इन्द्र सदा दितिकी सेवा करते थे ॥ ११ ॥ रामचन्द्र, हजार वर्षके पूरे होनेमें जब दस वर्ष बाकी रहगये, उस समय दितिने परम प्रसन्न होकर इन्द्रसे कहा ॥ १२ ॥ वीरश्रेष्ठ, अब मेरी तपस्याके दस बरस रहगये, इसके पश्चात् तुम अपना भाई देखोगे, अर्थात् तुम्हारे एक और भाई होगा ॥ १३ ॥ जो पुत्र मैं उत्पन्न करूंगी, वह त्रिलोककी विजय चाहनेवाला होगा, उसे मैं तुम्हारे लिए (तुमको मारनेके लिए) उत्पन्न करूँगी, पुत्र ! तुम उसके साथ प्रसन्नता पूर्वक भोजन करना ॥ १४ ॥ मैंने तुम्हारे पितासे पुत्रके लिए प्रार्थना की थी, तब उन्होंने हजार वर्षके बाद पुत्र उत्पन्न होनेका वर दिया ॥ १५ ॥ इतना कहनेके बाद मध्यान्हके समय दिति सिरहानेकी ओर पैर करके सोगयीं, अथवा सिरसे पैर लगाकर सोगयीं ॥ १६ ॥ इन्द्रने दितिको अशुद्धावस्थामें देखा, उनके केश पैरोंपर पड़े थे, सिरकी जगह पैरोंको देखकर वे हँसने लगे और बहुत प्रसन्न हुए ॥ १७ ॥ इन्द्रने इसी अवस्थामें दितिके भीतर प्रवेश किया और आत्मजयी इन्द्रने गर्भके सात टुकड़े करदिये ॥ १८ ॥ इन्द्र वज्रके द्वारा जब गर्भको काटने लगे, तब वे बड़ेही करुण स्वरमें रोये और दिति जाग पड़ीं ॥ १९ ॥ इन्द्रने गर्भसे कहा—मत रोओ (मा रुद) और रोते गर्भको उन्होंने काटा ॥ २० ॥ दितिने कहा कि मत मारो, मत मारो । माताकी यह आज्ञा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्राञ्जलिर्वज्रसहितो दितिं शक्रोऽभ्यभाषत । अशुचिर्देवि सुप्तासि पादयोः कृतमूर्धजा ॥२२॥
तदन्तरमहं लब्ध्वा शक्रहन्तारमाहवे । अभिन्दं सप्तधा देवि तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ४७

सप्तधा तु कृते गर्भे दितिः परमदुःखिता । सहस्राक्षं दुराधर्षं वाक्यं सानुनयाब्रवीत् ॥ १ ॥
ममापराधाद्गर्भोऽयं सप्तधा शकलीकृतः । नापराधो हि देवेश तवात्र बलसूदन ॥ २ ॥
प्रियं त्वत्कृतमिच्छामि मम गर्भविपर्यये । मरुतां सप्त सप्तानां स्थानपाला भवन्तु ते ॥ ३ ॥
वातस्कन्धा इमे सप्त चरन्तु दिवि पुत्रक । मारुता इति विख्याता दिव्यरूपा ममात्मजाः ॥ ४ ॥
ब्रह्मलोकं चरत्वेक इन्द्रलोकं तथापरः । दिव्यवायुरितिख्यातस्तृतीयोऽपि महायशाः॥ ५ ॥
चत्वारस्तु सुरश्रेष्ठ दिशो वै तव शासनात् । संचरिष्यन्ति भद्रं ते कालेन हि ममात्मजाः ॥ ६ ॥
त्वत्कृतेनैव नाम्ना वै मारुता इति विश्रुताः । तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सहस्राक्षः पुरंदरः ॥ ७ ॥
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यमितीदं बलसूदनः । सर्वमेतद्यथोक्तं ते भविष्यति न संशयः ॥ ८ ॥
विचरिष्यन्ति भद्रं ते देवरूपास्तवात्मजाः । एवं तौ निश्चयं कृत्वा मातापुत्रौ तपोवने ॥ ९ ॥
जग्मतुस्त्रिदिवं राम कृतार्थाविति नः श्रुतम् । एष देशः स काकुत्स्थ महेन्द्राध्युषितः पुरा ॥१०॥

सुनकर और माताके प्रति गौरव होनेके कारण इन्द्र बाहर आगये ॥२१॥ वज्रके साथ हाथ जोड़कर इन्द्रने दितिसे कहा—देवि, अशुद्ध होकर आप पैरकी ओर माथा करके सोगयी थीं ॥ २२ ॥ इस अवकाशको पाकर मैंने युद्धमें इन्द्रको मारनेवालेके सात टुकड़े कर दिये । माता, क्षमा करो ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका छिआलीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४६ ॥

गर्भके सात टुकड़े होजानेसे दिति बहुत दुखित हुई । वे परम पराक्रमी इन्द्रसे नम्रतापूर्वक बोलीं ॥ १ ॥ यह मेरा गर्भ सात टुकड़े किया गया है, इसकी अपराधिनी मैं हूँ । बलहन्ता देवराज, इसमें तुम्हारा दोष नहीं है ॥ २ ॥ मेरे गर्भके विषयमें तुमने मेरा जो किया है, उसे मैं अपना प्रिय ही समझती हूँ । उनको उनचास मरुतोंका स्थान दिया जाय ॥ ३ ॥ पुत्र इन्द्र, दिव्यरूपधारी और मारुत इस नामसे प्रसिद्ध होकर मेरे ये पुत्र सात वात-स्कन्धों (वायुलोकों) में विचरण करें ॥ ४ ॥ एक ब्रह्मलोकमें विचरण करे, दूसरा इन्द्रलोकमें और तीसरा दिव्य वायुके नामसे प्रसिद्ध हो ॥५॥ देवश्रेष्ठ, तुम्हारी आज्ञासे चारो दिशाओंमें समयपर मेरे पुत्र भ्रमण करेंगे ॥६॥ तुम्हारे ही किये मारुत नामसे वे प्रसिद्ध होंगे । उनके ये वचन सुनकर इन्द्रने ॥७॥ हाथ जोड़कर यह कहा—आपने जैसा कहा है, वह सब वैसाही होगा, इसमें सन्देह न कीजिए ॥८॥ देवरूपधारी आपके पुत्र विचरण करेंगे । इस प्रकार तपोवनमें माता-पुत्रोंमें समझौता हुआ ॥९॥ यहाँसे वे दोनों सफल होकर स्वर्ग चलेगये । राम, यह कथा मैंने सुनी है । यह वही देश है, जहाँ पहले इन्द्रने निवास किया था

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दितिं यत्र तपः सिद्धामेवं परिचचार सः । इक्ष्वाकोस्तु नरव्याघ्र पुत्रः परमधार्मिकः ॥११॥
अलम्बुषायामुत्पन्नो विशाल इति विश्रुतः । तेन चासीदिह स्थाने विशालेति पुरी कृता ॥१२॥
विशालस्य सुतो राम हेमचन्द्रो महाबलः । सुचन्द्र इति विख्यातो हेमचन्द्रादनन्तरः ॥१३॥
सुचन्द्रतनयो राम धूम्राश्व इति विश्रुतः । धूम्राश्वतनयश्चापि सृञ्जयः समपद्यत ॥१४॥
सृञ्जयस्य सुतः श्रीमान्सहदेवः प्रतापवान् । कुशाश्वः सहदेवस्य पुत्रः परमधार्मिकः ॥१५॥
कुशाश्वस्य महातेजाः सोमदत्तः प्रतापवान् । सोमदत्तस्य पुत्रस्तु काकुत्स्थ इति विश्रुतः ॥१६॥
तस्य पुत्रो महातेजाः संप्रत्येष पुरीमिमाम् । आवसत्परमप्रख्यः सुमतिर्नाम दुर्जयः ॥१७॥
इक्ष्वाकोस्तु प्रसादेन सर्वे वैशालिका नृपाः । दीर्घायुषो महात्मानो वीर्यवन्तः सुधार्मिकाः ॥१८॥
इहाद्य रजनीमेकां सुखं स्वप्स्यामहे वयम् । श्वः प्रभाते नरश्रेष्ठ जनकं द्रष्टुमर्हसि ॥१९॥
सुमतिस्तु महातेजा विश्वामित्रमुपागतम् । श्रुत्वा नरवरश्रेष्ठः प्रत्यागच्छन्महायशाः ॥२०॥
पूजां च परमां कृत्वा सोपाध्यायः सबान्धवः । प्राञ्जलिः कुशलं पृष्ट्वा विश्वामित्रमथाब्रवीत्॥२१॥
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे विषयं मुने । संप्राप्तो दर्शनं चैव नास्ति धन्यतरो मम ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥४७॥

॥१०॥ सिद्धिके लिए तपस्या करनेवाली दितिकी इन्द्रने जहाँ सेवा की थी, वहाँ परमधार्मिक राजा इक्ष्वाकुसे ॥ ११ ॥ अलम्बुषामें उत्पन्न विशाल नामके एक राजा थे । उन्होंनेही इस स्थानपर विशाला नामकी नगरी बसायी ॥१२॥ विशालके पुत्र हेमचन्द्र हुए जो बड़े बली थे । हेमचन्द्रके अनन्तर सुचन्द्र नामके प्रसिद्ध राजा हुए ॥ १३ ॥ सुचन्द्रके पत्र धूम्राश्व हुए और धूम्राश्वके सृञ्जय उत्पन्न हुए ॥१४॥ सृञ्जयके पुत्र सहदेव बड़े प्रतापी थे । सहदेवके पुत्र परमधार्मिक कुशाश्व हुए ॥ १५ ॥ कुशाश्वके पुत्र महातेजस्वी और प्रतापी सोमदत्त हुए । सोमदत्तके पुत्र प्रसिद्ध काकुत्स्थ हुए ॥ १६ ॥ उनके पुत्र महातेजस्वी, शत्रुओंसे अजेय, सुमति इस समय इस नगरीमें राज्य कर रहे हैं ॥ १७ ॥ इक्ष्वाकुके प्रसादसे विशालाके सभी राजा दीर्घायु, महात्मा, पराक्रमी और धार्मिक होते हैं ॥ १८ ॥ हमलोग यहाँ एक रात सुखसे रह सकेंगे । कल जनकको देखेंगे अर्थात् उनकी नगरीमें चलेंगे ॥ १९ ॥ महातेजस्वी सुमतिने जब सुना कि हमारे नगरमें विश्वामित्र आये हैं, तो वह यशस्वी राजा उनके यहाँ आया ॥ २० ॥ अपने पुरोहित और बान्धवोंके साथ उसने विश्वामित्रकी बड़ी श्रद्धासे पूजा की और कुशल पूछनेके अनन्तर हाथ जोड़कर कहा ॥ २१ ॥ महाराज, मैं धन्य हुआ हूं । आपने मेरे देशमें आकर मुझे अनुगृहीत किया । मैंने आपके दर्शन पाये । अब मुझसे बढ़कर धन्य कौन है ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४७ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ४८

पृष्ट्वा तु कुशलं तत्र परस्परसमागमे । कथान्ते सुमतिर्वाक्यं व्याजहार महामुनिम् ॥ १ ॥
इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ । गजसिंहगती वीरौ शार्दूलवृषभोपमौ ॥ २ ॥
पद्मपत्रविशालाक्षौ खड्गतूणधनुर्धरौ । अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयौवनौ ॥ ३ ॥
यदृच्छयैव गां प्राप्तौ देवलोकादिवामरौ । कथं पद्भ्यामिह प्राप्तौ किमर्थं कस्य वा मुने ॥ ४ ॥
भूषयन्ताविमं देशं चन्द्रसूर्याविवाम्बरम् । परस्परेण सदृशौ प्रमाणेङ्गितचेष्टितैः ॥ ५ ॥
किमर्थं च नरश्रेष्ठौ संप्राप्तौ दुर्गमे पथि । वरायुधधरौ वीरौ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ६ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा यथावृत्तं न्यवेदयत् । विश्वामित्रवचः श्रुत्वा राजा परमविस्मितः ॥ ७ ॥
अतिथी परमं प्राप्तौ पुत्रौ दशरथस्य तौ । पूजयामास विधिवत्सत्कारार्हौ महाबलौ ॥ ८ ॥
ततः परमसत्कारं सुमतेः प्राप्य राघवौ । [illegible]शामेकां जग्मतुर्मिथिलां ततः ॥ ९ ॥
तां दृष्ट्वा मुनयः सर्वे जनकस्य पूरीं शुभाम् । [illegible]न्ति भद्रं सन्तो मिथिलां समपूजयन् ॥ १० ॥
मिथिलोपवने तत्र आश्रमं दृश्य राघवः । तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रपच्छ मुनिपुंगवम् ॥ ११ ॥
इदमाश्रमसंकाशं किं न्विदं मुनिवर्जितम् । श्रोतुमिच्छामि भगवन्कस्यायं पूर्व आश्रमः ॥ १२ ॥
तच्छ्रुत्वा राघवेणोक्तं वाक्यं वाक्यविशारदः । प्रत्युवाच महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः ॥ १३ ॥

उस विशाला नगरीमें, कुशल पूछकर, पारस्परिक भेंट होनेकी बातोंकी समाप्ति पर, राजा सुमतिने महामुनि विश्वामित्रसे कहा ॥१॥ महाराज, ये दोनों कुमार-जो देवताके समान पराक्रमी हैं, एक गजगामी और दूसरा सिंहगामी है, दोनोंही वीर हैं, एक बाघके समान और दूसरा बैलके समान बली हैं ॥२॥ दोनोंकी आँख पद्म-पत्रके समान विशाल हैं, खड्ग तूण और धनुष दोनोंने धारण किये हैं, अश्विनोंके समान सुन्दर हैं और दोनोंकी जवानी आरही है ॥३॥ योहीं (अपनी इच्छासेही) देवलोकसे आये हुए देवताके समान ये मालूम होते हैं। ये कैसे पैरोंसे चलकर यहाँ तक आये और किसलिए आये? महाराज, ये किनके लड़के हैं? ॥४॥ जिस प्रकार चन्द्र-सूर्य आकाशको शोभित करते हैं, उसी प्रकार ये दोनों इस देशको भूषित कर रहे हैं। ये शरीरकी लम्बाई, चौड़ाई, बोली, चेष्टा आदि सबसे समान हैं ॥ ५ ॥ ये दोनों नरश्रेष्ठ, उत्तम आयुध धारण करनेवाले वीर, किसलिए इस दुर्गम मार्गमें आये, यह मैं यथार्थ जानना चाहता हूँ ॥ ६ ॥ राजाकी प्रार्थना सुनकर, मुनिने, राम लक्ष्मणके संबन्धमें जैसी बात थीं, सुनादीं। विश्वामित्रकी बातोंसे राजा बहुत विस्मित हुआ ॥ ७ ॥ राजा दशरथके इन दोनों पुत्रोंकी विधिपूर्वक राजा सुमतिने पूजा की, क्योंकि ये उनके लिए श्रेष्ठ अतिथि थे, अतएव ये सत्कारके योग्य थे ॥ ८ ॥ राजा सुमतिसे उत्तम सत्कार पाकर तथा उस विशाला नगरीमें एक रात्रि निवास कर, वे मिथिलाकी ओर चले ॥९॥ राजा जनककी सुन्दर नगरीको देखकर, मुनियोंने साधु-साधु कहकर उसका अभिनन्दन किया ॥१०॥ मिथिलाके उपवनमें एक पुराना निर्जन, पर रमणीय, आश्रम देखकर रामचन्द्रने विश्वामित्रसे पूछा ॥११॥ महाराज, यह आश्रमके समान क्या है? यहाँ कोई मुनि दिखायी नहीं पड़ता, मैं सुनना चाहता हूँ कि पहले इस आश्रममें कौन रहता था ॥१२॥ रामचन्द्रकी बात सुनकर बोलनेमें पटु, महातेजस्वी, महामुनि विश्वामित्रने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हन्त ते कथयिष्यामि शृणु तत्त्वेन राघव । यस्यैतदाश्रमपदं शप्तं कोपान्महात्मनः ॥१४॥
गौतमस्य नरश्रेष्ठ पूर्वमासीन्महात्मनः । आश्रमो दिव्यसंकाशः सुरैरपि सुपूजितः ॥१५॥
स चात्र तप आतिष्ठदहल्यासहितः पुरा । वर्षपूगान्यनेकानि राजपुत्र महायशः ॥१६॥
तस्यान्तरं विदित्वा च सहस्राक्षः शचीपतिः । मुनिवेषधरो भूत्वा अहल्यामिदमब्रवीत् ॥१७॥
ऋतुकालं प्रतीक्षन्ते नार्थिनः सुसमाहिते । संगमं त्वहमिच्छामि त्वया सह सुमध्यमे ॥१८॥
मुनिवेषं सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन । मतिं चकार दुर्मेधा देवराजकुतूहलात् ॥१९॥
अथाब्रवीत्सुरश्रेष्ठं कृतार्थेनान्तरात्मना । कृतार्थास्मि सुरश्रेष्ठ गच्छ शीघ्रमितः प्रभो ॥२०॥
आत्मानं मां च देवेश सर्वथा रक्ष गौतमात् । इन्द्रस्तु प्रहसन्वाक्यमहल्यामिदमब्रवीत् ॥२१॥
सुश्रोणि परितुष्टोऽस्मि गमिष्यामि यथागतम् । एवं संगम्य तु तदा निश्चक्रामोटजात्ततः ॥२२॥
स संभ्रमात्त्वरन्राम शङ्कितो गौतमं प्रति । गौतमं स ददर्शाथ प्रविशन्तं महामुनिम् ॥२३॥
देवदानवदुर्धर्षं तपोबलसमन्वितम् । तीर्थोदकपरिक्लिन्नं दीप्यमानमिवानलम् ॥२४॥
गृहीतसमिधं तत्र सकुशं मुनिपुंगवम् । दृष्ट्वा सुरपतिस्त्रस्तो विषण्णवदनोऽभवत् ॥२५॥
अथ दृष्ट्वा सहस्राक्षं मुनिवेषधरं मुनिः । दुर्वृत्तं वृत्तसंपन्नो रोषाद्वचनमब्रवीत् ॥२६॥
मम रूपं समास्थाय कृतवानसि दुर्मते । अकर्तव्यमिदं यस्माद्विफलस्त्वं भविष्यसि ॥२७॥

उत्तर दिया ॥ १३ ॥ अच्छा सुनो, मैं यथार्थ बातें कहता हूँ । जिस महर्षिका यह आश्रम है और क्रोधसे इसको जिसने शाप दिया है, वे सब बातें मैं कहता हूँ ॥ १४ ॥ महात्मा गौतमका यह पहले आश्रम था । देवाश्रमके समान दिव्य था, देवता भी इसकी प्रशंसा करते थे ॥१५॥ अहल्याके साथ उन्होंने पहले अनेक वर्षों तक यहाँ तपस्या की ॥ १६ ॥ मुनिका आश्रममें न रहना जानकर शचीपति इन्द्रने, मुनिका वेष धारण करके अहल्यासे यह कहा ॥ १७ ॥ हे सुन्दरी, प्रार्थी ऋतुकालकी अपेक्षा नहीं करता, हे सुमध्यमे, मैं तुम्हारे साथ सङ्गम चाहता हूँ ॥ १८ ॥ रामचन्द्र, अहल्याने समझ लिया कि यह मुनिके वेषमें इन्द्र है, फिर भी उस मूर्खाने देवराजके प्रति कुतूहल होनेके कारण, उनकी बात स्वीकार की ॥ १९ ॥ पुनः कृतार्थ मनसे उसने इन्द्रसे कहा–हे देवराज, मैं कृतार्थ हुई । तुम शीघ्र यहाँसे जाओ ॥ २० ॥ गौतमसे अपनी और मेरी सब तरहसे रक्षा करो । इन्द्रने हँसते हुए अहल्यासे यह कहा ॥ २१ ॥ हे सुन्दरि, मैं प्रसन्न हूँ और अपने स्थानको जाता हूँ । इस प्रकार अहल्यासे संगम कर, इन्द्र गौतमकी झोपड़ीसे निकल भागा ॥ २२ ॥ गौतमके डरसे घबराकर वह जानेमें शीघ्रता कर रहा था, उसी समय उसने देखा कि महामुनि गौतम आश्रममें प्रवेश कर रहे हैं ॥ २३ ॥ महाराज गौतम प्रदीप्त अग्निके समान प्रकाशित होरहे थे । तीर्थके जलसे उनका अभिषेक हुआ था । उन तपोबलयुक्त महर्षिको देव, दानव आदि भी नीचा नहीं दिखा सकते ॥ २४ ॥ लकड़ी और कुश लिये हुए, मुनिश्रेष्ठको देखकर देवराज डर गया, उसका चेहरा उतर गया ॥ २५ ॥ मुनिका वेष धारण किये हुए इन्द्रको देखकर, चरित्रवान मुनि, उस दुश्चरित्रसे क्रोधपूर्वक बोले ॥ २६ ॥ तुम मूर्खने मेरा रूप धरकर जो यह कुकर्म किया है,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गौतमेनैवमुक्तस्य सुरोषेण महात्मना । पेततुर्वृषणौ भूमौ सहस्राक्षस्य तत्क्षणात् ॥२८॥
तथा शप्त्वा च वै शक्रं भार्यामपि च शप्तवान् । इह वर्षसहस्राणि बहूनि निवसिष्यसि ॥२९॥
वातभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी । अदृश्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन्वसिष्यसि ॥३०॥
यदा त्वेतद्वनं घोरं रामो दशरथात्मजः । आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा पूता भविष्यसि ॥३१॥
तस्यातिथ्येन दुर्वृत्ते लोभमोहविवर्जिता । मत्सकाशं मुदा युक्ता स्वं वपुर्धारयिष्यसि ॥३२॥
एवमुक्त्वा महातेजा गौतमो दुष्टचारिणीम् । इममाश्रममुत्सृज्य सिद्धचारणसेविते ।
हिमवच्छिखरे रम्ये तपस्तेपे महातपाः ॥३३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशः सर्गः ४९

अफलस्तु ततः शक्रो देवानग्निपुरोगमान् । अब्रवीन्नस्तनयनः सिद्धगन्धर्वचारणान् ॥ १ ॥
कुर्वता तपसो विघ्नं गौतमस्य महात्मनः । क्रोधमुत्पाद्य हि मया सुरकार्यमिदं कृतम् ॥ २ ॥
अफलोऽस्मि कृतस्तेन क्रोधात्सा च निराकृता । शापमोक्षेण महता तपोऽस्यापहृतं मया ॥ ३ ॥
तन्मां सुरवराः सर्वे सर्षिसङ्घाः सचारणाः । सुरकार्यकरं यूयं सफलं कर्तुमर्हथ ॥ ४ ॥

उससे तुम विफल (अण्डकोषहीन) हो जाओगे ॥२७॥ महात्मा गौतमके क्रोधपूर्वक ऐसा कहते ही, इन्द्रके दोनों अण्डकोष उसी समय पृथिवीपर गिर पड़े ॥२८॥ इन्द्रको ऐसा शाप देकर, मुनिने अपनी स्त्रीको भी शाप दिया—तुमको यहाँ बहुत हज़ार वर्षों तक रहना पड़ेगा ॥ २९ ॥ वायु छोड़ दूसरा आहार न कर तपस्या करो, राख पर सोओ । किसी भी प्राणीके सामने न होओ । इस प्रकार इस आश्रममें रहो ॥ ३० ॥ दशरथके पुत्र रामचन्द्र जब इस वीहड़ वनमें आवेंगे, तब तुम पवित्र होओगी ॥३१॥ ऐ दुराचारिणि, लोभ-मोह छोड़कर रामचन्द्रका आतिथ्य-सत्कार करनेके पश्चात् प्रसन्नतापूर्वक मेरे समीप आना और उसी समय तुम्हें अपना पहला सौन्दर्य मिल सकेगा ॥३२॥ महातेजस्वी गौतम उस दुराचारिणीसे ऐसा कहकर और इस आश्रमको छोड़कर हिमवानके उस शिखरपर तपस्या करने लगे, जहाँ सिद्ध और चारण निवास करते हैं ॥ ३३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका अड़तालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४८ ॥

विफल इन्द्रने अग्नि आदि देवताओं, सिद्ध, गन्धर्व और चारणोंसे कहा—इन्द्रको आँखोंसे भय टपक रहा था— ॥ १ ॥ महात्मा गौतमकी उग्र तपस्यामें विघ्न करनेकी इच्छासे मैंने उनका क्रोध बढ़ाया और इस प्रकार उनकी तपस्या नष्ट की, यह मैंने देवताओंका काम किया है ॥ २ ॥ मुझे मुनिने अण्डहीन बनाया और अपनी स्त्रीका त्याग कर दिया । उन्होंने अपनी स्त्रीको बड़ा कठोर शाप दिया और उससे उद्धार पानेका उपाय बतलाया । इस प्रकार मैंने मुनिकी तपस्यामें विघ्न किया ॥ ३ ॥ इस कारण, हे देवता, ऋषि और चारणगण, आपलोगोंके हित करनेके कारण मेरी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शतक्रतोर्वचः श्रुत्वा देवाः साग्निपुरोगमाः । पितृदेवानुपेत्याहुः सर्वे सह मरुद्गणैः ॥ ५ ॥
अयं मेषः सवृषणः शक्रो ह्यवृषणः कृतः । मेषस्य वृषणौ गृह्य शक्रायाशु प्रयच्छत ॥ ६ ॥
अफलस्तु कृतो मेषः परां तुष्टिं प्रदास्यति । भवतां हर्षणार्थं च ये च दास्यन्तिमानवाः ।
अक्षयं हि फलं तेषां यूयं दास्यथ पुष्कलम् ॥ ७ ॥
अग्नेस्तु वचनं श्रुत्वा पितृदेवाः समागताः । उत्पाट्य मेषवृषणौ सहसाक्षे न्यवेशयन् ॥ ८ ॥
तदाप्रभृति काकुत्स्थ पितृदेवाः समागताः । अफलान्भुञ्जते मेषान्फलैस्तेषामयोजयन् ॥ ९ ॥
इन्द्रस्तु मेषवृषणस्तदाप्रभृति राघव । गौतमस्य प्रभावेण तपसा च महात्मनः ॥१०॥
तदागच्छ महातेजा आश्रमं पुण्यकर्मणः । तारयैनां महाभागामहल्यां देवरूपिणीम् ॥११॥
विश्वामित्रवचःश्रुत्वा राघवः सहलक्ष्मणः । विश्वामित्रं पुरस्कृत्य आश्रमं प्रविवेश ह ॥१२॥
ददर्श च महाभागां तपसा द्योतितप्रभाम् । लोकैरपि समागम्य दुर्निरीक्ष्यां सुरासुरैः ॥१३॥
प्रयत्नान्निर्मितां धात्रा दिव्यां मायामयीमिव । धूमेनाभिपरीताङ्गीं दीप्तामग्निशिखामिव ॥१४॥
सतुषारावृतां साभ्रां पूर्णचन्द्रप्रभामिव । मध्येऽम्भसो दुराधर्षां दीप्तां सूर्यप्रभामिव ॥१५॥
सा हि गौतमवाक्येन दुर्निरीक्ष्या बभूव ह । त्रयाणामपि लोकानां यावद्रामस्य दर्शनम् ।
शापस्यान्तमुपागम्य तेषां दर्शनमागता ॥ १६ ॥

यह जो दुर्दशा हुई है, उसे दूर करनेका आप उपाय करें ॥ ४ ॥ इन्द्रके वचन सुनकर अग्नि आदि देवता मरुतोंके साथ पितृदेवोंके पास जाकर बोले ॥ ५ ॥ यह आपका भेड़ा अण्डकोष युक्त है, और इन्द्र अण्डकोष हीन हैं। भेड़ेके अण्डकोष इन्द्रके लिए शीघ्र दीजिए ॥ ६ ॥ यह अफल भेड़ा आपलोगोंको बहुत ही सन्तुष्ट करेगा। जो मनुष्य आपलोगोंकी प्रसन्नताके लिए अफल भेड़ा दे, उन्हें आपलोग भी अक्षय और प्रचुर फल दें ॥ ७ ॥ अग्निके वचन सुनकर पितृदेवता इकट्ठे हुए और भेड़ेका अण्डकोष उखाड़कर उनलोगोंने इन्द्रको लगा दिया ॥ ८ ॥ रामचन्द्र, तबसे पितृदेव अण्डकोषहीन ही भेड़े स्वीकार करते हैं और अर्पयिता को पूर्ण फल देते हैं ॥ ९ ॥ रामचन्द्र, उस समयसे महात्मा गौतमकी तपस्याके प्रभावसे इन्द्रने भेड़ेका अण्डकोष ग्रहण किया ॥ १० ॥ हे तेजस्विन्, उस पुण्यकर्ता मुनिके आश्रममें आप आइये और देवरूपिणी अहल्याका उद्धार कीजिए ॥ ११ ॥ लक्ष्मणके साथ, विश्वामित्रका वचन सुन उन्हें आगे कर, रामने आश्रममें प्रवेश किया ॥ १२ ॥ इनलोगोंने उस आश्रममें महाभागा अहल्याको देखा। उनकी तपस्याकी ज्योति चारो ओर फैली थी। देवता, असुर आदि मिलकर भी उस तेजस्विनीको नहीं देख सकते थे ॥ १३ ॥ मालूम होता था कि ब्रह्माने मायामयीके समान बड़े प्रयत्नोंसे इसके रूपका निर्माण किया होगा। वे इस समय धूमसे घिरी हुई, प्रदीप्त अग्नि-शिखाके समान मालूम होती थीं ॥१४॥ पूर्ण चन्द्रमाकी प्रभाके समान-जो मेघ और बरफसे ढकगयी हो-मालूम होती थी, मेघसे घिरी हुई, दीप्तिमान और न छूने योग्य सूर्यकी प्रभाके समान वे मालूम होती थीं ॥ १५ ॥ वेही गौतमके कहनेसे रामचन्द्रके दर्शन तक, त्रिलोकवासियोंके न देखने योग्य होगयीं। शापका अन्त होनेपर सब लोगोंने उनका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राघवौ तु तदा तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा । स्मरन्ती गौतमवचः प्रतिजग्राह सा हि तौ ॥१७॥
पाद्यमर्घ्यं तथातिथ्यं चकार सुसमाहिता । प्रतिजग्राह काकुत्स्थो विधिदृष्टेन कर्मणा ॥१८॥
पुष्पवृष्टिर्महत्यासीद्देवदुन्दुभिनिःस्वनैः । गन्धर्वाप्सरसां चैव महानासीत्समुत्सवः ॥१९॥
साधु साध्विति देवास्तामहल्यां समपूजयन् । तपोबलविशुद्धाङ्गीं गौतमस्य वशानुगाम् ॥२०॥
गौतमोऽपि महातेजा अहल्यासहितः सुखी । राम संपूज्य विधिवत्तपस्तेपे महातपाः ॥२१॥
रामोऽपि परमां पूजां गौतमस्य महामुनेः । सकाशाद्विधिवत्प्राप्य जगाम मिथिलां ततः ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

पञ्चाशः सर्गः ५०

ततः प्रागुत्तरां गत्वा रामः सौमित्रिणा सह । विश्वामित्रं पुरस्कृत्य यज्ञवाटमुपागमत् ॥ १ ॥
रामस्तु मुनिशार्दूलमुवाच सहलक्ष्मणः । साध्वी यज्ञसमृद्धिर्हि जनकस्य महात्मनः ॥ २ ॥
बहूनीह सहस्राणि नानादेशनिवासिनाम् । ब्राह्मणानां महाभागवेदाध्ययनशालिनाम् ॥ ३ ॥
ऋषिवाटाश्च दृश्यन्ते शकटीशतसंकुलाः । देशो विधीयतां ब्रह्मन्यत्र वत्स्यामहे वयम् ॥ ४ ॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रो महामुनिः । निवासमकरोद्देशे विविक्ते सलिलान्विते ॥ ५ ॥

दर्शन पाया ॥ १६ ॥ राम और लक्ष्मणने उन मुनि-पत्नीके चरण प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण किये । उस समय मुनि-पत्नीको गौतमके वचनका स्मरण हुआ और उन्होंने राम तथा लक्ष्मणका अतिथि-सत्कार किया ॥१७॥ पाद्य, अर्घ्य तथा अन्य अतिथि-सत्कार उसने बड़ी सावधानीसे किये । राम और लक्ष्मणने भी, शास्त्रीय विधिके अनुसार वे सब ग्रहण किये ॥ १८ ॥ उस समय देवताओंके नगाड़ेकी ध्वनिके साथ पुष्पवृष्टि हुई । गन्धर्व और अप्सराओंके यहाँ भी बहुत बड़ा उत्सव हुआ ॥१९॥ तपस्याके द्वारा शुद्ध हुई और गौतमका अनुसरण करनेवाली अहल्याको देवताओंने साधुवाद दिया और उनका अभिनन्दन किया ॥ २० ॥ महातेजस्वी गौतम भी अहल्याको पाकर सुखी हुए । रामचन्द्रकी पूजा कर वे विधिपूर्वक तपस्या करने लगे ॥ २१ ॥ रामचन्द्र भी महामुनि गौतमसे उत्तम पूजा पाकर मिथिलाको गये ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका उनचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४९ ॥

राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र थोड़ी दूर तक उत्तरकी ओर गये और वे सब जनकके यज्ञ-मण्डपमें पहुंचे ॥१॥ राम और लक्ष्मणने मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रसे कहा-महात्मा जनकने तो यज्ञकी बड़ी तयारी की है ॥२॥ वेदपाठी, श्रोत्रिय ब्राह्मण भिन्न-भिन्न देशोंमें रहनेवाले यहाँ कई हजारोंकी संख्यामें एकत्र हुए हैं ॥ ३ ॥ ऋषियोंका यह टोला दिखायी पड़ता है, वहां सैकड़ों बैलगाड़ियां पड़ी हैं । महाराज, आप अपने रहनेके लिए स्थान निश्चित करें, जहां हमलोग ठहरें ॥ ४ ॥ राम-चन्द्रके वचन सुनकर, विश्वामित्रने एकान्त स्थानमें डेरा डाला, वहां जलका भी सुपास था ॥५॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विश्वामित्रमनुप्राप्तं श्रुत्वा नृपवरस्तदा । शतानन्दं पुरस्कृत्य पुरोहितमनिन्दितः ॥ ६ ॥
ऋत्विजोऽपि महात्मानस्त्वर्घ्यमादाय सत्वरम् । प्रत्युज्जगाम सहसा विनयेन समन्वितः ॥ ७ ॥
विश्वामित्राय धर्मेण ददौ धर्मपुरस्कृतम् । प्रतिगृह्य तु तां पूजां जनकस्य महात्मनः ॥ ८ ॥
पप्रच्छ कुशलं राज्ञो यज्ञस्य च निरामयम् । स तांश्चाथ मुनीन्पृष्ट्वा सोपाध्ययपुरोधसः ॥ ९ ॥
यथार्हमृषिभिः सर्वैः समागच्छत्प्रहृष्टवत् । अथ राजा मुनिश्रेष्ठं कृताञ्जलिरभाषत ॥१०॥
आसने भगवानास्तां सहैभिर्मुनिपुंगवैः । जनकस्य वचः श्रुत्वा निषसाद महामुनिः ॥११॥
पुरोधा ऋत्विजश्चैव राजा च सहमन्त्रिभिः । आसनेषु यथान्यायमुपविष्टाः समन्ततः ॥१२॥
दृष्ट्वा स नृपतिस्तत्र विश्वामित्रमथाब्रवीत् । अद्य यज्ञसमृद्धिर्मे सफला दैवतैः कृता ॥१३॥
अद्य यज्ञफलं प्राप्तं भगवद्दर्शनान्मया । धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुंगव॥१४॥
यज्ञोपसदनं ब्रह्मन्प्राप्तोऽसि मुनिभिः सह । द्वादशाहं तु ब्रह्मर्षे दीक्षामाहुर्मनीषिणः ॥१५॥
ततो भागार्थिनो देवान्द्रष्टुमर्हसि कौशिक । इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलं प्रहृष्टवचनस्तदा ॥१६॥
पुनस्तं परिपप्रच्छ प्राञ्जलिः प्रयतो नृपः । इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ ॥१७॥
गजतुल्यगती वीरौ शार्दूलवृषभोपमौ । अश्विनाविव रूपेण समुपास्थितयौवनौ ॥१८॥
यदृच्छयेव गां प्राप्तौ देवलोकादिवामरौ । कथं पद्भ्यामिह प्राप्तौ किमर्थं कस्य वा मुने ॥१९॥
वरायुधधरौ वीरौ कस्य पुत्रौ महामुने । भूषयन्ताविमं देशं चन्द्रसूर्याविवाम्बरम् ॥२०॥

सदाचारी राजश्रेष्ठ जनकने जब सुना कि विश्वामित्र आये हैं, तब वे अपने पुरोहित शतानन्द ॥६॥ और यज्ञ करानेवाले ऋत्विजोंके साथ अर्घ्य लेकर बड़े विनयके साथ शीघ्रतापूर्वक विश्वामित्रके पास गये ॥ ७ ॥ धर्मानुसार मन्त्र पढ़कर उन्होंने विश्वामित्रको अर्घ्य दिया । विश्वामित्रने भी महात्मा जनककी पूजा ग्रहण की ॥८॥ विश्वामित्रने राजासे कुशल पूछी, और उनके यज्ञकी निर्विघ्नताके सम्बन्धमें पूछा । तदनन्तर मुनिने अन्य मुनियों, पुरोहितों और उपाध्यायोंसे कुशल पूछी ॥९॥ विश्वामित्र मुनि अन्य मुनियोंसे प्रसन्नतापूर्वक मिले । राजा जनकने हाथ जोड़कर विश्वामित्रसे कहा ॥ १० ॥ भगवन्, इन मुनियोंके साथ आप आसनपर बैठें । जनकके कहनेपर विश्वामित्र बैठे ॥११॥ पुरोहित, ऋत्विज, मन्त्रियोंके साथ राजा भी अपनी-अपनी मर्यादाके अनुसार भिन्न आसनोंपर बैठे ॥१२॥ विश्वामित्रकी ओर देखकर राजा जनक बोले—देवताओंने मेरे यज्ञकी तयारी आज सफल की ॥१३॥ भगवान् (विश्वामित्र) के दर्शनसे मुझे आज यज्ञफल प्राप्त हुआ, मैं धन्य हूं, मैं अनुगृहीत हूं । जिसके यहां मुनिश्रेष्ठ आप ॥ १४ ॥ मुनियोंके साथ यज्ञ देखनेके लिए आये । ब्रह्मर्षे, यह दीक्षा बारह दिनोंकी यज्ञोंमें बतलायी गयी है अर्थात् मैंने बारह दिनोंकी दीक्षा ली है ॥ १५ ॥ कौशिक, यज्ञमें निमन्त्रित देवताओंका दर्शन करें । पुनः राजाने प्रसन्नतापूर्वक मुनिसे ॥ १६ ॥ हाथ जोड़कर पूछा, देवताके समान पराक्रमी ये दोनों राजकुमार ॥ १७ ॥ जो हाथीके समान चलते हैं, सिंहके समान पराक्रमी हैं, अश्विनोंके समान सुन्दर हैं और अभी जवान हो रहे हैं, कौन हैं ॥१८॥ मालूम होता है कि अपनी इच्छासेही देवलोकसे दो देवता मर्त्यलोकमें आये हैं । ये यहां पैदल किसलिए आये हैं ? ॥ १९ ॥ इन लोगोंने सुन्दर अस्त्र धारण किये हैं, महामुने, ये

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परस्परस्य सदृशौ प्रमाणेङ्गितचेष्टितैः । काकपक्षधरौ वीरौ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥२१॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा जनकस्य महात्मनः । न्यवेदयदमेयात्मा पुत्रौ दशरथस्य तौ ॥२२॥
सिद्धाश्रमनिवासं च राक्षसानां वधं तथा । तत्रागमनमध्यग्रं विशालायाश्च दर्शनम् ॥२३॥
अहल्यादर्शनं चैव गौतमेन समागमम् । महाधनुषि जिज्ञासां कर्तुमागमनं तथा ॥२४॥
एतत्सर्वं महातेजा जनकाय महात्मने । निवेद्य विरराम अथ विश्वामित्रो महामुनिः ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशः सर्गः ५१

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रस्य धीमतः । हृष्टरोमा महातेजाः शतानन्दो महातपाः ॥ १ ॥
गौतमस्य सुतो ज्येष्ठस्तपसा द्योतितप्रभः । रामसंदर्शनादेव परं विस्मयमागतः ॥ २ ॥
एतौ निषण्णौ संप्रेक्ष्य शतानन्दो नृपात्मजौ । सुखासीनौ मुनिश्रेष्ठं विश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥ ३ ॥
अपि ते मुनिशार्दूल मम माता यशस्विनी । दर्शिता राजपुत्राय तपो दीर्घमुपागता ॥ ४ ॥
अपि रामे महातेजा मम माता यशस्विनी । वन्यैरुपाहरत्पूजां पूजार्हे सर्वदेहिनाम् ॥ ५ ॥
अपि रामाय कथितं यदृत्तं तत्पुरातनम् । मम मातुर्महातेजो देवेन दुरनुष्ठितम् ॥ ६ ॥
अपि कौशिक भद्रं ते गुरुणा मम संगता । मम माता मुनिश्रेष्ठ रामसंदर्शनादितः ॥ ७ ॥

किसके पुत्र हैं जो इस देशको इस समय सुशोभित कर रहे हैं, जिस प्रकार चन्द्रमा और सूर्य आकाशको शोभित करते हैं ॥ २० ॥ चाल-ढाल रहन-सहनमें ये दोनों समान हैं। ये दोनों अभी काकपक्षधर बालक हैं। इनका यथार्थ परिचय जानना चाहता हूँ ॥ २१ ॥ महात्मा जनककी बात सुनकर उदार ऋषिने कहा कि ये राजा दसरथके पुत्र हैं ॥ २२ ॥ पुनः सिद्धाश्रममें ठहरना, वहां राक्षसोंका मारजाना, मिथिलाके लिए यात्रा, बीचमें विशालामें ठहरना, ॥ २३ ॥ अहल्याका दर्शन, गौतमसे भेट, महाधनुषके सम्बन्धमें रामचन्द्रकी जिज्ञासा तथा यहां आना ॥२४॥ आदि सब बातें महातेजस्वी विश्वामित्र मुनि महात्मा जनकसे कहकर चुप हुए ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका पचासवां सर्ग समाप्त ॥ ५० ॥

—:*****:—

बुद्धिमान् विश्वामित्रकी बातें (अहल्योद्धार) सुनकर महातपस्वी और तेजस्वी शतानन्दको बड़ा आश्चर्य हुआ, उनके रोंगटे खड़े होगये ॥ १ ॥ ये गौतमके बड़े पुत्र हैं, इनकी तपस्याका तेज महान् है। इन्हें रामचन्द्रको देखनेसे बड़ा विस्मय हुआ ॥२॥ सुखपूर्वक बैठे इन राजपुत्रोंको देखकर शतानन्द मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रसे बोले ॥ ३ ॥ मुनिश्रेष्ठ, आपने राजपुत्रोंको मेरी यशस्विनी माता दिखायी, जिसने बड़ी कठोर तपस्या की है ॥४॥ क्या मेरी यशस्विनी माताने सब प्राणियोंसे पूजा पानेके योग्य रामचन्द्रकी जङ्गली फल-फूलोंसे पूजा की ? ॥ ५ ॥ देवराज इन्द्रने मेरी माताके लिए जो कलुषित कृत्य किया, वह पुराना वृत्तान्त क्या रामचन्द्रसे कहा गया ? ॥६॥ विश्वामित्र आपका कल्याण हो, रामचन्द्रके दर्शन पाजानेसे अब मेरी माता मेरे पिताके साथ रहा करेंगी ॥७॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपि मे गुरुणा रामः पूजितः कुशिकात्मज । इहागतो महातेजाः पूजां प्राप्य महात्मनः ॥ ८ ॥
अपि शान्तेन मनसा गुरुर्मे कुशिकात्मज । इहागतेन रामेण पूजितेनाभिवादितः ॥ ९ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य विश्वामित्रो महामुनिः । प्रत्युवाच शतानन्दं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम् ॥१०॥
नातिक्रान्तं मुनिश्रेष्ठ यत्कर्तव्यं कृतं मया । संगता मुनिना पत्नी भार्गवेणेव रेणुका ॥११॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य विश्वामित्रस्य धीमतः । शतानन्दो महातेजा रामं वचनमब्रवीत् ॥१२॥
स्वागतं ते नरश्रेष्ठ दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव । विश्वामित्रं पुरस्कृत्य महर्षिमपराजितम् ॥१३॥
अचिन्त्यकर्मा तपसा ब्रह्मर्षिरमितप्रभः । विश्वामित्रो महातेजा वेद्म्येनं परमां गतिम् ॥१४॥
नास्ति धन्यतरो राम त्वत्तोऽन्यो भुवि कश्चन । गोप्ता कुशिकपुत्रस्ते येन तप्तं महत्तपः ॥१५॥
श्रूयतां चाभिधास्यामि कौशिकस्य महात्मनः । यथाबलं यथातत्त्वं तन्मे निगदतः शृणु ॥१६॥
राजासीदेष धर्मात्मा दीर्घकालमरिंदमः । धर्मज्ञः कृतविद्यश्च प्रजानां च हिते रतः ॥१७॥
प्रजापतिसुतस्त्वासीत्कुशो नाम महीपतिः । कुशस्य पुत्रो बलवान्कुशनाभः सुधार्मिकः ॥१८॥
कुशनाभसुतस्त्वासीद्गाधिरित्येव विश्रुतः । गाधेः पुत्रो महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः ॥१९॥
विश्वामित्रो महातेजाः पालयामास मेदिनीम् । बहुवर्षसहस्राणि राजा राज्यमकारयत् ॥२०॥
कदाचित्तु महातेजा योजयित्वा वरूथिनीम् । अक्षौहिणीपरिवृतः परिचक्राम मेदिनीम् ॥२१॥
नगराणि च राष्ट्राणि सरितश्च महागिरीन् । आश्रमान्क्रमशो राजा विचरन्नाजगाम ह ॥२२॥

हे कौशिक, क्या मेरे पिताने रामचन्द्रकी पूजा की, क्या उस महात्माकी पूजा पाकर रामचन्द्र यहां आये हैं ? ॥८॥ क्या मेरे पितासे पूजा पाकर यहां आये हुए रामचन्द्रने उनको प्रणाम किया ॥९॥ दूसरेका अभिप्राय समझनेवाले और स्वयं भी बोलनेमें निपुण विश्वामित्र मुनि, शतानन्दकी बातें सुनकर, उनसे बोले ॥१०॥ मुनिश्रेष्ठ, मैंने जो कुछ किया, उसमें मर्यादाका अतिक्रम कहीं भी नहीं हुआ । जैसे भार्गवसे रेणुका मिली थी वैसेही अहल्या गौतमसे मिलगयी ॥११॥ विश्वामित्रकी बातें सुनकर महातेजस्वी शतानन्द रामचन्द्रसे बोले ॥१२॥ अजेय महर्षि विश्वामित्रके साथ तुम आये हो, मैं तुम्हारा स्वागत करता हूं ॥ १३ ॥ इनके कर्म बड़े अद्भुत हैं, इन्होंने तपस्यासे ब्रह्मर्षि पद पाया है, ये बड़े तेजस्वी हैं, इनको मैं बड़ा हितकारी समझता हूं ॥१४॥ रामचन्द्र, इस संसारमें तुमसे बढ़कर धन्य दूसरा नहीं है, क्योंकि घोर तपस्या करनेवाले विश्वामित्र तुम्हारे रक्षक हैं ॥ १५ ॥ महात्मा कौशिकको किस प्रकार तपोबल प्राप्त हुआ यह मैं कहूँगा । विधिपूर्वक आप मेरे द्वारा सुनें ॥१६॥ ये शत्रुओंको दमन करनेवाले बहुत दिनों तक राजा थे, धर्मात्मा थे, धर्मज्ञ थे, विद्वान् थे, और प्रजाके कल्याणमें सदा तत्पर रहा करते थे ॥१७॥ प्रजापतिके पुत्र कुश नामके राजा थे, कुशके पुत्र कुशनाभ हुए जो बड़े बलवान् और धार्मिक थे ॥ १८ ॥ कुशनाभके पुत्र गाधी नामसे प्रसिद्ध हुए, उन्हीं गाधीके पुत्र महातेजस्वी महात्मा विश्वामित्र हैं ॥१९॥ राजा होकर विश्वामित्रने अनेक वर्षों तक पृथिवीका पालन किया ॥ २० ॥ किसी समय राजा विश्वामित्रने सेना इकट्ठी की और अक्षौहिणी सेना लेकर वे पृथिवी परिभ्रमण करनेके लिए निकले ॥२१॥ नगरों, राज्यों, नदियों, पर्वतों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वसिष्ठस्याश्रमपदं नानापुष्पलताद्रुमम् । नानामृगगणाकीर्णं सिद्धचारणसेवितम् ॥२३॥
देवदानवगन्धर्वैः किंनरैरुपशोभितम् । प्रशान्तहरिणाकीर्णं द्विजसङ्घनिषेवितम् ॥२४॥
ब्रह्मर्षिगणसंकीर्णं देवर्षिगणसेवितम् । तपश्चरणसंसिद्धैरग्निकल्पैर्महात्मभिः ॥२५॥
सततं संकुलं श्रीमद्ब्रह्मकल्पैर्महात्मभिः । अब्भक्षैर्वायुभक्षैश्च शीर्णपर्णाशनैस्तथा ॥२६॥
फलमूलाशनैर्दान्तैर्जितदोषैर्जितेन्द्रियैः । ऋषिभिर्वालखिल्यैश्च जपहोमपरायणैः ॥२७॥
अन्यैर्वैखानसैश्चैव समन्तादुपशोभितम् । वसिष्ठस्याश्रमपदं ब्रह्मलोकमिवापरम् ।
ददर्श जयतां श्रेष्ठो विश्वामित्रो महाबलः ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्ड एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशः सर्गः ५२

तं दृष्ट्वा परमप्रीतो विश्वामित्रो महाबलः । प्रणतो विनयाद्धीरो वसिष्ठं जपतां वरम् ॥ १ ॥
स्वागतं तव चेत्युक्तो वसिष्ठेन महात्मना । आसनं चास्य भगवान्वसिष्ठोऽध्यादिदेश ह ॥ २ ॥
उपविष्टाय च तदा विश्वामित्राय धीमते । यथान्यायं मुनिवरः फलमूलमुपाहरत् ॥ ३ ॥
प्रतिगृह्य तु तां पूजां वसिष्ठाद्राजसत्तमः । तपोऽग्निहोत्रशिष्येषु कुशलं पर्यपृच्छत ॥ ४ ॥

और आश्रमोंको देखते हुए राजा विश्वामित्र वसिष्ठके आश्रममें पहुंचे ॥२२॥ उस आश्रममें अनेक तरहके फूलोंकी लताएँ, वृक्ष, अनेक प्रकारके पशु और सिद्ध, चारण आदि शोभित होरहे थे ॥२३॥ उस आश्रममें देवता, दानव, गन्धर्व और किन्नर भी थे, हरिण थे और वे शान्त थे, ब्राह्मणोंका समूह भी था ॥२४॥ ब्रह्मर्षियोंसे वह आश्रम भरा हुआ था, देवर्षि भी उस आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे थे, जिनकी तपस्या सिद्ध होगयी है ऐसे अग्निके समान तेजस्वी महात्मा भी थे ॥२५॥ ब्रह्मासे समता करनेवाले महात्माओंसे वह आश्रम सदा भरा रहता था । उन महात्माओंमें कोई जल, कोई वायु और कोई सूखे पत्ते खाकर निर्वाह करता था ॥२६॥ फल-मूल खानेवाले, नियमपालनकरनेवाले, जितेन्द्रिय, जप होम आदि करनेवाले वालखिल्य ऋषियोंसे वह आश्रम सदा भरा रहता था ॥ २७ ॥ अन्य वैखानसोंसे भी वह आश्रम सदा पूर्ण रहता था । इस प्रकार वह वसिष्ठका आश्रम दूसरे ब्रह्मलोकके समान मालूम पड़ता था । उस आश्रमको विजयी राजाओंमें श्रेष्ठ राजा विश्वामित्रने देखा ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका एकावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५१ ॥

महाबली वीर विश्वामित्र ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठको देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने विनय पूर्वक प्रणाम किया ॥ १ ॥ महात्मा वसिष्ठने राजा विश्वामित्रका स्वागत किया और बैठनेके लिए उन्हें आसन दिया ॥ २ ॥ बुद्धिमान् विश्वामित्र जब आसनपर बैठे, तब नियमानुसार मुनिवरने फल-फूल उपहार दिया ॥ ३ ॥ राजश्रेष्ठ विश्वामित्रने वसिष्ठकी दी हुई पूजा ग्रहण की, तथा उन्होंने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विश्वामित्रो महातेजा वनस्पतिगणे तदा । सर्वत्र कुशलं प्राह वसिष्ठो राजसत्तमम् ॥ ५ ॥
सुखोपविष्टं राजानं विश्वामित्रं महातपाः । पप्रच्छ जपतां श्रेष्ठो वसिष्ठो ब्रह्मणः सुतः ॥ ६ ॥
कच्चित्ते कुशलं राजन्कच्चिद्धर्मेण रञ्जयन् । प्रजाः पालयसे राजन्राजवृत्तेन धार्मिक ॥ ७ ॥
कच्चित्ते संभृता भृत्याः कच्चित्तिष्ठन्ति शासने । कच्चित्ते विजिताः सर्वे रिपवो रिपुसूदन ॥ ८ ॥
कच्चिद्बलेषु कोशेषु मित्रेषु च परंतप । कुशलं ते नरव्याघ्र पुत्रपौत्रे तथानघ ॥ ९ ॥
सर्वत्र कुशलं राजा वसिष्ठं प्रत्युदाहरत् । विश्वामित्रो महातेजा वसिष्ठं विनयान्वितम् ॥ १० ॥
कृत्वा तौ सुचिरं कालं धर्मिष्ठौ ताः कथास्तदा । मुदा परमया युक्तौ प्रीयेतां तौ परस्परम् ॥ ११ ॥
ततो वसिष्ठो भगवान्कथान्ते रघुनन्दन । विश्वामित्रमिदं वाक्यमुवाच प्रहसन्निव ॥ १२ ॥
आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि बलस्यास्य महाबल । तव चैवाप्रमेयस्य यथार्हं संप्रतीच्छ मे ॥ १३ ॥
सत्क्रियां हि भवानेतां प्रतीच्छतु मया कृताम् । राजंस्त्वमतिथिश्रेष्ठः पूजनीयः प्रयत्नतः ॥ १४ ॥
एवमुक्तो वसिष्ठेन विश्वामित्रो महामुनिः । कृतमित्यब्रवीद्राजा पूजावाक्येन मे त्वया ॥ १५ ॥
फलमूलेन भगवन्विद्यते यत्तवाश्रमे । पाद्येनाचमनीयेन भगवद्दर्शनेन च ॥ १६ ॥
सर्वथा च महाप्राज्ञ पूजार्हेण सुपूजितः । नमस्तेऽस्तु गमिष्यामि मैत्रेणेक्षस्व चक्षुषा ॥ १७ ॥
एवं ब्रुवन्तं राजानं वसिष्ठः पुनरेव हि । न्यमन्त्रयत धर्मात्मा पुनः पुनरुदारधीः ॥ १८ ॥
बाढमित्येव गाधेयो वसिष्ठं प्रत्युवाच ह । यथाप्रियं भगवतस्तथास्तु मुनिपुंगव ॥ १९ ॥

तपस्या, अग्निहोत्र और शिष्योंकी कुशल पूछी ॥ ४ ॥ पुनः विश्वामित्रने वृक्षोंके समाचार पूछे । वसिष्ठने सबकी कुशल बतलायी ॥५॥ सुखसे बैठे हुए विश्वामित्रसे महातपस्वी, ब्रह्मपुत्र, ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठने पूछा ॥ ६ ॥ राजन्, आपकी तो कुशल है ? धार्मिक, क्या आप राजाके नियमोंसे प्रजाको सुखी रखते हैं ? धर्मपूर्वक उनका पालन करते हैं ? ॥७॥ क्या आपको नौकर चाकर काफी मिलगये हैं ? क्या वे आपकी आज्ञा मानते हैं ? शत्रु-विजयिन्, क्या आपने सब शत्रु जीत लिये हैं ? ॥८॥ शत्रु-सन्तापक, आपकी सेना, खजाना और मित्र-राजाओंकी कुशल तो है ? हे नरश्रेष्ठ, हे निष्पाप, आपके पुत्र-पौत्रोंकी तो कुशल है ? ॥ ९ ॥ महातेजस्वी राजा विश्वामित्रने विनयी वसिष्ठको अपने सब विभागोंकी कुशल बतलायी ॥१०॥ बहुत देर तक उन धर्मात्माओंने बहुतसी बातें कीं । वे दोनों परस्पर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ११ ॥ तब भगवान वसिष्ठने हँसते हुए, विश्वामित्रसे कहा ॥ १२ ॥ हे महाबलिन्, आपकी इस सेनाका मैं अतिथि-सत्कार करना चाहता हूँ और परमपराक्रमी आपका भी उचित अतिथि-सत्कार करना चाहता हूँ, ग्रहण कीजिए ॥ १३ ॥ मेरा यह सत्कार आप ग्रहण करें । राजन्, आप श्रेष्ठ अतिथि हैं, अतएव हमारे पूजनीय हैं ॥ १४ ॥ महामुनि वसिष्ठकी बातें सुनकर, राजाने कहा—आपके इन प्रिय वचनोंने मेरा सत्कार करदिया ॥१५॥ भगवन्, आपके आश्रममें जो है—फल, मूल, पाद्य, आचमनीय (जल) और आपका दर्शन ॥१६॥ इनके द्वारा हम-लोगोंके पूज्य होकर भी आपने सर्वथा पूजा की है । आपको प्रणाम ! जाता हूं । मित्रताकी दृष्टि बनाये रखें ॥ १७ ॥ राजाके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा और बुद्धिमान वशिष्ठने पुनः उनको अतिथि-सत्कार ग्रहण करनेके लिए निमंत्रित किया ॥१८॥ विश्वामित्रने 'हाँ' कहकर वसिष्ठका निमंत्रण मानलिया ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमुक्तस्तथा तेन वसिष्ठो जपतां वरः । आजुहाव ततः प्रीतः कल्माषीं धूतकल्मषाम् ॥२०॥
एह्येहि शबले क्षिप्रं शृणु चापि वचो मम । सबलस्यास्य राजर्षेः कर्तुं व्यवसितोऽस्म्यहम् ।
भोजनेन महार्हेण सत्कारं संविधत्स्व मे ॥ २१ ॥
यस्य यस्य यथाकामं षड्रसेष्वभिपूजितम् । तत्सर्वकामधुग्दिव्ये अभिवर्ष कृते मम ॥२२॥
रसेनान्नेन पानेन लेह्यचोष्येण संयुतम् । अन्नानां निचयं सर्वं सृजस्व शबले त्वर ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशः सर्गः ५३

एवमुक्ता वसिष्ठेन शबला शत्रुसूदन । विदधे कामधुक्कामान्यस्य यस्येप्सितं यथा ॥ १ ॥
इक्षून्मधूंस्तथा लाजान्मैरेयांश्च वरासवान् । पानानि च महार्हाणि भक्ष्यांश्चोच्चावचानपि ॥ २ ॥
उष्णाढ्यस्यौदनस्यात्र राशयः पर्वतोपमाः । सूपान्याज्ञानि सूपांश्च दधिकुल्यास्तथैव च ॥ ३ ॥
नानास्वादुरसानां च खाण्डवानां तथैव च । भोजनानि सुपूर्णानि गौडानि च सहस्रशः ॥ ४ ॥
सर्वमासीत्सुसंतुष्टं हृष्टपुष्टजनायुतम् । विश्वामित्रबलं राम वसिष्ठेन सुतर्पितम् ॥ ५ ॥
विश्वामित्रो हि राजर्षिर्हृष्टपुष्टस्तदाभवत् । सान्तःपुरवरो राजा सब्राह्मणपुरोहितः ॥ ६ ॥

उन्होंने कहा—जैसी आपकी रुचि है, मुनिश्रेष्ठ, आप वैसाही करें ॥ १९ ॥ विश्वामित्रके स्वीकृत करनेपर ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठने प्रसन्नतापूर्वक, सर्वांगसुन्दर अपनी कपिला (गौ) बुलायी ॥२०॥ कपिले, आओ, मेरी बात सुनो । सेनाके साथ इन राजाका मैं अतिथिसत्कार करना चाहता हूँ । उत्तम भोजन तथा अन्य सत्कारकी वस्तुओंको जुटाओ ॥२१॥ जिस जिसकी (षड्रसोंमें) जिस रसकी ओर रुचिहो, उसके लिए वही रस दो । जो कुछ अवाश्यकता हो, हे कामदुधे, उन सब वस्तुओंकी, तुम मेरे लिए वृष्टि करो ॥२२॥ रस, अन्न, पान, लेह्य (चाटनेकी चीज़), चोष्य (चूसनेकी चीज़) तथा विविध अन्नोंकी राशिकी, हे कपिले, तुम मेरे लिए सृष्टि करो ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका बावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५२ ॥

वसिष्ठने कपिला कामधेनुसे इस प्रकार कहा और उसने सबके मनोरथ पूरे किये ॥१॥ ईख, मधु, (महुआ), लाज (लावा, अन्न) और मैरेय (ये सब शराबके नाम हैं) आदि उत्तम आसव तथा अन्य पानकी वस्तु और भोजनकी अनेक प्रकारकी वस्तु, उसने उपस्थित की ॥२॥ गरम भातकी पर्वतके समान ऊँची राशि लगा दी। सूप्त अन्न (एक प्रकारका पायस), रहरकी दाल, दही और घी आदि कामधेनुकी कृपासे, पर्याप्त परिमाणमें वहाँ उपस्थित किये गये ॥ ३ ॥ विविध स्वाद रखनेवाले खाण्डव (एक तरहका भोजन) पदार्थोंसे भरे हुए उत्तम भोजनपात्र तथा गुड़की बनी हुई अनेक तरहकी चीजें वहाँ उपस्थित की गयीं ॥ ४ ॥ वसिष्ठके द्वारा तृप्त किये जानेपर विश्वामित्रकी समूची सेना बहुतही सन्तुष्ट हुई, बहुतही प्रसन्न हुई ॥ ५ ॥ राजा विश्वामित्र भी अपनी रानियों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सामात्यो मन्त्रिसहितः सभृत्यः पूजितस्तदा । युक्तः परमहर्षेण वसिष्ठमिदमब्रवीत् ॥ ७ ॥
पूजितोऽहं त्वया ब्रह्मन्पूजार्हेण सुसत्कृतः । श्रूयतामभिधास्यामि वाक्यं वाक्यविशारद ॥ ८ ॥
गवां शतसहस्रेण दीयतां शबला मम । रत्नं हि भगवन्नेतद्रत्नहारी च पार्थिवः ॥ ९ ॥
तस्मान्मे शबलां देहि ममैषा धर्मतो द्विज । एवमुक्तस्तु भगवान्वासिष्ठो मुनिपुंगवः ॥१०॥
विश्वामित्रेण धर्मात्मा प्रत्युवाच महीपतिम् । नाहं शतसहस्रेण नापि कोटिशतैर्गवाम् ॥११॥
राजन्दास्यामि शबलां राशिभी रजतस्य वा । न परित्यागमर्हेयं मत्सकाशादरिंदम ॥१२॥
शाश्वती शबला मह्यं कीर्तिरात्मवतो यथा । अस्यां हव्यं च कव्यं च प्राणयात्रा तथैव च ॥१३॥
आयत्तमग्निहोत्रं च बलिहोमस्तथैव च । स्वाहाकारवषट्कारौ विद्याश्च विविधास्तथा ॥१४॥
आयत्तमत्र राजर्षे सर्वमेतन्न संशयः । सर्वस्वमेतत्सत्येन मम तुष्टिकरी तथा ॥१५॥
कारणैर्बहुभी राजन्न दास्ये शबलां तव । वसिष्ठेनैवमुक्तस्तु विश्वामित्रोऽब्रवीत्तदा ॥१६॥
संरब्धतरमत्यर्थं वाक्यं वाक्यविशारदः । हैरण्यकक्षग्रैवेयान्सुवर्णाङ्कुशभूषितान् ॥१७॥
ददामि कुञ्जराणां ते सहस्राणि चतुर्दश । हैरण्यानां रथानां च श्वेताश्वानां चतुर्युजाम् ॥१८॥
ददामि ते शतान्यष्टौ किंकिणीकविभूषितान् । हयानां देशजातानां कुलजानां महौजसाम् ॥१९॥

तथा ब्राह्मण पुरोहितोंके साथ, महर्षिके आतिथ्यसे बहुतही प्रसन्न हुए ॥ ६ ॥ इस प्रकार महर्षि वसिष्ठने विश्वामित्रका, अमात्य (साथ काम करनेवाले मंत्री), मंत्री (सलाह देनेवाले) और भृत्योंके साथ, अतिथिसत्कार किया । इस प्रकार सत्कृत होकर बड़ी प्रसन्नतासे वे वसिष्ठसे बोले ॥७॥ हे ब्रह्मन्, आप पूजाके योग्य हैं, फिर भी आपने बड़े आदरके साथ मेरा सत्कार किया । हे वाक्यविशारद (वाक्यके गुण दोष जाननेवाले), मैं कहता हूँ, सुनिये ॥ ८ ॥ महाराज, सौ हज़ार गाय मैं देता हूँ, यह कपिला गौ आप मुझे दीजिए, क्योंकि यह रत्न है, और राजा रत्नका ग्रहण करनेवाला होता है ॥९॥ इस कारण यह गौ आप मुझे दीजिए, क्योंकि धर्मपूर्वक यह मेरीही है । मुनिश्रेष्ठ धर्मात्मा वसिष्ठने विश्वामित्रकी यह बात सुनकर ॥ १० ॥ कहा—मैं सौ हज़ार गायोंसे अथवा सौ करोड़ गायोंसे भी ॥ ११ ॥ और राजन्, चाँदीकी राशिके बदलेमेंभी, यह गौ नहीं देसकता हूँ । किसी प्रकार मैं इसे अपने पाससे हटा नहीं सकता ॥ १२ ॥ राजयोगियोंकी कीर्ति, जिस प्रकार सदा उनके साथ रहती है, यह गौ भी उसी प्रकार सदा मेरे साथ रहती है । इसीके द्वारा देवताओंके लिए हव्य, पितरोंके लिए कव्य, तथा हमलोगोंकी जीवन-यात्राका निर्वाह होता है ॥१३॥ अग्निहोत्र, बलि, होम, स्वाहाकार, वषट्कार (इनके द्वारा होनेवाले यज्ञ) की पूर्ति इसी गौके अधीन है ॥१४॥ राजन्, मेरा जो कुछ है, सब इसीके अधीन है । यह मेरी गौ मेरा सर्वस्व है । यह आप सच समझें । यह गौ अनेक प्रकारसे मुझे सदा सन्तुष्ट किया करती है ॥ १५ ॥ इस प्रकार अनेक कारण हैं, जिनसे मैं यह गौ आपको नहीं दे सकता । वसिष्ठके ऐसा कहनेपर विश्वामित्रने बड़े आग्रहके साथ कहा ॥१६॥ सोनेका घण्टा, अँकुश तथा गलेके गहनासे युक्त ॥१७॥ चौदह हज़ार हाथी मैं आपको देता हूँ । सोनेके रथ जिनमें चार-चार सफेद घोड़े जोते जाते हैं ॥ १८ ॥ जिनमें घण्टी लगी हुई है, वैसे एकसौ आठ रथ मैं आपको देता हूँ । उत्तम देश और कुलोंमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सहस्रमेकं दश च ददामि तव सुव्रत । नानावर्णविभक्तानां वयःस्थानां तथैव च ।
ददाम्येकां गवां कोटिं शबला दीयतां मम ॥२०॥
यावदिच्छसि रत्नानि हिरण्यं वा द्विजोत्तम । तावद्ददामि ते सर्वं दीयतां शबला मम ॥२१॥
एवमुक्तस्तु भगवान्विश्वामित्रेण धीमता । न दास्यामीति शबलां प्राह राजन्कथंचन ॥२२॥
एतदेव हि मे रत्नमेतदेव हि मे धनम् । एतदेव हि सर्वस्वमेतदेव हि जीवितम् ॥२३॥
दर्शश्च पौर्णमासश्च यज्ञाश्चैवाप्तदक्षिणाः । एतदेव हि मे राजन्विविधाश्च क्रियास्तथा ॥२४॥
अतोमूलाः क्रियाः सर्वा मम राजन्न संशयः । बहुना किं प्रलापेन न दास्ये कामदोहिनीम्॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशः सर्गः ५४

कामधेनुं वसिष्ठोऽपि यदा न त्यजते मुनिः । तदास्य शबलां राम विश्वामित्रोऽन्वकर्षत ॥ १ ॥
नीयमाना तु शबला राम राज्ञा महात्मना । दुःखिता चिन्तयामास रुदती शोककर्शिता ॥ २ ॥
परित्यक्ता वसिष्ठेन किमहं सुमहात्मना । याहं राजभृतैर्दीना ह्रियेय भृशदुःखिता ॥ ३ ॥
किं मयापकृतं तस्य महर्षेर्भावितात्मनः । यन्मामनागसं दृष्ट्वा भक्तां त्यजति धार्मिकः॥ ४ ॥

उत्पन्न बड़े पराक्रमी घोड़े ॥१९॥ दस हज़ार मैं आपको देता हूं । ये घोड़े अनेक रंगके तथा जवान होंगे । एक कोटि गौ मैं आपको देता हूँ, आप यह कपिला मुझे दीजिए ॥ २० ॥ आप जितना रत्न, जितना सोना चाहते हों, वह मैं आपको दूँगा । आप वह गौ मुझे दें ॥ २१ ॥ बुद्धिमान विश्वामित्रके ऐसा कहनेपर वसिष्ठने कहा—राजन्, मैं यह गौ किसी प्रकार नहीं दे सकता ॥ २२ ॥ यह गौही मेरा धन है, मेरा सर्वस्व है, यहाँ तक कि मेरा जीवन है ॥ २३ ॥ दर्श, पौर्णमास तथा दक्षिणाप्राप्त होनेवाले यज्ञ और भी अनेक प्रकार की क्रियाएँ जो कुछ भी हैं, वह सब मेरेलिए यह गौही है ॥ २४ ॥ क्योंकि मेरी अब क्रियाएँ इसीके द्वारा सिद्ध होती है, इसमें आप सन्देह न करें । राजन्, अधिक कहनेसे क्या लाभ ! मैं आपको यह कामधेनु न दूँगा ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका तिरपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५३ ॥

रामचन्द्र, जब विश्वामित्र किसी प्रकार भी अपनी शबला (चितकबरी) कामधेनु देनेको राजी न हुए, तब विश्वामित्रने उसे खुदही लेलिया ॥१॥ जब राजा बलपूर्वक उसे ले जाने लगे, तब वह गौ बहुत दुःखी हुई, शोकसे पीड़ित होकर वह मन ही मन सोचने लगी ॥२॥ क्या महात्मा वसिष्ठने मेरा त्याग कर दिया, जिस कारण मुझ दुखिनीको राजाके नौकर लिये जारहे हैं ॥ ३ ॥ उन दर्शनीय मूर्ति महर्षिका मैंने कौनसा अपराध किया । मुनिने भक्त तथा निरपराधिनी मेरा त्याग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति संचिन्तयित्वा तु निश्वस्य च पुनःपुनः । जगाम वेगेन तदा वसिष्ठं परमौजसम् ॥ ५ ॥
निर्धूय तांस्तदा भृत्याञ्शतशः शत्रुसूदन । जगामानिलवेगेन पादमूलं महात्मनः ॥ ६ ॥
शबला सा रुदन्ती च क्रोशन्ती चेदमब्रवीत् । वसिष्ठस्याग्रतःस्थित्वा रुदन्ती मेघनिःस्वना॥ ७ ॥
भगवन्किं परित्यक्ता त्वयाहं ब्रह्मणः सुत । यस्माद्राजभटा मां हि नयन्ते त्वत्सकाशतः ॥ ८ ॥
एवमुक्तस्तु ब्रह्मर्षिरिदं वचनमब्रवीत् । शोकसंतप्तहृदयां स्वसारमिव दुःखिताम् ॥ ९ ॥
न त्वां त्यजामि शबले नापि मेऽपकृतं त्वया । एव त्वां नयते राजा बलान्मत्तो महाबलः ॥१०॥
नहि तुल्यं बलं मह्यं राजा त्वद्य विशेषतः । बली राजा क्षत्रियश्च पृथिव्याः पतिरेवच ॥११॥
इयमक्षौहिणी पूर्णा गजवाजिरथाकुला । हस्तिध्वजसमाकीर्णा तेनासौ बलवत्तमः ॥१२॥
एवमुक्ता वसिष्ठेन प्रत्युवाच विनीतवत् । वचनं वचनज्ञा सा ब्रह्मर्षिमतुलप्रभम् ॥१३॥
न बलं क्षत्रियस्याहुर्ब्राह्मणा बलवत्तराः । ब्रह्मन्ब्रह्मबलं दिव्यं क्षत्राच्च बलवत्तरम् ॥१४॥
अप्रमेयं बलं तुभ्यं न त्वया बलवत्तरः । विश्वामित्रो महावीर्यस्तेजस्तव दुरासदम् ॥१५॥
नियुङ्क्ष्व मां महातेजस्त्वं ब्रह्मबलसंभृताम् । तस्य दर्पं बलं यत्नं नाशयामि दुरात्मनः ॥१६॥
इत्युक्तस्तु तया राम वसिष्ठस्तु महायशाः । सृजस्वेति तदोवाच बलं परबलार्दनम् ॥१७॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सुरभिः सासृजत्तदा । तस्या हुंभारवोत्सृष्टाः पह्लवाः शतशो नृप ॥१८॥

क्यों किया ॥ ४ ॥ इस प्रकार विचारकर तथा दुःखकी सांसे छोड़कर वह बड़े वेगसे परम तेजस्वी मुनिके पास गयी ॥ ५ ॥ उन सैकड़ों नौकरोंको झपटकर वायुवेगसे वह महात्माके चरणोंके पास गयी ॥ ६ ॥ वह वसिष्ठके आगे बैठकर रोती हुई तथा अपने भाग्यकी निन्दा करती हुई गम्भीर शब्दोंमें बोली ॥ ७ ॥ भगवन् ब्रह्मपुत्र, क्या आपने मेरा त्याग कर दिया, जिससे ये राजाके नौकर आपके पाससे मुझे ले जारहे हैं ॥ ८ ॥ दुःखिता बहिनके समान ब्रह्मर्षिने उस शोक पीड़ित गौसे कहा ॥ ९ ॥ कामदुधे, मैंने तुम्हारा त्याग नहीं किया और तुमने भी मेरी कोई बुराई नहीं की है, जबरदस्ती ये राजा तुमको लेजारहे हैं, क्योंकि ये मुझसे बलवान् हैं ॥ १० ॥ इनके समान मुझमें बल नहीं है, विशेषकर ये इस समय राजा हैं, बलवान् हैं, क्षत्रिय हैं और पृथिवीके स्वामी हैं ॥ ११ ॥ इनके पास यह अक्षौहिणी सेना है, जिसमें उत्तम हाथी, घोड़े और रथ हैं, इस कारण ये बलवान् हैं ॥१२॥ वसिष्ठकी बातें सुनकर गौने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, अनुपम तेजस्वी महर्षिके वचनोंका अभिप्राय उसने समझ लिया था ॥ १३ ॥ ब्राह्मणलोग क्षत्रियोंके बलको श्रेष्ठ नहीं मानते हैं । ब्रह्मन्, ब्रह्मबल अलौकिक है और वह क्षत्रियोंके बलसे भी बलवान् है ॥ १४ ॥ महाराज, आपका बल अद्भुत है, विश्वामित्र आपसे बलवान् नहीं हैं । विश्वामित्र केवल बलवान् हैं, पर आपका तेज असह्य है ॥ १५ ॥ महाराज, आप मुझे आज्ञा दें, मैं ब्रह्मबलसे युक्त होकर उस दुरात्माके अहङ्कार, सेना तथा बुद्धिका नाश कर देती हूं ॥ १६ ॥ रामचन्द्र, गौके ऐसा कहनेपर महायशस्वी वसिष्ठने कहा–शत्रुसेनाको नष्ट करनेवाली अपनी सेना बनाओ ॥ १७ ॥ वसिष्ठकी आज्ञा पातेही उस गौने तत्काल सेनाकी सृष्टि की । उसके हंभा (गौका शब्द) करतेही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नाशयन्ती बलं सर्वं विश्वामित्रस्य पश्यतः । स राजा परमक्रुद्धः क्रोधविस्फारितेक्षणः ॥१९॥
पह्लवान्नाशयामास शस्त्रैरुच्चावचैरपि । विश्वामित्रार्दितान्दृष्ट्वा पह्लवाञ्शतशस्तदा॥२०॥
भूय एवासृजद्घोराञ्छकान्यवनमिश्रितान् । तैरासीत्संवृता भूमिः शकैर्यवनमिश्रितैः ॥२१॥
प्रभावद्भिर्महावीर्यैर्हेमकिंजल्कसंनिभैः । तीक्ष्णासिपट्टिशधरैर्हेमवर्णाम्बरावृतैः ॥२२॥
निर्दग्धं तद्बलं सर्वं प्रदीप्तैरिव पावकैः । ततोऽस्त्राणि महातेजा विश्वामित्रो मुमोच ह ।
तैस्ते यवनकाम्बोजा बर्बराश्चाकुलीकृताः ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः ५५

ततस्तानाकुलान्दृष्ट्वा विश्वामित्रास्त्रमोहितान् । वसिष्ठश्चोदयामास कामधुक्सृज योगतः ॥ १ ॥
तस्या हुंकारतो जाताः काम्बोजा रविसंनिभाः । ऊधसश्चाथ संभूता बर्बराः शस्त्रपाणयः ॥ २ ॥
योनिदेशाच्च यवनाः शकृदेशाच्छकाः स्मृताः । रोमकूपेषु म्लेच्छाश्च हारीताः सकिरातकाः ॥ ३ ॥
तैस्तन्निषूदितं सर्वं विश्वामित्रस्य तत्क्षणात् । सपदातिगजं साश्वं सरथं रघुनन्दन ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा निषूदितं सैन्यं वसिष्ठेन महात्मना । विश्वामित्रसुतानां तु शतं नानाविधायुधम् ॥ ५ ॥

सैकड़ों पह्लव (म्लेच्छ) जातिके वीर उत्पन्न हुए ॥१८॥ विश्वामित्रके देखते-देखतेही उनकी सेना नष्ट होने लगी, इससे राजा बड़े क्रोधित हुए और उन्होंने क्रोधसे आँखें फाड़कर ॥ १९ ॥ अनेक तरहके अस्त्रोंसे पह्लवोंका नाश करदिया । इसप्रकार विश्वामित्रके द्वारा अपनी पह्लव सेनाको नष्ट देखकर ॥ २० ॥ गौने और भी भयानक शक और यवन वीरोंकी सृष्टि की, उन दोनों जातियोंके वीरोंसे यह समस्त पृथिवी भरगयी ॥ २१ ॥ वे बड़े प्रभावशाली थे, बड़े वीर थे, वे पीले रंगके थे, उनकी तलवारें बड़ी तीखी थीं, उनलोगोंने पीले रंगके वस्त्र पहने थे ॥ २२ ॥ प्रदीप्त अग्निके समान उस सेनाने विश्वामित्रकी समस्त सेनाको नष्ट कर दिया । तब महातेजस्वी विश्वामित्रने अस्त्र-प्रहार करना प्रारंभ किया, जिससे धेनुकी सेनाके यवन, काम्बोज और बर्बर सिपाही भाग खड़ेहुए२३

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका चौअनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५४ ॥

विश्वामित्रके अस्त्र-प्रहारसे उनलोगोंको भागते देखकर वसिष्ठने कामधेनुसे कहा-तुम अपने योगके प्रभावसे नयी सृष्टि करो ॥ १ ॥ उसके हुंकारसे कांबोज जातिके वीर उत्पन्न हुए, जो सूर्यके समान तेजस्वी थे । धेनुके थनसे अस्त्र-शस्त्र लिये बर्बर जातिके वीर उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ धेनुके गुह्य अंगसे यवन और शकृत (गोबर) से शक उत्पन्न हुए । रोमोंसे म्लेच्छ, हारीत और किरात नामक जातियोंके वीर उत्पन्न हुए ॥ ३ ॥ विश्वामित्रकी बची हुई पैदल, हाथीसवार, घुड़सवार और रथ-सवार सेनाको धेनुकी सेनाने शीघ्रही नष्ट कर दिया ॥ ४ ॥ महात्मा वसिष्ठने विश्वा-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अभ्यधावत्मुसंक्रुद्धं वसिष्ठं जपतां वरम् । हुंकारेणैव तान्सर्वान्निर्ददाह महानृषिः ॥ ६ ॥
ते साश्वरथपादाता वसिष्ठेन महात्मना । भस्मीकृता मुहूर्तेन विश्वामित्रसुतास्तथा ॥ ७ ॥
दृष्ट्वा विनाशितान्सर्वान्बलं च सुमहायशाः । सव्रीडं चिन्तयाविष्टो विश्वामित्रोऽभवत्तदा ॥ ८ ॥
समुद्र इव निर्वेगो भग्नदंष्ट्र इवोरगः । उपरक्त इवादित्यः सद्यो निष्प्रभतां गतः ॥ ९ ॥
हतपुत्रबलो दीनो लूनपक्ष इव द्विजः । हतसर्वबलोत्साहो निर्वेदं समपद्यत ॥१०॥
स पुत्रमेकं राज्याय पालयेति नियुज्य च । पृथिवीं क्षत्रधर्मेण वनमेवाभ्यपद्यत ॥११॥
स गत्वा हिमवत्पार्श्वं किंनरोरगसेविते । महादेवप्रसादार्थं तपस्तेपे महातपाः ॥१२॥
केनचित्त्वथ कालेन देवेशो वृषभध्वजः । दर्शयामास वरदो विश्वामित्रं महामुनिम् ॥१३॥
किमर्थं तप्यसे राजन्ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् । वरदोऽस्मि वरो यस्ते काङ्क्षितःसोऽभिधीयताम्१४
एवमुक्तस्तु देवेन विश्वामित्रो महातपाः । प्रणिपत्य महादेवं विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम् ॥१५॥
यदि तुष्टो महादेव धनुर्वेदो ममानघ । साङ्गोपाङ्गोपनिषदः सरहस्यः प्रदीयताम् ॥१६॥
यानि देवेषु चास्त्राणि दानवेषु महर्षिषु । गन्धर्वयक्षरक्षःसु प्रतिभान्तु ममानघ ॥१७॥
तव प्रसादाद्भवतु देवदेव ममेप्सितम् । एवमस्त्विति देवेशो वाक्यमुक्त्वा गतस्तदा ॥१८॥
प्राप्य चास्त्राणि देवेशाद्विश्वामित्रो महाबलः । दर्पेण महता युक्तो दर्पपूर्णोऽभवत्तदा ॥१९॥

मित्रकी समस्त सेना नष्ट कर दी, यह देखकर विश्वामित्रके सौ पुत्रोंने, विविध अस्त्र-शस्त्र लेकर ॥ ५ ॥ बड़े क्रोधसे ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठपर आक्रमण किया, पर वे सब, महर्षि वसिष्ठके एक हुंकार-सेही जलमरे ॥ ६ ॥ अश्व, रथ और पैदल सेना तथा विश्वामित्रके लड़कोंको एक मुहूर्तमें ही महात्मा वसिष्ठने भस्म करदिया ॥ ७ ॥ महायशस्वी विश्वामित्र अपनी सेना तथा पुत्रोंको नष्ट देखकर बड़े लज्जित हुए और वे चिन्तामग्न होगये ॥ ८ ॥ स्तब्ध समुद्रके समान, दन्तहीन सर्पके समान और ग्रहण लगे सूर्यके समान, विश्वामित्र शीघ्रही प्रभाहीन होगये ॥ ९ ॥ सेना और पुत्रोंके मारे जानेपर, विश्वामित्र पङ्खकटे पक्षीके समान होगये । सब प्रकारके बल और उत्साहके नष्ट होनेसे विश्वामित्रके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ १० ॥ उन्होंने अपने एक पुत्रको राज्यके लिए नियुक्त करके और क्षात्र धर्मसे पृथिवीका पालन करो-यह आज्ञा देकर, वनका आश्रय लिया॥११॥ वे हिमवान पर्वतके समीप गये, जहाँ किन्नर और उरग निवास करते हैं । वहीं महातपस्वी विश्वामित्रने महादेवकी प्रसन्नताके लिए तप करना प्रारंभ किया ॥ १२ ॥ कुछ समयके बाद वरद महादेवजीने महामुनि विश्वामित्रको दर्शन दिये ॥ १३ ॥ महादेवजीने कहा-राजन्, किसलिए तपस्या कर रहे हो ? क्या चाहते हो ? मैं वर देनेवाला हूँ । जो वर तुम चाहो, वह मुझसे माँगलो ॥ १४ ॥ महादेवकी यह बात सुनकर महातपस्वी विश्वामित्रने प्रणाम करके यह कहा ॥ १५ ॥ महादेव, यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो अंगोपांग मंत्र तथा रहस्यके साथ धनुर्वेद (अस्त्र-विद्या) मुझे दें ॥ १६ ॥ देवताओंके, दानवोंके, महर्षियोंके, गन्धर्व, यक्ष और राक्षसोंके जो कुछ अस्त्र हों, वे सब मुझे मालूम होजायँ ॥ १७ ॥ देवदेव, आपकी कृपासे मेरा यह मनोरथ पूरा हो । 'ऐसा ही हो' कहकर महादेव अपने स्थानको गये ॥१८॥ महाबली विश्वामित्रने महादेवसे सब अस्त्र पाये,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विवर्धमानो वीर्येण समुद्र इव पर्वणि । हतं मेने तदा राम वसिष्ठमृषिसत्तमम् ॥२०॥
ततो गत्वाश्रमपदं मुमोचास्त्राणि पार्थिवः । यैस्तत्तपोवनं नाम निर्दग्धं चास्त्रतेजसा ॥२१॥
उदीर्यमाणमस्त्रं तद्विश्वामित्रस्य धीमतः । दृष्ट्वा विप्रद्रुता भीता मुनयः शतशो दिशः ॥२२॥
वसिष्ठस्य च ये शिष्या ये च वै मृगपक्षिणः । विद्रवन्ति भयाद्भीता नानादिग्भ्यः सहस्रशः ॥२३॥
वसिष्ठस्याश्रमपदं शून्यामासीन्महात्मनः । मुहूर्तमिव निःशब्दमासीदीरिणसंनिभम् ॥२४॥
वदतो वै वसिष्ठस्य मा भैरिति मुहुर्मुहुः । नाशयाम्यद्य गाधेयं नीहारमिव भास्करः ॥२५॥
एवमुक्त्वा महातेजा वसिष्ठो जपतां वरः । विश्वामित्रं तदा वाक्यं सरोषमिदमब्रवीत् ॥२६॥
आश्रमं चिरसंवृद्धं यद्विनाशितवानसि । दुराचारो हि यन्मूढस्तस्मात्त्वं न भविष्यसि ॥२७॥
इत्युक्त्वा परमक्रुद्धो दण्डमुद्यम्य सत्वरः । विधूम इव कालाग्निर्यमदण्डमिवापरम् ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशः सर्गः ५६

एवमुक्तो वसिष्ठेन विश्वामित्रो महाबलः । आग्नेयमस्त्रमुद्दिश्य तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ १ ॥
ब्रह्मदण्डं समुद्यम्य कालदण्डमिवापरम् । वसिष्ठो भगवान्क्रोधादिदं वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

जिससे उनका अहंकार और भी बढ़गया ॥ १६ ॥ पूर्णिमाके समुद्रके समान, विश्वामित्रका पराक्रम बढ़ने लगा और उस समय विश्वामित्रने समझा कि ऋषिश्रेष्ठको मैंने मारलिया ॥२०॥ वे वसिष्ठके आश्रमपर गये और वहाँ अस्त्र छोड़ने लगे । उन अस्त्रोंके तेजसे, वह तपोवन जलने लगा ॥ २१ ॥ विश्वामित्र बड़ी बुद्धिमत्तासे अस्त्र चला रहे हैं, यह देख सैकड़ों मुनि डरकर भाग गये ॥ २२ ॥ वसिष्ठके जो शिष्य थे, जो पशुपक्षी थे, वे भी भयभीत होकर इधर-उधर दिशाओंमें भागने लगे ॥ २३ ॥ महात्मा वसिष्ठका वह आश्रम क्षणभरमें शून्य होगया, ऊसर खेतके समान होगया ॥ २४ ॥ तब वसिष्ठजीने कहा कि मत डरो, मैं शीघ्रही इस गाधेय (गाधिके लड़के) का नाश करता हूँ, जैसे सूर्य कुहासाका करते हैं; ॥२५॥ आश्रमवासियोंसे महर्षिश्रेष्ठ वसिष्टने ऐसा कहकर, क्रोधपूर्वक विश्वामित्रसे यों कहा ॥ २६ ॥ मूर्ख, बहुत दिनोंसे बनाये हुए, इस आश्रमका तुमने नाश किया है, यह बड़ा भारी पाप है, इस पापसे तुम्हारा नाश अवश्य होगा ॥ २७ ॥ऐसा कहकर बड़े क्रोधसे उन्होंने दण्ड उठाया, जो धूम-रहित कालदण्डके समान अथवा दूसरे यमदंडके समान था ॥ २८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका पचपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५५ ॥

वसिष्ठके ऐसा कहनेपर महाबली विश्वामित्रने उनपर आग्नेय अस्त्र चलाया और 'ठहरो ठहरो' कहकर ललकारा ॥ १ ॥ भगवान् वसिष्ठने दूसरे कालदण्ड (मृत्युदण्ड) के समान ब्रह्म-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्षत्रबन्धो स्थितोऽस्म्येष यद्बलं तद्विदर्शय । नाशयाम्यद्य ते दर्पं शस्त्रस्य तव गाधिज ॥ ३ ॥
क्व च ते क्षत्रियबलं क्व च ब्रह्मबलं महत् । पश्य ब्रह्मबलं दिव्यं मम क्षत्रियपांसन ॥ ४ ॥
तस्यास्त्रं गाधिपुत्रस्य घोरमाग्नेयमुत्तमम् । ब्रह्मदण्डेन तच्छान्तमग्नेर्वेग इवाम्भसा ॥ ५ ॥
वारुणं चैव रौद्रं च ऐन्द्रं पाशुपतं तथा । ऐषीकं चापि चिक्षेप कुपितो गाधिनन्दनः ॥ ६ ॥
मानवं मोहनं चैव गान्धर्वं स्वापनं तथा । जृम्भणं मोहनं चैव संतापनविलापने ॥ ७ ॥
शोषणं दारणं चैव वज्रमस्त्रं सुदुर्जयम् । ब्रह्मपाशं कालपाशं वारुणं पाशमेव च ॥ ८ ॥
पिनाकमस्त्रं दयितं शुष्कार्द्रे अशनी तथा । दण्डास्त्रमथ पैशाचं क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च ॥ ९ ॥
धर्मचक्रं कालचक्रं विष्णुचक्रं तथैव च । वायव्यं मथनं चैव अस्त्रं हयशिरस्तथा ॥१०॥
शक्तिद्वयं च चिक्षेप कंकालं मुसलं तथा । वैद्याधरं महास्त्रं च कालास्त्रमथ दारुणम् ॥११॥
त्रिशूलमस्त्रं घोरं च कापालमथ कङ्कणम् । एतान्यस्त्राणि चिक्षेप सर्वाणि रघुनन्दन ॥१२॥
वसिष्ठे जपतां श्रेष्ठे तदद्भुतमिवाभवत् । तानि सर्वाणि दण्डेन ग्रसते ब्रह्मणः सुतः ॥ १३॥
तेषु शान्तेषु ब्रह्मास्त्रं क्षिप्तवान्गाधिनन्दनः । तदस्त्रमुद्यतं दृष्ट्वा देवाः साग्निपुरोगमाः ॥१४॥
देवर्षयश्च संभ्रान्ता गन्धर्वाः समहोरगाः । त्रैलोक्यमासीत्संत्रस्तं ब्रह्मास्त्रे समुदीरिते ॥१५॥
तदप्यस्त्रं महाघोरं ब्राह्मं ब्राह्मेण तेजसा । वसिष्ठो ग्रसते सर्वं ब्रह्मदण्डेन राघव ॥१६॥

दण्ड उठाकर यों कहा ॥ २ ॥ क्षत्रियाधम, मैं खड़ा हूं । जो कुछ तुम्हारा बल हो वह दिखाओ, शस्त्र-विद्याका तुम्हारा अहङ्कार मैं नष्ट करूंगा ॥ ३ ॥ कहां तुम्हारा क्षत्रिय बल, और कहां यह महान् ब्रह्मबल । क्षत्रियाधम, आज मेरे अलौकिक ब्रह्मबलको तू देख ॥ ४ ॥ वसिष्ठके ब्रह्म-दण्डसे विश्वामित्रका वह भयानक आग्नेय अस्त्र शान्त होगया, जिसप्रकार जलसे आगशान्त होजाती है ॥५॥ तब क्रोध करके गाधि-पुत्र विश्वामित्रने क्रोध करके वसिष्ठपर वारुण (वरुणका), रौद्र (रुद्रका), ऐन्द्र (इन्द्रका), पाशुपत (पशुपतिका) और ऐषीक नाम अस्त्र चलाये ॥ ६ ॥ पुनः विश्वामित्रने नीचे लिखे नामोंवाले अस्त्र चलाये, बेहोश कर देनेवाला मानवास्त्र, नींद ला देनेवाला गन्धर्व अस्त्र, जृम्भण, मोहन, सन्तापन, विलापन नामके अस्त्र ॥७॥ शोषण, दारण, और कठिनतासे जीते जाने योग्य वज्र, ब्रह्मपाश, कालपाश और वरुणका पाश, ॥८॥ प्यारा पिनाक, शुष्क और आर्द्र दोनों अशनी, पिशाचोंका दण्ड अस्त्र तथा क्रौञ्च अस्त्र ॥९॥ धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णु चक्र, वायव्य और हयसिर ॥ १० ॥ दो शक्तियां तथा कङ्काल और मुसल नामक अस्त्र विश्वामित्रने छोड़े । विद्याधरोंका महास्त्र, भयानक कालास्त्र, ॥११॥ त्रिशूल, कापाल, और कङ्कण ये सब अस्त्र विश्वामित्रने छोड़े ॥ १२ ॥ विश्वामित्रने इतने अस्त्र ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठपर छोड़े, पर आश्चर्य है कि ब्रह्मपुत्र वसिष्ठने उन सब अस्त्रोंको दण्डसे नष्ट करदिया ॥ १३ ॥ उन सब अस्त्रोंके बेकार होजानेपर गाधि-पुत्र विश्वामित्रने ब्रह्मास्त्र चलाया । इस अस्त्रको विश्वामित्रने चलाया, यह देख-कर अग्नि प्रभृति आदि देवता, ॥ १४ ॥ देवर्षि, गन्धर्व और महोरग (सर्प) ये सब घबड़ा गये । ब्रह्मास्त्रके चलानेसे समस्त त्रिलोक कांप गया ॥१५॥ उस महाभयानक ब्राह्म अस्त्रको भी वसिष्ठने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मास्त्रं ग्रसमानस्य वसिष्ठस्य महात्मनः । त्रैलोक्यमोहनं रौद्रं रूपमासीत्सुदारुणम् ॥१७॥
रोमकूपेषु सर्वेषु वसिष्ठस्य महात्मनः । मरीच्य इव निष्पेतुरग्नेर्धूमाकुलार्चिषः ॥१८॥
प्राज्वलद्ब्रह्मदण्डश्च वसिष्ठस्य करोद्यतः । विधूम इव कालाग्नेर्यमदण्ड इवापरः ॥१९॥
ततोऽस्तुवन्मुनिगणा वसिष्ठं जपतां वरम् । अमोघं ते बलं ब्रह्मंस्तेजो धारय तेजसा । २०॥
निगृहीतस्त्वया ब्रह्मन्विश्वामित्रो महाबलः । अमोघं ते बलं श्रेष्ठं लोकाः सन्तु गतव्यथाः ॥२१॥
एवमुक्तो महातेजाः शमं चक्रे महातपाः । विश्वामित्रो विनिकृतो विनिःश्वस्येदमब्रवीत ॥२२॥
धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम् । एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे ॥२३॥
तदेतत्समीक्ष्याहं प्रसन्नेन्द्रियमानसः । तपो महत्समास्थास्ये यद्धि ब्रह्मत्वकारणम् ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशः सर्गः ५७

ततः संतप्तहृदयः स्मरन्निग्रहमात्मनः । विनिःश्वस्य विनिःश्वस्य कृतवैरो महात्मना ॥ १ ॥
स दक्षिणां दिशं गत्वा महिष्या सह राघव । तताप परमं घोरं विश्वामित्रो महातपाः ॥ २ ॥
फलमूलाशनो दान्तश्चचार परमं तपः । अथास्य जज्ञिरे पुत्राः सत्यधर्मपरायणाः ॥ ३ ॥

ब्राह्मतेज ब्रह्मदण्डसे शान्त करदिया ॥ १६ ॥ जिस समय वसिष्ठने ब्राह्म अस्त्रको शान्त किया, उस समय उनका रूप बड़ा भयानक होगया था, उस समयका उनका रूप त्रिलोकको मूर्च्छित करनेवाला होगया था ॥१७॥ महात्मा वसिष्ठके प्रत्येक रोमकूपसे किरणोंके समान अग्निकी ज्वालाएँ निकलने लगीं थीं ॥ १८ ॥ वसिष्ठके हाथमें उठा हुआ ब्रह्मदण्ड भी प्रज्वलित हुआ, जो धूमहीन कालाग्निके समान तथा दूसरे यमदण्डके समान मालूम पड़ता था ॥ १९ ॥ तब मुनियोंने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठकी स्तुति की, ब्रह्मन्, तुम्हारा बल अजेय है, तुम अपना तेज अपने तेजसे शान्त करो ॥ २० ॥ तुमने विश्वामित्रको परास्त किया, तुम्हारा बल अमोघ (व्यर्थ न होनेवाला) है, अपना अस्त्र हटाओ जिससे प्राणियोंकी पीड़ा दूर हो ॥ २१ ॥ मुनियोंके स्तुति करनेपर महातेजस्वी वसिष्ठने अपना ब्रह्मदण्ड शान्त किया । पराजित विश्वामित्रने लम्बी सांस लेकर कहा ॥ २२ ॥ क्षत्रिय बलको धिक्कार ! ब्रह्मतेजही प्रधान बल है, एक ब्रह्मदण्डने मेरे सब अस्त्रोंको नष्ट करदिया ॥ २३ ॥ इन सब बातोंको देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं और मैं स्वयं वह तपस्या करने जारहा हूं, जिससे मनुष्य ब्रह्म तेज पाता है, ब्राह्मण बनता है ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका छप्पनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५६ ॥

अपना पराजय स्मरण करनेसे विश्वामित्रका हृदय जलने लगा । महात्मा वसिष्ठसे बैर ठान कर तथा बारबार लम्बी सांसें लेते हुए ॥१॥ अपनी महारानीके साथ दक्षिण दिशाकी ओर वे गये । वहां महातपस्वी विश्वामित्रने बड़ी कठिन तपस्या की ॥२॥ फल-मूल खाकर तथा इन्द्रियोंको वशमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हविष्पन्दो मधुष्पन्दो दृढनेत्रो महारथः । पूर्णे वर्षसहस्रे तु ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ४ ॥
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं विश्वामित्रं तपोधनम् । जिता राजर्षिलोकास्ते तपसा कुशिकात्मज ॥ ५ ॥
अनेन तपसा त्वां हि राजर्षिरिति विद्महे । एवमुक्त्वा महातेजा जगाम सहदैवतैः ॥ ६ ॥
त्रिविष्टपं ब्रह्मलोकं लोकानां परमेश्वरः । विश्वामित्रोऽपितच्छ्रुत्वा ह्रिया किंचिदवाङ्मुखः ॥७॥
दुःखेन महताविष्टः समन्युरिदमब्रवीत् । तपश्च सुमहत्तप्तं राजर्षिरिति मां विदुः ॥ ८ ॥
देवाः सर्षिगणाः सर्वे नास्ति मन्ये तपःफलम् । एवं निश्चित्य मनसा भूय एव महातपाः ॥ ९ ॥
तपश्चचार धर्मात्मा काकुत्स्थ परमात्मवान् । एतस्मिन्नेव काले तु सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥१०॥
त्रिशङ्कुरिति विख्यात इक्ष्वाकुकुलवर्धनः । तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना यजेयमिति राघव ॥११॥
गच्छेयं स्वशरीरेण देवतानां परां गतिम् । वसिष्ठं स समाहूय कथयामास चिन्तितम् ॥१२॥
अशक्यमिति चाप्युक्तो वसिष्ठेन महात्मना । प्रत्याख्यातो वसिष्ठेन स ययौ दक्षिणां दिशम् ॥१३॥
ततस्तत्कर्मसिद्ध्यर्थं पुत्रास्तस्य गतो नृपः । वासिष्ठा दीर्घतपसस्तपो यत्र हि तेपिरे ॥१४॥
त्रिशङ्कुस्तु महातेजाः शतं परमभास्वरम् । वसिष्ठपुत्रान्पदृशे तप्यमानान्मनस्विनः ॥१५॥
सोऽभिगम्य महात्मनाः सर्वानेव गुरोः सुतान् । अभिवाद्यानुपूर्व्येण ह्रिया किंचिदवाङ्मुखः ॥१६ ।
अब्रवीत्स महात्मनः सर्वानेव कृताञ्जलिः । शरणं वः प्रपन्नोऽहं शरण्याञ्शरणं गतः ॥१७॥

करके वे तपस्या करनेलगे । वहीं सत्यवादी और धर्मात्मा कई पुत्र इनके उत्पन्न हुए ॥ ३ ॥ उनके नाम ये हैं–हविष्यन्द, मधुस्यन्द और दृढ़नेत्र, ये सभी महारथ, सभी महावीर हुए । इस प्रकार एक हजार वर्ष बीतनेपर लोकपितामह ब्रह्मा ॥४॥ आये और महातपस्वी विश्वामित्रसे बोले–कौशिक, तुमने अपनी तपस्याके बलसे राजर्षियोंके लोक जीत लिये, अर्थात् राजर्षियोंको जो लोक प्राप्त होते हैं, वे तुम्हें प्राप्त होंगे ॥५॥ इस तपस्याके कारण आजसे हमलोग तुम्हें राजर्षि समझने लगे हैं । ऐसा कहकर महातेजस्वी ब्रह्मा देवताओंके साथ चलेगये ॥ ६ ॥ लोकोंके अधिपति ब्रह्मा देवलोक होते हुए ब्रह्मलोक गये । ब्रह्माकी बात सुननेसे विश्वामित्रका सिर लज्जाके कारण कुछ झुक गया ॥७॥ उनको बड़ा दुःख हुआ और वे क्रोधसे बोले-मैंने इतनी कठिन तपस्या की और ये मुझे राजर्षिही समझते हैं ॥ ८ ॥ देवता और ऋषि मुझे राजर्षिही समझते हैं । इससे मालूम पड़ता है कि जो तपस्या मैंने की है उसका फल ब्रह्मतेज नहीं है । ऐसा निश्चय करके महातपस्वी विश्वामित्र पुनः ॥ ९ ॥ इन्द्रियोंको वशमें करके धर्मपूर्वक तपस्या करनेलगे । इसी समय सत्यवादी और जितेन्द्रिय ॥ १० ॥ राजा त्रिशङ्कु इक्ष्वाकुकुलमें थे । राघव, उन्हें यज्ञ करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई ॥ ११ ॥ और इसी शरीरसे मैं देवताओंके लोकमें जाऊँ, यह इच्छा हुई । उन्होने वसिष्ठको बुलाकर अपनी सोची हुई बात कह सुनायी ॥ १२ ॥ महात्मा वसिष्ठने कहा कि यह असम्भव है । वसिष्ठसे जवाब पाकर राजा दक्षिण दिशाकी ओर गये ॥ १३ ॥ वे अपने मनोरथकी पूर्तिके लिए वसिष्ठके पुत्रोंके यहां गये । वहां दक्षिण दिशामें वसिष्ठके पुत्र लम्बी तपस्या कर रहे थे ॥ १४ ॥ महातेजस्वी त्रिशङ्कुने वसिष्ठके सौ पुत्रोंको देखा, जो तपस्या कर रहे थे ॥ १५ ॥ वे सब गुरु-पुत्रोंके यहां गये, क्रमानुसार सबको प्रणाम करके तथा लज्जाके कारण थोड़ा सिर झुकाकर ॥ १६ ॥ सभी महात्माओंसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रत्याख्यातो हि भद्रं वो वसिष्ठेन महात्मना । यष्टुकामो महायज्ञं तदनुज्ञातुमर्हथ ॥१८॥
गुरुपुत्रानहं सर्वान्नमस्कृत्य प्रसादये । शिरसाप्रणतो याचेब्राह्मणांस्तपसि स्थितान् ॥१९॥
ते मां भवन्तः सिद्ध्यर्थं याजयन्तु समाहिताः । सशरीरो यथाहं वै देवलोकमवाप्नुयाम् ॥२०॥
प्रत्याख्यातो वसिष्ठेन गतिमन्यां तपोधनाः । गुरुपुत्रानृतं सर्वान्नहं पश्यामि कांचन ॥२१॥
इक्ष्वाकूणां हि सर्वेषां पुरोधाः परमा गतिः । तस्मादनन्तरं सर्वे भवन्तो दैवतं मम ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः ५८

ततस्त्रिशङ्कोर्वचनं श्रुत्वा क्रोधसमन्वि[illegible]पुत्रशतं राम राजानमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
प्रत्याख्यातोऽसि दुर्मेधो गुरुणा सत्यवादि[illegible] मतिक्रम्य शाखान्तरमुपेयिवान् ॥ २ ॥
इक्ष्वाकूणां हि सर्वेषां पुरोधाः परमा गतिः । [illegible]मेतुं शक्यं वचनं सत्यवादिनः ॥ ३ ॥
अशक्यमिति सोवाच वसिष्ठो भगवानृषिः । तं वयं वै समाहर्तुं क्रतुं शक्ताः कथंचन ॥ ४ ॥
बालिशस्त्वं नरश्रेष्ठ गम्यतां स्वपुरं पुनः । याजने[illegible]युक्तस्त्रैलोक्यस्यापि पार्थिव ॥ ५ ॥
अवमानं कथं कर्तुं तस्य शक्ष्यामहे वयम् । तेषां तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधपर्याकुलाक्षरम् ॥ ६ ॥

हाथ जोड़कर बोले—मैं आपलोगोंकी शरण आया हूँ, क्योंकि आपलोग शरणमें आये हुओंकी रक्षा करनेवाले हैं ॥ १७ ॥ मैं सब गुरुपुत्रोंको प्रणाम कर प्रसन्न करना चाहता हूं । मैं सिर झुकाकर तपस्या करनेवाले ब्राह्मणोंसे यह मांगता हूं ॥१९॥ आपलोग सावधान होकर मेरी मनोरथ सिद्धिके लिए मुझे यज्ञ करावें, जिससे इसी शरीरसे मैं स्वर्गलोक जासकूं ॥ २० ॥ हे तपस्वियों, वसिष्ठने यज्ञ करानेसे नाहीं कर दी है । अब गुरुपुत्रोंको छोड़कर अपनी मनोरथ-सिद्धिका उपाय मैं दूसरा नहीं देखता ॥ २१ ॥ समस्त इक्ष्वाकुवंशियोंके पुरोहित वसिष्ठही हैं, उनके बाद आप ही सबलोग मेरे पूज्य हैं, देवता हैं ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५७ ॥

राजा त्रिशङ्कुके क्रोधयुक्त वचन सुनकर वसिष्ठके सौ पुत्रोंने कहा ॥१॥ मूर्ख, जब सत्यवादी गुरुने नाहीं करदी है, तब उनको छोड़कर उनका तिरस्कार कर तुम दूसरी जगह क्यों आये ॥ २ ॥ वसिष्ठही समस्त इक्ष्वाकुवंशियोंके पुरोहित हैं, वेही परम गुरु हैं, उन सत्यवादी के वचनोंका अतिक्रमण करना उचित नहीं ॥ ३ ॥ जिस यज्ञको भगवान् वसिष्ठने अशक्य बतलाया है, भला उसी यज्ञको करानेमें हमलोग कैसे समर्थ हो सकते हैं ? ॥४॥ राजन्, आप मूर्ख हैं, आप अपने घर लौट जांय । राजन्, जो वसिष्ठ त्रिलोकको यज्ञ करानेकी शक्ति रखते हैं ॥ ५ ॥ उनका अपमान (तुम्हें यज्ञ करवाकर) भला हमलोग कैसे कर सकते हैं ? क्रोधके कारण गुरुपुत्रोंके मुँहसे ठीक-ठीक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स राजा पुनरेवैतानिदं वचनमब्रवीत् । प्रत्याख्यातो भगवता गुरुपुत्रैस्तथैव हि ॥ ७ ॥
अन्यां गतिं गमिष्यामि स्वस्ति वोऽस्तु तपोधनाः। ऋषिपुत्रास्तु तच्छ्रुत्वा वाक्यं घोराभिसंहितम्॥ ८ ॥
शेपुः परमसंक्रुद्धाश्चण्डालत्वं गमिष्यसि । इत्युक्त्वा तं महात्मानो विविशुःस्वंस्वमाश्रमम्॥ ९ ॥
अथ रात्र्यां व्यतीतायां राजा चण्डालतां गतः । नीलवस्त्रधरो नीलः परुषो ध्वस्तमूर्धजः ॥१०॥
चित्यमाल्याङ्गरागश्च आयसाभरणोऽभवत् । तं दृष्ट्वा मन्त्रिणःसर्वे त्यज्य चण्डालरूपिणम्॥११॥
प्राद्रवन्साहिता राम पौरा येऽस्यानुगामिनः । एको हि राजा काकुत्स्थ जगाम परमात्मवान् ॥१२॥
दह्यमानो दिवारात्रं विश्वामित्रं तपोधनम् । विश्वामित्रस्तु तं दृष्ट्वा राजानं विफलीकृतम्॥१३॥
चण्डालरूपिणं राम मुनिः कारुण्यमागतः । कारुण्यात्स महातेजा वाक्यं परमधार्मिकः ॥१४॥
इदं जगाद भद्रं ते राजानं घोरदर्शनम् । किमागमनकार्यं ते राजपुत्र महाबल ॥१५॥
अयोध्याधिपते वीर शापाच्चण्डालतां गतः । अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य राजा चण्डालतां गतः ॥१६॥
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम्। प्रत्याख्यातोऽस्मि गुरुणा गुरुपुत्रैस्तथैव च ॥१७॥
अनवाप्यैव तं कामं मया प्राप्तो विपर्ययः । सशरीरो दिवं यायामिति मे सौम्यदर्शन ॥१८॥
मया चेष्टं क्रतुशतं तच्च नावाप्यते फलम् । अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन ॥१९॥
कृच्छ्रेष्वपि गतः सौम्य क्षत्रधर्मेण ते शपे । यज्ञैर्बहुविधैरिष्टं प्रजा धर्मेण पालिताः ॥२०॥

अक्षर नहीं निकलते थे । राजाने उनके वचन सुने ॥ ६ ॥ राजाने पुनः गुरुपुत्रोंसे कहा–मुझे गुरुने नाहीं की और गुरु-पुत्रोंने भी ॥७॥ अब मैं दूसरा उपाय करने जाता हूं. तपस्वियों, आपलोग खुश रहें । भयानक अभिप्रायवाले राजाके वचन सुनकर ऋषि-पुत्रोंने ॥ ८ ॥ बड़े क्रोधसे राजाको शाप दिया, तुम चाण्डाल होजाओ–ऐसा शाप देकर वे सब महात्मा अपने-अपने आश्रमोंमें गये ॥ ७ ॥

अनन्तर रातके बीतनेपर राजा त्रिशङ्कु चाण्डाल होगये, उनका वस्त्र काला होगया, वे स्वयं काले होगये, शरीर रूखा होगया, माथेके बाल छोटे-छोटे होगये ॥ १० ॥ चिताकी भस्म और माला उनके शरीरकी शोभा बढ़ाने लगीं, उनके गहने लोहेके होगये । राजाका यह चाण्डाल रूप देखकर मन्त्री उन्हें छोड़कर ॥ ११ ॥ भाग गये, नगरवासी तथा जो राजाके अनुगामी थे, वे सब भाग गये । रामचन्द्र, परमजितेन्द्रिय एक राजाही नगरमें रहगये ॥ १२ ॥ वे दिनरात जलने लगे । वे तपस्वी विश्वामित्रके यहाँ गये । विश्वामित्रको, भग्नमनोरथ ॥ १३ ॥ और चाण्डाल रूपमें राजाको देखकर, दया आयी । परमतेजस्वी धार्मिक विश्वामित्र ॥ १४ ॥ चाण्डाल रूपवाले राजासे बोले–राजपुत्र, तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है ? ॥ १५ ॥ वीर अयोध्याके राजा, क्या तुम शापसे चाण्डाल हुए हो ? विश्वामित्रकी बात सुनकर शापसे चाण्डाल हुए राजा ॥ १६ ॥ हाथ जोड़कर बोले, राजाने विश्वामित्रके वचनोंका अभिप्राय समझा था । उन्होंने कहा–गुरुने तथा गुरुपुत्रोंने मुझे नाहीं करदी है ॥ १७ ॥ मेरा मनोरथ तो सिद्ध नहीं हुआ, किन्तु उसके उलटा फल हुआ । हे सौम्यदर्शन, इसी शरीरसे स्वर्ग जानेकी मेरी इच्छा थी ॥ १८ ॥ मैंने सौ यज्ञ किये पर मेरा मनोरथ सिद्ध न हुआ, मैं इसी शरीरसे स्वर्ग न जासका । मैं झूठ नहीं बोलता । न पहले बोला है और न आगे बोलूंगा ॥ १९ ॥ सौम्य, क्षात्रधर्मकी शपथ करके, मैं कहता हूं कि बड़े-बड़े कष्ट-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुरवश्च महात्मानः शीलवृत्तेन तोषिताः । धर्मे प्रयतमानस्य यज्ञं चाहर्तुमिच्छतः ॥२१॥
परितोषं न गच्छन्ति गुरवो मुनिपुंगव । दैवमेव परं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम् ॥२२॥
दैवेनाक्रम्यते सर्वं दैवं हि परमा गतिः । तस्य मे परमार्तस्य प्रसादमभिकाङ्क्षतः ।
कर्तुमर्हसि भद्रं ते दैवोपहतकर्मणः ॥ २३ ॥
नान्यां गतिं गमिष्यामि नान्यच्छरणमस्ति मे । दैवं पुरुषकारेण निवर्तयितुमर्हसि ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डेऽष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९

उक्तवाक्यं तु राजानं कृपया कुशिकात्मजः । अब्रवीन्मधुरं वाक्यं साक्षाच्चण्डालतां गतम् ॥ १ ॥
इक्ष्वाकोः स्वागतं वत्स जानामि त्वां सुधार्मिक । शरणं ते प्रदास्यामि मा भैषीर्नृपपुंगव ॥ २ ॥
अहमामन्त्रये सर्वान्महर्षीन्पुण्यकर्मणः । यज्ञसाह्यकरान्राजंस्ततो यक्ष्यसि निर्वृतः ॥ ३ ॥
गुरुशापकृतं रूपं यदिदं त्वयि वर्तते । अनेन सह रूपेण सशरीरो गमिष्यसि ॥ ४ ॥
हस्तप्राप्तमहं मन्ये स्वर्गं तव नराधिप । यस्त्वं कौशिकमागम्य शरण्यं शरणागतः ॥ ५ ॥
एवमुक्त्वा महातेजाः पुत्रान्परमधार्मिकान् । व्यादिदेश महाप्राज्ञान्यज्ञसंभारकारणात् ॥ ६ ॥

में भी मैंने सत्य नहीं छोड़ा है, मैंने अनेक यज्ञ किये हैं और धर्मपूर्वक प्रजाका पालन किया है॥२०॥ महात्मा गुरुओंको भी अपने सद्गुणों और आचरणोंसे सन्तुष्ट किया है। इस प्रकार धर्ममें रहकर मैं यज्ञ करना चाहता हूं ॥ २१ ॥ मुनिश्रेष्ठ, पर मेरे गुरु मुझपर प्रसन्न नहीं होते। ऐसी दशामें मैं भाग्यको ही प्रधान समझता हूं और पुरुषार्थको निरर्थक ॥ २२ । भाग्यहीसे मनुष्य सञ्चालित होता है, वही प्रधान है। इस प्रकार मैं बड़ा दुःखी हूं, आपने मेरे पुरुषार्थको नष्ट कर दिया है, मैं आपकी कृपा चाहता हूं, आप मुझपर कृपा करें ॥ २३ ॥ मैं दूसरी जगह न जाऊंगा, मेरी शरण और कोई नहीं है, महाराज पुरुषार्थसे भाग्यको हटानेका उपाय कीजिए ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका अट्ठावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५८ ॥

अपना वृत्तान्त कहकर चाण्डाल-रूपधारी राजाके चुप होजानेपर कुशिकपुत्र विश्वामित्र कृपा करके स्वयं ये मधुर वचन बोले ॥ १३ ॥ राजन्, आपका स्वागत, आप धर्मात्मा हैं, यह मैं जानता हूं। मैं आपकी रक्षा करूँगा। हे नृपश्रेष्ठ, आप भयभीत न हों ॥ २ ॥ मैं पवित्र कर्म करनेवाले सब महर्षियोंको बुलाता हूं। वे यज्ञमें सहायता देंगे और आप निश्चिन्त होकर यज्ञ कर सकेंगे ॥३॥ गुरुके शापसे इस समय आपका जो रूप है उसी रूप और शरीरसे आप स्वर्ग जा सकेंगे ॥ ४ ॥ राजन्, मैं समझता हूँ कि स्वर्ग आपके हाथमें रक्खा हुआ है, क्योंकि शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले कौशिककी शरण आप आये हैं ॥ ५ ॥ ऐसा कहकर, महातेजस्वी विश्वामित्रने अपने परमधार्मिक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्वाञ्छिष्यान्समाहूय वाक्यमेतदुवाच ह । सर्वानृषीन्सवासिष्ठानानयध्वं ममाज्ञया ॥ ७ ॥
सशिष्यान्सुहृदश्चैव सर्त्विजः सुबहुश्रुतान् । यदन्यो वचनं ब्रूयान्मद्वाक्यबलचोदितः ॥ ८ ॥
तत्सर्वमखिलेनोक्तं ममाख्येयमनादृतम् । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दिशो जग्मुस्तदाज्ञया ॥ ९ ॥
आजग्मुरथ देशेभ्यः सर्वेभ्यो ब्रह्मवादिनः । ते च शिष्याः समागम्य मुनिं ज्वलिततेजसम् ॥१०॥
ऊचुश्च वचनं सर्वं सर्वेषां ब्रह्मवादिनाम् । श्रुत्वा ते वचनं सर्वे समायान्ति द्विजातयः ॥११॥
सर्वदेशेषु चागच्छन्वर्जयित्वा महोदयम् । वासिष्ठं यच्छतं सर्वं क्रोधपर्याकुलाक्षरम् ॥१२॥
यथाह वचनं सर्वं शृणु त्वं मुनिपुंगव । क्षत्रियो याजको यस्य चण्डालस्य विशेषतः ॥१३॥
कथं सदासि भोक्तारो हविस्तस्य सुरर्षयः । ब्राह्मणा वा महात्मानो भुक्त्वा चाण्डालभोजनम्॥१४॥
कथं स्वर्गं गमिष्यन्ति विश्वामित्रेण पालिताः । एतद्वचननैष्ठुर्यमचुः संरक्तलोचनाः ॥१५॥
वासिष्ठा मुनिशार्दूल सर्वे सह महोदयाः । तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सर्वेषां मुनिपुंगवः ॥१६॥
क्रोधसंरक्तनयनः सरोषमिदमब्रवीत् । यददूषयन्त्यदुष्टं मां तप उग्रं समास्थितम् ॥१७॥
भस्मीभूता दुरात्मानो भविष्यन्ति न संशयः । अद्य ते कालपाशेन नीता वैवस्वतक्षयम् ॥१८॥
सप्तजातिशतान्येव मृतपाः संभवन्तु ते । श्वमांसनियताहारा मुष्टिका नाम निर्घृणाः ॥१९॥

और बुद्धिमान पुत्रोंको यज्ञकी सामग्री एकत्र करनेकी आज्ञा दी ॥ ६ ॥ उन्होंने अपने भृत्योंसे कहा कि मेरी आज्ञासे सब ऋषियों तथा वशिष्ठ-पुत्रोंको यहाँ लेआओ ॥ ७ ॥ वे बहुश्रुत मेरी आज्ञासे अपने मित्रों और ऋत्विजोंके साथ आवें, जो लोग मेरे द्वारा आहूत होनेपर, मेरे विरुद्ध कुछ कहें ॥ ८ ॥ उनका वह सब कहा—चाहे अनादर केही वाक्य क्यों न हों—आकर हमसे कहो विश्वामित्रके वचन सुनकर, उनकी आज्ञासे, वे सब भिन्न-भिन्न दिशाओंमें गये ॥ ९ ॥ सब देश-से ब्रह्मवादी मुनि आने लगे । वे शिष्य भी तेजस्वी मुनिके पास लौट आये ॥१०॥ उन सबने समस्त ब्रह्मवादी मुनियोंके वचन विश्वामित्रसे कहे । उनलोगोंने कहा—आपकी आज्ञा सुनकर सभी द्विज आरहे हैं ॥ ११ ॥ जिन स्थानोंमें आपने जानेको कहा था, उन सभी स्थानोंमें हमलोग गये, वे सभी आरहे हैं, केवल महोदय नामके ऋषि नहीं आते । वसिष्ठके पुत्र यज्ञ कर रहे हैं । उनलोगोंने क्रोध पूर्वक ॥१२॥ जो वचन कहे हैं, हे मुनिश्रेष्ठ, वे सब भी आप सुनें—जिस यज्ञका करानेवाला क्षत्रिय है और यजमान चाण्डाल है ॥ १३ ॥ उस यज्ञकी हवि, देवता और ऋषि कैसे ग्रहण करेंगे ? ब्राह्मण और महात्मागण चाण्डालका अन्न खाकर ॥ १४ ॥ विश्वामित्रके द्वारा सहायता पानेपर भी वे स्वर्गको कैसे जासकेंगे ?—क्रोधसे आँखें लाल कर, उनलोगोंने ऐसे क्रूर वचन कहे हैं ॥१५॥ हे मुनि श्रेष्ठ, महोदय ऋषिने तथा वसिष्ठके पुत्रोंने ये बातें कही हैं । उन सबके ये वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ ॥ १६ ॥ विश्वामित्रकी आँखें कोधसे लाल होगयीं । उन्होंने कहा—कठोर तपस्या करने-वाले और दोषहीन मुझको जो दोष लगाते हैं ॥ १७ ॥ वे दुरात्मा भस्म होजायँगे, इसमें सन्देह नहीं । वे आजही कालपाशसे यमराजके घर जायँगे ॥ १८ ॥ सौ जन्मों तक वे मुर्दा खानेवाले होंगे । वे मुष्टिक (इस नामकी कोई नीच जाति) जातिके होंगे और कुत्तेके माँस खानेमें भी उन्हें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विकृताश्च विरूपाश्च लोकाननुचरन्त्विमान् । महोदयश्च दुर्बुद्धिर्मामदृष्यं ह्यदूषयत् ॥२०॥
दूषितः सर्वलोकेषु निषादत्वं गमिष्यति । प्राणातिपातनिरतो निरनुक्रोशतां गतः ॥२१॥
दीर्घकालं मम क्रोधाद्दुर्गतिं वर्तयिष्यति । एतावदुक्त्वा वचनं विश्वामित्रो महातपाः ।
विरराम महातेजा ऋषिमध्ये महामुनिः ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्ड एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ६०

तपोबलहताञ्ज्ञात्वा वासिष्ठान्समहोदयान् । ऋषिमध्ये महातेजा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥ १ ॥
अयमिक्ष्वाकुदायादस्त्रिशङ्कुरिति विश्रुतः । धार्मिष्ठश्च वदान्यश्च मां चैव शरणं गतः ॥ २ ॥
स्वेनानेन शरीरेण देवलोकजिगीषया । यथायं स्वशरीरेण देवलोकं गमिष्यति ॥ ३ ॥
तथा प्रवर्त्यतां यज्ञो भवद्भिश्च मया सह । विश्वामित्रवचः श्रुत्वा सर्व एव महर्षयः ॥ ४ ॥
ऊचुः समेताः सहसा धर्मज्ञो धर्मसंहितम् । अयं कुशिकदायादो मुनिः परमकोपनः ॥ ५ ॥
यदाह वचनं सम्यगेतत्कार्यं न संशयः । अग्निकल्पो हि भगवाञ्शापं दास्यति रोषतः॥ ६ ॥
तस्मात्प्रवर्त्यतां यज्ञः शरीरो यथा दिवि । गच्छेदिक्ष्वाकुदायादो विश्वामित्रस्य तेजसा॥ ७ ॥
ततः प्रवर्त्यतां यज्ञः सर्वे समधितिष्ठत । एवमुक्त्वा महर्षयः संजहुस्ताः क्रियास्तदा ॥ ८ ॥

घृणा न होगी ॥ १६ ॥ वे विकृत और विरूप होकर इस लोकमें घूमेंगे । मूर्ख महादेवने भी मुझ दोषहीनको दोष लगाया है ॥ २० ॥ वह स्वयं सबसे दूषित होकर निषाद होजायगा और निर्दय होकर प्राणियोंकी हिंसा किया करेगा ॥ २१ ॥ मेरे क्रोधके कारण बहुत दिनों तक वह ऐसा दुर्दशा भोगेगा । ऋषियोंके बीचमें महातपस्वी, महातेजस्वी और महामुनि विश्वामित्र ऐसे वचन कहकर चुप होगये ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका उनसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५९ ॥

——:※※:——

विश्वामित्रने अपनी तपस्याके प्रभावसे जानलिया कि वसिष्ठके पुत्र और महादेव तपोभ्रष्ट होगये, उनका तपस्याका प्रभाव जाता रहा, अनन्तर वे ऋषियोंसे बोले ॥ १ ॥ ये इक्ष्वाकुवंशी हैं और त्रिशंकु नामसे प्रसिद्ध हैं, ये धर्मात्मा हैं, दाता हैं और मेरी शरण आये हैं, ॥ २ ॥ ये अपने इसी शरीरसे स्वर्ग जाना चाहते हैं । जिस प्रकार ये अपने इसी शरीरसे देवलोकमें जांय ॥३॥ वैसा यज्ञ आपलोग मेरे साथ मिलकर इनको कराइए । विश्वामित्रके ये वचन सुनकर धर्मरहस्य जाननेवाले वे सब महर्षि ॥ ४ ॥ इकट्ठा धर्मयुक्त वचन आपसमें बोले । यह कुशिकका वंशज बड़ा क्रोधी है ॥५॥ जो इसने कहा है, उसका पालन सन्देह छोड़कर करना चाहिए । नहीं तो अग्निके समान तेजस्वी यह अवश्यही क्रोध करके शाप देगा. ॥ ६ ॥ इस कारण यज्ञ प्रारम्भ करो, जिससे यह इक्ष्वाकुवंशी राजा इसी शरीरसे, विश्वामित्रके तेजसे, स्वर्गमें जांय ॥ ७ ॥ यज्ञ प्रारम्भ करें, आप सब लोग अपना-अपना काम प्रारम्भ करें—ऐसा एक साथही कहकर महर्षियोंने यज्ञकी अपनी-अपनी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

याजकश्च महातेजा विश्वामित्रोऽभवत्क्रतौ । ऋत्विजश्चानुपूर्व्येण मन्त्रवन्मन्त्रकोविदाः ॥ ९ ॥
चक्रुः सर्वाणि कर्माणि यथाकल्पं यथाविधि । ततः कालेन महता विश्वामित्रो महातपाः ॥१०॥
चकारावाहनं तत्र भागार्थं सर्वदेवताः । नाभ्यागमंस्तदा तत्र भागार्थं सर्वदेवताः ॥११॥
ततः कोपसमाविष्टो विश्वामित्रो महामुनिः । स्रुवमुद्यम्य सक्रोधस्त्रिशङ्कुमिदमब्रवीत् ॥१२॥
पश्य मे तपसो वीर्यं स्वार्जितस्य नरेश्वर । एष त्वां स्वशरीरेण नयामि स्वर्गमोजसा ॥१३॥
दुष्प्रापं स्वशरीरेण स्वर्गं गच्छ नरेश्वर । स्वार्जितं किंचिदप्यस्ति मयाहि तपसः फलम् ॥१४॥
राजंस्त्वं तेजसा यस्य सशरीरो दिवं व्रज । उक्तवाक्ये मुनौ तस्मिन्सशरीरो नरेश्वरः ॥१५॥
दिवं जगाम काकुत्स्थ मुनीनां पश्यतां तदा । स्वर्गलोकं गतं दृष्ट्वा त्रिशङ्कुं पाकशासनः ॥१६॥
सह सर्वैः सुरगणैरिदं वचनमब्रवीत् । त्रिशङ्को गच्छ भूयस्त्वं नासि स्वर्गकृतालयः ॥१७॥
गुरुशापहतो मूढ पत भूमिमवाक्शिराः । एवमुक्तो महेन्द्रेण त्रिशङ्कुरपतत्पुनः ॥१८॥
विक्रोशमानस्त्राहीति विश्वामित्रं तपोधनम् । तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य क्रोशमानस्य कौशिकः ॥१९॥
रोषमाहारयत्तीव्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् । ऋषिमध्ये स तेजस्वी प्रजापतिरिवापरः ॥२०॥
सृजन्दक्षिणमार्गस्थान्सप्तर्षीनपरान्पुनः । नक्षत्रवंशमपरमसृजत्क्रोधमूर्च्छितः ॥२१॥
दक्षिणां दिशमास्थाय ऋषिमध्ये महायशाः । सृष्ट्वा नक्षत्रवंशं च क्रोधेन कलुषीकृतः ॥२२॥

क्रियाएं प्रारम्भ कीं ॥ ८ ॥ उस यज्ञके करानेवाले महातेजस्वी विस्वामित्र हुए, तथा क्रमशः मन्त्र जाननेवाले और मन्त्रके रहस्य जाननेवाले ऋषि हुए ॥ ९ ॥ शास्त्र और विधानके अनुसार उनलोगोंने सब क्रियाएँ कीं । इस प्रकार बहुत समय बीतनेपर महातपस्वी विश्वामित्रने ॥ १० ॥ अपना-अपना यज्ञ भाग लेनेके लिए सब देवताओंका आवाहन किया, पर सब देवता याग लेनेके लिए वहां नहीं आये ॥ ११ ॥ इससे महामुनि विश्वामित्रको बड़ा क्रोध आया और उन्होंने क्रोध-पूर्वक हाथमें स्रुवा (हवन करनेका पात्र) उठाकर त्रिशङ्कुसे कहा ॥ १२ ॥ राजन् स्वयं अर्जित की हुई मेरी तपस्याके प्रभाव देखो, बलपूर्वक इसी शरीरसे मैं तुम्हें स्वर्ग भेजता हूँ ॥ १३ ॥ इसी शरीरसे स्वर्ग जाना कठिन है, तथापि मैंने आज तक अपने लिए जो कुछ तपस्याका फल अर्जित किया है ॥ १४ ॥ उस तपस्याके तेजसे तुम इसी शरीरसे स्वर्ग जाओ । विश्वामित्रके ऐसा कहनेपर राजा त्रिशङ्कु इसी शरीरसे ॥ १५ ॥ स्वर्ग गये । रामचन्द्र, मुनियोंने भी यह दृश्य देखा था । त्रिशङ्कु स्वर्ग लोकमें आया है यह देखकर इन्द्रने ॥ १६ ॥ समस्त देवताओं तथा गणोंके साथ त्रिशङ्कुसे कहा—तुम लौट जाओ, तुमने स्वर्गमें अपने लिए स्थान नहीं बनाया है ॥ १७ ॥ मूर्ख, तुमपर गुरुका शाप लगा है, यहांसे शीघ्रही नीचे सिर करके गिरजा । इन्द्रके ऐसा कहनेपर त्रिशङ्कु वैसाही स्वर्गसे गिरा ॥१८॥ वह तपोधन विश्वामित्रको अपनी रक्षाके लिए "त्राहि त्राहि" कहकर पुकारने लगा । विश्वामित्रने त्रिशङ्कुके वे करुण वचन सुने ॥१९॥ उनको क्रोध आया, उन्होंने त्रिशङ्कुको वहीं ठहरनेके लिए कहा । पुनः ऋषियोंके सामनेही उस तेजस्वीने दूसरे ब्रह्माके समान ॥२०॥ दक्षिण दिशामें नये सप्तर्षियोंकी सृष्टि की, क्रोधसे प्रदीप्त होकर उन्होंने नये नक्षत्रोंकी भी सृष्टिकी ॥२१॥ विश्वामित्रका चित्त क्रोधसे व्याकुल होगया था, मुनियोंके साथ दक्षिण दिशामें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्यमिन्द्रं करिष्यामि लोको वा स्यादनिन्द्रकः । दैवतान्यपि स क्रोधात्स्रष्टुं समुपचक्रमे ॥२३॥
ततः परमसंभ्रान्ताः सर्षिसङ्घाः सुरासुराः । विश्वामित्रं महात्मानमूचुः सानुनयं वचः ॥२४॥
अयं राजा महाभाग गुरुशापपरिक्षतः । सशरीरो दिवं यातुं नार्हत्येव तपोधन ॥२५॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा देवानां मुनिपुंगवः । अब्रवीत्सुमहद्वाक्यं कौशिकः सर्वदेवताः ॥२६॥
सशरीरस्य भद्रं वस्त्रिशङ्कोरस्य भूपतेः । आरोहणं प्रतिज्ञातं नानृतं कर्तुमुत्सहे ॥२७॥
स्वर्गोऽस्तु सशरीरस्य त्रिशङ्कोरस्य शाश्वतः । नक्षत्राणि च सर्वाणि मामकानि ध्रुवाण्यथ ॥२८॥
यावल्लोका धरिष्यन्ति तिष्ठन्त्वेतानि सर्वशः । यत्कृतानि सुराः सर्वे तदनुज्ञातुमर्हथ ॥२९॥
एवमुक्ताः सुराः सर्वे प्रत्युचुर्मुनिपुंगवम् । एवं भवतु भद्रं ते तिष्ठन्त्वेतानि सर्वशः ॥३०॥
गगनं तान्यनेकानि वैश्वानरपथाद्बहिः । नक्षत्राणि मुनिश्रेष्ठ तेषु ज्योतिःषु जाज्वलन्॥३१॥
अवाक्शिरास्त्रिशङ्कुश्च तिष्ठत्वमरसंनिभः । अनुयास्यन्ति चैतानि ज्योतींषि नृपसत्तमम् ॥३२॥
कृतार्थं कीर्तिमन्तं च स्वर्गलोकगतं यथा । विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा सर्वदेवैरभिष्टुतः ॥३३॥
ऋषिमध्ये महातेजा वाढमित्येव देवताः । ततो देवा महात्मानो ऋषयश्च तपोधनाः ।
जग्मुर्यथागतं सर्वे यज्ञस्यान्ते नरोत्तम ॥३४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे षष्ठितमः सर्गः ॥ ६० ॥

रहकर उन्होंने नये नक्षत्रोंकी सृष्टि की ॥२२॥ पुनः उन्होंने कहा मैं दूसरा इन्द्र बनाऊँगा (यदि न बनासकूंतो) मेरा बनाया स्वर्ग बिना इन्द्रकाही होगा । इस प्रकार वे देवताओंकी भी सृष्टि करने लगे ॥ २३ ॥ इससे देवता, ऋषि आदि बहुत घबड़ाये, वे सब विश्वामित्रके यहां जाकर अनुनय-पूर्वक बोले ॥ २४ ॥ महाभाग, इस राजाको गुरुका शाप लगा है, यह इसी शरीरसे स्वर्गमें नहीं जासकता ॥ २५ ॥ देवताओंके वचन सुनकर तपोधन विश्वामित्रने सब देवताओंसे कहा ॥ २६ ॥ आपका कल्याण हो, इसी शरीरसे त्रिशङ्कुको स्वर्ग भेजनेकी मैं प्रतिज्ञा करचुका हूँ । मैं अपनी प्रतिज्ञा झूठी करना नहीं चाहता ॥ २७ ॥ त्रिशङ्कु इसी शरीरसे सदाके लिए स्वर्गवासी हों । जो नक्षत्र मैंने बनाये हैं, वे सदा वर्तमान रहें ॥ २८ ॥ जब तक यह सृष्टि रहे, तब तक मेरी यह रचना संसारमें रहे । देवगण, आपलोग इसकी आज्ञा दें ॥ २९ ॥ देवताओंने विश्वामित्रसे कहा कि जैसा आप कहते हैं, वैसाही हो । यह सब रहे ॥ ३० ॥ वैश्वानर नामक नक्षत्र मण्डलके बाहर ये सब नक्षत्र रहें और उनमें प्रकाशित होकर त्रिशङ्कु रहें ॥ ३१ ॥ त्रिशङ्कु सिर नीचा करके रहें । ये देवता सभमें जायँगे । ये सब नक्षत्र इनका अनुगमन करेंगे ॥३२॥ ये राजा त्रिशङ्कु इसी शरीरसे स्वर्ग पाकर कृतार्थ होगये और इनकी कीर्ति भी बढ़ी । धर्मात्मा विश्वामित्रकी सब देवताओंने स्तुति की ॥ ३३ ॥ ऋषियोंकी सभामें महातेजस्वी विश्वामित्रने देवताओंकी स्तुति स्वीकार की । अनन्तर यज्ञकी समाप्तिमें महात्मा और तपस्वी ऋषि अपने स्थानोंको गये ॥ ३४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका साठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६० ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकषष्ठितमः सर्गः ६१

विश्वामित्रो महातेजाः प्रस्थितान्वीक्ष्य तानृषीन्। अब्रवीन्नरशार्दूल सर्वांस्तान्वनवासिनः ॥ १ ॥
महाविघ्नः प्रवृत्तोऽयं दक्षिणामास्थितो दिशम्। दिशमन्यां प्रपत्स्यामस्तत्र तप्स्यामहे तपः ॥ २ ॥
पश्चिमायां विशालायां पुष्करेषु महात्मनः। सुखं तपश्चरिष्यामः सुखं ताद्धि तपोवनम् ॥ ३ ॥
एवमुक्त्वा महातेजाः पुष्करेषु महामुनिः। तप उग्रं दुराधर्षं तेपे मूलफलाशनः ॥ ४ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु अयोध्याधिपतिर्महान्। अम्बरीष इति ख्यातो यष्टुं समुपचक्रमे ॥ ५ ॥
तस्य वै यजमानस्य पशुमिन्द्रो जहार ह। प्रनष्टे तु पशौ विप्रो राजानमिदमब्रवीत् ॥ ६ ॥
पशुरभ्याहृतो राजन्प्रनष्टस्तव दुर्नयात्। अरक्षितारं राजानं घ्नन्ति दोषा नरेश्वर ॥ ७ ॥
प्रायश्चित्तं महद्ध्येतन्नरं वा पुरुषर्षभ। आनयस्व पशुं शीघ्रं यावत्कर्म प्रवर्तते ॥ ८ ॥
उपाध्यायवचः श्रुत्वा स राजा पुरुषर्षभः। अन्वियेष महाबुद्धिः पशुं गोभिः सहस्रशः ॥ ९ ॥
देशाञ्जनपदांस्तांस्तान्नगराणि वनानि च। आश्रमाणि च पुण्यानि मार्गमाणो महीपतिः॥१०॥
स पुत्रसहितं तात सभार्यं रघुनन्दन। भृगुतुङ्गे समासीनमृचीकं संददर्श ह ॥११॥
तमुवाच महातेजाः प्रणम्याभिप्रसाद्य च। महर्षिं तपसा दीप्तं राजर्षिरमितप्रभः ॥१२॥
पृष्ट्वा सर्वत्र कुशलमृचीकं तामिदं वचः। गवां शतसहस्रेण विक्रीणीषे सुतं यदि ॥१३॥
पशोरर्थे महाभाग कृतकृत्योऽस्मि भार्गव। सर्वे परिगता देशा यज्ञियं न लभे पशुम् ॥१४॥

हे रामचन्द्र, सब ऋषि चले गये, यह देखकर महातेजस्वी विश्वामित्रने वनवासियों (अपने साथियों) से कहा ॥१॥ यहां दक्षिण दिशामें रहनेसे मेरे यज्ञमें विघ्न होता है, इस कारण मैं पश्चिम दिशामें जाता हूं, वहीं तपस्या करूंगा ॥२॥ पश्चिम दिशामें बड़े-बड़े तपोवन हैं, मैं पुष्कर क्षेत्रमें जाता हूं, वहीं तपस्या करूंगा, उस वनमें सब बातोंका सुपास है ॥ ३ ॥ उन वनवासियोंसे ऐसा कहकर महामुनि महातेजस्वी विश्वामित्र पुष्कर क्षेत्र गये और वे वहां फल-मूल खाकर, बड़ीही कठिन तपस्या करने लगे ॥ ४ ॥ इसी समय अयोध्याके महान् राजा अम्बरीषने यज्ञ करना प्रारम्भ किया ॥ ५ ॥ यज्ञ करनेवाले उन राजाके पशुको (यज्ञीयपशु) इन्द्र चुरा लेगया, पशुके नष्ट होने-पर पुरोहितने राजासे कहा ॥६॥ राजन्, तुम्हारीही दुर्नीति (भूल) से पशुको किसीने चुरालिया, नरेश्वर, रक्षा न करनेवाले राजाको पाप लगता है ॥ ७ ॥ यह पशुका चोरी जाना बहुत बड़े पाप का हेतु है, यज्ञ प्रारम्भ होनेके पहलेही आप पशु लेआवें, यदि वह पशु न मिल सके तो किसी मनुष्यकोही पशु रूपमें लेआवें, ॥ ८ ॥ पुरोहितके वचन सुनकर पुरुषश्रेष्ठ राजाने पशु ढूढना प्रारम्भ किया और उसके बदलेमें हजार गौ देनेकी घोषणा की ॥ ७ ॥ देशों, प्रान्तों, नगरों, वनों और पवित्र आश्रमोंमें ढूढते हुए ॥१०॥ राजाने भृगु-शिखरपर पुत्र और स्त्रीके साथ निवास करने वाले ऋचीकको देखा ॥११॥ प्रणाम और स्तुति करके महातेजस्वी राजाने तपस्यासे प्रदीप्त उन ऋषिसे ॥ १२ ॥ कुशलसंवाद पूछा और बोले, सौ हजार गौओंके बदलेमें क्या आप अपना एक पुत्र बेचेंगे ॥ १३ ॥ यदि आप बेचें तो पशुके लिए मेरी चिन्ता जाती रहे, मैं कृतकृत्य होजाऊं, मैं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दातुमर्हसि मूल्येन सुतमेकमितो मम । एवमुक्तो महातेजा ऋचीकस्त्वब्रवीद्वचः ॥१५॥
नाहं ज्येष्ठं नरश्रेष्ठ विक्रीणीयां कथंचन । ऋचीकस्य वचः श्रुत्वा तेषां माता महात्मनाम्॥१६॥
उवाच नरशार्दूलमम्बरीषमिदं वचः । अविक्रेयं सुत ज्येष्ठ भगवानाह भार्गवः ॥१७॥
ममापि दीयतं विद्धि कनिष्ठं शुनकं प्रभो । तस्मात्कनीयसं पुत्रं न दास्ये तव पार्थिव ॥१८॥
प्रायेण हि नरश्रेष्ठ ज्येष्ठाः पितृषु वल्लभाः । मातृणां च कनीयांसस्तस्माद्रक्ष्ये कनीयसम् ॥१९॥
उक्तवाक्ये मुनौ तस्मिन्मुनिपत्न्यां तथैव च । शुनःशेपः स्वयं राम मध्यमो वाक्यमब्रवीत् ॥२०॥
पिता ज्येष्ठमविक्रेयं माता चाह कनीयसम् । विक्रेय मध्यमं मन्ये राजपुत्र नयस्व माम् ॥२१॥
अथ राजा महाबाहो वाक्यान्ते ब्रह्मवादिनः । हिरण्यस्य सुवर्णस्य कोटिभी रत्नराशिभिः॥२२॥
गवां शतसहस्रेण शुनःशेपं नरेश्वरः । गृहीत्वा परमप्रीतो जगाम रघुनन्दन ॥२३॥
अम्बरीषस्तु राजर्षी रथमारोप्य सत्वरः । शुनःशेपं महातेजा जगामाशु महायशाः ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२

शुनःशेपं नरश्रेष्ठ गृहीत्वा तु महायशाः । व्यश्रमत्पुष्करे राजा मध्याह्ने रघुनन्दन ॥ १ ॥
तस्य विश्राममाणस्य शुनःशेपो महायशाः । पुष्करं ज्येष्ठमागम्य विश्वामित्रं ददर्श ह ॥ २ ॥

सब देशोंमें घूम आया पर यज्ञके लिए पशु न मिला ॥ १४ ॥ मूल्य लेकर कृपापूर्वक एक पुत्र आप मुझे दें । राजाके ऐसा कहनेपर ऋचीकने कहा ॥ १५ ॥ मैं अपने जेठे पुत्रको किसी प्रकार भी न बेचूंगा, ऋचीककी बात सुनकर उन पुत्रोंकी माताने ॥ १६ ॥ नरश्रेष्ठ राजा अम्बरीषसे कहा– भृगुवंशी ऋचीकने अपने ज्येष्ठ पुत्रको न बेंचनेकी बात कही है ॥ १७ ॥ छोटा लड़का शुनक मुझे अत्यन्त प्रिय है, राजन्, वह छोटा लड़का मैं आपको न दूंगी ॥ १८ ॥ देखा जाता है कि प्रायः बड़े लड़के पिताको प्रिय होते हैं और माताको छोटे, इस कारण मैं छोटे लड़केकी रक्षा करना चाहती हूँ ॥ १९ ॥ मुनि और मुनिपत्नीके कह चुकनेपर मझले शुनःशेपने स्वयं कहा ॥ २० ॥ पिता बड़ेको बेचना नहीं चाहते और माता छोटेको, अब मझलाही पुत्र बेचने योग्य हुआ, राजपुत्र, हमें लेचलिए। ॥ २१ ॥ ब्रह्मवादी शुनःशेपके कह चुकनेपर एक करोड़ सोना रत्नोंकी ढेरी ॥ २२ ॥ और सौ हजार गौओंके बदलेमें शुनःशेपको लेकर राजा बड़े प्रसन्न हुए और वे चले ॥ २३ ॥ महतेजस्वी और यशस्वी राजा अम्बरीष शुनःशेपको रथपर बैठाकर शीघ्र चले ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका एकसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६१ ॥

रामचन्द्र, शुनःशेपको लेकर जाते हुए महायशस्वी राजा अम्बरीषने मध्यान्हके समय पुष्कर क्षेत्रमें विश्राम किया ॥ १ ॥ विश्राम करते हुए राजाको छोड़कर शुनःशेपने पुष्कर क्षेत्रमें विचरण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तप्यन्तमृषिभिः सार्धं मातुलं परमातुरः । विषण्णवदनो दीनस्तृष्णया च श्रमेण च ॥ ३ ॥
पपाताङ्के मुने राम वाक्यं चेदमुवाच ह । न मेऽस्ति माता न पिता ज्ञातयो बान्धवाः कुतः॥४॥
त्रातुमर्हसि मां सौम्य धर्मेण मुनिपुंगव । त्राता त्वं हि नरश्रेष्ठ सर्वेषां त्वं हि भावनः॥ ५ ॥
राजा च कृतकार्यः स्यादहं दीर्घायुरव्ययः । स्वर्गलोकमुपाश्नीयां तपस्तप्त्वा ह्यनुत्तमम् ॥ ६ ॥
स मे नाथो ह्यनाथस्य भव भव्येन चेतसा । पितेव पुत्रं धर्मात्मंस्त्रातुमर्हसि किल्बिषात् ॥ ७ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रो महातपाः । सान्त्वयित्वा बहुविधं पुत्रानिदमुवाच ह ॥ ८ ॥
यत्कृते पितरः पुत्राञ्जनयन्ति शुभार्थिनः । परलोकहितार्थाय तस्य कालोऽयमागतः ॥ ९ ॥
अयं मुनिसुतो बालो मत्तः शरणमिच्छति । अस्य जीवितमात्रेण प्रियं कुरुत पुत्रकाः ॥१०॥
सर्वे सुकृतकर्माणः सर्वे धर्मपरायणाः । पशुभूता नरेन्द्रस्य तृप्तिमग्नेः प्रयच्छत ॥११॥
नाथवांश्च शुनःशेपो यज्ञश्चाविघ्नितो भवेत् । देवतास्तर्पिताश्च स्युर्मम चापि कृतं वचः ॥१२॥
मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा मधुच्छन्दादयः सुताः । साभिमानं नरश्रेष्ठ सलीलमिदमब्रुवन् ॥१३॥
कथमात्मसुतान्हित्वा त्रायसेऽन्यसुतं विभो । अकार्यमिव पश्यामः श्वमांसमिव भोजने ॥१४॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा पुत्राणां मुनिपुंगवः । क्रोधसंरक्तनयनो व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥१५॥
निःसाध्वसमिदं प्रोक्तं धर्मादपि विगर्हितम् । अतिक्रम्य तु मद्वाक्यं दारुणं रोमहर्षणम् ॥१६॥

करते हुए, विश्वामित्रको देखा ॥ २ ॥ उसने अपने मामा विश्वामित्रको ऋषियोंके साथ तपस्या करते देखा । शुनःशेपका मुँह सूख गया था, प्यास और थकावटके कारण वह बहुतही कमजोर हो गया था ॥३॥ वह विश्वामित्रके आगे गिरपड़ा और बोला—न मेरी माता है, न पिता, फिर भाई-बन्धु कहाँसे होंगे ? ॥ ४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ, धर्म समझकर आप मेरी रक्षा करें, क्योंकि आप रक्षक हैं । शरणागतोंके मनोरथ पूरा करनेवाले हैं ॥ ५ ॥ आप ऐसा प्रयत्न करें, जिससे राजाका मनोरथ पूरा हो, मैं भी दीर्घायु होऊं और उत्तम तपस्या करके स्वर्गलोकमें जाऊँ ॥ ६ ॥ महाराज, मैं अनाथ हूँ । आप अपने मंगलमय चित्तसे मेरे नाथ बनें । धर्मात्मन्, पिता जैसे पुत्रकी रक्षा करता है, वैसेही इस विपत्तिसे आप मेरी रक्षा करें ॥७॥ शुनःशेपकी बातें सुनकर तपस्वी विश्वामित्रने उसे अनेक प्रकारसे समझाया, धैर्य दिया, पुनः वे अपने पुत्रोंसे बोले ॥ ८ ॥ कल्याणकी कामना करनेवाले पिता, जिस पारलौकिक मंगलके लिए पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं, उसका यह समय आगया ॥९॥ यह मुनिपुत्र मेरी शरण आया है । तुम लोग इसके प्राण बचाकर मेरा प्रियकार्य करो ॥ १० ॥ तुम सभी पवित्र कर्म करनेवाले हो, धर्मात्मा हो, तुमलोग राजाके यज्ञमें, पशु बनकर, अग्निको प्रसन्न करो ॥ ११ ॥ इस प्रकार शुनःशेपकी रक्षा होजायगी, यज्ञमें विघ्न भी न होगा, देवता भी प्रसन्न होंगे और मेरे वचनका पालन भी होगा ॥ १२ ॥ मुनिके वचन सुनकर मधुच्छन्दादि उनके पुत्रोंने बड़े अभिमान और उपहासके साथ कहा ॥ १३ ॥ अपने लड़कोंको नष्ट करके, दूसरेके लड़केकी रक्षा करना आप क्यों चाहते हैं ? यह तो पाप है। अपने मांसका भोजन करनेके समान है ॥ १४ ॥ मुनिश्रेष्ठने अपने पुत्रोंके वचन सुने । क्रोधसे उनकी आँखें लाल होगयीं । क्रोध से वे बोलनेलगे ॥ १५ ॥ तुमलोगोंने निर्भय होकर यह बात कही, तुम्हारी यह बात

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्वमांसभोजिनः सर्वे वासिष्ठा इव जातिषु । पूर्णं वर्षसहस्रं तु पृथिव्यामनुवत्स्यथ ॥१७॥
कृत्वा शापसमायुक्तान्पुत्रान्मुनिवरस्तदा । शुनःशेपमुवाचार्तं कृत्वारक्षां निरामयाम् ॥१८॥
पवित्रपाशैराबद्धो रक्तमाल्यानुलेपनः । वैष्णवं यूपमासाद्य वाग्भिरग्निमुदाहर ॥१९॥
इमे च गाथे द्वे दिव्ये गायेथा मुनिपुत्रक । अम्बरीषस्य यज्ञेस्मिंस्ततःसिद्धिमवाप्स्यसि ॥२०॥
शुनःशेपो गृहीत्वा ते द्वे गाथे सुसमाहितः । त्वरया राजसिंहं तमम्बरीषमुवाच ह ॥२१॥
राजासिंह महाबुद्धे शीघ्रं गच्छावहे वयम् । निवर्तयस्व राजेन्द्र दीक्षां च समुदाहर ॥२२॥
तद्वाक्यमृषिपुत्रस्य श्रुत्वा हर्षसमन्वितः । जगाम नृपतिः शीघ्रं यज्ञवाटमतन्द्रितः ॥२३॥
सदस्यानुमते राजा पवित्रकृतलक्षणम् । पशुं रक्ताम्बरं कृत्वा यूपे तं समबन्धयत् ॥२४॥
स बद्धो वाग्भिरग्र्याभिरभितुष्टाव वै सुरौ । इन्द्रमिन्द्रानुजं चैव यथावन्मुनिपुत्रकः ॥२५॥
ततः प्रीतः सहस्राक्षो रहस्यस्तुतितोषितः । दीर्घमायुस्तदा प्रादाच्छुनःशेपाय वासवः ॥२६॥
स च राजा नरश्रेष्ठ यज्ञस्य च समाप्तवान् । फलं बहुगुणं राम सहस्राक्षप्रसादजम् ॥२७॥
विश्वामित्रोऽपि धर्मात्मा भूयस्तेपे महातपाः । पुष्करेषु नरश्रेष्ठ दशवर्षशतानि च ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

धर्मसे भी निन्दित है। मेरे वचनका तुमलोगोंने तिरस्कार किया है और बड़ाही कठोर उत्तर दिया है ॥ १६ ॥ इस कारण तुमलोग कुत्तेका मांस खानेवाले होजाओ और वसिष्ठके पुत्रोंके समान तुम्हारी जाति होजाय। इस प्रकार एक हज़ार वर्षतक पृथिवीमें रहो ॥ १७ ॥ इस प्रकार अपने पुत्रोंको शाप देकर, मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र शुनःशेपकी निर्विघ्न रक्षा (मंत्रोंसे) करके उससे बोले ॥ १८ ॥ हे मुनिपुत्र, जब तुम कुशकी रस्सीसे बाँधे जाओ, लाल फूलोंकी माला और अनुलेपन जब तुम्हें लगाया जाय और वैष्णवयूप (विष्णुका यज्ञीय खंभा) में बाँधे जाओ, तब अग्निकी स्तुति करो ॥ १९ ॥ राजा अम्बरीषके यज्ञमें इन गाथाओंका (दो वैदिक मंत्रों का) तुम गान करो, इससे तुम्हारी सिद्धि होगी ॥ २० ॥ सावधान होकर शुनःशेपने वे दो मंत्र लेलिये और शीघ्रतापूर्वक राजा अंबरीषके पास आकर कहा ॥ २१ ॥ राजश्रेष्ठ, महाबुद्धे, हमलोग शीघ्र यहाँसे चलें। आप यज्ञकी दीक्षा लें और मेरा बलिदान करें ॥ २२ ॥ ऋषिपुत्रके ये वचन सुनकर राजा बड़े प्रसन्न हुए और वे शीघ्रतापूर्वक यज्ञ-मण्डपकी ओर चले ॥ २३ ॥ यज्ञ करानेवाले पुरोहितोंकी आज्ञासे राजाने शुनःशेपको यज्ञ-पशुके सब चिन्होंसे युक्त किया। उसे लाल वस्त्र पहनाया और खँभेसे बाँधा ॥ २४ ॥ खंभेमें बँधा हुआ वह दीन मुनि-पुत्र, इन्द्र और विष्णुकी, उत्तम स्तुतियोंसे, स्तुति करने लगा ॥ २५ ॥ इन्द्र उसकी उत्तम स्तुतिसे प्रसन्न हुए और उन्होंने, उसे दीर्घायु होनेका, वर दिया ॥ २६ ॥ उन राजा अम्बरीषने भी इन्द्रकी कृपासे यज्ञके बहुत फल पाये ॥ २७ ॥ धर्मात्मा विश्वामित्र पुनः तपस्या करनेलगे। उन्होंने पुष्करक्षेत्रमें एक हजार वर्षोंतक तपस्या की ॥ २८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका बासठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६२ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३

पूर्णे वर्षसहस्रे तु व्रतस्नातं महामुनिम् । अभ्यगच्छन्सुराः सर्वे तपःफलचिकीर्षवः ॥ १ ॥
अब्रवीत्सुमहातेजा ब्रह्मा सुरुचिरं वचः । ऋषिस्त्वमसि भद्रं ते स्वार्जितैः कर्मभिः शुभैः॥२ ॥
तमेवमुक्त्वा देवेशस्त्रिदिवं पुनरभ्यगात् । विश्वामित्रो महातेजा भूयस्तेपे महत्तपः ॥ ३ ॥
ततः कालेन महता मेनका परमाप्सरा । पुष्करेषु नरश्रेष्ठ स्नातुं समुपचक्रमे ॥ ४ ॥
तां ददर्श महातेजा मेनकां कुशिकात्मजः । रूपेणाप्रतिमां तत्र विद्युतं जलदे यथा ॥ ५ ॥
कन्दर्पदर्पवशगो मुनिस्तामिदमब्रवीत् । अप्सरः स्वागतं तेऽस्तु वस चेह ममाश्रमे ॥ ६ ॥
अनुगृह्णीष्व भद्रं ते मदनेन विमोहितम् । इत्युक्ता सा वरारोहा तत्रावासमथाकरोत् ॥ ७ ॥
तपसो हि महाविघ्नो विश्वामित्रमुपागमत् । तस्यां वसन्त्यां वर्षाणि पञ्च पञ्च च राघव ॥ ८ ॥
विश्वामित्राश्रमे सौम्ये सुखेन व्यतिचक्रमुः । अथ काले गते तस्मिन्विश्वामित्रो महामुनिः ॥ ९ ॥
सव्रीड इव संवृत्तश्चिन्ताशोकपरायणः । बुद्धिर्मुनेः समुत्पन्ना सामर्षा रघुनन्दन ॥१०॥
सर्वं सुराणां कर्मैतत्तपोपहरणं महत् । अहोरात्रापदेशेन गताः संवत्सरा दश ॥११॥
काममोहाभिभूतस्य विघ्नोऽयं प्रत्युपस्थितः । स निःश्वसन्मुनिवरः पश्चात्तापेन दुःखितः ॥१२॥
भीतामप्सरसं दृष्ट्वा वेपन्तीं प्राञ्जलिं स्थिताम् । मेनकां मधुरैर्वाक्यैर्विसृज्य कुशिकात्मजः ॥१३॥
उत्तरं पर्वतं राम विश्वामित्रो जगाम ह । स कृत्वा नैष्ठिकीं बुद्धिं जेतुकामो महायशाः ॥१४॥

जब एक हज़ार वर्ष पूरे होगये, मुनिने व्रतका स्नान किया, उस समय सब देवता उन्हें तपस्याका फल देनेके लिए आये ॥ १ ॥ ब्रह्माने बड़े मधुर स्वरोंमें कहा—तुम अपनी तपस्याके प्रभावसे ऋषि-पद पागये । तुम्हारा कल्याण हो ॥ २ ॥ उनसे ऐसा कहकर, देवेश ब्रह्मा स्वर्ग गये और तेजस्वी विश्वामित्र पुनः कठोर तपस्या करने लगे ॥ ३ ॥ इस प्रकार बहुत समय बीतनेपर, मेनका नामकी एक अप्सरा, पुष्करक्षेत्रमें स्नान करने आयी ॥ ४ ॥ विश्वामित्रने अद्वितीय सुन्दरी उस मेनकाको देखा । उन्होंने मेघमें बिजलीके समान उसे देखा ॥५॥ मुनि कामके वश हुए और उन्होंने उससे कहा—तुम्हारा स्वागत ! तुम मेरे आश्रममें रहो ॥ ६ ॥ मैं कामसे पीड़ित हूँ, मुझपर कृपा करो । तुम्हारा कल्याण हो । मुनिके ऐसा कहनेपर, उस सुन्दरीने वहीं निवास किया ॥ ७ ॥ यह (मेनकाका रहना) विश्वामित्रकी तपस्याका एक बहुत बड़ा विघ्न हुआ । उसने दस वर्ष ॥ ८ ॥ विश्वामित्रके सुन्दर आश्रममें, सुखसे बिताये । कुछ समय बीतनेपर महामुनि विश्वामित्र ॥ ९ ॥ लज्जित-से हुए। चिन्ता और शोकसे दुर्बल होगये। उस समय क्रोधके साथ-साथ उनके मनमें विचार उत्पन्न हुआ ॥ १०॥ यह सब देवताओंके काम हैं । उन लोगोंने ही मेरी तपस्या नष्ट की है । ओह! दिन रातके बहाने (एक-एक दिन और एक-एक रात करके) मेरे दस वर्ष बीतगये ॥ ११ ॥ कामके वशीभूत होनेके कारण ही यह विघ्न उपस्थित हुआ है । इस प्रकार पश्चात्तापसे दुःखित होकर, मुनिवर दुखकी साँस लेने लगे ॥ १२ ॥ डरी हुई, काँपती हुई और हाथ जोड़कर खड़ी हुई मेनका अप्सराको मुनिने मीठे वचनोंके द्वारा विदा कर दिया ॥ १३ ॥ वे वहाँसे उत्तर पर्वतपर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कौशिकीतीरमासाद्य तपस्तेपे दुरासदम् । तस्य वर्षसहस्राणि घोरं तप उपासतः ॥१५॥
उत्तरे पर्वते राम देवतानामभूद्भयम् । अमन्त्रयन्समागम्य सर्वे सर्षिगणाः सुराः ॥१६॥
महर्षिशब्दं लभतां साध्वयं कुशिकात्मजः । देवतानां वचः श्रुत्वा सर्वलोकपितामहः ॥१७॥
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं विश्वामित्रं तपोधनम् । महर्षे स्वागतं वत्स तपसोग्रेण तोषितः ॥१८॥
महत्त्वमृषिमुख्यत्वं ददामि तव कौशिक । ब्रह्मणस्तु वचः श्रुत्वा विश्वामित्रस्तपोधनः ॥१९॥
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा प्रत्युवाच पितामहम् । ब्रह्मर्षिशब्दमतुलं स्वार्जितैः कर्मभिः शुभैः ॥२०॥
यदि मे भगवानाह ततोऽहं विजितेन्द्रियः । तमुवाच ततो ब्रह्मा न तावत्त्वं जितेन्द्रियः ॥२१॥
यतस्व मुनिशार्दूल इत्युक्त्वा त्रिदिवं गतः । विप्रस्थितेषु देवेषु विश्वामित्रो महामुनिः ॥२२॥
ऊर्ध्वबाहुर्निरालम्बो वायुभक्षस्तपश्चरन् । घर्मे पञ्चतपा भूत्वा वर्षास्वाकाशसंश्रयः ॥२३॥
शिशिरे सलिलेशायी रात्र्यहानि तपोधनः । एवं वर्षसहस्रं हि तपो घोरमुपागमत् ॥२४॥
तस्मिन्संतप्यमाने तु विश्वामित्रे महामुनौ । संतापः सुमहानासीत्सुराणां वासवस्य च ॥२५॥
रम्भामप्सरसं शक्रः सर्वैः सह मरुद्गणैः । उवाचात्महितं वाक्यमहितं कौशिकस्य च ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चलेगये और कामके विकारोंको जीतनेके लिए दृढ़ संकल्प किया ॥ १४ ॥ कौशिकी नदीके तीरपर आकर उन्होंने कठोर तपस्या की। रामचन्द्र, उत्तर पर्वतपर कठोर तपस्या करते हुए विश्वामित्रको एक हज़ार वर्ष बीतगये ॥ १५ ॥ तब देवताओंको भय हुआ। वे सब मिलकर ब्रह्माके पास गये और उनकी प्रार्थना करनेलगे ॥१६॥ महाराज, विश्वामित्रको महर्षिका पद देदेना ही अच्छा है। देवताओंकी बात सुनकर पितामह ब्रह्मा ॥ १७ ॥ विश्वामित्रके पास आये और उस तपस्वीसे बोले—महर्षे, तुम्हारा स्वागत! मैं तुम्हारी उग्र तपस्यासे प्रसन्न हूँ ॥ १८ ॥ मैं तुमको प्रधान ऋषिका पद देता हूँ। ब्रह्माके वचन सुनकर तपस्वी विश्वामित्र ॥ १९ ॥ हाथ जोड़कर, नम्र होकर, पितामह ब्रह्मासे बोले—पितामह, श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि पद मैंने अपने कर्मोंसे ॥ २० ॥ नहीं पाया (अर्थात् आप मुझे ब्रह्मर्षि नहीं कहते, किन्तु महर्षि कहते हैं); इससे मालूम होता है कि मैं जितेन्द्रिय नहीं हूँ। मैंने इन्द्रियोंको वशमें नहीं किया। ब्रह्माने उनसे कहा—तुमने इन्द्रियोंको अपने वश नहीं किया है ॥२१॥ मुनिश्रेष्ठ, इन्द्रियोंको जीतनेका प्रयत्न करो। ऐसा कहकर वे स्वर्ग चलेगये। देवताओंके चले जानेपर महामुनि विश्वामित्र ॥ २२ ॥ बिना किसी अवलम्बके ऊर्ध्वबाहु तथा वायुके आहारपर रहकर, तपस्या करने लगे। गर्मीके दिनोंमें पंचाग्नि लेकर, वर्षाके दिनोंमें खुली जगहमें रहकर, ॥ २३ ॥ जाड़ेके दिनोंमें दिन रात जलमें रहकर वे तपस्या करनेलगे। इस प्रकार उन तपोधनने एक हज़ार वर्षतक कठोर तपस्या की ॥२४॥ महामुनि विश्वामित्रकी कठोर तपस्यासे देवताओं और इन्द्रको बड़ा दुःख हुआ ॥ २५ ॥ सब देवताओंके साथ, इन्द्रने रम्भा नामकी अप्सरासे अपने कल्याण तथा विश्वामित्रके अकल्याणकी बात कही ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका तिरसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४

सुरकार्यमिदं रम्भे कर्तव्यं सुमहत्त्वया । लोभनं कौशिकस्येह काममोहसमन्वितम् ॥ १ ॥
तथोक्ता साप्सरा राम सहस्राक्षेण धीमता । व्रीडिता प्राञ्जलिर्वाक्यं प्रत्युवाच सुरेश्वरम् ॥ २ ॥
अयं सुरपते घोरो विश्वामित्रो महामुनिः । क्रोधमुत्सृक्ष्यते घोरं मयि देव न संशयः ॥ ३ ॥
ततो हि मे भयं देव प्रसादं कर्तुमर्हसि । एवमुक्तस्तया राम सभयं भीतया तदा ॥ ४ ॥
तामुवाच सहस्राक्षो वेपमानां कृताञ्जलिम् । मा भैषी रम्भे भद्रं ते कुरुष्व मम शासनम् ॥ ५ ॥
कोकिलो हृदयग्राही माधवे रुचिरद्रुमे । अहं कन्दर्पसहितः स्थास्यामि तव पार्श्वतः ॥ ६ ॥
त्वं हि रूपं बहुगुणं कृत्वा परमभास्वरम् । तमृषिं कौशिकं भद्रे भेदयस्व तपस्विनम् ॥ ७ ॥
सा श्रुत्वा वचनं तस्य कृत्वा रूपमनुत्तमम् । लोभयामास ललिता विश्वामित्रं शुचिस्मिता ॥ ८ ॥
कोकिलस्य तु शुश्राव वल्गु व्याहरतः स्वनम् । संप्रहृष्टेन मनसा स चैनामन्ववैक्षत ॥ ९ ॥
अथ तस्य च शब्देन गीतेनाप्रतिमेन च । दर्शनेन च रम्भाया मुनिः संदेहमागतः ॥१०॥
सहस्राक्षस्य तत्सर्वं विज्ञाय मुनिपुंगवः । रम्भां क्रोधसमाविष्टः शशाप कुशिकात्मजः ॥११॥
यन्मां लोभयसे रम्भे कामक्रोधजयैषिणम् । दशवर्षसहस्राणि शैली स्थास्यसि दुर्भगे ॥१२॥
ब्राह्मणः सुमहातेजास्तपोबलसमन्वितः । उद्धरिष्यति रम्भे त्वां मत्क्रोधकलुषीकृताम् ॥१३॥
एवमुक्त्वा महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः । अशक्नुवन्धारयितुं कोपं संतापमात्मनः ॥१४॥

रम्भे ! देवताओंका यह महान् कार्य तुम संपादित करो । कौशिक मुनिको, कामसे वशीभूत करके, लुभाओ ॥ १ ॥ बुद्धिमान इन्द्रके ऐसा कहनेपर, वह अप्सरा लज्जित हुई और उसने हाथ जोड़कर इन्द्रसे कहा ॥ २ ॥ सुरपति, ये विश्वमित्र बड़े भयानक हैं । ये मुझपर बहुत भयानक क्रोध करेंगे, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३ ॥ इसीसे मैं डर रही हूँ । आप मुझे क्षमा करें । डरती हुई रम्भाके ऐसा कहनेपर ॥ ४ ॥ देवराज इन्द्रने उस हाथ जोड़े खड़ी और काँपती हुई रम्भासे कहा—रम्भे ! मत डरो, तुम्हारा कल्याण होगा, मेरी आज्ञा मानो ॥ ५ ॥ वसंतकालमें, मनोहर पेड़पर, सुन्दर कोकिल बनकर, कामदेवके साथ मैं तुम्हारे पासही रहूँगा ॥ ६ ॥ तुम बहुत मनोहर, सुन्दर रूप बनाकर, उस तपस्वीके चित्तको तपस्याकी ओरसे हटाकर अपनी ओर खींचो ॥ ७ ॥ इन्द्रके कहनेके अनुसार रंभाने, सुन्दर रूप बनाया और सुन्दर हँसनेवाली उसने, ऋषिके मनको अपनी ओर खींचा ॥ ८ ॥ कोकिल मधुर बोल रहा था । विश्वामित्रने प्रसन्न मनसे उसके शब्द सुने और रंभाकी ओर देखा ॥ ९ ॥ कोकिलके मनोहर शब्द और रंभाके वे गीत सुनकर, तथा रम्भाको देखकर, मुनिके मनमें सन्देह उत्पन्न हुआ ॥ १० ॥ मुनिने निश्चय किया कि ये सब काम इन्द्रके हैं और उन्होंने क्रोध कर रम्भाको शाप दिया ॥११॥ काम, क्रोधको जीतनेकी इच्छा रखनेवाले मुझको, हे रम्भे, तू लुभाना चाहती है, इसलिए दस हज़ार वर्षों तक तुझको पत्थर होकर रहना पड़ेगा, क्योंकि तूने बहुत बुरा प्रयत्न किया था ॥१२॥ मेरे क्रोधसे दुख भोगती हुई तुम्हारा कोई तेजस्वी और तपस्वी ब्राह्मण उद्धार करेगा ॥१३॥ अपने क्रोधको वशमें न रख सकनेके कारण,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्य शापेन महता रम्भा शैली तदाभवत् । वचः श्रुत्वा च कन्दर्पो महर्षेः स च निर्गतः ॥१५॥
कोपेन च महातेजास्तपोपहरणे कृते । इन्द्रियैरजितै राम न लेभे शान्तिमात्मनः ॥१६॥
बभूवास्य मनश्चिन्ता तपोपहरणे कृते । नैवं क्रोधं गमिष्यामि न च वक्ष्ये कथंचन ॥१७॥
अथवा नोच्छ्वसिष्यामि संवत्सरशतान्यपि । अहं हि शोषयिष्यामि आत्मानं विजितेन्द्रियः॥१८॥
तावद्यावद्धि मे प्राप्तं ब्राह्मण्यं तपसार्जितम् । अनुच्छ्वसन्नभुञ्जानस्तिष्ठेयं शाश्वतीःसमाः ॥१९॥
नहि मे तप्यमानस्य क्षयं यास्यन्ति मूर्तयः । एवं वर्षसहस्रस्य दीक्षां स मुनिपुंगवः ।
चकाराप्रतिमां लोके प्रतिज्ञां रघुनन्दन ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमः सर्गः ६५

अथ हैमवतीं राम दिशं त्यक्त्वा महामुनिः । पूर्वां दिशमनुप्राप्य तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ १ ॥
मौनं वर्षसहस्रस्य कृत्वा व्रतमनुत्तमम् । चकाराप्रतिमं राम तपः परमदुष्करम् ॥ २ ॥
पूर्णे वर्षसहस्रे तु काष्ठभूतं महामुनिम् । विघ्नैर्बहुभिराधूतं क्रोधो नान्तरमाविशत् ॥ ३ ॥
स कृत्वा निश्चयं राम तप आतिष्ठताव्ययम् । तस्य वर्षसहस्रस्य व्रते पूर्णे महाव्रतः ॥ ४ ॥
भोक्तुमारब्धवानन्नं तस्मिन्काले रघूत्तम । इन्द्रो द्विजातिर्भूत्वा तं सिद्धमन्नमयाचत ॥ ५ ॥

महातेजस्वी विश्वामित्र मुनिने रम्भाको शाप दिया; पर क्रोधके कारण तपस्या नष्ट होनेका दुःख उनके मनमें हुआ ॥ १४ ॥ मुनिके शापसे रम्भा उसी समय पत्थर होगयी और मुनिके वे वचन सुनकर, इन्द्र तथा कामदेव वहाँसे भाग गये ॥१५॥ क्रोधके कारण, तेजस्वी मुनिका तप नष्ट हुआ। इन्द्रियोंपर पूरी विजय न पानेके हेतु, मुनिका मन अशान्त होगया ॥ १६ ॥ तपके नष्ट होनेपर मुनिने अपने मनमें निश्चय किया कि मैं न तो क्रोध करूँगा और न कुछ बोलूँगा ॥१७॥ अथवा सौ वर्षों तक मैं साँसही न लूँगा, इन्द्रियोंको वशमें करके अपनेको सुखा डालूँगा ॥ १८ ॥ जब तक मुझे, तपस्याके द्वारा, ब्राह्मणका पद न प्राप्त होगा, तबतक न साँस लूँगा, न खाऊँगा। अनेक वर्षोंतक इसी तरह रहूँगा ॥ १९ ॥ ऐसी तपस्या करनेसे मेरा शरीर-पात न होगा। इस प्रकार निश्चय करके मुनिने हजार वर्षोंकी दीक्षा ली और उन्होंने अद्भुत प्रतिज्ञा की ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका चौंसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६४ ॥

ऐसा निश्चय करके, मुनिने उत्तर दिशाका त्याग किया और पूर्व दिशामें जाकर, वे कठोर तपस्या करने लगे ॥१॥ एक हजार वर्षतक मौन रहनेकी प्रतिज्ञा करके, वे दूसरोंके न करने योग्य प्रतिज्ञा करके तप करने लगे ॥२॥ एक हजार वर्ष बीतनेपर मुनि लकड़ीके समान हो गये। अनेक विघ्न आये, पर उनके हृदयमें क्रोध न आया ॥ ३ ॥ अविचल निश्चय कर मुनिने तपस्या की। हजार वर्षके पूर्ण होनेपर उनका व्रत पूरा हुआ ॥ ४ ॥ उस समय मुनि अन्न खानेका प्रारंभ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्मै दत्त्वा तदा सिद्धं सर्वं विप्राय निश्चितः । निःशेषितेऽन्ने भगवानभुक्त्वैव महातपाः ॥ ६ ॥
न किंचिदवदद्विप्रं मौनव्रतमुपास्थितः । तथैवासीत्पुनर्मौनमनुच्छ्वासं चकार ह ॥ ७ ॥
अथ वर्षसहस्रं च नोच्छ्वसन्मुनि पुंगवः । तस्यानुच्छ्वसमानस्य मूर्ध्नि धूमो व्यजायत ॥ ८ ॥
त्रैलोक्यं येन संभ्रान्तमातापितमिवाभवत् । ततो देवर्षिगन्धर्वाः पन्नगोरगराक्षसाः ॥ ९ ॥
मोहितास्तपसा तस्य तेजसा मन्दरश्मयः । कश्मलोपहताः सर्वे पितामहमथाब्रुवन् ॥१०॥
बहुभिः कारणैर्देव विश्वामित्रो महामुनिः । लोभितः क्रोधितश्चैव तपसा चाभिवर्धते ॥११॥
नह्यस्य वृजिनं किंचिद्दृश्यते सूक्ष्ममप्युत । न दीयते यदि त्वस्य मनसा यदभीप्सितम् ॥१२॥
विनाशयति त्रैलोक्यं तपसा सचराचरम् । व्याकुलाश्च दिशः सर्वा न च किंचित्प्रकाशते ॥१३॥
सागराः क्षुभिता सर्वे विशीर्यन्ते च पर्वताः । प्रकम्पते च वसुधा वायुर्वातीह संकुलः ॥१४॥
ब्रह्मन्न प्रतिजानीमो नास्तिको जायते जनः । संमूढमिव त्रैलोक्यं संप्रक्षुभितमानसम् ॥१५॥
भास्करो निष्प्रभश्चैव महर्षेस्तस्य तेजसा । बुद्धिं न कुरुते यावन्नाशे देव महामुनिः ॥१६॥
तावत्प्रसादो भगवन्नग्निरूपो महाद्युतिः । कालाग्निना यथा पूर्वं त्रैलोक्यं दह्यतेऽखिलम् ॥१७॥
देवराज्यं चिकीर्षेत दीयतामस्य यन्मनः । ततः सुरगणाः सर्वे पितामहपुरोगमाः ॥१८॥

करना चाहते थे। इसी समय इन्द्रने ब्राह्मण होकर बना हुआ अन्न माँगा ॥ ५ ॥ जो कुछ अन्न था, वह सब मुनिने ब्राह्मण-वेषधारी इन्द्रको दे दिया और अन्नके न रहनेसे स्वयं वे विना भोजन-के ही रह गये ॥ ६ ॥ वे ब्राह्मणसे कुछ भी नहीं बोले, क्योंकि उन्होंने मौन व्रत धारण किया था। वे पुनः उसी प्रकार मौन हो तथा साँस रोककर तपस्या करने लगे ॥ ७ ॥ इस प्रकार एक हज़ार वर्ष मुनिने विना साँस लिये तपस्या की। साँस न लेनेके कारण मुनिके मस्तकसे धुआँ निकलने लगा ॥ ८ ॥ उस धुएँ से समस्त लोक तप्त हो गया और घबड़ा गया। तब देवता, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग आदि ॥ ९ ॥ विश्वामित्रकी तपस्यासे मोहित हो गये और उनके तेजसे इन लोगोंका तेज धीमा पड़ गया। वे दुःख से व्याकुल होकर ब्रह्माके यहाँ गये और बोले ॥ १० ॥ पितामह, अनेक उपायोंसे हमलोगोंने महामुनि विश्वामित्रको लुभाया और क्रोधित किया, फिर भी वे अभीतक तपस्या कर ही रहे हैं ॥ ११ ॥ इनका थोड़ा भी पाप कहीं दिखायी नहीं पड़ता। यदि इनका प्रिय मनोरथ पूरा नहीं किया जायगा ॥१२॥ तो समस्त स्थावर जंगम (इस त्रिलोक)-का वे नाश कर देंगे। इसी समय सब दिशाओंमें अन्धकार हो गया है, कहीं प्रकाश दिखायी नहीं पड़ता ॥ १३ ॥ सब समुद्र क्षुभित हो गये हैं, पर्वत टूट रहे हैं, पृथिवी काँप रही है, और वायु अत्यन्त व्याकुल होकर बहता है ॥ १४ ॥ हमलोग इसको दूर करनेका उपाय नहीं जानते हैं, इस कारण सब लोग (क्रिया कर्म न कर सकनेसे) नास्तिककी तरह हो गये हैं। समस्त त्रिलोकीका मन इस समय चंचल हो गया है और वे अपने कर्तव्यका निश्चय नहीं कर रहे हैं ॥ १५ ॥ उन महर्षिके तेजसे, सूर्यका तेज धीमा पड़ गया है। महाराज, वे मुनि जब तक हमलोगोंका नाश करनेका निश्चय न करें ॥ १६ ॥ उसके पहले ही, अग्निके समान तेजस्वी उन मुनिको प्रसन्न करना चाहिए। नहीं तो कालाग्निके समान, उनके क्रोधसे, यह समस्त त्रिलोक भस्म हो जायगा ॥ १७ ॥ जो उनका मनोरथ हो, वह दीजिए। यदि वे देवता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विश्वामित्रं महात्मानं वाक्यं मधुरमब्रुवन् । ब्रह्मर्षे स्वागतं तेऽस्तु तपसा स्म सुतोषिताः ॥१९॥
ब्राह्मण्यं तपसोग्रेण प्राप्तवानसि कौशिक । दीर्घमायुश्च ते ब्रह्मन्ददामि समरुद्गणः ॥२०॥
स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते गच्छ सौम्य यथासुखम् । पितामहवचः श्रुत्वा सर्वेषां त्रिदिवौकसाम् ॥२१॥
कृत्वा प्रणामं मुदितो व्याजहार महामुनिः । ब्राह्मण्यं यदि मे प्राप्तं दीर्घमायुस्तथैव च ॥२२॥
ॐकारोऽथ वषट्कारो वेदाश्च वरयन्तु माम् । क्षत्रवेदविदां श्रेष्ठो ब्रह्मवेदविदामपि ॥२३॥
ब्रह्मपुत्रो वसिष्ठो मामेवं वदतु देवताः । यद्येवं परमः कामः कृतो यान्तु सुरर्षभाः ॥२४॥
ततः प्रसादितो देवैर्वसिष्ठो जपतां वरः । सख्यं चकार ब्रह्मर्षिरेवमस्त्विति चाब्रवीत् ॥२५॥
ब्रह्मर्षिस्त्वं न संदेहः सर्वं संपद्यते तव । इत्युक्त्वा देवताश्चापि सर्वा जग्मुर्यथागतम् ॥२६॥
विश्वामित्रोऽपि धर्मात्मा लब्ध्वा ब्राह्मण्यमुत्तमम् । पूजयामास ब्रह्मर्षिं वसिष्ठं जपतां वरम् ॥२७॥
कृतकामो महीं सर्वां चचार तपसि स्थितः । एवं त्वनेन ब्राह्मण्यं प्राप्तं राम महात्मना ॥२८॥
एष राम मुनिश्रेष्ठ एष विग्रहवांस्तपः । एष धर्मः परो नित्यं वीर्यस्यैष परायणम् ॥२९॥
एवमुक्त्वा महातेजा विरराम द्विजोत्तमः । शतानन्दवचः श्रुत्वा रामलक्ष्मणसंनिधौ ॥३०॥
जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच कुशिकात्मजम् । धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुंगव ॥३१॥

ओंका राज्य चाहें, तो वह भी दीजिए । ऐसा निश्चय करके देवता और गण, ब्रह्माके साथ ॥ १८ ॥ महात्मा विश्वामित्रके यहाँ गये और उनसे मधुर वचन बोले-ब्रह्मर्षि, आपकी तपस्यासे हमलोग प्रसन्न हैं । आपका स्वागत है ॥ १९ ॥ कौशिक, उग्र तपस्याके कारण आपने ब्राह्मणका पद पाया । मैं तथा देवता और गण मिलकर आपको दीर्घायु होनेका भी वर देते हैं ॥ २० ॥ आपका कल्याण हो, आप सुखपूर्वक जायँ । ब्रह्मा तथा अन्य देवताओंके ये वचन सुनकर, विश्वामित्रने प्रसन्न होकर प्रणाम किया और कहा—यदि मुझे ब्राह्मणका पद दिया और दीर्घ आयु दिया ॥ २२ ॥ तो ओंकार और वषट्कार (इनके द्वारा होनेवाली क्रिया) तथा वेदोंका ज्ञान भी मुझे दीजिए । धनुर्वेद जाननेवाले तथा ब्रह्मवेद जाननेवालोंमें मैं श्रेष्ठ होऊँ ॥ २३ ॥ ब्रह्मपुत्र वसिष्ठ भी मुझे ब्रह्मर्षि कहें । यदि आपलोगोंकी कृपासे मेरा यह मनोरथ पूरा होगया तो, देवगण ! आपलोग खुशीसे पधारें ॥ २४ ॥ तब देवताओंने ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठको अपने अनुकूल किया । वसिष्ठने देवताओंकी बात मानली और विश्वामित्रका ब्रह्मर्षि होना उन्होंने स्वीकार किया । उनके साथ उन्होंने मैत्री की ॥ २५ ॥ आपके ब्रह्मर्षि होनेमें अब कोई सन्देह नहीं है, आपके सब मनोरथ पूरे हुए, ऐसा कहकर देवगण अपने-अपने स्थानको गये ॥ २६ ॥ धर्मात्मा विश्वामित्रने भी उत्तम ब्राह्मण-पद पाकर ऋषिश्रेष्ठ ब्रह्मर्षि वसिष्ठकी पूजा की ॥ २७ ॥ इस प्रकार मनोरथ सिद्ध करके तपस्या करते हुए, विश्वामित्रने भ्रमण करना प्रारंभ किया । हे रामचन्द्र, इतनी कठिनतासे इन्होंने ब्राह्मण-पद पाया है ॥ २८ ॥ रामचन्द्र, ये मुनियोंमें श्रेष्ठ हैं, ये शरीरधारी तपस्या हैं, ये उत्तम धर्म हैं, ये श्रेष्ठ वीर हैं ॥ २९ ॥ इतना कहकर महातेजस्वी शतानन्दने कथा समाप्त की । शतानन्दकी बात सुननेके पश्चात् राम-लक्ष्मणके समीप ही ॥ ३० ॥ राजा जनकने हाथ जोड़कर, विश्वामित्रसे कहा—हे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यज्ञं काकुत्स्थ सहितः प्राप्तवानसि कौशिक । पावितोऽहं त्वया ब्रह्मन्दर्शनेन महामुने ॥३२॥
गुणा बहुविधाः प्राप्तास्तव संदर्शनान्मया । विस्तरेण च वै ब्रह्मन्कीर्त्यमानं महत्तपः ॥३३॥
श्रुतं मया महातेजो रामेण च महात्मना । सदस्यैः प्राप्य च सदः श्रुतास्ते बहवो गुणाः ॥३४॥
अप्रमेयं तपस्तुभ्यमप्रमेयं च ते बलम् । अप्रमेया गुणाश्चैव नित्यं ते कुशिकात्मज ॥३५॥
तृप्तिराश्चर्यभूतानां कथानां नास्ति मे विभो । कर्मकालो मुनिश्रेष्ठ लम्बते रविमण्डलम् ॥३६॥
श्वः प्रभाते महातेजो द्रष्टुमर्हसि मां पुनः । स्वागतं जपतां श्रेष्ठ मामनुज्ञातुमर्हसि ॥३७॥
एवमुक्तो मुनिवरः प्रशस्य पुरुषर्षभम् । विससर्जाशु जनकं प्रीतं प्रीतमनास्तदा ॥३८॥
एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठं वैदेहो मिथिलाधिपः । प्रदक्षिणं चकाराशु सोपाध्यायः सबान्धवः ॥३९॥
विश्वामित्रोऽपि धर्मात्मा सहरामः सलक्ष्मणः । स्ववासमभिचक्राम पूज्यमानो महात्मभिः ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ६६

ततः प्रभाते विमले कृतकर्मा नराधिपः । विश्वामित्रं महात्मानमाजुहाव सराघवम् ॥ १ ॥
तमर्चयित्वा धर्मात्मा शास्त्रदृष्टेन कर्मणा । राघवौ च महात्मानौ तदा वाक्यमुवाच ह ॥ २ ॥
भगवन्स्वागतं तेऽस्तु किं करोमि तवानघ । भवानाज्ञापयतु मामाज्ञाप्यो भवता ह्यहम् ॥ ३ ॥

मुनिश्रेष्ठ, मैं धन्य और अनुग्रहीत हुआ ॥ ३१ ॥ क्योंकि आप राम-लक्ष्मणके साथ मेरे यज्ञमें पधारे हैं। महामुने, आपके दर्शनसे मैं पवित्र हुआ ॥३२॥ आपके दर्शन पानेसे मुझे अनेक लाभ हुए हैं। शतानन्दके द्वारा आपकी तपस्याकी कीर्ति विस्तारपूर्वक ॥ ३३ ॥ मैंने, महात्मा रामचन्द्रने तथा यज्ञके मुख्य सदस्योंने सुनी तथा आपके अन्य अनेक गुण भी सुने ॥ ३४ ॥ आपकी तपस्या अनुपम है, आपका बल अद्भुत है। कौशिक, इसी कारण आपके गुण सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ ३५ ॥ मुनिश्रेष्ठ, आपकी अद्भुत कथाओंके सुननेसे मेरी तृप्ति नहीं होती, पर यज्ञका समय है, सूर्यमण्डल ढलक चला ॥ ३६ ॥ कल प्रातःकाल आप मुझे पुनः देखेंगे अर्थात् कल मैं आऊँगा। हे मुनिश्रेष्ठ, आपका स्वागत, अब आप मुझे आज्ञा दें ॥ ३७ ॥ जनकके ऐसा कहनेपर विश्वामित्रने मुनिकी प्रशंसा की और प्रसन्नता पूर्वक उन्हें जानेकी आज्ञा दी ॥ ३८ ॥ विदेह जनकने अपने पुरोहितों और बान्धवोंके साथ विश्वामित्रकी प्रदक्षिणा की ॥ ३९ ॥ धर्मात्मा विश्वामित्र भी राम-लक्ष्मणके साथ महात्माओंकी पूजा ग्रहण करते हुए, अपने वासस्थानको गये ॥ ४० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका पैंसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६५ ॥

फिर दूसरे दिन राजा जनकने अपना प्रातःकालका कृत्य करके राम और लक्ष्मणके साथ विश्वामित्रको यज्ञ-मण्डपमें बुलवाया ॥१॥ शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार धर्मात्मा जनकने ऋषिकी पूजा की और राम-लक्ष्मणकी भी पूजा की। पुनः वे बोले ॥२॥ भगवन्, आपका स्वागत! हे निष्पाप, आपके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमुक्तः स धर्मात्मा जनकेन महात्मना । प्रत्युवाच मुनिश्रेष्ठो वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ४ ॥
पुत्रौ दशरथस्येमौ क्षत्रियौ लोकविश्रुतौ । द्रष्टुकामौ धनुः श्रेष्ठं यदेतत्त्वयि तिष्ठति ॥ ५ ॥
एतद्दर्शय भद्रं ते कृतकामौ नृपात्मजौ । दर्शनादस्य धनुषो यथेष्टं प्रतियास्यतः ॥ ६ ॥
एवमुक्तस्तु जनकः प्रत्युवाच महामुनिम् । श्रूयतामस्य धनुषो यदर्थमिह तिष्ठति ॥ ७ ॥
देवरात इति ख्यातो निमेर्ज्येष्ठो महीपतिः । न्यासोऽयं तस्य भगवन्हस्ते दत्तो महात्मनः ॥ ८ ॥
दक्षयज्ञवधे पूर्वं धनुरायम्य वीर्यवान् । विध्वस्य त्रिदशान्रोषात्सलीलमिदमब्रवीत् ॥ ९ ॥
यस्माद्भागार्थिनो भागान्नाकल्पयत मे सुराः । वराङ्गानि महार्हाणि धनुषा शातयामि वः ॥१०॥
ततो विमनसः सर्वे देवा वै मुनिपुंगव । प्रसादयन्त देवेशं तेषां प्रीतोऽभवद्भवः ॥११॥
प्रीतियुक्तस्तु सर्वेषां ददौ तेषां महात्मनाम् । तदेतद्देवदेवस्य धनूरत्नं महात्मनः ॥१२॥
न्यासभूतं तदा न्यस्तमस्माकं पूर्वजे विभौ । अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता ततः ॥१३॥
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता । भूतलादुत्थिता सा तु व्यवर्धत ममात्मजा ॥१४॥
वीर्यशुल्केति मे कन्या स्थापितेयमयोनिजा । भूतलादुत्थितां तां तु वर्धमानां ममात्मजाम् ॥१५॥
वरयामासुरागत्य राजानो मुनिपुंगव । तेषां वरयतां कन्यां सर्वेषां पृथिवीक्षिताम् ॥१६॥
वीर्यशुल्केति भगवन्न ददामि सुतामहम् । ततः सर्वे नृपतयः समेत्य मुनिपुंगव ॥१७॥

लिए क्या करूं, आप आज्ञा दें, क्योंकि आपको आज्ञा देनेका हक है ॥ ३ ॥ इस प्रकार जनकके कहनेपर लोकनिपुण मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रने कहा ॥४॥ ये दोनों राजा दसरथके पुत्र लोकप्रसिद्ध क्षत्रिय हैं, आपका जो श्रेष्ठ धनुष है, उसे ये लोग देखना चाहते हैं ॥ ५ ॥ इन्हें धनुष दिखलवा दीजिए । आपका कल्याण होगा, ये राजकुमार उस धनुषको देखकर ही तृप्त होकर लौट आवेंगे, ये सिर्फ देखना चाहते हैं ॥६॥ इन बातोंके सुननेपर राजाने महामुनि विश्वामित्रसे कहा-इस धनुषका वृत्तान्त सुनिए, जिसलिए यह यहां रखा गया है ॥ ७ ॥ निमिके ज्येष्ठ पुत्र देवरात नामसे प्रसिद्ध राजा थे, उन्हीं महात्माको यह न्यास (थाती) मिला है ॥ ८ ॥ दक्ष-यज्ञके नाशके समय महादेवने इस धनुषको चढ़ाया था । यज्ञका नाश करके, देवताओंसे क्रोधपूर्वक उन्होंने कहा ॥९॥ मैं यज्ञमें भाग चाहता हूँ, पर देवताओंने मेरा वह भाग मुझे न दिया, इस कारण मैं उनके मस्तक धनुषसे काटूँगा ॥ १० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ, इससे देवतालोग बहुत उदास हुए । उनलोगोंने महादेवको प्रसन्न किया । महादेव भी प्रसन्न हुए ॥ ११ ॥ प्रसन्न होकर उन्होंने देवताओंको अपना यह धनुष दिया । यह धनुष उन्हींका है ॥ १२ ॥ यह हमारे पूर्वजोंको न्यासमें मिला था । मैं खेत खोद रहा था कि हलमें टकराकर यह निकल आया ॥ १३ ॥ सीता (हलकी नोक)से मैं खेत बना रहा था, उससे एक सीता नामकी कन्या उत्पन्न हुई, जो मेरी कन्या होकर बड़ी हुई है ॥१४॥ इस अयोनिजा कन्याका शुल्क (वरपक्षसे कन्यापक्षको मिलनेवाली रकम) मैंने पराक्रम रक्खा है । मुनिश्रेष्ठ, भूतलसे उत्पन्न, मेरे घर बड़ी हुई इस कन्याको ॥ १५ ॥ अनेक राजाओंने मुझसे माँगा, परन्तु कन्यार्थी उन सब राजाओंको ॥ १६ ॥ मैंने कह दिया कि इसका शुल्क पराक्रम है,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मिथिलामप्युपागम्य वीर्यं जिज्ञासवस्तदा । तेषां जिज्ञासमानानां शैवं धनुरुपाहृतम् ॥१८॥
न शेकुर्ग्रहणे तस्य धनुषस्तोलनेऽपि वा । तेषां वीर्यवतां वीर्यमल्पं ज्ञात्वा महामुने ॥१९॥
प्रत्याख्याता नृपतयस्तन्निबोध तपोधन । ततः परमकोपेन राजानो मुनिपुंगव ॥२०॥
अरुन्धन्मिथिलां सर्वे वीर्यसंदेहमागताः । आत्मानमवधूतं मे विज्ञाय नृपपुंगवाः ॥२१॥
रोषेण महताविष्टाः पीडयन्मिथिलां पुरीम् । ततः संवत्सरे पूर्णे क्षयं यातानि सर्वशः ॥२२॥
साधनानि मुनिश्रेष्ठ ततोऽहं भृशदुःखितः । ततो देवगणान्सर्वांस्तपसाहं प्रसादयम् ॥२३॥
ददुश्च परमप्रीताश्चतुरंगबलं सुराः । ततो भग्ना नृपतयो हन्यमाना दिशो ययुः ॥२४॥
अवीर्या वीर्यसंदिग्धाः सामात्याः पापकारिणः । तदेतन्मुनिशार्दूल धनुः परमभास्वरम् ॥२५॥
रामलक्ष्मणयोश्चापि दर्शयिष्यामि सुव्रत । यद्यस्य धनुषो रामः कुर्यादारोपणं मुने ।
सुतामयोनिजां सीतां दद्यां दाशरथेरहम् ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७

जनकस्य वचः श्रुत्वा विश्वामित्रो महामुनिः । धनुर्दर्शय रामाय इति होवाच पार्थिवम् ॥ १ ॥

विना इसके मैं कन्या न दूँगा । तदन्तर सब राजालोग एकत्र होकर ॥१७॥ मिथिलामें आये और उन-लोगोंने, सीताके लिए कौनसा पराक्रम है, यह पूछा । उन पूछनेवालोंके सामने मैंने शिवजीका यह धनुष रख दिया ॥१८॥ उस धनुषको ग्रहण करने तथा उठानेमें कोई भी समर्थ न होसका । अतएव हीन-पराक्रमी समझकर, मैंने ॥ १९ ॥ उन सब राजाओंको नाहीं कर दिया । मुनिश्रेष्ठ, उन राजाओंने बड़े क्रोधसे ॥ २० ॥ मिथिलापुरीको घेर लिया । उन सबोंको अपने पराक्रमी होनेका सन्देह होगया था । उनलोगोंने धनुषके कारण अपनेको तिरस्कृत समझ लिया था और इसी कारण ॥ २१ ॥ बड़े क्रोधसे मिथिलापुरीको वे पीड़ित करने लगे । एक बरस बीतनेपर, मेरे सब साधन (नागरिकोंके भोजन, वस्त्र आदि और युद्धकी सामग्रियाँ) नष्ट होगये ॥ २२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ, तब मैं अत्यन्त दुःखित हुआ और तपस्याके द्वारा मैंने देवताओंको प्रसन्न किया ॥ २३ ॥ देवताओंने प्रसन्न होकर मुझे चतुरंगिणी सेना दी, जिससे भागकर राजा अपने अपने घर गये ॥ २४ ॥ वे राजा हीन-पराक्रमी थे, पर अपनेको पराक्रमी समझते थे, और उनके अमात्य तथा वे पाप किया करते थे । यही वह परम तेजस्वी धनुष है ॥२५॥ राम लक्ष्मणको भी मैं वह धनुष दिखाता हूँ । यदि रामचन्द्र उस धनुषका चिल्ला चढ़ा दें, तो मैं अपनी अयोनिजा कन्या सीता इन्हें दूँ ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका छाछठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६६ ॥

जनककी बात सुनकर महामुनि विश्वामित्रने कहा-हाँ, रामचन्द्रको धनुष दिखलाइए ॥१॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततः स राजा जनकः सचिवान्व्यादिदेश ह । धनुरानीयतां दिव्यं गन्धमाल्यानुलेपितम् ॥ २ ॥
जनकेन समादिष्टाः सचिवाः प्राविशन्पुरम् । तद्धनुः पुरतः कृत्वा निर्जग्मुरमितौजसः ॥ ३ ॥
नृणां शतानि पञ्चाशद्व्यायतानां महात्मनाम् । मञ्जूषामष्टचक्रां तां समूहुस्ते कथंचन ॥ ४ ॥
तामादाय सुमञ्जूषामायसीं यत्र तद्धनुः । सुरोपमं ते जनकमूचुर्नृपतिमन्त्रिणः ॥ ५ ॥
इदं धनुर्वरं राजन्पूजितं सर्वराजभिः । मिथिलाधिप राजेन्द्र दर्शनीयं यदीच्छसि ॥ ६ ॥
तेषां नृपो वचः श्रुत्वा कृताञ्जलिरभाषत । विश्वामित्रं महात्मानं तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥ ७ ॥
इदं धनुर्वरं ब्रह्मञ्जनकैरभिपूजितम् । राजभिश्च महावीर्यैरशक्तैः पूरितं तदा ॥ ८ ॥
नैतत्सुरगणाः सर्वे सासुरा न च राक्षसाः । गन्धर्वयक्षप्रवराः सकिंनरमहोरगाः ॥ ९ ॥
क्व गतिर्मानुषाणां च धनुषोऽस्य प्रपूरणे । आरोपणे समायोगे वेपने तोलने तथा ॥१०॥
तदेतद्धनुषां श्रेष्ठमानीतं मुनिपुंगव । दर्शयैतन्महाभाग अनयो राजपुत्रयोः ॥११॥
विश्वामित्रः सरामस्तु श्रुत्वा जनकभाषितम् । वत्स राम धनुः पश्य इति राघवमब्रवीत् ॥१२॥
महर्षेर्वचनाद्रामो यत्र तिष्ठति तद्धनुः । मञ्जूषां तामपावृत्य दृष्ट्वा धनुरथाब्रवीत् ॥१३॥
इदं धनुर्वरं दिव्यं संस्पृशामीह पाणिना । यत्नवांश्च भविष्यामि तोलने पूरणेऽपि वा ॥१४॥
बाढमित्यब्रवीद्राजा मुनिश्च समभाषत । लीलया स धनुर्मध्ये जग्राह वचनान्मुनेः ॥१५॥
पश्यतां नृसहस्राणां बहूनां रघुनन्दनः । आरोपयत्स धर्मात्मा सलीलमिव तद्धनुः ॥१६॥

राजा जनकने अपने मंत्रियोंसे कहा कि गंध, माल्य आदिसे सुशोभित वह दिव्य धनुष यहाँ लाइए ॥ २ ॥ जनककी आज्ञासे वे मंत्री नगरमें गये और धनुष लाकर उन वीरोंने राजाके सामने रख दिया ॥ ३ ॥ पाँच हज़ार बड़े बलिष्ठ आदमी, आठ पहियेवाली गाड़ीपर, उस धनुषके सन्दूकको किसी प्रकार लासके थे ॥ ४ ॥ उस सन्दूकको, जिसमें वह धनुष था, लेआकर मंत्रियोंने राजा जनकसे कहा ॥ ५ ॥ महाराज यही श्रेष्ठ धनुष है, जिसकी सब राजाओंने पूजा की है। मिथिलाधिप, यह दर्शनीय है, यदि आप चाहें ॥६॥ उनकी बातें सुन, हाथ जोड़कर राजा जनकने महर्षि विश्वामित्रसे राम-लक्ष्मणको धनुष दिखलानेके लिए कहा ॥ ७ ॥ ब्रह्मन्, यही वह श्रेष्ठ धनुष है। जनक राजाओंने इसकी केवल पूजा की है। वे पराक्रमी होनेपर भी इस धनुषको उठा, चला नहीं सकते थे ॥ ८ ॥ देवता, गण, असुर, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, नाग आदि भी ॥ ९ ॥ इस धनुषका चिल्ला चढ़ाने, उठाने, बाण चढ़ाने, खींचने आदिमें समर्थ नहीं हैं, फिर मनुष्योंकी क्या बात? ॥१०॥ सब धन्वाओंमें श्रेष्ठ यह धनुष आया है। हे महाभाग मुनि, आप इसे राजपुत्रोंको दिखावें ॥ ११ ॥ रामचन्द्र और विश्वामित्रने जनककी बातें सुनीं। विश्वामित्रने कहा—वत्स राम, इस धनुषको देखो। ऐसा उन्होंने रामचन्द्रसे कहा ॥ १२ ॥ महर्षिके वचनसे, जहाँ वह धनुष था, वहाँ रामचन्द्र गये। सन्दूक खोलकर और धनुष देखकर उन्होंने कहा ॥ १३ ॥ इस अलौकिक और श्रेष्ठ धनुषको मैं छूता हूं। इसे उठाने और चढ़ानेका भी प्रयत्न करूँगा ॥ १४ ॥ राजा जनकने और मुनिने रामचन्द्रको ऐसा करनेकी आज्ञा दी। मुनिके कहनेसे, रामचन्द्रने, बहुत ही आसानीसे धनुषको बीचसे पकड़ा ॥ १५ ॥ हज़ारों मनुष्य वहाँ देख रहे थे। रामचन्द्रने अनायास ही वह धनुष चढ़ा दिया ॥१६॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आरोपयित्वा मौर्वीं च पूरयामास तद्धनुः । तद्बभञ्ज धनुर्मध्ये नरश्रेष्ठो महायशाः ॥१७॥
तस्य शब्दो महानासीन्निर्घातसमनिःस्वनः । भूमिकम्पश्च सुमहान्पर्वतस्येव दीर्यतः ॥१८॥
निपेतुश्च नराः सर्वे तेन शब्देन मोहिताः । वर्जयित्वा मुनिवरं राजानं तौ च राघवौ ॥१९॥
प्रत्याश्वस्ते जने तस्मिन्राजा विगतसाध्वसः । उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं वाक्यज्ञो मुनिपुंगवम् ॥२०॥
भगवन्दृष्टवीर्यो मे रामो दशरथात्मजः । अत्यद्भुतमचिन्त्यं च अतर्कितमिदं मया ॥२१॥
जनकानां कुले कीर्तिमाहरिष्यति मे सुता । सीता भर्तारमासाद्य रामं दशरथात्मजम् ॥२२॥
मम सत्या प्रतिज्ञा सा वीर्यशुल्केति कौशिक । सीता प्राणैर्बहुमता देया रामाय मे सुता ॥२३॥
भवतोऽनुमते ब्रह्मञ्शीघ्रं गच्छन्तु मन्त्रिणः । मम कौशिक भद्रं ते अयोध्यां त्वरिता रथैः ॥२४॥
राजानं प्राश्रितैर्वाक्यैरानयन्तु पुरं मम । प्रदानं वीर्यशुल्कायाः कथयन्तु च सर्वशः ॥२५॥
मुनिगुप्तौ च काकुत्स्थौ कथयन्तु नृपाय वै । प्रीतियुक्तं तु राजानमानयन्तु सुशीघ्रगाः ॥२६॥
कौशिकस्तु तथेत्याह राजा चाभाष्य मन्त्रिणः । अयोध्यां प्रेषयामास धर्मात्मा कृतशासनान् ।
यथावृत्तं समाख्यातुमानेतुं च नृपं तथा ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

उसपर चिल्ला चढ़ाकर उसका टंकार करने लगे, वह धनुष बीचसे ही टूट गया ॥ १७ ॥ फटते हुए पर्वतोंके समान और वज्र गिरनेके समान, उस धनुषके टूटनेका भयानक शब्द हुआ । पृथिवी काँपने लगी ॥ १८ ॥ विश्वामित्र, जनक और राम-लक्ष्मणको छोड़कर और जितने मनुष्य वहाँ थे, वे सब उस धनुषके टूटनेका शब्द सुनकर बेहोश-से हो गये । जब वे सब मनुष्य होशमें आये, तब राजा जनककी घबड़ाहट दूर हुई । बोलनेमें चतुर राजाने हाथ जोड़कर विश्वामित्रसे कहा ॥२०॥ महाराज, दशरथके पुत्र रामचन्द्रका पराक्रम हमलोगोंने देख लिया । इनका पराक्रम अद्भुत है, अचिन्त्य है और विचारके परे है ॥ २१ ॥ मेरी कन्या जनकोंके कुलकी कीर्ति बढ़ावेगी । दसरथके पुत्र रामचन्द्रको सीताने पति पाया ॥ २२ ॥ इसका जो मैंने पराक्रम-शुल्क निश्चय किया था, वह मेरी प्रतिज्ञा भी पूरी हुई । कौशिक, सीता मुझे प्राणोंसे भी प्रिय है ॥ २३ ॥ मैं इसे रामचन्द्रको दूँगा । महाराज, यदि आपकी आज्ञा हो, तो ये मेरे मंत्री, रथोंपर शीघ्र ही अयोध्याको जायँ, ॥ २४ ॥ अनुनय-विनयसे राजाको मेरे नगरमें ले आवें और रामके सीतासे व्याहकी बात भी चारो ओर कहें ॥ २५ ॥ राम और लक्ष्मण, विश्वामित्रके द्वारा रक्षित और प्रसन्न हैं, यह भी राजा दशरथसे कहें और शीघ्र जाकर प्रसन्नतापूर्वक राजाको ले आवें ॥ २६ ॥ कौशिकने राजा जनकके विचारके अनुसार काम करनेकी आज्ञा दी । धर्मात्मा राजाने मंत्रियोंको अयोध्या भेजा । जो कुछ यहाँ हुआ था, वह सब कहने तथा राजाको ले आनेके लिए जनकने मंत्रियोंको आज्ञा दी ॥ २७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका सतसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६७ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अष्टषष्टितमः सर्गः ६८

जनकेन समादिष्टा दूतास्ते क्लान्तवाहनाः । त्रिरात्रमुषिता मार्गे तेऽयोध्यां प्राविशन्पुरीम् ॥ १ ॥
ते राजवचनाद्गत्वा राजवेश्म प्रवेशिताः । ददृशुर्देवसंकाशं वृद्धं दशरथं नृपम् ॥ २ ॥
बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वे दूता विगतसाध्वसाः । राजानं प्राश्रितं वाक्यमब्रुवन्मधुराक्षरम् ॥ ३ ॥
मैथिलो जनको राजा साग्निहोत्रपुरस्कृतः । मुहुर्मुहुर्मधुरया स्नेहसंरक्तया गिरा ॥ ४ ॥
कुशलं चाव्ययं चैव सोपाध्यायपुरोहितम् । जनकस्त्वां महाराज पृच्छते सपुरःसरम् ॥ ५ ॥
पृष्ट्वा कुशलमव्यग्रं वैदेहो मिथिलाधिपः । कौशिकानुमते वाक्यं भवन्तमिदमब्रवीत् ॥ ६ ॥
पूर्वं प्रतिज्ञा विदिता वीर्यशुल्का ममात्मजा । राजानश्च कृतामर्षा निर्वीर्या विमुखीकृताः ॥ ७ ॥
सेयं मम सुता राजन्विश्वामित्रपुरस्कृतैः । यदृच्छयागतै राजन्निर्जिता तव पुत्रकैः ॥ ८ ॥
तच्च रत्नं धनुर्दिव्यं मध्ये भग्नं महात्मना । रामेण हि महाबाहो महत्यां जनसंसदि ॥ ९ ॥
अस्मै देया मया सीता वीर्यशुल्का महात्मने । प्रतिज्ञां तर्तुमिच्छामि तदनुज्ञातुमर्हसि ॥१०॥
सोपाध्यायो महाराज पुरोहितपुरस्कृतः । शीघ्रमागच्छ भद्रं ते द्रष्टुमर्हसि राघवौ ॥११॥
प्रतिज्ञां मम राजेन्द्र निर्वर्तयितुमर्हसि । पुत्रयोरुभयोरेव प्रीतिं त्वमुपलप्स्यसे ॥१२॥
एवं विदेहाधिपतिर्मधुरं वाक्यमब्रवीत् । विश्वामित्राभ्यनुज्ञातः शतानन्दमते स्थितः ॥१३॥
दूतवाक्यं तु तच्छ्रुत्वा राजा परमहर्षितः । वसिष्ठं वामदेवं च मन्त्रिणश्चैवमब्रवीत् ॥१४॥

जनकसे आज्ञा पाकर वे दूत अयोध्या चले। उनके घोड़े थक गये, रास्तेमें तीन रात बिताकर, उन लोगोंने अयोध्यामें प्रवेश किया ॥ १ ॥ राजाकी आज्ञासे, राजमहलमें जाकर, उन लोगोंने देवताके समान बूढ़े राजा दसरथको देखा ॥ २ ॥ हाथ जोड़कर तथा निडर होकर, वे सब दूत राजा दशरथसे बड़ेही विनयके साथ मधुर वचन बोले ॥ ३ ॥ महाराज, अग्निहोत्री मिथिलाके राजा जनकने बड़े स्नेहसे मधुर शब्दोंके द्वारा ॥ ४ ॥ उपाध्याय और पुरोहितके साथ आपकी कुशल और आपका योग पूछा है ॥ ५ ॥ कुशल पूछकर, बड़ी सावधानीसे मिथिलाधिपतिने विश्वामित्रकी आज्ञा पाकर, आपसे कहनेको यह सँदेश कहा है ॥ ६ ॥ आपको मालुम होगा कि मैंने अपनी कन्याका शुल्क पराक्रम रखा था। बहुतसे राजा क्रोध करके आये, पर वे पराक्रम-हीन थे, इसलिए लौटा दिये गये ॥ ७ ॥ उस मेरी कन्याको, विश्वामित्रके साथ घूमते-फिरते आये हुए आपके बच्चेने जीतलिया ॥८॥ हे वीर, उस बड़ी सभामें महात्मा रामचन्द्रने उस दिव्य धनुषको बीचसे तोड़ दिया ॥९॥ मैं वीर्य-शुल्का अपनी कन्या इसी महात्मा रामचन्द्रको देना चाहता हूँ और इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूरी करना चाहता हूं। महाराज, आप आज्ञा दें ॥ १० ॥ अपने पुरोहित और उपाध्यायको लेकर आप शीघ्र आवें। आपका कल्याण होगा, आप राम और लक्ष्मणको वहाँ देख सकेंगे ॥११॥ राजेन्द्र, आप मेरी प्रतिज्ञा पूरी करावें, जिससे आप अपने दोनों पुत्रोंकी प्रसन्नता पा सकेंगे ॥१२॥ महाराजा मिथिलाधिपति राजा जनकने विश्वामित्रकी आज्ञासे तथा शतानन्दकी सलाहसे, यही मधुर वचन आपसे कहे हैं ॥ १३ ॥ दूतोंके वचन सुनकर राजा दशरथ बड़े प्रसन्न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुप्तः कुशिकपुत्रेण कौसल्यानन्दवर्धनः । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विदेहेषु वसत्यसौ ॥१५॥
दृष्टवीर्यस्तु काकुत्स्थो जनकेन महात्मना । संप्रदानं सुतायास्तु राघवे कर्तुमिच्छति ॥१६॥
यदि वो रोचते वृत्तं जनकस्य महात्मनः । पुरीं गच्छामहे शीघ्रं मा भूत्कालस्य पर्ययः ॥१७॥
मन्त्रिणो बाढमित्याहुः सह सर्वैर्महर्षिभिः । सुप्रीतश्चाब्रवीद्राजा श्वो यात्रेति च मन्त्रिणः ॥१८॥
मन्त्रिणस्तु नरेन्द्रस्य रात्रिं परमसत्कृताः । ऊषुः प्रमुदिताः सर्वे गुणैः सर्वैः समन्विताः ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डेऽष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९

ततोरात्र्यां व्यतीतायां सोपाध्यायः सबान्धवः । राजा दशरथो हृष्टः सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
अद्य सर्वे धनाध्यक्षा धनमादाय पुष्कलम् । व्रजन्त्वग्रे सुविहिता नानारत्नसमन्विताः ॥ २ ॥
चतुरङ्गबलं चापि शीघ्रं निर्यातु सर्वशः । ममाज्ञासमकालं च यानं युग्यमनुत्तमम् ॥ ३ ॥
वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ कश्यपः । मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुर्ऋषिः कात्यायनस्तथा ॥ ४ ॥
एते द्विजाः प्रयान्त्वग्रे स्यन्दनं योजयस्व मे । यथा कालात्ययो न स्याद्गता हि त्वरयन्ति माम् ॥५॥
वचनाच्च नरेन्द्रस्य सेना च चतुरङ्गिणी । राजानमृषिभिः सार्धं व्रजन्तं पृष्ठतोऽन्वयात् ॥६॥

हुए । उन्होंने वशिष्ठ, वामदेव आदि मंत्रियोंसे कहा ॥ १४ ॥ विश्वामित्रके द्वारा रक्षित होकर, कौसल्याके आनन्द बढ़ानेवाले रामचन्द्र, अपने भाई लक्ष्मणके साथ, इस समय मिथिलामें निवास करते हैं ॥ १५ ॥ राजा जनकने रामचन्द्रका पराक्रम देख लिया है । वे अपनी कन्या सीताका व्याह रामचन्द्रके साथ करना चाहते हैं ॥ १६ ॥ यदि यह संवाद आपलोगोंको पसन्द हो, तो शीघ्र ही हमलोग मिथिलाकी राजधानीमें चलें । काल-विलम्ब न करें ॥ १७ ॥ महर्षियोंके साथ मंत्रियोंने राजा दसरथकी बात स्वीकार की । राजा बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि कल यात्रा करनी होगी ॥ १८ ॥ मंत्रीके सब गुणोंसे युक्त, राजा जनकके उन सब मंत्रियोंने राजाके द्वारा सम्मत होकर, बड़ी प्रसन्नतासे उस रातको वहीं निवास किया ॥ १९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका अड़सठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६८ ॥

रात्रिके बीतनेपर उपाध्याय और बांधवोंके साथ, प्रसन्नतापूर्वक राजा दशरथने, सुमंत्रसे यह कहा ॥ १ ॥ सब खजाञ्ची बहुत अधिक परिमाणमें धन लेकर आगे चलें । तरह-तरहके रत्न ले लें और सावधानीसे जायँ ॥ २ ॥ सेना भी शीघ्र चले । मेरी आज्ञा पाते ही सवारी और घोड़े लाये जायँ ॥ ३ ॥ वसिष्ठ वामदेव, जाबालि, कश्यप, दीर्घायु मार्कण्डेय तथा कात्यायन ॥ ४ ॥ ये सब ब्राह्मण आगे चलें । मेरे लिए भी रथ तैयार करो, जिससे विलम्ब न होने पावे । दूत मुझे शीघ्रता करनेके लिए कह रहे हैं ॥ ५ ॥ नरेन्द्रकी आज्ञासे उनकी सेना, ऋषियोंके साथ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गत्वा चतुरहं मार्गं विदेहानभ्युपेयिवान् । राजा च जनकः श्रीमाञ्श्रुत्वा पूजामकल्पयत् ॥७॥
ततो राजानमासाद्य वृद्धं दशरथं नृपम् । मुदितो जनको राजा प्रहर्षं परमं ययौ ॥ ८ ॥
उवाच वचनं श्रेष्ठो नरश्रेष्ठं मुदान्वितम् । स्वागतं ते नरश्रेष्ठ दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव ॥ ९ ॥
पुत्रयोरुभयोः प्रीतिं लप्स्यसे वीर्यनिर्जिताम् । दिष्ट्या प्राप्तो महातेजा वसिष्ठो भगवानृषिः ॥१०॥
सह सर्वैर्द्विजश्रेष्ठैर्देवैरिव शतक्रतुः । दिष्ट्या मे निर्जिताविघ्ना दिष्ट्या मे पूजितं कुलम् ॥११॥
राघवैः सह संबन्धाद्वीर्यश्रेष्ठैर्महाबलैः । श्वः प्रभाते नरेन्द्र त्वं संवर्तयितुमर्हसि ॥१२॥
यज्ञस्यान्ते नरश्रेष्ठ विवाहमृषिसत्तमैः । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ऋषिमध्ये नराधिपः ॥१३॥
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठः प्रत्युवाच महीपतिम् । प्रतिग्रहो दातृवशः श्रुतमेतन्मया पुरा ॥१४॥
यथा वक्ष्यसि धर्मज्ञ तत्करिष्यामहे वयम् । तद्धर्मिष्ठं यशस्यं च वचनं सत्यवादिनः ॥१५॥
श्रुत्वा विदेहाधिपतिः परं विस्मयमागतः । ततः सर्वे मुनिगणाः परस्परसमागमे ॥१६॥
हर्षेण महता युक्तास्तां रात्रिमवसन्सुखम् । राजा च राघवौ पुत्रौ निशाम्य परिहर्षितः ॥१७॥
उवास परमप्रीतो जनकेनाभिपूजितः । जनकोऽपि महातेजाः क्रिया धर्मेण तत्त्ववित् ।
यज्ञस्य च सुताभ्यां च कृत्वा रात्रिमुवास ह ॥१८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥६९॥

जाते हुए राजाके पीछे-पीछे चली ॥ ६ ॥ चार दिन मार्गमें चलकर वे मिथिला पहुंचे । राजा जनकने दशरथका आना सुनकर, उनकी पूजाकी तयारी की ॥ ७ ॥ बूढ़े राजा दशरथके समीप जाकर स्वभावसे प्रसन्न रहनेवाले जनक और भी प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ जनकने प्रसन्नचित्त राजा दशरथसे कहा—नरश्रेष्ठ, आपका स्वागत । भाग्यसे ही आप यहाँ पधारे ॥ ९ ॥ पराक्रमसे आपके पुत्रोंने जो कीर्ति कमायी है, उससे आप प्रसन्न हों । भगवान् वसिष्ठ ऋषि भी आये हैं, यह और भी सौभाग्यकी बात है ॥ १० ॥ देवताओंके साथ, जैसे इन्द्र आते हैं, वैसेही ब्राह्मणोंके साथ ये भी आये हैं । भाग्यकी बात है कि मेरे सब विघ्न दूर हुए । मेरा कुल पवित्र हुआ ॥ ११ ॥ पराक्रमी रघुवंशियोंके साथ संबन्ध होनेके कारण, मेरा कुल उन्नत हुआ । राजन्, कल प्रातःकाल ॥ १२ ॥ यज्ञके अन्तमें ऋषियोंकी सम्मति लेकर व्याहकी तयारी कराइए । ऋषियोंकी सभामें जनककी वे बातें सुनकर, राजा दसरथ ॥ १३ ॥ जनकसे बोले—मैंने सुना है कि दान दाताके अधीन है ॥ १४ ॥ धर्मज्ञ, जैसा आप कहेंगे, वैसाही हमलोग करेंगे । सत्यवादी राजा दशरथके ये वचन ॥ १५ ॥ सुनकर, जनकको बड़ा आश्चर्य हुआ । तदनन्तर मुनिगण आपसमें मिलने लगे ॥ १६ ॥ बड़े प्रसन्न होकर महर्षियोंने वह रात बितायी । राजा दसरथ भी अपने पुत्रोंको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १७ ॥ जनकके द्वारा सत्कृत होकर, राजा दसरथ भी बहुत ही प्रसन्न हुए । क्रिया जाननेवाले जनकने यज्ञ और कन्याओंके विवाहका प्रबन्ध कर वह रात बितायी ॥ १८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका उनहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६९ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सप्ततितमः सर्गः ७०

ततः प्रभाते जनकः कृतकर्मा महर्षिभिः । उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः शतानन्दं पुरोहितम्॥ १ ॥
भ्राता मम महातेजा वीर्यवानतिधार्मिकः । कुशध्वज इति ख्यातः पुरीमध्यवसच्छुभाम् ॥ २ ॥
वार्याफलकपर्यन्तां पिबन्निक्षुमतीं नदीम् । सांकाश्यां पुण्यसंकाशां विमानमिव पुष्पकम् ॥ ३ ॥
तमहं द्रष्टुमिच्छामि यज्ञगोप्ता स मे ततः । प्रीतिं सोऽपि महातेजा इमां भोक्ता मया सह ॥ ४ ॥
एवमुक्ते तु वचनं शतानन्दस्य संनिधौ । आगताः केचिदव्यग्रा जनकस्तान्समादिशत्॥ ५ ॥
शासनात्तु नरेन्द्रस्य प्रययुः शीघ्रवाजिभिः । समानेतुं नरव्याघ्रं विष्णुमिन्द्राज्ञया यथा ॥ ६ ॥
सांकाश्यां ते समागम्य ददृशुश्च कुशध्वजम् । न्यवेदयन्यथावृत्तं जनकस्य च चिन्तितम् ॥ ७ ॥
तद्वृत्तं नृपतिः श्रुत्वा दूतश्रेष्ठैर्महाजवैः । आज्ञया तु नरेन्द्रस्य आजगाम कुशध्वजः ॥ ८ ॥
स ददर्श महात्मानं जनकं धर्मवत्सलम् । सोऽभिवाद्य शतानन्दं जनकं चाथधार्मिकम्॥ ९ ॥
राजार्हं परमं दिव्यमासनं सोऽध्यरोहत । उपविष्टावुभौ तौ तु भ्रातरावमितद्युती ॥१०॥
प्रेषयामासतुर्वीरौ मन्त्रिश्रेष्ठं सुदामनम् । गच्छ मन्त्रिपते शीघ्रमिक्ष्वाकुमपितप्रभम् ॥११॥
आत्मजैः सह दुर्धर्षमानयस्व समन्त्रिणम् । औपकार्या स गत्वा तु रघूणां कुलवर्धनम् ॥१२॥
ददर्श शिरसा चैनमभिवाद्येदमब्रवीत । अयोध्याधिपते वीर वैदेहो मिथिलाधिपः ॥१३॥
स त्वां द्रष्टुं व्यवसितः सोपाध्यायपुरोहितम् । मन्त्रिश्रेष्ठवचः श्रुत्वा राजा सर्षिगणस्तथा ॥१४॥

प्रातःकाल होनेपर राजा जनकने महर्षियोंके साथ अपने सब कृत्य किये, तदनन्तर वे अपने पुरोहित शतानन्दसे बोले ॥ १ ॥ महातेजस्वी, पराक्रमी और धार्मिक कुशध्वज नामके मेरे भाई पहले इस नगरीमें रहते थे ॥ २ ॥ वे इस समय, चारो तरफसे चहारदीवारीसे घिरी हुई तथा मन्त्र आदिसे सज्जित, इक्षु नदीका जल पीनेके लिए, पवित्र सांकाश्या नगरीमें गये हैं । यह नगरी पुष्पक विमानके समान सुन्दर है ॥ ३ ॥ मैं उनको देखना चाहता हूँ, वे ही मेरे यज्ञके रक्षक बनें । महातेजस्वी, वे भी इस आनन्दमें भाग लें ॥ ४ ॥ शतानन्दसे राजा जनकके ऐसा कहनेपर कई मनुष्य वहाँ बड़ी नम्रताके साथ आये । राजा जनकने उन्हें आज्ञा दी ॥ ५ ॥ राजाकी आज्ञासे, तेज चलनेवाले घोड़ोंपर, वे कुशध्वजको ले आनेके लिए चले, जैसे इन्द्रकी आज्ञासे विष्णु लाये जाते हों ॥ ६ ॥ सांकाश्या नगरीमें जाकर उन्होंने कुशध्वजको देखा और सब बातें बतलायीं । जनकके विचार भी कहे ॥ ७ ॥ उन दूतोंके द्वारा, सब बातें कुशध्वजने सुनीं । राजा जनककी आज्ञा होनेके कारण, वे आये ॥ ८ ॥ उन्होंने महात्मा और धर्मप्रेमी जनकको देखा । शतानन्द तथा धर्मात्मा जनकको उन्होंने प्रणाम किया ॥ ९ ॥ राजाओंके बैठने योग्य सुन्दर आसनपर वे बैठे । वे दोनों अमित कान्तिवाले भाई साथ बैठे ॥ १० ॥ उन दोनोंने मन्त्रिश्रेष्ठ सुदामनको आज्ञा दी–मन्त्रिश्रेष्ठ ! आप शीघ्र प्रभावशाली राजा दसरथके पास जांय ॥ ११ ॥ शत्रुओंसे अजेय राजा दसरथको मन्त्रियोंके साथ आप ले आवें । वे मन्त्री दसरथके ख़ीमेमें गये ॥१२॥ राजा दसरथको उनलोगोंने देखा और सिर झुकाकर प्रणाम किया और कहा–हे अयोध्याके महाराज, मिथिलाके राजा जनक, ॥ १३ ॥ पुरोहित और उपाध्यायोंके साथ आपको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सबन्धुरगमत्तत्र जनको यत्र वर्तते । राजाचमन्त्रिसहितःसोपाध्यायःसबान्धवः ॥१५॥
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठो वैदेहमिदमब्रवीत् । विदितं ते महाराज इक्ष्वाकुकुलदैवतम् ॥१६॥
वक्ता सर्वेषु कृत्येषु वसिष्ठो भगवानृषिः । विश्वामित्राभ्यनुज्ञातः सह सर्वैर्महर्षिभिः ॥१७॥
एष वक्ष्यति धर्मात्मा वसिष्ठो मे यथाक्रमम् । तूष्णींभूते दशरथे वसिष्ठो भगवानृषिः ॥१८॥
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञो वैदेहं सपुरोधसम् । अव्यक्तप्रभवो ब्रह्मा शाश्वतो नित्य अव्ययः ॥१९॥
तस्मान्मरीचिः संजज्ञे मरीचेः कश्यपः सुतः । विवस्वान्कश्यपाज्जज्ञे मनुर्वैवस्वतः स्मृतः ॥२०॥
मनुः प्रजापतिः पूर्वमिक्ष्वाकुश्च मनोः सुतः । तमिक्ष्वाकुमयोध्यायां राजानं विद्धि पूर्वकम् ॥२१॥
इक्ष्वाकोऽस्तु सुतःश्रीमान्कुक्षिरित्येव विश्रुतः । कुक्षेरथात्मजः श्रीमान्विकुक्षिरुदपद्यत ॥२२॥
विकुक्षेस्तु महातेजा बाणः पुत्रः प्रतापवान् । बाणस्य तु महातेजा अनरण्यः प्रतापवान् ॥२३॥
अनरण्यात्पृथुर्जज्ञे त्रिशङ्कुस्तु पृथोरपि । त्रिशङ्कोरभवत्पुत्रो धुन्धुमारो महायशाः ॥२४॥
धुन्धुमारान्महातेजा युवनाश्वो महारथः । युवनाश्वसुतश्चासीन्मान्धाता पृथिवीपतिः ॥२५॥
मान्धातुस्तु सुतः श्रीमान्सुसंधिरुदपद्यत । सुसंधेरपि पुत्रौ द्वौ ध्रुवसंधिः प्रसेनजित् ॥२६॥
यशस्वी ध्रुवसंधेस्तु भरतो नाम नामतः । भरतात्तु महातेजा असितो नाम जायत ॥२७॥
यस्यैते प्रतिराजान उदपद्यन्त शत्रवः । हैहयास्तालजङ्घाश्च शूराश्च शशबिन्दवः ॥२८॥
तांश्च स प्रतियुध्यन्वै युद्धे राजा प्रवासितः । हिमवन्तमुपागम्य भार्याभ्यां सहितस्तदा ॥२९॥

देखना चाहते हैं। प्रधान मन्त्रीके ये वचन सुनकर, राजा ऋषियों, ॥ १४ ॥ बन्धुओंके साथ वहाँ गये, जहाँ राजा जनक थे। मन्त्रियों, उपाध्यायों और पुरोहितोंके साथ दसरथने ॥१५॥ राजा जनकसे कहा-महाराज, आपको मालूम है कि इक्ष्वाकुवंशके देवता, भगवान् वसिष्ठ हैं ॥ १६ ॥ उन्हींकी सम्मति तथा आज्ञासे सब कार्य होते हैं। विश्वामित्र तथा अन्य महर्षियोंसे सम्मति लेकर, ॥१७॥ वे धर्मात्मा वसिष्ठही सब बातोंकी आज्ञा देंगे। दसरथके चुप होनेपर भगवान् वसिष्ठ ऋषिने ॥१८॥ राजा जनक और उनके पुरोहितसे कहा—भगवान् ब्रह्माका जन्म अज्ञात है। वे शाश्वत ह, नित्य हैं, और अविनाशी हैं ॥ १९ ॥ उनसे मरीचि उत्पन्न हुए और मरीचिसे कश्यप। कश्यपके पुत्र विवस्वान हुए और उनके पुत्र मनु हुए ॥ २० ॥ मनु प्रजापति थे, उनके पुत्र इक्ष्वाकु हुए। उन्होंने अयोध्या नगरी बसायी और वहांके राजा हुए। वे अयोध्याके पहले राजा हैं ॥ २१ ॥ इक्ष्वाकुके पुत्र श्रीमान् कुक्षि और कुक्षिके विकुक्षि उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ विकुक्षिके पुत्र बाण नामसे प्रसिद्ध हुए। वे बड़े तेजस्वी और प्रतापवान् हुए। बाणके पुत्र प्रतापी और तेजस्वी अनरण्य हुए ॥ २३ ॥ अनरण्यके पुत्र पृथु और पृथुके पुत्र त्रिशंकु हुए, और त्रिशंकुके पुत्र महायशस्वी धुन्धुकार हुए ॥ २४ ॥ धुन्धुकारसे महातेजस्वी, महारथ युवनाश्व उत्पन्न हुए। युवनाश्वके पुत्र राजा मान्धाता थे ॥ २५ ॥ मान्धाताके पुत्र सुसन्धि हुए। सुसन्धिके दो पुत्र हुए-ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित् ॥ २६ ॥ यज्ञ करनेवाले ध्रुवसन्धिके भरत नामके पुत्र हुए और भरत से महातेजस्वी असित उत्पन्न हुए ॥ २७ ॥ जिन असितके शत्रु, पड़ोसके हैहयवंशी, तालजंघवंशी और शशबिन्दुवंशी हुए ॥ २८ ॥ उन राजाओंसे युद्ध करते हुए,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

असितोऽल्पबलो राजा कालधर्ममुपेयिवान् । द्वे चास्य भार्ये गर्भिण्यो बभूवतुरिति श्रुतिः ॥३०॥
एका गर्भविनाशार्थं सपत्न्यै सगरं ददौ । ततः शैलवरे रम्ये बभूवाभिरतो मुनिः ॥३१॥
भार्गवश्च्यवनो नाम हिमवन्तमुमाश्रितः । तत्र चैका महाभागा भार्गवं देववर्चसम् ॥३२॥
ववन्दे पद्मपत्राक्षी काङ्क्षन्ती सुतमुत्तमम् । तमृषिंसाभ्युपागम्यकालिन्दीचाभ्यवादयत् ॥३३॥
स तामभ्यवदद्विप्रः पुत्रेप्सुं पुत्रजन्मनि । तव कुक्षौ महाभागे सुपुत्रः सुमहाबलः ॥३४॥
महावीर्यो महातेजा अचिरात्संजनिष्यति । गरेण सहितः श्रीमान्मा शुचः कमलेक्षणे ॥३५॥
च्यवनं च नमस्कृत्य राजपुत्री पतिव्रता । पत्या विरहिता तस्मात्पुत्रं देवी व्यजायत ॥३६॥
सपत्न्या तु गरस्तस्यै दत्तो गर्भजिघांसया । सह तेन गरेणैव संजातः सगरोऽभवत् ॥३७॥
सगरस्यासमञ्जस्तु असमञ्जादथांशुमान् । दिलीपोंऽशुमतः पुत्रो दिलीपस्य भगीरथः ॥३८॥
भगीरथात्ककुत्स्थश्च ककुत्स्थाच्च रघुस्तथा । रघोस्तु पुत्रस्तेजस्वी प्रवृद्धः पुरुषादकः ॥३९॥
कल्माषपादोऽप्यभवत्तस्माज्जातस्तु शङ्खणः । सुदर्शनः शङ्खणस्य अग्निवर्णः सुदर्शनात् ॥४०॥
शीघ्रगस्त्वग्निवर्णस्य शीघ्रगस्य मरुः सुतः । मरोः प्रशुश्रुकस्त्वासीदम्बरीषः प्रशुश्रुकात् ॥४१॥
अम्बरीषस्य पुत्रोऽभून्नहुषश्च महीपतिः । नहुषस्य ययातिस्तु नाभागस्तु ययातिजः ॥४२॥
नाभागस्य बभूवाज अजादशरथोऽभवत् । अस्मादशरथाज्जातौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥४३॥

असित नगरसे निकाल दिये गये और वे अपनी दो स्त्रियोंके साथ हिमवान पर्वतपर तपस्या करने चले गये ॥ २९ ॥ दुर्बल राजा असित स्वर्ग सिधारे। उनकी दोनों स्त्रियाँ गर्भवती थीं, ऐसा सुना जाता है ॥ ३० ॥ उनकी एक स्त्रीने अपनी सौतका गर्भ नष्ट करनेके लिए उसे गर (जहर) दिया। उसी सुन्दर पर्वतपर, एक मुनि निवास करते थे ॥ ३१ ॥ वे भार्गवके पुत्र च्यवन थे, वे हिमवानपर आये थे। वह (जहर खानेवाली) देवतुल्य तेजस्वी महर्षि च्यवनके यहाँ गयी ॥ ३२ ॥ उत्तम पुत्रकी इच्छासे उस कालिन्दीने मुनिको प्रणाम किया ॥ ३३ ॥ उस पुत्र चाहनेवालीसे पुत्रके विषयमें मुनिने कहा—महाभागे ! तुम्हारे गर्भमें सुपुत्र है और वह बड़ा बली है ॥ ३४ ॥ वह महातेजस्वी महापराक्रमी शीघ्र ही गर (जहर) के साथ उत्पन्न होगा। वह बड़ा सुन्दर होगा। तुम शोक मत करो ॥ ३५ ॥ च्यवनको उस पतिव्रता राजपुत्रीने प्रणाम किया और उस पतिहीनाने पुत्र उत्पन्न किया ॥ ३६ ॥ उसकी सौतने गर्भ नष्ट करनेके लिए जहर दिया था, पर जहरके साथ ही उसके पुत्र हुआ और उसका सगर नाम पड़ा ॥ ३७ ॥ सगरके पुत्र असमंज और असमंजके अंशुमान हुए। अंशुमानके पुत्र दिलीप और दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए ॥ ३८ ॥ और भगीरथके पुत्र ककुत्स्थ, और ककुत्स्थके रघु हुए, रघुका पुत्र बड़ा तेजस्वी और बड़ा उद्धत हुआ। वह मनुष्यका मांस खानेवाला हो गया ॥ ३९ ॥ उसका नाम कल्माषपाद था, उससे शंखण नामक पुत्र हुआ। शंखणके सुदर्शन, सुदर्शनके अग्निवर्ण हुए, अग्निवर्णके पुत्र शीघ्रग और उनके पुत्र मरु हुए। मरुके पुत्र प्रशुश्रुक और उनके अम्बरीष हुए ॥ ४१ ॥ अम्बरीषके पुत्र राजा नहुष हुए और नहुषके ययाति तथा उनके पुत्र नाभाग हुए ॥ ४२ ॥ नाभागके पुत्र अज, अजके दसरथ उत्पन्न हुए। उन्हीं राजा दसरथके पुत्र, ये दोनों भाई राम और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आदिवंशविशुद्धानां राज्ञां परमधर्मिणाम् । इक्ष्वाकुकुलजातानां वीराणां सत्यवादिनाम्॥४४॥
रामलक्ष्मणयोरर्थे त्वत्सुते वरये नृप । सदृशाभ्यां नरश्रेष्ठ सदृशे दातुमर्हसि ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ७१

एवं ब्रुवाणं जनकः प्रत्युवाच कृताञ्जलिः । श्रोतुमर्हसि भद्रं ते कुलं नः परिकीर्तितम् ॥ १ ॥
प्रधाने हि मुनिश्रेष्ठ कुलं निरवशेषतः । वक्तव्यं कुलजातेन तन्निबोध महामते ॥ २ ॥
राजाभून्निषु लोकेषु विश्रुतः स्वेन कर्मणा । निमिः परमधर्मात्मा सर्वसत्त्ववतां वरः ॥ ३ ॥
तस्य पुत्रो मिथिर्नाम जनको मिथिपुत्रकः । प्रथमो जनको राजा जनकादप्युदावसुः ॥ ४ ॥
उदावसोस्तु धर्मात्मा जातो वै नन्दिवर्धनः । नन्दिवर्धसुतः शूरः सुकेतुर्नाम नामतः ॥ ५ ॥
सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः । देवरातस्य राजर्षेर्बृहद्रथ इति स्मृतः ॥ ६ ॥
बृहद्रथस्य शूरोऽभून्महावीरः प्रतापवान् । महावीरस्य धृतिमान्सुधृतिः सत्यविक्रमः ॥ ७ ॥
सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतुः सुधार्मिकः । धृष्टकेतोश्च राजर्षेर्हर्यश्व इति विश्रुतः ॥ ८ ॥
हर्यश्वस्य मरुः पुत्रो मरोः पुत्रः प्रतीन्धकः । प्रतीन्धकस्य धर्मात्मा राजा कीर्तिरथः सुतः॥ ९ ॥

लक्ष्मण हैं ॥ ४३ ॥ यह राजवंश आदिसे ही विशुद्ध है, धर्मात्मा है, वीर है, सत्यवादी है और इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुआ है ॥ ४४ ॥ मैं राम-लक्ष्मणके लिए तुम्हारी दो कन्याएँ माँगता हूँ। ये योग्य हैं। इनको योग्य कन्याएँ दो ॥ ४५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका सत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७० ॥

ऐसा कहते हुए राजा जनकने हाथ जोड़कर वसिष्ठसे कहा—महाराज, मैं अपने कुलका परिचय देता हूँ, सुनिए ॥ १ ॥ कन्या-दानके सम्बन्धमें कुलीन मनुष्यको अपने कुलका आद्यन्त वर्णन करना चाहिए। आप मेरे कुलका वर्णन सुनें ॥ २ ॥ परम धर्मात्मा और सब वीरोंमें श्रेष्ठ वीर राजा निमि हुए और वे अपने पुण्यकर्मोंसे तीनोंलोकोंमें प्रसिद्ध हुए ॥ ३ ॥ उनके पुत्र मिथि हुए और मिथिके जनक। मेरे कुलमें यही पहले जनक हैं। जनकके उदावसु नामक पुत्र हुए ॥ ४ ॥ उदावसुके पुत्र धर्मात्मा नन्दि-वर्धन हुए। नन्दि-वर्धनके सुकेतु हुए और वे बड़े वीर हुए ॥ ५ ॥ सुकेतुके महाबली धर्मात्मा देवरात पुत्र उत्पन्न हुए और राजर्षि देवरातके बृहद्रथ नामके पुत्र हुए ॥ ६ ॥ बृहद्रथके महावीर नामक पुत्र उत्पन्न हुए, जो वीर और प्रतापी थे। महावीरके पुत्र सुधृति हुए, जो सत्यपराक्रमी और धीर थे ॥ ७ ॥ सुधृतिके भी धृष्टकेतु हुए, जो बड़े धर्मात्मा थे। राजर्षि धृष्टकेतुके हर्यश्व नामके पुत्र हुए ॥ ८ ॥ हर्यश्वके पुत्र मरु, मरुके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुत्रः कीर्तिरथस्यापि देवमीढ इति स्मृतः । देवमीढस्य विबुधो विबुधस्य महीध्रकः ॥१०॥
महीध्रकसुतो राजा कीर्तिरातो महाबलः । कीर्तिरातस्य राजर्षेर्महारोमा व्यजायत ॥११॥
महारोम्णस्तु धर्मात्मा स्वर्णरोमा व्यजायत । स्वर्णरोम्णस्तु राजर्षेर्ह्रस्वरोमा व्यजायत ॥१२॥
तस्य पुत्रद्वयं राज्ञो धर्मज्ञस्य महात्मनः । ज्येष्ठोऽहमनुजो भ्राता मम वीरः कुशध्वजः ॥१३॥
मां तु ज्येष्ठं पिता राज्ये सोऽभिषिच्य पिता मम । कुशध्वजं समावेश्य भारं मयि वनं गतः ॥१४॥
वृद्धे पितरि स्वर्याते धर्मेण धुरमावहम् । भ्रातरं देवसंकाशं स्नेहात्पश्यन्कुशध्वजम् ॥१५॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य सांकाश्यादागतः पुरात् । सुधन्वा वीर्यवान्राजा मिथिलामवरोधकः ॥१६॥
स च मे प्रेषयामास शैवं धनुरनुत्तमम् । सीता च कन्या पद्माक्षी मह्यं वै दीयतामिति ॥१७॥
तस्याप्रदानान्महर्षे युद्धमासीन्मया सह । स हतो विमुखो राजा सुधन्वा तु मया रणे ॥१८॥
निहत्य तं मुनिश्रेष्ठ सुधन्वानं नराधिपम् । सांकाश्ये भ्रातरं शूरमभ्यषिञ्चं कुशध्वजम् ॥१९॥
कनीयानेष मे भ्राता अहं ज्येष्ठो महामुने । ददामि परमप्रीतो वध्वौ ते मुनिपुंगव ॥२०॥
सीतां रामाय भद्रं ते ऊर्मिलां लक्ष्मणाय वै । वीर्यशुल्कां मम सुतां सीतां सुरसुतोपमाम् ॥२१॥
द्वितीयामूर्मिलां चैव त्रिर्ददामि न संशयः । ददामि परमप्रीतो वध्वौ ते मुनिपुंगव ॥२२॥
रामलक्ष्मणयो राजन्गोदानं कारयस्व ह । पितृकार्यं च भद्रं ते ततो वैवाहिकं कुरु ॥२३॥

प्रतीन्धक हुए । धर्मात्मा प्रतीन्धकके पुत्र कीर्तिरथ हुए ॥ ९ ॥ कीर्तिरथके पुत्र देवमीढ़ हुए । देवमीढ़के विबुध, विबुधके महीध्रक हुए ॥ १० ॥ महीध्रकके पुत्र राजा कीर्तिरात हुए, जो बड़े बलवान् थे । राजर्षि कीर्तिरातके पुत्र महारोमा हुए ॥ ११ ॥ महारोमाके पुत्र धर्मात्मा स्वर्णरोमा हुए, राजर्षि स्वर्णरोमाके पुत्र स्वरोमा उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ उन धर्मात्मा राजाके दो पुत्र हुए । जेठा मैं हूँ और छोटा मेरा भाई वीर कुशध्वज है ॥ १३ ॥ पिताने मुझ बड़ेको राज्य दिया और कुशध्वजका भार मेरे ऊपर देकर वे वनमें चले गये ॥ १४ ॥ पिताके स्वर्गगामी होनेपर धर्मपूर्वक मैंने राज्य चलाया, देवतुल्य अपने भाई कुशध्वजको स्नेहकी दृष्टिसे देखा ॥१५॥ कुछ दिन बीतनेपर, सांकाश्य नगरीका सुधन्वा नामका पराक्रमी राजा आया और उसने मिथिलाको घेर लिया ॥१६॥ उसने मुझसे कहवाया कि शिवका धनुष और सीता नामकी अपनी सुन्दरी कन्या मुझे दो ॥१७॥ महर्षे, मैंने उसकी मांग पूरी नहीं की । युद्ध हुआ और उस युद्धमें वह पराजित होकर मेरे द्वारा मारा गया ॥१८॥ हे मुनिश्रेष्ठ, राजा सुधन्वाको मारकर, मैंने सांकाश्य नगरीमें अपने वीर भाई कुशध्वजका राज्याभिषेक किया ॥१९॥ मैं बड़ा हूँ और ये मेरे छोटे भाई हैं । मैं प्रसन्नतापूर्वक अपनी कन्याएँ आपको देता हूँ ॥२०॥ मैं रामचन्द्रके लिए सीता नामकी कन्या देता हूं और लक्ष्मणके लिए उर्मिला । मेरी कन्या सीता, देवकन्याओंके समान है और उसका शुल्क पराक्रम है । रामचन्द्र अपने पराक्रमसे उसके अधिकारी हो चुके हैं ॥२१॥ उस सीता और दूसरी उर्मिलाका दान मैं तीन बार कहता हूं (तीन बार कहना निश्चयके लिए है, अर्थात् अवश्य दूँगा) । मुनिश्रेष्ठ, मैं प्रसन्न होकर आपके लिए बहुए देता हूं ॥२२॥ राजन्, आप राम-लक्ष्मणका गोदान कराइए (विवाहके पहले होनेवाला समावर्तन, इसमें मुण्डन कराया जाता है) । राजन्, पुनः नान्दीमुख श्राद्ध आदि कीजिए । उसके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मघा ह्यद्य महाबाहो तृतीयदिवसे प्रभो । फल्गुन्यामुत्तरे राजंस्तस्मिन्वैवाहिकं कुरु ।
रामलक्ष्मणयोरर्थे दानं कार्यं सुखोदयम् ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ७२

तमुक्तवन्तं वैदेहं विश्वामित्रो महामुनिः । उवाच वचनं वीरं वसिष्ठसहितो नृपम् ॥ १ ॥
अचिन्त्यान्यप्रमेयाणि कुलानि नरपुंगव । इक्ष्वाकूणां विदेहानां नैषां तुल्योऽस्ति कश्चन ॥ २ ॥
सदृशो धर्मसंबन्धः सदृशो रूपसंपदा । रामलक्ष्मणयो राजन्सीता चोर्मिलया सह ॥ ३ ॥
वक्तव्यं च नरश्रेष्ठ श्रूयतां वचनं मम । भ्राता यवीयान्धर्मज्ञ एष राजा कुशध्वजः ॥ ४ ॥
अस्य धर्मात्मनो राजन्रूपेणाप्रतिमं भुवि । सुताद्वयं नरश्रेष्ठ पत्न्यर्थं वरयामहे ॥ ५ ॥
भरतस्य कुमारस्य शत्रुघ्नस्य च धीमतः । वरये ते सुते राजंस्तयोरर्थे महात्मनोः ॥ ६ ॥
पुत्रा दशरथस्येमे रूपयौवनशालिनः । लोकपालसमाः सर्वे देवतुल्यपराक्रमाः ॥ ७ ॥
उभयोरपि राजेन्द्र संबन्धेनानुबध्यताम् । इक्ष्वाकुकुलमव्यग्रं भवतः पुण्यकर्मणः ॥ ८ ॥
विश्वामित्रवचः श्रुत्वा वसिष्ठस्य मते तदा । जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच मुनिपुंगवौ ॥ ९ ॥
कुलं धन्यमिदं मन्ये येषां तौ मुनिपुंगवौ । सदृशं कुलसंबन्धं यदाज्ञापयतः स्वयम् ॥ १० ॥

बाद वैवाहिक कृत्य कीजिए ॥ २३ ॥ महाराज, आज मघानक्षत्र है । आजके तीसरे दिन श्रेष्ठ फाल्गुनी नक्षत्रमें आप वैवाहिक कृत्य कीजिए । उस समय मैं राम-लक्ष्मणके लिए कन्या दान करूँगा, जो सुखकारी होगा ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका एकहत्तरहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७१ ॥

अपने कुलका वर्णन करके राजा जनकके चुप होजानेपर, उन वीर राजासे, महामुनि वशिष्ठ और विश्वामित्र बोले ॥१॥ आपका कुल बड़ाही श्रेष्ठ, बड़ाही पवित्र है । इक्ष्वाकु और विदेहकी तुलनामें दूसरे कुल नहीं हैं ॥२॥ सीता और उर्मिलाका राम और लक्ष्मणके साथ संबन्ध धर्मानुकूल है, और यह रूपमें भी समान हैं ॥ ३ ॥ राजन्, मुझे एक और बात कहनी है, आप वह सुनें । आपके छोटे भाई, धर्मात्मा राजा कुशध्वज हैं ॥४॥ इन धर्मात्माके भी अनुपम सुन्दरी दो कन्याएं हैं । उनको मैं पत्नी बनानेके लिए (भरत और शत्रुघ्नके लिए) माँगता हूँ ॥ ५ ॥ राजन्, कुमार भरत और शत्रुघ्नके लिए हमलोग आपकी उन दोनों कन्याओंको माँगते हैं ॥ ६ ॥ ये सुन्दर और युवा पुत्र राजा दसरथके हैं । ये लोकपालोंके समान तेजस्वी और देवताओंके समान पराक्रमी हैं ॥७॥ इन दोनों (भरत और शत्रुघ्न)को भी आप कन्या-दान दें और इस प्रकार इक्ष्वाकुकुलको संबन्धमें बाँधलें । ऐसा करनेसे आप निश्चिन्त होजायँगे ॥ ८ ॥ महर्षि वसिष्ठकी सलाहसे कही हुई विश्वामित्रकी बातें सुनकर, हाथ जोड़कर जनक उन दोनों मुनियोंसे बोले ॥९॥ इस कुलको मैं धन्य समझता हूँ, क्योंकि आप दोनों मुनिश्रेष्ठ इसके लिए, कुलके योग्य उत्तम संबन्ध बता रहे हैं ॥१०॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं भवतु भद्रं वः कुशध्वजसुते इमे । पत्न्यौ भजेतां सहितौ शत्रुघ्नभरतावुभौ ॥११॥
एकाह्ना राजपुत्राणां चतसृणां महामुने । पाणीन्गृह्णन्तु चत्वारो राजपुत्रा महाबलाः ॥१२॥
उत्तरे दिवसे ब्रह्मन्फल्गुनीभ्यां मनीषिणः । वैवाहिकं प्रशंसन्ति भगो यत्र प्रजापतिः ॥१३॥
एवमुक्त्वा वचः सौम्यं प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः । उभौ मुनिवरौ राजा जनको वाक्यमब्रवीत् ॥१४॥
परो धर्मः कृतो मह्यं शिष्योऽस्मि भवतोस्तथा । इमान्यासनमुख्यानि आस्यतां मुनिपुंगवौ ॥१५॥
यथा दशरथस्येयं तथायोध्या पुरी मम । प्रभुत्वे नास्ति संदेहो यथार्थं कर्तुमर्हथ ॥१६॥
तथा ब्रुवति वैदेहे जनके रघुनन्दनः । राजा दशरथो हृष्टः प्रत्युवाच महीपतिम् ॥१७॥
युवामसंख्येयगुणौ भ्रातरौ मिथिलेश्वरौ । ऋषयो राजसङ्घाश्च भवद्भ्यामभिपूजिताः ॥१८॥
स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते गमिष्यामः स्वमालयम् । श्राद्धकर्माणि विधिवद्विधास्य इति चाब्रवीत् ॥१९॥
तमापृष्ट्वा नरपतिं राजा दशरथस्तदा । मुनीन्द्रौ तौ पुरस्कृत्य जगामाशु महायशाः ॥२०॥
स गत्वा निलयं राजा श्राद्धं कृत्वा विधानतः । प्रभाते काल्यमुत्थाय चक्रे गोदानमुत्तमम् ॥२१॥
गवां शतसहस्रे च ब्राह्मणेभ्यो नराधिपः । एकैकशो ददौ राजा पुत्रानुद्दिश्य धर्मतः ॥२२॥
सुवर्णशृङ्ग्यः संपन्नाः सवत्साः कांस्यदोहनाः । गवां शतसहस्राणि चत्वारि पुरुषर्षभः ॥२३॥
वित्तमन्यच्च सुबहु द्विजेभ्यो रघुनन्दनः । ददौ गोदानमुद्दिश्य पुत्राणां पुत्रवत्सलः ॥२४॥

आपकी आज्ञा शिरोधार्य है । आपलोगोंका कल्याण हो । कुशध्वजकी ये दोनों कन्याएँ, भरत और शत्रुघ्नको पतिरूपसे वरण करें ॥ ११ ॥ महामुनि, एक ही दिन इन चारो राजपुत्रियोंका, महाबली चारो राजपुत्र पाणि-ग्रहण करें ॥ १२ ॥ आजके दूसरे दिन, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र है । उसके देवता भग नामक प्रजापति हैं । उस समयके विवाहको प्रशंसा विद्वान् करते हैं ॥ १३ ॥ इस प्रकार मनोहर वचन कहकर, हाथ जोड़कर खड़े हुए राजा जनकने दोनों मुनियोंसे ऐसा कहा ॥ १४ ॥ आपलोगोंने कन्याका विवाह निश्चित करके मेरे लिए बड़ा धर्म किया । मैं आप दोनों मुनियोंका शिष्य हूँ । इन उत्तम आसनोंपर आप दोनों बैठें ॥ १५ ॥ जैसे आपके लिए राजा दसरथकी अयोध्यापुरी है, वैसेही इसको भी समझें । इसपर आप लोगोंका पूरा अधिकार है । निःसंकोच होकर इच्छानुसार कार्य करें ॥ १६ ॥ राजा जनकके ऐसा कहनेपर रघुवंशी राजा दसरथने बड़ी प्रसन्नतासे उनसे कहा ॥१७॥ मिथिलेश्वर, आप दोनों भाइयोंके असंख्य गुण हैं । आप लोगोंने ऋषियों और राजाओंका उत्तम सत्कार किया ॥१८॥ आपका कल्याण हो, हमलोग अपने स्थानको जाते हैं । वहाँ हम विधिपूर्वक नान्दीमुख श्राद्ध आदि करेंगे ॥ १९ ॥ इस प्रकार राजा जनकसे आज्ञा लेकर, वसिष्ठ और विश्वामित्रके साथ महायशस्वी राजा दसरथ शीघ्र अपने स्थानको आये ॥ २० ॥ राजा दसरथने अपने स्थानपर आकर विधिपूर्वक श्राद्ध किया और प्रातःकाल होनेपर गोदान (समावर्तन) संस्कार कराया ॥ २१ ॥ उन्होंने अपने एक-एक पुत्रके लिए सौ-सौ हज़ार गौ ब्राह्मणोंको दी ॥ २२ ॥ उन गौओंकी सींग सोनेकी थी, वे बछड़ेवाली थीं और काँसेके पात्रमें दुही जाती थीं । ऐसी चार सौ हजार गौ राजा दशरथने ब्राह्मणोंको दीं ॥ २३ ॥ पुत्रवत्सल राजाने पुत्रोंके गोदानके निमित्त और अधिक धन भी ब्राह्मणोंको दिया ॥ २४ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स सुतैः कृतगोदानैर्वृतः सन्नृपतिस्तदा । लोकपालैरिवाभाति वृतः सौम्यः प्रजापतिः ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३

यस्मिंस्तु दिवसे राजा चक्रे गोदानमुत्तमम् । तस्मिंस्तु दिवसे वीरो युधाजित्समुपेयिवान् ॥ १ ॥
पुत्रः केकयराजस्य साक्षाद्भरतमातुलः । दृष्ट्वा पृष्ट्वा चकुशलंराजानमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥
केकयाधिपती राजा स्नेहात्कुशलमब्रवीत् । येषां कुशलकामोऽसि तेषां संप्रत्यनामयम् ॥ ३ ॥
स्वसारीयं मम राजेन्द्र द्रष्टुकामो महीपतिः । तदर्थमुपयातोऽहमयोध्यां रघुनन्दन ॥ ४ ॥
श्रुत्वा त्वहमयोध्यायां विवाहार्थं तवात्मजान् । मिथिलामुपयातांस्तु त्वया सह महीपते ॥ ५ ॥
त्वरयाभ्युपयातोऽहं द्रष्टुकामः स्वसुः सुतम् । अथ राजा दशरथः प्रियातिथिमुपस्थितम् ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा परमसत्कारैः पूजनार्हमपूजयत् । ततस्तामुषितो रात्रिं सह पुत्रैर्महात्मभिः ॥ ७ ॥
प्रभाते पुनरुत्थाय कृत्वा कर्माणि तत्त्ववित् । ऋषींस्तदा पुरस्कृत्य यज्ञवाटमुपागमत् ॥ ८ ॥
युक्ते मुहूर्ते विजये सर्वाभरणभूषितैः । भ्रातृभिः सहितो रामः कृतकौतुकमङ्गलः ॥ ९ ॥
वसिष्ठं तु पुरस्कृत्वा महर्षीनपरानपि । वसिष्ठो भगवानेत्य वैदेहमिदमब्रवीत् ॥१०॥

गोदान-विधि संपन्न होनेपर अपने चारो पुत्रोंके साथ, राजा दसरथ लोकपालोंसे घिरे हुए, प्रजापति सोमके समान मालुम होते थे ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका बहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७२ ॥

—:*****:—

जिस दिन राजा दशरथने, यहां रामचन्द्र आदिका-गोदान संस्कार कराया, उसी दिन वीर युधाजित् आये ॥ १ ॥ ये युधाजित् केकयराजके पुत्र थे और भरतके सगे मामा थे, उन्होंने राजा दशरथको देखा, उनकी कुशल पूछी, पुनः वे बोले ॥ २ ॥ महाराज, केकयदेशके राजाने स्नेहपूर्वक आपको अपना कुशल-संवाद कहनेके लिए मुझे भेजा है। महाराज, आप जिन लोगोंकी कुशल चाहते हैं, वे सब (हमलोग) सकुशल हैं ॥ ३ ॥ हे रघुनन्दन, मेरे पिता मेरे भांजे (भरत)-को देखना चाहते हैं, इसलिए (भरतको ले जानेके लिए) मैं अयोध्या गया था ॥ ४ ॥ अयोध्यामें आकर मैंने सुना कि पुत्रोंके विवाहके लिए, आप पुत्रोंके साथ मिथिला गये हुए हैं ॥ ५ ॥ मैं वहांसे शीघ्रतापूर्वक अपने भांजेको देखनेके लिए यहां आया हूँ। राजा दशरथने आये हुए अपने प्रिय अतिथिको ॥ ६ ॥ देखकर, उत्तम सत्कारोंसे, सत्कारके योग्य उनका, सत्कार किया। राजा दशरथने अपने पुत्रों और महात्माओंके साथ वह रात बितायी ॥ ७ ॥ प्रातःकाल उठकर तथा अपने कृत्योंको समाप्तकर, ऋषियोंके साथ वे यज्ञ-मण्डपमें गये ॥८॥ विवाहके योग्य विजय मुहूर्तके आनेपर आभरण-भूषित भाइयोंके साथ राम वैवाहिक वेषमें ॥९॥ वसिष्ठ तथा अन्य ऋषियोंके साथ आये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राजा दशरथो राजन्कृतकौतुकमङ्गलैः । पुत्रैर्नरवरश्रेष्ठो दातारमभिकाङ्क्षते ॥११॥
दातृप्रतिगृहीतृभ्यां सर्वार्थाः संभवन्ति हि । स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व कृत्वा वैवाह्यमुत्तमम् ॥१२॥
इत्युक्तः परमोदारो वसिष्ठेन महात्मना । प्रत्युवाच महातेजा वाक्यं परमधर्मवित् ॥१३॥
कः स्थितः प्रतिहारो मे कस्याज्ञां संप्रतीक्षते । स्वगृहे को विचारोऽस्ति यथा राज्यमिदं तव ॥१४॥
कृतकौतुकसर्वस्वा वेदिमूलमुपागताः । मम कन्या मुनिश्रेष्ठ दीप्ता वह्नेरिवार्चिषः ॥१५॥
सज्योऽहं त्वत्प्रतीक्षोऽस्मि वेद्यामस्यां प्रतिष्ठितः । अविघ्नं क्रियतां सर्वं किमर्थं हि विलम्ब्यते ॥१६॥
तद्वाक्यं जनकेनोक्तं श्रुत्वा दशरथस्तदा । प्रवेशयामास सुतान्सर्वानृषिगणानपि ॥१७॥
ततो राजा विदेहानां वसिष्ठमिदमब्रवीत् । कारयस्व ऋषे सर्वामृषिभिः सह धार्मिक ॥१८॥
रामस्य लोकरामस्य क्रियां वैवाहिकीं प्रभो । तथेत्युक्त्वा तु जनकं वसिष्ठो भगवानृषिः ॥१९॥
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य शतानन्दं च धार्मिकम् । प्रपामध्ये तु विधिवद्वेदिं कृत्वा महातपाः ॥२०॥
अलंचकार तां वेदिं गन्धपुष्पैः समन्ततः । सुवर्णपालिकाभिश्च चित्रकुम्भैश्च साङ्कुरैः ॥२१॥
अङ्कुराढ्यैः शरावैश्च धूपपात्रैः सधूपकैः । शङ्खपात्रैः स्रुवैः स्रुग्भिः पात्रैरर्घ्यादिपूजितैः ॥२२॥
लाजपूर्णैश्च पात्रीभिरक्षतैरपिसंस्कृतैः । दर्भैः समैः समास्तीर्य विधिवन्मन्त्रपूर्वकम् ॥२३॥
अग्निमाधाय तं वेद्यां विधिमन्त्रपुरस्कृतम् । जुहावाग्नौ महातेजा वसिष्ठो मुनिपुंगवः ॥२४॥

भगवान् वसिष्ठने आकर राजा जनकसे कहा ॥ १० ॥ राजन्, माङ्गलिक विधान, राम आदिका, सम्पन्न हुआ । राजा दसरथ पुत्रोंके साथ आये हैं और दाताकी प्रतीक्षा करते हैं ॥ ११ ॥ दाता और प्रतिगृहीताके द्वारा सब अर्थोंकी सिद्धि होती है, अतएव उत्तम विवाह करके अपना धर्म (दातृता) ग्रहण करें ॥१२॥ परम उदार, परम धार्मिक और तेजस्वी राजा जनक वसिष्ठकी ये बातें सुनकर बोले ॥ १३ ॥ महाराज, मेरा कोई पहरेदार तो नहीं बैठा है, किसकी आज्ञा लेनी है, अपने घरमें क्या ऐसी बातोंका विचार किया जाता है, यह राज्य आपका ही है ॥१४॥ महाराज, वैवाहिक वेष धारण करके मेरी कन्याएँ वेदीके पास आयी हैं, ये अग्निकी ज्वालाके समान प्रदीप्त हो रही हैं ॥ १५ ॥ मैं स्वयं इस वेदीपर बैठकर आपकी प्रतीक्षा करता हूँ, निर्विघ्नतापूर्वक सब काम कीजिए, विलम्ब क्यों कर रहे हैं ॥ १६ ॥ जनककी बातें सुनकर, राजा दसरथने अपने चारो पुत्रों तथा ऋषियोंको भेजा ॥ १७ ॥ तब राजा जनकने वसिष्ठसे यह कहा—ऋषे, सब ऋषियोंके साथ आप ॥ १८ ॥ सर्वप्रिय रामचन्द्रके विवाहकी क्रिया सम्पन्न कराइए । जनकसे 'हां' कहकर भगवान् ऋषि वसिष्ठने ॥ १९ ॥ धार्मिक विश्वामित्र और शतानन्दको साथ लेकर यज्ञ-मण्डपके मध्यमें विधिपूर्वक विवाहकी वेदी बनायी ॥ २० ॥ और गन्ध, पुष्प, चित्रित घड़ा तथा जवके पीले अंकुरोंसे उसे सजाया ॥ २१ ॥ अंकुर जमाये हुए सकोरे, धूपयुक्त धूपपात्र, स्रुवा, स्रुच् अर्घ्य आदिके उत्तम पात्र, ॥२२॥ लावासे भरे हुए उत्तम पात्र, अक्षत आदिसे वेदीको अलङ्कृत किया। हरिद्रा आदिसे शोभित, समान कुश विधिपूर्वक मन्त्रोंसे उन्होंने वेदीपर बिछाये ॥ २३ ॥ मन्त्र और विधानसे युक्त अग्निकी उन्होंने उस वेदीपर स्थापना की, और महातेजस्वी मुनिश्रेष्ठ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततः सीतां समानीय सर्वाभरणभूषिताम् । समक्षमग्नेः संस्थाप्य राघवाभिमुखे तदा ॥२५॥
अब्रवीज्जनको राजा कौसल्यानन्दवर्धनम् । इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव ॥२६॥
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना । पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा ॥२७॥
इत्युक्त्वा प्रक्षिपद्राजा मन्त्रपूतं जलं तदा । साधु साध्विति देवानामृषीणां वदतां तदा ॥२८॥
देवदुन्दुभिनिर्घोषः पुष्पवर्षो महानभूत् । एवं दत्त्वा सुतां सीतां मन्त्रोदकपुरस्कृताम् ॥२९॥
अब्रवीज्जनको राजा हर्षेणाभिपरिप्लुतः । लक्ष्मणागच्छ भद्रं ते ऊर्मिलामुद्यतां मया ॥३०॥
प्रतीच्छ पाणिं गृह्णीष्व मा भूत्कालस्य पर्ययः । तमेवमुक्त्वा जनको भरतं चाभ्यभाषत ॥३१॥
गृहाण पाणिं माण्डव्याः पाणिना रघुनन्दन । शत्रुघ्नं चापि धर्मात्मा अब्रवीन्मिथिलेश्वरः ॥३२॥
श्रुतकीर्तेर्महाबाहो पाणिं गृह्णीष्व पाणिना । सर्वे भवन्तः सौम्याश्च सर्वे सुचरितव्रताः ॥३३॥
पत्नीभिः सन्तु काकुत्स्था मा भूत्कालस्य पर्ययः । जनकस्य वचः श्रुत्वा पाणीन्पाणिभिरस्पृशन् ॥३४॥
चत्वारस्ते चतसॄणां वसिष्ठस्य मते स्थिताः । अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा वेदिं राजानमेव च ॥३५॥
ऋषींश्चापि महात्मानः सहभार्या रघूद्वहाः । यथोक्तेन ततश्चक्रुर्विवाहं विधिपूर्वकम् ॥३६॥
पुष्पवृष्टिर्महत्यासीदन्तरिक्षात्सुभास्वरा । दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषैर्गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥३७॥

वसिष्ठ उस अग्निमें हवन करने लगे ॥ २४ ॥ तदनन्तर सब आभरणोंसे विभूषित करके, सीता वहां लायी गयीं और अग्नि तथा रामचन्द्रके सामने खड़ी कर दी गयीं ॥ २५ ॥ कौशल्या-पुत्र रामचन्द्रसे राजा जनक बोले—यह सीता मेरी कन्या है, और तुम्हारे साथ धर्माचरण करनेके लिए तुम्हें दी जाती है ॥ २६ ॥ इसका तुम ग्रहण करो । तुम्हारा कल्याण हो, इसका हाथ अपने हाथमें लो, यह पतिव्रता और तुम्हारी छायाके समान होगी ॥ २७ ॥ इतना कहकर राजा जनकने मन्त्रसे पवित्र जलका त्याग किया, उस समय देवता और ऋषि साधु-साधु कहने लगे ॥ २८ ॥ देवताओंके नगाड़े बजे और पुष्पोंकी वृष्टि हुई । इस प्रकार मन्त्र और जलके साथ अपनी कन्या सीताका दान करके, ॥ २९ ॥ हर्षसे शराबोर होकर राजा जनक बोले—लक्ष्मण, आओ, तुम्हारे लिए मैंने उर्मिलाका दान निश्चय किया है ॥ ३० ॥ अपनी समझकर इसका पाणि-ग्रहण करो, समय न बीतने पावे । लक्ष्मणसे ऐसा कहकर उन्होंने भरतसे भी कहा ॥ ३१ ॥ हे रघुनन्दन, तुम माण्डवीका पाणिग्रहण करो । धर्मात्मा मिथिलेश्वरने शत्रुघ्नसे भी कहा ॥३२॥ हे महाबाहो, तुम श्रुतकीर्तिका पाणिग्रहण करो । तुम सभी सुन्दर हो, सभी चरित्रवान् हो, सभी प्रतिज्ञा-पालन करनेवाले हो ॥ ३३ ॥ अतएव तुम सब लोग अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ रहो, विलम्ब न करो । जनकके ये वचन सुनकर उन लोगोंने अपनी-अपनी स्त्रीके हाथ अपने हाथसे छुए ॥३४॥ वसिष्ठकी आज्ञासे उन चारोंने अपनी-अपनी बहूके साथ अग्नि, वेदी और राजाकी प्रदक्षिणा की ॥३५॥ वसिष्ठकी आज्ञासे उनलोगोंने ऋषियों, महात्माओंकी भी प्रदक्षिणा की । तदनन्तर उनका विधिपूर्वक विवाह हुआ । विवाह सम्बन्धी होम हुए ॥३६॥ उस समय आकाशसे अत्यन्त सुन्दर पुष्प-वृष्टि हुई । गीत और बाजेके साथ देवताओंके नगाड़े भी बजे ॥३७॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ननृतुश्चाप्सरः सङ्घा गन्धर्वाश्च जगुः कलम्। विवाहे रघुमुख्यानां तदद्भुतमदृश्यत ॥३८॥
ईदृशे वर्तमाने तु तूर्योद्घुष्टनिनादिते। त्रिरग्निं ते परिक्रम्य ऊहुर्भार्या महौजसः ॥३९॥
अथोपकार्यं जग्मुस्ते सभार्या रघुनन्दनाः। राजाप्यनुययौ पश्यन्सर्षिसङ्घः सबान्धवः ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४

अथ रात्र्यां व्यतीतायां विश्वामित्रो महामुनिः। अपृष्ट्वा तौ च राजानौ जगामोत्तरपर्वतम् ॥ १ ॥
विश्वामित्रे गते राजा वैदेहं मिथिलाधिपम्। आपृष्ट्वैव जगामाशु राजा दशरथः पुरीम् ॥ २ ॥
अथ राजा विदेहानां ददौ कन्याधनं बहु। गवां शतसहस्राणि बहूनि मिथिलेश्वरः ॥ ३ ॥
कम्बलानांच मुख्यानां क्षौमान्कोट्यम्बराणिच। हस्त्यश्वरथपादांतं दिव्यरूपं स्वलंकृतम् ॥ ४ ॥
ददौ कन्याशतं तासां दासीदासमनुत्तमम्। हिरण्यस्य सुवर्णस्य मुक्तानां विद्रुमस्य च ॥ ५ ॥
ददौ राजा सुसंहृष्टः कन्याधनमनुत्तमम्। दत्वा बहुविधं राजा समनुज्ञाप्य पार्थिवम् ॥ ६ ॥
प्रविवेश स्वनिलयं मिथिलां मिथिलेश्वरः। राजाप्ययोध्याधिपतिः सह पुत्रैर्महात्मभिः ॥ ७ ॥
ऋषीन्सर्वान्पुरस्कृत्य जगाम स बलान्वितः। गच्छन्तं तु नरव्याघ्रं सर्षिसङ्घं सराघवम् ॥ ८ ॥

अप्सराओंने नाचा, गन्धर्वोंने मनोहर गाया। रामचन्द्र आदिके विवाहमें ये सब बहुत ही अद्भुत काम हुए ॥ ३८ ॥ इधर यह सब नाच, गान आदि हो रहे थे, उधर रामचन्द्र आदिने तीन बार अग्निकी प्रदक्षिणा करके, विवाह-कृत्य सम्पन्न किया ॥ ३९ ॥ वे चारों राजपुत्र अपनी स्त्रियोंके साथ खेमेंमें गये, राजा दसरथ भी ऋषियों तथा बान्धवोंके साथ अपने पुत्रों और पुत्र-वधुओंको देखते हुए, उनके पीछे-पीछे गये ॥ ४० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका तिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७३ ॥

रातके बीतनेपर महामुनि विश्वामित्र, दसरथ और जनक दोनों राजाओंसे आज्ञा लेकर, उत्तर पर्वतको (अपने आश्रमको) गये ॥ १ ॥ विश्वामित्रके जानेपर राजा दसरथ भी, मिथिलाके राजा जनकसे आज्ञा लेकर, अपनी राजधानीके लिए चले ॥ २ ॥ मिथिलेश्वर राजा जनकने बहुत अधिक कन्या-धन (दायज) दिया, सौ हजार गायें उन्होंने दीं ॥ ३ ॥ उत्तम कम्बल, रेशमी वस्त्र तथा एक करोड़ साधारण वस्त्र उन्होंने कन्याधन में दिये। अलंकारयुक्त हाथी, घोड़े, पैदल भी दिये ॥ ४ ॥ अपनी कन्याओंके लिए, सौ कन्याएँ तथा दास-दासी, इनके अतिरिक्त सोना मोती, मूंगा भी दिये ॥ ५ ॥ राजा जनकने बड़े प्रसन्न होकर अनेक प्रकारके-उत्तम उत्तम वस्त्र कन्याधनमें देकर, राजा दसरथको विदा किया ॥ ६ ॥ राजा जनक अपनी नगरीमें चले आये। अयोध्याके राजा भी अपने श्रेष्ठ पुत्रोंके साथ ॥७॥ ऋषियोंको आगे करके चले। उनके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

घोरास्तु पक्षिणो वाचो व्याहरन्ति समन्ततः । मृगाश्चैव मृगाः सर्वे गच्छन्ति स्म प्रदक्षिणम् ॥९॥
तान्दृष्ट्वा राजशार्दूलो वसिष्ठं पर्यपृच्छत । असौम्याःपक्षिणोघोरामृगाश्चापिप्रदक्षिणाः ॥१०॥
किमिदं हृदयोत्कम्पि मनो मम विषीदति । राज्ञो दशरथस्यैतच्छ्रुत्वा वाक्यं महानृषिः ॥११॥
उवाच मधुरां वाणीं शूयतामस्य यत्फलम् । उपस्थितं भयं घोरं दिव्यं पक्षिमुखाच्च्युतम् ॥१२॥
मृगाः प्रशमयन्त्येते संतापस्त्यज्यतामयम् । तेषां संवदतां तत्र वायुः प्रादुर्बभूव ह ॥१३॥
कम्पयन्मेदिनीं सर्वां पातयंश्च महाद्रुमान् । तमसा संवृतः सूर्यः सर्वे नावेदिषुर्दिशः ॥१४॥
भस्मना चावृतं सर्वं संमूढमिव तद्बलम् । वसिष्ठ ऋषयश्चान्ये राजा च ससुतस्तदा ॥१५॥
ससंज्ञा इव तत्रासन्सर्वमन्यद्विचेतनम् । तस्मिंस्तमसि घोरे तु भस्मच्छन्नेव सा चमूः ॥१६॥
ददर्श भीमसंकाशं जटामण्डलधारिणम् । भार्गवं जामदग्नेयं राजा राजविमर्दनम् ॥१७॥
कैलासमिव दुर्धर्षं कालाग्निमिव दुःसहम् । ज्वलन्तमिव तेजोभिर्दुर्निरीक्ष्यं पृथग्जनैः ॥१८॥
स्कन्धे चासज्ज्य परशुं धनुर्विद्युद्गणोपमम् । प्रगृह्य शरमुग्रं च त्रिपुरघ्नं यथा शिवम् ॥१९॥
तं दृष्ट्वा भीमसंकाशं ज्वलन्तमिव पावकम् । वसिष्ठप्रमुखा विप्रा जपहोमपरायणाः ॥२०॥
संगता मुनयः सर्वे संजजल्पुरथो मिथः । कच्चित्पितृवधामर्षी क्षत्रं नोत्सादयिष्यति ॥२१॥

पीछे उनकी सेना चली । ऋषियों और रामचन्द्रके साथ जाते हुए उन राजाके ॥ ८ ॥ चारो ओर भयानक बोलनेवाले पक्षी बोलने लगे, और मृगा उनकी दाहिनी ओर जाने लगे (भयानक पक्षियोंका बोलना अशुभ है, और मृगाका दाहिनी ओर जाना अच्छा है) ॥ ९ ॥ उनको देखकर राजाने वसिष्ठसे पूछा—यह क्या बात है, ये पक्षी बोल रहे हैं और मृगा दाहिनी ओर जा रहे हैं । (इस शुभ-अशुभ सूचनाका क्या अर्थ) ॥ १० ॥ यह हृदयको कँपानेवाली कौन बात है, मेरा मन दुःखी हो रहा है । राजा दशरथके ये वचन सुनकर महर्षि वसिष्ठ ॥ ११ ॥ मधुर वाणीसे बोले । सुनिए इसका जो फल है । हम लोगोंपर सङ्कटका समय आया है, यह बात पक्षीमुखसे मालूम हुई है ॥ १२ ॥ मृगा बतलाते हैं कि वह संकट टल जायगा । आप दुःख करना छोड़े । वे ऐसी बातें कर ही रहे थे, कि बड़े जोरोंसे वायु चला ॥१३॥ उसने समूची पृथिवी कँपादी, बड़े-बड़े पेड़ गिरा दिये, सूर्य अन्धकारसे छिपगये, दिशाएँ दिखायी नहीं पड़ने लगीं, ॥१४॥ चारो ओर धूलसे भरगया । दसरथकी सेना किंकर्तव्यविमूढ़ होगयी । वसिष्ठ, अन्य ऋषि तथा पुत्रोंके साथ राजा ॥ १५ ॥ ये ही उस भयानक अन्धकारमें होशमें थे, और सब बेहोश होगये थे ॥१६॥ दसरथने भयानक रूपधारी, जटाधारी, जमदग्निके पुत्र, राजाओंका नाश करनेवाले भार्गव को (परशुरामको) देखा ॥१७॥ बड़े भारी कैलाशको भी कँपानेवाले, प्रलयकालकी अग्निके समान असहनीय तेजोंसे ज्वलित उनको साधारण मनुष्य नहीं देख सकते थे ॥ १८ ॥ उनके कन्धेपर परशु और धनुष था । धनुषका चिल्ला बिजलीके समान था । शिवके समान शत्रुका संहार करनेवाले, वे भयानक अस्त्र लिये हुए थे ॥१९॥ भयानक रूपवाले और अग्निके समान चलते हुए उनको देखकर, वसिष्ठ आदि जप, होम करनेवाले ब्राह्मण ॥२०॥ एकत्र होकर आपसमें बातचीत करने लगे, कि क्या पिता-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वं क्षत्रवधं कृत्वा गतमन्युर्गतज्वरः । क्षत्रस्योत्सादनंभूयोनखल्वस्य चिकीर्षितम् ॥२२॥
एवमुक्त्वार्घ्यमादाय भार्गवं भीमदर्शनम् । ऋषयो राममेति मधुरं वाक्यमब्रुवन् ॥२३॥
प्रतिगृह्य तु तां पूजामृषिदत्तां प्रतापवान् । रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्योऽभ्यभाषत ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमः सर्गः ७५

राम दाशरथे वीर वीर्यं ते श्रूयतेऽद्भुतम् । धनुषो भेदनं चैव निखिलेन मया श्रुतम् ॥ १ ॥
तदद्भुतमचिन्त्यं च भेदनं धनुषस्तथा । तच्छ्रुत्वाहमनुप्राप्तो धनुर्गृह्यापरं शुभम् ॥ २ ॥
तादिदं घोरसंकाशं जामदग्न्यं महद्धनुः । पूरयस्व शरेणैव स्वबलं दर्शयस्व च ॥ ३ ॥
तदहं ते बलं दृष्ट्वा धनुषोऽप्यस्य पूरणे । द्वंद्वयुद्धं प्रदास्यामि वीर्यश्लाघ्यमहं तव ॥ ४ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा दशरथस्तदा । विषण्णवदनो दीनः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥
क्षत्ररोषात्प्रशान्तस्त्वं ब्राह्मणश्च महातपाः । बालानां मम पुत्राणामभयं दातुमर्हसि ॥ ६ ॥
भार्गवाणां कुले जातः स्वाध्यायव्रतशालिनाम् । सहस्राक्षे प्रतिज्ञाय शस्त्रं प्रक्षिप्तवानसि ॥ ७ ॥
स त्वं धर्मपरो भूत्वा कश्यपाय वसुंधराम् । दत्त्वा वनमुपागम्य महेन्द्रकृतकेतनः ॥ ८ ॥

के वधसे क्रोधित यह, पुनः क्षत्रियोंका संहार करेगा ? ॥२१॥ पहले क्षत्रियोंका वध करनेसे इसका क्रोध शान्त हो गया था, मानसिक खेद मिट गया था, पुनः क्षत्रियोंका संहार करनेके लिए जो यह उठ खड़ा हुआ है, इसका कोई भारी कारण होना चाहिए ॥२२॥ ऐसा विचार करके अर्घ्य लेकर, भयानक दिखायी पड़नेवाले परशुरामसे, ऋषियोंने, 'राम-राम' यह मधुर वचन कहा ॥ २३ ॥ ऋषियोंकी दी हुई, उस पूजाको ग्रहण करके, प्रतापी परशुराम, दसरथके पुत्र रामसे, बोले ॥२४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका चौहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७४ ॥

दशरथ-पुत्र राम, तुम्हारा अद्भुत पराक्रम मैंने सुना है । शिव-धनुष तोड़नेका सब वृत्तान्त भी मैंने सुना ॥ १ ॥ उस धनुषका तोड़ना अद्भुत और अचिन्त्य है, यही सुनकर, तथा दूसरा उत्तम धनुष लेकर, मैं आया हूँ ॥ २ ॥ अब तुम मेरे इस भयानक धनुषपर शर चढ़ाओ और अपना बल दिखाओ ॥ ३ ॥ इस धनुषके चढ़ानेपर मैं तुम्हारा बल देखूँगा, पुनः तुमसे द्वन्द्व युद्ध करूंगा, क्योंकि मैं तुम्हारे बलकी प्रशंसा करता हूँ ॥ ४ ॥ परशुरामके ये वचन सुनकर, राजा दसरथ बड़े दुःखी हुए और दीनतापूर्वक हाथ जोड़कर बोले ॥ ५ ॥ तुम क्षत्रियोंके वधसे हट गये थे । तुम तपस्वी ब्राह्मण हो, मेरी सेना तथा पुत्रोंको अभय-दान दो ॥६॥ वेदाध्ययन तथा व्रत करनेवाले भार्गवोंके कुलमें तुम्हारा जन्म हुआ है । इन्द्रके सामने तुमने अस्त्रका त्याग किया है ॥ ७ ॥ धर्मपरायण होकर, कश्यपको पृथिवीका दान करके, तुम वनमें चले

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मम सर्वविनाशाय संप्राप्तस्त्वं महामुने । न चैकस्मिन्हते रामे सर्वे जीवामहे वयम् ॥ ९ ॥
ब्रुवत्येवं दशरथे जामदग्न्यः प्रतापवान् । अनादृत्य तु तद्वाक्यं राममेवाभ्यभाषत ॥१०॥
इमे द्वे धनुषी श्रेष्ठे दिव्ये लोकाभिपूजिते । दृढे बलवती मुख्ये सुकृते विश्वकर्मणा ॥११॥
अनुसृष्टं सुरैरेकं त्र्यम्बकाय युयुत्सवे । त्रिपुरघ्नं नरश्रेष्ठ भग्नं काकुत्स्थ यत्त्वया ॥१२॥
इदं द्वितीयं दुर्धर्ष विष्णोर्दत्तं सुरोत्तमैः । तदिदं वैष्णवं राम धनुः परपुरंजयम् ॥१३॥
समानसारं काकुत्स्थ रौद्रेण धनुषा त्विदम् । तदा तु देवताः सर्वाः पृच्छन्ति स्म पितामहम्॥१४॥
शितिकण्ठस्य विष्णोश्च बलाबलनिरीक्षया । अभिप्रायं तु विज्ञाय देवतानां पितामहः ॥१५॥
विरोधं जनयामास तयोः सत्यवतां वरः । विरोधे तु महद्युद्धमभवद्रोमहर्षणम् ॥१६॥
शितिकण्ठस्य विष्णोश्च परस्परजयैषिणोः । तदा तु जृम्भितं शैव धनुर्भीमपराक्रमम् ॥१७॥
हुंकारेण महादेवः स्तम्भितोऽथ त्रिलोचनः । देवैस्तदा समागम्य सर्षिसङ्घैः सचारणैः ॥१८॥
याचितौ प्रशमं तत्र जग्मतुस्तौ सुरोत्तमौ । जृम्भितं तद्धनुर्दृष्ट्वा शैवं विष्णुपराक्रमैः ॥१९॥
अधिकं मेनिरे विष्णुं देवाः सर्षिगणास्तथा । धनू रुद्रस्तु संक्रुद्धो विदेहेषु महायशाः ॥२०॥
देवरातस्य राजर्षेर्ददौ हस्ते ससायकम् । इदं च वैष्णवं राम धनुः परपुरंजयम् ॥२१॥
ऋचीके भार्गवे प्रादाद्विष्णुः संन्यासमुत्तमम् । ऋचीकस्तु महातेजाः पुत्रस्यापतिकर्मणः ॥२२॥

गये थे और महेन्द्र पर्वतपर रहने लगे थे ॥ ८ ॥ महामुने, अब तुम मेरा सर्वनाश करनेके लिए आये हुए हो, क्योंकि एक रामचन्द्रके मारे जानेपर, हम कोई भी जी नहीं सकते ॥ ९ ॥ राजा दसरथने ऐसा कहा, पर प्रतापी परशुरामने उनकी बातोंकी ओर ध्यान न दिया । वे रामचन्द्रसे बोले ॥ १० ॥ दो धनुष थे, वे बड़े ही उत्तम थे, अलौकिक थे, बड़े दृढ़ और बलवान थे, विश्वकर्माने उन्हें बड़े परिश्रमसे बनाया था ॥ ११ ॥ उनमेंसे एक धनुष, युद्धार्थी महादेवको, देवताओंने दिया था । काकुत्स्थ, जिस धनुषको तुमने तोड़ा है, उसीसे महादेवने त्रिपुरका नाश किया था ॥ १२ ॥ यह दूसरा धनुष है, इसे भी दूसरे नवा नहीं सकते । देवताओंने इसे विष्णुको दिया था । रामचन्द्र, शत्रुओंका विनाश करनेवाला यह वैष्णव धनुष है ॥ १३ ॥ रामचन्द्र, यह धनुष शिवके धनुषके समान बलवान है । उस समय देवताओंने ब्रह्मासे पूछा था कि ॥ १४ ॥ विष्णु और शिव इन दोनोंमें कौन बलवान और दुर्बल है । देवताओंका अभिप्राय समझकर, ॥ १५ ॥ वीरोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माने, दोनोंमें विरोध उत्पन्न कर दिया । उस विरोधमें रोंगटे खड़े करनेवाला युद्ध हुआ ॥ १६ ॥ परस्पर जीतनेकी इच्छा रखनेवाले महादेव और विष्णुका युद्ध हुआ । उस समय शिवके महापराक्रमी धनुषका टंकार हुआ था ॥१७॥ विष्णुके हुंकारसे उस समय महादेव स्तम्भित हो गये । वहाँ देवताओंने चारणों और ऋषियोंके साथ आकर ॥ १८ ॥ उन दोनोंसे शान्त होनेकी प्रार्थना की और वे अपने-अपने स्थानको चलेगये । शिवके धनुषका टंकार सुनकर, विष्णुके बलको ॥ १९ ॥ देवताओं और ऋषियोंने अधिक समझा था, इससे क्रुद्ध होकर महादेवने अपना धनुष मिथिलामें, राजर्षि देवरातके हाथमें बाणके साथ देदिया । रामचन्द्र, यह शत्रुओंका संहार करनेवाला वैष्णव धनुष है ॥२१॥ विष्णुने भृगुवंशी ऋचीकको, इसे धरोहरमें दिया था । महातेजा ऋचीकने अपने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पितुर्मम ददौ दिव्यं जमदग्नेर्महात्मनः । न्यस्तशस्त्रे पितरि मे तपोबलसमन्विते ॥२३॥
अर्जुनो विदधे मृत्युं प्राकृतां बुद्धिमास्थितः । वधमप्रतिरूपं तु पितुः श्रुत्वा सुदारुणम् ।
क्षत्रमुत्सादयं रोषाज्जातं जातमनेकशः ॥२४॥
पृथिवीं चाखिलां प्राप्य कश्यपाय महात्मने । यज्ञस्यान्तेऽददं राम दक्षिणां पुण्यकर्मणे ॥२५॥
दत्त्वा महेन्द्रनिलयस्तपोबलसमन्वितः । श्रुत्वा तु धनुषो भेदं ततोऽहं द्रुतमागतः ॥२६॥
तदेवं वैष्णवं राम पितृपैतामहं महत् । क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गृह्णीष्व धनुरुत्तमम् ॥२७॥
योजयस्व धनुःश्रेष्ठे शरं परपुरंजयम् । यदि शक्तोऽसि काकुत्स्थ द्वन्द्वं दास्यामि ते ततः॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ७६

श्रुत्वा तु जामदग्न्यस्य वाक्यं दाशरथिस्तदा । गौरवाद्यन्त्रितकथः पितू राममथाब्रवीत् ॥ १ ॥
श्रुतवानस्मि यत्कर्म कृतवानसि भार्गव । अनुरुध्यामहे ब्रह्मन्पितुरानृण्यमास्थितः ॥ २ ॥
वीर्यहीनमिवाशक्तं क्षत्रधर्मेण भार्गव । अवजानासि मे तेजः पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥ ३ ॥
इत्युक्त्वा राघवः क्रुद्धो भार्गवस्य वरायुधम् । शरं च प्रतिजग्राह हस्ताल्लघुपराक्रमः ॥ ४ ॥

जिद्दी पुत्र ॥ २२ ॥ और मेरे पिता महात्मा जमदग्निको वह दिव्य धनुष दिया। जब मेरे पिता शस्त्र छोड़कर तपस्यामें लग गये थे, ॥ २३ ॥ कार्तवीर्य अर्जुनने, साधारण मनुष्योंके समान विचारसे, मेरे पिताको मार डाला। वह अद्भुत और भयानक वध सुनकर, क्रोधसे मैंने कई बार क्षत्रकुलका नाश किया ॥ २४ ॥ समस्त पृथिवीपर अधिकार कर, मैंने उसे पुण्यकर्मा महात्मा कश्यपको, यज्ञके अन्तमें, दक्षिणा दे दी ॥ २५ ॥ पृथिवी दानकर, मैं महेन्द्र पर्वतपर चला गया और वहीं तपस्या करने लगा। आज शिव-धनुषका तोड़ा जाना सुनकर, शीघ्रतापूर्वक मैं यहाँ आया हूँ ॥ २६ ॥ अतः हे राम, पिता-पितामहसे चला आया हुआ, महान् क्षत्रिय-धर्मको सामने रखकर, तुम यह उत्तम वैष्णव धनुष ग्रहण करो ॥ २७ ॥ इसपर बाण चढ़ाओ। यदि तुम समर्थ हुए, तो मैं तुमसे युद्ध करूँगा ॥ २८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका पचहत्तरहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७५ ॥

दासरथी (दसरथके पुत्र) रामने परशुरामकी बातें सुनीं। पितामें गौरव होनेके कारण, रामचन्द्रका मुँह बन्द था। फिर भी वे परशुरामसे बोले ॥ १ ॥ पितृ-वधका बदला चुकानेके लिए, आपने जो काम किये हैं, वे मैंने सुने हैं। मैं आपकी प्रशंसा करता हूँ ॥ २ ॥ भार्गव, क्षत्रधर्मसे हीन और दुर्बल समझकर, तुम मेरा अपमान करते हो। आज तुम मेरा तेज और पराक्रम देखो ॥ ३ ॥ ऐसा कहकर क्रोधपूर्वक रामचन्द्रने जामदग्न्यका धनुष और बाण बड़ी शीघ्रतासे ले

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आरोप्य स धनू रामः शरं सज्यं चकार ह । जामदग्न्यं ततो रामं रामः क्रुद्धोऽब्रवीदिदम् ॥५॥
ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे विश्वामित्रकृतेन च । तस्माच्छक्तो न ते राम मोक्तुं प्राणहरं शरम् ॥ ६ ॥
इमां वा त्वद्गतिं राम तपोबलसमर्जितान् । लोकानप्रतिमान्वापि हनिष्यामीति मे मतिः ॥ ७ ॥
नह्ययं वैष्णवो दिव्यः शरः परपुरंजयः । मोघः पतति वीर्येण बलदर्पविनाशनः ॥ ८ ॥
वरायुधधरं रामं द्रष्टुं सर्षिगणाः सुराः । पितामहं पुरस्कृत्य समेतास्तत्र सर्वशः ॥ ९ ॥
गन्धर्वाप्सरसश्चैव सिद्धचारणकिंनराः । यक्षराक्षसनागाश्च तद्दृष्टुं महददभुतम् ॥१०॥
जडीकृते तदालोके रामे वरधनुर्धरे । निर्वीर्यो जामदग्न्योऽसौ रामो राममुदैक्षत ॥११॥
तेजोभिर्गतवीर्यत्वाज्जामदग्न्यो जडीकृतः । रामं कमलपत्राक्षं मन्दमन्दमुवाच ह ॥१२॥
काश्यपाय मया दत्ता यदा पूर्वं वसुंधरा । विषये मे न वस्तव्यमितिमांकाश्यपोऽब्रवीत ॥१३॥
सोऽहं गुरुवचः कुर्वन्पृथिव्यां न वसे निशाम् । तदाप्रभृति काकुत्स्थ कृता मे काश्यपस्य ह ॥१४॥
तामिमां मद्गतिं वीर हन्तुं नार्हसि राघव । मनोजवं गमिष्यामि महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ॥१५॥
लोकास्त्वप्रतिमा राम निर्जितास्तपसा मया । जहि ताञ्छरमुख्येन मा भूत्कालस्य पर्ययः ॥१६॥
अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम् । धनुषोऽस्य परामर्शात्स्वस्ति तेऽस्तु परंतप ॥१७॥

लिया ॥४॥ रामचन्द्र धनुष चढ़ाकर तथा उसपर बाण चढ़ाकर, क्रोधपूर्वक परशुरामसे बोले ॥५॥ आप ब्राह्मण हैं, इसलिए मेरे पूज्य हैं। विश्वामित्रके भी संबन्धी (भांजे) हैं, इस कारण, परशुराम, आपके प्राण लेनेके लिए यह बाण मैं न छोड़ूँगा ॥ ६ ॥ मैं इस बाणसे आपकी गति (चलनेकी शक्ति) या तपस्यासे प्राप्त उत्तम लोकका विनाश करूँ, यह मेरा निश्चय है। कहिए, आप क्या कहते हैं ॥ ७ ॥ क्योंकि यह विष्णुका शत्रु-संहारकारी अलौकिक बाण है। यह अपने पराक्रमसे बल और अहंकारका नाश करता है। यह व्यर्थ नहीं जाता ॥ ८ ॥ उत्तम अस्त्र धारण किये हुए, रामचन्द्रको देखनेके लिए ऋषियों और देवताओंके साथ ब्रह्मा वहाँ आये ॥ ९ ॥ उस अद्भुत दृश्यको देखनेके लिए गन्धर्व, अप्सराएँ, सिद्ध, किन्नर, यक्ष, राक्षस, नाग आदि आये ॥ १० ॥ रामचन्द्रने जब वह वैष्णव धनुष धारण किया, तब परशुराम हक्के-बक्के रह गये। उनका तेज रामचन्द्रको प्राप्त हो गया। परशुराम पराक्रम-हीन हो गये। उन्होंने रामचन्द्रकी ओर देखा ॥११॥ तेजके निकल जानेसे परशुराम दुर्बल हो गये थे। वे जड़के समान हो गये थे। वे कमल-नयन रामचन्द्रसे धीरे-धीरे बोले ॥ १२ ॥ जब मैंने कश्यपको यह पृथिवी दान दी, तब उन्होंने मुझसे कहा कि मेरे राज्यमें तुम न रहना ॥ १३ ॥ अतएव मैं उस वचनका पालन करता हुआ, उस समयसे, रात्रिमें पृथिवीपर निवास नहीं करता हूँ। क्योंकि मैंने कश्यपसे ऐसी प्रतिज्ञा की है ॥ १४ ॥ अतएव, हे वीर, तुम मेरी गति (चलनेकी शक्ति) का नाश मत करो। मनके वेगसे शीघ्रतापूर्वक मुझे महेन्द्र पर्वतपर जाना है ॥ १५ ॥ मैंने अपनी तपस्याके बलसे बड़े उत्तम-उत्तम लोक जीते हैं। रामचन्द्र, उन्हीं लोकोंका नाश तुम इस बाणसे करो। विलंब न करो ॥ १६ ॥ इस धनुषके ग्रहणसे मैं जान गया हूँ, कि तुम देवताओंके स्वामी, अविनाशी मधुसूदन हो। हे परंतप,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एते सुरगणाः सर्वे निरीक्षन्ते समागताः । त्वामप्रतिमकर्माणमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥१८॥
न चेयं तव काकुत्स्थ व्रीडा भवितुमर्हति । त्वया त्रैलोक्यनाथेन यदहं विमुखीकृतः ॥१९॥
शरमप्रतिमं राम मोक्तुमर्हसि सुव्रत । शरमोक्षे गमिष्यामि महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ॥२०॥
तथा ब्रुवति रामे तु जामदग्न्ये प्रतापवान् । रामो दाशरथिः श्रीमांश्चिक्षेप शरमुत्तमम् ॥२१॥
स हतान्दृश्यरामेणस्वाँल्लोकांस्तपसार्जितान् । जामदग्न्यो जगामाशु महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ॥२२॥
ततो विंतिमिराः सर्वा दिशश्चोपदिशस्तथा । सुराः सर्षिगणा रामं प्रशशंसुरुदायुधम् ॥२३॥
रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्यः प्रपूजितः । ततः प्रदक्षिणीकृत्य जगामात्मगतिं प्रभुः ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे षट्सप्ततितमः सर्गः ॥७६॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ७७

गते रामे प्रशान्तात्मा रामो दाशरथिर्धनुः । वरुणायाप्रमेयाय ददौ हस्ते महायशाः ॥ १ ॥
अभिवाद्य ततो रामो वसिष्ठप्रमुखानृषीन् । पितरं विकलं दृष्ट्वा प्रोवाच रघुनन्दनः ॥ २ ॥
जामदग्न्यो गतो रामः प्रयातु चतुरङ्गिणी । अयोध्याभिमुखी सेना त्वया नाथेन पालिता ॥ ३ ॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा राजा दशरथः सुतम् । बाहुभ्यां संपरिष्वज्य मूर्ध्न्युपाघ्राय राघवम् ॥ ४ ॥
गतो राम इति श्रुत्वा हृष्टः प्रमुदितो नृपः । पुनर्जातं तदा मेने पुत्रमात्मानमेव च ॥ ५ ॥

तुम्हारा कल्याण हो ॥१७॥ युद्धमें, समना न रखनेवाले और अद्भुत कर्म करनेवाले, तुमको ये देवगण यहाँ आकार देख रहे हैं ॥ १८ ॥ त्रिलोकके स्वामी, तुमने जो मुझे परास्त किया है, उससे हे रामचन्द्र, तुम्हें लज्जित नहीं होना चाहिए ॥१९॥ हे पतिज्ञापालक रामचन्द्र, अब तुम इस बाणको छोड़ो । तुम्हारे बाण छोड़नेपर ही मैं महेन्द्र पर्वतपर जाऊँगा ॥ २० ॥ जामदग्न्य परशुरामके वैसा कहनेपर, प्रतापी दसरथके पुत्र श्रीमान रामने वह उत्तम अस्त्र छोड़ा ॥ २१ ॥ परशुराम अपनी तपस्याके द्वारा पाये हुए लोकोंका, रामचन्द्रके द्वारा विनाश देखनेके पश्चात्, शीघ्रतापूर्वक महेन्द्र पर्वतपर चलेगये ॥ २२ ॥ दिशा-विदिशाएँ साफ होगयीं और ऋषि तथा देवता शस्त्रधारी रामकी प्रशंसा करने लगे ॥ २३ ॥ महेन्द्र पर्वतपर जानेके पहले, परशुरामने, रामचन्द्रकी पूजा और प्रदक्षिणा की । पुनः वे अपने वेगसे चले गये ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका छिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७६ ॥

परशुरामके चलेजानेपर रामचन्द्रका क्रोध शान्त हुआ और अपने हाथका धनुष उन्होंने श्रेष्ठ वरुणको दिया ॥ १ ॥ वसिष्ठ आदि ऋषियोंको प्रणाम करके, रामचन्द्रने अपने पिताको व्याकुल देखा और वे बोले ॥ २ ॥ जमदग्निके पुत्र परशुराम चले गये, अब आपके द्वारा पालित यह चतुरंगिणी सेना अयोध्याकी ओर चले ॥ ३ ॥ रामके वचन सुनकर, राजा दसरथने उन्हें अपनी भुजाओंसे आलिङ्गन किया और उनका मस्तक सूँघा ॥ ४ ॥ परशुराम चलेगये, यह सुनकर राजा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चोदयामास तां सेनां जगामाशु ततः पुरीम् । पताकाध्वजिनीरम्यांतूर्योद्घुष्टनिनादिताम् ॥ ६ ॥
सिक्तराजपथां रम्यां प्रकीर्णकुसुमोत्कराम् । राजप्रवेशसुमुखैः पौरैर्मङ्गलपाणिभिः ॥ ७ ॥
संपूर्णां प्राविशद्राजा जनौघैः समलंकृताम् । पौरैः प्रत्युद्गतो दूरं द्विजैश्च पुरवासिभिः ॥ ८ ॥
पुत्रैरनुगतः श्रीमाञ्छ्रीमद्भिश्च महायशाः । प्रविवेश गृहं राजा हिमवत्सदृशं प्रियम् ॥ ९ ॥
ननन्द स्वजनै राजा गृहे कामैः सुपूजितः । कौसल्या च सुमित्रा च कैकयी च सुमध्यमा ॥१०॥
वधूप्रतिग्रहे युक्ता याश्चान्या राजयोषितः । ततः सीतां महाभागामूर्मिलां च यशस्विनीम् ॥११॥
कुशध्वजसुते चोभे जगृहुर्नृपयोषितः । मङ्गलालापनैर्होमैः शोभिताः क्षौमवाससः ॥१२॥
देवतायतनान्याशु सर्वास्ताः प्रत्यपूजयन् । अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वा राजसुतास्तदा ॥१३॥
रेमिरे मुदिताः सर्वा भर्तृभिर्मुदिता रहः । कृतदाराः कृतास्त्राश्च सधनाः सुहृज्जनाः ॥१४॥
शुश्रूषमाणाः पितरं वर्तयन्ति नरर्षभाः । कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा दशरथः सुतम् ॥१५॥
भरतं कैकयीपुत्रमब्रवीद्रघुनन्दनः । अयं केकयराजस्य पुत्रो वसति पुत्रक ॥१६॥
त्वां नेतुमागतो वीरो युधाजिन्मातुलस्तव । श्रुत्वा दशरथस्यैतद्भरतः कैकयीसुतः ॥१७॥
गमनायाभिचक्राम शत्रुघ्नसहितस्तदा । आपृच्छ्य पितरं शूरो रामं चाक्लिष्टकारिणम् ॥१८॥
मातॄश्चापि नरश्रेष्ठः शत्रुघ्नसहितो ययौ । युधाजित्प्राप्य भरतं सशत्रुघ्नं प्रहर्षितः ॥१९॥

दसरथ बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने अपने पुत्रोंका तथा अपना, नया जन्म हुआ समझा ॥ ५ ॥ उन्होंने सेनाको चलनेकी आज्ञा दी और स्वयं अयोध्याकी ओर चले । पताका और ध्वजासे शोभित, रमणीय अयोध्यामें तरह-तरहके बाजे बज रहे थे ॥ ६ ॥ सड़कें सींची गयी थीं । इसलिए वह और भी रमणीय मालूम होती थी । चारो तरफ फूल फैले हुए थे । राजा आनेवाले हैं, इसलिए नगरनिवासी हाथोंमें मंगल वस्तु लेकर खड़े थे ॥७॥ इस प्रकार जन-समूहसे सुशोभित अयोध्यामें राजाने प्रवेश किया । नगरवासी तथा नगरमें रहनेवाले ब्राह्मणोंने दूरतक आकर, राजाका स्वागत किया ॥ ८ ॥ श्रीमान् दसरथने अपने पुत्रोंके साथ, हिमवानके समान सुन्दर और प्रिय गृहमें प्रवेश किया ॥ ९ ॥ राजाके मनोरथ पूरे होगये । अपने बांधवोंके साथ वे अत्यन्त प्रसन्न हुए । कौसल्या, सुमित्रा, केकयी ॥१०॥ तथा राजाकी अन्य स्त्रियोंने बहुओंको उतारा । तदनन्तर महाभागा सीता, यशस्विनी उर्मिला ॥ ११ ॥ तथा कुशध्वजकी दो कन्याओंको महारानियोंने उतारा । रेशमी वस्त्र पहने हुई उन महारानियोंने होम और मांगलिक वचनोंके द्वारा उनका सत्कार किया ॥१२॥ उन राज-कन्याओंने सब देवस्थानोंकी शीघ्रतापूर्वक पूजा की तथा पूजनीयोंको प्रणाम किया ॥१३॥ वे सब राज-कुमारियाँ अपने-अपने पतिके साथ प्रसन्तापूर्वक निवास करने लगीं । विवाह होनेके बाद अस्त्र-निपुण, धनवान वे राजकुमार भी प्रसन्तापूर्वक रहने लगे ॥ १४ ॥ वे नरश्रेष्ठ अपने पिताकी सेवाके द्वारा आनन्दपूर्वक निवास करने लगे । कुछ समय बीतनेके पश्चात् राजा दसरथने ॥ १५ ॥ केकयीके पुत्र भरतसे कहा-वत्स, ये केकयराजके पुत्र ठहरे हुए हैं ॥ १६ ॥ तुम्हारे मामा युधाजित् तुम्हें लेनेके लिए आये है । दसरथकी यह बात सुनकर केकयी-पुत्र भरत ॥ १७ ॥ शत्रुघ्नके साथ जानेके लिए तयार हुए । उन्होंने पितासे आज्ञा ली तथा पुण्यात्मा रामचन्द्रसे भी पूछा ॥ १८ ॥ माताओंको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वपुरं प्राविशद्वीरः पिता तस्य तुतोष ह । गते च भरते रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ॥२०॥
पितरं देवसंकाशं पूजयामासतुस्तदा । पितुराज्ञां पुरस्कृत्य पौरकार्याणि सर्वशः ॥२१॥
चकार रामः सर्वाणि प्रियाणि च हितानि च । मातृभ्यो मातृकार्याणि कृत्वा परमयन्त्रितः ॥२२॥
गुरूणां गुरुकार्याणि काले कालेऽन्ववैक्षत । एवं दशरथः प्रीतो ब्राह्मणा नैगमास्तथा ॥२३॥
रामस्य शीलवृत्तेन सर्वे विषयवासिनः । तेषामतियशा लोके रामः सत्यपराक्रमः ॥२४॥
स्वयंभूरिव भूतानां बभूव गुणवत्तरः । रामश्च सीतया सार्धं विजहार बहूनृतून् ॥२५॥
मनस्वी तद्गतमनास्तस्या हृदि समर्पितः । प्रिया तु सीता रामस्य दाराः पितृकृता इति ॥२६॥
गुणाद्रूपगुणाच्चापि प्रीतिर्भूयोऽभिवर्धते । तस्याश्च भर्ता द्विगुणं हृदये परिवर्तते ॥२७॥
अर्न्तगतमपि व्यक्तमाख्याति हृदयं हृदा । तस्य भूयो विशेषेण मैथिली जनकात्मजा ।
देवताभिः समा रूपे सीता श्रीरिव रूपिणी ॥२८॥
तया स राजर्षिसुतोऽभिकामया समेयिवानुत्तमराजकन्यया ।
अतीव रामः शुशुभे मुदान्वितो विभुः श्रिया विष्णुरिवामरेश्वरः ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

प्रणाम करके, वे शत्रुघ्नके साथ युधाजित्के पास गये । भरत और शत्रुघ्नको देखकर युधाजित् प्रसन्न हुए ॥ १९ ॥ वीर युधाजित् अपने नगरमें गये । उनके आनेसे उनके पिता प्रसन्न हुए । भरतके चले जानेपर, महाबली राम और लक्ष्मण ॥ २० ॥ देव-तुल्य पिताकी सेवा करने लगे । पिताकी आज्ञासे वे नगरके सब काम भी देखने लगे ॥ २१ ॥ रामचन्द्र सबके प्रिय और हितकर काम करने लगे । माताओंके भी हितकर कार्य उन दोनों भाइयोंने किये; पर उन्हें अहङ्कार छू तक न गया ॥२२॥ रामचन्द्र समय-समयपर गुरुओंके (अपने बड़ोंके) बड़े-बड़े कामोंपर ध्यान दिया करते थे, इससे राजा दशरथ बड़े प्रसन्न थे । ब्राह्मण और बनिये भी प्रसन्न थे ॥ २३ ॥ रामचन्द्रके शील और चरित्रसे सभी राज्यवासी प्रसन्न हुए । इस प्रकार सत्यपराक्रमी रामचन्द्रका यश चारो ओर फैल गया ॥ २४ ॥ रामचन्द्र स्वयंभूके समान प्राणियोंमें अधिक गुणवान् हुए । उन्होंने सीताके साथ अनेक ऋतुओंमें विहार किया ॥२५॥ मनस्वी रामचन्द्र सीतासे बहुत प्रेम करते थे । उन्होंने अपना हृदय उनको दे दिया था । रामचन्द्रको सीता इसलिए बड़ी प्यारी थीं, कि पिताने उनको स्त्री-रूपमें दिया था ॥२६॥ सीताके रूप और गुणके कारण रामचन्द्रका प्रेम उनपर दिनोंदिन बढ़ रहा था और इससे दुगुने प्रेमके साथ, सीताने पतिको अपने हृदयमें धारण किया था ॥२७॥ हृदयके भीतरकी बातोंको भी हृदय साफ-साफ बतलाता है। जनक-पुत्री मैथिली देवताओंके समान सुन्दरी, लक्ष्मी-रूपधारिणी सीता, रामचन्द्रको बहुत प्यारी थीं ॥ २८ ॥ अनेक मनोरथोंको रखनेवाली श्रेष्ठ राज-कन्या सीतासे मिलकर प्रसन्नचित्त रामचन्द्र बहुत ही सुन्दर मालूम हुए । जिस प्रकार अमरेश्वर विष्णु लक्ष्मीके साथ मिलकर शोभित होते हैं ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका सतहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७७ ॥

बालकाण्ड समाप्त ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुल पृष्ठ-संख्या १८७+१+४=१९२=
साधारण साइज़के ३८४ पृष्ठ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला—आठवाँ पुष्प

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

अयोध्याकाण्ड

(मूल संस्कृत हिन्दी अनुवाद सहित)

टीकाकार
अनेक ग्रन्थोंके प्रणेता
शिक्षा, शारदा आदि पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादक
साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री

प्रकाशक
सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला कार्यालय
बनारस सिटी

1-2-0
C. M. V. Sharma
Nalgonda

प्रथमावृत्ति] होली, सं० १९८४ [मूल्य १॥)

सम्पूर्ण ग्रन्थ इसी साइज़के लगभग २७०० पृष्ठोंका होगा।
मूल्य इसी हिसाबसे रहेगा, किन्तु अभीसे ग्राहक बनजानेसे लगभग ७) के देना होगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

☞ सोल एजेण्ट

मुकुन्ददास गुप्त एण्ड कम्पनी

पुस्तक-भवन, बनारस सिटी।

आप स्वयं स्थायी ग्राहक बनिए • अपने मित्रोंको भी ग्राहक बनाइए

सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला

सस्ती पुस्तकों द्वारा सर्वसाधारणको लाभ तभी पहुँच सकता है जब कि पुस्तकोंके **विषय बढ़िया और दाम बहुत माकूल हों**। हमने ऐसे कई प्रयत्न करने-वालोंको देखा, पर हमें ऐसी पुस्तक-माला 'हिन्दी-संसार' में दिखायी न दी। एकाध जगहसे ऐसी कोशिश हो रही है, पर

हम दावेके साथ

कह सकते हैं कि आप हमारी पुस्तकोंको लीजिए, उनकी दीर्घकायाको देखिए और साथ ही **उनका दाम भी मिलाइए** तो

आप देखेंगे कि

इनसे बढ़िया, इनसे सस्ती और अधिक शिक्षाप्रद पुस्तकें बहुत ही कम हैं। **पर कमी है**

स्थायी ग्राहकोंकी.

पर्याप्त ग्राहक मिलते ही, हम इतने ही नहीं

१००० पृष्ठ १) रु० में

देनेकी व्यवस्था कर सकते हैं।

प्रकाशक—
पन्नालाल गुप्त, व्यवस्थापक,
स० सा० पुस्तकमाला कार्यालय
बनारस सिटी।

मुद्रक—
बी. एल्. पावगी,
हितचिन्तक प्रेस, रामघाट,
बनारस सिटी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 1989

प्रकाशकीय निवेदन

सहृदय ग्राहकगण,

कई अनिवार्य अड़चनोंके आ पड़नेके कारण इस वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकांडके प्रकाशनमें अत्यधिक विलम्ब हो गया। हम जैसा कि बालकाण्डके अपने निवेदनमें लिख चुके हैं कि तीन-तीन महीनेके अन्तरसे एक-एक कांड प्रकाशित करेंगे, वैसा न कर सके। इसके लिए हम आपसे क्षमाप्रार्थी हैं। अब भविष्यमें इस विलम्बकी पूर्ति हम विशेष शीघ्रता कर कर देना चाहते हैं। आगे किष्किन्धा तथा सुन्दर दो कांड हम आपको ज्येष्ठ मासमें देनेका प्रयत्न कर रहे हैं। इतना हो जानेसे ही पिछले विलम्बकी पूर्ति हो जायगी। आप लोगोंने जिस उत्सुकतापूर्ण धैर्यके साथ इसकी इतने दिनोंतक प्रतीक्षा की है, वह स्तुत्य है। हम इसके लिए आपके बड़े कृतज्ञ हैं।

आपसे हमारा एक विशेष निवेदन है। जैसा कि हम बालकांडके अपने निवेदनमें कह चुके हैं, हम सभी धार्मिक पुस्तकें महाभारत, पुराण, उपनिषदआदि इसी रूपमें--ऊपर मूल तथा नीचे उसका हिन्दी अनुवाद देकर—सस्ती-से-सस्ती निकालना चाहते हैं, उसके लिए पर्याप्त संख्यामें ग्राहकोंकी आवश्यकता है। जब तक पर्याप्त ग्राहक हमारी इस मालाके न हो जायँगे, हम ये पुस्तकें सस्ती तथा जल्दी न निकाल सकेंगे। इसलिए आप सभी सज्जनोंसे प्रार्थना है कि आप लोग अधिक नहीं केवल दो-दो ग्राहक ही बनाकर हमारी सहायता करें। आपलोगोंके इतना कर देनेसे ही हम पुस्तकें खूब जल्दी-जल्दी प्रकाशित कर सकेंगे।

इस बार श्रीतोताकृष्णजी गैरोला तथा श्रीमथुराप्रसादजी खरेने हमारे बहुतसे ग्राहक बनाये हैं, इसके लिए हम उनके विशेष कृतज्ञ हैं। दो-चार उद्योगी मित्रोंने भी हमारे ग्राहक बनाये हैं, उनको भी धन्यवाद देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं।

आपका विनयावनत—

प्रकाशक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्थायी ग्राहकोंकी आवश्यकता

है, इसलिए कि दूकानदार, छोटे–बड़े, प्रसिद्ध–अप्रसिद्ध प्रायः सभी हमसे अधिक-से-अधिक कमीशन चाहते हैं। साधारण कमीशनपर बेचनेको तैयार नहीं हैं। इसलिए आपसे निवेदन है कि आप इस मालाके स्थायी ग्राहक अवश्य बनें।

हमारी मालाकी प्रत्येक पुस्तकका मूल्य एक रुपयेमें साधारण साइज़के ५१२ पृष्ठ-के हिसाबसे होता है। स्थायी ग्राहकोंको तो वह लगभग ७०० पृष्ठके पड़ जाता है।

इस पुस्तक–मालाके ग्राहक बननेके नियम

१–एक रुपया प्रवेश शुल्क देकर प्रत्येक सज्जन स्थायी ग्राहक बन सकते हैं। यह शुल्क लौटाया नहीं जाता।

२–स्थायी ग्राहकको मालाकी प्रत्येक पुस्तककी एक–एक प्रति पौने मूल्यमें मिलती है।

३–मालाकी प्रत्येक पुस्तक लेने, न लेनेका अधिकार ग्राहकोंको होगा। इसमें हमारा किसी तरहका बन्धन नहीं है।

४–पुस्तकके प्रकाशित होनेपर उसके मूल्य आदिकी सूचना ग्राहकोंको दे दी जायगी और उसके १५ दिन बाद पुस्तक वी० पी० से भेज दी जायगी।

५–जिन लोगोंको पुस्तक न लेनी हो, वे सूचनापत्र पाते ही उत्तर दें, जिसमें वी० पी० न भेजी जाय। वी० पी० लौटानेसे उनके नाम ग्राहक–श्रेणीसे पृथक कर दिये जायँगे। यदि वे पुनः नाम लिखना चाहेंगे, तो वी० पी० खर्च देकर लिखा सकेंगे।

नोट–ग्राहकोंको चाहिए कि सूचनापत्रका उत्तर, चाहे पुस्तक मँगानी हो अथवा न मँगानी हो, अवश्य दे दिया करें और प्रत्येक पत्रमें अपना ग्राहक नंबर अवश्य लिखा करें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अयोध्याकाण्ड

सर्ग	विवरण	पृष्ठ
१.	रामचन्द्रके गुणोंका वर्णन। 'अपने जीते-जी रामचन्द्रको कब मैं युवराज पद पर देखूंगा' ऐसा दशरथका सोचना।	१–७
२.	राजा दशरथका रामचन्द्रको युवराज बनानेके बारेमें मन्त्रियोंसे परामर्श करना।	७–१२
३.	रामचन्द्रके अभिषेकका निश्चय और अभिषेककी सामग्रियोंके लिए एकत्र करनेके लिए निश्चय।	१२–१६
४.	दशरथका रामको प्रजा-पालनके लिए उपदेश। दशरथका शकुन देखना।	१६–२०
५.	राम और सीताको उपवास करनेकी वसिष्ठकी आज्ञा	२०–२२
६.	अयोध्यामें ध्वजारोपण, दीपावली आदि।	२२–२५
७.	मन्थराका केकयीके यहां आना और उसे क्रोध दिलानेका प्रयत्न करना।	२५–२८
८.	रामाभिषेकका संवाद सुनकर केकयीका प्रसन्न होना और मन्थराका तिरस्कार करना। अनेक तरहका ऊंच-नीच समझा-कर रामको वन भेजना और भरतको राज्य देनेके लिए केकयीको तयार करना।	२८–३०
९.	मनोरथ-सिद्धिके उपायके लिए चिन्तित केकयीको देवासुर संग्रामके दो वरोंका याद दिलाना।	३१–३७
१०.	केकयीका मन्थराके उपदेशके अनुसार आचरण करनेकी प्रतिज्ञा करना। केकयीका कोपगृह प्रवेश और दशरथ-का व्याकुल होना।	३७–४०
११.	केकयीका दशरथसे दो वरोंमें भरतका राज्याभिषेक और रामका वनवास मांगना।	४१–४३
१२.	केकयी-दशरथ संवाद।	४३–५३
१३.	दशरथकी अवस्था।	५३–५६
१४.	पूर्व निश्चयके अनुसार वशिष्ठका अभि-षेककी सामग्रियां एकत्र कर राजाके यहां आना। सुमन्त्रको दसरथका जगाना और राजाकी आज्ञासे रामचन्द्रको बुलाना।	५६–६१
१५–१७.	दसरथके बुलानेपर सुमन्त्रके साथ रामचन्द्रका जाना। दसरथके भव-नका वर्णन।	६१–७१
१८.	पिता दसरथके विषण्णवदनको देखकर रामचन्द्रका शंकित होना।	७२–७५
१९.	रामचन्द्रका केकयीसे राजाकी अवस्था-की बात जानना। केकयीकी बात सुन कर रामका 'एवमस्तु' कहकर माता कौशल्याके यहां जाना।	७५–७८
२०.	'आजही वन जा रहा हूँ' रामचन्द्रके इस वाक्यको सुनकर माता कौसल्याकी विह्वलावस्थाका वर्णन।	७८–८३
२१.	लक्ष्मणका पिता दशरथके ऊपर क्रोध करना। रामचन्द्रका उन्हें समझाना।	८३–८९
२२.	रामके दैवी बलका वर्णन।	८९–९२
२३.	राम-लक्ष्मण संवाद।	९२–९६
२४.	रामका 'पतिसेवा करो' ऐसा कौसल्या-से कहना।	९६–९९
२५.	रामको वन जानेकेलिए उद्यत देखकर कौसल्याका उनका स्वस्त्ययन करना।	९९–१०३
२६.	सीताके घरमें जाकर रामका उन्हें सम-झाना।	१०३–१०६
२७.	सीताका अपने वन जानेके लिए बात-चीत करना।	१०६–१०८
२८.	पति रामचन्द्रका सीताको वन न चलने के लिए कहना।	१०९–१११
२९.	सीताका पतिके साथ वन जानेके लिए हठ करना।	१११–११३

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्ग	विवरण	पृष्ठ
३०.	साताके दुखी होनेपर रामचन्द्रका उन्हें अपने साथ ले जानेके लिए तयार होना ।	११३–११७
३१.	कौसल्याके घरसे आकर लक्ष्मणका राम से 'मैं भी आपके साथ चलूंगा' ऐसा कहना । दोनोंका आपसमें संवाद ।	११७–१२०
३२.	रामका लक्ष्मणको अपने साथ लेजाना। रामचन्द्रका दान करना ।	१२०–१२३
३३.	रामको वन जाते हुए देखकर जनताका खेद करना । रामका सुमन्त्रसे वनजाने-की बात कहकर पिताके घरमें जाना	१२४–१२६
३४.	राम-दसरथकी वनके विषयमें बात-चीत ।	१२६–१३१
३५.	सुमन्त्रका केकयीके प्रति कटुवाक्योंका कहना ।	१३२–१३४
३६.	दसरथ-केकयी संवाद । वृद्धा केकयीका सगरपुत्र असमंजसकी कथा कहना । वहां बैठे हुए सिद्धार्थ मंत्रीका केकयी-को समझाना ।	१३५–१३७
३७.	केकयीके दिये चीर वस्त्रोंको रामचन्द्रका पहनना । अन्तःपुरकी स्त्रियोंका विलाप । गुरु वसिष्ठका 'सीताका चीर धारणकर वनजाना अनुचित होगा' ऐसा कहना। चीर न पहनने देना ।	१३७–१४०
३८	वन जाते समय पिता दशरथको राम-चन्द्रका समझाना ।	१४१–१४२
३९	रामको वन जाते देखकर दसरथकी अव-स्थाका वर्णन ।	१४२–१४५
४०	राम, लक्ष्मण और सीताका सबको नम-स्कार कर चलना । रथपर चढ़कर रामको जाते देखकर नगरवासियोंका विलाप करते हुए पीछे-पीछे जाना ।	१४६–१५०
४१	रामके जानेपर नगरवासियोंका शोक-वर्णन ।	१५०–१५१
४२	दसरथका केकयीपर रामके चलेजानेपर क्रोध करना ।	१५२–१५४
४३	रामका स्मरण करके कौसल्याका दसरथ-के पास रोना ।	१५५–१५६
४४.	शोकित कौसल्याको दसरथका सान्त्व-ना देना ।	१५७–१५९
४५.	रामचन्द्रका अपने पीछे आते हुए नगर-वासियोंको समझाना ।	१५९–१६२
४६.	सोते हुए नगरवासियोंको राम-लक्ष्मणका छोड़कर तमसा तीरपर चले जाना । रात वहीं बिताकर प्रातःकाल वहांसे जाना ।	१६२–१६५
४७	जागनेपर रामचन्द्रको न देखकर पुर-वासियोंका दुखी होना । वहांसे अयोध्या को लौटना ।	१६५–१६७
४८	शोकपूरित अयोध्याका वर्णन ।	१६७–१७०
४९	रामका सीताको कोसल देश दिखाते हुए वनमें जाना ।	१७०–१७२
५०	रामचन्द्रका शृंगवेरपुरमें जाना । गुहका दर्शन । उसके आतिथ्यसत्कारका वर्णन ।	१७२–१७६
५१	लक्ष्मण-गुह संवाद ।	१७६–१७८
५२	रामचन्द्रका सुमन्त्रको समझा-बुझाकर अयोध्या लौटाना ।	१७९-१८७
५३	राम-लक्ष्मण संवाद ।	१८७–१९०
५४	रामचन्द्रका भरद्वाज-आश्रममें जाना । वहां भरद्वाजकी आज्ञासे चित्रकूट पर जाना ।	१९०–१९३
५५	वहांसे कालिन्दी पार कर न्यग्रोध वृक्षके पास होकर यमुना वनमें जाना ।	१९३–१९६
५६.	उसके आगे चित्रकूटका दर्शन । वाल्मीकिका दर्शन । कुछ दिन तक उनके यहां वास करना ।	१९६–१९९
५७.	सुमन्त्रका अयोध्या पहुंचना । कौस-ल्या आदिके शोकका वर्णन ।	१९९–२०२
५८.	राजा दसरथका 'राम कैसे हैं' आदि प्रश्नोंका पूछना । सूतका रामके संदेसेको कहना ।	२०२–२०५

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्ग	विवरण	पृष्ठ
५९.	सूतकी बात सुनकर दसरथका रामके लिए विलाप करना।	२०५–२०७
६०.	दुखित कौसल्याका 'मुझे भी दण्डकवनमें ले चलो' ऐसा सूतसे कहना।	२०८–२१०
६१.	पुत्र-विरहसे दुखी और क्रोधित कौसल्याका दसरथसे संवाद।	२१०–२१२
६२.	दसरथका कौसल्याके कड़े वचनोंके कहनेपर उनसे प्रार्थना करना।	२१२–२१४
६३.	दसरथका कौसल्या, सुमित्रासे श्रवणमुनिकी आद्योपान्त कथाका कहना तथा शापकी भी बात कहना।	२१४–२१८
६४.	दुखी दसरथका प्राणान्त।	२१९–२२५
६५.	दसरथके मरनेपर उनकी स्त्रियोंका शोक करना।	२२५–२२७
६६.	कौशल्या और दूसरी रानियोंकी बातचीत। दसरथके मृत शरीरको तेलमें रखना।	२२७–२३०
६७.	वशिष्ठका सबोंको समझाना।	२३०–२३३
६८.	वशिष्ठकी आज्ञासे भरतको मामाके यहांसे बुलवाना	२३३–२३५
६९.	वहां भरतको दुःस्वप्नोंका होना।	२३५–२३७
७०.	दूतके साथ भरतका मामाके यहांसे आना।	२३७-२३९
७१.	अयोध्याको देखकर भरतका शंकित होना।	२३९–२४३
७२.	केकयीके द्वारा भरतको सब बातें मालूम होना।	२४३–२४७
७३.	केकयीकी बात सुनकर 'यह तुमने क्या किया' ऐसा भरतका कहना। भरतका माता केकयीकी भर्त्सना करना।	२४८–२५०
७४.	भरतका केकयीको कटुवचन कहना।	२५०–२५३
७५.	भरतकी बोली सुनकर वहां कौसल्याका आना। कौसल्या-भरत संवाद	२५३–२५८
७६–७७.	परलोकवासी पिताका अन्तिम कर्म भरतका करना।	२५८–२६२
७८.	भरतके पास मन्थराका आना। शत्रुघ्नका उसे मारना।	२६२–२६४
७९.	पिताके मरनेके चौदहवें दिन मन्त्रियोंका भरतसे 'तुम हम लोगोंके राजा हो' ऐसा कहना। भरतका भी उनसे 'राम मुझसे बड़े हैं, वे ही राजा होंगे' ऐसा विनयपूर्वक कहना।	२६५–२६६
८०.	अयोध्या-मार्गस्थिति वर्णन।	२६६–२६८
८१.	रामके बिना भरतका शोक करना। वशिष्ठका सबोंको सभामें बुलाना।	२६८–२६९
८२.	वशिष्ठका भरतको राज्यभार ग्रहण करनेके लिए उपदेश देना। भरतका रामको वनसे लौटा ले आनेके लिए चलना।	२७०–२७२
८३.	शृंगवेरपुरमें भरतका रहना।	२७२–२७४
८४.	निषादाधिपति गुहका भरतसे मिलना।	२७५–२७६
८५.	भरतका 'भरद्वाजाश्रमका कौन मार्ग है' ऐसा पूछना। गुह-भरत संवाद।	२७६–२७८
८६.	'राम, लक्ष्मण इसी ओरसे गए हैं' यह भरतसे गुहका कहना।	२७८–२८०
८७.	भरतसे गुहका रामचन्द्रके आचरणका विशेष वर्णन करना।	२८०–२८२
८८.	रामचरित्र सुनकर भरतका अपना वृत्तान्त कहना।	२८२–२८५
८९.	प्रयागवनमें भरत आदिका जाना।	२८५–२८७
९०.	वशिष्ठजीका भरत आदिके साथ भरद्वाजजीका दर्शन। उनके साथ बातचीत। 'रामचित्रकूट पर हैं' ऐसा मालूम होना।	२८७–२८९
९१.	भरद्वाजआश्रमके आतिथ्य-सत्कारका वर्णन।	२८९–२९५
९२.	भरद्वाजका भरतके साथ बातचीत। भरतका भरद्वाजको प्रणाम कर आगे जाना।	२९६–२९९
९३.	चित्रकूटके समीप मन्दाकिनी नदीके किनारे अपनी सेनाको रखना और स्वयं रामके आश्रमपर जाना।	२९९–३०१

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्ग	विवरण	पृष्ठ
९४.	चित्रकूटपर रहनेवाले राम-सीताके संवाद।	३०१–३०३
९५.	रामचन्द्रका मन्दाकिनी तटपर जाना और उसका वर्णन करना।	३०४–३०५
९६.	दूरसे भरतकी सेनाको देखकर राम-लक्ष्मण संवाद। लक्ष्मणका भरतको वध करनेके लिए उद्यत होना।	३०५–३०८
९७.	भरतको देखकर संकित हो लक्ष्मण-रामका संवाद।	३०८–३१०
९८.	चित्रकूट प्रान्तमें आकर भरत-शत्रुघ्नका संवाद। रामचन्द्रके चरणचिह्नको देखना।	३१०–३१२
९९.	राम, सीता और लक्ष्मणको कुशासनपर बैठा देखकर भरतका विलाप करना	३१२–३१५
१००.	विवर्णवदन भाई रामको भरतका देखना। भरत-राम-मिलन।	३१५–३२१
१०१.	रामका भरतसे वन आनेका कारण पूछना। भरतका पिताके स्वर्ग जानेकी बात तथा रामको अयोध्या चलनेके लिए कहना। राम-भरत संवाद।	३२२-३२४
१०२.	भरतका रामकी बातें सुनकर उन्हें राज्य ग्रहण करनेके लिए आग्रह करना।	३२४–३२५
१०३.	पिताकी मृत्युसे लक्ष्मण, सीता और रामका विलाप करना।	३२५–३२९
१०४.	कौसल्याका अन्य राजपत्नियोंके साथ वार्तालाप करना।	३२१ ३३१
१०५.	रामसे भरतका राज्य-ग्रहण करनेके लिए बारबार आग्रह करना।	३३२–३३५
१०६.	'आप अयोध्या चलकर पुरवासियोंका पालन करें', ऐसा भरतका बारबार कहना।	३३५–३३८
१०७.	भरतके आग्रह करनेपर रामका उन्हें समझाना।	३३८–३४०
१०८.	ब्राह्मणोत्तम जावालिका रामचन्द्रको समझाना।	३४०–३४१
१०९.	रामका ऋषिको उचित उत्तर देना।	३४१–३४५
११०.	वशिष्ठका दशरथ-वंशावलीका वर्णन करके 'बड़ा पुत्रही राज्यका अधिकारी होता है' यह कहना।	३४५–३४८
१११.	वशिष्ठके समझानेपर राम-भरतका संवाद।	३४८–३५०
११२.	रामचन्द्रके किसी प्रकार भी घर न जानेपर अन्तमें उनकी चरण पादुका ग्रहण करना और उनसे विदा माँगना।	३५१–३५३
११३.	भरतका भरद्वाजसे सब बातें कहना।	३५३–३५५
११४.	भरतका अयोध्यामें आना। बिना राजाके अयोध्याको देखकर भरतका विलाप करना।	३५५–३५७
११५.	भरतका चरणपादुकाको सिरपर धरकर नन्दिग्राममें रहना।	३५८–३५९
११६.	भरद्वाजआश्रमके ऋषियोंके साथ रामकी बातचीत।	३६०–३६२
११७.	रामचन्द्रका ऋषियोंको व्याकुल देखना। अत्रि ऋषिके आश्रममें रामचन्द्रका रहना। वहाँ अनुसूया और सीताका संवाद।	३६२–३६४
११८.	सीताका अनुसूयासे अपनी बातें कहना।	३६४ -३६८
११९.	सीताका अनुसूयाको प्रणाम करके अपने स्थानपर आना। राम-सीता संवाद। राम-लक्ष्मणका ऋषियोंके साथ संवाद। अपनी स्त्रीके साथ रामका और लक्ष्मणका दण्डकवनमें प्रवेश करना।	३६८–३७०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे

अयोध्याकाण्डम्

प्रथमः सर्गः १

गच्छता मातुलकुलं भरतेन तदानघः । शत्रुघ्नो नित्यशत्रुघ्नो नीतः प्रीतिपुरस्कृतः ॥ १ ॥
स तत्र न्यवसद्भ्रात्रा सह सत्कारसत्कृतः । मातुलेनाश्वपतिना पुत्रस्नेहेन लालितः ॥ २ ॥
तत्रापि निवसन्तौ तौ तर्प्यमाणौ च कामतः । भ्रातरौ स्मरतां वीरौ वृद्धं दशरथं नृपम् ॥ ३ ॥
राजापि तौ महातेजाः सस्मार प्रोषितौ सुतौ । उभौ भरतशत्रुघ्नौ महेन्द्रवरुणोपमौ ॥ ४ ॥
सर्व एव तु तस्येष्टाश्चत्वारः पुरुषर्षभाः । स्वशरीराद्विनिर्वृत्ताश्चत्वार इव बाहवः ॥ ५ ॥
तेषामपि महातेजा रामो रतिकरः पितुः । स्वयंभूरिव भूतानां बभूव गुणवत्तरः ॥ ६ ॥
स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः । अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः ॥ ७ ॥

पिताकी आज्ञासे भरत अपने मामाके घर जानेलगे, वे निष्पाप शत्रुघ्न को भी (लक्ष्मणके छोटे भाई) अपनेमें प्रेम होनेके कारण साथ लेगये । जिस शत्रुघ्नने राग द्वेष आदि नित्य शत्रुओंको जीत लिया था ॥ १ ॥ अश्वपति (अश्वोंके पति, केकय देशके घोड़े उत्तम घोडोंमें समझे जाते हैं, इस विशेषणसे मालुम होता है कि भरतके मामा बहुत अधिक घोड़े रखतेथे) मामा युधाजित्के उत्तम सत्कारोंसे सत्कृत होकर तथा उन्हींके द्वारा पुत्रस्नेह से लालित होकर भरत अपने भाई शत्रुघ्नके साथ रहने लगे ॥ २ ॥ मामाके यहां रहते समय उन भाइयोंको किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता था, उनकी सभी इच्छाएँ पूरी होतीथीं, जब जो चाहते थे तब वह मिलता था, फिर भी वे वीर वृद्ध राजा दशरथकी याद करते थे ॥ ३ ॥ महातेजस्वी राजा दशरथ भी घरसे बाहर गये इन्द्र और वरुणकी समता रखनेवाले भरत और शत्रुघ्न अपने दोनों पुत्रोंका स्मरण किया करते थे ॥ ४ ॥ राजा दशरथके वे चारों पुरुषोत्तम, अपने शरीरसे निकली चार बाहुओंके समान प्रिय थे, इसी कारण राम लक्ष्मणके अयोध्यामें रहने परभी वे भरत शत्रुघ्नकी याद करतेथे ॥ ५ ॥ पर उन चारोंमें महातेजस्वी राम पिताके अत्यन्त प्रिय थे, वे प्राणियोंमें ब्रह्माके समान अत्यन्त गुणवान् थे ॥ ६ ॥ बढ़े हुए रावणके वधकी इच्छा रखनेवाले देवताओंकी प्रार्थनासे स्वयं सनातन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कौसल्या शुशुभे तेन पुत्रेणामिततेजसा । यथा वरेण देवानामदितिर्वज्रपाणिना ॥ ८ ॥
स हि रूपोपपन्नश्च वीर्यवाननसूयकः । भूमावनुपमः सूनुर्गुणैर्दशरथोपमः ॥ ९ ॥
स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते । उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते ॥१०॥
कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति । न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ॥११॥
शीलवृद्धैर्ज्ञानवृद्धैर्वयोवृद्धैश्च सज्जनैः । कथयन्नास्त वै नित्यमस्रयोग्यान्तरेष्वपि ॥१२॥
बुद्धिमान्मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः । वीर्यवान्न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः ॥१३॥
न चानृतकथो विद्वान्वृद्धानां प्रतिपूजकः । अनुरक्तः प्रजाभिश्च प्रजाश्चाप्यनुरज्यते ॥१४॥
सानुक्रोशो जितक्रोधो ब्राह्मणप्रतिपूजकः । दीनानुकम्पी धर्मज्ञो नित्यं प्रग्रहवाञ्छुचिः ॥१५॥
कुलोचितमतिः क्षात्रं स्वधर्मं बहु मन्यते । मन्यते परया प्रीत्या महत्स्वर्गफलं ततः ॥१६॥
नाश्रेयसि रतो यश्च न विरुद्धकथारुचिः । उत्तरोत्तरयुक्तीनां वक्ता वाचस्पतिर्यथा ॥१७॥

विष्णुही मनुष्यलोकमें रामरूपमें प्रकट हुए थे ॥७॥ अपरिमित पराक्रमवाले उस पुत्रसे कौसल्या बहुत अधिक सन्तुष्ट थीं, जिस प्रकार वज्रपाणिदेवराज इन्द्रसे अदिति ॥ ८॥ वे कौसल्याके पुत्र बड़े सुन्दर थे, पराक्रमी थे, किसीके गुणोंमें दोष देखनेवाले न थे, किसीके गुणसे वे जलते न थे, पृथिवीमें उनके समान कोई दूसरा न था, वे गुणों-सत्यप्रतिज्ञत्व आदि गुणोंसे दशरथके समान थे ॥ ९ ॥ रामचन्द्रसे कोई कुछ कठोर वचन कह दे तो वे उसका कुछ उत्तर न देते थे, क्योंकि उनका चित्त शान्त था, वे अक्रोधी थे। इतनाही नहीं कि वे कठोर वचन बोलनेवालेको उत्तर न दें, किन्तु उससे प्रेम पूर्वक भाषण करते थे ॥ १० ॥ उनका कभी किसीने उपकार करदिया, चाहे वह दिखावटी ही क्यों न हो, रामचन्द्र उसीसे सन्तुष्ट होजाते, उनका कोई सैकड़ों अपकार करे तो भी वे उधर ध्यान नहीं देते, अपकारीके प्रति क्रोधकर वे बदला लेनेके लिए तयार नहीं होजाते, क्योंकि वे आत्मवान हैं, उनका अपने मनपर पूरा अधिकार है ॥ ११ ॥ अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षासे जो समय उनका बचता था उस समयमें भी वे चरित्रवान्, ज्ञानी तथा वृद्ध सज्जन पुरुषोंके साथ कथोपकथन करते थे। कभी चरित्रके सम्बन्धमें कभी आत्मानात्माके सम्बन्धमें इन विषयोंके अभिज्ञोंसे वे विचार करते थे, तात्पर्य यह कि उनका समय सदा सत्कार्यमें ही जाता है ॥ १२ ॥ वे बुद्धिमान् हैं, मधुर बोलनेका उनका स्वभाव है, अपने यहां आये हुए मनुष्योंसे वे पहले ही बोलते हैं और जो बोलते हैं, प्रिय बोलते हैं। वे पराक्रमी हैं, पर अपने बहुत बड़े पराक्रमका उनको अहंकार नहीं है ॥ १३ ॥ श्रीरामचन्द्र कभी असत्य नहीं बोलते, वे विद्वान् हैं, असत्य बोलनेके बुरे परिणाम उनको मालूम है, चरित्र ज्ञान और अवस्था में अपने से बड़ोंका रामचन्द्र आदर करते हैं। रामचन्द्रका प्रजामें अनुराग है और प्रजा उनमें अनुराग करती है ॥ १४ ॥ वे दुखियोंपर दया करते हैं, क्रोध उनको छू तक नहीं गया है, ब्राह्मणोंका सत्कार करते हैं, सङ्कट में पड़े हुओंपर वे दया करते हैं, वे धर्मके रहस्योंको जाननेवाले हैं, अधर्मकी ओरसे सदा खिचे रहते हैं, स्वयं पवित्र हैं तथा सबको शुद्ध करनेवाले हैं ॥ १५ ॥ कुल-परम्पराके धर्मके पालनमें उनका अनुराग हैं, प्रजारक्षणरूप क्षात्रधर्मको वे अपना धर्म समझते हैं और उसका पालन करते हैं तथा वे यह भी जानते हैं कि क्षात्रधर्मसे महान् कीर्ति और स्वर्ग मिलता है ॥ १६ ॥ वे निष्फल काम नहीं करते, धर्म और शास्त्र-विरुद्ध

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अरोगस्तरुणो वाग्मी वपुष्मान्देशकालवित् । लोके पुरुषसारज्ञः साधुरेको विनिर्मितः ॥१८॥
स तु श्रेष्ठैर्गुणैर्युक्तः प्रजानां पार्थिवात्मजः । बहिश्चर इव प्राणो बभूव गुणतः प्रियः ॥१९॥
सर्वविद्याव्रतस्नातो यथावत्साङ्गवेदवित् । इष्वस्त्रे च पितुः श्रेष्ठो बभूव भरताग्रजः ॥२०॥
कल्याणाभिजनः साधुरदीनः सत्यवाग्ऋजुः । वृद्धैरभिविनीतश्च द्विजैर्धर्मार्थदर्शिभिः ॥२१॥
धर्मकामार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान्प्रतिभानवान् । लौकिके समयाचारे कृतकल्पो विशारदः ॥२२॥
निभृतः संवृताकारो गुप्तमन्त्रः सहायवान् । अमोघक्रोधहर्षश्च त्यागसंयमकालवित् ॥२३॥

विषयोंकी ओर उनका अनुराग नहीं रहता, वादविवादमें अपना पक्ष समर्थन करनेके लिए उत्तरोत्तर युक्तियां देने में वे बृहस्पतिके समान वक्ता हैं ॥ १७ ॥ वे नीरोग हैं, किसी कारण विशेषसे होनेवाला कोई भी रोग उनको नहीं होता, वे तरुण हैं अर्थात् उनका यौवन स्थायी है। वक्ता हैं, उनका शरीर बड़ा ही सुन्दर है, देश और कालको जाननेवाले हैं, लौकिक और वैदिक कर्मोंके लिए कौनसा देश और कौनसा काल उचित है, इस बातको जाननेवाले हैं, वे श्रेष्ठ पुरुषोंको जाननेवाले हैं, गुणोंका आदर करनेवाले हैं। इन गुणों से युक्त वे उत्पन्न हुए हैं, अर्थात् साधारण पुरुषोंके निर्माणसे उनका निर्माण भिन्न है, वे लोकोंमें एकही हैं, उनके समान दूसरा नहीं है ॥ १८ ॥ ऊपर कहे गये तथा आगे कहे जानेवाले श्रेष्ठ गुणोंसे वे युक्त हैं, अतएव वे राजकुमार प्रजाके बाहरी प्राण हैं। पर भेद यह था कि यह बाहरी थे (प्राणोंके निकलते ही प्राणीको मृत्यु होती है, ये प्राण होकर बाहर रहते हैं, यह इनकी विशेषता है। अतएव साधारण प्राणोंसे उत्कृष्ट हैं)। गुणोंके कारण ये प्रजाको प्रिय हैं ॥ १९ ॥ सब विद्यासमाप्तिके अनुसार नियत व्रतोंके लिए उन्होंने स्नान किया है अर्थात् उन्होंने सब विद्याएँ पढ़ी हैं और विधिपूर्वक पढ़ी हैं, अङ्गोंके सहित वेदोंको वे यथावत् जानते हैं, वैदिक आदि क्रियाओंके अनुष्ठानकी रीति उनको मालूम हैं, और अस्त्र-शस्त्र विद्याओंमें तो वे भरतके बड़े भाई राम अपने पितासे भी बढ़े हैं ॥ २० ॥ वे कल्याणाभिजन हैं अर्थात् उनके माता पिताके वंश विशुद्ध है इसी कारण वे साधु हैं, शुद्धस्वभाववाले हैं, वे अदीन हैं, कठिन से कठिन समयमें भी शास्त्र, कुल, धर्म तथा आत्मसम्मान के विरुद्ध काम करनेवाले नहीं हैं, सत्यवादी हैं, नम्र हैं अर्थात् अपने इन गुणोंका उन्हें अभिमान नहीं है, धर्म, अर्थ आदि पुरुषार्थोंकी तत्त्वतः वृद्ध ब्राह्मणों के द्वारा उनकी शिक्षा हुई है ॥ २१ ॥ अतएव वे धर्म अर्थ और कामके तत्त्वोंको जाननेवाले हैं, किसके लिए कितना समय देना चाहिए, किसका अनुष्ठान किस प्रकार करना चाहिए इन बातोंको वे जाननेवाले हैं, उनकी स्मरण शक्ति ठीक है, अर्थात् सीखी हुई बात नहीं भूलते, किसीके साथ कीगयी अपनी प्रतिज्ञाको भी नहीं भूलते और वे प्रतिभायुक्त हैं, वे अपनी प्रखर बुद्धिसे नई नई बात सोच सकते हैं तथा उनका निर्णय कर सकते हैं, लौकिक कार्योंको सम्पादित करनेकी शक्ति रखनेवाले हैं, और धार्मिक आचरणों में तो विशारद ही हैं ॥ २२ ॥ वे विनयी हैं, राजकार्योंमें अपनी सफलता होनेपर भी उनको अहंकार नहीं होता, वे आकार छिपाना जानते हैं, मनमें उठनेवाले प्रबलसे प्रबल विचारोंको भी वे बाहरी आकार इङ्गितसे प्रकट होने नहीं देते। उनके मन्त्र गुप्त रहते हैं, फल सिद्धि तक कोई भी यह नहीं जान पाता कि उन्होंने क्या निश्चय किया है, उनके सहायक हैं अर्थात् उपकार तथा सद्व्यवहार के द्वारा उन्होंने दूसरोंको भी अपना सहायक बना लिया है। उनके क्रोध और प्रसन्नता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दृढभक्तिः स्थिरप्रज्ञो नासद्ग्राही न दुर्वचः । निस्तन्द्रीरप्रमत्तश्च स्वदोषपरदोषवित् ॥२४॥
शास्त्रज्ञश्च कृतज्ञश्च पुरुषान्तरकोविदः । यः प्रग्रहानुग्रहयोर्यथान्यायं विचक्षणः ॥२५॥
सत्संग्रहानुग्रहणे स्थानविन्निग्रहस्य च । आयकर्मण्युपायज्ञः संदृष्टव्ययकर्मवित् ॥२६॥
श्रैष्ठ्यं चास्त्रसमूहेषु प्राप्तो व्यामिश्रकेषु च । अर्थधर्मौ च संगृह्य सुखतन्त्रो न चालसः ॥२७॥
वैहारिकाणां शिल्पानां विज्ञातार्थविभागवित् । आरोहे विनये चैव युक्तो वारणवाजिनाम् ॥२८॥
धनुर्वेदाविदां श्रेष्ठो लोकेऽतिरथसंमतः । अभियाता प्रहर्ता च सेनानयविशारदः ॥२९॥
अप्रधृष्यश्च संग्रामे क्रुद्धैरपि सुरासुरैः । अनसूयो जितक्रोधो न दृप्तो न च मत्सरी ॥३०॥

निष्फल नहीं होते, किस समय किस वस्तुका त्याग करना चाहिए और किस समय किस वस्तुका ग्रहण करना चाहिए इस बातको वे जानते हैं ॥ २३ ॥ देवता गुरु आदिमें दृढ़ भक्ति करने वाले हैं, बुद्धि स्थिर है, वे जो निश्चय करते हैं उससे टलते नहीं, असद्ग्राही—बुरे उपायोंसे अथवा बुरी वस्तुओं या बुरे मनुष्योंके संग्रह करनेवाले नहीं हैं, उत्तेजित होने परभी वे कठोर वचन नहीं बोलते, वे आलस्य-रहित हैं, जिस समय और जितनी देरतक जो काम करना चाहिए वे उस कामको वैसाही करते हैं, वे सदा सावधान हैं, अपने और दूसरोंके दोषोंको जानने वाले हैं ॥ २४ ॥ वे शास्त्रोंके उपदेशोंके रहस्य जाननेवाले हैं, कृतज्ञ हैं, किसीके किये थोड़े उपकारको भी नहीं भूलते, मनुष्योंके अन्तर जाननेवाले हैं, उनके गुणदोष वे जानते हैं, अथवा पुरुषोंको देखते ही उनके अभिप्राय जानलेनेवाले हैं, दण्ड और पुरस्कारकी व्यवस्था नियमपूर्वक करनेमें वे एकही हैं ॥ २५ ॥ सज्जनोंके संग्रह और संगृहीत सज्जनोंपर वे अनुग्रह करना जानते हैं, देशविदेशोंसे योग्योंको बुलाकर वे अपने यहां रखते हैं, सपरिवार उनका पालन करते हैं । दण्ड देनेके स्थान (देश और काल) के जाननेवाले हैं, राज्यकी आमदनी बढ़ानेवाले उपायोंका उन्हें ज्ञान है, धर्म और राजनीति-शास्त्रके अनुसार कहां कितना व्यय करना चाहिए इस बातका उन्हें ज्ञान है ॥ २६ ॥ अस्त्रोंमें उन्होंने श्रेष्ठता पायी है अर्थात् अपने साथी अस्त्रज्ञानियोंमें वे सबसे श्रेष्ठ माने गये हैं । व्यामिश्रकमें भी अस्त्र-शस्त्र सम्बन्धी फुटकल ज्ञानमें भी उन्होंने श्रेष्ठता पायी है, छोटी-मोटी बातें भी उनसे छूटने नहीं पायी हैं । (टीकाकारोंने व्यामिश्रकका अर्थ लिखा है संस्कृत प्राकृतादि भाषा ज्ञान, और ऐसा करनेका कारण यह है कि अस्त्रोंके स्थान में उन लोगोंने शास्त्रों समझा है, पर मूलमें 'अस्त्रसमूहेषु' है, 'शास्त्रसमूहेषु' नहीं) । अर्थ और धर्मकी सेवा करके वे सुखकी इच्छा करते हैं, वे आलसी नहीं है, अर्थ धर्म आदि अपने कर्तव्योंके पालनमें वे आलसी नहीं हैं ॥ २७ ॥ गीत वाद्य आदि शिल्पोंके वे विज्ञाता हैं, इनके गुण दोषोंका उन्हें ज्ञान है और धनका विभाग जाननेवाले हैं, प्रति दिन स्वयं तथा स्वजनोंके लिए कितना कितना अर्थ व्यय करना चाहिए इस विषयके विज्ञाता हैं । तात्पर्य यह कि गाने-बजानेमें उनका नियमित ही खर्च होता हैं । हाथी और घोड़ेकी सवारी करने तथा उनको शिक्षा देनेमें वे निपुण हैं ॥ २८ ॥ धनुर्धारियोंमें प्रवीण अतिरथोंके द्वारा सम्मानित, आक्रमण और प्रहार करनेवाले अर्थात् आक्रमण और प्रहारके देशकालज्ञ, सेनाकी नीतिमें प्रवीण अर्थात् सेनाका सञ्चालन करना, उसको आगे बढ़ाना या पीछे हटाना, व्यूहरचना, समयानुसार व्यूहको बदलना आदि बातोंके वे विशेषज्ञ हैं ॥ २९ ॥ देवता और राक्षस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नावज्ञेयश्च भूतानां न च कालवशानुगः । एवं श्रेष्ठैर्गुणैर्युक्तः प्रजानां पार्थिवात्मजः ॥३१॥
संमतास्त्रिषु लोकेषु वसुधायाः क्षमागुणैः । बुद्ध्या बृहस्पतेस्तुल्यो वीर्ये चापि शचीपतेः॥३२॥
तथा सर्वप्रजाकान्तैः प्रीतिसंजननैः पितुः । गुणैर्विरुरुचे रामो दीप्तः सूर्य इवांशुभिः ॥३३॥
तमेवं वृत्तसंपन्नमप्रधृष्यपराक्रमम् । लोकनाथोपमं नाथमकामयत मेदिनी ॥३४॥
एतैस्तु बहुभिर्युक्तं गुणैरनुपमैः सुतम् । दृष्ट्वा दशरथो राजा चक्रे चिन्तां परंतपः॥३५॥
अथ राज्ञो बभूवैवं वृद्धस्य चिरजीविनः । प्रीतिरेषा कथं रामो राजा स्यान्मयि जीवति ॥३६॥
एषा ह्यस्य परा प्रीतिर्हृदि संपरिवर्तते । कदा नाम सुतं द्रक्ष्याम्यभिषिक्तमहं प्रियम्॥३७॥
वृद्धिकामो हि लोकस्य सर्वभूतानुकम्पकः । मत्तः प्रियतरो लोके पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥३८॥
यमशक्रसमो वीर्ये बृहस्पतिसमो मतौ । महीधरसमो धृत्यां मतश्च गुणवत्तरः ॥३९॥
महीमहमिमां कृत्स्नामधितिष्ठन्तमात्मजम् । अनेन वयसा दृष्ट्वा यथा स्वर्गमवाप्नुयाम् ॥४०॥

कोई क्रोध करके भी रणमें उनको हरा नहीं सकता, अर्थात् वे अजेय हैं, वे किसीसे ईर्ष्या नहीं करते, क्रोधको उन्होंने अपने वशमें कर रखा है, वे अहङ्कारी नहीं हैं और न दूसरों की बढ़ती से द्वेष करनेवाले हैं ॥३०॥ वे राजकुमार किसीसे अवज्ञेय (तिरस्करणीय) नहीं हैं, सभी उनका आदर करते हैं, उनके अनुचर कालके अधीन नहीं हैं अर्थात् समय-समय केलिए भिन्न-भिन्न नौकर उन्हें नहीं हैं, इस प्रकार वे श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त हैं ॥ ३१ ॥ श्रेष्ठ गुण ये हैं—उनकी क्षमा पृथिवीकी क्षमाके समान है, बृहस्पति की बुद्धि के समान बुद्धि है और इन्द्र के पराक्रम के समान पराक्रम है, इस प्रकार वे तीनों लोकोंकी प्रजाके आदरणीय हैं ॥ ३२ ॥ सब प्रकारकी प्रजाके प्रिय तथा पिताको प्रसन्न करनेवाले गुणोंसे रामचन्द्र सुशोभित हैं जिस प्रकार किरणोंसे सूर्य सुशोभित होता है ॥ ३३ ॥ इस प्रकारके गुणोंसे युक्त तथा अप्रधृष्यपराक्रम (जिसकी शक्ति कहीं रुके नहीं) उनको जानकर पृथिवीने उनको स्वामीरूपमें पानेकी कामना की, क्योंकि वे लोकपालोंके गुणोंसे विभूषित थे ॥ ३४ ॥ शत्रुसन्तापी राजा दशरथने इस प्रकारके अनेक सुन्दर गुणोंसे पुत्रको विभूषित देखकर अपने मनमें विचार किया ॥ ३५ ॥ राजा दसरथ वृद्ध हो गये थे, राज्यपालनका ज्ञानभी उन्हें बहुत अधिक था, और भी अधिक दिनों तक उन्हें जीना था तथापि रामचन्द्रके ऐसे गुणों और उनपर अपने प्रेमके कारण, उन्होंने विचार किया कि मेरे जीवन-समयमें रामचन्द्र कैसे राजा हो सकेंगे, (सम्भव है राजा दसरथ केकयीके बरदानसे डरते हों) ॥ ३६ ॥ राजा दशरथके हृदयमें यह अभिलाष बार बार उत्पन्न होता था कि कब मैं अपने प्रिय पुत्रको राज्यासनपर बैठा देखूंगा ॥ ३७ ॥ रामचन्द्र प्रजाकी वृद्धि चाहनेवाले हैं, सब प्राणियोंपर ये दया समान भावसे करते हैं, जल बरसानेवाले मेघके समान ये प्रजाको मुझसे भी अधिक प्रिय हैं, (मैं वृद्ध होनेके कारण असमर्थ हो गया हूँ, अतएव प्रजाके कल्याणमें कार्यतः भाग नहीं लेता, राजा दशरथके कहनेका यह मतलब है) ॥ ३८ ॥ ये पराक्रम में यम और इन्द्र के समान हैं, यमराजके समान धर्मपूर्वक दण्डकी व्यवस्था करनेवाले और इन्द्रके समान प्रजाकी विपत्तियोंसे रक्षा करनेवाले हैं। बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् हैं पर्वतके समान धीर हैं (बड़े बड़े संकटके समयमें भी न घबड़ानेवाले हैं) और मुझसे भी अधिक गुणवान् हैं ॥३९॥ इस समय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इत्येवं विविधैस्तैस्तैरन्यपार्थिवदुर्लभैः । शिष्टैरपरिमेयैश्च लोके लोकोत्तमैर्गुणैः ॥४१॥
तं समीक्ष्य तदा राजा युक्तं समुदितैर्गुणैः । निश्चित्य सचिवैः सार्धं यौवराज्यमन्यत ॥४२॥
दिव्यन्तरिक्षे भूमौ च घोरमुत्पातजं भयम् । संचचक्षेऽथ मेधावी शरीरे चात्मनो जराम् ॥४३॥
पूर्णचन्द्राननस्याथ शोकापनुदमात्मनः । लोके रामस्य बुबुधे संप्रियत्वं महात्मनः ॥४४॥
आत्मनश्च प्रजानां च श्रेयसे च प्रियेण च । प्राप्ते काले स धर्मात्मा अकृत्यात्वरितवान्नृपः ॥४५॥
नानानगरवास्तव्यान्पृथग्जानपदानपि । समानिनाय मेदिन्यां प्रधानान्पृथिवीपतिः ॥४६॥
तान्वेश्म नानाभरणैर्यथार्हं प्रतिपूजितान् । ददर्शालंकृतो राजा प्रजापतिरिव प्रजाः ॥४७॥
न तु केकयराजानं जनकं वा नराधिपः । त्वरया चानयामास पश्चात्तौ श्रोष्यतःप्रियम् ॥४८॥
अथोपविष्टे नृपतौ तस्मिन्परपुरार्दने । ततः प्रविविशुः शेषा राजानो लोकसंमताः ॥४९॥
अथ राजवितीर्णेषु विविधेष्वासनेषु च । राजानमेवाभिमुखा निषेदुर्नियता नृपाः ॥५०॥

पृथिवीपर अपने पुत्रको शासन करते इस वृद्धावस्थामें देखकर मैं अपने कर्मोंके अनुसार स्वर्ग पाऊँ, राजा दशरथने यही विचार किया ॥ ४० ॥ अन्य राजाओंमें न मिलने योग्य भिन्न-भिन्न प्रकारके उत्तम, परिमाणरहित, लोकमें अन्यत्र न मिलनेवाले गुण रामचन्द्र में हैं और नारदादि मुनि भी उन गुणोंकी प्रशंसा करते हैं, यह देखकर तथा अपने मन्त्रियोंके साथ विचार करके राजा दसरथने रामचन्द्रको युवराज बनाना निश्चय किया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ स्वर्ग, अन्तरिक्ष (स्वर्गके नीचेका भाग) और पृथिवीमें भयंकर उत्पात, भय तथा अपने शरीरमें वृद्धावस्थाका आगमन बुद्धिमान् राजाने मन्त्रियोंको बतलाया, अर्थात् मैं वृद्ध हूँ, अशकुन भी दिखायी पड़ते हैं, अतएव समय रहते रामचन्द्रको युवराज बनादेना चाहिए—यह राजाने अपने मन्त्रियोंको बतलाया ॥ ४३ ॥ रामचन्द्र पूर्णचन्द्रानन हैं, उनके दर्शनसे लोग शान्ति पाते हैं। वे महाबुद्धिमान और लोकप्रिय हैं, राजाने इस कारण अपने शोकको दूर समझा। उनके मनसे उत्पात भय जाता रहा, क्योंकि रामचन्द्र लोकप्रिय और बुद्धिमान् हैं ॥ ४४ ॥ यौवराज्याभिषेकके समय राजादशरथ प्रेमसे गद्-गद हो गये और अपने तथा प्रजाके कल्याणकेलिये उन्होंने अभिषेकमें शीघ्रता की, क्योंकि प्रजाका राममें अत्यन्त प्रेम था, और उसके लिए विलम्ब असह्य था, राजा को खुद अनिष्टभय था, इस कारण उन्होंने शीघ्रता की ॥ ४५ ॥ राजाने अभिषेकमें सम्मिलित होनेके लिए भिन्न-भिन्न नगरोंमें रहनेवाले, भिन्न-भिन्न मण्डलोंके वासी राजाओंको अयोध्यामें निमन्त्रित किया ॥४६॥ उन समागत राजाओंको राजा दसरथने ठहरनेके लिए घर दिया और यथायोग्य अनेकप्रकारके आभूषणोंसे उनका सत्कार किया, पुनः स्वयं अलंकृत होकर राजा दसरथ उन लोगोंसे मिले। ब्रह्मा जिस प्रकार अपनी प्रजासे मिलते हैं ॥४७॥ शीघ्रताके कारण केकयराज (भरतके मामा) और राजा जनकको दसरथ नहीं बुलासके, और सोचा कि इस प्रिय उत्सवके समाप्त होजाने पर उन लोगोंके यहां संवाद भेज दिया जायगा ॥ ४८ ॥ शत्रुविजयी राजा दसरथने जब आसन ग्रहण किया तब अन्य राजाओंने वहां प्रवेश किया, जो राजा लोकसम्मत थे उन्हींको प्रवेशाधिकार मिला, लोकके द्वारा किसी प्रकार लाञ्छित राजाको वहां जानेका अधिकार न था ॥ ४९ ॥ राजा दसरथके दिये हुए भिन्न-भिन्न आसनोंपर राजागण उनके सामने बैठे, जिसके लिए जो आसन नियत था वह उसी पर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स लभ्यमानैर्विनयान्वितैर्नृपैः पुरालयैर्जानपदैश्च मानवैः ।
उपोपविष्टैर्नृपतिर्वृतो बभौ सहस्रचक्षुर्भगवानिवामरैः ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २

ततः परिषदं सर्वामामन्त्र्य वसुधाधिपः । हितमुद्धर्षणं चैवमुवाच प्रथितं वचः ॥ १ ॥
दुन्दुभिस्वरकल्पेन गम्भीरेणानुनादिना । स्वरेण महता राजा जीमूत इव नादयन् ॥ २ ॥
राजलक्षणयुक्तेन कान्तेनानुपमेन च । उवाच रसयुक्तेन स्वरेण नृपतिर्नृपान् ॥ ३ ॥
विदितं भवतामेतद्यथा मे राज्यमुत्तमम् । पूर्वकैर्मम राजेन्द्रैः सुतवत्परिपालितम् ॥ ४ ॥
सोऽहमिक्ष्वाकुभिः सर्वैर्नरेन्द्रैः प्रतिपालितम् । श्रेयसा योक्तुमिच्छामि सुखार्हमखिलं जगत् ॥ ५ ॥
मयाप्याचरितं पूर्वैः पन्थानमनुगच्छता । प्रजा नित्यमनिद्रेण यथाशक्त्यभिरक्षिताः ॥ ६ ॥
इदं शरीरं कृत्स्नस्य लोकस्य चरता हितम् । पाण्डुरस्यातपत्रस्य च्छायायां जरितं मया ॥ ७ ॥
प्राप्य वर्षसहस्राणि बहून्यायूंषि जीवतः । जीर्णस्यास्य शरीरस्य विश्रान्तिमभिरोचये ॥ ८ ॥
राजप्रभावजुष्टां च दुर्वहामजितेन्द्रियैः । परिश्रान्तोऽस्मि लोकस्य गुर्वीं धर्मधुरं वहन् ॥ ९ ॥

बैठा ॥ ५० ॥ जो राजाके द्वारा सम्मनित हुए थे, राजसेवाके लिए अयोध्यामें ही रहा करते थे तथा भिन्न-भिन्न मण्डलोंसे आये हुए राजा दसरथके चारों ओर बठे, उस समय देवताओं से घिरे इन्द्रके समान राजा दसरथकी शोभा थी ॥ ५१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका पहिला सर्ग समाप्त ॥ १ ॥

तदनन्तर राजा दसरथ समस्त सभाको सम्बोधित करके हितकारी अतएव अत्यन्त हर्षदेने वाला तथा सबके सुनने योग्य वचन इस प्रकार बोले ॥ १ ॥ भेरीके समान प्रतिध्वनित होनेवाले और अर्थयुक्त अपने वचनसे मेघके समान सभामण्डलको प्रतिध्वनित करते हुए राजा बोले ॥ २ ॥ राजा अपनी सरस वाणीसे सभामण्डपको गुञ्जाते हुए राजाओंसे बोले, उनके वचन राजाओंके समान सुन्दर और अनुपम थे ॥३॥ आप लोग जानते हैं कि यह हमारा राज्य कैसा उत्तम है, हमारे पूर्वजोंने पुत्रके समान इसका पालन किया है ॥ ४ ॥ इक्ष्वाकुवंशी राजाओंके द्वारा प्रतिपालित अतएव समस्त जगत्को सुख पहुँचानेकी शक्ति रखनेवाले इस राज्यको और अधिक कल्याण-भागी बनाना चाहता हूँ ॥ ५ ॥ आलस्यका त्याग कर अपनी शक्ति भर पूर्वजोंकी पद्धतिपर मैंने भी प्रजाकी रक्षा की है ॥ ६ ॥ समस्त लोक (भेदभाव छोड़कर) का कल्याण-सम्पादन करता हुआ यह शरीर भी श्वेत छत्रकी छायामें अब बूढा होगया, अर्थात् अपने अन्य सुखोंकी ओर ध्यान न देकर रज्यासनपर बैठकर प्रजाका कल्याण-सम्पादन किया है ॥ ७ ॥ मैंने हजारों वर्षों-की आयु पायी, जिसमें साधारण पुरुषोंकी बहुत सी आयु समाप्त होती है, अब यह शरीर वृद्ध होगया अतएव विश्राम चाहता हूँ ॥ ८ ॥ यह लोकपालनका धर्मभार बड़ा ही गुरुतर है, जो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सोऽहं विश्राममिच्छामि पुत्रं कृत्वा प्रजाहिते । संनिकृष्टानिमान्सर्वाननुमान्य द्विजर्षभान् ॥ १० ॥
अनुजातो हि मां सर्वैर्गुणैः श्रेष्ठो ममात्मजः । पुरंदरसमो वीर्ये रामः परपुरंजयः ॥ ११ ॥
तं चन्द्रमिव पुष्येण युक्तं धर्मभृतांवरम् । यौवराज्ये नियोक्तास्मि प्रातः पुरुषपुंगवम् ॥ १२ ॥
अनुरूपः स वो नाथो लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणाग्रजः । त्रैलोक्यमपि नाथेन येन स्यान्नाथवत्तरम् ॥ १३ ॥
अनेन श्रेयसा सद्यः संयोक्ष्येऽहमिमां महीम् । गतक्लेशो भविष्यामि सुते तस्मिन्निवेश्य वै ॥ १४ ॥
यदिदं मेऽनुरूपार्थं मया साधु सुमन्त्रितम् । भवन्तो मेऽनुमन्यन्तां कथं वा करवाण्यहम् ॥ १५ ॥
यद्यप्येषा मम प्रीतिर्हितमन्याद्विचिन्त्यताम् । अन्या मध्यस्थचिन्ता तु विमर्दाभ्यधिकोदया ॥ १६ ॥
इति ब्रुवन्तं मुदिताः प्रत्यनन्दन्नृपा नृपम् । वृष्टिमन्तं महामेघं नर्दन्त इव बर्हिणः ॥ १७ ॥
स्निग्धोऽनुनादः संजज्ञे ततो हर्षसमीरितः । जनौघोद्घुष्टसंनादो मेदिनीं कम्पयन्निव ॥ १८ ॥

जितेन्द्रिय नहीं हैं उनसे इसका पालन नहीं हो सकता, इसके पालनके लिये शूरता आदि राजोचित गुण चाहिए, मैं इस राज्य-भारको वहन करते करते अब थक गया हूँ ॥९॥ अब मैं प्रजाके कल्याण-के सम्पादनके लिए अपने पुत्रको अपने स्थानपर नियुक्त कर विश्राम चाहता हूँ, पर यह मैं तब चाहता हूँ, जब पास बैठे हुए अथवा हमारे अन्तरङ्ग इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी आज्ञा हो ॥ १० ॥ मेरा बड़ा पुत्र समस्त गुणोंमें मेरे समान ही है, वह इन्द्रके समान पराक्रमी और शत्रुओंपर विजय करने-वाला है, उसका नाम राम है ॥ ११ ॥ पुष्ययुक्त चन्द्रमाके तुल्य (यह योग सर्वार्थसिद्धिदायक है) धार्मिकोंमें श्रेष्ठ उस पुरुषोत्तमको प्रातःकाल युवराज बनाना चाहता हूँ ॥ १२ ॥ वह आप लोगोंके योग्य स्वामी हैं, वे लक्ष्मणके बड़े भाई महातेजस्वी हैं, उनको स्वामी पाकर त्रिलोक वासी भी अपनेको, योग्य स्वामी पानेके कारण, धन्य समझ सकते हैं। त्रिलोकके शासनकी शक्ति रखनेवाला यदि केवल आपही लोगोंका शासक बन जाय, उसकी समस्त शक्ति केवल आपही लोगोंके कल्याण-चिन्तनमें लगे तो इससे अहोभाग्य और क्या होगा ! ॥ १३ ॥ ऐसे स्वामीका पाना पृथिवीके लिए भी अहोभाग्यकी बात है, मैं अपनी पालित इस पृथिवीको शीघ्र ही इस कल्याणकी भागिनी बनाऊँगा अर्थात् रामचन्द्रको युवराज बनाऊँगा। उस पुत्रको राज्यभार देकर मैं सुखी हो जाऊँगा, राज्यपालनकी चिन्ताएँ छूट जायँगी ॥ १४ ॥ मैंने जो यह विचार आप लोगोंके सामने रखा है वह यदि विचारपूर्ण है, और इससे आप लोगोंको भी लाभ है तो आपलोग मेरे इस विचारको स्वीकार करें। यदि इन दोनों बातोंसे कोई भी न हो अथवा एक हो, एक न हो तो आप लोग मुझे बतलावें मैं क्या करूँ ॥ १५ ॥ रामचन्द्रको युवराज बनाना मैं चाहता हूँ, यह मुझे प्रिय है, पर इससे भिन्न अपने और राज्यके हितकी बात आपलोग सोच सकते हों तो सोचें, क्योंकि मेरा विचार एक पक्षका है, मध्यस्थका विचार दूसरा है, वह उत्तर प्रत्युत्तर से मँजा होनेके कारण अधिक उज्ज्वल होता है ॥ १६ ॥ राजाके ऐसा कहनेपर राजसभामें उपस्थित राजालोग बहुत प्रसन्न हुए और उन लोगोंने राजाके आनन्दके साथ अपना आनन्द प्रकाशित किया। जिस प्रकार बरसनेवाले मेघका गर्जन सुनकर मयूर भी उसी गर्जनध्वनिका अनुकरण अपने शब्दों द्वारा करते हैं ॥१७॥ राजा दसरथके विचार राजाओंने स्वीकार किये, तदनन्तर सभामण्डपमें उपस्थित अन्यवर्गके लोगोंने स्नेहसूचक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्य धर्मार्थविदुषो भावमाज्ञाय सर्वशः । ब्राह्मणा बलमुख्याश्च पौरजानपदैः सह ॥१९॥
समेत्य ते मन्त्रयितुं समतागतबुद्धयः । ऊचुश्च मनसा ज्ञात्वा वृद्धं दशरथं नृपम् ॥२०॥
अनेकवर्षसाहस्रो वृद्धस्त्वमसि पार्थिव । स रामं युवराजानमभिषिञ्चस्व पार्थिवम् ॥२१॥
इच्छामो हि महाबाहुं रघुवीरं महाबलम् । गजेन महता यान्तं रामं छत्रावृताननम् ॥२२॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा राजा तेषां मनःप्रियम् । अजानन्निव जिज्ञासुरिदं वचनमब्रवीत् ॥२३॥
श्रुत्वैतद्वचनं यन्मे राघवं पतिमिच्छथ । राजानः संशयोऽयं मे तदिदं ब्रूत तत्त्वतः ॥२४॥
कथं नु मयि धर्मेण पृथिवीमनुशासति । भवन्तो द्रष्टुमिच्छन्ति युवराजं महाबलम् ॥२५॥
ते तमूचुर्महात्मानः पौरजानपदैः सह । बहवो नृपकल्याणगुणाः सन्ति सुतस्य ते ॥२६॥
गुणान्गुणवतो देव देवकल्पस्य धीमतः । प्रियानान्दनान्कृत्स्नान्प्रवक्ष्यामोऽद्य तान्शृणु ॥२७॥
दिव्यैर्गुणैः शक्रसमो रामः सत्यपराक्रमः । इक्ष्वाकुभ्योऽपि सर्वेभ्यो ह्यतिरिक्तो विशांपते ॥२८॥
रामः सत्पुरुषो लोके सत्यः सत्यपरायणः । साक्षाद्रामाद्विनिर्वृत्तो धर्मश्चापि श्रिया सह ॥२९॥

स्वीकार-ध्वनि की, वह ध्वनि हर्षसे की गयी थी, और उस मङ्गलमय ध्वनिसे पृथिवी भी कांप गयी। पृथिवीके कांपनेसे ध्वनिकी प्रबलता बतलायी गयी है ॥ १८ ॥ धर्म और अर्थ-वृद्धावस्थामें अपना कर्तव्य क्या है और प्रजाका कल्याण कैसे होगा इन बातोंके जाननेवाले राजा दसरथके अभिप्रायको ठीकठीक समझकर ब्राह्मण और सामन्त-राजाओंने नागरिक और राज्यके प्रजाप्रतिनिधियोंसे मिलकर सलाह की। जब उन लोगोंमें ऐकमत्य होगया तब उनलोगोंने स्वयं भी अपना-अपना विचार किया, पुनः आकर वृद्ध राजा दसरथसे वे बोले ॥ १९ ॥ २० ॥ राजन्, आप कई हजार वर्षोंके बूढ़े हैं, रामचन्द्रमें पृथिवीपालन करनेकी योग्यता है, आप उन्हें युवराज बनावें ॥ २१ ॥ महाराज हमलोग चाहते हैं कि महाबलवान्, महाबाहु रामचन्द्र युवराज बनाये जांय, ये बड़े हाथीपर सवार होकर चलें और राजछत्रसे इनका मुंह छिपा हो। बड़ा हाथी केवल महत्त्वसूचक है, इस प्रकार सब लोगोंने राजाके मतमें अपनी सम्मति दी ॥ २२ ॥ राजाने उन लोगोंके ये वचन सुने। ये वचन राजाको भी प्रिय थे, वे भी यही चाहते थे, फिर भी अनजानसा होकर और उन लोगोंका अभिप्राय जाननेके लिए वे बोले ॥ २३ ॥ राजागण, आपलोगोंने मेरा अभिप्राय होनेकेही कारण रामचन्द्रको युवराज बनानेके विषयमें अपना मत दिया है, या आपलोगोंका यथार्थ मत भी यही है—इन दोनों बातोंमें मुझे संशय है, यथार्थ बात आपलोग कहें ॥ २४ ॥ मैं तो धर्मपूर्वक पृथिवीका पालन कर ही रहा हूँ, फिर महाबलवान् एक युवराज देखनेकी इच्छा आपलोग क्यों करते हैं ॥ २५ ॥ उन राजाओंने नागरिक और राज्यवासी प्रजाओंकी ओरसे उत्तर दिया, राजन्, आपके पुत्रमें बहुतही कल्याणकारी गुण हैं ॥ २६ ॥ राजन्, लोकोत्तरगुणी आप देवसमान शक्तिमान् अपने पुत्रके वे सब गुण सुनें, हमलोग कहते हैं। जो सबको प्रिय तथा सबको आनन्द देनेवाले हैं ॥ २७ ॥ प्रजापति, रामचन्द्र अपने लोकोत्तर गुणोंके कारण इन्द्रके समान हैं, उनका पराक्रम सफल है, इक्ष्वाकुवंशी सब राजाओंसे वे श्रेष्ठ हैं ॥ २८ ॥ लोकमें रामचन्द्र ही एक सत्पुरुष हैं, वे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रजासुखत्वे चन्द्रस्य वसुधायाः क्षमागुणैः । बुद्ध्या बृहस्पतेस्तुल्यो वीर्ये साक्षाच्छचीपतेः ॥३०॥
धर्मज्ञः सत्यसंधश्च शीलवाननसूयकः । क्षान्तःसान्त्वयिताश्लक्ष्णःकृतज्ञोविजितेन्द्रियः ॥३१॥
मृदुश्च स्थिरचित्तश्च सदा भव्योऽनसूयकः । प्रियवादी च भूतानां सत्यवादी च राघवः ॥३२॥
बहुश्रुतानां वृद्धानां ब्राह्मणानामुपासिता । तेनास्येहातुला कीर्तिर्यशस्तेजश्च वर्धते ॥३३॥
देवासुरमनुष्याणां सर्वास्त्रेषु विशारदः । सम्यग्विद्याव्रतस्नातो यथावत्साङ्गवेदवित् ॥३४॥
गान्धर्वे च भुवि श्रेष्ठो बभूव भरताग्रजः । कल्याणाभिजनः साधुरदीनात्मा महामतिः ॥३५॥
द्विजैरभिविनीतश्च श्रेष्ठैर्धर्मार्थनैपुणैः । यदा व्रजति संग्रामं ग्रामार्थे नगरस्य वा ॥३६॥
गत्वा सौमित्रिसहितो नाविजित्य निवर्तते । संग्रामात्पुनरागत्य कुञ्जरेण रथेन वा ॥३७॥
पौरान्स्वजनवन्नित्यं कुशलं परिपृच्छति । पुत्रेष्वग्निषु दारेषु प्रेष्यशिष्यगणेषु च ॥३८॥
निखिलेनानुपूर्व्या च पिता पुत्रानिवौरसान् । शुश्रूषन्ते च वःशिष्याःकच्चिद्धर्मेषु दंशिताः ॥३९॥

सत्यवादी और सत्य आचरणके करनेवाले हैं, अर्थके साथ धर्मको स्वयं रामने ही प्रतिष्ठित किया है ॥ २९ ॥ जिस प्रकार भेदभाव छोड़कर चन्द्रमा सब प्रकारकी प्रजाओंको सुखी करता है, उसी प्रकार रामचन्द्र भी सब प्रजाओंको सुखी रखते हैं, ये पृथिवीके समान क्षमाशील, बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् और इन्द्रके समान पराक्रमी हैं ॥ ३० ॥ रामचन्द्र धर्मके रहस्योंको जाननेवाले हैं, सत्यप्रतिज्ञ हैं, शीलवान् हैं, गुणियोंके गुणोंके आदर करनेवाले हैं, तृष्णारहित हैं, दुःखियोंके दुःख दूरकरनेवाले हैं, प्रिय बोलनेवाले हैं, दूसरोंके किये उपकारोंको समझनेवाले हैं और अपनी इन्द्रियोंपर उनका अधिकार है ॥ ३१ ॥ वे आसानीसे प्रसन्न कियेजाते हैं, विकट परिस्थितिमें भी वे अपनी कही बातसे नहीं टलते, वे सदा दर्शनीय हैं, कोई दूसरा उनसे द्वेष नहीं करता । रामचन्द्र प्रियवादी और सत्यवादी हैं, वे सबसे प्रिय बोलते हैं, पर वह प्रिय सत्य होता है ॥ ३२ ॥ रामचन्द्र बहुश्रुतों, वृद्धों और ब्राह्मणोंकी सेवा करते हैं, उनके उपदेश सुनते हैं इसकारण उनके पराक्रम आदिकी कीर्ति, दान आदिका यश तथा तेज अतुलनीय है और वे दिनोंदिन बढ़रहे हैं ॥३३॥ देवता, मनुष्य और राक्षस इन सबकी अस्त्रविद्याओंमें रामचन्द्र निपुण हैं, रामचन्द्रने विधिपूर्वक विद्या-ग्रहण करनेके व्रतोंका पालन करके स्नान किया है, गुरुमुखसे अंगोंके साथ उन्होंने वेदोंका अध्ययन किया है ॥ ३४ ॥ रामचन्द्र गानविद्यामें इस पृथिवीमें सबसे श्रेष्ठ हैं, उनके माता और पिताके कुल शुद्ध हैं, वे स्वयं भी शुद्ध हैं, दुःखके समयमें भी वे घबड़ाते नहीं, वे बड़े बुद्धिमान् हैं ॥ ३५ ॥ धर्म और अर्थके ज्ञाता प्रसिद्ध द्विजोंसे उन्होंने शिक्षा पायी है । रामचन्द्र ग्रामके लिए या नगरके (राजधानी या राज्यके गाँव) लिए किसी युद्ध में लक्ष्मणके साथ जब जाते हैं, तब विना विजय पाये नहीं लौटते । संग्रामसे विजय पाकर हाथीसे या रथसे लौटते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उस समय अपने निजी आदमियोंके समान नगरवासियोंसे कुशलसंवाद सदा पूछते हैं । पुत्र, अग्निहोत्र, स्त्री, परिवार, भृत्य और शिष्योंका ॥ ३८ ॥ यथाक्रम वे कुशल संवाद पूछते हैं, जिस तरह पिता अपने पुत्रोंसे पूछता है । वे ब्राह्मणोंसे पूछते हैं कि आपके शिष्य सावधानीसे आपकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति वः पुरुषव्याघ्रः सदा रामोऽभिभाषते । व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः ॥४०॥
उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति । सत्यवादी महेष्वासो वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ॥४१॥
स्मितपूर्वाभिभाषी च धर्मं सर्वात्मनाश्रितः । सम्यग्योक्ता श्रेयसां च न विगृह्य कथारुचिः ॥४२॥
उत्तरोत्तरयुक्तौ च वक्ता वाचस्पतिर्यथा । सुभ्रूरायतताम्राक्षःसाक्षाद्विष्णुरिव स्वयम् ॥४३॥
रामो लोकाभिरामोऽयं शौर्यवीर्यपराक्रमैः । प्रजापालनसंयुक्तो न रागोपहतेन्द्रियः ॥४४॥
शक्तश्चैलोक्यमप्येष भोक्तुं किं नु महीमिमाम् । नास्य क्रोधःप्रसादश्च निरर्थोऽस्ति कदाचन ॥४५॥
हन्त्येष नियमाद्ध्यानवध्येषु न कुप्यति । युनक्त्यर्थैः प्रहृष्टश्च तमसौ यत्र तुष्यति ॥४६॥
दान्तैः सर्वप्रजाकान्तैः प्रीतिसंजननैर्नृणाम् । गुणैर्विरोचते रामो दीप्तः सूर्य इवांशुभिः ॥४७॥
तमेवंगुणसंपन्नं रामं सत्यपराक्रमम् । लोकपालोपमं नाथमकामयत मेदिनी ॥४८॥
वत्सः श्रेयसि जातस्ते दिष्ट्यासौ तव राघवः । दिष्ट्या पुत्रगुणैर्युक्तो मारीच इव कश्यपः ॥४९॥
बलमारोग्यमायुश्च रामस्य विदितात्मनः । देवासुरमनुष्येषु सगन्धर्वोरगेषु च ॥५०॥

सेवा तो करते हैं ॥ ३९ ॥ पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्र इसी प्रकार सबसे पूछते हैं। जो मनुष्य दुःखी होता है रामचन्द्र स्वयं उसके दुःखमें दुःखी होते हैं ॥ ४० ॥ उनकी प्रसन्नतामें रामचन्द्र स्वयं प्रसन्न होते हैं, जिस प्रकार पिता प्रसन्न होता है। वे सत्यवादी धनुर्धारी वृद्धोंकी सेवा करने वाले और जितेन्द्रिय हैं ॥ ४१ ॥ वे सदा प्रसन्न रहते हैं, हँसकर बाते करते हैं और सर्वात्मना धर्मको प्रधानता देते हैं, यथावत् सभीके कल्याण करनेवाले हैं और झगड़ेकी बातचीतसे उन्हें प्रसन्नता नहीं होती, ऐसी बात न तो वे खुद कहते हैं और न दूसरोंकी कही पसन्द करते हैं ॥ ४२ ॥ पर युक्तियुक्त उत्तर प्रत्युत्तर करनेमें वे बृहस्पतिके समान वक्ता हैं, उनकी भौंहें सुन्दर हैं, आँखें बड़ी और लाल हैं, वे स्वयं विष्णुके समान हैं ॥ ४३ ॥ ये लोकप्रिय रामचन्द्र शौर्य (युद्धमें निर्भय रहना) वीर्य (स्वयं क्षुभित न होकर शत्रुको क्षुभित करना) और पराक्रम (युद्धमें शीघ्रताकरना) से सदा प्रजापालनमें लगे रहते हैं, अनुरागके कारण उनकी इन्द्रियां मूढ़ नहीं होगयी हैं, वे यथावत् कार्य करती हैं ॥ ४४ ॥ ये समस्त त्रिलोकका शासन करसकते हैं, फिर इस राज्यकी कौन बात। इनका क्रोध और इनकी प्रसन्नता कभी व्यर्थ नहीं जाते ॥४५॥ ये राजनियमके अनुसार सदा अपराधियोंको ही दण्ड देते हैं, निरपराधियोंपर कभी क्रोध नहीं करते। रामचन्द्र जिसपर प्रसन्न होते हैं उसको धन देते हैं ॥ ४६ ॥ रामचन्द्रने अपने मनपर अधिकार किया है, उनके गुण समस्त प्रजाओंके हितकारी हैं और समस्त मनुष्योंको प्रसन्न करनेवाले हैं। किरणोंके द्वारा प्रदीप्त सूर्यके समान रामचन्द्र अपने इन गुणोंसे शोभित होते हैं ॥ ४७ ॥ इन पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त सत्यपराक्रम रामचन्द्रको लोकपालके समान पृथिवी भी अपना स्वामी बनाना चाहती है । पृथिवीका अर्थ है पृथिवीपर रहनेवाले मनुष्य ॥ ४८ ॥ आपके पुत्र रामचन्द्र प्रजाकी रक्षा (राज्यपालन) करनेमें समर्थ होगये हैं यह हमलोगोंके भाग्यकी बात है, मरीचि प्रजापतिके पुत्र कश्यपमें जिस प्रकार पुत्रके सभी गुण थे, वैसेही गुणी रामचन्द्र भी हैं, इनमें भी पुत्रके गुण वर्तमान हैं ॥ ४९ ॥ आत्मसंयमी रामचन्द्रके बलवान्, नीरोग और दीर्घजीवी होनेकी कामना देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व और नागलोकके वासी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आशंसते जनः सर्वो राष्ट्रे पुरवरे तथा । आभ्यन्तरश्च बाह्यश्च पौरजानपदो जनः ॥५१॥
स्त्रियो वृद्धास्तरुण्यश्च सायं प्रातः समाहिताः । सर्वा देवान्नमस्यन्ति रामस्यार्थे मनस्विनः ॥
तेषां तद्याचितं देव त्वत्प्रसादात्समृद्ध्यताम् ॥ ५२ ॥
राममिन्दीवरश्यामं सर्वशत्रुनिबर्हणम् । पश्यामो यौवराज्यस्थं तव राजोत्तमात्मजम् ॥५३॥
तं देवदेवोपममात्मजं ते सर्वस्य लोकस्य हिते निविष्टम् ।
हिताय नः क्षिप्रमुदारजुष्टं मुदाभिषेक्तुं वरद त्वमर्हसि ॥ ५४ ॥
इत्यार्ष श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३

तेषामञ्जलिपद्मानि प्रगृहीतानि सर्वशः । प्रतिगृह्याब्रवीद्राजा तेभ्यः प्रियहितं वचः ॥ १ ॥
अहोऽस्मि परमप्रीतः प्रभावश्चातुलो मम । यन्मे ज्येष्ठं प्रियं पुत्रं यौवराज्यस्थमिच्छथ ॥ २ ॥
इति प्रत्यर्चितान्राजा ब्राह्मणानिदमब्रवीत । वासिष्ठं वामदेवं च तेषामेवोपशृण्वताम् ॥ ३ ॥
चैत्रः श्रीमानयं मासः पुण्यः पुष्पितकाननः । यौवराज्याय रामस्य सर्वमेवोपकल्प्यताम् ॥ ४ ॥
राज्ञस्तूपरते वाक्ये जनघोषो महानभूत । शनैस्तास्मिन्प्रशान्ते च जनघोषे जनाधिपः ॥ ५ ॥

सभी करते हैं ॥ ५० ॥ अन्य राज्यों तथा नगरोंके वासी, देव, मनुष्य, असुर आदि इनमें जो आभ्यन्तर शरीर सेवक, बाह्य उदासीन-सभी रामचन्द्रके दीर्घजीवन आरोग्य आदिकी कामना करते हैं ॥ ५१ ॥ बूढी और युवती स्त्रियां सायंकाल और प्रातःकाल शुद्ध और स्वस्थ होकर मनस्वी रामचन्द्रके कल्याणके लिए देवताओंको नमस्कार करती हैं। तात्पर्य यह कि रामचन्द्र सर्वप्रिय हैं, उनको युवराज बनाकर आप लोगोंके मनोरथ ही पूरे करेंगे ॥ ५२ ॥ हे राजश्रेष्ठ, सबप्रकारके शत्रुओंको दमनकरनेवाले इन्दीवरश्याम (नील कमलके सदृश श्याम) आपके पुत्र रामचन्द्रको युवराजके पदपर हमलोग देखना चाहते हैं ॥ ५३ ॥ लोक-कल्याणमें लगेहुए विष्णुके समान अपने पुत्र रामचन्द्रका जिनके गुण उदार हैं—हम लोगोंके कल्याणके लिए-शीघ्र प्रसन्नतापूर्वक आपको राज्याभिषेक करना चाहिए ॥ ५४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीयरामायण के अयोध्याकाण्डका दूसरा सर्ग समाप्त ॥ २ ॥

उन सबका मस्तकसे लगा हुआ अञ्जलिरूप कमल (स्वीकारोक्ति) ग्रहणकर (सुनकर) राजा उनलोगोंसे प्रिय और हितकारी वचन बोले ॥ १ ॥ आप सबलोग मेरे ज्येष्ठ पुत्रको युवराज बनाना चाहते हैं इससे हमारे अतुल प्रभावका पता चलता है और हम इससे बहुत प्रसन्न हैं ॥ २ ॥ इस प्रकार उन सबका सत्कार करके राजा दसरथ वसिष्ठ, वामदेव आदि ब्राह्मणोंसे पुरवासी और जनपदवासियोंके सामने बोले ॥ ३ ॥ यह चैत्रका महीना पवित्र और सुन्दर है, वन फूले हुए हैं, रामचन्द्रके अभिषेककी सब सामग्रियां आप एकत्र करें ॥४॥ राजा दसरथके ऐसा कहनेपर सबलोगोंने एक स्वरसे उनका अभिनन्दन किया, जिससे सभामें शोर होगया। शोरके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वासिष्ठं मुनिशार्दूलं राजा वचनमब्रवीत् । आभिषेकाय रामस्य यत्कर्म सपरिच्छदम् ॥ ६ ॥
तदद्य भगवन्सर्वमाज्ञापयितुमर्हति । तच्छ्रुत्वा भूमिपालस्य वासिष्ठो मुनिसत्तमः ॥ ७ ॥
आदिदेशाग्रतो राज्ञः स्थितान्युक्तान्कृताञ्जलीन् । सुवर्णादीनि रत्नानि बलीन्सर्वौषधीरपि ॥ ८ ॥
शुक्लमाल्यानि लाजांश्च पृथक्च मधुसर्पिषी । अहतानि च वासांसि रथं सर्वायुधान्यपि ॥ ९ ॥
चतुरङ्गबलं चैव गजं च शुभलक्षणम् । चामरव्यजने चोभे ध्वजं छत्रं च पाण्डुरम् ॥ १० ॥
शतं च शातकुम्भानां कुम्भानामग्निवर्चसाम् । हिरण्यशृङ्गमृषभं समग्रं व्याघ्रचर्म च ॥ ११ ॥
यच्चान्यत्किंचिदेष्टव्यं तत्सर्वमुपकल्प्यताम् । उपस्थापयत प्रातरग्न्यगारे महीपतेः ॥ १२ ॥
अन्तःपुरस्य द्वाराणि सर्वस्य नगरस्य च । चन्दनस्रग्भिरर्च्यन्तां धूपैश्च घ्राणहारिभिः ॥ १३ ॥
प्रशस्तमन्नं गुणवदाधिक्षरिरोपसेचनम् । द्विजानां शतसाहस्रं यत्प्रकाममलं भवेत् ॥ १४ ॥
सत्कृत्य द्विजमुख्यानां श्वः प्रभातेप्रदीयताम् । घृतंदधिच लाजाश्च दक्षिणाश्चापि पुष्कलाः ॥ १५ ॥
सूर्येऽभ्युदितमात्रे श्वो भविता स्वस्तिवाचनम् । ब्राह्मणाश्चनिमन्त्र्यन्तांकल्प्यन्तामासनानिच ॥ १६ ॥
आवध्यन्तां पताकाश्च राजमार्गश्च सिच्यताम् । सर्वे च तालापचरा गणिकाश्च स्वलंकृताः ॥ १७ ॥
कक्ष्यां द्वितीयामासाद्य तिष्ठन्तु नृपवेश्मनः । देवायतनचैत्येषु सान्नभक्ष्याः सदक्षिणाः ॥ १८ ॥
उपस्थापयितव्याः स्युर्माल्ययोग्याः पृथक्पृथक् । दीर्घासिबद्धगोधाश्च संनद्धा मृष्टवाससः ॥ १९ ॥

शान्त होनेपर राजा दसरथ ॥ ५ ॥ मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठसे बोले—रामचन्द्रके राज्याभिषेकके लिए जिन सामग्रियोंकी आवश्यकता हो ॥ ६ ॥ भगवन्, वे सब सामग्रियाँ आप आजही बतलावें । मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठने राजाके वे वचन सुनकर ॥ ७ ॥ हाथ जोड़कर आगे आये हुए राजाके भृत्योंको आज्ञा दी, सुवर्ण आदि रत्न, देवोपहारकी सामग्रियां, सब ओषधियाँ ॥ ८ ॥ श्वेत पुष्प, लावा, पृथक् पृथक् घी और मधु, नये वस्त्र, रथ और सब प्रकारके अस्त्रशस्त्र, ॥ ९ ॥ चतुरङ्गिणी सेना, सुन्दर लक्षणोंसे युक्त हाथी, दो चामर और व्यजन (पंखा), ध्वजा और श्वेत छत्त्रा, ॥ १० ॥ अग्निके समान चमकनेवाले सोनेके सौघड़े, सोनेके सींगवाला (जिसकी सींग सोनेसे मढ़ी गयीहो) बैल और समूचा व्याघ्रचर्म ॥ ११ ॥ तथा अन्य जिन चीजोंकी जरूरत आपलोग समझें उन्हें एकत्र करें और राजाकी अग्निशालामें प्रातःकाल इन सब वस्तुओंको उपस्थित करें ॥ १२ ॥ अन्तःपुरके द्वार तथा नगरके सब द्वार चन्दन तथा मालासे सजाएँ जायँ और सुगन्धित धूप जलाया जाय ॥ १३ ॥ अच्छा स्वादिष्ट दही और दूधसे सींचा हुआ अन्न तयार कियाजाय जो सौ हजार ब्राह्मणोंके उपयोगके लायकहो ॥ १४ ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका सत्कार करके वह अन्न कल प्रातःकाल दिया जाय । घी, दही, लावा तथा भरपूर दक्षिणा भी दीजाय ॥ १५ ॥ कल प्रातःकाल सूर्योदय होनेके पश्चात् स्वस्तिवाचन होगा, उसके लिए ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करो और उनलोगोंके लिए आसनोंकी व्यवस्था करो, उनके ठहरनेकी जगहों पर आसन रखवादो ॥ १६ ॥ पताका लगवादो, सड़कें सिंचवादो, सब बाजेवाले और नाचनेवालियाँ तयार होकर ॥ १७ ॥ राजाके दूसरे अंगने में रहें, देव-मन्दिरों और चौराहोंपर अन्न (भात आदि), भक्ष्य (पूआ आदि) और दक्षिणा पाने योग्य ॥ १८ ॥ तथा मालासे अर्चित होने योग्य जो हैं वे अलग-अलग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महाराजाङ्गनं शूराः प्रविशन्तु महोदयम् । एवं व्यादिश्य विप्रौ तु क्रियास्तत्र विनिष्ठितौ ॥२०॥
चक्रतुश्चैव यच्छेषं पार्थिवाय निवेद्य च । कृतमित्येव चाब्रूतामभिगम्य जगत्पतिम् ॥२१॥
यथोक्तवचनं प्रीतौ हर्षयुक्तौ द्विजोत्तमौ । ततः सुमन्त्रं द्युतिमान्राजा वचनमब्रवीत ॥२२॥
रामः कृतात्मा भवता शीघ्रमानीयतामिति । स तथेति प्रतिज्ञाय सुमन्त्रो राजशासनात ॥२३॥
रामं तत्रानयांचक्रे रथेन रथिनां वरम् । अथ तत्र सहासीनास्तदा दशरथं नृपम् ॥२४॥
प्राच्योदीच्याःप्रतीच्याश्च दाक्षिणात्याश्च भूमिपाः।म्लेच्छाश्चार्याश्चयेचान्येवनशैलान्तवासिनः॥२५॥
उपासांचक्रिरे सर्वे तं देवा वासवं यथा । तेषां मध्ये स राजर्षिर्मरुतामिव वासवः ॥२६॥
प्रासादस्थो दशरथो ददर्शायान्तमात्मजम् । गन्धर्वराजप्रतिमं लोके विख्यातपौरुषम् ॥२७॥
दीर्घबाहुं महासत्त्वं मत्तमातङ्गगामिनम् । चन्द्रकान्तानानं राममतीव प्रियदर्शनम् ॥२८॥
रूपौदार्यगुणैः पुंसां दृष्टिचित्तापहारिणम् । घर्माभितप्ताः पर्जन्यं ह्लादयन्तमिव प्रजाः ॥२९॥
न ततर्प समायान्तं पश्यमानो नराधिपः । अवतार्य सुमन्त्रस्तु राघवं स्यन्दनोत्तमात ॥३०॥

उपस्थित किये जांय अर्थात् पहले देवपूजा करके ब्राह्मणोंको अन्न, मिठाई आदि दी जाय, पुनः चौराहोंपर दक्षिणा बांटी जाय । लम्बी तलवार ढाल और कवच धारण किये हुए तथा श्वेत वस्त्र अलंकार आदि धारण किये हुए ॥ १६ ॥ शूर महाराज के आंगनमें जाँय, जहाँ उत्सव हो रहा है । इस प्रकार अधिकारियोंको आज्ञा देकर वसिष्ठ और वामदेव ऋषियोंने अपना (पुरोहितका) काम प्रारम्भ किया ॥ २० ॥ उन लोगोंके करनेके जो काम बचे हुए थे, वे भी उन लोगोंने राजासे पूछकर किये और राजाके पास जाकर उन लोगोंने कहा कि "किया" ॥ २१ ॥ द्विजश्रेष्ठ वसिष्ठ और वामदेवने प्रसन्न होकर कहा कि जैसा आपने कहा वह सब किया गया । तब द्युतिमान् राजा दसरथने सुमन्त्रसे कहा ॥ २२ ॥ आपने रामचन्द्रको सुशिक्षित किया है, आप उन्हें शीघ्र यहाँ ले आवें । राजाकी आज्ञासे सुमन्त्रने भी रामचन्द्रको राजसभामें ले आनेकी प्रतिज्ञा की ॥ २३ ॥ और रथपर चढ़ाकर रथिश्रेष्ठ रामचन्द्रको वहां ले आये । उस समय राजा दशरथके पास बैठे हुए ॥ २४ ॥ प्राच्य (पूर्व देशाधिपति), उदीच्य (उत्तरदेशके अधिपति), प्रतीच्य (पश्चिम देशके अधिपति), दाक्षिणात्य (दक्षिण देशके अधिपति) और भी म्लेच्छ आर्यराजा तथा वन पर्वतमें रहनेवाले राजा, महाराजा दसरथकी ॥ २५ ॥ सेवा करते थे, जिस प्रकार देवता इन्द्रकी सेवा करते हैं । उन राजाओंके बीचमें राजर्षि दसरथ देवताओंके मध्यमें इन्द्रके समान मालुम पड़ते थे ॥२६॥ अटारीपर बैठे हुए राजा दसरथने आते हुए अपने पुत्रको देखा, जो गन्धर्वराजके समान था तथा लोकमें जिसके पौरुषकी प्रसिद्धि थी ॥ २७ ॥ वे दीर्घबाहु महापराक्रमी मतवाले हाथीके समान चलनेवाले, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाले प्रियदर्शन श्रीरामचन्द्र को ॥ २८ ॥ जो अपने सौंदर्यसे पुरुषोंकी आंखें तथा उदारता आदि गुणोंसे चित्त हरण करनेवाले हैं, घामसे तपी प्रजाको जैसे मेघ आह्लादित करता है ॥ २९ ॥ वैसे उन रामचन्द्रको आते देखकर राजा दसरथ तृप्त नहीं हुए अर्थात् रामचन्द्रको देखनेकी उनकी इच्छा बढ़ती गयी । सुमन्त्रने उत्तम रथसे रामचन्द्रको उतारा ॥ ३० ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पितुः समीपं गच्छन्तं प्राञ्जलिः पृष्ठतोऽन्वगात् । स तं कैलासशृङ्गाभं प्रासादं रघुनन्दनः ॥३१॥
आरुरोह नृपं द्रष्टुं सहसा तेन राघवः । स प्राञ्जलिरभिप्रेत्य प्रणतः पितुरन्तिके ॥३२॥
नाम स्वं श्रावयन्रामो ववन्दे चरणौ पितुः । तं दृष्ट्वा प्रणतं पार्श्वे कृताञ्जलिपुटं नृपः ॥३३॥
गृह्याञ्जलौ समाकृष्य सस्वजे प्रियमात्मजम् । तस्मैचाभ्युद्यतंसम्यङ्मणिकाञ्चनभूषितम् ॥३४॥
दिदेश राजा रुचिरं रामाय परमासनम् । तथासनवरं प्राप्य व्यदीपयत राघवः ॥३५॥
स्वयैव प्रभया मेरुमुदये विमलो रविः । तेन विभ्राजिता तत्र सा सभापि व्यरोचत ॥३६॥
विमलग्रहनक्षत्रा शारदी द्यौरिवेन्दुना । तं पश्यमानो नृपातिस्तुतोष प्रियमात्मजम् ॥३७॥
अलंकृतमिवात्मानमादर्शतलसंस्थितम् । स तं सुस्थितमाभाष्य पुत्रं पुत्रवतां वरः ॥३८॥
उवाचेदं वचो राजा देवेन्द्रमिव कश्यपः । ज्येष्ठायामसि मे पत्न्यां सदृश्यां सदृशःसुतः ॥३९॥
उत्पन्नस्त्वं गुणज्येष्ठो मम रामात्मजः प्रियः । त्वया यतः प्रजाश्चेमाः स्वगुणैरनुराञ्जिताः ॥४०॥
तस्मात्त्वं पुष्ययोगेन यौवराज्यमवाप्नुहि । कामतस्त्वं प्रकृत्यैव निर्णीतो गुणवानिति ॥४१॥
गुणवत्यपि तु स्नेहात्पुत्र वक्ष्यामि ते हितम् । भूयो विनयमास्थाय भव नित्यं जितेन्द्रियः ॥४२॥
कामक्रोधसमुत्थानि त्यजस्व व्यसनानि च । परोक्षया वर्तमानो वृत्त्या प्रत्यक्षया तथा ॥४३॥

रामचन्द्र पिताके पास चले और उनके पीछे-पीछे हाथ जोड़े सुमन्त्र चले । कैलास पर्वतके शिखरके समान कोठेपर रामचन्द्र ॥ ३१ ॥ पिताको देखनेके लिए सुमन्त्रके साथ चढ़े, पिताके समीप पहुँचकर हाथ जोड़कर और नम्र होकर ॥ ३२ ॥ अपना नाम लेकर रामचन्द्रने पिताके चरणोंको प्रणाम किया । हाथ जोड़कर साष्टांग प्रणाम किये हुए रामचन्द्रको देखकर राजा दसरथने ॥३३॥ प्रियपुत्रकी अञ्जलि पकड़कर अपनी ओर खींचा और आलिङ्गन किया तथा मणि और काञ्चनसे सजा हुआ ॥ ३४ ॥ श्रेष्ठ और सुन्दर आसन उनको दिया । रामचन्द्रने उस आसनको शोभित किया॥३५॥जिसप्रकार निर्मल सूर्य अपनी प्रभासे उदयके समय मेरुको शोभित करते हैं। उस समय रामचन्द्रके द्वारा प्रकाशित वह सभा भी प्रकाशित हुई ॥३६॥ जिस प्रकार सुन्दर ग्रह नक्षत्र वाला शरद् ऋतुका आकाश चन्द्रमासे शोभित होता है । उस प्रिय पुत्रको देखते हुए राजा दसरथ प्रसन्न हुए ॥ ३७ ॥ दर्पणमें प्रतिविम्बित अपने प्रतिबिम्बके समान अलंकृत रामचन्द्रको देखकर राजा दसरथ सन्तुष्ट हुए । पुत्रवानोंमें श्रेष्ठ राजा दसरथ रामचन्द्रके यथास्थान बैठजाने पर उन्हें सम्बोधित करके ॥३८॥ यह वचन बोले, जैसे कश्यप (इन्द्रके पिता) इन्द्रसे बोलते हों । तुम मेरी बड़ी महारानीके, जो मेरे अनुरूप हैं, योग्य पुत्र हो ॥३९॥ राम, तुम मेरे औरस पुत्र हो, गुणोंसे श्रेष्ठ हो और मेरे प्रिय हो । तुमने अपने गुणोंसे हमारे राज्यकी प्रजाको प्रसन्न किया है ॥ ४० ॥ अतएव जब पुष्य नक्षत्रमें चन्द्रमा आवें तब तुम युवराजका पद ग्रहण करो । अपनी इच्छासे ही प्रकृतिने (प्रजा, राजकर्मचारी आदि) तुम्हें गुणवान् बतलाया है, युवराजके योग्य समझा है ॥ ४१ ॥ पुत्र, तुम गुणवान् हो तथापि स्नेहके कारण तुम्हारे हितकी बातें कहता हूं– और अधिक विनीत होकर सदा जितेन्द्रिय बने रहो ॥ ४२ ॥ काम क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले व्यसन, स्त्री, द्यूत आदिका त्याग करो । परोक्ष और प्रत्यक्ष वृत्तिसे प्रजाका न्याय करो । दूतोंके द्वारा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अमात्यप्रभृतीः सर्वाः प्रजाश्चैवानुरञ्जय । कोष्ठागारायुधागारैःकृत्वा संनिचयान्बहून् ॥४४॥
इष्टानुरक्तप्रकृतिर्यः पालयति मेदिनीम् । तस्यनन्दन्तिमित्राणिलब्ध्वामृतमिवामराः ॥४५॥
तस्मात्पुत्र त्वमात्मानं नियम्यैवं समाचर । तच्छ्रुत्वा सुहृदस्तस्य रामस्य प्रियकारिणः ॥४६॥
त्वरिताः शीघ्रमागत्य कौसल्यायै न्यवेदयन् । सा हिरण्यं च गाश्चैव रत्नानि विविधानि च ॥४७॥
व्यादिदेश प्रियाख्येभ्यः कौसल्या प्रमदोत्तमा । अथाभिवाद्य राजानं रथमारुह्य राघवः ॥
ययौ स्वं द्युतिमद्वेश्म जनौघैः प्रतिपूजितः ॥ ४८ ॥
ते चापि पौरा नृपतेर्वचस्तच्छ्रुत्वा तदा लाभमिवेष्टमाशु ।
नरेन्द्रमामन्त्र्य गृहाणि गत्वा देवान्समानर्चुराभिप्रहृष्टाः ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४

गतेष्वथ नृपो भूयः पौरेषु सह मन्त्रिभिः । मन्त्रयित्वा ततश्चक्रे निश्चयज्ञः स निश्चयम् ॥ १ ॥
श्व एव पुष्यो भविता श्वोऽभिषेच्यस्तुमे सुतः। रामो राजीवपत्राक्षो युवराज इति प्रभुः ॥ २ ॥

प्राप्त सम्वाद परीक्षा वृत्ति है और स्वयं राजसभामें बैठकर प्रमाणों द्वारा निर्णय करना प्रत्यक्ष वृत्ति है ॥ ४३ ॥ अमात्य, सेनापति आदि तथा समस्त प्रजाको प्रसन्न रखो । धान्य-राशि अस्त्र-शस्त्र तथा हीरा आदि विविध रत्नोंका सञ्चय करो ॥४४॥ जो राजा, प्रजा राजकर्मचारी आदिको सन्तुष्ट रखकर (राजाका प्रेम उनमें और उनका प्रेम राजामें हो) राज्यशासन करताहै उसके मित्र उसीप्रकार प्रसन्न होते हैं जिस प्रकार अमृत पाकर देवता ॥४५ ॥ हे पुत्र, तुम अपनेको वश करके मेरे उपदेशके अनुसार काम करो । राजा दसरथके ये वचन सुनकर रामचन्द्रके प्रिय करनेवाले उनके मित्रोंने ॥ ४६ ॥ शीघ्रतापूर्वक आकर कौसल्यासे सब बातें बतलायीं । स्त्रियोंमें श्रेष्ठ कौसल्याने सोना, गौ तथा अनेक प्रकारके रत्न ॥ ४७ ॥ उन प्रियसम्वाद कहनेवालोंको दिये । रामचन्द्र राजाको प्रणामकर तथा रथपर चढ़कर अपने सुन्दर भवनमें गये । उस समय जनसमूहने उनकी पूजा की ॥ ४८ ॥ नगरवासियोंने भी राजा दसरथके वे वचन सुनकर उनकी प्रशंसा की और इष्टप्राप्तिके समान आनन्दित हुए । अपने-अपने घर जाकर प्रसन्नता पूर्वक उनलोगोंने देवताओं-की पूजा की ॥ ४९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण के अयोध्याकाण्डका तीसरा सर्ग समाप्त ॥ ३ ॥

राजसभासे पुरवासियोंके चले जानेपर राजाने मन्त्रियोंके साथ पुनः विचार किया । राजा दस रथ विचारके विधानको जानते हैं (कहां विचार करना चाहिए, किसके साथ विचार करना चाहिए आदि) । इस प्रकार विचारकरके राजाने निश्चय किया ॥१॥ राजाने निश्चय किया कि कलही पुष्य योग होगा, कल ही मेरे पुत्रका अभिषेक किया जाय, कमलनयन कल ही युवराज बनाये जायँ ॥ २॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथान्तर्गृहमाविश्य राजा दशरथस्तदा । सूतमामन्त्रयामास रामं पुनरिहानय ॥ ३ ॥
प्रतिगृह्य तु तद्वाक्यं सूतः पुनरुपाययौ । रामस्य भवनं शीघ्रं राममानयितुं पुनः ॥ ४ ॥
द्वाःस्थैरावेदितं तस्य रामायागमनं पुनः । श्रुत्वैव चापि रामस्तं प्राप्तं शङ्कान्वितोऽभवत् ॥ ५ ॥
प्रवेश्य चैनं त्वरितो रामो वचनमब्रवीत् । यदागमनकृत्यं ते भूयस्तद्ब्रूह्यशेषतः ॥ ६ ॥
तमुवाच ततः सूतो राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति । श्रुत्वा प्रमाणं तत्र त्वं गमनायेतराय वा ॥ ७ ॥
इति सूतवचः श्रुत्वा रामोऽपि त्वरयान्वितः । प्रययौ राजभवनं पुनर्द्रष्टुं नरेश्वरम् ॥ ८ ॥
तं श्रुत्वा समनुप्राप्तं रामं दशरथो नृपः । प्रवेशयामास गृहं विवक्षुः प्रियमुत्तमम् ॥ ९ ॥
प्रविशन्नेव च श्रीमान्राघवो भवनं पितुः । ददर्श पितरं दूरात्प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥१०॥
प्रणमन्तं तमुत्थाप्य संपरिष्वज्य भूमिपः । प्रादिश्य चासनं चास्मै रामं च पुनरब्रवीत् ॥११॥
राम वृद्धोऽस्मि दीर्घायुर्भुक्ता भोगा यथेप्सिताः । अन्नवद्भिः क्रतुशतैर्यथेष्टं भूरिदक्षिणैः ॥१२॥
जातमिष्टमपत्यं मे त्वमद्यानुपमं भुवि । दत्तमिष्टमधीतं च मया पुरुषसत्तम ॥१३॥
अनुभूतानि चेष्टानि मया वीर सुखान्यपि । देवर्षिपितृविप्राणामनृणोऽस्मि तथात्मनः ॥१४॥
न किंचिन्मम कर्तव्यं तवान्यत्राभिषेचनात् । अतो यत्त्वामहं ब्रूयां तन्मे त्वं कर्तुमर्हसि ॥१५॥
अद्य प्रकृतयः सर्वास्त्वामिच्छन्ति नराधिपम् । अतस्त्वां युवराजानमभिषेक्ष्यामि पुत्रक ॥१६॥

अपना यह निश्चय प्रकाशित करके राजा दसरथ रानियोंके महलमें गये और उन्होंने सुमन्त्रको बुला कर रामचन्द्रको अपने पास पुनः ले आनेके लिए कहा ॥३॥ राजाकी आज्ञा मानकर सारथी शीघ्र ही उनको पुनः ले आनेके लिए रामचन्द्रके भवनमें गया ॥ ४ ॥ द्वारपालने सारथिका पुनः आना बतलाया । सारथिका पुनः आना सुनकर ही रामचन्द्र शङ्कित हुए । अर्थात् शीघ्रही पुनः बुलानेका कारण जाननेके लिए व्याकुल हुए ॥ ५ ॥ रामचन्द्रकी आज्ञासे सारथि उनके सामने गया, रामचन्द्रने कहा—तुम्हारे पुनः आनेका जो कारण हो वह आद्यन्त कह सुनाओ ॥६॥ सारथिने कहा—आपको राजा देखना चाहते हैं, इसके बाद जाने और न जानेके लिए आप स्वाधीन हैं ॥ ७ ॥ सारथिका यह वचन सुनकर रामचन्द्रभी शीघ्रता पूर्वक राजाको देखनेके लिए राजभवनमें गये ॥८॥ रामचन्द्र आ गये हैं यह जानकर राजा दसरथने अपने पास उन्हें बुलाया । वे रामचन्द्रसे उत्तम प्रिय संवाद कहना चाहते थे ॥९॥ राजभवनमें घुसतेही रामचन्द्रने दूरसे ही पिताको देखा और साष्टाङ्ग प्रणाम करके हाथ जोड़ा ॥ १० ॥ प्रणाम करते हुए पुत्रको राजाने उठाकर आलिङ्गन किया, बैठनेके लिए उनको आसन देकर पुनः वे बोले ॥ ११ ॥ रामचन्द्र मैं बूढ़ा हूं, बड़ी उमर मैंने पायी है, मनमाने भोग मैंने भोगे हैं । अन्नप्रचुर तथा पूरी दक्षिणावाले सैकड़ों यज्ञ मैंने किये हैं ॥ १२ ॥ संसारमें जिसके समान दूसरा नहीं है वैसा वाञ्छित पुत्र तुम उत्पन्न हुए हो । हे पुरुषश्रेष्ठ, मैंने दान किया है, यज्ञ किया है और अध्ययन किया है ॥ १३ ॥ वीर, मैंने वाञ्छित सुख पाये हैं । देवता, ऋषि, पितर, ब्राह्मण तथा अपनेसे भी मैं उऋण हो चुका हूं ॥१४॥ तुम्हारे अभिषेकको छोड़कर मुझे और कुछ बाकी नहीं है, अतः जो मैं कहूं वह तुम मेरे लिए करो ॥ १५ ॥ आज प्रजा तथा राजकर्मचारी आदि सभी तुमको अपना राजा बनाना चाहते हैं, अत-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपि चाद्याशुभान्राम स्वप्नान्पश्यामि राघव । सनिर्घाता दिवोल्काश्च पतन्ति हि महास्वनाः॥१७॥
अवष्टब्धं च मे राम नक्षत्रं दारुणग्रहैः । आवेदयन्ति दैवज्ञाः सूर्याङ्गारकराहुभिः ॥१८॥
प्रायेण च निमित्तानामीदृशानां समुद्भवे । राजा हि मृत्युमाप्नोति घोरां चापदमृच्छति ॥१९॥
तद्यावदेव मे चेतो न विमुह्यति राघव । तावदेवाभिषिञ्चस्व चला हि प्राणिनां मतिः ॥२०॥
अद्य चन्द्रोऽभ्युपगमत्पुष्यात्पूर्वं पुनर्वसुम् । श्वः पुष्ययोगं नियतं वक्ष्यन्ते दैवचिन्तकाः ॥२१॥
तत्र पुष्येऽभिषिञ्चस्व मनस्त्वरयतीव माम् । श्वस्त्वाहमभिषेक्ष्यामि यौवराज्ये परंतप ॥२२॥
तस्मात्त्वयाद्यप्रभृति निशेयं नियतात्मना । सह वध्वोपवस्तव्या दर्भप्रस्तरशायिना ॥२३॥
सुहृदश्चाप्रमत्तास्त्वां रक्षन्त्वद्य समन्ततः । भवन्ति बहुविघ्नानि कार्याण्येवंविधानि हि ॥२४॥
विप्रोषितश्च भरतो यावदेव पुरादितः । तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम ॥२५॥
कामं खलु सतां वृत्ते भ्राता ते भरतःस्थितः । ज्येष्ठानुवर्ती धर्मात्मा सानुक्रोशो जितेन्द्रियः ॥२६॥
किं नु चित्तं मनुष्याणामानित्यमिति मे मतम् । सतां च धर्मनित्यानां कृतशोभि च राघव ॥२७॥
इत्युक्तः सोऽभ्यनुज्ञातः श्वो भाविन्यभिषेचने । व्रजेति रामः पितरमभिभाष्याभ्ययाद्गृहम् ॥२८॥

एव बेटा, मैं आज तुम्हारा युवराजके पदपर अभिषेक करूंगा ॥ १६ ॥ पर रामचन्द्र, मैं आज अशुभ स्वप्न देख रहा हूं । वज्रपातके साथ बड़े शब्दसे, आकाशसे, उल्काका गिरना मैंने देखा है ॥ १७ ॥ मेरा जन्मनक्षत्र सूर्य मङ्गल और राहु इन दारुण ग्रहोंसे आक्रान्त हुआ है यह ज्योतिषियोंने बतलाया है ॥ १८ ॥ प्रायः ऐसे निमित्तोंके उत्पन्न होनेपर या तो राजाकी मृत्यु होती है या और कोई बड़ी विपत्ति आती है ॥ १९ ॥ अतएव जब तक मेरा चित्त तुम्हारे यौवराज्याभिषेकके संबंध में स्थिर बना रहे-उसके विरुद्ध दूसरा कोई विचार मेरे मनमें न आवे-रामचन्द्र, तभी तक तुम अपना अभिषेक करालो, क्योंकि मनुष्योंकी बुद्धि चञ्चल हुआ करती है ॥२०॥ आज पुष्यके पूर्ववर्ती पुनर्वसुमें चन्द्रमा आया है, अतः कल पुष्ययोग होना निश्चित है यह ज्योतिषीगण कहते हैं ॥ २१ ॥ उसी पुष्ययोगमें अभिषेक करो ऐसा मेरा मन शीघ्रता कर, रहा है । हे परन्तपा कल यौवराज्य पदपर मैं तुम्हारा अभिषेक करूंगा ॥२२॥ इस कारण इस समयसे लेकर यह समूची रात वधू सीताके साथ नियमपूर्वक बिताओ और पलँगपर कुश बिछाकर सोओ ॥ २३ ॥ तुम्हारे मित्र सावधान होकर चारो ओरसे आज तुम्हारी रक्षा करें, क्योंकि ऐसे कामोंमें अनेक विघ्न हुआ करते हैं ॥२४॥ जब तक भरत यहांसे-इस नगरसे—विदेश गये हुए हैं उसी बीचमें तुम्हारा अभिषेक हो जाना मुझे उचित प्रतीत होता है * ॥ २५ ॥ तुम्हारा भाई भरत सज्जनोंके मार्गमें स्थिर है, अपने जेष्ठ भ्राताका अनुगमन करनेवाला है, धर्मात्मा है, दयालु और जितेन्द्रिय है ॥ २६ ॥ परन्तु मनुष्योंका मन स्थिर नहीं रहता है ऐसा मेरा मत है । धर्मात्मा सज्जनोंका मन परोपकार करनेके पश्चात् शोभता है ॥ २७ ॥ ऐसा कहकर राजाने कल होनेवाले अभिषेकके लिए रामचन्द्रको

* राजा दसरथने केकयीसे विवाह करनेके समय इस बातकी प्रतिज्ञा की थी कि मेरी इस रानीके गर्भसे उत्पन्न पुत्र मेरे राज्यका अधिकारी होगा । पर इस समय इस प्रतिज्ञाके विपरीत दूसरे पुत्रके राज्याभिषेककी वे तयारी करते हैं, अतएव भरतके आगमनसे वे डरते हैं । इसी बातको स्मरण करके राजाकी यह उक्ति है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रविश्य चात्मनो वेश्म राज्ञादिष्टेऽभिषेचने । तत्क्षणादेव निष्क्रम्य मातुरन्तःपुरं ययौ ॥२९॥
तत्र तां प्रवणामेव मातरं क्षौमवासिनीम् । वाग्यतां देवतागारे ददर्शायाचतीं श्रियम् ॥३०॥
प्रागेव चागता तत्र सुमित्रा लक्ष्मणस्तथा । सीता चानायिता श्रुत्वा प्रियं रामाभिषेचनम्॥३१॥
तस्मिन्कालेऽपि कौसल्या तस्थावामीलितेक्षणा । सुमित्रयान्वास्यमाना सीतया लक्ष्मणेन च ॥३२॥
श्रुत्वा पुष्ये च पुत्रस्य यौवराज्येऽभिषेचनम् । प्राणायामेन पुरुषं ध्यायमाना जनार्दनम् ॥३३॥
तथा सनियमामेव सोऽभिगम्याभिवाद्य च । उवाच वचनं रामो हर्षयंस्तामिदं वरम् ॥३४॥
अम्ब पित्रा नियुक्तोऽस्मि प्रजापालनकर्मणि । भविता श्वोऽभिषेको मे यथा मे शासनं पितुः॥३५॥
सीतयाप्युपवस्तव्या रजनीयं मया सह । एवमुक्तमुपाध्यायैः स हि मामुक्तवान्पिता ॥३६॥
यानि यान्यत्र योग्यानि श्वो भाविन्यभिषेचने । तानि मे मङ्गलान्यद्य वैदेह्याश्चैव कारय ॥३७॥
एतच्छ्रुत्वा तु कौसल्या चिरकालाभिकाङ्क्षितम्। हर्षबाष्पाकुलं वाक्यमिदं राममभाषत ॥३८॥
वत्स राम चिरं जीव हतास्ते परिपन्थिनः । ज्ञातीन्मे त्वं श्रिया युक्तः सुमित्रायाश्च नन्दय॥३९॥
कल्याणे बत नक्षत्रे मया जातोऽसि पुत्रक । येन त्वया दशरथो गुणैराराधितः पिता ॥४०॥
अमोघं बत मे क्षान्तं पुरुषे पुष्करेक्षणे । येयमिक्ष्वाकुराज्यश्रीः पुत्र त्वां संश्रयिष्यति ॥४१॥

जानेकी आज्ञा दी । रामचन्द्र पिताको प्रणाम करके अपने घर गये ॥ २८ ॥ राजासे अभिषेककी आज्ञा सुनकर रामचन्द्र अपने घरमें गये और वहांसे शीघ्रही निकल कर माताके महलोंमें गये ॥ २९ ॥ वहां रामचन्द्रने अपनी माताको देवभवनमें देखा, उस समय वे देवाराधन कर रही थीं, रेशमी वस्त्र पहने हुई थी, मौन होकर देवताओंसे प्रजाके कल्याणकी प्रार्थना कर रही थीं ॥ ३० ॥ सुमित्रा और लक्ष्मण वहां पहलेसे ही आये हुए थे। और रामचन्द्रके अभिषेकका प्रिय संवाद सुन कर सीता भी बुलायी गयीं थी ॥३१॥ उस समय भी कौसल्याकी आंखें बन्द थीं, वे ध्यान कर रही थीं, सुमित्रा सीता और लक्ष्मण उनकी सेवा कर रहे थे ॥ ३२ ॥ पुष्ययोगमें पुत्र रामचन्द्रका राज्याभिषेक होगा इस संवादको सुनकर वे जनार्दन पुरुषका प्राणायामके द्वारा ध्यान कर रही थीं ॥ ३३ ॥ इस प्रकार नियममें बैठी हुई माता कौसल्याके पास जाकर रामचन्द्रने उन्हें प्रणाम किया, और उनको प्रसन्न करते हुए उनसे यह उत्तम वचन बोले ॥ ३४ ॥ माता, पिताने मुझे प्रजापालन के काममें नियुक्त किया है । पिताकी आज्ञासे कल मेरा राज्याभिषेक होगा ॥ ३५ ॥ सीताको भी मेरे साथ इस रातमें उपवास करना होगा, यह बात उपाध्यायोंने पितासे कही है और पिताने मुझसे कही है ॥ ३६ ॥ कल होनेवाले अभिषेकके लिए जो-जो मङ्गल विधान उचित हों, वह सब मुझको और सीताको कराओ ॥ ३७ ॥ बहुत दिनोंसे चाहे हुए इस मनोरथको सुनकर कौसल्याकी आंखें आनन्दजलसे पूर्ण हो गयीं, वे रामचन्द्रसे बोली ॥३८॥ बेटा राम, चिरंजीवी होओ, तुम्हारे शत्रुओंका नाश हो । तुम कल्याणसे युक्त होकर मेरे तथा सुमित्राके स्वजनोंको आनन्दित करो ॥ ३९ ॥ वत्स, श्रेष्ठ नक्षत्रमें तुम मेरे गर्भसे उत्पन्न हुए हो, इसी कारण तुमने अपने श्रेष्ठ गुणोंसे पिता दसरथको प्रसन्न किया है ॥ ४० ॥ पुण्डरीकाक्ष भगवान्की मेरी आराधना सफल हुई

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इत्येवमुक्तो मात्रा तु रामो भ्रातरमब्रवीत् । प्राञ्जलिं प्रह्वमासीनमभिवीक्ष्य स्मयन्निव ॥४२॥
लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधि त्वं वसुन्धराम् । द्वितीयं मेऽन्तरात्मानं त्वामियं श्रीरुपस्थिता ॥४३॥
सौमित्रे भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान्राज्यफलानि च । जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये ॥४४॥
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामो मातरावभिवाद्य च । अभ्यनुज्ञाप्य सीतां च ययौ स्वं च निवेशनम् ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः ५

संदिश्य रामं नृपतिः श्वोभाविन्यभिषेचने । पुरोहितं समाहूय वसिष्ठमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
गच्छोपवासं काकुत्स्थं कारयाद्य तपोधन । श्रेयसे राज्यलाभाय वध्वा सह यतव्रत ॥ २ ॥
तथेति च स राजानमुक्त्वा वेदविदां वरः । स्वयं वसिष्ठो भगवान्ययौ रामनिवेशनम् ॥ ३ ॥
उपवासयितुं वीरं मन्त्रविन्मन्त्रकोविदम् । ब्राह्मं रथवरं युक्तमास्थाय सुधृतव्रतः ॥ ४ ॥
स रामभवनं प्राप्य पाण्डुराभ्रघनप्रभम् । तिसृः कक्ष्या रथेनैव विवेश मुनिसत्तमः ॥ ५ ॥
तमागतमृषिं रामस्त्वरन्निव ससंभ्रमम् । मानयिष्यन्समानार्हं निश्चक्राम निवेशनात् ॥ ६ ॥
अभ्येत्य त्वरमाणोऽथ रथाभ्याशं मनीषिणः । ततोऽवतारयामास परिगृह्य रथात्स्वयम् ॥ ७ ॥

जिससे इक्ष्वाकु राजलक्ष्मी तुझे प्राप्त होगी ॥ ४१ ॥ माताकी ये बातें सुनकर रामचन्द्र उस भाई से मुस्कराते हुए बोले जो हाथ जोड़े हुए था और विनीत था ॥ ४२ ॥ लक्ष्मण, मेरे साथ तुम इस पृथिवीका शासन करो, तुम मेरे दूसरे अन्तरात्मा हो, यह लक्ष्मी तुम्हें प्राप्त हुई है ।४३॥ लक्ष्मण, वाञ्छित भोग और राज्यफल भोगो। मेरा यह जीवन और राज्य तुम्हारे लिए है ॥४४॥ लक्ष्मणसे ऐसा कहकर तथा दोनों माताओंको प्रणाम कर और सीताको आज्ञा देकर, रामचन्द्र अपने भवनमें गये ॥ ४५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका चौथा सर्ग समाप्त ॥ ४ ॥

कल होनेवाले अभिषेककी सूचना रामचन्द्रको देकर राजाने पुरोहित वसिष्ठको बुलाकर उनसे यह कहा ॥ १ ॥ हे नियमशील तपोधन, जाइए कल्याणके लिए और राज्यलाभके लिए सीताके साथ रामचन्द्रको उपवास कराइए ॥ २ ॥ वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठने राजाकी आज्ञा स्वीकार की और वे स्वयं रामचन्द्रके स्थानपर गये ॥ ३ ॥ मन्त्रवेत्ता तथा व्रतधारी वसिष्ठजी ब्राह्मणोंके चढ़ने योग्य रथपर चढ़कर मन्त्रज्ञ रामचन्द्रको उपवास करानेके लिए उनके स्थानपर गये ॥ ४ ॥ श्वेतमेघके समान रामचन्द्रके भवनपर वे गये, मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी तीन द्वारतक रथपर ही गये ॥ ५ ॥ मुनि आये हैं, यह सुनकर शीघ्रताके साथ आदरपूर्वक उनका सम्मान करनेके लिए रामचन्द्र अपने घरसे निकले ॥ ६ ॥ शीघ्रतापूर्वक वसिष्ठके रथके समीप आकर हाथसे हाथ धर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स चैनं प्रश्रितं दृष्ट्वा संभाष्याभिप्रसाद्य च । प्रियार्हं हर्षयन्राममित्युवाच पुरोहितः ॥ ८ ॥
प्रसन्नस्ते पिता राम यत्त्वं राज्यमवाप्स्यसि । उपवासं भवानद्य करोतु सह सीतया ॥ ९ ॥
प्रातस्त्वामभिषेक्ता हि यौवराज्ये नराधिपः । पिता दशरथः प्रीत्या ययातिं नहुषो यथा ॥१०॥
इत्युक्त्वा स तदा राममुपवासं यतव्रतः । मन्त्रवत्कारयामास वैदेह्या सहितं शुचिः ॥११॥
ततो यथावद्रामेण स राज्ञो गुरुरर्चितः । अभ्यनुज्ञाप्य काकुत्स्थं ययौ रामनिवेशनात् ॥१२॥
सुहृद्भिस्तत्र रामोऽपि सहासीनः प्रियंवदैः । सभाजितो विवेशाथताननुज्ञाप्य सर्वशः ॥१३॥
हृष्टनारीनरयुतं रामवेश्म तदा बभौ । यथा मत्तद्विजगणं प्रफुल्लनलिनं सरः ॥१४॥
स राजभवनप्रख्यात्तस्माद्रामनिवेशनात् । निर्गत्य ददृशे मार्गं वासिष्ठो जनसंवृतम् ॥१५॥
वृन्दवृन्दैरयोध्यायां राजमार्गाः समन्ततः । बभूवुरभिसंबाधा कुतूहलजनैर्वृताः ॥१६॥
जनवृन्दोर्मिसंघर्षहर्षस्वनवृतस्तदा । बभूव राजमार्गस्य सागरस्येव निःस्वनः ॥१७॥
सिक्तसंमृष्टरथ्या हि तथा च वनमालिनी । आसीदयोध्या तदहः समुच्छ्रितगृहध्वजा ॥१८॥
तदा ह्ययोध्यानिलयः सस्त्रीबालाकुलो जनः । रामाभिषेकमाकाङ्क्षन्नाकाङ्क्षन्नुदयं रवेः ॥१९॥
प्रजालंकारभूतं च जनस्यानन्दवर्धनम् । उत्सुकोऽभूज्जनो द्रष्टुं तमयोध्यामहोत्सवम् ॥२०॥

कर स्वयं उन्हें रथसे उतारा ॥ ७ ॥ विनीत रामचन्द्रको देखकर उनसे कुशल पूछकर प्रियवचन के योग्य रामचन्द्रको प्रसन्न करते हुए पुरोहित बोले ॥ ८ ॥ राम, तुम्हारे पिता तुमपर प्रसन्न हैं इसीसे तुम राज्य पा रहे हो, सीताके साथ आज तुम उपवास करो ॥ ९ ॥ कल प्रातःकाल पिता राजा दशरथ युवराजके पदपर तुम्हारा अभिषेक करेंगे, जिस प्रकार नहुषने ययातिका अभिषेक किया था ॥ १० ॥ ऐसा कहकर, शुद्ध और संयमी गुरुने जानकीके साथ रामचन्द्रसे उपवासका संकल्प मन्त्रपूर्वक कराया ॥ ११ ॥ राजा दसरथके गुरु वसिष्ठकी रामचन्द्रने विधिपूर्वक पूजा की, रामको यथावत् उपदेश देकर वे उनके भवनसे गये ॥ १२ ॥ रामचन्द्र भी प्रिय बोलनेवाले मित्रोंके साथ बैठे थे। मित्रोंने उनकी पूजा की, रामचन्द्र मित्रोंको जानेकी आज्ञा देकर अपने भवनमें गये ॥ १३ ॥ प्रसन्न स्त्री पुरुषोंसे रामचन्द्रका भवन उस समय उस तालाबके समान मालूम होता था जिसमें कमल खिले हों और पक्षिगण प्रसन्न हों ॥ १४ ॥ राजभवनके समान रामचन्द्रके उस भवनसे निकलकर वसिष्ठने मार्गको आदमियोंसे घिरा देखा ॥ १५ ॥ अभिषेक देखनेके कुतूहलवाले दलके दल पुरुषोंसे अयोध्याकी सभी सड़कें भरगयी थी, उनपर चलना कठिन होगया था ॥ १६ ॥ तरङ्गके समान जनसमूहकी भीड और हर्षध्वनिसे सड़कें भरगयी थीं, अतएव वहांसे समुद्रके समान ध्वनि निकलती थी ॥१७॥ उस दिन अयोध्याकी सड़कें सींची गयी थीं और बुहारी गयी थीं, शोभा बढ़ानेकेलिये घरोंपर वनमालाएँ लटकायीं गयीं थीं, और ध्वजाएँ फहरायीं गयीं थीं ॥ १८ ॥ उस दिन स्त्री बाल पुरुष सभी रामचन्द्रका राज्याभिषेक देखनेके लिए उत्सुक थे, सभी व्याकुल थे, अतएव वे चाहते थे कि शीघ्र सूर्योदय हो, क्योंकि सूर्योदय होने ही पर रामाभिषेक होनेवाला था ॥१९॥ जिस उत्सवमें प्रजागण भूषित होंगे, जिस उत्सवको देखकर सभी आनन्दित होंगे, अयोध्याके उस महोत्सवको देखनेके लिये सभी उत्सुक हुए थे ॥२०॥ पुरोहित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं तज्जनसंबाधं राजमार्गं पुरोहितः । व्यूहन्निव जनौघं तं शनै राजकुलं ययौ ॥२१॥
सिताभ्रशिखरप्रख्यं प्रासादमधिरुह्य च । समीयाय नरेन्द्रेण शक्रेणेव बृहस्पतिः ॥२२॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य हित्वा राजासनं नृपः । पप्रच्छ स्वमतं तस्मै कृतामित्याभिवेदयत् ॥२३॥
तेन चैव तदा तुल्यं सहासीनाः सभासदः । आसनेभ्यः समुत्तस्थुः पूजयन्तः पुरोहितम् ॥२४॥
गुरुणा त्वभ्यनुज्ञातो मनुजौघं विसृज्य तम् । विवेशान्तःपुरं राजा सिंहो गिरिगुहामिव ॥२५॥

तदग्र्यवेषप्रमदाजनाकुलं महेन्द्रवेश्मप्रतिमं निवेशनम् ।
व्यदीपयंश्चारु विवेश पार्थिवः शशाव तारागणसंकुलं नभः ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६

गते पुरोहिते रामः स्नातो नियतमानसः । सह पत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत् ॥ १ ॥
प्रगृह्य शिरसा पात्रीं हविषो विधिवत्ततः । महते दैवतायाज्यं जुहाव ज्वलितानले ॥ २ ॥
शेषं च हविषस्तस्य प्राश्याशास्यात्मनःप्रियम् । ध्यायन्नारायणं देवं स्वास्तीर्णे कुशसंस्तरे ॥ ३ ॥

वसिष्ठजी उसी राज्यमार्ग पर आये, जो मनुष्योंकी भीड़से भरगया था। पुरोहितने उस जनसमूहको व्यूहके रूपमें बनाया और वहांसे वे धीरे-धीरे राजभवनमें गये ॥२१॥ हिमालयके समान ऊँची अटारीपर चढ़कर पुरोहित राजासे मिले, जैसे बृहस्पति इन्द्रसे मिले हों ॥२२॥ पुरोहितको आया देखकर राजाने उठकर उनसे पूछा, क्या आपने मेरा अभिप्राय सिद्ध किया, पुरोहितने उत्तर दिया, हाँ किया ॥२३॥ उस समय राजाके साथ जो सभासद राजसभामें बैठे थे वे भी पुरोहितका सम्मान करनेके लिए अपने-अपने आसनोंसे उठे ॥२४॥ गुरुवसिष्ठकी आज्ञासे राजाने सब सभासदोंको जाने की आज्ञा दी और वे स्वयं रनिवासमें गये, जैसे सिंह पर्वतकी कन्दरामें गया हो ॥ २५ ॥ उस समय रनिवास सुन्दर वेश धारण करनेवाली स्त्रियांसे भरा हुआ था, उस समय वह इन्द्रके महलके समान मालुम होता था, ताराओंसे भरे आकाशको जैसे चन्द्रमा शोभित करता है उसी प्रकार राजाने जाकर उस रनिवासको शोभित किया ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका पांचवां सर्ग समाप्त ॥ ५ ॥

पुरोहितके जानेपर रामचन्द्रने सावधानचित्त होकर स्नान किया और विशालाक्षी पत्नीके साथ नारायणके समीप गये (टीकाकारोंने इसका अर्थ लिखा है कि वे नारायण बनगये अर्थात् वे मर्यादापुरुषोत्तम हैं इस बातका उन्होंने स्मरण किया) ॥ १ ॥ उन्होंने विधिपूर्वक हविका पात्र लिया, उस पात्रसे घी लेकर जलती आगमें महान् देवताके उद्देश्यसे हवन किया ॥ २ ॥ हवनसे बचे हविषका उन्होंने भोजन किया और अपनी मनोरथसिद्धिकी प्रार्थना की। नारायणदेवका ध्यान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाग्यतः सह वैदेह्या भूत्वा नियतमानसः । श्रीमत्यायतने विष्णोः शिश्ये नरवरात्मजः ॥ ४ ॥
एकयामावशिष्टायां रात्र्यां प्रतिविबुध्य सः । अलंकारावीधिं सम्यक्कारयामास वेश्मनः ॥ ५ ॥
तत्र शृण्वन्सुखा वाचः सूतमागधवन्दिनाम् । पूर्वां संध्यामुपासीनो जजाप सुसमाहितः ॥ ६ ॥
तुष्टाव प्रणतश्चैव शिरसा मधुसूदनम् । विमलक्षौमसंवीतो वाचयामास स द्विजान् ॥ ७ ॥
तेषां पुण्याहघोषोऽथ गम्भीरमधुरस्तथा । अयोध्यां पूरयामास तूर्यघोषानुनादितः ॥ ८ ॥
कृतोपवासं तु तदा वैदेह्या सह राघवम् । अयोध्यानिलयः श्रुत्वा सर्वः प्रमुदितो जनः ॥ ९ ॥
ततः पौरजनः सर्वः श्रुत्वा रामाभिषेचनम् । प्रभातां रजनीं दृष्ट्वा चक्रे शोभयितुं पुरीम् ॥१०॥
सिताभ्रशिखराभेषु देवतायतनेषु च । चतुष्पथेषु रथ्यासु चैत्येष्वट्टालकेषु च ॥११॥
नानापण्यसमृद्धेषु वणिजामापणेषु च । कुटुम्बिनां समृद्धेषु श्रीमत्सु भवनेषु च ॥१२॥
सभासु चैव सर्वासु वृक्षेष्वालक्षितेषु च । ध्वजाःसमुच्छ्रिताःसाधु पताकाश्चाभवंस्तथा॥१३॥
नटनर्तकसङ्घानां गायकानां च गायताम् । मनःकर्णसुखा वाचः शुश्राव जनता ततः ॥१४॥
रामाभिषेकयुक्ताश्च कथाश्चक्रुर्मिथो जनाः । रामाभिषेके संप्राप्ते चत्वरेषु गृहेषु च ॥१५॥

करके सुन्दर कुशके बिछौनेपर ॥ ३ ॥ मौनी और पवित्रचित्त होकर जानकीके साथ विष्णुके उत्तम बने हुए घरमें (यज्ञ मण्डपमें) राजपुत्र रामचन्द्रने शयन किया ॥ ४ ॥ एक पहर रात रहते ही रामचन्द्र उठे और यथानियम घर सजानेकी उन्होंने आज्ञा दी ॥ ५ ॥ सूत मागध और वन्दियोंके सुखद वचन सुनते हुए सावधान होकर उन्होंने प्रातःकालकी संध्या की और जप किया ॥ ६ ॥ सिर से नम्र होकर उन्होंने मधुसूदनकी स्तुति की और शुद्ध रेशमी वस्त्र धारण किये हुए रामचन्द्रने ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया ॥ ७ ॥ उन ब्राह्मणोंके द्वारा किया हुआ गम्भीर और मधुर पुण्याहवाचन तूर्य (एक बाजेका नाम) के शब्दके साथ मिल कर समस्त अयोध्यामें फैलगया ॥ ८ ॥ जानकीके साथ रामचन्द्रने उपवास किया है इस संवादको सुनकर अयोध्याके सभी निवासी प्रसन्न हुए ॥ ९ ॥ रामचन्द्रका अभिषेक होने जा रहा है, इसको सुनकर तथा रातको बीती जानकर सभी पुरवासी नगर सजानेको दृढ़संकल्प हुए ॥ १० ॥ हिमालयके समान ऊंची अटारियों, देवताके मन्दिरों, चौराहों, गलियों, चैत्यों (चैत्य बौद्धमन्दिरको कहते हैं। बौद्धधर्मके प्रचारक भगवान् बुद्धदेव रामचन्द्रसे बहुतही पीछेके हैं। उस समय बौद्ध मन्दिरोंका होना सम्भव कैसे हो सकता है। अतएव चैत्य शब्दका अर्थ यहां बौद्धमन्दिर न समझकर भिन्नधर्मावलम्बियोंका ही मन्दिर समझना चाहिए, उस समय सनातनसे भिन्न धर्मका होना असम्भव नहीं है), बैठकोंमें ॥ ११ ॥ दामी चीजें बेंचनेवाले बनियों के बाजारोंमें, गृहस्थोंके सुन्दर और ऊँचे भवनोंमें ॥ १२ ॥ सब प्रकारकी सभाओंमें दूरसे देखे जानेवाले वृक्षोंपर सुन्दर ध्वजा और पताकाएँ फहरायी गयीं ॥ १३ ॥ नट नर्तकोंके दलकी तथा गाते हुए गायकोंको, मन और कानको सुख देनेवाली वाणी जनता सुनने लगी ॥ १४ ॥ सभी आपसमें मिलकर रामाभिषेक-सम्बन्धी बातें करने लगे। रामाभिषेकका समय ज्यों निकट

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बाला अपि क्रीडमाना गृहद्वारेषु सङ्घशः । रामाभिषवसंयुक्ताश्चक्रुरेव कथा मिथः ॥१६॥
कृतपुष्पोपहारश्च धूपगन्धाधिवासितः । राजमार्गः कृतः श्रीमान्पौरै रामाभिषेचने ॥१७॥
प्रकाशीकरणार्थं च निशागमनशङ्कया । दीपवृक्षांस्तथा चक्रुरनुरथ्यासु सर्वशः ॥१८॥
अलंकारं पुरस्यैवं कृत्वा तत्पुरवासिनः । आकाङ्क्षमाणा रामस्य यौवराज्याभिषेचनम्॥१९॥
समेत्य सङ्घशः सर्वे चत्वरेषु सभासु च । कथयन्तो मिथस्तत्र प्रशशंसुर्जनाधिपम् ॥२०॥
अहो महात्मा राजायमिक्ष्वाकुकुलनन्दनः । ज्ञात्वा वृद्धं स्वमात्मानं रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति॥२१॥
सर्वे ह्यनुगृहीताः स्म यन्नो रामो महीपतिः । चिराय भविता गोप्ता दृष्टलोकपरावरः ॥२२॥
अनुद्धतमना विद्वान्धर्मात्मा भ्रातृवत्सलः । यथा च भ्रातृषु स्निग्धस्तथास्मास्वपि राघवः ॥२३॥
चिरं जीवतु धर्मात्मा राजा दशरथोऽनघः । यत्प्रसादेनाभिषिक्तं रामं द्रक्ष्यामहे वयम् ॥२४॥
एवंविधं कथयतां पौराणां शुश्रुवुः परे । दिग्भ्यो विश्रुतवृत्तान्ताःप्राप्ता जानपदा जनाः॥२५॥
ते तु दिग्भ्यःपुरीं प्राप्ता द्रष्टुं रामाभिषेचनम् । रामस्य पूरयामासुः पुरीं जानपदा जनाः ॥२६॥
जनौघैस्तैर्विसर्पद्भिः शुश्रुवे तत्र निःस्वनः । पर्वसूदीर्णवेगस्य सागरस्येव निःस्वनः ॥२७॥

आया चौराहों और घरोंमें रामाभिषेककी बातें वे करने लगे ॥ १५ ॥ घरके द्वारोंपर दलबद्ध होकर खेलनेवाले लड़के भी रामचन्द्रके अभिषेककी ही बात आपसमें करते थे ॥ १६ ॥ रामचन्द्रके अभिषेकके समय पुरवासियोंने सड़कोंपर फूलकी मालाएँ लटकायीं और धूप, गन्ध आदिसे उसे सुगन्धित बनाया ॥ १७ ॥ रात होनेपर अन्धकारके भयसे उनलोगोंने प्रत्येक गलीमें प्रकाशके लिए वृक्षदीप बनाये ॥ १८ ॥ इस प्रकार नगरको अलङ्कृत करके पुरवासी रामचन्द्रके यौवराज्याभिषेक समयकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ १९ ॥ अट्टोंपर तथा सभाओंमें दलके दल एकट्ठे होकर वे आपसमें बाते करते और राजा दसरथकी प्रशंसा करते थे॥२०॥ वे कहते थे-ये इक्ष्वाकु-कुलनन्दन राजा बड़े महात्मा हैं, अपनेको बूढ़ा समझकर ये रामचन्द्रका युवराजके पदपर अभिषेक करेंगे ॥ २१ ॥ हम सब लोगोंपर राजा दसरथका यह अनुग्रह ही होगा, जो रामचन्द्र हमलोगोंके राजा होंगे और वे बहुत दिनों तक हमलोगोंका पालन करेंगे। रामचन्द्र संसारकी भलाई बुराई दोनोंही जानते हैं ॥२२॥ रामचन्द्रका मन उछृङ्खल नहीं है, वे विद्वान्, धर्मात्मा राजा दसरथ और अपने भाइयोंपर प्रेम करनेवाले हैं। रामचन्द्र अपने भाइयोंपर जैसा प्रेम रखते हैं वे हम लोगोंपर भी वैसाही प्रेम रखते हैं ॥ २३ ॥ अपने आश्रितोंके दुःख दूर करनेवाले धर्मात्मा चिरजीवी हों, जिनकी कृपासे हमलोग रामचन्द्रको राज्यपर अभिषिक्त देखेंगे ॥ २४ ॥ रामचन्द्रके राज्याभिषेकका संवाद सुनकर, अन्य दिशाओंसे आये हुए जनसमूहने, आपसमें बात करते हुए पुरवासियोंकी ये बातें सुनी ॥ २५ ॥ रामाभिषेक देखनेके लिए भिन्न-भिन्न दिशाओंसे आये हुए मनुष्योंने रामचन्द्रकी नगरीको भरदिया ॥ २६ ॥ धीरे-धीरे चलते हुए उस जनसमूहने बड़ीही ऊँची, पूर्णिमाके दिन बढ़े हुए वेगवाले समुद्रकी ध्वनिके समान, ध्वनि सुनी ॥ २७ ॥ इन्द्रभवनके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततस्तदिन्द्रक्षयसंनिभं पुरं दिदृक्षुभिर्जानपदैरुपाहितैः ।
समन्ततः सस्वनमाकुलं बभौ समुद्रयादोभिरिवार्णवोदकम् ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७

ज्ञातिदासी यतो जाता कैकेय्या तु सहोषिता । प्रासादं चन्द्रसंकाशमारुरोह यदृच्छया ॥ १ ॥
सिक्तराजपथां कृत्स्नां प्रकीर्णकमलोत्पलाम् । अयोध्यां मन्थरा तस्मात्प्रासादादन्ववैक्षत ॥ २ ॥
पताकाभिर्वराहीभिर्ध्वजैश्च समलंकृताम् । सिक्तां चन्दनतोयैश्च शिरःस्नातजनैर्युताम् ॥ ३ ॥
माल्यमोदकहस्तैश्च द्विजेन्द्रैरभिनादिताम् । शुक्लदेवगृहद्वारां सर्ववादित्रनादिताम् ॥ ४ ॥
संप्रहृष्टजनाकीर्णां ब्रह्मघोषनिनादिताम् । प्रहृष्टवरहस्त्यश्वां संप्रणर्दितगोवृषाम् ॥ ५ ॥
हृष्टप्रमुदितैः पौरैरुच्छ्रितध्वजमालिनीम् । अयोध्यां मन्थरा दृष्ट्वा परं विस्मयमागता ॥ ६ ॥
सा हर्षोत्फुल्लनयनां पाण्डुरक्षौमवासिनीम् । अविदूरे स्थितां दृष्ट्वा धात्रीं पप्रच्छ मन्थरा ॥ ७ ॥
उत्तमेनाभिसंयुक्ता हर्षेणार्थपरा सती । राममाता धनं किं नु जनेभ्यः संप्रयच्छति ॥ ८ ॥
अतिमात्रं प्रहर्षः किं जनस्यास्य च शंस मे । कारयिष्यति किं वापि संप्रहृष्टो महीपतिः ॥ ९ ॥

समान सुन्दर उस नगरीको देखनेके लिए आये हुए जनपदवासियोंसे वह नगरी चारों ओरसे विक्षोभित हो उठी, जिस प्रकार समुद्रके जलजन्तुओंसे समुद्रका जल विक्षोभित हो जाता है ॥२८॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका छठवां सर्ग समाप्त ॥ ६ ॥

कैकयीके पिताके यहांकी दासी मन्थरा थी, उसके जन्म आदिका पता न था, वह कैकयीके ही साथ रहती थी, वह अपनीही इच्छासे विना किसी कारणके चन्द्रमाके समान धवल कोठेपर चढ़ी ॥१॥ उस कोठेपर चढ़कर मन्थराने देखा कि अयोध्याकी सभी सड़कें सींची गयी हैं और उनमें कमल पुष्प विछाये गये हैं ॥ २ ॥ श्रेष्ठ पताकाओं और ध्वजाओंसे नगरी शोभित की गयी है, चन्दन-सुवासित जलका छिड़काव किया गया है और उबटन आदि लगाकर स्नान किये मनुष्योंसे वह युक्त है ॥३॥ माल्य और मिष्टान्न हाथमें लिये हुए ब्राह्मणोंके शब्दोंसे वह मुखरित हो रही है, देवमन्दिरोंके द्वार श्वेत बनाये गये हैं, सब प्रकारके बाजे बज रहे हैं ॥ ४ ॥ प्रसन्न मनुष्योंसे वह नगरी भरी हुई है, चारों ओर वेद-घोषसे मुखरित हो रही है, अच्छी जातिके घोड़े और हाथी प्रसन्न हो रहे हैं, गौ और बैल गरज रहे हैं ॥ ५ ॥ हर्षित और प्रसन्न पुरवासियोंने ध्वजाओंकी माला बना रखी हैं, मन्थरा अयोध्याको इस रूपमें देखकर बहुत विस्मित हुई ॥ ६ ॥ उसने पासही रामचन्द्रकी धायको देखकर उससे पूछा, प्रसन्नतासे धायकी आँखे खिलगयी थीं और पीला रेशमी वस्त्र वह पहने हुई थी ॥ ७ ॥ धनवती राममाता बड़ी प्रसन्नतासे लोगोंको धन क्यों देरही हैं ? ॥ ८ ॥ ये सब लोग बहुत ही प्रसन्न हैं, इसका कारण मुझे बतलाओ, प्रसन्न होकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विदीर्यमाणा हर्षेण धात्री तु परया मुदा । आचचक्षेऽथ कुब्जायै भूयसीं राघवे श्रियम् ॥१०॥
श्वः पुष्येण जितक्रोधं यौवराज्येन चानघम् । राजा दशरथो राममभिषेक्ता हि राघवम् ॥११॥
धात्र्यास्तु वचनं श्रुत्वा कुब्जा क्षिप्रममर्षिता । कैलासशिखराकारात्प्रासादादवरोहत ॥१२॥
सा दह्यमाना क्रोधेन मन्थरा पापदर्शिनी । शयानामेव कैकेयीमिदं वचनमब्रवीत ॥१३॥
उत्तिष्ठ मूढे किं शेषे भयं त्वामभिवर्तते । उपप्लुतमघौघेन नात्मानमवबुध्यसे ॥१४॥
अनिष्टे सुभगाकारे सौभाग्येन विकत्थसे । चलं हि तव सौभाग्यं नद्याः स्रोत इवोष्णगे ॥१५॥
एवमुक्ता तु कैकेयी रुष्टया पुरुषं वचः । कुब्जया पापदर्शिन्या विषादमगमत्परम् ॥१६॥
कैकेयी त्वब्रवीत्कुब्जां कच्चित्क्षेमं न मन्थरे । विषण्णवदनां हि त्वां लक्षये भृशदुःखिताम् ॥१७॥
मन्थरा तु वचः श्रुत्वा कैकेय्या मधुराक्षरम् । उवाच क्रोधसंयुक्ता वाक्यं वाक्यविशारदा ॥१८॥
सा विषण्णतरा भूत्वा कुब्जा तस्यां हितैषिणी । विषादयन्ती प्रोवाच भेदयन्ती च राघवम् ॥१९॥
अक्षयं सुमहद्देवि प्रवृत्तं त्वद्विनाशनम् । रामं दशरथो राजा यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति ॥२०॥
सास्म्यगाधे भये मग्ना दुःखशोकसमन्विता । दह्यमानानलेनेव त्वद्धितार्थमिहागता ॥२१॥
तव दुःखेन कैकेयि मम दुःखं महद्भवेत् । त्वद्वृद्धौ मम वृद्धिश्च भवेदिह न संशयः ॥२२॥

राजा क्या करनेवाले हैं ॥ ९ ॥ वह धाय मारे हर्षके विदीर्णसी होरही थी । उसने प्रसन्नता-पूर्वक कुब्जा मन्थराको रामचन्द्रको प्राप्त होनेवाले बड़े कल्याणका वृत्तान्त सुनाया ॥ १० ॥ कल पुष्ययोग है, उसी समय क्रोधको वशमें रखनेवाले निष्पाप रामचन्द्रका राजा दसरथ युवराज पदपर अभिषेक करेंगे ॥ ११ ॥ धायकी बातें सुनकर मन्थराको शीघ्रही क्रोध आया, कैलासशिखरके समान ऊँचे उस कोठेसे वह नीचे उतरी ॥ १२ ॥ अनिष्टकी आशङ्का करनेवाली केकयीकी दासी क्रोधसे जलने लगी और उसने सोती हुई केकयीसे ऐसा वचन कहा ॥ १३ ॥ मूर्खे उठ, क्या सो रही है, तुमपर बड़ा सङ्कट आया है, पापकर्मोंके फल तुम्हारे सामने आये हैं और तुम्हे ज्ञान नहीं है ॥ १४ ॥ तुम राजाकी अप्रिय हो, राजाके द्वारा केवल कुछ धन पाती हो, और तुम्हें अपने सौभाग्यका-पतिप्रिया होनेका गर्व है, तुम्हारा सौभाग्य अनिश्चित है, जिस प्रकार सूर्यके ग्रीष्म ऋतुमें जानेसे नदीका स्रोत अनिश्चित हो जाता है ॥ १५ ॥ अनिष्टकी आशङ्का करने वाली क्रोधित मन्थराकी ऐसी बातें सुनकर केकयी बहुत दुःखित हुई ॥ १६ ॥ उसने मन्थरासे कहा—कुब्जे, क्या मेरा कुछ अकल्याण हुआ है, क्योंकि तुम्हारा मुंह उतरा है और मैं तुम्हें दुःखित देख रही हूं ॥ १७ ॥ केकयीकी मीठी बातें सुनकर बोलनेमें चतुर मन्थरा क्रोधसे बोली ॥ १८ ॥ केकयीका हित चाहनेवाली मन्थरा बहुतही दुःखित होकर केकयीको दुखित करती हुई तथा रामचन्द्रसे बिलगाव कराती हुई बोली ॥ १९ ॥ देवि, आपका विनाश होनेवाला है और वह वैसा विनाश जिसका प्रतीकार न होसके । राजा दसरथ रामचन्द्रका युवराजके पदपर अभिषेक करेंगे ॥ २० ॥ इससे मैं बहुत बड़े भयमें डूब गयी, मुझे बहुतही दुःख और शोक हो रहा है, मैं मानों आगसे जली जा रही हूँ, अतएव तुम्हारा हित करनेके लिए मैं तुम्हारे पास आयी हूं ॥ २१ ॥ केकयी, रामचन्द्रके अभिषेक होनेपर तुम्हारे दुःखसे मुझेभी अधिक दुःख

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नराधिपकुले जाता महिषी त्वं महीपतेः । उग्रत्वं राजधर्माणां कथं देवि न बुद्ध्यसे ॥२३॥
धर्मवादी शठो भर्ता श्लक्ष्णवादी च दारुणः । शुद्धभावेन जानीषे तेनैवमतिसंधिता ॥२४॥
उपस्थितः प्रयुञ्जानस्त्वयि सान्त्वमनर्थकम् । अर्थेनैवाद्य ते भर्ता कौसल्यां योजयिष्यति ॥२५॥
अपवाह्य तु दुष्टात्मा भरतं तव बन्धुषु । काल्ये स्थापयिता रामं राज्ये निहतकण्टके ॥२६॥
शत्रुः पतिप्रवादेन मात्रेव हितकाम्यया । आशीविष इवाङ्केन बाले परिधृतस्त्वया ॥२७॥
यथा हि कुर्याच्छत्रुर्वा सर्पो वा प्रत्युपेक्षितः । राज्ञा दशरथेनाद्य सपुत्रा त्वं तथा कृता ॥२८॥
पापेनानृतसान्त्वेन बाले नित्यं सुखोचिते । रामं स्थापयता राज्ये सानुबन्धा हताह्यसि ॥२९॥
सा प्राप्तकालं कैकेयि क्षिप्रं कुरु हितं तव । त्रायस्व पुत्रमात्मनं मां च विस्मयदर्शने ॥३०॥
मन्थराया वचः श्रुत्वा शयनात्सा शुभानना । उत्तस्थौ हर्षसंपूर्णा चन्द्रलेखेव शारदी ॥३१॥
अतीव सा तु संतुष्टा कैकेयी विस्मयान्विता । दिव्यमाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रददौ शुभम् ॥३२॥
दत्त्वा त्वाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रमदोत्तमा । कैकेयी मन्थरां हृष्टा पुनरेवाब्रवीदिदम् ॥३३॥
इदं तु मन्थरे मह्यमाख्यातं परमं प्रियम् । एतन्मे प्रियमाख्यातं किं वा भूयः करोमि ते ॥३४॥
रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये । तस्मात्तुष्टास्मि यद्राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति ॥३५॥

होगा और तुम्हारी बढ़तीसे मेरी भी बढ़ती होगी, इसमें सन्देह नहीं ॥ २२ ॥ तुम राजाके कुलमें उत्पन्न हुई हो और राजाकी महारानी भी हो, फिर राजधर्मोंकी कठोरता तुम क्यों नहीं समझती हो ॥ २३ ॥ तुम्हारा पति धर्मयुक्त बातें कहता है पर है शठ, मीठी बातें करता है पर है कठोर, तुम उसकी बातोंको शुद्ध भावसे कही जानती हो, इसीसे इस प्रकार ठगी गयी हो ॥२४॥ तुम्हारा पति तुम्हारे पास रहता है, तुमसे प्रिय बातें करता है पर वह सब अनर्थक है, आज तुम्हारा पति कौसल्याकी अर्थसिद्धि करने जारहा है ॥ २५ ॥ उस दुष्टात्माने भरतको तुम्हारे भाईके यहां भेज दिया, इस प्रकार निष्कण्टक राज्यपर कल वह रामका अभिषेक करेगा ॥२६॥ तुमने पतिके नामसे अपना शत्रु पाया है, जिस प्रकार माता बनकर सांपके बच्चेको पालनेवाली हितकी कामनासे उसे धारण करती है। पर सांपके बच्चेसे उसकी हितकामना व्यर्थ है। इसी प्रकार इस पतिरूपी शत्रुसे तुम्हारे मनोरथकी सिद्धि असम्भव है ॥ २७ ॥ जिस प्रकार उपेक्षित शत्रु किसीका अपकार करता है अथवा सांप, आज राजा दशरथने पुत्रके साथ तुम्हारी भी वही दशा की ॥ २८ ॥ सदा सुखमें रहनेवाली तुम, अपने नौकर-चाकरोंके साथ, रामचन्द्रको राज्यपर स्थापित करनेवाले, पापी और झूठा प्रलोभन देनेवाले इस राजाके द्वारा मारी गयी हो ॥ २९ ॥ केकयी, समय आगया है, शीघ्रही तुम अपना कल्याण करलो। हे सामयिक कर्तव्य-साधन करनेमें चतुर, अपनी, अपने पुत्रकी और मेरी रक्षा करो ॥ ३० ॥ मन्थराकी बातें सुनकर सुन्दर मुंहवाली केकयी पलंगसे उठी, जिस प्रकार हर्षयुक्त शरद्ऋतुकी चन्द्रलेखा उठी हो ॥ ३१ ॥ केकयी बहुत प्रसन्न हुई, बड़े हर्षकी बात सुननेसे उसे विस्मय हुआ, केकयीने एक दिव्य उत्तम आभूषण कुब्जाको दिया ॥ ३२ ॥ कुब्जा मन्थराको आभूषण देकर स्त्रीश्रेष्ठ केकयी मन्थरासे प्रसन्नता पूर्वक इस प्रकार बोली ॥ ३३ ॥ मन्थरे, तुमने तो मुझे यह बड़ाही प्रिय सम्वाद सुनाया है, इस प्रिय संवाद सुनानेके बदलेमें मैं तुम्हारा और क्या उपकार करूँ ? ॥३४॥ राम और भरतमें मैं भेद नहीं देखती,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न मे परं किंचिदितो वरं पुनः प्रियं प्रियार्हे सुवचं वचोऽमृतम् ।
तथा ह्यवोचस्त्वमतः प्रियोत्तरं वरं परं ते प्रददामि तं वृणु ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८

मन्थरा त्वभ्यसूयैनामुत्सृज्याभरणं हि तत् । उवाचेदं ततो वाक्यं कोपदुःखसमन्विता ॥ १ ॥
हर्षं किमर्थमस्थाने कृतवत्यसि बालिशे । शोकसागरमध्यस्थं नात्मानमवबुध्यसे ॥ २ ॥
मनसा प्रसहामि त्वां देवि दुःखार्दिता सती । यच्छोचितव्ये हृष्टासि प्राप्य त्वं व्यसनं महत् ॥ ३ ॥
शोचामि दुर्मतित्वं ते का हि प्राज्ञा प्रहर्षयेत् । अरेः सपत्नीपुत्रस्य वृद्धिं मृत्योरिवागताम् ॥ ४ ॥
भरतादेव रामस्य राज्यसाधारणाद्भयम् । तद्विचिन्त्य विषण्णास्मि भयं भीताद्धि जायते ॥ ५ ॥
लक्ष्मणो हि महाबाहू रामं सर्वात्मना गतः । शत्रुघ्नश्चापि भरतं काकुत्स्थं लक्ष्मणो यथा ॥ ६ ॥
प्रत्यासन्नक्रमेणापि भरतस्यैव भामिनि । राज्यक्रमो विसृष्टस्तु तयोस्तावद्यवीयसोः ॥ ७ ॥

इसीसे मैं प्रसन्न हूँ कि राजा कल रामचन्द्रका राज्याभिषेक करेंगे ॥ ३५ ॥ ऐ प्रिय बोलनेवाली, रामचन्द्रके राज्याभिषेक-संवाद सुनने से बढ़कर मेरा प्रिय दूसरा नहीं है, ऐसा अमृतके समान सुखद वचन सभी नहीं सुनासकते, तुमने वह वचन सुनाया है, इसका पारितोषिक यदि तुम कुछ और चाहो तो मांगो, मैं तुम्हें देती हूं ॥ ३६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका सातवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

मन्थराने केकयीपर क्रोध किया, उसका दिया गहना फेंक दिया और वह क्रोध तथा दुःखसे युक्त होकर बोली ॥ १ ॥ मूर्खे, बिना जरूरतके हर्ष क्यों प्रकाश कर रही है। तुम शोक-समुद्रके बीचमें पड़ी हो यह तुम्हें मालुम नहीं है ॥ २ ॥ देवि, मैं भी तुम्हारे दुःखसे पीड़ित होकर मनही मन दुःख सहती हूं। इतने बड़े दुःखको पाकर तुम्हें शोक करना चाहिए था, पर तुम प्रसन्न हो ॥३॥ तुम्हारी मूर्खताका ही मुझे शोक है। भला शत्रु सौतका बेटा राज्य पा रहा हो तो इस संवादसे किस बुद्धिमानको प्रसन्नता होगी, यह तो मृत्युके समान भयदायी है ॥ ४ ॥ इस राज्यपर भरत और राम दोनोंका साधारण अधिकार है, साधारण योग्यता है, अतएव रामको भरतसे ही भय है, यह सोचकर मैं दुःखी हो रही हूँ, क्योंकि डरे हुए मनुष्यसे ही भय होता है ॥ ५ ॥ महाबाहु लक्ष्मण तो रामचन्द्रका अनुगत ही है, और शत्रुघ्न भरतका वैसाही अनुगत है जैसा रामका लक्ष्मण ॥ ६ ॥ हे भामिनि, उत्पत्ति-क्रमसे भी भरतका ही राज्यपर अधिकार पहुंचता है। लक्ष्मण और शत्रुघ्न छोटे हैं, अतएव उनके राज्याधिकारकी चर्चाही क्या!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विदुषः क्षत्रचारित्रे प्राज्ञस्य प्राप्तकारिणः । भयात्प्रवेपे रामस्य चिन्तयन्ती तवात्मजम् ॥ ८ ॥
सुभगा किल कौसल्या यस्याःपुत्रोऽभिषेक्ष्यते । यौवराज्येन महता श्वः पुष्येण द्विजोत्तमैः ॥ ९ ॥
प्राप्तां वसुमतीं प्रीतिं प्रतीतां हतविद्विषम् । उपस्थास्यसि कौसल्यां दासीवत्त्वं कृताञ्जलिः॥१०॥
एवं च त्वं सहास्माभिस्तस्याःप्रेष्या भविष्यसि । पुत्रश्च तव रामस्य प्रेष्यत्वं हि गमिष्यति ॥११॥
हृष्टाः खलु भविष्यन्ति रामस्य परमाः स्त्रियः । अप्रहृष्टा भविष्यन्ति स्नुषास्ते भरतक्षये ॥१२॥
तां दृष्ट्वा परमप्रीतां ब्रुवन्तीं मन्थरां ततः । रामस्यैव गुणान्देवी कैकेयी प्रशशंस ह ॥१३॥
धर्मज्ञो गुणवान्दान्तः कृतज्ञः सत्यवाञ्छुचिः । रामो राजसुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हति ॥१४॥
भ्रातॄन्भृत्यांश्च दीर्घायुः पितृवत्पालयिष्यति । संतप्यसे कथं कुब्जे श्रुत्वा रामाभिषेचनम् ॥१५॥
भरतश्चापि रामस्य ध्रुवं वर्षशतात्परम् । पितृपैतामहं राज्यमवाप्स्यति नरर्षभः ॥१६॥
सा त्वमभ्युदये प्राप्ते दह्यमानेव मन्थरे । भविष्यति च कल्याणे किमिदं परितप्यसे ॥१७॥
यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः । कौसल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते बहु ॥१८॥
राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा । मन्यते हि यथात्मानं तथा भ्रातॄंस्तु राघवः ॥१९॥
कैकेय्या वचनं श्रुत्वा मन्थरा भृशदुःखिता । दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥२०॥

॥ ७ ॥ रामचन्द्र विद्वान् हैं, सन्धि विग्रह करनेमें निपुण हैं, समयोचित काम करनेमें दक्ष हैं । इन्हीं बातोंसे तुम्हारे पुत्रकी ओर देखकर मैं रामचन्द्रके भयसे डर रही हूं । कहीं आगे वे कुछ अनर्थ न करें ॥ ८ ॥ कौसल्या ही सुभगा है, पतिकी प्रिया है, क्योंकि उसके पुत्रका अभिषेक होगा, कल पुष्य योगमें श्रेष्ठ ब्राह्मण महान् युवराज पदपर अभिषेक करेंगे ॥ ९ ॥ कौसल्या राज्य पावेगी, प्रसन्न होगी, उसके शत्रु कमजोर होकर दब जायंगे, उसकी प्रसिद्धि होगी और तुम हाथ जोड़ कर दासीके समान कौसल्याके सामने खड़ी होगी ॥ १० ॥ इस प्रकार हमलोगोंके साथ तुम कौसल्याकी दासी बनोगी, और तुम्हारा पुत्र रामचन्द्रका भृत्य बनेगा॥ ११ ॥ रामकी स्त्री की सखियाँ प्रसन्न होंगी और भरतके नाश (दरिद्र) हो जानेसे आपकी बहू अप्रसन्न होगी ॥१२॥ इस प्रकार परम प्रसन्नता पूर्वक मन्थरा को बोलती देखकर देवी केकयी रामचन्द्रके गुणोंकी ही प्रशंसा करने लगीं ॥ १३ ॥ केकयीने कहा—रामचन्द्र धर्मज्ञ, गुणवान्, संयत, सत्यप्रिय और शुद्धचरित्र हैं, वे राजाके बड़े पुत्र हैं अतएव युवराज होनेका उन्हें अधिकार है ॥ १४ ॥ दीर्घायु रामचन्द्र अपने भाइयों और भृत्योंका पिताके समान पालन करेंगे । कुब्जे, रामचन्द्रका अभिषेक सुनकर तू क्यों दुःख पारही है ॥ १५ ॥ भरत भी रामचन्द्रके सौ वर्षों के बाद अवश्य ही पिता पितामहके द्वारा आया हुआ राज्य पावेगा ॥ १६ ॥ मन्थरे, यह तो अभ्युदयका समय है तू जल क्यों रही है, भावी कल्याणमें तू दुःख क्यों करती है ॥ १७ ॥ मुझे भरत जैसा मान्य है, राम उससे भी अधिक मान्य है, क्योंकि रामचन्द्र कौसल्यासे अधिक मेरी सेवा करता है ॥ १८ ॥ रामचन्द्र को यदि राज्य मिलता है तो वह भरतको भी मिला ही समझना चाहिए, क्योंकि रामचन्द्र भाइयोंको अपने ही समान समझते हैं ॥ १९ ॥ केकयीकी बातें सुनकर मन्थरा बहुत अधिक दुःखित हुई, लम्बी और गर्म सांस लेकर वह केकयीसे बोली ॥ २० ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनर्थदर्शिनी मौर्ख्यान्नात्मानमवबुद्ध्यसे । शोकव्यसनावेस्तीर्णे मज्जन्ती दुःखसागरे ॥२१॥
भविता राघवो राजा राघवस्य च यः सुतः । राजवंशात्तु भरतः कैकेयि परिहास्यते ॥२२॥
नहि राज्ञः सुताः सर्वे राज्ये तिष्ठन्ति भामिनि । स्थाप्यमानेषु सर्वेषु सुमहाननयो भवेत ॥२३॥
तस्माज्ज्येष्ठे हि कैकेयि राज्यतन्त्राणि पार्थिवाः। स्थापयन्त्यनवद्याङ्गि गुणवात्स्वितरेष्वपि ॥२४॥
असावत्यन्तनिर्भग्नस्तव पुत्रो भविष्यति । अनाथवत्सुखेभ्यश्च राजवंशाच्च वत्सले ॥२५॥
साहं त्वदर्थे संप्राप्ता त्वं तु मां नावबुद्ध्यसे । सपत्नीवृद्धौ या मे त्वं प्रदेयं दातुमर्हसि ॥२६॥
ध्रुवं तु भरतं रामः प्राप्य राज्यमकण्टकम् । देशान्तरं नाययिता लोकान्तरमथापि वा ॥२७॥
बाल एव तु मातुल्यं भरतो नायितस्त्वया । सान्निकर्षाच्च सौहार्दं जायते स्थावरेष्विव ॥२८॥
भरतानुवशात्सोऽपि शत्रुघ्नस्तत्समं गतः । लक्ष्मणो हि यथा रामं तथायं भरतं गतः ॥२९॥
श्रूयते हि द्रुमः कश्चिच्छेत्तव्यो वनजीवनैः । सांनिकर्षादिषीकाभिर्मोचितः परमाद्भयात् ॥३०॥
गोप्ता हि रामं सौमित्रिर्लक्ष्मणं चापि राघवः । आश्विनोरिव सौभ्रात्रं तयोर्लोकेषु विश्रुतम् ॥३१॥
तस्मान्न लक्ष्मणे रामः पापं किंचित्करिष्यति । रामस्तु भरते पापं कुर्यादेव न संशयः ॥३२॥

अपनी मूर्खतावश तुम अपनी बुराई नहीं समझ रही हो, शोक और दुःखके समुद्रमें तुम डूब रही हो, पर तुम्हे अपना ज्ञान नहीं ॥ २१ ॥ जब रामचन्द्र राजा होंगे, तब उनके बाद उनका पुत्र राजा होगा, राज्याधिकारसे भरत सदाके लिए च्युत हो जायगा ॥ २२ ॥ भामिनि, राजाके सभी लड़के राज्याधकार नहीं पाते, यदि सभीको राज्याधिकार दिया जाय तो महान् अन्याय हो ॥ २३ ॥ इस कारण हे सुन्दरि केकयी, राजालोग बड़े पुत्रको ही राज्य देते हैं, अथवा गुणवान् किसी अन्य पुत्रको । बड़ा गुणवान् न हुआ तो गुणवान् दूसरे पुत्रको राज्य दिया जाता है ॥ २४ ॥ प्रिये, तुम्हारा यह पुत्र रामके अभिषेक हो जानेपर राज-वंश तथा सुखसे भी दूर हटा दिया जायगा । वह अनाथ हो जायगा ॥ २५ ॥ इस कारण मैं तुम्हारे लिए आयी हूं और तुम मेरी बात सुनती ही नहीं, तुम तो सौतकी बढ़ती सुनकर मुझे वरदान देना चाहती हो ॥२६॥ यह निश्चय है कि निष्कण्टक (शत्रुहीन) राज्य पाकर रामचन्द्र भरतको किसी दूसरे देशमें भेज देंगे अथवा दूसरे लोकमें भेजदेंगे ॥ २७ ॥ बाल्यावस्थामें ही तुमने भरतको मामाके घर भेज दिया, यह बुरा किया, यहां रहता तो राजाका उसपर प्रेम होता । साथ रहनेसे अचेतनपर भी मनुष्योंका प्रेम हो जाता है ॥ २८ ॥ शत्रुघ्न भी भरतका अनुगत होकर भरतके ही समान रामचन्द्रका द्वेषभाजन हो गया । लक्ष्मण जैसे रामचन्द्रका अनुगामी है शत्रुघ्न भी भरतका वैसा ही अनुगामी है ॥ २९ ॥ सुना जाता है कि कोई वनवासी एक वृक्ष काटता था, पर उस वृक्षके पास कुछ कटीली घास थीं, जिन्होंने उस वृक्षकी इस बड़े भयसे रक्षा की थी । इसी प्रकार लक्ष्मण रामकी रक्षा करता है ॥ ३० ॥ लक्ष्मण रामकी रक्षा करता है और राम लक्ष्मणकी रक्षा करते हैं, उन दोनों भाइयोंका प्रेम अश्विनीकुमारोंके प्रेमके समान प्रसिद्ध है ॥ ३१ ॥ इस कारण रामचन्द्र लक्ष्मणकी कोई भी बुराई नहीं करेंगे, पर रामचन्द्र भरतका तो अवश्य अनिष्टाचरण करेंगे, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥ इस कारण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्माद्राजगृहादेव वनं गच्छतु राघवः । एतद्धि रोचते मह्यं भृशं चापि हितं तव ॥३३॥
एवं ते ज्ञातिपक्षस्य श्रेयश्चैव भविष्यति । यदि चेद्भरतो धर्मात्पित्र्यं राज्यमवाप्स्यति ॥३४॥
स ते सुखोचितो बालो रामस्य सहजो रिपुः । समृद्धार्थस्य नष्टार्थो जीविष्यति कथं वशे ॥३५॥
अभिद्रुतमिवारण्ये सिंहेन गजयूथपम् । प्रच्छाद्यमानं रामेण भरतं त्रातुमर्हसि ॥३६॥
दर्पान्निराकृता पूर्वं त्वया सौभाग्यवत्तया । राममाता सपत्नी ते कथं वैरं न यापयेत् ॥३७॥
यदा च रामः पृथिवीमवाप्स्यते प्रभूतरत्नाकरशैलसंयुताम् ।
तदा गमिष्यस्यशुभं पराभवं सहैव दीना भरतेन भामिनि ॥ ३८ ॥
यदा हि रामः पृथिवीमवाप्स्यते ध्रुवं प्रनष्टो भरतो भविष्यति ।
अतो हि संचिन्तय राज्यमात्मजे परस्य चैवास्य विवासकारणम् ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९

एवमुक्ता तु कैकेयी क्रोधेन ज्वलिताऽनना । दीर्घमुष्णं विनिश्वस्य मन्थरामिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
अद्य राममितः क्षिप्रं वनं प्रस्थापयाम्यहम् । यौवराज्येन भरतं क्षिप्रमद्याभिषेचये ॥ २ ॥

मुझे तो यही अच्छा लगता है कि रामचन्द्र इस राजभवनको ही छोड़कर वनमें चले जांय, मुझे यही सबसे अच्छा उपाय मालुम पड़ता है और इसीमें तुम्हारा हित है ॥ ३३ ॥ यदि धर्मपूर्वक भरत पिताका राज्य पावें तो तुम्हारे भाई-बन्धुओंका, तुम्हारे आश्रितोंका भी कल्याण होगा ॥ ३४ ॥ सुख पानेका अधिकारी तुम्हारा पुत्र रामका स्वाभाविक शत्रु है । रामचन्द्र समृद्धि पावेंगे, भरतकी समृद्धि नष्ट होगी, भला वह भरत रामके वशमें कैसे रह सकेगा ॥ ३५ ॥ रामने भरतपर आक्रमण किया है, जिस प्रकार वनमें भगे हुए हाथियोंके यूथपतिपर सिंह आक्रमण करता है । तुम उसकी रक्षा करो ॥ ३६ ॥ तुमने पहले अपने पतिप्रिया होनेके गर्वसे राममाता कौसल्याका तिरस्कार किया है, कौसल्या तुम्हारी सौत है, भला वह तुम्हारे वैरका बदला क्यों न ले ॥३७॥ अनेक समुद्र और पर्वतोंवाली पृथिवीपर जब रामचन्द्रका अधिकार होजायगा, भामिनि! तब तुम्हारा बुरा पराभव होगा, तुम भरतके साथ दुःखी हो जाओगी ॥ ३८ ॥ जब पृथिवी-पर रामचन्द्रका अधिकार होजायगा तो अवश्य ही भरतका नाश होगा । इस कारण कुछ ऐसा उपाय सोचो जिससे तुम्हारे पुत्रको राज्य मिले और रामचन्द्र यहांसे निकाले जांय ॥ ३९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका आठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८ ॥

मन्थराकी बातें सुनकर केकयीका मुँह क्रोधसे जलने लगा, लम्बी और गर्म सांस लेकर मन्थरासे ऐसा बोली ॥ १ ॥ आज यहाँसे शीघ्र ही मैं रामको वन भेजूँगी और युवराजके पद-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इदं त्विदानीं संपश्य केनोपायेन साधये । भरतः प्राप्नुयाद्राज्यं न तु रामः कथंचन ॥ ३ ॥
एवमुक्ता तु सा देव्या मन्थरा पापदर्शिनी । रामार्थमुपहिंसन्ती कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥
हन्तेदानीं प्रपश्य त्वं कैकेयि श्रूयतां वचः । यथा ते भरतो राज्यं पुत्रःप्राप्स्यति केवलम् ॥ ५ ॥
किं न स्मरन्ती कैकेयि स्मरन्ती वा निगूहसे । यदुच्यमानमात्मार्थं मत्तस्त्वं श्रोतुमिच्छसि ॥ ६ ॥
मयोच्यमानं यदि ते श्रोतुं छन्दो विलासिनि । श्रूयतामभिधास्यामि श्रुत्वा चैतद्विधीयताम् ॥ ७ ॥
श्रुत्वैवं वचनं तस्या मन्थरायास्तु कैकयी । किंचिदुत्थाय शयनात्स्वास्तीर्णादिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥
कथयस्व ममोपायं केनोपायेन मन्थरे । भरतः प्राप्नुयाद्राज्यं न तु रामः कथंचन ॥ ९ ॥
एवमुक्ता तदा देव्या मन्थरा पापदर्शिनी । रामार्थमुपहिंसन्ती कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥१०॥
पुरा देवासुरे युद्धे सह राजर्षिभिः पतिः । आगच्छत्त्वामुपादाय देवराजस्य साह्यकृत् ॥११॥
दिशमास्थाय कैकेयि दक्षिणां दण्डकान्प्रति । वैजयन्तामिति ख्यातं पुरं यत्र तिमिध्वजः ॥१२॥
स शम्बर इति ख्यातः शतमायो महासुरः । ददौ शक्रस्य सङ्ग्रामं देवसङ्घैरनिन्दितः ॥१३॥
तस्मिन्महति सङ्ग्रामे पुरुषान्क्षतविक्षतान् । रात्रौ प्रसुप्तान्घ्नन्ति स्म तरसापास्य राक्षसाः॥१४॥
तत्राकरोन्महायुद्धं राजा दशरथस्तदा । असुरैश्च महाबाहुः शस्त्रैश्च शकलीकृतः ॥१५॥
अपवाह्य त्वया देवि सङ्ग्रामान्नष्टचेतनः । तत्रापि विक्षतः शस्त्रैः पतिस्ते रक्षितस्त्वया ॥१६॥

पर भरतका अभिषेक कराऊँगी ॥ २ ॥ अब यह सोचो कि किस उपायसे मैं अपना यह मनोरथ सिद्ध करूँ, किस प्रकार भरतको राज्य मिले और रामको न मिले ॥ ३ ॥ देवी केकयीके द्वारा ऐसा कही जानेपर बुरी बातोंमें तीव्र बुद्धि रखनेवाली मन्थरा, रामचन्द्रके अभ्युदयसे द्वेष करती हुई, बोली ॥ ४ ॥ खुशीकी बात है केकयी, अब तुम देखो, मेरी बात सुनो, जिस उपाय से केवल तुम्हारा पुत्र भरत ही राज्य पावे ॥ ५ ॥ केकयी, क्या तुम्हें स्मरण नहीं है, या स्मरण होनेपर भी तुम छिपा रही हो, जो उपाय तुम्हें कहना चाहिये वह क्या तुम मुझसे सुनना चाहती हो ? ॥६॥ विलासिनि, यदि तुम मेरे ही द्वारा वह उपाय सुनना चाहती हो तो सुनो, और सुनकर उसके अनुसार कार्य करो ॥ ७ ॥ मन्थराकी यह बात सुनकर, केकयी अपने अच्छे पलँग-से थोड़ा उठकर यह बोली ॥ ८ ॥ मन्थरे, मेरे लिये उपाय बतलाओ, किस उपायसे भरत राज्य पावेगा और राम राज्य न पावेंगे ॥ ९ ॥ उस समय देवी केकयीके द्वारा ऐसा कही गयी, अनिष्ट देखनेवाली मन्थरा, रामके मनोरथको नष्ट करती हुई, केकयीसे ऐसा बोली ॥ १० ॥ पहले-देवा-सुरसंग्राममें—अन्य राजर्षियोंके साथ इन्द्रकी सहायताके लिये, तुम्हारा पति तुमको लेकर गया था ॥ ११ ॥ केकयी, दक्षिण दिशामें दण्डक वनमें—वैजयन्त नामक प्रसिद्ध नगर है, जहाँ तिमिध्वज असुर रहता था ॥ १२ ॥ उसका शंबर भी दूसरा नाम था, वह अनेक प्रकारकी माया जानता था, वह बड़ा भारी असुर था। देवताओंके द्वारा पराजित न हुआ और वह इन्द्रसे लड़नेके लिए तयार हुआ ॥ १३ ॥ उस बहुत बड़े युद्धमें क्षत-विक्षत पुरुषोंको, रातमें सोते समय राक्षसगण जबरदस्ती बिछौनेसे खींचकर मारते थे ॥ १४ ॥ वहाँ महाबाहु राजा दसरथने राक्षसोंके साथ घनघोर युद्ध किया और वे घायल हुए ॥ १५ ॥ राजा बेहोश हो गये, उस समय तुम उनको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तुष्टेन तेन दत्तौ ते द्वौ वरौ शुभदर्शने । स त्वयोक्तः पतिर्देवि यदिच्छेयं तदा वरम् ॥१७॥
गृह्णीयां तु तदा भर्तस्तथेत्युक्तं महात्मना । अनभिज्ञा ह्यहं देवि त्वयैव कथितं पुरा ॥१८॥
कथैषा तव तु स्नेहान्मनसा धार्यते मया । रामाभिषेकसंभारान्निगृह्य विनिवर्तय ॥१९॥
तौ च याचस्व भर्तारं भरतस्याभिषेचनम् । प्रव्राजनं च रामस्य वर्षाणि च चतुर्दश ॥२०॥
चतुर्दश हि वर्षाणि रामे प्रव्राजिते वनम् । प्रजाभावगतस्नेहः स्थिरः पुत्रो भविष्यति ॥२१॥
क्रोधागारं प्रविश्याद्य क्रुद्धेवाश्वपतेः सुते । शेष्वानन्तर्हितायां त्वं भूमौ मलिनवासिनी ॥२२॥
मा स्मैनं प्रत्युदीक्षेथा मा चैनमभिभाषथाः । रुदन्ती पार्थिवं दृष्ट्वा जगत्यां शोकलालसा ॥२३॥
दयिता त्वं सदा भर्तुरत्र मे नास्ति संशयः । त्वत्कृते च महाराजो विशेदपि हुताशनम् ॥२४॥
न त्वां क्रोधयितुं शक्तो न क्रुद्धां प्रत्युदीक्षितुम् । तव प्रियार्थं राजा तु प्राणानपि परित्यजेत् ॥२५॥
न ह्यतिक्रमितुं शक्तस्तव वाक्यं महीपतिः । मन्दस्वभावे बुध्यस्व सौभाग्यबलमात्मनः ॥२६॥
मणिमुक्तासुवर्णानि रत्नानि विविधानि च । दद्याद्दशरथो राजा मास्म तेषु मनः कृथाः ॥२७॥
यौ तौ देवासुरे युद्धे वरौ दशरथो ददौ । तौ स्मारय महाभागे सोऽर्थो न त्वाक्रमेदति ॥२८॥
यदा तु ते वरं दद्यात्स्वयमुत्थाप्य राघवः । व्यवस्थाप्य महाराजं त्वमिमं वृणुया वरम् ॥२९॥

संग्राम-स्थानसे दूर ले गयी, और शस्त्रोंसे घायल अपने पतिकी तुमने इस प्रकार रक्षा की ॥१६॥ शुभदर्शने, उस समय प्रसन्न होकर राजाने तुमको दो वर दिये। तुमने पतिसे कहा कि जब चाहूंगी तब वर ले लूँगी ॥ १७ ॥ महात्मा राजाने भी तुम्हारी यह बात मानली। देवि, मुझे यह बात मालूम न थी, तुम्हींने पहले कही थी ॥ १८ ॥ तुम्हारे प्रति-प्रेमके कारण मैंने यह बात आज तक याद रखी है। पहले राजासे प्रतिज्ञा करालो, फिर उन्हें रामचन्द्रके राज्याभिषेकसे रोको॥१९॥ उन दोनों वरोंको माँगो, एकसे भरतके लिए राज्य और दूसरेसे रामचन्द्रके लिए चौदह वर्षका वनवास ॥ २० ॥ चौदह वर्षके लिए रामचन्द्र जब वनमें चले जायँगे, तब पालन करनेके कारण प्रजाका तुम्हारे पुत्रपर स्थिर स्नेह हो जायगा ॥ २१ ॥ हे अश्वपतिकी कन्या, क्रोधितके समान तुम कोपभवनमें जाओ और विना बिछौनेके भूमिपर मैले वस्त्र पहनकर सो जाओ ॥२२॥ राजाकी ओर न देखना, उनसे बातें न करना, राजाको देखकर रोने लगना, शोकित होकर केवल भूमिपर पड़ी रहना ॥ २३ ॥ तुम महाराजकी बड़ी प्यारी हो इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है, मैं जानती हूँ महाराज तुम्हारे लिए आगमें भी घुस सकते हैं ॥ २४ ॥ राजा तुम्हें क्रोधित नहीं कर सकते और न तुम्हें क्रोधित देख सकते हैं, तुम्हारा प्रिय काम करनेके लिये राजा अपने प्राणोंको भी छोड़ सकते हैं ॥ २५ ॥ राजा तुम्हारी बात टाल नहीं सकते। अरे आत्मापमानिन तू अपने सौभाग्यका बल देख ॥ २६ ॥ राजा दसरथ तुमको मणि, मुक्ता, सुवर्ण तथा अनेक प्रकारके रत्न देंगे, पर तुम उनकी ओर मन न करना ॥ २७ ॥ राजा दसरथने देवासुरसंग्राममें तुम्हें जो दो वर दिये थे वे दोनों वर तुम उन्हें स्मरण कराना और अपना मतलब न भूल जाना, भरतका राज्याभिषेक और रामको बनवास यह न भूलना ॥ २८ ॥ यदि राजा तुम्हें स्वयं उठाकर वरदें, तब तुम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रामप्रव्राजनं दूरं नव वर्षाणि पञ्च च । भरतः क्रियतां राजा पृथिव्यां पार्थिवर्षभ ॥३०॥
चतुर्दश हि वर्षाणि रामे प्रव्राजिते वनम् । रूढश्च कृतमूलश्च शेषं स्थास्यति ते सुतः ॥३१॥
रामप्रव्राजनं चैव देवि याचस्व तं वरम् । एवं सेत्स्यन्ति पुत्रस्य सर्वार्थास्तव कामिनि ॥३२॥
एवं प्रव्राजितश्चैव रामोऽरामो भविष्यति । भरतश्च गतामित्रस्तव राजा भविष्यति ॥३३॥
येन कालेन रामश्च वनात्प्रत्यागमिष्यति । अन्तर्बहिश्च पुत्रस्ते कृतमूलो भविष्यति ॥३४॥
संगृहीतमनुष्यश्च सुहृद्भिः साकमात्मवान् । प्राप्तकालं नु मन्येऽहं राजानं वीतसाध्वसा ॥३५॥
रामाभिषेकसंकल्पान्निगृह्य विनिवर्तय । अनर्थमर्थरूपेण ग्राहिता सा ततस्तया ॥३६॥
हृष्टा प्रतीता कैकेयी मन्थरामिदमब्रवीत् । सा हि वाक्येन कुब्जायाः किशोरीवोत्पथंगता॥३७॥
कैकेयी विस्मयं प्राप्य परं परमदर्शना । प्रज्ञां ते नावजानामि श्रेष्ठे श्रेष्ठाभिधायिनि ॥३८॥
पृथिव्यामसि कुब्जानामुत्तमा बुद्धिनिश्चये । त्वमेव तु ममार्थेषु नित्ययुक्ता हितैषिणी ॥३९॥
नाहं समवबुद्धयेयं कुब्जे राज्ञश्चिकीर्षितम् । सन्ति दुःसंस्थिताः कुब्जे वक्राःपरमपापिकाः॥४०॥
त्वं पद्ममिव वातेन संनता प्रियदर्शना । उरस्तेऽभिनिविष्टं वै यावत्स्कन्धात्समुन्नतम् ॥४१॥

उनकी प्रशंसा करके उनसे इस प्रकार वर माँगना ॥ २९ ॥ चौदह वर्षके लिए रामचन्द्र दूर वनमें जाँय और भरत पृथिवीके राजा बनाये जाँय ॥ ३० ॥ चौदह वर्षके लिए यदि रामचन्द्र वनमें भेज दिये जायंगे, तो तुम्हारा पुत्र जमजायगा, प्रजाओंपर उसका दबदबा हो जायगा, आगे वह आनन्दसे रह सकेगा ॥ ३१ ॥ देवि, वरमें रामचन्द्रका वनवास माँगो । इस प्रकार तुम्हारे पुत्रके सभी मनोरथ पूर्ण होंगे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार वनवास हो जानेपर रामचन्द्र प्रजाके अप्रिय हो जायँगे, उन्हें प्रजा भूल जायगी और शत्रुके न रहनेसे तुम्हारा पुत्र राजा हो जायगा ॥ ३३ ॥ जिस समय रामचन्द्र वनसे लौटकर आवेंगे, उस समय तक तुम्हारे पुत्रकी राज्यके भीतर और बाहर जड़ जमजायगी ॥ ३४ ॥ भरत भी आत्मवान् है, वह अपने मित्रोंके साथ प्रजाके लोगोंको प्रसन्न करके अपने पक्षमें मिला लेगा । इस समयका उचित कर्तव्य मैं यही समझती हूं कि तुम भय छोड़कर राजासे वर देनेके लिए वचन लो ॥ ३५ ॥ फिर उन्हें रामचन्द्रके अभिषेक करनेके विचारसे हटाओ । इस प्रकार मन्थराने बुराई, भलाईके रूपमें केकयीको समझायी ॥ ३६ ॥ हर्षित और विश्वस्त होकर केकयीने मन्थरासे यह कहा । मन्थराकी बातोंसे केकयी किशोरी बालिकाके समान अनुचित काम करनेके लिये तयार हो गयी ॥ ३७ ॥ सुन्दरी मन्थरे श्रेष्ठे, सुन्दर बोलने-वाली, मैं तुम्हारी बुद्धिका तिरस्कार नहीं करती हूँ अर्थात् तुम्हारे उपदेशके अनुसार मैं काम करूँगी ॥ ३८ ॥ कार्यसिद्धिके लिए उपाय बतलानेमें तुम इस पृथिवीकी सब कुब्जाओंसे बढ़कर हो, तुम्ही मेरी हितैषिणी हो और हितके कामोंमें सदा तत्पर रहती हो ॥ ३९ ॥ कुब्जे, राजा क्या करना चाहते हैं यह मेरी समझमें नहीं आता, तुम्हारे अतिरिक्त और लोग भी हैं, पर उनके अभिप्राय बुरे हैं, वे भी स्वयं कुटिल हैं, अतएव उनका देखना भी पाप है ॥ ४० ॥ तुम तो वायुके द्वारा तोड़े कमलके समान सुन्दर मालूम होती हो, कन्धे तक ऊँचा तुम्हारा उरस्थल भी सुन्दर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अधस्ताच्चोदरं शान्तं सुनाभमिव लज्जितम्। प्रतिपूर्णं च जघनं सुपीनौ च पयोधरौ ॥४२॥
विमलेन्दुसमं वक्त्रमहो राजसि मन्थरे। जघनं तव निर्मृष्टं रशनादामभूषितम् ॥४३॥
जङ्घे भृशमुपन्यस्ते पादौ च व्यायतावुभौ। त्वमायताभ्यां सक्थिभ्यां मन्थरे क्षौमवासिनि॥४४॥
अग्रतो मम गच्छन्ती राजसेऽतीव शोभने। आसन्याः शम्बरे मायाः सहस्रमसुराधिपे ॥४५॥
हृदये ते निविष्टास्ता भूयश्चान्याः सहस्रशः। तदेव स्थगु यदीर्घं रथघोणमिवायतम् ॥४६॥
मतयः क्षत्रविद्याश्च मायाश्चात्र वसन्ति ते। अत्र तेऽहं प्रमोक्ष्यामि मालां कुब्जे हिरण्मयीम् ॥४७॥
अभिषिक्ते च भरते राघवे च वनं गते। जात्येन च सुवर्णेन सुनिष्टप्तेन सुन्दरि ॥४८॥
लब्धार्था च प्रतीता च लेपयिष्यामि ते स्थगु। मुखे च तिलकं चित्रं जातरूपमयं शुभम् ॥४९॥
कारयिष्यामि ते कुब्जे शुभान्याभरणानि च। परिधाय शुभे वस्त्रे देवतेव चरिष्यसि ॥५०॥
चन्द्रमाह्वयमानेन मुखेनाप्रतिमानना। गमिष्यसि गतिं मुख्यां गर्वयन्ती द्विषज्जने ॥५१॥
तवापि कुब्जाः कुब्जायाः सर्वाभरणभूषिताः। पादौ परिचरिष्यन्ति यथैव त्वं सदा मम ॥५२॥
इति प्रशस्यमाना सा कैकेयीमिदमब्रवीत्। शयानां शयने शुभ्रे वेद्यामग्निशिखामिव ॥५३॥
गतोदके सेतुबन्धो न कल्याणि विधीयते। उत्तिष्ठ कुरु कल्याणं राजानमनुदर्शये ॥५४॥

है ॥ ४१ ॥ उरस्थलके नीचे उदर शान्त (पतला) है, लज्जितके समान उसमें नाभि छिपी हुई है, तुम्हारे जघन देखनेमें सुन्दर और स्तन मोटे हैं ॥ ४२ ॥ निर्मल चन्द्रमाके समान तुम्हारा मुँह है, तुम बड़ी सुन्दर हो, तुम्हारे जघन मोटे और चिकने हैं तथा करधनीसे शोभित हैं ॥ ४३ ॥ तुम्हारी जाँघ सटी हुई हैं, दोनों पैर लम्बे हैं, रेशमी वस्त्र धारणकरनेवाली मन्थरे, तुम अपनी लम्बी ऊरुओंसे बड़ी भली मालूम होती हो ॥ ४४ ॥ तुम जब मेरे आगे-आगे चलती हो तब बड़ी भली मालूम पड़ती हो, असुरराज शम्बरासुरमें जितनी माया थीं, ॥ ४५ ॥ वे सब तुम्हारे पेटमें हैं और उनके अतिरिक्त और भी हजारों मायाएँ तुम जानती हो, इसी कारण रथके आगेवाले भागके समान तुम्हारी छाती लम्बी और बड़ी हो गयी है ॥ ४६ ॥ तुम्हारे पेटमें बुद्धि, वीरता और माया निवास करती है, कुब्जे, मैं तुम्हारे गलेमें सोनेकी माला डालूँगी ॥ ४७ ॥ जब भरतका राज्याभिषेक हो जायगा और रामचन्द्र वन चले जायँगे। उत्तम जातिके सोनेकी माला मैं तुम्हारे गलेमें डालूँगी ॥४८॥ जब मेरा मनोरथ सिद्ध हो जायगा और मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगी, तब तुम्हारी छाती ढँक दूँगी, सोनेके गहनोंसे या चन्दनसे और तुम्हारे मुँहपर सुन्दर सोनेका तिलक लगवा दूँगी ॥४९॥ कुब्जे तुम्हारे लिये उत्तम-उत्तम गहने बनवा दूँगी, तुम अच्छे वस्त्र पहनकर देवताके समान घूमना ॥ ५० ॥ चंद्रमासे बराबरी करनेवाले अपने मुँहसे बड़ी सुन्दर मालूम पड़ती हो, तुम्हें प्रधान पद मिलेगा और अपनेसे द्वेष रखनेवालोंके सामने तुम अहङ्कार कर सकोगी ॥५१॥ जिस प्रकार तुम सदा मेरी सेवा किया करती हो, उसी प्रकार दूसरी कुब्जाएँ भी गहनोंसे सजी हुईं तुम्हारी चरणसेवा करेंगी ॥५२॥ इस प्रकार प्रशंसित मंथरा केकयासे बोली। केकयी सुंदर पलंगपर वेदीपर अग्निशिखाके समान सोयी हुई थी ॥५३॥ कल्याणि, जलके चले जानेपर बाँध नहीं बाँधा जाता। उठो और जैसा मैंने बतलाया है वैसा करो, सज्जनोंका कल्याण करो, राजाके सामने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तथा प्रोत्साहिता देवी गत्वा मन्थरया सह । क्रोधागारं विशालाक्षी सौभाग्यमदगर्विता ॥५५॥
अनेकशतसाहस्रं मुक्ताहारं वराङ्गना । अवमुच्य वरार्हाणि शुभान्याभरणानि च ॥५६॥
तदा हेमोपमा तत्र कुब्जावाक्यवशंगता । संविश्य भूमौ कैकेयी मन्थरामिदमब्रवीत् ॥५७॥
इह वा मां मृतां कुब्जे नृपायावेदयिष्यसि । वनं तु राघवे प्राप्ते भरतः प्राप्स्यते क्षितिम् ॥५८॥
सुवर्णेन न मे ह्यर्थो न रत्नैर्न च भोजनैः । एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते ॥५९॥

अथो पुनस्तां महिषीं महीक्षितो वचोभिरत्यर्थमहाराक्रमैः ।
उवाच कुब्जा भरतस्य मातरं हितं वचो राममुपेत्य चाहितम् ॥६०॥
प्रपत्स्यते राज्यमिदं हि राघवो यदि ध्रुवं त्वं सुता च तप्स्यसे ।
ततो हि कल्याणि यतस्व तत्तथा यथा सुतस्ते भरतोऽभिषेक्ष्यते ॥६१॥
तथातिविद्धा महिषीति कुब्जया समाहता वागिषुभिर्मुहुर्मुहुः ।
विधाय हस्तौ हृदयेऽतिविस्मिता शशंस कुब्जां कुपिता पुनः पुनः ॥६२॥
यमस्य वा मां विषयं गतामितो निशम्य कुब्जे प्रतिवेदयिष्यसि ।
वनं गते वा सुचिराय राघवे समृद्धकामो भरतो भविष्यति ॥६३॥
अहं हि नैवास्तरणानि न स्रजो न चन्दनं नाञ्जनपानभोजनम् ।
न किंचिदिच्छामि न चेह जीवनं न चेदितो गच्छति राघवो वनम् ॥६४॥

जाओ ॥ ५४ ॥ विशालाक्षी और सौभाग्यके अहंकारसे गर्वित केकयी इस प्रकार प्रोत्साहित किये जानेपर मन्थराके साथ कोपभवनमें गयी ॥ ५५ ॥ केकयीने सैकड़ोंहजार रुपयेका मुक्ताहार निकालकर फेंकदिया और भी दामी और सुन्दर गहने उसने निकालकर फेंकदिये ॥ ५६ ॥ सोनेके समान वर्णवाली केकयी कुब्जा मन्थराके कहनेमें पड़कर जमीनपर बैठगयी और मन्थरासे ऐसा बोली ॥ ५७ ॥ कुब्जे, मैं यहां कोपभवनमें मरगयी हूं यह बात राजासे कहना । रामचन्द्रके वन जानेपर भरत पृथिवी पावेंगे अर्थात् यहां मैं मरही जाऊंगी या अपना मनोरथ सिद्ध करूंगी ॥ ५८ ॥ सोना, रत्न तथा भोजनसे भी मुझे कोई मतलब नहीं है, यदि रामचन्द्रका राज्याभिषेक हुआ तो मेरा प्राणान्त अवश्य होगा ॥५९॥ पुनः महाराजकी महारानी और भरतकी माताको मन्थराने बड़े प्रभावशाली शब्दोंमें भरतका कल्याण और रामचन्द्रका अकल्याण समझाया ॥६०॥ मन्थराने कहा—यदि रामचन्द्रको राज्य मिला तो अवश्यही तुम अपने पुत्रके साथ सन्ताप पाओगी, अतएव हे कल्याणि, ऐसा प्रयत्न करो जिससे तुम्हारा पुत्र भरत राज्य पावे ॥ ६१ ॥ महारानी, मन्थराके द्वारा वचनरूपी बाणसे बारबार चुटैल हुई और बेधी गयी, उन्होंने अपना हाथ हृदयपर रखा और बड़ी विस्मित हुई, विस्मयका कारण था उनके प्रति राजाका कुव्यवहार । वे क्रोधकरके कुब्जासे बोली ॥ ६२ ॥ कुब्जे, केकयी कोपभवनसे यमराजके घरगयी, मरगयी, यह सुनकर राजासे कहना या रामचन्द्रके वन जानेपर भरतको पूर्णमनोरथ देखना ॥ ६३ ॥ मैं बिछौना, माला, चन्दन, अञ्जन, पान भोजन कुछ भी नहीं चाहती हूं, मैं जीना भी नहीं चाहती हूं, यदि रामचन्द्र यहांसे

अथैवमुक्त्वा वचनं सुदारुणं निधाय सर्वाभरणानि भामिनी ।
असंस्कृतामास्तरणेन मेदिनीं तदाधिशिश्ये पतितेव किंनरी ॥६५॥
उदीर्णसंरम्भतमोवृताननना तदावमुक्तोत्तममाल्यभूषणा ।
नरेन्द्रपत्नी विमना बभूव सा तमोवृता द्यौरिव मग्नतारका ॥६६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०

विदार्शिता यदा देवी कुब्जया पापया भृशम् । तदा शेते स्म सा भूमौ दिग्धविद्धेव किंनरी ॥ १ ॥
निश्चित्य मनसा कृत्यं सा सम्यगिति भामिनी । मन्थरायै शनैः सर्वमाचचक्षे विचक्षणा ॥ २ ॥
सा दीना निश्चयं कृत्वा मन्थरावाक्यमोहिता । नागकन्येव निःश्वस्य दीर्घमुष्णं च भामिनि ॥ ३ ॥
मुहूर्तं चिन्तयामास मार्गमात्मसुखावहम् । सा सुहृच्चार्थकामा च तं निशम्य विनिश्चयम् ॥ ४ ॥
बभूव परमप्रीता सिद्धिं प्राप्येव मन्थरा । अथ सा रुषिता देवी सम्यक्कृत्वा विनिश्चयम् ॥ ५ ॥
संविवेशावला भूमौ निवेश्य भ्रुकुटिं मुखे । ततश्चित्राणि माल्यानि दिव्यान्याभरणानि च ॥ ६ ॥
अपविद्धानि कैकेय्या तानि भूमिं प्रपेदिरे । तया तान्यपविद्धानि माल्यान्याभरणानि च ॥ ७ ॥

वन न जाय ॥ ६४ ॥ ऐसा कठोर वचन कहकर केकयीने अपने सब आभरण रख दिये और उस जमीनपर सो गयी जहां बिछौना नहीं था, पुण्यके क्षीण होनेके कारण स्वर्गसे गिरी किन्नरीके समान वह मालूम पड़ती थी ॥ ६५ ॥ बढ़े हुए क्रोधरूपी अन्धकारसे केकयीका मुंह छिप गया था । उसने अपने उत्तम माल्य और आभूषण निकाल दिये थे, राजाकी पत्नी उस समय तारकाहीन और तमोवृत आकाशके समान उदासीन मालूम पड़ती थीं ॥ ६६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका नवां सर्ग समाप्त ॥ ९ ॥

पापिनी कुब्जाने जब इस प्रकार देवी केकयीको समझाया, तब वे विषबुझे बाणसे विद्ध किन्नरीके समान जमीनपर सोगयीं ॥ १ ॥ उन्होंने मनहीमन अपना सब कर्तव्य ठीक-ठीक निश्चित करलिया, पुनः बुद्धिमती केकयीने मन्थराको सब धीरे-धीरे बतलाया । अर्थात् तुम्हारे उपदेशको इस प्रकार मैंने सफल करनेको सोचा है यह कहा ॥ २ ॥ केकयी नागकन्याके समान लम्बी और गर्म सांस लेकर (मनोरथ सिद्धिमें अनेक विघ्नोंकी आशङ्कासे) मन्थराके वचनोंसे मोहित दीन केकयीने निश्चय करके (मन्थराके उपदेशके अनुसार काम करूंगी) ॥ ३ ॥ थोड़ी देर अपने सुखके लिए उसने उपाय सोचा । केकयीने ऐसा निश्चय किया है यह जानकर उसकी हितैषिणी और मित्र ॥ ४ ॥ मन्थरा बहुतही प्रसन्न हुई, मानो कार्यसिद्धि ही होगयी हो । केकयीने भी क्रोधपूर्वक दृढ़ निश्चय किया ॥ ५ ॥ केकयी जमीनपर पड़ी रही, भौंहे मुंहकी ओर चढ़ालीं । अद्भुत मालाएँ और दिव्य गहनें ॥ ६ ॥ (जो केकयीने उतार दिये थे, वे) जमीनपर पड़े रहे । उसके द्वारा फेंके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अशोभयन्त वसुधां नक्षत्राणि यथा नभः । क्रोधागारे च पतिता सा बभौ मलिनाम्बरा ॥ ८ ॥
एकवेणीं दृढां बद्ध्वा गतसत्त्वेव किंनरी । आज्ञाप्य तु महाराजो राघवस्याभिषेचनम् ॥ ९ ॥
उपस्थानमनुज्ञाप्य प्रविवेश निवेशनम् । अद्य रामाभिषेको वै प्रसिद्ध इति जज्ञिवान् ॥१०॥
प्रियार्हां प्रियमाख्यातुं विवेशान्तःपुरं वशी । स कैकेय्या गृहं श्रेष्ठं प्रविवेश महायशाः ॥११॥
पाण्डुराभ्रमिवाकाशं राहुयुक्तं निशाकरः । शुकबर्हिसमायुक्तं क्रौञ्चहंसरुतायुतम् ॥१२॥
वादित्रस्वनसंघुष्टं कुब्जावामनिकायुतम् । लतागृहैश्चित्रगृहैश्चम्पकाशोकशोभितैः ॥१३॥
दान्तराजतसौवर्णवेदिकाभिः समायुतम् । नित्यपुष्पफलैर्वृक्षैर्वापीभिरुपशोभितम् ॥१४॥
दान्तराजतसौवर्णैः संवृतं परमासनैः । विविधैरन्नपानैश्च भक्ष्यैश्च विविधैरपि ॥१५॥
उपपन्नं महार्हैश्च भूषणैस्त्रिदिवोपमम् । स प्रविश्य महाराजः स्वमन्तःपुरमृद्धिमत् ॥१६॥
न ददर्श स्त्रियं राजा कैकेयीं शयनोत्तमे । स कामबलसंयुक्तो रत्यर्थी मनुजाधिपः ॥१७॥
अपश्यन्दयितां भार्यां पप्रच्छ विषसाद च । नहि तस्य पुरा देवी तां वेलामत्यवर्तत ॥१८॥
न च राजा गृहं शून्यं प्रविवेश कदाचन । ततो गृहगतो राजा कैकेयीं पर्यपृच्छत ॥१९॥
यथापुरमविज्ञाय स्वार्थलिप्सुमपण्डिताम् । प्रतिहारी त्वथोवाच संत्रस्ता तु कृताञ्जलिः ॥२०॥

गहने और मालाएँ ॥७॥ पृथिवीपर वैसेही शोभते थे जैसे आकाशमें नक्षत्र शोभते हैं। वह मलिन वस्त्र पहनकर कोपभवनमें पड़गयी ॥८॥ मजबूत एक चोटी उसने बनाली, वह मृतक किन्नरीके समान मालूम पड़ती थी। महाराज दसरथ वसिष्ठको रामचन्द्रके अभिषेककी सामग्रियां ॥९॥ एकत्र करनेकी आज्ञा देकर रनिवासमें गये। आजही रामचन्द्रका राज्याभिषेक निश्चय हुआ है, इसकी खबर रानियोंको अभी तक नहीं मालूम हुई, यह बात राजा दसरथने जानी ॥ १० ॥ रानियोंमें श्रेष्ठ केकयीको यह प्रिय संवाद सुनानेके लिए जितेन्द्रिय राजा रनिवासमें गये। पहले यशस्वी राजा केकयीके ही प्रशंसित घरमें गये ॥ ११ ॥ जिस प्रकार पीले बादलसे ढके हुए आकाशमें राहुसे घिरा चन्द्रमा जाता हो। उस घरमें शुक, मयूर पले थे, हंस सारस बोल रहे थे ॥ १२ ॥ बाजे बज रहे थे, कुब्जा और बावनी (रनिवासकी रक्षा करनेवाली) उपस्थित थीं। लताओंका घर था, तथा चित्रोंसे शोभित था, वहां चम्पक और अशोक लगे थे ॥१३॥ हाथीदाँत चांदी और सोनेकी वेदियां बनी हुई थीं, प्रतिदिन फल पुष्प देनेवाले वृक्ष थे और वापियां थीं ॥१४॥ हाथीदात, चांदी और सोनेके आसन बिछे हुए थे। तरह-तरहके अन्नपान तथा अनेक प्रकारकी भोजनकी सामग्रियाँ वहां रखी हुई थीं ॥ १५ ॥ वहां बहुतसे दामी गहने रखे हुए थे, जिनसे वह गृह स्वर्गके समान मालूम पड़ता था। महाराजने ऐसे ऐश्वर्ययुक्त अपने घरमें जाकर ॥ १६ ॥ उत्तम पलँगपर महारानी केकयीको नहीं देखा। वहां जाकर राजाके मनमें काम उत्पन्न हुआ और वे रति चाहनेलगे ॥ १७ ॥ प्रिय भार्याको वहां न देखकर राजाने पूछा और वे दुखी हुए। राजाके इससमयको देवी केकयीने आजतक भी नहीं लांघा, अर्थात् ऐसा कभी नहीं हुआ कि राजा अपने समय पर महारानीके यहां आवें और महारानीको न पावें ॥ १८ ॥ सूने घरमें राजाने आजतक कभी प्रवेश नहीं किया था, अबएव घरमें आकर राजा केकयीका पता पूछने लगे ॥ १९ ॥ अविवेकिनी केकयी स्वार्थ-साधन करना चाहती

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देव देवी भृशं क्रुद्धा क्रोधागारमभिद्रुता । प्रतीहार्या वचः श्रुत्वा राजा परमदुर्मनाः ॥२१॥
विषसाद पुनर्भूयो लुलितव्याकुलेन्द्रियः । तत्र तां पतितां भूमौ शयानामतथोचिताम् ॥२२॥
प्रतप्त इव दुःखेन सोऽपश्यज्जगतीपतिः । स वृद्धस्तरुणीं भार्यां प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ॥२३॥
अपापः पापसंकल्पां ददर्श धरणीतले । लतामिव विनिष्कृत्तां पतितां देवतामिव ॥२४॥
किंनरीमिव निर्धूतां च्युतामप्सरसं यथा । मायामिव परिभ्रष्टां हरिणीमिव संयताम् ॥२५॥
करेणुमिव दिग्धेन विद्धां मृगयुना वने । महागज इवारण्ये स्नेहात्परमदुःखिताम् ॥२६॥
परिमृज्य च पाणिभ्यामभिसंत्रस्तचेतनः । कामी कमलपत्राक्षीमुवाच वनितामिदम् ॥२७॥
न तेऽहमभिजानामि क्रोधमात्मनि संश्रितम् । देवि केनाभियुक्तासि केन वासि विमानिता ॥२८॥
यदिदं मम दुःखाय शेषे कल्याणि पांसुषु । भूमौ शेषे किमर्थं त्वं मयि कल्याणचेतसि ॥२९॥
भूतोपहतचित्तेव मम चित्तप्रमाथिनि । सन्ति मे कुशला वैद्यास्त्वभितुष्टाश्च सर्वशः ॥३०॥
सुखितां त्वांकरिष्यन्ति व्याधिमाचक्ष्व भामिनि। कस्य वापि प्रियं कार्यं केन वा विप्रियं कृतम् ॥३१॥
कः प्रियं लभतामद्य को वा सुमहदप्रियम् ।मा रौत्सीर्मा च कार्षीस्त्वं देवि संपरिशोषणम्॥३२॥

है, भरतको राज्य दिलवाना चाहती है, यह बात राजाको मालूम न थी, अतएव उन्होंने पहलेहीके समान एक प्रतिहारीसे पूछा । प्रतिहारी डरती हुई हाथ जोड़कर बोली ॥ २० ॥ देव, देवी बहुत क्रुद्ध हैं और वे कोपभवनमें चली गयी हैं । प्रतिहारीकी बात सुनकर राजा बहुत ही दुःखी हुए ॥२१॥ केकयीको न देखकर ही राजा दुखी हुए थे, अब उनके क्रोधकी बात सुनकर वे और अधिक दुःखी हुए, उनकी इन्द्रियां चञ्चल हो गयीं । कोपभवनमें अनुचित अवस्थामें केकयीको राजाने जमीनपर पड़ी देखा ॥२२॥ वृद्ध राजाको वह युवती स्त्री प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय थी। दुःखसे जलकर राजाने उसे उस अवस्थामें देखा ॥२३॥ कपटहीन राजाने कपटी केकयीको भूमिपर पड़ी कटी लताके समान अथवा आकाशसे गिरे देवताके समान देखा ॥२४॥ तिरस्कृत किन्नरीके समान, स्वर्गभ्रष्ट अप्सराके समान असफल मायाके समान, बंधी हुई अप्सराके समान ॥२५॥ व्याधके द्वारा विषबुझे बाणसे विद्ध हथिनीके समान, अत्यन्त दुःखिनी केकयीको महाराजने जङ्गलमें हाथीके समान देखा ॥२६॥ कामी राजा घबड़ागया, उसने केकयीको हाथसे पोंछा और उससे कहा कमलनेत्रे ॥२७॥ हमारे ऊपर तुम्हारा क्रोध है यह बात मैं नहीं जानता था, देवि किसने तुम्हारा तिरस्कार किया है या किसने तुम्हारी निन्दा की है ॥ २८ ॥ जिससे मुझे दुःख पहुंचानेके लिए तुम धूलमें सोरही हो । हे सुन्दर हृदयवाली, मेरे रहते तुम जमीनपर क्यों सोरही हो ॥२९॥ तुम भूत बाधासे व्याकुलसी जान पड़ती हो, अतएव मेरे चित्तको दुःख होरहा है । मेरे यहां बड़े निपुण वैद्य हैं, वे सब प्रकारसे मुझपर प्रसन्न हैं, उनसे किसी प्रकारके अनिष्टकी आशंका नहीं है ॥३०॥ भामिनि, रोग बतलाओ, वे तुमको आराम करदेंगे । या तुम किसीका कुछ उपकार करना चाहती हो अथवा किसीने तुम्हारा अपकार किया है, तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध काम किया है ॥ ३१ ॥ बतलाओ कौन अपना मनोरथ पावे और कौन संकटमें फँसे । किसीका प्रिय करना चाहती हो तो बतलाओं मैं उसका प्रिय करूं, यदि तुम किसीका अप्रिय करना चाहती हो तो वह भी कहो मैं उसका अप्रिय करूं ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अवध्यो वध्यतां को वा वध्यः को वा विमुच्यताम्। दरिद्रः को भवेदाढ्यो द्रव्यवान्वाप्यकिंचनः ॥३३॥
अहं च हि मदीयाश्च सर्वे तव वशानुगाः। न ते कांचिदभिप्रायं व्याहन्तुमहमुत्सहे ॥३४॥
आत्मनो जीवितेनापि ब्रूहि यन्मनसि स्थितम्। बलमात्मनि जानन्ती न मां शङ्कितुमर्हसि ॥३५॥
करिष्यामि तव प्रीतिं सुकृतेनापि ते शपे। यावदावर्तते चक्रं तावती मे वसुंधरा ॥३६॥
द्राविडाः सिन्धुसौवीराः सौराष्ट्रा दक्षिणापथाः। वङ्गाङ्गमगधा मत्स्याः समृद्धाः काशिकोसलाः॥३७॥
तत्र जातं बहु द्रव्यं धनधान्यमजाविकम्। ततो वृणीष्व कैकेयि यद्यत्त्वं मनसेच्छसि ॥३८॥
किमायासेन ते भीरु उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शोभने। तत्त्वं मे ब्रूहि कैकेयि यतस्ते भयमागतम्।
तत्ते व्यपनयिष्यामि नीहारमिव रश्मिवान् ॥ ३९ ॥
तथोक्ता सा समाश्वस्ता वक्तुकामा तदप्रियम्। परिपीडयितुं भूयो भर्तारमुपचक्रमे ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे दशमः सर्गः ॥१०॥

देवि, मत रोओ और अपने शरीरको कष्ट मत दो ॥ ३२ ॥ किस अवध्यका तुम वध करना चाहती हो, अथवा किस वध्यको तुम मुक्त करना चाहती हो, किस दरिद्रको धनवान् बनाना चाहती हो अथवा किस धनीको दरिद्र बनाना चाहतीहो ॥ ३३ ॥ मैं और मेरा जो कुछ है वह सब तुम्हारे अधीन है, तुम्हारी इच्छाको अपूर्ण करना मैं नहीं चाहता ॥ ३४ ॥ तुम्हारे मनमें जो हो वह कहो, मैं अपने प्राणोंसे भी उसे सिद्ध करूंगा। तुम अपना बल जानती हो, अर्थात् मुझपर तुम्हारा कितना अधिकार है यह बात तुम्हें मालूम है, फिर तुम्हे मुझपर शंका नहीं करनी चाहिए ॥३५॥ मैं धर्मसे शपथ करके कहता हूं कि तुम्हारा प्रिय मैं करूंगा, तुम जैसे प्रसन्न होगी वह मैं करूंगा, सूर्यका चक्र जहाँ तक घूमता है अर्थात् जहाँ तक सूर्यका प्रकाश है वहाँ तक भूमि मेरी है, उस भूमिपर मेरा अधिकार है ॥३६॥ द्रविड़, सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिण देश, वंग, अंग, मगध, मत्स्य तथा धनधान्यसे भरे पूरे काशी और कोशल ये सब मेरे हैं ॥ ३७ ॥ उन देशोंमें उत्पन्न धनधान्य, बकरी, भेंड आदि सब मेरी हैं, जो तुम चाहो वह इनमेंसे ले सकती हो ॥ ३८ ॥ भीरु, तुम क्यों तकलीफ कररही हो, उठो, शोभने उठो, बात क्या है वह मुझसे कहो जिससे तुम इतना डरी हो, जिस प्रकार सूर्य कुहरेको नष्ट करता है उसी प्रकार मैं तुम्हारे भयके कारणको नष्ट कर दूंगा ॥३९॥ राजाकी ऐसी बातें सुनकर केकयी आश्वस्त हुई, उसकी घबड़ाहट दूर हुई, वह अपना अभिप्राय जो राजाको अप्रिय था कहनेके लिए तयार हुई और राजाको पुनः पीड़ा देने लगी (भूमिपर पड़ी रहने, कुछ उत्तर न देने आदि चेष्टाओं से) ॥ ४० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका दसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १० ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकादशः सर्गः ११

तं मन्मथशरैर्विद्धं कामवेगवशानुगम् । उवाच पृथिवीपालं कैकेयी दारुणं वचः ॥ १ ॥
नास्मि विप्रकृता देव केनचिन्नावमानिता । अभिप्रायस्तु मे कश्चित्तमिच्छामि त्वया कृतम् ॥ २ ॥
प्रतिज्ञां प्रतिजानीष्व यदि त्वं कर्तुमिच्छसि । अथ ते व्याहरिष्यामि यथाभिप्रार्थितं मया ॥ ३ ॥
तामुवाच महाराजः कैकेयीमीषदुत्स्मयः । कामी हस्तेन संगृह्य मूर्धजेषु भुवि स्थिताम् ॥ ४ ॥
अवलिप्ते न जानासि त्वत्तः प्रियतरो मम । मनुजा मनुजव्याघ्राद्रामादन्यो न विद्यते ॥ ५ ॥
तेनाजय्येन मुख्येन राघवेण महात्मना । शपे ते जीवनार्हेण ब्रूहि यन्मनसेप्सितम् ॥ ६ ॥
यं मुहूर्तमपश्यंस्तु न जीवे तमहं ध्रुवम् । तेन रामेण कैकेयि शपे ते वचनक्रियाम् ॥ ७ ॥
आत्मना चात्मजैश्चान्यैर्वृणे यं मनुजर्षभम् । तेन रामेण कैकेयि शपे ते वचनक्रियाम् ॥ ८ ॥
भद्रे हृदयमप्येतदनुमृश्योद्धरस्व मे । एतत्समीक्ष्य कैकेयि ब्रूहि यत्साधु मन्यसे ॥ ९ ॥
बलमात्मनि पश्यन्ती न विशङ्कितुमर्हसि । करिष्यामि तव प्रीतिं सुकृतेनापि ते शपे ॥१०॥
सा तदर्थमना देवी तमाभिप्रायमागतम् । निर्माध्यस्थ्याच्च हर्षाच्च बभाषे दुर्वचं वचः ॥११॥
तेन वाक्येन संहृष्टा तमाभिप्रायमात्मनः । व्याजहार महाघोरमभ्यागतमिवान्तकम् ॥१२॥

राजा दशरथ कामबाणोंसे विद्ध थे, अतएव वह कामके अधीन होगये थे, केकयी उनसे कठोर वचन बोली ॥१॥ देव, किसीने मुझे क्रोध नहीं दिलाया है और न किसीने मेरा अपमान ही किया है, मेरा कुछ मतलब है, मैं चाहती हूँ कि आप उसे पूरा करें ॥२॥ यदि आप मेरी बात पूरी करना चाहते हों तो करनेकी प्रतिज्ञा करें, वचन दें, तब मैं अपना मतलब आपको सुनाऊँ ॥ ३ ॥ केकयीकी बातोंसे कामी राजाको थोड़ी हँसी आयी, वे जमीनमें पड़ी केकयीके बाल अपने हाथोंसे सुलझाते हुए बोले ॥ ४ ॥ अभिमानिनि, क्या तुम नहीं जानती कि मनुष्यश्रेष्ठ रामचन्द्रको छोड़ कर तुमसे बढ़कर मुझे दूसरा मनुष्य प्रिय नहीं है ? ॥ ५ ॥ उन अजेय, जीवनसे भी श्रेष्ठ महात्मा रामचन्द्रकी शपथ मैं तुम्हारे लिए करता हूँ । कहो तुम्हारे मनमें क्या है, तुम क्या चाहती हो ॥ ६ ॥ जिस रामचन्द्रको एक मुहूर्त भी बिना देखे मैं नहीं जी सकता, केकयी, उन रामचन्द्रकी शपथ मैं तेरे लिए करता हूँ, तुम जो कहोगी वह मैं करूँगा ॥ ७ ॥ अपनेसे तथा अपने अन्यपुत्रोंके बदलेमें जिस रामचन्द्रको मैं वरण करता हूं केकयी, उन्हीं रामचन्द्रकी शपथ मैं तेरे लिए करता हूं, तुम जो कहोगी वह मैं करूँगा ॥ ८ ॥ भद्रे, इस शपथ करनेसे मेरे हृदयकी अवस्था जान लो और मेरा उद्धार करो, मैं जो कहता हूँ वही करता हूँ यह जानकर, केकयी ! जो तुम्हारा मनोरथ हो वह कहो ॥ ९ ॥ अपने बलका विचार करके तुम्हें अपनी मनोरथसिद्धिमें शंका नहीं करनी चाहिए (मुझपर तुम्हारा बहुत अधिक प्रभाव है, और वह तुम्हारा बड़ा बल है) । मैं अपने धर्मकी शपथ करके कहता हूं कि मैं तुम्हें प्रसन्न करूँगा, तुम जो चाहती हो वह करूँगा ॥ १० ॥ अपना अभिप्राय मनमें रखती हुई केकयीको मालुम हुआ कि मनोरथसिद्धिका अवसर आया है । उसका भरतपर पक्षपात हो गया था, अतएव प्रसन्नता पूर्वक उसने कठोर वचन कहे ॥ ११ ॥ दशरथके तीन बार शपथ करनेके कारण केकयी बहुत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यथाक्रमेण शपसे वरं मम ददासि च । तच्छृण्वन्तु त्रयस्त्रिंशद्देवाः सेन्द्रपुरोगमाः ॥१३॥
चन्द्रादित्यौ नभश्चैव ग्रहा रात्र्यहनी दिशः । जगच्च पृथिवी चेयं सगन्धर्वाः सराक्षसाः ॥१४॥
निशाचराणि भूतानि गृहेषु गृहदेवताः । यानि चान्यानि भूतानि जानीयुर्भाषितं तव॥१५॥
सत्यसन्धो महातेजा धर्मज्ञः सत्यवाक्शुचि । वरं मम ददात्येष सर्वे शृण्वन्तु दैवताः ॥१६॥
इति देवी महेष्वासं परिगृह्याभिशस्य च । ततः परमुवाचेदं वरदं काममोहितम् ॥१७॥
स्मर राजन्पुरा वृत्तं तस्मिन्देवासुरे रणे । तत्र त्वां च्यावयच्छत्रुस्तव जीवितमन्तरा ॥१८॥
तत्र चापि मया देव यत्त्वं समभिरक्षितः । जाग्रत्या यतमानायास्ततो मे प्रददौ वरौ ॥१९॥
तौ दत्तौ च वरौ देव निक्षेपौ मृगयाम्यहम् । तवैव पृथिवीपाल सकाशे रघुनन्दन ॥२०॥
तत्प्रतिश्रुत्य धर्मेण न चेद्दास्यसि मे वरम् । अद्यैव हि प्रहास्यामि जीवितं त्वद्विमानिता॥२१॥
वाङ्मात्रेण तदा राजा कैकेय्या स्ववशं कृतः । प्रचस्कन्द विनाशाय पाशं मृग इवात्मनः ॥२२॥
ततः परमुवाचेदं वरदं काममोहितम् । वरौ देयौ त्वया देव तदा दत्तौ महीपते ॥२३॥
तौ तावदहमद्यैव वक्ष्यामि शृणु मे वचः । अभिषेकसमारम्भो राघवस्योपकल्पितः ॥२४॥
अनेनैवाभिषेकेण भरतो मेऽभिषिच्यताम् । यो द्वितीयो वरो देव दत्तः प्रीतेनमे त्वया ॥२५॥

प्रसन्न हो गयी थी और समीप आये हुए यमराजके समान उसने अपना कठोर अभिप्राय प्रकाशित किया ॥ १२ ॥ उसने कहा जिस प्रकार आप शपथ कर रहे हैं तथा मुझे वरदान देनेको कहते हैं, वह इन्द्रप्रभृति तैंतीस देवता सुनें, अर्थात् वे भी इसके साक्षी बनें ॥ १३ ॥ चन्द्रसूर्य्य, आकाश, ग्रह, रात, दिन, दिशाएँ, जगत् यह पृथिवी, गन्धर्व और राक्षस, निशाचर, भूत, घरके देवता इनके अतिरिक्त और जो कोई प्राणी हों वे आपकी बात सुनें ॥ १४ ॥ १५ ॥ सत्यप्रतिज्ञ महातेजस्वी, धर्मात्मा, सत्यवादी, और शुद्ध राजा मुझे वर दे रहे हैं, यह सब देवता सुनें, अर्थात् सब देवता उसके साक्षी रहें ॥ १६ ॥ इस प्रकार धनुर्धारी राजाको अपने जालमें फांस कर तथा अपनी कार्य-सिद्धिके लिए उनकी प्रशंसा कर देवी केकयी वर देनेको उत्सुक काममोहित राजासे बोली ॥१७॥ महाराज, देवासुर-संग्राम-जो पहले हुआ था उसे आप स्मरण करें । शत्रुने आपको पराक्रमहीन बना दिया था, केवल आपके प्राण नहीं लिये थे ॥ १८ ॥ देव, उस समय मैंने जागकर आपकी रक्षा की थी, आपके प्राणोंको बचानेके लिए यत्न किया था, अतएव आपने उस समय दो वर मुझे दिये थे ॥ १९ ॥ महाराज, वे दोनों वर आपहीके पास न्यास रूपमें रख दिये गये थे, मैं उन्हीं वरोंको ढूँढ़ती हूं अर्थात् चाहती हूं ॥२०॥ इस प्रकार आप धर्मपूर्वक प्रतिज्ञा करके यदि मुझे वे दोनों वर न देंगे तो आपके द्वारा तिरस्कृत होकर मैं आपही अपने प्राण दे दूंगी ॥ २१ ॥ वचनोंके द्वारा केकयीके वशमें हुए राजा अपने विनाशके लिये मृगके समान पाशके पास गये ॥२२॥ तदनन्तर काममोहित राजासे केकयी पुनः बोली, महाराज, पहलेके दिये हुए वे दोनों वर आप दें ॥ २३ ॥ वे दोनों वर मैं आजही कहूंगी, आप सुनें । आपने रामचन्द्रका अभिषेक करनेका निश्चय किया है ॥२४॥ इन्हीं अभिषेककी सामग्रियोंसे आप मेरे भरतका अभिषेक करें, देव, प्रसन्न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तदा देवासुरे युद्धे तस्य कालोऽयमागतः । नव पञ्च च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः ॥२६॥
चीराजिनधरो धीरो रामो भवतु तापसः । भरतो भजतामद्य यौवराज्यमकण्टकम् ॥२७॥
एष मे परमः कामो दत्तमेव वरं वृणे । अद्य चैव हि पश्येयं प्रयान्तं राघवं वने ॥२८॥
स राजराजो भव सत्यसंगरः कुलं च शीलं च हि जन्म रक्ष च ।
परत्र वासे हि वदन्त्यनुत्तमं तपोधना सत्यवचो हितं नृणाम् ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२

ततः श्रुत्वा महाराजः कैकेय्या दारुणं वचः । चिन्तामभिसमापेदे मुहूर्तं प्रतताप च ॥ १ ॥
किं नु मेऽयं दिवास्वप्नश्चित्तमोहोऽपि वा मम । अनुभूतोपसर्गो वा मनसो वाप्युपद्रवः ॥ २ ॥
इति संचिन्त्य तद्राजा नाध्यगच्छत्तदा सुखम् । प्रतिलभ्य ततः संज्ञां कैकेयीवाक्यतापितः ॥ ३ ॥
व्यथितो विक्लवश्चैव व्याघ्रीं दृष्ट्वा यथा मृगः । असंवृतायामासीनो जगत्यां दीर्घमुच्छ्वसन् ॥ ४ ॥
मण्डले पन्नगो रुद्धो मन्त्रैरिव महाविषः । अहो धिगिति सामर्षो वाचमुक्त्वा नराधिपः ॥ ५ ॥
मोहमापेदिवान्भूयः शोकोपहतचेतनः । चिरेण तु नृपः संज्ञां प्रतिलभ्य सुदुःखितः ॥ ६ ॥

होकर जो दूसरा वर आपने ॥ २५ ॥ उस देवासुरसंग्राममें दिया है उसका समय आगया है । चौदह वर्षोंतक दण्डकारण्य वनमें जाकर, ॥ २६ ॥ वल्कल चर्म धारण कर धीर रामचन्द्र तपस्वी बनें और भरत शत्रुहीन यौवराज्यपदका भोग करें ॥ २७ ॥ यही मेरा सर्वश्रेष्ठ मनोरथ है, आपका दिया हुआ ही वर मैं मांगती हूं । मैं आज ही रामचन्द्रको वनमें जाते हुए देखना चाहती हूं ॥ २८ ॥ राजाधिराज, आप सत्यप्रतिज्ञ बनें और इस प्रकार अपने कुल शील और जन्मकी रक्षा करें । तपस्वी लोग, परलोकमें सत्यही मनुष्योंका सर्वोत्तम हितकारी है, ऐसा कहते हैं ॥२९॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११ ॥

केकयीके इस कठोर वचनको सुनकर राजा दसरथ बहुत ही चिन्तित हुए और एक मुहूर्तके लिए मूर्च्छित होगये ॥ १ ॥ राजा दसरथ सोच रहे थे, क्या यह मेरा दिनका स्वप्न है, या मुझे चित्तमोह हो गया है अर्थात् गर्मी से चित्तभ्रम हो गया है, या पूर्वजन्मके अनुभूत किसी बातका स्मरण हो रहा है, अथवा यह कोई मानसिक विकार हो रहा है, उन्माद रोग हो रहा है ॥ २ ॥ केकयीके वचनोंसे पीड़ित राजा इस प्रकार सोच कर कुछ निश्चित न कर सके और मूर्च्छित हो गये । तदनन्तर होश आनेपर, ॥ ३ ॥ व्यथित और व्याकुल राजा जिस प्रकार बाघिनको देखकर मृगा व्याकुल होता है, बिना बिछौने-की जमीनपर बैठकर दीर्घ उच्छ्वास लेने लगे ॥ ४ ॥ मन्त्रप्रयोगके द्वारा मण्डलमें घिरा महाविषधर सर्पके समान बड़े क्रोधसे राजाने कहा—धिक्कार है ॥५॥ पुनः वे मूर्च्छित हो गये, क्यों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कैकेयीमब्रवीत्क्रुद्धो निर्दहन्निव तेजसा । नृशंसे दुष्टचारित्रे कुलस्यास्य विनाशिनि ॥ ७ ॥
किं कृतं तव रामेण पापे पापं मयापि वा । सदा ते जननीतुल्यां वृत्तिं वहति राघवः ॥ ८ ॥
तस्यैवं त्वमनर्थाय किंनिमित्तमिहोद्यता । त्वं मयात्मविनाशाय भवनं स्वं निवेशिता ॥ ९ ॥
अविज्ञानान्नृपसुता व्याली तीक्ष्णविषा यथा । जीवलोको यदा सर्वो रामस्याह गुणस्तवम् ॥१०॥
अपराधं कमुद्दिश्य त्यक्ष्यामीष्टमहं सुतम् । कौसल्यां च सुमित्रां च त्यजेयमपि वा श्रियम्॥११॥
जीवितं चात्मना रामं नत्वेव पितृवत्सलम् । परा भवति मे प्रीतिर्दृष्ट्वा तनयमग्रजम् ॥१२॥
अपश्यतस्तु मे रामं नष्टं भवति चेतनम् । तिष्ठेल्लोको विना सूर्यं सस्यं वा सलिलं विना ॥१३॥
न तु रामं विना देहे तिष्ठेत्तु मम जीवितम् । तदलं त्यज्यतामेष निश्चयः पापनिश्चये ॥१४॥
अपि ते चरणौ मूर्ध्ना स्पृशाम्येष प्रसीद मे । किमर्थं चिन्तितं पापे त्वया परमदारुणम् ॥१५॥
अथ जिज्ञाससे मां त्वं भरतस्य प्रियाप्रिये । अस्तु यत्तत्त्वया पूर्वं व्याहृतं राघवं प्रति ॥१६॥
स मे ज्येष्ठसुतः श्रीमान्धर्मज्येष्ठ इतीव मे । तत्त्वया प्रियवादिन्या सेवार्थं कथितं भवेत ॥१७॥
तच्छ्रुत्वा शोकसंतप्ता संतापयसि मां भृशम् । आविष्टासि गृहे शून्ये सा त्वं परवशं गता ॥१८॥

कि शोकसे उनकी बुद्धि मारी गयी थी, बहुत देरके बाद उन्हें होश आया और वे बड़े दुःखित हुए ॥ ६ ॥ राजाने क्रोधपूर्वक केकयीसे कहा, मानो उसे अपने तेजसे जला रहे हों । अरे क्रूर दुष्ट चरित्रवाली तथा इस कुलका नाश करनेवाली, पापिन, रामचन्द्रने तेरा क्या अपराध किया है अथवा मैंने ही क्या अपराध किया है ? रामचन्द्र तो सदा तेरे साथ माताकासा व्यवहार करते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ उसीका नाश करनेके लिए तू आज किस कारण तयार हुई है, मैंने अपने नाशके लिए तुझे अपने घरमें स्थान दिया है ॥ ९ ॥ तेरे दुर्गुणोंको जानकर राजकन्याके भ्रमसे विषधर सांपिनके समान मैंने तुम्हें अपने घरमें स्थान दिया है । सभी लोग रामचन्द्रके गुणोंकी स्तुति कर रहे हैं, उनकी प्रशंसा कर रहे हैं ॥ १० ॥ फिर अपने प्रियपुत्रका किस अपराधसे मैं त्याग करूं । कौसल्या, सुमित्रा तथा इस राज्यका भी मैं त्याग कर सकता हूँ ॥ ११ ॥ पर, अपनी योग्यतासे मेरे जीवनके समान बने हुए पितृभक्त रामचन्द्रका त्याग नहीं कर सकता, क्योंकि ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्रको देखनेसे मेरी प्रसन्नता बहुत अधिक बढ़ जाती है ॥ १२ ॥ रामचन्द्रको जब मैं नहीं देखता तब मेरी चेतना नष्ट हो जाती है । सूर्यके बिना संसार बना रहे, पानीके बिना धान ठहरा रहे, ॥ १३ ॥ पर रामचन्द्रके बिना मेरे शरीरमें क्या प्राण ठहरे रहेंगे, नहीं । अतएव, बुरा निश्चय करनेवाली, तू अपना यह (रामचन्द्रको वन भेजनेका) निश्चय छोड़दे ॥ १४ ॥ मैं तेरे चरणोंपर अपना सिर रखता हूँ, तू प्रसन्न होजा । अरे पापिन, तूने ऐसी भयानक बात किसलिए सोची ॥ १५ ॥ यदि तू यह जानना चाहती हो कि राजा भरतपर प्रेम करते हैं या नहीं, तो अच्छा है, भरतके सम्बन्धमें तुमने जो पहले कहा है वही हो, अर्थात् भरतकाही अभिषेक हो ॥ १६ ॥ तुमने पहले मुझसे कहा है कि रामचन्द्र मेरे ज्येष्ठ पुत्र हैं, वे धर्म से बड़े हैं, यह शायद प्रिय बोलनेवाली तुमने मुझे खुश करनेही केलिए कहा हो, नहीं तो आज उन्हें वनवास देनेके लिए तयार क्यों होती ॥ १७ ॥ अतएव रामचन्द्रके अभिषेकका संवाद सुनकर तुम दुःखित हो गयी हो और मुझेभी दुःखित बना रही हो,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इक्ष्वाकूणां कुले देवि संप्राप्तः सुमहानयम् । अनयो नयसंपन्ने यत्र ते विकृता मतिः ॥१९॥
नहि किंचिदयुक्तं वा विप्रियं वा पुरा मम । अकरोस्त्वं विशालाक्षि तेन न श्रद्दधामि ते ॥२०॥
ननु ते राघवस्तुल्यो भरतेन महात्मना । बहुशो हि स्म वाले त्वं कथाः कथयसे मम ॥२१॥
तस्य धर्मात्मनो देवि वने वासं यशस्विनः । कथं रोचयसे भीरु नव वर्षाणि पञ्च च ॥२२॥
अत्यन्तसुकुमारस्य तस्य धर्मे कृतात्मनः । कथं रोचयसे वासमरण्ये भृशदारुणे ॥२३॥
रोचयस्यभिरामस्य रामस्य शुभलोचने । तव शुश्रूषमाणस्य किमर्थं विप्रवासनम् ॥२४॥
रामो हि भरताद्भूयस्तव शुश्रूषते सदा । विशेषं त्वयि तस्मात्तु भरतस्य न लक्षये ॥२५॥
शुश्रूषां गौरवं चैव प्रमाणं वचनक्रियाम् । कस्तु भूयस्तरं कुर्यादन्यत्र पुरुषर्षभात् ॥२६॥
बहूनां स्त्रीसहस्राणां बहूनां चोपजीविनाम् । पारिवादोऽपवादो वा राघवे नोपपद्यते ॥२७॥
सान्त्वयन्सर्वभूतानि रामः शुद्धेन चेतसा । गृह्णाति मनुजव्याघ्रः प्रियैर्विषयवासिनः ॥२८॥
सत्येन लोकाञ्जयति द्विजान्दानेन राघवः । गुरूञ्छुश्रूषया वीरो धनुषा युधि शात्रवान् ॥२९॥
सत्यं दानं तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम् । विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे ॥३०॥

दूसरोंके समझानेसे इस सूने घरमें (कोपभवनमें) बैठी हो ॥ १८ ॥ नीतियुक्त इक्ष्वाकुकुलमें यह बहुत बड़ा नीतिविरुद्ध काम होने जा रहा है। (बड़ेके रहते छोटेका राज्याभिषेक), क्योंकि इस समय तुम्हारी बुद्धि विकृत हो गयी है, तुम्हें मर्यादाका ध्यान नहीं है ॥ १९ ॥ विशालाक्षी, आजतक तुमने मेरा कुछ भी अपराध नहीं किया है, मेरी कोईभी बुराई नहीं की है, अतएव तुम्हारी इन बातोंपर विश्वास नहीं होता, भरतके लिए राज्य और रामके लिए वनवास तुम्हारी इस बातको मैं सत्य नहीं समझता ॥ २० ॥ पहले बहुत बार बातचीतमें तुमने कहा है कि मुझे जैसे महात्मा भरत प्रिय हैं वैसेही राम ॥ २१ ॥ भीरु, उन्हीं धर्मात्मा और यशस्वी रामचन्द्रका चौदह वर्षोंके लिए वनमें रहना कैसे अच्छा समझती हो ॥ २२ ॥ धीर रामचन्द्र अत्यन्त सुकुमार हैं तथा धर्ममें श्रेष्ठ हैं, उनका भयानक वनमें रहना तुम कैसे अच्छा समझती हो ॥ २३ ॥ सुनयने, जो रामचन्द्र तुम्हारी सेवा करते हैं उनको देशनिकाला देना तुम क्यों पसन्द करती हो, ॥ २४ ॥ किसीभी भरतसे अधिक तुम्हारी सेवा करते हैं, रामचन्द्रकी अपेक्षा अधिक भरत तुम्हारी सेवा करता है यह नहीं देखा गया है ॥ २५ ॥ तुम्हारी सेवा, तुम्हारी प्रतिष्ठा, तुम्हारी श्रेष्ठता और तुम्हारे वचनोंका पालन पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रके अतिरिक्त दूसरा कौन करेगा ॥ २६ ॥ हजारों स्त्रियाँ हैं और अनेक नौकर हैं, पर रामचन्द्रके सम्बन्धमें कोई भी परिवाद (सकारण निन्दा) या अपवाद (निष्कारण निन्दा) नहीं सुना गया है ॥ २७ ॥ रामचन्द्र सब प्राणियोंके साथ शुद्धचित्तसे व्यवहार करते हैं, और देशवासियोंका अभीष्ट पूरा करके उन्हें अपने वशमें करते हैं ॥ २८ ॥ रामचन्द्र सत्यके द्वारा लोकको जीतते हैं, ब्राह्मणोंको दानके द्वारा जीतते हैं, गुरुओंको (अपने बड़ोंको) सेवाके द्वारा तथा युद्धक्षेत्रमें शत्रुओंको धनुषके द्वारा जीतते हैं ॥ २९ ॥ सत्य, दान (पारलौकिक कल्याणके लिए) तथा त्याग, मित्रता, शुद्धि, ऋजुता, विद्या, गुरुशुश्रूषा ये रामचन्द्रमें अचल भावसे हैं ॥ ३० ॥ देवि, फिर विनय-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्मिन्नार्जवसंपन्ने देवि देवोपमे कथम् । पापमाशंससे रामे महर्षिसमतेजसि ॥३१॥
न स्मराम्यप्रियं वाक्यं लोकस्य प्रियवादिनः । स कथं त्वत्कृते रामं वक्ष्यामि प्रियमप्रियम् ॥३२॥
क्षमा यस्मिंस्तपस्त्यागः सत्यं धर्मः कृतज्ञता । अप्यहिंसा च भूतानां तमृते का गतिर्मम ॥३३॥
मम वृद्धस्य कैकेयि गतान्तस्य तपस्विनः । दीनं लालप्यमानस्य कारुण्यं कर्तुमर्हसि ॥३४॥
पृथिव्यां सागरान्तायां यत्किंचिदधिगम्यते । तत्सर्वं तव दास्यामि मा च त्वं मृत्युमाविश ॥३५॥
अञ्जलिं कुर्मि कैकेयि पादौ चापि स्पृशामि ते । शरणं भव रामस्य माऽधर्मो मामिह स्पृशेत् ॥३६॥
इति दुःखाभिसंतप्तं विलपन्तमचेतनम् । घूर्णमानं महाराजं शोकेन समभिप्लुतम् ॥३७॥
पारं शोकार्णवस्याशु प्रलपन्तं पुनः पुनः । प्रत्युवाचाथ कैकेयी रौद्रा रौद्रतरं वचः ॥३८॥
यदि दत्त्वा वरौ राजन्पुनः प्रत्यनुतप्यसे । धार्मिकत्वं कथं वीर पृथिव्यां कथयिष्यसि ॥३९॥
यदा समेता बहवस्त्वया राजर्षयः सह । कथयिष्यन्ति धर्मज्ञ तत्र किं प्रतिवक्ष्यसि ॥४०॥
यस्याःप्रसादे जीवामि या च मामभ्यपालयत् । तस्याःकृता मया मिथ्या कैकेय्या इति वक्ष्यसि॥४१॥
किल्बिषं त्वं नरेन्द्राणां करिष्यसि नराधिप । यो दत्त्वा वरमैक्ष्वाक पुनरन्यानि भाषसे ॥४२॥
शैब्यः श्येनकपोतीये स्वमांसं पक्षिणे ददौ । अलर्कश्चक्षुषी दत्त्वा जगाम गतिमुत्तमाम् ॥४३॥

युक्त देवोपम, महर्षियोंके समान तेजस्वी रामचन्द्रके विषयमें इस बुराईकी कामना क्यों करती हो, रामचन्द्रका अभिषेक न हो यह क्यों चाहती हो ॥ ३१ ॥ मुझे स्मरण नहीं है कि मैंने कभी किसीको कुछ अप्रिय बात कही हो, फिर तुम्हारे लिए प्रिय रामचन्द्रको मैं अप्रिय बात कैसे कहूँगा ॥ ३२ ॥ जिसमें क्षमा, तप, त्याग, सत्य, धर्म, कृतज्ञता और प्राणियोंकी अहिंसा वर्तमान है उस रामचन्द्रके बिना मेरी गति क्या है, मेरा रक्षक क्या (कौन) है ॥ ३३ ॥ केकयी, मैं वृद्ध हूँ मेरा समय भी अब समाप्त हुआ, मेरी अवस्था शोचनीय है, मैं तुम्हारे सामने गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करता हूँ, तुम मुझपर दया करो ॥ ३४ ॥ समुद्र पर्यन्त इस पृथिवीमें जो कुछ प्राप्त हो सकता है वह सब मैं तुम्हें दूंगा, तुम मृत्युकी ओर पैर न बढ़ाओ (अर्थात तुम्हारे कहनेके अनुसार काम करनेपर तुम्हारी भी हानि होगी) ॥ ३५ ॥ केकयी, मैं हाथ जोड़ता हूँ, तुम्हारे पैर छूता हूँ, रामचन्द्रकी रक्षा करो, जिससे मुझे अधर्म (प्रतिज्ञाभंग करनेका पाप) न हो ॥ ३६ ॥ इस प्रकार दुःख से व्याकुल होकर राजा विलाप करते हैं, बेहोश हो जाते हैं, मनही मन कर्तव्य निश्चय करते हुए भ्रान्त होरहे हैं, महाराज शोकसे विह्वल होगये हैं॥३७॥ इस शोकके समुद्रके पार उतरनेकी बार-बार प्रार्थना करते हैं। उस समय भयंकर केकयी उनसे भयंकर वचन बोली ॥ ३८ ॥ राजन्, वर देकर अब आप पश्चात्ताप कररहे हैं, फिर वीर, आप पृथिवीमें धार्मिक कैसे कहे जांयगे ॥ ३९ ॥ जब अनेक राजर्षि आकर तुम्हारे साथ मिलेंगे और वे तुमको धर्मज्ञ कहेंगे, उस समय उनको क्या उत्तर दोगे ॥ ४० ॥ " जिसकी कृपासे मैं जीता हूँ, जिसने मेरी रक्षा की, उस केकयीसे जो मैंने प्रतिज्ञा की थी उसका पालन नहीं किया " क्या ऐसा कहोगे ॥ ४१ ॥ राजन् तुम अपने वंशज राजाओंके यशमें कलंक लगावोगे, क्योंकि आज ही वर देकर तुम उससे उलटा बोल रहे हो ॥४२॥ बाज और कबूतरकी लड़ाईमें राजा शिविने अपना मांस दिया था और राजा अलर्कने अपनी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सागरः समयं कृत्वा न वेलामतिवर्तते । समयं मानृतं कार्षीः पूर्ववृत्तमनुस्मरन् ॥४४॥
स त्वं धर्मं परित्यज्य रामं राज्येऽपिच्य च । सह कौसल्यया नित्यं रन्तुमिच्छसि दुर्मते ॥४५॥
भवत्वधर्मो धर्मो वा सत्यं वा यदि वानृतम् । यत्त्वया संश्रुतं मह्यं तस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥४६॥
अहं हि विषमैवैव पीत्वा बहु तवाग्रतः । पश्यतस्ते मरिष्यामि रामो यद्यभिषिच्यते ॥४७॥
एकाहमपि पश्येयं यद्यहं राममातरम् । अञ्जलिं प्रतिगृह्णन्तीं श्रेयो ननु मृतिर्मम ॥४८॥
भरतेनात्मना चाहं शपे ते मनुजाधिप । यथा नान्येन तुष्येयमृते रामविवासनात् ॥४९॥
एतावदुक्त्वा वचनं कैकेयी विरराम ह । विलपन्तं च राजानं न प्रतिव्याजहार सा ॥५०॥
श्रुत्वा तु राजा कैकेय्या वाक्यं परमशोभनम् । रामस्य च वने वासमैश्वर्यं भरतस्य च ॥५१॥
नाभ्यभाषत कैकेयीं मुहूर्तं व्याकुलेन्द्रियः । प्रैक्षतानिमिषो देवीं प्रियामप्रियवादिनीम् ॥५२॥
तां हि वज्रसमां वाचमाकर्ण्य हृदयाप्रियाम् । दुःखशोकमयीं श्रुत्वा राजा न सुखितोऽभवत्॥५३॥
स देव्या व्यवसायं च घोरं च शपथं कृतम् ।ध्यात्वा रामेऽतिनिःश्वस्य च्छिन्नस्तरुरिवापतत्॥५४॥
नष्टचित्तो यथोन्मत्तो विपरीतो यथातुरः । हृततेजा यथा सर्पो बभूव जगतीपतिः ॥५५॥
दीनयातुरया वाचा इति होवाच कैकयीम् । अनर्थमिममर्थाभं केन त्वमुपदेशिता ॥५६॥

आंखे देकर उत्तम गति पायी थी ॥४३॥ समुद्रोंकी मर्यादा है, इस कारण वे अपने तटका अतिक्रमण नहीं करते, तुमने भी प्रतिज्ञा की है, पहलेकी बातें स्मरण करके अपनी प्रतिज्ञा मत तोड़ो॥४४॥ दुर्बुद्धि, तुम धर्म छोड़कर रामको राज्याभिषेक करके कौसल्याके साथ सदा रमण करना चाहते हो ॥४५॥ चाहे जो हो, धर्म हो या अधर्म, सत्य हो या असत्य, तुमने मुझसे जो प्रतिज्ञा की हैं उसमें रद्दोबदल नहीं होसकता॥४६॥यदि तुमने रामचन्द्रका राज्याभिषेक किया तो यहीं तुम्हारे सामनेही तुम्हारे देखतेही देखते बहुतसा विष पीकर मर जाऊंगी ॥४७॥ रामकी माता राजमाता होनेपर सब लोगोंके प्रणाम की अञ्जलि ग्रहण करेगीं, और मैं अकेली देखा करूंगी, इससे तो मेरा मरजाना ही अच्छा है ॥ ४८ ॥ महाराज, भरत और आपकी शपथ करके मैं कहती हूं कि रामचन्द्रके निर्वासनके बिना और किसी दूसरी वस्तुसे मैं प्रसन्न न हो सकूंगी ॥ ४९ ॥ ऐसा वचन बोलकर केकयी चुप हो गयी, राजा विलाप करतेही रहे, पर उसने कुछ उत्तर न दिया ॥ ५० ॥ 'रामचन्द्रका वनवास और भरतका राज्याभिषेक' यह केकयीका परम अनुचित वचन सुनकर राजा ॥ ५१ ॥ थोड़ी देर तक केकयीसे कुछ भी न बोल सके, क्योंकि उनकी इन्द्रियां व्याकुल हो गयी थीं, अपनी प्रियपर अप्रियवादिनी, केकयीको एकटक देखते रहे ॥ ५२ ॥ हृदयको अप्रिय, दुःख शोकमयी वज्रके समान उस वाणीको सुनकर राजा प्रसन्न न हुए ॥ ५३ ॥ केकयीके उस प्रयत्न तथा भयानक शपथका ध्यान करके राजाने रामके सम्बन्धमें श्वाँस छोड़ा, दुःख प्रकाश किया और पुनः वे कटे वृक्षके समान गिर पड़े ॥ ५४ ॥ राजाके मनकी चेतना जाती रही, वे उन्मत्तके समान होगये, रोगीके समान विपरीत प्रकृति और तेजहीन सर्पके समान वे हो गये ॥ ५५ ॥ दीन और आतुर वचनसे राजाने केकयीसे पूछा, तुमको इस अनर्थको किसने अर्थ बतलाया, इस अनिष्टको किसने इष्ट बत-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भूतोपहतचित्तेव ब्रुवन्ती मां न लज्जसे । शीलव्यसनमेतत्ते नाभिजानाम्यहं पुरा ॥५७॥
बालायास्तत्त्विदानीं ते लक्षये विपरीतवत् । कुतो वा ते भयं जातं या त्वमेवंविधं वरम् ॥५८॥
राष्ट्रे भरतमासीनं वृणीषे राघवं वने । विरमैतेन भावेन त्वमेतेनानृतेन च ॥५९॥
यदि भर्तुः प्रियं कार्यं लोकस्य भरतस्य च । नृशंसे पापसंकल्पे क्षुद्रे दुष्कृतकारिणि ॥६०॥
किं नु दुःखमलीकं वा मयि रामे च पश्यसि । न कथंचिदृते रामाद्भरतो राज्यमावसेत् ॥६१॥
रामादपि हितं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम् । कथं वक्ष्यसि रामस्य वनं गच्छेति भाषिते ॥६२॥
मुखवर्णं विवर्णं तु यथैवेन्दुमुपप्लुतम् । तां तु मे सुकृतां बुद्धिं सुहृद्भिःसह निश्चिताम्॥६३॥
कथं द्रक्ष्याम्यपाकृत्तां परैरिव हतां चमूम् ।किंमां वक्ष्यन्ति राजानो नानादिग्भ्यःसमागताः॥६४॥
बालो बतायमैक्ष्वाकश्चिरं राज्यमकारयत् । यदा हि बहवो वृद्धा गुणवन्तो बहुश्रुताः ॥६५॥
परिप्रक्ष्यन्ति काकुत्स्थं वक्ष्यामीह कथं तदा । कैकेय्या क्लिश्यमानेन पुत्रःप्रव्राजितो मया ॥६६॥
यदि सत्यं ब्रवीम्येतत्तदसत्यं भविष्यति । किं मां वक्ष्यति कौसल्या राघवे वनमास्थिते ॥६७॥
किं चैनां प्रतिवक्ष्यामि कृत्वा विप्रियमीदृशम् । यदा यदा च कौसल्या दासीव च सखीव च ॥६८॥
भार्यावद्भगिनीवच्च मातृवच्चोपतिष्ठति । सततं प्रियकामा मे प्रियपुत्रा प्रियंवदा ॥६९॥

लाया ॥ ५६ ॥ भूत लगेके समान तुम मेरे सामने ऐसी बातें बोल रही हो, लज्जित नहीं होती हो, तुम्हारे शीलका इतना नाश हुआ है यह बात मैं पहले नहीं जानता था ॥ ५७ ॥ बाल्यावस्थामें तो तुम बड़ी शीलवती थी, पर इस समय वह सब उलटा देख रहा हूं, तुम्हें किस बातसे आशङ्का हुई जिससे ऐसा वर मांग रही हो ॥ ५८ ॥ भरतको राज्यपर बैठाना और रामचन्द्रको वनमें भेजना चाहती हो । इस भावका त्याग करो, इससे मुझे झूठा बनना पड़ेगा । क्योंकि मैं तुम्हारे कहनेके अनुसार काम न करूंगा ॥ ५९ ॥अरे क्रूर, पाप चाहनेवाली, ओछे विचारोंवाली पापिन यदि तू अपने पतिका, लोकका और भरतका कल्याण चाहती है तो अपने इस विचारको छोड़ ॥ ६० ॥ रामचन्द्रमें या मुझमें तू कौनसा दुःखका कारण या अपराध देखती है । रामचन्द्रके बिना भरत कभी राज्य-ग्रहण न करेगा ॥ ६१ ॥ क्योंकि वह रामचन्द्रसे भी बढ़कर धर्मात्मा है । 'वन जाइये' यह वाक्य तुम भी रामचन्द्रसे कैसे कह सकोगी ॥६२॥ 'वन जाइये' यह कहनेपर राहु-ग्रस्त चन्द्रमाके समान अपना उतरा हुआ मुँह मैं कैसे देखूंगा । बहुत विचारके पश्चात् मैंने यह निश्चय किया है, मित्रोंसे भी सम्मति ले ली है, अब यदि मैं हट्टं तो रणक्षेत्रसे भागी सेनाके समान देशदेशान्तरोंसे आये हुए राजा मेरी बुद्धिको क्या कहेंगे। वे तो यही कहेंगे न कि इसकी बुद्धि और यह, दोनों ही नष्ट हैं ॥ ६३-६४ ॥ बालक रामचन्द्र कैसा राज्य पालन करते हैं, गुणवान् और बहुश्रुत अनेक वृद्ध आकर हमसे रामचन्द्रके सम्बन्धमें पूछेंगे तो मैं क्या कहूंगा ? यही न कि केकयी के आग्रहसे मैंने पुत्रको वन भेज दिया है ॥ ६५-६६ ॥ यदि मैं यह सत्य कहूं तो मेरी पहलेकी बात असत्य होगी, मैंने पहले रामचन्द्रको राज्य देनेका निश्चय किया था । यदि रामचन्द्र वन जायँ तो कौसल्या मुझे क्या कहेगी ॥ ६७ ॥ उसका इतना अप्रिय काम करके मैं उसे क्या उत्तर दूंगा, वह दासीके समान, मित्रके समान, स्त्रीके समान, बहिनके समान और माताके समान सदा व्यवहार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न मया सत्कृता देवी सत्कारार्हा कृते तव । इदानीं तत्तपति मां यन्मया सुकृतं त्वयि ॥७०॥
अपथ्यव्यञ्जनोपेतं भुक्तमन्नमिवातुरम् । विप्रकारं च रामस्य संप्रयाणं वनस्य च ॥७१॥
सुमित्रा प्रेक्ष्य वै भीता कथं मे विश्वसिष्यति । कृपणं बत वैदेही श्रोष्यति द्वयमप्रियम् ॥७२॥
मां च पञ्चत्वमापन्नं रामं च वनमाश्रितम् । वैदेही बत मे प्राणाञ्शोचन्ती क्षपयिष्यति ॥७३॥
हीना हिमवतः पार्श्वे किंनरेणेव किंनरी । नहि राममहं दृष्ट्वा प्रवसन्तं महावने ॥७४॥
चिरं जीवितुमाशंसे रुदन्तीं चापि मैथिलीम् । सा नूनं विधवा राज्यं सपुत्रा कारयिष्यसि ॥७५॥
सतीं त्वामहमत्यन्तं व्यवस्याम्यसतीं सतीम् । रूपिणीं विषसंयुक्तां पीत्वेव मदिरां नरः ॥७६॥
अनृतैर्बत मां सान्त्वैःसान्त्वयन्ती स्म भाषसे। गीतशब्देन संरुद्ध्य लुब्धो मृगमिवावधीः ॥७७॥
अनार्य इति मामार्याः पुत्रविक्रायकं ध्रुवम् । विकरिष्यन्ति रथ्यासु सुरापं ब्राह्मणं यथा ॥७८॥
अहो दुःखमहो कृच्छ्रं यत्र वाचः क्षमे तव । दुःखमेवंविधं प्राप्तं पुरा कृतमिवाशुभम् ॥७९॥
चिरं खलु मया पापे त्वं पापेनाभिरक्षिता । अज्ञानादुपसंपन्ना रज्जुरुद्बन्धनी यथा ॥८०॥
रममाणस्त्वया सार्धं मृत्युं त्वां नाभिलक्षये । बालो रहसि हस्तेन कृष्णसर्पमिवास्पृशम् ॥८१॥

करती आयी है, सर्वाधिक पुत्रको प्रिय समझनेवाली और प्रिय बोलनेवाली कौसल्याने सदा मेरे प्रिय काम किये हैं ॥ ६८-६९ ॥ देवी कौसल्या सत्कार करनेके योग्य हैं, पर तुम्हारे कारणसे तुम्हारे भयसे मैंने उनका सत्कार नहीं किया और तुम्हारा सत्कार किया। आज इतना मुझे इस बात से कष्ट हो रहा है ॥ ७० ॥ अपथ्य साग-तरकारीके साथ अन्न खानेसे रोगीका रोग दूसरा रूप धारण करता है, उसी प्रकार तुम्हारा सम्मान करनेहीके कारण आज रामचन्द्रको वनजाना पड़ता है ॥ ७१ ॥ सुमित्रा भी डर जायगी और मुझपर विश्वास नहीं करेगी, और सीता कष्टकी दो बातें सुनेगी—॥ ७२ ॥ एकतो मेरी मृत्यु और दूसरी रामचन्द्रका वन जाना। सीता मुझे प्राणोंसे भी प्रिय है, वह शोकके कारण दुर्बल हो जायगी ॥ ७३ ॥ जिस प्रकार हिमवान्की तराईमें अपने स्वसुर किन्नरसे हीन किन्नरीकी दशा होती है वैसीही उसकी दशा हो जायगी। वन जानेके लिए प्रस्थान करते हुए रामचन्द्रको देखकर ॥ ७४ ॥ और रोती हुई सीताको देखकर मैं बहुत दिनोंतक अपने जीनेकी आशा नहीं करता। उस समय विधवा होकर तुम अपने पुत्रसे राज्य चलवाओगी ॥ ७५ ॥ पापिनी, तुमको मैंने सती समझा, तुम्हारा रूप देखकर मैंने तुम्हे सदा अपने पास रखा, जिस प्रकार विष मिली मदिरा पीकर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है और निर्णय करनेमें गलती करता है, उसी प्रकार ॥७६॥ झूठे प्रलोभन के वचनोंसे मुझे भुलावा देनेके लिए तुम बातें किया करती थी, जिस प्रकार व्याध मधुर गीतके द्वारा मृगाको लुभाकर मार डालता है, उसी प्रकार तुमने भी मुझे मारा ॥७७॥ आर्य-श्रेष्ठ चरित्रवाले अवश्य मुझे अनार्य कहेंगे, क्योंकि मैंने पुत्र बेचकर स्त्री-सुख पाया है। शराब पीनेवाले ब्राह्मणको जिस तरह मार्गमें लोग चिढ़ाते हैं उसी तरह मुझे भी चिढ़ावेंगे ॥७८॥ ओह, बड़ा दुःख है, बड़ाही कष्ट है, जो वरके विषयमें मैंने तुम्हारी बात मानली। पूर्वजन्मके कृत पापके फल-स्वरूप यह दुःख मुझे आज प्राप्त हुआ है ॥ ७९ ॥ मैं पापीने बहुत दिनोंसे पापिनी तुम्हारी रक्षा की और अज्ञानके कारण गले लगाया, आज वही तुम फांसीकी रस्सी हो गयी हो ॥ ८० ॥ मैं तुम्हारे साथ रमण किया करता था, पर तुम मेरी मृत्यु हो, यह नहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तं तु मां जीवलोकोऽयं नूनमाक्रोष्टुमर्हति । मया ह्यपितृकः पुत्रः स महात्मा दुरात्मना ॥८२॥
बालिशो बत कामात्मा राजा दशरथो भृशम् । स्त्रीकृते यः प्रियं पुत्रं वनं प्रस्थापयिष्यति ॥८३॥
वेदैश्च ब्रह्मचर्यैश्च गुरुभिश्चोपकर्शितः । भोगकाले महत्कृच्छ्रं पुनरेव प्रपत्स्यते ॥८४॥
नालं द्वितीयं वचनं पुत्रो मां प्रतिभाषितुम् । स वनं प्रव्रजेत्युक्तो बाढमित्येव वक्ष्यति ॥८५॥
यदि मे राघवः कुर्याद्वनं गच्छेति चोदितः । प्रतिकूलं प्रियं मे स्यान्न तु वत्सः करिष्यति ॥८६॥
राघवे हि वनं प्राप्ते सर्वलोकस्य धिक्कृतम् । मृत्युरक्षमणीयं मां नयिष्यति यमक्षयम् ॥८७॥
मृते मयि गते रामे वनं मनुजपुंगवे । इष्टे मम जने शेषे किं पापं प्रतिपत्स्यसे ॥८८॥
कौसल्या मां च रामं च पुत्रौ च यदि हास्यति । दुःखान्यसहती देवी मामेवानुगमिष्यति ॥८९॥
कौसल्यां च सुमित्रां च मां च पुत्रैस्त्रिभिः सह । प्रक्षिप्य नरके सा त्वं कैकेयि सुखिता भव ॥९०॥
मया रामेण च त्यक्तं शाश्वतं सत्कृतं गुणैः । इक्ष्वाकुकुलमक्षोभ्यमाकुलं पालयिष्यसि ॥९१॥
प्रियं चेद्भरतस्यैतद्रामप्रव्राजनं भवेत । मा स्म मे भरतः कार्षीत्प्रेतकृत्यं गतायुषः ॥९२॥
मृते मयि गते रामे वनं पुरुषपुंगवे । सेदानीं विधवा राज्यं सपुत्रा कारयिष्यसि ॥९३॥

जानता था, जिस प्रकार बालक एकान्तमें काले साँपसे खेलकर अपनी मृत्यु बुलाता है उसी प्रकार मैंने भी तुम्हारा साथ किया ॥ ८१ ॥ तुममें अनुराग रखनेके कारण यह समस्त संसार अवश्यही मेरी निन्दा करेगा, कहेगा कि दुरात्मा दसरथने अपने महात्मा पुत्रको पितृहीन बना दिया, स्वयं रह कर भी पिताका कर्तव्य न किया ॥ ८२ ॥ और कहेगा, राजा दसरथ मूर्ख है और कामी है, जिसने स्त्रीके लिए अपने प्रिय पुत्रको वन भेजा ॥ ८३ ॥ रामचन्द्र बड़े कठिन ब्रह्मचर्यके नियमों और व्रतोंके पालनसे बहुत दुर्बल हो गये हैं, अब भोगके समय, गृहस्थ बननेके समय, पुनः उन्हें इतना बड़ा कष्ट सहना पड़ा ॥ ८४ ॥ मेरा पुत्र रामचन्द्र मेरी बातोंके उत्तरमें कोई दूसरी बात नहीं कहता, मैं जो कहता हूं वह मान लेता है । वन जानेके लिए जब मैं कहूंगा तब वह अवश्यही मेरी बात मान लेगा ॥ ८५ ॥ यदि मैं रामचन्द्रसे कहूं कि वनजाओ और वह मेरी यह बात न माने तो उसका यह कार्य मुझे प्रिय हो, पर मेरा बेटा ऐसा करेगा नहीं ॥ ८६ ॥ रामचन्द्रके वन जानेपर सब लोग मुझे धिक्कारेंगे, और इस अपमानको न सह सकनेके कारण मृत्यु मुझे यमराजके घर ले जायगी ॥ ८७ ॥ मेरे मरनेपर और पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रके वन जानेपर बचे हुए मेरे प्रिय जनोंपर तुम कैसा-कैसा अत्याचार करोगी ॥ ८८ ॥ मुझसे और पुत्र रामचन्द्रसे कौसल्या हीन हो जायगी और सुमित्रा अपने दोनों पुत्रोंसे हीन हो जायगी, इस दुःखको न सह सकनेके कारण वे दोनों कौसल्या और सुमित्रा, मेराही अनुगमन करेंगी अर्थात् मर जायँगी ॥ ८९ ॥ राम लक्ष्मण और शत्रुघ्न तीनों पुत्रोंके साथ कौशल्या सुमित्रा और मुझे नरकके समान दुःखमें डालकर केकयी तुम सुखी होओ ॥ ९० ॥ कुल परंपरासे आया हुआ, और गुणवानोंके द्वारा प्रशंशित तथा सुव्यवस्थित इस इक्ष्वाकु कुलका पालन जो मेरे और रामचन्द्रके अभावमें अव्यवस्थित होगया है तुम पालन करोगी ॥ ९१ ॥ रामचन्द्रका यह वन जाना यदि भरतको भी प्रिय हो तो मेरी मृत्युके पश्चात् भरत मेरा प्रेतकृत्य न करे ॥ ९२ ॥ मेरे मरनेपर और रामचन्द्रके वनजानेपर विधवा तुम पुत्रके साथ राज्य करना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्वं राजपुत्रि दैवेन न्यवसो मम वेश्मनि । अकीर्तिश्चातुला लोके ध्रुवः परिभवश्च मे ॥
सर्वभूतेषु चावज्ञा यथा पापकृतस्तथा ॥९४॥
कथं रथैर्विभुर्यात्वा गजाश्वैश्च मुहुर्मुहुः । पद्भ्यां रामो महारण्ये वत्सो मे विचरिष्यति ॥९५॥
यस्य चाहारसमये सूदाः कुण्डलधारिणः । अहंपूर्वाः पचन्ति स्म प्रसन्नाः पानभोजनम् ॥९६॥
स कथं नु कषायाणि तिक्तानि कटुकानि च । भक्षयन्वन्यमाहारं सुतो मे वर्तयिष्यति ॥९७॥
महार्हवस्त्रसंवद्धो भूत्वा चिरसुखोचितः । काषायपरिधानस्तु कथं रामो भविष्यति ॥९८॥
कस्येदं दारुणं वाक्यमेवंविधमपीरितम् । रामस्यारण्यगमनं भरतस्याभिषेचनम् ॥९९॥
धिगस्तु योषितो नाम शठाः स्वार्थपरायणाः । न ब्रवीमि स्त्रियः सर्वा भरतस्यैव मातरम् ॥१००॥

अनर्थभावेऽर्थपरे नृशंसे ममानुतापाय निवेशितासि ।
किमप्रियं पश्यसि मान्निमित्तं हितानुकारिण्यथवापि रामे ॥१०१॥
परित्यजेयुः पितरोऽपि पुत्रान्भार्याः पतींश्चापि कृतानुरागाः ।
कृत्स्नं हि सर्वं कुपितं जगत्स्याद्दृष्ट्वैव रामं व्यसने निमग्नम् ॥१०२॥
अहं पुनर्देवकुमाररूपमलंकृतं तं सुतमाव्रजन्तम् ।
नन्दामि पश्यन्निव दर्शनेन भवामि दृष्ट्वैव पुनर्युवेव ॥१०३॥

॥ ९३ ॥ राजपुत्रि, दैववश तुमने मेरे घरमें निवास किया, अतएव लोकमें मेरा अयश और मेरा परिभव होगा और पापियोंके समान सब प्राणियोंमें मेरा तिरस्कार होगा ॥ ९४ ॥ रामचन्द्र रथ घोड़े और हाथीपर आजतक चलते रहे, अब वेही वत्स रामचन्द्र भयानक वनमें पैदल विचरण करेंगे ॥ ९५ ॥ जिसके भोजनके लिए कुण्डल धारण करनेवाले पाचक प्रसन्नता पूर्वक परस्पर उत्साहसे पान और भोजनकी सामग्री तयार करते थे ॥ ९६ ॥ वेही मेरे बेटे रामचन्द्र, कसैले, तीते और कडुए बनैला भोजन करके समय बितावेंगे ॥ ९७ ॥ रामचन्द्र दामी वस्त्र पहनते थे और वे सदा सुख पानेके योग्य हैं भी, वेही रामचन्द्र गेरुए वस्त्र कैसे धारण करेंगे ॥ ९८ ॥ रामको वन जाना होगा और भरतका अभिषेक होगा ऐसा कठोर वचन कहनेका उपदेश तुम्हें किसने किया ॥ ९९ ॥ स्वार्थ-परायण शठ स्त्री जातिको धिक्कार ! मैं केवल भरतकी माताके सम्बन्धमें ही ऐसा कहता हूं सभी स्त्रियोंके लिए नहीं ॥ १०० ॥ केकयी, तुम स्वार्थिन हो और अनर्थ करनेपर तयार हुई हो अर्थात् तुम जो काम करना चाहती हो उससे औरोंको तो लाभ होगा नहीं, तुम्हें भी लाभ न होगा । तुम बड़ीही क्रूर हो । मुझे दुख देनेही के लिए तुम्हारे मनमें यह बात आयी है । तुम मेरी हितकारिणी बनती हो । मेरे कारण तुम्हें क्या कष्ट होरही हैं, अथवा रामचन्द्रमें ही तुम्हें कौन बुराई दीख पड़ती है, बोलो ॥ १०१ ॥ रामचन्द्रको दुःखमें पड़ा देखकर जगत्के सब लोग क्रोध करेंगे, स्नेह रखनेवाले पिताभी अपने पुत्रोंको छोड़ देंगे, और स्त्रियां अपने-अपने पति छोड़ देंगी ॥ १०२ ॥ देवकुमारोंके समान सुन्दर तथा अलंकारोंसे भूषित मतवाले हाथीके समान आते हुए रामचन्द्रको जब मैं सोचता हूँ, जब उनका ध्यान करता हूँ, तब बड़ाही आनन्दित होता हूँ, और जब मैं उन्हें देखता हूँ तब पुनः युवाके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विना हि सूर्येण भवेत्प्रवृत्तिरवर्षता वज्रधरेण वापि ।
रामं तु गच्छन्तमितः समीक्ष्य जीवेन्न काश्चित्त्विति चेतना मे ॥१०४॥
विनाशकामामहितामिमित्रामावासयं मृत्युमिवात्मनस्त्वाम् ।
चिरं बताङ्केन धृतासि सर्पी महाविषा तेन हतोऽस्मि मोहात् ॥१०५॥
मया च रामेण सलक्ष्मणेन प्रशास्तु हीनो भरतस्त्वया सह ।
पुरं च राष्ट्रं च निहत्य बान्धवान्ममाहितानां च भवाभिभाषिणी ॥१०६॥
नृशंसवृत्ते व्यसनप्रहारिणि प्रसह्य वाक्यं यदिहाद्य भाषसे ।
न नाम ते तेन मुखात्पतन्त्यधो विशीर्यमाणा दशनाः सहस्रधा ॥१०७॥
न किंचिदाहाहितमप्रियं वचो न वेत्ति रामः परुषाणि भाषितुम् ।
कथं तु रामे ह्यभिरामवादिनि ब्रवीषि दोषान्गुणनित्यसंमते ॥१०८॥
प्रताम्य वा प्रज्वल वा प्रणश्य वा सहस्रशो वा स्फुटितां महीं व्रज ।
न ते करिष्यामि वचः सुदारुणं समाहितं केकयराजपांसने ॥१०९॥
क्षुरोपमां नित्यमसत्प्रियंवदां प्रदुष्टभावां स्वकुलोपघातिनीम् ।
न जीवितुं त्वां विषहेऽमनोरमां दिधक्षमाणां हृदयं सबन्धनम् ॥११०॥
न जीवितं मेऽस्ति कुतः पुनः सुखं विनात्मजेनात्मवतां कुतो रतिः ।

समान होजाता हूँ ॥ १०३ ॥ सूर्यके बिना भी लोक-व्यवहार हो सकता है और वृष्टिके बिना भी लोकव्यवहार हो सकता है, पर रामचन्द्र अयोध्यासे वनमें जारहे हैं, यह देखकर कोई भी अयोध्यावासी न जीयेगा, ऐसी मेरी धारणा है ॥ १०४ ॥ तुम मेरा नाश चाहनेवाली हो, अहित चाहनेवाली हो, तुम मेरी शत्रु हो, मैंने तुमको मृत्युके समान अपने घरमें रखा, भयंकर विषवाली सापिनको मैंने अज्ञानसे अंकमे धारण किया और उसी कारण आज मैं मारा जाता हूँ ॥ १०५ ॥ मेरे राम और लक्ष्मणके अभावमें भरत तुम्हारे साथ नगर और राज्यका शासन करें । तुम अपने बान्धवोंको मारकर मेरे शत्रुओंसे अनुराग करो ॥ १०६ ॥ अरे क्रूर व्यवहार करनेवाली और विपत्तिके समय प्रहार करनेवाली, तुम हमारी स्त्रीहो इस बातको भूलकर बलपूर्वक जो बातें कह रही हो, उससे तुम्हारे दांत हजारों टुकड़े होकर तुम्हारे मुंहसे नहीं गिरजाते इसीका आश्चर्य है ॥१०७॥ रामचन्द्र कठोर वचन बोलना जानते ही नहीं, अतएव विरुद्ध और अप्रिय वचन उन्होंने नहीं कहा है । प्रिय बोलनेवाले गुणवान् रामचन्द्रको तुम क्यों दोष देती हो ॥ १०८ ॥ तुम चाहे जितना दुख करो, आगसे जलो, फांसी लगा कर मरो, सिर फोड़ो या गढ़ा खोदकर पृथ्वीमें जाओ पर ऐ केकयराजकी कलङ्कभूते, मैं तुम्हारा यह कठोर वचन कभी न करुंगा ॥१०९॥ छूरेके समान साथ रहनेवालेको तुम काटनेवाली हो, तुम दुर्जन हो और प्रिय बोलनेवाली हो तुम्हारे भाव दुष्ट हैं और तुम अपने कुलकाही नाश करनेवाली हो, मैं तुम्हारा जीवित रहना नहीं चाहता, क्यों कि तुम मन-को प्रिय नहीं हो और बन्धनके साथ मेरे हृदयको जला रही हो ॥ ११० ॥ अपनेसे प्रेम रखनेवाले पुत्रके बिना मेरा जीना सम्भव नहीं, फिर सुखकी आशा कैसा और तुम्हारे प्रति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ममाहितं देवि न कर्तुमर्हसि स्पृशामि पादावपि ते प्रसीद मे ॥१११॥
स भूमिपालो विलपन्ननाथवत्स्त्रिया गृहीतो हृदयेऽतिमात्रया ।
पपात देव्याश्चरणौ प्रसारितावुभावसंप्राप्य यथातुरस्तथा ॥११२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३

अतदर्हं महाराजं शयानमतथोचितम् । ययातिमिव पुण्यान्ते देवलोकात्परिच्युतम् ॥ १ ॥
अनर्थरूपसिद्धार्था ह्यभीता भयदर्शिनी । पुनराकारयामास तमेव वरमङ्गना ॥ २ ॥
त्वं कत्थसे महाराज सत्यवादी दृढव्रतः । मम चेदं वरं कस्माद्विधारयितुमिच्छसि ॥ ३ ॥
एवमुक्तस्तु कैकेय्या राजा दशरथस्तदा । प्रत्युवाच ततः क्रुद्धो मुहूर्तं विह्वलन्निव ॥ ४ ॥
मृते मयि गते रामे वनं मनुजपुंगवे । हन्तानार्ये ममामित्रे सकामा सुखिनी भव ॥ ५ ॥
स्वर्गेऽपि खलु रामस्य कुशलं दैवतैरहम् । प्रत्यादेशादभिहितं धारयिष्ये कथं वत ॥ ६ ॥

अनुरागकी ही कौन बात? देवि तुम मेरा अकल्याण न करो, मैं तुम्हारे चरण छूता हूं, मुझपर प्रसन्न होओ॥ १११ ॥ दृढ़ानश्चयवाली स्त्रीने राजाका कलेजा इस प्रकार पकड़ा था कि वे अनाथके समान विलाप करने लगे, और फैलाये हुए केकयीके चरण न पाकर आतुरके समान वे गिर पड़े ॥११२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका बारहवां सर्ग समाप्त ॥ १२ ॥

राजा दसरथ जमीनपर पड़े थे, पर यद्यपि यह उनके योग्य न था, और न उस प्रकारके शोकका अनुभव करना ही उनके योग्य था, फिर भी वे उस दशामें थे, पुण्यके समाप्त हो जानेसे देवलोकसे गिरे ययातिके समान वे मालुम पड़ते थे ॥ १ ॥ ऐसे राजाको लक्ष्य करके केकयी पुनः बोली । वह राजा की इच्छाके विरुद्ध अपना मनोरथ सिद्ध करना चाहती थी, पर उसका मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ था, वह अपने मनोरथकी सिद्धिके लिए सब कुछ करनेको तयार थी, उसे किसी प्रकारका भय न था, यदि कोई भय था तो रामचन्द्रसे भरतके अनिष्ट होनेका भय था । ॥ २ ॥ महाराज, आप सत्यवादी हैं, अपनी प्रतिज्ञा पालन करनेमें दृढ़ हैं, इस बातको सब लोग जानते हैं, फिर आपने जो वर मुझे दे रक्खे हैं, उन्हें रोक रखना क्यों चाहते हैं ॥ ३ ॥ केकयीने राजा दसरथसे जब यह कहा तब वे पुनः थोड़ी देरके लिए मूर्च्छितसे होकर बड़े क्रोधसे बोले ॥ ४ ॥ मैं जब मर जाऊंगा और पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्र जब वनमें चले जांयगे, उस समय तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा, क्योंकि तुम उत्तम विचारवाली नहीं हो और मेरी शत्रु हो, उस समय तुम सुखी होना ॥ ५ ॥ मेरे स्वर्ग जानेपर देवता रामचन्द्रकी कुशल मुझसे पूछेंगे, उस समय मैं उन्हे क्या उत्तर दूंगा? रामचन्द्रको मैंने चौदह वर्षोंके लिए वनवास दिया है, ऐसा कहूंगा तो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कैकेय्याः प्रियकामेन रामः प्रव्राजितो वनम् । यदि सत्यं ब्रवीम्येतत्तदसत्यं भविष्यति ॥ ७ ॥
अपुत्रेण मया पुत्रः श्रमेण महता महान् । रामो लब्धो महातेजाः स कथं त्यज्यते मया ॥ ८ ॥
शूरश्च कृतविद्यश्च जितक्रोधः क्षमापरः । कथं कमलपत्राक्षो मया रामो विवास्यते ॥ ९ ॥
कथमिन्दीवरश्यामं दीर्घबाहुं महाबलम् । अभिरामममहं रामं स्थापयिष्यामि दण्डकान् ॥ १० ॥
सुखानामुचितस्यैव दुःखैरनुचितस्य च । दुःखं नामानुपश्येयं कथं रामस्य धीमतः ॥ ११ ॥
यदि दुःखमकृत्वा तु मम संक्रमणं भवेत् । अदुःखार्हस्य रामस्य ततः सुखमवाप्नुयाम् ॥ १२ ॥
नृशंसे पापसंकल्पे रामं सत्यपराक्रमम् । किं विप्रियेण कैकेयि प्रियं योजयसे मम ॥ १३ ॥
अकीर्तिरतुला लोके ध्रुवं परिभविष्यति । तथा विलपतस्तस्य परिभ्रमितचेतसः ॥ १४ ॥
अस्तमभ्यागमत्सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत । सा त्रियामा तदार्तस्य चन्द्रमण्डलमण्डिता ॥ १५ ॥
राज्ञो विलपमानस्य न व्यभासत शर्वरी । सदैवोष्णं विनिःश्वस्य वृद्धो दशरथो नृपः ॥ १६ ॥
विललापार्तवद्दुःखं गगनासक्तलोचनः । न प्रभातं त्वयेच्छामि निशे नक्षत्रभूषिते ॥ १७ ॥
क्रियतां मे दया भद्रे मयायं राचितोऽञ्जलिः । अथवा गम्यतां शीघ्रं नाहमिच्छामि निर्घृणाम् ॥ १८ ॥

इसके बाद देवता इस सम्बन्धमें मुझसे जो कहेंगे उसको कैसे सह सकूंगा ॥ ६ ॥ यदि मैं यह कहूं कि केकयीको प्रसन्न करनेके लिए मैंने रामचन्द्रको वन भेजा है, मेरा यह उत्तर सत्य होगा पर दूसरी बात असत्य हो जायगी, अर्थात् अभिषेककी प्रतिज्ञा करके भी मैंने अभिषेक नहीं किया ॥ ७ ॥ मैं पुत्रहीन था, बड़े परिश्रमसे रामचन्द्रके समान तेजस्वी श्रेष्ठ पुत्र मैंने पाया, उस रामका त्याग मैं कैसे कर सकता हूँ ॥ ८ ॥ रामचन्द्र शूर हैं, विद्वान् हैं, क्रोध करनेके स्थानमें भी क्रोध नहीं करते, दयावान् हैं, उन कमलनयन रामचन्द्रका निर्वासन मैं कैसे कर सकूंगा ॥ ९ ॥ नील कमलके समान श्यामवर्ण, आजानुबाहु, महाबली और आंखों तथा मनको प्रिय रामचन्द्रको मैं दण्डकारण्य कैसे भेजूंगा ॥ १० ॥ रामचन्द्र किसी प्रकार भी दुःख पानेके योग्य नहीं हैं, किन्तु उन्हे सब प्रकारसे सुख मिलना चाहिए, फिर बुद्धिमान् रामचन्द्रका दुःख मैं कैसे देखूंगा ॥ ११ ॥ रामचन्द्र दुःख पानेके योग्य नहीं हैं उनको बिना दुःख दिये ही यदि मैं यहांसे स्वर्ग चला जाऊं तो मैं सुखी होऊंगा ॥ १२ ॥ अरे झूठ और बुरे अभिप्राय रखनेवाली केकयी, सत्य पराक्रमी रामचन्द्र मेरे प्रिय हैं, तू उनसे मेरा वियोग क्यों करा रही है ॥ १३ ॥ रामचन्द्रका राज्याभिषेक प्रतिज्ञा करके भी न करनेसे संसारमें बड़ी अकीर्ति होगी, लोग स्त्रीजित कहकर मेरी निन्दा करेंगे । राजा दसरथ इसी प्रकार विलाप करने लगे, उनका चित्त व्याकुल हो गया ॥ १४ ॥ उसी समय सूर्यास्त हुआ और रात आयी, वह रात्रि चन्द्रमाके प्रकाशसे प्रकाशित थी, फिर भी दुःखी ॥ १५ ॥ और विलाप करते हुए राजाके लिए प्रकाशमान न थी । राजा दसरथ बराबर गरम-गरम सांसे ले रहे थे ॥ १६ ॥ किसी बड़े रोगसे पीड़ित मनुष्यके समान राजा दसरथ दुःखपूर्वक विलाप कर रहे थे, वे आकाशकी ओर देख रहे थे, राजाने रातको सम्बोधन करके कहा—हे नक्षत्रोंसे सुशोभित रात्रि, मैं नहीं चाहता कि तुम्हारी समाप्तिके बाद प्रातःकाल हो ॥ १७ ॥ मैं हाथ जोड़ता हूं, मुझपर कृपा करो, अथवा तुम जाओ, और शीघ्र जाओ, मैं निर्दय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नृशंसां केकयीं द्रष्टुं यत्कृते व्यसनं मम । एवमुक्त्वा ततो राजा कैकेयीं संयताञ्जलिः ॥१९॥
प्रसादयामास पुनः कैकयीं राजधर्मवित् । साधुवृत्तस्य दीनस्य त्वद्गतस्य गतायुषः ॥२०॥
प्रसादः क्रियतां भद्रे देवि राज्ञो विशेषतः । शून्ये न खलु सुश्रोणि मयेदं समुपाहृतम् ॥२१॥
कुरु साधुप्रसादं मे बाले सहृदया ह्यसि । प्रसीद देवि रामो मे त्वद्दत्तं राज्यमव्ययम् ॥२२॥
लभतामसितापाङ्गे यशः परमवाप्स्यसि । मम रामस्य लोकस्य गुरूणां भरतस्य च ।
प्रियमेतदुरुश्रोणि कुरु चारुमुखेक्षणे ॥२३॥
विशुद्धभावस्य हि दुष्टभावा दीनस्य ताम्राश्रुकलस्य राज्ञः ।
श्रुत्वा विचित्रं करुणं विलापं भर्तुर्नृशंसा न चकार वाक्यम् ॥२४॥
ततः स राजा पुनरेव मूर्च्छितः प्रियामतुष्टां प्रतिकूलभाषिणीम् ।
समीक्ष्य पुत्रस्य विवासनं प्रति क्षितौ विसंज्ञो निपपात दुःखितः ॥२५॥
इतीव राज्ञो व्यथितस्य सा निशा जगाम घोरं श्वसतो मनस्विनः ।
विबोध्यमानः प्रतिबोधनं तदा निवारयामास स राजसत्तमः ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

केकयीको, ॥१८॥ इस क्रूर केकयीको देखना नहीं चाहता, जिस केकयीके कारण इस समय मुझे यह दुःख उठाना पड़ रहा है । इतना कहकर हाथ जोड़कर पुनः केकयीको ॥ १९ ॥ राजधर्म जाननेवाले राजा प्रसन्न करने लगे । देवि, भद्रे, जिसने छलकपट नहीं किया, जो दीन है और इस समय तुम्हारे वशमें है और जिसकी आयु भी थोड़ी अवशिष्ट है ॥ २० ॥ उस राजापर तुम प्रसन्न होओ । मैंने यह जो कुछ कहा है वह शून्यमें नहीं कहा है, किन्तु तुमसे कहा है और तुम को चाहिए कि मैंने जो कुछ कहा है उसपर उदारतासे विचार करो, यह राजा दसरथका अभिप्राय है ॥ २१ ॥ बाले, तुमतो सहृदय हो, दूसरोंके दुःख-सुख समझनेवाली हो, अतः तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ । जो राज्य मैंने तुमको दिया है वह अचल राज्य रामको मिल जायं ॥ २२ ॥ असितापाङ्गे (काली पपनीवाली) इस तरह तुम्हारी बड़ी कीर्ति होगी, हे सुन्दरमुख और आंखां वाली, हे गुरुश्रोणि (गुरुका यहां विशाल अर्थ है और श्रोणिका अर्थ है कमरके नीचेका भाग) मेरा, रामका, प्रजाका, वसिष्ठ आदि गुरुओंका तथा भरतका यही प्रिय है और तुम यह करो ॥२३॥ दुष्ट अभिप्राय रखनेवाली और झूठी केकयीने छलकपट-रहित दीन तथा अत्यन्त विलाप करनेसे लाल, आंसूसे भरी आंखोंवाले पतिका अद्भुत और दयनीय विलाप सुनकर भी उनके वचनका पालन नहीं किया ॥ २४ ॥ केकयी अब भी प्रसन्न न हुई, वह प्रतिक्षण बोलती ही रही, रामचन्द्र को वन भेजनेकी जिद्द उसने नहीं छोड़ी, इससे वे मूर्च्छित होकर, चेष्टारहित होकर पृथिवीपर गिर पड़े ॥ २५ ॥ इस प्रकार मनस्वी, पर इस समय दुःखी राजा दसरथने उस भयानक रातको सांस लेते हुए बड़े दुःखसे बिताया । प्रातःकाल राजाको जगानेके लिए गान-वाद्य जब होने लगा तब राजाने उसे रोक दिया ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका तेरहवां सर्ग समाप्त ॥ १३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चतुर्दशः सर्गः १४

पुत्रशोकार्दितं पापा विसंज्ञं पतितं भुवि । विचेष्टमानमुत्प्रेक्ष्य ऐक्ष्वाकमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
पापं कृत्वेव किमिदं मम संश्रुत्य संश्रवम् । शेषे क्षितितले सन्नः स्थित्यां स्थातुं त्वमर्हसि ॥ २ ॥
आहुः सत्यं हि परमं धर्मं धर्मविदो जनाः । सत्यमाश्रित्य च मया त्वं धर्मं प्रतिचोदितः ॥ ३ ॥
संश्रुत्य शैब्यः श्येनाय स्वां तनुं जगतीपतिः । प्रदाय पक्षिणे राजा जगाम गतिमुत्तमाम् ॥ ४ ॥
तथा ह्यलर्कस्तेजस्वी ब्राह्मणे वेदपारगे । याचमाने स्वके नेत्रे उद्धृत्याविमना ददौ ॥ ५ ॥
सरितां तु पतिः स्वल्पां मर्यादां सत्यमन्वितः । सत्यानुरोधात्समये वेलां स्वां नातिवर्तते ॥ ६ ॥
सत्यमेकपदं ब्रह्म सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः । सत्यमेवाक्षया वेदाः सत्येनावाप्यते परम् ॥ ७ ॥
सत्यं समनुवर्तस्व यदि धर्मे धृता मतिः । स वरः सफलो मेऽस्तु वरदो ह्यसि सत्तम ॥ ८ ॥
धर्मस्यैवाभिकामार्थं मम चैवाभिचोदनात् । प्रव्राजय सुतं रामं त्रिः खलु त्वां ब्रवीम्यहम् ॥ ९ ॥
समयं च ममार्येमं यदि त्वं न करिष्यसि । अग्रतस्ते परित्यक्ता परित्यक्ष्यामि जीवितम् ॥१०॥
एवं प्रचोदितो राजा कैकेय्या निर्विशङ्क्या । नाशकत्पाशमुन्मोक्तुं बलिरिन्द्रकृतं यथा ॥११॥
उद्भ्रान्तहृदयश्चापि विवर्णवदनोऽभवत् । स धुर्यो वै परिस्पन्दन्युगचक्रान्तरं यथा ॥१२॥

पुत्र-शोकसे दुःखी राजा दशरथ बेहोश होकर जमीनपर पड़े थे, वे छटपटा रहे थे, राजा-को इस अवस्थामें देखकर पापिन केकयी बोली ॥ १ ॥ दो वर देनेकी प्रतिज्ञा की और इस समय दुःखी होकर आप पृथिवीपर पड़े हुए हैं, क्या आप इसे पाप समझ रहे हैं ? आपको चाहिए कि सत्यकी मर्यादा पालन करनेके लिए आप स्थिर रहें ॥ २ ॥ धर्म-रहस्य जाननेवाले मनुष्य सत्य-कोही श्रेष्ठ धर्म कहते हैं और उसी सत्यरूप धर्मके पालनके लिए ही मैं आपसे आग्रह कर रही हूँ ॥ ३ ॥ राजा शिविने अपना शरीर श्येन पक्षीको देनेकी प्रतिज्ञा की और उन राजाने शरीर देकर उत्तम गति पायी ॥ ४ ॥ इसी प्रकार तेजस्वी अलर्कने वेदपारग ब्राह्मणको अपने दोनों नेत्र देनेकी प्रतिज्ञा की, क्योंकि उसने उनके नेत्र मांगे थे । राजाने प्रसन्नता पूर्वक उसको अपने नेत्र दे दिये ॥ ५ ॥ समुद्रकी मर्यादा भी सत्यही है, अतएव सत्यके अनुरोधसे वह अपनी तीर भूमका थोड़ा भी अतिक्रम नहीं करता ॥ ६ ॥ एकपद ॐकार रूप ब्रह्म सत्य है, सत्यमें ही धर्म वर्तमान रहता है, ये अक्षय वेद सत्यही हैं और सत्यसे ही ब्रह्म-स्वरूप परमपद प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ यदि तुम्हारा धर्ममें विश्वास है तो तुम सत्यका पालन करो, जो वर तुमने दिया है उसे कार्यरूपमें परिणत करो, क्योंकि तुम श्रेष्ठ वर देनेवाले हो ॥ ८ ॥ धर्मकी वृद्धिके लिए तथा मेरे कहनेसे तुम पुत्र रामचन्द्रको वन भेजो, यह बात मैं तीन बार करती हूँ अर्थात् इसमें किसी प्रकारके परिवर्तनकी आशा मत रखो ॥ ९ ॥ हे आर्य, यदि तुम इस प्रतिज्ञाका पालन न करोगे और इस प्रकार मेरा त्याग करोगे तो तुम्हारे सामने ही मैं प्राण छोड़ दूंगी ॥ १० ॥ निर्विशङ्क होकर केकयीने जब राजासे ऐसी प्रार्थना की, तब वे सत्यपाशके बन्धनसे अपनेको अलग नहीं कर सके, जिस प्रकार बलि इन्द्रके पाशसे अपनेको अलग न कर सका था ॥ ११ ॥ राजाका हृदय व्याकुल होगया, मुंह सूख गया, दो पहियोंके बीचमें घूमनेवाले धुरेके समान उनकी दशा हो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विकलाभ्यां च नेत्राभ्यामपश्यन्निव भूमिपः । कृच्छ्राद्धैर्येण संस्तभ्य कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥१३॥
यस्ते मन्त्रकृतः पाणिरग्नौ पापे मया धृतः । संत्यजामि स्वजं चैव तव पुत्रं सह त्वया ॥१४॥
प्रयाता रजनी देवि सूर्यस्योदयनं प्रति । अभिषेकाय हि जनस्त्वरयिष्यति मां ध्रुवम् ॥१५॥
रामाभिषेकसंभारैस्तदर्थमुपकल्पितैः । रामः कारयितव्यो मे मृतस्य सलिलक्रियाम् ॥१६॥
सपुत्रया त्वया नैव कर्तव्या सलिलक्रिया । व्याहन्तास्यशुभाचारे यदि रामाभिषेचनम् ॥१७॥
न शक्तोऽद्यास्म्यहं द्रष्टुं दृष्ट्वा पूर्वं तथामुखम् । हतहर्षं तथानन्दं पुनर्जनमवाङ्मुखम् ॥१८॥
तां तथा ब्रुवतस्तस्य भूमिपस्य महात्मनः । प्रभाता शर्वरी पुण्या चन्द्रनक्षत्रमालिनी ॥१९॥
ततः पापसमाचारा कैकेयी पार्थिवं पुनः । उवाच परुषं वाक्यं वाक्यज्ञा रोषमूर्च्छिता ॥२०॥
किमिदं भाषसे राजन्वाक्यं गररुजोपमम् । आनाययितुमाक्लिष्टं पुत्रं राममिहार्हसि ॥२१॥
स्थाप्य राज्ये मम सुतं कृत्वा रामं वनेचरम् । निःसपत्नां च मां कृत्वा कृतकृत्यो भविष्यसि ॥२२॥
स तुन्न इव तीक्ष्णेन प्रतोदेन हयोत्तमः । राजा प्रचोदितोऽभीक्ष्णं कैकेय्या वाक्यमब्रवीत् ॥२३॥
धर्मबन्धेन बद्धोऽस्मि नष्टा च मम चेतना । ज्येष्ठं पुत्रं प्रियं रामं द्रष्टुमिच्छामि धार्मिकम् ॥२४॥
ततः प्रभातां रजनीमुदितं च दिवाकरे । पुण्ये नक्षत्रयोगे च मुहूर्ते च समागते ॥२५॥

गयी ॥ १२ ॥ राजाकी आँखें विकल होगयीं, उनकी देखनेकी शक्ति जाती रही, उन्होंने धैर्यसे अपनेको किसी तरह सम्भाला और वे केकयीसे बोले ॥ १३ ॥ पापिन, विधिवत् स्थापित अग्निके समीप मन्त्रोंसे शुद्ध जो मैंने तुम्हारा पाणिग्रहण किया था उसका मैं त्याग करता हूँ और मेरे द्वारा उत्पन्न पुत्रका तथा तुम्हारा भी त्याग करता हूँ ॥ १४ ॥ रात बीत गयी, सूर्योदय हो रहा है लोग मुझे अभिषेकके लिए शीघ्रता करनेको कहेंगे ॥ १५ ॥ बुरा चाहनेवाली यदि रामचन्द्रके अभिषेकमें तुमने विघ्नकिया तो रामचन्द्रके अभिषेकके लिए जो सामग्रियां एकत्र की गयी हैं उन्हीं सामग्रियोंसे रामचन्द्र मुझे जल देगें अर्थात् मरनेके बाद की क्रिया करेंगे, अपने बेटे के साथ तूं मेरा श्राद्ध आदि न कराना ॥ १६ ॥ १७ ॥ मैंने रामचन्द्रका प्रसन्न मुख देखा है, अब आज उन्हीं रामचन्द्रका उदास निष्प्रभ और नीचे किया हुआ मुख मैं कैसे देख सकूंगा ॥ १८ ॥ महात्मा राजा दशरथ इस तरह बोलते रहे और चन्द्रमा तथा नक्षत्रोंकी माला धारण करनेवाली पवित्र रात भी समाप्त हो गयी ॥ १९ ॥ बुरे अभिप्राय रखनेवाली और क्रोधसे दीप्त केकयी राजासे पुनः कठोर वाक्य बोली, वह इस कलामें प्रवीण थी ॥ २० ॥ राजन, जहर और बर्छीके समान दुःख देनेवाले ऐसे वचन क्यों बोल रहे हो । प्रसन्नता पूर्वक तुमको यहां रामचन्द्रको बुलवाना चाहिए ॥ २१ ॥ मेरे पुत्रका राज्याभिषेक करके, रामचन्द्रको वनमें भेजकर और मुझे शत्रुहीन बनाकर तुम कृतकृत्य हो सकोगे, सुखी हो सकोगे ॥ २२ ॥ तीक्ष्ण कोड़े से प्रेरित अच्छे घोड़ेके समान, राजा केकयीके बारबार प्रार्थना करनेपर बोले ॥ २३ ॥ मैं धर्म-पाशसे बंधा हुआ हूं अर्थात् तुमने मुझे धर्मपाशमें बांध लियाहै, मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी है। ज्येष्ठ पुत्र धार्म्मिक और प्रिय रामचन्द्रको मैं देखना चाहता हूँ ॥ २४ ॥ तदन्तर रात बीतगयी, सूर्योदय होगया, शुभ नक्षत्र योग और मुहूर्त भी आगया, यह देखकर ॥ २५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वसिष्ठो गुणसंपन्नः शिष्यैः परिवृतस्तथा । उपगृह्याशु संभारान्प्राविवेश पुरोत्तमम् ॥२६॥
सिक्तसंमार्जितपथां पताकोत्तमभूषिताम् । संहृष्टमनुजोपेतां समृद्धविपणापणाम् ॥२७॥
महोत्सवसमायुक्तां राघवार्थे समुत्सुकाम् । चन्दनागुरुधूपैश्च सर्वतः परिधूपिताम् ॥२८॥
तां पुरीं समतिक्रम्य पुरंदरपुरोपमाम् । ददर्शान्तःपुरं श्रीमान्नानाध्वजगणायुतम् ॥२९॥
पौरजानपदाकीर्णं ब्राह्मणैरुपशोभितम् । यष्टिमद्भिः सुसंपूर्णं सदश्वैः परमार्चितैः ॥३०॥
तदन्तःपुरमासाद्य व्यतिचक्राम तं जनम् । वासिष्ठः परमप्रीतः परमर्षिभिरावृतः ॥३१॥
स त्वपश्यद्विनिष्क्रान्तं सुमन्त्रं नाम सारथिम् । द्वारे मनुजसिंहस्य सचिवं प्रियदर्शनम् ॥३२॥
तमुवाच महातेजाः सूतपुत्रं विशारदम् । वासिष्ठः क्षिप्रमाचक्ष्व नृपतेर्मामिहागतम् ॥३३॥
इमे गङ्गोदकघटाः सागरेभ्यश्च काञ्चनाः । औदुम्बरं भद्रपीठमभिषेकार्थमाहृतम् ॥३४॥
सर्वबीजानि गन्धाश्च रत्नानि विविधानि च । क्षौद्रं दधि घृतं लाजा दर्भाः सुमनसः पयः ॥३५॥
अष्टौ च कन्या रुचिरा मत्तश्च वरवारणः । चतुरश्वो रथः श्रीमान्निस्त्रिंशो धनुरुत्तमम् ॥३६॥
वाहनं नरसंयुक्तं छत्रं च शशिसंनिभम् । श्वेते च वालव्यजने भृङ्गारं च हिरण्मयम् ॥३७॥
हेमदामापिनद्धश्च ककुद्मान्पाण्डुरो वृषः । केसरी च चतुर्दंष्ट्रो हरिश्रेष्ठो महाबलः ॥३८॥

सर्वगुणयुक्त वशिष्ठने अभिषेककी सब सामग्री लेकर शिष्योंके साथ नगरमें प्रवेश किया ॥ २६ ॥ उस नगरके रास्तेमें जलका छिड़काव किया गया था और बुहारी की गयी थी, अच्छी-अच्छी पताकाओं से वह नगर सुशोभित था, वहांके मनुष्य बड़ेही प्रसन्न थे, बाजारकी गलियां और बाजार खूब सजे हुए थे ॥ २७ ॥ वह नगर महोत्सवमय होरहा था, वहाँके लोग रामचन्द्रके लिए उत्सुक हो रहे थे, चन्दन, अगुरु और धूपसे समस्त नगर सुगन्धित होरहा था ॥२८॥ इन्द्रकी नगरीके समान सुन्दर उस नगरीमें जाकर वसिष्ठजीने राजाके महल देखे, जिनके चारो ओर कई ध्वजाएँ लगी हुई थीं ॥ २९ ॥ वहां नगरवासी तथा राज्यके लोग भरे हुऐ थे, दण्डधारी ब्राह्मण भी अपने आगमनसे उस स्थानको सुशोभित कर रहे थे और सजे घोड़े वहां भरे हुए थे ॥ ३० ॥ महर्षि वशिष्ठ बड़ी प्रसन्नतासे राजमहलके भीतर गये, उनके साथ अन्य अनेक ऋषि भी गये ॥ ३१ ॥ वशिष्ठजीने मनुजसिंह राजादशरथके द्वारपर महलसे निकल कर आये हुए सचिव और सारथि प्रियदर्शन (जिसके दर्शनसे प्रसन्नता हो, जो देखनेमें प्रिय हो) सुमन्त्रको देखा ॥ ३२ ॥ महातेजस्वी वसिष्ठने सूतपुत्र सुमन्त्रसे कहा कि मैं यहां आया हूँ, यह राजासे जाकर शीघ्र कहो ॥३३॥ ये सोनेके घड़े जिनमें गङ्गाजल तथा समुद्रका जल है मैं लाया हूँ, अभिषेकके लिए गूलरकी लकड़ीका पीढ़ा भी मैं लाया हूँ ॥३४॥ सब प्रकारके बीज, गन्ध, विविध रत्न, मधु, दही, घी, लावा, कुश, पुष्प, दूध, ॥३५॥ आठ कन्याएँ, मत्त हाथी, चार घोड़ेवाला रथ, सुन्दर तलवार, उत्तम धनुष, ॥ ३६ ॥ सवारी (आदमीसे ढोयी जानेवाली), चन्द्रमाके समान मनोहर छत्र, श्वेत चँवर, सोनेका गिलास, ॥ ३७ ॥ सोनेका माला पहना हुआ पीला साँड (जिसकी पीठपर ककुद है)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सिंहासनं व्याघ्रतनुः समिधश्च हुताशनः । सर्वे वादित्रसङ्घाश्च वेश्याश्चालंकृताः स्त्रियः ॥३९॥
आचार्या ब्राह्मणा गावः पुण्याश्च मृगपक्षिणः । पौरजानपदश्रेष्ठा नैगमाश्च गणैः सह ॥४०॥
एते चान्ये च बहवः प्रीयमाणाः प्रियंवदाः । अभिषेकाय रामस्य सह तिष्ठन्ति पार्थिवैः ॥४१॥
त्वरयस्व महाराजं यथा समुदितेऽहनि । पुष्ये नक्षत्रयोगे च रामो राज्यमवाप्नुयात् ॥४२॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा सूतपुत्रो महाबलः । स्तुवन्नृपतिशार्दूलं प्रविवेश निवेशनम् ॥४३॥
तं तु पूर्वोदितं वृद्धं द्वारस्था राजसंमताः । न शेकुरभिसंरोद्धुं राज्ञः प्रियचिकीर्षवः ॥४४॥
स समीपस्थितो राज्ञस्तामवस्थामजज्ञिवान् । वाग्भिः परमतुष्टाभिरभिष्टोतुं प्रचक्रमे ॥४५॥
ततः सूतो यथापूर्वं पार्थिवस्य निवेशने । सुमन्त्रः प्राञ्जलिर्भूत्वा तुष्टाव जगतीपतिम् ॥४६॥
यथा नन्दति तेजस्वी सागरो भास्करोदये । प्रीतः प्रीतेन मनसा तथा नन्दय नस्ततः ॥४७॥
इन्द्रमस्यां तु वेलायामभितुष्टाव मातलिः । सोऽजयद्दानवान्सर्वांस्तथा त्वां बोधयाम्यहम् ॥४८॥
वेदाः सहाङ्गा विद्याश्च यथा ह्यात्मभुवं प्रभुम् । ब्रह्माणं बोधयन्त्यद्य तथा त्वां बोधयाम्यहम् ॥४९॥
आदित्यः सह चन्द्रेण यथाभूतधरां शुभाम् । बोधयत्यद्य पृथिवीं तथा त्वां बोधयाम्यहम् ॥५०॥
उत्तिष्ठ सुमहाराज कृतकौतुकमङ्गलः । विराजमानो वपुषा मेरोरिव दिवाकरः ॥५१॥

चार दाँतवाला सिंह, उत्तम बलवान घोड़ा, ॥३८॥ सिंहासन, व्याघ्रचर्म, लकड़ी, अग्नि सब प्रकार-का बाजा, वेश्याएँ तथा शृङ्गार की हुई स्त्रियां, ॥ ३९ ॥ आचार्य, ब्राह्मण, गौ, और पवित्र पशुपक्षी, प्रजाके प्रतिनिधि, अपने दलके साथ बनिए, ॥४०॥ ये तथा और भी रामचन्द्रके अभिषेकसे प्रसन्न होकर आये हैं और राजाओंके साथ खड़े हैं, ये सभी प्रिय बोलनेवाले हैं, अर्थात् रामचन्द्रकी मङ्गल-कामना करनेवाले हैं ॥ ४१ ॥ महाराजसे शीघ्रता करनेके लिए कहो जिससे सूर्योदय होतेही पुष्य नक्षत्रमें रामचन्द्रका राज्याभिषेक होजाय ॥ ४२ ॥ वसिष्ठजीके ये वचन सुनकर महाबली सूतपुत्र सुमन्त्र राजश्रेष्ठ दसरथकी स्तुति करते हुए महलमें गये ॥ ४३ ॥ सुमन्त्रको द्वारपालने रोका नहीं, क्योंकि उन्हें पहलेहीसे राजाकी आज्ञा थी कि इस वृद्धको न रोकना । वे द्वारपाल राजाकी आज्ञा माननेवाले तथा उनका प्रिय करनेवाले थे ॥ ४४ ॥ सुमन्त्र राजाके समीप गये, पर उन्हें राजाकी वर्तमान अवस्थाका ज्ञान नहीं हुआ, अतएव प्रसन्नता प्रकट करनेवाली वाणीके द्वारा उन्होंने राजाकी स्तुति करनी प्रारम्भ की ॥ ४५ ॥ राजाके घरमें सारथी सुमन्त्र हाथ जोड़कर पहलेके समान राजाकी स्तुति करनेलगे ॥ ४६ ॥ जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेपर समुद्र आनन्दित होता है उसी प्रकार प्रसन्न होकर प्रसन्न मनसे आप हमलोगोंको आनन्दित करें ॥ ४७ ॥ मातलिने इसी समयमें (प्रातःकालमें) इन्द्रकी स्तुति की थी, और उठकर इन्द्रने दानवोंको जीता था, मैं आपको उसी प्रकार जगा रहा हूँ ॥ ४८ ॥ अङ्गोंके सहित वेद तथा अन्य विद्याएँ आत्मयोनि प्रभुब्रह्माको जगाती हैं उसी प्रकार मैं भी आपको जगा रहा हूँ ॥ ४९ ॥ जिस प्रकार सूर्य चन्द्रमाके साथ होकर प्राणियोंके धारण करनेवाली इस पृथ्वीको आज भी जगाते हैं, उसी प्रकार मैं भी आपको जगा रहा हूँ ॥ ५० ॥ महाराज ! उठिए जिस प्रकार सूर्य मेरुसे उठता है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उदतिष्ठत रामस्य समग्रमभिषेचनम् । पौरजानपदाश्चापि नैगमश्च कृताञ्जलिः ॥५२॥
अयं वसिष्ठो भगवान्ब्राह्मणैः सह तिष्ठति । क्षिप्रमाज्ञाप्यतां राजन्राघवस्याभिषेचनम् ॥५३॥
यथा ह्यपालाः पशवो यथा सेना ह्यनायका । यथा चन्द्रं विना रात्रिर्यथा गावो विना वृषम् ॥५४॥
एवं हि भविता राष्ट्रं यत्र राजा न दृश्यते । एवं तस्य वचः श्रुत्वा सान्त्वपूर्वमिवार्थवत् ॥५५॥
अभ्यकीर्यत शोकेन भूय एव महीपतिः । ततस्तु राजा तं सूतं सन्नहर्षः सुतं प्रति ॥५६॥
शोकरक्तेक्षणः श्रीमानुद्वीक्ष्योवाच धार्मिकः । वाक्यैस्तु खलु मर्माणि मम भूयो निकृन्तसि ॥५७॥
सुमन्त्रः करुणं श्रुत्वा दृष्ट्वा दीनं च पार्थिवम् । प्रगृहीताञ्जलिः किंचित्तस्मादेशादपाक्रमत् ॥५८॥
यदा वक्तुं स्वयं दैन्यान्न शशाक महीपतिः । तदा सुमन्त्रं मन्त्रज्ञा कैकेयी प्रत्युवाच ह ॥५९॥
सुमन्त्र राजा रजनीं रामहर्षसमुत्सुकः । प्रजागरपरिश्रान्तो निद्रावशमुपागतः ॥६०॥
तद्गच्छ त्वरितं सूत राजपुत्रं यशस्विनम् । राममानय भद्रं ते नात्र कार्या विचारणा ॥६१॥
अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनि । तच्छ्रुत्वा मन्त्रिणो वाक्यं राजा मन्त्रिणमब्रवीत् ॥६२॥
सुमन्त्र रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम् । स मन्यमानः कल्याणं हृदयेन ननन्द च ॥६३॥
निर्जगाम च स प्रीत्या त्वरितो राजशासनात् । सुमन्त्रश्चिन्तयामास त्वरितं चोदितस्तया ॥६४॥

उत्सवके योग्य वस्त्रआदि धारणकर शरीरको अलंकृत कीजिए ॥ ५१ ॥ रामचन्द्रके अभिषेककी सब सामग्रियां तयार हैं, पुरवासी प्रजा और वणिक् आदि समुदाय आया हुआ है ॥५२॥ भगवान् वसिष्ठ भी ब्राह्मणोंके साथ तयार हैं, अब आप रामचन्द्रके अभिषेककी शीघ्र आज्ञा दें ॥५३॥ बिना पालकके पशुओंका, बिना सेनापतिके सेनाकी, चन्द्रमाके बिना रात्रिकी और बिना सांडके गौओंकी जो दशा होती है ॥ ५४ ॥ वही दशा राजाके बिना राज्यकी भी हो जाती है । सुमन्त्रके अर्थवान् और कोमल ऐसे वचन सुनकर ॥ ५५ ॥ राजा पुनः शोकसे व्याकुल हुए, पुत्रके राज्याभिषेकके सम्बन्धसे जो उनकी प्रसन्नता थी वह नष्ट हो चुकी थी । वे सुमन्त्रसे बोले ॥५६॥ धार्मिक राजाकी आंखें शोकसे लाल हो गयीं थी, वे सुमन्त्रकी ओर देखकर बोले—इन वचनोंसे तुम मेरे हृदयको क्यों छेद रहे हो ॥५७॥ सुमन्त्र राजाके ऐसे दयनीय वचन सुनकर तथा उनको नितान्त दुःखी देखकर हाथ जोड़ेही वहांसे थोड़ी दूर हट आये ॥५८॥ जब राजा अधिक दुःख होनेके कारण बोल न सके, तब अपनी कार्यसिद्धिके लिए बोलनेमें चतुर केकयी सुमन्त्रसे बोली ॥५९॥ सुमन्त्र, रामचन्द्रके अभिषेककी प्रसन्नतामें राजा समूची रात जागते रहे, इस कारणसे वे थक गये हैं और इस समय सो रहे हैं ॥ ६० ॥ इस कारण सूत, शीघ्र जाओ, यशस्वी राजपुत्र रामचन्द्रको यहां ले आओ, इस बातमें विचार मत करो ॥ ६१ ॥ सुमन्त्रने कहा, महारानी, बिना राजाकी आज्ञाके मैं कैसे जाऊं ? मंत्रीकी यह बात सुनकर राजा उससे बोले ॥ ६२ ॥ सुमन्त्र, मैं सुन्दर रामचन्द्रको देखना चाहता हूँ, शीघ्र तुम उन्हें ले आओ । राजा दशरथ इस समय रामचन्द्रके दर्शनसे अपनी भलाई समझते थे, इसीसे वे मनही मन प्रसन्न हुए ॥ ६३ ॥ राजाकी आज्ञासे सुमन्त्र शीघ्रही राजमहलसे निकले । केकयीने सुमन्त्रको रामचन्द्रके यहां जानेमें शीघ्रता करनेके लिए कहा था

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

व्यक्तं रामाभिषेकार्थे इहायास्यति धर्मराट् । इति सूतो मतिं कृत्वा हर्षेण महता पुनः ॥६५॥
निर्जगाम महातेजा राघवस्य दिदृक्षया । सागरह्रदसंकाशात्सुमन्त्रोऽन्तःपुराच्छुभात् ॥६६॥
ततः पुरस्तात्सहसा विनिःसृतो महीपतेर्द्वारगतान्विलोकयन् ।
ददर्श पौरान्विविधान्महाधनानुपस्थितान्द्वारमुपेत्य विष्ठितान् ॥६७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः १५

ते तु तां रजनीमुष्य ब्राह्मणा वेदपारगाः । उपतस्थुरुपस्थानं सह राजपुरोहिताः ॥ १ ॥
अमात्या बलमुख्याश्च मुख्या ये निगमस्य च । राघवस्याभिषेकार्थे प्रीयमाणाः सुसंगताः ॥ २ ॥
उदिते विमले सूर्ये पुष्ये चाभ्यागतेऽहनि । लग्ने कर्कटके प्राप्ते जन्म रामस्य च स्थिते ॥ ३ ॥
अभिषेकाय रामस्य द्विजेन्द्रैरुपकल्पितम् । काञ्चना जलकुंभाश्च भद्रपीठं स्वलंकृतम् ॥ ४ ॥
रथश्च सम्यगास्तीर्णो भास्वता व्याघ्रचर्मणा । गङ्गायमुनयोः पुण्यात्संगमादाहृतं जलम् ॥ ५ ॥
याश्चान्याः सरितः पुण्या ह्रदाः कूपाः सरांसि च। प्राग्वहाश्चोर्ध्ववाहाश्च तिर्यग्वाहाश्च क्षीरिणः॥ ६ ॥
ताभ्यश्चैवाहृतं तोयं समुद्रेभ्यश्च सर्वशः । क्षौद्रं दधि घृतं लाजा दर्भाः सुमनसः पयः ॥ ७ ॥

इससे उनके मनमें चिन्ता हुई ॥ ६४ ॥ सुमन्त्रने सोचा अवश्यही रामाभिषेककी तयारी आदिमें लगे रहनेके कारण धर्मराज राजा दसरथ थक गये हैं । यह सोचकर पुनः बड़ी प्रसन्नतासे ॥६५॥ महातेजस्वी सुमन्त्र समुद्रके मध्यवर्ती तालाबके समान राजमहलसे रामचन्द्रको देखनेके लिए निकलें ॥ ६६ ॥ सुमन्त्रने राजमहलसे निकलकर आगे राजमहलके द्वारपालोंको देखा, पुनः उन्होंने बड़े-बड़े धनी पुरवासियोंको राजाके द्वारपर आये हुए देखा ॥ ६७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका चौदहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १४ ॥

उस रातको बिताकर, वे वेदपारग ब्राह्मण राजपुरोहितोंके साथ राजाके द्वारपर उपस्थित हुए ॥ १ ॥ दीवान, सेनापति, वणिक-समुदायके प्रतिनिधि ये सब प्रसन्नतापूर्वक रामचन्द्रके अभिषेकके लिए राजद्वारपर उपस्थित हुए ॥ २ ॥ सूर्योदय होनेपर दिनमें पुष्पनक्षत्रमें रामके जन्मकालस्थ कर्कट लग्नके आनेपर राज्याभिषेक होगा ॥ ३ ॥ रामचन्द्रके अभिषेकके लिए ब्राह्मणोंने सब सामग्रियां एकत्र करली हैं, जलपूर्ण सोनेके घड़े लाये गये हैं, भद्रपीठ (मङ्गल चिन्ह से चिन्हित) भी लाया गया है ॥ ४ ॥ रथपर चमकीला व्याघ्रचर्म बिछा दिया गया है, गङ्गा-जमुनाके पवित्र संगमसे जल लाया गया है ॥ ५ ॥ और भी जो पवित्र नदियां जो पूर्वकी ओर बहती है, ऊंचे बहती हैं, उत्तर-दक्खिन की ओर बहती हैं, जो ह्रद हैं, कूएँ हैं, तालाब हैं ॥ ६ ॥ उन सबसे जल लाया गया है, सब समुद्रोंसे भी जल लाया गया है । मधु, दही, घी, लावा, कुश,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अष्टौ च कन्या रुचिरा मत्तश्च वरवारणः । सजलाः क्षीरिभिश्छन्ना घटाः काञ्चनराजताः ॥ ८ ॥
पद्मोत्पलयुता भान्ति पूर्णाः परमवारिणा । चन्द्रांशुविकचप्रख्यं पाण्डुरं रत्नभूषितम् ॥ ९ ॥
सज्जं तिष्ठति रामस्य वालव्यजनमुत्तमम् । चन्द्रमण्डलसंकाशमातपत्रं च पाण्डुरम् ॥१०॥
सज्जं द्युतिकरं चाभ्यदाभिषकपुरःसरम् । पाण्डुरश्च वृषः सज्जः पाण्डुराश्वश्च संस्थितः ॥११॥
वादित्राणि च सर्वाणि वन्दिनश्च तथापरे । इक्ष्वाकूणां यथा राज्ये संभ्रियेताभिषेचनम् ॥१२॥
तथाजातीयमादाय राजपुत्राभिषेचनम् । ते राजवचनात्तत्र समवेता महीपतिम् ॥१३॥
अपश्यन्तोऽब्रुवन्को नु राज्ञो नः प्रतिवेदयेत् । न पश्यामश्च राजानमुदितश्च दिवाकरः ॥१४॥
यौवराज्याभिषेकश्च सज्जो रामस्य धीमतः । इति तेषु ब्रुवाणेषु सर्वांस्तांश्च महीपतीन् ॥१५॥
अब्रवीत्तानिदं वाक्यं सुमन्त्रो राजसत्कृतः । रामं राज्ञो नियोगेन त्वरया प्रस्थितो ह्यहम् ॥१६॥
पूज्या राज्ञो भवन्तश्च रामस्य तु विशेषतः । अयं पृच्छामि वचनात्सुखमायुष्मतामहम् ॥१७॥
राज्ञः संप्रतिबुद्धस्य चानागमनकारणम् । इत्युक्त्वान्तःपुरद्वारमाजगाम पुराणवित् ॥१८॥
सदा सक्तं च तद्वेश्म सुमन्त्रः प्रविवेश ह । तुष्टावास्य तदा वंशं प्रविश्य स विशांपतेः ॥१९॥
शयनीयं नरेन्द्रस्य तदासाद्य व्यतिष्ठत । सोऽत्यासाद्य तु तद्वेश्म तिरस्करणिमन्तरा ॥२०॥

फूल और दूध लाये गये हैं ॥७॥ सुन्दरी आठ कन्याएँ, हाथी, सोने और चांदीके घड़े जो दूधवाले वृक्षोंके पत्तोंसे ढँकेहुए हैं, ॥ ८ ॥ वे घड़े पद्म और उत्पल (पद्म और उत्पल दोनों कमलहीको कहते हैं, पर यहाँ दोनों साथ कहे गये हैं इससे उत्पलका अर्थ कमल भेद समझना चाहिए) से युक्त हैं और जलसे भरे हुए हैं, अतएव बड़े सुन्दर मालूम पड़ते हैं। चन्द्रमाकी किरणोंके समान जिसकी दीप्ति फैल रही है, जो श्वेत वर्णका है, जिसमें रत्न जड़े हुए हैं ॥९॥ वैसा रामचन्द्रके लिए पंखा और दो चँवर तयार हैं। चन्द्रमण्डलके समान छत्र भी ॥१०॥ तयार है जो द्युतिमान है, मूल्यवान है और अभिषेक की सामग्रियोंमें सबसे प्रधान है। श्वेत बैल और श्वेत घोड़ा भी तयार रखा हुआ है ॥ ११ ॥ सब प्रकारके बाजे तथा गुणगान करनेवाले बन्दी आये हुए हैं। इक्ष्वाकु-वंशमें अभिषेकके लिए जैसी सामग्रियां एकत्र की जाती हैं ॥ १२ ॥ उसी प्रकारकी, राजपुत्रके अभिषेककी, सामग्री लेकर राजाकी आज्ञासे ये राजा आये हैं ॥ १३ ॥ राजा दसरथको न देखकर वे कहते हैं कि कौन हम लोगोंके आनेकी खबर राजाको देगा। हमलोग यहां राजाको नहीं देख रहे हैं, सूर्योदय भी होगया ॥ १४ ॥ बुद्धिमान रामचन्द्रके अभिषेककी सब सामग्रियाँ तैयार हैं, इस प्रकार कहते हुए उन सब राजाओंसे ॥१५॥ राजाके द्वारा सम्मानित सुमन्त्रने उन राजाओंसे कहा, राजाकी आज्ञासे रामचन्द्रको लानेके लिए मैं शीघ्रतापूर्वक जा रहा हूँ ॥ १६ ॥ आप लोग राजाके, विशेषकर रामचन्द्रके, पूज्य हैं । आयुष्मान् आप लोगोंकी आज्ञासे मैं ॥ १७ ॥ जागे हुए राजासे उनके यहां न आनेका कारण पूछता हूँ, ऐसा कहकर पुराणवित् (सूत) राजमहलके द्वारपर आये ॥ १८ ॥ सुमन्त्रका राजभवनमें बे-रोकटोक प्रवेश था, वे राजभवनमें चले गये और वहां जाकर राजाके वंशकी स्तुति करने लगे ॥ १९ ॥ सुमन्त्र राजाके सोनेवाले घरमें गये, वे राजाके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आशीर्भिर्गुणयुक्ताभिरभितुष्टाव राघवम् । सोमसूर्यौ च काकुत्स्थ शिववैश्रवणावपि ॥२१॥
वरुणश्चाग्निरिन्द्रश्च विजयं प्रदिशन्तु ते । गता भगवती रात्रिरहः शिवमुपस्थितम् ॥२२॥
बुद्धयस्व राजशार्दूल कुरु कार्यमनन्तरम् । ब्राह्मणा बलमुख्याश्च नैगमाश्चागतास्त्विह ॥२३॥
दर्शनं तेऽभिकाङ्क्षन्ते प्रतिबुद्धयस्व राघव । स्तुवन्तं तं तदा सूतं सुमन्त्रं मन्त्रकोविदम् ॥२४॥
प्रतिबुद्ध्य ततो राजा इदं वचनमब्रवीत । राममानय सूतेति यदस्यभिहितोऽनया ॥२५॥
किमिदं कारणं येन ममाज्ञा प्रतिवाह्यते । न चैव संप्रसुप्तोऽहमानयेहाशु राघवम् ॥२६॥
इति राजा दशरथः सूतं तत्रान्वशात्पुनः । स राजवचनं श्रुत्वा शिरसा प्रतिपूज्य तम् ॥२७॥
निर्जगाम नृपावासान्मन्यमानः प्रियं महत् । प्रपन्नो राजमार्गं च पताकाध्वजशोभितम् ॥२८॥
हृष्टः प्रमुदितः सूतो जगामाशु विलोकयन् । स सूतस्तत्र शुश्राव रामाधिकरणाः कथाः ॥२९॥
अभिषेचनसंयुक्ताः सर्वलोकस्य हृष्टवत् । ततो ददर्श रुचिरं कैलाससदृशप्रभम् ॥३०॥
रामवेश्म सुमन्त्रस्तु शक्रवेश्मसमप्रभम् । महाकपाटपिहितं वितर्दिशतशोभितम् ॥३१॥
काञ्चनप्रतिमैकाग्रं मणिविद्रुमतोरणम् । शारदाभ्रघनप्रख्यं दीप्तं मेरुगुहासमम् ॥३२॥
मणिभिर्वरमाल्यानां सुमहद्भिरलंकृतम् । मुक्तामणिभिराकीर्णं चन्दनागुरुभूषितम् ॥३३॥
गन्धान्मनोज्ञान्विसृजद्दार्दुरं शिखरं यथा । सारसैश्च मयूरैश्च विनदद्भिर्विराजितम् ॥३४॥

पास तक चले गये, बीचमें चिक रह गयी ॥२०॥ वे मङ्गलमय आशीर्वादोंसे दशरथकी स्तुति करने लगे । काकुत्स्थ, चन्द्रमा, सूर्य, शिव, कुवेर, ॥ २१ ॥ वरुण, अग्नि और इन्द्र आपको विजय दें । भगवती रात्रि व्यतीत हुई, कल्याणमय दिन हुआ ॥ २२ ॥ राजश्रेष्ठ उठिए, ब्राह्मण सेनापति और वणिक्-समाजके प्रतिनिधि आये हैं, अब आगेका अभिषेक सम्बन्धी काम कीजिए ॥ २३ ॥ ये सब लोग आपका दर्शन चाहते हैं, अब आप उठें । राज्यकी भीतरी बातें जाननेवाले सारथि सुमन्त्रकी स्तुति सुनकर ॥ २४ ॥ राजा उठे और उससे बोले-इसने तो तुम्हें रामचन्द्रको लानेके लिए कहा था ॥ २५ ॥ क्या कारण है कि मेरी आज्ञा इस तरह उठायी जाती है, मैं सोया हुआ नहीं हूं, शीघ्र रामचन्द्रको यहां ले आओ ॥ २६ ॥ इस प्रकार राजा दसरथने सुमन्त्रको पुनः आज्ञा दी । राजाके वचन सुनकर और सिरसे उन्हें प्रणाम करके ॥ २७ ॥ राजाके महलसे प्रसन्न होते हुए सुमन्त्र निकले और ध्वजा-पताकासे शोभित सड़कपर आये ॥ २८ ॥ हृष्ट और प्रसन्न सुमन्त्र सबको देखते हुए शीघ्रतापूर्वक चले, उन्होंने वहां रामके सम्बन्धकी अनेक कथाएँ सुनीं ॥ २९ ॥ जो रामचन्द्रके अभिषेकसे सम्बन्ध रखनेवाली थीं और हृष्ट मनुष्योंके द्वारा कही गयी थीं । तदनन्तर उन्होंने कैलासके समान ऊँचा और सुन्दर ॥ ३० ॥ और इन्द्रके घरके समान मनोहर रामचन्द्रका घर देखा । उसमें बड़े-बड़े किवाड़ लगे थे, सैकड़ों वेदिकाएँ बनी हुई थीं ॥ ३१ ॥ सर्वत्र सोनेकी तस्वीरें जड़ी हुई थीं, मणि और मूँगेंका तोरण लगा हुआ था, शरदके मेघके समान स्वच्छ मेरुकी गुहाके समान ॥ ३२ ॥ सोनेकी मालाओंसे जिनमें जगह-जगह बड़े-बड़े मणि लगे हुए थे अलंकृत, मोतियोंसे भरा हुआ, चन्दन और अगुरुसे शोभित ॥ ३३ ॥ दर्दुर (मलय पर्वतके समीप-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुकृतेहामृगाकीर्णं सूत्कीर्णं भक्तिभिस्तथा। मनश्चक्षुश्च भूतानामाददत्तिग्मतेजसा ॥३५॥
चन्द्रभास्करसंकाशं कुबेरभवनोपमम्। महेन्द्रधामप्रतिमं नानापक्षिसमाकुलम् ॥३६॥
मेरुशृङ्गसमं सूतो रामवेश्म ददर्श ह। उपस्थितैः समाकीर्णं जनैरञ्जलिकारिभिः ॥३७॥
उपादाय समाक्रान्तैस्तदा जानपदैर्जनैः। रामाभिषेकसुमुखैरुन्मुखैः समलंकृतम् ॥३८॥
महामेघसमप्रख्यमुदग्रं सुविराजितम्। नानारत्नसमाकीर्णं कुब्जकैरपि चावृतम् ॥३९॥
स वाजियुक्तेन रथेन सारथिः समाकुलं राजकुलं विराजयन्।
वरूथिना राजगृहाभिपातिना पुरस्य सर्वस्य मनांसि हर्षयन् ॥४०॥
ततः समासाद्य महाधनं महत्प्रहृष्टरोमा स बभूव सारथिः।
मृगैर्मयूरैश्च समाकुलोल्वणं गृहं वरार्हस्य शचीपतेरिव ॥४१॥
स तत्र कैलासनिभाः स्वलंकृताः प्रविश्य कक्ष्यास्त्रिदशालयोपमाः।
प्रियान्वरान्राममते स्थितान्बहून्व्यपोह्य शुद्धान्तमुपास्थितो रथी ॥४२॥
स तत्र शुश्राव च हर्षयुक्ता रामाभिषेकार्थकृतां जनानाम्।
नरेन्द्रसूनोरभिमङ्गलार्थाः सर्वस्य लोकस्य गिरः प्रहृष्टाः ॥४३॥

की भूमि, जो चन्दनके लिए मशहूर है) पर्वतके शिखरके समान जिससे मनको लुभानेवाली गन्ध निकल रही है, बोलते हुए सारस और मयूरोंसे जो सुशोभित है ॥ ३४ ॥ जिसकी दीवारपर और खम्भोंपर उत्तम भेड़िएकी तस्वीर बनायी गयी है, जगह-जगह बेलबूटे बने हुए हैं, रामचन्द्रका वह घर प्राणियोंके मन आंख दोनोंको अपने प्रखर तेजसे तृप्त करता था ॥३५॥ चन्द्रमा और सूर्यकी किरणें उसपर प्रतिबिंबित होकर दूनी होजाती थीं, वह कुबेरके घरके समान था और इन्द्रके भवनके समान था, वहां अनेक पक्षी थे, ॥ ३६ ॥ मेरुके शिखरके समान रामचन्द्रके उस घरको सुमन्त्रने देखा। उस समय रामचन्द्रका वह घर अञ्जलिकारी—प्रणाम करनेवालोंसे भरा था॥३७॥ प्रजागण जो भेंट लेकर रामचन्द्रके अभिषेकोत्सवके लिए आये थे, वे बाहर ही रोक लिये गये थे और वे रामचन्द्रके घरकी शोभा ऊपर मुंह करके देख रहे थे, उनसे वह घर बड़ा सुन्दर मालूम पड़ता था ॥ ३८ ॥ वह घर महा मेघके समान बड़ाही ऊँचा था, खूब सजा हुआ था, अनेक तरहके रत्न उसमें लगे हुए थे, कुबड़े भी खड़े थे (पहले राजमहलोंमें हँसीके लिए कुबड़े रखे जाते थे) ॥ ३९ ॥ सुमन्त्र घोड़ेके रथपर चढ़कर लोगोंकी भीड़से सकची हुई सड़कको शोभित करते हुए और नगरवासियोंके मन प्रसन्न करते हुए राजगृहकी ओर चले ॥ ४० ॥ उस समृद्धिमान् घरमें जाकर सारथि बहुत प्रसन्न हुए, हर्षसे उन्हें रोमाञ्च हो आया, उस घरमें पशुपक्षी, मयूर आदि थे, वहांके लोगोंकी आकुलतासे वह घरही विशेष व्याकुलसा दीख पड़ता था, उत्तम वस्तुओंके संग्रह करनेवाले इन्द्रके घरके समान उस घरकी शोभा थी ॥ ४१ ॥ कैलासके समान ऊंचा और स्वर्गके समान मनोहर तीन खण्डोंको लांघकर तथा रामचन्द्रके अनुगत अतएव श्रेष्ठ अनेक मनुष्यको बीच ही में छोड़कर (अर्थात् उनसे बातचीत किये बिनाही) रामचन्द्रके महलमें सुमन्त्र पहुँचे ॥ ४२ ॥ सुमंत्रने वहाँ अभिषेकके काम करनेवाले मनुष्योंकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महेन्द्रसदृशप्रतिमं च वेश्म रामस्य रम्यं मृगपक्षिजुष्टम् ।
ददर्श मेरोरिव शृङ्गमुच्चं विभ्राजमानं प्रभया सुमन्त्रः ॥४४॥
उपस्थितैरञ्जलिकारिभिश्च सोपायनैर्जानपदैर्जनैश्च ।
कोट्या परार्धैश्च विमुक्तयानैः समाकुलं द्वारपदं ददर्श ॥४५॥
ततो महामेघमहीधराभं प्रभिन्नमत्यङ्कुशमत्यसह्यम् ।
रामोपवाह्यं रुचिरं ददर्श शत्रुंजयं नागमुदग्रकायम् ॥४६॥
स्वलंकृतान्साश्वरथान्सकुञ्जरानमात्यमुख्यांश्च ददर्श वल्लभान् ।
व्यपोह्य सूतः सहितान्समन्ततः समृद्धमन्तःपुरमाविवेश ह ॥४७॥
ततोऽद्रिकूटाचलमेघसंनिभं महाविमानोपमवेश्मसंयुतम् ।
अवार्यमाणः प्रविवेश सारथिः प्रभूतरत्नं मकरो यथार्णवम् ॥४८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६

स तदन्तःपुरद्वारं समतीत्य जनाकुलम् । प्रविविक्तां ततः कक्ष्यामाससाद पुराणवित् ॥ १ ॥
प्रासकार्मुकबिभ्रद्भिर्युवभिर्मृष्टकुण्डलैः । अप्रमादिभिरेकाग्रैः स्वानुरक्तैरधिष्ठिताम् ॥ २ ॥

प्रसन्नतामयी वाणी सुनी, वे रामचन्द्रके मङ्गलके उद्देश्यसे कही गयी थीं ॥ ४३ ॥ रामचन्द्रका रमणीय घर इन्द्रके घरके समान था, वहाँ तरह-तरहके पशु और पक्षी थे, मेरुके शिखरके समान वह ऊँचा था । अपनी प्रभासे सुशोभित उस घरको सुमन्त्रने देखा ॥ ४४ ॥ सुमन्त्रने देखा कि राजभवनके द्वारपर प्रणाम और आशीर्वाद करनेवाले भेंट लेकर आये हुए प्रजाजन करोड़ोंकी संख्यामें हैं वे अपनी सवारीसे उतरकर रामचन्द्रके द्वारपर खड़े हैं ॥ ४५ ॥ इसके बाद सुमंत्रने रामचन्द्रके शत्रुंजय नामक हाथीको देखा, इसका शरीर बड़ाही विशाल था, वह उस पर्वतके समान था जिसके शिखरपर बड़े-बड़े मेघ हों, उसके मद चू रहा था, उसका अंकुश और अंकुशों-से विलक्षण था और वह चलनेमें तेज था ॥ ४६ ॥ पुनः रामचन्द्रके प्रिय प्रधान अमात्योंको सुमन्त्र-ने देखा, वे सजे हुए थे, तथा घोड़ा, रथ और हाथीपर सवार थे, सुमन्त्रको देखकर वे इनके पास आये, पर सुमन्त्र उनको वहीं छोड़कर भीतर राजमहलमें चले गये ॥ ४७ ॥ जिस प्रकार मगर समुद्रमें घुस जाता है, उसका पता ही नहीं लगता, उसी प्रकार सुमन्त्र उस राजभवनमें पैठे । वह राजमहल उस पर्वतके समान था जिसके शिखरपर निश्चल मेघ हों, उस महलमें अनेक महा-विमान घर थे (सतमहले मकानको विमान कहते हैं) । सुमन्त्र बिना रोके वहाँ गये ॥ ४८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १५ ॥

मनुष्योंसे पूर्ण राजमहलके द्वारको लाँघकर सुमन्त्र उस खण्डमें गये, जहाँ आदमियों की बहुत भीड़ न थी ॥१॥ सुन्दर कुण्डल धारण करनेवाले, सदा सावधान रहनेवाले, तत्पर और रामचन्द्रमें प्रेम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अत्र काषायिणो वृद्धान्वेत्रपाणीन्स्वलंकृतान् । ददर्श विष्ठितान्द्वारि स्त्र्यध्यक्षान्सुसमाहितान् ॥ ३ ॥
ते समीक्ष्य समायान्तं रामप्रियचिकीर्षवः । सहसोत्पतिताः सर्वे ह्यासनेभ्यः ससंभ्रमाः ॥ ४ ॥
तानुवाच विनीतात्मा सूतपुत्रः प्रदक्षिणः । क्षिप्रमाख्यात रामाय सुमन्त्रो द्वारि तिष्ठति ॥ ५ ॥
ते राममुपसंगम्य भर्तुः प्रियचिकीर्षवः । सहभार्याय रामाय क्षिप्रमेवाचचक्षिरे ॥ ६ ॥
प्रतिवेदितमाज्ञाय सूतमभ्यन्तरं पितुः । तत्रैवानाययामास राघवः प्रियकाम्यया ॥ ७ ॥
तं वैश्रवणसंकाशमुपविष्टं स्वलंकृतम् । ददर्श सूतः पर्यङ्के सौवर्णे सोत्तरच्छदे ॥ ८ ॥
वराहरुधिराभेण शुचिना च सुगन्धिना । अनुलिप्तं परार्ध्येन चन्दनेन परंतपम् ॥ ९ ॥
स्थितया पार्श्वतश्चापि वालव्यजनहस्तया । उपेतं सीतया भूयश्चित्रया शशिनं यथा ॥१०॥
तं तपन्तमिवादित्यमुपपन्नं स्वतेजसा । ववन्दे वरदं बन्दी विनयज्ञो विनीतवत् ॥११॥
प्राञ्जलिः सुमुखं दृष्ट्वा विहारशयनासने । राजपुत्रमुवाचेदं सुमन्त्रो राजसत्कृतः ॥१२॥
कौसल्या सुप्रजा राम पिता त्वां द्रष्टुमिच्छति । माहिष्यापि हि कैकेय्या गम्यतां तत्रमा चिरम् ॥१३॥
एवमुक्तस्तु संहृष्टो नरसिंहो महाद्युतिः । ततः संमानयामास सीतामिदमुवाच ह ॥१४॥
देवि देवश्च देवी च समागम्य मदन्तरे । मन्त्रयेते ध्रुवं किंचिदभिषेचनसंहितम् ॥१५॥

रखनेवाले युवक माला और धनुष लेकर वहाँ खड़े थे ॥ २ ॥ वहाँ सुमन्त्रने गेरुआ वस्त्र धारण करनेवाले बूढ़े तथा हाथमें बेंत रखनेवाले, स्त्रियोंकी रक्षा करनेवालोंको देखा । वे वस्त्र-आभूषणसे सजे हुए थे, बड़े सावधान थे और द्वारपर बैठे हुए थे ॥ ३ ॥ रामचन्द्रके प्रिय करनेवाले वे सुमन्त्र-को आते देखकर शीघ्रतापूर्वक आदरसे अपने-अपने आसनसे उठे ॥ ४ ॥ सेवामें निपुण सुमन्त्र विनयपूर्वक उनसे बोले, शीघ्र जाकर रामचन्द्रसे कहो कि सुमन्त्र द्वारपर आया हुआ है ॥ ५ ॥ अपने स्वामीका प्रिय करनेवाले वे शीघ्रही रामचन्द्रके पास गये और राम तथा सीतासे उनलोगों ने वह बात कही ॥ ६ ॥ द्वारपालोंके कहनेपर पिताके अन्तरङ्ग सुमन्त्रको रामने वहीं बुलवाया जिससे सुमन्त्र प्रसन्न हों ॥ ७ ॥ सुमन्त्रने देखा कि सोनेके पलंगपर जिसपर गद्दा और चादर बिछे हुए हैं, रामचन्द्र वस्त्र-आभूषणोंसे सजकर बैठे हैं, रामचन्द्र कुबेरके समान असीम ऐश्वर्य-शाली मालूम पड़ते थे ॥ ८ ॥ शत्रु-तापन रामचन्द्रने बहुत ही लाल (मूलमें लिखा है कि सूअरके रुधिरके समान लाल, क्योंकि सूअरका रुधिर बहुत ही लाल होता है, ऐसी प्रसिद्धि है), पवित्र, सुगन्धित और उत्तम चन्दनका लेप किया था ॥ ९ ॥ उनके पास ही बगलमें बैठकर सीता चँवर डुला रही थीं, चित्राके योगसे चन्द्रमाके समान उस समय रामचन्द्रकी शोभा होगयी थी ॥ १० ॥ रामचन्द्र सूर्यके समान अपने तेजसे तप रहे थे, विनय जाननेवाले सुमंत्रने उनको नमस्कार किया ॥ ११ ॥ प्रसन्न तथा पलंगपर बैठे रामचन्द्रसे हाथ जोड़कर राजसम्मानित सुमन्त्र बोले ॥ १२ ॥ आपको उत्पन्न करके कौसल्या सुपुत्र उत्पन्न करनेवाली हुई हैं, आपको पिता देखना चाहते हैं, महारानी केकयी भी वहीं है, आप शीघ्र वहाँ चलें ॥ १३ ॥ नरसिंह महाद्युतिमान रामचन्द्र सुमन्त्रकी बात सुनकर प्रसन्न हुए और सीताका आदर करके वे उनसे बोले ॥ १४ ॥ देवि, पिता और देवी केकयी अवश्य ही मेरे अभिषेकके सम्बन्धमें कुछ विचार कर रहीं हैं ॥१५॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लक्षयित्वा ह्याभिप्रायं प्रियकामा सुदक्षिणा । संचोदयति राजानं मदर्थमसितेक्षणा ॥१६॥
सा प्रहृष्टा महाराजं हितकामानुवर्तिनी । जननी चार्थकामा मे केकयाधिपतेः सुता ॥१७॥
दिष्ट्या खलु महाराजो माहिष्या प्रियया सह । सुमन्त्रं प्राहिणोद्दूतमर्थकामकरं मम ॥१८॥
यादृशी परिषत्तत्र तादृशो दूत आगतः । ध्रुवमद्यैव मां राजा यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति ॥१९॥
हन्त शीघ्रमितो गत्वा द्रक्ष्यामि च महीपतिम् । सह त्वं परिवारेण सुखमास्व रमस्व च ॥२०॥
पतिसंमानिता सीता भर्तारमसितेक्षणा । आ द्वारमनुवव्राज मङ्गलान्यभिदध्युषी ॥२१॥
राज्यं द्विजातिभिर्जुष्टं राजसूयाभिषेचनम् । कर्तुमर्हति ते राजा वासवस्येव लोककृत् ॥२२॥
दीक्षितं व्रतसंपन्नं वराजिनधरं शुचिम् । कुरङ्गशृङ्गपाणिं च पश्यन्ती त्वां भजाम्यहम् ॥२३॥
पूर्वां दिशं वज्रधरो दाक्षिणां पातु ते यमः । वरुणः पश्चिमामाशां धनेशस्तूत्तरां दिशम् ॥२४॥
अथ सीतामनुज्ञाप्य कृतकौतुकमङ्गलः । निश्चक्राम सुमन्त्रेण सह रामो निवेशनात् ॥२५॥
पर्वतादिव निष्क्रम्य सिंहो गिरिगुहाशयः । लक्ष्मणं द्वारि सोऽपश्यत्प्रह्वाञ्जलिपुटं स्थितम्॥२६॥

अभिषेकके सम्बन्धमें राजाका अभिप्राय जानकर समर्थ केकयी राजाको मेरे अभिषेकके लिए प्रेरित कर रही होंगी, अर्थात् राजाने पूछा होगा कि भरत नहीं है, ऐसी दशामें रामचन्द्रके अभिषेक करनेमें तुम्हारी क्या राय है। राजाका यह अभिप्राय सुनकर रानी कहती होंगी, आप शीघ्र अभिषेक करें, भरत आ जायगा तो सुन लेगा, भरतके लिये इस मंगल कार्यमें विलम्ब करना उचित नहीं ॥ १६ ॥ वह सदा प्रसन्न रहनेवाली केकयी राजाका हित चाहनेवाली है, वह केकयराजकी कन्या मेरी माता मेरे कल्याणकी कामना करती है ॥ १७ ॥ यह प्रसन्नताकी बात है कि महाराज और महारानी दोनोंने मेरे मनोरथ सिद्ध करनेवाले सुमन्त्रको ही दूत बनाकर मेरे पास भेजा है ॥ १८ ॥ जैसी वहाँ सभा है वैसा ही यह दूत आया है, वहाँकी सभा मेरे अनुकूल है अतएव यह दूत भी मेरे अनुकूल ही आया है। इससे यह निश्चय मालूम पड़ता है कि राजा आज ही यौवराज्य पदपर मेरा अभिषेक करेंगे ॥ १९ ॥ अब मैं शीघ्र ही यहाँसे जाकर राजाका दर्शन करता हूँ, तब तक तुम अपनी सहेलियोंके साथ यहीं रहो और मन बहलाओ ॥ २० ॥ पतिके द्वारा सम्मानित सीता द्वारतक उनके मङ्गलकी कामना करती हुई गयी ॥२१॥ सीताने कहा राज्य ब्राह्मणोंके द्वारा सेवित है अर्थात् इस राज्यमें बहुत ब्राह्मण रहते हैं। अतएव राजा आपका राजसूय यज्ञके लिये अभिषेक कर सकते हैं, जिस प्रकार इन्द्रका अभिषेक ब्रह्मा करते हैं। मतलब यह कि राजसूयके अभिषेकके योग्य होनेके लिये आपको चाहिये कि आप दिग्विजय करें ॥ २२ ॥ जब मैं देखूंगी कि आपने यज्ञके लिये दीक्षा ली है, व्रत धारण किया है, उत्तम और शुद्ध मृगचर्म धारण किया है, हाथमें मृगाकी सींग ले रखी है, उस समय मैं आपका स्वागत करूंगी ॥२३॥ पूर्व दिशामें इन्द्र, दक्षिण दिशामें यमराज, पश्चिम दिशामें वरुण और उत्तर दिशामें कुबेर आपकी रक्षा करें ॥२४॥ अनन्तर इस प्रकार सीताको आदेश देकर और राजाके यहाँ जाने योग्य वस्त्र-आभूषण धारण करके सुमन्त्रके साथ रामचन्द्र अपने घरसे निकले ॥ २५ ॥ गिरि-कन्दरामें रहनेवाला सिंह जिस प्रकार पर्वतसे निकलता है उसी प्रकार अपने महलसे निकल

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ मध्यमकक्ष्यायां समागच्छत्सुहृज्जनैः । स सर्वानर्थिनो दृष्ट्वा समेत्य प्रतिनन्द्य च ॥२७॥
ततः पावकसंकाशमारुरोह रथोत्तमम् । वैयाघ्रं पुरुषव्याघ्रो राजितं राजनन्दनः ॥२८॥
मेघनादमसंबाधं मणिहेमविभूषितम् । मुष्णन्तमिव चक्षूंषि प्रभया मेरुवर्चसम् ॥२९॥
करेणुशिशुकल्पैश्च युक्तं परमवाजिभिः । हरियुक्तं सहस्राक्षो रथमिन्द्र इवाशुगम् ॥३०॥
प्रययौ तूर्णमास्थाय राघवो ज्वलितः श्रिया । स पर्जन्य इवाकाशे स्वनवानभिनादयन् ॥३१॥
निकेतान्निर्ययौ श्रीमान्महाभ्रादिव चन्द्रमाः । चित्रचामरपाणिस्तु लक्ष्मणो राघवानुजः ॥३२॥
जुगोप भ्रातरं भ्राता रथमास्थाय पृष्ठतः । ततो हलहलाशब्दस्तुमुलः समजायत ॥३३॥
तस्य निष्क्रममाणस्य जनौघस्य समन्ततः । ततो हयवरा मुख्या नागाश्च गिरिसंनिभाः॥३४॥
अनुजग्मुस्तथा रामं शतशोऽथ सहस्रशः । अग्रतश्चास्य संनद्धाश्चन्दनागुरुभूषिताः ॥३५॥
खड्गचापधराः शूरा जग्मुराशंसवो जनाः ।ततो वादित्रशब्दाश्च स्तुतिशब्दाश्चवान्दिनाम्॥३६॥
सिंहनादाश्च शूराणां ततः शुश्रुविरे पथि । हर्म्यवातायनस्थाभिर्भूषिताभिः समन्ततः ॥३७॥
कीर्यमाणः सुपुष्पौघैर्ययौ स्त्रीभिररिंदमः । रामं सर्वानवद्याङ्ग्यो रामपिप्रीषया ततः ॥३८॥
वचोभिरग्र्यैर्हर्म्यस्थाः क्षितिस्थाश्च ववन्दिरे । नूनं नन्दति ते माता कौसल्या मातृनन्दन ॥३९॥

कर रामचन्द्रने द्वारपर हाथ जोड़े लक्ष्मणको खड़ा देखा ॥ २६ ॥ वहाँसे रामचन्द्र बीचवाले खण्ड-में आये और सब प्रकारके प्रार्थियोंसे वे मिले और उनका समाधान किया ॥ २७ ॥ तदनन्तर पुरुषसिंह राजपुत्र रामचन्द्र अग्निके समान दीप्तिमान श्रेष्ठ रथपर बैठे, जो बाघके चमड़ेसे मढ़ा हुआ था ॥ २८ ॥ उस रथका शब्द मेघके शब्दके समान होता था, उसके सामने भीड़ न थी, मणि और सोना उस रथमें लगे हुए थे, वह मेरुपर्वतके समान दीप्तिमान था, वह अपनी दीप्तिसे देखनेवालोंकी आँखें अपनी ओर खींचता था ॥ २९ ॥ उस रथमें हाथीके बच्चोंके समान घोड़े जुते हुए थे। जिस प्रकार घोड़ेजुते शीघ्र चलनेवाले रथपर चढ़कर इन्द्र चलते हैं ॥ ३० ॥ उसी प्रकार अत्यन्त शोभायमान रामचन्द्र उस रथपर चढ़कर चले। आकाशमें गर्जनेवाले मेघके समान वे रथके शब्दसे दिशाओंको ध्वनित करते हुए चले ॥ ३१ ॥ जिस प्रकार बड़े भारी मेघसे चन्द्रमा निकलते हैं उसी प्रकार रामचन्द्र अपने महलसे निकले। रामचन्द्रके छोटे भाई लक्ष्मण छत्र और चामर लेकर ॥ ३२ ॥ रथके पीछे बैठकर अपने भाईकी रक्षा करने लगे। उस समय तुमुल शब्द हुआ ॥ ३३ ॥ रामचन्द्रके निकलनेके पश्चात् मनुष्योंकी बड़ी भारी भीड़ निकली, उसके पश्चात् घोड़े और पर्वतके समान हाथी निकले ॥ ३४ ॥ और ये सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें रामचन्द्रके पीछे-पीछे चले। उनके आगे कवच धारण किये हुए चन्दन तथा अगरुसे विभूषित ॥ ३५ ॥ तलवार और धनुष धारण करनेवाले वीर चले और रामचन्द्रके गुणोंकी प्रशंसा करनेवाले भी चले। तदनन्तर बाजेवाले और गुण गानेवाले वन्दी थे ॥ ३६ ॥ मार्गमें वीरोंका सिंहनाद भी सुन पड़ता था। चारों ओर कोठेकी खिड़कियोंपर बैठी ॥ ३७ ॥ स्त्रियाँ रामचन्द्र-पर फूलोंकी वर्षा करती थीं, उसीके बीच रामचन्द्र चले। रामचन्द्रको प्रसन्न करनेके लिये सुडौल अंगवाली ॥ ३८ ॥ कोठेपर बैठी हुई तथा नीचे खड़ी हुई स्त्रियोंने सुन्दर वचनोंसे, हे मातृनन्दन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पश्यन्ती सिद्धयात्रं त्वां पित्र्यं राज्यमुपस्थितम् । सर्वसीमन्तिनीभ्यश्च सीता सीमन्तिनी वरा ॥४०॥
अमन्यत हि ता नार्यो रामस्य हृदयप्रियाम् । तया सुचरितं देव्या पुरा नूनं महत्तपः ॥४१॥
रोहिणीव शशाङ्केन रामसंयोगमाप या । इति प्रासादशृङ्गेषु प्रमदाभिर्नरोत्तमः ।
शुश्राव राजमार्गस्थः प्रिया वाच उदाहृताः ॥४२॥
स राघवस्तत्र तदा प्रलापाञ्शुश्राव लोकस्य समागतस्य ।
आत्माधिकारा विविधाश्च वाचः प्रहृष्टरूपस्य पुरे जनस्य ॥४३॥
एष श्रियं गच्छति राघवोऽद्य राजप्रसादाद्विपुलां गमिष्यन् ।
एते वयं सर्वसमृद्धकामा येषामयं नो भविता प्रशास्ता ॥४४॥
लाभो जनस्यास्य यदेष सर्वं प्रपत्स्यते राष्ट्रमिदं चिराय ।
न ह्यप्रियं किंचन जातु कश्चित्पश्येन्न दुःखं मनुजाधिपेऽस्मिन् ॥४५॥
स घोषवद्भिश्च हयैः सनागैः पुरःसरैः स्वास्तिकसूतमागधैः ।
महीयमानः प्रवरैश्च वादिकैराभिष्टुतो वैश्रवणो यथा ययौ ॥४६॥
करेणुमातङ्गरथाश्वसंकुलं महाजनौघैः परिपूर्णचत्वरम् ।
प्रभूतरत्नं बहुपण्यसंचयं ददर्श रामो विमलं महापथम् ॥४७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

कौसल्या तुम्हारे कारण अवश्य ही भाग्यवती है, ऐसा कहकर उनको प्रणाम किया ॥३९॥ जिसकी यात्रा सफल हो गयी है, और जिसे पिताका राज्य प्राप्त हो रहा है, ऐसे अपने पतिको देखनेवाली सीता अवश्यही सब स्त्रियोंसे बड़ी है ॥ ४० ॥ ऐसा उन स्त्रियोंने रामचन्द्रकी प्रिय सीताको समझा । अवश्यही उस देवीने पहले बड़ा तप किया है ॥ ४१ ॥ जिससे रोहिणीको जैसे चन्द्रमा मिले वैसेही सीताको रामचन्द्र मिले । कोठेपर स्त्रियोंकी इस प्रकारकी बातें मार्गमें जाते हुए रामचन्द्रने सुनीं ॥ ४२ ॥ उस समय रामचन्द्रने वहाँ आये हुए प्रसन्न मनुष्योंकी अनेक प्रकारकी बातें सुनीं, जिनका संबन्ध स्वयं उनसे था ॥ ४३ ॥ ये राजाकी प्रसन्नतासे विपुल लक्ष्मी पानेके लिये पिताके घर जारहे हैं, अब हम लोगोंके सब मनोरथ पूर्ण हुए, क्योंकि अब ये हमलोगोंके शासक होंगे ॥ ४४ ॥ यह हमलोगोंके लिये बड़ा लाभ है कि रामचन्द्रके हाथोंमें राष्ट्र-भार बहुत दिनोंके लिये आ रहा है, इनके राजा रहनेपर कोई अप्रिय न देख सकेगा, किसीको दुःख भोगना न पड़ेगा ॥ ४५ ॥ आगे चलनेवाले स्वस्तिक, सूत और मागधों (मंगल प्रयोग करनेवाले स्वस्तिक, पुराण वाचनेवाले सूत और वंश वर्णन करनेवाले मागध कहे जाते हैं) से प्रशंसित तथा श्रेष्ठ बाजा बजानेवालोंसे स्तुत रामचन्द्र घोड़ों और हाथियोंके साथ कुबेरके समान चले ॥ ४६ ॥ रामचन्द्रने राजमार्ग देखा, हथिनी, हाथी, रथ और घोड़ोंसे वह भरा हुआ था, चौराहे मनुष्योंसे भरे थे, अनेक प्रकारकी बिकनेवाली चीजोंकी तथा रत्नोंकी जहाँ ढेर लगी हुई थी ॥४७॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका सोलहवाँ सर्ग समाप्त ॥१६॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सप्तदशः सर्गः १७

स रामो रथमास्थाय संप्रहृष्टसुहृज्जनः । पताकाध्वजसंपन्नं महार्हागुरुधूपितम् ॥ १ ॥
अपश्यन्नगरं श्रीमान्नानाजनसमन्वितम् । स गृहैरभ्रसंकाशैः पाण्डुरैरुपशोभितम् ॥ २ ॥
राजमार्गं ययौ रामो मध्येनागुरुधूपितम् । चन्दनानां च मुख्यानामगुरूणां च संचयैः ॥ ३ ॥
उत्तमानां च गन्धानां क्षौमकौशाम्बरस्य च । आविद्धाभिश्च मुक्ताभिरुत्तमैः स्फाटिकैरपि ॥ ४ ॥
शोभमानमसंबाधं तं राजपथमुत्तमम् । संवृतं विविधैः पुष्पैर्भक्ष्यैरुच्चावचैरपि ॥ ५ ॥
ददर्श तं राजपथं दिवि देवपतिर्यथा । दध्यक्षतहविर्लाजैर्धूपैरगुरुचन्दनैः ॥ ६ ॥
नानामाल्योपगन्धैश्च सदाभ्यर्चितचत्वरम् । आशीर्वादान्बहून्शृण्वन्बहुभिः समुदीरितान् ॥ ७ ॥
यथार्हं चापि संपूज्य सर्वानेव नरान्ययौ । पितामहैराचरितं तथैव प्रपितामहैः ॥ ८ ॥
अद्योपादाय तं मार्गमभिषिक्तोऽनुपालय । यथा स्म पोषिताः पित्रा यथा सर्वैः पितामहैः ।
ततः सुखतरं सर्वे रामे वेत्स्याम राजनि ॥ ९ ॥
अलमद्य हि भुक्तेन परमार्थैरलं च नः । यदि पश्याम निर्यान्तं रामं राज्ये प्रतिष्ठितम् ॥१०॥
ततो हि नः प्रियतरं नान्यत्किंचिद्भविष्यति । यथाभिषेको रामस्य राज्येनामिततेजसः ॥११॥

जिनके मित्र प्रसन्न हैं ऐसे रामचन्द्रने रथपर चढ़कर ध्वजा-पताकासे शोभित और दामी अगुरुसे धूपित ॥ १ ॥ नगर देखा । अनेकविध मनुष्योंसे वह नगर पूर्ण था । मेघके समान ऊंचे स्वच्छ घरोंसे उसकी शोभा बढ़ रही थी ॥ २ ॥ रामचन्द्र सड़कके बीचसे जा रहे थे, वहाँ अगुरुका धूप दिया गया था, उत्तम जातिके चन्दन अगुरु ॥ ३ ॥ तथा अन्य उत्तम गन्धकी वस्तुओंके समूहसे, रेशमी और ऊनी वस्त्रोंके समूहसे, अनविधे मोतियों और उत्तम स्फटिकोंसे ॥ ४ ॥ वह राजमार्ग शोभित हो रहा था, वह राज्यमार्ग बड़ा चौड़ा था, विविध पुष्पों तथा अनेक प्रकारकी भोजन-वस्तुओंसे वह राज्यमार्ग शोभित था ॥ ५ ॥ यह सब देखते हुए रामचन्द्र उस राजमार्गसे चले, जैसे इन्द्र स्वर्ग में चलते हैं। उस राजमार्गके चौराहे पर, दधि, अक्षत, हवि, लावा, धूप, अगुरु, चन्दन ॥ ६ ॥ तथा अनेक प्रकारकी मालाएँ और गन्धकी चीजों से पूजा होती थी । अनेक मनुष्योंसे कहे, अनेक प्रकारके आशीर्वादोंको सुनते हुए रामचन्द्र उस राजमार्गसे चले ॥ ७ ॥ जो जैसा था उसके प्रति वैसा संमान दिखाते हुए रामचन्द्र उस राजमार्गसे चले । रामचन्द्रके उद्देश्यसे प्रजाके लोग कहते थे, तुम्हारे पिता, पितामह, प्रपितामह आदिने जिस नीतिमार्गका अनुसरण किया है ॥ ८ ॥ उसी मार्गपर चलकर आप भी हमलोगोंका पालन करें । इनके पिता और पितामहके समयमें जिस प्रकार हमलोगोंका पालन हुआ है, जैसे सुखसे हमलोग रहे हैं, उससे अधिक सुख रामचन्द्रके राज्यकालमें हमलोगोंको होगा ॥ ९ ॥ राज्य पर प्रतिष्ठित रामचन्द्रको पिताकेभवनसे निकलते यदि हमलोग देखें तो हमलोगोंको ऐहिक सुख भोगोंसे क्या मतलब और परमार्थके कृत्योंसे भी कौन लाभ अर्थात् रामचन्द्रको राजा देखना सब सुखोंसे बढ़कर है ॥ १० ॥ इससे बढ़कर प्रिय हमलोगोंको दूसरा न होगा कि अमिततेजा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एताश्चान्याश्च सुहृदामुदासीनः शुभाः कथाः । आत्मसंपूजनीः शृण्वन्ययौ रामो महापथम् ॥१२॥
नहि तस्मान्मनः काश्चिच्चक्षुषी वा नरोत्तमात् । नरः शक्नोत्यपाकृष्टुमतिक्रान्तेऽपि राघवे ॥१३॥
यश्च रामं न पश्येत्तु यं च रामो न पश्यति । निन्दितः सर्वलोकेषु स्वात्माप्येनं विगर्हते ॥१४॥
सर्वेषु स हि धर्मात्मा वर्णानां कुरुते दयाम् । चतुर्णां हि वयःस्थानां तेन ते तमनुव्रताः ॥१५॥
चतुष्पथान्देवपथांश्चैत्यांश्चायतनानि च । प्रदक्षिणं परिहरञ्जगाम नृपतेः सुतः ॥१६॥
स राजकुलमासाद्य मेघसङ्घोपमैः शुभैः । प्रासादशृङ्गैर्विविधैः कैलासशिखरोपमैः ॥१७॥
आवारयद्भिर्गगनं विमानैरिव पाण्डुरैः । वर्धमानगृहैश्चापि रत्नजालपरिष्कृतैः ॥१८॥
तत्पृथिव्यां गृहवरं महेन्द्रसदनोपमम् । राजपुत्रः पितुर्वेश्म प्रविवेश श्रिया ज्वलन् ॥१९॥
स कक्ष्या धन्विभिर्गुप्तास्तिस्रोऽतिक्रम्य वाजिभिः। पदातिरपरे कक्ष्ये द्वे जगाम नरोत्तमः ॥२०॥
स सर्वाः समतिक्रम्य कक्ष्या दशरथात्मजः । संनिवर्त्य जनं सर्वं शुद्धान्तःपुरमत्यगात् ॥२१॥

तस्मिन्प्रविष्टे पितुरन्तिकं तदा जनः स सर्वो मुदितो नृपात्मजे ।
प्रतीक्षते तस्य पुनः स्म निर्गमं यथोदयं चन्द्रमसः सरित्पतिः ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

रामचन्द्रका राज्याभिषेक हो ॥ ११ ॥ ये तथा इसी प्रकारकी अनेक बातें जो रामचन्द्रकी प्रशंसामें कही गयी थीं। अपने शुभेच्छुओंकी, उदासीनभावसे सुनते हुए रामचन्द्र राजमार्गसे चले ॥१२॥ उन नरश्रेष्ठ रामचन्द्रसे कोई भी मनुष्य अपना मन और आंखें उनके दूर चले जानेपर भी हटा नहीं सका ॥ १३ ॥ जिसने रामको नहीं देखा और रामने जिसको नहीं देखा उसकी लोकमें निन्दा हुई और वह स्वयं भी अपनेको निन्दित समझने लगा ॥ १४ ॥ रामचन्द्र सब वर्णों, प्राणियों तथा वृद्धों पर दया करते थे, इस कारण वे रामचन्द्रके अनुगामी थे ॥ १५ ॥ राजपुत्र रामचन्द्र चौराहे, देवमार्ग, ग्रामदेवस्थान, पाठशाला आदिकी दाहिनी ओरसे अपनेको बचाकर गये अर्थात् इन स्थानोंकी बांई ओरसे वे गये ॥ १६ ॥ रामचन्द्र राजद्वारपर पहुंचे। मेघके समान विशाल और कैलाश शिखरके समान ऊँचे सुन्दर अनेक प्रकारके प्रासादके शिखरोंसे ॥ १७ ॥ वे गृह आकाशको रोक रहे थे, जैसे श्वेत विमान आकाशमें फैल जाते हैं। वहाँ रत्नोंके बने जाल लगे हुए थे, जिससे कोई पक्षी आदि न आ जाय, अनेक क्रीड़ाघर भी बने हुए थे ॥ १८ ॥ वह उत्तम गृह पृथिवीमें इन्द्रके गृहके समान था। अपनी कान्तिसे सुशोभित राजपुत्र पिताके उस घरमें गये ॥१९॥ तीन खण्ड तो वे घोड़ेपर चढ़कर गये जिनकी रक्षा धनुर्धारी करते थे, नरश्रेष्ठ रामचन्द्र दूसरे दो खण्ड पैदल गये ॥ २० ॥ दसरथपुत्र रामचन्द्र सब खण्डोंको इस प्रकार लांघ कर और अपने साथके सब आदमियोंको लौटाकर महलमें गये ॥ २१ ॥ उस समय राजपुत्रके पिताके समीप जानेपर सब लोग बहुतही प्रसन्न हुए और उनके आनेकी प्रतीक्षा करने लगे, जिस प्रकार समुद्र चन्द्रमाके उदयकी प्रतीक्षा करता है ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका सत्रहवां सर्ग समाप्त ॥१७॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अष्टादशः सर्गः १८

स ददर्शासने रामो विषण्णं पितरं शुभे । कैकेय्या सहितं दीनं मुखेन परिशुष्यता ॥ १ ॥
स पितुश्चरणौ पूर्वमाभिवाद्य विनीतवत् । ततो ववन्दे चरणौ कैकेय्याः सुसमाहितः ॥ २ ॥
रामेत्युक्त्वा तु वचनं बाष्पपर्याकुलेक्षणः । शशाक नृपतिर्दीनो नेक्षितुं नाभिभाषितुम् ॥ ३ ॥
तदपूर्वं नरपतेर्दृष्ट्वा रूपं भयावहम् । रामोऽपि भयमापन्नः पदा स्पृष्ट्वेव पन्नगम् ॥ ४ ॥
इन्द्रियैरप्रहृष्टैस्तं शोकसंतापकर्शितम् । निःश्वसन्तं महाराजं व्यथिताकुलचेतसम् ॥ ५ ॥
ऊर्मिमालिनमक्षोभ्यं क्षुभ्यन्तमिव सागरम् । उपप्लुतमिवादित्यमुक्तानृतमृषिं यथा ॥ ६ ॥
अचिन्त्यकल्पं नृपतेस्तं शोकमुपधारयन् । बभूव संरब्धतरः समुद्र इव पर्वणि ॥ ७ ॥
चिन्तयामास चतुरो रामः पितृहिते रतः । किंस्विदद्यैव नृपतिर्न मां प्रत्यभिनन्दति ॥ ८ ॥
अन्यदा मां पिता दृष्ट्वा कुपितोऽपि प्रसीदति । तस्य मामद्य संप्रेक्ष्य किमायासः प्रवर्तते ॥ ९ ॥
स दीन इव शोकार्तो विषण्णवदनद्युतिः । कैकेयीमभिवाद्यैव रामो वचनमब्रवीत् ॥ १० ॥
कच्चिन्मया नापराद्धमज्ञानाद्येन मे पिता । कुपितस्तन्ममाचक्ष्व त्वमेवैनं प्रसादय ॥ ११ ॥
अप्रसन्नमनाः किं नु सदा मां प्रति वत्सलः । विषण्णवदनो दीन, सदा मां प्रतिभाषते ॥ १२ ॥

रामचन्द्रने अपने पिताको सुन्दर आसन पर देखा, वे बड़े दुःखी थे, दीन थे, उनका मुँह सूखा हुआ था, केकयी भी वहीं थीं ॥ १ ॥ रामचन्द्रने पहले अपने पिताके चरणोंको विनयपूर्वक प्रणाम किया, तदनन्तरउन्होंने खूब सावधान होकर केकयीको प्रणाम किया ॥२॥ राजाने "राम" कहा, आगे वे कुछ बोल न सके, उनकी आँखें आँसूसे भर आयीं। दुःखी राजा न तो रामचन्द्रकी ओर देख सके और न वे उनसे कुछ बोल सके ॥३॥ राजाका वह भयानक रूप देखकर रामचन्द्रको भी भय हुआ, जैसे पैरसे साँपके छू जानेसे मनुष्य भयभीत होता है ॥ ४ ॥ राजाकी इन्द्रियाँ दुःखी हो गयी थीं, शोक और सन्तापसे वे कृश हो गये थे, उनका चित्त व्यथित और व्याकुल हो गया था, वे लम्बी साँस ले रहे थे ॥५॥ कभी क्षुभित न होनेवाले ऊर्मिमाली (जिसमें अधिक तरंगें उठती हों) समुद्र यदि क्षुभित हो जाय उसके समान, राहुग्रस्त सूर्यके समान, और झूँठ बोले हुए ऋषिके समान राजाको देखकर रामचन्द्र भयभीत हुए ॥ ६ ॥ राजाके वैसा दुःखी होनेका कोई कारण न था, फिर भी वे दुःखी हैं इसका क्या कारण है, इस बातको सोचनेसे रामचन्द्र बहुत ही व्याकुल हुए, जैसे पूर्णिमाको समुद्र क्षुभित होता है ॥ ७ ॥ सदा पिताका हित करनेवाले रामचन्द्रने सोचा कि आजही राजा मेरा आदर नहीं कर रहे हैं ॥ ८ ॥ और समय राजा क्रोधित भी रहते थे तो मुझे देखकर प्रसन्न हो जाते थे, उसी राजाको आज मुझे देखकर दुःख क्यों हो रहा है ॥९॥ इस विचारसे रामचन्द्रका मुँह कुम्हिला गया, वे दीन और शोकार्तके समान केकयीको प्रणाम करके बोले ॥ १० ॥ मैंने अज्ञानसे भी महाराजका कोई अपराध नहीं किया है, अतएव पिता जिस कारणसे कुपित हुए हैं, वह तुम कहो और तुम्ही इनको मुझपर प्रसन्न करो ॥ ११ ॥ महाराज सदाही मुझपर प्रसन्न रहा करते थे, पर वे आज अप्रसन्न हैं, वे आज दुःखी होकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शारीरो मानसो वापि कच्चिदेनं न बाधते । संतापो वाभितापो वा दुर्लभं हि सदा सुखम् ॥१३॥
काच्चिन्न किंचिद्भरते कुमारे प्रियदर्शने । शत्रुघ्ने वा महासत्त्वे मातृणां वा ममाशुभम् ॥१४॥
अतोषयन्महाराजमकुर्वन्वा पितुर्वचः । मुहूर्तमपि नेच्छेयं जीवितुं कुपिते नृपे ॥१५॥
यतोमूलं नरः पश्येत्प्रादुर्भावमिहात्मनः । कथं तस्मिन्न वर्तेत प्रत्यक्षे सति दैवते ॥१६॥
कच्चित्ते परुषं किंचिदभिमानात्पिता मम । उक्तो भवत्या रोषेण येनास्य लुलितं मनः ॥१७॥
एतदाचक्ष्व मे देवि तत्त्वेन परिपृच्छतः । किंनिमित्तमपूर्वोऽयं विकारो मनुजाधिपे ॥१८॥
एवमुक्ता तु कैकेयी राघवेण महात्मना । उवाचेदं सुनिर्लज्जा धृष्टमात्महितं वचः ॥१९॥
न राजा कुपितो राम व्यसनं नास्य किंचन । किंचिन्मनोगतं त्वस्य त्वद्भयान्नानुभाषते ॥२०॥
प्रियं त्वामप्रियं वक्तुं वाणी नास्य प्रवर्तते । तदवश्यं त्वया कार्यं यदनेन श्रुतं मम ॥२१॥
एष मह्यं वरं दत्त्वा पुरा मामभिपूज्य च । स पश्चात्तप्यते राजा यथान्यःप्राकृतस्तथा ॥२२॥
अतिसृज्य ददानीति वरं मम विशांपतिः । स निरर्थं गतजले सेतुं बन्धितुमिच्छति ॥२३॥
धर्ममूलमिदं राम विदितं च सतामपि । तत्सत्यं न त्यजेद्राजा कुपितस्त्वत्कृते यथा ॥२४॥
यदि तद्रक्ष्यते राजा शुभं वा यदि वाऽशुभम् । करिष्यसि ततःसर्वमाख्यास्यामि पुनस्त्वहम् ॥२५॥

मुझसे बोलते हैं ॥ १२ ॥ शरीर-सम्बन्धी सन्ताप और मन सम्बन्धी कोई अभिताप तो इनका दुःख नहीं दे रहा है, क्योंकि सदा सुखी रहना सम्भव नहीं है ॥ १३ ॥ प्रियदर्शन कुमार भरत, बलवान् शत्रुघ्न अथवा माताओंके सम्बन्धमें तो कोई अशुभ घटना नहीं हुई है ? ॥१४॥ महाराजको बिना प्रसन्न किये, पिताकी आज्ञाका बिना पालन किये और राजाके क्रोधित रहते मैं एक मुहूर्त भी जीना नहीं चाहता ॥१५॥ मनुष्य जिसके कारण अपना प्रादुर्भाव (जन्म) देखता है, उस प्रत्यक्ष देवताके अनुकूल वह क्यों न चलेगा ॥ १६ ॥ क्या आपने अभिमानसे मेरे पिताको कुछ कठोर कह दिया है या क्रोधसे ही आपने इन्हें कुछ कह दिया है जिससे इनका मन दुःखी हो गया है ॥ १७ ॥ देवि, आप यह ठीक-ठीक बतलावें, मैं पूछ रहा हूँ, महाराजके इस अद्भुत रोगका कारण क्या है ? ॥ १८ ॥ महात्मा रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर निर्लज्ज और ढीठ कैकयी अपने मतलबकी बात बोली ॥ १९ ॥

राम, राजा कुपित नहीं हुए हैं और न इन्हें कोई रोग ही हुआ है, इनके मनमें कुछ है जो तुम्हारे डरसे ये नहीं कह रहे हैं ॥ २० ॥ तुम इनके प्रिय हो, तुमसे अप्रिय कहनेके लिए इनका मुँह नहीं खुलता । अतएव तुमको वह काम अवश्य ही करना चाहिए जिसके लिए इन्होंने मेरे सामने प्रतिज्ञा की है ॥ २१ ॥ इन्होंने पहले मुझे वर दिया था और उस वरदानसे मुझे प्रसन्न किया था, पर जब उस वरके अनुसार काम करनेका समय आया तब ये पश्चात्ताप करते हैं, जैसे कि साधारण मनुष्य करते हैं ॥ २२ ॥ "वर देता हूँ" ऐसी प्रतिज्ञा करके राजा अब उसके विपरीत करना चाहते हैं, पर वह व्यर्थ है, जलके निकल जानेपर नदीमें बाँध बाँधनेके समान है ॥ २३ ॥ सत्य धर्मका मूल है यह बात सज्जनोंको मालूम है । तुम्हारे कारणसे मुझपर क्रोध करके राजा उस सत्यसे विचलित न होने पावें, ऐसा तुम उपाय करो ॥ २४ ॥ महाराज तुम्हें जो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यदि त्वभिहितं राज्ञा त्वयि तन्न विपत्स्यते । ततोऽहमभिधास्यामि नह्येष त्वायि वक्ष्यति ॥२६॥
एतत्तु वचनं श्रुत्वा कैकेय्या समुदाहृतम् । उवाच व्यथितो रामस्तां देवीं नृपसंनिधौ ॥२७॥
अहो धिङ्नार्हसे देवि वक्तुं मामीदृशं वचः । अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके ॥२८॥
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे । नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च ॥२९॥
तद्ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकाङ्क्षितम् । करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ॥३०॥
तमार्जवसमायुक्तमनार्या सत्यवादिनम् । उवाच रामं कैकेयी वचनं भृशदारुणम् ॥३१॥
पुरा देवासुरे युद्धे पित्रा ते मम राघव । रक्षितेन वरौ दत्तौ सशल्येन महारणे ॥३२॥
तत्र मे याचितो राजा भरतस्याभिषेचनम् । गमनं दण्डकारण्ये तव चाद्यैव राघव ॥३३॥
यदि सत्यप्रतिज्ञं त्वं पितरं कर्तुमिच्छसि । आत्मानं च नरश्रेष्ठ मम वाक्यमिदं शृणु ॥३४॥
संनिदेशे पितुस्तिष्ठ यथानेन प्रतिश्रुतम् । त्वयारण्यं प्रवेष्टव्यं नव वर्षाणि पञ्च च ॥३५॥
भरतश्चाभिषिच्येत यदेतदाभिषेचनम् । त्वदर्थे विहितं राज्ञा तेन सर्वेण राघव ॥३६॥
सप्त सप्त च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः । अभिषेकमिदं त्यक्त्वा जटाचीरधरो भव ॥३७॥
भरतः कोसलपतेः प्रशास्तु वसुधामिमाम् । नानारत्नसमाकीर्णां सवाजिरथसंकुलाम् ॥३८॥
एतेन त्वां नरेन्द्रोऽयं कारुण्येन समाप्लुतः । शोकैःसंक्लिष्टवदनो न शक्नोति निरीक्षितुम् ॥३९॥

कहें, वह अच्छा हो या बुरा, उससे तुम्हारी भलाई हो या बुराई, यदि तुम उसका करना स्वीकार करो तो मैं सब तुमसे कहूँ ॥ २५ ॥ यदि राजाका कहा हुआ तुम्हारे सामने व्यर्थ न हो तो मैं कहूँ, स्वयं राजा न कहेंगे ॥ २६ ॥ केकयीका कहा हुआ ऐसा वचन सुनकर राजाके सामने रामचन्द्र दुःखी होकर केकयीसे बोले ॥ २७ ॥ देवि, धिक्, तुमको मुझसे ऐसी बातें न कहनी चाहिए, राजाकी आज्ञासे मैं आगमें भी कूद सकता हूँ, ॥ २८ ॥ तीक्ष्ण विष खा सकता हूँ, समुद्रमें कूद सकता हूँ, यदि अपने गुरु, पिता, राजा और हितकारीकी आज्ञा पाऊं ॥२९॥ देवि, आप वह बात कहें जो राजा चाहते हैं, मैं वह काम अवश्य करूंगा, मैं प्रतिज्ञा करता हूं, राम दो वार नहीं बोलता ॥ ३० ॥ विनयी और सत्यवादी रामचन्द्रसे अनार्या केकयी बहुतही कठोर वचन बोली ॥ ३१ ॥ राम, पहले देवासुरयुद्धमें तुम्हारे पिताको बाण लग गया था और उस समय मैंने उनकी रक्षा की थी, उस समय उन्होंने मुझे दो वर देनेको कहा था ॥ ३२ ॥ वे वर मैंने राजासे मांगे, एक तो यह कि भरतका राज्याभिषेक हो और दूसरा तुमको दण्डकारण्य में भेजा जाय ॥ ३३ ॥ राम, यदि तुम अपने पिताकी प्रतिज्ञा सत्य करना चाहते हो और अपनेको भी सत्यवादी सिद्ध करना चाहते हो तो मैं जो कहूं वह सुनो ॥ ३४ ॥ तुम्हारे पिताने जो प्रतिज्ञा की है तुम उस प्रतिज्ञाको मानो और चौदह वर्षोंके लिये वनमें जाओ ॥ ३५ ॥ तुम्हारे अभिषेकके लिये राजाने जो तयारी की है उससे यहाँ भरतका तुम्हारे स्थानपर अभिषेक किया जाय ॥ ३६ ॥ चौदह वर्षों तक तुम दण्डकारण्यमें रहो, इस अभिषेकका त्याग करो और जटा-वल्कल धारण करो ॥३७॥ धन-धान्य, हाथी-घोड़ोंसे पूर्ण राजा दसरथके इस राज्यका शासन भरत करें ॥३८॥ तुम्हारा वियोग होगा, इस दुःखसे राजा बहुत दुःखी हो गये हैं, शोकसे इनका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एत्तकुरु नरेन्द्रस्य वचनं रघुनन्दन । सत्येन महता राम तारयस्व नरेश्वरम् ॥४०॥
इतीव तस्यां परुषं वदन्त्यां न चैव रामः प्रविवेश शोकम् ।
प्रविव्यथे चापि महानुभावो राजा च पुत्रव्यसनाभितप्तः ॥४१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डेऽष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः १९

तदप्रियममित्रघ्नो वचनं मरणोपमम् । श्रुत्वा न विव्यथे रामःकैकेयीं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥
एवमस्तु गमिष्यामि वनं वस्तुमहं त्वितः । जटाचीरधरो राज्ञः प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥ २ ॥
इदं तु ज्ञातुमिच्छामि किमर्थं मां महीपतिः । नाभिनन्दति दुर्धर्षो यथापूर्वमरिंदमः ॥ ३ ॥
मन्युर्न च त्वया कार्यो देवि शृणु तवाग्रतः । यास्यामि भव सुप्रीता वनं चीरजटाधरः ॥ ४ ॥
हितेन गुरुणा पित्रा कृतज्ञेन नृपेण च । नियुज्यमानो विस्रब्धःकिं न कुर्यामहं प्रियम् ॥ ५ ॥
अलीकं मानसं त्वेकं हृदयं दहते मम । स्वयं यन्नाह मां राजा भरतस्याभिषेचनम् ॥ ६ ॥
अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्टान्धनानि च । हृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरताय प्रचोदितः ॥ ७ ॥
किं पुनर्मनुजेन्द्रेण स्वयं पित्रा प्रचोदितः । तव च प्रियकामार्थं प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥ ८ ॥

मुँह सूख गया है और ये तुम्हारी ओर देख नहीं सकते ॥ ३९ ॥ रघुनन्दन, राजाकी इस बातका तुम पालन करो, राजाके इस सत्यकी रक्षा कर तुम उन्हें उबार लो ॥ ४० ॥ इस प्रकार केकयीके कठोर वचन कहनेसे भी रामचन्द्र दुःखी नहीं हुए, पर पुत्रके दुःखसे दुःखी होकर महानुभाव राजा अत्यन्त दुःखी हुए ॥ ४१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका अट्ठारहवां सर्ग समाप्त ॥ १८ ॥

शत्रुनाशी रामचन्द्र मरणके समान अप्रिय केकयीके कटुवचन सुनकर कुछ भी व्यथित न हुए और वे बोले ॥ १ ॥ ठीक है मैं वनमें रहनेके लिए यहाँसे जाऊँगा, राजाकी प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिए मैं जटा-चीर धारण करूँगा ॥ २ ॥ पर मैं यह जानना चाहता हूँ कि पराजित न होनेवाले और शत्रुओंका दमन करनेवाले महाराजा पहलेके समान मेरे साथ व्यवहार क्यों नहीं करते ॥ ३ ॥ देवि, ये बातें मैं तुम्हारे सामने कह रहा हूँ. इससे तुम क्रोध न करना, जटा-चीर धारण करके मैं वन जाऊँगा, तुम प्रसन्न हो ॥४॥ हमारे हितकारी गुरु, पिता, कृतज्ञ और राजाकी आज्ञासे बिना सोचे-विचारे मैं तुम्हारा प्रियकाम (वन जाना) क्यों न करूँगा ॥५॥ पर यह एक दुःख मुझे दुःखित कर रहा है, स्वयं महाराजने भरतके अभिषेकके सम्बन्धमें कोई बात न कही ॥६॥ मैं केवल तुम्हारे हो कहनेसे सीता, राज्य, अपने प्राण, तथा अन्य प्रियधन प्रसन्नतापूर्वक अपने भाई भरतको दे सकता हूँ ॥ ७ ॥ फिर यदि स्वयं महाराज—मेरे पिता—आज्ञा दें और तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होता हो, पिताकी प्रतिज्ञाका पालन होता हो, तो भला मैं उस कामको क्यों न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तथाश्वासय ह्रीमन्तं किं त्विदं यन्महीपतिः । वसुधासक्तनयनो मन्दमश्रूणि मुञ्चति ॥ ९ ॥
गच्छन्तु चैवानयितुं दूताः शीघ्रजवैर्हयैः । भरतं मातुलकुलाद्यैव नृपशासनात् ॥१०॥
दण्डकारण्यमेषोऽहं गच्छाम्येव हि सत्वरः । अविचार्य पितुर्वाक्यं समा वस्तुं चतुर्दश ॥११॥
सा हृष्टा तस्य तद्वाक्यं श्रुत्वा रामस्य कैकयी । प्रस्थानं श्रद्दधाना सा त्वरयामास राघवम् ॥१२॥
एवं भवतु यास्यन्ति दूताः शीघ्रजवैर्हयैः । भरतं मातुलकुलादिहावर्तयितुं नराः ॥१३॥
तव त्वहं क्षमं मन्ये नोत्सुकस्य विलम्बनम् । राम तस्मादितः शीघ्रं वनं त्वं गन्तुमर्हसि ॥१४॥
व्रीडान्वितः स्वयं यच्च नृपस्त्वां नाभिभाषते । नैतत्किंचिन्नरश्रेष्ठ मन्युरेषोऽपनीयताम् ॥१५॥
यावत्त्वं न वनं यातः पुरादस्मादतित्वरन् । पिता तावन्न ते राम स्नास्यते भोक्ष्यतेऽपि वा ॥१६॥
धिक्कष्टमिति निःश्वस्य राजा शोकपरिप्लुतः । मूर्च्छितो न्यपतत्तस्मिन्पर्यङ्के हेमभूषिते ॥१७॥
रामोऽप्युत्थाप्य राजानं कैकेय्याभिप्रचोदितः । कशयेव हतो वाजी वनं गन्तुं कृतत्वरः ॥१८॥
तदप्रियमनार्याया वचनं दारुणोदयम् । श्रुत्वा गतव्यथो रामःकैकेयीं वाक्यमब्रवीत् ॥१९॥
नाहमर्थपरो देवि लोकमावस्तुमुत्सहे । विद्धि मामृषिभिस्तुल्यं विमलं धर्ममास्थितम् ॥२०॥
यत्तत्र भवतः किंचिच्छक्यं कर्तुं प्रियं मया । प्राणानपि परित्यज्य सर्वथा कृतमेव तत् ॥२१॥

करूँगा ॥ ८ ॥ आप राजाको मेरी ओरसे विश्वास दिलाइए, ये क्यों लज्जित होकर पृथिवीकी ओर देख रहे हैं, और धीरे-धीरे आँसू बहा रहे हैं ॥ ९ ॥ राजाकी आज्ञासे आजही तेज घोड़ेपर चढ़कर मामाके यहाँसे भरतको ले आनेके लिए दूत जाँय ॥ १० ॥ मैं शीघ्रही पिताके वाक्यका विना विचार किये दण्डकारण्य चौदह वर्ष रहनेके लिए जा रहा हूँ ॥ ११ ॥ रामचन्द्रके ये वचन सुनकर वह केकयी प्रसन्न हुई । रामचन्द्रके वन जानेका उसे विश्वास हो गया और वह उन्हें शीघ्रता करनेके लिए कहने लगी ॥ १२ ॥ ऐसाही हो, मामाके यहाँसे भरतको यहाँ लौटा ले आनेके लिए दूत तेज घोड़ोंपर जायँगे ॥ १३ ॥ पर तुम्हारा यहाँ विलम्ब करना उचित नहीं है, क्योंकि तुम भी वन जानेके लिए उत्सुक हो, अतएव तुम शीघ्रही यहाँसे वन जानेके लिए तयार हो जाओ ॥ १४ ॥ राजा लज्जित हैं, इस कारण ये तुमसे स्वयं कुछ नहीं कह रहे हैं, यह कोई बात नहीं है, इसपर विचार करनेकी जरूरत नहीं है, राजा कहें यह आग्रह तुम अपने मनसे निकाल दो ॥ १५ ॥ रामचन्द्र, जब तक तुम अतिशीघ्रतापूर्वक इस नगरसे वन न चले जाओगे, तब तक तुम्हारे पिता न स्नान करेंगे और न भोजन करेंगे ॥ १६ ॥ केकयीके इस झूठे वचनको सुनकर राजाने उसे धिक्कारा और अत्यन्त शोकके कारण साँस लेकर सोनेके पलंगपर मूर्च्छित होकर गिर पड़े ॥ १७ ॥ रामचन्द्रने राजाको उठाया और केकयीके पुनः कहनेसे वन जानेके लिए तयार हुए ॥ १८ ॥ अनार्या केकयीका वह अप्रिय वचन रामचन्द्रने सुना, जिससे आगे राजकुलके लिए भयङ्कर घटनाएँ होनेवाली थीं, पर रामचन्द्रको उन बातोंसे कोई दुःख न था, वे केकयीसे बोले ॥ १९ ॥ देवि, मैं धन चाहनेवाला नहीं हूँ, मैं लोक-रक्षा करना चाहता हूँ, विमल धर्म पालन करनेवाले ऋषियोंके समान तुम मुझे समझो ॥ २० ॥ पूज्य पिताका जो कुछ प्रिय मैं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न ह्यतो धर्मचरणं किंचिदस्ति महत्तरम् । यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया ॥२२॥
अनुक्तोऽप्यत्र भवता भवत्या वचनादहम् । वने वत्स्यामि विजने वर्षाणीह चतुर्दश ॥२३॥
न नूनं माय कैकेयि किंचिदाशंससे गुणान् । यद्राजानमवोचस्त्वं ममेश्वरतरा सती ॥२४॥
यावन्मातरमापृच्छे सीतां चानुनयाम्यहम् । ततोऽद्यैव गमिष्यामि दण्डकानां महद्वनम् ॥२५॥
भरतः पालयेद्राज्यं शुश्रूषेच्च पितुर्यथा । तथा भवत्या कर्तव्यं स हि धर्मः सनातनः ॥२६॥
रामस्य तु वचः श्रुत्वा भृशं दुःखगतः पिता । शोकादशक्नुवन्वक्तुं प्ररुरोद महास्वनम् ॥२७॥
वन्दित्वा चरणौ राज्ञो विसंज्ञस्य पितुस्तदा । कैकेय्याश्चाप्यनार्यायानिष्पपात महाद्युतिः ॥२८॥
स रामः पितरं कृत्वा कैकेयीं च प्रदक्षिणम् । निष्क्रम्यान्तःपुरात्तस्मात्स्वं ददर्श सुहृज्जनम् ॥२९॥
तं बाष्पपरिपूर्णाक्षः पृष्ठतोऽनुजगाम ह । लक्ष्मणः परमक्रुद्धः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥३०॥
आभिषेचनिकं भाण्डं कृत्वा रामःप्रदक्षिणम् । शनैर्जगाम सापेक्षो दृष्टिं तत्राविचालयन् ॥३१॥
न चास्य महतीं लक्ष्मीं राज्यनाशोऽपकर्षति । लोककान्तस्य कान्तत्वाच्छीतरश्मेरिव क्षयः ॥३२॥
न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुंधराम् । सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया ॥३३॥
प्रतिषिध्य शुभं छत्रं व्यजने च स्वलंकृते । विसर्जयित्वा स्वजनं रथं पौरांस्तथा जनान् ॥३४॥

कर सकूँ, तुम समझो कि वह सब प्राण देकर भी मैंने किया ॥ २१ ॥ इससे बढ़कर दूसरा कोई धर्माचरण नहीं है जैसा कि पिताकी सेवा और उनकी आज्ञाओंका पालन है ॥२२॥ राजाके बिना कहे भी केवल आपके कहनेसे निर्जन वनमें मैं चौदह वर्ष रहूँगा ॥ २३ ॥ केकयी, तुम मेरे गुणोंको नहीं जानती हो, अतएव तुमने इस कामके लिए, मुझे वन भेजनेके लिए, महाराजसे कहा, तुम तो स्वयं मेरी स्वामिनी हो, तुम्हारे ही कहनेसे मैं जा सकता था ॥ २४ ॥ मैं माता-कौसल्यासे पूछ लूं और सीताको समझा लूँ, तदनन्तर आजही दण्डकोंके बड़े वनमें मैं चला जाऊँगा (दण्डक इक्ष्वाकुके पुत्र थे, उनकी वहाँ राजधानी थी, शुक्रके शापसे वह वन हो गया था) ॥ २५ ॥ भरत राज्यका पालन करें और पिताकी सेवा करें, ऐसा प्रबन्ध आप कीजिएगा, क्योंकि यह सनातनधर्म है ॥ २६ ॥ पिता दसरथ पहलेसे ही दुःखी थे, रामचन्द्रके इन वचनोंके सुननेसे उनका दुःख और बढ़ा । वे कुछ बोल तो सके नहीं, गला फाड़कर रोने लगे ॥ २७ ॥ संज्ञाहीन पिताको नमस्कार करके तथा अनार्या केकयीको नमस्कार करके महाद्युति रामचन्द्र वहाँसे निकले ॥ २८ ॥ पिता और केकयीकी प्रदक्षिणा करके तथा महलसे निकल रामचन्द्रने अपने मित्रोंको देखा ॥ २९ ॥ सुमित्राकुमार लक्ष्मण उस समय बड़े क्रुद्ध थे, उनकी आँखें जलसे भर आयी थीं, वे रामचन्द्रके पीछे-पीछे चले ॥३०॥ वन जानेके लिए तयार रामचन्द्र, अभिषेककी सामग्रियोंको प्रदक्षिणा करते हुए तथा वहाँ बैठे हुए लोगोंको देखते हुए धीरे-धीरे गये ॥ ३१ ॥ राज्यके नाश होनेसे-विघ्नके कारण अभिषेक न होनेसे रामचन्द्रकी शोभामें कोई अन्तर न पड़ा, क्योंकि लोकप्रिय रामचन्द्र स्वभावसुन्दर हैं, सभी अवस्थाओंमें लोकप्रिय हैं, जैसे चन्द्रमा । वह घटे चाहे बढ़े हर हालतमें वह जनप्रिय है ॥ ३२ ॥ रामचन्द्र वन जानेके लिए तयार हुए, पृथिवीका राज्य उन्होंने छोड़ दिया, पर लोकविलक्षण मनुष्यके समान उनके चित्तमें कोई विकार न हुआ । उन्हें न राज्य पानेका हर्ष था और न वन जानेका दुःख ॥ ३३ ॥ छत्र और चामरका उन्होंने त्याग किया, परिजन, रथ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धारयन्मनसा दुःखमिन्द्रियाणि निगृह्य च । प्रविवेशात्मवान्वेश्म मातुरप्रियशंसिवान् ॥३५॥
सर्वोऽप्यभिजनः श्रीमाञ्श्रीमतः सत्यवादिनः । नालक्षयत रामस्य कंचिदाकारमानने ॥३६॥
उचितं च महाबाहुर्न जहौ हर्षमात्मवान् । शारदः समुदीर्णांशुश्चन्द्रस्तेज इवात्मजम् ॥३७॥
वाचा मधुरया रामः सर्वं संमानयञ्जनम् । मातुः समीपं धर्मात्मा प्रविवेश महायशाः ॥३८॥
तं गुणैः समतां प्राप्तो भ्राता विपुलविक्रमः । सौमित्रिरनुवव्राज धारयन्दुःखमात्मजम् ॥३९॥
प्रविश्य वेश्मातिभृशं मुदा युतं समीक्ष्य तां चार्थविपत्तिमागताम् ।
न चैव रामोऽत्र जगाम विक्रियां सुहृज्जनस्यात्मविपत्तिशङ्कया ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः २०

तस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्रे निष्क्रामति कृताञ्जलौ । आर्तशब्दो महाञ्ज्ञे स्त्रीणामन्तःपुरे तदा ॥ १ ॥
कृत्येष्वचोदितः पित्रा सर्वस्यान्तःपुरस्य च । गतिश्च शरणं चासीत्स रामोऽद्य प्रवत्स्यति ॥ २ ॥
कौसल्यायां यथा युक्तो जनन्यां वर्तते सदा । तथैव वर्ततेऽस्मासु जन्मप्रभृति राघवः ॥ ३ ॥

तथा पुरवासियोंको उन्होंने अपने साथ चलनेसे निषेध किया ॥ ३४ ॥ दसरथके दुःखसे रामचन्द्रका मन दुःखी था, पर उन्होंने इन्द्रियोंपर ऐसा काबू कर लिया था, जिससे मनका दुःख प्रकाशित नहीं होता था, वे संयमी रामचन्द्र माताको यह अप्रिय संवाद सुनानेके लिए माताके घरमें गये ॥ ३५ ॥ अभिषेकके समयके जिन लोगोंने सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये थे, वे रामचन्द्रके परिजन भी रामचन्द्रके मुँहपर कुछ विकार न देख सके, क्योंकि वह थाही नहीं ॥ ३६ ॥ रामचन्द्रने पुत्रके कर्तव्यका तथा हर्षका त्याग नहीं किया, जिस प्रकार प्रवृद्धतेज शरत्का चन्द्रमा अपना तेज नहीं छोड़ता ॥ ३७ ॥ महायशस्वी धर्मात्मा रामचन्द्र मधुर वचनोंके द्वारा सबका सम्मान करते हुए अपनी माताके समीप गये ॥ ३८ ॥ गुणोंसे रामचन्द्रके समान परम पराक्रमी भाई लक्ष्मण भी दुःखी मनसे उनके पीछे-पीछे चले ॥ ३९ ॥ रामचन्द्रने समृद्धिमान् माताके घरमें प्रवेश किया । राज्यनाशकी चिन्तासे रामचन्द्रके मनमें कुछ भी विकार नहीं था, किन्तु अपने दसरथ रूप-सुहृत्के प्राण-विनाशकी सम्भावनासे वे दुःखी थे ॥ ४० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १९ ॥

पुरुषसिंह रामचन्द्र जब हाथ जोड़े राजमहलमें गये तब वहाँ स्त्रियोंके बड़ेही दुःखित शब्द सुन पड़े ॥ १ ॥ सब महारानियोंके कामोंका, पिताकी आज्ञाके बिना भी, जो प्रबन्ध करते थे और रनिवासकी रक्षा करते थे वे रामचन्द्र आज प्रवासमें जायँगे ॥ २ ॥ अपनी माता कौसल्याकी सेवामें जिस प्रकार रामचन्द्र तत्पर रहते हैं, उसी प्रकार हम लोगोंकी भी सेवा रामचन्द्र जन्मसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न क्रुध्यत्यभिशप्तोऽपि क्रोधनीयानि वर्जयन् । क्रुद्धान्प्रसादयन्सर्वान्स इतोऽद्य प्रवत्स्यति ॥ ४ ॥
अबुद्धिर्वर्त नो राजा जीवलोकं चरत्ययम् । यो गतिं सर्वभूतानां परित्यजति राघवम् ॥ ५ ॥
इति सर्वा महिष्यस्ता विवत्सा इव धेनवः । पतिमाचुक्रुशुश्चापि सस्वनं चापि चुक्रुशुः ॥ ६ ॥
स हि चान्तःपुरे घोरमार्तशब्दं महीपतिः । पुत्रशोकाभिसंतप्तः श्रुत्वा व्यालीयतासने ॥ ७ ॥
रामस्तु भृशमायस्तो निःश्वसन्निव कुञ्जरः । जगाम सहितो भ्रात्रा मातुरन्तःपुरं वशी ॥ ८ ॥
सोऽपश्यत्पुरुषं तत्र वृद्धं परमपूजितम् । उपविष्टं गृहद्वारि तिष्ठतश्चापरान्बहून् ॥ ९ ॥
दृष्ट्वैव तु तदा रामं ते सर्वे समुपस्थिताः । जयेन जयतां श्रेष्ठं वर्धयन्ति स्म राघवम् ॥१०॥
प्लावश्य प्रथमां कक्ष्यां द्वितीयायां ददर्श सः । ब्राह्मणान्वेदसंपन्नान्वृद्धान्राज्ञाभिसत्कृतान् ॥११॥
प्रणम्य रामस्तान्वृद्धांस्तृतीयायां ददर्श स । स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च द्वाररक्षणतत्पराः ॥१२॥
वर्धयित्वा प्रहृष्टास्ताः प्रविश्य च गृहं स्त्रियः । न्यवेदयन्त त्वरितं राममातुः प्रियं तदा ॥१३॥
कौसल्यापि तदा देवी रात्रिं स्थित्वा समाहिता । प्रभाते चाकरोत्पूजां विष्णोः पुत्राहतैषिणी ॥१४॥
सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा । अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत्कृतमङ्गला ॥१५॥
प्रविश्य तु तदा रामो मातुरन्तःपुरं शुभम् । ददर्श मातरं तत्र हावयन्तीं हुताशनम् ॥१६॥

ही करते हैं ॥ ३ ॥ कड़ी बात सुननेपर भी रामचन्द्र क्रोध नहीं करते, वे ऐसा कोई काम नहीं करते जिससे दूसरेको क्रोध हो, क्रुद्ध मनुष्योंको वे प्रसन्न करते रहते हैं, वे रामचन्द्र आज प्रवासमें जा रहे हैं ॥ ४ ॥ सब प्राणियोंकी गति रामचन्द्रका जो राजा त्याग कर रहा है, वह हम लोगोंका राजा बुद्धिहीन है और वह सबका नाश कर रहा है ॥ ५ ॥ इसप्रकार सब रानियां बिनबच्छेवाली गायोंके समान पतिकी निन्दा करने लगीं और वे उनको सम्बोधन करके कहने लगीं—आपने ऐसा क्यों निश्चय किया ॥६॥ पुत्रशोकसे दुःखी राजा दसरथ रनिवासका ऐसा भयानक दुःखित शब्द सुनकर बिछौनेमें छिपसे गये ॥ ७ ॥ अपने स्वजनोंके दुःखसे रामचन्द्र बहुत दुःखी हुए और हाथीके समान साँस लेने लगे, पर उन्होंने अपनेको सम्भाला, क्योंकि वे वशी थे, वे भाई-के साथ माताके महलमें चले ॥ ८ ॥ रामचन्द्रने वहाँ द्वारपर परम पूजनीय एक वृद्ध पुरुषको बैठे देखा, अन्य अनेक पुरुषोंको भी उन्होंने वहाँ बैठे देखा जो द्वारपाल थे ॥ ९ ॥ रामचन्द्रको देखते ही वे सब उनके पास चले आये और विजयियोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्रका जयजयकार करने लगे ॥१०॥ पहले खण्डको लाँघकर रामचन्द्रने दूसरे खण्डमें वेदज्ञ वृद्ध ब्राह्मणोंको देखा जिन ब्राह्मणोंका सम्मान राजा दसरथ करते थे ॥ ११ ॥ उन वृद्धोंको प्रणाम करके रामचन्द्र तीसरे खण्डमें गये और वहाँ उन्होंने बालकों, वृद्धों और स्त्रियोंको द्वारकी रक्षा करते देखा ॥ १२ ॥ रामचन्द्रको आशीर्वाद देकर प्रसन्नतापूर्वक स्त्रियाँ भीतर गयीं और रामचन्द्रके आनेका प्रियसम्वाद उन्होंने कौसल्याको सुनाया ॥ १३ ॥ पुत्रकी हितकामना करनेवाली कौसल्या नियमपूर्वक रात बिताकर प्रातःकाल विष्णुकी पूजा कर रही थीं । (यहाँ विष्णु शब्दका अर्थ सूर्य समझना चाहिए) ॥१४॥ रेशमी वस्त्र पहने प्रसन्न चित्त और व्रत धारण की हुई कौसल्या मन्त्रपूर्वक हवन कर रही थीं ॥१५॥ रामचन्द्र माताके भव्य भवनमें गये और वहाँ उन्होंने अपनी माताको हवन कराते देखा ॥ १६ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देवकार्यनिमित्तं च तत्रापश्यत्समुद्यतम् । दध्यक्षतघृतं चैव मोदकान्हविषस्तथा ॥१७॥
लाजान्माल्यानि शुक्लानि पायसं कृसरं तथा । समिधः पूर्णकुंभाश्च ददर्श रघुनन्दनः ॥१८॥
तां शुक्लक्षौमसंवीतां व्रतयोगेन कर्शिताम् । तर्पयन्तीं ददर्शाद्रिर्देवतां वरवार्णिनीम् ॥१९॥
सा चिरस्यात्मजं दृष्ट्वा मातृनन्दनमागतम् । अभिचक्राम संहृष्टा किशोरं वडवा यथा ॥२०॥
स मातरमुपक्रान्तामुपसंगृह्य राघवः । परिष्वक्तश्च बाहुभ्यामवघ्रातश्च मूर्धनि ॥२१॥
तमुवाच दुराधर्षं राघवं सुतमात्मनः । कौसल्या पुत्रवात्सल्यादिदं प्रियहितं वचः ॥२२॥
वृद्धानां धर्मशीलानां राजर्षीणां महात्मनाम् । प्राप्नुह्यायुश्च कीर्तिं च धर्मं चाप्युचितं कुले ॥२३॥
सत्यप्रतिज्ञं पितरं राजानं पश्य राघव । अद्यैव त्वां स धर्मात्मा यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति ॥२४॥
दत्तमासनमालभ्य भोजनेन निमन्त्रितः । मातरं राघवः किंचित्प्रसार्याञ्जलिमब्रवीत् ॥२५॥
स स्वभावविनीतश्च गौरवाच्च तथा नतः । प्रस्थितो दण्डकारण्यमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥२६॥
देवि नूनं न जानीषे महद्भयमुपस्थितम् । इदं तव च दुःखाय वैदेह्या लक्ष्मणस्य च ॥२७॥
गमिष्ये दण्डकारण्यं किमनेनासनेन मे । विष्टरासनयोग्यो हि कालोऽयं मामुपस्थितः ॥२८॥
चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने । कन्दमूलफलैर्जीवन्हित्वा मुनिवदामिषम् ॥२९॥
भरताथ महाराजा यौवराज्य प्रयच्छति । मां पुनर्दण्डकारण्य विवासयति तापसम् ॥३०॥

देवपूजाके निमित्त रामचन्द्रने वहां दही, अक्षत, घृत लड्डू तथा हवि आदि एकत्र हुए देखे ॥१७॥ रामचन्द्रने लावा, सफेद मालाएँ, पायस, कृसर (तिल और चावल), लकड़ी, भरे हुए घड़े वहाँ देखे ॥ १८ ॥ रामचन्द्रने देखा कि शुक्ल रेशमी वस्त्र धारण करके व्रत करनेसे दुर्बल हुई कौसल्या जलसे तर्पण कर रही हैं ॥ १९ ॥ माताको प्रसन्न करनेवाले पुत्रको बहुत दिनोंपर आया देखकर कौसल्या उनके सामने गयी, जैसे घोड़ी बछेड़ेके पास जाती है ॥ २० ॥ रामचन्द्र माताको पास आयी देखकर उनके गलेसे लग गये, माताने भी उनको अपनी बाहुओंसे आलिङ्गन किया और उनका माथा सूंघा ॥ २१ ॥ कौसल्या अपने अजेय पुत्र रामचन्द्रसे पुत्रप्रेमके कारण प्रिय और हितकारी वचन बोलीं ॥२२॥ धर्मात्मा वृद्ध महात्मा राजर्षियोंके समान तुम आयु पाओ, कीर्ति पाओ और कुलोचित धर्मका पालन करो ॥ २३ ॥ अपने पिता महाराजको सत्यप्रतिज्ञ समझो, वे आज ही तुम्हारा युवराजके पदपर अभिषेक करेंगे ॥ २४ ॥ भोजनके लिये माताके कहनेपर, रामचन्द्रने भोजनके लिये जो आसन रखा गया था उसका स्पर्श किया, पुनः हाथ जोड़कर वे मातासे बोले ॥ २५ ॥ स्वभावसे ही विनीत रामचन्द्र माताके प्रति आदरके कारण और भी विनीत हो गये और वे दण्डकारण्यके प्रस्थानके सम्बन्धमें पूछने लगे ॥ २६ ॥ देवि, आप जानती नहीं हैं, आपके लिए, सीताके लिये और लक्ष्मणके लिये बड़ा भय आया है, इससे आप लोग दुःखी होंगे ॥२७॥ अब मैं दण्डकारण्यमें जा रहा हूँ, इस आसनसे मुझे कौन जरूरत? अब मेरे लिए कुशासनके योग्य समय आया है अर्थात् अब मुझे कुशासन चाहिए, यह आसन नहीं ॥ २८ ॥ निर्जन वनमें चौदह वर्षोंतक निवास करूंगा, माँस खाना छोड़कर कन्द-मूल फलसे जीविका चलाऊंगा ॥२९॥ महाराज युवराजका पद भरतको देते हैं और तपस्वी वेषमें मुझे दण्डकारण्यमें भेजते हैं ॥ ३० ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स षट् चाष्टौ च वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने । आसेवमानो वन्यानि फलमूलैश्च वर्तयन् ॥३१॥
सा निकृत्तेव सालस्य यष्टिः परशुना वने । पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता ॥३२॥
तामदुःखोचितां दृष्ट्वा पतितां कदलीमिव । रामस्तूत्थापयामास मातरं गतचेतसम् ॥३३॥
उपावृत्त्योत्थितां दीनां वडवामिव वाहिताम् । पांसुगुण्ठितसर्वाङ्गीं विममर्श च पाणिना ॥३४॥
सा राघवमुपासीनमसुखार्ता सुखोचिता । उवाच पुरुषव्याघ्रमुपशृण्वति लक्ष्मणे ॥३५॥
यदि पुत्र न जायेथा मम शोकाय राघव । न स्म दुःखमतो भूयः पश्येयमहमप्रजाः ॥३६॥
एक एव हि वन्ध्यायाः शोको भवति मानसः । अप्रजास्मीति संतापो न ह्यन्यः पुत्र विद्यते ॥३७॥
न दृष्टपूर्वं कल्याणे सुखं वा पतिपौरुषे । अपि पुत्रे विपश्येयमिति रामास्थितं मया ॥३८॥
सा बहून्यमनोज्ञानि वाक्यानि हृदयच्छिदाम् । अहं श्रोष्ये सपत्नीनामवराणां परा सती ॥३९॥
अतो दुःखतरं किं नु प्रमदानां भविष्यति । मम शोको विलापश्च यादृशोऽयमनन्तकः ॥४०॥
त्वयि संनिहितेऽप्येवमहमासं निराकृता । किं पुनः प्रोषिते तात ध्रुवं मरणमेव हि ॥४१॥
अत्यन्तं निगृहीतास्मि भर्तुर्नित्यमसंमता । पारेवारेण कैकेय्याः समा वाप्यथवाऽवरा ॥४२॥
यो हि मां सेवते कश्चिदपि वाप्यनुवर्तते । कैकेय्याः पुत्रमन्वीक्ष्य स जनो नाभिभाषते ॥४३॥

मैं चौदह वर्ष वनमें रहूंगा, जंगली वस्त्र धारण करूंगा और फल मूलका आहार करूंगा ॥ ३१ ॥ इस संवादके सुननेसे देवी कौसल्या कुल्हाड़ीसे काटी गयी सालकी शाखाके समान सहसा भूमिपर गिर पड़ीं, मानो स्वर्गसे कोई देवांगना गिरी हो ॥ ३२ ॥ दुःखके अयोग्य और बेहोश कौसल्या कटे केलेके समान गिर पड़ीं। रामचन्द्रने अपनी माताको उठाया ॥३३॥ करवट बदलकर दुःखिनी कौसल्या उठीं, जिस प्रकार बोझलदी घोड़ी उठती है, उनके शरीरमें धूल लग गयी थी, रामचन्द्रने उसे अपने हाथसे झाड़ा ॥३४॥ कौसल्याको इस समय सुख होना चाहिए था, पर दुःख हुआ। वे पुरुषसिंह रामचन्द्रसे बोलीं, लक्ष्मण भी सुन रहे थे ॥ ३५ ॥ पुत्र यदि तुम उत्पन्न न होते तो इससे मुझे दुःख होता, उस समय केवल एक वंध्या होनेका ही दुःख होता, यह दूसरा पुत्रवियोगका दुःख न होता ॥ ३६ ॥ वन्ध्याको केवल एकही दुःख होता है कि मैं पुत्रहीन हूँ, इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा दुःख नहीं होता ॥ ३७ ॥ पतिके प्रेमसे होनेवाले सुख और कल्याण मैंने कभी नहीं देखे। राम, मैंने सोचा था कि पुत्रके समयमें मैं सुख भोगूंगी ॥ ३८ ॥ पर अब मुझे हृदय छेदनेवाली अपनेसे छोटी सौतोंकी बहुत सी अरुचिकर बातें, उनसे बड़ी होनेपर भी, सुननी पड़ेंगी ॥ ३९ ॥ सौतोंके ताने सहनेसे बढ़कर स्त्रियोंको और अधिक दुःख क्या हो सकता है, इससे मुझे जैसा शोक और दुःख होगा वह अनन्त होगा ॥ ४० ॥ पुत्र जब तुम्हारे रहनेपर मेरा यह तिरस्कार था, तब तुम्हारे चले जाने परके लिये क्या कहा जाय, उस समय तो निश्चय मेरी मृत्युही होगी ॥४१॥ पतिके द्वारा सम्मान न पानेके कारण मेरा बहुतही तिरस्कार होता है। मैं तो केकयीकी दासियोंके बराबर या उनसे भी छोटी समझी जाती हूँ ॥ ४२ ॥ जो मेरे सेवक हैं और अनुयायी हैं वे भी केकयीके पुत्र भरतकी ओर देखकर मुझसे नहीं बोलते। अर्थात् भरत राजा होगा इस कारण उसकी प्रसन्नताकी चाह-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नित्यक्रोधतया तस्याः कथं नु खरवादिनम् । कैकेय्या वदनं द्रष्टुं पुत्र शक्ष्यामि दुर्गता ॥४४॥
दश सप्त च वर्षाणि जातस्य तव राघव । अतीतानि प्रकाङ्क्षन्त्या मया दुःखपरिक्षयम्॥४५॥
तदक्षयं महद्दुःखं नोत्सहे सहितुं चिरात् । विप्रकारं सपत्नीनामेवं जीर्णापि राघव ॥४६॥
अपश्यन्ती तव मुखं परिपूर्णशशिप्रभम् । कृपणा वर्तयिष्यामि कथं कृपणजीविका ?॥४७॥
उपवासैश्च योगैश्च बहुभिश्च परिश्रमैः । दुःखसंवर्धितो मोघं त्वं हि दुर्गतया मया ॥४८॥
स्थिरं नु हृदयं मन्ये ममेदं यन्न दीर्यते । प्रावृषीव महानद्या स्पृष्टं कूलं नवाम्भसा ॥४९॥
ममैव नूनं मरणं न विद्यते न चावकाशोऽस्ति यमक्षये मम ।
यदन्तकोऽद्यैव न मां जिहीर्षति प्रसह्य सिंहो रुदतीं मृगीमिव ॥५०॥
स्थिरं हि नूनं हृदयं ममायसं न भिद्यते यद्भुवि नो विदीर्यते ।
अनेन दुःखेन च देहमर्पितं ध्रुवं ह्यकाले मरणं न विद्यते ॥५१॥
इदं तु दुःखं यदनर्थकानि मे व्रतानि दानानि च संयमाश्च हि ।
तपश्च तप्तं यदपत्यकाम्यया सुनिष्फलं बीजमिवोप्तमूषरे ॥५२॥
यदि ह्यकाले मरणं यदृच्छया लभेत कश्चिद्गुरुदुःखकर्शितः ।
गताहमद्यैव परेतसंसदं विना त्वया धेनुरिवात्मजेन वै ॥५३॥

से लोग अभीसे मुझसे फिरसे गये हैं ॥ ४३ ॥ दुःखिनी मैं स्वभावसे क्रोधिन केकयीका कठोर बोलनेवाला मुँह कैसे देख सकूंगी ॥ ४४ ॥ राम अट्ठारह वर्ष तुम्हें उत्पन्न हुए हो गये और ये वर्ष अपने दुःखोंकी समाप्तिकी कामनासे मैंने बिताये ॥ ४५ ॥ पर मेरी इच्छाके विरुद्ध, कभी नष्ट न होनेवाला दुःख मुझे मिला । इसी सौतोंके द्वारा होनेवाले अपमानसे मैं बूढ़ी हो गई हूँ, अब-मुझसे वह दुःख नहीं सहा जायगा ॥ ४६ ॥ पूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दर तुम्हारा मुख न देखनेसे दुःखिनी मैं कैसे अपना दुःखमय जीवन बिताऊंगी ॥ ४७ ॥ उपवासों, देवताके ध्यानों तथा और अनेक परिश्रमोंसे भाग्यहीन मैंने तुम्हे व्यर्थही पाला । क्योंकि उस पालनेके फल मिलनेके समय तुम वन जा रहे हो ॥ ४८ ॥ मेरा हृदय बड़ा कठोर है इसी कारण वह फटता नहीं, जिस प्रकार महानदी गङ्गा आदिका तट वर्षाकालमें नये जलके लगनेसे टूट जाता है ॥ ४९ ॥ अवश्य ही मेरी मृत्यु नहीं है, मृत्युके घरमें शायद मेरे लिए जगह ही नहीं है, जिससे यमराज आजही मुझे उठा नहीं ले जाता, जिस प्रकार रोती हुई मृगीको सिंह उठा ले जाता है ॥ ५० ॥ मेरा हृदय लोहेका बना हुआ है यह बात निश्चित है, अतएव इस दुःखके आने पर भी मेरा हृदय न तो टूटता है और न फटता है. निश्चित समयके पहले मृत्यु नहीं होती यह ध्रुव है ॥ ५१ ॥ पुत्रकल्याणकी कामनासे मैंने जो व्रत, दान, संयम किया वह सब अनर्थक हुआ, जो मैंने तपस्या की वह भी अनर्थक हुई, ऊसर खेतमें बीज बोनेके समान निष्फल हुई इसीका मुझे दुःख है ॥ ५२ ॥ यदि कोई दुःखी अकालमें भी, समयके पहले अपनी इच्छासे, मर सकता होता तो मैं तुमको यहीं छोड़कर बिन बछड़ेवाली गायके समान यमराजकी सभामें चली गयी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथापि किं जीवितमद्य मे वृथा त्वया विना चन्द्रनिभाननप्रभ ।
अनुव्रजिष्यामि वनं त्वयैव गौः सुदुर्बला वत्समिवाभिकाङ्क्षया ॥५४॥
भृशमसुखममर्षिता यदा बहु विललाप समीक्ष्य राघवम् ।
व्यसनमुपनिशाम्य सा महत्सुतमिव बद्धमवेक्ष्य किंनरी ॥५५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः २१

तथा तु विलपन्तीं तां कौसल्यां राममातरम् । उवाच लक्ष्मणो दीनस्तत्कालसदृशं वचः ॥ १ ॥
न रोचते ममाप्येतदार्ये यद्राघवो वनम् । त्यक्त्वा राज्यश्रियं गच्छेत्स्त्रिया वाक्यवशंगतः॥२॥
विपरीतश्च वृद्धश्च विषयैश्च प्रधर्षितः । नृपः किमिव न ब्रूयाच्चोद्यमानः समन्मथः ॥ ३ ॥
नास्यापराधं पश्यामि नापि दोषं तथाविधम् । येन निर्वास्यते राष्ट्राद्वनवासाय राघवः ॥ ४ ॥
न तं पश्याम्यहं लोके परोक्षमपि यो नरः । स्वमित्रोऽपि निरस्तोऽपि योऽस्य दोषमुदाहरेत्॥५॥
देवकल्पमृजुं दान्तं रिपूणामपि वत्सलम् । अवेक्षमाणः को धर्मं त्यजेत्पुत्रमकारणात् ॥ ६ ॥
तदिदं वचनं राज्ञः पुनर्बाल्यमुपेयुषः । पुत्रः को हृदये कुर्याद्राजवृत्तमनुस्मरन् ॥ ७ ॥

होती ॥ ५३ ॥ चन्द्रमुख राम तुम्हारे बिना मेरा यह गर्हित जीवन व्यर्थ है, इस कारण सुखकी इच्छासे मैं भी तुम्हारेही साथ चलूंगी, बच्छेके पीछे दुबली गौके समान ॥ ५४ ॥ कौसल्याने इस प्रकार दुःख न सह सकनेके कारण बहुत विलाप किया । सौतोंके द्वारा होनेवाले दुःखोंको तथा सत्यपाशसे बँधे पुत्रको जिस समय कौसल्याने देखा, उस समय वे किन्नरीके समान विलाप करने लगीं ॥ ५५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २० ॥

रामचन्द्रकी माता कौसल्याका वह विलाप देखकर दुःखी लक्ष्मण उस समयके योग्य वचन बोले ॥ १ ॥ आर्ये, मुझे भी यह अच्छा नहीं लगता कि रामचन्द्र राज्य छोड़कर वन जाँय, राजा स्त्रीके अधीन हो गये हैं ॥ २ ॥ उनकी बुद्धि उलटी हो गयी है, बूढे होनेके कारण वे अपने अधिकारको भी बहुत अधिक समझते हैं, वे इस समय कामके वशवर्ती हैं अतएव केकयीके कहनेसे वे क्या-क्या नहीं कर सकते ॥ ३ ॥ रामचन्द्रने राजविद्रोह आदि कोई अपराध नहीं किया है, इन्होंने कोई पाप भी नहीं किया है, फिर इन्हें राज्यसे निर्वासनका दण्ड क्यों दिया जाय ॥ ४ ॥ मैं ऐसा कोई मनुष्य नहीं देखता जो पीछे भी-चाहे वह मित्र हो या शत्रु-रामचन्द्रका दोष बतलावे ॥ ५ ॥ रामचन्द्र देवताके समान शुद्ध हैं, विनयी हैं, शिक्षित और शत्रुओंके प्रिय हैं, ऐसे पुत्रका त्याग कौन धार्मिक पिता कर सकता है ॥ ६ ॥ राजाने अपना दोष छिपानेके लिए वरका बहाना निकाला है । ऐसे राजाका वह कठोर वचन राजनीति जाननेवाला कौन पुत्र मानेगा ॥७॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यावदेव न जानाति कश्चिदर्थमिमं नरः । तावदेव मया सार्धमात्मस्थं कुरु शासनम् ॥ ८ ॥
मया पार्श्वे धनुषा तव गुप्तस्य राघव । कः समर्थोऽधिकं कर्तुं कृतान्तस्येव तिष्ठतः ॥ ९ ॥
निर्मनुष्यामिमां सर्वामयोध्यां मनुजर्षभ । करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्यादे स्थास्यति विप्रिये ॥१०॥
भरतस्याथ पक्ष्यो वा यो वास्य हितमिच्छति । सर्वांस्तांश्च वधिष्यामि मृदुर्हि परिभूयते ॥११॥
प्रोत्साहितोऽयं कैकेय्या संतुष्टो यदि नः पिता । अमित्रभूतो निःसङ्गं बध्यतां वध्यतामपि ॥१२॥
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः । उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम् ॥१३॥
बलमेष किमाश्रित्य हेतुं वा पुरुषोत्तम । दातुमिच्छति कैकेय्यै उपस्थितमिदं तव ॥१४॥
त्वया चैव मया चैव कृत्वा वैरमनुत्तमम् । कास्य शक्तिः श्रियं दातुं भरतायारिशासन॥१५॥
अनुरक्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि तत्त्वतः । सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेष्टेन ते शपे ॥१६॥
दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि रामः प्रवेक्ष्यति । प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय ॥१७॥
हरामि वीर्यादुःखं ते तमः सूर्य इवोदितः । देवी पश्यतु मे वीर्यं राघवश्चैव पश्यतु ॥१८॥
हरिष्ये पितरं वृद्धं कैकेय्यासक्तमानसम् । कृपणं च स्थितं बाल्ये वृद्धभावेन गर्हितम् ॥१९॥

जबतक कोई मनुष्य इस बातको न जाने अर्थात् राजाने रामचन्द्रको वनवास दिया है-यह बात जबतक फैलने न पावे, उसके पहलेही आप मेरे साथ मेरी सहायतासे राज्यपर अधिकार कर लें ॥ ८ ॥ धनुष लेकर आपके पास आपकी रक्षाके लिये मैं रहूँगा। यमराजके समान मेरे रहते किसकी शक्ति है जो आपपर अधिकार करे ॥ ९ ॥ मनुष्यश्रेष्ठ, यदि कोई आपके विरोधमें खड़ा होगा तो मैं अपने तीखे बाणोंसे इस समूची अयोध्याको मनुष्यहीन कर दूंगा ॥ १० ॥ भरतके पक्षका हो अथवा उसका कोई हितकारी हो उन सबको मैं मार दूंगा। शान्त रहना अच्छा नहीं, शान्त मनुष्य पराजित होता है ॥ ११ ॥ यदि केकयीके द्वारा उत्साहित किये जानेपर, उसके प्रेमके कारण, हम लोगोंके पिता शत्रु-पक्षका साथ दें, तो वे भी निःसन्देह कैद कर लिये जायँगे ॥ १२ ॥ गुरु भी यदि अहङ्कारमें आकर कार्याकार्यका ज्ञान खो दें, मर्यादा लंघन करके मनमाना काम करने लगे तो उसका भी शासन करना चाहिए, उसे भी दण्ड देना चाहिए ॥ १३ ॥ पुरुषोत्तम, राजा किस बलपर और किस कारणसे तुम्हारा यह प्राप्त राज्याधिकार केकयीको देना चाहता है ॥ १४ ॥ शत्रुविजयिन्, आपसे और मुझसे वैर करके यह राजा भरतको राज्य देनेकी कौनसी शक्ति रखता है ॥ १५ ॥ उन्होंने कौसल्यासे कहा, देवि, मैं सब प्रकारसे भाई रामचन्द्रका अनुयायी हूं इस बातकी शपथ मैं सत्य, धनुष तथा दत्त इष्ट आदि अपने धर्मसे करता हूँ ॥ १६ ॥ यदि रामचन्द्र जलती हुई आगमें या वनमें प्रवेश करेंगे, देवि, रामचन्द्रके प्रवेश करनेके पहलेही तुम मुझे प्रविष्ट समझो। अर्थात् उनके प्रवेशके पहलेही मैं प्रवेश करूंगा ॥ १७ ॥ मैं अपने पराक्रमसे तुम्हारे दुःख दूर करूंगा, जिस प्रकार उदित होकर सूर्य्य अन्धकार हरता है, आप भी मेरा पराक्रम देखें और रामचन्द्र भी मेरा पराक्रम देखें ॥ १८ ॥ वृद्ध होनेके कारण विवेक नष्ट हो जानेसे पिता निन्दित हो गये हैं, लड़कों-के समान स्त्रीप्रेमके वशीभूत हो गये हैं, केकयीके अधीन होगये हैं, ऐसे कृपण पिताको भी मैं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एतत्तु वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य महात्मनः । उवाच रामं कौसल्या रुदती शोकलालसा ॥२०॥
भ्रातुस्ते वदतः पुत्र लक्ष्मणस्य श्रुतं त्वया । यदत्रानन्तरं तत्त्वं कुरुष्व यदि रोचते ॥२१॥
न चाधर्म्यं वचः श्रुत्वा सपत्न्या मम भाषितम् । विहाय शोकसंतप्तां गन्तुमर्हसि मामितः ॥२२॥
धर्मज्ञ इति धर्मिष्ठ धर्मं चरितुमिच्छसि । शुश्रूष मामिहस्थस्त्वं चर धर्ममनुत्तमम् ॥२३॥
शुश्रूषुर्जननीं पुत्र स्वगृहे नियतो वसन् । परेण तपसा युक्तः काश्यपस्त्रिदिवं गतः ॥२४॥
यथैव राजा पूज्यस्ते गौरवेण तथा ह्यहम् । त्वां साहं नानुजानामि न गन्तव्यमितो वनम् ॥२५॥
त्वद्वियोगान्न मे कार्यं जीवितेन सुखेन च । त्वया सह मम श्रेयस्तृणानामपि भक्षणम् ॥२६॥
यदि त्वं यास्यसि वनं त्यक्त्वा मां शोकलालसाम् । अहं प्रायमिहासिष्ये न च शक्ष्यामि जीवितुम् ॥२७॥
ततस्त्वं प्राप्स्यसे पुत्र निरयं लोकविश्रुतम् । ब्रह्महत्यामिवाधर्मात्समुद्रः सरितां पतिः ॥२८॥
विलपन्तीं तथा दीनां कौसल्यां जननीं ततः । उवाच रामो धर्मात्मा वचनं धर्मसंहितम् ॥२९॥
नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम । प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम् ॥३०॥
ऋषिणा च पितुर्वाक्यं कुर्वता वनचारिणा । गौर्हता जानता धर्मं कण्डुना च विपश्चिता ॥३१॥
अस्माकं तु कुले पूर्वं सगरस्याज्ञया पितुः । खनद्भिः सागरैर्भूमिमवाप्तः सुमहान्वधः ॥३२॥

मार दूंगा ॥ १९ ॥ महात्मा लक्ष्मणके ये वचन सुनकर शोकपरायण रोती हुई कौसल्या रामसे बोलीं ॥ २० ॥ पुत्र, अपने भाई लक्ष्मणकी सब बातें सुनों, इसके अनन्तर जो कुछ करना तुम उत्तम समझो वह करो ॥ २१ ॥ मेरी सौत केकयीका अधर्मयुक्त वचन सुनकर और मुझे छोड़ कर तुम यहाँसे न चले जाना ॥ २२ ॥ तुम धर्म जाननेवाले धर्मात्मा हो, तुम धर्माचरण करो। यहीं रहकर तुम मेरी सेवा करो, इससे तुम्हें श्रेष्ठ धर्मपालनका फल होगा ॥ २३ ॥ अपने घरमें नियमपूर्वक रहता हुआ कश्यपका एक पुत्र माताकी सेवारूप उत्तम तपस्याके बलसे स्वर्गमें गया ॥ २४ ॥ जिस गौरवसे तुम्हारे लिए राजा पूज्य हैं, उसी गौरवसे मैं भी पूज्य हूं, तुम्हारी पूज्या होकर मैं आज्ञा नहीं देती हूं, मैं कहती हूं कि तुम वन न जाओ ॥ २५ ॥ तुम्हारे वियोग होनेपर मेरा जीना निरर्थक है और सुख भी निरर्थक है, तुम्हारे साथ रहकर घास खाना भी मेरे लिये सुखकारी है ॥ २६ ॥ इस प्रकार शोकमग्न मुझको यहां छोड़कर यदि तुम वन चले जाओगे तो मैं भोजन करना छोड़ दूंगी और जी न सकूंगी ॥ २७ ॥ मुझे माताको मरणतुल्य दुःख देनेसे तुम्हें नरक होगा, जिस प्रकार अधर्मके कारण नदियोंका स्वामी समुद्र ब्रह्महत्याके पापका भागी होकर नरकभागी हुआ ॥ २८ ॥ इस प्रकार विलाप करती हुई दुःखिनी माता कौसल्यासे धर्मात्मा रामचन्द्र धर्मयुक्त वचन बोले ॥ २९ ॥ पिताकी आज्ञा उल्लंघन करनेकी मुझमें शक्ति नहीं है, मैं सिरसे प्रणाम करता हूं, तुम प्रसन्न होओ, मैं वन जाता हूँ ॥ ३० ॥ पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये वनवासी ऋषि कण्डुने विद्वान् होकर तथा अधर्म जानते हुए भी गोवध किया था ॥ ३१ ॥ हमही लोगोंके कुलमें पिता सगरकी आज्ञासे पृथिवी खोदते हुए उनके पुत्रने बुरी तरहसे प्राण-त्याग किया अर्थात् पिताकी आज्ञाके पालन करनेके लिए प्राणत्याग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जामदग्न्येन रामेण रेणुका जननी स्वयम् । कृत्ता परशुनारण्ये पितुर्वचनकारणात् ॥३३॥
एतैरन्यैश्च बहुभिर्दिवि देवसमैः कृतम् । पितुर्वचनमक्लीवं करिष्यामि पितुर्हितम् ॥३४॥
न खल्वेतन्मयैकेन क्रियते पितृशासनम् । एतैरपि कृतं देवि ये मया परिकीर्तिताः ॥३५॥
नाहं धर्ममपूर्वं ते प्रतिकूलं प्रवर्तये । पूर्वैरयमभिप्रेतो गतो मार्गोऽनुगम्यते ॥३६॥
तदेतत्तु मया कार्यं क्रियते भुवि नान्यथा । पितुर्हि वचनं कुर्वन्न कश्चिन्नाम हीयते ॥३७॥
तामेवमुक्त्वा जननीं लक्ष्मणं पुनरब्रवीत् । वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥३८॥
तव लक्ष्मण जानामि मयि स्नेहमनुत्तमम् । विक्रमं चैव सत्त्वं च तेजश्च सुदुरासदम् ॥३९॥
मम मातुर्महद्दुःखमतुलं शुभलक्षण । अभिप्रायं न विज्ञाय सत्यस्य च शमस्य च ॥४०॥
धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम् । धर्मसंश्रितमप्येतत्पितुर्वचनमुत्तमम् ॥४१॥
संश्रुत्य च पितुर्वाक्यं मातुर्वा ब्राह्मणस्य वा । न कर्तव्यं वृथा वीर धर्ममाश्रित्य तिष्ठता ॥४२॥
सोऽहं न शक्ष्यामि पुनर्नियोगमतिवर्तितुम् । पितुर्हि वचनाद्वीर कैकेय्याहं प्रचोदितः ॥४३॥
तदेतां विसृजानार्यां क्षत्रधर्माश्रितां मतिम् । धर्ममाश्रय मा तैक्ष्ण्यं मद्बुद्धिरनुगम्यताम् ॥४४॥

कर देनेतककी हमारी कुलरीति है ॥ ३२ ॥ जमदग्निके पुत्र रामने भी पिताके कहनेसे अपनी माता रेणुकाको वनमें परशुसे काटा ॥ ३३ ॥ ये तथा और भी देवसमान पुरुषोंने पिताके वचनका पालन प्रसन्नतापूर्वक किया है, मैं भी पिताका प्रिय करूंगा ॥ ३४ ॥ केवल एक मैं ही पिताकी आज्ञाका--कठोर आज्ञाका पालन नहीं कर रहा हूँ, देवि, किन्तु इन लोगोंने भी पिताकी आज्ञाका पालन किया है, अभी जिनका मैंने उल्लेख किया है ॥ ३५ ॥ मैं किसी नये धर्मका, जो तुम्हारे प्रतिकूल है, स्थापन नहीं कर रहा हूं, यह धर्ममार्ग पहले लोगोंको भी इष्ट था, उन लोगोंने उसका अनुसरण भी किया है, मैं तो उन्हींके मार्गपर चल रहा हूँ ॥ ३६ ॥ पृथिवीमें जो काम--पिताकी आज्ञाका पालन, किया जाता है, वही मैं कर रहा हूँ, उसके विपरीत कुछ नहीं करता। पिताकी आज्ञाके पालन करनेसे किसीका धर्मलोप नहीं होता ॥ ३७ ॥ इस प्रकार माताको समझाकर, धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ तथा वाक्यके गुण-दोष जाननेमें श्रेष्ठ रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले ॥ ३८ ॥ लक्ष्मण, मैं जानता हूँ कि तुम्हारा मुझमें बड़ा प्रेम है, तुम्हारा अपराजेय पराक्रम, सत्व और तेज भी मैं जानता हूँ ॥ ३९ ॥ शुभलक्षण, सत्य और शमका अभिप्राय न समझकर अर्थात् इनके सम्बन्धमें मेरी राय न जानकर माता बहुत अधिक दुःख कर रही हैं ॥ ४० ॥ धर्मही सब पुरुषार्थोंमें श्रेष्ठ पुरुषार्थ है, धर्ममें सत्य, सत्यस्वरूप परमात्माका निवास है। पिताका यह वचन धर्म और सत्यसे युक्त है, अतएव श्रेष्ठ है, अतएव हमलोगोंको इसका पालन करना चाहिए ॥ ४१ ॥ पिता, माता और ब्राह्मणकी आज्ञाके पालन करनेकी प्रतिज्ञा करके उससे धार्मिकको मुड़ना नहीं चाहिए ॥ ४२ ॥ मैंने पिताकी आज्ञाके पालनके लिए प्रतिज्ञा की है, मैं उसका लंघन नहीं कर सकता, पिताकी यह आज्ञा मैंने केकयीके मुँहसे सुनी है ॥ ४३ ॥ अतएव तुम इस सम्बन्धमें ओछे विचार हटा दो, यद्यपि तुम्हारे विचार क्षात्रधर्मके अनुकूल हैं, पर तुम विशुद्ध धर्मका अनुगमन करो, क्रूरता हटा दो, मेरे विचारके अनुसार चलो ॥ ४४ ॥ इस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तमेवमुक्त्वा सौहार्दाद्भ्रातरं लक्ष्मणाग्रजः । उवाच भूयः कौसल्यां प्राञ्जलिःशिरसानतः ॥४५॥
अनुमन्यस्व मां देवि गमिष्यन्तमितो वनम् । शापितासि मम प्राणैः कुरु स्वस्त्ययनानि मे ॥४६॥
तीर्णप्रतिज्ञश्च वनात्पुनरेष्याम्यहं पुरीम् । ययातिरिव राजर्षिः पुरा हित्वा पुनर्दिवम् ॥४७॥
शोकः संधार्यतां मातर्हृदये साधु मा शुचः । वनवासादिहैष्यामि पुनः कृत्वा पितुर्वचः ॥४८॥
त्वया मया च वैदेह्या लक्ष्मणेन सुमित्रया । पितुर्नियोगे स्थातव्यमेष धर्मः सनातनः ॥४९॥
अम्ब संभृत्य संभारान्दुःखं हृदि निगृह्य च । वनवासकृता बुद्धिर्मम धर्म्यानुवर्त्यताम् ॥५०॥

एतद्वचस्तस्य निशम्य माता सुधर्म्यमव्यग्रमविक्लवं च ।
मृतेव संज्ञां प्रतिलभ्य देवी समीक्ष्य रामं पुनरित्युवाच ॥५१॥
यथैव ते पुत्र पिता तथाहं गुरुः स्वधर्मेण सुहृत्तया च ।
न त्वानुजानामि न मां विहाय सुदुःखितामर्हसि पुत्र गन्तुम् ॥५२॥
किं जीवितेनेह विना त्वया मे लोकेन वा किं स्वधयामृतेन ।
श्रेयो मुहूर्तं तव संनिधानं ममैव कृत्स्नादपि जीवलोकात् ॥५३॥
नरैरिवोल्काभिरपोह्यमानो महागजो ध्वान्तमभिप्रविष्टः ।
भूयः प्रजज्वाल विलापमेवं निशम्य रामः करुणं जनन्याः ॥५४॥

प्रकार प्रेमपूर्वक ज्येष्ठ रामचन्द्र, लक्ष्मणको समझाकर, हाथ जोड़कर सिरसे प्रणामकर कौसल्यासे बोले ॥४५॥ देवि, मैं यहाँसे वन जाता हूँ, आप आज्ञा दीजिये, मैं अपने प्राणोंकी शपथ करता हूँ। आप वनगमनमें विघ्न न डालिए। मेरी यात्राके लिए मङ्गल विधान कीजिए ॥ ४६ ॥ प्रतिज्ञा पूरी करके मैं वनसे पुनः अयोध्या लौट आऊँगा। जिस प्रकार राजर्षि ययाति स्वर्गसे पृथिवी पर आये और यहाँसे पुनः वे स्वर्ग गये ॥ ४७ ॥ माता, हृदयमें शोक छिपा लीजिए, शोकके चिन्ह बाहर प्रकट न कीजिए, पिताकी आज्ञाका पालन करके वनवाससे मैं पुनः लौट आऊँगा, अतएव आप शोक न कीजिए ॥ ४८ ॥ आपको, मुझे, सीताको, लक्ष्मणको और सुमित्राको मेरे पिताकी आज्ञाका पालन करना चाहिए; क्योंकि यही सनातनधर्म है ॥ ४९ ॥ अम्ब, अभिषेक सामग्रियोंको अलग करो, दुःख मनमें ही रोको और वन जानेका धर्मानुकूल मेरी इच्छाको मानो अर्थात् वन जानेकी आज्ञा दो ॥ ५० ॥ रामचन्द्रके धर्मयुक्त, व्याकुलता और दीनतारहित ये वचन सुने और होशमें आये मृतमनुष्यके समान कौसल्या रामको देखकर पुनः बोलीं ॥ ५१ ॥ पुत्र, जैसे पिता तुम्हारे गुरु हैं, वैसेही मैं भी हूँ, अतएव स्वधर्म और स्नेहकी ओर देखकर तुम मुझे यहाँ छोड़ कर वन नहीं जा सकते, यह मैं आज्ञा देती हूँ ॥ ५२ ॥ तुम्हारे बिना जीवन किस कामका, स्वजनोंसे भी क्या लाभ, देव पितरोंकी आराधना तथा मोक्ष देनेवाले तत्त्वज्ञान भी हमारे लिए निरर्थक हैं। एक क्षणके लिए भी तुम्हारा हमारे सामने रहना संसारके सब सुखोंसे बढ़ कर है ॥ ५३ ॥ माताका इस प्रकार दुःखित विलाप सुनकर रामचन्द्र पुनः प्रज्वलित हुए, वन जानेके निश्चयको उन्होंने और दृढ़ किया। जिस प्रकार मनुष्योंके द्वारा जलते हुए मशालसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स मातरं चैव विसंज्ञकल्पामार्तं च सौमित्रिमभिप्रतप्तम् ।
धर्मे स्थितो धर्म्यमुवाच वाक्यं यथा स एवार्हति तत्र वक्तुम् ॥५५॥
अहं हि ते लक्ष्मण नित्यमेव जानामि भक्तिं च पराक्रमं च ।
मम त्वभिप्रायमसंनिरीक्ष्य मात्रा सहाभ्यर्दसि मा सुदुःखम् ॥५६॥
धर्मार्थकामाः खलु जीवलोके समीक्षिता धर्मफलोदयेषु ।
ये तत्र सर्वे स्युरसंशयं मे भार्येव वश्याभिमता सपुत्रा ॥५७॥
यस्मिंस्तु सर्वे स्युरसंनिविष्टा धर्मो यतः स्यात्तदुपक्रमेत ।
द्वेष्यो भवत्यर्थपरो हि लोके कामात्मता खल्वति न प्रशस्ता ॥५८॥
गुरुश्च राजा च पिता च वृद्धः क्रोधात्प्रहर्षादथवापि कामात् ।
यद्व्यादिशेत्कार्यमवेक्ष्य धर्मं कस्तं न कुर्यादनृशंसवृत्तिः ॥५९॥
न तेन शक्नोमि पितुः प्रतिज्ञामिमां न कर्तुं सकलां यथावत् ।
स ह्यावयोस्तातं गुरुर्नियोगे देव्याश्च भर्ता स गतिश्च धर्मः ॥६०॥
तस्मिन्पुनर्जीवति धर्मराजे विशेषतः स्वे पथि वर्तमाने ।
देवी मया सार्धमितोऽभिगच्छेत्कथंस्विदन्या विधवेव नारी ॥६१॥

घोरित हाथी अन्धकारमें जाकर प्रज्वलित होता है ॥५४॥ बेहोश सी हुई मातासे और पीड़ित और क्रुद्ध लक्ष्मणसे धर्मात्मा रामचन्द्र धर्मयुक्त वचन बोले। वे वैसे वचन बोले, जो वेही बोल सकते थे, उनके ही समान धर्मात्मा मनुष्यके द्वारा बोली जाने योग्य बात वे बोले ॥ ५५ ॥ लक्ष्मण, तुम्हारी मुझमें जो भक्ति है और तुम्हारा जो पराक्रम है वह मैं जानता हूँ. पर तुम मेरा अभिप्राय न समझ कर माताके साथ मुझ दुःखीको और दुःखी बना रहे हो ॥ ५६ ॥ धर्मके फलरूप ऐश्वर्य सौख्य आदिकी प्राप्तिमें उपाय माने गये धर्म, अर्थ और काम तीनोंही धर्ममें वर्तमान हैं, धर्मके अनुष्ठानसे इन तीनोंकी भी सिद्धि होती है, इसमें मुझे सन्देह नहीं है. जिस प्रकार स्त्री वशमें रहकर अतिथि पूजन आदि धर्ममें सहायता देती है, मनोनुकूल होनेसे काममें सहायिका होती है और सुपुत्रवती होकर अर्थमें ॥ ५७ ॥ जिस धर्ममें लोक बिना उपदेशके प्रवृत्त न हो वह धर्म जिस उपायसे हो वह उपाय अवश्य करना चाहिए, धर्महीन अर्थ काममें प्रवृत्त नहीं होना चाहिए, अर्थसाधन करनेवालेसे लोग द्वेष करने लगते हैं, और कामपरायण होना कोई प्रशंसनीय नहीं ॥ ५८ ॥ दसरथजी हमारे पिता हैं, वृद्ध हैं, राजा हैं और गुरु हैं, क्रोधसे, प्रसन्नतासे अथवा किसी स्वार्थसे वे हम लोगोंको जो आज्ञा दें धर्म समझ कर उसका पालन करना चाहिये। जो क्रूर नहीं है, वह तो पिताकी आज्ञाके पालनसे विमुख न होगा ॥ ५९ ॥ इस कारण पिताकी उस प्रतिज्ञा-भरतका राज्याभिषेक और हमारा वनवास—का पालन मैं अवश्य करूँगा। क्योंकि हमको और भरतको आज्ञा देनेका उन्हींको अधिकार है। कौसल्याके तो वे पति हैं, पतिही स्त्रियोंकी गति हैं और वेही उनके धर्म हैं ॥ ६० ॥ राजा दसरथ जीते हैं और अपने धर्ममें वर्तमान हैं अर्थात् धर्मपूर्वक राजशासन कर रहे हैं, जिन्होंने धर्मरक्षाके लिए प्राणप्रिय पुत्रको भी वनवास

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सा मानुमन्यस्व वनं व्रजन्तं कुरुष्व नः स्वस्त्ययनानि देवि ।
यथा समाप्ते पुनराव्रजेयं यथा हि सत्येन पुनर्ययातिः ॥६२॥
यशो ह्यहं केवलराज्यकारणान्न पृष्ठतः कर्तुमलं महोदयम् ।
अदीर्घकालेन तु देवि जीविते वृणेऽवरामद्य महीमधर्मतः ॥६३॥
प्रसादयन्नरवृषभः स मातरं पराक्रमाज्जिगमिषुरेव दण्डकान् ।
अथानुजं भृशमनुशास्य दर्शनं चकार तां हृदि जननीं प्रदक्षिणम् ॥६४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः २२

अथ तं व्यथया दीनं सविशेषममर्षितम् । सरोषमिव नागेन्द्रं रोषविस्फारितेक्षणम् ॥ १ ॥
आसाद्य रामः सौमित्रिं सुहृदं भ्रातरं प्रियम् । उवाचेदं स धैर्येण धारयन्सत्त्वमात्मवान् ॥ २ ॥
निगृह्य रोषं शोकं च धैर्यमाक्रम्य केवलम् । अवमानं निरस्यैनं गृहीत्वा हर्षमुत्तमम् ॥ ३ ॥
उपक्लृप्तं यदेतन्मे अभिषेकार्थमुत्तमम् । सर्वं निवर्तय क्षिप्रं कुरु कार्यं निरव्ययम् ॥ ४ ॥

दिया है, ऐसी दशामें साधारण विधवा स्त्रियोंके समान देवी कौसल्या मेरे साथ वन कैसे जायँगी ॥ ६१ ॥ अतएव, देवि मुझे वन जानेकी आज्ञा दो और मेरे लिए स्वस्तिवाचन आदि करो, जिससे अवधिके समाप्त होनेपर मैं पुनः लौट आऊँ, जिस प्रकार सत्यके कारण ययाति पुनः स्वर्गको लौट गये थे ॥ ६२ ॥ मैं राज्यके लिये बहुत बड़े फलवाले यशको पीठपीछे नहीं कर सकता अर्थात् राज्य छोड़कर रामचन्द्रने पिताकी आज्ञाका पालन किया इस यशको राज्यके लिए मैं नहीं छोड़ सकता । जीवन बहुत थोड़े दिनोंका है, ऐसी दशामें एक साधारण पृथिवीको अधर्मसे मैं लेना नहीं चाहता ॥ ६३ ॥ नरश्रेष्ठ रामचन्द्रने धीरतापूर्वक वनमें जानेकी इच्छासे माताको प्रसन्न करते हुए अपने छोटे भाई लक्ष्मणको अपना अभिप्राय समझाया और मनही मन माताकी प्रदक्षिणा की ॥ ६४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एक्कीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २१ ॥

रामचन्द्रके राज्याभिषेकमें विघ्न पड़नेके दुःखसे लक्ष्मण दुःखी होगये थे उन्हें औरोंकी अपेक्षा क्रोध भी अधिक हुआ था, वे क्रोधित हाथीके समान हो गये थे, उनकी आँखें भी चढ़ आयी थीं ॥ १ ॥ प्रिय भाई और मित्र लक्ष्मणको रामचन्द्रने अपने पास बुलाया और आत्मवान् रामचन्द्र धैर्यसे चित्तको स्थिर रखते हुए उनसे बोले ॥ २ ॥ पिताके प्रति जो तुम्हारा क्रोध है और मेरे सम्बन्धमें जो तुम्हारा दुःख है, उन्हें धीरताके द्वारा रोको अर्थात् धैर्य धारण करो, मेरे वनवास जानेके अपमानको भी भूल जाओ और उत्तम हर्ष धारण करो अर्थात् सत्य पालनके द्वारा पिताकी रक्षा करोगे इस भावसे प्रसन्न हो जाओ ॥ ३ ॥ मेरे अभिषेकके लिए जो ये उत्तम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सौमित्रे योऽभिषेकार्थे मम संभारसंभ्रमः । अभिषेकनिवृत्त्यर्थे सोऽस्तु संभारसंभ्रमः ॥ ५ ॥
यस्या मदभिषेकार्थे मानसं परितप्यति । माता नः सा यथा न स्यात्सविशङ्का तथा कुरु ॥ ६ ॥
तस्याः शङ्कामयं दुःखं मुहूर्तमपि नोत्सहे । मनसि प्रतिसंजातं सौमित्रेऽहमुपेक्षितुम् ॥ ७ ॥
न बुद्धिपूर्वं नाबुद्धं स्मरामीह कदाचन । मातॄणां वा पितुर्वाहं कृतमल्पं च विप्रियम् ॥ ८ ॥
सत्यः सत्याभिसंधश्च नित्यं सत्यपराक्रमः । परलोकभयाद्भीतो निर्भयोऽस्तु पिता मम ॥ ९ ॥
तस्यापि हि भवेदस्मिन्कर्मण्यप्रतिसंहृते । सत्यं नेति मनस्तापस्तस्य तापस्तपेच्च माम् ॥ १० ॥
अभिषेकविधानं तु तस्मात्संहृत्य लक्ष्मण । अन्वगेवाहमिच्छामि वनं गन्तुमितः पुरः ॥ ११ ॥
मम प्रव्राजनादद्य कृतकृत्या नृपात्मजा । सुतं भरतमव्यग्रमभिषेचयतां ततः ॥ १२ ॥
मयि चीराजिनधरे जटामण्डलधारिणि । गतेऽरण्यं च कैकेय्या भविष्यति मनःसुखम् ॥ १३ ॥
बुद्धिः प्रणीता येनेयं मनश्च सुसमाहितम् । तं नु नार्हामि संक्लेष्टुं प्रव्रजिष्यामि मा चिरम् ॥ १४ ॥
कृतान्त एव सौमित्रे द्रष्टव्यो मत्प्रवासने । राज्यस्य च वितर्णस्य पुनरेव निवर्तने ॥ १५ ॥
कैकेय्याः प्रतिपत्तिर्हि कथं स्यान्मम वेदने । यदि तस्या न भावोऽयं कृतान्तविहितो भवेत् ॥ १६ ॥
जानासि हि यथा सौम्य न मातृषु ममान्तरम् । भूतपूर्वं विशेषो वा तस्या मयि सुतेऽपि वा ॥ १७ ॥

सामग्रियाँ एकत्र की गयी हैं उन सबको भी हटा दो और पिताके सत्य पालनके उपयोगी वल्कल आदि धारण करो ॥ ४ ॥ लक्ष्मण, अभिषेकके लिए सामग्रियाँ एकत्र करनेमें जो तुम्हारा उत्साह था, वह अभिषेककी निवृत्ति तथा वनवासकी सामग्रियाँ एकत्र करनेमें हो ॥ ५ ॥ मेरे अभिषेकसे जिसके मनमें कष्ट हो रहा है, हम लोगोंकी वह माता केकयी जिस प्रकार शङ्कित न हो, लक्ष्मणके साथ मिलकर रामचन्द्र राज्य पालन करनेके प्रयत्नमें लगे हैं ऐसी शङ्का उसे न हो--वैसा करो ॥ ६ ॥ उसके मनमें शङ्कासे भी उत्पन्न दुःखकी उपेक्षा, एक क्षणके लिए भी, मैं नहीं कर सकता ॥ ७ ॥ ज्ञान या अज्ञानसे माताओं या पिताका थोड़ा भी कभी मैंने विरोधाचरण किया है यह मुझे याद नहीं है ॥ ८ ॥ मेरे पिता सत्यवादी और सत्यप्रतिज्ञ हैं वे बड़े पराक्रमी हैं, पर सत्यच्युत होनेके भयसे परलोकसे डर रहे हैं, वे निर्भय हो जाँय, मेरे द्वारा उनके सत्यके पालन होनेके कारण उनका परलोक-भय दूर हो ॥ ९ ॥ यदि मेरा अभिषेक न रोका गया तो पिताका भी उनके सत्यके पालन न होनेसे, मन दुःखी होगा, और उनका दुःखी होना मेरे लिए बड़े परितापकी बात होगी ॥ १० ॥ अतएव अभिषेककी तयारीके त्याग करनेके पहलेही मैं इस नगरसे वनके लिए चला जाना चाहता हूँ ॥ ११ ॥ यहाँसे मेरे वन चले जानेके कारण राजपुत्री कृतकृत्य हो और निश्चिन्त होकर अपने पुत्र भरतका राज्याभिषेक करे ॥ १२ ॥ मैं जब वल्कल वस्त्र, मृगचर्म तथा जटा धारण करके वन चला जाऊँगा, तब केकयीका मन प्रसन्न होगा ॥ १३ ॥ जिस भाग्यके द्वारा केकयीकी ऐसी बुद्धि होगयी है तथा उसका मन इस विषयमें ऐसा दृढ़ हो गया है, उस विधाताको मैं क्लेश देना नहीं चाहता, उसके विपरीत करना नहीं चाहता, अतएव मैं शीघ्रही वन जाता हूँ ॥ १४ ॥ लक्ष्मण, मेरे वन जानेका कारण कालको ही समझो, और उसी काल हीके कारण मुझे मिला हुआ राज्य भी छिन गया है ॥ १५ ॥ मुझे पीड़ा देनेके लिए केकयी कैसे उद्योग करती, यदि कालके द्वारा उसकी बुद्धि इस प्रकार न बिगाड़ दी जाती ॥ १६ ॥ सौम्य लक्ष्मण, तुम जानते हो कि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सोऽभिषेकनिवृत्त्यर्थैः प्रवासार्थैश्च दुर्वचैः । उग्रैर्वाक्यैरहं तस्या नान्यदैवात्समर्थये ॥१८॥
कथं प्रकृतिसंपन्ना राजपुत्री तथागुणा । ब्रूयात्सा प्राकृतेव स्त्री मत्पीडचं भर्तृसंनिधौ ॥१९॥
यदाचिन्त्यं तु तद्दैवं भूतेष्वपि न हन्यते । व्यक्तं मयि च तस्यां च पतितो हि विपर्ययः ॥२०॥
कश्च दैवेन सौमित्रे योद्धुमुत्सहते पुमान् । यस्य नु ग्रहणं किंचित्कर्मणोऽन्यन्न दृश्यते ॥२१॥
सुखदुःखे भयक्रोधौ लाभालाभौ भवाभवौ । यस्य किंचित्तथाभूतं ननु देवस्य कर्म तत् ॥२२॥
ऋषयोऽप्युग्रतपसो दैवेनाभिप्रचोदिताः । उत्सृज्य नियमांस्तीव्रान्भ्रश्यन्ते काममन्युभिः ॥२३॥
असंकल्पितमेवेह यदकस्मात्प्रवर्तते । निवर्त्यारब्धमारम्भैर्ननु दैवस्य कर्म तत् ॥२४॥
एतया तत्त्वया बुद्ध्या संस्तभ्यात्मानमात्मना । व्याहतेऽप्यभिषेके मे परितापो न विद्यते ॥२५॥
तस्मादपरितापः संस्त्वमप्यनुविधाय माम् । प्रतिसंहारय क्षिप्रमाभिषेचनिकीं क्रियाम् ॥२६॥
एभिरेव घटैः सर्वैरभिषेचनसंभृतैः । मम लक्ष्मण तापस्ये व्रतस्नानं भविष्यति ॥२७॥
अथवा किं ममैतेन राज्यद्रव्यमयेन तु । उद्धृतं मे स्वयं तोयं व्रतादेशं करिष्यति ॥२८॥

आजतक कौसल्या, केकयी आदि माताओंके विषयमें मेरी ओरसे कोई भिन्न व्यवहार नहीं हुआ और कैकयीका भी अपने पुत्र भरत और मेरे विषयमें समान व्यवहार रहा है ॥ १७ ॥ मेरे अभिषेककी निवृत्तिके लिए तथा मुझे वन भेजनेके लिए उसी केकयीने जो कठोर दुर्वचनोंका व्यवहार किया है उसका कारण दैवके अतिरिक्त मैं दूसरा नहीं समझता ॥ १८ ॥ वैसे उत्तम गुण और उत्तम स्वभाव रखनेवाली राजपुत्री केकयी अपने पतिके सामने एक साधारण स्त्रीके समान मुझे पीड़ा देनेवाली बात कैसे कहती ॥ १९ ॥ जिसके विषयमें कुछ सोचा न जासके वह दैव है, उसका प्रभाव भूत और उनके अधिष्ठाता देवता पर भी पड़ता है। यह निश्चय है कि मेरे और केकयीके सम्बन्धमें उसी दैवने यह उलट-पलट की है ॥ २० ॥ लक्ष्मण, कौन पुरुष दैवसे युद्ध कर सकता है, क्योंकि कर्मफलभोगोंके अतिरिक्त उसका ज्ञान तो होता नहीं। वह तो प्रत्यक्ष नहीं है, प्रत्यक्ष हैं उसके कार्योंके फलभोग ॥ २१ ॥ सुख, दुःख, भय, क्रोध, लाभ, अलाभ, उत्पत्ति विनाश तथा इस प्रकारके और अज्ञातहेतुक जो कुछ होते हैं वे सब दैवके कार्य हैं ॥२२॥ कठोर तपस्या करनेवाले ऋषि भी दैवके द्वारा प्रेरित होकर बड़े प्रयत्नोंसे अर्जित नियमोंका त्याग कर काम-क्रोधके कारण ऋषिपदसे भ्रष्ट हो जाते हैं ॥ २३ ॥ प्रयत्नोंके द्वारा प्रारम्भ किये कामको रोककर अनचाहा काम—अनायासही जो हो जाता है वह दैवका काम है—हमारे राज्याभिषेककी तयारी की गयी थी, वनवासकी बात किसीने सोची भी न थी, राज्याभिषेक रुक गया और वनवास ही हुआ, इसका कारण दैवको ही समझना चाहिए ॥२४॥ इसी यथार्थ बुद्धिके द्वारा मैंने अपने अन्तःकरणको अन्तःकरणसेही सम्भाला है, अतएव अभिषेकके रुक जानेपर भी मुझे दुःख नहीं है ॥ २५ ॥ अतएव तुम भी मेरा अनुसरण करके जैसा मैंने किया है, वैसा करके दुःखहीन हो जाओ और अभिषेककी तयारी हटा दो ॥ २६ ॥ लक्ष्मण, इन्हीं घड़ोंसे, जो मेरे अभिषेकके लिए एकत्र किये गये हैं, मेरे तपस्वी व्रत ग्रहण करनेके व्रतका स्नान होगा ॥ २७ ॥ अथवा इन घड़ोंसे मुझे क्या, येतो राज्याभिषेकके काम आनेवाली सामग्रियोंसे तयार किये गये हैं,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मा च लक्ष्मण संतापं कार्षीर्लक्ष्म्या विपर्यये । राज्यं वा वनवासो वा वनवासो महोदयः॥२९॥
न लक्ष्मणास्मिन्मम राज्यविघ्ने माता यवीयस्यभिशङ्कितव्या ।
दैवाभिपन्ना न पिता कथंचिज्जानासि दैवं हि तथाप्रभावम् ॥३०॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः २३

इति ब्रुवति रामे तु लक्ष्मणोऽवाक्शिरा इव । ध्यात्वा मध्यं जगामाशु सहसा दैन्यहर्षयोः ॥ १ ॥
तथा तु वदृध्वा भ्रुकुटीं भ्रुवोर्मध्ये नरर्षभः । निश्श्वास महासर्पो बिलस्थ इव रोषितः ॥ २ ॥
तस्य दुष्प्रतिवीक्ष्यं तद्भ्रुकुटीसहितं तदा । बभौ क्रुद्धस्य सिंहस्य मुखस्य सदृशं मुखम् ॥ ३ ॥
अग्रहस्तं विधुन्वंस्तु हस्ती हस्तमिवात्मनः । तिर्यगूर्ध्वं शरीरे च पातयित्वा शिरोधराम् ॥ ४ ॥
अग्राक्ष्णा वीक्षमाणस्तु तिर्यग्भ्रातरमब्रवीत । अस्थाने संभ्रमो यस्य जातो वै सुमहानयम् ॥ ५ ॥
धर्मदोषप्रसङ्गेन लोकस्यानतिशङ्कया । कथं ह्येतदसंभ्रान्तस्त्वद्विधो वक्तुमर्हति ॥ ६ ॥

स्वयं अपने हाथसे निकाला हुआ जलही मुझे व्रतका अधिकार देगा । अर्थात् स्वयं जल निकाल कर मैं व्रतस्नान करूंगा ॥ २८ ॥ राज्यलक्ष्मीके विपर्यय होनेसे—मुझे छोड़कर भरतके यहां चली जानेसे-दुःख मत करो । संसारमें दोही तो हैं, राज्य और वनवास । उसमें मुझे तो वनवास ही अच्छा मालूम पड़ता है । राज्यपालनमें चिन्तायुक्त रहकर मनुष्य आत्मकल्याण कर सकता है ॥ २९ ॥ लक्ष्मण, तुम इस राज्य-प्राप्तिके विघ्नमें छोटी माता केकयीपर सन्देह मत करो, उसके कारणसे यह विघ्न हुआ है ऐसा मत समझो । यह दैवका किया हुआ है, पितापर भी तुम सन्देह मत करो क्योंकि वे भी निर्दोष हैं, तुम जानते ही हो कि भाग्य कितना बड़ा बली है ॥३०॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका बाइसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २२ ॥

रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणने नीचे सिर करके सोचा, पुनः शीघ्रही वे दुःख और हर्ष-के बीचमें होगये । रामचन्द्रके धर्मपालनकी दृढ़तासे वे प्रसन्न थे, और उनके ही वनवासके कारण दुःखी ॥ १ ॥ लक्ष्मणकी भौंहें चढ़ी हुई थीं और माथेपर बल पड़ गया था, वे क्रोध दिलाये गये बिलस्थ सर्पके समान सांसें लेने लगे ॥ २ ॥ उस समयका लक्ष्मणका टेढ़ी भौंहोवाला अत-एव देखनेके अयोग्य मुख क्रोधित सिंहके मुखके समान मालूम होता था ॥ ३ ॥ लक्ष्मण अपना दाहिना हाथ पटकने लगे, जिस प्रकार हाथी अपनी सूंड़ पटकता है, वे गलेको नीचे ऊपर तथा सीधमें कँपाते हुए ॥ ४ ॥ और कटाक्षसे टेढ़े, भाईको देखते हुए बोले-निष्कारण आपके मनमें यह एक भ्रम उत्पन्न होगया है ॥ ५ ॥ आप समझते हैं कि यदि हम पिताकी इस आज्ञाका पालन नहीं करेंगे तो प्रजाका हमपर सन्देह होजायगा कि जब ये पिताकी आज्ञाका पालन नहीं करते, जोकि इनका धर्म है, तब ये धर्मपूर्वक हमलोगोंका पालन कैसे करेंगे ! यदि आपको ऐसा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यथा ह्येवमशौण्डीरं शौण्डीरः क्षत्रियर्षभः । किं नाम कृपणं दैवमशक्तमभिशंससि ॥ ७ ॥
पापयोस्ते कथं नाम तयोः शङ्का न विद्यते । सन्ति धर्मोपधासक्ता धर्मात्मन्किं न बुध्यसे ॥ ८ ॥
तयोः सुचरितं स्वार्थं शाठ्यात्परिजिहीर्षतोः । यदि नैवं व्यवसितं स्याद्धि प्रागेव राघव ।
तयोः प्रागेव दत्तश्च स्याद्वरः प्रकृतश्च सः ॥ ९ ॥
लोकविद्विष्टमारब्धं त्वदन्यस्याभिषेचनम् । नोत्सहे सहितुं वीर तत्र मे क्षन्तुमर्हसि ॥ १० ॥
येनैवमागता द्वैधं तव बुद्धिर्महामते । सोऽपि धर्मो मम द्वेष्यो यत्प्रसङ्गाद्विमुह्यसि ॥ ११ ॥
कथं त्वं कर्मणा शक्तः कैकेयीवशवर्तिनः । करिष्यसि पितुर्वाक्यमधर्मिष्ठं विगर्हितम् ॥ १२ ॥
यदयं किल्विषाद्भेदः कृतोऽप्येवं न गृह्यते । जायते तत्र मे दुःखं धर्मसङ्गश्च गर्हितः ॥ १३ ॥
तवायं धर्मसंयोगो लोकस्यास्य विगर्हितः । मनसापि कथं कामं कुर्यात्त्वां कामवृत्तयोः ।
तयोस्त्वहितयोर्नित्यं शत्र्वोः पित्राभिधानयोः ॥ १४ ॥

भ्रम न हुआ होता तो आपके समान मनुष्य, यह सब भाग्यका खेल है—ऐसा कैसे कहता ॥ ६ ॥ आप समर्थ श्रेष्ठ क्षत्रिय हैं, आप दैवकी प्रतिकूलता दूर कर सकते हैं, फिर भी आप दैवको समर्थ बतला रहे हैं, जो यथार्थतः कोई वस्तु नहीं है, असमर्थ लोग भाग्यका अवलम्ब लेते हैं, अतएव वह भाग्य भी तुच्छ है और पुरुषार्थके सामने वह कोई भी कार्य सिद्ध नहीं कर सकता, पर आप उसीकी प्रशंसा करते हैं, इससे आपका भ्रम मालूम होता है ॥ ७ ॥ उन दोनों पापियोंके विषयमें आपको शङ्का क्यों नहीं होती । बड़े पुत्रको धर्मतः प्राप्त राज्य देनेका निश्चय करके पुनः उस निश्चयसे बदल जाना क्या धर्म है ? सत्यरक्षाकी बात केवल बहाना है, इस संसारमें बहुत ऐसे लोग हैं जो लोगोंको ठगनेके लिए छलसे धर्मात्मा बने रहते हैं । धर्मात्मन्, क्या आप इस बात-को नहीं समझते ॥ ८ ॥ अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिए धर्मके बहानेसे चरित्रवान् आपका त्याग करनेवाले उन केकयी और दसरथका काम आप नहीं समझे, यदि उनका ऐसा अभिप्राय न होता और जिस वरकी चर्चा इससमय हो रही है वह यदि सत्य होता तो इससे पहले ही कह दिया गया होता । वैसा नहीं किया, आज जब आपका अभिषेक निश्चय होगया, तब वरकी बात उठायी गयी, इससे स्पष्ट है कि उन दोनोंने यह वरकी बात बनायी है ॥ ९ ॥ धर्म और लोक-व्यवहारके अनुसार आपकाही अभिषेक होना चाहिए क्योंकि आप बड़े हैं और योग्य हैं, इसके विपरीत होना लोकनिन्दित है, पर वही हो रहा है । वीर, मैं उस वचनको सह नहीं सकता, उसका पालन नहीं कर सकता, अतएव आप मेरा यह अपराध क्षमा करें ॥ १० ॥ पिताके जिस वचनको धर्म समझनेके कारण आप विमोहित हो गये हो और जिसकारण आपकी बुद्धि भ्रान्त होगयी है, उस धर्मको भी मैं धर्म नहीं मानता, वह धर्माभास है, अतएव मैं उसका विरोधी हूँ ॥ ११ ॥ आप पराक्रमी हैं, समर्थ हैं, फिर केकयीके कहनेके अनुसार चलनेवाले पिताका धर्मविरुद्ध अतएव निन्दित वचनका पालन आप कैसे करेंगे ? ॥ १२ ॥ वरकी झूठी रचना रचकर उनलोगोंने आपका अभिषेक टाल दिया है, पर आप इस बातको इस रूपमें नहीं समझ रहे हैं, इसका मुझे बड़ा दुःख है और इस प्रकारके धर्मका आदर करना भी निन्दित है ॥ १३ ॥ आपने धर्म समझकर जो वनवास-ग्रहण करना स्वीकार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यद्यपि प्रतिपत्तिस्ते देवी चापि तयोर्मतम् । तथाप्युपेक्षणीयं ते न मे तदपि रोचते ॥१५॥
विक्लवो वीर्यहीनो यः स दैवमनुवर्तते । वीराः संभावितात्मानो न दैवं पर्युपासते ॥१६॥
दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रबाधितुम् । न दैवेन विपन्नार्थः पुरुषः सोऽवसीदति ॥१७॥
द्रक्ष्यन्ति त्वद्य दैवस्य पौरुषं पुरुषस्य च । दैवमानुषयोरद्य व्यक्ता व्यक्तिर्भविष्यति ॥१८॥
अद्य मे पौरुषहतं दैवं द्रक्ष्यन्ति वै जनाः । यैर्दैवादाहतं तेऽद्य दृष्टं राज्याभिषेचनम् ॥१९॥
अत्यङ्कुशमिवोद्दामं गजं मदजलोद्धतम् । प्रधावितमहं दैवं पौरुषेण निवर्तये ॥२०॥
लोकपालाः समस्तास्ते नाद्य रामाभिषेचनम् । नच कृत्स्नास्त्रयो लोका विहन्युः किंपुनः पिता॥२१॥
यैर्विवासस्तवारण्ये मिथो राजन्समर्थितः । अरण्ये ते विवत्स्यन्ति चतुर्दश समास्तथा ॥२२॥
अहं तदाशां धक्ष्यामि पितुस्तस्याश्च या तव । अभिषेकविघातेन पुत्रराज्याय वर्तते ॥२३॥
मद्बलेन विरुद्धाय न स्यादैववलं तथा । प्रभविष्यति दुःखाय यथोग्रं पौरुषं मम ॥२४॥
ऊर्ध्वं वर्षसहस्रान्ते प्रजापाल्यमनन्तरम् । आर्यपुत्राः करिष्यन्ति वनवासं गते त्वयि ॥२५॥

किया है वह अयोध्याके वासियोंकी इच्छाके विरुद्ध है । माता पिता नामक उन अहितकरनेवाले शत्रुओंकी आज्ञाका पालन, जो स्वेच्छाचारी हैं, आपके अतिरिक्त दूसरा मनसे भी नहीं कर सकता ॥१४॥ पिता माताओंके यह विचार—आपका अभिषेक न होना—दैवी है ऐसा आप समझ रहे हैं, पर आपको अपनी यह समझ दूर कर देनी चाहिए, क्योंकि यह मुझे अच्छा नहीं लगता । अर्थात् आप इसे भाग्यकृत समझते हों, फिर भी आप इस अपनी समझ को बदल दीजिए क्यों· कि म भाग्यको पसन्द नहीं करता ॥ १५ ॥ जो पौरुषहीन हैं, कायर हैं वे ही भाग्यपर भरोसा करते हैं, जो वीर हैं, जिनके पराक्रमकी लोकमें प्रसिद्धि है वे भाग्यका अनुसरण नहीं करते ॥१६॥ जो पुरुषार्थसे भाग्यको दबा सकते हैं, उन्हें भाग्यके कारण अपनी असफलतापर पश्चात्ताप करनेका अवसर नहीं मिलता ॥ १७ ॥ आज दैव (भाग्य) और पुरुषके पराक्रमको लोग देखेंगे, आज दैव और मनुष्य इनमें कौन दुर्बल है और कौन बलवान् है इसका निर्णय होगा ॥ १८ ॥ जिन लोगोंने दैवके कारण आपके राज्याभिषेकमें विघ्न होते देखा है, वे आज मेरे पुरुषार्थके द्वारा भाग्यको भी नष्ट होते देखेंगे ॥१९॥ अङ्कुशको न माननेवाला और खुले मतवाले हाथीके समान दौड़ते हुए हमलोगोंकी ओर आये इस भाग्यको हम अपने पुरुषार्थसे हटा देंगे ॥ २० ॥ आज होनेवाले रामचन्द्रके राज्याभिषेकको समस्त लोकपाल तथा तीनों लोक भी मिलकर नहीं टाल सकते, फिर पिता दसरथ कैसे टाल सकते हैं ॥ २१ ॥ राजन्, जिन लोगोंने मिलकर आपके वनमें जानेका विचार निश्चित किया था अब उन्हींको चौदह वर्षोंतक वनमें रहना पड़ेगा ॥२२॥ मैं पिताकी आशाको जला दूंगा और उसकी भी आशाको जला दूंगा जो तुम्हारे अभिषेकमें विघ्न डालकर अपने पुत्रके राजा होनेकी कामना करती है ॥ २३ ॥ मेरे बलसे विरोध करनेकी शक्ति भाग्यमें नहीं है, यदि किसी तरह हो भी तो उसे नष्ट कर देनेके लिए मेरा प्रचण्ड पुरुषार्थ यथेष्ट है ॥ २४ ॥ एक हजार वर्षतक प्रजा-पालन करके जब आप वनमें जायँगे तब आपके पुत्र राज्यपालन करेंगे । इस प्रकार भरतको राज्य मिलनेकी कभी भी सम्भावना नहीं है ॥ २५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वराजर्षिवृत्त्या हि वनवासोऽभिधीयते । प्रजा निक्षिप्य पुत्रेषु पुत्रवत्परिपालने ॥२६॥
स चेद्राजन्यनेकाग्रे राज्यविभ्रमशङ्कया । नैवमिच्छसि धर्मात्मन्राज्यं राम त्वमात्मनि॥२७॥
प्रतिजाने च ते वीर मा भूवं वीरलोकभाक् । राज्यं च तव रक्षेयमहं वेलेव सागरम् ॥२८॥
मङ्गलैरभिषिञ्चस्व तत्र त्वं व्यापृतो भव । अहमेको महीपालानलं वारयितुं बलात् ॥२९॥
न शोभार्थाविमौ बाहू न धनुर्भूषणाय मे । नासिरावन्धनार्थाय न शराः स्तम्भहेतवः ॥३०॥
अमित्रमथनार्थाय सर्वमेतच्चतुष्टयम् । न चाहं कामयेऽत्यर्थं यः स्याच्छत्रुर्मतो मम॥३१॥
आसिना तीक्ष्णधारेण विद्युच्चलितवर्चसा । प्रगृहीतेन वै शत्रुं वज्रिणं वा न कल्पये ॥३२॥
खड्गनिष्पेषनिष्पिष्टैर्गहना दुश्चरा च मे । हस्त्यश्वरथिहस्तोरुशिरोभिर्भविता मही ॥३३॥
खड्गधारा हता मेऽद्य दीप्यमाना इवाग्नयः । पतिष्यन्ति द्विषो भूमौ मेघा इव सविद्युतः॥३४॥
बद्धगोधाङ्गुलित्राणे प्रगृहीतशरासने । कथं पुरुषमानी स्यात्पुरुषाणां मयि स्थिते ॥३५॥
बहुभिश्चैकमत्यस्यन्नेकेन च बहूञ्जनान् । विनियोक्ष्याम्यहं बाणान्नृवाजिगजमर्मसु ॥३६॥
अद्य मेऽस्त्रप्रभावस्य प्रभावः प्रभविष्यति । राज्ञश्चाप्रभुतां कर्तुं प्रभुत्वं च तव प्रभो ॥३७॥

पहलेके राजर्षि वृद्धावस्थामें पुत्रवत् पालन करनेके लिए प्रजाको पुत्रके हाथ सौंपकर वन जाते थे, उसी प्रकार आप भी प्रजाका पुत्रवत् रक्षा करनेका भार पुत्रको देकर वन जाँय ॥ २६ ॥ धर्मात्मन् रामचन्द्र, यदि आप इस भयसे—कि राजा दसरथ प्रतिकूल हैं, अतएव शायद मेरा राज्य हाथसे निकल न जाय—राज्य ग्रहण न करते हों तो ॥२७॥ मैं आपसे प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, मुझे वीरोंका लोक न मिले, यदि मैं तुम्हारे राज्यकी रक्षा न करूं, जिस प्रकार तीर समुद्रकी रक्षा करता है ॥२८॥ आप वसिष्ठ आदि महर्षियोंसे अपना मंगलाभिषेक करावें, अब आप अभिषेक केही उद्योगमें लगिए, मैं अकेले ही विघ्नोंको दूर करूंगा, मैं बलपूर्वक राजाओंको दूर हटा दूंगा ॥ २९ ॥ मेरी दोनों भुजाएँ शोभाके लिए नहीं हैं और न यह धनुषही मेरा गहना है, मेरा तलवार केवल बँधी रहनेके लिए नहीं है, और न मेरे बाणही खम्भे बननेके लिये हैं ॥ ३० ॥ ये मेरी चारों चीजें शत्रुको मथन करनेके लिये हैं । मेरा जो शत्रु है उसको मैं नहीं चाहता अर्थात् उसका संसारमें रहना मुझे नहीं भाता॥ ३१ ॥ इसी कारण विजुलीके समान चमकनेवाली तीक्ष्ण तलवारसे मैं शत्रुको चाहे वह इन्द्रही क्यों न हो मार डालता हूं ॥३२॥ मेरी तलवारके आघातसे कटे हुए हाथी, घोड़े और रथ-सवारोंके हाथ, ऊरु और सिरोंसे यह पृथिवी भर जायगी और अतएव वह चलनेके अयोग्य हो जायगी ॥ ३३ ॥ मेरी तलवारसे कटे हुए शत्रु, रक्तधार बहनेके कारण अग्निके समान प्रतीत होनेवाले शत्रु, बिजलीवाले मेघोंके समान पृथिवीपर गिरेंगे ॥ ३४ ॥ जिस समय धनुषके आघातसे रक्षा पानेके लिये अंगुलित्राण बाँधकर धनुष ग्रहण करूँगा, उस समय कौन पुरुष ऐसा है जो अपने पुरुष होनेका अभिमान करसके, कौन पुरुष योद्धा बनकर मेरे सामने खड़ा हो सकता है ॥ ३५ ॥ मैं अकेला हूं इस बातकी कोई चिन्ता नहीं, मैं प्रधान वीरको अनेक बाणोंसे मारूंगा और साधारण अनेक सैनिकोंको एकही बाणसे, इसप्रकार मनुष्य, घोड़े और हाथियोंके मर्म स्थानपर मैं बाण चलाऊंगा ॥ ३६ ॥ राजा दसरथका प्रभाव नष्ट करनेके लिए तथा आपका प्रभुत्व स्थापित करनेके लिए मेरे अस्त्रसंबंधी पराक्रम, प्रताप, अपना प्रभुत्व

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अद्य चन्दनसारस्य केयूरामोक्षणस्य च । वसूनां च विमोक्षस्य सुहृदां पालनस्य च ॥३८॥
अनुरूपाविमौ बाहू राम कर्म करिष्यतः । अभिषेचनविघ्नस्य कर्तृणां ते निवारणे ॥३९॥
ब्रवीहि कोऽद्यैव मया वियुज्यतां तवासुहृत्प्राणयशःसुहृज्जनैः ।
तथा तवेयं वसुधा वशा भवेत्तथैव मां शाधि तवास्मि किंकरः ॥४०॥
विमृज्य बाष्पं परिसान्त्व्य चासकृत्स लक्ष्मणं राघववंशवर्धनः ।
उवाच पित्रोर्वचने व्यवस्थितं निबोध मामेष हि सौम्य सत्पथः ॥४१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः २४

तं समीक्ष्य व्यवसितं पितुर्निर्देशपालने । कौसल्या बाष्पसंरुद्धा वचो धर्मिष्ठमब्रवीत् ॥ १ ॥
अदृष्टदुःखो धर्मात्मा सर्वभूतप्रियंवदः । मयि जातो दशरथात्कथमुञ्छेन वर्तयेत् ॥ २ ॥
यस्य भृत्याश्च दासाश्च मृष्टान्यन्नानि भुञ्जते । कथं स भोक्ष्यते रामो वने मूलफलान्ययम् ॥ ३ ॥
क एतच्छ्रद्दधेच्छ्रुत्वा कस्य वा न भवेद्भयम् । गुणवान्दयितो राज्ञः काकुत्स्थो यद्विवास्यते॥ ४ ॥

फैलावेगा ॥ ३७ ॥ मेरी बाहुओंने आजतक जो चन्दन धारण किया है, जो अंगद धारण किया है, दान किया है और मित्रोंका पालन किया है ॥ ३८ ॥ इन सब कामोंके अनुरूप ही काम आज मेरी बाहु आपके अभिषेकमें विघ्न करनेवालोंका निवारण करेंगी ॥ ३९ ॥ कहिए कौन आपका शत्रु अपने प्राणों यश और मित्रोंसे छुटकारा पावे अर्थात् मेरे द्वारा मारा जाय, जिस तरह इस पृथिवीपर आपका अधिकार हो जाय वैसीही आज्ञा आप दें, मैं आपका सेवक हूँ ॥ ४० ॥ रघुवंशवर्धन रामचन्द्रने लक्ष्मणके आंसू पोंछे, उन्हें बारबार समझाया, पुनः वे बोले—मैं पिता-माता-की आज्ञाके अधीन हूँ ऐसा समझो, सौम्य, यही सन्मार्ग है ॥ ४१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका तेइसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २३ ॥

रामचन्द्र पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिए तयार हैं, इस सम्बन्धमें वे दृढ़ निश्चयी हैं, यह जानकर कौसल्या अपने आँसू रोककर धर्मिष्ठ रामचन्द्रसे बोली ॥ १ ॥ जिस धर्मात्माने कभी दुःख नहीं देखा है, जो सबसे प्रिय बोलता है, जो दसरथसे मेरे गर्भसे उत्पन्न हुआ है वह उञ्छके द्वारा कैसे जीवन बितावेगा (गिरे हुए अन्न बटोरकर जीवन निर्वाह करना उञ्छ कहा जाता है) ॥ २ ॥ जिसके नौकर, दास आदि उत्तम अन्न खाते हैं, वे रामचन्द्र वनमें मूल फल कैसे खायेंगे ॥३॥ "गुणवान् तथा राजप्रिय रामचन्द्र वन भेजे जा रहे हैं" इसपर कौन विश्वास करेगा और इस बातके सुननेसे किस अयोध्यावासीको भय न होगा ? भयके दो कारण हैं, रामचन्द्र जब निर्वासित हो सकते हैं तब इस राज्यमें किसीकी रक्षा नहीं, ऐसी आशङ्का दूसरा यहाँसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नूनं तु बलवाँल्लोके कृतान्तः सर्वमादिशत् । लोके रामाभिरामस्त्वं वनं यत्र गमिष्यसि ॥ ५ ॥
अयं तु मामात्मभवस्तवादर्शनमारुतः । विलापदुःखसमिधो रुदिताश्रुहुताहुतिः ॥ ६ ॥
चिन्तावाष्पमहाधूमस्तवागमनचिन्तजः । कर्शयित्वाधिकं पुत्र निःश्वासायाससंभवः ॥ ७ ॥
त्वया विहीनामिह मां शोकाग्निरतुलो महान् । प्रधक्ष्यति यथा कक्ष्यं चित्रभानुर्हिमात्यये ॥ ८ ॥
कथं हि धेनुः स्वं वत्सं गच्छन्तमनुगच्छति । अहं त्वानुगमिष्यामि यत्र वत्स गमिष्यसि ॥ ९ ॥
यथा निगदितं मात्रा तद्वाक्यं पुरुषर्षभः । श्रुत्वा रामोऽब्रवीद्वाक्यं मातरं भृशदुःखिताम्॥१०॥
कैकेय्या वञ्चितो राजा मयि चारण्यमाश्रिते । भवत्या च परित्यक्तो न नूनं वर्तयिष्यति ॥११॥
भर्तुः पुनः परित्यागो नृशंसः केवलं स्त्रियाः । स भवत्या न कर्तव्यो मनसापि विगर्हितः ॥१२॥
यावज्जीवति काकुत्स्थः पिता मे जगतीपतिः । शुश्रूषा क्रियतां तावत्स हि धर्मः सनातनः ॥१३॥
एवमुक्ता तु रामेण कौसल्या शुभदर्शना । तथेत्युवाच सुप्रीता राममक्लिष्टकारिणम् ॥१४॥
एवमुक्तस्तु वचनं रामो धर्मभृतां वरः । भूयस्तामब्रवीद्वाक्यं मातरं भृशदुःखिताम् ॥१५॥
मया चैव भवत्या च कर्तव्यं वचनं पितुः । राजा भर्ता गुरुः श्रेष्ठः सर्वेषामीश्वरः प्रभुः ॥१६॥
इमानि तु महारण्ये विहृत्य नव पञ्च च । वर्षाणि परमप्रीत्या स्थास्यामि वचने तव ॥१७॥

रामचन्द्रके चले जानेपर अब हमारी रक्षा कौन करेगा ॥ ४ ॥ प्राणियोंको सुख दुःख देता हुआ भाग्यही बलवान् है ऐसा मैं समझती हूँ, हे राम जिसके कारण तुम सर्वप्रिय होकर भी वन जा रहे हो ॥ ५ ॥ तुम्हारे वन जानेसे स्वयं मेरे मनहीके द्वारा शोकाग्नि उत्पन्न होगी, तुम्हारे दर्शन न मिलनेरूप वायुसे वह बढ़ेगी, उस अग्निके लिए विलाप और दुःखही लकड़ी होंगे, रोनेके आसूँ ही उसकी आहुति बनेंगे, चिन्तासे उत्पन्न श्वास या आंसू उसके धूम होंगे, मेरी सांससे वह आग जगायी जायगी, वह अतुल और महान् शोकाग्नि मुझे अत्यन्त दुःखित करके जला देगी, जिस प्रकार गर्मीके दिनोंमें आग घास जला देती है ॥ ६-८ ॥ बेटा, गाय अपने बच्छेके पीछे जाती है, जहां वह जाता है वहीं वह जाती है, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे साथ जहाँ तुम चलोगे वहा जाऊंगी ॥ ९ ॥ माताने रामचन्द्रसे ये बातें कहीं । रामचन्द्र इन बातोंको सुनकर अत्यन्त दुःखित माताके प्रति बोले ॥ १० ॥ केकयीने राजाको ठग लिया, मैं वन जा रहा हूं और आपभी यदि राजाको छोड़कर चली जाँय तो वे जी न सकेंगे॥११॥ पतिका परित्याग करना स्त्रीके लिए बहुत बड़ी क्रूरता है, वह क्रूरता आपको न करनी चाहिए क्योंकि मनसे भी वैसा सोचना निन्दित है ॥१२॥ जबतक काकुत्स्थवंशी मेरे पिता राजा दसरथ जीते हैं, तबतक आप उनकी सेवा करें यही सनातन धर्म है ॥१३॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर शुभदर्शना (जिसका दर्शन सुन्दर है, अथवा जिसके दर्शनसे शुभ होते हैं) कौसल्याने प्रसन्न होकर उत्तम कर्म करनेवाले रामचन्द्र-की बातें स्वीकार कीं ॥ १४ ॥ माताके स्वीकार करनेपर धार्मिकश्रेष्ठ रामचन्द्र पुनः अत्यन्त दुःखिनी मातासे बोले ॥१५॥ मुझे और आपको राजाकी आज्ञाका पालन करना चाहिए। क्योंकि वे आपके पति हैं और मेरे गुरु हैं, श्रेष्ठ हैं, सबके स्वामी हैं और पराक्रमी हैं ॥ १६ ॥ इन चौदह वर्षोंतक वनमें विहार करके लौटनेपर बड़ी प्रसन्नतासे मैं आपकी आज्ञाका पालन करूंगा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमुक्ता प्रियं पुत्रं बाष्पपूर्णानना तदा । उवाच परमार्ता तु कौसल्या सुतवत्सला ॥१८॥
आसां राम सपत्नीनां वस्तुं मध्ये न मे क्षमम् । नय मामपि काकुत्स्थ वनं वन्यां मृगीमिव ॥१९॥
यदि ते गमने बुद्धिः कृता पितुरपेक्षया । तां तथा रुदतीं रामोऽरुदन्वचनमब्रवीत् ॥२०॥
जीवन्त्या हि स्त्रिया भर्ता दैवतं प्रभुरेव च । भवत्या मम चैवाद्य राजा प्रभवति प्रभुः ॥२१॥
न ह्यनाथा वयं राज्ञा लोकनाथेन धीमता । भरतश्चापि धर्मात्मा सर्वभूतप्रियंवदः ॥२२॥
भवतीमनुवर्तेत स हि धर्मरतः सदा । यथा मयि तु निष्क्रान्ते पुत्रशोकेन पार्थिवः ॥२३॥
श्रमं नावाप्नुयात्किंचिदप्रमत्ता तथा कुरु । दारुणश्चाप्ययं शोको यथैनं न विनाशयेत् ॥२४॥
राज्ञो वृद्धस्य सततं हितं चर समाहिता । व्रतोपवासनिरता या नारी परमोत्तमा ॥२५॥
भर्तारं नानुवर्तेत सा च पापगतिर्भवेत् । भर्तुः शुश्रूषया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम् ॥२६॥
अपि या निर्नमस्कारा निवृत्तो देवपूजनात । शुश्रूषामेव कुर्वीत भर्तुः प्रियहिते रता ॥२७॥
एष धर्मः स्त्रिया नित्यो वेदे लोके श्रुतः स्मृतः । अग्निकार्येषु च सदा सुमनोभिश्च देवताः ॥२८॥
पूज्यास्ते मत्कृते देवि ब्राह्मणाश्चैव सत्कृताः । एवं कालं प्रतीक्षस्व ममागमनकाङ्क्षिणी ॥२९॥
नियता नियताहारा भर्तृशुश्रूषणे रता । प्राप्स्यसे परमं कामं मयि पर्यागते सति ॥३०॥
यदि धर्मभृतां श्रेष्ठो धारयिष्यति जीवितम् । एवमुक्ता तु रामेण बाष्पपर्याकुलेक्षणा ॥३१॥

॥ १७ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर कौसल्या की आँखें भर आयीं । सुतवत्सल कौसल्या बड़े दुःखसे अपने प्रिय पुत्रसे बोली ॥ १८ ॥ राम, इन सपत्नियोंके साथ मेरा रहना अच्छा नहीं है, मुझको भी अपने साथ वनैली मृगीके समान वनमें ले चलो ॥ १९ ॥ यदि तुमने पिताकी आज्ञा-से वनमें जाना निश्चित कर लिया हो तब । ऐसा कहकर रोती हुई मातासे रामचन्द्र रोते हुए बोले ॥ २० ॥ जीती हुई स्त्रियोंके लिए उसका पतिही देवता है, स्वामी है, आपके और मेरे स्वामी राजा हैं, वेही मालिक हैं ॥ २१ ॥ लोकस्वामी बुद्धिमान राजा दसरथके रहते हमलोग अनाथ नहीं हैं, भरत भी धर्मात्मा है और सबसे प्रिय बोलनेवाला है ॥ २२ ॥ वह आपकी सदा सेवा करेगा, क्योंकि उसका धर्ममें प्रेम है । मेरे जानेपर पुत्रशोकके कारण राजा ॥ २३ ॥ जिस प्रकार दुःखी न हो वैसा प्रयत्न सावधान होकर आपको करना चाहिए, जिससे कि यह कठिन शोक उनका विनाश न कर दे ॥ २४ ॥ सावधान होकर सदा बूढ़े राजाके हितकी ओर ध्यान दो, उनके हितके लिए व्रत, उपवास आदि करो, ये ही उत्तम नारीके लक्षण हैं ॥ २५ ॥ जो स्त्री पतिसेवा नहीं करती है, वह पापिनी है । पतिकी सेवासे स्त्रियाँ स्वर्ग पाती हैं ॥ २६ ॥ देवताको बिना नमस्कार किये तथा देवपूजा भी छोड़कर स्त्रियोंको पतिहितकी कामनासे उनकी सेवाही करनी चाहिए ॥ २७ ॥ लोक और वेदमें स्त्रियोंका यही नित्य धर्म बतलाया गया है । पतिके साथ किये जानेवाले अग्निहोत्र आदि कर्मोंमें पुष्पोंसे देवताकी पूजा करो ॥ २८ ॥ मेरे कल्याणके लिए देवताकी पूजा करो, सत्कारपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करो । इस प्रकार मेरे आगमनके समयकी प्रतीक्षा करो ॥ २९ ॥ इस प्रकार नियत आचरण और नियत आहारसे पतिसेवामें रत रहोगी तो मेरे वनसे लौट आनेपर अपने सब मनोरथोंको पूर्ण पाओगी ॥ ३० ॥ यदि धार्मिक-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कौसल्या पुत्रशोकार्ता रामं वचनमब्रवीत् । गमने सुकृतां बुद्धिं न ते शक्नोमि पुत्रक ॥३२॥
विनिवर्तयितुं वीर नूनं कालो दुरत्ययः । गच्छ पुत्र त्वमेकाग्रो भद्रं तेऽस्तु सदा विभो ॥३३॥
पुनस्त्वयि निवृत्ते तु भविष्यामि गतक्लमा । प्रत्यागते महाभागे कृतार्थे चरितव्रते ॥३४॥
पितुरानृण्यतां प्राप्ते स्वपिष्ये परमं सुखम् ॥३५॥
कृतान्तस्य गतिः पुत्र दुर्विभाव्या सदा भुवि । यत्त्वां संचोदयति मे वच आविध्य राघव ॥३६॥
गच्छेदानी महाबाहो क्षेमेण पुनरागतः । नन्दयिष्यसि मां पुत्र साम्ना श्लक्ष्णेन चारुणा॥३७॥
अपीदानीं स कालः स्याद्वनात्प्रत्यागतं पुनः । यत्त्वां पुत्रक पश्येयं जटावल्कलधारिणम् ॥३८॥
तथा हि रामं वनवासनिश्चितं ददर्श देवी परमेण चेतसा ।
उवाच रामं शुभलक्षणे वचो बभूव च स्वस्त्ययनाभिकाङ्क्षिणी ॥३९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशतितमः सर्गः २५

सा विनीय तमायासमुपस्पृश्य जलं शुचि । चकार माता रामस्य मङ्गलानि मनस्विनी ॥ १ ॥
न शक्यते वारयितुं गच्छेदानीं रघूत्तम । शीघ्रं च विनिवर्तस्व वर्तस्व च सतां क्रमे ॥ २ ॥

श्रेष्ठ राजा दसरथ उस समय तक जीवित रहे । रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर कौसल्याकी आंखें जलसे भर गयीं ॥ ३१ ॥ पुत्रशोकसे पीड़ित कौसल्या रामचन्द्रसे बोली—पुत्र, तुमने जानेका दृढ़ निश्चय कर लिया है ॥ ३२ ॥ मैं तुम्हें रोकना नहीं चाहती । कालके आगे किसकी चली है, पुत्र, तुम निश्चिन्त होकर जाओ तुम्हारा कल्याण हो ॥ ३३ ॥ जब तुम लौट कर आओगे, व्रतका अनुष्ठान कर सफल होकर लौटोगे और इस प्रकार पिताकी आज्ञाके पालन करनेसे उनका ऋण चुका दोगे तब मेरे क्लेश दूर होंगे और मैं सुखपूर्वक सो सकूंगी ॥ ३४ ॥ राघव, भाग्यकी गति बड़ी ही कठिन है, वह जानी नहीं जाती, देखो वही भाग्य मेरी बात टाल कर तुम्हें आज वन भेज रहा है ॥ ३५ ॥ बेटा, जाओ, कुशलपूर्वक लौटकर सुन्दर और मनोहर वचनोंसे मुझे प्रसन्न करना ॥ ३६ ॥ पुत्र, क्या वह समय कभी आवेगा जब वनसे लौटे हुए जटा-वल्कलधारी तुमको मैं देख सकूंगी अर्थात् चौदह वर्षकी अवधि शीघ्रही पूरी हो जायगी ॥ ३७ ॥ रामचन्द्रका वनवास जानेका निश्चय दृढ़ है यह बात देवी कौसल्याने अपने मनसे जान ली और उनका मङ्गल चाहनेवालीं वे मङ्गलमय शब्द उनसे बोलीं ॥ ३८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका चौबीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २४ ॥

कौसल्याने शोकसे उत्पन्न अपनी थकावट दूर की, पवित्र जलसे आचमन किया और रामचन्द्रके लिए मङ्गलकामना की ॥ १ ॥ कौसल्याने कहा—रघूत्तम, अब इस समय रोकना ठीक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यं पालयसि धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च । स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु ॥ ३ ॥
येभ्यः प्रणमसे पुत्र देवेष्वायतनेषु च । ते च त्वामभिरक्षन्तु वने सह महर्षिभिः ॥ ४ ॥
यानि दत्तानि तेऽस्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता । तानि त्वामभिरक्षन्तु गुणैः समुदितं सदा ॥ ५ ॥
पितृशुश्रूषया पुत्र मातृशुश्रूषया तथा । सत्येन च महाबाहो चिरं जीवाभिरक्षितः ॥ ६ ॥
समित्कुशपवित्राणि वेद्यश्चायतनानि च । स्थण्डिलानि च विप्राणां शैला वृक्षाः क्षुपा ह्रदाः ॥
पतङ्गाः पन्नगाः सिंहास्त्वां रक्षन्तु नरोत्तम ॥ ७ ॥
स्वस्ति साध्याश्च विश्वे च मरुतश्च महर्षिभिः । स्वस्ति धाता विधाता च स्वस्ति पूषा भगोऽर्यमा ॥ ८ ॥
लोकपालाश्च ते सर्वे वासवप्रमुखास्तथा । ऋतवः षट् च ते सर्वे मासाः संवत्सराः क्षपाः ॥ ९ ॥
दिनानि च मुहूर्ताश्च स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा । श्रुतिः स्मृतिश्च धर्मश्च पातु त्वां पुत्र सर्वतः ॥ १० ॥
स्कन्दश्च भगवान्देवः सोमश्च सबृहस्पतिः । सप्तर्षयो नारदश्च ते त्वां रक्षन्तु सर्वतः ॥ ११ ॥
ते चापि सर्वतः सिद्धा दिशश्च सदिगीश्वराः । स्तुता मया वने तस्मिन्पान्तु त्वां पुत्र नित्यशः ॥ १२ ॥
शैलाः सर्वे समुद्राश्च राजा वरुण एव च । द्यौरन्तरिक्षं पृथिवी वायुश्च सचराचरः ॥ १३ ॥
नक्षत्राणि च सर्वाणि ग्रहाश्च सह दैवतैः । अहोरात्रे तथा संध्ये पान्तु त्वां वनमाश्रितम् ॥ १४ ॥
ऋतवश्चापि षट् चान्ये मासाः संवत्सरास्तथा । कलाश्च काष्ठाश्च तथा तव शर्म दिशन्तु ते ॥ १५ ॥
महावनेऽपि चरतो मुनिवेषस्य धीमतः । तथा देवाश्च दैत्याश्च भवन्तु सुखदाः सदा ॥ १६ ॥

नहीं, तुम वन जाओ, और शीघ्रही लौट आओ, इस प्रकार सज्जनोंके मार्गका अनुसरण करो ॥ २ ॥ राघवश्रेष्ठ, जिस प्रेम और नियमके साथ जिस धर्मका पालन कर रहेहो वह धर्म ही तुम्हारी रक्षा करे, तुम्हारे विघ्नोंको दूर करे ॥ ३ ॥ पुत्र देवालयोंमें तुम जिनको प्रणाम करते हो वे देवता ही महर्षियोंके साथ तुम्हारी रक्षा करें ॥ ४ ॥ बुद्धिमान् विश्वामित्रने तुम्हें जो अस्त्र दिये हैं वे अस्त्र, सद्गुणवान् तुम्हारी रक्षा करें ॥ ५ ॥ पुत्र, पितृसेवा, मातृसेवा तथा सत्य-पालन इनके द्वारा रक्षित होकर तुम चिरजीवी होओ ॥ ६ ॥ समित्, कुश, पवित्र वेदियां, देव-स्थान, ब्राह्मणोंके चौतरे, पर्वत, वृक्ष, पौधे, तालाब, पतङ्ग, सर्प तथा सिंह तुम्हारी रक्षा करें अर्थात् इनके अधिष्ठाता देवता तुम्हारी रक्षा करें ॥ ७ ॥ साध्य, विश्वेदेव, मरुत और महर्षि तुम्हारा कल्याण करें, विराट, ब्रह्मा पूषन् देव अंग और अर्यमा तुम्हारा कल्याण करे ॥ ८ ॥ इन्द्रप्रभृति लोकपाल, छ ऋतु, सब महीने, वर्ष, रात्रि, ॥ ९ ॥ दिन और मुहूर्त सब तुम्हारा कल्याण करें । पुत्र ! श्रुति, स्मृति और धर्म तुम्हारी सब प्रकारसे रक्षा करें ॥ १० ॥ भगवान् स्कन्ददेव, बृहस्पतिके साथ चन्द्रमा, सप्त ऋषि तथा नारद तुम्हारी सब प्रकारसे रक्षा करें ॥ ११ ॥ पुत्र, जिन दिशाओं दिकपालों तथा सिद्धोंकी मैंने स्तुतिकी है वे सब उस वनमें तुम्हारी नित्य रक्षा करें ॥ १२ ॥ सब पर्वत, सब समुद्र, राजा वरुण, द्यौ, अन्तरिक्ष, पृथिवी, वायु ये सब तुम्हारी रक्षा करें ॥ १३ ॥ सब नक्षत्र देवताओंके साथ ग्रह दिन रात तथा दोनों सन्ध्याएँ तुम्हारी रक्षा करें ॥ १४ ॥ छ ऋतु, अधिक मास संवत्सर कला और काष्ठा ये सब तुम्हें कल्याण दें ॥ १५ ॥ बीहड़ वनमेंभी मुनिवेषसे तुम्हारे भ्रमणके समय देवता तथा दैत्य तुम्हारे लिए सुख-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
Acc. No. 1989

राक्षसानां पिशाचानां रौद्राणां क्रूरकर्मणाम् । क्रव्यादानां च सर्वेषां मा भूत्पुत्रक ते भयम् ॥१७॥
प्लवगा वृश्चिका दंशा मशकाश्चैव कानने । सरीसृपाश्च कीटाश्च माभूवन्गहने तव ॥१८॥
महाद्विपाश्च सिंहाश्च व्याघ्रा ऋक्षाश्च दंष्ट्रिणः । माहिषाः शृङ्गिणो रौद्रा न ते द्रुह्यन्तु पुत्रक ॥१९॥
नृमांसभोजना रौद्रा ये चान्ये सर्वजातियाः । मा च त्वां हिंसिषुःपुत्र मया संपूजितास्त्विह॥२०॥
आगमास्ते शिवाःसन्तु सिध्यन्तु च पराक्रमाः । सर्वसंपत्तयो राम स्वस्तिमान्गच्छ पुत्रक ॥२१॥
स्वस्ति तेऽस्त्वान्तरिक्षेभ्यःपार्थिवेभ्यःपुनःपुनः । सर्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो ये च ते परिपन्थिनः ॥२२॥
शुक्रः सोमश्च सूर्यश्च धनदोऽथ यमस्तथा । पान्तु त्वामर्चिता राम दण्डकारण्यवासिनम् ॥२३॥
आग्नेर्वायुस्तथा धूमो मन्त्राश्चार्षमुखच्युताः । उपस्पर्शनकाले तु पान्तु त्वां रघुनन्दन ॥२४॥
सर्वलोकप्रभुर्ब्रह्मा भूतकर्ता तथर्षयः । ये च शेषाःसुरास्ते तु रक्षन्तु वनवासिनम्॥२५॥
इति माल्यैः सुरगणान्गन्धैश्चापि यशस्विनी । स्तुतिभिश्चानुरूपाभिरानर्चायतलोचना ॥२६॥
ज्वलनं समुपादाय ब्राह्मणेन महात्मना । हावयामास विधिना राममङ्गलकारणात् ॥२७॥
घृतं श्वेतानि माल्यानि समिधश्चैव सर्षपान् । उपसंपादयामास कौसल्या परमाङ्गना ॥२८॥
उपाध्यायः सविधिना हुत्वा शान्तिमनामयम् । हुतहव्यावशेषेण बाह्यं बलिमकल्पयत् ॥२९॥
मधुदध्यक्षतघृतैः स्वस्तिवाच्यं द्विजांस्ततः । वाचयामास रामस्य वने स्वस्त्ययनक्रियाम् ॥३०॥

दायी हों ॥ १६ ॥ पुत्रक, बड़ेही भयानक क्रूर कर्म करनेवाले तथा मांस खानेवाले राक्षस और पिशाचोंसे भी वनमें तुम्हे भय न हो ॥ १७ ॥ वानर, विच्छू, वनमक्खी, मच्छर, गिरगिट तथा अन्य कीड़े वनमें तुम्हारे लिए दुःखदायी न हों ॥ १८ ॥ बड़े हाथी सिंह व्याघ्र रीछ सूअर भैंसे तथा सींगवाले अन्य भयानक जन्तु तुम्हारी बुराई न करें ॥ १९ ॥ मनुष्यमांस खानेवाले अन्य भयानक जन्तु भी तुमसे द्वेष न करें, क्योंकि मैं यहां उन सबकी पूजा करूंगी ॥ २० ॥ तुम्हारे मार्ग कल्याणमय हों, तुम्हारे पराक्रम सफल हों, वनवासके समय जिन सामग्रियोंकी आवश्यकता है वे सब सामग्रियां तुम्हें प्राप्त हों, तुम्हारा कल्याण हो, तुम जाओ ॥ २१ ॥ अन्तरिक्षवासी, पृथिवीवासी तथा वे सब देवता जो तुम्हारे विरोधी हों उन सबका भी कल्याण हो ॥ २२ ॥ शुक्र चन्द्रमा सूर्य कुवेर तथा यम दण्डकारण्यमें रहनेके समय मेरे द्वारा अर्चित होकर तुम्हारी रक्षा करें ॥ २३ ॥ अग्नि, वायु, धूम तथा ऋषियोंके मुखसे निकले मन्त्र, न छूने योग्य वस्तुसे छूजानेके समय तुम्हारी रक्षा करें ॥ २४ ॥ लोकप्रभु ब्रह्मा, जगत्कारण ब्रह्म, ऋषि तथा अन्य नित्य देवता वनवासके समय तुम्हारी रक्षा करें ॥ २५ ॥ इस प्रकार कहकर यशस्विनी कौसल्याने, माल्य गन्ध तथा अनुरूप स्तुतियोंसे देवताओंकी पूजा की ॥ २६ ॥ अग्नि लेकर शुद्धाचारी ब्राह्मणके द्वारा विधिपूर्वक उन्होंने हवन कराया जिससे रामचन्द्रका मङ्गल हो ॥ २७ ॥ श्रेष्ठ स्त्री कौसल्याने घी, सफेद मालाएँ लकड़ी और सर्षप (सरसों) हवनके लिए जुटाये ॥ २८ ॥ उपाध्यायने सब प्रकारके उपद्रवोंकी शान्ति और आरोग्यके लिए विधिपूर्वक हवन किये और हवनसे बचे द्रव्यसे हवन—स्थानके बाहर उन्होंने बलिदान किया ॥ २९ ॥ स्वस्तिवाचनके लिए ब्राह्मणोंको दधि मधु अक्षत घृत देकर कौसल्याने उनके द्वारा रामचन्द्रके वनमें कल्याणके लिए स्वस्तिवाचन कराया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततस्तस्मै द्विजेन्द्राय राममाता यशस्विनी । दक्षिणां प्रददौ काम्यां राघवं चेदमब्रवीत् ॥३१॥
यन्मङ्गलं सहस्राक्षे सर्वदेवनमस्कृते । वृत्रनाशे समभवत्तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥३२॥
यन्मङ्गलं सुपर्णस्य विनताकल्पयत्पुरा । अमृतं प्रार्थयानस्य तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥३३॥
अमृतोत्पादने दैत्यान्घ्नतो वज्रधरस्य यत् । अदितिर्मङ्गलं प्रादात्तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥३४॥
त्रिविक्रमान्प्रक्रमतो विष्णोरतुलतेजसः । यदासीन्मङ्गलं राम तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥३५॥
ऋषयःसागरा द्वीपा वेदा लोका दिशश्च ताः । मङ्गलानि महाबाहो दिशन्तु शुभमङ्गलम् ॥३६॥
इति पुत्रस्य शेषाश्च कृत्वा शिरसि भामिनी । गन्धैश्चापि समालभ्य राममायतलोचना ॥३७॥
औषधीं च सुसिद्धार्थां विशल्यकरणीं शुभाम् । चकार रक्षां कौसल्या मन्त्रैराभिजजाप च ॥३८॥
उवाचापि प्रहृष्टेव सा दुःखवशवर्तिनी । वाङ्मात्रेण न भावेन वाचा संसज्जमानया ॥३९॥
आनम्य मूर्ध्नि चाघ्राय परिष्वज्य यशस्विनी । अवदत्पुत्रमिष्टार्थो गच्छ राम यथासुखम् ॥४०॥
अरोगं सर्वसिद्धार्थमयोध्यां पुनरागतम् । पश्यामि त्वां सुखं वत्स संधितं राजवर्त्मसु ॥४१॥
मङ्गलैरुपसंपन्नो वनवासादिहागतः । वध्वाश्च मम नित्यं त्वं कामान्संवर्धयाहि भोः॥४२॥

ममार्चिता देवगणाः शिवादयो महर्षयो भूतगणाः सुरोरगाः ।
अभिप्रयातस्य वनं चिराय ते हितानि काङ्क्षन्तु दिशश्च राघव ॥४३॥

॥ ३० ॥ पुनः यशस्विनी राममाता कौसल्याने ब्राह्मणको मनचाही दक्षिणा दी और वे रामचन्द्रसे बोलीं ॥ ३१ ॥ देवताओंके द्वारा पूजित इन्द्रको वृत्रासुरके वधके समय जो मङ्गल हुआ था वही मंगल तुम्हे भी हो ॥ ३२ ॥ अमृत पानेकी प्रार्थनाके समय गरुडको उनकी माता विनताने जैसे मंगलका विधान किया था वैसा मंगल तुमकोभी हो ॥ ३३ ॥ अमृतके निकलनेके समय अदितिने दैत्यघाती इन्द्रको जो मंगल दिया था वह मंगल तुम्हे भी हो ॥ ३४ ॥ अतुलतेजा वामन को तीन पैरोंसे त्रिलोक नापनेके समय जो मंगल हुआ था वही मंगल तुम्हेभी हो ॥ ३५ ॥ महाबाहो, ऋषि, सागर, द्वीप, वेद, लोक तथा वे सब दिशाएँ तुम्हें मंगल दें, ये तुम्हे उत्कृष्ट मंगल दें ॥ ३६ ॥ ऐसा कहकर कौसल्याने पुत्र रामचन्द्रके मस्तकपर अक्षत रखे और गन्ध (सुगन्धित चन्दन आदि) लगाये ॥३७॥ जिसका प्रभाव देखा गया है ऐसी विशल्यकरणी नामकी औषधि कौसल्याने रक्षाके लिए रामचन्द्रके हाथमें बांधी और मन्त्रोंका जप किया ॥ ३८ ॥ दुःखित होनेपर भी प्रसन्नता प्रकट करती हुई कौसल्या बोली, कौसल्याने केवल वचनसे प्रसन्नता प्रकट की, हृदयसे नहीं क्योंकि उनका अन्तःकरण दुःखी था ॥ ३९ ॥ यशस्विनी कौसल्याने रामका सिर झुकाकर सूँघा और वे बोलीं—पुत्र, अपने प्रयोजनके लिए तुम वन जाओ ॥४०॥ तुम अपने सब मनोरथ पूरे करके नीरोग जब अयोध्यामें लौटोगे तब राजमार्गमें वर्तमान तुमको देखूंगी ॥ ४१ ॥ मंगलोंसे युक्त होकर तुम वन जाओ और वहांसे लौटकर मेरी बहू सीताके मनोरथोंको पूर्ण करो ॥ ४२ ॥ राघव, मेरे द्वारा पूजित होकर देवगण शिव, महर्षि, भूतगण, नाग वन जानेके समय तुम्हारे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अतीव चाश्रुप्रतिपूर्णलोचना समाप्य च स्वस्त्ययनं यथाविधि ।
प्रदक्षिणं चापि चकार राघवं पुनः पुनश्चापि निरीक्ष्य सस्वजे ॥४४॥
तया हि देव्या च कृतप्रदक्षिणो निपीड्य मातुश्चरणौ पुनः पुनः ।
जगाम सीतानिलयं महायशाः स राघवः प्रज्वलितस्तया श्रिया ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः २६

अभिवाद्य तु कौसल्यां रामःसंप्रास्थितो वनम् । कृतस्वत्ययनो मात्रा धर्मिष्ठे वर्त्मनि स्थितः ॥ १ ॥
विराजयन्राजसुतो राजमार्गं नरैर्वृतम् । हृदयान्याममन्थेव जनस्य गुणवत्तया ॥ २ ॥
वैदेही चापि तत्सर्वं न शुश्राव तपस्विनी । तदेव हृदि तस्याश्च यौवराज्याभिषेचनम् ॥ ३ ॥
देवकार्यं स्म सा कृत्वा कृतज्ञा हृष्टचेतना । अभिज्ञा राजधर्माणां राजपुत्री प्रतीक्षति ॥ ४ ॥
प्रविवेशाथ रामस्तु स्ववेश्म सुविभूषितम् । प्रहृष्टजनसंपूर्णं ह्रिया किंचिदवाङ्मुखः ॥ ५ ॥
अथ सीता समुत्पत्य वेपमाना च तं पतिम् । अपश्यच्छोकसंतप्तं चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियम् ॥ ६ ॥
तां दृष्ट्वा स हि धर्मात्मा न शशाक मनोगतम् । तं शोकं राघवः सोढुं ततो विवृततां गतः ॥ ७ ॥

कल्याण करें ॥ ४३ ॥ कौसल्याकी आंखें आँसुसे भर गयी थीं,उन्होने विधिपूर्वक स्वस्त्ययन समाप्त किया, रामचन्द्रकी प्रदक्षिणा की,बारबार उनको देखा और उनका आलिंगन किया ॥ ४४ ॥ माता के द्वारा प्रदक्षिण किये जानेपर रामचन्द्रने बारबार माताके चरणोंको प्रणाम किया और माताके द्वारा किये विधानोंसे प्राप्त शोभाके द्वारा रामचन्द्र विशेष शोभित हुए। महायशस्वी रामचन्द्र वहांसे सीताके महलमें गये ॥ ४५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका पचीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २५ ॥

धर्ममार्गमें वर्तमान रामचन्द्र माताके द्वारा स्वस्त्ययन किये जानेपर माता कौसल्याका प्रणाम करके वनके लिए प्रस्थित हुए ॥ १ ॥ मनुष्योंसे भरे हुए राजमार्गको सुशोभित करते हुए तथा अपनी गुणवत्तासे लोगोंके हृदय मथानीके समान विलोते हुए प्रस्थित हुए ॥ २ ॥ अभी तक सीताको इन सब बातोंकी खबर न थी, उनके हृदयमें अभी अभिषेककीही बातें वर्तमान थीं ॥ ३ ॥ सीता सामयिक कर्तव्यों तथा राजधर्मको जाननेवाली हैं, अतः देवपूजा करके प्रसन्नता पूर्वक रामचन्द्रके लौटनेकी प्रतीक्षा कररही थीं ॥ ४ ॥ रामचन्द्रने अपने सजे-सजाये घरमें प्रवेश किया, वह घर प्रसन्न मनुष्योंसे पूर्ण था और रामचन्द्र उस समय लज्जासे थोड़ा सिर झुकाये हुए थे ॥ ५ ॥ रामचन्द्रको देखकर सीता कांप गयीं, और शोकसन्तप्त तथा चिन्ताव्याकुल पतिको उन्होंने देखा ॥ ६ ॥ सीताको देखकर धर्मात्मा रामचन्द्र अपने मनका शोक न छिपा सके, अतएव वह शोक प्रकाशित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विवर्णवदनं दृष्ट्वा तं प्रस्विन्नममर्षणम् । आह दुःखाभिसंतप्ता किमिदानीमिदं प्रभो ॥ ८ ॥
अद्य वार्हस्पतः श्रीमान्युक्तः पुष्येण राघव । प्रोच्यते ब्राह्मणैःप्राज्ञैःकेन त्वमसि दुर्मनाः ॥ ९ ॥
न ते शतशलाकेन जलफेननिभेन च । आवृतं वदनं वल्गु च्छत्रेणाभिविराजते ॥१०॥
व्यजनाभ्यां च मुख्याभ्यां शतपत्रनिभेक्षणम् । चन्द्रहंसप्रकाशाभ्यां वीज्यते न तवाननम् ॥११॥
वाग्मिनो वन्दिनश्चापि प्रहृष्टास्त्वां नरर्षभ । स्तुवन्तो नाद्य दृश्यन्ते मङ्गलैःसूतमागधाः ॥१२॥
न ते क्षौद्रं च दधि च ब्राह्मणा वेदपारगाः । मूर्ध्नि मूर्धाभिषिक्तस्य ददति स्म विधानतः ॥१३॥
न त्वां प्रकृतयः सर्वा श्रेणीमुख्याश्च भूषिताः । अनुव्राजितुमिच्छन्ति पौरजानपदास्तदा ॥१४॥
चतुर्भिर्वेगसंपन्नैर्हयैः काञ्चनभूषणैः । मुख्यःपुष्परथो युक्तःकिं न गच्छति तेऽग्रतः ॥१५॥
न हस्ती चाग्रतः श्रीमान्सर्वलक्षणपूजितः । प्रयाणे लक्ष्यते वीर कृष्णमेघगिरिप्रभः ॥१६॥
न च काञ्चनचित्रं ते पश्यामि प्रियदर्शन । भद्रासनं पुरस्कृत्य यातं वीरपुरःसरम् ॥१७॥
अभिषेको यदा सज्जः किमिदानीमिदं तव । अपूर्वो मुखवर्णश्च न प्रहर्षश्च लक्ष्यते ॥१८॥
इतीव विलपन्तीं तां प्रोवाच रघुनन्दनः । सीते तत्र भवांस्तातः प्रव्राजयति मां वनम् ॥१९॥
कुले महति संभूते धर्मज्ञे धर्मचारिणि । शृणु जानकि येनेदं क्रमेणाद्यागतं मम ॥२०॥

होगया। वह सीतासे वियोग होनेका शोक था ॥७॥ रामचन्द्रका मुँह सूखगया था, शरीरसे पसीना निकल रहा था, वे अपना दुःख सम्भाल नहीं सकते थे। दुःखित होकर सीता उनसे बोली-प्रभो, इस समय यह क्या ? ॥८॥ ब्राह्मण कहते हैं कि आज पुष्य नक्षत्र है, जिसके देवता बृहस्पति हैं, जिसमें प्रारम्भ किया हुआ कार्य सफल होता है, यह समय अभिषेकके योग्य है, अतएव आपको प्रसन्न होना चाहिए, आप उदास क्यों हैं ? ॥९॥ जलफेनके समान स्वच्छ सौ कमानीवाले सुन्दर छातासे आपका मुखमण्डल इस समय ढका हुआ नहीं है, अर्थात् राजचिन्ह छत्र आपने धारण नहीं किया है ॥१०॥ चन्द्रमा और हंसके समान श्वेत सुन्दर दो चँवरोंसे कमलके समान आपका सुन्दर मुख वीजित नहीं होता अर्थात् राजचिन्ह चंवर भी नहीं हैं ॥ ११ ॥ नरश्रेष्ठ बोलनेमें चतुर वन्दी सूत मागध प्रसन्नतापूर्वक मङ्गल वचनोंसे आपकी स्तुति करते भी नहीं देखे जाते हैं ॥ १२ ॥ सिरसे स्नान करनेवाले आपके सिरपर वेदपारग ब्राह्मण विधिपूर्वक मधु तथा दही नहीं देरहे हैं ॥ १३ ॥ सब राजकर्मचारी, दलोंके प्रतिनिधि तथा प्रजाके लोग इस समय आपका अनुगमन करना नहीं चाहते ॥ १४ ॥ सोनेके गहने पहने हुए और तेज चलनेवाले चार घोड़ोंवाला पुष्यरथ (सवारीका, युद्धका नहीं) आपके आगे क्यों नहीं चलता ॥ १५ ॥ काले मेघोंवाले पर्वतके समान हाथी, जो सब सुलक्षणोंसे युक्तहो तथा सब सम्पत्तियोंका हेतुहों, आपकी यात्रामें आते नहीं दीख पड़ता ॥ १६ ॥ हे प्रियदर्शन, सोनेका राजसिंहासन आगे लेकर चलनेवाले भृत्योंको मैं नहीं देख रही हूँ ॥ १७ ॥ इधर अभिषेककी तयारी हुई और उधर आपको यह क्या होगया, आपके मुंहका रंग अद्भुत होगया है, उसपर थोड़ी भी प्रसन्नता नहीं मालूम पड़ती ॥ १८ ॥ इस प्रकार दुःखसे कहती हुई सीतासे रामचन्द्र बोले--सीते, पूज्यपिता मुझे वन भेज रहे हैं ॥ १९ ॥ सीते, तुम्हारा जन्म बहुत बड़े कुलमें हुआ है, तुम स्वयं धर्म जाननेवाली और धर्माचरण करनेवाली हो। जानकी,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राज्ञा सत्यप्रतिज्ञेन पित्रा दशरथेन वै । कैकेय्यै मम मात्रे तु पुरा दत्तौ महावरौ ॥२१॥
तयाद्य मम सज्जेऽस्मिन्नभिषेके नृपोद्यते । प्रचोदितः स समयो धर्मेण प्रतिनिर्जितः ॥२२॥
चतुर्दश हि वर्षाणि वस्तव्यं दण्डके मया । पित्रा मे भरतश्चापि यौवराज्ये नियोजितः॥२३॥
सोऽहं त्वामागतो द्रष्टुं प्रस्थितो विजनं वनम् । भरतस्य समीपे ते नाहं कथ्यः कदाचन ॥२४॥
ऋद्धियुक्ता हि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम् । तस्मान्न ते गुणाः कथ्या भरतस्याग्रतो मम ॥२५॥
अहं ते नानुवक्तव्यो विशेषेण कदाचन । अनुकूलतया शक्यं समीपे तस्य वर्तितुम् ॥२६॥
तस्मै दत्तं नृपतिना यौवराज्यं सनातनम् । स प्रसाद्यस्त्वया सीते नृपतिश्च विशेषतः ॥२७॥
अहं चापि प्रतिज्ञां तां गुरोः समनुपालयन् । वनमद्यैव यास्यामि स्थिरीभव मनस्विनि ॥२८॥
यांते च मायि कल्याणि वनं मुनिनिषेवितम् । व्रतोपवासपरया भवितव्यं त्वयानघे ॥२९॥
कल्यमुत्थाय देवानां कृत्वा पूजां यथाविधि । वन्दितव्यो दशरथः पिता मम जनेश्वरः ॥३०॥
माता च मम कौसल्या वृद्धा संतापकर्शिता । धर्ममेवाग्रतः कृत्वा त्वत्तः संमानमर्हति ॥३१॥
वन्दितव्याश्च ते नित्यं याः शेषा मम मातरः । स्नेहप्रणयसंभोगैः समा हि मम मातरः ॥३२॥
भ्रातृपुत्रसमौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः । त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम ॥३३॥
विप्रियं च न कर्तव्यं भरतस्य कदाचन । स हि राजा च वैदेहि देशस्य च कुलस्य च ॥३४॥

सुनो, जिसप्रकार यह मेरे वनवासकी बात तय हुई है ॥ २० ॥ सत्यप्रतिज्ञ पिता राजा दसरथने पहले मेरी माता केकयीको दो बड़े वर दिये थे ॥ २१ ॥ जब राजाने मेरे अभिषेकका प्रस्ताव किया तथा तयारी की तब केकयीने जो पहले वर मागे थे वे स्मरण दिलाये और इसप्रकार धर्मके द्वारा राजाको अपने वश कर लिया ॥ २२ ॥ चौदह वर्षों तक दण्डकवनमें मुझे रहना पड़ेगा । पिताने भरतको युवराजका पद दिया है ॥ २३ ॥ इसीकारण विजन वनमें जानेके लिए मैं प्रस्थित हुआ हूँ और तुमसे मिलनेके लिए यहां आया हूँ । तुम भरतके सामने मेरी प्रशंसा न करना ॥ २४ ॥ क्योंकि समृद्धिमान् मनुष्य दूसरोंकी स्तुति नहीं सहसकते, इसी कारण भरतके सामने तुम मेरे गुणोंका वर्णन न करना ॥ २५ ॥ भरतके आनेपर उनके सामने तुम मुझे श्रेष्ठ न बतलाना, ऐसा करना भरतका प्रतिकूलाचरण कहा जायगा, और अनुकूल रहकरही भरतके पास रहना सम्भव होसकता है ॥ २६ ॥ परम्परागत राज्य राजाने भरतकोही दिया है, तुमको चाहिए कि तुम उसे प्रसन्न रखो, क्योंकि वह राजा है ॥ २७ ॥ गुरु (पिता) की आज्ञाका पालन करनेके लिए मैं आजही वन जारहा हूँ । मनस्विनि, तुम धैर्य धारण करो ॥२८॥ कल्याणि, मुनियोंके रहनेवाले वनमें जब मैं चला जाऊंगा, तब हे निष्पापे, व्रत, उपवास आदिके द्वारा अपना समय बिताना ॥ २९ ॥ प्रातःकाल उठकर विधिपूर्वक देवताओंकी पूजा करना, पुनः मेरे पिता राजा दसरथको प्रणाम करना ॥३०॥ मेरी माता कौसल्या वृद्धा हैं, दुःखिनी हैं, उनका सम्मान करना तुम्हारा धर्म है ॥३१॥ मेरी अन्य जो माताएँ हैं उनको प्रणाम करना, क्योंकि सभी माताओंका मुझपर समान स्नेह, सौहार्द्य तथा वात्सल्य है ॥३२॥ भरत और शत्रुघ्नको तुम भाई तथा बेटेके समान देखना, क्योंकि ये दोनों मुझे प्राणोंसे भी प्रिय हैं ॥३३॥ कभी भरतका विरोधाचरण न करना, क्योंकि यह देशका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आराधिता हि शीलेन प्रयत्नैश्चोपसेविताः । राजानः संप्रसीदन्ति प्रकुप्यन्ति विपर्यये ॥३५॥
औरस्यानपि पुत्रान्हि त्यजन्त्यहितकारिणः । समर्थान्संप्रगृह्णन्ति जनानपि नराधिपाः ॥३६॥
सा त्वं वसेह कल्याणि राज्ञः समनुवर्तिनी । भरतस्य रता धर्मे सत्यव्रतपरायणा ॥३७॥
अहं गमिष्यामि महावनं प्रिये त्वया हि वस्तव्यमिहैव भामिनि ।
यथा व्यलीकं कुरुषे न कस्याचित्तथा त्वया कार्यमिदं वचो मम ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः २७

एवमुक्ता तु वैदेही प्रियार्हा प्रियवादिनी । प्रणयादेव संक्रुद्धा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
किमिदं भाषसे राम वाक्यं लघुतया ध्रुवम् । त्वया यदपहास्यं मे श्रुत्वा नरवरोत्तम ॥ २ ॥
वीराणां राजपुत्राणां शस्त्रास्त्रविदुषां नृप । अनर्हमयशस्यं च न श्रोतव्यं त्वयेरितम् ॥ ३ ॥
आर्यपुत्र पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्नुषा । स्वानि पुण्यानि भुञ्जानाःस्वं स्वं भाग्यमुपासते॥ ४ ॥
भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ । अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि ॥ ५ ॥

तथा कुलका राजा है ॥ ३४ ॥ अनुकूलाचरणके द्वारा आराधित होनेपर तथा भिन्न-भिन्न उपायों द्वारा सेवा करनेसे राजा प्रसन्न होते हैं और इससे विपरीत आचरण करनेवालेपर राजा क्रोध करते हैं ॥३५॥ स्वयं अपना पुत्रही क्यों न हो, यदि वह अहितकारी हो तो राजा उसका त्याग कर देता है । जो लोग योग्य हैं, राजाके अनुकूलाचरण करनेवाले हैं, वे साधारण मनुष्य भीहों तो भी राजा उन्हें आश्रय देता है ॥ ३६ ॥ कल्याणि, तुम यहीं रहो, और राजाके अनुकूल आचरण करो, अमोघ व्रतोंका अनुष्ठान करो और धर्माचरण करो ॥ ३७ ॥ प्रिये, मैं वन जारहा हूँ, भामिनि, तुम यहीं रहो, मेरे वचनोंके विपरीत तुमने आजतक कुछ भी नहीं किया है, उसी प्रकार मेरी यह बात भी मानो ॥ ३८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २६ ॥

रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर प्रिय बोलनेवाली सीता स्नेहसेही कुपित होकर पति रामचन्द्रसे इस प्रकार बोली ॥ १ ॥ राम, आप यह क्या कह रहे हैं, निश्चय इस बातसे मेरी ओछाई प्रकट होती है । हे नरश्रेष्ठ, आपने जो कहा है वह सुनकर मुझे हँसी आरही है ॥ २ ॥ आपने जो कहा है वह शस्त्र-अस्त्र जाननेवाले वीर राजपुत्रोंके लिए अयोग्य है और कलङ्क है, अतएव वह सुनने योग्य नहीं है ॥ ३ ॥ आर्यपुत्र, पिता, माता, भाई, पुत्र तथा पुत्रवधू ये सब अपने-अपने कर्मके अनुसार दुःख-सुख भोगते हैं ॥४॥ पुरुषश्रेष्ठ, एक स्त्रीही पतिके कर्मफलोंकी भागिनी है । अतएव आपके लिए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सखीजनः । इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा ॥ ६ ॥
यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव । अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान् ॥ ७ ॥
ईर्ष्यां रोषं बहिष्कृत्य भुक्तशेषमिवोदकम् । नय मां वीर विस्रब्धः पापं मयि न विद्यते ॥ ८ ॥
प्रासादाग्रे विमानैर्वा वैहायसगतेन वा । सर्वावस्थागता भर्तुःपादच्छाया विशिष्यते ॥ ९ ॥
अनुशिष्टास्मि मात्रा च पित्रा च विविधाश्रयम् । नास्मि संप्रति वक्तव्या वार्तितव्यं यथा मया ॥१०॥
अहं दुर्गं गमिष्यामि वनं पुरुषवर्जितम् । नानामृगगणाकीर्णं शार्दूलगणसेवितम् ॥११॥
सुखं वने निवत्स्यामि यथैव भवने पितुः । अचिन्तयन्ती त्रींल्लोकांश्चिन्तयन्ती पतिव्रतम्॥१२॥
शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी । सह रंस्ये त्वया वीर वनेषु मधुगन्धिषु ॥१३॥
त्वं हि कर्तुं वने शक्तो राम संपरिपालनम् । अन्यस्यापि जनस्येह किं पुनर्मम मानद ॥१४॥
साहं त्वया गमिष्यामि वनमद्य न संशयः । नाहं शक्या महाभाग निवर्तयितुमुद्यता ॥१५॥
फलमूलाशना नित्यं भविष्यामि न संशयः । न ते दुःखं करिष्यामि निवसन्ती त्वया सदा ॥१६॥
अग्रतस्ते गमिष्यामि भोक्ष्ये भुक्तवति त्वयि । इच्छामि परतः शैलान्पल्वलानि सरांसि च ॥१७॥

वनवासकी जो आज्ञा हुई है वह मेरे लिए भी हुई, अतएव, मैं भी वनमेंही रहूंगी ॥ ५ ॥ पिता, पुत्र अथवा स्वयं माता और सखियां ये कोई भी स्त्रियोंके लिए न तो इस लोकमें और न परलोकमें सहायक हो सकते हैं, केवल एक पतिही स्त्रियोंके लिए इसलोक तथा परलोकमें गति है, वही आश्रय है ॥ ६ ॥ राघव, यदि आप आजही वीहड़ वनमें जानेके लिए प्रस्थित होते हैं तो आपके रास्तेके कुश-कांटोंको रौंदती हुई आगे-आगे मैं चलूंगी ॥ ७ ॥ स्त्री होकर यह वनमें कैसे जायगी इस विचारसे होनेवाली ईर्ष्या तथा मेरी बात नहीं मानती इसकारण होनेवाले क्रोधको जूठे जलके समान बाहर फेंक दीजिए । वीर, आप निःशङ्क होकर मुझे अपने साथ ले चलिए, मुझमें ऐसा कोई पाप नहीं है जिससे आप मेरा त्याग करें ॥८॥ राजमहल मिले, देवताओंका विमान मिले और अणिमा आदि सिद्धियोंके द्वारा आकाशमें भ्रमण करना पड़े या कोई बड़ी दीन अवस्था ही हो, सभी अवस्थाओंमें पतिकी चरणसेवा उत्तम है ॥ ९ ॥ पिता माताके द्वारा अनेक बार मुझे उपदेश मिलचुका है, अतएव इस विषयमें अब आप उपदेश न दें, इस समय मुझे जैसा करना चाहिए वह मैं जानती हूँ ॥ १० ॥ मैं घोर वनमें जाऊंगी जहां कोई भी पुरुष न होगा, किन्तु अनेक प्रकारके पशु होंगे तथा बाघोंका दल होगा ॥ ११ ॥ मैं वनमें सुखपूर्वक रहूँगी, जैसा पिताके घरमें रहती थी । तीनों लोकोंके आधिपत्यका तिरस्कार करके पतिसेवामेंही मैं प्रसन्न रहूँगी ॥१२॥ मैं आपकी सेवा करूंगी, ब्रह्मचर्यपूर्वक रहूंगी, आपके बतलाये नियमोंका पालन करूंगी और वीर, आपके साथ मधुर गन्धवाले वनोंमें विहार करूंगी ॥ १३ ॥ राम, आप तो दूसरे मनुष्योंकी भी वनमें रक्षा कर सकते हैं, फिर मेरी रक्षा आपके लिए कौन कठिन है ॥१४॥ मैं आपके साथ वन जाऊंगी, इसमें कुछ भी सन्देह न कीजिए । महाभाग, मैं वन जानेके लिए तैयार हूं, अब मैं किसी प्रकार रुक नहीं सकती ॥ १५ ॥ सदा फलमूल खाकर मैं रहूंगी, आपके साथ वनमें रहकर मैं आपको किसी भी बातके लिए दुःखी न करूंगी ॥१६॥ आपके आगे-आगे चलूंगी, आपके भोजन करनेपर भोजन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्रष्टुं सर्वत्र नभीता त्वया नाथेन धीमता । हंसकारण्डवाकीर्णाः पद्मिनीः साधुपुष्पिताः ॥१८॥
इच्छेयं सुखिनी द्रष्टुं त्वया वीरेण संगता । अभिषेकं करिष्यामि तासु नित्यमनुव्रता ॥१९॥
सह त्वया विशालाक्ष रंस्ये परमनन्दिनी । एवं वर्षसहस्राणि शतं वापि त्वया सह ॥२०॥
व्यतिक्रमं न वेत्स्यामि स्वर्गोऽपि हि न मे मतः । स्वर्गेऽपि च विना वासो भविता यदि राघव ।
त्वया विना नरव्याघ्र नाहं तदपि रोचये ॥२१॥

अहं गमिष्यामि वनं सुदुर्गमं मृगायुतं वानरवारणैश्च ।
वने निवत्स्यामि यथा पितुर्गृहे तवैव पादावुपगुह्य संमता ॥२२॥
अनन्यभावामनुरक्तचेतसं त्वया वियुक्तां मरणाय निश्चिताम् ।
नयस्व मां साधु कुरुष्व याचनां नातो मया ते गुरुता भविष्यति ॥२३॥
तथा ब्रुवाणामपि धर्मवत्सलां न च स्म सीतां नृवरो निनीषति ।
उवाच चैनां बहु सन्निवर्तने वने निवासस्य च दुःखमं मे श्रुत्वे ॥२४॥
च न श्रोतव्

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

करूंगी । मैं अपने पति आपके साथ निर्भय होकर पर्वतों, छोटे-छोटे तालाबों और सरोवरोंको देखना चाहती हूं जिनमें हंस और जलमुर्गे तैरते हों और पद्मिनी खूब फूली हो ॥१७-१८॥ आपके साथ रहकर मैं इन सबको देखना चाहती हूँ । मैं आपका अनुसरण करती हुई प्रतिदिन उनमें स्नान करूंगी ॥१९॥ विशालाक्ष, इस प्रकार आपके साथ मैं वनमें विहार करूंगी, इस प्रकार सैकड़ों और हजारों वर्ष रहना पड़े तब भी मैं दुःखी न होऊंगी, वनके दुःख मुझे दुःख मालूम न होंगे ॥२०॥ आपके विना यदि मुझे स्वर्गमें भी रहना पड़े तो वह स्वर्ग भी मुझे पसन्द नहीं ॥२१॥ वानर, हाथी तथा अन्य पशुओंसे युक्त वनमें मैं जाऊंगी और जिसप्रकार पिताके घरमें निवास किया जाता है उसी प्रकार आपकी कृपापात्री बनकर तथा आपके चरणोंका आश्रय में मैं निवास करूंगी ॥ २२ ॥ आपके अतिरिक्त और कहीं मेरा प्रेम नहीं और आपमें मेरा बहुत अधिक अनुराग है, आपके वियोगसे मेरी मृत्यु निश्चित है । मुझे ले चलिए, मेरी प्रार्थना सफल कीजिए । मुझे ले चलनेसे आपको कोई भार न होगा ॥ २३ ॥ सीताके ऐसा कहनेपर भी धर्मात्मा और स्नेही रामचन्द्र सीताको लेजानेके लिए तैयार न हुए, वनवासके प्रति अपना विचार बदल देनेके लिए रामचन्द्रने सीतासे वनवासके दुःखोंका वर्णन किया ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका सताइसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २७ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अष्टाविंशः सर्गः २८

स एवं ब्रुवतीं सीतां धर्मज्ञां धर्मवत्सलः । न नेतुं कुरुते बुद्धिं वने दुःखानि चिन्तयन् ॥ १ ॥
सान्त्वयित्वा ततस्तां तु बाष्पदूषितलोचनाम् । निवर्तनार्थे धर्मात्मा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २ ॥
सीते महाकुलीनासि धर्मे च निरता सदा । इहाचरस्व धर्मं त्वं यथा मे मनसः सुखम् ॥ ३ ॥
सीते यथा त्वां वक्ष्यामि तथा कार्यं त्वयाबले । वने दोषा हि बहवो वसतस्तान्निबोध मे ॥ ४ ॥
सीते विमुच्यतामेषा वनवासकृता मतिः । बहुदोषं हि कान्तारं वनमित्याभिधीयते ॥ ५ ॥
हितबुद्ध्या खलु वचो मयैतदभिधीयते । सदा सुखं न जानामि दुःखमेव सदा वनम् ॥ ६ ॥
गिरिनिर्झरसंभूता गिरिकंदरवासिनाम् । सिंहानां निनदा दुःखाः श्रोतुं दुःखमतो वनम् ॥ ७ ॥
क्रीडमानाश्च विस्रब्धा मत्ताः शून्येतथा मृगाः । दृष्ट्वा समभिवर्तन्ते सीते दुःखमतो वनम् ॥ ८ ॥
संग्राहा सरितश्चैव पङ्कबत्यस्तु दुस्तराः । मत्तैरपि गजैर्नित्यमतो दुःखतरं वनम् ॥ ९ ॥
लताकण्टकसंकीर्णाः कृकवाकूपनादिताः । निरपाश्च सुदुःखाश्च मार्गा दुःखमतो वनम् ॥ १० ॥
सुप्यते पर्णशय्यासु स्वयंभग्नासु भूतले । रात्रिषु श्रमखिन्नेन तस्माद्दुःखमतो वनम् ॥ ११ ॥
अहोरात्रं च संतोषः कर्तव्यो नियतात्मना । फलैर्वृक्षावपतितैः सीते दुःखमतो वनम् ॥ १२ ॥

धर्म जाननेवाली सीताके ऐसा कहनेपर भी धर्मवत्सल रामचन्द्रने उनको वन लेजानेकी इच्छा नहीं की, क्योंकि उन्हें वनके दुःखोंका ध्यान था ॥ १ ॥ सीताकी आँखें आंसूसे भर आयीं, रामचन्द्रने उन्हें समझाया । पुनः अपना विचार बदलनेके लिए उनसे रामचन्द्रने कहा ॥ २ ॥ सीते, तुम बड़ी कुलवती हो और सदा तुम्हारा मन धर्ममें रहता है, तुम यहीं रहकर धर्माचरण करो, जिससे मेरा मन प्रसन्न रहे ॥ ३ ॥ मैं तुमसे जैसा कहता हूं तुम वैसाही करो, क्योंकि तुम अबला हो, वनमें रहनेवालोंको अनेक कष्ट होते हैं, उन दुःखोंको सुनो ॥ ४ ॥ सीते, वनमें जानेकी इच्छाका त्याग करो, वहां बड़े-बड़े कष्ट होते हैं इसी कारण वन कान्तार कहा जाता है ॥ ५ ॥ तुम्हारे हितके लिए ही मैंने तुमसे ऐसा कहा है, वनमें सदा सुख होता है यह मैं नहीं जानता, पर दुःख सदा होता है इसका मुझे निश्चय है ॥ ६ ॥ पर्वत कन्दराओंमें रहनेवाले सिंहोंके शब्द, पहाड़ी नदियोंके शब्दके साथ मिलकर सुननेमें बड़े दुःखदायी हैं, अतएव वन दुःखदायी है ॥ ७ ॥ निर्जन वनमें क्रीड़ा करनेवाले निःशङ्क और मतवाले वनपशु मनुष्योंको देखकर उनपर टूट पड़ते हैं, अतएव वन दुखदायी है ॥ ८ ॥ नदियोंमें मगर होते हैं, कइयोंमें बहुत अधिक कीचड़ होता है, कइयोंको मतवाले हाथी भी नहीं तैर सकते, इस कारण वन अत्यन्त दुःखद थी है ॥ ९ ॥ वहांके मार्ग लताओं और कांटोंसे भरे पड़े हैं, उनमें मयूर, गिरगिट और मुर्गे बोला करते हैं, जल नहीं होता, इसप्रकार वहांके मार्ग भी बड़े दुखदायी हैं, इसकारण वन दुखदायी है ॥ १० ॥ थकावटसे खिन्न मनुष्य रातको स्वयं गिरे हुए पत्तोंकी शय्यापर सोता है, अतएव वन दुःखदायी है ॥ ११ ॥ मनको रोककर वृक्षोंसे गिरे फलोंपरही दिन-रातमें सन्तोष करना पड़ता है अर्थात् फलही पर दिन-रात बिताने पड़ते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उपवासश्च कर्तव्यो यथाप्राणेन मैथिलि । जटाभारश्च कर्तव्यो वल्कलाम्बरधारणम् ॥१३॥
देवतानां पितॄणां च कर्तव्यं विधिपूर्वकम् । प्राप्तानामतिथीनां च नित्यशः प्रतिपूजनम् ॥१४॥
कार्यस्त्रिरभिषेकश्च काले काले च नित्यशः । चरतां नियमेनैव तस्मादुदुःखतरं वनम् ॥१५॥
उपहारश्च कर्तव्यः कुसुमैः स्वयमाहृतैः । आर्षेण विधिना वेद्यां सीते दुःखमतो वनम् ॥१६॥
यथालब्धेन कर्तव्यः संतोषस्तेन मैथिलि । यथाहारैर्वनचरैः सीते दुःखमतो वनम् ॥१७॥
अतीव वातस्तिमिरं बुभुक्षा चास्ति नित्यशः । भयानि च महान्त्यत्र अतो दुखःतरं वनम् ॥१८॥
सरीसृपाश्च बहवो बहुरूपाश्च भामिनि । चरन्ति पाथि ते दर्पात्ततो दुःखतरं वनम् ॥१९॥
नदीनिलयनाः सर्पा नदीकुटिलगामिनः । तिष्ठन्त्यावृत्य पन्थानमतो दुःखतरं वनम् ॥२०॥
पतङ्गा दंशचिकाः कीटा दंशाश्च मशकैः सह । बाधन्ते नित्यमबले सर्वं दुःखमतो वनम् ॥२१॥
द्रुमाः कण्टकिनश्चैव कुशाः काशाश्च भामिनि । वने व्याकुलशाखाग्रास्तेन दुःखमतो वनम् ॥२२॥
कायक्लेशाश्च बहवो भयानि विविधानि च । अरण्यवासे वसतो दुःखमेव सदा वनम् ॥२३॥
क्रोधलोभौ विमोक्तव्यौ कर्तव्या तपसे मतिः । न भेतव्यं च भेतव्ये दुःखं नित्यमतो वनम् ॥२४॥
तदलं ते वनं गत्वा क्षेमं नहि वनं तव । विमृशन्निव पश्यामि बहुदोषकरं वनम् ॥२५॥

हैं, इससे वन दुःखदायी है ॥ १२ ॥ मिथिलाराजपुत्रि, वहां अपनी सामर्थ्यके अनुसार उपवास भी करना पड़ता है, जटा और वल्कल वस्त्र धारण करना पड़ता है ॥ १३ ॥ ब्रह्मचर्यपूर्वक देवता और पितरोंका पूजन करना पड़ता है तथा आश्रमपर आये अतिथियोंका पूजन करना पड़ता है ॥ १४ ॥ नियमपूर्वक कालक्षेप करते हुए प्रतिदिन तीन बार सबेरे, दोपहर और सन्ध्याको स्नान करना पड़ता है, अतएव वन दुःखदायी है ॥ १५ ॥ स्वयं लाये हुए फूलोंसे वैदिक विधिके द्वारा वेदीपर पूजन करना पड़ता है, अतएव वन दुःखदायी है ॥ १६ ॥ जिससमय जितना और जो आहार मिलजाय वनवासियोंको उसीपर सन्तोष करना पड़ता है, इसीसे वन दुःखदायी है ॥ १७ ॥ वनमें बड़ी तेज हवा चलती है, रातको प्रबल अन्धकार होता है, भूख लगती है, भय भी बड़ा लगता है, अतएव वन दुःखदायी है ॥ १८ ॥ अनेक प्रकारके बहुतसे सर्प आदि वनमें निर्भय होकर विचरते हैं, इस कारण वन दुःखदायी है ॥ १९ ॥ नदीमें रहनेवाले तथा नदीके समान टेढ़े चलनेवाले सांप रास्ता रोक लेते हैं, अतएव वन दुःखदायी है ॥ २० ॥ पतंग, विच्छू, कीड़े, वनमक्खी और मच्छर सदा दुःख पहुँचाते हैं अतएव वन दुःखदायी है ॥ २१ ॥ वनमें कांटेदार अनेक वृक्ष होते हैं, उनकी शाखाएँ इधर-उधर फैली रहती हैं, वहां कुश और काश आदि भी अधिक होते हैं, अतएव वन दुःखदायी है ॥ २२ ॥ वनमें रहनेवालोंको शारीरिक क्लेश बहुत होते हैं, अनेक प्रकारके भय भी होते हैं अतएव वन सदाही दुःखदायी है ॥ २३ ॥ काम क्रोध छोड़देने पड़ते हैं, तपस्या करनी पड़ती है, भयके स्थानमें भी भय नहीं करना पड़ता, अतएव वन दुःखदायी है ॥ २४ ॥ अतएव तुम्हारा वनमें जाना व्यर्थ है, वहां तुम्हें सुख न होगा, बहुत सोच-विचार कर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वनं तु नेतुं न कृता मतिर्यदा बभूव रामेण तदा महात्मना ।
न तस्य सीता वचनं चकार तं ततोऽब्रवीद्रामामिदं सुदुःखिता ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डेऽष्टाविंशः सर्गः ॥२८॥

एकोनत्रिंशः सर्गः २९

एतत्तु वचनं श्रुत्वा सीता रामस्य दुःखिता । प्रसक्ताश्रुमुखी मन्दमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
ये त्वया कीर्तिता दोषा वने वस्तव्यतां प्रति । गुणानित्येव तान्विद्धि तव स्नेहपुरस्कृता ॥ २ ॥
मृगाः सिंहा गजाश्चैव शार्दूलाः शरभास्तथा । चमराः सृमराश्चैव ये चान्ये वनचारिणः ॥ ३ ॥
अदृष्टपूर्वरूपत्वात्सर्वे ते तव राघव । रूपं दृष्ट्वापसर्पेयुस्तव सर्वे हि बिभ्यति ॥ ४ ॥
त्वया च सह गन्तव्यं मया गुरुजनाज्ञया । त्वद्वियोगेन मे राम त्यक्तव्यमिह जीवितम् ॥ ५ ॥
नहि मां त्वत्समीपस्थामपि शक्रोऽपि राघव । सुराणामीश्वरः शक्तः प्रधर्षयितुमोजसा ॥ ६ ॥
पतिहीना तु या नारी न सा शक्ष्यति जीवितुम् । कामपेवंविधं राम त्वया मम निदर्शितम् ॥ ७ ॥
अथापि च महाप्राज्ञ ब्राह्मणानां मया श्रुतम् । पुरा पितृगृहे सत्यं वस्तव्यं किल मे वने ॥ ८ ॥

मैं ऐसा कहता हूं, क्योंकि वनमें अनेक दोष होते हैं ॥ २५ ॥ महात्मा रामचन्द्रने सीताको अपने साथ वन लेजाना निश्चित नहीं किया, सीताने भी रामचन्द्रकी बातें नहीं मानीं, सीता दुःखित होकर रामचन्द्रसे बोलीं ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका अट्ठाइसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २८ ॥

रामके ये वचन सुनकर सीता दुःखित हुई, उनके आंसू आगये, वे धीरे-धीरे बोलीं ॥ १ ॥ वनवासके सम्बन्धमें जो दोष आपने बतलाये हैं वे मेरे लिए गुणही हैं,क्योंकि मैं तो आपके प्रेमकी भूखी हूं और वह प्रेम वहां मिलेगा, मतलब यहकि आपके साथ रहनेमें कठिनसे कठिन दुःख मेरे लिए दुःख न होंगे ॥२॥ मृग, सिंह, हाथी, बाघ, शरभ (आठ पैरवाला एक जन्तु), वनगाय आदि जितने बनैले जीवोंका आपने उल्लेख किया है ॥ ३ ॥ राघव, वे सब आपका रूप देखकर ही रास्ता छोड़ कर अलग हो जायँगे, क्योंकि उनलोगोंने आपका रूप कभी नहीं देखा है, नयी चीजसे डरना पशुओंका स्वभाव है ॥ ४ ॥ पिता-माताकी आज्ञासे मैं आपके साथ वन चलूंगी, आपके लिए वनवासकी जो आज्ञा है वही मेरे लिए भी है । यदि आपका वियोगही हुआ तो मेरे प्राणोंका अन्त हो जायगा ॥ ५ ॥ राघव, आपके साथ रहनेपर देवताओंका राजा इन्द्रभी बलपूर्वक मेरा अपमान नहीं कर सकता ॥ ६ ॥ पतिके बिना स्त्री जी नहीं सकती, पर आपने मेरे लिए उसीका निर्देश किया है । आपने अपनेसे वियोग होनेपरके कर्तव्योंका उपदेश किया है ॥ ७ ॥ हों वनमें अनेक दोष, फिरभी मुझे वनमें रहना पड़ेगा, क्योंकि पहले पिताके घरमें मैंने ब्राह्मणोंका यह सत्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लक्षणिभ्यो द्विजातिभ्यः श्रुत्वाहं वचनं गृहे । वनवासकृतोत्साहा नित्यमेव महाबल ॥ ९ ॥
आदेशो वनवासस्य प्राप्तव्यः स मया किल । सा त्वया सह भर्त्राहं यास्यामि प्रिय नान्यथा ॥१०॥
कृतादेशा भविष्यामि गमिष्यामि त्वया सह । कालश्चायं समुत्पन्नः सत्यवाग्भवतु द्विजः ॥११॥
वनवासे हि जानामि दुखानि बहुधा किल । प्राप्यन्ते नियतं वीर पुरुषैरकृतात्मभिः ॥१२॥
कन्यया च पितुर्गेहे वनवासः श्रुतो मया । भिक्षिण्याः शमदत्तायाः मम मातुरिहाग्रतः ॥१३॥
प्रसादितश्च वै पूर्वं त्वं मे बहुतिथं प्रभो । गमनं वनवासस्य काङ्क्षितं हि सह त्वया ॥१४॥
कृतक्षणाहं भद्रं ते गमनं प्रति राघवः । वनवासस्य शूरस्य मम चर्या हि रोचते ॥१५॥
शुद्धात्मन्येमभावाद्धि भविष्यामि विकल्मषा । भर्तारमनुगच्छन्ती भर्ता हि परदैवतम् ॥१६॥
प्रेत्यभावे हि कल्याणः संगमो मे सदा त्वया । श्रुतिर्हि श्रूयते पुण्या ब्राह्मणानां यशस्विनाम् ॥१७॥
इहलोके च पितृभिर्या स्त्री यस्य महाबल । आद्भिर्दत्ता स्वधर्मेण प्रेत्यभावेऽपि तस्य सा ॥१८॥
एवमस्मात्स्वकां नारीं सुदत्तां हि पतिव्रताम् । नाभिरोचयसे नेतुं त्वं मां केनेह हेतुना ॥१९॥
भक्तां पतिव्रतां दीनां मां समां सुखदुःखयो । नेतुमर्हसि काकुत्स्थ समानसुखदुःखिनीम् ॥२०॥

वचन सुना है कि मुझे वनमें रहना पड़ेगा ॥ ८ ॥ सामुद्रिक जाननेवाले ब्राह्मणोंसे अपने वनवास-की बात सुनकर मैं सदा वनवासके लिए उत्साहपूर्वक तयार रहती हूँ ॥ ९ ॥ उस विधानके अनु-सार मुझे वनमें तो रहना ही पड़ेगा, पर वह वननिवास मैं आपके साथ करूंगी, आपके बिना नहीं। अर्थात् वन जानेकी आपकी आज्ञा मुझे मिलनी चाहिए, मैं आपके साथ वन जाऊंगी ॥ १० ॥ इस प्रकार उस आदेशका (भाग्यके लेखका) भी पालन हो जायगा और आपका साथभी रहेगा, यह अवसरभी बड़ा अच्छा उपस्थित हुआ है, वह ब्राह्मणका सत्य वचन हो ॥११॥ वनवास-में अनेक दुःख होते हैं यह मैं जानती हूँ, पर वे दुःख किनको होते हैं जिन्होंने अपनी इन्द्रियोंपर अधिकार नहीं किया है उन्हें। अतएव मुझको आपको तो दुःख होनेका कोई कारण नहीं है ॥१२॥ जब मैं कन्या थी तभी पिताके घरमें अपने वनवासकी बात मैंने सुनी थी, माताके सामने शमदम सम्पन्न एक भिक्षुकीसे भी मैंने यह बात सुनी थी, अतएव इसके असत्य होनेकी सम्भावना नहीं ॥१३॥ आपके साथ मैं वन जाऊं इस बातके लिए आपको भी पहले मैंने कई बार राजी कर लिया है ॥ १४ ॥ आपका कल्याण हो, मैं आपके जानेके समयकी प्रतीक्षा कर रही हूँ, वनवासी वीरकी सेवा मुझे अच्छी लगती है। अर्थात् अयोध्याके रामचन्द्रकी अपेक्षा वनवासी रामचन्द्रकी सेवा मैं विशेष उत्साहसे करूंगी ॥ १५ ॥ आप ईर्ष्या आदि दोषोंसे रहित हैं, आपके साथ सदा रहनेसे प्रेम बढ़नेके कारण मुझमें किसी प्रकारके कलङ्ककी सम्भावना नहीं रहेगी, क्योंकि पति स्त्रियोंके लिए सर्वश्रेष्ठ देवता है ॥ १६ ॥ यदि आप मुझे वन न लेजाँय तो अवश्यही मेरी मृत्यु होगी और पुनः परलोकमें दूसरे जन्ममें आपका सुखमय समागम होगा, यशस्वी ब्राह्मणों द्वारा पढ़े जानेवाले वेदमें यह बात सुन पड़ती है ॥ १७ ॥ इस लोकमें पिताने जलसे संकल्प करके जिसको जो स्त्री दी है, वह परलोकमें भी अपने पातिव्रत्यके प्रभावसे उसीकी स्त्री होती है ॥ १८ ॥ फिर शुद्धाचारिणी पतिव्रता अपनी स्त्रीको किस कारणसे आप इस नगरसे वन लेजाना नहीं चाहते ॥१९॥ मैं आपकी भक्त हूं, पतिव्रता हूं, दीन हूं और सुख-दुःखको समान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यदि मां दुःखितामेवं वनं नेतुं न चेच्छसि । विषमग्निं जलं वाहमास्थास्ये मृत्युकारणात् ॥२१॥
एवं बहुविधं तं सा याचते गमनं प्रति । नानुमेने महाबाहुस्तां नेतुं विजनं वनम् ॥२२॥
एवमुक्ता तु सा चिन्तां मैथिली समुपागता । स्नापयन्तीव गामुष्णैरश्रुभिर्नयनच्युतैः ॥२३॥
चिन्तयन्तीं तदा तां तु निवर्तयितुमात्मवान् । क्रोधाविष्टां तु वैदेहीं काकुत्स्थो बहु सान्त्वयत्॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः ३०

सान्त्व्यमाना तु रामेण मैथिली जनकात्मजा । वनवासनिमित्तार्थं भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
सा तमुत्तमसंविग्ना सीता विपुलवक्षसम् । प्रणयाच्चाभिमानाच्च परिचिक्षेप राघवम् ॥ २ ॥
किं त्वामन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः । राम जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषविग्रहम् ॥ ३ ॥
अनृतं बत लोकोऽयमज्ञानाद्यदि वक्ष्यति । तेजो नास्ति परं रामे तपतीव दिवाकरे ॥ ४ ॥
किं हि कृत्वा विषण्णस्त्वं कुतो वा भयमस्ति ते । यत्परित्यक्तुकामस्त्वं मामनन्यपरायणाम् ॥ ५ ॥
द्युमत्सेनसुतं वीरं सत्यवन्तमनुव्रताम् । सावित्रीमिव मां विद्धि त्वमात्मवशवर्तिनीम् ॥ ६ ॥

समझनेवाली हूं । रामचन्द्र, आप मुझे साथ ले चलिए, क्योंकि मैं आपके सुख-दुःखकी साथिन हूं ॥ २० ॥ यदि आप इसप्रकारकी दुःखिनी मुझे वन ले जाना नहीं चाहते, तो मैं अपनी मृत्युके लिए विष, आग या जलके उपयोग करनेका विचार करूंगी ॥ २१ ॥ इसप्रकार वन जानेके लिए सीताने रामचन्द्रसे अनेक प्रकारसे प्रार्थना की, पर महाबाहु रामचन्द्रने निर्जन वनमें चलनेकी अनुमति न दी ॥ २२ ॥ इस प्रकार साथ चलनेके निषेध करनेपर सीता बहुतही चिन्तित हुई और आंखोंसे गिरनेवाले गर्म आंसूसे पृथिवी भिगोने लगीं ॥२३॥ इसप्रकार चिन्तित और क्रोधमें पड़ी सीताको अपना निश्चय बदलनेके लिए रामचन्द्रने बहुत समझाया ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका उनतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २९ ॥

वन न जानेके लिए रामचन्द्रजीके समझानेपर जानकी, वन जानेके लिए उनकी आज्ञा प्राप्त करनेके लिए, पुनः बोलीं ॥ १ ॥ सीता रामचन्द्रजीके निश्चयसे बहुत भयभीत होगयी थीं, वह चौड़ी छातीवाले रामचन्द्रकी निन्दा, प्रेम और अभिमानसे करनेलगीं ॥ २ ॥ मेरे पिता मिथिलाधिप राजा जनकने आपको पुरुष-शरीरधारी स्त्री नहीं समझा था, अतएव उन्होंने आपको अपना दामाद बनाया ॥ ३ ॥ यदि आप मुझे अपने साथ वन न ले जायँगे, तो न लेजानेका यथार्थ कारण न जाननेके हेतु सूर्यके समान तेजस्वी होनेपर भी आपके लिए जनता यही कहेगी कि रामचन्द्रमें पराक्रम नहीं है, यद्यपि यह असत्य होगा ॥४॥ आप क्या सोचकर दुःखी हो रहे हैं, अथवा आपको किससे भय है, जिससे केवल आपकाही पल्ला पकड़कर जीनेवाली मेरा आप परित्याग कर रहे हैं ॥ ५ ॥ द्युमत्सेनके पुत्र सत्यवानकी वशवर्तिनी जैसी सावित्री थी, वैसीही आप मुझे भी अपनी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न त्वहं मनसा त्वन्यं द्रष्टास्मि त्वदृतेऽनघ । त्वया राघव गच्छेयं यथान्या कुलपांसनी ॥ ७ ॥
स्वयं तु भार्यां कौमारीं चिरमध्युषितां सतीम् । शैलूष इव मां राम परेभ्यो दातुमिच्छसि ॥ ८ ॥
यस्य पथ्यं च रामात्थ यस्य चार्थेऽवरुध्यसे । त्वं तस्य भव वश्यश्च विधेयश्च सदानघ ॥ ९ ॥
स मामनादाय वनं न त्वं प्रस्थितुमर्हसि । तपो वा यदि वारण्यं स्वर्गो वा स्यात्त्वया सह ॥१०॥
न च मे भविता तत्र काश्चित्पथि परिश्रमः । पृष्ठतस्तव गच्छन्त्या विहारशयनेष्विव ॥११॥
कुशकाशशरेषीका ये च कण्टकिनो द्रुमाः । तूलाजिनसमस्पर्शा मार्गे मम सह त्वया ॥१२॥
महावातसमुद्भूतं यन्मामवकरिष्यति । रजो रमण तन्मन्ये परार्ध्यमिव चन्दनम् ॥१३॥
शाद्वलेषु यदा शिश्ये वनान्तर्वनगोचरा । कुथास्तरणयुक्तेषु किं स्यात्सुखतरं ततः ॥१४॥
पत्रं मूलं फलं यत्तु अल्पं वा यदि वा बहु । दास्यसे स्वयमाहृत्य तन्मेऽमृतरसोपमम् ॥१५॥
न मातुर्न पितुस्तत्र स्मरिष्यामि न वेश्मनः । आर्तवान्युपभुञ्जाना पुष्पाणि च फलानि च ॥१६॥
न चं तत्र ततः किंचिद्द्रष्टुमर्हसि विप्रियम् । मत्कृते न च ते शोको न भविष्यामि दुर्भरा ॥१७॥
यस्त्वया सह स स्वर्गो निरयो यस्त्वया विना । इति जानन्परां प्रीतिं गच्छ राम मया सह ॥१८॥
अथ मामेवमव्यग्रां वनं नैव नयिष्यसे । विषमद्यैव पास्यामि मा वशं द्विषतां गमम् ॥१९॥

वशवर्तिनी समझें ॥६॥ राघव, आपका साथ छोड़कर आपके बतलाये मेरे सुखके अन्य उपाय-जिसमें आपका साथ नहीं है, मैं सोचूंगी भी नहीं, जिसप्रकार अन्य कुलटाएँ करती हैं। रामचन्द्र मैं तो आपके साथ चलूंगी ॥ ७ ॥ जो सती है, जो आपके साथ बहुत दिनों तक रहचुकी है, बाल्यावस्था-मेंही जिसके साथ आपका विवाह हुआ है, उस स्त्रीको आप नटके समान दूसरेको देना चाहते हैं ॥ ८ ॥ जिसके अनुकूल होकर चलनेका आप मुझे उपदेश देते हैं और जिसके लिए आपका अभिषेक रुकगया है, हे निष्पाप, आप स्वयं उसके अनुकूलवर्ती तथा भृत्य बनिए, मैं नहीं बननेकी ॥ ९ ॥ अतएव आप मुझे बिना साथ लिये वन नहीं जासकते। तप, वन अथवा स्वर्ग सर्वत्र मैं आपका साथ चाहती हूँ ॥ १० ॥ जब मैं गुलगुले गद्दोंपर सोती हूं तब मुझे कष्ट नहीं होता, उसी प्रकार आपके पीछे पीछे वनमें चलनेसे भी मार्गका कोई कष्ट मुझे न होगा ॥ ११ ॥ कुशकास, सरकण्डे तथा और जो कटीले वृक्ष हैं उनका स्पर्श रूई और चमड़ेके स्पर्शके समान, आपके साथ रहनेसे सुखकर होगा ॥ १२ ॥ रमण, आंधीके चलनेसे मेरा शरीर जो धूलसे भर जायगा उसे मैं श्रेष्ठ चन्दनके समान समझूंगी ॥ १३ ॥ जब मैं वनमें जाऊंगी तब वहांकी घासपर सोऊंगी, बहुमूल्य बिछौनेवाले पलंगपर क्या उससे अधिक सुख होगा ॥ १४ ॥ पत्ता, फल, फूल वह थोड़ा या अधिक जो आप स्वयं लाकर देंगे, वह मेरे लिए अमृतके समान होगा ॥ १५ ॥ वहां जाकर पिता, माता या घर किसीका भी स्मरण न करूंगी, ऋतुसंबन्धी फल फूल खाकर रहूंगी ॥ १६ ॥ आपके साथ मेरे वन जानेसे आप कोई भी अनिष्ट न देख सकेंगे, मेरे लिए आपको कोई कष्ट न होगा, मैं आपके लिए दूभर न होऊंगी ॥ १७ ॥ आपके साथ जिस स्थान-पर रहना हो वह स्वर्ग है और आपके बिना जहां रहना हो वह नरक है। इस प्रकारका आपके सम्बन्धमें मेरा निश्चय जानकर आप मेरे साथ वन चलें ॥ १८ ॥ वनसे न डरनेवाली मुझको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पश्चादपि हि दुःखेन मम नैवास्ति जीवितम् । उज्झितायास्त्वया नाथ तदैव मरणं वरम् ॥२०॥
इमं हि सहितुं शोकं मुहूर्तमपि नोत्सहे । किं पुनर्दशवर्षाणि त्रीणि चैकं च दुःखिता ॥२१॥
इति सा शोकसंतप्ता विलप्य करुणं बहु । चुक्रोश पतिमायस्ता भृशमालिङ्ग्य सस्वरम्॥२२॥
सा विद्धा बहुभिर्वाक्यैर्दिग्धैरिव गजाङ्गना । चिरसंनियतं बाष्पं मुमोचाग्निमिवारणिः ॥२३॥
तस्याः स्फटिकसंकाशं वारि संतापसंभवम् । नेत्राभ्यां परिसुस्राव पङ्कजाभ्यामिवोदकम् ॥२४॥
तत्सितामलचन्द्राभं मुखमायतलोचनम् । पर्यशुष्यत बाष्पेण जलोद्धृतमिवाम्बुजम् ॥२५॥
तां परिष्वज्य बाहुभ्यां विसंज्ञामिव दुःखिताम् । उवाच वचनं रामः परिविश्वासयँस्तदा ॥२६॥
न देवि तव दुःखेन स्वर्गमप्यभिरोचये । नहि मेऽस्ति भयं किंचित्स्वयंभोरिव सर्वतः ॥२७॥
तव सर्वमभिप्रायमविज्ञाय शुभानने । वासं न रोचयेऽरण्ये शक्तिमानपि रक्षणे ॥२८॥
यत्सृष्टासि मया सार्धं वनवासाय मैथिली । न विहातुं मया शक्या प्रीतिरात्मवता यथा ॥२९॥
धर्मस्तु गजनासोरु सद्भिराचरितः पुरा । तं चाहमनुवर्तिष्ये यथा सूर्यं सुवर्चला ॥३०॥
न खल्वहं न गच्छेयं वनं जनकनन्दिनि । वचनं तन्नयति मां पितुः सत्योपबृंहितम् ॥३१॥

यदि आप वन न ले जायँगे, तो मैं आजही विष पीलूंगी, पर शत्रुओं (आपको वन भेजनेके उद्योगियों) के वशमें न रहूंगी ॥ १९ ॥ आप जब मेरा त्याग करके वन चले जायँगे, तब भी दुःखके कारण मेरा जीना सम्भव नहीं है, अतएव उसी समय—आपके जानेकेही समय मेरा मरना निश्चित है ॥ २० ॥ मैं इस आपके वियोगदुःखको एक क्षण भी नहीं सह सकती, फिर दुःखिनी मैं चौदह वर्षोंतक यह दुःख कैसे सहूंगी ॥ २१ ॥ शोकसन्तप्त जानकी इसप्रकार बहुत दुःख पूर्वक प्रार्थना करती-करती थकगयीं, तब वे पतिसे लिपटकर जोरसे रोने लगीं ॥२२॥ विष-बुझे बाणोंसे विद्ध हथिनीके समान जानकी अनेक वाक्योंसे विधी हुई थीं, अतएव बहुत दिनोंका जमा हुआ आंसू निकलने लगा, जिसप्रकार अरणि (आग निकालनेकी लकड़ी) से आग निकलती है ॥ २३ ॥ सीताकी आंखोंसे दुःखसे उत्पन्न स्फटिकके समान स्वच्छ जल निकलने लगा, मानों दो कमलोंसे जल बहता हो ॥२४॥ लम्बी आंखोंवाला पूर्णिमाके निर्मल चन्द्रमाके समान सीताका वह मुह दुःखसे सूख गया, जिसप्रकार जलसे बाहर निकाला कमल सूख जाता है॥२५॥ दुःखिनी सीता बेहोशसी होरही थीं, रामचन्द्रने दोनों हाथोंसे उनका आलिङ्गन किया और वे सीताको विश्वास दिलाते हुए बोले ॥ २६ ॥ देवि, मैं उस स्वर्गको भी नहीं चाहता जहां तुम्हारे वियोगका दुःख हो, मुझे भय किसीका नहीं है, जिसप्रकार स्वयम्भु-ब्रह्माको किसीका भय नहीं रहता ॥२७॥ शुभानने तुम्हारा अभिप्राय ठीक-ठीक बिना जाने तुम्हारा वनवास मैं उचित नहीं समझता, यद्यपि तुम्हारी रक्षाके लिए मैं समर्थ हूं ॥ २८ ॥ तुम मेरे साथ वनवास करनेके लिएही उत्पन्न हुई हो, अतएव मैं तुम्हारा त्याग नहीं कर सकता, जिसप्रकार आत्मज्ञानी मनुष्य दयाका त्याग नहीं करते ॥ २९ ॥ पहलेके सज्जनोंने पतिव्रता स्त्री संबन्धी धर्मका आचरण किया है, अर्थात् पतिव्रता स्त्रीके साथ पतिका कैसा व्यवहार होना चाहिए, यह उनलोगोंने अपने आचरणोंसे बतलाया है, मैं उसी धर्मका पालन करूँगा और सुवर्चला जिसप्रकार सूर्यका अनुगमन करती है वैसेही तुम मेरा अनुगमन करो ॥ ३० ॥ जनकनन्दिनि, मैं वन नहीं जाऊंगा ऐसा नहीं होसकता, क्योंकि पिता-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एष धर्मश्च सुश्रोणि पितुर्मातुश्च वश्यता । आज्ञां चाहं व्यतिक्रम्य नाहं जीवितुमुत्सहे ॥३२॥
अस्वाधीनं कथं दैवं प्रकारैरभिराध्यते । स्वाधीनं समतिक्रम्य मातरं पितरं गुरुम् ॥३३॥
यत्र त्रयं त्रयो लोकाः पावित्रं तत्समं भुवि । नान्यदस्ति शुभापाङ्गे तेनेदमभिराध्यते ॥३४॥
न सत्यं दानमानौ वा यज्ञो वाप्याप्तदक्षिणः । तथा बलकराः सीते यथा सेवा पितुर्मता ॥३५॥
स्वर्गो धनं वा धान्यं वा विद्याः पुत्राः सुखानि च। गुरुवृत्त्यनुरोधेन न किंचिदपि दुर्लभम् ॥३६॥
देवगन्धर्वगोलोकान्ब्रह्मलोकाँस्तथापरान् । प्राप्नुवन्ति महात्मानो मातापितृपरायणाः ॥३७॥
स मां पिता यथा शास्ति सत्यधर्मपथे स्थितः । तथा वर्तितुमिच्छामि स हि धर्मः सनातनः ॥३८॥
मम सन्ना मतिः सीते नेतुं त्वां दण्डकावनम् । वसिष्यामीति सा त्वं मामनुयातुं सुनिश्चिता ॥३९॥
सा हि सृष्टानवद्याङ्गि वनाय मदिरेक्षणे । अनुगच्छस्व मां भीरु सहधर्मचरी भव ॥४०॥
सर्वथा सुदृशं सीते मम स्वस्य कुलस्य च । व्यवसायमनुक्रान्ता कान्ते त्वमतिशोभनम् ॥४१॥
आरभस्व शुभश्रोणि वनवासक्षमाः क्रियाः । नेदानीं त्वदृते सीते स्वर्गोऽपि मम रोचते ॥४२॥
ब्राह्मणेभ्यश्च रत्नानि भिक्षुकेभ्यश्च भोजनम् । देहि चाशंसमानेभ्यः संत्वरस्व च मा चिरम् ॥४३॥
भूषणानि महार्हाणि वरवस्त्राणि यानि च । रमणीयाश्च ये केचित्क्रीडार्थाश्चाप्युपस्कराः॥४४॥
शयनीयानि यानानि मम चान्यानि यानि च । देहि स्वभृत्यवर्गस्य ब्राह्मणानामनन्तरम् ॥४५॥

की प्रतिज्ञाके कारण मुझे वन जाना पड़ता है, अतएव वह आवश्यक है ॥३१॥ पिता-माताके अनुकूल रहना धर्म है, पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करके जीना मैं उचित नहीं समझता ॥ ३२ ॥ देवता प्रत्यक्ष नहीं हैं, आराधनाके उपायोंसे उनकी आराधना करनेपर सदा सफलताकीही सम्भावना नहीं है, पिता-माता प्रत्यक्ष हैं, वे गुरु हैं, उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके देवाराधन कैसे ठीक होगा ॥ ३३ ॥ पिता माताकी सेवासे तीनों—धर्म अर्थ काम प्राप्त होते हैं और तीनों लोकोंकी पूजा होजाती है, अतएव उससे बढ़कर पवित्र और कुछ नहीं है, इसीकारण लोग पिता-माताकी पूजा करते हैं ॥ ३४ ॥ सत्य, दान, मान तथा दक्षिणावाले यज्ञ वैसे परलोकहितकारी नहीं, जैसी कि पिताकी सेवा बलकरी है ॥३५॥ स्वर्ग धन धान्य विद्या पुत्र और सुख ये सब पिताकी सेवासे कुछ भी दुर्लभ नहीं हैं ॥३६॥ पिता माताकी सेवा करनेवाले लोग देवलोक, गन्धर्वलोक, गौलोक ब्रह्मलोक तथा अन्यलोकोंको भी पाते हैं ॥३७॥ सत्यधर्मके अनुसार मेरे पिता जो आज्ञा देते हैं, मैं उसका पालन करना चाहता हूँ, क्योंकि यह सनातनधर्म है ॥ ३८ ॥ वनमें रहनेका तुम्हारा दृढ़ विश्वास देखकर तुम्हें न लेचलनेका जो मेरा विचार था वह दूर होगया और मेरे साथ तुम्हारा चलना निश्चित होगया ॥ ३९ ॥ अब तुम खुश होजाओ और वन चलो तथा मेरे साथ धर्माचरण करो ॥ ४० ॥ प्रिये, तुमने यह-पतिके साथ वन जानेका-उत्तम निश्चय किया है, यह तुम्हारे पिताके कुल और मेरे कुलके योग्य है ॥४१॥ वन जानेके योग्य काम-दान आदि-करना प्रारम्भ करो, अब तुम्हारे बिना स्वर्ग भी मुझे अच्छा नहीं लगता ॥४२॥ ब्राह्मणोंको रत्न, भिक्षुकोंको भोजन दो जो आशीर्वाद दे रहे हैं, शीघ्रता करो, विलम्ब न हो ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणोंको दान देनेके पश्चात् दामी गहने, उत्तम वस्त्र तथा अन्य मनबहलावकी सामग्रियां, पलंग, सवारी तथा और भी जो कुछ हो वह नौकरोंको देदो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनुकूलं तु सा भर्तुर्ज्ञात्वा गमनमात्मनः । क्षिप्रं प्रमुदिता देवी दातुमेव प्रचक्रमे ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ३१

एवं श्रुत्वा स संवादं लक्ष्मणः पूर्वमागतः । बाष्पपर्याकुलमुखः शोकं सोढ़मशक्नुवन् ॥ १ ॥
स भ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्य रघुनन्दनः । सीतामुवाचातियशा राघवं च महाव्रतम् ॥ २ ॥
यदि गन्तुं कृता बुद्धिर्वनं मृगगजायुतम् । अहं त्वानुगमिष्यामि वनमग्रे धनुर्धरः ॥ ३ ॥
मया समेतोऽरण्यानि रम्याणि विचरिष्यसि । पक्षिभिर्मृगयूथैश्च संघुष्टानि समन्ततः ॥ ४ ॥
न देवलोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे । ऐश्वर्यं चापि लोकानां कामये न त्वया विना ॥ ५ ॥
एवं ब्रुवाणः सौमित्रिर्वनवासाय निश्चितः । रामेण बहुभिः सान्त्वैर्निषिद्धः पुनरब्रवीत् ॥ ६ ॥
अनुज्ञातस्तु भवता पूर्वमेव यदस्म्यहम् । किमिदानीं पुनरपि क्रियते मे निवारणम् ॥ ७ ॥
यदर्थं प्रतिषेधो मे क्रियते गन्तुमिच्छतः । एतदिच्छामि विज्ञातुं संशयो हि ममानघ ॥ ८ ॥
ततोऽब्रवीन्महातेजा रामो लक्ष्मणमग्रतः । स्थितं प्राग्गामिनं धीरं याचमानं कृताञ्जलिम्॥ ९ ॥

॥ ४४ ॥ ४५ ॥ पतिने मुझे वनमें लेचलना स्वीकार करलिया यह जानकर सीता बहुत प्रसन्न हुई और वे शीघ्रही सब चीजें देने लगीं ॥ ४६ ॥ सीताका मनोरथ पूरा हुआ, वे प्रसन्न होगयीं, मनस्विनी और यशस्विनी सीता धर्मात्माओंको धन, रत्न आदि दान करने लगीं ॥ ४७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३०॥

लक्ष्मण वहां पहलेहीसे कौसल्याके घरसे रामचन्द्रके साथ आये थे, उन्होंने यह संवाद सुना, आंसूके कारण उनका मुंह विकृत होगया, रामचन्द्र हमको वन लेजांयगे कि नहीं, इस शंकासे वे बहुत दुःखी हुए और वे इस दुःखको सह न सके ॥ १ ॥ लक्ष्मणने रामचन्द्रके दोनों पैर जोरसे पकड़ लिये और अतियशस्विनी सीता तथा महाव्रतधारी रामचन्द्रसे बोले ॥ २ ॥ पशु हाथी आदिके रहनेके कारण दुःखदायी वनमें जाना आपने निश्चयही करलिया तो आपके आगे-आगे धनुष बाण लेकर मैं चलूंगा ॥ ३ ॥ मेरे साथ रहनेसे आप रमणीय स्थानोंमें भ्रमण कर सकेंगे, जहां पक्षी तथा भौंरे गुंजार किया करते हैं ॥४॥ आपके बिना देवलोकमें जाना या देवता बनना तथा संसारका ऐश्वर्य यह कुछ भी मैं नहीं चाहता ॥ ५ ॥ लक्ष्मणने वन जानेके लिए अपना निश्चय इस प्रकार प्रकट किया, रामचन्द्रने उन्हें बहुत समझाया । तब लक्ष्मण पुनः इस प्रकार बोले ॥ ६ ॥ आपने पहलेही मुझे आज्ञा देदी है, अब आप पुनः मुझे क्यों रोकते हैं ॥ ७ ॥ जिसकारण आप मुझे वन जानेसे रोकते हैं वह मैं जानना चाहता हूँ, निष्पाप, क्योंकि इस सम्बन्धमें मेरे मनमें सन्देह है ॥ ८ ॥ लक्ष्मण रामचन्द्रके आगे खड़े थे, वे उनसे आगे जानेके लिए तयार थे, हाथ जोड़कर आज्ञा मांग रहे थे, उनसे महातेजस्वी रामचन्द्र इसप्रकार बोले ॥ ९ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्निग्धो धर्मरतो धीरः सततं सत्पथे स्थितः । प्रियः प्राणसमो वश्यो विधेयश्च सखा च मे॥१०॥
मयाद्य सह सौमित्रे त्वायि गच्छति तद्वनम् ।को भजिष्यति कौसल्यां सुमित्रां वा यशस्विनीम्॥११॥
अभिवर्षति कामैर्यः पर्जन्यः पृथिवीमिव । स कामपाशपर्यस्तो महातेजा महीपतिः ॥१२॥
सा हि राज्यमिदं प्राप्य नृपस्याश्वपतेः सुता । दुःखितानां सपत्नीनां न करिष्यति शोभनम्॥१३॥
न स्मरिष्यति कौसल्यां सुमित्रां च सुदुःखिताम्। भरतो राज्यमासाद्य कैकेय्यां पर्यवस्थितः ॥१४॥
तामार्यां स्वयमेवेह राजानुग्रहणेन वा । सौमित्रे भर कौसल्यामुक्तमर्थममुं चर ॥१५॥
एवं मयि च ते भक्तिर्भविष्यति सुदर्शिता । धर्मज्ञगुरुपूजायां धर्मश्चाप्यतुलो महान् ॥१६॥
एवं कुरुष्व सौमित्रे मत्कृते रघुनन्दन । अस्माभिर्विप्रहीणायां मातुर्नो न भवेत्सुखम् ॥१७॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः श्लक्ष्णया गिरा । प्रत्युवाच तदा रामं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम्॥१८॥
तवैव तेजसा वीर भरतः पूजायिष्यति । कौसल्यां च सुमित्रां च प्रयतो नास्ति संशयः ॥१९॥
यदि दुःस्थो न रक्षेत भरतो राज्यमुत्तमम् । प्राप्य दुर्मनसा वीर गर्वेण च विशेषतः ॥२०॥
तमहं दुर्मतिं क्रूरं वधिष्यामि न संशयः । तत्पक्षानपि तान्सर्वांस्त्रैलोक्यमपि किं तु सा ॥२१॥
कौसल्या बिभृयादार्या सहस्रं मद्विधानपि । यस्याः सहस्रं ग्रामाणां संप्राप्तमुपजीविनाम् ॥२२॥
तदात्मभरणे चैव मम मातुस्तथैव च । पर्याप्ता मद्विधानां च भरणाय मनस्विनी ॥२३॥

तुम मेरे स्नेही हो, धर्मात्मा धीर हो, सदा सन्मार्गपर चलनेवालेहो, तुम मुझे प्राणोंके समान प्रिय हो, मेरे अनुवर्ती हो, सेवक हो और मित्र हो ॥ १० ॥ लक्ष्मण, तुम यदि मेरे साथ वन चले जाओगे तो यहां कौसल्या तथा यशस्विनी सुमित्राकी सेवा कौन करेगा ॥ ११ ॥ जिसप्रकार मेघ पृथिवीको सींचता है, उसीप्रकार जो सब प्रकारके मनोरथोंको पूरा किया करता था, वह महातेजस्वी राजा इस समय कामपाशसे बँधा हुआ है, केकयीके अधीन है ॥ १२ ॥ अश्वपतिकी वह कन्या केकयी राज्य पाकर अपनी सौतोंको सुख न देगी ॥ १३ ॥ भरत भी केकयीके अधीन रहेगा, वह भी राज्य पाकर दुःखिनी सुमित्रा और कौसल्याका भरण-पोषण न करेगा ॥ १४ ॥ अतएव तुम राजाका अनुग्रह प्राप्त कर स्वयं आर्या कौसल्याका भरण करो, मेरा यह कहना अवश्य करो ॥ १५ ॥ इस प्रकार गुरुपूजा करनेसे विधिविहित मेरी भक्ति भी होगी और अतुलनीय धर्म भी होगा ॥ १६ ॥ लक्ष्मण, तुम यह मेरे लिए करो, हमलोगोंके न रहनेपर हमलोगोंकी माताओं कौसल्या और सुमित्राका सुख न होगा ॥ १७ ॥ रामचन्द्रने लक्ष्मणसे ये बातें बड़े कोमल स्वरमें कहीं । बोलनेमें चतुर लक्ष्मण बोलनेके गुण-दोष जाननेवाले रामचन्द्रसे इसप्रकार बोले ॥ १८ ॥ वीर, आपहीके तेजसे भरत माताओंकी पूजा करेगा, वह नियत होकर कौसल्या और सुमित्राकी सेवा करेगा ॥ १९ ॥ भरत राज्य पाकर यदि बुरे मार्गमें चलने लगेगा, केकयीके अनुरोधसे बुरे अभिप्रायसे अथवा अहङ्कारके कारण राज्यकी रक्षा न करेगा ॥ २० ॥ तब उस मूर्ख क्रूरका मैं वध करूंगा, इसमें सन्देह नहीं । उसके पक्षपातियोंको भी मैं मारूंगा, तीनों लोक भी उसका सहायक हो तो उसेभी मारूंगा ॥ २१ ॥ आर्या कौसल्या मेरे समान हजारोंका भरण पोषण करेंगी, क्योंकि कौसल्याको हजारों गांव मिले हैं ॥ २२ ॥ अपना, मेरी माताका तथा मेरे समान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते । कृतार्थोऽहं भविष्यामि तव चार्थः प्रकल्प्यते ॥२४॥
धनुरादाय सगुणं खनित्रपिटकाधरः । अग्रतस्ते गमिष्यामि पन्थानं तव दर्शयन् ॥२५॥
आहरिष्यामि ते नित्यं मूलानि च फलानि च । वन्यानि च तथान्यानि स्वाहार्हाणि तपस्विनाम्॥२६॥
भवाँस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रंस्यते । अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते ॥२७॥
रामस्त्वनेन वाक्येन सुप्रीतः प्रत्युवाच तम् । व्रजापृच्छस्व सौमित्रे सर्वमेव सुहृज्जनम् ॥२८॥
ये च राज्ञो ददौ दिव्ये महात्मा वरुणः स्वयम् । जनकस्य महायज्ञे धनुषी रौद्रदर्शने ॥२९॥
अभेद्ये कवचे दिव्ये तूणी चाक्षय्यसायकौ । आदित्यविमलौ द्वौ खड्गौ हेमपरिष्कृतौ ॥३०॥
सत्कृत्य निहितं सर्वमेतदाचार्यसद्मनि । सर्वमायुधमादाय क्षिप्रमाव्रज लक्ष्मण ॥३१॥
स सुहृज्जनमामन्त्र्य वनवासाय निश्चितः । इक्ष्वाकुगुरुमागम्य जग्राहायुधमुत्तमम् ॥३२॥
तादृव्यं राजशार्दूलः सत्कृतं माल्यभूषितम् । रामाय दर्शयामास सौमित्रिः सर्वमायुधम् ॥३३॥
तमुवाचात्मवान्रामः प्रीत्या लक्ष्मणमागतम् । काले त्वमागतः सौम्य काङ्क्षिते मम लक्ष्मण॥३४॥
अहं प्रदातुमिच्छामि यादिदं मामकं धनम् । ब्राह्मणेभ्यस्तपस्विभ्यस्त्वया सह परंतप ॥३५॥
वसन्तीह दृढं भक्त्या गुरुषु द्विजसत्तमाः । तेषामपि च मे भूयः सर्वेषां चोपजीविनाम् ॥३६॥

अनेकोंका भरण-पोषण कौसल्या कर सकती हैं ॥ २३ ॥ आप मुझे अपना अनुचर बनावें, इसमें कोई बुराई नहीं है, मेरी इच्छा पूरी होगी और आपके लिए भी मैं फल-फूल लाया करूंगा ॥२४॥ चढ़ा हुआ धनुष तथा कुदाल और दौरी लेकर मैं, आपके आगे-आगे चलूंगा और आपको मार्ग बतलाया करूंगा ॥ २५ ॥ बनैले फल-मूल आपके लिए प्रतिदिन लाया करूंगा तथा तपस्वियोंके हवनकी सामग्री भी लाया करूंगा ॥ २६ ॥ आप वैदेहीके साथ पर्वतके शिखरोंपर विहार कीजिएगा और आपके जागते तथा सोते सब काम किया करूंगा ॥ २७ ॥ लक्ष्मणके इन वचनोंको सुनकर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और वे बोले—लक्ष्मण, अपने सुहृदोंसे आज्ञा लेकर चलो ॥ २८ ॥ राजा जनकके महायज्ञमें प्रसन्न होकर वरुणने स्वयं दो दिव्य धनुष दिये थे, जो देखनेमें भयानक हैं ॥२९॥ दो अभेद्य कवच हैं, दो तूणीर हैं जिनमेंके बाण कभी नहीं घटते, सूर्यके समान चमकीले दो खड्ग हैं जिनपर सोना चढ़ा हुआ है ॥ ३० ॥ ये सब वरुणने जनकको दिये थे, उन्होंने हमें दिये हैं, पूजा करके ये आचार्यके घरमें रखे हुए हैं, इन सब अस्त्रोंको लेकर शीघ्र आजाओ ॥ ३१ ॥ लक्ष्मण अपना वन-गमन निश्चित कर चुके थे, उन्होंने अपने सुहृदोंसे पूछा, पुनः वसिष्ठके यहां जाकर अस्त्र-शस्त्र लिये ॥ ३२ ॥ दिव्यमालासे भूषित और पूजित आयुधको क्षत्रियश्रेष्ठ लक्ष्मणने रामचन्द्रको दिखाया ॥ ३३ ॥ लक्ष्मणके आनेपर आत्मवान् रामचन्द्र प्रेम-पूर्वक बोले—लक्ष्मण, तुम ठीक समयपर आये, जिस समय मैं तुम्हारा आना चाहता था, तुम ठीक उसी समय आये ॥ ३४ ॥ परन्तप, तुम्हारे साथ रहकर मैं अपना धन तपस्वी ब्राह्मणोंको देना चाहता हूँ ॥ ३५ ॥ जो श्रेष्ठब्राह्मण गुरुगृहमें वास करते हैं, उनको मैं दान देना चाहता हूँ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वसिष्ठपुत्रं तु सुयज्ञमार्यं त्वमानयाशु प्रवरं द्विजानाम् ।
अपि प्रयास्यामि वनं समस्तानभ्यर्च्य शिष्टानपरान्द्विजातीन् ॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ३२

ततः शासनमाज्ञाय भ्रातुः प्रियकरं हितम् । गत्वा स प्राविवेशाशु सुयज्ञस्य निवेशनम् ॥ १ ॥
तं विप्रमग्न्यगारस्थं वन्दित्वा लक्ष्मणोऽब्रवीत् । सखेऽभ्यागच्छ पश्य त्वं वेश्म दुष्करकारिणः॥ २ ॥
ततः संध्यामुपास्थाय गत्वा सौमित्रिणा सह । ऋद्धं स प्राविशल्लक्ष्म्या रम्यं रामनिवेशनम्॥ ३ ॥
तमागतं वेदविदं प्राञ्जलिः सीतया सह । सुयज्ञमार्भिचक्राम राघवोऽग्निमिवार्चितम् ॥ ४ ॥
जातरूपमयैर्मुख्यैरङ्गदैः कुण्डलैः शुभैः । सहेमसूत्रैर्मणिभिः केयूरैर्वलयैरपि ॥ ५ ॥
अन्यैश्च रत्नैर्बहुभिः काकुत्स्थः प्रत्यपूजयत् । सुयज्ञं स तदोवाच रामः सीताप्रचोदितः ॥ ६ ॥
हारं च हेमसूत्रं च भार्यायै सौम्य हारय । रशनां चाथ सा सीता दातुमिच्छति ते सखी ॥ ७ ॥
अङ्गदानि च चित्राणि केयूराणि शुभानि च । प्रयच्छति सखी तुभ्यं भार्यायै गच्छती वनम् ॥ ८ ॥
पर्यङ्कमग्र्यास्तरणं नानारत्नविभूषितम् । तमपीच्छति वैदेही प्रतिष्ठापयितुं त्वयि ॥ ९ ॥

तथा जो हमसे आशा रखते हैं उन्हें दान देना चाहता हूँ ॥ ३६ ॥ अतएव वसिष्ठपुत्र आर्य सुयज्ञको तुम लेआओ, वे श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं । इनकी तथा अन्य शिष्ट ब्राह्मणोंकी पूजा करके मैं वन जाऊंगा ॥ ३७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एकतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३१ ॥

प्रिय और हितकारी भाईकी आज्ञा समझकर लक्ष्मण सुयज्ञके घर गये ॥१॥ वे उस समय अग्निहोत्रगृहमें थे, उन्हें प्रणाम करके लक्ष्मणने कहा—आइए, दुष्कर कार्य करनेवाले रामचन्द्रका घर देखिए ॥ २ ॥ सन्ध्या करके वे ब्राह्मण लक्ष्मणके साथ रामचन्द्रके घर गये, जो सब सामग्रियों तथा सब सम्पत्तियोंसे भरा हुआ था ॥३॥ अर्चित अग्निके समान तेजस्वी और पवित्र उन ब्राह्मणको रामचन्द्रने सीताके साथ हाथ जोड़कर अभ्युत्थान दिया ॥ ४ ॥ सोनेके बहुमूल्य अङ्गद, शुभ कुण्डल, मणिजड़ित सोनेकी सिकड़ी, केयूर छोटा-अंगद और कंकण इनसे तथा अन्य मणियों तथा रत्नोंसे रामचन्द्रने सुयज्ञकी पूजा की । तदनन्तर सीताके कहनेसे वे सुयज्ञसे इस प्रकार बोले ॥ ५-६ ॥ सौम्य, आप अपनी स्त्रीके लिए यह हार और सोनेकी सिकड़ी ले जाइए, करधनी भी लेजाइये, ये सब आपकी सखी-सीता आपको देती है ॥७॥ सीता वन जा रही है अतएव यह चित्रित अङ्गद तथा केयूर आपकी स्त्रीके लिए आपको दे रही हैं ॥ ८ ॥ पलंग और उत्तम बिछौना जिसमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नागः शत्रुंजयो नाम मातुलोऽयं ददौ मम । तं ते निष्कसहस्रेण ददामि द्विजपुंगव ॥१०॥
इत्युक्तः स तु रामेण सुयज्ञः प्रतिगृह्य तत् । रामलक्ष्मणसीतानां प्रयुयोजाशिषः शिवाः ॥११॥
अथ भ्रातरमव्यग्रं प्रियं रामः प्रियंवदम् । सौमित्रिं तमुवाचेदं ब्रह्मेव त्रिदशेश्वरम् ॥१२॥
अगस्त्यं कौशिकं चैव तावुभौ ब्राह्मणोत्तमौ । अर्चयाहूय सौमित्रे रत्नैः सस्यमिवाम्बुभिः ॥१३॥
तर्पयस्व महाबाहो गोसहस्रेण राघव । सुवर्णरजतैश्चैव मणिभिश्च महाधनैः ॥१४॥
कौसल्यां च य आशीर्भिर्भक्तः पर्युपतिष्ठति । आचार्यस्तैत्तिरीयाणामाभिरूपश्च वेदवित् ॥१५॥
तस्य यानं च दासीश्च सौमित्रे संप्रदापय । कौशेयानि च वस्त्राणि यावत्तुष्यति स द्विजः ॥१६॥
सूताश्चित्ररथश्चार्यः सचिवः सुचिरोषितः । तोषयैनं महार्हैश्च रत्नैर्वस्त्रैर्धनैस्तथा ॥१७॥
पशुकाभिश्च सर्वाभिर्गवां दशशतेन च । ये चेमे कठकालापा बहवो दण्डमाणवाः ॥१८॥
नित्यस्वाध्यायशीलत्वान्नान्यत्कुर्वन्ति किंचन । अलसाः स्वादुकामाश्च महतां चापि समताः ॥१९॥
तेषामशीतियानानि रत्नापूर्णानि दापय । शालिवाहसहस्रं च द्वे शते भद्रकाँस्तथा ॥२०॥
व्यञ्जनार्थं च सौमित्रे गोसहस्रमुपाकुरु । मेखलीनां महासङ्घः कौसल्यां समुपस्थितः ।
तेषां सहस्रं सौमित्रे प्रत्येक संप्रदापय ॥२१॥
अंबा यथा नो नन्देच्च कौसल्या मम दक्षिणाम् । तथा द्विजातींस्तान्सर्वांल्लक्ष्मणार्चय सर्वशः ॥२२॥

अनेक रत्न जड़े हुए हैं, सीता वह भी आपको देना चाहती है ॥ ९ ॥ मेरे मामाने शत्रंजय नामका हाथी मुझे दिया है, द्विजश्रेष्ठ वह हाथी भी एक हजार निष्क दक्षिणाके साथ मैं आपको देता हूं ॥ १० ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर सुयज्ञने वह सब ले लिये तथा राम, लक्ष्मण और सीताकी कल्याण-कामना की ॥ ११ ॥ ब्रह्मा जिस प्रकार इन्द्रको आज्ञा देते हैं, उसी प्रकार प्रिय बोलनेवाले तथा निश्चिन्त बैठे हुए भाई लक्ष्मणसे रामचन्द्र बोले॥१२॥ लक्ष्मण, अगस्त्य और कौशिक इन दोनों ब्राह्मणोंको भी बुलाकर उनकी रत्नोंसे पूजा करो, जिस प्रकार जलसे सस्य सींचा जाता है ॥१३॥ एक हजार गौ सोना चांदी तथा मूल्यवान मणि देकर उन्हें तृप्त करो, ॥ १४ ॥ तैत्तिरीयोंके आचार्य (तैत्तिरीय यजुर्वेदकी एक शाखाका नाम है) वेदज्ञ विद्वान् जो कौसल्याको आशीर्वाद दिया करते हैं, उन्हें रथ और दासियां दो और जितनेसे वे सन्तुष्ट हों उतने रेशमी वस्त्र भी दो ॥१५-१६॥ चित्ररथ नामके सारथि, जो सचिव हैं और वृद्ध भी हैं उन्हें मूल्यवान् रत्न, वस्त्र और धन देकर सन्तुष्ट करो ॥ १७ ॥ यज्ञके योग्य पवित्र पशु बकरी आदि और हजार गौ, कठकलाप शाखाके पढ़नेवाले ब्रह्मचारियोंको दो ॥ १८ ॥ जो निरन्तर पढ़नेमें लगे हुए हैं और कोई दूसरा काम नहीं करते, भिक्षा आदिके लिए जो आलसी हैं, जो अच्छा भोजन चाहते हैं, जिनकी सज्जनों-में प्रतिष्ठा है, उन्हें रत्नालङ्कार पूर्ण सौ ऊँट, एक हजार बैल धान तथा खेतीके योग्य दो सौ बैल दो ॥ १९-२० ॥ दही दूधके लिए इन्हे एक सौ गौ दो । कौसल्याके यहां ब्रह्मचारियोंका एक बड़ा दल आया है, उनमेंसे प्रत्येकको एक एक हजार दक्षिणा दो ॥२१॥ लक्ष्मण, इन सब ब्राह्मणोंकी सब प्रकारसे वैसी पूजा करो, दक्षिणा दो, जिसको देखकर हमारी माता कौसल्या प्रसन्न हों ॥ २२ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततः पुरुषशार्दूलस्तद्धनं लक्ष्मणः स्वयम् । यथोक्तं ब्राह्मणेन्द्राणामददाद्धनदो यथा ॥२३॥
अथाब्रवीद्बाष्पगलाँस्तिष्ठतश्चोपजीविनः । स प्रदाय बहुद्रव्यमेकैकस्योपजीवनम् ॥२४॥
लक्ष्मणस्य च यद्वेश्म गृहं च यदिदं मम । अशून्यं कार्यमेकैकं यावदागमनं मम ॥२५॥
इत्युक्त्वा दुःखितं सर्वं जनं तमुपजीविनम् । उवाचेदं धनाध्यक्षं धनमानीयतां मम ॥२६॥
ततोऽस्य धनमाजह्रुः सर्व एवोपजीविनः । स राशिः सुमहांस्तत्र दर्शनीयो ह्यदृश्यत ॥२७॥
ततः स पुरुषव्याघ्रस्तद्धनं सहलक्ष्मणः । द्विजेभ्यो बालवृद्धेभ्यः कृपणेभ्यो ह्यदापयत् ॥२८॥
तत्रासीत्पिङ्गलो गार्ग्यस्त्रिजटो नाम वै द्विजः । क्षतवृत्तिर्वने नित्यं फालकुद्दाललाङ्गली ॥२९॥
तं वृद्धं तरुणी भार्या बालानादाय दारकान् । अब्रवीद्ब्राह्मणं वाक्यं स्त्रीणां भर्ता हि देवता ॥३०॥
अपास्य फालं कुद्दालं कुरुष्व वचनं मम । रामं दर्शय धर्मज्ञं यदि किंचिदवाप्स्यसे ॥३१॥
स भार्यायाः वचः श्रुत्वा शाटमाच्छाद्य दुश्छदाम् । स प्रातिष्ठत पन्थानं यत्र रामनिवेशनम् ॥३२॥
भृग्वङ्गिरःसमं दीप्त्या त्रिजटं जनसंसदि । आपञ्चमायाः कक्ष्याया नैतं कश्चिदवारयत् ॥३३॥
स राममासाद्य तदा त्रिजटो वाक्यमब्रवीत् । निर्धनो बहुपुत्रोऽस्मि राजपुत्र महाबल ॥३४॥
क्षतवृत्तिर्वने नित्यं प्रत्यवेक्षस्व मामिति । तमुवाच ततो रामः परिहाससमन्वितम् ॥३५॥
गवां सहस्रमप्येकं न च विश्राणितं मया । परिक्षिपासि दण्डेन यावत्तावदवाप्स्यसे ॥३६॥

रामचन्द्रके कहनेके अनुसार पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणने कुबेरके समान सब ब्राह्मणोंका धन दिया ॥२३॥ तदनन्तर ब्राह्मणोंको दान देनेके पश्चात् अपने प्रत्यक भृत्यको जीवननिर्वाह योग्य पूरा धन देकर रामचन्द्र उनसे बोले, उस समय भृत्योंका गला भरा हुआ था ॥ २४ ॥ लक्ष्मणके घरमें तथा मेरे घरमें जब तक हम लोग न आवें तबतक रहो ॥ २५ ॥ दुःखी अपने भृत्योंसे ऐसा कहकर रामचन्द्रने अपने खजांचीको अपना धन लानेका आज्ञा दी ॥ २६ ॥ भृत्योंने लाकर वहां धनकी ढेर करदी, वह ढेर बहुत बड़ी देखने लायक हो गयी ॥ २७ ॥ पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रने लक्ष्मणके साथ वह बालक वृद्ध ब्राह्मणों तथा दुःखियोंको दिया ॥ २८ ॥ उस समय गर्गगोत्री त्रिजट नामका एक ब्राह्मण था, वह पीला हो गया था, उसे कोइ वृत्ति नहीं थी, कुल्हाडी कुदारी और हल लिये रहता था ॥ २९ ॥ वह वृद्ध था, उसकी युवती भार्या अपने छोटे-छोटे बच्चोंको लेकर पतिसे बोली, पति ही स्त्रियोंका देवता है,॥ ३० ॥ मैं जो कहती हूं वह आप करें, कुल्हाडी और कुदारी छोड़ दीजिए, रामचन्द्रजीके यहां जाइए, वहां शायद कुछ मिल जाय ॥ ३१ ॥ स्त्रीकी बात सुनकर उसने एक बहुत ही फटा हुआ कपड़ा किसी तरह से पहना और रामचन्द्रजीके यहा जानेके लिए चला ॥ ३२ ॥ वह ब्राह्मण भृगु अङ्गिराके समान दीप्तिमान था, उसको पाँचवें खण्डतक जानेमें किसीने भी न रोका ॥ ३३ ॥ रामचन्द्रके समीप जाकर वह त्रिजट बोला—महाबली राजपुत्र, मैं निर्धन हूं, मेरे बहुतसे पुत्र हैं ॥ ३४ ॥ मैं वनमें रहता हूं, मेरी कोइ वृत्ति नहीं है, आप मेरी ओर देखें। रामचन्द्रने परिहाससे उससे कहा ॥ ३५ ॥ मैंने हजार गौओंमें की एक गौ भी नहीं दी है। पर तुम दण्डा फेंको, वह जहां तक जायगा, उतनी दूरमें जितना गौ आवेंगी वह सब तुम्हारी होंगी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स शाटीं परितः कक्ष्यां संभ्रान्तः परिवेष्टच ताम्। आविद्धय दण्डं चिक्षेप सर्वप्राणेन वेगतः ॥३७॥
स तीर्त्वा सरयूपारं दंडस्तस्य कराच्च्युतः। गोव्रजे बहुसाहस्रे पपातोक्षाणसंनिधौ ॥३८॥
तं परिष्वज्य धर्मात्मा आव्याप्य सरयूतटात्। आनयामास ता गावस्त्रिजटस्याश्रमं प्रति ॥३९॥
उवाच च तदा रामस्तं गार्ग्यमभिसान्त्वयन्। मन्युर्न खलु कर्तव्यः परिहासो ह्ययं मम ॥४०॥

इदं हि तेजस्तव यद्दुरत्ययं तदेव जिज्ञासितुमिच्छता मया।
इमं भवानर्थमभिप्रचोदितो वृणीष्व किं चेदपरं व्यवस्यसि ॥ ४१ ॥
ब्रवीमि सत्येन न ते स्म यन्त्रणा धनं हि यद्यन्मम विप्रकारणात्।
भवत्सु सम्यक्प्रतिपादनेन मयार्जितं चैव यशस्करं भवेत् ॥ ४२ ॥
ततः सभार्यस्त्रिजटो महामुनिर्गवामनीकं प्रतिगृह्य मोदितः।
यशोबलप्रीतिसुखोपबृंहिणीस्तदाशिषः प्रत्यवदन्महात्मनः ॥ ४३ ॥
स चापि रामः प्रतिपूर्णपौरुषो महाधनं धर्मबलैरुपार्जितम्।
नियोजयामास सुहृज्जने चिराद्यथार्हसंमानवचःप्रचोदितः ॥ ४४ ॥
द्विजः सुहृद्भृत्यजनोऽथवा तदा दरिद्रभिक्षाचरणश्च यो भवेत्।
न तत्र कश्चिन्न बभूव तर्पितो यथार्हसंमाननदानसंभ्रमैः ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे द्वात्रिंशःसर्गः ॥ ३२ ॥

॥ ३६ ॥ शीघ्रही उसने अपनी धोती कस ली और बड़े बलसे तथा वेगसे दण्डा फेंका ॥ ३७ ॥ उसके हाथसे छूटा हुआ दंडा सरयूके उस पार कई हजार गौओंके झुंडोंको पार करता हुआ सांड़ोंके पास गिरा ॥ ३८ ॥ धर्मात्मा रामचन्द्रने त्रिजट का आलिङ्गन किया और वे सब गौ उन्होंने त्रिजटके आश्रममें भिजवा दीं ॥ ३९ ॥ रामचन्द्र त्रिजटको प्रसन्न करते हुए बोले-मैंने यह आपके साथ हँसी की थी, अतएव आप क्रोध न करें ॥४०॥ आपका जो यह प्रवृद्ध तेज है, उसीकी परीक्षा लेनेके लिए मैंने आपसे डंडा फेकनेकी बात कही थी, इसके अतिरिक्त और कुछ यदि आप चाहते हों तो कहें ॥४१॥ मैं सत्य कहता हूं, आप संकोच न करें, मेरा जो कुछ धन है वह ब्राह्मणोंके लिए है। मेरा अपना अर्जित धन ब्राह्मणोंको देनेसे ही मुझे प्रसन्नता होती है ॥ ४२ ॥ वह त्रिजट और उसकी स्त्री इतनी गौओंको पाकर बहुत प्रसन्न हुए और उन लोगोंने रामचन्द्रके यश बल प्रीति और सुख बढ़नेकी कामना की ॥ ४३ ॥ पराक्रमी रामचन्द्रने भी धर्मबलसे अर्जित वह बहुतसा धन, उचित सम्मान-वचनके साथ अपने मित्रों को बांट दिये ॥ ४४ ॥ ब्राह्मण, सुहृद, भृत्य तथा और दरिद्र भिक्षुक जो कोई उस समय वहां आया, वह सभी उचित सम्मान तथा दानसे सन्तुष्ट किया गया ॥ ४५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३२ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ३३

दत्त्वा तु सह वैदेह्या ब्राह्मणेभ्यो धनं बहु । जग्मतुः पितरं द्रष्टुं सीतया सह राघवौ ॥ १ ॥
ततो गृहीते प्रेष्याभ्यामशोभेतां तदायुधे । मालादामाभिरासक्ते सीतया समलंकृते ॥ २ ॥
ततः प्रासादहर्म्याणि विमानशिखराणि च । अभिरुह्य जनः श्रीमानुदासीनो व्यलोकयत् ॥ ३ ॥
न हि रथ्याः सुशक्यन्ते गन्तुं बहुजनाकुलाः । आरुह्य तस्मात्प्रासादादीनाः पश्यन्ति राघवम् ॥ ४ ॥
पदातिं सानुजं दृष्ट्वा ससीतं च जनास्तदा । ऊचुर्बहुजना वाचः शोकोपहतचेतसः ॥ ५ ॥
यं यान्तमनुयाति स्म चतुरङ्गबलं महत् । तमेकं सीतया सार्धमनुयाति स्म लक्ष्मणः ॥ ६ ॥
ऐश्वर्यस्य रसज्ञः सन्कामानां चाकरो महान् । नेच्छत्येवानृतं कर्तुं वचनं धर्मगौरवात् ॥ ७ ॥
या न शक्या पुरा द्रष्टुं भूतैराकाशगैरपि । तामद्य सीतां पश्यन्ति राजमार्गगता जनाः ॥ ८ ॥
अङ्गरागोचितां सीतां रक्तचन्दनसेविनीम् । वर्षमुष्णं च शीतं च नेष्यत्याशु विवर्णताम् ॥ ९ ॥
अद्य नूनं दशरथः सत्वमाविश्य भाषते । नहि राजा प्रियं पुत्रं विवासयितुमर्हति ॥ १० ॥
निर्गुणस्यापि पुत्रस्य कथं स्याद्विनिवासनम् । किं पुनर्यस्य लोकोऽयं जितो वृत्तेन केवलम् ॥ ११ ॥
आनृशंस्यमनुक्रोशः श्रुतं शीलं दमः शमः । राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषर्षभम् ॥ १२ ॥

इस प्रकार सीता और रामने ब्राह्मणोंको बहुतसा धन दिया, तदनन्तर वे तीनों राम, लक्ष्मण और सीता राजा दसरथको देखनेके लिए गये ॥ १ ॥ राम और लक्ष्मणके धनुष उनके नौकर ले चले, वे धनुष बहुत ही सुन्दर मालूम होते थे, वे फूलकी मालाओंसे सुशोभित थे, सीताने उनको और अधिक सजा दिया था ॥ २ ॥ प्रासाद (राजाका घर या तीनमहला घर), हर्म्य (अन्न धन रखने का घर) और विमान (सतमहला घर) के उपर चढ़ कर धनी लोगोने रामचन्द्रको उदास मनसे (क्योंकि वियोग होनेवाला था) देखा ॥ ३ ॥ मनुष्योंसे रास्ते भर गये थे, उनमें चलना असम्भव था, अतएव लोग दुःखी होकर अपने-अपने महलोंपर चढ़कर रामचन्द्रको देखने लगे ॥ ४ ॥ अपने छोटे भाई लक्ष्मण और सीताके साथ रामचन्द्र पैदल जा रहे हैं, यह देखकर सब लोग बहुत दुःखी हुए और अनेक प्रकारकी बातें करने लगे ॥ ५ ॥ जिसके पीछे-पीछे बहुत बड़ी चतुरङ्गिनी सेना चलती थी, आज वह अकेला सीता और लक्ष्मणके साथ जा रहा है ॥ ६ ॥ ये ऐश्वर्य भोगके आदी हैं, प्रजाके मनोरथ पूरे करनेमें सदा तयार रहते हैं, धर्मप्रेमके कारण ये पिता के वचनको असत्य करना नहीं चाहते ॥ ७ ॥ आकाशचारी प्राणी भी पहले जिस सीताको नहीं देख सकते थे, आज उसी सीताको ये रास्तेके मनुष्य देख रहे हैं ॥ ८ ॥ जो सीता सदा अङ्गराग (सुगन्धित लेप) और रक्तचन्दन लगाती थी उनका रंग वर्षा, धूप और शीतके कारण मुरझा जायगा ॥ ९ ॥ राजा दसरथ आज निश्चय अपनेमें बलसञ्चय करके कहेंगे—मैं अपने प्रियपुत्रको निर्वासित नहीं करता ॥ १० ॥ गुणहीन पुत्रका भी जब निर्वासन नहीं किया जाता, तब ऐसे पुत्र-का निर्वासन—जिसके चरित्रपर सब लोग मुग्ध हैं—कैसे किया जा सकता है ॥ ११ ॥ अहिंसा, दया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्मात्तस्योपघातेन प्रजाः परमपीडिताः । औदकानीव सत्त्वानि ग्रीष्मे सलिलसंक्षयात्॥१३॥
पीडया पीडितं सर्वं जगदस्य जगत्पतेः । मूलस्येवोपघातेन वृक्षः पुष्पफलोपगः ॥१४॥
मूलं ह्येष मनुष्याणां धर्मसारो महाद्युतिः । पुष्पं फलं च पत्रं च शाखाश्चास्येतरे जनाः॥१५॥
ते लक्ष्मण इव क्षिप्रं सपत्न्यः सह बान्धवाः । गच्छन्तमनुगच्छामो येन गच्छति राघवः ॥१६॥
उद्यानानि परित्यज्य क्षेत्राणि च गृहाणि च । एकदुःखसुखा राममनुगच्छाम धार्मिकम् ॥१७॥
समुद्धृतनिधानानि परिध्वस्ताजिराणि च । उपात्तधनधान्यानि हृतसाराणि सर्वशः ॥१८॥
रजसाभ्यवकीर्णानि परित्यक्तानि दैवतैः । मूषकैः परिधावद्भिरुद्विलैरावृतानि च ॥१९॥
अपेतोदकधूमानि हीनसंमार्जनानि च । प्रनष्टबलिकर्मेज्यामन्त्रहोमजपानि च ॥२०॥
दुष्कालेनेव भग्नानि भिन्नभाजनवन्ति च । अस्मत्त्यक्तानि कैकेयी वेश्मानि प्रतिपद्यताम् ॥२१॥
वनं नगरमेवास्तु येन गच्छति राघवः । अस्माभिश्च परित्यक्तं पुरं संपद्यतां वनम् ॥२२॥
बिलानि दंष्ट्रिणः सर्वे सानूनि मृगपक्षिणः । त्यजन्त्वस्मद्भयाद्भीता गजाः सिंहा वनान्यपि॥२३॥
अस्मत्त्यक्तं प्रपद्यन्तु सेव्यमानं त्यजन्तु च । तृणमांसफलादानं देशं व्यालमृगाद्विजम् ॥२४॥

विद्या, शील, दम और शम ये छ गुण पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रमें वर्तमान हैं ॥ १२ ॥ ऐसे योग्य रामचन्द्रको पीड़ा देनेसे समस्त प्रजा पीड़ित हुई है, जिस प्रकार जलके प्राणी जल सूख जानेपर ग्रीष्मकालमें पीड़ित हो जाते हैं ॥ १३ ॥ जगत्पति रामचन्द्रके दुःखसे आज समस्त जगत् दुःखी हो रहा है, जिस प्रकार जड़के पीड़ित होने (सूखने) से फल फूलके साथ समस्त वृक्ष पीड़ित होता है ॥१४॥ महाद्युतिमान् धर्मप्राण रामचन्द्रही मनुष्योंके मूल हैं, अन्य जो मनुष्य हैं वे फल फूल शाखा पत्ते आदि हैं ॥ १५ ॥ अतएव अपनी-अपनी स्त्रियों तथा भाइयोंके साथ हम लोग भी लक्ष्मणकी तरह जिस रास्ते रामचन्द्र गये हैं उसी रास्ते जायँगे ॥ १६ ॥ हम लोग अपना बाग, खेत तथा घर छोड़ देंगे और धर्मात्मा रामचन्द्रके सुख-दुःखके साथी होकर उनके साथ-साथ जांयगे ॥१७॥ जो घर हमलोग छोड़कर जांयगे वह घर केकयी लेले, उन घरोंसे जमीनमें गड़ा हुआ धन हमलोग निकाल लेंगे, उनके अंगने टूटे हुए होंगे, उन घरोंसे धनधान्य आदि हमलोग निकाल लेंगे, घरोंकी मूल्यवान् चीजें हमलोग निकाल लेजायँगे, ॥१८॥ हमलोगोंके छोड़े हुए वे घर धूलसे भर जांयगे, उन घरोंमें देवता न होंगे, बिलके बाहर चारो ओर चूहे दौड़ते होंगे ॥ १९ ॥ उन घरोंमें न तो पानी छीटा जाता होगा और न धूप दिखाया जाताहोगा, झाड़ू बहारू भी नहीं दियाजाता होगा, बलिदान यज्ञ मन्त्र हवन जप आदि जहां न होते होंगे ॥ २० ॥ प्रलयकालके टूटेके समान वे होंगे, उनमेंके बर्तन भी टूट-फूट गये होंगे, ऐसे हमलोगोंके छोड़े घरोंको केकयी लेले ॥ २१ ॥ रामचन्द्र वन जारहे हैं, इसकारण वनही अब नगर बन जाय और यह नगर हमलोगोंके छोड़ देनेके कारण बन बन जाय ॥२२॥ हमलोगोंके भयसे भीत होकर सर्प बिल छोड़ दें, पशुपक्षी पर्वतोंके शिखरोंपर रहना छोड़दें और हाथी तथा सिंह वन छोड़कर चले जांय ॥२३॥ हमलोग जिसमें इस समय जांयगे अर्थात् वनमें उसे वे छोड़दें और हमलोगोंने जिसे छोड़ा है वहां अर्थात् अयोध्यामें आकर रहें । इसप्रकार यह स्थान तृण, मांस और फलखानेवाले प्राणियों तथा क्रूर पशुओं और पक्षियों-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रपद्यतां हि कैकेयी सपुत्रा सहबान्धवैः । राघवेण वयं सर्वे वने वत्स्याम निर्वृताः ॥२५॥
इत्येवं विविधा वाचो नानाजनसमीरिताः । शुश्राव राघवः श्रुत्वा न विचक्रेऽस्य मानसम्॥२६॥
स तु वेश्म पुनर्मातुः कैलासशिखरप्रभम् । अभिचक्राम धर्मात्मा मत्तमातङ्गविक्रमः ॥२७॥
विनीतवीरपुरुषं प्रविश्य तु नृपालयम् । ददर्शावस्थितं दीनं सुमन्त्रमविदूरतः ॥२८॥
प्रतीक्षमाणोऽभिजनं तदार्तमनार्तरूपः प्रहसन्निवाथ ।
जगाम रामः पितरं दिदृक्षुः पितुर्निदेशं विधिवच्चिकीर्षुः ॥ २९ ॥
तत्पूर्वमैक्ष्वाकसुतो महात्मा रामो गमिष्यन्नृपमार्तरूपम् ।
व्यतिष्ठत प्रेक्ष्य तदा सुमन्त्रं पितुर्महात्मा प्रतिहारणार्थम् ॥ ३० ॥
पितुर्निदेशेन तु धर्मवत्सलो वनप्रवेशे कृतबुद्धिनिश्चयः ।
स राघवः प्रेक्ष्य सुमन्त्रमब्रवीन्निवेदयस्वागमनं नृपाय मे ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ३४

ततः कमलपत्राक्षः श्यामो निरुपमो महान् । उवाच रामस्तं सूतं पितुराख्याहि मामिति ॥ १ ॥
स रामप्रेषितः क्षिप्रं संतापकलुषेन्द्रियम् । प्रविश्य नृपतिं सूतो निःश्वसन्तं ददर्श ह ॥ २ ॥

का निवासस्थान वन जायगा ॥ २४ ॥ अपने पुत्र तथा बान्धवोंके साथ केकयी अब यहीं रहे, हमलोग प्रसन्नतापूर्वक अब रामचन्द्रके साथ वनमें रहेंगे ॥ २५ ॥ इस प्रकारकी अनेक बातें अनेक आदमियोंकी कही हुई रामचन्द्रने सुनी, पर उनके मनमें इन बातोंसे कुछ विकार नहीं हुआ ॥२६॥ मतवाले हाथीके समान पराक्रमी धर्मात्मा रामचन्द्र माता केकयीके कैलासशिखरके समान घरमें गये ॥ २७ ॥ वहां विनयी और वीर पहरा देरहे थे, रामचन्द्र राजाके उसी घरमें गये, उन्होंने थोड़ी ही दूरपर बैठे दुःखी सुमन्त्रको देखा ॥ २८ ॥ परिजनोंको अपने भावी वियोगकी चिन्तासे दुःखी देखते हुए तथा स्वयं प्रसन्न हँसते हुए पिताको देखनेके लिए तथा उनकी आज्ञाका विधिवत् पालन करनेकी इच्छासे गये ॥ २९ ॥ दुःखी अपने पिताको देखनेके लिए रामचन्द्र जानेलगे, पर पितासे पहलेही उन्होंने सुमन्त्रको देखा और पिताको खबर देनेके लिए वहीं ठहर गये ॥ ३० ॥ जिस धर्मप्रेमी रामचन्द्रने पिताकी आज्ञासे वनमें जाना निश्चय करलिया है, उन्होंने सुमन्त्रको देख कर कहा कि पिताको मेरे आनेकी खबर दीजिये ॥ ३१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका तेतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३३ ॥

कमलनयन श्याम रामचन्द्रने सुमन्त्रसे कहा—सूत, पितासे कहो कि रामचन्द्र आये हैं ॥ १ ॥ रामचन्द्रके कहनेसे सूतने जाकर देखा कि दुःखके कारण राजाकी इन्द्रियां व्याकुल हो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उपरक्तमिवादित्यं भस्मच्छन्नमिवानलम् । तटाकमिव निस्तोयमपश्यज्जगतीपतिम् ॥ ३ ॥
आवोढ्य च महाप्राज्ञः परमाकुलचेतनम् । राममेवानुशोचन्तं सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ४ ॥
तं वर्धयित्वा राजानं पूर्वं सूतो जयाशिषा । भयाविक्लवया वाचा मन्दया श्लक्ष्णमब्रवीत् ॥ ५ ॥
अयं स पुरुषव्याघ्रो द्वारि तिष्ठति ते सुतः । ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा सर्वं चैवोपजीविनाम् ॥ ६ ॥
स त्वां पश्यतु भद्रं ते रामः सत्यपराक्रमः । सर्वान्सुहृद आपृच्छ्य त्वां हीदानीं दिदृक्षते ॥ ७ ॥
गमिष्यति महारण्यं तं पश्य जगतीपते । वृतं राजगुणैः सर्वैरादित्यमिव रश्मिभिः ॥ ८ ॥
स सत्यवाक्यो धर्मात्मा गाम्भीर्यात्सागरोपमः । आकाश इव निष्पङ्को नरेन्द्रः प्रत्युवाच तम् ॥ ९ ॥
सुमन्त्रानय मे दारान्ये केचिदिह मामकाः । दारैः परिवृतः सर्वैर्द्रष्टुमिच्छामि राघवम् ॥१०॥
सोऽन्तःपुरमतीत्यैव स्त्रियस्ता वाक्यमब्रवीत् । आर्यो ह्वयति वो राजा गम्यतां तत्र मा चिरम् ॥११॥
एवमुक्ताः स्त्रियः सर्वाः सुमन्त्रेण नृपाज्ञया । प्रचक्रमुस्तद्भवनं भर्तुराज्ञाय शासनम् ॥१२॥
अर्धसप्तशतास्तत्र प्रमदास्ताम्रलोचनाः । कौसल्यां परिवार्याथ शनैर्जग्मुर्धृतव्रताः ॥१३॥
आगतेषु च दारेषु समवेक्ष्य महीपतिः । उवाच राजा तं सूतं सुमन्त्रानय मे सुतम् ॥१४॥
स सूतो राममादाय लक्ष्मणं मैथिलीं तथा । जगामाभिमुखस्तूर्णं सकाशं जगतीपतेः ॥१५॥
स राजा पुत्रमायान्तं दृष्ट्वा चारात्कृताञ्जलिम् । उत्पपातासनात्तूर्णमार्तः स्त्रीजनसंवृतः ॥१६॥

गयी हैं, वे लम्बी-लम्बी सांस ले रहे हैं ॥ २ ॥ ग्रहण लगे सूर्यके समान, राखसे ढँके अग्निके समान और जलहीन तड़ागके समान राजाको सुमन्त्रने देखा ॥ ३ ॥ राजा बहुत ही व्याकुल थे वे रामचन्द्रको ही सोच रहे थे, उसी समय हाथ जोड़कर राजाको संबोधित करके सूत बोले ॥ ४ ॥ सूतने पहले जयजयकार करके राजाकी पूजा की और भयसे कातर धीमे तथा कोमल स्वरसे वे बोले ॥ ५ ॥ पुरुषसिंह, तुम्हारे पुत्र रामचन्द्र ब्राह्मणों तथा भृत्योंको सब धन देकर यहां द्वारपर खड़े हैं ॥ ६ ॥ वे क्या आपके दर्शन करें ? उन्होंने अपने अन्य सम्बन्धियोंकी सम्मति ले ली है, अब केवल आपको देखना चाहते हैं ॥७॥ वे वन जा रहे हैं। राजन्, उन्हें आप देखलें, वे सब राजगुणोंसे युक्त हैं जैसे सूर्य किरणोंसे युक्त होता है ॥ ८ ॥ सत्यवादी धर्मात्मा राजा दसरथ जो गम्भीरताके कारण सागर के समान तथा निष्पङ्क (निष्पाप) होनेके कारण आकाशके समान हैं, वे सुमन्त्रसे बोले ॥ ९ ॥ सुमन्त्र, मेरी स्त्रियोंको ले आओ और जो कोई मेरे हों उन्हे भी ले आओ, मैं अपनी स्त्रियोंके साथ रामचन्द्रको देखना चाहता हूं ॥ १० ॥ सुमन्त्र रनिवासमें गये और स्त्रियोंसे वे बोले-राजा आपलोगोंको बुला रहे हैं आपलोग राजाके पास चलें विलम्ब न करें ॥ ११ ॥ राजाकी आज्ञासे सुमन्त्रके ऐसा कहनेपर पतिकी आज्ञा पानेके कारण सब स्त्रियां राजभवनकी ओर चलीं ॥ १२ ॥ साढ़े तीन सौ स्त्रियां शोकके कारण जिनकी आंखें लाल हो गयी थीं वे पातिव्रत्य धारण करनेवालीं कौसल्याको बीचमें लेकर चलीं ॥ १३ ॥ स्त्रियां आ गयीं, यह देख कर राजा दसरथने सुमन्त्रसे कहा कि अब तुम मेरे पुत्रको ले आओ ॥ १४ ॥ राम, लक्ष्मण और सीताको लेकर सूत शीघ्रतापूर्वक राजाके समीप गये ॥ १५ ॥ हाथ जोड़े आते हुए पुत्रको दूरहीसे देखकर दुःखी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सोऽभिदुद्राव वेगेन रामं दृष्ट्वा विशांपतिः । तमसंप्राप्य दुःखार्तः पपात भुवि मूर्च्छितः ॥१७॥
तं रामोऽभ्यपतत्क्षिप्रं लक्ष्मणश्च महारथः । विसंज्ञमिव दुःखेन सशोकं नृपतिं तथा ॥१८॥
स्त्रीसहस्रनिनादश्च संजज्ञे राजवेश्मनि । हा हा रामेति सहसा भूषणध्वनिभिश्रितः ॥१९॥
तं परिष्वज्य बाहुभ्यां तावुभौ रामलक्ष्मणौ । पर्यङ्के सीतया सार्धं रुदन्तः समवेशयन् ॥२०॥
अथ रामो मुहूर्तस्य लब्धसंज्ञं महीपतिम् । उवाच प्राञ्जलिर्बाष्पशोकार्णवपरिप्लुतम् ॥२१॥
आपृच्छे त्वां महाराज सर्वेषामीश्वरोऽसि नः । प्रस्थितं दण्डकारण्यं पश्य त्वं कुशलेन माम् ॥२२॥
लक्ष्मणं चानुजानीहि सीता चान्वेतु मां वनम् । कारणैर्बहुभिस्तथ्यैर्वार्यमाणौ न चेच्छतः ॥२३॥
अनुजानीहि सर्वान्नः शोकमुत्सृज्य मानद । लक्ष्मणं मां च सीतां च प्रजापतिरिवात्मजान् ॥२४॥
प्रतीक्षमाणमव्यग्रमनुज्ञां जगतीपतेः । उवाच राजा संप्रेक्ष्य वनवासाय राघवम् ॥२५॥
अहं राघव कैकेय्या वरदानेन मोहितः । अयोध्यायां त्वमेवाद्य भव राजा नियुङ्क्ष्व माम् ॥२६॥
एवमुक्तो नृपतिना रामो धर्मभृतांवरः । प्रत्युवाचाञ्जलिं कृत्वा पितरं वाक्यकोविदः ॥२७॥
भवान्वर्षसहस्राय पृथिव्या नृपते पतिः । अहं त्वरण्ये वत्स्यामि न मे राज्यस्य काङ्क्षिता ॥२८॥
नव पञ्च च वर्षाणि वनवासे विहृत्य ते । पुनः पादौ ग्रहीष्यामि प्रतिज्ञान्ते नराधिप ॥२९॥

तथा स्त्रियोंसे घिरे राजा उठे ॥ १६ ॥ रामको देखकर बड़े वेगसे राजा उनकी ओर चले, पर उन तक न पहुंच कर दुःखी राजा बीचहीमें गिर पड़े और मूर्च्छित हो गये ॥ १७ ॥ शीघ्रही राम और महारथ लक्ष्मण राजाके समीप गये। राजा दुःखके कारण बेहोश थे और शोकसे युक्त थे ॥ १८ ॥ भूषणध्वनिके साथ हजारों स्त्रियोंका "हा राम" यह शब्द राजभवनमें गूँज उठा ॥ १९ ॥ राम और लक्ष्मण दोनोंने राजाको उठाकर पलंगपर रख दिया, सीताने भी उनलोगोंको इस काममें सहायता दी, वे उस समय रोरहे थे ॥ २० ॥ शोकसमुद्रमें डूबे हुए राजाको थोड़ी देरमें होश हुआ, उस समय रामचन्द्र हाथ जोड़कर बोले ॥ २१ ॥ महाराज मैं आपकी आज्ञा चाहता हूँ, क्योंकि आप हम सब लोगोंके स्वामी हैं, हम दण्डकारण्य जारहे हैं, आप प्रसन्न होकर हमको देखिए ॥ २२ ॥ लक्ष्मणको भी जानेकी आज्ञा दीजिए, सीता भी मेरे साथ जाय, मैंने इनको बहुत तरहसे रोका पर ये न मानें, ये लोग भी जाना चाहते हैं ॥ २३ ॥ मानद, शोक दूर कीजिए और हम लोगोंको जानेकी आज्ञा दीजिए, लक्ष्मणको, सीताको और मुझे आज्ञा दीजिए, जिसप्रकार प्रजापति अपने पुत्रोंको आज्ञा देते हैं ॥२४॥ सदा अव्याकुल रहनेवाले रामचन्द्र वनवासके लिए राजाकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते थे, उस समय राजा बोले ॥ २५ ॥ वरदानके द्वारा केकयीने मुझे मोहित कर लिया है, मैं अपने अधीन नहीं हूँ, अतएव राज्य करनेके अयोग्य हूँ, इस कारण मुझे कैद करके तुम्ही अयोध्याके राजा बनो ॥ २६ ॥ राजाके ऐसा कहनेपर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ और बोलनेमें निपुण रामचन्द्र हाथजोड़कर पितासे बोले ॥ २७ ॥ महाराज, हजारों वर्ष तक आप पृथिवीका राज्य भोग करें, मैं तो वनमें जाकर रहूँगा, राज्य करनेको मेरी इच्छा नहीं है ॥ २८ ॥ चौदह वर्षों तक वनमें निवास करके, प्रतिज्ञा पूरी होनेपर, पुनः आपके चरणोंके समीप

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रुदन्नार्तः प्रियं पुत्रं सत्यपाशेन संयुतः । कैकेय्या चोद्यमानस्तु मिथो राजा तमब्रवीत् ॥३०॥
श्रेयसे वृद्धये तात पुनरागमनाय च । गच्छस्वारिष्टमव्यग्रः पन्थानमकुतोभयम् ॥३१॥
नहि सत्यात्मनस्तात धर्माभिमनसस्तव । सन्निवर्तयितुं बुद्धिः शक्यते रघुनन्दन ॥३२॥
अद्य त्विदानीं रजनीं पुत्र मा गच्छ सर्वथा । एकाहं दर्शनेनापि साधु तावच्चराम्यहम् ॥३३॥
मातरं मां च संपश्यन्वसेमामद्य शर्वरीम् । तर्पितः सर्वकामैस्त्वं श्वः काल्ये साधयिष्यसि॥३४॥
दुष्करं क्रियते पुत्र सर्वथा राघव प्रिय । त्वया हि मत्प्रियार्थं तु वनमेवमुपाश्रितम् ॥३५॥
न चैतन्मे प्रियं पुत्र शपे सत्येन राघव । छन्नया चलितस्त्वस्मि स्त्रिया भस्माग्निकल्पया॥३६॥
वञ्चना या तु लब्धा मे तां त्वं निस्तर्तुमिच्छसि । अनया वृत्तसादिन्या कैकेय्याभिप्रचोदितः ॥३७॥
न चैतदाश्चर्यतमं यत्त्वं ज्येष्ठः सुतो मम । अपानृतकथं पुत्रं पितरं कर्तुमिच्छसि ॥३८॥
अथ रामस्तदा श्रुत्वा पितुरार्तस्य भाषितम् । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा दीनो वचनमब्रवीत् ॥३९॥
प्राप्स्यामि यानद्य गुणान्को मे श्वस्तान्प्रदास्यति। अपक्रमणमेवातः सर्वकामैरहं वृणे ॥४०॥
इयं सराष्ट्रा सजना धनधान्यसमाकुला । मया विसृष्टा वसुधा भरताय प्रदीयताम् ॥४१॥
वनवासकृता बुद्धिर्न च मेऽद्य चलिष्यति । यस्तु युद्धे वरो दत्तः कैकेय्यै वरद त्वया ॥४२॥

आऊंगा ॥२९॥ राजा दुःखी थे और रो रहे थे, पर सत्यपाशसे बँधे हुए थे, केकयी धीरेसे कह रही थी कि आजही जाने क्यों नहीं देते, इन्हीं अवस्थाओंमें पड़कर राजादशरथ बोले ॥ ३० ॥ पुत्र, कल्याणके लिए, वृद्धिके लिए तथा पुनः लौट आनेके लिए निर्भय तथा शत्रुशून्य मार्गसे सदा-निश्चिन्त होकर तुम जाओ ॥३१॥ पुत्र, तुम स्वभावसे ही सत्यप्रेमी हो और धर्माभिमानी हो, तुम्हारा वनजानेका निश्चय बदला नहीं जा सकता ॥३२॥ पर आज तुम किसीभी प्रकार मत जाओ, जिससे एक दिन और एकरात तुमको देखकर मैं सुखसे समय बिता सकूँ ॥३३॥ माताकी ओर और मेरी ओर देखकर आज एक रात तुम यहीं रह जाओ, आज रहकर और मेरे मनोरथोंको पूर्ण कर कल प्रातःकालही चले जाना ॥३४॥ प्रिय पुत्र, राम, तुम दूसरे के द्वारा न होनेवाला बड़ाही दुष्कर काम कर रहे हो, जो तुमने मेरे लिए वन जाना निश्चित किया है ॥ ३५ ॥ पुत्र, मैं सत्यकी शपथ करके कहता हूँ कि तुम्हारा यह वन जाना मुझे प्रिय नहीं है, पर राखमें अग्निके समान छिपी स्त्रीके कारण मैं विचलित होगया हूँ ॥ ३६ ॥ कुलोचित आचारको नष्ट करनेवाली इस केकयीके कहनेमें पड़कर मुझे धोखा हुआ और उसका फल तुम्हें भोगना पड़ रहा है, तुम मेरी प्रतिज्ञा पूरी करनेकेलिए वन जारहे हो ॥३७॥ इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है, क्योंकि तुम मेरे बड़े पुत्र हो, इसकारण तुम अपने पिताको सत्यवादी बनाना चाहते हो ॥ ३८ ॥ रामचन्द्र दुखी पिताके वचन सुनकर भाई लक्ष्मणके साथ दीनतापूर्वक बोले ॥ ३९ ॥ इस समय जानेसे मुझे जो लाभ होंगे वे लाभ मुझे कल कौन देगा, यहांसे शीघ्र चला जानाही मैं अपने अन्य सुखोंकी अपेक्षा उत्तम समझता हूँ ॥ ४० ॥ राष्ट्र मनुष्य तथा धन धान्य आदि सबका मैंने त्याग किया, अब आप यह सब भरतको दे दें ॥ ४१ ॥ वनवासके सम्बन्धमें जो मेरा निश्चय है वह अब बदल नहीं सकता, क्योंकि वरद, युद्धमें आपने केकयीको वर दिया है ॥ ४२ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दीयतां निखिलैनैव सत्यस्त्वं भव पार्थिव । अहं निदेशं भवतो यथोक्तमनुपालयन् ॥४३॥
चतुर्दश समा वत्स्ये वने वनचरैः सह । मा विमर्शो वसुमती भरताय प्रदीयताम् ॥४४॥
नहि मे काङ्क्षितं राज्यं सुखमात्मनि वा प्रियम् । यथानिदेशं कर्तुं वै तवैव रघुनन्दन ॥४५॥
अपगच्छतु ते दुःखं मा भूर्बाष्पपरिप्लुतः । नहि क्षुभ्यति दुर्धर्षः समुद्रः सरितांपतिः ॥४६॥
नैवाहं राज्यमिच्छामि न सुखं न चमेदिनीम् । नैव सर्वानिमान्कामान्न स्वर्गं न च जीवितम् ॥४७॥
त्वामहं सत्यमिच्छामि नानृतं पुरुषर्षभ । प्रत्यक्षं तव सत्येन सुकृतेन च ते शपे ॥४८॥
न च शक्यं मया तात स्थातुं क्षणमपि प्रभो । स शोकं धारयस्वेमं नहि मेऽस्ति विपर्ययः ॥४९॥
अर्थितो ह्यस्मि कैकेय्या वनं गच्छेति राघव । मया चोक्तं व्रजामीतिं तत्सत्यमनुपालये ॥५०॥
मा चोत्कण्ठां कृथा देव वने रंस्यामहे वयम् । प्रशान्तहरिणाकीर्णे नानाशकुनिनादिते ॥५१॥
पिता हि दैवतं तात देवतानामपि स्मृतम् । तस्मादैवतामित्येव करिष्यामि पितुर्वचः ॥५२॥
चतुर्दशसु वर्षेषु गतेषु नृपसत्तम । पुनर्द्रक्ष्यासि मां प्राप्तं संतापोऽयं विमुच्यताम्॥५३॥
येन संस्तम्भनीयोऽयं सर्वो बाष्पकलो जनः । स त्वं पुरुषशार्दूल किमर्थं विक्रियां गतः ॥५४॥

पुरं च राष्ट्रं च मही च केवला मया विसृष्टा भारताय दीयताम् ।
अहं निदेशं भवतोऽनुपालयन्वनं गमिष्यामि चिराय सेवितुम् ॥५५॥

केकयीको जो-जो वर आपने दिये हैं, वे साङ्गोपाङ्ग पूरे हों, आपकी प्रतिज्ञा सत्य हो, आपने जिस प्रकार कहाहै उसी प्रकार आपकी आज्ञाका पालन करता हुआ मैं ॥४३॥ चौदह वर्षों तक वनमें वनचरोंके साथ निवास करूंगा। आप कुछ विचार न करें, यह पृथिवी भरतको दे दें ॥४४॥ मैं राज्य नहीं चाहता, सुखसे भी मुझे प्रेम नहीं है, केवल आपकी आज्ञाका विधिपूर्वक पालन करनाही मुझे अभीष्ट है ॥४५॥ आप अपना दुःख दूर कीजिए, अपना आँसू रोकिए, नदियोंका स्वामी समुद्र क्या कभी क्षुभित होता है ॥४६॥ मैं राज्य नहीं चाहता, सुख नहीं चाहता, पृथिवी नहीं चाहता, इन सब भोगोंको भी मैं नहीं चाहता, स्वर्ग नहीं चाहता और न स्वयं जीवित रहनाही चाहता हूँ ॥४७॥ मैं आपको सत्यवादी देखना चाहता हूँ, झूठा नहीं। हे पुरुषश्रेष्ठ, मैं यह बात आपके सामने सत्य और धर्मकी शपथ करके कहता हूँ ॥ ४८ ॥ अतएव एक क्षणभी यहां रहना मेरे लिए उचित नहीं है, आप अपने शोकको रोकिए, मेरे निश्चयमें उलट-फेर नहीं होनेका ॥ ४९ ॥ केकयीने मुझे वनजानेका आदेश दिया और मैंने "जाता हूं" कहकर उसको स्वीकार किया है, इस समय मैं उसी प्रतिज्ञाका पालन कर रहा हूँ ॥ ५० ॥ आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें, वनमें हमलोग बड़े आनन्दसे रहेंगे, वहां बहुतसे सीधे मृगा होंगे और तरह-तरहके पक्षियोंके शब्द सुन पड़ेंगे ॥ ॥ ५१ ॥ पिता देवताओंसे भी बढ़कर आराध्य देवता है, यही समझकर मैं पिताकी आज्ञाका पालन करने जा रहा हूँ ॥ ५२ ॥ राजश्रेष्ठ, चौदहवर्षोंके बीतनेपर पुनः मैं यहाँ लौटकर आऊंगा, उस समय आप मुझे देखना । यह शोक छोड़िए ॥ ५३ ॥ ये सबलोग रो रहे हैं, आपको चाहिए था कि आप इन्हें समझाते, पर आप स्वयं वेतरह अधीर होगये हैं, यह क्यों ? ॥ ५४ ॥ नगर, राज्य, पृथिवी जिनका मैंने त्याग किया है वह सब आप भरतको दें,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मया विसृष्टां भरतो महीमिमां सशैलखण्डां सपुरोपकाननाम् ।
शिवासु सीमास्वनुशास्तु केवलं त्वया यदुक्तं नृपते तथास्तु तत् ॥५६॥
न मे तथा पार्थिव दीयते मनो महत्सु कामेषु न चात्मनः प्रिये ।
यथा निदेशे तव शिष्टसंमते व्यपैतु दुःखं तव मत्कृतेऽनघ ॥५७॥
तदद्य नैवानघ राज्यमव्ययं न सर्वकामान्वसुधां न मैथिलीम् ।
न चिन्तितं त्वामनृतेन योजयन्नृणीय सत्यं व्रतमस्तु ते तथा ॥५८॥
फलानि मूलानि च भक्षयन्वने गिरींश्च पश्यन्सरितः सरांसि च ।
वनं प्रविश्यैव विचित्रपादपं सुखी भविष्यामि तवास्तु निर्वृतिः ॥५९॥
एवं स राजा व्यसनाभिपन्नस्तापेन दुःखेन च पीड्यमानः ।
आलिङ्ग्य पुत्रं सुविनष्टसंज्ञो भूमिं गतो नैव विचेष्ट किंचित् ॥६०॥
देव्यः समस्ता रुरुदुः समेतास्तां वर्जयित्वा नरदेवपत्नीम् ।
रुदन्सुमन्त्रोऽपि जगाम मूर्च्छां हाहाकृतं तत्र बभूव सर्वम् ॥६१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

बहुत दिनों तक वनमें रहकर मैं आपकी आज्ञाका पालन करने जा रहा हूँ ॥ ५५ ॥ मेरी छोड़ी पर्वत नगर वन आदिसे युक्त इस पृथिवीका निर्विवाद सीमातक भरत शासन करें । आपने जो कहा है, जो प्रतिज्ञा की है, वह इस प्रकार पूरीहो ॥ ५६ ॥ महाराज, शिष्टोंके द्वारा अनुमोदित आपकी आज्ञा-पालनमें जैसा मेरा मन लगता है, वैसा भोगकी ओर नहीं लगता, अतएव आप मेरे लिए कुछ दुःख न करें ॥ ५७ ॥ हे निष्पाप, इस समृद्ध राज्यके विविध भोग, पृथिवी और जानकी भी मेरी चिन्ताके विषय नहीं हैं, आपको असत्यवादी बनाकर मैं इन सबकी भी कामना नहीं करता, मैं चाहता हूं कि आपका व्रत सत्य हो ॥ ५८ ॥ वनमें जाकर फल-मूल खाकर पर्वतों, नदियों और तालाबोंको देखकर तथा वहांके अद्भुत वृक्षोंको देखकर मैं सुखी होऊंगा, अब आपभी प्रसन्न होजांय ॥ ५९ ॥ संकटमें पड़े हुए तथा ताप और दुःखसे पीड़ित राजाने पुत्र रामचन्द्रका आलिङ्गन किया और बेहोश होकर पृथिवीपर गिर पड़े । वे बिलकुल चेष्टाहीन होगये ॥ ६० ॥ केकयीको छोड़कर और सब स्त्रियां कौसल्याके पास जाकर रोने लगीं, रोते-रोते सुमन्त्रभी मूर्च्छित होगये, वहां सर्वत्र हाहाकार मच गया ॥ ६१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका चौंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३४॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चत्रिंशः सर्गः ३५

ततो निर्धूय सहसा शिरो निःश्वस्य चासकृत् । पाणिं पाणौ विनिष्पिष्य दन्तान्कटकटाय्य च ॥ १ ॥
लोचने कोपसंरक्ते वर्णं पूर्वोचितं जहत् । कोपाभिभूतः सहसा संतापमशुभं गतः ॥ २ ॥
मनः समीक्षमाणश्च सूतो दशरथस्य च । कम्पयन्निव कैकेय्या हृदयं वाक्शरैः शितैः ॥ ३ ॥
वाक्यवज्रैरनुपमैर्निर्भिन्दन्निव चाशुभैः । कैकेय्याः सर्वमर्माणि सुमन्त्रः प्रत्यभाषत ॥ ४ ॥
यस्यास्तव पतिस्त्यक्तो राजा दशरथः स्वयम् । भर्ता सर्वस्य जगतः स्थावरस्य चरस्य च ॥ ५ ॥
नह्यकार्यतमं किंचित्तव देवीह विद्यते । पतिघ्नीं त्वामहं मन्ये कुलघ्नीमपि चान्ततः ॥ ६ ॥
यन्महेन्द्रमिवाजय्यं दुष्प्रकम्प्यमिवाचलम् । महोदधिमिवाक्षोभ्यं संतापयसि कर्मभिः ॥ ७ ॥
मावमंस्था दशरथं भर्तारं वरदं पतिम् । भर्तुरिच्छा हि नारीणां पुत्रकोट्या विशिष्यते ॥ ८ ॥
यथावयो हि राज्यानि प्राप्नुवन्ति नृपक्षये । इक्ष्वाकु कुलनाथेऽस्मिंस्तं लोपयितुमिच्छसि ॥ ९ ॥
राजा भवतु ते पुत्रो भरतः शास्तु मेदिनीम् । वयं तत्र गमिष्यामो यत्र रामो गमिष्यति ॥ १० ॥
न च ते विषये काश्चिद्ब्राह्मणो वस्तुमर्हति । तादृशं त्वममर्यादमद्य कर्म करिष्यसि ॥ ११ ॥
नूनं सर्वे गमिष्यामो मार्गं रामनिषेवितम् । त्यक्ता या बान्धवैःसर्वैर्ब्राह्मणैःसाधुभिःसदा ॥ १२ ॥
का प्रीती राज्यलाभेन तव देवि भविष्यति । तादृशं त्वममर्यादं कर्म कर्तुं चिकीर्षसि ॥ १३ ॥

तदनन्तर जोरसे सिर घुमाकर, कई बार सांस लेकर, हाथसे हाथ मलकर, दांत कटकटा कर, ॥ १ ॥ क्रोधसे लाल आंखें बनाकर अपनी अवस्था भूलकर, अधिक क्रोध होनेके कारण भयानक दुःख भोगते हुए ॥ २ ॥ दसरथका अभिप्राय समझकर, तीक्ष्ण अपने वचनरूपी बाणसे केकयीका हृदय कँपाते हुए ॥ ३ ॥ और केकयीके मर्म स्थानोंको अपने अनुपम वाक्य-वज्रोंसे छेदते हुए सुमन्त्र बोले ॥ ४ ॥ जिसे तुमने अपने पति राजा दसरथका त्याग किया, जो स्थावर, जंगम समस्त जगत्के स्वामी हैं ॥ ५ ॥ देवि, इससे मालूम होता है कि तुम्हारे लिए अकार्य कुछ भी नहीं है, मैं तुमको पतिघातिनी और कुलघातिनी समझता हूं ॥ ६ ॥ जो इन्द्रके समान अजेय हैं, पर्वतके समान अप्रकम्प्य हैं, तथा समुद्रके समान अक्षोभ्य हैं उन राजा दसरथको तू अपने कर्मोंसे दुःखी बना रही है ॥ ७ ॥ राजा दसरथका तिरस्कार मत करो, वे तुम्हारे पति हैं, रक्षक हैं और वरदाता हैं। पतिकी इच्छाके अनुसार चलना करोड़ पुत्रोंकी इच्छाके अनुसार चलनेसे बढ़कर है ॥ ८ ॥ एक राजाके न रहनेपर जिस क्रमसे इस इक्ष्वाकुकुलमें राज्य पानेकी व्यवस्था है, तुम उस व्यवस्थाका लोप करना चाहती हो ॥ ९ ॥ तेरा पुत्र भरतही राजा हो और वही पृथिवीका पालन करे, हमलोग वहां चले जांयगे, जहां राम जा रहे हैं ॥ १० ॥ जैसा निन्दित काम तू आज कर रही है उससे कोईभी ब्राह्मण तेरे राज्यमें न रहेगा ॥ ११ ॥ निश्चय हमलोगभी जिस रास्तेसे राम जांयगे उसी रास्ते चले जांयगे, इस प्रकार बान्धवोंसे, सब ब्राह्मणोंसे और साधुओंसे ॥ १२ ॥ त्यक्त यदि तुम्हें राज्य भी मिले तो उससे क्या लाभ ? तुमने आज ऐसाही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आश्चर्यमिव पश्यामि यस्यास्ते वृत्तमीदृशम् । आचरन्त्या न विदता सद्यो भवति मेदिनी ॥१४॥
महाब्रह्मर्षिसृष्टा वा ज्वलन्तो भीमदर्शनाः ।धिग्वाग्दण्डा न हिंसान्ति रामप्रव्राजने स्थिताम् ॥१५॥
आम्रं छित्त्वा कुठारेण निम्बं परिचरेत्तु कः । यश्चैनं पयसा सिञ्चेन्नैवास्य मधुरो भवेत् ॥१६॥
आभिजात्यं हि ते मन्ये यथा मातुस्तथैव च । न हि निम्बात्स्रवेत्क्षौद्रं लोके निगदितं वचः ॥१७॥
तव मातुरसद्ग्राहं विद्म पूर्वं यथा श्रुतम् । पितुस्ते वरदः काश्चिद्ददौ वरमनुत्तमम् ॥१८॥
सर्वभूतरुतं तस्मात्संजज्ञे वसुधाधिपः । तेन तिर्यग्गतानां च भूतानां विदितं वचः ॥१९॥
ततो जृम्भस्य शयने विरुताद्भूरिवर्चसः । पितुस्ते विदितो भावः स तत्र बहुधाहसत् ॥२०॥
तत्र ते जननी क्रुद्धा मृत्युपाशमभीप्सती । हासं ते नृपते सौम्य जिज्ञासामीति चाब्रवीत् ॥२१॥
नृपश्चोवाच तां देवीं हासं शंसामि ते यदि । ततो मे मरणं सद्यो भविष्यति न संशयः ॥२२॥
माता ते पितरं देवी पुनः केकयमब्रवीत् । शंस मे जीव वा मा वा न मां त्वं प्रहसिष्यसि ॥२३॥
प्रियया च तथोक्तः स केकयः पृथिवीपतिः । तस्मै तं वरदायार्थं कथयामास तत्त्वतः ॥२४॥
ततः स वरदः साधू राजानं प्रत्यभाषत । म्रियतां ध्वसतां वेयं मा शंसीस्त्वं महीपते ॥२५॥
स तच्छ्रुत्वा वचस्तस्य प्रसन्नमनसो नृपः । मातरं ते निरस्याशु विजहार कुबेरवत् ॥२६॥

निन्दित काम करना विचारा है ॥ १३ ॥ मुझे आश्चर्य हो रहा है कि तुम्हारे ऐसा बुरा काम करनेपर भी पृथिवी नहीं फटती ॥ १४ ॥ वसिष्ठ आदि महाब्रह्मर्षियोंके द्वारा उत्पादित जलते हुए और देखनेमें भयानक वाग्दण्ड, रामचन्द्रको वन भेजनेके लिए तुली बैठी हुई तुमपर नहीं पड़ता ॥ १५ ॥ आमको कुठारसे काटकर नीमकी सेवा कौन करता है, नीम यदि दूधसे भी सींची जाय तो क्या वह मीठी हो सकती है ॥ १६ ॥ जैसी तेरी माताकी कुलीनता है (श्रेष्ठकुलमें उत्पत्तिसूचक उत्तम व्यवहार) वैसीही तेरी भी है, नीमसे मधु नहीं चूता यह लौकिक कहावत बिलकुल ठीक है ॥ १७ ॥ तेरी माताकी जिद्दकी बात हमलोग पहलेही सुन चुके हैं। तेरे पिताको किसी वरदेनेवालेने बड़ाही उत्तम वर दिया था ॥ १८ ॥ जिससे राजा सब प्राणियोंकी बोली समझलेने लगे, इससे पक्षियोंकी भी बोली वे समझलेने लगे ॥ १९ ॥ तुम्हारे पिताने अपने पलंगके पास सुवर्णके रंगवाली चींटीकी बात समझ ली और इससे वे कई बार हँसे ॥ २० ॥ इससे तुम्हारी माताको बड़ा क्रोध आया, क्योंकि वह अपनी मृत्यु चाहती थी, अतएव वह बोली—राजन् आपके हंसनेका कारण मैं जानना चाहती हूँ ॥ २१ ॥ राजाने कहाकि यदि मैं तुम्हें अपने हँसनेका कारण बता दूँगा तो इससे शीघ्र मेरी मृत्यु होजायगी, इसमें सन्देह नहीं ॥ २२ ॥ तेरी माताने तेरे पिता राजा केकयसे कहा कि चाहे तुम मरो या जीओ, पर तुम मुझपर हँस नहीं सकते ॥ २३ ॥ अपनी प्रियाकी ऐसी बातें सुनकर राजा केकयने सब बातें उस वरदेनेवाले से कहीं ॥ २४ ॥ उस वरदाता साधुने राजा केकयसे कहा—रानी मरे चाहे नष्ट होजाय पर तुम अपने हँसनेका कारण उससे मत कहो ॥ २५ ॥ वरदाताकी बातें सुनकर तुम्हारे पिता प्रसन्न होगये और उन्होंने तुम्हारी माताको दुतकार दिया तथा वे स्वयं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तथा त्वमपि राजानं दुर्जनाचरिते पथि । असद्ग्राहमिमं मोहात्कुरुषे पापदर्शिनी ॥२७॥
सत्यश्चात्र प्रवादोयं लौकिकः प्रतिभाति मा । पितॄन्समनुजायन्ते नरा मातरमङ्गनाः ॥२८॥
नैवं भव गृहाणेदं यदाह वसुधाधिपः । भर्तुरिच्छामुपास्येह जनस्यास्य गतिर्भव ॥२९॥
मा त्वं प्रोत्साहिता पापैर्देवराजसमप्रभम् । भर्तारं लोकभर्तारमसद्धर्ममुपादधत् ॥३०॥
नहि मिथ्याप्रतिज्ञातं करिष्यति तवानघः । श्रीमान्दशरथो राजा देवि राजीवलोचनः ॥३१॥
ज्येष्ठो वदान्यः कर्मण्यः स्वधर्मस्यापि रक्षिता ।रक्षिता जीवलोकस्य बली रामोऽभिषिच्यताम्॥३२॥
परिवादो हि ते देवि महाँल्लोके चरिष्यति । यदि रामो वनं याति विहाय पितरं नृपम् ॥३३॥
स्वराज्यं राघवः पातु भव त्वं विगतज्वरा । न हि ते राघवादन्यः क्षमः पुरवरे वसन् ॥३४॥
रामे हि यौवराज्यस्थे राजा दशरथो वनम् । प्रवेक्ष्यति महेष्वासः पूर्ववृत्तमनुस्मरन् ॥३५॥
इति सान्त्वैश्च तीक्ष्णैश्च कैकेयीं राजसंसदि । भूयः संक्षोभयामास सुमन्त्रस्तु कृताञ्जलिः ॥३६॥
नैव सा क्षुभ्यते देवी न च स्म परिदूयते । न चास्या मुखवर्णस्य लक्ष्यते विक्रिया तदा॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

कुवेरके समान यत्रतत्र विहार करने लगे ॥ २६ ॥ इसीसे तुमने भी दुर्जनोंके मार्गमें पर दिया है, पापिनी तू राजाको मोहित कर उनके द्वारा निन्दित काम करा रही है ॥ २७ ॥ यह लोकोक्ति मुझे बिलकुल ठीक मालूम पड़ती है कि पुत्र पिताके समान होते हैं, और लड़कियां माताके समान ॥ २८ ॥ तुम ऐसा न होओ, राजा जो कहते हैं उसी प्रकार पतिकी इच्छाके अनुसार चलकर उनकी रक्षा करो अथवा इस प्रजावर्गकी रक्षा करो ॥ २९ ॥ पापोंसे प्रोत्साहित होकर लोकपाल तथा इन्द्रतुल्य अपने पतिको निन्दित धर्मपर मत ले चलो ॥ ३० ॥ राजा दसरथने तुम्हारे सामने जो प्रतिज्ञा की है उसका त्याग वे कभी न करेंगे । रामचन्द्रको वन भेजनेकी प्रतिज्ञा बिना तुम्हारे कहे राजा नहीं पलटेंगे ॥ ३१ ॥ तुम राजाको कहो कि दाता, कर्म करनेमें निपुण, अपने धर्म तथा प्रजाकी रक्षा करनेवाले बली रामचन्द्रका अभिषेक करो ॥ ३२ ॥ यदि पिताको छोड़कर रामचन्द्र वन चले जांयगे, देवि, उस समय तुम्हारी बड़ी निन्दा फैलेगी ॥ ३३ ॥ रामचन्द्र राज्य पावें और तुम्हारी भी निन्दा दूर हो, रामचन्द्रके अतिरिक्त इस नगरमें रहकर दूसरा (भरत) राजा नहीं हो सकता (क्योंकि भरत छोटे हैं) ॥ ३४ ॥ जब रामचन्द्र युवराज हो जांय तब महाधनुर्धारी राजा दसरथ वनमें चले जांय, क्योंकि इस कुलकी यही रीति है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार राजसभामें सुमन्त्रने हाथ जोड़कर तीखे और कोमल वचनोंसे केकयीको दुःखित किया ॥ ३६ ॥ पर वह देवी कुछ भी विचलित न हुई, थोड़ी भी दुःखित न हुई, उसके चेहरेपर कोई भी विकार दिखाई न पड़ा ॥ ३७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका पैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

षट्त्रिंशः सर्गः ३६

ततः सुमन्त्रमैक्ष्वाकः पीडितोऽत्र प्रतिज्ञया । सबाष्पमतिनिःश्वस्य जगादेदं पुनर्वचः ॥ १ ॥
सूत रत्नसुसंपूर्णा चतुर्विधबला चमूः । राघवस्यानुयात्रार्थं क्षिप्रं प्रतिविधीयताम् ॥ २ ॥
रूपाजीवाश्च वादिन्यो वणिजश्च महाधनाः । शोभयन्तु कुमारस्य वाहिनीः सुप्रसारिताः ॥ ३ ॥
ये चैनमुपजीवन्ति रमते यैश्च वीर्यतः । तेषां बहुविधं दत्त्वा तानप्यत्र नियोजय ॥ ४ ॥
आयुधानि च मुख्यानि नागराः शकटानि च ।अनुगच्छन्तु काकुत्स्थं व्याधाश्चारण्यकोविदाः॥ ५ ॥
निघ्नन्मृगान्कुञ्जरांश्च पिबँश्चारण्यकं मधु । नदीश्च विविधाः पश्यन्न राज्यं संस्मरिष्यति॥ ६ ॥
धान्यकोशश्च यः कश्चिद्धनकोशश्च मामकः । तौ राममनुगच्छेतां वसन्तं निर्जने वने ॥ ७ ॥
यजन्पुण्येषु देशेषु विसृजँश्चाप्तदक्षिणाः । ऋषिभिश्चापि संगम्य प्रवत्स्यति सुखं वने ॥ ८ ॥
भरतश्च महाबाहुरयोध्यां पालयिष्यति । सर्वकामैः पुनः श्रीमान्रामः संसाध्यतामिति ॥ ९ ॥
एवं ब्रुवति काकुत्स्थे कैकेय्या भयमागतम् । मुखं चाप्यगमच्छोषं स्वरश्चापि व्यरुध्यत ॥१०॥
सा विषण्णा च संत्रस्ता मुखेन परिशुष्यता । राजानमेवाभिमुखी कैकैयी वाक्यमब्रवीत् ॥११॥
राज्यं गतधनं साधो पीतमण्डां सुरामिव । निरास्वाद्यतमं शून्यं भरतो नाभिपत्स्यते ॥१२॥
कैकेय्यां मुक्तलज्जायां वदन्त्यामतिदारुणम् । राजा दशरथो वाक्यमुवाचायतलोचनाम् ॥१३॥

सुमन्त्रके ऐसा कहनेपर भी जब केकयीके भावमें कुछ भी परिवतन नहीं हुआ, तब अपनी प्रतिज्ञासे दुःखी राजा दसरथ रोते हुए निःश्वास लेकर सुमन्त्रसे ऐसा बोले॥ १ ॥ सूत, धनधान्य-पूर्ण चतुरंगिणी सेना रामचन्द्रके साथ जानेके लिए शीघ्र तयार कराओ ॥ २ ॥ मधुर बोलनेवाली वेश्याएँ तथा धनी बनिएँ, बहुत दूर तक फैली हुई राजकुमारकी सेनाकी शोभा बढ़ावें ॥ ३ ॥ जो रामचन्द्रके अनुजीवी हैं तथा जिनके पराक्रमसे रामचन्द्र प्रसन्न हैं उनसबको बहुत धन देकर रामचन्द्रके साथ जानेकी आज्ञा दो ॥ ४ ॥ उत्तम अस्त्र शस्त्र, नगरवासी, अन्न ढोनेकी गाड़ी तथा वनसे परिचित व्याध, रामचन्द्रके साथ जांय ॥ ५ ॥ रामचन्द्र वहाँ मृगाओं तथा हाथियोंको मारेंगे, जंगली मधु पीवेंगे और बहुतसी नदियोंको देखेंगे, इसप्रकार वे इस राज्यको स्मरण न कर सकेंगे, अर्थात् उन्हे नगरके स्मरणसे दुःख न होगा ॥ ६ ॥ अन्न और धनका मेरा जो भाण्डार है वह निर्जन वनमें रहनेवाले रामचन्द्रके साथ जाय ॥ ७ ॥ इस प्रकार तीर्थ-स्थानों-में पूजा करनेसे, ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनेसे और ऋषियोंकी संगति करनेसे रामचन्द्र सुखपूर्वक वनका प्रवास कर सकेंगे ॥ ८ ॥ महाबाहु भरत (सूनी) अयोध्याका पालन करेंगे । तुम सब आवश्यक सामग्रियोंके साथ रामचन्द्रको विदा करो ॥ ९ ॥ दसरथके ऐसा कहनेपर केकयी डर गयी उसका मुंह सूख गया और बोली भी रुकने लगी ॥ १० ॥ वह केकयी दुःखित होकर तथा डरकर सूखते हुए मुंहसे राजाके सामनेही बोली ॥ ११ ॥ जब इस राज्यका धन और जन चले जायँगे तब तो यह राज्य फीका अतएव सार निकाले हुए मद्यके समान भोगके अयोग्य हो जायगा, भरत ऐसा राज्य न लेगा ॥ १२ ॥ लज्जा छोड़कर केकयीने जब

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बहन्तं किं तुदसि मां नियुज्य धुरि मांऽहिते । अनार्ये कृत्यमारब्धं किं न पूर्वमुपारुधः ॥१४॥
तस्यैतत्क्रोधसंयुक्तमुक्तं श्रुत्वा वराङ्गना । कैकेयी द्विगुणं क्रुद्धा राजानमिदमब्रवीत् ॥१५॥
तवैव वंशे सगरो ज्येष्ठपुत्रमुपारुधत् । असमञ्ज इति ख्यातं तथायं गन्तुमर्हति ॥१६॥
एवमुक्तो धिगित्येव राजा दशरथोऽब्रवीत् । व्रीडितश्च जनः सर्वः सा च तन्नावबुध्यत ॥१७॥
तत्र वृद्धो महामात्रः सिद्धार्थो नाम नामतः । शुचिर्बहुमतो राज्ञः कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥१८॥
असमञ्जो गृहीत्वा तु क्रीडतः पथिदारकान् । सरय्वां प्रक्षिपन्नप्सु रमते तेन दुर्मतिः ॥१९॥
तं दृष्ट्वा नागराः सर्वे क्रुद्धा राजानमब्रुवन् । असमञ्जं वृणीष्वैकमस्मान्वा राष्ट्रवर्धन ॥२०॥
तानुवाच ततो राजा किं निमित्तमिदं भयम् । ताश्चापि राज्ञा संपृष्टा वाक्यं प्रकृतयोऽब्रुवन्॥२१॥
क्रीडतस्त्वेष नः पुत्रान्बालानुद्भ्रान्तचेतसः । सरय्वां प्रक्षिपन्मौर्ख्यादतुलां प्रीतिमश्नुते ॥२२॥
स तासां वचनं श्रुत्वा प्रकृतीनां नराधिपः । तं तत्याजाहितं पुत्रं तासां प्रियचिकीर्षया ॥२३॥
तं यानं शीघ्रमारोप्य सभार्यं सपरिच्छदम् । यावज्जीवं विवास्योऽयमिति तानन्वशात्पिता ॥२४॥
स फालपिटकं गृह्य गिरिदुर्गाण्यलोकयत् । दिशः सर्वास्त्वनुचरन्स यथा पापकर्मकृत् ॥२५॥

इस प्रकार कठोर वचन कहा तब दसरथ उस विशालाक्षीसे ऐसा बोले ॥ १३ ॥ अहितकारिणि, तुमने मुझे वरके द्वारा भार ढोनेके लिए नियुक्त किया, इच्छाके विरुद्ध काम कराया, अब मैं भार ढो रहा हूं अर्थात् रामको वन भेज रहा हूँ और भरतको राज्य दे रहा हूँ, फिर तुम मुझे क्यों दुःखित करती हो ? अनार्ये, अब तुमने यह कौन काम प्रारम्भ किया है, रामचन्द्रके साथ धन सेना आदि न जाने देनेकी तुम्हारी इच्छा अन्याय है, क्योंकि वरदानके समय तुमने इसकी कोई जिक्र नहीं की । तुमने अकेले रामचन्द्रको वनमें जानेका वर नहीं मांगा है ॥ १४ ॥ राजाका क्रोधयुक्त यह वचन सुनकर केकयी दूना क्रोधित हुई और वह राजासे बोली ॥ १५ ॥ तुम्हारे ही कुलमें राजा सगरने अपने ज्येष्ठ पुत्र असमंजको राज्यच्युत किया था, रामचन्द्र भी असमंजके समानही वन जांय ॥ १६ ॥ केकयीके ऐसा कहनेपर राजा दसरथने उसे धिक्कार दिया, वहांके लोग लज्जित हुए, केकयीकी समझमें कुछभी न आया, उसने नहीं समझा कि राम और असमंजकी तुलना करके मैंने कैसी मूर्खता की है ॥ १७ ॥ वहां एक बूढ़े बड़े पवित्र आचरणवाले प्रधान दीवान उपस्थित थे, उनका नाम सिद्धार्थ था, वे केकयीसे बोले ॥ १८ ॥ रास्तेमें खेलते हुए लड़कोंको पकड़कर असमंज सरयूमें फेंक देता था और वह मूर्ख इससे प्रसन्न होता था ॥१९॥ इससे नगरवासी बहुत क्रुद्ध हुए और वे जाकर राजासे बोले कि महाराज, यातो आप एक असमंजको लेकर रहिए या हम लोगोंको ॥ २० ॥ राजाने उन लोगोंसे कहा कि तुमलोगोंको किस कारण ऐसा भय हुआ है । राजाके द्वारा पूछे जानेपर प्रजाके लोग इस तरह बोले ॥ २१ ॥ हमलोगोंके छोटे-छोटे अज्ञान बालकोंको वह पकड़कर सरयूमें फेंकता है और मूर्खतावश इसीसे प्रसन्न होता है ॥ २२ ॥ प्रजाकी यह बात सुनकर उस राजाने प्रजाके कल्याणके लिए अपने अहितकारी पुत्रका त्याग किया ॥ २३ ॥ स्त्री तथा नौकर-चाकरोंके साथ असमंजको रथपर चढ़ाकर यावज्जीवनके लिए पिताने निर्वासनकी आज्ञा दी ॥ २४ ॥ कुदारी और खांची लेकर सब दिशाओंमें घूमते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इत्येनमत्यजद्राजा सगरो वै सुधार्मिकः । रामः किमकरोत्पापं येनैवमुपरुध्यते ॥२६॥
नहि कंचन पश्यामो राघवस्यागुणं वयम् । दुर्लभो ह्यस्य निरयः शशाङ्कस्येव कल्मषम् ॥२७॥
अथवा देवि त्वं कंचिदोषं पश्यसि राघवे । तमद्य ब्रूहि तत्त्वेन तदा रामो विवास्यते ॥२८॥
अदुष्टस्य हि संत्यागः सत्पथे निरतस्य च । निर्दहेदपि शक्रस्य द्युतिं धर्मविरोधवान् ॥२९॥
तदलं देवि रामस्य श्रिया विहतया त्वया । लोकतोऽपि हि ते रक्ष्यः परिवादः शुभानने॥३०॥
श्रुत्वा तु सिद्धार्थवचो राजा श्रान्ततरस्वरः । शोकोपहतया वाचा कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥३१॥

एतद्वचो नेच्छासि पापरूपे हितं न जानासि ममात्मनोऽथवा ।
आस्थाय मार्गं कृपणं कुचेष्टा चेष्टा हि ते साधुपथादपेता ॥३२॥
अनुव्रजिष्याम्यहमद्य रामं राज्यं परित्यज्य सुखं धनं च ।
सर्वे च राज्ञा भरतेन च त्वं यथासुखं भुङ्क्ष्व चिंराय राज्यम् ॥३३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ३७

महामात्रवचः श्रुत्वा रामो दशरथं तदा । अभ्यभाषत वाक्यं तु विनयज्ञो विनीतवत् ॥ १ ॥

हुए पापी असमंजने पर्वतोंको देखा, अर्थात् रहनेके लिए पर्वतपर गया ॥ २५ ॥ इसी पापके कारणसे धार्मिक राजा सगरने असमंजका त्याग किया था, रामचन्द्रने कौनसा पाप किया है जो ये वन भेजे जा रहे हैं ॥ २६ ॥ हमलोग तो रामचन्द्रका—कोई दुर्गुण नहीं देखते, जिस प्रकार चन्द्रमामें कलङ्क नहीं होता, उसी प्रकार इनमें किसी प्रकारका दोष नहीं है ॥ २७ ॥ देवि, यदि तुम्हारी दृष्टिमें रामचन्द्रका कोई दोष हो तो कहो, जिससे हमलोग रामचन्द्रको निर्वासित करें ॥ २८ ॥ जो पापी नहीं है, जो धर्ममार्गपर चल रहा है उसका त्याग करनेसे इन्द्रकी भी लक्ष्मी नष्ट हो जाती है, क्योंकि यह काम धर्मविरोधी है ॥ २९ ॥ देवि, फिर व्यर्थ रामचन्द्रका राज्याभिषेक तुम क्यों रोक रही हो, संसारकी निन्दासे भी तो तुम्हें अपनी रक्षा करनी है ॥ ३० ॥ सिद्धार्थके वचन सुनकर क्षीणस्वरसे शोकयुक्त वाणीसे राजा दसरथ केकयीसे बोले ॥ ३१ ॥ पापिन, यदि तुमने इन सिद्धार्थके वचनको न माना तो निश्चय तुम्हे अपने और मेरे हितका ध्यान नहीं है, ऐसा समझना होगा । तुम जिस बुरे मार्गपर पैर रखकर कुत्सित उद्योग कर रही हो वह सज्जनोचित नहीं है ॥ ३२ ॥ राज्य, सुख और धन छोड़कर मैं रामके साथ वन जाऊँगा, तुम सब लोग राजा भरतके साथ सुखपूर्वक बहुत दिनोंतक राज्य-भोग करो ॥ ३३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका छत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३६ ॥

सिद्धार्थके वचन सुनकर विनीत रामचन्द्र विनयपूर्वक राजा दसरथसे बोले ॥ १ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्यक्तभोगस्य मे राजन्वने वन्येन जीवतः । किं कार्यमनुयात्रेण त्यक्तसङ्गस्य सर्वतः ॥ २ ॥
यो हि दत्वा द्विपश्रेष्ठं कक्ष्यायां कुरुते मनः । रज्जुस्नेहेन किं तस्य त्यजतः कुञ्जरोत्तमम् ॥ ३ ॥
तथा मम सतां श्रेष्ठ किं ध्वाजेन्या जगत्पते । सर्वाण्येवानुजानामि चीराण्येवानयन्तु मे ॥ ४ ॥
खनित्रापिटके चोभे समानयत गच्छत । चतुर्दश वने वासं वर्षाणि वसतो मम ॥ ५ ॥
अथ चीराणि कैकेयि स्वयमाहृत्य राघवम् । उवाच परिधत्स्वेति जनौघे निरपत्रपा ॥ ६ ॥
स चीरे पुरुषव्याघ्रः कैकेय्याः प्रतिगृह्य ते । सूक्ष्मवस्त्रमवक्षिप्य मुनिवस्त्राण्यवस्त ह ॥ ७ ॥
लक्ष्मणश्चापि तत्रैव विहाय वसने शुभे । तापसाच्छादने चैव जग्राह पितुरग्रतः ॥ ८ ॥
अथात्मपरिधानार्थं सीता कौशेयवासिनी । संप्रेक्ष्य चीरं संत्रस्ता पृषती वागुरामिव ॥ ९ ॥
सा व्यपत्रपमाणेव प्रगृह्य च सुदुर्मनाः । कैकेय्याः कुशचीरे ते जानकी शुभलक्षणा ॥१०॥
अश्रुसंपूर्णनेत्रा च धर्मज्ञा धर्मदर्शिनी । गन्धर्वराजप्रतिमं भर्तारमिदमब्रवीत् ॥११॥
कथं नु चीरं बध्नन्ति मुनयो वनवासिनः । इति ह्यकुशला सीता सा मुमोह मुहुर्मुहुः ॥१२॥
कृत्वा कण्ठे स्म सा चीरमेकमादाय पाणिना। तस्थौ ह्यकुशला तत्र व्रीडिता जनकात्मजा ॥१३॥
तस्यास्तत्क्षिप्रमागत्य रामो धर्मभृतां वरः । चीरं बबन्ध सीतायाः कौशेयस्योपरि स्वयम् ॥१४॥

मैंने तो भोगोंका त्याग कर दिया है, जंगली वस्तुओंसेही मेरा निर्वाह हो जायगा, मैंने सब प्रकारकी अभिलाषाओंका त्याग कर दिया, फिर मेरे साथ सेना आदि भेजनेकी कौन आवश्यकता है ॥ २ ॥ जिसने सबसे बढ़िया हाथी दे दिया, उसे हाथी बाँधनेकी रस्सीके लिए क्या आग्रह हो सकता है । हाथी देनेवालेको रस्सीसे प्रेम कैसा ? ॥ ३ ॥ अतएव सज्जनश्रेष्ठ, राजन् इस सेनाकी मुझे आवश्यकता नहीं, यह सब सेना आदि मैंने भरतको दिये । मेरे लिए आपलोग चीर (वल्कल वस्त्र) ले आवें ॥ ४ ॥ एक खनती और खांची ले आओ, जाओ । चौदह वर्षोंतक मुझे वनमें रहनेके लिए ये चीजें ले आओ ॥ ५ ॥ उतने आदमियोंके बीचमें निर्लज्जा केकयी स्वयं चीर ले आयी और रामचन्द्रको देकर उसने कहा कि यह लो ॥ ६ ॥ पुरुष-सिंह रामचन्द्रने केकयीसे वे वस्त्र ले लिये और अपने पतले वस्त्र उतारकर उन्होंने मुनियोंके वस्त्र धारण किये ॥ ७ ॥ लक्ष्मणने भी वहीं पिताके सामने ही अपने सुन्दर वस्त्र उतारकर मुनियोंके वस्त्र पहने ॥ ८ ॥ पीताम्बर पहननेवाली सीता अपने पहननेके वल्कल वस्त्रको देखकर डर गयीं, जिस प्रकार हरिनी जालको देखकर डरजाती है ॥ ९ ॥ शुभलक्षण जानकी केकयीसे वे वल्कल वस्त्र लेकर लज्जित और दुःखित हुईं ॥ १० ॥ पातिव्रत्यधर्म जाननेवाली तथा उसका अनुष्ठान करनेवाली जानकीकी आंखोंमें आसू भर आये, गन्धर्वराजके समान अपने पतिसे वह बोली ॥ ११ ॥ वनवासी मुनि किस प्रकार चीर पहनते हैं, चीर पहननेका ज्ञान न रखने-वाली सीता ठिठिक गयी ॥१२॥ एक चीरको उसने कन्धेपर रखलिया और दूसरेको हाथमें लेकर वह खड़ी ही रही । जानकी चीर पहनना नहीं जानती थी, इस कारण वह लज्जित हुई ॥ १३ ॥ सीता-की ऐसी दशा देखकर धर्मात्मा श्रेष्ठ रामचन्द्रजी आये और स्वयं उन्होंने पीताम्बरके ऊपर चीर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रामं प्रेक्ष्य तु सीताया बध्नन्तं चीरमुत्तमम् । अन्तःपुरचरा नार्यो मुमुचुर्वारि नेत्रजम् ॥१५॥
ऊचुश्च परमायत्ता रामं ज्वलिततेजसम् । वत्स नैवं नियुक्तेयं वनवासे मनस्विनी ॥१६॥
पितुर्वाक्यानुरोधेन गतस्य विजनं वनम् । तावद्दर्शनमस्या नः सफलं भवतु प्रभो ॥१७॥
लक्ष्मणेन सहायेन वनं गच्छस्व पुत्रक । नेयमर्हति कल्याणी वस्तुं तापसवद्वने ॥१८॥
कुरु नो याचनां पुत्र सीता तिष्ठतु भामिनी । धर्मनित्यः स्वयं स्थातुं न हीदानीं त्वमिच्छसि ॥१९॥
तासामेवंविधा वाचः शृण्वन्दशरथात्मजः । ववन्धैव तथा चीरं सीतया तुल्यशीलया ॥२०॥
चीरे गृहीते तु तया सबाष्पो नृपतेर्गुरुः । निवार्य सीतां कैकेयीं वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥२१॥
अतिप्रवृत्ते दुर्मेधे कैकेयि कुलपांसनि । वञ्चयित्वा तु राजानं न प्रमाणेऽवतिष्ठसि ॥२२॥
न गन्तव्यं वनं देव्या सीतया शीलवर्जिते । अनुष्ठास्यति रामस्य सीता प्रकृतमासनम् ॥२३॥
आत्मा हि दाराः सर्वेषां दारसंग्रहवर्तिनाम् । आत्मेयमिति रामस्य पालयिष्यति मेदिनीम् ॥२४॥
अथ यास्यति वैदेही वनं रामेण संगता । वयमत्रानुयास्यामः पुरं चेदं गमिष्यति ॥२५॥
अन्तपालाश्च यास्यन्ति सदारो यत्र राघवः । सहोपजीव्यं राष्ट्रं च पुरं च सपरिच्छदम् ॥२६॥
भरतश्च सशत्रुघ्नश्चीरवासा वनेचरः । वने वसन्तं काकुत्स्थमनुवत्स्यति पूर्वजम् ॥२७॥
ततः शून्यां गतजनां वसुधां पादपैः सह । त्वमेका शाधि दुर्वृत्ता प्रजानामहिते स्थिता ॥२८॥

बाँध दिया ॥ १४ रामचन्द्र सीताको वल्कल वस्त्र पहना रहेहैं यह देखकर महलकी स्त्रियां रोने लगीं ॥ १५ ॥ और अति तेजस्वी रामचन्द्रसे खिन्न होकर वे स्त्रियां बोलीं—वत्स, जानकीके लिए वनवासकी आज्ञा नहीं है ॥ १६ ॥ पिताकी आज्ञासे तुम वन जाते हो तो जाओ, हमलोग तब तक सीताकोही देखकर प्रसन्न होंगी ॥ १७ ॥ लक्ष्मणको साथ लेकर तुम वन जाओ, यह विचारी तपस्वियों के समान वनमें नहीं रह सकती ॥ १८॥ यदि तुम धर्मको ही सर्वाधिक मान कर यहां रहना नहीं चाहते तो सीता यहां रहे, तुम हमलोगोंकी यह प्रार्थना मानो ॥ १९ ॥ उन सबकी वैसी बातें सुनते हुए रामचन्द्रने सीताको चीर पहना दिये, क्योंकि सीता भी रामचन्द्रके समानही वन जानेवाली थी ॥ २० ॥ सीताके चीर धारण करनेपर राजाके गुरु वसिष्ठकी आंखें जलसे भर आयीं, वे सीताको रोककर केकयीसे बोले ॥ २१ ॥ मूर्ख कुलकलङ्किन, तू बहुत आगे बढ़गयी है, मर्यादाको लांघकर काम करना चाहती है । राजाको धोखा देकर उन्हे उचित रास्तेसे नहीं लेजा रही है ॥ २२ ॥ दुःशीले, सीतादेवी वन न जाँयगी, और यहीं रामचन्द्रके आने तक उनके स्थानपर राज्य करेंगी ॥ २३ ॥ गृहस्थोंकी स्त्रियां उनकी आत्मा हैं, सीता भी रामचन्द्रकी आत्मा हैं, यह पृथिवीका पालन करेगी ॥ २४ ॥ यदि सीता स्वयं रामचन्द्रके साथ वन जायगी तो हम लोग तथा समूचा नगर रामके साथ वन जायगा ॥ २५ ॥ जहां सीताके साथ रामचन्द्र रहेंगे वहीं अन्तपाल (महलोंकी रक्षा करनेवाला अध्यक्ष) भी जायगा, यह समूचा नगर तथा राष्ट्र अपना धन जन लेकर रामचन्द्रके साथ जायगा ॥ २६ ॥रामचन्द्रके वनमें रहनेके समय भरत और शत्रुघ्न भी चीर धारण करके वनवासी होंगे । वे अपने बड़े भाईका अनुसरण अवश्य करेंगे ॥ २७ ॥ सबके चले जानेसे सूनी इस पृथिवीका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहि तद्भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः । तद्वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति ॥२९॥
नह्यदत्तां महीं पित्रा भरतः शास्तुमिच्छति । त्वयि वा पुत्रवद्वस्तुं यदि जातो महीपतेः ॥३०॥
यद्यपि त्वं क्षितितलाद्गगनं चोत्पतिष्यसि । पितृवंशचरित्रज्ञः सोऽन्यथा न करिष्यति ॥३१॥
तत्त्वया पुत्रगर्धिन्या पुत्रस्य कृतमाप्रियम् । लोके नहि स विद्येत यो न राममनुव्रतः ॥३२॥
द्रक्ष्यस्यद्यैव कैकेयि पशुव्यालमृगद्विजान् । गच्छतः सह रामेण पादपाँश्च तदुन्मुखान् ॥३३॥

अथोत्तमान्याभरणानि देवि देहि स्नुषायै व्यपनीय चीरम् ।
न चीरमस्याः प्रविधीयतेति न्यवारयत्तद्वसनं वसिष्ठः ॥३४॥
एकस्य रामस्य वने निवासस्त्वया वृतः केकयराजपुत्रि ।
विभूषितेयं प्रतिकर्मनित्या वसत्वरण्ये सह राघवेण ॥३५॥
यानैश्च मुख्यैः परिचारकैश्च सुसंवृता गच्छतु राजपुत्री ।
वस्त्रैश्च सर्वैः सहितर्विधानैर्नैयं वृता ते वरसंप्रदाने ॥३६॥
तस्मिंस्तथा जल्पति विप्रमुख्ये गुरौ नृपस्याप्रतिमप्रभावे ।
नैव स्म सीता विनिवृत्तभावा प्रियस्य भर्तुः प्रतिकारकामा ॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

शासन वृत्तोंके साथ तुम अकेली करना, तू प्रजाका अहित कर रही है ॥२८॥ जहांके राजा रामचन्द्र न होंगे, वह राज्य न होगा, किन्तु वह वन ही राज्य होगा जहांके राजा रामचन्द्र रहेंगे ॥२९॥ भरत पिताके बिना दिये इस पृथिवीका पालन न करेगा और न वह तुम्हारे पास तुम्हारा पुत्र बनकरही रहेगा, क्योंकि वह राजा दसरथसे उत्पन्न हुआ है ॥ ३० ॥ यदि तुम पृथिवीसे उड़कर आकाशमें भी चली जाओ, तौभी भरत कुलाचारके विरुद्ध न करेगा, क्योंकि वह अपना कुलाचार जानता है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार पुत्रके कल्याणकी इच्छा रखनेवाली तुमने अपने पुत्रका अमंगल किया है, यहां कोई भी ऐसा नहीं है जो रामचन्द्रका अनुगामी न हो ॥ ३२ ॥ तुम आजही देखोगी कि पशुपक्षी आदि रामचन्द्रके साथ जा रहे हैं और वृक्ष भी उनके साथ जानेको उत्सुक हैं ॥ ३३ ॥ देवि, अपनी बहू सीताको उत्तम वस्त्र और कपड़े दो, ये चीर लेलो । जानकीके पहनने योग्य चीर नहीं है, ऐसा कहकर उन्होंने चीर ले लिये ॥ ४४ ॥ केकयी, तुमने केवल एक रामचन्द्रकाही वनवास वरमें मांगा है । रामचन्द्रकी सेवाके लिये जानकी जारही हैं तो जाँय, पर वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर जांय और रामचन्द्रके साथ वनमें रहें ॥ ३५ ॥ राजपुत्री सीता उत्तम रथ तथा परिचारकोंके साथ वनजाँय, सब प्रकारके वस्त्रों तथा सामग्रियोंके साथ यह वन जाँय, क्योंकि तुमने "सीता चीर पहनकर वनजाय" ऐसा वर नहीं मांगा हैं ॥३६॥ विप्रश्रेष्ठ तथा अप्रतिम प्रभावशाली गुरु वसिष्ठके वैसा कहते रहनेपर भी सीताने अपना विचार नहीं बदला, क्योंकि वह अपने पतिके समान रहना चाहती थी, पति वल्कल वस्त्र धारण करें और वह उत्तम वस्त्र पहनें, यह कैसे हो सकता था ॥ ३९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३७ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अष्टत्रिंशः सर्गः ३८

तस्यां चीरं वसानायां नाथवत्यामनाथवत् । प्रचुक्रोश जनः सर्वो धिक्त्वां दशरथं त्विति ॥ १ ॥
तेन तत्र प्रणादेन दुःखितः स महीपतिः ।सनिःश्वस्योष्णमैक्ष्वाकस्तांभार्यामिदमब्रवीत् ॥ २ ॥
सुकुमारी च बाला च सततं च सुखोचिता । नेयं वनस्य योग्येति सत्यमाह गुरुर्मम ॥ ३ ॥

इयं हि कस्यापि करोति किंचित्तपस्विनी राजवरस्य पुत्री ।
या चीरमासाद्य वनस्य मध्ये जाता विसंज्ञा श्रमणीव काचित् ॥ ४ ॥
चीराण्यपास्याज्जनकस्य कन्या नेयं प्रतिज्ञा ममदत्तपूर्वा ।
यथासुखं गच्छतु राजपुत्री वनं समग्रा सह सर्वरत्नैः ॥ ५ ॥
अजीवनार्हेण मया नृशंसा कृता प्रतिज्ञा नियमेन तावत ।
त्वया हि बाल्यात्प्रतिपन्नमेतत्तन्मा दहेद्वेणुमिवात्मपुष्पम् ॥ ६ ॥

रामेण यदि ते पापे किंचित्कृतमशोभनम् । अपकारः क इह ते वैदेह्या दर्शितोऽधमे ॥ ७ ॥
मृगीवोत्फुल्लनयना मृदुशीला मनस्विनी । अपकारं कमिव ते करोति जनकात्मजा ॥ ८ ॥
ननु पर्याप्तमेवं ते पापे रामविवासनम् । किमेभिः कृपणैर्भूयः पातकैरपि ते कृतैः ॥ ९ ॥
प्रतिज्ञातं मया तावत्त्वयोक्तं देवि शृण्वता । रामं यदभिषेकाय त्वामिहागतमब्रवीः ॥१०॥
तत्त्वेतत्समतिक्रम्य निरयं गन्तुमिच्छसि । मैथिलीमपि या हि त्वमीक्षसे चीरवासिनीम् ॥११॥

अपने स्वामीके रहते भी अनाथिनीके समान सीताने चीर धारण किया, यह देखकर सबलोग रोने लगे तथा कहने लगे कि दसरथ तुमको धिक्कार है ! ॥१॥ इस ध्वनिको सुनकर राजा बहुत दुःखी हुए और उन्होंने अपनी स्त्री केकयीसे कहा ॥ २ ॥ सीता सुकुमार है, बालक है और सुखमें पली है, यह वन जानेके योग्य नहीं है, गुरु वसिष्ठने यह ठीक कहा है ॥ ३ ॥ इस बिचारी राजपुत्रीने किसीका क्या बिगाड़ा है, जो चीर पहनाकर वनवासिनी तपस्विनीके समान बनायी जा रही है ॥ ४ ॥ जनकराजकन्या चीर उतार दे, क्योंकि जानकीके चीर धारण करनेकी प्रतिज्ञा मैंने नहीं की है, सब सामग्रियों तथा रत्नोंको लेकर यह सुखपूर्वक जाय ॥ ५ ॥ जीवन धारण करनेके अयोग्य मैंने तुमसे पहले प्रतिज्ञा की और तुमने बाल्यावस्थासे ही यह वर सोचरखा था । जिस प्रकार बांसका फूल बांसको सुखा देता है उसी प्रकार वह प्रतिज्ञा ही मुझे जला रही है ॥ ६ ॥ पापिन, रामने तुम्हारा कुछ अपकार किया हो तो अधमे, इस सीताने तुम्हारा क्या अपकार किया है ॥ ७ ॥ मृगीके समान इसकी आंखें हैं, यह नम्रस्वभावकी है, मनस्विनी सीता भला तुम्हारा क्या अपकार कर सकती है ॥ ८ ॥ पापिन, रामचन्द्रको वनवास देनाही तेरेलिये वश है, फिर इन छोटे-छोटे पापोंके करनेसे तुम्हें क्या लाभ ॥ ९ ॥ अभिषेकके लिए रामचन्द्र जब मेरे पास आये, तब तुमने उन्हें चौदह वर्षके लिए वनजानेको कहा और वही सुन कर मैंने भी प्रतिज्ञा की ॥१०॥ अब तुम उस प्रतिज्ञासे आगे बढ़कर नरक जाना चाहती हो, इस समय तुम सीताको भी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं ब्रुवन्तं पितरं रामः संप्रस्थितो वनम् । अवाक्शिरसमासीनमिदं वचनमब्रवीत् ॥१२॥
इयं धार्मिक कौसल्या मम माता यशस्विनी । वृद्धा चाक्षुद्रशीला च न च त्वां देव गर्हते ॥१३॥
मया विहीनां वरद प्रपन्नां शोकसागरम् । अदृष्टपूर्वव्यसनां भूयः संमन्तुमर्हसि ॥१४॥
इमां महेन्द्रोपमजातगर्धिनीं तथा विधातुं जननीं ममार्हसि ।
यथा वनस्थे मयि शोककर्शिता न जीवितं न्यस्य यमक्षयं व्रजेत् ॥१५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डेऽष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ३९

रामस्य तु वचः श्रुत्वा मुनिवेषधरं च तम् । समीक्ष्य सह भार्याभी राजा विगतचेतनः ॥ १ ॥
नैनं दुःखेन संतप्तः प्रत्यवैक्षत राघवम् । न चैनमभिसंप्रेक्ष्य प्रत्यभाषत दुर्मनाः ॥ २ ॥
स मुहूर्तमिवासंज्ञो दुःखितश्च महीपतिः । विललाप महाबाहू राममेवानुचिन्तयन् ॥ ३ ॥
मन्ये खलु मया पूर्वं विवत्सा बहवः कृताः । प्राणिनो हिंसिता वापि तन्मामिदमुपस्थितम् ॥ ४ ॥
न त्वेवानागते काले देहाच्च्यवति जीवितम् । कैकेय्या क्लिश्यमानस्य मृत्युर्मम न विद्यते ॥ ५ ॥
योऽयं पावकसंकाशं पश्यामि पुरतः स्थितम् । विहाय वसने सूक्ष्मे तापसाच्छादमात्मजम् ॥ ६ ॥

चीर पहने देख रही हो ॥ ११ ॥ वनजानेके लिए तयार रामचन्द्र, ऐसा कहते हुए और सिर झुकाकर बैठे हुए पितासे बोले ॥ १२ ॥ धार्मिक, यशस्विनी मेरी माता ये कौसल्या हैं, ये वृद्ध हैं महान चरित्रवाली हैं और ये आपकी निन्दा भी नहीं करती ॥ १३ ॥ वरद, मेरे न रहनेपर ये बहुत ही दुःखित होंगी, इन्होंने ऐसा दुःख पहले देखा नहीं है, अतएव आप पुनः इनका सम्मान करें ॥ १४ ॥ महेन्द्रोपम, मेरे वनमें रहनेपर इनका ध्यान सदा मुझे देखनेकी ओर लगा रहेगा, ये बहुत शोक करेंगी, अतएव ऐसा कीजियेगा जिससे मेरी माता जीवित रहें, मर न जाय ॥१५॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका अड़तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३८ ॥

रामकी बातें सुनकर तथा उन्हें स्त्रीके साथ यतिवेषमें देखकर राजा बेहोश होगये ॥ १ ॥ दुःखसे सन्तप्त राजाने रामचन्द्रको ठीक-ठीक नहीं देखा और न थोड़ा देखकर इनसे वे बोल ही सके ॥ २ ॥ दुःखित राजा थोड़ी देरके लिए बेहोश होगये और रामकेही सम्बन्धकी बातें सोचते हुए वे विलाप करने लगे ॥ ३ ॥ मालूम होता है कि बहुतसी गौओंको मैंने बेबछड़ेवाली बनाया है, बहुतसे प्राणियोंको मारा भी है, जिसका फल आज यह मेरे सामने आया है ॥ ४ ॥ बिना समय आये किसी प्राणीकी मृत्यु नहीं होती है, अतएव केकयीके द्वारा इतना क्लेश पानेपर भी मेरी मृत्यु नहीं होरही है ॥ ५ ॥ महीन वस्त्र छोड़कर तपस्वियोंके समान वस्त्र धारण किये अग्निके समान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकस्याः खलु कैकेय्याःकृतेऽयं क्लिश्यते जनः । स्वार्थे प्रयतमानायाःसंश्रित्य निकृतिंत्विमाम्॥ ७ ॥
एवमुक्त्वा तु वचनं बाष्पेण विहतेन्द्रियः । रामेति सकृदेवोक्त्वा व्याहर्तुं न शशाक सः॥ ८ ॥
संज्ञां तु प्रतिलभ्यैव मुहूर्तात्स महीपतिः । नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥ ९ ॥
औपवाह्यं रथं युक्त्वा त्वमायाहि हयोत्तमैः । प्रापयैनं महाभागमितो जनपदात्परम् ॥१०॥
एवं मन्ये गुणवतां गुणानां फलमुच्यते । पित्रा मात्रा च यत्साधुर्वीरो निर्वास्यते वनम्॥११॥
राज्ञो वचनमाज्ञाय सुमन्त्रः शीघ्रविक्रमः । योजयित्वा ययौ तत्र रथमश्वैरलंकृतम् ॥१२॥
तं रथं राजपुत्राय सूतः कनकभूषितम् । आचचक्षेऽञ्जलिं कृत्वा युक्तं परमवाजिभिः॥१३॥
राजा सत्वरमाहूय व्यापृतं वित्तसंचये । उवाच देशकालज्ञो निश्चितं सर्वतः शुचिः ॥१४॥
वासांसि च वारार्हाणि भूषणानि महान्ति च । वर्षाण्येतानि संख्याय वैदेह्या क्षिप्रमानय ॥१५॥
नरेन्द्रेणैवमुक्तस्तु गत्वा कोशगृहं ततः । प्रायच्छत्सर्वमाहृत्य सीतायै क्षिप्रमेव तत् ॥१६॥
सा सुजाता सुजातानि वैदेही प्रस्थिता वनम् । भूषयामास गात्राणि तैर्विचित्रैर्विभूषणैः ॥१७॥
व्यराजयत वैदेही वेश्म तत्सुविभूषिता । उद्यतोंऽशुमतः काले स्वं प्रभेव विवस्वतः ॥१८॥
तां भुजाभ्यां परिष्वज्य श्वश्रूर्वचनमब्रवीत् । अनाचरन्तीं कृपणं मूर्ध्न्युपाघ्राय मैथिलीम् ॥१९॥
असत्यः सर्वलोकेऽस्मिन्सततं सत्कृताः प्रियैः । भर्तारं नानुमन्यन्ते विनिपातगतं स्त्रियः ॥२०॥

दीप्तिमान् अपने पुत्रको सामने देख रहा हूँ, पर मरता नहीं ॥ ६ ॥ एक केकयीके लिए इतने लोगोंको कष्ट हो रहा है, इसने स्वार्थ-सिद्धिके लिए ऐसी शठता धारण की है ॥७॥ ऐसा कहनेपर दसरथकी आँखें आँसूसे ढँक गयीं, उन्होंने एकबार कहा "राम" इसके आगे वे बोल न सके ॥८॥ थोड़ी देरमें होशमें आकर आँसू भरी आँखोंसे उन्होंने सुमन्त्रसे कहा ॥ ९ ॥ उत्तम घोड़े जोतकर औपवाह्य (युद्धोपयोगी नहीं) रथ तुम ले आओ और महाभाग रामचन्द्रको नगरके बाहर पहुँचा आओ ॥ १० ॥ यह गुणवानोंके गुणका फल मिल रहा है, जो ये वीर और सज्जन राम माता-पिताके द्वारा वनमें निर्वासित किये जाते हैं ॥ ११ ॥ राजाके वचन सुनकर शीघ्र काम करने वाले सुमन्त्र घोड़े जोतकर वहां रथ ले आये ॥ १२ ॥ हाथ जोड़कर उन्होंने राजपुत्र रामचन्द्रसे कहाकि सोना मढ़ा हुआ रथ, जिसमें उत्तम घोड़े जोते हुए हैं, खड़ा है॥१३॥ किसीका ऋण न रखने और देशकाल जाननेवाले राजा दसरथ खजांचीको बुलाकर उससे बोले ॥ १४॥ जितने वर्ष वनमें रहना है उन वर्षोंको गिनकर उत्तम आभूषण और वस्त्र जानकीके लिए ले आओ अर्थात् चौदह वर्षके पहनने योग्य वस्त्र तथा भूषण ले आओ ॥ १५ ॥ राजाके ऐसा कहनेपर खजांची खजानेमें गया और सबकुछ शीघ्र लाकर उसने सीताको दिया ॥१६॥ उत्तम कुलमें उत्पन्न जानकीने उन विचित्र आभूषणोंसे अपने सुन्दर गात्रोंको भूषित किया ॥ १७ ॥ गहनोंसे भूषित जानकीने उस घरको शोभित किया, जिस प्रकार उदय होते हुए सूर्यकी प्रभा आकाशको सुशोभित करती है ॥ १८ ॥ उस उत्तम आचरणवाली सीताको दोनों हाथोंसे आलिंगन करके तथा उसका माथा सूंघकर सास बोली ॥ १९ ॥ जो स्त्रियां पतिके द्वारा सब प्रकारसे आदर पानेपर भी उनकी गरीबीमें सेवा नहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एषं स्वभावो नारीणामनुभूय पुरा सुखम् । अल्पामप्यापदं प्राप्य दुष्यन्ति प्रजहत्यपि ॥२१॥
असत्यशीला विकृता दुर्गा अहृदयाः सदा । असत्यः पापसंकल्पाः क्षणमात्रविरागिणः ॥२२॥
न कुलं न कृतं विद्या न दत्तं नापि संग्रहः । स्त्रीणां गृह्णाति हृदयमनित्यहृदया हि ताः ॥२३॥
साध्वीनां तु स्थितानां तु शीले सत्ये श्रुतेस्थिते । स्त्रीणां पवित्रं परमं पतिरेको विशिष्यते ॥२४॥
स त्वया नावमन्तव्यः पुत्रः प्रव्राजितो वनम् । तव देवसमस्त्वेष निर्धनः सधनोऽपि वा ॥२५॥
विज्ञाय वचनं सीता तस्या धर्मार्थसंहितम् । कृत्वाञ्जलिमुवाचेदं श्वश्रूमभिमुखे स्थिता ॥२६॥
करिष्ये सर्वमेवाहमार्या यदनुशास्ति माम् । अभिज्ञास्मि यथा भर्तुर्वर्तितव्यं श्रुतं च मे ॥२७॥
न माममज्जनेनार्या समानयितुमर्हति । धर्माद्विचलितुं नाहमलं चन्द्रादिव प्रभा ॥२८॥
नातन्त्री विद्यते वीणा नाचक्रो विद्यते रथः । नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजा ॥२९॥
मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितंसुतः । अमितस्य तु दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ॥३०॥
साहमेवंगता श्रेष्ठा श्रुतधर्मपरावरा । आर्ये किमवमन्येयं स्त्रिया भर्ता हि दैवतम् ॥३१॥

करतीं वे असती कही जाती हैं ॥ २० ॥ यह स्त्रियोंका स्वभाव होता है कि वे सब प्रकारके सुख पतिकी अच्छी अवस्थामें भोगती हैं, पर जब पति दरिद्र होजाता है या किसी आपत्तिमें फँसता है उस समय वे उसपर अनेक दोष देती हैं और उस पतिका परित्यागभी करदेती हैं ॥ २१ ॥ ये असत्य बोलनेवाली विकार उत्पन्न करनेवाली और हृदयहीन होती हैं, इनका अभिप्राय मालूम नहीं होता, इनके हृदयमें पापके विचार उत्पन्न होते हैं, थोड़ीही देरमें ये बदल जाती हैं, प्रेमीसे द्वेष करने लगती हैं, इस प्रकार स्त्रियां असती होती हैं ॥ २२ ॥ वे उत्तम कुल, किये हुए उपकार, उपदेश, भूषण तथा उनके अपराधोंकी ओर ध्यान न देना आदिसे भी अनुकूल नहीं होतीं, उनके हृदयका पता नहीं लगता ॥ २३ ॥ जो स्त्रियां सती हैं वे शीलवती और सत्यवादिनी होती हैं, बड़ोंके उपदेशमें उनका आदर होता है, वे कुल-मर्यादाका पालन करनेवाली होती हैं, ऐसी स्त्रियोंके लिए एक पतिही परम पवित्र है, सर्वश्रेष्ठ है॥२४॥मेरा पुत्र रामचन्द्र आज निर्वासित हुआ है,तुम उसका तिरस्कार न करना, चाहे वह धनी हो या निर्धन, तुम्हारे लिए देवता है ॥ २५ ॥ धर्मार्थ युक्त सासकी बातें समझकर हाथ जोड़कर सीता सासके सामने बोली ॥ २६॥ जो आपने उपदेश किया है, वह सब मैं करूंगी, पतिके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए यह मैं जानती हूँ, इस विषयका उपदेश मुझे मिला है ॥ २७ ॥ आप असाध्वी स्त्रियोंके साथ मेरी तुलना न करें, मैं कभी भी धर्मसे विचलित न हो सकूंगी, जिस प्रकार प्रभा चन्द्रमासे कभी अलग नहीं होती ॥२८॥ जिस प्रकार बिना तारके वीणा नहीं होती है और न बिना पहियेका रथही होता है, उसी प्रकार स्त्रियां चाहे वे सौ पुत्रोंकी माताही क्यों न हों, बिना पतिके सुखी नहीं होतीं, पिता भाई और पुत्र स्त्रियोंको जो सुख देते हैं, वह परिमित है, केवल इसी लोकके लिए है, पतिही अपरिमित सुखका देनेवाला है, पतिही इसलोक और परलोकमें सुख देता है, अतएव कौन ऐसी स्त्री है जो पतिकी सेवा न करे ॥ ३० ॥ मैंने अपने बड़ोंसे उत्तम और अधम स्त्रीधर्म जाना है, स्त्रियोंके देवता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सीताया वचनं श्रुत्वा कौसल्या हृदयंगमम् । शुद्धसत्त्वा मुमोचाश्रु सहसा दुःखहर्षजम् ॥३२॥
तां प्राञ्जलिरभिप्रेक्ष्य मातृमध्येऽतिसत्कृताम् । रामः परमधर्मात्मा मातरं वाक्यमब्रवीत् ॥३३॥
अम्ब मा दुःखिता भूत्वा पश्येस्त्वं पितरं मम । क्षयोऽपि वनवासस्य क्षिप्रमेव भविष्यति ॥३४॥
सुप्तायास्ते गमिष्यन्ति नव वर्षाणि पञ्च च । समग्रमिह संप्राप्तं मां द्रक्ष्यासि सुहृद्वृतम् ॥३५॥
एतावदभिनीतार्थमुक्त्वा स जननीं वचः । त्रयःशतशतार्धा हि ददर्शावेक्ष्य मातरः ॥३६॥
ताश्चापि स तथैवार्ता मातॄर्दशरथात्मजः । धर्मयुक्तमिदं वाक्यं निजगाद कृताञ्जलिः ॥३७॥
संवासात्परुषं किंचिदज्ञानादपि यत्कृतम् । तन्मे समुपजानीत सर्वाश्चामन्त्रयामि वः ॥३८॥
वचनं राघवस्यैतद्धर्मयुक्तं समाहितम् । शुश्रुवुस्ता स्त्रियः सर्वाः शोकोपहतचेतसः ॥३९॥
जज्ञेऽथ तासां संनादः क्रौञ्चीनामिव निःस्वनः । मानवेन्द्रस्य भार्याणामेवं वदति राघवे ॥४०॥

मुरजपणवमेघघोषवद्दशरथवेश्म बभूव यत्पुरा ।
विलपितपरिदेवनाकुलं व्यसनगतं तदभूत्सुदुःखितम् ॥४१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९॥

पतिही हैं, क्या मैं उन्हींका तिरस्कार करूंगी ॥ ३१ ॥ कौसल्याने सीताके ये मनोहर वचन सुनें और शुद्धान्तःकरणवाली कौसल्याकी आँखोंसे दुःख और हर्षके आँसू बहने लगे ॥ ३२ ॥ माताओंमें सर्वश्रेष्ठ माता कौसल्याको देखकर परम धर्मात्मा रामचन्द्र हाथ जोड़कर बोले ॥ ३३ ॥ पिताके कारण मैं वन जारहा हूँ—यह समझकर तुम दुःखित होकर पिताको न देखना, इनके प्रति बुरा भाव न रखना, क्योंकि वनवासका अन्त तो शीघ्र ही हो जायगा ॥ ३४ ॥ ये चौदह वर्ष तो तुम्हारे सोते-सोते बीत जायँगे, रातको सोनेके बाद जैसे प्रातःकाल होता है वैसेही एक दिन सुनोगी कि मैं अपने मित्रोंके साथ आगया ॥ ३५ ॥ इस प्रकार कौसल्यासे यथार्थ बात कहकर अपनी अन्य साढ़े तीन सौ माताओंकी ओर रामचन्द्रने देखा ॥ ३६ ॥ दसरथपुत्र रामचन्द्र हाथजोड़ दुःखिनी उन माताओंसे भी धर्मयुक्त यह वचन बोले ॥ ३७ ॥ सदा साथ रहनेसे जो कुछ कठोर वचन मैंने आपलोगोंसे कहे हों, अथवा अज्ञानके कारण जो कुछ अनुचित व्यवहार किया हो, मैं आप सब लोगोंसे प्रार्थना करता हूँ उसे क्षमा करें ॥ ३८ ॥ धर्म-अर्थयुक्त रामचन्द्रके सुन्दर ये वचन उन सबने बहुतही दुःखित होकर सुनें ॥ ३९ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर राजा दसरथकी वे स्त्रियाँ क्रौंची पक्षीके समान बड़ेही करुणस्वरसे रोने लगीं ॥ ४० ॥ राजा दसरथके जिस घरमें पहले मेघके शब्दके समान मुरज, पणव आदि बाजोंका शब्द हुआ करता था, आज उसी घरमें दुःखका रोदन होरहा है, आज वही घर अनेक कारणोंसे चित्तको व्याकुल करता है, आज वह दुःखमय होरहा है ॥ ४१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीयरामायणके अयोध्याकाण्डका उनतालीसवां सर्ग समाप्त ॥ ३९ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चत्वारिंशः सर्गः ४०

अथ रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः । उपसंगृह्य राजानं चक्रुर्दीनाः प्रदक्षिणम् ॥ १ ॥
तं चापि समनुज्ञाप्य धर्मज्ञः सह सीतया । राघवः शोकसंमूढो जननीमभ्यवादयत् ॥ २ ॥
अन्वक्षं लक्ष्मणो भ्रातुः कौसल्यामभ्यवादयत् । अपि मातुः सुमित्राया जग्राह चरणौ पुनः ॥ ३ ॥
तं वन्दमानं रुदती माता सौमित्रिमब्रवीत् । हितकामा महाबाहुं मूर्ध्न्युपाघ्राय लक्ष्मणम् ॥ ४ ॥
सृष्टस्त्वं वनवासाय स्वनुरक्तः सुहृज्जने । रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति ॥ ५ ॥
व्यसनी वा समृद्धो वा गतिरेष तवानघ । एष लोके सतां धर्मो यज्ज्येष्ठवशगो भवेत ॥ ६ ॥
इदं हि वृत्तमुचितं कुलस्यास्य सनातनम् । दानं दीक्षा च यज्ञेषु तनुत्यागो मृधेषु हि ॥ ७ ॥
लक्ष्मणं त्वेवमुक्त्वासौ संसिद्धं प्रियराघवम् । सुमित्रा गच्छ गच्छेति पुनः पुनरुवाच तम् ॥ ८ ॥
रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् । अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम् ॥ ९ ॥
ततः सुमन्त्रः काकुत्स्थं प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् । विनीतो विनयज्ञश्च मातलिर्वासवं यथा ॥१०॥
रथमारोह भद्रं ते राजपुत्र महायशः । क्षिप्रं त्वां प्रापयिष्यामि यत्र मां राम वक्ष्यसे ॥११॥
चतुर्दश हि वर्षाणि वस्तव्यानि वने त्वया । तान्युपक्रमितव्यानि यानि देव्या प्रचोदितः ॥१२॥
तं रथं सूर्यसंकाशं सीता हृष्टेन चेतसा । आरुरोह वरारोहा कृत्वालंकारमात्मनः ॥१३॥

अनन्तर राम, लक्ष्मण और सीताने हाथ जोड़कर राजाको प्रणाम किये और उनकी प्रदक्षिणा की। माता-पिताके दुःखसे ये भी उस समय दुखी थे ॥ १ ॥ धर्मज्ञ रामचन्द्रने सीताके साथ राजासे आज्ञा लेकर माताको प्रणाम किया। उस समय रामचन्द्र शोकसे विह्वल हो गये थे। ॥ २ ॥ रामचन्द्रके बाद ही लक्ष्मणने कौसल्याको प्रणाम किया, तदनन्तर उन्होंने अपनी माता सुमित्राको प्रणाम किया ॥ ३ ॥ प्रणाम करते हुए लक्ष्मणसे उनका हित चाहनेवाली माता सुमित्रा उनका माथा सूंघकर बोलीं ॥ ४ ॥ तुम्हारे सुहृत् रामचन्द्र वन जा रहे हैं, तुम्हारा इनमें प्रेम है, इसीकारण मैं तुम्हें वन भेज रही हूँ, तुम इनकी ओरसे असावधान न होना ॥ ५ ॥ ये दुःखी हों या सुखी, येही तुम्हारे आश्रय हैं, अपने बड़ेके अधीन रहनाही सज्जनोंका धर्म लोकमें समझा जाता है ॥६॥ इस इक्ष्वाकुकुलका यही सनातन आचार है कि दान दे, यज्ञ करे और युद्धमें प्राण त्याग करे ॥७॥रामचन्द्र जिनके प्रिय हैं और जिन्होंने वन जाना निश्चित कर लिया है उस लक्ष्मणको सुमित्राने बारबार कहा कि जाओ जाओ ॥ ८ ॥ सुमित्राने कहा कि वहां वनमें रामचन्द्रको दशरथ, सीताको माता और वनको अयोध्या समझना, अब तुम जाओ ॥९॥ मातलि जिस प्रकार इन्द्रसे बोलता है उसी प्रकार सुमन्त्र हाथ जोड़कर विनयपूर्वक रामचन्द्रसे बोले ॥ १० ॥ यशस्वी राजपुत्र, रथ पर बैठो, जहां तुम कहोगे वहां मैं तुम्हें शीघ्र ले जाऊंगा ॥ ११ ॥ देवी कैकयीकी प्रेरणासे तुम्हे चौदह वर्ष वनमें रहना है, उसका प्रारंभ आजहीसे होता है, अतएव चलो ॥ १२ ॥ सूर्यके समान चमकीले उस रथपर अपनेको अलङ्कृत करके कुलवती सीता प्रसन्नतापूर्वक चढ़ीं ॥ १३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वनवासं हि संख्याय वासांस्याभरणानि च । भर्तारमनुगच्छन्त्यै सीतायै श्वशुरो ददौ ॥१४॥
तथैवायुधजातानि भ्रातृभ्यां कवचानि च । रथोपस्थे प्रविन्यस्य सचर्म कठिनं च यत् ॥१५॥
अथो ज्वलनसंकाशं चामीकरविभूषितम् । तमारुरुहतुस्तूर्णं भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१६॥
सीतातृतीयानारूढान्दृष्ट्वा रथमचोदयत् । सुमन्त्रः संमतान्वान्वायुवेगसमाञ्जवे ॥१७॥
प्रयाते तु महारण्यं चिररात्राय राघवे । बभूव नगरे मूर्च्छा बलमूर्च्छा जनस्य च ॥१८॥
तत्समाकुलसंभ्रान्तं मत्तसंकुपितद्विपम् । हयसिञ्जितनिर्घोषं पुरमासीन्महास्वनम् ॥१९॥
ततः सबालवृद्धा सा पुरी परमपीडिता । राममेवाभिदुद्राव घर्मार्तः सलिलं यथा ॥२०॥
पार्श्वतः पृष्ठतश्चापि लम्बमानास्तदुन्मुखाः । बाष्पपूर्णमुखाः सर्वे तमूचुर्भृशनिःस्वनाः ॥२१॥
संयच्छ वाजिनां रश्मीन्सूत याहि शनैःशनैः । मुखं द्रक्ष्याम रामस्य दुर्दर्शं नो भविष्यति ॥२२॥
आयसं हृदयं नूनं राममातुरसंशयम् । यद्देवगर्भप्रतिमे वनं याति न भिद्यते ॥२३॥
कृतकृत्या हि वैदेही छायेवानुगता पतिम् । न जहाति रता धर्मं मेरुमर्कप्रभा यथा ॥२४॥
अहो लक्ष्मण सिद्धार्थः सततं प्रियवादिनम् । भ्रातरं देवसंकाशं यस्त्वं परिचरिष्यसि ॥२५॥
महत्येषा हि ते बुद्धिरेष चाभ्युदयो महान् । एष स्वर्गस्य मार्गश्च यदेनमनुगच्छसि ॥२६॥

वनवासके दिनोंकी गिनती करके पतिके साथ जानेवाली सीताको वस्त्र और आभूषण श्वसुरने दिये थे ॥१४॥ तथा राम लक्ष्मणको अस्त्र शस्त्र, कवच, चमड़ेसे मढ़ी पेटी और कुल्हाड़ी रथमें रख दी गयी ॥ १५ ॥ अनन्तर सोनेसे मढ़े हुए अग्निके समान प्रकाशमान उस रथपर दोनों भाई राम और लक्ष्मण चढ़े ॥ १६ ॥ सीताके साथ तीन आदमियोंको रथपर बैठे देखकर सुमन्त्रने सधे हुए और वायुके समान वेगवान घोड़ोंको हांका ॥ १७ ॥ रामचन्द्रके बहुत दिनों तक रहनेके लिए वनमें जानेपर समस्त नगर मूर्च्छित होगया, हाथी घोड़े भी मूर्छित होगये तथा जो लोग रामचन्द्रका अभिषेक देखने बाहरसे आये थे वे भी मूर्च्छित होगये॥१८॥नगरवासी व्याकुल होगये, घबड़ागये, हाथी पागल होगये, घोड़े हिनहिनाने लगे इस प्रकार समस्त नगर शब्दायमान होगया ॥१९॥वह समूची नगरी, बालक वृद्ध आदि सभी दुःखसे व्याकुल होकर रामचन्द्रके पीछे चले, जिस प्रकार घामसे व्याकुल मनुष्य जलकी ओर दौड़ा जाता है ॥२०॥ कोई बगलसे, कोई पीछेसे दौड़ता हुआ रामचन्द्रकी ओर टकटकी लगाये हुआ आँखोंमें आँसू भरकर जोर-जोरसे सुमन्त्रसे कहने लगा ॥ २१ ॥ सूत, घोड़ोंको रोको, धीरे-धीरे रथ ले जाओ, हम लोग रामचन्द्रका मुँह देखलें, क्योंकि अब रामचन्द्रका मुँह हम लोगोंके लिए दुर्लभ हो जायगा ॥ २२ ॥ रामचन्द्रकी माताकी छाती अवश्यही लोहेकी है, अतएव देवकुमारके समान रामचन्द्रके वन जानेपर भी वह नहीं फटती ॥ २३ ॥ यह सीता ही कृतार्थ हुई, इसीके मनोरथ पूरे हुए, जो यह छायाके समान पतिके साथ लगी हुई है, यह धर्मज्ञा सीता रामचन्द्रका साथ कभी नहीं छोड़ती, जैसे मेरु पर्वतको सूर्यकी प्रभा नहीं छोड़ती ॥२४॥ लक्ष्मण, तुम्हारे भी मनोरथ पूरे हुए, क्योंकि तुम प्रियवादी देवताके समान भाईकी सेवा कर सकोगे ॥ २५ ॥ रामचन्द्रके साथ जानेका तुम्हारा विचार प्रशंसनीय है। जो तुम रामचन्द्रके साथ जा रहे हो वह तुम्हारे सर्वाधिक सुखका मार्ग है और तुम्हारा बड़ा भारी अभ्युदय है ॥ २६ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं वदन्तस्ते सोढुं न शेकुर्बाष्पमागतम् । नरास्तमनुगच्छन्ति प्रियमिक्ष्वाकुनन्दनम् ॥२७॥
अथ राजा वृतः स्त्रीभिर्दीनाभिर्दीनचेतनः । निर्जगाम प्रियं पुत्रं द्रक्ष्यामीति ब्रुवन्गृहात् ॥२८॥
शुश्रुवे चाग्रतः स्त्रीणां रुदन्तीनां महास्वनः । यथा नादः करेणूनां बद्धे महति कुञ्जरे ॥२९॥
पिता हि राजा काकुत्स्थःश्रीमान्सन्नस्तदा बभौ। परिपूर्णः शशी काले ग्रहेणोपप्लुतो यथा ॥३०॥
स च श्रीमानचिन्त्यात्मा रामो दशरथात्मजः । सूतं संचोदयामास त्वरितं वाह्यतामिति ॥३१॥
रामो याहीति तं सूतं तिष्ठेति च जनस्तथा । उभयं नाशकत्सूतः कर्तुमध्वनि चोदितः ॥३२॥
निर्गच्छति महाबाहौ रामे पौरजनाश्रुभिः । पतितैरभ्यवाहितं प्रणनाश महीरजः ॥३३॥
रुदिताश्रुपरिद्यूनं हाहाकृतमचेतनम् । प्रयाणे राघवस्यासीत्पुरं परमपीडितम् ॥३४॥
सुस्राव नयनैः स्त्रीणामस्रमायाससंभवम् । मीनसंक्षोभचलितैः सलिलं पङ्कजैरिव ॥३५॥
दृष्ट्वा तु नृपतिः श्रीमानेकचित्तगतं पुरम् । निपपातैव दुःखेन कृत्तमूल इव द्रुमः ॥३६॥
ततो हलहलाशब्दो जज्ञे रामस्य पृष्ठतः । नराणां प्रेक्ष्य राजानं सीदन्तं भृशदुःखितम्॥३७॥
हा रामेति जनाः केचिद्राममातेति चापरे । अन्तःपुरसमृद्धं च क्रोशन्तं पर्यदेवयन् ॥३८॥
अन्वीक्षमाणो रामस्तु विषण्णं भ्रान्तचेतसम् । राजानं मातरं चैव ददर्शानुगतौ पथि ॥३९॥

इस प्रकार रामचन्द्रके रथके पीछे दौड़नेवाले तथा ऐसी बातें कहनेवाले मनुष्य अपने आँसू न रोक सके ॥ २ ॥ रामचन्द्रके चले जानेपर राजा दसरथ घरसे यह कहते हुए निकले कि मैं अपने प्रिय पुत्रको देखूँगा, उस समय वे ठीक-ठीक होशमें न थे, उनके साथकी स्त्रियाँ भी बहुत ही दुःखित थीं ॥ २८ ॥ राजाने अपने आगे रोती हुई स्त्रियोंके शब्द सुने, जैसे यूथपति हाथीके पकड़े जानेपर हाथिनियाँ चिघ्घाड़ मारती हैं ॥ २९ ॥ राजा दसरथ उस समय बिलकुल दुखी मालूम होते थे, जैसे राहुके द्वारा आक्रान्त पूर्णिमाका चन्द्रमा ॥ ३० ॥ दसरथ-पुत्र रामचन्द्र जिनके मनका पता सब लोगोंको नहीं लग सकता उन्होंने सारथीको शीघ्र रथ ले चलनेके लिये कहा ॥ ३१ ॥ रामचन्द्र सारथिको चलनेके लिये कहते थे और जन-समूह ठहरनेके लिये कहता था, इससे सारथि न तो रथ चलाही सका और न ठहराही सका ॥ ३२ ॥ रामचन्द्रके जानेपर नगरवासियोंके आँसूसे राहकी धूलि बैठ गयी ॥ ३३ ॥ वह नगर रामचन्द्रके जानेसे बहुतही दुःखी हो गया, सब लोग रोने लगे, खिन्न होगये, हाहाकार करने लगे और बेहोशसे होगये ॥ ३४ ॥ दुःखके कारण स्त्रियोंकी आँखोंसे आँसू बहने लगा, जिस प्रकार मछलीके आघातसे कम्पित कमलोंसे जल निकलता है ॥ ३५ ॥ राजा दसरथने जब समूचे नगरको समान दुःखसे दुःखी देखा तब वे दुःखसे गिर पड़े, जिस प्रकार कटा हुआ वृक्ष गिर पड़ता है ॥ ३६ ॥ राजा दसरथको इस प्रकार विह्वल देख रामचन्द्रके रथके पीछेवाले मनुष्योंने हाहाकार किया ॥ ३७ ॥ कोई हा राम, कोई हा राममाता, कहकर विलाप करने लगा जिससे वह भरा-पूरा घर भी रोने लगा ॥ ३८ ॥ रामचन्द्रने दुःखी और भ्रान्तचित्त पिता-माताको देखा, उन्होंने यह भी देखा कि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स बद्ध इव पाशेन किशोरो मातरं यथा। धर्मपाशेन संयुक्तः प्रकाशं नाभ्युदैक्षत ॥४०॥
पदातिनौ च यानार्हावदुःखार्हौ सुखोचितौ। दृष्ट्वा संचोदयामास शीघ्रं याहीति सारथिम् ॥४१॥
नहि तत्पुरुषव्याघ्रो दुःखजं दर्शनं पितुः। मातुश्च सहितुं शक्तस्तोत्रैर्नुन्न इव द्विपः ॥४२॥
प्रत्यागारमिवायान्ती सवत्सा वत्सकारणात्। बद्धवत्सा यथा धेनू राममाताभ्यधावत ॥४३॥
तथा रुदन्तीं कौसल्यां रथं तमनुधावतीम्। क्रोशन्तीं राम रामेति हा सीते लक्ष्मणेति च ॥४४॥
रामलक्ष्मणसीतार्थं स्रवन्तीं वारि नेत्रजम्। असकृत्प्रैक्षत स तां नृत्यन्तीमिव मातरम् ॥४५॥
तिष्ठेति राजा चुक्रोश याहि याहीति राघवः। सुमन्त्रस्य बभूवात्मा चक्रयोरिव चान्तरा ॥४६॥
नाश्रौषमिति राजानमुपालब्धोऽपि वक्ष्यसि। चिरं दुःखस्य पापिष्ठमिति रामस्तमब्रवीत् ॥४७॥
स रामस्य वचः कुर्वन्ननुज्ञाप्य च तं जनम्। व्रजतोऽपि हयाञ्शीघ्रं चोदयामास सारथिः ॥४८॥
न्यवर्तत जनो राज्ञो रामं कृत्वा प्रदक्षिणम्। मनसाप्याशु वेगेन न न्यवर्तत मानुषम् ॥४९॥
यमिच्छेत्पुनरायातं नैनं दूरमनुव्रजेत्। इत्यमात्या महाराजमूचुर्दशरथं वचः ॥५०॥

वे हमारे पीछे-पीछे आ रहे हैं ॥ ३९ ॥ जिस प्रकार बँधा हुआ घोड़ेका बछेड़ा अपनी माताकी ओर नहीं देख सकता, उसी प्रकार धर्मपाशसे बँधे हुए रामचन्द्र अपनी माताकी ओर स्पष्ट नहीं देख सके ॥ ४० ॥ सदा सवारीपर चलनेवाले, सदा सुख भोगनेवाले और जिनके दुःख पानेका कोई कारण नहीं ऐसे पिता-माताको पैदल आते देख रामचन्द्रने सारथिसे शीघ्र रथ हाँकनेके लिये कहा ॥४१॥ रामचन्द्र माता और पिताका यह दुःखदायक दर्शन नहीं सह सकते थे, जिस प्रकार अंकुश खाया हुआ हाथी पीछेकी ओर नहीं देखता ॥ ४२ ॥ जिस प्रकार बच्छेवाली गौ जिसका बच्छा बँधा हो वह अपने बच्छेके लिये घरकी ओर दौड़ती है उसी तरह रामचन्द्रकी माता कौसल्या रामचन्द्रकी ओर दौड़ीं ॥ ४३ ॥ रामचन्द्रके रथके पीछे कौसल्या रोती हुई दौड़ी, वे हा राम, हा सीते, हा लक्ष्मण कहकर विलाप करती जाती थीं ॥ ४४ ॥ राम, लक्ष्मण और सीताके लिए उनकी आँखोंसे जल निकल रहा था। रामचन्द्रने अपने रथके पीछे इधर-उधर घूमती हुई माताको कई बार देखा ॥ ४५ ॥ राजा दसरथने सुमन्त्रसे ठहरनेके लिये कहा और रामचन्द्रने जानेके लिये। इस प्रकार सुमन्त्र दोपहियोंकी बीचकी दशामें पड़ गये ॥४६॥ रामचन्द्रने कहा—इस दुःखको और अधिक देर तक रहने देना अच्छा नहीं, तुम चलो, यदि राजा पूछें कि तुमने मेरे कहनेपर भी रथ क्यों नहीं खड़ा किया तो कह देना कि मैंने आपकी बात सुनी ही नहीं ॥ ४७ ॥ जनसमूहसे आज्ञा पाकर सारथिने रामचन्द्रकी आज्ञाका पालन किया, उन्होंने चलते हुए घोड़ोंको और जोरसे चलनेके लिये हाँका ॥ ४८ ॥ रामचन्द्रकी प्रदक्षिणा करके सब लोग लौट गये, पर उनका मन नहीं लौटा और उनके आँसू बन्द नहीं हुए ॥ ४९ ॥ मन्त्रियोंने राजा दसरथसे कहा जिसके शीघ्र लौट आनेकी अभिलाषा हो उसको दूर तक पहुंचाने नहीं जाना चाहिये ॥ ५० ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तेषां वचः सर्वगुणोपपन्नः प्रस्विन्नगात्रः प्राविषण्णरूपः ।
निशम्य राजा कृपणः सभार्यो व्यवस्थितस्तं सुतमीक्षमाणः ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः ॥४०॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ४१

तस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्रे निष्क्रामति कृताञ्जलौ । आर्तशब्दो हि संजज्ञे स्त्रीणामन्तःपुरे महान् ॥ १ ॥
अनाथस्य जनस्यास्य दुर्बलस्य तपस्विनः । यो गतिः शरणं चासीत्स नाथः क्व नु गच्छति ॥ २ ॥
न क्रुध्यत्याभिशस्तोऽपि क्रोधनीयानि वर्जयन् । क्रुद्धान्प्रसादयन्सर्वान्समदुःखः क्व गच्छति ॥ ३ ॥
कौसल्यायां महातेजा यथा मातरि वर्तते । तथा यो वर्ततेऽस्मासु महात्मा क्व नु गच्छति॥ ४ ॥
कैकेय्या क्लिश्यमानेन राज्ञा संचोदितो वनम् । परित्राता जनस्यास्य जगतः क्व नु गच्छति॥ ५ ॥
अहो निश्चेतनो राजा जीवलोकस्य संशयम् । धर्म्यं सत्यव्रतं रामं वनवासे प्रवत्स्यति ॥ ६ ॥
इति सर्वा महिष्यस्ता विवत्सा इव धेनवः । रुरुदुश्चैव दुःखार्ताः सस्वरं च विचुक्रुशुः ॥ ७ ॥
स तमन्तःपुरे घोरमार्तशब्दं महीपतिः । पुत्रशोकाभिसंतप्तः श्रुत्वा चासीत्सुदुःखितः ॥ ८ ॥
नाग्निहोत्राण्यहूयन्त सूर्यश्चान्तरधीयत । व्यसृजन्कवलान्नागा गावो वत्सान्न पाययन् ॥ ९ ॥

सर्वगुणयुक्त राजा बहुतही दुःखी थे, उनके शरीरसे पसीना निकल रहा था, मन्त्रियोंके वचन सुनकर पुत्रको देखते हुए कौसल्याके साथ वहीं बैठ गये ॥ ५१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका चालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४० ॥

पिता-माताके लिये हाथ जोड़े हुए रामचन्द्र जब राजमहलसे निकले उस समय सब स्त्रियाँ दुःखसे एक बार चिल्ला उठीं ॥ १ ॥ अनाथ मनुष्योंका जो रक्षक है, दीन दुर्बलोंका जो आश्रयदाता है, वह हमलोगोंका स्वामी कहाँ जा रहा है ॥ २ ॥ झूठी निन्दा करनेपर भी जो क्रोध नहीं करता, दूसरोंको क्रोध उत्पन्न करनेवाले कार्योंको नहीं करता, जो कुपितोंको प्रसन्न करता है, जो सबके दुःखसे दुःखी होता है वह कहाँ जाता है ॥ ३ ॥ जो अपनी माता कौसल्याके साथ जैसा व्यवहार करता है, वैसाही व्यवहार हम लोगोंके साथ भी करता है वह महात्मा कहा जाता है ॥ ४ ॥ केकयीके कहनेसे राजाने उसे वन भेज दिया, वह हमारा अथवा समस्त जगत्का रक्षक कहाँ जा रहा है ॥ ५ ॥ राजा दसरथ बड़ेही अज्ञानी हैं जो सबके आश्रय धर्मात्मा सत्यव्रत रामचन्द्रको वन भेज रहे हैं ॥ ६ ॥ इस प्रकार वे सब रानियाँ दुःखसे पीड़ित होकर वत्सहीन गौके समान रोती थीं और अपने भाग्यकी निन्दा करती थीं ॥ ७ ॥ राजमहलके इस घोर दुखित शब्दको सुनकर पुत्रशोकसे पीड़ित राजा और भी दुःखी हुए ॥८॥ उस दिन अग्निहोत्रियोंने हवन नहीं किये सूर्य अस्त होगये, हाथियोंने कवल (भूल) छोड़ दिये, गौओंने बच्छे नहीं पिलाये ॥९॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्रिशङ्कुकुलोद्भिताङ्गश्च बृहस्पतिबुधावपि । दारुणाःसोममभ्येत्य ग्रहाः सर्वे व्यवस्थिताः ॥१०॥
नक्षत्राणि गतार्चींषि ग्रहाश्च गततेजसः । विशाखाश्च सधूमाश्च नभसि प्रचकाशिरे ॥११॥
कालिकानिलवेगेन महोदधिरिवोत्थितः । रामे वनं प्रव्रजिते नगरं प्रचचाल तत् ॥१२॥
दिशः पर्याकुलाः सर्वास्तिमिरेणेव संवृताः । न ग्रहो नापि नक्षत्रं प्रचकाशे न किंचन ॥१३॥
अकस्मान्नागरः सर्वो जनो दैन्यमुपागमत् । आहारे वा विहारे वा न काश्चिदकरोन्मनः ॥१४॥
शोकपर्यायसंतप्तः सततं दीर्घमुच्छ्वसन् । अयोध्यायां जनः सर्वश्चुक्रोश जगतीपतिम् ॥१५॥
वाष्पपर्याकुलमुखो राजमार्गगतो जनः । न हृष्टो लभ्यते कश्चित्सर्वः शोकपरायणः ॥१६॥
न वाति पवनः शीतो न शशी सौम्यदर्शनः । न सूर्यस्तपते लोकं सर्वं पर्याकुलं जगत ॥१७॥
अनर्थिनः सुताः स्त्रीणां भर्तारो भ्रातरस्तथा । सर्वे सर्वं परित्यज्य राममेवान्वचिन्तयन् ॥१८॥
ये तु रामस्य सुहृदः सर्वे ते मूढचेतसः । शोकभारेण चाक्रान्ताः शयनं नैव भेजिरे ॥१९॥

ततस्त्वयोध्या रहिता महात्मना पुरंदरेणेव मही सपर्वता ।
चचाल घोरं भयशोकदीपिता सनागयोधाश्वगणा ननाद च ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥४१॥

त्रिशंकु (दक्षिण दिशाका एक नक्षत्र), मङ्गल, बुध, बृहस्पति तथा अन्य क्रूरग्रह शनिश्चर आदि, चन्द्रमाके पास आकर स्थिर हुए अर्थात् वे भी दुःखी हुए ॥ १० ॥ नक्षत्रोंकी दीप्ति धीमी होगयी, ग्रहोंका तेज जाता रहा, वे सब अपने-अपने स्थानोंसे हटे हुए और धूँआके समान धुन्धले मालुम पड़ने लगे ॥ ११ ॥ मेघयुक्त वायुके द्वारा उठाये हुए समुद्रके समान रामचन्द्रके वन जानेपर वह समस्त नगर क्षुभित होगया ॥ १२ ॥ दिशायें व्याकुल हुईं और वे अन्धकारसे ढँक गयीं, ग्रह तथा नक्षत्रोंने थोड़ा भी प्रकाश न किया ॥ १३ ॥ अकस्मात् समस्त नगरही दुःखी हो गया, आहार विहारकी ओर किसीका भी ध्यान न रहा ॥ १४ ॥ शोक परम्परासे पीड़ित अयोध्याका समस्त जनसमूह दीर्घ उच्छ्वास लेता हुआ राजा दसरथकी ही निन्दा करने लगा ॥ १५ ॥ सड़कपर चलनेवाले सभी दुःखी थे, सभीके मुँह आँसूसे भींग गये थे, कोई भी वहाँ प्रसन्न नहीं था ॥ १६ ॥ हवा ठंढ़ी नहीं चलती थी, चन्द्रमा सुन्दर नहीं दीखता था, सूर्य नहीं तपता था, सभी व्याकुल होगये थे ॥ १७ ॥ बच्चे माताओंको, पति स्त्रियोंको, भाई भाईको भूलकर केवल रामको ही सोचने लगे ॥ १८ ॥ जो रामचन्द्रके मित्र थे वे तो बिलकुल विमूढ़ होगये थे, वे दुःखके कारण सोही न सके ॥ १९ ॥ इन्द्रसे जिस प्रकार पर्वतयुक्त पृथिवी काँप जाती है, उसी प्रकार रामचन्द्रके बिना अयोध्या नगरी काँप गयी, भय शोक छा गया, घोड़े, हाथी चिंघाड़ मारने लगे ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एकतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४१ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्विचत्वारिंश सर्गः ४२

यावत्तु निर्यतस्तस्य रजोरूपमदृश्यत । नैवेक्ष्वाकुवरस्तावत्संजहारात्मचक्षुषी ॥ १ ॥
यावद्राजा प्रियं पुत्रं पश्यत्यत्यन्तधार्मिकम् । तावद्व्यवर्धतेवास्य धरण्यां पुत्रदर्शने ॥ २ ॥
न पश्यति रजोऽप्यस्य यदा रामस्य भूमिपः । तदार्तश्च विषण्णश्च पपात धरणीतले ॥ ३ ॥
तस्य दक्षिणमन्वागात्कौसल्या बाहुमङ्गना । परं चास्यान्वगात्पार्श्वं कैकेयी सा सुमध्यमा ॥ ४ ॥
तां नयेन च संपन्नो धर्मेण विनयेन च । उवाच राजा कैकेयीं समीक्ष्य व्यथितेन्द्रियः ॥ ५ ॥
कैकेयि मामकाङ्गानि मा स्प्राक्षीः पापनिश्चये । नाहं त्वां द्रष्टुमिच्छामि न भार्या न च बान्धवी ॥ ६ ॥
ये च त्वामनुजीवन्ति नाहं तेषां न ते मम । केवलार्थपरां हि त्वां त्यक्तधर्मां त्यजाम्यहम् ॥ ७ ॥
अगृह्णां यच्च ते पाणिमग्निं पर्यणयं च यत । अनुजानामि तत्सर्वमस्मिंल्लोके परत्र च ॥ ८ ॥
भरतश्चेत्प्रतीतः स्याद्राज्यं प्राप्यैतदव्ययम् । यन्मे स दद्यात्पित्र्यं मा मां तदुत्तमागमत् ॥ ९ ॥
अथ रेणुसमुद्ध्वस्तं समुत्थाप्य नराधिपम् । न्यवर्तत तदा देवी कौसल्या शोककर्शिता ॥ १० ॥
हत्वेव ब्राह्मणं कामात्स्पृष्ट्वाग्निमिव पाणिना । अन्वतप्यत धर्मात्मा पुत्रं संचिन्त्य राघवम् ॥ ११ ॥
निवृत्त्यैव निवृत्त्यैव सीदतो रथवर्त्मसु । राज्ञो नातिबभौ रूपं ग्रस्तस्यांशुमतो यथा ॥ १२ ॥
विललाप स दुःखार्तः प्रियं पुत्रमनुस्मरन् । नगरान्तमनुप्राप्तं बुद्ध्वा पुत्रमथाब्रवीत् ॥ १३ ॥

वन जानेवाले रामचन्द्रके रथकी धूल जबतक दिखायी पड़ती रही तबतक राजा दसरथने उधरसे न मन हटाया और न आँखेंही हटायीं ॥ १ ॥ जबतक अत्यन्त धार्मिक प्रिय पुत्रके रथकी धूल दीख पड़ती रही, तबतक राजाका शरीर मानो पृथिवीपर बढ़ रहा था अर्थात् वे उठ-उठकर धूल देखते रहे ॥ २ ॥ जब रामचन्द्रके रथकी धूल भी न दिखायी पड़ने लगी, तब राजा बहुत ही दुःखी और व्याकुल हुए और पृथिवीपर गिर पड़े ॥ ३ ॥ राजाको उठानेके लिये कौसल्या उनकी दाहिनी बाहुके पास गयीं और सुन्दरी केकयी उनके बायीं बाहुके पास गयीं ॥ ४ ॥ नय, विनय और धर्म-से युक्त राजा केकयीको देखकर बड़े दुःखसे उससे बोले ॥ ५ ॥ पापिन केकयी, तुम मेरे अङ्गों को मत छुओ, क्योंकि तुम न तो मेरी स्त्री हो और न बन्धु ॥ ६ ॥ जो लोग तुम्हारे पक्षके हैं उन लोगोंका भी मैं कोई नहीं हूँ और न वे ही मेरे हैं, तुमने धनके लिये धर्म छोड़ा है, अतएव मैं तुम्हारा त्याग करता हूँ ॥ ७ ॥ जो मैंने तुम्हारा पाणिग्रहण किया है, जो तुम्हारे साथ अग्निकी प्रदक्षिणा की है, उन सबका भी इस लोक तथा परलोकके लिये मैं त्याग करता हूँ ॥ ८ ॥ इस समृद्ध राज्यको पाकर भरत यदि प्रसन्न हो तो पिताके लिये जो पिण्डदान आदि करे वह भी मुझे न मिले ॥ ९ ॥ तदनन्तर धूलिमें पड़े हुए राजाको उठाकर शोकाकुल कौसल्या लौटी ॥ १० ॥ राजचन्द्रका सोच कर धर्मात्मा राजा दसरथ बहुत ही दुःखित हुए, जिस प्रकार ब्रह्महत्या करनेपर तथा हाथसे आग छूनेपर मनुष्य दुःखी होता है ॥ ११ ॥ राजा पुनः-पुनः फिर कर रथमार्गको देखकर नितान्त दुःखी होते थे। उस समय राहुग्रस्त चन्द्रमाके समान उनका रूप सुन्दर नहीं मालूम पड़ता था ॥ १२ ॥ प्रिय पुत्रका स्मरण करके राजा दसरथ विलाप करने लगे। रामचन्द्रका रथ नगरके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाहनानां च मुख्यानां वहतां तं ममात्मजम् । पदानि पथि दृश्यन्ते स महात्मा न दृश्यते ॥१४॥
यः सुखेनोपधानेषु शेते चन्दनरूषितः । वीज्यमानो महार्हाभिः स्त्रीभिर्मम सुतोत्तमः ॥१५॥
स नूनं क्वचिदेवाद्य वृक्षमूलमुपाश्रितः । काष्ठं वा यदि वाश्मानमुपधाय शयिष्यते ॥१६॥
उत्थास्यति च मेदिन्याः कृपणः पांसुगुण्ठितः । विनिःश्वसन्प्रस्रवणात्करेणूनामिवर्षभः ॥१७॥
द्रक्ष्यन्ति नूनं पुरुषा दीर्घबाहुं वनेचराः । राममुत्थाय गच्छन्तं लोकनाथमनाथवत् ॥१८॥
सा नूनं जनकस्येष्टा सुता सुखसदोचिता । कण्टकाक्रमणक्रान्ता वनमद्य गमिष्यति ॥१९॥
अनभिज्ञा वनानां सा नूनं भयमुपेष्यति । श्वापदानर्दितं श्रुत्वा गम्भीरं रोमहर्षणम् ॥२०॥
सकामा भव कैकेयि विधवा राज्यमावस । नहि तं पुरुषव्याघ्रं विना जीवितुमुत्सहे ॥२१॥
इत्येवं विलपन्राजा जनौघेनाभिसंवृतः । अपस्नात इवारिष्टं प्रविवेश गृहोत्तमम् ॥२२॥
शून्यचत्वरवेश्मान्तां संवृतापणवेदिकाम् । क्लान्तदुर्बलदुःखार्तां नात्याकीर्णमहापथाम् ॥२३॥
तामवेक्ष्य पुरीं सर्वां राममेवानुचिन्तयन् । विलपन्प्राविशद्राजा गृहं सूर्य इवाम्बुदम् ॥२४॥
महाह्रदमिवाक्षोभ्यं सुपर्णेन हृतोरगम् । रामेण रहितं वेश्म वैदेह्या लक्ष्मणेन च ॥२५॥
अथ गद्गदशब्दस्तु विलपन्वसुधाधिपः । उवाच मृदु मन्दार्थं वचनं दीनमस्वरम् ॥२६॥

बाहर चला गया होगा यह समझकर वे बोले ॥ १३ ॥ मेरे पुत्रको लेकर जो घोड़े गये हैं, उनका चिह्न तो दीख पड़ता है, पर वे महात्मा रामचन्द्र नहीं दीख पड़ते ॥ १४ ॥ जो रामचन्द्र चन्दनसे भूषित होकर तकिया लगाकर सोते थे और उत्तम स्त्रियां जिनको पंखा करती थीं ॥ १५ ॥ वे आज अवश्य ही किसी न किसी वृक्षके नीचे होंगे और लकड़ी या पत्थरकी तकिया बनाकर सोते होंगे ॥ १६ ॥ वे प्रातःकाल धूलसे लिपटे हुए दीन अवस्थामें उठेंगे, जिस प्रकार झरनेके पाससे सांस छोड़ता हुआ हाथियोंका दलपति उठता है ॥ १७ ॥ लोकनाथ महाबाहु रामचन्द्रको अनाथके समान जाते हुए वनचर लोग देखेंगे ॥ १८ ॥ यह जनककी प्यारी पुत्री सीता जिसने सदा सुख भोगा है वह आज कटीले रास्तेमें चलनेसे दुखिनी होकर वन जायगी ॥ १९ ॥ उसने वन देखा नहीं है, अवश्य ही वह बाघ आदिके रोंगटे खड़े करनेवाले शब्द सुनकर डरेगी ॥ २० ॥ केकयि, तुम्हारे मनोरथ पूरे हों, विधवा होकर तुम राज्य करो, क्योंकि पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रके बिना तो मैं जी नहीं सकता ॥ २१ ॥ इस प्रकार राजा दसरथ विलाप करते रहे, बहुतसे लोग वहां उनको घेरे खड़े थे, वे मृतकस्नान किये हुएके समान बड़े दुःखसे वहांसे घरमें गये ॥ २२ ॥ घरके बाहरका चौतरा और घरका भीतरी भाग भी शून्य है, बाजार बन्द है, जो लोग नगरमें थे वे भी थके, दुःखी और दुर्बल हो गये थे, सड़कोंपर कहीं-कहीं कुछ लोग दीख पड़ते हैं ॥ २३ ॥ नगरकी ऐसी अवस्था देखकर रामचन्द्रको ही सोचते हुए तथा विलाप करते हुए राजा अपने घरमें गये, जिस प्रकार सूर्य मेघमें चले जाते हैं ॥२४॥ जिस अक्षोभ्य बड़े तालाबमेंसे गरुड़नेसांपको निकाल लिया हो उसके समान राम, लक्ष्मण और सीतासे सूने घरमें उन्होंने प्रवेश किया ॥२५॥ राजा दसरथका गला भर आया था, वे विलाप कर रहे थे, वे धीरेसे थोड़े अर्थवाले शब्द दुःखसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कौसल्याया गृहं शीघ्रं राममातुर्नयन्तु माम् । नह्यन्यत्र ममाश्वासो हृदयस्य भविष्यति ॥२७॥
इति ब्रुवन्तं राजानमनयन्द्वारदर्शिनः । कौसल्याया गृहं तत्र न्यवेश्यत विनीतवत् ॥२८॥
ततस्तत्र प्रविष्टस्य कौसल्याया निवेशनम् । अधिरुह्यापि शयनं बभूव लुलितं मनः ॥२९॥
पुत्रद्वयविहीनं च स्नुषया च विवर्जितम् । अपश्यद्भवनं राजा नष्टचन्द्रमिवाम्बरम् ॥३०॥
तच्च दृष्ट्वा महाराजो भुजमुद्यम्य वीर्यवान् । उच्चैःस्वरेण प्राक्रोशद्धा राम विजहासि नौ ॥३१॥
सुखिता बत तं कालं जीविष्यन्ति नरोत्तमाः । परिष्वजन्तो ये रामं द्रक्ष्यन्ति पुनरागतम् ॥३२॥
अथ रात्र्यां प्रपन्नायां कालरात्र्यामिवात्मनः । अर्धरात्रे दशरथः कौसल्यामिदमब्रवीत् ॥३३॥
न त्वां पश्यामि कौसल्ये साधु मां पाणिना स्पृश । रामं मेऽनुगता दृष्टिरद्यापि न निवर्तते ॥३४॥

तं राममेवानुविचिन्तयन्तं समीक्ष्य देवी शयने नरेन्द्रम् ।
उपोपविश्याधिकमार्तरूपा विनिःश्वसन्तं विललाप कृच्छ्रम् ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

बोले ॥ २६ ॥ रामचन्द्रकी माता कौसल्याके घरमें मुझे ले चलो, और जगह मेरे हृदयको शान्ति नहीं मिलेगी ॥ २७ ॥ राजाके ऐसा कहनेपर द्वारपाल राजाको उठाकर कौसल्याके घरमें ले आये और वहां उन लोगोंने उन्हें रख दिया ॥ २८ ॥ वहां कौसल्याके घरमें जानेपर और पलंगपर सोनेपर भी उनका मन चञ्चल ही रहा, शान्ति न मिली ॥ २९ ॥ राजाने दोनों पुत्रों और पुत्रवधूसे हीन अपने घरको चन्द्रहीन आकाशके समान देखा ॥ ३० ॥ यह देखकर पराक्रमी राजा हाथ उठाकर बड़े जोरसे रो पड़े, उन्होंने कहा—हा राम, हम दोनोंको-मुझको और कौसल्याको-छोड़ रहे हो ॥ ३१ ॥ जो रामचन्द्रके लौटनेपर उनका आलिङ्गन करेंगे वे ही मनुष्य सुखपूर्वक जी सकेंगे, अर्थात् उस समय तक मैं न जी सकूंगा ॥ ३२ ॥ रात हुई जो दसरथके लिए काल रात्रिके समान थी, आधीरात बीतनेपर राजा दसरथने कौसल्यासे कहा ॥ ३३ ॥ कौसल्ये, मैं तुम्हें देख नहीं रहा हूँ, तुम जोरसे मुझे हाथसे छूओ, मेरी दृष्टि रामके साथ गयी है, वह लौटी नहीं ॥ ३४ ॥ पलँगपर पड़े हुए राजा रामचन्द्रको ही सोच रहे हैं और बड़े दुखसे सांस ले रहे हैं यह देखकर कौसल्या बहुत दुःखित हुईं और वे राजाके पास बैठकर विलाप करने लगीं ॥ ३५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका बयालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४२ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ४३

ततः समीक्ष्य शयने सन्नं शोकेन पार्थिवम् । कौसल्या पुत्रशोकार्ता तमुवाच महीपतिम् ॥ १ ॥
राघवे नरशार्दूले विषं मुक्त्वा हि जिह्मगा । विचरिष्यति कैकेयी निर्मुक्तेव हि पन्नगी ॥ २ ॥
विवास्य रामं सुभगा लब्धकामा समाहिता । त्रासयिष्यति मां भूयो दुष्टाहिरिव वेश्मनि ॥ ३ ॥
अथास्मिन्नगरे रामश्चरन्भैक्षं गृहे वसेत् । कामकारो वरं दातुमपि दास ममात्मजम् ॥ ४ ॥
पातयित्वा तु कैकेय्या रामं स्थानाद्यथेष्टतः । प्रविद्धो रक्षसां भागः पर्वणीवाहिताग्निना ॥ ५ ॥
नागराजगतिर्वीरो महाबाहुर्धनुर्धरः । वनमाविशते नूनं सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥ ६ ॥
वने त्वदृष्टदुःखानां कैकेय्यनुमते त्वया । त्यक्तानां वनवासाय कान्यावस्था भविष्यति ॥ ७ ॥
ते रत्नहीनास्तरुणाः फलकाले विवासिताः । कथं वत्स्यन्ति कृपणाः फलमूलैः कृताशनाः ॥ ८ ॥
अपीदानीं स कालः स्यान्मम शोकक्षयः शिवः । सहभार्यं सहभ्रात्रा पश्येयमिह राघवम् ॥ ९ ॥
श्रुत्वैवोपस्थितौ वीरौ कदायोध्या भविष्यति । यशस्विनी हृष्टजना सूच्छ्रितध्वजमालिनी ॥१०॥
कदा प्रेक्ष्य नरव्याघ्रावरण्यात्पुनरागतौ । भविष्यति पुरी हृष्टा समुद्र इव पर्वणि ॥११॥
कदायोध्यां महाबाहुः पुरीं वीरः प्रवेक्ष्यति । पुरस्कृत्य रथे सीतां वृषभो गोवधूमिव ॥१२॥

पुत्रशोकार्त कौसल्याने देखा कि राजा दशरथ शोकसे खिन्न होकर पलंगपर पड़े हुए हैं, यह देखकर वे राजासे बोलीं ॥ १ ॥ कुटिला केकयी नरश्रेष्ठ रामचन्द्रपर विष छोड़कर—उन्हें अपनी कुटिलताका लक्ष्य बनाकर केचुलीहीन सांपिनके समान आनन्दपूर्वक विचरण करेगी ॥ २ ॥ पतिको अपने वशमें रखनेवाली केकयीका रामचन्द्रके निर्वासनसे मनोरथ पूरा हुआ, घरके दुष्ट साँपके समान अब वह मुझे दुःख देगी ॥ ३ ॥ राज्य न मिला न सही, इसी नगरमें रामचन्द्र रहते और भिक्षासे अपना निर्वाह करते, यह वनवाससे अच्छा था । अथवा मेरे पुत्रको भरतका दास बनकर ही रहनेका वर दे दिया जाता ॥४॥ केकयीने रामचन्द्रको उनके स्थानसे अच्छी तरह गिरा दिया, जिस प्रकार पर्वमें आहिताग्निके द्वारा देवताओंको दिया जानेवाला भाग राक्षसोंको दिया जाता है उसी प्रकार रामचन्द्र भी राक्षसोंके स्थानमें भेज दिये गये हैं ॥५॥ गजगति महाधनुर्धर वीर रामचन्द्रने अवश्यही सीता और लक्ष्मणके साथ वनमें प्रवेश किया होगा॥६॥ केकयीके विचारके अनुसार चलकर दुःखका नाम भी न जाननेवाले राम, लक्ष्मण और सीताको आपने वन भेज दिया, अब वनवासके दुःख सहनेके अतिरिक्त उनकी और क्या दशा होगी ॥ ७ ॥ उनकी जवानी थी, भोग करनेका समय था, इसी समय सब उत्तम वस्तुओंसे रहित करके वे वन भेज दिये गये, वे विचारे फल-मूल खाकर किस प्रकार गुजर करते होंगे ॥ ८ ॥ भाई और स्त्रीके साथ रामचन्द्रको मैं देखूं ऐसा मेरे दुःखोंका अन्त करनेवाला कल्याणमय समय क्या आज होगा ॥ ९ ॥ राम और लक्ष्मण आये यह सुनकर अयोध्या नगरी कब यशस्विनी होगी, कब यहांके वासी प्रसन्न दीख पड़ेंगे और कब यहांके घरोंपर ध्वजाएँ फहरायेंगी ॥ १० ॥ कब वनसे लौटे हुए राम और लक्ष्मणको देखकर यह नगरी प्रसन्न होगी, जिस प्रकार चन्द्रमाको देखकर समुद्र प्रसन्न होता है ॥ ११ ॥ गौको सांडके समान सीताको रथपर आगे करके महाबाहु वीर रामचन्द्र कब

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कदा प्राणिसहस्राणि राजमार्गे ममात्मजौ । लाजैरवकरिष्यन्ति प्रविशन्तावरिंदमौ ॥१३॥
प्रविशन्तौ कदायोध्यां द्रक्ष्यामि शुभकुण्डलौ । उदग्रायुधनिस्त्रिंशौ सशृङ्गाविव पर्वतौ ॥१४॥
कदा सुमनसः कन्या द्विजातीनां फलानि च । प्रदिशन्तः पुरीं हृष्टाः करिष्यन्ति प्रदक्षिणम् ॥१५॥
कदा परिणतो बुद्ध्या वयसा चामरप्रभः । अभ्युपैष्यति धर्मात्मा सुवर्ष इव लालयन् ॥१६॥
निःसंशयं मया मन्ये पुरा वीरं कदर्यया । पातुकामेषु वत्सेषु मातॄणां शातिताः स्तनाः ॥१७॥
साहं गौरिव सिंहेन विवत्सा वत्सला कृता । कैकेय्या पुरुषव्याघ्र बालवत्सेव गौर्बलात् ॥१८॥
नहि तावद्गुणैर्जुष्टं सर्वशास्त्रविशारदम् । एकपुत्रा विनापुत्रमहं जीवितुमुत्सहे ॥१९॥
न हि मे जीविते किंचित्सामर्थ्यमिह कल्प्यते । अपश्यन्त्याः प्रियं पुत्रं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥२०॥
अयं हि मां दीपयतेऽद्य वह्निस्तनूजशोकप्रभवो महाहितः ।
महीमिमां रश्मिभिरुत्तमप्रभो यथा निदाघे भगवान्दिवाकरः ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

अयोध्या नगरीमें प्रवेश करेंगे ॥ १२ ॥ कब शत्रु-संहारकारी मेरे दोनों पुत्रोंपर अयोध्या नगरीमें प्रवेश करनेके समय हजारों मनुष्य लावाका अभिषेक करेंगे ॥ १३ ॥ कब मैं सुन्दर कुण्डल धारण करनेवाले शस्त्र और तलवारको ऊपर उठाये रखनेवाले अतएव शिखरवाले पर्वतके समान अपने दोनों पुत्रोंको अयोध्यामें प्रवेश करते हुए देखूंगी ॥ १४ ॥ कब देवता तथा ब्राह्मणोंकी कन्याएँ रामचन्द्रको फल देती हुईं प्रसन्नता पूर्वक इस नगरीकी प्रदक्षिणा करेंगी ॥ १५ ॥ बुद्धिसे श्रेष्ठ और उमरमें देवताके समान २५ वर्षके रामचन्द्र कब सुन्दर वृष्टिके समान सब लोगोंको प्रसन्न करते हुए आवेंगे ॥ १६ ॥ वीर, कदर्य मैंने माताके स्तन पीना चाहनेवाले बच्छोंकी माताका स्तन काट दिया है, उन्हे अपनी माताका स्तन पीने नहीं दिया है ॥ १७ ॥ इसीसे बच्चेमें प्रेम रखनेवाली और छोटे बच्छेवाली गौ जिस प्रकार सिंहके द्वारा वत्सहीन कर दी जाती हैं, उसी प्रकार हे पुरुषसिंह दसरथ, केकयीके द्वारा मैं भी वत्सहीन कर दी गयी हूँ ॥ १८ ॥ मेरा पुत्र सब गुणोंसे भरा-पूरा था, सब शास्त्रोंका ज्ञाता था और वही एक मेरा पुत्र था, उसके विना मैं जी नहीं सकती हूँ ॥ १९ ॥ अपने प्रिय पुत्र रामको और महाबलवान् लक्ष्मणको विना देखे मेरे जीनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है, कोई भी मुझे जिला नहीं सकता ॥ २० ॥ महा अहितकारी पुत्रशोकसे उत्पन्न अग्नि मुझे जला रही है, जिस प्रकार गरमीके दिनोंमें भगवान् सूर्य अपनी किरणोंसे इस पृथिवीको जलाते हैं ॥ २१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका तैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ४४

विलपन्तीं तथा तां तु कौसल्यां प्रमदोत्तमाम् । इदं धर्मे स्थिता धर्म्यं सुमित्रा वाक्यमब्रवीत ॥ १ ॥
तवार्ये सद्गुणैर्युक्तः स पुत्रः पुरुषोत्तमः । किं ते विलपितेनैवं कृपणं रुदितेन वा ॥ २ ॥
यस्तवार्ये गतः पुत्रस्त्यक्त्वा राज्यं महाबलः । साधु कुर्वन्महात्मानं पितरं सत्यवादिनम् ॥ ३ ॥
शिष्टैराचरिते सम्यक्शश्वत्प्रेत्य फलोदये । रामो धर्मे स्थितः श्रेष्ठो न स शोच्यः कदाचन ॥ ४ ॥
वर्तते चोत्तमां वृत्तिं लक्ष्मणोऽस्मिन्सदानघः । दयावान्सर्वभूतेषु लाभस्तस्य महात्मनः ॥ ५ ॥
अरण्यवासे यद्दुःखं जानन्त्येव सुखोचिता । अनुगच्छति वैदेही धर्मात्मानं तवात्मजम् ॥ ६ ॥
कीर्तिभूतां पताकां यो लोके भ्रामयति प्रभुः । धर्मः सत्यव्रतपरः किं न प्राप्तस्तवात्मजः ॥ ७ ॥
व्यक्तं रामस्य विज्ञाय शौचं माहात्म्यमुत्तमम् । न गात्रमंशुभिः सूर्यः संतापयितुमर्हति ॥ ८ ॥
शिवः सर्वेषु कालेषु काननेभ्यो विनिःसृतः । राघवं युक्तशीतोष्णः सेविष्यति सुखोऽनिलः ॥ ९ ॥
शयानमनघं रात्रौ पितेवाभिपरिष्वजन् । घर्मघ्नः संस्पृशञ्शीतश्चन्द्रमा ह्लादयिष्यति ॥ १० ॥
ददौ चास्त्राणि दिव्यानि यस्मै ब्रह्मा महौजसे । दानवेन्द्रं हतं दृष्ट्वा तिमिध्वजसुतं रणे ॥ ११ ॥
स शूरः पुरुषव्याघ्रः स्वबाहुबलमाश्रितः । असंत्रस्तो ह्यरण्येऽसौ वेश्मनीव निवत्स्यते ॥ १२ ॥
यस्येषुपथमासाद्य विनाशं यान्ति शत्रवः । कथं न पृथिवी तस्य शासने स्थातुमर्हति ॥ १३ ॥

इस प्रकार स्त्रीश्रेष्ठ कौसल्या विलाप कर रही हैं यह देखकर धर्ममें स्थिर सुमित्रा धर्मयुक्त यह वचन बोली ॥ १ ॥ आर्ये, तुम्हारा वह पुत्र सद्गुणोंसे युक्त है, उसके लिये विलाप करने और दीनतापूर्वक रोनेसे क्या लाभ ? ॥२॥ आर्ये, महाबलवान आपके जिस पुत्रने राज्य छोड़कर सत्यवादी अपने पिताके संकल्पको सत्य बनाया है, ॥ ३ ॥ शिष्टों धर्मात्माओंने जिसका विधिपूर्वक सदा पालन किया है और परलोकमें जिसका फल प्राप्त होता है उस धर्ममें स्थित रामचन्द्र किसी प्रकार भी शोचनीय नहीं है । ४ । सदा पापरहित तथा सब प्राणियोंमें दयावान लक्ष्मण रामचन्द्रकी सेवा करते हैं और महात्मा लक्ष्मणको यह बड़ा लाभ है ॥५॥ सुख भोगनेवाली पार्वती वनके दुःखोंको जानती ही है, वह भी तुम्हारे धर्मात्मा पुत्रके साथ जा रही है ॥६॥ जो रामचन्द्र अपनी कीर्तिका पताका लोकमें फहरा रहे हैं वे साक्षात् धर्मस्वरूप हैं क्योंकि उन्होंने सत्यव्रत धारण किया है। कहो—तुम्हारे पुत्रने कौनसा कल्याण नहीं पाया ॥७॥ रामचन्द्रकी शुद्धताका उत्तम माहात्म्य जानकर निश्चय सूर्य उनका शरीर अपनी किरणोंसे नहीं तपाते होंगे ॥८॥ वनसे निकला हुआ सब समयमें अपेक्षित और सुखकर कल्याणदायक वायु रामचन्द्रकी सेवा सब समय करेगी ॥९॥ रातको सोये हुए निष्पाप रामचन्द्रको घर्मघ्न और शीतल चन्द्रमा आह्लादित करेगा, जिस प्रकार पिता पुत्रको आलिङ्गन करके उसको आह्लादित करता है ॥ १० ॥ तिमिध्वजका पुत्र दानवराज सुबाहुको रणमें मारा हुआ देखकर जिस महापराक्रमीको ब्राह्मण विश्वामित्रने दिव्य अस्त्र दिये, ॥ ११ ॥ पुरुषसिंह वे वीर अपने बाहुबलके भरोसे निर्भय होकर, घरके समान वनमें निवास करेंगे ॥ १२ ॥ जिनके बाणके सामने आकर शत्रु नष्ट हो जाते हैं, उनकी आज्ञाके अधीन यह समस्त पृथिवी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

याश्रीःशौर्यं च रामस्य या च कल्याणसत्त्वता । निवृत्तारण्यवासःस्वं क्षिप्रं राज्यमवाप्स्यति ॥१४॥
सूर्यस्यापि भवेत्सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः ।श्रियाःश्रीश्च भवेद्ग्र्या कीर्त्याःकीर्तिःक्षमाक्षमा॥१५॥
दैवतं देवतानां च भूतानां भूतसत्तमः । तस्य के ह्यगुणा देवि वने वाप्यथवा पुरे ॥१६॥
पृथिव्या सह वैदेह्या श्रिया च पुरुषर्षभः । क्षिप्रं तिसृभिरेताभिः सह रामोऽभिषेक्ष्यते ॥१७॥
दुःखजं विसृजत्यश्रु निष्क्रामन्तमुदीक्ष्य यम् । अयोध्यायां जनः सर्वः शोकवेगसमाहतः ॥१८॥
कुशचीरधरं वीरं गच्छन्तमपराजितम् । सीतेवानुगता लक्ष्मीस्तस्य किं नाम दुर्लभम्॥१९॥
धनुर्ग्रहवरो यस्य बाणखड्गाखृभृत्स्वयम् । लक्ष्मणो व्रजते ह्यग्रे तस्य किं नाम दुर्लभम् ॥२०॥
निवृत्तवनवासं तं द्रष्टासि पुनरागतम् । जहि शोकं च मोहं च देवि सत्यं ब्रवीमि ते ॥२१॥
शिरसा चरणावेतौ वन्दमानमानीन्दिते । पुनर्द्रक्ष्यसि कल्याणि पुत्रं चन्द्रमिवोदितम् ॥२२॥
पुनः प्रविष्टं दृष्ट्वा तमाभिषिक्तं महाश्रियम् । समुत्सृक्ष्यसि नेत्राभ्यां शीघ्रमानन्दजं जलम्॥२३॥
मा शोको देवि दुःखं वा न रामे दृश्यतेऽशिवम् । क्षिप्रं द्रक्ष्यसि पुत्रं त्वं ससीतं सहलक्ष्मणम्॥२४॥
त्वयाशेषो जनश्चायं समाश्वास्यो यतोऽनघे । किमिदानीमिदं देवि करोषि हृदि विक्लवम् ॥२५॥

क्यों न रहेगी ॥ १३ ॥ रामचन्द्रकी जो सम्पत्ति हैं, शूरता है, तथा कल्याणकारक बल है उन सबसे वनवास समाप्त होनेपर रामचन्द्र शीघ्रही राज्य पावेंगे ॥ १४ ॥ सूर्य जो सबके प्रकाशक हैं उनके भी सूर्य होते हैं, वे भी दूसरेके प्रकाशसे प्रकाशित होते हैं, अग्निके भी अग्नि हैं, प्रभुके प्रभु, लक्ष्मी की लक्ष्मी, कीर्तिकी भी कीर्ति और क्षमाकी भी क्षमा है। अर्थात् इन सबके भी कारण होते हैं, और कारण रामचन्द्र हैं, अतएव वे सर्वनियन्ता हैं, फिर उनके लिए शोक करना व्यर्थ है ॥ १५ ॥ रामचन्द्र देवताओंके देवता और प्राणियोंके भी श्रेष्ठ प्राणी हैं, वनमें या नगरमें ही रहनेपर उनके कौन दोष हो सकते हैं, उनकी कौन बुराई हो सकती है ॥ १६ ॥ पृथिवी सीता और लक्ष्मी इन तीनोंके साथ रामचन्द्रका राज्याभिषेक शीघ्र ही होगा ॥१७॥ अयोध्याका यह समस्त जनसमुदाय शोकसे पीड़ित होकर जिसको अयोध्यासे निकलते देखकर दुःखका अश्रुविसर्जन करता है ॥ १८ ॥ किसीके द्वारा पराजित न होनेवाले वीर रामचन्द्र कुशचीर धारण करके जिस समय वनको चले उस समय सीताके समान लक्ष्मी भी उनकी अनुगामिनी हुई, उस रामचन्द्रके लिये क्या दुर्लभ है ॥ १९ ॥ धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ लक्ष्मण स्वयं बाण और तलवार लेकर जिनके आगे-आगे चलते हैं उन रामचन्द्रको क्या दुर्लभ है ॥ २० ॥ वनवासकी अवधि समाप्त होनेपर रामचन्द्र यहाँ आवेंगे और तुम उनको देखोगी। देवि, शोक और मोहका त्याग करो, मैं तुमसे सत्य सत्य कहती हूँ ॥२१॥ तुम्हारे चरणोंको अपने मस्तकसे प्रणाम करते हुए रामचन्द्रको तुम नवोदित चन्द्रमाके समान देखोगी ॥ २२ ॥ तुम शीघ्र ही अयोध्यामें आये हुए तथा अभिषिक्त महा शोभाशाली रामचन्द्रको देखकर आनन्दाश्रु विसर्जन करोगी ॥ २३ ॥ अतः देवि, तुम्हें शोक और दुःख नहीं करना चाहिए; क्योंकि रामचन्द्रका कोई अमंगल होनेवाला नहीं हैं । सीता और लक्ष्मणके साथ आये हुए रामचन्द्रको तुम शीघ्र ही देखोगी ॥ २४ ॥ निष्पापे, तुमको इन सब लोगोंको समझाना चाहिए,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नार्हा त्वं शोचितुं देवि यस्यास्ते राघवः सुतः । नहि रामात्परो लोके विद्यते सत्पथे स्थितः ॥२६॥
अभिवादयमानं तं दृष्ट्वा ससुहृदं सुतम् । मुदाश्रु मोक्ष्यसे क्षिप्रं मेघरेखेव वार्षिकी ॥२७॥
पुत्रस्ते वरदः क्षिप्रमयोध्यां पुनरागतः । कराभ्यां मृदुपीनाभ्यां चरणौ पीडयिष्यति ॥२८॥
अभिवाद्य नमस्यन्तं शूरं ससुहृदं सुतम् । मुदास्रः प्रोक्षसे पुत्रं मेघराजिरिवाचलम् ॥२९॥
आश्वासयन्ती विविधैश्च वाक्यैर्वाक्योपचारे कुशलानवद्या ।
रामस्य तां मातरमेवमुक्त्वा देवी सुमित्रा विरराम रामा ॥३०॥
निशम्य तल्लक्ष्मणमातृवाक्यं रामस्य मातुर्नरदेवपत्न्याः ।
सद्यः शरीरे विननाश शोकः शरद्गतो मेघ इवाल्पतोयः ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ४५

अनुरक्ता महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् । अनुजग्मुः प्रयान्तं तं वनवासाय मानवाः ॥ १ ॥
निवर्तितेऽतिबलात्सुहृद्धर्मेण राजनि । नैव ते संन्यवर्तन्त रामस्यानुगता रथम् ॥ २ ॥
अयोध्यानिलयानां हि पुरुषाणां महायशाः । बभूव गुणसंपन्नः इव पूर्णचन्द्र प्रियः ॥ ३ ॥

फिर इस समय तुम अपने मनको इतना अधीर क्यों बना रही हो ॥ २५ ॥ देवि, रामचन्द्रके समान तुम्हारे पुत्र हैं, तुमको दुःख नहीं करना चाहिये, क्योंकि रामचन्द्रके समान सन्मार्गपर चलनेवाला दूसरा नहीं है ॥ २६ ॥ अपने मित्रोंके साथ प्रणाम करते हुए रामचन्द्रको देखकर तुम शीघ्र ही अनन्दाश्रु विसर्जन करोगी, जिस प्रकार वर्षा-सम्बन्धी मेघ अर्थात् वर्षा करनेवाले मेघसे जलवृष्टि होती है ॥ २७ ॥ वह तुम्हारा पुत्र शीघ्र ही अयोध्यामें आवेगा और अपने कोमल तथा मोटे हाथोंसे तुम्हारे चरणोंको प्रणाम करेगा ॥ २८ ॥ अभिवादन (अपना परिचय) के पश्चात् अपने मित्रोंके साथ प्रणाम करते हुए अपने वीर पुत्रको आनन्दाश्रुसे सेचन करोगी, जिस प्रकार मेघमाला पर्वतको सेचन करती है ॥ २९ ॥ निर्दोष तथा बोलनेमें चतुर सुमित्रा अनेक तरहके वाक्योंसे रामचन्द्रकी माताको इस प्रकार समझाकर चुप हो गयीं ॥ ३० ॥ लक्ष्मणकी माता सुमित्राकी वे बातें सुनकर महारानी कौसल्याके सब शोक नष्ट हो गये जिस प्रकार थोड़े जलवाला शरदका मेघ ॥ ३१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका चौआलीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४४ ॥

अयोध्यावासी मनुष्य सत्यपराक्रम महात्मा राजचन्द्रके अनुरागके कारण उनके साथ वनमें चले ॥ १ ॥ सुहृत्धर्मके अनुसार राजा दसरथ बलपूर्वक लौटा दिये गये थे, पर नगर-वासियोंने रामचन्द्रके रथका अनुगमन करना नहीं छोड़ा ॥ २ ॥ अयोध्यावासी पुरुषोंको महायशस्वी और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स याच्यमानःकाकुत्स्थस्ताभिः प्रकृतिभिस्तदा । कुर्वाणः पितरं सत्यं वनमेवान्वपद्यत ॥ ४ ॥
अवेक्षमाणः सस्नेहं चक्षुषा प्रपिबन्निव । उवाच रामःसस्नेहं ताः प्रजाः स्वाः प्रजा इव॥ ५ ॥
या प्रीतिर्बहुमानश्च मय्ययोध्यानिवासिनाम् । मत्प्रियार्थं विशेषेण भरते सा विधीयताम् ॥ ६ ॥
स हि कल्याणचारित्रः कैकेय्यानन्दवर्धनः । करिष्यति यथावद्वः प्रियाणि च हितानि च॥ ७ ॥
ज्ञानवृद्धो वयोबालो मृदुवीर्यगुणान्वितः । अनुरूपः स वो भर्ता भविष्यति भयापहः ॥ ८ ॥
स हि राजगुणैर्युक्तो युवराजः समीक्षितः । आप चापि मया शिष्टैः कार्यं वो भर्तृशासनम्॥ ९ ॥
न संतप्येद्यथा चासौ वनवासं गते मयि । महाराजस्तथा कार्यो मम प्रियचिकीर्षया ॥१०॥
यथा यथा दाशरथिर्धर्ममेवाश्रितो भवेत् । तथा तथा प्रकृतयो रामं पतिमकामयन् ॥११॥
बाष्पेण पिहितं दीनं रामः सौमित्रिणा सह । चकर्षैव गुणैर्बद्धं जनं पुरनिवासिनम् ॥१२॥
ते द्विजास्त्रिविधं वृद्धा ज्ञानेन वयसौजसा । वयःप्रकम्पशिरसो दूरादूचुरिदं वचः ॥१३॥
वहन्तो जवना रामं भो भो जात्यास्तुरंगमाः । निवर्तध्वं न गन्तव्यं हिता भवत भर्तरि ॥१४॥
कर्णवन्ति हि भूतानि विशेषेण तुरंगमाः । यूयं तस्मान्निवर्तध्वं याचनां प्रतिवेदिताः ॥१५॥
धर्मतः स विशुद्धात्मा वीरः शुभदृढव्रतः । उपवाह्यस्तु वो भर्ता नापवाह्यः पुराद्वनम् ॥१६॥

सर्वगुणसम्पन्न रामचन्द्र पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रिय थे ॥ ३ ॥ प्रजाके उन मनुष्योंने रामचन्द्र-से लौट चलनेकी प्रार्थना की, पर पिताके वचनको सत्य करनेके लिए उन्होंने वन जाना ही स्थिर किया ॥ ४ ॥ अपने पुत्रोंके समान उन प्रजाओंको स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए रामचन्द्र बोले ॥ ५ ॥ अयोध्यावासियोंका जो प्रेम और जो आदरबुद्धि मुझमें है वह मेरी प्रसन्नताके लिए तुम लोग भरतमें करो ॥ ६ ॥ उनका चरित्र बड़ाही सुन्दर है, वे केकयीके पुत्र हैं, वे आप लोगोंके प्रिय और हित करेंगे ॥ ७ ॥ वे यद्यपि बालक हैं, पर बड़े ज्ञानी हैं, उनका चित्त कोमल है, पराक्रमके सभी गुण उनमें वर्तमान हैं, वे ही तुम लोगोंके योग्य राजा हैं, वे तुम लोगोंकी रक्षा करेंगे ॥ ८ ॥ राजा-ने राजगुणसे युक्त भरतको ही युवराज बनाना निश्चित किया है, भरतको मैंने ही राजधर्मकी शिक्षा दी है, तुम लोगोंको राजाकी आज्ञा माननी चाहिये ॥ ९ ॥ मेरे वन जानेपर महाराजको जिस तरह कष्ट न हो वैसाही तुम लोगोंको करना चाहिए, इसीसे मुझे प्रसन्नता होगी ॥ १० ॥ दास-रथी रामचन्द्रने पिताके आज्ञापालनरूप धर्ममें जितनी अधिक दृढ़ता दिखायी, प्रजाके लोगोंने उतनाही अधिक रामचन्द्रको अपना राजा बनानेका दृढ़ निश्चय प्रकट किया। रामचन्द्र वन जाना चाहते थे और प्रजा उन्हे राजा बनाना चाहती थी ॥ ११ ॥ रस्सीमें बँधे मनुष्यके समान रामचन्द्र तथा लक्ष्मणने दुःखी और रोते हुए पुरवासियोंको अपने साथ खींच लिया ॥ १२ ॥ ज्ञान, वय और तपोबल इन तीनों गुणोंसे श्रेष्ठ वे वृद्ध ब्राह्मण, जिनका सिर वृद्धताके कारण काँप रहा था, दूर ही से रामचन्द्रसे बोले ॥ १३ ॥ रामचन्द्रको वन ले जानेवाले ए घोड़े, तुम लोग श्रेष्ठ जातिके हो, तुम लोग लौट आओ, वन मत जाओ, अपने स्वामी रामचन्द्रका कल्याण करो ॥१४॥ सभी प्राणियोंके कान होते हैं, खासकर घोड़ोंके बड़े कान होते हैं, अतएव तुम लोगोंने हमारी प्रार्थना सुनी है, अब तुम लोग लौट आओ ॥ १५ ॥ तुम लोगोंके स्वामी रामचन्द्र धर्मतः विशु-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमार्तप्रलापाँस्तान्वृद्धान्प्रलपतो द्विजान् । अवेक्ष्य सहसा रामो रथादवततार ह ॥१७॥
पद्भ्यामेव जगामाथ ससीतः सहलक्ष्मणः । संनिकृष्टपदन्यासो रामो वनपरायणः ॥१८॥
द्विजातीन्हि पदातींस्तान्रामश्चारित्रवत्सलः । न शशाक घृणाचक्षुः परिमोक्तुं रथेन सः ॥१९॥
गच्छन्तमेव तं दृष्ट्वा रामं संभ्रान्तमानसाः । ऊचुः परमसंतप्ता रामं वाक्यमिदं द्विजाः ॥२०॥
ब्राह्मण्यं कृत्स्नमेतत्त्वां ब्रह्मण्यमनुगच्छति । द्विजस्कन्धाधिरूढास्त्वामग्नयोप्यनुयान्त्वमी॥२१॥
वाजपेयसमुत्थानि च्छत्राण्येतानि पश्य नः । पृष्ठतोऽनुप्रयातानि मेघानिव जलात्यये ॥२२॥
अनवाप्तातपत्रस्य रश्मिसंतापितस्य ते । एभिश्छायां करिष्यामः स्वैश्छत्रैर्वाजपेयकैः ॥२३॥
या हि नः सततं बुद्धिर्वेदमन्त्रानुसारिणी । त्वत्कृते सा कृता वत्स वनवासानुसारिणी ॥२४॥
हृदयेष्ववतिष्ठन्ते वेदा ये नः परं धनम् । वत्स्यन्त्यपि गृहेष्वेव दाराश्चारित्ररक्षिताः ॥२५॥
पुनर्न निश्चयः कार्यस्त्वद्वृत्तौ सुकृता मतिः । त्वयि धर्मव्यपेक्षे तु किं स्याद्धर्मपथे स्थितम् ॥२६॥
याचितो नो निवर्तस्व हंसशुक्लशिरोरुहैः । शिरोभिर्निर्भृताचार महीपतनपांसुलैः ॥२७॥

द्धात्मा हैं, वीर हैं और उत्तम विचारोंमें दृढ़ रहनेवाले हैं । तुम लोगोंको चाहिये कि उन्हे नगरमें ले जाओ नकि नगरसे बाहर वनमें ॥ १६ ॥ रामचन्द्रने उन वृद्धोंको इस प्रकार दुःखी होकर प्रलाप करते देखा और वे रथसे नीचे उतर पड़े ॥ १७ ॥ सीता और लक्ष्मणके साथ रामचन्द्र धीरे-धीरे पैरोंसे ही चले । अयोध्याके लिये वे लौटे नहीं, क्योंकि वन जानेका उनका विचार दृढ़ था ॥ १८ ॥ चरित्रबलपर प्रेम करनेवाले दयादृष्टि रामचन्द्र रथके साथ ब्राह्मणोंको न लौटा सके अर्थात् जबतक वे रथपर थे तबतक उनके कहनेसे वे ब्राह्मण नहीं लौटे, अतएव रामचन्द्र रथसे उतरे ॥ १९ ॥ रामचन्द्र जाही रहे हैं, लौटते नहीं, यह देखकर वे बहुत घबड़ा गये और बड़े दुःखी होकर वे रामचन्द्रसे बोले ॥ २० ॥ रामचन्द्र, यह ब्राह्मणोंका समूह तुम्हारे साथ जा रहा है, क्योंकि तुम ब्राह्मणोंके हितकारी हो, ब्राह्मणोंके कन्धेपर चढ़कर ये अग्निदेव भी तुम्हारे साथ जा रहे हैं ॥ २१ ॥ हम लोगोंके पीछे चलनेवाले इन छत्रोंको देखो जो वाजपेय यज्ञमें मिले हैं और जो शरद्ऋतुके मेघके समान स्वच्छ हैं ॥ २२ ॥ आपके पास छाता नहीं है और आप धूपसे तप रहे हैं, हम लोग अपने इन छत्रोंसे, जो वाजपेय यज्ञमें हमें मिले हैं, आपको छाया करेंगे, मतलब यह कि हम लोगोंके रहनेसे आपको सुखही होगा, दुःख नहीं ॥ २३ ॥ हम लोग अबतक वेदमन्त्रोंका अभ्यास करते थे, उसीमें हम लोग लगे थे, अब हम लोगोंने आपके लिये अपने मनको वनवासके लिये तयार कर लिया है । हम लोग भी आपके साथ वनमें जायँगे ॥२४॥ जो वेद हमलोगोंके श्रेष्ठ धन हैं वे तो हम लोगोंके हृदय ही में हैं और हम लोगोंकी स्त्रियां घरोंहीमें रहेंगी और उनकी रक्षा उनका चरित्र करेगा । अतएव आपके साथ वन जानेमें हम लोगोंको कोई कठिनता नहीं है ॥ २५ ॥ आपके साथ वन जानेमें हम लोगोंको आज कोई नयी बात नहीं निश्चित करनी है, जो कुछ है वह पहलेसे निश्चित है । पर आपसे कुछ हम लोगोंका कहना है, यदि आपही धर्मका तिरस्कार करेंगे, ब्राह्मणवचनका पालनरूप धर्मकी ओरसे विमुख होंगे, तब कौन धर्मका पालन करेगा ॥ २६ ॥ हम लोग प्रार्थना करते हैं आप लौट चलें, आप धर्मानुष्ठानमें अचल हैं, हम लोग हंसके समान श्वेत केशोंवाले सिरोंसे, जमीनपर लोटनेसे जो धूलसे भर गये हैं, आपसे प्रार्थना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बहूनां विततो यज्ञो द्विजानां य इहागतः । तेषां समाप्तिरायत्ता तव वत्स निवर्तने ॥२८॥
भक्तिमन्तीह भूतानि जङ्गमाजङ्गमानि च । याचमानेषु तेषु त्वं भक्तिं भक्तेषु दर्शय ॥२९॥
अनुगन्तुमशक्तास्त्वां मूलैरुद्धतवेगिनः । उन्नता वायुवेगेन विक्रोशन्तीव पादपाः ॥३०॥
निश्चेष्टाहारसंचारा वृक्षैकस्थाननिश्रिताः । पक्षिणोऽपि प्रयाचन्ते सर्वभूतानुकम्पनम् ॥३१॥
एवं विक्रोशतां तेषां द्विजातीनां निवर्तने । ददृशे तमसा तत्र वारयन्तीव राघवम् ॥३२॥
ततः सुमन्त्रोऽपि रथाद्विमुच्य श्रान्तान्हयान्संपरिवर्त्य शीघ्रम् ।
पीतोदकाँस्तोयपरिप्लुताङ्गानचारयद्वै तमसाविदूरे ॥३३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ४६

ततस्तु तमसातीरं रम्यमाश्रित्य राघवः । सीतामुद्वीक्ष्य सौमित्रिमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
इयमद्य निशा पूर्वा सौमित्रे प्रहिता वनम् । वनवासस्य भद्रं ते न चोत्कण्ठितुमर्हसि ॥ २ ॥
पश्य शून्यान्यरण्यानि रुदन्तीव समन्ततः । यथा निलयमायद्भिर्निलीनानि मृगद्विजैः ॥ ३ ॥

करते हैं, आप लौट चलें ॥ २७ ॥ बहुतसे ब्राह्मणोंका-जो यहाँ आये हुए हैं यज्ञ फैला हुआ है, अर्थात् यज्ञ करनेकी सामग्री तयार है, वे यज्ञ तभी समाप्त हो सकते हैं जब आप लौट चलें ॥ २८ ॥ जंगम और स्थावर सभी प्राणी आपमें भक्ति रखते हैं, वे आपसे लौट चलनेकी प्रार्थना करते हैं, वे आपमें प्रेम रखते हैं, आप भी उनमें अपना प्रेम दिखावें ॥ २९ ॥ मूलके कारण इन वृक्षोंमें वेग नहीं है, ये चल नहीं सकते, अतएव ये आपके साथ जानेमें असमर्थ हैं, पर ये ऊँचे वृक्ष वायुवेगके कारण मानो चिल्ला रहे हैं । वायुवेगके कारण जो शब्द हो रहा है मानों वृक्षका वह शब्द हो रहा है, मानो वृक्ष उस शब्दसे आपको ये लौटनेके लिए कह रहे हैं ॥३०॥ ये पक्षि भी निश्चेष्ट हो रहे हैं, केवल आहारके लिये चलते फिरते हैं और एकही वृक्षपर रहना इन्होंने निश्चित कर लिया है, ऐसे ये पक्षी भी सब प्राणियोंपर दया करनेवाले आपसे लौट चलनेकी प्रार्थना करते हैं ॥ ३१ ॥ इस प्रकार लौटनेके लिए रामचन्द्रसे ब्राह्मणोंने प्रार्थना की, उसी समय रामचन्द्रको आगे जानेसे रोकती हुई तमसा नामकी नदी दीख पड़ी ॥ ३२ ॥ तदनन्तर सुमन्त्रने भी थके घोड़ोंको रथसे खोल दिया, उन्हे जल पिलाया, जलसे उन्हे धोया और तमसाके पासही उन्हे टहलाया ॥ ३३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका पैंतालीसवां सर्ग समाप्त ॥४५॥

तदनन्तर रमणीय तमसा तीरपर सीताको देखकर रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले ॥ १ ॥ लक्ष्मण, यह आज वनवासकी पहली रात आयी, तुम्हारा कल्याण हो, तुम नगरके लिये उत्कण्ठित मत होओ ॥ २ ॥ यह वन शून्य है, पशु पक्षीका शब्दभी सुनायी नहीं देता । पशु और पक्षी अपने-अपने स्थानोंमें छिपे पड़े हैं, अतएव मालूम होता है कि मानों यह वन हम लोगोंको देखकर रो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अद्यायोध्या तु नगरी राजधानी पितुर्मम । सस्त्रीपुंसा गतानस्माञ्शोचिष्यति न संशयः ॥ ४ ॥
अनुरक्ता हि मनुजा राजानं बहुभिर्गुणैः । त्वां च मां च नरव्याघ्र शत्रुघ्नभरतौ तथा ॥ ५ ॥
पितरं चानुशोचामि मातरं च यशस्विनीम् । अपि नान्धौ भवेतां नौ रुदन्तौ तावभीक्ष्णशः॥ ६ ॥
भरतः खलु धर्मात्मा पितरं मातरं च मे । धर्मार्थकामसहितैर्वाक्यैराश्वासयिष्यति ॥ ७ ॥
भरतस्यानृशंसत्वं संचिन्त्याहं पुनः पुनः । नानुशोचामि पितरं मातरं च महाभुज ॥ ८ ॥
त्वया कार्यं नरव्याघ्र मामनुव्रजता कृतम् । अन्वेष्टव्या हि वैदेह्या रक्षणार्थं सहायता ॥ ९ ॥
अद्रिरेव हि सौमित्रे वत्स्याम्यद्य निशामिमाम् । एतद्धि रोचते मह्यं वन्येऽपि विविधे सति ॥१०॥
एवमुक्त्वा तु सौमित्रिं सुमन्त्रमपि राघवः । अप्रमत्तस्त्वमश्वेषु भव सौम्येत्युवाच ह ॥११॥
सोऽश्वान्सुमन्त्रः संयम्य सूर्येऽस्तं समुपागते । प्रभूतयवसान्कृत्वा बभूव प्रत्यनन्तरः ॥१२॥
उपास्य तु शिवां सन्ध्यां दृष्ट्वा रात्रिमुपागताम् । रामस्य शयनं चक्रे सूतः सौमित्रिणा सह ॥१३॥
तां शय्यां तमसातीरे वीक्ष्य वृक्षदलैर्वृताम् । रामःसौमित्रिणा सार्धं सभार्यः संविवेश ह ॥१४॥
सभार्यं संप्रसुप्तं तु श्रान्तं संप्रेक्ष्य लक्ष्मणः । कथयामास सूताय रामस्य विविधान्गुणान्॥१५॥
जाग्रतोरेव तां रात्रिं सौमित्रेरुदितो रविः । सूतस्य तमसातीरे रामस्य ब्रुवतो गुणान् ॥१६॥

रहा है ॥ ३ ॥ आज अयोध्या नगरी, हम लोगोंके पिताकी राजधानी, वहाँके स्त्री पुरुषोंके साथ वनमें आये हुए हम लोगोंके लिए अवश्यही शोक प्रकाश करेगी ॥ ४ ॥ क्योंकि अयोध्याके मनुष्य राजाके अनेक गुणोंके कारण उनमें प्रेम रखते हैं, हे नरश्रेष्ठ, तुममें मुझमें तथा भरत शत्रुघ्नमें भी उनका प्रेम है ॥ ५ ॥ मैं भी पिता और यशस्विनी माताके लिए शोक करता हूँ, हम लोगोंके लिए सदा रोनेके कारण सम्भव है वे अन्धे न हो जाँय ॥ ६ ॥ धर्मात्मा भरत मेरे पिता और माताको धर्मार्थ काम युक्त वचनोंसे आश्वासित करेंगे ॥ ७ ॥ भरतकी दयालुताका स्मरण करके, हे महाभुज, मैं अपने पिता माताके लिये चिन्तित नहीं हूँ ॥ ८ ॥ हे नरश्रेष्ठ, मेरे वनमें चलनेके समय तुमने कर्तव्य पालन किया है, नहीं तो यदि तुम मेरे साथ न आते तो जानकीकी रक्षाके लिए मुझे सहायक ढूँढ़ना पड़ता ॥ ९ ॥ लक्ष्मण, यद्यपि वनकी अनेक वस्तु भोजनके लिए हैं, तथापि मैं आज रातको जलपर ही रहना चाहता हूँ, क्योंकि यही मुझे अच्छा लगता है ॥ १० ॥ लक्ष्मणसे ऐसा कहकर रामचन्द्र सुमन्त्रसे बोले सौम्य, तुमभी सावधान होकर घोड़ोंको देखो ॥ ११ ॥ सूर्यके अस्त हो जानेपर सुमन्त्रने घोड़े बाँध दिये और उनके सामने काफी घास रखकर आगेके काममें लगे ॥ १२ ॥ रात आ रही है यह देखकर सुमन्त्रने लक्ष्मणके साथ कल्याणकारिणी सन्ध्याकी उपासना की और तदनन्तर रामचन्द्रके सोनेके योग्य स्थान उन लोगोंने निश्चित किया ॥ १३ ॥ तमसाके तीरपर वृक्षके पत्तोंसे बनी शय्या रामचन्द्रने देखी, और वे लक्ष्मण तथा सीताके साथ उसपर बैठे ॥ १४ ॥ थके हुए रामचन्द्र अपनी भार्या सीताके साथ सो रहे हैं, यह देखकर लक्ष्मण रामचन्द्रके अनेक गुणोंका वर्णन सुमन्त्रसे करने लगे ॥ १५ ॥ तमसाके तीरपर लक्ष्मण और सुमन्त्र उस रातको रामचन्द्रके गुणोंका वर्णन करते हुए जागतेही रहे और इधर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गोकुलाकुलतीरायास्तमसाया विदूरतः । अवसत्तत्र तां रात्रिं रामः प्रकृतिभिः सह ॥१७॥
उत्थाय च महातेजाः प्रकृतीस्ता निशाम्य च । अब्रवीद्भ्रातरं रामो लक्ष्मणं पुण्यलक्षणम्॥१८॥
अस्मद्व्यपेक्षान्सौमित्रे निर्व्यपेक्षान्गृहेष्वपि । वृक्षमूलेषु संसक्तान्पश्य लक्ष्मण सांप्रतम् ॥१९॥
यथैते नियमं पौराः कुर्वन्त्यस्मन्निवर्तने ।अपि प्राणान्न्यसिष्यन्ति नतु त्यक्ष्यन्ति निश्चयम्॥२०॥
यावदेव तु संसुप्तास्तावदेव वयं लघु । रथमारुह्य गच्छामः पन्थानमकुतोभयम् ॥२१॥
अतो भूयोऽपि नेदानीमिक्ष्वाकुपुरवासिनः । स्वपेयुरनुरक्ता मां वृक्षमूलेषु संश्रिताः ॥२२॥
पौरा ह्यात्मकृतादुःखाद्विप्रमोच्या नृपात्मजैः । न तु खल्वात्मना योज्या दुःखेन पुरवासिनः॥२३॥
अब्रवील्लक्ष्मणो रामं साक्षाद्धर्ममिव स्थितम् । रोचते मे तथा प्राज्ञ क्षिप्रमारुह्यतामिति ॥२४॥
अथ रामोऽब्रवीत्सूतं शीघ्रं संयुज्यतां रथः । गमिष्यामि ततोऽरण्यं गच्छ शीघ्रमितः प्रभो ॥२५॥
सूतस्ततः संत्वरितः स्यन्दनं तैर्हयोत्तमैः । योजयित्वा तु रामस्य प्राञ्जलिः प्रत्यवेदयत् ॥२६॥
अयं युक्तो महाबाहो रथस्ते रथिनां वर । त्वरयारोह भद्रं ते ससीतः सहलक्ष्मणः ॥२७॥
तं स्यन्दनमधिष्ठाय राघवः सपरिच्छदः । शीघ्रगामाकुलावर्तां तमसामतरन्नदीम् ॥२८॥
स संतीर्य महाबाहुः श्रीमाञ्शिवमकण्टकम् । प्रापद्यत महामार्गमभयं भयदर्शिनाम् ॥२९॥

सूर्योदय हो गया ॥ १६ ॥ तमसाके तीरपर गौओंका समूह था, इस कारण रामचन्द्र वहाँसे कुछ दूर हटकर पुरवासियोंके साथ उस रातको निवास किया ॥ १७ ॥ महातेजस्वी रामचन्द्र उठे । पुरवासियोंको सोते देखकर सुलक्षण भाई लक्ष्मणसे वे बोले ॥ १८ ॥ लक्ष्मण, हमही लोगोंसे प्रेम करनेवाले तथा घरकी ओरसे उदासीन ये पुरवासी वृक्षोंकी जड़में सो रहे हैं, इन्हें देखो ॥१९॥ ये पुरवासी हम लोगोंके लौटानेके लिये जैसा प्रयत्न कर रहे हैं उससे मालूम पड़ता है कि ये लोग अपने प्राण छोड़ देंगे, पर अपने निश्चयसे नहीं टलेंगे ॥ २० ॥ जब तक ये लोग सो रहे हैं तभी तक शीघ्रतापूर्वक रथपर चढ़कर हमलोग चलें, इस रास्तेमें कहीं भय नहीं है ॥ २१ ॥ यहाँसे शीघ्रही चलना चाहिए, क्योंकि हममें अनुराग रखनेवाले ये इक्ष्वाकुपुरवासी जो वृक्ष मूलमें सो रहे हैं, और अधिक देर तक नहीं सोएंगे ॥ २२ ॥ राजपुत्रोंको चाहिए कि वे पुरवासियोंके उन दुःखोंको दूर करें जो दुःख उन लोगोंने स्वयं अपने लिए बनाये हैं, अपना दुःख पुरवासियोंको नहीं देना चाहिए, राजपुत्रको चाहिए कि वे अपना (राजपुत्रका) दुःख पुरवासियोंको न भोगने दें ॥ २३ ॥ साक्षात् धर्मरूपमें वर्तमान् रामचन्द्रसे लक्ष्मण—बोले प्राज्ञ, मुझे भी यह विचार अच्छा मालूम पड़ता है, आप शीघ्रही रथपर बैठें ॥ २४ ॥ रामचन्द्रने सुमन्त्रसे कहा—घोड़े जोतो, जिससे हम शीघ्रही यहाँसे वनमें जा सकें ॥ २५ ॥ सारथिने शीघ्रही रथमें उत्तम घोड़े जोते और रामचन्द्रसे कहा कि रथ तयार है ॥ २६ ॥ महाबाहु रथिश्रेष्ठ, रथ जोता गया, आप शीघ्र सीता और लक्ष्मणके साथ सवार हों ॥२७॥ अपने सारथियोंके साथ रथपर चढ़कर वे वेगसे चलनेवाली और आवर्तवाली तमसा नदीके पार गये ॥ २८ ॥ महाबाहु श्रीमान् रामचन्द्र नदी पार करके डरनेवालोंके लिए भी अभय, शत्रुहीन और कल्याणमय मार्गपर गये ॥ २९ ॥ नगरवासियोंको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मोहनार्थं तु पौराणां सूतं रामोऽब्रवीद्वचः । उदङ्मुखः प्रयाहि त्वं रथमारुह्य सारथे ॥३०॥
मुहूर्तं त्वरितं गत्वा निवर्तय रथं पुनः । यथा न विद्युः पौरा मां तथा कुरु समाहितः॥३१॥
रामस्य तु वचः श्रुत्वा तथा चक्रे च सारथिः । प्रत्यागम्य च रामस्य स्यन्दनं प्रत्यवेदयत् ॥३२॥
तौ संप्रयुक्तं तु रथं समास्थितौ तदा ससीतौ रघुवंशवर्धनौ ।
प्रचोदयामास ततस्तुरंगमान्स सारथिर्येन पथा तपोवनम् ॥३३॥
ततः समास्थाय रथं महारथः ससारथिर्दाशरथिर्वनं ययौ ।
उदङ्मुखं तं तु रथं चकार प्रयाणमाङ्गल्यनिमित्तदर्शनात् ॥३४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥४६॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ४७

प्रभातायां तु शर्वर्यां पौरास्ते राघवं विना । शोकोपहतनिश्चेष्टा बभूवुर्हतचेतसः ॥ १ ॥
शोकजाश्रुपरिद्यूना वीक्षमाणास्ततस्ततः । आलोकमपि रामस्य न पश्यन्ति स्म दुःखिताः॥ २ ॥
ते विषादार्तवदना रहितास्तेन धीमता । कृपणाःकरुणा वाचो वदन्ति स्म मनीषिणः ॥ ३ ॥
धिगस्तु खलु निद्रां तां ययापहृतचेतसः । नाद्य पश्यामहे रामं पृथूरस्कं महाभुजम् ॥ ४ ॥
कथं रामो महाबाहुः स तथावितथक्रियः । भक्तं जनमभित्यज्य प्रवासं तापसो गतः ॥ ५ ॥

भुलवानेके लिए (जिससे रथकी लीकसे वे पता न पा सकें) रामचन्द्रने सारथिसे कहा, रथपर चढ़कर आप उत्तरकी ओर रथ ले चलें ॥ ३० ॥ थोड़ी दूर ऐसा जाकर पुनः रथ लौटा लें, सावधानीसे ऐसा करें, जिससे नगरवासी मुझे जान न सकें, मैं किधर गया हूँ इसका पता उन्हें न लग सके ॥ ३१ ॥ रामचन्द्रके वचन सुनकर सारथिने वैसाही किया, तदनन्तर रामचन्द्रके पास आकर सारथिने रथपर सवार होनेके लिए कहा ॥ ३२ ॥ जोते हुए रथपर वे राम और लक्ष्मण सीताके साथ बठे, सारथिने रथको वन जानेवाले रास्तेपर चलाया ॥ ३३ ॥ महारथ दाशरथि रामचन्द्र सारथिके साथ रथपर बैठे । सारथिने रथको उत्तरकी ओर किया, जिससे शुभ शकुन दीख पड़े ॥ ३४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका छियालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४६ ॥

रात बीत जानेपर प्रातःकाल नगरवासी, रामचन्द्रके विना, शोकके कारण कर्तव्यशून्य हो गये, उनका ज्ञान जाता रहा, वे बेहोश होगये ॥ १ ॥ कुछ होश होनेपर वे रोने लगे, चारों ओर रामचन्द्रको देखने लगे, पर वे दुःखी पुरवासी रामचन्द्रका कोई चिन्ह भी नहीं देख सके ॥ २ ॥ रामचन्द्रके न रहनेसे वे बड़े दुःखी हुए, दुःखके कारण उनका मुँह सूख गया, उनका कर्तव्य-ज्ञान जाता रहा, वे सब बुद्धिमान थे, तथापि आपसमें दीन वचन बोलने लगे ॥ ३ ॥ उन लोगोंने कहा– उस निद्राको धिक्कार, जिसके द्वारा बेहोश होकर हमलोग विशालवक्षा महाबाहु रामचन्द्रको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यो नः सदा पालयति पिता पुत्रानिवौरसान् । कथं रघूणां स श्रेष्ठस्त्यक्त्वा नो विपिनं गतः ॥ ६ ॥
इहैव निधनं याम महाप्रस्थानमेव वा । रामेण रहितानां वो किमर्थं जीवितं हितम् ॥ ७ ॥
सन्ति शुष्काणि काष्ठानि प्रभूतानि महान्ति च । तैः प्रज्वाल्य चितां सर्वे प्रविशामोऽथवा वयम् ॥ ८ ॥
किं वक्ष्यामो महाबाहुरनसूयः प्रियंवदः । नीतः स राघवोऽस्माभिरिति वक्तुं कथं क्षमम् ॥ ९ ॥
सा नूनं नगरी दीना दृष्ट्वास्मान्राघवं विना । भविष्यति निरानन्दा सस्त्रीबालवयोधिका ॥ १० ॥
निर्यातस्तेन वीरेण सह नित्यं महात्मना । विहीनास्तेन च पुनः कथं द्रक्ष्याम तां पुरीम् ॥ ११ ॥
इतीव बहुधा वाचो बाहुमुद्यम्य ते जनाः । विलपन्ति स्म दुःखार्ता हृतवत्सा इवाघ्नगाः ॥ १२ ॥
ततो मार्गानुसारेण गत्वा किंचित्ततः क्षणम् । मार्गनाशाद्विषादेन महता समभिप्लुताः ॥ १३ ॥
रथमार्गानुसारेण न्यवर्तन्त मनस्विनः । किमिदं किं करिष्यामो दैवेनोपहता इति ॥ १४ ॥
तदा यथागतेनैव मार्गेण क्लान्तचेतसः । अयोध्यामगमन्सर्वे पुरीं व्यथितसज्जनाम् ॥ १५ ॥
आलोक्य नगरीं तां च क्षयव्याकुलमानसाः । आवर्तयन्त तेऽश्रूणि नयनैः शोकपीडितैः ॥ १६ ॥
एषा रामेण नगरी रहिता नातिशोभते । आपगा गरुडेनेव ह्रदादुद्धृतपन्नगा ॥ १७ ॥

नहीं देख रहे हैं ॥ ४ ॥ सदा मर्यादा पालन करनेवाले महाबाहु रामचन्द्र हम भक्तोंको छोड़कर तापस वेषसे कैसे प्रस्थान कर गये ? ॥ ५ ॥ जिस प्रकार पिता अपने औरसपुत्रका पालन करता है उसी प्रकार रामचन्द्र हम लोगोंका पालन करते हैं, वे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्र हम लोगोंको छोड़कर वन क्यों चले गये ? ॥ ६ ॥ हम लोग यहीं मर जायंगे अथवा मरनेके लिए हिमालय पर्वत-पर चले जायेंगे, क्योंकि रामचन्द्रके बिना हम लोगोंके जीनेका क्या फल है, कौनसा सुख है ॥ ७ ॥ यहाँ बहुत अधिक सूखी लकड़ी है, हमलोग चिता बनाकर और उसे जलाकर उसमें प्रवेश करें ॥ ८ ॥ यदि हमलोग अयोध्या लौट जांय और वहाँ वाले रामचन्द्रका समाचार पूछें तो हम लोग क्या यही कहेंगे कि प्रियवादी रामचन्द्रको हम लोग वनमें भेज आये, पर यह कह कैसे सकेंगे ॥ ९ ॥ वह नगरी रामचन्द्रके बिना जब हम लोगोंको देखेगी, तब अवश्यही दुःखी होगी, वहाँके स्त्री बालक वृद्ध सभी दुःखी होंगे ॥ १० ॥ हम लोग उस वीर महात्मा रामचन्द्रके साथ उस नगरीसे निकले थे, अब उनके बिना हम लोग उस नगरीमें कैसे जायँगे ॥ ११ ॥ इस प्रकार वे हाथ ऊपर उठाकर तरह-तरहका विलाप करने लगे, बछड़ेके वियोग होनेपर गौके समान दुःखित हुए, ॥ १२ ॥ बड़े प्रयत्नसे रामचन्द्रके मार्गका पता लगाकर वे उसी ओर चले, पर आगे जाकर उनका मार्ग नष्ट होगया, मार्गका कोई चिन्ह नहीं मिला, इससे वे बहुतही दुःखी हुए ॥ १३ ॥ उन लोगोंने थोड़ी दूर तक रथ-मार्गका अनुसरण किया, आगे जानेपर उन्हें रथका मार्ग न मिला, तब उन लोगोंने कहा—यह क्या, रथका मार्ग क्या हुआ, अब हम लोग क्या करें, हम लोगोंके तो भाग्यही फूट गये ॥ १४ ॥ तब हताश होकर वे जिस रास्तेसे आये थे, उसी रास्तेसे दुःखित मनसे अयोध्या लौटे, उस समय अयोध्यावासी सज्जन बहुतही दुःखित थे ॥ १५ ॥ अयोध्या नगरीमें झाड़ू बहारू आदि कुछ भी नहीं पड़ता था, इससे नगरीकी शोभा नष्ट होगयी थी, नगरीकी ऐसी दशा देखकर शोक पीड़ित आँखोंसे वे आँसू बहाने लगे ॥ १६ ॥ रामचन्द्रके बिना उस नगरीकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चन्द्रहीनमिवाकाशं तोयहीनमिवार्णवम्। अपश्यन्निहतानन्दं नगरं ते विचेतसः ॥१८॥
ते तानि वेश्मानि महाधनानि दुःखेन दुःखोपहता विशन्तः।
नैव प्रजग्मुः स्वजनं परं वा निरीक्षमाणाः प्रविनष्टहर्षाः ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकांडे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥४७॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ४८

तेषामेवं विषण्णानां पीडितानामतीव च। बाष्पविप्लुतनेत्राणां सशोकानां मुमूर्षया ॥ १ ॥
अभिगम्य निवृत्तानां रामं नगरवासिनम्। उद्वृतानीव सत्त्वानि बभूवुरमनस्विनाम् ॥ २ ॥
स्वं स्वं निलयमागम्य पुत्रदारैः समावृताः। अश्रूणि ममुचुः सर्वे बाष्पेण पिहिताननाः ॥ ३ ॥
न चाहृष्यन्न चामोदन्वणिजो न प्रसारयन्। न चाशोभन्त पण्यानि नापचन्गृहमेधिनः ॥ ४ ॥
नष्टं दृष्ट्वा नाभ्यनन्दन्विपुलं वा धनागमम्। पुत्रं प्रथमजं लब्ध्वा जननी नाप्यनन्दत ॥ ५ ॥
गृहे गृहे रुदत्यश्च भर्तारं गृहमागतम्। व्यगर्हयन्त दुःखार्ता वाग्भिस्तोत्रैरिव द्विपान् ॥ ६ ॥
किं नु तेषां गृहैः कार्यं किं दारैः किं धनेन वा। पुत्रैर्वापि सुखैर्वापि ये न पश्यन्ति राघवम् ॥ ७ ॥

शोभा बिलकुल नष्ट होगयी थी, वह नगरी वैसी ही श्रीहीन होगयी थी जैसीकि वह नदी जिसमेंका सर्प गरुड़के द्वारा हटा लिया गया हो ॥ १७ ॥ चन्द्रहीन आकाशके समान, जलहीन समुद्रके समान उस नगरीको उन लोगोंने आनन्दहीन देखा और वे बेहोश होगये ॥ १८ ॥ वे दुःखित पुरवासी धनधान्यपूर्ण अपने घरोंमें दुःखसे गये, उनको आनन्द नष्ट होगया था। वे देख रहे थे पर कौन अपना है तथा कौन बिराना है यह वे न जान सके ॥ १९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४७॥

वे सब मृतकके समान होगये थे, शोकके कारण उनकी आँखोंसे आँसू गिर रहा था, वे अत्यन्त उदासीन तथा दुःखी थे। रामचन्द्रके साथ जाकर लौटे हुए वे खिन्नमन हो गये थे, उनका मन किसी काममें नहीं लगता था, उनके प्राण निकलर हे थे ॥ १-२ ॥ वे सब अपने-अपने घर आये, अपने स्त्रीपुत्रोंसे मिलें और आँसू बहाने लगे, आँसूसे उनके मुँह भर आये ॥ ३ ॥ बनिये किसी वस्तुके पानेसे सन्तुष्ट नहीं हुए अतएव प्रसन्न भी नहीं हुए। दूकानें भी उन लोगोंने न खोलीं, वहाँकी सब शोभा नष्ट हो गयी थी, गृहस्थोंके घर भोजन भी नहीं बना ॥ ४ ॥ चोरी गयी चीजके मिलजानेसे अथवा बहुत अधिक धन मिल जानेसे वे प्रसन्न न हुए, पहले पहल पुत्र उत्पन्न करके माता भी प्रसन्न नहीं हुई ॥ ५ ॥ प्रत्येक घरकी स्त्रियाँ अपने पतिको घरमें आया देखकर रोने लगीं और दुःखित होकर निन्दा वचनोंसे उनको वेधने लगीं, जिस प्रकार हाथी अंकुशसे वेधा जाता है ॥ ६ ॥ वे कहने लगीं, उनलोगोंको घरसे क्या करना है, स्त्री धन पुत्र

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकः सत्पुरुषो लोके लक्ष्मणः सह सीतया । योऽनुगच्छति काकुस्थं रामं परिचरन्वने ॥ ८ ॥
आपगाः कृतपुण्यास्ताः पद्मिन्यश्च सरांसि च । येषु यास्यति काकुस्थो विगाह्य सलिलं शुचि ॥ ९ ॥
शोभायिष्यंति काकुत्स्थमटव्यो रम्यकाननाः । आपगाश्च महानूपाः सानुमन्तश्च पर्वताः ॥१०॥
काननं वापि शैलं वा यं रामोऽनुगमिष्यति । प्रियातिथिमिव प्राप्तं नैनं शक्ष्यन्त्यनर्चितुम् ॥११॥
विचित्रकुसुमापीडा बहुमञ्जरिधारिणः । राघवं दर्शयिष्यन्ति नगा भ्रमरशालिनः ॥१२॥
अकाले चापि मुख्यानि पुष्पाणि च फलानि च । दर्शयिष्यन्त्यनुक्रोशाद्गिरयो राममागतम् ॥१३॥
प्रस्रविष्यन्ति तोयानि विमलानि महीधराः । विदर्शयन्तो विविधान्भूयश्चित्रांश्च निर्झरान् ॥१४॥
पादपाः पर्वताग्रेषु रमयिष्यंति राघवम् । यत्र रामो भयं नात्र नास्ति तत्र पराभवः ॥१५॥
स हि शूरो महाबाहुः पुत्रो दशरथस्य च । पुरा भवति नोऽदूरादनुगच्छाम राघवम् ॥१६॥
पादच्छाया सुखं भर्तुस्तादृशस्य महात्मनः । स हि नाथो जनस्यास्य स गतिः स परायणम् ॥१७॥
वयं परिचरिष्यामः सीतां यूयं च राघवम् । इति पौरस्त्रियो भर्तॄन्दुःखार्तास्तत्तदब्रुवन् ॥१८॥
युष्माकं राघवोऽरण्ये योगक्षेमं विधास्यति । सीता नारीजनस्यास्य योगक्षेमं करिष्यति ॥१९॥
कोन्वनेनाप्रतीतेन सोत्कण्ठितजनेन च । संप्रीयतामनोज्ञेन वासेन हृतचेतसा ॥२०॥

अथवा अन्य सुखोंसे भी उन्हे कौन लाभ, जो रामचन्द्रको नहीं देखते ॥ ७ ॥ इस संसारमें एक ही सत्पुरुष लक्ष्मण हैं जो सीताके साथ रामचन्द्रकी सेवा करनेके लिये उनके साथ वनमें गये । ॥ ८ ॥ उन्हीं नदियोंने पुण्य किया है, उन्ही ही कमलवाले तलाबोंने पुण्य किया है, जिनके स्वच्छ जलमें स्नान करके रामचन्द्र वन जांयंगे ॥९॥ सुन्दर वृक्षोवाले वन, जलवाली नदियां और सुन्दर शिखरवाले पर्वत रामचन्द्रको सुशोभित करेंगे ॥१०॥ रामचन्द्र जिस वनमें या जिस पर्वतपर जायँगे, वे अपने यहां आये प्रिय अतिथिके समान रामचन्द्रकी बिना पूजा किये न रहेंगे ॥ ११ ॥ विचित्र पुष्पोंके शिरोभूषणवाले, बहुत मंजरी धारण करनेवाले और भ्रमरोंसे युक्त पर्वत रामचन्द्रको अपने स्वरूप दिखावेंगे ॥ १२ ॥ पर्वतोंके वृक्ष अकालमें ही—फलने फूलनेके अतिरिक्त समयमें-रामचन्द्रमें अत्यन्त आदर होनेके कारण उनको फलफूल दिखावेंगे ॥ १३ ॥ पर्वत विमल जल बहावेंगे, और तरह-तरहके सुन्दर झरने वे दिखावेंगे ॥ १४ ॥ वृक्ष पर्वतोंके शिखरपर रामचन्द्रको प्रसन्न करेंगे । जहाँ रामचन्द्र हैं वहां भय कैसा, और शत्रुद्वारा होनेवाला पराजय कहां ॥१५॥ महाबाहु वीर रामचन्द्र दसरथके पुत्र जबतक बहुत दूर नहीं चले जाते, तभी तक हमलोग उनके पास चलें ॥१६॥ वैसे महात्मा स्वामीके चरणोंके पास रहना बड़ा सुख है, वे हमलोगोंके स्वामी हैं, हम सबकी गति हैं और अन्तिम स्थान हैं ॥१७॥ हम लोग सीताकी सेवा करेंगी और आपलोग रामचन्द्रकी सेवा करेंगे, इस प्रकारकी बातें पुरस्त्रियोंने अपने-अपने पतिसे कहीं ॥१८॥ रामचन्द्र वनमें आप लोगोंके योगक्षेमकी व्यवस्था करेंगे, और स्त्रियोंके योगक्षेमकी व्यवस्था सीता करेंगी ॥ १९ ॥ सज्जनोंके लिये अयोग्य इस नगरवाससे कौन मनुष्य प्रसन्न होगा, क्योंकि यहां रहनेसे रामचन्द्रके अभावका दुःख सदा बना रहेगा, यहां, रहनेसे उद्वेग रहता है और चित्त-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कैकेय्या यदि चेद्राज्यं स्यादधर्म्यमनाथवत् । न हि नो जीवितेनार्थः कुतः पुत्रैः कुतो धनैः ॥२१॥
यया पुत्रश्च भर्ता च त्यक्तावैश्वर्यकारणात् । कं सा परिहरेदन्यं कैकेयी कुलपांसनी ॥२२॥
कैकेय्या न वयं राज्ये भृतका हि वसेमहि । जीवन्त्या जातु जीवन्त्यः पुत्रैरपि शपामहे ॥२३॥
या पुत्रं पार्थिवेन्द्रस्य प्रवासयति निर्घृणा । कस्तां प्राप्य सुखं जीवेदधर्म्यां दुष्टचारिणीम् ॥२४॥
उपद्रुतमिदं सर्वमनालम्भमनायकम् । कैकेय्यास्तु कृते सर्वं विनाशमुपयास्यति ॥२५॥
नहि प्रव्रजिते रामे जीविष्यति महीपतिः । मृते दशरथे व्यक्तं विलोपस्तदनन्तरम् ॥२६॥
ते विषं पिबतालोड्य क्षीणपुण्याः सुदुःखिताः । राघवं वानुगच्छध्वमश्रुतिं वापि गच्छत ॥२७॥
मिथ्या प्रव्राजितो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः । भरते संनिबद्धाः स्म सौनिके पशवो यथा ॥२८॥
पूर्णचन्द्राननः श्यामो गूढजत्रुररिंदमः । आजानुबाहुः पद्माक्षो रामो लक्ष्मणपूर्वजः ॥२९॥
पूर्वाभिभाषी मधुरः सत्यवादी महाबलः । सौम्यश्च सर्वलोकस्य चन्द्रवत्प्रियदर्शनः ॥३०॥
नूनं पुरुषशार्दूलो मत्तमातङ्गविक्रमः । शोभयिष्यत्यरण्यानि विचरन्स महारथः ॥३१॥

भ्रम भी होता है, ऐसा रहना कौन पसन्द करेगा ॥ २० ॥ रामचन्द्र जब न रहेंगे तब यह राज्य केकयीका होगा और उस अधर्म राज्यमें हम लोग अनाथके समान हो जायँगे । उस समय हम लोगोंके जीनेसे ही क्या लाभ ? पुत्रों और धनसे भी क्या लाभ ? अधर्म राज्यमें रहनेसे जीना ही कठिन हो जायगा, फिर पुत्र और धनसे क्या प्रयोजन ॥ २१ ॥ जिस कुलकलंकिनी केकयीने धनके लिये पुत्र और पतिका त्याग किया, वह दूसरे किसीको छोड़ेगी ? ॥ २२ ॥ केकयीके पतित राज्यमें, चाहे वह हम लोगोंका भलेही पालन-पोषण करे, जीतेजी हमलोग न रहेंगी, यह बात हम लोग अपने पुत्रोंकी शपथ करके कहती हैं ॥ २३ ॥ जिस क्रूर केकयीने राजा दसरथके पुत्रको बनमें भेजा है, उस अधार्मिक दुष्टाचारवाली केकयीके राज्यमें कौन सुखपूर्वक रह सकता है ॥ २४ ॥ केकयीके कारणसे इस राज्यमें अनेक उपद्रव होंगे, कोई जिम्मेदार शासक न रहेगा, यागयज्ञका होना बन्द हो जायगा, इसप्रकार समस्त राज्यका नाश हो जायगा ॥ २५ ॥ रामचन्द्रके चले जानेपर राजा दसरथ जी न सकगे और राजा दसरथके मरनेपर इस समृद्ध राज्यका नाश हो जायगा ॥ २६ ॥ अब आप लोग इस बातपर विचार करें, रामरूपी धनके निकलजानेसे आप लोग नितान्त दरिद्र हो गये हैं, या तो आप लोग विष पीलें, या रामचन्द्रके साथ वन जाँय अथवा ऐसी जगह चले जांय जहां जानेसे आप लोगोंकी कोई खबर ही न लगे ॥ २७ ॥ सीता और लक्ष्मणके साथ रामचन्द्र व्यर्थही वन गये हैं, जिस प्रकार कसाईके अधीन पशु होते हैं उसी प्रकार हम लोग भी भरतके अधीन किये गये हैं ॥ २८ ॥ सांवले रामचन्द्रका मुंह चन्द्रमाके समान सुन्दर है, उनके कन्धे की हड्डी छिपी हुई है, वे शत्रुओंको दमन करनेवाले हैं, उनकी भुजाएं लम्ब हैं, कमलके समान उनकी आंखें हैं और लक्ष्मणके बड़े भाई हैं ॥ २९ ॥ आगन्तुक प्रार्थियोंसे पहले ही बोलते हैं, सरल स्वभावके सत्यवादी और महाबलवान हैं, वे सौम्य तथा सब लोगोंको चन्द्रमाके समान प्रियदर्शन हैं ॥ ३० ॥ वे पुरुषसिंह मतवाले हाथीके समान पराक्रमी हैं, वे महारथ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तास्तथा विलपन्त्यस्तु नगरे नागरस्त्रियः । चुक्रुशुर्दुःखसंतप्ता मृत्योरिव भयागमे ॥३२॥
इत्येवं विलपन्तीनां स्त्रीणां वेश्मसु राघवम् । जगामास्तं दिनकरो रजनी चाभ्यवर्तत ॥३३॥
नष्टज्वलनसंतापा प्रशान्ताध्यायसत्कथा । तिमिरेणानुलिप्तेव तदा सा नगरी बभौ ॥३४॥
उपशान्तवणिक्पण्या नष्टहर्षा निराश्रया । अयोध्या नगरी चासीन्नष्टतारमिवाम्बरम् ॥३५॥

तदा स्त्रियो रामनिमित्तमातुरा यथा सुते भ्रातरि वा विवासिते ।
विलप्य दीना रुरुदुर्विचेतसः सुतैर्हि तासामधिकोऽपि सोऽभवत् ॥३६॥
प्रशान्तगीतोत्सवनृत्यवादना विभ्रष्टहर्षा पिहितापणोदया ।
तदा ह्ययोध्या नगरी बभूव सा महार्णवः संक्षपितोदको यथा॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डेऽष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥४८॥

एकोनपञ्चाशः सर्गः ४९

रामोऽपि रात्रिशेषेण तेनव महदन्तरम् । जगाम पुरुषव्याघ्रः पितुराज्ञामनुस्मरन् ॥ १ ॥
तथैव गच्छतस्तस्य व्यपायाद्रजनी शिवा । उपास्य तु शिवां संध्यां विषयानत्यगाहत ॥ २ ॥

वनमें घूमेंगे और उनकी शोभा बढ़ावेंगे ॥ ३१ ॥ वे पुरवासिनी स्त्रियां दुःखसे पीड़ित होकर इस प्रकार विलाप करने लगीं, जिस प्रकार मृत्युके आनेके भयसे मनुष्य दुःखित होकर रोता है ॥३२॥ इस प्रकार अपने-अपने घरोंमें रामचन्द्रके लिये स्त्रियाँ विलाप करती थीं और सूर्यास्त हो गया तथा रात आयी ॥ ३३ ॥ अग्निकी ज्वाला नष्ट हो गयी (होम आदिके लिये भी अग्निका प्रकाश नहीं हुआ), अध्ययन और धार्म्मिक कथाएँ बन्द हुईं, मालूम होता था कि वह नगरी उस समय अन्धकारसे पोती हुईके समान हो गयी थी ॥ ३४ ॥ बनियोंकी दूकानें बन्द हो गयीं, चहल-पहल जाती रही, रामचन्द्रके न रहनेसे आश्रयहीन वह नगरी, ताराहीन आकाशके समान मालूम होती थी ॥ ३५ ॥ पुत्र या भाईके निर्वासनसे जैसा दुःख होता है, अयोध्याकी स्त्रियोंने रामचन्द्रके लिये वैसाही दुःख प्रकाशित किया । वे दुःखिनी विलाप करके रोती हुईं बेहोश हो गयीं । उस समय रामचन्द्र उनके पुत्रोंसे भी बढ़कर हुए ॥ ३६ ॥ उस समय अयोध्यामें गान, उत्सव, नाच, बाजा आदि बन्द हो गये, आनन्द जाता रहा, बाजार बन्द हो गया, उस समय अयोध्या नगरी जलहीन समुद्रके समान मालूम होती थी ॥ ३७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका अड़तालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४८ ॥

रामचन्द्र भी उसी अवशिष्ट रातमें पिताकी आज्ञाका स्मरण करते हुए बड़ी दूर चले गये ॥ १ ॥ उसी प्रकार चलते हुए रामचन्द्रको वह कल्याणमयी रात बीत गयी । प्रातःकालकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ग्रामान्विकृष्टसीमान्तान्पुष्पिताने वनानि च । पश्यन्नतिययौ शीघ्रं शनैरिव हयोत्तमैः ॥ ३ ॥
शृण्वन्वाचो मनुष्याणां ग्रामसंवासवासिनाम् । राजानं धिग्दशरथं कामस्य वशमास्थितम् ॥ ४ ॥
हा नृशंसाद्य कैकेयी पापा पापानुबन्धिनी । तीक्ष्णा संभिन्नमर्यादा तीक्ष्णकर्माणि वर्तते ॥ ५ ॥
या पुत्रमीदृशं राज्ञः प्रवासयति धार्मिकम् । वनवासे महाप्राज्ञं सानुक्रोशं जितेन्द्रियम् ॥ ६ ॥
अहो दशरथो राजा निःस्नेहः स्वसुतं प्रति । प्रजानामनघं रामं परित्यक्तुमिहेच्छति ॥ ७ ॥
एता वाचो मनुष्याणां ग्रामसंवासवासिनाम् । शृण्वन्नतिययौ वीरः कोसलान्कोसलेश्वरः ॥ ८ ॥
ततो वेदश्रुतिं नाम शिववारिवहां नदीम् । उत्तीर्याभिमुखः प्रायादगस्त्याध्युषितां दिशम् ॥ ९ ॥
गत्वा तु सुचिरं कालं ततः शीतवहां नदीम् । गोमतीं गोयुतानूपामतरत्सागरंगमाम् ॥ १० ॥
गोमतीं चाप्यतिक्रम्य राघवः शीघ्रगैर्हयैः । मयूरहंसाभिरुतां ततार स्यन्दिकां नदीम् ॥ ११ ॥
स महीं मनुना राज्ञा दत्तामिक्ष्वाकवे पुरा । स्फीतां राष्ट्रवृतां रामो वैदेहीमन्वदर्शयत् ॥ १२ ॥
सूत इत्येव चाभाष्य सारथिं तमभीक्ष्णशः । हंसमत्तस्वरः श्रीमानुवाच पुरुषोत्तमः ॥ १३ ॥
कदाहं पुनरागम्य सरय्वाः पुष्पिते वने । मृगयां पर्याटिष्यामि मात्रा पित्रा च संगतः ॥ १४ ॥
नात्यर्थमभिकाङ्क्षामि मृगयां सरयूवने । रतिर्ह्येषातुला लोके राजर्षिगणसंमता ॥ १५ ॥

सन्ध्या करके वे आगे दूसरे देशमें गये ॥ २ ॥ गांवोंकी सीमापर जोते हुए खेत और फूले वनोंको देखते हुए रामचन्द्र उत्तम घोड़ोंके द्वारा चले ॥ ३ ॥ बड़े-बड़े गांवों और छोटे-छोटे गांवोंमें रहने वाले मनुष्योंकी बातें सुनते हुए वे चले, वे कहते थे-राजा दसरथको धिक्कार जो कामके वश हो गये हैं ॥ ४ ॥ पापिन कैकयी, हा, तू सदा पाप करनेवाली है, तू बड़ी झूठ मर्यादा नष्ट करनेवाली तथा क्रूर कर्म करनेवाली है ॥ ५ ॥ क्योंकि तूने ऐसे धार्म्मिक महाबुद्धिमान दयालु और जितेन्द्रिय राजपुत्रको वन भेजा है ॥ ६ ॥ आश्चर्य है कि राजा दसरथ अपने पुत्रके प्रति ऐसे स्नेहहीन कैसे हो गये, जो प्रजाओंके दुःख दूर करनेवाले रामचन्द्रका त्याग करना चाहते हैं ॥ ७ ॥ इस प्रकार बड़े गांव व छोटे गांवोंके रहनेवाले मनुष्योंकी बातें सुनते हुए वीर कोसलेश्वर कोसल देशके बाहर चले गये ॥ ८ ॥ तदनन्तर वेदश्रुति नामकी नदी, जिसमें सुन्दर जल बहता है, पार उतरकर अगस्त्यकी दिशा-दक्षिण दिशाकी ओर चले ॥ ९ ॥ वहांसे बहुत देरतक आगे चलकर उन लोगोंने गोमती नदीको पार किया, इस नदीमें ठंढा जल बहता है, इसके तीरपर गौओंका समूह रहता है तथा यह नदी समुद्रमें जाकर मिलती है ॥ १० ॥ शीघ्रगामी घोड़ोंके द्वारा गोमती नदीको पार करके रामचन्द्रने स्यन्दिका नदीको पार किया, जहां हंस, मयूर आदिके शब्द होते हैं ॥ ११ ॥ स्यन्दिका नदीके पार जानेपर रामचन्द्रने सीताको कोसलदेशकी दक्षिणी सीमा दिखायी, जो कोसलदेश पहले राजा मनुने इक्ष्वाकुको दिया था, जो बड़ाही विशाल है तथा जिसमें अनेक राष्ट्र हैं ॥ १२ ॥ सारथिको 'सूत' इस प्रकार बार-बार सम्बोधित करके मतवाले हंसके स्वरमें पुरुषोत्तम रामचन्द्र बोले ॥ १३ ॥ कब मैं पुनः लौटकर माता पितासे मिलकर सरयू तीरके पुष्पित वनमें अहेर खेलूंगा ? ॥ १४ ॥ मैं सरयूवनमें अहेर खेलना बहुत पसन्द

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राजर्षीणां हि लोकेऽस्मिन्रत्यर्थं मृगयावने । काले कृतां तां मनुजैर्धन्विनामभिकाङ्क्षिताम्॥१६॥
स तमध्वानमैक्ष्वाकः सूतं मधुरया गिरा । तं तमर्थमभिप्रेत्य ययौ वाक्यमुदीरयन् ॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥४९॥

पञ्चाशः सर्गः ५०

विशालान्कोसलान्रम्यान्यात्वा लक्ष्मणपूर्वजः । अयोध्यामुन्मुखो धीमान्प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥ १ ॥
आपृच्छे त्वां पुरिश्रेष्ठे काकुत्स्थपरिपालिते । दैवतानि च यानि त्वां पालयन्त्यावसन्ति च॥ २ ॥
निवृत्तवनवासस्त्वामनृणो जगतीपतेः । पुनर्द्रक्ष्यामि मात्रा च पित्रा च सह संगतः॥ ३ ॥
ततो रुचिरताम्राक्षो भुजमुद्यम्य दक्षिणम् । अश्रुपूर्णमुखो दीनोऽब्रवीज्जानपदं जनम् ॥ ४ ॥
अनुक्रोशो दया चैव यथार्हं मयि वः कृतः । चिरं दुःखस्य पापी यो गम्यतामर्थसिद्धये॥ ५ ॥
तेऽभिवाद्य महात्मानं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् । विलपन्तो नरा घोरं व्यतिष्ठँश्च क्वचित्क्वचित् ॥ ६ ॥
तथा विलपतां तेषामतृप्तानां च राघवः । अचक्षुर्विषयं प्रायाद्यथार्कः क्षणदामुखे ॥ ७ ॥

नहीं करता, किन्तु यह मृगयाप्रेम लोकमें राजर्षियों द्वारा प्रशंसित है, अतएव सर्वथा निषिद्ध भी नहीं है ॥ १५ ॥ वनमें अहेर खेलना राजर्षियोंके मन बहलावके लिए था, समय-समयपर मनुपुत्रोंने अहेर खेला है, यह धनुर्धारियोंको प्रिय है, क्योंकि निशाना लगानेका अवसर मिलता है ॥१६॥ इस प्रकार भिन्न-भिन्न विषयोंमें सूतसे बातें करते हुए रामचन्द्रने उस रास्तेको पार किया ॥१७॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका उनचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४९ ॥

लक्ष्मणके बड़े भाई रामचन्द्रने विशाल और रमणीय कोसलदेशको पार करके अयोध्याकी ओर मुँह किया और वे हाथ जोड़कर बोले ॥ १ ॥ राजा काकुत्स्थके द्वारा परिपालित पुरिश्रेष्ठ अयोध्या, मैं तुमसे, तुमको पालन करनेवाले तथा तुम्हारेमें निवास करनेवाले देवताओंसे प्रार्थना पूर्वक वन जानेकी आज्ञा मांगता हूँ ।। २ ॥ वनवासकी अवधि पूरी होनेपर राजासे उऋण होकर पिता और मातासे मिलकर मैं तुमको पुनः देखूँगा ॥ ३ ॥ तदनन्तर सुन्दर और लाल आँखोंवाले रामचन्द्र दक्षिण भुजा उठाकर रोते हुए दीनतापूर्वक नगरवासियोंको लक्ष्य करके बोले ॥ ४ ॥ आप लोगोंने मेरा आदर तथा मुझपर दया यथायोग्य की, बहुत दिनों तक दुःख उठाना अनुचित है, अतएव आपलोग जाँय, हमलोग भी पिताकी आज्ञापालनरूप कार्यसिद्धिके लिए वन जा रहे हैं ।। ५ ।। महात्मा रामचन्द्रको प्रणाम करते हुए उन लोगोंने उनकी प्रदक्षिणा की, पुनः घोर विलाप करते हुए वे इधर-उधर ठहर गये ॥ ६ ॥ वे विलाप करते ही थे, रामचन्द्रको देखनेसे उनकी तृप्ति नहीं हुई थी, इतनेहीमें रामचन्द्र उनकी आँखोंके ओझल होगये, जिस प्रकार सायंकालमें सूर्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततो धान्यधनोपेतान्दानशीलजनाञ्शिवान् । अकुतश्चिद्भयान्रम्यांश्चैत्ययूपसमावृतान् ॥ ८ ॥
उद्यानाम्रवणोपेतान्संपन्नसलिलाशयान् । तुष्टपुष्टजनाकीर्णान् गोकुलाकुलसेवितान् ॥ ९ ॥
रक्षणीयान्नरेन्द्राणां ब्रह्मघोषाभिनादितान् । रथेन पुरुषव्याघ्रः कोसलानत्यवर्तत ॥१०॥
मध्येन मुदितं स्फीतं रम्योद्यानसमाकुलम् । राज्यं भोज्यं नरेन्द्राणां ययौ धृतिमतां वरः ॥११॥
तत्र त्रिपथगां दिव्यां शीततोयामशैवलाम् । ददर्श राघवो गङ्गां रम्यामृषिनिषेविताम् ॥१२॥
आश्रमैरविदूरस्थैः श्रीमद्भिः समलंकृताम्काले ऽप्सरोभिर्हृष्टाभिःसेवितान्भोहृदां शिवाम्॥१३॥
देवदानवगन्धर्वैः किंनरैरुपशोभिताम् । नागगन्धर्वपत्नीभिः सेवितां सततं शिवाम् ॥१४॥
देवाक्रीडशताकीर्णां देवोद्यानयुतां नदीम् । देवार्थमाकाशगतां विख्यातां देवपद्मिनीम् ॥१५॥
जलाघाताट्टहासोग्रां फेननिर्मलहासिनीम् । क्वचिद्वेणीकृतजलां क्वचिदावर्तशोभिताम् ॥१६॥
क्वचित्स्तिमितगंभीरां क्वचिद्वेगसमाकुलाम् । क्वचिद्भम्भीरनिर्घोषां क्वचिद्भैरवनिःस्वनाम् ॥१७॥
देवसंघाप्लुतजलां निर्मलोत्पलसंकुलाम् । क्वचिदाभोगपुलिनां क्वचिन्निर्मलवालुकाम् ॥१८॥

जनताकी आंखोंके ओझल होजाते हैं ॥ ७ ॥ तदनन्तर रामचन्द्र उस कोसलके बाहर चले गये, जो सदा धनधान्यसे पूर्ण रहता है, जहाँ दानी लोग रहते हैं, जो प्रदेश कल्याणमय है, जहाँके रहनेवालोंको कहींसे भय नहीं होता, जो रमणीय है, जहाँ देवताओंके चौतरे तथा देववृक्ष हैं ॥८॥ जहाँ बाग तथा आम्रवन वर्तमान है, जहाँ भरे हुए जलाशय हैं, जहाँके मनुष्य सन्तुष्ट तथा पुष्ट हैं गौ तथा अन्य पशु भैंस आदिसे जो पूर्ण है ॥ ९ ॥ जो राजाओंके रक्षा करने योग्य है, जो वेद-घोषसे अनुनादित होता रहता है, ऐसे कोसलदेशको पुरुषसिंह रामचन्द्र रथसे पार कर गये ॥ १० ॥ धीर रामचन्द्र दूसरे राज्यके बीचसे चले, वह राज्य सुन्दर और स्वच्छ था तथा उसमें अनेक रमणीय उद्यान थे। वह राज्य राजाओंके भोग करनेके योग्य था ॥ ११ ॥ वहाँ रामचन्द्रने दिव्य त्रिपथगा (गंगा) नदीको देखा, इसका जल शीतल था, उसमें शेवार नहीं था वह नदी रमणीय थी और उसके तीरपर ऋषिगण रहते थे ॥ १२ ॥ उस नदीके तीरपर पास-पास ऋषियोंके सुन्दर आश्रम थे। स्नान आदिके समयमें प्रसन्न अप्सराएँ वहाँ आती थीं, वहां जलवाले कई झील थे और वह नदी शिवकी थी ॥ १३ ॥ देव, दानव, गन्धर्व और किन्नर उस नदीकी सदा शोभा बढ़ाते हैं, नाग और गन्धर्वकी स्त्रियां भी उस नदीके तीरपर रहती हैं, ॥१४॥ देवताओंके क्रीड़ा योग्य सैकड़ों पर्वत उसके तीरपर वर्तमान हैं, उसके तीरपर कई देवताओंके उद्यान हैं, देवताओंके कल्याणके लिए यह नदी आकाशमें गई है, और इस प्रसिद्ध नदीके कमल देवताओंके काममें आने योग्य होते हैं ॥ १५ ॥ जलके टकरानेसे जो अट्टहासके समान शब्द होता है उससे यह नदी भयङ्कर है, निर्मल फेनही इसकी हँसी है, कहीं इसका जल वेणीके समान है, कहीं आवर्त (भँवर) से इसकी शोभा बढ़ रही है, ॥ १६ ॥ कहीं यह नदी स्थिर गम्भीर है, कहीं बड़े वेगसे चलती है कहीं मृदङ्ग आदिके समान इसका गम्भीर शब्द होता है और कहीं वज्रपातके समान भयानक शब्द होता है, ॥ १७ ॥ देवता इसके जलमें स्नान करते हैं, निर्मल कमल खिले हुए हैं, कहीं इसका तीर जलसे भरा हुआ है और कहीं दूर तक स्वच्छ बालू है ॥१८॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हंससारससंघुष्टां चक्रवाकोपशोभिताम् । सदामत्तैश्च विहगैरभिपन्नामनिन्दिताम् ॥१९॥
क्वचित्तीररुहैर्वृक्षैर्मालाभिरिव शोभिताम् । क्वचित्फुल्लोत्पलच्छन्नां क्वचित्पद्मवनाकुलाम् ॥२०॥
क्वचित्कुमुदखण्डैश्च कुड्मलैरुपशोभिताम् । नानापुष्परजोध्वस्तां समदामिव च क्वचित् ॥२१॥
व्यपेतमलसंघातां मणिनिर्मलदर्शनाम् । दिशागजैर्वनगजैर्यूथ्यैश्च वरवारणैः ॥२२॥
देवराजोपवाह्यैश्च संनादितवनान्तराम् । प्रमदामिव यत्नेन भूषितां भूषणोत्तमैः ॥२३॥
फलपुष्पैः किसलयैर्वृतां गुल्मैर्द्रुमैस्तथा । विष्णुपादच्युतां दिव्यामपापां पापनाशिनीम् ॥२४॥
शिंशुमारैश्च नक्रैश्च भुजंगश्च समन्विताम् । शंकरस्य जटाजूटाद्भ्रष्टां सागरतेजसा ॥२५॥
समुद्रमहिषीं गङ्गां सारसक्रौञ्चनादिताम् । आससाद महाबाहुः शृङ्गवेरपुरं प्रति ॥२६॥
तामूर्मिकालिलावर्तामन्ववेक्ष्य महारथः । सुमन्त्रमब्रवीत्सूतमिहैवाद्य वसामहे ॥२७॥
अविदूरादयं नद्या बहुपुष्पप्रवालवान् । सुमहानिङ्गुदीवृक्षो वसामोऽत्रैव सारथे ॥२८॥
प्रेक्षामि सरितां श्रेष्ठां संमान्यसलिलां शिवाम् । देवमानवगन्धर्वमृगपन्नगपक्षिणाम् ॥२९॥
लक्ष्मणश्च सुमन्त्रश्च बाढमित्येव राघवम् । उक्त्वा तामिङ्गुदीवृक्षं तदोपययतुर्हयैः ॥३०॥

इसके तीरपर हँस और सारस बोलते हैं, चक्रवाक इसके तीरकी शोभा बढ़ाते हैं, सदा प्रसन्न रहनेवाले पक्षी इसके तीरपर निवास करते हैं, यह बड़ीही सुन्दर नदी है ॥ १९ ॥ कहीं तीरके वृक्ष मालाके समान इसकी शोभा बढ़ाते हैं, कहीं विकसित कमलोंसे इसका जल ढँक गया है और कहीं कमलका वनही है ॥ २० ॥ कहीं कमलोंका वन है और उसमें अधिक नवीन कलियाँ हैं जिनसे इस नदीकी शोभा बढ़ रही है, अनेक तरहके पुष्पोंकी धूलिसे इस नदीका जलयुक्त है, कहीं यह मतवालीके समान मालुम होती है ॥ २१ ॥ इसके जलसे सभी मल दूर हो जाते हैं, मणिके समान यह स्वच्छ मालुम होती है । दिग्गज जातीय हाथी, मतवाले बनैले हाथी, पोसुए हाथी, ॥ २२ ॥ और देव तथा राजाओंके हाथीसे इस नदीके तीरके वन सदा प्रतिध्वनित होते रहते हैं, उत्तम भूषणोंसे स्त्रियोंके समान यह प्रयत्नपूर्वक भूषित की गई है ॥ २३ ॥ फल पुष्प पत्र गुल्म पक्षी आदिहो इसके भूषण हैं । यह देवी विष्णुके चरणोंसे निकली है, यह दिव्य है, पापरहित है और पाप नाश करनेवाली है ॥ २४ ॥ शिंशुमार, मगर तथा साँप इस नदीमें हैं, भगीरथकी तपस्यासे शिवके जटाजूटसे निकलकर यह नदी पृथिवीमें आयी है ॥ २५ ॥ यह गङ्गा समुद्रकी महारानी है, समुद्रमें मिलनेवाली नदियोंमें यह प्रधान नदी है, सारस क्रौंच इसके तीरपर बोला करते हैं । महाबाहु रामचन्द्र शृंगवेरपुरके सामने गंगातीरपर पहुँचे ॥ २६ ॥ गंगामें भँवरवाली लहरियां उठ रही हैं यह देखकर महारथ रामचन्द्रने सारथि सुमन्त्रसे कहा कि आज हमलोग यहीं रहें ॥ २७ ॥ नदीके पासही बहुत बड़ा इंगुदीका वृक्ष है, इसमें खूब पत्ते भी हैं, फूल भी हैं । सारथि, हम लोग यहीं निवास करें ॥ २८ ॥ मैं इस कल्याणकारिणी नदीको देखता हूँ, इसके जलका देवता दानव गन्धर्व, मृग पन्नग, पक्षी आदर करते हैं ॥ २९ ॥ लक्ष्मण और सुमन्त्रने रामचन्द्रकी आज्ञा स्वीकार की और घोड़ोंके द्वारा इंगुदीवृक्षके पास गये ॥ ३० ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रामोऽभियाय तं रम्यं वृक्षमिक्ष्वाकुनन्दनः । रथादवतरत्तस्मात्सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥३१॥
सुमन्त्रोऽप्यवतीर्याथ मोचयित्वा हयोत्तमान् । वृक्षमूलगतं राममुपतस्थे कृताञ्जलिः ॥३२॥
तत्र राजा गुहो नाम रामस्यात्मसमः सखा । निषादजात्यो बलवान्स्थपतिश्चेति विश्रुतः ॥३३॥
स श्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं रामं विषयमागतम् । वृद्धैः परिवृतोऽमात्यैर्ज्ञातिभिश्चाप्युपागतः ॥३४॥
ततो निषादाधिपतिं दृष्ट्वा दूरादुपस्थितम् । सह सौमित्रिणा रामः समागच्छद्गुहेन सः ॥३५॥
तमार्तः संपरिष्वज्य गुहो राघवमब्रवीत् । यथायोध्या तथेदं ते राम किं करवाणि ते ॥३६॥
ईदृशं हि महाबाहो कः प्राप्स्यत्यतिथिं प्रियम् । ततो गुणवदन्नाद्यमुपादाय पृथग्विधम् ॥३७॥
अर्घ्यं चोपानयच्छीघ्रं वाक्यं चेदमुवाच ह । स्वागतं ते महाबाहो तवेयमखिला मही ॥३८॥
वयं प्रेष्या भवान्भर्ता साधु राज्यं प्रशाधि नः । भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च लेह्यं चैतदुपस्थितम् ।
शयनानि च मुख्यानि वाजिनां खादनं च ते ॥३९॥
गुहमेवं ब्रुवाणं तु राघवः प्रत्युवाच ह । अर्चिताश्चैव हृष्टाश्च भवता सर्वदा वयम् ॥४०॥
पद्भ्यामभिगमाच्चैव स्नेहसंदर्शनेन च । भुजाभ्यां साधुवृत्ताभ्यां पीडयन्वाक्यमब्रवीत्॥४१॥
दिष्ट्या त्वां गुह पश्यामि ह्यरोगं सह बान्धवैः । अपि ते कुशलं राष्ट्रे मित्रेषु च वनेषु च ॥४२॥
यत्त्विदं भवता किंचित्प्रीत्या समुपकल्पितम् । सर्वं तदनुजानामि नहि वर्ते प्रतिग्रहे ॥४३॥

उस रमणीय वृक्षके पास रथके जानेपर रामचन्द्र भी सीता और लक्ष्मणके साथ रथसे उतरे ॥ ३१ ॥ सुमन्त्रने भी रथसे उतरकर घोड़े रथसे खोले, और वे वृक्षके नीचे बैठे हुए रामचन्द्रके पास हाथ जोड़कर गये ॥ ३२ ॥ उस देशके राजाका नाम गुह था, वह रामचन्द्रका प्राणोंके समान मित्र था । वह बड़ा बली तथा निषाद जातिका था । वह उस देशका प्रसिद्ध राजा था ॥ ३३ ॥ पुरुषसिंह रामचन्द्र हमारे देशमें आये हैं यह सुनकर वह बूढ़े अमात्यों तथा साथियोंसे युक्त होकर वहाँ आया ॥ ३४ ॥ दूरहीसे आये हुए निषादाधिपतिको देखकर रामचन्द्र लक्ष्मणके साथ गुहसे मिले ॥ ३५ ॥ दुःखी गुह रामचन्द्रका आलिङ्गन करके बोला, रामचन्द्र आपके लिए जैसी अयोध्या है वैसाही इस देशको भी समझो, आज्ञा दो, आपके लिए हम क्या करें ॥ ३६ ॥ महाबाहो रामचन्द्र, ऐसा प्रिय अतिथि किसको मिलता है । तदनन्तर गुह तरह-तरहके अन्न आदि भोजनकी सामग्री लेकर ॥ ३७ ॥ और अर्घ्य लेकर रामचन्द्रके समीप आया और बोला, महाबाहो, आपका स्वागत है, यह मेरे राज्यकी समस्त पृथिवी आपहीकी है ॥ ३८ ॥ हमलोग आपके सेवक हैं और आप स्वामी हैं, आप इस राज्यका शासन करें । भक्ष्य भोज्य लेह्य पेय आदि उपस्थित है ॥ ३९ ॥ आपलोगोंके लिए पलंग और घोड़ोंके लिए भोजन (दाना घास) भी आया है । गुहके ऐसा कहनेपर रामचन्द्र उससे बोले, आपने हमलोगोंका सदाही सत्कार किया है और उससे हमलोग प्रसन्न भी हुए हैं ॥ ४० ॥ आप पैरोंसे चलकर हमारे यहाँ आये हैं, हमलोगोंके प्रति ऐसा स्नेह दिखाया है । ऐसा कहनेके पश्चात् अपनी गोल बाहुओंसे गुहका आलिंगन करते हुए रामचन्द्र बोले ॥ ४१ ॥ गुह, यह प्रसन्नताकी बात है कि मैं बान्धवोंके सहित आपको निरोग देख रहा हूँ, आपके राज्य मित्र और वनका तो कुशल है ॥ ४२ ॥ यह जो कुछ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुशचीराजिनधरं फलमूलाशनं च माम् । विद्धि प्रणिहितं धर्मे तापसं वनगोचरम् ॥४४॥
अश्वानां खादनेनाहमर्थी नान्येन केनचित् । एतावतात्र भवता भविष्यामि सुपूजितः ॥४५॥
एते हि दयिता राज्ञः पितुर्दशरथस्य मे । एतैः सुविहितैरश्वैर्भविष्याम्यहमर्चितः ॥४६॥
अश्वानां प्रतिपानं च खादनं चैव सोऽन्वशात् । गुहस्तत्रैव पुरुषांस्त्वारितं दीयतामिति ॥४७॥
ततश्चीरोत्तरासङ्गः संध्यामन्वास्य पश्चिमाम् । जलमेवाददे भोज्यं लक्ष्मणेनाहृतं स्वयम् ॥४८॥
तस्य भूमौ शयानस्य पादौ प्रक्षाल्य लक्ष्मणः । सभार्यस्य ततोऽभ्येत्य तस्थौ वृक्षमुपाश्रितः ॥४९॥
गुहोऽपि सह सूतेन सौमित्रिमनुभाषयन् । अन्वजाग्रत्ततो राममप्रमत्तो धनुर्धरः ॥५०॥

तथाशयानस्य ततो यशस्विनो मनस्विनो दाशरथेर्महात्मनः ।
अदृष्टदुःखस्य सुखोचितस्य सा तदा व्यतीता सुचिरेण शर्वरी ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशः सर्गः ५१

तं जाग्रतमदम्भेन भ्रातुरर्थाय लक्ष्मणम् । गुहः संतापसंतप्तो राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
इयं तात सुखा शय्या त्वदर्थमुपकल्पिता । प्रत्याश्वसिहि साध्वस्यां राजपुत्र यथासुखम् ॥ २ ॥

प्रेमसे आप ले आये हैं वह सब मैं स्वीकार करता हूँ, पर मैं आजकल दान नहीं लेता ॥ ४३ ॥ कुश चीर और चर्म धारण करनेवाला, फल मूल खानेवाला वनवासी तपस्वी आप मुझे समझें, मैं इसी धर्ममें दीक्षित हूँ ॥ ४४ ॥ घोड़ोंके खानेके लिए जो आप ले आये हैं उसे तो मैं ले लेता हूँ और सब चीजे मैं न लूँगा, आपकी यही वस्तु लेकर मैं आपके द्वारा सत्कृत होऊँगा ॥ ४५ ॥ ये घोड़े राजा दसरथके बड़े ही प्रिय हैं, इनको उत्तम भोजन देनेसे ही मैं सत्कृत हो जाऊँगा ॥४६॥ रामचन्द्रकी बातें सुनकर गुहने अपने नौकरोंसे कहा कि घोड़ोंको खिलाओ पिलाओ ॥ ४७ ॥ तदनन्तर रामचन्द्रने चीर ओढ़कर सायंकालकी सन्ध्या की और लक्ष्मणका लाया हुआ जलही ग्रहण किया ॥ ४८ ॥ पत्नीके साथ भूमिपर सोये हुए रामचन्द्रके चरण लक्ष्मणने पोछे । पुनः वे आकर वृक्षके नीचे बैठ गये ॥ ४९ ॥ सूतके साथ गुह भी लक्ष्मणके पास आया और रामचन्द्रके गुण-संबन्धी बाते करता तथा धनुष लेकर रात भर सावधान होकर जागता रहा ॥ ५० ॥ यशस्वी मनस्वी दशरथ-पुत्र महात्मा रामचन्द्र, जिन्होंने कभी दुःख नहीं देखा है, किन्तु जो सुखके अभ्यासी हैं, उनके लिए वह रात बड़े विलम्बसे बीती ॥ ५१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका पचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५० ॥

स्वभावतः भाई रामचन्द्रके सुखपूर्वक शयन करनेके लिए लक्ष्मण जाग रहे हैं, यह देखकर लक्ष्मणके दुःखसे गुहको बड़ा दुःख हुआ और वह लक्ष्मणसे बोला ॥ १ ॥ तात राजपुत्र, आपके लिए यह सुखशय्या बनायी गयी है, आप इसपर सुखपूर्वक विश्राम करें ॥ २ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उचितोऽयं जनः सर्वः क्लेशानां त्वं सुखोचितः । गुप्त्यर्थं जागरिष्यामः काकुत्स्थस्य वयं निशाम् ॥ ३ ॥
नहि रामात्प्रियतमो ममास्ते भुवि कश्चन । ब्रवीम्येव च ते सत्यं सत्येनैव च ते शपे ॥ ४ ॥
अस्य प्रसादादाशंसे लोकेऽस्मिन्सुमहद्यशः । धर्मावाप्तिं च विपुलामर्थकामौ च पुष्कलौ ॥ ५ ॥
सोऽहं प्रियसखं रामं शयानं सह सीतया । रक्षिष्यामि धनुष्पाणिः सर्वथा ज्ञातिभिः सह ॥ ६ ॥
न मेऽस्त्यविहितं किंचिद्वनेऽस्मिंश्चरतः सदा । चतुरङ्गं ह्यतिबलं सुमहत्संतरेमहि ॥ ७ ॥
लक्ष्मणस्तु ततोवाच रक्ष्यमाणास्त्वयानघ । नात्र भीता वयं सर्वे धर्ममेवानुपश्यता ॥ ८ ॥
कथं दाशरथौ भूमौ शयाने सह सीतया । शक्या निद्रा मया लब्धुं जीवितं वा सुखानि वा ॥ ९ ॥
यो न देवासुरैः सर्वैः शक्यः प्रसहितुं युधि । तं पश्य सुखसंसुप्तं तृणेषु सह सीतया ॥ १० ॥
यो मन्त्रतपसा लब्धो विविधैश्च पराक्रमैः । एको दशरथस्यैष पुत्रः सदृशलक्षणः ॥ ११ ॥
अस्मिन्प्रव्रजिते राजा न चिरं वर्तयिष्यति । विधवा मेदिनी नूनं क्षिप्रमेव भविष्यति ॥ १२ ॥
विनद्य सुमहानादं श्रमेणोपरताः स्त्रियः । निर्घोषोपरतं तात मन्ये राजनिवेशनम् ॥ १३ ॥
कौसल्या चैव राजा च तथैव जननी मम । नाशंसे यदि जीवन्ति सर्वे ते शर्वरीमिमाम् ॥ १४ ॥
जीवेदपि हि मे माता शत्रुघ्नस्यान्ववेक्षया । तद्दुःखं यदि कौसल्या वीरसूर्विनशिष्यति ॥ १५ ॥

सब प्रकारके क्लेशोंके सहनेका मुझे अभ्यास है, आप तो सुखमें पले हैं, इसलिये आप सोएँ, रामचन्द्रकी रक्षाके लिये हमलोग जागरण करेंगे ॥ ३ ॥ रामसे बढ़कर इस संसारमें मुझे दूसरा प्रिय नहीं है, मैं तुमसे यह सत्यकी शपथ करके सत्य-सत्य कहता हूं ॥ ४ ॥ इनकी प्रसन्नतासे मैं संसारमें बड़े भारी यशकी कामना करता हूँ, विपुल धर्मप्राप्ति और पुष्कल अर्थ तथा कामकी भी प्राप्ति होगी ॥ ५ ॥ मैं अपने प्रियमित्र, सीताके साथ शयन किये हुए रामचन्द्रकी रक्षा धनुष लेकर अपने ज्ञातिके लोगोंके साथ करूँगा ॥ ६ ॥ मैं इस वनमें सदा घूमता रहता हूँ, इस कारण इस वनकी कोई बात मुझसे छिपी नहीं है। बलवान् शत्रुकी चतुरंगिनी सेनाको भी हम लोग जीत सकते हैं ॥ ७ ॥ लक्ष्मण बोले—हे निष्पाप धर्म देखनेवाले तुम्हारे द्वारा रक्षित होनेके कारणही हमलोग इस वनमें भयभीत नहीं हैं ॥ ८ ॥ पर रामचन्द्र सीताके साथ भूमिपर सो रहे हैं, ऐसी दशामें मैं कैसे सो सकता हूँ अथवा जीवनके अन्यसुखोंको भोग सकता हूँ ॥ ९ ॥ युद्धमें जिनके पराक्रमको देवता और असुर भी नहीं सह सकते, वे ही रामचन्द्र, देखिए, सीताके साथ जमीनपर सुखपूर्वक सो रहे हैं ॥ १० ॥ बड़े-बड़े उद्योग तथा मन्त्र और तपस्याबलसे राजा दसरथके येही सर्वप्रधान पुत्र उत्पन्न हुए हैं, ये दसरथके समान हैं ॥ ११ ॥ इनके वनवास चले आनेपर राजा दसरथ बहुत दिनों तक नहीं जी सकेंगे और यह पृथिवी शीघ्रही विधवा (बिना राजाकी) होजायगी ॥ १२ ॥ बहुत देर तक राम-रामकी रट लगानेसे जब स्त्रियाँ थक जायँगी, तब वे चुप हो जायँगी, अतएव मेरी समझसे राजाका घर इस समय बिना शब्दका सूना होगया होगा ॥ १३ ॥ कौसल्या, राजा तथा मेरी माता इस समय तक इस रातको जीते होंगे इसकी आशा मुझे नहीं है ॥ १४ ॥ सम्भव है मेरी माता जीती हों; क्योंकि उन्हें शत्रुघ्नको देखनेकी आशा है, पर वीर पुत्र उत्पन्न करनेवाली कौसल्या नष्ट होगी, यही असहनीय दुःख है ॥ १५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनुरक्तजनाकीर्णा सुखालोकप्रियावहा । राजव्यसनसंसृष्टा सा पुरी विनशिष्यति ॥१६॥
कथं पुत्रं महात्मानं ज्येष्ठपुत्रमपश्यतः । शरीरं धारयिष्यन्ति प्राणा राज्ञो महात्मनः ॥१७॥
विनष्टे नृपतौ पश्चात्कौसल्या विनशिष्यति । अनन्तरं च मातापि मम नाशमुपैष्यति ॥१८॥
अतिक्रान्तमतिक्रान्तमनवाप्य मनोरथम् । राज्ये राममनिक्षिप्य पिता मे विनशिष्यति ॥१९॥
सिद्धार्थाः पितरं वृत्तं तस्मिन्काले ह्युपस्थिते । प्रेतकार्येषु सर्वेषु संस्करिष्यन्ति राघवम् ॥२०॥
रम्यचत्वरसंस्थानां संविभक्तमहापथाम् । हर्म्यप्रासादसंपन्नां गणिकावरशोभिताम् ॥२१॥
रथाश्वगजसंबाधां तूर्यनादनिनादिताम् । सर्वकल्याणसंपूर्णां हृष्टपुष्टजनाकुलाम् ॥२२॥
आरामोद्यानसंपन्नां समाजोत्सवशालिनीम् । सुखिता विचरिष्यंति राजधानीं पितुर्मम ॥२३॥
अपि जीवेदशरथो वनवासात्पुनर्व्रजम् । प्रत्यागम्य महात्मानमपि पश्याम सुव्रतम् ॥२४॥
आर्यं सत्यप्रतिज्ञेन सार्धं कुशलिनो वयम् । निवृत्ते वनवासेऽस्मिन्नयोध्यां प्रविशेमहि ॥२५॥
परिदेवयमानस्य दुःखार्तस्य महात्मनः । तिष्ठतो राजपुत्रस्य शर्वरी सात्यवर्तत ॥२६॥
तथाहि सत्यं ब्रुवति प्रजाहिते नरेन्द्रसूनौ गुरुसौहृदादगुहः ।
मुमोच बाष्पं व्यसनाभिपीडितो ज्वरातुरो नाग इव व्यथातुरः ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्ड एकपञ्चाशः सर्गः ॥५१॥

रामचन्द्रमें अनुराग रखनेवाले मनुष्योंसे जो नगरी भरी हुई है, अतएव सुखकारी है तथा लोकको प्रिय है, वही नगरी राजाके दुःखसे नष्ट हो जायगी ॥ १६ ॥ महात्मा बड़े पुत्रको बिना देखे राजाके प्राण कैसे शरीर धारण करेंगे अर्थात् रामचन्द्रके बिना राजा कैसे जी सकेंगे ॥ १७ ॥ राजाके मरनेके पीछे कौसल्या मरेंगी, तदनन्तर मेरी माता भी मरेंगी ॥ १८ ॥ मेरे पिता रामचन्द्रका राज्याभिषेक नहीं कर सकेंगे, इस अपने सर्वश्रेष्ठ मनोरथके विफल होनेके कारण अवश्यही वे मरेंगे ॥ १९ ॥ वह समय जब आवेगा अर्थात् पिताकी मृत्युका समय जब आवेगा तब उन मरे हुए पिताके समस्त प्रेतकार्य जो करेंगे वेही भाग्यवान् हैं, अर्थात् वे ही राज्य पावेंगे ॥ २० ॥ यदि राजा दसरथ जीते रहे तो अयोध्यावासी मेरे पिताकी राजधानी उस अयोध्यामें सुखसे विचरण करेंगे, जिसमें रमणीय चौराहे हैं, अलग-अलग सड़कें बनी हुई हैं, जिसमें धनी देवता तथा राजाके महल हैं, जहाँ श्रेष्ठ वाराङ्गनाएँ हैं, जो रथ, घोड़े और हाथीसे पूर्ण है, जहाँ बाजे बजते रहते हैं, जो सब प्रकारके कल्याणोंसे युक्त है जहाँके मनुष्य हृष्ट पुष्ट हैं, जहाँ साधारण बाग और राजाओंके बाग बने हुए हैं, जहाँ ब्राह्मण आदि वर्णोंके उत्सव होते रहते हैं। हम लोग भी वनवाससे लौटकर अपने सुव्रत महात्मा पिताका दर्शन करेंगे, ॥२१-२२-२३-२४॥ उस समय सत्यप्रतिज्ञ रामचन्द्रके साथ वनवासकी अवधि निवृत्त होनेपर अयोध्यामें प्रवेश करेंगे ॥ २५ ॥ राजपुत्र महात्मा लक्ष्मण इस प्रकार रोते रहे और वह रात बीत गयी ॥ २६ ॥ प्रजाके हितकारी राजपुत्र लक्ष्मणके इस प्रकार सत्य बातें कहनेपर रामचन्द्रमें प्रेमके कारण दुःखसे अभिभूत होकर गुह रोने लगा, जिस प्रकार ज्वरसे अभिभूत होकर हाथी रोता है ॥ २७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एक्यावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५१ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्विपञ्चाशः सर्गः ५२

प्रभातायां तु शर्वर्यां पृथुवक्षा महायशाः । उवाच रामः सौमित्रिं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ १ ॥
भास्करोदयकालोऽसौ गता भगवती निशा । असौ सुकृष्णो विहगः कोकिलस्तात कूजति ॥ २ ॥
बर्हिणानां च निर्घोषः श्रूयते नदतां वने । तराम जाह्नवीं सौम्य शीघ्रगां सागरंगमाम् ॥ ३ ॥
विज्ञाय रामस्य वचः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः । गुहमामन्त्र्य सूतं च सोऽतिष्ठद्भ्रातुरग्रतः ॥ ४ ॥
स तु रामस्य वचनं निशम्य प्रतिगृह्य च । स्थपतिस्तूर्णमाहूय सचिवानिदमब्रवीत् ॥ ५ ॥
अस्य वाहनसंयुक्तां कर्णग्राहवतीं शुभाम् । सुप्रतारां दृढां तीर्थे शीघ्रं नावमुपाहर ॥ ६ ॥
तं निशम्य गुहादेशं गुहामात्यो गतो महान् । उपोह्य रुचिरां नावं गुहाय प्रत्यवेदयत् ॥ ७ ॥
ततः स प्राञ्जलिर्भूत्वा गुहो राघवमब्रवीत । उपस्थितेयं नौर्देव भूयः किं करवाणि ते ॥ ८ ॥
तवामरसुतप्रख्य तर्तुं सागरगामिनीम् । नौरियं पुरुषव्याघ्र शीघ्रमारोह सुव्रत ॥ ९ ॥
अथोवाच महातेजा रामो गुहमिदं वचः । कृतकामोऽस्मि भवता शीघ्रमारोप्यतामिति ॥१०॥
ततः कलापान्संनह्य खड्गौ बध्वा च धन्विनौ । जग्मतुर्येन तां गङ्गां सीतया सह राघवौ ॥११॥
राममेवं तु धर्मज्ञमुपागत्य विनीतवत । किमहं करवाणीति सूत प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥१२॥

ततोऽब्रवीद्दाशरथिः सुमन्त्रं स्पृशन्करेणोत्तमदक्षिणेन ।
सुमन्त्र शीघ्रं पुनरेव याहि राज्ञः सकाशे भव चाप्रमत्तः ॥१३॥

रातके बीत जानेपर पृथुवक्षा (विशाल छाती) महायशस्वी रामचन्द्र सुलक्षण सुमित्रापुत्र लक्ष्मणसे बोले ॥ १ ॥ यह सूर्योदयका समय है भगवती रात बीत गयी, काली कोयल बोल रही है ॥२॥ वनमें मयूर बोल रहे हैं उनके शब्द सुन पड़ते हैं। सौम्य, समुद्रमें जानेवाली वेगवती गंगाको हमलोग पार करें ॥ ३ ॥ मित्रोंको प्रसन्न करनेवाले लक्ष्मण रामचन्द्रका अभिप्राय समझकर सूत और गुहसे नाव लानेके लिये कह, भाई रामचन्द्रके आगे जाकर खड़े होगये ॥ ४ ॥ रामचन्द्र-की आज्ञा सुनकर गुहने उसे ग्रहण किया और शीघ्र अपने सचिवोंको बुलाकर राजा गुह बोला ॥ ५ ॥ अरित्र (जल हटाकर नावको तीरपर लगानेवाला यन्त्र) और कर्णधारवाली मजबूत तथा शीघ्र चलनेवाली नाव घाटपर लाओ ॥ ६ ॥ गुहकी आज्ञा सुनकर उसका श्रेष्ठ सचिव गया और उत्तम नाव घाटपर लाकर गुहसे बोला अर्थात् नाव आ जानेकी खबर दी ॥ ७ ॥ तब गुह हाथ जोड़कर रामचन्द्रसे बोला—महाराज, यह नाव आ गयी, अब आपके लिए मैं और क्या करूँ ॥ ८ ॥ हे देवकुमारसदृश रामचन्द्र, गंगाको पार करनेके लिए आप शीघ्र इस नौकापर चढ़ें ॥ ९ ॥ महातेजस्वी रामचन्द्र गुहसे बोले—आपने हमलोगोंके मनोरथ पूरे किये, नौकापर चीजें रखवाइए ॥ १० ॥ तदनन्तर कवच धारण करके तूणीर, बाण और तलवार धारण करके धनुर्धारी राम तथा लक्ष्मण सीताके साथ उस मार्गसे गंगाके समीप गये, जिस मार्गसे लोग गंगा पार करनेके लिये जाते हैं ॥ ११ ॥ उस समय धर्मात्मा रामचन्द्रके समीप आकर सुमन्त्रने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर पूछा कि मैं क्या करूँ ॥१२॥ अपने श्रेष्ठ दहिने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निवर्तस्वेत्युवाचैनमेतावद्धि कृतं मम । रथं विहाय पद्भ्यां तु गमिष्यामो महावनम् ॥१४॥
आत्मानं त्वभ्यनुज्ञातमवेक्ष्यार्तः स सारथिः । सुमन्त्रः पुरुषव्याघ्रमैक्ष्वाकमिदमब्रवीत् ॥१५॥
नातिक्रान्तामिदं लोके पुरुषेणेह केनचित । तव सभ्रातृभार्यस्य वासः प्राकृतवद्वने ॥१६॥
न मन्ये ब्रह्मचर्ये वा स्वधीते वा फलोदयः । मार्दवार्जवयोर्वापि त्वां चेदृव्यसनमागतम् ॥१७॥
सह राघव वैदेह्या भ्रात्रा चैव वने वसन् । त्वं गतिं प्राप्स्यसे वीर त्रीँल्लोकांस्तु जयन्निव ॥१८॥
वयं खलु हता राम यत्त्वया हृयुपवञ्चिताः । कैकेय्या वशमेष्यामः पापाया दुःखभागिनः ॥१९॥
इति ब्रुवन्नात्मसमं सुमन्त्रः सारथिस्तथा । दृष्ट्वा दूरगतं रामं दुःखार्तो रुरुदे चिरम् ॥२०॥
ततस्तु विगते बाष्पे सूतं स्पृष्टोदकं शुचिम् । रामस्तु मधुरं वाक्यं पुनः पुनरुवाच तम् ॥२१॥
इक्ष्वाकूणां त्वया तुल्यं सुहृदं नोपलक्षये । यथा दशरथो राजा मां न शोचेत्तथा कुरु ॥२२॥
शोकोपहतचेताश्च वृद्धश्च जगतीपतिः । कामभारावसन्नश्च तस्मादेतद्ब्रवीमि ते ॥२३॥
यद्यथा ज्ञापयेत्किंचित्स महात्मा महीपतिः । कैकेय्याः प्रियकामार्थं कार्यं तदविकाङ्क्षया ॥२४॥
एतदर्थं हि राज्यानि प्रशासति नराधिपाः । यदेषां सर्वकृत्येषु मनो न प्रतिहन्यते ॥२५॥

हाथसे सुमंत्रका स्पर्श करते हुए दसरथपुत्र रामचन्द्र बोले—सुमंत्र, तुम शीघ्रही पिताके पास जाओ और वहाँ सावधान होकर रहो ॥ १३ ॥ तुम लौट जाओ, क्योंकि गंगातीरतक ही रथ पर जानेकी आज्ञा हमने स्वीकार की है, अब हमलोग रथ छोड़कर पैरोंसे ही इस महावनमें जायंगे ॥ १४ ॥ मुझे लौट जानेकी आज्ञा मिल गयी, यह जानकर सारथि सुमंत्र बहुतही दुःखी हुए और वे इक्ष्वाकुवंशी पुरुषसिंह रामचन्द्रसे बोले ॥ १५ ॥ भाई और स्त्रीके साथ साधारण मनुष्योंके समान आपका वनमें रहना किसी भी मनुष्यको अच्छा नहीं लगता, फिर वह मुझे कैसे अच्छा लग सकता है ॥ १६ ॥ आपपर भी जब यह दुःख आया है, तब मुझे मालूम होता है कि ब्रह्मचर्य-पालन, अध्ययन, दयालुता और अकुटिलता किसीका कुछ फल नहीं होता । यदि होता तो आपने इनका पालन किया है और आपको कुछ फल मिलना चाहिए था, पर आपको नहीं मिला ॥ १७ ॥ रामचन्द्र, जानकी और लक्ष्मणके साथ वनमें निवास करनेके कारण आपको तीनों लोकोंको विजय करनेके समान प्रसिद्धि मिलेगी ॥ १८ ॥ रामचन्द्र, आपके द्वारा त्याग होनेके कारण हमलोग तो मारेही गये, अब हमलोग पापिन केकयीके अधीन रहेंगे और दुःख उठावेंगे ॥ १९ ॥ इस प्रकार अपने पदके योग्य बातें कहकर सारथि सुमंत्र, रामचन्द्रको दूर गया देखकर, बड़ी देर तक रोते रहे ॥ २० ॥ जब आँसू रुका तब सुमंत्र आचमन करके पवित्र हुए, उस समय रामचन्द्रने मधुर स्वरमें उनसे बार-बार यह वचन कहा ॥ २१ ॥ इक्ष्वाकु-वंशका तुम्हारे समान मित्र मैं दूसरेको नहीं देखता, अतएव तुम वैसा प्रयत्न करना जिससे राजा दसरथ मेरे लिए दुःखित न हों ॥ २२ ॥ राजा वृद्ध हैं, काम और राज्यभारसे दबे हुए हैं तथा शोकसे भी उनकी बुरी दशा है, इसीलिए तुमसे ऐसा कह रहा हूँ ॥ २३ ॥ वे महात्मा राजा केकयीकी इच्छाके अनुकूल जो कुछ कहें वह सब उनके कहनेके अनुसार आदरपूर्वक करना ॥ २४ ॥ राजाके मनोरथ बिना पूरे हुए न रहे, इसी लिए वे राज्यका शासन करते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यद्यथा स महाराजो नालीकमधिगच्छति । न च ताम्यति शोकेन सुमन्त्र कुरु तत्तथा ॥२६॥
अदृष्टदुःखं राजानं वृद्धमार्यं जितेन्द्रियम् । ब्रूयास्त्वमभिवाद्यैव मम हेतोरिदं वचः ॥२७॥
न चाहमनुशोचामि लक्ष्मणो न च शोचति । अयोध्यायाश्च्युताश्चेति वने वत्स्यामहेति वा ॥२८॥
चतुर्दशसु वर्षेषु निवृत्तेषु पुनःपुनः । लक्ष्मणं मां च सीतां च द्रक्ष्यसे शीघ्रमागतान् ॥२९॥
एवमुक्त्वा तु राजानं मातरं च सुमन्त्र मे । अन्याश्च देवीः सहिताः कैकेयीं च पुनःपुनः ॥३०॥
आरोग्यं ब्रूहि कौसल्यामथ पादाभिवन्दनम् । सीताया मम चार्यस्य वचनाल्लक्ष्मणस्य च ॥३१॥
ब्रूयाश्चापि महाराजं भरतं क्षिप्रमानय । आगतश्चापि भरतः स्थाप्यो नृपमते पदे ॥३२॥
भरतं च परिष्वज्य यौवराज्येऽभिषिच्य च । अस्मत्संतापजं दुःखं न त्वामभिभविष्यति ॥३३॥
भरतश्चापि वक्तव्यो यथा राजनि वर्तसे । तथा मातृषु वर्तेथाः सर्वास्वेवाविशेषतः ॥३४॥
यथा च तव कैकेयी सुमित्रा चाविशेषतः । तथैव देवी कौसल्या मम माता विशेषतः ॥३५॥
तातस्य प्रियकामेन यौवराज्यमवेक्षता । लोकयोरुभयोः शक्यं नित्यदा सुखमेधितुम् ॥३६॥
निवर्त्यमानो रामेण सुमन्त्रः प्रतिबोधितः । तत्सर्वं वचनं श्रुत्वा स्नेहात्काकुत्स्थमब्रवीत् ॥३७॥
यदहं नोपचारेण ब्रूयाः स्नेहादविक्लवम् । भाक्तमानिति तत्तावद्वाक्यं त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥३८॥

हैं ॥ २५ ॥ जो कार्य राजाको अप्रिय न हो, जिस प्रकार वे शोकसे दुःखी न हों, सुमंत्र, तुम वैसाही करना ॥ २६ ॥ जिन्होंने दुःख नहीं देखे हैं, जो जितेन्द्रियश्रेष्ठ और बूढ़े हैं उन राजाको प्रणाम करके मेरे सम्बन्धमें ये बातें तुम उनसे कहना ॥ २७ ॥ अयोध्यासे हम बाहर हैं इसका दुःख न मुझे है और न लक्ष्मणको है, हम लोगोंको वनमें रहना पड़ेगा इसका भी दुःख न तो मुझे है और न लक्ष्मणको है । इस कारण हम लोगोंके लिए आप दुःख न करें ॥ २८ ॥ चौदह वर्षोंके बीतनेपर जब हम लोग वनसे लौटेंगे उस समय आप रामचन्द्र लक्ष्मण और सीताको आये हुए देखेंगे ॥ २९ ॥ सुमन्त्र ! राजा, मेरी माता कौसल्या, अन्य देवियाँ तथा केकयीसे तुम मेरी ओरसे यही कहना ॥ ३० ॥ कौसल्यासे कहना कि रामचन्द्र और सीता नीरोग हैं, लक्ष्मणकी ओरसे भी कहना कि लक्ष्मण नीरोग हैं तथा हमलोगोंकी ओरसे उनको प्रणाम कहना ॥ ३१ ॥ महाराजसे कहना कि वे भरतको शीघ्र बुलालें और भरतके आनेपर राजाके अभिमत पदपर उनका अभिषेक करें ॥ ३२ ॥ राजासे कहना कि भरतका युवराजपदपर अभिषेक हो जानेसे तथा उनका आलिंगन करनेसे हमलोगोंके वियोगका दुःख राजाको न होगा ॥ ३३ ॥ भरतसे भी कहना कि तुम राजासे जैसा व्यवहार करो वैसाही व्यवहार सब माताओंसे विना भेदभावके रखो ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार केकयी और शत्रुघ्नके संबन्धसे सुमित्रा तुम्हारी माता हैं, उसी प्रकार मेरी माता देवी कौसल्या भी तुम्हारी माता हैं ॥ ३५ ॥ पिताकी प्रसन्नताके लिए यौवराज्यपदके कर्तव्योंके पालन करनेसे तुम इहलोक और परलोक दोनों लोकोंमें सदा सुख पा सकते हो ॥ ३६ ॥ रामचन्द्रने सुमंत्रको जब लौट जानेके लिए कहा और अपना सन्देश दिया, तब उनकी सब बातें सुनकर वे स्नेहसे रामचन्द्रसे बोले ॥ ३७ ॥ जो मैं आपसे ढीठ होकर बातें कहूँगा, वे उपचारसे आपको खुश करनेके लिए, शिष्टाचारकी बातें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कथं हि त्वद्विहीनोऽहं प्रतियास्यामि तां पुरीम् । तव तात वियोगेन पुत्रशोकातुरामिव ॥३९॥
सराममपि तावन्मे रथं दृष्ट्वा तदा जनाः । विना रामं रथं दृष्ट्वा विदीर्येतापि सा पुरी ॥४०॥
दैन्यं हि नगरी गच्छेद्दृष्ट्वा शून्यमिमं रथम् । सूतावशेषं स्वं सैन्यं हतवीरमिवाहवे ॥४१॥
दूरेऽपि निवसन्तं त्वां मानसेनाग्रतः स्थितम् । चिन्तयन्तोऽद्य नूनं त्वां निराहाराःकृताःप्रजाः॥४२॥
दृष्टं तद्धि त्वया राम यादृशं त्वत्प्रवासने । प्रजानां संकुलं वृत्तं त्वच्छोकक्लान्तचेतसाम् ॥४३॥
आर्तनादो हि यः पौरैरुन्मुक्तस्त्वत्प्रवासने । सरथं मां निशाम्येव कुर्युः शतगुणं ततः ॥४४॥
अहं किं चापि वक्ष्यामि देवीं तव सुतो मया । नीतोऽसौ मातुलकुलं संतापं मा कृथा इति ॥४५॥
असत्यमपि नैवाहं ब्रूयां वचनमीदृशम् । कथमप्रियमेवाहं ब्रूयां सत्यमिदं वचः ॥४६॥
मम तावन्नियोगस्थास्त्वद्बन्धुजनवाहिनः । कथं रथं त्वया हीनं प्रवाह्यन्ति हयोत्तमाः ॥४७॥
तन्न शक्ष्याम्यहं गन्तुमयोध्यां त्वदृतेऽनघ । वनवासानुयानाय मामनुज्ञातुमर्हसि ॥४८॥
यदि मे याचमानस्य त्यागमेव करिष्यसि । सरथोऽग्निं प्रवेक्ष्यामि त्यक्तमात्र इह त्वया ॥४९॥

कही हुई नहीं हैं, किन्तु आपके प्रति जो मेरा स्नेह है उससे कही हुई हैं, अतएव आप यह समझकर कि यह मेरा भक्त है मुझे क्षमा करें ॥ ३८ ॥ वह नगरी आपके वियोगसे पुत्र शोकसे दुःखिनीके समान है, उस नगरीमें आपके बिना मैं कैसे जा सकूँगा ॥ ३९ ॥ पहले लोगोंने मेरे रथको रामसे युक्त देखा है, अब वे बिना रामके उसी रथको देखेंगे तो इससे वहाँके मनुष्य तथा वह समस्त नगरी दुःखसे विदीर्ण हो जायगी ॥ ४० ॥ आपसे शून्य इस रथको देखकर वह नगरी दीन हो जायगी, दुःखिनी हो जायगी, जिस प्रकार रणमें वीर मारा जाय और सारथिमात्र ही बचा रहे ऐसी अपनी सेनाको देखनेसे दुःख होता है ॥ ४१ ॥ यद्यपि आप अयोध्याकी प्रजासे दूर हैं, तथापि उसके मनमें रहनेसे, सदा आपकी ही चिन्ता रहनेसे, आप उसके सामने ही हैं, आज आपके बिना रथ लेकर जब मैं जाऊँगा तब वह निराहार रह जायगी, बिना भोजन किये प्राण देनेके लिए तयार हो जायगी ॥ ४२ ॥ रामचन्द्र आपके प्रस्थान करनेके समयमें आपके वियोग दुःखसे दुःखी प्रजाने जैसा दुःख प्रकाश किया था वह आपने देखा ही था ॥ ४३ ॥ आपके चलनेके समय पुरवासियोंने जैसा आर्तनाद किया था, रथ पर अकेले मुझे लौटा देखकर वे उससे सौगुना अधिक आर्तनाद करेंगे ॥ ४४ ॥ मैं देवी कौसल्यासे क्या कहूँगा जिससे उनका शोक दूर हो, क्या मैं उनसे कहूँगा कि मैं आपके पुत्रको मामाके यहाँ पहुँचा आया, आप दुःख न करें ॥ ४५ ॥ इस प्रकारके असत्य वचन तो मैं कहूँगा ही नहीं और जो सत्य है अर्थात् आपके पुत्रको मैं वन भेज आया, यह अप्रिय है यह भी कैसे कहूँगा । अथवा आपका वन जाना असत्य भी होता तौभी मैं नहीं कहता, पर यह तो सत्य है, अतएव यह अप्रिय सत्य मैं कैसे कहूँगा ॥ ४६ ॥ ये घोड़े जिनका देख-भाल मेरे अधीन है आपके बान्धवोंको ही ले चलते हैं, जब आप लोग कोई इस रथपर नहीं रहेंगे तब ये घोड़े रथ कैसे ले जायंगे ॥ ४७ ॥ अतएव निष्पाप, आपके बिना मैं अयोध्या नहीं जा सकता, अतएव अपने साथ आप मुझे वनमें चलनेकी आज्ञा दें ॥ ४८ ॥ इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भी आप मेरा त्याग करेंगे, मुझे साथ न ले चलेंगे तब आपके द्वारा त्यक्त होनेपर मैं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भविष्यन्ति वने यानि तपोविघ्नकराणि ते। रथेन प्रतिबाधिष्ये तानि सर्वाणि राघव ॥५०॥
त्वत्कृते न मया प्राप्तं रथचर्याकृतं सुखम्। आशंसे त्वत्कृते नाहं वनवासकृतं सुखम् ॥५१॥
प्रसीदेच्छामि तेऽरण्ये भवितुं प्रत्यनन्तरः। प्रीत्याभिहितामिच्छामि भव मे प्रत्यनन्तरः ॥५२॥
इमेऽपि च हया वीर यदि ते वनवासिनः। परिचर्यां करिष्यन्ति प्राप्स्यन्ति परमां गतिम् ॥५३॥
तव शुश्रूषणं मूर्ध्ना करिष्यामि वने वसन्। अयोध्यां देवलोकं वा सर्वथा प्रजहाम्यहम् ॥५४॥
नहि शक्या प्रवेष्टुं सा मयायोध्या त्वया विना। राजधानी महेन्द्रस्य यथा दुष्कृतकर्मणा ॥५५॥
वनवासे क्षयं प्राप्ते ममैष हि मनोरथः। यदनेन रथेनैव त्वां वहेयं पुरीं पुनः ॥५६॥
चतुर्दश हि वर्षाणि सहितस्य त्वया वने। क्षणभूतानि यास्यन्ति शतसंख्यानि चान्यथा ॥५७॥
भृत्यवत्सल तिष्ठन्तं भर्तृपुत्रगते पथि। भक्तं भृत्यं स्थितं स्थित्या न मां त्वं हातुमर्हसि ॥५८॥
एवं बहुविधं दीनं याचमानं पुनः पुनः। रामो भृत्यानुकम्पी तु सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥५९॥
जानामि परमां भक्तिमहं ते भर्तृवत्सल। शृणु चापि यदर्थं त्वां प्रेषयामि पुरीमितः ॥६०॥
नगरीं त्वां गतं दृष्ट्वा जननी मे यवीयसी। कैकयी प्रत्ययं गच्छेदिति रामो वनं गतः ॥६१॥
विपरीते तुष्टिहीना वनवासं गते मयि। राजानं नातिशङ्केत मिथ्यावादीति धार्मिकम् ॥६२॥

शीघ्रही यहीं रथके साथ अग्निप्रवेश करूँगा ४८ ॥ रामचन्द्र, यदि मैं आपके साथ वनमें चलता तो रथके द्वारा आपकी तपस्याके समस्त विघ्न करनेवालोंको दूर हटाता ॥ ५० ॥ रामचन्द्र आपहीने मुझे सारथिका पद देकर सुखी बनाया है, मैं आशा करता हूँ कि आपके द्वारा वनवासका भी सुख मिलेगा ॥ ५१ ॥ आप प्रसन्न हों, मैं वनमें आपका साथी होना चाहता हूँ, मैं चाहता हूँ कि आप प्रेमपूर्वक कहें कि तुम मेरे साथ चलो ॥ ५२ ॥ ये घोड़े यदि वनवासी आपकी कुछ सेवा कर सकें तो स्वामीकी सेवा करने के कारण इनको भी बहुत सुख होगा ॥ ५३ ॥ वनमें रहकर मैं सब प्रकारसे आपकी सेवा करूंगा, आप यदि मुझे अपने साथ वनमें ले चलें तो अयोध्या और स्वर्गलोक तकका मैं त्याग कर सकता हूँ ॥ ५४ ॥ आपके बिना अयोध्या नगरीमें प्रवेश करना मेरे लिए अशक्य है, जिस प्रकार पापीके लिये इन्द्रकी राजधानी अमरावतीमें प्रवेश करना ॥ ५५ ॥ मेरा अभिलाष है कि वनवासकी अवधि पूरी होनेपर इसी रथपर पुनः मैं आपको राजधानीमें ले चलूं ॥ ५६ ॥ आपके साथ वनमें रहनेसे ये वर्ष मेरे लिए एक क्षणके समान बीतेंगे, और यदि आपका साथ न हुआ तब तो ये ही वर्ष सौ वर्षोंके समान होंगे ॥ ५७ ॥ राजपुत्रने जिस मार्गका ग्रहण किया है, उस मार्गमें भृत्यको जैसा रहना चाहिए, मैं भी आपके साथ उसी रूपसे रहना चाहता हूँ, मैं सब भृत्योंमें अधिक आपका भक्त भृत्य हूँ और भृत्यहीके समान रहना चाहता हूँ, आपको मेरा त्याग नहीं करना चाहिए ॥ ५८ ॥ इस प्रकार अनेक तरहसे बार-बार सुमन्त्रके प्रार्थना करनेपर अपने भृत्योंपर प्रेम करनेवाले रामचन्द्र सुमन्त्रसे यह बोले ॥ ५७ ॥ स्वामिभक्त, आपकी श्रेष्ठ भक्तिको मैं जानता हूँ। सुनिए, जिसलिए मैं आपको यहाँसे अयोध्या भेज रहा हूँ ॥ ६० ॥ जब आप यहाँसे अयोध्या लौट जायँगे, तब मेरी छोटी माता केकयीको इस बातका विश्वास हो जायगा कि रामचन्द्र वन गये ॥६१॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एष मे प्रथमः कल्पो यदम्बा मे यवीयसी । भरतारक्षितं वृत्त पुत्रराज्यमवाप्स्यते ॥६३॥
मम प्रियार्थं राज्ञश्च सुमन्त्र त्वं पुरीं व्रज । संदिष्टश्चापि यानर्थांस्तांस्तान्ब्रूयास्तथा तथा॥६४॥
इत्युक्त्वा वचनं सूतं सान्त्वयित्वा पुनःपुनः । गुहं वचनमक्लीबो रामो हेतुमदब्रवीत् ॥६५॥
नेदानीं गुह योग्योऽयं वासो मे सजने वने । अवश्यमाश्रमे वासः कर्तव्यस्तद्व्रतो विधिः ॥६६॥
सोऽहं गृहीत्वा नियमं तपस्विजनभूषणम् । हितकामः पितुर्भूयः सीताया लक्ष्मणस्य च॥६७॥
जटाः कृत्वा गमिष्यामि न्यग्रोधक्षीरमानय । तत्क्षीरं राजपुत्राय गुहः क्षिप्रमुपाहरत् ॥६८॥
लक्ष्मणस्यात्मनश्चैव रामस्तेनाकरोज्जटाः । दीर्घबाहुर्नरव्याघ्रो जटिलत्वमधारयत् ॥६९॥
तौ तदा चीरसंपन्नौ जटामण्डलधारिणौ । अशोभेतामृषिसमौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥७०॥
ततो वैखानसं मार्गमास्थितः सहलक्ष्मणः । व्रतमादिष्टवान्रामः सहायं गुहमब्रवीत् ॥७१॥
अप्रमत्तो बले कोशे दुर्गे जनपदे तथा । भवेथा गुह राज्यं हि दुरारक्षतमं मतम् ॥७२॥
ततस्तं समनुज्ञाप्य गुहमिक्ष्वाकुनन्दनः । जगाम तूर्णमव्यग्रः सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥७३॥
स तु दृष्ट्वा नदीतीरे नावमिक्ष्वाकुनन्दनः । तितीर्षुः शीघ्रगां गङ्गामिदं वचनमब्रवीत् ॥७४॥
आरोह त्वं नरव्याघ्र स्थितां नावमिमां शनैः । सीतां चारोपयान्वक्षं परिगृह्य मनस्विनीम् ॥७५॥

मेरे वनवास जानेपर देवी केकयी सन्तुष्ट हो जायगी और धार्मिक राजाके मिथ्यवादी होनेकी शंका नहीं करेंगी ॥ ६२ ॥ आपको अयोध्या भेजनेका सबसे प्रधान उद्देश्य मेरा यह है कि मेरी छोटी माता केकयी अपने पुत्र भरतके द्वारा अच्छी तरह शासित पुत्रराज्य पावें ॥ ६३ ॥ सुमन्त्र मेरी तथा राजाकी प्रसन्नताके लिये तुम अयोध्या जाओ और जिसके लिये जो सन्देश मैंने कहा है उससे वह सन्देश जाकर कहो ॥ ६४ ॥ सूतसे ऐसा कहकर तथा बार-बार उन्हें समझाकर गुहसे हेतुयुक्त वचन वे बोले ॥ ६५ ॥ गुह, इस समय मुझे मनुष्यवाले वनमें नहीं रहना चाहिए; किन्तु आश्रममें रहना चाहिए और उस विधिका पालन करना चाहिए जो आश्रममें रहनेवालोंके लिए निर्दिष्ट है ॥ ६६ ॥ इस कारण तपस्वियोंके नियम भूशयन, जटाधारण आदि धारण करता हूँ। पिताके मनोरथकी पूर्तिके लिए सीता और लक्ष्मणकी सम्मतिसे तपस्वियोंके भूषण जटा बना कर मैं यहाँसे जाऊँगा, तुम वरका दूध ले आओ। गुहने शीघ्रही वरका दूध लाकर राजपुत्रको दिया ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ रामचन्द्रने उस दूधसे अपनी तथा लक्ष्मणकी जटा बनायी, नरसिंह महाबाहु राजचन्द्र जटिल बन गये ॥ ६९ ॥ उस समय वे दोनों भाई राम और लक्ष्मण, चीर और जटा धारण करनेके कारण, ऋषियोंके समान शोभने लगे ॥ ७० ॥ वानप्रस्थ धर्म ग्रहण करके लक्ष्मणके साथ रामचन्द्र ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करने लगे और वे अपने सहायक गुहसे इस प्रकार बोले ॥ ७१ ॥ सेना खजाना किला और राज्यके विषयमें सदा सावधान रहो; क्योंकि राज्यकी रक्षा बड़ी कठिनतासे होती है ॥ ७२ ॥ इक्ष्वाकुनन्दन रामचन्द्र इस प्रकार गुहको आज्ञा देकर लक्ष्मण और सीताके साथ अव्यग्रता पूर्वक शीघ्र वहाँसे चले ॥ ७३ ॥ नदीके तीरपर नाव देखकर वेगवती गंगाको पार जानेकी इच्छासे रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले ॥ ७४ ॥ नरव्याघ्र, यह नाव खड़ी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स भ्रातुः शासनं श्रुत्वा सर्वमप्रतिकूलयन् । आरोप्य मैथिलीं पूर्वमारुरोहात्मवांस्ततः ॥७६॥
अथारुरोह तेजस्वी स्वयं लक्ष्मणपूर्वजः । ततो निषादाधिपतिर्गुहो ज्ञातीनचोदयत् ॥७७॥
राघवोऽपि महातेजा नावमारुह्य तां ततः । ब्रह्मवत्क्षत्रवच्चैव जजाप हितमात्मनः ॥७८॥
आचम्य च यथाशास्त्रं नदीं तां सह सीतया । प्रणमत्प्रतिसंतुष्टो लक्ष्मणश्च महारथः ॥७९॥
अनुज्ञाय सुमन्त्रं च सबलं चैव तं गुहम् । आस्थाय नावं रामस्तु चोदयामास नाविकान् ॥८०॥
ततस्तैश्चालिता नौका कर्णधारसमाहिता । शुभस्फ्येवेगाभिहता शीघ्रं सलिलमत्यगात् ॥८१॥
मध्यं तु समनुप्राप्य भागीरथ्यास्त्वनिन्दिता । वैदेही प्राञ्जलिर्भूत्वा तां नदीमिदमब्रवीत् ॥८२॥
पुत्रो दशरथस्यायं महाराजस्य धीमतः । निदेशं पालयत्वेनं गङ्गे त्वदाभिरक्षितः ॥८३॥
चतुर्दश हि वर्षाणि समग्राण्युष्य कानने । भ्रात्रा सह मया चैव पुनः प्रत्यागमिष्यति ॥८४॥
ततस्त्वां देवि सुभगे क्षेमेण पुनरागता । यक्ष्ये प्रमुदिता गङ्गे सर्वकामसमृद्धिनीम् ॥८५॥
त्वं हि त्रिपथगे देवि ब्रह्मलोकं समक्षसे । भार्या चोदधिराजस्य लोकेऽस्मिन्संप्रदृश्यसे ॥८६॥
सा त्वां देवि नमस्यामि प्रशंसामि च शोभने । प्राप्तराज्ये नरव्याघ्रे शिवेन पुनरागते ॥८७॥
गवां शतसहस्रं च वस्त्राण्यन्नं च पेशलम् । ब्राह्मणेभ्यः प्रदास्यामि तव प्रियचिकीर्षया ॥८८॥
सुराघटसहस्रेण मांसभूतौदनेन च । यक्ष्ये त्वां प्रीयतां देवि पुरीं पुनरुपागता ॥८९॥

है, इसको पकड़ लो और सीताको चढ़ाओ, तदनन्तर स्वयं चढ़ो ॥ ७५ ॥ भाईकी आज्ञा सुनकर उनका अभिप्राय जाननेवाले लक्ष्मणने नौकापर चढ़नेके सब साधन अनुकूल बना दिये, तदनन्तर जानकीको नौकापर चढ़ाकर स्वयं चढ़े ॥७६॥ तदनन्तर स्वयं लक्ष्मणके बड़े भाई तेजस्वी रामचन्द्र चढ़े, यह देखकर निषादाधिपति गुहने अपने बान्धवोंको नाव चलानेकी आज्ञा दी ॥ ७७ ॥ महा-तेजस्वी रामचन्द्र नौकापर चढ़कर अपने हितके उद्देश्यसे ब्राह्मण क्षत्रिय देवतावाले मन्त्रका जप करने लगे ॥ ७८ ॥ शास्त्रविधिके अनुसार आचमन करके गंगा नदीको प्रसन्नतापूर्वक राम-चन्द्रने सीताके साथ प्रणाम किया, तदनन्तर लक्ष्मणने भी प्रणाम किया ॥ ७९ ॥ सुमन्त्रको तथा अपने साथियोंके सहित गुहको आज्ञा देकर रामचन्द्र नावपर बैठे और नाव चलानेके लिये उन्होंने मल्लाहोंको आज्ञा दी ॥ ८० ॥ सावधान मल्लाहोंवाली वह नौका वेगसे डांड चलानेके कारण शीघ्रतापूर्वक जलमें चली ॥ ८१ ॥ गंगाके बीचमें आकर सुन्दरी वैदेही हाथ जोड़कर गंगासे यह बोली ॥ ८२ ॥ बुद्धिमान राजा दसरथके पुत्र आपके द्वारा रक्षित होनेपर पिताकी आज्ञाका पालन करेंगे ॥ ८३ ॥ पूरे चौदहवर्ष वनमें रहकर भाई लक्ष्मण और मेरे साथ ये पुनः लौटेंगे ॥८४॥ सुभगे, उस समय कुशलपूर्वक लौटी हुई मैं सब मनोरथोंके पूर्ण होनेसे प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारी पूजा करूंगी ॥ ८५ ॥ त्रिपथगे देवि, तुम्हारी कीर्ति ब्रह्मलोक तक फैली है और तुम समुद्रकी स्त्री हो ॥ ८६ ॥ देवि, मैं तुमको प्रणाम करती हूँ तथा तुम्हारी स्तुति करती हूँ। जब रामचन्द्र कुशल पूर्वक लौटेंगे तथा राज्य पावेंगे, तब तुम्हारी प्रसन्नताके लिये सौ हजार गौ, वस्त्र तथा उत्तम अन्न ब्राह्मणोंको दूंगी ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ देवि, पुनः लौटकर हजार घड़ा मदिरा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यानि त्वत्तीरवासीनि दैवतानि च सन्ति हि । तानि सर्वाणि यक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च ॥९०॥
पुनरेव महाबाहुर्मया भ्रात्रा च संगतः । अयोध्यां वनवासात्तु प्रविशत्वनघोऽनघे ॥९१॥
तथा संभाषमाणा सा सीता गङ्गामनिन्दिता । दाक्षिणा दक्षिणं तीरं क्षिप्रमेवाभ्युपागमत ॥९२॥
तीरं तु समनुप्राप्य नावं हित्वा नरर्षभः । प्रातिष्ठत सह भ्रात्रा वैदेह्या च परंतपः ॥९३॥
अथाब्रवीन्महाबाहुः सुमित्रानन्दवर्धनम् । भव संरक्षणार्थाय सजने विजनेऽपि वा ॥९४॥
अवश्यं रक्षणं कार्यं मद्विधैर्विजने वने । अग्रतो गच्छ सौमित्रे सीता त्वामनुगच्छतु ॥९५॥
पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि सीतां त्वां चानुपालयन् । अन्योन्यस्य हि नो रक्षा कर्तव्या पुरुषर्षभ ॥९६॥
नहि तावदतिक्रान्ता सुकरा काचन क्रिया । अद्य दुःखं तु वैदेही वनवासस्य वेत्स्यति ॥९७॥
प्रनष्टजनसंबाधं क्षेत्रारामविवर्जितम् । विषमं च प्रपातं च वनमद्य प्रवेक्ष्यति ॥९८॥
श्रुत्वा रामस्य वचनं प्रतस्थे लक्ष्मणोऽग्रतः । अनन्तरं च सीताया राघवो रघुनन्दनः ॥९९॥

गतं तु गङ्गापरपारमाशु रामं सुमन्त्रः सततं निरीक्ष्य ।
अध्वप्रकर्षाद्विनिवृत्तदृष्टिर्मुमोच बाष्पं व्यथितस्तपस्वी ॥१००॥

सलोकपालप्रतिमप्रभावस्तीर्त्वा महात्मा वरदो महानदीम् ।
ततः समृद्धाञ्शुभसस्यमालिनः क्षणेन वत्सान्मुदितानुपागमत् ॥१०१॥

तथा माँस युक्त भातसे तुम्हारी पूजा करूंगी, तुम प्रसन्न होओ ॥ ८७ ॥ तुम्हारे तीरपर जो देवता हैं, जो तीर्थ हैं, जो देवस्थान हैं उन सबकी मैं पूजा करूंगी ॥ ८० ॥ हे निष्पापे, निष्पाप रामचन्द्र, मेरे और भाई लक्ष्मणके साथ वनवाससे लौटकर पुनः अयोध्यामें प्रवेश करें ॥ ८१ ॥ इस प्रकार गंगासे पतिप्रिया सीता बातें कर रहीं थीं और नौका गङ्गाके दक्षिण तीरपर आकर लगी ॥ ८२ ॥ नरश्रेष्ठ रामचन्द्र तीरपर पहुँचकर नौकासे उतरे और शत्रुतापी वे सीता तथा लक्ष्मणके साथ चले ॥ ८३ ॥ अनन्तर महाबाहु रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले कि जनहीन तथा जनयुक्त स्थानोंमें सीताकी रक्षाके लिए तयार हो जाओ ॥ ८४ ॥ हम लोगोंको विजन बनमें सदा रक्षाके लिए तय्यार हो जाना चाहिए । लक्ष्मण तुम आगे चलो और सीता तुम्हारे पीछे-पीछे चले ॥ ८५ ॥ सीता और तुम्हारी रक्षा करते हुए पीछे-पीछे मैं चलूंगा, हम लोगोंको परस्परकी रक्षा करनी चाहिए ॥ ९५ ॥ कठिन कायाकी समाप्ति अभी नहीं हुई है, किन्तु उनका अब प्रारम्भ हुआ है। जानकी वनवासके दुःखोंको आज जानेगी ॥ ८७ ॥ आज हम लोगोंको उस वनमें जाना है जहाँ आदमियोंका नामोंनिशान नहीं है, वहाँ न खेत हैं और न बाग, ऊबड़-खाबड़ रास्ते हैं, गढ़े भी हैं ॥ ८७ ॥ रामचन्द्रकी बात सुनकर लक्ष्मण आगे-आगे चले और सीताके पीछे-पीछे रामचन्द्र चलें ॥ ८८ ॥ रामचन्द्र गंगाके उस पार चले गये, दुःखी और व्यथित सुमन्त्र बड़ी देर तक देखते रहे, उनके अधिक दूर चले जानेसे उन्होंने उधरसे अपनी आंखें हटालीं और वे रोने लगे ॥ १०० ॥ लोकपालोंके समान प्रभाववाले वरद महात्मा रामचन्द्र गंगा पार करके वत्स्य देशमें गये । वत्स्य देश धनी और खूब अन्नवाला था तथा वहाँके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तौ तत्र हत्वा चतुरो महामृगान्वराहमृश्यं पृषतं महारुरुम् ।
आदाय मेध्यं त्वरितं बुभुक्षितौ वासाय काले ययतुर्वनस्पतिम् ॥१०२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥५२॥

त्रिपञ्चाशः सर्गः ५३

स तं वृक्षं समासाद्य संध्यामन्वास्य पश्चिमाम् । रामो रमयतां श्रेष्ठ इति होवाच लक्ष्मणम् ॥ १ ॥
अद्येयं प्रथमा रात्रिर्यातो जनपदाद्बहिः । या सुमन्त्रेण रहिता तां नोत्कण्ठितुमर्हति ॥ २ ॥
जागर्तव्यमतन्द्रिभ्यामद्यप्रभृति रात्रिषु । योगक्षेमौ हि सीताया वर्तेते लक्ष्मणावयोः ॥ ३ ॥
रात्रिं कथंचिदेवेमां सौमित्रे वर्तयामहे । अपवर्तामहे भूमावास्तीर्य स्वयमर्जितैः ॥ ४ ॥
स तु संविश्य मेदिन्यां महार्हशयनोचितः । इमाः सौमित्रये रामो व्याजहार कथाः शुभाः ॥ ५ ॥
ध्रुवमद्य महाराजो दुःखं स्वपिति लक्ष्मण । कृतकामा तु कैकेयी तुष्टा भवितुमर्हति ॥ ६ ॥
सा हि देवी महाराजं कैकेयी राज्यकारणात् । अपि न च्यावयेत्प्राणान्दृष्ट्वा भरतमागतम् ॥ ६ ॥
अनाथश्च हि वृद्धश्च मया चैव विना कृतः । किं करिष्यति कामात्मा कैकेय्या वशमागतः ॥ ८ ॥
इदं व्यसनमालोक्यं राज्ञश्च मतिविभ्रमम् । काम एवार्थधर्माभ्यां गरीयानिति मे मतिः ॥ ९ ॥

वासी बड़े प्रसन्न रहते थे ॥ १०१ ॥ वहाँ उन दोनोंने चार पशु वराह, ऋश्य, पृषत और रुरु (ऋश्य आदि मृगके भेद हैं) मृग और मेध्य (ऋषियोंका भोजन) लेकर विश्राम करनेके लिए वृक्षके पास गये ॥ १०२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका बावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५२॥

उस वृक्षके पास जाकर रामचन्द्रने सायंकालकी सन्ध्या की और रमण करानेवालोंमें श्रेष्ठ राम, लक्ष्मणसे इस प्रकार बोले ॥१॥ नगरके बाहर हमलोगोंके लिए यह पहली रात है, आज सुमन्त्र भी नहीं हैं। तुम उदास न होना ॥ २ ॥ आजसे लेकर रातको हम लोगोंको आलस्य छोड़ कर जागना चाहिए, क्योंकि सीताकी रक्षाका भार हमहीं लोगोंपर है ॥ ३ ॥ किसी तरह हम लोग इस रातको बिता दें, कुश तृण आदि स्वयं लाकर जमीनमें बिछाकर लोट रहें ॥४ ॥ मूल्यवान पलंगपर सोनेवाले रामचन्द्र जमीनपर सोये और लक्ष्मणसे ये सुन्दर बातें उन्होंने कहीं—लक्ष्मण, निश्चय, आज महाराज दसरथ दुःखसे सो रहे होंगे और मनोरथ पूर्ण होनेसे केकयी प्रसन्न होगी ॥ ६ ॥ देवी केकयी भरतको आया देखकर राज्यके कारणसे राज्यका पूर्ण आधिपत्य पानेके लिए महाराजके प्राण न ले ले ॥ ७ ॥ मेरे चले आनेसे वृद्ध राजा इस समय अनाथ हो गये हैं। कामी राजा इस समय केकयीके अधीन हैं, वे क्या कर सकेंगे, किस प्रकार अपनी रक्षा कर सकेंगे ॥ ८ ॥ आये हुए इस दुःखको देखकर तथा राजाका मतिविभ्रम देखकर मैं समझता हूँ कि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को ह्यविद्वानपि पुमान्प्रमदायाः कृते त्यजेत् । छन्दानुवर्तिनं पुत्रं तातो मामिव लक्ष्मण ॥१०॥
सुखी बत सुभार्यश्च भरतः कैकयीसुतः । मुदितान्कोसलानेको यो भोक्ष्यत्यधिराजवत् ॥११॥
स हि राज्यस्य सर्वस्य सुखमेकं भविष्यति । तातें तुं वयसातीते मयि चारण्यमाश्रिते ॥१२॥
अर्थधर्मौ परित्यज्य यः काममनुवर्तते । एवमापद्यते क्षिप्रं राजा दशरथो यथा ॥१३॥
मन्ये दशरथान्ताय मम प्रव्राजनाय च । कैकेयी सौम्य संप्राप्ता राज्याय भरतस्य च ॥१४॥
अपीदानीं तु कैकेयी सौभाग्यमदमोहिता । कौसल्यां च सुमित्रां च सा प्रबाधेत मत्कृते ॥१५॥
मातास्मत्कारणादेवी सुमित्रा दुःखमावसेत् । अयोध्यामित एव त्वं काले प्रविश लक्ष्मण ॥१६॥
अहमेको गमिष्यामि सीतया सह दण्डकान । अनाथाया हि नाथस्त्वं कौसल्याया भविष्यसि॥१७॥
क्षुद्रकर्मा हि कैकेयी द्वेषादन्यायमाचरेत । परिदद्याद्धि धर्मज्ञ गरं ते मम मातरम् ॥१८॥
नूनं जात्यन्तरे तात स्त्रियः पुत्रैर्वियोजिताः । जनन्या मम सौमित्रे तदद्यैतदुपस्थितम् ॥१९॥
मया हि चिरपुष्टेन दुःखसंवर्धितेन च । विप्रयुज्यत कौसल्या फलकाले धिगस्तु माम् ॥२०॥
मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत्पुत्रमीदृशम् । सौमित्रे योऽहमम्बाया दाद्मि शोकमनन्तकम् ॥२१॥
मन्ये प्रीतिविशिष्टा सा मत्तो लक्ष्मण सारिका । यत्तस्याः श्रूयते वाक्यं शुक पादमरेर्दश ॥२२॥

कामही अर्थ और धर्मसे बड़ा है ॥ ९ ॥ लक्ष्मण, कौन बुद्धिमान् मनुष्य स्त्रीके लिये अपने अनुकूल पुत्रका त्याग कर सकता है जिस प्रकार पिताने मेरा त्याग किया है ॥ १० ॥ केकयीका पुत्र भरतही सुखी है, उसीकी स्त्री भाग्यवती है, जो भरत समृद्ध कोसलराज्यका भोग राजाके समान करेगा ॥ ११ ॥ राजा दसरथके अत्यन्त वृद्ध होनेसे तथा मेरे वनमें आनेसे समस्त राज्यका सुख केवल भरतहीको होगा ॥ १२ ॥ धर्म और अर्थको छोड़कर जो केवल कामकाही अनुवर्तन करता है, कामके ही अधीन हो जाता है, वह आपत्ति में पड़ता है, जैसे राजा दसरथ आपत्तिमें पड़े हुए हैं ॥ १३ ॥ सौम्य, मैं समझता हूँ कि दसरथकी मृत्यु, मेरे वनवास और भरतके राज्यके लिएही केकयीका जन्म हुआ है ॥ १४ ॥ सौभाग्यमदसे उन्मत्त केकयी, सम्भव है कि मेरे कारण कौसल्या और सुमित्राको कष्ट दे, उनका अपमान करे ॥ १५ ॥ हम लोगोंके कारणसे माता कौसल्या और सुमित्रा दुःखमें होंगी, अतएव लक्ष्मण, तुम यहाँसे प्रातःकाल अयोध्या जाओ ॥ १६ ॥ मैं अकेलेही सीताके साथ दण्डक वनमें जाऊंगा, तुम्हारे अयोध्या जानेसे अनाथ कौसल्या सनाथ होंगी, उन्हें ढाढ़स होगा ॥ १७ ॥ केकयी छोटे काम करनेवाली है, वह द्वेषसे अन्याय भी कर सकती है, हे धर्मज्ञ, तुम्हारी और मेरी माताको वह विष दे सकती है ॥ १८ ॥ दूसरे जन्ममें स्त्रियोंको पुत्रका वियोग देखा गया है पर वह पुत्रवियोगका दुःख मेरी माताको (इसी जन्ममें) आज प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥ माताने दुःखसे मेरा बहुत दिनोंतक पालन-पोषण किया, फलके समय, मेरे द्वारा सेवा पानेके समय उनसे मेरा वियोग हो गया, मैं उनसे अलग हो गया ॥ २० ॥ कोई भी स्त्री ऐसा—मेरे समान पुत्र उत्पन्न न करे, लक्ष्मण, देखो मैं अपनी माताको कितना कष्ट दे रहा हूं ॥ २१ ॥ लक्ष्मण, मुझसे अधिक तो वह सारिका कौसल्यामें प्रेम करती है, जो कौसल्याको " दुश्मनके पैर काटो " यह वाक्य सुनाया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शोचन्त्याश्चाल्पभाग्याया न किंचिदुपकुर्वता । पुत्रेण किमपुत्राया मया कार्यमरिंदम ॥२३॥
अल्पभाग्या हि मे माता कौसल्या रहिता मया । शेते परमदुःखार्ता पतिता शोकसागरे ॥२४॥
एको ह्यहमयोध्यां च पृथिवीं चापि लक्ष्मण । तरेयमिषुभिः क्रुद्धो ननु वीर्यमकारणम् ॥२५॥
अधर्मभयभीतश्च परलोकस्य चानघ । तेन लक्ष्मण नाद्याहमात्मानमभिषेचये ॥२६॥
एतदन्यच्च करुणं विलप्य विजने बहु । अश्रुपूर्णमुखो दीनो निशि तूष्णीमुपाविशत् ॥२७॥
विलापोपरतं रामं गतार्चिषमिवानलम् । समुद्रमिव निर्वेगमाश्वासयत लक्ष्मणः ॥२८॥
ध्रुवमद्य पुरी राघ अयोध्या युधिनां वर । निष्प्रभा त्वयि निष्क्रान्ते गतचन्द्रेव शर्वरी॥२९॥
नैतदौपयिकं राम यदिदं परितप्यसे । विषादयसि सीतां च मां चैव पुरुषर्षभ ॥३०॥
न च सीता त्वया हीना न चाहमपि राघव । मुहूर्तमपि जीवावो जलान्मत्स्याविवोद्धृतौ ॥३१॥
नहि तातं न शत्रुघ्नं न सुमित्रां परंतप । द्रष्टुमिच्छेयमद्यहि स्वर्गं चापि त्वया विना ॥३२॥
ततस्तत्र समासीनौ नातिदूरे निरीक्ष्य ताम् । न्यग्रोधे सुकृतां शय्यां भेजाते धर्मवत्सलौ ॥३३॥

स लक्ष्मणस्योत्तमपुष्कलं वचो निशम्य चैवं वनवासमादरात् ।
समाः समस्ता विदधे परंतपः प्रपद्य धर्मं सुचिराय राघवः ॥३४॥

करती है, मैं तो वह भी नहीं कहता ॥ २२ ॥ भाग्यकी छोटी और दुःखमें पड़ी हुई कौसल्याका पुत्र होकर मैं कोई उपकार नहीं कर सकता, फिर मुझसे उनको क्या लाभ ? एक तरह तो वे पुत्रहीन ही हैं ॥ २३ ॥ मेरे न रहनेसे मेरी माता अभागिन हो गयी हैं, वे इस समय बड़ी दुःखिनी होंगी और शोकसमुद्रमें डूब रही होंगी ॥ २४ ॥ मैं अकेला ही क्रोध करके अयोध्या और समस्त पृथिवी-को बाणों से जीत सकता हूँ, पर यहाँ पराक्रम दिखाना व्यर्थ है, पराक्रम दिखानेका अवसर नहीं है ॥ २५ ॥ निष्पाप, मैं पिताके प्रतिज्ञा-भंगरूप अधर्मसे डरता हूँ और परलोकसे डरता हूँ, इसी कारण अपना राज्याभिषेक नहीं कराता ॥ २६ ॥ विजन वनमें इस प्रकारका तथा और बहुत विलाप करके दुःखी रोते हुए रामचन्द्र रातको चुप होगये ॥ २७ ॥ विलाप करके चुप होनेपर रामचन्द्र ज्वालाहीन अग्निके समान तथा तरंगहीन समुद्रके समान हो गये, उस समय लक्ष्मणने उन्हें समझाया ॥ २८ ॥ वीरश्रेष्ठ रामचन्द्र, आपके चले आनेसे निश्चय अयोध्या पुत्रहीन हो गयी होगी, जिस प्रकार चन्द्रमाके बिना रात्रि प्रभाहीन हो जाती है ॥ २९ ॥ राम, जो आप यह दुःख कर रहे हैं यह उचित नहीं है, ऐसा करके आप सीताको तथा मुझको दुःख दे रहे हैं ॥ ३० ॥ राम, आपके बिना सीता और मैं जी नहीं सकते, जिस प्रकार जलसे निकलनेपर मछलियाँ नहीं जी सकतीं ॥ ३१ ॥ हे शत्रुतापी, आपके बिना शत्रुघ्नको और माताको भी देखना नहीं चाहता, और क्या, स्वर्गको भी देखना नहीं चाहता ॥३२॥ धर्मवत्सल राम और लक्ष्मण सुखपूर्वक वहाँ बैठे रहे, पुनः राम लक्ष्मणकी बनायी शय्यापर सोये ॥३३॥ लक्ष्मण-की उत्तम और बहुतसी बातें आदरपूर्वक सुनकर और वनवासका धर्म ग्रहण करके रामचन्द्रने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततस्तु तास्मिन्विजने महाबलौ महावने राघववंशवर्धनौ ।
न तौ भयं संभ्रममभ्युपेयतुर्यथैव सिंहौ गिरिसानुगोचरौ ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुष्पञ्चाशः सर्गः ५४

ते तु तास्मिन्महावृक्षे उषित्वा रजनीं शुभाम् । विमलेऽभ्युदिते सूर्ये तस्मादेशात्प्रतस्थिरे ॥ १ ॥
यत्र भागीरथीं गङ्गां यमुनाभिप्रवर्तते । जग्मुस्तं देशमुद्दिश्य विगाह्य सुमहद्वनम् ॥ २ ॥
ते भूमिभागान्विविधान्देशांश्चापि मनोहरान् । अदृष्टपूर्वान्पश्यन्तस्तत्र तत्र यशस्विनः ॥ ३ ॥
यथा क्षेमेण संपश्यन्पुष्पितान्विविधान्द्रुमान् । निर्वृत्तमात्रे दिवसे रामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥ ४ ॥
प्रयागमभितः पश्य सौमित्रे धूममुत्तमम् । अग्नेर्भगवतः केतुं मन्ये संनिहितो मुनिः ॥ ५ ॥
नूनं प्राप्ताः स्म संभेदं गङ्गायमुनयोर्वयम् । तथाहि श्रूयते शब्दो वारिणोवारिघर्षजः ॥ ६ ॥
दारूणि परिभिन्नानि वनजैरुपजीविभिः । छिन्नाश्चाप्याश्रमे चैते दृश्यन्ते विविधा द्रुमाः ॥ ७ ॥
धन्विनौ तौ सुखं गत्वा लम्बमाने दिवाकरे । गङ्गायमुनयोः संधौ प्रापतुर्निलयं मुनेः ॥ ८ ॥
रामस्त्वाश्रममासाद्य त्रासयन्मृगपक्षिणः । गत्वा मुहूर्तमध्वानं भरद्वाजमुपागमत् ॥ ९ ॥

बहुत दिनोंतक वनवास करनेकी इच्छा की ॥ ३४ ॥ रघुवंशको बढ़ानेवाले महाबली राम और लक्ष्मण उस विजन वनमें न डरे और न घबड़ाये, जिस प्रकार पर्वतवासी सिंह ॥ ३५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका तिरपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५३ ॥

उन तीनोंने वह सुन्दर रात उस बड़े वृक्षके नीचे बितायी । प्रातःकाल विमल-सूर्यके उदय होनेपर वे वहांसे चले ॥ १ ॥ जहां भागीरथी गंगासे यमुना मिली हैं, वहां जानेके लिए वे सघन वनके बीचसे होकर चले ॥ २ ॥ उन यशस्वी महानुभावोंने अनेक मैदान, मनोहर देशोंको देखते हुए-जो पहले कभी नहीं देखे हुए थे-चले ॥ ३ ॥ आनन्दपूर्वक विकसित वृक्षोंको देखते हुए रामचन्द्र चले । दिनके समाप्त होनेपर रामने लक्ष्मणसे कहा ॥४॥ प्रयागके पास भगवान् अग्निकी ध्वजा सगन्ध धूम देखो, इससे मालूम होता है कि मुनि यहीं हैं, कहीं बाहर नहीं गये हैं ॥ ५ ॥ निश्चय हमलोग गंगा यमुनाके संगम स्थानपर पहुंच गये, क्योंकि दोनों नदियोंके जलके संघर्षका शब्द सुनायी पड़ रहा है ॥ ६ ॥ जंगली वस्तुओंसे जीनेवालोंके द्वारा काटी हुई लकड़ी दिखायी पड़ रही है, और आश्रममें कटे हुए अनेक वृक्ष दिखायी पड़ रहे हैं ॥ ७ ॥ धनुर्धारी वे दोनों, दिन ढलते-ढलते गंगा-यमुनाके संगमपर मुनिके आश्रमपर पहुंचे ॥ ८ ॥ आश्रमपर पहुँचकर पशुओं और पक्षियोंको भयभीत करते हुए एक मुहूर्त चलकर-भरद्वाज मुनि-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततस्त्वाश्रममासाद्य मुनेर्दर्शनकाङ्क्षिणौ । सीतयानुगतौ वीरौ दूरादेवावतस्थतुः ॥१०॥
स प्रविश्य महात्मानमृषिं शिष्यगणैर्वृतम् । संशितव्रतमेकाग्रं तपसा लब्धचक्षुषम् ॥११॥
हुताग्निहोत्रं दृष्ट्वैव महाभागः कृताञ्जलिः । रामःसौमित्रिणा सार्धं सीतया चाभ्यवादयत ॥१२॥
न्यवेदयत चात्मानं तस्मै लक्ष्मणपूर्वजः । पुत्रौ दशरथस्यावां भगवन्रामलक्ष्मणौ ॥१३॥
भार्या ममेयं कल्याणी वैदेही जनकात्मजा । मां चानुयाता विजनं तपोवनमनिन्दिता ॥१४॥
पित्रा प्रव्राज्यमानं मां सौमित्रिरनुजः प्रियः । अयमन्वगमद्भ्राता वनमेव धृतव्रतः ॥१५॥
पित्रा नियुक्ता भगवन्प्रवेक्ष्याम तपोवनम् । धर्ममेवाचरिष्यामस्तत्र मूलफलाशनाः ॥१६॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः । उपानयत धर्मात्मा गामर्घ्यमुदकं ततः ॥१७॥
नानाविधान्नरसान्वन्यमूलफलाश्रयान् । तेभ्यो ददौ तप्ततपा वासं चैवाभ्यकल्पयत ॥१८॥
मृगपक्षिभिरासीनो मुनिभिश्च समन्ततः । राममागतमभ्यर्च्य स्वागतेनागतं मुनिः ॥१९॥
प्रतिगृह्य तु तामर्चामुपविष्टं स राघवम् । भरद्वाजोऽब्रवीद्वाक्यं धर्मयुक्तमिदं तदा ॥२०॥
चिरस्य खलु काकुत्स्थ पश्याम्यहमुपागतम् । श्रुतं तव मया चैव विवासनमकारणम् ॥२१॥
अवकाशो विविक्तोऽयं महानद्योः समागमे । पुण्यश्च रमणीयश्च वसत्विह भवान्सुखम् ॥२२॥

के पास पहुँचे ॥ ९ ॥ आश्रमपर पहुंचकर वीर राम और लक्ष्मण सीताके साथ मुनिकी आज्ञा पानेके लिये ठहरे ॥ १० ॥ महाभाग रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीताके साथ हाथ जोड़कर ऋषिके आश्रममें गये और उनको देखते ही उन लोगोंने प्रणाम किये। मुनि अपने शिष्योंके साथ बैठे थे, वे उग्र तपस्या करनेवाले थे, एकाग्र थे, तपस्याके द्वारा उन्हें ज्ञानदृष्टि प्राप्त थी और हवन कर चुके थे ॥ ११-१२ ॥ रामचन्द्रने ऋषिसे अपना परिचय इस प्रकार दिया—भगवन्, हम लोग राजा दसरथके पुत्र हैं और हमलोगोंका नाम राम तथा लक्ष्मण है ॥ १३ ॥ ये कल्याणी मेरी भार्या हैं, ये राजा जनककी पुत्री हैं, इनका नाम वैदेही है । ये अनिन्दिता सीता भी हमारे साथ वनमें आयी हैं ॥ १४ ॥ पिताने जब मुझे वनवास दिया, तब ये सुमित्राके पुत्र मेरे प्रिय छोटे भाई भी मेरे साथ वन चले आये और मेरे साथ इन्होंने भी वनवासका व्रत धारण किया ॥ १५ ॥ भगवन्, पिताकी आज्ञासे हम लोग यहां तपोवनमें आये हैं, हमलोग वनवासके समय धर्माचरण ही करेंगे और फलमूलका आहार करेंगे ॥ १६ ॥ बुद्धिमान् राजपुत्रके वे वचन सुनकर धर्मात्मा भरद्वाज मधुपर्कके लिए गौ और अर्घ्यके लिए जल ले आये ॥ १७ ॥ वनके फल और मूल जो अनेक प्रकारके खाद्य थे तथा जिनमें अनेक प्रकारके रस थे, तपस्वी ऋषिने उन लोगोंको दिये और उन लोगोंके रहनेके लिये स्थान भी दिये ॥ १८ ॥ मुनि, पशु-पक्षियों तथा मुनियोंके साथ बैठे हुए थे, उन्होंने आये हुए रामचन्द्रका स्वागतके द्वारा सत्कार किया ॥ १९ ॥ मुनिकी दी हुई पूजा ग्रहण करके जब रामचन्द्र बैठे, तब भरद्वाज धर्मयुक्त यह वचन बोले ॥ २० ॥ रामचन्द्र, बहुत दिनोंसे तुम्हारे यहां आनेकी मैं प्रतीक्षा कर रहा था, बिना कारण आपको वनवास दिया गया है यह बात मैंने भी सुनी है ॥ २१ ॥ यमुना और गंगा इन दोनों नदियोंका संगम-स्थान बड़ाही एकान्त है, पवित्र और रमणीय है, आप

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमुक्तस्तु वचनं भरद्वाजेन राघवः । प्रत्युवाच शुभं वाक्यं रामः सर्वहिते रतः ॥२३॥
भगवन्निह आसन्नः पौरजानपदो जनः । सुदर्शमिह मां प्रेक्ष्य मन्येऽहमिममाश्रमम् ॥२४॥
आगमिष्यति वैदेहीं मां चापि प्रेक्षको जनः । अनेन कारणेनाहमिह वासं न रोचये ॥२५॥
एकान्ते पश्य भगवन्नाश्रमस्थानमुत्तमम् । रमते यत्र वैदेही सुखार्हा जनकात्मजा ॥२६॥
एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरद्वाजो महामुनिः । राघवस्य तु तद्वाक्यमर्थग्राहकमब्रवीत् ॥२७॥
दशक्रोश इतस्तात गिरिर्यस्मिन्निवत्स्यसि । महर्षिसेवितः पुण्यः पर्वतः शुभदर्शनः ॥२८॥
गोलाङ्गूलानुचरितो वानरर्क्षनिषेवितः । चित्रकूट इति ख्यातो गन्धमादनसंनिभः ॥२९॥
यावता चित्रकूटस्य नरः शृङ्गाण्यवेक्षते । कल्याणानि समाधत्ते न मोहे कुरुते मनः ॥३०॥
ऋषयस्तत्र बहवो विहृत्य शरदां शतम् । तपसा दिवमारूढाः कपालशिरसा सह ॥३१॥
प्रविविक्तमहं मन्ये तं वासं भवतः सुखम् । इह वा वनवासाय वस राम मया सह ॥३२॥
स रामं सर्वकामैस्तं भरद्वाजः प्रियातिथिम् । सभार्यं सह च भ्रात्रा प्रतिजग्राह हर्षयन् ॥३३॥
तस्य प्रयागे रामस्य तं महर्षिमुपेयुषः । प्रपन्ना रजनी पुण्या चित्राः कथयतःकथाः ॥३४॥
सीतातृतीयः काकुत्स्थःपरिश्रान्तःसुखोचितः । भरद्वाजाश्रमे रम्ये तां रात्रिमवसत्सुखम् ॥३५॥
प्रभातायां तु शर्वर्यां भरद्वाजमुपागमत् । उवाच नरशार्दूलो मुनिं ज्वलिततेजसम् ॥३६॥

सुखपूर्वक यहां निवास करें ॥ २२ ॥ भरद्वाजके ऐसा कहनेपर सब प्राणियोंके कल्याणमें लगे रहनेवाले रामचन्द्रने इन शुभ वचनोंके द्वारा उत्तर दिया ॥ २३ ॥ भगवन्, यहांसे पुरवासी और राज्यवासी पासही हैं, यहां वे आसानीसे मुझे देख सकते हैं, अतएव इस आश्रममें मुझको और सीताको देखनेवाले लोग आवेंगे, इसी कारणसे मैं यहां रहना पसन्द नहीं करता ॥ २४-२५ ॥ भगवन्, कहीं एकान्त स्थानमें सुखकर स्थान बताइये, जो सुख चाहनेवाली जनकनन्दिनीको पसन्द आवे ॥ २६ ॥ रामचन्द्रका यह वचन सुनकर महामुनि भरद्वाज अर्थबोधक वाक्य बोले ॥ २७ ॥ तात, यहांसे दस कोशपर पर्वत है जहांपर तुम निवास करोगे, वहां महर्षि रहते हैं, वह पर्वत बड़ाही सुन्दर और पवित्र है ॥२८॥ वह गंधमादनके समान पर्वत है उसका नाम चित्रकूट है और भालु वहाँ निवास करते हैं ॥ २९ ॥ मनुष्य जहाँसे चित्रकूट पर्वतके शिखर देखता है वहींसे उसका मन पुण्यकर्ममें लग जाता है, पापकी ओर उसका मन नहीं जाता ॥ ३० ॥ वहाँ अनेक ऋषि रहते हैं, जिन लोगोंने शिवके साथ सैकड़ों वर्ष विहार करके सशरीर स्वार्ग प्राप्त किया है ॥ ३१ ॥ वहाँ दुष्ट लोग नहीं रहते, बड़ाही सुखकर स्थान है, वही स्थान आपके वासके लिए उपयुक्त होगा । राम, अथवा यहीं आप मेरे साथ रहें ॥ ३२ ॥ भरद्वाजने अपने प्रिय अतिथि लक्ष्मण और सीताके साथ रामचन्द्रके सब मनोरथ पूरे किये और उस रातको उन्होंने अपनेही यहाँ ठहराया ॥ ३३ ॥ रामचन्द्र प्रयागमें जब महर्षिके पास गये तब अनेक तरहकी बातें हुईं और बातोंहीमें रात हो गयी ॥ ३४ ॥ सीता लक्ष्मण और तीसरे रामचन्द्र थक गये थे, उन्हें विश्रामकी आवश्यकता थी, अतएव उस रातको सुखपूर्वक उन लोगोंने भरद्वाजके आश्रममें निवास किया ॥ ३५ ॥ रात बीतनेपर प्रातःकाल रामचन्द्र मुनिके पास गये । मुनिका तेज

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शर्वरीं भगवन्नद्य सत्यशील तवाश्रमे । उषिताः स्मोऽह वसतिमनुजानातु नो भवान्॥३७॥
रात्र्यां तु तस्यां व्युष्टायां भरद्वाजोऽब्रवीदिदम् । मधुमूलफलोपेतं चित्रकूटं व्रजेति ह ॥३८॥
वासमौपयिकं मन्ये तव राम महाबल । नानानगगणोपेतः किन्नरोरगसेवितः ॥३९॥
मयूरनादाभिरतो गजराजनिषेवितः । गम्यतां भवता शैलश्चित्रकूटः स विश्रुतः ॥४०॥
पुण्यश्च रमणीयश्च बहुमूलफलायुतः । तत्र कुञ्जरयूथानि मृगयूथानि चैव हि ॥४१॥
विचरन्ति वनान्तेषु तानि द्रक्ष्यसि राघव । सरित्प्रसूवणप्रस्थान्दरीकन्दरनिर्झरान् ।
चरतः सीतया सार्धं नन्दिष्यति मनस्तव ॥४२॥
प्रहृष्टकोयष्टिभकोकिलस्वनैर्विनोदयन्तं च सुखं परं शिवम् ।
मृगैश्च मत्तैर्बहुभिश्च कुञ्जरैः सुरम्यमासाद्य समावसाश्रयम् ॥४३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे चतुष्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः ५५

उषित्वा रजनीं तत्र राजपुत्रावरिंदमौ । महर्षिमभिवाद्याथ जग्मतुस्तं गिरिं प्रति ॥ १ ॥
तेषां स्वस्त्ययनं चैव महर्षिः स चकार ह । प्रस्थितान्प्रेक्ष्य ताँश्चैव पिता पुत्रानिवौरसान् ॥ २ ॥

जल रहा था, नरश्रेष्ठ रामचन्द्र उनसे बोले ॥ ३६ ॥ सत्यशील भगवन्, आपहीके आश्रममें रातभर हम लोगोंने निवास किया है, अब अपने वासस्थानपर जानेके लिए आप हम लोगोंको आज्ञा दें ॥ ३७ ॥ रातके बीतनेपर प्रातःकाल भरद्वाजने कहा—राम, तुम चित्रकूट जाओ, वहां फल-फूल आदि मिलेंगे ॥ ३८ ॥ हे महाबल राम, वही स्थान तुम्हारे वासके लिए उचित है, वहां अनेक पर्वत हैं, वहां किन्नर नाग आदि रहते हैं ॥ ३९ ॥ वहां मयूरकी ध्वनि सुन पड़ती है, बड़े-बड़े हाथी रहते हैं, आप चित्रकूट नामसे प्रसिद्ध पर्वत परही जायँ ॥ ४० ॥ वह पर्वत बड़ाही पवित्र और बड़ाही रमणीय है, वहाँ बहुत फल मूल होते हैं, वहाँ हाथियोंके झुण्ड और मृगोंके झुण्ड ॥ ४१ ॥ वनमें घूमते हैं, उनको तुम देखोगे, नदी, सोते, पर्वतशिखर, दरी, कन्दरा और झरना तुम देखोगे ॥ ४२ ॥ प्रसन्न टिटिहरी और कोकिलके शब्दसे जो पर्वत लोगोंका मनोविनोद करता है, जो परम सुखकारी तथा कल्याणमय है, मृग तथा अनेक मतवाले हाथियोंसे रमणीय है, वहीं जाकर आश्रम बनाकर तुम निवास करो ॥ ४३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका चौवनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५४ ॥

शत्रुओंका नाश करनेवाले वे दोनों राजपुत्र उस रातको वहीं निवास कर प्रातःकाल महर्षिको प्रणाम कर उस पर्वतकी ओर चले ॥ १ ॥ वे जा रहे हैं यह देखकर महर्षिने उन लोगोंके लिए स्वस्त्ययन किये, जानेके समयके उपयुक्त मङ्गलविधायिनी क्रियाएँ उन्होंने कीं,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततः प्रचक्रमे वक्तुं वचनं स महामुनिः। भरद्वाजो महातेजा रामं सत्यपराक्रमम् ॥ ३ ॥
गङ्गायमुनयोः संधिमादाय मनुजर्षभ। कालिन्दीमनुगच्छेतां नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम् ॥ ४ ॥
अथासाद्य तु कालिन्दीं प्रतिस्रोतःसमागताम्। तस्यास्तीर्थं प्रचरितं प्रकामं प्रेक्ष्य राघव।
तत्र यूयं प्लवं कृत्वा तरतांशुमतीं नदीम् ॥ ५ ॥
ततो न्यग्रोधमासाद्य महान्तं हरितच्छदम्। परीतं बहुभिर्वृक्षैः श्यामं सिद्धोपसेवितम् ॥ ६ ॥
तस्मिन्सीताञ्जलिं कृत्वा प्रयुञ्जीताशिषां क्रियाम्। समासाद्य च तं वृक्षं वसेद्वातिक्रमेत वा ॥ ७ ॥
क्रोशमात्रं ततो गत्वा नीलं प्रेक्ष्य च काननम्। सल्लकीबदरीमिश्रं राम वन्यैश्च यामुनैः ॥ ८ ॥
स पन्थाश्चित्रकूटस्य गतस्य बहुशो मया। रम्यो मार्दवयुक्तश्च दावैश्चैव विवर्जितः ॥ ९ ॥
इति पन्थानमादिश्य महर्षिः संन्यवर्तत। अभिवाद्य तथेत्युक्त्वा रामेण विनिवर्तितः ॥ १० ॥
उपावृते मुनौ तस्मिन्रामो लक्ष्मणमब्रवीत्। कृतपुण्याः स्म भद्रं ते मुनिर्यन्नोऽनुकम्पते ॥ ११ ॥
इति तौ पुरुषव्याघ्रौ मन्त्रयित्वा मनस्विनौ। सीतामेवाग्रतः कृत्वा कालिन्दीं जग्मतुर्नदीम् ॥ १२ ॥
अथासाद्य तु कालिन्दीं शीघ्रस्रोतस्विनीं नदीम्। चिन्तामापेदिरे सद्यो नदीजलतितीर्षवः ॥ १३ ॥
तौ काष्ठसंघाटमथो चक्रतुः सुमहाप्लवम्। शुष्कैर्वन्यैः समाकीर्णमुशीरैश्च समावृतम् ॥ १४ ॥
ततो वैतसशाखाश्च जम्बुशाखाश्च वीर्यवान्। चकार लक्ष्मणश्छित्त्वा सीतायाःसुखमासनम् ॥ १५ ॥

जिस प्रकार औरसपुत्रके लिए पिता करता है ॥ २ ॥ तदनन्तर महातेजस्वी महामुनि भरद्वाज सत्यपराक्रम रामचन्द्रसे इस प्रकार कहने लगे ॥ ३ ॥ मानवश्रेष्ठ, गङ्गा यमुनाके सङ्गम स्थानसे जो थोड़ी दूर पीछेकी ओर हट गयी है (गंगाके वेगसे) उस यमुना नदीके तीरसे आप लोग जायँ ॥ ४ ॥ राघव, यमुना नदीके प्रवाहके साथ अनेक नदियाँ उसमें मिल गयी हैं, उसकी पवित्र प्रखर धाराको देखकर आप लोग नौकाके द्वारा सूर्यकन्या यमुनाके पार जायँ ॥ ५ ॥ वहाँसे आगे आप लोगोंको श्यामवट वृक्ष मिलेगा, इसके पत्ते हरे हैं, इस वृक्षमें अनेक अन्य वृक्ष मिले हैं और वहाँ सिद्धगण रहते हैं ॥ ६ ॥ उस वृक्षसे सीता हाथ जोड़कर आशीर्वाद माँगे। वहाँ जाकर आप लोग चाहे ठहर जायँ या आगे चलें ॥ ७ ॥ वहाँसे एक कोश आगे चलने पर नीलकानन मिलेगा, सल्लकी (हाथीके खानेका एक कटीला वृक्ष), बेर और जङ्गली जामुनके वन वहाँ हैं ॥ ८ ॥ वही चित्रकूट का मार्ग है, मैं बहुत बार उस मार्गसे गया हूँ, बड़ाही सुन्दर और रमणीय है, उस मार्गमें वनाग्नि भी नहीं है ॥ ९ ॥ मार्ग बतलाकर महर्षि चुप होगये, रामचन्द्रने उन्हें प्रणाम किया और "आपके बतलाये मार्गसे ही हम जायँगे" ऐसा कहकर उन्हें लौटा दिया ॥ १० ॥ मुनिके लौट जाने पर रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा—तुम्हारा कल्याण हो, हम लोग बड़े पुण्यात्मा हैं, क्योंकि मुनि हमपर दया करते हैं ॥ ११ ॥ इस प्रकार विचार करके वे दोनों पुरुषसिंह सीताको ही आगे करके यमुनाके तीरसे चले ॥ १२ ॥ बड़े वेगवाली यमुना नदीके तीरपर वे आये, वे उस नदीको पार करना चाहते थे इस कारण चिन्तित हुए ॥ १३ ॥ उन दोनोंने लकड़ियाँ एकट्ठी करके एक बड़ी भारी नौका बनायी, सूखी बनैली लकड़ियाँ उन लोगोंने उसमें लगायीं और खश भी लगाया ॥ १४ ॥ पराक्रमी लक्ष्मणने बेतकी डाल और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तत्र श्रियमिवाचिन्त्यां रामो दाशरथिःप्रियाम् । ईषत्स लज्जमानां तामध्यारोपयत प्लवम् ॥१६॥
पार्श्वे तत्र च वैदेह्या वसने भूषणानि च । प्लवे कठिनकाजं च रामश्चक्रे समाहितः ॥१७॥
आरोप्य सीतां प्रथमं संघाटं परिगृह्य तौ । ततः प्रतेरतुर्यत्तौ प्रीतौ दशरथात्मजौ ॥१८॥
कालिन्दीमध्यमायाता सीता त्वेनामवन्दत । स्वस्ति देवि तरामि त्वां पारयेन्मे पतिव्रतम् ॥१९॥
यक्ष्ये त्वां गोसहस्रेण सुराघटशतेन च । स्वस्ति प्रत्यागते रामे पुरीमिक्ष्वाकुपालिताम् ॥२०॥
कालिन्दीमथ सीता तु याचमाना कृताञ्जलिः । तीरमेवाभिसंप्राप्ता दाक्षिणं वरवर्णिनी ॥२१॥
ततः प्लवेनांशुमतीं शीघ्रगामूर्मिमालिनीम् । तीरजैर्बहुभिर्वृक्षैः संतेरुर्यमुनां नदीम् ॥२२॥
तेषु ते प्लवमुत्सृज्य प्रस्थाय यमुनावनात् । श्यामं न्यग्रोधमासेदुः शीतलं हरितच्छदम् ॥२३॥
न्यग्रोधं समुपागम्य वैदेही चाभ्यवन्दत । नमस्तेऽस्तु महावृक्ष पारयेन्मे पतिव्रतम् ॥२४॥
कौसल्यां चैव पश्येयं सुमित्रां च यशस्विनीम् । इति सीताञ्जलिं कृत्वा पर्यगच्छन्मनास्विनी ॥२५॥
अवलोक्य ततः सीतामाचान्तीमनिन्दिताम् । दयितां च विधेयां च रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥२६॥
सीतामादाय गच्छ त्वमग्रतो भरतानुज । पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि सायुधो द्विपदां वर ॥२७॥
यद्यत्फलं प्रार्थयते पुष्पं वा जनकात्मजा । तत्तत्प्रयच्छ वैदेह्या यत्रास्या रमते मनः ॥२८॥

जामुनको डाल काटकर सीताके लिये आसन बनाया ॥ १५ ॥ लक्ष्मीके समान अचिन्तनीय प्रभाववाली प्रिया सीताको, जो थोड़ी लज्जित हो रही थी, स्वयं दासरथि रामचन्द्रने नौकापर चढ़ाया ॥ १६ ॥ उसी नौकापर जानकीके पास रामचन्द्रने वस्त्र, भूषण, खनती और पेटी सावधानीसे रखी ॥ १७ ॥ नौका पकड़कर उन दोनों राम और लक्ष्मणने सीताको बैठाया, तदनन्तर सावधानीसे प्रसन्नतापूर्वक वे दोनों नदी पार करने लगे ॥ १८ ॥ बीचमें आकर सीताने यमुनाको प्रणाम किया और वे बोलीं—देवि, मैं आपको पार कर रही हूँ, मेरे पति कल्याणपूर्वक अपना व्रत पूरा करें ॥ १९ ॥ हजार गौ तथा सौ घड़े मदिरासे मैं आपकी पूजा करूँगी, जब रामचन्द्र मङ्गलपूर्वक अपनी नगरी अयोध्यामें पहुँच जायंगे ॥ २० ॥ सीता इस प्रकार हाथ जोड़कर यमुनाकी स्तुति करती रहीं और वे यमुनाके दक्षिण तीर पहुँच गयीं ॥ २१ ॥ यमुनाके दक्षिण तीरपर अनेक वृक्ष थे, तरंगोंकी माला वह धारण किये हुई थी, वह बड़े वेगसे चल रही थी, राम आदिने उस यमुनाको नौकासे पार किया ॥ २२ ॥ नौकाको वहीं छोड़कर उन लोगोंने यमुना वनसे प्रस्थान किया और शीतल हरे पत्तोंवाले श्यामवटके समीप पहुँचे ॥ २३ ॥ उस वट वृक्षके पास जाकर सीताने उसे प्रणाम किया, उन्होंने कहा—हे वट, तुमको नमस्कार, मेरे पति अपने चौदहवर्षके वनवास व्रतको पूरा करें ॥ २४ ॥ कौसल्या और यशस्विनी सुमित्राको हम लोग देखें, ऐसी प्रार्थना करके और हाथ जोड़कर सीताने उस महावृक्षकी प्रदक्षिणा की ॥२५॥ प्रियदयिता सीताको महावृक्षसे प्रार्थना करती देखकर रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा ॥ २६ ॥ हे मनुष्यश्रेष्ठ, भरतके छोटे भाई, तुम सीताको लेकर आगे चलो, मैं पीछे-पीछे चलता हूँ ॥ २७ ॥ जानकी जो-जो फल या फूल माँगे वही इसको दो अथवा जो इसे अच्छा लगे वह करो ॥ २८ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकैकं पादपं गुल्मं लतां वा पुष्पशालिनीम् । अदृष्टरूपां पश्यन्ती रामं पप्रच्छ सावला ॥२९॥
रमणीयान्बहुविधान्पादपान्कुसुमोत्करान् । सीतावचनसंरब्ध आनयामास लक्ष्मणः ॥३०॥
विचित्रवालुकजलां हंससारसनादिताम् । रेमे जनकराजस्य सुता प्रेक्ष्य तदा नदीम् ॥३१॥
क्रोशमात्रं ततो गत्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । बहून्मेध्यान्मृगान्हत्वा चेरतुर्यमुनावने ॥३२॥
विहृत्य ते बर्हिणपूगनादिते शुभे वने वारणवानरायुते ।
समं नदीवप्रमुपेत्य सत्वरं निवासमाजग्मुरदीनदर्शनाः ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डेऽपञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशः सर्गः ५६

अथ रात्र्यां व्यतीतायामवसुप्तमनन्तरम् । प्रबोधयामास शनैर्लक्ष्मणं रघुपुंगवः ॥ १ ॥
सौमित्रे शृणु वन्यानां वल्गु व्याहरतां स्वनम् । संप्रतिष्ठामहे कालः प्रस्थानस्य परंतप ॥ २ ॥
प्रसुप्तस्तु ततो भ्रात्रा समये प्रतिबोधितः । जहौ निद्रां च तन्द्रां च प्रसक्तं च परिश्रमम् ॥ ३ ॥
तत उत्थाय ते सर्वे स्पृष्ट्वा नद्याः शिवं जलम् । पन्थानमृषिभिर्जुष्टं चित्रकूटस्य तं ययुः ॥ ४ ॥
ततः संप्रस्थितः काले रामः सौमित्रिणा सह । सीतां कमलपत्राक्षीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥

दो हाथियोंके बीचमें हथिनीके समान राम और लक्ष्मणके बीच सीता चलीं। एक-एक वृक्ष गुल्म और फूलोंवाली लताएँ जो सीताने पहले नहीं देखी थीं उन्हें देखकर रामचन्द्रसे उनके सम्बन्धमें पूछने लगीं ॥ २९ ॥ सीताके कहनेसे लक्ष्मण शीघ्रतापूर्वक फूलवाले वृक्षोंकी अनेक डालियाँ ले आये ॥ ३० ॥ यमुना नदीके तीरकी अनेक तरहकी बालू देखकर तथा हंस और सारसके शब्द सुनकर सीता बहुत प्रसन्न हुईं ॥ ३१ ॥ राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंने एक कोश जाकर अनेक पवित्र मृगोंको मारे और वे यमुना वनमें घूमने लगे ॥ ३२ ॥ उस सुन्दर वनमें मोरोंका समूह बोल रहा था, हाथी और वानर घूम रहे थे। देखनेमें सुन्दर वे राम, लक्ष्मण नदी तीरपर आकर वहाँसे शीघ्र ही अपने स्थानपर आये ॥ ३३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका पचपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५५ ॥

रातके बीतनेपर भी थोड़ा सोये हुए लक्ष्मणको रामचन्द्रने धीरे-धीरे उठाया ॥ १ ॥ लक्ष्मण, सुनो जंगली पशु-पक्षी सुन्दर बोल रहे हैं। यह प्रस्थान करनेका समय है, अब हम लोग चलें ॥ २ ॥ रामचन्द्रके जगाने पर सोये हुए लक्ष्मणने निद्राका त्याग किया, आलस्य और थकावट भी उनकी जाती रही ॥ ३ ॥ उठकर तथा नदीमें स्नान आदि करके ऋषियोंसे सेवित मार्गसे वे चित्रकूट चले ॥ ४ ॥ लक्ष्मणके साथ रामचन्द्रने प्रातःकालही प्रस्थान किया, रास्तेमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आदीप्तानिव वैदेहि सर्वतः पुष्पितान्नगान् । स्वैः पुष्पैः किंशुकान्पश्य मालिनः शिशिरात्यये ॥ ६ ॥
पश्य भल्लातकान्बिल्वान्नरैरनुपसेवितान् । फलपुष्पैरवनतान्नूनं शक्ष्याम जीवितुम् ॥ ७ ॥
पश्य द्रोणप्रमाणानि लम्बमानानि लक्ष्मण । मधूनि मधुकारीभिः संभृतानि नगे नगे ॥ ८ ॥
एष क्रोशति नत्यूहस्तं शिखी प्रतिकूजति । रमणीये वनोद्देशे पुष्पसंस्तरसंकटे ॥ ९ ॥
मातङ्गयूथानुसृतं पक्षिसंघानुनादितम् । चित्रकूटमिमं पश्य प्रवृद्धशिखरं गिरिम् ॥१०॥
समभूमितले रम्ये द्रुमैर्बहुभिरावृते । पुण्ये रंस्यामहे तात चित्रकूटस्य कानने ॥११॥
ततस्तौ पादचारेण गच्छन्तौ सह सीतया । रम्यमासेदतुः शैलं चित्रकूटं मनोरमम् ॥१२॥
तं तु पर्वतमासाद्य नानापक्षिगणायुतम् । बहुमूलफलं रम्यं संपन्नसरसोदकम् ॥१३॥
मनोज्ञोऽयं गिरिः सौम्य नानाद्रुमलतायुतः । बहुमूलफलो रम्यः स्वाजीवः प्रतिभाति मे ॥१४॥
मुनयश्च महात्मानो वसन्त्यस्मिञ्शिलोच्चये । अयं वासो भवेत्तात वयमत्र वसेमहि ॥१५॥
इति सीता च रामश्च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः । अभिगम्याश्रमं सर्वे वाल्मीकिमभिवादयन् ॥१६॥
तान्महर्षिः प्रमुदितः पूजयामास धर्मवित् । आस्यतामिति चोवाच स्वागतं तं निवेद्य च ॥१७॥
ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्लक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजः । संनिवेद्य यथान्यायमात्मानमृषये प्रभुः ॥१८॥

राम कमलपत्राक्षी सीतासे इस प्रकार बोले ॥ ५ ॥ जानकी, देखो, वसन्त ऋतुमें पलाशके वृक्षोंने अपने पुष्पोंकी माला धारण कर रखी है, देखो ये फूले हुए पलाशवृक्ष मानो जल रहे हैं ॥ ६ ॥ देखो ये बहेड़ेके वृक्ष हैं, ये बेलके वृक्ष हैं, मनुष्योंके लिए ये दुर्गम हैं, ये फल-फूलसे झुके हुए हैं, अवश्यही हम लोग यहाँ जी सकेंगे; क्योंकि भोजनके साधन फलादि यहाँ खूब हैं ॥ ७ ॥ मधुमक्षिकाओंके द्वारा संचित ये मधुके छत्ते देखो, लक्ष्मण, ये प्रत्येक वृक्षपर लटक रहे हैं और बड़े-बड़े हैं ॥ ८ ॥ दात्यूह नामक पक्षी बोल रहा है और उसके उत्तरमें मोर बोल रहा है, देखो, इधरकी वनभूमि रमणीय है पुष्पोंकी मानों यहाँ वृष्टि हो रही है, हाथियोंका समूह यहाँ वर्तमान है, पक्षिसमूह बोल रहा है, शिखर बड़े-बड़े हैं, ऐसे चित्रकूट पर्वतको देखो ॥ ९-१० ॥ चित्रकूटके पवित्र वनके रमणीय समतल भूमिमें, जहाँ अनेक वृक्ष होंगे, हमलोग आनन्द करेंगे ॥ ११ ॥ सीताके साथ पैदल चलते हुए वे दोनों रमणीय चित्रकूट पर्वतपर पहुँचे ॥ १२ ॥ उस पर्वतपर काफी मीठा जल था, बहुत फलमूल था, वह रमणीय पर्वत अनेक पक्षियोंसे युक्त था, उस पर्वतपर जाकर रामचन्द्रने कहा—सौम्य, यह पर्वत बड़ाही मनोहर है, इसमें अनेक वृक्ष और लताएँ हैं, इसमें फल मूल भी बहुत हैं, मुझे मालूम होता है कि यहाँ हम लोगोंको आसानीसे आहार मिला करेगा ॥ १३-१४ ॥ मुनि और महात्मा इस पर्वतपर निवास करते हैं, यह रहनेके योग्य है, हम लोग भी यहीं निवास करेंगे ॥ १५ ॥ राम, लक्ष्मण और सीता तीनोंने हाथ जोड़कर आश्रममें जाकर वाल्मीकि मुनिको प्रणाम किया ॥ १६ ॥ धर्म जाननेवाले मुनिने प्रसन्नता पूर्वक उन लोगोंकी पूजा की "बैठिए, आप लोगोंका स्वागत है" ऐसा मुनिने उन लोगोंसे कहा ॥ १७ ॥ लक्ष्मणने विधिपूर्वक अपना परिचय ऋषिको दिया, तदनन्तर महाबाहु राम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लक्ष्मणानय दारूणि दृढानि च वराणि च । कुरुष्वावसथं सौम्य वासे मेऽभिरतं मनः ॥१९॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिर्विविधान्द्रुमान् । आजहार ततश्चक्रे पर्णशालामरिंदमः ॥२०॥
तां निष्ठितां बद्धकटां दृष्ट्वा रामः सुदर्शनाम् । शुश्रूषमाणमेकाग्रमिदं वचनमब्रवीत् ॥२१॥
ऐणेयं मांसमाहृत्य शालां यक्ष्यामहे वयम् । कर्तव्यं वास्तुशमनं सौमित्रे चिरजीविभिः ॥२२॥
मृगं हत्वानय क्षिप्रं लक्ष्मणेह शुभेक्षण । कर्तव्यः शास्त्रदृष्टो हि विधिर्धर्ममनुस्मर ॥२३॥
भ्रातुर्वचनमाज्ञाय लक्ष्मणः परवीरहा । चकार च यथोक्तं हि तं रामः पुनरब्रवीत् ॥२४॥
ऐणेयं श्रपयस्वैतच्छालां यक्ष्यामहे वयम् । त्वर सौम्यमुहूर्तोऽयं ध्रुवश्च दिवसो ह्ययम् ॥२५॥
स लक्ष्मणः कृष्णमृगं हत्वा मेध्यं प्रतापवान् । अथ चिक्षेप सौमित्रिः समिद्धे जातवेदसि ॥२६॥
तत्तु पक्वं समाज्ञाय निष्टप्तं छिन्नशोणितम् । लक्ष्मणः पुरुषव्याघ्रमथ राघवमब्रवीत् ॥२७॥
अयं सर्वैः समस्ताङ्गैः शृतः कृष्णमृगो मया । देवता देवसंकाश यजस्व कुशलो ह्यसि ॥२८॥
रामः स्नात्वा तु नियतो गुणवाञ्जपकोविदः । संग्रहेणाकरोत्सर्वान्मन्त्रान्सत्रावसानिकान् ॥२९॥
इष्ट्वा देवगणान्सर्वान्विवेशावसथं शुचिः । बभूव च मनोह्लादो रामस्यामिततेजसः ॥३०॥
वैश्वदेवबलिं कृत्वा रौद्रं वैष्णवमेव च । वास्तुसंशमनीयानि मङ्गलानि प्रवर्तयन् ॥३१॥

लक्ष्मणसे बोले ॥ १८ ॥ लक्ष्मण, अच्छी और मजबूत लकड़ियाँ ले आओ, यहाँ घर बनाओ, यहाँ रहना मुझे अच्छा लगता है ॥ १९ ॥ रामचन्द्रकी बात सुनकर लक्ष्मण अनेक वृक्ष ले आये, पुनः शत्रुतापन लक्ष्मणने पर्णशाला बनायी ॥ २० ॥ मजबूत काष्ठसे बनी होनेके कारण जो वर्षा आँधी सहनेके योग्य है, ऊपरसे छायी हुई है ऐसी पर्णशाला देखकर, सेवा करनेवाले तथा दूसरी आज्ञा सुननेके लिए एकाग्र लक्ष्मणसे राम इस प्रकार बोले ॥२१॥ हरिणका मांस लाकर हम लोग पर्णशालाकी अधिष्ठाताकी पूजा करेंगे, क्योंकि दीर्घजीवन चाहनेवालोंको वास्तुशमन करना चाहिए ॥ २२ ॥ लक्ष्मण, तुम एक हरिण मार कर ले आओ, शास्त्रकी आज्ञाके अनुसारही चलना चाहिए, धर्मका स्मरण करो ॥ २३ ॥ शत्रुहन्ता लक्ष्मणने भाईकी आज्ञा सुनकर उनके कहेके अनुसार किया । यह देखकर रामचन्द्र पुनः बोले ॥ २४ ॥ लक्ष्मण, इस हरिणके माँसको पकाओ, हम लोग शालाके अधिष्ठाता देवताकी पूजा करेंगे । शीघ्रता करो, आज सौम्य मुहूर्त है और दिन भी ध्रुव संज्ञक है ॥ २५ ॥ प्रतापी लक्ष्मण पवित्र कृष्ण मृग मारकर ले आये, उन्होंने उसे धधकती आगमें डाल दिया ॥ २६ ॥ वह पक गया है, खूब गरम है, उसमेंसे खून निकलना बन्द हो गया है यह देखकर लक्ष्मण पुरुषव्याघ्र रामचन्द्रसे बोले ॥ २७ ॥ यह कृष्णमृग अपने समस्त अंगोंके सहित पक गया है, देव-प्रतिम राम, आप इससे देव पूजा करेंगे, आप देव-पूजनमें बड़े निपुण हैं ॥ २८ ॥ मन्त्रोंके रहस्य जाननेवाले गुणवान् रामचन्द्रने स्नान किया और यज्ञ समाप्त होने तकके समस्त मन्त्रोंका संक्षेपसे जप किया अर्थात् मन्त्रपूर्वक सब क्रियाएँ उन्होंने कीं ॥ २९ ॥ सब देवताओंकी पूजा करके पवित्र रामचन्द्रने घरमें प्रवेश किया, उस अमिततेजा रामचन्द्रको मानसिक आह्लाद हुआ ॥ ३० ॥ वैश्वदेवबलि करके रुद्रदेवता और विष्णु देवताके लिए उन्होंने बलि की, और नवीन गृहके दोषोंको दूर करनेवाले अन्यान्य मांगलिक कृत्य भी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जपं च न्यायतः कृत्वा स्नात्वा नद्यां यथाविधि । पापसंशमनं रामश्चकार बलिमुत्तमम् ॥३२॥
वेदिस्थलविधानानि चैत्यान्यायतनानि च । आश्रमस्यानुरूपाणि स्थापयामास राघवः ॥३३॥
तां वृक्षपर्णच्छदनां मनोज्ञां यथाप्रदेशं सुकृतां निवाताम् ।
वासाय सर्वे विविशुः समेताः सभां यथा देवगणाः सुधर्माम् ॥३४॥
सुरम्यमासाद्य तु चित्रकूटं नदीं च तां माल्यवतीं सुतीर्थाम् ।
ननन्द हृष्टो मृगपक्षिजुष्टां जहौ च दुःखं पुरविप्रवासात् ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशः सर्गः ५७

कथयित्वा तु दुःखार्तः सुमन्त्रेण चिरं सह । रामे दक्षिणकूलस्थे जगाम स्वगृहं गुहः ॥ १ ॥
भरद्वाजाभिगमनं प्रयागे च सभाजनम् । आगिरेर्गमनं तेषां तत्रस्थैरभिलक्षितम् ॥ २ ॥
अनुज्ञातः सुमन्त्रोऽथ योजयित्वा हयोत्तमान् । अयोध्यामेव नगरीं प्रययौ गाढदुर्मनाः ॥ ३ ॥
स वनानि सुगन्धीनि सरितश्च सरांसि च । पश्यन्यत्तो ययौ शीघ्रं ग्रामाणि नगराणि च ॥ ४ ॥
ततः सायाह्नसमये द्वितीयेऽहनि सारथिः । अयोध्यां समनुप्राप्य निरानन्दां ददर्श ह ॥ ५ ॥

उन्होंने किये ॥ ३१ ॥ विधिपूर्वक रामचन्द्रने जप किया और विधिपूर्वक नदीमें स्नान किया, तदनन्तर दोषोंको दूर करनेवाली उत्तम बलि उन्होंने की ॥ ३२ ॥ रामचन्द्रने उस आश्रमके अनुरूप वेदि (बलिदेनेका स्थान), चैत्य (गणेशका स्थान), आयतन (विष्णु आदिका स्थान) स्थापित किये ॥ ३३ ॥ वृक्षोंके पत्तोंसे छायी हुई वह पर्णशाला बड़ीही सुन्दर बनी, उसमें हवा आदिकी रोक थी, उत्तम स्थानपर बनी थी, उसमें निवास करनेके लिए सभी लोगोंने साथही प्रवेश किया, जैसे देवगण देवसभा सुधर्मामें प्रवेश करते हैं ॥ ३४ ॥ रमणीय चित्रकूट पर्वत तथा सुन्दर घाटवाली माल्यवती नदी पाकर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और अयोध्याके वियोगका दुःख उन्होंने छोड़ दिया ॥ ३५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका छप्पनवाँ सर्ग समाप्त ॥५६॥

रामचन्द्र जब गंगाके दक्षिण तीरपर गये तब गुह बहुतही दुःखी हुआ और वह बड़ी देर तक सुमन्त्रके साथ रामचन्द्रके सम्बन्धकी बातें करता रहा, पुनः अपने घर गया ॥ १ ॥ प्रयागमें रामचन्द्रका भरद्वाजके आश्रममें जाना और उनके द्वारा सत्कार तथा चित्रकूट जाने तकका समस्त वृत्तान्त अपने दूतों द्वारा गुहको मालूम हुआ ॥ २ ॥ सुमन्त्रने भी गुहके द्वारा वे सब बातें जानलीं । पुनः उत्तम घोड़ोंको रथमें जोड़कर बड़ेही दुःखसे अयोध्या नगरीकी ओर वे चले ॥ ३ ॥ वे सुगन्धित वनों, नदियों, तलावों, ग्रामों और नगरोंको देखते हुए शीघ्रतासे चले ॥ ४ ॥ सारथि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स शून्यामिव निःशब्दां दृष्ट्वा परमदुर्मनाः । सुमन्त्रश्चिन्तयामास शोकवेगसमाहतः ॥ ६ ॥
कच्चिन्न सगजा साश्वा सजना सजनाधिपा । रामसंतापदुःखेन दग्धा शोकाग्निना पुरी ॥ ७ ॥
इति चिन्तापरः सूतो वाजिभिः शीघ्रयायिभिः । नगरद्वारमासाद्य त्वरितः प्रविवेश ह ॥ ८ ॥
सुमन्त्रमभिधावन्तः शतशोऽथ सहस्रशः । क्व राम इति पृच्छन्तः सूतमभ्यद्रवन्नराः ॥ ९ ॥
तेषां शशंस गङ्गायामहमापृच्छ्य राघवम् । अनुज्ञातो निवृत्तोऽस्मि धार्मिकेण महात्मना ॥ १० ॥
ते तीर्णा इति विज्ञाय बाष्पपूर्णमुखा नराः । अहो धिगिति निःश्वस्य हा रामेति विचुक्रुशुः ॥ ११ ॥
शुश्राव च वचस्तेषां क्रन्दं क्रन्दं च तिष्ठताम् । हताः स्म खलु ये नेह पश्याम इति राघवम् ॥ १२ ॥
दानयज्ञविवाहेषु समाजेषु महत्सु च । न द्रक्ष्यामः पुनर्जातु धार्मिकं राममन्तरा ॥ १३ ॥
किं समर्थं जनस्यास्य किं प्रियं किं सुखावहम् । इति रामेण नगरं पित्रेव परिपालितम् ॥ १४ ॥
वातायनगतानां च स्त्रीणामन्वन्तरापणम् । राममेवाभितप्तानां शुश्राव परिदेवनाम् ॥ १५ ॥
स राजमार्गमध्येन सुमन्त्रः पिहितानन: । यत्र राजा दशरथस्तदेवोपययौ गृहम् ॥ १६ ॥
सोऽवतीर्य रथाच्छीघ्रं राजवेश्म प्रविश्य च । कक्ष्याः सप्ताभिचक्राम महाजनसमाकुलाः ॥ १७ ॥
हर्म्यैर्विमानैः प्रासादैरवेक्ष्याथ समागतम् । हाहाकारकृता नार्यो रामादर्शनकर्शिताः ॥ १८ ॥
आयतैर्विमलैर्नेत्रैरश्रुवेगपरिप्लुतैः । अन्योन्यमभिवीक्षन्ते व्यक्तमार्ततराः स्त्रियः ॥ १९ ॥

दूसरे दिन सन्ध्याके समय अयोध्यामें आये और उसे उन्होंने आनन्दहीन देखा ॥ ५ ॥ शोकवेगसे पीड़ित परमखिन्न सुमन्त्र जनशून्यके समान शब्दहीन उस नगरीको देखकर चिन्ता करने लगे ॥६॥ हाथी, घोड़े, मनुष्य और राजाके साथ रामवियोगके दुःखसे क्या यह समस्त नगरी जल गयी ॥७॥ इस प्रकार सोचते हुए सुमन्त्र शीघ्र चलनेवाले घोड़ोंके द्वारा नगरद्वारपर आये और पुनः शीघ्रता पूर्वक उन्होंने नगर में प्रवेश किया ॥८॥ सूतको देखकर सैकड़ों हजारों मनुष्य "रामचन्द्र कहाँ हैं" यह पूछते हुए उनके पीछे-पीछे दौड़े ॥ ९ ॥ सूतने उन लोगोंसे कहा गंगा तीरपर रामचन्द्रसे पूछकर तथा धार्मिक महात्मा रामचन्द्रकी आज्ञा लेकर मैं लौट आया हूँ ॥ १० ॥ रामचन्द्र गंगा पार चले गये—यह जान वे रोने लगे, अपनेको धिक्कार देने लगे। पुनः निःश्वास लेकर 'हा राम' कहकर वे विलाप करने लगे ॥ ११ ॥ कई दलोंमें बटे हुए उन मनुष्योंके वचन सुमन्त्रने सुनें, इस रथमें हम लोग रामचन्द्रको नहीं देखते, अब हम लोग तो मारे ही गये ॥ १२ ॥ दानयज्ञ, विवाह तथा बड़े बड़े उत्सवोंके समयमें हम लोग अब लोगोंके बीचमें धार्मिक रामचन्द्रको नहीं देखते ॥१३॥ पिताके समान रामचन्द्रके द्वारा परिपालित वह समस्त नगरी यही सोचती थी कि अब हमारे लिए क्या उचित है, क्या प्रिय है तथा क्या सुखकारी है ॥ १४ ॥ अनन्तर खिड़कीपर बैठी हुई और रामके लिये दुःखिनी स्त्रियोंका विलाप सुमन्त्रने बाजारके बीचमें सुने ॥ १५ ॥ मुंह ढांपे सड़कके बीचसे सुमन्त्र उसी घरमें गये जहाँ राजा दशरथ थे ॥ १६ ॥ रथसे शीघ्र उतरकर वे राजभवनमें गये और आदमियोंकी भीड़से होकर वे सात खण्ड पारकर गये ॥ १७ ॥ सुमन्त्र ही लौटे हैं, इससे रामचन्द्रको न देखनेके कारण अटारियोंसे, सतमहले घरोंसे तथा राजाके घरोंसे स्त्रियोंका हाहाकार शब्द सुन पड़ा ॥ १८ ॥ उनकी बड़ी-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततो दशरथस्त्रीणां प्रासादेभ्यस्ततस्ततः । रामशोकाभितप्तानां मन्दं शुश्राव जल्पितम् ॥२०॥
सह रामेण निर्यातो विना रामामिहागतः । सूतः किं नाम कौसल्यां क्रोशन्तीं प्रतिवक्ष्यति ॥२१॥
यथा च मन्ये दुर्जीवमेवं न सुकरं ध्रुवम् । आच्छिद्य पुत्रे निर्याते कौसल्या यत्र जीवति ॥२२॥
सत्यरूपं तु तद्वाक्यं राजस्त्रीणां निशामयन् । प्रदीप्त इव शोकेन विवेश सहसा गृहम् ॥२३॥
स प्रविश्याष्टमीं कक्ष्यां राजानं दीनमातुरम् । पुत्रशोकपरिद्यूनमपश्यत्पाण्डुरे गृहे ॥२४॥
अभिगम्य तमासीनं राजानमभिवाद्य च । सुमन्त्रो रामवचनं यथोक्तं प्रत्यवेदयत् ॥२५॥
स तूष्णीमेव तच्छ्रुत्वा राजा विद्रुतमानसः । मूर्च्छितो न्यपतद्भूमौ रामशोकाभिपीडितः ॥२६॥
ततोऽन्तःपुरमाविद्धं मूर्च्छिते पृथिवीपतौ । उच्छ्रित्य बाहू चुक्रोश नृपतौ पतिते क्षितौ ॥२७॥
सुमित्रया तु सहिता कौसल्या पतितं पतिम् । उत्थापयामास तदा वचनं चेदमब्रवीत् ॥२८॥
इमं तस्य महाभागं दूतं दुष्करकारिणः । वनवासादनुप्राप्तं कस्मान्न प्रतिभाषसे ॥२९॥
अद्येममनयं कृत्वा व्यपत्रपसि राघव । उत्तिष्ठ सुकृतं तेऽस्तु शोकेन स्यात्सहायता ॥३०॥
देव यस्या भयाद्रामं नानुपृच्छसि सारथिम् । नेह तिष्ठति कैकेयी विश्रब्धं प्रतिभाष्यताम् ॥३१॥
सा तथोक्त्वा महाराजं कौसल्या शोकलालसा । धरण्यां निपपाताशु बाष्पविप्लुतभाषिणी ॥३२॥

बड़ी उज्वल आंखें आंसूसे भर गयीं, वे दुःखसे रोती हुई आपसमें एक दूसरेको देखने लगीं ॥१९॥ रामचन्द्रके शोकसे पीड़ित दसरथकी स्त्रियोंकी धीरे-धीरे बातचीत राजमहलसे सुन पड़ी ॥ २० ॥ सुमन्त्र रामचन्द्रके साथ यहांसे गये और उनके विना लौटे, वे रोती हुई कौसल्याको क्या उत्तर देंगे ॥ २१ ॥ राज्य त्याग करके पुत्रके चले जानेपर भी जिस उपायसे कौसल्या जीवन धारण कर सकें, ऐसा कोई उपाय निश्चय ही नहीं मालूम पड़ता, यदि उसके प्राण नहीं निकले किसी तरह जीती ही रही तो उसका वह जीवन रामचन्द्रके लौट आने तक बड़ाही दुःखमय होगा ॥२२॥ राजस्त्रियोंका यथार्थ वचन सुनते हुए सुमन्त्र, शोकसे जले हुएके समान, राजाके घरमें शीघ्रता पूर्वक गये ॥ २३ ॥ आठवें खण्डपर जाकर सुमन्त्रने राजाको पुत्रशोकसे मलिन, दुःखी और उत्कण्ठित देखा, राजा श्वेत घरमें पड़े हुए थे ॥ २४ ॥ बैठे हुए राजाके पास जाकर और उनको प्रणाम करके रामचन्द्रने जो कहा था वह सब सुमन्त्रने दसरथको सुनाया ॥ २५ ॥ राजाने चुप होकर सुमन्त्रकी सब बातें सुनीं, उनका मन व्याकुल हो गया, वे रामचन्द्रके शोकसे मूर्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़े ॥ २६ ॥ राजाके मूर्छित होनेपर समस्त राजपरिवार बड़ा दुखी हुआ, राजा जब जमीनपर गिरे तब सब लोग हाथ उठाकर रोने लगे ॥ २७ ॥ कौसल्याने सुमित्राके, साथ जमीनमें गिरे हुए पतिको उठाया और वे यह वचन बोलीं ॥ २८ ॥ महाभाग, कठिन काम करनेवाले रामचन्द्रके दूत ये वनसे आये हैं, इनसे आप क्यों नहीं बोलते ॥ २९ ॥ राजन्, अन्याय करके अब आप लज्जित होते हैं, रामचन्द्रके वनवासको आप अन्याय क्यों समझते हैं, यह तो आपका सत्यपालन है, आप उठें, आप यदि इस तरहसे दुःख करेंगे तो आपके परिजन तो नष्ट ही हो जायंगे ॥ ३० ॥ राजन्, जिसके भयसे रामचन्द्रका वृत्तान्त आप सारथिसे नहीं पूछते, वह केकयी यहां नहीं है, निश्चित होकर आप इनसे बातें करें ॥ ३१ ॥ शोकसे पीड़ित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विलपन्तीं तथा दृष्ट्वा कौसल्यां पतितां भुवि । पतिं चावेक्ष्य ताः सर्वाः समन्ताद्रुरुदुःस्त्रियः ॥३३॥
ततस्तमन्तःपुरनादमुत्थितं समीक्ष्य वृद्धास्तरुणाश्च मानवाः ।
स्त्रियश्च सर्वा रुरुदुः समन्ततः पुरं तदासीत्पुनरेव संकुलम् ॥३४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः ५८

प्रत्याश्वस्तो यदा राजा मोहात्प्रत्यागतस्मृतिः । तदाजुहाव तं सूतं रामवृत्तान्तकारणात् ॥ १ ॥
तदा सूतो महाराजं कृताञ्जलिरुपस्थितः । राममेवानुशोचन्तं दुःखशोकसमन्वितम् ॥ २ ॥
वृद्धं परमसंतप्तं नवग्रहमिव द्विपम् । विनिःश्वसन्तं ध्यायन्तमस्वस्थमिव कुञ्जरम् ॥ ३ ॥
राजा तु रजसा सूतं ध्वस्ताङ्गं समुपस्थितम् । अश्रुपूर्णमुखं दीनमुवाच परमार्तवत् ॥ ४ ॥
क्व नु वत्स्यति धर्मात्मा वृक्षमूलमुपाश्रितः । सोऽत्यन्तसुखितः सूत किमशिष्यति राघवः ॥ ५ ॥
दुःखस्यानुचितो दुःखं सुमन्त्र शयनोचितः । भूमिपालात्मजो भूमौ शेते कथमनाथवत् ॥ ६ ॥
यं यान्तमनुयान्ति स्म पदातिरथकुञ्जराः । स वत्स्यति कथं रामो विजनं वनमाश्रितः ॥ ७ ॥
व्यालैर्मृगैराचरितं कृष्णसर्पनिषेवितम् । कथं कुमारौ वैदेह्या सार्धं वनमुपाश्रितौ ॥ ८ ॥

कौसल्या राजासे ऐसा कहकर पृथिवीपर गिर पड़ीं, उनका गला भर आया, बोली नहीं निकली ॥ ३२ ॥ कौसल्या जमीनमें गिरी हैं और विलाप कर रही हैं यह देखकर तथा पतिकी वैसी दशा देखकर सब स्त्रियां रोने लगीं ॥ ३३ ॥ अन्तःपुरकी वह रोदनध्वनि सुनकर बूढ़े जवान सभी पुरुष तथा स्त्रियां रोने लगीं, वह समस्त घर पुनः रोदनसे व्याकुल हो गया ॥ ३४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका सत्तावनवां सर्ग समाप्त ॥ ५७ ॥

मूर्च्छा भंग होनेपर राजा जब होशमें आये, उनका चित्त कुछ स्वस्थ हुआ, तब उन्होंने रामचन्द्रका समाचार सुननेके लिये सारथि सुमन्त्रको बुलाया ॥ १ ॥ सुमन्त्र हाथ जोड़कर राजाके सामने आये, राजा रामचन्द्रको ही सोच रहे थे, वे दुःखी और शोकसन्तप्त थे ॥ २ ॥ बूढ़े राजा नये पकड़े हाथीके समान परम सन्तप्त थे, वे रामचन्द्रका ध्यान कर रहे थे, बीमार हाथीके समान लम्बी सांस ले रहे थे ॥ ३ ॥ राजा दसरथ अपने सामने आये हुए सूतसे, जिनका शरीर धूलसे लिपटा हुआ था, आंसूसे मुंह भारी हुआ था, जो बहुत ही दुःखी थे-बहुत ही दुःखीके समान बोले ॥ ४ ॥ सूत, धर्मात्मा राम कहां निवास करते हैं, वृक्षोंका मूलही उनका आश्रय है, फिर भी वे अत्यन्त सुखी है, उन्होंने तुमसे क्या कहा है ॥ ५ ॥ सुमन्त्र, जिसको दुःख नहीं होना चाहिए वह दुःख पा रहा है, जिसे पलंगपर सोना चाहिए वह राजपुत्र अनाथके समान जमीनपर सो रहा है ॥ ६ ॥ जो रामचन्द्र कहीं बाहर जाते थे तो उनके साथ पैदल सेना, रथ और हाथी जाते थे, वे ही रामचन्द्र निर्जन वनमें कैसे निवास करेंगे ? ॥७॥ अजगर, दुष्ट पशु तथा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुकुमार्या तपस्विन्या सुमन्त्र सह सीतया । राजपुत्रौ कथं पादैरवरुह्य रथाद्गतौ ॥ ९ ॥
सिद्धार्थः खलु सूत त्वं येन दृष्टौ ममात्मजौ । वनान्तं प्रविशन्तौ तावश्विनाविव मन्दरम् ॥१०॥
किमुवाच वचो रामः किमुवाच च लक्ष्मणः । सुमन्त्र वनमासाद्य किमुवाच स मैथिली ॥११॥
आसितं शयितं भुक्तं सूत रामस्य कीर्तय । जीविष्याम्यहमेतेन ययातिरिव साधुषु ॥१२॥
इति सूतो नरेन्द्रेण चोदितः सज्जमानया । उवाच वाचा राजानं स वाष्पपरिवद्धया ॥१३॥
अब्रवीन्मे महाराज धर्ममेवानुपालयन् । अञ्जलिं राघवः कृत्वा शिरसाभिप्रणम्य च ॥१४॥
सूत मद्वचनात्तस्य तातस्य विदितात्मनः । शिरसा वन्दनीयस्य वन्द्यौ पादौ महात्मनः ॥१५॥
सर्वमन्तःपुरं वाच्यं सूत मद्वचनात्त्वया । आरोग्यमविशेषेण यथार्हमभिवादनम् ॥१६॥
माता च मम कौसल्या कुशलं चाभिवादनम् । अप्रमादं च वक्तव्या ब्रूयाश्चैनामिदं वचः ॥१७॥
धर्मनित्या यथाकालमग्न्यगारपरा भव । देवि देवस्य पादौ च देववत्परिपालय ॥१८॥
अभिमानं च मानं च त्यक्त्वा वर्तस्व मातृषु । अनुराजानमार्यां च कैकेयीमम्ब कारय ॥१९॥
कुमारे भरते वृत्तिर्वर्तितव्या च राजवत् । अर्थज्येष्ठा हि राजानो राजधर्ममनुस्मर ॥२०॥
भरतः कुशलं वाच्यो वाच्यो मद्वचनेन च । सर्वास्वेव यथान्यायं वृत्तिं वर्तस्व मातृषु ॥२१॥

काले सांप वनमें रहते हैं, वहां हीं दोनों राजकुमार जानकीके साथ कैसे रहते हैं ॥ ८ ॥ सुमन्त्र, सुकुमारी विचारी सीताके साथ दोनों राजपुत्र रथसे उतरकर पैदल कैसे गये ॥ ९ ॥ सुमन्त्र, तुम्हीं भाग्यवान् हो, तुम्हारा ही मनोरथ पूरा हुआ; क्योंकि तुमने मेरे पुत्रोंको वनमें प्रवेश करते हुए देखा है, जिस प्रकार मन्दराचलमें अश्विनीकुमार प्रवेश करते हों ॥ १० ॥ सुमन्त्र, रामचन्द्रने क्या कहा, लक्ष्मणने क्या कहा, और वनमें जाकर सीताने क्या कहा ॥ ११ ॥ सूत, रामचन्द्रके रहने, सोने, खाने आदिके सम्बन्धकी बातें कहो, इसीसे मैं जी सकूंगा, अर्थात् मेरा दुःख कम होगा, जिस प्रकार साधुओंके बीचमें गिरनेसे राजा ययातिका दुःख कम हुआ था ॥ १२ ॥ इस प्रकार राजाके पूछनेपर सूत रामचन्द्र-सम्बन्धी बातें बोले । गला भरा होनेके कारण उनकी बात रुक जाती थी ॥ १३ ॥ महाराज, धर्मका ही पालन करते हुए रामचन्द्रने हाथ जोड़कर तथा शिरसे प्रणाम करके मुझसे कहा है ॥ १४ ॥ सूत, मेरे जो पिता संसारमें धर्मात्माके नामसे प्रसिद्ध हैं, जो वन्दनीय हैं, उन महात्माके चरणोंको मेरी ओरसे प्रणाम करना ॥ १५ ॥ सूत, सब महारानियोंसे मेरे कहनेसे मेरा कुशल-मंगल कहना और प्रणाम कहना ॥ १६ ॥ मेरी माता कौसल्यासे अवश्यही मेरी कुशल कहना और मेरा प्रणाम कहना और उनसे यह बात कहना कि ॥ १७ ॥ सदा धर्मका पालन करना, यथासमय अग्निहोत्र करना, देवताके समान राजाके चरणोंकी सेवा करना ॥ १८ ॥ मेरी अन्य माताओंके साथ अभिमान और मान छोड़कर व्यवहार करो, जिस केकयीके अनुगत राजा हैं उस केकयीको भी शुद्ध विचारवाली बनाओ ॥ १९ ॥ कुमार भरतके साथ राजाके समान व्यवहार करना, छोटा भी राजा पूज्य होता है-ऐसाही राजधर्म है ॥ २० ॥ भरतसे कुशल-संवाद कहकर मेरी ओरसे कहना कि सब माताओंकी यथायोग्य वे सेवा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वक्तव्यश्च महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः । पितरं यौवराज्यस्थो राज्यस्थमनुपालय ॥२२॥
अतिक्रान्तवया राजा मा स्मैनं व्यपरोरुधः । कुमारराज्ये जीवन्त्व तस्यैवाज्ञाप्रवर्तनात् ॥२३॥
अब्रवीच्चापि मां भूयो भृशमश्रूणि वर्तयन् । मातेव मम माता ते द्रष्टव्या पुत्रगर्धिनी ॥२४॥
इत्येवं मां महाबाहुर्ब्रुवन्नेव महायशाः । रामो राजीवपत्राक्षो भृशमश्रूण्यवर्तयत् ॥२५॥
लक्ष्मणस्तु सुसंक्रुद्धो निःश्वसन्वाक्यमब्रवीत् । केनायमपराधेन राजपुत्रो विवासितः ॥२६॥
राज्ञो तु खलु कैकेय्या लघु चाश्रुत्य शासनम् । कृतं कार्यमकार्यं वा वयं येनाभिपीडिताः ॥२७॥
यदि प्रव्राजितो रामो लोभकारणकारितम् । वरदाननिमित्तं वा सर्वथा दुष्कृतं कृतम् ॥२८॥
इदं तावद्यथाकाममीश्वरस्य कृते कृतम् । रामस्य तु परित्यागे न हेतुमुपलक्षये ॥२९॥
असमीक्ष्य समारब्धं विरुद्धं बुद्धिलाघवात् । जनयिष्यति संक्रोशं राघवस्य विवासनम् ॥३०॥
अहं तावन्महाराजे पितृत्वं नोपलक्षये । भ्राता भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघवः ॥३१॥
सर्वलोकप्रियं त्यक्त्वा सर्वलोकहिते रते । सर्वलोकोऽनुरज्येत कथं चानेन कर्मणा ॥३२॥
सर्वप्रजाभिरामं हि रामं प्रव्राज्य धार्मिकम् । सर्वलोकविरोधेन कथं राजा भविष्यति ॥३३॥
जानकी तु महाराज निःश्वसन्ती तपस्विनी । भूतोपहतचित्तेव विष्ठिता विस्मृता स्थिता ॥३४॥

करें ॥ २१ ॥ इक्ष्वाकुकुलनन्दन महाबाहु भरतसे कहना कि युवराजका पद पाकर वे राजासनपर अधिष्ठित पिताका पालन करें ॥ २२ ॥ राजा वृद्ध हो गये हैं, उनकी इच्छाका भंग मत होने दो और उनकी ही आज्ञाके अनुसार यौवराज्यमें सन्तोष करो ॥ २३ ॥ आँसू बहाते हुए उन्होंने और भी कहा है कि पुत्रपर स्नेह करनेवाली मेरी माताको अपनी माताके समान समझना ॥ २४ ॥ इसी प्रकार महायशस्वी महाबाहु रामचन्द्रने बहुतसी बातें कहकर आंसू बहाये ॥ २५ ॥ लक्ष्मणने क्रोध करके सांस छोड़ते हुए कहा है कि किस अपराधसे राजपुत्र रामचन्द्रको वनवास दिया गया है ॥२६॥ राजाने शीघ्रतापूर्वक केकयीको राज्य दे दिया, उनका किया हुआ यह कार्य उचित हो या अनुचित, पर वनवाससे हमलोगोंको दुःख हो रहा है ॥ २७ ॥ राजाने रामचन्द्रको जो वनवास दिया है, वह चाहे यशके लोभसे दिया हो अथवा वरदानके कारणसे हो, राजाने यह पापही किया है ॥ २८ ॥ यह रामचन्द्रको वनवास राजाने अपनी इच्छासे दिया हो या ईश्वरकी प्रेरणासे दिया हो, क्योंकि रामके वनवासमें कोई स्पष्ट कारण नहीं दीख पड़ता ॥ २९ ॥ बुद्धिके अभावसे बिना विचारे रामचन्द्रके विरुद्ध जो कार्य किया गया है, जो उनको वनवास दिया गया है, अवश्यही उससे वन भेजनेवालेकी निन्दा होगी ॥ ३० ॥ मैं महाराजको अपना पिता नहीं समझता, भ्राता स्वामी बन्धु पिता मेरे जो कुछ हैं, वे रामचन्द्र ही हैं ॥ ३१ ॥ रामचन्द्र सबके प्रिय हैं, राजाने उनका निर्वासन किया है, भले ही राजा औरोंका हित करें, पर उनका यही एक काम ऐसा है जिससे कोई भी उनपर अनुराग नहीं कर सकता ॥ ३२ ॥ समस्त प्रजाके प्रिय धार्मिक रामचन्द्रको वनमें भेजकर राजाने सबका विरोध किया है, अब वे राजा कैसे रह सकते हैं ॥ ३३ ॥ विचारशील सीता तो हमलोगोंको भूल ही गयी है, राजभवनके सुखोंको वह भूल गयी है, वह दुःखकी सांस ले रही थी और भूताविष्टके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अदृष्टपूर्वव्यसना राजपुत्री यशस्विनी । तेन दुःखेन रुदती नैव मां किंचिदब्रवीत् ॥३५॥
उद्वीक्षमाणा भर्तारं मुखेन परिशुष्यता । मुमोच सहसा बाष्पं प्रयान्तमुपवीक्ष्य सा ॥३६॥

तथैव रामोऽश्रुमुखः कृताञ्जलिः स्थितोऽब्रवील्लक्ष्मणबाहुपालितः ।
तथैव सीता रुदती तपस्विनी निरीक्षते राजरथं तथैव माम् ॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्यकाण्डेऽष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९

मम त्वश्वा निवृत्तस्य न प्रावर्तन्त वर्त्मनि । उष्णमश्रु विमुञ्चन्तो रामे संप्रस्थिते वनम् ॥ १ ॥
उभाभ्यां राजपुत्राभ्यामथ कृत्वाहमञ्जलिम् । प्रस्थितो रथमास्थाय तदुदुःखमपि धारयन् ॥ २ ॥
गुहेन सार्धं तत्रैव स्थितोऽस्मि दिवसान्बहून् । आशया यदि मां रामः पुनः शब्दापयेदिति ॥ ३ ॥
विषये ते महाराज महाव्यसनकर्शिताः । अपि वृक्षाःपरिम्लानाःसपुष्पाङ्कुरकोरकाः॥ ४ ॥
उपतप्तोदका नद्यः पल्वलानि सरांसि च । परिशुष्कपलाशानि वनान्युपवनानि च ॥ ५ ॥
न च सर्पन्ति सत्त्वानि व्याला न प्रसरन्ति च । रामशोकाभिभूतं तं निष्कूजमिव तद्वनम् ॥ ६ ॥
लीनपुष्करपत्राश्च नद्यश्च कलुषोदकाः । संतप्तपद्माः पद्मिन्यो लीनमीनविहंगमाः ॥ ७ ॥

समान निश्चेष्ट बैठी रही, कुछ भी न बोली ॥ ३४ ॥ वह राजपुत्री है, कभी उसने तो दुःख नहीं देखा है, इसी दुःखसे वह रोती रही, उसने कुछ कहा नहीं ॥ ३५ ॥ सूखे मुंहसे वह अपने पतिकी ओर देखती रही, मैं जा रहा हूँ यह देखकर सीताने आँसू बहाये ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणके द्वारा सेवित रामचन्द्र डबडबाकर और हाथ जोड़कर खड़े रहे तथा सीता भी रोती हुई मुझको और रथको देखती रही ॥ ३७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका अट्ठावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५८ ॥

रामके वन चले जानेपर जब मैं लौटा, तब मेरे घोड़े गरम आंसू बहाने लगे और मार्गमें पहलेके समान न चले ॥ १ ॥ दोनों राजपुत्रोंको हाथ जोड़कर उनके वियोगसे दुःखी होने परभी मैंने रथ-पर बैठकर प्रस्थान किया ॥२॥ गुहके साथ वहीं गङ्गा तीरपर ही मैं बहुत दिनों तक इस आशासे रहा कि रामचन्द्र पुनः मुझे बुलावें ॥३॥ महाराज आपके देशमें पुष्प अंकुर कलीके साथ वृक्षभी इस बड़े दुःखसे दुःखी हुए हैं, अतएव वे मुरझा गये हैं ॥४॥ नदियों, छोटे और बड़े तलाबोंके जल सूख गये हैं, वन और बागके पत्ते सूख गये हैं ॥५॥ वनके प्राणी चलते नहीं, जहांके तहाँ पड़े हैं, अजगर भी नहीं चलते, वह समस्त वन रामचन्द्रके दुःखसे अभिभूत होकर मानो शब्दहीन हो गया है ॥ ६ ॥ नदियोंका जल गन्दा होगया है, कमलके पत्ते सूख गये हैं, तलाबोंके कमल सूख गये हैं,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जलजानि च पुष्पाणि माल्यानि स्थलजानि च । नातिभान्त्यल्पगन्धीनि फलानि च यथापुरम् ॥ ८ ॥
अत्रोद्यानानि शून्यानि प्रलीनविहगानि च । न चाभिरामानारामान्पश्यामि मनुजर्षभ ॥ ९ ॥
प्रविशन्तमयोध्यायां न कश्चिदभिनन्दति । नरा राममपश्यन्तो निःश्वसन्ति मुहुर्मुहुः ॥१०॥
देव राजरथं दृष्ट्वा विना रामामिहागतम् । दूरादश्रुमुखः सर्वो राजमार्गे गतो जनः ॥११॥
हर्म्यैर्विमानैः प्रासादैरवेक्ष्य रथमागतम् । हाहाकारकृता नार्यो रामादर्शनकर्शिताः ॥१२॥
आयतैर्विमलैर्नेत्रैरश्रुवेगपरिप्लुतैः । अन्योन्यमभिवीक्षन्तेऽव्यक्तमार्ततराः स्त्रियः ॥१३॥
नामित्राणां न मित्राणामुदासीनजनस्य च । अहमार्ततया कंचिद्विशेषं नोपलक्षये ॥१४॥
अप्रहृष्टमनुष्या च दीननागतुरंगमा । आर्तस्वरपरिम्लानविनिःश्वासितनिःस्वना ॥१५॥
निरानन्दा महाराज राममप्रव्राजानातुरा । कौसल्या पुत्रहीनेव अयोध्या प्रतिभाति मे ॥१६॥
सूतस्य वचनं श्रुत्वा वाचा परमदीनया । बाष्पोपहतया सूतमिदं वचनमब्रवीत् ॥१७॥
कैकेय्या विनियुक्तेन पापाभिजनभावया । मया न मन्त्रकुशलैर्वृद्धैः सह समर्थितम् ॥१८॥
न सुहृद्भिर्न चामात्यैर्मन्त्रयित्वा सनैगमैः । मयायमर्थः संमोहात्स्त्रीहेतोः सहसा कृतः ॥१९॥
भवितव्यतया नूनमिदं वा व्यसनं महत् । कुलस्यास्य विनाशाय प्राप्तं सूत यदृच्छया ॥२०॥

मछलियां और जलपक्षी मूर्छित होगये हैं ॥७॥ जल और स्थलमें उत्पन्न होनेवाले पुष्प अल्पगन्ध हो गये हैं और इसीसे वे अच्छे नहीं मालूम होते, फलभी पहलेके समान नहीं होते ॥ ८ ॥ अयोध्याके बाग भी शून्य होगये हैं, पक्षी भी चुप होगये हैं, उपवन भी अब वैसे सुन्दर नहीं मालूम होते ॥९॥ अयोध्यामें प्रवेश करनेके समय मेरा किसीने भी स्वागत नहीं किया, क्योंकि रामको न देखनेके कारण वे सभी दुःखी होगये और निःश्वास छोड़ने लगे ॥१०॥ रामके बिनाही आपका रथ लौटा है, यह दूरहीसे देखकर सब लोग रोने लगे और वहांसे चले गये ॥ ११ ॥ रथको लौटा देखकर हर्म्य (धनियोंका घर), विमान (सतमहला घर), प्रासाद (राजाका घर) से सब स्त्रियाँ रामको न देखकर दुःखसे हाहाकार करने लगीं ॥ १२ ॥ उज्ज्वल और विशाल उनकी आंखें आंसुसे भर गयीं, वे खिन्न शब्दसे रोती हुई आपसमें एक दूसरीको देखने लगीं ॥१३॥ शत्रु मित्र और उदासीन मनुष्योंमें दुःखमें मैंने कोई भेद नहीं देखा, सभीको बराबर दुःख हुआ ॥ १४ ॥ महाराज, रामचन्द्रके वनवास चले जानेसे पुत्रहीन कौसल्याके समान अयोध्या होगयी है। इस दुःखिनीके सभी आनन्द नष्ट हो गये हैं। अयोध्याके सभी मनुष्य दुःखी हैं। हाथी और घोड़े भी दुःखी हो गये हैं। आर्तस्वरके कारण लोग मलिन हो गये हैं। इस समय अयोध्यामें केवल लोगोंके निःश्वासका शब्द सुन पड़ता है ॥ १५ ॥ १६ ॥ सूतके वचन सुनकर बड़े दुःखित शब्दसे, भरे हुए गलेसे, राजा सूतसे बोले ॥ १७ ॥ पापीकुल पापीदेशमें उत्पन्न तथा पापी अभिप्राय रखनेवाली केकयीके कहनेसे मैंने सलाह देनेमें निपुण वृद्धोंसे सलाह न ली, उनसे विचार न किया ॥ १८ ॥ मित्रोंसे तथा वेदज्ञ मन्त्रियोंसे भी मैंने इस विषयमें सलाह न ली, शीघ्रही स्त्रीके कहनेसे मैंने रामको वनवास देना निश्चित कर लिया ॥ १९ ॥ सूत, भवितव्यतावश यह बहुत बड़ा दुःख इस कुलके नाशके लिए आया है, अथवा बिना किसी कारणके ही इस कुलके विनाशके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सूत यद्यस्ति ते किंचिन्मयापि सुकृतं कृतम् । त्वं प्रापयाशु मां रामं प्राणाःसंत्वरयन्ति माम्॥२१॥
यद्यद्यापि ममैवाज्ञा निवर्तयतु राघवम् । न शक्ष्यामि विना रामं मुहूर्तमपि जीवितुम् ॥२२॥
अथवापि महाबाहुर्गतो दूरं भविष्यति । मामेव रथमारोप्य शीघ्रं रामाय दर्शय ॥२३॥
वृत्तदंष्ट्रो महेष्वासः क्वासौ लक्ष्मणपूर्वजः । यदि जीवामि साध्वेनं पश्येयं सीतया सह ॥२४॥
अतो नु किं दुःखतरं योऽहमिक्ष्वाकुनन्दनम् । इमामवस्थामापन्नो नेह पश्यामि राघवम् ॥२५॥
हा राम रामानुज हा हा वैदेहि तपस्विनि । न मां जानीत दुःखेन म्रियमाणमनाथवत् ॥२६॥
स तेन राजा दुःखेन भृशमर्पितचेतनः । अवगाढः सुदुष्पारं शोकसागरमब्रवीत् ॥२७॥
रामशोकमहावेगः सीताविरहपारगः । श्वासितोर्मिमहावर्तो बाष्पवेगजलाविलः ॥२८॥
बाहुविक्षेपमीनोऽसौ विक्रन्दितमहास्वनः । प्रकीर्णकेशशैवालः कैकेयीवडवामुखः ॥२९॥
ममाश्रुवेगप्रभवः कुब्जावाक्यमहाग्रहः । वरवेलो नृशंसाया रामप्रव्राजनायतः ॥३०॥
यस्मिन्वत निमग्नोऽहं कौसल्ये राघवं विना । दुस्तरो जीवता देवि मयायं शोकसागरः ॥३१॥

अशोभनं योऽहमिहाद्य राघवं दिदृक्षमणो न लभे सलक्ष्मणम् ।
इतीव राजा विलपन्महायशाः पपात तूर्णं शयने स मूर्च्छितः ॥३२॥

लिए यह दुःख आया है ॥ २० ॥ सूत, यदि मैंने तुम्हारा थोड़ा भी उपकार किया है, तो तुम मुझे रामचन्द्रके पास पहुंचा दो, क्योंकि मेरे प्राण शीघ्रता कर रहे हैं, वे जाना चाहते हैं ॥ २१ ॥ यदि आज भी मेरी आज्ञा मानी जाती हो तो शीघ्रतापूर्वक तुम रामको लौटा लाओ, बिना रामको देखे मैं एक मुहूर्त भी नहीं जी सकता ॥ २२ ॥ अथवा रामचन्द्र बहुत दूर चले गये होंगे, अतएव मुझे ही रथपर बैठाकर ले चलो और रामको दिखाओ ॥ २३ ॥ कुन्दकलीके समान दांतवाले महाधनुर्धारी लक्ष्मणके बड़े भाई राम कहाँ हैं, यदि मैं जीता बचा तो अवश्य ही सीताके साथ मैं उनको देखूंगा ॥२४॥ इससे अधिक और दुःख क्या होगा कि इस अवस्थामें भी मैं इक्ष्वाकुनन्दन रामचन्द्रको यहां नहीं देख रहा हूँ ॥ २५ ॥ हा राम, हा लक्ष्मण, हा दुःखिनी सीता, मैं दुःखसे अनाथके समान मर रहा हूँ, यह तुम लोगोंको मालूम नहीं है ॥ २६ ॥ उस दुःखसे राजाकी चेतनता जाती रही, पार न होने योग्य शोकसागरमें प्रविष्ट होकर वे बोले अर्थात् उन्होंने शोकसमुद्रका वर्णन किया ॥ २७ ॥ रामचन्द्रका शोक उस समुद्रकी धारा है, सीताका विरह दूसरा पार है, सांसलेना लहरी और भंवर है, आंसूके वेगके कारण गन्दे जलवाला है, दुःखसे हाथका पटकना मछली है, रोना गर्जन है, बिखरे केश सेवार हैं, केकयी बड़वाग्नि है, मेरा अश्रु धारा उत्पन्न करनेवाला है, मन्थराके वचन बड़े-बड़े ग्राह हैं, दुष्ट केकयीके वर इस समुद्रके तीर हैं और रामचन्द्रका वनवास इसका विस्तार है ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ कौसल्ये, रामचन्द्रके बिना मैं इसी समुद्रमें डूबा हुआ हूँ, मैं जीता हुआ इस शोकसमुद्रको पार नहीं कर सकता ॥ ३१ ॥ मैं रामचन्द्रको देखना चाहता हूँ, पर देख नहीं सकता, यह मेरा पाप है। महायशस्वी राजा इसी तरहका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति विलपति पार्थिवे प्रनष्टे करुणतरं द्विगुणं च रामहेतोः ।
वचनमनुनिशम्य तस्य देवी भयमगमत्पुनरेव राममाता ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ६०

ततो भूतोपसृष्टेव वेपमाना पुनः पुनः । धरण्यां गतसत्त्वेव कौसल्या सूतमब्रवीत् ॥ १ ॥
नय मां यत्र काकुत्स्थः सीता यत्र च लक्ष्मणः । तान्विना क्षणमप्यद्य जीवितुं नोत्सहे ह्यहम् ॥ २ ॥
निवर्तय रथं शीघ्रं दण्डकान्नय मामपि । अथ तान्नानुगच्छामि गमिष्यामि यमक्षयम् ॥ ३ ॥
बाष्पवेगोपहतया स वाचा सज्जमानया । इदमाश्वासयन्देवीं सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ४ ॥
त्यज शोकं च मोहं च संभ्रमं दुःखजं तथा । व्यवधूय च संतापं वने वत्स्यति राघवः ॥ ५ ॥
लक्ष्मणश्चापि रामस्य पादौ परिचरन्वने । आराधयति धर्मज्ञः परलोकं जितेन्द्रियः ॥ ६ ॥
विजनेऽपि वने सीता वासं प्राप्यं गृहेष्विव । विस्रम्भं लभतेऽभीता रामे विन्यस्तमानसा ॥ ७ ॥
नास्या दैन्यं कृतं किंचित्सुसूक्ष्ममपि लक्ष्यते । उचितेव प्रवासानां वैदेही प्रतिभाति मे ॥ ८ ॥
नगरोपवनं गत्वा यथा स्म रमते पुरा । तथैव रमते सीता निर्जनेषु वनेष्वपि ॥ ९ ॥

विलाप करते हुए शीघ्र ही मूर्छित होकर पलंगपर गिर पड़े ॥ ३२ ॥ इस प्रकार रामचन्द्रके लिए बड़े दुःखसे विलाप करते हुए राजा मूर्छित हो गये, उनके वचन सुनकर राममाता कौसल्या पुनः भयभीत हुईं, दसरथ के लिए चिन्तित हुईं ॥ ३३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका उनसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५९ ॥

भूताविष्टके समान कांपती निष्प्राणके समान पृथ्वीपर पड़ी हुई कौसल्या सूतसे बोली ॥१॥ जहां रामचन्द्र हैं, वहां तुम मुझे ले चलो, लक्ष्मण और सीता जहां हैं वहां ले चलो, उनके बिना मैं एक क्षण भी जी नहीं सकती ॥ २ ॥ रथ लौटा लो और मुझे दण्डकारण्यमें ले चलो, यदि मैं उन लोगोंके पास नहीं गयी तो अवश्य ही मर जाऊँगी ॥ ३ ॥ हाथ जोड़कर, गला भरा होनेके कारण गिरते वचनोंके द्वारा, वे कौसल्याको समझाने लगे ॥४॥ दुःखसे उत्पन्न शोक, मोह तथा घबड़ाहट छोड़ो, क्योंकि रामचन्द्र तुम लोगोंके वियोग-दुःख भूलकर वनमें निवास करते हैं ॥ ५ ॥ जितेन्द्रिय लक्ष्मणभी वनमें श्रीरामचन्द्रकी सेवा करते हुए परलोककी आराधना कर रहे हैं ॥ ६ ॥ सीता निर्जन वनमें भी घरके समान निर्भय होकर निवास करती हैं, वे रामचन्द्रमें मन लगाकर उनका प्रेम पारही हैं ॥ ७ ॥ सीता वनवाससे थोड़ीभी दुःखिनी नहीं मालूम होतीं। मुझे तो मालूम होता है कि सीता वनवासके सर्वथा योग्य हैं ॥ ८ ॥ सीता जैसे पहले नगरके बागमें जाकर क्रीड़ा करती थीं, उसी प्रकार निर्जन वनमें भी वे क्रीड़ा करती हैं, दोनोंमें कोई भेद नहीं है ॥ ९ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बालेव रमते सीता बालचन्द्रनिभानना । रामा रामे हृदीनात्मा विजनेऽपि वने सती ॥१०॥
तद्धतं हृदयं यस्यास्तदधीनं च जीवितम् । अयोध्या हि भवेदस्या रामहीना तथा वनम् ॥११॥
परिपृच्छति वैदेही ग्रामाश्च नगराणि च । गतिं दृष्ट्वा नदीनां च पादपान्विविधानपि ॥१२॥
रामं वा लक्ष्मणं वापि दृष्ट्वा जानाति जानकी । अयोध्या क्रोशमात्रे तु विहारमिव संश्रिता ॥१३॥
इदमेव स्मराम्यस्याः सहसैवोपजल्पितम् । कैकेयीसंश्रितं जल्पं नेदानीं प्रतिभाति माम् ॥१४॥
ध्वंसयित्वा तु तद्वाक्यं प्रमादात्पर्युपस्थितम् । ह्लादनं वचनं सूतो देव्या मधुरमब्रवीत् ॥१५॥
अध्वना वातवेगेन संभ्रमेणातपेन च । न विगच्छति वैदेह्याश्चन्द्रांशुसदृशी प्रभा ॥१६॥
सदृशं शतपत्रस्य पूर्णचन्द्रोपमप्रभम् । वदनं तद्वदान्याया वैदेह्या न विकम्पते ॥१७॥
अलक्तरसरक्ताभावलक्तरसवर्जितौ । अद्यापि चरणौ तस्याः पद्मकोशसमप्रभौ ॥१८॥
नूपुरोत्कृष्टलीलेव खेलं गच्छति भामिनी । इदानीमपि वैदेही तद्रागान्यस्तभूषणा ॥१९॥
गजं वा वीक्ष्य सिंहं वा व्याघ्रं वा वनमाश्रिता । नाहारयति संत्रासं बाहू रामस्य संश्रिता ॥२०॥
नशोच्यास्ते नचात्मा ते शोच्यो नापि जनाधिपः। इदं हि चरितं लोके प्रतिष्ठास्यति शाश्वतम् ॥२१॥

विधूय शोकं परिहृष्टमानसा महर्षियाते पथि सुव्यवस्थिताः ।
वने रता वन्यफलाशनाः पितुः शुभां प्रतिज्ञां प्रतिपालयन्ति ते ॥२२॥

पूर्ण चन्द्रके समान मुंहवाली सती सीता निर्जन वनमें रामचन्द्रके साथ बालिकाके समान खेलती है ॥ १० ॥ सीताका मन रामचन्द्रमें है, उनका जीवन रामचन्द्रके अधीन है, अतएव रामके साथ सीताके लिए वनही अयोध्या है, और रामके बिना अयोध्याही वन है ॥ ११ ॥ नदीकी धारा, गांव, नगर तथा अनेक प्रकारके वृक्षोंको देखकर जानकी उनका परिचय रामसे या लक्ष्मणसे पूछती है और पूछकर जानती है । अयोध्यासे कोश भरके विहारस्थानमें जैसी वह प्रसन्न रहा करती थी, वैसी ही प्रसन्न है ॥ १२-१३ ॥ सीताकी येही बातें मुझे स्मरण हैं, केकयीके सम्बन्धमें सहसा उनके मुंहसे निकली हुई बात इस समय स्मरण नहीं है ॥ १४ ॥ असावधानीसे सारथिके मुंहसे केकयीवाली बात निकल गयी, उन्होंने शीघ्रही वह बात उलट दी और वे कौसल्याको प्रसन्न करनेवाला मधुर वचन बोले ॥१५॥ मार्ग चलनेसे, वायुके वेगसे, हिंस्र जन्तुओंके दर्शनसे, घबड़ाहटसे तथा धूपसे सीताकी चन्द्रमाके समान प्रभा मलिन नहीं होती ॥ १६ ॥ कमलके समान और पूर्णचन्द्रके समान उदार सीताका मुँह मलिन नहीं होता ॥ १७ ॥ महावरके रसके समान लाल वर्णवाले सीताके चरण महावरके बिना भी आज भी कमलकोशके समान रक्तवर्णके हैं ॥१८॥ रामचन्द्रमें प्रेमके कारण सीताने भूषणोंका त्याग नहीं किया, अतएव पायजेबके कारण उनकी सविलास गति आज भी हंस आदिके गमनको तिरस्कृत करती है ॥ १९ ॥ वनमें निवास करती हुई सीता हाथी, सिंह या बाघको देखकर भयभीत नहीं होती, क्योंकि वह रामचन्द्रकी बाहुओंके बीचमें वर्तमान रहती है ॥ २० ॥ वे राम लक्ष्मण और सीता शोचनीय नहीं हैं, तुम और राजा भी शोचनीय नहीं हैं । यह चरित्र बहुत दिनों तक लोकमें प्रतिष्ठा पावेगा ॥ २१ ॥ वे दुःख दूर करके प्रसन्नता पूर्वक महर्षियोंके मार्गमें स्थित हुए हैं, वे वनमें प्रसन्न हैं, बनैले फल खाते हैं और पिताकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तथापि सूतेन सुयुक्तवादिना निवार्यमाणा सुतशोककर्शिता।
न चैव देवी विरराम कूजितात्प्रियेति पुत्रेति च राघवेति च ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः ६१

वनं गते धर्मरते रामे रमयतां वरे। कौसल्या रुदती चार्ता भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
यद्यपि त्रिषु लोकेषु प्रथितं ते महद्यशः। सानुक्रोशो वदान्यश्च प्रियवादी च राघवः ॥ २ ॥
कथं नरवरश्रेष्ठ पुत्रौ तौ सह सीतया। दुःखितौ सुखसंवृद्धौ कथं दुःखं सहिष्यतः ॥ ३ ॥
सा नूनं तरुणी श्यामा सुकुमारी सुखोचिता। कथमुष्णं च शीतं च मैथिली विसहिष्यते ॥ ४ ॥
भुक्त्वाशनं विशालाक्षी सूपदंशान्वितं शुभम्। वन्यं नैवारमाहारं कथं सीतोपभोक्ष्यते ॥ ५ ॥
गीतवादित्रनिर्घोषं श्रुत्वा शुभसमन्विता। कथं क्रव्यादसिंहानां शब्दं श्रोष्यत्यशोभनम् ॥ ६ ॥
महेन्द्रध्वजसंकाशः क्व नु शेते महाभुजः। भुजं परिघसंकाशमुपधाय महाबलः ॥ ७ ॥
पद्मवर्णं सुकेशान्तं पद्मनिःश्वासमुत्तमम्। कदा द्रक्ष्यामि रामस्य वदनं पुष्करेक्षणम् ॥ ८ ॥
वज्रसारमयं नूनं हृदयं मे न संशयः। अपश्यन्त्या न तं यद्धै फलतीदं सहस्रधा ॥ ९ ॥

उत्तम आज्ञाका पालन करते हैं ॥ २२ ॥ युक्तियुक्त बोलनेवाले सारथिने पुत्रशोकसे पीड़ित कौसल्याको बहुत समझाया, दुःख करनेसे मना किया, फिर भी कौसल्या, हा राम, हा पुत्र, हा राघव, कहती ही रहीं ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका साठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६० ॥

धर्मात्मा रामचन्द्रके वन जानेपर दुःखिनी कौसल्या रोती हुई अपने पतिसे इस प्रकार बोली ॥ १ ॥ यद्यपि तीनों लोकोंमें आपका यश बहुत प्रसिद्ध है, आप दयालु, दाता और प्रियवादी समझे जाते हैं ॥२॥ हे नरश्रेष्ठ, वे दोनों लड़के सीताके साथ-जो सुखसे पले हैं, कैसे वनके दुःख सहेंगे ॥ ३ ॥ वह सुख करनेके योग्य सुकुमारी श्यामा सीता वनमें गरमी सरदी कैसे बरदास्त करेगी ॥ ४ ॥ जो सीता दाल तथा उत्तम शाक तरकारीके साथ अन्न खाती थी, वह जंगली तेनीका चावल कैसे खायगी ॥ ५ ॥ जो सीता मांगलिक गान और वाद्य सुनती थी, वह सीता वनमें मांसभक्षी जन्तुओं तथा सिंहोंका भयानक शब्द कैसे सुनेगी ॥ ६ ॥ इन्द्रध्वजके समान सबको उत्सव देनेवाले महाभुज रामचन्द्र, परिघके समान अपनी भुजाको तकिया बनाकर इस समय कहां सोते होंगे ॥ ७ ॥ रामचन्द्रका मुखकमल मैं कब देखूंगी, जो मुख कमलके समान है, जिसके पास उत्तम केश है तथा जिससे कमलकी गन्धके समान निःश्वास निकलता है ॥ ८ ॥ अवश्य ही मेरा यह हृदय लोहेका बना हुआ है, इसमें सन्देह नहीं, इसीसे रामचन्द्रको न देखने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यत्त्वया करुणं कर्म व्यपोह्य मम बान्धवाः । निरस्ताः परिधावन्ति सुखार्हाः कृपणा वने ॥१०॥
यदि पञ्चदशे वर्षे राघवः पुनरेष्यति । जह्याद्राज्यं च कोशं च भरतो नोपलक्ष्यते ॥११॥
भोजयन्ति किल श्राद्धे केचित्स्वानेव बान्धवान् । ततः पश्चात्समीक्षन्ते कृतकार्या द्विजोत्तमान् ॥१२॥
तत्र ये गुणवन्तश्च विद्वांसश्च द्विजातयः । न पश्चात्तेऽभिमन्यन्ते सुधामपि सुरोपमाः ॥१३॥
ब्राह्मणेष्वपि वृत्तेषु भुक्तशेषं द्विजोत्तमाः । नाभ्युपेतुमलं प्राज्ञाः गृङ्गच्छेदमिवर्षभाः ॥१४॥
एवं कनीयसा भ्रात्रा भुक्तं राज्यं विशांपते । भ्राता ज्येष्ठो वरिष्ठश्च किमर्थं नावमन्यते ॥१५॥
न परेणाहृतं भक्ष्यं व्याघ्रः खादितुमिच्छति । एवमेव नरव्याघ्रः परलीढं न मन्यते ॥१६॥
हविराज्यं पुरोडाशः कुशा यूपाश्च खादिराः । नैतानि यातयामानि कुर्वन्ति पुनरध्वरे ॥१७॥
तथा ह्यात्तमिदं राज्यं हृतसारां सुरामिव । नाभिमन्तुमलं रामो नष्टसोममिवाध्वरम् ॥१८॥
नैवंविधमसत्कारं राघवो मर्षयिष्यति । बलवानिव शार्दूलो बालधेरभिमर्शनम् ॥१९॥
नैतस्य सहिता लोका भयं कुर्युर्महामृधे । अधर्मं त्विह धर्मात्मा लोकं धर्मेण योजयेत् ॥२०॥
नन्वसौ काञ्चनैर्बाणैर्महावीर्यो महाभुजः । युगान्त इव भूतानि सागरानपि निर्दहेत् ॥२१॥

पर भी यह हजारों टुकड़े होकर फट नहीं जाता ॥ ९॥ आपके द्वारा निकाले हुए मेरे बान्धव राम आदि नगर छोड़कर वनमें घूम रहे हैं, उन्हें सुख करना उचित था, पर वे दुःख उठा रहे हैं, यह जो आपने काम किया है सो निर्दय काम है ॥ १० ॥ यदि पन्द्रहवें वर्ष पर रामचन्द्र पुनः लौट भी आवें तौ भी राज्य और खजाना भरत छोड़ देगा, इस बातका विश्वास नहीं होता ॥ ११ ॥ मनुष्य श्राद्धमें पहले अपने बान्धवोंको ही खिलाता है, पुनः कार्य हो जानेपर अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको ढूंढ़ता है ॥ १२ ॥ उनमें जो गुणवान् तथा विद्वान ब्राह्मण होते हैं, देवताके समान पूज्य होते हैं, वे अमृत तुल्य अन्नका भी आदर नहीं करते ॥ १३ ॥ यद्यपि पहले भोजन करनेवाले भी ब्राह्मणही होते हैं, तथापि वे बुद्धिमान ब्राह्मण इसको अपना अपमान समझते हैं और स्वीकार नहीं करते, जिस प्रकार बैल अपनी सींग कटाना पसन्द नहीं करते ॥ १४ ॥ इसी प्रकार, महाराज, छोटे भाईने जिस राज्यका भोग किया है, उसी राज्यको अवस्थासे बड़ा और गुणसे श्रेष्ठ बड़ा भाई क्यों न तिरस्कार करे ॥ १५ ॥ बाघ दूसरेके द्वारा लाया हुआ भोजन खाना नहीं चाहता. इसी प्रकार नरव्याघ्र रामचन्द्र भी दूसरेका भोगा राज्य स्वीकार न करेंगे ॥१६॥ हवि, घी, पुरोडाश, कुश, यज्ञीय खम्भा, खैरकी लकड़ीकी बनी चीजें एक यज्ञमें काममें आनेसे उच्छिष्ट हो जाती हैं, अतएव इनका उपयोग दूसरे यज्ञमें नहीं होता ॥ १७ ॥ हृतसार मदिरा और उपभुक्त सोम यज्ञके समान भरतके द्वारा उपभुक्त इस राज्यको रामचन्द्र कैसे ग्रहण करेंगे ॥ १८ ॥रामचन्द्र इस प्रकारका तिरस्कार सह न सकेंगे, जिसप्रकार बलवान् सिंह अपनी पूंछका पकड़ा जाना नहीं सहता ॥ १९ ॥ सब लोग मिलकर भी महायुद्धमें रामचन्द्रको भयभीत नहीं कर सकते, अतएव रामचन्द्रने भयभीत होकर राज्य नहीं छोड़ा, किन्तु अधर्म समझकर । वे धर्मात्मा लोकको धर्मपर आरूढ़ करते हैं ॥ २० ॥ वे महाबली और महाभुज रामचन्द्र अपने सुवर्णभूषित बाणोंसे प्रलयकालमें महादेवके समान सब प्राणियों तथा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स तादृशः सिंहबलो वृषभाक्षो नरर्षभः । स्वयमेव हतः पित्रा जलजेनात्मजो यथा ॥२२॥
द्विजातिचरितो धर्मः शास्त्रे दृष्टः सनातनैः । यदि ते धर्मनिरते त्वया पुत्रे विवासिते ॥२३॥
गतिरेका पतिर्नार्या द्वितीया गतिरात्मजः । तृतीया ज्ञातयो राजंश्चतुर्थी नैव विद्यते ॥२४॥
तत्र त्वं मम नैवासि रामश्च वनमाहितः । न वनं गन्तुमिच्छामि सर्वथा हा हता त्वया ॥२५॥
हतं त्वया राष्ट्रमिदं सराज्यं हताः स्म सर्वाः सह मन्त्रिभिश्च ।
हता सपुत्रास्मि हताश्च पौराः सुतश्च भार्या च तव प्रहृष्टौ ॥२६॥
इमां गिरं दारुणशब्दसंहितां निशम्य रामेति मुमोह दुःखितः ।
ततः स शोकं प्रविवेश पार्थिवः स्वदुष्कृतं चापि पुनस्तथास्मरत् ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२

एवं तु क्रुद्धया राजा राममात्रा सशोकया । श्रावितः परुषं वाक्यं चिन्तयामास दुःखितः ॥ १ ॥
चिन्तयित्वा स च नृपो मोहव्याकुलितेन्द्रियः । अथ दीर्घेण कालेन संज्ञामाप परंतपः ॥ २ ॥
स संज्ञामुपलभ्यैव दीर्घमुष्णं च निःश्वसन् । कौसल्यां पार्श्वतो दृष्ट्वा ततश्चिन्तामुपागमत् ॥ ३ ॥

समुद्रोंको भी जला सकते हैं ॥ २१ ॥ वे सिंहके समान बलवान्, वृषभके समान कन्धावाले स्वयं अपने पिताके द्वारा राज्यसे निर्वासित किये गये हैं, जिस प्रकार मछलियाँ अपने बच्चेको खा जाती है ॥२२॥ सनातन ऋषियोंने द्विजातियोंके जो धर्म, शास्त्रमें बतलाये हैं, उन्हीं धर्मोंके पालन करनेवाले मेरे पुत्रको आपने वनवास दिया है ॥ २३ ॥पति स्त्रियोंका प्रधान रक्षक है, दूसरा रक्षक पुत्र है, और तीसरा रक्षक बान्धव हैं, चौथा कोई नहीं है जो स्त्रियोंका रक्षक हो ॥२४॥ उन तीनोंमें आप तो मेरे हैं ही नहीं, पुत्र वनमें है, और मैं वन जाना चाहती नहीं, अतएव आपने मेरा सर्वथा सर्वनाश कर दिया ॥ २५ ॥ राज्यका बहिरंग और अन्तरंग दोनोंका आपने नाश किया, आपने मन्त्रियोंके साथ सब प्रजाओंका नाश किया, पुत्रके साथ मेरा तथा पुरवासियोंका भी आपने नाश किया, हाँ आपके पुत्र भरत और स्त्री केकयी प्रसन्न हैं । अर्थात् इन दोनोंको प्रसन्न करनेके लिये आपने इतने अनर्थ किये ॥ २६ ॥ कठोर शब्दवाली इस वाणीको सुनकर दुःखित राजा "राम" कहकर मूर्च्छित हो गये और अपने पापोंको स्मरण करते हुए वे शोकमग्न हो गये ॥ २७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एकसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६१ ॥

शोकयुत राममाताने क्रोध करके राजा दसरथको ऐसे कठोर वचन सुनाये, राजा दुःखित होकर चिन्ता करने लगे ॥ १ ॥ चिन्ता करते-करते राजा मूर्च्छित हो गये और बड़ी देरके बाद वे होशमें आये ॥ २ ॥ होश आने पर उन्होंने लम्बी गरम साँस ली और अपने पास कौसल्या-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्य चिन्तयमानस्य प्रत्यभात्कर्म दुष्कृतम् । यदनेन कृतं पूर्वमज्ञानाच्छब्दवेधिना ॥ ४ ॥
अमनास्तेन शोकेन रामशोकेन च प्रभुः । द्राभ्यामपि महाराजः शोकाभ्यामभितप्यते ॥ ५ ॥
दह्यमानस्तु शोकाभ्यां कौसल्यामाह दुःखितः । वेपमानोऽञ्जलिं कृत्वा प्रसादार्थमवाङ्मुखः॥ ६ ॥
प्रसादये त्वां कौसल्ये रचितोऽयं मयाञ्जलिः । वत्सला चानृशंसा च त्वं हि नित्यं परेष्वपि ॥ ७ ॥
भर्ता तु खलु नारीणां गुणवान्निर्गुणोऽपि वा । धर्मं विमृशमानानां प्रत्यक्षं देवि दैवतम् ॥ ८ ॥
सा त्वं धर्मपरा नित्यं दृष्टलोकपरावरा । नार्हसे विप्रियं वक्तुं दुःखितापि सुदुःखितम् ॥ ९ ॥
तद्वाक्यं करुणं राज्ञःश्रुत्वा दीनस्य भाषितम् । कौसल्या व्यसृजद्बाष्पं प्रणालीव नवोदकम् ॥१०॥
सा मूर्ध्नि बद्धवा रुदती राज्ञः पद्ममिवाञ्जलिम्। संभ्रमादब्रवीन्त्रस्ता त्वरमाणाक्षरं वचः ॥११॥
प्रसीद शिरसा याचे भूमौ निपतिताऽस्मि ते । याचितास्मि हता देव क्षन्तव्याहं नहि त्वया ॥१२॥
नैषा हि सा स्त्री भवति श्लाघनीयेन धीमता । उभयोर्लोकयोर्लोके पत्या या संप्रसाद्यते ॥१३॥
जानामि धर्मं धर्मज्ञ त्वां जाने सत्यवादिनम् । पुत्रशोकार्तया तत्तु मया किमपि भाषितम् ॥१४॥
शोको नाशयते धैर्यं शोको नाशयते श्रुतम् । शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमो रिपुः॥१५॥
शक्यमापतितः सोढुं प्रहारो रिपुहस्ततः । सोढुमापतितः शोकः सुसूक्ष्मोऽपि न शक्यते॥१६॥

को खड़ा देखकर वे पुनः विचार करने लगे ॥ ३ ॥ विचार करते-करते उन्हें अपने पहलेके किये हुए एक पापका स्मरण हुआ । शब्दवेधी बाण चलानेवाले राजाने अज्ञानसे वह पाप किया था ॥ ४ ॥ उस अपने पुराने पापके शोकसे तथा रामचन्द्रके शोकसे राजा उदास होगये । इन दोनों शोकोंसे राजा मनही मन जलने लगे ॥ ५ ॥ दोनों शोकोंसे जलते हुए दुःखित राजा काँपते हुए हाथ जोड़कर तथा सिर नीचा करके कौसल्याको प्रसन्न करनेके लिए उनसे बोले ॥ ६ ॥ कौसल्ये, तुम शत्रुओंपर भी दया करती हो, तुम्हारा दयालु स्वभाव है, मैं हाथ जोड़ता हूँ, तुम प्रसन्न हो जाओ ॥ ७ ॥ देवि, धर्मका विचार रखनेवाली स्त्रियोंके लिए गुणवान् हो या निर्गुण पति प्रत्यक्ष देवता है ॥ ८ ॥ तुम सदा धर्माचरण करनेवाली हो, भलाई-बुराई जानती हो, उत्कर्ष अपकर्ष जानती हो, तुम्हें अप्रिय बातें नहीं बोलनी चाहिए, तुम दुःखित हो तो मैं तुमसे अधिक दुःखित हूँ ॥ ९ ॥ दुःखी राजाके दयनीय वचन सुनकर कौसल्या अश्रुत्याग करने लगी, जैसे नालीसे नया जल बहता हो ॥ १० ॥ कौसल्याने राजाकी अंजलि पकड़ ली और कमलके समान उसे अपने मस्तकपर रखकर डरी हुई वह घबड़ाहटके साथ शीघ्रतापूर्वक वचन बोली ॥ ११ ॥ आप प्रसन्न हो, मैं भूमिमें सिर रखकर प्रार्थना करती हूँ । देव, मैं पुत्रवियोगसे पीड़ित हूँ, आप मुझे क्षमा करें, यही मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ ॥ १२ ॥ श्लाघनीय प्रसादन करने योग्य पति जिस स्त्रीका प्रसादन करे उस स्त्रीका यह लोक तथा परलोक दोनोंही नष्ट हो जाते हैं ॥ १३ ॥ धर्मज्ञ, मैं स्त्रियोंका धर्म जानती हूँ और आप सत्यवादी हैं यह भी जानती हूँ, मैंने जो कुछ कहा है वह पुत्रशोकसे पीड़ित होकर कहा है ॥ १४ ॥ शोकसे धीरता नष्ट हो जाती है, शोकसे ज्ञान नष्ट हो जाता है, शोक सभीका नाश कर देता है, शोकके समान शत्रु दूसरा नहीं है ॥ १५ ॥ शत्रुका प्रहार यदि आ पड़े तो मनुष्य सह सकता है, पर थोड़ा भी शोक नहीं सहा जाता ॥ १६ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वनवासाय रामस्य पञ्चरात्रोऽत्र गण्यते । यः शोकहतहर्षायाः पञ्चवर्षोपमो मम ॥१७॥
तं हि चिन्तयमानायाः शोकोऽयं हृदि वर्धते । नदीनामिव वेगेन समुद्रसलिलं महत् ॥१८॥
एवं हि कथयन्त्यास्तु कौसल्यायाः शुभं वचः । मन्दरश्मिरभूत्सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत ॥१९॥
अथ प्रह्लादितो वाक्यैर्देव्या कौसल्यया नृपः । शोकेन च समाक्रान्तो निद्राया वशमेयिवान् ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः ॥६२॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३

प्रतिबुद्धो मुहूर्तेन शोकोपहतचेतनः । अथ राजा दशरथः स चिन्तामभ्यपद्यत ॥ १ ॥
रामलक्ष्मणयोश्चैव विवासाद्रासवोपमम् । आपेदे उपसर्गस्तं तमः सूर्यमिवासुरम् ॥ २ ॥
सभार्ये हि गते रामे कौसल्यां कोसलेश्वरः । विवक्षुरसितापाङ्गीं स्मृत्वा दुष्कृतमात्मनः ॥ ३ ॥
स राजा रजनीं षष्ठीं रामे प्रव्राजिते वनम् । अर्धरात्रे दशरथः सोऽस्मरद् दुष्कृतं कृतम् ॥ ४ ॥
स राजा पुत्रशोकार्तः स्मृत्वा दुष्कृतमात्मनः । कौसल्यां पुत्रशोकार्तामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥
यदाचरति कल्याणि शुभं वा यदि वाशुभम् । तदेव लभते भद्रे कर्ता कर्मजमात्मनः ॥ ६ ॥
गुरुलाघवमर्थानामारम्भे कर्मणां फलम् । दोषं वा यो न जानाति स बाल इति होच्यते ॥ ७ ॥

रामचन्द्रको वनवास गये आज पाँचवी रात बीत रही है, मेरे लिए जिसके समस्त आनन्द शोकसे नष्ट होगये हैं—ये पाँचवर्षके समान हैं ॥ १७ ॥ रामचन्द्रकी चिन्ता करनेके कारण मेरे हृदय-में शोक बढ़ता है, जिस प्रकार नदियोंके वेगसे समुद्र बढ़ता है ॥ १८ ॥ कौसल्या इस प्रकार सुन्दर वचन बोल रही थी, उसी समय सूर्यकी किरण धीमी पड़ गयीं, रात हो गयी ॥ १९ ॥ देवी कौसल्याके वचनोंसे राजा प्रसन्न हुए और शोकसे दुःखी । उसी समय राजाको नींद आयी ॥२०॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका बासठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६२ ॥

एक मुहूर्तके बाद राजा दसरथ जागे, शोकसे उनका ज्ञान नष्ट हो गया था, पुनः राजा दसरथ चिन्तित होगये ॥ १ ॥ राम और लक्ष्मणको वनवास देनेसे राजाको शोकने आ घेरा था, जिस प्रकार राहु-सम्बन्धी अन्धकार सूर्यको घेर लेता है ॥ २ ॥ अपनी स्त्रीके साथ रामचन्द्रके वनमें चले जाने पर कोसलेश्वर राजा दसरथ अपने पापोंको स्मरण करके कौसल्यासे कहनेके लिए तयार हुए ॥ ३ ॥ रामचन्द्रके वन चले जाने पर छठवीं रातको आधी रातमें राजाने अपने पूर्वकृत पापोंको स्मरण किया ॥ ४ ॥ पुत्रशोकसे पीड़ित राजा दसरथने अपना पूर्वपाप स्मरण किया और पुत्रशोकसे पीड़ित कौसल्यासे वे इस तरह बोले ॥ ५ ॥ कल्याणि, मनुष्य उत्तम या निन्दित जो कर्म करता है, उसके उसी कर्मका फल सुख या दुःख कर्ताको मिलता है ॥ ६ ॥ जो ऐहिक तथा पारलौकिक कर्मोंके आरम्भके समय उनके फलकी गुरुता और लघुताका विचार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

काश्चिदाम्रवणं छित्त्वा पलाशाँश्च निषिञ्चति । पुष्पं दृष्ट्वा फले गृध्नुः स शोचति फलागमे ॥ ८ ॥
अविज्ञाय फलं यो हि कर्म त्वेवानुधावति । स शोचेत्फलवेलायां यथा किंशुकसेवकः ॥ ९ ॥
सोऽहमाम्रवणं छित्त्वा पलाशाँश्च न्यषेचयम् । रामं फलागमे त्यक्त्वा पश्चाच्छोचामि दुर्मतिः॥१०॥
लब्धशब्देन कौसल्ये कुमारेण धनुष्मता । कुमारः शब्दवेधीति मया पापमिदं कृतम् ॥११॥
तदिदं मेऽनुसंप्राप्तं देवि दुःखं स्वयंकृतम् । संमोहादिह बालेन यथा स्याद्भक्षितं विषम् ॥१२॥
यथान्यः पुरुषः काश्चित्पलाशैर्मोहितो भवेत् । एवं मयाप्यविज्ञातं शब्दवेध्यमिदं फलम् ॥१३॥
देव्यनूढा त्वमभवो युवराजो भवाम्यहम् । ततः प्राप्तोऽनुप्राप्ता मम कामविवर्धिनी ॥१४॥
अपास्य हि रसान्भौमांस्तप्त्वा च जगदंशुभिः । परेताचरितां भीमां रविराचरते दिशम् ॥१५॥
उष्णमन्तर्दधे सद्यः स्निग्धा ददृशिरे घनाः । ततो जहृषिरे सर्वे भेकसारङ्गबर्हिणः ॥१६॥
क्लिन्नपक्षोत्तराः स्नाताः कृच्छ्रादिव पतत्रिणः । दृष्टिवातावधूताग्रान्पादपानभिपेदिरे ॥१७॥
पातितेनाम्भसा छन्नः पतमानेन चासकृत् । आबभौ मत्तसारङ्गस्तोयराशिरिवाचलः ॥१८॥
पाण्डुरारुणवर्णानि स्रोतांसि विमलान्यपि । सुसुवुर्गैरिधातुभ्यः सभस्मानि भुजंगवत् ॥१९॥
तस्मिन्नतिसुखे काले धनुष्मानिषुमान्रथी । व्यायामकृतसंकल्पः सरयूमन्वगां नदीम् ॥२०॥

नहीं करते, जो उनके गुण-दोषोंका विचार नहीं करते, वे बालक कहे जाते हैं ॥ ७ ॥ कई लोग आमके वृक्षोंको काटकर पलाशके वृक्षोंको सींचते हैं, वे लोभी पलाशके फूलोंको देखकर उसके उत्तम फल होनेकी आशा करते हैं, पर फलके समयमें उन्हें हताश होना पड़ता है ॥ ८ ॥ जो लोग फलका बिना विचार कियेही केवल कर्म करते जाते हैं, उन्हें फलके समयमें हताश होना पड़ता है, जैसे पलास वृक्षको सींचनेवाले हताश होते हैं ॥ ९ ॥ मैंने भी आमके वृक्षको काटकर पलास सींचा है। मैंने भी फलके समयमें रामका त्याग किया है, अब मूर्ख मैं सोच रहा हूँ ॥१०॥ "कुमार शब्दवेधी हैं" इस प्रसिद्धि पानेके कारण बाल्यावस्थामें धनुष धारण करनेवाले मैंने यह पाप किया ॥ ११ ॥ देवि, वही मेरा स्वयं किया हुआ दुःख आज मुझे मिल रहा है, जिस प्रकार अज्ञानसे बालक विष खाकर दुःख भोगता है ॥ १२ ॥ जिस प्रकार कोई पुरुष पलासके फूलोंसे मोहित होकर अनिष्ट फल पाता है, उसी प्रकार बिना जानेही शब्दवेधी होनेका यह फल मैं पा रहा हूँ ॥ १३ ॥ देवि, उस समय तुम्हारा ब्याह नहीं हुआ था, मैं भी युवराजही था उस समय काम बढ़ानेवाली वर्षाऋतु आयी ॥ १४ ॥ पृथिवीके रसको खींचकर और किरणोंसे जगत्को तपाकर, प्रेत-सेवित भयानक दक्षिण दिशामें सूर्य गये थे ॥१५॥ गरमी दूर हुई, आँखोंको प्यारे मेघ दिखायी पड़े, मेढ़क चातक और मोर प्रसन्न हुए ॥ १६ ॥ स्नान किये हुए पक्षी जिनके पंखका उपरी हिस्सा भींग गया है वे बड़े कष्टसे, वृष्टि और हवासे जिनका सिर काँप गया है उन वृक्षोंपर गये ॥ १७ ॥ गिरे हुए और गिरते हुए जलसे भींगा हुआ मतवाला हाथी निश्चल समुद्रके समान मालूम पड़ता था ॥ १८ ॥ विमल सोते भी पर्वतकी धातुओंके सम्पर्कसे कहीं पीले, कहीं लाल और कहीं भस्मके रंगके साँपके समान टेढ़े-मेढ़े चलने लगे ॥ १९ ॥ उस अत्यन्त रमणीय समयमें धनुष-बाण लेकर तथा रथपर व्यायाम करनेकी इच्छासे मैं सरयू नदीके तीर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निपाने महिषं रात्रौ गजं वाभ्यागतं मृगम् । अन्यद्वा श्वापदं किंचिज्जिघांसुरजितेन्द्रियः ॥२१॥
अथान्धकारे त्वश्रौषं जले कुम्भस्य पूर्यतः । अचक्षुर्विषये घोषं वारणस्येव नर्दतः ॥२२॥
ततोऽहं शरमुद्धृत्य दीप्तमाशीविषोपमम् । शब्दं प्रति गजप्रेप्सुरभिलक्ष्यमपातयम् ॥२३॥
अमुञ्चं निशितं बाणमहमाशीविषोपमम् । तत्र वागुषसि व्यक्ता प्रादुरासद्विनौकसः ॥२४॥
हाहेति परतस्तोये बाणादभ्यथितमर्मणः । तस्मिन्निपतिते भूमौ वागभूत्तत्र मानुषी ॥२५॥
कथमस्मद्विधे शस्त्रं निपतेच्च तपस्विनि । प्रविविक्तां नदीं रात्रावुदाहारोऽहमागतः ॥२६॥
इषुणाभिहतः केन कस्य वापकृतं मया । ऋषेर्हि न्यस्तदण्डस्य वने वन्येन जीवतः ॥२७॥
कथं नु शस्त्रेण वधो मद्विधस्य विधीयते । जटाभारधरस्यैव वल्कलाजिनवाससः ॥२८॥
को वधेन ममार्थी स्यात्किं वास्यापकृतं मया । एवं निष्फलमारब्धं केवलानर्थसंहितम् ॥२९॥
न क्वचित्साधु मन्येत यथैव गुरुतल्पगम् । नेमं तथानुशोचामि जीवितक्षयमात्मनः ॥३०॥
मातरं पितरं चोभावनुशोचामि मद्वधे । तदेतन्मिथुनं वृद्धं चिरकालभृतं मया ॥३१॥
मयि पञ्चत्वमापन्ने कां वृत्तिं वर्तयिष्यति । वृद्धौ च मातापितरावहं चैकेषुणा हतः ॥३२॥
केन स्म निहताः सर्वे सुबालेनाकृतात्मना । तां गिरं करुणं श्रुत्वा मम धर्मानुकाङ्क्षिणः ॥३३॥

गया ॥ २० ॥ नदीके तीरपर रातमें जल पीनेके लिए आये हुए भैंसे, हाथी, हरिण अथवा अन्य किसी जङ्गली जानवरको मारने लिए मैं सरयू तीरपर गया, उस समय मेरी इन्द्रियाँ मेरे अधीन न थीं ॥ २१ ॥ वहां मैंने अन्धकारमें घड़ा भरनेका शब्द सुना, वह शब्द आँखोंकी ओटमें हुआ, वह शब्द हाथीके गर्जनके समान मालूम पड़ा ॥ २२ ॥ तदनन्तर मैंने तीखा बाण निकालकर, जो विषैले सर्पके समान था, हाथी पानेकी इच्छासे शब्दको लक्ष्य करके चला दिया ॥ २३ ॥ सर्पके समान भयानक अपना तीखा बाण मैंने जहाँ छोड़ा था, वहाँसे स्पष्ट किसी तपस्वीकी बोलीके समान शब्द सुनायी पड़ा ॥ २४ ॥ बाण लगनेसे मर्मस्थानमें पीड़ा होनेके कारण जलमें गिरते हुए उस तपस्वीका "हाहा" शब्द सुन पड़ा, जब वह जमीनमें गिर पड़ा, तब स्पष्ट मनुष्यका शब्द सुन पड़ा ॥ २५ ॥ "हमारे समान तपस्वीपर यह शस्त्र क्यों गिरा ? निर्जन नदी तीरपर रात्रिमें जल लानेके लिए मैं यहाँ आया था ॥ २६ ॥ किसने हमें बाणसे मारा, मैंने किसका अपकार किया है ? मैं ऋषि हूँ, दूसरोंको पीड़ा देना मैंने छोड़ दिया है, वनमें उत्पन्न होनेवाली चीजोंसे मेरी जीविका चलती है ॥ २७ ॥ मेरे समान ऋषिका शस्त्रसे कैसे वध किया गया, मैं जटा धारण करनेवाला वल्कल और अजिन पहननेवाला हूँ ॥ २८ ॥ मेरे वधसे किसीको क्या लाभ होगा, मैंने किसीकी कौनसी बुराई की है ? करनेवालेने यह निष्फल काम किया है, इससे उसकी हानि ही होगी ॥ २९ ॥ जिस प्रकार गुरुस्त्रीगामीको कोई अच्छा नहीं समझता, उसी प्रकार अनर्थक ऋषिहत्या करनेवाले इसको भी कोई अच्छा नहीं समझेगा। मैं अपनी मृत्युकी चिन्ता नहीं करता ॥ ३० ॥ किन्तु अपनी मृत्युसे माता-पिताके लिए शोक करता हूँ। इन दोनों वृद्धोंका बहुत दिनोंसे मैंने पालन किया है ॥ ३१ ॥ मैं तो यहाँ एक बाणसे मारा गया, मेरे मर जाने पर वे किस प्रकार जीयेंगे, कैसे खाये पीयेंगे; क्योंकि वे दोनों वृद्ध हैं ॥ ३२ ॥ किस अजितेन्द्रिय मूर्ख-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कराभ्यां सशरं चापं व्यथितस्यापतद्भुवि । तस्याहं करुणं श्रुत्वा ऋषेर्विलपतो निशि ॥३४॥
संभ्रान्तः शोकवेगेन भृशमासं विचेतनः । तं देशमहमागम्य दीनसत्त्वः सुदुर्मनाः ॥३५॥
अपश्यमिषुणा तीव्रे सरय्वास्तापसं हतम् । अवकीर्णजटाभारं प्रविद्धकलशोदकम् ॥३६॥
पांसुशोणितदिग्धाङ्गं शयानं शल्यवेधितम् । स मामुद्वीक्ष्य नेत्राभ्यां त्रस्तमस्वस्थचेतनम् ॥३७॥
इत्युवाच वचः क्रूरं दिधक्षन्निव तेजसा । किं तवापकृतं राजन्वने निवसता मया ॥३८॥
जिहीर्षुरम्भो गुर्वर्थं यदहं ताडितस्त्वया । एकेन खलु बाणेन मर्मण्यभिहते मयि ॥३९॥
द्वावन्धौ निहतौ वृद्धौ माता जनयिता च मे । तौ नूनं दुर्बलावन्धौ मत्प्रतीक्षौ पिपासितौ ॥४०॥
चिरमाशां कृतां कष्टां तृष्णां संधारयिष्यतः । न नूनं तपसो वास्तिफलयोगः श्रुतस्य वा ॥४१॥
पिता यन्मां न जानीते शयानं पतितं भुवि । जानन्नपि च किं कुर्यादशक्तश्चापरिक्रमः ॥४२॥
भिद्यमानमिवाशक्तस्त्रातुमन्यो नगो नगम् । पितुस्त्वमेव मे गत्वा शीघ्रमाचक्ष्व राघव ॥४३॥
न त्वामनुदहेत्क्रुद्धो वनमग्निरिवैधितः । इयमेकपदी राजन्यतो मे पितुराश्रमः ॥४४॥
तं प्रसाद्य गत्वा त्वं न त्वा संकुपितः शपेत् । विशल्यं कुरु मां राजन्मर्म मे निशितः शरः ॥४५॥

ने हमें मारा है ?" धर्ममें अनुराग रखनेवाले मेरे हाथसे ये दयनीय शब्द सुनकर ॥३३॥ बाण युक्त धनुष जमीनपर छूटकर गिर पड़ा । उस रातको विलाप करनेवाले ऋषिके उन दयनीय शब्दोंको सुनकर मैं बहुत व्यथित हुआ ॥ ३४ ॥ मैं घबड़ा गया, शोकसे मैं अचेत होने लगा । क्षीणबल और उदास होकर मैं उस स्थानपर आया, जहाँ ऋषि पड़े हुए थे ॥ ३५ ॥ सरयूके तीरपर बाणसे मारे गये ऋषिको मैंने देखा, उनकी जटा बिखर गयी थी, और घड़ेका जल गिर गया था ॥ ३६ ॥ धूल और खूनसे वे लिपटे हुए थे, बाणसे बिध जानेके कारण पड़े हुए थे। यह देखकर मैं डर गया, मेरे होश उड़ गये ! ऋषि मुझे आँखोंसे देखकर ॥ ३७ ॥ और अपने तेजसे जलाते हुए ये कठोर वचन बोले । राजन्, वनमें रहनेवाले मैंने तुम्हारा क्या अपकार किया है ॥ ३८ ॥ मैं अपने पिता माताके लिए जल लेने आया था और आपने मुझे मारा । तुमने मर्मस्थानमें मुझे एक बाण मारा ॥ ३९ ॥ मुझे मारकर तुमने मेरे अन्धे पिता और माताको भी मार डाला । वे मेरे माता पिता दुबले और अन्धे हैं और इस समय प्यासे मेरी प्रतीक्षा करते होंगे ॥ ४० ॥ जल लेकर मेरे लौट आनेकी आशासे वे बड़ी देर तक प्यास रोकेंगे, मेरे पिता कोई तपस्वी नहीं हैं और ज्ञानी भी नहीं हैं ॥ ४१ ॥ अतएव वे यह नहीं जानते कि मैं यहाँ जमीनमें पड़ा सो रहा हूँ, और जानकर भी वे क्या करेंगे, वे अशक्त हैं, चलने फिरनेकी उनमें शक्ति नहीं है ॥ ४२ ॥ जिस प्रकार गिरते हुए वृक्षकी दूसरा वृक्ष रक्षा नहीं कर सकता, वैसेही वे भी मेरी रक्षा नहीं कर सकते । अतएव दसरथ, तुम्हीं मेरे पितासे शीघ्र जाकर यह वृत्तान्त कहो ॥ ४३ ॥ प्रज्वलित अग्नि जिस प्रकार वनको जला देती है, उस प्रकार क्रोध करके मेरे पिता तुमको जला नहीं डालेंगे । राजन्, यहांसे इस पगदंडीपर मेरे पिताका आश्रम है ॥ ४४ ॥ तुम जाकर उनको प्रसन्न करो, जिससे वे तुमको शाप न दें । मेरे शरीरसे बाण निकाल लो, राजन्, यह तीखा बाण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रुणद्धि मृदु सोत्सेधं तीरमम्बुरयो यथा । सशल्यःक्लिश्यते प्राणैर्विशल्यो विनशिष्यति ॥४६॥
इति मामविशच्चिन्ता तस्य शल्यापकर्षणे । दुःखितस्य च दीनस्य मम शोकातुरस्य च ॥४७॥
लक्षयामास स ऋषिश्चिन्तां मुनिसुतस्तदा । ताम्यमानं स मां कृच्छ्रादुवाच परमार्थवित् ॥४८॥
सीदमानो निवृत्ताङ्गोऽचेष्टमानो गतः क्षयम् । संस्तभ्यशोकं धैर्येण स्थिरचित्तो भवाम्यहम् ॥४९॥
ब्रह्महत्याकृतं तापं हृदयादपनीयताम् । न द्विजातिरहं राजन्मा भूत्ते मनसो व्यथा ॥५०॥
शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप । इतीव वदतः कृच्छ्राद्बाणाभिहतमर्मणः ॥५१॥
विघूर्णतो विचेष्टस्य वेपमानस्य भूतले । तस्य त्वाताम्यमानस्य तं बाणमहमुद्धरम् ।
स मामुद्वीक्ष्य संत्रस्तो जहौ प्राणाँस्तपोधनः ॥५२॥
जलार्द्रगात्रं तु विलप्य कृच्छ्रं मर्मव्रणं संततमुच्छ्वसन्तम् ।
ततः सरय्वां तमहं शयानं समीक्ष्य भद्रे सुभृशं विषण्णः ॥५३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

मेरे मर्मको पीड़ित कर रहा है, जिस प्रकार ऊँचे नदीतीरको जलका वेग । मैंने सोचा, बाण रहनेसे इन्हें पीड़ा होती है, यदि बाण निकालता हूँ तो इनके प्राण भी निकल जायंगे ॥ ४५-४६ ॥ उनके बाण निकालनेमें मुझे इस प्रकारकी चिन्ता होने लगी, मैं उस समय दुःखी असहाय शोकातुर हो गया था ॥ ४७ ॥ मेरी चिन्ताका कारण वे मुनिपुत्र ऋषि जान गये । यथार्थ बात जाननेवाले ऋषि दुःखसे पीड़ित मुझसे बड़े कष्टसे बोले ॥ ४८ ॥ ऋषिको बड़ा कष्ट हो रहा था, उनके अंग शिथिल हो रहे थे, हाथ पैर नहीं उठते थे । धैर्यसे अपने शोकको रोककर वे बोले—अब मैं अपने चित्तको स्थिर कर रहा हूँ ॥ ४९ ॥ राजन्, तुमपर ब्रह्महत्याका पाप लगा है, यह सन्देह तुम अपने मनसे निकाल दो, क्योंकि मैं द्विजाति नहीं हूँ, अतएव इस कारण होनेवाले भयको तुम अपने मनसे निकाल दो ॥ ५० ॥ नराधिप, मैं शूद्राके गर्भसे वैश्यके द्वारा उत्पन्न हुआ हूँ । बाणसे उनका मर्म विध गया था, बड़े कष्टसे वे इतना कह सके ॥ ५१ ॥ अनन्तर वे कभी घूमने लगे, कभी निश्चेष्ट होगये, कभी पृथिवीमें लोटने लगे, इस प्रकार दुःखी मुनिके शरीरसे मैंने बाण निकाल लिया । मुझको देखकर ऋषि डरे और उनके प्राण निकल गये ॥ ५२ ॥ सरयूमें गिरनेके कारण उनका शरीर जलसे भींग गया था, मर्मस्थानमें आघात लगनेसे वे बड़े कष्टसे विलाप कर रहे थे, बीच-बीचमें साँस ले रहे थे । इस अवस्थामें मुनिपुत्रको देखकर मुझे बड़ा कष्ट हुआ ॥ ५३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका तिरसठवाँ सर्ग समाप्त ॥६३॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४

वधमप्रतिरूपं तु महर्षेस्तस्य राघवः । विलपन्नेव धर्मात्मा कौसल्यामिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
तदज्ञानान्महत्पापं कृत्वा संकुलितेन्द्रियः । एकस्त्वचिन्तयं बुद्ध्या कथं नु सुकृतं भवेत् ॥ २ ॥
ततस्तं घटमादाय पूर्णं परमवारिणा । आश्रमं तमहं प्राप्य यथाख्यातपथं गतः ॥ ३ ॥
तत्राहं दुर्बलावन्धौ वृद्धावपरिणायकौ । अपश्यं तस्य पितरौ लूनपक्षाविव द्विजौ ॥ ४ ॥
तन्निमित्ताभिरासीनौ कथाभिरपरिश्रमौ । तामाशां तत्कृते हीनावुपासीनावनाथवत् ॥ ५ ॥
शोकोपहतचित्तश्च भयसंत्रस्तचेतनः । तच्चाश्रमपदं गत्वा भूयः शोकमहं गतः ॥ ६ ॥
पदशब्दं तु मे श्रुत्वा मुनिर्वाक्यमभाषत । किं चिरायसि मे पुत्र पानीयं क्षिप्रमानय ॥ ७ ॥
यन्निमित्तमिदं तात सलिले क्रीडितं त्वया । उत्कण्ठिता ते मातेयं प्रविश क्षिप्रमाश्रमम् ॥ ८ ॥
यदव्यलीकं कृतं पुत्र मात्रा ते यदि वा मया । न तन्मनसि कर्तव्यं त्वया तात तपस्विना ॥ ९ ॥
त्वं गतिस्त्वगतीनां च चक्षुस्त्वं हीनचक्षुषाम् । समासक्तास्त्वयि प्राणाःकथं त्वं नाभिभाषसे ॥१०॥
मुनिमव्यक्तया वाचा तमहं सज्जमानया । हीनव्यञ्जनया प्रेक्ष्य भीतचित्त इवाब्रुवम् ॥११॥
मनसः कर्म चेष्टाभिराभिसंस्तभ्य वाग्बलम् । आचचक्षे त्वहं तस्मै पुत्रव्यसनजं भयम् ॥१२॥
क्षत्रियोऽहं दशरथो नाहं पुत्रो महात्मनः । सज्जनावमतं दुःखमिदं प्राप्तं स्वकर्मजम् ॥१३॥

धर्मात्मा राजा दसरथने मुनिका ऐसा अयोग्य वध स्मरण किया, पुनः रामचन्द्रका स्मरण कर विलाप करते हुए वे कौसल्यासे इस प्रकार बोले ॥ १ ॥ अज्ञानसे मैंने वैसा पाप किया जिससे चित्त व्याकुल हो गया, वहाँ अकेला ही मैंने उपाय सोचा जिससे कुछ पुण्य हो, मुनि-कुमारके वधका पाप दूर हो सरयूके स्वच्छ जलसे भरा घड़ा लेकर मैं मुनि-कुमारके बतलाये रास्तेसे उस आश्रमपर गया ॥ ३ ॥ वहाँ मैंने उनके पिता माताको देखा, वे दुबले, अन्धे और बूढ़े थे, उनका रक्षक दूसरा कोई नहीं था। वे कटे पाँखवाले पक्षियोंके समान असहाय थे ॥ ४ ॥ पुत्र-सम्बन्धी बातें करनेसे वे प्रसन्न मालूम पड़ते थे, पुत्रके आनेकी आशासे वे बैठे थे, पर मैंने उनकी वह आशा नष्ट करदी थी और वे अनाथसे हो गये थे ॥ ५ ॥ मेरा चित्त पहलेहीसे शोकके कारण व्याकुल था, मैं डरा हुआ था, मुनिके उस आश्रममें जानेसे मेरा शोक और बढ़ गया ॥ ६ ॥ मेरे पैरोंकी आहट पाकर मुनिने कहा, बेटा क्यों देर लगा रहे हो शीघ्र जल ले आओ ॥ ७ ॥ जिस जलक्रीडा करनेके कारण तुमने इतना विलम्ब लगाया, उससे तुम्हारी माता तुम्हारे अशुभकी आशङ्कासे उत्कण्ठित हो गयी है, तुम शीघ्र आश्रममें आओ ॥८॥ मैंने या तुम्हारी माताने यदि कोई अपराध किया हो तो तुम उस अपराधको मनमें न रखो, भूल जाओ, क्योंकि तुम तो तपस्वी हो ॥ ९ ॥ हम गतिहीनोंकी तुम्हीं गति हो, हम अन्धोंकी तुम्हीं आंख हो, हम लोगोंके प्राण तुम्हींमें लगे हुए हैं, तुम बोलते क्यों नहीं ॥ १० ॥ मुनिको देखकर मैं भयभीत हो गया, गद्गद व्यञ्जनोंसे रहित अव्यक्त स्वरमें मैं बोला ॥ ११ ॥ मैंने मानसिक भयको बाहरी चेष्टाओंसे छिपाकर और बोलीको साफ करके पुत्रका मृत्यु-संवाद उन मुनिको सुनाया ॥ १२ ॥ मैं दसरथ नामका क्षत्रिय हूँ, महात्मन्, आपका पुत्र नहीं । अपने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भगवँश्चापहस्तोऽहं सरयूतीरमागतः । जिघांसुः श्वापदं किंचिन्निपाने वागतं गजम् ॥१४॥
ततः श्रुतो मया शब्दो जले कुम्भस्य पूर्यतः । द्विपोऽयमिति मत्वाहं बाणेनाभिहतो मया ॥१५॥
गत्वा तस्यास्ततस्तीरमपश्यमिषुणा हृदि । विनिर्भिन्नं गतप्राणं शयानं भुवि तापसम् ॥१६॥
ततस्तस्यैव वचनादुपेत्य परितप्यतः । स मया सहसा बाण उद्धृतो मर्मतस्तदा ॥१७॥
स चोद्धृतेन बाणेन सहसा स्वर्गमास्थितः । भगवन्तावुभौ शोचन्नन्धावीति विलप्य च ॥१८॥
अज्ञानाद्धवतः पुत्रः सहसाभिहतो मया । शेषमेवंगते यत्स्यात्तत्प्रसीदतु मे मुनिः ॥१९॥
स तच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं मया तदयशंसिना । नाशकत्तीव्रमायासं स कर्तुं भगवानृषिः ॥२०॥
स बाष्पपूर्णवदनो निःश्वसञ्शोकमूर्च्छितः । मामुवाच महातेजाः कृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥२१॥
यद्येतदशुभं कर्म न स्म मे कथयेः स्वयम् । फलेन्मूर्धा स्म ते राजन्सद्यः शतसहस्रधा ॥२२॥
क्षत्रियेण वधो राजन्वानप्रस्थे विशेषतः । ज्ञानपूर्वं कृतःस्थानाच्च्यावयेदपि वज्रिणम् ॥२३॥
सप्तधा तु भवेन्मूर्धा मुनौ तपसि तिष्ठति । ज्ञानाद्विसृजतः शस्त्रं तादृशे ब्रह्मवादिनि ॥२४॥
अज्ञानाद्धि कृतं यस्मादिदं ते तेन जीवसे । अपि ह्यकुशलं न स्याद्राघवाणां कुतो भवान् ॥२५॥
नय नौ नृप तं देशमिति मां चाभ्यभाषत । अद्य तं द्रष्टुमिच्छावः पुत्रं पाश्चिमदर्शनम् ॥२६॥

दुष्कर्मोंसे सज्जनोंके द्वारा तिरस्कृत यह दुख पाया है ॥ १३ ॥ भगवन्, हाथमें बाण लेकर जल पीनेके लिए आये हुए किसी जंगली क्रूर पशुको या हाथीको मारनेके लिये मैं सरयू तीरपर आया था ॥ १४ ॥ जलमें घड़ा भरनेका शब्द मैंने सुना, हाथी समझकर मैंने बाण मारा ॥ १५ ॥ सरयूके तीरपर जाकर मैंने देखा कि एक तापसके हृदयमें बाण लगा है और वह मृतप्राय होकर जमीन-पर पड़ा है ॥ १६ ॥ बाण लगानेसे वे तपस्वी बड़े दुःखी हो रहे थे, जाकर मैंने उन्हींके कहनेसे उनके मर्मस्थानसे बाण निकाल लिया ॥ १७ ॥ बाण निकलते ही वे मुनि शीघ्र ही स्वर्ग चले गये, मरनेके पहले उन्होंने अपने अन्धे असहाय माता पिताओंके लिए बड़ा शोक किया ॥ १८ ॥ अज्ञानसे ही आपके पुत्रको मैंने मार दिया। ऐसा हो जानेपर अवशिष्टके लिये—आप लोगोंकी रक्षाके लिये आप मुझपर प्रसन्न हों, अर्थात् मुझे आज्ञा दें ॥ १९ ॥ उनका दुःख कहनेवाले मेरे द्वारा वैसा कठोर वचन सुनकर भी उन ऋषिने शक्ति होनेपर भी मुझे कठोर शाप नहीं दिया ॥२०॥ ऋषिका शोक बढ़ गया, उनकी आंखोंसे आंसू बहने लगा, वे लम्बी सांस लेने लगे। हाथ जोड़े मैं उनके पास खड़ा था, वे महातेजस्वी ऋषि मुझसे बोले ॥ २१ ॥ राजन्, अपना किया यह अशुभ कर्म यदि तुम स्वयं मुझसे न कहते तो अवश्य ही तुम्हारे माथेके हजारों टुकड़े हो जाते ॥ २२ ॥ राजन्, ज्ञानपूर्वक यदि क्षत्रिय वानप्रस्थाश्रमीका वध करे तो वह, इन्द्रहो क्यों न हो, स्थानभ्रष्ट हो जाता है ॥ २३ ॥ जो मुनि तपस्यामें वर्तमान है और वह ब्रह्मवेत्ता है, उसपर जानबूझकर यदि कोई बाण चलावे तो उसके मस्तकके कई टुकड़े हो जाते हैं ॥ २४ ॥ तुमने यह काम बिना जाने-बूझे किया है इसीसे तुम जीते हो। यदि तुमने जानबूझकर यह किया होता तो समस्त रघुकुल नष्ट हो जाता, तुम्हारी क्या बात ॥ २५ ॥ उन्होंने मुझसे कहा कि राजन्, तुम मुझे उस स्थानपर ले चलो जहाँ मेरा मृत पुत्र वर्तमान है, हम लोग अपने पुत्रको अन्तिम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रुधिरेणावसिक्ताङ्गं प्रकीर्णाजिनवाससम् । शयानं भुवि निःसंज्ञं धर्मराजवशंगतम् ॥२७॥
अथाहमेकस्तं देशं नीत्वा तौ भृशदुःखितौ । अस्पर्शयमहं पुत्रं तं मुनिं सह भार्यया ॥२८॥
तौ पुत्रमात्मनः स्पृष्ट्वा तमासाद्य तपस्विनौ । निपेततुः शरीरेऽस्य पिता चैनमुवाच ह ॥२९॥
नाभिवादयसे माद्य न च मामभिभाषसे । किं च शेषे तु भूमौ त्वं वत्स किं कुपितो ह्यसि ॥३०॥
नन्वहं तेऽप्रियः पुत्र मातरं पश्य धार्मिकीम् । किं च नालिङ्गसे पुत्र सुकुमार वचो वद ॥३१॥
कस्य वा पररात्रेऽहं श्रोष्यामि हृदयंगमम् । अधीयानस्य मधुरं शास्त्रं वान्याद्विशेषतः ॥३२॥
को मां संध्यामुपास्यैव स्नात्वा हुतहुताशनः । श्लाघयिष्यत्युपासीनः पुत्रशोकभयार्दितम् ॥३३॥
कन्दमूलफलं हृत्वा यो मां प्रियमिवातिथिम् । भोजयिष्यत्यकर्मण्यमप्रग्रहमनायकम् ॥३४॥
इमामन्धां च वृद्धां च मातरं ते तपस्विनीम् । कथं पुत्र भरिष्यामि कृपणां पुत्रगर्धिनीम् ॥३५॥
तिष्ठ मा मा गमः पुत्र यमस्य सदनं प्रति । श्वो मया सह गन्तासि जनन्या चसमेधितः ॥३६॥
उभावपि च शोकार्तावनाथौ कृपणौ वने । क्षिप्रमेव गमिष्यावस्त्वया हीनौ यमक्षयम् ॥३७॥
ततो वैवस्वतं दृष्ट्वा तं प्रवक्ष्यामि भारतीम् । क्षमतां धर्मराजो मे विभृयात्पितरावयम् ॥३८॥
दातुमर्हति धर्मात्मा लोकपालो महायशाः । ईदृशस्य ममाक्षय्यामेकामभयदक्षिणाम् ॥३९॥

वार एक बार देख लेना चाहते हैं ॥ २६ ॥ जिसके अंग रुधिरसे सने हैं, मृगचर्म और वस्त्र इधर उधर बिखरे हैं, जो मरकर यमराजके अधीन हो गया है और जमीनपर पड़ा है ॥ २७ । मैं अकेला ही उन दोनों दुखियों को वहाँ ले गया, मुनि और उनकी स्त्रीसे उनके पुत्रका स्पर्श कराया ॥ २८ ॥ वे दोनों तपस्वी अपने पुत्रका स्पर्श करके उसके शरीरपर गिर पड़े और पिताने पुत्रको लक्ष्य करके कहा ॥ २९ ॥ पुत्र, तुम हम लोगोंको प्रणाम नहीं करते, बोलते भी नहीं हो, जमीनपर क्यों पड़े हो, क्यों तुम हम लोगोंपर कुपित हुए हो ॥ ३० ॥ पुत्र, यदि मैं तुम्हारा अप्रिय हूँ तो धार्मिक अपनी माताकी ओर देखो, सुकुमार, अपनी मातासे लिपट क्यों नहीं जाते, कहो ॥ ३१ ॥ आधी रातके बादकी रातमें किसके शास्त्र तथा पुराण आदिके पढ़नेका हृदयप्रिय शब्द हम सुनेंगे ॥ ३२ ॥ स्नान करके सन्ध्योपासन और अग्निमें हवन करके अब कौन पुत्र शोकसे पीड़ित मुझको मेरे पास बैठकर प्रसन्न करेगा ॥ ३३ ॥ किसी काम करनेमें असमर्थ दरिद्र और अनाथ मुझको प्रिय अतिथिके समान कन्दमूल लाकर कौन भोजन करावेगा ॥ ३४ ॥ पुत्र, इस अन्धी और बूढ़ी बिचारी तुम्हारी माताको मैं कैसे खिला सकूंगा, क्योंकि मैं भी अन्धा हूँ, यह गरीबिन तुमपर बहुत प्रेम करती है ॥ ३५ ॥ पुत्र, ठहरो, अभी तुम यमराजके घर मत जाओ, कल हमारे और अपनी माताके साथ चलना ॥ ३६ ॥ हम दोनों शोकसे पीड़ित हैं, अनाथ हैं, दीन हैं, तुम्हारे न रहनेसे हमलोगोंकी भी शीघ्र ही मृत्यु हो जायगी ॥३७॥ इस प्रकार यमराज के पास जाकर हम लोग उनसे कहेंगे, कि आप हमारे पुत्रको क्षमा करें, अपने पास इसे न रखें; क्योंकि यह अपने पिता माताकी सेवा करता है, उनको पालता है ॥ ३८ ॥ लोकपाल धर्मराज बड़े यशस्वी और बड़े धर्मात्मा हैं, वे अवश्य ही मुझे यह एक अक्षय अभय दक्षिणा देंगे । शस्त्राघात-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपापोऽसि यथा पुत्र निहतः पापकर्मणा । तेन सत्येन गच्छाशु ये लोकास्त्वस्त्रयोधिनाम्॥४०॥
यां हि शूरा गतिं यान्ति सङ्ग्रामेष्वनिवर्तिनः । हतास्त्वाभिमुखाः पुत्र गतिं तां परमां व्रज ॥४१॥
यां गतिं सगरः शैब्यो दिलीपो जनमेजयः । नहुषो धुन्धुमारश्च प्राप्तास्तां गच्छ पुत्रक ॥४२॥
या गतिः सर्वभूतानां स्वाध्यायात्तपसश्च या । भूमिदस्याहिताग्नेश्च एकपत्नीव्रतस्य च ॥४३॥
गोसहस्रप्रदातॄणां गुरुसेवाभृतामपि । देहन्यासकृतां या च तां गतिं गच्छ पुत्रक ॥४४॥
न हि त्वास्मिन्कुले जातो गच्छत्यकुशलां गतिम् । स तु यास्यति येन त्वं निहतो मम बान्धवः ॥४५॥
एवं स कृपणं तत्र पर्यदेवयतासकृत् । तथोक्त्वा कर्तुमुदकं प्रवृत्तः सह भार्यया ॥४६॥
स तु दिव्येन रूपेण मुनिपुत्रः स्वकर्मभिः । स्वर्गमभ्यारुहत्क्षिप्रं शक्रेण सह धर्मवित् ॥४७॥
आबभाषे च तौ वृद्धौ शक्रेण सह तापसः । आश्वस्य च मुहूर्तं तु पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥४८॥
स्थानमस्मि महत्प्राप्तो भवतोः परिचारणात् । भवन्तावपि च क्षिप्रं मम मूलमुपैष्यथः ॥४९॥
एवमुक्त्वा तु दिव्येन विमानेन वपुष्मता । आरुरोह दिवं क्षिप्रं मुनिपुत्रो जितेन्द्रियः ॥५०॥
स कृत्वाथोदकं तूर्णं तापसः सह भार्यया । मामुवाच महातेजाः कृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥५१॥
अद्यैव जहि मां राजन्मरणे नास्ति मे व्यथा । यः शरेणैकपुत्रं मां त्वमकार्षीरपुत्रकम् ॥५२॥

से पुत्रकी मृत्यु न होने देंगे ॥ ३९ ॥ पुत्र, तुम पापहीन हो, पापी क्षत्रियके द्वारा मारे गये हो। तथापि मेरे सत्यसे अस्त्र युद्धमें मारे जानेवालोंके लोकमें (स्वर्गमें) जाओ ॥ ४० ॥ युद्धमें पीठ न दिखानेवाले वीर सामने मरकर जो गति पाते हैं, पुत्र, तुम भी उसी श्रेष्ठ गतिको पाओ ॥ ४१ ॥ पुत्र, राजा सगर, शिवि, दिलीप, जनमेजय, नहुष और धुन्धुमार आदिने जो गति पायी है, पुत्र, तुम भी उसी गतिको पाओ ॥ ४२ ॥ सब प्राणियोंकी जो गति है, स्वाध्याय और तपस्यासे जो गति प्राप्त होती है, भूमिदान करनेवाले, अग्निहोत्र करनेवाले और एकपत्नीव्रत पालन करनेवालेकी जो गति होती है, ॥ ४३ ॥ एक हज़ार गौ देनेवालोंकी जो गति होती है, गुरुसेवा और गुरु पोषण करनेवालोंकी जो गति होती है तथा हिमालयमें जाकर शरीर-त्याग करनेवालोंकी जो गति होती है, पुत्र, तुम्हे भी वही गति प्राप्त हो ॥ ४४ ॥ इस कुलमें जो उत्पन्न होता है वह बुरी गति नहीं पाता, बुरी गति उसकी होगी जिसने तुम्हे मारा है ॥ ४५ ॥ इस प्रकार बहुत देरतक दुःखित होकर वे रोते रहे, पुनः वे स्त्रीके साथ उन्हे जलाञ्जलि देनेके लिये तयार हुए ॥ ४६ ॥ उस धर्मात्मा मुनिपुत्रने शीघ्र ही अपने कर्मोंसे दिव्यरूप प्राप्त करके इन्द्रके साथ स्वर्ग प्राप्त किया ॥ ४७ ॥ इन्द्रके साथ उस तपस्वीने पिता माताओंको आश्वासित किया, थोड़ी देरके बाद पुनः वह पितासे बोला ॥ ४८ ॥ आप लोग पिता माताकी सेवा करनेसे मैंने बहुत ऊंचा स्थान पाया है, आप लोग भी शीघ्र ही मेरे पास आवेंगे ॥४९॥ इतना कहकर जितेन्द्रिय मुनिपुत्र शरीर धर कर दिव्य विमानसे शीघ्र ही स्वर्ग चले गये ॥ ५० ॥ उन वृद्ध तपस्वीने स्त्रीके साथ शीघ्र ही पुत्रको जलांजलि दी। पुनः वे हाथ जोड़कर खड़े हुए मुझसे बोले ॥ ५१ ॥ राजन्, आज ही तुम मुझेभी मार डालो, मरनेमें मुझे दुःख नहीं है, तुमने बाणके द्वारा मेरे पुत्रको मार डाला, मुझे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्वयापि च यदज्ञानान्निहतो मे स बालकः । तेन त्वामपि शप्स्येहं सुदुःखमतिदारुणम् ॥५३॥
पुत्रव्यसनजं दुःखं यदेतन्मम सांप्रतम् । एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन्कालं करिष्यसि ॥५४॥
अज्ञानात्तु हतो यस्मात्क्षात्रियेण त्वया मुनिः । तस्मात्त्वां नाविशत्याशु ब्रह्महत्या नराधिप ॥५५॥
त्वामप्येतादृशो भावः क्षिप्रमेव गमिष्यति । जीवितान्तकरो घोरो दातारमिव दक्षिणाम् ॥५६॥
एवं शापं मयि न्यस्य विलप्य करुणं बहु । चितामारोप्य देहं तन्मिथुनं स्वर्गमभ्ययात् ॥५७॥
तदेतच्चिन्तयानेन स्मृतं पापं मया स्वयम् । तदा बाल्यात्कृतं देवि शब्दवेध्यनुकार्षिणा ॥५८॥
तस्यायं कर्मणो देवि विपाकः समुपस्थितः । अपथ्यैः सह संभुक्ते व्याधिरन्नरसे यथा ॥५९॥
तस्मान्मामागतं भद्रे तस्योदारस्य तद्वचः । इत्युक्त्वा स रुदंस्रस्तो भार्यामाह तु भूमिपः ॥६०॥
यदहं पुत्रशोकेन संत्यजिष्यामि जीवितम् । चक्षुर्भ्यां त्वां न पश्यामि कौसल्ये त्वं हि मां स्पृश॥६१॥
यमक्षयमनुप्राप्ता द्रक्ष्यन्ति नहि मानवाः । यदि मां संस्पृशेद्रामः सकृदन्वारभेत वा ॥६२॥
धनं वा यौवराज्यं वा जीवेयमिति मे मतिः । न तन्मे सदृशं देवि यन्मया राघवे कृतम् ॥६३॥
सदृशं तत्तु तस्यैव यदनेन कृतं मयि । दुर्वृत्तमपि कः पुत्रं त्यजेद्भुविविचक्षणः ॥६४॥
कश्च प्रवाज्यमानो वा नासूयेत्पितरं सुतः । चक्षुषा त्वां न पश्यामि स्मृतिर्मम विलुप्यते ॥६५॥

अपुत्र बना डाला ॥ ५२ ॥ तुमने अज्ञानसे मेरे एक बच्चेको मार डाला, अतएव मैं तुम्हें भी बहुत ही कठोर दुःखदायी शाप दूंगा ॥ ५३ ॥ जिस प्रकार पुत्रकी मृत्युका दुःख मैं इस समय भोग रहा हूँ, राजन्, तुम भी पुत्र-शोकसे ही मृत्यु पाओगे ॥ ५४ ॥ क्षत्रिय होकर तुमने अज्ञानसे मुनिका वध किया है, इस कारण ब्रह्महत्याका पाप तुम्हे नहीं लगेगा ॥ ५५ ॥ पर इस समय जैसी हमारी दशा हो रही है वैसी भयानक और प्राण लेनेवाली दशा तुम्हारी भी शीघ्र ही होगी। जिस प्रकार दान करनेवालोंको उसका फल अवश्य मिलता है ॥ ५६ ॥ इस प्रकार मुझको शाप देकर तथा दुःखसे बहुत विलाप करके वे दोनों स्त्री पुरुष चितामें जलकर स्वर्ग चले गये ॥ ५७ ॥ देवि, शब्दवेधी होनेके आकर्षणसे बाल्यावस्थामें मैंने जो पाप किया है, वह सोचते-सोचते आज स्वयं स्मरण हो आया ॥ ५८ ॥ देवि, उसी पापकर्मका फल यह उपस्थित हुआ है, अपथ्य वस्तुओं-के साथ अन्न खानेसे जैसे रोग पैदा हो जाता है, उसी तरह उस पापका फलभोग आज मुझे करना पड़ता है ॥ ५९ ॥ उस उदार मुनिका वह वचन आज फल रहा है। इतना कहकर राजा दसरथ भयभीत होकर रोने लगे और वे कौसल्यासे बोले ॥ ६० ॥ अब मैं पुत्रशोक से प्राण त्याग करूंगा । कौसल्ये, मैं आंखोंसे तुम्हें नहीं देख रहा हूँ, तुम मेरा स्पर्श करो ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य मरनेवाले होते हैं, वे कुछ देख नहीं सकते। हाँ यदि रामचन्द्र आकर अपने हाथोंसे छुएँ अथवा किसी दूसरी वस्तुके ही द्वारा छूएँ ॥ ६२ ॥ खजाना ग्रहण करें और युवराज पद लें तो मैं समझता हूँ कि मैं जी सकूंगा, पर रामचन्द्रके साथ जो व्यवहार मैंने किया है यह मेरे लिये उचित नहीं था ॥ ६३ ॥ पर रामचन्द्रने मेरे साथ जो व्यवहार किया है अर्थात् मेरी आज्ञाको पालनेके लिये वे वन चले गये यह उन्हींके योग्य है। कोई बुद्धिमान अपने बुरे पुत्रका भी त्याग नहीं कर सकता ॥ ६४ ॥ वनमें जाता हुआ कौन पुत्र पितापर क्रोध न करेगा। अब मैं आखोंसे तुमको नहीं देख रहा हूँ, मेरी स्मरणशक्ति भी क्षीण हो रही है ॥ ६५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दूता वैवस्वतस्यैते कौसल्ये त्वरयन्ति माम् । अतस्तु किं दुःखतरं यदहं जीवितक्षये ॥६६॥
नहि पश्यामि धर्मज्ञं रामं सत्यपराक्रमम् । तस्यादर्शनजः शोकः सुतस्याप्रतिकर्मणः ॥६७॥
उच्छोषयति वै प्राणान्वारि स्तोकमिवातपः । न ते मनुष्या देवास्ते ये चारु शुभकुण्डलम् ॥६८॥
मुखं द्रक्ष्यन्ति रामस्य वर्षे पञ्चदशे पुनः । पद्मपत्रेक्षणं सुभ्रु सुदंष्ट्रं चारुनासिकम् ॥६९॥
धन्या द्रक्ष्यन्ति रामस्य ताराधिपसमं मुखम् । सदृशं शारदस्येन्दोः फुल्लस्य कमलस्य च ॥७०॥
सुगन्धि मम रामस्य धन्या द्रक्ष्यन्ति ये मुखम् । निवृत्तवनवासं तमयोध्यां पुनरागतम् ॥७१॥
द्रक्ष्यन्ति सुखिनो रामं शुक्रं मार्गगतं यथा । कौसल्ये चित्तमोहेन हृदयं सीदतेतराम् ॥७२॥
वेदये न च संयुक्ताञ्शब्दस्पर्शरसानहम् । चित्तनाशाद्विपद्यन्ते सर्वाण्येवेन्द्रियाणि हि ।
क्षीणस्नेहस्य दीपस्य संरक्ता रश्मयो यथा ॥७३॥
अयमात्मभवः शोको मामनाथमचेतनम् । संसाधयति वेगेन यथा कूलं नदीरयः ॥७४॥
हा राघव महाबाहो हा ममायासनाशन । हा पितृप्रिय मे नाथ हा ममासि गतः सुत ॥७५॥
हा कौसल्ये न पश्यामि हा सुमित्रे तपस्विनि । हा नृशंसे ममामित्रे कैकेयि कुलपांसनि ॥७६॥
इति मातुश्च रामस्य सुमित्रायाश्च संनिधौ । राजा दशरथः शोचञ्जीवितान्तमुपागमत् ॥७७॥

कौसल्या अब यमराजके दूत मुझे शीघ्रता करनेको कह रहे हैं। इससे अधिक और दुःख क्या होगा कि मैं मरनेके समय ॥ ६६ ॥ सत्य पराक्रम धर्मज्ञ रामचन्द्रको नहीं देख रहा हूँ। पुत्रके कर्तव्य पालन करनेवालोंमें रामचन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं। उन्हें न देख सकनेका शोक ॥ ६७ ॥ मेरे प्राणोंको सुखा रहा है, जिस प्रकार थोड़े जलको धूप सुखा देती है। वे मनुष्य देवता हैं जो सुन्दर कुण्डल-वाला, ॥ ६८ ॥ कमलके समान आंखवाला, सुन्दर दाँतवाला और सुन्दर नाकवाला मुख आजके पन्द्रहवें वर्ष अर्थात् वनसे लौटनेपर देखेंगे ॥ ६९ ॥ वे धन्य हैं जो चन्द्रमाके समान अथवा शरद्ऋतुके चन्द्रमाके समान रामचन्द्रका मुंह देखेंगे। प्रफुल्ल कमलके समान ॥ ७० ॥ सुग-न्धित रामचन्द्रका मुख, वनवाससे लौटकर पुनः अयोध्या आनेपर जो देखेंगे वे धन्य हैं ॥ ७१ ॥ मार्गमें जो रामचन्द्रको देखेंगे वे ही सुखी हैं। जिस प्रकार मार्गगत शुक्रको देखकर मनुष्य सुखी होता है। कौसल्ये, मूर्च्छाहोनेसे मेरा हृदय बहुत ही दुःखी हो रहा है ॥ ७२ ॥ शब्द नहीं सुन पड़ता, स्पर्श नहीं मालूम पड़ता और इसका भी ज्ञान नहीं है, चेतनाके नष्ट होनेसे मेरी सब इन्द्रियां नष्ट हो रही हैं, जिस प्रकार तेलके न रहनेसे दीपकका प्रकाश क्षीण हो जाता है ॥ ७३ ॥ यह मेराही उत्पन्न किया हुआ शोक, मुझको इस समय पीड़ित कर रहा है जिस प्रकार नदीका वेग तीरको काटता है ॥ ७४ ॥ हा राघव, हा मेरे दुःख दूर करनेवाले महाबाहु, हे पितृप्रिय, हे मेरे स्वामी, कहाँ गये हो ॥ ७५ ॥ हा कौसल्ये, हा तपस्विनी सुमित्रे, मैं नहीं देख रहा हूँ, हा क्रूर मेरी शत्रु, कुलघातक केकयि ॥ ७६ ॥ रामचन्द्रकी माता और सुमित्राके समीप शोक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तथा तु दीनः कथयन्नराधिपः प्रियस्य पुत्रस्य विवासनातुरः ।
गतेऽर्धरात्रे भृशदुःखपीडितस्तदा जहौ प्राणमुदारदर्शनः ॥७८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमः सर्गः ६५

अथ रात्र्यां व्यतीतायां प्रातरेवापरेऽहनि । वान्दनः पर्युपातिष्ठंस्तत्पार्थिवनिवेशनम् ॥ १ ॥
सूताः परमसंस्कारा मागधाश्चोत्तमश्रुताः । गायकाः श्रुतशीलाश्च निगदन्तः पृथक्पृथक् ॥ २ ॥
राजानं स्तुवतां तेषामुदात्ताभिहिताशिषाम् । प्रासादाभोगविस्तीर्णः स्तुतिशब्दो व्यवर्तत ॥ ३ ॥
ततस्तु स्तुवतां तेषां सूतानां पाणिवादकाः । अपदानान्युदाहृत्य पाणिवादान्यवादयन् ॥ ४ ॥
तेन शब्देन विहगाः प्रतिबुद्धाश्च सस्वनुः । शाखास्थाः पञ्जरस्थाश्च ये राजकुलगोचराः ॥ ५ ॥
व्याहृताःपुण्यशब्दाश्च वीणानां चापि निःस्वनाः । आशीर्गेयं च गाथानां पूरयामास वेश्म तत् ॥ ६ ॥
ततः शुचिसमाचाराः पर्युपस्थानकोविदाः । स्त्रीवर्षवरभूयिष्ठा उपतस्थुर्यथा पुरा ॥ ७ ॥
हरिचंदनसंपृक्तमुदकं काञ्चनैर्घटैः । आनिन्युः स्नानशिक्षाज्ञा यथाकालं यथाविधि ॥ ८ ॥
मङ्गलालम्भनीयानि प्राशनीयान्युपस्करान् । उपानिन्युस्तथा पुण्याः कुमारीबहुलाः स्त्रियः ॥ ९ ॥

करते हुए राजा दसरथने प्राण त्याग किये ॥ ७७ ॥ इस प्रकार कहते हुए तथा बड़ी पीड़ा सहते हुए राजा दसरथने इस प्रकार दुःखी होकर कहा, अपने प्रिय पुत्रको बनवास देनेसे वे नितान्त दुःखी हो गये थे । आधी रातको दुःखसे पीड़ित राजा दसरथने प्राण त्याग किये ॥ ७८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका चौंसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६४ ॥

रातके बीतजाने पर दूसरे दिन प्रातः कालही स्तुति पाठ करनेवाले बन्दी राजाके घर आये ॥ १ ॥ व्याकरण आदिका उत्तम ज्ञान रखनेवाले पुराण कहनेवाले सूत, बहुश्रुत वंश-वर्णन करनेवाले मागध, और सुनने-सुनानेमें दक्ष गायक अलग-अलग अपनी-अपनी बात कहते हुए आये ॥ २ ॥ वे राजाकी स्तुति करने लगे, बड़े उत्तम उत्तम आशीर्वाद देने लगे, उनकी स्तुतिका वह शब्द राजमहलमें फैल गया ॥ ३ ॥ सूत हाथ बनाकर राजाकी स्तुति करने लगे और साथ ही राजाके उत्तम-उत्तम कार्योंका वर्णन भी करने लगे ॥ ४ ॥ उस शब्दसे राजकुलमें वृक्षोंकी शाखाओंपर तथा पिंजड़ेमें रहनेवाले पक्षी जाग गये और बोलने लगे ॥ ५ ॥ उन पक्षियोंके कहे हुए पवित्र शब्द, वीणाके शब्द, ब्राह्मणोंकी बनायी गाथाके आशीर्वाद गानसे वह राजभवन भर गया ॥ ६ ॥ तदनन्तर शुद्ध आचारवाले, राजसेवामें निपुण, स्त्री नपुंसक आदि पहलेके समान आये ॥ ७ ॥ सोनेके घड़ेमें चन्दन मिला हुआ जल यथासमय नियमानुसार स्नान करानेवाले भृत्य ले आये ॥ ८ ॥ स्पर्श करने योग्य मांगलिक वस्तु, मुंह धोनेके बाद चाहनेकी चीजें और वस्त्र आभूषण आदि स्त्रियाँ जिनमें कुमारियोंकी संख्या अधिक थी राजाके पास ले आयीं ॥ ९ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्वं लक्षणसंपन्नं सर्वं विधिवदर्चितम् । सर्वं गुणलक्ष्मीवत्तदभूदाभिहारिकम् ॥१०॥
ततः सूर्योदयं यावत्सर्वं परिसमुत्सुकम् । तस्थावनुपसंप्राप्तं किंस्विदित्युपशङ्कितम् ॥११॥
अथ याः कोसलेन्द्रस्य शयनं प्रत्यनन्तरः । ताः स्त्रियस्तु समागम्य भर्तारं प्रत्यबोधयन् ॥१२॥
अथाप्युचितवृत्तास्ता विनयेन नयेन च । नह्यस्य शयनं स्पृष्ट्वा किंचिदप्युपलेभिरे ॥१३॥
ताः स्त्रियः स्वप्नशीलज्ञाश्चेष्टां संचलनादिषु । ता वेपथुपरीताश्च राज्ञः प्राणेषु शङ्किताः ॥१४॥
प्रतिस्रोतस्तृणाग्राणां सदृशं संचकाशिरे । अथ संदेहमानानां स्त्रीणां दृष्ट्वा च पार्थिवम् ।
यत्तदाशङ्कितं पापं तदा जज्ञे विनिश्चयः ॥१५॥
कौसल्या च सुमित्रा च पुत्रशोकपराजिते । प्रसुप्ते न प्रबुध्येते यथाकालसमन्विते ॥१६॥
निष्प्रभा सा विवर्णा च सन्ना शोकेन संनता । न व्यराजत कौसल्या तारेव तिमिरावृता ॥१७॥
कौसल्यानन्तरं राज्ञः सुमित्रा तदनन्तरम् । न स्म विभ्राजिते देवी शोकाश्रुलुलितानना ॥१८॥
ते च दृष्ट्वा तदा सुप्ते उभे देव्यौ च तं नृपम् । सुप्तमेवोद्गतप्राणमन्तःपुरमदृश्यत ॥१९॥
ततः प्रचुक्रुशुर्दीना सस्वरं ता वराङ्गनाः । करेणव इवारण्ये स्थानप्रच्युतयूथपाः ॥२०॥
तासामाक्रन्दशब्देन सहसोद्गतचेतने । कौसल्या च सुमित्रा च त्यक्तनिद्रे बभूवतुः ॥२१॥

प्रातःकाल राजाके पास लायी जानेवाली सब वस्तुएँ—जो सब लक्षणोंसे युक्तथीं, अधिक मात्रामें थीं, उत्तम गुणवाली और सुन्दर थीं—लायी गईं ॥ १० ॥ सूर्योदय होनेतक राजाके दर्शनके लिये सभी लोग उत्सुक होकर वहीं ठहरे रहे, पर राजाका दर्शन नहीं हुआ इस कारण, यह क्या है, अभी तक राजा क्यों नहीं आये इस बातकी सब लोगोंको शङ्का हुई ॥११॥ जो स्त्रियाँ राजाके शयनस्थानके पास थीं, वे उठकर राजाके यहाँ आयीं और उन्हें उठाने लगीं ॥ १२ ॥ जगानेपर भी जब राजा नहीं जगे, तब उचित व्यवहार करनेवाली उन स्त्रियोंने विनय और अनेक उपायोंसे राजाको स्पर्श किया, पर राजामें कोई भी निद्राके लक्षण नहीं देखे ॥ १३ ॥ निद्राके लक्षण जाननेवाली स्त्रियोंने हृदय और हाथके मूल आदिमें जब नाड़ीका पता नहीं पाया, तब राजाके प्राणोंके विषयमें उन्हें सन्देह हुआ । राजा मर तो नहीं गये, ऐसा सन्देह हुआ और वे काँपने लगीं ॥ १४ ॥ नदीके सोतेके सामने रहनेवाले तृणके समान वे काँपने लगीं । राजाको देखकर स्त्रियोंको जिस अमंगलकी आशङ्का हुई थी, उसका अब निश्चय हो गया ॥ १५ ॥ पुत्रशोकसे पीड़ित कौसल्या और सुमित्रा मृतकके समान सोयी हुई थीं और वे अबतक नहीं उठ सकीं थीं ॥ १६ ॥ शोकसे झुलसी हुई कौसल्याके हाथ पैर छूट गये, वह अन्धकारावृत ताराके समान प्रभाहीन और फिट्ट होगयीं ॥ १७ ॥ राजाके शोभाहीन होनेपर कौसल्याकी और उसके अनन्तर सुमित्राकी शोभा नष्ट हो गयी, इन दोनोंकी आँखें आँसूसे भर गयीं । अर्थात् मृत राजा दसरथसे कौसल्या और सुमित्राका कोई भेद न था ॥ १८ ॥ सोती हुई कौसल्या और सुमित्रा इन दोनों देवियोंको देखकर तथा राजाको देखकर समस्त अन्तःपुरमें रहनेवाली स्त्रियोंके मानों प्राण निकल गये, सब मृतकके समान होगयीं ॥१९॥ वे सब दुःखिनी स्त्रियाँ चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगीं, जिसप्रकार यूथपति हाथीके चले जानेसे वनमें हथिनियाँ दुःखी हो जाती हैं ॥ २० ॥ उन स्त्रियोंके आर्तनाद-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कौसल्या च सुमित्रा च दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च पार्थिवम् । हा भर्तेति परिक्रुश्य पेततुर्धरणीतले ॥२२॥
सा कोसलेन्द्रदुहिता चेष्टमाना महीतले । न भ्राजते रजोध्वस्ता तारेव गगनच्युता ॥२३॥
नृपे शान्तगुणे जाते कौसल्यां पतितां भुवि । अपश्यंस्ताः स्त्रियः सर्वा हतां नागवधूमिव ॥२४॥
ततः सर्वा नरेन्द्रस्य कैकेयीप्रमुखाः स्त्रियः । रुदत्यः शोकसंतप्ता निपेतुर्गतचेतनाः ॥२५॥
ताभिः स बलवान्नादः क्रोशन्तीभिरनुद्रुतः । येन स्फीतीकृतो भूयस्तद्गृहं समनादयत् ॥२६॥
तत्परित्रस्तसंभ्रान्तपर्युत्सुकजनाकुलम् । सर्वतस्तुमुलाक्रन्दं परितापार्तबान्धवम् ॥२७॥
सद्योनिपतितानन्दं दीनं विक्लवदर्शनम् । बभूव नरदेवस्य सद्म दिष्टान्तमीयुषः ॥२८॥
अतीतमाज्ञाय तु पार्थिवर्षभं यशस्विनं तं परिवार्य पत्नयः ।
भृशं रुदन्त्यः करुणं सुदुःखिताः प्रगृह्य बाहू व्यलपन्ननाथवत् ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥४६॥

षट्षष्टितमः सर्गः ६५

तमग्निमिव संशान्तमम्बुहीनमिवार्णवम् । गतप्रभामिवादित्यं स्वर्गस्थं प्रेक्ष्य भूमिपम् ॥ १ ॥
कौसल्या बाष्पपूर्णाक्षी विविधं शोककर्शिता । उपगृह्य शिरो राज्ञः कैकेयीं प्रत्यभाषत ॥ २ ॥

से कौसल्या और सुमित्रा होशमें आगयीं, उनकी निद्रा टूट गयी ॥ २१ ॥ कौसल्या और सुमित्रा दोनोंने राजाको देखा, उनका स्पर्श किया, पुनः वे हा भर्ता, कहकर भूमिपर गिर पड़ीं ॥ २२ ॥ कोसलराजकी कन्या वे कौसल्या पृथिवीमें छटपटाने लगीं, आकाशसे गिरी धूल लिपटी ताराके समान उनकी शोभा नष्ट होगयी ॥ २३ ॥ राजाके मरनेपर पृथिवीमें गिरी हुई कौसल्याको स्त्रियोंने मरी हुई नागवधूके समान देखा ॥ २४ ॥ अनन्तर राजाकी अन्य केकयी आदि स्त्रियाँ शोकसे संतप्त होकर रोने लगीं, पुनः वे बेहोश होकर गिर पड़ीं ॥ २५ ॥ इन रोनेवाली स्त्रियोंके शब्दसे वह शब्द बड़ा होगया और बढ़कर वह शब्द समस्त राजमहलमें गूँज गया ॥ २६ ॥ वह समस्त घर डरे हुए, घबड़ाये हुए तथा उत्कण्ठित मनुष्योंसे भर गया, चारो तरफ घोर रोदनध्वनि होने लगी, राजाके सभी बन्धु परितापसे पीड़ित होगये ॥ २७ ॥ स्वर्ग गये राजाके घरका आनन्द जाता रहा, वह घर दीन तथा देखनेसे दुःख उत्पन्न करनेवाला होगया ॥ २८ ॥ राजश्रेष्ठ यशस्वी राजा मर गये यह जानकर उनकी स्त्रियाँ उन्हें घेरकर बहुत ही दुःखित होकर करुण स्वरमें रोने लगीं और परस्पर हाथ पकड़कर अनाथिनीके समान रोने लगीं ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका पैसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६५ ॥

बुझी हुई आगके समान, जलहीन समुद्रके समान और प्रभाहीन सूर्यके समान स्वर्गगत राजाको देखकर ॥ १ ॥ शोकपीड़ित आँखोंमें आँसू भर कर तथा राजाका सिर लेकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सकामा भव कैकेयि भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् । त्यक्त्वा राजानमेकाग्रा नृशंसे दुष्टचारिणि ॥ ३ ॥
विहाय मां गतो रामो भर्ता च स्वर्गतो मम । विपथे सार्थहीनेव नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ४ ॥
भर्तारं तु परित्यज्य का स्त्री दैवतमात्मनः । इच्छेज्जीवितुमन्यत्र कैकेय्यास्त्यक्तधर्मणः ॥ ५ ॥
न लुब्धो बुद्ध्यते दोषान्किंपाकमिव भक्षयन् । कुब्जानिमित्तं कैकेय्या राघवाणां कुलं हतम् ॥ ६ ॥
अनियोगे नियुक्तेन राज्ञा रामं विवासितम् । सभार्यं जनकः श्रुत्वा परितप्स्यत्यहं यथा ॥ ७ ॥
स मामनाथां विधवां नाद्य जानाति धार्मिकः । रामः कमलपत्राक्षो जीवनाशामितो गतः ॥ ८ ॥
विदेहराजस्य सुता तथा चारुतपस्विनी । दुःखस्यानुचिता दुःखं वने पर्युद्विजिष्यति ॥ ९ ॥
नदतां भीमघोषाणां निशासु मृगपक्षिणाम् । निशम्यमाना संत्रस्ता राघवं संश्रयिष्यति ॥१०॥
वृद्धश्चैवाल्पपुत्रश्च वैदेहीमनुचिन्तयन् । सोऽपि शोकसमाविष्टो नूनं त्यक्ष्यति जीवितम् ॥११॥
साहमद्यैव दिष्टान्तं गमिष्यामि पतिव्रता । इदं शरीरमालिङ्ग्य प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ॥१२॥
तां ततः संपरिष्वज्य विलपन्तीं तपस्विनीम् ।व्यपानिन्युः सुदुःखार्तां कौसल्यां व्यावहारिकाः॥१३॥
तैलद्रोण्यां तदामात्याः संवेश्य जगतीपतिम् । राज्ञः सर्वाण्यथादिष्टाश्चक्रुः कर्माण्यनन्तरम् ॥१४॥
न तु संकालनं राज्ञो विना पुत्रेण मन्त्रिणः । सर्वज्ञाः कर्तुमीषुस्ते ततो रक्षन्ति भूमिपम् ॥१५॥

कौसल्या केकयीसे बोली ॥ २ ॥ क्रूर स्वभाव और दुष्टाचरणवाली केकयी, राजाको इस लोकसे विदा करके तुम निश्चिन्त होकर निर्विघ्न राज्यभोग करो और मनोरथ पूर्ण होनेसे आनन्द मनाओ ॥ ३ ॥ रामचन्द्र मुझे छोड़कर गये और मेरे पति स्वर्गगामी हुए, भयानक मार्गमें साथियोंसे रहित पथिकके समान अब मैं जीना नहीं चाहती ॥ ४ ॥ अपने देवस्वरूप पतिका परित्याग करके कौन स्त्री, स्त्री-धर्मका त्याग करनेवाली केकयीको छोड़कर, जीना चाहेगी ॥ ५ ॥ लोभी मनुष्य दोषोंको नहीं देखता, जिस प्रकार क्रोध आदिके कारण नीमखाने वालेको उसका कडुआपन नहीं मालूम होता, केकयीने कुब्जा मन्थराके कारण इस रघुकुलका विनाश किया है ॥ ६ ॥ केकयीके अनुचित हठ मान कर राजाने स्त्रीके साथ रामचन्द्रको वन भेज दिया, इस संवादको सुनकर राजा जनक हमारे ही समान दुःखी होंगे ॥ ७ ॥ मैं विधवा होकर अनाथ हो गयी यह बात कमलपत्रके समान नेत्रवाले धार्मिक रामचन्द्र नहीं जानते, वे तो यहाँसे उस देश में चले गये, जहाँ ऋषियोंका वास होता है ॥ ८ ॥ पतिसेवाके लिए तपस्या करनेवाली जनक-राजकी कन्या सीता, जो दुःख सहनेके योग्य नहीं है, वनमें दुःख पाकर व्याकुल हो जायगी ॥९॥ भयानक शब्दवाले पशु-पक्षियोंका शब्द रातमें सुनकर वह डर जायगी और रामचन्द्रसे लिपट जायगी ॥ १० ॥ राजा जनक भी बूढ़े हैं, उन्हें यही एक कन्या है, वे सदा सीताकी चिन्ता करते-करते शोकसे व्याकुल होकर प्राण त्याग कर देंगे ॥ ११ ॥ अतएव मैं भी आजही शरीरत्याग करूँगी, मैं पतिव्रता हूँ, पतिका शरीर लेकर मैं चितामें प्रवेश करूँगी ॥ १२ ॥ राजाको पकड़कर विलाप करती हुई दुःखिनी कौसल्याको सचिवोंने वहाँसे हटाया ॥ १३ ॥ तेल पूर्ण कड़ाहमें उन सचिवोंने राजाके शरीरको रखा, तथा आगे होनेवाले राजाके कर्मोंको उन लोगोंने वसिष्ठकी आज्ञासे किया ॥ १४ ॥ पुत्रके न रहनेके कारण उन लोगोंने राजाका प्रेत संस्कार करना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तैलद्रोण्यां शायितं तं सचिवैस्तु नराधिपम् । हा मृतोऽयमिति ज्ञात्वा स्त्रियस्ताः पर्यदेवयन् ॥१६॥
बाहूनुच्छ्रित्य कृपणा नेत्रप्रस्रवणैर्मुखैः । रुदत्यः शोकसंतप्ताः कृपणं पर्यदेवयन् ॥१७॥
हा महाराज रामेण संततं प्रियवादिना । विहीनाः सत्यसंधेन किमर्थं विजहासि नः ॥१८॥
कैकेय्या दुष्टभावाया राघवेण विवार्जिताः । कथं सपत्न्या वत्स्यामः समीपे विधवा वयम् ॥१९॥
स हि नाथः स चास्माकं तव च प्रभुरात्मवान् । वनं रामो गतः श्रीमान्विहाय नृपतिश्रियम् ॥२०॥
त्वया तेन च वीरेण विना व्यसनमोहिताः । कथं वयं निवत्स्यामः कैकेय्या च विदूषिताः ॥२१॥
यया च राजा रामश्च लक्ष्मणश्च महाबलः । सीतया सह संत्यक्ताः सा कमन्यं न हास्यति ॥२२॥
ता बाष्पेण च संवीताः शोकेन विपुलेन च । व्यचेष्टन्त निरानन्दा राघवस्य वरस्त्रियः ॥२३॥
निशा नक्षत्रहीनेव स्त्रीव भर्तृविवर्जिता । पुरी नाराजतायोध्या हीना राज्ञा महात्मना ॥२४॥
बाष्पपर्याकुलजना हाहाभूतकुलाङ्गना । शून्यचत्वरवेश्मान्ता न बभ्राज यथापुरम् ॥२५॥

गते तु शोकात्त्रिदिवं नराधिपे महीतलस्थासु नृपाङ्गनासु च ।
निवृत्तचारः सहसा गतो रविः प्रवृत्तचारा रजनी ह्युपस्थिता ॥२६॥
ऋते तु पुत्राद्दहनं महीपतेर्नारोचयंस्ते सुहृदः समागताः ।
इतीव तस्मिञ्शयने न्यवेशयन्विचिन्त्य राजानमचिन्त्यदर्शनम् ॥२७॥

उचित नहीं समझा, क्योंकि वे सर्वज्ञ थे, सब विधि विधानोंको जाननेवाले थे, अतएव उन लोगोंने राजाके शरीरको सुरक्षित रखा ॥ १५ ॥ तैलद्रोणी (तेलसे भरे कड़ाह) में राजाके शरीरको जब सचिवोंने रखा, तब अन्य सब स्त्रियाँ, राजा मर गये यह जानकर, रोने लगीं ॥१६॥ उनकी आँखोंसे पनाला बहने लगा, वे हाथ उठाकर, बड़े शोक और दुःखसे रोने लगीं ॥ १७ ॥ महाराज सत्य प्रतिज्ञ, प्रियवादी रामचन्द्रसे हीन हम लोगोंका त्याग आप क्यों कर रहे हैं ॥ १८ ॥ केकयी बड़े दुष्ट विचारकी है रामचन्द्र भी नहीं हैं अब हम विधवा अपनी सौतके पास कैसे रह सकेंगी ॥ १९ ॥ जो रामचन्द्र सब प्रकारसे समर्थ हैं, धीर हैं, हमारे तथा आपके स्वामी हैं, वे ही रामचन्द्र राज्य लक्ष्मीको छोड़कर वन चले गये ॥ २० ॥ आप और वीर रामचन्द्रके न रहनेसे हम लोग दुःखविमूढ़ हो गयी हैं, दुःखके कारण हम लोगोंका कर्तव्य-ज्ञान नष्ट हो गया है, इसी कारण हम लोगोंमें अनेक दोष उत्पन्न होगये हैं, अब हम लोग केकयीके साथ कैसे रह सकेंगी ॥२१॥ जिस केकयीने राजाका, रामका, महाबली लक्ष्मणका तथा सीताका परित्याग किया है, वह और किस-किसका परित्याग न कर सकेगी, ॥ २२ ॥ उन दसरथकी स्त्रियोंका आनन्द नष्ट हो गया था, आँसू बह रहा था, वे शोकमग्न हो रही थीं, उन लोगोंने इसी प्रकारकी बहुतसी बातें कहीं ॥ २३ ॥ नक्षत्रहीन रात्रिके समान, पतिहीन स्त्रीके समान महात्मा राजा दसरथके बिना अयोध्यानगरी श्रीहीन हो गयी ॥ २४ ॥ नगरवासियोंकी आँखोंसे आँसू बहने लगा, वहाँकी स्त्रियाँ हाहाकार करने लगीं, चौक और द्वार शून्य हो गये, उस नगरीकी शोभा पहलेके समान न रही ॥ २५ ॥ शोकसे राजाके स्वर्ग चले जाने पर और महारानियोंके पृथिवीमें ही रहने पर किरणें समेटकर सूर्य अस्ताचलपर चले गये और अन्धकारके साथ रात आयी ॥ २६ ॥ उस समय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गतप्रभा द्यौरिव भास्करं विना व्यपेतनक्षत्रगणेव शर्वरी।
पुरी बभासे रहिता महात्मना कण्ठास्रकण्ठाकुलमार्गचत्वरा ॥२८॥
नराश्च नार्यश्च समेत्य संघशो विगर्हमाणा भरतस्य मातरम्।
तदा नगर्यां नरदेवसंक्षये बभूवुरार्ता न च शर्म लेभिरे ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७

आक्रन्दिता निरानन्दा सास्रकण्ठजनाविला। अयोध्यायामवतता सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ १ ॥
व्यतीतायां तु शर्वर्यामादित्यस्योदये ततः। समेत्य राजकर्तारः सभामीयुर्द्विजातयः ॥ २ ॥
मार्कण्डेयोऽथ मौद्गल्यो वामदेवश्च कश्यपः। कात्यायनो गौतमश्च जाबालिश्च महायशाः ॥ ३ ॥
एते द्विजाः सहामात्यैः पृथग्वाचमुदीरयन्। वासिष्ठमेवाभिमुखाः श्रेष्ठं राजपुरोहितम् ॥ ४ ॥
अतीता शर्वरी दुःखं या नो वर्षशतोपमा। अस्मिन्पञ्चत्वमापन्ने पुत्रशोकेन पार्थिवे ॥ ५ ॥
स्वर्गस्थश्च महाराजो रामश्चारण्यमाश्रितः। लक्ष्मणश्चापि तेजस्वी रामेणैव गतः सह ॥ ६ ॥
उभौ भरतशत्रुघ्नौ केकयेषु परंतपौ। पुरे राजगृहे रम्ये मातामहनिवेशने ॥ ७ ॥

आये हुए राजाके मित्रोंने पुत्रके न रहनेके कारण उनका अग्नि संस्कार करना उचित नहीं समझा, इसीसे राजाके शरीरको उन लोगोंने सुरक्षित रखा, क्योंकि राजाका अब पुनः दर्शन होनेवाला नहीं था ॥ २७ ॥ सूर्यके बिना प्रभाहीन आकाशके समान, नक्षत्रहीन रात्रिके समान, राजा दशरथके बिना अयोध्यापुरी मालूम होने लगी। वहाँके मार्ग और चौक रोते हुए मनुष्योंसे भर गये ॥२८॥ स्त्रियाँ और पुरुष दल दलमें एकत्र होकर भरतकी माता केकयीकी निन्दा करने लगे। उस समय राजाके मरने पर उस नगरीमें सभी लोग दुःखी हुए, कोई भी सुखी न था ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका छाछठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६६ ॥

उस रातको अयोध्यामें सभी रोते रहे, सभी आनन्दहीन थे, सभीका गला दुःखसे भरा हुआ था, अयोध्यामें वह लम्बी रात इस प्रकार व्यतीत हुई ॥ १ ॥ रातके बीत जाने और सूर्योदय होने पर राज्यके सभी विभागोंके कार्यकर्ता और ब्राह्मण एकत्र होकर सभामें आये ॥ २ ॥ मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, कश्यप, कात्यायन, गौतम और महायशस्वी जाबालि ॥ ३ ॥ इन सब ब्राह्मणोंने अमात्योंके साथ भिन्न मत प्रकाशित किया, इस प्रकार कुछ निश्चय न हो सका, तब वे सब लोग श्रेष्ठ राजपुरोहित वसिष्ठकी ओर देखने लगे, निर्णयके लिए उनके मतकी अपेक्षा करते हुए बोले ॥ ४ ॥ पुत्रशोकसे राजा दशरथके स्वर्गगामी होनेके कारण यह दुःखकी रात सौ वर्षोंके समान भारी बीत गयी ॥ ५ ॥ महाराज स्वर्गगामी हुए, रामचन्द्रने वनमें निवास किया, तेजस्वी लक्ष्मण भी रामचन्द्रके साथही वन गये ॥ ६ ॥ भरत और शत्रुघ्न ये दोनों भी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इक्ष्वाकूणामिहाद्यैव कश्चिद्राजा विधीयताम् ।अराजकं हि नो राष्ट्रं विनाशं समवाप्नुयात् ॥ ८ ॥
नाराजके जनपदे विद्युन्माली महास्वनः । अभिवर्षति पर्जन्यो महीं दिव्येन वारिणा ॥ ९ ॥
नाराजके जनपदे बजिमुष्टिः प्रकीर्यते । नाराजके पितुः पुत्रो भार्या वा वर्तते वशे ॥१०॥
अराजके धनं नास्ति नास्ति भार्याप्यराजके । इदमत्याहितं चान्यत्कुतः सत्यमराजके ॥११॥
नाराजके जनपदे कारयन्ति सभां नराः । उद्यानानि च रम्याणि हृष्टाः पुण्यगृहाणि च॥१२॥
नाराजके जनपदे यज्ञशीला द्विजातयः । सत्राण्यन्वासते दान्ता ब्राह्मणाः संशितव्रताः॥१३॥
नाराजके जनपदे महायज्ञेषु यज्वनः । ब्राह्मणा वसुसंपूर्णा विसृजन्त्याप्तदक्षिणाः ॥१४॥
नाराजके जनपदे प्रहृष्टनटनर्तकाः । उत्सवाश्च समाजाश्च वर्धन्ते राष्ट्रवर्धनाः ॥१५॥
नाराजके जनपदे सिद्धार्था व्यवहारिणः । कथाभिरभिरज्यन्ते कथाशीलाः कथाप्रियैः ॥१६॥
नाराजके जनपदे तूद्यानानि समागताः । सायाह्ने क्रीडितुं यान्ति कुमार्यो हेमभूषिताः॥१७॥
नाराजके जनपदे धनवन्तः सुरक्षिताः । शेरते विवृतद्वाराः कृषिगोरक्षजीविनः ॥१८॥
नाराजके जनपदे वाहनैः शीघ्रवाहिभिः । नरा निर्यान्त्यरण्यानि नारीभिः सहकामिनः ॥१९॥
नाराजके जनपदे बद्धघण्टा विषाणिनः । अटन्ति राजमार्गेषु कुञ्जराः षष्टिहायनाः ॥२०॥
नाराजके जनपदे शरान्संततमस्यताम् । श्रूयते तलनिर्घोष इष्वस्त्राणामुपासने ॥२१॥

केकय देशमें अपने नानाके नगरमें सुन्दर घरमें हैं ॥ ७ ॥ इक्ष्वाकु-वंशियोंमेंका कोई आजही राजा बनाया जाना चाहिए, क्योंकि हम लोगोंका यह राष्ट्र राजाके न रहनेसे नष्ट हो जायगा ॥ ८ ॥ क्योंकि राजहीन देशमें घोर गर्जन करनेवाला विद्युन्माली नामका मेघ पृथिवीपर दिव्य जल नहीं बरसाता ॥ ९ ॥ राजहीन देशमें खेत नहीं बोये जा सकते । राजहीन देशमें पिताके अधीन पुत्र और पतिके अधीन स्त्री नहीं रहती ॥ १० ॥ राजहीन देशमें अपना धन धन नहीं है, अपनी स्त्री स्त्री नहीं है, यह बड़े भयकी बात है, फिर उस देशमें सत्य कैसे रह सकता है ॥ ११ ॥ राजहीन देशमें निर्णयके लिए मनुष्य पञ्चायत नहीं कर सकते, निश्चिन्त होकर सुन्दर बाग तथा फुलवाड़ी नहीं लगा सकते ॥१२॥ राजहीन देशमें यज्ञ करनेवाले जितेन्द्रिय और व्रतधारी ब्राह्मण यज्ञ नहीं कर सकते ॥१३॥ राजहीन देशमें बड़े यज्ञोंमें यज्ञ करनेवाले धनी ब्राह्मण भी ऋत्विजोंको शास्त्रोक्त दक्षिणा नहीं देते ॥१४॥ राजहीन देशमें नट नर्तक आदि खुशी नहीं रहते, देशको उन्नत करनेवाले उत्सव तथा सभाएँ भी नहीं होतीं ॥१५॥ राजहीन देशमें किसी विषयके लिए विवाद करनेवालोंके मनोरथ सिद्ध नहीं होते, अर्थात् उनका यथार्थ निर्णय नहीं होता, कथामें प्रेमरखने वाले कथा कहनेवालोंकी कथामें अनुराग नहीं रखते ॥ १६ ॥ राजहीन देशमें सायंकालमें कन्याएँ सुवर्णके भूषण पहन कर खेलनेके लिए नहीं जातीं ॥ १७ ॥ राजहीन देशमें धनी लोग जो कृषी और गोरक्षासे जीते हैं सुरक्षित नहीं रहते, वे द्वार खोलकर रातको अपने घरोंमें नहीं सो सकते ॥ १८ ॥ राजहीन देशमें कामी पुरुष स्त्रियोंके साथ शीघ्र चलनेवाले वाहनोंपर चढ़कर जङ्गलमें नहीं जा सकते ॥ १९ ॥ राजहीन देशमें दँतैले साठ वर्षके हाथी घंटा बाँधकर सड़कोंपर नहीं चलते ॥ २० ॥ राजहीन देशमें लक्ष्यपर शर फेंकनेवालोंका बाणविद्याके अभ्यासके समयका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नाराजके जनपदे वणिजो दूरगामिनः । गच्छन्ति क्षेममध्वानं बहुपण्यसमाचिताः ॥२२॥
नाराजके जनपदे चरत्येकचरो वशी । भावयन्नात्मनात्मानं यत्र सायंगृहो मुनिः ॥२३॥
नाराजके जनपदे योगक्षेमः प्रवर्तते । न चाप्यराजके सेना शत्रून्विषहते युधि ॥२४॥
नाराजके जनपदे हृष्टैः परमवाजिभिः । नराः संयान्ति सहसा रथैश्च प्रतिमण्डिताः ॥२५॥
नाराजके जनपदे नराः शास्त्रविशारदाः । संवदन्तोपतिष्ठन्ते वनेषूपवनेषु वा ॥२६॥
नाराजके जनपदे माल्यमोदकदक्षिणाः । देवताभ्यर्चनार्थाय कल्प्यन्ते नियतैर्जनैः ॥२७॥
नाराजके जनपदे चन्दनागुरुरूषिताः । राजपुत्रा विराजन्ते वसन्ते इव शालिनः ॥२८॥
यथा ह्यनुदका नद्यो यथा वाप्यतृणं वनम् । अगोपाला यथा गावस्तथा राष्ट्रमराजकम् ॥२९॥
ध्वजो रथस्य प्रज्ञानं धूमो ज्ञानं विभावसोः । तेषां यो नो ध्वजो राजा स देवत्वमितो गतः ॥३०॥
नाराजके जनपदे स्वकं भवति कस्यचित् । मत्स्या इव जना नित्यं भक्षयन्ति परस्परम् ॥३१॥
ये हि संभिन्नमर्यादा नास्तिकाश्छिन्नसंशयाः । तेऽपि भावाय कल्पन्ते राजदण्डनिपीडिताः ॥३२॥
यथा दृष्टिः शरीरस्य नित्यमेव प्रवर्तते । तथा नरेन्द्रो राष्ट्रस्य प्रभवः सत्यधर्मयोः ॥३३॥
राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम् । राजा माता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम् ॥३४॥
यमो वैश्रवणः शक्रो वरुणश्च महाबलः । विशिष्यन्ते नरेन्द्रेण वृत्तेन महता ततः ॥३५॥

ताल ठोकनेका शब्द नहीं सुनायी पड़ता ॥ २१ ॥ राजहीन देशमें बहुत दूर जानेवाले बनिए बेचनेकी बहुत सी वस्तु लेकर कुशलपूर्वक मार्गमें नहीं जा सकते ॥ २२ ॥ राजहीन देशमें अकेला चलनेवाला जितेन्द्रिय मुनि अन्तःकरणसे परमात्माका चिन्तन करता हुआ जहाँ उसे सन्ध्या होती है वहीं निवास करता है ॥ २३ ॥ राजहीन देशमें मनुष्यको लाभ नहीं होता और न उसकी वस्तुओंकी रक्षाही होती है, अराजक देशमें सेना शत्रुओंका सामना भी नहीं कर सकती ॥ २४ ॥ राजहीन देशमें भूषित होकर मनुष्य बलवान घोड़ोंपर या रथपर चढ़कर नहीं चल सकते ॥ २५ ॥ राजहीन देशमें शास्त्रज्ञ मनुष्य वन तथा उपवनमें शास्त्रार्थ करते हुए आपसमें नहीं मिलते ॥ २६ ॥ राजाहीन देशमें मनको वशमें रखनेवाले मनुष्योंके द्वारा देवताकी पूजाके लिए माला लड्डू और दक्षिणा नहीं दी जाती ॥ २७ ॥ राजहीन देशमें चन्दन अगरूसे भूषित राजपुत्र वसन्तमें शस्यके समान नहीं शोभित होते ॥ २८ ॥ बिना जलकी नदियाँ, बिना घासका वन और बिना गोपालकी गौ जैसी होती हैं, वैसीही राजहीन राष्ट्र होता है. ॥ २९ ॥ रथ ध्वजाके द्वारा पहचाना जाता है, धूमसे अग्निका ज्ञान होता है, हम लोगोंका ज्ञान जिस राजासे होता था, वे राजा यहाँसे स्वर्ग चले गये ॥ ३० ॥ राजहीन राष्ट्रमें मनुष्यका कुछ भी अपना नहीं होता। मछलियोंके समान मनुष्य परस्पर खा जाते हैं ॥ ३१ ॥ वर्णाश्रमकी मर्यादा जिन्होंने तोड़ दी है जिन्हें पहले राजदण्ड दिया जाता था, वे नास्तिक शंकारहित होकर प्रभावशाली हो जाते हैं ॥३२॥ जिस प्रकार दृष्टि शरीरके हित करने और अहित दूरकरनेमें सदा लगी रहती है, उसी प्रकार राजा राष्ट्रके सत्य और धर्मका प्रवर्तक है ॥ ३३ ॥ राजा सत्य है, धर्म है, राजा कुलवानोंका कुल है, राजा माता पिता है, राजा मनुष्योंका हितकारी है ॥ ३४ ॥ बड़े चरित्र-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अहो तम इवेदं स्यान्न प्रज्ञायेत किंचन । राजा चेन्न भवेल्लोके विभजन्साध्वसाधुनी ॥३६॥
जीवत्यपि महाराजे तवैव वचनं वयम् । नातिक्रमामहे सर्वे वेलां प्राप्येव सागरः ॥३७॥
स नः समीक्ष्य द्विजवर्य वृत्तं नृपं विना राष्ट्रमरण्यभूतम् ।
कुमारमिक्ष्वाकुसुतं तथान्यं त्वमेव राजानमिहाभिषेचय ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥६७॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ६८

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठः प्रत्युवाच ह । मित्रामात्यजनान्सर्वान्ब्राह्मणांस्तानिदं वचः॥ १ ॥
यदसौ मातुलकुले दत्तराज्यः परं सुखी । भरतो वसति भ्रात्रा शत्रुघ्नेन मुदान्वितः ॥ २ ॥
तच्छीघ्रं जवना दूता गच्छन्तु त्वरितं हयैः । आनेतुं भ्रातरौ वीरौ किं समीक्षामहे वयम् ॥ ३ ॥
गच्छन्त्विति ततः सर्वे वसिष्ठं वाक्यमब्रुवन् । तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥
एहि सिद्धार्थ विजय जयन्ताशोकनन्दन । श्रूयतामितिकर्तव्यं सर्वानेव ब्रवीमि वः ॥ ५ ॥
पुरं राजगृहं गत्वा शीघ्रं शीघ्रजवैर्हयैः । त्यक्तशोकैरिदं वाच्यः शासनाद्भरतो मम ॥ ६ ॥
पुरोहितस्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः । त्वरमाणश्च निर्याहि कृत्यमात्ययिकं त्वया ॥ ७ ॥

बलसे युक्त राजासे यम, कुबेर, इन्द्र और महाबली इन्द्र भी छोटेही हैं ॥ ३५ ॥ साधु और असाधु अच्छे या बुरेका विभाग करनेवाला राजा यदि लोकमें न होता तो अन्धकारयुक्त दिनके समान कुछ भी मालुम न पड़ता ॥ ३६ ॥ राजाके जीवन कालमें भी हम लोग आपकी बातोंका उल्लङ्घन नहीं करते थे, जिस प्रकार समुद्र तटका अतिक्रमण नहीं करता ॥ ३७ ॥ अतएव द्विजश्रेष्ठ वसिष्ठ, आपके साथ हम लोगोंका जो व्यवहार है उसे देखकर, तथा राजाके बिना वन बना हुआ इस देशको देखकर, ईक्ष्वाकुवंशी कुमारको तथा किसी दूसरेको आपही यहाँ राजा बनावें ॥३८॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका सड़सठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६७ ॥

मार्कण्डेय आदि ब्राह्मणोंके वचन सुनकर वसिष्ठने मित्रों, अमात्यों तथा ब्राह्मणोंको ऐसा उत्तर दिया ॥ १ ॥ जिन भरतको राजाने राज्य दिया है, वे भरत इस समय मामाके घर भाईके साथ सुखपूर्वक निवास करते हैं ॥ २ ॥ इस कारण शीघ्रही वेगवाले दूत दोनां वीर भाइयोंको बुला लानेके लिए तेज घोड़ोंपर जायँ, इसमें हम लोगोंको विचार क्या करना है अर्थात् राजाने ही भरतको राज्य दिया है ॥ ३ ॥ सब लोगोंने कहा कि दूत भेजे जाँय । उनके वचन सुनकर वसिष्ठ पुनः बोले ॥ ४ ॥ सिद्धार्थ, विजय, जयन्त, अशोक, नन्दन, आप सब लोग अपना कर्तव्य सुनें, मैं आप सब लोगोंसे कह रहा हूँ ॥ ५ ॥ शीघ्र चलनेवाले घोड़ोंके द्वारा शीघ्र राजगृह नामक नगरमें जाकर और शोक त्यागकर मेरी आज्ञासे भरतसे यह कहना ॥ ६ ॥ पुरोहितने तुमको कुशल कहा है, सब मन्त्रियोंने भी कुशल कहा है, शीघ्रतापूर्वक यहाँसे चलो, तुमसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मा चास्मै प्रोषितं रामं मा चास्मै पितरं मृतम्। भवन्तः शंसिषुर्गत्वा राघवाणामितः क्षयम् ॥ ८ ॥
कौशेयानि च वस्त्राणि भूषणानि वराणि च। क्षिप्रमादाय राज्ञश्च भरतस्य च गच्छत ॥ ९ ॥
दत्तपथ्यशना दूता जग्मुः स्वं स्वं निवेशनम्। केकयांस्ते गमिष्यन्तो हयानारुह्य संमतान् ॥१०॥
ततः प्रास्थानिकं कृत्वा कार्यशेषमनन्तरम्। वसिष्ठेनाभ्यनुज्ञाता दूताः संत्वरितं ययुः ॥११॥
न्यन्तेनापरतालस्य प्रलम्बस्योत्तरं प्रति। निषेवमाणास्ते जग्मुर्नदीं मध्येन मालिनीम् ॥१२॥
ते हास्तिनपुरे गङ्गां तीर्त्वा प्रत्यङ्मुखा ययुः। पञ्चालदेशमासाद्य मध्येन कुरुजाङ्गलम् ॥१३॥
सरांसि च सुफुल्लानि नदीश्च विमलोदकाः। निरीक्षमाणा जग्मुस्ते दूताः कार्यवशाद्द्रुतम्॥१४॥
ते प्रसन्नोदकां दिव्यां नानाविहगसेविताम्। उपातिजग्मुर्वेगेन शरदण्डां जलाकुलाम् ॥१५॥
निकूलवृक्षमासाद्य दिव्यं सत्योपयाचनम्। अभिगम्याभिवाद्यं तं कुलिङ्गां प्राविशन्पुरीम् ॥१६॥
आभिकालं ततः प्राप्य तेजोभिभवनाच्च्युताः। पितृपैतामहीं पुण्यां तेरुरिक्षुमतीं नदीम् ॥१७॥
अवेक्ष्याञ्जलिपानाँश्च ब्राह्मणान्वेदपारगान्। ययुर्मध्येन बाल्हीकान्सुदामानं च पर्वतम् ॥१८॥
विष्णोः पदं प्रेक्षमाणा विपाशां चापि शाल्मलीम्। नदीर्वापीतटाकानि पल्वलानि सरांसि च ॥१९॥
पश्यन्तो विविधाँश्चापि सिंहान्व्याघ्रान्मृगान्द्विपान्। ययुः पथातिमहता शासनं भर्तुरीप्सवः ॥२०॥

आवश्यक काम है ॥ ७ ॥ तुम लोग भरतसे यह न कहना कि रामचन्द्र वन गये हैं, उनसे पिताकी मृत्युकी भी बात मत कहना और इन कारणोंसे रघुवंशियोंका जो सर्वनाश होगया है वह भी न कहना ॥ ८ ॥ राजा केकयराजके लिए और भरतके लिए रेशमी वस्त्र तथा उत्तम भूषण लेकर तुम लोग शीघ्र जाओ ॥ ९ ॥ केकय देशको जानेवाले वे दूत घोड़ोंपर चढ़कर मार्गमें खाने आदिकी सामग्री लेकर अपने-अपने घर गये ॥ १० ॥ प्रस्थानके समयके मङ्गल कृत्य करके तथा यात्रामें उपयोगी चीजें लेकर पुनः वसिष्ठकी आज्ञा लेकर शीघ्रतापूर्वक चले ॥ ११ ॥ अपरताल नामक देशके दक्षिणकी ओरसे तथा प्रलम्ब नामक देशके उत्तरकी ओरसे अर्थात् दोनों देशोंके बीचसे मालिनी नदीके तीर-तीर चले ॥ १२ ॥ वे दूत हस्तिनापुरमें गङ्गा पार करके पश्चिमकी ओर चले, वहाँसे पाञ्चाल देशमें जाकर कुरुजाङ्गल देशके बीचसे वे चले ॥ १३ ॥ प्रफुल्ल कमलवाले तालाब और निर्मल जलवाली नदियाँ देखते हुए वे कार्यवश शीघ्रतापूर्वक चले ॥ १४ ॥ वे प्रसन्न जलवाली, नाना पक्षियोंसे सेवित और जलसे भरी शरदण्डा नामकी नदीके तीर गये ॥१५॥ वे शरदण्डाके पश्चिम तीरवाले दिव्य वृक्षके पास गये, इस वृक्षसे जो प्रार्थना की जाती है वह सत्य होती है, उस वृक्षको प्रणाम करके वे कुलिङ्गा नामकी नगरीमें गये ॥ १६ ॥ तेजोभिभवन नामक स्थानसे चलकर वे अभिकाल नामक गाँवमें पहुँचे, तदनन्तर उन लोगोंने इक्ष्वाकुवंशियोंके पिता पितामहोंकी पवित्र इक्षुमती नदीको पार किया ॥ १७ ॥ अञ्जलि भर जल पीकर तपस्या करनेवाले ब्राह्मणोंको देखकर बाल्हीक देशके मध्यसे होते हुए वे सुदामा नामक पर्वतपर गये ॥ १८ ॥ विष्णुके चरणाङ्कित स्थान, विपाशा नदी, उसके तीरका शाल्मली (सेमर)-का वृक्ष, नदी, बावली, तलाब, छोटे तलाव, झीलको तथा ॥ १९ ॥ अनेक प्रकारके सिंह, व्याघ्र, मृग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ते श्रान्तवाहना दूता विकृष्टेन सता पथा । गिरिव्रजं पुरवरं शीघ्रमासेदुरञ्जसा ॥२१॥
भर्तुः प्रियार्थं कुलरक्षणार्थं भर्तुश्च वंशस्य परिग्रहार्थम् ।
अहेडमानास्त्वरया स्म दूता रात्र्यां तु ते तत्पुरमेव याताः ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डेऽष्टषष्टितमः सर्गः ॥६८॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९

यामेव रात्रिं ते दूताः प्रविशन्ति स्म तां पुरीम् । भरतेनापि तां रात्रिं स्वप्नो दृष्टोऽयमप्रियः ॥ १ ॥
व्युष्टामेव तु तां रात्रिं दृष्ट्वा तं स्वप्नमप्रियम् । पुत्रो राजाधिराजस्य सुभृशं पर्यतप्यत ॥ २ ॥
तप्यमानं तमाज्ञाय वयस्याः प्रियवादिनः । आयासं विनयिष्यन्तःसभायां चक्रिरे कथाः ॥ ३ ॥
वादयन्ति तदा शान्तिं लासयन्त्यपि चापरे । नाटकान्यपरे स्माहुर्हास्यानि विविधानि च ॥ ४ ॥
स तैर्महात्मा भरतः साखिभिः प्रियबोधिभिः । गोष्ठीहास्यानि कुर्वद्भिर्न प्राहृष्यत राघवः ॥ ५ ॥
तमब्रवीत्प्रियसखो भरतं सखिभिर्वृतम् । सुहृद्भिः पर्युपासीनः किं सखे नानुमोदसे ॥ ६ ॥
एवं ब्रुवाणं सुहृदं भरतः प्रत्युवाच ह । शृणु त्वं यन्निमित्तं मे दैन्यमेतदुपागतम् ॥ ७ ॥
स्वप्ने पितरमद्राक्षं मलिनं मुक्तमूर्धजम् । पतन्तमद्रिशिखरात्कलुषे गोमये ह्रदे ॥ ८ ॥

और हाथियोंको देखते हुए, स्वामीकी आज्ञा पूर्ण करनेके लिए बहुत लम्बे रास्तेसे चले ॥ २० ॥ वे दूत निर्विघ्नतापूर्वक लम्बे रास्तेको तय करते हुए शीघ्रता पूर्वक गिरिव्रज नामक उत्तम नगरमें पहुँचे । उनके घोड़े थक गये थे ॥२१॥ वसिष्ठकी प्रसन्नताके लिए, प्रजाकी रक्षाके लिये तथा दसरथके वंशजके राज्य ग्रहण करनेके लिए आदरपूर्वक शीघ्रतासे वे दूत उसी रातको उस नगरमें गये ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके आयोध्याकाण्डका अड़सठवां सर्ग समाप्त ॥ ६८ ।

उन दूतोंने जिस रातको उस गिरिव्रज नामक नगरीमें प्रवेश किया, उसी रातको भरतने एक अशुभ स्वप्न देखा ॥ १ ॥ प्रातःकाल होते ही उस रातको देखे हुए अशुभ स्वप्नसे राजाधिराज दसरथके पुत्र बहुत ही दुःखी हुए ॥ २ ॥ भरत दुःखी हैं यह जानकर उनके प्रियवादी मित्र उनको दुःख दूर करनेके लिये तरह-तरहकी कथाएँ कहने लगे ॥ ३ ॥ भरतकी शान्तिके लिए कई लोग वीणा बजाने लगे, कई नाच कराने लगे, कई हास्यरस प्रधान अनेक नाटक कहने लगे ॥४॥ उन प्रिय करनेवाले मित्रोंके द्वारा गोष्ठीके उचित हँसी करनेपर भी महात्मा भरत प्रसन्न नहीं हुए ॥ ५ ॥ मित्रोंसे युक्त भरतसे उनके एक प्रिय मित्रने कहा—आप मित्रोंके साथ बैठे हैं, फिर भी प्रसन्न क्यों नहीं हैं ॥ ६ ॥ मित्रके ऐसा कहनेपर भरतने उत्तर दिया—सुनो, जिस कारणसे मैं ऐसा दुःखी हूँ ॥ ७ ॥ मैंने स्वप्नमें अपने पिताको देखा है, वे मुरझाये हुए थे, उनके बाल खुले

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्लवमानश्च मे दृष्टः स तस्मिन्गोमये ह्रदे । पिबन्नञ्जलिना तैलं हसन्निव मुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥
ततस्तिलौदनं भुक्त्वा पुनः पुनरधःशिराः । तैलेनाभ्यक्तसर्वाङ्गस्तैलमेवान्वगाहत ॥१०॥
स्वप्नेऽपि सागरं शुष्कं चन्द्रं च पतितं भुवि । उपरुद्धां च जगतीं तमसेव समावृताम् ॥११॥
औपवाह्यस्य नागस्य विषाणं शकलीकृतम् । सहसा चापि संशान्ता ज्वलिता जातवेदसः ॥१२॥
अवदीर्णां च पृथिवीं शुष्काँश्च विविधान्द्रुमान् । अहं पश्यामि विध्वस्तान्सधूमाँश्चैव पर्वतान् ॥१३॥
पीठे काष्णायसे चैव निषण्णं कृष्णवाससम् । प्रहरन्ति स्म राजानं प्रमदाः कृष्णपिङ्गलाः ॥१४॥
त्वरमाणश्च धर्मात्मा रक्तमाल्यानुलेपनः । रथेन खरयुक्तेन प्रयातो दक्षिणामुखः ॥१५॥
प्रहसन्तीव राजानं प्रमदा रक्तवासिनी । प्रकर्षन्ती मया दृष्टा राक्षसी विकृतानना ॥१६॥
एवमेतन्मया दृष्टमिमां रात्रिं भयावहाम् । अहं रामोऽथवा राजा लक्ष्मणो वा मरिष्यति ॥१७॥
नरो यानेन यः स्वप्ने खरयुक्तेन याति हि । अचिरात्तस्य धूम्राग्रं चितायां संप्रदृश्यते ॥१८॥
एतन्निमित्तं दीनोऽहं न वचः प्रतिपूजये । शुष्यतीव च मे कण्ठो न स्वस्थमिव मे मनः ॥१९॥
न पश्यामि भयस्थानं भयं चैवोपधारये । भ्रष्टश्च स्वरयोगो मे छाया चापगता मम ।
जुगुप्स इव चात्मानं न च पश्यामि कारणम् ॥२०॥

हुए थे, पर्वतके शिखरसे गोबर भरे हुए तालाबमें वे गिर पड़े हैं ॥ ८ ॥ वे उस गोबरके तालाबमें तैरने लगे, वे अंजलिसे तेल पीते थे और बार-बार हँसते थे ॥ ९ ॥ पुनः तिल और चावल उन्होंने खाया, उनका सिर नीचे हो गया, उनके समस्त शरीरमें तेल लगाया गया और वे तेलहीमें डुबाए गये ॥ १० ॥ स्वप्नमें मैंने देखा कि समुद्र सूख गया है, चन्द्रमा पृथिवीपर गिर पड़े हैं, समस्त संसार राक्षसोंसे पीड़ित हुआ है और अन्धकारसे ढँक गया है ॥११॥ राजाकी सवारीके हाथीके दाँत चूर-चूर हो गये हैं, धधकती हुई आग सहसा बुझ गयी है ॥ १२ ॥ मैंने देखा है कि पृथिवी फट गयी है, बहुतसे वृक्ष सूख गये हैं, पर्वत गिर गये हैं और उनमेंसे धूँआ निकल रहा है ॥ १३ ॥ मैंने देखा है कि लोहेके पीढ़ापर काले वस्त्र पहनकर मेरे पिता बैठे हैं और काली तथा धूसर रंगकी स्त्रियाँ उन्हें मार रही हैं ॥ १४ ॥ धर्मात्मा राजा लाल माला तथा लाल चन्दन धारण किये हुए हैं और गधेके रथपर बैठकर शीघ्रतापूर्वक दक्षिणकी ओर गये हैं ॥ १५ ॥ मैंने स्वप्नमें देखा है कि लाल वस्त्र पहने हुए भयानक मुखवाली एक राक्षसी राजाको खींच रही है और वह हँस रही है ॥ १६ ॥ इस भयानक रात्रिको मैंने ऐसे स्वप्न देखे हैं। मैं, रामचन्द्र, राजा दसरथ या लक्ष्मण इनमेंसे कोई न कोई अवश्य मरेगा ॥ १७ ॥ स्वप्नमें गधेके रथपर चढ़कर जाता हुआ जो मनुष्य दीख पड़ा, शीघ्र ही उसकी चितासे धूँआ उठता दिखायी पड़ता है अर्थात् वह मर जाता है ॥ १८ ॥ इसी कारण मैं दुःखी हूं, आप लोगोंकी बातोंका आदर मैं नहीं करता । मेरा गला सूख रहा है, मन भी चञ्चल है ॥ १९ ॥ भयका कोई कारण नहीं है, फिर भी मुझे भय मालूम पड़ता है, मेरी आवाज धीमी पड़ गयी है, मेरी कान्तिभी नष्ट हो गयी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इमां च दुःस्वप्नगतिं निशम्य हि त्वनेकरूपामवितर्कितां पुरा ।
भयं महत्तद्धृदयान्न याति मे विचिन्त्य राजानमचिन्त्यदर्शनम् ॥२१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ७०

भरते ब्रुवति स्वप्नं दूतास्ते क्लान्तवाहनाः । प्रविश्यासह्यपरिखं रम्यं राजगृहं पुरम् ॥ १ ॥
समागम्य च राज्ञा ते राजपुत्रेण चार्चिताः । राज्ञः पादौ गृहीत्वा च तमूचुर्भरतं वचः ॥ २ ॥
पुरोहितस्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः । त्वरमाणश्च निर्याहि कृत्यमात्ययिकं त्वया ॥ ३ ॥
इमानि च महार्हाणि वस्त्राण्याभरणानि च । प्रतिगृह्य विशालाक्ष मातुलस्य च दापय ॥ ४ ॥
अत्र विंशतिकोट्यस्तु नृपतेर्मातुलस्य ते । दशकोट्यस्तु संपूर्णास्तथैव च नृपात्मज ॥ ५ ॥
प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं स्वनुरक्तः सुहृज्जने । दूतानुवाच भरतः कामैः संप्रतिपूज्य तान् ॥ ६ ॥
कच्चित्स कुशली राजा पिता दशरथो मम । कच्चिदारोग्यता रामे लक्ष्मणे च महात्मनि ॥ ७ ॥
आर्या च धर्मनिरता धर्मज्ञा धर्मवादिनी । अरोगा चापि कौसल्या माता रामस्य धीमतः ॥ ८ ॥
कच्चित्सुमित्रा धर्मज्ञा जननी लक्ष्मणस्य या । शत्रुघ्नस्य च वीरस्य अरोगा चापि मध्यमा ॥ ९ ॥

है। अपनेको धिक्कार दे रहा हूं, पर कारण कुछ भी दीख नहीं पड़ता ॥ २० ॥ ऐसे ही अनेक दुःस्वप्न मैंने देखे हैं, पहले इनके संबन्धमें मैंने कुछ भी नहीं सोचा था, इसी कारण मेरे हृदयमें बड़ा भारी भय बैठ गया है, मैं सोच रहा हूँ कि राजाके दर्शन अब न होंगे ॥ २१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका उनहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६९ ॥

भरत इस प्रकार अपने स्वप्नका वृत्तान्त कह रहे थे, उसी समय दूत उस रमणीय नगरमें, खाईके कारण जिसमें प्रवेश करना कठिन है-आये, उन दूतोंके वाहन थके हुए थे ॥ १ ॥ आये हुए उन दूतोंका राजा और राजपुत्र भरतने सत्कार किया । वे राजाको प्रणाम करके भरतसे बोले ॥ २ ॥ पुरोहित वसिष्ठने तुम्हारी कुशल पूछी है और सब मन्त्रियोंने कुशल पूछी है, तुम शीघ्र यहाँसे चलो, तुमसे आवश्यक काम है ॥ ३ ॥ इन बहुमूल्य वस्त्रों और भूषणोंको लेकर तुम अपने मामाको दिलवा दो ॥४॥ इन वस्तुओंमेंसे बीस करोड़ राजा (आपके नाना) के लिये हैं और दस करोड़ आपके मामाके लिये ॥ ५ ॥ दूतोंका दिया हुआ वह सब वस्त्र आभूषण आदि लेकर भरतने अपने हितकारी मामा आदिको दे दिये, दूतोंको आवश्यक वस्तुओंसे सन्तुष्ट करके वे उनसे बोले ॥ ६ ॥ मेरे पिता राजा दसरथ तो कुशलसे हैं, महात्मा राम और लक्ष्मण नीरोग तो हैं ॥७॥ धर्म करनेवाली, धर्म जाननेवाली और धर्मका उपदेश देनेवाली आर्या कौसल्या, जो बुद्धिमान रामकी माता हैं, नीरोग तो हैं ॥ ८ ॥ धर्म जाननेवाली लक्ष्मण और शत्रुघ्नकी माता मेरी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आत्मकामा सदा चण्डी क्रोधना प्राज्ञमानिनी । अरोगा चापि मे माता कैकेयी किमुवाच ह ॥१०॥
एवमुक्तास्तु ते दूता भरतेन महात्मना । ऊचुः संप्रश्रितं वाक्यमिदं तं भरतं तदा ॥११॥
कुशलास्ते नरव्याघ्र येषां कुशलमिच्छसि । श्रीश्च त्वां वृणुते पद्मा युज्यतां चापि ते रथः ॥१२॥
भरतश्चापि तान्दूतानेवमुक्तोऽभ्यभाषत । आपृच्छेऽहं महाराजं दूताः संत्वरयन्ति माम्॥१३॥
एवमुक्त्वा तु तान्दूतान्भरतः पार्थिवात्मजः । दूतैः संचोदितो वाक्यं मातामहमुवाच ह ॥१४॥
राजन्पितुर्गमिष्यामि सकाशं दूतचोदितः । पुनरप्यहमेष्यामि यदा मे त्वं स्मरिष्यसि ॥१५॥
भरतेनैवमुक्तस्तु नृपो मातामहस्तदा । तमुवाच शुभं वाक्यं शिरस्याघ्राय राघवम् ॥१६॥
गच्छ तातानुजाने त्वां कैकेयी सुप्रजास्त्वया । मातरं कुशलं ब्रूयाः पितरं च परंतप ॥१७॥
पुरोहितं च कुशलं ये चान्ये द्विजसत्तमाः । तौ च तात महेष्वासा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥१८॥
तस्मै हस्त्युत्तमांश्चित्रान्कम्बलानजिनानि च । सत्कृत्य केकयो राजा भरताय ददौ धनम् ॥१९॥
अन्तःपुरेऽतिसंवृद्धान्व्याघ्रवीर्यबलोपमान् । दंष्ट्रायुक्तान्महाकायाञ्शुनश्चोपायनं ददौ ॥२०॥
रुक्मनिष्कसहस्रे द्वे षोडशाश्वशतानि च । सत्कृत्य केकयीपुत्रं केकयो धनमाविशन् ॥२१॥
तदामात्यानभिप्रेतान्विश्वास्याँश्च गुणान्वितान् । ददावश्वपतिः शीघ्रं भरतायानुयायिनः ॥२२॥
ऐरावतानैन्द्रशिरान्नागान्वै प्रियदर्शनान् । खराञ्शीघ्रान्सुसंयुक्तान्मातुलोऽस्मै धनं ददौ ॥२३॥

मझली माँ सुमित्रा तो नीरोग हैं ॥ ९ ॥ अपना मनोरथ साधनेवाली, सदा क्रोधसे भरी रहनेवाली और अपनेको बुद्धिमती समझनेवाली मेरी माता केकयी नीरोग तो हैं, उन्होंने क्या कहा है ॥ १० ॥ महात्मा भरतके ऐसा पूछनेपर वे दूत विनयपूर्वक भरतसे यह वचन बोले ॥ ११ ॥ हे नरश्रेष्ठ, वे सब कुशलसे हैं जिनका कुशल तुम चाहते हो, कमलहस्ता लक्ष्मी तुम्हारा वरण कर रही हैं, तुम रथ जुतवाओ ॥ १२ ॥ दूतोंके ऐसा कहनेपर भरतने उनसे कहा कि मैं महाराजसे आज्ञा लेता हूँ, उनसे कहता हूँ कि दूत मुझे शीघ्र चलनेके लिए कह रहे हैं ॥ १३ ॥ राजकुमार भरत दूतोंसे ऐसा कहकर, दूतोंकी प्रेरणासे अपने नानासे इस प्रकार बोले ॥ १४ ॥ राजन्, दूतोंके कहनेसे मैं अपने पिताके पास जाता हूँ, जब आप मेरा स्मरण करेंगे, मुझे बुलावेंगे तब पुनः मैं आऊँगा ॥ १५ ॥ भरतके ऐसा कहनेपर भरतके नाना केकयराज उनका सिर सूँघकर यह शुभ वचन उनसे बोले ॥ १६ ॥ तात, जाओ, मैं तुम्हे जानेकी आज्ञा देता हूं, केकयी तुमसे सुपुत्रवाली है। शत्रुतापन, अपने पितासे और अपनी मातासे यहाँकी कुशल कहना, ॥ १७ ॥ पुरोहित वसिष्ठसे कुशल कहना, अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे भी कुशल कहना, महाधनुर्धारी दोनों भाई राम और लक्ष्मणसे भी यहाँकी कुशल कहना ॥ १८ ॥ केकयराजने भरतका सत्कार करके उत्तम हाथी, सुन्दर कम्बल, मृग आदिके चर्म तथा धन उनको दिये ॥ १९ ॥ अन्तःपुरमें बड़े यत्नसे पाले गये बाघके समान पराक्रमी और बलवान दाँतवाले बड़े बड़े कुत्ते उन्होंने भरतको भेंट में दिये ॥२०॥ दो हजार सोनेका निष्क और सोलह सौ घोड़े सत्कारपूर्वक केकयीपुत्र भरतको केकय राजाने दिये ॥ २१ ॥ अपने प्रिय विश्वासी और गुणी सचिवोंको भरतके साथ जानेके लिए राजा अश्वपतिने भेजा ॥ २२ ॥ भरतके मामाने उन्हें ऐरावत वंशके तथा इन्द्रसिर देशके हाथी और शिक्षित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स दत्तं केकयेन्द्रेण धनं तन्नाभ्यनन्दत । भरतः केकयीपुत्रो गमनत्वरया तदा ॥२४॥
बभूव ह्यस्य हृदये चिन्ता सुमहती तदा । त्वरया चापि दूतानां स्वप्नस्यापि च दर्शनात् ॥२५॥
स स्ववेश्माभ्यतिक्रम्य नरनागाश्वसंकुलम् । प्रपेदे सुमहच्छ्रीमान्राजमार्गमनुत्तमम् ॥२६॥
अभ्यतीत्य ततोऽपश्यदन्तःपुरमनुत्तमम् । ततस्तद्भरतः श्रीमानाविवेशानिवारितः ॥२७॥
स मातामहमापृच्छ्य मातुलं च युधाजितम् । रथमारुह्य भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ ॥२८॥
रथान्मण्डलचक्रांश्च योजयित्वा परं शतम् । उष्ट्रगोऽश्वखरैर्भृत्या भरतं यान्तमन्वयुः ॥२९॥

बलेन गुप्तो भरतो महात्मा सहार्यकस्यात्मसमैरमात्यैः ।
आदाय शत्रुघ्नमपेतशत्रुर्गृहाद्ययौ सिद्ध इवेन्द्रलोकात् ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ७१

स प्राङ्मुखो राजगृहादभिनिर्याय वीर्यवान् । ततःसुदामां द्युतिमान्संतीर्यावेक्ष्य तां नदीम् ॥ १ ॥
ह्लादिनीं दूरपारां च प्रत्यक्स्रोतस्तरंगिणीम् । शतद्रुमतरच्छ्रीमान्नदीमिक्ष्वाकुनन्दनः ॥ २ ॥
ऐलधाने नदीं तीर्त्वा प्राप्य चापरपर्वतान् । शिलामाकुर्वतीं तीर्त्वा आग्नेयं शल्यकर्षणम् ॥ ३ ॥

तथा तेज चलनेवाले खच्चर दिये ॥ २३ ॥ जानेकी जल्दीके कारण केकयीपुत्र भरत केकयराजके दिये हुए उस धनसे प्रसन्न नहीं हुए ॥ २४ ॥ उस समय भरतके हृदयमें बड़ी चिन्ता हो गयी थी, क्योंकि एक तो दूत चलनेकी शीघ्रता कर रहे थे और दूसरे उन्होंने दुःस्वप्न देखा था ॥ २५ ॥ मनुष्य, हाथी और घोड़ोंसे भरे हुए उस राजमहलसे निकलकर श्रीमान् भरत विशाल और उत्तम सड़कपर आये ॥ २६ ॥ उस सड़कको पारकर भरतने उत्तम रनिवासको देखा, तदनन्तर श्रीमान् भरतने बिना रोक-टोकके उस राजमहलमें प्रवेश किया ॥ २७ ॥ अपने नाना तथा मामा युधाजितसे पूछकर शत्रुघ्नके साथ रथपर चढ़कर चले ॥ २८ ॥ गोल पहियावाले सैकड़ों रथोंमें ऊँट, घोड़े तथा खच्चर जोतकर भरतके भृत्य उनके पीछे-पीछे चले ॥ २९ ॥ नानाकी भेजी हुई सेनासे रक्षित भरत नानाके समान उनके सचिवोंके साथ शत्रुघ्नको लेकर नानाके घरसे चले, जैसे इन्द्रलोकसे सिद्ध चलते हों ॥ ३० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका सत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७० ॥

राजगृह नामक नगरसे चलकर पराक्रमी भरत पूर्वकी ओर चले । उन्होंने सुदामा नामकी नदीको पार किया और उसकी शोभा देखी ॥ १ ॥ चौड़े पारवाली तथा पश्चिमकी ओर बहने वाली ह्लादिनी नदीको पारकर इक्ष्वाकुनन्दन भरतने शतद्रु नदीको पार किया ॥ २ ॥ ऐलधान नामक गाँवके पासवाली नदीको पारकर भरत अपरपर्वत नामक प्रान्तमें आये, वहाँकी शिला

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सत्यसंधः शुचिर्भूत्वा प्रेक्षमाणः शिलावहाम् । अभ्यगात्स महाशैलान्वनं चैत्ररथं प्रति ॥ ४ ॥
सरस्वतीं च गङ्गां च युग्मेन प्रतिपद्य च । उत्तरान्वीरमत्स्यानां भारुण्डं प्राविशद्वनम् ॥ ५ ॥
वेगिनीं च कुलिङ्गाख्यां ह्लादिनीं पर्वतावृताम् । यमुनां प्राप्य संतीर्णो बलमाश्वासयत्तदा ॥ ६ ॥
शीतीकृत्वा तु गात्राणि क्लान्तानाश्वास्य वाजिनः । तत्र स्नात्वा च पीत्वा च प्रायादादाय चोदकम् ॥ ७ ॥
राजपुत्रो महारण्यमनभीक्ष्णोपसेवितम् । भद्रो भद्रेण यानेन मारुतः खमिवात्यगात् ॥ ८ ॥
भागीरथीं दुष्प्रतरां सोऽशुधाने महानदीम् । उपायाद्राघवस्तूर्णं प्राग्वटे विश्रुते पुरे ॥ ९ ॥
स गङ्गां प्राग्वटे तीर्त्वा समयात्कुटिकोष्टिकाम् । सबलस्तां स तीर्त्वाथ समगाद्धर्मवर्धनम् ॥ १० ॥
तोरणं दक्षिणार्धेन जम्बूप्रस्थं समागमत् । वरूथं च ययौ रम्यं ग्रामं दशरथात्मजः ॥ ११ ॥
तत्र रम्ये वने वासं कृत्वासौ प्राङ्मुखो ययौ । उद्यानभुज्जिहानायाः प्रियका यत्र पादपाः ॥ १२ ॥
स तांस्तु प्रियकान्प्राप्य शीघ्रानास्थाय वाजिनः । अनुज्ञाप्याथ भरतो वाहिनीं त्वरितो ययौ ॥ १३ ॥
वासं कृत्वा सर्वतीर्थे तीर्त्वा चोत्तरगां नदीम् । अन्या नदीश्च विविधैः पार्वतीयैस्तुरंगमैः ॥ १४ ॥
हस्तिपृष्ठकमासाद्य कुटिकामप्यवर्तत । ततार च नरव्याघ्रो लोहित्ये च कपीवतीम् ॥ १५ ॥
एकसाले स्थाणुमतीं विनये गोमतीं नदीम् । कलिङ्गनगरे चापि प्राप्य सालवनं तदा ॥ १६ ॥

नामकी नदीको पारकर आग्नेय और शल्यकर्षण नामक गाँवमें आये ॥ ३ ॥ सत्यप्रतिज्ञ भरत पवित्र होकर शिलावह नदीको देखते हुए पवित्र पर्वतोंको लांघकर और चैत्ररथ वनके पास आये ॥४॥ सरस्वती और गङ्गा दोनों नदियोंके संगमपर आकर वीरमत्स्य नामक देशके उत्तरकी ओरसे जाकर वे भारूण्डनामक वनमें गये ॥ ५ ॥ वेगसे चलनेवाली, स्नान करनेवालोंको आनन्दित करनेवाली और पर्वतोंसे घिरी हुई कुलिङ्गा नदी और यमुना नदीके समीप जाकर भरतने उन नदियोंको पार किया और अपनी सेनाको विश्राम कराया ॥ ६ ॥ स्नान कराकर घोड़े ठंढे किये गये, घास आदि देकर वे सन्तुष्ट किये गये। स्नान जलपान करके तथा जल लेकर भरत वहाँसे चले ॥ ७ ॥ राजपुत्र भरतने सदा मनुष्यहीन महारण्यको सुन्दर रथसे पार किया, जिस प्रकार वायु आकाशको पार करता है ॥ ८ अंशुधान नगरके पास महानदी गंगा पार करने योग्य नहीं है, यह देखकर भरत शीघ्र ही प्राग्वट नामक प्रसिद्ध नगरमें आये ॥ ९ ॥ प्राग्वटके पास गंगाको पार करके कुटिकोष्टिका नदीके पास आये, उस नदीको पार करके वे धर्मवर्धन नामक नगरमें आये ॥ १० ॥ भरत तोरण नामक गाँवके दक्षिणकी ओरसे जम्बूप्रस्थ नामक नगरमें आये, वहाँसे दसरथपुत्र भरत वरूथ नामक रमणीय गाँवमें आये ॥ ११ ॥ उस नगरीके पासवाले रमणीय वनमें निवास करके भरत पूर्वकी ओर चले, वे उज्जिहाना नगरीके बागमें आये जहाँ कदम्बके वृक्ष हैं ॥ १२ ॥ उन कदम्बवृक्षोंके पास आकर शीघ्र चलनेवाले घोड़ेपर चढ़कर सेनाको पीछे-पीछे आनेकी आज्ञा देकर भरत शीघ्रतापूर्वक आगे चले ॥ १३ ॥ सर्वतीर्थ नामक नगरमें रातको निवास करके उत्तर बहनेवाली नदीको तथा अन्य अनेक नदियोंको उन्होंने पहाड़ी घोड़ोंके द्वारा पार किया ॥ १४ ॥ हाथीपर चढ़कर उन्होंने कुटिका नदीको भी पार किया, पुनः नरश्रेष्ठ भरतने लौहित्य नामक नगरके पास कपिवती नदीको पार किया ॥ १५ ॥ एक साल

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भरतः क्षिप्रमागच्छत्सुपरिश्रान्तवाहनः । वनं च समतीत्याशु शर्वर्यामरुणोदये ॥१७॥
अयोध्यां मनुना राज्ञा निर्मितां स ददर्श ह । तां पुरीं पुरुषव्याघ्रः सप्तरात्रोषितः पथि ॥१८॥
अयोध्यामग्रतो दृष्ट्वा सारथिं चेदमब्रवीत् । एषा नातिप्रतीता मे पुण्योद्याना यशस्विनी॥१९॥
अयोध्या दृश्यते दूरात्सारथे पाण्डुमृत्तिका । यज्वभिर्गुणसंपन्नैर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥२०॥
भूयिष्ठमृद्धैराकीर्णा राजर्षिवरपालिता । अयोध्यायां पुरा शब्दः श्रूयते तुमुलो महान्॥२१॥
समन्तान्नरनारीणां तमद्य न शृणोम्यहम् । उद्यानानि हि सायाह्ने क्रीडित्वोपरतैर्नरैः ॥२२॥
समन्ताद्विप्रधावद्भिः प्रकाशन्ते ममान्यथा । तान्यद्यानुरुदन्तीव परित्यक्तानि कामिभिः॥२३॥
अरण्यभूतेव पुरी सारथे प्रतिभाति माम् । नह्यत्र यानैर्दृश्यन्ते न गजैर्न च वाजिभिः ।
निर्यान्तो वाभियान्तो वा नरमुख्या यथा पुरा ॥२४॥
उद्यानानि पुरा भान्ति मत्तप्रमुदितानि च । जनानां रतिसंयोगेष्वत्यन्तगुणवन्ति च ॥२५॥
तान्येतान्यद्य पश्यामि निरानन्दानि सर्वशः । स्रस्तपर्णैरनुपथं विक्रोशद्भिरिव द्रुमैः ॥२६॥
नाद्यापि श्रूयते शब्दो मत्तानां मृगपक्षिणाम् । स रक्तां मधुरां वाणीं कलं व्याहरतां बहु ॥२७॥
चन्दनागुरुसंपृक्तधूपसंमूर्च्छितोऽमलः । प्रवाति पवनः श्रीमान्किं नु नाद्य यथा पुरा ॥२८॥

नामक नगरके पास स्थाणुमती नदीको, विनत नामक नगरके पास गोमती नदीको पार करके भरत कलिंग नगरके पासवाले साल वनमें गये ॥ १६ ॥ घोड़ोंके थक जानेपर भी भरतने रातको ही चलकर उस वनको पार किया, प्रातःकाल राजा मनुकी बसायी अयोध्या नगरीको उन्होंने देखा, मार्गमें सात रात निवासकर आठवें दिन प्रातःकाल उन्होंने अयोध्या नगरीको देखा ॥ १७ ॥ १८ ॥ आगे अयोध्याको देखकर भरत सारथिसे बोले—यह पवित्र उद्यानवाली यशस्विनी अयोध्या नगरी मुझे प्रसन्न नहीं मालूम पड़ती ॥ १९ ॥ यह दूरहीसे अयोध्या दीख पड़ती है, इसकी मिट्टी सफेद मालूम पड़ती है, अर्थात् यह आजकल लीपी पोती नहीं जाती। यज्ञ करनेवाले गुणी वेदपारग ब्राह्मण यहाँ रहते हैं, ॥२०॥ इस नगरीमें अनेक धनी रहते हैं, राजर्षि दसरथ इसका पालन करते हैं, इस नगरीमें पहले तुमुल शब्द सुनायी पड़ता था ॥ २१ ॥ स्त्री पुरुषोंका चारो तरफ होनेवाला वह शब्द मैं नहीं सुनता। जिन उद्यानोंमें सायंकाल मनुष्य क्रीड़ा करके लौटते थे ॥ २२ ॥ और चारो ओर दौड़नेवाले मनुष्योंसे जो बाग शोभित होते थे, आज वे ही बाग जिन्हें कामियोंने छोड़ रखा है ,अतएव वे रो रहे हैं, अतएव वे मुझे दूसरी तरहके मालूम होते हैं ॥ २३ ॥ यह नगरी मुझे वनके समान मालूम पड़ती है, सवारियों, हाथियों और घोड़ोंपर धनी मनुष्य न तो अयोध्यामें जाते हैं और न अयोध्यासे बाहर निकलते हैं, जैसे पहले होता था ॥ २४ ॥ ये बाग पहले बहुतही सन्तुष्ट और प्रसन्न मालूम होते थे और प्रेमियोंके मिलनेके लिए नितान्त गुणवान थे, ये बाग पहले बहुत सुन्दर मालूम होते थे ॥ २५ ॥ उन्हीं बागोंको आज हम चारों ओरसे आनन्दहीन देख रहे हैं, वृक्षोंके पत्ते गिर रहे हैं, मालूम होता है मानो ये वृक्ष रो रहे हैं ॥ २६ ॥ मत्त मृगों और पक्षियोंके शब्द अभी नहीं सुन पड़ते, जो पहले अनुरागयुक्त मधुर और रमणीय बहुत बोला करते थे ॥ २७ ॥ चन्दन, अगुरुकी गन्धसे युक्त, धूप गन्धसे और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भेरीमृदङ्गवीणानां कोणसंघट्टितः पुनः । किमद्य शब्दो विरतः सदाऽदीनगतिः पुरा ॥२९॥
अनिष्टानि च पापानि पश्यामि विविधानि च । निमित्तान्यमनोज्ञानि तेन सीदति मे मनः ॥३०॥
सर्वथा कुशलं सूत दुर्लभं मम बन्धुषु । तथा ह्यसति संमोहे हृदयं सीदतीव मे ॥३१॥
विषण्णः श्रान्तहृदयस्त्रस्तः संलुलितेन्द्रियः । भरतः प्रविवेशाशु पुरीमिक्ष्वाकुपालिताम् ॥३२॥
द्वारेण वैजयन्तेन प्राविशच्छ्रान्तवाहनः । द्वाःस्थैरुत्थाय विजयं पृष्टस्तैः सहितो ययौ ॥३३॥
स त्वनेकाग्रहृदयो द्वाःस्थं प्रत्यर्च्य तं जनम् । सूतमश्वपतेः क्लान्तमब्रवीत्तत्र राघवः ॥३४॥
किमहं त्वरयानीतः कारणेन विनानघ । अशुभाशङ्कि हृदयं शीलं च पततीव मे ॥३५॥
श्रुता नु यादृशाः पूर्वं नृपतीनां विनाशने । आकारास्तानहं सर्वानिह पश्यामि सारथे ॥३६॥
संमार्जनविहीनानि परुषाण्युपलक्षये । असंयतकवाटानि श्रीविहीनानि सर्वशः ॥३७॥
बलिकर्मविहीनानि धूपसंमोदनेन च । अनाशितकुटुम्बानि प्रभाहीनजनानि च ॥३८॥
अलक्ष्मीकानि पश्यामि कुटुम्बिभवनान्यहम् । अपेतमाल्यशोभानि असंमृष्टाजिराणि च ॥३९॥
देवागाराणि शून्यानि न भान्तीह यथा पुरा । देवतार्चाः प्रसिद्धाश्च यज्ञगोष्ठास्तथैव च ॥४०॥
माल्यापणेषु राजन्ते नाद्य पण्यानि वा तथा । दृश्यन्ते वणिजोऽप्यद्य न यथापूर्वमत्र वै ॥४१॥

अधिक सुगन्धित विमल वायु आज पहलेके समान नहीं बहती है ॥ २८ ॥ कोण (वीणा आदि बजानेका डंडा) के संघटनसे भेरी, मदङ्ग, वीणा आदिका जो दूरतक फैलनेवाला शब्द होता था वह क्या रुक गया ? ॥ २९ ॥ अनिष्टसूचक क्रूर अनेक शकुन मैं देख रहा हूँ, बाईं आँखका फरकना आदि अशुभकी सुचना भी हो रही है, जिससे मेरा मन दुःखी हो रहा है ॥ ३० ॥ ये जो सब बुरे अशकुन हो रहे हैं, इससे मालुम होता है कि हमारे बान्धवोंका सकुशल होना दुर्लभ है। हमारे बान्धवोंमें कोई-न-कोई बुरी घटना अवश्य हुई होगी, अतएव मेरा हृदय दुःखी हो रहा है ॥ ३१ ॥ दुःखी, बैठे दिल, डरे हुए, शिथिलइन्द्रिय भरतने इक्ष्वाकुपालित अयोध्या नगरीमें शीघ्र प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ भरतके वाहन थक गये थे, वैजयन्त नामक द्वारसे उन्होंने प्रवेश किया द्वारपालोंने उठकर उनसे विजय प्रश्न किया, भरत उनके साथ आगे गये ॥ ३३ ॥ भरतका हृदय व्याकुल था, उन्होंने द्वारपालको सत्कारपूर्वक लौटा दिया, पुनः वे थके हुए अश्वपतिके सारथिसे बोले ॥ ३४ ॥ बिना कारण मैं शीघ्रही दूतोंके द्वारा बुलाया गया हूं, मुझसे कारण नहीं बतलाया गया है, केवल शीघ्र आनेको कहा गया है, इससे मेरे हृदयमें अशुभकी आशङ्का हो रही है, मेरा स्वभाव भी गिर रहा है अर्थात् मैं घबड़ा रहा हूँ ॥ ३५ ॥ राजाओंके विनाशकालमें जो लक्षण मैंने सुने हैं, उन सब लक्षणोंको मैं यहाँ देख रहा हूँ ॥ ३६ ॥ गृहस्थोंके घर झाड़े-बुहारे नहीं गये हैं अतएव वे देखनेमें रूखे मालुम पड़ते हैं, किवाड़ खुले हैं, सभी शोभा नष्ट हो गयी है ॥ ३७ ॥ देवता और पितरोंके लिए बलि नहीं दी गयी है, धूपकी सुगन्ध भी नहीं आती, परिवारके लोगोंने भोजन नहीं किया है, सभीके मुँह प्रभाहीन होगये हैं ॥ ३८ ॥ कुटुम्बियोंके घरोंको मैं शोभाहीन देख रहा हूँ, देव-मन्दिरोंमें पुष्पोंकी शोभा नहीं है, आगन बुहारे नहीं गये हैं ॥ ३९ ॥ देव-मन्दिरोंकी शोभा पहलेके समान नहीं है वे आज मनुष्योंसे शून्य हैं, देवताओंकी पूजा बन्द हो गयी है, यज्ञस्थानोंमें यज्ञ नहीं होते ॥ ४० ॥ मालाके बाजारमें आज कुछ भी बिकने-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ध्यानसंविग्नहृदया नष्टव्यापारयन्त्रिताः । देवायतनचैत्येषु दीनाः पक्षिमृगास्तथा ॥४२॥
मलिनं चाश्रुपूर्णाक्षं दीनं ध्यानपरं कृशम् । सस्त्रीपुंसं च पश्यामि जनमुत्कण्ठितं पुरे ॥४३॥
इत्येवमुक्त्वा भरतः सूतं तं दीनमानसः । तान्यनिष्टान्ययोध्यायां प्रेक्ष्य राजगृहं ययौ ॥४४॥
तां शून्यशृङ्गाटकवेश्मरथ्यां रजोरुणद्वारकवाटयन्त्राम् ।
दृष्ट्वा पुरीमिन्द्रपुरीप्रकाशां दुःखेन संपूर्णतरो बभूव ॥४५॥
बभूव पश्यन्मनसोऽप्रियाणि यान्यन्यदा नास्य पुरे बुभूवुः ।
अवाक्शिरा दीनमना न हृष्टः पितुर्महात्मा प्रविवेश वेश्म ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ७२

अपश्यँस्तु ततस्तत्र पितरं पितुरालये । जगाम भरतो द्रष्टुं मातरं मातुरालये ॥ १ ॥
अनुप्राप्तं तु तं दृष्ट्वा कैकेयी प्रोषितं सुतम् । उत्पपात तदा हृष्टा त्यक्त्वा सौवर्णमासनम् ॥ २ ॥
स प्रविश्यैव धर्मात्मा स्वगृहं श्रीविवर्जितम् । भरतः प्रेक्ष्य जग्राह जनन्याश्चरणौ शुभौ ॥ ३ ॥
तं मूर्ध्नि समुपाघ्राय परिष्वज्य यशस्विनम् । अङ्के भरतमारोप्य प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥ ४ ॥

की वस्तु नहीं है, पहलेके समान बनिए भी यहाँ नहीं दिखायी पड़ते ॥ ४१ ॥ चिन्तासे इन बनियोंका हृदय व्याकुल हो गया है और व्यापारके नष्ट होनेसे ये संकुचित हो गये हैं। देव-मन्दिर तथा देवस्थानोंमें पशु, पक्षी आदि दुःखी होकर बैठे हैं ॥ ४२ ॥ मलिन आँखोंमें आँसू भरे, दीन, चिन्तामें मग्न कृश अयोध्यावासी स्त्री पुरुष देख पड़ते हैं, सभी मनुष्य—क्या हो रहा है यह जाननेके लिए उत्कण्ठित हैं ॥ ४३ ॥ भरत दुःखी मनसे इस प्रकार सारथिसे कहकर तथा अयोध्याके उन अनिष्ट चिन्होंको देखकर राजमहलमें गये ॥ ४४ ॥ अयोध्याके चौक घर और गलियाँ सूनी हैं, धूलसे द्वारके किवाड़की सिकड़ी आदि मलिन हो गयी हैं, इन्द्रपुरीके समान शोभित होनेवाली नगरीकी यह दशा देखकर भरत दुःखसे भर गये ॥ ४५ ॥ जो बातें इस नगरीमें कभी नहीं हुई थीं, उन मनको बुरी लगनेवाली बातोंको देखकर दुःखी भरतने सिर झुका लिया, वे दुःखी होकर पिताके घरमें गये ॥ ४६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एकहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७१ ॥

पिताके घरमें पिताको न देखकर माताको देखनेके लिए भरत माताके घरमें गये ॥ १ ॥ प्रवासमें गया हुआ पुत्र आ गया है यह देखकर केकयी प्रसन्न होकर सोनेके आसन परसे कूद पड़ी ॥ २ ॥ अपनी माताके घरमें प्रवेश करते ही धर्मात्मा भरतने उसे श्रीहीन देखा और उन्होंने अपनी माताके शुभ चरण ग्रहण किये ॥ ३ ॥ यशस्वी भरतका सिर सूँघकर उनका आलिंगन कर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अद्य ते कतिचिद्रात्र्यश्च्युतस्यार्यकवेश्मनः । अपि नाध्वश्रमः शीघ्रं रथेनापततस्तव ॥ ५ ॥
आर्यकस्ते सुकुशली युधाजिन्मातुलस्तव । प्रवासाच्च सुखं पुत्र सर्वं मे वक्तुमर्हसि ॥ ६ ॥
एवं पृष्टस्तु कैकेय्या प्रियं पार्थिवनन्दनः । आचष्ट भरतः सर्वं मात्रे राजीवलोचनः ॥ ७ ॥
अद्य मे सप्तमी रात्रिश्च्युतस्यार्यकवेश्मनः । अम्बायाःकुशली तातो युधाजिन्मातुलश्च मे ॥ ८ ॥
यन्मे धनं च रत्नं च ददौ राजा परंतपः । परिश्रान्तं पथ्यभवत्ततोऽहं पूर्वमागतः ॥ ९ ॥
राजवाक्यहरैर्दूतैस्त्वर्यमाणोऽहमागतः । यदहं प्रष्टुमिच्छामि तदम्बा वक्तुमर्हति ॥१०॥
शून्योऽयं शयनीयस्ते पर्यङ्को हेमभूषितः । न चायमिक्ष्वाकुजनः प्रहृष्टः प्रतिभाति मे ॥११॥
राजा भवति भूयिष्ठमिहाम्बाया निवेशने । तमहं नाद्य पश्यामि द्रष्टुमिच्छन्निहागतः ॥१२॥
पितुर्ग्रहीष्ये पादौ च तं ममाख्याहि पृच्छतः । आहोस्विदम्बाज्येष्ठायाः कौसल्याया निवेशने॥१३॥
तं प्रत्युवाच कैकेयी प्रियवद्घोरमाप्रियम् । अजानन्तं प्रजानन्ती राज्यलोभेन मोहिता ॥१४॥
या गतिः सर्वभूतानां तां गतिं ते पिता गतः । राजा महात्मा तेजस्वी यायजूकः सतां गतिः ॥१५॥
तच्छ्रुत्वा भरतो वाक्यं धर्माभिजनवाञ्शुचिः । पपात सहसा भूमौ पितृशोकबलार्दितः ॥१६॥
हा हतोऽस्मीति कृपणं दीनां वाचमुदीरयन् । निपपात महाबाहुर्बाहू विक्षिप्य वीर्यवान् ॥१७॥

तथा उनको गोदमें बैठाकर केकयी पूछने लगी ॥ ४ ॥ अपने नानाके घरसे चले हुए तुमको आज कितनी रातें बीतीं, रथसे शीघ्रतापूर्वक आनेके कारण क्या तुम्हें मार्गकी थकावट नहीं मालूम होती ॥ ५ ॥ तुम्हारे नाना तो सकुशल हैं ? तुम्हारे मामा युधाजित सकुशल तो हैं ? प्रवासमें तुम्हें क्या दुःख सुख हुए, इन सब मेरे प्रश्नोंके उत्तर दो ॥ ६ ॥ केकयीने भरतसे ये सब शुभ समाचार पूछे । राजीवलोचन भरतने मातासे सब कहा ॥ ७ ॥ नानाके घरसे चले हुए मुझे आज सातवीं रात है, माताके पिता अर्थात् मेरे नाना सकुशल हैं, मेरे मामा युधाजित भी सकुशल हैं ॥ ८ ॥ शत्रुतापी राजाने मुझे जो धन और रत्न दिये हैं, उससे वाहन थक गये, अतएव मैं पहले चला आया ॥ ९ ॥ राजाकी आज्ञा ले जानेवाले दूतोंके कहनेसे मैं यहाँ शीघ्र आया हूँ । अब जो मैं पूछता हूँ उसका उत्तर माता दें ॥ १० ॥ यह सोनेसे मढ़ा हुआ तुम्हारा सोनेवाला पलंग सूना क्यों है अर्थात् राजा यहाँ क्यों नहीं हैं, राजा दसरथके ये भृत्य आदि मुझे प्रसन्न नहीं दीख पड़ते ॥ ११ ॥ राजा प्रायः मेरी माता केकयीके ही घरमें रहा करते हैं, पर आज मैं उन्हें यहाँ नहीं देख रहा हूँ, उन्हींको देखनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ ॥ १२ ॥ मैं पिताका चरणवन्दन करना चाहता हूँ, मैं आपसे पिताके सम्बन्धमें पूछ रहा हूँ, आप बतलावें, मेरी बड़ी माता कौसल्याके घरमें तो वे नहीं हैं ॥ १३ ॥ राज्यलोभसे मोहित और सब बातें जानती हुई केकयी कुछ भी न जाननेवाले भरतसे बहुतही अप्रिय बात, प्रियबातके समान बोली ॥ १४ ॥ सब प्राणियों-की जो गति होती है, वही गति तुम्हारे पिताकी भी हुई, महात्मा तेजस्वी और यज्ञ करनेवाले राजाने सज्जनोंकी गति पायी है ॥ १५ ॥ धार्मिक कुलीन पवित्र भरत यह वचन सुनकर पिताके शोकसे पीड़ित होकर सहसा भूमिमें गिर पड़े ॥ १६ ॥ हाय, मैं मारा गया, ऐसा दुःखी और दीन वचन कहते हुए महाबाहु बलवान् भरत बाहु पटककर जमीनपर गिर पड़े ॥ १७ ॥ पिताकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततः शोकेन संवीतः पितुर्मरणदुःखितः । विललाप महातेजा भ्रान्ताकुलितचेतनः ॥१८॥
एतत्सुरुचिरं भाति पितुर्मे शयनं पुरा । शशिनेवामलं रात्रौ गगनं तोयदात्यये ॥१९॥
तदिदं न विभात्यद्य विहीनं तेन धीमता । व्योमेव शशिना हीनमप्शुष्क इव सागरः ॥२०॥
बाष्पमुत्सृज्य कण्ठेन स्वात्मना परिपीडितः । प्रच्छाद्य वदनं श्रीमद्वस्त्रेण जयतां वरः ॥२१॥
तमार्तं देवसंकाशं समीक्ष्य पतितं भुवि । निकृत्तामिव सालस्य स्कन्धं परशुना वने ॥२२॥
माता मातङ्गसंकाशं चन्द्रार्कसदृशं सुतम् । उत्थापयित्वा शोकार्तं वचनं चेदमब्रवीत् ॥२३॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ किं शेषे राजन्नत्र महायशः । त्वद्विधा नहि शोचन्ति सन्तः सदसि संमताः ॥२४॥
दानयज्ञाधिकारा हि शीलश्रुततपोनुगा । बुद्धिस्ते बुद्धिसंपन्न प्रभेवार्कस्य मन्दिरे ॥२५॥
स रुदित्वा चिरं कालं भूमौ परिविवृत्य च । जननीं प्रत्युवाचेदं शोकैर्बहुभिराहतः ॥२६॥
अभिषेक्ष्यति रामं तु राजा यज्ञं नु यक्ष्यते । इत्यहं कृतसंकल्पो हृष्टो यात्रामयासिषम् ॥२७॥
तदिदं ह्यन्यथाभूतं व्यवदीर्णं मनो मम । पितरं यो न पश्यामि नित्यं प्रियहिते रतम् ॥२८॥
अम्ब केनात्यगाद्राजा व्याधिना मय्यनागते । धन्या रामादयःसर्वे यैः पिता संस्कृतःस्वयम् ॥२९॥
न नूनं मां महाराजः प्राप्तं जानाति कीर्तिमान् । उपजिघ्रेत्तु मां मूर्ध्नि तातः संनाम्य सत्वरम् ॥३०॥

मृत्युसे दुःखित और शोकमें मग्न भरत विलाप करने लगे, महातेजस्वी भरतकी चेतना भ्रान्त और व्याकुल होगयी ॥ १८ ॥ यह पलंग, मेरे पितासे पहले बहुत सुन्दर मालूम पड़ता था, जिस प्रकार मेघोंके हट जाने पर रातमें चन्द्रमासे आकाश विमल मालूम होता है ॥ १९ ॥ इन बुद्धिमान राजा दसरथके न होनेसे आज यह पलंग नहीं शोभता, जैसे चन्द्रमाके बिना आकाश और जलके सूखने पर समुद्र नहीं शोभते ॥ २० ॥ शोकसे पीड़ित तपस्वियोंमें श्रेष्ठ भरतने वस्त्रसे अपना मुँह ढँक लिया और वे शोकबाष्प कण्ठसे छोड़ते हुए विलाप करने लगे ॥ २१ ॥ वनमें फरसासे कटी हुई साल वृक्षकी मोटी डालके समान देवतुल्य भरतको भूमिमें पड़ा देखकर॥२२॥ माता हाथीके समान विशालकाय, चन्द्रमा और सूर्यके समान द्युतिमान् शोकार्त पुत्रको उठाकर यह बात बोली ॥ २३ ॥ महायशस्वी राजन्, उठो, क्यों सो रहे हो, तुम्हारे समान पूज्य सज्जन शोक नहीं करते ॥ २४ ॥ बुद्धिसम्पन्न, जिस प्रकार सूर्यमण्डलमें प्रभा रहती है उसी प्रकार तुम्हारी बुद्धि दान और यज्ञमें लगी रहती है, सदाचार, शास्त्राध्ययन और तपस्यामें तत्पर रहती है ॥ २५ ॥ भरत बहुत देर तक रोते रहे, भूमिमें लोटते रहे, पुनः बहुतही शोकित होकर वे अपनी मातासे बोले ॥ २६ ॥ राजा दसरथ रामचन्द्रका राज्याभिषेक करेंगे, और वे स्वयं यज्ञ करेंगे यही सोचकर बड़ी प्रसन्नतासे मैंने यात्रा की थी ॥ २७ ॥ पर यहाँ तो उलटाही देख रहा हूँ, इससे मेरा हृदय विदीर्ण हो गया है, जो पिता सदा मेरे कल्याणमें लगे रहते थे आज मैं उनको नहीं देख रहा हूँ ॥ २८ ॥ माता, मेरे आनेके पहले किस रोगसे पिता परलोकवासी हुए हैं, राम आदि धन्य हैं, जिन्होंने स्वयं पिताका अन्तिम संस्कार किया है ॥ २९ ॥ मैं यहाँ आ गया हूँ यह बात निश्चय ही कीर्तिमान् महाराजको नहीं मालूम है, यदि उन्हें यह बात मालूम होती तो वे अवश्यही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्व स पाणिःसुखस्पर्शस्तातस्याक्लिष्टकर्मणः । यो हि मां रजसा ध्वस्तमभीक्ष्णं परिमार्जति ॥३१॥
यो मे भ्राता पिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि संमतः । तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याक्लिष्टकर्मणः॥३२॥
पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः । तस्य पादौ ग्रहीष्यामि स हीदानीं गतिर्मम ॥३३॥
धर्मविद्धर्मशीलश्च महाभागो दृढव्रतः । आर्ये किमब्रवीद्राजा पिता मे सत्यविक्रमः ॥३४॥
पश्चिमं साधुसंदेशमिच्छामि श्रोतुमात्मनः । इति पृष्टा यथातत्त्वं कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥३५॥
रामेति राजा विलपन्हा सीते लक्ष्मणेति च । स महात्मा परं लोकं गतो मतिमतां वरः ॥३६॥
इतीमां पश्चिमां वाचं व्याजहार पिता तव । कालधर्म परिक्षिप्तः पाशैरिव महागजः ॥३७॥
सिद्धार्थास्तु नरा राममागतं सह सीतया । लक्ष्मणं च महाबाहुं द्रक्ष्यन्ति पुनरागतम् ॥३८॥
तच्छ्रुत्वा विषसादैवं द्वितीयाप्रियशंसनात् । विषण्णवदनो भूत्वा भूयः प्रपच्छ मातरम् ॥३९॥
क्व चेदानीं स धर्मात्मा कौसल्यानन्दवर्धनः । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च समागतः ॥४०॥
तथा पृष्टा यथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे । मातास्य युगपद्वाक्यं विप्रियं प्रियशंसया ॥४१॥
स हि राजसुतः पुत्र चीरवासा महावनम् । दण्डकान्सह वैदेह्या लक्ष्मणानुचरो गतः ॥४२॥
तच्छ्रुत्वा भरतस्त्रस्तो भ्रातुश्चारित्रशङ्कया । स्वस्य वंशस्य माहात्म्यात्प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥४३॥
कच्चिन्न ब्राह्मणधनं हृतं रामेण कस्यचित् । कच्चिन्नाढ्यो दरिद्रो वा तेनापापो विहिंसितः ॥४४॥

मेरा सिर नवाकर सूँघते ॥ ३० ॥ धूलसे भरे मुझे अपने हाथोंसे जो झाड़ते, उन सरल स्वभाव पिताका वह सुखस्पर्श हाथ कहां है ॥ ३१ ॥ जो मेरे भाई पिता और बन्धु हैं, और मैं जिनका प्रियदास हूँ उन सरल स्वभाव रामचन्द्रके विषयमें मुझसे शीघ्र कहो, वे कहां हैं, कैसे हैं आदि ॥ ३२ ॥ धर्म जाननेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंके बड़े भाई पिताके तुल्य होते हैं, मैं उनका चरण वन्दन करूँगा, वेही इस समय मेरे अवलम्ब हैं ॥ ३३ ॥ धर्म जाननेवाले धर्मात्मा दृढ़व्रत सत्य-पराक्रम मेरे पिता राजा दसरथने रामचन्द्रसे क्या कहा है ॥ ३४ ॥ अपने सम्बन्धमें पिताका अन्तिम सन्देश मैं सुनना चाहता हूँ । भरतके ऐसा पूछनेपर केकयीने यथार्थ बातें कहीं ॥ ३५ ॥ हा राम, हा लक्ष्मण, हा सीते, ऐसा विलाप करते हुए बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ महात्मा राजाने परलोक यात्रा की ॥ ३६ ॥ पाशसे जिस प्रकार हाथी विवश होता है उसी प्रकार काल धर्मसे विवश तुम्हारे पिताने अन्त समयमें यह बात कही है ॥ ३७ ॥ सीताके साथ आये हुए राम और लक्ष्मण-को जो मनुष्य देखेंगे, उन्हींका मनोरथ सिद्ध होगा ॥ ३८ ॥ केकयीके यह दूसरी अप्रियबात कहनेसे भरतको बहुत दुःख हुआ । दुःखी होकर पुनः उन्होंने मातासे पूछा ॥ ३९ ॥ वे धर्मात्मा कौसल्यानन्दवर्धन भाई, लक्ष्मण और सीताके सहित कहाँ हैं ॥ ४० ॥ भरतके ऐसा पूछने पर केकयी विधिपूर्वक कहने लगी, उसने अप्रिय बात कही, पर उसके मनसे वह बात अप्रिय न थी, वह समझती थी कि इससे भरत प्रसन्न होगा ॥ ४१ ॥ वे राजपुत्र वल्कल धारण करके लक्ष्मण और सीताके साथ दण्डक वनमें चले गये ॥ ४२ ॥ अपने कुलमें श्रेष्ठता प्राप्त किये हुए भाई रामचन्द्रके चरित्रमें कलंककी आशङ्कासे भरत डर गये, वे पुनः मातासे पूछने लगे ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणका या किसी दूसरेका धन तो रामचन्द्रने हरण नहीं किया है, या अनपराधी किसी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कच्चिन्न परदारान्वा राजपुत्रोऽभिमन्यते । कस्मात्स दण्डकारण्ये भ्राता रामो विवासितः ॥४५॥
अथास्य चपला माता तत्स्वकर्म यथातथम् । तेनैव स्त्रीस्वभावेन व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥४६॥
एवमुक्ता तु कैकेयी भरतेन महात्मना । उवाच वचनं हृष्टा वृथापण्डितमानिनी ॥४७॥
न ब्राह्मणधनं किंचिद्धृतं रामेण कस्यचित् । कश्चिन्नाढ्यो दरिद्रो वा तेनापापो विहिंसितः ।
न रामः परदारान्स चक्षुर्भ्यामपि पश्यति ॥४८॥
मया तु पुत्र श्रुत्वैव रामस्येहाभिषेचनम् । याचितस्ते पिता राज्यं रामस्यच विवासनम् ॥४९॥
स स्वदाक्तिं समास्थाय पिता ते तत्तथाकरोत् । रामस्तु सहसौमित्रिः प्रोषितः सह सीतया ॥५०॥
तमपश्यन्प्रियं पुत्रं महीपालो महायशाः । पुत्रशोकपरिद्यूनः पञ्चत्वमुपपेदिवान् ॥५१॥
त्वया त्विदानीं धर्मज्ञ राजत्वमवलम्ब्यताम् । त्वत्कृते हि मया सर्वमिदमेवंविधं कृतम् ॥५२॥
मा शोकं मा च संतापं धैर्यमाश्रय पुत्रक । त्वदधीना हि नगरी राज्यं चैतदनामयम् ॥५३॥
तत्पुत्र शीघ्रं विधिना विधिज्ञैर्वसिष्ठमुख्यैः सहितो द्विजेन्द्रैः ।
संकाल्य राजानमदीनसत्त्वमात्मानमुर्व्यामभिषेचयस्व ॥५४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे द्विसप्ततिमः सर्गः ॥७२॥

धनी या दरिद्रको मारा है ॥ ४४ ॥ अथवा परस्त्रीका संसर्ग किया है, किस कारण मेरे भाई राम दण्डकारण्यमें निर्वासित किये गये हैं ॥ ४५ ॥ भरतकी चञ्चल माताने अपना सब कर्म स्त्री स्वभावके चञ्चल होने कारण जो जैसे हुआ था वह सब कहा ॥ ४६ ॥ महात्मा भरतके ऐसा कहनेपर अपनेको व्यर्थ पण्डित समझनेवाली केकयी प्रसन्न होकर बोली ॥ ४७ ॥ रामचन्द्रने ब्राह्मण धन नहीं लिया है और न किसी दूसरे हीका धन लिया है, अनपराधी किसी धनी या दरिद्रका भी वध नहीं किया है, रामचन्द्र परस्त्रियोंको तो आँखोंसे भी नहीं देखते ॥ ४८ ॥ पुत्र, रामचन्द्रका राज्याभिषेक हो रहा है यह जब मैंने सुना, तब तुम्हारे पितासे तुम्हारे लिए राज्यकी, और रामचन्द्रके लिए वनवासकी मैंने प्रार्थना की ॥४९॥ तुम्हारे पिताने अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण करके वैसाही किया और लक्ष्मण तथा सीताके साथ रामचन्द्रको वनवास दिया ॥ ५० ॥ उस अपने प्रियपुत्र रामचन्द्रको न देखनेके कारण महायशस्वी राजा पुत्रशोकसे क्षीण होकर परलोकवासी हुए ॥ ५१ ॥ धर्मज्ञ, अब तुम राज्य ग्रहण करो, तुम्हारेही लिए मैंने यह सब ऐसा किया है ॥ ५२ प्रियपुत्र, शोक सन्ताप छोड़ो, धैर्य धारण करो, यह नगरी तथा उपद्रवहीन राज्य तुम्हारे अधीन है ॥ ५३ ॥ अतएव विधि जाननेवाले वसिष्ठ आदि ब्राह्मणोंके साथ तुम पराक्रमी राजाका अन्तिम संस्कार करो और पृथिवीके राज्यपर अपना अभिषेक कराओ ॥ ४३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका बहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७२ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३

श्रुत्वा च स पितुर्वृत्तं भ्रातरौ च विवासितौ । भरतो दुःखसंतप्त इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
किं नु कार्यं हतस्येह मम राज्येन शोचतः । विहीनस्याथ पित्रा च भ्रात्रा पितृसमेन च ॥ २ ॥
दुःखे मे दुःखमकरोर्व्रणे क्षारमिवाददाः । राजानं प्रेतभावस्थं कृत्वा रामं च तापसम् ॥ ३ ॥
कुलस्य त्वमभावाय कालरात्रिरिवागता । अङ्गारमुपगुह्य स्म पिता मे नावबुद्धवान् ॥ ४ ॥
मृत्युमापादितो राजा त्वया मे पापदर्शिनि । सुखं परिहृतं मोहात्कुलेऽस्मिन्कुलपांसनि ॥ ५ ॥
त्वां प्राप्य हि पिता मेऽद्य सत्यसंधो महायशाः । तीव्रदुःखाभिसंतप्तो वृत्तो दशरथो नृपः ॥ ६ ॥
विनाशितो महाराजः पिता मे धर्मवत्सलः । कस्मात्प्रव्राजितो रामः कस्मादेव वनं गतः ॥ ७ ॥
कौसल्या च सुमित्रा च पुत्रशोकाभिपीडिते । दुष्करं यदि जीवेतां प्राप्य त्वां जननीं मम ॥ ८ ॥
नन्वार्योऽपि च धर्मात्मा त्वयि वृत्तिमनुत्तमाम् । वर्तते गुरुवृत्तिज्ञो यथा मातरि वर्तते ॥ ९ ॥
तथा ज्येष्ठा हि मे माता कौसल्या दीर्घदर्शिनी । त्वयि धर्मं समास्थाय भगिन्यामिव वर्तते ॥ १० ॥
तस्याः पुत्रं महात्मानं चीरवल्कलवाससम् । प्रस्थाप्य वनवासाय कथं पापे न शोचसे ॥ ११ ॥
अपापदर्शिनं शूरं कृतात्मानं यशस्विनम् । प्रव्राज्य चीरवसनं किं नु पश्यसि कारणम् ॥ १२ ॥

भरतने पिताके वृत्तान्त सुनें, भाइयोंके निर्वासनकी बात सुनी, वे दुःखसन्तप्त होकर ऐसा बोले ॥ १ ॥ पिता और पिताके समान भाईसे मैं हीन हूँ, दुःखी हूँ मारे गयेके समान हूं, मुझे राज्य लेकर क्या करना है ॥ २ ॥ दुःखमें तुमने दुःख दिया, घावमें तुमने क्षार छिड़का, पिताको मार डाला और भाईको वनवासी बनाया ॥ ३ ॥ मेरे कुलके विनाशके लिये तुम काल-रात्रि बनकर आयी हो, बिना समझेही अनजानमें मेरे पिताने जलती आग पकड़ी थी ॥ ४ ॥ बुरे अभिप्राय रखनेवाली तुमने राजाको मार डाला । कुलनाशिन, तुमने अज्ञानसे इस कुलका सुख नष्ट कर डाला ॥ ५ ॥ तुम्हारे कारण मेरे पिता सत्यप्रतिज्ञ महायशस्वी राजा दसरथ भयानक दुःख उठाकर मर गये ॥ ६ ॥ धर्मवत्सल मेरे पिता महाराजका तुमने किस कारणसे विनाश किया, किस कारणसे रामचन्द्र निर्वासित किये गये और किस कारणसे वन गये ॥ ७ ॥ पुत्र-शोक-से पीड़ित कौसल्या और सुमित्रा यदि तुम्हारे साथ रहकर जीवित रह सकें तो यह उन लोगोंके लिये कठिन होगा ॥ ८ ॥ बड़ोंके साथ कैसा व्यवहार रखना चाहिए इस बातको जाननेवाले धर्मात्मा पूज्य रामचन्द्र तुम्हारे साथ बड़ा उत्तम व्यवहार करते हैं, माताके साथ जैसा व्यवहार करना चाहिए वे वैसाही व्यवहार करते हैं ॥ ९ ॥ मेरी बड़ी माता कौसल्या जो तुम्हारी अपेक्षा अधिक परिणाम देख सकती हैं, वे भी धर्मपूर्वक बहिनके समान तुम्हारे साथ व्यवहार करती हैं ॥ १० ॥ उनके महात्मा पुत्रको चीरवल्कल पहनाकर तुमने वनमें भेज दिया, पापिन, फिर भी इससे तुमको दुःख नहीं हो रहा है ॥ ११ ॥ जो यशस्वी रामचन्द्र अपने आश्रितोंके अपराधोंकी ओर नहीं देखते और जो उदार हैं, उनको चीर वस्त्र देकर जो तुमने वनमें भेजा है उससे तुम्हें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लुब्धाया विदितो मन्ये न तेऽहं राघवं यथा । तथा ह्यनर्थो राज्यार्थं त्वया नीतो महानयम् ॥१३॥
अहं हि पुरुषव्याघ्रावपश्यन्रामलक्ष्मणौ । केन शक्तिप्रभावेण राज्यं रक्षितुमुत्सहे ॥१४॥
तं हि नित्यं महाराजो बलवन्तं महौजसम् । उपाश्रितोऽभूद्धर्मात्मा मेरुर्मेरुवनं यथा ॥१५॥
सोऽहं कथमिमं भारं महाधुर्यसमुद्यतम् । दम्यो धुरमिवासाद्य सहेयं केन चौजसा ॥१६॥
अथवा मे भवेच्छक्तिर्योगैर्बुद्धिबलेन वा । सकामां न करिष्यामि त्वामहं पुत्रगर्द्धिनीम् ॥१७॥
न मे विकाङ्क्षा जायेत त्यक्तुं त्वां पापनिश्चयाम् । यदि रामस्य नावेक्षा त्वयि स्यान्मातृवत्सदा ॥१८॥
उत्पन्ना तु कथं बुद्धिस्तवेयं पापदर्शिनी । साधुचारित्रविभ्रष्टे पूर्वेषां नो विगर्हिता ॥१९॥
अस्मिन्कुले हि सर्वेषां ज्येष्ठो राज्येऽभिषिच्यते । अपरे भ्रातरस्तस्मिन्प्रवर्तन्ते समाहिताः ॥२०॥
न हि मन्ये नृशंसे त्वं राजधर्ममवेक्षसे । गतिं वा न विजानासि राजवृत्तस्य शाश्वतीम् ॥२१॥
सततं राजपुत्रेषु ज्येष्ठो राजाभिषिच्यते । राज्ञामेतत्समं तत्स्यादिक्ष्वाकूणां विशेषतः ॥२२॥
तेषां धर्मैकरक्षाणां कुलचारित्रशोभिनाम् । अद्य चारित्रशौटीर्यं त्वां प्राप्य विनिवर्तितम् ॥२३॥
तवापि सुमहाभागे जनेन्द्रकुलपूर्वके । बुद्धिमोहः कथमयं संभूतस्त्वायि गर्हितः ॥२४॥
न तु कामं करिष्यामि तवाहं पापनिश्चये । यया व्यसनमारब्धं जीवितान्तकरं मम ॥२५॥

क्या लाभ हुआ ॥ १३ ॥ लोभिन, तुमको मालुम न था कि मैं रामचन्द्रमें कैसी भक्ति रखता हूँ इसी कारण राज्यके लिये तुमने यह महान् अनर्थ कर डाला है ॥१३॥ पुरुषसिंह राम और लक्ष्मणको बिना देखे किस शक्तिके प्रभावसे मैं राज्यकी रक्षा कर सकूंगा ॥ १४ ॥ बली और पराक्रमी रामचन्द्रका आश्रय धर्मात्मा महाराज सदा लिया करते थे, जिस प्रकार मेरु पर्वत मेरु वनका आश्रय लिया करता है ॥ १५ ॥ बड़े बलीके द्वारा उठाया हुआ यह राज्यभार मैं रामचन्द्रके बिना किस बलसे उठा सकूंगा । जिस प्रकार बच्छा भार पाकर दुःखी होता है वैसाही दुःखी मैं भी होऊंगा ॥ १६ ॥ अथवा बुद्धिबल और योगबलसे मैं राज्य-पालनकी शक्ति प्राप्त भी कर सकता हूँ, पर मैं पुत्रही पर प्रेम रखनेवाली तुम्हारे मनोरथ पूरे होने न दूंगा ॥ १७ ॥ बुरा निश्चय करनेवाली तुम्हारा त्याग मैं अवश्यही करता, पर रामचन्द्र सदा तुमको माताके समान देखते हैं इसी कारण त्याग नहीं कर रहा हूँ ॥ १८ ॥ पापिन, तू सज्जनोंके चरित्रसे गिर गयी, मेरे पूर्वजोंने जिस बुद्धि-की निन्दा की थी अर्थात् बड़ेके रहते छोटेको राज्य नहीं मिलना चाहिए—वह बुद्धि तुममें उत्पन्न कैसे हुई ॥१९॥ इस कुलमें जो सबसे बड़ा होता है उसीका राज्याभिषेक होता है, दूसरे भाई उसके अधीन रहकर कार्य करते हैं ॥ २० ॥ क्रूर, तुम्हे राजनीतिका ज्ञान नहीं है और राजधर्मके अव्यभि-चरित फलोंका भी तुम्हे ज्ञान नहीं है ऐसा मैं समझता हूँ ॥ २१ ॥ राजपुत्रोंमें जो सबसे बड़ा होता है वही राजा बनाया जाता है, इस बातको सभी राजा मानते हैं । इक्ष्वाकुवंशी राजा तो इस बातको विशेष मानते हैं ॥ २२ ॥ जिन्होंने सदा कुलधर्मकी रक्षा की है, जो कुलोचित आचारके पालनसे प्रसिद्ध हुए हैं, उनका वह उन्नत चरित्रवाला कुल आज तुम्हारे कारण नष्ट हुआ ॥ २३ ॥ तुम बहुत बड़े ऐश्वर्यवाले केकयराजके वंशमें उत्पन्न हुई हो, फिर यह निन्दित दुर्बुद्धि कहाँसे उत्पन्न हुई ॥ २४ ॥ तुमने मेरे प्राण लेनेवाला दुःख उत्पन्न किया है, अतएव पापिन, मैं तुम्हारा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एष त्विदानीमेवाहमप्रियार्थं तवानघे । निवर्तयिष्यामि वनाद् भ्रातरं स्वजनप्रियम् ॥२६॥
निवर्तयित्वा रामं च तस्याहं दीप्ततेजसः । दासभूतो भविष्यामि सुस्थितेनान्तरात्मना ॥२७॥
इत्येवमुक्त्वा भरतो महात्मा प्रियेतरैर्वाक्यगणैस्तुदन्ताम् ।
शोकार्दितश्चापि ननाद भूयः सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४

तां तथा गर्हयित्वा तु मातरं भरतस्तदा । रोषेण महताविष्टः पुनरेवाब्रवीद्वचः ॥ १ ॥
राज्याद्भ्रंशस्व कैकेयि नृशंसे दुष्टचारिणि । परित्यक्तासि धर्मेण मा मृतं रुदती भव ॥ २ ॥
किं नु तेऽदूषयद्रामो राजा वा भृशधार्मिकः । ययोर्मृत्युर्विवासश्च त्वत्कृते तुल्यमागतौ ॥ ३ ॥
भ्रूणहत्यासि प्राप्ता कुलस्यास्य विनाशनात् । कैकेयि नरकं गच्छ मा च तातसलोकताम् ॥ ४ ॥
यत्त्वया हीदृशं पापं कृतं घोरेण कर्मणा । सर्वलोकप्रियं हित्वा ममाप्यापादितं भयम् ॥ ५ ॥
त्वत्कृते मे पिता वृत्तो रामश्चारण्यमाश्रितः । अयशो जीवलोके च त्वयाहं प्रतिपादितः ॥ ६ ॥
मातृरूपे ममामित्रे नृशंसे राज्यकामुके । न तेऽहमभिभाष्योऽस्मि दुर्वृत्ते पतिघातिनि ॥ ७ ॥

मनोरथ पूर्ण होने न दूंगा ॥ २५ ॥ यह मैं अभी तुम्हें दुःख देनेके लिये स्वजनप्रिय भाई रामचन्द्रको वनसे लौटा लाऊंगा ॥ २६ ॥ मैं रामचन्द्रको लौटा लाऊंगा और उन दीप्ततेजा रामचन्द्रका दास बनकर प्रसन्नतापूर्वक रहूँगा ॥ २७ ॥ महात्मा भरतने अप्रिय वचनोंसे केकयीको दुःखित करते हुए ये बातें कहीं, पुनः वे शोकसे पीड़ित होकर चिल्लाने लगे जिस प्रकार मन्दर पर्वतकी कन्दरामें सिंह गर्जता है ॥ २८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका तिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७३ ॥

अपनी माताकी इस प्रकार निन्दा करके बड़े क्रोधसे युक्त भरत पुनः इस प्रकार बोले ॥१॥ क्रूर केकयी, तुम राज्य भ्रष्ट होओ तुम्हारे आचरण दुष्ट हैं, तुमने धर्मका त्याग किया है, मृतपतिके लिये मत रोओ, अर्थात् धर्महीन तुमको पतिके लिये रोनेका अधिकार नहीं है ॥ २ ॥ रामने तुम्हारा क्या बुरा किया था और अत्यन्त धार्मिक राजाने ही तुम्हारा क्या बिगाड़ा था, जिस कारण तुमने एकको मृत्यु और दूसरेको वनवास एकही समयमें दिया ॥ ३ ॥ इस कुलके नाश करनेसे तुम्हे भ्रूण हत्याका पाप लगा है, केकयी, तुम नरकमें जाओ पिताका लोक तुम्हे न प्राप्त हो ॥ ४ ॥ राक्षसोंके आचरणके समान क्रूर काम जो तुमने किया है, सर्वलोकप्रिय रामचन्द्रको जो वनमें भेजा है, उससे मैं भी भयभीत हो गया हूं, मैं भी अपना कर्त्तव्य निश्चय करते डरता हूं ॥ ५ ॥ तुम्हारे कारण मेरे पिता मरे और रामचन्द्र वनवासी हुए, और सर्वत्र लोकमें तुमने हमें अपयश दिया ॥ ६ ॥ क्रूर, राज्य चाहनेवाली तुम माताके रूपमें मेरी शत्रु हो । तुमको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कौसल्या च सुमित्रा च याश्चान्या मम मातरः । दुःखेन महताविष्टास्त्वांप्राप्य कुलदूषिणीम् ॥ ८ ॥
न त्वमश्वपतेः कन्या धर्मराजस्य धीमतः । राक्षसी तत्र जातासि कुलप्रध्वंसिनी पितुः ॥ ९ ॥
यत्त्वया धार्मिको रामो नित्यं सत्यपरायणः । वनं प्रस्थापितो वीरः पितापि त्रिदिवं गतः ॥१०॥
यत्पधानासि तत्पापं मयि पित्रा विना कृते । भ्रातृभ्यां च परित्यक्ते सर्वलोकस्य चाप्रिये ॥११॥
कौसल्यां धर्मसंयुक्तां वियुक्तां पापनिश्चये । कृत्वा कं प्राप्स्यसे ह्यद्य लोकं निरयगामिनी ॥१२॥
किं नावबुध्यसे क्रूरे नियतं बन्धुसंश्रयम् । ज्येष्ठं पितृसमं रामं कौसल्यायात्मसंभवम् ॥१३॥
अङ्गप्रत्यङ्गजः पुत्रो हृदयाच्चाभिजायते । तस्मात्प्रियतरो मातुःप्रिया एव तु बान्धवाः ॥१४॥
अन्यदा किल धर्मज्ञा सुराभिः सुरसंमता । वहमानौ ददर्शोर्व्यां पुत्रौ विगतचेतसौ ॥१५॥
तावर्धदिवसं श्रान्तौ दृष्ट्वा पुत्रौ महीतले । रुरोद पुत्रशोकेन बाष्पपर्याकुलेक्षणम् ॥१६॥
अधस्ताद्रुजतस्तस्याः सुरराज्ञो महात्मनः । विन्दवः पतिता गात्रे सूक्ष्माः सुराभिगन्धिनः ॥१७॥
निरीक्षमाणस्तां शक्रो ददर्श सुराभिं स्थिताम् । आकाशे विष्ठितां दीनां रुदतीं भृशदुःखिताम् ॥१८॥
तां दृष्ट्वा शोकसंतप्तां वज्रपाणिर्यशस्विनीम् । इन्द्रः प्राञ्जलिरुद्विग्नः सुरराजोऽब्रवीद्वचः ॥१९॥
भयं कच्चिन्न चास्मासु कुतश्चिद्विद्यते महत् । कुतो निमित्तः शोकस्ते ब्रूहि सर्वहितैषिणि ॥२०॥

हमसे नहीं बोलना चाहिए, तुम्हारे आचरण बुरे हैं, तुमने अपने पतिको मारा है ॥ ७ ॥ कौसल्या सुमित्रा तथा और जो मेरी माताएँ हैं वे सब कुलघातिनी तुम्हारे कारण बड़ा दुःख उठा रही हैं ॥ ८ ॥ धर्मात्मा बुद्धिमान् अश्वपतिकी तुम कन्या नहीं हो, कुल-नाश करनेवाली राक्षसी, तुम अपने पिताके उत्पन्न हुई हो ॥ ९ ॥ क्योंकि सदा सत्यपरायण धार्मिक रामचन्द्रको तुमने वनमें भेज दिया है, जिससे मेरे पिता स्वर्गगामी हुए हैं ॥ १० ॥ जो पाप तुममें अधिक है उसका फल पितासे रहित तथा भाइयोंसे त्यक्त और सबके अप्रिय मुझको भोगना पड़ता है ॥ ११ ॥ धार्मिक कौसल्याको पति, पुत्रसे रहित करके ऐ नरकमें जानेवाली, तुम किस लोकमें जाओगी ॥ १२ ॥ क्रूर, बन्धुओंके आश्रयदाता कौसल्याके पुत्र रामचन्द्रको जो मेरे पिताके समान बड़े भाई हैं–नहीं समझ सकी हो । तुम उनको साधारण अन्य भाइयोंके समान समझती हो ॥१३॥ पुत्र अंग प्रत्यंग तथा हृदयसे उत्पन्न होता है, अतएव वह माताको सबसे अधिक प्रिय होता है । अन्य बान्धव तो केवल प्रिय ही होते हैं ॥ १४ ॥ एक समय देवताओंके द्वारा पूजित और अपना धर्म जाननेवाली कामधेनुने अपने दो पुत्रोंको देखा कि उसके दो पुत्र हल जोतते-जोतते बेहोश हो गये हैं ॥ १५ ॥ दोपहर तक हल चलानेके कारण थके हुए अतएव पृथिवीमें गिरे हुए अपने पुत्रों-को देखकर कामधेनु पुत्रशोकसे रोने लगीं, आंसूसे उसकी आखें भर आयीं ॥ १६ ॥ देवराज महात्मा इन्द्र कामधेनुके नीचेकी ओरसे उसी समय जा रहे थे, उनकी देहपर सुगन्धित दो बूँद आंसू गिरे ॥ १७ ॥ इन्द्रने ऊपर आँख उठाकर देखा कि आकाशमें कामधेनु दुःखी होकर बैठी है और जोरसे रो रही है ॥ १८ ॥ यशस्विनी कामधेनुको शोकपीड़ित देखकर वज्रपाणि इन्द्र बहुत ही दुःखी हुए और वे हाथ जोड़कर बोले ॥ १७ ॥ किसी शत्रुके द्वारा हम लोगोंपर कोई भय आनेवाला है क्या ? सर्वहितैषिणी, तुम किस कारण शोक कर रही हो ॥ २० ॥ बुद्धिमान्

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमुक्ता तु सुरभिः सुरराजेन धीमता । प्रत्युवाच ततो धीरा वाक्यं वाक्यविशारदा ॥२१॥
शान्तं पापं न वः किंचित्कुतश्चिदमराधिप । अहं तु मग्नौ शोचामि स्वपुत्रौ विषमे स्थितौ ॥२२॥
एतौ दृष्ट्वा कृशौ दीनौ सूर्यरश्मिप्रतापितौ । वध्यमानौ बलीवर्दौ कर्षकेण दुरात्मना ॥२३॥
मम कायात्प्रसूतौ हि दुःखितौ भारपीडितौ । यौ दृष्ट्वा परितप्येऽहं नास्ति पुत्रसमः प्रियः ॥२४॥
यस्याः पुत्रसहस्रैस्तु कृत्स्नं व्याप्तमिदं जगत् । तां दृष्ट्वा रुदतीं शक्रो न सुतान्मन्यते परम् ॥२५॥
इन्द्रो ह्यश्रुनिपातं तं स्वगात्रे पुण्यगान्धिनम् । सुरभिं मन्यते दृष्ट्वा भूयसीं तामथेश्वरः ॥२६॥
समाप्रतिमवृत्ताया लोकधारणकाम्यया । श्रीमत्या गुणमुख्यायाः स्वभावपरिचेष्टया ॥२७॥
यस्याः पुत्रसहस्राणि सापि शोचति कामधुक् । किं पुनर्या विना रामं कौसल्या वर्तयिष्यति ॥२८॥
एकपुत्रा च साध्वी च विवत्सेयं त्वया कृता । तस्मात्त्वं सततं दुःखं प्रेत्य चेह च लप्स्यसे ॥२९॥
अहं त्वपाचितिं भ्रातुः पितुश्च सकलामिमाम् । वर्धनं यशसश्चापि करिष्यामि न संशयः ॥३०॥
आनाय्य च महाबाहुं कोशलेन्द्रं महाबलम् । स्वयमेव प्रवेक्ष्यामि वनं मुनिनिषेवितम् ॥३१॥
नह्यहं पापसंकल्पे पापे पापं त्वया कृतम् । शक्तो धारयितुं पौरैरश्रुकण्ठैर्निरीक्षितः ॥३२॥

इन्द्रके ऐसा कहनेपर वाक्य बोलनेमें चतुर और धीरकाय धेनु उत्तरमें उनसे बोली ॥ २१ ॥ नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है, देवराज, आप लोगोंपर कोई कष्ट आनेवाला नहीं है। मैं संकटमें पड़े हुए अपने दो पुत्रोंके लिये दुःखी हो रही हूं ॥ २२ ॥ दुष्ट किसान मेरे पुत्र बैलोंको मार रहा है, ये सूर्यकी किरणोंसे तप रहे हैं, ये दुबले पतले बड़े ही दुःखी हो रहे हैं ॥ २३ ॥ ये मेरे शरीरसे उत्पन्न हैं और आज भारसे पीड़ित होकर दुःख उठा रहे हैं, इनको इस अवस्थामें देखकर मुझे दुःख हो रहा है, क्योंकि पुत्रके समान प्रिय दूसरा नहीं है ॥ २४ ॥ जिस कामधेनुके हजारों पुत्रोंसे यह समस्त संसार भरा हुआ है वह भी पुत्रके लिये रो रही है (फिर कौसल्याकी क्या दशा होगी), इससे इन्द्रने समझा कि पुत्रसे बढ़कर प्रिय दूसरा नहीं है ॥ २५ ॥ इन्द्रके शरीरपर दो बूँद सुगन्धित आंसू पड़े थे इस कारण इन्द्रने उसे सुरभि समझा, श्रेष्ठ गन्धवाली जाना ॥ २६ ॥ कामधेनु सबसे समान और उत्तम व्यवहार करनेवाली है, मनुष्योंके मनोरथ पूर्ण करनेवाली है, लोकपालन करनेकी इच्छा रखनेवाली है, और सत्व गुण प्रधान है, वह भी स्वभावके वशवर्ती है, शोक मोह आदिके अधीन है ॥ २७ ॥ ऐसी कामधेनुके जिसके हजारों पुत्र हैं वह भी दो पुत्रोंके लिए शोक कर रही है, फिर एक पुत्रवाली कौसल्या किस प्रकार जीवन धारण कर सकेगी ॥ २८ ॥ एक पुत्रवाली साध्वी कौसल्याको तुमने पुत्रहीन बनाया, इस कारण तुम सदा इस लोक और परलोकमें दुःख पावोगी ॥ २९ ॥ मैं इस समस्त राज्यसे अपने भ्राता और पिताकी सेवा करूँगा। भ्राताको राज्य दूँगा और पिताको पिण्डदान आदि कार्य करूंगा। जिससे मेरा यश बढ़ेगा, तुम्हारा पुत्र होनेके कारण जो कलंक लगा है वह दूर होगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३० ॥ महाबली महाबाहु कोसलाधीश रामचन्द्रको यहाँ बुलवाऊंगा और स्वयं मुनियोंके वनमें जाकर रहूँगा ॥ ३१ ॥ पापिन, तुम्हारे द्वारा किया हुआ पाप-रामचन्द्रको वनमें भेजकर राज्य मुझे देना—मैं नहीं सह सकता, क्योंकि अश्रुगद्गद होकर नगरवासियोंका मेरी ओर देखना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सा त्वमग्निं प्रविश वा स्वयं वा विश दण्डकान् । रज्जुं वद्ध्वाथवा कण्ठे नहि तेऽन्यत्परायणम्॥३३॥
अहमप्यवनीं प्राप्ते रामे सत्यपराक्रमे । कृतकृत्यो भविष्यामि विप्रवासितकल्मषः ॥३४॥
इति नाग इवारण्ये तोमराङ्कुशतोदितः । पपात भुवि संक्रुद्धो निःश्वसन्निव पन्नगः ॥३५॥
संरक्तनेत्रः शिथिलाम्बरस्तथा विधूतसर्वाभरणः परंतपः ।
बभूव भूमौ पतितो नृपात्मजः शचीपतेः केतुरिवोत्सवक्षये ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमः सर्गः ७५

दीर्घकालात्समुत्थाय संज्ञां लब्ध्वा स वीर्यवान् । नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां दीनामुद्वीक्ष्य मातरम् ॥ १ ॥
सोऽमात्यमध्ये भरतो जननीमभ्यकुत्सयत् । राज्यं न कामये जातु मन्त्रये नापि मातरम् ॥ २ ॥
अभिषेकं न जानामि योऽभूद्राज्ञा समीक्षितः । विप्रकृष्टे ह्ययं देशे शत्रुघ्नसहितोऽभवम् ॥ ३ ॥
वनवासं न जानामि रामस्याहं महात्मनः । विवासनं च सौमित्रेः सीतायाश्च यथाभवत् ॥ ४ ॥
तथैव क्रोशतस्तस्य भरतस्य महात्मनः । कौसल्या शब्दमाज्ञाय सुमित्रां चेदमब्रवीत् ॥ ५ ॥
आगतः क्रूरकार्यायाः कैकेय्या भरतः सुतः । तमहं द्रष्टुमिच्छामि भरतं दीर्घदर्शिनम् ॥ ६ ॥

मुझे असह्य है ॥ ३२ ॥ इस कारण अब तुम स्वयं अग्निवेश करो या दण्डकारण्यमें जाओ अथवा गलेमें रस्सी बाँधकर मर जाओ, तुम्हारे लिये अब दूसरा उपाय नहीं है ॥ ३३ ॥ सत्यपराक्रम रामचन्द्रके अयोध्या आनेपर मेरा कलंक दूर होगा और मैं कृतकृत्य हो सकूंगा ॥ ३४ ॥ अंकुश और तोमरसे पीड़ित हाथी, जैसे वनमें गिर पड़ता है वैसेही भरत जमीनपर गिर पड़े और वे क्रोधित सर्पके समान सांस छोड़ने लगे ॥ ३५ ॥ शत्रुतापन भरतकी आँखें लाल हो गईं, वस्त्र ढीले हो गये, सब गहने टूटकर गिर पड़े और स्वयं राजकुमार भरत जमीनपर गिर पड़े जिस प्रकार उत्सवके अन्तमें इन्द्रकी ध्वजा गिर पड़ती है ॥ ३७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका चौहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७४॥

बहुत देरके बाद होशमें आकर बली भरत उठे और अश्रुपूर्ण आंखोंसे दुःखिनी (मनोरथ भंग होनेके कारण) माताकी ओर उन्होंने देखा ॥ १ ॥ भरतने राजमन्त्रियोंके सामने अपनी माताकी निन्दा की, उन्होंने कहा—मैंने कभी राज्यकी कामना नहीं की और न मैंने राज्यके लिये मातासे कभी कुछ कहा है ॥ २ ॥ राजा दसरथने जिस अभिषेककी तैयारी की थी, उसका भी पता मुझे नहीं है, उस समय मैं और शत्रुघ्न यहाँसे बहुत दूर देशमें वर्तमान थे ॥ ३ ॥ महात्मा रामचन्द्रके वनवासकी भी बात मैं नहीं जानता, लक्ष्मण और सीताका निर्वासन | जिस प्रकार हुआ उसकी भी बात मुझे मालूम नहीं ॥ ४ ॥ भरत इस प्रकार कह रहे थे। कौसल्याने शब्दसे जाना कि भरत आ गये, अतएव वे सुमित्रासे बोलीं ॥ ५ ॥ क्रूरकर्म करनेवाली केकयीका बेटा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमुक्त्वा सुमित्रां तां विवर्णवदना कृशा । प्रतस्थे भरतो यत्र वेपमाना विचेतना ॥ ७ ॥
स तु राजात्मजश्चापि शत्रुघ्नसहितस्तदा । प्रतस्थे भरतो येन कौसल्याया निवेशनम् ॥ ८ ॥
ततः शत्रुघ्नभरतौ कौसल्यां प्रेक्ष्य दुःखितौ । पर्यष्वजेतां दुखार्तां पतितां नष्टचेतनाम् ॥ ९ ॥
रुदन्तौ रुदती दुःखात्समेत्यार्या धनस्विनी । भरतं प्रत्युवाचेदं कौसल्या भृशदुःखिता ॥ १० ॥
इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकम् । संप्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा ॥ ११ ॥
प्रस्थाप्य चीरवसनं पुत्रं मे वनवासिनम् । कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी ॥ १२ ॥
क्षिप्रं मामपि कैकेयी प्रस्थापयितुमर्हति । हिरण्यनाभो यत्रास्ते सुतो मे सुमहायशाः ॥ १३ ॥
अथवा स्वयमेवाहं सुमित्रानुचरा सुखम् । अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य प्रस्थास्ये येन राघवः ॥ १४ ॥
कामं वा स्वयमेवाद्य तत्र मां नेतुमर्हसि । यत्रासौ पुरुषव्याघ्रस्तप्स्यते मे सुतस्तपः ॥ १५ ॥
इदं हि तव विस्तीर्णं धनधान्यसमाचितम् । हस्त्यश्वरथसंपूर्णं राज्यं निर्यातितं तया ॥ १६ ॥
इत्यादि बहुभिर्वाक्यैः क्रूरैः संभर्त्सितोऽनघः । विव्यथे भरतस्तीव्रव्रणे तुद्येव सूचिना ॥ १७ ॥
पपात चरणौ तस्यास्तदा संभ्रान्तचेतनः । विलप्य बहुधाऽसंज्ञो लब्धसंज्ञस्तदाभवत् ॥ १८ ॥
एवं विलपमानां तां प्राञ्जलिर्भरतस्तदा । कौसल्यां प्रत्युवाचेदं शोकैर्बहुभिरावृताम् ॥ १९ ॥
आर्ये कस्मादजानन्तं गर्हसे मामकल्मषम् । विपुलां च मम प्रीतिं स्थितां जानासि राघवे ॥ २० ॥

भरत आ गया, वह दीर्घदर्शी है, भावी फलाफलके विषयमें ज्ञान रखता है, मैं उसे देखना चाहती हूँ ॥ ६ ॥ सुमित्रासे ऐसा कहकर दुर्बल बेसुध शुष्कमुख कौसल्या जहाँ भरत थे वहाँ गयीं ॥ ७ ॥ राजकुमार भरत और शत्रुघ्न भी उस रास्तेसे चले जिससे कौसल्याके घरमें जाया जाता है ॥ ८ ॥ कौसल्याको देखकर शत्रुघ्न और भरत बहुत ही दुःखी हुए और उन लोगोंने दुःखिनी तथा जमीनमें पड़ी हुई बेसुध कौसल्याका आलिंगन किया ॥९॥ और वे रोने लगे। उनके पास आकर दुःखिनी आर्या कौसल्या भरतसे बोलीं ॥ १० ॥ यह शत्रुहीन राज्य तुमको मिला, तुमने राज्य चाहा और वह तुम्हें मिला। केकयीने बड़े ही निन्दित कर्मके द्वारा इस राज्यको राजासे पाया है ॥ ११ ॥ क्रूर केकयीने मेरे पुत्रको वल्कल वस्त्र पहनाकर वनवासी बना दिया, इससे उसे क्या फल मिला ॥ १२ ॥ मुझे भी केकयी शीघ्र ही वनमें भेज दे, जहाँ मेरा सुन्दर और यशस्वी पुत्र है ॥ १३ ॥ अथवा मैं स्वयं ही सुमित्राको साथ लेकर और अग्निहोत्रकी सामग्री साथ लेकर सुखपूर्वक उस मार्गसे जाऊँगी जिससे जानेपर रामचन्द्र मिलेंगे ॥ १४ ॥ अथवा पुरुषश्रेष्ठ मेरा प्रिय पुत्र जहाँ तपस्या कर रहा है, वहाँ तुम स्वयं ले जाकर पहुँचा दो ॥ १५ ॥ धन-धान्यसे युक्त हाथी घोड़ा रथसे पूर्ण यह विशाल राज्य केकयीने राजासे लेकर तुमको दे दिया ॥ १६ ॥ इस प्रकारके अनेक कठोर वचनोंसे कौसल्याने भरतका तिरस्कार किया, जिनसे घावमें सूई छेदनेके समान वे दुःखी हुए ॥ १७ ॥ बेसुध होकर भरत कौसल्याके चरणोंपर गिर पड़े, पुनः बहुत विलाप करके वे बेहोश हो गये, पुनः उन्हे होश आया ॥ १८ ॥ इस प्रकार विलाप करती हुई तथा अनेक तरहसे शोकोंसे व्याकुल कौसल्यासे हाथ जोड़कर भरत बोले ॥ १९ ॥ आर्ये, बिना जाने ही क्यों अपराधहीन मेरा तिरस्कार कर रही हो। आप जानती हैं कि रामचन्द्रमें मेरा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कृतशास्त्रानुगा बुद्धिर्मा भूत्तस्य कदाचन । सत्यसंधः सतां श्रेष्ठो यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२१॥
प्रैष्यं पापीयसां यातु सूर्यं च प्रतिमेहतु । हन्तु पादेन गां सुप्तां यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२२॥
कारयित्वा महत्कर्म भर्ता भृत्यमनर्थकम् । अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२३॥
परिपालयमानस्य राज्ञो भूतानि पुत्रवत् । ततस्तु द्रुह्यतां पापं यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२४॥
बलिषड्भागमुद्धृत्य नृपस्यारक्षितुः प्रजाः । अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२५॥
संश्रुत्य च तपस्विभ्यः सत्रे वै यज्ञदक्षिणाम् । तां चापलपतां पापं यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२६॥
हस्त्यश्वरथसंबाधे युद्धे शस्त्रसमाकुले । मा स्म कार्षीत्सतां धर्मं यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२७॥
उपदिष्टं सुसूक्ष्मार्थं शास्त्रं यत्नेन धीमता । स नाशयतु दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२८॥
मा च तं व्यूढवाह्वंसं चन्द्रभास्करतेजसम् । द्राक्षीद्राज्यस्थमासीनं यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२९॥
पायसं कृसरं छागं वृथा सोऽश्नातु निर्घृणः । गुरूँश्चाप्यवजानातु यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३०॥
गवां स्पृशतु पादेन गुरून्परिवदेत च । मित्रे द्रुह्येत सोऽत्यर्थं यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४१॥
विश्वासात्कथितं किंचित्परिवादं मिथः क्वचित् । विवृणोति स दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३२॥

अधिक प्रेम है ॥२०॥ सज्जनश्रेष्ठ आर्य रामचन्द्र जिनकी सम्मतिसे वन गये हों (उनको वन भेजनेके लिए जिसने परामर्श दिया हो) उसकी बुद्धि शास्त्रका अनुगमन न करे । अर्थात् अपनी ख्यातिके विरुद्ध वह चले ॥ २१ ॥ वह नीचका दास हो, वह सूर्यकी ओर पेशाब करे और वह सोयी हुई गौको पैरसे मारे जिसकी सम्मतिसे रामचन्द्र वन गये हों ॥ २२ ॥ जो स्वामी भृत्यसे बहुत बड़ा काम करा ले और उसे कुछ न दे अथवा उसका सब धन ले ले तो उसको जितना पाप होता हो वह उसे हो, जिसके परामर्शसे रामचन्द्र वन गये हों ॥ २३ ॥ पुत्रके समान पालन करनेवाले राजाके प्रति जो प्रजा-विद्रोह करे उसको जो पाप होता हो वह उसे हो, जिसके परामर्शसे रामचन्द्र वन गये हों ॥ २४ ॥ जो राजा प्रजासे कर ले और उसकी रक्षा न करे उसको जो पाप होता हो वह पाप उसे हो, जिसके परामर्शसे रामचन्द्र वन गये हों ॥ २५ ॥ यज्ञमें तपस्वियोंसे दक्षिणा देनेकी प्रतिज्ञा करके पुनः उससे जो बदल जाय उसको जो पाप होता हो वह पाप उसे हो, जिसके परामर्शसे रामचन्द्र वन गये हों ॥२६॥ हाथी, रथ, घोड़े आदिसे युक्त तथा अस्त्र-शस्त्रसे समाकुल युद्धमें जो सज्जनोंके धर्मका पालन न करे उसको जो पाप होता हो वह पाप उसे हो, जिसके परामर्शसे रामचन्द्र वन गये हों ॥ ३७ ॥ बुद्धिमान् गुरुके द्वारा प्रयत्न पूर्वक उपदिष्ट शास्त्र वह दुष्टात्मा भूल जाय जिसके परामर्शसे रामचन्द्र वन गये हों ॥ २८ ॥ लम्बी बाहु और कन्धेवाले, और चन्द्र सूर्यके समान तेजस्वी रामचन्द्रको राजसिंहासनपर बैठा न देख सके, जिसके परामर्शसे रामचन्द्र वन गये हों ॥ २९ ॥ पायस खिचड़ी माँस बिना देवताको अर्पित कियेही वह खाय, गुरुओंका तिरस्कार करे, जिसके परामर्शसे रामचन्द्र वन गये हो ॥ ३० ॥ वह गौओंको पैरसे छूए, गुरुकी निन्दा करे, मित्रोंका अत्यन्त द्रोह करे जिसके परामर्शसे रामचन्द्र वन गये हों ॥३१॥ विश्वाससे किसीसे किसीकी निन्दा कोई करे और वह दुष्ट विश्वासघात करके उसे प्रकाशित कर दे उसको जो पाप होता है वह पाप उसे हो जिसके परामर्शसे रामचन्द्र वन गये हों ॥ ३२ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अकर्ता चाकृतज्ञश्च त्यक्तश्च निरपत्रपः । लोके भवतु विद्विष्टो यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३३॥
पुत्रैर्दारैश्च भृत्यैश्च स्वगृहे परिवारितः । स एको मृष्टमश्नातु यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३४॥
अप्राप्य सदृशान्दारानननपत्यः प्रमीयताम् । अनवाप्य क्रियां धर्म्यां यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३५॥
मात्मनः संततिं द्राक्षीत्स्वेषु दारेषु दुःखितः । आयुः समग्रमप्राप्य यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३६॥
राजस्त्रीबालवृद्धानां वधे यत्पापमुच्यते । भृत्यत्यागे च यत्पापं तत्पापं प्रतिपद्यताम् ॥३७॥
लाक्षया मधुमांसेन लोहेन च विषेण च । सदैव विभृयाद्भृत्यान्यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३८॥
सङ्ग्रामे समुपोढे च शत्रुपक्षभयंकरे । पलायमानो वध्येत यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३९॥
कपालपाणिः पृथिवीमटतां चीरसंवृतः । भिक्षमाणो यथोन्मत्तो यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४०॥
मद्यप्रसक्तो भवतु स्त्रीष्वक्षेषु च नित्यशः । कामक्रोधाभिभूतश्च यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४१॥
मास्य धर्मे मनो भूयादधर्मं स निषेवताम् । अपात्रवर्षी भवतु यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४२॥
सञ्चितान्यस्य वित्तानि विविधानि सहस्रशः । दस्युभिर्विप्रलुप्यन्तां यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४३॥
उभे संध्ये शयानस्य यत्पापं परिकल्प्यते । तच्च पापं भवेत्तस्यं यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४४॥
यदाग्निदायके पापं यत्पापं गुरुतल्पगे । मित्रद्रोहे च यत्पापं तत्पापं प्रतिपद्यताम् ॥४५॥

जो उपकार करनेवालेका प्रत्युपकार न करे, अतएव अकृतज्ञ, समाजके द्वारा त्यक्त, निर्लज्ज, लोकमें निन्दित हो जिसके परामर्शसे रामचन्द्र वन गये हों ॥ ३३ पुत्र भृत्य दास आदि घरमें वर्तमान हों पर वह स्वयं उनको विना खिलाये उत्तम भोजन करे जिसके परामर्शसे रामचन्द्र वन गये हों ॥ ३४ ॥ रामचन्द्र जिसके परामर्शसे वन गये हों वह अपने योग्य स्त्री न पाकर पुत्रहीनही मर जाय और अग्निहोत्र आदि धार्मिक क्रियाओंका फल विना पाये ही वह मरे ॥३५॥ जिसके परामर्शसे रामचन्द्र वन गये हों वह अपनी स्त्रीमें पुत्रका मुँह न देखे, और पूरी आयु न पाकर मर जाय॥३६॥ राजा स्त्री बालक और वृद्धके बध करनेमें जो पाप कहा गया है, दासके त्याग करनेमें जो पाप कहा गया है वह पाप उसे हो ॥ ३७ ॥ जिसके परामर्शसे रामचन्द्र वन गये हों, वह लाख मधु माँस लोहा और विषके बेचनेसे प्राप्त धनके द्वारा अपने पुत्र आदिका पालन करे ॥ ३८ ॥ रामचन्द्र जिसके परामर्शसे वनमें गये हों वह शत्रुओंको भय देनेवाले संग्राममें भागता हुआ शत्रुके द्वारा मारा जाय ॥ ३९ ॥ रामचन्द्र जिसके परामर्शसे वनमें गये हों वह हाथमें खप्पर लेकर चीथड़ा पहनकर उन्मत्त के समान पृथिवीमें घूमे और भीख माँगे ॥ ४० ॥ रामचन्द्र जिसके परामर्शसे वनमें गये हों, वह शराबी हो जाय, परस्त्रीगामी और जुआड़ी हो जाय, वह कामी और क्रोधी हो जाय ॥ ४१ ॥ रामचन्द्र जिसके परामर्शसे वनमें गये हों उसका मन धर्ममें न लगे, वह अधर्मकी सेवा करे और वह अपात्रको दान दे ॥ ४२ ॥ रामचन्द्र जिसके परामर्शसे वन गये हों उसके संचित सब प्रकारके धन चोरोंके द्वारा चोरी चला जाय ॥ ४३ ॥ रामचन्द्र जिसके परामर्शसे वन गये हों उसे सायंकाल और प्रातःकाल दोनों सन्ध्यामें सोनेवालेका पाप हो ॥४४॥ आग लगनेवालेको जो पाप होता हो, गुरुस्त्रीगामीको जो पाप होता हो और मित्रद्रोहका जो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देवतानां पितॄणां च मातापित्रोस्तथैव च । मा स्म कार्षीत्स शुश्रूषां यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४६॥
सतां लोकात्सतां कीर्त्याः सज्जुष्टात्कर्मणस्तथा । भ्रश्यतु क्षिप्रमद्यैव यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४७॥
अपास्य मातृशुश्रूषामनर्थे सोऽवतिष्ठताम् । दीर्घबाहुर्महावक्षा यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४८॥
बहुपुत्रो दरिद्रश्च ज्वररोगसमन्वितः । समायात्सततं क्लेशं यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४९॥
आशामाशंसमानानां दीनानामूर्ध्वचक्षुषाम् । अर्थिनां वितथां कुर्याद्यस्यार्योऽनुमते गतः ॥५०॥
मायया रमतां नित्यं पुरुषः पिशुनोऽशुचिः । राज्ञो भीतस्त्वधर्मात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः ॥५१॥
ऋतुस्नातां सतीं भार्यामृतुकालानुरोधिताम् । अतिवर्तेत दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः ॥५२॥
विप्रलुप्तप्रजातस्य दुष्कृतं ब्राह्मणस्य यत् । तदेतत्प्रतिपद्येत यस्यार्योऽनुमते गतः ॥५३॥
ब्राह्मणायोद्यतां पूजां विहन्तु कलुषेन्द्रियः । बालवत्सां च गां दोग्धु यस्यार्योऽनुमते गतः ॥५४॥
धर्मदारान्पारित्यज्य परदाराभिषेवताम् । त्यक्तधर्मरतिर्मूढो यस्यार्योऽनुमते गतः ॥५५॥
पानीयदूषके पापं तथैव विषदायके । यत्तदेकः स लभतां यस्यार्योऽनुमते गतः ॥५६॥
तृषार्ते सति पानीये विप्रलम्भेन योजयन् । यत्पापं लभते तत्स्याद्यस्यार्योऽनुमते गतः ॥५७॥
भक्त्या विवदमानेषु मार्गमाश्रित्य पश्यतः । तेन पापेन युज्येत यस्यार्योऽनुमते गतः ॥५८॥

पाप होता हो वह पाप उसे हो ॥ ४५ ॥ रामचन्द्र जिसके परामर्शसे वनमें गये हों, वह देवताओं पितरों और माता पिताओंकी सेवा न कर सके ॥४६॥ रामचन्द्र जिसके परामर्शसे वनमें गये हों वह सज्जनोंके लोकसे, सज्जनोंकी कीर्तिसे तथा सज्जनोंके कर्मसे भ्रष्ट हो जाय ॥ ४७ ॥ विशाल बाहु और चौड़ी छातीवाले रामचन्द्र जिसके परामर्शसे वनमें गये हों, वह माताकी सेवा छोड़कर बुरे मार्गमें प्रवृत्त हो ॥ ४८ ॥ रामचन्द्र जिसके परामर्शसे वनमें गये हों वह दरिद्र बहुपुत्रवान हो और सदा ज्वर रोगसे पीड़ित रहा करे ॥ ४९ ॥ रामचन्द्र जिसके परामर्शसे वनमें गये हों उसकी आशा व्यर्थ हो, वह अपना मनोरथ सुनावे और दीनतापूर्वक दाताका मुख देखे, तौभी दाता उसकी आशा व्यर्थ कर दे ॥ ५० ॥ जिसके परामर्शसे रामचन्द्र वन गये हों वह चुगला अपवित्र अधर्मी राजासे भीत होकर छलके द्वारा अपना जीवन बितावे ॥ ५१ ॥ रामचन्द्र जिसके परामर्शसे वन गये हों वह दुष्टात्मा ऋतु समयमें पतिकी प्रार्थना करनेवाली ऋतुस्नाता सती स्त्रीकी प्रार्थना न माने ॥ ५२ ॥ रामचन्द्र जिसके परामर्शसे वनमें गये हो वह उस ब्राह्मणका पाप पावे जिसने अपने बच्चोंको भोजन न देकर मार डाला हो ॥ ५३ ॥ रामचन्द्र जिसके परामर्शसे वनमें गये हों वह ब्राह्मणको दी जाती हुई पूजा रोके और बालवत्सा गौको दुहे अर्थात् इनका पाप पावे ॥ ५४ ॥ रामचन्द्र जिसके परामर्शसे वनमें गये हों वह पाणिगृहीतभार्याका त्याग करे, धर्मरतिका त्यागकर वह परदाराका अनुरागी हो ॥ ५५ ॥ रामचन्द्र जिसके परामर्शसे वनमें गये हों वह विष आदिसे पीनेका पानी दूषित करनेवालेका पाप तथा विष देनेवालेका पाप अकेलाही पावे ॥ ५६ ॥ रामचन्द्र जिसके परामर्शसे वनमें गये हों उसको वह पाप लगे जो जल रहनेपर भी प्यासेको उसका पता न बतलावे, किन्तु छिपा दे ॥ ५७ ॥ रामचन्द्र जिसके परामर्शसे वनमें गये हों उसे वह पाप लगे जो झगड़ा करनेवाले दो मनुष्योंमें एकके पक्षपातसे उसीके फायदेका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमाश्वासयन्नेव दुःखार्तोऽनुपपात ह । विहीनां पतिपुत्राभ्यां कौसल्यां पार्थिवात्मजः ॥५९॥
तदा तं शपथैः कष्टैः शपमानमचेतनम् । भरतं शोकसंतप्तं कौसल्या वाक्यमब्रवीत् ॥६०॥
मम दुःखामिदं पुत्र भूयः समुपजायते । शपथैः शपमानो हि प्राणानुपरुणत्सि मे ॥६१॥
दिष्ट्या न चलितो धर्मादात्मा ते सहलक्षणः । वत्स सत्यप्रतिज्ञो हि सतां लोकानवाप्स्यसि ॥६२॥
इत्युक्त्वा चाङ्कमानीय भरतं भ्रातृवत्सलम् । परिष्वज्य महाबाहुं रुरोद भृशदुःखिता ॥६३॥
एवं विलपमानस्य दुःखार्तस्य महात्मनः । मोहाच्च शोकसंरम्भाद्भूव लुलितं मनः ॥६४॥
लालप्यमानस्य विचेतनस्य प्रनष्टबुद्धेः पतितस्य भूमौ ।
मुहुर्मुहुर्निःश्वसतश्च दीर्घं सा तस्य शोकेन जगाम रात्रिः ॥६५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ७६

तमेवं शोकसंतप्तं भरतं कैकयीसुतम् । उवाच वदतां श्रेष्ठो वसिष्ठः श्रेष्ठवाग्ऋषिः ॥ १ ॥
अलं शोकेन भद्रं ते राजपुत्र महायशः । प्राप्तकालं नरपतेः कुरु संयानमुत्तमम् ॥ २ ॥
वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा भरतो धरणीं गतः । प्रेतकृत्यानि सर्वाणि कारयामास धर्मवित् ॥ ३ ॥

निर्णय करे ॥ ५८ ॥ राजकुमार भरत पति-पुत्र-हीना कौसल्याको इस प्रकार समझाते हुएही दुःखित होकर गिर पड़े ॥ ५९ ॥ बड़े कठिन-कठिन शपथ करते हुए शोकसन्तप्त अतएव अचेतन भरतसे कौसल्या बोली ॥ ६० ॥ पुत्र, तुम्हारे इन शपथोंसे मेरे निकलते हुए प्राण रुक गये हैं और तुम्हारे शपथ करनेसे मेरा दुःख और अधिक बढ़ रहा है ॥ ६१ ॥ यह प्रसन्नताकी बात है कि सुन्दर लक्षणोंवाली तुम्हारी यह आत्मा (अन्तःकरण) धर्मसे विचलित नहीं हुई। वत्स, यदि तुम्हारी प्रतिज्ञाएँ सत्य हैं तो तुमको सज्जनोंके लोक मिलेंगे ॥ ६२ ॥ ऐसा कहकर और भ्रातृप्रेमी भरतको गोदमें लेकर दुःखिनी कौसल्याने आलिङ्गन किया और वे रोने लगी ॥ ६३ ॥ इस प्रकार विलाप करनेसे दुःख-पीड़ित महात्मा भरतका मन शोकसे और मोहसे क्षुभित हो गया ॥ ६४ ॥ भरत भूमिपर पड़े हुए थे, उनकी बुद्धि नष्ट हो गयी थी, उनका बाहरी ज्ञान नष्ट हो गया था, वे बहुत बकबक करते थे और बार-बार निःश्वास लेते थे, इस प्रकार बड़े दुःखसे उनकी वह रात बीती ॥ ६५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका पचहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७५ ॥

इस प्रकार शोक-सन्तप्त केकयी-पुत्र भरतसे, बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ, सुन्दर वचन बोलनेवाले वसिष्ठ ऋषि बोले ॥ १ ॥ राजपुत्र, अब शोक व्यर्थ है, यशस्वी राजपुत्र तुम्हारा कल्याण हो, अब वह समय उपस्थित है कि राजाको ले चलनेका प्रबन्ध करना चाहिए ॥२॥ वसिष्ठके वचन सुनकर भरतने उन्हें प्रणाम किया, धर्मज्ञ भरतने मन्त्रियोंके द्वारा राजाके प्रेतकृत्यके सब प्रबन्ध

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उद्धृत्य तैलसंसेकात्स तु भूमौ निवेशितम् । आपीतवर्णवदनं प्रसुप्तमिव भूमिपम् ॥ ४ ॥
संवेश्य शयने चाग्र्ये नानारत्नपरिष्कृते । ततो दशरथं पुत्रो विललाप सुदुःखितः ॥ ५ ॥
किं ते व्यवसितं राजन्प्रोषिते मय्यनागते । विवास्य रामं धर्मज्ञं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥ ६ ॥
क्व यास्यसे महाराज हित्वेमं दुःखितं जनम् । हीनं पुरुषसिंहेन रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ७ ॥
योगक्षेमं तु तेऽव्यग्रं को ऽस्मिन्कल्पयिता पुरे । त्वयि प्रयाते स्वस्तात रामे च वनमाश्रिते ॥ ८ ॥
विधवा पृथिवी राजँस्त्वया हीना न राजते । हीनचन्द्रेव रजनी नगरी प्रतिभाति माम् ॥ ९ ॥
एवं विलपमानं तं भरतं दीनमानसम् । अब्रवीद्वचनं भूयो वसिष्ठस्तु महामुनिः ॥ १० ॥
प्रेतकार्याणि यान्यस्य कर्तव्यानि विशांपतेः । तान्यव्यग्रं महाबाहो क्रियतामविचारितम् ॥ ११ ॥
तथेति भरतो वाक्यं वसिष्ठस्याभिपूज्य तत् । ऋत्विक्पुरोहिताचार्यांस्त्वरयामास सर्वशः ॥ १२ ॥
ये त्वग्नयो नरेन्द्रस्य अग्न्यगाराद्बहिष्कृताः । ऋत्विग्भिर्याजकैश्चैव ते हूयन्ते यथाविधि ॥ १३ ॥
शिविकायामथारोप्य राजानं गतचेतनम् । बाष्पकण्ठा विमनसस्तमूहुः परिचारकाः ॥ १४ ॥
हिरण्यं च सुवर्णं च वासांसि विविधानि च । प्राकिरन्तो जना मार्गे नृपतेरग्रतो ययुः ॥ १५ ॥
चन्दनागुरुनिर्यासान्सरलं पद्मकं तथा । देवदारूणि चाहृत्य क्षेपयन्ति तथापरे ॥ १६ ॥
गन्धानुच्चावचांश्चान्याँस्तत्र गत्वाथ भूमिपम् । तत्र संवेशयामासुश्चितामध्ये तमृत्विजः ॥ १७ ॥

कराये ॥ ३ ॥ राजाका शरीर तेलसे निकालकर भूमिपर रखा गया, राजाका शरीर कुछ पीला हो गया था, वे सोते हुएसे मालूम पड़ते थे ॥ ४ ॥ उनका शरीर बहुतही उत्तम बिछौने पर रखा गया, उस बिछौनेमें तरह-तरहके रत्न जड़े हुए थे। राजाको इस दशामें देखकर भरत बहुतही दुःखी हुए और वे विलाप करने लगे ॥५॥ राजन्, रामचन्द्र और लक्ष्मणको वनमें भेजकर तथा मेरे आनेके पहलेही आपने यह क्या निश्चय किया, स्वर्ग जानेका विचार क्यों किया ॥ ६ ॥ पुरुषसिंह सरल स्वभाव रामचन्द्रसे हीन दुःखी मुझको छोड़कर आप कहाँ जायँगे ॥ ७ ॥ आपके स्वर्ग चले जानेपर और रामचन्द्रके वन चले जाने पर आपके इस नगरमें प्रजाओंका योगक्षेम कौन करेगा ॥ ८ ॥ राजन्, आपके बिना यह पृथिवी विधवाके समान नहीं शोभती । चन्द्रहीन रात्रिके समान यह नगरी मुझे मालूम होती है ॥ ९ ॥ दुःखितमना भरत इस प्रकार विलाप करने-लगे । महामुनि वसिष्ठ उनसे पुनः बोले ॥ १० ॥ इन राजाके जो कुछ प्रेतकृत्य हैं वे सब सावधान होकर बिना सन्देहके करो । अर्थात् इन कृत्योंके फलाफलके सम्बन्धमें विचार मत करो ॥ ११ ॥ 'जो हाँ' कहकर भरतने वसिष्ठकी आज्ञा स्वीकार की और ऋत्विक् पुरोहित तथा आचार्योंको शीघ्रता करनेके लिए उन्होंने कहा ॥ १२ ॥ राजाकी अग्निशालासे जो अग्नि ऋत्विक् और याजकके द्वारा बाहर निकाली गई थी उसमें हवन किया गया ॥ १३ ॥ निष्प्राण राजाका शरीर सवारी-पर रखकर भृत्य उन्हें ले चले, वे उदास थे, उनका गला भरा हुआ था ॥ १४ ॥ राजाके आगे-आगे लोग सोना और चाँदीके फूल तथा और अनेक तरहके फूल लुटाते जाते थे ॥ १५ ॥ चन्दन, अगुरु, गुग्गुल सरस पद्मक तथा देवदारुकी लकड़ी लाकर लोग राजाकी चितामें रखने लगे ॥ १६ ॥ और भी अनेक सुगन्धित वस्तु उस चितामें रखी गयी, ऋत्विजोंने राजाके उस शरीरको चितामें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तदा हुताशनं हुत्वा जेपुस्तस्य तदृत्विजः । जगुश्च ते यथाशास्त्रं तत्र सामानि सामगाः ॥१८॥
शिबिकाभिश्च यानैश्च यथार्हं तस्य योषितः । नगरान्निर्ययुस्तत्र वृद्धैः परिवृतास्तथा ॥१९॥
प्रसव्यं चापि तं चक्रुर्ऋत्विजोऽग्निचितं नृपम् । स्त्रियश्च शोकसंतप्ताः कौसल्याप्रमुखास्तदा ॥२०॥
क्रौञ्चीनामिव नारीणां निनादस्तत्र शुश्रुवे । आर्तानां करुणं काले क्रोशन्तीनां सहस्रशः ॥२१॥
ततो रुदन्त्यो विवशा विलप्य च पुनःपुनः । यानेभ्यः सरयूतीरमवतेरुर्नृपाङ्गनाः ॥२२॥
कृत्वोदकं ते भरतेन सार्धं नृपाङ्गना मन्त्रिपुरोहिताश्च ।
पुरं प्रविश्याश्रुपरीतनेत्रा भूमौ दशाहं व्यनयन्त दुःखम् ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ७७

ततो दशाहेऽतिगते कृतशौचो नृपात्मजः । द्वादशेऽहनि संप्राप्ते श्राद्धकर्माण्यकारयत् ॥ १ ॥
ब्राह्मणेभ्यो धनं रत्नं ददावन्नं च पुष्कलम् । वास्तिकं बहु शुक्लं च गाश्चापि बहुशस्तदा ॥ २ ॥
दासीदासाँश्च यानानि वेश्मानि सुमहान्ति च । ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुत्रो राज्ञस्तस्यौर्ध्वदेहिकम् ॥ ३ ॥
ततः प्रभातसमये दिवसे च त्रयोदशे । विललाप महाबाहुर्भरतः शोकमूर्च्छितः ॥ ४ ॥

रखा ॥१७॥ राजाके ऋत्विजोंने अग्निमें हवन किया तथा मन्त्रोंका जप किया और साम गानेवालोंने शास्त्रानुसार साम मन्त्रोंका गान किया ॥ १८ ॥ राजाकी स्त्रियाँ सवारियोंपर तथा अन्य यानोंपर वृद्धोंके साथ नगरसे बाहर आयीं ॥ १९ ॥ आग दीहुई राजाकी चिताकी ऋत्विजोंने तथा शोकसन्तप्त कौसल्या आदि स्त्रियोंने प्रदक्षिणा की ॥ २० ॥ उस समय दुःखसे विलाप करती हुई क्रौंचियों (टिटिहिरियों) के रोनेके समान हजारों दुःखिनी स्त्रियोंके रोनेका शब्द सुन पड़ा ॥२१॥ रोती-रोती वे स्त्रियाँ मुरझा गयीं, बार-बार उन लोगोंने विलाप किया, पुनः वे राजस्त्रियाँ सरयूके तीरपर सवारियोंसे उतरीं ॥ २२ ॥ राजाकी वे स्त्रियाँ तथा मन्त्री और पुरोहित आदिने भरतके साथ राजाको जलांजलि दी, वहाँसे रोते हुए वे नगरमें आये और उन लोगोंने दस दिन भूमि शयन आदिके द्वारा दुःखपूर्वक बिताये ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका छिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७६ ॥

तदनन्तर दस दिन बीतनेपर राजकुमार भरतने ग्यारहवें दिनके आत्मशुद्धि करनेवाले कर्म किये । पुनः बारहवें दिनके आनेपर उन्होंने राजाके सब श्राद्ध कर्म किये ॥ १ ॥ ब्राह्मणोंको धन रत्न तथा बहुत सा अन्न, अनेक प्रकारके दामी वस्त्र, बकरी और अनेक गौ उन्होंने दिये ॥२॥ दासियाँ, दास, यान तथा बड़े-बड़े घर उन्होंने राजाके परलोकके लिए ब्राह्मणोंको दिये ॥ ३ ॥ तेरहवें दिन महाबाहु भरतने राजाके लिए विलाप किया और वे शोकसे मूर्च्छित हो गये ॥ ४ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शब्दापिहितकण्ठश्च शोधनार्थमुपागतः । चितामूले पितुर्वाक्यमिदमाह सुदुःखितः ॥ ५ ॥
तात यस्मिन्निसृष्टोऽहं त्वया भ्रातरि राघवे । तस्मिन्वनं प्रव्रजिते शून्ये त्यक्तोऽस्म्यहं त्वया ॥ ६ ॥
यस्या गतिरनाथायाः पुत्रः प्रव्राजितो वनम् । तामम्बां तात कौसल्यां त्यक्त्वा त्वं क्व गतो नृप ॥ ७ ॥
दृष्ट्वा भस्मारुणं तच्च दग्धास्थि स्थानमण्डलम् । पितुः शरीरनिर्वाणं निष्टनन्निषसाद ह ॥ ८ ॥
स तु दृष्ट्वा रुदन्दीनः पपात धरणीतले । उत्थाप्यमानः शक्रस्य यन्त्रध्वज इवोच्छ्रितः ॥ ९ ॥
अभिपेतुस्ततः सर्वे तस्यामात्याः शुचिव्रतम् । अन्तकाले निपतितं ययातिमृषयो यथा ॥ १० ॥
शत्रुघ्नश्चापि भरतं दृष्ट्वा शोकपरिप्लुतम् । विसंज्ञो न्यपतद्भूमौ भूमिपालमनुस्मरन् ॥ ११ ॥
उन्मत्त इव निश्चित्तो विललाप सुदुःखितः । स्मृत्वा पितुर्गुणाञ्जानि तानि तानि तदातदा ॥ १२ ॥
मन्थराप्रभवस्तीव्रः कैकेयीग्राहसंकुलः । वरदानमयोऽक्षोभ्योऽमज्जयच्छोकसागरः ॥ १३ ॥
सुकुमारं च बालं च सततं लालितं त्वया । क्व तात भरतं हित्वा विलपन्तं गतो भवान् ॥ १४ ॥
ननु भोज्येषु पानेषु वस्त्रेष्वाभरणेषु च । प्रवारयति सर्वान्नस्तन्नः कोऽद्य करिष्यति ॥ १५ ॥
अवदारणकाले तु पृथिवी नावदीर्यते । विहीना या त्वया राज्ञा धर्मज्ञेन महात्मना ॥ १६ ॥
पितरि स्वर्गमापन्ने रामे चारण्यमाश्रिते । किं मे जीवितसामर्थ्यं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ॥ १७ ॥

अस्थिसञ्चय करनेके लिये वे चिताके पास आये, उनका गला भरा हुआ था, आवाज नहीं निकलती थी, बड़े दुःखी होकर उन्होंने पिताके लिए यह कहा ॥ ५ ॥ पिता, जिस भाई रामचन्द्रको आपने मुझे सौंपा था, आज वे वनमें चले गये, मैं निरालम्ब हूँ, आपने बिना आधारके मुझे छोड़ा ॥ ६ ॥ जिस अनाथा कौसल्याका अवलम्ब पुत्र वनमें भेजा गया, राजन्, उस माता कौसल्याको छोड़कर आप कहाँ चले गये ॥ ७ ॥ राजाकी जली हुई हड्डियोंके स्थानको देखकर, जो जलनेसे लाल हो गया था और जहाँ पिताके शरीरका विनाश हुआ था, भरत जोर-जोरसे रोने लगे और दुःखी हुए ॥ ८ ॥ वह सब देखकर दुःखी भरत रोने लगे और जमीनपर गिर पड़े । ऊपर उठी इन्द्रकी ध्वजाके समान लोगोंसे उठाये जानेपर भी वे गिर पड़े ॥ ९ ॥ शुद्ध व्रतवाले भरतके साथ उनके सचिव भी पृथिवीमें गिर पड़े, जिस प्रकार अन्तकालमें राजा ययातिके साथ ऋषि गिरे थे ॥ १० ॥ भरतको शोकव्याप्त देखकर शत्रुघ्न भी राजाका स्मरण करते हुए बेहोश हो गये और वे जमीन-पर गिर पड़े ॥ ११ ॥ समय-समय पर प्रकाशित हुए राजाके गुणों और उनके अंगोंको स्मरण करके शत्रुघ्न बहुत दुःखी हुए और वे बेसुध होकर उन्मत्तके समान विलाप करने लगे ॥ १२ ॥ मन्थरासे उत्पन्न केकयीके वचन-रूपी ग्राहोंसे भरा हुआ वरदान रूपी अक्षोभ्य शोक-सागरने शत्रुघ्नको डुबा लिया ॥ १३ ॥ सुकुमार बालक जिसका तुमने सदा लालन किया है, उस रोते हुए भरतको छोड़कर पिता आप कहाँ चले गये ॥ १४ ॥ भोजनों, पानों (पेय पदार्थ), वस्त्रों और आभरणोंको आप हम लोगोंसे पसन्द कराया करते थे, आज वह कौन करावेगा ॥ १५ ॥ आपके समान धर्मज्ञ महात्मा राजाके न रहनेपर इस पृथिवीको फट जाना चाहिए था, सो यह फटती क्यों नहीं ॥ १६ ॥ पिताके स्वर्ग चले जाने और रामके वन चले जाने पर मुझमें अब जीनेकी कौन सामर्थ्य है, अब

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हीनो भ्रात्रा च पित्रा च शून्यामिक्ष्वाकुपालिताम्। अयोध्यां न प्रवेक्ष्यामि प्रवेक्ष्यामि तपोवनम् ॥१८॥
तयोर्विलपितं श्रुत्वा व्यसनं चाप्यवेक्ष्य तत्। भृशमार्ततरा भूयः सर्व एवानुगामिनः ॥१९॥
ततो विषण्णौ श्रान्तौ च शत्रुघ्नभरतावुभौ। धरायां स्म व्यचेष्टेतां भग्नशृङ्गाविवर्षभौ ॥२०॥
ततः प्रकृतिमान्वैद्यः पितुरेषां पुरोहितः। वसिष्ठो भरतं वाक्यमुत्थाप्य तमुवाच ह ॥२१॥
त्रयोदशोऽयं दिवसः पितुर्वृत्तस्य ते विभो। सावशेषास्थिनिचये किमिह त्वं विलम्बसे ॥२२॥
त्रीणि द्वन्द्वानि भूतेषु प्रवृत्तान्यविशेषतः। तेषु चापरिहार्येषु नैवं भवितुमर्हसि ॥२३॥
सुमन्त्रश्चापि शत्रुघ्नमुत्थाप्याभिप्रसाद्य च। श्रावयामास तत्वज्ञः सर्वभूतभवाभवौ ॥२४॥
उत्थितौ तौ नरव्याघ्रौ प्रकाशेते यशस्विनौ। वर्षातपपरिग्लानौ पृथगिन्द्रध्वजाविव ॥२५॥
अश्रूणि परिमृद्नन्तौ रक्ताक्षौ दीनभाषिणौ। अमात्यास्त्वरयन्ति स्म तनयौ चापराः क्रियाः॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ७८

अथ यात्रां समीहन्तं शत्रुघ्नो लक्ष्मणानुजः। भरतं शोकसंतप्तमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
गतिर्यः सर्वभूतानां दुःखे किं पुनरात्मनः। स रामः सत्त्वसंपन्नः स्त्रिया प्रव्राजितो वनम् ॥ २ ॥

मैं क्यों जीऊँगा, अब मैं अग्निमें प्रवेश करूँगा ॥ १७ ॥ पिता और भाईसे शून्य इक्ष्वाकु-वंशीय राजाओंके द्वारा पालित इस अयोध्या नगरीमें मैं अब प्रवेश न करूँगा, अब मैं तपोवनमें प्रवेश करूँगा॥१८॥ उन दोनों भरत और शत्रुघ्नका ऐसा विलाप सुनकर तथा उन लोगोंपर आया हुआ ऐसा कष्ट देखकर उनके साथवाले सभी अनुगामी अधिक दुःखी हुए ॥१९॥ तदनन्तर दुःखी और थके हुए भरत और शत्रुघ्न पृथिवीपर सींग टूटे हुए दो बैलोंके समान लोटने लगे ॥ २० ॥ तदनन्तर उदार स्वभाववाले ब्रह्मज्ञानी और इनके पिताके पुरोहित वसिष्ठ भरतको उठाकर ऐसा बोले ॥ २१ ॥ विभो, तुम्हारे पिताके मरनेका आज यह तेरहवाँ दिन है, अभी अस्थि-संचय नहीं हुआ है, क्यों विलम्ब करते हो ॥२२॥ सभी प्राणियोंको ये तीन द्वन्द्व (जोड़े) भूख-प्यास, शोक-मोह और जरा-मृत्यु अनिवार्य हैं, ये सभीको होते हैं, इनसे कोई बच नहीं सकता, अतएव इस अपरिहार्य विषयमें तुमको ऐसा शोक नहीं करना चाहिए ॥ २३ ॥ तत्वज्ञ सुमन्त्रने शत्रुघ्नको उठाया और उन्हे प्रसन्न करके उन्होंने प्राणियोंके जन्म तथा मृत्युकी बातें समझायीं ॥ २४ ॥ वे दोनों यशस्वी नरश्रेष्ठ उठकर वर्षा और धूपसे म्लान इन्द्रध्वजके समान मालूम होने लगे ॥ २५ ॥ वे आँखे पोछ रहे थे, उनकी आँखे लाल हो गयीं थीं, वे बड़े दुःखी होकर बोल रहे थे। उन दोनों राजपुत्रोंको सचिवोंने अन्य क्रियाएँ करनेके लिये प्रेरित किया ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका सतहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥७७॥

शोक-संतप्त भरत रामचन्द्रके पास जानेका विचार करने लगे, लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्न उनसे ऐसा बोले ॥ १ ॥ जो रामचन्द्र दुःखके समय सब प्राणियोंके अवलम्ब हैं, हम लोगोंके लिये

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बलवान्वीर्यसंपन्नो लक्ष्मणो नाम योऽप्यसौ । किं न मोचयते रामं कृत्वापि पितृनिग्रहम् ॥ ३ ॥
पूर्वमेव तु विग्राह्यः समवेक्ष्य नयानयौ । उत्पथं यः समारूढो नार्यां राजा वशं गतः ॥ ४ ॥
इति संभाषमाणे तु शत्रुघ्ने लक्ष्मणानुजे । प्राग्द्वारेऽभूत्तदा कुब्जा सर्वाभरणभूषिता ॥ ५ ॥
लिप्ता चन्दनसारेण राजवस्त्राणि बिभ्रती । विविधं विविधैस्तैस्तैर्भूषणैश्च विभूषिता ॥ ६ ॥
मेखलादामभिश्चित्रैरन्यैश्च वरभूषणैः । बभासे बहुभिर्बद्धा रज्जुभिरिव वानरी ॥ ७ ॥
तां समीक्ष्य तदा द्वाःस्थो भृशं पापस्य कारिणीम् । गृहीत्वा करुणं कुब्जां शत्रुघ्नाय न्यवेदयत् ॥ ८ ॥
यस्याः कृते वने रामो न्यस्तदेहश्च वः पिता । सेयं पापा नृशंसा च तस्याः कुरु यथामति ॥ ९ ॥
शत्रुघ्नश्च तदाज्ञाय वचनं भृशदुःखितः । अन्तःपुरचरान्सर्वानित्युवाच धृतव्रतः ॥१०॥
तीव्रमुत्पादितं दुःखं भ्रातॄणां मे तथा पितुः । यथा सेयं नृशंसस्य कर्मणः फलमश्नुताम् ॥११॥
एवमुक्त्वा च तेनाशु सखीजनसमावृता । गृहीता बलवत्कुब्जा सा तद्गृहमनादयत् ॥१२॥
ततः सुभृशसंतप्तस्तस्याः सर्वः सखीजनः । क्रुद्धमाज्ञाय शत्रुघ्नं व्यपलायत सर्वशः ॥१३॥
अमन्त्रयत कृत्स्नश्च तस्याः सर्वः सखीजनः । यथायं समुपक्रान्तो निःशेषं नः करिष्यति ॥१४॥
सानुक्रोशां वदान्यां च धर्मज्ञां च यशस्विनीम् । कौसल्यां शरणं यामः सा हि नोऽस्ति ध्रुवा गतिः॥१५॥

तो बात ही क्या, वे ही पराक्रमी रामचन्द्र स्त्रीके साथ वन भेज दिये गये हैं ॥ २ ॥ लक्ष्मण तो बलवान और वीर हैं, उन्होंने पिताको दबाकर रामचन्द्रको वनवाससे क्यों नहीं मुक्त किया ॥ ३ ॥ राजा दसरथने स्त्रीके वश होकर जब न्याय मार्गका उल्लंघन किया और रामचन्द्रको वन भेजा, उसके पहले ही उचित अनुचितका विचार करके राजाको रोकना चाहिये था, जबरदस्ती राजाको ऐसा काम नहीं करने देना चाहिये था ॥४॥ लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्न जब इस प्रकार बोल रहे थे, तब सब आभूषणोंसे विभूषित कुब्जा पूर्वके द्वारपर खड़ी देख पड़ी ॥ ५ ॥ चन्दन-सार (चन्दनका अतर) वह लगाये हुई थी, राजोचित वस्त्र धारण किये हुईथी तथा अन्य अनेक प्रकारके विभूषणोंसे विभूषित थी॥६॥जड़ाऊ करधनी तथा अन्य अनेक भूषणोंसे वह रस्सीमें बँधी वानरीके समान मालुम पड़ती थी ॥७॥ अनेक पापोंके करनेवाली उस कुब्जाको द्वारपालने देखा, और उसे पकड़कर वह जबरदस्ती शत्रुघ्नके पास ले आया॥८॥उसनेशत्रुघ्नसे कहा—जिसके कारण रामचन्द्र वनमें गये हैं और आपके पिताने शरीर त्याग किया है वही क्रूर पापिन यह है, इसके लिये आपकी जो इच्छा हो वह आप करें ॥ ९ ॥ नितान्त दुःखी शत्रुघ्नने द्वारपालके वचन समझकर रनिवासमें रहनेवाले सब लोगोंसे कहा ॥ १० ॥ इसने मेरे भाइयों तथा पिताको बड़ा दुःख दिया है, अब यह अपने क्रूर कर्मका फल पावे ॥ ११ ॥ ऐसा कहकर शत्रुघ्नने सखियोंसे घिरी मन्थराको बलपूर्वक पकड़ा जिससे उसने उस समूचे घरको अपने चीत्कारसे गुंजा दिया ॥१२॥ इससे उसकी सब सखियाँ अत्यन्त क्रुद्ध हुईं और वे शत्रुघ्नको क्रोधित जानकर इधर-उधर भाग गयीं ॥ १३ ॥ मन्थराकी सब सखियोंने विचार कर निश्चय किया कि शत्रुघ्नका जो ढंग है उससे मालुम पड़ता है कि ये हम लोगोंको मार ही डालेंगे ॥ १४ ॥ अतएव इस समय हम लोगोंको दयालु, दानी, धर्म जाननेवाली यशस्विनी कौसल्याकी शरण जाना चाहिए, वेही इस समय हम लोगोंकी रक्षा कर सकेंगी ॥१५॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स च रोषेण संवीतः शत्रुघ्नः शत्रुशासनः । संचकर्ष तदा कुब्जां क्रोशन्तीं पृथिवीतले ॥१६॥
तस्यां ह्याकृष्यमाणायां मन्थरायां ततस्ततः । चित्रं बहुविधं भाण्डं पृथिव्यां तद्व्यशीर्यत ॥१७॥
तेन भाण्डेन विस्तीर्णं श्रीमद्राजनिवेशनम् । अशोभत तदा भूयः शारदं गगनं यथा ॥१८॥
स बली बलवत्क्रोधाद्गृहीत्वा पुरुषर्षभः । कैकेयीमभिनिर्भर्त्स्य बभाषे परुषं वचः ॥१९॥
तैर्वाक्यैः परुषैर्दुःखैः कैकेयी भृशदुःखिता । शत्रुघ्नभयसंत्रस्ता पुत्रं शरणमागता ॥२०॥
तं प्रेक्ष्य भरतः क्रुद्धं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत् । अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदाः क्षम्यतामिति ॥२१॥
हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम् । यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम् ॥२२॥
इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति राघवः । त्वां च मां चैव धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम् ॥२३॥
भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नो लक्ष्मणानुजः । न्यवर्तत ततो दोषात्तां मुमोच च मूर्च्छिताम् ॥२४॥
सा पादमूले कैकेय्या मन्थरा निपपात ह । निःश्वसन्ती सुदुःखार्ता कृपणं विललाप ह ॥२५॥

शत्रुघ्नाविक्षेपविमूढसंज्ञां समीक्ष्य कुब्जां भरतस्य माता ।
शनैः समाश्वासयदार्तरूपां क्रौञ्चीं विलग्नामिव वीक्षमाणाम् ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डेऽष्टसप्ततितमः सर्गः ॥७८॥

शत्रुओंका शासन करनेवाले शत्रुघ्न क्रोधमें भरकर मन्थराको जमीनमें पटककर खींचने लगे और वह चिल्लाने लगी ॥ १६ ॥ मन्थराके इधर-उधर घसीटी जानेके कारण उसके शरीरसे टूटकर गहने पृथिवीपर गिर पड़े ॥ १७ ॥ उसके गहनोंसे भरा हुआ वह राजमहल उस समय शरद्ऋतुके आकाशके समान शोभित होता था ॥ १८ ॥ बलवान पुरुषश्रेष्ठ शत्रुघ्नने उसे बड़े क्रोधसे पकड़ा, केकयी उसको छुड़ानेके लिये आयी तो उसे भी डांटकर कठोर वचन उन्होंने कहे ॥ १९ ॥ उन कठोर और दुःख देनेवाले वचनोंसे केकयी बहुत दुःखी हुई, शत्रुघ्नसे डरकर वह अपने पुत्रकी शरण गयी ॥ २० ॥ शत्रुघ्नको क्रोधित देखकर भरतने कहा—स्त्रियाँ सबके लिए अवध्य हैं, अतएव तुम इसे क्षमा करो ॥ २१ ॥ दुष्ट आचरणवाली इस पापिन केकयीको मैं ही मारता, यदि धर्मात्मा रामचन्द्र मातृहत्या समझकर मुझसे घृणा न करते ॥ २२ ॥ इस मन्थराको भी तुम्हारे द्वारा मारी गयी जब रामचन्द्र जानेंगे, तब वे मुझसे और तुमसे बोलना बन्द कर देंगे, यह निश्चय समझो ॥ २३ ॥ भरतके वचन सुनकर लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्न मन्थराके वध करनेसे निवृत्त हुए और उसे मूर्छित दशामें उन्होंने छोड़ दिया ॥ २४ ॥ वह मन्थरा केकयीके चरणोंपर गिर पड़ी और लम्बी साँस लेकर बड़े दुःखसे विलाप करने लगी ॥ २५ ॥ शत्रुघ्नके घसीटनेसे बेहोश मन्थराको देखकर भरतकी माता केकयी धीरे-धीरे होशमें ले आयी। वह जालमें फँसी हुई क्रौंचीके समान बड़े दुःखसे केकयीकी ओर देख रही थी ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका अठहत्तरवां सर्ग समाप्त ॥ ७८ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकोनाशीतितमः सर्गः ७९

ततः प्रभातसमये दिवसेऽथ चतुर्दशे । समेत्य राजकर्तारो भरतं वाक्यमब्रुवन् ॥ १ ॥
गतो दशरथः स्वर्गं यो नो गुरुतरो गुरुः । रामं प्रव्राज्य वै ज्येष्ठं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥ २ ॥
त्वमद्य भव नो राजा राजपुत्र महायशः । संगत्या नापराध्नोति राज्यमेतदनायकम् ॥ ३ ॥
आभिषेचनिकं सर्वमिदमादाय राघव । प्रतीक्षते त्वां स्वजनः श्रेणयश्च नृपात्मज ॥ ४ ॥
राज्यं गृहाण भरत पितृपैतामहं ध्रुवम् । अभिषेचय चात्मानं पाहि चास्मान्नरर्षभ ॥ ५ ॥
आभिषेचनिकं भाण्डं कृत्वा सर्वं प्रदक्षिणम् । भरतस्तं जनं सर्वं प्रत्युवाच धृतव्रतः ॥ ६ ॥
ज्येष्ठस्य राजता नित्यमुचिता हि कुलस्य नः । नैवं भवन्तो मां वक्तुमर्हन्ति कुशला जनाः ॥ ७ ॥
रामः पूर्वो हि नो भ्राता भविष्यति महीपतिः । अहं त्वरण्ये वत्स्यामि वर्षाणि नव पञ्च च ॥ ८ ॥
युज्यतां महती सेना चतुरङ्गमहाबला । आनयिष्याम्यहं ज्येष्ठं भ्रातरं राघवं वनात् ॥ ९ ॥
आभिषेचनिकं चैव सर्वमेतदुपस्कृतम् । पुरस्कृत्य गमिष्यामि रामहेतोर्वनं प्रति ॥१०॥
तत्रैव तं नरव्याघ्रमभिषिच्य पुरस्कृतम् । आनयिष्यामि वै रामं हव्यवाहमिवाध्वरात् ॥११॥
न सकामां करिष्यामि स्वामिमां मातृगन्धिनीम् । वने वत्स्याम्यहं दुर्गे रामो राजा भविष्यति॥१२॥
क्रियतां शिल्पिभिः पन्थाः समानि विषमाणि च । रक्षिणश्चानुसंयान्तु पथि दुर्गविचारकाः ॥१३॥

तदनन्तर चौदहवें दिन प्रातःकाल मन्त्रिगण मिलकर भरतके पास आये और उनसे बोले ॥ १ ॥ रामचन्द्र और महाबली लक्ष्मणको वनमें भेजकर राजा दसरथ स्वर्ग चले गये, जो हम लोगोंके परम गुरु थे ॥ २ ॥ इस राज्यका कोई राजा नहीं है, अतएव राजपुत्र, आप इस राज्यके राजा होवें । बड़े भाईके रहनेपर भी आप पिताकी आज्ञासे राज्यग्रहण करके भी अपराधी न होंगे ॥ ३ ॥ राजपुत्र, ये मन्त्रिगण तथा पुरवासी, अभिषेककी सब सामग्रियाँ एकत्र करके तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥ ४ ॥ भरत, पिता--पितामहोंका यह राज्य ग्रहण करो, अपना अभिषेक कराओ और हम लोगोंका पालन करो ॥ ५ ॥ भरतने अभिषेककी उन सब सामग्रियोंकी प्रदक्षिणा की और व्रती भरत उन सब लोगोंसे बोले ॥ ६ ॥ ज्येष्ठ ही राज्याधिकारी होता है, यही हमारे कुलकी रीति है, अतएव आप चतुर लोग मुझसे ऐसा न कहें ॥ ७ ॥ रामचन्द्र हमारे बड़े भाई हैं, वे राजा होंगे और मैं चौदह वर्षोंतक वनवास करूंगा ॥ ८ ॥ चतुरंगिणी महाबलवती सेना आप लोग तयार करें, मैं बड़े भाई रामचन्द्रको वनसे लौटा लाऊंगा ॥ ९ ॥ अभिषेकको जो ये सब सामग्रियाँ एकत्र की गईं है, उन सबको साथ ले रामचन्द्रके लिए मैं वनमें जाऊँगा ॥ १० ॥ वहीं नरश्रेष्ठ रामचन्द्रकी पूजा करके उनका अभिषेक करूँगा. और यज्ञसे अग्निके समान मैं उन्हे लौटा लाऊँगा ॥ ११ ॥ मेरी माता कहानेवाली इसको मैं पूर्णमनोरथ न होने दूंगा, मैं दुर्गम वनमें जाकर रहूँगा और रामचन्द्र राजा होंगे ॥ १२ ॥ कारीगर रास्ता बनावें, ऊँची नीची जमीनको बराबर करें, मार्गमें भयानक स्थानको जाननेवाले रक्षक साथ चलें ॥ १३ ॥ रामचन्द्रके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं संभाषमाणं तं रामहेतोर्नृपात्मजम् । प्रत्युवाच जनः सर्वः श्रीमद्वाक्यमनुत्तमम् ॥१४॥
एवं ते भाषमाणस्य पद्मा श्रीरुपतिष्ठताम् । यस्त्वं ज्येष्ठे नृपसुते पृथिवीं दातुमिच्छसि ॥१५॥
अनुत्तमं तद्वचनं नृपात्मजप्रभाषितं संश्रवणे निशम्य च ।
प्रहर्षजास्तं प्रति बाष्पबिन्दवो निपेतुरार्याननेत्रसंभवाः ॥१६॥
ऊचुस्ते वचनमिदं निशम्य हृष्टाः सामात्याः सपरिषदो वियातशोकाः ।
पन्थानं नरवर भक्तिमाञ्जनश्च व्यादिष्टस्तव वचनाच्च शिल्पिवर्गः ॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः ८०

अथ भूमिप्रदेशज्ञाः सूत्रकर्मविशारदाः । स्वकर्माभिरताः शूराः खनका यन्त्रकास्तथा ॥ १ ॥
कर्मान्तिकाः स्थपतयः पुरुषा यन्त्रकोविदाः । तथा वर्धकयश्चैव मार्गिणो वृक्षतक्षकाः ॥ २ ॥
सूपकाराः सुधाकारा वंशचर्मकृतस्तथा । समर्था ये च द्रष्टारः पुरतश्च प्रतस्थिरे ॥ ३ ॥
स तु हर्षात्तमुद्देशं जनौघो विपुलः प्रयान् । अशोभत महावेगः सागरस्येव पर्वणि ॥ ४ ॥
ते स्वभारं समास्थाय वर्त्मकर्माणि कोविदाः । करणैर्विविधोपेतैः पुरस्तात्संप्रतस्थिरे ॥ ५ ॥
लता वल्लीश्च गुल्मांश्च स्थाणूनश्मन एव च । जनास्ते चक्रिरे मार्गं छिन्दन्तो विविधान्द्रुमान् ॥ ६ ॥

लिये ऐसा कहते हुए भरतको सब लोगोंने बड़े सुन्दर शब्दोंमें कहा ॥ १४ ॥ आप जो ऐसा कह रहे हैं, इस कारण पद्मचिह्नवाली लक्ष्मी आपको प्राप्त हो, क्योंकि आप अपने बड़े भाई राजपुत्रको पृथिवीका राज्य देना चाहते हैं ॥ १५ ॥ रामचन्द्रके सम्बन्धकी भरतकी वैसी श्रेष्ठ बात सुनकर सभी श्रेष्ठ मनुष्योंकी आँखोंसे आनन्दाश्रु गिरने लगा ॥ १६ ॥ भरतके ये वचन सुनकर सचिव सभाके सभी सदस्य शोकहीन होकर प्रसन्न हो गये और वे बोले—आपके कहनेसे आपमें भक्ति रखनेवाले कारीगर मार्ग ठीक करनेके लिये भेज दिये गये हैं ॥ १७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका उन्नासीवां सर्ग समाप्त ॥ ७९ ॥

ऊँची नीची जमीनको जाननेवाले, छावनी आदि बनानेमें निपुण, अपने काममें निपुण शूर, खोदनेवाले, जलप्रवाह आदिको रोकनेवाले ॥ १ ॥ नौकर कारीगर, रथ आदि बनानेवाले मिस्त्री, यन्त्र बनानेवाले बढ़ई, मार्गकी रक्षा करनेवाले तथा वृक्ष काटनेवाले, ॥ २ ॥ रसोई बनानेवाले, रंगसाज, बाँस और चमड़ेका काम करनेवाले, तथा योग्य देखनेवाले आगे चले ॥ ३ ॥ रामचन्द्रके यहाँ जानेकी प्रसन्नताके कारण वह विशाल जनसमुदाय पूर्णिमाके समुद्रके महावेगके समान मालूम होता था ॥ ४ ॥ मार्गनिर्माणमें दक्ष वे कारीगर अपनी बारी सम्भालनेके लिए, अपना काम करनेके लिए, अनेक प्रकारकी आवश्यक सामग्रियोंको लेकर सबसे आगे चले ॥ ५ ॥ लता, वल्ली, गुल्म काँटे तथा पत्थर हटाकर तथा वृक्षोंको काटकर उन मनुष्योंने मार्ग बनाये ॥६॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अवृक्षेषु च देशेषु केचिद्वृक्षानरोपयन् । केचित्कुठारैष्टङ्कैश्च दात्रैश्छिन्दन्कचित्कचित् ॥ ७ ॥
अपरे वीरणस्तम्बान्बलिनो बलवत्तराः । विधमन्ति स्म दुर्गाणि स्थलानि च ततस्ततः॥ ८ ॥
अपरेऽपूरयन्कूपान्पांसुभिः श्वभ्रमायतम् । निम्नभागांस्तथैवाशु समाँश्चक्रुः समन्ततः ॥ ९ ॥
बबन्धुर्बन्धनीयाँश्च क्षोद्यान्संचुक्षुदुस्तथा । विभिदुर्भेदनीयाँश्च ताँस्तान्देशान्नरास्तदा ॥१०॥
अचिरेण तु कालेन परिवाहान्बहूदकान् । चक्रुर्बहुविधाकारान्सागरप्रतिमान्बहून् ॥११॥
निर्जलेषु च देशेषु खानयामासुरुत्तमान् । उदपानान्बहुविधान्वेदिकापरिमण्डितान् ॥१२॥
समुधाकुट्टिमतलः प्रपुष्पितमहीरुहः । मत्तोद्घुष्टद्विजगणः पताकाभिरलंकृतः ॥१३॥
चन्दनोदकसंसिक्तो नानाकुसुमभूषितः । बह्वशोभत सेनायाः पन्थाः सुरपथोपमः ॥१४॥
आज्ञाप्याथ यथाज्ञप्ति युक्तास्तेऽधिकृता नराः । रमणीयेषु देशेषु बहुस्वादुफलेषु च ॥१५॥
यो निवेशस्त्वभिप्रेतो भरतस्य महात्मनः । भूयस्तं शोभयामासुर्भूषाभिर्भूषणोपमम् ॥१६॥
नक्षत्रेषु प्रशस्तेषु मुहूर्तेषु च तद्विदः । निवेशान्स्थापयामासुर्भरतस्य महात्मनः ॥१७॥
बहुपांसुचयाश्चापि परिखाः परिवारिताः । तत्रेन्द्रनीलप्रतिमाः प्रतोलीवरशोभिताः ॥१८॥
प्रासादमालासंयुक्ताः सौधप्राकारसंवृताः । पताकाशोभिताः सर्वे सुनिर्मितमहापथाः ॥१९॥

जहाँ वृक्ष नहीं थे वहाँ उन लोगोंने वृक्ष लगाये, कई मनुष्योंने कुठारोंसे टांकीसे (पत्थर तोड़नेका एक अस्त्र) और हँसियासे कहीं-कहीं काटे ॥ ७ ॥ उन अत्यन्त बली मनुष्योंने वृक्षोंके थूहोंको हाथसे उखाड़ फेंका और दुर्गम स्थानको सुखसे चलने योग्य बनाया ॥ ८ ॥ अन्य मनुष्योंने रास्तेके कूँओंको तथा लम्बे चौड़े गढ़ोंको मिट्टीसे भर दिया और इस प्रकार गढ़ेको भरकर बराबर कर दिया ॥ ९ ॥ जो नदियाँ पुल बाँधने योग्य थीं वहाँ पुल बाँधा गया, जहांकी कँकरीली जमीन चूर कर देने लायक थी वह चूर कर दी गयी तथा जो काटने योग्य स्थान था वह काट दिया गया ॥ १० ॥ छोटे-छोटे सोते बांधकर बहुत जलवाले बना दिये गये जिससे वे समुद्रके समान बनगये और उनमें स्थान-स्थान पर घाट बना दिये गये ॥ ११ ॥ निर्जल स्थानमें बहुत उत्तम उत्तम कूँए खोदे गये, तलाब बनाये गये तथा उनके पास चबूतरे बनाये गये ॥ १२ ॥ वे चौतरे चूनासे पुते हुए पक्के बनाये गये, वहां फूले हुए वृक्ष लगाये गये, वहां मस्त पक्षी बोल रहे थे, वहां पताकाएँ लगाई गई थीं ॥ १३ ॥ चन्दनके जलका छिड़काव किया गया था, तरह-तरहके फूलोंसे वह स्थान सजाया गया था। सेनाके लिये बनाया गया यह मार्ग देवताओंके मार्गके समान बहुत ही शोभित होता था ॥ १४ ॥ मार्गके प्रबन्ध करनेके लिए जो लोग नियत थे उन्होंने काम करनेवालोंको भरतकी आज्ञाके अनुसार आज्ञा दी, रमणीय प्रदेशमें जहां स्वादिष्ट फल अधिक थे वहाँ महात्मा भरतके मतके अनुसार निवेश बनाये गये। उन अधिकारियोंने इन स्थानोंको पुनः सजाया ॥ १५ ॥ १६ ॥ उत्तम नक्षत्र और मुहूर्तमें उसके जाननेवालोंके द्वारा महात्मा भरतके लिए ठहरनेकी जगहें बनायी गयीं ॥ १७ ॥ उन स्थानोंके चारो ओर परिखा बनायी गयी, उन परिखाओंपर धूल रखी गयी, उन स्थानोंमें इन्द्रनीलमणिके चित्र बनाये गये, सुन्दर जालियोंसे उस स्थानकी शोभा बढ़ाई गयी ॥ १८ ॥ अटारियोंकी पंक्तियाँ बनायी गईं,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वितर्दिभिरिवाकाशे विटङ्काग्रविमानकैः । समुच्छ्रितैर्निवेशास्ते बभुः शक्रपुरोपमाः ॥२०॥
जान्हवीं तु समासाद्य विविधद्रुमकाननाम् । शीतलामलपानीयां महामीनसमाकुलाम् ॥२१॥
सचन्द्रतारागणमण्डितं यथा नभः क्षपायाममलं विराजते ।
नरेन्द्रमार्गः स तदा व्यराजत क्रमेण रम्यः शुभशिल्पिनिर्मितः ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डेऽशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः ८१

ततो नान्दीमुखीं रात्रिं भरतं सूतमागधाः । तुष्टुवुः सविशेषज्ञाः स्तवैर्मङ्गलसंस्तवैः ॥ १ ॥
सुवर्णकोणाभिहतः प्रागदद्यामदुन्दुभिः । दध्मुः शङ्खाँश्च शतशो वाद्याँश्चावचस्वरान् ॥ २ ॥
स तूर्यघोषः सुमहान्दिवमापूरयन्निव । भरतं शोकसंतप्तं भूयः शोकैररन्धयत् ॥ ३ ॥
ततः प्रबुद्धो भरतस्तं घोषं संनिवर्त्य च । नाहं राजेति चोक्त्वा तं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥
पश्य शत्रुघ्न कैकेय्या लोकस्यापकृतं महत् । विसृज्य मयि दुःखानि राजा दशरथो गतः ॥ ५ ॥
तस्यैषा धर्मराजस्य धर्ममूला महात्मनः । परिभ्रमति राजश्रीर्नौरिवाऽकर्णिका जले ॥ ६ ॥

चूनेसे पुती चारदिवारियाँ बनाई गईं । उनपर पताकाएँ लगाई गईं और चौड़े मार्ग बनाये गये ॥ १९ ॥ ऊँचे सात खण्डके मकान, जिनमें कपोतपालिका (कबूतरोंके रहनेके लिये खोखली जगह) बनी हुई थी, वे आकाशमें फैले हुए थे. जिससे भरतका वह निवेशस्थान इन्द्रपुरीके समान मालूम होता था ॥ २० ॥ जहाँ अनेक प्रकारके वृक्षोंके वन लगे हुए हैं, जिस गंगाका जल शीतल और निर्मल है, जिसमें बड़ी-बड़ी मछलियाँ हैं उस गंगातटतक भरतके लिये मार्ग बनाया गया ॥ २१ ॥ जिस प्रकार रात्रिमें निर्मल आकाश चन्द्रमा और ताराओंसे युक्त शोभित होता है, उसी प्रकार निपुण कारीगरों द्वारा बनाया हुआ वह भरतका मार्ग शोभित हुआ ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका अस्सीवां सर्ग समाप्त ॥ ८० ॥

भरतके संबन्धमें विशेष जाननेवाले सूत और मागध—आज नान्दीमुखी रात्रि है (वह रात्रि जिसके बाद आनन्दका दिवस आनेवाला हो) यह जानकर मांगलिक स्तोत्रोंसे भरतकी स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ सुवर्ण दण्डके आघातसे पहरकी समाप्ति बतलानेवाली दुन्दुभि बजी, शंख बजे तथा और भी ऊँचे नीचे स्वरवाले बाजे बजे ॥ २ ॥ बाजोंका वह बड़ा शब्द आकाशको गुँजाने लगा । उस शब्दने शोकसंतप्त भरतको पुनः और दुःखी बना दिया ॥ ३ ॥ इस शब्दसे भरतजी उठे और उन्होंने बाजोंका बजाया जाना रुकवा दिया। मैं राजा नहीं हूँ, ऐसा कहकर भरत शत्रुघ्नसे ऐसा बोले ॥ ४ ॥ शत्रुघ्न देखो—केकयीने लोगोंका कितना अपकार किया है । राजा दसरथ भी हमें दुःखी बनाकर स्वर्ग चले गये ॥ ५ ॥ आज धर्मात्मा महात्मा राजा दसरथ-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यो हि नः सुमहान्नाथः सोऽपि प्रव्राजितो वने । अनया धर्ममुत्सृज्य मात्रा मे राघवः स्वयम् ॥ ७ ॥
इत्येवं भरतं वीक्ष्य विलपन्तमचेतनम् । कृपणा रुरुदुः सर्वाः सुस्वरं योषितस्तदा ॥ ८ ॥
तथा तस्मिन्विलपति वसिष्ठो राजधर्मवित् । सभामिक्ष्वाकुनाथस्य प्रविवेश महायशाः ॥ ९ ॥
शातकुम्भमयीं रम्यां मणिहेमसमाकुलाम् । सुधर्मामिव धर्मात्मा सगणः प्रत्यपद्यत ॥ १० ॥
सकाञ्चनमयं पीठं स्वास्त्यास्तरणसंवृतम् । अध्यास्त सर्ववेदज्ञो दूताननुशशास च ॥ ११ ॥
ब्राह्मणान्क्षत्रियान्योधानमात्यान्गणवल्लभान् । क्षिप्रमानयताव्यग्राः कृत्यमात्ययिकं हि नः ॥ १२ ॥
स राजपुत्रं शत्रुघ्नं भरतं च यशस्विनम् । युधाजितं सुमन्त्रं च ये चतत्र हिता जनाः ॥ १३ ॥
ततो हलहलाशब्दो महान्समुदपद्यत । रथैरश्वैर्गजैश्चापि जनानामुपगच्छताम् ॥ १४ ॥
ततो भरतमायान्तं शतक्रतुमिवामराः । प्रत्यनन्दन्प्रकृतयो यथा दशरथं तथा ॥ १५ ॥

ह्रद इव तिमिनागसंवृतः स्तिमितजलो मणिशङ्खशर्करः ।
दशरथसुतशोभिता सभा सदशरथेव बभूव सा पुरा ॥ १६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

की यह राजलक्ष्मी, नदीमें कर्णधार-विहीन नौकाके समान चारो ओर घूम रही है ॥ ६ ॥ जो हम लोगोंके बड़े स्वामी रामचन्द्र हैं उनको भी मेरी माता केकयीने धर्म छोड़कर वनमें भेज दिया ॥ ७ ॥ इस प्रकार बेसुध होकर विलाप करते हुए भरतको देख दुःखिनी सब स्त्रियाँ जोर-जोरसे रोने लगीं ॥ ८ ॥ भरत इस प्रकार जब विलाप कर रहे थे उसी समय राजधर्म जाननेवाले वसिष्ठ मुनि राजा दसरथके सभाभवनमें गये ॥ ९ ॥ वह सभाभवन सोनेका बना हुआ था। मणि-जटित सोनेके खम्भे लगे हुए थे, देवसभाके सदृश उस सभामें वसिष्ठ मुनि अपने साथियोंके साथ गये ॥ १० ॥ सब वेदोंको जाननेवाले मुनि सोनेके आसनपर बैठे, जिसपर सुन्दर आसन बिछा हुआ था और उन्होंने दूतोंको आज्ञा दी ॥ ११ ॥ ब्राह्मणों, क्षत्रियों, सैनिकों, सचिवों और गणके अध्यक्षोंको शीघ्र बुला लाओ, हमें बहुत ही आवश्यक काम है ॥ १२ ॥ भरत शत्रुघ्न तथा अन्य राजपुत्रोंको, युधाजित और सुमन्त्रको तथा भरतके अन्यहितकारियोंको भी बुलाओ ॥ १३ ॥ तदनन्तर हाथी घोड़े और रथोंसे आनेवाले मनुष्योंका बड़ा कोलाहल हुआ ॥ १४ ॥ देवता जिस प्रकार इन्द्रका प्रत्युत्थान करते हैं उसी प्रकार भरतको आते देख प्रजाके लोगोंने उनका प्रत्युत्थान किया, जैसे वे दसरथका सम्मान करते हों ॥ १५ ॥ तिमि (इस नामकी मछली), जल, हाथी, मणि, शंख और कंकसे युक्त निश्चल जलवाले तालाबके समान वह सभा दसरथके पुत्रोंके कारण दसरथसे युक्त ही प्रतीत होती थी। भरत और शत्रुघ्नके रहनेके कारण दसरथके न रहनेका दुःख प्रजाके लोग तथा सचिव भूल गये ॥ १६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एक्यासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८१ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्व्यशीतितमः सर्गः ८२

तामार्यगणसंपूर्णां भरतः प्रग्रहां सभाम् । ददर्श बुद्धिसंपन्नः पूर्णचन्द्रां निशामिव ॥ १ ॥
आसनानि यथान्यायमार्याणां विशतां तदा । वस्त्राङ्गरागप्रभया द्योतिता सा सभोत्तमा ॥ २ ॥
सा विद्वज्जनसंपूर्णा सभा सुरुचिरा तथा । अदृश्यत घनापाये पूर्णचन्द्रेव शर्वरी ॥ ३ ॥
राज्ञस्तु प्रकृतिः सर्वाः स संप्रेक्ष्य च धर्मवित् । इदं पुरोहितो वाक्यं भरतं मृदु चाब्रवीत् ॥ ४ ॥
तात राजा दशरथः स्वर्गतो धर्ममाचरन् । धनधान्यवतीं स्फीतां प्रदाय पृथिवीं तव ॥ ५ ॥
रामस्तथा सत्यवृत्तिः सतां धर्ममनुस्मरन् । नाजहात्पितुरादेशं शशी ज्योत्स्नामिवोदितः ॥ ६ ॥
पित्रा भ्रात्रा च ते दत्तं राज्यं निहतकण्टकम् । तद्भुङ्क्ष्व मुदितामात्यः क्षिप्रमेवाभिषेचय ॥ ७ ॥
उदीच्याश्च प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्याश्च केवलाः । कोट्यापरान्ताः सामुद्रा रत्नान्युपहरन्तु ते ॥ ८ ॥
तच्छ्रुत्वा भरतो वाक्यं शोकेनाभिपरिप्लुतः । जगाम मनसा रामं धर्मज्ञो धर्मकाङ्क्षया ॥ ९ ॥
सबाष्पकलया वाचा कलहंसस्वरो युवा । विललाप सभामध्ये जगर्हे च पुरोहितम् ॥ १० ॥
चरितब्रह्मचर्यस्य विद्यास्नातस्य धीमतः । धर्मे प्रयतमानस्य को राज्यं मद्विधो हरेत ॥ ११ ॥
कथं दशरथाज्जातो भवेद्राज्यापहारकः । राज्यं चाहं च रामस्य धर्मं वक्तुमिहार्हसि ॥ १२ ॥

श्रेष्ठ मनुष्योंसे पूर्ण उस नियमबद्ध सभाको बुद्धिमान् भरतने, पूर्णचन्द्रा रात्रिको जैसे देखते हैं वैसे, देखा ॥ १ ॥ मर्यादाके अनुसार अपने-अपने आसनोंपर श्रेष्ठ पुरुषोंके बैठनेके समय उनके वस्त्र तथा अङ्गरागकी प्रभासे वह सुन्दर सभा शोभित हुई ॥ २ ॥ शरत्कालमें पूर्णचन्द्रा रात्रिके समान विद्वानोंसे पूर्ण वह सभा शोभित हुई ॥ ३ ॥ धर्म जाननेवाले पुरोहित वसिष्ठजी, राजा दसरथकी प्रजा सचिव आदिको एकत्र देखकर, भरतसे यह कोमल वचन बोले ॥ ४ ॥ भरत, धनधान्यसे भरी-पूरी यह पृथिवी तुमको देकर धर्माचरण करते हुए राजा दसरथ स्वर्ग गये ॥ ५ ॥ सत्य व्यवहार रखनेवाले रामचन्द्रने सज्जनोंके धर्मके अनुसार पिताकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं किया, जैसा उदित चन्द्रमा अपनी प्रभाका त्याग नहीं करता ॥ ६ ॥ पिता और भाईने यह शत्रु-हीन राज्य तुम्हें दिया है, सचिवोंको प्रसन्न रखते हुए तुम इसका भोग करो और शीघ्र ही अपना राज्याभिषेक कराओ ॥ ७ ॥ उत्तर, पश्चिम, दक्षिण और पूर्वके सिंहासनाधीश राजा तथा जो सिंहासनासीन नहीं हैं वे, द्वीपवासी, तथा समुद्र व्यापार करनेवाले व्ययसायी असंख्य रत्न तुम्हें दें ॥ ८ ॥ वसिष्ठजीके वचन सुनकर भरत शोकसे नितान्त दुःखी हुए । धर्मज्ञ भरत मनही मन धर्म जाननेके लिए रामजीके यहां पहुँचे ॥ ९ ॥ युवक भरत गला भरजानेसे कलहंसके समान घर्घर स्वरसे सभामें विलाप करने लगे और पुरोहित वसिष्ठकी निन्दा करने लगे ॥ १० ॥ जिसने ब्रह्मचर्यका पालन किया, विधिपूर्वक विद्याध्ययन समाप्त किया और जो सदा धर्मानुष्ठान करता रहता है उस रामका राज्य मेरे समान मनुष्य कैसे ले सकता है ॥ ११ ॥ राजा दसरथका पुत्र होकर दूसरेका राज्य मैं कैसे ले सकता हूँ । मैं और यह राज्य रामके हैं । अतएव आप धर्म-का उपदेश कीजिये अर्थात् रामचन्द्र राज्य ग्रहण कैसे करेंगे, इसका उपाय बतलाइए ॥ १२ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्येष्ठः श्रेष्ठश्च धर्मात्मा दिलीपनहुषोत्तमः । लब्धुमर्हति काकुत्स्थो राज्यं दशरथो यथा ॥१३॥
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यं कुर्यां पापमहं यदि । इक्ष्वाकूणामहं लोके भवेयं कुलपांसनः ॥१४॥
यद्धि मात्रा कृतं पापं नाहं तदपि रोचये । इहस्थो वनदुर्गस्थं नमस्यामि कृतांजलिः ॥१५॥
राममेवानुगच्छामि स राजा द्विपदां वरः । त्रयाणामपि लोकानां राघवो राज्यमर्हति ॥१६॥
तद्वाक्यं धर्मसंयुक्तं श्रुत्वा सर्वे सभासदः । हर्षान्मुमुचुरश्रूणि रामे निहितचेतसः ॥१७॥
यदि त्वार्यं न शक्ष्यामि विनिवर्तयितुं वनात् । वने तत्रैव वत्स्यामि यथार्यो लक्ष्मणस्तथा ॥१८॥
सर्वोपायं तु वर्तिष्ये विनिवर्तयितुं बलात् । समक्षमार्यमिश्राणां साधूनां गुणवार्तिनाम् ॥१९॥
विष्टिकर्मान्तिकाः सर्वे मार्गशोधकदक्षकाः । प्रस्थापिता मया पूर्वं यात्रा च मम रोचते ॥२०॥
एवमुक्त्वा तु धर्मात्मा भरतो भ्रातृवत्सलः । समीपस्थमुवाचेदं सुमन्त्रं मन्त्रकोविदम् ॥२१॥
तूर्णमुत्थाय गच्छ त्वं सुमन्त्र मम शासनात् । यात्रामाज्ञापय क्षिप्रं बलं चैव समानय ॥२२॥
एवमुक्तः सुमन्त्रस्तु भरतेन महात्मना । प्रहृष्टः सोऽदिशत्सर्वं यथासंदिष्टमिष्टवत् ॥२३॥
ताः प्रहृष्टाः प्रकृतयो बलाध्यक्षा बलस्य च । श्रुत्वा यात्रां समाज्ञप्तां राघवस्य निवर्तने ॥२४॥
ततो योधाङ्गना सर्वा भर्तॄन्सर्वान्गृहे गृहे । यात्रागमनमाज्ञाय त्वरयन्ति स्म हर्षिताः ॥२५॥

रामचन्द्र मुझसे गुणोंमें और उमरमें बड़े हैं, वे राजा दिलीप तथा नहुषके समान धर्मात्मा हैं, उन्हींको यह राज्य मिलना चाहिए जिस प्रकार राजा दसरथको मिला था ॥ १३ ॥ नीच मनुष्यों-के समान नरकमें गिरानेवाला पाप यदि मैं करूँ तो मैं इक्ष्वाकुवंशका कलङ्क समझा जाऊँगा। कुलका नियम तोड़नेवाला कुलदूषक समझा जाऊँगा ॥ १४ ॥ माताने जो पाप किया है उसको मैं अच्छा नहीं समझता, अतएव यहां रहकरभी वनमें रहनेवाले रामचन्द्रको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १५ ॥ मैं भी रामचन्द्रकाही अनुगमन करूँगा, मनुष्यश्रेष्ठ वे ही राजा हैं। रामचन्द्र तीनों लोकोंके राजा होने योग्य हैं ॥ १६ ॥ भरतके धर्मयुक्त ये वचन सुनकर राममें प्रेम रखनेवाले सभी सभासद हर्षसे रोने लगे ॥ १७ ॥ भरतने पुनः कहा—यदि मैं आर्य रामचन्द्रको वनसे न लौटा सकूँगा तो मैं भी वहीं रहूँगा, जैसे आर्य लक्ष्मण वनमें रहते हैं ॥ १८ ॥ आप सब श्रेष्ठ सज्जनोंके सामने रामचन्द्रको जबरदस्ती लौटा लानेके लिए मैं सभी उपाय करूँगा ॥ १९ ॥ बेगारमें पकड़े हुए कारीगर—जो मार्ग ढूँढनेमें चतुर हैं, उन्हें मैंने पहलेहीसे भेज दिया है, यहांसे यात्रा करना ही मुझे अच्छा मालूम होता है ॥ २० ॥ भातृप्रेमी धर्मात्मा भरत ऐसा कहकर पास बैठे हुए सलाह देनेमें चतुर सुमन्त्रसे बोले ॥ २१ ॥ सुमन्त्र, मेरी आज्ञासे शीघ्र तुम यहांसे उठकर जाओ और यात्राकी घोषणा करदो, सेनाको भी शीघ्र ले आओ ॥ २२ ॥ महात्मा भरतके ऐसा कहनेपर सुमन्त्रने प्रसन्नतापूर्वक सब कार्य सम्पन्न किया मानों वे अपनाही काम कर रहे हों ॥ २३ ॥ रामचन्द्रको लौटा लानेके लिए जानेवालोंके साथ सेना भी जायगी इस संवादको सुनकर प्रजाके लोग तथा सेनाके अध्यक्ष बहुतही प्रसन्न हुए ॥ २४ ॥ सैनिकोंकी स्त्रियां—यात्रामें जाना है यह जानकर अपने-अपने घरोंमें अपने-अपने पतिको शीघ्रता करनेके लिए कहने लगीं ॥ २५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ते हयैर्गौरथैः शीघ्रं स्यन्दनैश्च मनोजवैः । सहयोषिद्बलाध्यक्षा बलं सर्वमचोदयन् ॥२६॥
सज्जं तु तद्बलं दृष्ट्वा भरतो गुरुसंनिधौ । रथं मे त्वरयस्वेति सुमन्त्रं पार्श्वतोऽब्रवीत् ॥२७॥
भरतस्य तु तस्याज्ञां परिगृह्य प्रहर्षितः । रथं गृहीत्वोपययौ युक्तं परमवाजिभिः ॥२८॥
स राघवः सत्यधृतिः प्रतापवान्ब्रुवन्सुयुक्तं दृढसत्यविक्रमः ।
गुरुं महारण्यगतं यशस्विनं प्रसादयिष्यन्भरतोऽब्रवीत्तदा ॥२९॥
तूर्णं त्वमुत्थाय सुमन्त्र गच्छ बलस्य योगाय बलप्रधानान् ।
आनेतुमिच्छामि हि तं वनस्थं प्रसाद्य रामं जगतो हिताय ॥३०॥
स सूतपुत्रो भरतेन सम्यगाज्ञापितः संपरिपूर्णकामः ।
शशास सर्वान्प्रकृतिप्रधानान्बलस्य मुख्याँश्च सुहृज्जनं च ॥३१॥
ततः समुत्थाय कुले कुले ते राजन्यवैश्या वृषलाश्च विप्राः ।
अयूयुजन्नुष्ट्ररथान्खरांश्च नागान्हयाँश्चैव कुलप्रसूतान् ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे द्व्यशीतितमः सर्गः ॥८२॥

त्र्यशीतितमः सर्गः ८३

ततः समुत्थितः कल्यमास्थाय स्यन्दनोत्तमम् । प्रययौ भरतः शीघ्रं रामदर्शनकाम्यया ॥ १ ॥
अग्रतः प्रययुस्तस्य सर्वे मन्त्रिपुरोहिताः । आधिरुह्य हयैर्युक्तान्रथान्सूर्यरथोपमान् ॥ २ ॥

घोड़ों बैलगाड़ियों और वेगसे चलनेवाले रथोंपर चढ़कर सेनाके अध्यक्ष सेनाको शीघ्रता करनेके लिए आदेश देने लगे ॥ २६ ॥ सेनाको तयार देखकर गुरुके समीप खड़े हुए भरत सुमन्त्रसे बोले कि मेरा रथ शीघ्र तयार करो ॥ २७ ॥ भरतकी आज्ञा सुनकर सुमन्त्र बहुत प्रसन्न हुए, और अच्छे घोड़े जोतकर वे रथ लेकर आये ॥ २८ ॥ सत्यमें प्रेम रखनेवाले, सत्यपराक्रमी और प्रतापी भरत, वनमें गये हुए अपने भाईको लौटालानेकी इच्छा रखते हुए, बोले ॥ २९ ॥ सुमन्त्र, तुम शीघ्र उठकर सेनाके चलनेका प्रबन्ध करनेके लिए सेनापतियोंके पास जाओ । संसारके कल्याणके लिए, वनवासी रामचन्द्रको प्रसन्न करके लौटा लाना चाहता हूँ ॥ ३० ॥ पूर्णमनोरथ सुमन्त्रने भरतकी आज्ञा पाकर प्रजाके प्रधान लोगोंको तथा सेनाके अध्यक्षों तथा मित्रोंको बतलाया कि कौन कैसे चलेगा, कौन आगे और कौन पीछे ॥ ३१ ॥ तदनन्तर क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और ब्राह्मण आदिने ऊंटों के रथ जोड़े, गधे, हाथी और घोड़ोंको जोता ॥ ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका बयासीवाँ सर्ग समाप्त ॥८२॥

तदनन्तर प्रातःकाल उठकर उत्तम रथपर बैठकर रामचन्द्रके दर्शन करनेकी इच्छासे भरत शीघ्रतापूर्वक चले ॥ १ ॥ घोड़े जुते हुए रथोंपर, जो सूर्यरथके समान सुन्दर थे, चढ़कर सब मंत्री

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नवनागसहस्राणि कल्पितानि यथाविधि । अन्वयुर्भरतं यान्तमिक्ष्वाकुकुलनन्दनम् ॥ ३ ॥
षष्टी रथसहस्राणि धन्विनो विविधायुधाः । अन्वयुर्भरतं यान्तं राजपुत्रं यशस्विनम् ॥ ४ ॥
शतं सहस्राण्यश्वानां समारूढानि राघवम् । अन्वयुर्भरतं यान्तं राजपुत्रं यशस्विनम् ॥ ५ ॥
कैकेयी च सुमित्रा च कौसल्या च यशस्विनी । रामानयनसंतुष्टा ययुर्यानेन भास्वता ॥ ६ ॥
प्रयाताश्चार्यसंघाता रामं द्रष्टुं सलक्ष्मणम् । तस्यैव च कथाश्चित्राः कुर्वाणा हृष्टमानसाः ॥ ७ ॥
मेघश्यामं महाबाहुं स्थिरसत्त्वं दृढव्रतम् । कदा द्रक्ष्यामहे रामं जगतः शोकनाशनम् ॥ ८ ॥
दृष्ट एव हि नः शोकमपनेष्यति राघवः । तमः सर्वस्य लोकस्य समुद्यन्निव भास्करः ॥ ९ ॥
इत्येवं कथयन्तस्ते संप्रहृष्टाः कथाः शुभाः । परिष्वजानाश्चान्योन्यं ययुर्नागरिकास्तदा ॥१०॥
ये च तत्रापरे सर्वे संमता ये च नैगमाः । रामं प्रति ययुर्हृष्टाः सर्वाः प्रकृतयः शुभाः ॥११॥
मणिकाराश्च ये केचित्कुम्भकाराश्च शोभनाः । सूत्रकर्मविशेषज्ञा ये च शस्त्रोपजीविनः ॥१२॥
मायूरकाः क्राकचिका वेधका रोचकास्तथा । दन्तकाराः सुधाकारा ये च गन्धोपजीविनः ॥१३॥
सुवर्णकाराः प्रख्यातास्तथा कम्बलकारकाः । स्नापकोष्णोदका वैद्या धूपकाः शौण्डिकास्तथा॥१४॥
रजकास्तुन्नवायाश्च ग्रामघोषमहत्तराः । शैलूषाश्च सह स्त्रीभिर्यान्ति कैवर्तकास्तथा ॥१५॥
समाहिता वेदविदो ब्राह्मणा वृत्तसंमताः । गोरथैर्भरतं यान्तमनुजग्मुः सहस्रशः ॥१६॥

और पुरोहित आगे-आगे चले ॥ २ ॥ खूब सजे हुए नौ हजार हाथी, वनको जाते हुए भरतके साथ, चले ॥ ३ ॥ साठ हजार तथा विविध अस्त्रधारण करनेवाले धनुर्धारी वनजाते हुए राजपुत्र यशस्वी भरतके साथ चले ॥ ४ ॥ सौहजार घुड़सवार वन जाते हुए यशस्वी राजपुत्र भरतके साथ चले ॥ ५ ॥ केकयी, सुमित्रा और यशस्विनी कौसल्या रामचन्द्रको लाने जानेके कारण सन्तुष्ट होकर उत्तम रथपर चढ़कर चलीं ॥ ६ ॥ इस प्रकार यह सज्जनोंका समूह रामचन्द्र और लक्ष्मणको देखनेके लिए चला, वे प्रसन्नता पूर्वक उन्हींके सम्बन्धकी बातें करते जाते थे ॥ ७ ॥ मेघके समान श्यामवर्ण, महाबाहु, स्थिरतापूर्वक उद्योत करनेवाले दृढ़व्रत और जगत्के शोक दूर करनेवाले रामचन्द्रको हमलोग कब देखेंगे ॥ ८ ॥ उनको देखतेही हमलोगोंका शोक दूर हो जायगा, जिस प्रकार सूर्य उदय होते ही सब लोकोंका अन्धकार दूर कर देता है ॥ ९ ॥ प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार-की सुन्दर बातें करते हुए और परस्पर एक दूसरेको आलिङ्गन करते हुए नागरिक चले ॥ १० ॥ जो प्रजाके लोग रामचन्द्रके प्रिय थे तथा जो व्यवसायी थे, वे सभी रामचन्द्रके पास प्रसन्नता पूर्वक चले ॥ ११ ॥ मणिकार (मणि आदि खरीदनेवाले), अपने काममें निपुण कुम्हार, कपड़े बुननेवाले तथा हथियार बनाकर जीनेवाले, मायूरक (मोरकी पूंछसे पंखा आदि बनानेवाले), क्राकचिक (आराकस), वेधक (मोतियोंमें छेद करनेवाले), रोचक (रंगसाज), दन्तकार (दांतकी चीजें बनानेवाले), सुधाकार (चूना पोतनेवाले), गन्धोपजीवी (गंधी), सुनार, कंबल बुननेवाले, गरम जलसे स्नान करानेवाले वैद्य, धूप आदि बेचनेवाले, शराब बेचने वाले, धोबी, दरजी, गांव और टोलेके चौधरी, नट, मल्लाह, योगी वेदज्ञ और सदाचारी ब्राह्मण बैलगाड़ीपर चढ़कर जाते हुए भरतके साथ चले ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुवेषाः शुद्धवसनास्ताम्रमृष्टानुलेपिनः । सर्वे ते विमलैर्यानैः शनैर्भरतमन्वयुः ॥१७॥
प्रहृष्टमुदिता सेना सान्वयात्कैकयीसुतम् । भ्रातुरानयने यान्तं भरतं भ्रातृवत्सलम् ॥१८॥
ते गत्वा दूरमध्वानं रथयानाश्वकुञ्जरैः । समासेदुस्ततो गङ्गां शृङ्गवेरपुरं प्रति ॥१९॥
यत्र रामसखा वीरो गुहो ज्ञातिगणैर्वृतः । निवसत्यप्रमादेन देशं तं परिपालयन् ॥२०॥
उपेत्य तीरं गङ्गायाश्चक्रवाकैरलंकृतम् । व्यवातिष्ठत सा सेना भरतस्यानुयायिनी ॥२१॥
निरीक्ष्यानुत्थितां सेनां तां च गङ्गां शिवोदकाम् । भरतः सचिवान्सर्वानब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥२२॥
निवेशयत मे सैन्यमभिप्रायेण सर्वतः । विश्रान्ताः प्रतरिष्यामः श्व इमां सागरंगमाम् ॥२३॥
दातुं च तावदिच्छामि स्वर्गतस्य महीपतेः । और्ध्वदेहानिमित्तार्थमवतीर्योदकं नदीम् ॥२४॥
तस्यैवं ब्रुवतोऽमात्यास्तथेत्युक्त्वा समाहिताः । न्यवेशयँस्तां छन्देन स्वेन स्वेन पृथक्पृथक् ॥२५॥

निवेश्य गङ्गामनु तां महानदीं चमूं विधानैः परिवर्हशोभिनीम् ।
उवास रामस्य तदा महात्मनो विचिन्त्यमानो भरतो निवर्तनम् ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे त्र्यशीतितमः सर्गः ॥८३॥

उनका वेश सुन्दर था, कपड़े उत्तम थे, वे लाल चन्दन धारण किये हुए थे, वे सब उत्तम सवारियों-पर बैठकर भरतके साथ धीरे-धीरे चले ॥ १७ ॥ भाईको लानेके लिए जाते हुए भ्रातृवत्सल भरतके साथ सेना भी प्रसन्नतासे चली । उनके मन और शरीर दोनोंही प्रसन्न थे ॥ १८ ॥ वे सब रथ सवारी घोड़े और हाथीके द्वारा बहुत दूर तक चलकर शृङ्गवेरपुरके सामने गङ्गानदीके पास पहुंचे ॥ १९ ॥ जहां श्रीरामचन्द्रका मित्र वीर गुह अपने सगे सम्बधियोंके साथ निवास करता है और उस प्रान्तका पालन सावधानीसे करता है ॥ २० ॥ चक्रवाक पक्षियोंके द्वारा सुशोभित गङ्गा तीरपर आकर वह भरतके साथ आनेवाली सेना ठहर गयी ॥ २१ ॥ गङ्गा तीरपर विश्राम करती हुई अपनी सेनाको तथा सुन्दर जलवाली गङ्गाको देखकर उत्तम बोलनेवाले भरत, अपने सब सचिवोंसे बोले ॥ २२ ॥ अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार जो जहां चाहे वह वहीं गंगातीरपर विश्राम करे, कल इस समुद्रमें जानेवाली नदीको हमलोग पार करेंगे ॥ २३ ॥ गङ्गाके उस पार जाकरही स्वर्गीय अपने पिताके पारलौकिक कल्याणके लिए मैं जल देना चाहता हूँ ॥ २४ ॥ सावधानीपूर्वक भरतकी बातें सुनकर सचिवोंने स्वीकार किया, और इच्छानुसार सब लोगोंको ठहराया ॥ २५ ॥ महानदी गङ्गाके तीरपर डेरा आदि तानकर सेनाने विश्राम किया । महात्मा रामचन्द्रके लौटनेकी बात सोचते हुए भरतने भी वहीं निवास किया ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका तिरासीवां सर्ग समाप्त ॥ ८३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चतुरशीतितमः सर्गः ८४

ततो निविष्टां ध्वजिनीं गङ्गामन्वाश्रितां नदीम् । निषादराजो दृष्ट्वैव ज्ञातीन्स परितोऽब्रवीत् ॥ १ ॥
महतीयमितः सेना सागराभा प्रदृश्यते । नास्यान्तमवगच्छामि मनसापि विचिन्तयन् ॥ २ ॥
यदा न खलु दुर्बुद्धिर्भरतः स्वयमागतः । स एष हि महाकायः कोविदारध्वजो रथे ॥ ३ ॥
बन्धयिष्यति वा पाशैरथ वास्मान्वधिष्यति । अनु दाशरथिं रामं पित्रा राज्याद्विवासितम् ॥ ४ ॥
संपन्नां श्रियमन्विच्छँस्तस्य राज्ञः सुदुर्लभाम् । भरतः कैकयीपुत्रो हन्तुं समधिगच्छति ॥ ५ ॥
भर्ता चैव सखा चैव रामो दाशरथिर्मम । तस्यार्थकामाः संनद्धा गङ्गानूपेऽत्र तिष्ठत ॥ ६ ॥
तिष्ठन्तु सर्वदाशाश्च गङ्गामन्वाश्रिता नदीम् । बलयुक्ता नदीरक्षा मांसमूलफलाशनाः ॥ ७ ॥
नावां शतानां पञ्चानां कैवर्तानां शतं शतम् । संनद्धानां तथा यूनां तिष्ठन्त्वित्यभ्यचोदयत् ॥ ८ ॥
यदि तुष्टस्तु भरतो रामस्येह भविष्यति । इयं स्वस्तिमती सेना गङ्गामद्य तरिष्यति ॥ ९ ॥
इत्युक्त्वोपायनं गृह्य मत्स्यमांसमधूनि च । अभिचक्राम भरतं निषादाधिपतिर्गुहः ॥१०॥
तमायान्तं तु संप्रेक्ष्य सूतपुत्रः प्रतापवान् । भरतायाचचक्षेऽथ समयज्ञो विनीतवत् ॥११॥
एष ज्ञातिसहस्रेण स्थपतिः परिवारितः । कुशलो दण्डकारण्ये वृद्धो भ्रातुश्च ते सखा ॥१२॥
तस्मात्पश्यतु काकुत्स्थ त्वां निषादाधिपो गुहः । असंशयं विजानीते यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥१३॥

गंगानदीके तीरपर ठहरी हुई सेनाको देखकर निषादराज गुहने अपने भाईबन्दोंसे कहा ॥ १ ॥ यह बहुत बड़ी सेना समुद्रके समान मालूम पड़ती है, यह कितनी लम्बी है यह बात मनसेभी सोचनेपर नहीं मालूम पड़ती ॥ २ ॥ दुर्बुद्धि भरत स्वयं आया हुआ है, क्योंकि उसकी लम्बी कोविदार ध्वजा रथपर दीख पड़ती है॥ ३ ॥ वह हम लोगोंको पाशोंसे बाँधेगा और पिताके द्वारा राज्यसे निकाले गये दसरथपुत्र रामचन्द्रका वध करेगा ॥ राजा दसरथकी समूची दुर्लभ राज्यलक्ष्मी हस्तगत करनेके लिए कैकयीपुत्र भरत रामचन्द्रको मारना चाहता है ॥ ५ ॥ रामचन्द्र मेरे स्वामी हैं और सखा हैं, उनके हित चाहनेवाले आप लोग सावधान होकर यहाँ गङ्गा तीरपर रहें ॥ ६ ॥ सभी बलवान् मल्लाह सेनाके साथ गंगा नदीके घाटकी रक्षा करनेके लिए यहीं गंगा तीरपर रहें और माँस तथा फल मूल खाँय ॥ ७ ॥ पाँच सौ नावोंपर प्रत्येक पर सौ जवान मल्लाह युद्धके लिये तयार होकर रहें, गुहने अपने भाईबन्दोंको यह आज्ञा दी ॥८॥ यदि भरत रामचन्द्रपर प्रसन्न होगा, उनकी बुराई करनेके लिये न जाता होगा तब तो यह सेना निर्विघ्नतापूर्वक गंगा नदी पार कर सकेगी ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर निषादाधिपति गुह भेटकी सामग्री मछली, माँस और मधु लेकर भरतके पास चला ॥ १० ॥ आते हुए गुहको देखकर प्रतापी सूत सुमन्त्रने विनीतके समान भरतसे कहा, क्योंकि वे समयके अनुसार कर्तव्य जाननेवाले थे ॥ ११ ॥ यह वृद्ध अपने हजारों भाईबन्दोंके साथ यहाँ रहता है, यहाँका स्वामी है, दण्डकारण्यको अच्छी तरह जानता है और तुम्हारे भाई रामचन्द्रका मित्र है ॥ १२ ॥ अतएव भरत तुम निषादाधिपति गुहसे अवश्य मिलो। राम, लक्ष्मण जहाँ रहते होंगे उस स्थानका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुमन्त्राद्भरतः शुभम् । उवाच वचनं शीघ्रं गुहः पश्यतु मामिति ॥१४॥
लब्ध्वानुज्ञां संप्रहृष्टो ज्ञातिभिः परिवारितः । आगम्य भरतं प्रह्वो गुहो वचनमब्रवीत् ॥१५॥
निष्कुटश्चैव देशोऽयं वञ्चिताश्चापि ते वयम् । निवेदयाम ते सर्वं स्वके दाशगृहे वस ॥१६॥
अस्ति मूलफलं चैतन्निषादैः स्वयमर्जितम् । आर्द्रं शुष्कं यथा मांसं वन्यं चोच्चावचं तथा ॥१७॥
आशंसे स्वाशिता सेना वत्स्यत्येनां विभावरीम्।अर्चितो विविधैः कामैः श्वः ससैन्यो गमिष्यसि॥१८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितमः सर्गः ८५

एवमुक्तस्तु भरतो निषादाधिपतिं गुहम् । प्रत्युवाच महाप्राज्ञो वाक्यं हेत्वर्थसंहितम् ॥ १ ॥
ऊर्जितः खलु ते कामः कृतो मम गुरोः सखे । यो मे त्वमीदृशीं सेनामभ्यर्चयितुमिच्छसि ॥ २ ॥
इत्युक्त्वा स महातेजा गुहं वचनमुत्तमम् । अब्रवीद्भरतः श्रीमान्पन्थानं दर्शयन्पुनः ॥ ३ ॥
कतरेण गमिष्यामि भरद्वाजाश्रमं पथा । गहनोऽयं भृशं देशो गङ्गानूपो दुरत्ययः ॥ ४ ॥

इसको अवश्य पता होगा ॥ १३ ॥ सुमन्त्रके यह सुन्दर वचन सुनकर भरत बोले—गुह शीघ्र मुझे देखे, वह मेरे पास आवे ॥ १४ ॥ आज्ञा पाकर और प्रसन्न होकर अपने भाई-बन्धुओंके साथ जाकर नम्र होकर भरतसे गुह बोला ॥ १५ ॥ यह स्थान आपके घरवाले बागके समान है, आपने पहले हमको आनेकी खबर न देकर हमें ठग दिया, हम आपके स्वागतके लिए कुछ न कर सके। यह निषादगृह आपकाही है, आप यहाँ निवास करें यही हमलोग प्रार्थना करते हैं ॥ १६ ॥ निषादोंका स्वयं लाया हुआ यह फल मूल है, कई तरहके फल हैं, कुछ सूखे हैं, कुछ सरस और माँस भी है, स्वीकार करें ॥ १७ ॥ मैं समझता हूँ कि भोजन करके यह सेना आजकी रात यहीं निवास करे, हम लोग अपनी इच्छाके अनुसार आपका सत्कार करें और आप कल प्रातःकाल यहाँसे जाँय ॥ १८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका चौरासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८४ ॥

निषादाधिपति गुहके ऐसा कहनेपर महाबुद्धिमान् भरत युक्तियुक्त तथा अर्थपूर्ण वचन बोले ॥ १ ॥ मेरे गुरुके मित्र, जो तुम मेरी इतनी बड़ी सेनाका सत्कार करना चाहते हो यह तुम्हारा ऊँचा मनोरथ है और तुमने अपना वह मनोरथ पूरा कियाही ॥ २ ॥ इस प्रकार महातेजस्वी भरत, निषादाधिपति गुहसे कहकर अंगुलीसे मार्गको दिखाते हुए अर्थात् मार्ग दिखाकर पूछते हुए पुनः बोले ॥ ३ ॥ किस मार्गसे हम भरद्वाजके आश्रमपर पहुँचेंगे, इस गंगा-तीरमें बिना मार्गके चलना कठिन है, यह प्रदेश बड़ाही गहन है, इसमें प्रवेश करना कठिन है ॥ ४ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्भूत्वा गुहो गहनगोचरः ॥ ५ ॥
दाशास्त्वनुगमिष्यन्ति देशज्ञाः सुसमाहिताः । अहं चानुगमिष्यामि राजपुत्र महाबल ॥ ६ ॥
कच्चिन्न दुष्टो व्रजसि रामस्याक्लिष्टकर्मणः । इयं ते महती सेना शङ्कां जनयतीव मे ॥ ७ ॥
तमेवमभिभाषन्तमाकाश इव निर्मलः । भरतः श्लक्ष्णया वाचा गुहं वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥
मा भूत्स कालो यत्कष्टं न मां शङ्कितुमर्हसि । राघवः स हि मे भ्राता ज्येष्ठः पितृसमो मतः ॥ ९ ॥
तं निवर्तयितुं यामि काकुत्स्थं वनवासिनम् । बुद्धिरन्या न मे कार्या गुह सत्यं ब्रवीमि ते ॥१०॥
स तु संहृष्टवदनः श्रुत्वा भरतभाषितम् । पुनरेवाब्रवीद्वाक्यं भरतं प्रति हर्षितः ॥११॥
धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगतीतले । अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि ॥१२॥
शाश्वती खलु ते कीर्तिर्लोकाननु चरिष्यति । यस्त्वं कृच्छ्रगतं रामं प्रत्यानयितुमिच्छसि ॥१३॥
एवं संभाषमाणस्य गुहस्य भरतं तदा । बभौ नष्टप्रभः सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत ॥१४॥
संनिवेश्य स तां सेनां गुहेन परितोषितः । शत्रुघ्नेन समं श्रीमाञ्छयनं पुनरागमत् ॥१५॥
रामचिन्तामयः शोको भरतस्य महात्मनः । उपस्थितो ह्यनर्हस्य धर्मप्रेक्ष्यस्य तादृशः ॥१६॥
अन्तर्दाहेन दहनः संतापयति राघवम् । वनदाहाग्निसंतप्तं गूढोऽग्निरिव पादपम् ॥१७॥
प्रसृतः सर्वगात्रेभ्यः स्वेदं शोकाग्निसंभवम् । यथा सूर्याग्निसंतप्तो हिमवान्प्रसृतो हिमम् ॥१८॥

बुद्धिमान् उन राजपुत्रके वे वचन सुनकर हाथ जोड़कर वनसे परिचित गुह बोला ॥ ५ ॥ इस प्रदेशसे परिचय रखनेवाले मल्लाह आपके साथ जाँयगे, महाबल राजपुत्र, मैं भी आपके साथ चलूँगा ॥ ६ ॥ उदार रामचन्द्रके प्रति बुरे भावसे तो तुम नहीं जा रहे हो, क्योंकि इस तुम्हारी लम्बी-चौड़ी सेना देखकर हमें सन्देह हो रहा है ? ॥ ७ ॥ इस प्रकारकी गुहकी बात सुनकर आकाशके समान सदा निर्मल भरत मधुर स्वरसे बोले ॥ ८ ॥ जिसके विषयमें तुमने आशङ्का की हो वह दुःखमय समय न आवे । तुम मेरे प्रति शङ्का मत करो । वे रामचन्द्र मेरे बड़े भाई हैं और पिताके समान हैं ॥ ९ ॥ वनवासी रामचन्द्रको लौटानेके लिए मैं जा रहा हूँ, मेरा दूसरा कोई भी विचार नहीं है. तुम्हें मेरे सम्बन्धमें कुछ सन्देह नहीं करना चाहिए, गुह, यह मैं तुमसे सच कहता हूँ ॥ १० ॥ भरतकी बात सुनकर गुह प्रसन्न हो गया, वह प्रसन्न होकर पुनः भरतसे बोला ॥ ११ ॥ तुम धन्य हो, तुम्हारे समान मैं दूसरा नहीं देखता, क्योंकि बिना परिश्रमके आये राज्यका तुम त्याग कर रहे हो ॥ १२ ॥ दुःखमें पड़े हुए रामचन्द्रको तुम लौटा लाना चाहते हो, यह तुम्हारी कीर्ति बहुत दिनों तक लोकमें गायी जायगी ॥ १३ ॥ गुह और भरत इस प्रकारकी बातें करही रहे थे कि सूर्यकी प्रभा नष्ट हो गयी, सूर्य अस्ताचलकी ओर जाने लगे और रात्रि आयी ॥ १४ ॥ गुहके द्वारा परितोषित भरत सेनाको विश्राम करनेकी आज्ञा देकर शत्रुघ्नके साथ सोनेके लिए गये ॥ १५ ॥ धार्मिक दृष्टि रखनेवाले शोकके अयोग्य महात्मा भरतको रामचन्द्रके विषयका दुःख उपस्थित हुआ ॥ १६ ॥ अन्तर्दाहसे सन्तप्त भरतको शोकाग्नि जलाने लगी, जिस प्रकार दावाग्नि, गर्भमें आग रखनेवाले वृक्षोंको जला देती है ॥१७॥ उनके समस्त शरीरसे शोकाग्निसे उत्पन्न पसीना निकला, जिस प्रकार सूर्यतापसे तप्त होनेके कारण हिमवान्से बर्फ पिघलने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ध्यानानिर्देरशैलेन विनिःश्वासितधातुना । दैन्यपादपसंघेन शोकायासाधिशृङ्गिणा ॥१९॥
प्रमोहानन्तसत्त्वेन संतापौषधिवेणुना । आक्रान्तो दुःखशैलेन मज्जता कैकयीसुतः ॥२०॥
विनिःश्वसन्वै भृशदुर्मनास्ततः प्रमूढसंज्ञः परमापदं गतः ।
शमं न लेभे हृदयज्वरार्दितो नरर्षभो यूथहतो यथर्षभः ॥२१॥
गुहेन सार्धं भरतः समागतो महानुभावः सजनः समाहितः ।
सुदुर्मनास्तं भरतं तदा पुनः शनैः समाश्वासयदग्रजं प्रति ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चाशीतितमः सर्गः ॥८५॥

षडशीतितमः सर्गः ८६

आचचक्षेऽथ सद्भावं लक्ष्मणस्य महात्मनः । भरतायाप्रमेयाय गुहो गहनगोचरः ॥ १ ॥
तं जाग्रतं गुणैर्युक्तं वरचापेषुधारिणम् । भ्रातृगुप्त्यर्थमत्यन्तमहं लक्ष्मणमब्रुवम् ॥ २ ॥
इयं तात सुखा शय्या त्वदर्थमुपकल्पिता । प्रत्याश्वसिहि शेष्वास्यां सुखं राघवनन्दन ॥ ३ ॥
उचितोऽयं जनः सर्वो दुःखानां त्वं सुखोचितः। धर्मात्मँस्तस्य गुप्त्यर्थं जागरिष्यामहे वयम् ॥ ४ ॥
नहि रामात्प्रियतरो ममास्ति भुवि कश्चन । मोत्सुको भूर्ब्रवीम्येतदथ सत्यं तवाग्रतः ॥ ५ ॥

लगती है ॥ १८ ॥ रामचन्द्रके दुःखरूपी पर्वतसे भरत दब गये । रामचन्द्रका सदा ध्यान बड़े-बड़े पत्थरोंके समान है, दुःखश्वास धातुके समान है, भरतकी दीनता वृक्षके समान है, शोक-जनित दुःख शृंगवाला पर्वत है, मूर्च्छाही पर्वतके अनेक प्राणीके समान है, सन्ताप औषधि और बाँस है, ऐसे दुःखके पर्वतसे वे आक्रान्त हुए ॥ १९-२० ॥ इस दुःखपर्वतसे भरत बहुतही विचलित हो गये थे, उनका विवेक नष्ट हो गया था, वे बहुत बड़ी विपत्तिमें फँसे हुए थे, हृदय-ज्वरसे पीड़ित नरश्रेष्ठ भरतको शान्ति नहीं मिली, जिस प्रकार यूथभ्रष्ट बैल दुःखित होता है और शान्ति नहीं पाता ॥ २१ ॥ महानुभाव भरत गुहसे मिले, वे अपने बड़े भाईके लिए बहुतही दुःखित थे । उन भरतको अपने स्वजनोंके साथ सावधान गुहने आश्वासित किया ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका पचासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८५ ॥

वनवासी गुहने अप्रमेय भरतसे महात्मा लक्ष्मणका रामचन्द्रके विषयका उत्तम व्यवहार बतलाया ॥ १ ॥ भाईकी रक्षाके लिए उत्तम धनुष और बाण धारण करके गुणवान् लक्ष्मण जाग रहे थे, उनसे मैंने कहा ॥ २ ॥ भाई, यह तुम्हारे लिए सुखकरी शय्या बनाई गयी है, आप विश्वास करके इसपर सुखपूर्वक शयन करें ॥ ३ ॥ सब प्रकारके दुःखोंके सहनेका मुझे अभ्यास है, और तुमने आज तक सुखही भोगा है, धर्मात्मन् रामचन्द्रकी रक्षाके लिए हम लोग जागेंगे ॥ ४ ॥ रामसे बढ़कर इस संसारमें मेरा प्रिय दूसरा नहीं है, आप घबड़ाँय न, आपके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अस्य प्रसादादाशंसे लोकेऽस्मिन्सुमहद्यशः । धर्मावाप्तिं च विपुलामर्थकामौ च केवलौ ॥ ६ ॥
सोऽहं प्रियसखं रामं शयानं सह सीतया । रक्षिष्यामि धनुष्पाणिः सर्वैः स्वैर्ज्ञातिभिः सह ॥ ७ ॥
नहि मेऽविदितं किंचिद्वनेऽस्मिंश्चरतः सदा । चतुरङ्गं ह्यपि बलं प्रसहेम वयं युधि ॥ ८ ॥
एवमस्माभिरुक्तेन लक्ष्मणेन महात्मना । अनुनीता वयं सर्वे धर्ममेवानुपश्यता ॥ ९ ॥
कथं दाशरथौ भूमौ शयाने सह सीतया । शक्या निद्रा मया लब्धुं जीवितानि सुखानि वा ॥ १० ॥
यो न देवासुरैः सर्वैः शक्यः प्रसहितुं युधि । तं पश्य गुह सांविष्टं तृणेषु सह सीतया ॥ ११ ॥
महता तपसा लब्धो विविधैश्च परिश्रमैः । एको दशरथस्यैष पुत्रः सदृशलक्षणः ॥ १२ ॥
अस्मिन्प्रव्राजिते राजा न चिरं वर्तयिष्यति । विधवा मेदिनी नूनं क्षिप्रमेव भविष्यति ॥ १३ ॥
विनद्य सुमहानादं श्रमेणोपरताः स्त्रियः । निर्घोषो विरतो नूनमद्य राजनिवेशने ॥ १४ ॥
कौसल्या चैव राजा च तथैव जननी मम । नाशंसे यदि ते सर्वे जीवेयुः शर्वरीमिमाम् ॥ १५ ॥
जीवेदपि च मे माता शत्रुघ्नस्यान्ववेक्षया । या दुःखिता हि कौसल्या वीरसूर्विनशिष्यति ॥ १६ ॥
अतिक्रान्तमतिक्रान्तमनवाप्य मनोरथम् । राज्ये राममनिक्षिप्य पिता मे विनशिष्यति ॥ १७ ॥
सिद्धार्था पितरं दृष्ट्वा तस्मिन्काले ह्युपस्थिते । प्रेतकार्येषु सर्वेषु संस्करिष्यन्ति भूमिपम् ॥ १८ ॥

सामने मैं यह सच कह रहा हूँ ॥ ५ ॥ इनकी प्रसन्नतासे मैं अपने बहुत बड़े यशकी अभिलाषा करता हूँ । विपुल धर्मप्राप्ति तथा अर्थ कामकी प्राप्तिकी भी आशा करता हूँ ॥ ६ ॥ मैं अपने प्रिय मित्र रामचन्द्रकी, जो सीताके साथ सो रहे हैं—अपने बन्धुओंके साथ धनुष लेकर रक्षा करूँगा ॥ ७ ॥ इस वनमें मेरा कुछ अज्ञात नहीं है; क्योंकि मैं सदा घूमा करता हूँ, चतुरङ्गिणी सेनाको भी हमलोग युद्धमें रोक सकते हैं ॥ ८ ॥ इस प्रकार हमारे कहने पर महात्मा लक्ष्मणने धर्मानुसारही हमलोगोंको समझाया ॥ ९ ॥ दासरथी रामचन्द्र सीताके साथ जमीनपर सो रहे हैं फिर मुझे कैसे निद्रा आ सकती है और मेरा जीवन कैसे सुखकर हो सकता है ॥ १० ॥ जिन रामचन्द्रको युद्धमें देवता और असुर नहीं सह सकते, गुह, देखो वे ही रामचन्द्र सीताके साथ जमीनपर सो रहे हैं ॥ ११ ॥ बड़ी तपस्या और बड़े प्रयत्नोंके बाद दसरथने अपने समान यही एक पुत्र पाया था ॥ १२ ॥ इनके वनमें चले आनेसे राजा दसरथ बहुत दिनों तक नहीं जी सकते, राजाके न रहने पर यह पृथिवी शीघ्रही विधवा हो जायगी ॥ १३ ॥ बहुत जोरसे रोनेके पश्चात् राजमहलकी स्त्रियाँ थकावटके कारण इस समय चुप हो गयी होंगी, इस समय राजमहलमें कोई शब्द सुनाई न पड़ता होगा ॥ १४ ॥ कौसल्या, राजा तथा मेरी माता सुमित्रा इस रात जीती बचेंगी, इसकी आशा नहीं है ॥ १५ ॥ सम्भव है शत्रुघ्नको देखनेके लिए मेरी माता जीती बच जाय, पर वीरसू कौसल्या अवश्यही नष्ट हो जायँगी ॥ १६ ॥ रामचन्द्रको राज्य देना हमारे पिताका मनोरथ था, उसके सिद्ध न होनेसे अर्थात् रामचन्द्रको राज्य न देनेके कारण मेरे पिता अवश्यही नष्ट हो जायंगे ॥ १७ ॥ पिताके मरनेपर अन्तिम संस्कार करनेका जब समय उपस्थित होगा तब जो लोग उनका प्रेतकार्य करेंगे, उन्हींका मनोरथ पूरा होगा, उन्हींको राज्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रम्यचत्वरसंस्थानां सुविभक्तमहापथाम् । हर्म्यप्रासादसंपन्नां सर्वरत्नविभूषिताम् ॥१९॥
गजाश्वरथसंबाधां तूर्यनादविनादिताम् । सर्वकल्याणसंपूर्णां हृष्टपुष्टजनाकुलाम् ॥२०॥
आरामोद्यानसंपूर्णां समाजोत्सवशालिनीम् । सुखिता विचरिष्यन्ति राजधानीं पितुर्मम ॥२१॥
अपि सत्यप्रतिज्ञेन सार्धं कुशलिना वयम् । निवृत्ते समये ह्यस्मिन्सुखिताः प्रविशेमहि ॥२२॥
परिदेवयमानस्य तस्यैवं हि महात्मनः । तिष्ठतो राजपुत्रस्य शर्वरी सात्यवर्तत ॥२३॥
प्रभाते विमले सूर्ये कारयित्वा जटा उभौ । अस्मिन्भागीरथीतीरे सुखं संतारितौ मया ॥२४॥

जटाधरौ तौ द्रुमचीरवाससौ महाबलौ कुञ्जरयूथपोपमौ ।
वरेषुधीचापधरौ परंतपौ व्यपेक्षमाणौ सह सीतया गतौ ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ८७

गुहस्य वचनं श्रुत्वा भरतो भृशमप्रियम् । ध्यानं जगाम तत्रैव यत्र तच्छ्रुतमप्रियम् ॥ १ ॥
सुकुमारो महासत्त्वः सिंहस्कन्धो महाभुजः । पुण्डरीकविशालाक्षस्तरुणः प्रियदर्शनः ॥ २ ॥
प्रत्याश्वस्य मुहूर्तं तु कालं परमदुर्मनाः । ससाद सहसा तोत्रैर्हृदि विद्ध इव द्विपः ॥ ३ ॥

मिलेगा ॥ १८ ॥ वे ही सुखपूर्वक मेरे पिताकी राजधानी अयोध्यामें विचरण करेंगे । जिस अयोध्यामें बड़े सुन्दर चौक हैं, जिसमें बड़े-बड़े चौड़े रास्ते निकाले गये हैं, धनियोंकी अटारियाँ और राजमहलोंसे जो सुशोभित है, और जो विविध रत्नोंसे विभूषित है, हाथी घोड़े जिसमें भरे पड़े हैं, जिसमें तुरही आदि बाजे बजते हैं, जिसमें सब प्रकारके कल्याणकी वस्तु हैं, जहाँके वासी सदा मन और शरीरसे प्रसन्न रहते हैं, फुलवारी और बागोंसे जो भरी है, जिसमें सभाएँ और उत्सव होते रहते हैं ॥ १९-२०-२१ ॥ चौदहवर्षके बीतने पर सत्यप्रतिज्ञ और कुशली रामचन्द्रके साथ क्या हम भी सुखपूर्वक इस नगरीमें प्रवेश कर सकेंगे ॥ २२ ॥ राजपुत्र महात्मा लक्ष्मण इस प्रकार विलाप करते रहे और वह रात बीत गयी ॥ २३ ॥ प्रातःकाल विमल सूर्यके उदित होने पर दोनोंने जटा बनायी और हमने सुखपूर्वक इस गंगा नदीके पार उन्हें उतार दिया ॥ २४ ॥ यूथपति हाथीके समान महाबलवान् वल्कलवस्त्र धारण किये हुए जटाधारी वे सीताके साथ गये, तरकस और धनुष वे धारण किये हुए थे, वे शत्रुतापन मेरी ओर देखते हुए सीताके साथ गये ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका छियासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८६ ॥

भरतने गुहके अप्रिय वचन जिस समय सुन उसी समय उन्हें चिन्ता उत्पन्न हो गयी, अपने कार्यकी कठिनताका ध्यान आनेसे वे दुःखी हुए ॥ १ ॥ सुकुमार महाबली सिंहके समान कन्धेवाले, कमलके समान बड़ी आँखोंवाले, युवा और प्रियदर्शन भरतने थोड़ी देरतक अपने चित्तको स्वस्थ किया, पुनः वे बड़े दुःखी हो गये, अंकुशसे हृदयमें विधे हाथीके समान भरत

भरतं मूर्च्छितं दृष्ट्वा विवर्णवदनो गुहः । बभूव व्यथितस्तत्र भूमिकम्पे यथा नगः ॥ ४ ॥
तदवस्थं तु भरतं शत्रुघ्नोऽनन्तरस्थितः । परिष्वज्य रुरोदोच्चैर्विसंज्ञः शोककर्शितः ॥ ५ ॥
ततः सर्वाः समापेतुर्मातरो भरतस्य ताः । उपवासकृशा दीना भर्तृव्यसनकर्शिताः ॥ ६ ॥
ताश्च तं पतितं भूमौ रुदत्यः पर्यवारयन् । कौसल्या त्वनुसृत्यैनं दुर्मनाः परिषस्वजे ॥ ७ ॥
वत्सला स्वं यथा वत्समुपगुह्य तपास्विनी । परिपप्रच्छ भरतं रुदती शोकलालसा ॥ ८ ॥
पुत्र व्याधिर्न ते कच्चिच्छरीरं प्रति बाधते । अस्य राजकुलस्याद्य त्वदधीनं हि जीवितम् ॥ ९ ॥
त्वां दृष्ट्वा पुत्र जीवामि रामे सभ्रातृके गते । वृत्ते दशरथे राज्ञि नाथ एकस्त्वमद्य नः ॥१०॥
कच्चिन्न लक्ष्मणे पुत्र श्रुतं ते किंचिदप्रियम् । पुत्रे वा ह्येकपुत्रायाः सहभार्ये वनं गते ॥११॥
स मुहूर्तं समाश्वस्य रुदन्नेव महायशाः । कौसल्यां परिसान्त्व्येदं गुहं वचनमब्रवीत् ॥१२॥
भ्राता मे क्वावसद्रात्रिं क्व सीता क्व च लक्ष्मणः । अस्वपच्छयने कास्मिन्किं भुक्त्वा गुह शंस मे ॥१३॥
सोऽब्रवीद्भरतं हृष्टो निषादाधिपतिर्गुहः । यद्विधं प्रतिपेदे च रामे प्रियहितेऽतिथौ ॥१४॥
अन्नमुच्चावचं भक्ष्याः फलानि विविधानि च । रामायाभ्यवहारार्थं बहुशोऽपहृतं मया ॥१५॥
तत्सर्वं प्रत्यनुज्ञासीद्रामः सत्यपराक्रमः । न हि तत्प्रत्यगृह्णात्स क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥१६॥

सहसा मूर्छित हुए ॥ २ ॥ ३ ॥ भरतको मूर्छित देखकर गृहका मुँह सूख गया । भूमिकम्पके समय वृक्षके समान वह दुःखी हुआ ॥ ४ ॥ भरतकी ऐसी अवस्था देखकर उनके पास ही वर्तमान शत्रुघ्न ऊँचे स्वरसे रोने लगे और शोकपीड़ित होकर शत्रुघ्न संज्ञाहीन हो गये ॥५॥ तदनन्तर भरतकी वे सब माताएँ वहाँ आगयीं, वे उपवाससे कृश थीं, पतिके दुःखसे दुःखी थीं ॥ ६ ॥ वे सब रोती हुई स्त्रियोंने भरतको चारो ओरसे घेर लिया, दुःखिनी कौसल्या भरतके पास गयीं और उनको उठाकर उन्होंने गोदमें लिया ॥ जिस प्रकार बच्छेमें प्रेम रखनेवाली गौ अपने बच्छेको गोदमें लेती है, उसी प्रकार भरतको गोदमें लेकर दुःखिनी कौसल्याने रोते-रोते भरतसे पूछा ॥ ८ ॥ पुत्र, क्या किसी रोगसे तुम्हारा शरीर पीड़ित है, क्योंकि आज इस राजकुलका जीवन तुम्हारे ही अधीन है ॥९॥ पुत्र, भाईके साथ रामचन्द्रके वन जानेपर तुम्हींको देखकर मैं जीती हूँ । राजा दसरथके स्वर्ग जानेपर तुम्हीं हम लोगोंके स्वामी हो ॥१०॥ पुत्र, लक्ष्मणके विषयमें तुमने कोई अप्रिय बात तो नहीं सुनी है, अथवा एक पुत्रवाली मेरे पुत्रके सम्बन्धमें तुमने कोई अप्रिय बात सुनी है, जो अपनी स्त्रीके साथ वन गये हैं ॥११॥ एक मुहूर्तमें स्वस्थ होकर महायशस्वी भरतने रोते-रोते कौसल्याको समझाया, उनसे कहा कि यह सब कुछ भी नहीं है, पुनः वे गुहसे बोले ॥ १२ ॥ मेरे भाईने रातमें कहाँ निवास किया, सीता और लक्ष्मणने कहाँ निवास किया, क्या भोजन किया और वे किस बिछौनेपर सोए, गुह, यह सब मुझसे कहो ॥ १३ ॥ वह निषादाधिपति गुह प्रसन्नतापूर्वक भरतसे बोला । प्रिय और हितकारी अतिथि रामचन्द्रके विषयमें उसने जैसा किया था वह उसने कहा ॥ १४ ॥ अन्न, खानेकी विविध वस्तु तथा अनेक प्रकारके फल भोजनके लिये मैंने रामको दिये ॥१५॥ सत्यपराक्रम रामचन्द्रने वह सब स्वीकार करके पुनः मुझे लौटा दिया ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नह्यस्माभिः प्रतिग्राह्यं सखे देयं तु सर्वदा । इति तेन वयं सर्वे अनुनीता महात्मना ॥१७॥
लक्ष्मणेन यदानीतं पीतं वारि महात्मना । औपवास्यं तदाकार्षीद्राघवः सह सीतया ॥१८॥
ततस्तु जलशेषेण लक्ष्मणोऽप्यकरोत्तदा । वाग्यतास्ते त्रयः संध्यां समुपासन्त संहिताः ॥१९॥
सौमित्रिस्तु ततः पश्चादकरोत्स्वास्तरं शुभम् । स्वयमानीय बर्हींषि क्षिप्रं राघवकारणात् ॥२०॥
तस्मिन्समाविशद्रामः स्वास्तरे सह सीतया । प्रक्षाल्य च तयोः पादौ व्यपाक्रामत्स लक्ष्मणः ॥२१॥
एतत्तादिङ्गुदीमूलमिदमेव च तत्तृणम् । अस्मिन्रामश्च सीता च रात्रिं तां शयितावुभौ ॥२२॥
नियम्य पृष्ठे तु तलाङ्गुलित्रवाञ्शरैः सुपूर्णाविषुधी परंतपः ।
महद्धनुः सज्जमुपोह्य लक्ष्मणो निशामतिष्ठत्परितोऽस्य केवलम् ॥२३॥
ततस्त्वहं चोत्तमबाणचापभृत्स्थितोऽभवं तत्र स यत्र लक्ष्मणः ।
अतन्द्रितैर्ज्ञातिभिरात्तकार्मुकैर्महेन्द्रकल्पं परिपालयं तदा ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ८८

तच्छ्रुत्वा निपुणं सर्वं भरतः सह मन्त्रिभिः । इङ्गुदीमूलमागम्य रामशय्यामवैक्षत ॥ १ ॥
अब्रवीज्जननीः सर्वा इह तस्य महात्मनः । शर्वरी शयिता भूमाविदमस्य विमर्दितम् ॥ २ ॥

क्षात्रधर्मके अनुसार उन्होंने वे सब चीजें नहीं लीं ॥ १६ ॥ उस महात्माने हमलोगोंको प्रेमपूर्वक समझाया कि मित्र, हमलोगोंको लेना नहीं चाहिए, किन्तु सदा देना ही चाहिए ॥ १७ ॥ लक्ष्मण जो जल ले आये थे वही जल महात्मा रामचन्द्रने पीया, सीताके साथ रामचन्द्रने उस रातको उपवास किया ॥ १८ ॥ जो जल बचा हुआ था वह लक्ष्मणने पीया । मौन और सावधान होकर उन तीनोंने सन्ध्या की ॥ १९ ॥ तदनन्तर स्वयं कुश लाकर लक्ष्मणने रामचन्द्रके लिये सुन्दर बिछौना बिछाया ॥ २० ॥ उस सुन्दर बिछौनेपर सीताके साथ रामचन्द्र बैठे और उन दोनोंके पैर धोकर लक्ष्मण वहाँसे चले आये ॥ २१ ॥ यही वह इंगुदीकी वृक्षका मूल है, यही वह तृण है, यहीं राम और सीताने उस रातको शयन किया ॥२२॥ पीठपर बाणपूर्ण इषुधि (तरकस) बाँधकर तल और अँगुलित्र (ज्याके आघातको रोकनेवालेको तल कहते हैं, और अँगुलियोंकी रक्षा करनेवालेको अंगुलित्र कहते हैं) लेकर परन्तप लक्ष्मण बड़ा धनुष चढ़ाकर रातभर अकेले रामचन्द्रके पास रहे ॥२३॥ तदनन्तर उत्तम बाण और धनुष लेकर जहाँ लक्ष्मण थे, वहाँ मैं भी गया, जागे हुए और धनुष धारण किये हुए अपने भाइयोंके साथ इन्द्रके समान रामचन्द्रकी हमलोगोंने रक्षा की ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका सतासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८७ ॥

निषादकी कही हुई वे सब बातें यथावत् सुनकर भरत मन्त्रियोंके साथ इंगुदीकी वृक्षके समीप आये और उन्होंने रामचन्द्रकी शय्या देखी ॥ १ ॥ भरतने सब माताओंसे कहा कि वे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महाराजकुलीनेन महाभागेन धीमता । जातो दशरथेनोर्व्यां न रामः स्वप्तुमर्हति ॥ ३ ॥
अजिनोत्तरसंस्तीर्णे वरास्तरणसंचये । शयित्वा पुरुषव्याघ्रः कथं शेते महीतले ॥ ४ ॥
प्रासादाग्रविमानेषु वलभीषु च सर्वदा । हैमराजतभौमेषु वरास्तरणशालिषु ॥ ५ ॥
पुष्पसंचयचित्रेषु चन्दनागुरुगन्धिषु । पाण्डुराभ्रप्रकाशेषु शुकसङ्घरुतेषु च ॥ ६ ॥
प्रासादवरवर्येषु शीतवत्सु सुगन्धिषु । उषित्वा मेरुकल्पेषु कृतकाञ्चनभित्तिषु ॥ ७ ॥
गीतवादित्रनिर्घोषैर्वराभरणनिःस्वनैः । मृदङ्गवरशब्दैश्च सततं प्रतिबोधितः ॥ ८ ॥
वन्दिभिर्वन्दितः काले बहुभिः सूतमागधैः । गाथाभिरनुरूपाभिः स्तुतिभिश्च परंतपः ॥ ९ ॥
अश्रद्धेयमिदं लोके न सत्यं प्रतिभाति मा । मुह्यते खलु मे भावः स्वप्नोऽयमिति मे मतिः ॥१०॥
न नूनं दैवतं किंचित्कालेन बलवत्तरम् । यत्र दाशरथी रामो भूमावेवमशेत सः ॥११॥
यस्मिन्विदेहराजस्य सुता च प्रियदर्शना । दयिता शयिता भूमौ स्नुषा दशरथस्य च ॥१२॥
इयं शय्या मम भ्रातुरिदमावर्तितं शुभम् । स्थण्डिले कठिने सर्वं गात्रैर्विमृदितं तृणम् ॥१३॥
मन्ये साभरणा सुप्ता सीतास्मिञ्शयने शुभा । तत्र तत्र हि दृश्यन्ते सक्ताः कनकबिन्दवः॥१४॥

महात्मा रामचन्द्र यहीं रातमें सोये थे और यही उनके सोनेका स्थान है ॥ २ ॥ महाभाग बुद्धिमान् रामचन्द्र महाराजकुलमें उत्पन्न हुए हैं, वे राजा दसरथके पुत्र हैं, वे जमीनमें सोनेके योग्य नहीं हैं ॥ ३ ॥ रामचन्द्र सुन्दर बिछौनेपर जिसपर उत्तम चर्मकी चादर बिछायी जाती थी सोते थे, वे पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्र पृथिवीपर कैसे सोएँगे ॥ ४ ॥ विमानके समान ऊँची अटारीपर गुप्त गृहमें-जिसकी फर्श सोने और चाँदीकी बनी हुई है तथा जिसपर बहुमूल्य बिछौने बिछे हुए हैं, ॥ ५ ॥ जहाँ तरह तरहके पुष्प एकत्र किये गये हैं, जो चन्दन अगुरुकी गन्धसे सुगन्धित है, स्वच्छ आकाशके समान जो उज्वल है तथा शुक-पक्षियोंका समूह जहाँ बोला करता है, ॥ ६ ॥ उत्तम अटारियोंपर जो ठंढी और सुगन्धित रहती हैं, जो मेरु पर्वतके समान ऊँची हैं तथा जिनकी दीवारोंपर सोनेका काम किया हुआ है, वहाँ सोनेवाले रामचन्द्र जमीनपर सोए हुए थे ॥ ७ ॥ गान, बाजा तथा उत्तम भूषणोंके शब्दसे तथा मृदंगके उत्तम शब्दोंसे रामचन्द्र सदा जगाये जाते थे ॥८॥ गुणगान करनेवाले अनेक सूत और मागध समययोग्य कथाओं और स्तुतिओंसे रामचन्द्रकी स्तुति करते थे और वे उठते थे, वे हा रामचन्द्र आज जमीनपर कैसे सोते हैं ॥ ९ ॥ यह बात विश्वासके योग्य नहीं है, यह मुझे सत्य नहीं मालूम पड़ती, इस विषयमें मेरा अन्तःकरण कुछ निश्चय नहीं कर सकता, मैं समझता हूँ कि यह स्वप्न है॥१०॥ कालसे बढ़कर दूसरा कोई देवता बली नहीं है, क्योंकि दसरथपुत्र रामचन्द्रको जमीनपर सोना पड़ता है ॥ ११ ॥ जिस कालके कारण विदेहराजकी कन्या रामचन्द्रकी भार्या और दसरथकी बहू सुन्दरी सीता जमीनपर सोती है ॥ १२ ॥ यह मेरे भाईके सोनेकी जगह है, यहीं उन्होने करवटें बदली थीं, कठोर चौतरेपर उनके शरीरसे मर्दित यह तृण है ॥ १३ ॥ मालूम होता है कि इस स्थानपर सुन्दरी सीताने आभूषणोंके साथ शयन किया था, क्योंकि यहाँ जगह-जगह सोनेकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उत्तरीयमिहासक्तं सुव्यक्तं सीतया तदा । तथा ह्येते प्रकाशन्ते सक्ताः कौशेयतन्तवः ॥१५॥
मन्ये भर्तुः सुखा शय्या येन बाला तपस्विनी । सुकुमारी सती दुःखं न विजानाति मैथिली॥१६॥
हा हतोऽस्मि नृशंसोऽस्मि यत्सभार्यः कृते मम । ईदृशीं राघवः शय्यामधिशेते ह्यनाथवत् ॥१७॥
सार्वभौमकुले जातः सर्वलोकसुखावहः । सर्वप्रियकरस्त्यक्त्वा राज्यं प्रियमनुत्तमम् ॥१८॥
कथमिन्दीवरश्यामो रक्ताक्षः प्रियदर्शनः । सुखभागी न दुःखार्हः शयितो भुवि राघवः॥१९॥
धन्यः खलु महाभागो लक्ष्मणः शुभलक्षणः । भ्रातरं विषमे काले यो राममनुवर्तते ॥२०॥
सिद्धार्था खलु वैदेही पतिं यानुगता वनम् । वयं संशयिताः सर्वे हीनास्तेन महात्मना ॥२१॥
अकर्णधारा पृथिवी शून्येव प्रतिभाति मे । गते दशरथे स्वर्गं रामे चारण्यमाश्रिते ॥२२॥
न च प्रार्थयते कश्चिन्मनसापि वसुंधराम् । वने निवसतस्तस्य बाहुवीर्याभिरक्षिताम् ॥२३॥
शून्यसंवरणारक्षामयन्त्रितहयद्विपाम् । अनावृतपुरद्वारां राजधानीमरक्षिताम् ॥२४॥
अप्रहृष्टबलां शून्यां विषमस्थामनावृताम् । शत्रवो नाभिमन्यन्ते भक्ष्यान्विषकृतानिव ॥२५॥
अद्यप्रभृति भूमौ तु शयिष्येऽहं तृणेषु वा । फलमूलाशनो नित्यं जटाचीराणि धारयन् ॥२६॥
तस्याहमुत्तरं कालं निवत्स्यामि सुखं वने । तत्प्रतिश्रुतमार्यस्य नैव मिथ्या भविष्यति ॥२७॥

छीटें दीख पड़ती हैं ॥ १४ ॥ सीताकी ओढ़नी यहाँ अटक गई थी यह स्पष्ट मालूम होता है, क्योंकि रेशमके सूत यहाँ लपटे हुए मालूम पड़ते हैं ॥ १५ ॥ मैं समझता हूँ कि पतिकी शय्या सुखकारी होती है, अतएव सुकुमारी विचारी सती सीताको इस स्थानपर भी दुःख मालूम नहीं पड़ा ॥ १६ ॥ मैं बड़ाही क्रूर हूँ, मैं मारा गया, क्योंकि मेरे ही कारण अपनी स्त्रीके साथ ऐसी शय्यापर रामचन्द्र अनाथके समान सोते हैं ॥ १७ ॥ चक्रवर्तीके कुलमें उत्पन्न होकर सबको सुख देनेवाले, सबके प्रिय करनेवाले रामचन्द्र श्रेष्ठ राज्यका त्याग करके नील कमलके समान सुन्दर, रक्ताक्ष प्रियदर्शन रामचन्द्र, जो दुःखके योग्य नहीं हैं, किन्तु सुख भोगनेवाले हैं उन्हें जमीनपर सोना पड़ा ॥ १८ ॥ १९ ॥ शुभलक्षण लक्ष्मण ही बड़भागी हैं, वे ही धन्य हैं जो इस संकटके समयमें रामचन्द्रके साथ हैं ॥ २० ॥ वैदेहीका भी मनोरथ पूर्ण हुआ जो रामचन्द्रके साथ वन गयी, उस महात्माके विना हमही लोग संदेहमें पड़ गये, न उनकी सेवा ही की और न राज्य ही किया ॥ २१ ॥ राजा दसरथके स्वर्ग जानेसे तथा रामचन्द्रके वन जानेसे यह पृथिवी मुझे स्वामीहीन अतएव सूनी मालूम पड़ती है ॥ २२ ॥ वनवासी रामचन्द्रके बाहुवीर्यसे रक्षित इस पृथिवीको—इस राज्यको कोई भी लेनेकी इच्छा नहीं करता, हम तो चाहते ही नहीं, शत्रु भी नहीं चाहता ॥ २३ ॥ नगरकी चारदिवारीकी रक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं है, हाथी घोड़े भी खुले पड़े हैं, नगरद्वार खुला है, राजधानी अरक्षित दशामें पड़ी है ॥ २४ ॥ सैनिक दुःखी हैं, नगरी संकटमें पड़ी है, बाहरी रक्षाका भी कोई प्रबन्ध नहीं है फिर भी विषमश्रित अन्नके समान शत्रु इधर आँख भी नहीं उठाते, आक्रमण नहीं करते ॥ २५ ॥ आजसे मैं भी पृथिवीपर घास बिछाकर सोऊंगा, नित्य फल मूल खाऊँगा, और जटा वल्कल धारण करूँगा ॥ २६ ॥ उनके बदले बाकी समय तक मैं वनवास करूँगा । इस प्रकार वनवासकी उनको प्रतिज्ञा मिथ्या नहीं होगी ॥ २७ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वसन्तं भ्रातुरर्थाय शत्रुघ्नो मानुवत्स्यति । लक्ष्मणेन सहायोध्यामार्यो मे पालयिष्यति ॥२८॥
अभिषेक्ष्यन्ति काकुत्स्थमयोध्यायां द्विजातयः । अपि मे देवताः कुर्युरिमं सत्यं मनोरथम् ॥२९॥
प्रसाद्यमानः शिरसा मया स्वयं बहुप्रकारं यदि न प्रपत्स्यते ।
ततोऽनुवत्स्यामि चिराय राघवं वनेचरं नार्हति मामुपेक्षितुम् ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डेऽष्टाशीतितमः सर्गः ॥८८॥

एकोननवतितमः सर्गः ८९

व्युष्य रात्रिं तु तत्रैव गङ्गाकूले स राघवः । काल्यमुत्थाय शत्रुघ्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
शत्रुघ्नोत्थाय किं शेषे निषादाधिपतिं गुहम् । शीघ्रमानय भद्रं ते तारयिष्यति वाहिनीम् ॥ २ ॥
जागर्मि नाहं स्वपिमि तथैवार्यं विचिन्तयन् । इत्येवमब्रवीद्भ्राता शत्रुघ्नो विप्रचोदितः ॥ ३ ॥
इति संवदतोरेवमन्योन्यं नरसिंहयोः । आगम्य प्राञ्जलिः काले गुहो वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥
कच्चित्सुखं नदीतीरेऽवात्सीः काकुत्स्थ शर्वरीम् । कच्चिच्च सहसैन्यस्य तव नित्यमनामयम् ॥ ५ ॥
गुहस्य तत्तु वचनं श्रुत्वा स्नेहादुदीरितम् । रामस्यानुवशो वाक्यं भरतोऽपीदमब्रवीत् ॥ ६ ॥
सुखा नः शर्वरी धीमन्पूजिताश्चापि ते वयम् । गङ्गां तु नौभिर्वह्नीभिर्दाशाः संतारयन्तु नः ॥ ७ ॥

भाईके वनसे लौट आनेके लिये जब मैं वनवास करूंगा तब शत्रुघ्न भी मेरे साथ ही वनवास करेगा और लक्ष्मणके साथ रामचन्द्र अयोध्याका पालन करेंगे ॥ २८ ॥ ब्राह्मणगण रामचन्द्रका अयोध्यामें अभिषेक करेंगे, यदि देवता मेरे इस मनोरथको सत्य करें ॥ २९ ॥ सिरसे प्रणाम करके मैं रामचन्द्रको अनेक प्रकारसे लौट आनेके लिये राजी करूँगा, यदि वे मेरी प्रार्थना स्वीकार न करेंगे तो वनवासी रामचन्द्रके साथ मैं भी बहुत दिनों तक वनवास कर उनकी सेवा करूंगा, और वे मेरी उपेक्षा न करेंगे, वे अपने सेवकोंमें अवश्य ही स्थान देंगे ॥ ३० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका अठासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८८ ॥

उस रातको वहीं गंगा तीरपर भरतने निवास किया और प्रातःकाल उठकर उन्होंने शत्रुघ्नसे कहा ॥ १ ॥ शत्रुघ्न, क्या सो रहे हो उठो, निषादाधिपति गुहको शीघ्र बुलाओ, सेनाको गंगा पार करे ॥ २ ॥ भरतके ऐसा कहनेपर शत्रुघ्नने कहा—मैं जाग रहा हूँ, सोता नहीं हूँ, मैं भी रामचन्द्रके विषयकी चिन्ता कर रहा हूँ जिस प्रकार तुम करते हो ॥ ३ ॥ इस प्रकार नरश्रेष्ठ दोनों भाई बातचीत करही रहे थे कि उसी समय आकर और हाथ जोड़कर गुह बोला ॥ ४ ॥ काकुत्स्थ, इस नदी तीरपर सुखपूर्वक तुमने रातको निवास किया और सेनाके साथ तुम सब लोग प्रसन्न तो हो, कोई रोग व्याधि तो नहीं है ॥ ५ ॥ स्नेहसे कही गुहकी वे बातें सुनकर रामके वशवर्ती भरत भी इस प्रकार बोले ॥ ६ ॥ बुद्धिमन्, बड़े सुखसे रात बीती, तुमने भी हम लोगोंकी बड़ी सेवा की, अब बहुतसी नाव लाकर तुम्हारे मल्लाह हम लोगोंको पार उतार दें ॥७॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततो गुहः संत्वरितः श्रुत्वा भरतशासनम् । प्रतिप्रविश्य नगरं तं ज्ञातिजनमब्रवीत् ॥ ८ ॥
उत्तिष्ठत प्रबुध्यध्वं भद्रमस्तु हि वः सदा । नावः समुपकर्षध्वं तारयिष्यामि वाहिनीम् ॥ ९ ॥
ते तथोक्ताः समुत्थाय त्वरिता राजशासनात् । पञ्च नावां शतान्येव समानिन्युः समन्ततः ॥१०॥
अन्याः स्वस्तिकविज्ञेया महाघण्टाधराधराः । शोभमानाः पताकिन्यो युक्तवाहाः सुसंहताः ॥११॥
ततः स्वस्तिकविज्ञेयां पाण्डुकम्बलसंवृताम् । सनन्दिघोषां कल्याणीं गुहो नावमुपाहरत् ॥१२॥
तामारुरोह भरतः शत्रुघ्नश्च महाबलः । कौसल्या च सुमित्रा च याश्चान्या राजयोषितः ॥१३॥
पुरोहितश्च तत्पूर्वं गुरवो ब्राह्मणाश्च ये । अनन्तरं राजदारास्तथैव शकटापणाः ॥१४॥
आवासमादीपयतां तीर्थं चाप्यवगाहताम् । भाण्डानि चाददानानां घोषस्तु दिवमस्पृशत् ॥१५॥
पताकिन्यस्तु ता नावः स्वयं दाशैरधिष्ठिताः । वहन्त्यो जनमारूढं तदा संपेतुराशुगाः ॥१६॥
नारीणामभिपूर्णास्तु काश्चित्काश्चित्तु वाजिनाम् । काश्चित्तत्र वहन्ति स्म यानयुग्यं महाधनम् ॥१७॥
तास्तु गत्वा परं तीरमवरोप्य च तं जनम् । निवृत्ताः काण्डचित्राणि क्रियन्ते दाशबन्धुभिः ॥१८॥
सवैजयन्तास्तु गजा गजारोहैः प्रचोदिताः । तरन्तः स्म प्रकाशन्ते सपक्षा इव पर्वताः ॥१९॥
नावश्चारुरुहुस्त्वन्ये प्लवैस्तेरुस्तथापरे । अन्ये कुम्भघटैस्तेरुरन्ये तेरुश्च बाहुभिः ॥२०॥
सा पुण्या ध्वजिनी गङ्गां दाशैः संतारिता स्वयम् । मैत्रे मुहूर्ते प्रययौ प्रयागवनमुत्तमम् ॥२१॥

भरतकी ऐसी आज्ञा सुनकर गुह शीघ्रतापूर्वक नगरमें गया और उसने अपने भाइयोंसे कहा ॥ ८ ॥ उठो, जागो, तुम लोगोंका सदा कल्याण हो, नाव ले आओ, सेनाको पार उतारना है ॥ ९ ॥ राजाकी आज्ञासे वे शीघ्रतापूर्वक उठे और चारो ओरसे एकत्र करके पाँचसौ नाव ले आये ॥ १० ॥ इनके अतिरिक्त स्वस्तिक नामकी नाव आयीं जिनपर बड़े-बड़े घंटा लगे हुए थे, पताकाएँ लगी हुई थीं, जो बहुत ही सुन्दर थीं, खेनेवाले मल्लाह थे और मजबूत बनी हुई थीं ॥ ११ ॥ उन स्वस्तिक नामवाली नौकाओंमेंसे एक नौका गुह ले आया, जिसपर राजाओंके बैठने योग्य कम्बल बिछा हुआ तथा छोटी घंटिओंका शब्द हो रहा था ॥ १२ ॥ उस नावपर महाबली भरत और शत्रुघ्न बैठे, कौसल्या, सुमित्रा तथा राजकुलकी अन्य स्त्रियाँ भी बैठीं ॥ १३ ॥ तदनन्तर पुरोहित, गुरु, ब्राह्मण, आश्रित राजाओंकी स्त्रियाँ गाड़ियाँ तथा अन्य वस्तु नावपर रखी गयी ॥ १४ ॥ ठहरनेकी जगहपर आग लगानेका (यह सैनिकोंका सदाचार है), गंगा तीरपर उतरनेका और अपनी अपनी सामग्रियाँ उठानेका जो शब्द हुआ, वह आकाश तक फैल गया ॥१५॥ शीघ्र चलनेवाली, मल्लाहोंसे युक्त पताकावाली नाव भरत आदिको लेकर शीघ्रतापूर्वक उस पार चली गयीं ॥ १६ ॥ कई नाव स्त्रियोंसे भरी थीं, कई घोड़ोंसे और कई नाव रथमें जुतनेवाले घोड़े आदि लेकर गयीं ॥ १७ ॥ वे सब नाव उस पार जाकर सब लोगोंको उतार आयीं, वहाँसे लौटनेपर मल्लाहोंने उन नावोंके अद्भुत खेल दिखाये ॥ १८ ॥ ध्वजायुक्त हाथी हाथीवानोंके द्वारा प्रेरित होकर गंगामें तैरने लगे, वे पाँखवाले पर्वत के समान मालूम होते थे ॥ १९ ॥ बहुत लोग नावपर बैठे, बहुत लोग बाँस आदिके बने प्लवपर पार गये, बहुत लोगोंने घड़ोंसे पार किया तथा बहुत बाहुसे तैरकर पार गये ॥ २० ॥ उस पवित्र सेनाको मल्लाहोंने गंगाके पार उतार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आश्वासयित्वा च चमूं महात्मा निवेशयित्वा च यथोपजोषम् ।
द्रष्टुं भरद्वाजमृषिप्रवर्यमृत्विक्सदस्यैर्भरतः प्रतस्थे ॥२२॥
स ब्राह्मणस्याश्रममभ्युपेत्य महात्मनो देवपुरोहितस्य ।
ददर्श रम्योटजवृक्षदेशं महद्वनं विप्रवरस्य रम्यम् ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

नवतितमः सर्गः ९०

भरद्वाजाश्रमं गत्वा क्रोशादेव नरर्षभः । जनं सर्वमवस्थाप्य जगाम सह मन्त्रिभिः ॥ १ ॥
पद्भ्यामेव तु धर्मज्ञो न्यस्तशस्त्रपरिच्छदः । वसानो वाससी क्षौमे पुरोधाय पुरोहितम् ॥ २ ॥
ततः संदर्शने तस्य भरद्वाजस्य राघवः । मन्त्रिणस्तानवस्थाप्य जगामानुपुरोहितम् ॥ ३ ॥
वसिष्ठमथ दृष्ट्वैव भरद्वाजो महातपाः । संचचालासनात्तूर्णं शिष्यानर्घ्यमिति ब्रुवन् ॥ ४ ॥
समागम्य वसिष्ठेन भरतेनाभिवादितः । अबुध्यत महातेजाः सुतं दशरथस्य तम् ॥ ५ ॥
ताभ्यामर्घ्यं च पाद्यं च दत्त्वा पश्चात्फलानिच । आनुपूर्व्याच्च धर्मज्ञः पप्रच्छ कुशलं कुले ॥ ६ ॥

दिया, और वह सेना मैत्रमुहुर्तमें (सूर्योदयसे तीसरे मुहुर्तमें) प्रयागके लिए प्रस्थित हुई ॥ २१ ॥ प्रयाग पहुँचकर महात्मा भरतने अपनी सेनाको विश्राम करनेके लिए कहा और सुखपूर्वक उसको ठहराया, पुनः वे वहाँसे पुरोहित और राजसभाके सदस्योंके साथ ऋषिश्रेष्ठ भरद्वाजको देखनेके लिये चले ॥२२॥ देवपुरोहित महात्मा ब्राह्मणके आश्रम पर जाकर उन ब्राह्मण-श्रेष्ठका बड़ाही रमणीय वन उन्होंने देखा, जिसमें सुन्दर झोपड़े बने हुए थे और सुन्दर वृक्ष लगे हुए थे ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका नवासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८९ ॥

नरश्रेष्ठ भरत भरद्वाजके आश्रमके समीप जाकर वहाँसे एक कोश पहलेही अपने साथके आदमियोंको ठहराकर वे मन्त्रियोंके साथ चले ॥ १ ॥ धर्म जाननेवाले भरतने अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य कपड़े वहीं रख दिये, केवल रेशमी दो वस्त्र (धोती अंगौछी) लेकर तथा पुरोहितको आगे करके वे पैदलही चले ॥ २ ॥ आश्रमपर पहुँचनेसे जब भरद्वाज मुनि दीख पड़े, तब भरत मन्त्रियोंको भी वहीं रखकर केवल पुरोहितको साथ लेकर गये ॥ ३ ॥ महातपस्वी भरद्वाज वसिष्ठको देखतेही आसनसे शीघ्रतापूर्वक उठे और शिष्योंसे अर्घ्य लानेके लिए उन्होंने कहा॥४॥ भरतने भरद्वाजको प्रणाम किया, भरद्वाज वसिष्ठसे मिले, पुनः महातेजस्वी मुनिने भरतको दसरथका पुत्र जाना ॥ ५ ॥ उन गुरु शिष्योंको क्रमसे अर्घ्य, पाद्य और फल देकर मुनिने उनके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अयोध्यायां बले कोशे मित्रेष्वपि च मन्त्रिषु । जानन्दशरथं वृत्तं न राजानमुदाहरत् ॥ ७ ॥
वासिष्ठो भरतश्चैनं पप्रच्छतुरनामयम् । शरीरेऽग्निषु शिष्येषु वृक्षेषु मृगपक्षिषु ॥ ८ ॥
तथेति तु प्रतिज्ञाय भरद्वाजो महायशाः । भरतं प्रत्युवाचेदं राघवस्नेहबन्धनात् ॥ ९ ॥
किमिहागमने कार्यं तव राज्यं प्रशासतः । एतदाचक्ष्व सर्वं मे न हि मे शुध्यते मनः ॥१०॥
सुषुवे यममित्रघ्नं कौसल्यानन्दवर्धनम् । भ्राता सह सभार्यो यश्चिरं प्रव्राजितो वनम् ॥११॥
नियुक्तः स्त्रीनिमित्तेन पित्रा योऽसौ महायशाः । वनवासी भवेतीह समाः किल चतुर्दश ॥१२॥
काचिन्न तस्यापापस्य पापं कर्तुमिहेच्छसि । अकण्टकं भोक्तुमना राज्यं तस्यानुजस्य च ॥१३॥
एवमुक्तो भरद्वाजं भरतः प्रत्युवाच ह । पर्यश्रुनयनो दुःखाद्वाचा संसज्यमानया ॥१४॥
हतोऽस्मि यदि मामेवं भगवानपि मन्यते । मत्तो न दोषमाशङ्के मैवं मामनुशाधि हि ॥१५॥
न चैतदिष्टं माता मे यदवोचन्मदन्तरे । नाहमेतेन तुष्टश्च न तद्वचनमाददे ॥१६॥
अहं तु तं नरव्याघ्रमुपयातः प्रसादकः । प्रतिनेतुमयोध्यायां पादौ चास्याभिवन्दितुम् ॥१७॥
तं मामेवंगतं मत्वा प्रसादं कर्तुमर्हसि । शंस मे भगवन्रामः क्व संप्रति महीपतिः ॥१८॥
वासिष्ठादिभिर्ऋत्विग्भिर्याचितो भगवाँस्ततः । उवाच तं भरद्वाजः प्रसादाद्भरतं वचः ॥१९॥

कुलके समाचार पूछे ॥६॥ अयोध्या, सेना, खजाना, मित्र, राजा तथा मन्त्रियोंके समाचार उन्होंने पूछे, राजा दसरथ स्वर्गवासी हो गये हैं यह वे जानते थे, अतएव राजाके विषयमें उन्होंने कुछ भी नहीं पूछा ॥ ७ ॥ वसिष्ठ और भरतने भी मुनिके कुशल-संवाद पूछे, मुनिके शरीर, अग्नि, शिष्य, वृक्ष तथा पशु-पक्षियोंके समाचार उन लोगोंने पूछे ॥ ८ ॥ महायशस्वी भरद्वाजने उनके सब प्रश्नोंका उत्तर देकर रामचन्द्रमें प्रेमके कारण वे भरतसे बोले ॥ ९ ॥ तुम तो राज्यका शासन कर रहे हो, फिर यहां तुम्हारे आनेका कारण क्या है यह सब मुझसे कहो, क्योंकि मेरे मनमें सन्देह हो रहा है ॥ १० ॥ सबको आनन्द देनेवाले तथा शत्रुओंका नाश करनेवाले जिस रामचन्द्रको कौसल्याने उत्पन्न किया है, वे भाई और स्त्रीके साथ बहुत दिनोंके लिए वन चले गये हैं ॥११॥ जिस महायशस्वीको स्त्रीके कारण पिताने चौदह वर्षोंके लिए वनवास करनेकी आज्ञा दी ॥ १२ ॥ शत्रुहीन होकर राज्य भोगनेकी इच्छासे पापहीन उस रामचन्द्रके प्रति अथवा उनके छोटे भाई लक्ष्मणके प्रति कुछ बुरा तो तुम करना नहीं चाहते ॥ १३ ॥ भरद्वाजकी इन बातोंको सुनकर भरतकी आँखोंमें दुःखके कारण आँसू आगये । उन्होंने रामचन्द्रके विषयमें प्रेम प्रकट करनेवाले शब्दोंमें उत्तर दिया ॥ १४ ॥ सब बातोंके जाननेवाले आप भी यदि मुझसे ऐसा कहेंगे तो मेरा जन्महो व्यर्थ जायगा । रामचन्द्रके वन भेजनेका अपराध मेरे द्वारा नहीं हुआ है, अतएव आप मुझसे ऐसी कठोर बात न कहें ॥ १५ ॥ मेरे सम्बन्धसे मेरी माताने रामचन्द्रके लिए जो कुछ किया है वह मुझे प्रिय नहीं है, मैं उससे प्रसन्न नहीं हूँ और न मैंने माताकी आज्ञाका पालनही किया है ॥ १६ ॥ मैं तो उन नरश्रेष्ठको प्रसन्न करनेके लिए जा रहा हूँ, उनको अयोध्यामें लौटा लानेके लिए तथा उनकी चरणवन्दना करने जा रहा हूँ ॥ १७ ॥ मेरा ऐसा अभिप्राय जानकर आप मुझपर प्रसन्न हों और आप मुझे बतलावें कि राजा रामचन्द्र इस समय कहाँ हैं ॥ १८ ॥ वसिष्ठ आदि पुरोहितोंके कहनेपर भगवान् भरद्वाज प्रसन्न होकर भरतसे बोले ॥ १९ ॥ पुरुषसिंह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्वय्येतत्पुरुषव्याघ्र युक्तं राघववंशजे । गुरुवृत्तिर्दमश्चैव साधूनां चानुयायिता ॥२०॥
जाने चैतन्मनस्थं ते दृढीकरणमास्तिवति । अपृच्छं त्वां तवात्यर्थं कीर्तिं समभिवर्धयन् ॥२१॥
जाने च रामं धर्मज्ञं ससीतं सहलक्ष्मणम् । अयं वसति ते भ्राता चित्रकूटे महागिरौ ॥२२॥
श्वस्तु गन्तासि तं देशं वसाद्य सह मन्त्रिभिः । एतं मे कुरु सुप्राज्ञ कामं कामार्थकोविद ॥२३॥
ततस्तथेत्येवमुदारदर्शनः प्रतीतरूपो भरतोऽब्रवीद्वचः ।
चकार बुद्धिं च तदाश्रमे तदा निशानिवासाय नराधिपात्मजः ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

एकनवतितमः सर्गः ९१

कृतबुद्धिं निवासाय तत्रैव स मुनिस्तदा । भरतं केकयीपुत्रमातिथ्येन न्यमन्त्रयत् ॥ १ ॥
अब्रवीद्भरतस्त्वेनं नन्विदं भवता कृतम् । पाद्यमर्घ्यमथातिथ्यं वने यदुपपद्यते ॥ २ ॥
अथोवाच भरद्वाजो भरतं प्रहसन्निव । जाने त्वां प्रीतिसंयुक्तं तुष्येस्त्वं येनकेनाचित् ॥ ३ ॥
सेनायास्तु तवैवास्याः कर्तुमिच्छामि भोजनम् । मम प्रीतिर्यथारूपा त्वमर्हो मनुजर्षभ ॥ ४ ॥
किमर्थं चापि निक्षिप्य दूरे बलमिहागतः । कस्मान्नेहोपयातोऽसि सबलः पुरुषर्षभ ॥ ५ ॥

भरत, तुम रघुके वंशमें उत्पन्न हुए हो, बड़ोंकी सेवा, दुष्टोंका दमन तथा साधुओंकी सेवा ये तुम्हारे लिए उचितही हैं ॥ २० ॥ मैं समझता हूँ कि तुम्हारे मनमें जो यह बात है वह दृढ़ रहेगी, उसमें परिवर्तन न होगा । तुम्हारी कीर्ति बढ़ानेके लिए ही मैंने तुमसे वैसा पूछा, तुम्हारे मनकी बात प्रसिद्ध होनेसे लोग तुम्हारी प्रशंसा करेंगे ॥ २१ ॥ सीता और लक्ष्मणके साथ धर्मज्ञ रामचन्द्रको मैं जानता हूँ अर्थात् उनका पता जानता हूँ । यहीं चित्रकूट पर्वतपर तुम्हारे भाई निवास करते हैं ॥ २२ ॥ कल तुम वहाँ जाना, आज अपने मन्त्रियोंके साथ यहीं रहो, वांछित मनोरथ पूरा करनेवाले बुद्धिमान् भरत, तुम मेरा यह मनोरथ पूरा करो ॥ २३ ॥ तदनन्तर अपने गुणोंसे महान् दीख पड़नेवाले प्रसिद्ध यशस्वी भरतने मुनिकी प्रार्थना स्वीकार की, राजकुमारने उस आश्रममें रात्रि निवासके लिये निश्चय किया ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका नब्बेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९० ॥

उस रातको वहीं आश्रममें ही रहना केकयीपुत्र भरतने निश्चय किया । तब मुनिने भोजन आदि अतिथि-सत्कारके लिए निमन्त्रित किया ॥ १ ॥ भरतने उनसे कहा कि वनमें प्राप्त होनेवाले पाद्य अर्घ्य आदिसे तो आपने अतिथि सत्कार कियाही ॥ २ ॥ हँसते हुए भरद्वाजने उनसे कहा कि मैं जानता हूँ, तुम मुझमें प्रेम रखते हो, अतएव जिस किसी वस्तुसे ही प्रसन्न हो जाते हो ॥३॥ पर मैं तुम्हारी इस सेनाको भोजन कराना चाहता हूँ, जिससे मुझे प्रसन्नता हो और तुम इसके योग्य हो, मुझे प्रसन्न कर सकते हो ॥ ४ ॥ तुम अपनी सेनाको दूरही ठहराकर यहाँ क्यों आये

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भरतः प्रत्युवाचेदं प्राञ्जलिस्तं तपोधनम् । न सैन्येनोपयातोऽस्मि भगवन्भगवद्भयात् ॥ ६ ॥
राज्ञा हि भगवन्नित्यं राजपुत्रेण वा तथा । यत्नतः परिहर्तव्या विषयेषु तपस्विनः ॥ ७ ॥
वाजिमुख्या मनुष्याश्च मत्ताश्च वरवारणाः । प्रच्छाद्य भगवन्भूमिं महतीमनुयान्ति माम् ॥ ८ ॥
ते वृक्षानुदकं भूमिमाश्रमेषूटजांस्तथा । न हिंस्युरिति तेनाहमेक एवागतस्ततः ॥ ९ ॥
आनीयतामितः सेनेत्याज्ञप्तः परमर्षिणा । तथानुचक्रे भरतः सेनायाः समुपागमम् ॥ १० ॥
अग्निशालां प्रविश्याथ पीत्वापः परिमृज्य च । आतिथ्यस्य क्रियाहेतोर्विश्वकर्माणमाह्वयत् ॥ ११ ॥
आह्वये विश्वकर्माणमहं त्वष्टारमेव च । आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि तत्र मे संविधीयताम् ॥ १२ ॥
आह्वये लोकपालांस्त्रीन्देवाञ्शक्रपुरोगमान् । आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि तत्र मे संविधीयताम् ॥ १३ ॥
प्राक्स्रोतसश्च या नद्यस्तिर्यक्स्रोतस एव च । पृथिव्यामन्तरिक्षे च समायान्त्वद्य सर्वशः ॥ १४ ॥
अन्याः स्रवन्तु मैरेयं सुरामन्याः सुनिष्ठिताम् । अपराश्चोदकं शीतमिक्षुकाण्डरसोपमम् ॥ १५ ॥
आह्वये देवगन्धर्वान्विश्वावसुहहाहुहून् । तथैवाप्सरसो देवगन्धर्वैश्चापि सर्वशः ॥ १६ ॥
घृताचीमथ विश्वाचीं मिश्रकेशीमलम्बुषाम् । नागदत्तां च हेमां च सोमामद्रिकृतस्थलीम् ॥ १७ ॥
शक्रं याश्चोपतिष्ठन्ति ब्रह्माणं याश्च भामिनीः । सर्वास्तुम्बुरुणा सार्धमाह्वये सपरिच्छदाः ॥ १८ ॥

हो ? पुरुषश्रेष्ठ, अपनी सेनाके साथ यहाँ क्यों नहीं आये ? ॥५॥ हाथ जोड़कर भरतने तपोधनको उत्तर दिया—भगवन्, आपके क्रोधके भयसे सेनाके साथ मैं यहाँ नहीं आया ॥६॥ भगवन्, राजा और राजपुत्रको चाहिए कि तपस्वियोंके आश्रमसे दूरही रहें, क्योंकि वहाँ उनके जानेसे आश्रम-वासियोंको कष्टकी सम्भावना रहती है ॥ ७ ॥ मेरे साथ बहुतसे घोड़े, बहुतसे मनुष्य तथा हाथी हैं, अधिक भूमिमें फैलकर वे मेरे साथ चलते हैं ॥ ८ ॥ वे सब आश्रमके वृक्षोंको, जलको, भूमिको, तथा पर्णशालोंको नष्ट न करें, इस कारण मैं यहाँ अकेला आया ॥ ९ ॥ ऋषिने आज्ञा दी कि सेना यहीं ले आओ। ऋषिकी आज्ञाके अनुसार भरतने सेना वहाँही बुला ली ॥ १० ॥ अग्निशालामें जाकर मुनिने तीन बार आचमन किया, पुनः विधिपूर्वक मार्जन किया, उन्होंने कहा—भरतका आतिथ्य करनेके लिए मैं विश्वकर्माका आह्वान करता हूँ ॥ ११ ॥ त्वष्टा विश्वकर्माको मैं बुलाता हूँ, मैं भरतका अतिथिसत्कार करना चाहता हूं, उसमें वे हमारी सहायता करें ॥१२॥ इन्द्र आदि तीन यम वरुण और कुबेर देवोंका मैं आह्वान करता हूँ, मैं आतिथ्य करना चाहता हूँ, उसका ये लोग प्रबन्ध करें ॥ १३ ॥ पृथिवी और अन्तरिक्षमें पूर्वकी ओर बहनेवाली तथा पश्चिम ओर बहनेवाली जो नदियाँ हैं, उनका मैं आह्वान करता हूं ॥ १४ ॥ कतिपय नदियोंमें शराबकी धारा बहे, कतिपय नदियोंमें सुन्दर बनाई सुरा (गुडका बना मद्य) की धारा बहे और अन्य नदियाँ ईखके रसके समान मीठे जलकी धारा बहावें ॥१५॥ देवताओंके गन्धर्व विश्वावसु हाहा हूहू आदिको भी मैं आमन्त्रित करता हूँ, उसी प्रकार देव गन्धर्वोंके साथ अप्सराओंको भी निमन्त्रित करता हूँ ॥ १६ ॥ घृताची, विश्वाची, मिश्रकेशी, अलंबुषा, नागदत्ता, हेमा और सोमा, जिसने पर्वतमें रहनेका स्थान बनाया है, ॥ १७ ॥ जो अप्सराएँ इन्द्रके यहाँ जाती हैं और जो ब्रह्माके यहाँ जाती हैं, उन सबको तुम्बुरुके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वनं कुरुषु यद्दिव्यं वासोभूषणपत्रवत् । दिव्यनारीफलं श्रीमत्तत्कौवेरमिहैव तु ॥१९॥
इह मे भगवान्सोमो विधत्तामन्नमुत्तमम् । भक्ष्यं भोज्यं च चोष्यं च लेह्यं च विविधं बहु॥२०॥
विचित्राणि च माल्यानि पादपप्रच्युतानि च । सुरादीनि च पेयानि मांसानि विविधानि च॥२१॥
एवं समाधिना युक्तस्तेजसाप्रतिमेन च । शिक्षास्वरसमायुक्तं सुव्रतश्चाब्रवीन्मुनिः ॥२२॥
मनसा ध्यायतस्तस्य प्राङ्मुखस्य कृताञ्जलेः । आजग्मुस्तानि सर्वाणि देवतानि पृथक्पृथक् ॥२३॥
मलयं दर्दुरं चैव ततः स्वेदनुदोऽनिलः । उपस्पृश्य ववौ युक्त्या सुप्रियात्मा सुखं शिवः॥२४॥
ततोऽभ्यवर्षन्त घना दिव्या कुसुमवृष्टयः । देवदुन्दुभिघोषश्च दिक्षु सर्वासु शुश्रुवे ॥२५॥
प्रववुश्चोत्तमा वाता ननृतुश्चाप्सरोगणाः । प्रजगुर्देवगन्धर्वा वीणाः प्रमुमुचुः स्वरान् ॥२६॥
स शब्दो द्यां च भूमिं च प्राणिनां श्रवणानि च । विवेशोच्चावचः श्लक्ष्णः समो लयगुणान्वितः ॥२७॥
तस्मिन्नेवं गते शब्दे दिव्ये श्रोत्रसुखे नृणाम् । ददर्श भारतं सैन्यं विधानं विश्वकर्मणः ॥२८॥
बभूव हि समा भूमिः समन्तात्पञ्चयोजनम् । शाद्वलैर्बहुभिश्छन्ना नीलवैदूर्यसंनिभैः ॥२९॥
तस्मिन्बिल्वाः कपित्थाश्च पनसा बीजपूरकाः । आमलक्यो बभूवुश्च चूताश्च फलभूषिताः ॥३०॥
उत्तरेभ्यः कुरुभ्यश्च वनं दिव्योपभोगवत् । आजगाम नदी सौम्या तीरजैर्बहुभिर्वृता ॥३१॥
चतुःशालानि शुभ्राणि शालाश्च गजवाजिनाम् । हर्म्यप्रासादसंयुक्ततोरणानि शुभानि च ॥३२॥

साथ तथा अन्य सामग्रियोंके साथ मैं आमन्त्रित करता हूँ ॥ १८ ॥ कुरुदेशमें जो दिव्य वन है, जहांके वृक्षोंके पत्ते, वस्त्र और आभूषण हैं, दिव्य स्त्रियाँही जिसके फल हैं, वह कुबेरका चित्ररथ वन यहीं आवे ॥ १९ ॥ भगवान् चन्द्रमा यहाँ उत्तम अन्न उत्पन्न करें । भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य आदि विविध प्रकारके अन्न उत्पन्न करें ॥ २० ॥ वृक्षोंसे स्वयं गिरे हुए विचित्र माल्य, पीनेकी सुरा आदि तथा अनेक प्रकारके माँस चन्द्रमा उत्पन्न करें ॥ २१ ॥ इस प्रकार अप्रतिम समाधि और तेजसे युक्त व्रतधारी मुनि, शिक्षा स्वरसे युक्त इस प्रकार बोले ॥ २२ ॥ पूर्वकी ओर मुंह करके और हाथ जोड़कर मुनिने ध्यान किया, उनके ध्यान करतेही सभी देवता एक-एक करके आये ॥ २३ ॥ चन्दनके पर्वत मलय और दुर्दुर पर्वतोंका स्पर्श करके पसीना दूर करनेवाली हवा,—शीतल मन्द और सुगन्धित होनेके कारण प्रिय और सुखकारी हवा-बहने लगी ॥ २४ ॥ दिव्य मेघ कुसुम वृष्टि करने लगे । देवताओंके दुन्दुभिके शब्द सब दिशाओंमें सुनायी पड़ने लगे ॥ २५ ॥ उत्तम हवा बहने लगी, अप्सराएँ नाचने लगीं, देवता गन्धर्व गाने लगे और वीणाएँ बजने लगीं ॥ २६ ॥ समलय युक्त मधुर उच्च और कोमल वह शब्द पृथिवी आकाश तथा प्राणियोंके कानोंमें भर गया ॥ २७ ॥ श्रवण-सुखकारी उस दिव्य शब्दको लोगोंने सुना, उसी समय भरतकी सेनाने विश्वकर्माकी निपुणता देखी ॥ २८ ॥ उन लोगोंने देखा कि पाँच योजन तक भूमि समतल बनायी गयी है और उसपर नीलम तथा वैदूर्यके समान अनेक प्रकारकी घास जमायी गयी है ॥ २९ ॥ उस भूमिमें, बेल, कैंता, कटहल, बीजपूर, आँवला तथा आमके वृक्ष लगे हैं जो फलसे शोभित हो रहे हैं ॥ ३० ॥ उत्तरकुरुमें देवताओंके उपभोगकी सामग्रियोंसे युक्त वन और तीरमें उत्पन्न अनेक वृक्षोंके साथ सौम्या नदी आयीं ॥ ३१ ॥ चतुःशाल, श्वेतगृह, हाथी घोड़ोंके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सितमेघनिभं चापि राजवेश्म सुतोरणम् । शुक्लमाल्यकृताकारं दिव्यगन्धसमुक्षितम् ॥३३॥
चतुरस्रमसंबाधं शयनासनयानवत् । दिव्यैः सर्वरसैर्युक्तं दिव्यभोजनवस्त्रवत् ॥३४॥
उपकल्पितसर्वान्नं धौतनिर्मलभाजनम् । क्लृप्तसर्वासनं श्रीमत्स्वास्तीर्णशयनोत्तमम् ॥३५॥
प्रविवेश महाबाहुरनुज्ञातो महर्षिणा । वेश्म तद्रत्नसंपूर्णं भरतः कैकयीसुतः ॥३६॥
अनुजग्मुश्च ते सर्वे मन्त्रिणः सपुरोहिताः । बभूवुश्च मुदा युक्तास्तं दृष्ट्वा वेश्मसंविधिम् ॥३७॥
तत्र राजासनं दिव्यं व्यजनं छत्रमेव च । भरतो मन्त्रिभिः सार्धमभ्यवर्तत राजवत् ॥३८॥
आसनं पूजयामास रामायाभिप्रणम्य च । बालव्यजनमादाय न्यषीदत्सचिवासने ॥३९॥
आनुपूर्व्यान्निषेदुश्च सर्वे मन्त्रिपुरोहिताः । ततः सेनापतिः पश्चात्प्रशास्ता च न्यषीदत ॥४०॥
ततस्तत्र मुहूर्तेन नद्यः पायसकर्दमाः । उपातिष्ठन्त भरतं भरद्वाजस्य शासनात् ॥४१॥
आसामुभयतः कूलं पाण्डुमृत्तिकलेपनाः । रम्याश्चावसथा दिव्य ब्राह्मणस्य प्रसादजाः ॥४२॥
तेनैव च मुहूर्तेन दिव्याभरणभूषिताः । आगुर्विंशतिसाहस्रा ब्रह्मणा प्रहिताः स्त्रियः ॥४३॥
सुवर्णमणिमुक्तेन प्रवालेन च शोभिताः । आगुर्विंशतिसाहस्राः कुबेरप्रहिताः स्त्रियः ॥४४॥
याभिर्गृहीतः पुरुषः सोन्माद इव लक्ष्यते । आगुर्विंशतिसाहस्रा नन्दनादप्सरोगणाः ॥४५॥

लिए शाला, धनियों और राजाओंके रहनेके लिए महल, जिनमें सुन्दर तोरण लगे हुए थे, वहाँ आये ॥ ३२ ॥ श्वेतमेघके समान राजभवन था, जिसमें उत्तम तोरण लगा हुआ था, श्वेत मालाओंसे उनकी शोभा बढ़ायी गयी थी और दिव्य सुगन्धि सींची गयी थी ॥ ३३ ॥ वह चौकोन था, जिसमें सोने, बैठने और सवारियोंके लिए अलग-अलग मकान बने थे, जिसमें सब दिव्य रस रखे हुए थे और दिव्य भोजन तथा दिव्य वस्त्रभी उसमें थे ॥ ३४ ॥ उसमें सभी प्रकारके अन्न रखे गये थे, धोये निर्मल पात्र रखे हुए थे, सभी प्रकारके आसन बिछे हुए थे और सुन्दर पलँग बिछा हुआ था ॥ ३५ ॥ महर्षिकी आज्ञा पाकर रत्नोंसे भरे हुए घरमें महाबाहु केकयीपुत्र भरतने प्रवेश किया ॥ ३६ ॥ मन्त्री और पुरोहित भी भरतके साथ-साथ उस घरमें गये और उस घरकी सब सामग्रियोंको देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३७ ॥ भरतने वहाँ राजसिंहासन पंखा छत्र देखे, और मन्त्रियोंके साथ उन्होंने उनको प्रणाम किया, जैसे राजाको प्रणाम किया जाता है ॥ ३८ ॥ रामचन्द्रको प्रणाम करके भरतने आसनको प्रणाम किया और चँवर लेकर मन्त्रीके आसनपर वे बैठ गये ॥ ३९ ॥ तदनन्तर मन्त्री पुरोहित आदि भी क्रमसे बैठे, पुनः सेनापति और प्रशास्ता (छावनीकी रक्षा करनेवाला) बैठे ॥ ४० ॥ तदनन्तर भरतकी आज्ञासे शीघ्रही भरतके पास नदियाँ आयीं, जिनमें पायस (खीर) का कीचड़ था ॥ ४१ ॥ भरद्वाजजीकी महिमासे इन नदियोंके दोनों तीरोंपर सुन्दर मकान बने हुए थे और वे पीली मिट्टीसे पुते हुए थे ॥ ४२ ॥ उसी समय ब्रह्माकी भेजी हुई बीस हजार स्त्रियाँ, जो दिव्य आभरणोंसे भूषित थीं, आयीं ॥ ४३ ॥ सुवर्ण, मणि, मुक्ता और मूँगासे शोभित कुबेरकी भेजी हुई बीस हजार स्त्रियाँ आयीं ॥ ४४ ॥ जिनके मिलनेसे मनुष्य उन्मादी हो जाता है, सब काम-धाम छोड़कर उन्हींमें लिप्त हो जाता है, ऐसी अप्सराएँ नन्दनवनसे बीस हजार आयीं ॥ ४५ ॥ नारद

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नारदस्तुम्बुरुर्गोपः प्रभया सूर्यवर्चसः । एते गन्धर्वराजानो भरतस्याग्रतो जगुः ॥४६॥
अलम्बुषा मिश्रकेशी पुण्डरीकाथ वामना । उपानृत्यन्त भरतं भरद्वाजस्य शासनात् ॥४७॥
यानि माल्यानि देवेषु यानि चैत्ररथे वने । प्रयागे तान्यदृश्यन्त भरद्वाजस्य तेजसा ॥४८॥
विल्वा मार्दङ्गिका आसञ्शम्याग्राहा विभीतकाः। अश्वत्था नर्तकाश्चासन्भरद्वाजस्य तेजसा ॥४९॥
ततः सरलतालाश्च तिलकाः सतमालकाः । प्रहृष्टास्तत्र संपेतुः कुब्जा भूत्वाथ वामनाः ॥५०॥
शिंशपामलकी जम्बूर्याश्चान्याः कानने लताः । प्रमदाविग्रहं कृत्वा भरद्वाजाश्रमेऽवसन् ॥५१॥
सुरां सुरापाः पिबत पायसं च बुभुक्षिताः ।मांसानि च सुमेध्यानि भक्ष्यन्तां यो यदिच्छति॥५२॥
उच्छोद्य स्नापयन्ति स्म नदीतीरेषु वल्गुषु । अप्येकमेकं पुरुषं प्रमदाः सप्त चाष्ट च ॥५३॥
संवाहन्त्यः समापेतुर्नार्यो विपुललोचनाः । परिमृज्य तदान्योन्यं पाययन्ति वराङ्गनाः ॥५४॥
हयान्गजान्खरानुष्ट्रांस्तथैव सुरभेः सुतान् । अभोजयन्वाहनपास्तेषां भोज्यं यथाविधि ॥५५॥
इक्षूंश्च मधु लाजांश्च भोजयन्ति स्म वाहनान्। इक्ष्वाकुवरयोधानां चोदयन्तो महाबलाः ॥५६॥
नाश्वबन्धोऽश्वमाजानन्न गजं कुञ्जरग्रहः । मत्तप्रमत्तमुदिता सा चमूस्तत्र संबभौ ॥५७॥
तर्पिताः सर्वकामैश्च रक्तचन्दनरूषिताः । अप्सरोगणसंयुक्ताः सैन्या वाचमुदीरयन् ॥५८॥
नैवायोध्यां गमिष्यामो न गमिष्याम दण्डकान् । कुशलं भरतस्यास्तु रामस्यास्तु तथा सुखम् ॥५९॥

तुम्बरु और गोप जो सूर्यके समान तेजस्वी हैं, ये सब गन्धर्व राज भरतके सामने आगे आकर गाने लगे ॥ ४६ ॥ अलम्बुषा, मित्रकेशी, पुण्डरीका और वामना ये अप्सराएँ भरद्वाजकी आज्ञासे भरतके सामने नाचने लगीं ॥ ४७ ॥ जो मालाएँ देवताओंके यहाँ होती हैं, जो चैत्ररथ वनमें होती हैं, वे सब भरद्वाजके प्रभावसे प्रयागमें दीख पड़ने लगीं ॥ ४८ ॥ भरद्वाजके प्रभावसे बेलके वृक्ष मृदङ्ग बजाने लगे, बहेडाके पेड़ ताल देने लगे और पीपलके पेड़ नाचने लगे ॥ ४९ ॥ सरल, ताल, तिलक, तमालके वृक्ष प्रसन्नतापूर्वक कुब्ज और वामन होकर वहाँ आये ॥ ५० ॥ शिंशिपा आमलकी जम्बू तथा मालती मल्लिका जूही आदि लताएँ उस वनमें थीं, उन सबने भरद्वाजके आश्रममें स्त्रीका वेष धारण कर लिया ॥ ५१ ॥ वहाँके लोग आपसमें इस प्रकार कहने लगे—सुरापायी ! आप शराब पीएँ, भूखे मनुष्य, आप लोग पायस खाँय, पवित्र माँस आप खाँय, जिसकी जैसी इच्छा हो वह वह खाय ॥ ५२ ॥ एक पुरुषको सात आठ स्त्रियोंने सुन्दर नदी तीरपर उबटन लगाकर स्नान कराया ॥ ५३ ॥ तदनन्तर बड़ी आँखवाली स्त्रियाँ नदी तीरपर आयीं, उन्होंने पैर दबाए, वस्त्रसे शरीर पोछे और आपसमें एक दूसरेको शराब पिलायी ॥ ५४ ॥ घोड़ा हाथी गधा ऊँट तथा बैलोंको गाड़ियोंके अध्यक्षने विधिपूर्वक उनका भोजन दिया ॥ ५५ ॥ इक्ष्वाकुवंशके योधाओंके वाहकोंको ऊख तथा मीठा मिला हुआ लावा गाड़ियोंके अध्यक्षने खानेके लिए प्रेरित करके खिलाया ॥ ५६ ॥ घोड़ा बाँधनेवालेने घोड़ेको नहीं जाना और हाथी बांधनेवालेने हाथीको भी न जाना, क्योंकि मादक वस्तुके सेवनसे वे मतवाले हो गये थे, अतएव वे प्रसन्न थे, किसी बातकी चिन्ता न थी ॥ ५७ ॥ रक्तचन्दन धारण किये हुए सैनिक अप्सराओंको तथा अन्य मनोरथोंके पूरे होनेपर आपसमें कहने लगे ॥ ५८ ॥ हम लोग अयोध्या

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति पादातयोधाश्च हस्त्यश्वारोहबन्धकाः । अनाथास्तं विधिं लब्ध्वा वाचमेतामुदीरयन् ॥६०॥
संप्रहृष्टा विनेदुस्ते नरास्तत्र सहस्रशः । भरतस्यानुयातारः स्वर्गोऽयमिति चाब्रुवन् ॥६१॥
नृत्यन्तश्च हसन्तश्च गायन्तश्चैव सैनिकाः । समन्तात्परिधावन्तो माल्योपेताः सहस्रशः ॥६२॥
ततो भुक्तवतां तेषां तदन्नममृतोपमम् । दिव्यानुद्वीक्ष्य भक्ष्यांस्तानभवद्भक्षणे मतिः॥६३॥
प्रेष्याश्चेटयश्च वध्वश्च बलस्थाश्चापि सर्वशः । बभूवुस्ते भृशं प्रीताः सर्वे चाहतवाससः ॥६४॥
कुञ्जराश्च खरोष्ट्राश्च गोश्वाश्च मृगपक्षिणः । बभूवुः सुभृतास्तत्र नातो ह्यन्यमकल्पयन् ॥६५॥
नाशुक्लवासास्तत्रासीत्क्षुधितो मलिनोऽपि वा । रजसा ध्वस्तकेशो वा नरः कश्चिददृश्यत ॥६६॥
आजैश्चापि च वाराहैर्नैष्टानवरसंचयैः । फलनिर्यूहसंसिद्धैः सूपैर्गन्धरसान्वितैः ॥६७॥
पुष्पध्वजवतीः पूर्णा शुक्लस्यान्नस्य चाभितः । ददृशुर्विस्मितास्तत्र नरा लौहीः सहस्रशः ॥६८॥
बभूवुर्वनपार्श्वेषु कूपाः पायसकर्दमाः । ताश्च कामदुघा गावो द्रमाश्चासन्मधुच्चयुतः ॥६९॥
वाप्यो मैरेयपूर्णाश्च मृष्टमांसचयैर्वृताः । प्रतप्तैपठरैश्चापि मार्गमायुरकौक्कुटैः ॥७०॥
पात्रीणां च सहस्राणि स्थालीनां नियुतानि च । न्यर्बुदानि च पात्राणि शातकुम्भमयानि च ॥७१॥
स्थाल्यःकुम्भ्यःकरम्भ्यश्च दधिपूर्णाःसुसंस्कृताः। यौवनस्थस्य गौरस्य कपित्थस्य सुगन्धिनः ॥७२॥

नहीं जायंग और न दण्डकारण्यमें ही जायँगे, भरतका कल्याण हो, क्योंकि उन्हींके कारण यह सुख मिला है और रामचन्द्र भी सुखी रहें ॥ ५९ ॥ इस प्रकारका सत्कार पाकर वे पैदल सिपाही तथा हाथी घोड़े बाँधनेवाले इस प्रकारकी बात कहने लगे ॥ ६० ॥ हजारों भरतके मनुष्य मारे प्रसन्नताके चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे कि यह स्वर्ग है ॥ ६१ ॥ हजारों सैनिक माला धारण किये हुए नाचते गाते और हँसते हुए चारो ओर दौड़ने लगे॥ ६२॥ अमृतके समान स्वादिष्ट भोजन जिन लोगोंने कर लिया है वे भी दिव्य भोजनोंको देखकर पुनः खानेकी इच्छा करने लगे ॥ ६३ ॥ नवीन वस्त्र पाकर परिचारिकाएँ दासियाँ और सेनामें रहनेवाली स्त्रियाँ अत्यन्त प्रसन्न हुईं ॥ ६४ ॥ हाथी घोड़े गधे ऊँट मृगा और पक्षी भी खूब तृप्त हुए, इस कारण इन लोगोंने भी मुनिके दिये पदार्थसे अतिरिक्त किसी दूसरे पदार्थकी इच्छा न की ॥ ६५ ॥ उस समय वहाँ कोई भी मनुष्य ऐसा न देखा गया, जिसके वस्त्र श्वेत न हों, जो भूखा हो, मलिन हो या जिसके केशमें धूल लिपटे हों ॥ ६६ ॥ फलके रससे बनाये हुए बकरे और सूअरके माँस तथा व्यंजनोंका समूह, सुगन्ध रस-युक्त दाल विद्यमान थी ॥ ६७ ॥ शुक्ल अन्नसे भरे हुए हजारों सुवर्णपात्र लोगोंने विस्मित होकर देखे, वे फूलोंसे सजे हुए थे ॥ ६८ ॥ वनके पास कूएँ बने हुए थे जिनमें पायसका कीचड़ था, वे बनैली गाय कामधेनु हो गयी और वृक्ष मधु बरसानेवाले हुए ॥ ६९ ॥ शराबसे भरे हुए तालाब थे और मृगा मयूर मुर्गेका स्वच्छ माँसराशि गरम पात्रमें रखे हुए थे ॥ ७० ॥ अन्न रखनेके हजारों सुवर्ण पात्र थे, साग तरकारी आदि रखनेके पात्र लाखों थे, और भोजन करनेके पात्र दस करोड़ थे ॥ ७१ ॥ छोटी कड़ाहियाँ, छोटे घड़े और बड़ी कड़ाहियाँ मसालेदार दहीसे भरी थीं। न बहुत ताजा और न बहुत बासी श्वेत सुगन्धित मट्ठासे भरे कई तालाब थे ॥ ७२ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ह्रदाः पूर्णा रसालस्य दध्नः श्वेतस्य चापरे । बभूवुः पयसश्चान्ये शर्कराणां च संचयाः ॥७३॥
कल्कांश्चूर्णकषायांश्च स्नानानि विविधानि च । ददृशुर्भाजनस्थानि तीर्थेषु सरितां नराः ॥७४॥
शुक्लानंशुमतश्चापि दन्तधावनसंचयान् । शुक्लांश्चन्दनकल्कांश्च समुद्गेष्ववतिष्ठतः ॥७५॥
दर्पणान्परिमृष्टांश्च वाससां चापि संचयान् । पादकोपानहं चैव युग्मान्यत्र सहस्रशः ॥७६॥
आञ्जनीः कङ्कतान्कूर्चाञ्छत्राणि च धनूंषि च । मर्मत्राणानि चित्राणि शयनान्यासनानि च ॥७७॥
तिपानह्रदान्पूर्णान्खरोष्ट्रगजवाजिनाम् । अवगाह्य सुतीर्थांश्च ह्रदान्सोत्पलपुष्करान् ।
आकाशवर्णप्रतिमान्स्वच्छतोयान्सुखप्लवान् ॥७८॥
नीलवैदूर्यवर्णांश्च मृदून्यवससंचयान् । निर्वापार्थं पशूनां ते ददृशुस्तत्र सर्वशः ॥७९॥
व्यस्मयन्त मनुष्यास्ते स्वप्नकल्पं तदद्भुतम् । दृष्ट्वातिथ्यं कृतं तावद्भरद्वाजमहर्षिणा ॥८०॥
इत्येवं रममाणानां देवानामिव नन्दने । भरद्वाजाश्रमे रम्ये सा रात्रिर्व्यत्यवर्तत ॥८१॥
प्रतिजग्मुश्च ताः सर्वा गन्धर्वाश्च यथागतम् । भरद्वाजमनुज्ञाप्य ताश्च सर्वा वराङ्गनाः ॥८२॥
तथैव मत्ता मादिरोत्कटा नरास्तथैव दिव्यागुरुचन्दनोक्षिताः ।
तथैव दिव्या विविधाः स्रगुत्तमाः पृथग्विकीर्णा मनुजैः प्रमर्दिताः ॥ ८३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

सूँठ पीपर मरीच लाची, लवंग कंकोल नागपुष्प शक्कर और अदरखसे युक्त सिखरन भरे तालाब थे, दहीसे भरे कई तालाब थे, जलसे भरे कई तालाब थे और शक्करकी राशियाँ थीं ॥ ७३ ॥ कई तरहके उबटन, सुगन्धित चूर्ण, स्नान करनेके लिए गरम जल तथा अन्य सामग्रियाँ नदियोंके तीरपर बर्तनोंमें रखी हुई मनुष्योंने देखी ॥ ७४ ॥ स्वच्छ कूँचीदार बहुतसी दतुअन वहाँ रखी थी, और निर्मल चन्दनके उबटन मालिओंमें रखे हुए थे ॥ ७५ ॥ स्वच्छ दर्पण तथा कपड़ोंकी राशि वहां रखी हुई थी, खड़ाऊँ और जूतोंके हजारों जोड़े वहाँ रखे हुए थे ॥ ७६ ॥ सूरमाकी पेटी कंघी, ब्रुस, छाते, धनुष तथा मर्मस्थानोंकी रक्षा करनेवाले कवच और सुन्दर पलंग तथा आसन बिछे हुए थे, ॥ ७७ ॥ अन्न परिपाकके लिये क्षार जलोंसे पूर्ण कई तालाब थे। गधे ऊँटों हाथी घोड़ोंके लिये तालाब भरे हुए थे, जिनमें अच्छे घाट बने हुए थे, कमल फूले हुये थे, उनका जल आकाशके समान स्वच्छ था और इतना अधिक था कि जिसमें सुखसे तैरा जा सके ॥७८॥ नीलवैदूर्यके समान चमकीली कोमल घासकी ढेर पशुओंके खानेके लिये रखी हुई थी, भरतके मनुष्योंने इन सब चीजोंको देखा ॥ ७९ ॥ स्वप्नके समान अद्भुत, भरद्वाज महर्षिका किया हुआ वैसा आतिथ्य देखकर सभी मनुष्य विस्मित हो गये ॥ ८० ॥ नन्दनवनमें जैसे देवता विहार करते हैं, उसी प्रकार भरतके साथियोंने वहाँ भरद्वाजके आश्रममें विहार किया, इसी विहारमें रात भी बीत गयी ॥ ८१ ॥ प्रातःकाल भरद्वाजकी आज्ञा लेकर जो गन्धर्व जहाँसे आये थे, वे वहाँ चले गये और वेश्याएँ भी चली गयीं ॥ ८२ ॥ प्रातःकाल होनेपर भी मनुष्योंका शराबका नशा नहीं उतरा था, सभी स्वर्गीय चन्दन और अगरूसे भूषित थे, इस समय तक भी अनेक तरहकी मालाएँ फेंक दी गयी थीं, फिर भी मुरझायी हुई नहीं थीं ॥ ८३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एक्यानवेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९१ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्विनवतितमः सर्गः ९२

ततस्तां रजनीं व्युष्य भरतः सपरिच्छदः । कृताऽतिथ्यो भरद्वाजं कामादभिजगाम ह ॥ १ ॥
तमृषिः पुरुषव्याघ्रं प्रेक्ष्य प्राञ्जलिमागतम् । हुताग्निहोत्रो भरतं भरद्वाजोऽभ्यभाषत ॥ २ ॥
कच्चिदत्र सुखा रात्रिवस्तवास्माद्विषये गता । समग्रस्ते जनः कच्चिदातिथ्ये शंस मेऽनघ ॥ ३ ॥
तमुवाचाञ्जलिं कृत्वा भरतोऽभिप्रणम्य च । आश्रमादुपनिष्क्रान्तमृषिमुत्तमतेजसम् ॥ ४ ॥
सुखोषितोऽस्मि भगवन्सम्यग्बलवाहनः । बलवत्तर्पितश्चाहं बलवान्भगवंस्त्वया ॥ ५ ॥
अपेतक्लमसंतापाः सुभिक्षाः सुप्रतिश्रयाः । अपि प्रेष्यानुपादाय सर्वे स्म सुसुखोषिताः ॥ ६ ॥
आमन्त्रयेऽहं भगवन्कामं त्वामृषिसत्तम । समीपं प्रस्थितं भ्रातुर्मैत्रेणेक्षस्व चक्षुषा ॥ ७ ॥
आश्रमं तस्य धर्मज्ञ धार्मिकस्य महात्मनः । आचक्ष्व कतमो मार्गः कियानिति च शंस मे ॥ ८ ॥
इति पृष्टस्तु भरतं भ्रातुर्दर्शनलालसम् । प्रत्युवाच महातेजा भरद्वाजो महातपाः ॥ ९ ॥
भरतार्धतृतीयेषु योजनेष्वजने वने । चित्रकूटगिरिस्तत्र रम्यनिर्झरकाननः ॥१०॥
उत्तरं पार्श्वमासाद्य यस्य मन्दाकिनी नदी । पुष्पितद्रुमसंच्छन्ना रम्यपुष्पितकानना ॥११॥
अनन्तरं ततसरिताश्चित्रकूटं च पर्वतम् । तयोः पर्णकुटी तात तत्र तौ वसतो ध्रुवम् ॥१२॥
दक्षिणेन च मार्गेण सव्यदक्षिणमेव च । गजवाजिसमाकीर्णां वाहिनीं वाहिनीपते ॥१३॥

भरत परिवारके साथ उस रातको वहीं निवास करके तथा भरद्वाजके द्वारा अतिथिसत्कार पाकर रामचन्द्रके यहाँ जानेके अभिप्रायसे ऋषिके पास गये ॥ १ ॥ पुरुषसिंह भरत हाथजोड़ कर आये हैं, यह देखकर ऋषि हवन समाप्त करके उनसे बोले ॥ २ ॥ हमारे इस आश्रममें यह रात सुखपूर्वक बीती, निष्पाप, तुम्हारे आदमी अतिथिसत्कारसे तृप्त हुए यह मुझसे कहो ॥ ३ ॥ हाथजोड़कर प्रणाम करके भरत बोले । अति तेजस्वी मुनि भरतसे बातें करनेके लिये आश्रमसे बाहर निकल आये थे ॥ ४ ॥ भगवन्, अपने समस्त सैनिक तथा हाथी, घोड़े आदि वाहनोंके साथ मैंने सुखपूर्वक निवास किया । भगवन्, सेनाके साथ आपने हमको खूब तृप्त कर दिया है ॥ ५ ॥ साधारण दासोंसे लेकर हम सब लोगोंने अपना संताप यहाँ दूर किया, खूब सुन्दर भोजन किया, ठहरनेके लिए खूब उत्तम स्थान मिला, हम सब लोगोंने सुख-पूर्वक निवास किया ॥ ६ ॥ ऋषिश्रेष्ठ भगवन्, आपसे मैं निवेदन करता हूँ कि भाईके समीप जानेवाले मुझपर आप अधिक कृपादृष्टि रखें ॥७॥ धर्मज्ञ, उस धर्मात्माके आश्रमका कौन मार्ग है और वह यहाँसे कितना दूर है ॥ ८ ॥ भाईके देखनेके लिये उत्कण्ठित भरतके द्वारा ऐसा पूछे जाने पर महातेजस्वी महातपस्वी भरद्वाजने उत्तर दिया ॥९॥ भरत, यहाँसे साढ़े तीन योजनपर अर्थात् चौदह कोशपर निर्जन वनमें चित्रकूट नामका पर्वत है । उसमें रमणीय सोते तथा वन हैं ॥१०॥ उस पर्वतके उत्तर ओरसे मन्दाकिनी नदी बहती है, जो पुष्पित वृक्षोंसे ढँकी हुई है और वहां पुष्पित वन है ॥११॥ उस नदीके बाद चित्रकूट पर्वत है, जिसपर राम और लक्ष्मणकी कुटी है, वे अवश्यही वहीं निवास करते हैं ॥ १२ ॥ सेनापते, हाथी घोड़ेके साथ आप अपनी सेना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाहयस्व महाभाग ततो द्रक्ष्यसि राघवम् । प्रयाणमिति च श्रुत्वा राजराजस्य योषितः॥१४॥
हित्वा यानानि यानार्हा ब्राह्मणं पर्यवारयन् । वेपमाना कृशा दीना सह देव्या सुमित्रया ॥१५॥
कौसल्या तत्र जग्राह कराभ्यां चरणौ मुनेः । असमृद्धेन कामेन सर्वलोकस्य गर्हिता ॥१६॥
कैकेयी तत्र जग्राह चरणौ सव्यपत्रपा । तं प्रदक्षिणमागम्य भगवन्तं महामुनिम् ॥१७॥
अदूराद्भरतस्यैव तस्थौ दीनमनास्तदा । तत्र पप्रच्छ भरतं भरद्वाजो महामुनिः ॥१८॥
विशेषं ज्ञातुमिच्छामि मातॄणां तव राघव । एवमुक्तस्तु भरतो भरद्वाजेन धार्मिकः ॥१९॥
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा वाक्यं वचनकोविदः । यामिमां भगवन्दीनां शोकनाशनकर्शिताम् ॥२०॥
पितुर्हि महिषीं देवीं देवतामिव पश्यसि । एषा तं पुरुषव्याघ्रं सिंहविक्रान्तगामिनम् ॥२१॥
कौसल्या सुषुवे रामं धातारमदितिर्यथा । अस्या वामभुजं श्लिष्टा या सा तिष्ठति दुर्मनाः॥२२॥
इयं सुमित्रा दुःखार्ता देवी राज्ञश्च मध्यमा । कर्णिकारस्य शाखेव शीर्णपुष्पा वनान्तरे ॥२३॥
एतस्यास्तौ सुतौ देव्याः कुमारौ देववर्णिनौ । उभौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ वीरौ सत्यपराक्रमौ ॥२४॥
यस्याः कृते नरव्याघ्रौ जीवनाशमितो गतौ । राजा पुत्रविहीनश्च स्वर्गं दशरथो गतः ॥२५॥
क्रोधनामकृतप्रज्ञां दृप्तां सुभगमानिनीम् । ऐश्वर्यकामां कैकेयीमनार्यामार्यरूपिणीम् ॥२६॥

यहाँसे दक्षिणकी ओर ले जाँय, पुनः वहाँसे नैर्ऋत्य कोणमें जाँय ॥ १३ ॥ महाभाग, इस प्रकार चलकर आप महाभाग रामचन्द्रको देखेंगे । अब यहाँसे चलना है यह सुनकर राजा दसरथकी स्त्रियाँ ॥ १४ ॥ अपनी-अपनी सवारियोंसे उतरकर, जो सवारीपर चलनेके योग्य थीं, भरद्वाजके पास गयीं, वे सब दुर्बल और दुःखी थीं और कांप रही थीं । देवी सुमित्राके साथ कौसल्याने जाकर हाथोंसे मुनिके चरण पकड़े, जिस कौसल्याके मनोरथ पूरे नहीं हुए थे, अर्थात् रामचन्द्रका राज्याभिषेक रुक गया था । सर्वत्र निन्दित केकयीने भी लजाती हुई आकर मुनिके चरण पकड़े और महामुनि भरद्वाजकी प्रदक्षिणा करके वह भरतके पासही दुःखित मन होकर खड़ी हो गयी । तब महामुनि भरद्वाजने भरतसे पूछा ॥ १५ ॥ १६ १७, १८ ॥ भरत तुम्हारी माताओंका मैं विशेष परिचय जानना चाहता हूँ । भरद्वाजके ऐसा कहनेपर ॥ १९ ॥ बोलनेमें निपुण भरतने कहा, शोक और भोजन न करनेके कारण दुर्बल और दुःखित मन जो यह ॥२०॥ मेरे पिताकी महारानी देवीके समान दीख पड़ती है, उन्होंने सिंहके समान पराक्रमपूर्वक चलनेवाले ॥ २१ ॥ रामचन्द्रको उत्पन्न किया है जिस प्रकार अदतिने विष्णुको उत्पन्न किया था । इनके बायें हाथके पास जो दुःखिनी बैठी है ॥ २२ ॥ वह मेरी मझली दुःखिनी माता सुमित्रा है, वनमें जिसके फूल गिर गये हों उस कर्णिकार शाखाके समान मालूम होती है ॥ २३ ॥ सत्यपराक्रमी वीर लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों इन्हींके पुत्र हैं, जो देवताके समान सुन्दर हैं ॥ २४ ॥ जिसके कारण वे दोनों राम और लक्ष्मण पुरुषसिंह दण्डकारण्य वनमें गये, जिस दण्डकारण्यमें प्राणोंका भय है और राजा दसरथ पुत्रहीन होकर स्वर्ग गये ॥ २५ ॥ वही वह क्रोधिन अशिक्षित अभिमानिन अपनेको पतिप्रिय समझनेवाली धनकी लोभिन और अनार्य (नीच) पर अपनेको आर्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ममैतां मातरं विद्धि नृशंसां पापनिश्चयाम् । यतो मूलं हि पश्यामि व्यसनं महदात्मनः ॥२७॥
इत्युक्त्वा नरशार्दूलो वाष्पगद्गदया गिरा । विनिःश्वस्य स ताम्राक्षः क्रुद्धो नाग इव श्वसन् ॥२८॥
भरद्वाजो महर्षिस्तं ब्रुवन्तं भरतं तदा । प्रत्युवाच महाबुद्धिरिदं वचनमर्थवित् ॥२९॥
न दोषेणावगन्तव्या कैकयी भरत त्वया । रामप्रव्राजनं ह्येतत्सुखोदर्कं भविष्यति ॥३०॥
देवानां दानवानां च ऋषीणां भावितात्मनाम् । हितमेव भविष्यद्धि रामप्रव्राजनादिह ॥३१॥
अभिवाद्य तु संसिद्धः कृत्वा चैनं प्रदक्षिणम् । आमन्त्र्य भरतः सैन्यं युज्यतामिति चाब्रवीत् ॥३२॥
ततो वाजिरथान्युक्त्वा दिव्यान्हेमविभूषितान् । अध्यारोहत्प्रयाणार्थं बहून्बहुविधो जनः ॥३३॥
गजकन्या गजाश्चैव हेमकक्ष्याः पताकिनः । जीमूता इव घर्मान्ते सघोषाः संप्रतस्थिरे ॥३४॥
विविधान्यपि यानानि महान्ति च लघूनि च । प्रययुः सुमहार्हाणि पादैरपि पदातयः ॥३५॥
अथ यानप्रवेकैस्तु कौसल्याप्रमुखाः स्त्रियः । रामदर्शनकाङ्क्षिण्यः प्रययुर्मुदितास्तदा ॥३६॥
चन्द्रार्कतरुणाभासां नियुक्तां शिविकां शुभाम् । आस्थाय प्रययौ श्रीमान्भरतः सपरिच्छदः ॥३७॥
सा प्रयाता महासेना गजवाजिसमाकुला । दक्षिणां दिशमावृत्य महामेघ इवोत्थितः ॥३८॥
वनानि च व्यतिक्रम्य जुष्टानि मृगपक्षिभिः । गङ्गायाः परवेलायां गिरिष्वथ नदीष्वपि ॥३९॥

समझनेवाली केकयी है ॥ २६ ॥ इसको आप मेरी माता समझें, यह क्रूर है, पाप करनेवाली है, और इसीके कारण मुझपर यह इतना बड़ा कष्ट आ पड़ा है ॥ २७ ॥ गला भर आनेके कारण गद्गद स्वरमें नरश्रेष्ठ भरत ऐसा कहकर हाथीके समान लम्बी साँस लेने लगे, क्रोधसे उनकी आँखें लाल हो गईं ॥ २८ ॥ ऐसा कहते हुए भरतसे अर्थज्ञ महा-बुद्धिमान महर्षि भरद्वाज बोले ॥ २९ ॥ भरत, तुम केकयीको दोष मत दो, यह रामचन्द्रके वन जानेका अन्त बड़ा सुखकारी होगा ॥ ३० ॥ रामचन्द्रके वन जानेसे देवता, दानव तथा आत्म-ज्ञानी ऋषियोंका कल्याण ही होगा ॥ ३१ ॥ रामचन्द्रका पता जानकर भरतने मुनिको प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा की, पुनः उनसे आज्ञा लेकर भरतने चलनेके लिये तयार होनेकी अपनी सेनाको आज्ञा दी ॥ ३२ ॥ तदनन्तर घोड़ेके रथ जोते गये, जिनमें सोनेका काम किया गया था, उन अनेक रथोंपर अनेक मनुष्य चलनेके लिए चढ़े ॥ ३३ ॥ हाथी और हथिनी चलीं, इनपर पताकाएँ लगीं थीं, सोनेके सिक्कड़से कसी थीं, बरसातके मेघके समान गरजी हुई चलीं ॥ ३४ ॥ दामी-दामी छोटे-बड़े अनेक रथ चले और पैदल चलनेवाले पैदल चले ॥ ३५ ॥ रामचन्द्रका दर्शन चाहनेवाली कौसल्या आदि स्त्रियाँ श्रेष्ठ रथोंपर चढ़कर प्रसन्नतापूर्वक चलीं ॥ ३६ ॥ भरत प्रखर सूर्य और चन्द्रमाके समान चमकीली सवारीपर आज्ञा पाकर चढ़े और अपने परिवारके साथ चले ॥ ३७ ॥ हाथी घोड़ेके साथ वह बड़ी सेना दक्षिण दिशकी ओर उठे हुए महामेघके समान चली ॥ ३८ ॥ मृग पक्षियोंवाला वन पारकर गंगाके पश्चिम तीर-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सा संप्रहृष्टद्विपवाजियूथा वित्रासयन्ती मृगपक्षिसंघान् ।
महद्वनं तत्प्रविगाहमाना रराज सेना भरतस्य तत्र ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

तया महत्या यायिन्या ध्वजिन्या वनवासिनः । अर्दिता यूथपा मत्ताः सयूथाः संप्रदुद्रुवुः ॥ १ ॥
ऋक्षाः पृषतमुख्याश्च रुरवश्च समन्ततः । दृश्यन्ते वनवाटेषु गिरिष्वपि नदीषु च ॥ २ ॥
स संप्रतस्थे धर्मात्मा प्रीतो दशरथात्मजः । वृतो महत्या नादिन्या सेनया चतुरङ्गया ॥ ३ ॥
सागरौघनिभा सेना भरतस्य महात्मनः । महीं संछादयामास प्रावृषीव याम्बुदः ॥ ४ ॥
तुरंगौघैरवतता वारणैश्च महाबलैः । अनालक्ष्या चिरं कालं तस्मिन्काले बभूव सा ॥ ५ ॥
स गत्वा दूरमध्वानं संपरिश्रान्तवाहनः । उवाच वचनं श्रीमान्वसिष्ठं मन्त्रिणां वरम् ॥ ६ ॥
यादृशं लक्ष्यते रूपं यथा चैव मया श्रुतम् । व्यक्तं प्राप्ताः स्म तं देशं भरद्वाजो यमब्रवीत् ॥ ७ ॥
अयं गिरिश्चित्रकूटस्तथा मन्दाकिनी नदी । एतत्प्रकाशते दूरान्नीलमेघनिभं वनम् ॥ ८ ॥
गिरेः सानून रम्याणि चित्रकूटस्य संप्रति । वारणैरवमृद्यन्ते मामकैः पर्वतोपमैः ॥ ९ ॥

पर पर्वतों और वनोंमें होती हुई चलीं ॥ ३९ ॥ जिसके हाथी और घोड़े प्रसन्न थे, मृग पक्षियोंको भयभीत करती हुई बड़े वनोंमें चलती हुई वह भरतकी सेना शोभित हुई ॥ ४० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका बानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥९२॥

बहुत बड़ी सेनाके चलनेके कारण वनवासी यूथपति हाथी पीड़ित हुए और वे अपने-अपने यूथके साथ भाग गये ॥ १ ॥ ॥ भालू चितकबरे और सादे हिरन सेनासे पीड़ित होकर सघन वनों पर्वतों और नदियोंमें दीख पड़े, अर्थात् वहाँ जाकर छिप गये ॥ २ ॥ धर्मात्मा दसरथ-पुत्र भरत गर्जन करनेवाली महती चतुरङ्गिनी सेनाके साथ प्रसन्नतापूर्वक चले ॥ ३ ॥ समुद्रके वेगके समान महात्मा भरतकी उस सेनाने समस्त पृथिवीको ढँक लिया, जिस प्रकार मेघ वर-सातमें आकाशको ढँक लेते हैं ॥ ४ ॥ घोड़ोंके समूह तथा महाबली हाथियोंसे मारे जानेके कारण पृथिवी बहुत देरतक दिखायी न पड़ी ॥ ५ ॥ बहुत दूर चलनेके पश्चात् हाथी घोड़ेके थक जानेपर श्रीमान भरत मन्त्रिश्रेष्ठ वसिष्ठसे बोले ॥६॥भरद्वाजने चित्रकूटको जैसा बतलाया है तथा जैसा हम लोगोंने सुना है वैसाही इस देशका रूप दीख पड़ताहै, इससे स्पष्ट है कि हमलोग चित्रकूट पहुंच गये, यही चित्रकूट पर्वत है और यह मन्दाकिनी नदी है तथा नील मेघके समान वन यह दूर हीसे दीख पड़ता है ॥ ८ ॥ चित्रकूट पर्वतके सुन्दर शिखरोंको हमारे पर्वतके समान हाथी तोड़ रहे हैं ॥ ९ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुञ्चन्ति कुसुमान्येते नगाः पर्वतसानुषु । नीला इवातपापाये तोये तोयधरा घनाः ॥१०॥
किंनराचरिते देशे पश्य शत्रुघ्न पर्वते । हयैः समन्तादाकीर्णं मकरैरिव सागरम् ॥११॥
एते मृगगणा भान्ति शीघ्रवेगाः प्रचोदिताः । वायुप्रविद्धाः शरदि मेघजाला इवाम्बरे ॥१२॥
कुर्वन्ति कुसुमापीडाञ्शिरःसु सुरभीनमी । मेघप्रकाशैः फलकैर्दाक्षिणात्या नरा यथा ॥१३॥
निष्कूजामिव भूत्वेदं वनं घोरप्रदर्शनम् । अयोध्येव जनाकीर्णा संप्रति प्रतिभाति मे ॥१४॥
खुरैरुदीरितो रेणुर्दिवं प्रच्छाद्य तिष्ठति । तं वहत्यनिलः शीघ्रं कुर्वन्निव मम प्रियम् ॥१५॥
स्यन्दनांस्तुरगोपेतान्सूतमुख्यैरधिष्ठितान् । एतान्संपततः शीघ्रं पश्य शत्रुघ्न कानने ॥१६॥
एतान्वित्रासितान्पश्य बर्हिणः प्रियादर्शनान् । एवमापततः शैलमधिवासं पतत्रिणाम् ॥१७॥
अतिमात्रमयं देशो मनोज्ञः प्रतिभाति मे । तापसानां निवासोऽयं व्यक्तं स्वर्गपथोऽनघ॥१८॥
मृगा मृगीभिः सहिता बहवः पृषता वने । मनोज्ञरूपा लक्ष्यन्ते कुसुमैरिव चित्रिताः ॥१९॥
साधुसैन्याः प्रतिष्ठन्तां विचिन्वन्तु च काननम् । यथा तौ पुरुषव्याघ्रौ दृश्येते रामलक्ष्मणा ॥२०॥
भरतस्य वचः श्रुत्वा पुरुषाः शस्त्रपाणयः । विविशुस्तद्वनं शूरा धूमाग्रं ददृशुस्ततः ॥२१॥
ते समालोक्य धूमाग्रमूचुर्भरतमागताः । नामनुष्ये भवत्यग्निर्व्यक्तमत्रैव राघवौ ॥२२॥

ये हाथी पर्वत-शिखरोंपर फूल फेंक रहे हैं, जिस प्रकार नीले जलवाले मेघ वर्षाकालमें पानी बरसाते हैं ॥ १० ॥ शत्रुघ्न, पर्वतपर किन्नरोंके रहनेका स्थान देखो, वह स्थान चारो ओर घोड़ोंसे भरा है, जिस प्रकार मकरोंसे समुद्र भरे रहते हैं ॥ ११ ॥ सैनिकोंके छेड़नेपर शीघ्रतापूर्वक दौड़नेवाले ये मृगा बहुत ही सुन्दर मालूम होते हैं, जिस प्रकार शरद्ऋतुमें मेघसमूह वायुके वेगसे आकाशमें दौड़ते हैं ॥१२॥ ये वृक्ष सुगन्धित फूलोंका आभूषण मस्तकपर धारण करते हैं, जिस प्रकार दक्षिण देशके वासी मनुष्य मेघके समान अपने बालोंको धारण करते हैं,अथवा चामकी बनी एक वस्तु धारण करते हैं, जो शस्त्राघातसे रक्षाके लिये पहनी जाती है ॥१३॥इस वनमें पहले मनुष्योंका शब्द नहीं सुन पड़ता था और यह बड़ा ही भयानक था, वही वन आज आदमियोंसे भर जानेके कारण अयोध्याके समान मुझे मालूम पड़ता है ॥ १४ ॥ घोड़ोंके खुरोंसे उड़ायी हुई धूलि आकाशको ढँक लेती है और वायु उसको दूर हटा ले जाती है, मानो वह मेरा प्रिय करती हो ॥ १५ ॥ शत्रुघ्न देखो, घोड़े जुते हुए रथ जिनपर सारथि बैठे हैं बड़े वेगसे वनमें आ रहे हैं ॥ १६ ॥ देखनेमें सुन्दर डरे हुए इन मयूरांको देखो और अपने निवासस्थान पर्वतपर आते हुए पक्षियोंको देखो ॥ १७ ॥ यह देश मुझे बहुत ही मनोहर जान पड़ता है, निष्पाप, यह तपस्वियोंका निवासस्थान है, स्पष्ट यह स्वर्ग है ॥ १८ ॥ इस वनमें बहुतसे चितकबरे सुन्दर मृग, मृगियोंके साथ, पुष्पोंसे चित्रित दीख पड़ते हैं ॥ १९ ॥ सैनिक वनमें जाँय और सावधानी पूर्वक वनमें ढूँढ़ें, जिससे पुरुषसिंह राम लक्ष्मण दीख पड़ें ॥ २० ॥ भरतके वचन सुनकर शस्त्र धारण करनेवाले पुरुष उस वनमें गये और उन लोगोंने धूमशिखा देखी ॥ २१ ॥ धूमशिखा देखकर वे लौट आये और भरतसे बोले—बिना मनुष्यके आग नहीं हो सकती, अतएव यह निश्चित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

HASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 1989

अथ नात्र नरव्याघ्रौ राजपुत्रौ परंतपौ । अन्ये रामोपमाः सन्ति व्यक्तमत्र तपस्विनः ॥२३॥
तच्छ्रुत्वा भरतस्तेषां वचनं साधुसंमतम् । सैन्यानुवाच सर्वांस्तानमित्रबलमर्दनः ॥२४॥
यत्ता भवन्तस्तिष्ठन्तु नेतो गन्तव्यमग्रतः । अहमेव गमिष्यामि सुमन्त्रो धृतिरेव च ॥२५॥
एवमुक्तास्ततः सैन्यास्तत्र तस्थुः समन्ततः । भरतो यत्र धूमाग्रं तत्र दृष्टिं समादधत् ॥२६॥
व्यवस्थिता या भरतेन सा चमूर्निरीक्षमाणापि च भूमिमग्रतः ।
बभूव हृष्टा न चिरेण जानती प्रियस्य रामस्य समागमं तदा ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे त्रिनवतितमः सर्गः ॥९३॥

चतुर्नवतितमः सर्गः ९४

दीर्घकालोषितस्तस्मिन्गिरौ गिरिवरप्रियः । वैदेह्याःप्रियमाकाङ्क्षन्स्वं च चित्तं विलोभयन्॥ १ ॥
अथ दाशरथिश्चित्रं चित्रकूटमदर्शयत् । भार्यामरसंकाशः शचीमिव पुरंदरः ॥ २ ॥
न राज्यभ्रंशनं भद्रे न सुहृद्भिर्विनाभवः । मनो मे बाधते दृष्ट्वा रमणीयमिमं गिरिम् ॥ ३ ॥
पश्येममचलं भद्रे नानाद्विजगणायुतम् । शिखरैः खमिवोद्विद्धैर्धातुमद्भिर्विभूषितम् ॥ ४ ॥
केचिद्रजतसंकाशाः केचित्क्षतजसंनिभाः । पीतमाञ्जिष्ठवर्णाश्च केचिन्मणिवरप्रभाः ॥ ५ ॥

है कि राम और लक्ष्मण यहीं हैं ॥ २२ ॥ यदि शत्रुतापी राजपुत्र राम और लक्ष्मण यहाँ न हों तो अवश्य ही रामके समान तपस्वी यहाँ होंगे ॥ २३ ॥ युक्तिपूर्ण उनकी बातें सुनकर शत्रुसेनाके संहार करनेवाले भरत अपने सैनिकोंसे बोले ॥ २४ ॥ सावधान होकर तुमलोग यहीं रहो, यहाँसे आगे मत जाना, सुमन्त्र और धृतिके साथ मैं ही जाऊँगा ॥ २५ ॥ भरतके वैसा कहनेपर सब सैनिक वहीं ठहर गये और भरत उस दीख पड़नेवाली धूमशिखाकी ओर देखने लगे ॥ २६ ॥ आगे धूम देखती हुई भी वह सेना भरतके द्वारा ठहरायी जानेपर प्रिय रामचन्द्रका दर्शन शीघ्र ही होगा इस बातको जानती हुई प्रसन्न हुई ॥ २७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका तिरानबेवां सर्ग समाप्त ॥९३॥

पर्वतोंको पसन्द करनेवाले देवसमान रामचन्द्रने उस चित्रकूट पर्वतपर बहुत दिनोंतक निवास किया, एक दिन सीताको खुश करनेके लिये तथा अपना चित्तविनोद करनेके लिये उन्होंने सीताको चित्रकूटकी रमणीयता बतलायी, जिस प्रकार इन्द्र शचीको मनोविनोद करते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ सीते, इस सुन्दर पर्वतको देखकर राज्यका न मिलना और मित्रोंका साथ छूटना इनसे मुझे कष्ट नहीं होता ॥ ३ ॥ इस पर्वतको देखो, अनेक प्रकारके पक्षी इसपर वर्तमान हैं, इसके शिखर इतने ऊँचे हैं, मानों वे आकाशको छेदनेके लिये ऊपर उठे हों, उन शिखरोंपर अनेक प्रकारकी धातु वर्तमान हैं ॥ ४ ॥ अतएव चित्रकूटके कई प्रदेश चाँदीके समान श्वेत मालूम होते हैं, कई प्रदेश रुधिरके समान लाल मालूम पड़ते हैं, कई प्रदेश पीला और मंजिठ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१९०।

पुष्पार्ककेतकाभाश्च केचिज्ज्योतीरसप्रभाः । विराजन्तेऽचलेन्द्रस्य देशा धातुविभूषिताः ॥ ६ ॥
नानामृगगणैर्द्वीपितरक्षुक्षगणैर्वृतः । अदुष्टैर्भात्ययं शैलो बहुपक्षिसमाकुलः ॥ ७ ॥
आम्रजम्ब्वसनैर्लोध्रैः पियालैः पनसैर्धवैः । अङ्कोलैर्भव्यतिनिशैर्विल्वतिन्दुकवेणुभिः ॥ ८ ॥
काश्मर्यारिष्टवरणैर्मधूकैस्तिलकैरपि । बदर्यामलकैर्नीपैर्वेत्रधन्वनवीजकैः ॥ ९ ॥
पुष्पवद्भिः फलोपेतैश्छायावद्भिर्मनोरमैः । एवमादिभिराकीर्णः श्रियं पुष्यत्ययं गिरिः ॥१०॥
शैलप्रस्थेषु रम्येषु पश्येमान्कामहर्षणान् । किंनरान्द्वन्द्वशो भद्रे रममाणान्मनस्विनः ॥११॥
शाखावसक्तान्खड्गांश्च प्रवराण्यम्बराणि च । पश्य विद्याधरस्त्रीणां क्रीडोद्देशान्मनोरमान् ॥१२॥
जलप्रपातैरुद्भेदैर्निष्पन्दैश्च क्वचित्क्वचित् । स्रवद्भिर्भात्ययं शैलः स्रवन्मद इव द्विपः ॥१३॥
गुहासमीरणो गन्धान्नानापुष्पभवान्बहून् । घ्राणतर्पणमभ्येत्य कं नरं न प्रहर्षयेत् ॥१४॥
यदीह शरदोऽनेकास्त्वया सार्धमनिन्दिते । लक्ष्मणेन च वत्स्यामि न मां शोकः प्रधर्षति ॥१५॥
बहुपुष्पफले रम्ये नानाद्विजगणायुते । विचित्रशिखरे ह्यस्मिन्रतवानस्मि भामिनि ॥१६॥
अनेन वनवासेन मम प्राप्तं फलद्वयम् । पितुश्चानृण्यता धर्मे भरतस्य प्रियं तथा ॥१७॥

वर्णके मालूम होते हैं, कई प्रदेश इन्द्रनीलमणिके समान काले मालूम पड़ते हैं ॥५॥ कहींकी भूमि पुखराजके समान, कहींकी भूमि स्फटिकके समान और कहींकी भूमि केवड़ेके फूलके समान मालूम पड़ती है, कहींकी भूमि ताराओंके समान और कहींकी भूमि पाराके समान दीख पड़ती है, इस चित्रकूटके प्रदेश इसप्रकार भिन्न-भिन्न वर्णोंकी धातुओंके कारण मालूम पड़ते हैं ॥६॥ इस पर्वतपर भिन्न-भिन्न जातिके मृगोंका दल रहता है। बाघ, चीता और भालू यहाँ रहते हैं, पर ये दुष्ट नहीं हैं। इस पर्वतपर बहुतसे पक्षी भी रहते हैं ॥ ७ ॥ आम, जामुन, आसन, लोध, पियाल, कटहल, धव, अंकोल, सुन्दर तिनिस, बिल्व, तिंदुक, बाँस, काश्मीर, अरिष्ट, बरण, महुआ, इलक, बैर, आँवला, कदम्ब, बेंत, इन्द्रजव और अनार आदि नामके फूल फल और छायावाले वृक्षोंसे यह पर्वत भरा हुआ है। ये वृक्ष बड़ेही सुन्दर हैं, इनसे इस पर्वतकी शोभा बढ़ती है ॥ ८, ९, १० ॥ पर्वतके इन सुन्दर प्रदेशोंको देखो, जो काम उत्पन्न करनेवाले हैं। यह देखो, मनस्वी किन्नरोंका जोड़ा यत्र-तत्र रमण कर रहा है ॥ ११ ॥ उनकी तलवार और बहुमूल्य वस्त्र डालोंपर लटक रहे हैं। यह देखो विद्याधर स्त्रियोंका क्रीड़ा करनेका यह स्थान कितना सुन्दर है ॥ १२ ॥ ऊपरसे गिरनेवाले झरने तथा भूमिके भीतरसे निकलनेवाले सोते कहीं धीरे-धीरे चलते हैं और कहीं ठहर जाते हैं, जिससे यह पर्वत उस हाथीके समान मालूम होते हैं जिसके मद चूते हों ॥ १३ ॥ कन्दराकी वायु अनेक पुष्पोंकी गन्ध लेकर नाकको तृप्त करती है। उससे कौन मनुष्य प्रसन्न न होगा ॥ १४ ॥ सुन्दरि, तुम्हारे और लक्ष्मणके साथ अनेक वर्षों तक भी यदि मुझे यहाँ रहना पड़े तो मैं रहूंगा, मुझे कष्ट न होगा ॥१५॥ भामिनि, इस पर्वतपर काफी फूल और फल हैं, अनेक तरहके पक्षी हैं। इसके शिखर अद्भुत हैं। यह बड़ा ही सुन्दर है। मैं इस पर्वतसे प्रेम करता हूँ ॥ १६ ॥ इस वनवासके मुझे दो फल मिले, एक तो पिताका ऋण चुक गया, दूसरा भरतका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वैदेहि रमसे कच्चिच्चित्रकूटे मया सह । पश्यन्ती विविधान्भावान्मनोवाक्कायसंमतान् ॥१८॥
इदमेवामृतं प्राहू राज्ञि राजर्षयः परे । वनवासं भवार्थाय प्रेत्य मे प्रपितामहाः ॥१९॥
शिलाः शैलस्य शोभन्ते विशालाः शतशोऽभितः । बहुला बहुलैर्वर्णैर्नीलपीतासितारुणैः ॥२०॥
निशि भान्त्यचलेन्द्रस्य हुताशनशिखा इव । ओषध्यः स्वप्रभालक्ष्म्या भ्राजमानाः सहस्रशः ॥२१॥
केचिन्क्षयनिभा देशाः केचिदुद्यानसंनिभाः । केचिदेकाशिला भान्ति पर्वतस्यास्य भामिनि ॥२२॥
भित्त्वेव वसुधां भाति चित्रकूटः समुत्थितः । चित्रकूटस्य कूटोऽयं दृश्यते सर्वतः शुभः ॥२३॥
कुष्ठस्थगरपुंनागभूर्जपत्रोत्तरच्छदान् । कामिनां स्वास्तरान्पश्य कुशेशयदलायुतान् ॥२४॥
मृदिताश्चपविद्धाश्च दृश्यन्ते कमलस्रजः । कामिभिर्वनिते पश्य फलानि विविधानि च ॥२५॥
वस्त्रौकसारां नलिनीमतीत्यैवोत्तरान्कुरून् । पर्वताश्चित्रकूटोऽसौ बहुमूलफलोदकः ॥२६॥
इमं तु कालं वनिते विजह्निवांस्त्वया च सीते सह लक्ष्मणेन ।
रतिं प्रपस्त्ये कुलधर्मवर्धिनीं सतां पथि स्वैर्नियमैः परैः स्थितः ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

प्रिय हुआ ॥ १७ ॥ वैदेहि, क्या मेरे साथ चित्रकूटमें मन, वचन और शरीरको प्रिय अनेक तरह-के पदार्थोंको देखनेसे तुम्हें आनन्द आता है ॥ १८ ॥ हे राज्ञि संसारके कल्याण करनेमें प्रवृत्त हमारे बूढ़े प्रपितामह मनु आदिने विचार करके इसी नियमपूर्वक वनवास करनेको ही अमृत बतलाया है ॥ १९ ॥ इस पर्वतके इधर-उधर सैकड़ों बड़ी-बड़ी शिलाएं शोभित हो रही हैं। वे अनेक वर्णों की हैं, कोई लाल, कोई नीली, कोई पीली और कोइ सफेद हैं ॥ २० ॥ रातमें इस पर्वतकी ओषधियां अग्निकी शिखाके समान अपनी प्रभासे प्रकाशित होती हैं ॥ २१ ॥ ऐसी हजारों ओषधियां हैं। भामिनि, इस पर्वतका कोई भाग घरके समान, कोई बागके समान और कोई केवल पथरीला मालुम पड़ता है ॥ २२ ॥ वह चित्रकूट पर्वत पृथिवी फोड़कर निकला हुआ-सा मालूम पड़ता है। इसका यह आगेवाला भाग अर्थात् शिखर बहुत ही सुन्दर है ॥ २३ ॥ वह देखो, कामियोंके बिछौने जो कुष्ठ, स्थगर, पुन्नाग और भूर्जपत्रके पत्तोंसे बनाये गये हैं, तथा कमलके पत्ते भी जिसपर बिछे हुए हैं ॥ २४ ॥ ये कमलकी मालाएं कामियोंके द्वारा मसल कर फेंक दी गयी है। प्रिये, यह देखो अनेक तरहके फल ॥ २५ ॥ यह बहुत मूल फल और जलवाला चित्रकूट पर्वत कुबेरकी नगरी, इन्द्रकी नगरी और उत्तर कुरुको अपनी शोभासे जीत रहा है ॥ २६ ॥ सीते, अपने श्रेष्ठ नियमोंके साथ सज्जनोंके मार्गमें स्थित रहकर इन चौदह वर्षोंको तुम्हारे और लक्ष्मणके साथ यदि मैं आनन्दपूर्वक बिता सका, तो कुल और धर्मको बढ़ानेवाला आनन्द पाऊंगा ॥ २७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका चौरानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९४ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चनवतितमः सर्गः ९५

अथ शैलाद्विनिष्क्रम्य मैथिलीं कोशलेश्वरः । अदर्शयच्छुभजलां रम्यां मन्दाकिनीं नदीम् ॥ १ ॥
अब्रवीच्च वरारोहां चन्द्रचारुनिभाननाम् । विदेहराजस्य सुतां रामो राजीवलोचनः ॥ २ ॥
विचित्रपुलिनां रम्यां हंससारससेविताम् । कुसुमैरुपसंपन्नां पश्य मन्दाकिनीं नदीम् ॥ ३ ॥
नानाविधैस्तीररुहैर्वृतां पुष्पफलद्रुमैः । राजन्तीं राजराजस्य नलिनीमिव सर्वतः ॥ ४ ॥
मृगयूथनिपीतानि कलुषाम्भांसि सांप्रतम् । तीर्थानि रमणीयानि रतिं संजनयन्ति मे ॥ ५ ॥
जटाजिनधराः काले वल्कलोत्तरवाससः । ऋषयस्त्ववगाहन्ते नदीं मन्दाकिनीं प्रिये ॥ ६ ॥
आदित्यमुपतिष्ठन्ते नियगादूर्ध्ववाहवः । एते परे विशालाक्षि मुनयः संशितव्रताः ॥ ७ ॥
मारुतोद्धूतशिखरैः प्रनृत्त इव पर्वतः । पादपैः पुष्पपत्राणि सृजद्भिरभितो नदीम् ॥ ८ ॥
क्वचिन्मणिनिकाशोदां क्वचित्पुलिनशालिनीम् । क्वचित्सिद्धजनाकीर्णां पश्य मन्दाकिनीं नदीम् ॥ ९ ॥
निर्धूतान्वायुना पश्य विततान्पुष्पसंचयान् । पोप्लूयमानानपरान्पश्य त्वं तनुमध्यमे ॥ १० ॥
पश्यैतद्वल्गुवचसो रथाङ्गाह्वयना द्विजाः । अधिरोहन्ति कल्याणि निष्कूजन्तः शुभा गिरः ॥ ११ ॥
दर्शनं चित्रकूटस्य मन्दाकिन्याश्च शोभने । अधिकं पुटवासाच्च मन्ये तव च दर्शनात् ॥ १२ ॥
विधूतकल्मषैः सिद्धैस्तपोदमशमान्वितैः । नित्यावक्षोभितजलां विगाहस्व मया सह ॥ १३ ॥

कोशलेश्वर रामचन्द्रने पर्वतसे निकलकर मैथिली सीताको सुन्दर जलवाली रमणीय मन्दाकिनी नदी दिखाई ॥ १ ॥ राजीवलोचन रामचन्द्र, विदेहराजकी कन्या चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाली, श्रेष्ठ स्त्री सीतासे बोले ॥ २ ॥ इस रमणीय मन्दाकिनी नदीको देखो । इसके तट कितने सुन्दर हैं । हंस और सारस यहां वर्तमान हैं, यह नदी पुष्पोंसे युक्त है । तीरके अनेक फल फूलवाले वृक्षोंसे घिरी सी है । यह कुबेरके कमलवनके समान शोभित हो रही है ॥ ३४ ॥ इसके सुन्दर घाट देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है । मृगोंके दलने यहां जल पीया है, जिससे जल इस समय गन्दा हो गया है ॥ ५ ॥ समयपर जटा और मृगचर्म धारण करनेवाले तथा वल्कल वस्त्र ओढ़नेवाले ऋषि इस मन्दाकिनी नदीमें स्नान करते हैं ॥ ६ ॥ उनके अतिरिक्त नियम पालन करनेवाले मुनि नियमतः (शास्त्रीय विधानके अनुसार) ऊपर बाहु करके सूर्यका उपस्थान करते हैं ॥ ७ ॥ वायुके द्वारा जिनकी शिखा कँपा दी गयी है ऐसे वृक्ष, नदीमें सर्वत्र पुष्प और पत्ते गिराते हैं । उनके द्वारा यह पर्वत भी नाचते हुएके समान मालूम पड़ता है ॥ ८ ॥ इस मन्दाकिनी नदीको देखो, कहीं इसका जल मोतीके समान स्वच्छ है, कहीं यह करारोंवाली हो गयी है और वहां इसका जल भी नीला है । कहीं सिद्धोंका समूह बैठा हुआ है । ॥ ९ ॥ वायुके द्वारा अतएव जलमें चारों ओर फैले इन पुष्पोंको देखो । उधर दूसरे फूल जलमें बारबार तैर रहे हैं, उन्हें भी देखो ॥ १० ॥ चक्रवाक नामवाले और सुन्दर बोलनेवाले पक्षी मनोहर बोलते हुए नदी-तीरपर जा रहे हैं ॥ ११ ॥ सुन्दरि, इस चित्रकूट और मन्दाकिनीका दर्शन तुम्हारे निरन्तर साथ रहनेके कारण नगरवाससे मुझे अच्छा मालूम होता है ॥ १२ ॥ तप दम और शमसे युक्त निष्पाप सिद्ध इस नदीमें प्रतिदिन स्नान करते हैं । तुम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सखीवच्च विगाहस्व सीते मन्दाकिनीं नदीम् । कमलान्यवमज्जन्ती पुष्कराणि च भामिनि ॥१४॥
त्वं पौरजनवद् व्यालानयोध्यामिव पर्वतम् । मन्यस्व वनिते नित्यं सरयूवादिमां नदीम् ॥१५॥
लक्ष्मणश्चैव धर्मात्मा मान्निदेशे व्यवस्थितः । त्वं चानुकूला वैदेहि प्रीतिं जनयती मम ॥१६॥
उपस्पृशँस्त्रिषवणं मधुमूलफलाशनः । नायोध्यायै न राज्याय स्पृहये च त्वया सह ॥१७॥
इमां हि रम्यां गजयूथलोडितां निपीततोयां गजसिंहवानरैः ।
सुपुष्पितां पुष्पभरैरलंकृतां न सोऽस्ति यः स्यान्न गतक्लमः सुखी ॥१८॥
इतीव रामो बहुसंगतं वचः प्रियासहायः सरितं प्रति ब्रुवन् ।
चचार रम्यं नयनाञ्जनप्रभं स चित्रकूटं रघुवंशवर्धनः ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चनवतितमः सर्गः ॥९५॥

षण्णवतितमः सर्गः ९६

तां तदा दर्शयित्वा तु मैथिलीं गिरिनिम्नगाम् । निषसाद गिरिप्रस्थे सीतां मांसेन छन्दयन् ॥ १ ॥
इदं मेध्यमिदं स्वादु निष्टप्तमिदमग्निना । एवमास्ते स धर्मात्मा सीतया सह राघवः ॥ २ ॥
तथा तत्रासतस्तस्य भरतस्योपयायिनः । सैन्यरेणुश्च शब्दश्च प्रादुरास्तां नभस्पृशौ ॥ ३ ॥

भी मेरे साथ स्नान करो ॥१३॥ सीते, कमल (लाल कमल), पुष्कर (सफेद कमल) पुष्पोंको जलमें डुबाती हुई तुम एक सखीके समान इस मन्दाकिनीमें स्नान करो ॥ १४ ॥ यहांके वनवासियोंको तुम नगरनिवासियोंके समान समझो । इस चित्रकूट पर्वतको अयोध्या समझो और इस मन्दाकिनी नदीको सरजू समझो ॥१५॥ धर्मात्मा लक्ष्मण मेरी आज्ञामें वर्तमान हैं और तुम मेरे अनुकूल हो, इससे मैं बहुत प्रसन्न होता हूं ॥१६॥ तुम्हारे साथ तीनों काल यहां स्नान करनेसे, मधु फल आदि भोजनसे मैं अयोध्या या राज्यकी चाह नहीं करता ॥ १७ ॥ इस रमणीय नदीमें हाथियोंका दल जल पीता है । सिंह और वानर भी यहां जल पीनेके लिए आते हैं । इसके चारो ओर पुष्पोंके वृक्ष वर्तमान हैं और यह स्वयं भी पुष्पोंसे अलंकृत है । कौन ऐसा है जो यहां स्नान करके थकावट दूर होनेके कारण सुखी न होता हो ॥ १८ ॥ रघुवंशवर्द्धन रामचन्द्र इस प्रकारकी उत्तम बातें नदीके सम्बन्धमें कहते हुए नीले वर्णवाले रमणीय चित्रकूटपर सीताके साथ विचरण करने लगे ॥ १९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका पंचानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९५ ॥

जानकीको पर्वतकी नदी दिखाकर रामचन्द्र पर्वतके एक शिलाखण्डपर बैठगये और मसिके द्वारा उन्हें प्रसन्न करने लगे ॥ १ ॥ यह बड़ा ही पवित्र और स्वादिष्ट है, यह आगमें पकाया हुआ है, इसप्रकार धर्मात्मा रामचन्द्र सीताके साथ बैठे ॥ २ ॥ इस प्रकार रामचन्द्र वहां

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एतस्मिन्नन्तरे त्रस्ताः शब्देन महता ततः । अर्दिता यूथपा मत्ताः स्वयूथाद् दुद्रुवुर्दिशः ॥ ४ ॥
स तं सैन्यसमुद्भूतं शब्दं शुश्राव राघवः । तांश्च विप्रद्रुतान्सर्वान्यूथपानन्ववैक्षत ॥ ५ ॥
तांश्च विप्रद्रुतान्दृष्ट्वा तं च श्रुत्वा महास्वनम् । उवाच रामः सौमित्रिं लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ॥ ६ ॥
हन्त लक्ष्मण पश्येह सुमित्रा सुप्रजास्त्वया । भीमस्तानितगम्भीरं तुमुलः श्रूयते स्वनः ॥ ७ ॥
गजयूथानि वारण्ये महिषा वा महावने । वित्रासिता मृगाः सिंहैः सहसा प्रद्रुता दिशः ॥ ८ ॥
राजा वा राजपुत्रो वा मृगयामटते वने । अन्यद्वा श्वापदं किंचित्सौमित्रे ज्ञातुमर्हसि ॥ ९ ॥
सुदुश्चरो गिरिश्चायं पक्षिणामपि लक्ष्मण । सर्वमेतद्यथातत्त्वमभिज्ञातुमिहार्हसि ॥१०॥
स लक्ष्मणः संत्वरितः सालमारुह्य पुष्पितम् । प्रेक्षमाणो दिशः सर्वाः पूर्वां दिशमवैक्षत ॥११॥
उदङ्मुखः प्रेक्षमाणो ददर्श महतीं चमूम् । गजाश्वरथसंबाधां यत्तैर्युक्तां पदातिभिः ॥१२॥
तामश्वरथसंपूर्णां रथध्वजविभूषिताम् । शशंस सेनां रामाय वचनं चेदमब्रवीत् ॥१३॥
अग्निं संशमयत्वार्यः सीता च भजतां गुहाम् । सज्जं कुरुष्व चापं च शरांश्च कवचं तथा ॥१४॥
तं रामः पुरुषव्याघ्रो लक्ष्मणं प्रत्युवाच ह । अङ्गावेक्षस्व सौमित्रे कस्येमां मन्यसे चमूम् ॥१५॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् । दिधक्षन्निव तां सेनां रुषितः पावको यथा ॥१६॥
संपन्नं राज्यमिच्छंस्तु व्यक्तं प्राप्याभिषेचनम् । आवां हन्तुं समभ्येति कैकेय्या भरतः सुतः ॥१७॥

बैठे थे, उसी समय रामचन्द्रके पास आनेवाले भरतकी सेनाकी धूलि और सेनाका शब्द आकाश-में फैले हुए मालूम पड़े ॥३॥ इसी बीचमें इस महान् शब्दसे डरे और उद्विग्न यूथपति हाथी अपने यूथके साथ दिशाओंमें भाग गये ॥ ४ ॥ रामचन्द्रने भी सेनाके द्वारा उत्पन्न उस शब्दको सुना और भागते हुए उन यूथपति हाथियोंको भी देखा ॥ ५ ॥ उन भागते हुए हाथियोंको देखकर तथा उस महाभयानक शब्दको सुनकर रामचन्द्र उग्रतेजा लक्ष्मणसे बोले ॥ ६ ॥ लक्ष्मण, देखो तुमसे सुमित्रा सुपुत्रवती है। मेघगर्जनके समान भयानक और गम्भीर शब्द सुनाई पड़ता है ॥ ७ ॥ महावनमें सिंहसे डरे हुएके समान यह हाथियोंका यूथ, ये भैंसे, ये मृगा सहसा दिशाओं-में भाग रहे हैं ॥ ८ ॥ क्या कोई राजा, या राजपुत्र इस वनमें आखेट करनेके लिए आया है अथवा अन्य कोई जंगली हिंस्र पशु भ्रमण कर रहा है, मालूम करो ॥ ९ ॥ लक्ष्मण, इस पर्वत-पर पक्षियोंका आना भी कठिनहै, अतएव इसका ठीक-ठीक पता लगाओ ॥ १० ॥ शीघ्र ही लक्ष्मण एक पुष्पित शाल वृक्षपर चढ़ गये और सब दिशाओंमें देखकर उन्होंने पूर्व दिशाकी ओर देखा ॥ ११ ॥ जब उन्होंने उत्तरकी ओर देखा तब एक बहुत बड़ी सेना दीख पड़ी, जिसमें हाथी, घोड़े और रथ भरे हुए थे तथा सजे हुए सिपाही थे ॥ १२ ॥ अश्व रथसे पूर्ण तथा रथकी ध्वजाओंसे शोभित उस सेनाकी बात लक्ष्मणने रामको सुनायी और वे बोले ॥ १३ ॥ आप आग बुझा दें, सीता कन्दरामें जाय, धनुष बाण और कवच आप ले लें ॥ १४ ॥ पुरुषसिंह राम-चन्द्र लक्ष्मणसे पुनः बोले, भाई समझो, तुम क्या समझते हो ? यह सेना किसकी है ? ॥ १५ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण बोले, मानों वे अग्निके समान उस समस्त सेनाको जला देना चाहते हों ॥ १६ ॥ राज्य पाकरके अपने राज्यको शत्रुहीन बनानेकी इच्छासे केकयीका पुत्र भरत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एष वै सुमहाञ्छ्रीमान्विटपी संप्रकाशते । विराजत्युज्ज्वलस्कन्धः कोविदारध्वजो रथे ॥१८॥
भजन्त्येते यथाकाममश्वानारुह्य शीघ्रगान् । एते भ्राजन्ति संहृष्टा गजानारुह्य सादिनः ॥१९॥
गृहीतधनुषावावां गिरिं वीर श्रयावहे । अथवेहैव तिष्ठावः संनद्धावुद्यतायुधौ ॥२०॥
अपि नौ वशमागच्छेत्कोविदारध्वजो रणे । अपि द्रक्ष्यामि भरतं यत्कृते व्यसनं महत् ॥२१॥
त्वया राघव संप्राप्तं सीतया च मया तथा । यन्निमित्तं भवान्राज्याच्च्युतो राघव शाश्वतात् ॥२२॥
संप्राप्तोऽयमरिर्वीर भरतो वध्य एव हि । भरतस्य वधे दोषं नाहं पश्यामि राघव ॥२३॥
पूर्वापकारिणं हत्वा न ह्यधर्मेण युज्यते । पूर्वापकारी भरतस्त्यागे धर्मश्च राघव ॥२४॥
एतस्मिन्निहिते कृत्स्नामनुशाधि वसुंधराम् । अद्य पुत्रं हतं संख्ये कैकेयी राज्यकामुका ॥२५॥
मया पश्येत्सुदुःखार्ता हस्तिभिन्नमिव द्रुमम् । कैकेयीं च वधिष्यामि सानुबन्धां सबान्धवाम् ॥२६॥
कलुषेणाद्य महता मेदिनी परिमुच्यताम् । अद्येमं संयतं क्रोधमसत्कारं च मानद ॥२७॥
मोक्ष्यामि शत्रुसैन्येषु कक्षेष्विव हुताशनम् । अद्यैव चित्रकूटस्य काननं निशितैः शरैः ॥२८॥
छिन्दञ्छत्रुशरीराणि करिष्ये शोणितोक्षितम् । शरैर्निर्भिन्नहृदयान्कुञ्जरांस्तुरगांस्तथा ॥२९॥

हम दोनोंको मारनेके लिए आ रहा है ॥ १७ ॥ यह सुन्दर और विशाल जो वृक्ष दिखाई पड़ रहा है, उसीके पास रथमें कोविदारध्वजा (भरतकी ध्वजा कोविदारकी थी) दिखाई पड़ती है ॥ १८ ॥ तेज चलनेवाले घोड़ोंके सवार इधरकी ओर हैं । ये हाथीके सवार, हाथीपर चढ़े हुए जो प्रसन्न मालूम होते हैं वे भी वहीं हैं ॥ १९ ॥ वीर, हमलोग धनुष लेकर पर्वतपर चले चलें, अथवा कवच धारण करके और अस्त्र-शस्त्र लेकर यहीं रहें ॥ २० ॥ यदि यह कोविदारध्वजा-वाला रथ हमलोगोंके वशमें आता, उस समय मैं भरतको देखता, जिसके कारण इतने कष्ट उठाने पड़ते हैं ॥ २१ ॥ आपको और सीताको तथा मुझको भी । जिस भरतके कारण आप अपने सनातन राज्याधिकारसे वञ्चित किये गये हैं ॥ २२ ॥ वीर, हमलोगोंका शत्रु यह भरत आया है । यह अवश्यही वध्य है । भरतके मारनेमें मैं दोष नहीं देखता ॥ २३ ॥ जिसने पहले अपना अपकार किया है, उसके वध करनेसे अपकार नहीं होता । भरतने पहले हमलोगोंका अपकार किया है । इसके मारनेसे धर्महीं होगा ॥ २४ ॥ इसके मारे जानेपर आप समूची पृथिवी-का पालन करें । राज्यकी लोभिन कैकयी युद्धमें अपने पुत्रका मेरे द्वारा मारा जाना दुःखित होकर देखे । हाथीके तोड़े वृक्षके समान, मैं कैकयीको भी तथा मन्थरा और उसके बान्धवोंको मारूंगा ॥ २५ ॥ २६ ॥ इस बड़े पापसे आज यह पृथिवी मुक्त हो । आज अपने रोके हुए क्रोध-को तथा तिरस्कारको शत्रुसेनापर मैं छोड़ूंगा, जिसप्रकार सूखे तृणराशिपर आग छोड़ी जाती है । आजही अपने तीखे बाणोंसे शत्रुओंके शरीरोंको काटकर चित्रकूटके वनको सींचूंगा । मेरे बाणोंसे सेनाके जिन हाथियों और घोड़ोंके कलेजे फट जायँ, उन्हें जंगली जन्तु घसीटें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्वापदाः परिकर्षन्तु नरांश्च निहतान्मया । शराणां धनुषश्चाहमनृणोऽस्मिन्महावने ।
ससैन्यं भरतं हत्वा भविष्यामि न संशयः ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमः सर्गः ९७

सुसंरब्धं तु भरतं लक्ष्मणं क्रोधमूर्च्छितम् । रामस्तु परिसान्त्व्याथ वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥
किमत्र धनुषा कार्यमसिना वा सचर्मणा । महाबले महोत्साहे भरते स्वयमागते ॥ २ ॥
पितुः सत्यं प्रतिश्रुत्य हत्वा भरतमाहवे । किं करिष्यामि राज्येन सापवादेन लक्ष्मण ॥ ३ ॥
यद्द्रव्यं बान्धवानां वा मित्राणां वा क्षये भवेत् । नाहं तत्प्रतिगृह्णीयां भक्ष्यान्विषकृतानिव ॥ ४ ॥
धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण । इच्छामि भवतामर्थे एतत्प्रातिशृणोमि ते ॥ ५ ॥
भ्रातॄणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण । राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे ॥ ६ ॥
नेयं मम मही सौम्य दुर्लभा सागराम्बरा । नहीच्छेयमधर्मेण शक्रत्वमपि लक्ष्मण ॥ ७ ॥
यद्विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं वापि मानद । भवेन्मम सुखं किंचिद्भस्म तत्कुरुतां शिखी ॥ ८ ॥

और मेरे द्वारा मारे गए मनुष्योंको भी घसीटें । आज इस महावनमें भरतको और उसकी सेनाको मारकर मैं बाणों और धनुषका ऋण चुका दूंगा, इसमें सन्देह नहीं ॥२७, २८, २९, ३०॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका छिआनवेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९६ ॥

भरतसे युद्ध करनेके लिये तैयार और अत्यन्त क्रुद्ध लक्ष्मणको समझाते हुए रामचन्द्र इस प्रकार बोले ॥ १ ॥ धनुषकी क्या आवश्यकता है, ढाल और तलवारसे क्या होगा, जब महोत्साही, महाबलवान भरत आ रहे हैं, (अर्थात् भरत तो हम लोगोंके शत्रु नहीं हैं ।) ॥ २ ॥ लक्ष्मण, पिताके सत्यकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा करके तथा भरतको मारकर जो निन्दायुक्त राज्य मिलेगा, उसको लेकर मैं क्या करूँगा अर्थात् लोग कहेंगे कि पिताने जो राज्य भरतको दिया था वह भरतको मारकर रामचन्द्रने ले लिया । यह निंदा रहेहीगी ॥ ३ ॥ बान्धवों और मित्रोंके नाश करनेपर जो धन प्राप्त होता है, वह धन हमें नहीं चाहिए । वह विषयुक्त अन्नके समान है ॥४॥ लक्ष्मण, धर्म अर्थ काम और पृथिवी जो कुछ मैं चाहता हूँ वह सब तुम लोगोंके ही लिए, यह बात मैं तुमसे प्रतिज्ञापूर्वक सच-सच कह रहा हूँ ॥ ५ ॥ भाइयोंके धन प्राप्त होने तथा उनके सुखके लिए ही मैं राज्य भी चाहता हूँ । लक्ष्मण, आयुध छूकर, शपथपूर्वक मैं यह कहता हूँ ॥ ६ ॥ समुद्रसे घिरी हुई यह पृथिवी मेरे लिये दुर्लभ नहीं है, पर अधर्मके द्वारा इन्द्रका भी पद मैं नहीं चाहता ॥ ७ ॥ भरत, तुम और शत्रुघ्नको छोड़कर यदि कोई सुख मुझे होता हो तो उस सुखको अग्नि जला डालें ॥८॥ मैं समझता हूँ कि मेरे प्राणोंसे भी प्रिय भ्रातृवत्सल भरत अयोध्या-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मन्येऽहमागतोऽयोध्यां भरतो भ्रातृवत्सलः । मम प्राणैः प्रियतरः कुलधर्ममनुस्मरन् ॥ ९ ॥
श्रुत्वा प्रव्राजितं मां हि जटावल्कलधारिणम् । जानक्या सहितं वीर त्वया च पुरुषोत्तम ॥१०॥
स्नेहेनाक्रान्तहृदयः शोकेनाकुलितेन्द्रियः । द्रष्टुमभ्यागतो ह्येष भरतो नान्यथागतः ॥११॥
अम्बां च केकयीं रुष्य भरतश्चाप्रियं वदन् । प्रसाद्य पितरं श्रीमान्राज्यं मे दातुमागतः ॥१२॥
प्राप्तकालं यथैषोऽस्मान्भरतो द्रष्टुमर्हति । अस्मासु मनसाप्येष नाहितं किंचिदाचरेत् ॥१३॥
विप्रियं कृतपूर्वं ते भरतेन कदा नु किम् । ईदृशं वा भयं तेऽद्य भरतं यद्विशङ्कसे ॥१४॥
नहि ते निष्ठुरं वाच्यो भरतो नाप्रियं वचः । अहं ह्यप्रियमुक्तः स्यां भरतस्याप्रिये कृते ॥१५॥
कथं नु पुत्राः पितरं हन्युः कस्यांचिदापदि । भ्राता वा भ्रातरं हन्यात्सौमित्रे प्राणमात्मनः ॥१६॥
यदि राज्यस्य हेतोस्त्वमिमां वाचं प्रभाषसे । वक्ष्यामि भरतं दृष्ट्वा राज्यमस्मै प्रदीयताम् ॥१७॥
उच्यमानो हि भरतो मया लक्ष्मण तद्वचः । राज्यमस्मै प्रयच्छेति बाढमित्येव मंस्यते ॥१८॥
तथोक्तो धर्मशीलेन भ्राता तस्य हिते रतः । लक्ष्मणः प्रविवेशेव स्वानि गात्राणि लज्जया ॥१९॥
तद्वाक्यं लक्ष्मणः श्रुत्वा व्रीडितः प्रत्युवाच ह । त्वां मन्ये द्रष्टुमायातः पिता दशरथः स्वयम् ॥२०॥
व्रीडितं लक्ष्मणं दृष्ट्वा राघवः प्रत्युवाच ह । एष मन्ये महाबाहुरिहास्मान्द्रष्टुमागतः ॥२१॥

में आये होंगे और कुलधर्मका (अर्थात् बड़ा भाई ही राजा होता है) स्मरण किया होगा ॥ ९ ॥ पुरुषश्रेष्ठ, उस समय भरतने सुना होगा कि जटा वल्कल धारण कर जानकी और मैं तुम्हारे साथ वनमें चला गया हूँ ॥ १० ॥ अतएव स्नेह परवश तथा शोकसे व्याकुल होकर ये भरत मुझे देखनेके लिए आये हैं । इनके आनेका और कोई प्रयोजन नहीं है ॥ ११ ॥ श्रीमान् भरत अप्रिय वचनोंके द्वारा माता केकयीको अप्रसन्न करके और पिताको प्रसन्न करके, ये मुझे राज्य देनेके लिए आये हैं ॥ १२ ॥ इस समय भरत जो हम लोगोंको देखना चाहते हैं यह इनके लिए उचित ही है । ये हम लोगोंके विषयमें मनसे भी कुछ विपरीताचरण नहीं कर सकते ॥ १३ ॥ भरतने तुम्हारा क्या अपकार किया है, और कब किया है, जो तुम आज भरतसे इस प्रकार डर रहे हो तथा उनसे शंकित हो रहे हो ॥ १४ ॥ तुमको भरतसे कोई अप्रिय अथवा क्रूर वचन नहीं बोलना चाहिए । यदि तुम भरतका कोई अपकार करोगे तो वह मेरा अपकार समझा जायगा ॥ १५ ॥ लक्ष्मण, अपने प्राणोंके समान प्रिय पिताको पुत्र कैसे मार सकता है, भाई भाईको कैसे मार सकता है, किसी आपत्तिके समयमें भी ॥ १६ ॥ यदि तुम राज्यके लिये यह बात कह रहे हो तो भरतके यहां आनेपर कहूँगा कि तुम लक्ष्मणको राज्य दे दो ॥ १७ ॥ लक्ष्मण, जब मैं भरतसे यह बात कहूँगा कि राज्य लक्ष्मणको दे दो तो वे अवश्य ही इसे मान लेंगे ॥ १८ ॥ रामके हित चाहनेवाले लक्ष्मण अपने धर्मशील भाईके ऐसा कहनेपर बहुत ही लज्जित हुए मानों वे अपने अंगोंमें प्रविष्ट होने लगे ॥ १९ ॥ रामचन्द्रके वचन सुनकर लज्जित लक्ष्मण पुनः बोले, मैं समझता हूँ कि आपको देखनेके लिए पिता दसरथ स्वयं आ रहे हैं ॥ २० ॥ लक्ष्मण लज्जित हो रहे हैं यह देखकर रामचन्द्र पुनः बोले–ये महाबाहु हम लोगोंको देखनेके लिए आ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथवा नौ ध्रुवं मन्ये मन्यमानः सुखोचितौ । वनवासमनुध्याय गृहाय प्रतिनेष्यति ॥२२॥
इमां चाप्येष वैदेहीमत्यन्तसुखसेविनीम् । पिता मे राघवःश्रीमान्वनादादाय यास्यति॥२३॥
एतौ तौ संप्रकाशेते गोत्रवन्तौ मनोरमौ । वायुवेगसमौ वीरौ जवनौ तुरगोत्तमौ ॥२४॥
सं एष सुमहाकायः कम्पते वाहिनीमुखे । नागः शत्रुंजयो नाम वृद्धस्तातस्य धीमतः ॥२५॥
न तु पश्यामि तच्छत्रं पाण्डुरं लोकविश्रुतम् । पितुर्दिव्यं महाभाग संशयो भवतीह मे ॥२६॥
वृक्षाग्रादवरोह त्वं कुरु लक्ष्मण मद्वचः । इतीव रामो धर्म्मात्मा सौमित्रिं तमुवाच ह ॥२७॥
अवतीर्य तु सालाग्रात्तस्मात्स समितिंजयः । लक्ष्मणःप्राञ्जलिर्भूत्वा तस्थौ रामस्य पार्श्वतः॥२८॥
भरतेनाथ संदिष्टा संमर्दो न भवेदिति । समन्तात्तस्य शैलस्य सेना वासमकल्पयत् ॥२९॥
अध्यर्धमिक्ष्वाकुचमूर्योजनं पर्वतस्य ह । पार्श्वे न्यविशदाहत्य गजवाजिनराकुला ॥३०॥

सा चित्रकूटे भरतेन सेना धर्मं पुरस्कृत्य विधूय दर्पम् ।
प्रसादनार्थं रघुनन्दनस्य विरोचते नीतिमता प्रणीता ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमः सर्गः ९८

निवेश्य सेनां तु विभुः पद्भ्यां पादवतां वरः । अभिगन्तुं स काकुत्स्थमियेष गुरुवर्तकम् ॥ १ ॥
निविष्टमात्रे सैन्ये तु यथोद्देशं विनीतवत् । भरतो भ्रातरं वाक्यं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥

रहे हैं ॥ २१ ॥ हम लोग सुखके अभ्यासी हैं यह जानकर तथा वनके कष्टोंको सोचकर ये हम लोगोंको घर लौटा ले जाँयगे ॥२२॥ सुखको अत्यन्त पसन्द करनेवाली इस जानकीको लेकर मेरे पिता जाँयगे ॥२३॥ ये दोनों अच्छी जातिके सुन्दर वायुके समान तेज चलनेवाले दो घोड़े दिखाई पड़ते हैं ॥ २४ ॥ यह विशाल शरीरवाला पिताका शत्रुंजय बूढ़ा हाथी धीरे-धीरे चल रहा है ॥ २५ ॥ पर पिताका वह लोकप्रसिद्ध दिव्य श्वेत छत्र मैं नहीं देखता, इसलिए मेरे मनमें संदेह हो रहा है ॥ २६ ॥ लक्ष्मण, तुम मेरी बात मानो, पेड़से नीचे उतर आओ। धर्मात्मा रामने लक्ष्मणसे यही बात कही ॥ २७ ॥ रण जीतनेवाले लक्ष्मण उस साल वृक्षसे नीचे उतर आये और हाथ जोड़कर रामचन्द्रके बगलमें खड़े हो गये ॥ २८ ॥ इधर भरतने अपनी सेनाको आज्ञा दी कि किसीको कष्ट न पहुँचाओ। इसलिए उस सेनाने पर्वतके पासही अर्थात् आश्रमसे दूर अपना निवास बनाया ॥ २९ ॥ उस पर्वतके पास डेढ़ योजन अर्थात् छः कोसमें हाथी घोड़े और मनुष्योंसे भरी हुई सेनाने निवास किया ॥ ३० ॥ अहंकार दूर कर धर्मपूर्वक नीतिमान भरतके द्वारा शिक्षित वह सेना चित्रकूटमें रामचन्द्रको मनानेके लिये आयी हुई शोभने लगी ॥ ३१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका सत्तानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९७ ॥

द्विपदोंमें श्रेष्ठ भरत सेनाको ठहराकर पिताकी आज्ञा पालन करनेवाले रामचन्द्रके पास जानेके लिए तयार हुए ॥ १ ॥ शिक्षितके समान, भरतकी आज्ञाके अनुसार जब सेना ठहर गयी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्षिप्रं वनामिदं सौम्य नरसंघैः समन्ततः । लुब्धैश्च सहितैरेभिस्त्वमन्वेषितुमर्हसि ॥ ३ ॥
गुहो ज्ञातिसहस्रेण शरचापासिपाणिना । समन्वेषतु काकुत्स्थावस्मिन्परिवृतः स्वयम् ॥ ४ ॥
अमात्यैः सह पौरैश्च गुरुभिश्च द्विजातिभिः । सह सर्वं चरिष्यामि पद्भ्यां पारिवृतःस्वयम् ॥ ५ ॥
यावन्न रामं द्रक्ष्यामि लक्ष्मणं वा महाबलम् । वैदेहीं वा महाभागां न मे शान्तिर्भविष्यति ॥ ६ ॥
यावन्न चन्द्रसंकाशं तदद्रक्ष्यामि शुभाननम् । भ्रातुःपद्मविशालाक्षं न मे शान्तिर्भविष्यति ॥ ७ ॥
सिद्धार्थः खलु सौमित्रिर्यश्चन्द्रविमलोपमम् । मुखं पश्यति रामस्य राजीवाक्षं महाद्युति ॥ ८ ॥
यावन्न चरणौ भ्रातुः पार्थिवव्यञ्जनान्वितौ । शिरसा प्रग्रहीष्यामि न मे शान्तिर्भविष्यति ॥ ९ ॥
यावन्न राज्ये राज्यार्हः पितृपैतामहे स्थितः । अभिषिक्तो जलक्लिन्नो न मे शान्तिर्भविष्यति ॥ १० ॥
कृतकृत्या महाभागा वैदेही जनकात्मजा । भर्तारं सागरान्तायाः पृथिव्या यानुगच्छति ॥ ११ ॥
सुशुभश्चित्रकूटोऽसौ गिरिराजसमो गिरिः । यस्मिन्वसति काकुत्स्थः कुबेर इव नन्दने ॥ १२ ॥
कृतकार्यामिदं दुर्गवनं व्यालनिषेवितम् । यदध्यास्ते महाराजो रामः शस्त्रभृतां वरः ॥ १३ ॥
एवमुक्त्वा महाबाहुर्भरतः पुरुषर्षभः । पदभ्यामेव महातेजाः प्रविवेश महद्वनम् ॥ १४ ॥
स तानि द्रुमजालानि जातानि गिरिसानुषु । पुष्पिताग्राणि मध्येन जगाम वदतां वरः ॥ १५ ॥
स गिरेश्चित्रकूटस्य सालमारुह्य सत्वरम् । रामाश्रमगतस्याग्नेर्ददर्श ध्वजमुच्छ्रितम् ॥ १६ ॥

तब भरत अपने भाई शत्रुघ्नसे इस प्रकार बोले ॥२॥ सौम्य, बहुतसे आदमियोंको और व्याधोंको साथ लेकर तुम शीघ्रही इस वनको ढूँढ़ डालो ॥ ३ ॥ धनुष बाण धारण करनेवाले अपने हजारों बान्धवोंके साथ गुह भी इस वनमें राम और लक्ष्मणको ढूँढ़े ॥४॥ सचिवों, नगरवासियों, गुरुओं तथा ब्राह्मणोंके साथ मैं भी इस समस्त वनमें पैदल परिभ्रमण करूँगा ॥ ५ ॥ जबतक रामको, महाबली लक्ष्मणको अथवा महाभागा सीताको मैं न देखूंगा, तब तक मुझे शान्ति न मिलेगी ॥६॥ जब तक अपने भाईका कमलके समान लम्बी आँखवाला और चन्द्रमाके समान मुख न देखूंगा तब तक मुझे शान्ति न मिलेगी ॥७॥ लक्ष्मणका ही मनोरथ पूरा हुआ जो चन्द्रमाके समान सुन्दर कमलाक्ष और महाद्युति रामचन्द्रका मुंह देखता है ॥ ८ ॥ राजाके चिह्नोंसे युक्त भाईके चरणोंको सिरसे जबतक प्रणाम न करूंगा, तब तक मुझे शांति न मिलेगी ॥९॥ जब तक राज्य पानेके योग्य रामचन्द्र पिता, पितामहोंके राज्यपर स्थित न होंगे, जबतक वे अभिषेकके जलसे न भीगेंगे, तब तक मुझे शान्ति न मिलेगी ॥१०॥ जनककी पुत्री महाभागा वैदेही कृतार्थ हुई, जो सागर पर्य्यन्त पृथिवीके स्वामी पतिका अनुगमन करती हैं ॥ ११ ॥ यह चित्रकूट पर्वत बड़ा ही सुन्दर है, गिरिराजके समान है, जिसमें रामचन्द्र निवास करते हैं, जिस प्रकार कुबेर आनन्द देनेवाले चैत्ररथमें निवास करते हैं ॥ १२ ॥॥ हिंस्र जन्तुओंसे सेवित यह दुर्गम वन भी कृतार्थ हो गया; क्योंकि श्रेष्ठ शस्त्रधारी, महाराज इसमें निवास करते हैं ॥ १३ ॥ महाबाहु, पुरुषश्रेष्ठ, महातेजस्वी भरतने ऐसा कहकर उस भयानक वनमें प्रवेश किया ॥ १४ ॥ पर्वत शिखरपर उत्पन्न पुष्पित वृक्षोंके मध्यसे वे चले ॥ १५ ॥ चित्रकूट पर्वतके एक साल वृक्षपर शीघ्र चढ़कर भरतने रामचन्द्रके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तं दृष्ट्वा भरतः श्रीमान्मुमोद सहबान्धवः । अत्र राम इति ज्ञात्वा गतः पारमिवाम्भसः॥१७॥
स चित्रकूटे तु गिरौ निशम्य रामाश्रमं पुण्यजनोपपन्नम् ।
गुहेन सार्धं त्वरितो जगाम पुनर्निवेश्यैव चमूं महात्मा ॥१८॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डेऽष्टनवतितमः सर्गः ॥९८॥

नवनवतितमः सर्गः ९९

निविष्टायां तु सेनायामुत्सुको भरतस्ततः । जगाम भ्रातरं द्रष्टुं शत्रुघ्नमनुदर्शयन् ॥ १ ॥
ऋषिं वसिष्ठं संदिश्य मातॄर्मे शीघ्रमानय । इति त्वरितमग्रे स जगाम गुरुवत्सलः ॥ २ ॥
सुमन्त्रस्त्वपि शत्रुघ्नमदूरादन्वपद्यत । रामदर्शनजस्तर्षो भरतस्येव तस्य च ॥ ३ ॥
गच्छन्नेवाथ भरतस्तापसालयसंस्थिताम् । भ्रातुः पर्णकुटीं श्रीमानुटजं च ददर्श ह ॥ ४ ॥
शालायास्त्वग्रतस्तस्या ददर्श भरतस्तदा । काष्ठानि चावभग्नानि पुष्पाण्यपचितानि च ॥ ५ ॥
स लक्ष्मणस्य रामस्य ददर्शाश्रममेयुषः । कृतं वृक्षेष्वभिज्ञानं कुशचीरैः क्वचित्क्वचित् ॥ ६ ॥
ददर्श भवने तस्मिन्महतः संचयान्कृतान् । मृगाणां महिषाणां च करीषैः शीतकारणात् ॥ ७ ॥
गच्छन्नेव महाबाहुर्द्युतिमान्भरतस्तदा । शत्रुघ्नं चाब्रवीद्धृष्टस्तानमात्याँश्च सर्वशः ॥ ८ ॥

आश्रमकी अग्निसे निकलते हुए धूएँको देखा ॥ १६ ॥ उस धूमको देखकर अपने भाईके साथ भरत बहुत ही प्रसन्न हुए । रामचन्द्र यहीं है यह जानकर उन्हे अथाह समुद्रसे पार जानेके समान आनंद हुआ ॥ १७ ॥ तपस्वियोंसे युक्त रामचन्द्रका वह आश्रम भरतने चित्रकूटपर देखा । ढूँढनेके लिए साथ आयी हुई सेनाको ठहराकर महात्मा भरत गुहके साथ उनके आश्रममें गये ॥ १८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका अट्ठानवेवां सर्ग समाप्त ॥ ९८ ॥

सेनाके वहीं ठहर जानेपर उत्सुक भरत शत्रुघ्नको रामचन्द्रके आश्रमके चिन्होंको बतलाते हुए, उनको देखनेके लिए चले ॥ १ ॥ अपनी माताओंको शीघ्र ले आनेके लिए वशिष्ठ ऋषिके यहाँ सन्देशा भेजकर गुरुप्रिय भरत शीघ्रतापूर्वक आगे चले ॥ २ ॥ सुमन्त्र भी शत्रुघ्नके थोड़ीही दूर पीछे दौड़ते हुए चले, ये भी रामचन्द्रको देखनेके लिए भरतके समानही उत्कण्ठित थे ॥ ३ ॥ जाते हुए तपस्वियोंके महल्लेमें बनायी गयी, अपने भाईकी पर्णकुटी (अग्निशाला) और उटज (सोने या मिलनेका घर) भरतने देखा ॥ ४ ॥ पर्णशालाके आगे तोड़ी हुई छोटी-छोटी लकड़ियाँ देखीं और सूखे हुए फूल देखे ॥ ५ ॥ लक्ष्मण और रामने अपने आश्रमको पहिचाननेके लिए वृक्षोंमें कहीं-कहीं कुश तथा वस्त्रके टुकड़ेसे चिन्ह बना रखे थे, उन्हें भरतने देखा ॥ ६ ॥ उस घरमें मृगों और महिषोंके गोबरकी बहुत बड़ी ढेर—जो सर्दी दूर करनेके लिए रखी गयी थी—देखी ॥७॥ चलते-चलते ही महाबाहु, द्युतिमान् भरतने प्रसन्न होकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मन्ये प्राप्ताः स्म तं देशं भरद्वाजो यमब्रवीत् । नातिदूरे हि मन्येऽहं नदीं मन्दाकिनीमितः ॥ ९ ॥
उच्चैर्बद्धानि चीराणि लक्ष्मणेन भवेदयम् । अभिज्ञानकृतः पन्था विकाले गन्तुमिच्छता ॥१०॥
इतश्चोदात्तदन्तानां कुञ्जराणां तपस्विनाम् । शैलपार्श्वे परिक्रान्तमन्योन्यमभिगर्जताम् ॥११॥
यमेवाधातुमिच्छन्ति तापसाः सततं वने । तस्यासौ दृश्यते धूमः संकुलः कृष्णवर्त्मनः ॥१२॥
अत्राहं पुरुषव्याघ्रं गुरुसत्कारकारिणम् । आर्यं द्रक्ष्यामि संहृष्टं महर्षिमिव राघवम् ॥१३॥
अथ गत्वा मुहूर्तं तु चित्रकूटं स राघवः । मन्दाकिनीमनुप्राप्तस्तं जनं चेदमब्रवीत् ॥१४॥
जगत्यां पुरुषव्याघ्र आस्ते वीरासने रतः । जनेन्द्रो निर्जनं प्राप्य धिङ्मे जन्म सजीवितम्॥१५॥
मत्कृते व्यसनं प्राप्तो लोकनाथो महाद्युतिः । सर्वान्कामान्परित्यज्य वने वसति राघवः ॥१६॥
इति लोकसमाक्रुष्टः पादेष्वद्य प्रसादयन् । रामं तस्य पतिष्यामि सीताया लक्ष्मणस्य च ॥१७॥
एवं स विलपँस्तस्मिन्वने दशरथात्मजः । ददर्श महतीं पुण्यां पर्णशालां मनोरमाम् ॥१८॥
सालतालाश्वकर्णानां पर्णैर्बहुभिरावृताम् । विशालां मृदुविस्तीर्णां कुशैर्वेदिमिवाध्वरे ॥१९॥
शक्रायुधनिकाशैश्च कार्मुकैर्भारसाधनैः । रुक्मपृष्ठैर्महासारैः शोभितां शत्रुबाधकैः ॥२०॥
अर्करश्मिप्रतीकाशैर्घोरैस्तूणगतैः शरैः । शोभितां दीप्तवदनैः सर्पैर्भोगवतीमिव ॥२१॥

शत्रुघ्न तथा उन अमात्योंसे कहा ॥ ८ ॥ मालूम होता है कि भरद्वाज मुनिने जो स्थान बतलाया था, वहाँ हमलोग आगए, यहांसे थोड़ी ही दूर पर मन्दाकिनी नदी है, ऐसा मैं समझता हूँ ॥९॥ ये वृक्षोंपर ऊँचे कपड़े बधे हैं, लक्ष्मणने ये बांधे होंगे, जिससे रात-विरातमें जानेके समय मार्ग पहिचाना जा सके ॥ १० ॥ परस्पर गर्जनेवाले, बड़े दांतवाले वेगवान हाथियोंको जानेका पर्वत-के समीपमें यह मार्ग है ॥ ११ ॥ तपस्वी वनमें जिसको सदा स्थापित रखना चाहते हैं उस अग्नि-का यह घना धूआं दिखाई पड़ता है ॥ १२ ॥ अपने गुरुओंके सत्कार करनेवाले, पुरुषसिंह और प्रसन्न अपने बड़े भाई रामचन्द्रको महर्षिके वेषमें देखूंगा ॥ १३ ॥ थोड़ी देरमें मन्दाकिनी नदीके आगे चित्रकूटपर जाकर भरतने अपने अमात्यसे यह कहा ॥ १४ ॥ जनेन्द्र रामचन्द्र निर्जन बनमें वीरासनपर पृथिवीमें बैठे हुए हैं और मैं जीरहा हूँ, मुझे धिक्कार ॥ १५ ॥ मेरे कारणसे महाद्युति लोकनाथ रामचन्द्रको यह कष्ट प्राप्त हुआ है, जो ये सब अभिलाषाओंको छोड़कर बनमें निवास कर रहे हैं ॥ १६ ॥ लोग हमारी निन्दा कर रहे हैं, हम पैरोंपर पड़कर राम-चन्द्रको प्रसन्न करेंगे । रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीताके पैरोंपर मैं पड़ूँगा ॥ १७ ॥ दसरथपुत्र भरतने इस प्रकार विलाप करते हुए बहुत बड़ी और सुन्दर पर्णशाला उस वनमें देखी ॥ १८ ॥ साल ताल और अश्वकर्ण नामक वृक्षोंके बहुत पत्तोंसे वह विशाला पर्णशाला ढँकी हुई थी, जिस प्रकार यज्ञवेदी कुशोंसे ढँक दीजाती है ॥ १९ ॥ उसमें इन्द्रधनुषके समान धनुष रखे हुए थे, जो बहुत बड़े थे, जिनपर सोना चढ़ा हुआ था, जो बड़े मजबूत और शत्रुओंको नष्ट करनेवाले थे ॥ ॥ २० ॥ तरकशमें रखे हुए बाण सूर्यकी किरणोंके समान चमकते थे और वे बड़े भयानक थे, उनके सिरे चमक रहे थे, वह पर्णशाला ऐसे बाणोंसे शोभती थी, जिस प्रकार सर्पोंके द्वारा भोग-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महारजतवासोभ्यामसिभ्यां च विराजिताम्। रुक्मबिन्दुविचित्राभ्यां चर्मभ्यां चापि शोभिताम्॥२२॥
गोधाङ्गुलित्रैरासक्तैश्चित्रकाञ्चनभूषितैः । अरिसंघैरनाधृष्यां मृगैः सिंहगुहामिव ॥२३॥
प्रागुदक्प्रवणां वेदिं विशालां दीप्तपावकाम् । ददर्श भरतस्तत्र पुण्यां रामनिवेशने ॥२४॥
निरीक्ष्य स मुहूर्तं तु ददर्श भरतो गुरुम् । उटजे राममासीनं जटामण्डलधारिणम् ॥२५॥
कृष्णाजिनधरं तं तु चीरवल्कलवाससम् । ददर्श राममासीनमभितः पावकोपमम् ॥२६॥
सिंहस्कन्धं महाबाहुं पुण्डरीकनिभेक्षणम् । पृथिव्याः सागरान्ताया भर्तारं धर्मचारिणम्॥२७॥
उपविष्टं महाबाहुं ब्रह्माणमिव शाश्वतम् । स्थण्डिले दर्भसंस्तीर्णे सीतया लक्ष्मणेन च ॥२८॥
तं दृष्ट्वा भरतः श्रीमान्दुःखमोहपरिप्लुतः । अभ्यधावत धर्मात्मा भरतः केकयीसुतः ॥२९॥
दृष्ट्वैव विललापार्तो वाष्पसंदिग्धया गिरा । अशक्नुवन्वारयितुं धैर्याद्वचनमब्रुवन् ॥३०॥
यः संसदि प्रकृतिभिर्भवेद्युक्त उपासितुम् । वन्यैर्मृगैरुपासीनः सोऽयमास्ते ममाग्रजः ॥३१॥
वासोभिर्बहुसाहस्रैर्यो महात्मा पुरोचितः । मृगाजिने सोऽयमिह प्रवस्ते धर्ममाचरन् ॥३२॥
अधारयद्यो विविधाश्चित्राः सुमनसः सदा । सोऽयं जटाभारमिमं सहते राघवः कथम् ॥३३॥
यस्य यज्ञैर्यथादिष्टैर्युक्तो धर्मस्य संचयः । शरीरक्लेशसंभूतं स धर्मं परिमार्गते ॥३४॥

वती नगरी शोभती है ॥ २१ ॥ सोनेकी म्यानमें रखी हुई दो तलवारें उस पर्णशालामें थीं, सोनेकी दो ढालें भी थीं, जो सोनेकी बिंदुसे चित्रित हो रही थीं ॥२२॥ गोधा (हस्तरक्षक) अंगुलि-त्राण आदि वहां रखे हुए थे और वे सोनेसे मढ़े हुए थे। उस पर्णशालामें शत्रुओंका प्रवेश असम्भव था, जिस प्रकार सिंहकी गुहामें मृगोंका प्रवेश असम्भव होता है ॥ २३ ॥ भरतने रामचन्द्रके उस पवित्र पर्णशालामें बहुत बड़ी एक वेदी देखी, जो ईशान कोणकी ओर कुछ नीची थी और जिस पर आग जल रही थी ॥ २४ ॥ वेदी देखनेके थोड़ी देरके बाद उटजमें बैठे हुए जटामण्डल-धारी रामचन्द्रको देखा ॥ २५ ॥ रामचन्द्र चीर वल्कल पहने हुए थे और कृष्णमृगचर्म ओढ़े हुए थे। वे बैठे हुए थे। अग्निके समान तेजस्वी रामचन्द्रको भरतने देखा ॥ २६ ॥ जिन महाबाहु रामचन्द्रके कन्धे सिंहके समान हैं, आंखें कमलके समान हैं, जो धर्मचारी रामचन्द्र सागरपर्यन्त पृथिवीके स्वामी हैं, वे कुश बिछे हुए चौतरेपर सीता और लक्ष्मणके साथ शाश्वत ब्रह्माके समान बैठे हुए हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ उनको इस अवस्थामें देखकर केकयीपुत्र धर्मात्मा भरत शोक और मोहसे व्याकुल होगये, और वे उनकी ओर दौड़े ॥ २९ ॥ रामचन्द्रको देखतेही भरत दुखी हो गये, वे टूटती हुई आवाजमें विलाप करने लगे, वे दुखको रोक नहीं सके। पुनः धैर्य धारण कर वे बोले, ॥ ३० ॥ जो सभामें राजकर्मचारियों और प्रजाओंके द्वारा उपासना करने के योग्य है, वह मेरा बड़ा भाई जंगली पशुओंसे उपासित हो रहा है ॥ ३१ ॥ जो महात्मा पहले कई हजारोंके वस्त्र धारण करते थे, वे आज धर्माचरण करते हुए दो मृगचर्म धारण कर रहे हैं॥ ३२ ॥ जिन्होंने सदा अनेक प्रकारकी सुन्दर पुष्पमालाएँ धारण की हैं, वे रामचन्द्र आज इस जटाभारको कैसे सह रहे हैं ॥३३॥ जिनके धर्माचरणके लिए पहले ऋत्विक्लोग विधिपूर्वक यज्ञ करते थे, वे ही आज स्वयं कष्ट उठाकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चन्दनेन महार्हेण यस्याङ्गमुपसेवितम् । मलेन तस्याङ्गमिदं कथमार्यस्य सेव्यते ॥३५॥
मन्निमित्तमिदं दुःखं प्राप्तो रामः सुखोचितः । धिग्जीवितं नृशंसस्य मम लोकविगर्हितम् ॥३६॥
इत्येवं विलपन्दीनः प्रस्विन्नमुखपङ्कजः । पादावप्राप्य रामस्य पपात भरतो रुदन् ॥३७॥
दुःखाभितप्तो भरतो राजपुत्रो महाबलः । उक्त्वार्येति सकृद्दीनं पुनर्नोवाच किंचन ॥३८॥
बाष्पैः पिहितकण्ठश्च प्रेक्ष्य रामं यशस्विनम् । आर्येत्येवाभिसंक्रुश्य व्याहर्तुं नाशकत्ततः ॥३९॥
शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववन्दे चरणौ रुदन् । तावुभौ च समालिङ्ग्य रामोऽप्यश्रूण्यवर्तयत् ॥४०॥

ततः सुमन्त्रेण गुहेन चैव समीयतू राजसुतावरण्ये ।
दिवाकरश्चैव निशाकरश्च यथाम्बरे शुक्रबृहस्पतिभ्याम् ॥४१॥
तान्पार्थिवान्वारणयूथपार्हान्समागतांस्तत्र महत्यरण्ये ।
वनौकसस्तेऽभिसमीक्ष्य सर्वे त्वश्रूण्यमुञ्चन्प्रविहाय हर्षम् ॥४२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे नवनवतितमः सर्गः ॥ ९९ ॥

शततमः सर्गः १००

जटिलं चीरवसनं प्राञ्जलिं पतितं भुवि । ददर्श रामो दुर्दर्शं युगान्ते भास्करं यथा ॥ १ ॥
कथंचिदभिविज्ञाय विवर्णवदनं कृशम् । भ्रातरं भरतं रामः परिजग्राह पाणिना ॥ २ ॥

धर्मार्जन कर रहे हैं ॥३४॥ जिनके अंगोंमें सदा दामी चन्दनका लेप किया जाता था, आज उन्हीं आर्य रामचन्द्रके अंग मलिन हो रहे हैं ॥ ३५ ॥ सुखके अभ्यासी रामचन्द्र मेरेही कारण यह दुःख उठा रहे हैं। मुझ क्रूरके लोकनिन्दित इस जीवनको धिक्कार ! ॥ ३६ ॥ इसप्रकार दुखी भरत विलाप करने लगे, उनका मुँह पसीनेसे भर गया। रामचन्द्रके पैर न पा सके और वे रोते-रोते पृथिवीपर गिर पड़े ॥ ३७ ॥ महाबली राजपुत्र भरतने दुखसे व्याकुल होकर एकबार दीनता-पूर्वक 'आर्य' कहा, इसके बाद वे कुछ नहीं कह सके ॥३८॥ यशस्वी रामचन्द्रको देखनेसे भरत-को गला भर गया, वे इसी प्रकार "आर्य" इतनाही कह सके। इसके बाद वे कुछ भी नहीं बोल सके ॥ ३९ ॥ शत्रुघ्नने रोते हुए रामचन्द्रके चरणोंको प्रणाम किया। उन दोनोंका आलिंगन कर रामचन्द्र भी आँसू बहाने लगे ॥४०॥ राजपुत्र राम और लक्ष्मण उस वनमें सुमन्त्रसे मिले। जिस प्रकार आकाशमें सूर्य और चन्द्रमा, शुक्र और बृहस्पतिसे मिलते हैं ॥ ४१ ॥ हाथियोंपर चलनेके योग्य उन राजपुत्रोंको महावनमें आये देखकर वनवासियोंकी प्रसन्नता जाती रही, वे भी आंसू बहाने लगे ॥ ४२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका निनानवेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९९ ॥

जटा चीर और वस्त्र धारण किये हुए, हाथ जोड़कर जमीनमें पड़े हुए, प्रलयकालीन सूर्यके समान देखनेके अयोग्य भरतको रामचन्द्रने देखा ॥ १ ॥ उनका मुंह सूख गया था, वे दुबले हो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आघ्राय रामस्तं मूर्ध्नि परिष्वज्य च राघवम् । अङ्के भरतमारोप्य पर्यपृच्छत सादरम् ॥ ३ ॥
क नु तेऽभूत्पिता तात यदरण्यं त्वमागतः । न हि त्वं जीवतस्तस्य वनमागन्तुमर्हसि ॥ ४ ॥
चिरस्य वत पश्यामि दूराद्भरतमागतम् । दुष्प्रतीकमरण्येऽस्मिन्किं तात वनमागतः ॥ ५ ॥
कच्चिन्नु धरते तात राजा यत्त्वमिहागतः । कच्चिन्न दीनः सहसा राजा लोकान्तरं गतः ॥ ६ ॥
कच्चित्सौम्य न ते राज्यं भ्रष्टं बालस्य शाश्वतम् । कच्चिच्छुश्रूषसे तात पितुः सत्यपराक्रम ॥ ७ ॥
कच्चिद्दशरथो राजा कुशली सत्यसंगरः । राजसूयाश्वमेधानामाहर्ता धर्मनिश्चितः ॥ ८ ॥
स कच्चिद्ब्राह्मणो विद्वान्धर्मनित्यो महाद्युतिः । इक्ष्वाकूणामुपाध्यायो यथावत्तात पूज्यते ॥ ९ ॥
तात कच्चिच्च कौसल्या सुमित्रा च प्रजावती । सुखिनी कच्चिदार्या च देवी नन्दति कैकयी ॥१०॥
कच्चिद्विनयसंपन्नः कुलपुत्रो बहुश्रुतः । अनसूयुरनुद्रष्टा सत्कृतस्ते पुरोहितः ॥११॥
कच्चिदग्निषु ते युक्तो विधिज्ञो मतिमानृजुः । हुतं च होष्यमाणं च काले वेदयते सदा ॥१२॥
कच्चिदेवान्पितॄन्भृत्यान्गुरूनपितृसमानपि । वृद्धांश्च तात वैद्यांश्च ब्राह्मणांश्चाभिमन्यसे ॥१३॥
इष्वस्त्रवरसम्पन्नमर्थशास्त्रविशारदम् । सुधन्वानमुपाध्यायं कच्चित्त्वं तात मन्यसे ॥१४॥
कच्चिदात्मसमाः शूराः श्रुतवन्तो जितेन्द्रियाः । कुलीनाश्चेङ्गितज्ञाश्च कृतास्ते तात मन्त्रिणः ॥१५॥
मन्त्रो विजयमूलं हि राज्ञां भवति राघव । सुसंवृतो मन्त्रिधुरैरमात्यैः शास्त्रकोविदैः ॥१६॥

गये थे, रामचन्द्रने किसी तरह उन्हें पहिचाना और अपने हाथोंसे उठाया ॥ २ ॥ रामचन्द्रने भरतका आलिंगन किया, उनका माथा सूँघा और उन्हें गोदमें बैठाकर आदरपूर्वक उनसे पूछने लगे ॥ ३ ॥ भाई, तुम्हारे पिता कहाँ गये, जो तुम आज इस वनमें आये हो । उनके जीते जी तुम तो इस वनमें नहीं आ सकते थे ॥ ४ ॥ बहुत दूरसे आये हुए, बहुत दिनोंपर मैं आज तुम्हें देख रहा हूँ । भाई, इस भूलभुलैया वनमें तुम क्यों आये ॥ ५ ॥ क्या दुखी राजा जीते हैं, या सहसा परलोक चले गये और तुम यहाँ वनमें आये हो ॥ ६ ॥ सौम्य, तुम बालक हो, इस लिये तुम्हारा राज्य तो कहीं नष्ट नहीं हो गया है, प्रजा विद्रोही तो नहीं हो गयी है, सत्यपराक्रम पिताकी सेवा करते हो ॥ ७ ॥ धर्मपर आस्था रखनेवाले, राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञ करनेवाले, सत्यप्रतिज्ञ राजा दसरथ कुशलसे तो हैं ॥ ८ ॥ भाई, इक्ष्वाकुवंशके आचार्य विद्वान, धर्ममें दृढ़ रहनेवाले, महाद्युति वसिष्ठ तुम्हारे द्वारा पूजित तो होते हैं ॥ ९ ॥ तात, कौशल्या, सुपुत्रा सुमित्रा तथा आर्या देवी केकयी प्रसन्न तो हैं ? ॥१०॥ विनयी, महाकुलीन, बहुश्रुत अनसूयू, तथा सब कर्म करनेमें निपुण अपने पुरोहितका तुमने सत्कार तो किया है ? ॥११॥ तुमने हवनकी सब विधियोंके जाननेवाले जिस बुद्धिमान् और विनयी पुरोहितको अग्निकार्यके लिए नियुक्त किया है, वह हवन करनेके बाद और हवन करनेके पहले तुमको सूचित तो करता है ? ॥१२॥ भाई, देवता, पितर, भृत्य और पिताके समान पूज्य गुरु, वृद्ध, वैद्य और ब्राह्मणोंका सत्कार करते हो ? ॥ १३ ॥ धनुर्विद्या और अर्थशास्त्रके प्रवीणज्ञाता, उपाध्याय सुधन्वाका तो तुम सत्कार करते हो ? ॥१४॥ अपने समान विश्वसनीय शूर, विद्वान्, जितेंद्रिय, कुलीन और अभिप्राय समझनेवालेको अपना मन्त्री बनाया है न ? ॥ १५ ॥ मन्त्र राजाओंकी विजयका मूल है, इसी कारण शास्त्रज्ञ और मन्त्र-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कच्चिन्निद्रावशं नैषि कच्चित्कालेऽवबुध्यसे । कच्चिच्चापररात्रेषु चिन्तयस्यर्थनैपुणम् ॥१७॥
कच्चिन्मन्त्रयसे नैकः कच्चिन्न बहुभिः सह । कच्चित्ते मन्त्रितो मन्त्रो राष्ट्रं न परिधावति॥१८॥
कच्चिदर्थं विनिश्चित्य लघुमूलं महोदयम् । क्षिप्रमारभसे कर्म न दीर्घयसि राघव ॥१९॥
कच्चिन्नु सुकृतान्येव कृतरूपाणि वा पुनः । विदुस्ते सर्वकार्याणि न कर्तव्यानि पार्थिवाः॥२०॥
कच्चिन्न तर्कैर्युक्त्या वा ये चाप्यपरिकीर्तिताः । त्वया वा तव वामात्यैर्बुध्यते तात मन्त्रितम् ॥२१॥
कच्चित्सहस्रैर्मूर्खाणामेकमिच्छसि पण्डितम् । पण्डितो ह्यर्थकृच्छ्रेषु कुर्यान्निःश्रेयसं महत् ॥२२॥
सहस्राण्यपि मूर्खाणां यद्युपास्ते महीपतिः । अथवाप्ययुतान्येव नास्ति तेषु सहायता ॥२३॥
एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दक्षो विचक्षणः । राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम् ॥२४॥
कच्चिन्मुख्या महत्स्वेव मध्यमेषु च मध्यमाः । जघन्याश्च जघन्येषु भृत्यास्ते तात योजिताः ॥२५॥
अमात्यानुपधातीतान्पितृपैतामहाञ्शुचीन् । श्रेष्ठाञ्छ्रेष्ठेषु कच्चित्त्वं नियोजयसि कर्मसु ॥२६॥
कच्चिन्नोग्रेण दण्डेन भृशमुद्वेजिताः प्रजाः । राष्ट्रे तवावजानन्ति मन्त्रिणः कैकयीसुत ॥२७॥
कच्चित्त्वां नावजानन्ति याजकाः पतितं यथा । उग्राप्रतिग्रहीतारं कामयानमिव स्त्रियः ॥२८॥

को गुप्त रखनेवाले मन्त्री राजाकी रक्षा करते हैं ॥ १६ ॥ बहुत सोते तो नहीं हो, समयपर उठ तो जाते हो, रातके पिछले पहरमें अपने कार्योंकी सिद्धिका उपाय तो सोचते हो ॥१७॥ किसी बातका निश्चय अकेले तो नहीं करते अथवा बहुत आदमियोंके साथ तो नहीं करते ? तुम्हारा निश्चित किया हुआ अर्थ लोगोंको मालूम तो नहीं हो जाता ॥ १८ ॥ जो उपाय तुम निश्चित करते हो और जो छोटा होनेपर बहुत बड़े फलको उत्पन्न करनेवाला होता है, उसका प्रारम्भ तुम शीघ्र ही कर देते हो न, विलम्ब तो नहीं करते ? ॥ १९ ॥ सामन्त राजा तुम्हारे निश्चित समस्त कार्योंको सिद्ध होनेपर या सिद्ध होनेके कुछ पहले जानते हैं न । कहीं ऐसा तो नहीं होता कि जो तुम कार्य करना चाहते हो, उसका ज्ञान राजाओंको हो जाता हो ॥ २० ॥ तुम्हारे निश्चित विषयोंको तुम्हारे या मन्त्रियोंके बिना कहे भी, दूसरे तर्क और युक्तिके द्वारा, जान तो नहीं जाते और तुम तथा तुम्हारे अमात्य दूसरोंके निश्चित किये हुए विषयोंको युक्ति और तर्कके द्वारा जान लेते तो हैं न ॥ २१ ॥ हजारों मूर्खोंको छोड़कर एक पण्डितको रखना तुम पसन्द करते हो न; क्योंकि संकटके समय पण्डितसे बहुत बड़ा कल्याण होता है ॥ २२ ॥ यदि राजा हजार अथवा दशहजार मूर्खोंको रखे, फिर भी अवसरपर उनसे कुछ लाभ नहीं हो सकता ॥ २३ ॥ मेधावी, सूर और नीतिनिपुण एकही अमात्य राजा या राजपुत्रको बहुत बड़ी लक्ष्मी प्राप्त करा सकता है ॥ २४ ॥ तात, बडे कामोंपर बड़े, मध्यम कामोंपर मध्यम और छोटे कामोंपर छोटे भृत्य-को नियुक्त किया है न ॥ २५ ॥ बड़े-बड़े कामोंमें सुपरीक्षित शुद्ध, पिता पितामहसे आये हुए श्रेष्ठ अमात्योंको उत्तम कामोंमें तुम नियुक्त करते हो न ॥ २६ ॥ तुम्हारे उग्र दण्डसे उद्विग्न होकर, प्रजा और मन्त्री तुम्हारा तिरस्कार तो नहीं करते ॥ २७ ॥ यज्ञ करानेवाले, पतितके समान तुम्हारा तिरस्कार तो नहीं करते, जिस प्रकार मनुष्य उग्रा जातिकी स्त्रीको ग्रहण करनेवाले,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उपायकुशलं वैद्यं भृत्यं संदूषणे रतम् । शूरमैश्वर्यकामं च यो न हन्ति स हन्यते ॥२९॥
काच्चिद्धृष्टश्च शूरश्च धृतिमान्मतिमाञ्छुचिः । कुलीनश्चानुरक्तश्च दक्षः सेनापतिः कृतः ॥३०॥
बलवन्तश्च काच्चित्ते मुख्या युद्धविशारदाः । दृष्टापदाना विक्रान्तास्त्वया सत्कृत्य मानिताः॥३१॥
काच्चिद्बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम् । संप्राप्तकालं दातव्यं ददासि न विलम्बसे ॥३२॥
कालातिक्रमणे ह्येव भक्तवेतनयोर्भृताः । भर्तुरप्यति कुप्यन्ति सोऽनर्थः सुमहान्कृतः ॥३३॥
काच्चित्सर्वेऽनुरक्तास्त्वां कुलपुत्राः प्रधानतः । काच्चित्प्राणांस्तवार्थेषु संत्यजन्ति समाहिताः॥३४॥
कच्चिज्ज्ञानपदो विद्वान्दक्षिणः प्रतिभानवान् । यथोक्तवादी दूतस्ते कृतो भरत पण्डितः ॥३५॥
कच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षे दश पञ्च च । त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सि तीर्थानि चारणैः ॥३६॥
काच्चिद्व्यपास्तानहितान्प्रतियातांश्च सर्वदा । दुर्बलाननवज्ञाय वर्तसे रिपुसूदन ॥३७॥
कच्चिन्न लोकायतिकान्ब्राह्मणांस्तात सेवसे । अनर्थकुशला ह्येते बालाः पण्डितमानिनः ॥३८॥

तथा परस्त्रियोंकी कामना करनेवाले, मनुष्यका वध करते हैं ॥ २८ ॥ जो राजा साम आदि उपायोंके करनेमें निपुण, आप्त भृत्योंको भड़कानेमें लगे हुए शूर तथा धन चाहनेवाले वैद्यका वध नहीं करता है, वह राजा ही खुद मारा जाता है ॥ २९ ॥ तुमने जिसको सेनापति बनाया है, वह तुमसे प्रसन्न तो है, शूर, वीर, धीर, और बुद्धिमान तो है, कुलीन, तुममें प्रेम रखनेवाला और दक्ष तो है ॥३०॥ तुम्हारे सेनाके मुख्य योद्धा बली हैं न ? उनकी वीरताकी परीक्षा करली गयी है न, विक्रमी तो हैं और तुम उनका सत्कार तो करते हो ॥ ३१ ॥ सेनाको उचित भोजन और प्रतिमास वेतन देना चाहिए, तुम देते हो न, विलम्ब तो नहीं करते ॥ ३२ ॥ भोजन और वेतनपर जो सैनिक नियत हैं, उनको समयपर यदि अन्न और वेतन न दिया जाय तो वे अपने स्वामीपर ही असन्तुष्ट हो जाते हैं, और उससे बड़ा अनर्थ हो जाता है ॥ ३३ ॥ तुम्हारे कुलके प्रधान मनुष्य तुमपर अनुराग रखते हैं न, और तुम्हारे कार्योंके लिए सावधान होकर प्राण त्याग करनेके लिए उद्यत रहते हैं न ॥ ३४ ॥ भरत, अपने राज्यमें रहनेवाला समर्थ, प्रत्युत्पन्नमति और जैसा कहा जाय वैसा ही कहनेवाले पण्डितको तुमने अपना दूत बनाया है न ॥ ३५ ॥ भरत, परस्पर तथा दूसरेके द्वारा अज्ञात तीन-तीन गुप्त दूतोंके द्वारा अपने राज्यके पन्द्रह तीर्थ तथा परराज्यके अट्ठारह तीर्थोंका ज्ञान रखते हो न (१ मन्त्री, २ पुरोहित, ३ युवराज, ४ सेनापति, ५ द्वारपाल, ६ रनिवासका अध्यक्ष, ७ जेलका दरोगा, ८ खजाञ्ची, ९ राजाकी आज्ञा सुनानेवाला, १० वकील, ११ न्यायकर्ता, १२ व्यवहार निर्णेता (जूरी), १३ सेनासे तनख्वाह पानेवाला दानाध्यक्ष, १४ ठीकादार, १५ नगराध्यक्ष, १६ राष्ट्रान्तःपाल, १७ दुष्टोंको दण्ड देनेवाला, १८ जल, गिरि, वन, दुर्गस्थलपालक ये अट्ठारह तीर्थ हैं । मन्त्री, पुरोहित और युवराजके अलग कर देने पर ये पन्द्रह बचते हैं । राजनीतिमें ये ही अट्ठारह और पन्द्रह तीर्थ कहे जाते हैं) ॥ ३६ ॥ हे रिपुसूदन, जिस शत्रुको तुमने निकाल दिया है और वह यदि तुम्हारे यहाँ पुनः चला आता है तो दुर्बल समझकर तुम उसकी उपेक्षा तो नहीं करते ॥ ३७ ॥ नास्तिक ब्राह्मणोंका साथ तो तुम नहीं करते, ये अज्ञानी हैं, पर अपनेको पण्डित समझते हैं, इनसे बहुतसी बुराई

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धर्मशास्त्रेषु मुख्येषु विद्यमानेषु दुर्बुधाः । बुद्धिमान्वीक्षिकीं प्राप्य निरर्थं प्रवदन्ति ते ॥३९॥
वीरैरध्युषितां पूर्वमस्माकं तात पूर्वकैः । सत्यनामां दृढद्वारां हस्त्यश्वरथसंकुलाम् ॥४०॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः स्वकर्मनिरतैः सदा । जितेन्द्रियैर्महोत्साहैर्वृतामार्यैः सहस्रशः ॥४१॥
प्रासादैर्विविधाकारैर्वृतां वैद्यजनाकुलाम् । कच्चित्समुदितां स्फीतामयोध्यां परिरक्षसे ॥४२॥
कच्चिच्चैत्यशतैर्जुष्टः सुनिविष्टजनाकुलः । देवस्थानैः प्रपाभिश्च तटाकैश्चोपशोभितः ॥४३॥
प्रहृष्टनरनारीकः समाजोत्सवशोभितः । सुकृष्टसीमापशुमान्हिंसाभिरभिवर्जितः ॥४४॥
अदेवमातृको रम्यः श्वापदैः परिवर्जितः । परित्यक्तो भयैः सर्वैः खनिभिश्चोपशोभितः॥४५॥
विवर्जितो नरैः पापैरस्माभिः पूर्वैः सुरक्षितः । कच्चिज्जनपदः स्फीतः सुखं वसति राघव ॥४६॥
कच्चित्ते दयिताः सर्वे कृषिगोरक्ष्यजीविनः । वार्तायां सांप्रतं तात लोकोऽयं सुखमेधते ॥४७॥
तेषां गुप्तिपरीहारैः कच्चित्ते भरणं कृतम् । रक्ष्या हि राज्ञा धर्मेण सर्वे विषयवासिनः ॥४८॥
कच्चित्स्त्रियः सान्त्वयसे कच्चित्तास्ते सुरक्षिताः। कच्चिन्न श्रद्दधास्यासां कच्चिद्गुह्यं न भाषसे ॥४९॥
कच्चिन्नागवनं गुप्तं कच्चित्ते सन्ति धेनुकाः । कच्चिन्न गणिकाश्वानां कुञ्जराणां च तृप्यसि ॥५०॥
कच्चिदर्शयसे नित्यं मानुषाणां विभूषितम् । उत्थायोत्थाय पूर्वाह्णे राजपुत्र महापथे ॥५१॥

होती है ॥ ३८ ॥ ये वैदिक मार्गसे उलटे चलनेवाले, प्रामाणिक धर्मशास्त्रोंके रहते हुए भी शुष्क तार्किक बुद्धिकी सहायतासे अर्थहीन उपदेश करते हैं ॥ ३९ ॥ तात, हमलोगोंके वीर पूर्वजोंकी निवासभूमि, यथार्थ नाम और दृढ़ द्वारवाली, हाथी घोड़े और रथसे भरी हुई, अपने-अपने कर्ममें निरत, जितेन्द्रिय उत्साही और श्रेष्ठ हजारों ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंसे युक्त, अनेक आकारवाले प्रसादोंसे युक्त और वैद्योंसे पूर्ण, भरी और विशाल अयोध्याकी रक्षा तो करते हो ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तुम्हारा वह राज्य सुखी तो है, जिसमें सैकड़ों देवस्थान हैं, काफी बस्ती है, देवस्थान, पौसाला, और तालाबसे जो शोभित है, जहाँके स्त्री-पुरुष प्रसन्न हैं, जहाँ सभाएँ और उत्सव हुआ करते हैं, जहाँ अच्छी खेती होती है, जहाँ अधिक पशु हैं, जहाँ किसी प्रकारकी हिंसा नहीं होती, जहाँ के वासी अपनी खेतीके लिए मेघ पर अवलम्बित नहीं रहते, जहाँ हिंस्र पशु नहीं हैं, जहाँ किसी भी प्रकारका भय नहीं है, जहां खानें हैं, जहाँ पापी मनुष्य नहीं हैं, जिसकी रक्षा हमारे पूर्वजोंने की है, वह सुन्दर राज्य-कोशल देश सुखी तो है ॥ ४३, ४४, ४५, ४६ ॥ कृषी और गोरक्षासे जीनेवाले वैश्य तुम्हारे प्रिय तो हैं ? व्यापारमें लगे हुए तुम्हारे राज्यके वासी सुखी तो हैं ॥ ४७ ॥ उनके इष्टकी प्राप्ति और अनिष्ट परिहारके द्वारा तुम उनका पालन तो करते हो, क्योंकि राज्यके समस्त वासियोंका पालन करना राजाका धर्म है ॥ ४८ ॥ तुम अपनी स्त्रियोंके अनुकूल तो रहते हो और उनकी रक्षा तो करते हो, उनकी बातों पर विश्वास तो नहीं करते, उनसे अपनी गुप्त बातें प्रकाशित तो नहीं करते ॥ ४९ ॥ हाथियोंकी उत्पत्तिके वनकी रक्षा तो करते हो. हाथियोंके पकड़नेकी हथिनियाँ सुखी तो हैं ? हथिनी, घोड़े और हाथियोंसे तुम तृप्त तो नहीं होते ॥ ५० ॥ तुम प्रतिदिन सजकर प्रातःकाल नगरनिवासियों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कच्चिन्न सर्वे कर्मान्ताः प्रत्यक्षास्तेऽविशङ्कया । सर्वे वा पुनरुत्सृष्टा मध्यमे वात्र कारणम् ॥५२॥
कच्चिदुदुर्गाणि सर्वाणि धनधान्यायुधोदकैः । यन्त्रैश्च प्रतिपूर्णानि तथा शिल्पिधनुर्धरैः ॥५३॥
आयस्ते विपुलः कच्चित्कच्चिदल्पतरो व्ययः । अपात्रेषु न ते कच्चित्कोषो गच्छति राघव ॥५४॥
देवतार्थे च पित्रर्थे ब्राह्मणाभ्यागतेषु च । योधेषु मित्रवर्गेषु कच्चिद्गच्छति ते व्ययः ॥५५॥
कच्चिदार्योऽपि शुद्धात्मा क्षारितश्चापकर्मणा । अदृष्टः शास्त्रकुशलैर्न लोभाद्ध्यते शुचिः ॥५६॥
गृहीतश्चैव पृष्टश्च काले दृष्टः सकारणः । कच्चिन्न मुच्यते चोरो धनलोभान्नरर्षभ ॥५७॥
व्यसने कच्चिदाढ्यस्य दुर्बलस्य च राघव । तानि पुत्रपशून्घ्नन्ति प्रीत्यर्थमनुशासतः ॥५९॥
कच्चिद्वृद्धांश्च बालांश्च वैद्यान्मुख्याश्चराघव । दानेन मनसा वाचा त्रिभिरेतैर्बुभूषसे ॥६०॥
कच्चिद्गुरूंश्च वृद्धांश्च तापसान्देवतातिथीन् । चैत्यांश्च सर्वान्सिद्धार्थान्ब्राह्मणांश्च नमस्यसि॥६१॥
कच्चिदर्थेन वा धर्ममर्थं धर्मेण वा पुनः । उभौ वा प्रीतिलोभेन कामेन न विबाधसे ॥६२॥
कच्चिदर्थं च कामं च धर्मं च जयतां वर । विभज्य काले कालज्ञ सर्वान्वरद सेवसे ॥६३॥
कच्चित्ते ब्राह्मणः शर्म सर्वशास्त्रार्थकोविदः । आशंसते महाप्राज्ञ पौरजानपदैः सह ॥६४॥
नास्तिक्यमनृतं क्रोधं प्रमादं दीर्घसूत्रताम् । अदर्शनं ज्ञानवतामालस्यं पञ्चवृत्तिताम् ॥६५॥

को अपना दरसन तो देते हो ॥ ५१ ॥ काम करनेवाले, अशंक होकर सदा तुम्हारे सामने तो नहीं होते, अथवा वे कभी तुम्हारे सामने आतेही नहीं, इनके सम्बन्धमें मध्यम मार्गही अच्छा है, न तो ये अधिक पास रखे जाँय और न बहुत दूर ॥ ५२ ॥ तुम्हारे सब किले धन, धान्य, अस्त्र, जल, यन्त्र-शिल्पी, तथा धनुर्धारी वीरोंसे भरे तो हैं ॥ ५३ ॥ तुम्हारी आमदनी तो अधिक है और खर्च कम, अपात्रोंमें तो तुम्हारा धन खर्च नहीं होता ॥ ५४ ॥ देवता, पितर, ब्राह्मण, अभ्यागत, वीर और मित्रोंहीके लिए न तुम्हारा धन खर्च होता है ॥ ५५ ॥ सदाचारी साधु पर यदि कोई अपराध लगता है तो शास्त्रज्ञाता पुरुषोंके द्वारा बिना विचार करायेही लोभसे दण्डित तो नहीं कर दिया जाता ॥ ५६ ॥ जो चोर पकड़ा गया है, पूछनेसे जिसके चोर होनेका प्रमाण मिल गया है, जो चोरी करते देखा गया है अथवा जिसके पास चोरीका माल मिला है, नरश्रेष्ठ, ऐसा चोर तुम्हारे राज्यमें तो छोड़ नहीं दिया जाता ॥ ५७ ॥ धनी हो या गरीब, यदि किसी अपराधका अपराधी हो तो तुम्हारे बहुश्रुत अमात्य धन लोभसे रहित होकर उसका विचार करते हैं न ॥५८॥ मिथ्या अपराधोंके द्वारा दण्डित, मनुष्योंके जो आँसू गिरते हैं, वे अपने भोग-विलासके लिए, राज्य करनेवाले राजाके पुत्र और पशुओंको नष्ट कर देते हैं ॥ ५९ ॥ वृद्धोंको दानसे, बालकोंको स्नेहसे और प्रधान वद्योंको वचनसे सत्कार तो करते हैं ॥ ६० ॥ गुरुओं, वृद्धों, देवता, तपस्वियों, अतिथियों, मार्गके पवित्र वृक्षों और तपस्यादिके द्वारा कृतार्थ ब्राह्मणोंको नमस्कार तो करते हो ॥ ६१ ॥ धर्मको अर्थसे और अर्थको धर्मसे बाधित तो नहीं करते, अथवा कामसे इन दोनोंको बाधित तो नहीं करते ॥ ६२ ॥ समयका विभाग करके अर्थ, धर्म और कामका यथायोग्य अनुष्ठान तो करते हो ॥ ६३ ॥ समस्त शास्त्रार्थज्ञाता ब्राह्मण प्रजाके साथ मिलकर तुम्हारे कल्याणकी कामना तो करते हैं ? ॥ ६४ ॥ राजाके चौदहों दोषोंका तुमने त्याग तो किया है ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकचिन्तनमर्थानामनर्थज्ञैश्च मन्त्रणम् । निश्चितानामनारम्भं मन्त्रस्यापरिरक्षणम् ॥६६॥
मङ्गलाद्यप्रयोगं च प्रत्युत्थानं च सर्वतः । कच्चित्त्वं वर्जयस्येतान्राजदोषांश्चतुर्दश ॥६७॥
दशपञ्चचतुर्वर्गान्सप्तवर्गं च तत्त्वतः । अष्टवर्गं त्रिवर्गं च विद्यास्तिस्रश्च राघव ॥६८॥
इन्द्रियाणां जयं बुद्ध्या षाड्गुण्यं दैवमानुषम् । कृत्यं विंशतिवर्गं च तथा प्रकृतिमण्डलम् ॥६९॥
यात्रा दण्डविधानं च द्वियोनी संधिविग्रहौ । कच्चिदेतान्महाप्राज्ञ यथावदनुमन्यसे ॥७०॥
मन्त्रिभिस्त्वं यथोद्दिष्टं चतुर्भिस्त्रिभिरेव वा । कच्चित्समस्तैर्व्यस्तैश्च मन्त्रं मन्त्रयसे बुध ॥७१॥
कच्चित्ते सफला वेदाः कच्चित्ते सफलाः क्रियाः । कच्चित्ते सफला दाराः कच्चित्ते सफलं श्रुतम् ॥७२॥
कच्चिदेषैव ते बुद्धिर्यथोक्ता मम राघव । आयुष्या च यशस्या च धर्मकामार्थसंहिता ॥७३॥
यां वृत्तिं वर्तते तातो यां च नः प्रपितामहः । तां वृत्तिं वर्तसे कच्चिद्या च सत्पथगा शुभा ॥७४॥
कच्चित्स्वादुकृतं भोज्यमेको नाश्नासि राघव । कच्चिदंशसमानेभ्यो मित्रेभ्यः संप्रयच्छसि ॥७५॥

राजा तु धर्मेण हि पालयित्वा महीपतिर्दण्डधरः प्रजानाम् ।
अवाप्य कृत्स्नां वसुधां यथावदितश्च्युतः स्वर्गमुपैति विद्वान् ॥७६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे शततमः सर्गः ॥१००॥

नास्तिकता, असत्य बोलना, क्रोध करना, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, सज्जनोंसे न मिलना, आलस्य, इन्द्रियोंके अधीन होना, अकेले राज्यकी बातोंका निश्चय करना, मूर्खोंसे सलाह लेना, निश्चित कार्योंको प्रारम्भ न करना, गुप्त बातोंको प्रकाशित करना, कार्यारम्भके पहले मांगलिक कृत्योंको न करना, सब शत्रुओंपर एक ही बार चढ़ाई कर देना, राजाओंके ये चौदह दोष हैं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ दसवर्ग, पंचवर्ग, सप्तवर्ग, चतुर्वर्ग, अष्टवर्ग और त्रिवर्ग इनकी ओर ठीक-ठीक तुम्हारा ध्यान तो है, और वार्ता, दण्डनीति और त्रयी इन विद्याओंकी ओर तुम्हारा ध्यान तो है ॥६८॥ बुद्धिके द्वारा इन्द्रियोंका जय, सन्धि-विग्रह, यान, आसन, द्वैध और आश्रय ये है षडगुण, देवता और मनुष्य-सम्बन्धी आपत्तियाँ, राजाके कर्तव्य, बीसवर्ग, तथा राज्य शत्रु पर चढ़ाई, आपराधीको दण्ड और सन्धि, विग्रह इनकी ओर तुम्हारा ध्यान ठीक-ठीक तो है ॥ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ शास्त्रानुसार, चार तीन मन्त्रियोंसे इन सबसे इकट्ठे या अलग-अलग सलाह लेते तो हो ॥ ७१ ॥ तुम्हारे वेद सफल तो हैं, अर्थात् उनके अनुसार तुम काम तो करते हो, तुम्हारी क्रियाएँ सफल तो हैं, तुम्हारी स्त्रियां और तुम्हारा ज्ञान सफल तो है ॥ ७२ ॥ भरत, जैसा मैंने कहा है, तुम्हरा निश्चय भी वैसा ही है क्या, क्योंकि यह मार्ग आयु और यश बढ़ानेवाला है, धर्म, अर्थ और कामके अनुकूल है ॥ ७३ ॥ पिताका जो व्यवहार है अथवा हमारे प्रपितामहका जो व्यवहार था, उसीपर चलते हो न, क्योंकि वही सत्पथ है और कल्याणकारी है ॥७४॥ सुस्वादु भोजन अकेले तो नहीं खाते, अधिक प्रेम होनेके कारण भोजन चाहनेवाले मित्रोंको भोजन तो देते हो न ॥ ७५ ॥ इस प्रकार धर्मानुसार दण्ड-धारण करनेवाला राजा प्रजाका पालन करके, समस्त पृथिवीपर अपना आधिपत्य स्थापित करके स्वर्गमें जाता है ॥ ७६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका सौवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०० ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकाधिकशततमः सर्गः १०१

तं तु रामः समाज्ञाय भ्रातरं गुरुवत्सलम् । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥ १ ॥
किमेतदिच्छेयमहं श्रोतुं प्रव्याहृतं त्वया । यस्मात्त्वमागतो देशमिमं चीरजटाजिनी ॥ २ ॥
यन्निमित्तमिमं देशं कृष्णाजिनजटाधरः । हित्वा राज्यं प्रविष्टस्त्वं तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥
इत्युक्तः कैकेयीपुत्रः काकुत्स्थेन महात्मना । प्रगृह्य बलवद्भूयः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥
आर्य तातः परित्यज्य कृत्वा कर्म सुदुष्करम् । गतः स्वर्गं महाबाहुः पुत्रशोकाभिपीडितः ॥ ५ ॥
स्त्रिया नियुक्तः कैकेय्या मम मात्रा परंतप । चकार सा महत्पापमिदमात्मयशोहरम् ॥ ६ ॥
सा राज्यफलमप्राप्य विधवा शोककर्शिता । पतिष्यति महाघोरे नरके जननी मम ॥ ७ ॥
तस्य मे दासभूतस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि । अभिषिञ्चस्व चाद्यैव राज्येन मघवानिव ॥ ८ ॥
इमाः प्रकृतयः सर्वा विधवा मातरश्च याः । त्वत्सकाशमनुप्राप्ताः प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ९ ॥
तथानुपूर्व्या युक्तश्च युक्तं चात्मनि मानद । राज्यं प्राप्नुहि धर्मेण सकामान्सुहृदः कुरु ॥ १० ॥
भवत्वविधवा भूमिः समग्रा पतिना त्वया । शशिना विमलेनेव शारदी रजनी यथा ॥ ११ ॥
एभिश्च सचिवैः सार्धं शिरसा याचितो मया । भ्रातुः शिष्यस्य दासस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ १२ ॥
तदिदं शाश्वतं पित्र्यं सर्वं सचिवमण्डलम् । पूजितं पुरुषव्याघ्र नातिक्रमितुमर्हसि ॥ १३ ॥

गुरुभक्त भाईको स्वस्थ बैठे जानकर रामचन्द्रने भाई लक्ष्मणके साथ पुनः उनसे पूछा ॥ १ ॥ हमलोग तुम्हारे मुँहसे यह जानना चाहते हैं कि चीर और जटाधारण करके तुम यहां वनमें क्यों आये ॥ २ ॥ जिस कारणसे काला मृगचर्म और जटाधारण कर, राज्य त्यागकर, इस वनमें आये हो, वह सब हमलोगोंसे कहो ॥ ३ ॥ महात्मा रामचन्द्रने कैकयीपुत्र भरतका आलिंगन करके पुनः ऐसा पूछा। भरतने हाथ जोड़कर कहा ॥ ४ ॥ आर्य, स्त्रीके कहनेपर, मेरी माता केकयी-के प्रार्थना करनेपर, पिताने वैसा कठोर कर्म किया और वे महाबाहु पुत्रशोकसे पीड़ित होकर और हमलोगोंको छोड़कर स्वर्ग चले गये। केकयीने यह बहुत बड़ा पाप किया, जिससे उसका यश नष्ट हो गया ॥ ५ ॥ ६ ॥ केकयीको राज्यफल तो मिला नहीं, वह विधवा होकर दुःखित हो गयी। मेरी माता केकयी भयानक निन्दाके नरकमें पड़ी हुई है ॥ ७ ॥ मैं आपका सेवक हूँ। आप मुझपर दया करें और आजही इन्द्रके समान अपना अभिषेक करावें ॥ ८ ॥ यह सब प्रजाएँ, विधवा सब माताएँ, आपके यहाँ आयी हैं, आप प्रसन्न हों ॥ ९ ॥ परम्परानुसार आपका ही राज्याभिषेक उचित है; अतएव अपने लिए प्राप्त राज्य आप धर्मानुसार ग्रहण करें तथा मित्रोंके मनोरथ पूर्ण करें ॥ १० ॥ आपको स्वामी पाकर राज्यकी भूमि, अविधवा हो, जिस प्रकार निर्मल चन्द्रमाको पाकर शरद ऋतुकी रात्रि ॥ ११ ॥ इन अमात्योंके साथ सिर झुकाकर मैं आपसे निवेदन करता हूँ। मैं आपका भाई, शिष्य और दास हूँ। आप मुझपर दया करें ॥ १२ ॥ यह अमात्योंका मण्डल हमलोगोंके परम्परासे चला आया है। ये अमात्य पिताके समयके हैं। आपने इनकी प्रार्थनाएँ पहले मानी है; अतएव आज इनकी प्रार्थनाका उल्लंघन न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमुक्त्वा महाबाहुः सबाष्पः कैकयीसुतः । रामस्य शिरसा पादौ जग्राह भरतः पुनः ॥१४॥
तं मत्तमिव मातङ्गं निःश्वसन्तं पुनःपुनः । भ्रातरं भरतं रामः परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥१५॥
कुलीनः सत्त्वसंपन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः । राज्यहेतोः कथं पापमाचरेन्मद्विधो जनः ॥१६॥
न दोषं त्वयि पश्यामि सूक्ष्ममप्यरिसूदन । न चापि जननीं बाल्यात्त्वं विगर्हितुमर्हसि ॥१७॥
कामकारो महाप्राज्ञ गुरूणां सर्वदानघ । उपपन्नेषु दारेषु पुत्रेषु च विधीयते ॥१८॥
वयमस्य यथालोके संख्याताः सौम्य साधुभिः । भार्याः पुत्राश्च शिष्याश्च त्वमपि ज्ञातुमर्हसि ॥१९॥
वने वा चीरवसनं सौम्य कृष्णाजिनाम्बरम् । राज्ये वापि महाराजो मां वासयितुमीश्वरः ॥२०॥
यावत्पितरि धर्मज्ञ गौरवं लोकसत्कृते । तावद्धर्मकृतां श्रेष्ठ जनन्यामपि गौरवम् ॥२१॥
एताभ्यां धर्मशीलाभ्यां वनं गच्छति राघव । मातापितृभ्यामुक्तोऽहं कथमन्यत्समाचरे ॥२२॥
त्वया राज्यमयोध्यायां प्राप्तव्यं लोकसत्कृतम् । वस्तव्यं दण्डकारण्ये मया वल्कलवाससा ॥२३॥
एवमुक्त्वा महाराजो विभागं लोकसंनिधौ । व्यादिश्य च महाराजो दिवं दशरथो गतः ॥२४॥
स च प्रमाणं धर्मात्मा राजा लोकगुरुस्तव । पित्रा दत्तं यथाभागमुपभोक्तुं त्वमर्हसि ॥२५॥

करें ॥ १३ ॥ महाबाहु केकयीपुत्र भरतने रोते-रोते ऐसा कहा, और रामचन्द्रके चरणोंपर अपना मस्तक पुनः रख दिया ॥ १४ ॥ मतवाले हाथीके समान, बार-बार लम्बा साँस लेते हुए, भाई भरतका आलिंगन करके रामचन्द्र पुनः बोले ॥ १५ ॥ सत्कुलमें उत्पन्न, बल रखनेवाला, तेजस्वी और व्रतोंका अनुष्ठान करनेवाला मेरे समान मनुष्य राज्यके लिए पाप कैसे कर सकता है ॥ १६ ॥ शत्रुसूदन, तुममें भी कुछ दोष मैं नहीं देखता । लड़कपनके कारण माता केकयीकी भी निन्दा तुम मत करो ॥ १७ ॥ बड़ोंका अपने आश्रितों स्त्रियों तथा पुत्रोंपर सदा मनमाना अधिकार होता है । वे चाहे जैसी आज्ञा दे सकते हैं ॥ १८ ॥ सौम्य, स्त्री, पुत्र और शिष्य लोकमें स्वेच्छानुसार नियुक्त करनेके अधिकारी समझे जाते हैं, उसी प्रकार हमलोग भी उन राजाके पुत्र हैं, यह तुमको समझना चाहिए । राजा जैसी चाहे वैसी आज्ञा हमलोगोंको दे सकते हैं ॥ १९ ॥ सौम्य, महाराज हमको चीर वस्त्र और कृष्णचर्मके साथ वनमें रहनेकी अथवा राज्य करनेकी आज्ञा देनेके लिए समर्थ हैं ॥ २० ॥ लोकपूजित पितामें जितना आदर है उतनाही आदर मातामें भी रखना चाहिए, यह धर्मशास्त्रकारोंका मत है ॥ २१ ॥ धर्मशील माता और पिताने हमको वन जानेकी आज्ञा दी है । मैं उसके विरुद्ध कैसे कर सकता हूं ॥ २२ ॥ लोकप्रशंसित अयोध्याका राज्य तुम्हें प्राप्त हुआ है और वल्कल वस्त्रके साथ दण्डकारण्यका निवास मुझे मिला है ॥ २३ ॥ महाराज दसरथने मन्त्री, पुरोहित आदिके सामने ऐसाही विभाग किया और इसके पालनकी आज्ञा देकर वे स्वर्ग चले गये ॥ २४ ॥ लोकप्रसिद्ध धर्मात्मा राजा तुम्हारे लिए प्रमाण हैं, उनकी आज्ञा तुम्हें माननी चाहिए । पिताके दिए हुए राज्यका उपभोग तुम्हें करना चाहिए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यदब्रवीन्मां नरलोकसत्कृतः पिता महात्मा विबुधाधिपोपमः ।
तदेव मन्ये परमात्मनो हितं न सर्वलोकेश्वरभावमव्ययम् ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकाधिकशततमः सर्गः ॥१०१॥

द्व्युत्तरशततमः सर्गः १०२

रामस्य वचनं श्रुत्वा भरतः प्रत्युवाच ह । किं मे धर्माद्विहीनस्य राजधर्मः करिष्यति ॥ १ ॥
शाश्वतोऽयं सदा धर्मः स्थितोऽस्मासु नरर्षभ । ज्येष्ठे पुत्रे स्थिते राजा न कनीयान्भवेन्नृपः ॥ २ ॥
स समृद्धां मया सार्धमयोध्यां गच्छ राघव । अभिषेचय चात्मानं कुलस्यास्य भवाय नः ॥ ३ ॥
राजानं मानुषं प्राहुर्देवत्वे संमतो मम । यस्य धर्मार्थसहितं वृत्तमाहुरमानुषम् ॥ ४ ॥
केकयस्थे च मयि तु त्वयि चारण्यमाश्रिते । धीमान्स्वर्गं गतो राजा यायजूकः सतां मतः ॥ ५ ॥
निष्क्रान्तमात्रे भवति सहसीते सलक्ष्मणे । दुःखशोकाभिभूतस्तु राजा त्रिदिवमभ्यगात् ॥ ६ ॥
उत्तिष्ठ पुरुषव्याघ्र क्रियतामुदकं पितुः । अहं चायं च शत्रुघ्नः पूर्वमेवं कृतोदकौ ॥ ७ ॥
प्रियेण किल दत्तं हि पितृलोकेषु राघव । अक्षयं भवतीत्याहुर्भवांश्चैव पितुः प्रियः ॥ ८ ॥

॥ २५ ॥ मर्त्यलोकमें पूजित, देवराजके समान महात्मा पिताने मुझे जो आज्ञा दी है, उसकोही मैं अपने लिए हितकारी समझता हूँ । विनाश-रहित सब लोकोंका भी राजा बनना, पिताकी आज्ञाके विरुद्ध, मैं अपने लिए उचित नहीं समझता ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एक सौ पहला सर्ग समाप्त ॥ १०१ ॥

रामके वचन सुनकर भरत बोले—अपने कुलकी रीतिका हमने त्याग किया है, फिर हमारे लिए धर्मोपदेश निरर्थक है ॥ १ ॥ हमारे कुलमें सदासे यह नियम चला आता है कि ज्येष्ठ-पुत्रके रहते छोटा पुत्र राजा नहीं होता ॥२॥ अतएव रामचन्द्र, आप इस कुलकी रक्षाके लिये हमारे साथ समृद्ध अयोध्यामें चलें और वहाँ अपना अभिषेक करावें ॥ ३ ॥ यद्यपि सब लोग राजाको मनुष्य समझते हैं, पर मेरी समझसे वह देवता है; क्योंकि उसके धर्मार्थयुक्त व्यवहार अमानुष, अलौकिक होते हैं ॥ ४ ॥ मैं केकय देशमें था और आप वनमें चले आये थे; उस समय अश्वमेधादि यज्ञके करनेवाले और सज्जनोंके प्रिय हमारे पिता स्वर्ग चले गये ॥ ५ ॥ सीता और लक्ष्मणके साथ जब आप अयोध्यासे बाहर निकले, उसी समय दुःख शोकसे अभिभूत होकर राजा स्वर्ग चले गये ॥ ६ ॥ पुरुषसिंह, उठिए, पिताको जलदान कीजिए । मैं और इस शत्रुघ्नने पहलेही जल दिया है ॥ ७ ॥ प्रियके द्वारा दिया हुआ जल आदि पितृलोकमें अक्षय होता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्वामेव शोचँस्तव दर्शनेप्सुस्त्वय्येव सक्तामनिवर्त्य बुद्धिम् ।
त्वया विहीनस्तव शोकरुग्णस्त्वां संस्मरन्नेव गतः पिता ते ॥ ९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥१०२॥

त्र्युत्तरशततमः सर्गः १०३

तां श्रुत्वा करुणां वाचं पितुर्मरणसंहिताम् । राघवो भरतेनोक्तां बभूव गतचेतनः ॥ १ ॥
तं तु वज्रमिवोत्सृष्टमाहवे दानवारिणा । वाग्वज्रं भरतेनोक्तममनोज्ञं परंतपः ॥ २ ॥
प्रगृह्य रामो बाहू वै पुष्पिताङ्ग इव द्रुमः । वने परशुना कृत्तस्तथा भुवि पपात ह ॥ ३ ॥
तथा हि पतितं रामं जगत्यां जगतीपतिम् । कूलघातपरिश्रान्तं प्रसुप्तमिव कुञ्जरम् ॥ ४ ॥
भ्रातरस्ते महेष्वासं सर्वतः शोककर्शितम् । रुदन्तः सह वैदेह्या सिषिचुः सलिलेन वै ॥ ५ ॥
स तु संज्ञां पुनर्लब्ध्वा नेत्राभ्यामश्रुमुत्सृजन् । उपक्रामत काकुत्स्थः कृपणं बहु भाषितुम् ॥ ६ ॥
स रामः स्वर्गतं श्रुत्वा पितरं पृथिवीपतिम् । उवाच भरतं वाक्यं धर्मात्मा धर्मसंहितम् ॥ ७ ॥
किं करिष्याम्ययोध्यायां ताते दिष्टां गतिं गते । कस्तां राजवराद्धीनामयोध्यां पालयिष्यति ॥ ८ ॥
किं नु तस्य मया कार्यं दुर्जातेन महात्मनः । यो मृतो मम शोकेन स मया न च संस्कृतः ॥ ९ ॥

है और आप पिताके प्रिय हैं ॥ ८ ॥ आपकोही सोचते, आपकाही दर्शन चाहते और आपकाही स्मरण करते, आपमें लगी हुई बुद्धिको न लौटाकर शोकपीड़ित पिता आपके चले आनेपर स्वर्गको चले गये ॥ ९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एक सौ दूसरा सर्ग समाप्त ॥ १०२ ॥

भरतसे पिताके मरनेका शोकमय संवाद सुनकर रामचन्द्र बेहोश गये ॥ १ ॥ युद्धमें इन्द्रके द्वारा छोड़े गये बज्रके समान भरतके द्वारा वैसा अप्रिय वचन रूपी वज्र सुनकर शत्रुतापी रामचन्द्रने दोनों हाथ सिरपर रख लिया और परशुसे काटे वृक्षके समान पृथिवीपर गिर गये ॥२, ३॥ जगतीपति रामचन्द्र पृथिवीपर गिरे हुए, कुलके नाशसे थके हुए, प्रसुप्त हाथीके समान मालूम होते थे ॥ ४ ॥ उन शोकसे पीड़ित महाधनुर्धारी रामचन्द्रपर तीनों भाई जानकीके साथ जलके छींटे देने लगे ॥ ५ ॥ होशमें आकर रामचन्द्र आँखोंसे आँसू गिराने लगे और बहुतही दयनीय विलाप करने लगे । धर्मात्मा रामचन्द्र, पृथिवीपति पिताका स्वर्ग-गमन सुनकर भरतसे धर्मयुक्त वचन बोले ॥६॥ पिताके भाग्यानुकूल गति पानेपर (मृत्यु) मैं अयोध्यामें क्या करूँगा । राजश्रेष्ठ, उन राजासे हीन अयोध्याका पालन कौन करेगा ॥८॥ व्यर्थ जन्मा हुआ मैं, उन महात्मा राजाका क्या कर सकता हूँ ? राजाने मेरे शोकसे प्राण त्याग किया और उस समय मैं उनका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अहो भरत सिद्धार्थो येन राजा त्वयानघ । शत्रुघ्नेन च सर्वेषु प्रेतकृत्येषु सत्कृतः ॥१०॥
निष्प्रधानामनेकाग्रां नरेन्द्रेण विना कृताम् । निवृत्तवनवासोऽपि नायोध्यां गन्तुमुत्सहे ॥११॥
समाप्तवनवासं मामयोध्यायां परंतप । कोऽनुशासिष्यति पुनस्तातेलोकान्तरं गते ॥१२॥
पुरा प्रेक्ष्य मुवृत्तं मां पिता यान्याह सान्त्वयन् । वाक्यानि तानि श्रोष्यामि कुतःकर्णसुखान्यहम्॥१३॥
एवमुक्त्वाथ भरतं भार्यामभ्येत्य राघवः । उवाच शोकसंतप्तः पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥१४॥
सीते मृतस्ते श्वशुरः पितृहीनोऽसि लक्ष्मण । भरतो दुःखमाचष्टे स्वर्गतिं पृथिवीपतेः ॥१५॥
ततो बहुगुणं तेषां बाष्पं नेत्रेष्वजायत । तथा ब्रुवति काकुत्स्थे कुमाराणां यशस्विनाम्॥१६॥
ततस्ते भ्रातरः सर्वे भृशमाश्वास्य दुःखितम् । अब्रुवञ्जगतीभर्तुः क्रियतामुदकं पितुः ॥१७॥
सा सीता स्वर्गतं श्रुत्वा श्वशुरं तं महानृपम् । नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां न शशाकेक्षितुं प्रियम् ॥१८॥
सान्त्वयित्वा तु तां रामो रुदतीं जनकात्मजाम् । उवाच लक्ष्मणं तत्र दुःखितो दुःखितं वचः ॥१९॥
आनयेङ्गुदिपिण्याकं चीरमाहर चोत्तरम् । जलक्रियार्थं तातस्य गमिष्यामि महात्मनः ॥२०॥
सीता पुरस्ताद्व्रजतु त्वमेनामभितो व्रज । अहं पश्चाद्गमिष्यामि गतिर्ह्येषा सुदारुणा ॥२१॥
ततो नित्यानुगस्तेषां विदितात्मा महामतिः । मृदुर्दान्तश्च कान्तश्च रामे च दृढभक्तिमान् ॥२२॥
सुमन्त्रस्तैर्नृपसुतैः सार्धमाश्वास्य राघवम् । अवतारयदालम्ब्य महीं मन्दाकिनीं शिवाम् ॥२३॥

संस्कार भी न कर सका ॥ ९ ॥ निष्पाप भरत, तुम्हारे ही मनोरथ पूरे हुए जो तुम और शत्रुघ्नने राजाके समस्त प्रेतकृत्य किये हैं ॥ १० ॥ मैं वनवासकी अवधि समाप्त होनेपर भी अयोध्या जाना नहीं चाहता, क्योंकि राजाके न रहनेसे अब वहाँका कोई एक धनी धोरी नहीं रह गया । अब वहाँ शांति नहीं रह गयी ॥ ११ ॥ पिताके लोकान्तर चले जानेपर अयोध्यामें वनवासकी अवधि समाप्त होनेपर मुझे कौन शिक्षा देगा ॥ १२ ॥ पहले मैं उनकी कही बातोंपर चलता हूँ, यह देखकर पिता मुझे समझाते हुए जो कानोंके सुखदाई वचन कहते थे, अब उन वचनोंको कहाँ सुनूंगा ॥१३॥ भरतसे ऐसा कहकर शोकसन्तप्त रामचन्द्र पूर्णचन्द्रमुखी अपनी स्त्रीके पास आये और बोले, ॥ १४ ॥ सीते, तुम्हारे श्वसुर मर गये, लक्ष्मण तुम पितृहीन हो गये । भरत पिताकी मृत्युका दुखदायी संवाद कह रहे हैं ॥ १५ ॥ रामचन्द्रके वैसा कहनेपर, इन यशस्वी कुमारोंकी आँखोंसे बहुत अधिक आँसू निकलने लगा ॥ १६ ॥ अत्यन्त दुखी रामचन्द्रको सब भाइयोंने समझाया और राजाको जल देनेके लिये उनसे कहा ॥ १७ ॥ महाराज श्वसुर स्वर्गगामी हो गये यह सुनकर सीताकी आँखें जलसे भर आयीं और वे अपने प्रिय रामचन्द्रकी ओर देख न सकीं ॥ १८ ॥ रोती हुई सीताको समझाकर दुखी रामचन्द्र, दुखी लक्ष्मणसे बोले ॥ १९ ॥ इंगुदीका फल और पहननेका चीर ले आओ, महात्मा पिताको जल देनेके लिए जाऊंगा ॥ २० ॥ सीता आगे-आगे चलें और तुम इनके साथ पीछे—पीछे चलो, मैं पीछे चलूँगा । क्योंकि यह अवस्था बड़ी कठोर है ॥ २१ ॥ तदनन्तर, रामचन्द्रका स्वभाव जाननेवाले और उनमें भक्ति रखनेवाले, सरल स्वभाव, नियमी, तेजस्वी और इक्ष्वाकुवंशका कुलक्रमागत अनुचर सुमन्तने अन्य राजपुत्रोंके साथ रामचन्द्रको समझाया, और हाथ पकड़कर सुन्दर मन्दाकिनी नदीके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ते सुतीर्थां ततः कृच्छ्रादुपगम्य यशस्विनः । नदीं मन्दाकिनीं रम्यां सदा पुष्पितकाननाम् ॥२४॥
शीघ्रस्रोतसमासाद्य तीर्थं शिवमकर्दमम् । पिचुस्तूदकं राज्ञे तत एतद्ववात्विति ॥२५॥
प्रगृह्य तु महीपालो जलापूरितमञ्जलिम् । दिशं याम्यामभिमुखो रुदन्वचनमब्रवीत् ॥२६॥
एतत्ते राजशार्दूल विमलं तोयमक्षयम् । पितृलोकगतस्याद्य मदत्तमुपतिष्ठतु ॥२७॥
ततो मन्दाकिनीतीरं प्रत्युत्तीर्य स राघवः । पितुश्चकार तेजस्वी निर्वापं भ्रातृभिः सह ॥२८॥
ऐङ्गुदं बदरैर्मिश्रं पिण्याकं दर्भसंस्तरे । न्यस्य रामः सुदुःखार्तो रुदन्वचनमब्रवीत् ॥२९॥
इदं भुङ्क्ष्व महाराज प्रीतो यदशना वयम् । यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः ॥३०॥
ततस्तेनैव मार्गेण प्रत्युत्तीर्य सरित्तटात् । आरुरोह नरव्याघ्रो रम्यसानुं महीधरम् ॥३१॥
ततः पर्णकुटीद्वारमासाद्य जगतीपतिः । परिजग्राह पाणिभ्यामुभौ भरतलक्ष्मणौ ॥३२॥
तेषां तु रुदतां शब्दात्प्रतिशब्दोऽभवद्गिरौ । भ्रातॄणां सह वैदेह्या सिंहानां नदतामिव ॥३३॥
महाबलानां रुदतां कुर्वतामुदकं पितुः । विज्ञाय तुमुलं शब्दं त्रस्ता भरतसैनिकाः ॥३४॥
अब्रुवंश्चापि रामेण भरतः संगतो ध्रुवम् । तेषामेव महाञ्शब्दः शोचतां पितरं मृतम् ॥३५॥
अथ वाहान्परित्यज्य तं सर्वेऽभिमुखाःस्वनम् । अप्येकमनसो जग्मुर्यथास्थानं प्रधाविताः ॥३६॥

तीरपर वे उन्हें ले गये ॥ २२, २३ ॥ वे यशस्वी, सुन्दर घाटवाली रमणीय मन्दाकिनी नदीके तीरपर बड़े कष्टसे गये । मन्दाकिनी नदीके पासका वन सदा पुष्पित रहता है । शीघ्र चलनेवाली मन्दाकिनीके सुन्दर और बिना कीचड़के घाटपर जाकर उन लोगोंने पिताको यह कह जल दिया कि यह जल आपको मिले ॥ २४, २५ ॥ रामचन्द्र अपनी अँजलीको जलसे भरकर दक्षिण दिशाकी ओर मुंह करके रोते हुए बोले, ॥ २६ ॥ हे राजसिंह, यह विमल और अक्षय मेरा दिया हुआ जल पितृलोकमें आपको मिले ॥ २७ ॥ पुनः मन्दाकिनी तीरपर उतरकर तेजस्वी रामचन्द्रने अपने भाइयोंके साथ पिताको पिण्डदान दिया ॥ २८ ॥ उसपर इंगुदी और बैरके फल रखकर, दुखी रामचन्द्र बोले ॥ २९ ॥ महाराज प्रसन्नतापूर्वक यह भोजन कीजिए, क्योंकि हम लोगोंका यही भोजन है । मनुष्य जो अन्न खाता है, उसके देवता भी वही अन्न खाते हैं ॥ ३० ॥ तदनन्तर उसी मार्गसे नदीके तीरसे निकलकर, नरव्याघ्र, रामचन्द्र सुन्दर शिखरवाले पर्वतपर चढ़े ॥ ३१ ॥ अपनी पर्णकुटीके द्वारपर आकर उन्होंने भरत और लक्ष्मण दोनोंको हाथसे पकड़ लिया ॥ ३२ ॥ जानकीके साथ उन चारो भाइयोंके रोनेका प्रतिशब्द उस पर्वतपर फैल गया, जिस प्रकार सिंहके गर्जनकी प्रतिध्वनि फैलती है ॥ ३३ ॥ पिताको जलदान करनेवाले, उन चारो भाइयोंके रोनेका भयानक शब्द सुनकर, भरतके सैनिक डर गये । किसी नयी विपत्तिकी आशंका उनके मनमें हुई ॥ ३४ ॥ पुनः निश्चित कर वे बोले—भरत रामचन्द्रसे मिल गये और मृत पिताके लिए शोक करनेवाले, उन्हीं लोगोंका यह महान् शब्द है ॥ ३५ ॥ सवारियोंको वहीं छोड़कर, जिधरसे शब्द आ रहा था उधरही, एकचित्त होकर दौड़े ॥ ३६ ॥ जो लोग सुकुमार थे, पैरसे नहीं चल सकते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हयैरन्ये गजैरन्ये रथैरन्ये स्वलंकृतैः । सुकुमारास्तथैवान्ये पद्भिरेव नरा ययुः ॥३७॥
अचिरप्रोषितं रामं चिरविप्रोषितं यथा । द्रष्टुकामो जनः सर्वो जगाम सहसाश्रमम् ॥३८॥
भ्रातॄणां त्वरितास्ते तु द्रष्टुकामाः समागमम् । ययुर्बहुविधैर्यानैः खुरनेमिसमाकुलैः ॥३९॥
सा भूमिर्बहुभिर्यानै रथनेमिसमाहता । मुमोच तुमुलं शब्दं द्यौरिवाभ्रसमागमे ॥४०॥
तेन वित्रासिता नागाः करेणुपरिवारिताः । आवासयन्तो गन्धेन जग्मुरन्यद्वनं ततः ॥४१॥
वराहमृगसिंहाश्च महिषाः सृमरास्तथा । व्याघ्रगोकर्णगवया वित्रेसुः पृषतैः सह ॥४२॥
रथाह्वहंसा नत्यूहाः प्लवाः कारण्डवाः परे । तथा पुंस्कोकिलाः क्रौञ्चा विसंज्ञा भेजिरे दिशः॥४३॥
तेन शब्देन वित्रस्तैराकाशं पक्षिभिर्वृतम् । मनुष्यैरावृता भूमिरुभयं प्रबभौ तदा ॥४४॥
ततस्तं पुरुषव्याघ्रं यशस्विनमकल्मषम् । आसीनं स्थण्डिले रामं ददर्श सहसा जनः ॥४५॥
विगर्हमाणः कैकेयीं मन्थरासहितामपि । अभिगम्य जनो रामं बाष्पपूर्णमुखोऽभवत् ॥४६॥
तान्नरान्बाष्पपूर्णाक्षान्समीक्ष्याथ सुदुःखितान्। पर्यष्वजत धर्मज्ञः पितृवन्मातृवच्च सः ॥४७॥

स तत्र कांश्चित्परिषस्वजे नरान्नराश्च केचित्तु तमभ्यवादयन् ।
चकार सर्वान्सवयस्यबान्धवान्यथार्हमासाद्य तदा नृपात्मजः ॥४८॥

थे, वे कुछ लोग घोड़ोंपर, कुछ हाथियोंपर और कुछ रथोंपर बैठकर चले, बहुत लोग तो पैदल ही चले ॥ ३७ ॥ रामचन्द्र थोड़े ही दिनोंसे प्रवासमें आये थे, पर वे लोग इसीको बहुत समझते थे और रामचन्द्रको देखनेके लिए शीघ्रतापूर्वक उनके आश्रममें गये ॥ ३८ ॥ भाइयोंका सम्मिलन देखनेके लिए भिन्न-भिन्न सवारियोंपर चढ़कर वे गये । घोड़ोंकी टाप और रथोंके पहियेसे, भूमि आकुल हो गयी ॥ ३९ ॥ अनेक सवारियोंके होनेके कारण तथा रथके पहियोंके आघातसे वह भूमि मेघके आगमनके समय, आकाशके समान गर्जन करने लगी ॥४०॥ उस शब्दसे हाथी डर गये और अपनी मन्द गंधसे उस वनको सुगंधित करते हुए हथिनीके साथ दूसरे वनमें चले गये ॥ ४१ ॥ सूअर, मृगा, सिंह, भैंसे, बाघ, गोकर्ण, गवय, तथा कृष्णमृग सब उस शब्दसे डर गये ॥ ४२ ॥ चक्रवाक, हंस, जलकुक्कुट, स्थलबक, सारस, कोयल, क्रौंच ये सब घबड़ाकर दिशाओंमें भाग गये ॥ ४३ ॥ उस शब्दसे डरे हुए पक्षियोंसे आकाश भर गया और मनुष्योंसे पृथिवी भर गयी, इस प्रकार दोनोंकी शोभा हुई ॥ ४४ ॥ पुरुषसिंह, यशस्वी, निष्पाप रामचन्द्रको चौतरेपर बैठे हुए उन सब मनुष्योंने देखा ॥ ४५ ॥ मन्थरा और केकयीकी निन्दा करता हुआ वह जनसमुदाय रामचन्द्रके सामने गया और उसका वह मुँह आँसूसे भर गया ॥ ४६ ॥ उन दुखी मनुष्योंकी आँसूभरी आँखें देखकर धर्मज्ञ रामचन्द्रने पिता और माताके समान उनका आलिंगन किया ॥ ४७ ॥ रामचन्द्रने कई मनुष्योंका आलिंगन किया और कई मनुष्योंने रामचन्द्रको प्रणाम किया । उस समय राजकुमार रामचन्द्रने सब मित्र और बान्धवोंका यथायोग्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततः स तेषां रुदतां महात्मनां भुवं च खं चानुविनादयन्स्वनः ।
गुहागिरीणां च दिशश्च संततं मृदङ्गघोषप्रतिमो विशुश्रुवे ॥४९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

चतुरुत्तरशततमः सर्गः १०४

वसिष्ठः पुरतः कृत्वा दारान्दशरथस्य च । अभिचक्राम तं देशं रामदर्शनतर्षितः ॥ १ ॥
राजपत्न्यश्च गच्छन्त्यो मन्दं मन्दाकिनीं प्रति । ददृशुस्तत्र तत्तीर्थं रामलक्ष्मणसेवितम् ॥ २ ॥
कौसल्या बाष्पपूर्णेन मुखेन परिशुष्यता । सुमित्रामब्रवीदीनां याश्चान्या राजयोषितः ॥ ३ ॥
इदं तेषामनाथानां क्लिष्टमक्लिष्टकर्मणाम् । वने प्राक्कलनं तीर्थं ये ते निर्विषयीकृताः ॥ ४ ॥
इतः सुमित्रे पुत्रस्ते सदा जलमतन्द्रितः । स्वयं हरति सौमित्रिर्मम पुत्रस्य कारणात् ॥ ५ ॥
जघन्यमपि ते पुत्रः कृतवान्न तु गर्हितः । भ्रातुर्यदर्थरहितं सर्वं तद्गर्हितं गुणैः ॥ ६ ॥
अद्यायमपि ते पुत्रः क्लेशानामतथोचितः । नीचानर्थसमाचारं सज्जं कर्म प्रमुञ्चतु ॥ ७ ॥
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु सा ददर्श महीतले । पितुरिङ्गुदिपिण्याकं न्यस्तमायतलोचना ॥ ८ ॥
तं भूमौ पितुरार्तेन न्यस्तं रामेण वीक्ष्य सा । उवाच देवी कौसल्या सर्वा दशरथस्त्रियः ॥ ९ ॥

सम्मान किया ॥ ४८ ॥ उन महात्माओंके रोनेका शब्द आकाश और पृथिवीमें गूँज गया, पर्वतोंकी गुहाओं और दिशाओंमें प्रतिध्वनित हुआ, वह शब्द मृदंग-घोषके समान चारो ओर सुनाई पड़ा ॥ ४९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एक सौ तीसरा सर्ग समाप्त ॥ १०३ ॥

वसिष्ठ भी रामचन्द्रको देखनेके लिए उत्कण्ठित थे । वे दसरथकी महारानियोंको लेकर उस स्थानपर गये ॥ १ ॥ धीरे-धीरे चलकर महारानियाँ मन्दाकिनी नदीके तीरपर गयीं और राम और लक्ष्मणके स्नान करनेका, उन लोगोंने घाट देखा ॥ २ ॥ कौशल्याका मुँह आँसूसे भरा हुआ था और वह सूख रहा था, वे दुःखिनी सुमित्रा तथा अन्य रानियोंसे बोलीं ॥ ३ ॥ जो रामचन्द्र आदि देशसे निकाल दिये गये हैं, और जो वनमें निवास कर रहे हैं, उन उत्तम कर्म करनेवाले अनाथोंका यह प्रथम परिगृहीत तीर्थ (घाट) देखो ॥ ४ ॥ सुमित्रे, निरलस तुम्हारा पुत्र लक्ष्मण यहाँसे जल मेरे पुत्रके लिये ले जाता है ॥ ५ ॥ यह छोटा काम करके भी, तुम्हारा पुत्र निन्दित नहीं हुआ है, जो काम भाईके उपयोगके लिये न हो, उसकी निन्दा गुणी लोग करते हैं ॥ ६ ॥ आज तुम्हारा यह पुत्र भी, जो कष्टसहनके लिये योग्य नहीं है, इन छोटे और दुःख देनेवाले कर्मोंका करना छोड़ दे (कौशल्याने रामचन्द्रका अयोध्यामें जाना निश्चित समझकर ऐसा कहा है) ॥ ७ ॥ विशालाक्षी कौशल्याने दक्षिणाग्र (जिनका आगेका भाग दक्षिणकी ओर है) कुशोंपर पृथिवीमें इंगुदीफल रखे देखे ॥ ८ ॥ दुःखी रामके द्वारा, पिताके उद्देश्यसे पृथिवीमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इदमिक्ष्वाकुनाथस्य राघवस्य महात्मनः । राघवेण पितुर्दत्तं पश्यतैतद्यथाविधि ॥१०॥
तस्य देवसमानस्य पार्थिवस्य महात्मनः । नैतदौपयिकं मन्ये भुक्तभोगस्य भोजनम् ॥११॥
चतुरन्तां महीं भुक्त्वा महेन्द्रसदृशो भुवि । कथमिङ्गुदिपिण्याकं स भुङ्क्ते वसुधाधिपः ॥१२॥
अतो दुःखतरं लोके न किंचित्प्रतिभाति मे । यत्र रामः पितुर्दद्यादिङ्गुदीक्षोदमृद्धिमान् ॥१३॥
रामेणेङ्गुदिपिण्याकं पितुर्दत्तं समीक्ष्य मे । कथं दुःखेन हृदयं न स्फोटति सहस्रधा ॥१४॥
श्रुतिस्तु खल्वियं सत्या लौकिकी प्रतिभाति मे । यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः ॥१५॥
एवमार्ताः सपत्न्यस्ता जग्मुराश्वास्य तां तदा । ददृशुश्चाश्रमे रामं स्वर्गच्युतमिवामरम् ॥१६॥
तं भोगैः संपरित्यक्तं रामं संप्रेक्ष्य मातरः । आर्ता मुमुचुरश्रूणि सस्वरं शोककर्शिताः ॥१७॥
तासां रामः समुत्थाय जग्राह चरणाम्बुजान् । मातॄणां मनुजव्याघ्रः सर्वासां सत्यसंगरः ॥१८॥
ताः पाणिभिः सुखस्पर्शैर्मृद्वङ्गुलितलैः शुभैः । प्रममार्जू रजः पृष्ठाद्रामस्यायतलोचनाः ॥१९॥
सौमित्रिरपि ताः सर्वा मातॄः संप्रेक्ष्य दुःखितः । अभ्यवादयदासक्तं शनै रामादनन्तरम् ॥२०॥
यथा रामे तथा तस्मिन्सर्वा वृत्तिरे स्त्रियः । वृत्तिं दशरथाज्जाते लक्ष्मणे शुभलक्षणे ॥२१॥
सीतापि चरणांस्तासामुपसंगृह्य दुःखिता । श्वश्रूणामश्रुपूर्णाक्षी संबभूवाग्रतः स्थिता ॥२२॥
तां परिष्वज्य दुःखार्ता माता दुहितरं यथा । वनवासकृतां दीनां कौसल्या वाक्यमब्रवीत् ॥२३॥

रखे हुए उसको देखकर देवी कौसल्या, दसरथकी समस्त स्त्रियोंसे बोलीं ॥ ९ ॥ देखो, इक्ष्वाकु-नाथ महात्मा अपने पिताके लिए रामचन्द्रने यह दिया है ॥ १० ॥ देवताके समान, महात्मा, भुक्तभोग राजाके लिये यह भोजन मैं उचित नहीं समझती ॥११॥ इन्द्रके समान, चारो समुद्रोंसे घिरी पृथिवीका भोग करके महाराज अब इंगुदीका फल खायँगे ॥१२॥ इससे बढ़कर इसलोकमें मुझे दुःखकी बात नहीं मालूम पड़ती कि ऋद्धिमान् राजा रामचन्द्र अपने पिताके लिये इंगुदीके टुकड़े दें ॥ १३ ॥ रामने अपने पिताके लिये इंगुदी फल दिया है, यह देखकर मेरा हृदय दुःखसे हजारों टुकड़े क्यों नहीं फट जाता ॥ १४ ॥ मुझे यह लौकिक श्रुति (किंवदन्ती) सच मालूम पड़ती है कि पुरुष जो अन्न खाता है, उसका देवता भी वही अन्न खाता है ॥ १५ ॥ इस प्रकार दुःखिनी कौसल्याको अन्य सौतें समझाकर आगे ले गयीं, वहाँ उन लोगोंने स्वर्गसे आये हुए देवताके समान आश्रममें रामचन्द्रको देखा ॥ १६ ॥ रामचन्द्रने भोगोंका त्याग कर दिया है, यह देखकर माताएँ बहुत दुखी हुईं, और शोकसे पीड़ित होकर चिल्लाकर रोने लगीं ॥ १७ ॥ सत्य-प्रतिज्ञ, मनुष्यश्रेष्ठ रामचन्द्र उठकर उन समस्त माताओंके चरणकमल छूए ॥ १८ ॥ उन विशा-लाक्षी माताओंने, सुखस्पर्श कोमल अंगुली और तलुवोंवाले सुन्दर हाथोंसे रामचन्द्रकी पीठकी धूल झाड़ी ॥ १९ ॥ दुःखी लक्ष्मणने भी उन माताओंको देखकर रामचन्द्रके अनन्तर प्रेमपूर्वक प्रणाम किया ॥ २० ॥ उन सब माताओंने जैसा व्यवहार रामचन्द्रके साथ किया था, वैसेही व्यवहार शुभलक्षण, दशरथ-पुत्र लक्ष्मणके साथ भी किया ॥ २१ ॥ दुखिनी सीता भी अपनी उन समस्त सासोंको प्रणाम करके उनके आगे खड़ी हो गयी, उस समय सीताकी आँखें आसुओं-से भरी थीं ॥ २२ ॥ वनवाससे दुखिनी सीताका, दुखिनी कौसल्याने माता जिस प्रकार कन्याका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वैदेहराजन्यसुता स्नुषा दशरथस्य च। रामपत्नी कथं दुःखं संप्राप्ता विजने वने ॥२४॥
पद्ममातपसंतप्तं परिक्लिष्टमिवोत्पलम्। काञ्चनं रजसा ध्वस्तं क्लिष्टं चन्द्रमिवाम्बुदैः ॥२५॥
मुखं ते प्रेक्ष्य मां शोको दहत्यग्निरिवाश्रयम्। भृशं मनसि वैदेहि व्यसनारणिसंभवः ॥२६॥
ब्रुवन्त्यामेवमार्तायां जनन्यां भरताग्रजः। पादावासाद्य जग्राह वसिष्ठस्य च राघवः ॥२७॥
पुरोहितस्याग्निसमस्य तस्य वै बृहस्पतेरिन्द्र इवामराधिपः।
प्रगृह्य पादौ सुसमृद्धतेजसः सहैव तेनोपविवेश राघवः ॥२८॥
ततो जघन्यं सहितैः स्वमान्त्रिभिः पुरप्रधानैश्च तथैव सैनिकैः।
जनेन धर्मज्ञतमेन धर्मवानुपोपविष्टो भरतस्तदाग्रजम् ॥२९॥
उपोपविष्टस्तु तदातिवीर्यवांस्तपस्विवेषेण समीक्ष्य राघवम्।
श्रिया ज्वलन्तं भरतः कृताञ्जलिर्यथा महेन्द्रः प्रयतः प्रजापतिम् ॥३०॥
किमेष वाक्यं भरतोऽद्य राघवं प्रणम्य सत्कृत्य च साधु वक्ष्यति।
इतीव तस्यार्यजनस्य तत्त्वतो बभूव कौतूहलमुत्तमं तदा ॥३१॥
स राघवः सत्यधृतिश्च लक्ष्मणो महानुभावो भरतश्च धार्मिकः।
वृताः सुहृद्भिश्च विरेजिरेऽध्वरे यथा सदस्यैः सहितास्त्रयोऽग्नयः ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे चतुरुत्तरशततमः सर्गः ॥१०४॥

आलिंगन करती हैं उस प्रकार आलिंगन किया, और उनसे बोलीं ॥ २३ ॥ विदेहराजकी कन्या, राजा दसरथकी पतोहू, रामचन्द्रकी स्त्री, सीता इस निर्जन वनमें क्यों कष्ट उठा रही है ॥ २४ ॥ घामसे सूखा हुआ कमलके समान और मसला हुआ रक्तकमलके समान, धूलसे लिपटा हुआ सोनाके समान, मेघसे छिपाए हुए चन्द्रके समान तुम्हारा यह मुख देखकर दुःखरूपी अरणी (आग निकालनेकी लकड़ी) से उत्पन्न यह शोक जो मेरे मनमें वर्तमान है, मुझे जला रहा है। जिस प्रकार अग्नि अपने आश्रयको, जिससे उत्पन्न होती है उसीको जला देती है ॥ २५, २६, ॥ दुःखिनी माता जिस समय यह कह रही थी, उसी समय जाकर रामचन्द्रने वसिष्ठको प्रणाम किया ॥ २७ ॥ अग्निके समान तेजस्वी बृहस्पतिको जिस प्रकार इन्द्र प्रणाम करते हैं, उसी प्रकार रामचन्द्रने समृद्धतेजा वसिष्ठको प्रणाम किया और उनके साथ बैठे ॥ २८ ॥ तदनन्तर, धर्मात्मा भरत अपने बड़े भाईके बैठ जानेके बाद, मन्त्रियों, नगरके मुखियों, सैनिकों और धर्मात्माओंके साथ नीची जगह देखकर बठे (अर्थात् रामचन्द्रके आसनसे नीचे आसनपर बैठे) ॥ २९ ॥ रामचन्द्रके पासही बैठे हुए वीर्यवान् भरतने शोभासे प्रकाशित रामचन्द्रको तपस्विवेषमें देखकर हाथ जोड़े, जिस प्रकार इन्द्र ब्रह्माको हाथ जोड़ते हैं ॥ ३१ ॥ यह भरत रामचन्द्रको प्रणाम कर, तथा उनका सत्कार कर क्या कहेंगे, यही कौतुक उस एकत्र हुई समस्त जनताके मनमें उत्पन्न हो रहा था ॥ ३१ ॥ रामचन्द्र, सत्यधृति लक्ष्मण और धार्मिक महानुभाव भरत अपने मित्रोंसे घिरकर यज्ञमें सदस्योंके साथसे तीन अग्नियोंके समान शोभित होने लगे ॥ ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एक सौ चौथा सर्ग समाप्त ॥१०४॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चोत्तरशततमः सर्गः १०५

ततः पुरुषसिंहानां वृतानां तैः सुहृद्गणैः । शोचतामेव रजनी दुःखेन व्यत्यवर्तत ॥ १ ॥
रजन्यां सुप्रभातायां भ्रातरस्ते सुहृद्वृताः । मन्दाकिन्यां हुतं जप्यं कृत्वा राममुपागमन् ॥ २ ॥
तूष्णीं ते समुपासीना न काश्चित्किंचिदब्रवीत् । भरतस्तु सुहृन्मध्ये रामं वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥
सान्त्विता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम । तद्ददामि तवैवाहं भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् ॥ ४ ॥
महतेवाम्बुवेगेन भिन्नः सेतुर्जलागमे । दुरावरं त्वदन्येन राज्यखण्डमिदं महत् ॥ ५ ॥
गतिं खर इवाश्वस्य तार्क्ष्यस्येव पतत्रिणः । अनुगन्तुं न शक्तिर्मे गतिं तव महीपते ॥ ६ ॥
सुजीवं नित्यशस्तस्य यः परैरुपजीव्यते । राम तेन तु दुर्जीवं यः परानुपजीवति ॥ ७ ॥
यथा तु रोपितो वृक्षः पुरुषेण विवर्धितः । ह्रस्वकेन दुरारोहो रूढस्कन्धो महाद्रुमः ॥ ८ ॥
स यदा पुष्पितो भूत्वा फलानि न विदर्शयेत् । स तां नानुभवेत्प्रीतिं यस्य हेतोः प्ररोपितः ॥ ९ ॥
एषोपमा महाबाहो तदर्थं वेत्तुमर्हसि । यदि त्वमस्मान्नृषभो भर्ता भृत्यान्न शाधि हि ॥ १० ॥
श्रेणयस्त्वां महाराज पश्यन्त्वग्र्याश्च सर्वशः । प्रतपन्तमिवादित्यं राज्यास्थितमरिंदमम् ॥ ११ ॥
तथानुयाने काकुत्स्थ मत्ता नर्दन्तु कुञ्जराः । अन्तःपुरगता नार्यो नन्दन्तु सुसमाहिताः ॥ १२ ॥

इस प्रकार मित्रोंके साथ रामचन्द्रको लौटा ले जानेका उपाय सोचते-सोचते भरत आदि पुरुषसिंहोंकी, वह रात दुःखसे बीत गयी ॥ १ ॥ रात्रिके बीतनेपर वे भाई मित्रोंके साथ मन्दाकिनी तीरपर स्नान हवन और जप करके रामचन्द्रके पास आये ॥ २ ॥ वहाँ आकर वे सब मित्र चुप रहे, किसीने कुछ नहीं कहा, तब भरत रामचन्द्रसे बोले, ॥ ३ ॥ राजा दसरथने यह राज्य देकर मेरी माताको सम्मानित किया, माताने वह राज्य मुझे दिया । मैं वही राज्य आपको देता हूँ, क्योंकि मैं आपहीका हूं । इस शत्रुहीन राज्यका आप उपभोग करें ॥ ४ ॥ जलके बढ़नेपर बहुत बड़े जल-वेगसे टूटे हुए पुलके समान इस विशाल अयोध्या राज्यका पालन आपके अतिरिक्त दूसरा कौन कर सकता है ॥ ५ ॥ जिस प्रकार गदहा घोड़ेकी चाल चल नहीं सकता, अन्य पक्षी गरुड़की चाल नहीं चल सकते, उसी प्रकार आपके अनुकरण करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है ॥ ६ ॥ जो दूसरोंके द्वारा सेवित होता है उसका जीवन उत्तम जीवन है, और जिसको दूसरोंके आश्रयसे जीना पड़ता है उसका जीवन दुःखमय है ॥ ७ ॥ जिस प्रकार कोई मनुष्य वृक्ष रोपता है, उसे बढ़ाता है, उसमें शाखाएँ निकलती हैं, वह छोटा वृक्ष बड़ा वृक्ष हो जाता है, लोग उस पर चढ़ नहीं सकते, उसमें फूल लगते हैं, पर यदि वह वृक्ष फल नहीं दे तो उस रोपनेवालेको प्रसन्नता नहीं होती; क्योंकि उसने उसे फलहीके लिए रोपा है ॥ ८, ९ ॥ महाबाहो, अपने सम्बन्धमें भी आप इसी उपमाको समझें, आप हम लोगोंके स्वामी हैं, पालन करनेकी शक्ति रखनेवाले हैं, पर हम अनुयायियोंका आप पालन नहीं करते ॥ १० ॥ सब श्रेणियोंके अगुआ, सूर्यके समान तेजस्वी, शत्रुतापी आपको, राजासनपर बैठे देखें ॥ ११ ॥ काकुत्स्थ, ये मतवाले हाथी, अयोध्या जानेके आपके निश्चयसे गर्जन करें, अन्तःपुरकी स्त्रियाँ प्रसन्न हों ॥ १२ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्य साध्वनुमन्यन्त नागरा विविधा जनाः । भरतस्य वचः श्रुत्वा रामं प्रत्यनुयाचतः ॥१३॥
तमेवं दुःखितं प्रेक्ष्य विलपन्तं यशस्विनम् । रामः कृतात्मा भरतं समाश्वासयदात्मवान् ॥१४॥
नात्मनः कामकारो हि पुरुषोऽयमनीश्वरः । इतश्चेतरतश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति ॥१५॥
सर्वे क्षयान्ता निचयाःपतनान्ताः समुच्छ्रयाः । संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्॥१६॥
यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद्भयम् । एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद्भयम् ॥१७॥
यथागारं दृढस्थूणं जीर्णं भूत्वोपसीदति । तथावसीदन्ति नरा जरामृत्युवशंगताः ॥१८॥
अत्येति रजनी या तु सा न प्रतिनिवर्तते । यात्येव यमुना पूर्णं समुद्रमुदकार्णवम् ॥१९॥
अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह । आयूंषि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः ॥२०॥
आत्मानमनुशोच त्वं किमन्यमनुशोचसि । आयुस्तु हीयते यस्य स्थितस्यास्य गतस्य च ॥२१॥
सहैव मृत्युर्व्रजति सह मृत्युर्निषीदति । गत्वा सुदीर्घमध्वानं सह मृत्युर्निवर्तते ॥२२॥
गात्रेषु वलयः प्राप्ताः श्वेताश्चैव शिरोरुहाः । जरया पुरुषो जीर्णःकिं हि कृत्वा प्रभावयेत्॥२३॥
नन्दन्त्युदित आदित्ये नन्दन्त्यस्तमितेऽहनि । आत्मनो नावबुध्यन्ते मनुष्या जीवितक्षयम् ॥२४॥
हृष्यन्त्यृतुमुखं दृष्ट्वा नवं नवमिवागतम् । ऋतूनां परिवर्तेन प्राणिनां प्राणसंक्षयः ॥२५॥

रामके प्रति प्रार्थना करनेवाले भरतकी बातें सुनकर सभी नगरवासियोंने उनका अनुमोदन किया ॥१३॥यशस्वी भरत इस प्रकार विलाप कररहे हैं यह देखकर धीर, और शुद्धचेता रामचन्द्रने उन्हें समझाया ॥ १४ ॥ यह सब अपने इच्छाकी बात नहीं है, मनुष्य असमर्थ है, भाग्यही उसे इधर-से उधर खींचा करता है ॥१५॥ जो निश्चय है, अर्थात् संगृहीत है, उसका अन्त क्षय है । जो ऊँचा है उसका अन्त पतन है । संयोगका अन्त वियोग है और जीवनका अन्त मरण है ॥ १६ ॥ जिस प्रकार पके फलोंके लिए नीचे गिरनेके अतिरिक्त दूसरा भय नहीं है, उसी प्रकार उत्पन्न मनुष्यके लिए मृत्युके सिवा दूसरा भय नहीं है ॥ १७ ॥ जिस प्रकार मजबूत खम्भेवाला मकान भी पुराना होनेपर गिर जाता है, उसी प्रकार जरा और मृत्युके वश होकर मनुष्य भी मर जाता है ॥ १८ ॥ जो रात बीत जाती है वह लौटकर नहीं आती । यमुना पूर्ण समुद्रमें जातीही है, लौटती नहीं ॥ १९ ॥ सब प्राणियोंके दिन रात बीतते हैं और इससे उनकी आयु नष्ट होती है, जिस प्रकार गर्मीके दिनोंमें सूर्यकी किरणें जलको नष्ट करती है ॥ २० ॥ तुम अपनी चिन्ता करो, दूसरोंकी चिन्ता क्यों करते हो, सबकी आयु कम हो रही है, जो वर्तमान है या चला गया है ॥ २१ ॥ मृत्यु साथही चलती है, साथही बैठती है, और बहुत दूर तक मार्गमें साथ जाकर पुनः लौट आती है ॥ २२ ॥ शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयीं, बाल सफेद हो गये, जरासे मनुष्य जर्जर हो गया, अब किस बलपर वह अपना प्रभुत्व स्थापित कर सकता है ॥ २३ ॥ सूर्योदयपर मनुष्य प्रसन्न होता है, सूर्यास्तपर मनुष्य प्रसन्न होता है, पर इनसे उसके जीवनका नाश हो रहा है, वह यह नहीं समझता ॥ २४ ॥ आयी हुई नयी-नयी ऋतु-ओंको देखकर मनुष्य प्रसन्न होता है, पर इस ऋतु-परिवर्तनसे मनुष्योंके प्राणका नाश होता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महार्णवे । समेत्य तु व्यपेयातां कालमासाद्य कंचन ॥२६॥
एवं भार्याश्च पुत्राश्च ज्ञातयश्च वसूनि च । समेत्य व्यवधावन्ति ध्रुवो ह्येषां विनाभवः ॥२७॥
नात्र काश्चिद्यथाभावं प्राणी समतिवर्तते । तेन तस्मिन्न सामर्थ्यं प्रेतस्यास्त्यनुशोचतः ॥२८॥
यथा हि सार्थं गच्छन्तं ब्रूयात्कश्चित्पथि स्थितः । अहमप्यागमिष्यामि पृष्ठतो भवतामिति ॥२९॥
एवं पूर्वैर्गतो मार्गः पितृपैतामहैर्ध्रुवः । तमापन्नः कथं शोचेद्यस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥३०॥
वयसः पतमानस्य स्रोतसो वानिवर्तिनः । आत्मा सुखे नियोक्तव्यः सुखभाजः प्रजाः स्मृताः ॥३१॥
धर्मात्मा सुशुभैः कृत्स्नैः क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः । न स शोच्यः पिता तात स्वर्गतः सत्कृतः सताम् ॥३२॥
स जीर्णमानुषं देहं परित्यज्य पिता हि नः । दैवीमृद्धिमनुप्राप्तो ब्रह्मलोकविहारिणीम् ॥३३॥
तं तु नैवंविधः कश्चित्प्राज्ञः शोचितुमर्हति । त्वाद्विधो माद्विधश्चापि श्रुतवान्बुद्धिमत्तरः ॥३४॥
एते बहुविधाः शोका विलापरुदिते तदा । वर्जनीया हि धीरेण सर्वावस्थासु धीमता ॥३५॥
स स्वस्थो भव मा शोको यात्वा चावसतां पुरीम् । तथा पित्रा नियुक्तोऽसि वशिना वदतां वर ॥३६॥
यत्राहमपि तेनैव नियुक्तः पुण्यकर्मणा । तत्रैवाहं करिष्यामि पितुरार्यस्य शासनम् ॥३७॥
न मया शासनं तस्य त्यक्तुं न्याय्यमरिंदम । स त्वयापि सदा मान्यः स वै बन्धुः स नः पिता ॥३८॥

है ॥ २५ ॥ जिस प्रकार समुद्रमें लकड़ीसे लकड़ी मिल जाती है और कुछ समय तक मिली रहती है, पुनः समय पर अलग हो जाती है ॥ २६ ॥ इसी प्रकार स्त्री, पुत्र, ज्ञाति और धन मिल जाते हैं और पुनः अलग हो जाते हैं । इनका वियोग निश्चित है ॥ २७ ॥ इस संसारमें कोई भी प्राणी जन्म और मृत्युके नियमोंका लंघन नहीं कर सकता । मृत पुरुषोंके लिए सोच करनेवालोंमें यह सामर्थ्य नहीं है कि उसका प्रेतत्व दूर करें ॥ २८ ॥ जिस प्रकार मार्गमें जाते हुए वनियोंके दलसे मार्गमें स्थित मनुष्य कहे कि मैं भी आप लोगोंके पीछे आ रहा हूँ, इसी प्रकार पिता पितामह आदि पूर्वपुरुष जिस निश्चित मार्गसे गये हैं, उसीमें हमको भी जाना है, फिर इसमें सोच क्यों किया जाय, जिसका कोई उपाय नहीं है ॥ २९, ३० ॥ नहीं लौटनेवाली धाराके समान, नहीं लौटनेवाले और दिन-दिन गिरते हुए वयको देखकर मनुष्यको चाहिए कि वह अपनी आत्माको सुखके साधन धर्ममें लगावे, क्योंकि मनुष्य-जन्मका फल धर्मके द्वारा सुख प्राप्त करनाही है ॥ ३१ ॥ महाराज दसरथ धर्मात्मा थे, उनके सभी कर्म पुण्यमय थे, दक्षिणा देकर उन्होंने यज्ञ किये थे और सज्जनोंके द्वारा सम्मानित थे । हम लोगोंके वे स्वर्गीय पिता शोक करने योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥ हम लोगोंके पिताने पुराना मनुष्य-देह त्याग करके दैवी संपत्ति पायी है, जिससे वे ब्रह्मलोकमें विहार कर रहे हैं ॥ ३३ ॥ कोई भी बुद्धिमान जो तुम्हारे और हमारे समान शास्त्रोंका ज्ञाता है, वह राजा दसरथ के लिए शोक नहीं कर सकता ॥ ३४ ॥ ये अनेक प्रकारके शोक, विलाप और रोना धीर बुद्धिमानको छोड़ देना चाहिए ॥ ३५ ॥ स्वस्थ हो जाओ, शोक मत करो और जाकर अयोध्यामें निवास करो, क्योंकि वशी पिताकी तुम्हारे लिए यही आज्ञा है ॥ ३६ ॥ उन्हीं पुण्यकर्मा पिताके द्वारा जहाँ मैं नियुक्त हूँ, वहीं अपने श्रेष्ठ पिताके शासनका मैं पालन करूँगा ॥ ३७ ॥ पिताकी आज्ञाका त्याग करना मेरे लिए उचित नहीं है । वे तुम्हारे भी सदा मान्य हैं । वे हम-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तद्वचः पितुरेवाहं संमतं धर्मचारिणाम् । कर्मणा पालयिष्यामि वनवासेन राघव ॥३९॥
धार्मिकेणानृशंसेन नरेण गुरुवर्तिना । भवितव्यं नरव्याघ्र परलोकं जिगीषता ॥४०॥
आत्मानमनुतिष्ठ त्वं स्वभावेन नरर्षभ । निशाम्य तु शुभं वृत्तं पितुर्दशरथस्य नः ॥४१॥
इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा पितुर्निदेशप्रतिपालनार्थम् ।
यवीयसं भ्रातरमर्थवच्च प्रभुर्मुहूर्ताद्विरराम रामः ॥४२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चोत्तरशततमः सर्गः ॥१०५॥

षडुत्तरशततमः सर्गः १०६

एवमुक्त्वा तु विरते रामे वचनमर्थवत् । ततो मन्दाकिनीतीरे रामं प्रकृतिवत्सलम् ॥ १ ॥
उवाच भरतश्चित्रं धार्मिको धार्मिकं वचः । को हि स्यादीदृशो लोके यादृशस्त्वमरिंदम ॥ २ ॥
न त्वां प्रव्यथयेद्दुःखं प्रीतिर्वा न प्रहर्षयेत् । संमतश्चापि वृद्धानां ताँश्च पृच्छसि संशयान् ॥ ३ ॥
यथा मृतस्तथा जीवन्यथासति तथा सति । यस्यैष बुद्धिलाभः स्यात्परितप्येत केन सः ॥ ४ ॥
परावरज्ञो यश्च स्याद्यथा त्वं मनुजाधिप । स एव व्यसनं प्राप्य न विषीदितुमर्हति ॥ ५ ॥
अमरोपमसत्त्वस्त्वं महात्मा सत्यसंगरः । सर्वज्ञः सर्वदर्शी च बुद्धिमांश्चापि राघव ॥ ६ ॥

लोगोंके हितचिन्तक पिता हैं ॥ ३८ ॥ उन्ही पिताका वचन जो धर्मात्माओंको सम्मत है, वनमें निवास कर मैं पालन करूँगा ॥ ३९ ॥ परलोकको जीतनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको धार्मिक दयालु और बड़ोंकी आज्ञा माननेवाला होना चाहिए ॥ ४० ॥ राजा दसरथके आचरणोंका विचार कर तुम अपने धार्मिक स्वभावके द्वारा आत्मसम्बन्धी उन्नतिके लिए प्रयत्न करो ॥४१॥ महात्मा रामचन्द्र पिताकी आज्ञाके पालन-सम्बन्धमें अपने छोटे भाईसे अर्थयुक्त वचन कहकर चुप हो गये ॥ ४२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एक सौ पांचवाँ सर्ग समाप्त ॥१०५॥

इस प्रकार अर्थयुक्त वचन कहकर, रामचन्द्रके चुप हो जानेपर, धार्मिक भरत, प्रजाप्रिय और धर्मात्मा रामसे युक्तियुक्त वचन इस प्रकार बोले—शत्रुतापी रामचन्द्र, इस लोकमें कौन ऐसा है जो आपके समान हो ॥ १ ॥ २ ॥ कोई दुख आपको व्यथित नहीं कर सकता और न कोई प्रसन्नता आपको प्रसन्नही कर सकती है। फिर भी वृद्धोंके प्रिय आप, सन्देहकी बातें उनसे पूछा करते हैं ॥ ३ ॥ जिस प्रकार मृत्यु है उसी प्रकार जीवन है और जिस प्रकार अभाव है उसी प्रकार भाव है, जो इस प्रकारकी बुद्धि रखता है, उसके दुखी होनेका कारण ही क्या है ॥ ४ ॥ जिसको समस्त तत्त्वोंका ज्ञान होगा, जैसे कि आप, वही दुख होनेपर विषाद नहीं कर सकता ॥ ५ ॥ हे देवसमान रामचन्द्र, आप सत्वगुण युक्त, महात्मा, सत्यप्रतिज्ञ, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न त्वामेवंगुणैर्युक्तं प्रभवाभवकोविदम् । अतिषह्यतमं दुःखमासादयितुमर्हति ॥ ७ ॥
प्रोषिते मयि यत्पापं मात्रा मत्कारणात्कृतम् । क्षुद्रया तदनिष्टं मे प्रसीदतु भवान्मम ॥ ८ ॥
धर्मबन्धेन बद्धोऽस्मि तेनेमां नेह मातरम् । हन्मि तीव्रेण दण्डेन दण्डार्हां पापकारिणीम् ॥ ९ ॥
कथं दशरथाज्जातः शुभाभिजनकर्मणः । जानन्धर्ममधर्मं च कुर्यां कर्म जुगुप्सितम् ॥१०॥
गुरुः क्रियावान्वृद्धश्च राजा प्रेतः पितेति च । तातं न परिगर्हेऽहं दैवतं चेति संसदि ॥११॥
को हि धर्मार्थयोर्हीनमीदृशं कर्म किल्बिषम् । स्त्रियः प्रियचिकीर्षुः सन्कुर्याद्धर्मज्ञ धर्मवित् ॥१२॥
अन्तकाले हि भूतानि मुह्यन्तीति पुरा श्रुतिः । राज्ञैवं कुर्वता लोके प्रत्यक्षा सा श्रुतिः कृता ॥१३॥
साध्वर्थमभिसंधाय क्रोधान्मोहाच्च साहसात् । तातस्य यदतिक्रान्तं प्रत्याहरतु तद्भवान् ॥१४॥
पितुर्हि समतिक्रान्तं पुत्रो यः साधु मन्यते । तदपत्यं मतं लोके विपरीतमतोऽन्यथा ॥१५॥
तदपत्यं भवानस्तु मा भवान्दुष्कृतं पितुः । अति यत्तत्कृतं कर्म लोको धीरविगर्हितम् ॥१६॥
कैकेयीं मां च तातं च सुहृदो बान्धवांश्च नः । पौरजानपदान्सर्वांस्त्रातुं सर्वमिदं भवान् ॥१७॥
क्व चारण्यं क्व च क्षात्रं क्व जटाः क्व च पालनम् । ईदृशं व्याहतं कर्म न भवान्कर्तुमर्हति ॥१८॥
एष हि प्रथमो धर्मः क्षत्रियस्याभिषेचनम् । येन शक्यं महाप्राज्ञ प्रजानां परिपालनम् ॥१९॥

बुद्धिमान हैं ॥ ६ ॥ ऐसे गुणोंसे युक्त, जन्म मृत्युके रहस्य जाननेवाले आपको, औरोंके द्वारा न सहने योग्य दुख नहीं होता ॥ ७ ॥ बाहर रहनेपर मेरे लिए मेरी क्षुद्र माताने जो मेरा अनिष्ट किया है, उसके लिए मुझे आप क्षमा करें ॥ ८ ॥ मैं धर्मबन्धनसे बँधा हूँ, इसी कारण इस माता को-पाप करनेवाली, अतएव दण्ड पानेकी अधिकारिणी माताको कठोर दण्डसे नहीं मारता ॥९॥ उत्तमकुल और पुण्यकर्म करनेवाले दसरथसे उत्पन्न और धर्माधर्मका जाननेवाला मैं ऐसा निन्दित कर्म कैसे करूंगा ॥ १० ॥ वे हमारे गुरु, यज्ञ आदि करनेवाले राजा और पिता दसरथ इस समय परलोकवासी हो गये हैं । इस सभामें उनकी निन्दा नहीं करता, क्योंकि वे हमारे देवता है ॥ ११ ॥ स्त्रीको प्रसन्न करनेके लिए, इस प्रकारका पाप और निन्दित कर्म, धर्म और अर्थ-से हीन, कौन धर्म जाननेवाला मनुष्य कर सकता है ॥ १२ ॥ अन्तकालमें मनुष्यकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, यह बात प्राचीन श्रुति कहती है, इस प्रकारका काम करके राजाने उस श्रुतिको सत्य बना दिया ॥१३॥ केकयीके भयसे, चित्तके चांचल्यसे अथवा अज्ञानसे, उचित समझकर जो पिता-ने धर्मका अतिक्रम किया है, आप उसका संशोधन करें ॥ १४ ॥ पिताकी गलतियोंका संशोधन जो पुत्र करता है, वही पुत्र, पुत्र है। इसके विपरीत करनेवाला पुत्र अच्छा नहीं समझा जाता ॥१५॥ आप पिताके उत्तम पुत्र बनें, आप पिताके पापोंका समर्थन न करें । पिताने जो यह कर्म किया है, वह धर्म और लोकसे निन्दित है ॥ १६ ॥ केकयी, मैं, पिता, मित्रों, बान्धवों, और पुरवासियों इन सबकी रक्षा आपही कर सकते हैं ॥ १७ ॥ कहाँ अरण्यका वास और कहाँ क्षात्रधर्म, कहाँ जटा धारण और कहाँ राज्य पालन, इस प्रकार परस्पर विरोधी बातें आपको नहीं करनी चाहिएँ ॥ १८ ॥ महाप्राज्ञ, क्षत्रियका यह पहला धर्म है कि उसका अभिषेक हो, जिससे वह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कश्च प्रत्यक्षमुत्सृज्य संशयस्थमलक्षणम् । आयतिस्थं चरेद्धर्मं क्षत्रबन्धुरनिश्चितम् ॥२०॥
अथ क्लेशजमेव त्वं धर्मं चरितुमिच्छसि । धर्मेण चतुरो वर्णान्पालयन्क्लेशमाप्नुहि ॥२१॥
चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम् । आहुर्धर्मज्ञ धर्मज्ञास्तं कथं त्यक्तुमिच्छसि ॥२२॥
श्रुतेन बालः स्थानेन जन्मना भवतो ह्यहम् । स कथं पालयिष्यामि भूमिं भवति तिष्ठति ॥२३॥
हीनबुद्धिगुणो बालो हीनस्थानेन चाप्यहम् । भवता च विनाभूतो न वर्तयितुमुत्सहे ॥२४॥
इदं निखिलमप्यग्र्यं राज्यं पित्र्यमकण्टकम् । अनुशाधि स्वधर्मेण धर्मज्ञः सह बान्धवैः ॥२५॥
इहैव त्वाभिषिञ्चन्तु सर्वाः प्रकृतयः सह । ऋत्विजः सवसिष्ठाश्च मन्त्रविन्मन्त्रकोविदाः॥२६॥
अभिषिक्तस्त्वमस्माभिरयोध्यां पालने व्रज । विजित्य तरसा लोकान्मरुद्भिरिव वासवः ॥२७॥
ऋणानि त्रीण्यपाकुर्वन्दुर्हृदः साधु निर्दहन् । सुहृदस्तर्पयन्कामैस्त्वमेवात्रानुशाधि माम् ॥२८॥
अद्यार्य मुदिताः सन्तु सुहृदस्तेऽभिषेचने । अद्य भीताः पलायन्तु दुष्प्रदास्ते दिशो दश ॥२९॥
आक्रोशं मम मातुश्च प्रमृज्य पुरुषर्षभः । अद्य तत्रभवन्तं च पितरं रक्ष किल्बिषात् ॥३०॥
शिरसा त्वाभियाचेऽहं कुरुष्व करुणां मयि । बान्धवेषु च सर्वेषु भूतेष्विव महेश्वरः ॥३१॥
अथवा पृष्ठतः कृत्वा वनमेव भवानितः । गमिष्यति गमिष्यामि भवता सार्धमप्यहम् ॥३२॥

प्रजाका पालन कर सके ॥ १९ ॥ लोक और धर्मसे सम्मत इस प्रजापालनरूप प्रत्यक्ष धर्मको छोड़कर कौन क्षत्रिय उत्तरकालमें होनेवाले, सन्देहास्पद, लक्षणहीन, अतएव अनिश्चित धर्मका पालन करेगा ॥ २० ॥ यदि आप कष्ट करके ही धर्मका पालन करना चाहते हों, तो चारों वर्णोंका पालन करके कष्ट उठाइए ॥ २१ ॥ हे धर्मज्ञ, धर्म जाननेवाले, चारों आश्रमोंमें गृहस्थ आश्रमको ही श्रेष्ठ कहते हैं, फिर आप उसका त्याग करना क्यों चाहते हैं ॥ २२ ॥ मैं ज्ञानसे, स्थानसे आपसे छोटा हूँ, आपके रहते मैं पृथिवीका पालन कैसे करूँगा ॥ २३ ॥ मैं हीनबुद्धि और छोटे स्थानपर स्थित, अतएव बालक, आपके बिना जी भी नहीं सकता ॥ २४ ॥ पिताका इस शत्रुहीन और श्रेष्ठ राज्यका अपने बान्धवोंके साथ आप धर्मपूर्वक पालन करें ॥ २५ ॥ मन्त्र जाननेवाले वसिष्ठ आदि सभी ऋत्विज् तथा सब प्रजा यहीं आपका अभिषेक करें ॥ २६ ॥ हम लोगोंके द्वारा अभिषिक्त होनेपर शीघ्रतापूर्वक लोकको जीतकर देवसहित इन्द्रके समान पालन करनेके लिए आप अयोध्या चलें ॥ २७ ॥ देवता, ऋषि और पितर, इनके ऋणोंको दूर करते हुए, दुष्टोंका शासन करते हुए और मित्रोंका मनोरथ पूर्ण करते हुए, अयोध्यामें आप मुझे शिक्षा दें ॥ २८ ॥ आर्य, आपके अभिषेक करनेके लिए आप अपने मित्रोंको प्रसन्न होने दीजिए और दुख देनेकी इच्छा रखनेवाले डरकर दिशाओंमें भाग जायँ ॥ २९ ॥ मेरा और मेरी माताका लोकापवाद दूर कीजिए और पूज्य पिताको भी पापसे रक्षा कीजिए ॥ ३० ॥ मैं सिर झुकाकर आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझपर और समस्त बान्धवोंपर कृपा करें, जिस प्रकार विष्णु प्राणियोंपर कृपा करते हैं ॥ ३१ ॥ यदि आप मेरी प्रार्थना न मानकर यहाँसे भी वनमें ही जायँगे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तथाभिरामो भरतेन ताम्यता प्रसाद्यमानः शिरसा महीपतिः ।
न चैव चक्रे गमनाय सत्त्ववान्मतिं पितुस्तद्वचने प्रतिष्ठितः ॥३३॥
तदद्भुतं स्थैर्यमवेक्ष्य राघवे समं जनो हर्षमवाप दुःखितः ।
न यात्ययोध्यामिति दुःखितोऽभवत्स्थिरप्रतिज्ञत्वमवेक्ष्य हर्षितः॥३४॥
तमृत्विजो नैगमयूथवल्लभास्तथा विसंज्ञाश्रुकलाश्च मातरः ।
तथा ब्रुवाणं भरतं प्रतुष्टुवुः प्रणम्य रामं च ययाचिरे सह ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षडुत्तरशततमः सर्गः ॥१०६॥

सप्तोत्तरशततमः सर्गः १०७

पुनरेवं ब्रुवाणं तं भरतं लक्ष्मणाग्रजः । प्रत्युवाच ततः श्रीमाञ्ज्ञातिमध्ये सुसत्कृतः॥ १ ॥
उपपन्नमिदं वाक्यं यस्त्वमेवमभाषथाः । जातः पुत्रो दशरथात्कैकेय्यां राजसत्तमात्॥ २ ॥
पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन् । मातामहे समाश्रौषीद्राज्यशुल्कमनुत्तमम् ॥ ३ ॥
दैवासुरे च संग्रामे जनन्यै तव पार्थिवः । संप्रहृष्टो ददौ राजा वरमाराधितः प्रभुः ॥ ४ ॥
ततः सा संप्रतिश्राव्य तव माता यशस्विनी । अयाचते नरश्रेष्ठं द्वौ वरौ वरवर्णिनी ॥ ५ ॥
तव राज्यं नरव्याघ्र मम प्रव्राजनं तथा । तच्च राजा तथा तस्यै नियुक्तः प्रददौ वरम् ॥ ६ ॥

तो मैं भी आपके साथ वनमें चलूँगा ॥ ३२ ॥ इस प्रकार व्याकुल भरतने सिर झुका रामचन्द्रको प्रसन्न करना चाहा । फिर भी पिताकी आज्ञापालन करनेके लिए निश्चितबुद्धि रखनेवाले और सत्यवान् रामचन्द्रने जानेकी इच्छा नहीं की ॥ ३३ ॥ रामचन्द्रका वह अद्भुत स्थैर्य देखकर, वह दुखी जनसमूह प्रसन्न हुआ । रामचन्द्र अयोध्या नहीं जा रहे हैं इस कारण दुखी हुआ, अपनी प्रतिज्ञापर अटल हैं इस कारण प्रसन्न हुआ ॥ ३४ ॥ ऋत्विक्, नगरवासी, मन्त्री, गणके प्रतिनिधि तथा संज्ञाहीन और रोती हुई माताओंने इस प्रकार बोलनेवाले भरतकी प्रशंसा की और रामचन्द्रको प्रणामकर तथा आशीर्वाद देकर अयोध्या चलनेकी प्रार्थना की ॥ ३५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एकसौ छठवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०६ ॥

ज्ञातिमें सम्मानित रामचन्द्र, भरतके इस प्रकार कहनेके अनन्तर, पुनः इस प्रकार बोले ॥१॥ राजश्रेष्ठ, दसरथसे उत्पन्न तुम केकयीके पुत्र हो । जो बातें तुमने कहीं हैं, वे उचित हैं ॥ २ ॥ भाई, पहले मेरे पिताने जब तुम्हारी मातासे विवाह किया, उस समय उन्होंने तुम्हारे नानासे राज्य देनेकी प्रतिज्ञा की, अर्थात् तुम्हारी कन्याके जो पुत्र होगा वही राज्य पावेगा ॥ ३ ॥ देवासुर संग्राममें तुम्हारी माताके द्वारा आराधित होकर प्रसन्न राजा दसरथने इन्हें वर दिया था ॥ ४ ॥ उस बातका स्मरण कराकर तुम्हारी यशस्विनी माताने नरश्रेष्ठ राजासे दो वर माँगे ॥ ५ ॥ तुम्हारे लिए राज्य और मेरे लिए वनवास । राजाने इन्हे दो वर दिये, क्योंकि वे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तेन पित्राहमप्यत्र नियुक्तः पुरुषर्षभ । चतुर्दश वने वासं वर्षाणि वरदानिकम् ॥ ७ ॥
सोऽहं वनमिदं प्राप्तो निर्जनं लक्ष्मणान्वितः । सीतया चाप्रतिद्वन्द्वः सत्यवादे स्थितः पितुः ॥ ८ ॥
भवानपि तथेत्येव पितरं सत्यवादिनम् । कर्तुमर्हसि राजेन्द्र क्षिप्रमेवाभिषिञ्चनात् ॥ ९ ॥
ऋणान्मोचय राजानं मत्कृते भरत प्रभुम् । पितरं त्राहि धर्मज्ञ मातरं चाभिनन्दय ॥१०॥
श्रूयते धीमता तात श्रुतिर्गीता यशस्विना । गयेन यजमानेन गयेष्वेव पितॄन्प्रति ॥११॥
पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः । तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः पितॄन्यः पाति सर्वतः॥१२॥
एष्टव्या बहवः पुत्रा गुणवन्तो बहुश्रुताः । तेषां वै समवेतानामपि काश्चिद्गयां व्रजेत् ॥१३॥
एवं राजर्षयः सर्वे प्रतीता रघुनन्दन । तस्मात्त्राहि नरश्रेष्ठ पितरं नरकात्प्रभो ॥१४॥
अयोध्यां गच्छ भरत प्रकृतीरुपरञ्जय । शत्रुघ्नसहितो वीर सह सर्वैर्द्विजातिभिः ॥१५॥
प्रवेक्ष्ये दण्डकारण्यमहमप्यविलम्बयन् । आभ्यां तु सहितो वीर वैदेह्या लक्ष्मणेन च ॥१६॥

त्वं राजा भरत भव स्वयं नराणां वन्यानामहमपि राजराण्मृगाणाम् ।
गच्छ त्वं पुरवरमद्य संप्रहृष्टः संहृष्टस्त्वहमपि दण्डकान्प्रवेक्ष्ये ॥१७॥
छायान्ते दिनकरभाः प्रवाधमानं वर्षत्रं भरत करोतु मूर्ध्नि शीताम् ।
एतेषामहमपि काननद्रुमाणां छायां तामातिशयनीं शनैः श्रयिष्ये ॥१८॥

प्रतिज्ञासे बद्ध थे ॥ ६ ॥ उस पिताने उसी वरके अनुसार चौदह वर्षोंतक वनवास करनेके लिए मुझे यहाँ भेजा ॥ ७ ॥ इसी कारण लक्ष्मण और सीताके साथ मैं निर्जन वनमें आया हूँ, मैं पिताके सत्यपर स्थित हूँ । और शोक-मोह, सर्दी-गर्मी आदिका मुझे कोई कष्ट नहीं है ॥ ८ ॥ आप भी इसी प्रकार शीघ्र राज्याभिषेक कराकर पिताको सत्यवादी बनावें ॥ ९ ॥ भरत, मेरे लिए तुम राजाको ऋणमुक्त करो, पिताकी रक्षा करो और माताको प्रसन्न ॥ १० ॥ गया प्रदेशमें यशस्वी और बुद्धिमान गयने यज्ञ करते हुए एक श्रुति अपने पितरोंसे कही है ॥ ११ ॥ पुंनामक नरकसे पितरोंकी वह रक्षा करता है, इसी कारण वह पुत्र कहा जाता है । क्योंकि पितरोंकी सब प्रकारसे वह रक्षा करता है ॥ १२ ॥ गुणी और ज्ञानी बहुत पुत्र प्राप्त होनेकी इच्छा करनी चाहिये, क्योंकि सम्भव है कि उनमेंसे कोई एक गया चला जाय ॥ १३ ॥ सभी राजर्षि इस विषयमें विश्वास रखते हैं, अतएव हे नरश्रेष्ठ, रघुनन्दन, तुम नरकसे--लोकापवादसे, पिताकी रक्षा करो ॥ १४ ॥ हे वीर, शत्रुघ्न तथा सब द्विजातियोंके साथ तुम अयोध्या जाओ और प्रजाका पालन करो ॥ १५ ॥ मैं इन लक्ष्मण और सीताके साथ दण्डकारण्यमें प्रवेश करूंगा ॥ १६ ॥ भरत, तुम स्वयं मनुष्योंके राजा बनो, मैं जंगली पशुओंका राजा हूँ । तुम प्रसन्न होकर शीघ्र अयोध्या जाओ और मैं भी प्रसन्नतापूर्वक दण्डकारण्यमें प्रवेश करता हूँ ॥ १७ ॥ सूर्यकी किरणोंको छिपा देनेवाला, राजछत्र तुम्हारे ऊपर ठंढी छाया करे, इन जंगली वृक्षोंकी अतिसघन छायाका मैं भी आश्रय करूंगा ॥१८॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शत्रुघ्नस्त्वतुलमतिस्तु ते सहायः सौमित्रिर्मम विदितः प्रधानमित्रम् ।
चत्वारस्तनयवरा वयं नरेन्द्रं सत्यस्थं भरत चराम मा विषीद ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥१०७॥

अष्टोत्तरशततमः सर्गः १०८

आश्वासयन्तं भरतं जाबालिर्ब्राह्मणोत्तमः । उवाच रामं धर्मज्ञं धर्मापेतमिदं वचः ॥ १ ॥
साधु राघव मा भूत्ते बुद्धिरेवं निरर्थिका । प्राकृतस्य नरस्येव ह्यार्यबुद्धेस्तपस्विनः ॥ २ ॥
कः कस्य पुरुषो बन्धुः किमाप्यं कस्य केनचित् । एको हि जायते जन्तुरेक एव विनश्यति ॥ ३ ॥
तस्मान्माता पिता चेति राम सज्जेत यो नरः । उन्मत्त इव स ज्ञेयो नास्ति काश्चिद्धि कस्यचित् ॥ ४ ॥
यथा ग्रामान्तरं गच्छन्नरः काश्चिद्बहिर्वसेत् । उत्सृज्य च तमावासं प्रतिष्ठेतापरेऽहनि ॥ ५ ॥
एवमेव मनुष्याणां पिता माता गृहं वसु । आवासमात्रं काकुत्स्थ सज्जन्ते नात्र सज्जनाः ॥ ६ ॥
पित्र्यं राज्यं समुत्सृज्य स नार्हसि नरोत्तम । आस्थातुं कापथं दुःखं विषमं बहुकण्टकम् ॥ ७ ॥
समृद्धायामयोध्यायामात्मानमभिषेचय । एकवेणीधरा हि त्वां नगरी संप्रतीक्षते ॥ ८ ॥
राजभोगाननुभवन्महार्हान्पार्थिवात्मज । विहर त्वमयोध्यायां यथा शक्रस्त्रिविष्टपे ॥ ९ ॥
न ते काश्चिदशरथस्त्वं च तस्य न कश्चन । अन्यो राजा त्वमन्यस्तु तस्मात्कुरु यदुच्यते ॥१०॥

अतुलमति शत्रुघ्न तुम्हारा सहायक है और लक्ष्मण मेरे प्रधान मित्र प्रसिद्ध ही हैं, हम चारो पुत्र राजाके सत्यकी रक्षा करें । भरत, तुम दुःख मत करो ॥ १९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एकसौ सातवाँ सर्ग समाप्त ॥१०७॥

ब्राह्मणश्रेष्ठ जाबालि भरतको समझाते हुए, धर्मज्ञ रामचन्द्रसे धर्मविरुद्ध यह वचन बोले ॥ १ ॥ रामचन्द्र आप श्रेष्ठ बुद्धिवाले तपस्वी हैं । अतएव ऐसी अर्थहीन बुद्धि आपकी नहीं होनी चाहिए ॥ २ ॥ कौन किसका बन्धु है, किसको किससे क्या पाना है ? मनुष्य अकेला उत्पन्न होता है और अकेला नष्ट होता है ॥ ३ ॥ अतएव, माता पिता समझकर जो मनुष्य व्यक्ति विशेषमें प्रेम करता है, उसे उन्मत्त ही समझना चाहिए, क्योंकि कोई किसीका नहीं है ॥ ४ ॥ जिस प्रकार दूसरे गाँवमें जाता हुआ कोई मनुष्य बाहर थोड़ी देर विश्राम करता है और दूसरे दिन उस स्थानको छोड़कर चला जाता है, इसी प्रकार मनुष्योंके पिता माता, घर, वन केवल रहनेके स्थान हैं, इनमें सज्जन लोग अनुराग नहीं करते ॥ ५ ॥ ६ ॥ पिताका राज्य छोड़कर कटीला, विषम, दुखदायी इस कुपथका आश्रय ग्रहण तुम्हें नहीं करना चाहिए ॥ ७ ॥ समृद्ध अयोध्याके राज्यपर अपना अभिषेक कराओ । तुम्हारे अभावमें विरहिणीका धर्म पालन करती हुई अयोध्या नगरी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है ॥ ८ ॥ श्रेष्ठ राज भोगोंका अनुभव करते हुए तुम अयोध्यामें विहार करो, जिस प्रकार इन्द्र स्वर्गमें विहार करता है ॥ ९ ॥ दसरथ तुम्हारे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बीजमात्रं पिता जन्तोः शुक्रं शोणितमेव च । संयुक्तमृतुमन्मात्रा पुरुषस्येह जन्म तत् ॥११॥
गतः सनृपतिस्तत्र गन्तव्यं यत्र तेन वै । प्रवृत्तिरेषा भूतानां त्वं तु मिथ्या विहन्यसे ॥१२॥
अर्थधर्मपरा ये ये तांस्ताञ्शोचामि नेतरान् । ते हि दुःखमिह प्राप्य विनाशं प्रेत्य लेभिरे ॥१३॥
अष्टकापितृदेवत्यमित्ययं प्रसृतो जनः । अन्नस्योपद्रवं पश्य मृतो हि किमशिष्यति ॥१४॥
यदि भुक्तमिहान्येन देहमन्येन गच्छति । दद्यात्प्रवसतां श्राद्धं न तत्पथ्यशनं भवेत् ॥१५॥
दानसंवनना ह्येते ग्रन्था मेधाविभिः कृताः । यजस्व देहि दीक्षस्व तपस्तप्यस्व संत्यज ॥१६॥
स नास्ति परमित्येतत्कुरु बुद्धिं महामते । प्रत्यक्षं यत्तदातिष्ठ परोक्षं पृष्ठतः कुरु ॥१७॥
सतां बुद्धिं पुरस्कृत्य सर्वलोकानिदार्शिनीम् । राज्यं स त्वं निगृह्णीष्व भरतेन प्रसादितः ॥१८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डेऽष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

नवोत्तरशततमः सर्गः १०९

जाबालेस्तु वचः श्रुत्वा रामः सत्यपराक्रमः । उवाच परया सूक्त्या बुद्ध्या विप्रतिपन्नया ॥ १ ॥
भवान्मे प्रियकामार्थं वचनं यदिहोक्तवान् । अकार्यं कार्यसंकाशमपथ्यं पथ्यसंनिभम् ॥ २ ॥

कोई नहीं थे और तुम भी दसरथके कोई नहीं थे । राजा दूसरे थे, और तुम भी दूसरे हो । इस कारण जो मैं कहता हूँ वह तुम करो ॥१०॥ पिता प्राणियोंका केवल निमित्त कारण है, ऋतुमती माताके गर्भमें शुक्र और शोणितके मिलनेसे पुरुषका जन्म होता है ॥ ११ ॥ जहाँ राजा गये हैं, वहीं तुमको भी जाना पड़ेगा, यही प्राणियोंका स्वभाव है, तुम व्यर्थही राज्यधर्मके पालनरूप पुरुषार्थको छोड़ रहे हो ॥ १२ ॥ प्रत्यक्ष अर्थको छोड़कर जो लोग धर्मका आश्रयण करते हैं, मैं उन्हींके लिए शोक करता हूँ, दूसरोंके लिए नहीं, क्योंकि वे इस लोकमें दुःख उठाकर परलोकमें नष्ट हो जाते हैं ॥ १३ ॥ पितरोंके उद्देश्यसे लोकमें श्राद्ध करनेका जो विधान प्रचलित है, उसमें केवल अन्नका नाश किया जाता है; क्योंकि मरा हुआ मनुष्य कैसे खा सकता है ॥ १४ ॥ यदि दूसरेका खाया हुआ अन्न दूसरेके शरीरमें जाता हो तो प्रवासमें जानेवालोंका भी श्राद्ध किया जाय, जिसमें उन्हें रास्तेमें भोजन मिले ॥ १५ ॥ यज्ञ करो, दान दो, यज्ञके लिए दीक्षा लो, तपस्या करो, संन्यास लो इत्यादि बतलानेवाले ग्रन्थ बुद्धिमानोंने दान करानेके लिये बनाए हैं ॥ १६ ॥ महामते, इस लोकके अतिरिक्त दूसरा लोक नहीं है यह तुम समझो । जो प्रत्यक्ष है उसीको तुम समझो और जो परोक्ष है उसका त्याग करो ॥ १७ ॥ सज्जनोंकी सलाह मानकर तुम राज्य ग्रहण करो । भरत तुम्हें मना रहा है । यही सबको इष्ट है ॥ १८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एकसौ आठवाँ सर्ग समाप्त ॥१०८॥

जाबालिके वचन सुनकर सत्यानुरागी रामचन्द्रने उनके विरोधमें वेदानुसार ये वचन कहे ॥ १ ॥ मेरे प्रिय करनेकी इच्छासे जो बातें आपने कही हैं वे अकार्य हैं–करनेके अयोग्य हैं, पर कार्यके करने योग्यके समान मालुम होती हैं । वे अहितकारी हैं पर हितकारीके समान मालुम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निर्मर्यादस्तु पुरुषः पापाचारसमन्वितः । मानं न लभते सत्सु भिन्नचारित्रदर्शनः ॥ ३ ॥
कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम् ।चारित्रमेव व्याख्याति शुचिं वा यदि वाशुचिम् ॥ ४ ॥
अनार्यस्त्वार्यसंस्थानः शौचाद्धीनस्तथा शुचिः। लक्षण्यवदलक्षण्यो दुःशीलः शीलवानिव ॥ ५ ॥
अधर्मं धर्मवेषेण यद्यहं लोकसंकरम् । अभिपत्स्ये शुभं हित्वा क्रियां विधिविवर्जिताम् ॥६॥
कश्चेतयानः पुरुषः कार्याकार्यविचक्षणः । बहु मन्येत मां लोके दुर्वृत्तं लोकदूषणम् ॥ ७ ॥
कस्य यास्याम्यहं वृत्तं केन वा स्वर्गमाप्नुयाम् । अनया वर्तमानोऽहं वृत्त्या हीनप्रतिज्ञया ॥ ८ ॥
कामवृत्तोऽन्वयं लोकः कृत्स्नः समुपवर्तते । यद्वृत्ताः सन्ति राजानस्तद्वृत्ताः सन्ति हि प्रजाः ॥९॥
सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम् । तस्मात्सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकःप्रतिष्ठितः॥१०॥
ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव हि मेनिरे ।सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन्परं गच्छति चाक्षयम् ॥११॥
उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृतवादिनः । धर्मः सत्यपरो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते ॥१२॥
सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः । सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् ॥१३॥

पड़ती हैं ॥ २ ॥ जिस पुरुषने वेद-मार्गका त्याग कर दिया है और वेद बहिर्भूत मार्गका अवलम्बन किया है, वह पापी है और सज्जनोंमें उसकी प्रतिष्ठा नहीं होती ॥ ३ ॥ चरित्रही—वेद मर्यादाका पालनही, मनुष्यकी कुलीनता और अकुलीनता, पवित्रता और अपवित्रता, वीरता और कायरता बतलाता है ॥ ४ ॥ आपके बतलाये मार्गसे चलनेवाला मनुष्य, अनार्य होकर भी आर्यके समान मालूम हो सकता है । शुद्धिसे हीन होकर भी शुद्धके समान, लक्षणोंसे हीन होकर भी लक्षणयुक्त-के समान, दुःशील होकर भी सुशीलके समान मालूम हो सकता है ॥ ५ ॥ लोकमें संकर उत्पन्न करनेवाले, इस धर्मविरुद्ध आपके उपदेशको, यदि धर्म समझ कर हम ग्रहण करें तो वेदबोधित मंगल कर्मोको छोड़कर, वेदविरुद्ध क्रियाओंके करनेवाले हम होंगे ॥ ६ ॥ कार्याकार्यका ज्ञान रखने-वाला कौन चेतन पुरुष, वेदविरुद्ध कार्य करनेवाले और लोकको दूषित करनेवाले मुझको अच्छा समझेगा ॥७॥ आपके बतलाये इस मार्गसे—जिसमें प्रतिज्ञाका कोई मूल्य नहीं, चलने पर मैं किन साधनोंके द्वारा स्वर्ग प्राप्त कर सकूँगा अथवा किसके आचरणका अनुकरण करूँगा, क्योंकि मेरे पूर्व पुरुषोंमें ऐसा आचरण किसीका भी नहीं था ॥ ८ ॥ आपकी आज्ञाके अनुसार चलनेपर मैं स्वयं यथेच्छाचारी हो जाऊँगा । तदनन्तर यह समस्त लोक यथेच्छाचारी हो जायगा, क्योंकि राजाका जैसा व्यवहार होता है, वैसाही प्रजाका व्यवहार हो जाता है ॥ ९ ॥ प्राणियोंपर दया करनेवाला, सनातन राजधर्म सत्यही है । इसलिए राज्य सत्य स्वरूप कहा जाता है और लोक भी सत्यकी प्राप्तिमें प्रयत्नशील रहते हैं ॥ १० ॥ ऋषि और देवता सत्यहीको कल्याणप्रद समझते हैं, सत्य इसी लोकमें मनुष्यको अक्षय ब्रह्मलोक प्राप्त कराता है ॥ ११ ॥ झूठे मनुष्यसे लोग वैसेही भयभीत होते हैं, जैसे सर्पसे । लोकमें धर्मकी पूर्ति सत्यसे ही होती है । अतएव सत्य सबका मूल कहा जाता है ॥ १२ ॥ सत्यही ईश्वर है, सज्जनोंके द्वारा आश्रित धर्म सत्य-(ईश्वर) में वर्तमान है । यह समस्त संसारका मूल सत्य--ईश्वरही है, अतएव सत्यसे बढ़कर दूसरा श्रेष्ठ पद नहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च । वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात्सत्यपरो भवेत् ॥१४॥
एकः पालयते लोकमेकः पालयते कुलम् । मज्जत्येको हि निरय एकः स्वर्गे महीयते ॥१५॥
सोऽहं पितुर्निदेशं तु किमर्थं नानुपालये । सत्यप्रतिश्रवः सत्यं सत्येन समयीकृतम् ॥१६॥
नैव लोभान्न मोहाद्वा न चाज्ञानात्तमोन्वितः । सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः ॥१७॥
असत्यसंधस्य सतश्चलस्यास्थिरचेतसः । नैव देवा न पितरः प्रतीच्छन्तीति नः श्रुतम् ॥१८॥
प्रत्यगात्ममिमं धर्मं सत्यं पश्याम्यहं ध्रुवम् । भारः सत्पुरुषैश्चीर्णस्तदर्थमभिनन्द्यते ॥१९॥
क्षात्रं धर्ममहं त्यक्ष्ये ह्यधर्मं धर्मसंहितम् । क्षुद्रैर्नृशंसैर्लुब्धैश्च सेवितं पापकर्मभिः ॥२०॥
कायेन कुरुते पापं मनसा संप्रधार्य तत् । अनृतं जिह्वया चाह त्रिविधं कर्म पातकम् ॥२१॥
भूमिः कीर्तिर्यशो लक्ष्मीः पुरुषं प्रार्थयन्ति हि । सत्यं समनुवर्तन्ते सत्यमेव भजेत्ततः ॥२२॥
श्रेष्ठं ह्यनार्यमेव स्याद्यद्भवानवधार्य माम् । आह युक्तिकरैर्वाक्यैरिदं भद्रं कुरुष्व ह ॥२३॥
कथं ह्यहं प्रतिज्ञाय वनवासमिमं गुरोः । भरतस्य करिष्यामि वचो हित्वा गुरोर्वचः ॥२४॥
स्थिरा मया प्रतिज्ञाता प्रतिज्ञा गुरुसंनिधौ । प्रहृष्टमानसा देवी कैकेयी चाभवत्तदा ॥२५॥

है ॥ १३ ॥ दान, यज्ञ, हवन, तपस्या, वेद, इन सबोंका मूल सत्यही है, अतएव मनुष्यको सत्य-परायण होना चाहिये ॥ १४ ॥ कोई राजा राज्यका पालन करता है, और कोई अपनेही कुलका पालन करता है, एक नरकमें डूबता और दूसरा स्वर्गमें पूजित होता है ॥१५॥ फिर मैं अपने पिता-का आज्ञा-पालन क्यों न करूँ, क्योंकि मेरे पिता सत्यप्रतिज्ञ थे। वे सदाचारी थे, अतएव सत्य परिपालनके द्वारा सत्यकीही मुझे उन्होंने आज्ञा दी है ॥ १६ ॥ लोभ, मोह या अज्ञान रूप तुम्हारे द्वारा प्रेरित होनेपर भी सेतुके समान पिताके सत्यका त्याग नहीं करूँगा; क्योंकि मैं सत्यप्रतिज्ञ हूँ ॥ १७ ॥ मैंने सुना है कि जो मनुष्य अपनी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता है, वह धर्मच्युत और चंचल मनुष्य, यदि देवता और पितरको हव्य कव्य दे तो वे ग्रहण नहीं करते ॥ १८ ॥ जीवके लिए प्रवृत्त इस सत्यरूप धर्मको मैं सब धर्मोंमें श्रेष्ठ समझता हूँ। सज्जनों-ने जटा आदिका धारण किया है, अतएव मैं भी धारण करता हूँ ॥ १९ ॥ धर्मके समान मालुम होनेवाला—वस्तुतः अधर्म, क्षुद्र, क्रूर, लोभी, और पापियोंके द्वारा सेवित ऐसे क्षात्रधर्मका भी मैं त्याग करूँगा ॥ २० ॥ मनुष्य मनमें पाप करनेका विचार करता है, पुनः उस पाप कर्मको कर्तव्य समझकर जिह्वासे कहता है, तदनन्तर शरीरसे करता है। अतएव पाप कर्म तीन प्रकारके होते हैं ॥ २१ ॥ भूमि, कीर्ति, यश और लक्ष्मी, सत्यवादी पुरुषको प्राप्त करनेकी प्रार्थना करते हैं। महान् पुरुष सत्यकी ही सेवा करते हैं, इस कारण सत्यकाही आश्रयण करना चाहिए ॥२२॥ युक्तिप्रधान वाक्योंसे 'यह राज्य तुम्हारे लिए कल्याणकारी है, इसका पालन करो', यह आपने उत्तम समझकर जो मेरे लिए उपदेश दिया है वह अनार्य है, निन्दित है ॥ २३ ॥ पिताके सामने वनवासकी प्रतिज्ञा करके कैसे मैं भरतकी बात मानूँ और कैसे पिताकी बात न मानूँ ॥२४॥ मैं-ने पिताके समीप जो प्रतिज्ञा की है वह दृढ़ प्रतिज्ञा है। उस समय देवि केकयी, मेरी प्रतिज्ञासे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वनवासं वसेन्नित्यं शुचिर्नियतभोजनः । मूलपुष्पफलैः पुण्यैः पितॄन्देवांश्च तर्पयन् ॥२६॥
संतुष्टपञ्चवर्गोऽहं लोकयात्रां प्रवाहये । अकुहः श्रद्दधानः सन्कार्याकार्यविचक्षणः ॥२७॥
कर्मभूमिमिमां प्राप्य कर्तव्यं कर्म यच्छुभम् । अग्निर्वायुश्च सोमश्च कर्मणां फलभागिनः ॥२८॥
शतं क्रतूनामाहृत्य देवराट् त्रिदिवं गतः । तपांस्युग्राणि चास्थाय दिवं प्राप्ता महर्षयः ॥२९॥

अमृष्यमाणः पुनरुग्रतेजा निशम्य तन्नास्तिकवाक्यहेतुम् ।
अथाब्रवीत्तं नृपतेस्तनूजो विगर्हमाणो वचनानि तस्य ॥३०॥
सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च भूतानुकम्पां प्रियवादितां च ।
द्विजातिदेवातिथिपूजनं च पन्थानमाहुस्त्रिदिवस्य सन्तः ॥३१॥
तेनैवमाज्ञाय यथावदर्थमेकोदयं संप्रतिपद्य विप्राः ।
धर्मं चरन्तः सकलं यथावत्काङ्क्षन्ति लोकागममप्रमत्ताः ॥३२॥
निन्दाम्यहं कर्म कृतं पितुस्तद्यस्त्वामगृह्णाद्विषमस्थबुद्धिम् ।
बुद्ध्यानयैवंविधया चरन्तं सुनास्तिकं धर्मपथादपेतम् ॥३३॥
यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धस्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि ।
तस्माद्धि यः शक्यतमः प्रजानां स नास्तिके नाभिमुखो बुधः स्यात् ॥३४॥
त्वत्तो जनाः पूर्वतरे द्विजाश्च शुभानि कर्माणि बहूनि चक्रुः ।
छित्त्वा सदेमं च परं च लोकं तस्माद्द्विजाः स्वस्ति कृतं हुतं च ॥३५॥

प्रसन्न हुई थीं ॥ २५ ॥ मैं वनवास करूँगा, शुद्धतापूर्वक नियमित भोजन करूँगा, पवित्र मूल, पुष्प, फलोंसे पितरों और देवताओंको तृप्त करूँगा ॥ २६ ॥ इस प्रकार अपनी पाँचों इन्द्रियोंको सन्तुष्ट रखता हुआ समय बिताऊँगा । कपट छोड़कर श्रद्धापूर्वक कर्तव्याकर्तव्यका निश्चय करके अपने कुलकी मर्यादाका पालन करूँगा ॥ २७ ॥ इस कर्मभूमिमें आकर जो पुण्य कर्म हैं, उनका अनुष्ठान करना चाहिए । अग्नि, वायु और चन्द्रमा उन कर्मोंके फलभागी होते हैं ॥२८॥ सौ यज्ञोंको करके देवराज स्वर्ग गये । कठोर तपस्या करके महर्षियोंने स्वर्ग प्राप्त किया ॥ २९ ॥ उग्रतेजा राजपुत्र राम जाबालिके नास्तिक हेतुवादको सुनकर उसे नहीं सह सके । उसके वचनोंकी निन्दा करते हुए वे पुनः उससे बोले ॥ ३० ॥ सत्य, धर्म, पराक्रम, प्राणियोंपर दया, प्रियवादिता द्विजाति, देवता और अतिथियोंका पूजन, इनको सज्जन स्वर्गका मार्ग बतलाते हैं ॥३१॥ इस कारण ब्राह्मण इस अभिप्रायको ठीक-ठीक समझकर, एक मत होकर अपने-अपने वर्णाश्रमके अनुकूल, धर्मका पालन करते हैं और इससे अपने स्वर्ग लोककी प्राप्तिकी कामना करते हैं ॥३२॥ इस प्रकार चार्वक मतको अनुकूल बुद्धि रखकर संसारके नाशके लिए भ्रमण करनेवाले, और वेद-विरुद्ध मार्गमें श्रद्धा रखनेवाले, नास्तिक आपको जो मेरे पिताने याजक बनाया, मैं पिताके इस कार्यकी निन्दा करता हूँ; क्योंकि आप वैदिक धर्मसे च्युत हैं ॥ ३३ ॥ जैसा चोर दण्डनीय है वैसाही यह बुद्ध भी । लोकायतिक और नास्तिकको भी वैसेही समझो। प्रजाओंमें जो समर्थ हो अर्थात् इनको दण्ड दे सके, वही विद्वान् इन नास्तिकोंके सामने जाय ॥ ३४ ॥ पहलेके ब्राह्मण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धर्मे रताः सत्पुरुषैः समेतास्तेजस्विनो दानगुणप्रधानाः ।
अहिंसका वीतमलाश्च लोके भवन्ति पूज्या मुनयः प्रधानाः ॥३६॥
इति ब्रुवन्तं वचनं सदोषं रामं महात्मानमदीनसत्वम् ।
उवाच पथ्यं पुनरास्तिकं च सत्यं वचः सानुनयं च विप्रः ॥३७॥
न नास्तिकानां वचनं ब्रवीम्यहं न नास्तिकोऽहं न च नास्ति किंचन ।
समीक्ष्य कालं पुनरास्तिकोऽभवं भवेय काले पुनरेव नास्तिकः ॥३८॥
स चापि कालोऽयमुपागतः शनैर्यथा मया नास्तिकवागुदीरिता ।
निवर्तनार्थं तव राम कारणात्प्रसादनार्थं च मयैतदीरितम् ॥३९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे नवोत्तरशततमः सर्गः ॥१०९॥

दशोत्तरशततमः सर्गः ११०

क्रुद्धमाज्ञाय रामं तु वसिष्ठः प्रत्युवाच ह । जाबालिरपि जानीते लोकस्यास्य गतागतिम् ॥ १ ॥
निवर्तयितुकामस्तु त्वामेतद्वाक्यमब्रवीत् । इमां लोकसमुत्पत्तिं लोकनाथ निबोध मे ॥ २ ॥
सर्वं सलिलमेवासीत्पृथिवी तत्र निर्मिता । ततः समभवद्ब्रह्मा स्वयंभूर्देवतैः सह ॥ ३ ॥

तुमसे श्रेष्ठ थे. उन लोगोंने अनेक पुण्य कर्म किये, इस लोक परलोककी कामना छोड़कर उन ब्राह्मणोंने जो अहिंसा, सत्य, तप, दान, उपकार आदि किये वह सब वेदकी आज्ञा होनेहीके कारण ॥ ३५ ॥ धर्माचरण करनेवाले, सज्जनोंके साथ रहनेवाले, दानी, अहिंसक तथा निष्पाप मुनि लोकमें पूजित होते हैं और वे प्रधान समझे जाते हैं ॥ ३६ ॥ दीनताशून्य, महात्मा रामचन्द्रके क्रोधपूर्वक ऐसा वचन बोलने पर वे ब्राह्मण पुनः अनुनयपूर्वक आस्तिक और सत्य वचन बोले ॥ ३७ ॥ मैं नास्तिकोंकी बात बोल रहा हूँ, मैं नास्तिक नहीं हूँ, क्योंकि परलोकादिक नहीं है यह बात नहीं है । समय देखकर मैं पुनः आस्तिक होगया और समयपर फिर नास्तिक हो जाऊँगा ॥ ३८ ॥ वह समय भी आया जब मैंने नास्तिकोंके समान बात कही, तुम्हारे लौटा ले जानेके लिए मैंने वह बात कही थी और अब तुमको प्रसन्न करनेके लिए आस्तिक वचन कह रहा हूँ ॥ ३९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एक सौ नवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०९ ॥

रामचन्द्रको क्रुद्ध जानकर वसिष्ठ बोले—जाबालि भी इस लोकके जन्म-मरणकी बात जानते हैं ॥ १ ॥ आपको लौटानेके लिए वह बात कही थी । हे लोकनाथ, मुझसे लोककी उत्पत्ति-की यह बात सुनो ॥ २ ॥ पहले यह सब जल था, उसमें पृथिवी उत्पन्न हुई, तदनन्तर, इन्द्र आदि अधिष्ठाता देवताओंके साथ स्वयंभू ब्रह्मा उत्पन्न हुए ॥ ३ ॥ तदनन्तर, वे परब्रह्म वराहका रूप धरकर जलसे पृथिवीको निकाल लाये और प्रयत्नशील पुत्रोंके साथ इस जगतका निर्माण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुंधराम् । असृजच्च जगत्सर्वं सह पुत्रैः कृतात्मभिः ॥ ४ ॥
आकाशप्रभवो ब्रह्मा शाश्वतो नित्य अव्ययः । तस्मान्मरीचिः संजज्ञे मरीचेः कश्यपः सुतः ॥ ५ ॥
विवस्वान्कश्यपाज्जज्ञे मनुर्वैवस्वतः स्वयम् । सतु प्रजापतिः पूर्वमिक्ष्वाकुस्तु मनोः सुतः ॥ ६ ॥
यस्येयं प्रथमं दत्ता समृद्धा मनुना मही । तमिक्ष्वाकुमयोध्यायां राजानं विद्धि पूर्वकम् ॥ ७ ॥
इक्ष्वाकोस्तु सुतः श्रीमान्कुक्षिरित्येव विश्रुतः । कुक्षेरथात्मजो वीर विकुक्षिरुदपद्यत ॥ ८ ॥
विकुक्षेस्तु महातेजा बाणः पुत्रः प्रतापवान् । बाणस्य च महाबाहुरनरण्यो महातपाः ॥ ९ ॥
नाऽनावृष्टिर्बभूवास्मिन्न दुर्भिक्षः सतां वरे । अनरण्ये महाराजे तस्करो वापि कश्चन ॥१०॥
अनरण्यान्महाराज पृथू राजा बभूव ह । तस्मात्पृथोर्महातेजास्त्रिशङ्कुरुदपद्यत ॥११॥
स सत्यवचनाद्वीरः सशरीरो दिवं गतः । त्रिशङ्कोरभवत्सूनुर्धुंधुमारो महायशाः ॥१२॥
धुंधुमारान्महातेजा युवनाश्वो व्यजायत । युवनाश्वसुतः श्रीमान्मांधाता समपद्यत ॥१३॥
मांधातुस्तु महातेजाः सुसंधिरुदपद्यत । सुसंधेरपि पुत्रौ द्वौ ध्रुवसंधिः प्रसेनजित् ॥१४॥
यशस्वी ध्रुवसंधेस्तु भरतो रिपुसूदनः । भरतात्तु महाबाहोरसितो नाम जायत ॥१५॥
यस्यैते प्रतिराजान उदपद्यन्त शत्रवः । हैहयास्तालजङ्घाश्च शूराश्च शशबिन्दवः ॥१६॥
तांस्तु सर्वान्प्रतिव्यूह्य युद्धे राजा प्रवासितः । स च शैलवरे रम्ये बभूवाभिरतो मुनिः ॥१७॥
द्वे चास्य भार्ये गर्भिण्यौ बभूवतुरिति श्रुतिः । तत्र चैका महाभागा भार्गवं देववर्चसम् ॥१८॥

किया ॥ ४ ॥ आकाश-स्वरूप परब्रह्मसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए जो सदा वर्तमान रहनेवाले अविनाशी और सदा नित्य हैं । उनसे मरीची उत्पन्न हुए और मरीचीके पुत्र कश्यप हुए ॥ ५ ॥ कश्यपसे विवस्वान् और विवस्वान्से मनु हुए । ये मनु पहले प्रजापति थे । मनुके पुत्र इक्ष्वाकु हुए ॥६॥ मनुने इक्ष्वाकुको यह धनपूर्ण पृथिवी दी । इक्ष्वाकु अयोध्याके पहले राजा हुए ॥ ७ ॥ इक्ष्वाकुके पुत्र प्रसिद्ध श्रीमान् कुक्षि हुए, कुक्षिके पुत्र वीर विकुक्षि हुए । विकुक्षिके पुत्र महातेजस्वी प्रतापी बाण हुए । बाणके पुत्र महातपस्वी अनरण्य हुए ॥ ८, ९ ॥ अनरण्यके राज्यकालमें अवर्षण नहीं हुआ, दुर्भिक्ष नहीं हुआ और कोई चोर नहीं हुआ ॥ १० ॥ अनरण्यसे राजा पृथु उत्पन्न हुए और उनसे महातेजस्वी त्रिशंकु ॥ ११ ॥ विश्वामित्रकी सत्यप्रतिज्ञाके कारण इसी शरीरसे वे स्वर्गमें गये । त्रिशंकुके पुत्र महायशस्वी धुंधुमार हुए ॥ १२ ॥ धुंधुमारसे महातेजस्वी युवनाश्व हुए और युवनाश्वके पुत्र श्रीमान् मान्धाता हुए ॥ १३ ॥ मान्धाताके पुत्र महातेजस्वी सुसंधि उत्पन्न हुए, सुसंधिके दो पुत्र हुए ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित् ॥ १४ ॥ ध्रुवसन्धिके पुत्र रिपुसूदन भरत हुए और महाबाहु भरतसे असित उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥ असितके हैहय, तालजंघ, सूर और शशविंदु ये चार राजा शत्रु उत्पन्न हुए ॥ १६ ॥ असितने अपनी सेनासे उन राजाओंको युद्धमें घेर लिया, तौभी पराजयकी आशंकासे पिताने इन्हें वन भेज दिया । वे रमणीय पर्वतपर तत्पर होकर परमात्मचिंतन करने लगे ॥ १७ ॥ सुना जाता है कि उनकी दो रानियाँ गर्भवती थीं । उनमें एकने, जो उत्तम पुत्र चाहती थी, देवताके समान तेजस्वी भार्गव च्यवनको प्रणाम किया,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ववन्दे पद्मपत्राक्षी काङ्क्षिणी पुत्रमुत्तमम् । एका गर्भविनाशाय सपत्न्यै गरलं ददौ ॥१९॥
भार्गवच्यवनो नाम हिमवन्तमुपाश्रितः । तमृषिं साभ्युपागम्य कालिंदी त्वभ्यवादयत्॥२०॥
स तामभ्यवदत्प्रीतो वरेप्सुं पुत्रजन्मनि । पुत्रस्ते भविता देवि महात्मा लोकविश्रुतः॥२१॥
धार्मिकश्च सुभीमश्च वंशकर्तारिसूदनः । श्रुत्वा प्रदक्षिणं कृत्वा मुनिं तमनुमान्य च ॥२२॥
पद्मपत्रसमानाक्षं पद्मगर्भसमप्रभम् । ततः सा गृहमागम्य पत्नी पुत्रमजायत ॥२३॥
सपत्न्या तु गरस्तस्यै दत्तो गर्भजिघांसया । गरेण सह तेनैव तस्मात्स सगरोऽभवत् ॥२४॥
स राजा सगरो नाम यः समुद्रमखानयत् । इष्ट्वा पर्वणि वेगेन त्रासयान इमाः प्रजाः ॥२५॥
असमञ्जस्तु पुत्रोऽभूत्सगरस्येति नः श्रुतम् । जीवन्नेव स पित्रा तु निरस्तः पापकर्मकृत् ॥२६॥
अंशुमानपि पुत्रोऽभूदसमञ्जस्य वीर्यवान् । दिलीपोंऽशुमतः पुत्रो दिलीपस्य भगीरथः॥२७॥
भगीरथात्ककुत्स्थश्च काकुत्स्था येन तु स्मृताः । काकुत्स्थस्य तु पुत्रोऽभूद्रघुर्येन तु राघवाः॥२८॥
रघोस्तु पुत्रस्तेजस्वी प्रवृद्धः पुरुषादकः । कल्माषपादः सौदास इत्येवं प्रथितो भुवि ॥२९॥
कल्माषपादपुत्रोऽभूच्छङ्खणस्त्विति नः श्रुतम् । यस्तु तद्वीर्यमासाद्य सहसैन्यो व्यनीनशत्॥३०॥
शङ्खणस्य तु पुत्रोऽभूच्छूरः श्रीमान्सुदर्शनः । सुदर्शनस्याग्निवर्ण अग्निवर्णस्य शीघ्रगः ॥३१॥
शीघ्रगस्य मरुः पुत्रो मरोः पुत्रः प्रशुश्रुवः । प्रशुश्रुवस्य पुत्रोऽभूदम्बरीषो महामतिः ॥३२॥

एकने गर्भनाश होनेके लिए अपनी सौतको विष दे दिया ॥ १८, १९ ॥ भार्गवच्यवन, हिमवान् पर्वतपर वर्तमान थे, वहाँ जाकर कालिन्दीने उन्हें प्रणाम किया ॥ २० ॥ पुत्रजन्मका वर चाहने वाली उससे प्रसन्न होकर मुनि बोले—देवि तुम्हारा पुत्र महात्मा और लोकप्रसिद्ध होगा ॥ २१ ॥ वह धार्मिक, भयानक वंश बढ़ानेवाला, शत्रुओंको नष्ट करनेवाला होगा, यह सुनकर मुनिकी प्रदक्षिणा कर तथा उनसे आज्ञा लेकर वह राजपत्नी घर आयी और पद्मपत्रोंके समान विशालाक्ष पद्मगर्भके समान सुन्दर पुत्र उसने उत्पन्न किया ॥ २२, २३ ॥ सपत्नीने उसके गर्भ नष्ट करनेके लिए उसे गर (विष) दिया था और उसी गर अर्थात् विषके साथ उत्पन्न हुआ, इसी कारण उसका नाम सगर पड़ा ॥ २४ ॥ ये वे ही राजा सगर हैं जिन्होंने समुद्र खुदवाए। ये अमावस्याके दिन यज्ञदीक्षा लेकर शीघ्रताजनितवेगसे प्रजाको भयभीत कर देते थे ॥ २५ ॥ हम लोगोंने सुना है कि सगरका पुत्र असमंज हुआ जो पापी था, अतएव जीते ही जी पिताने उसे निकाल दिया ॥ २६ ॥ असमंजका पुत्र अंशुमान् हुआ जो पराक्रमी था। अंशुमानके पुत्र दिलीप और दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए ॥ २७ ॥ भगीरथके पुत्र ककुत्स्थ हुए, जिनसे तुमलोग काकुत्स्थ कहलाते हो। ककुत्स्थके पुत्र रघु हुए, जिससे तुमलोग राघव कहे जाते हो ॥ २८ ॥ रघुका पुत्र बड़ा तेजस्वी हुआ। जो प्रवृद्ध, पुरुषादक, कल्माषपाद और सौदास इन चार नामोंसे प्रसिद्ध हुआ ॥ २९ ॥ कल्माषपादके पुत्र शंखण हुए, ऐसा हमलोगोंने सुना है कि जो वसिष्ठके शापसे राक्षस होकर अपनी सेनाके साथ नष्ट होगया ॥ ३० ॥ शंखणके पुत्र श्रीमान सुदर्शन हुए, सुदर्शन शूर थे। सुदर्शनके पुत्र अग्निवर्ण और अग्निवर्णके पुत्र शीघ्रग हुए ॥ ३१ ॥ शीघ्रगके पुत्र मरु और मरुके पुत्र प्रशुश्रुव हुए। प्रशुश्रुवके पुत्र महामति अम्बरीष हुए ॥ ३२ ॥ अम्बरीषके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अम्बरीषस्य पुत्रोऽभून्नहुषः सत्यविक्रमः । नहुषस्य च नाभागः पुत्रः परमधार्मिकः ॥३३॥
अजश्च सुव्रतश्चैव नाभागस्य सुतावुभौ । अजस्य चैव धर्मात्मा राजा दशरथः सुतः ॥३४॥
तस्य ज्येष्ठोऽसि दायादो राम इत्यभिविश्रुतः। तद्गृहाण स्वकं राज्यमवेक्षस्व जगन्नृप ॥३५॥
इक्ष्वाकूणां हि सर्वेषां राजा भवति पूर्वजः । पूर्वजे नावरःपुत्रो ज्येष्ठो राजाभिषिच्यते ॥३६॥
स राघवाणां कुलधर्ममात्मनः सनातनं नाद्य विहन्तुमर्हसि ।
प्रभूतरत्नामनुशाधि मेदिनीं प्रभूतराष्ट्रां पितृवन्महायशाः ॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे दशोत्तरशततमः सर्गः ॥११०॥

एकादशोत्तरशततमः सर्गः १११

वसिष्ठः स तदा राममुक्त्वा राजपुरोहितः । अब्रवीद्धर्मसंयुक्तं पुनरेवापरं वचः ॥ १ ॥
पुरुषस्येह जातस्य भवन्ति गुरवः सदा । आचार्यश्चैव काकुत्स्थ पिता माता च राघव॥ २ ॥
पिता ह्येनं जनयति पुरुषं पुरुषर्षभ । प्रज्ञां ददाति चाचार्यस्तस्मात्स गुरुरुच्यते ॥ ३ ॥
स तेऽहं पितुराचार्यस्तव चैव परंतप । मम त्वं वचनं कुर्वन्नातिवर्तेः सतां गतिम् ॥ ४ ॥
इमा हि ते परिषदो ज्ञातयश्च नृपास्तथा । एषु तात चरन्धर्मं नातिवर्तेः सतां गतिम् ॥ ५ ॥
वृद्धाया धर्मशीलाया मातुर्नार्हस्यवर्तितुम् । अस्या हि वचनं कुर्वन्नातिवर्तेः सतां गतिम्॥ ६ ॥

पुत्र सत्यपराक्रम नहुष हुए । नहुषके पुत्र परम धार्मिक नाभाग हुए ॥३३॥ अज और सुव्रत ये दो पुत्र नाभागके हुए, अजके पुत्र दसरथ थे ॥ ३४ ॥ तुम उनके ज्येष्ठ पुत्र हो और उनके धनके अधिकारी हो । तुम अपना राज्य ग्रहण करो और जगतका पालन करो ॥ ३५ ॥ समस्त इक्ष्वाकुओंमें बड़ाही पुत्र राजा होता है । बड़ेके रहते छोटा नहीं होता । बड़ेकाही राज्याभिषेक किया जाता है ॥ ३६ ॥ तुम अपने रघुवंशियोंके सनातन कुलधर्मका विनाश मत करो । पिताके समान यशस्वी होकर अनेक राज्यों और प्रचुर रत्नोंवाली इस पृथिवीका पालन करो ॥ ३७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एकसौ दसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११० ॥

राजपुरोहित वसिष्ठ रामचन्द्रसे ऐसा कहकर धर्मयुक्त दूसरी बात इस प्रकार बोले ॥१॥ जो पुरुष इस संसारमें उत्पन्न होता है उसके गुरु, आचार्य, माता और पिता होते हैं ॥ २ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ, पिता इसको उत्पन्न करता है और आचार्य इसे ज्ञान देता है, इसलिए ये गुरु कहे जाते हैं ॥३॥ मैं तुम्हारे पिताका आचार्य हूँ और तुम्हारा भी । मेरी बात माननेसे तुम सज्जनोंके मार्गको नहीं छोड़ोगे ॥ ४ ॥ ये सभासद्, ज्ञाति, राजा आये हैं, इनके साथ धर्माचरण करनेसे, अर्थात् इनकी प्रार्थना मान लेनेसे तुम सज्जनोंके मार्गको नहीं छोड़ोगे ॥ ५ ॥ धर्मशील, वृद्धा माताकी बात तुम नहीं उठाओगे, उनकी आज्ञा माननेसे तुम सज्जनोंका मार्ग नहीं छोड़ोगे ॥ ६ ॥ हे सत्य-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भरतस्य वचः कुर्वन्याचमानस्य राघव । आत्मानं नातिवर्तेस्त्वं सत्यधर्मपराक्रम ॥ ७ ॥
एवं मधुरमुक्तः स गुरुणा राघवः स्वयम् । प्रत्युवाच समासीनं वासिष्ठं पुरुषर्षभः ॥ ८ ॥
यन्मातापितरौ वृत्तं तनये कुरुतः सदा । न सुप्रतिकरं तत्तु मात्रा पित्रा च यत्कृतम् ॥ ९ ॥
यथाशक्तिप्रदानेन स्वापनाच्छादनेन च । नित्यं च प्रियवादेन तथा संवर्धनेन च ॥१०॥
स हि राजा दशरथः पिता जनयिता मम । आज्ञापयन्मां यत्तस्य न तन्मिथ्या भविष्यति॥११॥
एवमुक्तेन रामेण भरतः प्रत्यनन्तरम् । उवाच विपुलोरस्कः सूतं परमदुर्मनाः ॥१२॥
इह तु स्थण्डिले शीघ्रं कुशानास्तर सारथे । आर्यं प्रत्युपवेक्ष्यामि यावन्मे संप्रसीदति ॥१३॥
निराहारो निरालोको धनहीनो यथा द्विजः । शये पुरस्ताच्छालायां यावन्मां प्रतियास्यति ॥१४॥
स तु राममवेक्षन्तं सुमन्त्रं प्रेक्ष्य दुर्मनाः । कुशोत्तरमुपस्थाप्य भूमावेवास्थितः स्वयम्॥१५॥
तमुवाच महातेजा रामो राजर्षिसत्तमः । किं मां भरत कुर्वाणं तात प्रत्युपवेक्ष्यसे ॥१६॥
ब्राह्मणो ह्येकपार्श्वेन नरान्रोदधुमिहार्हति । न तु मूर्धाभिषिक्तानां विधिः प्रत्युपवेशने ॥१७॥
उत्तिष्ठ नरशार्दूल हित्वैतदारुणं व्रतम् । पुरवर्यामितः क्षिप्रमयोध्यां याहि राघव ॥१८॥
आसीनस्त्वेव भरतः पौरजानपदं जनम् । उवाच सर्वतः प्रेक्ष्य किमार्यं नानुशासथ ॥१९॥
ते तदोचुर्महात्मानं पौरजानपदा जनाः । काकुत्स्थमभिजानीमः सम्यग्वदति राघवः ॥२०॥

धर्म और सत्यपराक्रम रामचन्द्र, भरत तुमसे प्रार्थना कर रहे हैं। ये तुम्हारे आत्मस्वरूप हैं। इनकी बात तुम नहीं उठाओगे ॥ ७ ॥ इस प्रकार गुरुके द्वारा मधुर वचन कहे जानेपर पुरुषश्रेष्ठ बैठे हुए वसिष्ठसे बोले ॥ ८ ॥ माता और पिता पुत्रके प्रति जो उत्तम व्यवहार करते हैं, उसका प्रतिकार नहीं किया जा सकता है। माता और पिताने जो किया है उसके बदलेकी कोई वस्तु नहीं है ॥ ९ ॥ यथाशक्ति भोजन आदि देकर, सोनेकी व्यवस्था कर, तेल आदि लगाकर, प्रिय वचन बोलकर तथा पालन करके पिता माता जो करते हैं, उसका प्रत्युपकार नहीं किया जा सकता ॥ १० ॥ राजा दसरथ मुझे उत्पन्न करनेवाले पिता थे, उन्होंने जो आज्ञा मुझे दी है, वह झूठी नहीं हो सकती ॥ ११ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर बड़ी छातीवाले भरत बहुत ही दुखित होकर पास बैठे सूतसे बोले ॥ १२ ॥ सारथि, इस चौतरेपर कुश बिछा दो। मैं आर्यके प्रति उपवेशन (धन्ना) करूंगा और तबतक करूंगा जबतक ये प्रसन्न न होंगे ॥ १३ ॥ बिना खाए, बिना आँख खोले, दरिद्र ब्राह्मणके समान इस पर्णशालाके आगे मैं सोऊँगा। जबतक ये हमारे साथ अयोध्या न जायँगे ॥ १४ ॥ सुमन्त्र, रामचन्द्रकी ओर देख रहे हैं, यह देखकर दुखी भरत, स्वयं कुशकी चटाई लाकर पृथिवीमें बिछाकर बैठ गये ॥ १५ ॥ राजर्षिश्रेष्ठ महातेजस्वी रामचन्द्र भरतसे बोले—भरत, मैं कौनसी बुराई कर रहा हूँ, जिससे तुम मुझपर धन्ना दे रहे हो ॥ १६ ॥ ब्राह्मण, एक करवटसे धन्ना देकर मनुष्योंको अन्याय मार्गसे रोक सकता है। पर क्षत्रियोंके लिए धन्ना देनेका विधान नहीं है ॥ १७ ॥ नरश्रेष्ठ, इस भयानक व्रतको छोड़कर उठो। यहाँसे शीघ्र अपने श्रेष्ठ नगर अयोध्यामें जाओ ॥ १८ ॥ बैठे ही बैठे भरत नगरवासियोंसे बोले, चारो ओर विचार कर, आप लोग आर्यको कहते नहीं हैं, इन्हें समझाते नहीं हैं ॥ १९ ॥ भरतके कहने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एषोऽपि हि महाभागः पितुर्वचसि तिष्ठति । अत एव न शक्ताः स्म व्यावर्तयितुमञ्जसा ॥२१॥
तेषामाज्ञाय वचनं रामो वचनमब्रवीत् । एवं निबोध वचनं सुहृदां धर्मचक्षुषाम् ॥२२॥
एतच्चैवोभयं श्रुत्वा सम्यक्संपश्य राघव । उत्तिष्ठ त्वं महाबाहो मां च स्पृश तथोदकम् ॥२३॥
अथोत्थाय जलं स्पृष्ट्वा भरतो वाक्यमब्रवीत् । शृण्वन्तु मे परिषदो मन्त्रिणः शृणुयुस्तथा ॥२४॥
न याचे पितरं राज्यं नानुशासामि मातरम् । एवं परमधर्मज्ञं नानुजानामि राघवम् ॥२५॥
यदि त्ववश्यं वस्तव्यं कर्तव्यं च पितुर्वचः । अहमेव निवत्स्यामि चतुर्दश वने समाः ॥२६॥
धर्मात्मा तस्य सत्येन भ्रातुर्वाक्येन विस्मितः । उवाच रामः संप्रेक्ष्य पौरजानपदं जनम् ॥२७॥
विक्रीतमाहितं क्रीतं यत्पित्रा जीवता मम । न तल्लोपयितुं शक्यं मया वा भरतेन वा ॥२८॥
उपाधिर्न मया कार्यो वनवासे जुगुप्सितः । युक्तमुक्तं च कैकेय्या पित्रा मे सुकृतं कृतम् ॥२९॥
जानामि भरतं क्षान्तं गुरुसत्कारकारिणम् । सर्वमेवात्र कल्याणं सत्यसंधे महात्मनि ॥३०॥
अनेन धर्मशीलेन वनात्प्रत्यागतः पुनः । भ्रात्रा सह भविष्यामि पृथिव्याः पतिरुत्तमः ॥३१॥
वृतो राजा हि कैकेय्या मया तद्वचनं कृतम् । अनृतान्मोचयानेन पितरं तं महीपतिम् ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥१११॥

पर पुरवासियोंने महात्मा भरतसे कहा कि आप रामचन्द्रसे जो कह रहे हैं, वह ठीक है, यह हम लोग जानते हैं ॥ २० ॥ ये महाभाग रामचन्द्र भी पिताकी आज्ञापालन करनेके लिये दृढ़ हैं, अतएव हमलोग इन्हें जबरदस्ती लौटा नहीं सकते ॥ २१ ॥ उनके वचन सुनकर रामचन्द्र बोले—धर्मकी दृष्टि रखनेवाले मित्रोंकी बात सुनो ॥ २२ ॥ ये दोनों, मेरी और अपनी, बातें सुनकर विचार करो। उठो और पुनः ऐसा न करनेके लिए मुझको तथा जलको छूकर इस बातकी प्रतिज्ञा करो ॥ २३ ॥ उठकर और जल छूकर भरत बोले—मेरे सभासद सुनें, तथा मन्त्री भी सुनें ॥ २४ ॥ मैंने पितासे राज्य नहीं माँगा था, और न माताको ही ऐसा करनेके लिए कहा था और रामचन्द्रको वन भेजनेके लिए भी मैंने सम्मति नहीं दी थी ॥ २५ ॥ रामचन्द्रको अवश्यही वनमें रहना है, यदि इन्हें पिताकी आज्ञाका पालन करना है, तो मैं ही चौदह वर्षों तक वनवास करूँगा ॥ २६ ॥ धर्मात्मा रामचन्द्र भाई भरतके वचन सुनकर विस्मित हुए और निश्चय करके पुरवासियोंसे बोले ॥ २७ ॥ जीते हुए पिताने जो चीज किसीको दे दी है, या जो चीज खरीद ली है, उसको हम या भरत कोई भी उलट नहीं सकता ॥ २८ ॥ वनवासके लिए मैं प्रतिनिधि बनाना नहीं चाहता; क्योंकि यह निन्दित है। केकयीने मेरे लिए वनवास माँगा था और पिताने उसे ही स्वीकार किया था ॥ २९ ॥ मैं जानता हूँ, भरत क्षमाशील तथा बड़ोंके सत्कार करनेवाले हैं, इस सत्यसन्ध महात्मामें सभी श्रेष्ठ गुण वर्तमान हैं ॥ ३० ॥ वनसे लौटनेपर इस धर्मशील भाईके साथ मैं पृथिवीका श्रेष्ठ राजा होऊँगा ॥ ३१ ॥ केकयीने राजासे वर माँगा, मैंने राजाकी आज्ञाका पालन किया। भरत, उन राजा पिताको असत्यसे मुक्त करो ॥ ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एकसौ ग्यारहवां सर्ग समाप्त ॥ १११ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्वदशाधिकशततमः सर्गः ११२

तमप्रतिमतेजोभ्यां भ्रातृभ्यां रोमहर्षणम् । विस्मिताः संगमं प्रेक्ष्य समुपेता महर्षयः ॥ १ ॥
अन्तर्हिता मुनिगणाः स्थिताश्च परमर्षयः । तौ भ्रातरौ महाभागौ काकुत्स्थौ प्रशशंसिरे ॥ २ ॥
सदार्यौ राजपुत्रौ द्वौ धर्मज्ञौ धर्मविक्रमौ । श्रुत्वा वयं हि संभाषामुभयोः स्पृहयामहे ॥ ३ ॥
ततस्त्वृषिगणाः क्षिप्रं दशग्रीववधैषिणः । भरतं राजशार्दूलमित्यूचुः संगता वचः ॥ ४ ॥
कुले जात महाप्राज्ञ महावृत्त महायशः । ग्राह्यं रामस्य वाक्यं ते, पितरं यद्यवेक्षसे ॥ ५ ॥
सदानृणमिमं रामं वयमिच्छामहे पितुः । अनृणत्वाच्च कैकेय्याः स्वर्गं दशरथो गतः ॥ ६ ॥
एतावदुक्त्वा वचनं गन्धर्वाः समहर्षयः । राजर्षयश्चैव तथा सर्वे स्वां स्वां गतिं गताः ॥ ७ ॥
ह्लादितस्तेन वाक्येन शुशुभे शुभदर्शनः । रामः संहृष्टवदनस्तानृषीनभ्यपूजयत् ॥ ८ ॥
त्रस्तगात्रस्तु भरतः स वाचा सज्जमानया । कृताञ्जलिरिदं वाक्यं राघवं पुनरब्रवीत् ॥ ९ ॥
रामं धर्ममिमं प्रेक्ष्य कुलधर्मानुसंततम् । कर्तुमर्हसि काकुत्स्थ मम मातुश्च याचनाम् ॥१०॥
रक्षितुं सुमहद्राज्यमहमेकस्तु नोत्सहे । पौरजानपदांश्चापि रक्तान्रञ्जयितुं सदा ॥११॥
ज्ञातयश्चापि योद्धाश्च मित्राणि सुहृदश्च नः । त्वामेव हि प्रतीक्षन्ते पर्जन्यमिव कर्षकाः ॥१२॥
इदं राज्यं महाप्राज्ञ स्थापय प्रतिपद्य हि । शक्तिमान्स हि काकुत्स्थ लोकस्य परिपालने ॥१३॥

अप्रतिम तेजस्वी उन दोनों भाइयोंका रोंगटे खड़ा कर देनेवाला सम्मिलन देखकर, आए हुए महर्षि विस्मित हुए ॥ १ ॥ अदृश्यरूपमें वर्तमान मुनिगण तथा प्रत्यक्ष वर्तमान परमर्षियोंने काकुत्स्थवंशी उन दोनों भाइयोंकी प्रशंसा की ॥ २ ॥ दोनोंही राजपुत्र सदाचार पालन करनेवाले हैं, दोनों धर्मज्ञ और धर्मके प्रवर्तन करनेवाले हैं। दोनोंकी बातचीत सुनकर हम लोग उन बातों-को पुनः सुननेकी इच्छा रखते हैं ॥ ३ ॥ शीघ्रही रावणकेवध चाहनेवाले वे ऋषि राजश्रेष्ठ भरत से मिलकर यह वचन बोले, ॥ ४ ॥ महायशस्वी, महाचरित्रवान्, महाबुद्धिमान भरत, तुम श्रेष्ठ-कुलमें उत्पन्न हुए हो। पिताको यदि सुखी रखना चाहते हों तो रामचन्द्रका वचन मानो ॥ ५ ॥ हम लोग चाहते हैं कि रामचन्द्र अपने पितासे सदा अनृण रहें। राजा दसरथने केकयीका ऋण चुका दिया है, इसीसे उन्हें स्वर्ग मिला है ॥ ६ ॥ गन्धर्व, महर्षि ये वचन कहकर अपने-अपने रास्ते गये ॥ ७ ॥ जिनके दर्शनसे पुण्य होता है, ऐसे प्रसन्न वदन रामचन्द्र मुनियोंके वे वचन सुनकर आह्लादित हुए और उन मुनियोंकी प्रशंसा की ॥ ८ ॥ वनवासमें प्रेम प्रकट करनेवाले रामचन्द्रके वचनोंसे भरत उद्विग्न हो गये और रामचन्द्रसे हाथ जोड़कर पुनः बोले ॥ ९ ॥ हे रामचन्द्र, कुल क्रमसे आया हुआ, इस प्रजा पालनरूपधर्मकी ओर देखकर आप मेरी और मेरी माताकी प्रार्थना स्वीकार करें ॥ १० ॥ इस बहुत बड़े राज्यका शासन मैं अकेले नहीं कर सकता हूँ। हम दोनोंपें अनुराग रखनेवाले पुरवासियों और जानपदवासियोंको भी मैं प्रसन्न नहीं रख सकता ॥ ११ ॥ ज्ञाति, योद्धा, मित्र, सुहृद, सब तुम्हारीही प्रतीक्षा करते हैं. जिस प्रकार किसान मेघकी प्रतीक्षा करते हैं ॥ १२ ॥ हे महाप्राज्ञ, आप लोकके पालन करनेकी शक्ति रखते हैं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमुक्त्वापतद्भ्रातुः पादयोर्भरतस्तदा । भृशं संप्रार्थयामास राघवेऽतिप्रियं वदन् ॥१४॥
तमङ्के भ्रातरं कृत्वा रामो वचनमब्रवीत् । श्यामं नलिनपत्राक्षं मत्तहंसस्वरः स्वयम् ॥१५॥
आगता त्वामियं बुद्धिः स्वजा वैनयिकी च या । भृशमुत्सहसे तात रक्षितुं पृथिवीमपि ॥१६॥
अमात्यैश्च सुहृद्भिश्च बुद्धिमद्भिश्च मन्त्रिभिः । सर्वकार्याणि संमन्त्र्य महान्त्यपि हि कारय ॥१७॥
लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद्वा हिमवान्वा हिमं त्यजेत् । अतीयात्सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः ॥१८॥
कामाद्वा तात लोभाद्वा मात्रा तुभ्यमिदं कृतम् । न तन्मनसि कर्तव्यं वर्तितव्यं च मातृवत् ॥१९॥
एवं ब्रुवाणं भरतः कौसल्यासुतमब्रवीत् । तेजसादित्यसंकाशं प्रतिपच्चन्द्रदर्शनम् ॥२०॥
अधिरोहार्य पादाभ्यां पादुके हेमभूषिते । एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः ॥२१॥
सोऽधिरुह्य नरव्याघ्रः पादुके व्यवमुच्य च । प्रायच्छत्सुमहातेजा भरताय महात्मने ॥२२॥
स्वपादुके संप्रणम्य रामं वचनमब्रवीत् । चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्यहम् ॥२३॥
फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन । तवागमनमाकाङ्क्षन्वसन्वै नगराद्बहिः ॥२४॥
तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परंतप । चतुर्दशे हि संपूर्णे वर्षेऽहनि रघूत्तम ॥२५॥
न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् । तथेति च प्रतिज्ञाय तं परिष्वज्य सादरम् ॥२६॥
शत्रुघ्नं च परिष्वज्य वचनं चेदमब्रवीत् । मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति ॥२७॥
मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन । इत्युक्त्वाश्रुपरीताक्षो भ्रातरं विससर्ज ह ॥२८॥

आप अयोध्याका राज्य ग्रहण करें और उसकी रक्षा करें ॥ १३ ॥ ऐसा कहकर भरत भाईके चरणों-पर गिर पड़े और अत्यन्त प्रिय बोलते हुए पुनः उनकी प्रार्थना करने लगे ॥ १४ ॥ रामचन्द्र कमलपत्राक्ष, श्यामवर्ण भाई भरतको गोदमें लेकर मत्त हंसके स्वरमें उनसे यह बोले ॥ १५ ॥ विनय तथा स्वयं तुममें यह बुद्धि वर्तमान है, जिससे तुम खूब पृथिवीका पालन कर सकते हो ॥ १६ ॥ अमात्यों, मित्रों, तथा बुद्धिमान मन्त्रियोंसे परामर्श करके बड़े कार्योंको सम्पादित करो ॥ १७ ॥ लक्ष्मी चन्द्रमाको छोड़ दे, हिमवान हिमको छोड़ दे, सागर अपनी मर्यादा छोड़ दे, पर मैं पिताकी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ सकता ॥ १८ ॥ इच्छासे अथवा लोभसे तुम्हारी माताने जो यह अर्थात् मुझे वनवास देना निश्चित किया है उससे मनमें कष्ट न करना और माताके समान इनके प्रति व्यवहार करना ॥ १९ ॥ प्रतिपदके चन्द्रके समान सुन्दर और सूर्यके समान तेजस्वी कौसल्याके पुत्रके ऐसा कहनेपर भरत उनसे बोले ॥ २० ॥ आर्य, सुवर्णमण्डित यह पादुका (खड़ाऊँ) आप पैरोंमें पहनें, ये ही सब लोगके योगक्षेम करेंगे ॥ २१ ॥ नरश्रेष्ठ रामचन्द्रने खड़ाऊँ पहन लीं और उतारकर महात्मा भरतको दीं ॥ २२ ॥ पादुकाको प्रणामकर, भरत रामचन्द्रसे बोले—चौदह वर्षोंतक मैं जटा और चीर धारण करूंगा ॥ २३ ॥ वीर रघुनन्दन, फल मूल खाऊंगा, नगरके बाहर रहूँगा, इस प्रकार तुम्हारे आगमनकी प्रतीक्षा करूँगा ॥ २४ ॥ हे रघूत्तम, चौदह वर्षके पूर्ण होनेपर पहले दिन यदि तुमको न देखूंगा तो मैं अग्निप्रवेश करूँगा । रामचन्द्रने वैसा करनेकी प्रतिज्ञा की और उनका आलिंगन किया ॥२५, २६॥ शत्रुघ्नका आलिंगन करके उनसे बोले—माता केकयीकी रक्षा करो, इनपर क्रोध मत करो ॥ २७ ॥ मेरी और सीताकी तुम्हें शपथ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स पादुके ते भरतः स्वलंकृते महोज्ज्वले संपरिगृह्य धर्मवित् ।
प्रदक्षिणं चैव चकार राघवं चकार चैवोत्तमनागमूर्धनि ॥२९॥
अथानुपूर्व्या प्रतिपूज्य तं जनं गुरूंश्च मन्त्रीन्प्रकृतीस्तथानुजौ ।
व्यसर्जयद्राघववंशवर्धनः स्थितः स्वधर्मे हिमवानिवाचलः ॥३०॥
तं मातरो बाष्पगृहीतकंठ्यो दुःखेन नामन्त्रयितुं हि शेकुः ।
स चैव मातॄराभिवाद्य सर्वा रुदन्कुटीं स्वां प्रविवेश रामः ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे द्वादशाधिकशततमः सर्गः ॥११२॥

त्रयोदशाधिकशततमः सर्गः ११३

ततः शिरसि कृत्वा तु पादुके भरतस्तदा । आरुरोह रथं हृष्टः शत्रुघ्नसहितस्तदा ॥ १ ॥
वासिष्ठो वामदेवश्च जाबालिश्च दृढव्रतः । अग्रतः प्रययुः सर्वे मन्त्रिणो मन्त्रपूजिताः ॥ २ ॥
मन्दाकिनीं नदीं रम्यां प्राङ्मुखास्ते ययुस्तदा । प्रदक्षिणं च कुर्वाणाश्चित्रकूटं महागिरिम् ॥ ३ ॥
पश्यन्धातुसहस्राणि रम्याणि विविधानि च । प्रययौ तस्य पार्श्वेन ससैन्यो भरतस्तदा ॥ ४ ॥
अदूराच्चित्रकूटस्य ददर्श भरतस्तदा । आश्रमं यत्र स मुनिर्भरद्वाजः कृतालयः ॥ ५ ॥
स तमाश्रममागम्य भरद्वाजस्य वीर्यवान् । अवतीर्य रथात्पादौ ववन्दे कुलनन्दनः ॥ ६ ॥
ततो हृष्टो भरद्वाजो भरतं वाक्यमब्रवीत् । अपि कृत्यं कृतं तात रामेण च समागतम् ॥ ७ ॥

है । ऐसा कहकर और आँखोंमें आँसू भरकर भाईको विदा किया ॥ २८ ॥ धर्मात्मा भरतने सुन्दर चमकीली, रामचन्द्रकी पादुका लेकर, उनकी प्रदक्षिणा की और वह श्रेष्ठ पादुका हाथी-पर रखी ॥ २९ ॥ क्रमानुसार गुरु, मन्त्री, प्रजा तथा भाइयोंको, यथोचित सत्कारसे अपने धर्ममें हिमवानके समान अचल, रघुवंशको प्रकाशित करनेवाले रामचन्द्रने विदा किया ॥ ३० ॥ माताओंका दुःखसे गला भर आया था, अतएव जानेके समय वे रामचन्द्रसे पूछ न सकीं । रामचन्द्र सब माताओंको प्रणाम कर रोते-रोते अपनी कुटीमें गये ॥ ३१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एकसौ बारहवाँ सर्ग समाप्त ॥११२॥

तदनन्तर, रामचन्द्रकी पादुका सिरपर रखकर प्रसन्न भरत शत्रुघ्नके साथ रथपर चढे ॥ १ ॥ वसिष्ठ, वामदेव और दृढ़व्रत जाबालि तथा सब मन्त्री आगे-आगे चले । ये मन्त्री मन्त्रसे पूजित थे, अर्थात् इनकी सलाह कभी निष्फल नहीं होती थी ॥ २ ॥ रमणीय मन्दाकिनी नदीके तीर आकर महापर्वत चित्रकूटकी प्रदक्षिणा करते हुए वे पूर्वकी ओर चले ॥ ३ ॥ अनेक प्रकारकी मनोहर भिन्न-भिन्न धातुओंको देखते हुए भरत अपनी सेनाके साथ उस पर्वतके पास-से चले ॥ ४ ॥ चित्रकूटके पासही भरतने उस आश्रमको देखा, जहाँ भरद्वाज मुनि निवास करते हैं ॥५॥ वीर्यवान भरत भरद्वाजके आश्रमपर आकर रथसे उतरे और उनके चरणोंको उन्होंने प्रणाम किया ॥ ६ ॥ प्रसन्न भरद्वाज भरतसे बोले—कार्य सिद्ध हुआ ? रामचन्द्रसे तुम मिले ? ॥७॥ बुद्धि-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमुक्तः स तु ततो भरद्वाजेन धीमता । प्रत्युवाच भरद्वाजं भरतो धर्मवत्सलः ॥ ८ ॥
स याच्यमानो गुरुणा मया च दृढविक्रमः । राघवः परमप्रीतो वसिष्ठं वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥
पितुः प्रतिज्ञां तामेव पालयिष्यामि तत्त्वतः । चतुर्दश हि वर्षाणि या प्रतिज्ञा पितुर्मम ॥१०॥
एवमुक्तो महाप्राज्ञो वसिष्ठः प्रत्युवाच ह । वाक्यज्ञो वाक्यकुशलं राघवं वचनं महत् ॥११॥
एते प्रयच्छ संहृष्टः पादुके हेमभूषिते । अयोध्यायां महाप्राज्ञ योगक्षेमकरो भव ॥१२॥
एवमुक्तो वसिष्ठेन राघवः प्राङ्मुखः स्थितः । पादुके हेमविकृते मम राज्याय ते ददौ ॥१३॥
निवृत्तोऽहमनुज्ञातो रामेण सुमहात्मना । अयोध्यामेव गच्छामि गृहीत्वा पादुके शुभे॥१४॥
एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरतस्य महात्मनः । भरद्वाजः शुभतरं मुनिर्वाक्यमुदाहरत् ॥१५॥
नैतच्चित्रं नरव्याघ्रे शीलवृत्तविदां वरे । यदार्ये त्वयि तिष्ठेत्तु निम्नोत्सृष्टमिवोदकम् ॥१६॥
अनृणः स महाबाहुः पिता दशरथस्तव । यस्य त्वमीदृशः पुत्रो धर्मात्मा धर्मवत्सलः ॥१७॥
तमृषिं तु महाप्राज्ञमुक्तवाक्यं कृताञ्जलिः । आमन्त्रयितुमारेभे चरणावुपगृह्य च ॥१८॥
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा भरद्वाजं पुनः पुनः । भरतस्तु ययौ श्रीमानयोध्यां सह मन्त्रिभिः ॥१९॥
यानैश्च शकटैश्चैव हयैर्नागैश्च सा चमूः । पुनर्निवृत्ता विस्तीर्णा भरतस्यानुयायिनी ॥२०॥
ततस्ते यमुनां दिव्यां नदीं तीर्त्वोर्मिमालिनीम् । ददृशुस्तां पुनः सर्वे गङ्गां शिवजलां नदीम् ॥२१॥
तां रम्यजलसंपूर्णां संतीर्य सहबान्धवः । शृङ्गवेरपुरं रम्यं प्रविवेश ससैनिकः ॥२२॥

मान भरद्वाजके ऐसा कहनेपर धर्मप्रेमी भरत उनसे बोले ॥ ८ ॥ दृढ़विक्रम रामचन्द्रसे गुरुने और मैंने प्रार्थना की । अत्यन्त प्रसन्न होकर रामचन्द्र वसिष्ठसे बोले ॥ ९ ॥ चौदह वर्षोंतक वनवास करनेकी मेरे पिताकी जो प्रतिज्ञा है, मैं पिताकी उस प्रतिज्ञाका यथावत पालन करूँगा ॥१०॥ ऐसा कहनेपर महाप्राज्ञ, वचनके अर्थ समझनेवाले वसिष्ठ, बोलनेमें निपुण रामचन्द्रसे ऐसा बोले ॥ ११ ॥ प्रसन्नतापूर्वक सुवर्णमण्डित यह पादुका भरतको दो और इसके द्वारा महाप्राज्ञ तुम अयोध्यामें योगक्षेम करो ॥ १२ ॥ वसिष्ठके ऐसा कहनेपर पूर्वमुँह बैठे हुए रामचन्द्रने सुवर्णमण्डित यह पादुका राज्यके लिए मुझे दी ॥ १३ ॥ महात्मा रामचन्द्रकी आज्ञासे मैं लौट आया हूँ । उनकी पवित्र पादुका लेकर अयोध्या जा रहा हूँ ॥ १४ ॥ महात्मा भरतके ये शुभ वचन सुनकर भरद्वाज अत्यन्त शुभ वचन बोले ॥ १५ ॥ उत्तम चरित्र रखनेवाले नरश्रेष्ठ तुम्हारे लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, जिस प्रकार नीची जगहमें गिरा हुआ जल एकत्र हुआ करता है, उसी प्रकार बड़े भाईका अनुवर्तन तुममें वर्तमान रहेगा ॥ १६ ॥ महाबाहु तुम्हारे पिता दसरथ आज अनृण हुए, जिनके तुम्हारे जैसा धर्मात्मा और धर्मप्रेमी पुत्र है ॥ १७ ॥ महाप्राज्ञ उन ऋषिके ऐसा कहनेपर हाथ जोड़कर भरतने प्रणाम किया और जानेकी आज्ञा माँगी ॥ १८ ॥ भरद्वाज मुनिकी बार-बार प्रदक्षिणा करके भरत मन्त्रियोंके साथ अयोध्या चले ॥ १९ ॥ घोड़ा-गाड़ी, बैलगाड़ी, घोड़ा, हाथीके कारण विशाल और भरतके पीछे आनेवाली वह सेना पुनः लौटी ॥ २० ॥ तरंगोंवाली दिव्य यमुना नदीको पारकर उन लोगोंने पवित्र जलवाली गंगानदीको पुनः देखा ॥ २१ ॥ मनोहर जलसे भरी हुई गंगाको अपने बान्धवोंके साथ पार करके भरतने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शृङ्गवेरपुराद् भूय अयोध्यां संददर्श ह ।अयोध्यां तु तदा दृष्ट्वा पित्रा भ्रात्रा विवर्जिताम्॥२३॥
भरतो दुःखसंतप्तः सारथिं चेदमब्रवीत । सारथे पश्य विध्वस्ता अयोध्या न प्रकाशते ॥२४॥
निराकरा निरानन्दा दीना प्रतिहतस्वना ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे त्रयोदशाधिकशततमः सर्गः ॥११३॥

चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः ११४

स्निग्धगम्भीरघोषेण स्यन्दनेनोपयान्प्रभुः । अयोध्यां भरतः क्षिप्रं प्राविवेश महायशाः ॥ १ ॥
बिडालोलूकचरिताम्मालीननरवारणाम् । तिमिराभ्याहतां कालीमप्रकाशां निशामिव ॥ २ ॥
राहुशत्रोः प्रियां पत्नीं श्रिया प्रज्वलितप्रभाम् । ग्रहेणाभ्युदितेनैकां रोहिणीमिव पीडिताम् ॥ ३ ॥
अल्पोष्णक्षुब्धसलिलां घर्मतप्तविहंगमाम् । लीनमीनझषग्राहां कृशां गिरिनदीमिव ॥ ४ ॥
विधूमामिव हेमाभां शिखामग्नेः समुत्थिताम् । हविरभ्युक्षितां पश्चाच्छिखां विप्रलयं गताम्॥ ५ ॥
विध्वस्तकवचां रुग्णगजवाजिरथध्वजाम् । हतप्रवीरामापन्नां चमूमिव महाहवे ॥ ६ ॥

सैनिकोंके साथ रमणीय शृङ्गवेरपुरमें प्रवेश किया ॥ २२ ॥ पुनः शृङ्गवेरपुरसे उन्होंने अयोध्या देखी । भाई और पितासे रहित अयोध्याको देखकर बहुत दुखी हुए और वे सारथीसे यह बोले—देखो, अयोध्या लुट गयी, अब इसकी वह शोभा नहीं ॥ २३, २४ ॥ न तो इसका वह सुन्दर आकार है और न आनन्द । यह दीन और मूक हो गयी है ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एकसौ तेरहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११३ ॥

कानोंको प्रिय तथा गम्भीर शब्दवाले रथपर चढ़कर महायशस्वी प्रभु भरत अयोध्या आये और उन्होंने शीघ्र नगरमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ उस अयोध्यामें बिल्ली और उल्लू विचर रहे थे । घरोंके किवाड़ बन्द थे । अन्धकारसे वह बिलकुल अलक्ष्य हो गयी थी । प्रकाशहीन निशाके समान उस अयोध्या नगरीमें भरतने प्रवेश किया ॥ २ ॥ चन्द्रमाकी प्रियपत्नी और शोभासे प्रकाशयुक्त, रोहिणी, अपने पतिके राहूके द्वारा गृहीत होनेपर, जिस प्रकार असहाय हो जाती है, अयोध्या नगरी भी वैसीही असहाय हो गयी थी ॥ ३ ॥ वह नगरी दुबली गिरिनदीके समान हो गयी थी, जिसका जल सूर्यकी किरणोंसे थोड़ा गरम हो जाता है और गन्दा हो जाता है, जहाँके पक्षी धूपसे तप जाते हैं और मछलियाँ, ग्राह आदि छिप जाते हैं ॥ ४ ॥ जो नगरी रामचन्द्रके समय धूमहीन, सुवर्णके समान प्रकाशमान, अग्निशिखा जैसी थी, वही रामचन्द्रके वन जानेके समय, उस अग्निके समान हो गयी है, जिसकी शिखा हवि डालनेके कारण बुझ गयी हो ॥ ५ ॥ नगरी उस सेनाके समान मालूम होती है जिसके कवच टूट गये हों, हाथी घोड़े रथ आदि बीमार और नष्ट-भ्रष्ट हो गये हों, जिसके वीर मारे गये हों और जो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सफेनां सस्वनां भूत्वा सागरस्य समुत्थिताम् । प्रशान्तमारुतोद्धूतां जलोर्मिमिव निःस्वनाम्॥ ७ ॥
त्यक्तां यज्ञायुधैः सर्वैराभिरूपैश्च याजकैः । सुत्याकाले सुनिर्वृत्ते वेदिं गतरवामिव ॥ ८ ॥
गोष्ठमध्ये स्थितामार्तामचरन्तीं नवं तृणम् । गोवृषेण परित्यक्तां गवां पत्नीमिवोत्सुकाम् ॥ ९ ॥
प्रभाकराद्यैः सुस्निग्धैः प्रज्वलद्भिरिवोत्तमैः । वियुक्तां मणिभिर्जात्यैर्नवां मुक्तावलीमिव ॥१०॥
सहसाचरितां स्थानान्मही पुण्यक्षयोद्गताम् । संहृतद्युतिविस्तारां तारामिव दिवश्च्युताम् ॥११॥
पुष्पनद्धां वसन्तान्ते मत्तभ्रमरशालिनीम् । द्रुतदावाग्निविप्लुष्टां क्रान्तां वनलतामिव ॥१२॥
संमूढनिगमां सर्वां संक्षिप्तविपणापणाम् । प्रच्छन्नशशिनक्षत्रां द्यामिवाम्बुधरैर्युताम् ॥१३॥
क्षीणपानोत्तमैर्भग्नैः शरावैरभिसंवृताम् । हतशौण्डामिव ध्वस्तां पानभूमिमसंस्कृताम् ॥१४॥
वृक्णभूमितलां निम्नां वृक्णपात्रैः समावृताम् । उपयुक्तोदकां भग्नां प्रपां निपतितामिव ॥१५॥
विपुलां विततां चैव युक्तपाशां तरस्विनाम् । भूमौ बाणैर्विनिकृतां पतितां ज्यामिवायुधात् ॥१६॥
सहसा युद्धशौण्डेन हयारोहेण वाहिताम् । निहतां प्रतिसैन्येन वडवामिव पातिताम् ॥१७॥

आपत्तिमें फँसी हों ॥ ६ ॥ वह नगरी समुद्रकी उस तरंगके समान मालूम होती है जो पहले वायुके द्वारा उठायी गयी हो, जिसमें खूब फेन हों और शब्द होते हों, पुनः वायुके शान्त होनेपर जो धीमी पड़ गयी हो और जिसका शब्द नष्ट हो गया हो ॥ ७ ॥ वह नगरी उस यज्ञ-वेदीके समान शब्दहीन मालूम होती है, जहाँसे यज्ञ समाप्त होनेपर, प्रशंसनीय याजक, यज्ञकी सामग्री लेकर उस वेदीको छोड़ गये हों ॥ ८ ॥ वह नगरी उस गायके समान मालूम होती है जिसके पाससे साँढ हटा लिया गया है और वह गोष्ठमें बँधी हुई दुखित हो रही है तथा हरी घास नहीं चरती ॥ ९ ॥ यह नगरी उस मुक्तामालाके समान मालूम होती है, जिसमें से उत्तम जातिके चिकने और चमकीले, श्रेष्ठ पद्मराग आदि मणि निकाल लिये गये हों ॥ १० ॥ पुण्यके नष्ट होनेसे, अपने स्थानसे चलित और पृथिवीमें गिरी हुई, द्युतिहीन, और दिवस-च्युत ताराके समान यह नगरी मालूम होती है ॥ ११ ॥ वसन्तऋतुमें जो सुन्दर वनलता फूलोंसे भरी हुई थी तथा जिसपर मतवाले भ्रमर गूँज रहे थे, वही सहसा दावाग्निसे जल गयी, अयोध्या नगरी-की शोभा उसी वनलताके समान हो गयी थी ॥ १२ ॥ अयोध्याके बनिये ज्ञानहीन हो गये थे, बाजार बहुत छोटा हो गया था। मेघके कारण चन्द्रमा और नक्षत्रोंके ढक जानेपर आकाशकी जो दशा होती है वही दशा अयोध्याकी हो गयी थी ॥ १३ ॥ अयोध्या असंस्कृत (बिना झाड़ी-बुहारी) पानभूमि (कलवरिया, शराबकी दूकान) के समान हो गयी थी। जहाँ शराबसे खाली और टूटे प्याले इधर-उधर पड़े रहते हैं और उन्हीं प्यालोंसे जहाँ मतवाले शराबी मारे जाते हैं, इस प्रकार जो शोभाहीन हो गयी है ॥१४॥ अयोध्या नगरी उस पौसालके समान हो गयी थी, जिसकी फर्श टूट-फूट गयी हो, गहरी हो गयी है, टूटे बर्तन पड़े हों, जल समाप्त हो गया हो और प्यासे आदमी आकर जहाँ गिर पड़े हों ॥ १५ ॥ अयोध्या नगरी धनुषके उस विशाल रौदाके समान हो गयी थी जिसके दोनों ओर धनुषमें लगानेके लिए फंदे बने हों और जो धनुषपर चढ़ी हुई हो, उसे कोई वीर अपने बाणोंसे काटकर जमीनमें गिरा दे ॥ १६ ॥ युद्धमें निपुण सवारके द्वारा हाँकी गयी घोड़ी जिस प्रकार शत्रुके द्वारा मारकर गिरा दीजाय, वैसीही दशा अयोध्या-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भरतस्तु रथस्थः सञ्श्रीमान्दशरथात्मजः । वाहयन्तं रथश्रेष्ठं सारथिं वाक्यमब्रवीत् ॥१८॥
किं नु खल्वद्य गम्भीरो मूर्च्छितो न निशाम्यते । यथापुरमयोध्यायां गीतवादित्रनिःस्वनः ॥१९॥
वारुणीमदगन्धश्च माल्यगन्धश्च मूर्च्छितः । चन्दनागुरुगन्धश्च न प्रवाति समन्ततः ॥२०॥
यानप्रवरघोषश्च सुस्निग्धहयनिःस्वनः । प्रमत्तगजनादश्च महांश्च रथनिःस्वनः ॥२१॥
नेदानीं श्रूयते पुर्यामस्यां रामे विवासिते । चन्दनागुरुगन्धांश्च महार्हांश्च वनस्रजः ॥२२॥
गते रामे हि तरुणाः संतप्ता नोपभुञ्जते । बहिर्यात्रां न गच्छन्ति चित्रमाल्यधरा नराः॥२३॥
नोत्सवाः संप्रवर्तन्ते रामशोकार्दिते पुरे । सा हि नूनं मम भ्राता पुरस्यास्य द्युतिर्गता ॥२४॥
नहि राजत्ययोध्येयं सासारेवार्जुनी क्षपा । कदा नु खलु मे भ्रात्रा महोत्सव इवागतः ॥२५
जनायिष्यत्ययोध्यायां हर्षं ग्रीष्म इवाम्बुदः । तरुणैश्चारुवेषैश्च नरैरुन्नतगामिभिः ॥२६॥
संपतद्भिरयोध्यायां नाभिभान्ति महापथाः । इति ब्रुवन्सारथिना दुःखितो भरतस्तदा ॥२७॥
अयोध्यां संप्रविश्यैव विवेश वसतिं पितुः । तेन हीनां नरेन्द्रेण सिंहहीनां गुहामिव ॥२८॥

तदा तदन्तःपुरमुज्झितप्रभं सुरैरिवोत्कृष्टमभास्करं दिनम् ।
निरीक्ष्य सर्वत्र विभक्तमात्मवान्सुमोच बाष्पं भरतः सुदुःखितः ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११४ ॥

की हो गयी थी ॥ १७ ॥ रथपर बैठे हुए दसरथपुत्र श्रीमान् भरत सारथिसे इस प्रकार बोले ॥ १८ ॥ पहलेके समान गाने-बजानेका गम्भीर और प्रवृद्ध शब्द, इस समय अयोध्यामें क्यों नहीं सुनाई देता ॥ १९ ॥ शराबकी गन्ध, मालाओंकी प्रवृद्ध गन्ध, चन्दन और अगस्तकी गन्ध, नहीं मालूम पड़ती ॥ २० ॥ उत्तम गाड़ियोंके शब्द, घोड़ोंकी मीठी हिहनाहट, हाथियोंका गर्जन और रथोंकी घड़घड़ाहट नहीं सुनाई पड़ती ॥ २१ ॥ इसका कारण रामचन्द्रका वनमें निर्वासित होना है । चन्दन और अगरुकी गन्ध उत्तम फूलकी मालाएँ इस समय युवकगण रामचन्द्रके वन जानेके कारण धारण नहीं करते । अन्य मनुष्य भी सुन्दर वस्त्र पहनकर बाहर नहीं निकलते ॥ २२, २३ ॥ रामशोकसे पीड़ित नगरमें उत्सव नहीं होते, निश्चित इस नगरकी शोभा मेरे भाईके साथ चली गयी ॥ २४ ॥ यह अयोध्या, उस शुक्लपक्षकी रात्रिके समान नहीं शोभती जिसमें खूब पानी पड़ा हो, महोत्सवके समान कब मेरे भाई आवेंगे ॥ २५ ॥ और मेघके आनेसे ग्रीष्म ऋतुमें जैसा आनन्द होता है वैसा आनन्द करेंगे । सुन्दर वेशवाले युवकों तथा अहंकारसे चलनेवाले अन्य मनुष्योंसे जो-अयोध्यामें आते हैं, सड़कोंकी शोभा नहीं होती । इस प्रकार कहते हुए दुखी भरत सारथिके साथ अयोध्यामें जाकर सिंहसे हीन गुहाके समान राजा दसरथसे रहित उनके घरमें गये ॥ २६, २७, २८ ॥ भरतने उस अन्तःपुरको देखा, उसकी शोभा नष्ट हो गयी थी, जिस प्रकार सूर्यहीन दिनकी शोभा नष्ट हो जाती है और उसके लिए देवता विलाप करते हैं, उस घरकी सफाई नहीं की गयी थी । उसे देखकर धीर भरत भी दुखित होकर रोने लगे ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एकसौ चौदहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११४ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चदशाधिकशततमः सर्गः ११५

ततो निक्षिप्य मातृस्ता अयोध्यायां दृढव्रतः। भरतः शोकसंतप्तो गुरूनिदमथाब्रवीत् ॥ १ ॥
नन्दिग्रामं गमिष्यामि सर्वानामन्त्रयेऽत्र वः। तत्र दुःखमिदं सर्वं सहिष्ये राघवं विना ॥ २ ॥
गतश्चाहो दिवं राजा वनस्थः स गुरुर्मम। रामं प्रतीक्षे राज्याय स हि राजा महायशाः ॥ ३ ॥
एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरतस्य महात्मनः। अब्रवन्मन्त्रिणः सर्वे वसिष्ठश्च पुरोहितः ॥ ४ ॥
सुभृशं श्लाघनीयं च यदुक्तं भरत त्वया। वचनं भ्रातृवात्सल्यादनुरूपं तवैव तत् ॥ ५ ॥
नित्यं ते बन्धुलुब्धस्य तिष्ठतो भ्रातृसौहृदे। मार्गमार्यं प्रपन्नस्य नानुमन्येत कः पुमान् ॥ ६ ॥
मन्त्रिणां वचनं श्रुत्वा यथाभिलषितं प्रियम्। अब्रवीत्सारथिं वाक्यं रथो मे युज्यतामिति ॥ ७ ॥
प्रहृष्टवदनः सर्वा मातॄः समभिभाष्य च। आरुरोह रथं श्रीमाञ्शत्रुघ्नेन समन्वितः ॥ ८ ॥
आरुह्य तु रथं क्षिप्रं शत्रुघ्नभरतावुभौ। ययतुः परमप्रीतौ वृतौ मन्त्रिपुरोहितैः ॥ ९ ॥
अग्रतो गुरवः सर्वे वसिष्ठप्रमुखा द्विजाः। प्रययुः प्राङ्मुखाः सर्वे नन्दिग्रामो यतो भवेत् ॥१०॥
बलं च तदनाहूतं गजाश्वरथसंकुलम्। प्रययौ भरते याते सर्वे च पुरवासिनः ॥११॥
रथस्थः स तु धर्मात्मा भरतो भ्रातृवत्सलः। नन्दिग्रामं ययौ तूर्णं शिरस्यादाय पादुके ॥१२॥
भरतस्तु ततः क्षिप्रं नन्दिग्रामं प्रविश्य सः। अवतीर्य रथात्तूर्णं गुरूनिदमभाषत ॥१३॥
एतद्राज्यं मम भ्रात्रा दत्तं संन्यासमुत्तमम्। योगक्षेमवहे चेमे पादुके हेमभूषिते ॥१४॥

माताओंको अयोध्यामें रखकर दृढ़व्रत भरत शोकसे सन्तप्त होकर गुरुओंसे इस प्रकार बोले ॥ १ ॥ मैं नन्दिग्राममें जा रहा हूं। आप सब लोगोंकी आज्ञा चाहता हूँ। वहाँ रामचन्द्रके न रहनेके समस्त दुखोंका मैं अनुभव करूँगा ॥ २ ॥ राजा स्वर्गगामी हुए, मेरे गुरु वनवास कर रहे हैं, राज्यके लिए रामचन्द्रकी प्रतीक्षा करूँगा, क्योंकि वे ही महायशस्वी राम राजा हैं ॥ ३ ॥ महात्मा भरतके ये सुन्दर वचन सुनकर सब मन्त्री और पुरोहित वसिष्ठ बोले ॥ ४ ॥ भरत तुम्हारा वचन बहुतही प्रशंसनीय है। भ्रातृप्रेमके अनुकूल जैसे तुमको कहना चाहिये वैसाही तुमने कहा है ॥ ५ ॥ सदा अपने बान्धवोंके पालन करनेमें तुम दत्तचित्त रहे हो। भ्रातृप्रेम प्राप्त करनेके लिए सदा तुमने प्रयत्न किया है। तुम उत्तम मार्गपर जा रहे हो। फिर कौन मनुष्य तुम्हारा अनुमोदन नहीं करेगा ॥ ६ ॥ अपनी इच्छाके अनुकूल और प्रिय मन्त्रियोंके वचन सुनकर भरत सारथिसे बोले—मेरे रथ तैयार करो ॥ ७ ॥ प्रसन्नवदन भरत सब माताओंसे आज्ञा लेकर शत्रुघ्नके साथ रथपर बैठे ॥ ८ ॥ रथपर बैठकर भरत और शत्रुघ्न दोनों मन्त्री और पुरोहितके साथ बड़ी प्रसन्नताके साथ चले ॥ ९ ॥ आगे वसिष्ठ आदि सब ब्राह्मण गुरु पूर्वकी ओर चले, जिधर जानेसे नन्दिग्राम मिलता है ॥१०॥ बिना बुलायेही गज, घोड़ा, रथ आदिसे युक्त सेना तथा सब पुरवासी भरतके जानेपर वहाँके लिए चले ॥ ११ ॥ भ्रातृप्रेमी धर्मात्मा भरत सिर-पर पादुका रखकर शीघ्रतापूर्वक रथपर चले ॥ १२ ॥ शीघ्रही नन्दिग्राममें जाकर और रथसे उतरकर भरत गुरुओंसे इस प्रकार बोले ॥ १३ ॥ मेरे भाईने मुझे यह राज्य न्यास (थाती) के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भरतः शिरसा कृत्वा संन्यासं पादुके ततः । अब्रवीद्दुःखसंतप्तः सर्वं प्रकृतिमण्डलम् ॥१५॥
छत्रं धारयत क्षिप्रमार्यपादाविमौ मतौ । आभ्यां राज्ये स्थितो धर्मः पादुकाभ्यां गुरोर्मम॥१६॥
भ्रात्रा तु मयि संन्यासो निक्षिप्तः सौहृदादयम् । तामिमं पालयिष्यामि राघवागमनं प्रति ॥१७॥
क्षिप्रं संयोजयित्वा तु राघवस्य पुनः स्वयम् । चरणौ तौ तु रामस्य द्रक्ष्यामि सहपादुकौ ॥१८॥
ततो निक्षिप्तभारोऽहं राघवेण समागतः । निवेद्य गुरवे राज्यं भजिष्ये गुरुवर्तिताम् ॥१९॥
राघवाय च संन्यासं दत्त्वेमे वरपादुके । राज्यं चेदमयोध्यां च धूतपापो भवाम्यहम् ॥२०॥
स वल्कलजटाधारी मुनिवेषधरः प्रभुः । नन्दिग्रामेऽवसद्धीरः ससैन्यो भरतस्तदा ॥२१॥
सवालव्यजनं छत्रं धारयामास स स्वयम् । भरतः शासनं सर्वं पादुकाभ्यां निवेदयन् ॥२२॥
ततस्तु भरतः श्रीमानभिषिच्यार्यपादुके । तदधीनस्तदा राज्यं कारयामास सर्वदा ॥२३॥

तदा हि यत्कार्यमुपैति किंचिदुपायनं चोपहृतं महार्हम् ।
स पादुकाभ्यां प्रथमं निवेद्य चकार पश्चाद्भरतो यथावत् ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११५ ॥

समान दिया है और इस राज्यके चलानेके लिये यह पादुका दी है ॥ १४ ॥ पादुका रूप थातीको माथेपर रखकर दुःखसन्तप्त भरत प्रजाओंसे बोले ॥ १५ ॥ यह पादुका रामचन्द्रके चरणके प्रतिनिधि हैं, अतएव इनपर छत्ता करो। मेरे गुरु रामचन्द्रकी इन पादुकाओंसे ही राज्यमें धर्म स्थापित होगा ॥ १६ ॥ प्रेमके कारण मेरे भाईने यह न्यास मुझे दिया है, जब तक रामचन्द्र लौट न आवेंगे तब तक मैं इसकी रक्षा करूँगा ॥ १७ ॥ शीघ्रही रामचन्द्रके चरणोंमें ये पादुका पहना कर, पादुकायुक्त उनके चरणोंका दर्शन करूँगा ॥ १८ ॥ रामचन्द्रका दर्शन करके (वनसे लौटने पर) यह राज्य मैं उनको दे दूँगा, मेरा भार हलका हो जायगा और मैं उनकी आज्ञाके अनुसार उनकी सेवा करूँगा ॥ १९ ॥ रामचन्द्रके थातीरूप यह पादुका, राज्य तथा अयोध्या उनको लौटाकर मैं कलंकमुक्त हो जाऊँगा ॥ २० ॥ वल्कल, जटा धारण करके भरतने मुनिवेष बनाया। धीर भरत अपनी सेनाके साथ वहीं नन्दिग्राममें रहने लगे ॥२१॥ भरत राज्यका समस्त शासनसम्बन्धी कार्य पादुकाको निवेदित कर देते थे और उन्होंने स्वयं उसपर छत्र और चँवर धारण किया ॥ २२ ॥ रामचन्द्रकी पादुकाका अभिषेक करके और स्वयं उसके अधीन होकर भरत राज्य पालन करने लगे ॥ २३ ॥ जो कोई कार्य उपस्थित होता था, अथवा जो कुछ श्रेष्ठ भेंट आती थी, वह सब पहले भरत पादुकाको निवेदित करते थे, पुनः यथोचित उसका प्रबन्ध कर देते थे ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एक सौ पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

षोडशाधिकशततमः सर्गः ११६

प्रतियाते तु भरते वसन्रामस्तदा वने । लक्षयामास सोद्वेगमथौत्सुक्यं तपस्विनाम् ॥ १ ॥
ये तत्र चित्रकूटस्य पुरस्तात्तापसाश्रमे । राममाश्रित्य निरतास्तानलक्षयदुत्सुकान् ॥ २ ॥
नयनैर्भ्रुकुटीभिश्च रामं निर्दिश्य शङ्किताः । अन्योन्यमुपजल्पन्तः शनैश्चक्रुर्मिथः कथाः ॥ ३ ॥
तेषामौत्सुक्यमालक्ष्य रामस्त्वात्मनि शङ्कितः । कृताञ्जलिरुवाचेदमृषिं कुलपतिं ततः ॥ ४ ॥
न कच्चिद्भगवन्किंचित्पूर्ववृत्तमिदं मयि । दृश्यते विकृतं येन विक्रियन्ते तपस्विनः ॥ ५ ॥
प्रमादाच्चरितं किंचित्कच्चिन्नावरजस्य मे । लक्ष्मणस्यर्षिभिर्दृष्टं नानुरूपं महात्मनः ॥ ६ ॥
कच्चिच्छुश्रूषमाणा वः शुश्रूषणपरा मयि । प्रमदाभ्युचितां वृत्तिं सीता युक्तां न वर्तते ॥ ७ ॥
अथर्षिर्जरया वृद्धस्तपसा च जरां गतः । वेपमान इवोवाच रामं भूतदयापरम् ॥ ८ ॥
कुतः कल्याणसत्त्वायाः कल्याणाभिरतेः सदा । चलनं तात वैदेह्यास्तपस्विषु विशेषतः ॥ ९ ॥
त्वन्निमित्तमिदं तावत्तापसान्प्रतिवर्तते । रक्षोभ्यस्तेन संविग्नाः कथयन्ति मिथः कथाः ॥ १० ॥
रावणाविरजः कश्चित्खरो नामेह राक्षसः । उत्पाट्य तापसान्सर्वाञ्जनस्थाननिवासिनः ॥ ११ ॥
धृष्टश्च जितकाशी च नृशंसः पुरुषादकः । अवलिप्तश्च पापश्च त्वां च तात न मृष्यते ॥ १२ ॥

भरतके लौट जानेपर रामचन्द्र वनमें निवास कर रहे थे, उस समय उन्होंने तपस्वियोंकी भययुक्त उत्सुकता देखी ॥ १५ ॥ चित्रकूटके तापस आश्रममें जो पहले रामचन्द्रपर बहुत ही प्रसन्न थे उन्हें कुछ कहनेके लिए, रामचन्द्रने उत्सुक देखा ॥ २ ॥ आँखों और भौंहोंके इशारेसे शंकित वे मुनि आपसमें कुछ कहते थे और धीरे-धीरे बातें करते थे ॥ ३ ॥ उन तपस्वियोंकी इस प्रकारकी उत्सुकता देखकर रामचन्द्रको अपने विषयमें शंका उत्पन्न हुई और वे हाथ जोड़कर कुलपतिसे इस प्रकार बोले ॥ ४ ॥ भगवन्, मेरा व्यवहार क्या अब पहलेके समान नहीं रहा, क्या उसमें कुछ विकृति उत्पन्न होगयी, जिससे ये तपस्वी मुझसे, फिरे हुएसे मालूम होते हैं ॥५॥ अथवा मेरे छोटे भाई लक्ष्मणने प्रमादसे कुछ अनुचित आचरण किया है, और ऋषियोंने उसे देखा है ॥ ६॥ अथवा अर्घ्य पाद्य आदिके द्वारा आप लोगोंकी सेवा करनेवाली सीताने इस समय मेरी सेवामें रत रहनेके कारण आप लोगोंके प्रति स्त्रियोचित व्यवहार नहीं किया है क्या, अर्थात् स्त्रियोंको आप लोगोंके प्रति जैसा व्यवहार करना चाहिये, वैसा व्यवहार नहीं किया है क्या ? ॥७॥ एक तपस्वी जो उमरसे बूढ़े थे और तपस्याके कारण अधिक बूढ़े हो गये थे, काँपते हुए, प्राणियों पर दया करनेवाले रामचन्द्रसे बोले ॥ ८ ॥ तात, सीताका स्वभाव पुण्यमय है, उसका मन सदा पुण्यकी ओर जाता है, उसके द्वारा तपस्वियोंके प्रति अनुचित व्यवहार कैसे हो सकता है ॥ ९ ॥ तुम्हारे कारण ऋषियोंको राक्षसोंसे भय उत्पन्न हो गया है, अतएव व्याकुल होकर आपसमें इस प्रकार वे बातें कर रहे हैं ॥१०॥ रावणका छोटा भाई खर नामक कोई राक्षस है, जनस्थानमें रहनेवाले सब तपस्वियोंको उसने मार डाला । वह बड़ाही क्रूर, ढीठ और निर्भय है । पुरुषोंको खानेवाला और अहंकारी है । वह तुमको दुःख देना चाहता है ॥ ११, १२ ॥ तात,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्वं यदा प्रभृति ह्यस्मिन्नाश्रमे तात वर्तसे । तदा प्रभृति रक्षांसि विप्रकुर्वन्ति तापसान् ॥१३॥
दर्शयन्ति हि वीभत्सैः क्रूरैर्भीषणकैरपि । नानारूपैर्विरूपैश्च रूपैरमुखदर्शनैः ॥१४॥
अप्रशस्तैरशुचिभिः संप्रयुज्य च तापसान् । प्रतिघ्नन्त्यपरान् क्षिप्रमनार्याः पुरतः स्थितान्॥१५॥
तेषु तेष्वाश्रमस्थानेष्वबुद्धमवलीय च । रमन्ते तापसांस्तत्र नाशयन्तोऽल्पचेतसः ॥१६॥
अवक्षिपन्ति स्रुग्भाण्डानग्नीन्सिञ्चन्ति वारिणा। कलशांश्च प्रमर्दन्ति हवने समुपस्थिते ॥१७॥
तैर्दुरात्मभिराविष्टानाश्रमान्प्रजिघांसवः । गमनायान्यदेशस्य चोदयन्त्यृषयोऽद्य माम् ॥१८॥
तत्पुरा राम शारीरीमुपहिंसां तपस्विषु । दर्शयन्ति हि दुष्टास्ते त्यक्ष्याम इममाश्रमम्॥१९॥
बहुमूलफलं चित्रमविदूरादितो वनम् । अश्वस्याश्रममेवाहं श्रयिष्ये सगणः पुनः ॥२०॥
खरस्त्वय्यपि चायुक्तं पुरा राम प्रवर्तते । सहास्माभिरितो गच्छ यदि बुद्धिः प्रवर्तते ॥२१॥
सकलत्रस्य संदेहो नित्यं युक्तस्य राघव । समर्थस्यापि सहितो वासो दुःखमिहाद्य ते ॥२२॥
इत्युक्तवन्तं रामस्तं राजपुत्रस्तपस्विनम् । न शशाकोत्तरैर्वाक्यैरवबद्धुं समुत्सुकम् ॥२३॥
अभिनन्द्य समापृच्छ्य समाधाय च राघवम् । स जगामाश्रमं त्यक्त्वा कुलैः कुलपतिःसह ॥२४॥

रामः संसाध्य ऋषिगणमनुगमनादेशात्तस्मात्कुलपतिमभिवाद्य ऋषिम् ।
सम्यक्प्रीतैस्तैरनुमत उपदिष्टार्थः पुण्यं वासाय स्वानिलयमुपसंपेदे ॥२५॥

जबसे तुम इस आश्रममें आये हो, तबसे राक्षसलोग तपस्वियोंको बहुत दुख देते हैं ॥ १३ ॥ वीभत्स, क्रूर, भयानक अनेक प्रकारके अद्भुत, देखनेमें बुरे रूप बनाकर ऋषियोंको डराया करते हैं ॥ १४ ॥ अनार्य राक्षस पाप उत्पन्न करनेवाले, अशुद्ध पदार्थोंसे, अपने आगे वर्तमान तपस्वियोंको छुआकर, उन्हें मार डालते हैं ॥ १५ ॥ वे भिन्न-भिन्न आश्रमोंमें अज्ञातरूपसे जाकर छिप जाते हैं और अल्पज्ञ महर्षियोंको मारकर प्रसन्न होते हैं ॥ १६ ॥ स्रुवा और अन्य यज्ञके पात्रोंको फेंक देते हैं, आगपर जल डाल देते हैं, घड़े फोड़ देते हैं और यह सब हवनके समयमें वे करते हैं ॥ १७ ॥ उन दुरात्माओंसे ये आश्रम दूषित हो गये हैं। अतएव इन आश्रमों-को छोड़कर दूसरे आश्रमोंमें जानेके लिए ऋषि मुझसे कह रहे हैं ॥ १८ ॥ अब वे तपस्वियोंका वध करनेवाले हैं, अतएव, हम लोग इस आश्रमको छोड़ देना चाहते हैं ॥ १९ ॥ यहाँसे थोड़ीही दूर पर एक सुन्दर वन है, जहाँ खूब फल और मूल है। वहाँ अश्वऋषिका आश्रम है, मैं अपने साथियोंके साथ वहीं जाऊँगा ॥ २० ॥ रामचन्द्र, खर तुम्हारे प्रति भी बुरा व्यवहार करेगा, अतएव तुम भी हम लोगोंके साथ इस वनसे चलो, यदि यह सलाह तुम्हें उचित जान पड़े॥२१॥रामचन्द्र यद्यपि आप सदा सावधान रहते हैं और समर्थ भी हैं, रामचन्द्र, फिर भी स्त्रीके साथ आपको यहाँ रहनेमें बुराई हो सकती है ॥ २२ ॥ तपस्वीके ऐसा कहने पर अपने उत्तरके वचनोंसे उन्हें रोक न सके, क्योंकि वे जानेके लिए बहुतही उत्सुक थे ॥ २३ ॥ रामचन्द्रकी स्तुति करके उन्हें समझाकर और उन्हें न घबड़ानेके लिये कहकर कुलपति आश्रम छोड़कर अपने विद्यार्थियोंके साथ चले गये ॥ २४ ॥ वहाँसे जानेवाले ऋषियोंको पहुंचाकर कुलपति ऋषिको प्रणाम कर, प्रसन्नतापूर्वक उनकी दी हुई आज्ञा तथा उपदेश लेकर, विश्राम करनेके लिए अपने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आश्रममृषिविरहितं प्रभुः क्षणमपि न जहौ स राघवः ।
राघवं हि सततमनुगतास्तापसाश्चार्षचरिते धृतगुणाः ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षोडशाधिकशततमः सर्गः ॥११६॥

सप्तदशाधिकशततमः सर्गः ११७

राघवस्त्वपयातेषु सर्वेष्वनु विचिन्तयन् । न तत्रारोचयद्वासं कारणैर्बहुभिस्तदा ॥ १ ॥
इह मे भरतो दृष्टो मातरश्च सनागराः । सा च मे स्मृतिरन्वेति तान्नित्यमनुशोचतः ॥ २ ॥
स्कन्धावारनिवेशेन तेन तस्य महात्मनः । हयहास्तिकरीषैश्च उपमर्दः कृतो भृशम् ॥ ३ ॥
तस्मादन्यत्र गच्छाम इति संचिन्त्य राघवः । प्रातिष्ठत स वैदेह्या लक्ष्मणेन च संगतः ॥ ४ ॥
सोऽत्रेराश्रममासाद्य तं ववन्दे महायशाः । तं चापि भगवानत्रिः पुत्रवत्प्रत्यपद्यत ॥ ५ ॥
स्वयमातिथ्यमादिश्य सर्वमस्य सुसत्कृतम् । सौमित्रिं च महाभागं सीतां च समसान्त्वयत् ॥ ६ ॥
पत्नीं च तमनुप्राप्तां वृद्धामामन्त्र्य सत्कृताम् । सान्त्वयामास धर्मज्ञः सर्वभूतहिते रतः ॥ ७ ॥
अनसूयां महाभागां तापसीं धर्मचारिणीम् । प्रतिगृह्णीष्व वैदेहीमब्रवीदृषिसत्तमः ॥ ८ ॥
रामाय चाचचक्षे तां तापसीं धर्मचारिणीम् । दश वर्षाण्यनावृष्ट्या दग्धे लोके निरन्तरम् ॥ ९ ॥

पवित्र आश्रममें रामचन्द्र आये ॥ २५ ॥ ऋषियोंसे विरहित उस आश्रमको रामचन्द्रने एक क्षणके लिए भी नहीं छोड़ा । ऋषिके समान आचरण करनेवाले, रामचन्द्रपर विश्वास करके बहुतसे ऋषि रह गये, दूसरे आश्रमोंमें नहीं गये ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एक सौ सोलहवां सर्ग समाप्त ॥ ११६ ॥

अनेक ऋषियोंके वहाँसे चले जानेपर रामचन्द्र विचार करने लगे और अनेक कारणोंसे उन्होंने वहाँ रहना पसन्द नहीं किया ॥ १ ॥ यहीं भरत, माताएँ तथा नगरवासी मुझसे मिले थे। इनकी स्मृतिसे, उनके सम्बन्धकी बातें मैं सोचता हूँ और वह सदा बनी रहती है ॥ २ ॥ महात्मा भरतकी सेनाके ठहरनेसे, हाथी और घोड़ोंकी लीदसे यह स्थान बहुतही अशुद्ध हो गया है ॥३॥ अतएव, यहाँसे दूसरी जगह चलें ऐसा सोचकर लक्ष्मण और सीताके साथ रामचन्द्रने प्रस्थान किया ॥ ४ ॥ अत्रिके आश्रममें जाकर, महायशस्वी रामचन्द्रने उन्हें प्रणाम किया और भगवान अत्रिने भी उनके साथ पुत्रकासा व्यवहार किया ॥ ५ ॥ स्वयं उनका अतिथि-सत्कार करके सीता और लक्ष्मणकी ओर प्रेमपूर्वक उन्होंने देखा ॥ ६ ॥ समीप आयी हुई वृद्धा अपनी स्त्रीको सब प्राणियोंके हितकारी, धर्मज्ञ उन ऋषिने सत्कारपूर्वक उत्तम वचनोंसे सन्तुष्ट किया ॥ ७ ॥ तपस्विनी धर्मचारिणी अनुसूयासे वे ऋषिश्रेष्ठ बोले—सीताका आलिंगन करो ॥ ८ ॥ मुनिने धर्मचारिणी तापसीका परिचय रामचन्द्रको देते हुए कहा—दस वर्षों तक वृष्टि नहीं हुई थी ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यया मूलफले सृष्टे जान्हवी च प्रवर्तिता । उग्रेण तपसा युक्ता नियमैश्चाप्यलंकृता ॥१०॥
दश वर्षसहस्राणि यया तप्तं महत्तपः । अनसूया व्रतैस्तात प्रत्यूहाश्च निबर्हिताः ॥११॥
देवकार्यनिमित्तं च यया संत्वरमाणया । दशरात्रं कृता रात्रिः सेयं मातेव तेऽनघ ॥१२॥
तामिमां सर्वभूतानां नमस्कार्यां तपस्विनीम् । अभिगच्छतु वैदेही वृद्धामक्रोधनां सदा ॥१३॥
एवं ब्रुवाणं तमृषिं तथेत्युक्त्वा स राघवः । सीतामालोक्य धर्मज्ञामिदं वचनमब्रवीत् ॥१४॥
राजपुत्रि श्रुतं त्वेतन्मुनेरस्य समीरितम् । श्रेयोर्थमात्मनः शीघ्रमभिगच्छ तपस्विनीम् ॥१५॥
अनसूयेति या लोके कर्मभिः ख्यातिमागता । तां शीघ्रमभिगच्छ त्वमभिगम्यां तपस्विनीम् ॥१६॥
सीता त्वेतद्वचः श्रुत्वा राघवस्य यशस्विनी । तामत्रिपत्नीं धर्मज्ञामभिचक्राम मैथिली ॥१७॥
शिथिलां वलितां वृद्धां जरापाण्डुरमूर्धजाम् । सततं वेपमानाङ्गीं प्रवाते कदलीमिव ॥१८॥
तां तु सीता महाभागामनसूयां पतिव्रताम् । अभ्यवादयदव्यग्रा स्वं नाम समुदाहरत् ॥१९॥
अभिवाद्य च वैदेही तापसीं तां दमान्विताम् । बद्धाञ्जलिपुटा हृष्टा पर्यपृच्छदनामयम् ॥२०॥
ततः सीतां महाभागां दृष्ट्वा तां धर्मचारिणीम् । सान्त्वयन्त्यब्रवीद्वृद्धा दिष्ट्या धर्ममवेक्षसे ॥२१॥
त्यक्त्वा ज्ञातिजनं सीते मानवृद्धिं च मानिनि । अवरुद्धं वने रामं दिष्ट्या त्वमनुगच्छसि ॥२२॥
नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाशुभः । यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः॥२३॥

संसार जलने लगा था, उस समय इसने फल मूल उत्पन्न किया, गंगाको यहाँ बहवाया, दस हजार वर्षों तक जिसने कठोर तपस्या की, जिसकी तपस्या उग्र है और जो उत्तम नियमोंसे सुशोभित है, अनुसूयाके व्रतोंके प्रभावसेही ऋषियोंके विघ्न दूर हुए थे, देवकार्यके लिए त्वरा रखनेवाली जिसने दस रातकी एक रात बनाई, वे ये अनुसूया तुम्हारी माताके समान पूज्य हैं ॥ ९, १०, ११, १२ ॥ सब प्राणियोंके नमस्करणीय इन तपस्विनीके पास वैदेही जाय, ये वृद्धा क्रोध-रहित हैं ॥ १३ ॥ ऋषिके ऐसा कहनेपर रामचन्द्रने उनकी बात स्वीकार की, पुनः वे धर्म जाननेवाली सीताकी ओर देखकर बोले ॥ १४ ॥ राजपुत्रि, इन मुनिने जो कहा है, वह तो तुमने सुना ही । तुम शीघ्रही अपने कल्याणके लिए इन तपस्विनीके पास जाओ ॥ १५ ॥ अपने कर्मोंसे जो अनुसूया नामसे प्रसिद्ध हुई है और जो जानेके योग्य हैं, उन तपस्विनीके पास तुम शीघ्र जाओ ॥ १६ ॥ रामचन्द्रके ये वचन सुनकर यशस्विनी सीता, धर्म जाननेवाली उन अत्रिपत्नीके पास गयीं ॥ १७ ॥ उनके अंग शिथिल हो गये थे, झुर्रियाँ पड़ गयी थीं । वृद्धावस्थाके कारण बाल सफेद हो गये थे । हवामें कदलीके समान सदा वे काँप रही थी ॥१८॥ पतिव्रता अनुसूयाको सीताने सावधान होकर प्रणाम किया और अपना नाम बतलाया ॥ १९ ॥ उन तापसीको प्रणाम करके सीताने हाथ जोड़कर उनका आरोग्य पूछा ॥२०॥ महाभागा, धर्मचारिणी सीताको देखकर उनको सन्तुष्ट करती हुई अनुसूया बोलीं--प्रसन्नताकी बात है, तुम धर्मका विचार रखती हो॥२१॥ अपने ज्ञातिके लोगोंको छोड़कर तथा अपने राजपुत्रि होनेका अहंकार छोड़कर तुम वन भेजे गये अपने पतिके साथ वनमें आयी हो, यह प्रसन्नताकी बात है ॥२२॥ नगरमें, वनमें अच्छा या बुरा जैसा भी हो पति जिन स्त्रियोंको प्रिय होता है उन्हींको श्रेष्ठ लोक मिलता है ॥ २३ ॥ दुःशील हो,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दुःशीलःकामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः । स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः ॥२४॥
नातो विशिष्टं पश्यामि बान्धवं विमृशन्त्यहम् । सर्वत्र योग्यं वैदेहि तपः कृतमिवाव्ययम् ॥२५॥
न त्वेवमनुगच्छन्ति गुणदोषमसत्स्त्रियः । कामवृत्तव्यहृदया भर्तृनाथाश्चरन्ति याः ॥२६॥
प्राप्नुवन्त्ययशश्चैव धर्मभ्रंशं च मैथिलि । अकार्यवशमापन्नाः स्त्रियो याः खलु तादृधाः ॥२७॥
त्वादृधास्तु गुणैर्युक्ता दृष्टलोकपरावराः । स्त्रियः स्वर्गे चरिष्यन्ति यथा पुण्यकृतस्तथा ॥२८॥
तदेवमेतं त्वमनुव्रता सती पतिप्रधाना समयानुवर्तिनी ।
भव स्वभर्तुः सह धर्मचारिणी यशश्च धर्मं च ततः समाप्स्यसि ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे सप्तदशाधिकशततमः सर्गः॥ ११७ ॥

अष्टादशाधिकशततमः सर्गः ११८

सा त्वेवमुक्ता वैदेही त्वनसूयानसूयया । प्रतिपूज्य वचो मन्दं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥
नैतदाश्चर्यमार्यायां यन्मां त्वमनुभाषसे । विदितं तु ममाप्येतद्यथा नार्याः पतिर्गुरुः ॥ २ ॥
यद्यप्येष भवेद्भर्ता अनार्यो वृत्तिवर्जितः । अद्वैधमत्र वर्तव्यं तथाप्येष मया भवेत् ॥ ३ ॥

मनमाना व्यवहार करनेवाला हो, अथवा दरिद्र हो, श्रेष्ठ स्वभाव रखनेवाली स्त्रियोंके लिए पतिही देवता है ॥ २४ ॥ बहुत विचार करनेपर भी पतिके समान हितकारी बन्धु मैं दूसरोंको नहीं पाती । यह इस लोक और परलोकमें हितकारी है । यह तपस्याका अविनाशी फल है ॥ २५ ॥ जिनका हृदय कामके अधीन है, जो अपने पतिपर शासन करती हैं, वे बुरी स्त्रियाँ पतिका अनुगमन नहीं करतीं । वे इन गुण दोषोंको नहीं जानतीं ॥ २६ ॥ कामके वशमें रहनेवाली उस प्रकारकी स्त्रियाँ कलंकित होती हैं और धर्मसे भ्रष्ट होती हैं ॥ २७ ॥ तुम्हारे समान स्त्रियाँ, जिन लोगोंने लोकके उत्तम, मध्यम धर्मोंको जाना है और जो पतिका अनुवर्तन करती हैं, वे पुण्यात्माओंके समान स्वर्गमें विचरण करती हैं ॥ २८ ॥ इसी प्रकार पतिको सर्वस्व समझती हुई, यथासमय पतिका अनुवर्तन करती हुई, इस पतिसेवाको अपना धर्म समझती हुई तुम इसी प्रकार अपने पतिके साथ धर्माचरण करो, इससे तुम्हारा यश बढ़ेगा और धर्म प्राप्त होगा ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एक सौ सतरहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११७ ॥

अनुसूयाके ऐसा कहने पर क्रोधरहित जानकीने उनके वचनोंकी प्रशंसा की और पुनः वे धीरे-धीरे बोलीं ॥ १ ॥ आपने जो मुझे उपदेश दिया है, वह आपके लिए आश्चर्यकी कोई बात नहीं है; क्योंकि आप आर्या हैं । स्त्रीका गुरु पति है यह बात मुझे भी मालूम है ॥ २ ॥ यदि मेरे ये पति हीनचरित्रके होते, जीविकारहित होते, फिर भी मैं बिना द्विविधाके इनकी सेवा करती॥३॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किं पुनर्यो गुणश्लाघ्यः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः । स्थितानुरागो धर्मात्मा मातृवत्पितृवत्प्रियः ॥ ४ ॥
यां वृत्तिं वर्तते रामः कौसल्यायां महाबलः । तामेव नृपनारीणामन्यासामपि वर्तते ॥ ५ ॥
सकृदद्दृष्टास्वपि स्त्रीषु नृपेण नृपवत्सलः । मातृवद्वर्तते वीरो मानमुत्सृज्य धर्मवित् ॥ ६ ॥
आगच्छन्त्याश्च विजनं वनमेवं भयावहम् । समाहितं हि मे श्वश्रवा हृदये यत्स्थिरं मम ॥ ७ ॥
पाणिप्रदानकाले च यत्पुरा त्वग्निसंनिधौ । अनुशिष्टं जनन्या मे वाक्यं तदपि मे धृतम् ॥ ८ ॥
न विस्मृतं तु मे सर्वं वाक्यैः स्वैर्धर्मचारिणि । पतिशुश्रूषणान्नार्यास्तपो नान्यद्विधीयते ॥ ९ ॥
सावित्री पतिशुश्रूषां कृत्वा स्वर्गे महीयते । तथावृत्तिश्च याता त्वं पतिशुश्रूषया दिवम् ॥१०॥
वरिष्ठा सर्वनारीणामेषा च दिवि देवता । रोहिणी न विना चन्द्रं मुहूर्तमपि दृश्यते ॥११॥
एवंविधाश्च प्रवराः स्त्रियो भर्तृदृढव्रताः । देवलोके महीयन्ते पुण्येन स्वेन कर्मणा ॥१२॥
ततोऽनसूया संहृष्टा श्रुत्वोक्तं सीतया वचः । शिरसाघ्राय चोवाच मैथिलीं हर्षयन्त्युत ॥१३॥
नियमैर्विविधैराप्तं तपो हि महदस्ति मे । तत्संश्रित्य बलं सीते छन्दये त्वां शुचिव्रते ॥१४॥
उपपन्नं च युक्तं च वचनं तव मैथिलि । प्रीता चास्म्युचितं सीते करवाणि प्रियं च किम् ॥१५॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा विस्मिता मन्दविस्मया । कृतमित्यब्रवीत्सीता तपोबलसमन्विताम् ॥१६॥
सा त्वेवमुक्ता धर्मज्ञा तया प्रीततराभवत् । सफलं च प्रहर्षं ते हन्त सीते करोम्यहम् ॥१७॥

फिर ये मेरे पति तो श्लाघनीय गुणोंसे युक्त हैं, दयालु हैं, जितेन्द्रिय हैं, दृढ़ानुरागी और धर्मात्मा हैं तथा माता पिताके समान मुझमें प्रेम रखनेवाले हैं ॥ ४ ॥ महाबली रामचन्द्र कौसल्याके प्रति जैसा व्यवहार करते हैं वैसाही व्यवहार राजाकी अन्य स्त्रियोंके प्रति करते हैं ॥ ५ ॥ राजा दसरथने एक बार भी किसी स्त्रीकी ओर आँख उठाकर देख लिया हो, उस स्त्रीके प्रति राजामें प्रेम रखनेवाले धर्मात्मा रामचन्द्र माताके समान व्यवहार करते हैं ॥ ६ ॥ भयदायी निर्जन वनमें जब मैं आ रही थी, तब मेरे सासने मुझे उपदेश दिया था, वह मेरे हृदयमें वर्तमान है ॥ ७ ॥ कन्यादानके समयमें अग्निके समीप मेरी माताने जो वाक्य मुझसे कहे थे, वे भी स्मरण हैं ॥ ८ ॥ धर्मचारिणी, तुम्हारे वचनोंसे वे सब बातें पुनः नयी हो गयी हैं। पतिसुश्रूषाके अतिरिक्त स्त्रियोंके लिये दूसरा तप नहीं है ॥९॥ पति-सुश्रूषासे ही सावित्री स्वर्गमें पूजित होती है। सावित्री समान आचरण करनेवाली तुम भी पति सुश्रूषासेही स्वर्गकी अधिकारिणी हुई हो ॥१०॥ सब स्त्रियोंमें श्रेष्ठ रोहिणी भी अपने पति चन्द्रमाके बिना एकमुहूर्त्त भी नहीं रहती ॥११॥ इस प्रकार पतिमें दृढ़ प्रेम रखनेवाली उत्तम स्त्रियां अपने पवित्र कर्मोंसे देवलोकमें पूजित होती हैं ॥ १२ ॥ तब सीताके वचन सुनकर प्रसन्न अनुसूया उनका मस्तक सूंघकर और उन्हें प्रसन्न करती हुई बोलीं ॥ १३ ॥ अनेक प्रकारके नियमोंके पालन करनेसे मैंने बहुतसी तपस्या की है। उस तपस्याका बल मुझे है, उसीके कारण मैं तुमसे कहती हूं कि हे पवित्रव्रतवाली, वर मागो ॥१४॥ मैथिली, ये तुम्हारे वचन उचित हैं, मैं प्रसन्न हुई हूं। अतएव, तुम कहो, तुम्हारा कौनसा प्रिय काम मैं करूं ॥ १५ ॥ अनुसूयाके वे वचन सुनकर सीताको आश्चर्य हुआ, वे हँसती हुई तपस्याके बल रखनेवाली अनुसूयासे बोलीं— आपकी दयासे सभी है, कोई और फल न चाहिए ॥ १६ ॥ सीताके ऐसा कहनेपर धर्मज्ञा अनु-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इदं दिव्यं वरं माल्यं वस्त्रमाभरणानि च । अङ्गरागं च वैदेहि महार्हमनुलेपनम् ॥१८॥
मया दत्तामिदं सीते तव गात्राणि शोभयेत् । अनुरूपमसंक्लिष्टं नित्यमेव भविष्यति ॥१९॥
अङ्गरागेण दिव्येन लिप्ताङ्गी जनकात्मजे । शोभयिष्यसि भर्तारं यथा श्रीर्विष्णुमव्ययम्॥२०॥
सा वस्त्रमङ्गरागं च भूषणानि स्रजस्तथा । मैथिली प्रतिजग्राह प्रीतिदानमनुत्तमम् ॥२१॥
प्रतिगृह्य च तत्सीता प्रीतिदानं यशस्विनी । श्लिष्टाञ्जलिपुटा धीरा समुपास्त तपोधनाम् ॥२२॥
तथा सीतामुपासीनामनसूया दृढव्रता । वचनं प्रष्टुमारेभे कथां कांचिदनुप्रियाम् ॥२३॥
स्वयंवरे किल प्राप्ता त्वमनेन यशस्विना । राघवेणेति मे सीते कथा श्रुतिमुपागता ॥२४॥
तां कथां श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण च मैथिलि । यथाभूतं च कात्स्न्र्येन तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥२५॥
एवमुक्ता तु सा सीता तापसीं धर्मचारिणीम् । श्रूयतामिति चोक्त्वा वै कथयामास तां कथाम्॥२६॥
मिथिलाधिपतिर्वीरो जनको नाम धर्मवित् । क्षत्रकर्मण्यभिरतो न्यायतः शास्ति मेदिनीम्॥२७॥
तस्य लाङ्गलहस्तस्य कृषतः क्षेत्रमण्डलम् । अहं किलोत्थिता भित्त्वा जगतीं नृपतेः सुता ॥२८॥
स मां दृष्ट्वा नरपतिर्मुष्टिविक्षेपतत्परः । पांसुगुण्ठितसर्वाङ्गीं विस्मितो जनकोऽभवत् ॥२९॥
अनपत्येन च स्नेहादङ्कमारोप्य च स्वयम् । ममेयं तनयेत्युक्त्वा स्नेहो मयि निपातितः ॥३०॥
अन्तरिक्षे च वागुक्ता प्रतिमामानुषी किल । एवमेतन्नरपते धर्मेण तनया तव ॥३१॥

सूया अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने कहा—तुम्हारे इस आनन्दको मैं सफल बनाऊँगी। तुम्हारी इस लोभहीनताका फल मैं तुम्हें दूंगी ॥ १७ ॥ यह दिव्य और श्रेष्ठ माला, वस्त्र और आभरण, श्रेष्ठ अंगराज (उबटन) मैं सीते, तुम्हें देती हूं। इनसे तुम्हारे अंगोंकी शोभा होगी और उपयोग करनेपर भी ये खराब न होंगे ॥ १८, १९ ॥ जानकी दिव्य अंगराग अपने शरीरमें लेपकर तुम अपने पतिको सुशोभित करोगी, जिस प्रकार लक्ष्मी विष्णुको शोभित करती हैं ॥ २० ॥ जानकीने वस्त्र, अंगराग, भूषण और माला अनुसूयाके श्रेष्ठ प्रीतिदान स्वरूप लीं ॥ २१ ॥ यशस्विनी सीता वह प्रीतिदान लेकर और हाथ जोड़कर धीरा सीता, तपस्विनी अनुसूयाके पास खड़ी होगयी ॥ २२ ॥ उस प्रकार सीताको खड़ी देखकर दृढ़तापूर्वक व्रतपालन करनेवाली अनुसूया कोई प्रिय कथा सुननेकी इच्छासे सीतासे पूछने लगी ॥ २३ ॥ यशस्वी रामचन्द्रने स्वयंवरमें तुम्हें पाया है, यह बात मैंने सुनी है ॥ २४ ॥ वह कथा विस्तारपूर्वक मैं सुनना चाहती हूं, जो सब हुआ था मुझसे वह सब कहो ॥ २५ ॥ ऐसा कहनेपर सीता तपस्विनी धर्मचारिणीसे बोली—सुनिये, और वह कथा कहने लगीं ॥ २६ ॥ मिथिलाके महाराज जनक वीर और धर्मात्मा हैं, वे क्षत्रियधर्ममें अनुराग रखते हैं और न्यायपूर्वक पृथिवीका शासन करते हैं ॥ २७ ॥ हाथमें हल लेकर जनकके खेत जोतते समय पृथिवी फोड़कर राजाकी कन्या उत्पन्न हुई ॥२८॥ राजा जनक मुट्ठीका बीज पृथिवीमें डाल रहे थे, उस समय धूलिसे सर्वांग सनी मुझको देखकर वे विस्मित हुए ॥२९॥ राजाके कोई सन्तान न थी, अतएव स्नेहपूर्वक मुझे गोदमें उठाकर उन्होंने कहा—यह मेरी पुत्री है और मुझपर प्रेम करने लगे ॥३०॥ उस समय आकाशसे अमानुषी वाणी हुई-राजन्, ठीक है, धर्मसे यह तुम्हारी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततः प्रहृष्टो धर्मात्मा पिता मे मिथिलाधिपः । अवाप्तो विपुलामृद्धिं मामवाप्य नराधिपः ॥३२॥
दत्ता चास्मीष्टवद्देव्यै ज्येष्ठायै पुण्यकर्मणे ।तया संभाविता चास्मि स्निग्धया मातृसौहृदात्॥३३॥
पतिसंयोगसुलभं वयो दृष्ट्वा तु मे पिता । चिन्तामभ्यागमद्दीनो वित्तनाशादिवाधनः ॥३४॥
सदृशाच्चापकृष्टाच्च लोके कन्यापिता जनात् । प्रधर्षणमवाप्नोति शक्रेणापि समो भुवि ॥३५॥
तां धर्षणामदूरस्थां संदृश्यात्मनि पार्थिवः । चिन्तार्णवगतः पारं नाससादाऽप्लवो यथा ॥३६॥
अयोनिजां हि मां ज्ञात्वा नाध्यगच्छत्सचिन्तयन्। सदृशं चाभिरूपं च महीपालः पतिं मम ॥३७॥
तस्य बुद्धिरियं जाता चिन्तयानस्य संततम् । स्वयंवरं तनूजायाः करिष्यामीति धर्मतः ॥३८॥
महायज्ञे तदा तस्य वरुणेन महात्मना । दत्तं धनुर्वरं प्रीत्या तूणी चाक्षय्यसायकौ ॥३९॥
असंचाल्यं मनुष्यैश्च यत्नेनापि च गौरवात् । तन्न शक्ता नमयितुं स्वप्नेष्वपि नराधिपाः ॥४०॥
तद्धनुः प्राप्य मे पित्रा व्याहृतं सत्यवादिना । समवाये नरेन्द्राणां पूर्वमामन्त्र्य पार्थिवान् ॥४१॥
इदं च धनुरुद्यम्य सज्यं यः कुरुते नरः । तस्य मे दुहिता भार्या भविष्यति न संशयः ॥४२॥
तच्च दृष्ट्वा धनुः श्रेष्ठं गौरवाद्गिरिसंनिभम् । आभिवाद्य नृपा जग्मुरशक्तास्तस्य तोलने ॥४३॥
सुदीर्घस्य तु कालस्य राघवोऽयं महाद्युतिः । विश्वामित्रेण सहितो यज्ञं द्रष्टुं समागतः ॥४४॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा रामः सत्यपराक्रमः । विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा मम पित्रा सुपूजितः ॥४५॥

कन्या ही है ॥ ३१ ॥ तदनन्तर धर्मात्मा मेरे पिता, मिथिलाधीश बड़े प्रसन्न हुए और मुझे पानेके पश्चात् उन्होंने बहुत बड़ी समृद्धि पायी ॥ ३२ ॥ राजाने अपनी प्रिय और पुण्यात्मा बड़ी रानीको मुझे सौंप दिया । मातृप्रेमसे, स्नेहसे उन्होंने मेरा पालन किया ॥ ३३ ॥ पतिके साथ रहनेकी मेरी अवस्था देखकर मेरे पिता बहुत ही दुखी और चिन्तित हुए, जिस प्रकार दरिद्र धनके नाशसे चिन्तित और दुखी होता है ॥ ३४ ॥ बराबरीके तथा अपनेसे छोटे मनुष्योंसे भी कन्याके पिताको चाहे वह इन्द्रके समान ही क्यों न हो, उसे अपमानित होना पड़ता है ॥३५॥ उस अपमानको अपने पास आये देखकर वे चिन्तासमुद्रके पार नहीं जा सके, जिस प्रकार नौकाहीन मनुष्य ॥ ३६ ॥ मैं मानवीके गर्भसे उत्पन्न नहीं हूं, अतएव कैसा पति मेरे योग्य होगा, राजा बहुत सोचनेपर भी इसका निर्णय नहीं कर सके ॥ ३७ ॥ बहुत सोचनेपर राजाने यह निश्चय किया कि मैं कन्याका धर्मपूर्वक स्वयंवर करूंगा ॥ ३८ ॥ दक्षयज्ञके समय महात्मा वरुणने मेरे पिताको एक उत्तम धनुष और अक्षय्यशायक (जिसके बाण कभी न घटें) दो तरकस दिये ॥ ३९ ॥ भारी होनेके कारण प्रयत्न करनेपर भी मनुष्य उस धनुषको नहीं उठा सकता था । राजा लोग स्वप्नमें भी उस धनुष को नहीं नवा सकते थे ॥ ४० ॥ उस धनुषको पाकर सत्यवादी मेरे पिताने पहले राजाओंको निमंत्रित किया और उन्हीं राजाओंके बीचमें कहा ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य इस धनुषको उठाकर इसपर रौंदा चढ़ा देगा, मेरी कन्या उसीकी स्त्री होगी, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥ उस उत्तम धनुषको देखकर, जो पर्वतके समान भारी था, उसको उठानेमें असमर्थ राजा प्रणाम करके चले गये ॥ ४३ ॥ बहुत दिनोंके बाद महाद्युति रामचन्द्र विश्वामित्रके साथ यज्ञ देखनेके लिए गये ॥४४॥ धर्मात्मा विश्वामित्र तथा सत्यपराक्रम राम और लक्ष्मणकी मेरे पिताने पूजा की ॥४५॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रोवाच पितरं तत्र राघवौ रामलक्ष्मणौ । सुतौ दशरथस्येमौ धनुर्दर्शनकाङ्क्षिणौ ॥४६॥
इत्युक्तस्तेन विप्रेण तद्धनुः समुपानयत् । तद्धनुर्दर्शयामास राजपुत्राय दैविकम् ॥४७॥
निमेषान्तरमात्रेण तदानम्य महाबलः । ज्यां समारोप्य झटिति पूरयायास वीर्यवान् ॥४८॥
तेनापूरयता वेगान्मध्ये भग्नं द्विधा धनुः । तस्य शब्दोऽभवद्भीमः पतितस्याशनेर्यथा ॥४९॥
ततोऽहं तत्र रामाय पित्रा सत्याभिसंधिना । उद्यता दातुमुद्यम्य जलभाजनमुत्तमम् ॥५०॥
दीयमानां न तु तदा प्रतिजग्राह राघवः । अविज्ञाय पितुश्छन्दमयोध्याधिपतेः प्रभोः ॥५१॥
ततः श्वशुरमामन्त्र्य वृद्धं दशरथं नृपम् । मम पित्रा त्वहं दत्ता रामाय विदितात्मने ॥५२॥
मम चैवानुजा साध्वी ऊर्मिला शुभदर्शना । भार्यार्थे लक्ष्मणस्यापि दत्ता पित्रा मम स्वयम् ॥५३॥
एवं दत्तास्मि रामाय तथा तस्मिन्स्वयंवरे । अनुरक्तास्मि धर्मेण पतिं वीर्यवतां वरम् ॥५४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डेऽष्टादशाधिकशततमः सर्गः ॥११८॥

एकोनविंशत्यधिकशततमः सर्गः ११९

अनसूया तु धर्मज्ञा श्रुत्वा तां महतीं कथाम् । पर्यष्वजत बाहुभ्यां शिरस्याघ्राय मैथिलीम् ॥ १ ॥
व्यक्ताक्षरपदं चित्रं भाषितं मधुरं त्वया । यथा स्वयंवरं वृत्तं तत्सर्वं च श्रुतं मया ॥ २ ॥
रमेयं कथया ते तु दृढं मधुरभाषिणि । रविरस्तंगतः श्रीमानुपोह्य रजनीं शुभाम् ॥ ३ ॥

विश्वामित्रने मेरे पितासे कहा--ये राम और लक्ष्मण रघुवंशी दसरथके पुत्र हैं और धनुष देखना चाहते हैं ॥४६॥ विश्वामित्रके ऐसा कहनेपर वह धनुष वहां मंगाया गया और राजपुत्र रामचन्द्रको देवताका वह धनुष दिखलाया गया ॥ ४७ ॥ पलक मारते ही महाबली रामचन्द्रने उस धनुषको उठा लिया और रौंदा चढ़ा दिया तदनन्तर, उसे खींचा ॥ ४८ ॥ बलपूर्वक खींचनेके कारण वह बीचही से दो टुकड़े हो गया और उसके टूटनेका वज्र गिरनेके समान शब्द हुआ ॥४९॥ तदनन्तर, सत्यप्रतिज्ञ मेरे पिता उत्तम जलपात्र लेकर रामचन्द्रको मुझे देनेके लिये उद्यत हुए ॥ ५० ॥ पर अयोध्याधिपति अपने पिताके बिना अभिप्राय जाने, रामचन्द्रने मेरा दान लेना स्वीकारन किया ॥ ५१ ॥ तब मेरे पिताने वृद्ध मेरे ससुर राजाको निमंत्रित किया और मेरे पिताने परिचित पराक्रम रामचन्द्रको मेरा दान किया ॥ ५२ ॥ मेरी छोटी बहिन साध्वी और सुंदरी उर्मिलाको स्त्री बनानेके लिए लक्ष्मणको स्वयं दी ॥ ५३ ॥ इस प्रकार उस स्वयंवरमें रामचन्द्रको मैं दी गयी। प्रभावशालियोंमें श्रेष्ठ अपने पतिपर मैं धर्मतः अनुराग रखती हूं ॥ ५४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एकसौ अठारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११८॥

धर्मज्ञा अनुसूयाने यह लम्बी कथा सुनकर जानकीका मस्तक सूंघा और उनका आलिंगन किया ॥ १ ॥ वे बोलीं, तुमने बड़ा ही मधुर भाषण किया। तुम्हारे अक्षर और पद स्पष्ट थे। जिस प्रकार वह स्वयम्बर हुआ, वह सब मैंने सुन लिया ॥ २ ॥ मधुरभाषिणी, तुम्हारी बातोंसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दिवसं परिकीर्णानामाहारार्थं पतत्त्रिणाम् । संध्याकाले निलीनानां निद्रार्थंश्रूयते ध्वनिः ॥ ४ ॥
एते चाप्याभिषेकार्द्रा मुनयः कलशोद्यताः । सहिता उपवर्तन्ते सलिलाप्लुतवल्कलाः ॥ ५ ॥
अग्निहोत्रे च ऋषिणा हुते च विधिपूर्वकम् । कपोताङ्गारुणो धूमो दृश्यते पवनोद्धतः ॥ ६ ॥
अल्पवर्णा हि तरवो घनीभूताः समन्ततः । विप्रकृष्टेन्द्रिये देशे न प्रकाशन्ति वै दिशः ॥ ७ ॥
रजनीचरसत्त्वानि प्रचरन्ति समन्ततः । तपोवनमृगा ह्येते वेदितीर्थेषु शेरते ॥ ८ ॥
संप्रवृत्ता निशा सीते नक्षत्रसमलंकृता । ज्योत्स्नाप्रावरणश्चन्द्रो दृश्यतेऽभ्युदितोऽम्बरे॥९॥
गम्यतामनुजानामि रामस्यानुचरी भव । कथयन्त्या हि मधुरं त्वयाहमपि तोषिता ॥१०॥
अलंकुरु च तावत्त्वं प्रत्यक्षं मम मैथिलि । प्रीतिं जनय मे वत्से दिव्यालंकारशोभिनी ॥११॥
सा तदा समलंकृत्य सीता सुरसुतोपमा । प्रणम्य शिरसा पादौ रामं त्वाभिमुखी ययौ ॥१२॥
तथा तु भूषितां सीतां ददर्श वदतां वरः । राघवः प्रीतिदानेन तपास्विन्या जहर्ष च ॥१३॥
न्यवेदयत्ततः सर्वं सीता रामाय मैथिली । प्रीतिदानं तपस्विन्या वसनाभरणस्रजाम् ॥१४॥
प्रहृष्टस्त्वभवद्रामो लक्ष्मणश्च महारथः । मैथिल्याःसत्क्रियां दृष्ट्वा मानुषेषु सुदुर्लभाम् ॥१५॥
ततः स शर्वरीं प्रीतः पुण्यां शशिनिभाननाम् । अर्चितस्तापसैः सर्वैरुवास रघुनन्दनः ॥१६॥

मुझे बड़ा आनन्द आता है, पररा त्रिको बुलाकर सूर्य अस्ताचल चले गये ॥ ३ ॥ दिनमें आहार-के लिए चारों ओर गए हुए, और संध्याके समय निद्राके लिए इकत्र हुए पक्षियोंकी ध्वनि सुन पड़ती है ॥ ४ ॥ हाथमें घड़ा लिए हुए, स्नान करनेके कारण भींगे हुए, ये मुनि, जिनके वल्कल वस्त्र जलसे भींग गये हैं, साथ ही लौट रहे हैं ॥ ५ ॥ ऋषिने विधिपूर्वक अग्निहोत्रमें हवन किया है, जिससे वायुके द्वारा उड़ाये, कबूतरके शरीरके समान धूम दिखायी पड़ता है ॥ ६ ॥ इन्द्रियोंसे दूर वर्तमान स्थानोंके थोड़े पत्तेवाले भी वृक्ष बहुत सघन मालुम पड़ते हैं और दिशाएँ प्रकाशित नहीं होतीं ॥ ७ ॥ रातमें घूमनेवाले प्राणी (राक्षस आदि) इधर-उधर घूम रहे हैं । ये तपोवनके मृग पवित्र वेदियोंपर सो रहे हैं ॥ ८ ॥ सीते, रात होगयी, नक्षत्र निकल आये, ज्योत्स्नाकी चादर ओढ़कर चन्द्रमा आकाशमें उदित हुआ दीख पड़ता है ॥ ९ ॥ जाओ, मैं आज्ञा देती हूँ, रामकी सेवा करो । मधुर बातें कहकर तुमने मुझे बहुत प्रसन्न किया ॥ १० ॥ सीते, मेरे ही सामने तुम गहने, वस्त्र, माला और अंगरागसे अपनेको अलंकृत करो । बेटी ! दिव्य अलंकारोंसे शोभित होकर मुझे प्रसन्न करो ॥ ११ ॥ अलंकारोंसे अलंकृत होकर सीता देवकन्याके समान हो गयीं, अनुसूयाके चरणोंको उन्होंने प्रणाम किया और वे सामने गयीं ॥ १२ ॥ तपस्विनीके प्रीतिदानसे अलंकृत सीताको रामचन्द्रने देखा और वे प्रसन्न हुए ॥ ॥ १३ ॥ तदनन्तर, वस्त्र, आभरण, और मालाका प्रीतिदान, जो तपस्विनीने दिया था, उसका सब वृत्तान्त सीताने रामचन्द्रसे निवेदित किया ॥ १४ ॥ रामचन्द्र और महारथ लक्ष्मण, मनुष्योंके लिए दुर्लभ, जानकीका वैसा सत्कार देखकर प्रसन्न हुए ॥ १५ ॥ तदनन्तर, तपस्वियोंके द्वारा सत्कृत रामचन्द्रने चन्द्रानना सीताको अलंकृत देखकर उस रातको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामाभिषिच्य हुताग्निकान्। आपृच्छेतां नरव्याघ्रौ तापसान्वनगोचरान् ॥१७॥
तावूचुस्ते वनचरास्तापसा धर्मचारिणः। वनस्य तस्य संचारं राक्षसैःसमाभिप्लुतम् ॥१८॥
रक्षांसि पुरुषादानि नानारूपाणि राघव। वसन्त्यस्मिन्महारण्ये व्यालाश्च रुधिराशनाः ॥१९॥
उच्छिष्टं वा प्रमत्तं वा तापसं ब्रह्मचारिणम्। अदन्त्यस्मिन्महारण्ये तान्निवारय राघव ॥२०॥
एष पन्था महर्षीणां फलान्याहरतां वने। अनेन तु वनं दुर्गं गन्तुं राघव ते क्षमम् ॥२१॥
इतीरितः प्राञ्जलिभिस्तपस्विभिर्द्विजैः कृतस्वस्त्ययनः परंतपः।
वनं सभार्यः प्रविवेश राघवः सलक्ष्मणः सूर्य इवाभ्रमण्डलम् ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डेऽएकोनविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥११९॥

वहीं निवास किया ॥ १६ ॥ उस रात्रिके व्यतीत होनेपर स्नान करके नरश्रेष्ठ राम और लक्ष्मण-ने हवन करनेके पश्चात् वनवासी तपस्वियोंसे दूसरे वनमें जानेकी आज्ञा मांगी ॥ १७ ॥ धर्मात्मा वनवासी तपस्वी उनसे बोले—वनके मार्गमें राक्षसोंका उपद्रव है ॥ १८ ॥ मनुष्योंको खानेवाले अनेक प्रकारके राक्षस इस वनमें रहते हैं और खून पीनेवाले साँप भी रहते हैं ॥ १९ ॥ जो ब्रह्मचारी या तपस्वी अशुद्ध अथवा असावधान रहता है, उसको वे इस वनमें खा जाते हैं। रामचन्द्र, उन्हें तुम रोको ॥ २० ॥ यही मार्ग है जिससे महर्षि लोग वनसे फल ले आते हैं, इसी मार्गसे इस दुर्गम वनमें तुमको जाना चाहिये ॥ २१ ॥ तपस्वी ब्राह्मणोंने हाथ जोड़कर रामचन्द्र-से ऐसा कहा और उनके लिए स्वस्त्ययन किया। रामचन्द्रने सीता और लक्ष्मणके साथ वनमें प्रवेश किया, जिस प्रकार सूर्य मेघमें प्रवेश करते हैं ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका एकसौ उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११९ ॥

अयोध्याकाण्ड समाप्त ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला—नवाँ पुष्प

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

अरण्यकाण्ड

(मूल संस्कृत हिन्दी अनुवाद सहित)

टीकाकार
अनेक ग्रन्थोंके प्रणेता
शिक्षा, शारदा आदि पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादक
साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री

प्रकाशक
सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला कार्यालय
बनारस सिटी

1920
C. M. V. Sharma Nalgonda

प्रथमावृत्ति] चैत्रप्रतिपदा, सं० १९८५ [मूल्य ॥।-)

सम्पूर्ण ग्रन्थ इसी साइज़के लगभग २७०० पृष्ठोंका होगा।
मूल्य इसी हिसाबसे रहेगा, किन्तु अभीसे ग्राहक बनजानेसे लगभग ७) के देना होगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

☞ सोल एजेण्ट

मुकुन्ददास गुप्त एण्ड कम्पनी

पुस्तक-भवन, बनारस सिटी।

आप स्वयं स्थायी ग्राहक बनिए | अपने मित्रोंको भी ग्राहक बनाइए

सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला

सस्ती पुस्तकों द्वारा सर्वसाधारणको लाभ तभी पहुँच सकता है जब कि पुस्तकोंके **विषय बढ़िया और दाम बहुत माकूल हों**। हमने ऐसे कई प्रयत्न करनेवालोंको देखा, पर हमें ऐसी पुस्तक-माला 'हिन्दी-संसार' में दिखायी न दी। एकाध जगहसे ऐसी कोशिश हो रही है, पर

हम दावेके साथ

कह सकते हैं कि आप हमारी पुस्तकोंको लीजिए, उनकी दीर्घकायाको देखिए और साथ ही **उनका दाम भी मिलाइए** तो

आप देखेंगे कि

इनसे बढ़िया, इनसे सस्ती और अधिक शिक्षाप्रद पुस्तकें बहुत ही कम हैं। **पर कमी है**

स्थायी ग्राहकोंकी.

पर्याप्त ग्राहक मिलते ही, हम इतने ही नहीं

१००० पृष्ठ १) रु० में

देनेकी व्यवस्था कर सकते हैं।

प्रकाशक—
पन्नालाल गुप्त, व्यवस्थापक,
स० सा०पुस्तकमाला कार्यालय
बनारस सिटी।

मुद्रक—
बी. एल्. पावगी,
हितचिन्तक प्रेस, रामघाट,
बनारस सिटी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशकीय निवेदन

सहृदय ग्राहकगण,

कई अनिवार्य अड़चनोंके आ पड़नेके कारण इस वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकांडके प्रकाशनमें अत्यधिक विलम्ब हो गया। हम जैसा कि बालकाण्डके अपने निवेदनमें लिख चुके हैं कि तीन-तीन महीनेके अन्तरसे एक-एक कांड प्रकाशित करेंगे, वैसा न कर सके। इसके लिए हम आपसे क्षमाप्रार्थी हैं। अब भविष्यमें इस विलम्बकी पूर्ति हम विशेष शीघ्रता कर कर देना चाहते हैं। आगे किष्किन्धा तथा सुन्दर दो कांड हम आपको ज्येष्ठ मासमें देनेका प्रयत्न कर रहे हैं। इतना हो जानेसे ही पिछले विलम्बकी पूर्ति हो जायगी। आप लोगोंने जिस उत्सुकतापूर्ण धैर्यके साथ इसकी इतने दिनोंतक प्रतीक्षा की है, वह स्तुत्य है। हम इसके लिए आपके बड़े कृतज्ञ हैं।

आपसे हमारा एक विशेष निवेदन है। जैसा कि हम बालकांडके अपने निवेदनमें कह चुके हैं, हम सभी धार्मिक पुस्तकें महाभारत, पुराण, उपनिषद् आदि इसी रूपमें--ऊपर मूल तथा नीचे उसका हिन्दी अनुवाद देकर—सस्ती-से-सस्ती निकालना चाहते हैं, उसके लिए पर्याप्त संख्यामें ग्राहकोंकी आवश्यकता है। जब तक पर्याप्त ग्राहक हमारी इस मालाके न हो जायँगे, हम ये पुस्तकें सस्ती तथा जल्दी न निकाल सकेंगे। इसलिए आप सभी सज्जनोंसे प्रार्थना है कि आप लोग अधिक नहीं केवल दो-दो ग्राहक ही बनाकर हमारी सहायता करें। आपलोगोंके इतना कर देनेसे ही हम पुस्तकें खूब जल्दी-जल्दी प्रकाशित कर सकेंगे।

इस बार श्रीतोताकृष्णजी गैरोला तथा श्रीमथुराप्रसादजी खरेने हमारे बहुतसे ग्राहक बनाये हैं, इसके लिए हम उनके विशेष कृतज्ञ हैं। आपही जैसे दो-चार उद्योगी मित्रोंने भी हमारे ग्राहक बनाये हैं, उनको भी धन्यवाद देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। इन लोगोंकी नामावली अगले कांडमें प्रकाशित की जायगी।

आपका विनयावनत—

प्रकाशक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्थायी ग्राहकोंकी आवश्यकता

है, इसलिए कि दूकानदार, छोटे-बड़े, प्रसिद्ध—अप्रसिद्ध प्रायः सभी हमसे अधिक-से-अधिक कमीशन चाहते हैं। साधारण कमीशनपर बेचनेको तैयार नहीं हैं। इसलिए आपसे निवेदन है कि आप इस मालाके स्थायी ग्राहक अवश्य बनें।

हमारी मालाकी प्रत्येक पुस्तकका मूल्य एक रुपयेमें साधारण साइज़के ५१२ पृष्ठके हिसाबसे होता है। स्थायी ग्राहकोंको तो वह लगभग ७०० पृष्ठके पड़ जाता है।

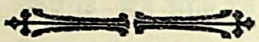

इस पुस्तक-मालाके ग्राहक बननेके नियम

१—एक रुपया प्रवेश शुल्क देकर प्रत्येक सज्जन स्थायी ग्राहक बन सकते हैं। यह शुल्क लौटाया नहीं जाता।

२—स्थायी ग्राहकको मालाकी प्रत्येक पुस्तककी एक-एक प्रति पौने मूल्यमें मिलती है।

३—मालाकी प्रत्येक पुस्तक लेने, न लेनेका अधिकार ग्राहकोंको होगा। इसमें हमारा किसी तरहका बन्धन नहीं है।

४—पुस्तकके प्रकाशित होनेपर उसके मूल्य विषय आदिकी सूचना ग्राहकोंको दे दी जायगी और उसके १५ दिन बाद पुस्तक वी० पी० से भेज दी जायगी।

५—जिन लोगोंको पुस्तक न लेनी हो, वे सूचनापत्र पाते ही उत्तर दें, जिसमें वी० पी० न भेजी जाय। वी० पी० लौटानेसे उनके नाम ग्राहक-श्रेणीसे पृथक कर दिये जायँगे। यदि वे पुनः नाम लिखना चाहेंगे, तो वी० पी० खर्च देकर लिखा सकेंगे।

नोट—ग्राहकोंको चाहिए कि सूचनापत्रका उत्तर, चाहे पुस्तक मँगानी हो अथवा न मँगानी हो, अवश्य दे दिया करें और प्रत्येक पत्रमें अपना ग्राहक नंबर अवश्य लिखा करें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाल्मीकीय रामायणकी विषयसूची

अरण्यकाण्ड

सर्ग	विवरण	पृष्ठ
१	ऋषियोंका रामचन्द्रके प्रति अतिथि-सत्कार करना और अपना दुःख निवेदन करना।	१–३
२	विराध राक्षस मार्गमें मिलना और उसका सीताको उठा ले जाना।	३–५
३	विराधका युद्ध करना और सीताको छोड़ दोनों भाइयोंको कन्धेपर उठाकर वनमें भागना।	
४	रामका विराधको मारकर गाड़ना।	८–१०
५	रामचन्द्रका शरभङ्गके आश्रममें जाकर इन्द्रको देखना और शरभङ्गका रामको सुतीक्ष्णके पास जानेका उपदेश करके स्वयं अग्निमें भस्म होना।	११–१४
६	राक्षस-वध-प्रतिज्ञा।	१४–१६
७	रामका सुतीक्ष्णके आश्रममें जाना	१६–१८
८	रामका मुनिसे विदा हो, यात्रा करना।	१८–२०
९	सीताका रामचन्द्रके प्रति कुछ धर्म-विषयक वचन कहना।	२०–२३
१०	रामचन्द्रका सीताको उत्तर देना।	२३–२५
११	रामका अनेक आश्रमोंमें घूमकर फिर सुतीक्ष्णके आश्रममें आना और वहांसे अगस्त्यके आश्रममें जाना।	२५–३२
१२	रामचन्द्रका अगस्त्यसे मिलना और अगस्त्यका रामको शस्त्र देना।	३२–३५
१३	रामचन्द्रका ऋषिसे विदा होकर ऋषिके बताए हुए स्थान पञ्चवटीमें जाना।	३५–३७
१४	जटायुसे मिलना और उसकी वंशावली सुनना।	३७–४०
१५	रामचन्द्रका लक्ष्मणसे पंचवटीमें कुटी बनवाना और वहीं रहना।	४०–४२
१६	लक्ष्मणका हेमन्त ऋतुका वर्णन करना।	४२–४६
१७	रामको देख शूर्पणखाका मोहित होना और रामको अपना पति बनानेकी इच्छा करना।	४६–४८
१८	रामचन्द्रकी आज्ञासे लक्ष्मणका शूर्पणखाके नाक-कान काटना।	४९–५१
१९	खरका क्रुद्ध होना और रामचन्द्रके मारनेके लिए चौदह राक्षसोंको भेजना।	५१–५३
२०	उन चौदहों राक्षसोंका रामचन्द्रके हाथसे दो घड़ीमें मारा जाना।	५३–५५
२१	शूर्पणखाका खरको धिक्कारना।	५५–५७
२२	युद्धके लिए खरकी यात्रा।	५७–५९
२३	खरकी सेना और अशकुनका वर्णन।	५९–६२
२४	युद्धके लिए रामचन्द्रका तयार होना और राक्षसोंका युद्धके निमित्त नाना प्रकारकी वीर-चेष्टा करना।	६२–६४
२५	रामचन्द्रजीसे राक्षसोंका युद्ध।	६५–६८
२६	खर त्रिशिरा को छोड़कर बाकी राक्षसोंका मारा जाना।	६८–७१
२७	त्रिशिराका वध।	७१–७३
२८	रामचन्द्रका खरसे घोर युद्ध करना।	७३–७५
२९	रामचन्द्रका खरको दुर्वचन कहना और उसकी गदा काट गिराना।	७५–७८
३०	खरका मारा जाना।	७८–८१
३१	जनस्थानसे जाकर अकम्पनका रावणको सन्देश देना, रावणका मारीचके पास जाना और उसके सदुपदेशसे लङ्कामें लौट आना।	८१–८५
३२	शूर्पणखाका लङ्कामें जाना।	८५–८७
३३	शूर्पणखाका रावणको धिक्कारना।	८८–९०
३४	शूर्पणखाका राम, लक्ष्मण और सीताका वर्णन करना।	९०–९२
३५	रावणका फिर मारीचके पास जाना।	९२–९५
३६	रावणका मारीचको अपना अभिप्राय समझाना।	९५–९७
३७	मारीचका रावणको समझाना।	९७–९९
३८	उदाहरण देकर मारीचका रावणको समझाना।	९९–१०२
३९	मारीचका फिर उदाहरण देना और रावणको समझाना।	१०२–१०५

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्ग	विवरण	पृष्ठ
४०	रावणका मारीचको धमकाना ।	१०४-१०६
४१	अब मारीचका बहुत कठोर वचनोंसे रावणको समझाना ।	१०७-१०८
४२	मारीचका काञ्चन-मृग बनकर रामके आश्रममें जाना और सीताको लुभाना ।	१०८-१११
४३	-सीताके कहनेसे रामका मृगके पीछे जाना और सीताकी रक्षाके लिए लक्ष्मणको सावधान करना ।	१११-११५
४४	रामचन्द्रका उस मृगरूप राक्षसको मारकर लौटना ।	११५-११७
४५	सीताका लक्ष्मणको रामचन्द्रके पास भेजना ।	११७-१२०
४६	लक्ष्मणका रामके पास जाना और आश्रममें प्रवेश कर रावणका सीतासे बातचीत करना ।	१२१-१२४
४७	रावणका हरनेका अभिप्राय जानकर सीताका उसको कटुवचन कहना और धिक्कारना ।	१२४-१२८
४८	रावणका आत्म-प्रशंसा करना और सीताका उसके लिए धिक्कारना ।	१२८-१३०
४९	रावणका अपना स्वरूप प्रकट कर सीताको हरना ।	१३०-१३३
५०	जटायुका रावणको समझाना और युद्धके लिए उद्यत होना	१३३-१३५
५१	रावण और जटायुका युद्ध ।	१३५-१३९
५२	सीताको लेकर रावणकी यात्रा और सीताका खेद ।	१३९-१४२
५३	सीताका रावणको धिक्कारना और विलाप करना ।	१४२-१४४
५४	सीताका किष्किन्धामें वानरोंको देखकर वस्त्र और आभूषण गिराना और रावणका सीताको ले जाकर लंकामें टिकाना ।	१४५-१४७
५५	रावणका अनेक प्रकारसे सीताको लुभानेकी चेष्टा करना ।	१४७-१५०
५६	सीताका रावणको धिक्कारना और कटुवचन कहना ।	१५०-१५३
५७	अशकुन देखकर रामका चिन्ता करना और लक्ष्मणको आते देख और भी शोकपीड़ित होना ।	१५३-१५५
५८	रामका आश्रममें जाना और सीताको न पाकर व्याकुल होना ।	१५५-१५६
५९	फिर लक्ष्मणसे रामचन्द्रका सीताके विषयकी बात पूछना और लक्ष्मणका सीताका कथन कहना ।	१५७-१५९
६०	सीताको आश्रममें न देखकर रामचन्द्रका विलाप करना और उन्मत्तकी तरह इधर-उधर पूछते फिरना ।	१५९-१६२
६१	रामका विलाप और लक्ष्मणका समझाना ।	१६२-१६४
६२	रामचन्द्रका विलाप करना ।	१६५-१६६
६३	रामचन्द्रका विलाप करना और लक्ष्मणका समझाना	१६६-१६९
६४	विलाप करते हुए रामचन्द्रका दक्षिण दिशाको जाना तथा रावण और जटायुकी युद्धभूमि देखना ।	१६९-१७४
६५	क्रुद्ध रामचन्द्रको लक्ष्मणका समझाना ।	१७५-१७६
६६	लक्ष्मणका रामचन्द्रको समझाना	१७६-१७८
६७	रामका सीताको खोजना और जटायुसे मिलना ।	१७८-१८०
६८	रामचन्द्रके द्वारा जटायुकी अन्त्येष्टि क्रिया	१८१-१८३
६९	अयोमुखी राक्षसीको विरूप करना और कबन्ध राक्षससे भेंट होना ।	१८३-१८७
७०	कबन्धकी भुजाओंका काटा जाना और उसका प्रीति-पूर्वक बोलना ।	१८७-१८८
७१	कबन्धका अपने कुरूपका हेतु कहना और अपने शरीरको भस्म करनेके लिए रामसे प्रार्थना करना ।	१८९-१९१
७२	दोनों भाइयोंका कबन्धको जलाना और सुग्रीवसे मैत्री करनेके लिए उसका उपदेश देना ।	१९३-१९४
७३	कबन्धके साथ वार्तालाप	१९४-१९७
७४	शबरीके साथ रामचन्द्रकी बातचीत ।	१९७-२००
७५	रामका पम्पातीरपर जाना ।	२००-२०२

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे

अरण्यकाण्डम्

प्रथमः सर्गः १

प्रविश्य तु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान् । रामो ददर्श दुर्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम् ॥ १ ॥
कुशचीरपरिक्षिप्तं ब्राह्म्या लक्ष्म्या समावृतम् । यथा प्रदीप्तं दुर्दर्शं गगने सूर्यमण्डलम् ॥ २ ॥
शरण्यं सर्वभूतानां सुसंमृष्टाजिरं सदा । मृगैर्बहुभिराकीर्णं पक्षिसंघैः समावृतम् ॥ ३ ॥
पूजितं चोपनृत्तं च नित्यमप्सरसां गणैः । विशालैरग्निशरणैः स्रुग्भाण्डैरजिनैः कुशैः ॥ ४ ॥
समिद्भिस्तोयकलशैः फलमूलैश्च शोभितम् । आरण्यैश्च महावृक्षैः पुण्यैः स्वादुफलैर्वृतम् ॥ ५ ॥
बलिहोमार्चितं पुण्यं ब्रह्मघोषनिनादितम् । पुष्पैश्चान्यैः परिक्षिप्तं पद्मिन्या च सपद्मया ॥ ६ ॥
फलमूलाशनैर्दान्तैश्चीरकृष्णाजिनाम्बरैः । सूर्यवैश्वानराभैश्च पुराणैर्मुनिभिर्युतम् ॥ ७ ॥

ऋषिके बतलाये मार्गसे शत्रुओंके द्वारा अजेय और जितेन्द्रिय रामचन्द्रने महारण्य दण्डकारण्यमें प्रवेश किया और वहां उन्होंने तपस्वियोंके आश्रम देखे ॥ १ ॥ उन आश्रमोंमें कुश और वल्कल वस्त्र फैले हुए थे, ब्राह्मी शोभासे वे प्रदीप्त हो रहे थे जिस प्रकार आकाशमें सूर्यमण्डल प्रदीप्त होता है तथा दुःखसे देखा जाता है ॥ २ ॥ उन आश्रमोंमें सब प्राणियोंको आश्रय मिलता है, उनके अंगने सदा स्वच्छ रहते हैं, अनेक पशु तथा पक्षियोंका समूह वहां बना रहता है ॥ ३ ॥ प्रतिदिन अप्सरायें वहां आकर नाचती हैं और उन आश्रमोंकी पूजा करती हैं, उन आश्रमोंमें बड़ी-बड़ी यज्ञशालायें बनी हैं, वहां यज्ञपात्र स्रुवा रखे हुए हैं, मृगचर्म और कुश भी हैं ॥ ४ ॥ लकड़ियां, जलसे भरे घड़े, फलफूल वहां रखे रहते हैं। मीठे फलवाले बड़े-बड़े जङ्गली वृक्ष उन आश्रमोंकी शोभा बढ़ाते हैं ॥ ५ ॥ उन आश्रमोंमें सदा बलि और होम हुआ करते हैं, पवित्र वेदध्वनि होती रहती है, अनेक प्रकारके वहां पुष्प हैं तथा कमलयुक्त तालाब हैं ॥ ६ ॥ उन आश्रमोंमें सूर्य और अग्निके समान दीप्तिशाली पुराने मुनि रहते हैं, वे फलमूल खाते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुण्यैश्च नियताहारैः शोभितं परमर्षिभिः । तद्ब्रह्मभवनप्रख्यं ब्रह्मघोषनिनादितम् ॥ ८ ॥
ब्रह्मविद्भिर्महाभागैर्ब्राह्मणैरुपशोभितम् । तद्दृष्ट्वा राघवः श्रीमांस्तापसाश्रममण्डलम् ॥ ९ ॥
अभ्यगच्छन्महातेजा दिव्यं कृत्वा महद्धनुः । दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते रामं दृष्ट्वा महर्षयः ॥१०॥
अभिजग्मुस्तदा प्रीता वैदेहीं च यशस्विनीम् । ते तु सोममिवोद्यन्तं दृष्ट्वा वै धर्मचारिणम् ॥११॥
लक्ष्मणं चैव दृष्ट्वा तु वैदेहीं च यशस्विनीम् । मङ्गलानि प्रयुञ्जानाः प्रत्यगृह्णन्दृढव्रताः ॥१२॥
रूपसंहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम् । ददृशुर्विस्मिताकारा रामस्य वनवासिनः ॥१३॥
वैदेहीं लक्ष्मणं रामं नेत्रैरनिमिषैरिव । आश्चर्यभूतान्ददृशुः सर्वे ते वनवासिनः ॥१४॥
अत्रैनं हि महाभागा सर्वभूतहिते रताः । अतिथिं पर्णशालायां राघवं संन्यवेशयन् ॥१५॥
ततो रामस्य सत्कृत्य विधिना पावकोपमाः । आजह्रुस्ते महाभागाः सलिलं धर्मचारिणः ॥१६॥
मङ्गलानि प्रयुञ्जाना मुदा परमया युताः । मूलं पुष्पं फलं सर्वमाश्रमं च महात्मनः ॥१७॥
निवेदयित्वा धर्मज्ञास्ते तु प्राञ्जलयोऽब्रुवन् । धर्मपालो जनस्यास्य शरण्यश्च महायशाः॥१८॥
पूजनीयश्च मान्यश्च राजा दण्डधरो गुरुः । इन्द्रस्यैव चतुर्भागः प्रजा रक्षति राघव ॥१९॥
राजा तस्माद्वरान्भोगान्रम्यान्भुङ्क्ते नमस्कृतः । ते वयं भवता रक्ष्या भवद्विषयवासिनः ।
नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा जनेश्वरः ॥२०॥

हैं, वल्कल वस्त्र और कृष्ण मृगचर्म धारण करते हैं, वे जितेन्द्रिय हैं ॥ ७ ॥ नियमित आहार करनेवाले पवित्र परमर्षियोंसे वे आश्रम सुशोभित हैं, वहां वेदध्वनि होती रहती है अतएव वह आश्रम-मण्डल ब्रह्मलोकके समान मालूम पड़ता है ॥ ८ ॥ ब्रह्मवेत्ता महाभाग्यवान् ब्राह्मणोंसे वे आश्रम शोभित रहते हैं। उस आश्रम-मण्डलको देखकर, ॥ ९ ॥ अपने विशाल धनुषको उतार कर, महातेजस्वी श्रीमान् रामचन्द्र वहां गये। रामचन्द्रको देखकर दिव्य ज्ञानसम्पन्न महर्षि भी ॥ १० ॥ उनके तथा यशस्विनी जानकीके पास गये। चन्द्रमाके समान उदित धर्मात्मा राम, ॥ ११ ॥ लक्ष्मण तथा यशस्विनी सीताको देखकर उन महर्षियोंने उनकी मङ्गल कामना की तथा दृढव्रत महर्षि उन्हें आश्रममें लेआये ॥ १२ ॥ वनवासी रामचन्द्रका सुडौल शरीर, सुन्दरता, सुकुमारता तथा सुवेषता देखकर वे विस्मित हुए ॥ १३ ॥ वनवासी ऋषि तथा पशुपक्षी आदि भी अनिमिष नेत्रोंसे राम, लक्ष्मण और जानकीको देखकर नितान्त विस्मित हुए, विस्मयका कारण इनका सौन्दर्य, सौकुमार्य आदिके विरुद्ध वनमें भ्रमण करना था ॥ १४ ॥ सब प्राणियों के हित करनेवाले इन महाभाग ऋषियोंने रामचन्द्रको ले जाकर पर्णशालामें ठहराया ॥ १५ ॥ अग्निके समान तेजस्वी धर्मात्मा उन ऋषियोंने विधिपूर्वक रामचन्द्रका सत्कार किया और उनके लिये वे जल ले आये ॥ १६ ॥ अत्यन्त प्रसन्न होकर ऋषियोंने इन्हें आशीर्वाद दिया तथा मूल पुष्प फल तथा समस्त आश्रम उन्हें अर्पित किये ॥१७॥ तदनन्तर वे धर्मज्ञ मुनि हाथ जोड़कर बोले—आप धर्मके पालक हैं, आप बड़े यशस्वी हैं और हम लोगोंके रक्षक हैं ॥ १८ ॥ राजा पालन करनेवाला है, अतएव श्रेष्ठ है और वह मान्य तथा पूजनीय है। राजा इन्द्रका चौथा भाग है और वह प्रजाकी रक्षा करनेवाला है ॥ १९ ॥ इसी कारण राजा श्रेष्ठ भोगोंको भोगता है, सब लोग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न्यस्तदण्डा वयं राजञ्जितक्रोधा जितेन्द्रियाः। रक्षणीयास्त्वया शश्वद्भूमूतास्तपोधनाः ॥२१॥
एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुष्पैरन्यैश्च राघवम्। वन्यैश्च विविधाहारैः सलक्ष्मणमपूजयन् ॥२२॥
तथान्ये तापसाः सिद्धा रामं वैश्वानरोपमाः। न्यायवृत्ता यथान्यायं तर्पयामासुरीश्वरम् ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २

कृतातिथ्योऽथ रामस्तु सूर्यस्योदयनं प्रति। आयन्त्य स मुनीन्सर्वान्वनमेवान्वगाहत ॥ १ ॥
नानामृगगणाकीर्णमृक्षशार्दूलसेवितम्। ध्वस्तवृक्षलतागुल्मं दुर्दर्शसलिलाशयम् ॥ २ ॥
निष्कूजमानशकुनि झिल्लिकागणनादितम्। लक्ष्मणानुचरो रामो वनमध्यं ददर्श ह ॥ ३ ॥
सीतया सह काकुत्स्थस्तस्मिन्घोरमृगायुते। ददर्श गिरिशृङ्गाभं पुरुषादं महास्वनम् ॥ ४ ॥
गभीरास्यं महावक्त्रं विकटं विकटोदरम्। बीभत्सं विषमं दीर्घं विकृतं घोरदर्शनम् ॥ ५ ॥

उसे नमस्कार करते हैं। हमलोग आपके राज्यमें रहते हैं, इस कारण आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये, आप नगरमें रहें या वनमें, हमलोगोंके तो आपही राजा हैं ॥ २० ॥ राजन्, हमलोगोंने क्रोधको जीतलिया है, दण्ड देना भी छोड़ दिया है, हमलोगोंने इन्द्रियोंको अपने अधीन कर लियाहै। हम तपस्वीलोग बालकके समान हैं, अतएव आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये ॥ २१ ॥ इस प्रकार कहकर उन तपस्वियोंने फल, मूल, पुष्प तथा वनमें उत्पन्न होनेवाले अन्य अनेक प्रकारके आहारोंसे रामचन्द्र और लक्ष्मणको सन्तुष्ट किया ॥ २२ ॥ अन्य सङ्कल्पसिद्ध तपस्वियोंने जो अग्निके समान उज्ज्वल थे तथा जिनका धर्ममय चरित्र था, उन लोगोंने विधिपूर्वक रामचन्द्रको प्रसन्न किया ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका पहला सर्ग समाप्त ॥ १ ॥

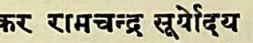

इस प्रकार अतिथि-सत्कार पाकर रामचन्द्र सूर्योदय होनेपर सब ऋषियोंसे आज्ञा लेकर वनमें आगे चले ॥ १ ॥ अनेक पशु उस वनमें रहते थे, रीछ और बाघ उस वनमें निवास करते थे, वहाँके वृक्ष, लताएँ और गुल्म नष्टभ्रष्ट हो गए थे। वहाँके जलाशय देखने लायक न थे, वहाँ पक्षी नहीं बोलते थे, केवल झिल्लीका शब्द सुनायी पड़ता था, रामचन्द्रने लक्ष्मणके साथ ऐसा एक वनका मध्य देखा ॥ २ ॥ ३ ॥ भयानक पशुओंके निवास-स्थान उस वनमें रामचन्द्रने सीताके साथ पर्वतशिखरके समान ऊँचा भयानक शब्द करनेवाला मनुष्यभक्षी एक राक्षस देखा ॥ ४ ॥ उसकी आँखें गहरी थीं, मुँह बड़ा था, शरीर लम्बा चौड़ा था, पेट बहुत बड़ा था, वह बहुत ही कुरूप था, उसके शरीरका कोई स्थान बहुत ही ऊँचा और कोई स्थान बहुत ही नीचा था, वह बहुत मोटा था, उसके शरीरमें अनेक विकार थे और वह देखनेमें अत्यन्त भयानक था ॥ ५ ॥ चर्बी और रुधिर लिपटा हुआ व्याघ्रचर्म धारण किए हुए था, वह मुँह बाये हुए था,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वसानं चर्म वैयाघ्रं वसार्द्रं रुधिरोक्षितम् । त्रासनं सर्वभूतानां व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ ६ ॥
त्रीन्सिंहांश्चतुरो व्याघ्रान्द्वौ वृकौ पृषतान्दश । सविषाणं वसादिग्धं गजस्य च शिरो महत् ॥ ७ ॥
अवसज्याऽयसे शूले विनदन्तं महास्वनम् । स रामं लक्ष्मणं चैव सीतां दृष्ट्वा च मैथिलीम् ॥ ८ ॥
अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धः प्रजाः काल इवान्तकः । स कृत्वा भैरवं नादं चालयन्निव मेदिनीम् ॥ ९ ॥
अङ्केनादाय वैदेहीमपक्रम्य तदाब्रवीत् । युवां जटाचीरधरौ सभार्यौ क्षीणजीवितौ ॥१०॥
प्रविष्टौ दण्डकारण्यं शरचापासिपाणिनौ । कथं तापसयोर्वां च वासः प्रमदया सह ॥११॥
अधर्मचारिणौ पापौ कौ युवां मुनिदूषकौ । अहं वनमिदं दुर्गं विराधो नाम राक्षसः ॥१२॥
चरामि सायुधो नित्यमृषिमांसानि भक्षयन् । इयं नारी वरारोहा मम भार्या भविष्यति ॥१३॥
युवयोः पापयोश्चाहं पास्यामि रुधिरं मृधे । तस्यैवं ब्रुवतो दुष्टं विराधस्य दुरात्मनः ॥१४॥
श्रुत्वा सगर्वितं वाक्यं संभ्रान्ता जनकात्मजा । सीता प्रवेपितोद्वृत्तगात्रवाते कदली यथा ॥१५॥
तां दृष्ट्वा राघवः सीतां विराधाङ्कगतां शुभाम् । अब्रवील्लक्ष्मणं वाक्यं मुखेन परिशुष्यता ॥१६॥
पश्य सौम्य नरेन्द्रस्य जनकस्यात्मसंभवाम् । मम भार्यां शुभाचारां विराधाङ्के प्रवेशिताम् ॥१७॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धां राजपुत्रीं यशस्विनीम् । यदभिप्रेतमस्माभु प्रियं वरवृतं च यत् ॥१८॥
कैकेय्यास्तु सुसंवृत्तं क्षिप्रमद्यैव लक्ष्मण । या न तुष्यति राज्येन पुत्रार्थे दीर्घदर्शिनी ॥१९॥

उससे सब प्राणी डरते थे मानो वह यमराज हो ॥ ६ ॥ तीन सिंह, चार बाघ, दो भेड़िये, दस हिरन और दाँतवाला चर्बीयुक्त हाथीका बड़ा सिर लोहेकी छड़में गांथ कर बड़े भयानक स्वरसे वह गर्जन कर रहा था । वह राम, लक्ष्मण और सीताको देखकर ॥ ७ ॥८॥ भयानक गर्जन करके पृथिवीको कँपाता हुआ क्रोधपूर्वक उनकी ओर दौड़ा, जिस प्रकार अन्तक काल प्रजाकी ओर दौड़ता है ॥ ९ ॥ सीताको गोदमें उठाकर वह दूर चला गया और बोला—तुम दोनों जटा और वल्कल वस्त्र धारण करके स्त्रीके साथ यहाँ हो, अतएव तुम लोगोंके जीवनकी आशा नहीं है ॥ १० ॥ धनुष, बाण और तलवार लेकर तुम लोग दण्डकारण्यमें आये हो ? तुम तपस्वियों का स्त्रीके साथ यहाँ रहना कैसे सम्भव हो सकता है ? ॥ ११ ॥ मुनियोंको बदनाम करनेवाले तुम दोनों पापी कौन हो ? मैं विराध नामका राक्षस हूँ ॥ १२ ॥ अस्त्र-शस्त्र लेकर इस बीहड़ वनमें मैं भ्रमण करता हूँ और मुनियोंका मांस खाता हूँ । यह सुन्दरी स्त्री (सीता) मेरी स्त्री होगी ॥१३॥ और तुम दोनों पापियोंका रक्त मैं युद्धमें पीऊँगा । इस प्रकारकी दुरात्मा विराधकी बुरी और गर्वयुक्त बातें सुनकर सीता घबड़ा गयीं और वे काँपने लगीं, जिस प्रकार हवामें कदली काँपती है ॥ १४ ॥ १५ ॥ सुन्दरी सीताको विराधके पंजेमें फँसी देखकर रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले, उस समय उनका मुँह सूख रहा था ॥ १६ ॥ सौम्य, देखो, राजा जनककी कन्या और मेरी स्त्री सदाचारिणी सीता विराधके पंजेमें आ गयी है ॥ १७ ॥ यह यशस्विनी राजपुत्री है और बड़े सुख-से पाली-पोसी गयी है । हम लोगोंके विषयमें केकयी जो चाहती थी, उसे जो प्रिय था और जिसके लिये उसने वर माँगा था, वह आजही—शीघ्रही घट गया । अतएव परिणाम सोचनेवाली केकयी अपने पुत्रकी राज्यप्राप्तिसे ही सन्तुष्ट न हुई ॥ १८ ॥ १९ ॥ मैं वहाँ सबका प्रिय था, फिर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ययाहं सर्वभूतानां प्रियः प्रस्थापितो वनम् । अद्येदानीं सकामा सा या माता मध्यमा मम ॥२०॥
परस्पर्शात्तु वैदेह्या न दुःखतरमस्ति मे । पितुर्विनाशात्सौमित्रे स्वराज्यहरणात्तथा ॥२१॥
इति ब्रुवति काकुत्स्थे बाष्पशोकपरिप्लुतः । अब्रवील्लक्ष्मणः क्रुद्धो रुद्धो नाग इव श्वसन् ॥२२॥
अनाथ इव भूतानां नाथस्त्वं वासवोपमः । मया प्रेष्येण काकुत्स्थ किमर्थं परितप्यसे ॥२३॥
शरेण निहतस्याद्य मया क्रुद्धेन रक्षसः । विराधस्य गतासोर्हि मही पास्यति शोणितम् ॥२४॥
राज्यकामे मम क्रोधो भरते यो बभूव ह । तं विराधे विमोक्ष्यामि वज्री वज्रमिवाचले ॥२५॥

मम भुजबलवेगवेगितः पततु शरोऽस्य महान्महोरसि ।
व्यपनयतु तनोश्च जीवितं पततु ततश्च महीं विघूर्णितः ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

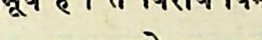

तृतीयः सर्गः ३

अथोवाच पुनर्वाक्यं विराधः पूरयन्वनम् । पृच्छतो मम हि ब्रूतं कौ युवां क्व गमिष्यतः॥१॥
तमुवाच ततो रामो राक्षसं ज्वलिताननम् । पृच्छन्तं सुमहातेजा इक्ष्वाकुकुलमात्मनः ॥२॥
क्षत्रियौ वृत्तसंपन्नौ विद्धि नौ वनगोचरौ । त्वां तु वेदितुमिच्छावः कस्त्वं चरसि दण्डकान्३॥

भी उसने मुझे वन भेजा, आज उस मध्यमा माता केकयीका मनोरथ सफल हुआ ॥ २० ॥ सीता-का स्पर्श दूसरे करें, इससे बढ़कर दूसरा दुःख नहीं है । यह दुःख पिताकी मृत्यु तथा स्वराज्य के हरणसे भी बढ़ कर है ॥ २१ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर क्रोध करके लक्ष्मण बोले । उस समय लक्ष्मणकी आँखें आँसूसे भरी थीं, उनका चित्त शोकसे व्याप्त था, रोके हुए सांपके समान वे सांस ले रहे थे ॥ २२ ॥ काकुत्स्थ, आप सबके स्वामी हैं, इन्द्रके समान बली हैं, आपके भृत्य मेरे रहते आप अनाथके समान क्यों विलाप कर रहे हैं ॥ २३ ॥ अभी क्रोध करके मैं इस राक्षस-को बाणसे मारता हूँ और इसके मरनेपर इसका रुधिर पृथिवी पीवेगी ॥ २४ ॥ आपका राज्य चाहनेवाले भरतपर जो मेरा क्रोध हुआ था, वह क्रोध मैं आज विराधपर छोड़ूँगा, जिस प्रकार इन्द्र पर्वतोंपर वज्र छोड़ते हैं ॥ २५ ॥ मेरे भुजबलके वेगसे वेग प्राप्त कर यह मेरा विशाल बाण इसकी चौड़ी छातीपर पड़े और इसके प्राणको शरीरसे निकाल ले तथा यह राक्षस घूमकर पृथिवीपर गिर पड़े ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका दूसरा सर्ग समाप्त ॥ २ ॥

समस्त भवनको गुंजाता हुआ विराध पुनः बोला—मैं पूछ रहा हूं, कहो तुम लोग कौन हो और कहाँ जावोगे ॥ १ ॥ पूछनेवाले उस राक्षससे तेजस्वी रामचन्द्रने अपनेको इक्ष्वाकुकुलका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तमुवाच विराधस्तु रामः सत्यपराक्रमम् । हन्त वक्ष्यामि ते राजन्निबोध मम राघव ॥४॥
पुत्रः किल जवस्याहं माता मम शतह्रदा । विराध इति मामाहुः पृथिव्यां सर्वराक्षसाः ॥५॥
तपसा चाभिसंप्राप्ता ब्रह्मणो हि प्रसादजा । शस्त्रेणावध्यता लोकेऽच्छेद्याभेद्यत्वमेव च ॥६॥
उत्सृज्य प्रमदामेनामनपेक्षौ यथागतम् । त्वरमाणौ पलायेथां न वां जीवितमाददे ॥७॥
तं रामः प्रत्युवाचेदं कोपसंरक्तलोचनः । राक्षसं विकृताकारं विराधं पापचेतसम् ॥८॥
क्षुद्र धिक्त्वां तु हीनार्थं मृत्युमन्वेषसे ध्रुवम् । रणेप्राप्स्यसि संतिष्ठ न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ॥९॥
ततःसज्यं धनुःकृत्वा रामःसुनिशिताञ्शरान् । सुशीघ्रमभिसंधाय राक्षसं निजघान ह ॥१०॥
धनुषा ज्यागुणवता सप्तबाणान्मुमोच ह । रुक्मपुङ्खान्महावेगान्सुपर्णानिलतुल्यगान् ॥११॥
ते शरीरं विराधस्य भित्त्वा बर्हिणवाससः । निपेतुः शोणितादिग्धा धरण्यां पावकोपमाः॥१२॥
स विद्धो न्यस्य वैदेहीं शूलमुद्यम्य राक्षसः । अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धस्तदा रामं सलक्ष्मणम् ॥१३॥
स विनद्य महानादं शूलं शक्रध्वजोपमम् । प्रगृह्याशोभत तदा व्यात्तानन इवान्तकः ॥१४॥
अथ तौ भ्रातरौ दीप्तं शरवर्षं ववर्षतुः । विराधे राक्षसे तस्मिन्कालान्तकयमोपमे ॥१५॥

बतलाया । उस राक्षसके मुंहसे आगकी लपटें निकल रही थीं ॥ २ ॥ हम लोग क्षत्रिय हैं और अपने कुलके आचार पालन करनेवाले हैं, इस समय वनमें आये हैं । हम लोग तुमको जानना चाहते हैं, तुम कौन हो जो इस दण्डक वनमें रहते हो ॥ ३ ॥ सत्यपराक्रम रामचन्द्रसे विराध इस प्रकार बोला--राजन्, मैं तुमसे कहता हूँ, तुम मुझे पहचानो ॥ ४ ॥ मैं जव नामक राक्षसका पुत्र हूँ, मेरी माताका नाम शतह्रदा है, पृथिवीमें सब राक्षस मुझे विराध कहते हैं अर्थात् मैं राक्षसोंमें प्रसिद्ध हूँ ॥ ५ ॥ तपस्याके द्वारा ब्रह्माकी प्रसन्नतासे मैंने यह वर पाया है कि मैं शस्त्रसे न मारा जाऊं तथा शस्त्रोंसे मेरा कोई अंग न काटा जा सके और न भेदा जा सके ॥ ६ ॥ अतएव आशा छोड़कर इस स्त्रीको यहीं छोड़कर तुम लोग शीघ्रतापूर्वक यहांसे भाग जाओ, मैं तुम लोगोंके प्राण न लूंगा ॥ ७ ॥ रामचन्द्रकी आंखें क्रोधसे लाल हो गयीं, वे उस कुरूप पापी विराध नामक राक्षससे बोले ॥ ८ ॥ क्षुद्र, तुमको धिक्कार, तुम्हारा अभिप्राय नीच है, तुम अपनी मृत्यु ढूंढ़ रहे हो, ठहरो, अवश्यही युद्धमें तुम्हें मृत्यु मिलेगी, मैं तुम्हें जीता न छोड़ूंगा ॥ ९ ॥ तदनन्तर धनुषपर रौंदा चढ़ाकर रामचन्द्रने तीखे बाण चढ़ाये और उन्होंने उस राक्षसको मार डाला ॥ १० ॥ रामचन्द्रने ज्या (चिल्ला) चढ़े धनुषसे सात बाण चलाये, इन बाणोंका पिछिला हिस्सा सोनेका था, ये बाण बड़े वेगसे चलनेवाले थे, गरुड़ और वायुके समान वेगवान् थे ॥ ११ ॥ अग्निके समान उज्ज्वल वे बाण मयूरपुच्छ धारण करनेवाले विराधके शरीरको भेदकर पृथ्वीपर गिर पड़े, वे बाण रुधिरसे सने हुए थे ॥ १२ ॥ बाणोंसे विधजानेपर उस राक्षसने वैदेहीको छोड़ दिया और शूल लेकर राम तथा लक्ष्मणकी ओर क्रोध करके दौड़ा ॥ १३ ॥ भयानक गर्जन करके तथा इन्द्रध्वजके समान शूल लेकर मुंह बाये यमराजके समान शोभने लगा ॥ १४ ॥ उस समय कालान्तकके समान उस विराध राक्षसपर दोनों भाई दीप्त बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १५ ॥ महाभयङ्कर उस राक्षसने हँसकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स प्रहस्य महारौद्रः रिथत्वाजृम्भत राक्षसः । जृम्भमाणस्य ते बाणाः कायान्निष्पेतुराशुगाः १६॥
स्पर्शात्तु वरदानेन प्राणान्संरोध्य राक्षसः । विराधः शूलमुद्यम्य राघवावभ्यधावत ॥१७॥
तच्छूलं वज्रसंकाशं गगने ज्वलनोपमम् । द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद रामः शस्त्रभृतां वरः १८।
तद्रामविशिखैश्छिन्नं शूलं तस्यापतद्भुवि । पपाताशनिना च्छिन्नं मेरोरिव शिलातलम् ॥१९॥
तौ खड्गौ क्षिप्रमुद्यम्य कृष्णसर्पाविवोद्यतौ । तूर्णमापेततुस्तस्य तदा प्रहरतां बलात् ॥२०॥
स वध्यमानः सुभृशं भुजाभ्यां परिगृह्य तौ । अप्रकम्प्यौ नरव्याघ्रौ रौद्रः प्रस्थातुमैच्छत॥२१॥
तस्याभिप्रायमाज्ञाय रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । वहत्वयमलं तावत्पथानेन तु राक्षसः ॥२२॥
यथा चेच्छति सौमित्रे तथा वहतु राक्षसः । अयमेव हि नः पन्था येन याति निशाचरः ॥२३॥
स तु स्वबलवीर्येण समुत्क्षिप्य निशाचरः । बालाविव स्कन्धगतौ चकारातिबलोद्धतः ॥२४॥
तावारोप्य ततः स्कन्धं राघवौ रजनीचरः । विराधो विनदन्घोरं जगामाभिमुखौ वनम् ॥२५॥

वनं महामेघनिभं प्रविष्टो द्रुमैर्महद्भिर्विविधैरुपेतम् ।
नानाविधैः पक्षिकुलैर्विचित्रं शिवायुतं व्यालमृगैर्विकीर्णम् ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

जभाँई ली, जभाँई लेतेही उसके शरीरसे वे शीघ्र चलनेवाले बाण निकल आये ॥ १६ ॥ वरदान के प्रभावसे उसने प्राणवायुको रोकलिया और शूल लेकर रामचन्द्र तथा लक्ष्मणकी ओर दौड़ा ॥ १७ ॥ वज्रके समान प्रदीप्त और आकाशमें अग्निके समान चमकनेवाले उसके शूलको श्रेष्ठ शस्त्रधारी रामचन्द्रने दो बाणोंसे काट दिया ॥ १८ ॥ रामचन्द्रके बाणोंसे कटकर उसका शूल पृथिवी-पर गिर पड़ा, मानों वज्रसे कटकर मेरुका कोई टुकड़ा गिराहो ॥ १९ ॥ तब वे दोनों युद्धके लिये उद्यत राम और लक्ष्मण कृष्ण सर्पके समान दो तलवार लेकर शीघ्रही उसके पास आ गये और बलपूर्वक उन लोगोंने उसपर प्रहार किया ॥ २० ॥ इनके द्वारा अत्यन्त पीड़ित होनेपर भी विचलित न होने योग्य इन नरश्रेष्ठोंको दोनों हाथोंसे पकड़ कर उस भयानक राक्षसने चलने की इच्छा की ॥ २१ ॥ उसका अभिप्राय जानकर रामने लक्ष्मणसे कहा–यह राक्षस हम लोगोंको इस रास्तेसे ले चले ॥ २२ ॥ लक्ष्मण, जैसा यह चाहता है वैसे ही यह हम लोगोंको ले चले, हम लोगोंका भी यही मार्ग है, जिस मार्गसे यह राक्षस जा रहा है ॥ २३ ॥ अतिबली होनेके कारण उद्धत उस राक्षसने अपने बल और पराक्रमसे बालकोंके समान राम और लक्ष्मणको कंधेपर उठा लिया ॥ २४ ॥ उन दोनोंको कन्धेपर रखकर वह विराध राक्षस घोर गर्जन करता हुआ वनकी ओर चला ॥ २५ ॥ उस वनमें बड़े-बड़े अनेक प्रकारके वृक्ष थे, अनेक प्रकारके पक्षियोंके कारण वह वन विचित्र हो गया था, उसमें सियारिनें थीं, वहां अनेक प्रकारके दुष्ट जन्तु थे, उस महामेघके समान वनमें उस राक्षसने प्रवेश किया ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका तीसरा सर्ग समाप्त ॥ ३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चतुर्थः सर्गः ४

ह्रियमाणौ तु काकुत्स्थौ दृष्ट्वा सीता रघूत्तमौ । उच्चैःस्वरेण चुक्रोश प्रगृह्य सुमहाभुजौ ॥ १ ॥
एष दाशरथी रामः सत्यवाञ्छीलवाञ्शुचिः । रक्षसा रौद्ररूपेण ह्रियते सहलक्ष्मणः ॥ २ ॥
मामृक्षा भक्षयिष्यन्ति शार्दूलद्वीपिनस्तथा । मां हरोत्सृज काकुत्स्थौ नमस्ते राक्षसोत्तम ॥ ३ ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा वैदेह्या रामलक्ष्मणौ । वेगं प्रचक्रतुर्वीरौ वधे तस्य दुरात्मनः ॥ ४ ॥
तस्य रौद्रस्य सौमित्रिः सव्यं बाहुं बभञ्ज ह । रामस्तु दक्षिणं बाहुं तरसा तस्य रक्षसः ॥ ५ ॥
स भग्नबाहुः संविग्नः पपाताशु विमूर्च्छितः । धरण्यां मेघसंकाशो वज्राभिन्न इवाचलः ॥ ६ ॥
मुष्टिभिर्बाहुभिः पद्भिः सूदयन्तौ तु राक्षसम् । उद्यम्योद्यम्य चाप्येनं स्थण्डिले निष्पिपेषतुः ॥ ७ ॥
स विद्धो बहुभिर्बाणैः खड्गाभ्यां च परिक्षतः । निष्पिष्टो बहुधा भूमौ न ममार स राक्षसः ॥ ८ ॥
तं प्रेक्ष्य रामः सुभृशमवध्यमचलोपमम् । भयेष्वभयदः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥
तपसा पुरुषव्याघ्र राक्षसोऽयं न शक्यते । शस्त्रेण युधि निर्जेतुं राक्षसं निखनावहे ॥ १० ॥
कुञ्जरस्येव रौद्रस्य राक्षसस्यास्य लक्ष्मण । वनेऽस्मिन्सुमहच्छुभ्रं खन्यतां रौद्रवर्चसः ॥ ११ ॥
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामः प्रदरः खन्यतामिति । तस्थौ विराधमाक्रम्य कण्ठे पादेन वीर्यवान् ॥ १२ ॥
तच्छ्रुत्वा राघवेणोक्तं राक्षसः प्रश्रितं वचः । इदं प्रोवाच काकुत्स्थं विराधः पुरुषर्षभम् ॥ १३ ॥

रघुश्रेष्ठ राम, लक्ष्मणको राक्षस लिये जा रहा है यह देखकर सीता उन दोनोंको पकड़कर जोरसे चिल्लाने लगीं ॥ १ ॥ सीताने कहा—ये रामचन्द्र दशरथके पुत्र, सत्यवादी, शीलवान् और पवित्र हैं। भयानक राक्षस लक्ष्मणके साथ उन्हें हरे लिये जा रहा है ॥ २ ॥ मुझे भालु खा लेंगे, बाघ या चीते मुझे खा लेंगे। ऐ राक्षसश्रेष्ठ, मुझे ले चलो, राम-लक्ष्मणको छोड़ दो, मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ ॥ ३ ॥ जानकीके वैसे वचन सुनकर राम और लक्ष्मणने उस दुरात्माके वध करनेमें शीघ्रता की ॥ ४ ॥ लक्ष्मणने उस राक्षसका बायाँ हाथ तोड़ डाला और रामचन्द्रने शीघ्रता पूर्वक उसका दाहिना हाथ तोड़ा ॥ ५ ॥ हाथके तोड़े जानेसे वह व्याकुल हुआ और मेघके समान वह राक्षस मूर्छित होकर वज्रसे तोड़े पर्वतके समान पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ ६ ॥ मुक्केसे, हाथसे तथा पैरोंसे उस राक्षसको मारते हुए उठा-उठा कर राम और लक्ष्मण ऊँची जमीनपर पीसने लगे ॥ ७ ॥ वह राक्षस अनेक बाणोंसे विधा हुआ था, तलवारोंसे काटा गया था और अनेक बार पृथिवीपर पटका गया था, फिर भी वह न मरा ॥ ८ ॥ पर्वतके समान वह राक्षस किसी प्रकार नहीं मरता है यह देखकर भयके समय अभय देनेवाले श्रीरामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा ॥ ९ ॥ लक्ष्मण, तपस्याके कारण यह राक्षस अस्त्रोंके द्वारा युद्धमें जीता नहीं जा सकता, इस कारण हमलोग इसे गाड़ दें ॥ १० ॥ भयानक हाथीके समान भयदायी इस राक्षसके लिए इस वनमें एक बहुत बड़ा गढ़ा खोदो ॥ ११ ॥ इस प्रकार गढ़ा खोदनेके लिए लक्ष्मणसे कहकर रामचन्द्र विराधका गला पैरसे दबाकर खड़े रहे ॥ १२ ॥ रामचन्द्रके ये वचन सुनकर विराध पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रसे विनयपूर्वक ऐसा बोला ॥ १३ ॥ पुरुषसिंह, इन्द्रके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हतोऽहं पुरुषव्याघ्र शक्रतुल्यबलेन वै । मया तु पूर्वं त्वं मोहान्न ज्ञातः पुरुषर्षभ ॥१४॥
कौसल्या सुप्रजास्तात रामस्त्वं विदितो मया । वैदेही च महाभागा लक्ष्मणश्च महायशाः ॥१५॥
अभिशापादहं घोरां प्रविष्टो राक्षसीं तनुम् । तुम्बुरुर्नामगन्धर्वः शप्तो वैश्रवणेन हि ॥१६॥
प्रसाद्यमानस्य मया सोऽब्रवीन्मां महायशाः । यदा दाशरथी रामस्त्वां वधिष्यति संयुगे ॥१७॥
तदा प्रकृतिमापन्नो भवान्स्वर्गं गमिष्यति । अनुपस्थीयमानो मां स क्रुद्धो व्याजहार ह ॥१८॥
इति वैश्रवणो राजा रम्भासक्तमुवाच ह । तव प्रसादान्मुक्तोऽहमभिशापात्सुदारुणात् ॥१९॥
भुवनं स्वं गमिष्यामि स्वस्ति वोऽस्तु परंतप । इतो वसति धर्मात्मा शरभङ्गः प्रतापवान् ॥२०॥
अध्यर्धयोजने तात महर्षिः सूर्यसन्निभः । तं क्षिप्रमभिगच्छ त्वं स ते श्रेयोऽभिधास्यति ॥२१॥
अवटे चापि मां राम निक्षिप्य कुशली व्रज । रक्षसां गतसत्त्वानामेष धर्मः सनातनः ॥२२॥
अवटे ये निधीयन्ते तेषां लोकाः सनातनाः । एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थं विराधः शरपीडितः ॥२३॥
बभूव स्वर्गसंप्राप्तो न्यस्तदेहो महाबलः । तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यं लक्ष्मणं व्यादिदेश ह ॥२४॥
कुञ्जरस्येव रौद्रस्य राक्षसस्यास्य लक्ष्मणः । वनेऽस्मिन्सुमहाञ्श्वभ्रः खन्यतां रौद्रकर्मणः ॥२५॥
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामः प्रदरः खन्यतामिति । तस्थौ विराधमाक्रम्य कण्ठे पादेन वीर्यवान् ॥२६॥
ततः खनित्रमादाय लक्ष्मणः श्वभ्रमुत्तमम् । अखनत्पार्श्वतस्तस्य विराधस्य महात्मनः ॥२७॥

समान पराक्रमवाले, आपने मेरा वध किया, मूर्खतावश पहले मैं आपको न जान सका ॥ १४ ॥ तात, आपसे कौसल्या श्रेष्ठपुत्रकी माता हुई है, मैं जान गया आप रामचन्द्र हैं, ये महाभागा जानकी हैं और ये महायशस्वी लक्ष्मण हैं ॥ १५ ॥ शापके कारण मैंने यह राक्षसी शरीर पाया है। मैं तुम्बरु नामका गन्धर्व हूँ और कुबेरने मुझे शाप दिया है ॥ १६ ॥ जब मैंने उनको प्रसन्न किया तब यशस्वी कुबेरने मुझसे कहा कि जब दशरथपुत्र रामचन्द्र रणमें तुम्हारा वध करेंगे ॥ १७ ॥ तब तुम अपने पहलेके स्वरूपको पाकर स्वर्गमें आओगे। समयपर उनकी सेवामें उपस्थित न होनेके कारण क्रोध करके उन्होंने मुझसे वैसा कहा था ॥ १८ ॥ रम्भा नामकी अप्सरामें मैं आसक्त था, इस कारण कुबेरने मुझे शाप दिया था। आज आपकी कृपासे मैं उस भयानक शापसे मुक्त हुआ ॥ १९ ॥ अब मैं अपने लोकको जाता हूँ। परन्तप, आपका कल्याण हो। इधर प्रतापी धर्मात्मा शरभङ्ग ऋषि रहते हैं ॥ २० ॥ यहाँसे डेढ़ योजन पर उनका स्थान है, वे सूर्यके समान तेजस्वी हैं, शीघ्रही आप उन महर्षिके पास जाँय, वे आपका कल्याण करेंगे ॥ २१ ॥ गढ़ेमें मेरे शरीरको तोपकर आप कुशलपूर्वक यहाँसे जाएँ, क्योंकि मरनेपर राक्षसोंके लिए यही सनातन धर्म है ॥ २२ ॥ जो राक्षस गढ़ेमें गाड़े जाते हैं, उन्हें श्रेष्ठ लोक प्राप्त होते हैं। शरपीड़ित महाबली विराधने रामचन्द्रसे ऐसा कहकर ॥ २३ ॥ राक्षस शरीर छोड़कर स्वर्ग प्राप्त किया। उसके वचन सुनकर रामचन्द्रने लक्ष्मणको आज्ञा दी ॥ २४ ॥ भयानक हाथीके समान भयदायी राक्षसके लिए इस वनमें एक बड़ा गढ़ा खोदो ॥ २५ ॥ लक्ष्मणको गढ़ा खोदनेकी आज्ञा देकर रामचन्द्र विराधका गला पैरसे दबाकर खड़े रहे ॥ २६ ॥ लक्ष्मणने एक खनती लेकर महात्मा विराधके बगलमें ही एक उत्तम गढ़ा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तं मुक्तकण्ठमुत्क्षिप्य शङ्कुकर्णं महास्वनम् । विराधं प्राक्षिपच्छ्रेत्रे नदन्तं भैरवस्वनम् ॥२८॥
तमाहवे दारुणमाशुविक्रमौ स्थिरावुभौ संयति रामलक्ष्मणौ ।
मुदान्वितौ चिक्षिपतुर्भयावहं नदन्तमुत्क्षिप्य बलेन राक्षसम् ॥ २९ ॥
अवध्यतां प्रेक्ष्य महासुरस्य तौ शितेन शस्त्रेण तदा नरर्षभौ ।
समर्थ्य चात्यर्थविशारदावुभौ बिले विराधस्य वधं प्रचक्रतुः ॥ ३० ॥
स्वयं विराधेन हि मृत्युमात्मनः प्रसह्य रामेण यथार्थमीप्सितः ।
निवेदितः काननचारिणा स्वयं न मे वधः शस्त्रकृतो भवेदिति ॥ ३१ ॥
तदेव रामेण निशम्य भाषितं कृता मतिस्तस्य बिलप्रवेशने ।
बिलं च तेनातिबलेन रक्षसा प्रवेश्यमानेन वनं विनादितम् ॥ ३२ ॥
प्रहृष्टरूपाविव रामलक्ष्मणौ विराधमुर्व्यां प्रदरे निपात्य तम् ।
ननन्दतुर्वीतभयौ महावने शिलाभिरन्तर्दधतुश्च राक्षसम् ॥ ३३ ॥
ततस्तु तौ काञ्चनचित्रकार्मुकौ निहत्य रक्षः परिगृह्य मैथिलीम् ।
विजह्रतुस्तौ मुदितौ महावने दिवि स्थितौ चन्द्रदिवाकराविव ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

—:o:—

खोदा ॥ २७ ॥ गढ़ेमें गाड़नेके लिए रामचन्द्रने उसका गला छोड़ दिया, शंकुके समान उसके कान कठोर थे, भयानक शब्द करते हुये उस राक्षसको उनलोगोंने गढ़ेमें डाल दिया ॥२८॥ शीघ्रता करनेवाले तथा रणमें स्थिर दोनों राम और लक्ष्मणने प्रसन्नतापूर्वक युद्धमें भयानक और भयानक शब्द करनेवाले उस राक्षसको उठाकर गढ़ेमें फेंकदिया ॥ २९ ॥ नरश्रेष्ठ राम और लक्ष्मणने जब देखा कि यह तीखे बाणोंसे नहीं मरेगा, तब नितान्त निपुण वे दोनों भाइयोंने बड़े प्रयत्नसे गढ़ा खोदकर उसमें उसे डाल दिया ॥ ३० ॥ स्वयं विराध भी काननचारी रामचन्द्रके हाथो अपनी मृत्यु चाहता था, पर उसने रामचन्द्रसे यह यथार्थ बात कहदी थी कि शस्त्रोंके द्वारा मेरी मृत्यु न होगी ॥ ३१ ॥ उसकी यह बात सुनकर ही रामचन्द्रने उसे गढ़ेमें डालनेका विचार निश्चित किया था, रामचन्द्रने बड़ा बल लगाकर उस राक्षसको गढ़ेमें ढकेला, उस समय उसने समस्त वन-को गुंजा दिया ॥ ३२ ॥ उस विराधको पृथिवीमें गढ़ेमें डालकर राम और लक्ष्मण बड़े प्रसन्न हुए, उन लोगोंका भय जाता रहा । उस गढ़ेको उन लोगोंने पत्थरोंसे पाट दिया ॥ ३३ ॥ वे दोनों सोनेके काम किये हुए धनुष धारण किये राक्षसको मारकर जानकीको लेकर उस महावनमें प्रसन्नतापूर्वक विचरण करने लगे, जिस प्रकार आकाशमें चन्द्रमा और सूर्य विचरण करते हैं ॥३४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका चौथा सर्ग समाप्त ॥४॥

—:o:—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चमः सर्गः ५

हत्वा तु तं भीमबलं विराधं राक्षसं वने । ततः सीतां परिष्वज्य समाश्वास्य च वीर्यवान्॥ १ ॥
अब्रवीद्भ्रातरं रामो लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् । कष्टं वनमिदं दुर्गं न च स्मो वनगोचराः ॥ २ ॥
अभिगच्छामहे शीघ्रं शरभङ्गं तपोधनम् । आश्रमं शरभङ्गस्य राघवोऽभिजगाम ह ॥ ३ ॥
तस्य देवप्रभावस्य तपसा भावितात्मनः । समीपे शरभङ्गस्य ददर्श महदद्भुतम् ॥ ४ ॥
विभ्राजमानं वपुषा सूर्यवैश्वानरप्रभम् । रथप्रवरमारूढमाकाशे विबुधानुगम् ॥ ५ ॥
असंस्पृशन्तं वसुधां ददर्श विबुधेश्वरम् । संप्रभाभरणं देवं विरजोम्बरधारिणम् ॥ ६ ॥
तद्विधैरेव बहुभिः पूज्यमानं महात्मभिः । हरितैर्वाजिभिर्युक्तमन्तरिक्षगतं रथम् ॥ ७ ॥
ददर्शादूरतस्तस्य तरुणादित्यसंनिभम् । पाण्डराभ्रघनप्रख्यं चन्द्रमण्डलसंनिभम् ॥ ८ ॥
अपश्यद्विमलं छत्रं चित्रमाल्योपशोभितम् । चामरव्यजने चाग्र्ये रुक्मदण्डे महाधने ॥ ९ ॥
गृहीते वरनारीभ्यां धूयमाने च मूर्धनि । गन्धर्वामरसिद्धाश्च बहवः परमर्षयः ॥ १० ॥
अन्तरिक्षगतं देवं गीर्भिरग्र्याभिरैडयन् । सह संभाषमाणे तु शरभङ्गेन वासवे ॥ ११ ॥
दृष्ट्वा शतक्रतुं तत्र रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । रामोऽथ रथमुद्दिश्य भ्रातुर्दर्शयताद्भुतम्॥ १२ ॥
अर्चिष्मन्तं श्रिया जुष्टमद्भुतं पश्य लक्ष्मण । प्रतपन्तमिवादित्यमन्तरिक्षगतं रथम् ॥ १३ ॥

महाबली विराध राक्षसको वनमें मारकर पराक्रमी रामचन्द्रने सीताका आलिङ्गन किया और विराधके भयसे भयभीत सीताका भय दूर किया ॥ १ ॥ रामचन्द्र तेजस्वी भाई लक्ष्मणसे बोले—यह वन बड़ा दुखदायी और भयानक है, चलने योग्य नहीं है, हम लोगोंने इसके पहले ऐसा वन देखाभी नहीं है ॥ २ ॥ अब हमलोग यहांसे शीघ्र तपस्वी शरभंगके यहां चले । अनन्तर रामचन्द्र शरभंगके आश्रममें गये ॥ ३ ॥ देवताके समान प्रभाववाले तथा तपस्याके द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार-प्राप्त शरभंगके यहां रामचन्द्रने अद्भुत वृतान्त देखा ॥ ४ ॥ शरीरकी कान्तिसे आकाशमें शोभित हो रहे हैं, सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी हैं, देवगण उनके अनुयायी हैं, ऐसे देवराज श्रेष्ठ रथपर बैठे हैं, वह रथ पृथिवीको नहीं छूता, उनके गहने बड़ेही दीप्तमान् हैं और कभी मैले न होनेवाले वस्त्र उन्होंने धारण किये हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ और उन्हींके समान महात्मा उनकी पूजा कर रहे हैं । उनके रथमें हरे घोड़े जुते हुए थे, वह पृथिवीसे ऊपर आकाशमें ही था, वह चन्द्रमाके समान गोला था, श्वेतमेघके समान उसका रंग था और प्रौढ़ सूर्यके समान दीप्तमान था । रामचन्द्रने अपनेसे थोड़ी दूरपर ऐसा रथ देखा ॥ ७ ॥ ८ ॥ उन्होंने श्वेतछत्र देखा, जिसमें सोनेके फूल और मालाएँ बनी हुई थीं, दामी सोनेके दण्डेवाले श्रेष्ठ चामर और पंखे दो देवाङ्गनाएँ लिये हुई हैं और इन्द्रपर डुरा रही हैं । इन्द्र शरभंगके साथ बातें कर रहे हैं और गन्धर्व, देवता, सिद्ध तथा अनेक ऋषि आकाशमें स्थित उन इन्द्रकी श्रेष्ठ वाणियोंसे स्तुति कर रहे हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ वहां शरभंगके आश्रममें इन्द्रको देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा और रथको लक्ष्यकरके उसकी विचित्रता उन्होंने लक्ष्मणको दिखायी ॥ १२ ॥ लक्ष्मण, इस रथको देखो, कितना चमकीला है, कितना सुन्दर है, यह रथ आकाशमें सूर्यके समान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ये हयाः पुरुहूतस्य पुरा शक्रस्य नः श्रुताः । अन्तरिक्षगता दिव्यास्त इमे हरयो ध्रुवम् ॥१४॥
इमे च पुरुषव्याघ्र ये तिष्ठन्त्यभितो दिशम् । शतं शतं कुण्डलिनो युवानः खड्गपाणयः ॥१५॥
विस्तीर्णविपुलोरस्काः परिघायतबाहवः । शोणांशुवसनाः सर्वे व्याघ्रा इव दुरासदाः ॥१६॥
उरोदेशेषु सर्वेषां हारा ज्वलनसंनिभाः । रूपं बिभ्रति सौमित्रे पञ्चविंशतिवार्षिकम् ॥१७॥
एतद्धि किल देवानां वयो भवति नित्यदा । यथेमे पुरुषव्याघ्रा दृश्यन्ते प्रियदर्शनाः ॥१८॥
इहैव सह वैदेह्या मुहूर्तं तिष्ठ लक्ष्मण । यावज्जानाम्यहं व्यक्तं क एष द्युतिमान्रथे ॥१९॥
तमेवमुक्त्वा सौमित्रिमिहैव स्थीयतामिति । अभिचक्राम काकुत्स्थः शरभङ्गाश्रमं प्रति ॥२०॥
ततः समभिगच्छन्तं प्रेक्ष्य रामं शचीपतिः । शरभङ्गमनुज्ञाप्य विबुधानिदमब्रवीत् ॥२१॥
इहोपयात्यसौ रामो यावन्मां नाभिभाषते । निष्ठां नयत तावत्तु ततो मां द्रष्टुमर्हति ॥२२॥
जितवन्तं कृतार्थं हि तदाहमचिरादिमम् । कर्म ह्यनेन कर्तव्यं महदन्यैः सुदुष्करम् ॥२३॥
अथ बज्री तमामन्त्र्य मानयित्वा च तापसम् । रथेन हययुक्तेन ययौ दिवमरिंदमः ॥२४॥
प्रायते तु सहस्राक्षे राघवः सपरिच्छदः । अग्निहोत्रमुपासीनं शरभङ्गमुपागमत् ॥२५॥
तस्य पादौ च संगृह्य रामः सीता च लक्ष्मणः । निषेदुस्तदनुज्ञाता लब्धवासा निमन्त्रिताः ॥२६॥
ततः शक्रोपयानं तु पर्यपृच्छत राघवः । शरभङ्गश्च तत्सर्वं राघवाय न्यवेदयत् ॥२७॥

तप रहा है ॥ १३ ॥ पुरुहूत (अनेक यज्ञ करनेवाले) इन्द्रके जिन घोड़ोंकी बात हमलोगोंने सुनी है, वे येही दिव्य घोड़े आकाशमें खड़े हैं ॥ १४ ॥ ये कुण्डल धारण किये हुए, हाथमें तलवार लिये सैकड़ों युवा महापुरुष रथके चारो ओर खड़े हैं। जिनकी छाती और कन्धे चौड़े हैं, परिधके समान लम्बी भुजाएँ हैं, लाल रंगके वस्त्र पहने हुए हैं तथा वाघके समान जिनके समीप जानेमें भय मालुम होता है। सभीके वक्षस्थलपर अग्निके समान चमकीला हार पड़ा हुआ है और जिनकी अवस्था पचीस वर्षकी है ये सब देवता हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ देवताओंकी सदा यही अवस्था रहती है। ये वस्त्राभरणके द्वारा बड़े सुन्दर मालुम पड़ते हैं, अतएव ये देवता हैं ॥ १८ ॥ लक्ष्मण, सीताके साथ तुम थोड़ी देर यहीं ठहरो, तबतक मैं यह ठीक-ठीक जानलूँ कि इस रथपर यह तेजस्वी कौन है ॥ १९ ॥ लक्ष्मणको वहीं ठहरनेके लिए कहकर रामचन्द्र शरभङ्गके आश्रमकी ओर चले ॥ २० ॥ रामचन्द्रको आते देखकर इन्द्रने शरभङ्गको जानेकी आज्ञा दी और वे देवताओंसे यह बोले ॥ २१ ॥ रामचन्द्र यहाँ आरहे हैं, वे जबतक मुझसे न बोलें तभी तक तुम लोग मुझे यहाँ से दूसरी जगह ले चलो, जिससे वे मुझे देख न सकें ॥ २२ ॥ रामको, दूसरे नहीं कर सकते ऐसा, बहुत बड़ा काम इनको करना है, जब ये विपत्तियोंके पार हो जायँगे, रावणको जीत लेंगे उस समय मैं इनको देखूंगा ॥ २३ ॥ अनन्तर इन्द्रने तपस्वी शरभङ्गको बुलाकर उनका अभिनन्दन किया और वे घोड़ेके रथपर चढ़कर स्वर्ग चले गये ॥ २४ ॥ इन्द्रके चले जानेपर रामचन्द्र अपने साथियोंके साथ अग्निहोत्री शरभङ्गके पास आये ॥ २५ ॥ रामलक्ष्मण और सीताने मुनिकी चरणवन्दना की, मुनिकी आज्ञासे वे बैठे, मुनिने उनको रहनेका स्थान दिया और भोजनके लिए उन लोगोंको निमन्त्रित किया ॥ २६ ॥ तदनन्तर रामने मुनिसे इन्द्रके आनेका कारण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मामेष वरदो राम ब्रह्मलोकं निनीषति । जितमुग्रेण तपसा दुष्प्रापमकृतात्मभिः ॥२८॥
अहं ज्ञात्वा नरव्याघ्र वर्तमानमदूरतः । ब्रह्मलोकं न गच्छामि त्वामदृष्ट्वा प्रियातिथिम् ॥२९
त्वयाहं पुरुषव्याघ्र धार्मिकेण महात्मना । समागम्य गमिष्यामि त्रिदिवं चावरं परम् ॥३०॥
अक्षया नरशार्दूल जिता लोका मया शुभाः । ब्राह्म्याश्च नाकपृष्ठ्याश्च प्रतिगृह्णीष्व मामकान् ॥
एवमुक्तो नरव्याघ्रः सर्वशास्त्रविशारदः । ऋषिणा शरभङ्गेन राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥३२॥
अहमेवाहरिष्यामि सर्वाँल्लोकान्महामुने । आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने ॥३३॥
राघवेणैवमुक्तस्तु शक्रतुल्यबलेन वै । शरभङ्गो महाप्राज्ञः पुनरेवाब्रवीद्वचः ॥३४॥
इह राम महातेजाः सुतीक्ष्णो नाम धार्मिकः । वसत्यरण्ये नियतः स ते श्रेयो विधास्यति॥३५॥
इमां मन्दाकिनीं राम प्रतिस्रोतामनुव्रज । नदीं पुष्पोडुपवहां ततस्तत्र गमिष्यसि ॥३६॥
एष पन्था नरव्याघ्र मुहूर्तं पश्य तात माम् । यावज्जहामि गात्राणि जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥
ततोऽग्निं स समाधाय हुत्वा चाज्येन मन्त्रवत् । शरभङ्गो महातेजाः प्रविवेश हुताशनम् ॥३८॥
तस्य रोमाणि केशाश्च तदा वह्निर्महात्मनः । जीर्णां त्वचं तदस्थीनि यच्च मांसं च शोणितम्॥
स च पावकसंकाशः कुमारः समपद्यत । उत्थायाग्निचयात्तस्माच्छरभंगो व्यरोचत ॥४०॥
स लोकानाहिताग्नीनामृषीणां च महात्मनाम्। देवानां च व्यतिक्रम्य ब्रह्मलोकं व्यरोहत ॥४१॥

पूछा और मुनिने वह सब बतलाया ॥ २७ ॥ राम, वर देनेवाले ये इन्द्र मुझे ब्रह्मलोकमें ले जाना चाहते हैं, क्योंकि मैंने अपनी उग्र तपस्यासे उसे प्राप्त किया है, जो जितेन्द्रिय नहीं हैं, उनके लिये वह दुष्प्राप्य है ॥ २८ ॥ हे नरश्रेष्ठ, जब मुझे मालूम हुआ कि तुम मेरे प्रिय अतिथि यहांसे थोड़ीही दूरपर हो तब मैंने निश्चय किया कि तुमको बिना देखे मैं न जाऊँगा ॥ २९ ॥ धार्मिक और महात्मा तुमसे मिलकर ही देवताओंके सेवित ब्रह्मलोकमें जाऊँगा ॥ ३० ॥ हे नरश्रेष्ठ, अक्षय ब्रह्मलोक तथा स्वर्गलोक मैंने जीत लिया है अर्थात् उनमें जानेका अधिकार पा लिया है। ये शुभलोक मैं तुम्हें अर्पित करता हूँ, तुम इन्हें ग्रहण करो ॥ ३१ ॥ सर्वशास्त्रविशारद रामचन्द्र ऋषि शरभङ्गके ऐसा कहनेपर बोले ॥ ३२ ॥ महामुनि, मैंही आपको ये सब लोक देता हूँ अर्थात् जो लोक आपने मुझे दिये हैं वे आपको पुनः प्रत्यर्पित करता हूँ। मैं तो आपके बतलाये स्थानमें इस वनमें रहना चाहता हूँ ॥ ३३ ॥ इन्द्रके समान बली रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर महाप्राज्ञ शरभङ्गमुनि पुनः बोले ॥ ३४ ॥ राम, इस वनमें सुतीक्ष्ण नामक महातेजस्वी ब्रह्मचारी धार्मिक रहते हैं, वे तुम्हारा कल्याण करेंगे अर्थात् तुम्हारे रहने आदिका प्रबन्ध कर देंगे ॥ ३५ ॥ तुम इस पश्चिमकी ओर बहने-वाली और क्षीणधारा मन्दाकिनी नदीके तीरसे जाओ, तब वहाँ पहुँचोगे ॥ ३६ ॥ तात, यही वहाँका मार्ग है, पर थोड़ी देर तक मुझे देख लो, जबतक मैं शरीरत्याग करता हूँ, जिस प्रकार साँप अपनी पुरानी चाम छोड़ देता है ॥ ३७ ॥ तदनन्तर शरभङ्गने अग्निकी स्थापना की, उसमें मन्त्रपूर्वक घृताहुति दी, पुनः महातेजस्वी शरभङ्गने उस अग्निमें प्रवेश किया ॥ ३८ ॥ महात्मा शरभङ्गके रोम, केश, पुरानी चाम, हड्डी, मांस और शोणित जो कुछ था उसे जला दिया ॥ ३९ ॥ उस अग्निराशिसे निकलकर शरभङ्ग अग्निके समान तेजस्वी कुमार हो गये और वे शोभित होने लगे ॥ ४० ॥ वे अग्नि-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स पुण्यकर्मा भुवने द्विजर्षभः पितामहं सानुचरं ददर्श ह ।
पितामहश्चापि समीक्ष्य ते द्विजे ननन्द सुस्वागतमित्युवाच ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

——:o:——

षष्ठः सर्गः ६

शरभङ्गे दिवं प्राप्ते मुनिसंघाः समागताः । अभ्यगच्छन्त काकुत्स्थं रामं ज्वलिततेजसम् ॥१॥
वैखानसा बालखिल्याः संप्रक्षाला मरीचिपाः । अश्मकुट्टाश्च बहवः पत्राहाराश्च तापसाः ॥ २ ॥
दन्तोलूखलिनश्चैव तथैवोन्मज्जकाः परे । गात्रशय्या अशय्याश्च तथैवानवकाशिकाः ॥ ३ ॥
मुनयः सलिलाहारा वायुभक्षास्तथापरे । आकाशनिलयाश्चैव तथा स्थण्डिलशायिनः॥ ४ ॥
तथोर्ध्ववासिनो दान्तास्तथार्द्रपटवाससः । सजपाश्च तपोनिष्ठास्तथा पञ्चतपोन्विताः ॥ ५ ॥
सर्वे ब्राह्म्या श्रिया युक्ता दृढयोगसमाहिताः । शरभङ्गाश्रमे राममभिजग्मुश्च तापसाः ॥ ६ ॥

होत्रियों, महात्मा ऋषियों तथा देवताओंके लोकको अतिक्रमण करके ब्रह्मलोकमें गये ॥ ४१ ॥ उस पुण्यकर्मा ब्राह्मणश्रेष्ठने ब्रह्मलोकमें अपने पार्षदोंके साथ ब्रह्माको देखा । उन ब्राह्मणको देखकर ब्रह्मा भी प्रसन्न हुए और उन्होंने उनका स्वागत किया ॥ ४२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका पाँचवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५ ॥

——:o:——

शरभंग मुनिके स्वर्ग चले जानेपर दण्डकारण्यवासी मुनियोंका समूह एकत्र होकर अति तेजस्वी काकुत्स्थ रामचन्द्रके समीप आया ॥ १ ॥ वैखानस, बालखिल्य (सदा बाल्यावस्थामें रहनेवाले), संप्रक्षाल (सदा स्नान करनेवाले), मरीचिप (चन्द्रमा और सूर्यकी किरणें पीनेवाले), अश्मकुट्ट (पत्थरसे अपने शरीर कूटनेवाले), पत्राहार (पत्ते खाकर जीनेवाले), तपस्वी, दन्तोलूखली (केवल दांतहीसे ऊखलका कामलेनेवाले), उन्मज्जक (गलेभर जलमें रहकर तपस्या करनेवाले), गात्रशय्य (बैठेहीबैठे सोनेवाले), अशय्य (सदा खड़े रहनेवाले), अभ्रावकाशक (सदा आकाशके नीचे रहनेवाले), सलिलाहार (जलपीकर रहनेवाले), वायुभक्ष (हवा पीकर रहनेवाले), आकाशनिलय (पेड़ आदिके ऊपर रहनेवाले), स्थण्डिलशायी (चौतरेपर सोनेवाले), ऊर्ध्ववासी (पर्वत शिखरपर रहनेवाले), दान्त (मनको अधीन रखनेवाले), आर्द्रपटवासी (सदा भीगे वस्त्र पहननेवाले), सजय (सदा जय करनेवाले), तपोनिष्ठ (सदा वेदपाठ करनेवाले) और पञ्चाग्नि तप करनेवाले सभी शरभंगके आश्रममें रामचन्द्रके पास गये, ये सभी ब्राह्मी शोभासे युक्त थे, और उनका मन योगसे एकाग्र था ॥ २-३-४-५-६ ॥ आयाहुआ वह धर्मज्ञ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अभिगम्य च धर्मज्ञा रामं धर्मभृतां वरम् । ऊचुः परमधर्मज्ञमृषिसंघाः समागताः ॥ ७ ॥
त्वमिक्ष्वाकुकुलस्यास्य पृथिव्याश्च महारथः । प्रधानश्चापि नाथश्च देवानां मघवानिव ॥ ८ ॥
विश्रुतस्त्रिषु लोकेषु यशसा विक्रमेण च । पितृव्रतत्वं सत्यं च त्वयि धर्मश्च पुष्कलः ॥ ९ ॥
त्वामासाद्य महात्मानं धर्मज्ञं धर्मवत्सलम् । अर्थित्वान्नाथ वक्ष्यामस्तच्च नः क्षन्तुमर्हसि ॥१०॥
अधर्मः सुमहान्नाथ भवेत्तस्य तु भूपतेः । यो हरेद्बलिषड्भागं न च रक्षति पुत्रवत् ॥११॥
युञ्जानः स्वानिव प्राणान्प्राणैरिष्टान्सुतानिव । नित्ययुक्तः सदा रक्षन्सर्वान्विषयवासिनः ॥१२॥
प्राप्नोति शाश्वतीं राम कीर्तिं स बहुवार्षिकीम् । ब्रह्मणः स्थानमासाद्य तत्र चापि महीयते ॥१३॥
यत्करोति परं धर्मं मुनिर्मूलफलाशनः । तत्र राज्ञाश्चतुर्भागः प्रजा धर्मेण रक्षतः ॥१४॥
सोऽयं ब्राह्मणभूयिष्ठो वानप्रस्थगणो महान् । त्वं नाथोऽनाथवद्राम राक्षसैर्हन्यते भृशम् ॥१५॥
एहि पश्य शरीराणि मुनीनां भावितात्मनाम् । हतानां राक्षसैर्घोरैर्बहूनां बहुधा वने ॥१६॥
पम्पानदीनिवासानामनुमन्दाकिनीमपि । चित्रकूटालयानां च क्रियते कदनं महत् ॥१७॥
एवं वयं न मृष्यामो विप्रकारं तपस्विनाम् । क्रियमाणं वने घोरं रक्षोभिर्भीमकर्मभिः ॥१८॥
ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः । परिपालय नो राम वध्यमानान्निशाचरैः ॥१९॥

ऋषिसमूह धार्मिकश्रेष्ठ और परम धर्मज्ञ रामचन्द्रसे इस प्रकार बोला ॥ ७ ॥ आप इक्ष्वाकुकुल तथा इस पृथिवीके प्रधान और स्वामी हैं, जिस प्रकार इन्द्र देवताओंका स्वामी है ॥ ८ ॥ यश और पराक्रमसे आप तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं। आपमें पिताकी आज्ञाका पालन करना और धर्म दोनों वर्तमान हैं और यथेष्ट धर्मभी आपमें वर्तमान हैं ॥ ९ ॥ धर्मप्रेमी धर्मज्ञ आप महात्माको पाकर हमलोग अर्थी होकर कुछ कहना चाहते हैं, आप हमलोगोंके इस अपराधको क्षमा करेंगे॥१०॥ नाथ, उस राजाको बड़ाभारी अधर्म होता है जो अपना कर तो लेले, पर प्रजाका पालन पुत्रके समान न करे ॥ ११ ॥ जो राजा प्रजाकी रक्षाके लिए सदा प्रयत्न करता है और अपने समस्त देशवासियोंको अपने प्राणोंके समान तथा प्राणोंसेभी बढ़कर पुत्रके समान सदा सावधान होकर रक्षा करता है ॥ १२ ॥ वह राजा इस लोकमें बहुत काल तक स्थायी कीर्ति पाता है तथा अन्तमें ब्रह्मलोक पाता है तथा वह ब्रह्माके साथ पूजित होता है ॥ १३ ॥ मुनि फलमूल खाकर जो धर्माचरण करता है, धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा करने वाले राजाको उसका चौथा भाग मिलता है ॥१४॥ राम, यह वानप्रस्थों का गण, जिसमें ब्राह्मणोंकीही संख्या अधिक है और जिसके आप स्वामी हैं, राक्षसोंके द्वारा बहुत अधिक मरा जाता है ॥ १५ ॥ रामचन्द्र आइए, यह अनेक ब्रह्मज्ञानियोंके शरीर देखिये जो क्रूर राक्षसोंके द्वारा अनेक प्रकारसे मारे गये हैं ॥ १६ ॥ पम्पाके पास रहनेवाले मन्दाकिनीके पास रहनेवाले तथा चित्रकूटपर रहनेवाले मुनियोंका बहुत विनाश होता है ॥ १७ ॥ क्रूरकर्मा रक्षसोंके द्वारा इस प्रकार मुनियोंका विनाश होना हमलोग अब सह नहीं सकते ॥ १८ ॥ इसी कारण शरणमें आए हुओंकी रक्षा करनेवाले आपकी शरण हम लोग आये हैं। हमलोग निशाचरोंसे मारे जारहे हैं, आप हमारी रक्षा करें ॥ १९ ॥ आपसे बढ़कर इस पृथिवीमें दूसरा रक्षक हमलोगोंको दिखायी नहीं पड़ता, अतएव हे राजकुमार, इन राक्षसोंसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परा त्वत्तो गतिर्वीर पृथिव्यां नोपपद्यते । परिपालय नः सर्वान्राक्षसेभ्यो नृपात्मज ॥२०॥
एतच्छ्रुत्वा तु काकुत्स्थस्तापसानां तपस्विनाम् । इदं प्रोवाच धर्मात्मा सर्वानेव तपस्विनः ॥२१॥
नैवमर्हथ मां वक्तुमाज्ञाप्योऽहं तपस्विनाम् । केवलेन स्वकार्येण प्रवेष्टव्यं वनं मया ॥२२॥
विप्रकारमपाकर्ष्टुं राक्षसैर्भवतामिमम् । पितुस्तु निर्देशकरः प्रविष्टोऽहमिदं नम् ॥२३॥
भवतामर्थसिद्ध्यर्थमागतोऽहं यदृच्छया । तस्य मेऽयं वने वासो भविष्यति महाफलः॥२४॥
तपस्विनां रणे शत्रून्हन्तुमिच्छामि राक्षसान् । पश्यन्तु वीर्यमृषयः सभ्रातुर्मे तपोधनाः ॥२५॥
दत्त्वा वरं चापि तपोधनानां धर्मे धृतात्मा सह लक्ष्मणेन ।
तपोधनैश्चापि सहार्यदत्तः सुतीक्ष्णमेवाभिजगाम वीरः ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

—:o:—

सप्तमः सर्गः ७

रामस्तु सहितो भ्रात्रा सीतया च परंतपः । सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं जगाम सह तैर्द्विजैः ॥ १ ॥
स गत्वा दूरमध्वानं नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः । ददर्श विमलं शैलं महामेरुमिवोन्नतम् ॥ २ ॥

आप हमलोगों की रक्षा करें ॥ २० ॥ तपस्वी ऋषियोंकी यह बात सुनकर धर्मात्मा रामचन्द्र उन समस्त तपस्वियोंसे इस प्रकार बोले ॥ २१ ॥ आप सब ऋषियोंको अपने कार्यके लिये मुझे आज्ञा देनी चाहिये थी, क्योंकि मैं आपलोगोंका आज्ञापालक हूँ, आपलोगोंको इस प्रकार मुझसे प्रार्थना नहीं करनी चाहिए । राक्षसलोग जो मुनियोंको दुःख दे रहे हैं, उनका वध कर रहे हैं, वही दूर करनेके लिये मैं पिताकी आज्ञासे वनमें आयाहूँ ॥ २२ ॥ २३ ॥ आप लोगोंकी अर्थ-सिद्धिके लिए मैं यहां आपलोगोंके पासभी आगया, अब इस वनमें मेरे रहनेसे बड़े लाभ होंगे ॥ २४ ॥ मैं तपस्वियोंके शत्रु राक्षसोंको युद्धमें मारना चाहताहूँ, तपस्वीलोग मेरा और मेरे भाईका पराक्रम देखें ॥ २५ ॥ धर्मात्मा रामचन्द्र तपस्वियोंको इस प्रकार वर देकर लक्ष्मण और तपस्वियोंके साथ गोदान करनेवाले वीर रामचन्द्र सुतीक्ष्णके पास गये ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका छठां सर्ग समाप्त ॥ ६ ॥

—:o:—

परन्तप रामचन्द्र, भाई लक्ष्मण, सीता और उन ब्राह्मणोंके साथ सुतीक्ष्णके आश्रममें गए ॥१॥ बहुत दूर जाकर तथा बहुत जलवाली नदी पारकर रामचन्द्रने एक सुन्दर पर्वत देखा, जो मेरुके समान ऊँचा था ॥ २ ॥ इक्ष्वाकुश्रेष्ठ राम और लक्ष्मण सीताके साथ उस वनमें गए । उसमें अनेक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततस्तदिक्ष्वाकुवरौ सततं विविधैर्द्रुमैः । काननं तौ विविशतुः सीतया सह राघवौ ॥ ३ ॥
प्रविष्टस्तु वनं घोरं बहुपुष्पफलद्रुमम् । ददर्शाश्रममेकान्ते चीरमालापरिष्कृतम् ॥ ४ ॥
तत्र तापसमासीनं मलपङ्कजधारिणम् । रामः सुतीक्ष्णं विधिवत्तपोधनमभाषत ॥ ५ ॥
रामोऽहमस्मि भगवन्भवन्तं द्रष्टुमागतः । तन्माभिवद धर्मज्ञ महर्षे सत्यविक्रम ॥ ६ ॥
स निरीक्ष्य ततो धीरो रामं धर्मभृतां वरम् । समाश्लिष्य च बहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥
स्वागतं ते रघुश्रेष्ठ राम सत्यभृतां वर । आश्रमोऽयं त्वयाक्रान्तः सनाथ इव साम्प्रतम् ॥८॥
प्रतीक्षमाणस्त्वामेव नारोहेऽहं महायशः । देवलोकमितो वीर देहं त्यक्त्वा महीतले ॥ ९ ॥
चित्रकूटमुपादाय राज्यभ्रष्टोऽसि मे श्रुतः । इहोपयातः काकुत्स्थ देवराजः शतक्रतुः ॥१०॥
उपागम्य च मे देवो महादेवः सुरेश्वरः । सर्वाँल्लोकाञ्जितानाह मम पुण्येन कर्मणा ॥११॥
तेषु देवर्षिजुष्टेषु जितेषु तपसा मया । मत्प्रसादात्सभार्यस्त्वं विहरस्व सलक्ष्मणः ॥१२॥
तमुग्रतपसं दीप्तं महर्षिं सत्यवादिनम् । प्रत्युवाचात्मवान्रामो ब्रह्माणमिव वासवः ॥१३॥
अहमेवाहरिष्यामि स्वयं लोकान्महामुने । आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने ॥१४॥
भवान्सर्वत्र कुशलः सर्वभूतहिते रतः । आख्यातं शरभंगेन गौतमेन महात्मना ॥१५॥
एवमुक्तस्तु रामेण महर्षिर्लोकविश्रुतः । अब्रवीन्मधुरं वाक्यं हर्षेण महता युतः ॥१६॥

प्रकारके वृक्ष थे ॥३॥ रामचन्द्र उस वनमें गये, उसमें फूलवाले अनेक वृक्ष थे, उस वनमें रामचन्द्रने एकान्तमें एक आश्रम देखा, जिसमें कपड़ेके टुकड़े फैले हुए थे ॥ ४ ॥ उस आश्रममें अपने पापोंको दूर करनेके लिये पङ्कजासनपर बैठे हुए तपस्वी सुतीक्ष्णके पास जाकर रामचन्द्र विधिवत् उनसे बोले ॥ ५ ॥ भगवन्, मैं रामचन्द्र हूँ, आपको देखनेकेलिये आया हूँ, आप मुझसे बोलिए, महर्षे, आप धर्मज्ञ हैं और आपकी तपस्याका प्रभाव अमोघ है ॥ ६ ॥ धार्मिकश्रेष्ठ रामचन्द्रको देखकर धीर सुतीक्ष्णने उनका अपनी बाहुओंसे आलिङ्गन किया और वे उनसे ऐसा बोले ॥ ७ ॥ हे रघुश्रेष्ठ और सत्यवादियोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्र, आपका स्वागत है, आप इस आश्रममें आये इससे यह इस समय सनाथ हो गया ॥ ८ ॥ महायशस्वी, आपके आगमनकी प्रतीक्षा करता हुआ मैं भूतलमें शरीर छोड़कर अभीतक ब्रह्मलोकमें नहीं गया हूँ ॥ ९ ॥ राजभ्रष्ट होकर जब आप चित्रकूट आये, तभी मैंने आपका आना सुना था । हे काकुत्स्थ, देवराज इन्द्र यहाँ मेरे आश्रममें आये थे ॥ १० ॥ महादेव देवराजने आकर हमसे कहा है कि मैं अपने पुण्यकर्मों से सब लोकोंका अधिकारी हो गया हूँ ॥ ११ ॥ तपस्यासे मैंने जिन लोकोंको जीता है तथा जिन लोकोंमें देवता और ऋषि रहते हैं, रामचन्द्र, मैं प्रसन्नतापूर्वक आपसे कहता हूँ कि आप उन लोकोंमें सीता और लक्ष्मणके साथ विहार करें ॥ १२ ॥ उन उग्रतपस्वी सत्यवादी दीप्तिमान् महर्षिसे रामचन्द्र बोले, जिस प्रकार ब्रह्मा इन्द्रसे बोलते हैं ॥ १३ ॥ मुने, मैंही आपको वे लोक देता हूँ, जो आपने मुझे दिये हैं अर्थात् आपके पुण्यार्जित लोकोंको मैं नहीं चाहता, मैं तो आपकी आज्ञासे इस वनमें निवास करना चाहता हूँ ॥ १४ ॥ महात्मा गौतम शरभङ्गने मुझसे कहा है कि आप सब प्राणियोंके कल्याण करनेवाले हैं और सब विषयोंमें निपुण हैं ॥ १५ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर लोकप्रसिद्ध

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अयमेवाश्रमो राम गुणवान्रम्यतामिति । ऋषिसङ्घानुचरितः सदा मूलफलैर्युतः ॥१७॥
इममाश्रममागम्य मृगसङ्घा महीयसः । अहत्वा प्रतिगच्छन्ति लोभयित्वा कुतोभयाः १८
नान्यो दोषो भवेदत्र मृगेभ्योऽन्यत्र विद्धि वै । तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य महर्षेर्लक्ष्मणाग्रजः ॥१९॥
उवाच वचनं धीरो विगृह्य सशरं धनुः । तानहं सुमहाभाग मृगसङ्घान्समागतान् ॥२०॥
हन्यां निशितधारेण शरेणानतपर्वणा । भवांस्तत्राभिषज्येत किं स्यात्कृच्छ्रतरं ततः ॥२१॥
एतस्मिन्नाश्रमे वासं चिरं तु न समर्थये । तमेवमुक्त्वोपरतं रामः संध्यामुपागमत् ॥२२॥
अन्वास्य पश्चिमां संध्यां तत्र वासमकल्पयत् । सुतीक्ष्णस्याश्रमे रम्ये सीतया लक्ष्मणेन च ॥२३॥

ततः शुभं तापसयोग्यमन्नं स्वयं सुतीक्ष्णः पुरुषर्षभाभ्याम् ।
ताभ्यां सुसत्कृत्य ददौ महात्मा संध्यानिवृत्तौ रजनीं समीक्ष्य ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

——:o:——

अष्टमः सर्गः ८

रामस्तु सहसौमित्रिः सुतीक्ष्णेनाभिपूजितः । परिणाम्य निशां तत्र प्रभाते प्रत्यबुध्यत ॥ १ ॥
उत्थाय च यथाकालं राघवः सह सीतया । उपस्पृश्य सुशीतेन तोयेनोत्पलगन्धिना ॥ २ ॥

महर्षि बड़े हर्षसे यह मधुर वचन रामचन्द्रसे बोले ॥ १६ ॥ रामचद्र, आप इसी आश्रममें निवास करें, क्योंकि यहाँ सब प्रकारकी सुविधा है, यहाँ आसपास अनेक ऋषियोंका निवास है और यहाँ सदा मूल फल प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ बड़े-बड़े और किसीसे न डरनेवाले मृगा इस आश्रममें आते हैं, वे किसीको मारते नहीं, केवल ऋषियोंको लोभित करके चले जाते हैं ॥ १८ ॥ मृगोंके उपद्रवको छोड़कर और कोई उपद्रव इस आश्रम में नहीं है। उन महर्षिके ये वचन सुनकर लक्ष्मणके बड़े भाई रामचन्द्र उनसे बोले ॥ १९ ॥ अपना धनुषबाण उठाकर रामचन्द्रने कहा, महाभाग, उन आये हुये मृगोंको मैं अपने तीखे बाणोंसे मारूँगा। पर उन आश्रममृगोंको मारना आपकेलिये बड़े कष्टकी बात होगी, और उससे बढ़कर हमारे लिये और कष्ट क्या होगा ? ॥२०॥२१॥ अतएव इस आश्रममें सदा रहना मुझे पसन्द नहीं। मुनिसे ऐसा कहकर रामचन्द्र चुप हुए और सन्ध्या करने चले गये ॥ २२ ॥ सायङ्कालकी सन्ध्या करके रामचन्द्रने सुतीक्ष्णके उस रमणीय आश्रममें सीता और लक्ष्मणके साथ निवास किया ॥ २३ ॥ सन्ध्या बीत गयी, रात हुई, यह जानकर सुतीक्ष्णने तपस्वियोंके खानेयोग्य अन्न उन पुरुषश्रेष्ठ राम और लक्ष्मणको सत्कारपूर्वक दिया ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका सातवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

——:o:——

सुतीक्ष्णके द्वारा सत्कृत होकर राम और लक्ष्मणने वह रात वहीं बितायी और प्रातःकाल वे उठे ॥ १ ॥ प्रातःकाल सीताके साथ उठकर रामचन्द्रने कमलगन्धवाले ठंढे जलसे स्नान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ तेऽग्निं सुरांश्चैव वैदेही रामलक्ष्मणौ । काल्यं विधिवदभ्यर्च्य तपस्विशरणे वने ॥ ३ ॥
उदयन्तं दिनकरं दृष्ट्वा विगतकल्मषाः । सुतीक्ष्णमभिगम्येदं श्लक्ष्णं वचनमब्रुवन् ॥ ४ ॥
सुखोषितः स्म भगवंस्त्वया पूज्येन पूजिताः । आपृच्छामः मयास्यामो मुनयस्त्वरयन्ति नः ॥५॥
त्वरामहे वयं द्रष्टुं कृत्स्नमाश्रममण्डलम् । ऋषीणां पुण्यशीलानां दण्डकारण्यवासिनाम् ६
अभ्यनुज्ञातुमिच्छामः सहैभिर्मुनिपुंगवैः । धर्मनित्यैस्तपोदान्तैर्विशिखैरिव पावकैः ॥ ७ ॥
अविषह्यातपो यावत्सूर्यो नातिविराजते । अमार्गेणागतां लक्ष्मीं प्राप्येवान्वयवर्जितः ॥ ८ ॥
तावदिच्छामहे गन्तुमित्युक्त्वा चरणौ मुने । ववन्दे सहसौमित्रिः सीतया सह राघवः ॥ ९ ॥
तौ संस्पृशन्तौ चरणावुत्थाप्य मुनिपुंगवः । गाढमाश्लिष्य सस्नेहमिदं वचनमब्रवीत् ॥१०॥
अरिष्टं गच्छ पन्थानं राम सौमित्रिणा सह । सीतया चानया सार्धं छाययेवानुवृत्तया ॥११॥
पश्याश्रमपदं रम्यं दण्डकारण्यवासिनाम् । एषां तपस्विनां वीर तपसा भावितात्मनाम् ॥१२॥
सुप्राज्यफलमूलानि पुष्पितानि वनानि च । प्रशस्तमृगयूथानि शान्तपक्षिगणानि च ॥१३॥
फुल्लपङ्कजखण्डानि प्रसन्नसलिलानि च । कारण्डवविकीर्णानि तटाकानि सरांसि च ॥१४॥
द्रक्ष्यसे दृष्टिरम्याणि गिरिप्रस्रवणानि च । रमणीयान्यरण्यानि मयूराभिरुतानि च ॥१५॥
गम्यतां वत्स सौमित्रे भवानपि च गच्छतु । आगन्तव्यं च ते दृष्ट्वा पुनरेवाश्रमं प्रति ॥१६॥

किया ॥ २ ॥ राम, लक्ष्मण और सीताने विधिपूर्वक वहां तपस्वीके आश्रममें अग्नि और देवताओंकी पूजा की ॥ ३ ॥ उदय होते हुए सूर्यको देखकर वे पापरहित हुए, पुनः सुतीक्ष्णके पास जाकर उनसे ऐसा मधुर वचन बोले ॥ ४ ॥ भगवन्, पूजनीय आपके द्वारा सत्कृत होकर हमलोगोंने सुखपूर्वक निवास किया, अब आपकी आज्ञा चाहते हैं, हमलोग जाना चाहते हैं, मुनिगण शीघ्रता करनेके लिये कह गये हैं ॥ ५ ॥ दण्डकारण्यमें रहनेवाले समस्त पुण्यात्मा ऋषियोंके आश्रम देखनेके लिये हम लोगभी शीघ्रता करना चाहते हैं ॥ ६ ॥ नित्य धर्माचरण करनेवाले, जितेन्द्रिय तथा ज्वालाहीन अग्निके समान इन मुनियोंके साथ हमलोग आज्ञा चाहते हैं ॥ ७ ॥ अन्यायसे अर्जित लक्ष्मी पाकर दुष्कुलीन मनुष्यके समान जबतक सूर्यका तेज असहनीय न होजाय ॥ ८ ॥ तभी तक मैं यहांसे चला जाना चाहता हूँ, ऐसा कहकर रामचन्द्रने लक्ष्मण और सीताके साथ मुनिकी चरणवन्दना की ॥ ९ ॥ चरण स्पर्श करते हुए उनको मुनिने उठाया और उनका गाढ आलिङ्गन करके वे उनसे स्नेहपूर्वक बोले ॥ १० ॥ छायाके समान तुम्हारा अनुवर्तन करनेवाली इस सीताके साथ तथा लक्ष्मणके साथ तुम निर्विघ्नतापूर्वक जाओ ॥ ११ ॥ दण्डकारण्यमें रहनेवाले उन तपस्वियोंको जिन्होंने तपस्याके द्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया है तथा उनके रमणीय आश्रम देखनेके लिये तुम जाओ ॥ १२ ॥ प्रचुर फलमूलवाले और पुष्पित वनको तुम देखोगे, जिन वनोंमें निर्दोष मृगसमूह है, जहांके पक्षी शान्त हैं ॥ १३ ॥ जिनमें कमलवन खिला है, जिनके जल सुन्दर है, जिनमें जलमुर्गे फैले हुए हैं ऐसे तालाब तुम देखोगे ॥ १४ ॥ आंखोंको सुन्दर मालूम होनेवाले पर्वतोंके झरने तुम देखोगे और रमणीय वनप्रदेश देखोगे, जहां मयूर बोलते होंगे ॥ १५ ॥ जाओ, वत्स लक्ष्मण, तुमभी जाओ और उन आश्रमोंको देखकर तुम पुनः इसी आश्रममें चले आओ ॥१६॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः । प्रदक्षिणं मुनिं कृत्वा प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥१७॥
ततः शुभतरे तूणी धनुषी चायतेक्षणा । ददौ सीता तयोर्भ्रात्रोः खड्गौ च विमलौ ततः ॥१८॥
आबध्य च शुभे तूणी चापे चादाय सस्वने । निष्क्रान्तावाश्रमाद्गन्तुमुभौ तौ रामलक्ष्मणौ ॥१९॥
शीघ्रं तौ रूपसंपन्नावनुज्ञातौ महर्षिणा । प्रस्थितौ धृतचापासी सीतया सह राघवौ ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

——:o:——

नवमः सर्गः ९

सुतीक्ष्णेनाभ्यनुज्ञातं प्रस्थितं रघुनन्दनम् । हृद्यया स्निग्धया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
अधर्मं तु सुसूक्ष्मेण विधिनाप्राप्यते महान् । निवृत्तेन च शक्योऽयं व्यसनात्कामजादिह ॥ २ ॥
त्रीण्येव व्यसनान्यत्र कामजानि भवन्त्युत । मिथ्यावाक्यं तु परमं तस्माद्गुरुतरावुभौ ॥ ३ ॥
परदाराभिगमनं विना वैरं च रौद्रता । मिथ्यावाक्यं न ते भूतं न भविष्यति राघव ॥ ४ ॥
कुतोऽभिलषणं स्त्रीणां परेषां धर्मनाशनम् । तव नास्ति मनुष्येन्द्र न चाभूत्ते कदाचन ॥ ५ ॥
मनस्यपि तथा राम न चैतद्विद्यते क्वचित् । स्वदारनिरतश्चैव नित्यमेव नृपात्मज ॥ ६ ॥

महर्षिकी बातें स्वीकार करके रामचन्द्र और लक्ष्मणने मुनिकी प्रदक्षिणा की तथा वहांसे चलनेके लिए तयार हुए ॥ १७ ॥ तब विशालाक्षी सीताने सुन्दर दो तूणीर (बाणरखनेके तरकस) दो धनुष तथा चमकीली दो तलवार उन दोनों भाइयोंको दी ॥ १८ ॥ तूणीर बांधकर तथा टंकार करनेवाले धनुष लेकर वे दोनो भाई राम और लक्ष्मण जानेके लिये आश्रमसे निकले ॥ १९ ॥ सुन्दर राम और लक्ष्मण महर्षिकी आज्ञा पाकर धनुष और तलवार लेकर सीताके साथ चले ॥२०॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका आठवां सर्ग समाप्त ॥ ८ ॥

——:o:——

सुतीक्ष्णकी आज्ञा लेकर वन जाते हुए अपने पति रामचन्द्रसे सीता मनोहर और मधुर वाणीसे बोलीं ॥ १ ॥ आप महापुरुष हैं, पर सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर अवश्यही आप अधर्म-भागी होंगे (इस लिएकि आपने मृगोंको मारनेकी प्रतिज्ञा की है), पर इस इच्छापूर्वक किये जानेवाले पापसे निवृत्त होकरही आप अधर्मसे बच सकते हैं ॥ २ ॥ इच्छासे उत्पन्न होनेवाले तीनही पाप मनुष्यको होते हैं, मिथ्यावचन पहलाहै, यह सब पापोंसे बड़ाहै, परवे दोनों (जो आगे कहे जांयगे) इससेभी बड़े हैं ॥ ३ ॥ परस्त्रीसंसर्ग और बिना विरोधके क्रूरकर्म करना। रामचन्द्र, आपके वचन न तो कभी झूठे हुए हैं और न होंगे ॥ ४ ॥ धर्मनाशक परस्त्री-संसर्गकी तो आपने अभिलाषा भी नहीं की, हे मनुष्यश्रेष्ठ, यह भाव तुममें इस समय नहीं है और पहले भी कभी न था ॥ ५ ॥ आपके मनमेंही यह भाव नहीं है, आप स्वयम् निरत हैं, केवल अपनी स्त्रीसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धर्मिष्ठः सत्यसंधश्च पितुर्निर्देशकारकः । त्वयि धर्मश्च सत्यं च त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्॥७॥
तच्च सर्वं महाबाहो शक्यं वोढुं जितेन्द्रियैः । तव वश्येन्द्रियत्वं च भूतानां शुभदर्शन ॥ ८ ॥
तृतीयं यदिदं रौद्रं परप्राणाभिहिंसनम् । निर्वैरं क्रियते मोहात्तच्च ते समुपस्थितम् ॥ ९ ॥
प्रतिज्ञातस्त्वया वीर दण्डकारण्यवासिनाम् । ऋषीणां रक्षणार्थाय वधः संयति रक्षसाम्॥१०॥
एतन्निमित्तं वचनं दण्डका इति विश्रुतम् । प्रस्थितस्त्वं सह भ्रात्रा धृतबाणशरासनः ॥११॥
ततस्त्वां प्रस्थितं दृष्ट्वा मम चिन्ताकुलं मनः । त्वद्वृत्तं चिन्तयन्त्या वै भवेन्निःश्रेयसं हितम्॥१२॥
नहि मे रोचते वीर गमनं दण्डकान्प्रति । कारणं तत्र वक्ष्यामि वदन्त्याः श्रूयतां मम ॥१३॥
त्वं हि बाणधनुष्पाणिर्भ्रात्रा सह वनं गतः । दृष्ट्वा वनचरान्सर्वान्कचित्कुर्याः शरव्ययम् ॥१४॥
क्षत्रियाणामिह धनुर्हुताशस्येन्धनानि च । समीपतः स्थितं तेजो बलमुच्छ्रयते भृशम् ॥१५॥
पुरा किल महाबाहो तपस्वी सत्यवाञ्शुचिः । कस्मिंश्चिदभवत्पुण्ये वने रतमृगद्विजे ॥१६॥
तस्यैव तपसो विघ्नं कर्तुमिन्द्रः शचीपतिः । खड्गपाणिरथागच्छदाश्रमं भटरूपधृक् ॥१७॥
तस्मिंस्तदाश्रमपदे निहितः खड्ग उत्तमः । स न्यासविधिना दत्तः पुण्ये तपसि तिष्ठतः१८॥
स तच्छस्त्रमनुप्राप्य न्यासरक्षणतत्परः । वने तु विचरत्येव रक्षन्प्रत्ययमात्मनः ॥१९॥

सन्तुष्ट हैं ॥ ६ ॥ आप धर्मनिष्ठ सत्यप्रतिज्ञ और पिताके आज्ञा पालन करनेवाले हैं, इस कारण सर्वाङ्गपूर्ण धर्म और सत्य आपमें प्रतिष्ठित हैं ॥ ७ ॥ महाबली, जितेन्द्रिय पुरुषोंके द्वारा धारण किये जानेवाले वे दोनों गुण आपमें हैं, आप जितेन्द्रियभी हैं; क्योंकि आप प्राणियोंको प्रिय हैं, लोग आपको देखकर प्रसन्न होते हैं इसीसे आपकी जितेन्द्रियता प्रमाणित होती है ॥ ८ ॥ तीसरा पाप जिससे लोग बिना अपराध के दूसरों की हिंसारूप क्रूर कर्म करते हैं, वह मोह अज्ञानसे करते हैं, प्रसङ्गसे वह आपको प्राप्त हुआ है, आपभी निरपराधोंकी हिंसा करना चाहते हैं ॥ ९ ॥ आपने दण्डकारण्यमें रहनेवाले ऋषियोंकी रक्षा करनेके लिये युद्धमें राक्षसोंके वध करनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ १० ॥ दण्डक इस नामसे प्रसिद्ध वनमें भाईके साथ धनुष बाण लेकर आप जा रहे हैं, इसी कारण मैंने आपसे ऐसा कहा ॥ ११ ॥ आपके चरित्रसे मैं परिचित हूँ, आप सत्यप्रतिज्ञ हैं जो राक्षसोंके मारनेकी आपने प्रतिज्ञा की है, वह आप अवश्य पूरी करेंगे, आप वनमें जारहे हैं यह देखकर तथा आपके लौकिक और पारलौकिक कल्याणकी बात सोचकर मेरा मन व्याकुल होरहा है ॥ १२ ॥ वीर, दण्डकवनमें जाना मुझे अच्छा नहीं लगता, उसका कारण मैं कहती हूँ, आप मुझसे सुनें ॥१३॥ धनुष बाण लेकर आप भाईके साथ वनमें जा रहे हैं, वहां सब वनचरोंको देखकर अवश्यही किसीपर बाण छोड़ेंगे ॥ १४ ॥ क्योंकि जिसप्रकार आगके पास लकड़ी रहनेसे उसका बल बढ़ता है, उसी प्रकार क्षत्रियके समीपमें स्थित धनुष उसके तेज और बलको बढ़ाता है ॥ १५ ॥ सुनिये, पहले किसी पवित्र वनमें जहांके पशुपक्षी शान्त थे, वहां एक सत्यवान् नामके पवित्र तपस्वी तपस्या करतेथे ॥ १६ ॥ उनकी तपस्यामें विघ्न करनेके लिये सिपाहीका रूप धरकर इन्द्र तलवार लेकर उनके आश्रममें आये ॥ १७ ॥ इन्द्र वह उत्तम तलवार उस आश्रममें पवित्र तपस्या करने वाले मुनिके यहां थाती रखगये ॥१८॥ वे सत्यवान् उस तलवारको पाकर उस न्यासकी तत्परतासे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यत्र गच्छत्युपादातुं मूलानि फलानि च । न विना याति तं खड्गं न्यासरक्षणतत्परः ॥२०॥
नित्यं शस्त्रं परिवहन्क्रमेण स तपोधनः । चकार रौद्रीं स्वां बुद्धिं त्यक्त्वा तपसि निश्चयम् ॥
ततः स रौद्राभिरतः प्रमत्तोऽधर्मकर्षितः । तस्य शस्त्रस्य संवासाज्जगाम नरकं मुनिः ॥२२॥
एवमेतत्पुरावृत्तं शस्त्रसंयोगकारणम् । अग्निसंयोगवद्धेतुः शस्त्रसंयोग उच्यते ॥२३॥
स्नेहाच्च बहुमानाच्च स्मारये त्वां न शिक्षये । न कथंचन सा कार्या गृहीतधनुषा त्वया ॥२४॥
बुद्धिर्वैरं विना हन्तुं राक्षसान्दण्डकाश्रितान् । अपराधं विना हन्तुं लोको वीर न मंस्यते ॥२५॥
क्षत्रियाणां तु वीराणां वनेषु नियतात्मनाम् । धनुषा कार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम् ॥२६॥
क्व च शस्त्रं क्व च वनं क्व च क्षात्रं तपः क्व च । व्याविद्धमिदमस्माभिर्देशधर्मस्तु पूज्यताम् ॥२७॥
कदर्यकलुषा बुद्धिर्जायते शस्त्रसेवनात् । पुनर्गत्वा त्वयोध्यायां क्षात्रधर्मं चरिष्यसि ॥२८॥
अक्षया तु भवेत्प्रीतिः श्वश्रूश्वशुरयोर्मम । यदि राज्यं हि संन्यस्य भवेस्त्वं निरतो मुनिः २९॥
धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम् । धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत् ॥३०॥
आत्मानं नियमैस्तैस्तैः कर्षयित्वा प्रयत्नतः । प्राप्यते निपुणैर्धर्मो न सुखाल्लभते सुखम् ॥३१॥

रक्षा करने लगे, अपने विश्वासकी रक्षा करनेके लिए तलवार लेकर वनमें भ्रमणभी करने लगे ॥ १९ ॥ मूलफल लेने जहां वे जाते थे, वहीं तलवार लेकर जातेथे, थातीकी रक्षा करनेके लिये विना तलवारके कहींभी नहीं जातेथे ॥ २० ॥ इस प्रकार प्रतिदिन शस्त्र लेकर भ्रमण करनेके कारण उन तपस्वीने अपनी बुद्धिको क्रूर बना लिया और तपस्याकी ओरका उनका प्रेम शिथिल हुआ ॥ २१ ॥ इस प्रकार धीरे-धीरे वे मुनि क्रूर धर्मकी ओर अग्रसर होगये, उनका कर्तव्यज्ञान जाता रहा, उनका धर्म नष्ट होगया, उस शस्त्रके साथ रहनेके कारण मुनि नरकमें गये ॥ २२ ॥ शस्त्रके कारण ऐसी घटना पहले हुईथी, अग्निके संयोगसे जिस प्रकार लकड़ीका नाश होता है, उसी प्रकार शस्त्रोंके संयोगसे मनुष्योंका नाश होता है ॥ २३ ॥ आप पर जो मेरा आदर है तथा आपका जो मेरे प्रति स्नेह है उससे मैं आपको स्मरण कराती हूँ, आपको शिक्षा नहीं देती हूँ, धनुष लेकर अनपराधी प्राणियोंकी हिंसा आप न कीजियेगा ॥ २४ ॥ विना अपराधके दण्डकारण्यमें रहनेवाले राक्षसोंको मारनेकी आप इच्छा न कीजिएगा, क्योंकि वीर, विना अपराधके जोलोग मारते हैं उनकी प्रशंसा नहीं होती ॥ २५ ॥ नियतात्मा वीर क्षत्रियोंका तो वनमें यही प्रयोजन है कि वे पीडितोंकी रक्षा करें ॥ २६ ॥ शस्त्र और वन, क्षत्रियधर्म और तपस्या ये परस्पर विरुद्ध हैं अतएव हमलोगोंको इनका आदर नहीं करना चाहिये ; किन्तु देशधर्म तपोवन धर्मका आदर करना चाहिए ॥ २७ ॥ शस्त्र धारण करनेसे बुद्धि कलुषित होजाती है, उसका विवेक नष्ट होजाता है, अतएव अयोध्यामें चलकर आप क्षत्रियधर्मका अनुष्ठान कीजियेगा ॥ २७ ॥ राज्य त्याग करके वनमें आकर यदि आप मुनिवृत्तिका धारण करें तो इससे हमारे श्वसुर और सासको अक्षय प्रसन्नता होगी ॥ २९ ॥ धर्मसे अर्थ होता है और सुख होता है, धर्महीसे सब मिलता है, धर्महीं इस जगतका प्राण है ॥ ३० ॥ भिन्न-भिन्न नियमोंके पालनसे निपुण मनुष्य धर्मलाभ करते हैं, सुखसे सुख नहीं मिलता ॥ ३१ ॥ अतएव हे सौम्य, शुद्ध बुद्धि होकर इस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नित्यं शुचिमतिः सौम्य चर धर्मं तपोवने । सर्वं तु विदितं तुभ्यं त्रैलोक्यामपि तत्त्वतः ॥३२॥
स्त्रीचापलादेतदुपाहृतं मे धर्मं च वक्तुं तव कः समर्थः ।
विचार्य बुद्ध्या तु सहानुजेन यद्रोचते तत्कुरु माचिरेण ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

——:०:——

दशमः सर्गः १०

वाक्यमेतत्तु वैदेह्या व्याहृतं भर्तृभक्तया । श्रुत्वा धर्मे स्थितो रामः प्रत्युवाचाथ जानकीम् ॥१॥
हितमुक्तं त्वया देवि स्निग्धया सदृशं वचः । कुलं व्यपदिशन्त्या च धर्मज्ञे जनकात्मजे ॥२॥
किं नु वक्ष्याम्यहं देवि त्वयैवोक्तमिदं वचः । क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति ॥३॥
ते चार्ता दण्डकारण्ये मुनयः संशितव्रताः । मां सीते स्वयमागम्य शरण्यं शरणं गताः ॥४॥
वसन्तः कालकालेषु वने मूलफलाशनाः । न लभन्ते सुखं भीरु राक्षसैः क्रूरकर्मभिः ॥५॥
भक्ष्यन्ते राक्षसैर्भीमैर्नरमांसोपजीविभिः । ते भक्ष्यमाणा मुनयो दण्डकारण्यवासिनः ॥६॥
अस्मानभ्यवपद्यैते मामूचुर्द्विजसत्तमाः । मया तु वचनं श्रुत्वा तेषामेवं मुखाच्च्युतम् ॥७॥

तपोवनमें आप धर्मानुष्ठान करें । आपको तो सब मालूम है, त्रिलोकमें जो पुरुषार्थ है उसका रहस्य आपको मालूम है ॥ ३२ ॥ स्त्रीकी स्वाभाविक चञ्चलताके कारण मैने आपसे ऐसा कहा है, नहींतो आपको धर्मोपदेश देनेकी किसकी शक्ति है । अपने भाईके साथ बुद्धिपूर्वक विचार करके जो आपको अच्छा लगे वह कीजिए विलम्ब मत कीजिए ॥ ३३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका नवां सर्ग समाप्त ॥ ९ ॥

——:०:——

पतिमें भक्ति रखनेवाली सीताके कहे इन वचनोंको सुनकर धर्मात्मा रामने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया ॥ १ ॥ देवि, तुमने मुझे मेरा हित बतलाया, मुझमें स्नेह रखनेवाली तुम्हारे लिए यही उचितभी है और राजा जनककी कन्याके लिए कुल धर्मका उपदेश करनाभी उचितहै, उसमें तुमतो धर्म जाननेवाली हो ॥ २ ॥ देवि, मैं उत्तर क्या दूं, तुमनेही कहाहै क्षत्रिय इसलिए धनुष धारण करतेहैं कि कोई दुःखी पुकार न करे अर्थात् दुःखीका दुःख दूर किया जाय ॥ ३ ॥ सीते, दण्डकारण्यवासी तीक्ष्ण व्रतधारी मुनि दुःखीहैं, मैं उनकी रक्षा करूंगा इसलिए स्वयं वे मेरी शरण आयेथे ॥ ४ ॥ सदा फलमूल पर समय बितानेवाले ये मुनि क्रूरकर्म करनेवाले राक्षसोंके कारण सुखसे नहीं रहपाते ॥ ५ ॥ नरमांससे जीनेवाले ये भयानक राक्षस दण्डकारण्यवासी मुनियोंको खाजातेहैं और खाये जानेवाले ॥ ६ ॥ वे ब्राह्मणश्रेष्ठ हमलोगोंके पास आये और उनलोगोंने अपनी सब कथा मुझसे सुनायी, उनके मुंहसे निकली बात मैंने सुनी ॥ ७ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कृत्वा वचनशुश्रूषां वाक्यमेतदुदाहृतम् । प्रसीदन्तु भवन्तो मे ह्रीरेषा तु ममातुला ॥ ८ ॥
यदीदृशैरहं विप्रैरुपस्थेयैरुपस्थितः । किं करोमीति च मया व्याहृतं द्विजसंनिधौ॥ ९ ॥
सर्वैरेव समागम्य वागियं समुदाहृता । राक्षसैर्दण्डकारण्ये बहुभिः कामरूपिभिः ॥१०॥
अर्दिताः स्म भृशं राम भवान्नस्तत्र रक्षतु । होमकाले तु संप्राप्ते पर्वकालेषु चानघ ॥११॥
धर्षयन्ति स्म दुर्धर्षा राक्षसाः पिशिताशनाः । राक्षसैर्धर्षितानां च तापसानां तपस्विनाम् ॥१२॥
गतिं मृगयमाणानां भवान्नः परमा गतिः । कामं तपःप्रभावेण शक्ता हन्तुं निशाचरान् ॥१३॥
चिरार्जितं न चेच्छामस्तपः खण्डयितुं वयम् । बहुविघ्नं तपो नित्यं दुश्चरं चैव राघव ॥१४॥
तेन शापं न मुञ्चामो भक्ष्यमाणाश्च राक्षसैः । तदद्यमानान्रक्षोभिर्दण्डकारण्यवासिभिः ॥१५॥
रक्षकस्त्वं सह भ्रात्रा त्वन्नाथा हि वयं वने । मया चैतद्वचः श्रुत्वा कात्स्न्र्येन परिपालनम् ॥१६॥
ऋषीणां दण्डकारण्ये संश्रुत्य जनकात्मजे । संश्रुत्य च न शक्ष्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम् ॥१७॥
मुनीनामन्यथाकर्तुं सत्यामिष्टं हि मे सदा । अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्॥१८॥
न तु प्रतिज्ञा संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः । तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपालनम् ॥१९॥
अनुक्तेनापि वैदेहि प्रतिज्ञाय कथं पुनः । मम स्नेहाच्च सौहार्दादिदमुक्तं त्वया वचः ॥२०॥

उनके वचन सुनकर मैंने उनलोगोंसे कहा—आपलोग प्रसन्न हों, इसबातसे स्वयंमुझे बड़ी लज्जा आरही है कि जिन ब्राह्मणोंके पास मुझे स्वयं जाना चाहिये वे मेरेपास आये हैं, मैंने ब्राह्मणोंसे पूछा कि मैं क्याकरूं ॥ ८ ॥ ९ ॥ उनसबने मेरेपास आकर मुझसे यही कहा कि दण्डकारण्यमें मनमाना रूपधारण करनेवाले अनेक राक्षसोंसे हमलोग पीड़ितहो रहे हैं, आप हमारी रक्षाकरें। जब होमका समय होता है अथवा दर्शपौर्णमास आदिपर्व कालमें ॥ १० ॥ ११ ॥ ये मांस खानेवाले बड़े बली राक्षस हमलोगोंको दुःख देतेहैं। राक्षसोंसे दुःखपाये हुए तपस्वी ॥ १२ ॥ अपना रक्षक ढंढ़ रहेहैं, हमलोगोंकी दृष्टिमें सर्वश्रेष्ठ रक्षक आपही हैं। यद्यपि तपकी शक्तिसे हमलोग राक्षसोंको मार सकतेहैं ॥१३॥ पर बहुत दिनोंका अर्जित तप हमलोग खण्डित करना नहींचाहते। रामचन्द्र, तपस्यामें बड़े विघ्न होतेहैं औरउसके आचरण करनेमें बड़ा कष्ट होताहै ॥१४॥ इसी कारण राक्षस हमलोगोंको खातेभी हैं फिरभी हमलोग उन्हें शाप नहीं देते। दण्डकारण्यवासी राक्षसोंके द्वारा पीड़ित हमलोगोंके ॥ १५ ॥ रक्षक अपने भाईके साथ आपही हैं। वनमें रहनेवाले हमलोगोंके स्वामी आपही हैं। उनकी यह बात सुनकर दण्डकारण्यमें रहनेवाले मुनियोंकी पूरी रक्षा करनेकी मैंने प्रतिज्ञा की। जनकपुत्रि, प्रतिज्ञा करके जीतेजी तो अपनी प्रतिज्ञा ॥ १६ ॥ १७ ॥ जो मैंने मुनियोंसे की है-उससे मुड़ नहीं सकता। क्योंकि सत्य मुझे सदा प्रियहै। सीते मैं अपने प्राणछोड़ सकता हूँ, लक्ष्मणकेसाथ तुमकोभी छोड़ सकता हूँ ॥ १८ ॥ पर की हुई प्रतिज्ञा विशेषकर ब्राह्मणोंके सम्बन्धकी प्रतिज्ञा मैं नहीं छोड़सकता। अतएव ऋषियोंकी रक्षामैं अवश्य करूंगा ॥ १९ ॥ ऋषियोंके विना कहेभी मैं उनकी रक्षा करता, अबतो उनकी रक्षाकी प्रतिज्ञा कर चुकाहूँ। तुमने जो मुझसे ऐसा कहाहै, वह मुझमें प्रेम और स्नेह होनेके कारण ॥२०॥ इससे सीते, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परितुष्टोऽस्म्यहं सीते न ह्यनिष्टोऽनुशास्यते । सदृशं चानुरूपं च कुलस्य तव शोभने ॥ २१ ॥
सधर्मचारिणी मे त्वं प्राणेभ्योऽपि गरीयसी
इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा सीतां प्रियां मैथिलराजपुत्रीम् ।
रामो धनुष्मान्सह लक्ष्मणेन जगाम रम्याणि तपोवनानि ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाडे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

——:०:——

एकादशः सर्गः ११

अग्रतः प्रययौ रामः सीता मध्ये सुशोभना । पृष्ठस्तु धनुष्पाणिर्लक्ष्मणोऽनुजगाम ह ॥ १ ॥
तौ पश्यमानौ विविधाञ्शैलप्रस्थान्वनानि च । नदीश्च विविधा रम्या जग्मतुः सह सीतया ॥ २ ॥
सारसांश्चक्रवाकांश्च नदीपुलिनचारिणः । सरांसि च सपद्मानि युतानि जलजैः खगैः ॥ ३ ॥
यूथबन्धांश्च पृषता महोन्मत्तान्विषाणिनः । महिषांश्च वराहांश्च गजांश्च द्रुमवैरिणः ॥ ४ ॥
ते गत्वा दूरमध्वानं लम्बमाने दिवाकरे । ददृशुः सहिता रम्यं तटाकं योजनायतम् ॥ ५ ॥
पद्मपुष्करसंबाधं गजयूथैरलंकृतम् । सारसैर्हंसकादम्बैः संकुलं जलजातिभिः ॥ ६ ॥
प्रसन्नसलिले रम्ये तस्मिन्सरसि शुश्रुवे । गीतवादित्रनिर्घोषो न तु कश्चन दृश्यते ॥ ७ ॥

जो प्रिय नहीं है वह उपदेश देने नहीं आता । शोभने, जो तुमने कहा है वह तुम्हारे कुल और तुम्हारे लिए उचित नहीं है, तुम मेरी सहधर्मचारिणी हो और मुझे अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हो ॥२१॥ मैथिल राजकन्या सीताको इसप्रकार कहकर महात्मा रामचन्द्र धनुष लेकर लक्ष्मणके साथ तपोवनकी ओर गये ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका दशवां सर्ग समाप्त ॥ १० ॥

——:०:——

आगे रामचन्द्र चलते थे, बीचमें सुन्दरी सीता, उनके पीछे धनुष लेकर लक्ष्मण चलते थे ॥ १ ॥ वे राम और लक्ष्मण अनेक पर्वतोंके शिखरों, वनों तथा भिन्न-भिन्न रमणीय नदियोंको देखते हुए सीताके साथ चले ॥ २ ॥ नदीतीर पर विचरनेवाले सारसों और चकवाओंको उन लोगोंने देखा, कमलवाले तलाव उन लोगोंने देखे, जहां जलचर पक्षी वर्तमान थे ॥ ३ ॥ हिरनों-का यूथ, मदमस्त सींगवाले भैसे, सूअर तथा पेड़ोंको उखाड़ने वाले हाथियोंको देखते हुए वे लोग चले ॥ ४ ॥ बहुत दूर जानेपर जब सूर्य अस्त होने लगा, उस समय उन लोगोंने एक बड़ा ही सुन्दर तालाब देखा, जो एक योजन लम्बा था ॥ ५ ॥ भिन्न भिन्न जातिके कमल उसमें खिले थे, हाथियोंके यूथसे वह अलंकृत था, जलचारी सारसों और हंससमूहोंसे वह तालाब भरा था ॥ ६ ॥ स्वच्छ जलवाले उस तालाबमें गाने और बजानेका शब्द सुन पड़ता था, पर कोई

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततः कौतूहलाद्रामो लक्ष्मणश्च महारथः । मुनिं धर्मभृतं नाम प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥ ८॥
इदमत्यद्भुतं श्रुत्वा सर्वेषां नो महामुने । कौतूहलं महज्जातं किमिदं साधु कथ्यताम्॥ ९॥
तेनैवमुक्तो धर्मात्मा राघवेण मुनिस्तदा । प्रभावं सरसः क्षिप्रमाख्यातुमुपचक्रमे ॥१०॥
इदं पञ्चाप्सरो नाम तटाकं सार्वकालिकम् । निर्मितं तपसा राम मुनिना माण्डकर्णिना॥११॥
स हि तेपे तपस्तीव्रं माण्डकर्णिर्महामुनिः । दशवर्षसहस्राणि वायुभक्षो जलाशये ॥१२॥
ततः प्रव्यथिताः सर्वे देवाः साग्निपुरोगमाः । अब्रुवन्वचनं सर्वे परस्परसमागताः ॥१३॥
अस्माकं कस्यचित्स्थानमेष प्रार्थयते मुनिः । इति संविग्नमनसः सर्व तत्र दिवौकसः ॥१४॥
ततः कर्तुं तपोविघ्नं सर्वदेवैर्नियोजिताः । प्रधानाप्सरसः पञ्च विद्युच्चलितवर्चसः ॥१५॥
अप्सरोभिस्ततस्ताभिर्मुनिर्दृष्टपरावरः । नीतो मदनवश्यत्वं देवानां कार्यसिद्धये ॥१६॥
ताश्चैवाप्सरसः पञ्च मुनेः पत्नीत्वमागताः । तटाके निर्मित तासां तस्मिन्नन्तर्हितं गृहम् ॥१७॥
तत्रैवाप्सरसः पञ्च निवसन्त्यो यथासुखम् । रमयन्ति तपोयोगान्मुनिं यौवनमास्थितम् ॥१८॥
तासां सक्रीडमानानामेष वादित्रनिःस्वनः । श्रूयते भूषणोन्मिश्रो गीतशब्दो मनोहरः ॥१९॥
आश्चर्यमिति तस्यैतद्वचनं भावितात्मनः । राघवः प्रतिजग्राह सह भ्रात्रा महायशाः ॥२०॥
एवं कथयमानः स ददर्शाश्रममण्डलम् । कुशचीरपरिक्षिप्तं ब्राह्म्या लक्ष्म्या समावृतम्२१॥

दिखायी नहीं पड़ता था। कौन बजा रहा है और गारहा है इसका पता नहीं चलता था ॥ ७ ॥ तब कुतूहलवश होकर राम और लक्ष्मण धर्मभृत नामक मुनिसे पूछने लगे ॥ ८ ॥ महामुने, यह सुनकर हम लोगोंको बड़ा कुतूहल उत्पन्न हो गया है, यह क्या है, आप ठीक-ठीक कहें ॥ ९ ॥ रामचन्द्रके ऐसा पूछनेपर धर्मात्मा मुनि शीघ्रही उस तालावका प्रभाव कहने लगे ॥ १० ॥ यह पञ्चाप्सर नामका तालाव है, इसमें सदा जल रहता है, माण्डकर्णी मुनिने अपनी तपस्यासे इसे बनाया है ॥ ११ ॥ महामुनि माण्डकर्णीने जलमें रहकर तथा वायु खाकर दस हजार वर्षों तक बड़ा कठोर तप किया ॥ १२ ॥ उनकी ऐसी कठोर तपस्या देखकर अग्नि आदि देवता बहुत ही दुःखी हुए और एकत्र होकर वे लोग आपस में बोले ॥ १३ ॥ वे देवता इस कारण और भी घबड़ा गये थे कि यह मुनि हम लोगोंमेंसे किसीका स्थान चाहता है ॥ १४ ॥ उन मुनिकी तपस्यामें विघ्न करनेके लिए उन देवताओंने पाँच प्रधान अप्सराओंको नियुक्त किया, जिनकी कान्ति विद्युत्के समान थी ॥ १५ ॥ परमात्मा और जीवतत्त्व जाननेवाले वे मुनि देवताओंकी कार्य-सिद्धिके लिये कामके अधीन बनाये गए ॥ १६ ॥ वे पाँचों अप्सराएँ मुनिकी स्त्री बन गयीं, इस तालाबके भीतर उन्हींके लिए घर बनाया गया है ॥ १७ ॥ वे पाँचों अप्सराएँ वहीं सुख पूर्वक रहती हैं और तपस्याके प्रभावसे यौवन प्राप्त किये मुनिको रमण कराती हैं ॥ १८ ॥ उन्हींकी क्रीडाके बाजेका यह शब्द सुन पड़ता है, और भूषणके शब्दसे युक्त मनोहर यह गीत भी उन्हीं-का सुन पड़ता है ॥ १९ ॥ आश्चर्य है, ऐसा कहकर उन ब्रह्मज्ञानी मुनिकी बात तपस्वी रामचन्द्र-ने भाईके साथ मान ली ॥ २० ॥ आश्चर्य है ऐसा कहते हुए रामचन्द्रने एक आश्रम देखा, जो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रविश्य सह वैदेह्या लक्ष्मणेन च राघवः । तदा तस्मिन्स काकुत्स्थः श्रीमत्याश्रममण्डले॥२२॥
उषित्वा स सुखं तत्र पूज्यमानो महर्षिभिः । जगाम चाश्रमांस्तेषां पर्यायेण तपस्विनाम् ॥२३॥
येषामुषितवान्पूर्वं सकाशे स महास्त्रवित् । क्वचित्परिदशान्मासानेकसंवत्सरं क्वचित् ॥२४॥
क्वचिच्च चतुरो मासान्पञ्च षट् च परान्क्वचित् । अपरत्राधिकान्मासानध्यर्धमधिकं क्वचित् ॥२५॥
त्रीन्मासानष्टमासांश्च राघवोन्यवसत्सुखम् । तत्र संवसतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषु वै ॥२६॥
रमतश्चानुकूल्येन ययुः संवत्सरा दश । परिसृत्य च धर्मज्ञो राघवः सह सीतया ॥२७॥
सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं पुनरेवाजगाम ह । स तमाश्रममागम्य मुनिभिः परिपूजितः ॥२८॥
तत्रापि न्यवसद्रामः किंचित्कालमरिंदमः । अथाश्रमस्थो विनयात्कदाचित्तं महामुनिम् ॥२९॥
उपासीनः स काकुत्स्थः सुतीक्ष्णमिदमब्रवीत् । अस्मिन्नरण्ये भगवन्नगस्त्यो मुनिसत्तमः ॥३०॥
वसतीति मया नित्यं कथाः कथयतां श्रुतम् । न तु जानामि तं देशं वनस्यास्य महत्तया ॥३१॥
कुत्राश्रमपदं रम्यं महर्षेस्तस्य धीमतः । प्रसादार्थं भगवतः सानुजः सह सीतया ॥३२॥
अगस्त्यमधिगच्छेयमभिवादयितुं मुनिम् । मनोरथो महानेष हृदि संपरिवर्तते ॥३३॥
यदहं तं मुनिवरं शुश्रूषेयमपि स्वयम् । इति रामस्य स मुनिः श्रुत्वा धर्मात्मनो वचः ॥३४॥

शोभासे शोभित होरहा था, तथा जिसमें चारो ओर चोर फैले हुए थे ॥ २१ ॥ उस सुन्दर आश्रममें रामचन्द्रने सीता और लक्ष्मणके साथ प्रवेश किया ॥ २२ ॥ महर्षियोंके द्वारा सत्कृत होकर सुख-पूर्वक रामचन्द्रने वहाँ निवास किया, पुनः क्रमसे उन तपसियोंके आश्रम देखनेके लिये वे चले ॥ २३ ॥ जिन महर्षियोंके आश्रमोंमें वे महास्त्रवेत्ता पहले रह चुके थे । रामचन्द्रने किसी आश्रममें दस महीनेसे अधिक निवास किया, कहीं एक वर्ष, ॥ २४ ॥ कहीं चार महीने, कहीं पाँच महीने और कहीं छ महीने उन्होंने सुखपूर्वक निवास किया । कहीं इससे भी अधिक अर्थात् सात महीने, कहीं एक महीनेसे कुछ अधिक, कहीं आधे महीनेसे अधिक सुखपूर्वक निवास किया ॥ २५ ॥ किसी आश्रममें तीन महीने, किसीमें आठ महीने रामचन्द्रने सुखपूर्वक निवास किया । इस प्रकार मुनियोंके आश्रमोंमें सुख पूर्वक निवास करते ॥ २६ ॥ और प्रसन्नता पूर्वक रमण करते हुए रामचन्द्रके दस वर्ष बीत गये । धर्मज्ञ रामचन्द्र सीताके साथ घूमकर ॥ २७ ॥ पुनः वे सुतीक्ष्णके आश्रममें आये । इस आश्रममें आनेपर मुनियोंने इनका सत्कार किया ॥ २८ ॥ शत्रुओंको दमन करनेवाले रामचन्द्रने वहां भी कुछ दिनों तक निवास किया । इस आश्रममें रहते हुए रामचन्द्र महामुनि सुतीक्ष्णके पास जाकर विनयपूर्वक बोले—भगवन्, इस वनमें मुनि श्रेष्ठ अगस्त्य ॥ २९ ॥ ३० ॥ रहते हैं, यह बात मैंने कथा कहनेवालोंके मुँहसे सुनी है । पर इस वनके विशाल होनेके कारण मैं उनका स्थान नहीं जानता ॥ ३१ ॥ उन बुद्धिमान महर्षिका आश्रम कहां है, भगवान् अगस्त्यकी प्रसन्नताके लिए लक्ष्मण और सीताके साथ ॥ ३२ ॥ मुनिको प्रणाम करनेके लिये मैं उनके पास जाऊंगा । यह मेरे मनमें बहुत बड़ा मनोरथ वर्तमान है ॥ ३३ ॥ कि मैं उन मुनिवरकी सेवा स्वयं करूँ । धर्मात्मा रामके ये वचन सुनकर वे मुनि ॥ ३४ ॥ सुतीक्ष्ण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुतीक्ष्णः प्रत्युवाचेदं प्रीतो दशरथात्मजम् । अहमप्येतदेव त्वां वक्तुकामः सलक्ष्मणम् ॥३५॥
अगस्त्यमभिगच्छेति सीतया सह राघव । दिष्ट्या त्विदानीमर्थेऽस्मिन्स्वयमेव ब्रवीषि माम्॥
अयमाख्यामि ते राम यत्रागस्त्यो महामुनिः ॥ ३६ ॥
योजनान्याश्रमात्तात याहि चत्वारि वै ततः । दक्षिणेन महाञ्छ्रीमानगस्त्यभ्रातुराश्रमः ॥३७॥
स्थलीप्रायवनोद्देशे पिप्पलीवनशोभिते । बहुपुष्पफले रम्ये नानाविहगनादिते ॥३८॥
पद्मिन्यो विविधास्तत्र प्रसन्नसलिलाशयाः । हंसकारण्डवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः ॥३९॥
तत्रैकां रजनीं व्युष्य प्रभाते राम गम्यताम् । दक्षिणां दिशमास्थाय वनखण्डस्य पार्श्वतः ४०
तत्रागस्त्याश्रमपदं गत्वा योजनमन्तरम् । रमणीये वनोद्देशे बहुपादपशोभिते ॥४१॥
रंस्यते तत्र वैदेही लक्ष्मणश्च त्वया सह । स हि रम्यो वनोद्देशो बहुपादपसंयुतः ॥४२॥
यदि बुद्धिः कृता द्रष्टुमगस्त्यं तं महामुनिम् । अद्यैव गमने बुद्धिं रोचयस्व महामते ॥४३॥
इति रामो मुनेः श्रुत्वा सह भ्रात्राभिवाद्य च । प्रतस्थेऽगस्त्यमुद्दिश्य सानुजः सह सीतया ॥४४॥
पश्यन्वनानि चित्राणि पर्वतांश्चाभ्रसंनिभान् । सरांसि सरितश्चैव पथि मार्गवशानुगान् ॥४५॥
सुतीक्ष्णेनोपदिष्टेन गत्वा तेन पथा सुखम् । इदं परमसंहृष्टो वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत् । ४६॥
एतदेवाश्रमपदं नूनं तस्य महात्मनः । अगस्त्यस्य मुनेर्भ्रातुर्दृश्यते पुण्यकर्मणः ॥४७॥

प्रसन्न होकर दसरथ-पुत्र रामचन्द्रसे बोले—लक्ष्मण और तुमसे मैं भी यही कहना चाहता था ॥ ३५ ॥ कि रामचन्द्र सीताके साथ अगस्त्यके पास चलो। पर प्रसन्नताकी बात है कि इस विषयमें तुम स्वयं मुझसे कह रहे हो । मैं तुमसे बतलाता हूँ जहां महामुनि अगस्त्यका आश्रम है ॥ ३६ ॥ इस आश्रमसे चार योजन अर्थात् सोलह कोस जाओ, तब दक्षिणकी ओर अगस्त्यके भाईका बड़ा आश्रम मिलेगा ॥ ३७ ॥ वहां वनकी भूमि समतल है, वहां पिप्पलीका वन है। पुष्प और फल बहुत हैं अनेक प्रकारके पक्षी बोलते रहते हैं वह स्थान बड़ा ही रमणीय है ॥ ३८ ॥ कमलोंसे सुशोभित और स्वच्छ जलवाले अनेक जलाशय हैं, हंस, जलमुर्ग और चकवाक से सुशोभित हो रहे हैं ॥ ३९ ॥ वहां उस आश्रममें एक रात रहकर प्रातःकाल वनके बगलसे दक्षिण दिशाकी ओर जाना ॥ ४० ॥ एक योजन जानेपर वनके रमणीय भागमें अनेक वृक्षोंसे शोभित अगस्त्यका आश्रम है ॥ ४१ ॥ वहाँ जानकी और लक्ष्मण तुम्हारे साथ प्रसन्न होंगे। वह वनविभाग बड़ाही सुन्दर है, वहाँ अनेक वृक्ष हैं ॥ ४२ ॥ महामते रामचन्द्र, यदि तुमने महामुनि अगस्त्यको देखनेकी इच्छा की है तो आजही जानेका निश्चय करो ॥ ४३ ॥ मुनिकी बातें सुनकर रामचन्द्रने भाईके साथ उन मुनिको प्रणाम किया और वे भाई तथा सीताके साथ अगस्त्याश्रमकी ओर चले ॥ ४४ ॥ मार्गमें आए हुए अद्भुत वनों, मेघके समान पर्वतों, तालाबों तथा नदियोंको देखते हुए वे चले ॥ ४५ ॥ सुतीक्ष्णके बतलाये मार्गसे सुखपूर्वक जाकर बड़ी प्रसन्नतासे रामचन्द्रने लक्ष्मणसे यह कहा ॥ ४६ ॥ अवश्यही उन महात्मा पुण्यात्मा अगस्त्यके भाईका यही आश्रम है ॥ ४७ ॥ पुष्प और फलके भारसे नये हुए ये हजारों वृक्ष इस वनमें हैं इससे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यथा ह्यीमे वनस्यास्य ज्ञाताः पथि सहस्रशः । संनताः फलभारेण पुष्पभारेण च द्रुमाः ॥४८॥
पिप्पलीनां च पक्वानां वनादस्मादुपागतः । गन्धोऽयं पवनोत्क्षिप्तः सहसा कटुकोदयः ॥४९॥
तत्र तत्र च दृश्यन्ते संक्षिप्ताः काष्ठसंचयाः । लूनाश्च परिदृश्यन्ते दर्भा वैदूर्यवर्चसः ॥५०॥
एतच्च वनमध्यस्थं कृष्णाभ्रशिखरोपमम् । पावकस्याश्रमस्थस्य धूमाग्रं संप्रदृश्यते ॥५१॥
विविक्तेषु च तीर्थेषु कृतस्नाना द्विजातयः । पुष्पोपहारं कुर्वन्ति कुसुमैः स्वयमर्जितैः ॥५२॥
ततः सुतीक्ष्णवचनं यथा सौम्य मया श्रुतम् । अगस्त्यस्याश्रमो भ्रातुर्नूनमेष भविष्यति ॥५३॥
निगृह्य तरसा मृत्युं लोकानां हितकाम्यया । यस्य भ्रात्रा कृतेयं दिक्शरण्या पुण्यकर्मणा ५४
इहैकदा किल क्रूरो वातापिरपि चेल्वलः । भ्रातरौ सहितावास्तां ब्राह्मणघ्नौ महासुरौ ॥५५॥
धारयन्ब्राह्मणं रूपमिल्वलः संस्कृतं वदन् । आमन्त्रयति विप्रान्स श्राद्धमुद्दिश्य निर्घृणः ॥
भ्रातरं संस्कृतं कृत्वा ततस्तं मेषरूपिणम् । तान्द्विजान्भोजयामास श्राद्धदृष्टेन कर्मणा ॥५७॥
ततो भुक्तवतां तेषां विप्राणामिल्वलोऽब्रवीत् । वातापे निष्क्रमस्वेति स्वरेण महता वदन् ॥५८॥
ततो भ्रातुर्वचः श्रुत्वा वातापिर्मेषवन्नदन् । भित्त्वा भित्त्वा शरीराणि ब्राह्मणानां विनिष्पतत् ।
ब्राह्मणानां सहस्राणि तैरेवं कामरूपिभिः । विनाशितानि संहत्य नित्यशः पिशिताशनैः॥६०॥
अगस्त्येन तदा देवैः प्रार्थितेन महर्षिणा । अनुभूय किल श्राद्धे भक्षितः स महासुरः ॥६१॥

मालूम होता है कि यही वह आश्रम है ॥ ४८ ॥ पकी पिप्पलिओंकी कडुई गन्ध, जिसे वायु उड़ा लाया है, इस वन से आरही है ॥ ४९ ॥ इधर-उधर पड़ी हुई लकड़ियोंकी ढेर दिखाई पड़ती है और कटे हुए वैदूर्यके समान कुशभी इधर-उधर पड़े हैं ॥ ५० ॥ यह वनके मध्यमें काले मेघके शिखर के समान आश्रमकी अग्निका धूआँ दिखाई पड़ता है ॥ ५१ ॥ पवित्र तीर्थोंमें स्नान करके ब्राह्मणगण स्वयं लाये हुए पुष्पोंके द्वारा बलिदान कर रहे हैं ॥ ५२ ॥ सौम्य, सुतीक्ष्णका वचन जैसा मैंने सुना है अर्थात् सुतीक्ष्णका जैसा अभिप्राय मैंने जाना है, उससे अवश्यही इसे अगस्त्यके भ्राताका आश्रम होना चाहिये ॥ ५३ ॥ जिसके पुण्यकर्मा भाईने लोककल्याणकी इच्छासे मृत्युके समान भयानक दैत्यको बलपूर्वक मारकर इस दिशाको लोगोंके रहने योग्य बनाया है ॥५४॥ एक समय इस दिशामें क्रूर वातापी और इल्वल नामके दो भाई महाराक्षस साथही रहते थे और वे ब्राह्मणोंको मारा करते थे ॥ ५५ ॥ निर्दय इल्वल ब्राह्मणका रूप धरकर संस्कृत बोलता था और श्राद्धके लिए ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करता था ॥ ५६ ॥ उसका भाई वातापी भेड़ा बन जाता था और श्राद्धविधानके अनुसार इल्वल उसका मांस बनाता था तथा ब्राह्मणोंको खिला देता था ॥ ५७ ॥ जब ब्राह्मण खा लेते थे, तब इल्वल बड़े ज़ोरसे चिल्लाकर कहता था कि वातापी निकल आओ ॥ ५८ ॥ तब भाई-की आवाज़ सुनकर वातापी भेड़ेके समान बोलता हुआ ब्राह्मणोंका पेट फाड़कर निकल आता था ॥ ५९ ॥ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले उन दोनों मांस खानेवाले राक्षसोंने मिलकर हजारों ब्राह्मणोंको प्रतिदिन मार दिया है ॥ ६० ॥ तब देवताओंने अगस्त्यकी प्रार्थना की, अगस्त्य उन राक्षसोंके द्वारा श्राद्धमें निमन्त्रित हुए और उन्होंने उस महाराक्षस इल्वलको खा लिया ॥ ६१ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततः संपन्नमित्युक्त्वा दत्त्वा हस्तेऽवनेजनम् । भ्रातरं निष्क्रमस्वेति इल्वलः समभाषत ॥६२॥
स तदा भाषमाणं तु भ्रातरं विप्रघातिनम् । अब्रवीत्प्रहसन्धीमानगस्त्यो मुनिसत्तमः ॥६३॥
कुतो निष्क्रमितुं शक्तिर्मया जीर्णस्य रक्षसः । भ्रातुस्तु मेषरूपस्य गतस्य यमसादनम् ॥६४॥
अथ तस्य वचः श्रुत्वा भ्रातुर्निधनसंश्रितम् । प्रधर्षयितुमारेभे मुनिं क्रोधान्निशाचरः ॥६५॥
सोऽभ्यद्रवद्द्विजेन्द्रं तं मुनिना दीप्ततेजसा । चक्षुषानलकल्पेन निर्दग्धो निधनं गतः ॥६६॥
तस्यायमाश्रमो भ्रातुस्तटाकवनशोभितः । विप्रानुकम्पया येन कर्मेदं दुष्करं कृतम् ॥६७॥
एवं कथयमानस्य तस्य सौमित्रणा सह । रामस्यास्तं गतः सूर्यः संध्याकालोऽभ्यवर्तत ॥
उपास्य पश्चिमां संध्यां सह भ्रात्रा यथाविधि । प्रविवेशाश्रमपदं तमृषिं चाभ्यवादयत् ॥६९॥
सम्यक्प्रतिगृहीतस्तु मुनिना तेन राघवः । न्यवसत्तां निशामेकां प्राश्य मूलफलानि च॥७०॥
तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामुदिते रविमण्डले । भ्रातरं तमगस्त्यस्य आमन्त्रयत राघवः ॥७१॥
अभिवादये त्वां भगवन्सुखमस्म्युषितो निशाम् । अमन्त्रये त्वां गच्छामि गुरुं ते द्रष्टुमग्रजम् ॥७२॥
गम्यतामिति तेनोक्तो जगाम रघुनन्दनः । यथोद्दिष्टेन मार्गेण वनं तच्चावलोकयन् ॥७३॥
नीवारान्पनसान्सालान्वञ्जुलांस्तिनिशांस्तथा । चिरिबिल्वान्मधूकांश्च बिल्वानथ च तिंदुकान् ॥
पुष्पितान्पुष्पिताग्राभिर्लताभिरुपशोभितान् । ददर्श रामः शतशस्तत्र कान्तारपादपान् ॥७५॥

तदनन्तर श्राद्ध सम्पूर्ण हुआ ऐसा कहकर और अगस्त्यके हाथपर हाथ धोनेके लिये जल देकर अपने भाईसे निकल आनेके लिये इल्वलने कहा ॥ ६२ ॥ वह ब्राह्मणघाती राक्षस अपने भाईको बुला रहा था, उस समय मुनिश्रेष्ठ बुद्धिमान् अगस्त्यने हँसकर उससे कहा ॥ ६३ ॥ भेड़ेका रूप धारण करनेवाले तुम्हारे भाईको तो मैंने पचा लिया, वह तो मर गया, अब वह निकल कैसे सकता है ॥ ६४ ॥ अपने भाईके मरनेकी खबर मुनिसे सुनकर वह राक्षस क्रोध करके मुनिको मारनेका उद्योग करने लगा ॥ ६५ ॥ उसने मुनिपर आक्रमण किया । तेजस्वी मुनिने अपनी जलती आँखोंसे उसे देखकर जला दिया और वह मर गया ॥ ६६ ॥ उन्हीं अगस्त्यके भाईका यह आश्रम है, जो तालाब और वनसे शोभित हो रहा है, ब्राह्मणों पर दया करके ही अगस्त्यने ऐसा कठोर कर्म किया था ॥ ६७ ॥ रामचन्द्र लक्ष्मणके साथ ऐसी बातचीत करही रहे थे कि सूर्य अस्ताचलको चले गये और सन्ध्या हो गई ॥ ६८ ॥ भाईके साथ विधिपूर्वक सायङ्कालकी संध्या करके रामचन्द्र मुनिके आश्रममें गए और उन्होंने मुनिको प्रणाम किया ॥ ६९ ॥ मुनिने आदरपूर्वक उनका स्वागत किया, वे फलमूल खाकर एक रात उसी आश्रममें रहे ॥७०॥ वह रात बीत गई, सूर्योदय हुआ, तब रामचन्द्रने अगस्त्यके भाईसे पूछा ॥७१॥ उन्होंने कहा—महाभाग, मैं आपको प्रणाम करता हूँ, रात-को बड़े आनन्दसे हम लोगोंने निवास किया । अब हम आपके बड़े भाईका दर्शन करने जा रहे हैं, अतएव आप आज्ञा दें ॥७२॥ मुनिसे आज्ञा लेकर सुतीक्ष्णके बतलाये हुए मार्गसे उस वनको देखते हुए रामचन्द्र चले ॥ ७३ ॥ नीवार, कटहल, साल, अशोक, तिनेश, चिरिबिल्व, महुआ, बेल और तिन्दुक आदि वनके सैकड़ों पेड़ जो फूले हुए थे तथा जो फूली हुई लताओंसे शोभित हो रहे थे,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हस्तिहस्तैर्विमृदितान्वानरैरुपशोभितान् । मत्तैः शकुनिसंघैश्च शतशः प्रतिनादितान् ॥७६॥
ततोऽब्रवीत्समीपस्थं रामो राजीवलोचनः । पृष्ठतोऽनुगतं वीरं लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥७७॥
स्निग्धपत्रा यथा वृक्षा यथा क्षान्ता मृगद्विजः । आश्रमो नातिदूरस्थो महर्षेर्भावितात्मनः ॥७८॥
अगस्त्य इति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा । आश्रमो दृश्यते तस्य परिश्रान्तश्रमापहः ॥७९॥
प्राज्यधूमाकुलवनश्चीरमालापरिष्कृतः । प्रशान्तमृगयूथश्च नानाशकुनिनादितः ॥८०॥
निगृह्य तरसा मृत्युं लोकानां हितकाम्यया । दक्षिणा दिक्कृता येन शरण्या पुण्यकर्मणा॥८१॥
तस्येदमाश्रमपदं प्रभावाद्यस्य राक्षसैः । दिगियं दक्षिणा त्रासाद्दृश्यते नोपभुज्यते ॥८२॥
यदा प्रभृति चाक्रान्ता दिगियं पुण्यकर्मणा । तदा प्रभृति निर्वैराः प्रशान्ता रजनीचराः ॥८३॥
नाम्ना चेयं भगवतो दक्षिणा दिक्प्रदक्षिणा । प्रथिता त्रिषु लोकेषु दुर्धर्षा क्रूरकर्मभिः ॥८४॥
मार्गं निरोद्धुं सततं भास्करस्याचलोत्तमः । संदेशं पालयंस्तस्य विन्ध्यशैलो न वर्धते ॥८५॥
अयं दीर्घायुषस्तस्य लोके विश्रुतकर्मणः । अगस्त्यस्याश्रमः श्रीमान्विनीतमृगसेवितः ॥८६॥
एष लोकार्चितः साधुर्हिते नित्यं रतः सताम् । अस्मानधिगतानेष श्रेयसा योजयिष्यति ॥८७॥
आराधयिष्याम्यहमगस्त्यं तं महामुनिम् । शेषं च वनवासस्य सौम्य वत्स्याम्यहं प्रभो॥८८॥

देखे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ हाथियोंने इन वृक्षोंको अपनी सूंड़से तोड़ फोड़ दिया है, कई वृक्षोंपर वानर बैठे हुए हैं, प्रसन्न होकर पक्षिगण इन वृक्षोंपर बोल रहे हैं ॥ ७६ ॥ तदनन्तर राजीवलोचन रामचन्द्र समीपमें ही वर्तमान लक्ष्मीवर्धन वीर लक्ष्मणसे बोले, जो उनके पीछे चल रहे थे ॥ ७७ ॥ इन वृक्षोंके पत्ते चिकने मालूम पड़ते हैं, ये मृग और पक्षी शान्त हैं इनसे मालूम होता है ब्रह्मज्ञानी महर्षिका आश्रम अब दूर नहीं है ॥ ७८ ॥ ये महर्षि अपनेही कर्मसे अगस्त्य नामसे प्रसिद्ध हैं, उन्हींका यह आश्रम दीख पड़ता है, जो थके हुओंकी थकावट दूर करता है। (अगस्त्यका अर्थ है पर्वतको स्तम्भित कर देनेवाला। आगे की कथा सुनिए) ॥ ७९ ॥ वनमें बहुत धूआँ फैला हुआ है, वल्कलोंके टुकड़े चारो ओर फैले हुए हैं, मृगोंका समूह शान्त है और अनेक प्रकारके पक्षी बोल रहे हैं ॥ ८० ॥ जिस पुण्यकर्मा महर्षिने लोकके कल्याणके लिए मृत्युके समान राक्षसको बलपूर्वक मारकर इस देशको लोगोंके रहनेयोग्य बनाया ॥ ८१ ॥ उन्हींका यह आश्रम है, जिनके प्रभावसे राक्षस दक्षिण दिशाको भयसे देखते हैं, पहलेके समान ऋषियोंको खाते नहीं ॥८२॥ जबसे पुण्यकर्मा ऋषि इस दिशामें आए हैं, तबसे राक्षसोंने विरोध करना छोड़ दिया है और वे शान्त हो गये हैं ॥ ८३ ॥ यह दक्षिण दिशा भगवान् अगस्त्यकी दिशाके नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। क्रूरकर्मा राक्षस यहाँ उपद्रव नहीं कर सकते ॥ ८४ ॥ सूर्यका मार्ग रोकनेके लिए पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्याचल बढ़ा था, पर अगस्त्यकी आज्ञासे नम्र होगया और आजतक वह उनकी आज्ञाका पालन कर रहा है और बढ़ता नहीं ॥ ८५ ॥ विद्युतकर्मा, दीर्घायु अगस्त्यका यह सुन्दर आश्रम है, यहांके मृगा बड़े शान्त हैं ॥ ८६ ॥ ये महात्मा सबके द्वारा पूजित हैं, सज्जनोंके कल्याणमें रत रहते हैं, हम लोग जब इनके यहां जाँयगे तब अवश्यही ये हमारा कल्याण करेंगे ॥ ८७ ॥ यहां मैं महामुनि अगस्त्यकी आराधना करूँगा और वनवासकी बाकी अवधि यहीं बिताऊँगा ॥ ८८ ॥ देवता, गंधर्व,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अत्र देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः । अगस्त्यं नियताहाराः सततं पर्युपासते ॥८९॥
नात्र जीवन्मृषावादी क्रूरो वा यदि वा शठः । नृशंसः पापवृत्तो वा मुनिरेष तथाविधः ॥९०॥
अत्र देवाश्च यक्षाश्च नागाश्च पतगैः सह । वसन्ति नियताहारा धर्ममाराधयिष्णवः ॥९१॥
अत्र सिद्धा महात्मानो विमानैः सूर्यसन्निभैः । त्यक्त्वा देहान्नवैर्देहैः स्वर्याताः परमर्षयः ॥९२॥
यक्षत्वममरत्वं च राज्यानि विविधानि च । अत्र देवाः प्रयच्छन्ति भूतैराराधिताः शुभैः॥९३॥
आगताः स्माश्रमपदं सौमित्रे प्रविशाग्रतः । निवेदयेह मां प्राप्तमृषये सह सीतया ॥९४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

——:०:——

द्वादशः सर्गः १२

स प्रविश्याश्रमपदं लक्ष्मणो राघवानुजः । अगस्त्यशिष्यमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥
राजा दशरथो नाम ज्येष्ठस्तस्य सुतो बली । रामः प्राप्तो मुनिं द्रष्टुं भार्यया सह सीतया॥ २ ॥
लक्ष्मणो नाम तस्याहं भ्राता त्ववरजो हितः । अनुकूलश्च भक्तश्च यदि ते श्रोत्रमागतः ॥ ३ ॥
ते वयं वनमत्युग्रं प्रविष्टाः पितृशासनात् । द्रष्टुमिच्छामहे सर्वे भगवन्तं निवेद्यताम् ॥ ४ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य तपोधनः । तथेत्युक्त्वाग्निशरणं प्रविवेश निवेदितुम् ॥ ५ ॥

सिद्ध और ऋषि नियत आहार होकर निरन्तर अगस्त्यकी सेवा करते हैं ॥ ८९ ॥ ये मुनि ऐसे हैं कि इनके आश्रममें कोई झूठ बोलनेवाला, क्रूर, छिपकर प्रहार करनेवाला, धातुक और पापी जी नहीं सकता ॥ ९० ॥ धर्मकी आराधना करनेके लिए यहां देवता, यक्ष, नाग, गरुड़ जातिके पक्षी निवास करते हैं ॥ ९१ ॥ सिद्ध महात्मा यहांसे शरीर त्याग करके नवीन शरीर धारण करके और सूर्यके समान दीप्तमान रथपर बैठकर स्वर्ग चले गये हैं ॥ ९२ ॥ प्राणियोंके द्वारा पुण्यकर्मोंसे आराधित होकर देवगण देवयोनि, यक्षयोनि तथा अनेक राज्य देते हैं ॥ ९३ ॥ लक्ष्मण, हमलोग आश्रममें आगये; तुम आगे जाकर सीताके साथ मेरा आना मुनिसे कहो ॥ ९४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका ग्यारहवां सर्ग समाप्त ॥ ११ ॥

——:०:——

रामानुज लक्ष्मण उस आश्रममें जाकर अगस्त्यके एक शिष्यको पाकर उससे बोले ॥ १ ॥ राजा दसरथके ज्येष्ठपुत्र बली रामचन्द्र अपनी स्त्री सीताके साथ मुनिको देखनेके लिए आये हैं ।२। मैं रामचन्द्रका हितकारी उनका छोटा भाई हूँ मेरा नाम लक्ष्मण है, मैं उनका सेवक और भक्त हूं । रामचन्द्रके कथा प्रसंगसे आपने मेरा नामभी सुनाहो ॥ ३ ॥ हमलोग पिताकी आज्ञासे इस भयानक वनमें आये हैं, हम सबलोग दर्शन करना चाहते हैं, आप भगवान् अगस्त्यसे निवेदन कीजिये ॥ ४ ॥ लक्ष्मणकी बातें सुनकर वह तपस्वी "अच्छा" कहकर अपनी होमशालामें अगस्त्यसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स प्रविश्य मुनिश्रेष्ठं तपसा दुष्प्रधर्षणम् । कृताञ्जलिरुवाचेदं रामागमनमञ्जसा ॥ ६ ॥
यथोक्तं लक्ष्मणेनैव शिष्योऽगस्त्यस्य संमतः । पुत्रौ दशरथस्येमौ रामो लक्ष्मण एव च ॥ ७ ॥
प्रविष्टावाश्रमपदं सीतया सह भार्यया । द्रष्टुं भवन्तमायातौ शुश्रूषार्थमरिंदमौ ॥ ८ ॥
यदत्रानन्तरं तत्त्वमाज्ञापयितुमर्हसि । ततः शिष्यादुपश्रुत्य प्राप्तं रामं सलक्ष्मणम् ॥ ९ ॥
वैदेहीं च महाभागामिदं वचनमब्रवीत् । दिष्ट्या रामश्चिरस्याद्य द्रष्टुं मां समुपागतः ॥
मनसा काङ्क्षितं ह्यस्य मयाप्यागमनं प्रति । गम्यतां सत्कृतो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥ ११ ॥
प्रवेश्यतां समीपं मे किमसौ न प्रवेशितः । एवमुक्तस्तु मुनिना धर्मज्ञेन महात्मना ॥ १२ ॥
अभिवाद्याब्रवीच्छिष्यस्तथेति नियताञ्जलिः । तदा निष्क्रम्य संभ्रान्तः शिष्यो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥
कोऽसौ रामो मुनिं द्रष्टुमेतु प्रविशतु स्वयम् । ततो गत्वाश्रमपदं शिष्येण सहलक्ष्मणः ॥ १४ ॥
दर्शयामास काकुत्स्थं सीतां च जनकात्मजाम् । तं शिष्यः प्रश्रितं वाक्यमगस्त्यवचनं ब्रुवन् ॥ १५ ॥
प्रावेशयद्यथान्यायं सत्कारार्हं सुसत्कृतम् । प्रविवेश ततो रामः सीतया सहलक्ष्मणः ॥ १६ ॥
प्रशान्तहरिणाकीर्णमाश्रमं ह्यवलोकयन् । स तत्र ब्रह्मणः स्थानमग्नेः स्थानं तथैव च ॥
विष्णोः स्थानं महेन्द्रस्य स्थानं चैव विवस्वतः । सोमस्थानं भगस्थानं स्थानं कौबेरमेव च ॥ १८ ॥
धातुर्विधातुः स्थानं च वायोः स्थानं तथैव च । स्थानं च पाशहस्तस्य वरुणस्य महात्मनः ॥ १९ ॥
स्थानं तथैव गायत्र्या वसूनां स्थानमेव च । स्थानं च नागराजस्य गरुडस्थानमेव च ॥ २० ॥

निवेदन करने चला गया ॥ ५ ॥ अग्निशालामें जाकर अज्ञान-रहित मुनिश्रेष्ठसे हाथ जोड़कर रामचन्द्रका आना उसने कहा ॥ ६ ॥ लक्ष्मणने जैसा कहा था वैसाही उस अगस्त्यके प्रिय शिष्यने कहा । राम और लक्ष्मण ये दोनों दशरथके पुत्र हैं ॥ ७ ॥ सीता नामकी पत्नीके साथ इस आश्रममें आये हैं, ये दोनों आपके दर्शन तथा सेवा करनेके लिए आये हैं ॥ ८ ॥ इस विषयमें आपका जो निर्णय हो वह आप शीघ्र आज्ञा करें । शिष्यसे यह सुनकर कि राम, लक्ष्मण ॥ ९ ॥ और सीता आयी हैं, अगस्त्य बोले—प्रसन्नताकी बात है बहुत दिनों पर आज रामचन्द्र मुझे देखने आये ॥ १० ॥ मैं भी अपने आश्रममें इनका आगमन चाहता था । जाओ, आदरपूर्वक पत्नी और लक्ष्मणके साथ रामचन्द्रको ॥ ११ ॥ मेरे पास ले आओ । तुम उन्हें ले क्यों नहीं आये । धर्मज्ञ महात्मा मुनिके ऐसा कहने पर ॥ १२ ॥ शिष्यने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और "अच्छा" कहा । वह शिष्य शीघ्रतापूर्वक आश्रमसे निकलकर लक्ष्मणसे बोला ॥ १३ ॥ वे कौन राम हैं, मुनिके दर्शनके लिए स्वयं आवें । तदनन्तर लक्ष्मण उस शिष्यके साथ आश्रममें गये ॥ १४ ॥ और उन्होंने रामचन्द्रको दिखा दिया । शिष्यने विनयपूर्वक उनसे अगस्त्यका वचन कहा ॥ १५ ॥ सत्कारके योग्य रामचन्द्रका सत्कार करके विधिपूर्वक उनको ले गया । सीता और लक्ष्मणके साथ रामचन्द्र आश्रममें गये ॥ १६ ॥ शान्त हरिणोंसे पूर्ण आश्रमको देखते हुए रामचन्द्रने उस आश्रममें ब्रह्माके स्थान, अग्निके स्थान, विष्णुके स्थान, इन्द्रके स्थान, सूर्यके स्थान, चन्द्रमाके स्थान, भगदेवताके स्थान, कुबेरके स्थान, धाता और विधाताके स्थान, वायुके स्थान, पाशहस्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कार्तिकेयस्य च स्थानं धर्मस्थानं च पश्यति । ततः शिष्यैः परिवृतो मुनिरप्यभिनिष्पतत्॥२१॥
तं ददर्शाग्रतो रामो मुनीनां दीप्ततेजसम् । अब्रवीद्वचनं वीरो लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥२२॥
बहिर्लक्ष्मण निष्क्रामत्यगस्त्यो भगवानृषिः । औदार्येणावगच्छामि निधानं तपसामिदम् ॥२३॥
एवमुक्त्वा महाबाहुरगस्त्यं सूर्यवर्चसम् । जग्राहापततस्तस्य पादौ च रघुनन्दनः ॥२४॥
अभिवाद्य तु धर्मात्मा तस्थौ रामः कृताञ्जलिः । सीतया सह वैदेह्या तदा रामः सलक्ष्मणः ॥२५॥
प्रतिगृह्य च काकुत्स्थमर्चयित्वासनोदकैः । कुशलप्रश्नमुक्त्वा च आस्यतामिति सोऽब्रवीत्॥२६॥
अग्निं हुत्वा प्रदायार्घ्यमतिथीन्प्रतिपूज्य च । वानप्रस्थेन धर्मेण स तेषां भोजनं ददौ ॥२७॥
प्रथमं चोपविश्याथ धर्मज्ञो मुनिपुंगवः । उवाच राममासीनं प्राञ्जलिं धर्मकोविदम् ॥२८॥
अन्यथा खलु काकुत्स्थ तपस्वी समुदाचरन् । दुःसाक्षीव परे लोके स्वानि मांसानि भक्षयेत् ॥२९॥
राजा सर्वस्य लोकस्य धर्मचारी महारथः । पूजनीयश्च मान्यश्च भवान्प्राप्तः प्रियातिथिः ॥३०॥
एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुष्पैश्चान्यैश्च राघवम् । पूजयित्वा यथाकामं ततोऽगस्त्यस्तमब्रवीत्॥३१॥
इदं दिव्यं महच्चापं हेमवज्रं विभूषितम् । वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा ॥३२॥
अमोघः सूर्यसंकाशो ब्रह्मदत्तः शरोत्तमः । दत्तौ मम महेन्द्रेण तूणी चाक्षय्यसायकौ ॥३३॥
सम्पूर्णौ निशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिव पावकैः । महाराजतकोशोऽयमसिर्हेमविभूषितः ॥३४॥

महात्मा वरुणके स्थान, गायत्रीके स्थान, आठ वसुओंके स्थान, नागराजके स्थान, गरुडके स्थान, कार्तिकेयके स्थान तथा धर्मके स्थान देखे, इसी समय मुनि भी अपने शिष्योंके साथ उस स्थानपर आये ॥ १७-१८-१९-२०-२१ ॥ रामचन्द्रने मुनियोंके आगे अति तेजस्वी अगस्त्यको देखा और वीर राम लक्ष्मिवर्धन लक्ष्मणसे बोले ॥ २५ ॥ लक्ष्मण, भगवान् अगस्त्य ऋषि बाहर आरहे हैं, इनकी उदारतासे मैं जानता हूँ कि ये तपस्याओंके खजाना हैं ॥ २३ ॥ इस प्रकार कहकर महाराज रामचन्द्रने आते हुए, सूर्यके समान तेजस्वी अगस्त्य ऋषिके चरण छूये ॥ २४ ॥ सीता और लक्ष्मणके साथ उनको प्रणाम करके धर्मात्मा रामचन्द्र हाथ जोड़कर खड़े रहे ॥ २५ ॥ अगस्त्य ऋषिने भी उनका स्वागत किया, भोजन और जलदेकर उनका सत्कार किया, कुशल-प्रश्न पूछे, पुनः ठहरनेके लिए कहा ॥ २६ ॥ महर्षि अगस्त्यने अग्निमें आहुति देकर अर्घ्य देकर तथा उनलोगोंके पहले धर्मज्ञ मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य स्वयं बैठे, पुनः वे हाथ जोड़कर बैठे हुए धर्म-तत्त्वज्ञ रामचन्द्रसे बोले ॥ २८ ॥ रामचन्द्र, जो तपस्वी सत्कारविधिके विपरीत आचरण करता है वह झूठे साथीके समान परलोकमें अपना ही मांस खाता है ॥ २९ ॥ सबके राजा, धर्माचरण करनेवाले महारथ तुम हमलोगोंके प्रिय अतिथि हो, अतएव हमलोगोंके द्वारा पूजनीय और मान्य हो ॥ ३० ॥ ऐसा कहकर फलमूल तथा अन्य पुष्पोंसे रामचन्द्रकी पूजा इच्छानुसार करके अगस्त्य उनसे बोले ॥ ३१ ॥ यह बड़ा और दिव्य धनुष है इसमें सोनेका काम किया गया है और हीरे जड़े हैं। पुरुषसिंह, यह विष्णुका धनुष है और विश्वकर्माने इसे बनाया है ॥ ३२ ॥ सूर्यके समान दीप्तिमान यह बाण ब्रह्माका दिया हुआ है और यह अमोघ है। यह तूणी इन्द्रने दी है और इसमेंके बाण कभी घटते नहीं ॥ ३३ ॥ अग्निके समान जलनेवाले तीखे बाण इसमें भरे हुए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनेन धनुषा राम हत्वा संख्ये महासुरान् । आजहार श्रियं दीप्तां पुरा विष्णुर्दिवौकसाम्॥३५॥
तद्धनुस्तौ च तूणी च शरं खड्गं च मानद । जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा ॥३६॥
एवमुक्त्वा महातेजाः समस्तं तद्वरायुधम् । दत्त्वा रामाय भगवानगस्त्यः पुनरब्रवीत् ॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

——:०:——

त्रयोदशः सर्गः १३

राम प्रीतोऽस्मि भद्रं ते परितुष्टोस्मि लक्ष्मण । अभिवादयितुं यन्मां प्राप्तौ स्थः सह सीतया ॥ १ ॥
अध्वश्रमेण वां खेदो बाधते प्रचुरश्रमः । व्यक्तमुत्कण्ठते वापि मैथिली जनकात्मजा ॥ २ ॥
एषा च सुकुमारी च खेदैश्च न विमानिता । प्राज्यदोषं वनं प्राप्ता भर्तृस्नेहप्रचोदिता ॥ ३ ॥
यथैषा रमते राम इह सीता तथा कुरु । दुष्करं कृतवत्येषा वने त्वामभिगच्छती ॥ ४ ॥
एषा हि प्रकृतिः स्त्रीणामासृष्टे रघुनन्दन । समस्थमनुरज्यन्ते विषमस्थं त्यजन्ति च ॥ ५ ॥
शतह्रदानां लोलत्वं शस्त्राणां तीक्ष्णतां तथा । गरुडानिलयोः शैघ्र्यमनुगच्छन्ति योषितः ॥ ६ ॥
इयं तु भवतो भार्या दोषैरेतैर्विवर्जिता । श्लाघ्या च व्यपदेश्या च यथा देवेष्वरुन्धती ॥ ७ ॥

हैं । यह तलवार है जिसमें सोनेका काम किया गया है और जिसकी म्यान भी सोनेकी है ॥ ३४ ॥ राम, इस धनुषके द्वारा संग्राममें भयानक असुरोंको मारकर देवताओंकी लक्ष्मीको लौटा लाओ, जिसप्रकार विष्णुने लौटायी थी ॥ ३५ ॥ मानद, तुम इस धनुषको, इन दो तूणीको, बाण और तलवारको विजयके लिये स्वीकार करो, जिसप्रकार इन्द्रने वज्र स्वीकार किया था ॥ ३६ ॥ ऐसा कहकर भगवान् अगस्त्यने वह सब श्रेष्ठ आयुध रामचन्द्रको दिये और वे पुनः बोले ॥ ३७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका बारहवां सर्ग समाप्त ॥ १२ ॥

——:०:——

सीताके साथ तुम लोग मुझे प्रणाम करने आये हो, इसलिए राम, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, लक्ष्मण, मैं तुम पर सन्तुष्ट हूँ ॥ १ ॥ रास्ता चलनेके परिश्रमकी थकावटसे जानकी दुःखी होरही है, अतएव यह कहीं विश्राम करनेके लिए उत्कण्ठित होरही है ॥ २ ॥ सीता सुकुमारी है, इससे पहले इसे कभी ऐसे दुःखोंका सामना करना नहीं पड़ा है, पतिस्नेहसे पीड़ित होकर ही यह वनमें आयी है जहां अनेक उपद्रव हैं ॥ ३ ॥ रामचन्द्र जिस प्रकार सीता प्रसन्न हो वैसा करो । तुम्हारे साथ आकर इसने बड़ाही कठोर काम किया है ॥ ४ ॥ सृष्टिके प्रारम्भसे स्त्रियोंका यह स्वभाव होता चला आया है कि ये सुखमें पतिका अनुगमन करती हैं तथा दुःखमें उसका त्याग कर देती हैं ॥ ५ ॥ विद्युत्के समान चञ्चल, शस्त्रोंके समान तीखी तथा गरुड़ और वायुके समान शीघ्रगामिनी ये स्त्रियां होती हैं ॥ ६ ॥ पर आपकी इस स्त्रीमें ये दोष नहीं हैं, अतएव यह प्रसंशनीय है, पतिव्रताओंमें प्रथम गिनने योग्य है, जिस प्रकार देवताओंमें अरुन्धती ॥ ७ ॥ लक्ष्मण और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अलंकृतोऽयं देशश्च यत्र सौमित्रिणा सह । वैदेह्या चानया राम वत्स्यसि त्वमरिंदम ॥ ८ ॥
एवमुक्तस्तु मुनिना राघवः संयताञ्जलिः । उवाच प्रश्रितं वाक्यमृषिं दीप्तमिवानलम् ॥ ९ ॥
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुंगवः । गुणैः सभ्रातृभार्यस्य गुरुर्नः परितुष्यति ॥ १० ॥
किं तु व्यादिश मे देशं सोदकं बहुकाननम् । यत्राश्रमपदं कृत्वा वसेयं निरतः सुखम् ॥ ११ ॥
ततोऽब्रवीन्मुनिश्रेष्ठः श्रुत्वा रामस्य भाषितम् । ध्यात्वा मुहूर्तं धर्मात्मा ततोवाच वचः शुभम् ॥ १२ ॥
इतो द्वियोजने तात बहुमूलफलोदकः । देशो बहुमृगः श्रीमान्पञ्चवट्यभिविश्रुतः ॥ १३ ॥
तत्र गत्वाश्रमपदं कृत्वा सौमित्रिणा सह । रमस्व त्वं पितुर्वाक्यं यथोक्तमनुपालयन् ॥ १४ ॥
विदितो ह्येष वृत्तान्तो मम सर्वस्तवानघ । तपसश्च प्रभावेण स्नेहाद्दशरथस्य च ॥ १५ ॥
हृदयस्थं च ते छन्दो विज्ञातं तपसा मया । इह वासं प्रतिज्ञाय मया सह तपोवने ॥ १६ ॥
अतश्च त्वामहं ब्रूमि गच्छ पञ्चवटीमिति । स हि रम्यो वनोद्देशो मैथिली तत्र रंस्यते ॥ १७ ॥
स देशः श्लाघनीयश्च नाति दूरे च राघव । गोदावर्याः समीपे च मैथिली तत्र रंस्यते ॥ १८ ॥
माज्यमूलफलैश्चैव नानाद्विजगणैर्युतः । विविक्तश्च महाबाहो पुण्यो रम्यस्तथैव च ॥ १९ ॥
भवानपि सदाचारः शक्तश्च परिरक्षणे । अपि चात्र वसन्राम तापसान्पालयिष्यसि ॥ २० ॥
एतदालक्ष्यते वीर मधूकानां महावनम् । उत्तरेणास्य गन्तव्यं न्यग्रोधमपि गच्छता ॥ २१ ॥

सीताके साथ आपने मेरे इस आश्रमको अपने आगमनसे अलङ्कृत किया है, शत्रुनाशन, अब आप यहां निवास कीजिए ॥ ८ ॥ ऋषिके ऐसा कहनेपर रामचन्द्र हाथ जोड़कर विनय-पूर्वक अग्निके समान तेजस्वी ऋषिसे बोले ॥ ९ ॥ मैं आज धन्य हुआ, अनुगृहीत हुआ, क्योंकि भाई और भार्याके साथ मेरे गुणोंसे मुनि श्रेष्ठ और गुरु आप प्रसन्न हैं ॥ १० ॥ आप मुझे वैसा स्थान बतलावें जहां जल हो, सघन वन हो, वहां आश्रम बनाकर सुखपूर्वक हमलोग निवास करें ॥ ११ ॥ रामचन्द्रके वचन सुनकर और थोड़ी देर सोचकर धर्मात्मा मुनि उनसे बोले ॥ १२ ॥ तात, यहांसे दो योजन पर पञ्चवटी नामका एक स्थान है, वहां फलफूल और जल काफी है, वहां मृगा भी बहुत हैं, बड़ाही सुन्दर देश है ॥ १३ ॥ वहां लक्ष्मणके साथ जाकर आश्रम बनाओ और पिताकी आज्ञाका पालन करते हुए सुखपूर्वक वहीं निवास करो ॥ १४ ॥ निष्पाप, तपस्याके प्रभावसे तथा राजा दशरथके प्रेमसे मुझे तुम्हारा यह सब वृत्तान्त मालुम है ॥ १५ ॥ रामचन्द्र यहाँ तपोवनमें मेरे साथ रहनेकी तुमने प्रतिज्ञा की थी, पुनः मुझसे आज्ञा लेकर तुम दूसरी जगह आश्रम बनाना चाहते हो, इसमें तुम्हारे मनका जो अभिप्राय है वह मैंने तपस्याके द्वारा जान लिया है ॥ १६ ॥ इसीलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम पञ्चवटी जाओ, वह स्थान बड़ा ही रमणीय है, जानकी वहाँ प्रसन्न होगी ॥ १७ ॥ वह स्थान बड़ा ही प्रशंसनीय है, गोदावरीके पास है, जानकी वहां प्रसन्न होगी ॥ १८ ॥ वहां बहुत अधिक फलमूल हैं, अनेक प्रकारके पक्षी हैं, बड़ा ही एकान्त है, बड़ा ही पवित्र है, महाबाहु ! वह स्थान बड़ाही रमणीय है ॥ १९ ॥ रामचन्द्र, आप सदाचारी हैं, रक्षा करनेमें समर्थ हैं, अतएव वहां रहकर आप तपस्वियोंका पालन कीजियेगा ॥ २० ॥ वीर, यह महुओंका बड़ाभारी वन दीख पड़ता है, इसके उत्तरकी ओर जानेसे पञ्चवटी वन मिलेगा ॥ २१ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततः स्थलमुपारुह्य पर्वतस्याविदूरतः । ख्यातः पञ्चवटीत्येव नित्यपुष्पितकाननः॥२२॥
अगस्त्येनैवमुक्तस्तु रामः सौमित्रिणा सह । सत्कृत्यामन्त्रयामास तमृषिं सत्यवादिनम् ॥२३॥
तौ तु तेनाभ्यनुज्ञातौ कृतपादाभिवन्दनौ । तमाश्रमं पञ्चवटीं जग्मतुः सह सीतया ॥२४॥
गृहीतचापौ तु नराधिपात्मजौ विपक्तूणी समरेष्वकातरौ ।
यथोपदिष्टेन पथा महर्षिणा प्रजग्मतुः पञ्चवटीं समाहितौ ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

——:o:——

चतुर्दशः सर्गः १४

अथ पञ्चवटीं गच्छन्नन्तरा रघुनन्दनः । आससाद महाकायं गृध्रं भीमपराक्रमम् ॥ १ ॥
तं दृष्ट्वा तौ महाभागौ वनस्थं रामलक्ष्मणौ । मेनाते राक्षसं पक्षिं ब्रुवाणौ को भवानिति ॥ २ ॥
ततो मधुरया वाचा सौम्यया प्रीणयन्निव । उवाच वत्स मां विद्धि वयस्यं पितुरात्मनः ॥ ३ ॥
स तं पितृसखं मत्वा पूजयामास राघवः । स तस्य कुलमव्यग्रमथ पप्रच्छ नाम च ॥ ४ ॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा कुलमात्मानमेव च । आचचक्षे द्विजस्तस्मै सर्वभूतसमुद्भवम् ॥ ५ ॥
पूर्वकाले महाबाहो ये प्रजापतयोऽभवन् । तान्मे निगदतः सर्वानादितः शृणु राघव ॥ ६ ॥

वहांसे मैदानमें होकर पर्वतके पास ही पञ्चवटी वन मिलेगा, जहांका वन सदा फूला रहता है ॥ २२ ॥ ऋषिके ऐसा कहनेपर रामचन्द्रने लक्ष्मणके साथ उन सत्यवादी ऋषिसे सत्कार-पूर्वक आज्ञा मांगी ॥ २३ ॥ मुनिकी आज्ञा पाकर तथा उनको प्रणाम करके वे दोनों सीताके साथ पञ्चवटीके आश्रममें चले ॥ २४ ॥ वे दोनों राजपुत्र धनुष लेकर बाणोंसे भरा तरकस पाकर युद्धमें विचलित न होनेवाले, महर्षिके बतलाये मार्गसे सावधान होकर पञ्चवटी चले ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका तेरहवां सर्ग समाप्त ॥ १३ ॥

——:o:——

अनन्तर पञ्चवटी जातेहुए रामचन्द्रने रात्रिमें एक विशालकाय बड़ा पराक्रमी गीध देखा ॥ १ ॥ महाभाग राम और लक्ष्मणने वनमें उस पक्षीको देखकर समझा कि यह कोई राक्षस है, अतएव उन लोगोंने उससे पूछा—तुम कौन हो ॥ २ ॥ वह बड़ेही मधुर और कोमल वचनसे इन लोगोंको प्रसन्न करता हुआ बोला, बेटे, तुमलोग मुझे अपने पिताका मित्र समझो ॥ ३ ॥ रामचन्द्रने अपने पिताका मित्र समझकर उसकी पूजा की और बिना घबड़ाये उसका नाम और कुल उन्होंने पूछा ॥ ४ ॥ रामचन्द्रका वचन सुनकर उस पक्षीने रामचन्द्रको अपना कुल और अपना नाम बतलाया तथा सब प्राणियोंकी उत्पत्ति कैसे हुई यह भी बतलाया ॥ ५ ॥ महाबाहु, पहले

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर्दमः प्रथमस्तेषां विकृतस्तदनन्तरम् । शेषश्च संश्रयश्चैव बहुपुत्रश्च वीर्यवान् ॥ ७ ॥
स्थाणुर्मरीचिरत्रिश्च क्रतुश्चैव महाबलः । पुलस्त्यश्चाङ्गिराश्चैव प्रचेताः पुलहस्तथा ॥ ८ ॥
दक्षो विवस्वानपरोऽरिष्टनेमिश्च राघव । कश्यपश्चैव महातेजास्तेषामासीच्च पश्चिमः ॥ ९ ॥
प्रजापतेस्तु दक्षस्य बभूवुरिति विश्रुताः । षष्टिर्दुहितरो राम यशस्विन्यो महायशः ॥१०॥
कश्यपः प्रतिजग्राह तासामष्टौ सुमध्यमाः । अदितिं च दितिं चैव दनूमपि च कालकाम् ॥११॥
ताम्रां क्रोधवशां चैव मनुं चाप्यनलामपि । तास्तु कन्यास्ततः प्रीतः कश्यपः पुनरब्रवीत्॥१२॥
पुत्रांस्त्रैलोक्यभर्तॄन्वै जनयिष्यथ मत्समान् । अदितिस्तन्मना राम दितिश्च दनुरेव च ॥१३॥
कालका च महाबाहो शेषास्त्वमनसोऽभवन् । आदित्यां जज्ञिरे देवास्त्रयस्त्रिंशदरिंदम ॥१४॥
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च परंतप । दितिस्त्वजनयत्पुत्रान्दैत्यांस्तात यशस्विनः १५
तेषामियं वसुमती पुरासीत्सवनार्णवा । दनुस्त्वजनयत्पुत्रमश्वग्रीवमरिंदम ॥१६॥
नरकं कालकं चैव कालकापि व्यजायत । क्रौञ्चीं भासीं तथा श्येनीं धृतराष्ट्रीं तथा शुकीम् ॥
ताम्रा तु सुषुवे कन्याः पञ्चैता लोकविश्रुता । उलूकाञ्जनयत्क्रौञ्ची भासी भासान्व्यजायत १८
श्येनी श्येनांश्च गृध्रांश्च व्यजायत सुतेजसः । धृतराष्ट्री तु हंसांश्च कलहंसांश्च सर्वशः ॥१९॥
चक्रवाकांश्च भद्रं ते विजज्ञे सापि भामिनी । शुकी नतां विजज्ञे तु नतायां विनता सुता ॥२०॥

जितने प्रजापति होगये हैं, उन सबके सम्बन्धकी बातें मैं कहता हूँ. तुम मुझसे सुनो ॥ ६ ॥ उन प्रजापतियोंमें सबसे पहले कर्दम हुए, तदनन्तर विकृत, शेष, संश्रय, पराक्रमी बहुपुत्र, स्थाणु, मरीचि, अत्रि, महाबली क्रतु, पुलस्त्य, अङ्गिरा, प्रचेता, पुलह, दक्ष, विवस्वान्, अरिष्टनेमि और उन सबमें अन्तिम महातेजस्वी कश्यप हुए ॥ ८ ॥ ९ ॥ राम, दक्ष प्रजापतिकी साठ प्रसिद्ध कन्याए हुईं ॥ १० ॥ उनमें आठ सुन्दरी कन्याओंको कश्यपने व्याहा, उनके नाम ये हैं अदिति, दिति, दनु, कालका, ताम्रा, क्रोधवशा, मनु और अनला । प्रसन्न होकर कश्यप उन कन्याओंसे बोले ॥११॥१२॥ त्रिलोकको पालन करनेवाले मेरे समान तुमलोग पुत्र उत्पन्न करोगी । अदिति, दिति, दनु और कालका इन चारोंने तो कश्यपकी बात मान लीं, कश्यपकी बातोंपर इन लोगोंने श्रद्धा प्रकट की, पर उन चार स्त्रियोंने कश्यपकी बातोंपर ध्यान न दिया । अदितिके गर्भसे तैंतास देवता उत्पन्न हुए ॥ १३॥१४॥ परन्तप, बारह आदित्य, आठ वसु ग्यारह रुद्र और दो अश्विनीकुमार अदितिने उत्पन्न किये । तात, दितिने यशस्वी दैत्योंको उत्पन्न किया ॥ १५ ॥ पहले यह तमाम वन और पर्वतसहित यह पृथिवी उन्हींके अधिकारमें थी । दनुने अश्वग्रीव नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥ १६ ॥ कालकाने भी नरक और कालक नामके दो पुत्र उत्पन्न किये । क्रौंची भासी श्येनी धृतराष्ट्री तथा शुकी नामकी प्रसिद्ध पांच कन्याएँ ताम्राने उत्पन्न की । क्रौंचीने उलूकोंको और भासीने भासोंको उत्पन्न किया ॥ १७ ॥ १८ ॥ श्येनीने तेजस्वी गृध्रों और श्येनोंको उत्पन्न किया, धृतराष्ट्रीने हंस तथा कलहंसोंको उत्पन्न किया ॥ १९ ॥ उसी धृतराष्ट्रीने चक्रवाकोंको भी उत्पन्न किया । शुकीने नता नामकी कन्या उत्पन्न की और नताकी कन्या विनता हुई ॥ २० ॥ क्रोधवशानेभी दस कन्याएं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दश क्रोधवशा राम विजज्ञेऽप्यात्मसंभवाः । मृगीं च मृगमन्दां च हरीं भद्रमदामपि ॥२१॥
मातङ्गीमथ शार्दूलीं श्वेतां च सुरभीं तथा । सर्वलक्षणसंपन्नां सुरसां कद्रुकामपि ॥२२॥
अपत्यं तु मृगाः सर्वे मृग्या नरवरोत्तम । ऋक्षान्तु मृगमन्दायाः सृमराश्चमरास्तथा ॥२३॥
ततस्त्विरावतीं नाम जज्ञे भद्रमदा सुताम् । तस्यास्त्वैरावतः पुत्रो लोकनाथो महागजः॥२४॥
हर्याश्च हरयोऽपत्यं वानराश्च तपस्विनः । गोलाङ्गुलाश्च शार्दूली व्याघ्रांश्चाजनयत्सुतान् ॥
मातङ्ग्यास्त्वथ मातङ्गा अपत्यं मनुजर्षभ । दिशागजं तु काकुत्स्थ श्वेता व्यजनयत्सुतान्॥२६॥
ततो दुहितरौ राम सुरभिर्देव्यजायत । रोहिणीं नाम भद्रं ते गंधर्वीं च यशस्विनीम् ॥२७॥
रोहिण्यजनयद्गावो गन्धर्वी वाजिनः सुतान् । सुरसाजनयन्नागान्राम कद्रूश्च पन्नगान् ॥२८॥
मनुर्मनुष्यान्जनयत्कश्यपस्य महात्मनः । ब्राह्मणान्क्षत्रियानवैश्यान्शूद्रांश्च मनुजर्षभ २९
मुखतो ब्राह्मणा जाता उरसः क्षत्रियास्तथा । ऊरुभ्यां जज्ञिरे वैश्याः पद्भ्यां शूद्रा इति श्रुतिः ॥
सर्वान्पुण्यफलान्वृक्षाननलापि व्यजायत । विनता च शुकीपौत्री कद्रूश्च सुरसा स्वसा ॥३१॥
कद्रूर्नागसहस्रं तु विजज्ञे धरणीधरान् । द्वौ पुत्रौ विनतायास्तु गरुडोऽरुण एव च ॥३२॥
तस्माज्जातोऽहमरुणात्संपातिश्च ममाग्रजः । जटायुरिति मां विद्धि श्येनीपुत्रमरिंदम ॥३३॥
सोऽहं वासस्सहायस्ते भविष्यामि यदीच्छसि । सीतां च तात रक्षिष्ये त्वयि याते सलक्ष्मणे ॥३४॥

उत्पन्न कीं, मृगी, मृगमन्दा, हरी, भद्रमदा, मातङ्गी, शार्दूली, श्वेता, सुरभि तथा सब लक्षणोंसे युक्त सुरसा और कद्रू ॥ २१ ॥ २२ ॥ नरश्रेष्ठ, सभी मृग मृगीके पुत्र हैं, मृगमन्दाकी सन्तान भालु, जंगली गाय और चँवरीगाय हैं ॥ २३ ॥ भद्रमदाने दूरवती नामकी कन्या उत्पन्न की, जिससे ऐरावत नामका दिग्गज उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥ हरीके लड़के सिंह हुए और विवेकी वानर । शार्दूलीने व्याघ्रों को उत्पन्न किया जिनकी पूंछ गौके समान होती है ॥ २५ ॥ मनुष्यश्रेष्ठ, मातङ्गीने हाथी पुत्र उत्पन्न किए, और श्वेताने दिग्गजोंको पुत्र उत्पन्न किया ॥२६॥ देवी सुरभिने दो कन्याएँ उत्पन्न कीं, एक रोहिणी और दूसरी गन्धर्वी ॥ २७ ॥ रोहिणीने गौओंको उत्पन्न किया और गन्धर्वीने घोड़ोंको । सुरसाने नागोंको उत्पन्न किया और कद्रूने पन्नगोंको (साधारणतः नाग और पन्नग सांपको कहते हैं, पर यहां अधिक फनवाले सांपके लिए नाग शब्दका प्रयोग हुआ है और साधारण सर्पके लिए पन्नगका) ॥ २८ ॥ मनुने मनुष्योंको उत्पन्न किया, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ॥ २९ ॥ श्रुतिमें लिखा है कि मुखसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए, भुजाओंके बीजसे क्षत्रिय, जङ्घाओंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए ॥ ३० ॥ अनलाने पवित्र फलवाले वृक्षोंको उत्पन्न किया । शुकीकी पौत्री विनताने सुरसा और कद्रू नामकी दो कन्याएँ उत्पन्न कीं ॥ ३१ ॥ कद्रूने हजारों नागोंको और पर्वतोंको उत्पन्न किया । विनताके दो पुत्रभी हुए, एक गरुड़ और दूसरा अरुण ॥ ३२ ॥ मैं उसी अरुणका पुत्र हूँ । मेरे बड़े भाईका नाम सम्पाति है, मेरा नाम जटायु है मैं श्येनीके वंशमें हूँ ॥ ३३ ॥ यहां तुम्हारे रहनेमें मैं सहायक होऊंगा, जैसा तुम चाहने हो, तुम्हारे और लक्ष्मणके जानेपर मैं सीताकी रक्षा करूंगा ॥ ३४ ॥ रामचन्द्रने जटायुका अभिनन्दन किया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जटायुषं तु प्रतिपूज्य राघवो मुदा परिष्वज्य च संनतोऽभवत् ।
पितुर्हि शुश्राव सखित्वमात्मवाञ्जटायुषा संकथितं पुनः पुनः ॥ ३५ ॥
स तत्र सीतां परिदाय मैथिलीं सहैव तेनातिबलेन पक्षिणा ।
जगाम तां पञ्चवटीं सलक्ष्मणो रिपून्दिधक्षन्स्व वनानि पालयन् ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

——:०:——

पञ्चदशः सर्गः १५

ततः पञ्चवटीं गत्वा नानाव्यालमृगायुताम् । उवाच लक्ष्मणं रामो भ्रातरं दीप्ततेजसम् ॥ १ ॥
आगताः स्म यथोद्दिष्टं यं देशं मुनिरब्रवीत् । अयं पञ्चवटीदेशः सौम्य पुष्पितकाननः ॥ २ ॥
सर्वतश्चार्यतां दृष्टिः कानने निपुणो ह्यसि । आश्रमो कतरस्मिन्नो देशे भवति संमतः ॥ ३ ॥
रमते यत्र वैदेही त्वमहं चैव लक्ष्मण । तादृशो दृश्यतां देशः संनिकृष्टजलाशयः ॥ ४ ॥
वनरामण्यकं यत्र जलरामण्यकं तथा । संनिकृष्टं च यस्मिंस्तु संमित्पुष्पकुशोदकम् ॥ ५ ॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः संयताञ्जलिः । सीतासमक्षं काकुत्स्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥
परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते । स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद ॥ ७ ॥

और आलिङ्गन किया, जटायुके द्वारा कही हुई अपने पितासे उसकी मैत्रीकी बात बारबार उन्होंने सुनी ॥ ३५ ॥ रक्षाके लिए उस पक्षीके अधीन सीताको करके उस बलवान् पक्षीके साथ राम और लक्ष्मण रिपुओंको जलानेके लिए तथा वनकी रक्षा करनेके लिए पञ्चवटी गये ॥ ३६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका चौदहवां सर्ग समाप्त ॥ १४ ॥

——:०:——

जिसमें अनेक हिंस्रपशु और मृगा थे उस पञ्चवटीमें जाकर रामचन्द्र अपने तेजस्वी भाई लक्ष्मणसे बोले ॥ १ ॥ जहां आना था, और जो स्थान मुनिने बतलाया था वहां हमलोग आगये। सौम्य, यही पञ्चवटी देश है, यहींका वन पुष्पित है ॥ २ ॥ चारोओर देखो, वनके विषयमें तुम निपुण हो, किधरकी ओर आश्रम बनायाजाय, जिसे सबलोग पसन्द करें ॥ ३ ॥ जहां जानकी प्रसन्न रह सकें, हम और तुम प्रसन्न रह सकें, वैसा स्थान देखो, जिसके पास जलाशय हो ॥ ४ ॥ जहां वनकी तथा जलकी रमणीयता हो, और जहाँ लकड़ी, पुष्प, कुश तथा जल पास हों ॥ ५ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर हाथ जोड़कर सीताके सामने लक्ष्मण इसप्रकार बोले ॥ ६ ॥ रामचन्द्र, मैं तो पराधीन हूँ, सैकड़ों वर्षोंतक के लिए आपके अधीन हूँ। जो स्थान आपको सुन्दर मालूम पड़े वहीं आश्रम बनानेकी आप मुझे आज्ञा दें ॥ ७ ॥ महाद्युति रामचन्द्र लक्ष्मणके इस वचनसे बहुत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुप्रीतस्तेन वाक्येन लक्ष्मणस्य महाद्युतिः । विमृशन्रोचयामास देशं सर्वगुणान्वितम् ॥ ८ ॥
स तं रुचिरमाक्रम्य देशमाश्रमकर्मणि । हस्ते गृहीत्वा हस्तेन रामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥ ९ ॥
अयं देशः समः श्रीमान्पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः । इहाश्रमपदं रम्यं यथावत्कर्तुमर्हसि ॥१०॥
इयमादित्यसंकाशैः पद्मैः सुरभिगन्धिभिः । अदूरे दृश्यते रम्या पद्मिनी पद्मशोभिता ॥११॥
यथाख्यातमगस्त्येन मुनिना भावितात्मना । इयं गोदावरी रम्या पुष्पितैस्तरुभिर्वृता ॥१२॥
हंसकारण्डवाकीर्णा चक्रवाकोपशोभिता । नातिदूरे न चासन्ने मृगयूथनिपीडिता ॥१३॥
मयूरनादिता रम्याः प्रांशवो बहुकंदराः । दृश्यन्ते गिरयः सौम्याः फुल्लैस्तरुभिरावृताः॥१४॥
सौवर्णै राजतैस्ताम्रैर्देशे देशे तथा शुभैः । गवाक्षिता इवाभान्ति गजाः परमभक्तिभिः ॥१५॥
सालैस्तालैस्तमालैश्च खर्जूरैः पनसद्रुमैः । नीवारैस्तिनिशैश्चैव पुंनागैश्चोपशोभिताः ॥१६॥
चूतैरशोकैस्तिलकैः केतकैरपि चम्पकैः । पुष्पगुल्मलतोपेतैस्तैस्तैस्तरुभिरावृताः ॥१७॥
स्यन्दनैश्चन्दनैर्नीपैः पनसैर्लकुचैरपि । धवाश्वकर्णखदिरैः शमीकिंशुकपाटलैः ॥१८॥
इदं पुण्यमिदं रम्यमिदं बहुमृगद्विजम् । इह वत्स्याम सौमित्रे सार्धमेतेन पक्षिणा ॥१९॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः परवीरहा । अचिरेणाश्रमं भ्रातुश्चकार सुमहाबलः ॥२०॥
पर्णशालां सुविपुलां तत्र संघातमृत्तिकाम् । सुस्तम्भां मस्करैर्दीर्घैः कृतवंशां सुशोभनाम् ॥२१॥

प्रसन्न हुए, ढूंढ़कर उन्होंने सबगुणोंसे युक्त स्थान देखा ॥ ८ ॥ आश्रमके लिए योग्य और सुन्दर स्थानपर जाकर रामचन्द्र लक्ष्मणका हाथ अपने हाथोंमें लेकर बोले ॥ ९ ॥ यह स्थान समतल है, सुन्दर है, फूलवाले वृक्ष भी यहां हैं, यहां तुम सुन्दर आश्रम बना सकते हो ॥१०॥ पासही जलाशय है, जहां सूर्यके समान उज्ज्वल कमल खिले हुए हैं, जिनकी सुन्दर गन्ध है और कमलोंसे जिसकी शोभा होरही है ॥ ११ ॥ ब्रह्मज्ञानी अगस्त्य मुनिने जो बतलाया है वह गोदावरी नदी यही है, इसके दोनों तटपर फूले हुए वृक्ष वर्तमान हैं ॥ १२ ॥ यहां हंस और जलमुर्गे भरे हुए हैं, चक्रवाक इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं और जल पीनेके लिए मृगोंका समूह इसमें पैठा हुआ है ॥ १३ ॥ मयूर बोल रहे हैं, रमणीय और ऊंचे पर्वत हैं, जिनमें अनेक कन्दराएँ हैं और विकसित पुष्पोंसे जो ढँके हुए हैं ॥ १४ ॥ सब स्थानोंमें प्राप्त होनेवाली सोना, चाँदी और तांबेके समान धातुओंसे हाथियोंके शरीरपर रचना सी बनगयी है, जो खिड़कीके समान मालूम होतीहै ॥ १५ ॥ साल, ताल, तमाल, खजूर, कटहल, निवार, तिनिश और सुपारीके वृक्षोंसे जो पर्वत शोभित होरहा है ॥ १६ ॥ आम, अशोक, तिलक, केतक, चम्पक जिसमें फूलवाले गुल्म और लताएँ लिपटी हैं, उनसे यह पर्वत ढँका हुआ है ॥ १७ ॥ स्यन्दन, चन्दन, कदम, बडहल, धव, अश्वकर्ण, खैर, शमी, पलाश और पाटल वृक्षभी इस पर्वतपर हैं ॥ १८ ॥ यह बहुतही पवित्र स्थान है, बड़ाही रमणीय है, यहां अनेक मृग और पक्षी हैं । हमलोग यहीं इस पक्षी जटायुके साथ निवासकरें ॥ १९ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर महाबली शत्रुहन्ता लक्ष्मणने शीघ्रही आश्रम बनाया ॥ २० ॥ लक्ष्मणने मिट्टी एकठ्ठी करके दीवार बनाकर एक पर्णशाला बनायी, उसमें सुन्दर खम्भे लगाये, बड़े-बड़े बांसोंसे बांसका काम लिया । वह पर्णशाला बड़ी सुन्दर बनी ॥ २१ ॥ ऊपर शमीवृक्षकी शाखाएँ फैलाकर उसे खूब मज़बूत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शमीशाखाभिरास्तीर्य दृढपाशावपाशिताम् । कुशकाशशरैः पर्णैः सुपरिच्छादितां तथा ॥२२॥
समीकृततलां रम्यां चकार सुमहाबलः । निवासं राघवस्यार्थे प्रेक्षणीयमनुत्तमम् ॥२३॥
स गत्वा लक्ष्मणः श्रीमान्नदीं गोदावरीं तदा । स्नात्वा पद्मानि चादाय सफलः पुनरागतः ॥२४॥
ततः पुष्पबलिं कृत्वा शान्तिं च स यथाविधि । दर्शयामास रामाय तदाश्रमपदं कृतम् ॥२५॥
स तं दृष्ट्वा कृतं सौम्यमाश्रमं सह सीतया । राघवः पर्णशालायां हर्षमाहारयत्परम् ॥२६॥
सुसंहृष्टो परिष्वज्य बाहुभ्यां लक्ष्मणं तदा । अतिस्निग्धं च गाढं च वचनं चेदमब्रवीत् ॥२७॥
प्रीतोऽस्मि ते महत्कर्म त्वया कृतमिदं प्रभो । प्रदेयो यन्निमित्तं ते परिष्वङ्गो मया कृतः ॥२८॥
भावज्ञेन कृतज्ञेन धर्मज्ञेन च लक्ष्मण । त्वया पुत्रेण धर्मात्मा न संवृत्तः पिता मम ॥२९॥
एवं लक्ष्मणमुक्त्वा तु राघवो लक्ष्मिवर्धनः । तस्मिन्देशे बहुफले न्यवसत्स सुखं सुखी ॥३०॥
कंचित्कालं स धर्मात्मा सीतया लक्ष्मणेन च । अन्वास्यमानो न्यवसत्स्वर्गलोके यथामरः ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

——:o:——

षोडशः सर्गः १६

वसतस्तस्य तु सुखं राघवस्य महात्मनः । शरद्व्यपाये हेमन्तऋतुरिष्टः प्रवर्तत ॥ १ ॥

बाँध दिया तथा उसपर कुश, कास सर और पत्ते रखकर छादिया ॥ २२ ॥ महाबली लक्ष्मणने नीचेकी जमीन बराबर करके सुन्दर बना दिया, रामचन्द्रके निवासके लिये वह स्थान अत्यन्त रमणीय बना ॥ २३ ॥ पुनः श्रीमान् लक्ष्मण गोदावरी तीरपर गये, वहां स्नान किया और कमल तथा फूल लेकर वहांसे वे लौट आये ॥ २४ ॥ उन्होंने पुष्पोंका बलिदान किया, पुनः विधिपूर्वक शान्ति की, तदनन्तर वह बनाया हुआ आश्रम उन्होंने रामचन्द्रको दिखाया ॥ २५ ॥ बनाया हुआ उस सुन्दर आश्रमको सीताके साथ देखकर रामचन्द्र बहुत ही प्रसन्न हुए ॥२६॥ रामचन्द्रने प्रसन्न होकर अपनी बाहुओंसे अतिकोमल और गाढ़ आलिङ्गन लक्ष्मणका किया और वे उनसे बोले ॥ २७ ॥ समर्थ लक्ष्मण, तुमने यह बहुत बड़ा काम किया, तुमपर मैं प्रसन्न हूँ । इस समय तुमको कुछ इनाम देना चाहिए, इसके योग्य इनाम आलिङ्गनके अतिरिक्त दूसरा नहीं हो सकता, इसी कारण वह मैंने दिया ॥२८॥ लक्ष्मण तुम अभिप्राय जाननेवाले हो, कृतज्ञ हो, धर्मज्ञ हो, तुम्हारे पिताके समान ही पुत्र होनेके कारण हमें उनका स्मरण नहीं होता ॥२९॥ लक्ष्मीवर्धन रामचन्द्र लक्ष्मणसे ऐसा कहकर प्रचुर फलवाले उस स्थानमें सुखपूर्वक निवास करने लगे ॥ ३० ॥ कुछ दिनोंतक धर्मात्मा रामचन्द्रने सीता और लक्ष्मणसे सेवित होकर वहां निवास किया जिस प्रकार देवता स्वर्गमें निवास करते हैं ॥ ३१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका पन्दरहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १५ ॥

——:o:——

महात्मा रामचन्द्र सुखपूर्वक वहां निवास करने लगे । शरदऋतुके बीतनेपर रामचन्द्रकी प्रिय हेमन्त ऋतु आई ॥ १ ॥ एक दिन रातके बीतनेपर रामचन्द्र स्नान करनेके लिए रमणीय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स कदाचित्प्रभातायां शर्वर्यां रघुनन्दनः । प्रययावभिषेकार्थं रम्यां गोदावरीं नदीम् ॥ २ ॥
प्रह्वः कलशहस्तस्तु सीतया सह वीर्यवान् । पृष्ठतोऽनुव्रजन्भ्राता सौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥
अयं स कालः संप्राप्तः प्रियो यस्ते प्रियंवद । अलंकृत इवाभाति येन संवत्सरः शुभः ॥ ४ ॥
नीहारपरुषो लोकः पृथिवी सस्यमालिनी । जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहनः ॥ ५ ॥
नवाग्रयणपूजाभिरभ्यर्च्य पितृदेवताः । कृताग्रयणकाः काले सन्तो विगतकल्मषाः ॥ ६ ॥
प्राज्यकामा जनपदाः संपन्नतरगोरसाः । विचरन्ति महीपाला यात्रार्थं विजिगीषवः ॥ ७ ॥
सेवमाने दृढं सूर्ये दिशमन्तकसेविताम् । विहीनतिलकेव स्त्री नोत्तरा दिक्प्रकाशते ॥ ८ ॥
प्रकृत्या हिमकोशाढ्यो दूरसूर्यश्च सांप्रतम् । यथार्थनामा सुव्यक्तं हिमवान्हिमवान्गिरिः ॥ ९ ॥
अत्यन्तसुखसंचारा मध्याह्ने स्पर्शतः सुखाः । दिवसा सुभगादित्याश्छायासलिलदुर्भगाः ॥ १० ॥
मृदुसूर्याः सुनीहाराः पटुशीताः समाहिताः । शून्यारण्या हिमध्वस्ता दिवसा भान्ति सांप्रतम् ॥
निवृत्ताकाशशयनाः पुष्यनीता हिमारुणाः । शीतदृढतरायामास्त्रियामा यान्ति सांप्रतम् ॥ १२ ॥
रविसंक्रान्तसौभाग्यस्तुषारारुणमण्डलः । निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते ॥ १३ ॥

गोदावरी नदीपर गये ॥ २ ॥ पराक्रमी और विनयी भाई लक्ष्मण हाथमें घड़ा लेकर सीताके साथ रामचन्द्रके पीछे जातेहुए बोले ॥ ३ ॥ प्रियंवद, यह वह काल आगया जो तुम्हारा प्रिय है। इस समयसे समस्त सम्वत्सर अलंकृतके समान मालूम पड़ता है ॥ ४ ॥ शीतसे शरीर रूखा हो जाता है, पृथिवी शस्यसे शोभित हो जाती है, जल उपभोग्य नहीं रहता, आग बड़ी सुहावनी मालूम पड़ती है ॥ ५ ॥ आग्रयणेष्टिके द्वारा पितरों देवताओंकी पूजा करके (नवीन अग्नि ग्रहण करनेके पहले जो हवि दीजाती है वह आग्रयण है) सज्जन निष्पाप होते हैं ॥ ६ ॥ जनपद-वासियोंके सब मनोरथ पूरे हो जाते हैं, बहुत अधिक दूध होता है, राजाभी प्रजारक्षा तथा विजयके लिए यात्रा करते हैं ॥ ७ ॥ सूर्य दक्षिण दिशामें चले जाते हैं इस कारण उत्तर दिशा तिलकहीन स्त्रीके समान शोभित नहीं होती ॥ ८ ॥ इस समय हिमवान् पर्वत यथार्थ हिमवान् हो रहा है, एकतो स्वभावसे ही वह हिमका खजाना है, दूसरे इस समय सूर्य उससे बहुत दूर हो गये हैं ॥ ९ ॥ मध्यान्हके समय मनुष्य यहां सुखपूर्वक घूम फिर सकता है, धूपका लगना बड़ा अच्छा मालूम होता है, सूर्यकी धूपके कारण दिन बड़ेही रमणीय मालूम होते हैं और वृक्षोंकी छाया तथा जल अच्छे नहीं मालूम होते ॥ १० ॥ सूर्यकी किरण कोमल-सहने योग्य हो गयी हैं, हिमकी अधिकता है, सर्दी अधिक है, हिमसे लोग दुःखी हो गये हैं, इसी कारण यह वन मनुष्योंसे हीन हो गया है। इस समय इस प्रकारके दिन शोभित हो रहे हैं ॥ ११ ॥ रात्रिमें बाहर सोना लोगोंका बन्द हो गया है, पुष्य नक्षत्रके द्वारा रात्रिका अवसान समझा जाता है, बर्फसे रात्रिका रंग धुँधला हो गया है, शीतके कारण रात बहुत बड़ी हो गयी है, इस प्रकार इस समयकी रात बीत रही है ॥ १२ ॥ चन्द्रमाका सौभाग्य सूर्यने लेलिया है, पहले चन्द्रमासे लोग जैसा प्रेम करते थे अब वे वैसा प्रेम सूर्यसे करने लगे हैं। बर्फके कारण सूर्यमण्डल धुंधला हो गया है। श्वाससे मलिन चन्द्रमाके समान इस समय चन्द्रमा प्रकाशित नहीं होते ॥ १३ ॥ पूर्णमासीकी प्रकाशमयी रात्रि बर्फसे मलिन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते । सीतेव चातपश्यामालक्ष्यते न च शोभते ॥१४॥
प्रकृत्या शीतलस्पर्शो हिमविद्धश्च सांप्रतम् । प्रवाति पश्चिमो वायुः काले द्विगुणशीतलः॥१५॥
बाष्पच्छन्नान्यरण्यानि यवगोधूमवन्ति च । शोभन्तेऽभ्युदिते सूर्ये नदद्भिः क्रौञ्चसारसैः॥१६॥
खर्जूरपुष्पाकृतिभिः शिरोभिः पूर्णतण्डुलैः । शोभन्ते किंचिदालम्बाः शालयः कनकप्रभाः १७।
मयूरवैरुपसर्पद्भिर्हिमनीहारसंवृतैः । दूरमप्युदितः सूर्यः शशाङ्क इव लक्ष्यते ॥१८॥
आग्राह्यवीर्यः पूर्वाह्णे मध्याह्ने स्पर्शतः सुखः । संसक्तः किंचिदापाण्डुरातपः शोभते क्षितौ॥१९॥
अवश्यायनिपातेन किंचित्प्रक्लिन्नशाद्वला । वनानां शोभते भूमिर्निविष्टतरुणातपा ॥२०॥
स्पृशन्सुविपुलं शीतमुदकं द्विरदः सुखम् । अत्यन्ततृषितो वन्यः प्रतिसंहरते करम् ॥२१॥
एते हि समुपासीना विहगा जलचारिणः । नावगाहन्ति सलिलमप्रगल्भा इवाहवम् ॥२२॥
अवश्यायतमोनद्धा नीहारतमसावृताः । प्रसुप्ता इव लक्ष्यन्ते विपुष्पा वनराजयः ॥२३॥
बाष्पसंछन्नसलिला रुतविज्ञेयसारसाः । हिमार्द्रवालुकास्तीरैः सरितो भान्ति सांप्रतम्॥२४॥
तुषारपतनाच्चैव मृदुत्वाद्भास्करस्य च । शैत्यादगाग्रस्थमपि प्रायेण रसवज्जलम् ॥२५॥
जराभग्नैरितैः पत्रैः शीर्णकेसरकर्णिकैः । नालशेषा हिमध्वस्ता न भान्ति कमलाकराः ॥२६॥

हो गयी है, धूपसे काली पड़ी हुई सीताके समान केवल दीख पड़ती है, शोभित नहीं होती ॥ १४ ॥ पश्चिम वायु स्वभावसेही शीतल है, इस समय बर्फसे मिल जानेके कारण प्रातःकालमें दुगुना शीतल हो गया है ॥ १५ ॥ इस वनमें जौ गेहूँ उगे हुए हैं, वे इस समय कुहरेसे ढँक गये हैं, वहां क्रौंच और सारस पक्षी बोल रहे हैं । यह वन और जौ गेहूँके खेत सूर्योदय होनेपर बहुतही शोभित होते हैं ॥ १६ ॥ सुवर्णके समान पीले धान, खजूर पुष्पके समान आकारवाले और चावलोंसे पूर्ण, अग्र भागसे कुछ नय गये हैं, वे बहुतही शोभित होते हैं ॥ १७ ॥ बर्फ और कुहरासे आच्छादित सूर्यकी किरणें फैल रही हैं, इस समय सूर्य आकाशमें बहुत दूर उठ जानेपर भी चन्द्रमाके समान मालूम पड़ता है ॥ १८ ॥ प्रातःकाल सूर्यका प्रकाश कुछ मालूम ही नहीं पड़ता, मध्याह्नमें वह सुखकर मालूम होता है, अतएव लोगोंका प्रिय और थोड़ा धूसर वर्णका सूर्यप्रकाश पृथिवीमें फैला है ॥ १९ ॥ हरी घासोंवाली वनकी भूमि बर्फके गिरनेसे समा सी गयी है, इस समय सूर्यके तरुण प्रकाश पड़नेसे वह बहुतही शोभित हो रही है ॥ २० ॥ जल बहुतही ठंढा है, सुखकी आशासे बहुतही प्यासा यह हाथी अपनी सूंडसे जल छूता है और पुनः सूंड खींच लेता है ॥ २१ ॥ ये जलचर पक्षी जलके पास बैठे हुए हैं, पर जलमें प्रवेश नहीं करते, जिस प्रकार भीरु मनुष्य युद्धसे डरते हैं उसी प्रकार येभी डरते हैं ॥ २२ ॥ यह वनराजि रातको हिम और अन्धकारसे आच्छन्न हो जाती है और प्रातःकाल हिमसे ढँक जाती है, इनमें फूलभी नहीं हैं. ये निद्रितके समान इस समय मालूम होती हैं ॥ २३ ॥ नदियोंका जल कुहरोंसे ढँका हुआ है, बोलीसे वहां सारसोंका होना मालूम पड़ता है, बर्फसे तीरकी बालु भींग गयी है, इस समय नदियोंकी ऐसी शोभा होगयी है ॥ २४ ॥ बर्फके गिरनेसे सूर्यकी कोमलतासे तथा सर्दीसे, निर्मल पत्थरपर पड़ा हुआ भी जल विषके समान अग्राह्य हो गया है ॥ २५ ॥ इस समय कमल-वनकी शोभा नष्ट हो गयी है, उसके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्र काले दुःखसमन्वितः । तपश्चरति धर्मात्मा त्वद्भक्त्या भरतः पुरे ॥२७॥
त्यक्त्वा राज्यं च मानं च भोगांश्च विविधान्बहून् । तपस्वी नियताहारः शेते शीते महीतले ॥२८॥
सोऽपि वेलामिमां नूनमभिषेकार्थमुद्यतः । वृतः प्रकृतिभिर्नित्यं प्रयाति सरयूं नदीम् ॥२९॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धः सुकुमारो हिमार्दितः । कथं त्वपररात्रेषु सरयूमवगाहते ॥३०॥
पद्मपत्रेक्षणः श्यामः श्रीमान्नरुदिरो महान् । धर्मज्ञः सत्यवादी च ह्रीनिषेधो जितेन्द्रियः ॥३१॥
प्रियाभिभाषी मधुरो दीर्घबाहुररिंदमः । संत्यज्य विविधान्सौख्यानार्यं सर्वात्मना श्रितः३२
जितः स्वर्गतव भ्रात्रा भरतेन महात्मना । वनस्थमपि तापस्ये यस्त्वामनुविधीयते ॥३३॥
न पित्र्यमनुवर्तन्ते मातृकं द्विपदा इति । ख्यातो लोकपवादोऽयं भरतेनान्यथा कृतः ॥३४॥
भर्ता दशरथो यस्य साधुश्च भरतः सुतः । कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी ॥३५॥
इत्येवं लक्ष्मणो वाक्यं स्नेहाद्ब्रुवति धार्मिके । परिवादं जनन्यास्तमसहन्राघवोऽब्रवीत् ॥३६॥
न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन । तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु ॥३७॥
निश्चितैव हि मे बुद्धिर्वनवासे दृढव्रता । भरतस्नेहसंतप्ता वालिशीक्रियते पुनः ॥३८॥

पत्ते पुराने होनेके कारण पीले पड़ गये हैं, कमलपुष्पके केसर और कर्णिक मुरझा गये हैं, वर्फके कारण केवल डंडाही अवशिष्ट रह गया है ॥ २६ ॥ पुरुषव्याघ्र, इस समयमें दुखी और धर्मात्मा भरत आपमें भक्ति होनेके कारण तपस्या कर रहे हैं ॥ २७ ॥ भरतने राज्य, मान तथा अनेक प्रकारके भोग छोड़ दिये हैं, वे तपस्वी इस शीतकालमें नियमित आहार करके जमीनपर सोते हैं ॥ २८ ॥ वे भरत भी इस समय प्रातःकालमें स्नानके लिए तयार होते हैं और अपने मन्त्री आदिके साथ सरयू तीरपर जाते हैं ॥ २९ ॥ सुखसे पले हुए सुकुमार भरत हिमसे पीड़ित होकर रात्रिके अन्तिम भागमें सरयूमें स्नान कैसे करते हैं ॥ ३० ॥ कमलनयन श्याम श्रीमान भरत मोटे नहीं हैं, उनका पेट बड़ा नहीं है, वे धर्मात्मा सत्यवादी और जितेन्द्रिय हैं, वे लज्जाके कारण बुरे भावोंसे बचे रहते हैं ॥ ३१ ॥ प्रियभाषी, सुन्दर, दीर्घबाहु, शत्रुओंके दमन करनेवाले, महात्मा भरतने सब प्रकारके सुखकी सामग्रियोंका त्याग करदिया है और सर्वात्मना आपहीका आश्रय ग्रहण किया है ॥ ३२ ॥ आपके भाई भरतने स्वर्ग जीत लिया, क्योंकि वह वनवासी आपका अनुसरण तपस्याके द्वारा कर रहा है ॥ ३३ ॥ दो पैरवाले प्राणी पिताके गुणोंका अनुवर्तन नहीं करते, किन्तु माताके गुणोंका वे अनुवर्तन करते हैं, इस लौकिक उक्तिको भरतने विपरीत कर दिया, उन्होंने माताके गुण नहीं लिये, किन्तु पिताके गुण लिये ॥ ३४ ॥ जिसके पति राजादशरथ हैं और पुत्र साधु भरत हैं वह माता केकयी ऐसी क्रूर कर्म करनेवाली कैसे हो गयी ? ॥ ३५ ॥ राम और भरतमें स्नेहके कारण धार्मिक लक्ष्मणने माता केकयीके सम्बन्धमें ऐसी निन्दाकी बात कही, रामचन्द्र इस बातको नहीं सह सके और वे बोले ॥ ३६ ॥ भाई, माता केकयीकी निन्दा तुम्हें कभी नहीं करनी चाहिए, तुम राजादशरथ और भरतकीही बातें करो ॥ ३७ ॥ मेरी बुद्धि वनवासमें दृढ है, मैं वनमें रहना चाहता हूँ, फिरभी भरतके स्नेहसे व्याकुल होकर वह कभी-कभी चञ्चल हो जाती है, वह भरतके देखनेके लिए व्याकुल हो जाती है ॥ ३८ ॥ मैं भरतके प्रिय और प्रचुर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संस्मराम्यस्य वाक्यानि प्रियाणि मधुराणि च । हृद्यान्यमृतकल्पानि मनःप्रह्लादनानि च ॥३९॥
कदा ह्यहं समेष्यामि भरतेन महात्मना । शत्रुघ्नेन च वीरेण त्वया च रघुनन्दन ॥४०॥
इत्येवं विलपंस्तत्र प्राप्य गोदावरीं नदीम् । चक्रेऽभिषेकं काकुत्स्थः सानुजः सह सीतया॥४१॥
तर्पयित्वाथ सलिलैस्तैः पितॄन्दैवतानपि । स्तुवन्ति स्मोदितं सूर्यं देवताश्च तथानघा ॥४२॥
कृताभिषेकः स रराज रामः सीताद्वितीयः सह लक्ष्मणेन ।
कृताभिषेकस्त्वगराजपुत्र्या रुद्रः स नन्दिर्भगवानिवेशः ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

——:o:——

सप्तदशः सर्गः १७

कृताभिषेको रामस्तु सीता सौमित्रिरेव च । तस्माद्गोदावरीतीरात्ततो जग्मुः स्वमाश्रमम् ॥ १ ॥
आश्रमं तदुपागम्य राघवः सहलक्ष्मणः । कृत्वा पौर्वाह्णिकं कर्म पर्णशालामुपागमत् ॥ २ ॥
उवास सुखितस्तत्र पूज्यमानो महर्षिभिः । स रामः पर्णशालायामासीनः सह सीतया ॥ ३ ॥
विरराज महाबाहुश्चित्रया चन्द्रमा इव । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा चकार विविधाः कथाः॥ ४ ॥
तदासीनस्य रामस्य कथासंसक्तचेतसः । तं देशं राक्षसी काचिदाजगाम यदृच्छया ॥ ५ ॥

वचन स्मरण करता हूँ, जो अमृतके समान हृदयको प्रिय हैं तथा मनको प्रसन्न करनेवाले हैं ॥ ३९ ॥ महात्मा भरत वीर शत्रुघ्न और तुम्हारे साथ मैं कब मिलूंगा, हम चारोभाई कब एक साथ रहेंगे ॥ ४० ॥ इस प्रकार विलाप करते हुए रामचन्द्र सीता और लक्ष्मणके साथ गोदावरी नदीके तीरपर पहुंचे और उन्होंने स्नान किया ॥ ४१ ॥ पिता और देवताओंका उन्होंने जलसे तर्पण किया, सूर्योदय होनेपर सूर्य और अन्य देवताओंकी स्तुति की ॥ ४२ सीता और लक्ष्मणके साथ स्नान करनेपर रामचन्द्र शोभित होने लगे, जिस प्रकार भगवान् रुद्र पार्वती और नन्दीके साथ स्नान करनेपर शोभित होते हैं ॥ ४३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका सोलहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १६ ॥

——::o——

राम, लक्ष्मण और सीता स्नान करके उस गोदावरी तीरसे अपने आश्रममें लौट आये ॥ १ ॥ आश्रममें आकर लक्ष्मणके साथ रामचन्द्रने पूर्वाह्णके कृत्य-ब्रह्मयज्ञ आदि किये, पुनः वे दोनों पर्णशालामें आये ॥ २ ॥ उस पर्णशालामें सीताके साथ निवास करते हुए रामचन्द्र महर्षियोंका आदर पाकर सुखपूर्वक निवास करने लगे ॥ ३ ॥ महाबाहु रामचन्द्र वहां शोभित हुए जिस प्रकार चित्राके योगसे चन्द्रमा शोभित होते हैं। रामचन्द्र वहां लक्ष्मणसे अनेक प्रकारकी पुराण इतिहासकी कथाएं कहा करते थे ॥ ४ ॥ एक दिन रामचन्द्र वहां बैठे किसी कथाके कहनेमें लगे हुए थे,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सातु शूर्पणखा नाम दशग्रीवस्य रक्षसः । भगिनी राममासाद्य ददर्श त्रिदशोपमम् ॥ ६ ॥
दीप्तास्यं च महाबाहुं पद्मपत्रायतेक्षणम् । गजविक्रान्तगमनं जटामण्डलधारिणम् ॥ ७ ॥
सुकुमारं महासत्त्वं पार्थिवव्यञ्जनान्वितम् । राममिन्दीवरश्यामं कंदर्पसदृशप्रभम् ॥ ८ ॥
बभूवेन्द्रोपमं दृष्ट्वा राक्षसी काममोहिता । सुमुखं दुर्मुखी रामं वृत्तमध्यं महोदरी ॥ ९ ॥
विशालाक्षं विरूपाक्षी सुकेशं ताम्रमूर्द्धजा । प्रियरूपं विरूपा सा सुस्वरं भैरवस्वना ॥१०॥
तरुणं दारुणा वृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी । न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्ता प्रियमप्रियदर्शना ॥११॥
शरीरजसमाविष्टा राक्षसी राममब्रवीत् । जटी तापसवेषेण सभार्यः शरचापधृक् ॥१२॥
आगतस्त्वमिमं देशं कथं राक्षससेवितम् । किमागमनकृत्यं ते तत्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥१३॥
एवमुक्तस्तु रक्षस्या शूर्पनख्या परंतपः । ऋजुबुद्धितया सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥१४॥
आसीदशरथो नाम राजा त्रिदशविक्रमः । तस्याहमग्रजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥१५॥
भ्रातायं लक्ष्मणो नाम यवीयान्मामनुव्रतः । इयं भार्या च वैदेही मम सीतेति विश्रुता ॥१६॥
नियोगात्तु नरेन्द्रस्य पितुर्मातुश्च यन्त्रितः । धर्मार्थं धर्मकाङ्क्षी च वनं वस्तुमिहागतः ॥१७॥
त्वां तु वेदितुमिच्छामि कस्य त्वं कासि कस्य वा । त्वं हि तावन्मनोज्ञाङ्गी राक्षसी प्रतिभासि मे१८॥

उसी समय एक राक्षसी विना किसी कारणके उस स्थान पर आयी ॥ ५ ॥ वह राक्षसी रावणकी बहिन शूर्पणखा थी, वहां आकर उसने देवताके समान सुन्दर रामचन्द्रको देखा ॥ ६ ॥ दीप्तमुख, महाबाहु, कमल पत्रके समान विशाल नयन, हाथीके समान चलनेवाले और जटाधारी सुकुमार महाबली, राजलक्षण युक्त, नील कमलके समान श्याम और कामके समान सुन्दर रामको उसने देखा ॥ ७ ॥ ८ ॥ सुन्दर मुखवाले पतली कमरवाले और इन्द्रके समान रामचन्द्रको देखकर दुर्मुखी और बड़े पेटवाली राक्षसी काम-मोहित हो गयी ॥ ९ ॥ (आगेके दो श्लोकोंमें दोनोंकी विभिन्नता दिखायी जाती है) रामचन्द्र विशालाक्ष हैं और वह विरूपाक्षी है, रामचन्द्रके बाल बड़े सुन्दर हैं और उसके बाल लाल हैं, राम सुन्दर हैं वह कुरूपा हैं, रामका स्वर मधुर हैं और उसका स्वर भयानक है, राम युवा हैं और वह बहुतही बूढी, राम मधुर भाषी हैं और वह कठोर भाषिणी, रामचन्द्र सदाचारी हैं और वह दुराचारिणी, राम प्रियदर्शन हैं और वह अप्रियदर्शना ॥ १०॥११ ॥ कामसे मोहित होकर वह राक्षसी रामसे बोली—जटा और धनुषबाण धारण करके स्त्रीके साथ तपस्वीके वेषमें ॥ १२ ॥ राक्षसोंके इस देशमें तुम कैसे आये, तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है, वह ठीक-ठीक मुझसे कहो ॥ १३ ॥ राक्षसी शूर्पणखाके ऐसा कहने पर सरल बुद्धि होनेके कारण रामचन्द्र सब वृतान्त कहने लगे ॥ १४ ॥ देवताओंके समान पराक्रमी दसरथ नामके एक राजा थे, मैं उनका ज्येष्ठ पुत्र हूँ, रामनामसे मैं प्रसिद्ध हूँ ॥ १५ ॥ यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है, यह मेरा अनुगामी है, यह मेरी स्त्री सीता है, यह विदेह राजपुत्री है ॥ १६ ॥ पिताकी आज्ञा और माताकी प्रेरणसे धर्मार्थ मैं यहां वनवास करनेके लिए आया हूँ, क्योंकि मैं धर्माचरण करना चाहता हूँ ॥ १७ ॥ मैं तुमको जानना चाहता हूँ, तुम कौन हो, तुम्हारा नाम क्या है, किस देशकी हो, हे सुन्दर शरीरवाली, मुझे तुम राक्षसीके समान मालूम पड़ती हो ॥ १८ ॥ यहां तुम किस कारणसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इह वा किंनिमित्तं त्वमागता ब्रूहि तत्त्वतः । साब्रवीद्वचनं श्रुत्वा राक्षसी मदनार्दिता ॥१९॥
श्रूयतां राम तत्त्वार्थं वक्ष्यामि वचनं मम । अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी ॥२०॥
अरण्यं विचरामीदमेका सर्वभयंकरा । रावणो नाम मे भ्राता यदि ते श्रोत्रमागतः ॥२१॥
वीरोविश्रवसः पुत्रो यदि ते श्रोत्रमागतः । प्रबुद्धनिद्रश्च सदा कुम्भकर्णो महाबलः ॥२२॥
विभिषणस्तु धर्मात्मा न तु राक्षसचेष्टितः । प्रख्यातवीर्यौ च रणे भ्रातरौ खरदूषणौ ॥२३॥
तानहं समतिक्रान्ता राम त्वापूर्वदर्शनात् । समुपेतास्मि भावेन भर्तारं पुरुषोत्तमम् ॥२४॥
अहं प्रभावसंपन्ना स्वच्छन्दबलगामिनी । चिराय भव भर्तामे सीतया किं करिष्यसि ॥२५॥
विकृता च विरूपा च न सेयं सदृशी तव । अहमेवानुरूपा ते भार्यारूपेण पश्य माम् ॥२६॥
इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम् । अनेन सह ते भ्रात्रा भक्षयिष्यामि मानुषीम् ॥२७॥
ततः पर्वतशृङ्गाणि वनानि विविधानि च । पश्यन्सह मया कामी दण्डकान्विचरिष्यसि॥२८॥
इत्येवमुक्तः काकुत्स्थः प्रहस्य मदिरेक्षणाम् । इदं वचनमारेभे वक्तुं वाक्यविशारदः ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

——:o:——

आयी हो, यह तुम मुझसे सच-सच कहो । रामके वचन सुनकर कामपीड़ित वह राक्षसी बोली ॥ १९ ॥ राम, तुम मेरी बात सुनो, मैं यथार्थ बातें कहती हूँ, मेरा शूर्पणखा नाम है, मैं राक्षसी हूँ और इच्छानुसार रूप धारण करती हूँ ॥ २० ॥ सबको भयभीत करनेवाली मैं अकेली इस वनमें विचरण करती हूँ । मेरा भाई रावण है । शायद तुमने उसका नाम सुना हो ॥ २१ ॥ विश्रवाके पुत्र महाबली वीर कुम्भकर्णका भी नाम तुमने सुना होगा, वह बहुत सोता है ॥ २२ ॥ विभीषण धर्मात्मा, है उसका स्वभाव राक्षसों जैसा नहीं है, रणमें प्रसिद्ध पराक्रमी खर और दूषण भी हमारे भाई हैं ॥२३॥ मैं उन सबसे बड़ी हूँ, बलवती हूँ, राम, तुम्हारे पहलेही दर्शनसे मैं तुमपर आसक्त हो गयी हूँ । पुरुषश्रेष्ठ, तुममें पतिका भाव रखकर मैं आयी हूँ अर्थात् तुमको पति वरण करनेके लिए आयी हूँ ॥ २४ ॥ राम मैं तेजस्विनी हूँ, मैं अपने स्वाधीन बलसे सर्वत्र विचरण करती हूँ, सदाके लिए तुम मेरे पति बन जाओ, सीताको लेकर क्या करोगे ॥ २५ ॥ यह सीता विकृत और विरूप है, यह तुम्हारे योग्य नहीं है, मैं ही तुम्हारे योग्य हूँ, तुम मुझे स्त्री समझो ॥ २६ ॥ यह तुम्हारे योग्य नहीं है, यह असती भयानक स्वरूपवाली तथा पतली कमरवाली है । मैं तुम्हारे इस भाईके साथ इस मानुषीको खा लूंगी ॥ २७ ॥ तब कामी तुम मेरे साथ पर्वत शिखरों तथा अनेक वनोंको देखते हुए दण्डक वनमें भ्रमण करना ॥ २८ ॥ शूर्पणखाके ऐसा कहने पर बोलनेमें चतुर रामचन्द्र उससे, जिसकी आंखें घूम रही थीं, इस प्रकार बोलने लगे ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका सत्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १७ ॥

——:o:——

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अष्टादशः सर्गः १८

तां तु शूर्पणखां रामः कामपाशावपाशिताम् । स्वेच्छया श्लक्ष्णया वाचा स्मितपूर्वमथाब्रवीत्॥१॥
कृतदारोऽस्मि भवति भार्येयं दयिता मम । त्वद्विधानां तु नारीणां सुदुःखा सपत्नता ॥ २ ॥
अनुजस्त्वेष मे भ्राता शीलवान्प्रियदर्शनः । श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥ ३ ॥
अपूर्वी भार्यया चार्थी तरुणः प्रियदर्शनः । अनुरूपश्च ते भर्ता रूपस्यास्य भविष्यति ॥ ४ ॥
एनं भज विशालाक्षि भर्तारं भ्रातरं मम । असपत्ना वरारोहे मेरुमर्कप्रभा यथा ॥ ५ ॥
इति रामेण सा प्रोक्ता राक्षसी काममोहिता । विसृज्य रामं सहसा ततो लक्ष्मणमब्रवीत्॥ ६ ॥
अस्य रूपस्य ते युक्ता भार्याहं वरवर्णिनी । मया सह सुखं सर्वान्दण्डकान्विचरिष्यसि ॥ ७ ॥
एवमुक्तस्तु सौमित्री राक्षस्या वाक्यकोविदः । ततः शूर्पणखीं स्मित्वा लक्ष्मणो युक्तमब्रवीत् ॥८॥
कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि । सोऽहमार्येण परवान्भ्रात्रा कमलवर्णिनि ॥ ९ ॥
समृद्धार्थस्य सिद्धार्था मुदितामलवर्णिनी । आर्यस्य त्वं विशालाक्षि भार्या भव यवीयसी ॥१०॥
एतां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम् । भार्यां वृद्धां परित्यज्य त्वामेवैष भजिष्यति ॥११॥
को हि रूपमिदं श्रेष्ठं संत्यज्य वरवर्णिनि । मानुषीषु वरारोहे कुर्याद्भावं विचक्षणः ॥१२॥
इति सा लक्ष्मणेनोक्ता कराला निर्णतोदरी । मन्यते तद्वचः सत्यं परिहासाविचक्षणा ॥१३॥

कामपाशसे बँधी हुई उस शूर्पनखासे मधुर स्वरमें साफ-साफ हँसकर रामचन्द्र बोले ॥ १ ॥ श्रीमति, मेरा व्याह हो चुका है, यह मेरी प्यारी स्त्री है और यह वर्तमान है, तुम्हारे समान स्त्रियोंके लिए सौतका होना बड़ाही दुःखदायी है ॥ २ ॥ यह लक्ष्मण मेरा छोटा भाई है, इसका शील बड़ा सुन्दर है, यह देखनेमें भी सुन्दर है, सब प्रकारकी सम्पत्ति भी इसके पास है, इसका व्याह भी अभी नहीं हुआ है और यह पराक्रमी भी है ॥ ३ ॥ इसने आजतक स्त्रीका मुंह नहीं देखा है, अतएव यह सुन्दर युवक स्त्री चाहता है, तुम्हारे इस सुन्दर रूपके अनुरूप यही तुम्हारा पति हो सकता है ॥ ४ ॥ विशालाक्षि, तुम मेरे इस भाईको अपना पति बनाओ, यहां तुम बिना सौतकी रहोगी, जिस प्रकार सूर्यकी प्रभा मेरुमें रहती है ॥ ५ ॥ काममोहित वह राक्षसी रामचन्द्रके ऐसा कहने पर उनको छोड़ शीघ्रही लक्ष्मणके पास आकर उनसे बोली ॥६॥ तुम्हारे इस रूपके योग्य मैं ही सुन्दरी तुम्हारी स्त्री हो सकती हूँ, मेरे साथ समस्त दण्डक वनमें तुम सुखपूर्वक विचरण कर सकोगे ॥ ७ ॥ राक्षसीके ऐसा कहने पर बोलनेमें निपुण सुमित्रानन्दन लक्ष्मण हँसकर शूर्पनखासे युक्तियुक्त बोले ॥ ८ ॥ मैं दास हूँ, तुम दासकी स्त्री दासी क्यों बनना चाहती हो, कमलके समान वर्णवाले मैं अपने बड़े भाई रामचन्द्रके अधीन हूँ ॥ ९ ॥ रामचन्द्रको सभी प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त हैं, विशालाक्षि, तुम इन्हीकी छोटी स्त्री बनो, रक्तकमलके समान शरीरवाली तुम प्रसन्न रहोगी, तुम्हारे मनोरथ पूरे होंगे ॥ १० ॥ रामचन्द्रकी स्त्री सीता विरूप है, असती है, भयानक और पतली कमरवाली है, रामचन्द्र उस बूढ़ीको छोड़कर तुमको ही अपनावेंगे ॥ ११ ॥ सुन्दरि, कौन बुद्धिमान ऐसा सुन्दर रूप छोड़कर मानुषीसे प्रेम करेगा ॥ १२ ॥ लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर भयानक उस राक्षसीने उनकी बात सत्य समझी, क्योंकि वह परिहासमें चतुर न थी ॥ १३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सा रामं पर्णशालायामुपविष्टं परंतपम् । सीतया सह दुर्धर्षमब्रवीत्काममोहिता ॥१४॥
इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम् । वृद्धां भार्यामवष्टभ्य न मां त्वं बहु मन्यसे ॥१५॥
अद्येमां भक्षयिष्यामि पश्यतस्तव मानुषीम् । त्वया सह चरिष्यामि निःसपत्ना यथासुखम्॥१६॥
इत्युक्त्वा मृगशावाक्षीमलातसदृशेक्षणा । अभ्यगच्छन्सुसंक्रुद्धा महोल्का रोहिणीमिव॥१७॥
तां मृत्युपाशप्रतिमामापतन्तीं महाबलः । विगृह्य रामः कुपितस्ततो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥१८॥
क्रूरैरनार्यैः सौमित्रे परिहासः कथंचन । न कार्यः पश्य वैदेहीं कथंचित्सौम्य जीवतीम् ॥१९॥
इमां विरूपामसतीमतिमत्तां महोदरीम् । राक्षसीं पुरुषव्याघ्र विरूपयितुमर्हसि ॥२०॥
इत्युक्तो लक्ष्मणस्तस्याः क्रुद्धो रामस्य पश्यतः । उद्धृत्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासे महाबलः॥२१॥
निकृत्तकर्णनासा तु विस्वरं सा विनद्य च । यथागतं प्रदुद्राव घोरा शूर्पणखा वनम् ॥२२॥
सा विरूपा महाघोरा राक्षसी शोणितोक्षिता । ननाद विविधान्नादान्यथा प्रावृषि तोयदः॥२३॥
सा विक्षरन्ती रुधिरं बहुधा घोरदर्शना । प्रगृह्य बाहू गर्जन्ती प्रविवेश महावनम् ॥२४॥

ततस्तु सा राक्षससङ्घसंवृतं खरं जनस्थानगतं विरूपिता ।
उपेत्य तं भ्रातरमुग्रतेजसं पपात भूमौ गगनाद्यथाऽशनिः ॥ २५ ॥

शत्रुओंके द्वारा पराजित न होनेवाले और शत्रुओंको पराजित करनेवाले रामचन्द्र सीताके साथ पर्णशालामें बैठे थे, काममोहित शूर्पनखा जाकर उनसे बोली ॥ १४ ॥ इस विरूप, असती, कराल और बूढ़ी स्त्रीके कारण तुम मेरा आदर नहीं कर रहे हो ॥ १५ ॥ तुम्हारे देखते ही देखते इस मानुषीको मैं आज खा लेती हूँ और सीताके न रहनेसे सुखपूर्वक मैं तुम्हारे साथ विचरण करूँगी ॥ १६ ॥ ज्वालाहीन अग्निकाष्ठके समान आँखवाली शूर्पनखा ऐसा कहकर क्रोधपूर्वक बालमृगनेत्रा सीतापर झपटी, जिस प्रकार महोल्का (उत्पात विशेष) रोहिणीपर झपटती है ॥ १७ ॥ मृत्युपाश-के समान आक्रमण करनेके लिए आती हुई उसको महाबली रामचन्द्रने रोका और क्रोधपूर्वक वे लक्ष्मणसे बोले ॥ १८ ॥ अनार्य क्रूरोंसे परिहासभी नहीं करना चाहिए । देखो, वैदेहीका जीवन किसी-किसी प्रकार रक्षित हुआ है ॥ १९ ॥ पुरुषव्याघ्र, इस कुरूपा, दुराचारिणी, लम्बे पेटवाली उन्मादिन राक्षसीको तुम विरूप करदो, इसका अङ्ग भङ्ग कर दो ॥ २० ॥ रामके ऐसा कहनेपर उनके सामनेही लक्ष्मणने क्रोध करके तलवार निकाली और उन्होंने उसकी नाक और कान काट डाले ॥ २१ ॥ कान नाकके काटे जानेपर भयानक चीत्कारसे वह रोयी और जिधरसे आयी थी उधरही वह भयानक राक्षसी चली गयी ॥ २२ ॥ वह महाभयानक और कुरूप राक्षसी खूनसे नहा गयी और वर्षाके मेघके समान अनेक प्रकारके शब्द करने लगी ॥ २३ ॥ महाभयानक वह राक्षसी रुधिर चुआती हुई और अपनी बाहुओंको समेटकर वनमें गयी ॥ २४ ॥ वह विरूप की गयी शूर्पनखा, राक्षसोंकी सेनाके साथ जनस्थानमें रहनेवाले अतितेजस्वी अपने भाई खरके पास जाकर जमीनमें गिर पड़ी, जैसे आकाशसे बिजली गिरी हो ॥ २५ ॥ भयजनित मोहसे मूर्च्छित और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततः सभार्यं भयमोहमूर्च्छिता सलक्ष्मणं राघवमागतं वनम् ।
विरूपणं चात्मनि शोणितोक्षिता शशंस सर्वं भगिनी खरस्य सा ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डेऽष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

—:o:—

एकोनविंशः सर्गः १९

तां तथा पतितां दृष्ट्वा विरूपां शोणितोक्षिताम् । भगिनीं क्रोधसंतप्तः खरः पप्रच्छ राक्षसः ॥ १ ॥
उत्तिष्ठ तावदाख्याहि प्रमोहं जहि संभ्रमम् । व्यक्तमाख्याहि केन त्वमेवंरूपा विरूपिता ॥ २ ॥
कः कृष्णसर्पमासीनमाशीविषमनागसम् । तुदत्यभिसमापन्नमङ्गुल्यग्रेण लीलया ॥ ३ ॥
कालपाशं समासज्य कण्ठे मोहान्न बुध्यते । यस्त्वामद्य समासाद्य पीतवान्विषमुत्तमम् ॥ ४ ॥
बलविक्रमसंपन्ना कामगा कामरूपिणी । इमामवस्थां नीता त्वं केनान्तकसमागता ॥ ५ ॥
देवगन्धर्वभूतानामृषीणां च महात्मनाम् । कोऽयमेवं महावीर्यस्त्वां विरूपां चकार ह ॥ ६ ॥
नहि पश्याम्यहं लोके यः कुर्यान्मम विप्रियम् । अमरेषु सहस्राक्षं महेन्द्रं पाकशासनम् ॥ ७ ॥
अद्याहं शरगणैः प्राणानादास्ये जीवितान्तगैः । सलिले क्षीरमासक्तं निष्पिबन्निव सारसः ॥ ८ ॥
निहतस्य मया संख्ये शरसंकृत्तमर्मणः । सफेनं रुधिरं कस्य मेदिनी पातुमिच्छति ॥ ९ ॥

खूनसे सनी, खरकी बहिन उस शूर्पनखाने लक्ष्मण और स्त्रीके साथ रामचन्द्रका वनमें आना तथा अपना अङ्ग भङ्ग किया जाना सब बतलाया ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका अठारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १८ ॥

—:o:—

उस प्रकार खूनसे सनी और विरूप अपनी भगिनीको सामने जमीनमें पड़ी देखकर खर राक्षसको बड़ा क्रोध आया और वह बोला ॥ १ ॥ उठो, सब बातें मुझसे कहो, बेहोशी दूर करो, घबड़ाहट हटाओ, साफ-साफ कहो, किसने तुम्हें इस प्रकार विरूप बनाया है ॥ २ ॥ कौन अनपराधी कृष्णसर्पको—जिसकी दाढ़में विषभरा हुआ है—सामने आनेपर खेलके तौरपर अपनी अंगुलियोंसे खोद रहा है ॥ ३ ॥ किसने तुमको पाकर बहुतही जहरीला विष पीया है, उसने अपने गलेमें कालपाश बाँध लिया है, पर मूर्खतावश इस बातको समझता नहीं ॥ ४ ॥ तुम बल-विक्रमसे सम्पन्न हो, इच्छानुसार जहां चाहो जा आ सकती हो, इच्छानुसार रूप धर सकती हो, तुम स्वयं यमराजके समान हो, तुम किसके पास गयी थी, जिसने तुम्हारी यह अवस्था की ॥ ५ ॥ देवता, गन्धर्व, अन्य प्राणियोंमें का और महात्मा ऋषियोंमें का वह कौन ऐसा पराक्रमी है, जिसने तुम्हारा ऐसा रूप बनाया ॥ ६ ॥ इस लोकमें मैं तो ऐसा किसीको नहीं देखता जो मेरा अप्रिय कर सके। देवताओंमें पाकशासन सहस्राक्ष इन्द्रभी ऐसा नहीं कर सकता, फिर दूसरोंकी कौन बात ? ॥ ७ ॥ आज मैं प्राण लेनेवाले अपने बाणोंसे अपराधीके प्राण ले लूंगा, जिस प्रकार हंस जलमें मिला दूध ले लेता है ॥ ८ ॥ पृथिवी किस मनुष्यका फेनवाला रुधिर पीना चाहती है, किसके मर्म मेरे बाणोंसे कट जायंगे और रणमें कौन मेरे द्वारा मारा जायगा ॥ ९ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कस्य पत्ररथाः कायान्मांसमुत्कृत्य संगताः । प्रहृष्टा भक्षयिष्यन्ति निहतस्य मया रणे ॥१०॥
तं न देवा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसा । मयापकृष्टं कृपणं शक्तास्त्रातुं महाहवे ॥११॥
उपलभ्य शनैः संज्ञां तं मे शंसितुमर्हसि । येन त्वं दुर्विनीतेन वने विक्रम्य निर्जिता ॥१२॥
इति भ्रातुर्वचः श्रुत्वा क्रुद्धस्य च विशेषतः । ततः शूर्पणखा वाक्यं सबाष्पमिदमब्रवीत् ॥१३॥
तरुणौ रूपसंपन्नौ सुकुमारौ महाबलौ । पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ॥१४॥
फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ । पुत्रौ दशरथस्यास्तां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१५॥
गन्धर्वराजप्रतिमौ पार्थिवव्यञ्जनान्वितौ । देवौ वा दानवावेतौ न तर्कयितुमुत्सहे ॥१६॥
तरुणी रूपसंपन्ना सर्वाभरणभूषिता । दृष्टा तत्र मया नारी तयोर्मध्ये सुमध्यमा ॥१७॥
ताभ्यामुभाभ्यां संभूय प्रमदामधिकृत्य ताम् । इमामवस्थां नीताहं यथाऽनाथाऽसती तथा॥१८॥
तस्याश्चानृजुवृत्तायास्तयोश्च हतयोरहम् । सफेनं पातुमिच्छामि रुधिरं रणमूर्धनि ॥१९॥
एष मे प्रथमः कामः कृतस्तत्र त्वया भवेत् । तस्यास्तयोश्च रुधिरं पिबेयमहमाहवे ॥२०॥
इति तस्यां ब्रुवाणायां चतुर्दश महाबलान् । व्यादिदेश खरः क्रुद्धो राक्षसानन्तकोपमान् ॥२१॥
मानुषौ शस्त्रसंपन्नौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ । प्रविष्टौ दण्डकारण्यं घोरं प्रमदया सह ॥२२॥
तौ हत्वा तां च दुर्वृत्तामुपावर्तितुमर्हथ । इयं च भगिनी तेषां रुधिरं मम पास्यति ॥२३॥

मेरे द्वारा निहत किसके शरीरसे मांस नोचकर पक्षी एकत्र होकर खांयगे ॥ १० ॥ मैं जिस अपराधीको मारनेके लिये युद्धमें अपनी तलवार खींचूंगा, उसकी रक्षा करनेमें देवता, गन्धर्व, पिशाच, राक्षसभी समर्थ न हो सकेंगे ॥ ११ ॥ धीरे-धीरे होशमें आकर तुम उस आदमीका नाम बतलाओ, जिसने वनमें बलप्रकाश करके तुम्हें पराजित किया है ॥ १२ ॥ क्रुद्ध अपने भाईके ये वचन सुनकर शूर्पनखा रोती-रोती इस प्रकार बोली ॥ १३ ॥ रूपवान्, सुकुमार और महाबली दो तरुण हैं, कमलके समान उनकी बड़ी-बड़ी आंखे हैं और चीर तथा कृष्णमृगचर्म धारण किये हुए हैं, फल-मूल खानेवाले, जितेन्द्रिय, तपस्वी और ब्रह्मचारी हैं, दशरथके पुत्र हैं, दोनो भाई हैं, उनके नाम राम और लक्ष्मण हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ वे गन्धर्वराजके समान हैं, राजाके लक्षण उनमें वर्तमान हैं, वे देवता हैं या दानव इसका निश्चय मैं नहीं कर सकती ॥ १६ ॥ उन दोनोंके साथ एक तरुणी रूपवती और सब आभूषणोंसे भूषित स्त्री देखी है ॥ १७ ॥ उसी स्त्रीके कारण उन दोनोंने मिलकर मेरी ऐसी दशा की है, जैसी दशा अनाथा असतीकी होती है ॥ १८ ॥ रणमें उस कुटिल चरित्रवाली स्त्रीके तथा उन पुरुषोंके मारे जानेपर उनका फेनयुक्त रुधिर मैं पीना चाहती हूँ ॥१९॥ उस स्त्री तथा उन पुरुषोंका रुधिर मैं युद्धमें पीऊंगी, मेरे इस प्रधान मनोरथको तुम पूरा कर सकोगे ? ॥ २० ॥ शूर्पनखाके ऐसा कहनेपर बड़े क्रोधसे खरने यमराजके समान चौदह राक्षसोंको आज्ञा दी ॥ २१ ॥ चीर और कृष्णमृगचर्म धारण करनेवाले शस्त्रधारी दो मनुष्य एक स्त्रीके साथ इस भयानक दण्डकारण्यमें आये हैं ॥ २२ ॥ उन दोनोंको मारकर पुनः उस दुराचारिणी स्त्रीको मारो। मेरी यह बहिन उन लोगोंका रुधिर पान करेगी ॥ २३ ॥ राक्षसो, मेरी इस भांगेनीका यही प्रिय मनोरथ है, तुमलोग जाकर और उन दोनोंको मारकर शीघ्र इसका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनोरथोऽयमिष्टोऽस्या भगिन्या मम राक्षसाः। शीघ्रं संपाद्यतां गत्वा तौ प्रमथ्य स्वतेजसा॥२४॥
युष्माभिर्निहितौ दृष्ट्वा तावुभौ भ्रातरौ रणे। इयं प्रहृष्टा मुदिता रुधिरं युधि पास्यति॥२५॥
इति प्रतिसमादिष्टा राक्षसास्ते चतुर्दश। तत्र जग्मुस्तया सार्धं घना वातेरिता इव॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकोनविंशः सर्गः॥ १९॥

—:o:—

विंशः सर्गः २०

ततः शूर्पणखा घोरा राघवाश्रममागता। राक्षसानाचचक्षे तौ भ्रातरौ सह सीतया॥ १॥
ते रामं पर्णशालायामुपविष्टं महाबलम्। ददृशुः सीतया सार्धं लक्ष्मणेनापि सेवितम्॥ २॥
तां दृष्ट्वा राघवः श्रीमानागतांस्ताँश्च राक्षसान्। अब्रवीद् भ्रातरं रामो लक्ष्मणं दीप्ततेजसम्॥ ३॥
मुहूर्तं भव सौमित्रे सीतायाः प्रत्यनन्तरः। इमानस्या वधिष्यामि पदवीमागतानिह॥ ४॥
वाक्यमेतत्ततः श्रुत्वा रामस्य विदितात्मनः। तथेति लक्ष्मणो वाक्यं राघवस्य प्रपूजयत्॥ ५॥
राघवोऽपि महच्चापं चामीकरविभूषितम्। चकार सज्यं धर्मात्मा तानि रक्षांसि चाब्रवीत्॥ ६
पुत्रौ दशरथस्यावां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ। प्रविष्टौ सीतया सार्धं दुश्चरं दण्डकावनम्॥ ७॥
फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ। वसन्तौ दण्डकारण्ये किमर्थमुपहिंसथ॥ ८॥

यह मनोरथ पूरा करो॥ २४॥ युद्धमें वे दोनों भाई तुम लोगोंके द्वारा मारे गये देखकर यह प्रसन्न होकर युद्धभूमिमें उनका रुधिर पीएगी॥ २५॥ इस प्रकारकी आज्ञा पाकर वे चौदहो राक्षस उस शूर्पनखाके साथ वहां गये, मानों पवन प्रेरित मेघ जा रहे हों॥ २६॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका उन्नीसवां सर्ग समाप्त॥ १९॥

—:o:—

तदनन्तर भयानक राक्षसी शूर्पणखा रामचन्द्रके आश्रमपर आयी और सीताके साथ दोनों भाइयोंका परिचय राक्षसोंको उसने दिया॥ १॥ राक्षसोंने देखा कि महाबली रामचन्द्र पर्णशालामें बैठे हैं और सीता तथा लक्ष्मण उनकी सेवा कर रहे हैं॥ २॥ शूर्पणखाको और राक्षसोंको आया हुआ देखकर रामचन्द्रने अपने तेजस्वी भाई लक्ष्मणसे कहा॥ ३॥ लक्ष्मण थोड़ी देर तुम सीताके पास रहो, इस शूर्पनखाके साथ आए हुए इनको मैं मारूँगा॥ ४॥ अपने पराक्रमको समझनेवाले रामचन्द्रके ये वचन सुनकर लक्ष्मणने स्वीकार किया और उन्होंने उनकी आज्ञाका पालन किया॥५॥ रामचन्द्रने भी सुवर्णसज्जित अपने बड़े धनुषपर रौदा चढ़ाया और वे उन राक्षसोंसे बोले॥ ६॥ हमलोग दशरथके पुत्र हैं, राम और लक्ष्मण दोनों भाई हैं, दुःखसे विचरण करने योग्य इस दण्डक वनमें सीताके साथ आये हैं॥ ७॥ फलमूल हमारा भोजन है, हमलोग जितेन्द्रिय तपस्वी ब्रह्मचारी हैं, दण्डकारण्यमें रहते हैं, हमको तुम क्यों मार रहे हो अर्थात् हम निरपराध हैं, फिर तुम हमें मारनेकी इच्छासे क्यों आए हो॥ ८॥ वध करने योग्य तो तुमलोग हो, क्योंकि तुम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

युष्मान्पापात्मकान्हन्तुं विप्रकारान्महाहवे । ऋषीणां तु नियोगेन संप्राप्तः सशरासनः ॥ ९ ॥
तिष्ठतैवात्र संतुष्टा नोपावर्तितुमर्हथ । यदि प्राणैरिहार्थो वो निवर्तध्वं निशाचराः ॥१०॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसास्ते चतुर्दश । ऊचुर्वाचं सुसंकुद्धा ब्रह्मघ्नाः शूलपाणयः ॥११॥
संरक्तनयना घोरा रामं संरक्तलोचनम् । परुषा मधुराभाषं हृष्टा दृष्टपराक्रमम् ॥१२॥
क्रोधमुत्पाद्य नो भर्तुः खरस्य सुमहात्मनः । त्वमेव हास्यसे प्राणान्सद्योऽस्माभिर्हतो युधि ॥
का हि ते शक्तिरेकस्य बहूनां रणमूर्धनि । अस्माकमग्रतः स्थातुं किं पुनर्योद्धुमाहवे ॥१४॥
एभिर्बाहुप्रयुक्तैश्च परिघैः शूलपट्टिशैः । प्राणांस्त्यक्ष्यसि वीर्यं च धनुश्च करपीडितम्॥१५॥
इत्येवमुक्त्वा संरब्धा राक्षसास्ते चतुर्दश । उद्यतायुधनिस्त्रिंशा राममेवाभिदुद्रुवुः ॥१६॥
चिक्षिपुस्तानि शूलानि राघवं प्रति दुर्जयम् । तानि शूलानि काकुत्स्थः समस्तानि चतुर्दश१७
तावद्भिरेव चिच्छेद शरैः काञ्चनभूषितैः । ततः पश्यन्महातेजा नाराचान्सूर्यसंनिभान् ।१८।
जग्राह परमक्रुद्धश्चतुर्दश शिलाशितान् । गृहीत्वा धनुरायम्य लक्ष्यानुद्दिश्य राक्षसान् १९
मुमोच राघवो बाणान्वज्रानिव शतक्रतुः । ते भित्त्वा रक्षसां वेगाद्वक्षांसि रुधिरप्लुताः ।२०।
विनिष्पेतुस्तदा भूमौ वल्मीकादिव पन्नगाः । तैर्भिन्नहृदया भूमौ भिन्नमूला इव द्रुमाः ॥२१॥

लोगोंने ऋषियोंका बड़ा अपकार किया है, उन्हीं ऋषियोंकी आज्ञासे तुम पापियोंको युद्धमें मारनेके लिये मैं धनुष लेकर आया हूँ ॥ ९ ॥ यदि तुमलोग युद्ध करना चाहते हो तो ठहरो लौटो मत, यदि तुमलोग प्राण बचाना चाहते हो तो राक्षसो, यहाँसे लौट जाओ ॥ १० ॥ रामचन्द्रके वचन सुनकर वे चौदहों राक्षस बड़ेही क्रोधसे बोले, वे ब्राह्मणोंको मारनेवाले राक्षस हाथोंमें शूल लिये हुए थे ॥ ११ ॥ उन भयानक राक्षसोंकी आँखें लाल हो गयी थीं, वे रूखे स्वभाववाले तथा प्रसन्न राक्षस, अरुणनयन, मधुरभाषी और प्रसिद्ध पराक्रमी रामचन्द्रसे बोले ॥ १२ ॥ हम लोगोंके स्वामी महात्मा खरको क्रोधित करके तुम्हीं हम लोगोंके हाथोंसे युद्धमें अपने प्राण गँवाओगे ॥१३॥ हमलोग बहुत हैं, हम लोगोंके सामने युद्धमें ठहरनेकी भी तो तुम्हारी शक्ति नहीं है, फिर तुम युद्ध क्या कर सकोगे ॥ १४ ॥ हम लोगोंकी बाहुओंसे फेके गए इन परिघों, शूलों (एक तरह की गदा), पट्टिशों (एक तरह की तलवार) से तुम अपने प्राण, पराक्रम और हाथसे खूब पकड़ा हुआ यह धनुष छोड़ोगे अर्थात् शीघ्रही तुम हम लोगोंके हाथसे मारे जाओगे ॥ १५ ॥ ऐसा कहकर युद्धके आवेशसे वे चौदहों राक्षस आयुध और तलवार उठाकर रामचन्द्रकी ओर दौड़े ॥ १६ ॥ उन लोगोंने दुर्जय रामचन्द्रकी ओर शूल फेंके, रामचन्द्रने भी उन समस्त चौदह शूलोंको अपने सुवर्ण-भूषित सोलह बाणोंसे काट गिराया । तदनन्तर महातेजस्वी रामचन्द्रने सूर्यके समान चमकीले अपने बाण देखे ॥ १७ ॥ १८ ॥ रामचन्द्रने क्रोध करके पत्थरोंके लिए भी तीखे, चौदह बाण लिये और धनुषपर चढ़ाकर राक्षसोंको लक्ष्य करके छोड़े, जैसे इन्द्र वज्र छोड़ते हैं । वे बाण राक्षसोंकी छाती फाड़कर रुधिरसे सनेहुए पृथिवी पर गिरे, जिस प्रकार वल्मीकसे साँप निकलते हैं । उन बाणोंसे राक्षसोंके हृदय फट गए और वे कटे पेड़के समान पृथिवीपर गिर पड़े ॥१९॥२०॥२१॥ वे राक्षस निष्प्राण होकर पृथिवी पर गिरे, वे रुधिरसे नहाये हुए थे, वे विकृत हो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निपेतुः शोणितस्नाता विकृता विगतासवः । तान्भूमौ पतितान्दृष्ट्वा राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता २२
उपगम्य खरं सा तु किंचित्संशुष्कशोणिता । पपात पुनरेवार्ता सनिर्यासेव वल्लरी ॥२३॥
भ्रातुः समीपे शोकार्ता ससर्ज निनदं महत् । सस्वरं मुमुचे बाष्पं विवर्णवदना तदा ॥२४॥
निपातितान्प्रेक्ष्य रणे तु राक्षसान्प्रधाविता शूर्पणखा पुनस्ततः ।
वधं च तेषां निखिलेन रक्षसां शशंस सर्वं भगिनी खरस्य सा ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

——:०:——

एकविंशः सर्गः २१

स पुनः पतितां दृष्ट्वा क्रोधाच्छूर्पणखां पुनः । उवाच व्यक्तया वाचा तामनर्थार्थमागताम् ॥ १ ॥
मया त्विदानीं शूरास्ते राक्षसाःपिशिताशनाः । त्वत्प्रियार्थं विनिर्दिष्टाः किमर्थं रुद्यते पुनः ॥२॥
भक्ताश्चैवानुरक्ताश्च हिताश्च मम नित्यशः । हन्यमाना न हन्यन्ते न न कुर्युर्वचो मम ॥ ३ ॥
किमेतच्छ्रोतुमिच्छामि कारणं यत्कृते पुनः । हा नाथेति विनर्दन्ती सर्पवच्चेष्टसे क्षितौ ॥ ४ ॥
अनाथवद्विलपसि किं नु नाथे मयि स्थिते । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मा मैवं वैक्लव्यं त्यज्यतामिति ॥५॥
इत्येवमुक्ता दुर्धर्षा खरेण परिसान्त्विता । विमृज्य नयने सास्रे खरं भ्रातरमब्रवीत् ॥ ६ ॥

गए थे। उनका पृथिवीमें गिरना देखकर राक्षसी क्रोधसे मूर्च्छित हो गयी ॥ २२ ॥ वह दुःखित होकर खरके पास गयी और वहाँ पृथिवीपर गिर पड़ी। उसके कटे नाक कानसे खून निकलकर जम गया था, जिससे वह गोंदवाली लताके समान मालूम पड़ती थी ॥ २३ ॥ शोकसे पीड़ित शूर्पनखा, जिसका मुँह उतरा हुआ था, अपने भाईके समीप कुछ बोलती हुई आँसू बहाने लगी और बहुत बोलने लगी ॥ २४ ॥ युद्धमें राक्षसोंको गिरे देखकर वह दौड़ी खरके पास गयी। वह खरकी बहिन उन राक्षसोंके मारे जानेका समस्त वृत्तान्त कह गयी ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका बीसवां सर्ग समाप्त ॥ २० ॥

——:०:——

राक्षसकुलके अनर्थके लिए आयी और पृथिवीमें पड़ी हुई शूर्पनखाको देखकर खर क्रोध करके स्पष्टवाणी से बोला ॥ १ ॥ मैंने तो तुम्हारी मनोरथपूर्तिके लिए मांस खानेवाले वीर राक्षसोंको नियुक्त कर ही दिया, अब तुम रोती क्यों हो ॥२॥ वे राक्षस मेरे भक्त हैं, अनुरक्त हैं, सदा मेरे हित चाहनेवाले हैं, शत्रुओंके द्वारा मारे जाने परभी वे मर नहीं सकते, वे हमारी आज्ञाका पालन अवश्य करेंगे ॥ ३ ॥ यह क्या है, मैं जानना चाहता हूँ, वह कौन कारण है जिसके लिए "हा नाथ" कहती हुई तुम सांपके समान पृथिवीमें रेंग रही हो ॥ ४ तुम यह अनाथके समान विलाप कर रही हो, क्यों, मैं तो तुम्हारा रक्षक हूँ, उठो उठो, इस प्रकार व्याकुल मत होओ ॥ ५ ॥ खरके द्वारा ऐसा कह कर समझाने पर उसने आंसू भरी आंखें पोछीं और अपने भाई खरसे बोली ॥ ६ ॥ नाक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अस्मीदानीमहं प्राप्ता हतश्रवणनासिका । शोणितौघपरिक्लिन्ना त्वया च परिसान्त्विता॥७॥
प्रेषिताश्च त्वया शूरा राक्षसास्ते चतुर्दश । निहन्तुं राघवं घोरं मत्प्रियार्थं सलक्ष्मणम् ॥ ८ ॥
ते तु रामेण सामर्षाः शूलपट्टिशपाणयः । समरे निहताः सर्वे सायकैर्मर्मभेदिभिः ॥ ९ ॥
तान्भूमौ पतितान्दृष्ट्वा क्षणेनैव महाजवान् । रामस्य च महत्कर्म महाँस्त्रासोऽभवन्मम ॥१०॥
सास्मि भीता समुद्विग्ना विषण्णा च निशाचर । शरणं त्वां पुनः प्राप्ता सर्वतो भयदर्शिनी ॥११॥
विषादनक्राध्युषिते परित्रासोर्मिमालिनि । किं मां न त्रायसे मग्नां विपुले शोकसागरे ॥१२॥
एते च निहता भूमौ रामेण निशितैः शरैः । ये च मे पदवीं प्राप्ता राक्षसाः पिशिताशनाः ॥
मयि ते यद्यनुक्रोशो यदि रक्षःसु तेषु च । रामेण यदि शक्तिस्ते तेजो वास्ति निशाचर १४
दण्डकारण्यनिलयं जहि राक्षसकण्टकम् । यदि रामममित्रघ्नं न त्वमद्य वधिष्यसि ॥१५॥
तव चैवाग्रतः प्राणांस्त्यक्ष्यामि निरपत्रपा । बुद्ध्याहमनुपश्यामि न त्वं रामस्य संयुगे ॥१६॥
स्थातुं प्रतिमुखे शक्तः सबलोऽपि महारणे । शूरमानी न शूरस्त्वं मिथ्यारोपितविक्रमः ॥१७॥
अपयाहि जनस्थानात्त्वरितः सहबान्धवः । जहि त्वं समरे मूढान्यथा तु कुलपांसन ॥१८॥
मानुषौ तौ न शक्तोषि हन्तुं वै रामलक्ष्मणौ । निःसत्त्वस्याल्पवीर्यस्य वासस्ते कीदृशस्त्विह ।१९।
रामतेजोभिभूतो हि त्वं क्षिप्रं विनशिष्यसि । स हि तेजःसमायुक्तो रामो दशरथात्मजः ॥२०॥

और कानके काटे जानेसे रुधिरसे गीली होकर मैं इस समय तुम्हारे पास आई हूँ और तुमने मुझे ढाढस दिया है ॥ ७ ॥ मेरी मनोरथपूर्तिके लिए राम और लक्ष्मणके वध करनेके लिए चौदह वीर राक्षस तुमने भेजे थे ॥ ८ ॥ वे किसीका अपराध न सहनेवाले शूल पट्टिश हाथोंमें धारण करने वाले वीर मर्मभेदी बाणोंसे रामके द्वारा मारे गये ॥ ९ ॥ अति वेगशाली उन राक्षसोंको क्षणही भरमें पृथिवीमें गिरा देखकर-रामचन्द्रका वह महान् कर्म देखकर, मुझे बड़ा भय हो गया है ॥ १० ॥ निशाचर, इससे मैं भयभीत उद्विग्न और विषण्ण हो गयी हूँ, मैं चारो ओर भय देख रही हूँ, इसीसे पुनः तुम्हारी शरण आयी हूँ ॥ ११ ॥ मैं अथाह शोकसागरमें डूब रही हूँ, विषादरूपी मगर इसमें निवास करता है, भयकी तरंगें उठती है, तुम मेरी रक्षा क्यों नहीं करते ॥ १२ ॥ जो मांस खानेवाले राक्षस मेरे पक्षसे गये थे, वे रामके द्वारा तीखे बाणोंसे मारे गये और इस समय भूमिमें पड़े हुए हैं ॥ १३ ॥ यदि मुझपर तथा उन राक्षसोंपर तुम्हारी दया हो, निशाचर, यदि रामके साथ युद्ध करनेकी तुम्हारी शक्ति हो, पराक्रम हो, ॥ १४ ॥ तो राक्षसोंके शत्रु दण्डकारण्यमें रहनेवाले रामको मारो । यदि तुम शत्रुओंका वध करनेवाले रामचन्द्रका वध आज न करोगे ॥ १५ ॥ तो तुम्हारे आगेही लज्जा त्याग करके मैं अपने प्राण त्याग दूंगी । पर मैं अपनी बुद्धिसे देख रही हूँ कि बलवान् होनेपर भी तुम युद्धमें रामचन्द्रके सामने ठहर नहीं सकते, क्योंकि तुमने अपनेको व्यर्थही पराक्रमी समझ रखा है, तुम्हें अपनी शूरताका केवल अहङ्कार है, तुम शूर नहीं हो ॥ १६-१७ ॥ अतएव अपने बान्धवोंके साथ जनस्थानसे शीघ्र निकलो । हे मूढ़, हे कुलकलङ्क, युद्धमें रामचन्द्रको मारो ॥ १८ ॥ यदि युद्धमें तुम मनुष्य राम और लक्ष्मणको न मार सको, तो तुम्हारे समान बलहीन, अल्प पराक्रमी मनुष्य यहां कैसे रह सकता है ॥ १९ ॥ दशरथपुत्र रामचन्द्र तेजस्वी हैं,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भ्राता चास्य महावीर्यो येन चास्मि विरूपिता। एवं विलप्य बहुशो राक्षसी प्ररोदरी ॥२१॥
भ्रातुः समीपे शोकार्ता नष्टसंज्ञा बभूव ह। कराभ्यामुदरं हत्वा रुरोद भृशदुःखिता ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥२१॥

——:०:——

द्वाविंशः सर्गः २२

एवमाधर्षितः शूरः शूर्पनख्या खरस्ततः। उवाच रक्षसां मध्ये खरः खरतरं वचः ॥ १ ॥
तवापमानप्रभवः क्रोधोऽयमतुलो मम। न शक्यते धारयितुं लवणाम्भ इवोल्बणम् ॥ २ ॥
न रामं गणये वीर्यान्मानुषं क्षीणजीवितम्। आत्मदुश्चरितैः प्राणान्हतो योऽद्य विमोक्ष्यते ॥३॥
बाष्पः संधार्यतामेष संभ्रमश्च विमुच्यताम्। अहं रामं सह भ्रात्रा नयामि यमसादनम् ॥ ४ ॥
परश्वधहतस्याद्य मन्दप्राणस्य भूतले। रामस्य रुधिरं रक्तमुष्णं पास्यसि राक्षसि ॥ ५ ॥
संप्रहृष्टा वचः श्रुत्वा खरस्य वदनाच्च्युतम्। प्रशशंस पुनर्मौर्ख्याद्भ्रातरं रक्षसां वरम् ॥ ६ ॥
तया परुषितः पूर्वं पुनरेव प्रशंसितः। अब्रवीद्दूषणं नाम खरः सेनापतिं तदा ॥ ७ ॥
चतुर्दश सहस्राणि मम चित्तानुवर्तिनाम्। रक्षसां भीमवेगानां समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ८ ॥

उसके तेजसे तुम शीघ्रही नष्ट हो जाओगे ॥ २० ॥ उसका भाई बड़ा पराक्रमी है, जिसने हमारी यह दशा की है, इस प्रकार गहरे पेटवाली राक्षसीने बहुत विलाप किया ॥ २१ ॥ बहुत दुःखिनी होकर हाथोंसे छाती पीटती हुई रोने लगी और शोकसे पीड़ित होकर भाईके सामने बेहोश हो गयी ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका एक्कीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २१ ॥

——:०:——

शूर्पनखाके द्वारा इस प्रकार तिरस्कृत होकर खर राक्षसोंके बीचमें अति तीखा वचन बोला ॥ १ ॥ तुम्हारे अपमानसे मुझे अतुलनीय क्रोध उत्पन्न हो गया है। पूर्णिमाके दिन बढ़े हुए लवण समुद्रके समान मैं उसे रोक नहीं सकता ॥ २ ॥ पराक्रमकी दृष्टिसे मैं रामचन्द्रको कुछ भी नहीं समझता, वह क्षणभर जीनेवाला मनुष्य है, वह अपनेही अपराधोंसे मारा जायगा और वह प्राण त्याग करेगा ॥ ३ ॥ आंसू रोको, घबड़ाहट दूर करो, मैं भाईके साथ रामको यमपुर भेजता हूँ ॥ ४ ॥ दुर्बल रामचन्द्र मेरे परश्वधसे मरकर पृथिवी पर लोटेगा, राक्षसि, तब तुम उसका गर्म खून पीना ॥ ५ ॥ खरके मुंहसे निकली बातें सुनकर शूर्पनखा बहुतही प्रसन्न हुई, मूर्खतावश राक्षस-श्रेष्ठ अपने भाईकी प्रशंसा करने लगी ॥ ६ ॥ शूर्पनखाने पहले खरको क्रोध दिलाया, पुनः उसने उसकी प्रशंसा की, उस समय खर दूषण नामक अपने सेनापतिसे बोला ॥ ७ ॥ मेरी आज्ञामें रहने-वाले चौदह हजार राक्षसोंको युद्धके लिए तयार करो, जो राक्षस बड़े भयानक वेगवाले तथा युद्धसे पीछे पैर नहीं रखनेवाले हैं, जो नीलमेघके समान काले हैं, प्राणि-हिंसामें जो आनन्द मनाने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नीलजीमूतवर्णानां लोकहिंसाविहारिणाम् । सर्वोद्योगमुदीर्णानां रक्षसां सौम्य कारय ॥ ९ ॥
उपस्थापय मे क्षिप्रं रथं सौम्य धनूंषि च । शरांश्च चित्रान्खड्गांश्च शक्तीश्च विविधाः शिताः १०
अग्रे निर्यातुमिच्छामि पौलस्त्यानां महात्मनाम् । वधार्थं दुर्विनीतस्य रामस्य रणकोविद ॥ ११ ॥
इति तस्य ब्रुवाणस्य सूर्यवर्णं महारथम् । सदश्वैः शबलैर्युक्तमाचचक्षेऽथ दूषणः ॥ १२ ॥
तं मेरुशिखराकारं तप्तकाञ्चनभूषणम् । हेमचक्रमसंबाधं वैदूर्यमयकूबरम् ॥ १३ ॥
मत्स्यैः पुष्पैर्द्रुमैः शैलैश्चन्द्रकान्तैश्च काञ्चनैः । माङ्गल्यैः पक्षिसङ्घैश्च ताराभिश्च समावृतम् ॥ १४ ॥
ध्वजनिस्त्रिंशसंपन्नं किंकिणीवरभूषितम् । सदश्वयुक्तं सोऽमर्षादारुरोह खरस्तदा ॥ १५ ॥
खरस्तु तन्महत्सैन्यं रथचर्मायुधध्वजम् । निर्यातेत्यब्रवीत्प्रेक्ष्य दूषणः सर्वराक्षसान् ॥ १६ ॥
ततस्तद्राक्षसं सैन्यं घोरचर्मायुधध्वजम् । निर्जगाम जनस्थानान्महानादं महाजवम् ॥ १७ ॥
मुद्गरैः पट्टिशैः शूलैः सुतीक्ष्णैश्च परश्वधैः । खड्गैश्चक्रैः रथस्थैश्च भ्राजमानैः सतोमरैः ॥ १८ ॥
शक्तिभिः परिघैर्घोरैरतिमात्रैश्च कार्मुकैः । गदासिमुसलैर्वज्रैर्गृहीतैर्भीमदर्शनैः ॥ १९ ॥
राक्षसानां सुघोराणां सहस्राणि चतुर्दश । निर्यातानि जनस्थानात्खरचित्तानुवर्तिनाम् ॥ २० ॥
तांस्तु निर्धावतो दृष्ट्वा राक्षसान्भीमदर्शनान् । खरस्याथ रथः किंचिज्जगाम तदनन्तरम् ॥ २१ ॥
ततस्ताञ्छबलान्वांस्तप्तकाञ्चनभूषितान् । खरस्य मतमाज्ञाय सारथिः पर्यचोदयत् ॥ २२ ॥

वाले हैं और युद्धमें जो उत्साह रखनेवाले हैं, सौम्य, उनको सब सामग्रियोंसे सज्जित करो ॥ ८-९ ॥ शीघ्रही मेरा रथ, धनुष, बाण, विचित्र तलवारें, अनेक प्रकारकी तीखी शक्तियां ले आओ ॥ १० ॥ रणदक्ष, दुर्विनीत रामके वधके लिए पुलस्त्य-कुलवाले महात्मा राक्षसोंके आगे-आगे मैं जाना चाहता हूँ ॥ ११ ॥ उसके ऐसा कहतेही 'चित्रवर्ण वाले उत्तम घोड़े जिसमें जुते हैं और सूर्यके समान चमकीला महारथ आया है' यह दूषणने खरसे कहा ॥ १२ ॥ वह रथ मेरुशिखरके समान ऊँचा था तथा वह सुवर्णसे भूषित था, सोनेके पहिए थे, उस विशाल रथके युगन्धर वैदूर्यके बने हुए थे ॥ १३ ॥ उस रथपर सुवर्ण और चन्द्रकान्त मणिकी मछलियां, पुष्प, वृक्ष, मङ्गलसूचक पक्षी और ताराओंके चित्र बने हुए थे ॥ १४ ॥ ध्वजा फहरा रही थी तथा तलवार आदि उस रथमें रखे हुए थे, उत्तम घुंघुरु लगे हुए थे और अच्छे घोड़े जुते हुए थे। खर क्रोधपूर्वक उस रथपर सवार हुआ ॥ १५ ॥ खर और दूषण दोनोंने रथ, ढाल, शस्त्र तथा ध्वजासे युक्त उस बड़ी सेनाको देखकर सब राक्षसोंसे चलनेके लिए कहा ॥ १६ ॥ वह राक्षसोंकी सेना भयानक ढाल, शस्त्र और ध्वजाके साथ, महानाद करती हुई, जनस्थानसे बड़े वेगसे चली ॥ १७ ॥ मुद्गर, पट्टिश, तीक्ष्ण शूल, परश्वध, खड्ग, चक्र और चमकीले तोमर रथपर रखे हुए थे ॥ १८ ॥ शक्ति, भयानक परिघ, अनेक धनुष, गदा, तलवार, मुसल, वज्र को, जो देखनेमें भयानक थे, राक्षस लिये हुए थे ॥ १९ ॥ ऐसे चौदह हजार भयानक राक्षस, जो खरकी आज्ञा मानते थे, जनस्थानसे निकले ॥ २० ॥ भयानक राक्षस दौड़ रहे हैं यह देखकर खरका रथ थोड़ी देर ठहर कर चला ॥ २१ ॥ खरका अभिप्राय जानकर सारथिने सुवर्णभूषित चित्रवर्णके घोड़ोंको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संचोदितो रथः शीघ्रं खरस्य रिपुघातिनः । शब्देनापूरयामास दिशः सप्रदिशस्तथा ॥२३॥
प्रवृद्धमन्युस्तु खरः खरस्वरो रिपोर्वधार्थं त्वरितो यथान्तकः ।
अचूचुदत्सारथिमुन्नदन्पुनर्महाबलो मेघ इवाश्मवर्षवान् ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

——०::——

त्रयोविंशः सर्गः २३

तत्प्रयातं बलं घोरमशिवं शोणितोदकम् । अभ्यवर्षन्महाघोरस्तुमुलो गर्दभारुणः ॥ १ ॥
निपेतुस्तुरगास्तस्य रथयुक्ता महाजवाः । समे पुष्पचिते देशे राजमार्गे यदृच्छया ॥ २ ॥
श्यामं रुधिरपर्यन्तं बभूव परिवेषणम् । अलातचक्रप्रतिमं प्रतिगृह्य दिवाकरम् ॥ ३ ॥
ततो ध्वजमुपागम्य हेमदण्डं समुच्छ्रितम् । समाक्रम्य महाकायस्तस्थौ गृध्रः सुदारुणः ॥ ४ ॥
जनस्थानसमीपे च समाक्रम्य खरस्वनाः । विस्वरान्विविधान्नादान्मांसादान्मृगपक्षिणः॥५॥
व्याजह्रुरभिदीप्तायां दिशि वै भैरवस्वनम् । अशिवं यातुधानानां शिवा घोरा महास्वनाः ॥६॥
प्रभिन्नगजसंकाशास्तोयशोणितधारिणः । आकाशं तदनाकाशं चक्रुर्भीमाम्बुवाहकाः ॥ ७ ॥
बभूव तिमिरं घोरमुद्धतं रोमहर्षणम् । दिशो वा प्रदिशो वापि सुव्यक्तं न चकाशिरे ॥

हांका ॥२२॥ प्रेरित किया हुआ रिपुघाती खरके रथने दिशा और विदिशाओंको शब्दसे भर दिया ॥२३॥ प्रवृद्ध क्रोध, तीक्ष्णस्वर, शत्रु-वधके लिए शीघ्रता चाहनेवाला, यमराजके समान और आंधीवाले, पत्थर बरसाने तथा गर्जनेवाले मेघके समान खरने सारथिको शीघ्र चलनेके लिए प्रेरित किया ॥२४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका बाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २२ ॥

——:०:——

खरकी वह भयानक सेना चली, उस समय गधेके समान धूसर रंगके अतिभयानक तुमुल शब्द करनेवाले मेघने अमंगल-सूचक लाल जलकी वृष्टि की ॥ १ ॥ उसके रथमें जुते हुए बड़े वेगवाले घोड़े सड़कपर समतल भूमिमें, जहां फूल बिखरे हुए थे, सहसा गिरपड़े ॥ २ ॥ सूर्यके चारो ओर निर्धूम जलते हुए अँगारेके समान गोलाकार परिधि हो गयी, वह काले रंगकी थी और उसका प्रान्त लाल था ॥ ३ ॥ खरके रथकी ध्वजा सोनेके दण्डेमें बहुत ऊपर उठी थी, उसपर एक भयानक शरीरवाला गीध बैठ गया ॥ ४ ॥ जनस्थानके समीप आनेपर भयानक शब्दवाले और मांस खानेवाले पशु तथा पक्षी अनेक प्रकारके अमंगल-सूचक भयानक शब्द करने लगे ॥ ५ ॥ जिस दिशामें सूर्य प्रकाशित हो रहा था, उस दिशामें राक्षसोंके अमंगल-सूचक भयानक शब्द शृगाली बोलने लगी ॥ ६ ॥ मतवाले हाथियोंके समान विशाल और लाल जल धारण करनेवाले भयानक मेघोंने उस समय आकाशको ढँकलिया ॥ ७ ॥ अतएव अत्यन्त बढ़ा हुआ भयानक और रोमहर्षण अन्धकार हुआ, जिससे दिशा और विदिशाएँ साफ-साफ दिखायी न पड़ने लगीं ॥ ८ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्षतजार्द्रसवर्णाभा संध्या कालं विना बभौ । खरं चाभिमुखं नेदुस्तदा घोरा मृगाः खगाः ।९।
कङ्कगोमायुगृध्राश्च चुक्रुशुर्भयशंसिनः । नित्याशिवकरा युद्धे शिवा घोरनिदर्शनाः ॥१०॥
नेदुर्बलस्याभिमुखं ज्वालोद्गारिभिराननैः । कबन्धः परिघाभासो दृश्यते भास्करान्तिके ॥११॥
जग्राह सूर्यं स्वर्भानुरपर्वणि महाग्रहः । ववाति मारुतः शीघ्रं निष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥१२॥
उत्पेतुश्च विना रात्रिं ताराः खद्योतसप्रभाः । संलीनमीनविहगा नलिन्यः शुष्कपङ्कजाः ॥१३॥
तस्मिन्क्षणे बभूवुश्च विना पुष्पफलैर्द्रुमाः । उद्धूतश्च विना वातं रेणुर्जलधरारुणः ॥१४॥
चीचीकूचीति वाश्यन्तो बभूवुस्तत्र सारिकाः । उल्काश्चापि सनिर्घोषा निपेतुर्घोरदर्शनाः ॥१५॥
प्रचचाल मही चापि सशैलवनकानना । खरस्य च रथस्थस्य नर्दमानस्य धीमतः ॥१६॥
प्राकम्पत भुजः सव्यः स्वरश्चास्यावसज्जत । सास्रा संपद्यते दृष्टिः पश्यमानस्य सर्वतः ॥१७॥
ललाटे च रुजो जाता न च मोहान्न्यवर्तत । तान्समीक्ष्य महोत्पातानुत्थितान्रोमहर्षणान् १८
अब्रवीद्राक्षसान्सर्वान्प्रहसन्स खरस्तदा । महोत्पातानिमान्सर्वानुत्थितान्घोरदर्शनान् ।१९।
न चिन्तयाम्यहं वीर्याद्बलवान्दुर्बलानिव । तारा अपि शरैस्तीक्ष्णैः पातयेयं नभस्तलात् ॥
मृत्युं मरणधर्मेण संक्रुद्धो योजयाम्यहम् । राघवं तं बलोत्सिक्तं भ्रातरं चापि लक्ष्मणम् २१
अहत्वा सायकैस्तीक्ष्णैर्नोपावर्तितुमुत्सहे । यन्निमित्तं तु रामस्य लक्ष्मणस्य विपर्ययः ॥२२॥

बिना समयके ही खूनसे रँगे वस्त्रके समान सन्ध्या हो गयी, और खरके आगे भयानक पशु तथा पक्षी बोलने लगे ॥ ९ ॥ भय उत्पन्न करनेवाले कंक, शृगाल और गीध बोलने लगे और भय उत्पन्न करनेवाली शृगाली भी, जिसका शब्द निश्चय युद्धमें अमंगल करने वाला होता है, वह ज्वाला निकलनेवाले मुंहसे खरकी सेनाके सामने बोलने लगी। सूर्यके पास परिघके समान कबन्ध (बिना मस्तकका शरीर) दीख पड़ने लगा ॥ १० ॥ ११ ॥ बिना पूर्णिमाके ही महाग्रह राहुने सूर्यको ग्रहण किया। जोरसे हवा चलने लगी और सूर्यका प्रकाश धीमा पड़ गया ॥ १२ ॥ खद्योतके समान प्रकाशवाली ताराएँ बिना रातके ही उग गयीं। तालाबमें मछलियां और पक्षी छिप गये तथा कमल सूख गये ॥ १३ ॥ उस समय वृक्षोंके फल-फूल नष्ट हो गये और बिना हवाके ही धूसर रंगकी धूल उड़ने लगी ॥ १४ ॥ सारिकाएँ " चीं चीं, कूँ चीं " शब्द करने लगीं। देखनेमें भयानक उल्काएँ घोर शब्दके साथ गिरने लगीं ॥ १५ ॥ गर्जन करनेवाले रथपर बैठे हुए बुद्धिमान खरके आस-पासकी भूमि, पर्वत और वन कांपने लगे ॥ १६ ॥ उसकी बायीं भुजा फरकने लगी, आवाज धीमी पड़ गयी, वह जिधर देखता उसकी आंखे आंसुसे भर जाने लगीं ॥ १७ ॥ मस्तकमें पीड़ा होने लगी, फिरभी अज्ञानके कारण वह लौटा नहीं। वह खर उन महाभयानक अमंगल-सूचक उत्पातोंको देखकर ॥ १८ ॥ हँसता हुआ सब राक्षसोंसे बोला। इन भयानक उत्पन्न हुए उत्पातोंको मैं कुछभी नहीं सोचता, जिस प्रकार बलवान् मनुष्य दुर्बलकी चिन्ता नहीं करता। मैं अपने तीखे बाणोंसे ताराओंको भी आकाशसे गिरा दूंगा ॥ १९ ॥ २० ॥ मैं क्रोध करके मृत्युको भी मार दूंगा, बल्कि अभिमान रखनेवाले रामचन्द्र और उसके भाई लक्ष्मणको अपने तीखे बाणोंसे बिना मारे मैं न लौटूंगा। जिस मेरी भगिनीके कारण राम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सकामा भगिनी मेऽस्तु पीत्वा तु रुधिरं तयोः । न कचित्प्राप्तपूर्वो मे संयुगेषु पराजयः ॥२३॥
युष्माकमेतत्प्रत्यक्षं नानृतं कथयाम्यहम् । देवराजमपि क्रुद्धो मत्तैरावतगामिनम् ॥२४॥
वज्रहस्तं रणे हन्यां किं पुनस्तौ च मानवौ । सा तस्य गर्जितं श्रुत्वा राक्षसानां महाचमूः ॥
प्रहर्षमतुलं लेभे मृत्युपाशावपाशिता । समेयुश्च महात्मानो युद्धदर्शनकाङ्क्षिणः ॥२६॥
ऋषयो देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः । समेत्य चोचुः सहितास्तेऽन्योन्यं पुण्यकर्मणः २७
स्वस्ति गोब्राह्मणेभ्यस्तु लोकानां ये च संमताः । जयतां राघवो युद्धे पौलस्त्यान्रजनीचरान् ॥
चक्रहस्तो यथा विष्णुः सर्वानसुरसत्तमान् । एतच्चान्यच्च बहुशो ब्रुवाणाः परमर्षयः ॥२९॥
जातकौतूहलास्तत्र विमानस्थाश्च देवताः । ददृशुर्वाहिनीं तेषां राक्षसानां गतायुषाम् ॥३०॥
रथेन तु खरो वेगात्सैन्यस्याग्राद्विनिःसृतः । श्येनगामी पृथुग्रीवो यज्ञशत्रुर्विहंगमः ॥३१॥
दुर्जयः करवीराक्षः परुषः कालकार्मुकः । हेममाली महामाली सर्पास्यो रुधिराशनः ॥३२॥

द्वादशैते महावीर्याः प्रतस्थुरभितः खरम् ।
महाकपालः स्थूलाक्षः प्रमाथस्त्रिशिरास्तथा ॥
चत्वार एते सेनाग्रे दूषणं पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ३३ ॥

लक्ष्मणमें ऐसा विपर्यय हुआ है अर्थात् उसके नाक-कान काटकर उन लोगोंने निन्दित काम किये हैं, ॥ २१ ॥ २२ ॥ वह मेरी भगिनी उन दोनोंके खून पीकर कृतार्थ हो । आज तक किसी युद्धमें मेरा पराजय नहीं हुआ है ॥ २३ ॥ यह तुम लोगोंको भी प्रत्यक्ष है, तुम्हें भी मालूम है, मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ । मैं क्रोध करके मतवाले हाथीपर चलनेवाले और वज्र धारण करनेवाले देवराज इन्द्रको भी मार सकता हूँ, फिर उन दो मनुष्योंकी कौन बात ? खरका यह गर्जन सुनकर राक्षसोंकी वह बड़ी सेना बहुत ही प्रसन्न हुई, क्योंकि उसपर मृत्युकी छाया पड़ चुकी थी । युद्ध देखनेकी इच्छा रखनेवाले महात्मा भी वहां आये ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ ऋषि, देवता, गन्धर्व और चारणोंके साथ सिद्ध वहां आये, ये पुण्यकर्मा आपसमें मिलकर बोले ॥ २७ ॥ गौ और ब्राह्मणोंका कल्याण हो, तथा जो लोकके हितकर हैं उनकाभी कल्याण हो । रामचन्द्र पुलस्त्य-वंशी राक्षसोंको युद्धमें जीतें ॥ २८ ॥ जिस प्रकार चक्रधारण करनेवाले विष्णु सब राक्षसोंको जीतते हैं । यह तथा इसी प्रकारकी और बहुतसी बातें करते हुए वे ऋषिश्रेष्ठ वहां आये और कौतूहलाक्रान्त होकर विमानस्थ देवता भी वहां आये, इन लोगोंने मरनेवाले राक्षसोंकी सेना देखी ॥ २९ ॥ ३० ॥ खर रथके द्वारा अपनी सेनाके अग्रभागसे कुछ आगे बढ़ गया । श्वेतगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहङ्गम, दुर्जय, करवीराक्ष, परुष कालकार्मुक हेममाली, महामाली, सर्पास्य, और रुधिराशन नामके ये बारह बड़े पराक्रमी राक्षस खरके दोनों तरफ चले । महाकपाल स्थूलाक्ष, प्रमाथ और त्रिशिरा ये चार सेनाके आगे दूषणके पीछे-पीछे चले ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ग्रहोंकी माला जिस प्रकार चन्द्रमा और सूर्यको घेरे रहती है, उसी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सा भीमवेगा समराभिकाङ्क्षिणी सुदारुणा राक्षसवीरसेना ।
तौ राजपुत्रौ सहसाभ्युपेता माला ग्रहाणमिव चन्द्रसूर्यौ ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाडे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

—:o:—

चतुर्विंशः सर्गः २४

आश्रमं प्रतियाते तु खरे खरपराक्रमे । तानेवौत्पातिकान्रामः सह भ्रात्रा ददर्श ह ॥ १ ॥
तानुत्पातान्महाघोरान्रामो दृष्ट्वात्यमर्षणः । प्रजानामहितान्दृष्ट्वा वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ २ ॥
इमान्पश्य महाबाहो सर्वभूतापहारिणः । समुत्थितान्महोत्पातान्संहर्तुं सर्वराक्षसान् ॥ ३ ॥
अमी रुधिरधारास्तु विसृजन्ते खरस्वनाः । व्योम्नि मेघा विवर्तन्ते परुषा गर्दभारुणाः ॥ ४ ॥
सधूमाश्च शराः सर्वे मम युद्धाभिनन्दिताः । रुक्मपृष्ठानि चापानि विचेष्टन्ते विचक्षण ॥ ५ ॥
यादृशा इह कूजन्ति पक्षिणो वनचारिणः । अग्रतो नो भयं प्राप्तं संशयो जीवितस्य च ॥ ६ ॥
संप्रहारस्तु सुमहान्भविष्यति न संशयः । अयमाख्याति मे बाहुः स्फुरमाणो मुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥
संनिकर्षे तु नः शूर जयं शत्रोः पराजयम् । सुप्रभं च प्रसन्नं च तव वक्त्रं हि लक्ष्यते ॥ ८ ॥
उद्यतानां हि युद्धार्थं येषां भवति लक्ष्मण । निष्प्रभं वदनं तेषां भवत्यायुःपरिक्षयः ॥ ९ ॥
राक्षसां नर्दतां घोरः श्रूयतेऽयं महाध्वनिः । आहतानां च भेरीणां राक्षसैः क्रूरकर्मभिः ॥ १० ॥

प्रकार युद्ध चाहनेवाली भयानक वह राक्षसोंकी सेना बड़े वेगसे राम लक्ष्मणके पास पहुंची ।३४।

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका तेइसवां सर्ग समाप्त ॥ २३ ॥

—:o:—

आश्रमपर तीक्ष्णपराक्रम खरके जानेपर रामचन्द्रने उत्पात-स्वरूप उन सबको देखा ॥ १ ॥ भयानक उत्पात, रूप तथा प्रजाके अहितकारी उन सबको देखकर मुनियोंके कष्ट न सह सकनेवाले रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले ॥ २ ॥ महाबाहो, सब प्राणियोंके विनाशकी सूचना देनेवाले और समस्त राक्षसोंके संहारके लिए उठे हुए इन उत्पातोंको देखो ॥ ३ ॥ ये तीक्ष्ण गर्जन करनेवाले और गधेके समान धूसर वर्णके मेघ आकाशमें फैल रहे हैं और रुधिरकी धारा बरसा रहे हैं ॥ ४ ॥ ये मेरे सब बाण जो धूममय हो गये हैं, युद्धके लिए प्रसन्न दीख पड़ते हैं । सोनेकी पीठवाले धनुष फरकाते हैं ॥ ५ ॥ ये वनपक्षी जैसा बोल रहे हैं उससे हमलोगोंके आगे बहुत बड़ा भय दीख पड़ता है, प्राणोंका भी संकट दिखायी पड़ता है ॥ ६ ॥ यह मेरी बाहु बार-बार फरक रही है जिससे मालूम होता है कि अवश्यही युद्ध होगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ शीघ्रही हमलोगोंकी जय और शत्रुओंकी पराजय होनेवाली है, क्योंकि लक्ष्मण तुम्हारा मुख बड़ाही कान्तिमान् और प्रसन्न दीख पड़ता है ॥ ८ ॥ युद्धके लिए उद्यत जिन मनुष्योंका मुंह कान्तिहीन हो जाता है, उनकी मृत्यु होती है ॥ ९ ॥ राक्षसोंके गर्जनकी यह भयानक ध्वनि सुन पड़ती है और क्रूर कर्म करनेवाले राक्षसोंके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनागतविधानं तु कर्तव्यं शुभमिच्छता । आपदा शङ्कमानेन पुरुषेण विपश्चिता ॥११॥
तस्मादूगृहीत्वा वैदेहीं शरपाणिर्धनुर्धरः । गुहामाश्रय शैलस्य दुर्गां पादपसंकुलाम् ॥१२॥
प्रतिकूलितुमिच्छामि न हि वाक्यमिदं त्वया । शापितो मम पादाभ्यां गम्यतां वत्स मा चिरम् ॥
त्वं हि शूरश्च बलवान्हन्या एतान्न संशयः । स्वयं निहन्तुमिच्छामि सर्वानेव निशाचरान् ।१४।
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः सह सीतया । शरानादाय चापं च गुहां दुर्गां समाश्रयत् ॥१५॥
तस्मिन्प्रविष्टे तु गुहां लक्ष्मणे सह सीतया । हन्त निर्युक्तमित्युक्त्वा रामः कवचमाविशत् १६
स तेनाग्निनिकाशेन कवचेन विभूषितः । बभूव रामस्तिमिरे महानग्निरिवोत्थितः ॥१७॥
स चापमुद्यम्य महच्छरानादाय वीर्यवान् । संबभूवास्थितस्तत्र ज्यास्वनैः पूरयन्दिशः ॥१८॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः । समेयुश्च महात्मानो युद्धदर्शनकाङ्क्षया ॥१९॥
ऋषयश्च महात्मानो लोके ब्रह्मर्षिसत्तमाः । समेत्य चोचुः सहितास्तेऽन्योन्यं पुण्यकर्मणः॥
स्वस्ति गोब्राह्मणानां च लोकानां चेति संस्थिता । जयतां राघवो युद्धे पौलस्त्यान्रजनीचरान्॥२१॥
चक्रहस्तो यथा युद्धे सर्वानसुरपुंगवान् । एवमुक्त्वा पुनः प्रोचुरालोक्य च परस्परम् ।२२।
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् । एकश्च रामो धर्मात्मा कथं युद्धं भविष्यति ॥२३॥
इति राजर्षयः सिद्धाः सगणाश्च द्विजर्षभाः । जातकौतूहलास्तस्थुर्विमानस्थाश्च देवताः ॥२४॥

द्वारा बजायी गयी भेरीकी भी ध्वनि सुन पड़ती है॥१०॥ आपत्तिकी आशङ्का होनेपर आपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले बुद्धिमान पुरुषको पहलेसेही उपाय कर लेना चाहिए ॥११॥ अतएव तुम धनुष बाण लेकर वैदेहीके साथ पर्वतकी गुफामें चले जाओ, जहां दूसरोंका जाना कठिन हो, जो वृक्षोंसे घिरी हो ॥ १२ ॥ मैं नहीं चाहता कि तुम मेरे इस वाक्यका प्रतिकूलाचारण करो, मैं तुम्हे अपने पैरोंकी शपथ देता हूँ, बच्चा, जाओ देर मत करो ॥ १३ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि तुम वीर हो और इन सबको मार सकते हो, पर मैं इन सब राक्षसोंको स्वयं मारना चाहता हूँ ॥ १४ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहने पर लक्ष्मणने सीताके साथ धनुषबाण लेकर दुर्गम गुफाका आश्रय लिया ॥ १५ ॥ सीताके साथ लक्ष्मणके गुफामें चले जाने पर रामचन्द्र, अपनी आज्ञाके शीघ्र पालित होनेके कारण, प्रसन्न हुए और उन्होंने स्वयं कवच धारण किया ॥ १६ ॥ अग्निके समान प्रकाशमान उस कवचके धारण करने पर रामचन्द्र उस अन्धकारमें प्रचलित एक महान् अग्निके समान मालुम हुए ॥ १७ ॥ पराक्रमी रामचन्द्र बड़ा धनुष और बाण लेकर वहां तैयार हो बैठे और धनुषके टंकारसे दिशाओंको गुंजाने लगे ॥ १८ ॥ तदनन्तर देवता, गन्धर्व, चारण और सिद्ध युद्ध देखनेकी इच्छासे वहां आये ॥ १९ ॥ ऋषि, महात्मा तथा त्रिलोकप्रसिद्ध श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि ये सब पुण्यात्मा वहां आये और इस प्रकार आपसमें बातें करने लगे ॥ २० ॥ गौ ब्राह्मणोंका कल्याण हो तथा जो लोकके हितकारी हों उनका कल्याण हो, रामचन्द्र पुलस्त्यवंशी राक्षसोंको युद्धमें जीते ॥ २१ ॥ जिस प्रकार चक्रधारी विष्णु युद्धमें सब राक्षसोंको जीतते हैं। ऐसा कहकर तथा परस्पर देखकर वे पुनः बोले ॥ २२ ॥ इधर भयानक कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षस हैं, इधर एक धर्मात्मा राम हैं। यह युद्ध कैसे होगा ॥ २३ ॥ राजर्षि, गणोंके साथ सिद्ध, श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा विमानस्थ देवता इसी कुतूहलके वश हो गये ॥ २४ ॥ तेजसे आविष्ट रामचन्द्रको रणक्षेत्रमें खड़े देखकर सब प्राणी भयसे व्याकुल हो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आविष्टं तेजसा रामं सङ्ग्रामशिरसि स्थितम् । दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि भयाद्विव्यथिरे तदा ॥२५॥
रूपमप्रतिमं तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः । बभूव रूपं क्रुद्धस्य रुद्रस्येव महात्मनः ॥२६॥
इति संभाष्यमाणे तु देवगन्धर्वचारणैः । ततो गम्भीरनिर्ह्रादं घोरचर्मायुधध्वजम् ॥२७॥
अनीकं यातुधानानां समन्तात्प्रत्यपद्यत । वीरालापान्विसृजतामन्योन्यमभिगच्छताम्॥२८॥
चापानि विस्फारयतां जृम्भतां चाप्यभीक्ष्णशः। विप्रघुष्टस्वनानां च दुन्दुभींश्चाभिनिघ्नताम्॥२९॥
तेषां सुविपुलः शब्दः पूरयामास तद्वनम् । तेन शब्देन वित्रस्तास्त्रासिता वनचारिणः॥३०॥
दुद्रुवुर्यत्र निःशब्दं पृष्ठतो नावलोकयन् । तच्चानीकं महावेगं रामं समनुवर्तत ॥३१॥
धृतनानाप्रहरणं गम्भीरं सागरोपमम् । रामोऽपि चारयच्चक्षुः सर्वतो रणपण्डितः॥३२॥
ददर्श खरसैन्यं तद्युद्धायाभिमुखो गतः ।वितत्य च धनुर्भीमं तूण्याश्चोद्धृत्य सायकान्॥३३॥
क्रोधमाहारयत्तीव्रं वधार्थं सर्वरक्षसाम् । दुष्प्रेक्ष्यश्चाभवत्क्रुद्धो युगान्ताग्निरिव ज्वलन्॥३४॥
तं दृष्ट्वा तेजसाविष्टं प्राव्यथन्वनदेवता । तस्य रुष्टस्य रूपं तु रामस्य ददृशे तदा ॥
दक्षस्येव क्रतुं हन्तुमुद्यतस्य पिनाकिनः ॥३५॥
तत्कार्मुकैराभरणै रथैश्च तद्वर्मभिश्चाग्निसमानवर्णैः ।
बभूव सैन्यं पिशिताशनानां सूर्योदये नीलमिवाभ्रजालम् ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुर्विंश सर्गः ॥ २४ ॥

गये ॥ २५ ॥ किसीको दुःख न पहुंचानेवाले रामचन्द्रका वह अद्भुत रूप क्रुद्ध महात्मा रुद्रके रूपके समान हो गया ॥ २६ ॥ देव, गन्धर्व, चारण आदि इस प्रकार बातें कर रहे थे, उसी समय भयानक शब्द करनेवाली और भयानक ढाल, आयुध तथा ध्वजावाली राक्षसोंकी सेना चारो ओरसे रामचन्द्रके पास आ गयी । राक्षस वीरता-सूचक शब्द कह रहे थे, परस्पर मिल रहे थे ॥ २७, २८ ॥ वे धनुषका टंकार कर रहे थे, बार-बार जँभाई ले रहे थे, जोर-जोरसे चिल्ला रहे थे और नगाड़े बजा रहे थे ॥ २९ ॥ उन सबके इस महान् शब्दसे समूचा वन भर गया और उस शब्दसे डरे हुए वनचारी और भी डर गये ॥ ३० ॥ वे उस स्थानमें गये, वहां किसी प्रकारका शब्द नहीं था और भागते समय उन लोगोंने पीठकी ओर फिर कर देखा भी नहीं । वह महावेगवाली सेना रामचन्द्रके पास आ गयी ॥ ३१ ॥ समुद्रके समान विशाल और अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र उन लोगोंने धारण किये हुए थे । रण-पण्डित रामचन्द्रने भी खरकी उस सेनाको देखा और युद्धके लिए वे उसके सामने गये । रामचन्द्रने अपना भयानक धनुष खींचा और तूणीसे बाण निकाले ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ सब राक्षसोंका वध करनेके लिए उन्होंने महान् क्रोध किया । प्रलय कालकी जलती हुई अग्निके समान वे दुष्प्रेक्ष हो गये, उनकी ओर देखना कठिन हो गया ॥ ३४ ॥ रामचन्द्रके तेजका प्रकाश देखकर वनदेवता दुखी हुए । क्रोधित रामचन्द्रका रूप उस समय, दक्ष-यज्ञके नाशके लिए उद्यत महादेवके रूपके समान मालूम होता था ॥ ३५ ॥ अग्निके समान चमकीले धनुष भूषण रथ और कवचोंसे युक्त वह मांस खानेवाले राक्षसोंकी सेना, सूर्योदयके समयके नीले मेघ-समूहके समान मालूम होती थी ॥ ३६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका चौबीसवां सर्ग समाप्त ॥ २४ ॥

—:o:—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चविंशः सर्गः २५

अवष्टब्धधनुं रामं क्रुद्धं तं रिपुघातिनम् । ददर्शाश्रममागम्य खरः सह पुरःसरैः ॥ १ ॥
तं दृष्ट्वा सगुणं चापमुद्यम्य खरनिःस्वनम् । रामास्याभिमुखं सूतं चोदयतामित्यचोदयत् ॥ २ ॥
स खरस्याज्ञया सूतस्तुरगान्समचोदयत् । यत्र रामो महाबाहुरेको धुन्वन्धनुः स्थितः ॥ ३ ॥
तं तु निष्पतितं दृष्ट्वा सर्वतो रजनीचराः । मुञ्चमाना महानादं सचिवाः पर्यवारयन् ॥ ४ ॥
स तेषां यातुधानानां मध्ये रथगतः खरः । बभूव मध्ये तारााणां लोहिताङ्ग इवोद्धतः ॥ ५ ॥
ततः शरसहस्रेण राममप्रतिमौजसम् । अर्दयित्वा महानादं ननाद समरे खरः ॥ ६ ॥
ततस्तं भीमधन्वानं क्रुद्धाः सर्वे निशाचराः । रामं नानाविधैः शस्त्रैरभ्यवर्षन्त दुर्जयम् ॥ ७ ॥
मुद्गरैरायसैः शूलैः प्रासैः खड्गैः परश्वधैः । राक्षसाः समरे शूरं निजघ्नू रोषतत्पराः ॥ ८ ॥
ते बलाहकसंकाशा महाकाया महाबलाः । अभ्यधावन्त काकुत्स्थं रथैर्वाजिभिरेव च ॥ ९ ॥
गजैः पर्वतकूटाभैः रामं युद्धे जिघांसवः । ते रामे शरवर्षाणि व्यसृजन्रक्षसां गणाः ॥१०॥
शैलेन्द्रमिव धाराभिर्वर्षमाणा महाघनाः । सर्वैः परिवृतो रामो राक्षसैः क्रूरदर्शनैः ॥११॥
तिथिष्विव महादेवो वृतः पारिषदां गणैः । तानि मुक्तानि शस्त्राणि यातुधानैः स राघवः॥१२॥
प्रतिजग्राह विशिखैर्नद्योवानव सागरः । स तैः प्रहरणैर्घोरैर्भिन्नगात्रो न विव्यथे ॥१३॥

आश्रममें आकर खरने अपने साथियोंके साथ रिपुघाती रामचन्द्रको देखा, वे क्रोधित थे और धनुष लिये हुए थे ॥ १ ॥ उनको देखकर रूखा शब्द करनेवाला रौंदावाला धनुष लेकर खरने सारथिसे रामचन्द्रके सामने रथ ले चलनेके लिए कहा ॥ २ ॥ खरकी आज्ञासे सारथिने घोड़ोंको हाँका, जिधर रामचन्द्र अकेले धनुषका टंकार कर रहे थे ॥ ३ ॥ खरको रामचन्द्रके समीप गया देखकर उसके सलाहकार राक्षसोंने उसे चारो ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥ उन राक्षसोंके बीचमें रथ पर बैठा हुआ खर, ताराओंके बीचमें भौम (मंगल) के समान मालुम होता था ॥ ५ ॥ अप्रतिम पराक्रमी रामचन्द्रको हजार बाणसे पीड़ित करके खरने घोर गर्जन किया ॥ ६ ॥ तदनन्तर भयानक धनुष धारण करनेवाले और जीतनेके अयोग्य रामचन्द्रपर सब राक्षस क्रोध करके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७ ॥ राक्षस क्रोधित होकर रणमें लोहेके मुद्गर, शूल, प्रास, खड्ग, परश्वध आदिसे वीर रामचन्द्रको मारने लगे ॥ ८ ॥ मेघके समान काले विशाल शरीर और महाबली वे राक्षस रथों और घोड़ोंपर रामचन्द्रकी ओर दौड़े ॥ ९ ॥ पर्वत-शिखरके समान ऊँचे हाथियोंपरसे युद्धमें रामचन्द्रको मारनेकी इच्छासे राक्षसोंने उनपर बाणोंकी वृष्टि की ॥ १० ॥ मानों महामेघ पर्वतराजपर धारा बरसा रहे हों। भयानक स्वरूपवाले राक्षसोंसे रामचन्द्र घिर गये ॥ ११ ॥ मानो प्रदोष तिथिमें महादेव अपने गणसे घिरे हों। राक्षसोंके छोड़े उन शस्त्रोंको रामचन्द्रने अपने बाणोंसे पकड़ लिया, जिस प्रकार समुद्र नदियोंके वेगको ग्रहण करता है। राक्षसोंके अस्त्र शस्त्रोंसे रामचन्द्रका शरीर छिद

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रामः प्रदीप्तैर्बहुभिर्वज्रैरिव महाचलः । स विद्धः क्षतजादिग्धः सर्वगात्रेषु राघवः ॥१४॥
बभूव रामः संध्याभ्रैर्दिवाकर इवावृतः । विषेदुर्देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥१५॥
एकं सहस्रैर्बहुभिस्तदा दृष्ट्वा समावृतम् । ततो रामस्तु संक्रुद्धो मण्डलीकृतकार्मुकः ॥१६॥
ससर्ज निशितान्बाणाञ्छतशोऽथ सहस्रशः । दुरावारान्दुर्विषहान्कालपाशोपमान्रणे ॥१७॥
मुमोच लीलया कङ्कपत्रान्काञ्चनभूषणान् । ते शराः शत्रुसैन्येषु मुक्ता रामेण लीलया ॥१८॥
आददू रक्षसां प्राणान्पाशाः कालकृता इव । भित्त्वा राक्षसदेहांस्तांस्ते शरा रुधिराप्लुताः॥१९॥
अन्तरिक्षगता रेजुर्दीप्ताग्निसमतेजसः । असंख्येयास्तु रामस्य सायकाश्चापमण्डलात्॥२०॥
विनिष्पेतुरतीवोग्रा रक्षःप्राणापहारिणः । तैर्धनूंषि ध्वजाग्राणि चर्माणि कवचानि च ॥२१॥
बाहून्सहस्ताभरणानूरून्करिकरोपमान् । चिच्छेद रामः समरे शतशोऽथ सहस्रशः ॥२२॥
हयान्काञ्चनसंनाहान्रथयुक्तान्ससारथीन् । गजांश्च सगजारोहान्सहयान्सादिनस्तदा ॥२३॥
चिच्छिदुर्विभिदुश्चैव रामबाणा गुणच्युताः । पदातीन्समरे हत्वा अनयद्यमसादनम् ॥२४॥
ततो नालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्च विकर्णिभिः । भीममार्तस्वरं चक्रुश्छिद्यमाना निशाचराः ॥२५॥
तत्सैन्यं विविधैर्बाणैरर्दितं मर्मभेदिभिः । न रामेण सुखं लेभे शुष्कं नमिवाग्निना ॥२६॥
केचिद्भीमबलाः शूराः प्रासाञ्शूलान्परश्वधान् । चिक्षिपुः परमक्रुद्धा रामाय रजनीचराः ॥२७॥

गया, पर वे दुःखी न हुए ॥ १२-१३ ॥ अनेक प्रदीप्त वज्रोंसे आहत महान अचलके समान रामचन्द्र राक्षसोंके बाणोंसे सर्वाङ्गमें विद्ध हुए और उनके उन स्थानोंसे रुधिर निकलने लगा ॥ १४ ॥ सायंकालीन मेघोंसे ढके हुए सूर्यके समान रामचन्द्र हो गये, यह देखकर सिद्ध गन्धर्व देवता और ऋषि दुखी हुए ॥१५॥ क्योंकि उन लोगोंने देखा कि एक रामचन्द्र कई हजार राक्षसोंसे घिर गये हैं, तब रामचन्द्रने क्रोध कर अपने धनुषको खींचा, जिससे वह गोलाकार हो गया ॥१६॥ और उससे सैकड़ों हजारों तीखे बाण छोड़े । वे बाण असह्य थे, कालपाशके समान, निवारण करनेके अयोग्य थे॥१७॥रामचन्द्र अनायासही सुवर्णभूषित बाण छोड़ने लगे । रामचन्द्रने शत्रुकी सेनापर वे बाण बिना परिश्रमके ही छोड़े ॥१८॥ यमराजके चलाये पाशके समान उन बाणोंने राक्षसोंके शरीर छेदकर उनके प्राण ले लिये और वे खुद रुधिरसे सन गये ॥१९॥ रामचन्द्रके धनुषसे निकले हुए, अग्निके समान दीप्तिमान्, अनगिनत बाण आकाशमें जाकर शोभने लगे॥२०॥वे उग्र और राक्षसोंके प्राण लेनेवाले बाण रामचन्द्रके धनुषसे निकले । रामचन्द्रने अपने उन बाणोंसे राक्षसोंके सैकड़ों और हजारों धनुष, ध्वजा, ढाल, कवच, हाथ और गहनेसे युक्त बाहु, हाथीके सूंडके जमान उरू रणमें काट डाले ॥२१ ॥२२ ॥ रथमें जुते हुए तथा सोनेका सन्नाह पहने हुए घोड़ोंको, सारथिको, सवारके साथ हाथी और घोड़ोंको, धनुषसे छूटे रामचन्द्रके बाणोंने काटा और मारा, पैदलोंको मारकर यमलोक भेजा ॥ २३ , २४ ॥ नालीक (जिनका मुँह लोहेका हो), नाराच (जो पूरे लोहेके हों) और तीखे विकर्णी (जिनका मुँह टेढ़ा हो) नामक, रामचन्द्रके बाणोंसे छिदे हुए राक्षस भयानक विलाप करने लगे ॥ २५ ॥ मर्मभेदी रामचन्द्रके अनेक बाणोंके द्वारा पीड़ित, वह सेना सुखी नहीं हुई, जिस प्रकार सूखा वन आगसे सुखी नहीं होता ॥ २६ ॥ अतिबली

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तेषां बाणैर्महाबाहुः शस्त्राण्यावार्य वीर्यवान् । जहार समरे प्राणांश्चिच्छेद च शिरोधरान् ॥२८॥
ते छिन्नशिरसः पेतुश्छिन्नचर्मशरासनाः । सुपर्णवातविक्षिप्ता जगत्यां पादपा यथा ॥२९॥
अवशिष्टाश्च ये तत्र विषण्णास्ते निशाचराः । खरमेवाभ्यधावन्त शरणार्थं शराहताः ॥३०॥
तान्सर्वान्धनुरादाय समाश्वास्य च दूषणः । अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धः क्रुद्धं क्रुद्ध इवान्तकः ॥३१॥
निवृत्तास्तु पुनः सर्वे दूषणाश्रयनिर्भयाः । राममेवाभ्यधावन्त सालतालशिलायुधाः ॥३२॥
शूलमुद्गरहस्ताश्च पाशहस्ता महाबलाः । सृजन्तः शरवर्षाणि शस्त्रवर्षाणि संयुगे ॥३३॥
द्रुमवर्षाणि मुञ्चन्तः शिलावर्षाणि राक्षसाः । तद्बभूवाद्भुतं युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥३४॥
रामस्यास्य महाघोरं पुनस्तेषां च रक्षसाम् । ते समन्तादभिक्रुद्धा राघवं पुनरार्दयन् ॥३५॥
ततः सर्वा दिशो दृष्ट्वा प्रदिशश्च समावृताः । राक्षसैः सर्वतः प्राप्तैः शरवर्षाभिरावृतः ॥३६॥
स कृत्वा भैरवं नादमस्त्रं परमभास्वरम् । समयोजयद्गान्धर्वं राक्षसेषु महाबलः ॥३७॥
ततः शरसहस्राणि निर्ययुश्चापमण्डलात् । सर्वा दश दिशो बाणैरापूर्यन्त समागतैः ॥३८॥
नाददानं शरान्घोरान्विमुञ्चन्तं शरोत्तमान् । विकर्षमाणं पश्यन्ति राक्षसास्ते शरार्दिताः ॥३९॥
शरान्धकारमाकाशमावृणोत्सदिवाकरम् । बभूवावस्थितो रामः प्रक्षिपन्निव ताञ्छरान् ॥४०॥

किसी वीर राक्षसने बहुत क्रोधकरके रामचन्द्रपर भाला, शूल और परश्वध, नामके अस्त्र चलाये ॥ २७ ॥ महाबाहु, पराक्रमी रामचन्द्रने अपने बाणोंसे उनके शस्त्रोंका निवारण करके उनके प्राण ले लिए और गला काट दिये ॥२८॥ ढाल, धनुष और मस्तकके कट जानेपर वे पृथिवी पर गिर पड़े, जिस प्रकार गरुड़के पांखकी हवासे टूटे हुए वृक्ष पृथिवीमें गिर जाते हैं ॥ २९ ॥ जो राक्षस वहाँ बच गये थे—वे बाणोंके लगनेसे दुखित होकर, खरके ही पास शरणके लिए गये ॥ ३० ॥ उन सबको निर्भय होनेके लिए कहकर और धनुष लेकर, बड़े क्रोधसे, वह क्रोधित रामचन्द्रकी ओर दौड़ा, मानो क्रुद्ध यमराजही दौड़ा चला आता हो ॥ ३१ ॥ दूषणके आश्रय मिलनेसे निर्भय होकर लौटे हुए राक्षस भी साल, ताल आदि वृक्षों तथा पत्थरोंको लेकर रामकी ही ओर दौड़े ॥३२॥ महाबली राक्षस शूल, मुद्गर और पाश हाथमें लेकर युद्धमें, बाण तथा अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करनेलगे। कोई वृक्षोंकी वर्षा करताथा और कोई पत्थरों की। अतएव यह युद्ध बड़ाही अद्भुत, तुमुल और रोंगटे खड़े कर देनेवाला हुआ ॥ ३३, ३४ ॥ रामचन्द्र और दूषण, रामचन्द्र और वे राक्षस परस्पर युद्ध करने लगे। क्रोध करके उन राक्षसोंने रामचन्द्रको पुनः दबाया॥३५॥ रामचन्द्रने देखा कि समस्त दिशा और विदिशाएँ बाणोंसे ढक गयी हैं, चारों ओरसे आए राक्षस बाणवर्षासे मुझको ढक रहे हैं ॥ ३६ ॥ तब उन्होंने भयानक गर्जन करके बहुतही चमकीला गान्धर्व अस्त्र राक्षसोंपर चलाया ॥ ३७ ॥ उस समय रामचन्द्रके धनुषसे हजार बाण निकले और उन बाणोंसे दसों दिशाएँ भर गयीं ॥ ३८ ॥ रामचन्द्र कब बाण लेते हैं और कब चलाते हैं, यह बात राक्षसोंको नहीं मालूम होती थी ; रामचन्द्रके बाणोंसे पीड़ित राक्षस केवल यही देख सकते थे कि, वे धनुष खींच रहे हैं ॥ ३९ ॥ उन बाणोंके अन्धकारने सूर्य सहित आकाशको ढँक लिया। उस समय चुपचाप बैठे हुए रामचन्द्र मानो बाणोंको फेंक रहे हों, ऐसा मालूम हुआ ॥ ४० ॥ एक ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

युगपत्पतमानैश्च युगपच्च हतैर्भृशम् । युगपत्पतितैश्चैव विकीर्णा वसुधाभवत् ॥४१॥
निहताः पतिताः क्षीणाश्छिन्ना भिन्ना विदारिताः। तत्र तत्र स्म दृश्यन्ते राक्षसास्ते सहस्रशः ॥४२॥
सोष्णीषैरुत्तमाङ्गैश्च साङ्गदैर्बाहुभिस्तथा । ऊरुभिर्बाहुभिश्छिन्नैर्नानारूपैर्विभूषणैः ॥४३॥
हयैश्च द्विपमुख्यैश्च रथैर्भिन्नैरनेकशः । चामरव्यजनैश्छत्रैर्ध्वजैर्नानाविधैरपि ॥४४॥
रामेण बाणाभिहतैर्विच्छिन्नैः शूलपट्टिशैः । विच्छिन्नैः समरे भूमिर्विस्तीर्णाभूद्भयंकरा ॥४५॥
तान्दृष्ट्वा निहतान्सर्वे राक्षसाः परमातुराः । न तत्र चलितुं शक्ता रामं परपुरंजयम् ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः २६

दूषणस्तु स्वकं सैन्यं हन्यमानं विलोक्य च । संदिदेश महाबाहुर्भीमवेगान्दुरासदान् ॥ १ ॥
राक्षसान्पञ्चसाहस्रान्समरेष्वनिवर्तिनः । ते शूलैः पट्टिशैः खड्गैः शिलावर्षैर्द्रुमैरपि ॥ २ ॥
शरवर्षैरविच्छिन्नं ववर्षुस्तं समन्ततः । तद्द्रुमाणां शिलानां च वर्षं प्राणहरं महत् ॥ ३ ॥
प्रतिजग्राह धर्मात्मा राघवस्तीक्ष्णसायकैः । प्रतिगृह्य च तद्वर्षं निमीलित इवर्षभः ॥ ४ ॥
रामः क्रोधं परं लेभे वधार्थं सर्वरक्षसाम् । ततः क्रोधसमाविष्टः प्रदीप्त इव तेजसा ॥ ५ ॥
शरैरभ्यकिरत्सैन्यं सर्वतः सहदूषणम् । ततः सेनापतिः क्रुद्धो दूषणः शत्रुदूषणः ॥ ६ ॥

बार गिरते हुए, एकही बार मारे हुए और एकही बार गिरे हुए, अनेक राक्षसोंसे पृथिवी भर गयी ॥४१॥ मरे हुए, गिरे हुए, मरते हुए, कटे हुए और छिदे हुए हजारों राक्षस जहां तहां दिखायी पड़ने लगे ॥ ४८ ॥ किसीका पगड़ीवाला माथा कट गया था, किसीका गहनेवाला हाथ कट गया था, इस प्रकार अनेक भूषणभूषित राक्षसोंके भिन्न-भिन्न अंग कट गये थे ॥४३॥ रामके बाणसे घायल, शूल और परशुके द्वारा कटे हुए हाथी, घोड़े, टूटे हुए अनेक रथ, चँवर, पंखे, छत्ते और ध्वजाओंसे समरभूमि भर गयी और भयानक मालूम पड़ने लगी ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ इन मृतकोंको देखकर अन्य राक्षस बहुत दुःखी हुए और वे रामचन्द्रके सम्मुख जानेके समर्थ न हो सके ॥ ४६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका पचीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२५॥

दूषणने अपनी सेनाको निहत होती देख, भयानक आक्रमण करनेवाले, अजेय, युद्ध में न लौटनेवाले, पाँच हजार राक्षसोंको आज्ञा दी । वे शूल, पट्टिश, तलवार, पत्थर, वृक्ष और बाणोंकी रामचन्द्रपर सतत वृष्टि करने लगे । पत्थरों और वृक्षोंकी वह वर्षा प्राण लेनेवाली थी ॥ १, २, ३ ॥ धर्मात्मा रामचन्द्रने अपने तीखे बाणोंसे उन सबको रोक दिया और नरश्रेष्ठ रामचन्द्रने समस्त राक्षसोंका वध करनेके लिए नितान्त क्रोध किया । क्रोधित रामचन्द्र तेजसे प्रज्वलित हुए ॥४,५ ॥ दूषणके साथ समस्त सेनापर रामचन्द्रने बाणोंकी वृष्टि की, इससे शत्रुओंको दूषित करनेवाला

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शरैरशनिकल्पैस्तं राघवं समवारयत् । ततो रामः सुसंक्रुद्धः क्षुरेणास्य महद्धनुः ॥ ७ ॥
चिच्छेद समरे वीरश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् । हत्वा चाश्वान्शरैस्तीक्ष्णैरर्धचन्द्रेण सारथेः ॥ ८ ॥
शिरो जहार तद्रक्षस्त्रिभिर्विव्याध वक्षसि । स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ॥ ९ ॥
जग्राह गिरिशृङ्गाभं परिघं लोमहर्षणम् । वेष्टितं काञ्चनैः पट्टैर्देवसैन्याभिमर्दनम् ॥१०॥
आयसैः शङ्कुभिस्तीक्ष्णैः कीर्णं परवसोक्षितम् । वज्राशनिसमस्पर्शं परगोपुरदारणम् ॥११॥
तं महोरगसंकाशं प्रगृह्य परिघं रणे । दूषणोऽभ्यपतद्रामं क्रूरकर्मा निशाचरः ॥१२॥
तस्याभिपतमानस्य दूषणस्य च राघवः । द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद सहस्ताभरणौ भुजौ ॥१३॥
भ्रष्टस्तस्य महाकायः पपात रणमूर्धनि । परिघश्छिन्नहस्तस्य शक्रध्वज इवाग्रतः ॥१४॥
कराभ्यां च विकीर्णाभ्यां पपात भुवि दूषणः । विषाणाभ्यां विशीर्णाभ्यां मनस्वीव महागजः ॥१५॥
दृष्ट्वा तं पतितं भूमौ दूषणं निहतं रणे । साधुसाध्विति काकुत्स्थं सर्वभूतान्यपूजयन् ॥१६॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धास्त्रयः सेनाग्रयायिनः । संहत्याभ्यद्रवन्रामं मृत्युपाशावपाशिताः ॥१७॥
महाकपालः स्थूलाक्षः प्रमाथी च महाबलः । महाकपालो विपुलं शूलमुद्यम्य राक्षसः ॥१८॥
स्थूलाक्षः पट्टिशं गृह्य प्रमाथी च परश्वधम् । दृष्ट्वैवापततस्तांस्तु राघवः सायकैः शितैः ॥१९॥
तीक्ष्णाग्रैः प्रतिजग्राह संप्राप्तानतिथीनिव । महाकपालस्य शिरश्चिच्छेद रघुनन्दनः ॥२०॥

सेनापति दूषण बहुतही क्रुद्ध हुआ ॥ ६ ॥ वज्रके समान बाणोंसे उसने रामचन्द्रको ढँक दिया, तब क्रुद्ध होकर रामचन्द्रने क्षुर अस्त्रसे उसका धनुष काट दिया । चार बाणोंसे उसके चार घोड़े मार डाले और अर्द्धचन्द्र बाणसे उसके सारथिका मस्तक काट डाला और उस राक्षसके छातीमें तीन बाण मारे । इससे उस राक्षसका धनुष कट गया, घोड़े मारे गये और सारथि मारा गया ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ तदनन्तर पर्वतशिखरके समान भयानक परिघ उसने उठाया, जो सोनेसे मढ़ा हुआ था तथा जो देवताओंकी सेनाको भय देनेवाला था ॥ १० ॥ उसमें लोहेके तीखे काँटे लगे हुए थे, जो शत्रुओंकी चर्बीसे भींगे थे, वज्रके समान वह कठिन था और शत्रुओंके नगर-द्वारको वह तोड़नेवाला था ॥ ११ ॥ महा भयानक सर्पके समान उस परिघको लेकर क्रूर कर्म करनेवाला दूषण रामपर टूट पड़ा ॥ १२ ॥ अपनी ओर आते हुए दूषणके गहने-वाले दोनों हाथ बाणोंसे रामने काट डाले ॥१३॥ हाथके कट जानेपर वह विशाल परिघ, इन्द्रध्वजके समान पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ १४ ॥ हाथोंके कट जानेसे दूषण पृथिवीमें गिर पड़ा, जिस प्रकार दांतोंके टूटनेसे हाथी गिर जाता है ॥ १५ ॥ घायल होकर रणभूमिमें गिरे सब प्राणियोंने रामचन्द्रकी प्रशंसा की ॥ १६ ॥ इसी समय सेनाके आगे चलनेवाले महाकपाल, स्थूलाक्ष, और महाबली प्रमाथी, ये तीनों बड़े क्रोधसे रामचन्द्रकी ओर चले, मानों इनपर भी मृत्युकी छाया पड़ गयी हो । राक्षस महाकपालने विशाल शूल उठाया, स्थूलाक्षने पट्टिश और प्रमाथीने परश्वध । अपनी ओर आते हुए इन राक्षसोंको देखकर आये हुए अतिथि-के समान, रामचन्द्रने अपने तीखे बाणोंसे इनका स्वागत किया, और महाकपालका मस्तक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

असंख्येयैस्तु वाणौघैः प्रममाथ प्रमाथिनम् । स्थूलाक्षस्याक्षिणी स्थूले पूरयामास सायकैः ॥२१॥
स पपात हतो भूमौ विटपीव महाद्रुमः । दूषणस्यानुगान्पञ्चसाहस्रान्कुपितः क्षणात् ॥२२॥
हत्वा तु पञ्चसाहस्रैरनयद्यमसादनम् । दूषणं निहतं श्रुत्वा तस्य चैव पदानुगान् ॥२३॥
व्यादिदेश खरः क्रुद्धः सेनाध्यक्षान्महाबलान् । अयं विनिहतः संख्ये दूषणः सपदानुगः ॥२४॥
महत्या सेनया सार्धं युद्ध्वा रामं कुमानुषम् । शस्त्रैर्नानाविधाकारैर्हनध्वं सर्वराक्षसाः ॥२५॥
एवमुक्त्वा खरः क्रुद्धो राममेवाभिदुद्रुवे । श्येनगामी पृथुग्रीवो यज्ञशत्रुर्विहंगमः ॥२६॥
दुर्जयः करवीराक्षः परुषः कालकार्मुकः । हेममाली महामाली सर्पास्यो रुधिराशनः ॥२७॥
द्वादशैते महावीर्या बलाध्यक्षाः ससैनिकाः । राममेवाभ्यधावन्त विसृजन्तः शरोत्तमान् ॥२८॥
ततः पावकसंकाशैर्हेमवज्रविभूषितैः । जघान शेषं तेजस्वी तस्य सैन्यस्य सायकैः ॥२९॥
ते रुक्मपुङ्खा विशिखाः सधूमा इव पावकाः । निजघ्नुस्तानि रक्षांसि वज्रा इव महाद्रुमान् ॥३०॥
रक्षसां तु शतं रामः शतेनैकेन कर्णिका । सहस्रं तु सहस्रेण जघान रणमूर्धनि ॥३१॥
तैर्भिन्नवर्माभरणाश्छिन्नभिन्नशरासनाः । निपेतुः शोणितादिग्धा धरण्यां रजनीचराः ॥३२॥
तैर्मुक्तकेशैः समरे पतितैः शोणितोक्षितैः । विस्तीर्णा वसुधा कृत्स्ना महावेदिः कुशैरिव ॥३३॥
तत्क्षणे तु महाघोरं वनं निहतराक्षसम् । बभूव निरयप्रख्यं मांसशोणितकर्दमम् ॥३४॥

काट डाला ॥ १७, १८, १९, २० ॥ असंख्य बाणोंसे प्रमाथीको मथित किया और बड़ी-बड़ी आँखों वाले, स्थूलाक्षकी आँखोंमें बाण भर दिया ॥ २१ ॥ यह तीनोंका समूह, कटे वृक्षके समान पृथिवी-में गिर पड़ा । तदनन्तर क्रोध करके दूषणके पाँच हजार राक्षसोंको, पाँच हजार बाणोंके द्वारा शीघ्र ही रामचन्द्रने यमपुर भेज दिया । दूषण और उसके अनुयायी मारे गये, यह सुनकर खर क्रुद्ध हुआ और उसने बड़े बलवान सेना-नायकोंको आज्ञा दी—यह दूषण अपने साथियोंके साथ मारा गया । तुम लोग बहुत बड़ी सेना लेकर उस नीच मनुष्य रामसे युद्ध करो और सब राक्षस मिलकर विविध अस्त्रोंसे उसे मार डालो ॥२२, २३, २४, २५॥ ऐसा कहकर खर क्रोध करके रामचन्द्रकी ओर चला । तदनन्तर श्येनगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहंगम, दुर्जय, करवीराक्ष, कालकार्मुक, परुश, हेममाली, महामाली, सर्पास्य और रुधिराशन, ये महाबली बारह सेनानायक अपने सैनिकोंके साथ बाण छोड़ते हुए रामचन्द्रकी ओर चले ॥ २६, २७, २८ ॥ तदनन्तर अग्निके समान उज्ज्वल, सुवर्ण और वज्रसे विभूषित बाणोंके द्वारा, तेजस्वी रामचन्द्रने बचे हुए सैनिकों-को मारा ॥ २९ ॥ सोनेके पंखवाले ज्वालाहीन सधूम अग्निके समान उन बाणोंने राक्ष-सोंको मारा, जिस प्रकार वज्र बड़े-बड़े वृक्षोंको मारता है ॥ ३० ॥ रामचन्द्रने सौ कर्णिक बाणोंसे सौ राक्षसोंको मारा और हजार राक्षसोंको हजार बाणोंसे ॥ ३१ ॥ उन बाणोंसे राक्षसोंके कवच टूट गये, गहने टूट गये, धनुष कट गये । वे रुधिरसे सने हुए राक्षस पृथिवी-पर गिरे ॥ ३२ ॥ रुधिरलिप्त, मुक्तकेश, समरमें गिरे हुए उन राक्षसोंसे पृथिवी भर गयी, जिस प्रकार कुशोंसे वेदी ॥ ३३ ॥ उस समय राक्षसोंके मारे जानेसे उस वनमें मांस और रुधिरका कीचड़ बन गया, जिससे वह वन महाभयानक और नरकके समान हो गया ॥ ३४ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् । हतान्येकेन रामेण मानुषेण पदातिना ॥३५॥
तस्य सैन्यस्य सर्वस्य खरः शेषो महारथः । राक्षसस्त्रिशिराश्चैव रामश्च रिपुसूदनः ॥३६॥
शेषा हता महावीर्या राक्षसा रणमूर्धनि । घोरा दुर्विषहाः सर्वे लक्ष्मणस्याग्रजेन ते ॥३७॥
ततस्तु तद्बीमबलं महाहवे समीक्ष्य धर्मेण हतं बलीयसा ।
रथेन रामं महता खरस्ततः समाससादेन्द्र इवोद्यताशनिः ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षड्विंशः सर्गः ॥२६॥

सप्तविंशः सर्गः २७

खरं तु रामाभिमुखं प्रयान्तं वाहिनीपतिः । राक्षसस्त्रिशिरा नाम संनिपत्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥
मां नियोजय विक्रान्तं त्वं निवर्तस्व साहसात् । पश्य रामं महाबाहुं संयुगे विनिपातितम् ॥ २ ॥
प्रतिजानामि ते सत्यमायुधं चाहमालभे । यथा रामं वधिष्यामि वधार्हं सर्वरक्षसाम् ॥ ३ ॥
अहं वास्य रणे मृत्युरेष वा समरे मम । विनिवर्त्य रणोत्साहं मुहूर्तं प्राश्निको भव ॥ ४ ॥
प्रहृष्टो वा हते रामे जनस्थानं प्रयास्यसि । मयि वा निहते रामं संयुगाय प्रयास्यसि ॥ ५ ॥
खरस्त्रिशिरसा तेन मृत्युलोभात्प्रसादितः । गच्छ युध्येत्यनुज्ञातो राघवाभिमुखो ययौ ॥ ६ ॥

भयानक कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको एक मनुष्य, रामचन्द्रने पैदल होकर मारा ॥३५॥ उस समस्त सेनामें महारथ खर और त्रिशिरा दो राक्षस तथा शत्रुघाती राम ये ही तीन बचे ॥३६॥ और सब पराक्रमी राक्षस युद्धमें मारे गये । जो बड़े भयानक और प्रचण्ड थे, उन्हें लक्ष्मणके बड़े भाई रामचन्द्रने मार डाला ॥ ३७ ॥ उस बहुत बड़ी सेनाको बलवान रामचन्द्रने धर्मपूर्वक मारा यह देखकर खर बहुत बड़े रथपर चढ़कर वज्रहस्त इन्द्रके समान रामके पास गया ॥३८॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२६॥

खर रामचन्द्रकी ओर जा रहा है, यह देखकर, सेनापति त्रिशिरा उसके पास जाकर इस प्रकार बोला ॥१॥ पराक्रमी मेरे जिम्मे इस कामको सौंपो । तुम इस, साहसपूर्ण कामसे अलग हो जाओ । मेरे द्वारा युद्धमें मारे गये रामचन्द्रको देखो ॥२॥ मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, शस्त्र छूता हूँ कि सब राक्षसोंके वध्य रामचन्द्रका मैं अवश्यही वध करूँगा ॥३॥ युद्धमें मे इसका मृत्युस्वरूप होऊंगा या यह मेरा मृत्यु स्वरूप होगा । तुम थोड़ी देरतक युद्धोत्साह रोककर मध्यस्थ बन जाओ, अर्थात् हमारा युद्ध देखो ॥ ४ ॥ रामचन्द्रके मारे जानेपर खुश होकर जनस्थान लौट जाना, अथवा मेरे मारे जानेपर युद्धके लिए रामचन्द्रके सामने आना ॥ ५ ॥ इसप्रकार अपनी मृत्युके लिए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्रिशिरास्तु रथेनैव वाजियुक्तेन भास्वता । अभ्यद्रवद्रणे रामं त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ७ ॥
शरधारासमूहान्स महामेघ इवोत्सृजन् । व्यसृजत्सदृशं नादं जलार्द्रस्येव दुन्दुभेः ॥ ८ ॥
आगच्छन्तं त्रिशिरसं राक्षसं प्रेक्ष्य राघवः । धनुषा प्रतिजग्राह विधुन्वन्सायकाञ्शितान् ॥ ९ ॥
स संप्रहारस्तुमुलो रामत्रिशिरसोस्तदा । संबभूवातिबलिनोः सिंहकुञ्जरयोरिव ॥ १० ॥
ततस्त्रिशिरसा बाणैर्ललाटे ताडितस्त्रिभिः । अमर्षी कुपितो रामः संरब्ध इदमब्रवीत् ॥ ११ ॥
अहो विक्रमशूरस्य राक्षसस्येदृशं बलम् । पुष्पैरिव शरैर्योऽहं ललाटेऽस्मि परिक्षतः ॥ १२ ॥
ममापि प्रतिगृह्णीष्व शरांश्चापगुणाच्च्युतान् । एवमुक्तस्तु संरब्धः शरानाशीविषोपमान् ॥ १३ ॥
त्रिशिरोवक्षसि क्रुद्धो निजघान चतुर्दश । चतुर्भिस्तुरगानस्य शरैः संनतपर्वभिः ॥ १४ ॥
न्यपातयत तेजस्वी चतुरस्तस्य वाजिनः । अष्टभिः सायकैः सूतं रथोपस्थे न्यपातयत् ॥ १५ ॥
रामश्चिच्छेद बाणेन ध्वजं चास्य समुच्छ्रितम् । ततो हतरथात्तस्मादुत्पतन्तं निशाचरम् ॥ १६ ॥
चिच्छेद रामस्तं बाणैर्हृदये सोऽभवज्जडः । सायकैश्चाप्रमेयात्मा सामर्षात्तस्य रक्षसः ॥ १७ ॥
शिरांस्यपातयत्त्रीणि वेगवद्भिस्त्रिभिः शरैः । स धूमशोणितोद्गारी रामबाणाभिपीडितः ॥ १८ ॥
न्यपतत्पतितैः पूर्वं समरस्थो निशाचरः । हतशेषास्ततो भग्ना राक्षसाः खरसंश्रयाः ॥ १९ ॥

त्रिशिराने खरको प्रसन्न किया । उसने कहा जाओ लड़ो । उसकी आज्ञा पाकर त्रिशिरा युद्धके लिए रामचन्द्रके सामने चला ॥ ६ ॥ घोड़ेके चमकीले रथपर चढ़कर त्रिशिराने रामचन्द्रपर चढ़ाई की, मानो तीन सिरवाला कोई पर्वत हो ॥ ७ ॥ वह महामेघके समान बाणधाराकी वृष्टि करने लगा और भींगे नगाड़ेके समान गर्जकर शब्द करने लगा ॥ ८ ॥ राक्षस त्रिशिरा सामने आ रहा है, यह देखकर रामचन्द्रने तीखे बाणोंको छोड़कर धनुषसे उसे रोका ॥ ९ ॥ अतिबली राम और त्रिशिराका वह युद्ध बड़ाही घनघोर हुआ, जैसे सिंह और हाथी लड़ते हों ॥ १० ॥ त्रिशराने तीन बाणोंसे रामचन्द्रके माथेमें मारा । अतएव असहनशील रामचन्द्र क्रोध करके राक्षसोंका क्रोध बढ़ानेवाले शब्द बोले ॥ ११ ॥ विजय करनेका गर्व रखनेवाले राक्षसका यही बल है, जिसके पुष्पके समान बाणोंसे मेरे मस्तकपर आघात पहुँचा है ॥ १२ ॥ धनुषसे छूटे हुए मेरे बाणोंको भी ग्रहण करो—ऐसा कहकर और राक्षसको क्रोध दिलाकर सर्पके समान भयानक चौदह बाण उन्होंने त्रिशिराकी छातीमें मारे ॥ १३ ॥ सन्नतपर्व चार बाणोंसे तेजस्वी रामचन्द्रने उसके चार घोड़े गिरा दिये । आठ बाणोंसे सारथिको रथके नीचे गिरा दिया ॥ १४ ॥ २५ ॥ रामचन्द्रने अपने बाणोंसे ऊँचे उठी उसकी ध्वजा काट डाली । टूटे रथसे उठते हुए उस राक्षसके हृदयमें बाण मारे और वह जड़के समान हो गया है । अमित धैर्यवाले रामचन्द्रने उस राक्षसपर क्रोध करके शीघ्रगामी तीन बाणोंसे उसके मस्तक काट डाले । रामबाणसे पीड़ित होकर वह धंआ और खून उगलने लगा ॥ १६, १७, १७, १८ ॥ वह राक्षस अपने तीनों मस्तकोंके पृथिवीपर गिरनेके कारण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्रवन्ति स्म न तिष्ठन्ति व्याधत्रस्ता मृगा इव । तान्खरो द्रवतो दृष्ट्वा निवर्त्य रुषितस्त्वरन् ।
राममेवाभिदुद्राव राहुश्चन्द्रमसं यथा ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥२७॥

अष्टाविंशः सर्गः २८

निहतं दूषणं दृष्ट्वा रणे त्रिशिरसा सह । खरस्याप्यभवत्त्रासो दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम् ॥ १ ॥
स दृष्ट्वा राक्षसं सैन्यमविषह्यं महाबलम् । हतमेकेन रामेण दूषणस्त्रिशिरा अपि ॥ २ ॥
तद्बलं हतभूयिष्ठं विमनाः प्रेक्ष्य राक्षसः । आससाद खरो रामं नमुचिर्वासवं यथा ॥ ३ ॥
विकृष्य बलवच्चापं नाराचान्रक्तभोजनान् । खरश्चिक्षेप रामाय क्रुद्धानाशीविषानिव ॥ ४ ॥
ज्यां निधुन्वन्सुबहुशः शिक्षयास्त्राणि दर्शयन् । चचार समरे मार्गान्शरै रथगतः खरः ॥ ५ ॥
स सर्वाश्च दिशो बाणैः प्रदिशश्च महारथः । पूरयामास तं दृष्ट्वा रामोऽपि सुमहद्धनुः ॥ ६ ॥
स सायकैर्दुर्विषहैर्विस्फुलिङ्गैरिवाग्निभिः । नभश्चकार विवरं पर्जन्य इव वृष्टिभिः ॥ ७ ॥
तद्बभूव शितैर्बाणैः खररामविसर्जितैः । पर्याकाशमनाकाशं सर्वतः शरसंकुलम् ॥ ८ ॥
शरजालावृतः सूर्यो न तदा स्म प्रकाशते । अन्योन्यवधसंरम्भादुभयोः संप्रयुध्यतोः ॥ ९ ॥

स्वयं भी गिर पड़ा ॥१९॥ जो रणमें बचे हुए थे और घायल हो गये थे, वे—व्याधसे डरे हुए मृगके समान, खरके आश्रित—राक्षस भाग गये। उनको भागते हुए देखकर खर क्रोध करके शीघ्रतापूर्वक उन्हें लौटाकर रामचन्द्रकी ओर दौड़ा, जैसे राहू चन्द्रमाकी ओर दौड़ा हो ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका सत्ताइसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २७ ॥

त्रिशिराके साथ दूषणको रणमें मरा देखकर और रामचन्द्रका पराक्रम देखकर खरको भी भय हुआ ॥ १ ॥ महाबली और असहनीय राक्षसोंकी सेना, तथा दूषण और त्रिशिराको, एकही रामचन्द्रने मारा यह देखकर तथा अपनी सेनाके बहुतसे वीरोंको मरा हुआ जानकर राक्षस खर बहुतही दुःखी हुआ और रामचन्द्रके सामने गया, जिस प्रकार नमुचि नामक राक्षस इन्द्रके सामने गया था ॥ २, ३ ॥ उसने रक्त पीनेवाले क्रुद्ध सर्पके समान बाण रामचन्द्रपर फेंका ॥ ४ ॥ रौंदाका टंकार करता हुआ और अस्त्र सम्बन्धी अपनी निपुणता दिखलाता हुआ, खर रणक्षेत्रमें अनेक प्रकारसे विचरण करने लगा ॥ ५ ॥ महारथ खरने अपने बाणोंसे समस्त दिशाओं तथा विदिशाओंको भर दिया। यह देखकर रामचन्द्रने भी बड़ा धनुष लिया ॥ ६ ॥ रामचन्द्रने भी अग्निकी चिनगारियोंके समान और असहनीय बाणोंसे आकाशको भर दिया, जिस प्रकार मेघ वृष्टिसे भर देता है ॥ ७ ॥ खर और रामचन्द्रके छोड़े तीखे बाणोंसे वह सूना आकाश खूब भर गया ॥ ८ ॥ एक दूसरेके वध करनेके आग्रहपूर्ण क्रोधसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततो नालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्च विकर्णिभिः । आजघान रणे रामं तोत्त्रैरिव महाद्विपम् ॥१०॥
तं रथस्थं धनुष्पाणिं राक्षसं पर्यवस्थितम् । ददृशुः सर्वभूतानि पाशहस्तमिवान्तकम् ॥११॥
हन्तारं सर्वसैन्यस्य पौरुषे पर्यवस्थितम् । परिश्रान्तं महासत्त्वं मेने रामं खरस्तदा ॥१२॥
तं सिंहमिव विक्रान्तं सिंहविक्रान्तगामिनम् । दृष्ट्वा नोद्विजते रामः सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥१३॥
ततः सूर्यनिकाशेन रथेन महता खरः । आससादाथ तं रामं पतङ्ग इव पावकम् ॥१४॥
ततोऽस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे महात्मनः । खराश्चिच्छेद रामस्य दर्शयन्हस्तलाघवम् ॥१५॥
स पुनस्त्वपरान्सप्त शरानादाय मर्मणि । निजघान रणे क्रुद्धः शक्राशनिसमप्रभान् ॥१६॥
ततः शरसहस्रेण राममप्रतिमौजसम् । अर्दयित्वा महानादं ननाद समरे खरः ॥१७॥
ततस्तत्प्रहृतं बाणैः खरमुक्तैः सुपर्वभिः । पपात कवचं भूमौ रामस्यादित्यवर्चसम् ॥१८॥
स शरैरर्पितः क्रुद्धः सर्वगात्रेषु राघवः । रराज समरे रामो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥१९॥
ततो गम्भीरनिर्ह्रादं रामः शत्रुनिबर्हणः । चकारान्ताय स रिपोः सज्यमन्यन्महद्धनुः ॥२०॥
सुमहद्वैष्णवं यत्तदादिष्टं महर्षिणा । वरं तद्धनुरुद्यम्य खरं समभिधावतः ॥२१॥
ततः कनकपुङ्खैस्तु शरैः संनतपर्वभिः । चिच्छेद रामः संक्रुद्धः खरस्य समरे ध्वजम् ॥२२॥
स दर्शनीयो बहुधा विच्छिन्नः काञ्चनो ध्वजः । जगाम धरणीं सूर्यो देवतानामिवाज्ञया ॥२३॥

युद्ध करनेवाले उन दोनोंके बाणजालसे सूर्य छिप गये और वे प्रकाशित न हुए ॥ ९ ॥ खरने नालीक, नाराच और तीखे विकर्णि नामक शरोंसे रामचन्द्रको मारा, मानों अंकुशसे हाथी मारा जाता हो ॥ १० ॥ हाथमें धनुष लेकर रथपर बैठे हुए उस राक्षसको सब लोगोंने पाशधारी यमराजके समान देखा ॥ ११ ॥ सब सेनाको मारनेवाले, महापराक्रमी और पुरुषार्थसे भरे हुए रामचन्द्रको खरने उस समय थका हुआ जाना ॥ १२ ॥ सिंहके समान पराक्रमी और सिंहके समान चलनेवाले खरको देखकर रामचन्द्र कुछ भी भयभीत नहीं हुए, जैसे सिंह किसी छोटे पशुको देखकर भयभीत नहीं होता ॥ १३ ॥ सूर्यके समान प्रकाशमान विशाल रथपर बैठकर खर रामचन्द्रके पास गया जैसे पतिंगे आगके पास जाते हैं ॥ १४ ॥ तदनन्तर महात्मा रामचन्द्रके बाण और धनुषको, मुट्ठी पकड़नेके स्थान पर, अपने हाथकी शीघ्रता दिखाता हुआ खरने काट दिया ॥ १५ ॥ पुनः दूसरे सात बाण लेकर, जो इन्द्रके वज्रके समान थे, रामचन्द्रके मर्मस्थानमें मारा ॥ १६ ॥ पुनः हजार बाणोंसे अमितपराक्रमी रामचन्द्रको पीड़ित करके खरने गर्जन किया ॥ १७ ॥ तदनन्तर सुन्दर पर्ववाले खरके छोड़े बाणोंसे कटा हुआ रामचन्द्रका सूर्यके समान उज्ज्वल कवच पृथिवी पर गिर पड़ा ॥ १८ ॥ रामचन्द्रका समस्त शरीर बाणोंसे विध गया। उस समय रामचन्द्र रणक्षेत्रमें धूम-रहित अग्निके समान मालूम पड़ने लगे ॥ १९ ॥ तदनन्तर शत्रुओं-को नष्ट करनेवाले रामचन्द्रने खरके नाशके लिये दूसरा चढ़ा हुआ धनुष लिया। जिसकी ध्वनि बड़ी गंभीर थी ॥ २० ॥ महर्षि अगस्त्यने जो विशाल वैष्णव धनुष दिया था, उसको लेकर रामचन्द्र खरकी ओर दौड़े ॥ २१ ॥ नतपर्व, सुवर्णपंख बाणोंसे रामचन्द्रने रणमें खरकी ध्वजा काट दी ॥ २२ ॥ वह सोनेकी ध्वजा देखनेमें बड़ीही सुन्दर थी, वह पृथिवीपर गिर पड़ी, मानों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तं चतुर्भिः खरः क्रुद्धो रामं गात्रेषु मार्गणैः । विव्याध हृदि मर्मज्ञो मातङ्गमिव तोयदैः ॥२४॥
स रामो बहुभिर्बाणैः खरकार्मुकनिःसृतैः । विद्धो रुधिरसिक्ताङ्गो बभूव रुषितो भृशम् ॥२५॥
स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठः संगृह्य परमाहवे । मुमोच परमेष्वासः षट् शरानभिलक्षितान् ॥२६॥
शिरस्येकेन बाणेन द्वाभ्यां बाह्वोरथार्पयत् । त्रिभिश्चन्द्रार्धवक्त्रैश्च वक्षस्यभिजघान ह ॥२७॥
ततः पश्चान्महातेजा नाराचान्भास्करोपमान् । जघान राक्षसं क्रुद्धस्त्रयोदश शिलाशितान् ॥२८॥
रथस्य युगमेकेन चतुर्भिः शबलान्हयान् । षष्ठेन च शिरः संख्ये चिच्छेद खरसारथेः ॥२९॥
त्रिभिस्त्रिवेणून्बलवान्द्वाभ्यामक्षं महाबलः । द्वादशेन तु बाणेन खरस्य सकरं धनुः ॥३०॥
छित्त्वा वज्रनिकाशेन राघवः प्रहसन्निव । त्रयोदशेनेन्द्रसमो विभेद समरे खरम् ॥३१॥
प्रभग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । गदापाणिरवप्लुत्य तस्थौ भूमौ खरस्तदा ॥३२॥

तत्कर्म रामस्य महारथस्य समेत्य देवाश्च महर्षयश्च ।
अपूजयन्प्राञ्जलयः प्रहृष्टास्तदा विमानाग्रगताः समेताः ॥३३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे ऽष्टाविंशः सर्गः ॥२८॥

देवताओंके तिरस्कारसे सूर्य्य पृथिवीपर गिर पड़ा हो ॥ २३ ॥ खरने क्रोध करके रामचन्द्रके शरीरमें चार बाण मारे । मर्मस्थानोंको जाननेवाले खरने रामचन्द्रके हृदयमें मारा, जिस प्रकार हाथी तोमरसे मारे जाते हैं ॥ २४ ॥ इस प्रकार खरके धनुषसे निकले अनेक बाणोंसे रामचन्द्र विध गये, उनका शरीर रुधिरसे भर गया, उस समय उन्होंने बहुत क्रोध किया ॥ २५ ॥ धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्र उस भयानक युद्धक्षेत्रमें धनुष लेकर प्रसिद्ध छ बाण छोड़े ॥ २६ ॥ एक बाण मस्तकपर, दो बाण दोनों बाहुओंपर, अर्द्धचन्द्रके समान टेढ़े तीन बाणोंसे छातीपर रामचन्द्रने मारा ॥ २७ ॥ पुनः क्रोध करके महातेजस्वी रामचन्द्रने सूर्यके समान चमकीले और तीखे तेरह नाराचोंसे राक्षसको मारा ॥ २८ ॥ एक बाणसे रथके पहिये, चार बाणोंसे उसके चित्रित घोड़े और छठे बाणसे खरके सारथिका मस्तक रामचन्द्रने युद्धमें काट दिया ॥ २९ ॥ तीन बाणोंसे रथका बम्बा, दो से रथका धुरा और बारह बाणोंसे खरका हाथ युक्त धनुष काट दिया ॥३०॥ धनुष कट गया, रथ टूट गया, घोड़े मारे गये और सारथि मारा गया, तब हाथमें गदा लेकर रामचन्द्रके सामने खर कूद पड़ा ॥ ३२ ॥ ३१ ॥ विमानके अग्रभागमें प्रसन्नतापूर्वक एकत्र होकर देवता और ऋषियोंने रामचन्द्रके इस कामकी प्रशंसा की ॥ ३३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका अट्ठाइसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २८ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकोनत्रिंशः सर्गः २९

खरं तु विरथं रामो गदापाणिमवस्थितम् । मृदुपूर्वं महातेजाः परुषं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
गजाश्वरथसंबाधे बले महति तिष्ठता । कृतं ते दारुणं कर्म सर्वलोकजुगुप्सितम् ॥ २ ॥
उद्वेजनीयो भूतानां नृशंसः पापकर्मकृत् । त्रयाणामपि लोकानामीश्वरोऽपि न तिष्ठति ॥ ३ ॥
कर्म लोकविरुद्धं तु कुर्वाणं क्षणदाचर । तीक्ष्णं सर्वजनो हन्ति सर्पं दुष्टमिवागतम् ॥ ४ ॥
लोभात्पापानि कुर्वाणः कामाद्वा यो न बुध्यते । हृष्टः पश्यति तस्यान्तं ब्राह्मणी करकादिव ॥ ५ ॥
वसतो दण्डकारण्ये तापसान्धर्मचारिणः । किं नु हत्वा महाभागान्फलं प्राप्स्यसि राक्षस ॥ ६ ॥
न चिरं पापकर्माणः क्रूरा लोकजुगुप्सिताः । ऐश्वर्यं प्राप्य तिष्ठन्ति शीर्णमूला इव द्रुमाः ॥ ७ ॥
अवश्यं लभते कर्ता फलं पापस्य कर्मणः । घोरं पर्यागते काले द्रुमः पुष्पमिवार्तवम् ॥ ८ ॥
नचिरात्प्राप्यते लोके पापानां कर्मणां फलम् । सविषाणामिवान्नानां भुक्तानां क्षणदाचर ॥ ९ ॥
पापमाचरतां घोरं लोकस्याप्रियमिच्छताम् । अहमासादितो राजा प्राणान्हन्तुं निशाचर ॥१०॥
अद्य भित्त्वा मया मुक्ताः शराः काञ्चनभूषणाः । विदार्यापि पतिष्यन्ति वल्मीकमिव पन्नगाः ॥११॥
ये त्वया दण्डकारण्ये भक्षिता धर्मचारिणः । तानद्य निहतः संख्ये ससैन्योऽनुगमिष्यसि॥१२॥
अद्य त्वां निहतं बाणैः पश्यन्तु परमर्षयः । निरयस्थं विमानस्था ये त्वया निहताः पुरा ॥१३॥

रथहीन और गदा लेकर रणभूमिमें स्थित खरसे महातेजस्वी रामचन्द्रने पहले कोमल मालूम होनेवाले कठोर वचन बोले ॥ १ ॥ हाथी घोड़े और रथोंसे युक्त विशाल सेनाके जब तुम स्वामी थे, उस समय तुमने सबसे निंदित, बड़ाही क्रूर कर्म किया है ॥ २ ॥ प्राणियोंको उद्विग्न करनेवाला, क्रूर पापी, तीनों लोकोंका स्वामी भी हो तो वह नहीं रह सकता ॥३॥ लोकनिन्दित कठोर कर्म करनेवाला मनुष्य यदि घरमें आवे तो लोग घरमें आये दुष्ट सर्पके समान उसे मार डालते हैं ॥४॥ अविवेकसे, अथवा जान-बूझकर जो पाप करता है और प्रसन्न होकर उन पापोंसे निवृत्त नहीं होता, वह अपने पापोंका परिणाम शीघ्रही देखता है, जैसे ब्राह्मणी नामका कीड़ा ओलोंके कारण नष्ट होता है (कहते हैं कि ब्राह्मणी ओले खाकर मर जाती है) ॥ ५ ॥ राक्षस जो धर्माचरण करनेवाले तपस्वी दण्डक वनमें रहते हैं, उनको मारनेसे तुम लोगोंको क्या फल मिलेगा ॥ ६ ॥ पाप कर्म करनेवाले लोकनिन्दित, क्रूर मनुष्य, ऐश्वर्य पाकर भी बहुत दिनों तक नहीं रह सकते, जिस प्रकार नदी-तीरका खोखला जड़वाला वृक्ष ॥ ७ ॥ कर्ता अपने पापोंका कठोर फल अवश्य पाता है, जिस प्रकार वृक्ष, ऋतु आनेपर पुष्पित होते हैं ॥ ८ ॥ राक्षस, पाप कर्मोंके फल लोकमें बहुत देरसे नहीं मिलते, जिस प्रकार विषयुक्त अन्नके खानेका फल ॥ ९ ॥ निशाचर, लोकका अकल्याण करनेवाले पापियोंके मारनेके लिए राजाने मुझे वनमें भेजा है ॥१०॥ आज मेरे छोड़े हुए सुवर्णभूषित बाण तुम्हारे शरीरको काटकर पृथिवीमें चले जायँगे, जिस प्रकार सर्प वल्मीकमें चले जाते हैं ॥ ११ ॥ जिन धर्मात्माओंको दण्डकारण्य वनमें तुमने खा डाला है, आज सेनाके साथ युद्धमें मर कर, तुम उनका अनुगमन करोगे ॥ १२ ॥ जिनको तुमने पहले मारा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रहरस्व यथाकामं कुरु यत्नं कुलाधम । अद्य ते पातयिष्यामि शिरस्तालफलं यथा ॥१४॥
एवमुक्तस्तु रामेण क्रुद्धः संरक्तलोचनः । प्रत्युवाच ततो रामं प्रहसन्क्रोधमूर्च्छितः ॥१५॥
प्राकृतान्राक्षसान्हत्वा युद्धे दशरथात्मज । आत्मना कथमात्मानमप्रशस्यं प्रशंससि ॥१६॥
विक्रान्ता बलवन्तो वा ये भवन्ति नरर्षभाः । कथयन्ति न ते किंचित्तेजसा चातिगर्विताः ॥१७॥
प्राकृतास्त्वकृतात्मानो लोके क्षत्रियपांसनाः । निरर्थकं विकत्थन्ते यथा राम विकत्थसे ॥१८॥
कुलं व्यपदिशन्वीरः समरे कोऽभिधास्यति । मृत्युकाले तु संप्राप्ते स्वयमप्रस्तवे स्तवम् ॥१९॥
सर्वथा तु लघुत्वं ते कत्थनेन विदर्शितम् । सुवर्णप्रतिरूपेण तप्तेनेव कुशाग्निना ॥२०॥
न तु मामिह तिष्ठन्तं पश्यसि त्वं गदाधरम् । धराधरमिवाकम्प्यं पर्वतं धातुभिश्चितम् ॥२१॥
पर्याप्तोऽहं गदापाणिर्हन्तुं प्राणान्रणे तव । त्रयाणामपि लोकानां पाशहस्त इवान्तकः ॥२२॥
कामं बह्वपि वक्तव्यं त्वयि वक्ष्यामि न त्वहम् । अस्तं प्राप्नोति सविता युद्धविघ्नस्ततो भवेत् ॥२३॥
चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां हतानि ते । त्वद्विनाशात्करोम्यद्य तेषामश्रुप्रमार्जनम् ॥२४॥
इत्युक्त्वा परमक्रुद्धः स गदां परमाङ्गदाम् । खरश्चिक्षेप रामाय प्रदीप्तामशनिं यथा ॥२५॥
खरबाहुप्रमुक्ता सा प्रदीप्ता महती गदा । भस्म वृक्षांश्च गुल्मांश्च कृत्वागात्तत्समीपतः ॥२६॥

है, वे महर्षि विमानसे मेरे बाणोंके द्वारा मारे गये और नरकमें पड़े हुए तुमको देखेंगे ॥ १३ ॥ कुलाधम, जितना चाहो प्रहार करो, जो चाहो प्रयत्न करो। आज तालफलके समान तुम्हारा सिर मैं गिरा दूँगा ॥ १४ ॥ रामके ऐसा कहनेपर खरकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। हँसता हुआ वह रामचन्द्रसे बोला ॥ १५ ॥ दसरथपुत्र राम, छोटे-छोटे राक्षसोंको युद्धमें मारकर स्वयं तुम अपनी प्रशंसा क्यों कर रहे हो। यह तो कोई प्रशंसाकी बात नहीं है ॥ १६ ॥ जो बलवान् होते हैं, पराक्रमी होते हैं और तेजसे तेजस्वी होते हैं, वे नरश्रेष्ठ स्वयं अपनी प्रशंसा नहीं करते ॥ १७ ॥ जो छोटे हैं, चंचल हैं, वे ही क्षत्रियकलंक, निरर्थक अपनी तारीफ किया करते हैं, राम, जैसे तुम अपनी तारीफ कर रहे हो ॥१८॥ मृत्युके समान भयदायी रणमें बिना किसी प्रसंगके स्वयं अपने कुलका परिचय देकर कौन अपनी स्तुति कर सकता है ॥ १९ ॥ अतएव इस प्रशंसाके द्वारा तुमने सर्वथा अपनी लघुताही बतलायी, जिस प्रकार सुवर्णके समान मालूम पड़नेवाली दीप्त कुशकी आग ॥ २० ॥ पर्वतके समान अचल, गदा धारण करके और धातुओंसे चित्रित पर्वतके समान मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूं, यह तुम नहीं जानते अर्थात् मेरे पराक्रमका तुम्हें ज्ञान नहीं है ॥ २१ ॥ पाशधारी यमराजके समान, गदाधारी मैं तुम्हारे और तीनों लोकोंके प्राण लेनेकी शक्ति रखता हूँ ॥ २२ ॥ यद्यपि तुम्हारे सम्बन्धमें बहुत सी बातें कहनी हैं, पर मैं नहीं कहता। शीघ्रही सूर्यास्त हो जायगा, जिससे युद्ध रुक जायगा ॥ २३ ॥ चौदह हजार राक्षसोंको तुमने मारा है, तुमको मारकर उनका बदला मैं चुकाऊँगा ॥ २४ ॥ इस प्रकार कहकर बड़े क्रोधसे खरने वह गदा रामचन्द्रपर चलायी, जो सोनेसे मढ़ी गयी थी और जो प्रदीप्त वज्रके समान थी ॥२५॥ खरकी छोड़ी हुई वह प्रदीप्त विशाल गदा वृक्षों और लताओंको जलाती हुई रामचन्द्रके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तामापतन्तीं महतीं मृत्युपाशोपमां गदाम् । अन्तरिक्षेगतां रामश्चिच्छेद बहुधा शरैः ॥२७॥
सा विशीर्णा शरैर्भिन्ना पपात धरणीतले । गदा मन्त्रौषधिबलैर्व्यालीव विनिपातिता ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः ३०

भित्त्वा तु तां गदां बाणै राघवो धर्मवत्सलः । स्मयमान इदं वाक्यं संरब्धमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
एतत्ते बलसर्वस्वं दर्शितं राक्षसाधम । शक्तिहीनतरो मत्तो वृथा त्वमुपगर्जसि ॥ २ ॥
एषा बाणविनिर्भिन्ना गदा भूमितलं गता । अभिधानप्रगल्भस्य तव प्रत्ययघातिनी ॥ ३ ॥
यत्त्वयोक्तं विनष्टानामिदमश्रुप्रमार्जनम् । राक्षसानां करोमीति मिथ्या तदपि ते वचः ॥ ४ ॥
नीचस्य क्षुद्रशीलस्य मिथ्यावृत्तस्य रक्षसः । प्राणानपहरिष्यामि गरुत्मानमृतं यथा ॥ ५ ॥
अद्य ते भिन्नकण्ठस्य फेनबुद्बुदभूषितम् । विदारितस्य मद्बाणैर्मही पास्यति शोणितम् ॥ ६ ॥
पांसुरूषितसर्वाङ्गः स्रस्तन्यस्तभुजद्वयः । स्वप्स्यसे गां समाश्लिष्य दुर्लभां प्रमदामिव ॥ ७ ॥
प्रवृद्धनिद्रे शयिते त्वयि राक्षसपांसने । भविष्यन्ति शरण्यानां शरण्या दण्डका इमे ॥ ८ ॥

समीप आयी ॥ २६ ॥ मृत्युपाशके समान अपने पास आती हुई उस विशाल गदाको आकाशमें ही बाणोंसे रामचन्द्रने कई टुकड़े कर दिये ॥ २७ ॥ बाणसे कटी हुई वह गदा टुकड़े-टुकड़े होकर पृथिवीपर गिर पड़ी, मानो मन्त्र और औषधिके प्रयोगसे साँपिन पृथिवीपर गिरा दी गयी हो ॥ २८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका उनतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २९ ॥

धर्मप्रेमी रामचन्द्र, खरकी उस गदाको टुकड़े-टुकड़े करके हँसते हुए, घबड़ाए खरसे यह वचन बोले ॥ १ ॥ राक्षसाधम, यही तुम्हारा बल सर्वस्व है, जिसे तुमने अभी दिखाया है तो तुम मुझसे कमजोर हो। झूठेही बढ़-बढ़कर बातें करते हो ॥ २ ॥ यह बाणसे कटी हुई तुम्हारी गदा भूमिपर पड़ी है। इस गदाने तुम्हारे विश्वासका अर्थात् इससे अवश्यही शत्रुको मारूँगा—इस विश्वासका—नाश किया इससे मालूम होता है कि तुम केवल बोलना जानते हो ॥ ३ ॥ तुमने जो यह कहा था कि तुमको मारकर मरे हुए वीर राक्षसोंका बदला चुकाऊँगा तुम्हारी वह बात भी झूठी हुई ॥ ४ ॥ नीच, क्षुद्र स्वभाव तथा मिथ्या व्यवहार रखनेवाले राक्षस, तुम्हारे प्राणोंको, जिस प्रकार गरुड़ने अमृत निकाला था, मैं निकालता हूँ ॥५॥ आज मेरे बाणोंसे कटे हुए तुम्हारे फेन और बुदबुदयुक्त रुधिरको पृथिवी पीवेगी ॥ ६ ॥ तुम्हारे समस्त शरीरमें धूल लग जायगी। तुम्हारी भुजाएँ पृथिवीपर कटकर गिर पड़ेंगी और दुर्लभ प्रमदाके समान पृथिवीका आलिंगन कर तुम सो जाओगे ॥ ७ ॥ राक्षस-कलंक, तुम्हारे चिरनिद्रामें सोनेपर यह दण्डक वन शरणा-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जनस्थाने हतस्थाने तव राक्षस मच्छरैः । निर्भया विचरिष्यन्ति सर्वतो मुनयो वने ॥ ९ ॥
अद्य विप्रसरिष्यन्ति राक्षस्यो हतबान्धवाः । बाष्पार्द्रवदना दीना भयादन्यभयावहाः ॥१०॥
अद्य शोकरसज्ञास्ता भविष्यन्ति निरर्थिकाः । अनुरूपकुलाः पत्न्यो यासां त्वं पतिरीदृशः ॥११॥
नृशंसशील क्षुद्रात्मन्नित्यं ब्राह्मणकण्टक । त्वत्कृते शङ्कितैरग्नौ मुनिभिः पात्यते हविः ॥१२॥
तमेवमभिसंरब्धं ब्रुवाणं राघवं वने । खरो निर्भर्त्सयामास रोषात्खरतरस्वरः ॥१३॥
दृढं खल्ववलिप्तोऽसि भयेष्वपि च निर्भयः । वाच्यावाच्यं ततो हि त्वं मृत्योर्वश्यो न बुध्यसे ॥१४॥
कालपाशपरिक्षिप्ता भवन्ति पुरुषा हि ये । कार्याकार्यं न जानन्ति ते निरस्तषडिन्द्रियाः ॥१५॥
एवमुक्त्वा ततो रामं संरुध्य भ्रुकुटिं ततः । स ददर्श महासालमविदूरे निशाचरः ॥१६॥
रणे प्रहरणस्यार्थे सर्वतो ह्यवलोकयन् । स तमुत्पाटयामास संदष्टदशनच्छदम् ॥१७॥
तं समुत्क्षिप्य बाहुभ्यां विनर्दित्वा महाबलः । राममुद्दिश्य चिक्षेप हतस्त्वमिति चाब्रवीत् ॥१८॥
तमापतन्तं बाणौघैश्छित्त्वा रामः प्रतापवान् । रोषमाहारयत्तीव्रं निहन्तुं समरे खरम् ॥१९॥
जातस्वेदस्ततो रामो रोषरक्तान्तलोचनः । निर्बिभेद सहस्रेण बाणानां समरे खरम् ॥२०॥
तस्य बाणान्तराद्रक्तं बहु सुस्राव फेनिलम् । गिरेः प्रस्रवणस्येव धाराणां च परिस्रवः ॥२१॥

र्थियोंके लिए शरण देनेवाला होगा ॥ ८ ॥ जनस्थानमें रहनेवाले राक्षसोंके निवासस्थान, जब मेरे बाणके द्वारा नष्ट किए जाएगे, तब मुनिगण सर्वत्र निर्भय होकर विचरण करेंगे ॥ ९ ॥ दूसरों-को भयभीत करनेवाली राक्षसियाँ अपने बान्धवोंके मारे जानेसे दुःखी हो जायगी, उनके मुँह आँसू-से भींग जायगे और वे यहाँसे भाग जायँगी ॥ १० ॥ जिनके तुम्हारे समान पापी पति हैं, वे अपने कुलके अनुसार दुराचार करनेवाली स्त्रियाँ आज शोकका रस जान सकेंगी ॥ ११ ॥ क्योंकि अब वे निरर्थक हो गयी हैं, क्रूर स्वभाव, नीच, ब्राह्मणशत्रु, तुम्हारे डरसे डरे हुए मुनि अग्निमें हवन करते थे ॥ १२ ॥ इस प्रकार क्रोधपूर्वक बोलते हुए रामचन्द्रको झिड़िक कर क्रोधसे रूखे स्वरमें खर बोला ॥ १३ ॥ तुम तो बड़े अहंकारी मालूम पड़ते हो, जो भयके समयमें भी निर्भय बने हुए हो । जिसपर मृत्युकी छाया पड़ जाती है, वह नहीं जानता है कि क्या बोलना चाहिए, क्या न बोलना चाहिए ॥ १४ ॥ कालके कौरमें आये हुए मनुष्य नहीं जानते कि क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य है, क्योंकि उनकी इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट हो जाती है ॥ १५ ॥ इस प्रकार कहकर रामचन्द्रकी ओर भौहें तरेरकर उस राक्षसने पासही एक बहुत बड़ा सालका वृक्ष देखा ॥ १६ ॥ वह रणमें अस्त्र बनानेके लिए कोई चीज ढूँढ़ रहा था । ओठ चबाकर उसने वह वृक्ष उखाड़ लिया ॥१७॥महाबली राक्षसने गर्जन करके और हाथोंसे उखाड़कर वह वृक्ष रामचन्द्र-पर फेंका और 'तुम मारे गये' यह कहा ॥ १८ ॥ प्रतापी रामचन्द्रने उस वृक्षको काटकर रणमें खरको मारनेके लिये तीव्र क्रोध किया ॥१९॥ उस समय रामचन्द्रके शरीरसे पसीना निकलने लगा, क्रोधसे आंखोंके प्रान्त भाग लाल होगये, उन्होंने हजारों बाणोंसे खरको छेदा ॥ २०॥ बाणसे छिदे हुए उसके अंगोंसे फेनवाला बहुत खून निकला, जिसप्रकार प्रस्रवण पर्वतसे धारा निकलती

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विकलः स कृतो बाणैः खरो रामेण संयुगे। मत्तो रुधिरगन्धेन तमेवाभ्यद्रवद्द्रुतम् ॥२२॥
तमापतन्तं संक्रुद्धं कृतास्त्रो रुधिराप्लुतम्। अपासर्पद्द्वित्रिपदं किंचित्त्वरितविक्रमः ॥२३॥
ततः पावकसंकाशं वधाय समरे शरम्। खरस्य रामो जग्राह ब्रह्मदण्डमिवापरम् ॥२४॥
स तद्दत्तं मघवता सुरराजेन धीमता। संदधे च स धर्मात्मा मुमोच च खरं प्रति ॥२५॥
स विमुक्तो महाबाणो निर्घातसमनिःस्वनः। रामेण धनुरायम्य खरस्योरसि चापतत् ॥२६॥
स पपात खरो भूमौ दह्यमानः शराग्निना। रुद्रेणेव विनिर्दग्धः श्वेतारण्ये यथान्धकः ॥२७॥
स वृत्र इव वज्रेण फेनेन नमुचिर्यथा। बलो वेन्द्राशनिहतो निपपात हतः खरः ॥२८॥
एतस्मिन्नन्तरे देवाश्चारणैः सह संगताः। दुन्दुभींश्चाभिनिघ्नन्तः पुष्पवर्षं समन्ततः ॥२९॥
रामस्योपरि संहृष्टा ववर्षुर्विस्मितास्तदा। अर्धाधिकमुहूर्तेन रामेण निशितैः शरैः ॥३०॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां कामरूपिणाम्। खरदूषणमुख्यानां निहतानि महामृधे ॥३१॥
अहो बत महत्कर्म रामस्य विदितात्मनः। अहो वीर्यमहो दार्ढ्यं विष्णोरिव हि दृश्यते ॥३२॥
इत्येवमुक्त्वा ते सर्वे ययुर्देवा यथागतम्। ततो राजर्षयः सर्वे संगताः परमर्षयः ॥३३॥
सभाज्य मुदिता रामं सागस्त्या इदमब्रुवन्। एतदर्थं महातेजा महेन्द्रः पाकशासनः ॥३४॥
शरभङ्गाश्रमं पुण्यमाजगाम पुरंदरः। आनीतस्त्वमिमं देशमुपायेन महर्षिभिः ॥३५॥

है ॥ २१ ॥ रामचन्द्रके बाणोंसे खर विकल हो गया, पर रुधिरकी गन्धसे मत्त होकर वह पुनः रामचन्द्रकी ओर दौड़ा ॥ २२ ॥ अस्त्रवेत्ता रामचन्द्रने जब देखा कि रुधिरसे सना हुआ खर मेरी ही ओर आ रहा है, तब शीघ्र पराक्रम करनेवाले रामचन्द्र दो-तीन पैर हट गये ॥ २३ ॥ खरको मारनेके लिए अग्निके समान बाण रामचन्द्रने लिया, मानों दूसरा ब्रह्मदण्ड हो २४ ॥ देवराज बुद्धिमान इन्द्रका दिया हुआ बाण धर्मात्मा रामचन्द्रने खरपर छोड़ा ॥ २५ ॥ वज्रके टक्करके समान भयानक शब्द करनेवाला वह महाबाण, धनुष खींचकर रामचन्द्रने छोड़ा और वह खरकी छातीमें लगा ॥ २६ ॥ शरकी आगसे जलता हुआ वह खर जमीनपर गिरपड़ा, जिस प्रकार श्वेतारण्यमें अन्धकको शिवने जलाया था। अन्धकासुरको शिवजीने श्वेतारण्यमें मारा था, यह पुराणोंकी कथा है ॥ २७ ॥ वज्रके द्वारा वृत्र, फेनके द्वारा नमुचि, वज्रके द्वारा बलके समान वह खर रामचन्द्रके बाणोंसे निहत होकर गिर पड़ा ॥२८॥ इसी समय देवता और चारण एकत्र होकर दुन्दुभी बजाने लगे और पुष्पवृष्टि करने लगे ॥ २९ ॥ प्रसन्न और विस्मित होकर उन लोगोंने रामचन्द्रपर पुष्पवृष्टि की, तीन मुहूर्तमें तीखे बाणोंसे रामचन्द्रने स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाले खरदूषण आदि चौदह हजार राक्षसोंको युद्धमें मारा ॥३०॥ ॥ ३१ ॥ आत्मविश्वासी रामचन्द्रका यह अद्भुत कर्म है, इनका अद्भुत पराक्रम है, विष्णुके समान इनकी दृढ़ता दीख पड़ती है ॥ ३२ ॥ ऐसा कहकर देवता अपने स्थानको गये, तब राजर्षि और ब्रह्मर्षि एकत्र होकर आये ॥ ३३ ॥ रामचन्द्रकी पूजा करके अगस्त्य आदि मुनि प्रसन्नता पूर्वक इस प्रकार बोले—महातेजस्वी पाकशासन इन्द्र इसीलिए शरभंगके पवित्र आश्रममें आये थे और इन्हीं पापी राक्षसोंके वधके लिए महर्षि तुमको उपाय करके यहां ले आये हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एषां वधार्थं शत्रूणां रक्षसां पापकर्मणाम् । तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया दशरथात्मज ॥३६॥
स्वधर्मं प्रचरिष्यन्ति दण्डकेषु महर्षयः । एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणः सह सीतया ॥३७॥
गिरिदुर्गाद्विनिष्क्रम्य संविवेशाश्रमे सुखी । ततो रामस्तु विजयी पूज्यमानो महर्षिभिः ॥३८॥
प्रविवेशाश्रमं वीरो लक्ष्मणेनाभिपूजितः । तं दृष्ट्वा शत्रुहन्तारं महर्षीणां सुखावहम् ॥३९॥
बभूव हृष्टा वैदेही भर्तारं परिषस्वजे । मुदा परमया युक्ता दृष्ट्वा रक्षोगणान्हतान् ।
रामं चैवाव्ययं दृष्ट्वा तुतोष जनकात्मजा ॥४०॥
ततस्तु तं राक्षससङ्घमर्दनं संपूज्यमानं मुदितैर्महात्मभिः ।
पुनः परिष्वज्य मुदान्विताननां बभूव हृष्टा जनकात्मजा तदा ॥४१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ३१

त्वरमाणस्ततो गत्वा जनस्थानादकम्पनः । प्रविश्य लङ्कां वेगेन रावणं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
जनस्थानस्थिता राजन्राक्षसा बहवो हताः । खरश्च निहतः संख्ये कथंचिदहमागतः ॥ २ ॥
एवमुक्तो दशग्रीवः क्रुद्धः संरक्तलोचनः । अकम्पनमुवाचेदं निर्दहन्निव तेजसा ॥ ३ ॥
तेन भीमं जनस्थानं हतं मम परासुना । को हि सर्वेषु लोकेषु गतिं नाधिगमिष्यति ॥ ४ ॥

दसरथतनय, तुमने हम लोगोंका वह काम किया ॥ ३४, ३५, ३६ ॥ अब महर्षिगण दण्डकारण्यमें धर्मानुष्ठान करेंगे । इसी समय पर्वतकी कन्दरासे निकलकर लक्ष्मण और सीताने सुखपूर्वक आश्रममें प्रवेश किया । तदनन्तर, विजयी और महर्षियोंके द्वारा पूजित रामचन्द्रने आश्रममें प्रवेश किया । शत्रुओंको मारनेवाले और महर्षियोंको सुख देनेवाले रामचन्द्रकी लक्ष्मणने पूजा की ॥ ३७, ३८, ३९ ॥ राक्षस मारे गये, यह देखकर बड़ी प्रसन्नतासे सीताने अपने पतिका आलिंगन किया और रामको अक्षत देखकर सीता प्रसन्न हुई ॥ ४० ॥ राक्षसोंके समूहको नष्ट करनेवाले प्रसन्न महात्माओंके द्वारा पूजित पतिका, जानकीने प्रसन्नतापूर्वक आलिंगन किया और वे अत्यन्त प्रसन्न हुई ॥ ४१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३०॥

तदनन्तर अकम्पन नामका राक्षस शीघ्रताके साथ जनस्थानसे चला, वेगसे लंकामें जाकर रावणसे वह इस प्रकार बोला, ॥ १ ॥ राजन्, जनस्थानमें रहनेवाले बहुतसे राक्षस मारे गये । युद्धमें खर भी मारा गया, मैं यहां किसी तरह आया हूँ ॥ २ ॥ ऐसा कहनेपर क्रोधसे आंखें लालकर रावण अकम्पनसे बोला । मानो अपने तेजसे वह जलाना चाहता हो ॥ ३ ॥ किस मरनेकी इच्छा रखनेवालेने मेरे भयानक जनस्थानका नाश किया है, कौन इस समस्तलोकमें रहना नहीं चाहता । मेरा विरोध करके इन्द्र, कुबेर, यम और विष्णु भी सुखपूर्वक नहीं रह-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न हि मे विप्रियं कृत्वा शक्यं मघवता सुखम् । प्राप्तुं वैश्रवणेनापि न यमेन च विष्णुना ॥ ५ ॥
कालस्य चाप्यहं कालो दहेयमपि पावकम् । मृत्युं मरणधर्मेण संयोजयितुमुत्सहे ॥ ६ ॥
वातस्य तरसा वेगं निहन्तुमपि चोत्सहे । दहेयमपि संक्रुद्धस्तेजसादित्यपावकौ ॥ ७ ॥
तथा क्रुद्धं दशग्रीवं कृताञ्जलिरकम्पनः । भयात्संदिग्धया वाचा रावणं याचतेऽभयम् ॥ ८ ॥
दशग्रीवोऽभयं तस्मै प्रददौ रक्षसां वरः । स विस्रब्धोऽब्रवीद्वाक्यमसंदिग्धमकम्पनः ॥ ९ ॥
पुत्रो दशरथस्यास्ते सिंहसंहननो युवा । रामो नाम महास्कन्धो वृत्तायतमहाभुजः ॥१०॥
श्यामः पृथुयशाः श्रीमानतुल्यबलविक्रमः । हतस्तेन जनस्थाने खरश्च सहदूषणः ॥११॥
अकम्पनवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः । नागेन्द्र इव निःश्वस्य इदं वचनमब्रवीत ॥१२॥
स सुरेन्द्रेण संयुक्तो रामः सर्वामरैः सह । उपायातो जनस्थानं ब्रूहि काचिदकम्पन ॥१३॥
रावणस्य पुनर्वाक्यं निशम्य तदकम्पनः । आचचक्षे बलं तस्य विक्रमं च महात्मनः ॥१४॥
रामो नाम महातेजाः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् । दिव्यास्त्रगुणसंपन्नः परं धर्मं गतो युधि ॥१५॥
तस्यानुरूपो बलवान्रक्ताक्षो दुन्दुभिस्वनः । कनीयाँल्लक्ष्मणो भ्राता राकाशशिनिभाननः ॥१६॥
स तेन सह संयुक्तः पावकेनानिलो यथा । श्रीमान्राजवरस्तेन जनस्थानं निपातितम् ॥१७॥
नैव देवा महात्मानो नात्र कार्या विचारणा । शरा रामेण तूत्सृष्टा रुक्मपुङ्खाः पतत्रिणः ॥१८॥
सर्पाः पञ्चानना भूत्वा भक्षयन्ति स्म राक्षसान् । येन येन च गच्छन्ति राक्षसा भयकर्षिताः॥१९॥

सकते ॥ ४-५ ॥ मैं कालका काल हूँ, आगको भी जला सकता हूँ, मैं उत्साह रखता हूँ कि मृत्युको भी मार डालूँ ॥ ६ ॥ वायुका वेग अपने वेगसे बलपूर्वक रोक सकता हूँ, क्रोध करके मैं सूर्य और अग्निको भी जला सकता हूँ ॥ ७ ॥ इस प्रकार दसग्रीवको क्रुद्ध देखकर हाथ जोड़कर और भयके कारण सन्देहयुक्त वचनसे, रावणसे, अकम्पनने अभय माँगा ॥ ८ ॥ राक्षस-श्रेष्ठ रावणने उसे अभय दिया, तब अकम्पन विश्वस्त होकर, सन्देहरहित वचन बोला ॥ ९ ॥ राजा दसरथके पुत्र युवा रामचन्द्र हैं, सिंहके समान उनके शरीरका गठन है, लम्बे कन्धे हैं, गोल और लम्बी भुजाएँ हैं ॥ १० ॥ वे श्याम वर्णके हैं, बड़े यशस्वी है, सुन्दर हैं, और अतुलनीय पराक्रमी हैं, उन्होंनेही जनस्थानमें खरके साथ दूषणको मारा है ॥ ११ ॥ अकम्पनके वचन सुनकर राक्षसाधिप रावण गजराजके समान सांस छोड़ताहुआ इस प्रकार बोला ॥१२॥ अकम्पन, कहो, क्या सब देवताओं और इन्द्रके साथ रामचन्द्र जनस्थानमें आया है ॥ १३ ॥ रावणके वचन सुनकर अकम्पनने पुनः महात्मा रामचन्द्रके बल और विक्रमका वर्णन किया ॥ १४ ॥ राम बड़े तेजस्वी और सब धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ हैं, उन्हें देवताओंके अस्त्रोंका अच्छा ज्ञान है, वे युद्धमें बड़े परक्रमी हैं ॥ १५ ॥ उन्हींके समान बलवान उनका छोटा भाई लक्ष्मण है, पूर्णचन्द्र-माके समान उसका सुन्दर मुख है, उसकी आंखें लाल हैं, और नगाड़ेके समान उसका शब्द है ॥ १६ ॥ उसी अपने भाईके साथ रामचन्द्र हैं, मानों अग्नि वायुके साथ हो, उसी राजश्रेष्ठ रामचन्द्रने जनस्थानका नाश किया है ॥१७॥ कोई देवता या महात्मा न था, इसका विचार आप न करें, रामचन्द्रने सोना जड़े हुए और पाँखवाले बाण छोड़े थे ॥ १८ ॥ वे ही बाण पांचमुख

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तेन तेन स्म पश्यन्ति राममेवाग्रतः स्थितम् । इत्थं विनाशितं तेन जनस्थानं तवानघ ॥२०॥
अकम्पनवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् । गमिष्यामि जनस्थानं रामं हन्तुं सलक्ष्मणम्॥२१॥
अथैवमुक्ते वचने सोवाचेदमकम्पनः । शृणु राजन्यथावृत्तं रामस्य बलपौरुषम् ॥२२॥
असाध्यः कुपितो रामो विक्रमेण महायशाः । आपगायास्तु पूर्णाया वेगं परिहरेच्छरैः ॥२३॥
सताराग्रहनक्षत्रं नभश्चाप्यवसादयेत् । असौ रामस्तु सीदन्तीं श्रीमानभ्युद्धरेन्महीम्॥२४॥
भित्त्वा वेलां समुद्रस्य लोकानाप्लावयेद्विभुः । वेगं वापि समुद्रस्य वायुं वा विधमेच्छरैः ॥२५॥
संहृत्य वा पुनर्लोकान्विक्रमेण महायशाः । शक्तः श्रेष्ठः स पुरुषः स्रष्टुं पुनरपि प्रजाः ॥२६॥
नहि रामो दशग्रीव शक्यो जेतुं रणे त्वया । रक्षसां वापि लोकेन स्वर्गः पापजनैरिव ॥२७॥
न तं वध्यमहं मन्ये सर्वैर्देवासुरैरपि । अयं तस्य वधोपायस्तन्ममैकमनाः शृणु ॥२८॥
भार्या तस्योत्तमा लोके सीता नाम सुमध्यमा । श्यामा समविभक्ताङ्गी स्त्रीरत्नं रत्नभूषिता ॥२९॥
नैव देवी न गन्धर्वी नाप्सरा न च पन्नगी । तुल्या सीमन्तिनी तस्य मानुषी तु कुतो भवेत्॥३०॥
तस्यापहर भार्यां त्वं तं प्रमथ्य महावने । सीतया रहितो रामो न चैव हि भविष्यति ॥३१॥
अरोचयत तद्वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः । चिन्तयित्वा महाबाहुरकम्पनमुवाच ह ॥३२॥

वाले सर्प होकर राक्षसोंको खागये । डरे हुए राक्षस जिस मार्गसे जाते थे, उधरही अपने आगे रामचन्द्रको स्थित देखते थे । इस प्रकार हे निष्पाप, रामचन्द्रने आपके जनस्थानका विनाश किया ॥ १९ ॥२०॥ अकम्पनकी बात सुनकर रावण बोला—मैं लक्ष्मण और रामको मारनेके लिए जनस्थान जाऊंगा ॥ २१ ॥ [illegible] ऐसा कहनेपर अकम्पन बोला—राजन्, रामचन्द्रका बल और पराक्रम जैसा है वह यथार्थ [illegible] सुनें ॥ २२ ॥ महायशस्वी रामचन्द्र यदि कुपित होकर रणक्षेत्रमें आवें तो पराक्रमके द्वारा उन्हे कोई रोक नहीं सकता । रामचन्द्र भरी नदीका वेग अपने बाणोंसे रोक सकते हैं, या अपनी इच्छाके अनुसार उसे चला सकते हैं ॥ २३ ॥ तारा, ग्रह और नक्षत्रोंके साथ आकाशको भी नष्ट कर सकते हैं, वे रामचन्द्र दुखमें पड़ी हुई समस्त पृथिवी-का उद्धार कर सकते हैं, समुद्रका तीर काटकर समस्त संसारको डुबा सकते हैं, समुद्र और वायुके वेगको अपने शरोंसे रोक सकते हैं ॥ २५ ॥ महायशस्वी रामचन्द्र अपने पराक्रम-से समस्त लोकोंका संहार करसकते हैं, और पुनः वे समस्त संसारकी सृष्टि कर सकते हैं ॥२६॥ रावण, रामचन्द्रको तुम युद्धमें नहीं जीत सकते, समस्त राक्षसोंके साथ भी तुम उन्हें नहीं जीत सकते, जिस प्रकार पापी स्वर्गको नहीं जीत सकता ॥ २७ ॥ समस्त देवता और असुर भी मिलकर उनको नहीं मार सकते । उनके मारनेका मैं दूसरा उपाय बतलाता हूँ, सावधान होकर सुनो ॥ २८ ॥ उनकी स्त्री सीता बड़ी सुन्दरी और युवती है, उसके अंग प्रत्यंग बड़े सुन्दर हैं । वह रत्नोंसे विभूषित स्त्रियोंमें एक रत्न हैं ॥ २९ ॥ देवी, गन्धर्वी, अप्सरा, पन्नगी कोई भी स्त्री सीताके समान नहीं है, फिर मानुषी सीताके समान कैसे होसकती है ॥ ३० ॥ उस घोर वनमें रामचन्द्रको धोखा देकर तुम उनकी स्त्रीको हर लाओ, सीताके विना रामचन्द्र जी नहीं सकते ॥ ३१ ॥ राक्षसाधिपति रावणने अकम्पनकी बातें पसन्द कीं । महाबाहु रावण सोचकर अकम्पन-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बाढं कल्यं गमिष्यामि एकः सारथिना सह । आनेष्यामि च वैदेहीमिमां हृष्टो महापुरीम् ॥३३॥
तदेवमुक्त्वा प्रययौ खरयुक्तेन रावणः । रथेनादित्यवर्णेन दिशः सर्वाः प्रकाशयन् ॥३४॥
स रथो राक्षसेन्द्रस्य नक्षत्रपथगो महान् । चञ्चूर्यमाणः शुशुभे जलदे चन्द्रमा इव ॥३५॥
स दूरे चाश्रमं गत्वा ताटकेयमुपागमत् । मारीचेनार्चितो राजा भक्ष्यभोज्यैरमानुषैः ॥३६॥
तं स्वयं पूजयित्वा तु आसनेनोदकेन च । अर्थोपहितया वाचो मारीचो वाक्यमब्रवीत् ॥३७॥
कच्चित्सुकुशलं राजँल्लोकानां राक्षसाधिप । आशङ्के नाधिजाने त्वं यतस्त्वर्णमुपागतः ॥३८॥
एवमुक्तो महातेजा मारीचेन स रावणः । ततः पश्चादिदं वाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥३९॥
आरक्षो मे हतस्तात रामेणाक्लिष्टकारिणा । जनस्थानमवध्यं तत्सर्वं युधि निपातितम् ॥४०॥
तस्य मे कुरु साचिव्यं तस्य भार्यापहारणे । राक्षसेन्द्रवचः श्रुत्वा मारीचो वाक्यमब्रवीत्॥४१॥
आख्याता केन वा सीता मित्ररूपेण शत्रुणा । त्वया राक्षसशार्दूल को न नन्दति नन्दितः॥४२॥
सीतामिहानयस्वेति को ब्रवीतिं ब्रवीहि मे । रक्षोलोकस्य सर्वस्य कः शृङ्गं छेत्तुमिच्छति॥४३॥
प्रोत्साहयति यश्च त्वां स च शत्रुरसंशयम् । आशीविषमुखादंष्ट्रामुद्धर्तुं चेच्छति त्वया ॥४४॥
कर्मणानेन केनासि कापथं प्रतिपादितः । सुखसुप्तस्य ते राजन्प्रहृतं केन मूर्धनि ॥४५॥

से बोला ॥ ३२ ॥ ठीक है, कल सवेरे सारथिके साथ मैं अकेला जाऊंगा और प्रसन्नतापूर्वक जानकीको इस नगरीमें ले आऊँगा ॥ ३३ ॥ ऐसा कहकर रावण गदहेके रथपर चढ़कर, जो सूर्यके समान प्रकाशमान था तथा जिससे सब दिशा प्रकाशित होरही थीं, चला । स्वर्गसे भी प्रशंसा पाया हुआ वह राक्षसराजका रथ मेघमें चन्द्रमाके समान चलता हुआ शोभित हुआ ॥ ३५ ॥ वह दूर जाकर ताड़काके पुत्र मारीचके आश्रममें पहुँचा । मनुष्योंके लिए दुर्लभ भक्ष्य भोज्यके द्वारा मारीचने अपने राजाका सत्कार किया ॥ ३६ ॥ आसन और जलसे स्वयं राक्षसराजकी पूजा करके मारीच अर्थयुक्त वचन बोला ॥ ३७ ॥ राक्षसाधिप, आपके सब लोगोंकी कुशल है, इसका मुझे निश्चय नहीं है, अतएव मैं शंकित हो रहाहूँ, आप शीघ्रतापूर्वक क्यों आये हैं, इसका भी कारण मैं नहीं समझ रहा हूँ ॥ ३८ ॥ मारीचके ऐसा कहनेपर महा-तेजस्वी और बोलनेमें चतुर रावण इस प्रकार बोला ॥ ३९ ॥ कठोर कर्म न करनेवाले रामचन्द्रने मेरे अन्तपाल (सीमाकी रक्षा करनेवाला सेनापति) को मार डाला, जो जनस्थान अवध्य था, उसको रामचन्द्रने मारडाला ॥ ४० ॥ मैं उस रामचन्द्रकी स्त्रीका हरण करना चाहता हूँ, तुम मेरी सहायता करो । राक्षसराजकी बातें सुनकर मारीच बोला ॥ ४१ ॥ किसने सीताके हरनेकी बात तुमसे कही है, वह तुम्हारा मित्ररूपी शत्रु है, वह कौन है जिसको तुमने बढ़ाया है और वह तुम्हारी बढ़ती देखना नहीं चाहता ॥ ४२ ॥ सीताको यहां ले आओ, यह कौन कह रहा है, मुझे बतलाओ, कौन राक्षसोंके गौरवका नाश करना चाहता है ॥ ४३ ॥ इस काममें जो तुम्हें प्रोत्सा-हित करता है, वह तुम्हारा निश्चय शत्रु है । सांपके मुंहसे उसकी दाढ़ तुम्हारे द्वारा उखड़वाना चाहता है ॥४४॥ राजन्, किस शत्रुने तुम्हें इस कुमार्गका उपदेश दिया है, सुखसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विशुद्धवंशाभिजनाग्रहस्तस्तेजोमदः संस्थितदोर्विषाणः ।
उदीक्षितुं रावण नेह युक्तः स संयुगे राघवगन्धहस्ती ॥४६॥
असौ रणान्तःस्थितिसंधिवालो विदग्धरक्षोमृगहा नृसिंहः ।
सुप्तस्त्वया बोधयितुं न शक्यः शराङ्गपूर्णो निशितासिदंष्ट्रः ॥४७॥
चापापहारे भुजवेगपङ्के शरोर्मिमाले समहाहवौघे ।
न रामपातालमुखेऽतिघोरे प्रस्कन्दितुं राक्षसराजयुक्तम् ॥४८॥
प्रसीद लङ्केश्वर राक्षसेन्द्र लङ्कां प्रसन्नो भव साधु गच्छ ।
त्वं स्वेषु दारेषु रमस्व नित्यं रामः सभार्यो रमतां वनेषु ॥४९॥
एवमुक्तो दशग्रीवो मारीचेन स रावणः । न्यवर्तत पुरीं लङ्कां विवेश च गृहोत्तमम् ॥५०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः ॥३१॥

द्वात्रिंशः सर्गः ३२

ततः शूर्पणखा दृष्ट्वा सहस्राणि चतुर्दश । हतान्येकेन रामेण रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥ १ ॥
दूषणं च खरं चैव हतं त्रिशिरसं रणे । दृष्ट्वा पुनर्महानादान्ननाद जलदोपमा ॥ २ ॥

सोए हुए आपके मस्तकपर किसने यह आघात किया है ॥ ४५ ॥ रावण, वह रामचन्द्र गन्धहस्ती है (जिसकी गन्धसे दूसरे हाथी भाग जाते हैं), रणमें उसकी ओर देखाभी नहीं जासकता ॥ ४६ ॥ उत्तम कुलमें उत्पन्न होना इसकी सूँढ़ है, इसका प्रताप मद है और सुन्दर दो हाथ इसके दाँत हैं ॥ ४७ ॥ यह मनुष्य-सिंह सो रहा है, इसको जगाना अच्छा नहीं । (सिंहके समान रामचन्द्रके धर्म ये हैं) रणस्थलमें इसका अवस्थान करनाही सन्धि और बाल हैं, रणचतुर राक्षसरूपी मृगोंको यह मारनेवाला है । शररूपी अंगोंसे यह पूर्ण है, तीखी तलवारही इसकी दांत है ॥ ४७ ॥ रामचन्द्र एक भयानक पातालमुख है (बिना ओर छोरका खड्डा), धनुष उसके हिंसकजन्तु हैं, भुजाओंका वेग कीचड़ है, बाण तरंगे हैं, घनघोर संग्राम धारा है । उस भयानक रामरूपी पातालमुखमें गिरना अच्छा नहीं ॥ ४८ ॥ लंकेश्वर, आप प्रसन्न हों और लंकाको प्रसन्न करें, आप सुखसे लौट जायँ, आप अपनी स्त्रियोंके साथ रमण करें और रामचन्द्र अपनी स्त्रीके साथ ॥ ४९ ॥ मारीचके ऐसा कहनेपर दसग्रीव लंका लौट आया और अपने उत्तम घरमें गया ॥ ५० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका एकतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३१ ॥

भीमकर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको अकेले रामचन्द्रने मार डाला, यह शूर्पणखाने देखा ॥ १ ॥ रणमें दूषण, खर और त्रिशिराको मारे जाते देखकर मेघके समान घोर गर्जन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सा दृष्ट्वा कर्म रामस्य कृतमन्यैः सुदुष्करम् । जगाम परमोद्विग्ना लङ्कां रावणपालिताम् ॥ ३ ॥
सा ददर्श विमानाग्रे रावणं दीप्ततेजसम् । उपोपविष्टं सचिवैर्मरुद्भिरिव वासवम् ॥ ४ ॥
आसीनं सूर्यसंकाशे काञ्चने परमासने । रुक्मवेदिगतं प्राज्यं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ५ ॥
देवगन्धर्वभूतानामृषीणां च महात्मनाम् । अजेयं समरे घोरं व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ ६ ॥
देवासुरविमर्देषु वज्राशनिकृतव्रणम् । ऐरावतविषाणाग्ररुत्कृष्टकिणवक्षसम् ॥ ७ ॥
विंशद्भुजं दशग्रीवं दर्शनीयपरिच्छदम् । विशालवक्षसं वीरं राजलक्षणलक्षितम् ॥ ८ ॥
नद्धवैदूर्यसंकाशं तप्तकाञ्चनभूषणम् । सुभुजं शुक्लदशनं महास्यं पर्वतोपमम् ॥ ९ ॥
विष्णुचक्रनिपातैश्च शतशो देवसंयुगे । अन्यैः शस्त्रैः प्रहारैश्च महायुद्धेषु ताडितम् ॥१०॥
अहताङ्गैः समस्तैस्तं देवप्रहरणैस्तदा । अक्षोभ्याणां समुद्राणां क्षोभणं क्षिप्रकारिणम्॥११॥
क्षेप्तारं पर्वताग्राणां सुराणां च प्रमर्दनम् । उच्छेत्तारं च धर्माणां परदाराभिदर्शनम् ॥१२॥
सर्वदिव्यास्त्रयोक्तारं यज्ञविघ्नकरं सदा । पुरीं भोगवतीं गत्वा पराजित्य च वासुकिम् ॥१३॥
तक्षकस्य प्रियां भार्यां पराजित्य जहार यः । कैलासं पर्वतं गत्वा विजित्य नरवाहनम् ॥१४॥

करनेवाली शूर्पणखा, शोकसूचक गर्जन करने लगी ॥ २ ॥ दूसरोंके द्वारा न होसकने योग्य रामचन्द्रका यह अद्भुत कर्म देखकर शूर्पणखा बहुत ही उद्विग्न हुई और रावणके द्वारा पालित लंकामें गयी ॥ ३ ॥ उसने अतितेजस्वी रावणको मन्त्रियोंके साथ सतमहलेपर बैठे देखा, जैसे इन्द्र देवताओंके साथ बैठे हों ॥ ४ ॥ सूर्यके समान प्रकाशमान, सुवर्णके उत्तम आसनपर वह बैठा था। सोनेकी वेदीपर जलते हुए अग्निराशिके समान वह मालूम होता था ॥ ५ ॥ देवता, गन्धर्व, अन्यप्राणी तथा महात्मा ऋषियोंके द्वारा रणमें वह अजेय था, वह मुंह फैलाये यमराजके समान भयानक था ॥ ६ ॥ देवासुर संग्राममें वज्रके लगनेसे जिसके शरीरमें चिन्ह होगया है, ऐरावतके दांतोंके आघातका चिन्ह जिसकी छातीमें आजतक वर्तमान है ॥७॥ उसको बीस भुजाएँ हैं और दसमस्तक, उत्तम वस्त्र पहने हुए है, चौड़ी छाती है और राजाके चिन्होंसे युक्त है ॥८॥ वैदूर्यके समान उसका शरीर है, सोनेके गहने धारण किये हुए है, सुन्दर भुजाएँ हैं, सफेद दांत हैं, विशाल मुख है और पर्वतके समान ऊँचा है ॥९॥ विष्णुके साथ युद्धमें तथा दूसरे बड़े युद्धोंमें विष्णुके चक्रके सैकड़ों घाव तथा अन्य शस्त्रोंके प्रहारसे वह ताड़ित हुआ है ॥ १० ॥ वह देवताओंके समस्त अस्त्र-शस्त्रोंसे ताड़ित हुआ है । विकृत न होनेवाले समुद्रोंको भी वह विकृत करदेनेवाला है। तथा कार्योंको बड़ी शीघ्रतापूर्वक सम्पादित करता है ॥ ११ ॥ पर्वतोंको तोड़नेवाला, देवताओंको नष्ट करनेवाला, धर्मको विनाश करने वाला तथा परस्त्रियोंसे बलात्कार करनेवाला है ॥१२॥ वह समस्त दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग जानता है तथा यज्ञमें सदा विघ्न करता है। एक बार भोगवती नगरीमें जाकर वासुकिको परास्त कर ॥ १३ ॥ तक्षककी प्रिय स्त्रीको वह हर ले आया। कैलाश पर्वतपर जाकर कुबेरको जीत लिया और स्वेच्छानुसार चलनेवाला उनका पुष्पक विमान हर ले आया। कुबेरका चैत्ररथ नामक वन नलिनी नामकी उनकी दिव्य नगरी,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विमानं पुष्पकं तस्य कामगं वै जहार यः । वनं चत्ररथं दिव्यं नलिनीं नन्दनं वनम् ॥१५॥
विनाशयति यः क्रोधादेवोद्यानानि वीर्यवान् । चन्द्रसूर्यौ महाभागावुत्तिष्ठन्तौ परंतपौ ॥१६॥
निवारयति बाहुभ्यां यः शैलशिखरोपमः । दशवर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने ॥१७॥
पुरा स्वयंभुवे धीरः शिरांस्युपजहार यः । देवदानवगन्धर्वपिशाचपतगोरगैः ॥१८॥
अभयं यस्य सङ्ग्रामे मृत्युतो मानुषादृते । मन्त्रैरभिष्टुतं पुण्यमध्वरेषु द्विजातिभिः ॥१९॥
हविर्धानेषु यः सोममुपहन्ति महाबलः । प्राप्तयज्ञहरं दुष्टं ब्रह्मघ्नं क्रूरकारिणम् ॥२०॥
कर्कशं निरनुक्रोशं प्रजानामहिते रतम् । रावणं सर्वभूतानां सर्वलोकभयावहम् ॥२१॥
राक्षसी भ्रातरं क्रूरं सा ददर्श महाबलम् । तं दिव्यवस्त्राभरणं दिव्यमाल्योपशोभितम्॥२२॥
आसने सूपविष्टं तं काले कालमिवोद्यतम् । राक्षसेन्द्रं महाभागं पौलस्त्यकुलनन्दनम् ॥२३॥
उपगम्याब्रवीद्वाक्यं राक्षसी भयविह्वला । रावणं शत्रुहन्तारं मन्त्रिभिः परिवारितम् ॥२४॥

तमब्रवीद्दीप्तविशाललोचनं प्रदर्शयित्वा भयलोभमोहिता ।
सुदारुणं वाक्यमभीतचारिणी महात्मना शूर्पणखा विरूपिता ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः ॥३२॥

इन्द्रका नन्दनवन जो पराक्रमी क्रोध करके नष्ट करदेता है, उदय होते हुए शत्रुतापी चन्द्रमा और सूर्यको पर्वतशृङ्गके समान जो रावण अपने हाथोंसे रोक देता है, जिस धीर रावणने दसहजार वर्षोंतक तपस्या करके अपने सिर शिवको चढ़ाए, देवता, दानव, गंधर्व, पिशाच, पक्षी और सर्प इन सबसे, केवल मनुष्य छोड़कर, संग्राममें मृत्यु न होनेका जिसको अभयदान मिल चुका है, यज्ञोंमें द्विजातियोंके द्वारा जिसकी स्तुति मंत्रोंसे होती है, ॥ १४, १५, १६, १७, १८, १९ ॥ जो महाबली सोम तयार करनेके स्थानमें जाकर सोम नष्ट कर देता है, जो समाप्तप्राय यज्ञमें विघ्न डालता है, जो ब्राह्मणोंको मारता है, जो क्रूर कर्म करनेवाला है, जो कठोर है, दयारहित है, प्राणियोंका सदा अकल्याण किया करता है, सब प्राणियोंको भय देनेवाला तथा रोआनेवाला है, उस क्रूर महाबली भाईको राक्षसीने देखा। वह दिव्य वस्त्र-आभूषण पहिने हुए था तथा दिव्य मालासे सुशोभित था ॥ २०, २१, २२ ॥ आसनपर बैठे हुए पौलस्त्यकुलनन्दन राक्षसराजको शूर्पणखाने देखा, जो प्रलयकालमें प्रदीप्त यमराजके समान मालूम होता था ॥ २३ ॥ भयसे घबड़ायी हुई राक्षसी शूर्पणखा शत्रुओंको मारनेवाले और मन्त्रियोंसे युक्त रावणके समीप जाकर बोली ॥ २६ ॥ निडर होकर चारो ओर घूमनेवाली, भय और लोभसे मोहित, रामचन्द्रके द्वारा विरूप की गयी शूर्पणखा अपनेको दिखाकर रावणसे कठोर वचन बोली, जिस रावणकी विशाल आंखें प्रदीप्त होरही थीं ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३२ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ३३

ततः शूर्पणखा दीप्ता रावणं लोकरावणम् । अमात्यमध्ये संक्रुद्धा परुषं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
प्रमत्तः कामभोगेषु स्वैरवृत्तो निरङ्कुशः । समुत्पन्नं भयं घोरं बोद्धव्यं नावबुध्यसे ॥ २ ॥
सक्तं ग्राम्येषु भोगेषु कामवृत्तं महीपतिम् । लुब्धं न बहु मन्यन्ते श्मशानाग्निमिव प्रजाः ॥ ३ ॥
स्वयं कार्याणि यः काले नानुतिष्ठति पार्थिवः । स तु वै सह राज्येन तैश्च कार्यैर्विनश्यति ॥ ४ ॥
अयुक्तचारं दुर्दर्शमस्वाधीनं नराधिपम् । वर्जयन्ति नरा दूरान्नदीपङ्कमिव द्विपाः ॥ ५ ॥
ये न रक्षन्ति विषयमस्वाधीनं नराधिपाः । ते न वृद्ध्या प्रकाशन्ते गिरयः सागरे यथा ॥ ६ ॥
आत्मवद्भिर्विगृह्य त्वं देवगन्धर्वदानवैः । अयुक्तचारश्चपलः कथं राजा भविष्यसि ॥ ७ ॥
त्वं तु बालस्वभावश्च बुद्धिहीनश्च राक्षस । ज्ञातव्यं तन्न जानीषे कथं राजा भविष्यसि ॥ ८ ॥
येषां चाराश्च कोशश्च नयश्च जयतां वर । अस्वाधीना नरेन्द्राणां प्राकृतैस्ते जनैः समाः ॥ ९ ॥
यस्मात्पश्यन्ति दूरस्थान्सर्वानर्थान्नराधिपाः । चारेण तस्मादुच्यन्ते राजानो दीर्घचक्षुषः ॥१०॥
अयुक्तचारं मन्ये त्वां प्रकृतैः सचिवैर्युतः । स्वजनं च यतः स्थानं निहतं नावबुध्यसे ॥११॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् । हतान्येकेन रामेण खरश्च सहदूषणः ॥१२॥

क्रोधसे भरी हुई शूर्पणखा लोकको पीड़ित करनेवाले रावणसे अमात्योंके बीचमें यह कठोर वचन बोली ॥१॥ स्वाधीन होकर, बिना रोक-टोकके कामभोगमें तुम मस्त हो रहे हो और राक्षसोंके लिए कैसा कठोर भय उपस्थित हुआ है, यह नहीं जानते हो ॥२॥ जो राजा स्त्री आदिमें आसक्त होकर कामपरवश हो जाता है, लोभी हो जाता है, प्रजा उस राजाका आदर नहीं करती, जिस प्रकार श्मशानकी अग्निका ॥३॥ जो राजा समयपर कार्योंको स्वयं नहीं करता, वह राजा उन कार्यों तथा अपने राज्यके साथ नष्ट हो जाता है॥४॥ जिस राजाके गुप्त दूत नहीं होते, जो राजा उचित समयपर प्रजासे मिलता नहीं और जो स्त्रियोंके अधीन है, वैसे राजाका त्याग प्रजा दूरहीसे करती है, जिस प्रकार हाथी नदीके पंकका ॥५॥ जो राजा अपने अधीन देशोंकी रक्षा नहीं करता, उस राजाकी वृद्धि नहीं होती, जिस प्रकार समुद्रमें पर्वतोंकी वृद्धि नहीं होती ॥ ६ ॥ अपनी इन्द्रियोंपर अधिकार रखने वाले, देवता गन्धर्व और दानवोंसे तुमने विरोध किया है और तुम्हारा कोई गुप्त दूत नहीं है, तुम स्त्रियोंमें आसक्त, इस प्रकारके चंचल तुम कैसे राजा हो सकोगे ॥७॥ तुम्हारी बुद्धि नहीं है, तुम्हारा स्वभाव बालकोसा है, जो बात तुम्हें जाननी चाहिए वह तुम नहीं जानते, फिर तुम राजा कैसे हो सकोगे ॥ ८ ॥ श्रेष्ठ विजयी रावण, जिन राजाओंके गुप्त दूत, खजाना और नीति उसके अधीन नहीं रहते, वे साधारण मनुष्यके समान हो जाते हैं॥९॥ चारोंके द्वारा राजालोग दूरकी सब बातोंको जान लिया करते हैं, इसी कारण वे दीर्घचक्षु कहे जाते हैं ॥ १० ॥ तुम्हारे मन्त्री भी मूर्ख ही हैं, अतएव तुमने गुप्तदूत नहीं नियुक्त किये हैं, अतएव मारे गये अपने बन्धुओं तथा जनस्थानकी तुम्हें कुछ भी खबर नहीं है ॥ ११ ॥ भीमकर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ऋषीणामभयं दत्तं कृतक्षेमाश्च दण्डकाः । धर्षितं च जनस्थानं रामेणाक्लिष्टकारिणा ॥१३॥
त्वं तु लुब्धः प्रमत्तश्च पराधीनश्च राक्षस । विषये स्वे समुत्पन्नं यद्भयं नावबुध्यसे ॥१४॥
तीक्ष्णमल्पप्रदातारं प्रमत्तं गर्वितं शठम् । व्यसने सर्वभूतानि नाभिधावन्ति पार्थिवम् ॥१५॥
अतिमानिनमग्राह्यमात्मसंभावितं नरम् । क्रोधनं व्यसने हन्ति स्वजनोऽपि नराधिपम् ॥१६॥
नानुतिष्ठति कार्याणि भयेषु न बिभेति च । क्षिप्रं राज्याच्च्युतोदीनस्तृणैस्तुल्यो भवेदह ॥१७॥
शुष्ककाष्ठैर्भवेत्कार्यं लोष्ठैरपि च पांसुभिः । न तु स्थानात्परिभ्रष्टैः कार्यं स्याद्रसुधाधिपैः ॥१८॥
उपभुक्तं यथा वासः स्रजो वा मृदिता यथा । एवं राज्यात्परिभ्रष्टः समर्थोऽपि निरर्थकः ॥१९॥
अप्रमत्तश्च यो राजा सर्वज्ञो विजितेन्द्रियः । कृतज्ञो धर्मशीलश्च स राजा तिष्ठते चिरम् ॥२०॥
नयनाभ्यां प्रसुप्तो वा जागर्ति नयचक्षुषा । व्यक्तक्रोधप्रसादश्च स राजा पूज्यते जनैः ॥२१॥
त्वं तु रावण दुर्बुद्धिर्गुणैरेतैर्विवर्जितः । यस्य तेऽविदितश्चारैः राक्षसां सुमहान्वधः ॥२२॥

परावमन्ता विषयेषु सङ्घवान्न देशकालप्रविभागतत्त्ववित् ।
अयुक्तबुद्धिर्गुणदोषनिश्चये विपन्नराज्यो नचिराद्विपत्स्यते ॥२३॥

और दूषणके साथ खरको एक रामचन्द्रने मार डाला ॥ १२ ॥ ऋषियोंको अभयदान दिया, दण्डकारण्यको कुशली बना दिया । पुण्यात्मा रामने इस प्रकार जनस्थानको नष्ट किया ॥ १३ ॥ पर तुम लोभी हो, स्त्रियोंमें आसक्त हो, विषयभोगके अधीन हो, अतएव तुम्हारे राज्यमें जो भय हुआ है, उसकी तुम्हें खबर नहीं हैं ॥ १४ ॥ जो राजा अपने अमात्योंके विषयमें कठोर होता है, उन्हें बहुत थोड़ा देता है, सदा असावधान रहता है, अहंकारी होता है और छिपकर बुराइयाँ करता है, उस राजाके दुखमें उसकी प्रजा साथ नहीं देती ॥ १५ ॥ जो राजा बहुत ही अहंकारी होता है, किसीकी बात नहीं सुनता, अपनेको सबसे ऊँचा समझता है तथा क्रोधी होता है, वैसे राजाको विपत्तिके समय अपने ही आदमी मार डालते हैं ॥ १६ ॥ जो राजा अपने कर्तव्योंको नहीं करता, भयसे नहीं डरता, वह शीघ्रही राज्यच्युत होकर तृणके समान दीन हो जाता है ॥ १७ ॥ सूखी लकड़ीसे, मिट्टीके ढोकोंसे तथा धूलसे भी लोगोंकी कार्यसिद्धि होती है, पर राज्यभ्रष्ट राजासे कुछ भी नहीं होता ॥ १८ ॥ जिस प्रकार पहना हुआ कपड़ा उपभोग की हुई माला, निरर्थक है, उसी प्रकार राज्यभ्रष्ट राजा भी, समर्थ होकर भी, निरर्थक हो जाता है ॥ १९ ॥ जो राजा सदा सावधान रहता है । अपने राज्यकी पूरी खबर रखता है, जिसका अपनी इंद्रियोंपर अधिकार रहता है, वह कृतज्ञ धर्मात्मा राजा बहुत दिनोंतक राज करता है ॥ २० ॥ जो इन आँखोंसे सोता भी हो पर नीतिकी आँखोंसे जागता रहे, जिसके क्रोध और प्रसन्नताका फल प्रकट हो, लोकमें उस राजाकी पूजा होती है ॥ २१ ॥ रावण, तुम तो बुद्धिहीन हो, तुममें ये गुण नहीं है, राक्षसोंका ये बहुत बड़ा वध तुम्हारे चारोंने अभी तुम्हें नहीं बतलाया ॥ २२ ॥ दूसरोंका अपमान करनेवाले, विषयोंमें आसक्त, देश और कालका विभाग न रखनेवाले, गुण-दोषके निश्चयमें बुद्धिका उपयोग न करनेवाले तुम शीघ्रही विपत्ति उठाओगे और राज्यको भी विपत्तिग्रस्त करोगे ॥ २३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति स्वदोषान्परिकीर्तितांस्तया समीक्ष्य बुद्ध्या क्षणदाचरेश्वरः ।
धनेन दर्पेण बलेनचान्वितो विचित्रयामास चिरं स रावणः ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥३३॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ३४

ततः शूर्पणखां दृष्ट्वा ब्रुवतीं परुषं वचः । अमात्यमध्ये संक्रुद्धः परिपप्रच्छ रावणः ॥ १ ॥
कश्च रामः कथंवीर्यः किंरूपः किंपराक्रमः । किमर्थं दण्डकारण्यं प्रविष्टश्च सुदुस्तरम् ॥ २ ॥
आयुधं किं च रामस्य येन ते राक्षसा हताः । खरश्च निहतः संख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥ ३ ॥
तत्त्वं ब्रूहि मनोज्ञाङ्गि केन त्वं च विरूपिता । इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता ॥ ४ ॥
ततो रामं यथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे । दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः ॥ ५ ॥
कंदर्पसमरूपश्च रामो दशरथात्मजः । चक्रचापनिभं चापं विकृष्य कनकाङ्गदम् ॥ ६ ॥
दीप्तान्क्षिपति नाराचान्सर्पानिव महाविषान् । नाददानं शरान्घोरान्विमुञ्चन्तं महाबलम् ॥ ७ ॥
न कार्मुकं विकर्षन्तं रामं पश्यामि संयुगे । हन्यमानं तु तत्सैन्यं पश्यामि शरवृष्टिभिः ॥ ८ ॥
इन्द्रेणेवोत्तमं सस्यमाहतं त्वश्मवृष्टिभिः । रक्षसां भीमवीर्याणां सहस्राणि चतुर्दश ॥ ९ ॥
निहतानि शरैस्तीक्ष्णैस्तेनैकेन पदातिना । अर्धाधिकमुहूर्तेन खरश्च सहदूषणः ।
ऋषीणामभयं दत्तं कृतक्षेमाश्च दण्डकाः ॥१०॥

राक्षसोंके राजा रावणने शूर्पणखाके बतलाये अपने दोषोंका बुद्धिसे विचार किया । धन, दर्प, और बलसे युक्त रावण बहुत देरतक सोचता रहा ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका तेंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३३ ॥

अमात्योंके बीचमें शूर्पणखाको इसप्रकार कठोर वचन कहती देखकर रावणने क्रोधसे पूछा ॥१॥ यह कौन राम है, कैसा है, कैसा उसका स्वरूप है, कैसा पराक्रम है, किस लिए दुर्गम दण्डकारण्य वनमें वह आया है ॥ २ ॥ उसके पास कौनसा अस्त्र है, जिससे उसने राक्षसोंको मारा । खर, दूषण, त्रिशिराको उसने युद्धमें मारा ॥ ३५ ॥ हे सुन्दरी यह सब तुम मुझसे ठीक-ठीक कहो । तुमको विरूप किसने बनाया ? राक्षसराजके यह कहनेपर राक्षसी शूर्पणखा बहुतही क्रुद्ध हुई ॥ ४ ॥ तदनन्तर, सिलसिलेसे वह रामचन्द्रका वर्णन करने लगी-रामचन्द्रकी भुजाएँ लम्बी हैं और आँखें बड़ी हैं, वे कृष्णमृगचर्म धारण करते हैं ॥ ५ ॥ दसरथपुत्र रामचन्द्र कामके समान सुन्दर हैं, सुवर्णमण्डित, चक्रके समान गोला धनुष खींचकर वे महाविषधर सर्पके समान, जलते हुए अपने बाणोंको फेंकते हैं, भयानक बाणोंको लेते समय, छोड़ते समय और धनुषको खींचते समय युद्धमें महाबली रामचन्द्रको कोई नहीं देखता, किन्तु उनकी बाणवृष्टिसे मरे सैनिकही देखे जाते हैं ॥ ६, ७, ८ ॥ जिस प्रकार इन्द्र पत्थरोंकी वृष्टि करके उत्तम खेतीको नष्ट कर देता है, उसी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एका कथंचिन्मुक्ताहं परिभूय महात्मना । स्त्रीवधं शङ्कमानेन रामेण विदितात्मना ॥११॥
भ्राता चास्य महातेजा गुणतस्तुल्यविक्रमः । अनुरक्तश्च भक्तश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥१२॥
अमर्षी दुर्जयो जेता विक्रान्तो बुद्धिमान्वली । रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्यं प्राणो बहिश्चरः ॥१३॥
रामस्य तु विशालाक्षी पूर्णेन्दुसदृशानना । धर्मपत्नी प्रिया नित्यं भर्तुः प्रियहिते रता ॥१४॥
सा सुकेशी सुनासोरूः सुरूपा च यशस्विनी । देवतेव वनस्यास्य राजते श्रीरिवापरा ॥१५॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा रक्ततुङ्गनखी शुभा । सीता नाम वरारोहा वैदेही तनुमध्यमा ॥१६॥
नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किंनरी । तथारूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले ॥१७॥
यस्य सीता भवेद्भार्या यं च हृष्टा परिष्वजेत् । अभिजीवेत्स सर्वेषु लोकेष्वपि पुरंदरात् ॥१८॥
सा सुशीला वपुः श्लाघ्या रूपेणाप्रतिमा भुवि । तवानुरूपा भर्या सा त्वं च तस्याः पतिर्वरः ॥१९॥
त्वां तु विस्तीर्णजघनां पीनोत्तुङ्गपयोधराम् । भार्यार्थे तु तवानेतुमुद्यताहं वराननाम् ॥२०॥
विरूपितास्मि क्रूरेण लक्ष्मणेन महाभुज । तां तु दृष्ट्वाद्य वैदेहीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥२१॥
मन्मथस्य शराणां च त्वं विधेयो भविष्यसि । यदि तस्यामभिप्रायो भार्यात्वे तव जायते ।
शीघ्रमुद्धियतां पादो जयार्थमिह दक्षिणः ॥२२॥
रोचते यदि ते वाक्यं ममैतद्राक्षसेश्वर । क्रियतां निर्विशङ्केन वचनं मम रावण ॥२३॥

प्रकार भीमपराक्रमी चौदह हजार राक्षसोंको पैदल अकेले रामने तीन घड़ीमें अपने तीखे बाणोंसे मार डाला । दूषणके साथ खरको भी मार डाला । ऋषियोंको अभयदान दिया और दण्डकारण्यका कल्याण किया ॥ ९, १०, ११ ॥ स्त्रीवध हो जानेके भयसे प्रसिद्ध महात्मा रामचन्द्रने मेरा अपमान करके मुझे छोड़ दिया ॥ १२ ॥ रामका भाई तेजस्वी गुणोंमें उन्हींके समान है । वह रामचन्द्रका प्रेमी और उनका भक्त है, लक्ष्मण उसका नाम है ॥ १३ ॥ क्रोधी, अजेय, जीतनेवाला, पराक्रमी, बुद्धिमान और बलवान है, रामका वह दहिना बाहु है और बाहर रहनेवाले प्राण है ॥ १४ ॥ विशालाक्षी, पूर्णचन्द्रानना रामचन्द्रकी धर्मपत्नी सीता है, वह अपने पतिके प्रिय करनेमें सदा तत्पर रहती है ॥ १५ ॥ उसके सुन्दर केश, सुन्दर नाक और उरू हैं, उसका सुन्दर रूप है, यशस्विनी सीता दूसरी लक्ष्मीके समान इस वनकी देवी मालूम होती है ॥ १६ ॥ तपाये सुवर्णके समान उसका रङ्ग है, लाल और ऊँचे उसके नख हैं, वह सुन्दरी जनकराजकी कन्या है और उसका नाम सीता है ॥ १७ ॥ देवी, गन्धर्वी, यक्षी और किन्नरी, इस प्रकारकी कोई भी स्त्री पहले मैंने पृथिवीमें नहीं देखी थी ॥ १८ ॥ सीता जिसकी स्त्री हो, वह प्रसन्न होकर जिसका आलिंगन करे, वही लोकोंमें इन्द्रसे भी बढ़कर जीवित रहे (अन्यथा जीवन निष्फल है) ॥ १९ ॥ वह सुशील है, उसके सुन्दर अंग हैं, उसके समान सुन्दरी पृथिवीमें दूसरी नहीं है, तुम्हारे योग्य वही स्त्री है और उसके योग्य तुमही पति हो ॥ २० ॥ विशालजघना (जंघा), पीनोच्चपयोधरा सीताको तुम्हारी स्त्री बनानेके लिए ले आने मैं गयी थी ॥ २१ ॥ क्रूर लक्ष्मणने मुझे विरूप कर दिया । पूर्ण चंद्रानना सीताको देखकर तुम कामदेवके बाणोंके वंशवर्ती हो जाओगे । यदि तुम्हारी इच्छा उसको स्त्री बनानेकी हो तो रामचन्द्रको जीननेके लिए शीघ्र ही दहिना पैर बढ़ाओ अर्थात्

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विज्ञायैषामशक्तिं च क्रियतां च महाबल । सीता तवानवद्याङ्गी भार्यात्वे राक्षसेश्वर ॥२४॥
निशम्य रामेण शरैरजिह्मगैर्हताञ्जनस्थानगतान्निशाचरान् ।
खरं च दृष्ट्वा निहतं च दूषणं त्वमद्य कृत्यं प्रतिपत्तुमर्हसि ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥३४॥

पञ्चत्रिंशः सर्गः ३५

ततः शूर्पणखावाक्यं तच्छ्रुत्वा रोमहर्षणम् । साचिवानभ्यनुज्ञाय कार्यं बुद्ध्वा जगाम ह ॥ १ ॥
तत्कार्यमनुगम्यान्तर्यथावदुपलभ्य च । दोषाणां च गुणानां च संप्रधार्य बलाबलम् ॥ २ ॥
इतिकर्तव्यमित्येव कृत्वा निश्चयमात्मनः । स्थिरबुद्धिस्ततो रम्यां यानशालां जगाम ह ॥ ३ ॥
यानशालां ततो गत्वा प्रच्छन्नं राक्षसाधिपः । सूतं संचोदयामास रथः संयुज्यतामिति ॥ ४ ॥
एवमुक्तः क्षणेनैव सारथिर्लघुविक्रमः । रथं संयोजयामास तस्याभिमतमुत्तमम् ॥ ५ ॥
कामगं रथमास्थाय काञ्चनं रत्नभूषितम् । पिशाचवदनैर्युक्तं खरैः कनकभूषणैः ॥ ६ ॥
मेघप्रतिमनादेन स तेन धनदानुजः । राक्षसाधिपतिः श्रीमान्ययौ नदनदीपतिम् ॥ ७ ॥
स श्वेतबालव्यजनः श्वेतच्छत्रो दशाननः । स्निग्धवैदूर्यसंकाशस्तप्तकाञ्चनभूषणः ॥ ८ ॥

युद्धके लिए प्रस्थान करो ॥ २२, २३ ॥ राक्षसेश्वर, यदि तुम्हें मेरी यह बात पसन्द हो तो निःशंक होकर मेरे कहनेके अनुसार काम करो ॥ २४ ॥ राम असमर्थ हैं, इस बातको जान करके, हे महाबल राक्षसेश्वर, सुन्दरी सीताको अपनी स्त्री बनानेका प्रयत्न करो ॥ २५ ॥ रामचन्द्रने सीधे चलनेवाले अपने बाणोंसे जनस्थानके रहनेवाले समस्त राक्षसोंको मार डाला, खर और दूषणको भी मार डाला, यह जानकर तुम अपना कर्तव्य निश्चित करो ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका चौंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३४ ॥

शूर्पणखाके वे रोंगटे खड़े कर देनेवाले वचन सुनकर, मन्त्रियोंसे सलाह लेकर तथा उन्हें आज्ञा देकर रावण चला ॥ १ ॥ रावणने सीताहरणरूपी कार्यपर अपने मनमें विचार किया, उसके गुण-दोषोंका निश्चय किया, उसके बलाबलको स्थिर किया, अन्तमें उसने निश्चय किया कि यह काम करनाही चाहिए । ऐसा निश्चय करके वह रथशालामें गया ॥ २३ ॥ धीरे-धीरे रथशालामें जाकर राक्षसाधिपति रावणने रथ जोतनेके लिए सारथिसे कहा ॥ ४ ॥ शीघ्र काम करनेवाले सारथिने रावणके ऐसा कहनेपर एकही क्षणमें, उसके मनके अनुसार उत्तम रथ जोता ॥ ५ ॥ इच्छानुसार चलनेवाले, रत्नभूषित, सोनेके रथपर रावण बैठा । उस रथमें पिशाचोंके-से मुखवाले और सुवर्णभूषण गधे जुते हुए थे ॥ ६ ॥ मेघके समान शब्द करनेवाले, उस रथपर चढ़कर कुबेरका छोटा भाई, राक्षसराज रावण समुद्रको पार करके चला ॥७॥ श्वेत चँवर और श्वेतछत्रसे रावण सुशोभित था । वह स्वयं वैदूर्य (लाल और काले रङ्गका मणि) के समान था और सुवर्ण-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दशग्रीवो विंशतिभुजो दर्शनीयपरिच्छदः । त्रिदशारिर्मुनिद्रघ्नो दशशीर्ष इवाद्रिराट् ॥ ९ ॥
कामगं रथमास्थाय शुशुभे राक्षसाधिपः । विद्युन्मण्डलवान्मेघः सबलाक इवाम्बरे ॥१०॥
सशैलसागरानूपं वीर्यवानवलोकयन् । नानापुष्पफलैर्वृक्षैरनुकीर्णं सहस्रशः ॥११॥
शीतमङ्गलतोयाभिः पद्मिनीभिः समन्ततः । विशालैराश्रमपदैर्वेदिमद्भिरलंकृतम् ॥१२॥
कदल्यटविसंशोभं नारिकेलोपशोभितम् । सालैस्तालैस्तमालैश्च तरुभिश्च सुपुष्पितैः ॥१३॥
अत्यन्तनियताहारैः शोभितं परमर्षिभिः । नागैः सुपर्णैर्गन्धर्वैः किंनरैश्च सहस्रशः ॥१४॥
जितकामैश्च सिद्धैश्च चारणैश्चोपशोभितम् । आजैर्वैखानसैर्मापैर्वालीखल्यैर्मरीचिपैः ॥१५॥
दिव्याभरणमाल्याभिर्दिव्यरूपाभिरावृतम् । क्रीडारतविधिज्ञाभिरप्सरोभिः सहस्रशः ॥१६॥
सेवितं देवपत्नीभिः श्रीमतीभिरुपासितम् । देवदानवसङ्घैश्च चरितं त्वमृताशिभिः ॥१७॥
हंसक्रौञ्चप्लवाकीर्णं सारसैः संप्रसादितम् । वैदूर्यप्रस्तरं स्निग्धं सान्द्रं सागरतेजसा ॥१८॥
पाण्डुराणि विशालानि दिव्यमाल्ययुतानि च । तूर्यगीताभिजुष्टानि विमानानि समन्ततः ॥१९॥
तपसा जितलोकानां कामगान्यभिसंपतन् । गन्धर्वाप्सरसश्चैव ददर्श धनदानुजः ॥२०॥

के भूषण पहने हुए था ॥ ८ ॥ दस मस्तक, बीस भुजाएँ, सुन्दर वस्त्र, देवताओंका शत्रु और मुनियोंका हन्ता रावण दस शिखरवाले पर्वतराजके समान मालूम होता था ॥ ९ ॥ इच्छानुसार चलनेवाले रथपर बैठकर राक्षसाधिप रावण आकाशके उस मेघके समान मालूम होता था, जिसके मण्डलमें बिजली हो और बलाका (बकपंक्ति) हो ॥ १० ॥ पराक्रमी रावण पर्वत, समुद्र, तथा समुद्र-तीरके हजारों पुष्पफलपूर्ण वृक्षोंसे भरे स्थानोंको देखता हुआ चला ॥ ११ ॥ कमलोंवाले तालाब, जिनमें ठंढा और मीठा जल था, जिनके चारो ओर बड़े-बड़े आश्रम थे, जिन आश्रमोंमें वेदियाँ थीं, ॥ १२ ॥ केलेका बन जो नारिकेलवनसे सुशोभित हो रहा था, फूले हुए ताल, तमाल और साल वृक्षोंसे जो पूर्ण थे ॥ १३ ॥ बहुत स्वल्प भोजन करनेवाले ऋषि जहाँ विद्यमान थे, नाग, देवता, गंधर्व और किन्नर जहाँ हजारोंकी संख्यामें वर्तमान थे ॥ १४ ॥ वासनाओंको जीतने-वाले सिद्ध चारणोंसे जो स्थान शोभित था, ब्रह्माके पुत्र बालब्रह्मचारियों, माष नामक ब्रह्म-चारियों, बालखिल्यों और सूर्यकी किरण पीकर रहनेवालोंसे जो स्थान सुशोभित था, ॥ १५ ॥ दिव्य आभरण, दिव्य माला तथा दिव्य रूपवाली, तरह-तरहकी क्रीड़ा करनेवाली हजारों अप्स-राओंसे जो स्थान सुशोभित था, ॥ १६ ॥ देवपत्नियाँ जहाँ निवास करती थीं, अतएव जो स्थान नितान्त सुन्दर हो गया था और जहाँ अमृत पीनेवाले देवता और दानवोंका दल रहता था, ॥ १७ ॥ हंस, क्रौंच आदि पक्षियोंसे जो स्थान भरा हुआ था, सारसोंसे जो प्रसन्न हो रहा था, समुद्रके प्रभावसे वैदूर्यके समान पत्थर नितान्त मनोरम हो गये थे, ॥ १८ ॥ जहाँ चारो ओर बड़े-बड़े विमान फैले हुए थे, जो सफेद और विशाल थे, जिनमें दिव्य मालाएँ लगी हुई थीं, तथा गाना बजाना हो रहा था, ॥ १९ ॥ तपस्यासे जिन लोगोंने सब लोकोंमें आने-जानेका अधिकार प्राप्त किया है, उनके विमानोंको, तथा गंधर्व और अप्सराओंको रावणने देखा ॥ २० ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निर्यासरसमूलानां चन्दनानां सहस्रशः । वनानि पश्यन्सौम्यानि घ्राणतृप्तिकराणि च ॥२१॥
अगुरूणां च मुख्यानां वनान्युपवनानि च । तक्कोलानां च जात्यानां फलानां च सुगन्धिनाम् ॥२२॥
पुष्पाणि च तमालस्य गुल्मानि मरिचस्य च । मुक्तानां च समूहानि शुष्यमाणानि तीरतः ॥२३॥
शैलानि प्रवरांश्चैव प्रवालनिचयांस्तथा । काञ्चनानि च शृङ्गाणि राजतानि तथैव च ॥२४॥
प्रस्रवाणि मनोज्ञानि प्रसन्नान्यद्भुतानि च । धनधान्योपपन्नानि स्त्रीरत्नैरावृतानि च ॥२५॥
हस्त्यश्वरथगाढानि नगराणि विलोकयन् । तं समं सर्वतः स्निग्धं मृदुसंस्पर्शमारुतम् ॥२६॥
अनूपे सिन्धुराजस्य ददर्श त्रिदिवोपमम् । तत्रापश्यत्स मेघाभं न्यग्रोधं मुनिभिर्वृतम् ॥२७॥
समन्ताद्यस्य ताः शाखाः शतयोजनमायताः । यस्य हस्तिनमादाय महाकायं च कच्छपम् ॥२८॥
भक्षार्थं गरुडः शाखामाजगाम महाबलः । तस्य तां सहसा शाखां भारेण पतगोत्तमः ॥२९॥
सुपर्णः पर्णबहुलां बभञ्जाथ महाबलः । तत्र वैखानसा माषा बालखिल्या मरीचिपाः ॥३०॥
आजा बभूवुर्धूम्राश्च संगताः परमर्षयः । तेषां दयार्थं गरुडस्तां शाखां शतयोजनाम् ॥३१॥
भग्नामादाय वेगेन तौ चोभौ गजकच्छपौ । एकपादेन धर्मात्मा भक्षयित्वा तदामिषम् ॥३२॥
निषादविषयं हत्वा शाखया पतगोत्तमः । प्रहर्षमतुलं लेभे मोक्षयित्वा महामुनीन् ॥३३॥
स तु तेन प्रहर्षेण द्विगुणीकृतविक्रमः । अमृतानयनार्थं वै चकार मतिमान्मतिम् ॥३४॥
अयोजालानि निर्मथ्य भित्त्वा रत्नगृहं वरम् । महेन्द्रभवनाद्गुप्तमाजहारामृतं ततः ॥३५॥

चन्दनोंके हजारों वन, जिनकी जड़ोंसे गोंद निकल रही थी और जिनसे नाककी तृप्ति होती थी, रावणने देखे ॥ २१ ॥ अगरूप्रधान वनों और उपवनोंको, उत्तम फलवाले सुगन्धित वृक्षोंके वनोंको तथा अंकोल वृक्षोंके वनोंको रावणने देखा ॥ २२ ॥ समुद्रके तीरपर तमालके फूल, मरिचोंके गुच्छे और मोतियोंके ढेरको सूखते हुए देखा ॥ २३ ॥ पत्थरोंके समूह, श्रेष्ठ मूँगोंकी राशि, सोने और चाँदियोंके शिखर, सुन्दर, अद्भुत और स्वच्छ झरने, धन-धान्य, सुन्दरी स्त्रियाँ, हाथी रथ आदिसे युक्त नगरोंको रावणने देखा। वहाँकी भूमि समतल और उत्तम थी, कोमल वायु बह रही थी ॥ २४, २५, २६ ॥ समुद्रके तीरपर रावणने स्वर्गके समान यह दृश्य देखा। मेघके समान बहुत बड़ा एक वटवृक्ष उसने देखा, जिसे घेरकर बहुतसे मुनि बैठे थे ॥ २७ ॥ जिसकी शाखाएँ, सौ योजन लम्बी थीं, एक विशालकाय हाथी और कछुआ लेकर एक बार गरुड़ खानेके लिये उसकी शाखापर आये, पक्षिराज गरुड़के भारसे उस वृक्षकी वह बहुत पत्तोंवाली शाखा टूट गयी। उस शाखामें वैखानस माष, बालखिल्य और मरीचि नामके ब्रह्माके पुत्र तथा धूम्रपान करनेवाले श्रेष्ठ ऋषि थे। उनकी रक्षाके लिए सौ योजन लम्बी और टूटी हुई उस शाखाको लेकर तथा एक पैरकी सहायतासे हाथी और कछुएका माँस खाकर और उस शाखासे निषाद देशको मारकर पक्षिराज गरुड़ने उन मुनियोंकी रक्षा की और वे बहुत प्रसन्न हुए ॥ २८, २९, ३० ॥ ॥ ३१, ३२, ३३ ॥ उस आनन्दसे गरुड़का पराक्रम दूना होगया। बुद्धिमान गरुड़ने अमृत ले आनेकी इच्छा की ॥ ३४ ॥ लोहेके सिकड़ तोड़कर, रत्नोंके बने घरको तोड़कर, इन्द्रके घरमें गुप्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तं महर्षिगणैर्जुष्टं सुपर्णकृतलक्षणम् । नाम्ना सुभद्रं न्यग्रोधं ददर्श धनदानुजः ॥३६॥
तं तु गत्वा परं पारं समुद्रस्य नदीपतेः । ददर्शाश्रममेकान्ते पुण्ये रम्ये वनान्तरे ॥३७॥
तत्र कृष्णाजिनधरं जटामण्डलधारिणम् । ददर्श नियताहारं मारीचं नाम राक्षसम् ॥३८॥
स रावणः समागम्य विधिवत्तेन रक्षसा । मारीचेनार्चितो राजा सर्वकामैरमानुषैः ॥३९॥
तं स्वयं पूजयित्वा च भोजनेनोदकेन च । अर्थोपहितया वाचा मारीचो वाक्यमब्रवीत् ॥४०॥
कच्चित्ते कुशलं राजँल्लङ्कायां राक्षसेश्वर । केनार्थेन पुनस्त्वं वै तूर्णमेव इहागतः ॥४१॥
एवमुक्तो महातेजा मारीचेन स रावणः । ततः पश्चादिदं वाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥४२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥३५॥

षट्त्रिंश सर्गः ३६

मारीच श्रूयतां तात वचनं मम भाषतः । आर्तोऽस्मि मम चार्तस्य भवान्हि परमा गतिः ॥ १ ॥
जानीषे त्वं जनस्थानं भ्राता यत्र खरो मम । दूषणश्च महाबाहुः स्वसा शूर्पणखा च मे ॥ २ ॥
त्रिशिराश्च महाबाहू राक्षसः पिशिताशनः । अन्ये च बहवः शूरा लब्धलक्षा निशाचराः ॥ ३ ॥
वसन्ति मन्नियोगेन अधिवासं च राक्षसाः । बाधमाना महारण्ये मुनीन्ये धर्मचारिणः ॥ ४ ॥
चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् । शूराणां लब्धलक्षाणां खरचित्तानुवर्तिनाम् ॥ ५ ॥

रूपसे रखा हुआ अमृत गरुड़ ले आए ॥ ३५ ॥ रावणने उस सुभद्र नामक वटवृक्षको देखा, जहाँ महर्षियोंका दल वर्तमान था और जो गरुड़के द्वारा चिन्हित हुआ था ॥ ३६ ॥ नदीपति समुद्रके उस पार जाकर पवित्र और रमणीय एकाग्र वनमें उसने एक आश्रम देखा ॥ ३७ ॥ कृष्णमृगचर्म धारण करनेवाला, जटाधारी, नियमित आहार करनेवाला मारीच नामक राक्षसको उसने देखा ॥ ३८ ॥ रावण वहाँ आया, मारीचने अलौकिक उपचारोंके द्वारा राजा रावणकी विधिवत् पूजा की ॥ ३९ ॥ भोजन और जलसे स्वयं उनकी पूजा करके मारीच अर्थयुक्त वचन उनसे बोला ॥ ४० ॥ राक्षसेश्वर, आपकी लंकामें कुशल तो है, किस कारण आप पुनः शीघ्रही यहाँ आये ॥ ४१ ॥ मारीचके ऐसा कहने पर बोलनेमें चतुर तेजस्वी रावण इस प्रकार बोला ॥४२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका पैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३५ ॥

भाई मारीच, मैं जो कह रहा हूँ, वह सुनो । मैं बहुतही दुखी हूँ । इस समय तुम्हीं सर्वश्रेष्ठ गति हो ॥ १ ॥ तुम जनस्थानको जानते हो, जहाँ मेरा भाई खर, महाबाहु दूषण और मेरी बहिन शूर्पणखा रहती है ॥ २ ॥ महाबाहु त्रिशिरा राक्षस, जो माँस खानेवाला है तथा और भी युद्धमें उत्साह रखनेवाले बहुतसे वीर राक्षस वहाँ रहते हैं ॥ ३ ॥ ये राक्षस मेरी आज्ञासे वहाँ रहते हैं और उस घोर वनमें धर्मात्मा मुनियोंको दुःख देते हैं ॥ ४ ॥ भीमकर्म करनेवाले खरकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ते त्विदानीं जनस्थाने वसमाना महाबलाः । संगताः परमायत्ता रामेण सह संयुगे ॥ ६ ॥
नानाशस्त्रप्रहरणाः खरप्रमुखराक्षसाः । तेन संजातरोषेण रामेण रणमूर्धनि ॥ ७ ॥
अनुक्त्वा परुषं किंचिच्छरैर्व्यापारितं धनुः । चतुर्दशसहस्राणि रक्षसामुग्रतेजसाम् ॥ ८ ॥
निहतानि शरैर्दीप्तैर्मानुषेण पदातिना । खरश्च निहतः संख्ये दूषणश्च निपातितः ॥ ९ ॥
हत्वा त्रिशिरसं चापि निर्भया दण्डकाः कृताः । पित्रा निरस्तः क्रुद्धेन सभार्यः क्षीणजीवितः ॥१०॥
स हन्ता तस्य सैन्यस्य रामः क्षत्रियपांसनः । अशीलः कर्कशस्तीक्ष्णो मूर्खो लुब्धोऽजितेन्द्रियः॥११॥
त्यक्तधर्मा त्वधर्मात्मा भूतानामहिते रतः । येन वैरं विनारण्ये सत्त्वमास्थाय केवलम् ॥१२॥
कर्णनासापहारेण भगिनी मे विरूपिता । अस्य भार्यां जनस्थानात्सीतां सुरसुतोपमाम् ॥१३॥
आनयिष्यामि विक्रम्य सहायस्तत्र मे भव । त्वया ह्यहं सहायेन पार्श्वस्थेन महाबल ॥१४॥
भ्रातृभिश्च सुरान्सर्वान्नाहमत्राभिचिन्तये । तत्सहायो भव त्वं मे समर्थो ह्यसि राक्षस ॥१५॥
वीर्ये युद्धे च दर्पे च न ह्यस्ति सदृशस्तव । उपायतो महाञ्शूरो महामायाविशारदः ॥१६॥
एतदर्थमहं प्राप्तस्त्वत्समीपं निशाचर । शृणु तत्कर्म साहाय्ये यत्कार्यं वचनान्मम ॥१७॥
सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतबिन्दुभिः । आश्रमे तस्य रामस्य सीतायाः प्रमुखे चर ॥१८॥
त्वां तु निःसंशयं सीता दृष्ट्वा तु मृगरूपिणम् । गृह्यतामिति भर्तारं लक्ष्मणं चाभिधास्यति ॥१९॥

आज्ञाके अनुसार चलनेवाले, चौदह हजार वीर राक्षस वहां रहते हैं ॥ ५ ॥ जनस्थानमें रहनेवाले वे महाबली राक्षस रामचन्द्रके साथ युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥ ६ ॥ अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार करनेवाले खर आदि राक्षसोंका रामचन्द्रसे युद्ध हुआ, युद्धमें क्रोध करके रामचन्द्रने बिना कुछ कठोर वचन कहे ही धनुषपर बाण चढ़ाये और प्रखरतेजा चौदह हजार राक्षसोंके उस पैदल मनुष्यने अपने दीप्त बाणोंसे मार डाला । युद्धमें उसने खर और दूषणको भी मार डाला ॥ ७, ८, ९, ॥ त्रिशिराको भी मार कर उसने दण्डक वनको निर्भय बना दिया । पिताने क्रोध करके स्त्रीके साथ उसे निकाल दिया है, उसका जीवन क्षीण हो गया है ॥ १० ॥ वही क्षत्रियकलंक राम इस सेनाका मारनेवाला है । वह अशील, कर्कश, तीक्ष्ण, लोभी और अजितेन्द्रिय है ॥ ११ ॥ उस अधर्मात्माने क्षत्रियधर्मका त्याग किया है, वह प्राणियोंका अहितकारी है, क्योंकि बिना विरोधके ही बलके घमंडमें आकर मेरी बहिनके कान और नाक काट डाले हैं और उसको विरूप बना दिया है । देवकन्याके समान सुन्दरी उसकी स्त्री सीताको जनस्थानसे बलपूर्वक मैं ले आऊँगा, इस काममें तुम मेरी सहायता करो । तुम, अथवा मेरे भाई सहायक होकर यदि मेरे साथ रहें तो समस्त देवताओंको भी मैं कोई चीज नहीं समझ सकता । अतएव, तुम मेरी सहायता करो । हे राक्षस, तुम समर्थ हो ॥ १२, १३, १४, १५ ॥ पराक्रममें, युद्ध में तुम्हारे समान कोई नहीं है, तुम बड़े वीर हो, बड़े उपाय तुम्हें मालूम हैं और अनेक प्रकारकी माया जानते हो ॥ १६ ॥ हे निशाचर, इसीलिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ. वह काम सुनो, जिसमें मेरे कहनेसे तुम्हें सहायता करनी पड़ेगी ॥ १७ ॥ सुवर्णका मृगा बनकर, जिसमें चाँदीके बिन्दु हों, तुम रामचन्द्रके आश्रमके पास सीताके सामने घूमो ॥ १८ ॥ मृगके रूपमें तुमको देखकर सीता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततस्तयोरपाये तु शून्ये सीतां यथासुखम् । निरावाधो हरिष्यामि राहुश्चन्द्रप्रभामिव ॥२०॥
ततः पश्चात्सुखं रामे भार्याहरणकर्शिते । विश्रब्धं प्रहरिष्यामि कृतार्थेनान्तरात्मना ॥२१॥
तस्य रामकथां श्रुत्वा मारीचस्य महात्मनः । शुष्कं समभवद्वक्त्रं परित्रस्तो बभूव च ॥२२॥
ओष्ठौ परिलिहञ्शुष्कौ नेत्रैरनिमिषैरिव । मृतभूत इवार्तस्तु रावणं समुदैक्षत ॥२३॥
स रावणं त्रस्तविषण्णचेता महावने रामपराक्रमज्ञः ।
कृताञ्जलिस्तत्त्वमुवाच वाक्यं हितं च तस्मै हितमात्मनश्च ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ३७

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः । प्रत्युवाच महातेजा मारीचो राक्षसेश्वरम् ॥ १ ॥
सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः । अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता भोक्ता च दुर्लभः ॥ २ ॥
न नूनं बुध्यसे रामं महावीर्यगुणोन्नतम् । अयुक्तचारश्चपलो महेन्द्रवरुणोपमम् ॥ ३ ॥
अपि स्वस्ति भवेत्तात सर्वेषामपि रक्षसाम् । अपि रामो न संक्रुद्धः कुर्याल्लोकानराक्षसान् ॥ ४ ॥
अपि ते जीवितान्ताय नोत्पन्ना जनकात्मजा । अपि सीतानिमित्तं च न भवेदुव्यसनं महत् ॥ ५ ॥

अवश्यही लक्ष्मण और अपने पतिको तुम्हें पकड़नेके लिए कहेगी ॥ १९ ॥ उन दोनोंके चले जाने पर शून्य आश्रमसे, बिना बाधाके सुखपूर्वक मैं सीताको हर लाऊँगा, जिस प्रकार राहु चन्द्रमाके प्रकाशको हरता है ॥ २० ॥ तदनन्तर स्त्रीके हरी जानेके कारण दुखित रामचन्द्रपर सुखपूर्वक खूब कृतार्थ मनसे प्रहार कर सकूँगा ॥ २१ ॥ रावणकी बातें सुनकर महात्मा मारीचका मुँह सूख गया और वह डर गया ॥ २२ ॥ सूखे ओठोंको चाटता हुआ अनिमिष नेत्रोंसे मृतकके समान दुखी मारीचने रावणको देखा ॥ २३ ॥ रामके पराक्रमको जाननेवाला भयभीत दुखीचित्त मारीच हाथ जोड़कर रावणसे यथार्थ वचन बोला, जो रावण और मारीच दोनोंके लिए हितकारी था ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका छत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३६ ॥

राक्षसेन्द्रका वह वचन सुनकर, वाक्यार्थ समझनेमें चतुर महातेजा मारीच उससे बोला ॥ १ ॥ राजन्, प्रिय बोलनेवाले मनुष्य सदा मिला करते हैं, पर अप्रिय हितकारी वचन बोलनेवाला और सुननेवाला दुर्लभ है ॥ २ ॥ इन्द्र और वरुणके समान पराक्रमी तथा सर्व गुण-युक्त रामचन्द्रको अवश्यही तुम नहीं जानते, क्योंकि तुम्हारा गुप्त दूत तो है नहीं और तुम चंचल हो ॥ ३ ॥ समस्त राक्षसोंका कल्याण हो, क्रोध करके रामचन्द्र सब राक्षसोंका नाश न कर दें ॥४॥ सीता क्या तुम्हारी मृत्युके लिए तो नहीं उत्पन्न हुई है, सीताके कारण बहुत बड़ा संकट न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपि त्वामीश्वरं प्राप्य कामवृत्तं निरङ्कुशम् । न विनश्येत्पुरी लङ्का त्वया सह सराक्षसा ॥ ६ ॥
त्वद्विधः कामवृत्तो हि दुःशीलः पापमन्त्रितः । आत्मानं स्वजनं राष्ट्रं स राजा हन्ति दुर्मतिः ॥ ७ ॥
न च पित्रा परित्यक्तो नामर्यादः कथंचन । न लुब्धो न च दुःशीलो न च क्षत्रियपांसनः ॥ ८ ॥
न च धर्मगुणैर्हीनः कौशल्यानन्दवर्धनः । न च तीक्ष्णो हि भूतानां सर्वभूतहिते रतः ॥ ९ ॥
वञ्चितं पितरं दृष्ट्वा कैकेय्याः सत्यवादिनम् । करिष्यामीति धर्मात्मा ततः प्रव्रजितो वनम् ॥१०॥
कैकेय्याः प्रियकामार्थं पितुर्दशरथस्य च । हित्वा राज्यं च भोगाँश्च प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥११॥
न रामः कर्कशस्तात नाविद्वान्नाजितेन्द्रियः । अनृतं न श्रुतं चैव नैव त्वं वक्तुमर्हसि ॥१२॥
रामो विग्रहवान्धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः । राजा सर्वस्य लोकस्य देवानामिव वासवः ॥१३॥
कथं नु तस्य वैदेही रक्षितां स्वेन तेजसा । इच्छसे प्रसभं हर्तुं प्रभामिव विवस्वतः ॥१४॥
शरार्चिषमनाधृष्यं चापखड्गेन्धनं रणे । रामाग्निं सहसा दीप्तं न प्रवेष्टुं त्वमर्हसि ॥१५॥
धनुर्व्यादितदीप्तास्यं शरार्चिषममर्षणः । चापबाणधरं तीक्ष्णं शत्रुसेनापहारिणम् ॥१६॥
राज्यं सुखं च संत्यज्य जीवितं चेष्टमात्मनः । नात्यासादयितुं तात रामान्तकमिहार्हसि ॥१७॥
अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकात्मजा । न त्वं समर्थस्तां हर्तुं रामचापाश्रयां वने ॥१८॥

उपस्थित हो ॥ ५ ॥ स्वेच्छाचारी और निरंकुश तुमको राजा पाकर, यह लंकापुरी समस्त राक्षसोंके साथ क्या विनष्ट होगी ॥६॥ तुम्हारे समान स्वेच्छाचारी और पापी विचार रखनेवाला मूर्ख राजा, अपना, अपने स्वजनोंका तथा अपने राष्ट्रका नाश करता है ॥ ७ ॥ रामचन्द्र, पिताके द्वारा निर्वासित नहीं हुए हैं । वे मर्यादा लंघन करनेवाले, लोभी, दुःशील और कलंकी क्षत्रिय नहीं हैं ॥ ८ ॥ वे धर्म और गुणोंसे हीन नहीं हैं, वे कौसल्याको आनन्द देनेवाले हैं, वे किसीके उद्वेजक नहीं हैं, किन्तु सब प्राणियोंके हितकारी हैं ॥ ९ ॥ केकयीने उनके सत्यवादी पिताको ठग लिया, इससे पिताको सत्यवादी बनानेके लिए वन आये हैं ॥ १० ॥ केकयी और राजा दसरथके प्रिय करनेके लिए राज्य और राज्य-सम्बन्धी भोगोंको छोड़कर दण्डक वनमें आये हैं ॥ ११ ॥ भाई, रामचन्द्र कठोर नहीं हैं, मूर्ख नहीं हैं और अजितेन्द्रिय नहीं हैं । तुमने जो झूठी बाते सुनी हैं, वह तुम्हें नहीं कहनी चाहिए ॥ १२ ॥ रामचन्द्र शरीरधारी धर्म हैं, वे सज्जन और सत्य पराक्रमी हैं, देवताओंके राजा इन्द्रके समान वे समस्त लोकके राजा हैं ॥ १३ ॥ जो जानकी रामचन्द्रके तेजसे रक्षित हो रही है, सूर्यकी प्रभाके समान बलपूर्वक तुम उसका हरण करना कैसे चाहते हो ॥ १४ ॥ राम प्रदीप्त अग्निके समान हैं, बाण ही उनकी ज्वाला हैं, धनुष और तलवार इंधन है उस अनतिक्रमणीय अग्निमें तुम सहसा कैसे प्रवेश कर सकोगे ॥ १५ ॥ रामचन्द्र यमराजके समान हैं, धनुष उनका फैलाया हुआ दीप्त मुख है, बाण प्रकाश है, चाप और बाण वे धारण किए हुए हैं, वे कठोर और शत्रु सेनाका विनाश करनेवाले हैं । तुम अपना राज्य, सुख तथा प्रिय जीवनका त्याग करके उनके पास क्यों जाना चाहते हो ॥ १६, १७ ॥ वे एक अप्रमेय तेज हैं, जानकी जिनकी स्त्री है, रामचन्द्रके धनुषके आश्रयमें रहनेवाली सीताका हरण तुम नहीं कर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्य वै नरसिंहस्य सिंहोरस्कस्य भामिनी । प्राणेभ्योऽपि प्रियतरा भार्या नित्यमनुव्रता ॥१९॥
न सा धर्षयितुं शक्या मैथिल्योजस्विनः प्रिया । दीप्तस्येव हुताशस्य शिखा सीता सुमध्यमा ॥२०॥
किमुद्यमं व्यर्थमिमं कृत्वा ते राक्षसाधिप । द्रष्टश्चेत्त्वं रणे तेन तदन्तमुपजीवितम् ॥२१॥
जीवितं च सुखं चैव राज्यं चैव सुदुर्लभम् । स सर्वैः सचिवैः सार्धं विभीषणपुरस्कृतैः ॥२२॥
मन्त्रयित्वा स धर्मिष्ठैः कृत्वा निश्चयमात्मनः । दोषाणां च गुणानां च संप्रधार्य बलाबलम् ॥२३॥
आत्मनश्च बलं ज्ञात्वा राघवस्य च तत्त्वतः । हितं हि तव निश्चित्य क्षमं त्वं कर्तुमर्हसि ॥२४॥
अहं तु मन्ये तव न क्षमं रणे समागमं कोसलराजसूनुना ।
इदं हि भूयः शृणु वाक्यमुत्तमं क्षमं च युक्तं च निशाचराधिप ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ३८

कदाचिदप्यहं वीर्यात्पर्यटन्पृथिवीमिमाम् । बलं नागसहस्रस्य धारयन्पर्वतोपमः ॥ १ ॥
नीलजीमूतसंकाशस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः । भयं लोकस्य जनयन्किरीटी परिघायुधः ॥ २ ॥
व्यचरन्दण्डकारण्यमृषिमांसानि भक्षयन् । विश्वामित्रोऽथ धर्मात्मा मद्वित्रस्तो महामुनिः ॥ ३ ॥

सकते ॥ १८ ॥ सिंहके समान छातीवाले, नरसिंह रामचन्द्रकी वह भार्या उनके प्राणोंके समान प्रिय है और वह उनकी अनुगामिनी है । उन ओजस्वीकी स्त्री सीताका हरण तुम नहीं कर सकते, क्योंकि वह प्रदीप्त अग्निकी ज्वालाके समान है ॥ १९, २० ॥ राक्षसाधिप, यह व्यर्थका उद्योग तुम क्यों करना चाहते हो, इससे तुमको क्या लाभ होगा, रामचन्द्र युद्धमें जिस समय तुमको देखेंगे, उसी समय तुम अपना अन्त समझो ॥ २१ ॥ अपना जीवन, सुख तथा दुर्लभ राज्यकी रक्षाके लिए विभीषण तथा अन्य समस्त धर्मात्मा मन्त्रियोंसे सलाह करके तुम कर्तव्य निश्चय करो, दोषों और गुणोंका बलाबल सोच लो ॥ २२, २३ ॥ अपने और रामचन्द्रके बलका विचार करो, अपना हित सोचो, उसके बाद जो उचित समझो सो करो ॥ २४ ॥ मैं तो समझता हूँ कि कोसलराजपुत्र रामचन्द्रके साथ तुम्हारा युद्ध करना उचित नहीं है । हे राक्षसाधिप, योग्य और क्षमा करने योग्य यह मेरी अच्छी बात सुनो ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३७ ॥

किसी समय, अधिक पराक्रम होनेके कारण मैं इस पृथिवीका पर्यटन करता था, हजार हाथियोंके समान मुझमें बल था और पर्वतके समान मैं ऊँचा था ॥ १ ॥ नील मेघके समान मेरा वर्ण था और सुवर्णकुण्डल मैं धारण किए हुए था, मस्तकपर किरीट पहने हुए था, परिघ मेरा आयुध था, लोग मुझको देखकर डरजाते थे ॥ २ ॥ ऋषियोंका मांस खाता हुआ मैं दण्डकारण्यमें विचरण करता था । महामुनि धर्मात्मा विश्वामित्र मुझसे बहुत डरगये थे ॥ ३ ॥ वे राजा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वयं गत्वा दशरथं नरेन्द्रमिदमब्रवीत् । अयं रक्षतु मां रामः पर्वकाले समाहितः ॥ ४ ॥
मारीचान्मे भयं घोरं समुत्पन्नं नरेश्वर । इत्येवमुक्तो धर्मात्मा राजा दशरथस्तदा ॥ ५ ॥
प्रत्युवाच महाभागं विश्वामित्रं महामुनिम् । ऊनद्वादशवर्षोऽयमकृतास्त्रश्च राघवः ॥ ६ ॥
कामं तु मम तत्सैन्यं मया सह गमिष्यति । बलेन चतुरङ्गेण स्वयमेत्य निशाचरम् ॥ ७ ॥
वधिष्यामि मुनिश्रेष्ठ शत्रुं तव यथेप्सितम् । एवमुक्तः स तु मुनी राजानमिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥
रामान्नान्यद्बलं लोके पर्याप्तं तस्य रक्षसः । देवतानामपि भवान्समरेष्वभिपालकः ॥ ९ ॥
आसीत्तव कृतं कर्म त्रिलोकविदितं नृप । काममस्ति महत्सैन्यं तिष्ठत्विह परंतप ॥१०॥
बालोऽप्येष महातेजाः समर्थस्तस्य निग्रहे । गमिष्ये राममादाय स्वस्ति तेऽस्तु परंतप ॥११॥
इत्येवमुक्त्वा स मुनिस्तमादाय नृपात्मजम् । जगाम परमप्रीतो विश्वामित्रः स्वमाश्रमम् ॥१२॥
तं तथा दण्डकारण्ये यज्ञमुद्दिश्य दीक्षितम् । बभूवोपस्थितो रामश्चित्रं विस्फारयन्धनुः ॥१३॥
अजातव्यञ्जनः श्रीमान्बालः श्यामः शुभेक्षणः । एकवस्त्रधरो धन्वी शिखी कनकमालया ॥१४॥
शोभयन्दण्डकारण्यं दीप्तेन स्वेन तेजसा । अदृश्यत तदा रामो बालचन्द्र इवोदितः ॥१५॥
ततोऽहं मेघसंकाशस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः । बली दत्तवरो दर्पादाजगामाश्रमान्तरम् ॥१६॥
तेन दृष्टः प्रविष्टोऽहं सहसैवोद्यतायुधः । मां तु दृष्ट्वा धनुः सज्यमसंभ्रान्तश्चकार ह ॥१७॥

दसरथके पास जाकर बोले—ये रामचन्द्र यज्ञके समय सावधान होकर मेरी रक्षा करें ॥ ४ ॥ मारीच राक्षससे मुझे बड़ा भारी भय उत्पन्न हो गया है, ऐसा कहनेपर धर्मात्मा राजा दसरथ ने महाभाग, महामुनि विश्वामित्रको इसप्रकार उत्तर दिया—ये रामचन्द्र बारह वर्षसे भी छोटे हैं, अस्त्र-शस्त्रोंकी भी शिक्षा अभी इन्हें नहीं मिली है ॥ ५, ६, ॥ मेरी सेना मेरे साथ जायगी, इस चतुरंगिणी सेनाके साथ स्वयं जाकर, मैं आपके शत्रु राक्षसका—जैसा आप चाहते हैं, बध करूँगा । राजाके ऐसा कहनेपर मुनि उनसे इस प्रकार बोले ॥ ७ ॥ उस राक्षसके लिए रामके अतिरिक्त और दूसरा कोई बली नहीं है । आपने युद्धोंमें देवताओंकी सहायता की है । आपने जो अद्भुत कर्म किये हैं, वे त्रिलोकमें प्रसिद्ध हैं । आपके पास सेना भी बहुत है, पर वह सब यहीं रहे ॥ ६-१० ॥ तेजस्वी रामचन्द्र बालक हैं, फिर भी उसको दण्ड दे सकते हैं । परन्तप, मैं रामको लेकर जाता हूँ, आपका कल्याण हो ॥११॥ ऐसा कहकर और उस राजपुत्रको लेकर परम प्रसन्न विश्वामित्र अपने आश्रमको गये ॥ १२ ॥ विश्वामित्रने दण्डकारण्यमें यज्ञकी दीक्षा ली और राम अपना अद्भुत धनुष लेकर वहाँ उपस्थित हुए ॥ १३ ॥ उस समय रामचन्द्रको मूंछें नहीं आयी थी, वे बालक थे, एक वस्त्र धारण किये हुए थे, हाथोंमें धनुष था, सुन्दर शिखा थी, सोनेकी माला गलेमें थी । वे शुभेक्षण श्याम रामचन्द्र अपने दीप्त तेजसे दण्डकारण्यको शोभित करते हुए नवोदित बालचन्द्रके समान दीख पड़े ॥ १४, १५ ॥ सुवर्णकुण्डल धारण करनेवाला, मेघके समान विशाल और बली मैं अहंकारसे उस आश्रममें आया, क्योंकि देवताओंके द्वारा अवध्य होनेका वर मुझे ब्रह्मासे मिला था ॥१६॥ आश्रममें मेरे प्रवेश करते ही रामचन्द्रने धनुष उठ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अवजानन्न संमोहाद्बालोऽयमिति राघवम् । विश्वामित्रस्य तां वेदिमभ्यधावं कृतत्वरः ॥१८॥
तेन मुक्तस्ततो बाणः शितः शत्रुनिबर्हणः । तेनाहं ताडितः क्षिप्तः समुद्रे शतयोजने ॥१९॥
नेच्छता तात मां हन्तुं तदा वीरेण रक्षितः । रामस्य शरवेगेन निरस्तो भ्रान्तचेतनः ॥२०॥
पातितोऽहं तदा तेन गम्भीरे सागराम्भसि । प्राप्य संज्ञां चिरात्तात लङ्कां प्रति गतः पुरीम्॥२१॥
एवमस्मि तदा मुक्तः सहायास्ते निपातिताः । अकृतास्त्रेण रामेण बालेनाक्लिष्टकर्मणा ॥२२॥
तन्मया वार्यमाणस्तु यदि रामेण विग्रहम् । करिष्यस्यापदं घोरां क्षिप्रं प्राप्य न शिष्यसि॥२३॥
क्रीडारतिविधिज्ञानां समाजोत्सवदर्शिनाम् । रक्षसां चैव संतापमनर्थं चाहरिष्यसि ॥२४॥
हर्म्यप्रासादसंबाधां नानारत्नविभूषिताम् । द्रक्ष्यसि त्वं पुरीं लङ्कां विनष्टां मैथिलीकृते ॥२५॥
अकुर्वतोऽपि पापानि शुचयः पापसंश्रयात् । परपापैर्विनश्यन्ति मत्स्या नागह्रदे यथा ॥२६॥
दिव्यचन्दनदिग्धाङ्गान्दिव्याभरणभूषितान् । द्रक्ष्यस्यभिहतान्भूमौ तव दोषात्तु राक्षसान् ॥२७॥
हतदारान्सदारांश्च दश विद्रवतो दिशः । हतशेषानशरणान्द्रक्ष्यसि त्वं निशाचरान् ॥२८॥
शरजालपरिक्षिप्तामग्निज्वालासमावृताम् । प्रदग्धभवनां लङ्कां द्रक्ष्यसि त्वमसंशयम् ॥२९॥
परदाराभिमर्शात्तु नान्यत्पापतरं महत् । प्रमदानां सहस्राणि तव राजन्परिग्रहे ॥३०॥
भव स्वदारानिरतः स्वकुलं रक्ष राक्षसान् । मानं वृद्धिं च राज्यं च जीवितं चेष्टमात्मनः ॥३१॥

लिया और बिना घबराये हुए उसपर रौंदा चढ़ा दिया ॥ १७ ॥ अज्ञानवश मैं रामचन्द्रको जान नहीं सका, उनको बालक समझकर विश्वामित्रकी वेदीकी ओर शीघ्रतापूर्वक मैं दौड़ा ॥ १८ ॥ उस समय रामचन्द्रने शत्रुओंको नष्ट करनेवाला तीक्ष्ण बाण छोड़ा जिससे सौ योजन समुद्रमें आकर मैं गिरा ॥ १९ ॥ भाई, उस समय रामचन्द्रने मेरे मारनेकी इच्छा न की। उस वीरने मेरी रक्षा की। उनके बाण-वेगसे मैं अचेतन होकर दूर फेंक दिया गया, और मैं उस समय अथाह समुद्रजलमें आ गया, पुनः होश होनेपर मैं लंकापुरी गया ॥२०, २१ ॥ इस प्रकार शस्त्रोंका ज्ञान न रखनेवाले बालक पुण्यात्मा रामचन्द्रने मुझे छोड़ दिया और मेरे सहायकोंको मार डाला ॥२२॥ मैं तुमको रोक रहा हूँ, फिर भी यदि तुमने रामके साथ वैर बढ़ाया तो बहुत बड़ी विपत्तिमें फँसोगे और शीघ्र तुम्हारा नाश हो जायगा ॥ २३ ॥ आनन्दभोग करनेवाले, नाच तमाशा देखने वाले राक्षसोंको तुम दुःख देओगे और उनकी मृत्यु बुलाओगे ॥२४॥ सीताके कारण, कोठा अटारी-वाली तथा अनेक रत्नोंसे भूषित लंकापुरीका विनाश तुम शीघ्र ही देखोगे ॥ २५ ॥ जो स्वयं पाप नहीं करते, शुद्ध हैं वे भी पापियोंके पापसे नष्ट होजाते हैं, जिस प्रकार सर्पोंके तालाबमें रहनेवाली मछलियाँ ॥२६॥ तुम अपने दोषसे शरीरमें दिव्य चन्दन धारण करनेवाले तथा दिव्य आभरणोंसे आभूषित राक्षसोंको भूमिमें पड़े देखोगे ॥२७॥ तुम देखोगे कि जो राक्षस बच गये है, वे अशरण होकर, कई स्त्रियोंके साथ, कई बिना स्त्रियोंके, दसो दिशाओंमें भाग रहे हैं ॥२८॥ तुम देखोगे कि लंकापुरी बाणोंसे भर गयी है, उसमें आग लग गयी है, उसके भवन जल रहे हैं ॥ २९ ॥ परस्त्रीके संसर्गसे बढ़कर पाप दूसरा नहीं है। राजन्, तुम्हारे अन्तःपुरमें तो हजारों स्त्रियाँ हैं, ॥ ३० ॥ आप अपनी ही स्त्रीमें प्रसन्न रहें, आप अपने कुल, राक्षसों, मान, उन्नति, राज्य तथा

Jangamwadi Math, VARANASI,
Acc. No. 989
CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कलत्राणि च सौम्यानि मित्रवर्गं तथैव च । यदीच्छसि चिरं भोक्तुं मा कृथा रामविप्रियम् ॥३२॥
निवार्यमाणः सुहृदा मया भृशं प्रसह्य सीतां यदि धर्षयिष्यसि ।
गमिष्यसि क्षीणबलः सबान्धवो यमक्षयं रामशरास्तजीवितः ॥३३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डेऽष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ३९

एवमस्मि तदा मुक्तः कथंचित्तेन संयुगे । इदानीमपि यद्वृत्तं तच्छृणुष्व यदुत्तरम् ॥ १ ॥
राक्षसाभ्यामहं द्राभ्यामनिर्विण्णस्तथाकृतः । सहितो मृगरूपाभ्यां प्रविष्टो दण्डकावने ॥ २ ॥
दीप्तजिह्वो महादंष्ट्रस्तीक्ष्णशृङ्गो महाबलः । व्यचरन्दण्डकारण्यं मांसभक्षो महामृगः ॥ ३ ॥
अग्निहोत्रेषु तीर्थेषु चैत्यवृक्षेषु रावण । अत्यन्तघोरो व्यचरँस्तापसाँस्तान्प्रधर्षयन् ॥ ४ ॥
निहत्य दण्डकारण्ये तापसान्धर्मचारिणः । रुधिराणि पिबँस्तेषां तन्मांसानि च भक्षयन् ॥ ५ ॥
ऋषिमांसाशनः क्रूरस्त्रासयन्वनगोचरान् । तदा रुधिरमत्तोऽहं व्यचरं दण्डकावनम् ॥ ६ ॥
तदाहं दण्डकारण्ये विचरन्धर्मदूषकः । आसादयं तदा रामं तापसं धर्ममाश्रितम् ॥ ७ ॥
वैदेहीं च महाभागां लक्ष्मणं च महारथम् । तापसं नियताहारं सर्वभूतहिते रतम् ॥ ८ ॥

प्रिय अपने जीवनकी रक्षा करें ॥ ३१ ॥ राजन्, यदि तुम अपनी सुन्दरी स्त्रियोंके साथ तथा मित्रोंके साथ, , बहुत दिनोंतक रहना चाहते हो, तो रामचन्द्रके साथ विरोध मत करो ॥ ३२ ॥ मित्र होकर मैं तुम्हें कह रहा हूँ । यदि तुम जबरदस्ती सीताका हरण करोगे तब अपने बान्धवोंके साथ रामचन्द्रके बाणोंसे मर कर यमलोक जाओगे ॥ ३३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका अड़तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३८ ॥

उस युद्धमें रामचन्द्रने किसी प्रकार मुझे छोड़ दिया । उसके बाद जो अद्भुत बात हुई वह सुनो ॥ १ ॥ वैसी दशा होनेपर भी मेरे मनमें किसी प्रकारकी ग्लानि नहीं आयी । मृगारूप धारण करनेवाले दो राक्षसोंके साथ मैं एक बार दण्डकारण्यमें गया ॥२॥ मेरी जीभ लपलपा रही थी, दाँत लम्बे थे और सींग तीखी । मैं मांस खाता हुआ दण्यकारण्यमें भ्रमण करने लगा ॥ ३ ॥ अग्निहोत्रके स्थान, नदियोंके घाट तथा देव वृक्षोंके पास अत्यन्त भयानक मैं तपस्वियोंको डरवाता हुआ भ्रमण करने लगा ॥ ४ ॥ दण्डकारण्यमें धर्मात्मा तपस्वियोंको मारकर, मैं उनका रुधिर पीने और उनका मांस खाने लगा ॥ ५ ॥ ऋषियोंका मांस खाता हुआ, वनमें रहनेवालोंको भयभीत करता हुआ, रुधिर पानेसे मत्त बना हुआ, क्रूर मैं दण्डकारण्यमें विचरण करने लगा ॥ ६ ॥ उस समय धर्मका नाश करनेवाला मैं दण्डकारण्यमें घूमता हुआ, तपस्वी धर्मके पालन करनेवाले रामचन्द्रके समीप गया ॥ ७ ॥ महाभागा वैदेही और महारथ, तपस्वी लक्ष्मण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सोऽहं वनगतं रामं परिभूय महाबलम् । तापसोऽयमिति ज्ञात्वा पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ९ ॥
अभ्यधावं सुसंक्रुद्धस्तीक्ष्णशृङ्गो मृगाकृतिः । जिघांसुरकृतप्रज्ञस्तं प्रहारमनुस्मरन् ॥१०॥
तेन त्यक्तास्त्रयो बाणाः शिताः शत्रुनिबर्हणाः । विकृष्य सुमहच्चापं सुपर्णानिलतुल्यगाः ॥११॥
ते बाणा वज्रसंकाशाः सुघोरा रक्तभोजनाः । आजग्मुः सहिताः सर्वे त्रयः संनतपर्वणः ॥१२॥
पराक्रमज्ञो रामस्य शठो दृष्टभयः पुरा । समुत्क्रान्तस्ततो मुक्तस्तावुभौ राक्षसौ हतौ ॥१३॥
शरेण मुक्तो रामस्य कथंचित्प्राप्य जीवितम् । इह प्रव्राजितो युक्तस्तापसोऽहं समाहितः ॥१४॥
वृक्षे वृक्षे हि पश्यामि चीरकृष्णाजिनाम्बरम् । गृहीतधनुषं रामं पाशहस्तमिवान्तकम् ॥१५॥
अपि रामसहस्राणि भीतः पश्यामि रावण । रामभूतमिदं सर्वमरण्यं प्रतिभाति मे ॥१६॥
राममेव हि पश्यामि रहिते राक्षसेश्वर । दृष्ट्वा स्वप्नगतं राममुद्भ्रमामीव चेतनः ॥१७॥
रकारादीनि नामानि रामत्रस्तस्य रावण । रत्नानि च रथाश्चैव वित्रासं जनयन्ति मे ॥१८॥
अहं तस्य प्रभावज्ञो न युद्धं तेन ते क्षमम् । वालिं वा नमुचिं वापि हन्याद्धि रघुनन्दनः ॥१९॥
रणे रामेण युध्यस्व क्षमां वा कुरु रावण । न ते रामकथा कार्या यदि मां द्रष्टुमिच्छसि ॥२०॥
बहवः साधवो लोके युक्ता धर्ममनुष्ठिताः । परेषामपराधेन विनष्टा सपरिच्छदाः ॥२१॥

वहीं थे, जो सब प्राणियोंके हितकारी, और नियमित आहार करते हैं ॥ ८ ॥ दान्त और महाबली वनवासी रामके पराक्रमको मैं भूल गया। उनको तपस्वी समझकर तथा पूर्व वैरका स्मरण कर तीखी सींगवाला मृगा मैं उनको मारनेके लिए बड़े क्रोधसे उनकी ओर दौड़ा । मैंने कुछ अधिक विचार नहीं किया। उनका पहला प्रहार मुझे स्मरण था ॥ ९, १० ॥ शत्रुओंको मारनेवाले, तीखे तीन बाण रामचन्द्रने अपने महान धनुष खींचकर छोड़े, जो गरुड़ और वायुके समान शीघ्र चलनेवाले थे ॥ ११ ॥ वज्रके समान भयानक रक्त पीनेवाले, वे तीनों बाण साथही आये ॥ १२ ॥ धूर्त मैं, रामचन्द्रका पराक्रम पहलेसे ही जानता था, अतएव भयभीत होकर मैं भाग गया और बच गया। वे दोनों राक्षस मारे गये ॥ १३ ॥ रामचन्द्रके बाणसे किसी तरह बचकर मैंने जीवन पाया और तभीसे बुरे कमाको छोड़कर योगाभ्यासी तपस्वी हो गया हूँ ॥ १४ ॥ मैं प्रत्येक वृक्षमें चीर, कृष्णमृगचर्म और धनुष धारण करनेवाले रामचन्द्रको पाशहस्त यमराजके समान देखता हूँ ॥ १५ ॥ भयभीत होकर एक बार हजारों रामचन्द्र देखता हूँ, यह समस्त वन मुझे राममय दीखता है ॥ १६ ॥ यद्यपि यहाँ रामचन्द्र नहीं हैं, फिर भी राक्षसेश्वर, मैं उन्हींको देखता हूँ। स्वप्नमें रामचन्द्रको देखकर मैं घबड़ा जाता हूँ और प्रलाप करने लगता हूँ ॥ १७ ॥ रावण, रामचन्द्रसे डरे हुए मुझको रकारादि रथ, रत्न आदि शब्द भयभीत कर देते हैं ॥ १८ ॥ मैं रामचन्द्रके प्रभावको जानता हूँ, उनसे तुम्हारा युद्ध करना अनुचित है। रामचन्द्र बली और नमुचिको भी मार सकते हैं ॥ १९ ॥ रावण, चाहे तुम रामसे युद्ध करो चाहे तुम उन्हे क्षमा कर दो, पर यदि मुझे देखना चाहो तो रामचन्द्रकी बात मेरे सामने न करो ॥ २० ॥ धर्माचरण करनेवाले, योगनिष्ठ बहुतसे अनपराधी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सोऽहं परापराधेन विनशेयं निशाचर । कुरु यत्ते क्षमं तत्त्वमहं त्वां नानुयामि वै ॥२२॥
रामश्च हि महातेजा महासत्त्वो महाबलः । अपि राक्षसलोकस्य भवेदन्तकरोऽपि हि ॥२३॥
यदि शूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतः खरः । अतिवृत्तो हतः पूर्वं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
अत्र ब्रूहि यथातत्त्वं को रामस्य व्यतिक्रमः ॥२४॥
इदं वचो बन्धुहितार्थिना मया यथोच्यमानं यदि नाभिपत्स्यसे ।
सबान्धवस्त्यक्ष्यसि जीवितं रणे हतोऽद्य रामेण शरैरजिह्मगैः ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्गः ४०

मारीचस्य तु तद्वाक्यं क्षमं युक्तं च रावणः । उक्तो न प्रतिजग्राह मर्तुकाम इवौषधम् ॥ १ ॥
तं पथ्यहितवक्तारं मारीचं राक्षसाधिपः । अब्रवीत्परुषं वाक्यमयुक्तं कालचोदितः ॥ २ ॥
दुष्कुलैतदयुक्तार्थं मारीच मयि कथ्यते । वाक्यं निष्फलमत्यर्थं बीजमुप्तमिवोषरे ॥ ३ ॥
त्वद्वाक्यैर्न तु मां शक्यं भेत्तुं रामस्य संयुगे । मूर्खस्य पापशीलस्य मानुषस्य विशेषतः ॥ ४ ॥
यस्त्यक्त्वा सुहृदो राज्यं मातरं पितरं तथा । स्त्रीवाक्यं प्राकृतं श्रुत्वा वनमेकपदे गतः ॥ ५ ॥

अपने साथियोंके साथ दूसरोंके अपराधसे विनष्ट हो गये हैं ॥ २१ ॥ पर मैं दूसरेके अपराधसे विनष्ट होना नहीं चाहता । तुम जो उचित समझो करो । मैं इस काममें तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता ॥ २२ ॥ राम बड़े तेजस्वी, बड़े पराक्रमी और बलवान हैं । वे समस्त राक्षसोंका नाश कर सकते हैं ॥ २३ ॥ यदि शूर्पणखाके कहनेसे खरने जनस्थानपर चढ़ाई की और पुण्य कर्मोंके करनेवाले रामचन्द्रने उसे मार डाला तो इसमें रामचन्द्रका क्या अपराध है । इसका निर्णय तुम्हीं करो ॥ २४ ॥ तुम मेरे बन्धु हो, तुम्हारे हितकी इच्छासे मैं ये बातें तुमसे कह रहा हूँ । यदि तुम न मानोगे तो सीधे चलनेवाले रामचन्द्रके बाणोंसे युद्धमें अपने बान्धवोंके साथ मारे जाओगे ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका उन्तालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३९ ॥

मारीचके ये वचन जो उचित और मानने लायक थे, रावणने ग्रहण नहीं किये, जिस प्रकार मरनेवाला मनुष्य औषधि नहीं लेता ॥ १ ॥ पथ्य और हित बोलनेवाले मारीचसे राक्षसाधिप रावण कठोर और अनुचित वचन बोला, क्योंकि वह कालसे प्रेरित था ॥ २ ॥ कुलहीन मारीच, तुमने जो ये अयुक्त बातें कही हैं, वे मेरे लिए नितान्त निष्फल हैं, ऊसरमें बोये बीजके समान हैं ॥ ३ ॥ मूर्ख, पापी और विशेषकर मनुष्य रामचन्द्रसे युद्ध करनेके लिए उद्यत मुझको, ये तुम्हारे वाक्य रोक नहीं सकते ॥ ४ ॥ एक स्त्री केकयीके वचन सुनकर जो मित्र,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अवश्यं तु मया तस्य संयुगे खरघातिनः । प्राणैः प्रियतरा सीता हर्तव्या तव संनिधौ ॥ ६ ॥
एवं मे निश्चिता बुद्धिर्हृदि मारीच विद्यते । न व्यावर्तयितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ ७ ॥
दोषं गुणं वा संपृष्टस्त्वमेवं वक्तुमर्हसि । अपायं वा उपायं वा कार्यस्यास्य विनिश्चये ॥ ८ ॥
संपृष्टेन तु वक्तव्यं सचिवेन विपश्चिता । उद्यताञ्जलिना राज्ञो य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ ९ ॥
वाक्यमप्रतिकूलं तु मृदुपूर्वं शुभं हितम् । उपचारेण वक्तव्यो युक्तं च वसुधाधिपः ॥१०॥
सावमर्दं तु यद्वाक्यमथवा हितमुच्यते । नाभिनन्देत तद्राजा मानार्थी मानवर्जितम् ॥११॥
पञ्चरूपाणि राजानो धारयन्त्यमितौजसः । अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य यमस्य वरुणस्य च ॥१२॥
औष्ण्यं तथा विक्रमं च सौम्यं दण्डं प्रसन्नताम् । धारयन्ति महात्मानो राजानः क्षणदाचर ॥१३॥
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु मान्याः पूज्याश्च नित्यदा। त्वं तु धर्ममविज्ञाय केवलं मोहमाश्रितः ॥१४॥
अभ्यागतं तु दौरात्म्यात्परुषं वदसीदृशम् । गुणदोषौ न पृच्छामि क्षयं चात्मनि राक्षस ॥१५॥
मयोक्तमपि चैतावत्त्वां प्रत्यमितविक्रम । अस्मिंस्तु स भवान्कृत्ये साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥१६॥
शृणु तत्कर्म साहाय्ये यत्कार्यं वचनान्मम । सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतबिन्दुभिः ॥१७॥
आश्रमे तस्य रामस्य सीतायाः प्रमुखे चर । प्रलोभयित्वा वैदेहीं यथेष्टं गन्तुमर्हसि ॥१८॥

माता, पिता और राज्यको छोड़कर वन चला आया है, उस, खरको मारनेवाले रामचन्द्रके प्राणोंसे भी प्रिय सीताका हरण युद्धमें मैं अवश्य करूँगा। सो भी तुम्हारे सामने ॥ ५, ६ ॥ मारीच, यह मेरा निश्चित विचार है, इसको इन्द्र देवता, या असुर कोई भी नहीं बदल सकता ॥ ७ ॥ इस कार्यके निर्णय करनेके लिए, इसके गुण दोष, विघ्न तथा सिद्धिके उपाय, यदि मैं तुमसे पूछता तो तुमको वैसा कहना चाहिए था ॥ ८ ॥ जो बुद्धिमान मन्त्री अपना कल्याण चाहता हो, उसे राजाके पूछनेपर ही अपना अभिप्राय कहना चाहिए ॥ ९ ॥ अप्रतिकूल, कोमल, मधुर, हितकारी तथा नीतियुक्त बातें राजासे कहनी चाहिए ॥ १० ॥ तिरस्कारयुक्त वचन, हितकारीही क्यों न हों, राजा उसे पसन्द नहीं करता, क्योंकि राजा सम्मानार्थी होता है और वह वाक्य सम्मानरहित होता है ॥ ११ ॥ अमितपराक्रमी राजा पाँच रूप धारण करते हैं, अग्नि, इन्द्र, चन्द्रमा, यम और वरुणके रूप वे धारण करते हैं १२ ॥ हे राक्षस, उष्णता, पराक्रम, कोमलता, दण्ड और प्रसन्नता, महात्मा राजा धारण करते हैं ॥ १३ ॥ अतएव सब स्थानोंमें राजाका सम्मान करना चाहिए और उसकी पूजा करनी चाहिए। पर मन्त्रीधर्मको बिना जानेही तुम अज्ञानवश हो गये ॥ १४ ॥ मैं तुम्हारे यहाँ आया और तुम दुष्टतावश ऐसी कठोर बात मुझसे कहने लगे। मैंने अपने कर्तव्यके गुण-दोष तुमसे नहीं पूछे थे और न अपने क्षयकी ही बात पूछी थी ॥ १५ ॥ अमितपराक्रमी मारीच, मैंने तुमसे केवल इतना ही पूछा था कि इस काममें तुम हमारी सहायता कर सकोगे ॥ १६ ॥ सुनो, वह काम सुनो, जिस काममें मेरे कहनेसे तुम्हें मेरी सहायता करनी पड़ेगी। तुम सोनेका मृग बनो और तुमपर चाँदीके बिन्दु हों ॥ १७ ॥ रामचन्द्रके आश्रमके पास सीताके सामने घूमो। सीताको लुभाकर जिधर चाहो उधर चले जाओ ॥ १८ ॥ मायामय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्वां हि मायामयं दृष्ट्वा काञ्चनं जातविस्मया । आनयैनमिति क्षिप्रं रामं वक्ष्यति मैथिली ॥१९॥
अपक्रान्ते च काकुत्स्थे दूरं गत्वाप्युदाहर । हा सीते लक्ष्मणेत्येवं रामवाक्यानुरूपकम् ॥२०॥
तच्छ्रुत्वा रामपदवीं सीतया च प्रचोदितः । अनुगच्छति संभ्रान्तं सौमित्रिरपि सौहृदात् ॥२१॥
अपक्रान्ते च काकुत्स्थे लक्ष्मणे च यथासुखम् । आहरिष्यामि वैदेहीं सहस्राक्षः शचीमिव ॥२२॥
एवं कृत्वा त्विदं कार्यं यथेष्टं गच्छ राक्षस । राज्यस्यार्धं प्रदास्यामि मारीच तव सुव्रत ॥२३॥
गच्छ सौम्य शिवं मार्गं कार्यस्यास्य विवृद्धये । अहं त्वानुगमिष्यामि सरथो दण्डकावनम् ॥२४॥
प्राप्य सीतामयुद्धेन वञ्चयित्वा तु राघवम् । लङ्कां प्रति गमिष्यामि कृतकार्यः सह त्वया ॥२५॥
नो चेत्करोषि मारीच हन्मि त्वामहमद्य वै । एतत्कार्यमवश्यं मे बलादपि करिष्यसि ।
राज्ञो विप्रतिकूलस्थो न जातु सुखमेधते ॥२६॥
आसाद्य तं जीवितसंशयस्ते मृत्युर्ध्रुवो ह्यद्य मया विरुध्यतः ।
एतद्यथावत्परिगण्य बुद्ध्या यदत्र पथ्यं कुरु तत्तथा त्वम् ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

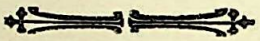

कांचन मृगको देखकर सीताको आश्चर्य होगा और वह शीघ्रही रामचन्द्रसे कहेगी, इसे ले आओ ॥ १९ ॥ आश्रमसे रामके दूर चले जानेपर तुम रामचन्द्रके शब्दोंमें, हा सीते, हा लक्ष्मण, कहो ॥ २० ॥यह सुनकर सीताकी प्रेरणासे और भ्रातृप्रेमसे घबड़ाकर लक्ष्मण भी रामचन्द्रके पीछे जायगा ॥ २१ ॥ रामचन्द्र और लक्ष्मणके चले जानेपर सुखपूर्वक मैं जानकीको हर ले आऊँगा, जिस प्रकार इन्द्रने शचीका हरण किया था ॥ २२ ॥ इस प्रकार मेरा यह कार्य करके तुम जहाँ चाहो जाओ । राक्षस सुव्रत मारीच, मैं तुमको अपना आधा राज्य दूंगा ॥ २३ ॥ इस कार्य-सिद्धिके लिए मनोहर मृगका रूप धारण करो । मैं तुम्हारे साथ-साथ रथपर दण्डकारण्य चलता हूँ ॥ २४ ॥ रामचन्द्रको धोखा देकर और बिना युद्धके सीताको लेकर और इस प्रकार अपना मनोरथ पूर्ण कर तुम्हारे साथ लंका लौट जाऊँगा ॥ २५ ॥ मारीच, यदि तुम मेरा यह काम नहीं करोगे तो तुम्हें मार डालूँगा । यह मेरा काम जबरदस्तीसे भी तुम्हे करनाही पड़ेगा । राजाके प्रतिकूल चलनेसे कोई सुखी नहीं होता ॥ २६ ॥ रामचन्द्रके सामने जानेसे तुम्हें मृत्युका भय है और मुझसे विरोध करनेपर तुम्हारी मृत्यु निश्चित है, इन सबका बुद्धिपूर्वक विचार कर जो हित हो वह तुम करो ॥ २७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका चालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४० ॥

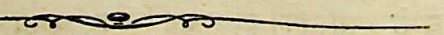

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकचत्वारिंशः सर्गः ४१

आज्ञप्तो रावणेनेत्थं प्रतिकूलं च राजवत् । अब्रवीत्परुषं वाक्यं निःशङ्को राक्षसाधिपम् ॥ १ ॥
केनायमुपदिष्टस्ते विनाशः पापकर्मणा । सपुत्रस्य सराज्यस्य सामात्यस्य निशाचर ॥ २ ॥
कस्त्वया सुखिना राजन्नाभिनन्दति पापकृत् । केनेदमुपदिष्टं ते मृत्युद्वारमुपायतः ॥ ३ ॥
शत्रवस्तव सुव्यक्तं हीनवीर्या निशाचर । इच्छन्ति त्वां विनश्यन्तमुपरुद्धं बलीयसा ॥ ४ ॥
केनेदमुपदिष्टं ते क्षुद्रेणाहितबुद्धिना । यस्त्वामिच्छति नश्यन्तं स्वकृतेन निशाचर ॥ ५ ॥
वध्याः खलु न वध्यन्ते सचिवास्तव रावण । ये त्वामुत्पथमारूढं न निगृह्णन्ति सर्वशः ॥ ६ ॥
अमात्यैः कामवृत्तो हि राजा कापथमाश्रितः । निग्राह्यः सर्वथा सद्भिः स निग्राह्यो न गृह्यसे ॥ ७ ॥
धर्ममर्थं च कामं च यशश्च जयतां वर । स्वामिप्रसादात्सचिवाः प्राप्नुवन्ति निशाचर ॥ ८ ॥
विपर्यये तु तत्सर्वं व्यर्थं भवति रावण । व्यसनं स्वामिवैगुण्यात्प्राप्नुवन्तीतरे जनाः ॥ ९ ॥
राजमूलो हि धर्मश्च यशश्च जयतां वर । तस्मात्सर्वास्ववस्थासु रक्षितव्या नराधिपाः ॥१०॥
राज्यं पालयितुं शक्यं न तीक्ष्णेन निशाचर । न चातिप्रतिकूलेन नाविनीतेन राक्षस ॥११॥
ये तीक्ष्णमन्त्राः सचिवा भुज्यन्तेसह तेन वै । विषमेषु रथाः शीघ्रं मन्दसारथयो यथा ॥१२॥
बहवः साधवो लोके युक्तधर्ममनुष्ठिताः । परेषामपराधेन विनष्टाः सपरिच्छदाः ॥१३॥

राजाके समान, रावणके द्वारा ऐसी प्रतिकूल आज्ञा पाकर मारीच निःशंक होकर राक्षसाधिपति रावणसे कठोर वचन बोला ॥ १ ॥ किस पापीने पुत्र, राज्य और अमात्योंके साथ तुम्हारे विनाशका यह मार्ग बतलाया है ॥ २ ॥ कौन पापी तुमको सुखी देखकर प्रसन्न नहीं होता है, किसने तुम्हें यह चतुराईसे मृत्युका द्वार बतलाया है ॥ ३ ॥ निशाचर, निश्चित हो गया कि तुम्हारे दुर्बल शत्रु तुम्हे किसी बलवानसे भिड़ाकर तुम्हारा नाश देखना चाहते हैं ॥ ४ ॥ किस क्षुद्रबुद्धि,, शत्रुने तुम्हें यह उपदेश दिया है, वह तुम्हारे कर्मोंहीके द्वारा तुम्हे नष्ट करना चाहता है ॥ ५ ॥ जो तुम्हारे मन्त्री कुमार्गमें जानेसे तुमको नहीं रोकते वे वधके योग्य हैं, उन मन्त्रियोंका वध तुम क्यों नहीं करते ॥ ६ ॥ जो राजा स्वेच्छाचारी होकर कुपथपर चलने लगता है, अच्छे अमात्योंको उसे रोकना चाहिए; पर तुम्हारे अमात्य तुम्हें नहीं रोकते ॥ ७ ॥ विजयी श्रेष्ठ राक्षस, धर्म अर्थ काम और यश ये सब स्वामीकी प्रसन्नतासे ही मन्त्रियोंको प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥ यदि स्वामी संकटमें पड़ जाय तो ये सब व्यर्थ हैं । स्वामीको कष्ट होनेसे राज्यके अन्य मनुष्योंको भी कष्ट होता है ॥ ९ ॥ विजयी श्रेष्ठ, राजाहीके कारण धर्म और यश होता है, इस कारण सब स्थानोंमें राजाकी रक्षा करनी चाहिए ॥ १० ॥ उग्रतासे राज्यका पालन नहीं किया जा सकता । प्रजासे विरोध कर तथा इन्द्रियोंके अधीन रहकर राज्य पालन नहीं किया जा सकता ॥ ११ ॥ राजाको तीक्ष्ण उपाय बतलानेवाले मन्त्री, इसका फल राजाके साथ भोगते हैं, जिस प्रकार मूर्ख सारथिवाला रथ ऊबड़-खाबड़ रास्तेमें अपने सारथीके साथ दुखी होता है॥१२॥ बहुतसे धर्मात्मा योगनिष्ठ अपराधहीन सज्जन अपने साथियोंके साथ दूसरोंके अपराधसे नष्ट

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वामिना प्रतिकूलेन प्रजास्तीक्ष्णेन रावण । रक्ष्यमाणा न वर्धन्ते मृगा गोमायुना यथा ॥१४॥
अवश्यं विनशिष्यन्ति सर्वे रावण राक्षसाः । येषां त्वं कर्कशो राजा दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः ॥१५॥
तदिदं काकतालीयं घोरमासादितं मया । अत्र त्वं शोचनीयोऽसि ससैन्यो विनशिष्यसि॥१६॥
मां निहत्य तु रामोऽसावचिराच्त्वां वधिष्यति ।अनेन कृतकृत्योऽस्मि म्रिये चाप्यरिणा हतः॥१७॥
दर्शनादेव रामस्य हतं मामवधारय ।आत्मानं च हतं विद्धि हृत्वा सीतां सबान्धवम्॥१८॥
आनयिष्यसि चेत्सीतामाश्रमात्सहितो मया । नैव त्वमपि नाहं वै नैव लङ्का न राक्षसाः॥१९॥
निवार्यमाणस्तु मया हितैषिणा न मृष्यसे वाक्यमिदं निशाचर ।
परेतकल्पा हि गतायुषो नरा हितं न गृह्णन्ति सुहृद्विरीरितम् ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥४१॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ४२

एवमुक्त्वा तु परुषं मारीचो रावणं ततः । गच्छावेत्यब्रवीद्दीनो भयाद्रात्रिंचरप्रभोः ॥ १ ॥
दृष्टश्चाहं पुनस्तेन शरचापासिधारिणा । मद्वधोद्यतशस्त्रेण निहितं जीवितं च मे ॥ २ ॥

हो गए हैं ॥ १३ ॥ कठोरदण्ड देनेवाले और प्रतिकूल राजाके द्वारा रक्षित प्रजाकी वृद्धि नहीं होती, जिस प्रकार मृगाको खानेवाले शृगालके द्वारा रक्षित मृगाकी ॥ १४ ॥ रावण, अवश्य ही सब राक्षसोंका विनाश होगा, क्योंकि उनके राजा तुम, कठोर दुर्बुद्धि और अजितेन्द्रिय हो ॥ १५ ॥ यह कठोर फल भोग (तुम्हारे द्वारा मृत्यु) मुझे आकस्मिक प्राप्त हो रहा है, फिर भी तुम अपनी समस्त सेनाके साथ विनष्ट हो जाओगे, इसलिए, मैं तुम्हारे लिए शोक करता हूँ ॥ १६ ॥ मुझको मारकर रामचन्द्र शीघ्रही तुम्हारा वध करेंगे । शत्रु रामके द्वारा मैं मारा जाऊँगा, इससे मैं प्रसन्न हूँ ॥ १७ ॥ रामचन्द्रके सामने जाते ही मैं मारा जाऊँगा, यह तुम निश्चित समझो और सीताके हरण करनेपर बान्धवोंके साथ अपनेको भी मरा हुआ समझो ॥१८॥ मेरे साथ जाकर आश्रमसे यदि तुम सीताको ले आओगे तो मैं, तुम, लंका और समस्त राक्षस कोई भी नहीं बचेगा ॥ १९ ॥ निशाचर, हितैषी मैं तुम्हें रोक रहा हूँ, पर तुम मेरी बात नहीं सुनते । जिनकी आयु नष्ट हो गयी है, ऐसे मरनेवाले मनुष्य, मित्रोंके हित उपदेश नहीं सुनते ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका एकतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४१॥

रावणसे ऐसा कठोर वचन कहकर, राक्षसपतिके भयसे दीन बना हुआ मारीच बोला—हमलोग चलें ॥ १ ॥ मेरा वध करनेके लिए जिसने शस्त्र उठाया है, उस धनुष-बाण,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहि रामं पराक्रम्य जीवन्प्रतिनिवर्तते । वर्तते प्रतिरूपोऽसौ यमदण्डहतस्य ते ॥ ३ ॥
किं तु कर्तुं मया शक्यमेवं त्वयि दुरात्मनि । एष गच्छाम्यहं तात स्वस्ति तेऽस्तु निशाचर ॥ ४ ॥
प्रहृष्टस्त्वभवत्तेन वचनेन स राक्षसः । परिष्वज्य सुसंश्लिष्टमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥
एतच्छौटीर्ययुक्तं ते मच्छन्दवशवर्तिनः । इदानीमासि मारीचः पूर्वमन्यो हि राक्षसः ॥ ६ ॥
आरुह्यतामयं शीघ्रं खगो रत्नविभूषितः । मया सह रथो युक्तः पिशाचवदनैः खरैः ॥ ७ ॥
प्रलोभयित्वा वैदेहीं यथेष्टं गन्तुमर्हसि । तां शून्ये प्रसभं सीतामानयिष्यामि मैथिलीम् ॥ ८ ॥
ततस्तथेत्युवाचैनं रावणं ताटकासुतः । ततो रावणमारीचौ विमानमिव तं रथम् ॥ ९ ॥
आरुह्यायतुः शीघ्रं तस्मादाश्रममण्डलात् । तथैव तत्र पश्यन्तौ पत्तनानि वनानि च ॥१०॥
गिरींश्च सरितः सर्वा राष्ट्राणि नगराणि च । समेत्य दण्डकारण्यं राघवस्याश्रमं ततः ॥११॥
ददर्श सहमारीचो रावणो राक्षसाधिपः । अवतीर्य रथात्तस्मात्ततः काञ्चनभूषणात् ॥१२॥
हस्ते गृहीत्वा मारीचं रावणो वाक्यमब्रवीत् । एतद्रामाश्रमपदं दृश्यते कदलीवृतम् ॥१३॥
क्रियतां तत्सखे शीघ्रं यदर्थं वयमागताः । स रावणवचः श्रुत्वा मारीचो राक्षसस्तदा ॥१४॥
मृगो भूत्वाश्रमद्वारि रामस्य विचचार ह । स तु रूपं समास्थाय महदद्भुतदर्शनम् ॥१५॥
मणिप्रवरशृङ्गाग्रः सितासितमुखाकृतिः । रक्तपद्मोत्पलमुख इन्द्रनीलोत्पलश्रवाः ॥१६॥

तलवार धारण करनेवाले रामचन्द्रने यदि मुझे देख लिया तो अवश्य ही मेरे प्राण नष्ट हो जायँगे ॥ २ ॥ रामचन्द्रपर आक्रमण कर कोई जीता नहीं लौट सकता । तुम्हारे ऊपर यमराज-का दण्ड पड़ा है और रामचन्द्र उसके योग्य हैं अर्थात् तुम और हम अवश्य ही मारे जायंगे ॥ ३ ॥ पर जब तुम इतने पापी हो गए हो तो मैं क्या कर सकता हूँ । भाई, यह मैं चलता हूँ, तुम्हारा कल्याण हो ॥ ४ ॥ मारीचके इस वचनसे रावण प्रसन्न हुआ और उसका गाढ़ आलिंगन करके बोला ॥ ५ ॥ मेरी आज्ञाके अनुसार काम करनेवाले, तुम्हारे ये शब्द वीरताके हैं । इसी समय तुम ठीक-ठीक मारीच हुए हो, पहले तुम कोई दूसरे राक्षस थे ॥६॥ पिशाचोंकेसे मुखवालेगधोंसे युक्त रत्नविभूषित इस आकाशगामी रथपर तुम मेरे साथ बैठो ॥७॥ सीताको लुभा कर तुम जहाँ चाहे चले जाना । सीताको एकान्तमें पाकर मैं उसे जबरदस्ती हर लाऊँगा ॥८॥ ताटकाके पुत्र मारीचने रावणकी वह बात मान ली । तब रावण और मारीच विमानके समान ऊँचे उस रथपर चढ़कर मारीचके आश्रमसे शीघ्र चले और उसी प्रकार नगरों और वनोंको देखते हुए चले ॥ ९, १० ॥ पर्वतों, नदियों, देशों और नगरोंको देखते हुए उन राक्षसाधिपति रावण और मारीचने दण्डकारण्य वनमें रामचन्द्रका आश्रम देखा । सुवर्णभूषित उस रथसे उतरकर और मारीचका हाथ पकड़कर रावण बोला—यही केलोंसे घिरा हुआ वह आश्रम है ॥११,१२,१३॥ मित्र, शीघ्रही वह काम करो, जिस कामके लिए हम लोग आये हैं । रावणके वचन सुनकर उस समय मारीच राक्षस मृग बन गया और बहुतही अद्भुत रूप धारण करके रामचन्द्रके आश्रमके सामने घूमने लगा ॥ १४, १५ ॥ उसकी सींगें इन्द्रनील मणिके समान थीं, उसका मुख कहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किंचिदत्युन्नतग्रीव इन्द्रनीलनिभोदरः । मधूकनिभपार्श्वश्च कंजकिंजल्कसंनिभः ॥१७॥
वैदूर्यसंकाशखुरस्तनुजङ्घः सुसंहतः । इन्द्रायुधसवर्णेन पुच्छेनोर्ध्वं विराजितः ॥१८॥
मनोहरस्निग्धवर्णो रत्नैर्नानाविधैर्वृतः । क्षणेन राक्षसो जातो मृगः परमशोभनः ॥१९॥
वनं प्रज्वलयन्रम्यं रामाश्रमपदं च तत् । मनोहरं दर्शनीयं रूपं कृत्वा स राक्षसः ॥२०॥
प्रलोभनार्थं वैदेह्या नानाधातुविचित्रितम् । विचरन्गच्छते शष्पं शाद्वलानि समन्ततः ॥२१॥
रोप्यैर्बिन्दुशतैश्चित्रं भूत्वा च प्रियनन्दनः । विटपीनां किसलयान्भक्षयन्विचचार ह ॥२२॥
कदलीगृहकं गत्वा कर्णिकारानितस्ततः । तमाश्रमं मन्दगतिं सीतासंदर्शनं ततः ॥२३॥
राजीवचित्रपृष्ठः स विरराज महामृगः । रामाश्रमपदाभ्याशे विचचार यथासुखम् ॥२४॥
पुनर्गत्वा निवृत्तश्च विचचार मृगोत्तमः । गत्वा मुहूर्तं त्वरया पुनः प्रतिनिवर्तते ॥२५॥
विक्रीडँश्च पुनर्भूमौ पुनरेव निषीदति । आश्रमद्वारमागम्य मृगयूथानि गच्छति ॥२६॥
मृगयूथैरनुगतः पुनरेव निवर्तते । सीतादर्शनमाकाङ्क्षन्राक्षसो मृगतां गतः ॥२७॥
परिभ्रमति चित्राणि मण्डलानि विनिष्पतन् । समुद्वीक्ष्य च सर्वे तं मृगा येऽन्ये वनेचराः॥२८॥
उपगम्य समाघ्राय विद्रवन्ति दिशो दश । राक्षसः सोऽपि तान्वन्यान्मृगान्मृगवधे रतः ॥२९॥

सफेद और कहीं काला था, रक्तकमलके समान उसका मुख था, सुन्दर नीलकमलके समान उसके कान थे, गरदन थोड़ी ऊँची थी और इन्द्रनीलके समान पेट था, महुआके पुष्पके समान पञ्जरी थी, कमलके परागके समान उसका रंग था, वैदूर्यमणिके समान उसके खुर थे, जाँघ पतली थी और वह गड़ा हुआ था, इन्द्रधनुषके समान उसकी पूँछ उठी हुई थी, जिससे वह सुन्दर मालूम होता था। उसका वर्ण अत्यन्त मनोहर और दर्शनीय था, अनेक रत्नोंसे वह युक्त था, एकही क्षणमें वह राक्षस अत्यन्त सुन्दर मृग बन गया ॥ १६, १७, १८, १९ ॥ वह राक्षस नाना धातुओंसे चित्रित दर्शनीय और मनोहर रूप बनाकर, उस रमणीय वनको तथा रामचन्द्रके आश्रमको प्रकाशित करता हुआ, सीताको लुभानेके लिए हरी घासको खाता हुआ घूमने लगा ॥ २०, २१ ॥ वह चाँदीके सैकड़ों विंदुओंसे चित्रित और प्रिय मृग वृक्षोंके पत्ते खाता हुआ घूमने लगा ॥ २२ ॥ कदली वनमें जाकर वह कर्णिकार वनमें गया, सीताको दिखायी पड़नेके लिए धीरे-धीरे उस आश्रममें विचरण करने लगा ॥ २३ ॥ वह महामृग, जिसकी पीठ कमलके केसरके समान थी, बड़ाही सुन्दर मालूम पड़ता था। वह रामचन्द्रके आश्रमके पास सुखपूर्वक घूमने लगा ॥ २४ ॥ वह मृगश्रेष्ठ थोड़ी दूर आगे गया और पुनः लौट आया, एक मुहूर्तमें शीघ्रतापूर्वक वह गया और फिर लौट आया ॥ २५ ॥ इस प्रकार खेलता हुआ, कहीं जाकर वह बैठ जाता है, पुनः आश्रम द्वारपर आकर मृग यूथोंकी ओर जाता है, ॥ २६ ॥ जब मृगयूथ इसकी ओर आने लगता है, तब यह मृग बना हुआ राक्षस सीताका दर्शन होनेके लिए लौट आता है ॥ २७ ॥ सीताके समीप जाता हुआ, बड़े अद्भुत चक्करके रूपमें दौड़ता है। वनमें रहनेवाले दूसरे मृग उसे देखकर उसके समीप आते हैं और सूँघकर दिशाओंमें भाग जाते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रच्छादनार्थं भावस्य न भक्षयति संस्पृशन् । तस्मिन्नेव ततः काले वैदेही शुभलोचना ॥३०॥
कुसुमापचये व्यग्रा पादपानत्यवर्तत । कार्णिकारानशोकाँश्च चूताँश्च मदिरेक्षणा ॥३१॥
कुसुमान्यपचिन्वन्ती चचार रुचिराननना । अनर्हा वनवासस्य सा तं रत्नमयं मृगम् ॥३२॥
मुक्तामणिविचित्राङ्गं ददर्श परमाङ्गना । तं वै रुचिरदन्तोष्ठं रूप्यधातुतनूरुहम् ॥३३॥
विस्मयोत्फुल्लनयना सस्नेहं समुदैक्षत । स च तां रामदयितां पश्यन्मायामयो मृगः॥३४॥
विचचार ततस्तत्र दीपयन्निव तद्वनम् । अदृष्टपूर्वं दृष्ट्वा तं नानारत्नमयं मृगम् ॥
विस्मयं परमं सीता जगाम जनकात्मजा ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥४२॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ४३

सा तं संप्रेक्ष्य सुश्रोणी कुसुमानि विचिन्वती । हेमराजतवर्णाभ्यां पार्श्वाभ्यामुपशोभितम् ॥ १ ॥
प्रहृष्टा चानवद्याङ्गी मृष्टहाटकवर्णिनी । भर्तारमपि चक्रन्द लक्ष्मणं चैव सायुधम् ॥ २ ॥
आहूयाहूय च पुनस्तं मृगं साधु वीक्षते । आगच्छागच्छ शीघ्रं वै आर्यपुत्र सहानुज ॥ ३ ॥
तावाहूतौ नरव्याघ्रौ वैदेह्या रामलक्ष्मणौ । वीक्षमाणौ तु तं देशं तदा ददृशतुर्मृगम् ॥ ४ ॥
शङ्कमानस्तु तं दृष्ट्वा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् । तमेवैनमहं मन्ये मारीचं राक्षसं मृगम् ॥ ५ ॥

मृगोंको मारनेवाला वह राक्षस भी उन जंगली मृगोंको अपना रूप छिपानेके लिए नहीं खाता था । उसी समय सुनयना जानकी फूल तोड़ती हुई, कर्णिकार, अशोक और आमके पेड़ोंके पास आयीं ॥ २८, २९, ३० ३१ ॥ फूल तोड़ती हुई, वनवासके अयोग्य, उस श्रेष्ठ स्त्रीने रत्नमय मृगको देखा ॥ ३२ ॥ उस श्रेष्ठ स्त्रीने मुक्ता और मणिसे चित्रित सुन्दर ओष्ठवाले तथा चाँदीके बालवाले मृगाको देखा ॥ ३३ ॥ विस्मयसे उसकी आँखें खिल गयीं और बड़े स्नेहसे वह उसे देखने लगीं । रामचन्द्रकी स्त्रीको देखता हुआ वह मायामृग उस वनको प्रकाशित करता हुआ विचरण करने लगा । पहले-पहल ऐसा अद्भुत नानारत्नमय मृगाको देखकर जनककन्या सीताको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३४, ३५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणका अरण्यकाण्डका बयालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४२ ॥

फूल चुनती हुई, सुन्दर अंगोंवाली और कनकके समान वर्णवाली सुश्रोणी सीता, सोना और चाँदीके रंगवाले दोनों पार्श्वोंसे शोभित उस मृगाको देखकर बहुतही प्रसन्न हुई और उसने पतिको और अस्त्र लिये हुए लक्ष्मणको पुकारा ॥ १, २ ॥ वह बार-बार पुकार कर उस मृगाको अच्छी तरह देखती है । कहती है आर्यपुत्र लक्ष्मणके साथ शीघ्र आइये ॥ ३ ॥ जानकीके पुकारने पर राम और लक्ष्मण दोनों देखते हुए, वहाँ आये और उन लोगोंने उस मृगाको देखा ॥ ४ ॥ उसको देखकर तथा शंकित होकर लक्ष्मण बोले—मैं समझता हूँ कि यह मृगा वही मारीच राक्षस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चरन्तो मृगयां हृष्टाः पापेनोपाधिना वने । अनेन निहता राम राजानः पापरूपिणा ॥ ६ ॥
अस्य मायाविदो मायामृगरूपमिदं कृतम् । भानुमत्पुरुषव्याघ्र गन्धर्वपुरसंनिभम् ॥ ७ ॥
मृगो ह्येवंविधो रत्नविचित्रो नास्ति राघव । जगत्यां जगतीनाथ मायैषा हि न संशयः ॥ ८ ॥
एवं ब्रुवाणं काकुत्स्थं प्रतिवार्य शुचिस्मिता । उवाच सीता संहृष्टा छद्मना हृतचेतना ॥ ९ ॥
आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मनः । आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति ॥१०॥
इहाश्रमपदेऽस्माकं बहवः पुण्यदर्शनाः । मृगाश्चरन्ति सहिताश्चमराः सृमरास्तथा ॥११॥
ऋक्षाः पृषतसङ्घाश्च वानराः किन्नरास्तथा । विहरन्ति महाबाहो रूपश्रेष्ठा महाबलाः ॥१२॥
न चान्यः सदृशो राजन्दृष्टः पूर्वं मृगो मया । तेजसा क्षमया दीप्त्या यथायं मृगसत्तमः ॥१३॥
नानावर्णविचित्राङ्गो रत्नभूतो ममाग्रतः । द्योतयन्वनमव्यग्रं द्योतते शशिसंनिभः ॥१४॥
अहो रूपमहो लक्ष्मीः स्वरसंपच्च शोभना । मृगोऽद्भुतो विचित्राङ्गो हृदयं हरतीव मे ॥१५॥
यदि ग्रहणमभ्येतिं जीवन्नेव मृगस्तव । आश्चर्यभूतं भवति विस्मयं जनयिष्यति ॥१६॥
समाप्तवनवासानां राज्यस्थानां च नः पुनः । अन्तःपुरे विभूषार्थो मृग एष भविष्यति ॥१७॥
भरतस्यार्यपुत्रस्य श्वश्रूणां मम च प्रभो । मृगरूपमिदं दिव्यं विस्मयं जनयिष्यति ॥१८॥
जीवन्न यदि तेऽभ्येतिं ग्रहणं मृगसत्तमः । अजिनं नरशार्दूल रुचिरं तु भविष्यति ॥१९॥

है ॥ ५ ॥ स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाले इस पापीने कपटरूप धरकर वनमें आखेट करनेके लिए आए हुए अनेक राजाओंको मारा है ॥ ६ ॥ माया जाननेवाले मारीचकी यह मायाही है, जो इसने मृगाका रूप धारण किया है । हे पुरुषसिंह, प्रकाशमान गन्धर्वनगरके समान यह असत्य है ॥ ७ ॥ हे जगतीनाथ राम, रत्नोंसे चित्रित ऐसा मृग संसारमें नहीं देखा गया है । यह माया है, इसमें संदेह नहीं ॥ ८ ॥ इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मणको रोक कर सुन्दर स्मित करनेवाली सीता प्रसन्न होकर बोली, मायाके द्वारा उसकी मति मारी जा चुकी थी ॥ ९ ॥ आर्यपुत्र, यह मृगा बड़ाही सुन्दर है, यह मेरा मन हरता है, आप इसे ले आवें, हम लोगोंके खेलके लिए यह होगा ॥ १० ॥ हम लोगोंके इस आश्रममें बड़ेही दर्शनीय, भिन्न-भिन्न जातिके मृग एक साथ चरते हैं । चमर, सृमर, ऋक्ष, पृषत्, संघ, वानर और किन्नर आदि । महाबाहो, वे सभी सुन्दर और बली होते हैं ॥ ११, १२ ॥ पर राजन्, मैंने दूसरा ऐसा मृग पहले नहीं देखा है, जैसा कि यह तेजस्वी सौम्य और दीप्तिमान् है ॥ १३ ॥ यह अनेक वर्णोंसे चित्रित और रत्नमय है । यह चन्द्रमाके समान सुन्दर, निर्भय होकर वनको प्रकाशित करता हुआ मेरे सामने स्वयं प्रकाशित हो रहा है ॥ १४ ॥ कैसा रूप है, कैसी शोभा है, कैसी सुन्दर बोली है! विचित्रांग, यह अद्भुत मृग मेरा मन हर रहा है ॥ १५ ॥ यदि मृग जीता हुआही पकड़ लिया जाय तब तो बड़ा आश्चर्य है, यह बहुत लोगोंको विस्मित करेगा ॥१६॥ जब हम लोगोंके वनवासकी अवधि समाप्त हो जायगी, जब हम लोग राज्य पावेंगे । उस समय यह मृग हम लोगोंका राजनिवासमें मनोरञ्जन करेगा ॥१७॥ भरत, आप और मेरी सासोंको यह दिव्य मृगरूपी खिलौना विस्मित करेगा । यदि ये जीता न पकड़ा जा सके तो भी इसका मृगचर्म बड़ाही सुन्दर होगा ॥ १८ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निहतस्यास्य सत्त्वस्य जाम्बूनदमयत्वचि । शष्पबृस्यां विनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम्॥२०॥
कामवृत्तमिदं रौद्रं स्त्रीणामसदृशं मतम् । वपुषा त्वस्य सत्त्वस्य विस्मयो जनितो मम ॥२१॥
तेन काञ्चनरोम्णा तु मणिप्रवरशृङ्गिणा । तरुणादित्यवर्णेन नक्षत्रपथवर्चसा ॥२२॥
बभूव राघवस्यापि मनो विस्मयमागतम् । इति सीतावचः श्रुत्वा दृष्ट्वा च मृगमद्भुतम्॥२३॥
लोभितस्तेन रूपेण सीतया च प्रचोदितः । उवाच राघवो हृष्टो भ्रातरं लक्ष्मणं वचः ॥२४॥
पश्य लक्ष्मण वैदेह्याः स्पृहामुल्लसितामिमाम् । रूपश्रेष्ठतया ह्येष मृगोऽद्य न भविष्यति ॥२५॥
न वने नन्दनोद्देशे न चैत्ररथसंश्रये ।कुतः पृथिव्यां सौमित्रे योऽस्य कश्चित्समो मृगः॥२६॥
प्रतिलोमानुलोमाश्च रुचिरा रोमराजयः । शोभन्ते मृगमाश्रित्य चित्राः कनकबिन्दुभिः॥२७॥
पश्यास्य जृम्भमाणस्य दीप्तामाग्नेयशिखोपमाम् । जिह्वां मुखान्निः सरन्तीं मेघादिव शतह्रदाम्॥२८॥
मसारगल्वर्कमुखः शङ्खमुक्तानिभोदरः । कस्य नामानिरूप्योऽसौ न मनो लोभयेन्मृगः॥२९॥
कस्य रूपमिदं दृष्ट्वा जाम्बूनदमयप्रभम् । नानारत्नमयं दिव्यं न मनो विस्मयं व्रजेत् ॥३०॥
मांसहेतोरपि मृगान्विहारार्थं च धन्विनः । घ्नन्ति लक्ष्मण राजानो मृगयायां महावने ॥३१॥
धनानि व्यवसायेन विचीयन्ते महावने । धावतो विविधाश्चापि मणिरत्नसुवर्णिनः ॥३२॥

जब यह मृगा मारा जायगा, तब घासकी चटाईपर इसकी सुवर्णमय खाल बिछाकर मैं आपके पास बैठूंगी ॥ २० ॥ अपनी इच्छा-पूर्तिके लिए जो मैं आपसे यह कह रही हूँ, वह कठोर है और स्त्रियोंके लिए अनुचित है, यह मैं जानती हूं, फिर भी इस मृगाके देखनेसे मुझे नितान्त कुतूहल उत्पन्न हो गया है ॥२१॥ सोनेके रोमवाले, नीलमणिके सींगवाले, प्रौढ़ सूर्यके समान वर्णवाले और नक्षत्रमार्गके समान चित्रित उस मृगाको देखकर तथा सीताके वचन सुनकर रामचन्द्रके मनमें भी कुतूहल उत्पन्न हुआ ॥ २२, २३ ॥ उसके रूपपर रामचन्द्र मुग्ध हो गये (सीताके द्वारा प्रेरित होकर) रामचन्द्र लक्ष्मणसे इस प्रकार बोले ॥ २४ ॥ लक्ष्मण, देखो जानकी कितना अधिक प्रसन्न हुई है । यह मृग बहुतही सुन्दर है, इस कारण अब जी नहीं सकता ॥ २५ ॥ नन्दनवन और चैत्ररथ वनमें भी इसके ऐसा मृगा नहीं होता, फिर पृथिवीमें कहाँसे हो सकता है ॥ २६ ॥ कुछ सीधे और कुछ टेढ़े इस मृगाके सुन्दर बाल, जो सोनेकी बिन्दुसे चित्रित हुए हैं, देखनेमें भले मालुम पड़ते हैं ॥ २७ ॥ जम्हाई लेनेके समय इसके मुँहसे निकली हुई जीभ अग्निशिखाके समान प्रदीप्त मालुम होती है, जिस प्रकार मेघसे बिजली निकली हो ॥ २८ ॥ इन्द्रनील मणिके प्यालेके समान इसका मुँह है और शंख और मोतीके समान पेट । यह समझमें न आनेवाला किसके मनको लुब्ध नहीं करता ॥ २९ ॥ यह सुवर्ण और मोतियोंका बना हुआ दिव्य रूप देखकर किसका मन विस्मित नहीं हो जाता ॥ ३० ॥ लक्ष्मण, मांसके लिए तथा क्रीड़ाके लिए भी धनुर्धारी राजा आखेटमें मृगोंको मारा करते हैं ॥३१॥ मणि, रत्न और सुवर्ण आदि अनेक धातुओंको धनार्थी लोग उद्योगके द्वारा वनमें ढूँढ़ा करते हैं ॥ ३२ ॥ ये सब जंगली धन मनुष्योंके खजाना बढ़ानेवाले बड़े श्रेष्ठ धन हैं । जिस प्रकार मुक्त मनुष्यकी मानसिक चिन्तासे प्राप्त योग्य वस्तु

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तत्सारमखिलं नृणां धनं निचयवर्धनम् । मनसा चिन्तितं सर्वं यथा शुक्रस्य लक्ष्मण ॥३३॥
अर्थी येनार्थकृत्येन संव्रजत्याविचारयन् । तमर्थमर्थशास्त्रज्ञाः प्राहुरर्थ्याः सुलक्ष्मण ॥३४॥
एतस्य मृगरत्नस्य पार्श्वे काञ्चनत्वचि । उपवेक्ष्यति वैदेही मया सह सुमध्यमा ॥३५॥
न कादली न प्रियकी न प्रवेणी न चाविकी । भवेदेतस्य सदृशी स्पर्शेऽनेनेति मे मतिः ॥३६॥
एष चैव मृगः श्रीमान्यश्च दिव्यो नभश्चरः । उभावेतौ मृगौ दिव्यौ तारामृगमहीमृगौ ॥३७॥
यदि वायं तथा यन्मा भवेद्वदसि लक्ष्मण । मायैषा राक्षसस्येति कर्तव्योऽस्य वधो मया ॥३८॥
एतेन हि नृशंसेन मारीचेनाकृतात्मना । वने विचरता पूर्वं हिंसिता मुनिपुंगवाः ॥३९॥
उत्थाय बहवो येन मृगयायां जनाधिपाः । निहताः परमेष्वासास्तस्माद्वध्यस्त्वयं मृगः ॥४०॥
पुरस्तादिह वातापिः परिभूय तपस्विनः । उदरस्थो द्विजान्हन्ति स्वगर्भोऽश्वतरीमिव ॥४१॥
स कदाचिच्चिराल्लोके आससाद महामुनिम् । अगस्त्यं तेजसा मुक्तं भक्ष्यरतस्य बभूव ह ॥४२॥
समुत्थाने च तद्रूपं कर्तुकामं समीक्ष्य तम् । उत्स्मयित्वा तु भगवान्वातापिमिदमब्रवीत् ॥४३॥
त्वयाविगण्य वातापे परिभूताश्च तेजसा । जीवलोके द्विजश्रेष्ठास्तस्मादसि जरां गतः ॥४४॥
तदेतन्नभवेद्रक्षो वातापिरिव लक्ष्मण । मद्विधं योऽतिमन्येत धर्मनित्यं जितेन्द्रियम् ॥४५॥

श्रेष्ठ समझी जाती हैं, उसी प्रकार यह जंगली धन भी सर्वश्रेष्ठ है ॥ ३३ ॥ अर्थी मनुष्य बिना सोचे-समझे जिस वस्तुकी प्राप्तिके लिए उसके पास जाय, उसको अर्थशास्त्रज्ञ तथा अर्थ रखनेवाले मनुष्य अर्थ कहते हैं। अतएव यह मृग भी अर्थ हुआ ॥ ३४ ॥ इस मृग-श्रेष्ठके उत्तम सोनेके चर्मपर वैदेही मेरे साथ बैठेगी ॥ ३५ ॥ इस मृगके चर्मके समान कोमल कदली, प्रियक (कोमल लम्बे और सघन बालवाले मृग), प्रवेधी (यह भी एक तरहका मृग है) और भेंडके चर्म नहीं होते, ऐसा मैं समझता हूं ॥ ३६ ॥ सुन्दर यह मृग और आकाशमें विचरण करनेवाला मृग (मृगशीर्ष नक्षत्र) ये दोनों ही दिव्य हैं, क्रीड़ाके योग्य हैं ॥ ३७ ॥ लक्ष्मण, अथवा जैसा तुम कह रहे हो वैसा ही यह मृग राक्षसकी माया हो, तो भी मुझे इसका बध करना ही चाहिए ॥ ३८ ॥ इस पापी और क्रूर मारीचने इस वनमें विचरण करनेके समय अनेक श्रेष्ठ मुनियोंको मारा है ॥ ३९ ॥ आखेटमें आये हुए बड़े धनुर्धारी अनेक राजाओंको निकलकर इसने मारा है, अतएव यह मेरा वध्य है ॥ ४० ॥ पहले यहाँ वातापी नामका एक राक्षस था, वह तपस्वियोंका अनादर करके और उनके पेटमें जाकर उन्हें मार डालता था, जिस प्रकार खच्चरीको उसका गर्भ मार डालता है ॥ ४१ ॥ बहुत दिनोंके बाद एक बार वह तेजस्वी महामुनि अगस्त्यके पास आया और उनका वह भोजन बन गया ॥ ४२ ॥ कामके समाप्त होने पर, पुनः राक्षसरूप धारण करनेके लिए प्रयत्न करते हुए उसे देखकर, मुनिने हँसकर वातापीसे इस प्रकार कहा ॥ ४३ ॥ तुमने बिना विचारे अपने पराक्रमके कारण अनेक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका अपमान किया है, इस कारण आज तुम हमारे पेटमें पच गये ॥ ४४ ॥ लक्ष्मण, जो राक्षस सदा धर्ममें रत रहनेवाले जितेन्द्रिय मुझ पर आक्रमण करेगा, वह राक्षस भी वातापीके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भवेद्धतोऽयं वातापिरगस्त्येनैव मागतः । इह त्वं भव संनद्धो यन्त्रितो रक्ष मैथिलीम् ॥४६॥
अस्यामायत्तमस्माकं यत्कृत्यं रघुनन्दन । अहमेनं वधिष्यामि ग्रहीष्याम्यथवा मृगम् ॥४७॥
यावद्गच्छामि सौमित्रे मृगमानयितुं द्रुतम् । पश्य लक्ष्मण वैदेह्या मृगत्वचि गतां स्पृहाम् ॥४८॥
त्वचा प्रधानया ह्येष मृगोऽद्य न भविष्यति । अप्रमत्तेन ते भाव्यमाश्रमस्थेन सीतया ॥४९॥
यावत्पृषतमेकेन सायकेन निहन्म्यहम् । हत्वैतच्चर्म आदाय शीघ्रमेष्यामि लक्ष्मण ॥५०॥
प्रदक्षिणेनातिबलेन पक्षिणा जटायुषा बुद्धिमता च लक्ष्मण ।
भवाप्रमत्तः प्रतिगृह्य मैथिलीं प्रतिक्षणं सर्वत एव शङ्कितः ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥४३॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ४४

तथा तु तं समुद्दिश्य भ्रातरं रघुनन्दनः । दधारासिं महातेजा जाम्बूनदमयत्सरुम् ॥ १ ॥
ततस्त्रिविनतं चापमादायात्मविभूषणम् । आवध्य च कलापौ द्वौ जगामोदग्रविक्रमः ॥ २ ॥
तं वन्यराजो राजेन्द्रमापतन्तं निरीक्ष्य वै । बभूवान्तर्हितस्त्रासात्पुनः संदर्शनेऽभवत् ॥ ३ ॥
बद्धासिर्धनुरादाय प्रदुद्राव यतो मृगः । न स्म पश्यति रूपेण द्योतयन्तमिवाग्रतः ॥ ४ ॥

समान नष्ट हो जायगा ॥ ४५ ॥ जिस प्रकार अगस्त्यने वातापीको मार डाला था, उसी प्रकार अपने पास आए हुए इस राक्षसको मैं भी मार डालूँगा । तुम अस्त्रादिसे तयार होकर सावधानीके साथ सीताकी रक्षा करो ॥ ४६ ॥ हम लोगोंका जो कुछ काम है, वह सीताके अधीन है, अर्थात् सीताको प्रसन्न रखना हमारे लिए आवश्यक है । अतएव इस मृगाको मैं मारूँगा या पकड़ लूँगा ॥ ४७ ॥ लक्ष्मण, अतएव मृगको ले आनेके लिए मैं शीघ्र जा रहा हूँ । लक्ष्मण, देखो मृगचर्मके लिए जानकी कितनी उत्कण्ठित हो गयी है ॥ ४८ ॥ इस मृगाका चर्म सुन्दर है, अतएव यह अब बच नहीं सकता । तुम आश्रममें रहकर सावधानीसे सीताकी रक्षा करो ॥ ४९ ॥ एक बाणसे मैं इस मृगाको मारूँगा, मारकर तथा इसका चर्म लेकर मैं शीघ्र आऊँगा ॥ ५० ॥ अत्यन्त बली, बुद्धिमान और समर्थ जटायु पक्षीके साथ सावधान होकर प्रतिक्षण शंकित रह कर तुम सीताकी रक्षा करो ॥ ५१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका तैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४३॥

रामचन्द्रने लक्ष्मणको इस प्रकार आज्ञा देकर सोनेकी मूठवाली तलवार ली ॥१॥ तदनन्तर, परम पराक्रमी रामचन्द्र तीन स्थानों पर नवा हुआ और अपनेको शोभित करनेवाला धनुष लेकर तथा दो तरकस बाँध कर चले ॥ २ ॥ राजेन्द्र रामचन्द्रको आते देखकर वह मृगा डरसे छिप गया और पुनः सामने आया ॥ ३ ॥ तलवार बाँधे हुए रामचन्द्र धनुष लेकर मृगाकी ओर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अवेक्ष्यावेक्ष्य धावन्तं धनुष्पाणिर्महावने । अतिवृत्तमिवोत्पाताल्लोभयानं कदाचन ॥ ५ ॥
शङ्कितं तु समुद्भ्रान्तमुत्पतन्तमिवाम्बरम् । दृश्यमानमदृश्यं च वनोद्देशेषु केषुचित् ॥ ६ ॥
छिन्नाभ्रैरिव संवीतं शारदं चन्द्रमण्डलम् । मुहूर्तादेव ददृशे मुहुर्दूरात्प्रकाशते ॥ ७ ॥
दर्शनादर्शनेनैव सोऽपाकर्षत राघवम् । स दूरमाश्रमस्यास्य मारीचो मृगतां गतः ॥ ८ ॥
आसीत्क्रुद्धस्तु काकुत्स्थो विवशस्तेन मोहितः । अथावतस्थे सुश्रान्तश्छायामाश्रित्य शाद्वले ॥ ९ ॥
स तमुन्मादयामास मृगरूपो निशाचरः । मृगैः परिवृतोऽथान्यैरदूरात्प्रत्यदृश्यत ॥ १० ॥
ग्रहीतुकामं दृष्ट्वा तं पुनरेवाभ्यधावत । तत्क्षणादेव संत्रासात्पुनरन्तर्हितोऽभवत् ॥ ११ ॥
पुनरेव ततो दूराद्भृक्षखण्डाद्विनिःसृतः । दृष्ट्वा रामो महातेजास्तं हन्तुं कृतनिश्चयः ॥ १२ ॥
भूयस्तु शरमुद्धृत्य कुपितस्तत्र राघवः । सूर्यरश्मिप्रतीकाशं ज्वलन्तमरिमर्दनम् ॥ १३ ॥
संधाय स दृढं चापे विकृष्य बलवद्बली । तमेव मृगमुद्दिश्य ज्वलन्तमिव पन्नगम् ॥ १४ ॥
मुमोच ज्वलितं दीप्तमस्त्रं ब्रह्मविनिर्मितम् । स भृशं मृगरूपस्य विनिर्भिद्य शरोत्तमः ॥ १५ ॥
मारीचस्यैव हृदयं विभेदाशनिसंनिभः । तालमात्रमथोत्प्लुत्य न्यपतत्स भृशातुरः ॥ १६ ॥
व्यनदद्भैरवं नादं धरण्यामल्पजीवितः । म्रियमाणस्तु मारीचो जहौ तां कृत्रिमां तनुम् ॥ १७ ॥
स्मृत्वा तद्वचनं रक्षो दध्यौ केन तु लक्ष्मणम् । इह प्रस्थापयेत्सीता तां शून्ये रावणो हरेत् ॥ १८ ॥

दौड़े । वह मृगा अपने रूपसे आगेकी भूमिको प्रकाशित कर रहा था ॥ ४ ॥ धनुष्पाणि रामचन्द्र दौड़ते हुए मृगाको कभी बहुत दूर निकल गया हुआ देखते थे और कभी अपने पास देखते थे ॥५॥ वह डरा और घबड़ाया हुआ मृगा कभी उपरकी ओर कूद जाता था, कभी सामने आ जाता था और कभी वनमें छिप जाता था ॥ ६ ॥ बिडर मेघमें छिपे हुए शरद ऋतुके चन्द्रमाके समान एक मुहूर्तमें सामने दीख पड़ता था और पुनः बहुत दूरसे उसकी आभा मालूम होती थी ॥ ७ ॥ इस प्रकार मृग बना हुआ वह मारीच नामक राक्षस कभी प्रत्यक्ष और कभी परोक्ष होकर रामचन्द्रको आश्रमसे बड़ी दूर ले गया ॥ ८ ॥ उस मायामृगने रामचन्द्रको विस्मित किया था और उन्हें धोखा भी दिया था, अतएव उनको बहुत अधिक क्रोध था। वे थक जानेके कारण छायामें, हरी दूबपर बैठ गये ॥ ९ ॥ उस मृगरूपी निशाचरने रामचन्द्रको पागल बना दिया था। पुनः वह दूसरे मृगोंके साथ रामचन्द्रके पासही दीख पड़ा ॥ १० ॥ रामचन्द्र उसको पकड़नेके लिए बढ़े, उसी समय वह डरसे छिप गया ॥ ११ ॥ पुनः दूरहीसे वृक्षोंमेंसे निकला, तेजस्वी रामचन्द्रने उसे देखकर उसको मार डालनाही निश्चित किया ॥ १२ ॥ पुनः क्रुद्ध रामचन्द्रने सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशमान और शत्रुओंका विनाश करनेवाला बाण निकाला और धनुषपर रखकर बली रामचन्द्रने उसे बलपूर्वक खींचा। पुनः मृगाको लक्ष करके सर्पके समान जलता हुआ ब्रह्माका बनाया हुआ वह दीप्त अस्त्र छोड़ा, उस वज्रके समान उत्तम शरने उसके मृग रूपको छेदकर मारीचके हृदयको छेदा। वह तालके बराबर ऊँचा उठा और दुखी होकर नीचे गिर पड़ा ॥ १३, १४, १५, १६ ॥ अल्पप्राण मरते हुए, उस मारीच राक्षसने पृथिवी पर घोर गर्जन किया और अपना मृगाका कृत्रिम शरीर छोड़ दिया ॥ १७ ॥ रावणके वचनका स्मरण करके राक्षस मारीचने सोचा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स प्राप्तकालमाज्ञाय चकार च ततः स्वनम् । सदृशं राघवस्येव हा सीते लक्ष्मणेति च ॥१९॥
तेन मर्माणि निर्विद्धं शरेणानुपमेन हि । मृगरूपं तु तत्त्यक्त्वा राक्षसं रूपमास्थितः ॥२०॥
चक्रे स सुमहाकायो मारीचो जीवितं त्यजन् । तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ राक्षसं भीमदर्शनम् ॥२१॥
रामो रुधिरसिक्ताङ्गं चेष्टमानं महीतले । जगाम मनसा सीतां लक्ष्मणस्य वचः स्मरन् ॥२२॥
मारीचस्य तु मायैषा पूर्वोक्ता लक्ष्मणेन तु । तत्तथा ह्यभवच्चाद्य मारीचोऽयं मया हतः ॥२३॥
हा सीते लक्ष्मणेत्येवमाक्रुश्य तु महास्वनम् । ममार राक्षसः सोऽयं श्रुत्वा सीता कथं भवेत् ॥२४॥
लक्ष्मणश्च महाबाहुः कामवस्थां गमिष्यति । इति संचिन्त्य धर्मात्मा रामो हृष्टतनूरुहः ॥२५॥
तत्र रामं भयं तीव्रमाविवेश विषादजम् । राक्षसं मृगरूपं तं हत्वा श्रुत्वा च तत्स्वनम् ॥२६॥
निहत्य पृषतं चान्यं मांसमादाय राघवः । त्वरमाणो जनस्थानं ससाराभिमुखं तदा ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥४४॥

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ४५

आर्तस्वरं तु तं भर्तुर्विज्ञाय सदृशं वने । उवाच लक्ष्मणं सीता गच्छ जानीहि राघवम् ॥ १ ॥
नहि मे जीवितं स्थाने हृदयं वावतिष्ठते । क्रोशतः परमार्तस्य श्रुतः शब्दो मया भृशम् ॥ २ ॥
आक्रन्दमानं तु वने भ्रातरं त्रातुमर्हसि । तं क्षिप्रमभिधाव त्वं भ्रातरं शरणैषिणम् ॥ ३ ॥

कि किस उपायसे सीता लक्ष्मणको भेजेगी और रावण एकान्तमें उसका हरण करेगा ॥ १८ ॥ उसने उसी समय निश्चय करके रामचन्द्रके समान स्वरमें 'हा सीते' 'हा लक्ष्मण' ऐसा कहा ॥१९॥ रामचन्द्रके अनुपम बाणसे विधे हुए उस राक्षसने प्राण त्याग करनेके समय मृगरूपका त्याग करके बहुत बड़ा राक्षसका रूप धारण किया । भयानक, रुधिरमें लिपटा हुआ राक्षस पृथिवी पर छटपटा रहा है, यह देखकर रामचन्द्रको लक्ष्मणकी बात याद आयी और वे सीताके विषयमें विचार करने लगे ॥ २०, २१, २२ ॥ यह तो मारीचकी माया है, लक्ष्मणने पहलेही जो बात कही थी, वही बात हुई । मैंने आज मारीचको मारा ॥ २३ ॥ 'हा सीते' 'हा लक्ष्मण' जोरसे चिल्लाकर यह राक्षस मरा है । इस शब्दको सुनकर सीताकी क्या अवस्था हुई होगी ॥२४॥ महाबाहु लक्ष्मणकी कैसी अवस्था हो जायगी । यह सोंचकर धर्मात्मा रामचन्द्रके रोंगटे खड़े हो गये ॥२५॥ रामचन्द्र मृगरूपी राक्षसको मारकर तथा उसका शब्द सुनकर दुःखसे उत्पन्न, भयके वशवर्ती हुए ॥ २६ ॥ दूसरा मृगा मार कर तथा उसका माँस लेकर रामचन्द्र जनस्थानकी ओर चले॥२७॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका चौआलीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४४ ॥

पतिके शब्दके समान वनमें आर्त स्वर सुन पड़ता है, यह जानकर सीता लक्ष्मणसे बोली- जाओ, रामचन्द्रको देखो ॥ १ ॥ वनमें बड़े दुःखसे पुकारका शब्द मैंने सुना है । मेरे प्राण और हृदय अपने स्थान पर नहीं है, अर्थात् मैं विचलित हो गयी हूं ॥ २ ॥ शरण चाहनेवाले तथा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रक्षसां वशमापन्नं सिंहानामिव गोवृषम् । न जगाम तथोक्तस्तु भ्रातुराज्ञाय शासनम् ॥ ४ ॥
तमुवाच ततस्तत्र क्षुभिता जनकात्मजा । सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत् ॥ ५ ॥
यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे । इच्छासि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते ॥ ६ ॥
लोभात्तु मत्कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम् । व्यसनं ते प्रियं मन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते ॥ ७ ॥
तेन तिष्ठति विस्रब्धं तमपश्यन्महाद्युतिम् । किं हि संशयमापन्ने तस्मिन्निह मया भवेत् ॥ ८ ॥
कर्तव्यमिह तिष्ठन्त्या यत्प्रधानस्त्वमागतः । एवं ब्रुवाणां वैदेहीं बाष्पशोकसमन्विताम् ॥ ९ ॥
अब्रवील्लक्ष्मणस्त्रस्तां सीतां मृगवधूमिव । पन्नगासुरगन्धर्वदेवदानवराक्षसैः ॥ १० ॥
अशक्यस्तव वैदेहि भर्ता जेतुं न संशयः । देवि देवमनुष्येषु गन्धर्वेषु पतत्रिषु ॥ ११ ॥
राक्षसेषु पिशाचेषु किन्नरेषु मृगेषु च । दानवेषु च घोरेषु न स विद्येत शोभने ॥ १२ ॥
यो रामं प्रतियुद्ध्येत समरे वासवोपमम् । अवध्यः समरे रामो नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ॥ १३ ॥
न त्वामस्मिन्वने हातुमुत्सहे राघवं विना । अनिवार्यं बलं तस्य बलैर्बलवतामपि ॥ १४ ॥
त्रिभिर्लोकैः समुदितैः सेश्वरैः सामरैरपि । हृदयं निर्दहेत्तेऽस्तु संतापस्त्यज्यतां तव ॥ १५ ॥
आगमिष्यति ते भर्ता शीघ्रं हत्वा मृगोत्तमम् । न स तस्य स्वरो व्यक्तं न कश्चिदपि दैवतः ॥ १६ ॥

रक्षाके लिए पुकार करनेवाले अपने भाईकी तुम रक्षा करो। तुम शीघ्रही दौड़कर उनके पास जाओ ॥ ३५ ॥ जिस प्रकार गाय और बैल सिंहके पंजेमें आ जाते हैं उसी प्रकार तुम्हारे भाई राक्षसोंके पञ्जेमें आगये हैं। पर भाईकी आज्ञा न होनेके कारण लक्ष्मण वहाँसे नहीं गये ॥ ४ ॥ तब क्रुद्ध होकर सीता बोली—लक्ष्मण, तुम अपने भाईके मित्ररूपी शत्रु हो ॥ ५ ॥ ऐसी अवस्थामें भी भाईकी रक्षा करनेके लिए तुम नहीं जा रहे हो, अतएव, तुम मुझे पानेके लिए रामचन्द्रका विनाश चाहते हो ॥ ६ ॥ मेरी प्राप्तिके लोभसे ही तुम रामचन्द्रके पास नहीं जा रहे हो। रामचन्द्रका दुःखमें पड़नाही तुम्हें प्रिय मालूम पड़ता है। भाईमें तुम्हारा प्रेम नहीं है ॥७॥ इसीलिए महाद्युति रामचन्द्रको न देखकर उनका रक्षाका कोई उपाय न कर यहाँ निश्चिन्त बैठे हो। रामचन्द्रके जीवन पर संकट आजाय, तो मेरी रक्षासेही कौन लाभ ? ॥८॥ रामचन्द्रही हम लोगोंके प्रधान हैं। उन्हींके साथ तुम आये हो। उनके न रहने पर मैं क्या कर सकूँगी ? मृगीके समान डरी हुई, शोकसे रोती हुई सीतासे लक्ष्मण इस प्रकार बोले—नाग, असुर, गंधर्व, देवता, दानव, राक्षस इनमें कोई भी तुम्हारे पतिको नहीं जीत सकता। देवि, देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पक्षी, राक्षस, निशाचर, किन्नर, पशु तथा भयानक दानव इन सबमें कोई भी ऐसा नहीं है जो इन्द्रतुल्य रामचन्द्रसे युद्ध कर सके। रामचन्द्र युद्धमें अवध्य हैं, तुमको ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिए ॥ ६, १०, ११, १२, १३ ॥ बिना रामचन्द्रके मैं तुमको इस वनमें अकेली नहीं छोड़ सकता। बहुतसी सेना मिलकर बनी हुई सेनासे तथा देवता, ब्रह्मा, विष्णु आदि तथा तीनों लोक मिलकर भी युद्धमें रामचन्द्रको परास्त नहीं कर सकते। तुम अपने मनका दुख कम करो, सन्ताप छोड़ो ॥ १४, १५ ॥ उस मृगको मारकर तुम्हारे पति शीघ्र आवेंगे। वह आवाज रामचन्द्रकी नहीं थी और न तो किसी देवताकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गन्धर्वनगरप्रख्या माया तस्य च रक्षसः । न्यासभूतासि वैदेहि न्यस्ता मयि महात्मना ॥१७॥
रामेण त्वं वरारोहे न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे । कृतवैराश्च कल्याणि वयमेतैर्निशाचरैः ॥१८॥
खरस्य निधने देवि जनस्थानवधं प्रति । राक्षसा विविधा वाचो व्याहरन्ति महावने ॥१९॥
हिंसाविहारा वैदेहि न चिन्तयितुमर्हसि । लक्ष्मणेनैवमुक्ता क्रुद्धा संरक्तलोचना ॥२०॥
अब्रवीत्परुषं वाक्यं लक्ष्मणं सत्यवादिनम् । अनार्य करुणारम्भ नृशंस कुलपांसन ॥२१॥
अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत् । रामस्य व्यसनं दृष्ट्वा तेनैतानि प्रभाषसे ॥२२॥
नैव चित्रं सपत्नेषु पापं लक्ष्मण यद्भवेत् । त्वद्विधेषु नृशंसेषु नित्यं प्रच्छन्नचारिषु ॥२३॥
सुदुष्टस्त्वं वने राममेकमेकोऽनुगच्छसि । मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा ॥२४॥
तन्न सिद्ध्यति सौमित्रे तवापि भरतस्य वा । कथमिन्दीवरश्यामं रामं पद्मनिभेक्षणम् ॥२५॥
उपसंश्रित्य भर्तारं कामयेयं पृथग्जनम् समक्षं तव सौमित्रे प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥२६॥
रामं विना क्षणमपि नैव जीवामि भूतले । इत्युक्तः परुषं वाक्यं सीतया रोमहर्षणम् ॥२७॥
अब्रवील्लक्ष्मणः सीतां प्राञ्जलिः स जितेन्द्रियः । उत्तरं नोत्सहे वक्तुं दैवतं भवती मम ॥२८॥
वाक्यमप्रतिरूपं तु न चित्रं स्त्रीषु मैथिलि । स्वभावस्त्वेष नारीणामेषु लोकेषु दृश्यते ॥२९॥

थी ॥ १६ ॥ यह उसी राक्षसकी गन्धर्वनगरके समान झूठी माया है । वैदेहि, तुम्हारी रक्षाका भार मुझपर है और यह भार महात्मा रामचन्द्रने दिया है ॥ १७ ॥ अतएव सुन्दरि, मैं तुमको अकेली छोड़ नहीं सकता । कल्याणि, इस समय हम लोगोंने इन राक्षसोंसे विरोध कर लिया है ॥ १८ ॥ खरके मारे जाने तथा जनस्थानके विनाश होनेसे ये राक्षस वनमें तरह-तरहकी बातें बोलते हैं ॥ १९ ॥ लोगोंको पीड़ा देनाही राक्षसोंका स्वभाव है । वैदेहि, तुम किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो । लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर जानकीने बहुत क्रोध किया । उनकी आँखें लाल हो गयीं ॥ २० ॥ सत्यवादी लक्ष्मणसे वे कठोर वचन बोलीं—अनार्य, निर्दय, घातुक, कुलकलंक, मैं समझती हूँ कि रामचन्द्रका कष्ट तुम्हें अच्छा मालूम होता है। अतएव, रामचन्द्रका दुख देखकर तुम ऐसी बातें बोल रहे हो ॥ २१, २२ ॥ तुम्हारे समान क्रूर और छिपे शत्रुसे इस तरहकी बुराइयोंके होनेमें कोई आश्चर्य नहीं है ॥ २३ ॥ तुम बड़े दुष्ट हो । अतएव अकेले असहाय रामचन्द्रके साथ मुझे पानेके लिए वनमें आए हो अथवा भरतने छिपकर तुम्हें भेजा है ॥ २४ ॥ पर लक्ष्मण, तुम्हारा वह अभिप्राय अथवा भरतका अभिप्राय मैं सिद्ध होने न दूँगी । इन्दीवरश्याम कमलनयन रामचन्द्रकी स्त्री रहकर मैं किस प्रकार एक साधारण मनुष्यकी स्त्री बनूंगी । लक्ष्मण, निस्सन्देह तुम्हारे सामने ही मैं अपने प्राण छोड़ दूंगी ॥ २५, २६ ॥ रामके बिना एक क्षण भर भी मैं पृथिवीमें जी न सकूँगी । इस तरहके रोंगटे खड़े कर देनेवाले सीताके कठोर वचन सुनकर, जितेन्द्रिय लक्ष्मण हाथ जोड़कर बोले—मैं आपको उत्तर देना नहीं चाहता; क्योंकि आप मेरी देवता हैं ॥ २७, २८ ॥ पर सीते, यह अत्यन्त अनुचित वचन स्त्रियोंके लिए कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि इस संसारमें स्त्रियोंका ऐसाही स्वभाव देखा जाता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विमुक्तधर्माश्चपलास्तीक्ष्णा भेदकराः स्त्रियः । न सहे हीदृशं वाक्यं वैदेहि जनकात्मजे ॥३०॥
श्रोत्रयोरुभयोर्मध्ये तप्तनाराचसंनिभम् । उपशृण्वन्तु मे सर्वे साक्षिणो हि वनेचराः ॥३१॥
न्यायवादी यथा वाक्यमुक्तोऽहं परुषं त्वया । धिक्त्वामद्य विनश्यन्तीं यन्मामेवं विशङ्कसे॥३२॥
स्त्रीत्वादृदुष्टस्वभावेन गुरुवाक्ये व्यवस्थितम् ।गच्छामि यत्र काकुत्स्थःस्वस्ति तेऽस्तु वरानने॥३३॥
रक्षन्तु त्वां विशालाक्षि समग्रा वनदेवताः । निमित्तानि हि घोराणि यानि प्रादुर्भवन्ति मे ।
अपि त्वां सह रामेण पश्येयं पुनरागतः ॥३४॥
लक्ष्मणेनैवमुक्ता तु रुदती जनकात्मजा । प्रत्युवाच ततो वाक्यं तीव्रबाष्पपरिप्लुता ॥३५॥
गोदावरीं प्रवेक्ष्यामि हीना रामेण लक्ष्मण । आबन्धिष्येऽथवा त्यक्ष्ये विषमे देहमात्मनः ॥३६॥
पिबामि वा विषं तीक्ष्णं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् । न त्वहं राघवादन्यं कदापि पुरुषं स्पृशे ॥३७॥
इति लक्ष्मणमाश्रुत्य सीता शोकसमन्विता । पाणिभ्यां रुदती दुःखादुदरं प्रजघान ह ॥३८॥

तामार्तरूपां विमना रुदन्तीं सौमित्रिरालोक्य विशालनेत्राम् ।
आश्वासयामास न चैव भर्तुस्तं भ्रातरं किंचिदुवाच सीता ॥३९॥
ततस्तु सीतामभिवाद्य लक्ष्मणः कृताञ्जलिः किंचिदभिप्रणम्य ।
अवेक्षमाणो बहुशः स मैथिलीं जगाम रामस्य समीपमात्मवान् ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥४५॥

है ॥ २९ ॥ स्त्रियोंमें विनय आदि धर्म नहीं रहते । वे चञ्चल और क्रूर होती हैं । आपसमें फूट डाल देती हैं । जनकपुत्रि वैदेहि, मैं ऐसी बातें सह नहीं सकता ॥ ३० ॥ जो दोनों कानोंमें तपे बाणके समान मालुम होती हैं । वनवासी देवता साक्षी होकर ये सब बातें सुनें ॥ ३१ ॥ मैंने न्याययुक्त बात तुमसे कही थी और तुमने मुझे ऐसी कठोर बातें कहीं । अब तुम्हारा शीघ्र ही विनाश होनेवाला है । तुमको धिक्कार, जो मुझपर इस प्रकारका सन्देह करती हो । स्त्री होनेके कारण दुष्ट स्वभावके अधीन होकर अपने बड़ेकी आज्ञापालन करनेवाले मुझपर सन्देह करती हो । मैं जाता हूँ, जहाँ रामचन्द्रजी हैं। तुम्हारा कल्याण हो ॥ ३२, ३३ ॥ विशालाक्षि, समस्त वन-देवता तुम्हारी रक्षा करें, बड़े भयानक अशकुन हो रहे हैं । रामके साथ लौटकर क्या पुनः मैं तुमको देखूँगा ॥ ३४ ॥ लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर रोती हुई जानकी बोली ॥ ३५ ॥ रामचन्द्रके न रहनेपर मैं गोदावरीमें कूद पड़ूंगी, गलेमें रस्सी बाँध लूंगी अथवा ऊँची जगहसे कूद पड़ंगी ॥३६॥ तीखा विष पी लूँगी, आगमें प्रवेश करूंगी, पर रामचन्द्रके अतिरिक्त दूसरे पुरुष-का स्पर्श न करूँगी ॥ ३७ ॥ शोकसे युक्त सीता लक्ष्मणसे ऐसा कहकर हाथोंसे छाती पीटने लगीं ॥३८॥ दुखी होकर रोती हुई विशालनेत्रा सीताको लक्ष्मणने देखा और उन्हें धैर्य धरनेके लिए कहा, पर पतिके भाईसे सीता कुछ भी न बोलीं॥३९॥ हाथ जोड़कर लक्ष्मणने सीताका अभिवादन किया, पुनः थोड़ा प्रणाम करके बार-बार उनकी ओर देखते हुए धीर लक्ष्मण रामके पास गये ॥ ४० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका पैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

षट्चत्वारिंशः सर्गः ४६

तया परुषमुक्तस्तु कुपितो राघवानुजः । स विकाङ्क्षन्भृशं रामं प्रतस्थे न चिरादिव ॥ १ ॥
तदासाद्य दशग्रीवः क्षिप्रमन्तरमास्थितः । अभिचक्राम वैदेहीं परिव्राजकरूपधृक् ॥ २ ॥
श्लक्ष्णकाषायसंवीतः शिखी छत्री उपानही । वामे चांसेऽवसज्याथ शुभे यष्टिकमण्डलू ॥ ३ ॥
परिव्राजकरूपेण वैदेहीमन्ववर्तत । तामाससादातिबलो भ्रातृभ्यां रहितां वने ॥ ४ ॥
रहितां सूर्यचन्द्राभ्यां संध्यामिव महत्तमः । तामपश्यत्ततो बालां राजपुत्रीं यशस्विनीम् ॥ ५ ॥
रोहिणीं शनिना हीनां गृहवद्भृशदारुणः । तमुग्रं पापकर्माणं जनस्थानगता द्रुमाः ॥ ६ ॥
संदृश्य न प्रकम्पन्ते न प्रवाति च मारुतः । शीघ्रस्रोताश्च तं दृष्ट्वा वीक्षन्तं रक्तलोचनम् ॥ ७ ॥
स्तिमितं गन्तुमारेभे भयाद्गोदावरी नदी । रामस्य त्वन्तरं प्रेप्सुर्दशग्रीवस्तदन्तरे ॥ ८ ॥
उपतस्थे च वैदेहीं भिक्षुरूपेण रावणः । अभव्यो भव्यरूपेण भर्तारमनुशोचतीम् ॥ ९ ॥
अभ्यवर्तत वैदेहीं चित्रामिव शनैश्चरः । सहसा भव्यरूपेण तृणैः कूप इवावृतः ॥१०॥
अतिष्ठत्प्रेक्ष्य वैदेहीं रामपत्नीं यशस्विनीम् । तिष्ठन्तंप्रेक्ष्य च तदा पत्नीं रामस्य रावणः॥११॥
शुभां रुचिरदंतोष्ठीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् । आसीनां पर्णशालायां वाष्पशोकाभिपीडिताम्॥१२॥
स तां पद्मपलाशाक्षीं पीतकौशेयवासिनीम् । अभ्यगच्छत वैदेहीं हृष्टचेता निशाचरः ॥१३॥

सीताके ऐसा कठोर वचन कहनेपर लक्ष्मण कुपित हुए और रामचन्द्रके पास शीघ्र पहुंचनेकी इच्छासे अविलम्ब वहाँसे चले ॥१॥ लक्ष्मणके चले जानेपर अवसर पाकर संन्यासीका रूप धारण करनेवाला रावण जानकीके आश्रममें गया ॥२॥ उज्ज्वल काषाय वस्त्र वह पहने हुए था, मस्तकपर शिखा थी, छाता और जूता वह धारण किये हुए था। बाँएँ कन्धेपर उत्तम डंडा और कमण्डलु धारण किये हुए था ॥ ३ ॥ संन्यासीके रूपमें वह सीताके पास गया। राम, लक्ष्मणसे रहित सीताको उस बलीने पाया ॥ ४ ॥ जिस प्रकार चन्द्र-सूर्यसे रहित सन्ध्यापर घना अन्धकार अधिकार जमाता है, उसी प्रकार बाला यशस्विनी, राजपुत्रीको रावणने देखा ॥५॥ चन्द्रमासे रहित रोहिणीको जैसे शनिश्चर या मंगलग्रह देखता है, उसी प्रकार रावणने सीताको देखा। उस भयानक पापीको देखकर जनस्थानके वृक्षोंने काँपना छोड़ दिया अर्थात् वे स्तब्ध हो गये। वायुका बहना बन्द हो गया। लाल आँखोंसे अपनी ओर उसको देखते देखकर शीघ्र चलनेवाली गोदावरी नदी भी धीरे-धीरे चलने लगी। रामचन्द्रकी अनुपस्थिति चाहनेवाला रावण इस अवसर पर भिक्षुका रूप धारण करके, अभव्य होनेपर भी भव्य रूप धारण करके, पतिके लिए शोक करती हुई सीताके पास गया ॥६, ७, ८, ९॥ शनैश्चर जैसे चित्राके पास जाता है, वैसे ही भव्य रूप धारण करके तृणसे छिपे हुए कूपके समान वह रावण सीताके पास गया ॥ १० ॥ यशस्विनी रामपत्नी सीताको देखकर रावण खड़ा हो गया। खड़ा होकर रावणने रामकी स्त्रीको देखा ॥११॥ बड़ी सुन्दरी थी, सुन्दर दाँत और सुन्दर ओंठ थे। पूर्ण चन्द्रमाके समान मुँह था। पर्णशालामें बैठी हुई शोकके कारण रो रही थी ॥ १२ ॥ पद्मपत्रनेत्रा पीताम्बर पहने हुई सीताके पास प्रसन्न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दृष्ट्वा कामशराविद्धो ब्रह्मघोषमुदीरयन् । अब्रवीत्प्राश्रितं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपः ॥१४॥
तामुत्तमां त्रिलोकानां पद्महीनामिव श्रियम् । विभ्राजमानां वपुषा रावणः प्रशशंस ह ॥१५॥
रौप्यकाञ्चनवर्णाभे पीतकौशेयवासिनि । कमलानां शुभां मालां पद्मिनीव च बिभ्रती ॥१६॥
ह्रीः श्रीः कीर्तिः शुभा लक्ष्मीरप्सरा वा शुभानने । भूतिर्वा त्वं वरारोहे रतिर्वा स्वैरचारिणी ॥१७॥
समाः शिखरिणः स्निग्धाः पाण्डुरा दशनास्तव । विशाले विमले नेत्रे रक्तान्ते कृष्णतारके ॥१८॥
विशालं जघनं पीनमूरू करिकरोपमौ । एतावुपचितौ वृत्तौ संहतौ संप्रगल्भितौ ॥१९॥
पीनोन्नतमुखौ कान्तौ स्निग्धतालफलोपमौ । मणिप्रवेकाभरणौ रुचिरौ तौ पयोधरौ ॥२०॥
चारुस्मिते चारुदति चारुनेत्रे विलासिनि । मनो हरसि मे रामे नदीकूलमिवाम्भसा ॥२१॥
करान्तामितमध्यासि सुकेशे संहतस्तनि । नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किंनरी ॥२२॥
नैवंरूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले । रूपमग्र्यं च लोकेषु सौकुमार्यं वयश्च ते ॥२३॥
इह वासश्च कान्तारे चित्तमुन्माथयन्ति मे । सा प्रतिक्राम भद्रं ते न त्वं वस्तुमिहार्हसि ॥२४॥
राक्षसानामयं वासो घोराणां कामरूपिणाम् । प्रासादाग्राणि रम्याणि नगरोपवनानि च ॥२५॥
संपन्नानि सुगन्धीनि युक्तान्याचरितुं त्वया । वरं माल्यं वरं गन्धं वरं वस्त्रं च शोभने ॥२६॥

होकर राक्षस गया ॥ १३ ॥ सीताको देखते ही वह कामपीड़ित हो गया और वैदिक मंत्र पढ़ने लगा। आश्रमको एकान्त देखकर रावण विनययुक्त वचन बोला ॥ १४ ॥ त्रिलोकमें सर्वश्रेष्ठ शरीर-से पद्मरहित लक्ष्मीके समान शोभनेवाली सीताकी रावण प्रशंसा करने लगा ॥ १५ ॥ श्रेष्ठ सुवर्णके समान तुम्हारी कान्ति है, पीताम्बर धारण किए हुए हो, कमलवनके समान कमलोंकी सुन्दर माला धारण करती हो (आँख और मुखके अभिप्रायसे कमलमाला कहा है) ॥ १६ ॥ शुभानने, तुम गौरी हो, श्री हो, कीर्ति हो, लक्ष्मी हो या अप्सरा हो ? तुम अणिमादि सिद्धि हो अथवा स्वेच्छापूर्वक विहार करनेवाली कामकी स्त्री रति हो ॥ १७ ॥ तुम्हारे नुकीले, चिकने और सफेद दाँत सब बराबर हैं, तुम्हारी आँखें बड़ी और उज्ज्वल हैं, छोर पर लाल हैं और पुतली काली ॥१८॥ जघन लम्बा और मोटा है और उरु हाथीकी सूंडके समान है। ये ऊंचे गोल आपस-में सटे हुए, कुछ हिलनेवाले, मोटे और ऊंचे, सुन्दर रमणीय तालफलके समान श्रेष्ठ मणियोंसे आभू-षित मनोहर तुम्हारे स्तन हैं ॥१९, २०॥ विलासिनि, सुन्दर मुसकान, सुन्दर दाँत और सुन्दर आखोंसे तुम मेरा मन हरण कर रही हो, जिस प्रकार जल नदीके तारको हरण करता है ॥ २१ ॥ सुकेशि, तुम्हारी कमर मुट्ठीमें आजानेवाली है, तुम्हारे स्तन आपसमें सटे हुए हैं। देवी, गन्धर्वी, यक्षी, किन्नरी कोई भी स्त्री पृथिवीमें मैंने तुम्हारे समान नहीं देखी। यह तुम्हारा श्रेष्ठरूप, यह सुकुमारता, यह उमर और इस बीहड़ वनका निवास ! इन बातोंसे मेरा मन व्यथित हो रहा है। तुम यहाँ से लौट जाओ। तुम्हारा कल्याण हो, तुम यहां रहनेके योग्य नहीं हो ॥ २२, २३, २४ ॥ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, क्रूर राक्षसोंके रहनेकी यह जगह है। तुमको कोठेपर रमणीय सुगन्धयुक्त और समृद्धियुक्त नगरों और उपवनोंमें रहना चाहिए।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भर्तारं च वरं मन्ये त्वद्युक्तमसितेक्षणे । का त्वं भवसि रुद्राणां मरुतां वा शुचिस्मिते ॥२७॥
वसूनां वा वरारोहे देवता प्रतिभासि मे । नेह गच्छन्ति गन्धर्वा न देवा न च किन्नराः ॥२८॥
राक्षसानामयं वासः कथं तु त्वमिहागता । इह शाखामृगाः सिंहा द्वीपिव्याघ्रमृगा वृकाः ॥२९॥
ऋक्षास्तरक्षवः कङ्काः कथं तेभ्यो न बिभ्यसे । मदान्वितानां घोराणां कुञ्जराणां तरस्विनाम् ॥३०॥
कथमेका महारण्ये न बिभेषि वरानने । कासि कस्य कुतश्च त्वं किंनिमित्तं च दण्डकान् ॥३१॥
एका चरसि कल्याणि घोरान्राक्षससेवितान् । इति प्रशस्ता वैदेही रावणेन महात्मना ॥३२॥
द्विजातिवेषेण हि तं दृष्ट्वा रावणमागतम् । सर्वैरतिथिसत्कारैः पूजयामास मैथिली ॥३३॥
उपानीयासनं पूर्वं पाद्येनाभिनिमन्त्र्य च । अब्रवीत्सिद्धमित्येव तदा तं सौम्यदर्शनम् ॥३४॥

द्विजातिवेषेण समीक्ष्य मैथिली समागतं पात्रकुसुम्बधारिणम् ।
अशक्यमुद्वेष्टुमुपायदर्शनान्न्यमन्त्रयद्ब्राह्मणवत्तथागतम् ॥३५॥
इयं बृसी ब्राह्मण काममास्यतामिदं च पाद्यं प्रतिगृह्यतामिति ।
इदं च सिद्धं वनजातमुत्तमं त्वदर्थमव्यग्रमिहोपभुज्यताम् ॥३६॥
निमन्त्र्यमाणः प्रतिपूर्णभाषिणीं नरेन्द्रपत्नीं प्रसमीक्ष्य मैथिलीम् ।
प्रसह्य तस्या हरणे दृढं मनः समर्पयामास वधाय रावणः ॥३७॥

तुमको श्रेष्ठमाला, श्रेष्ठ गन्ध, श्रेष्ठ वस्त्र और श्रेष्ठ पति, चाहिए, जिनका सम्बन्ध तुमसे है, उनको मैं उत्तम समझता हूँ। तुम कौन हो? मैं तो रुद्रों, मरुतों अथवा वसुओंकी देवता तुम्हें समझता हूँ। यहाँ गन्धर्व, देवता, किन्नर आदि नहीं आते ॥२५, २६, २७, २८॥ यह राक्षसोंके रहनेका स्थान है। तुम यहां कैसे आयी? यहाँ वानर, सिंह, चीते, बाघ, मृगा, भेड़िए, भालू, शेर, कंक (मांस खाने वाला पक्षी) यहाँ रहते हैं, इनसे तुम क्यों नहीं डरती। मतवाले, क्रूर और दौड़कर चलनेवाले हाथियोंसे तुम अकेली इस वनमें क्यों नहीं डरती। तुम कौन हो? किसकी हो? और किस कारणसे इस राक्षसोंसे सेवित भयानक दण्डकारण्यमें अकेली रहती हो? रावणके द्वारा इस प्रकार प्रशंसित होनेपर, और संन्यासीके वेशमें रावण आया है-यह देखकर, समस्त अतिथि सत्कारोंसे सीताने उसकी पूजा की ॥ २९, ३०, ३१, ३२, ३३ ॥ पहले आसन दिया, पैर धोनेका जल दिया, पुनः सौम्यदर्शन रावणसे भोजन करनेके लिए कहा ॥ ३४ ॥ कमण्डलु और गेरुवा वस्त्र धारण करके संन्यासीके वेशमें रावण आया है, अतएव उसका तिरस्कार नहीं किया जा सकता। रावणमें ब्राह्मणके अन्य चिन्होंको देखकर भी सीताने ब्राह्मणके समानही उसको निश्चित किया ॥ ३५ ॥ ब्राह्मण, यह आसन है, आप इच्छापूर्वक बैठें। यह पैर धोनेका जल है इसे आप लें। यह आपके लिए वनमें उत्पन्न पदार्थोंसे बना भोजन है, निर्भय होकर खाइये ॥३६॥ अतिथिके योग्य समस्त व्यवहार करनेवाली राजपत्नी सीताको देखकर तथा उसके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततः सुवेषं मृगयागतं पतिं प्रतीक्षमाणा सहलक्ष्मणं तदा ।
निरीक्षमाणा हरितं ददर्श तन्महद्वनं नैव तु रामलक्ष्मणौ ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥४६॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ४७

रावणेन तु वैदेही तथा पृष्टा जिहीर्षुणा । परिव्राजकरूपेण शशंसात्मानमात्मना ॥ १ ॥
ब्राह्मणश्चातिथिश्चैष अनुक्तो हि शपेत माम् । इति ध्यात्वा मुहूर्तं तु सीता वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥
दुहिता जनकस्याहं मैथिलस्य महात्मनः । सीता नाम्नास्मि भद्रं ते रामस्य महिषी प्रिया ॥ ३ ॥
उषित्वा द्वादश समा इक्ष्वाकूणां निवेशने । भुञ्जाना मानुषान्भोगान्सर्वकामसमृद्धिनी ॥ ४ ॥
तत्र त्रयोदशे वर्षे राजामन्त्रयत प्रभुः । अभिषेचयितुं रामं समेतो राजमन्त्रिभिः ॥ ५ ॥
तस्मिन्संभ्रियमाणे तु राघवस्याभिषेचने । कैकेयी नाम भर्तारं ममार्या याचते वरम् ॥ ६ ॥
परिगृह्य तु कैकेयी श्वसुरं सुकृतेन मे । मम प्रव्राजनं भर्तुर्भरतस्याभिषेचनम् ॥ ७ ॥
द्वावयाचत भर्तारं सत्यसंधं नृपोत्तमम् । नाद्यं भोक्ष्ये न च स्वप्स्ये न पास्ये न कदाचन ॥ ८ ॥
एष मे जीवितस्यान्तो रामो यदाभिषिच्यते । इति ब्रुवाणां कैकेयीं श्वशुरो मे स पार्थिवः ॥ ९ ॥

द्वारा निमंत्रित होकर अपने वधके मूलभूत सीताहरण करनेका विचार रावणने निश्चित किया ॥ ३७ ॥ तदनन्तर आखेटमें गये हुए अपने सुन्दर पति तथा लक्ष्मणकी वह प्रतीक्षा करने लगी । उसने केवल दिशाएँ देखीं, वह बहुत बड़ा वन देखा, पर राम और लक्ष्मणको नहीं देखा ॥ ३८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका छिआलीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४६॥

परिव्राजकरूप धारण करनेवाले और सीताको हरनेकी इच्छा रखनेवाले रावणके पूछनेपर सीताने स्वयं अपना परिचय दिया ॥१॥ यह ब्राह्मण है और अतिथि है, इससे यदि मैं न बोलूँ तो यह मुझे शाप देगा । थोड़ी देर ऐसा सोचकर सीता बोली ॥ २ ॥ मिथिलादेशके राजा महात्मा जनककी मैं कन्या हूं, मेरा नाम सीता है और रामचन्द्रकी प्रिय महारानी हूँ, ॥ ३ ॥ बारह वर्षों तक इक्ष्वाकुओंके घरमें मैं रही, वहाँ मनुष्योंको प्राप्त होनेवाले सब भोग मैंने किये, मेरे सब मनोरथ पूर्ण हुए ॥ ४ ॥ तेरहवें वर्षके प्रारम्भमें राजमन्त्रियोंसे सलाह करके राजाने रामचन्द्रका अभिषेक करना निश्चित किया ॥ ५ ॥ रामचन्द्रके राज्याभिषेककी जब तयारी होने लगी, तब मेरी सास केकयीने अपने पतिसे वर मांगा ॥ ६ ॥ उन्होने मेरे स्वसुरको सत्यके बन्धनमें बांधकर मेरे पतिका वनवास और भरतका राज्याभिषेक मांगा ॥ ७ ॥ सत्यप्रतिज्ञ और श्रेष्ठ राजा अपने पतिसे ये दो वर मांगे । मैं न खाऊँगी, न सोऊँगी और न जल पीऊँगी । यदि रामचन्द्रका राज्याभिषेक हुआ तो मैं अपने प्राण देदूँगी । इस प्रकार कहती हुई केकयीसे मेरे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अयाचतार्थैरन्वर्थैन च याञ्चां चकार सा। मम भर्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः ॥१०॥
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते। रामेति प्रथितो लोके सत्यवाञ्शीलवाञ्शुचिः ॥११॥
विशालाक्षो महाबाहुः सर्वभूतहिते रतः। कामार्तश्च महाराजः पिता दशरथः स्वयम् ॥१२॥
कैकेय्याः प्रियकामार्थं तं रामं नाभ्यषेचयत्। अभिषेकाय तु पितुः समीपं राममागतम् ॥१३॥
कैकेयी मम भर्तारमित्युवाच द्रुतं वचः। तव पित्रा समाज्ञप्तं ममेदं शृणु राघव ॥१४॥
भरताय प्रदातव्यमिदं राज्यमकण्टकम्। त्वया तु खलु वस्तव्यं नव वर्षाणि पञ्च च ॥१५॥
वने प्रव्रज काकुत्स्थ पितरं मोचयानृतात्। तथेत्युवाच तां रामः कैकेयीमकुतोभयः ॥१६॥
चकार तद्वचः श्रुत्वा भर्ता मम दृढव्रतः। दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात्सत्यं ब्रूयान्न चानृतम् ॥१७॥
एतद्ब्राह्मण रामस्य व्रतं धृतमनुत्तमम्। तस्य भ्राता तु वैमात्रो लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥१८॥
रामस्य पुरुषव्याघ्रः सहायः समरेऽरिहा। स भ्राता लक्ष्मणो नाम ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥१९॥
अन्वगच्छद्धनुष्पाणिः प्रव्रजन्तं मया सह। जटी तापसरूपेण मया सह सहानुजः ॥२०॥
प्रविष्टो दण्डकारण्यं धर्मनित्यो दृढव्रतः। ते वयं प्रच्युता राज्यात्कैकेय्यास्तु कृते त्रयः ॥२१॥
विचराम द्विजश्रेष्ठ वनं गम्भीरमोजसा। समाश्वस मुहूर्तं तु शक्यं वस्तुमिह त्वया ॥२२॥
आगमिष्यति मे भर्ता वन्यमादाय पुष्कलम्। रुरून्गोधान्वराहांश्च हत्वाऽऽदायामिषं बहु ॥२३॥

स्वसुर राजाने बहुत अधिक धन, वरके बदलेमें ले लेनेकी प्रार्थना की। पर उसने राजाकी प्रार्थना न मानी। मेरे महातेजस्वी पतिकी उमर पच्चीस वर्षकी है ॥८, ९, १०॥ मेरे जन्मके अठारह वर्ष हुए रामचन्द्र सत्यवादी शीलवान् और शुद्ध हैं ॥ ११ ॥ बड़ी आंखोंवाले माहबाहु रामचन्द्र सब प्राणियोंके हितकारक हैं। कामाधीन पिता राजा दसरथने स्वयं केकयीको प्रसन्न करनेकेलिए रामचन्द्रका अभिषेक नहीं किया। जब रामचन्द्र अपने पिताके यहां अभिषेकके लिए आए, तब केकयीने शीघ्रतापूर्वक मेरे पतिसे यह बात कही। रामचन्द्र, तुम्हारे पिताने जो आज्ञा दी है वह तुम मुझसे सुनो ॥ १२, १३, १४ ॥ यह शत्रुहीन राज्य भरतको दिया जाय और तुम चौदह वर्षोंतक वनवास करो ॥ १५ ॥ रामचन्द्र, तुम वनमें जाओ और अपने पिताको असत्यसे छुड़ाओ। निर्भय रामने केकयीकी वह बात मान ली ॥ १६ ॥ दृढ़व्रत मेरे पतिने वह वचन सुनकर वैसाही किया। दान देते हैं, लेते नहीं। सत्य बोलते हैं, पर झूठ नहीं। ब्राह्मण, रामचन्द्रने यही श्रेष्ठ व्रत धारण किया है। विमाताका पुत्र पराक्रमी लक्ष्मण रामचन्द्रका भाई है ॥१७,१८॥ युद्धमें शत्रुओंको मारनेवाला वह पुरुषसिंह रामचन्द्रका सहायक है। वह ब्रह्मचारी और अपने व्रतमें दृढ़ है ॥ १९ ॥ वनमें जाते हुए अपने भाईके साथ, धनुष लेकर वह भी आया है। जटाधारण करके तपस्वीके वेशमें मेरे और भाईके साथ धर्मात्मा रामचन्द्र दण्डकारण्यमें आये हैं। इस प्रकार हम तीनों केकयीके कारण राज्यसे निर्वासित हुए हैं ॥ २०, २१ ॥ द्विजश्रेष्ठ, हमलोग पराक्रमके कारण इस सघन वनमें विचरण करते हैं, यदि तुम ठहर सको तो थोड़ी देर यहाँ विश्राम करो ॥ २२ ॥ मेरे पति रुरु, गोधा और वराहको मारकर बहुत अधिक मांस और काफी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स त्वं नाम च गोत्रं च कुलमाचक्ष्व तत्त्वतः । एकश्च दण्डकारण्ये किमर्थं चरसि द्विज ॥२४॥
एवं ब्रुवत्यां सीतायां रामपत्न्यां महाबलः । प्रत्युवाचोत्तरं तीव्रं रावणो राक्षसाधिपः ॥२५॥
येन वित्रासिता लोकाः सदेवासुरमानुषाः । अहं स रावणो नाम सीते रक्षोगणेश्वरः ॥२६॥
त्वां तु काञ्चनवर्णाभां दृष्ट्वा कौशेयवासिनीम् । रतिं स्वकेषु दारेषु नाधिगच्छाम्यनिन्दिते ॥२७॥
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितस्ततः । सर्वासामेव भद्रं ते ममाग्रमहिषी भव ॥२८॥
लङ्का नाम समुद्रस्य मध्ये मम महापुरी । सागरेण परिक्षिप्ता निविष्टा गिरिमूर्धनि ॥२९॥
तत्र सीते मया सार्धं वनेषु विचरिष्यसि । न चास्य वनवासस्य स्पृहयिष्यसि भामिनि ॥३०॥
पञ्च दास्यः सहस्राणि सर्वाभरणभूषिताः । सीते परिचरिष्यन्ति भार्या भवसि मे यदि ॥३१॥
रावणेनैवमुक्ता तु कुपिता जनकात्मजा । प्रत्युवाचानवद्याङ्गी तमनादृत्य राक्षसम् ॥३२॥
महागिरिमिवाकम्प्यं महेन्द्रसदृशं पतिम् । महोदधिमिवाक्षोभ्यमहं राममनुव्रता ॥३३॥
सर्वलक्षणसंपन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम् । सत्यसंधं महाभागमहं राममनुव्रता ॥३४॥
महाबाहुं महोरस्कं सिंहविक्रान्तगामिनम् । नृसिंहं सिंहसंकाशमहं राममनुव्रता ॥३५॥
पूर्णचन्द्राननं रामं राजवत्सं जितेन्द्रियम् । पृथुकीर्तिं महाबाहुमहं राममनुव्रता ॥३६॥
त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम् । नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा ॥३७॥

जंगली फल मूल आदि लेकर आवेंगे ॥ २३ ॥ तुम्हारा क्या नाम है, क्या गोत्र है, कौन कुल है और अकेले दण्डकारण्यमें क्यों घूमते हो, यह ठीक-ठीक कहो ॥ २४ ॥ रामचन्द्रकी स्त्री सीताके ऐसा कहनेपर राक्षसाधिप रावणने बड़ाही कठोर उत्तर दिया ॥ २५ ॥ जिससे देवता, असुर, मनुष्य आदि सभी डरते हैं । सीते, मैं वही राक्षसोंका स्वामी रावण हूँ ॥ २६ ॥ पीताम्बर पहननेवाली सुवर्णके समान सुन्दर शरीरवाली तुमको देखकर मुझे अपनी स्त्रियाँ पसन्द नहीं आतीं ॥ २७ ॥ बहुतसी उत्तम स्त्रियां इधर-उधरसे हरकर मैं ले आया हूँ । उन सब स्त्रियोंमें तुम मेरी पटरानी बनो ॥ २८ ॥ समुद्रके बीचमें लंका नामकी मेरी राजधानी है । वह समुद्रसे घिरी है और पर्वतके शिखरपर बसी है ॥ २९ ॥ सीते, वहां मेरे साथ वनोंमें घूमना । मैं इस प्रकारके वनवासको उत्तम नहीं समझता ॥ ३० ॥ सीते, यदि तुम मेरी स्त्री बनजाओगी तो सब गहनोंसे लदी हुई पाँच हजार दासियां तुम्हारी सेवा करेंगी ॥ ३१ ॥ रावणके ऐसा कहनेपर अनवद्याङ्गी जानकी क्रोध करके उस राक्षसका तिरस्कार करती हुई बोलीं ॥ ३२ ॥ महागिरिके समान अविचल, समुद्रके समान अक्षोभ्य और इन्द्रके समान अपने पति रामचन्द्रकी मैं अनुरागिणी हूँ ॥ ३३ ॥ सर्वलक्षणोंसे युक्त और वटवृक्षके समान अपने आश्रितोंकी रक्षाकरनेवाले, सत्यप्रतिज्ञ रामचन्द्रकी मैं अनुरागिणी हूं ॥ ३४ ॥ महाबाहु, चौड़ी छातीवाले, सिंहके समान चलनेवाले, सिंहके सदृश नरश्रेष्ठ रामचन्द्रकी मैं अनुरागिणी हूं ॥ ३५ ॥ राजपुत्र पूर्णचन्द्रानन, जितेन्द्रिय, महाकीर्ति, महाबाहु रामचन्द्रकी मैं अनुरागिणी हूं ॥ ३६ ॥ तू सियार, दुर्लभ मुझ सिंहनीकी इच्छा करता है । सूर्यकी प्रभाके समान तुम मेरा स्पर्श भी नहीं कर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पादपान्काञ्चनान्नूनं बहून्पश्यसि मन्दभाक् । राघवस्य प्रियां भार्यां यस्त्वमिच्छसि राक्षस॥३८॥
क्षुधितस्य च सिंहस्य मृगशत्रोस्तरास्विनः । आशीविषस्य वदनादंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥३९॥
मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं पाणिना हर्तुमिच्छसि । कालकूटं विषं पीत्वा स्वस्तिमान्गन्तुमिच्छसि॥४०॥
अक्षि सूच्या प्रमृजसि जिह्वया लेढि च क्षुरम् । राघवस्य प्रियां भार्यामधिगन्तुं त्वमिच्छसि ॥४१॥
अवसज्य शिलां कण्ठे समुद्रं तर्तुमिच्छसि । सूर्याचन्द्रमसौ चोभौ पाणिभ्यां हर्तुमिच्छसि ॥४२॥
यो रामस्य प्रियां भार्यां प्रधर्षयितुमिच्छसि । अग्निं प्रज्वलितं दृष्ट्वा वस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि ॥४३॥
कल्याणवृत्तां यो भार्यां रामस्याहर्तुमिच्छसि । अयोमुखानां शूलानां मध्ये चरितुमिच्छसि ।
रामस्य सदृशीं भार्यां गोऽधिगन्तुं त्वमिच्छसि ॥४४॥

यदन्तरं सिंहशृगालयोर्वने यदन्तरं स्यन्दनिकासमुद्रयोः ।
सुराग्र्यसौवीरकयोर्यदन्तरं तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च ॥४५॥
यदन्तरं काञ्चनसीसलोहयोर्यदन्तरं चन्दनवारिपङ्कयोः ।
यदन्तरं हस्तिबिडालयोर्वने तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च ॥४६॥
यदन्तरं वायसवैनतेययोर्यदन्तरं मद्गुमयूरयोरपि ।
यदन्तरं हंसकृध्रयोर्वने तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च ॥४७॥
तस्मिन्सहस्राक्षसमप्रभावे रामे स्थिते कार्मुकबाणपाणौ ।
हृतापि तेऽहं न जरां गमिष्ये आज्यं यथा मक्षिकयावगीर्णम् ॥४८॥

सकते ॥ ३७ ॥ राक्षस, रामचन्द्रकी प्रिय स्त्रीको जो तुम ले जाना चाहते हो, अवश्यही तुम मन्द-भागी हो । अवश्यही तुम वृक्षोंको सुवर्णमय देख रहे हो (वृक्षोंको सोनेके समान देखना विनाश-का सूचक है) ॥ ३८ ॥ तुम अति वेगवान् भूखे मृगशत्रु सिंहके और जहरीले सांपसे उनकी दाढ़ निकालना चाहते हो ॥ ३९ ॥ तुम पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचलको हाथोंमें ले जाना चाहतेहो, कलकूट विष पीकर निर्विघ्न लौट जाना चाहते हो ॥ ४० ॥ तुम अपनी आंखें सूईसे खुजला रहे हो, छूरा जीभसे चाट रहे हो, जो रामचन्द्रकी प्रिय स्त्री को लेजाना चाहते हो ॥ ४१ ॥ गलेमें पत्थर बांधकर समुद्र तैरना चाहते हो, सूर्य और चन्द्रमा दोनोंको अपने हाथोंसे खींच लेना चाहते हो ॥४२॥ जो तुम रामचन्द्रकी प्रिय स्त्रीपर जबरदस्ती करना चाहते हो, वह आगको कपड़ेमें बांधकर लेजाना चाहते हो॥४३॥शुद्ध आचरणवाली रामचन्द्रकी स्त्रीका जो हरण करना चाहता है, वह लोहे-के शूलोंपर चलना चाहता है, क्योंकि रामचन्द्रकी योग्य स्त्रीको तुम ले जाना चाहते हो ॥ ४४ ॥ वनमें सिंह और शृगाल में जो अन्तर है, छोटी नदी और समुद्र में जो अन्तर है, अमृत और कांजीमें जो अन्तर है, वही अन्तर तुममें और रामचन्द्रमें है ॥ ४५ ॥ सोना और शीशा-लोहेमें जो अन्तर है, चन्दन और कीचड़में जो अन्तर है, हाथी और बिल्लीमें जो अन्तर है, वही अन्तर तुममें और रामचन्द्रमें है ॥ ४६ ॥ कौआ और गरुड़में जो अन्तर है, मयूर और जल कौआमें जो अन्तर है, हंस और गीधमें जो अन्तर है, वही अन्तर तुममें और रामचन्द्रमें है ॥ ४७ ॥ इन्द्रके समान पराक्रम रखनेवाले रामचन्द्रके धनुषबाण धारण करके वर्तमान रहते हुए, यदि तुम मेरा हरण कर लो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इतीव तद्वाक्यमदुष्टभावा सुदुष्टमुक्त्वा रजनीचरं तम् ।
गात्रप्रकम्पाद्व्यथिता बभूव वातोद्धता सा कदलीव तन्वी ॥४९॥
तां वेपमानामुपलक्ष्य सीतां स रावणो मृत्युसमप्रभावः ।
कुलं बलं नाम च कर्म चात्मनः समाचचक्षे भयकारणार्थम् ॥५०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ४८

एवं ब्रुवत्यां सीतायां संरब्धः परुषं वचः । ललाटे भ्रुकुटिं कृत्वा रावणः प्रत्युवाच ह ॥ १ ॥
भ्राता वैश्रवणस्याहं सापत्नो वरवर्णिनि । रावणो नाम भद्रं ते दशग्रीवः प्रतापवान् ॥ २ ॥
यस्य देवाः सगन्धर्वाः पिशाचपतगोरगाः । विद्रवन्ति सदा भीता मृत्योरिव सदा प्रजाः ॥ ३ ॥
येन वैश्रवणो भ्राता वैमात्रः कारणान्तरे । द्वन्द्वमासादितः क्रोधाद्रणे विक्रम्य निर्जितः ॥ ४ ॥
मद्भयार्तः परित्यज्य स्वमधिष्ठानमृद्धिमत् । कैलासं पर्वतश्रेष्ठमध्यास्ते नरवाहनः ॥ ५ ॥
यस्य तत्पुष्पकं नाम विमानं कामगं शुभम् । वीर्यादावर्जितं भद्रे येन यामि विहायसम् ॥ ६ ॥
मम संजातरोषस्य मुखं दृष्ट्वैव मैथिलि । विद्रवन्ति परित्रस्ताः सुराः शक्रपुरोगमाः ॥ ७ ॥
यत्र तिष्ठाम्यहं तत्र मारुतो वाति शङ्कितः । तीव्रांशुः शिशिरांशुश्च भयात्संपद्यते दिवि ॥ ८ ॥

तब भी मुझे पचा नहीं सकते, जिस प्रकार मक्खी, निगला हुआ घी पचा नहीं सकती ॥४८॥ उस दुष्ट राक्षसको ऐसी बातें कहकर शुद्ध अभिप्राय रखनेवाली सीता अंगोंके कांपनेसे दुखी हुई, जिस प्रकार हवासे हिलायी गयी पतली कदली ॥ ४९ ॥ सीता कांप रही है यह देखकर मृत्युके समान प्रभाव रखनेवाला रावण सीताको और डरवानेकेलिए अपना कुल, अपना नाम और अपना काम बतलाने लगा ॥ ५० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४७ ॥

सीताके ऐसा कठोर वचन कहनेपर रावणने बड़े क्रोधसे भौंहे तरेरकर उत्तर दिया ॥ १ ॥ सुन्दरि, मैं कुबेरका सौतेला भाई हूं । तुम्हारा कल्याण हो, मैं प्रतापी दसग्रीव हूँ, मेरा नाम रावण है ॥ २ ॥ पिशाच, पक्षी, सर्प, देवता, गन्धर्व आदि मृत्युके समान जिससे डरकर सदा भागा करते हैं ॥ ३ ॥ सौतेले भाई कुबेरसे किसी कारणवश युद्ध होगया और मैंने पराक्रम करके उन्हें जीत लिया ॥ ४ ॥ मेरे भयसे कुबेर, समृद्धिशाली अपनी लंका नगरीको छोड़कर कैलाश पर्वतपर निवास करते हैं ॥ ५ ॥ कुबेरका पुष्पक विमान, जो स्वेच्छानुसार चलता है उसे, मैंने बलसे ले लिया है और मैं उससे आकाशमें भ्रमण करता हूँ ॥ ६ ॥ मैथिलि, जब मैं क्रोध करता हूँ तब इन्द्र आदि देवता मेरा मुँह देखकर ही भागजाते हैं ॥ ७ ॥ जहाँ मैं रहता हूँ वहाँ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निष्कम्पपत्रास्तरवो नद्यश्च स्तिमितोदकाः । भवन्ति यत्र तत्राहं तिष्ठामि च चरामि च ॥ ९ ॥
मम पारे समुद्रस्य लङ्का नाम पुरी शुभा । संपूर्णा राक्षसैर्घोरैर्ययेन्द्रस्यामरावती ॥१०॥
प्राकारेण परिक्षिप्ता पाण्डुरेण विराजिता । हेमकक्ष्या पुरी रम्या वैदूर्यमयतोरणा ॥११॥
हस्त्यश्वरथसंबाधा तूर्यनादविनादिता । सर्वकामफलैर्वृक्षैः संकुलोद्यानभूषिता ॥१२॥
तत्र त्वं वस हे सीते राजपुत्रि मया सह । न स्मरिष्यासि नारीणां मानुषीणां मनस्विनि ॥१३॥
भुञ्जाना मानुषान्भोगान्दिव्यांश्च वरवर्णिनि । न स्मरिष्यसि रामस्य मानुषस्य गतायुषः ॥१४॥
स्थापयित्वा प्रियं पुत्रं राज्ये दशरथो नृपः । मन्दवीर्यस्ततो ज्येष्ठः सुतःप्रस्थापितो वनम् ॥१५॥
तेन किं भ्रष्टराज्येन रामेण गतचेतसा । करिष्यसि विशालाक्षि तापसेन तपस्विना ॥१६॥
रक्ष राक्षसभर्तारं कामय स्वयमागतम् । न मन्मथशराविष्टं प्रत्याख्यातुं त्वमर्हसि ॥१७॥
प्रत्याख्याय हि मां भीरु पश्चात्तापं गमिष्यसि । चरणेनाभिहत्येव पुरूरवसमुर्वशी ॥१८॥
अङ्गुल्या न समो रामो मम युद्धे स मानुषः । तव भाग्येन संप्राप्तं भजस्व वरवर्णिनि ॥१९॥
एवमुक्ता तु वैदेही क्रुद्धा संरक्तलोचना । अब्रवीत्परुषं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपम् ॥२०॥
कथं वैश्रवणं देवं सर्वदेवनमस्कृतम् । भ्रातरं व्यपदिश्य त्वमशुभं कर्तुमिच्छसि ॥२१॥

डरता हुआ वायु चलता है । मेरे भयसे सूर्य चन्द्रमा बन जाते हैं । मैं जहाँ रहता हूँ या भ्रमण करता हूँ वहाँके वृक्षोंके पत्ते तक नहीं हिलते और नदियोंकी गति रुक जाती है ॥ ९ ॥ समुद्रपार लंका नामकी सुन्दर मेरी नगरी है । वह भयानक राक्षसोंसे भरी हुई है, जैसे देवताओंसे इन्द्रकी अमरावती ॥ १० ॥ उसके चारों ओर सफेद चारदिवारी है । वहांके महलोंके आंगन आदि सोनेके बने हुए हैं और बाहरका द्वार वैदूर्य मणिका बना हुआ है ॥ ११ ॥ हाथी, घोड़े और रथकी वहां भीड़ है । बाजे बजते रहते हैं, सब कालमें फल देनेवाले वृक्ष वहाँके बागोंमें हैं ॥ १२ ॥ राजपुत्रि सीते, तुम मेरे साथ वहाँ निवास करो । वहाँ रहनेसे मनुष्यस्त्रियोंका तुम्हें स्मरण न होगा ॥ १३ ॥ मनुष्य तथा देवताओंके भोगोंको भोगती हुई, तुम इस अल्पायु मनुष्य रामचन्द्रका भी स्मरण न करोगी ॥ १४ ॥ राजा दसरथने अपने प्रियपुत्र भरतको राज्य दिया, ज्येष्ठ होने परभी रामचन्द्र दुर्बल हैं, इसलिए उसे वन भेज दिया ॥ १५ ॥ जिसका राज्य नष्ट होगया है, अतएव जिसकी बुद्धि ठिकाने नहीं है, उस तपस्या करनेवाले तपस्वी रामचन्द्रको लेकर विशालाक्षि, तुम क्या करोगी ॥ १६ ॥ राक्षसोंके स्वामीकी रक्षा करो, वह स्वयं तुम्हारे पास आया है, उससे तुम अनुराग करो, कामके बाणोंसे व्यथित उसका त्याग करना तुम्हें उचित नहीं ॥ १७ ॥ मेरा त्याग करके हे भीरु, तुमको पश्चात्ताप होगा, जिस प्रकार पुरूरवाको लात मारनेसे उर्वशीको हुआ था ॥ १८ ॥ सुन्दरी, वह रामचन्द्र युद्धमें मेरी अंगुलीके बराबर भी नहीं है । तुम्हारे भाग्यहीसे मैं यहां आगया हूं, तुम मुझे स्वीकार करो ॥ १९ ॥ रावणके ऐसा कहनेपर जानकीने क्रोध किया । उनकी आंखे लाल हो गयीं । उन्होंने रामचन्द्रसे शून्य उस आश्रममें कठोर वचन कहा ॥ २० ॥ सब देवताओंसे नमस्कृत कुबेरको तुम अपना भाई बतलाते हो और यह बुरा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अवश्यं विनशिष्यन्ति सर्वे रावण राक्षसाः । येषां त्वं कर्कशो राजा दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः ॥२२॥
अपहृत्य शचीं भार्यां शक्यमिन्द्रस्य जीवितुम् । नहि रामस्य भार्यां मामानीय स्वस्तिमान्भवेत्॥२३॥
जीवेच्चिरं वज्रधरस्य पश्चाच्छचीं प्रधृष्याप्रतिरूपरूपाम् ।
न मादृशीं राक्षस धर्षयित्वा पीतामृतस्यापि तवास्ति मोक्षः ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डेऽष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशः सर्गः ४९

सीताया वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान् । हस्ते हस्तं समाहन्य चकार सुमहद्वपुः ॥ १ ॥
स मैथिलीं पुनर्वाक्यं बभाषे वाक्यकोविदः । नोन्मत्तया श्रुतौ मन्ये मम वीर्यपराक्रमौ ॥ २ ॥
उद्वहेयं भुजाभ्यां तु मेदिनीमम्बरे स्थितः । आपिबेयं समुद्रं च मृत्युं हन्यां रणे स्थितः ॥ ३ ॥
अर्कं तुद्यां शरैस्तीक्ष्णैर्विभिन्द्यां हि महीतलम् । कामरूपेण उन्मत्ते पश्य मां कामरूपिणम् ॥ ४ ॥
एवमुक्तवतस्तस्य रावणस्य शिखिप्रभे । क्रुद्धस्य हरिपर्यन्ते रक्ते नेत्रे बभूवतुः ॥ ५ ॥
सद्यः सौम्यं परित्यज्य तीक्ष्णरूपं स रावणः । स्वं रूपं कालरूपाभं भेजे वैश्रवणानुजः ॥ ६ ॥
संरक्तनयनः श्रीमांस्तप्तकाञ्चनभूषणः । क्रोधेन महताविष्टो नीलजीमूतसंनिभः ॥ ७ ॥

कर्म करना चाहते हो ॥२१॥ रावण अवश्यही सब राक्षसोंका विनाश हो जायगा, क्योंकि उनका राजा तुम्हारे समान कठोर बोलनेवाला बुद्धिहीन और अजितेन्द्रिय है ॥२२॥ इन्द्रकी स्त्रीको लाकर कोई जी जाय यह सम्भव है, पर रामचन्द्रकी स्त्री मुझे ले जाकर कोई सुखी नहीं रह सकता ॥ २३ ॥ वज्रधर इन्द्रकी परम सुन्दरी स्त्रीपर बलात्कार करके कोई जी सकता है, पर राक्षस, मेरा अपमान करनेवाले तुम यदि अमृत भी पी लो तो भी तुम्हारा छुटकारा नहीं हो सकता ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका अड़तालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४८ ॥

सीताके वचन सुनकर प्रतापी रावणने अपने हाथसे हाथ दबाकर अपने शरीरको बहुत बड़ा बना लिया ॥ १ ॥ वाक्य बोलनेमें निपुण रावण पुनः सीतासे बोला—उन्मत्त तुमने मेरे बल और पराक्रमकी बात नहीं सुनी, ऐसा मैं समझता हूँ ॥ २ ॥ आकाशमें ठहरकर मैं अपनी भुजाओंसे पृथिवीको उठा सकता हूँ, समुद्रको पी जा सकता हूँ और युद्धमें मृत्युको भी मार सकता हूँ ॥ ३ ॥ बाणोंसे सूर्यको व्यथित कर सकता हूँ, पृथिवीतलको भेद सकता हूँ, स्वेच्छानुसार विचरण करनेवाली उन्मत्ते, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले मुझे देखो ॥ ४ ॥ ऐसा कहतेही उसकी लाल आंखें, जिनके चारों ओरका भाग काला है, मयूरपुच्छके समान हो गयीं ॥ ५ ॥ शीघ्रही अपने संन्यासी रूपका त्याग करके बड़ाही उग्र, कालके समान रूप उस रावणने धारण किया ॥ ६ ॥ उसकी आंखें लाल हो गयीं । उत्तम सुवर्णके गहने पहननेवाला रावण, बड़े

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दशास्यो विंशतिभुजो बभूव क्षणदाचरः । स परिव्राजकच्छद्म महाकायो विहाय तत् ॥ ८ ॥
प्रतिपेदे स्वकं रूपं रावणो राक्षसाधिपः । रक्ताम्बरधरस्तस्थौ स्त्रीरत्नं प्रेक्ष्य मैथिलीम् ॥ ९ ॥
स तामसितकेशान्तां भास्करस्य प्रभामिव । वसनाभरणोपेतां मैथिलीं रावणोऽब्रवीत् ॥१०॥
त्रिषु लोकेषु विख्यातं यदि भर्तारमिच्छसि । मामाश्रय वरारोहे तवाहं सदृशः पतिः ॥११॥
मां भजस्व चिराय त्वमहं श्लाघ्यः पतिस्तव । नैव चाहं क्वचिद्भद्रे करिष्ये तव विप्रियम् ॥१२॥
त्यजतां मानुषो भावो मयि भावः प्रणीयताम् । राज्याच्च्युतमसिद्धार्थं राम परिमितायुषम् ॥१३॥
कैर्गुणैरनुरक्तासि मूढे पण्डितमानिनि । यः स्त्रियो वचनाद्राज्यं विहाय ससुहृज्जनम्॥१४॥
अस्मिन्व्यालानुचरिते वने वसति दुर्मतिः । इत्युक्त्वा मैथिलीं वाक्यं प्रियार्हां प्रियवादिनीम् १५
अभिगम्य सुदुष्टात्मा राक्षसः काममोहितः । जग्राह रावणः सीतां बुधः खे रोहिणीमिव ॥१६॥
वामेन सीतां पद्माक्षीं मूर्धजेषु करेण सः । ऊर्वोस्तु दक्षिणेनैव परिजग्राह पाणिना ॥१७॥
तं दृष्ट्वा गिरिशृङ्गाभं तीक्ष्णदंष्ट्रं महाभुजम् । प्राद्रवन्मृत्युसंकाशं भयार्ता वनदेवताः ॥१८॥
स च मायामयो दिव्यः खरयुक्तः खरस्वनः । प्रत्यदृश्यत हेमाङ्गो रावणस्य महारथः ॥१९॥
ततस्तां परुषैर्वाक्यैराभितर्ज्य महास्वनः । अङ्केनादाय वैदेहीं रथमारोहयत्तदा ॥२०॥
सा गृहीतातिचुक्रोश रावणेन यशस्विनी । रामेति सीता दुःखार्ता रामं दूरं गतं वने ॥२१॥

क्रोधके कारण नील मेघके समान काला हो गया । उसने परिव्राजकका रूप छोड़कर दस मस्तक और बीस भुजवाला बड़ा शरीर धारण किया ॥ ७ ॥ ८ ॥ अपना रूप धारण करके रक्त वस्त्र धारण करनेवाला राक्षसाधिप रावण, स्त्रीश्रेष्ठ जानकीको देखकर ठहर गया ॥ ९ ॥ जिसके केश-के अग्र भाग काले हैं, जिसने वस्त्रभूषण धारण किया है, उस सूर्यकी प्रभाके समान सीतासे रावण बोला ॥ १० ॥ यदि तुम तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध पुरुषको अपना पति बनाना चाहती हो तो, हे वरारोहे, मेरा आश्रय लो । मैं तुम्हारे योग्य पति हूँ ॥ ११ ॥ तुम मुझे स्वीकार करो, मैं तुम्हारा प्रिय पति होऊँगा । भद्रे, मैं कभी तुम्हारे प्रतिकूल कोई बात न करूंगा ॥ १२ ॥ मनुष्यका स्नेह छोड़ दो, मुझमें स्नेह करो । राज्यच्युत, अपूर्णमनोरथ, अल्पायु रामचन्द्रमें किन गुणोंसे तुम अनुराग करती हो । मूर्खे, तुम अपनेको पण्डिता समझती हो । स्त्रीके कहनेसे मित्रों-के साथ राज छोड़कर हिंसक जन्तुओंवाले इस वनमें जो मूर्ख रहता है, किस गुणसे उसपर तुम अनुरक्त हो ? प्रिय वचन बोलनेवाली और सुननेवाली सीतासे ऐसा अप्रिय वचन बोलकर काममोहित दुष्टात्मा वह राक्षस सीताके पास गया और उसने सीताको पकड़ा, जैसे आकाश-में रोहिणीको बुध पकड़े ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ बाएं हाथसे सीताका मस्तक और दहने हाथ-से उरू उसने पकड़ा ॥ १७ ॥ पर्वतशृंगके समान ऊंचा, लम्बे हाथ और लम्बे दांतवाली मृत्युके समान रावणको देखकर वन देवताएं डरकर भाग गयीं ॥ १८ ॥ वह मायाका बना हुआ दिव्य गदहोंका रथ और गदहोंके शब्दसे युक्त, सोनेके पहियोंवाला रावणका बड़ा भारी रथ दिखायी पड़ा ॥ १९ ॥ कठोर वचनोंसे, उस ऊँची आवाज रखनेवाले रावणने सीताको धमकाकर तथा गोद-में लेकर रथपर बैठाया ॥ २० ॥ रावणसे पकड़ी जानेपर यशस्विनी सीता बड़े दुःखसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तामकामां स कामार्तः पन्नगेन्द्रवधूमिव । विचेष्टमानामादाय उत्पपाताथ रावणः ॥२२॥
ततः सा राक्षसेन्द्रेण ह्रियमाणा विहायसा । भृशं चुक्रोश मत्तेव भ्रान्तचित्ता यथातुरा ॥२३॥
हा लक्ष्मण महाबाहो गुरुचित्तप्रसादक । ह्रियमाणां न जानीषे रक्षणा कामरूपिणा ॥२४॥
जीवितं सुखमर्थं च धर्महेतोः परित्यजन् । ह्रियमाणामधर्मेण मां राघव न पश्यसि ॥२५॥
ननु नामाविनीतानां विनेतासि परंतप । कथमेवंविधं पापं न त्वं शाधि हि रावणम् ॥२६॥
ननु सद्योऽविनीतस्य दृश्यते कर्मणः फलम् । कालोऽप्यङ्गीभवत्यत्र सस्यानामिय पक्तये ॥२७॥
त्वं कर्म कृतवानेतत्कालोपहतचेतनः । जीवितान्तकरं घोरं रामाद्व्यसनमाप्नुहि ॥२८॥
हन्तेदानीं सकामा तु कैकेयी बान्धवैः सह । ह्रियेयं धर्मकामस्य धर्ममत्नी यशस्विनः ॥२९॥
आमन्त्रये जनस्थानं कर्णिकारांश्च पुष्पितान् । क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः ॥३०॥
हंससारससंघुष्टां वन्दे गोदावरीं नदीम् । क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः ॥३१॥
दैवतानि च चान्यस्मिन्वने विविधपादपे । नमस्करोम्यहं तेभ्यो भर्तुः शंसत मां हृताम् ॥३२॥
यानि कानिचिदप्यत्र सत्त्वानि विविधानि च । सर्वाणि शरणं यामि मृगपक्षिगणानि वै ॥३३॥
ह्रियमाणां प्रियां भर्तुः प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् । विवशा ते हृता सीता रावणेनेति शंसत ॥३४॥

रोने लगीं। वनमें दूर गये हुए रामचन्द्रको सीता 'राम' 'राम' कहकर पुकारने लगीं ॥ २१ ॥ अनुरागरहित, अतएव अपनेको छुड़ा लेनेके लिए सर्पिणीके समान छटपटाती हुई, सीताको गोद-में लेकर कामार्त रावण आकाशमें उड़ गया ॥ २२ ॥ रावणके द्वारा आकाशमार्गसे हरी जाती हुई दुःखिनी सीता उन्मत्तके समान भ्रान्तचित्त होकर दुःखसे रोने लगीं ॥ २३ ॥ अपने बड़े भाईको प्रसन्न करनेवाले महाबाहो लक्ष्मण स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाला राक्षस मुझे हरकर ले जा रहा है, यह तुम नहीं जानते ॥ २४ ॥ रामचन्द्र, धर्मके लिए, प्राण, सुख और धनका तुमने त्याग किया है, अधर्मी राक्षसके द्वारा मैं हरी जा रही हूँ और तुम नहीं देखते ॥ २५ ॥ रामचन्द्र, तुम कुमार्गमें चलनेवालोंको शिक्षा देते हो, उन्हें सुमार्गमें ले आते हो, फिर ऐसे पापी रावणको क्यों नहीं सिखाते ॥ २६ ॥ बुरे आदमियोंको उनकी बुराईका फल शीघ्र ही नहीं मिलता, समयकी भी जरूरत पड़ती है, जिसप्रकार शस्योंको पकनेके लिए समय आवश्यक होता है ॥ २७ ॥ कालसे बुद्धि नष्ट हो जानेके कारण तुमने प्राणनाशक ऐसा क्रूर कर्म किया है, तुम्हें रामचन्द्रके हाथों विपत्ति भोगनी पड़े ॥ २८ ॥ हाय, इस समय केकयीका मनोरथ, उसके बान्धवोंके साथ पूरा हुआ; क्योंकि धर्मात्मा यशस्वी रामचन्द्रकी धर्मपत्नी मैं हरी जा रही हूँ ॥ २९ ॥ मैं जनस्थानसे, वहांके फूले हुए कर्णिकार पुष्पोंसे कहती हूँ कि तुम शीघ्र ही रामचन्द्रसे कहो कि रावण सीताको हरकर ले जा रहा है ॥ ३० ॥ हंस और सारसोंसे युक्त गोदावरी नदी-को मैं प्रणाम करती हूँ। आप लोग शीघ्रही रामचन्द्रसे कहें कि रावण सीताको हरकर ले जा रहा है ॥ ३१ ॥ इस अनेक वृक्षोंवाले वनमें जितने देवता रहते हैं, उन सबको मैं प्रणाम करती हूँ, वे लोग शीघ्रही मेरे हरी जानेकी बात रामचन्द्रसे कहें ॥ ३२ ॥ जो कोई प्राणी यहां रहते हैं, जो कोई पशु-पक्षी हों, उन सबकी मैं शरण हूँ ॥ ३३ ॥ वे लोग रामचन्द्रसे कहें कि प्राणोंसे भी प्रिय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विदित्वा तु महाबाहुरमुत्रापि महाबलः । आनेष्यति पराक्रम्य वैवस्वतहृतामपि ॥३५॥
सा तदा करुणा वाचो विलपन्ती सुदुःखिता । वनस्पतिगतं गृध्रं ददर्शायतलोचना ॥३६॥
सा तमुद्वीक्ष्य सुश्रोणी रावणस्य वशंगता । समाक्रन्दद्भयपरा दुःखोपहितया गिरा ॥३७॥
जटायो पश्य मामार्य ह्रियमाणामनाथवत् । अनेन राक्षसेन्द्रेण करुणं पापकर्मणा ॥३८॥
नैष वारयितुं शक्यस्त्वया क्रूरो निशाचरः । सत्त्ववाञ्जितकाशी च सायुधश्चैव दुर्मतिः ॥३९॥
रामाय तु यथातत्त्वं जटायो हरणं मम । लक्ष्मणाय च तत्सर्वमाख्यातव्यमशेषतः ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥४९॥

पञ्चाशः सर्गः ५०

तं शब्दमवसुप्तस्तु जटायुरथ शुश्रुवे । निरैक्षद्रावणं क्षिप्रं वैदेहीं च ददर्श सः ॥ १ ॥
ततः पर्वतशृङ्गाभस्तीक्ष्णतुण्डः खगोत्तमः । वनस्पतिगतः श्रीमान्व्याजहार शुभां गिरम् ॥ २ ॥
दशग्रीव स्थितो धर्मे पुराणे सत्यसंश्रवः । भ्रातस्त्वं निन्दितं कर्म कर्तुं नार्हसि सांप्रतम् ॥ ३ ॥
जटायुर्नाम नाम्नाहं गृध्रराजो महाबलः । राजा सर्वस्य लोकस्य महेन्द्रवरुणोपमः ॥ ४ ॥
लोकानां च हिते युक्तो रामो दशरथात्मजः । तस्यैषा लोकनाथस्य धर्मपत्नी यशस्विनी ॥ ५ ॥
सीता नाम वरारोहा यां त्वं हर्तुमिहेच्छसि । कथं राजा स्थितो धर्मे परदारान्परामृशेत् ॥ ६ ॥

आपकी स्त्री हरी गयी, वह विवश थी, उसको रावण हर कर लेगया ॥३४॥ जाननेके पश्चात् महाबली, महाबाहु रामचन्द्र यमराजके द्वारा हरी गयी और परलोकमें गयी हुई भी मुझको, अपने पराक्रमसे लौटा ले आवेंगे ॥ ३५ ॥ इसप्रकार दुःखित शब्दोंसे विलाप करती हुई दुःखिनी सीताने पेड़पर बैठे हुए एक गीधको देखा ॥ २६ ॥ रावणके पञ्जेमें फँसी हुई सीता उस गीधको देखकर डरती हुई, दुःखके शब्दोंमें रोने लगी ॥ ३७ ॥ आर्य, जटायु, पापी राक्षसराज अनाथके समान निर्दयतासे मुझे हरकर लेजा रहा है ॥ ३८ ॥ तुम इस क्रूर राक्षसको रोक नहीं सकते, क्योंकि यह बलवान और बहुतोंको जीतनेवाला है । यह पापी अस्त्र भी लिए हुए है ॥ ३९ ॥ पर मेरे हरी जानेका यह सब वृत्तान्त यथावत् तुम राम और लक्ष्मणसे कहना ॥ ४० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका उनचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४९ ॥

उस शब्दको गहरी नींदमें सोये हुए भी जटायुने सुन लिया । उस शब्दसे जागकर जटायुने देखा और सीता तथा रावणको उसने देखा ॥ १ ॥ उस श्रेष्ठपक्षीने, जो पर्वतके समान ऊँचा था, जिसकी चोंच तीखी थी, पेड़परसे ही मनोहर वचन कहा ॥ २ ॥ दसग्रीव, सनातन धर्ममें स्थित, सत्यप्रतिज्ञ, महाबली गृध्रराज मैं जटायु हूँ । भाई, तुमको इससमय ऐसा निंदित काम नहीं करना चाहिए । महेन्द्र और वरुणके समान सबके स्वामी समस्त संसारके हित करनेवाले राजा दसरथके पुत्र लोकनाथ रामचन्द्रकी यह यशस्विनी धर्मपत्नी है ॥ ३, ४, ५ ॥ इसका सीता नाम है,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रक्षणीया विशेषेण राजदारा महाबल । निवर्तय गतिं नीचां परदाराभिमर्शनात् ॥ ७ ॥
न तत्समाचरेद्धीरो यत्परोऽस्य विगर्हयेत् । यथात्मनस्तथान्येषां दारा रक्ष्या विमर्शनात् ॥ ८ ॥
अर्थं वा यदि वा कामं शिष्टाः शास्त्रेष्वनागतम् । व्यवस्यन्त्यनुराजानं धर्मं पौलस्त्यनन्दन ॥ ९ ॥
राजा धर्मश्च कामश्च द्रव्याणां चोत्तमो निधिः । धर्मः शुभं वा पापं वा राजमूलं प्रवर्तते ॥ १० ॥
पापस्वभावश्चपलः कथं त्वं रक्षसां वर । ऐश्वर्यमभिसंप्राप्तो विमानमिव दुष्कृती ॥ ११ ॥
कामस्वभावो यः सोऽसौ नशक्यस्तं प्रमार्जितुम् । नहि दुष्टात्मनामार्य मा वसत्यालये चिरम् ॥ १२ ॥
विषये वा पुरे वा ते यदा रामो महाबलः । नापराध्यति धर्मात्मा कथं तस्यापराध्यसि ॥ १३ ॥
यदि शूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतः खरः । अतिवृत्तो हतः पूर्वं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ १४ ॥
अत्र ब्रूहि यथातत्त्वं को रामस्य व्यतिक्रमः । यस्य त्वं लोकनाथस्य हृत्वा भार्यां गमिष्यसि ॥ १५ ॥
क्षिप्रं विसृज वैदेहीं मा त्वा घोरेण चक्षुषा । दहेद्दहनभूतेन वृत्रमिन्द्राशनिर्यथा ॥ १६ ॥
सर्पमाशीविषं बद्ध्वा वस्त्रान्ते नावबुध्यसे । ग्रीवायां प्रतिमुक्तं च कालपाशं न पश्यसि ॥ १७ ॥
स भारः सौम्य भर्तव्यो यो नरं नावसादयेत् । तदन्नमपि भोक्तव्यं जीर्यते यदनामयम् ॥ १८ ॥
यत्कृत्वा न भवेद्धर्मो न कीर्तिर्न यशो ध्रुवम् । शरीरस्य भवेत्खेदः कस्तत्कर्म समाचरेत् ॥ १९ ॥

जिसको तुम हर ले जाना चाहते हो । अपने धर्ममें स्थित कोई राजा, कैसे परस्त्रीका स्पर्श कर सकता है ॥ ६ ॥ महाबल, राजस्त्रियोंकी रक्षा तो विशेष होनी चाहिए । इस नीच बुद्धिको परस्त्रियोंके संसर्गसे हटावो ॥ ७ ॥ मनुष्यके जिस कार्यकी लोग निन्दा करें, उसे वह नहीं करना चाहिए । अपनी स्त्रीके समान दूसरेकी स्त्री की भी रक्षा परस्परसे करनी चाहिए ॥ ८ ॥ पौलस्त्यनन्दन, धर्म हो या काम, जिसका उपदेश शास्त्रोंमें नहीं किया गया है, श्रेष्ठ राजा उसका अनुष्ठान नहीं करते ॥ ९ ॥ धर्म, कल्याण, पाप, राजासे ही प्रारम्भ होकर प्रजा में फैलते हैं । अतएव राजाही धर्म, काम तथा धनका खजाना है ॥ १० ॥ हे राक्षसश्रेष्ठ, तुम पाप स्वभाववाले, चंचल और निषिद्ध कर्म करनेवाले हो, तुमको विमानके समान ऐश्वर्य कैसे प्राप्त हो गया ॥ ११ ॥ जिस मनुष्यका स्वभाव काम प्रधान होता है, वह अपने उस स्वभावको दूर नहीं कर सकता । दुष्टोंके घरमें पुण्य अथवा पुण्यफल ऐश्वर्य आदि बहुत दिनों तक नहीं रहते ॥ १२ ॥ तुम्हारे देश, तुम्हारे नगरमें महाबली रामचन्द्रने यदि कोई अपराध नहीं किया है, तो तुम उनके प्रति अपराध क्यों करते हो ॥ १३ ॥ सूर्पणखाके कहनेसे जनस्थानमें गये हुए, अहंकारी खरका पुण्यात्मा रामचन्द्रने वध किया तो तुम्हीं इसकी यथार्थताका निर्णय करो कि इसमें रामचन्द्रका कौन दोष है, जिस कारण उस लोकनाथकी स्त्रीको हरकर तुम ले जारहे हो ॥ १५ ॥ शीघ्रही जानकीको छोड़ दो, जब तक अग्निके समान जलती हुई भयानक आंखोंसे रामचन्द्र तुमको न जला दें, जैसे इन्द्रने वृत्रको जलाया था ॥ १६ ॥ जहरीले सांपको कपड़ेमें तुमने बांधा है पर इसका तुम्हें ज्ञान नहीं है । गलेमें यमराजकी फांसी लगा ली है, पर तुम समझते नहीं हो । मनुष्यको उतना ही बोझ उठाना चाहिए जो उसको पीड़ित न करे, उतनाही खाना चाहिए, जो पच जाय और रोग न हो ॥ १८ ॥ जिस कामके करनेसे न धर्म हो, न कीर्ति हो, न यश, केवल शरीर-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

षष्टिवर्षसहस्राणि जातस्य मम रावण । पितृपैतामहं राजयं यथावदनुतिष्ठतः ॥२०॥
वृद्धोऽहं त्वं युवा धन्वी सरथः कवची शरी । न चाप्यादाय कुशली वैदेहीं मे गमिष्यसि ॥२१॥
न शक्तस्त्वं बलाद्धर्तुं वैदेहीं मम पश्यतः । हेतुभिर्न्यायसंयुक्तैर्ध्रुवां वेदश्रुतीमिव ॥२२॥
युद्धयस्व यदि शूरोऽसि मुहूर्तं तिष्ठ रावण । शयिष्यसे हतो भूमौ यथा पूर्वं खरस्तथा ॥२३॥
असकृत्संयुगे येन निहता दैत्यदानवाः । न चिराच्चीरवासास्त्वां रामो युधि वधिष्यति॥२४॥
किं नु शक्यं मया कर्तुं गतौ दूरं नृपात्मजौ । क्षिप्रं त्वं नश्यसे नीच तयोर्भीतो न संशयः ॥२५॥
नहि मे जीवमानस्य नयिष्यसि शुभामिमाम् । सीतां कमलपत्राक्षीं रामस्य महिषीं प्रियाम् ॥२६॥
अवश्यं तु मया कार्यं प्रियं तस्य महात्मनः । जीवितेनापि रामस्य तथा दशरथस्य च ॥२७॥
तिष्ठ तिष्ठ दशग्रीव मुहूर्तं पश्य रावण । हन्तादिव फलं त्वां तु पातयेयं रथोत्तमात् ।
युद्धातिथ्यं प्रदास्यामि यथाप्राणं निशाचर ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ॥५०॥

एकपञ्चाशः सर्गः ५१

इत्युक्तः क्रोधताम्राक्षस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः । राक्षसेन्द्रोऽभिदुद्राव पतगेन्द्रममर्षणः ॥ १ ॥
स संप्रहारस्तुमुलस्तयोस्तस्मिन्महामृधे । बभूव वातोद्धुतयोर्मेघयोर्गगने यथा ॥ २ ॥

को कष्ट हो उस कामको कौन करता है ॥ १९ ॥ रावण, साठ हजार वर्ष मेरे उत्पन्न हुए और पिता पितामहोंके राज्यका पालन करते हुए हो गये ॥२०॥ मैं बूढ़ा हूँ और तुम युवा, तुम धनुष कवच और शरके साथ रथपर हो, नहीं तो जानकीको लेकर मेरे सामनेसे निर्विघ्न नहीं चले जाते ॥२१॥ मेरे देखते देखते बलपूर्वक तुम सीताका हरण नहीं कर सकते, जिस प्रकार तार्किक हेतुओं-के द्वारा सत्यसिद्ध वेदश्रुतिको कोई नहीं काट सकता ॥ २२ ॥ यदि वीर हो तो एक मुहूर्त ठहरो, युद्ध करो। जैसे खर भूमिमें सोया है, वैसे ही तुम भी सोओगे ॥ २३ ॥ जिसने अनेक युद्धोंमें दैत्यों और दानवोंको मारा है, वे चीर धारण करनेवाले रामचन्द्र शीघ्र ही तुम्हारा वध करेंगे। ॥ २४ ॥ मैं क्या कर सकता हूँ। वे दोनों राजपुत्र बड़ी दूर गये हैं। यह निश्चित है कि उनके भयसे शीघ्र ही तुम यहांसे भाग जाओगे ॥ २५ ॥ पर मेरे जीतेजी कमलपत्राक्षी, रामचन्द्रकी प्रिय महारानी सदाचारिणी सीताको तुम यहांसे नहीं ले जा सकते ॥ २६ ॥ मुझे अवश्यही राम-चन्द्र तथा दसरथके प्रिय कार्य करनेके लिए अपने प्राण लगा देने चाहियें ॥ २७ ॥ दसग्रीव रावण, ठहरो, एक मुहूर्त ठहरो, जैसे डंटीसे फल गिराया जाता है, वैसे ही रथसे मैं तुम्हें गिराता हूँ। राक्षस अपने बलके अनुसार युद्धके द्वारा मैं तुम्हारा आतिथ्य करूंगा ॥ २८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका पचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५० ॥

इस प्रकार जटायुके कहनेपर उत्तम सुवर्णका कुण्डल धारण करनेवाला, क्रोधी राक्षस-राज, क्रोधसे आँखें लाल कर जटायुकी ओर दौड़ा ॥ १ ॥ जटायु और रावणके उस भयानक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तद्बभूवाद्भुतं युद्धं गृध्रराक्षसयोस्तदा । सपक्षयोर्माल्यवतोर्महापर्वतयोरिव ॥ ३ ॥
ततो नालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्च विकार्णिभिः । अभ्यवर्षन्महाघोरैर्गृध्रराजं महाबलम् ॥ ४ ॥
स तानि शरजालानि गृध्रः पत्ररथेश्वरः । जटायुः प्रतिजग्राह रावणास्त्राणि संयुगे ॥ ५ ॥
तस्य तीक्ष्णनखाभ्यां तु चरणाभ्यां महाबलः । चकार बहुधा गात्रे व्रणान्पतगसत्तमः ॥ ६ ॥
अथ क्रोधादशग्रीवो जग्राह दश मार्गणान् । मृत्युदण्डनिभान्घोराञ्शत्रोर्निधनकाङ्क्षया ॥ ७ ॥
स तैर्बाणैर्महावीर्यः पूर्णमुक्तैराजिह्मगैः । बिभेद निशितैस्तीक्ष्णैर्गृध्रं घोरैःशिलीमुखैः ॥ ८ ॥
स राक्षसरथे पश्यञ्जानकीं बाष्पलोचनाम् । अचिन्तयित्वा बाणांस्तान्राक्षसं समभिद्रवत ॥ ९ ॥
ततोऽस्य सशरं चापं मुक्तामणिविभूषितम् । चरणाभ्यां महातेजा बभञ्ज पतगोत्तमः ॥१०॥
ततोऽन्यद्धनुरादाय रावणः क्रोधमूर्च्छितः । ववर्ष शरवर्षाणि शतशोऽथ सहस्रशः ॥११॥
शरैरावारितस्तस्य संयुगे पतगेश्वरः । कुलायमभिसंप्राप्तः पक्षिवच्च बभौ तदा ॥१२॥
स तानि शरजालानि पक्षाभ्यां तु विधूय ह । चरणाभ्यां महातेजा बभञ्जास्य महद्धनुः ॥१३॥
तच्चाग्निसदृशं दीप्तं रावणस्य शरावरम् । पक्षाभ्यां च महातेजा व्यधुनोत्पतगेश्वरः ॥१४॥
काञ्चनोरश्छदान्दिव्यान्पिशाचवदनान्खरान् । तांश्चास्य जवसंपन्नाञ्जघान समरे बली ॥१५॥
अथ त्रिवेणुसंपन्नं कामगं पावकार्चिषम् । मणिसोपानचित्राङ्गं बभञ्ज च महारथम् ॥१६॥

युद्धमें बड़ा विकट प्रहार हुआ । जिस प्रकार वायुके द्वारा उड़ाए दो मेघोंका संघर्ष आकाशमें होता है ॥ २ ॥ गीध और राक्षसका वह युद्ध बड़ा अद्भुत हुआ । पांखवाले, तथा पुष्पयुक्त जैसे दो पर्वतोंका युद्ध होता हो ॥ ३ ॥ नालीक, नाराच और तीखे विकर्णि बाणोंसे महाबली गृध्रराजको रावणने तोप दिया ॥ ४ ॥ पक्षिराज जटायुने रावणके चलाये उन बाणोंको युद्धमें रोक लिया ॥ ५ ॥ पक्षिश्रेष्ठ जटायुने अपने तीखे नखवाले चरणोंसे रावणके शरीरमें अनेक घाव किये ॥ ६ ॥ तब रावणने मृत्युदण्डके समान भयानक दस बाण शत्रुका वध करनेके लिए ग्रहण किये ॥ ७ ॥ खूब बल लगाकर चलाए गये, सीधे चलनेवाले, शानपर चढ़ाए हुए तीखे और क्रूर बाणोंसे रावणने गृध्रको छेदा ॥ ८ ॥ राक्षसके रथपर रोती हुई सीताको बैठी देखकर जटायुने उन बाणोंकी परवाह नहीं की और वे रावण पर टूट पड़े ॥ ९ ॥ मुक्ता और मणियोंसे विभूषित रावणका बाणयुक्त धनुष महातेजस्वी जटायुने अपने पैरोंसे तोड़ दिया ॥ १० ॥ क्रोधसे बढ़ा हुआ रावण दूसरा धनुष लेकर सैकड़ों और हजारों बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ ११ ॥ युद्धमें रावणके बाणोंसे ढँक जानेके कारण जटायु घोसलेमें बैठे पक्षीके समान मालूम पड़ने लगे ॥ १२ ॥ पांखोंसे उन सब बाणोंको हटाकर महातेजस्वी जटायुने अपने पैरोंसे रावणका धनुष तोड़ डाला ॥ १३ ॥ अग्निके समान प्रदीप्त रावणका वह कवच महातेजस्वी जटायुने अपने पंखोंसे तोड़ दिया ॥ १४ ॥ बली जटायुने पिशाचके मुखवाले अतिवेगवान् दिव्य खरोंको भी मार डाला, जो सोनेके कवच धारण किये हुए थे ॥ १५ ॥ महाबली जटायुने अग्निके समान प्रकाशमान् मणि और सुवर्णसे चित्रित इच्छानुसार चलनेवाले तथा युगन्धर युक्त रावणके रथको तोड़ डाला ॥१६॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूर्णचन्द्रप्रतीकाशं छत्रं च व्यजनैः सह। पातयामास वेगेन ग्राहिभी राक्षसैः सह ॥१७॥
सारथेश्चास्य वेगेन तुण्डेन च महच्छिरः। पुनर्व्यपहनच्छ्रीमान्पक्षिराजो महाबलः ॥१८॥
स भग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः। अङ्केनादाय वैदेहीं पपात भुवि रावणः ॥१९॥
दृष्ट्वा निपतितं भूमौ रावणं भग्नवाहनम्। साधुसाध्विति भूतानि गृध्रराजमपूजयन् ॥२०॥
परिश्रान्तं तु तं दृष्ट्वा जरया पक्षियूथपम्। उत्पपात पुनर्हृष्टो मैथिलीं गृह्य रावणः ॥२१॥
तं प्रहृष्टं निधायाङ्के रावणं जनकात्मजाम्। गच्छन्तं खड्गशेषं च प्रनष्टहतसाधनम् ॥२२॥
गृध्रराजः समुत्पत्य रावणं समभिद्रवत्। समावार्य महातेजा जटायुरिदमब्रवीत् ॥२३॥
वज्रसंस्पर्शबाणस्य भार्यां रामस्य रावण। अल्पबुद्धे हरस्येनां वधाय खलु रक्षसाम् ॥२४॥
समित्रबन्धुः सामात्यः सबलः सपरिच्छदः। विषपानं पिबस्येतत्पिपासित इवोदकम् ॥२५॥
अनुबन्धमजानन्तः कर्मणामविचक्षणाः। शीघ्रमेव विनश्यन्ति यथा त्वं विनाशिष्यसि ॥२६॥
बद्धस्त्वं कालपाशेन क्व गतस्तस्य मोक्ष्यसे। वधाय बडिशं गृह्य सामिषं जलजो यथा ॥२७॥
नहि जातु दुराधर्षौ काकुत्स्थौ तव रावण। धर्षणं चाश्रमस्यास्य क्षमिष्येते तु राघवौ ॥२८॥
यथा त्वया कृतं कर्म भीरुणा लोकगर्हितम्। तस्कराचरितो मार्गो नैष वीरनिषेवितः ॥२९॥
युद्ध्यस्व यदि शूरोऽसि मुहूर्तं तिष्ठ रावण। शयिष्यसे हतो भूमौ यथा भ्राता खरस्तथा ॥३०॥

चँवरके साथ पूर्ण चन्द्रमाके समान रावणका छत्र, उसके ग्रहण करनेवाले राक्षसोंके साथ पक्षीने शीघ्रतापूर्वक पृथिवीमें गिरा दिये ॥ १७ ॥ महाबली पक्षिराजने रावणके सारथीके मस्तकपर बड़े वेगसे चोंच मारी ॥ १८ ॥ धनुष, रथके टूट जानेसे, सारथी और घोड़ोंके मारे जानेसे रावण सीताको गोदमें लेकर पृथिवीमें गिरा ॥ १९ ॥ रथके नष्ट होनेसे, रावणको पृथिवीमें गिरते देखकर सब प्राणियोंने साधु-साधु कहकर जटायुकी प्रशंसा की ॥ २० ॥ वृद्धावस्थाके कारण उस पक्षिराजको थका हुआ जानकर रावण प्रसन्न होकर और सीताको लेकर आकाशमें ऊपर उठा ॥ २१ ॥ जानकीको गोदमें लेकर, अन्य सब साधनोंके नष्ट हो जानेसे केवल एक तलवार लेकर प्रसन्नतापूर्वक जाते हुए रावण पर गृध्रराजने उड़कर पुनः आक्रमण किया, उसको चारो तरफसे घेरकर महातेजस्वी जटायु बोले ॥ २२, २३ ॥ जिनके बाण वज्रके समान लगते हैं, उन रामचन्द्रकी स्त्रीको अरे मूर्ख, सब राक्षसोंका वध करानेके लिए हर ले जा रहा है ॥ २४ ॥ तुम मित्र बन्धु अमात्य सेना तथा अपने परिचारकोंके साथ यह विष पान कर रहे हो, जिस प्रकार प्यासा मनुष्य जल पीता है ॥ २५ ॥ अपने कर्मोंके फल न जानकर मूर्ख मनुष्य शीघ्रही विनष्ट हो जाते हैं, वैसे तुम विनष्ट होओगे ॥ २६ ॥ तुम कालपाशसे बँध गये हो, इससे तुम्हारी मुक्ति कैसे होगी, जिस प्रकार मछली अपने वधके लिए माँसयुक्त बंसी पकड़ लेती है ॥ २७ ॥ रावण, अपराजेय राम और लक्ष्मण अपने आश्रमका तुम्हारे द्वारा इस प्रकारका अपमान कभी नहीं सह सकते ॥२८॥ डरपोक, तुमने जो लोकनिन्दित काम किया है, वह चोरोंके योग्य है, वीरोंके योग्य यह मार्ग नहीं है ॥ २९ ॥ रावण यदि तुम वीर हो, एक मुहूर्त ठहरो, मुझसे युद्ध करो, जिस प्रकार तुम्हारा भाई खर युद्धभूमिमें सो गया है, उसी प्रकार तुम भी सोओगे ॥ ३० ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परेतकाले पुरुषो यत्कर्म प्रतिपद्यते । विनाशायात्मनोऽधर्म्यंप्रतिपन्नोऽसि कर्म तत् ॥३१॥
पापानुबन्धो वै यस्य कर्मणः को नु तत्पुमान् । कुर्वीत लोकाधिपतिः स्वयंभूर्भगवानपि ॥३२॥
एवमुक्त्वा शुभं वाक्यं जटायुस्तस्य रक्षसः । निपपात भृशं पृष्ठे दशग्रीवस्य वीर्यवान् ॥३३॥
तं गृहीत्वा नखैस्तीक्ष्णैर्विददार समन्ततः । अधिरूढो गजारोहो यथा स्यादुद्धतद्विपम् ॥३४॥
विददार नखैरस्य तुण्डं पृष्ठे समर्पयन् । केशांश्चोत्पाटयामास नखपक्षमुखायुधः ॥३५॥
स तदा गृध्रराजेन क्लिश्यमानो मुहुर्मुहुः । अमर्षस्फुरितोष्ठः सन्प्राकम्पत च राक्षसः ॥३६॥
संपरिष्वज्य वैदेहीं वामेनाङ्केन रावणः । तलेनाभिजघानार्तो जटायुं क्रोधमूर्च्छितः ॥३७॥
जटायुस्तमतिक्रम्य तुण्डेनास्य खगाधिपः । बाहवाहून्दश तदा व्यपाहरदरिंदमः ॥३८॥
संछिन्नबाहोः सद्यो वै बाहवः सहसाभवन् । विषज्वालावलीयुक्ता वल्मीकादिव पन्नगाः ॥३९॥
ततः क्रोधादशग्रीवः सीतामुत्सृज्य वीर्यवान् । मुष्टिभ्यां चरणाभ्यां च गृध्रराजमपोथयत् ॥४०॥
ततो मुहूर्तं सङ्ग्रामो बभूवातुलवीर्ययोः । राक्षसानां च मुख्यस्य पक्षिणां प्रवरस्य च ॥४१॥
तस्य व्यायच्छमानस्य रामस्यार्थे स रावणः । पक्षौ पादौ च पार्श्वौ च खड्गमुद्धृत्य सोऽच्छिनत् ॥४२॥
स च्छिन्नपक्षः सहसा रक्षसा रौद्रकर्मणा । निपपात महागृध्रो धरण्यामल्पजीवितः ॥४३॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम् । अभ्यधावत वैदेही स्वबन्धुमिव दुःखिता ॥४४॥

मरनेके समय अपने विनाशके लिए मनुष्य जैसा काम करता है, वैसा अधर्मका काम तुमने किया है ॥ ३१ ॥ जिस कर्मका फल पाप हो, वैसा कर्म लोकाधिपति इन्द्र तथा स्वयं स्वयंभू भगवान् भी नहीं करते, फिर मनुष्य कौन करेगा ॥ ३२ ॥ इस प्रकार उस राक्षससे उत्तम वचन बोलकर पराक्रमी जटायु रावणकी पीठपर गिरे ॥ ३३ ॥ उसको पकड़कर तीखे नखोंसे उसे चारो ओरसे फाड़ने लगे, जिस प्रकार हाथीवान हाथीपर बैठकर मतवाले हाथीको छेदता है ॥ ३४ ॥ नखोंसे रावणको खरोंचते थे, चोंचसे उसकी पीठ नोचते थे, उसके बाल उखाड़ते थे। नख, पाँख और मुख ये ही जटायुके आयुध थे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार गृध्रराजके द्वारा बार-बार पीड़ित राक्षसके ओठ क्रोधसे फरकने लगे और वह काँप गया ॥ ३६ ॥ बाँयीं ओरसे जानकीको पकड़कर दुखी रावणने क्रोधसे बढ़कर जटायुको मारा ॥ ३७ ॥ वहाँसे हटकर पक्षिराज जटायुने अपनी चोंचसे रावणके दस हाथ उखाड़ लिए ॥३८॥ हाथोंके उखड़नेपर शीघ्रही नये हाथ निकल आये, जिस प्रकार वल्मीकसे विष-ज्वालायुक्त सर्प निकलते हैं ॥ ३९ ॥ तब पराक्रमी रावणने सीताको छोड़कर गृध्रराजको मुक्कों और लातोंसे मारा ॥ ४० ॥ राक्षसोंके स्वामी और पक्षियोंके स्वामीमें, जो अतुलनीय पराक्रम थे, एक मुहूर्त तक युद्ध हुआ ॥ ४१ ॥ रामचन्द्रके लिए कष्ट उठानेवाले जटायुके दोनों पैर, पाँख रावणने तलवार निकालकर काट डाले ॥ ४२ ॥ क्रूर कर्म करनेवाले राक्षसके द्वारा पाँखके कट जानेसे वह गृध्रराज पृथिवीमें गिर पड़ा। उसका जीवन थोड़ीही देरके लिए अवशिष्ट था ॥ ४३ ॥ खूनसे लिपटे जटायुको भूमिमें गिरते देख दुःखिनी सीता अपने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तं नीलजीमूतनिकाशकल्पं सपाण्डुरोरस्कमुदारवीर्यम् ।
ददर्श लङ्काधिपतिः पृथिव्यां जटायुषं शान्तमिवाग्निदावम् ॥४५॥
ततस्तु तं पत्ररथं महीतले निपातितं रावणवेगमर्दितम् ।
पुनश्च संगृह्य शशिप्रभानना रुरोद सीता जनकात्मजा तदा ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशः सर्गः ५२

सा तु ताराधिपमुखी रावणेन निरीक्ष्य तम् । गृध्रराजं विनिहतं विललाप सुदुःखिता ॥ १ ॥
निमित्तं लक्षणं स्वप्नं शकुनिस्वरदर्शनम् । अवश्यं सुखदुःखेषु नराणां परिदृश्यते ॥ २ ॥
न नूनं राम जानासि महद्व्यसनमात्मनः । धावन्ति नूनं काकुत्स्थ मदर्थं मृगपक्षिणः ॥ ३ ॥
अयं हि कृपया राम मां त्रातुमिह संगतः । शेते विनिहतो भूमौ ममभाग्याद्विहंगमः ॥ ४ ॥
त्राहि मामद्य काकुत्स्थ लक्ष्मणेति वराङ्गना । सुसंत्रस्ता समाक्रन्दच्छृण्वतां तु यथान्तिके ॥ ५ ॥
तां क्लिष्टमाल्याभरणां विलपन्तीमनाथवत् । अभ्यधावत वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः ॥ ६ ॥
तां लतामिव वेष्टन्तीमालिङ्गन्तीं महाद्रुमान् । मुञ्च मुञ्चेति बहुशः प्राप तां राक्षसाधिपः ॥ ७ ॥
क्रोशन्तीं राम रामेति रामेण रहितां वने । जीवितान्ताय केशेषु जग्राहान्तकसंनिभः ॥ ८ ॥

बान्धवके समान उनकी ओर दौड़ी ॥ ४४ ॥ नीलमेघके समान सफेद छातीवाले प्रसिद्ध पराक्रमी जटायुको बुझे हुए दावानलके समान रावणने पृथिवीमें पड़ा देखा ॥ ४५ ॥ रावणके वेगसे मर्दित पृथिवीमें गिरे हुए उस पक्षिराजको छूकर चन्द्रानना जनकपुत्री सीता रोने लगी ॥ ४६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका एकावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५१ ॥

चन्द्रमुखी सीता रावणके द्वारा निहत गृध्रराजको देखकर बड़े दुःखसे रोने लगी ॥ १ ॥ मनुष्योंके सुख-दुःखमें निमित्त, लक्षण, स्वप्न, पक्षियोंका दर्शन और उनका शब्द अवश्य दीख पड़ते हैं ॥ २ ॥ राम, मृग और पक्षी मेरे सम्बन्धके अशुभकी सूचना देनेके लिए दौड़ रहे हैं, पर तुम अपनेपर आई हुई इस विपत्तिको नहीं जानते ॥ ३ ॥ राम, ये पक्षिराज कृपा करके मेरी रक्षाके लिए यहाँ आये थे । वे मेरे अभाग्यसे जमीनमें पड़े सो रहे हैं ॥ ४ ॥ काकुत्स्थ राम, लक्ष्मण, आज मेरी रक्षा करो । इस प्रकार डरी हुई श्रेष्ठ स्त्री सीता विलाप करने लगी, जिससे पासके आदमी सुन सकें ॥ ५ ॥ जिसकी मालाएँ और गहने बिखर गये थे, उस अनाथके समान विलाप करनेवाली सीताकी ओर राक्षसाधिप रावण दौड़ा ॥ ६ ॥ लताके समान बड़े-बड़े वृक्षोंको सीता आलिंगन करती और उनसे लिपट जाती थी। छोड़ो-छोड़ो कहता हुआ रावण उसके पास गया ॥ ७ ॥ रामसे रहित वनमें राम-राम, चिल्लाती हुई सीताका केश यमराजके समान रावणने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रधर्षितायां वैदेह्यां बभूव सचराचरम् । जगत्सर्वममर्यादं तमसाऽन्धेन संवृतम् ॥ ९ ॥
न वाति मारुतस्तत्र निष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः । दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां देवो दिव्येन चक्षुषा ॥१०॥
कृतं कार्यमिति श्रीमान्व्याजहार पितामहः । प्रहृष्टा व्यथिताश्चासन्सर्वे ते परमर्षयः ॥११॥
दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां दण्डकारण्यवासिनः । रावणस्य विनाशं च प्राप्तं बुद्ध्वा यदृच्छया ॥१२॥
स तु तां राम रामेति रुदतीं लक्ष्मणेति च । जगामादाय चाकाशं रावणो राक्षसेश्वरः ॥१३॥
तप्ताभरणवर्णाङ्गी पीतकौशेयवासिनी । रराज राजपुत्री तु विद्युत्सौदामिनी यथा ॥१४॥
उद्धूतेन च वस्त्रेण तस्याः पीतेन रावणः । अधिकं परिबभ्राज गिरिर्दीप्त इवाग्निना ॥१५॥
तस्याः परमकल्याण्यास्ताम्राणि सुरभीणि च। पद्मपत्राणि वैदेह्या अभ्यकीर्यन्त रावणम् ॥१६॥
तस्याः कौशेयमुद्धूतमाकाशे कनकप्रभम् । बभौ चादित्यरोगेण ताम्रमभ्रमिवातपे ॥१७॥
तस्यास्तद्विमलं वक्त्रमाकाशे रावणाङ्कगम् । न रराज विना रामं विनालमिव पङ्कजम् ॥१८॥
बभूव जलदं नीलं भित्त्वा चन्द्र इवोदितः । सुललाटं सुकेशान्तं पद्मगर्भाभमव्रणम् ॥१९॥
शुक्लैः सुविमलैर्दन्तैः प्रभावद्भिरलंकृतम् । तस्याः सुनयनं वक्त्रमाकाशे रावणाङ्कगम् ॥२०॥
रुदितं व्यपमृष्टास्रं चन्द्रवत्प्रियदर्शनम् । सुनासं चारुताम्रोष्ठमाकाशे हाटकप्रभम् ॥२१॥
राक्षसेन्द्रसमाधूतं तस्यास्तद्वदनं शुभम् । शुशुभे न विना रामं दिवा चन्द्र इवोदितः ॥२२॥

पकड़ा ॥ ८ ॥ जब रावणने सीताका इस प्रकार अपमान किया, उस समय समस्त सचराचर जगतमें गाढ़ घनान्धकार हो गया और मर्यादाहीन हो गया ॥ ९ ॥ वायुका बहना बन्द हो गया, भगवान् सूर्य प्रभाहीन होगये । रावणके द्वारा सीताका पकड़ा जाना दिव्य आँखोंसे न देखकर पितामह ब्रह्माने कहा कि कार्य सिद्ध होगया और वे सब महर्षि प्रसन्न और दुःखी हुए (रावणका शीघ्र विनाश होगा इस लिए प्रसन्न और सीताका दुःख देखकर दुःखी हुए) ॥ १०, ११ ॥ दण्ड-कारण्यवासियोंने सीताका यह अपमान देखकर अनायासही समझ लिया कि अब रावणके विनाशका समय आ गया ॥ १२ ॥ राम-राम और लक्ष्मण कहकर रोती हुई उस सीताको लेकर राक्षसेश्वर रावण आकाशमें चला गया ॥ १३ ॥ तपाये हुए सुवर्णाभरणके समान अंगवाली और पीत वस्त्र धारण करनेवाली सीता बिजलीके समान मालूम होती थी ॥ १४ ॥ उड़ते हुए उसके पीले वस्त्रसे आगसे प्रदीप्त पर्वतके समान रावण अधिक शोभता था ॥ १५ ॥ परम कल्याणी उस सीताके सुगन्धित और लाल कमल रावणके शरीर पर गिरे ॥ १६ ॥ आकाशमें उड़ा हुआ सुवर्णके समान सीताका वस्त्र सायंकालमें सूर्यके रंगसे लाल मेघके समान मालूम होता था ॥१७॥ रावणके गोदमें पड़ी हुआ सीताका वह सुन्दर मुख रामचन्द्रके विना शोभित नहीं होता था, जिस प्रकार विना नालका कमल शोभित नहीं होता ॥ १८ ॥ नीलमेघको भेदकर उदित हुए चन्द्रके समान प्रशस्त ललाट, सुन्दर केश, चिकना पद्म-गर्भके समान श्वेत, उज्ज्वल और चमकीले दाँतोंसे अलंकृत सुन्दर आँखोंवाला, रावणके अंकमें वर्तमान सीताका मुख चन्द्रके समान मालूम पड़ा ॥ १९, २० ॥ रोता हुआ, जिसमें सतत आँसू बह रहा है, चन्द्रमाके समान देखनेमें सुन्दर, नासिका और लाल ओष्ठवाला सुवर्णके समान सीताका वह सुन्दर मुख राक्षसेन्द्र रावणके द्वारा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सा हेमवर्णा नीलाङ्गं मैथिली राक्षसाधिपम् । शुशुभे काञ्चनी काञ्चीनीलं गजमिवाश्रिता॥२३॥
सा पद्मपीता हेमाभा रावणं जनकात्मजा । विद्युद्घनमिवाविश्य शुशुभे तप्तभूषणा ॥२४॥
तस्या भूषणघोषेण वैदेह्या राक्षसेश्वरः । बभूव विमलो नीलः संघोष इव तोयदः ॥२५॥
उत्तमाङ्गच्युता तस्याः पुष्पवृष्टिः समन्ततः । सीताया ह्रियमाणायाः पपात धरणीतले ॥२६॥
सा तु रावणवेगेन पुष्पवृष्टिः समन्ततः । समाधूता दशग्रीवं पुनरेवाभ्यवर्तत ॥२७॥
अभ्यवर्तत पुष्पाणां धारा वैश्रवणानुजम् । नक्षत्रमाला विमला मेरुं नगमिवोत्तमम् ॥२८॥
चरणान्नूपुरं भ्रष्टं वैदेह्या रत्नभूषितम् । विद्युन्मण्डलसंकाशं पपात धरणीतले ॥२९॥
तरुप्रवालरक्ता सा नीलाङ्गं राक्षसेश्वरम् । प्रशोभयत वैदेही गजं कक्ष्येव काञ्चनी ॥३०॥
तां महोल्कामिवाकाशे दीप्यमानां स्वतेजसा । जहाराकाशमाविश्य सीतां वैश्रवणानुजः ॥३१॥
तस्यास्तान्याग्निवर्णानि भूषणानि महीतले । सघोषाण्यवशीर्यन्त क्षीणास्तारा इवाम्बरात्॥३२॥
तस्याः स्तनान्तराद्भ्रष्टो हारस्ताराधिपद्युतिः । वैदेह्या निपतन्भाति गङ्गेव गगनच्युता ॥३३॥
उत्पातवाताभिरता नानाद्विजगणायुताः । मा भैरिति विधूताग्रा व्याजहुरिव पादपाः ॥३४॥

नलिन्यो ध्वस्तकमलास्त्रस्तमीनजलेचराः । सखीमिव गतोत्साहां शोचन्तीव स्म मैथिलीम्॥३५॥
समन्तादभिसंपत्य सिंहव्याघ्रमृगद्विजाः । अन्वधावंस्तदा रोषात्सीताच्छायानुगामिनः॥३ ॥

कँपायो हुआ दिनमें उदित चन्द्रमाके समान नहीं शोभता था॥२१,२२॥ सोनेके समान वर्णवाली सीता काले राक्षसराजके साथ ऐसी मालूम होती थी, जैसे काले हाथीको सोनेकी करधनी पहनायी गयी हो ॥ २३ ॥ कमलके समान पीली, सुवर्णके समान वर्णवाली, उज्ज्वल गहने पहने हुई सीता मेघमध्यस्थ विजलीके समान मालूम होती थी ॥ २४ ॥ जानकीके गहनोंके शब्दसे रावण शब्दयुक्त नीले मेघके समान मालूम हुआ ॥ २५ ॥ हरी जाती हुई सीताके मस्तकसे गिरे पुष्पोंकी वृष्टि पृथिवीमें चारो ओर हुई ॥ २६ ॥ वह गिरी हुई पुष्पवृष्टि रावणके वेगसे उड़ाई जाकर पुनः उसीके पास आई ॥ २७ ॥ पुष्पोंकी धाराने कुबेरके छोटे भाई रावणको घेर लिया. जिस प्रकार नक्षत्रोंकी विमल माला पर्वत श्रेष्ठ मेरुको घेर लेती है ॥ २८ ॥ जानकीके चरनसे गिरा हुआ, रत्नभूषित नूपूर बिजलीके समान पृथिवीपर गिरा ॥ २९ ॥ वृक्षके पत्तोंके समान रक्तवर्ण-वाली सीताने काले राक्षसेश्वरको शोभित किया । जिस प्रकार सोनेकी रस्सी, हाथीको सुशोभित करती है ॥ ३० ॥ उल्काके समान अपने तेजसे आकाशमें प्रकाशमान सीताको रावणने आकाश मार्गसे हरण किया ॥ ३१ ॥ अग्निके समान दीप्त सीताके वे भूषण शब्द करते हुए आकाशसे ताराके समान पृथिवीपर गिरे ॥ ३२ ॥ चन्द्रमाके समान चमकीला सीताके स्तनोंके बीचसे गिरा हुआ हार आकाशसे गिरती हुई गंगाके समान मालूम हुआ ॥३३॥ अनेक पक्षियोंसे युक्त, उत्पात वायुसे कँपाये गये वृक्ष, काँपती हुई अपनी टहनियोंसे 'मत डरो' 'मत डरो' ऐसा कह रहे हैं ॥ ३४ ॥ तलाबोंके कमल उचट गये, मछली आदि जलचर प्राणी डर गये, उत्साहहीन होकर मानो वे अपनी सखी सीताके लिए शोक करने लगे॥३५॥ सिंह, बाघ, मृगा आदि एकत्र होकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जलप्रपातास्रमुखाः शृङ्गैरुच्छ्रितबाहुभिः । सीतायां ह्रियमाणायां विक्रोशन्तीव पर्वताः ॥३७॥
ह्रियमाणां तु वैदेहीं दृष्ट्वा दीनो दिवाकरः । प्रविध्वस्तप्रभः श्रीमानासीत्पाण्डुरमण्डलः ॥३८॥
नास्ति धर्मः कुतः सत्यं नार्जवं नानृशंसता । यत्र रामस्य वैदेहीं सीतां हरति रावणः ॥३९॥
इति भूतानि सर्वाणि गणशः पर्यदेवयन् । वित्रस्तका दीनमुखा रुरुदुर्मृगपोतकाः ॥४०॥
उद्वीक्ष्योद्वीक्ष्य नयनैर्भयादिव विलक्षणैः । सुस्रवेपितगात्राश्च बभूवुर्वनदेवताः ॥४१॥
विक्रोशन्तीं दृढं सीतां दृष्ट्वा दुःखं तथागताम् । तां तु लक्ष्मण रामेति क्रोशन्तीं मधुरस्वराम् ॥४२
अवेक्षमाणां बहुशो वैदेहीं धरणीतलम् । स तामाकुलकेशान्तां विप्रमृष्टविशेषकाम् ।
जहारात्मविनाशाय दशग्रीवो मनस्विनीम् ॥४३॥
ततस्तु सा चारुदती शुचिस्मिता विनाकृता बन्धुजनेन मैथिली ।
अपश्यती राघवलक्ष्मणावुभौ विवर्णवक्त्रा भयभारपीडिता ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशः सर्गः ५३

खमुत्पतन्तं तं दृष्ट्वा मैथिली जनकात्मजा । दुःखिता परमोद्विग्ना भये महति वर्तिनी ॥ १ ॥
रोषरोदनताम्राक्षी भीमाक्षं राक्षसाधिपम् । रुदती करुणं सीता ह्रियमाणा तमब्रवीत् ॥ २ ॥

सीताकी छायाके पीछे-पीछे क्रोधसे दौड़े ॥ ३६ ॥ झरनेरूपी आँसू बहाकर, शिखररूपी हाथ ऊँचा उठाकर सीताके हरणके समय पर्वत मानो रो रहे हैं ॥ ३७ ॥ सीता हरी जा रही है यह देखकर सूर्य दुखी हुए, उनकी प्रभा नष्ट हो गयी, उनका मण्डल पीला पड़ गया । धर्म नहीं है सत्य, ऋजुता और दयालुता कहाँ है जो आज रामचन्द्रकी सीताको रावण हरकर ले जाता है ॥ ३८ ॥ इस प्रकार सब प्राणी अपने-अपने दलमें रोने लगे । मृगोंके बच्चे डरकर तथा दुखी होकर रोने लगे ॥ ४० ॥ अपनी शोभाहीन आँखोंसे भयपूर्वक देख-देखकर वनदेवताओंके अंग काँपने लगे ॥ ४१ ॥ इस प्रकारके आये दुखको देखकर सीता रोने लगी । लक्ष्मण, हा राम, कहकर वह धीरे-धीरे रोने लगी । बार-बार पृथिवीकी ओर देखने लगी । उसके केश बिखर गये थे । चन्दन मिट गया था । उस मनस्विनी सीताका रावणने अपने विनाशके लिए हरण किया ॥ ४२, ४३ ॥ सुन्दर दाँतोंवाली, सुन्दर स्मित करनेवाली सीता अपने बान्धवोंसे हीन होकर राम और लक्ष्मण-को न देखनेके कारण भयभीत और शुष्कमुखी हो गयी ॥ ४४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका बावनवां सर्ग समाप्तः ॥ ५२ ॥

आकाशमें जाते हुए रावणको देखकर बहुत डरी हुई, अतएव उद्विग्न जनकतनया सीता, जिसकी आँखे क्रोध और रोनेके कारणसे लाल हो गयी थीं, जिसे भयानक आंखोंवाला राक्षसा-धिप रावण हर ले जा रहा था, वह सीता रोती हुई रावणसे बोली ॥ १, २ ॥ नीच रावण, तुम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न व्यपत्रपसे नीच कर्मणानेन रावण । ज्ञात्वा विरहितां यो मां चोरयित्वा पलायसे ॥ ३ ॥
त्वयैव नूनं दुष्टात्मन्भीरुणा हर्तुमिच्छता । ममापवाहितो भर्ता मृगरूपेण मायया ॥ ४ ॥
यो हि मामुद्यतस्त्रातुं सोऽप्ययं विनिपातितः । गृध्रराजः पुराणोऽसौ श्वशुरस्य सखा मम ॥ ५ ॥
परमं खलु ते वीर्यं दृश्यते राक्षसाधम । श्रिश्राव्य नामधेयं हि युद्धे नास्मि जिता त्वया ॥ ६ ॥
ईदृशं गर्हितं कर्म कथं कृत्वा न लज्जसे । स्त्रियाश्चाहरणं नीच रहिते च परस्य च ॥ ७ ॥
कथयिष्यन्ति लोकेषु पुरुषाः कर्म कुत्सितम् । सुनृशंसमधर्मिष्ठं तव शौटीर्यमानिनः ॥ ८ ॥
धिक्ते शौर्यं च सत्त्वं च यत्त्वया कथितं तदा । कुलाक्रोशकरं लोके धिक्ते चारित्रमीदृशम् ॥ ९ ॥
किं शक्यं कर्तुमेवं हि यज्जवेनैव धावसि । मुहूर्तमपि तिष्ठ त्वं न जीवन्प्रतियास्यसि ॥१०॥
नहि चक्षुःपथं प्राप्य तयोः पार्थिवपुत्रयोः । ससैन्योऽपि समर्थस्त्वं मुहूर्तमपि जीवितुम् ॥११॥
न त्वं तयोः शरस्पर्शं सोढुं शक्तः कथंचन । वने प्रज्वलितस्येव स्पर्शमग्नेर्विहंगमः ॥१२॥
साधु कृत्वात्मनः पथ्यं साधु मां मुञ्च रावण । मत्प्रधर्षणसंक्रुद्धो भ्राता सह पतिर्मम ॥१३॥
विधास्यति विनाशाय त्वं मां यदि न मुञ्चसि । येन त्वं व्यवसायेन बलान्मां हर्तुमिच्छसि ॥१४॥
व्यवसायस्तु ते नीच भविष्यति निरर्थकः । नह्यहं तमपश्यन्ती भर्तारं विबुधोपमम् ॥१५॥
उत्सहे शत्रुवशगा प्राणान्धारयितुं चिरम् । न नूनं चात्मनः श्रेयः पथ्यं वा समवेक्षसे ॥१६॥

अपने कामसे शरमाते नहीं हो, मुझे अकेली जानकर और चुराकर भागे जा रहे हो ॥ ३ ॥ डरपोंक, तुमने ही मुझे हरनेकी इच्छासे मायाके मृगके द्वारा मेरे पतिको दूर भिजवाया ॥ ४ ॥ मेरे श्वसुरके मित्र, पुराने गृध्रराज, मेरी रक्षाके लिये तयार थे, उन्हे भी तुमने मार डाला ॥ ५ ॥ राक्षसाधम, तुम्हारा पराक्रम भी बहुत अधिक मालुम होता है । तुमने अपना नाम बतलाकर राम लक्ष्मणके साथ युद्ध करके हमें नहीं जीता है। ऐसा निन्दित काम करके तुम क्यों नहीं लज्जित होते । नीच, दूसरेकी विवाहिता स्त्रीका, जो पतिसे विरहित थी, तुमने हरण किया है ॥६॥ अपनेको वीर समझनेवाले तुम्हारे इस पराक्रमको, कामको, संसारके पुरुष धर्म-रहित और निर्दयतापूर्ण कहेंगे ॥ ८ ॥ तुम्हारे इस पराक्रम और बलको धिक्कार है, जिसका वर्णन मेरे हरण करनेके समय तुमने किया है और कुलको निन्दित बनानेवाले इस चरित्रको भी धिक्कार है ॥ ९ ॥ तुम मेरा हरण करके भागे जा रहे हो, ऐसी अवस्थामें क्या किया जा सकता है । एक मुहूर्त भी ठहरो, फिर तुम जीते हुए लौट नहीं सकते ॥ १० ॥ उन दोनों राजकुमारोंकी आँखके सामने आनेपर तुम अपनी समस्त सेनाके साथ भी एक मुहूर्त भी जी नहीं सकते ॥११॥ तुम उन वीरोंके बाणोंसे किसी प्रकार जी नहीं सकते, जिस प्रकार जलती हुई आगका स्पर्श वनमें पक्षी नहीं सहते ॥ १२ ॥ तुम अपने कल्याणका अच्छी तरह विचार कर प्रतिष्ठापूर्वक मुझे छोड़ दो । मेरे हरणसे अपने भाईके साथ मेरे पति क्रोध करेंगे ॥ १३ ॥ यदि तुम मुझको न छोड़ोगे तो तुम्हारे विनाशके लिए मेरे पति प्रयत्न करेंगे । जिस अभिप्रायसे तुम बलपूर्वक मेरा हरण कर रहे हो, नीच, तुम्हारा वह अभिप्राय निरर्थक होगा । देवताके समान अपने पतिको न देखकर तथा शत्रुके अधीन होकर मैं बहुत दिनोंतक जी नहीं सकती । अवश्य ही वर्तमान और भविष्य अपने हितका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मृत्युकाले यथा मर्त्यो विपरीतानि सेवते । मुमूर्षूणां तु सर्वेषां यत्पथ्यं तन्न रोचते ॥१७॥
पश्यामीह हि कण्ठे त्वां कालपाशावपाशितम् । यथा चास्मिन्भयस्थाने न बिभेषि निशाचर ॥१८॥
व्यक्तं हिरण्मयांस्त्वं हि संपश्यसि महीरुहान् । नदीं वैतरणीं घोरां रुधिरौघविवाहिनीम् ॥१९॥
खड्गपत्रवनं चैव भीमं पश्यसि रावण । तप्तकाञ्चनपुष्पां च वैदूर्यप्रवरच्छदाम् ॥२०॥
द्रक्ष्यसे शाल्मलीं तीक्ष्णामायसैः कण्टकैश्चिताम्। नहि त्वमीदृशं कृत्वा तस्यालीकं महात्मनः ॥२१॥
धारितुं शक्ष्यसि चिरं विषं पीत्वेव निर्घृण । बद्धस्त्वं कालपाशेन दुर्निवारेण रावण ॥२२॥
क्व गतो लप्स्यसे शर्म मम भर्तुर्महात्मनः । निमेषान्तरमात्रेण विना भ्रातरमाहवे ॥२३॥
राक्षसा निहता येन सहस्राणि चतुर्दश । कथं स राघवो वीरः सर्वास्त्रकुशलो बली ॥२४॥
न त्वां हन्याच्छरैस्तीक्ष्णैरिष्टभार्यापहारिणम् । एतच्चान्यच्च परुषं वैदेही रावणाङ्कगा ।
भयशोकसमाविष्टा करुणं विललाप ह ॥२५॥
तदा भृशार्तां बहु चैव भाषिणीं विलापपूर्वं करुणं च भामिनीम् ।
जहार पापस्तरुणीं विचेष्टतीं नृपात्मजामागतगात्रवेपथुः ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

तुम विचार नहीं करते ॥ १४, १५, १६ ॥ मृत्युके समय मनुष्य अहितकारी पदार्थोंका ही सेवन करता है, मरनेवालोंको हितकारी वस्तु अच्छी नहीं लगती ॥ १७ ॥ निशाचर, मैं देख रही हूँ कि तुम्हारे गलेमें यमराजकी फाँसी पड़ गयी है, अतएव भयके स्थानमें भी तुम भय नहीं करते ॥१८॥ अवश्य ही तुम वृक्षोंको सुवर्णमय देख रहे हो । रुधिरकी धारा बहनेवाली भयानक वैतरणीको देख रहे हो । ॥ १९ ॥ तुम भयानक असिपत्र वन (वह वन जिसके पत्ते तलवारके समान हों) को देख रहे हो । अवश्य ही उज्ज्वल सुवर्ण पुष्पोंसे युक्त वैदूर्यके पत्तोंवाले, लोहके कांटोंसे व्याप्त शाल्मली वृक्षको देखोगे (ये सब मृत्युसूचक चिन्ह हैं) । उस महात्माके साथ अप्रिय काम करके तुम बहुत दिनोंतक जी नहीं सकते, जिस प्रकार कोई मनुष्य विष पीकर नहीं जी सकता । तुम न हटाये जा सकनेवाले कालपाशसे बँधे हुए हो ॥ २०, २१, २२ ॥ उस महात्मा, मेरे पतिका अपराध करके तुम कहाँ जाकर कल्याण पा सकोगे । भाईके बिनाही अकेले एक पलकमें चौदह हजार राक्षसोंको जिसने मारा, वे सब अस्त्र-शस्त्रोंको जाननेवाले बलवान और वीर रामचन्द्र अपनी प्रिय भार्याका हरण करनेवालोंको क्या तीखे शरोंसे नहीं मारेंगे ? रावणके हाथमें आयी हुई भय और शोकसे सीताने यह तथा इस प्रकारके और कठोर तथा दयनीय विलाप किया ॥ २३, २४, २५॥ नितान्त दुःखिनी, विलापपूर्वक दयनीय वचन बोलनेवाली तथा दयनीय चेष्टाएँ करनेवाली, तरुणी और काँपती हुई राजपुत्रीका पापी रावणने हरण किया ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका तिरपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चतुःपञ्चाशः सर्गः ५४

ह्रियमाणा तु वैदेही कंचिन्नाथमपश्यती । ददर्श गिरिशृङ्गस्थान्पञ्च वानरपुंगवान् ॥ १ ॥
तेषां मध्ये विशालाक्षी कौशेयं कनकप्रभम् । उत्तरीयं वरारोहा शुभान्याभरणानि च ॥ २ ॥
मुमोच यदि रामाय शंसेयुरिति भामिनी । वस्त्रमुत्सृज्य तन्मध्ये निक्षिप्तं सहभूषणम् ॥ ४ ॥
संभ्रमात्तु दशग्रीवस्तत्कर्म च न बुद्धवान् । पिङ्गाक्षस्तां विशालाक्षीं नैत्रैरनिमिषैरिव ॥ ४ ॥
विक्रोशन्तीं तदा सीतां ददृशुर्वानरोत्तमाः । स च पम्पामतिक्रम्य लङ्कामभिमुखः पुरीम्॥ ५ ॥
जगाम मैथिलीं गृह्य रुदतीं राक्षसेश्वरः । तां जहार सुसंहृष्टो रावणो मृत्युमात्मनः ॥ ६ ॥
उत्सङ्गेनैव भुजगीं तीक्ष्णदंष्ट्रां महाविषाम् । वनानि सरितः शैलान्सरांसि च विहायसा ॥ ७ ॥
स क्षिप्रं समतीयाय शरश्चापादिव च्युतः । तिमिनक्रनिकेतं तु वरुणालयमक्षयम् ॥ ८ ॥
सरितां शरणं गत्वा समतीयाय सागरम् । संभ्रमात्परिवृत्तोर्मी रुद्धमीनमहोरगः ॥ ९ ॥
वैदेह्यां ह्रियमाणायां बभूव वरुणालयः । अन्तरिक्षगता वाचः ससृजुश्चारणास्तथा ॥१०॥
एतदन्तो दशग्रीव इति सिद्धास्तदाब्रुवन् । स तु सीतां विचेष्टन्तीमङ्केनादाय रावणः ॥११॥
प्रविवेश पुरीं लङ्कां रूपिणीं मृत्युमात्मनः । सोऽभिगम्य पुरीं लङ्कां सुविभक्तमहापथाम् ॥१२॥
संरूढकक्ष्यां बहुलां स्वमन्तःपुरमाविशत् । तत्र तामसितापाङ्गीं शोकमोहसमन्विताम् ॥१३॥

रावणके द्वारा हरी जाती हुई सीताने किसीको अपना रक्षक नहीं देखा । उसने एक पर्वत-शिखर पर बैठे हुए केवल पांच वानरोंको देखा ॥ १ ॥ विशालाक्षी सीताने सुवर्णके रंगका अपना रेशमी दुपट्टा और सुंदर गहने गिराये । इस आशासे कि शायद ये लोग रामको मेरा पता बतावें, दुपट्टा उतारकर और उसमें गहने रखकर सीताने गिराया ॥ २, ३ ॥ घबड़ाहटके कारण रावण सीताका यह काम समझ न सका । विलाप करनेवाली विशालाक्षी सीताको भूरी आंखोंवाले उन श्रेष्ठ वानरोंने अनिमिष नेत्रोंसे देखा । पम्पाके आगे जाकर लंकापुरीकी ओर राक्षसेश्वर रावण रोती हुई मैथिलीको लेकर चला । प्रसन्नतापूर्वक अपनी मृत्युके समान, तीखे दांतवाली विषैली सांपिनके समान गोदमें लेकर रावणने सीताका हरण किया । वनों नदियों, पर्वतों, तालाबोंको आकाशमार्गसे लाँघता हुआ रावण धनुषसे निकले हुए बाणके समान शीघ्र ही चला गया । तिमि और मगरोंके रहनेका स्थान, वरुणका वासस्थान, नदियोंकी शरण सागरको भी पार कर चला गया । जानकीहरणके क्षोभके कारण समुद्रमें तरंगोंका उठना बन्द हो गया । मछलियां और बड़े-बड़े सांपोंकी गति रुक गयी ॥ ४, ५, ६, ७, ८, ९ ॥ सीताके हरणके समय समुद्रकी ऐसी दशा हुई । उस समय आकाशमें रहनेवाले चारण बातें करने लगे ॥१०॥ सिद्धोंने कहा—अब रावणका अंत आ गया । छटपटाती हुई सीताको मूर्तिमती अपनी मृत्युके समान गोदमें लेकर रावणने लंकापुरीमें प्रवेश किया । चौड़ी सड़कोंमें बटी हुई, जिसके द्वार पर बहुत बड़ी भीड़ जमा है, उस लंकापुरीमें प्रवेश कर रावण अपने महलमें गया । वहां काली आंखोंवाली और शोक मोहसे पीड़ित सीताको उसने रख दिया, जिस प्रकार मय नामक असुरने अपनी माया रखी हो । तब

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निदधे रावणः सीतां मयो मायामिवासुरीम् । अब्रवीच्च दशग्रीवः पिशाचीर्घोरदर्शनाः ॥१४॥
यथा नैनां पुमान्स्त्री वा सीतां पश्यत्यसंमतः । मुक्तामणिसुवर्णानि वस्त्राण्याभरणानि च ॥१५॥
यद्यदिच्छेत्तदैवास्या देयं मच्छन्दतो यथा । या च वक्ष्यति वैदेहीं वचनं किंचिदप्रियम् ॥१६॥
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानान्न तस्या जीवितं प्रियम् । तथोक्त्वा राक्षसीस्तास्तु राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्॥१७॥
निष्क्रम्यान्तःपुरात्तस्मात्किंकृत्यमितिचिन्तयन्। ददर्शाष्टौ महावीर्यान्राक्षसान्पिशिताशनान्॥१८॥
स तान्दृष्ट्वा महावीर्यो वरदानेन मोहितः । उवाच तानिदं वाक्यं प्रशस्य बलवीर्यतः ॥१९॥
नानाप्रहरणाः क्षिप्रमितो गच्छत सत्वराः । जनस्थानं हतस्थानं भूतपूर्वं खरालयम् ॥२०॥
तत्रास्यतां जनस्थाने शून्ये निहतराक्षसे । पौरुषं बलमाश्रित्य त्रासमुत्सृज्य दूरतः ॥२१॥
बहुसैन्यं महावीर्यं जनस्थाने निवेशितम् । सदूषणखरं युद्धे निहतं रामसायकैः ॥२२॥
ततः क्रोधो ममापूर्वो धैर्यस्योपरि वर्धते । वैरं च सुमहज्जातं रामं प्रति सुदारुणम् ॥२३॥
निर्यातयितुमिच्छामि तच्च वैरं महारिपोः । नहि लप्स्याम्यहं निद्रामहत्वा संयुगे रिपुम् ॥२४॥
तं त्विदानीमहं हत्वा खरदूषणघातिनम् । रामं शर्मोपलप्स्यामि धनं लब्ध्वेव निर्धनः ॥२५॥
जनस्थाने वसद्भिस्तु भवद्भी राममाश्रिता । प्रवृत्तिरुपनेतव्या किं करोतीति तत्त्वतः ॥२६॥
अप्रमादाच्च गन्तव्यं सर्वैरेव निशाचरैः । कर्तव्यश्च सदा यत्नो राघवस्य वधं प्रति ॥२७॥

भयानक राक्षसियोंसे वह बोला ॥ ११, १२, १३, १४ ॥ कोई भी स्त्री और कोई भी पुरुष बिना आज्ञाके इस सीताके यहां न जाने पावे । मोती, मणि, सुवर्ण, वस्त्र, गहने आदि जो जब यह चाहे उसी समय दिया जाय । जो स्त्री जानकर या बिना जाने इस सीतासे कुछ अप्रिय वचन बोलेगी तो समझाजायगा कि उसको अपने जीवनसे प्रेम नहीं है । ऐसा उन राक्षसियोंसे कहकर प्रतापी राक्षस-राज आगे क्या करना होगा यह सोचता हुआ अपने महलसे निकला और मांसभक्षी और बली आठ राक्षसोंको उसी समय देखा ॥ १५ १६ १७ १८ ॥ पराक्रमी और ब्रह्माके वरदानसे मोहित रावण उन आठोंको देखकर तथा उनके बल पराक्रमकी प्रशंसा कर उनसे यह बोला ॥ १९ ॥ विविध अस्त्र शस्त्रोंको लेकर तुम लोग शीघ्र ही जनस्थान जाओ, जहां पहले खर रहता था और रामने जिसे शून्य बना दिया है ॥ २० ॥ उस सूने जनस्थानमें तुम लोग पराक्रम और बलका भरोसा करके तथा भय दूर हटाकर रहो । वहांके सब राक्षस मार डाले गये ॥ २१ ॥ वहां बहुत बड़ी और बलवती सेनाके साथ दूषण और खरको मैंने रखा था । वे रामके बाणोंसे मारे गये ॥ २२ ॥ इससे धैर्यके ऊपर मेरा अद्भुत क्रोध बढ़ रहा है और रामके साथ मेरा भयानक वैर उत्पन्न हो गया है ॥ २३ ॥ उस बड़े शत्रु से मैं अपना बदला लेना चाहता हूँ । युद्धमें शत्रुको बिना मारे मैं सो भी नहीं सकूंगा ॥२४॥ मैं इस समय खर और दूषणको मारनेवाले रामको मार कर सुख-प्राप्त करूंगा, जिस प्रकार निर्धन धन पाकर सुखी होता है ॥ २५ ॥ जनस्थानमें रहकर तुम लोग, रामचन्द्र क्या कर रहे हैं-इसकी खबरें मेरे यहां भेजना ॥ २६ ॥ बहुत सावधान होकर तुम सब लोग वहां जाना और रामचन्द्रका वध करनेके लिए सदा प्रयत्न करते रहना ॥ २७ ॥ कई

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

युष्माकं तु बलं ज्ञातं बहुशो रणमूर्धनि । अतश्चास्मिञ्जनस्थाने मया यूयं निवेशिताः॥२८॥
ततः प्रियं वाक्यमुपेत्य राक्षसा महार्थमष्टावभिवाद्य रावणम् ।
विहाय लङ्कां सहिताः प्रतस्थिरे यतो जनस्थानमलक्ष्यदर्शनाः ॥२९॥
ततस्तु सीतामुपलभ्य रावणः सुसंप्रहृष्टः परिगृह्य मैथिलीम् ।
प्रसज्ज्य रामेण च वैरमुत्तमं बभूव मोहान्मुदितः स रावणः ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुष्पञ्चाशः सर्गः ॥५४॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः ५५

संदिश्य राक्षसान्घोरान्रावणोऽष्टौ महाबलान् । आत्मानं बुद्धिवैक्लव्यात्कृतकृत्यममन्यत ॥ १ ॥
स चिन्तयानो वैदेहीं कामबाणैः प्रपीडितः । प्रविवेश गृहं रम्यं सीतां द्रष्टुमभित्वरन् ॥ २ ॥
स प्रविश्य तु तद्वेश्म रावणो राक्षसाधिपः । अपश्यद्राक्षसीमध्ये सीतां दुःखपरायणाम् ॥ ३ ॥
अश्रुपूर्णमुखीं दीनां शोकभारावपीडिताम् । वायुवेगैरिवाक्रान्तां मज्जन्तीं नावमर्णवे ॥ ४ ॥
मृगयूथपरिभ्रष्टां मृगीं श्वभिरिवावृताम् । अधोगतमुखीं सीतां तामभ्येत्य निशाचरः ॥ ५ ॥
तां तु शोकवशादीनामवशां राक्षसाधिपः । स बलाद्दर्शयामास गृहं देवगृहोपमम् ॥ ६ ॥
हर्म्यप्रासादसंबाधं स्त्रीसहस्रनिषेवितम् । नानापक्षिगणैर्जुष्टं नानारत्नसमन्वितम् ॥ ७ ॥

युद्धोंमें तुम लोगोंका बल मालूम हो चुका है, अतएव मैं इस जनस्थानमें तुम लोगोंको भेज रहाहूँ ॥ २८ ॥ तदनन्तर प्रिय और आवश्यक बात सुनकर आठों राक्षसोंने रावणको प्रणाम किया और साथ ही लंका छोड़कर जनस्थानकी ओर अदृश्य होकर प्रस्थान किया ॥ २९ ॥ सीताको पाकर तथा उसे अपने घर रखकर रावण बहुत प्रसन्न हुआ । अज्ञानके कारण यह बात जानकर प्रसन्न हुआ कि रामचन्द्रके साथ मेरा बड़ा वैर हुआ ॥ ३० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका चौअनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५४ ॥

महाबली भयानक आठो राक्षसोंको सन्देस देकर मूर्खताके कारण रावणने अपनेको कृतार्थ समझा ॥ १ ॥ कामके बाणोंसे पीड़ित होकर सीताकी बातें सोचता हुआ रावण सीताको देखनेके लिए शीघ्रतापूर्वक उनके रमणीय घरमें गया ॥ २ ॥ राक्षसाधिप रावणने उस घरमें प्रवेश करके राक्षसियोंके बीचमें दुःखिनी सीताको देखा ॥ ३ ॥ उनका मुंह आंसूसे भरा हुआ था । शोकके भारसे वे दबी हुई थीं, बड़ी ही दीन होगई थीं, जिस प्रकार वायुके झोंकेमें आई हुई नाव समुद्रमें डूब रही हो ॥ ४ ॥ अपने यूथसे बिछली हुई और कुत्तोंसे घिरी हुई मृगीके समान नीचे मुख किये हुई बैठी, सीताके पास वह निशाचर गया ॥ ५ ॥ शोकके कारण दीन अनाथ सीताको राक्षसाधिप रावणने बलसे देवगृहके समान वह घर दिखाया ॥ ६ ॥ छोटे और बड़े मकान उसमें बने हुए थे, हजारों स्त्रियाँ भरी हुई थीं, अनेक प्रकारके पक्षी थे, विविध

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दान्तकैस्तापनीयैश्च स्फाटिकै राजतैस्तथा । वज्रवैदूर्यचित्रैश्च स्तम्भैर्दाष्टिमनोरमैः ॥ ८ ॥
दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषं तप्तकाञ्चनभूषणम् । सोपानं काञ्चनं चित्रमारुरोह तया सह ॥ ९ ॥
दान्तका राजताश्चैव गवाक्षाः प्रियदर्शनाः । हेमजालावृताश्चासंस्तत्र प्रासादपङ्क्तयः ॥१०॥
सुधामणिविचित्राणि भूमिभागानि सर्वशः । दशग्रीवः स्वभवने प्रादर्शयत मैथिलीम् ॥११॥
दीर्घिकाः पुष्करिण्यश्च नानापुष्पसमावृताः । रावणो दर्शयामास सीतां शोकपरायणाम् ॥१२॥
दर्शयित्वा तु वैदेहीं कृत्स्नं तद्भवनोत्तमम् । उवाच वाक्यं पापात्मा सीतां लोभितुमिच्छया॥१३॥
दश राक्षसकोट्यश्च द्वाविंशतिरथापराः । वर्जयित्वा जनान्वृद्धान्बालांश्च रजनीचरान्॥१४॥
तेषां प्रभुरहं सीते सर्वेषां भीमकर्मणाम् । सहस्रमेकमेकस्य मम कार्यपुरःसरम् ॥१५॥
यदिदं राज्यतन्त्रं मे त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । जीवितं च विशालाक्षि त्वं मे प्राणैर्गरीयसी ॥१६॥
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां मम योऽसौ परिग्रहः । तासां त्वमीश्वरी सीते मम भार्या भव प्रिये॥१७॥
साधु किं तेऽन्यथाबुद्ध्या रोचयस्व वचो मम । भजस्व माभितप्तस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥१८॥
परिक्षिप्ता समुद्रेण लङ्केयं शतयोजना । नेयं धर्षयितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥१९॥
न देवेषु न यक्षेषु न गन्धर्वेषु नर्षिषु । अहं पश्यामि लोकेषु यो मे वीर्यसमो भवेत् ॥२०॥
राज्यभ्रष्टेन दीनेन तापसेन पदातिना । किं करिष्यसि रामेण मानुषेणाल्पतेजसा ॥२१॥

रत्न जड़े हुए थे ॥ ७ ॥ हाथीदांत, सुवर्ण, स्फटिक और चांदीके सुन्दर खम्भे लगे हुए थे, जिनपर हीरा और वैदूर्यका काम किया हुआ था ॥ ८ ॥ देवताओंके नगारेके समान जिसका शब्द होता था, जिसका बाहरी द्वार सुवर्णसे भूषित और अद्भुत था । रावण उस सीढ़ीपर सीताको लेकर चढ़ा ॥ ९ ॥ हाथीदाँत और चांदिओंकी बनी, देखनेमें सुन्दर वहाँ खिड़कियां थीं, जिनमें सोनेकी जाली लगी हुई थी । ऐसे महलोंकी सुन्दर पक्तियां थीं ॥ १० ॥ चूना और मणियोंसे चित्रित अपने घरके फर्श रावणने सीताको दिखाये ॥ ११ ॥ छोटे और बड़े तालाब जिनमें तरह-तरह फूल लगे हुए थे, शोकमग्न सीताको रावणने दिखाया ॥ १२ ॥ इस प्रकार अपना वह समस्त श्रेष्ठ भवन दिखाकर और सीताको लुब्ध करनेकी इच्छासे पापी रावण बोला ॥ १३ ॥ दस और बाइस इस प्रकार बत्तीस करोड़ राक्षस हैं, जिनमें बालक और वृद्ध राक्षसोंकी गिनती नहीं है ॥ १४ ॥ उन सब भयानक कर्म करनेवाले राक्षसोंका मैं स्वामी हूँ । मेरे अकेलेकी सेवा करनेवाले एक हजार हैं ॥ १५ ॥ जो मेरा यह राज्य है, जो मेरा जीवन है, विशालाक्षि तुम्हारे अधीन है । तुम मुझे प्राणोंसे भी प्रिय हो ॥ १६ ॥ अनेक उत्तम स्त्रियोंमेंसे जो मेरी स्त्रियां हैं, सीता, तुम उनकी स्वामिनी बनो । प्रिये, तुम मेरी भार्या बनो ॥ १७ ॥ मेरी बातोंको मानो, दूसरी बातें सोचनेसे क्या लाभ ? तुम मुझे अंगीकार करो । कामसे पीड़ित मुझपर प्रसन्न होओ ॥१८॥ सौ योजन विस्तृत यह लंका समुद्रसे घिरी हुई है, इन्द्रसहित देवता और असुर भी इसपर आक्रमण नहीं कर सकते ॥ १९ ॥ देवताओं, यक्षों, गन्धर्वों, और ऋषियोंमें मैं किसीको ऐसा नहीं देखता जो मेरे समान पराक्रमी हो ॥ २० ॥ राज्यसे भ्रष्ट, दीन, तपस्वी, पैदल चलनेवाले

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भजस्व सीते मामेव भर्तारं सदृशस्तव । यौवनं त्वध्रुवं भीरु रमस्वेह मया सह ॥२२॥
दर्शने मा कृथा बुद्धिं राघवस्य वरानने । कास्य शक्तिरिहागन्तुमपि सीते मनोरथैः ॥२३॥
न शक्यो वायुराकाशे पाशैर्बद्धुं महाजवः । दीप्यमानस्य वाप्यग्नेर्ग्रहीतुं विमलाः शिखाः ॥२४॥
त्रयाणामपि लोकानां न तं पश्यामि शोभने । विक्रमेण नयेद्यस्त्वां मद्बाहुपरिपालिताम् ॥२५॥
लङ्कायाः सुमहद्राज्यमिदं त्वमनुपालय । त्वत्प्रेष्या मद्विधाश्चैव देवाश्चापि चराचरम् ॥२६॥
अभिषेकजलक्लिन्ना तुष्टा च रमयस्व च । दुष्कृतं यत्पुरा कर्म वनवासेन तद्गतम् ॥२७॥
यच्च ते सुकृतं कर्म तस्येह फलमाप्नुहि । इह सर्वाणि माल्यानि दिव्यगन्धानि मैथिलि ॥२८॥
भूषणानि च मुख्यानि तानि सेव मया सह । पुष्पकं नाम सुश्रोणि भ्रातुर्वैश्रवणस्य मे ॥२९॥
विमानं सूर्यसंकाशं तरसा निर्जितं रणे । विशालं रमणीयं च तद्विमानं मनोजवम् ॥३०॥
तत्र सीते मया सार्धं विहरस्व यथासुखम् । वदनं पद्मसंकाशं विमलं चारुदर्शनम् ॥३१॥
शोकार्तं तु वरारोहे न भ्राजति वरानने । एवं वदति तस्मिन्सा वस्त्रान्तेन वराङ्गना ॥३२॥
पिधायेन्दुनिभं सीता मन्दमश्रूण्यवर्तयत् । ध्यायन्तीं तामिवास्वस्थांसीतांचिन्ताहतप्रभाम्॥३३॥
उवाच वचनं वीरो रावणो रजनीचरः । अलं व्रीडेन वैदेहि धर्मलोपकृतेन ते ॥३४॥
आर्षोऽयं देवि निष्पन्दो यस्त्वामभिभविष्यति। एतौ पादौ मया स्निग्धौ शिरोभिः परिपीडितौ॥३५॥

तथा अल्प बल रखनेवाले मनुष्य रामको लेकर क्या करोगी ॥ २१ ॥ सीते, तुम मुझेही अंगीकार करो, मैं ही तुम्हारा योग्य पति हूँ। यौवन चंचल है, तुम मेरे साथ रमण करो ॥ २२ ॥ रामचन्द्रके दर्शन होनेका विचार तुम मत करो। उसकी क्या शक्ति है, जो वह मनोरथोंसे भी आ सके अर्थात् यहां आनेकी इच्छा कर सके ॥ २३ ॥ बड़े वेगसे चलनेवालेको कोई रस्सीसे नहीं बाँध सकता। जलती हुई आगकी ज्वालाको कोई पकड़ नहीं सकता ॥ २४ ॥ तीनों लोकोंमेंसे ऐसा किसीको भी मैं नहीं देखता, जो मेरी बाहुओंकी छायामें पराक्रमसे तुमको ले जाय ॥ २५ ॥ तुम लंकाके इस बड़े राज्यका पालन करो। मैं देवता तथा यह चराचर विश्व तुम्हारी आज्ञाका पालन करेगा ॥ २६ ॥ राज्याभिषेकके जलसे भींगकर तुम प्रसन्न होओ और मेरे साथ रमण करो। वह तुम्हारा पाप था जो वनवासके साथ समाप्त होगया ॥ २७ ॥ अब तुम अपने पुण्योंका फल यहाँ भोगो। सब प्रकारके माल्य, जो स्वर्गीय गन्धसे सुगन्धित हैं, उत्तम गहने तुम मेरे साथ धारण करो। पुष्पक नामका विमान, जो मेरे भाई कुबेरका है, सूर्यके समान प्रकाशमान है, विशाल सुन्दर तथा मनके समान शीघ्र चलनेवाला है, जिसे युद्धमें मैंने जीता है। उसपर मेरे साथ सुखपूर्वक विहार करो। चन्द्रमाके समान दीख पड़नेवाला तुम्हारा यह विमल मुख, वरानने, शोकके कारण सुन्दर नहीं मालूम होता। रावण ऐसा कह रहा था, उस समय श्रेष्ठ सीता वस्त्रके छोरसे अपना मुंह ढांपकर धीरे-धीरे रो रही थीं। चिन्तासे जिसकी प्रभा हीन होगई है, जो रामचन्द्रका ध्यान कर रही है, उस अप्रकृतिस्थ सीतासे वीर राक्षस बोला—सीते, धर्मलोपकी लज्जा करना व्यर्थ है ॥ २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४ ॥ देवि, तुम्हारे सम्बन्धमें मैं जो प्रेमकी प्रार्थना करता हूँ, वह तो ऋषिसम्मत है। तुम्हारे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रसादं कुरु मे क्षिप्रं वश्यो दासोऽहमस्मि ते । इमाः शून्या मया वाचः शुष्यमाणेन भाषिताः ॥३६॥
न चापि रावणः कांचिन्मूर्ध्ना स्त्रीं प्रणमेत ह । एवमुक्त्वा दशग्रीवो मैथिलीं जनकात्मजाम् ।
कृतान्तवशमापन्नो ममेयमिति मन्यते ॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशः सर्गः ५६

सा तथोक्ता तु वैदेही निर्भया शोककर्शिता । तृणमन्तरतः कृत्वा रावणं प्रत्यभाषत ॥ १ ॥
राजा दशरथो नाम धर्मसेतुरिवाचलः । सत्यसंधः परिज्ञातो यस्य पुत्रः स राघवः ॥ २ ॥
रामो नाम स धर्मात्मा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः । दीर्घबाहुर्विशालाक्षो दैवतं स पतिर्मम ॥ ३ ॥
इक्ष्वाकूणां कुले जातः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा यस्ते प्राणान्वधिष्यति ॥ ४ ॥
प्रत्यक्षं यद्यहं तस्य त्वया वै धर्षिता बलात् । शयिता त्वं हतः संख्ये जनस्थाने यथा खरः ॥ ५ ॥
य एते राक्षसाः प्रोक्ता घोररूपा महाबलाः । राघवे निर्विषाः सर्वे सुपर्णे पन्नगा यथा ॥ ६ ॥
तस्य ज्याविप्रमुक्तास्ते शराः काञ्चनभूषणाः । शरीरं विधमिष्यन्ति गङ्गाकूलमिवोर्मयः ॥ ७ ॥
असुरैर्वा सुरैर्वा त्वं यद्यवध्योऽसि रावण । उत्पाद्य सुमहद्वैरं जीवंस्तस्य न मोक्ष्यसे ॥ ८ ॥

कोमल पैरोंको अपने सिरमें पीड़ित करता हूँ (अर्थात् तुम्हारे पैरपर सिर रखकर प्रणाम करता हूँ) ॥३५॥ तुम मुझपर प्रसन्न होओ, मैं तुम्हारा अधीन दास हूँ। कामसे जलाये हुए रावणने ये नीच बातें कहीं ॥ ३६ ॥ उसने कहा—रावण किसी स्त्रीको मस्तकसे प्रणाम नहीं करता। मृत्युके अधीन हुआ रावण जनकपुत्री मैथिलीसे ऐसा कहकर समझने लगा कि सीता मेरे अधीन हुई ॥ ३७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका पचपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५५ ॥

शोकसे पीड़ित और निर्भय सीताने रावणके ऐसा कहनेपर अपने और उसके बीचमें तृण रखकर उससे कहा ॥ १ ॥ राजा दसरथ धर्मके अचल सेतुके समान हैं। उनके पुत्र रामचन्द्र प्रसिद्ध सत्यप्रतिज्ञ हैं। वे धर्मात्मा रामके नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं, उनकी बाहु विशाल, उनकी आंखें बड़ी, वे सबके देवता, मेरे पति हैं ॥ ३ ॥ वे इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुए हैं, सिंहके समान उनके कंधे हैं, वे बड़े तेजस्वी हैं, वे अपने भाई लक्ष्मणके साथ तेरे प्राणोंका वध करेंगे ॥ ४ ॥ यदि उनके सामने तुम मेरा हरण करते तो वहीं जनस्थानमें खरके समान मारे जाकर सोते होते ॥ ५ ॥ भयानक और महाबली जिन राक्षसोंकी बात तुमने कही है, वे रामचन्द्रके सामने कुछ भी नहीं हैं, जैसे गरुड़के सामने सर्प विषहीन हो जाते हैं ॥ ६ ॥ उनके धनुष के दोंसे छूटे हुए सुवर्णभूषित बाण तुम्हारे शरीरको छेदेंगे, जिस प्रकार तरंगें गंगा तीरको तोड़ती हैं ॥ ७ ॥ रावण असुरों और देवताओंसे यदि अवध्य हो तो भी रामचन्द्रके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स ते जीवितशेषस्य राघवोऽन्तकरो बली । पशोर्यूपगतस्येव जीवितं तव दुर्लभम् ॥ ९ ॥
यदि पश्येत्स रामस्त्वां रोषदीप्तेन चक्षुषा । रक्षस्त्वमद्य निर्दग्धो यथा रुद्रेण मन्मथः ॥१०॥
यश्चन्द्रं नभसो भूमौ पातयेन्नाशयेत वा । सागरं शोषयेद्वापि स सीतां मोचयेदिह ॥११॥
गतासुस्त्वं गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः । लङ्का वैधव्यसंयुक्ता त्वत्कृतेन भविष्यति ॥१२॥
न ते पापमिदं कर्म सुखोदर्कं भविष्यति । याहं नीता विनाभावं पतिपार्श्वात्त्वया बलात् ॥१३॥
स हि देवरसंयुक्तो मम भर्ता महाद्युतिः । निर्भयो वीर्यमाश्रित्य शून्ये वसति दण्डके ॥१४॥
स ते वीर्यं बलं दर्पमुत्सेकं च यथाविधम् । व्यपनेष्यति गात्रेभ्यः शरवर्षेण संयुगे ॥१५॥
यदा विनाशो भूतानां दृश्यते कालचोदितः । तदा कार्येषु मुह्यन्ति नराः कालवशं गताः ॥१६॥
मां प्रधृष्य स ते कालः प्राप्तोऽयं राक्षसाधम । आत्मनो राक्षसानां च वधायान्तःपुरस्य च ॥१७॥
न शक्या यज्ञमध्यस्था वेदिः स्रुग्भाण्डमण्डिता । द्विजातिमन्त्रसंपूता चण्डालेनावमर्दितुम् ॥१८॥
तथाहं धर्मनित्यस्य धर्मपत्नी दृढव्रता । त्वया स्प्रष्टुं न शक्याहं राक्षसाधम पापिना ॥१९॥
क्रीडन्ती राजहंसेन पद्मषण्डेषु नित्यशः । हंसी सा तृणमध्यस्थं कथं द्रक्ष्येत मद्वृकम् ॥२०॥
इदं शरीरं निःसंज्ञं बन्ध वा घातयस्व वा । नेदं शरीरं रक्ष्यं मे जीवितं वापि राक्षस ॥२१॥

साथ यह बड़ा वैर उत्पन्न करके तुम जीते नहीं छूट सकते ॥ ८ ॥ बली रामचन्द्र तुम्हारे प्राणोंके अन्त करनेवाले हैं। यज्ञस्तम्भमें बँधे हुए पशुके समान अब तुम्हारा जीना दुर्लभ है ॥ ९ ॥ राक्षस, यदि क्रोधसे प्रदीप्त आंखोंसे रामचन्द्र देखें तो तुम आज ही जल जाओ, जिस प्रकार रुद्रने कामको जलाया था ॥ १० ॥ जो आकाशसे चन्द्रमाको पृथिवीपर गिरा सकते हैं अथवा नष्ट कर सकते हैं, जो समुद्रको सुखा सकते हैं, वे ही सीताको यहांसे छुड़ा सकते हैं ॥ ११ ॥ अपने किये पापसे तुम मारे जाओगे, तुम्हारी लक्ष्मी नष्ट होगी, तुम्हारा पराक्रम, तुम्हारी शक्तियां नष्ट होंगी और लंका विधवा हो जायगी ॥१२॥ तुम्हारे इस पाप कर्मका परिणाम सुखमय नहीं होगा, क्योंकि पतिके पाससे बलपूर्वक तुमने मुझे हटाया है ॥ १३ ॥ वे महाद्युति मेरे पति मेरे देवरके साथ निर्भय होकर अपने बलके भरोसे निर्जन दण्डकारण्यमें रहते हैं ॥ १४ ॥ तुम्हारा पराक्रम, तुम्हारा बल, तुम्हारा अहंकार और किसीकी बात न माननेकी तुम्हारी बुद्धि इन सबको तुम्हारे शरीरसे बाणवृष्टिद्वारा युद्धमें वे निकाल देंगे ॥ १५ ॥ कालकी प्रेरणासे जब प्राणियोंका विनाश होनेवाला होता है, तभी वे कालवश होकर कार्यमें प्रमाद करते हैं ॥ १६ ॥ राक्षसाधम, मेरे हरण करनेसे वह काल तुम्हारे राक्षसों तथा तुम्हारी स्त्रियोंके वधके लिए आ गया है ॥ १७ ॥ यज्ञमण्डपके बीचकी वेदी जो स्रुवा आदि यज्ञीय पात्रोंसे भूषित है तथा ब्राह्मणोंके मन्त्रोंसे पवित्र है, उसे चाण्डाल नहीं छू सकता ॥ १८ ॥ उसी प्रकार सदा धर्माचरण करनेवाले रामचन्द्रमें दृढ़ अनुराग रखनेवाली मैं उनकी धर्मपत्नी हूँ । राक्षसाधम, तुम मेरा स्पर्श नहीं कर सकते ॥ १९ ॥ जो राजहंसी राजहंसके साथ कमलवनमें क्रीड़ा करती है, वह घासमें रहनेवाले जल-कौएकी ओर कैसे देखेगी ॥२०॥ चेष्टाहीन इस शरीरको बांधो या मार डालो, राक्षस, मैं अपने इस शरीरको और जीवनको रखना नहीं चाहती ॥ २१ ॥ मैं अपनी निन्दा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न तु शक्यमपक्रोशं पृथिव्यां दातुमात्मनः । एवमुक्त्वा तु वैदेही क्रोधात्सुपरुषं वचः ॥२२॥
रावणं जानकी तत्र पुनर्नोवाच किंचन । सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं रोमहर्षणम् ॥२३॥
प्रत्युवाच ततः सीतां भयसंदर्शनं वचः । शृणु मैथिलि मद्वाक्यं मासान्द्वादश भामिनि ॥२४॥
कालेनानेन नाभ्येषि यदि मां चारुहासिनि । ततस्त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति लेशशः ॥२५॥
इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणः शत्रुरावणः । राक्षसीश्च ततः क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥२६॥
शीघ्रमेव हि राक्षस्यो विरूपा घोरदर्शनाः । दर्पमस्यापनेष्यन्तु मांसशोणितभोजनाः ॥२७॥
वचनादेव तास्तस्य सुघोरा घोरदर्शनाः । कृतप्राञ्जलयो भूत्वा मैथिलीं पर्यवारयन् ॥२८॥
स ताः प्रोवाच राजासौ रावणो घोरदर्शनाः । प्रचल्य चरणोत्कर्षैर्दारयन्निव मेदिनीम् ॥२९॥
अशोकवनिकामध्ये मैथिलीं नीयतामिति । तत्रेयं रक्ष्यतां गूढं युष्माभिः परिवारिता ॥३०॥
तत्रैनां तर्जनैर्घोरैः पुनः सान्त्वैश्च मैथिलीम् । आनयध्वं वशं सर्वा वन्यां गजवधूमिव ॥३१॥
इति प्रतिसमादिष्टा राक्षस्यो रावणेन ताः । अशोकवनिकां जग्मुर्मैथिलीं परिगृह्य तु ॥३२॥
सर्वकामफलैर्वृक्षैर्नानापुष्पफलैर्वृताम् । सर्वकालमदैश्चापि द्विजैः समुपसेविताम् ॥३३॥
सा तु शोकपरीताङ्गी मैथिली जनकात्मजा । राक्षसीवशमापन्ना व्याघ्रीणां हरिणी यथा ॥३४॥
शोकेन महता त्रस्ता मैथिली जनकात्मजा । न शर्म लभते भीरुः पाशबद्धा मृगी यथा ॥३५॥

पृथिवीमें कराना नहीं चाहती। सीता क्रोधसे ऐसा कठोर वचन कहकर रावणसे और कुछ न बोली ॥ २२ ॥ रोंगटे खड़े करनेवाले सीताके ये कठोर वचन सुनकर सीताको भय दिखानेवाले वचन रावणने कहे। मैथिली, मेरे वचन सुनो। भामिनी, बारह महीने तक मैं प्रतीक्षा करता हूँ ॥ २३, २४ ॥ इतने समयमें यदि तुम मेरे पास न आयी तो प्रातःकालका जलपान बनानेके लिए तुम्हारा टुकड़ा-टुकड़ा काट देंगे ॥ २५ ॥ शत्रुओंको रुलानेवाला रावण, इस प्रकार कठोर वचन कहकर राक्षसियोंसे क्रोधपूर्वक बोला ॥ २६ ॥ कुरूप, देखनेमें भयानक, मांस और शोणित खानेवाली राक्षसियाँ, शीघ्र ही इस सीताका अहंकार दूर करें ॥ २७ ॥ रावणके कहते ही कर्म और शरीरसे भयानक राक्षसियोंने हाथ जोड़कर जानकीको घेर लिया ॥ २८ ॥ चरणोंके आघातसे पृथिवीको तोड़ता हुआ राजा रावण चलकर उन भयानक राक्षसियोंसे इस प्रकार बोला ॥ २९ ॥ सीताको अशोकवाटिकामें ले जाओ। तुम लोग सदा इसके साथ रहो और वहीं इसकी रक्षा करो ॥ ३० ॥ वहां तुम लोग वनैली हथिनीके समान घोर गर्जन तथा प्रिय वचनोंके द्वारा इसे अपने वशमें ले आओ ॥ ३१ ॥ रावणकी ऐसी आज्ञा पाकर वे राक्षसियाँ सीताको लेकर अशोकवनिकामें चली गयीं ॥ ३२ ॥ अशोकवनिकामें वृक्ष सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले थे। अनेक प्रकारके पुष्प और फलोंसे युक्त रहते थे और सब ऋतुओंमें मस्त रहनेवाले पक्षी वहां थे ॥ ३३ ॥ शोकसे जिसके अंग दुर्बल हो गये हैं वह सीता राक्षसियोंके अधीन हुई, जिस प्रकार बाघिनोंके अधीन हरिनी होती है ॥ ३४ ॥ शोकसे डरी हुई जनकपुत्री सीता सुखी नहीं हुई,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न विन्दते तत्र तु शर्म मैथिली विरूपनेत्राभिरतीव तर्जिता।
पतिं स्मरन्ती दयितं च देवरं विचेतनाऽभूद्भयशोकपीडिता ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशः सर्गः ५७

राक्षसं मृगरूपेण चरन्तं कामरूपिणम्। निहत्य रामो मारीचं तूर्णं पथि न्यवर्तत ॥ १ ॥
तस्य संत्वरमाणस्य द्रष्टुकामस्य मैथिलीम्। क्रूरस्वनोऽथ गोमायुर्विननादास्य पृष्ठतः ॥ २ ॥
स तस्य स्वरमाज्ञाय दारुणं रोमहर्षणम्। शङ्कयामास गोमायोः स्वरेण परिशङ्कितः ॥ ३ ॥
अशुभं वत मन्येऽहं गोमायुर्वाशते यथा। स्वस्ति स्यादपि वैदेह्या राक्षसैर्भक्षणं विना ॥ ४ ॥
मारीचेन तु विज्ञाय स्वरमालक्ष्य मामकम्। विक्रुष्टं मृगरूपेण लक्ष्मणः शृणुयाद्यदि ॥ ५ ॥
स सौमित्रिः स्वरं श्रुत्वा तां च हित्वाथ मैथिलीम्। तयैव प्रहितः क्षिप्रं मत्सकाशमिहैष्यति ॥ ६ ॥
राक्षसैः सहितैर्नूनं सीताया ईप्सितो वधः। काञ्चनश्च मृगो भूत्वा व्यपनीयाश्रमात्तु माम् ॥ ७ ॥
दूरं नीत्वाथ मारीचो राक्षसोऽभूच्छराहतः। हा लक्ष्मण हतोऽस्मीति यद्वाक्यं व्याजहार ह ॥८॥
अपि स्वस्ति भवेद्द्वाभ्यां रहिताभ्यां मया वने। जनस्थाननिमित्तं हि कृतवैरोऽस्मि राक्षसैः ॥ ९ ॥

जिस प्रकार पासमें बँधी हुई मृगी ॥ ३५ ॥ डरावनी आंखोंवाली राक्षसियोंके धमकानेसे जानकी सुखी नहीं होती थी। अपने पति और प्रिय देवरका स्मरण करती हुई, भय और शोकसे पीड़ित वह बेहोश हो गयी ॥ ३६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका छप्पनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५६ ॥

मृगरूप धरकर दौड़ते हुए कामरूपी राक्षस मारीचको मार्गमें मारकर रामचन्द्र लौटे ॥ १ ॥ शीघ्रतापूर्वक सीताको देखनेके लिए आते हुए रामचन्द्रकी पीठकी ओर सियार क्रूर वचन बोला ॥ २ ॥ उसका रोंगटे खड़े करनेवाला भयानक शब्द समझकर रामचन्द्रने उसके शब्दसे शंकित होकर संदेह किया ॥ ३ ॥ सियार जैसा बोल रहा है उससे मालूम होता है कि जानकीके लिए कोई अशुभ बात हुई है। हां, राक्षसोंने उसे खाया नहीं है ॥ ४ ॥ मृगरूपी मारीचने जान-बूझकर जो मेरे शब्दका अनुकरण करके पुकारा है, वह इसीलिए कि शायद लक्ष्मण सुन लें ॥ ५ ॥ उस शब्दको सुनकर सीताको छोड़कर अथवा सीताके द्वारा प्रेरित होकर शीघ्रही वे मेरे पास आवें ॥ ६ ॥ राक्षसोंको मिलकर सीताका वध करना इष्ट है, अतएव सुवर्ण मृगके बहाने-से उन लोगोंने मुझे आश्रमसे दूर हटाया है ॥ ७ ॥ आश्रमसे दूर ले जाकर बाणके आघातसे वह मारीच राक्षस हो गया और 'हा लक्ष्मण, मैं मारा गया' ऐसा उसने कहा ॥८॥ इस वचनके सुननेपर मेरे बिना उन दोनोंका, सीता, और लक्ष्मणका, धैर्य कैसे रह सकता है? जनस्थानके कारण राक्षसोंसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निमित्तानि च घोराणि दृश्यन्तेऽद्य बहूनि च । इत्येवं चिन्तयन्रामः श्रुत्वा गोमायुनिःस्वनम् ॥१०॥
निवर्तमानस्त्वरितो जगामाश्रममात्मवान् । आत्मनश्चापनयनं मृगरूपेण रक्षसा ॥११॥
आजगाम जनस्थानं राघवः परिशङ्कितः । तं दीनमानसं दीनमासेदुर्मृगपक्षिणः ॥१२॥
सव्यं कृत्वा महात्मानं घोरांश्च ससृजुः स्वरान् । तानि दृष्ट्वा निमित्तानि महाघोराणि राघवः ॥१३॥
ततो लक्ष्मणमायान्तं ददर्श विगतप्रभम् । ततो विदूरे रामेण समीयाय स लक्ष्मणः ॥१४॥
विषण्णः सन्विषण्णेन दुःखितो दुःखभागिना । स जगर्हेऽथ तं भ्राता दृष्ट्वा लक्ष्मणमागतम् ॥१५॥
विहाय सीतां विजने वने राक्षससेविते । गृहीत्वा च करं सव्यं लक्ष्मणं रघुनन्दनः ॥१६॥
उवाच मधुरोदर्कमिदं परुषमार्तवत् । अहो लक्ष्मण गर्ह्यं ते कृतं यत्त्वं विहाय ताम् ॥१७॥
सीतामिहागतः सौम्य कच्चित्स्वस्ति भवेदिति । न मेऽस्ति संशयो वीर सर्वथा जनकात्मजा ॥१८॥
विनष्टा भक्षिता वापि राक्षसैर्वनचारिभिः । अशुभान्येव भूयिष्ठं यथा प्रादुर्भवन्ति मे ॥१९॥
अपि लक्ष्मण सीतायाः सामग्र्यं प्राप्नुयामहे । जीवन्त्याः पुरुषव्याघ्र सुतायाः जनकस्य वै ॥२०॥
यथा वै मृगसङ्घाश्च गोमायुश्चैव भैरवम् । वाशन्ते शकुनाश्चापि प्रदीप्तामभितो दिशम् ।
अपि स्वस्ति भवेत्तस्या राजपुत्र्या महाबल ॥२१॥
इदं हि रक्षो मृगसंनिकाशं प्रलोभ्य मां दूरमनुप्रयातम् ।
हतं कथंचिन्महता श्रमेण स राक्षसोऽभून्म्रियमाण एव ॥ २२ ॥

मेरा वैर भी हो गया है ॥ ९ ॥ अनेक भयानक निमित्तोंको मैं देख रहा हूँ । शृगालके शब्द सुनकर तथा मृगरूपी राक्षसके द्वारा आश्रमसे अपने हटाये जानेके कारण शंकित रामचन्द्र इस प्रकार सोचते हुए शीघ्रतापूर्वक अपने आश्रमपर लौटे ॥ १०, ११ ॥ शंकितचित्त राम जनस्थानमें आये । खिन्नचित्त और म्लान रामचन्द्रकी बाईं ओरसे भयानक शब्द करते हुए मृग और पक्षी महात्मा रामचन्द्रके पास गये । इन घोर निमित्तोंको रामचन्द्रने देखा ॥ १२, १३ ॥ तदनन्तर म्लान लक्ष्मण-को आते हुए उन्होंने देखा । थोड़ीही दूरपर लक्ष्मण रामसे जाकर मिले ॥ १४ ॥ उदास और दुःखी लक्ष्मण, उदास और दुःखी रामचन्द्रसे मिले । निर्जन तथा राक्षसोंवाले वनमें सीताको छोड़ कर आए हुए लक्ष्मणको देखकर तथा उनका बायां हाथ पकड़कर रामचन्द्र उन्हें डांटने लगे । ॥ १५, १६ ॥ कठोर, पर परिणाममधुर, वचन रामचन्द्र दुःखीके समान बोले—लक्ष्मण, तुमने यह बहुत बुरा किया । सीताको छोड़कर तुम यहां आये । सौम्य, क्या सीताकी कुशल होगी ? वीर, मुझे बिल्कुल सन्देह नहीं है कि वनवासी राक्षसोंने या तो सीताका नाश कर दिया होगा या उसे खा लिया होगा; क्योंकि मेरे लिए चारो ओर अशुभसूचक अपशकुन हो रहे हैं ॥ १७, १८ १९ ॥ लक्ष्मण, क्या हमलोग सीताको कुशलपूर्वक देखेंगे । पुरुषसिंह, जनककी पुत्रीको जीती हुई हम लोग पावेंगे ? ॥ २०॥ जिस प्रकार ये पशु तथा शृगाल भयानक शब्द बोल रहे हैं और जलती हुई-सी दिशाओंमें जो शकुन हो रहे हैं उससे शायद ही राजपुत्री सीताकी कुशल हो ॥ २१ ॥ मृगाके समानयह राक्षस मुझको लुभाकर बहुत दूर ले गया । बड़े परिश्रमसे जब मैंने इसे मारा, तब यह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनश्च मे दीनमिहाप्रहृष्टं चक्षुश्च सव्यं कुरुते विकारम् ।
असंशयं लक्ष्मण नास्ति सीता हृता मृता वा पथि वर्तते वा ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥५७॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः ५८

स दृष्ट्वा लक्ष्मणं दीनं शून्यं दशरथात्मजः । पर्यपृच्छत धर्मात्मा वैदेहीमागतं विना ॥ १ ॥
प्रस्थितं दण्डकारण्यं या मामनुजगाम ह । क्व सा लक्ष्मण वैदेही यां हित्वा त्वमिहागतः ॥ २ ॥
राज्यभ्रष्टस्य दीनस्य दण्डकान्परिधावतः । क्व सा दुःखसहाया मे वैदेही तनुमध्यमा ॥ ३ ॥
यां विना नोत्सहे वीर मुहूर्तमपि जीवितुम् । क्व सा प्राणसहाया मे सीता सुरसुतोपमा ॥ ४ ॥
पातेत्वममराणां हि पृथिव्याश्चापि लक्ष्मण । विना तां तपनीयाभां नेच्छेयं जनकात्मजाम् ॥ ५ ॥
कच्चिज्जीवति वैदेही प्राणैः प्रियतरा मम । कच्चित्प्रव्राजनं वीर न मे मिथ्या भविष्यति ॥ ६ ॥
सीतानिमित्तं सौमित्रे मृते मयि गते त्वयि । कच्चित्सकामा कैकेयी सुखिता सा भविष्यति ॥ ७ ॥
सपुत्रराज्यां सिद्धार्थां मृतपुत्रा तपस्विनी । उपस्थास्यति कौसल्या कच्चित्सौम्येन कैकयीम् ॥८॥
यदि जीवति वैदेही गमिष्याम्याश्रमं पुनः । सवृत्ता यदि वृत्ता सा प्राणांस्त्यक्ष्यामि लक्ष्मण ॥९॥

राक्षस हो गया ॥ २२ ॥ मेरा मन बहुतही अप्रसन्न और दुःखी है । बांई आंख फरक रही है । लक्ष्मण, निःसन्देह सीता नहीं हैं । कोई उसे हर ले गया या वह मारी गयी अथवा कोई हर ले जा रहा है ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५७ ॥

दीन, अप्रसन्न और सीताके बिना अकेले आये हुए लक्ष्मणको देखकर धर्मात्मा रामचन्द्रने उनसे पूछा ॥ १ ॥ लक्ष्मण, दण्डकारण्यके लिए जब मैंने प्रस्थान किया, उस समय जो मेरे साथ आयी, वह सीता कहाँ है, जिसको छोड़कर तुम यहाँ आये हो ॥ २ ॥ राज्यसे भ्रष्ट दीन और दण्डकारण्यमें भटकनेवाले मेरे दुःखकी सहायिका सीता कहाँ है ॥ ३ ॥ वीर, जिसके बिना मैं एक मुहूर्त भी नहीं जी सकता हूँ, वह देवकन्याके समान सीता और मेरे प्राणकी सहायिका सीता कहाँ है ? ॥ ४ ॥ देवताओंका राज्य अथवा पृथिवीका राज्य भी, लक्ष्मण, सुवर्ण वर्णवाली सीताके बिना मैं नहीं चाहता ॥ ५ ॥ मेरे प्राणोंसे भी प्रिय सीता क्या जीती है ? वीर, क्या मेरा वनवास पूरा नहीं होगा ? अर्थात् सीताके न रहनेसे मेरी मृत्यु अनिवार्य है ॥६॥ लक्ष्मण, सीताके कारण मेरे मरने और तुम्हारे अयोध्यामें लौटनेपर क्या कैकयी अपने मनोरथके पूर्ण होनेसे सुखी होगी ? ॥ ७ ॥ पुत्र और राज्य पानेसे जिसका मनोरथ पूर्ण हो गया है, उस कैकयीकी सेवा, मृतपुत्रा कौशल्या कैसे करेगी ? ॥ ८ ॥ यदि सीता जीती हो तो मैं आश्रममें चलूँगा । यदि वह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यदि मामाश्रमगतं वैदेही नाभिभाषते। पुरः प्रहसिता सीता विनशिष्यामि लक्ष्मण ॥१०॥
ब्रूहि लक्ष्मण वैदेही यदि जीवति वा न वा। त्वयि प्रमत्ते रक्षोभिर्भक्षिता वा तपस्विनी ॥११॥
सुकुमारी च बाला च नित्यं चादुःखभागिनी। मद्वियोगेन वैदेही व्यक्तं शोचति दुर्मनाः ॥१२॥
सर्वथा रक्षसा तेन जिह्मेन सुदुरात्मना। वदता लक्ष्मणेत्युच्चैस्तवापि जनितं भयम् ॥१३॥
श्रुतश्च मन्ये वैदेह्या स स्वरः सदृशो मम। त्रस्तया प्रेषितस्त्वं च द्रष्टुं मां शीघ्रमागतः ॥१४॥
सर्वथा तु कृतं कष्टं सीतामुत्सृजता वने। प्रतिकर्तुं नृशंसानां रक्षसां दत्तमन्तरम् ॥१५॥
दुःखिताः खरघातेन राक्षसाः पिशिताशनाः। तैः सीता निहता घोरैर्भविष्यति न संशयः ॥१६॥
अहोऽस्मि व्यसने मग्नः सर्वथा रिपुनाशन। किं त्विदानीं करिष्यामि शङ्के प्राप्तव्यमीदृशम् १७
इति सीतां वरारोहां चिन्तयन्नेव राघवः। आजगाम जनस्थानं त्वरया सहलक्ष्मणः ॥१८॥

विगर्हमाणाऽनुजमार्तरूपं क्षुधाश्रमेणैव पिपासया च।
विनिःश्वसञ्शुष्कमुखो विषण्णः प्रतिश्रयं प्राप्य समीक्ष्य शून्यम् ॥ १९ ॥
स्वमाश्रमं स प्रविगाह्य वीरो विहारदेशाननुसृत्य कांश्चित्।
एतत्तदित्येव निवासभूमौ प्रहृष्टरोमा व्यथितो बभूव ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डेऽष्टपञ्चाशः सर्गः ॥५८॥

सदाचारिणी मर गयी हो, तो हे लक्ष्मण, मैं प्राण त्याग करूंगा ॥ ९ ॥ लक्ष्मण, आश्रममें जानेपर सामने हँसती हुई सीता यदि मुझसे बातें न करेगी तो मैं मर जाऊँगा। लक्ष्मण कहो, सीता जीता है कि नहीं? क्या तुम्हारी असावधानीसे उस तपस्विनीको राक्षसोंने खा तो नहीं लिया? ॥ ११ ॥ सुकुमारी बालिका और कभी दुख न सहनेवाली सीताने निश्चय मेरे वियोगसे उदास होकर शोक किया होगा ॥ १२ ॥ उस कुटिल दुरात्मा राक्षसने लक्ष्मण, ऐसा कहकर तुमको भी भयभीत कर दिया ॥ १३ ॥ मेरे स्वरके समान उस शब्दको सीताने सुना होगा, ऐसा मालूम पड़ता है और उसीने डरकर मुझे देखनेके लिए तुमको भेजा होगा, जिससे तुम शीघ्र यहाँ आये हो ॥१४॥ वनमें सीताको छोड़कर तुमने बड़ा बुरा किया। क्रूर राक्षसोंको बदला लेनेका अवसर मिल गया ॥ १५ ॥ मांसभक्षी राक्षस, खरके मारे जानेसे दुःखित हैं। उन क्रूरोंके द्वारा अवश्यही सीता मारी गयी होगी ॥१६॥ शत्रुनाशक, मैं सर्वथा बड़े कष्टमें फँस गया हूँ, अब मैं क्या कर सकता हूँ, इस आये हुए दुखको अवश्य भोगना पड़ेगा ॥१७॥ राम इस प्रकार सुन्दरी सीताके सम्बन्धकी बातें सोचते हुए लक्ष्मणके साथ जनस्थानमें आए ॥१८॥ इस प्रकार दुःखी छोटे भाईको डांटते हुए भूख प्यास और परिश्रमसे शुष्क मुख, उदास, लम्बी सांस लेते हुए रामचन्द्र आश्रमके समीप आये और उन्होंने उसे सूना देखा ॥१९॥ अपने आश्रममें आकर तथा सीताके कई क्रीड़ास्थानोंको देखकर-यह वही स्थान है, ऐसा कहकर अपने रहनेके स्थानमें आए और रोमांचित होकर दुःखी हुए ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका अट्ठावनवां सर्ग समाप्त ॥ ५८ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९

अथाश्रमादुपावृत्तमन्तरा रघुनन्दनः । परिपप्रच्छ सौमित्रिं रामो दुखादिदं वचः ॥ १ ॥
तमुवाच किमर्थं त्वमागतोऽपास्य मैथिलीम् । यदा सा तव विश्वासाद्वने विरहिता मया ॥ २ ॥
दृष्ट्वैवाभ्यागतं त्वां मे मैथिलीं त्यज्य लक्ष्मण । शङ्कमानं महत्पापं यत्सत्यं व्यथितं मनः ॥ ३ ॥
स्फुरते नयनं सव्यं बाहुश्च हृदयं च मे । दृष्ट्वा लक्ष्मण दूरे त्वां सीताविरहितं पथि ॥ ४ ॥
एवमुक्तस्तु सौमित्रिर्लक्ष्मणः शुभलक्षणः । भूयो दुःखसमाविष्टो दुःखितं राममब्रवीत् ॥ ५ ॥
न स्वयं कामकारेण तां त्यक्त्वाऽहमिहागतः । प्रचोदितस्तयैवोग्रैस्त्वत्सकाशमिहागतः ॥ ६ ॥
आर्येणेव परिक्रुष्टं लक्ष्मणेति सुविस्वरम् । परित्राहीति यद्वाक्यं मैथिल्यास्तच्छ्रुतिं गतम् ॥ ७ ॥
सा तमार्तस्वरं श्रुत्वा तव स्नेहेन मैथिली । गच्छ गच्छेति मामाशु रुदती भयविक्लवा ॥ ८ ॥
प्रचोद्यमानेन मया गच्छेति बहुशस्तया । प्रत्युक्ता मैथिली वाक्यमिदं तत्प्रत्ययान्वितम् ॥ ९ ॥
न तत्पश्याम्यहं रक्षो यदस्य भयमावहेत् । निर्वृता भव नास्त्येतत्केनाप्येतदुदाहृतम् ॥१०॥
विगर्हितं च नीचं च कथमार्योऽभिधास्यति । त्राहीति वचनं सीते यस्त्रायेन्त्रिदशानपि ॥११॥
किंनिमित्तं तु केनापि भ्रातुरालम्ब्य मे स्वरम् । विस्वरं व्याहृतं वाक्यं लक्ष्मण त्राहि मामिति॥१२॥
राक्षसेनेरितं वाक्यं त्रासात्त्राहीति शोभने । न भवत्या व्यथा कार्या कुनारीजनसेविता ॥१३॥

रामचन्द्रने आश्रमसे आये हुए लक्ष्मणसे बीचकी बातें दुःखसे पूछीं ॥ १ ॥ रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा—जब मैंने विश्वाससे तुम्हारे ऊपर सीता छोड़ी, तब तुम उसे छोड़कर क्यों आये ॥ २ ॥ लक्ष्मण, जानकीको छोड़कर आए हुए तुमको देखतेही मेरे मनमें बहुत बड़े अनिष्टकी शंका हुई और मेरा मन व्यथित हो गया ॥ ३ ॥ बांयीं आँख, बांयीं भुजा और हृदयका वामभाग फड़कने लगे, जिस समय मैंने सीताके बिना अकेले तुमको मार्गमें देखा ॥ ४ ॥ शुभलक्षण लक्ष्मण रामके ऐसा कहनेपर पुनः दुःखित हुए और दुखित रामचन्द्रसे बोले ॥ ५ ॥ मैं स्वयं अपनी इच्छासे उनको छोड़कर नहीं आया । उन्हींके कठोर वाक्योंसे पीड़ित होकर मैं आपके पास आया ॥ ८ ॥ आपने जोरसे "लक्ष्मण, मेरी रक्षा करो" की पुकार की, आपका यह वाक्य सीताने सुन लिया ॥ ७ ॥ उस दुखित शब्दको सुनकर आपके स्नेहके कारण भयसे विकल सीता मुझे "जाओ, जाओ" कहने लगी ॥ ८ ॥ कई बार उनके द्वारा जानेके लिए प्रेरित होने पर सीतासे उनके विश्वास करने योग्य यह बात मैंने कही ॥ ९ ॥ मैं ऐसे किसी राक्षस-को नहीं देखता जिससे रामचन्द्रको भय हो । निश्चिन्त रहो, यह कुछ भी नहीं है, किसी दूसरेने ऐसा कहा है ॥ १० ॥ निन्दित और नीच 'त्राहि' यह वचन रामचन्द्र कैसे कहेंगे, क्योंकि वे देवताओंकी भी रक्षा कर सकते हैं ॥ ११ ॥ किसी बुरे अभिप्रायसे किसीने मेरे भाईके समान स्वरमें 'लक्ष्मण मेरी रक्षाकरो' यह पुकार की है ॥ १२ ॥ शोभने, भयभीत होकर राक्षसनेही 'त्राहि' यह शब्द कहाहै । नीच स्त्रियोंके होने योग्य दुख तुमको नहीं करना चाहिए ॥ १३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अलं विक्लवतां गन्तुं स्वस्था भव निरुत्सुका । न चास्ति त्रिषु लोकेषु पुमान्यो राघवं रणे ॥१४॥
जातो वा जायमानो वा संयुगे यः पराजयेत् । अजेयो राघवो युद्धे देवैः शक्रपुरोगमैः ॥१५॥
एवमुक्ता तु वैदेही परिमोहितचेतना । उवाचाश्रूणि मुञ्चन्ती दारुणं मामिदं वचः ॥१६॥
भावो मयि तवात्यर्थं पाप एव निवेशितः । विनष्टे भ्रातरि प्राप्तुं न च त्वं मामवाप्स्यसे ॥१७॥
संकेताद्भरतेन त्वं रामं समनुगच्छसि । क्रोशन्तं हि यथात्यर्थं नैनमभ्यवपद्यसे ॥१८॥
रिपुः प्रच्छन्नचारी त्वं मदर्थमनुगच्छसि । राघवस्यान्तरं प्रेप्सुस्तथैनं नाभिपद्यसे ॥१९॥
एवमुक्तस्तु वैदेह्या संरब्धो रक्तलोचनः । क्रोधात्प्रस्फुरमाणोष्ठ आश्रमादभिनिर्गतः ॥२०॥
एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं रामः संतापमोहितः । अब्रवीद्दुष्कृतं सौम्य तां विना त्वमिहागतः ॥२१॥
जानन्नपि समर्थं मां रक्षसामपवारणे । अनेन क्रोधवाक्येन मैथिल्या निर्गतो भवान् ॥२२॥
नहि ते परितुष्यामि त्यक्त्वा यदासि मैथिलीम् । क्रुद्धायाः परुषं श्रुत्वा स्त्रिया यत्त्वमिहागतः ॥२३॥
सर्वथा त्वपनीतं ते सीतया यत्प्रचोदितः । क्रोधस्य वशमागम्य नाकरोः शासनं मम ॥२४॥
असौ हि राक्षसः शेते शरेणाभिहतो मया । मृगरूपेण येनाहमाश्रमादपवाहितः ॥२५॥
विकृष्य चापं परिधाय सायकं सलीलबाणेन च ताडितो मया ।
मार्गीं तनुं त्यज्य च विक्लवस्वरो बभूव केयूरधरः स राक्षसः ॥२६॥

क्यों विकल होती हो, स्वस्थ होओ, घबड़ाहट छोड़ो, तीनों लोकोंमें ऐसा कोई पुरुष उत्पन्न नहीं हुआ है और न उत्पन्न होगा जो युद्धमें रामचन्द्रको जीत सके। इन्द्रको आगे लेकर चलनेवाले देवताओंसेभी रामचन्द्र युद्धमें अजेय हैं॥ १४, १५॥ मेरे ऐसा कहनेपर आपके स्नेहसे, व्याकुल और आंसू बहाती हुई सीताने मुझसे वे कठोर वचन कहे॥ १६॥ भाईके मरनेपर मुझे पाने के लिए तुम्हारे मनमें पापमय भाव भरा हुआ है, पर तुम मुझे पा नहीं सकोगे॥ १७॥ तुम भरतके कहनेसे रामचन्द्रका पीछा कर रहे हो, अतएव उनके इतना चिल्लाने पर भी तुम उनके पास नहीं जाते॥ १८॥ तुम छिपे हुए शत्रु हो, तुम मेरे लिए अवसर पानेके अर्थ रामचन्द्रके साथ आरहे हो, अतएव तुम उनके पास नहीं जाते॥ १९॥ जानकीके ऐसा कहनेपर मुझे बहुत क्रोध आया, आँखें लाल हो गयीं और क्रोधसे ओठ फरकने लगे और मैं आश्रमके बाहर निकल गया॥ २०॥ लक्ष्मणके यह कहनेपर दुखी रामचन्द्रने कहा-सौम्य, सीताके विना जो तुम यहां आए वह तुमने बुरा किया॥ २१॥ राक्षसोंको नष्ट करनेमें समर्थ मैं हूँ, यह जानकर भी तुम सीताके क्रोध भरे वचनोंके कारण आश्रमसे निकल आए॥ २२॥ सीताको तुम छोड़ आये, इससे मैं तुमपर प्रसन्न नहीं हूँ। क्रुद्ध स्त्रीके कठोर वचन सुनकर तुम यहां चले आये॥ २३॥ तुमने सचमुच यह नीतिविरुद्ध काम किया, जो सीताके द्वारा प्रेरित होनेसे क्रोधमें आकर तुमने मेरी आज्ञा नहीं मानी॥ २४॥ मेरे बाणसे मारा गया राक्षस यह सोता है, जो मृगरूपसे मुझे आश्रमसे दूर ले गया था॥ २५॥ धनुष चढ़ाकर बाण रखकर धीरेसे मैंने इसे बाण मारा। मृगाका शरीर छोड़कर अंगद (हाथका एक गहना) धारण करनेवाला एक राक्षस हो गया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शराहतेनैव तदार्तया गिरा स्वरं ममालम्ब्य सुदूरसुश्रवम् ।
उपाहृतं तद्वचनं सुदारुणं त्वमागतो येन विहाय मैथिलीम् ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥५९॥

षष्टितमः सर्गः ६०

भृशमाव्रजमानस्य तस्याधो वामलोचनम् । प्रास्फुरच्चास्खलद्रामो वेपथुश्चास्य जायते ॥ १ ॥
उपालक्ष्य निमित्तानि सोऽशुभानि मुहुर्मुहुः । अपि क्षेमं तु सीताया इति वै व्याजहार ह ॥ २ ॥
त्वरमाणो जगामाथ सीतादर्शनलालसः । शून्यमावसथं दृष्ट्वा बभूवोद्विग्नमानसः ॥ ३ ॥
उद्भ्रमन्निव वेगेन विक्षिपन्रघुनन्दनः । तत्र तत्रोटजस्थानमभिवीक्ष्य समन्ततः ॥ ४ ॥
ददर्श पर्णशालां च सीतया रहितां तदा । श्रिया विरहितां ध्वस्तां हेमन्ते पद्मिनीमिव ॥ ५ ॥
रुदन्तमिव वृक्षैश्च म्लानपुष्पमृगद्विजम् । श्रिया विहीनं विध्वस्तं संत्यक्तं वनदैवतैः ॥ ६ ॥
विप्रकीर्णाजिनकुशं विप्रविद्धबृसीकटम् । दृष्ट्वा शून्योटजस्थानं विललाप पुनः पुनः ॥ ७ ॥
हृता मृता वा नष्टा वा भक्षिता वा भविष्यति । निलीनाप्यथवा भीरुरथवा वनमाश्रिता ॥ ८ ॥
गता विचेतुं पुष्पाणि फलान्यपि च वा पुनः । अथवा पद्मिनीं याता जलार्थं वा नदीं गता ॥ ९ ॥

और दीन शब्द बोलेने लगा, ॥ २६ ॥ बाणसे आहत होतेही दुखित शब्दसे मेरे स्वरका अनुकरण करके दूरतक सुनाई पड़नेवाला वह भयानक शब्द यह बोला, जिससे जानकीको छोड़कर तुम आये ॥ २७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका उनसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५९ ॥

आश्रममें आते हुए रामचन्द्रकी बाँई आँखका नीचेवाला पलक फरकने लगा । वे चलते-चलते फिसल पड़े ॥ १ ॥ बार-बार ऐसे अशुभ निमित्तोंको देखकर रामचन्द्रने कहा—सीता तो कुशल है ॥ २ ॥ सीताको देखनेके लिए उत्कण्ठित होकर रामचन्द्र शीघ्रतापूर्वक चले । आश्रमको सूना देखनेसे उनका मन उद्विग्न हो गया ॥ ३ ॥ आश्रमके आसपास सीताको ढूँढनेके लिए रामचन्द्र वेगसे घूमने लगे । सीताके न मिलनेपर हाथ पैर पटकने लगे ॥ ४ ॥ रामचन्द्रने सीतासे शून्य पर्णशाला देखी, मानो हेमन्त ऋतुकी श्रीहीन कमलिनी हो ॥ ५ ॥ वृक्षोंको उन्होंने रोते देखा, वहांके पुष्प, पशु और पक्षी मलिन होगये थे । श्रीहीन वनदेवताओंसे त्यक्त, उजड़े हुएके समान जहां चर्म और कुशाएं बिखरी हुई हैं, आसन और चटाइयां फेंकी गयी हैं, ऐसे शून्य उटजको देखकर रामचन्द्र बार-बार विलाप करने लगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ सीता हरी गयी, मर गयी, भूल गयी या किसी राक्षसने उसे खा लिया अथवा वह भीरु कहीं छिपी है अथवा वनमें गयी है ॥ ८ ॥ पुष्प और फल लेनेके लिए कहीं गयी है अथवा तालाब पर गयी है, या जल लेनेके लिए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यत्रान्मृगयमाणस्तु नाससाद वने प्रियाम् । शोकरक्तेक्षणः श्रीमानुन्मत्त इव लक्ष्यते ॥१०॥
वृक्षाद्वृक्षं प्रधावन्स गिरींश्चापि नदीनदम् । बभ्राम विलपन्रामः शोकपङ्कार्णवप्लुतः ॥११॥
अस्ति काचित्त्वया दृष्टा सा कदम्बप्रिया प्रिया । कदम्ब यदि जानीषे शंस सीतां शुभाननाम् ॥१२॥
स्निग्धपल्लवसंकाशां पीतकौशेयवासिनीम् । शंसस्व यदि सा दृष्टा बिल्वबिल्वोपमस्तनी ॥१३॥
अथवार्जुन शंस त्वं प्रियां तामर्जुनप्रियाम् । जनकस्य सुता तन्वी यदि जीवति वा न वा ॥१४॥
ककुभः ककुभोरूं तां व्यक्तं जानाति मैथिलीम् । लतापल्लवपुष्पाढ्यो भाति ह्येष वनस्पतिः ॥१५॥
भ्रमरैरुपगीतश्च यथा द्रुमवरो ह्यसि । एष व्यक्तं विजानाति तिलकस्तिलकप्रियाम् ॥१६॥
अशोक शोकापनुद शोकोपहतचेतनम् । त्वन्नामानं कुरु क्षिप्रं प्रियासंदर्शनेन माम् ॥१७॥
यदि ताल त्वया दृष्टा पक्वतालोपमस्तनी । कथयस्व वरारोहां कारुण्यं यदि ते मयि ॥१८॥
यदि दृष्टा त्वया जम्बो जाम्बूनदसमप्रभा । प्रियां यदि विजानासि निःशङ्कं कथयस्व मे ॥१९॥
अहो त्वं कर्णिकाराद्य पुष्पितःशोभसे भृशम् । कर्णिकारप्रियां साध्वीं शंस दृष्टा यदि प्रिया ॥२०॥
चूतनीपमहासालान्पनसान्कुररांस्तथा । दाडिमानपि तान्गत्वा दृष्ट्वा रामो महायशाः ॥२१॥
बकुलानथ पुन्नागांश्चन्दनान्केतकांस्तथा । पृच्छन्रामो वने भ्रान्त उन्मत्त इव लक्ष्यते ॥२२॥

नदीपर गयी है ॥ ९ ॥ प्रयत्नसे ढूंढनेपर भी वनमें उन्होंने सीताको नहीं पाया । शोकसे उनकी आंखें लाल होगयीं । श्रीमान्, रामचन्द्र पागलके समान मालूम होने लगे ॥ १० ॥ एक वृक्षसे दूसरे वृक्ष तक दौड़ते हुए शोकके पंक-समुद्रमें मग्न रामचन्द्र विलाप करते हुए, पर्वतों, नदियों और नदोंपर घूमने लगे॥११॥ कदम्ब, कदम्बसे प्रेम करनेवाली मेरी प्रिया क्या तुमने देखी है?यदि तुमने सुन्दरी सीताको देखा हो तो मुझे बतलाओ ॥ १२ ॥ चिकने पल्लवके समान वह कोमल है। पीला रेशमी वस्त्र पहने हुई है । हे बिल्व, बिल्वके समान स्तनवाली सीता यदि तुमने देखी हो तो कहो ॥ १३ ॥ अर्जुन वृक्ष, तुमसे प्रेम करनेवाला मेरी प्रिया क्या तुमने देखी है ? जनककी कन्या वह तन्वी जीती है या नहीं ? ॥ १४ ॥ अवश्य ही यह ककुभ सीताको जानता है, यह वनस्पति, लता, पल्लव और पुष्पोंसे भरा पूरा बहुत भला मालूम होता है ॥ १५ ॥ तुम्हारे पास भ्रमर गा रहे हैं । इससे तुम सब वृक्षोंसे बड़ी हो । यह तिलक वृक्ष तिलकसे प्रेम करनेवाली सीताको अवश्य जानता है ॥ १६ ॥ शोक दूर करनेवाले अशोक शोकके कारण नष्टचेतन मुझको प्रियाके दरसन होनेसे अपने नामके समान अर्थात् अशोक बना दो ॥ १७ ॥ ताल वृक्ष, पके ताल फलके समान स्तनवाली सीता तुमने देखी है ? यदि तुम्हारी मुझपर दया हो तो कहो कहां है ॥१८॥ जामुन सुवर्णके समान वर्णवाली सीता तुमने देखी है, यदि तुम मेरी प्रियाको जानते हो तो निःशंक होकर मुझसे कहो ॥ १९ ॥ हे कर्णिकार, फूलोंके लगनेसे तुम बहुत ही अच्छे मालूम होते हो । यदि कर्णिकारसे प्रेम करनेवाली मेरी साध्वी प्रिया तुमने देखी हो तो बतलाओ ॥२०॥ आम, नीम, साल, कटहर, कुरर, अनार आदि वृक्षोंको देखकर महायशस्वी रामचन्द्र उनके पास गये और उनसे पूछा ।। २१ ।। बकुल, सुपारी, चन्दन और चेतक वृक्षोंसे घूम-घूम कर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथवा मृगशावाक्षीं मृग जानासि मैथिलीम् । मृगविप्रेक्षणी कान्ता मृगीभिः सहिता भवेत् ॥२३॥
गज सा गजनासोरूर्यदि दृष्टा त्वया भवेत् । तां मन्ये विदिता तुभ्यमाख्याहि वरवारण ॥२४॥
शार्दूल यदि सा दृष्टा प्रिया चन्द्रनिभानना । मैथिली मम विस्रब्धः कथयस्व न ते भयम् ॥२५॥
किं धावसि प्रिये नूनं दृष्टासि कमलेक्षणे । वृक्षैराच्छाद्य चात्मानं किं मां न प्रतिभाषसे ॥२६॥
तिष्ठ तिष्ठ वरारोहे न तेऽस्ति करुणा मयि । नात्यर्थं हास्यशीलासि किमर्थं मामुपेक्षसे ॥२७॥
पीतकौशेयकेनासि सूचिता वरवर्णिनि । धावन्त्यपि मया दृष्टा तिष्ठ यद्यस्ति सौहृदम् ॥२८॥
नैव सा नूनमथवा हिंसिता चारुहासिनी । कृच्छ्रं प्राप्तं हि मां नूनं यथोपेक्षितुमर्हति ॥२९॥
व्यक्तं सा भक्षिता बाला राक्षसैः पिशिताशनैः । विभज्याङ्गानि सर्वाणि मया विरहिता प्रिया ॥३०॥
नूनं तच्छुभदन्तोष्ठं सुनासं शुभकुण्डलम् । पूर्णचन्द्रनिभं ग्रस्तं मुखं निष्प्रभतां गतम् ॥३१॥
सा हि चन्दनवर्णाभा ग्रीवा ग्रैवेयकोचिता । कोमला विलपन्त्यास्तु कान्ताया भक्षिता शुभा ॥३२॥
नूनं विक्षिप्यमाणौ तौ बाहू पल्लवकोमलौ । भक्षितौ वेपमानाग्रौ सहस्ताभरणाङ्गदौ ॥३३॥
मया विरहिता बाला रक्षसां भक्षणाय वै । सार्थेनेव परित्यक्ता भक्षिता बहुबान्धवा ॥३४॥
हा लक्ष्मण महाबाहो पश्यसे त्वं प्रियां क्वचित् । हा प्रिये क्व गता भद्रे हा सीतेति पुनः पुनः ॥३५॥

पूछते हुए रामचन्द्र उन्मत्तके समान मालूम होते थे ॥ २२ ॥ अथवा मृगशावाक्षि सीताको तुम जानते हो ? मृगोंके समान वह देखती है । वह मृगियोंके साथ होगी ॥ २३ ॥ हे गज, क्या तुमने उस सीताको देखा है, जिसकी उरु तुम्हारी सूँड़के समान है ? वह सीता तुम्हे मालूम है ऐसा मैं समझता हूँ । हे गजराज, मुझे बतलाओ ॥ २४ ॥ हे शार्दूल, चन्द्रानना मेरी प्रिया तुमने देखी है, निश्चिन्त होकर तुम कहो । तुम्हें कोई भय नहीं है ॥ २५ ॥ कमलेक्षणे प्रिये, क्यों दौड़ रही हो ? मैंने तुम्हें देख लिया । वृक्षोंमें छिप रही हो और मुझसे बोलती नहीं ॥२६॥ सुन्दरी, ठहरो, ठहरो, मुझपर तुम्हारी दया नहीं है, तुम बड़ी दिल्लगीबाज हो, क्यों मेरी उपेक्षा कर रही हो ॥ २७ ॥ पीले रेशमी वस्त्रसे मैंने तुम्हें पहिचान लिया । दौड़नेपर भी मैंने तुम्हें देख लिया । ठहरो, यदि मुझपर तुम्हारा प्रेम हो ॥ २८ ॥ अथवा वह नहीं है ! निश्चय सुन्दर हँसने वाली सीताको राक्षसोंने मार दिया, नहीं तो मेरे इतने बड़े दुखकी वह उपेक्षा न करती ॥ २९ ॥ निश्चय मांस खानेवाले राक्षसोंने बाला सीताके अंगोंको बाँट कर मेरे न रहने पर खा लिया ॥ ३० ॥ सुन्दर दांत, ओठ और नासिकावाला तथा सुन्दर कुण्डलवाला वह सीताका, पूर्ण चन्द्रमाके समान मुख प्रभाहीन हो गया होगा ॥ ३१ ॥ विलाप करती हुई मेरी कान्ताका, चन्दनके समान वर्णवाला, हार धारण करनेके योग्य कोमल गला राक्षसोंने खा लिया ॥ ३२ ॥ पल्लवके समान कोमल हाथ जो इधर-उधर पटके जा रहे होंगे, जिनके अग्रभाग काँपते होंगे, हाथ और आभरणयुक्त बाहुको राक्षसोंने खा लिया ॥ ३३ ॥ राक्षसोंके खानेहीके लिए उस बालाको मैंने अपनेसे अलग किया, जिस प्रकार बहुत बान्धवोंवाली स्त्री अपने साथवालोंके न रहनेसे खा ली गयी हो ॥ ३४ ॥ महाबाहु लक्ष्मण, क्या तुम मेरी प्रियाको देखते हो ? हा प्रिये, हा भद्रे, हा सीते,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इत्येवं विलपन्रामः परिधावन्वनाद्वनम् । क्वचिदुद्भ्रमते योगात्क्वचिद्विभ्रमते बलात् ॥३६॥
क्वचिन्मत्त इवाभाति कान्तान्वेषणतत्परः । स वनानि नदीः शैलान्गिरिप्रस्रवणानि च ।
काननानि च वेगेन भ्रमत्यपरिसंस्थितः ॥३७॥
तदा स गत्वा विपुलं महद्वनं परीत्य सर्वं त्वथ मैथिलीं प्रति ।
अनिष्ठिताशः स चकार मार्गणे पुनः प्रियायाः परमं परिश्रमम् ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः ६१

दृष्ट्वाश्रमपदं शून्यं रामो दशरथात्मजः । रहितां पर्णशालां च प्रविद्धान्यासनानि च ॥ १ ॥
अदृष्ट्वा तत्र वैदेहीं संनिरीक्ष्य च सर्वशः । उवाच रामः प्राकुश्य प्रगृह्य रुचिरौ भुजौ ॥ २ ॥
क्व नु लक्ष्मण वैदेही कं वा देशमितो गता । केनाहृता वा सौमित्रे भक्षिता केन वा प्रिया ॥ ३ ॥
दृक्षेणावार्य यदि मां सीते हसितुमिच्छसि । अलं ते हसितेनाद्य मां भजस्व सुदुःखितम् ॥ ४ ॥
यैः परिक्रीडसे सीते विश्वस्तैर्मृगपोतकैः । एते हीनास्त्वया सौम्ये ध्यायन्त्यस्राविलेक्षणाः ॥ ५ ॥
सीतया रहितोऽहं वै नहि जीवामि लक्ष्मण । वृतं शोकेन महता सीताहरणजेन माम् ॥ ६ ॥

तुम कहा गयी ? ॥ ३५ ॥ इस प्रकार बार-बार विलाप करते हुए रामचन्द्र इस वनसे उस वनमें दौड़ते हुए उछल पड़ते हैं। कहीं सादृश्य देखकर शोकके आवेगके कारण उद्भ्रान्त हो जाते हैं ॥ ३६ ॥ सीताको ढूँढ़नेमें लगे हुए रामचन्द्र कहीं पागलके समान हो जाते हैं। वनों, नदियों, पर्वतोंके झरनोंमें रामचन्द्र वेगसे घूमने लगे। कहीं भी वे नहीं ठहरे ॥ ७ ॥ विशाल वनमें जाकर सर्वत्र उन्होंने सीताको ढूँढ़ा, सीताके मिलनेकी आशासे वे पुनः अपने प्रियाके ढूँढ़नेका कठोर परिश्रम करने लगे ॥ ३८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका साठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६० ॥

दसरथपुत्र रामचन्द्रने आश्रमको सूना देखा। पर्णशालाको सीतासे सूना देखा और आसनोंको इधर-उधर फेंके हुए देखा ॥ १ ॥ चारों ओर ढूंढ़कर तथा वहां सीताको न देखकर रामचन्द्रने अपने सुन्दर दोनों हाथोंको उठाकर पुकारा ॥ २ ॥ लक्ष्मण, वैदेही यहांसे कहां गई, वह कहां है, उसे कौन लेगया, मेरी प्रियाको कौन खागया ॥ ३ ॥ सीते, वृक्षोंमें छिपकर तुम मुझसे हँसी करना चाहती हो ? अब इससमय हँसी करना व्यर्थ है। मैं बहुत ही दुखी हूँ। तुम मेरे पास आओ ॥ ४ ॥ सीते, मृगाके जिन बच्चोंसे तुम खेलती थी, वे तुम्हारे न रहनेके कारण कुछ सोच रहे हैं, आंसूसे उनकी आंखें छिप गई हैं ॥ ५ ॥ सीताके बिना मैं जी नहीं सकता। लक्ष्मण, सीताहरणसे उत्पन्न इस बड़े शोकसे युक्त मुझको मेरे पिता स्वर्गमें देखेंगे और वे कहेंगे कि मेरे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परलोके महाराजो नूनं द्रक्ष्यति मे पिता । कथं प्रतिज्ञां संश्रुत्य मया त्वमभियोजितः ॥ ७ ॥
अपूरयित्वा तं कालं मत्सकाशमिहागतः । कामवृत्तमनार्यं वा मृषावादिनमेव च ॥ ८ ॥
धिक्त्वामिति परे लोके व्यक्तं वक्ष्यति मे पिता । विवशं शोकसंतप्तं दीनं भग्नमनोरथम् ॥ ९ ॥
मामिहोत्सृज्य करुणं कीर्तिर्नरमिवानृजुम् । क्व गच्छसि वरारोहे मामुत्सृज सुमध्यमे ॥१०॥
त्वया विरहितश्चाहं त्यक्ष्ये जीवितमात्मनः । इतीव विलपन्रामः सीतादर्शनलालसः ॥११॥
न ददर्श सुदुःखार्तो राघवो जनकात्मजाम् । अनासादयमानं तं सीताशोकपरायणम् ॥१२॥
पङ्कमासाद्य विपुलं सीदन्तमिव कुञ्जरम् । लक्ष्मणो राममत्यर्थमुवाच हितकाम्यया ॥१३॥
मा विषादं महाबुद्धे कुरु यत्नं मया सह । इदं गिरिवरं वीर बहुकन्दरशोभितम् ॥१४॥
प्रियकाननसंचारा वनोन्मत्ता च मैथिली । सा वनं वा प्रविष्टा स्यान्नलिनीं वा सुपुष्पिताम्॥१५॥
सरितं वापि संप्राप्ता मीनवञ्जुलसेविताम् । वित्रासयितुकामा वा लीना स्यात्कानने क्वचित्॥१६॥
जिज्ञासमाना वैदेही त्वां मां च पुरुषर्षभ । तस्या ह्यन्वेषणे श्रीमन्क्षिप्रमेव यतावहे ॥१७॥
वनं सर्वं विचिनुवो यत्र सा जनकात्मजा । मन्यसे यदि काकुत्स्थ मा स्म शोके मनः कृथाः॥१८॥
एवमुक्तः स सौहार्दाल्लक्ष्मणेन समाहितः । सह सौमित्रिणा रामो विचेतुमुपचक्रमे ॥१९॥
तौ वनानि गिरींश्चैव सरितश्च सरांसि च । निखिलेन विचिन्वन्तौ सीतां दशरथात्मजौ॥२०॥

प्रेरणासे तुमने प्रतिज्ञा की थी, पर अवधिके पूरी न होनेके पहले ही तुम यहां मेरे पास आ गये, तुम यथेच्छाचारी हो, सज्जनोंके मार्गपर तुम नहीं चलते, तुम झूठे हो, तुमको धिक्कार है, परलोकमें पिता विवश होकर ऐसा अवश्य कहेंगे। विवश, शोकपीड़ित, भग्नमनोरथ और दयनीय मुझको छोड़कर, कुटिल मनुष्यको छोड़कर जानेवाली कीर्तिके समान, तुम कहां जा रही हो। सुन्दरि, मुझे न छोड़ो ॥ ६, ७, ८, ९, १० ॥ तुमसे विरहित होकर मैं अपने प्राण छोड़ दूंगा। इस प्रकार सीताको देखनेके लिए उत्कण्ठित रामचन्द्र बहुत विलाप करके बहुत ही दुखी हुए, पर सीता दिखायी न पड़ी। सीताको न पाकर शोकके कारण बहुत ही दुःखी कीचड़में फँसे हाथी-के समान, दुर्दशा भोगते हुए रामचन्द्रसे हितकामनासे प्रेरित लक्ष्मण इस प्रकार बोले ॥ ११, १२, १३ ॥ बुद्धिमान् आप विषाद मत करें। आप मेरे साथ सीताको ढूँढनेका प्रयत्न करें। इस पर्वतमें अनेक कन्दराएं हैं। जानकीको वनमें घूमना बहुत ही पसन्द है। वनको देखकर तो वह जैसे पागल हो जाती है। वह वनमें गयी होगी अथवा विकसित कमलके तालाबपर ॥ १४, १५ ॥ वह नदीतीरपर गयी होगी, जहां मछलियां और बेंतका वन है अथवा हमलोगोंको डरवानेके लिए यहीं कहीं वनमें छिप गयी होगी ॥ १६ ॥ वह हमलोगोंके ढूंढनेकी शक्ति देखना चाहती होगी। अतएव उसके ढूँढनेका हमलोग शीघ्र प्रयत्न करें ॥ १७ ॥ सब वनको हमलोग ढूँढें। जहां सीताके होनेकी संभावना आप समझते हों वहां हम लोग उसे ढूँढे। आप शोक न करें ॥ १८ ॥ लक्ष्मणके द्वारा प्रेमपूर्वक ऐसा कहे जानेपर रामचन्द्र सावधान हुए और लक्ष्मण-के साथ वे ढूंढने लगे ॥ १९ ॥ दसरथके वे दोनों पुत्र वन, पर्वत, नदियां और तालाबोंपर अच्छी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्य शैलस्य सानूनि शिलाश्च शिखराणि च । निखिलेन विचिन्वन्तौ नैव तामभिजग्मतुः ॥२१॥
विचित्य सर्वतः शैलं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । नेह पश्यामि सौमित्रे वैदेहीं पर्वते शुभाम् ॥२२॥
ततो दुःखाभिसंतप्तो लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् । विचरन्दण्डकारण्यं भ्रातरं दीप्ततेजसम् ॥२३॥
प्राप्स्यसे त्वं महाप्राज्ञ मैथिलीं जनकात्मजाम् । यथा विष्णुर्महाबाहुर्बलिं बद्ध्वा महीमिमाम् ॥२४॥
एवमुक्तस्तु वीरेण लक्ष्मणेन स राघवः । उवाच दीनया वाचा दुःखाभिहतचेतनः ॥२५॥
वनं सुविचितं सर्वं पद्मिन्यः फुल्लपङ्कजाः । गिरिश्चायं महाप्राज्ञ बहुकन्दरनिर्झरः ।
नहि पश्यामि वैदेहीं प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ॥२६॥
एवं स विलपन्रामः सीताहरणकर्शितः । दीनः शोकसमाविष्टो मुहूर्तं विह्वलोऽभवत् ॥२७॥
स विह्वलितसर्वाङ्गो गतबुद्धिर्विचेतनः । विषसादातुरो दीनो निःश्वस्याशीतमायतम् ॥२८॥
बहुशः स तु निःश्वस्य रामो राजीवलोचनः । हा प्रियेति विचुक्रोश बहुशो बाष्पगद्गदः ॥२९॥
तं सान्त्वयामास ततो लक्ष्मणः प्रियबान्धवम् । बहुप्रकारं शोकार्तः प्रश्रितः प्रश्रिताञ्जलिः ॥३०॥
अनादृत्य तु तद्वाक्यं लक्ष्मणोष्ठपुटच्युतम् । अपश्यंस्तां प्रियां सीतां प्राक्रोशत्स पुनः पुनः ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः ॥६१॥

तरहसे सीताको ढूँढने लगे ॥ २० ॥ उस पर्वतके शिखर, बैठने योग्य शिलाएँ आदि स्थानोंको उनलोगोंने अच्छी तरह ढूंढा, पर सीता नहीं मिली ॥ २१ ॥ पर्वतपर चारो तरफसे ढूँढकर रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले—लक्ष्मण इस पर्वतपर वैदेहीको मैंने नहीं देखा ॥ २२ ॥ इस प्रकार दुखी दण्डकारण्यमें भ्रमण करते हुए तेजस्वी भाईसे लक्ष्मण बोले ॥ २३ ॥ महाप्राज्ञ, जनकपुत्री सीताको आप अवश्य पावेंगे, जिस प्रकार बलीको बांधकर विष्णुने यह पृथिवी पायी थी ॥ २४ ॥ लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर रामचन्द्र दुखित शब्दोंसे बोले, दुखके कारण उनका ज्ञान नष्ट हो गया था ॥२५॥ वनको अच्छी तरहसे हमलोगोंने ढूंढा, विकसित कमलोंवाले तालाब हमलोगोंने ढूंढे । अनेक कन्दरा और झरनोंवाला यह पर्वत भी हमलोगोंने देखा, पर प्राणोंसे भी प्रिय सीता दिखायी न पड़ी ॥ २६ ॥ सीताके हरणसे दुखी रामचन्द्र विलाप करते हुए बहुत दीनसे होगये । शोकके आक्रमणसे थोड़ी देरके लिए वे विह्वल होगये ॥ २७ ॥ रामचन्द्रका समस्त शरीर अवश होगया, बुद्धि नष्ट होगयी, चेतना जाती रही । दीन रामचन्द्र दुख न सह सकनेके कारण गरम और लम्बी सांस लेने लगे ॥२८॥ राजीवलोचन रामचन्द्र लम्बी सांस लेकर 'हा प्रिया' कहकर रो-रोकर पुकारने लगे ॥ २९ ॥ उस समय विनयी शोकपीड़ित लक्ष्मणने हाथ जोड़कर अपने प्रिय बन्धुको बहुत तरहसे समझाया ॥ ३० ॥ लक्ष्मणके मुंहसे निकले हुए वचनोंको बिना सुनेही रामचन्द्र सीताको न देखकर बार-बार उसे पुकारने लगे ॥ १५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका एकसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६१ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्विषष्टितमः सर्गः ६२

सीतामपश्यन्धर्मात्मा शोकोपहतचेतनः । विललाप महाबाहू रामः कमललोचनः ॥ १ ॥
पश्यन्निव च तां सीतामपश्यन्मन्मथार्दितः । उवाच राघवो वाक्यं विलापाश्रय दुर्वचम् ॥ २ ॥
त्वमशोकस्य शाखाभिः पुष्पप्रियतरा प्रिये । आवृणोषि शरीरं ते मम शोकविवर्धनी ॥ ३ ॥
कदलीकाण्डसदृशौ कदल्या संवृतावुभौ । ऊरू पश्यामि ते देवि नासि शक्ता निगूहितुम् ॥ ४ ॥
कर्णिकारवनं भद्रे हसन्ती देवि सेवसे । अलं ते परिहासेन मम बाधावहेन वै ॥ ५ ॥
विशेषेणाश्रमस्थाने हासोऽयं न प्रशस्यते । अवगच्छामि ते शीलं परिहासप्रियं प्रिये ॥ ६ ॥
आगच्छ त्वं विशालाक्षि शून्योऽयमुटजस्तव । सुव्यक्तं राक्षसैः सीता भक्षिता वा हृतापि वा ॥ ७ ॥
नहि सा विलपन्तं मामुपसंप्रैति लक्ष्मण । एतानि मृगयूथानि साश्रुनेत्राणि लक्ष्मण ॥ ८ ॥
शंसन्तीव हि मे देवीं भक्षितां रजनीचरैः । हा ममार्ये क्व याताऽसि हा साध्वि वरवर्णिनि ॥ ९ ॥
हा सकामाद्य कैकेयी देवि मेऽद्य भविष्यति । सीतया सह निर्यातो विना सीतामुपागतः ॥ १० ॥
कथं नाम प्रवेक्ष्यामि शून्यमन्तःपुरं मम । निर्वीर्य इति लोको मां निर्दयश्चेति वक्ष्यति ॥ ११ ॥
कातरत्वं प्रकाशं हि सीतापनयनेन मे । निवृत्तवनवासश्च जनकं मिथिलाधिपम् ॥ १२ ॥
कुशलं परिपृच्छन्तं कथं शक्ष्ये निरीक्षितुम् । विदेहराजो नूनं मां दृष्ट्वा विरहितं तया ॥ १३ ॥

सीताके न दिखाई पड़नेसे धर्मात्मा रामचन्द्रका ज्ञान शोकके कारण नष्ट हो गया था, उससे कमललोचन महाबाहु रामचन्द्र विलाप करनेलगे ॥ १ ॥ सीताके न रहनेपर भी उनको प्रत्यक्ष देखते हुएके समान कामपीड़ित रामचन्द्र बोले—रामचन्द्रका वह वचन विलापका था, इस कारण बोलनेके योग्य नहीं था ॥ २ ॥ पुष्पोंसे प्रेम करनेवाली प्रिये सीते, तुम अशोककी डालियोंसे अपना शरीर छिपा रही हो, पर मेरे शोकको बढ़ानेवाली, केलेके खम्भेके समान और केलेके पत्तेसे छिपी हुई तुम्हारी जांघोंको मैं देख रहा हूं। उन्हें तुम नहीं छिपा सकती ॥ ३, ४ ॥ भद्रे, हँसती हुई तुम अशोक वनमें बैठी हो, पर यह हँसी अच्छी नहीं। इससे मुझे दुख होरहा है ॥ ५ ॥ मैं तुम्हारा स्वभाव जानता हूँ। तुम्हें हँसी अच्छी मालुम होती है, पर आश्रमोंके पास ऐसी हँसी अच्छी नहीं ॥६॥ विशालाक्षि, आओ, यह तुम्हारा उटज खाली है। निश्चय है कि राक्षसोंने सीताको खा लिया या हर लिया ॥७॥ इतना विलाप करनेपर भी वह मेरे पास नहीं आती। लक्ष्मण ये मृगोंके समूह आंखोंमें आंसू भरकर मानो मुझसे कह रहे हैं कि राक्षसोंने सीताको खा लिया, हा मेरी श्रेष्ठ सीता, हा साध्वि, तू कहां गयी ॥८॥ देवि, मेरी माता केकयीका मनोरथ पूरा होगा, जब सीताके साथ अयोध्यासे निकला हुआ मैं सीताके बिना अयोध्यामें जाऊंगा ॥१०॥ सीताके बिना मैं अपने महलमें कैसे जाऊंगा। लोग मुझे बलहीन और निर्दय कहेंगे ॥ ११ ॥ सीताके नष्ट होजानेमें मेरी अधीरता प्रकाशित होजायगी। वनवाससे लौटनेपर मिथिलाधिप राजा जनक जब मुझसे कुशल पूछेंगे तब मैं उनकी ओर कैसे देख सकूंगा। सीतासे विरहित मुझको देखकर राजा जनक पुत्री-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुताविनाशसंतप्तो मोहस्य वशमेष्यति । अथवा न गमिष्यामि पुरीं भरतपालिताम् ॥१४॥
स्वर्गोऽपि हि तया हीनः शून्य एव मतो मम । तन्मामुत्सृज्य हि वने गच्छायोध्यापुरीं शुभाम्॥१५॥
अनुज्ञाताऽसि रामेण पालयेति वसुंधराम् । अम्बा च मम कैकेयी सुमित्रा च त्वया विभौ॥१७॥
न त्वहं तां विना सीतां जीवेयं हि कथंचन । गाढमाश्लिष्य भरतो वाच्यो मद्वचनात्त्वया॥१६॥
कौसल्या च यथान्यायमभिवाद्या ममाज्ञया । रक्षणीया प्रयत्नेन भवतो सूक्तचारिणा ॥१८॥
सीतायाश्च विनाशोऽयं मम चामित्रसूदन । विस्तरेण जनन्या मे विनिवेद्यस्त्वया भवेत्॥१९॥

इति विलपति राघवे तु दीने वनमुपगम्य तया विना सुकेश्या ।
भयविकलमुखस्तु लक्ष्मणोऽपि व्यथितमना भृशमातुरो बभूव ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३

स राजपुत्रः प्रियया विहीनः शोकेन मोहेन च पीड्यमानः ।
विषादयन्भ्रातरमार्तरूपो भूयो विषादं प्रविवेश तीव्रम् ॥ १ ॥
स लक्ष्मणं शोकवशाभिपन्नं शोके निमग्नो विपुले तु रामः ।
उवाच वाक्यं व्यसनानुरूपमुष्णं विनिःश्वस्य रुदन्सशोकम् ॥ २ ॥

के नाश होनेके कारण अवश्यही बेहोश हो जायँगे अथवा भरतके द्वारा पालित उस नगरीमें मैं जाऊंगा ही नहीं ॥ १२, १३, १४ ॥ सीताके विना स्वर्गभी मेरेलिए शून्यही है, अतएव लक्ष्मण, तुम मुझे यहीं छोड़कर अयोध्या चले जाओ ॥१५॥ सीताके बिना मैं किसी प्रकार भी नहीं जीसकता। भरतका गाढ़ आलिंगन करके तुम मेरी ओरसे कहना ॥१६॥ रामचन्द्रने तुम्हें आज्ञा दी है कि तुम पृथिवीका पालन करो। मेरी आज्ञासे माता केकयी, सुमित्रा और कौसल्याको यथायोग्य प्रणाम किया करो और प्रयत्नपूर्वक उनकी रक्षा करो ॥ १७, १८ ॥ मेरी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले लक्ष्मण, सीता और मेरे विनाशकी बात विस्तारपूर्वक तुम मेरी माताको सुनाना ॥ १६ ॥ सीता के बिना वनमें जाकर इस प्रकार दीनतापूर्वक रामचन्द्रके विलाप करनेसे लक्ष्मणका मुख भयसे विकल होगया, उनका मन व्यथित हुआ, वे घबड़ा गये ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका बासठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६२ ॥

प्रियासे विहीन, शोक और मोहसे पीड़ित, दुखी राजपुत्र अपने भाईको दुखी करते हुए और अधिक विषाद करने लगे ॥ १५ ॥ लक्ष्मण शोकके कारण खिन्न थे। उनसे बड़े शोकमें निमग्न रामचन्द्र दुखित मनुष्योंके योग्य वचन, गर्म सांस लेकर शोकपूर्वक रोते हुए बोले ॥ २ ॥ मेरे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न मद्विधो दुष्कृतकर्मकारी मन्ये द्वितीयोऽस्ति वसुंधरायाम् ।
शोकानुशोको हि परम्पराया मामेति भिन्दन्हृदयं मनश्च ॥ ३ ॥

पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि पापानि कर्माण्यसकृत्कृतानि ।
तत्रायमद्यापतितो विपाको दुःखेन दुःखं यदहं विशामि ॥ ४ ॥

राज्यप्रणाशः स्वजनैर्वियोगः पितुर्विनाशो जननीवियोगः ।
सर्वाणि मे लक्ष्मण शोकवेगमापूरयन्ति प्रविचिन्तितानि ॥ ५ ॥

सर्वं तु दुःखं मम लक्ष्मणेदं शान्तं शरीरे वनमेत्य क्लेशम् ।
सीतावियोगात्पुनरभ्युदीर्णं काष्ठैरिवाग्निः सहसोपदीप्तः ॥ ६ ॥

सा नूनमार्या मम राक्षसेन ह्यभ्याहृता खं समुपेत्यभीरुः ।
अप्यस्वरं सुस्वरविप्रलापा भयेन विक्रन्दितवत्यभीक्ष्णम् ॥ ७ ॥

तौ लोहितस्य प्रियदर्शनस्य सदोचितावुत्तमचन्दनस्य ।
वृत्तौ स्तनौ शोणितपङ्कदिग्धौ नूनं प्रियाया मम नाभिपातः ॥ ८ ॥

तच्छ्लक्ष्णसुव्यक्तमृदुप्रलापं तस्या मुखं कुञ्चितकेशभारम् ।
रक्षोवशं नूनमुपागताया न भ्राजते राहुमुखे यथेन्दुः ॥ ९ ॥

तां हारपाशस्य सदोचितान्तां ग्रीवां प्रियाया मम सुव्रतायाः ।
रक्षांसि नूनं परिपीतवन्ति शून्ये हि भित्त्वा रुधिराशनानि ॥ १० ॥

समान पापी इस पृथिवीपर दूसरा नहीं, क्योंकि अविच्छिन्न एकके बाद दूसरा शोक आकर मेरे मन और हृदयको भेदता है ॥ ३ ॥ पहले मैंने अनेक पापकर्म किये हैं, उन्हींमेंके किसीका आज यह फल मिल रहा है कि एक दुःखसे दूसरे दुखमें जा रहा हूँ, अर्थात् एकके बाद एक दुख भोग रहा हूँ ॥ ४ ॥ राज्यका नाश, स्वजनोंका वियोग, पिताकी मृत्यु, माताका वियोग! लक्ष्मण, सोचने पर ये सब बातें, मेरे शोकको और भी बढ़ा देती हैं ॥ ५ ॥ लक्ष्मण, वनमें आकर शारीरिक कष्ट उठाकर मैंने इन सब दुखोंको सह लिया था; पर आज सीताके वियोगसे वे सब दुःख फिर लौट आए, जिस प्रकार लकड़ी पड़नेसे आग सहसा जल उठती है ॥ ६ ॥ उस भीरु, मेरी श्रेष्ठ सीताको राक्षसोंने आकाशमार्गसे हर लिया। मधुर स्वरमें रोनेवाली सीता भयके कारण बार-बार बिना स्वरके ही रोई होगी ॥७॥ देखनेमें सुन्दर लगनेवाले, उत्तम लाल चन्दन जिनपर लेपा जाता था, वे सीताके गोले स्तन खूनसे भींग गए होंगे, फिर भी मेरे शरीरका विनाश नहीं होता ॥ ८ ॥ सुन्दर कुञ्चित केशोंसे युक्त मधुर प्रलाप करनेवाली, राक्षसोंके हाथमें फँसी हुई सीताका वह मुख नहीं शोभता होगा, जिस प्रकार चन्द्रमाका मुँह राहुके मुखमें जानेसे नहीं शोभता ॥ ९ ॥ सदा हार पहननेके योग्य मेरी सुव्रता प्रियाका गला फोड़कर रुधिर पीनेवाले

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मया विहीना विजने वने सा रक्षोभिराद्दत्य विकृष्यमाणा ।
नूनं विनादं कुररीव दीना सा मुक्तवत्यायतकान्तनेत्रा ॥ ११ ॥
अस्मिन्मया सार्धमुदारशीला शिलातले पूर्वमुपोपविष्टा ।
कान्तस्मिता लक्ष्मण जातहासा त्वामाह सीता बहुवाक्यजातम् ॥ १२ ॥
गोदावरीयं सरितां वरिष्ठा प्रिया प्रियाया मम नित्यकालम् ।
अप्यत्र गच्छेदिति चिन्तयामि नैकाकिनी याति हि सा कदाचित् ॥ १३ ॥
पद्माननां पद्मपलाशनेत्रां पद्मानि वाऽऽनेतुमभिप्रयाता ।
तदप्ययुक्तं नहि सा कदाचिन्मया विना गच्छति पङ्कजानि ॥ १४ ॥
कामं त्विदं पुष्पितवृक्षषण्डं नानाविधैः पक्षिगणैरुपेतम् ।
वनं प्रयाता नु तदप्ययुक्तमेकाकिनी सातिबिभेति भीरुः ॥ १५ ॥
आदित्य भो लोककृताकृतज्ञ लोकस्य सत्यानृतकर्मसाक्षिन् ।
मम प्रिया सा क्व गता हृता वा शंसस्व मे शोकहतस्य सर्वम् ॥ १६ ॥
लोकेषु सर्वेषु न नास्ति किंचिद्यत्तेन नित्यं विदितं भवेत्तत् ।
शंसस्व वायो कुलपालिनीं तां मृता हृता वा पथि वर्तते वा ॥ १७ ॥
इतीव तं शोकविधेयदेहं रामं विसंज्ञं विलपन्तमेव ।
उवाच सौमित्रिरदीनसत्त्वो न्याय्ये स्थितः कालयुतं च वाक्यम् ॥ १८ ॥

राक्षसोंने रुधिर पीया होगा ॥ १० ॥ मेरे बिना निर्जन वनमें राक्षसोंने उसे घसीटा होगा और विशाल तथा सुन्दर नेत्रवाली उस सीताने कुररीके समान विलाप किया होगा ॥ ११ ॥ पहले इस पत्थरपर उदार स्वभाववाली सीता मेरे साथ बैठी थी। सुन्दर स्मित-वाली सीताने हँसकर लक्ष्मण, तुमसे बहुत बातें कही थीं ॥ १२ ॥ नदियोंमें श्रेष्ठ यह गोदावरी नदी है, मेरी प्रियाकी यह सदा प्रिय है। मैं सोचता हूँ कि शायद वह यहां गयी हो, पर वह अकेली तो कभी नहीं जाती ॥ १३ ॥ पद्ममुखी, पद्मनेत्रा, सीता शायद पद्मोंको ले आनेके लिए गयी हो, पर यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि मेरे बिना तो वह कभी कमलोंके पास जाती नहीं थी ॥ १४ ॥ शायद वह इस वनमें गयी हो, जिसके अनेक वृक्ष विकसित हुए हैं तथा जिसमें अनेक प्रकारके पक्षी हैं, पर वह भीरु तो अकेली डरती है ॥ १५ ॥ सूर्य, आप संसारके कृत और अकृत कर्मोंको जानते हैं, उनके सत्य और असत्य कर्मोंको जानते हैं, मेरी प्रिया कहाँ गयी ? क्या वह हर ली गयी ? यह सब आप मुझसे कहें, क्योंकि मैं शोकसे दुखी हो रहा हूँ ॥ १६ ॥ संसारमें ऐसी कोई भी बात नहीं है, जो तुमसे छिपी हो। वायु, कहो, मेरी कुल-पालिका सीता कहाँ गयी ? वह मर गयी, हरी गयी, या अभी रास्तेमें ही है ॥ १७ ॥ इस प्रकार शोकके अधीन होकर विलाप करते हुए ज्ञानहीन रामचन्द्रसे धीर और न्यायमार्गपर स्थित लक्ष्मण उस समयके योग्य वचन बोले ॥ १८ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शोकं विसृज्याद्य धृतिं भजस्व सोत्साहता चास्तु विमार्गणेऽस्याः।
उत्साहवन्तो हि नरा न लोके सीदन्ति कर्मस्वतिदुष्करेषु ॥ १९ ॥
इतीव सौमित्रिमुदग्रपौरुषं ब्रुवन्तमार्तं रघुवंशसत्तमः।
न चिन्तयामास धृतिं विमुक्तवान्पुनश्च दुःखं महदप्युपागमत् ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥६३॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४

स दीनो दीनया वाचा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत्। शीघ्रं लक्ष्मण जानीहि गत्वा गोदावरीं नदीम् ॥१॥
अपि गोदावरीं सीता पद्मान्यानयितुं गता। एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः पुनरेव हि ॥२॥
नदीं गोदावरीं रम्यां जगाम लघुविक्रमः। तां लक्ष्मणस्तीर्थवतीं विचित्वा राममब्रवीत् ॥३॥
नैनां पश्यामि तीर्थेषु क्रोशतो न शृणोति मे। कं नु सा देशमापन्ना वैदेही क्लेशनाशिनी ॥ ४ ॥
नहि तं वेद्मि वै राम यत्र सा तनुमध्यमा। लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा दीनः संतापमोहितः ॥ ५ ॥
रामः समभिचक्राम स्वयं गोदावरीं नदीम्। स तामुपस्थितो रामः क्व सीतेत्येवमब्रवीत् ॥ ६ ॥
भूतानि राक्षसेन्द्रेण वधार्हेण हृतामपि। न तां शशंसू रामाय तथा गोदावरी नदी ॥ ७ ॥
ततः प्रचोदिता भूतैः शंस चास्मै प्रियामिति। न च सा ह्यवदत्सीतां पृष्टा रामेण शोचता ॥ ८ ॥

आप शोक छोड़ें, धैर्य धारण करें। सीताको ढूँढनेके लिए उत्साह लावें। बड़े कठोर कामोंमें भी उत्साही मनुष्य दुखी नहीं होते ॥ १९ ॥ प्रसिद्ध पराक्रमी दुखी लक्ष्मणकी ये बातें रामचन्द्रने न सुनी। उन्होंने अपना धैर्य छोड़ दिया था, वे और अधिक दुख करने लगे ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका तिरसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६३ ॥

दीन रामचन्द्र लक्ष्मणसे दीनवचन बोले—लक्ष्मण, शीघ्र गोदावरी नदीपर जाकर पता लगाओ कि सीता कमल लानेके लिए वहां तो नहीं गयी ? रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण रमणीय गोदावरी नदीके तीरपर शीघ्रतापूर्वक गये और उसके घाटोंपर ढूंढकर पुनः लौटकर रामचन्द्रसे बोले ॥ १, २, ३ ॥ घाटोंपर सीताको मैंने नहीं देखा। मेरे चिल्लानेपर मेरी आवाज उसने नहीं सुनी। क्लेशोंको दूर करनेवाली सीता कहां चली गयी ॥ ४ ॥ राम, मैं ऐसे स्थानोंको नहीं जानता जहां सीता हो, लक्ष्मणके वचन सुनकर रामचन्द्र दुखित हुए, उनकी सुधबुध जाती रही ॥ ५ ॥ रामचन्द्र स्वयं गोदावरीके तीरपर गये, वहां जाकर उन्होंने कहा कि सीता कहां है। वधके योग्य रावण सीताको हर ले गया है, यह बात बहुतसे प्राणियोंको मालूम थी, गोदावरीको भी मालूम थी, पर किसीने रामचन्द्रको बतलाया नहीं ॥६,७॥ अन्य प्राणियोंने रामचन्द्रसे सीताकी बात कहनेके लिए गोदावरीको प्रेरित भी किया, रामचन्द्रने गोदावरीसे पूछा भी, पर उसने कुछ उत्तर नहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रावणस्य च तद्रूपं कर्माणि च दुरात्मनः । ध्यात्वा भयात्तु वैदेहीं सा नदी न शशंस ह ॥ ९ ॥
निराशस्तु तया नद्या सीतायाः दर्शने कृतः । उवाच रामः सौमित्रिं सीतादर्शनकर्शितः ॥१०॥
एषा गोदावरी सौम्य किंचिन्न प्रतिभाषते । किं नु लक्ष्मण वक्ष्यामि समेत्य जनकं वचः ॥११॥
मातरं चैव वैदेह्या विना तामहमप्रियम् । या मे राज्यविहीनस्य वने वन्येन जीवतः ॥१२॥
सर्वं व्यपानयच्छोकं वैदेही क्व नु सा गता । ज्ञातिवर्गविहीनस्य वैदेहीमप्यपश्यतः ॥१३॥
मन्ये दीर्घा भविष्यन्ति रात्रयो मम जाग्रतः । मन्दाकिनीं जनस्थानमिमं प्रस्रवणं गिरिम् ॥१४॥
सर्वाण्यनुचरिष्यामि यदि सीता हि लभ्यते । एते महामृगा वीरा मामीक्षन्ते पुनः पुनः ॥१५॥
वक्तुकामा इह हि मे इङ्गितान्युपलक्षये । तांस्तु दृष्ट्वा नरव्याघ्रो राघवः प्रत्युवाच ह ॥१६॥
क्व सीतेति निरीक्षन्वै बाष्पसंरुद्धया गिरा । एवमुक्ता नरेन्द्रेण ते मृगाः सहसोत्थिताः ॥१७॥
दक्षिणाभिमुखाः सर्वे दर्शयन्तो नभःस्थलम् । मैथिली ह्रियमाणा सां दिशं यामभ्यपद्यत ॥१८॥
तेन मार्गेण गच्छन्तौ निरीक्षन्ते नराधिपम् । येन मार्गं च भूमिं च निरीक्षन्ते स्म ते मृगाः ॥१९॥
पुनर्नदन्तो गच्छन्ति लक्ष्मणेनोपलक्षिताः । तेषां वचनसर्वस्वं लक्षयामास चेङ्गितम् ॥२०॥
उवाच लक्ष्मणो धीमाञ्ज्येष्ठं भ्रातरमार्तवत् । क्व सीतेति त्वया पृष्टा यदि मे सहसोत्थिताः ॥२१॥
दर्शयन्ति क्षितिं चैव दक्षिणां च दिशं मृगाः । साधु गच्छावहे देव दिशमेतां च नैर्ऋतीम् ॥२२॥
यदि तस्यागमः कश्चिदार्या वा साथ लक्ष्यते । बाढमित्येव काकुत्स्थः प्रस्थितो दक्षिणां दिशम् ॥२३॥

दिया ॥ ८ ॥ रावणका वह भयानक रूप और भयानक कर्मोंका ध्यान करके नदीने सीताका पता नहीं बताया ॥ ९ ॥ सीताके दर्शनके सम्बन्धमें उस नदीसे निराश होकर सीताको न देखनेके कारण दुखी रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले ॥ १० ॥ सौम्य, यह गोदावरी नदी मुझे कुछ भी उत्तर नहीं देती । लक्ष्मण, सीताके पिताके पास जाकर मैं उनसे क्या कहूंगा ॥ ११ ॥ उसकी मातासे वह अप्रिय बात मैं कैसे कहूँगा । राज्यहीन वनमें वनवासीके समान रहते हुए मेरे सब दुखोंको जो दूर करती थी, वह सीता कहां है । भाई-बन्धुसे हीन तो हूँ ही, अब सीताके न रहनेसे समूची रात जागनेके कारण ये रात भी बड़ी हो जायँगी । मन्दाकिनी नदी, जनस्थान तथा प्रस्रवण पर्वत इन सबको मैं ढूंढूंगा, यदि सीता मिल जाय । ये महामृग मेरी ओर बार-बार देख रहे हैं ॥ १२, १३, १४, १५ ॥ वे कुछ कहना चाहते हैं, इनके इशारे मैं समझ रहा हूँ । उन मृगोंको देखकर रामचन्द्र बोले ॥ १६ ॥ गला भर आनेसे रुकती हुई वाणीसे रामचन्द्रने उनकी ओर देखकर कहा—सीता कहां है ? रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर वे मृगा खड़े होगये ॥ १७ ॥ आकाशमें कूदते हुए दक्षिणकी ओर चले गये, जिस दिशामें हरकर सीता गयी थी, उसी ओर चलते हुए उन मृगोंने रामकी ओर देखा । वे मृगा आकाशमार्ग और पृथिवीको देखते हुए गये ॥ १८, १९ ॥ पुनः वे कुछ बोलते हुए चलने लगे । लक्ष्मणने उनके वचन और इशारोंका मतलब समझा ॥ २० ॥ बुद्धिमान लक्ष्मणने दुखीके समान आपने बड़े भाईसे कहा—'सीता कहां है' यह आपके पूछनेपर शीघ्रही उठकर ये खड़े हो गये ॥ २१ ॥ और पृथिवी तथा दक्षिण दिशा हमलोगोंको दिखलाने लगे । ठीक है, हमलोग राक्षसोंकी इसी दिशाकी ओर चलें ॥ २२ ॥ यदि उनका पता लगे अथवा वे स्वयं ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लक्ष्मणानुगतः श्रीमान्वीक्षमाणो वसुंधराम् । एवं संभाषमाणौ तावन्योन्यं भ्रातरावुभौ ॥२४॥
वसुंधरायां पतितपुष्पमार्गमपश्यताम् । पुष्पवृष्टिं निपतितां दृष्ट्वा रामो महीतले ॥२५॥
उवाच लक्ष्मणं वीरो दुःखितो दुःखितं वचः । अभिजानामि पुष्पाणि तानीमानीह लक्ष्मण॥२६॥
अर्पितानि वैदेह्या मया दत्तानि कानने । मन्ये सूर्यश्च वायुश्च मेदिनी च यशस्विनी ॥२७॥
अभिरक्षन्ति पुष्पाणि प्रकुर्वन्तो मम प्रियम् । एकमुक्त्वा महाबाहुर्लक्ष्मणं पुरुषर्षभम् ॥२८॥
उवाच रामो धर्मात्मा गिरिं प्रस्रवणाकुलम् । कच्चित्क्षितिभृतां नाथ दृष्टा सर्वाङ्गसुन्दरी ॥२९॥
रामा रम्ये वनोद्देशे मया विरहिता त्वया । क्रुद्धोऽब्रवीद्गिरिं तत्र सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥३०॥
तां हेमवर्णां हेमाङ्गीं सीतां दर्शय पर्वत । यावत्सानूनि सर्वाणि न ते विध्वंसयाम्यहम् ॥३१॥
एवमुक्तस्तु रामेण पर्वतो मैथिलीं प्रति । दर्शयन्निव तां सीतां नादर्शयत राघवे ॥३२॥
ततो दाशरथी राम उवाच च शिलोच्चयम् । मम बाणाग्निनिर्दग्धो भस्मीभूतो भविष्यसि॥३३॥
असेव्यः सर्वतश्चैव निस्तृणद्रुमपल्लवः । इमां वा सरितं चाद्य शोषयिष्यामि लक्ष्मण॥३४॥
यदि नाख्याति मे सीतामद्य चन्द्रनिभाननाम् । एवं प्ररुषितो रामो दिधक्षन्निव चक्षुषा ॥३५॥
ददर्श भूमौ निष्क्रान्तं राक्षसस्य पदं महत् ।त्रस्तायाः रामकाङ्क्षिण्याः प्रधावन्त्या इतस्ततः॥३६॥
राक्षसेनानुसृप्तायाः वैदेह्याश्च पदानि तु । स समीक्ष्य परिक्रान्तं सीताया राक्षसस्य च॥३७॥

मिलजायँ । लक्ष्मणकी बात मानकर रामचन्द्र दक्षिण दिशाकी ओर चले ॥ २३ ॥ श्रीमान लक्ष्मण पृथिवीकी ओर देखते हुए उनके पीछे-पीछे चले। वे दोनों भाई आपसमें बातचीत करते हुए चले ॥ २४ ॥ उन दोनोंने मार्गमें आकाशसे गिरे फूल देखे । आकाशसे गिरी पृथिवीमें पुष्पवृष्टि देखकर दुखित वीर रामचन्द्र लक्ष्मणसे यह दुःखपूर्ण वचन बोले—लक्ष्मण, मैं पहचानता हूँ, ये वेही फूल हैं ॥ २५, २६ ॥ वनमें मैंने ये फूल सीताको दिये थे और उसने अपनी चोटी में ये फूल लगाये थे । मैं समझता हूं सूर्य, वायु और यशश्विनी पृथिवीने इन पुष्पोंकी रक्षा करके मेरा प्रिय किया है । पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणसे ऐसा कहकर महाबाहु धर्मात्मा रामचन्द्र प्रस्रवण पर्वतसे बोले—पर्वतोंके स्वामी, क्या तुमने इस रमणीय वनमें मुझसे विरहित सर्वांग सुन्दरी स्त्री देखी है ? रामचन्द्रने क्रोध करके पर्वतसे कहा, जिस प्रकार सिंह छोटे मृगसे कहता है ॥ २७, २८, २९, ३० ॥ सुवर्णके समान अंगवाली उस सीताको तुम शीघ्रही मुझे दिखलाओ, जबतक कि मैं तुम्हारे समस्त शिखरोंको नष्ट नहीं कर देता हूँ ॥ ३१ ॥ सीताके लिए रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर पर्वतने सीताके विषयकी बातें जाननेपर भी रामचन्द्रको कुछ नहीं बतलाया ॥ ३२ ॥ तब दसरथ-पुत्र रामचन्द्र पर्वतसे बोले—मेरे बाणोंकी आगसे जलकर तुम भस्म होजाओगे ॥ ३३ ॥ तृण वृक्ष पल्लवके नष्ट होजानेसे किसीके भी निवासके योग्य तुम नहीं रह जाओगे । लक्ष्मण, आज मैं इस गोदावरी नदीको सोख लेता हूँ ॥ ३४ ॥ यदि यह आज मुझे चन्द्रमुखी सीताका पता न बतावें । इस प्रकार क्रुद्ध आंखोंसे आग बरसाते हुए रामचन्द्रने पृथ्वीपर उखड़ा हुआ राक्षसके पैरोंका बड़ा चिन्ह देखा। डरी हुई, रामचन्द्रमें अनुराग रखनेवाली, इधर-उधर दौड़ती हुई तथा राक्षसके द्वारा पीछा की गयी सीताके भी चरणोंके चिन्ह हैं । सीता और राक्षसके इधर-उधर जानेका चिन्ह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भग्नं धनुश्च तूणी च विकीर्णं बहुधा रथम् । संभ्रान्तहृदयो रामः शशंस भ्रातरं प्रियम् ॥३८॥
पश्य लक्ष्मण वैदेह्या कीर्णाः कनकबिन्दवः । भूषणानां हि सौमित्रे माल्यानि विविधानि च॥३९॥
तप्तबिन्दुनिकाशैश्च चित्रैः क्षतजबिन्दुभिः । आवृतं पश्य सौमित्रे सर्वतो धरणीतलम् ॥४०॥
मन्ये लक्ष्मण वैदेही राक्षसैः कामरूपिभिः ।भित्त्वा भित्त्वा विभक्ता वा भक्षिता वा भविष्यति॥४१॥
तस्या निमित्तं सीताया द्वयोर्विवदमानयोः । बभूव युद्धं सौमित्रे घोरं राक्षसयोरिह ॥४२॥
मुक्तामणिचितं चेदं रमणीयं विभूषितम् । धरण्यां पतितं सौम्य कस्य भग्नं महद्धनुः ॥४३॥
राक्षसानामिदं वत्स सुराणामथवापि वा । तरुणादित्यसंकाशं वैदूर्यगुलिकाचितम् ॥४४॥
विशीर्णं पतितं भूमौ कवचं कस्य काञ्चनम् । छत्रं शतशलाकं च दिव्यमाल्योपशोभितम् ॥४५॥
भग्नदण्डमिदं सौम्य भूमौ कस्य निपातितम् । काञ्चनोरश्छदाश्चेमे पिशाचवदनाः खराः ॥४६॥
भीमरूपा महाकायाः कस्य वा निहता रणे । दीप्तपावकसंकाशो द्युतिमान्समरध्वजः ॥४७॥
अपविद्धश्च भग्नश्च कस्य सङ्ग्रामिको रथः । रथाक्षमात्रा विशिखास्तपनीयविभूषणाः ॥४८॥
कस्येमे निहता बाणाः प्रकीर्णा घोरदर्शनाः । शरावरौ शरैः पूर्णौ विध्वस्तौ पश्य लक्ष्मण॥४९॥
प्रतोदाभीषुहस्तोऽयं कस्य वा सारथिर्हतः । पदवी पुरुषस्यैषा व्यक्तं कस्यापि रक्षसः ॥५०॥
वैरं शतगुणं पश्य मम तैर्जीवितान्तकम् । सुघोरहृदयैः सौम्य राक्षसैः कामरूपिभिः ॥५१॥

देखकर टूटा हुआ धनुष, तूणी और बिखरा हुआ रथ देखकर रामचन्द्रका हृदय घबड़ा गया। वे अपने भाईसे बोले ॥ ३५, ३६, ३७, ३८ ॥ लक्ष्मण देखो, जानकीके ये सोनेके घुंघरू हैं, जो उसके गहनोंमें लगे हुए थे। ये उसकी बहुतसी मालाएँ हैं ॥ ३९ ॥ देखो तपाये हुए सोनेके बिंदुके समान अनेक आकारके रुधिर-बिन्दुओंसे पृथिवीतल भरा हुआ है ॥ ४० ॥ लक्ष्मण, मैं समझता हूँ कि कामरूपी राक्षसोंने जानकीको टुकड़े-टुकड़े करके यहां आपसमें बांटा और खाया है ॥ ४१ ॥ लक्ष्मण, उसी सीताके लिए उन दोनों राक्षसोंने आपसमें विवाद किया और युद्ध किया ॥ ४२ ॥ सौम्य, यह किसका बड़ा धनुष पृथिवीमें गिरा हुआ है, जिसमें मुक्ता और मणि जड़े हुए हैं और जो बड़ाही सुन्दर है ॥ ४३ ॥ क्या यह राक्षसोंका है या यह देवताओंका? तरुण सूर्यके समान यह प्रकाशमान है और वैदूर्यकी गोलियां इसमें लगी हुई हैं ॥४४॥ यह विशाल किसका सोनेका कवच पृथिवीपर गिरा हुआ है, सौ कमानियोंका, दिव्य मालासे युक्त यह किसका छाता पृथिवीमें गिरा हुआ है, जिसका डंडा टूट गया है. यह किसका छाता है? पिशाचकेसे मुखवाले विशाल शरीर भयानक गदहे, जिनकी छातीकी रक्षा करनेके लिए सोनेका कवच बंधा हुआ है, किसके हैं, जो यहां रणमें मारे गये हैं? जलती हुई आगके समान द्युतिमान यह किसकी युद्धध्वजा फेंकी गयी है और यह किसका रथ टूटा हुआ है? रथाधारके प्रमाणसे बने हुए, सोनेसे विभूषित, देखनेमें भयानक, बिना फलके ये गिरे हुए बाण किसके हैं? बाणोंसे भरे हुए दो तरकश उधर पड़े हैं, देखो ॥ ४२, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९॥ यह किसका सारथी मारा गया है, जिसके हाथमें कोड़ा और लगाम अभीतक वर्तमान है। ये पैर-चिन्ह किसी पुरुष राक्षसके मालूम होते हैं ॥ ५० ॥ सौम्य, कामरूपी कठोर हृदयवाले राक्षसोंसे अब मेरा वैर सौगुना बढ़ गया। अब राक्षसोंके प्राणोंका संहार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हृता मृता वा वैदेही भक्षिता वा तपस्विनी । न धर्मस्त्रायते सीतां हियमाणां महावने ॥५२॥
भक्षितायां हि वैदेह्यां हृतायामपि लक्ष्मण । के हि लोकेऽप्रियं कर्तुं शक्ताः सौम्य ममेश्वराः॥५३॥
कर्तारमपि लोकानां शूरं करुणवेदिनम् । अज्ञानादवमन्येरन्सर्वभूतानि लक्ष्मण ॥५४॥
मृदुं लोकहिते युक्तं दान्तं करुणवेदिनम् । निर्वीर्य इति मन्यन्ते नूनं मां त्रिदशेश्वराः ॥५५॥
मां प्राप्य हि गुणो दोषः संवृत्तः पश्य लक्ष्मण । अद्यैव सर्वभूतानां रक्षसामभवाय च ॥५६॥
संहृत्यैव शशिज्योत्स्नां महान्सूर्य इवोदितः । संहृत्यैव गुणान्सर्वान्मम तेजः प्रकाशते ॥५७॥
नैव यक्षा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः । किंनरा वा मनुष्या वा सुखं प्राप्स्यन्ति लक्ष्मण॥५८॥
ममास्त्रबाणसंपूर्णमाकाशं पश्य लक्ष्मण । असंपातं करिष्यामि ह्यद्य त्रैलोक्यचारिणाम् ॥५९॥
संनिरुद्धग्रहगणमावारितनिशाकरम् । विप्रनष्टानलमरुद्रास्करद्युतिसंवृतम् ॥६०॥
विनिर्मथितशैलाग्रं शुष्यमाणजलाशयम् । ध्वस्तद्रुमलतागुल्मं विप्रणाशितसागरम् ॥६१॥
त्रलोक्यं तु करिष्यामि संयुक्तं कालकर्मणा । न ते कुशलिनीं सीतां प्रदास्यन्ति ममेश्वराः॥६२॥
अस्मिन्मुहूर्ते सौमित्रे मम द्रक्ष्यन्ति विक्रमम् । नाकाशमुत्पतिष्यन्ति सर्वभूतानि लक्ष्मण ॥६३॥
समाकुलममर्यादं जगत्पश्याद्य लक्ष्मण । आकर्णपूर्णैरिषुभिर्जीवलोकदुरावरैः ॥६४॥
करिष्ये मैथिलीहेतोरपिशाचमराक्षसम् । मम रोषप्रयुक्तानां विशिखानां बलं सुराः ॥५५॥

होगा ॥ ५१ ॥ सीता हरी गयी या मर गयी अथवा राक्षसोंने उसे खालिया। इस घोर वनमें सीता हरी गयी, पर धर्मने उसकी रक्षा न की ॥ ५२ ॥ वैदेही खायी गई अथवा हरी गयी । अब मेरा प्रिय करनेके लिए कौन समर्थ होगा ? ॥५३॥ लक्ष्मण, संसारकी सृष्टि स्थिति आदि करनेवाले और शूर महादेवको भी, यदि वे दयाके कारण चुप रहे तो, अज्ञानके कारण सबलोग उनका तिरस्कार करें ॥ ५४ ॥ कोमल लोकहितके कामोंमें लगे हुए, क्षमाशील और दयाके व्यवहार करनेवाले मुझको मालूम होता है, ये देवता मुझको कमजोर समझने लगे हैं ॥ ५५ ॥ लक्ष्मण देखो, एक गुण मेरे यहां आकर दोष बन गया है, आज सब प्राणियों और राक्षसोंके विनाशके लिये मेरा गुण दोष हो गया है अर्थात् गुणका त्यागकर अब मैं राक्षसोंका विनाश करूंगा ॥ ५६ ॥ जिस प्रकार प्रखर सूर्य उदय होकर, चन्द्रमाके प्रकाशका नाश करके, प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार मेरा तेज भी सब गुणोंका नाश करके प्रकाशित होगा ॥ ५७ ॥ लक्ष्मण, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, किन्नर और मनुष्य कोई भी अब सुख नहीं पा सकेगा ॥ ५८ ॥ लक्ष्मण, मेरे अस्त्र और बाणोंसे पूर्ण आकाशको देखो, आज त्रिलोकमें भ्रमण करनेवाले राक्षसोंका रास्ता मैं बन्द कर दूंगा, ॥५९॥ ग्रहोंको रोक दूंगा, चन्द्रमाको ढँक दूंगा, अग्नि, सूर्य और वायु इनके प्रकाशको नष्ट कर दूंगा ॥६०॥ पर्वतके शिखरोंको तोड़ दूंगा, जलाशयोंको सुखा दूंगा, वृक्षलता और गुल्मोंको उजाड़ दूंगा, समुद्रको नष्ट कर दूंगा ॥६१॥ यदि देवता सकुशल सीताको मुझे न देंगे तो मैं त्रैलोक्यका नाश कर दूंगा ॥ ६२ ॥ लक्ष्मण, अब ये लोग मेरे पराक्रमको देखेंगे । कोई भी प्राणी आकाशमें नहीं उड़ सकेंगे ॥ ६३ ॥ लक्ष्मण आज तुम समस्त संसारको व्याकुल और घबड़ाया हुआ देखोगे । कान तक खींचकर चलाए हुए, न रुक सकनेवाले अपने बाणोंसे समस्त ब्रह्माण्डको सीताके कारण पिशाच और राक्षससे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्रक्ष्यन्त्यद्य विमुक्तानाममर्षाद्दूरगामिनाम् । नैव देवा न दैतेया न पिशाचा न राक्षसाः ॥६६॥
भविष्यन्ति मम क्रोधात्त्रैलोक्येऽपि प्रणाशिते । देवदानवयक्षाणां लोका ये रक्षसामपि ॥६७॥
बहुधा निपतिष्यन्ति बाणौघैः शकलीकृताः । निर्मर्यादानिमाँल्लोकान्करिष्याम्यद्य सायकैः ॥६८॥
हृतां मृतां वा सौमित्रे न दास्यन्ति ममेश्वराः । तथारूपां हि वैदेहीं न दास्यन्ति यदि प्रियाम् ॥६९॥
नाशयामि जगत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् । यावद्दर्शनमस्या वै तापयामि च सायकैः ॥७०॥
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षः स्फुरमाणोष्ठसंपुटः । वल्कलाजिनमाबद्ध्य जटाभारमबन्धयत् ॥७१॥
तस्य क्रुद्धस्य रामस्य तथाभूतस्य धीमतः । त्रिपुरं जघ्नुषः पूर्वं रुद्रस्येव बभौ तनुः ॥७२॥
लक्ष्मणादथ चादाय रामो निष्पीड्य कार्मुकम् । शरमादाय संदीप्तं घोरमाशीविषोपमम् ॥७३॥
संदधे धनुषि श्रीमान्रामः परपुरंजयः । युगान्ताग्निरिव क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥७४॥
यथा जरा यथा मृत्युर्यथा कालो यथा विधिः । नित्यं न प्रतिहन्यन्ते सर्वभूतेषु लक्ष्मण ।
तथाहं क्रोधसंयुक्तो न निवार्योऽस्म्यसंशयम् ॥७५॥
पुरेव मे चारुदतीमनिन्दितां दिशन्ति सीतां यदि नाद्य मैथिलीम् ।
सदेवगन्धर्वमनुष्यपन्नगं जगत्सशैलं परिवर्तयाम्यहम् ॥७६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥६४॥

रहित कर दूंगा । क्रोधसे छोड़े गये और दूर जानेवाले मेरे बाणोंका बल आज देवता देखें । क्रोध करके जब मैं त्रैलोकका नाश करदूंगा तब देवता, दानव, पिशाच, राक्षस ये कोई भी नहीं रहेंगे । देवता, दानव, यक्ष और राक्षसोंके लोक भी मेरे बाणोंसे टुकड़े-टुकड़े होकर नष्ट हो जायँगे । मैं अपने बाणोंसे आज इन समस्त लोकोंको व्याकुल कर दूंगा ॥ ६४, ६५, ६६, ६७, ६८ ॥ सीता हरी गयी हो या मर गयी हो, चाहे जिस अवस्थामें मेरी प्रिया हो, उसी अवस्थामें देवता यदि उसे मुझे न सौंपेंगे तो सचराचर समस्त जगतका नाश कर दूंगा । जब तक सीताको मैं न देखूँगा तबतक अपने बाणोंसे सबको तपाऊंगा ॥ ६९, ७० ॥ ऐसा कह करके रामचन्द्रने वल्कल और चर्मको बांधा, पुनः जटा भी उन्होंने सँभाली । उस समय उनकी आंख क्रोधसे लाल होगयी थीं, ओठ फरक रहे थे ॥ ७१ ॥ उस समय क्रोध किए हुए बुद्धिमान रामचन्द्रका स्वरूप त्रिपुरको जलानेके लिए उद्यत रुद्रके समान भयंकर होगया ॥ ७२ ॥ लक्ष्मणसे धनुष लेकर रामचन्द्रने उसे दबाया । सांपके समान बाण उन्होंने लिया ॥ ७३ ॥ और शत्रुओंके नगर जीतनेवाले रामचन्द्रने धनुषपर बाण रखे । प्रलयकालकी अग्निके समान क्रुद्ध रामचन्द्र इस प्रकार बोले ॥ ७४ ॥ लक्ष्मण, जिस प्रकार सब प्राणियोंकेलिए वृद्धावस्था, मृत्युकाल, भाग्य नियत हैं, इनमें उलट-फेर नहीं होता, उसी प्रकार क्रोध करनेपर मुझे भी कोई नहीं रोक सकता, यह निश्चित है ॥७५॥ पहलेहीके समान सुन्दर हँसनेवाली, सुन्दरी सीता यदि मुझे नहीं दी गयी, तो देवता, गन्धर्व, मनुष्य, नाग और पर्वतके साथ इस समस्त संसारको उलट-पलट कर दूंगा ॥ ७६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका चौसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६४ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चषष्टितमः सर्गः ६५

तप्यमानं तदा रामं सीताहरणकर्शितम् । लोकानामभवे युक्तं सांवर्तकमिवानलम् ॥ १ ॥
वीक्षमाणं धनुः सज्यं निःश्वसन्तं पुनः पुनः । दग्धुकामं जगत्सर्वं युगान्ते च यथा हरम् ॥ २ ॥
अदृष्टपूर्वं संक्रुद्धं दृष्ट्वा रामं स लक्ष्मणः । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं मुखेन परिशुष्यता ॥ ३ ॥
पुरा भूत्वा मृदुर्दान्तः सर्वभूताहिते रतः । न क्रोधवशमापन्नः प्रकृतिं हातुमर्हसि ॥ ४ ॥
चन्द्रे लक्ष्मीः प्रभा सूर्ये गतिर्वायौ भुवि क्षमा । एतच्च नियतं नित्यं त्वयि चानुत्तमं यशः ॥ ५ ॥
एकस्य नापराधेन लोकान्हन्तुं त्वमर्हसि । नतु जानामि कस्यायं भग्नः साङ्ग्रामिको रथः ॥ ६ ॥
केन वा कस्य वा हेतोः सयुगः सपरिच्छदः । खुरनेमिक्षतश्चायं सिक्तो रुधिरबिन्दुभिः ॥ ७ ॥
देशो निवृत्तसङ्ग्रामः सुघोरः पार्थिवात्मज । एकस्य तु विमर्दोऽयं न द्वयोर्वदतां वर ॥ ८ ॥
नहि वृत्तं हि पश्यामि बलस्य महतः पदम् । नैकस्य तु कृते लोकान्विनाशयितुमर्हसि ॥ ९ ॥
युक्तदण्डा हि मृदवः प्रशान्ता वसुधाधिपाः । सदा त्वं सर्वभूतानां शरण्यः परमा गतिः ॥१०॥
को नु दारप्रणाशं ते साधु मन्येत राघव । सरितः सागराः शैला देवगन्धर्वदानवाः ॥११॥
नालं ते विप्रियं कर्तुं दीक्षितस्येव साधवः । येन राजन्हृता सीता तमन्वेषितुमर्हसि ॥१२॥
मद्द्वितीयो धनुष्पाणिः सहायैः परमर्षिभिः । समुद्रं वा विचेष्यामः पर्वतांश्च वनानि च ॥१३॥

सीताके हरणसे दुखी तथा भीतरही भीतर जलते हुए और प्रलयकालीन अग्निके समान समस्त संसारके नाशके लिए तयार, चढ़े हुए धनुषको बारबार देखते और निश्वास छोड़ते हुए, प्रलय कालमें महादेवके समान समस्त संसारको जला देनेकी इच्छा रखनेवाले, उस प्रकार अदृष्टपूर्व क्रोधित रामचन्द्रको देखकर लक्ष्मण हाथ जोड़कर सूखते हुए मुँहसे इस प्रकार बोले ॥ १,२,३ ॥ पहले आप बड़े कोमल थे, विनयी थे, सब प्राणियोंके कल्याण करनेवाले थे, इस समय क्रोधके कारण आपको अपने स्वभावका त्याग नहीं करना चाहिए ॥ ४ ॥ चन्द्रमामें लक्ष्मी, सूर्यमें प्रभा, वायुमें गति, पृथिवीमें क्षमा और आपमें सर्वोत्तम यश ये नियत हैं ॥ ५ ॥ एकके अपराधके कारण आपको समस्त लोकोंका नाश नहीं करना चाहिए । यह किसका युद्धका रथ टूटा हुआ है, यह मैं नहीं जानता हूँ ॥ ६ ॥ किससे और किसलिए यह युद्ध हुआ है, यह मैं नहीं जानता । यहाँकी भूमि, खुर और पहिएसे फटी हुई है, रुधिर-बिन्दुसे सींची हुई है ॥ ७ ॥ राजकुमार, इस स्थानपर बड़ा भयानक युद्ध हुआ है । यह स्थान एकहीके द्वारा रौंदा गया है, दोके द्वारा नहीं ॥ ८ ॥ किसी बड़ी सेनाके पैरोंका चिन्ह मैं नहीं देखता । एकके कारण आपको लोकोंका विनाश नहीं करना चाहिए ॥ ९ ॥ राजा लोग अपराधहीके अनुसार दण्ड देते हैं । वे कोमल और शान्त होते हैं । आपने सब प्राणियोंकी रक्षा की है, उनके आप अवलम्ब रहे हैं ॥ १० ॥ राजन्, आपकी स्त्रीका नष्ट हो जाना, किसको अच्छा मालूम होता है । नदी, पर्वत, देवता, दानव, गन्धर्व कोई भी आपका अपकार नहीं कर सकता, जिस प्रकार यज्ञमें दीक्षित मनुष्यका अपकार साधुजन नहीं करते । राजन्, सीता हरी गयी है उन्हें आप ढूंढ़ें ॥११,१२॥ हमलोग धनुष लेकर तथा सहायक ऋषियोंको साथ लेकर सीताको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुहाश्च विविधा घोराः पक्षिन्यो विविधास्तथा। देवगन्धर्वलोकांश्च विचेष्यामः समाहिताः ॥१४॥
यावन्नाधिगमिष्यामस्तव भार्यापहारिणम्। न चेत्साम्ना प्रदास्यन्ति पत्नीं ते त्रिदशेश्वराः।
कोशलेन्द्र ततः पश्चात्प्राप्तकालं करिष्यसि ॥१५॥
शीलेन साम्ना विनयेन सीतां नयेन न प्राप्स्यसि चेन्नरेन्द्र।
ततः समुत्सादय हेमपुङ्खैर्मर्मेन्द्रवज्रप्रतिमैः शरौघैः ॥१६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ६६

तं तथा शोकसंतप्तं विलपन्तमनाथवत्। मोहेन महता युक्तं परिद्यूनमचेतसम् ॥ १ ॥
ततः सौमित्रिराश्वास्य मुहूर्तादिव लक्ष्मणः। रामं संबोधयामास चरणौ चाभिपीडयन् ॥ २ ॥
महता तपसा चापि महता चापि कर्मणा। राज्ञा दशरथेनासील्लब्धोऽमृतमिवामरैः ॥ ३ ॥
तव चैव गुणैर्बद्धस्त्वद्वियोगान्महीपतिः। राजा देवत्वमापन्नो भरतस्य यथाश्रुतम् ॥ ४ ॥
यदिदं दुःखमिदं प्राप्तं काकुत्स्थ न सहिष्यसे। प्राकृतश्चाल्पसत्त्वश्च इतरः कः सहिष्यति ॥ ५ ॥
आश्वासिहि नरश्रेष्ठ प्राणिनः कस्य नापदः। संस्पृशन्त्यग्निवद्राजन्क्षणेन व्यपयान्ति च ॥ ६ ॥

ढूढ़े। समुद्र पर्वत और वनोंको ढूँढ़ें। कन्दराएँ, कमलवन, देवलोक और गन्धर्वलोकको सावधान होकर हमलोग ढूँढ़ें ॥ १३, १४ ॥ जबतक आपकी स्त्रीको हरण करनेवाला न मिले तब तक हमलोग ढूँढ़ें। कौशलेन्द्र, सौम्य उपायोंसे देवतालोग आपकी स्त्रीको न लौटा दें, तो उस समय जो उचित समझिएगा वह कीजिएगा ॥१५॥ शील, साम, विनय और नीतिसे जब आप सीताको न पा सकें, तब इन्द्रके वज्रके समान सोनेके पांखवाले अपने बाणोंसे लोकोंको नाश करें ॥ १६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका पैसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६५ ॥

शोकसे पीड़ित होनेके कारण रामचन्द्रका चित्त सुस्त हो गया था, अनाथके समान वे विलाप कर रहे थे, कर्तव्य-अकर्तव्यका उनका विवेक नष्ट हो चुका था और वे दुर्बल हो गये थे ॥१॥ सुमित्रापुत्र लक्ष्मणने थोड़ी देरमें रामचन्द्रको धैर्य धराया, उन्होंने रामचन्द्रके चरणोंको प्रणाम करते हुए उन्हें बतलाया ॥ २ ॥ बड़ी तपस्यासे तथा बड़े कठोर कर्मोंसे राजा दसरथने आपको पाया था, जिस प्रकार देवताओंने अमृत पाया था ॥३॥ आपके गुणोंमें उनका बहुतहा अनुराग था, अतएव आपके वियोगसे वे देवता हो गये अर्थात् देवलोकमें चले गये, ऐसा मैंने भरतके मुँहसे सुना है ॥ ४ ॥ रामचन्द्र, इस आये हुए दुःखको आप न सहेंगे तो साधारण मनुष्य, जो अल्पबल वाला है, कैसे सहेगा ॥ ५ ॥ रामचन्द्र, आप धैर्य धारण करें। किस मनुष्य पर आपत्ति नहीं आती? आगके समान शीघ्रही वे मनुष्योंका स्पर्श करती है और शीघ्रही छोड़कर चली भी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लोकस्वभाव एवैष ययातिर्नहुषात्मजः । गतः शक्रेण सालोक्यमनयस्तं समस्पृशत् ॥ ७ ॥
महर्षिर्यो वसिष्ठस्तु यः पितुर्नः पुरोहितः । अह्ना पुत्रशतं जज्ञे तथैवास्य पुनर्हतम् ॥ ८ ॥
या चेयं जगतो माता सर्वलोकनमस्कृता । अस्याश्च चलनं भूमेर्दृश्यते कोशलेश्वर ॥ ९ ॥
यौ धर्मौ जगतो नेत्रौ यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् । आदित्यचन्द्रौ ग्रहणमभ्युपेतौ महाबलौ ॥१०॥
सुमहान्त्यपि भूतानि देवाश्च पुरुषर्षभ । न दैवस्य प्रमुञ्चन्ति सर्वभूतानि देहिनः ॥११॥
शक्रादिष्वपि देवेषु वर्तमानौ नयानयौ । श्रूयेते नरशार्दूल न त्वं व्यथितुमर्हसि ॥१२॥
मृतायामपि वैदेह्यां नष्टायामपि राघव । शोचितुं नार्हसे वीर यथान्यः प्राकृतस्तथा ॥१३॥
त्वाद्विधा नहि शोचन्ति सततं सर्वदर्शनाः । सुमहत्स्वपि कृच्छ्रेषु रामानिर्विण्णदर्शनाः ॥१४॥
तत्त्वतो हि नरश्रेष्ठ बुद्ध्या समनुचिन्तय । बुद्ध्या युक्ता महाप्राज्ञा विजानन्ति शुभाशुभे॥१५॥
अदृष्टगुणदोषाणामध्रुवाणां तु कर्मणाम् । नान्तरेण क्रियां तेषां फलमिष्टं च वर्तते ॥१६॥
मामेवं हि पुरा वीर त्वमेव बहुशोक्तवान् । अनुशिष्याद्धि को नु त्वामपि साक्षाद्बृहस्पतिः॥१७॥
बुद्धिश्च ते महाप्राज्ञ देवैरपि दुरन्वया । शोकेनाभिप्रसुप्तं ते ज्ञानं संबोधयाम्यहम् ॥१८॥
दिव्यं च मानुषं चैवमात्मनश्च पराक्रमम् । इक्ष्वाकुवृषभावेक्ष्य यतस्व द्विषतां वधे ॥१९॥

जाती हैं ॥ ६ ॥ यही लोकका स्वभाव है। राजा ययाति नहुषके पुत्र थे, उन्होंने इन्द्रलोक प्राप्त किया, पर उन्होंने नीतिगर्हित काम किया, जिससे उन्हें स्वर्गसे भ्रष्ट होना पड़ा । ७ ॥ महर्षि वसिष्ठ, जो हमलोगोंके पिताके पुरोहित हैं, उनके सौ पुत्र उत्पन्न हुए और वे एकही दिनमें विश्वामित्रके द्वारा मारे गये ॥ ८ ॥ यह देवी पृथिवी जो सबकी माता और सबके द्वारा पूजित है, उसे भी कांपना पड़ता है ॥ ९ ॥ जो चन्द्रमा और सूर्य धर्मके प्रवर्तक हैं, संसारके नेत्र हैं, जिन पर संसारका सब कुछ अवलम्बित है, उन्हें भी राहुका ग्रहण होता है ॥ १० ॥ पृथिवी आदि कोई महाभूत ही क्यों न हो, चाहे कोई देवता ही हो, सभी शरीरधारी दैवकी अधीनतासे मुक्त नहीं हो सकते ॥ ११ ॥ इन्द्र आदि देवताओंको भी सुख-दुःख हुआ करते हैं, ऐसा सुना जाता है अतएव पुरुषश्रेष्ठ आप कष्ट न करें ॥ १२ ॥ सीता चाहे भूल गयी हों या मर गयी हों, तथापि आपको साधारण मनुष्योंके समान कष्ट नहीं करना चाहिए ॥ १३ ॥ आपके समान सब कुछ जाननेवाले मनुष्य बड़े-बड़े कष्टोंके समय भी दुःख नहीं करते, वे सदा प्रसन्न रहा करते हैं ॥ १४ ॥ नरश्रेष्ठ, आप बुद्धिके द्वारा भलाई-बुराईका विचार करें, क्योंकि बुद्धिके द्वाराही बुद्धिमान् मनुष्य भलाई-बुराईका विचार करते हैं ॥ १५ ॥ जिनके गुण दोष प्रत्यक्ष नहीं हुए हैं ऐसे अचिरस्थायी कर्मोंके इष्टफल भी बिना क्रियाके, बिना विचारके नहीं उत्पन्न होते ॥ १६ ॥ इस प्रकारकी बहुतसी बातें आपनेही पहले मुझसे कहीं हैं, भला आपको कौन सिखा सकता है, चाहे वह बृहस्पतिही क्यों न हो ॥ १७ ॥ आपकी बुद्धिका पता देवताओंको भी नहीं लग सकता, इस समय शोकके कारण आपकी वह बुद्धि अन्तर्हित हो गयी है, वही मैं उसे जागृत करता हूँ ॥ १८ ॥ इक्ष्वाकुश्रेष्ठ, आप सबके द्वारा प्रशंसित हैं,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किं ते सर्वविनाशेन कृतेन पुरुषर्षभ। तमेव तु रिपुं पापं विज्ञायोद्धर्तुमर्हसि ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः ॥६६॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७

पूर्वजोऽप्युक्तवाक्यस्तु लक्ष्मणेन सुभाषितम्। सारग्राही महासारं प्रतिजग्राह राघवः ॥ १ ॥
स निगृह्य महाबाहुः प्रवृद्धं रोषमात्मनः। अवष्टभ्य धनुश्चित्रं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ २ ॥
किं करिष्यावहे वत्स क्व वा गच्छाव लक्ष्मण। केनोपायेन पश्यावः सीतामिह विचिन्तय ॥ ३ ॥
तं तथा परितापार्तं लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्। इदमेव जनस्थानं त्वमन्वेषितुमर्हसि ॥ ४ ॥
राक्षसैर्बहुभिः कीर्णं नानाद्रुमलतायुतम्। सन्तीह गिरिदुर्गाणि निर्दराः कन्दराणि च ॥ ५ ॥
गुहाश्च विविधा घोरा नानामृगगणाकुलाः। आवासाः किंनराणां च गन्धर्वभवनानि च ॥ ६ ॥
तानि युक्तो मया सार्धं समन्वेषितुमर्हसि। त्वद्विधा बुद्धिसंपन्ना महात्मानो नरर्षभाः ॥ ७ ॥
आपत्सु न प्रकम्पन्ते वायुवेगैरिवाचलाः। इत्युक्तस्तद्वनं सर्वं विचचार सलक्ष्मणः ॥ ८ ॥
क्रुद्धो रामः शरं घोरं संधाय धनुषि क्षुरम्। ततः पर्वतकूटाभं महाभागं द्विजोत्तमम् ॥ ९ ॥
ददर्श पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम्। तं दृष्ट्वा गिरिशृङ्गाभं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥१०॥

अपने पौरुषका विचार करके शत्रुके वध करनेका प्रयत्न करें ॥ १९ ॥ पुरुषश्रेष्ठ, सबके नाशसे आपको क्या लाभ, उसी शत्रुका पता लगाकर आप उसके नाशका प्रयत्न करें ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका छाछठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६६ ॥

सार ग्रहण करनेवाले बड़े रामचन्द्रने लक्ष्मणकी कही अच्छी बातोंका सार ग्रहण किया॥१॥ बड़े दुष अपने क्रोधको रोककर और अपना धनुष उतारकर वे लक्ष्मणसे बोले ॥ २ ॥ वत्स, हम लोग क्या करें, लक्ष्मण, हम लोग कहाँ जाँय, किस उपायसे हम लोग सीताको देखें, इसका निश्चय करो ॥ ३ ॥ दुःख-पीड़ित रामचन्द्रसे लक्ष्मण इस प्रकार बोले—इसी जनस्थानमें आप सीताको ढूँढ़ें ॥ ४ ॥ अनेक वृक्ष और लताओंसे युक्त यह वन राक्षसोंसे भरा है, इसमें बहुतसे अगम्य स्थान हैं, झरने हैं और कन्दराएँ हैं ॥ ५ ॥ यहाँ अनेक प्रकारकी बड़ी भयानक गुहाएँ हैं, जिनमें तरह-तरहके पशु-पक्षी रहते हैं, किन्नरोंके रहनेके स्थान हैं और गन्धर्वोंके भवन हैं ॥ ६ ॥ मेरे साथ आप इन सब स्थानोंको ढूँढ़ें। आपके समान बुद्धिमान् श्रेष्ठ मनुष्य आपत्तियोंमें घबड़ाते नहीं, जिस प्रकार वायुवेगसे पर्वत कम्पित नहीं होते। लक्ष्मणके ऐसा कहने पर क्रुद्ध रामचन्द्र धनुषपर क्षुर नामक बाण चढ़ाकर लक्ष्मणके साथ समस्त वनमें घूमने लगे। तदनन्तर पक्षिश्रेष्ठ महाभाग जटायुको भूमिमें पड़े रामचन्द्रने देखा, वे खूनमें लथपथ हो रहे थे। पर्वत-शिखरके समान विशाल उनको देखकर लक्ष्मणसे रामचन्द्र बोले ॥ ७, ८, ९, १० ॥ इसीने सीताको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनेन सीता वैदेही भक्षिता नात्र संशयः । गृध्ररूपमिदं व्यक्तं रक्षो भ्रमति काननम् ॥११॥
भक्षयित्वा विशालाक्षीमास्ते सीतां यथासुखम् । एनं वधिष्ये दीप्ताग्रैः शरैर्घोरैरजिह्मगैः ॥१२॥
इत्युक्त्वाभ्यपतद्द्रष्टुं संधाय धनुषि क्षुरम् । क्रुद्धो रामः समुद्रान्तां चालयन्निव मेदिनीम् ॥१३॥
तं दीनदीनया वाचा सफेनं रुधिरं वमन् । अभ्यभाषत पक्षी स रामं दशरथात्मजम् ॥१४॥
यामोषधीमिवायुष्मन्नन्वेषसि महावने । सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हृतम् ॥१५॥
त्वया विरहिता देवी लक्ष्मणेन च राघव । ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन बलीयसा ॥१६॥
सीतामभ्यवपन्नोऽहं रावणश्च रणे प्रभो । विध्वंसितरथच्छत्रः पतितो धरणीतले ॥१७॥
एतदस्य धनुर्भग्नमेते चास्य शरास्तथा । अयमस्य रणे राम भग्नः साङ्ग्रामिको रथः ॥१८॥
अयं तु सारथिस्तस्य मत्पक्षिनिहतो भुवि । परिश्रान्तस्य मे पक्षौ छित्त्वा खड्गेन रावणः ॥१९॥
सीतामादाय वैदेहीमुत्पपात विहायसम् । रक्षसा निहतं पूर्वं मां न हन्तुं त्वमर्हसि ॥२०॥
रामस्तस्य तु विज्ञाय सीतासक्तां प्रियां कथाम् । गृध्रराजं परिष्वज्य परित्यज्य महद्धनुः ॥२१॥
निपपातावशो भूमौ रुरोद सहलक्ष्मणः । द्विगुणीकृततापार्तो रामो धीरतरोऽपि सन् ॥२२॥
एकमेकायने कृच्छ्रे निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः । समीक्ष्य दुःखितो रामः सौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥२३॥
राज्यं भ्रष्टं वने वासः सीता नष्टा मृतो द्विजः । ईदृशीयं ममालक्ष्मीर्दहेदपि हि पावकम् ॥२४॥

खाया है इसमें सन्देह नहीं, यह साधुरूपधारी राक्षस है और वनमें घूमता रहता है ॥ ११ ॥ विशालाक्षी सीताको खाकर यह यहाँ सुखसे बैठा है, मैं अपने तीखे और सीधे चलनेवाले उग्र बाणोंसे इसका वध करूँगा ॥ १२ ॥ ऐसा कहकर क्रुद्ध रामचन्द्र समुद्र पर्यन्त पृथिवीको कपाँते हुए धनुष पर क्षुरनामक बाण रखकर उसे देखनेके लिए चले ॥ १३ ॥ वह पक्षी फेन-सहित रुधिर उगलता हुआ दुःखित वाणीके द्वारा दसरथपुत्र रामचन्द्रसे बोला ॥ १४ ॥ इस महावनमें औषधिके समान तुम जिसे ढूँढ़ते हो, वह देवी सीता और मेरे प्राण इन दोनोंको रावण हर ले गया ॥ १५ ॥ तुम्हारे और लक्ष्मणके न रहनेसे बलवान् रावण उसे हरे ले जा रहा था, तब मैंने देखा ॥ १६ ॥ प्रभो, सीताकी रक्षाके लिये मैं गया था और युद्धमें रावणके रथ और छत्र मैंने तोड़ दिया तथा उसे पृथिवीपर गिरा दिया ॥ १७ ॥ यह उसका टूटा हुआ धनुष पड़ा है, ये उसके बाण हैं, राम, युद्धमें टूटा यह उसका युद्धका रथ पड़ा है ॥ १८ ॥ मेरी पाँखसे मारा गया यह उसका सारथी है, जब मैं थक गया, तब उसने तलवारसे मेरी पाँख काट दी ॥१९॥ और सीताको लेकर वह आकाशमें उड़ा था। राक्षसके द्वारा मैं मारा गया हूँ, अब तुम मुझे न मारो ॥ २० ॥ सीतासे संबन्ध रखनेवाली गृध्रराजकी प्रियकथा रामचन्द्रने सुनी और धनुष रखकर उन्होंने गृध्रराजका आलिंगन किया ॥२१॥ रामचन्द्रके बहुत धीर होने पर भी उनका दुःख दूना हो गया, वे अवश होकर पृथिवीमें गिर पड़े और लक्ष्मणके साथ रोने लगे ॥ २२ ॥ एकही मनुष्यके जाने योग्य दुःखद स्थानमें गिरे हुए असहाय जटायुको साँस लेते हुए देखकर दुःखित रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले ॥ २३ ॥ राज्य नष्ट हुआ, वनवास करना पड़ा, सीताका पता नहीं और यह पक्षी मारा गया, मेरा ऐसा अभाग्य है कि वह सबको जलानेवाले अग्निको भी जला दे ॥२४॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संपूर्णमपि चेदद्य प्रतरेयं महोदधिम् । सोऽपिनूनं ममालक्ष्म्याविशुष्येत्सरितां पतिः ॥२५॥
नास्त्यभाग्यतरो लोके मत्तोऽस्मिन्सचराचरे । येनेयं महती प्राप्ता मया व्यसनवागुरा ॥२६॥
अयं पितुर्वयस्यो मे गृध्रराजो महाबलः । शेते विनिहतो भूमौ मम भाग्यविपर्ययात् ॥२७॥
इत्येवमुक्त्वा बहुशो राघवः सहलक्ष्मणः । जटायुषं च पस्पर्श पितृस्नेहं निदर्शयन् ॥२८॥
निकृत्तपक्षं रुधिरावसिक्तं तं गृध्रराजं परिगृह्य राघवः ।
क्व मैथिली प्राणसमा गतेति विमुच्य वाचं निपपात भूमौ ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥६७॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ६८

रामः प्रेक्ष्य तु तं गृध्रं भुवि रौद्रेण पातितम् । सौमित्रिं मित्रसंपन्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
ममायं नूनमर्थेषु यतमानो विहङ्गमः । राक्षसेन हतः संख्ये प्राणांस्त्यजति मत्कृते ॥ २ ॥
अतिखिन्नः शरीरेऽस्मिन्प्राणो लक्ष्मण विद्यते । तथा स्वरविहीनोऽयं विक्लवं समुदीक्षते ॥ ३ ॥
जटायो यदि शक्नोषि वाक्यं व्याहरितुं पुनः । सीतामाख्याहि भद्रं ते वधमाख्याहिचात्मनः ॥ ४ ॥
किंनिमित्तो जहारार्यां रावणस्तस्य किं मया । अपराधं तु यं दृष्ट्वा रावणेन हृता प्रिया ॥ ५ ॥

मैं यदि आज समुद्रमें तैरने जाऊँ तो मेरे अभाग्यके कारण यह नदियोंका स्वामी भी सूख जाय ॥ २५ ॥ इस चराचर संसारमें मुझसे बढ़कर अभागी दूसरा नहीं है, जिसके कारण आज मैं इस दुःखोंके जालमें फँसा हुआ हूँ ॥२६॥ ये गृध्रराज मेरे पिताके मित्र हैं, मेरेही भाग्यदोषसे आज मारे जाकर जमीनमें पड़े हैं ॥ २७ ॥ इस प्रकार बहुत कुछ कहकर पितृप्रेम दिखाते हुए जटायुका उन लोगोंने स्पर्श किया ॥ २८ ॥ रामचन्द्रने पाँख कटे हुए और रुधिराक्त गृध्रराजको पकड़कर 'मेरी प्राणसम सीता कहाँ है' ऐसा कहकर वे पृथिवी पर गिर पड़े ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका सड़सठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६७ ॥

राक्षसके द्वारा गृध्रको जमीनमें पड़ा देखकर रामचन्द्र सबसे मित्रता रखनेवाले लक्ष्मणसे यह वचन बोले ॥ १ ॥ यह पक्षी अवश्य मेरे लिए अर्थात् सीताको छुड़ानेके लिए प्रयत्न कर रहा था । उसी प्रयत्नमें राक्षसने इसे युद्धमें मारा है । यह मेरे कारण प्राण छोड़ रहा है ॥ २ ॥ लक्ष्मण, इसके शरीरमें बहुत ही थोड़ा प्राण है । अतएव इसकी आवाज बहुत धीमी पड़ गयी है और व्याकुल होकर इधर-उधर देखता है ॥ ३ ॥ जटायु, यदि तुम बोल सको तो सीताका पता बतलाओ और अपने वधका कारण कहो ॥ ४ ॥ आर्या सीताका हरण किस कारणसे हुआ, मैंने उसका कौनसा अपराध किया है, जिसके कारण उसने मेरी प्रिया सीताका हरण किया ॥५॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कथं तच्चन्द्रसंकाशं मुखमासीन्मनोहरम् । सीतयाकानिचोक्तानितस्मिन्काले द्विजोत्तम ॥ ६ ॥
कथंवीर्यः कथंरूपः किंकर्मा स च राक्षसः । क चास्य भवनं तात ब्रूहि मे परिपृच्छतः ॥ ७ ॥
तमुद्वीक्ष्य स धर्मात्मा विलपन्तमनाथवत् । वाचा विक्लवया रामामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥
सा हृता राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना । मायामास्थाय विपुलां वातदुर्दिनसंकुलाम् ॥ ९ ॥
परिक्लान्तस्य मे तात पक्षौ छित्त्वा निशाचरः । सीतामादाय वैदेहीं प्रयातो दक्षिणामुखः ॥१०॥
उपरुध्यन्ति मे प्राणा दृष्टिर्भ्रमति राघव । पश्यामि वृक्षान्सौवर्णानुशीरकृतमूर्धजान् ॥११॥
येन याति मुहूर्तेन सीतामादाय रावणः । विप्रनष्टं धनं क्षिप्रं तत्स्वामी प्रतिपद्यते ॥१२॥
विन्दोनाम मुहूर्तोऽसौ न च काकुत्स्थ सोऽबुधत् । झषवद्बडिशं गृह्य क्षिप्रमेव विनश्यति ॥१३॥
न च त्वया व्यथा कार्या जनकस्य सुतां प्रति । वैदेह्यां रंस्यसे क्षिप्रं हत्वा तं रणमूर्धनि ॥१४॥
असंमूढस्य गृध्रस्य रामं प्रत्यनुभाषतः । आस्यात्सुस्राव रुधिरं म्रियमाणस्य सामिषम् ॥१५॥
पुत्रो विश्रवसः साक्षाद्भ्राता वैश्रवणस्य च । इत्युक्त्वा दुर्लभान्प्राणान्सुमोच पतगेश्वरः ॥१६॥
ब्रूहि ब्रूहीति रामस्य ब्रुवाणस्य कृताञ्जलेः । त्यक्त्वा शरीरं गृध्रस्य प्राणा जग्मुर्विहायसम् ॥१७॥
स निक्षिप्य शिरो भूमौ प्रसार्य चरणौ तथा । विक्षिप्य च शरीरं स्वं पपात धरणीतले ॥१८॥

पक्षिश्रेष्ठ, उस समय चन्द्रमाके समान सीताका मनोहर मुंह कैसा होगया था ? सीताने कौन-कौनसी बातें कही हैं ॥६॥ तात, मैं आपसे पूछ रहा हूँ, बतलाइए, रावणका कैसा प्रभाव है ? कैसा रूप है ? वह राक्षस क्या करता है और उसका घर कहाँ है ॥ ७ ॥ अनाथके समान विलाप करते हुए रामको देखकर धर्मात्मा जटायु टूटती हुई आवाजमें बोला ॥ ८ ॥ दुरात्मा राक्षसराज रावण-ने सीताका हरण किया है। मायाके द्वारा आंधी पानी आदि बनाकर, उसने सीताका हरण किया ॥ ९ ॥ तात, थकजाने पर मेरी पांख काटकर और सीताको लेकर वह दक्षिणकी ओर चला गया ॥ १० ॥ मेरे प्राण रुक रहे हैं अर्थात् वे निकल रहे हैं, जिसकारण इन्द्रियोंका व्यापार रुक रहा है। आंखें घूम रही हैं, मैं वृक्षोंको सुवर्णके समान देख रहा हूँ। मालूम होता है कि इनके बाल खसके बनाए गये हैं (यह मृत्यु की सूचना है) ॥११॥ जिस मुहूर्तमें रावण सीताको लेकर गया है उस मुहूर्तमें भूली हुई वस्तुको स्वामी शीघ्र ही पाता है ॥ १२ ॥ वह विन्द नामक मुहूर्त था, जिसमें रावण सीताको लेगया। रावणने उस मुहूर्तकी ओर ध्यान नहीं दिया। इतना ही नहीं, जिसप्रकार बन्सी पकड़कर मछलियां नष्ट होती हैं, उसीप्रकार वह भी स्वयं नष्ट हो जायगा ॥ १३ ॥ जानकीके लिए तुम अपने मनमें कष्ट मत करो। युद्धमें रावणको मारकर शीघ्रही सीता-के साथ तुम रमण करोगे ॥ १४ ॥ मृत्युकालमें भी चेतन बनेहुए और रामके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए, मृत्युके निकट आए हुए उस गृध्रके मुंहसे खूनके साथ मांस निकला ॥ १५ ॥ विश्रवाका वह पुत्र है और कुबेरका भाई। इतना कहकर पक्षिराजने अपने दुर्लभ प्राण छोड़े ॥१६॥ हाथ जोड़ कर रामचन्द्र कह रहेथे कि कहो, कहो, उसी समय गृध्रके प्राण शरीर छोड़कर आकाशमें चले गये ॥१७॥ मस्तक और पैर उसने पृथिवीमें फैला दिये। शरीर छोड़ दिया और वह पृथिवीमें गिर पड़ा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तं गृध्रं प्रेक्ष्य ताम्राक्षं गतासुमचलोपमम् । रामः सुबहुभिर्दुःखैर्दीनः सौमित्रिमब्रवीत् ॥१९॥
बहूनि रक्षसां वासे वर्षाणि वसता सुखम् । अनेन दण्डकारण्ये विशीर्णमिह पक्षिणा ॥२०॥
अनेकवार्षिको यस्तु चिरकालसमुत्थितः । सोऽयमद्य हतः शेते कालो हि दुरतिक्रमः ॥२१॥
पश्य लक्ष्मण गृध्रोऽयमुपकारी हतश्च मे । सीतामभ्यवपन्नो हि रावणेन बलीयसा ॥२२॥
गृध्रराज्यं परित्यज्य पितृपैतामहं महत् । मम हेतोरयं प्राणान्मुमोच पतगेश्वरः ॥२३॥
सर्वत्र खलु दृश्यन्ते साधवो धर्मचारिणः । शूराः शरण्याः सौमित्रे तिर्यग्योनिगतेष्वपि ॥२४॥
सीताहरणजं दुःखं न मे सौम्य तथागतम् । यथा विनाशो गृध्रस्य मत्कृते च परंतप ॥२५॥
राजा दशरथः श्रीमान्यथा मम महायशाः । पूजनीयश्च मान्यश्च तथायं पतगेश्वरः ॥२६॥
सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम् । गृध्रराजं दिधक्ष्यामि मत्कृते निधनं गतम् ॥२७॥
नाथं पतगलोकस्य चितिमारोपयाम्यहम् । इमं धक्ष्यामि सौमित्रे हतं रौद्रेण रक्षसा ॥२८॥
या गतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्च या गतिः । अपरावर्तिनां या च या च भूमिप्रदायिनाम् ॥२९॥
मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकाननुत्तमान् । गृध्रराज महासत्त्व संस्कृतश्च मया व्रज ॥३०॥
एवमुक्त्वा चितां दीप्तामारोप्य पतगेश्वरम् । ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः ॥३१॥
रामोऽपि सहसौमित्रिर्वनं यात्वा स वीर्यवान् । स्थूलान्हत्वा महारोहीननु तस्तार तं द्विजम् ॥३२॥

॥ १८ ॥ लाल आंखोंवाला पर्वतके समान वह गृध्र मर गया, यह देखकर अनेक प्रकारके दुखोंसे दुखी रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले ॥ १९ ॥ यह पक्षी बहुत दिनोंसे राक्षसोंके निवासस्थान दण्डकारण्यमें रहता था । वह आज मारा गया ॥ २० ॥ जो बहुत दिनोंका है, जो बहुत दिनोंसे बढ़ा हुआ है वह आज मारा जाकर सो रहा है । समयके सामने किसकी चली है ? ॥२१॥ लक्ष्मण, देखो यह मेरा उपकारी गृध्र मारा गया । सीताकी रक्षाके लिए यह प्रवृत्त हुआ था । बली रावणने इसे मार डाला ॥२२॥ इस पक्षिराजने पिता पितामहसे आया गृध्रराज्यका त्यागकर मेरे कारण अपने प्राण दिये हैं ॥ २३ ॥ धर्मात्मा सज्जन सर्वत्र पाये जाते हैं । शूर, शरणागतकी रक्षा करनेवाले पक्षीकी योनिमें भी हैं ॥ २४ ॥ सौम्य, इस समय सीताके हरणका वैसा दुख मुझे नहीं है, जैसा अपने कारण इस गीधके मरनेका है ॥ २५ ॥ महायशस्वी राजा दशरथ जैसे हमारे मान्य हैं, वैसा ही मान्य और पूजनीय यह पक्षिराज भी है ॥ २६ ॥ लक्ष्मण, लकड़ी इकट्ठा करो, मथ कर आग निकालूंगा, मेरे लिए मृत्युप्राप्त इस पक्षिराजका मैं दाह करूंगा ।। २७ ॥ पक्षियोंके स्वामीको मैं चिता पर रखूँगा । भयानक राक्षसके द्वारा मारे गए इनका मैं दाह करूंगा ॥ २८ ॥ यज्ञ करनेवालोंको जो गति प्राप्त होती है, अग्निहोत्रियों, युद्धमें सामने लड़नेवालों और भूमि दान करनेवालोंको जो गति प्राप्त होती है तुम मेरी आज्ञासे उन्हीं लोकोंमें जाओ । महाप्राण गृध्रराज, मैं तुम्हारा संस्कार कर रहा हूँ । तुम उन्हीं लोकोंमें जाओ ॥ २९. ३० ॥ ऐसा कहकर पक्षिराजका, चितापर रखकर धर्मात्मा और दुखी रामचन्द्रने अपने बान्धवके समान दाह किया ॥ ३१ ॥ पराक्रमी रामचन्द्र लक्ष्मणके साथ वन गये और मोटे मृगोंको मारकर उन्होंने पृथिवीपर तृण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रोहिमांसानि चोद्धृत्य पेशीकृत्वा महायशाः । शकुनाय ददौ रामो रम्ये हरितशाद्वले ॥३३॥
यत्तत्प्रेतस्य मर्त्यस्य कथयन्ति द्विजातयः । तत्स्वर्गगमनं क्षिप्रं तस्य रामो जजाप ह ॥३४॥
ततो गोदावरीं गत्वा नदीं नरवरात्मजौ । उदकं चक्रतुस्तस्मै गृध्रराजाय तावुभौ ॥३५॥
शास्त्रदृष्टेन विधिना जलं गृध्राय राघवौ । स्नात्वा तौ गृध्रराजाय उदकं चक्रतुस्तदा ॥३६॥
स गृध्रराजः कृतवान्यशस्करं सुदुष्करं कर्म रणे निपातितः ।
महर्षिकल्पेन च संस्कृतस्तदा जगाम पुण्यां गतिमात्मनः शुभाम् ॥३७॥
कृतोदकौ तावपि पक्षिसत्तमे स्थिरां च बुद्धिं प्रणिधाय जग्मतुः ।
प्रवेश्य सीताधिगमे ततो मनो वनं सुरेन्द्राविव विष्णुवासवौ ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डेऽष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९

कृत्वैवमुदकं तस्मै प्रस्थितौ राघवौ तदा । अवेक्षन्तौ वने सीतां जग्मतुः पश्चिमां दिशम् ॥ १ ॥
तां दिशं दक्षिणां गत्वा शरचापासिधारिणौ । अविप्रहतमैक्ष्वाकौ पन्थानं प्रतिपेदतुः ॥ २ ॥
गुल्मैर्वृक्षैश्च बहुभिर्लताभिश्च प्रवेष्टितम् । आवृतं सर्वतो दुर्गं गहनं घोरदर्शनम् ॥ ३ ॥
व्यतिक्रम्य तु वेगेने गृहीत्वा दक्षिणां दिशम् । सुभीमं तन्महारण्यं व्यतियातौ महाबलौ ॥ ४ ॥

बिछाया ॥ ३२ ॥ उन मृगोंका मांस निकालकर तथा गोलाकार बनाकर महायशस्वी रामचन्द्रने रमणीय हरी घासपर पक्षीके लिए दिया ॥ ३३ ॥ मरे हुए मनुष्यके स्वर्ग जानेके लिए ब्राह्मण जिन मन्त्रोंका जप करते हैं, उस स्वर्ग भेजनेवाले मन्त्रका जप रामचन्द्रने किया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर दोनों राजपुत्र, गोदावरी तीरपर गये और वहां उन लोगोंने गृध्रराजके लिए जल दिया ॥ ३५ ॥ शास्त्रोक्तविधिके अनुसार राम और लक्ष्मणने गीधको जल दिया, स्नान करके उन लोगोंने गृध्रराजको जल दिया॥३६॥ रणमें मारे गये गृध्रराजने यश बढ़ानेवाला, बहुतही कठोर काम किया था। महर्षिके समान रामचन्द्रने उनका संस्कार किया और वे पवित्र गतिको प्राप्त हुए ॥ ३७ ॥ जल देकर वे दोनों, पक्षिश्रेष्ठ जटायुमें अविचल प्रेम रखकर चले । सीताकी प्राप्तिके प्रयत्नमें मन लगाकर देवस्वामी विष्णु और इन्द्रके समान वे वनमें चले ॥ ४० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका अरसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६८ ॥

इसप्रकार जटायुको जल देकर राम और लक्ष्मण वनमें सीताको देखतेहुए वहांसे पश्चिम दिशाकी ओर चले ॥ १ ॥ बाण, धनुष और तलवार धारण करनेवाले वे दोनों कुछ दक्षिण दिशाकी ओर अर्थात् पच्छिम-दक्षिणके बीचकी ओर जनहीन रास्तेपर पहुँचे ॥ २ ॥ अनेक गुल्मों, वृक्षों और लताओंसे वह मार्ग भरा और घिरा हुआ था । वह देखनेमें भयानक और प्रवेश करनेमें कठिन था ॥३॥ महाबली राम और लक्ष्मणने दक्षिण दिशाकी ओर जाकर रास्तेमें मिले हुए उस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततः परं जनस्थानात्त्रिक्रोशं गम्य राघवौ । क्रौञ्चारण्यं विविशतुर्गहनं तौ महौजसौ ॥ ५ ॥
नानामेघघनप्रख्यं प्रहृष्टमिव सर्वतः । नानावर्णैः शुभैः पुष्पैर्मृगपक्षिगणैर्युतम् ॥ ६ ॥
दिदृक्षमाणौ वैदेहीं तद्वनं तौ विचिन्वतुः । तत्र तत्रावतिष्ठन्तौ सीताहरणदुःखितौ ॥ ७ ॥
ततः पूर्वेण तौ गत्वा त्रिक्रोशं भ्रातरौ तदा । क्रौञ्चारण्यमतिक्रम्य मतङ्गाश्रममन्तरे ॥ ८ ॥
दृष्ट्वा तु तद्वनं घोरं बहुभीममृगद्विजम् । नानावृक्षसमाकीर्णं सर्वं गहनपादपम् ॥ ९ ॥
ददृशाते गिरौ तत्र दरीं दशरथात्मजौ । पातालसमगम्भीरां तमसा नित्यसंवृताम् ॥१०॥
आसाद्य च नरव्याघ्रौ दर्यास्तस्याविदूरतः । ददर्शतुर्महारूपां राक्षसीं विकृताननाम् ॥११॥
भयदामल्पसत्त्वानां बिभित्सां रौद्रदर्शनाम् । लम्बोदरीं तीक्ष्णदंष्ट्रां करालीं परुषत्वचम् ॥१२॥
भक्षयन्तीं मृगान्भीमान्विकटां मुक्तमूर्धजाम् । अवैक्षतां तु तौ तत्र भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१३॥
सा समासाद्य तौ वीरौ व्रजन्तं भ्रातुरग्रतः । एहि रंस्यावहेत्युक्त्वा समालम्भत लक्ष्मणम् ॥१४॥
उवाच चैनं वचनं सौमित्रिमुपगुह्य च । अहं त्वयोमुखी नाम लाभस्ते त्वमसि प्रियः ॥१५॥
नाथ पर्वतदुर्गेषु नदीनां पुलिनेषु च । आयुश्चिरमिदं वीर त्वं मया सह रंस्यसे ॥१६॥
एवमुक्तस्तु कुपितः खड्गमुद्धृत्य लक्ष्मणः । कर्णनासस्तनं तस्या निचकर्तारिसूदनः ॥१७॥
कर्णनासे निकृत्ते तु विस्वरं विननाद सा । यथागतं प्रदुद्राव राक्षसी घोरदर्शना ॥१८॥

भयानक वनको वेगसे पार किया ॥ ४ ॥ वहांसे जनस्थानसे तीन कोस चलकर तेजस्वी राम और लक्ष्मणने क्रौञ्च नामक वनमें प्रवेश किया ॥ ५ ॥ अनेक मेघसमूहोंके समान वह क्रौञ्च वन पुष्पित होनेके कारण सब ओरसे प्रसन्न मालूम पड़ता था । अनेक प्रकारके सुन्दर पुष्प, पशु और पक्षी वहां वर्तमान थे ॥ ६ ॥ सीताहरणसे दुखी राम और लक्ष्मण उस वनमें जहां-तहां बैठकर, सीताको ढूँढ़ने लगे ॥ ७ ॥ वहांसे तीन कोस पूर्वकी ओर जाकर क्रौञ्च वनको पारकर-के रास्तेमें मतंगमुनिका आश्रम उन लोगोंने देखा ॥ ८ ॥ वह वन बड़ा ही भयानक था । उसमें अनेक भयानक पशु और पक्षी थे । अनेक वृक्षोंसे वह भरा हुआ था ॥ ९ ॥ उस पर्वतमें उन लोगोंने एक बहुत बड़ी कन्दरा देखी । वह पातालके समान गहरी थी तथा उसमें सदा अन्धकार रहता था ॥ १० ॥ उस कन्दराके पास पहुँचकर उन दोनों पुरुषश्रेष्ठोंने विशाल शरीर और विकट मुखवाली एक राक्षसी देखी ॥ ११ ॥ दुर्बल प्राणियोंको भय दिखलानेवाली, घृणा उत्पन्न करनेवाली, लम्बे पेटवाली, तीखे दाँतवाली, क्रूर-स्वरूपवाली, देखनेमें भयानक, कठोर चमड़ेवाली भयानक पशुओंका मांस खानेवाली, खुले केशवाली, विकटाकार राक्षसीको दोनोंभाई रामचन्द्र और लक्ष्मणने देखा ॥१२, १३॥ उन दोनो वीरोंके पास जाकर, भाईके आगे चलते हुए लक्ष्मणको-'आओ हम लोग रमण करें,' ऐसा कहकर उसने पकड़ लिया ॥ १४ ॥ लक्ष्मणका आलिंगन करके वह उनसे बोली—मेरा नाम अयोमुखी है । मैं तुमको निधिके समान मिली । तुम मेरे प्रिय हो ॥१५॥ नाथ, पर्वतों, वन और नदियोंके तीरों पर मेरे साथ इस लम्बी आयुमें रमण करना ॥१६॥ ऐसा कहनेपर क्रोध करके लक्ष्मणने उसके कान, नाक और स्तन काट डाले । कान-नाकके काटे जाने पर वह अद्भुत स्वरमें विलाप करने लगी और भयानक रूप-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्यां गतायां गहनं व्रजन्तौ वनमोजसा । आसेदतुरमित्रघ्नौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१९॥
लक्ष्मणस्तु महातेजाः सत्त्ववाञ्छीलवाञ्छुचिः । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं भ्रातरं दीप्ततेजसम् ॥२०॥
स्पन्दते मे दृढं बाहुरुद्विग्नमिव मे मनः । प्रायशश्चाप्यनिष्टानि निमित्तान्युपलक्षये ॥२१॥
तस्मात्सज्जभवार्य त्वं कुरुष्व वचनं मम । ममैव हि निमित्तानि सद्यः शंसन्ति संभ्रमम् ॥२२॥
एष वञ्चुलको नाम पक्षी परमदारुणः । आवयोर्विजयं युद्धे शंसन्निव विनर्दति ॥२३॥
तयोरन्वेषतोरेवं सर्वं तद्वनमोजसा । संजज्ञे विपुलः शब्दः प्रभञ्जन्निव तद्वनम् ॥२४॥
संवेष्टितमिवात्यर्थं गहनं मातरिश्वना । वनस्य तस्य शब्दोऽभूद्वनमापूरयन्निव ॥२५॥
तं शब्दं काङ्क्षमाणस्तु रामः खड्गी सहानुजः । ददर्श सुमहाकायं राक्षसं विपुलोरसम् ॥२६॥
आसेदतुश्च तद्रक्षस्तावुभौ प्रमुखे स्थितम् । विवृद्धमशिरोग्रीवं कवन्धमुदरेमुखम् ॥२७॥
रोमभिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्महागिरिमिवोच्छ्रितम् । नीलमेघनिभं रौद्रं मेघस्तनितनिःस्वनम् ॥२८॥
अग्निज्वालानिकाशेन ललाटस्थेन दीप्यता । महापक्ष्मेण पिङ्गेन विपुलेनायतेन च ॥२९॥
एकेनोरसि घोरेण नयनेन सुदर्शिना । महादंष्ट्रोपपन्नं तं लेलिहानं महामुखम् ॥३०॥
भक्षयन्तं महाघोरानृक्षसिंहमृगद्विजान् । घोरौ भुजौ विकुर्वाणमुभौ योजनमायतौ ॥३१॥
कराभ्यां विविधान्गृह्य ऋक्षान्पक्षिगणान्मृगान् । आकर्षन्तं विकर्षन्तमनेकान्मृगयूथपान् ॥३२॥

वाली वह राक्षसी जहांसे आयी थी वहां भाग गयी ॥१८॥ राक्षसीके चली जाने पर वेगसे चलते हुए शत्रुओंका नाश करनेवाले राम और लक्ष्मण दोनो भाइयोने गहन वन पाया ॥१९॥ पराक्रमी, शीलवान्, शुद्ध, तेजस्वी लक्ष्मण हाथ जोड़कर तेजस्वी रामचन्द्रसे बोले ॥२०॥ मेरी बांह खूब फड़क रही है, मेरा मन उद्विग्न हो रहा है, प्रायः बुरे निमित्त मैं देख रहा हूँ ॥ २१ ॥ इस कारण आर्य, आप तयार होजाय। मेरी बात मानें। ये सब निमित्त मेरेही लिए भय बतला रहे हैं ॥२२॥ यह भयानक वनमें चुलक नामका पक्षी बोल रहा है; और युद्धमें हम लोगोंकी विजय होगी, यह बतला रहा है ॥ २३ ॥ इस प्रकार, उस वनको तेजीके साथ वे दोनों ढूंढ रहे थे, उस समय एक बहुत बड़ा शब्द हुआ, जिससे वह वन नष्ट होनेके समान होगया ॥ २४ ॥ वह समस्त वन वायुसे भर गया। उस वनके बीचमें समस्त वन गुंजाता हुआ वह शब्द हुआ ॥ २५ ॥ भाईके साथ खड्ग धारण करनेवाले रामचन्द्र उस शब्दको जाननाही चाहते थे कि विशालकाय बड़ीछातीवाला एक राक्षस उन्होंने देखा ॥२६॥ उन दोनोंके आगे आकर वह राक्षस खड़ा होगया। वह बहुत बड़ा था। उसके न मस्तक था न गला। वह कबन्ध था और उसके पेटमें मुख था ॥२७॥ तेज और तीखे उसके शरीरके रोमथे, वह पर्वतके समान ऊँचा था, नीले मेघके समान भयानक और मेघके समान गर्जन करनेवाला था ॥२८॥ अग्निज्वालाके समान जलते हुए, पीले, लम्बे और अधिक रोम उसके मस्तक पर थे ॥२९॥ उसकी छातीमें एक भयानक आंख थी, जिससे वह खूब अधिक देख सकता था। उसके मुंहमें बड़े-बड़े दांत थे और उसकी जीभ लपलपा रही थी ॥३०॥ भालु, सिंह, मृग और पक्षियोंको वह खा रहा था। एक योजन लम्बे हाथोको वह चला रहा था ॥३१॥ वह अपने हाथों-से भालुओं, पक्षिसमूहों तथा अनेक मृगोंको खींचता और फेकता था ॥ ३२ ॥ रास्तेमें चलते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्थितमावृत्य पन्थानं तयोर्भ्रात्रोः प्रपन्नयोः । अथ तं समतिक्रम्य क्रोशमात्रं ददर्शतुः ॥३३॥
महान्तं दारुणं भीमं कबन्धं भुजसंवृतम् । कबन्धमिव संस्थानादतिघोरमदर्शनम् ॥३४॥
स महाबाहुरत्यर्थं प्रसार्य विपुलौ भुजौ । जग्राह सहितावेव राघवौ पीडयन्बलात् ॥३५॥
खड्गिनौ दृढधन्वानौ तिग्मेतजौ महाभुजौ । भ्रातरौ विवशं प्राप्तौ कृष्यमाणौ महाबलौ ॥३६॥
तत्र धैर्याच्च शूरस्तु राघवो नैव विव्यथे । बाल्यादनाश्रयाच्चैव लक्ष्मणस्त्वभिविव्यथे ॥३७॥
उवाच च विषण्णः सन्राघवं राघवानुजः । पश्य मां विवशं वीर राक्षसस्य वशंगतम् ॥३८॥
मयैकेन तु निर्युक्तः परिमुच्यस्व राघव । मां हि भूतबलिं दत्त्वा पलायस्व यथासुखम् ॥३९॥
अधिगन्तासि वैदेहीमचिरेणेति मे मतिः । प्रतिलभ्य च काकुत्स्थ पितृपैतामहीं महीम् ॥४०॥
तत्र मां राम राज्यस्थः स्मर्तुमर्हसि सर्वदा । लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तु रामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥४१॥
मा स्म त्रासं वृथा वीर नहि त्वादृग्विषीदति । एतस्मिन्नन्तरे क्रूरो भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥४२॥
तावुवाच महाबाहुः कबन्धो दानवोत्तमः । कौ युवां वृषभस्कन्धौ महाखड्गधनुर्धरौ ॥४३॥
घोरं देशमिमं प्राप्तौ दैवेन मम चाक्षुषौ । वदतं कार्यमिह वां किमर्थं चागतौ युवाम् ॥४४॥
इमं देशमनुप्राप्तौ क्षुधार्तस्येह तिष्ठतः । सबाणचापखड्गौ च तीक्ष्णशृङ्गाविवर्षभौ ॥४५॥
मां तूर्णमनुसंप्राप्तौ दुर्लभं जीवितं हि वाम् । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कबन्धस्य दुरात्मनः ॥४६॥

हुए दोनों भाइयोंका रास्ता रोककर वह राक्षस खड़ा हो गया। अनन्तर, इन दोनों भाइयोंने एक कोस और आगे चलकर देखा ॥३३॥ कि बहुत लम्बा-चौड़ा और भयानक एक कबन्ध है, जिसने अपने हाथोंसे मृगोंको छिपाया है। आकारसे वह कबन्धके समान बड़ा भयानक मालूम होता था ॥३४॥ महाबाहु उस कबन्धने अपनी लम्बी भुजाएँ फैलाकर एक साथही इन राम और लक्ष्मण दोनोंको पीड़ित करते हुए जबरदस्ती पकड़ लिया ॥३५॥ तलवार और धनुष धारण करनेवाले, महातेजस्वी, महाभुज वे दोनों उसके आकर्षणमें पड़कर विवश होगये॥३६॥ रामचन्द्र शूरता और धीरताके कारण नहीं घबड़ाए, पर, बालक होनेके कारण और धैर्यके न रहनेके कारण लक्ष्मण बहुत दुखी हुए ॥३७॥ लक्ष्मण दुखी होकर रामचन्द्रसे बोले—वीर! मुझे देखिये, मैं राक्षसके वशमें आ गया हूं और विवश हूँ ॥३८॥ मुझको इस पिशाचके लिए बलि देकर, एक मुझको यहीं छोड़कर, आप सुखपूर्वक यहांसे भाग जांय अर्थात् मुझे राक्षसको देकर अपनी रक्षा करें ॥३९॥ शीघ्रही सीता आपको मिलेगी ऐसा मैं समझता हूँ। रामचन्द्र, पिता-पितामहके द्वारा पालित पृथिवीके राजा होकर वहां आप मेरा स्मरण कीजिएगा। लक्ष्मणके ऐसा कहने पर रामचन्द्र उनसे बोले ॥४०, ४१॥ वीर, व्यर्थ भय मत करो। तुम्हारे ऐसा आदमी दुख नहीं करता। इसी समय दानवश्रेष्ठ, महाबाहु, क्रूर वह कबन्ध, राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंसे बोला—वृषभके समान कन्धेवाले, तलवार और धनुष धारण करनेवाले, तुम दोनों कौन हो ॥४२,४३॥ इस भयानक देशमें आये हुए और मेरी आंखोके सामने पड़े हुए तुम दोनों कौन हो? कहो, यहाँ तुम्हारा कौन काम है? किसलिये तुमलोग यहां आये हो? ॥ ४४ ॥ क्षुधार्त मेरे इस प्रदेशमें तीखी सींग वाले दो बैलोंके समान धनुष-बाण और तलवार लेकर तुम लोग आए हो, तुम लोग मेरे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उवाच लक्ष्मणं रामो मुखेन परिशुष्यता । कृच्छ्रात्कृच्छ्रतरं प्राप्य दारुणं सत्यविक्रम ॥४७॥
व्यसनं जीवितान्ताय प्राप्तमप्राप्य तां प्रियाम् । कालस्य सुमहद्वीर्यं सर्वभूतेषु लक्ष्मण ॥४८॥
त्वां च मां च नरव्याघ्र व्यसनैःपश्य मोहितौ । नहि भारोऽस्ति देवस्य सर्वभूतेषु लक्ष्मण ॥४९॥
शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्राश्च रणाजिरे । कालाभिपन्नाः सीदन्ति यथा वालुकसेतवः ॥५०॥
इतिब्रुवाणो दृढसत्यविक्रमो महायशा दाशरथिः प्रतापवान् ।
अवेक्ष्य सौमित्रिमुदग्रविक्रमःस्थिरां तदा स्वां मतिमात्मनाऽकरोत् ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ७०

तौ तु तत्र स्थितौ दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । बाहुपाशपरिक्षिप्तौ कबन्धो वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
तिष्ठतः किं नु मां दृष्ट्वा क्षुधार्तं क्षत्रियर्षभौ । आहारार्थं तु संदिष्टौ दैवेन हतचेतनौ ॥ २ ॥
तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणो वाक्यं प्राप्तकालं हितं तदा । उवाचार्तिसमापन्नो विक्रमे कृतनिश्चयः ॥ ३ ॥
त्वां च मां च पुरा तूर्णमादत्ते राक्षसाधमः । तस्मादसिभ्यामस्याशु बाहू छिन्दावहे गुरू ॥ ४ ॥
भीषणोऽयं महाकायो राक्षसो भुजविक्रमः । लोकं ह्यतिजितं कृत्वा ह्यावां हन्तुमिहेच्छति ॥ ५ ॥

पास आगये हो, अब तुम लोगोंका जीना दुर्लभ है । दुरात्मा कबन्धकी ये बातें सुनकर रामचन्द्र सूखतेहुए मुखसे लक्ष्मणसे बोले—सत्यविक्रम, यह तो कठोरसे भी कठोर असहनीय दुख हमलोगोंको प्राप्त हुआ । अब हम लोगोंके प्राण जायेंगे । प्रिया सीता तो मिली नहीं । कालका प्रभाव सब प्राणियों पर होता है ॥४५, ४६, ४७, ४८॥ नरव्याघ्र, तुम और मैं दोनों कालके द्वारा दुखसे पीड़ित होरहे हैं; पर, काल प्राणियोंके लिए स्वतंत्र नहीं है, वहभी किसीके द्वारा परिचालित है ॥४९॥ बलवान, शिक्षित और वीर मनुष्य भी कालके वश होकर रणक्षेत्रमें बालुके पुलके समान दुख उठाते हैं ॥५०॥ सत्यविक्रम, महायशस्वी, प्रतापी रामचन्द्र ऐसा कहते हुए और लक्ष्मणको देखकर, प्रसिद्ध पराक्रमी रामचन्द्रने स्वयं अपनी बुद्धिको स्थिर किया ॥५१॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका उनहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥६९॥

राम और लक्ष्मण दोनों भाई मेरे हाथोंके फांसमें बँधे वहां खड़े हैं, यह देखकर कबन्ध उनसे बोला ॥१॥ हे क्षत्रियश्रेष्ठ, भूखे मुझको देखकर तुम लोग क्यों खड़े हो गये ? क्यों डर गये ? भाग्यने तुम लोगोंकी बुद्धि मारकर मेरेही खानेके लिए तुम लोगोंको यहां भेजा है ॥२॥ उसकी बात सुनकर लक्ष्मणने समयके अनुकूल कहा, वे बहुतही दुखी होगये थे और पराक्रम करनेका उन्होंने निश्चय कर लिया था ॥३॥ यह नीच राक्षस आपको और मुझको शीघ्रही पकड़ेगा। आइए, हम लोग तलवारसे इसकी लम्बी बांह काट दें ॥४॥ यह विशाल शरीरवाला भयानक राक्षस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निश्चेष्टानां वधो राजन्कुत्सितो जगतीपतेः । क्रतुमध्योपनीतानां पशूनामिव राघव ॥ ६ ॥
एतत्संजल्पितं श्रुत्वा तयोः क्रुद्धस्तु राक्षसः । विदार्यास्यं ततो रौद्रं तौ भक्षयितुमारभत् ॥ ७ ॥
ततस्तौ देशकालज्ञौ खड्गाभ्यामेव राघवौ । अच्छिन्दन्तां सुसंहृष्टौ बाहू तस्यांसदेशयोः ॥ ८ ॥
दक्षिणो दक्षिणं बाहुमसक्तमसिना ततः । चिच्छेद रामो वेगेन सव्यं वीरस्तु लक्ष्मणः॥ ९ ॥
स पपात महाबाहुश्छिन्नबाहुर्महास्वनः । खं च गां च दिशश्चैव नादयञ्जलदो यथा॥१०॥
स निकृत्तौ भुजौ दृष्ट्वा शोणितौघपरिप्लुतः । दीनःपप्रच्छ तौ वीरौ कौ युवामिति दानवः॥११॥
इति तस्य ब्रुवाणस्य लक्ष्मणः शुभलक्षणः । शशंस तस्य काकुत्स्थं कबन्धस्य महाबलः॥१२॥
अयमिक्ष्वाकुदायादो रामो नाम जनैः श्रुतः । तस्यैवावरजं विद्धि भ्रातरं मां च लक्ष्मणम्॥१३॥
मात्रा प्रतिहते राज्ये रामः प्रव्राजितो वनम् । मया सह चरत्येष भार्यया च महद्वनम् ॥१४॥
अस्य देवप्रभावस्य वसतो विजने वने । रक्षसापहृता भार्या यामिच्छन्ताविहागतौ ॥१५॥
त्वं तु को वा किमर्थं वा कबन्धसदृशो वने । आस्येनोरसि दीप्तेन भग्नजङ्घो विचेष्टसे ॥१६॥
एवमुक्तः कबन्धस्तु लक्ष्मणेनोत्तरं वचः । उवाच वचनं प्रीतस्तदिन्द्रवचनं स्मरन् ॥१७॥
स्वागतं वां नरव्याघ्रौ दिष्ट्या पश्यामि वामहम्।दिष्ट्या चेमौ निकृत्तौ मे युवाभ्यां बाहुबन्धनौ॥१८॥

अपनी भुजाओंके बलसे सबको जीत चुका है, अब हमलोगोंको जीतना चाहता है ॥ ५ ॥ प्रतिकार करनेमें असमर्थ प्राणियोंका वध करना राजाके लिए अनुचित है, जिसप्रकार यज्ञमें आए पशु का वधकरना ॥६॥ उन दोनोंकी ये बातें सुनकर राक्षसने क्रोध किया और भयानक मुँह बा कर उन दोनोंको खानेके लिए वह चला ॥७॥ देशकाल जाननेवाले उन दोनोंने प्रसन्न होकर उसकी बाँह कन्धेसे काट डाली ॥ ८ ॥ उसकी दाहिनी ओर खड़े रामचन्द्रने तलवारसे अनायास दाहिनी बाँह और बाँईं ओर खड़े वीर लक्ष्मणने बाँईं बाँह काट डाली ॥ ९ ॥ बाहुके कट जानेसे वह महाबाहु राक्षस भयानक शब्द करता हुआ पृथिवीमें गिर पड़ा । मेघके समान अपने भयानक शब्दसे उसने पृथिवी और आकाशको गुँजा दिया ॥ १० ॥ कटी बाँहोंको देखकर रुधिरमें सना हुआ दुःखी वह दानव बोला—वीर, तुम दोनों कौन हो ? ॥ ११ ॥ उसके ऐसा पूछने पर शुभ-लक्षण लक्ष्मणने कबन्धको रामचन्द्रका परिचय दिया ॥ १२ ॥ ये इक्ष्वाकुवंशके उत्तराधिकारी रामनामसे लोकोंमें प्रसिद्ध हैं, मैं इन्हींका छोटा भाई हूँ, लक्ष्मण मेरा नाम है ॥ १३ ॥ भ्राताके द्वारा राज्यमें रुकावट होनेसे रामचन्द्र वन चले आये । मेरे और अपनी स्त्रीके साथ ये इस भयानक वनमें भ्रमण करते हैं ॥ १४ ॥ देवप्रभाव रामचन्द्र वनमें जब निवास करते थे, उनकी स्त्रीको राक्षसने हर लिया । उसे ढूँढते हुए हम लोग यहां आये हैं ॥ १५ ॥ तुम कौन हो, कबन्धके समान वनमें क्यों पड़े हो ? तुम्हारी जंघाएं टूटी हैं, तुम्हारी छातीमें मुँह है और तुम यहां लुढ़क रहे हो ॥ १६ ॥ लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर इन्द्रका वचन स्मरण करता हुआ कबन्ध प्रसन्नतापूर्वक बोला ॥ १७ ॥ तुम दोनों श्रेष्ठ मनुष्योंका मैं स्वागत करता हूँ । प्रसन्नताकी बात है कि तुम दोनोंको मैंने यहां देखा । इससे भी प्रसन्नता है कि तुम दोनोंने यह बाहुरूपी मेरा बन्धन काट

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विरूपं यच्च मे रूपं प्राप्तं ह्याविनयाद्यथा। तन्मे शृणु नरव्याघ्र तत्त्वतः शंसतस्तव ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ७१

पुरा राम महाबाहो महाबलपराक्रमम्। रूपमासीन्ममाचिन्त्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ १ ॥
यथा सूर्यस्य सोमस्य शक्रस्य च यथा वपुः। सोऽहं रूपमिदं कृत्वा लोकत्रासनं महत् ॥ २ ॥
ऋषीन्वनगतान्राम त्रासयामि ततस्ततः। ततः स्थूलशिरा नाम महर्षिः कोपितो मया ॥ ३ ॥
स चिन्वन्विविधं वन्यं रूपेणानेन धर्षितः। तेनाहमुक्तः प्रेक्ष्यैवं घोरशापाभिधायिना ॥ ४ ॥
एतदेवं नृशंसं ते रूपमस्तु विगर्हितम्। स मया याचितः क्रुद्धःशापस्यान्तो भवेदिति॥ ५ ॥
अभिशापकृतस्येति तेनेदं भाषितं वचः। यदा छित्त्वा भुजौ रामस्त्वां दहेद्विजने वने ॥ ६ ॥
तदा त्वं प्राप्स्यसे रूपं स्वमेव विपुलं शुभम्। श्रिया विराजितं पुत्र दनोस्त्वं विद्धि लक्ष्मण ॥ ७ ॥
इन्द्रशापादिदं रूपं प्राप्तमेवं रणाजिरे। अहं हि तपसोग्रेण पितामहमतोषयम् ॥ ८ ॥
दीर्घमायुः स मे प्रादात्ततो मां विभ्रमोऽस्पृशत्। दीर्घमायुर्मया प्राप्तं किं मां शक्रः करिष्यति ॥ ९ ॥
इत्येवं बुद्धिमास्थाय रणे शक्रमधर्षयम्। तस्य बाहुप्रमुक्तेन वज्रेण शतपर्वणा ॥१०॥

दिया। यह जो मेरा रूप कुरूपहो गया है, यह मेरेही अविनयके कारण हुआ है। मैं तुम लोगोंसे ठीक-ठीक कहता हूं, सुनो ॥ १८, १९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका सत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७० ॥

महाबाहु राम, मैं बड़ा पराक्रमी और बली था। मेरा अचिन्तनीय रूप तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध था ॥ १ ॥ सूर्य चन्द्रमा और इन्द्रका जैसा रूप है, वैसा ही मेरा भी रूप था। पर लोगोंको भयभीत करनेके लिए यह राक्षसका रूप बनाकर वनमें रहनेवाले ऋषियोंको मैं डरवाता था। अनन्तर स्थूलाशरा नामक ऋषि मुझपर अप्रसन्न हो गये ॥ २, ३ ॥ वे तरह-तरहके जंगली फल चुन रहे थे, मैंने उन्हें इस रूपसे डरवा दिया। भयानक शाप देनेवाले वे मुनि मुझे देखकर बोले ॥ ४ ॥ यही क्रूर और निन्दित रूप तुम्हारा हमेशा हो। मैंने उनसे प्रार्थना की कि महाराज, मेरे अपराधके कारण आपने जो यह शाप दिया है, इसका अन्त कीजिए। तब वे बोले कि जब तुम्हारे हाथ काटकर रामचन्द्र तुम्हें निर्जन वनमें जलावेंगे तभी तुम अपना सुन्दर रूप पाओगे। लक्ष्मण-मैं दनुका सुन्दर पुत्र हूँ ॥ ५, ६, ७ ॥ इन्द्रके शापसे युद्ध-क्षेत्रमें मैंने यह कबन्धके समान रूप पाया। मुनिके शाप देनेके पश्चात् उग्र तपस्यासे मैंने ब्रह्माको प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ उन्होंने मुझे दीर्घायु बनाया, जिससे मुझे अहंकार हो गया। मैंने दीर्घायु पायी है, इन्द्र युद्धमें मेरा क्या कर सकता है ॥ ९ ॥ इस प्रकार निश्चय कर मैंने इन्द्रको युद्धके लिए ललकारा। उनके हाथसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सक्थिनी च शिरश्चैव शरीरे संप्रवेशितम् । स मया याच्यमानः सन्नानयद्यमसादनम् ॥११॥
पितामहवचः सत्यं तदस्त्विति ममाब्रवीत् । अनाहारः कथं शक्तो भग्नसक्थिशिरोमुखः ॥१२॥
वज्रिणाभिहतः कालं सुदीर्घमपि जीवितुम् । स एवमुक्तः शक्रो मे बाहू योजनमायतौ ॥१३॥
तदा चास्यं च मे कुक्षौ तीक्ष्णदंष्ट्रमकल्पयत् । सोऽहंभुजाभ्यांदीर्घाभ्यांसंक्षिप्यास्मिन्वनेचरान् १४
सिंहद्वीपिमृगव्याघ्रान्भक्षयामि समन्ततः । स तु मामब्रवीदिन्द्रो यदा रामः सलक्ष्मणः ॥१५॥
छेत्स्यते समरे बाहू तदा स्वर्गं गमिष्यासि । अनेन वपुषा तात वनेऽस्मिन्राजसत्तम ॥१६॥
यद्यत्पश्यामि सर्वस्य ग्रहणं साधु रोचये । अवश्यं ग्रहणं रामो मन्येऽहं समुपैष्यति ॥१७॥
इमां बुद्धिं पुरस्कृत्य देहन्यासकृतश्रमः । स त्वं रामोऽसि भद्रं ते नाहमन्येन राघव ॥१८॥
शक्यो हन्तुं यथातत्वमेवमुक्तं महर्षिणा । अहं हि मतिसाचिव्यं करिष्यामि नरर्षभ ॥१९॥
मित्रं चैवोपदेक्ष्यामि युवाभ्यां संस्कृतोऽग्निना। एवमुक्तस्तु धर्मात्मा दनुना तेन राघवः ॥२०॥
इदं जगाद वचनं लक्ष्मणस्य च पश्यतः । रावणेन हृता भार्या सीता मम यशस्विनी ॥२१॥
निष्क्रान्तस्यजनस्थानात्सह भ्रात्रायथासुखम् । नाममात्रं तु जानामि न रूपं तस्य रक्षसः ॥२२॥
निवासं वा प्रभावं वा वयं तस्य न विद्महे । शोकार्तानामनाथानामेवं विपरिधावताम् ॥२३॥
कारुण्यं सदृशं कर्तुमुपकारेण वर्तताम् ।काष्ठान्यानीय भग्नानिकालेशुष्काणि कुञ्जरैः॥२४॥

छूटे हुए सौ-पोरके वज्रसे मेरा मस्तक और जांघें शरीरमें घुस गयीं। मेरे प्रार्थना करने पर उन्होंने मुझे मारा नहीं ॥ १०, ११ ॥ इन्द्रने कहा कि पितामहकी बात सच्ची रहे। मैंने उनसे कहा-मेरी जांघे मस्तक और मुंह आपके वज्रसे टूट गए हैं। बिना खाए मैं बहुत दिनोंतक कैसे जी सकूंगा। मेरे ऐसा कहनेपर इन्द्रने एक योजन लम्बी बांह तथा पेटमें तीखे दांतवाला मुंह बना दिया। इस प्रकार वह मैं अपनी लम्बी भुजाओंसे वनचर सिंह, हाथी, मृग, बाघ आदिको चारो ओरसे खींच कर खाता हूँ। इन्द्रने मुझसे कहा कि राम और लक्ष्मण युद्धमें जब तुम्हारी बाँह काटेंगे, तब तुम स्वर्ग जाओगे। राजश्रेष्ठ, इस शरीरसे इस वनमें जो-जो चीज मैं अच्छी देखता हूं, उन्हें पकड़ लेता हूँ। इसलिए कि किसी दिन रामचन्द्र भी मेरी पकड़में आ जायँगे। ऐसा निश्चय करके मैं शरीर त्याग करनेका विचार करता आया हूँ। वही तुम राम हो। तुम्हारा कल्याण हो। रामचन्द्र, तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई मुझे नहीं मार सकता। यह बात महर्षिने मुझसे कही है. नर श्रेष्ठ, मैं तुम लोगोंको सलाह देकर तुम्हारी सहायता करूंगा ॥ १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९ ॥ जब तुम दोनों मेरा अग्निसंस्कार करोगे ? तब मैं तुम्हें मित्रताका परामर्श दूंगा। दानवके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा रामचन्द्र लक्ष्मणके सामने उससे बोले—मेरी यशस्विनी स्त्री सीताको रावण हर ले गया है ॥ २०, २१ ॥ हम उस समय अपने भाईके साथ जनस्थानसे बाहर चले गये थे। उस राक्षसका मैं केवल नाम जानता हूँ। उसे देखा नहीं है ॥ २२ ॥ वह कहां रहता है, उसका कैसा प्रभाव है, यह सब कुछभी हमलोग नहीं जानते। हमलोग शोकसे पीड़ित, अनाथ, वनमें भटक रहे हैं। हमलोगोंका उपकार करके तुम उचित कृपा करो। समयपर हाथियोंके द्वारा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धक्ष्यामस्त्वां वयं वीर श्वभ्रे महति कल्पिते । स त्वं सीतां समाचक्ष्व येन वा यत्र वा हृता ॥२५॥
कुरु कल्याणमत्यर्थं यदि जानासि तत्वतः । एवमुक्तस्तु रामेण वाक्यं दनुरनुत्तमम् ॥२६॥
प्रोवाच कुशलो वक्ता वक्तारमपि राघवम् । दिव्यमस्तिन मेज्ञानं नाभिजानामि मैथिलीम्॥२७॥
यस्तां वक्ष्यति तं वक्ष्ये दग्धः स्वं रूपमास्थितः । योऽभिजानाति तद्रक्षस्तद्वक्ष्ये राम तत्परम् ॥२८॥
अदग्धस्य हि विज्ञातुं शक्तिरस्ति न मे प्रभो । राक्षसं तु महावीर्यं सीता येन हृता तव ॥२९॥
विज्ञानं हि महद्भ्रष्टं शापदोषेण राघव । स्वकृतेन मया प्राप्तं रूपं लोकविगर्हितम् ॥३०॥
किंतु यावन्न यात्यस्तं सविता श्रान्तवाहनः । तावन्मामवटे क्षिप्त्वा दह राम यथाविधि ॥३१॥
दग्धस्त्वयाऽहमवटे न्यायेन रघुनन्दन । वक्ष्यामि तं महावीर यस्तं वेत्स्यति राक्षसम्॥३२॥
तेन सख्यं च कर्तव्यं न्याय्यवृत्तेन राघव । कल्पयिष्यति ते वीर साहाय्यं लघुविक्रम ॥३३॥
नहि तस्यास्त्यविज्ञातं त्रिषु लोकेषु राघव । सर्वान्परिवृतो लोकान्पुरा वै कारणान्तरे ॥३४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

तोड़ी गई सूखी लकड़ियाँ लाकर और बड़ा खड्डा खोदकर वीर, तुम्हें हम जला देंगे । तुम बतलाओ, सीता कहां है, उसे कौन ले गया है और कहां ले गया है ॥ २३, २४, २५ ॥ यदि तुम सीताका पता जानते हो तो हम लोगोंका अपरिसीम कल्याण करो । रामचन्द्रके ऐसा कहने पर सुवक्ता वह दानव बोलनेमें निपुण रामचन्द्रसे बोला—इस समय मुझे दिव्यज्ञान नहीं है। मुझे सीताकी बात मालूम नहीं है ॥ २६, २७ ॥ जलाये जाने पर जब मुझे अपना रूप प्राप्त होगा, तब मैं तुम लोगोंको उसका पता बताऊंगा, जिससे सीताका पता लगे । रामचन्द्र, तभी उस राक्षसको जाननेवालेका पता मैं बतला सकूंगा ॥ २८ ॥ बिना जले हुए, जाननेकी शक्ति मुझमें नहीं है । महा पराक्रमी जिस राक्षसने सीताका हरण किया है, उसको मैं नहीं जान सकता ॥ २९ ॥ शापके कारण मेरा ज्ञान नष्ट हो गया है । अपने ही कारण मैंने यह लोकनिंदित रूप पाया है ॥ ३० ॥ रामचन्द्र, जब तक घोड़ोंके थक जानेसे सूर्य अस्ताचल पर न चले जाएं, तभी तक गड्ढा खोदकर विधिपूर्वक तुम मुझे जला दो ॥ ३१ ॥ तुम्हारे द्वारा विधिपूर्वक गढ़ेमें जलाये जाने पर महावीर, मैं उसका पता बतलाऊंगा, जो उस राक्षसको जानता होगा ॥ ३२ ॥ उत्तम व्यवहारसे तुम उससे मैत्री कर लेना, वह तुम्हारी सहायता करेगा ॥ ३३ ॥ रामचन्द्र, तीनों लोकोंकी कोई भी बात उसे अज्ञात नहीं है । पहले एक कारणसे वह सब लोकोंमें घूम आया है ॥ ३४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका इकहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७१ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्विसप्ततितमः सर्गः ७२

एवमुक्तौ तु तौ वीरौ कबन्धेन नरेश्वरौ । गिरिप्रदरमासाद्य पावकं विससर्जतुः ॥ १ ॥
लक्ष्मणस्तु महोल्काभिर्ज्वलिताभिः समन्ततः । चितामादीपयामास सा प्रजज्वाल सर्वतः ॥ २ ॥
तच्छरीरं कबन्धस्य घृतपिण्डोपमं महत् । मेदसा पच्यमानस्य मन्दं दहत पावकः ॥ ३ ॥
स विधूय चितामाशु विधूमोऽग्निरिवोत्थितः । अरजे वाससी बिभ्रन्माल्यं दिव्यं महाबलः ॥ ४ ॥
ततश्चिताया वेगेन भास्वरो विरजाम्बरः । उत्पपाताशु संहृष्टः सर्वप्रत्यङ्गभूषणः ॥ ५ ॥
विमाने भास्वरे तिष्ठन्हंसयुक्ते यशस्करे । प्रभया च महातेजा दिशो दश विराजयन् ॥ ६ ॥
सोऽन्तरिक्षगतो वाक्यं कबन्धो राममब्रवीत् । शृणु राघव तत्त्वेन यथा सीतामवाप्स्यसि ॥ ७ ॥
राम षड्युक्तयो लोके याभिः सर्वं विमृश्यते । परिमृष्टो दशान्तेन दशाभागेन सेव्यते ॥ ८ ॥
दशाभागगतो हीनस्त्वं हि राम सलक्ष्मणः । यत्कृते व्यसनं प्राप्तं त्वया दारप्रधर्षणम् ॥ ९ ॥
तदवश्यं त्वया कार्यः स सुहृत्सुहृदां वर । अकृत्वा नहि ते सिद्धिमहं पश्यामि चिन्तयन् ॥ १० ॥
श्रूयतां राम वक्ष्यामि सुग्रीवो नाम वानरः । भ्रात्रा निरस्तः क्रुद्धेन वालिना शक्रसूनुना ॥ ११ ॥
ऋष्यमूके गिरिवरे पम्पापर्यन्तशोभिते । निवसत्यात्मवान्वीरश्चतुर्भिः सह वानरैः ॥ १२ ॥
वानरेन्द्रो महावीर्यस्तेजोवानमितप्रभः । सत्यसंधो विनीतश्च धृतिमान्मतिमान्महान् ॥ १३ ॥

कबन्धके ऐसा कहनेपर नरश्रेष्ठ वीर दोनों राम और लक्ष्मणने पर्वतके एक गढ़ेमें कबन्धको ले जा कर उसमें आग लगा दी ॥ १ ॥ लक्ष्मणने जली हुई लुकारियोंसे चारो ओरसे वह चिता जलायी और वह जल उठी ॥ २ ॥ बहुत बड़े घृत्पिण्डके समान कबन्धके उस शरीरको अधिक चर्बी होनेके कारण धीरे-धीरे अग्निने जलाया ॥ ३ ॥ वह कबन्ध शीघ्र ही चिताको कँपाकर धूमहीन अग्निके समान उसमें से निकला । निर्मल दो वस्त्र और दिव्य माला वह धारण किये हुए था ॥ ४ ॥ वह शीघ्रतापूर्वक चितासे निकला, वह समस्त शरीरमें गहने पहने था ॥ ५ ॥ हंसके सुंदर और यश बढ़ानेवाले रथपर वह बैठा था । वह तेजस्वी अपनी प्रभासे दशों दिशाओंको सुशोभित करता था ॥ ६ ॥ वह कबन्ध आकाशमें जाकर रामचन्द्रसे बोला—राम, यथार्थ बात सुनो, जिससे तुम सीताको पासको ॥ ७ ॥ संसारमें सन्धि-विग्रह आदि छः युक्तियाँ हैं, जिनसे विचार कर राजा अपना मनोरथ पूर्ण करता है । बुरी दशा करनेवाले कालसे जब मनुष्य आक्रान्त होता है तब उसे दुर्दशा भोगनी ही पड़ती है ॥ ८ ॥ राम, उसी दुर्दशामें पड़नेके कारण तुम और लक्ष्मण दोनों हीन हो गये हो । इसके कारण स्त्रीके हरनेका कष्ट तुमको मिला है ॥ ९ ॥ अतएव मित्रोंमें श्रेष्ठ उसको तुम अपना मित्र बनाओ, बिना उसके मित्र बनाए सोचनेपर भी मैं तुम्हारी सिद्धि नहीं देखता ॥ १० ॥ राम, सुनो कहता हूँ, सुग्रीव नामका एक वानर है । इन्द्रके पुत्र उसके भाई वालिने उसे क्रोध करके निकाल दिया है ॥ ११ ॥ पम्पाके तीरपर, ऋष्यमूक नामक पर्वतपर, वह आत्मविश्वासी वीर चार वानरोंके साथ रहता है ॥ १२ ॥ वह वानरराज बड़ा बली, तेजस्वी और अमित प्रभाववाला

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दक्षः प्रगल्भो द्युतिमान्महाबलपराक्रमः । भ्रात्रा विवासितो वीर राज्यहेतोर्महात्मना ॥१४॥
स ते सहायो मित्रं च सीतायाः परिमार्गणे । भविष्यति हि ते राम मा च शोके मनः कृथाः॥१५॥
भवितव्यं हि तच्चापि न तच्छक्यमिहान्यथा । कर्तुमिक्ष्वाकुशार्दूल कालो हि दुरतिक्रमः ॥१६॥
गच्छ शीघ्रमितो वीर सुग्रीवं तं महाबलम् । वयस्यं तं कुरु क्षिप्रमितो गत्वाऽद्य राघव ॥१७॥
अद्रोहाय समागम्य दीप्यमाने विभावसौ । न च ते सोऽवमन्तव्यः सुग्रीवो वानराधिपः॥१८॥
कृतज्ञः कामरूपी च सहायार्थी च वीर्यवान् । शक्तौ ह्यद्य युवां कर्तुं कार्यं तस्य चिकीर्षितम् ॥१९॥
कृतार्थो वाकृतार्थो वा तव कृत्यं करिष्यति । स ऋक्षरजसः पुत्रः पम्पामटति शङ्कितः ॥२०॥
भास्करस्यौरसः पुत्रो वालिना कृताकिल्बिषः । संनिधायायुधं क्षिप्रमृष्यमूकालयं कपिम् ॥२१॥
कुरु राघव सत्येन वयस्यं वनचारिणम् । स हि स्थानानिकात्स्न्र्येनसर्वाणिकपिकुञ्जरः॥२२॥
नरमांसाशिनां लोके नैपुण्यादधिगच्छति । न तस्याविदितं लोके किंचिदस्ति हि राघव ॥२३॥
यावत्सूर्यः प्रतपति सहस्रांशुः परंतप । स नदीर्विपुलाञ्शैलान्गिरिदुर्गाणि कन्दरान्॥२४॥
अन्विष्य वानरैः सार्धं पत्नीं तेऽधिगमिष्यति । वानरांश्च महाकायान्प्रेषयिष्यति राघव ॥२५॥
दिशो विचेतुं तां सीतां त्वद्वियोगेन शोचतीम् । अन्वेष्यति वरारोहां मैथिलीं रावणालये ॥२६॥

है । सत्यप्रतिज्ञ, विनयी, धीर और महाबुद्धिमान है ॥ १३ ॥ वह निपुण, पटु, कान्तिवान, बलवान् और पराक्रमी है । महात्मा भाईने राज्यके कारण उसे निकाल दिया है ॥ १४ ॥ वह तुम्हारा मित्र होगा और सीताको ढूँढनेमें सहायता देगा । अतएव राम, तुम अपने मनमें सोच मत करो ॥ १५ ॥ इक्ष्वाकु-सिंह, भावीको कोई मिटा नहीं सकता, क्योंकि कालका अतिक्रमण नहीं हो सकता ॥ १६ ॥ रामचन्द्र, तुम शीघ्र यहांसे महाबली सुग्रीवके पास जाओ । यहांसे शीघ्र जाकर आज ही उसे अपना मित्र बनाओ ॥ १७ ॥ तुम दोनों मिलकर परस्पर द्रोह न करनेके लिए अग्नि जलाकर प्रतिज्ञा करना । तुम वानरराज सुग्रीवका कभी तिरस्कार न करना ॥ १८ ॥ वह कृतज्ञ है, इच्छानुसार रूप धारण कर सकता है, पराक्रमी है, स्वयं सहायता चाहता है । जो वह चाहता है, उसको शीघ्र करनेकी शक्ति तुम दोनोंमें है ॥ १९ ॥ तुम लोग उसका मनोरथ पूरा करो । वह तुम्हारा काम करेगा । वह ऋक्षरजा (सुग्रीवकी माता का नाम) का पुत्र है और शंकित होकर पम्पाके पास घूमता है ॥ २० ॥ सूर्यसे वह उत्पन्न हुआ है । वालिसे उसका विरोध हो गया है । ऋष्यमूकपर रहनेवाले वानरसे शस्त्रोंके सामने सत्यकी शपथ लेकर तुम मित्रता करो । वह कपिश्रेष्ठ मांस खानेवाले राक्षसोंके सब स्थानोंको अच्छी तरह जानता है । यहां ऐसी कोई भी बात नहीं है जिसे वह न जाने ॥ २१, २२, २३ ॥ परन्तप, जहाँ तक सूर्यका प्रकाश फैलता है वहां तक नदियों, विशाल पर्वतों, पर्वतकी गुफाओं और खोहोंको वानरोंसे ढूँढवाकर वह तुम्हारी स्त्रीका पता लगा देगा । विशाल शरीरवाले वानरोंको भी वह तुम्हारे वियोगमें शोक करती हुई सीताको ढूँढनेके लिए दिशाओंमें भेजेगा ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स मेरुशृङ्गाग्रगतामनिन्दितां प्रविश्य पातालतलेऽपि वाश्रिताम् ।
प्लवङ्गमानामृषभस्तव प्रियां निहत्य रक्षांसि पुनः प्रदास्यति ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥७२॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३

दर्शयित्वा तु रामाय सीतायाः परिमार्गणे । वाक्यमन्वर्थमर्थज्ञः कबन्धः पुनरब्रवीत् ॥ १ ॥
एष राम शिवः पन्था यत्रैते पुष्पिता द्रुमाः । प्रतीचीं दिशमाश्रित्य प्रकाशन्ते मनोरमाः ॥ २ ॥
जम्बूप्रियालपनसा न्यग्रोधप्लक्षतिन्दुकाः । अश्वत्थाःकर्णिकाराश्च चूताश्चान्येचपादपाः॥ ३ ॥
धन्वना नागवृक्षाश्च तिलका नक्तमालकाः । नीलाशोकाःकदम्बाश्च करवीराश्च पुष्पिताः॥ ४ ॥
अग्निमुख्या अशोकाश्च सुरक्ताः पारिभद्रकाः । तानारुह्याथवा भूमौ पातयित्वा च तान्बलात् ॥ ५ ॥
फलान्यमृतकल्पानि भक्षयित्वा गमिष्यथः । तदतिक्रम्य काकुत्स्थ वनं पुष्पितपादपम् ॥ ६ ॥
नन्दनप्रतिमं त्वन्यत्कुरवस्तूत्तरा इव । सर्वकालफला यत्र पादपा मधुरस्रवाः ॥ ७ ॥
सर्वे च ऋतवस्तत्र वने चैत्ररथे यथा । फलभारनतास्तत्र महाविटपधारिणः ॥ ८ ॥
शोभन्ते सर्वतस्तत्र मेघपर्वतसंनिभाः । तानारुह्याथवा भूमौ पातयित्वाथवा सुखम् ॥ ९ ॥

रावणके घरमें भी वह सीता ढूँढवावेगा ॥ २४, २५, २६ ॥ तुम्हारी प्रिया, मेरु पर्वत के शिखरपर गयी हो अथवा पातालमें गयी हो, वानरोंका राजा सुग्रीव राक्षसोंको मारकर उसे तुम्हारे पास ला देगा ॥ २७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका बहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७२ ॥

सीताके ढूँढनेका उपाय बतलाकर अर्थका ज्ञान रखनेवाला कबन्ध प्रयोजनयुक्त वचन पुनः बोला ॥ १ ॥ राम, पश्चिमकी ओर, जहाँ पुष्पित और मनोरम ये वृक्ष दिखायी पड़ते हैं, यही उत्तम मार्ग है ॥२॥ जामुन, पियाल, कटहल, बड़, पाकड़, तिन्दुक, पीपल, कर्णिकार, आम तथा धन्वन, नागवृक्ष, तिलक, नक्तमाल, नीलाशमू, कदम्ब, करवीर, अग्निमुख, अशोक, रक्तचन्दन, पारिभद्र आदि पुष्पित वृक्षोंपर चढ़कर अथवा बलसे उन्हींको नवाकर अमृतके समान उनके फल खाकर तुम लोग जाना । इसके लांघ जानेके बाद एकदम फूलाहुआ वन तुमलोगोंको मिलेगा ॥ ३, ४, ५, ६ ॥ वह नन्दनवनके समान है । सब काल फलनेवाले मीठे रसवाले वृक्ष वहां हैं, जैसे उत्तर कुरुमें ॥ ७ ॥ सब ऋतु उस वनमें वर्तमान रहती हैं, जिस प्रकार चैत्ररथ वन में । लम्बीशाखावाले वृक्ष फलके भारसे नये रहते हैं ॥ ७ ॥ मेघ और पर्वतके समान वे वृक्ष हैं, उनपर चढ़कर अथवा उनको नवाकर अमृतके समान फल तुमको लक्ष्मण देगा । वहां-से चलतेहुए एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर, वहांसे तीसरे पर्वतपर, इसी प्रकार एक वनसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

फलान्यमृतकल्पानि लक्ष्मणस्ते प्रदास्यति । चङ्क्रमन्तौवराञ्शैलाञ्शैलाच्छैलंवनाद्वनम् ॥१०॥
ततः पुष्करिणीं वीरौ पम्पां नाम गमिष्यथ । अशर्करामविभ्रंशां समतीर्थामशैवलाम् ॥११॥
राम संजातवालूकां कमलोत्पलशोभिताम् । तत्र हंसाः प्लवाः क्रौञ्चाः कुरराश्चैव राघव ॥१२॥
वल्गुस्वरा निकूजन्ति पम्पासाललगोचराः । नोद्विजन्ते नरान्दृष्ट्वा वधस्याकोविदाः पुरा ॥१३॥
घृतपिण्डोपमान्स्थूलांस्तान्द्विजान्भक्षयिष्यथ । रोहितांश्चक्रतुण्डांश्च नलमीनांश्च राघव ॥१४॥
पम्पायामिषुभिर्मत्स्यांस्तत्र राम वरान्हतान् । निस्त्वक्पक्षानयस्तप्तानकृशानेककण्टकान् ॥१५॥
तव भक्त्या समायुक्तो लक्ष्मणः संप्रदास्यति । भृशं तान्खादतो मत्स्यान्पम्पायाः पुष्पसंचये॥१६॥
पद्मगन्धि शिवं वारि सुखशीतमनामयम् । उद्धृत्य स तदा क्लिष्टं रूप्यस्फटिकसंनिभम्॥१७॥
अथ पुष्करपर्णेन लक्ष्मणः पाययिष्यति । स्थूलान्गिरिगुहाशय्यान्वानरान्वनचारिणः ॥१८॥
सायाह्ने विचरन्राम दर्शयिष्यति लक्ष्मणः । अपां लोभादुपावृत्तान्वृषभानिव नर्दतः ॥१९॥
स्थूलान्पीतांश्च पम्पायां द्रक्ष्यसि त्वं नरोत्तम । सायान्हे विचरन्राम विटपी माल्यधारिणः ॥२०॥
शिवोदकं च पम्पायां दृष्ट्वा शोकं विहास्यसि । सुमनोभिश्चितास्तत्र तिलका नक्तमालकाः ॥२१॥
उत्पलानि च फुल्लानि पङ्कजानि च राघव । न तानि कश्चिन्माल्यानि तत्रारोपयिता नरः ॥२२॥
न च वै ग्लानतां यान्ति न च शीर्यन्ति राघव । मतङ्गशिष्यास्तत्रासन्नृषयः सुसमाहिताः ॥२३॥

दूसरे वनमें, इस प्रकार चलते हुए तुमलोग पम्पा नामक तालाबपर पहुंचोगे । वहां कंकड़ नहीं है, वहाँकी जगह टूटी-फूटी नहीं है, घाट बराबर है और उस तालाबमें सेवार नहीं है ॥ ९, १०, ११ ॥ उस तालाबके तीरपर बालु है और रक्तकमल तथा नीलकमलसे वह सुशोभित है । हंस, मेढ़क क्रौञ्च, कुरक आदि पम्पासलिलमें रहनेवाले बड़े मधुर स्वरमें बोलते हैं । आदमियोंको देखकर वे डरते नहीं, क्योंकि मारेजानेकी बात उन्हें मालुम नहीं ॥ १२, १३ ॥ घृतपिण्डके समान मोटे उन पक्षियोंको खाना । रोहित, चक्रतुण्ड, जलमीन आदि पम्पाकी उत्तम मछलियोंको बाणसे मारकर उनके ऊपरकी त्वचा, पांख निकालकर आगमें तपाकर उनके कांटे निकाल कर, लक्ष्मण तुम्हारी भक्तिके कारण, तुमको देगा । तुम उन मछलियों-को खूब खाना । पम्पाके पुष्प समूहमें वर्तमान पद्मके समान गन्धवाला, उज्ज्वल जल सुखकर, ठंढा, रोग दूर करनेवाला, चांदी और स्फटिकके समान स्वच्छ, जलकमलके पत्तेसे निकाल कर लक्ष्मण तुमको पिलावेगा । पर्वतकी कन्दराओंमें रहनेवाले, वनमें विचरण करनेवाले, मोटे वानरोंको सायंकाल घूमनेके समय, लक्ष्मण तुमको दिखलावेगा । वे जलके लोभसे आवेंगे और साँड़ोंके समान गर्जेंगे । वे पीले और मोटे होंगे, नरश्रेष्ठ, उनको तुम पम्पातीरपर देखोगे । सायंकालमें घूमते हुए फूलोंवाले वृक्ष देखोगे ॥ १४, १५, १६, १७, १८, १९, २० ॥ पम्पाका स्वच्छ जल देखकर तुम अपना शोक भूल जाओगे । पुष्पोंसे युक्त तिलक और नक्तमाल वृक्ष, फूले हुए नीलकमल तथा अन्य प्रकारके कमल पम्पामें हैं । इन पुष्पोंको एकत्र करके रखनेवाला मनुष्य वहां नहीं है ॥ २१, २२ ॥ वे पुष्प न तो मुर्झाते हैं और न बिखरते हैं । (कारण सुनिए) मतंगके शिष्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तेषां भाराभितप्तानां वन्यमाहरतां गुरोः । ये प्रपेतुर्महीं तूर्णं शरीरात्स्वेदबिन्दवः ॥२४॥
तानि माल्यानि जातानि मुनीनां तपसा तदा । स्वेदबिन्दुसमुत्थानि न विनश्यन्ति राघव ॥२५॥
तेषां गतानामद्यापि दृश्यते परिचारिणी । श्रमणी शबरी नाम काकुत्स्थ चिरजीविनी॥२६॥
त्वां तु धर्मे स्थिता नित्यं सर्वभूतनमस्कृतम् । दृष्ट्वा देवोपमं राम स्वर्गलोकं गमिष्यति॥२७॥
ततस्तद्राम पम्पायास्तीरमाश्रित्य पश्चिमम् । आश्रमस्थानमतुलं गुह्यं काकुत्स्थ पश्यसि ॥२८॥
न तत्राक्रमितुं नागाः शक्नुवन्ति तदाश्रमे । ऋषेस्तस्य मतङ्गस्य विधानात्तच्च काननम् ॥२९॥
मतङ्गवनमित्येव विश्रुतं रघुनन्दन । तस्मिन्नन्दनसंकाशे देवारण्योपमे वने ॥३०॥
नानाविहगसंकीर्णे रंस्यसे राम निर्वृतः । ऋष्यमूकस्तु पम्पायाः पुरस्तात्पुष्पितद्रुमः ॥३१॥
सुदुःखारोहणश्चैव शिशुनागाभिरक्षितः । उदारो ब्रह्मणा चैव पूर्वकालेऽभिनिर्मितः ॥३२॥
शयानः पुरुषो राम तस्य शैलस्य मूर्धनि । यः स्वप्ने लभते वित्तं तत्प्रबुद्धोऽधिगच्छति ॥३३॥
यस्त्वेनं विषमाचारः पापकर्माऽधिरोहति । तत्रैव प्रहरन्त्येनं सुप्तमादाय राक्षसाः ॥३४॥
ततोऽपि शिशुनागानामाक्रन्दः श्रूयते महान् । क्रीडतां राम पम्पायां मतङ्गाश्रमवासिनाम् ॥३५॥
सक्ता रुधिरधाराभिः संहत्य परमद्विपाः । प्रचरन्ति पृथक्कीर्णा मेघवर्णास्तरस्विनः ॥३६॥
ते तत्र पीत्वा पानीयं विमलं चारु शोभनम् । अत्यन्तसुखसंस्पर्शं सर्वगन्धसमन्वितम् ॥३७॥

ऋषि वहां सावधान होकर रहते थे । गुरुके लिए जंगली वस्तुओंको ले आनेके समय उनके भार-से वे गरमा जाते थे, जिससे उनके शरीरसे पसीनेके बिन्दु गिरे ॥ २३, २४ ॥ मुनियोंकी तपस्याके कारण वे बिन्दु माला हो गए । इसी कारण वे नष्ट नहीं होते । वे ऋषि तो चले गये, पर उनकी सेवा करनेवाली, शबरी नामकी संन्यासिनी, जो दीर्घजीविनी है, आज भी वहां है ॥ २६ ॥ धर्माचरण करनेवाली शबरी सब प्राणियोंके द्वारा नमस्कृत देवतुल्य तुमको देखकर आज स्वर्गलोकमें जायगी ॥ २७ ॥ रामचन्द्र, पुनः पम्पाके तीरसे पश्चिमकी ओर बहुतही सुन्दर और गुप्त आश्रम तुम देखोगे ॥ २८ ॥ हाथी उस आश्रम पर आक्रमण नहीं कर सकते। उस आश्रमके पास जो वन है, वह मतंग ऋषिका बनाया है; अतएव मतंग वनके नामसे वह प्रसिद्ध है । नन्दनवनके समान तथा देवताओंके वनके समान अनेक पक्षियोंसे भरे हुए उस वनमें प्रसन्न होकर तुम रमण करना । पुष्पवाले वृक्षोंसे युक्त ऋष्यमूक पम्पाके आगे है ॥२९,३०,३१॥ बड़े दुखसे उसपर चढ़ा जा सकता है । छोटे-छोटे सांप उसकी रक्षा करते हैं । बहुत बड़ा है। बहुत पहले ब्रह्माने उसे बनाया था ॥ ३२ ॥ उस पर्वतके शिखरपर सोया हुआ मनुष्य स्वप्नमें जो धन पानेका स्वप्न देखता है जागने पर उसे वह धन मिलता है॥३३॥ जो दुराचारी पापी इस पर्वतपर चढ़ते हैं उनको सोनेके समय राक्षस लोग मारते हैं ॥ ३४ ॥राम चन्द्र, मंतगाश्रम-में रहनेवाले, पम्पासरमें क्रीड़ा करनेवाले, छोटे-छोटे हाथियोंकी विशाल कलरवध्वनि वहींसे सुन पड़ती है ॥ ३५ ॥ लाल मदके प्रवाहसे युक्त जो बड़े-बड़े हाथी हैं वे अपनी जातिके हाथियोंसे मिलकर तथा विजातियोंसे हटकर चलते हैं, वे मेघके समान काले, तेज चलने-वाले हाथी, निर्मल उत्तम सब गन्धोंसे युक्त, छूनेमें अत्यन्त सुखकर, पम्पाका जल पीकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निवृत्ताः संविगाहन्ते वनानि वनगोचराः । ऋक्षांश्च द्वीपिनश्चैव नीलकोमलकप्रभान् ॥३८॥
रुरूनपेतानजयान्दृष्ट्वा शोकं प्रहास्यसि । राम तस्य तु शैलस्य महती शोभते गुहा ॥३९॥
शिलापिधाना काकुत्स्थ दुःखं चास्याःप्रवेशनम्। तस्या गुहायाः प्राग्द्वारे महाञ्शीतोदको ह्रदः ॥४०॥
बहुमूलफलो रम्यो नानानगसमाकुलः । तस्यां वसति धर्मात्मा सुग्रीवः सह वानरैः ॥४१॥
कदाचिच्छिखरे तस्य पर्वतस्यापि तिष्ठति । कबन्धस्त्वनुशास्यैवं तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥४२॥
स्रग्वी भास्करवर्णाभः खेऽभ्यरोचत वीर्यवान् । तं तु खस्थं महाभागं तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥४३॥
प्रस्थितौ त्वं व्रजस्वेति वाक्यमूचतुरन्तिके । गम्यतां कार्यसिद्ध्यर्थमिति तावब्रवीत्स च ॥४४॥
सुप्रीतौ तावनुज्ञाप्य कबन्धः प्रस्थितस्तदा ॥४५॥
स तत्कबन्धः प्रतिपद्य रूपं वृतः श्रिया भास्वरसर्वदेहः ।
निदर्शयन्राममवेक्ष्य खस्थः सख्यं कुरुष्वेति तदाभ्युवाच ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४

तौ कबन्धेन तं मार्गं पम्पाया दर्शितं वने । आतस्थतुर्दिशं गृह्य प्रतीचीं नृवरात्मजौ ॥ १ ॥
तौ शैलेष्वाचितानेकान्क्षौद्रपुष्पफलद्रुमान् । वीक्षन्तौ जग्मतुर्द्रष्टुं सुग्रीवं रामलक्ष्मणौ ॥ २ ॥

प्रसन्नतापूर्वक वनमें चले जाते हैं। नीलमणिके समान कोमल प्रभावाले भालुओं और बाघों-को, शश नामके मृगोंको—जिन्हें पराजय होनेका सन्देह नहीं है—देखकर तुम अपना शोक भूल जाओगे। राम, उस पर्वतकी गुफा बहुत बड़ी है ॥ ३६, ३७, ३८, ३९ ॥ उसका द्वार पत्थरसे ढका हुआ है, बड़े कष्टसे उसमें प्रवेश किया जा सकता है। उस गुहाके पूर्वके द्वारपर बहुत बड़ा ठंढे जलका तालाब है ॥ ४० ॥ वहां बहुत फल-मूल होता है, अनेक पर्वतोंसे वह स्थान भरा हुआ है, बड़ाही रमणीय है, धर्मात्मा सुग्रीव वानरोंके साथ वहीं रहते हैं ॥ ४१ ॥ कभी-कभी पर्वतके शिखरपर भी रहते हैं। उन दोनों राम लक्ष्मणको इस प्रकार बतलाकर सूर्यके समान प्रकाशमान मालाधारी और पराक्रमी कबन्ध आकाशमें सुशोभित हुआ। उस महाभाग कबन्धको आकाशमें देखकर राम लक्ष्मण 'तुम जाओ' ऐसा कबन्धके पास जाकर बोले और स्वयं प्रस्थित हुए। कार्य-सिद्धि-के लिए तुमलोग जाओ—ऐसा कबन्धने भी इन दोनोंसे कहा ॥ ४२, ४३, ४४ ॥ प्रसन्न राम और लक्ष्मणसे आज्ञा लेकर कबन्ध भी प्रस्थित हुआ ॥ ४५ ॥ अपना रूप पानेसे कबन्धका समस्त शरीर शोभासे दीप्तिमान होगया, वह आकाशमें स्थित होकर रामचन्द्रको बतलाता हुआ 'मत्री करो' ऐसा बोला ॥ ४६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका तिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७३ ॥

वे दोनों कबन्धके बतलाए मार्गमें पम्पा जानेके लिए पश्चिम दिशाकी ओर चले ॥ १ ॥ वे दोनों राम और लक्ष्मण पर्वतोंके अनेक वृक्षोंको, जिनमें मधु पुष्प और फल थे, देखते हुए सुग्रीवको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कृत्वा तु शैलपृष्ठे तु तौ वासं रघुनन्दनौ । पम्पायाः पश्चिमं तीरं राघवावुपतस्थतुः ॥ ६ ॥
तौ पुष्करिण्याः पम्पायास्तीरमासाद्य पश्चिमम् । अपश्यतां ततस्तत्र शबर्या रम्यमाश्रमम् ॥ ४ ॥
तौ तमाश्रममासाद्य द्रुमैर्बहुभिरावृतम् । सुरम्यमभिवीक्षन्तौ शबरीमभ्युपेयतुः ॥ ५ ॥
तौ दृष्ट्वा तु तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः । पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥ ६ ॥
पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद्यथाविधि । तामुवाच ततो रामः श्रमणीं धर्मसंस्थिताम् ॥ ७ ॥
कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः । कच्चित्ते नियतः कोप आहारश्च तपोधने ॥ ८ ॥
कच्चित्ते नियमाःप्राप्ताः कच्चित्ते मनसः सुखम् । कच्चित्ते गुरुशुश्रूषा सफला चारुभाषिणि ॥ ९ ॥
रामेण तापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसंमता । शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्यवस्थिता ॥१०॥
अद्य प्राप्ता तपःसिद्धिस्तव संदर्शनान्मया । अद्य मे सफलं जन्म गुरवश्च सुपूजिताः ॥११॥
अद्य मे सफलं तप्तं स्वर्गश्चैव भविष्यति । त्वयि देववरे राम पूजिते पुरुषर्षभ ॥१२॥
तवाहं चक्षुषा सौम्य पूता सौम्येन मानद । गमिष्याम्यक्षयाँल्लोकांस्त्वत्प्रसादादरिंदम ॥१३॥
चित्रकूटं त्वयि प्राप्ते विमानैरतुलप्रभैः । इतस्ते दिवमारूढा यानहं पर्यचारिषम् ॥१४॥
तैश्चाहमुक्ता धर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभिः । आगमिष्यति ते रामः सुपुण्यमिममाश्रमम् ॥१५॥
स ते प्रतिग्रहीतव्यः सौमित्रिसहितोऽतिथिः । तं च दृष्ट्वा वराँल्लोकानक्षयांस्त्वं गमिष्यसि ॥१६॥

देखनेके लिए चले ॥ २ ॥ पर्वतपर निवास करके वे दोनों रघुवंशी पम्पाके पश्चिम तीरपर पहुँचे ॥३॥ पम्पा सरोवरके पश्चिम तीरपर जाकर उनलोगोंने शबरीका सुन्दर आश्रम देखा ॥ ४ ॥ अनेक वृक्षोंसे घिरे हुए उस आश्रमपर जाकर तथा वहांकी शोभा देखकर वे दोनों शबरीसे मिले ॥ ५ ॥ सिद्धा शबरी उन दोनोंको देखकर हाथ जोड़कर खड़ी होगयी, उसने रामचन्द्रके चरण छुए और बुद्धिमान लक्ष्मणके भी ॥ ६ ॥ पाद्य, आचमनीय आदि सब विधि-पूर्वक उसने दिए । धर्माचरण करनेवाली शबरीसे रामचन्द्र बोले ॥ ७ ॥ क्या तुम्हारे सब विघ्न दूर होगये ? तुम्हारा तप तो बढ़ रहा है ? तुम्हारा क्रोध और आहार तो नियमित है ? ॥८॥ क्या तुम जिन नियमोंका पालन करती हो वे सफल हैं ? तुम्हारे मनमें शान्ति तो है ? हे सुन्दर बोलने वाली, तुम्हारी गुरुसेवा तो सफल है ? ॥ ९ ॥ सिद्धोंके द्वारा सम्मानित, सिद्धा तपस्विनी बूढ़ी शबरीने, रामचन्द्रके इस प्रकार पूछनेपर, रामचन्द्रसे उनके सामने बैठकर सब कहा ॥ १० ॥ आज तुम्हारे दर्शनसे मैंने तपस्याकी सिद्धी पायी । आज मेरा जन्म सुफल हुआ और गुरुओंकी पूजा सफल हुई ॥ ११ ॥ आज मेरी तपस्या सफल हुई, देवश्रेष्ठ, तुम्हारी पूजा करनेसे मुझे स्वर्ग प्राप्त हो ॥ १२ ॥ सौम्य, तुम्हारी सौम्य आंखोंको देखनेसे आज मैं पवित्र हुई । तुम्हारे प्रसादसे अक्षय लोकोंमें म जाऊँगी ॥ १३ ॥ जिन ऋषियोंकी मैं सेवा करती थी वे ऋषि, तुम्हारे चित्रकूटमें आनेपर, अत्यन्त प्रकाशमान विमानोंपर चढ़कर यहांसे स्वर्ग चले गये ॥ १४ ॥ धर्म जाननेवाले, महाभाग उन महर्षियोंने मुझसे कहा था कि रामचन्द्र तुम्हारे इस पवित्र आश्रममें आवेंगे ॥ १५ ॥ लक्ष्मणके साथ उनका तुम अतिथि-सत्कार करना, उनके दर्शनसे तुम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमुक्ता महाभागैस्तदाहं पुरुषर्षभ । मया तु संचितं वन्यं विविधं पुरुषर्षभ ॥१७॥
तवार्थे पुरुषव्याघ्र पम्पायास्तीरसंभवम् । एवमुक्तः स धर्मात्मा शबर्या शबरीमिदम् ॥१८॥
राघवः प्राह विज्ञाने तां नित्यमवहिष्कृताम् । दनोः सकाशात्तत्त्वेन प्रभावं ते महात्मनाम् ॥१९॥
श्रुतं प्रत्यक्षमिच्छामि संद्रष्टुं यदि मन्यसे । एतत्तु वचनं श्रुत्वा रामवक्त्राविनिःसृतम् ॥२०॥
शबरी दर्शयामास तावुभौ तद्वनं महत् । पश्य मेघघनप्रख्यं मृगपक्षिसमाकुलम् ।
मतङ्गवनमित्येव विश्रुतं रघुनन्दन ॥२१॥
इह ते भावितात्मानो गुरवो मे महाद्युते । जुहवाञ्चक्रिरे नीडं मन्त्रवन्मन्त्रपूजितम् ॥२२॥
इयं प्रत्यक्स्थली वेदी यत्र ते मे सुसत्कृताः । पुष्पोपहारं कुर्वन्ति श्रमादुद्वेपिभिः करैः ॥२३॥
तेषां तपःप्रभावेण पश्याद्यापि रघूत्तम । द्योतयन्ती दिशः सर्वाः श्रिया वेद्यतुलप्रभा ॥२४॥
अशक्नुवद्भिस्तैर्गन्तुमुपवासश्रमालसैः । चिन्तितेनागतान्पश्य समेतान्सप्त सागरान् ॥२५॥
कृताभिषेकैस्तैर्न्यस्ता वल्कलाः पादपेष्विह । अद्यापि न विशुष्यन्ति प्रदेशे रघुनन्दन ॥२६॥
देवकार्याणि कुर्वद्भिर्यानीमानी कृतानि वै । पुष्पैः कुवलयैः सार्धं म्लानत्वं न तु यान्ति वै॥२७॥
कृत्स्नं वनमिदं दृष्टं श्रोतव्यं च श्रुतं त्वया । तदिच्छाम्यभ्यनुज्ञातात्यक्ष्याम्येतत्कलेवरम् ॥२८॥
तेषामिच्छाम्यहं गन्तुं समीपं भावितात्मनाम् । मुनीनामाश्रमो येषामहं च परिचारिणी ॥२९॥

अक्षय लोकोंमें जाओगी ॥ १६ ॥ उन महाभागोंने मुझसे ऐसाही कहा था। पुरुषश्रेष्ठ, मैंने अनेक प्रकारके जंगली फल संचित कर रखे हैं ॥ १७ ॥ पम्पा तीरपर उत्पन्न होनेवाले वे फल मैंने आपके लिए एकत्र किये हैं। शबरीके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा रामचन्द्र उससे इस प्रकार बोले–उन्होंने कहा–तुम अतीत अनागत ज्ञान रखनेवाली हो, मैंने तुम्हारे आचार्य महात्माओंका प्रभाव दनुसे सुना है । १८, १९ ॥ उसको मैं प्रत्यक्ष देखना चाहता हूं । यदि तुम स्वीकार करो । रामके मुँहसे निकले इस वचनको सुनकर शबरीने उन लोगोंको वह विशाल वन दिखाया । सघन मेघके समान पशुपक्षियोंसे युक्त वह वन देखो ॥२०, २१॥ मतंग वनके नामसे वह प्रसिद्ध है । महामुनि, आत्मतत्त्व जाननेवाले मेरे गुरुओंने यहां मंत्रज्ञोंके मंत्रसे अभिमंत्रित यज्ञमें हवन किया था ॥ २२ ॥ प्रत्यक्स्थली नामकी वेदी है । जिसपर मेरे पूज्य आचार्योंने थकावटके प्रभावसे कांपनेवाले हाथोंसे देवताओंको पुष्पोपहार दिया था ॥ २३ ॥ उनकी तपस्याके प्रभावसे अपनी शोभासे आज भी अतुलनीय प्रभावाली यह वेदी सब दिशाओंको प्रकाशित करती है ॥२४॥ उपवासके कारण दुर्बल अतएव जानेमें असमर्थ उनलोगोंके ध्यानमात्रसे आए हुए इन सात समुद्रोंको देखो ॥ २५ ॥ रघुनन्दन, इस समुद्रोंके प्रदेशमें स्नान करके भींगे वल्कल, वृक्षोंपर जो हमारे गुरुओंने रखे हैं वे, आजतक भी नहीं सूखे ॥ २६ ॥ देवताओंकी पूजा करते हुए मेरे आचार्योंने कमलोंके साथ जो इन पुष्पोंको रखा है वे आज भी मलिन नहीं हुए हैं ॥ २७ ॥ यह समूचा वन मैंने आपको दिखाया और जो सुनाना था वह सुनाया. आपकी आज्ञासे अपने इस शरीरका त्याग करना चाहती हूँ ॥ २८ ॥ मैं उन ब्रह्मज्ञानी ऋषियोंके पास

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धर्मिष्ठं तु वचः श्रुत्वा राघवः सहलक्ष्मणः । प्रहर्षमतुलं लेभे आश्चर्यमिति चाब्रवीत् ॥३०॥
तामुवाच ततो रामः शबरीं संशितव्रताम् । अर्चितोऽहं त्वया भद्रे गच्छ कामं यथासुखम् ॥३१॥
इत्येवमुक्ता जटिला चीरकृष्णाजिनाम्बरा । अनुज्ञाता तु रामेण हुत्वाऽऽत्मानं हुताशने ॥३२॥
ज्वलत्पावकसंकाशा स्वर्गमेव जगाम ह । दिव्याभरणसंयुक्ता दिव्यमाल्यानुलेपना ॥३३॥
दिव्याम्बरधरा तत्र बभूव प्रियदर्शना । विराजयन्ती तं देशं विद्युत्सौदामनी यथा ॥३४॥
यत्र ते सुकृतात्मानो विहरन्ति महर्षयः । तत्पुण्यं शबरी स्थानं जगामात्मसमाधिना ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥७४॥

पञ्चसप्ततितमः सर्गः ७५

दिवं तु तस्यां यातायां शबर्यां स्वेन तेजसा । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा चिन्तयामास राघवः ॥ १ ॥
चिन्तयित्वा तु धर्मात्मा प्रभावं तं महात्मनाम् । हितकारिणमेकाग्रं लक्ष्मणं राघवोऽब्रवीत् ॥ २ ॥
दृष्टोमयाऽऽश्रमःसौम्यब्रह्मश्चर्यः कृतात्मनाम् । विश्वस्तमृगशार्दूलो नानाविहगसेवितः ॥ ३ ॥
सप्तानां च समुद्राणां तेषां तीर्थेषु लक्ष्मण । उपस्पृष्टं च विधिवत्पितरश्चापि तर्पिताः ॥ ४ ॥
प्रनष्टमशुभं यन्नः कल्याणं समुपस्थितम् । तेन त्वेतत्प्रहृष्टं मे मनो लक्ष्मण सम्प्रति ॥ ५ ॥

जाना चाहती हूँ, जिनका यह आश्रम है और जिनकी मैं दासी हूँ ॥ २९ ॥ शबरीके धर्मयुक्त वचन सुनकर लक्ष्मणके साथ रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए, और उन्होंने कहा कि आश्चर्य है! ॥३०॥ कठोर व्रत करनेवाली शबरीसे रामचन्द्र बोले—भद्रे, तुमने मेरी पूजा की, अब अपनी इच्छाके अनुसार सुखपूर्वक जाओ ॥ ३१ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर जटा धारण करनेवाली, चीर और कृष्ण मृगचर्म पहननेवाली शबरीने रामचन्द्रकी आज्ञा पाकर अग्निमें अपनेको हवन कर दिया ॥ ३२ ॥ जलते हुए अग्निके समान वह शबरी दिव्य आभरण, दिव्य माल्य और अनुलेपनसे युक्त स्वर्गको गयी ॥ ३३ ॥ दिव्य वस्त्र धारण करनेवाली, देखनेमें प्रिय शबरीने उस स्थानको सुशोभित किया, जिस प्रकार बिजलीसे कोई स्थान प्रकाशित होता है ॥ ३४ ॥ पुण्यात्मा वे महर्षि जिस लोकमें विहार करते हैं, उस पुण्यलोकमें अपने चित्तको एकाग्र कर शबरी गयी ॥ ३५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका चौहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥७४॥

अपने प्रभावसे शबरीके स्वर्ग जानेपर भाई लक्ष्मणके साथ रामचन्द्र विचार करने लगे ॥ १ ॥ धर्मात्मा रामचन्द्र उन महात्माओंके प्रभावका विचार कर हितकारी तथा निश्चल लक्ष्मणसे रामचन्द्र बोले ॥ २ ॥ सौम्य, ब्रह्मज्ञानी उन महर्षियोंके आश्रम मैंने देखे। बड़ेही आश्चर्यमय हैं। वहाँके मृगा और बाघ निर्भय हैं। अनेक प्रकारके पक्षी हैं ॥ ३ ॥ सात समुद्रोंके उन तीर्थोंके जलका मैंने मार्जन किया। पितरोंका तर्पण किया ॥४॥ जो हम लोगोंका अशुभ था वह नष्ट हुआ, अब कल्याणका समय आया, इसीसे लक्ष्मण, इस समय मेरा मन प्रसन्न मालूम होता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हृदये मे नरव्याघ्र शुभमाविर्भविष्यति । तदागच्छ गमिष्यावः पम्पां तां प्रियदर्शनाम् ॥ ६ ॥
ऋष्यमूको गिरिर्यत्र नातिदूरे प्रकाशते । यस्मिन्वसति धर्मात्मा सुग्रीवोऽद्युमतः सुतः ॥ ७ ॥
नित्यं वालिभयाद्त्रस्तश्चतुर्भिः सह वानरैः । अहं त्वरे च तं द्रष्टुं सुग्रीवं वानरर्षभम् ॥ ८ ॥
तदधीनं हि मे कार्यं सीतायाः परिमार्गणम् । इति ब्रुवाणं तं वीरं सौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ ९ ॥
गच्छावस्त्वरितं तत्र ममापि त्वरते मनः । आश्रमात्तु ततस्तस्मान्निष्क्रम्यसविशांपतिः ॥१०॥
आजगाम ततः पम्पां लक्ष्मणेन सह प्रभुः । समीक्षमाणः पुष्पाढ्यं सर्वतो विपुलद्रुमम् ॥११॥
कोयष्टिभिश्चार्जुनकैः शतपत्रैश्च कीचकैः । एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्नादितं तद्वनं महत् ॥१२॥
स रामो विविधान्वृक्षान्सरांसि विविधानि च । पश्यन्कामाभिसंतप्तो जगाम परमं ह्रदम् ॥१३॥
स तामासाद्य वै रामो दूरात्पानीयवाहिनीम् । मतङ्गसरसं नाम ह्रदं समवगाहत ॥१४॥
तत्रजग्मतुरव्यग्रौ राघवौ हि समाहितौ । स तु शोकसमाविष्टो रामो दशरथात्मजः ॥१५॥
विवेश नलिनीं रम्यां पङ्कजैश्च समावृताम् । तिलकाशोकपुंनागबकुलोद्दालकाशिनीम् ॥१६॥
रम्योपवनसंबाधां रम्यसंपीडितोदकाम् । स्फटिकोपमतोयां तां श्लक्ष्णवालुकसंततम् ॥१७॥
मत्स्यकच्छपसंबाधां तीरस्थद्रुमशोभिताम् । सखीभिरिव संयुक्तां लताभिरनुवेष्टिताम् ॥१८॥
किंनरोरगगन्धर्वयक्षराक्षससेविताम् । नानाद्रुमलताकीर्णां शीतवारिनिधिं शुभाम् ॥१९॥

है ॥ ५ ॥ मेरे हृदयमें कोई अच्छी बात उत्पन्न होगी, इसलिए आओ, हम लोग देखनेमें सुन्दर पम्पा सरोवरपर चलें ॥ ६ ॥ जिसके पास ही ऋष्यमूक नामका पर्वत है, जिसमें सूर्यका पुत्र धर्मात्मा सुग्रीव रहता है ॥ ७ ॥ वालिके भयसे सदा डरा हुआ वह चार वानरोंके साथ रहता है। वानरश्रेष्ठ सुग्रीवको देखनेके लिए मुझे शीघ्रता है ॥ ८ ॥ क्योंकि सीताके ढूँढ़नेका हमारा काम उन्हींके अधीन है। ऐसा कहते हुए रामचन्द्रसे लक्ष्मण इस प्रकार बोले ॥ ९ ॥ शीघ्रही हम लोग चलें। मेरा मन भी शीघ्रता करनेके लिए कह रहा है। राजा रामचन्द्र उस आश्रमसे निकल कर लक्ष्मणके साथ पुष्पपूर्ण अनेक वृक्षोंको देखते हुए पम्पा तीरपर आये ॥ १०, ११ ॥ टिट्टिभ, मयूर, शतपत्र, शुक तथा अन्य पक्षियोंसे वह विशाल वन विनादित हो रहा था ॥ १२ ॥ अनेक प्रकारके वृक्षों, अनेक प्रकारके तालाबोंको देखते हुए उस बड़े तालाबपर गये ॥ १३ ॥ दूरसे ही पीनेके योग्य जल धारण करनेवाले पम्पा सरोवरके पास पहुंचकर दसरथपुत्र रामचन्द्रने मतंगसर नामक (पम्पाका ही एक प्रदेश) तालाबमें स्नान किया ॥१४॥ राम और लक्ष्मण दोनों सावधान और निर्भय होकर वहाँ गये। दसरथपुत्र रामचन्द्र वहाँ शोक-पीड़ित हुए ॥ १५ ॥ कमलोंसे भरे तालाबमें उन्होंने प्रवेश किया। तिलक, अशोक, पुन्नाग, बकुल, उद्दालक आदि वृक्षों-से वह स्थान सुशोभित था ॥ १६ ॥ वहाँ अनेक रमणीय उपवन थे। जहाँ रमणीय जल एकत्र था और वह जल स्फटिकके समान निर्मल था। चिकनी बालु बहुत दूरतक फैली हुई थी ॥१७॥ मछलियाँ और कछुए खूब थे। तीरके वृक्षोंसे उसकी शोभा बढ़ रही थी। सखियोंके समान तीरकी लताओंसे वह युक्त था ॥ १८ ॥ किन्नर, सर्प, गंधर्व, यक्ष, राक्षस वहाँ रहते थे। अनेक प्रकारके वृक्ष और लताएँ वहाँ बहुत थीं। स्वच्छ और शीतल जलका वह समुद्र था ॥ १९ ॥ रक्त-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पद्मसौगन्धकैस्ताम्रां शुक्लां कुमुदमण्डलैः । नीलां कुवलयोद्घाटैर्बहुवर्णां कुथामिव ॥२०॥
अरविन्दोत्पलवतीं पद्मसौगन्धिकायुताम् । पुष्पिताम्रवणोपेतां बर्हिणोद्घुष्टनादिताम् ॥२१॥
स तां दृष्ट्वा ततः पम्पां रामः सौमित्रिणा सह । विललाप च तेजस्वी रामो दशरथात्मजः ॥२२॥
तिलकैर्बीजपूरैश्च वटैः शुक्लद्रुमैस्तथा । पुष्पितैः करवीरैश्च पुन्नागैश्च सुपुष्पितैः ॥२३॥
मालतीकुन्दगुल्मैश्च भण्डीरैर्निचुलैस्तथा । अशोकैः सप्तपर्णैश्च केतकैरतिमुक्तकैः ॥२४॥
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः प्रमदेवोपशोभिताम् । अस्यास्तीरे तु पूर्वोक्तः पर्वतो धातुमण्डितः ॥२५॥
ऋष्यमूक इति ख्यातश्चित्रपुष्पितपादपः । हरिर्ऋक्षरजोनाम्नः पुत्रस्तस्य महात्मनः ॥२६॥
अध्यास्ते तु महावीर्यः सुग्रीव इति विश्रुतः । सुग्रीवमभिगच्छ त्वं वानरेन्द्रं नरर्षभ ॥२७॥
इत्युवाच पुनर्वाक्यं लक्ष्मणं सत्यविक्रमः । कथं मया विना सीतां शक्यं लक्ष्मण जीवितुम् ॥२८॥

इत्येवमुक्त्वा मदनाभिपीडितः स लक्ष्मणं वाक्यमनन्यचेतनः ।
विवेश पम्पां नलिनीमनोरमां तमुत्तमं शोकमुदीरयाणः ॥२९॥
क्रमेण गत्वा प्रविलोकयद्वनं ददर्श पम्पां शुभदर्शकाननाम् ।
अनेकनानाविधपक्षिसंकुलां विवेश रामः सह लक्ष्मणेन ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

कमलोंसे वह लाल था, स्वेत कमलोंसे श्वेत और नील कमलोंसे नील, इस प्रकार हाथी-झूलके समान वह अनेक वर्णोंका हो गया था ॥ २० ॥ लाल कमल और नील कमल वहाँ विकसित थे, आमका वन फूला हुआ था, मयूर बोल रहे थे ॥ २१ ॥ दसरथ-पुत्र तेजस्वी रामचन्द्र लक्ष्मणके साथ उस पम्पासरको देखकर विलाप करने लगे ॥२२॥ तिलक, बीजपूर, वट, शुक्लद्रुम, फूले हुए करवीर और पुन्नाग, मालती, कुन्द, भन्डीर, निचुल, अशोक, सप्तपर्ण, केतक, अतिमुक्तक तथा अन्य अनेक वृक्षोंसे वह पम्पा स्त्रीके समान सुशोभित थी। उसे देखकर रामचन्द्र विलाप करने लगे इस पम्पाके तीरपर वह पूर्वकथित धातुओंसे सुशोभित पर्वत है ॥२३, २४, २५॥ ऋष्यमूक नामसे वह प्रसिद्ध है, जहाँके वृक्षोंमें अनेक प्रकारके फूल लगे हुए हैं। ऋक्षरजाका पुत्र सुग्रीव नामसे प्रसिद्ध महाबली वानर वहाँ रहता है। लक्ष्मण, तुम वानरराज सुग्रीवके पास जाओ ॥ २६, २७ ॥ लक्ष्मण, सीताके बिना मैं कैसे जी सकूँगा, यह वाक्य सत्यपराक्रम रामचन्द्रने लक्ष्मणसे पुनः कहा ॥ २८ ॥ सीतागत-चित्त, काम-पीड़ित रामचन्द्रने लक्ष्मणसे ऐसा कहकर शोक और विषाद-युक्त होकर कमलवनसे युक्त पम्पा सरोवरमें प्रवेश किया ॥ २९ ॥ क्रमसे वनको देखते हुए दर्शनीय वनवाली पम्पाको उन्होंने देखा, जहाँ अनेक प्रकारके बहुतसे पक्षी थे। लक्ष्मणके साथ रामचन्द्रने उसमें प्रवेश किया ॥ ३० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अरण्यकाण्डका पचहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥७५॥

अरण्यकाण्ड समाप्त ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला—दसवाँ पुष्प

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

किष्किन्धाकाण्ड

(मूल संस्कृत हिन्दी अनुवाद सहित)

टीकाकार

अनेक ग्रन्थोंके प्रणेता

शिक्षा, शारदा आदि पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादक

साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री

प्रकाशक

सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला कार्यालय

बनारस सिटी

प्रथमावृत्ति] [मातृ-नवमी, सं० १९८६ [मूल्य ॥।-)

सम्पूर्ण ग्रन्थ इसी साइज़के लगभग २७०० पृष्ठोंका होगा।

मूल्य इसी हिसाबसे रहेगा, किन्तु अभीसे ग्राहक बनजानेसे लगभग ७) के देना होगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

☞ सोल एजेण्ट

मुकुन्ददास गुप्त एण्ड कम्पनी

पुस्तक-भवन, बनारस सिटी।

आप स्वयं स्थायी ग्राहक बनिए

अपने मित्रोंको भी ग्राहक बनाइए

सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला

सस्ती पुस्तकों द्वारा सर्वसाधारणको लाभ तभी पहुँच सकता है जब कि पुस्तकोंके विषय बढ़िया और दाम बहुत माकूल हों। हमने ऐसे कई प्रयत्न करने-वालोंको देखा, पर हमें ऐसी पुस्तक-माला 'हिन्दी-संसार'में दिखायी न दी। एकाध जगहसे ऐसी कोशिश हो रही है, पर

हम दावेके साथ

कह सकते हैं कि आप हमारी पुस्तकोंको लीजिए, उनकी दीर्घकायाको देखिए और साथ ही उनका दाम भी मिलाइए तो

आप देखेंगे कि

इनसे बढ़िया, इनसे सस्ती और अधिक शिक्षाप्रद पुस्तकें बहुत ही कम हैं। पर कमी है

स्थायी ग्राहकोंकी.

पर्याप्त ग्राहक मिलते ही, हम इतने ही नहीं

१००० पृष्ठ १) रु० में

देनेकी व्यवस्था कर सकते हैं।

प्रकाशक—
पन्नालाल गुप्त, व्यवस्थापक,
स० सा० पुस्तकमाला कार्यालय
बनारस सिटी।

मुद्रक—
गणपति कृष्ण गुर्जर
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, जतनबर,
बनारस सिटी।

नोट—अपना ग्राहक नंबर यहाँ नोट कर लीजिए। पत्रव्यवहारमें उसका हवाला अवश्य दीजिए।

ग्राहक संख्या.....

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किष्किन्धाकाण्ड

सर्ग	विवरण	पृष्ठ
१	रामचन्द्रका सीताके लिए विलाप करना।	१–१२
२	दोनों भाइयों का समाचार जाननेके लिए सुग्रीवका हनुमान्‌को भेजना।	१२–१४
३	दोनों भाइयोंसे हनुमानकी बात-चीत	१५–१८
४	हनुमान्‌से बातचीत और उनका राम-लक्ष्मणको पीठपर चढ़ाकर सुग्रीवके पास जाना।	१८–२१
५	रामचन्द्र और सुग्रीवका अग्निको साक्षी कर मैत्री करना।	२१–२३
६	सीताके गिराये हुए वस्त्र और भूषण देखकर रामचन्द्रका विलाप करना।	२४–२६
७	सुग्रीवका रामचन्द्रको समझाना।	२६–२८
८	सुग्रीवका विलाप करते हुए अपनी दुर्दशाका समाचार कहना।	२८–३१
९-१०	सुग्रीवका अपने भाई बाली से वैर होने विस्तार पूर्वक समस्त कारण बतलाना।	३२–३३ ३४–३६
११	रामचन्द्र और सुग्रीवका संवाद	३६–४३
१२	रामचन्द्रका सालवृक्षको भेदना और वाली-सुग्रीवका युद्ध।	४४–४७
१३	किष्किन्धाके मार्गका वर्णन	४७–४९
१४	रामचन्द्रका सुग्रीवको समझाकर फिर युद्धके लिए तयार करना।	४९–५१
१५	ताराके उपदेशको न मानकर वालीकी युद्ध-यात्रा।	५१–५४
१६	वालीका माराजाना।	५४–५७
१७	वालीका रामचन्द्रके प्रति कठोर वचन कहना।	५७–६१
१८	रामचन्द्रका वालीके कठोर वचनोंका उत्तर देना और वालीका रामचन्द्रसे अपने दुर्वचनों केलिए क्षमा मांगना।	६२–६७
१९	तारा आदिका विलाप।	६७–६९
२०	तारा आदिका विलाप।	६९–७१
२१	हनुमान्‌का ताराको समझाना।	७१–७३
२२	वालीका सुग्रीव और अङ्गदके प्रति कुछ कहकर शरीर त्यागना।	७३–७६
२३	ताराका विलाप।	७६–७८
२४	सुग्रीवका विलाप, ताराकी प्रार्थना और रामचन्द्रका ताराको समझाना।	७८–८३
२५	रामचन्द्रका सुग्रीव, तारा और अङ्गदको समझा-बुझाकर वालीकी और्ध्वदैहिक क्रिया करवाना।	८४–८७
२६	सुग्रीवकाका राज्याभिषेक	८८–९१
२७	दोनों भाइयोंका प्रस्रवण पर्वतपर निवास करना और कुछ बातचीत करना।	९१–९५
२८	रामचन्द्रका वर्षा-ऋतुकी शोभाका वर्णन करना।	९५–१०१
२९	हनुमान्‌का सुग्रीवको समझाना और सुग्रीवका नील वानरको आज्ञा देना।	१०२–१०५
३०	रामचन्द्रका विलाप करना शरत्कालका वर्णन और सुग्रीवके विषयमें भी कुछ कहना।	१०५–११३
३१	लक्ष्मणका धनुर्बाण लेकर किष्किन्धामें जाना।	११३–११७
३२	सुग्रीवका पश्चात्ताप और हनुमान्‌का उनको समझाना।	११७–११९
३३	लक्ष्मणका भीतर जाना और तारासे बातचीत करना।	११९–१२५
३४	लक्ष्मणका सुग्रीवको कटुवचन कहना।	१२५–१२६
३५	ताराकी विनतीसे लक्ष्मणके क्रोधकी शान्ति।	१२७–१२८
३६	सुग्रीवकी प्रार्थनासे लक्ष्मणका प्रसन्न होना।	१२९–१३०
३७	सुग्रीवकी आज्ञासे हनुमान्‌का वानरोंको बुलवाना।	१३०–१३३

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्ग	विवरण	पृष्ठ
३८	लक्ष्मणके साथ सुग्रीवका श्रीरामचन्द्रके पास जाना।	१३२–१३६
३९	सेनापति और सेनाकी उपस्थिति तथा वानरों की संख्या।	१३६–१३९
४०	श्रीरामचन्द्रकी आज्ञासे वानरोंको सीताको खोजनेके लिए भेजना।	१३९–१४४
४१	दक्षिणकी ओर वानरोंको भेजना।	१४४–१४८
४२	सुषेण इत्यादि वानरोंको पश्चिम दिशामें भेजना।	१४८–१५२
४३	उत्तर दिशामें वानरोंको भेजना।	१५२–१५७
४४	हनुमान्‌के प्रति सुग्रीवका विशेष वचन और रामचन्द्रका मुद्रिका देना।	१५७–१५८
४५	वानरोंकी यात्रा।	१५९–१६०
४६	रामको सम्पूर्ण पृथ्वीदर्शनके विषयमें सुग्रीवका उत्तर देना।	१६०–१६२
४७	हनुमान्‌को छोड़ शेष वानरोंका लौट आना।	१६२–१६३
४८	दक्षिण दिशाके खोजनेका वर्णन।	१६३–१६५
४९	अङ्गदके कहनेसे फिर वानरलोग ढूँढ़ने चले।	१६५–१६७
५०	वानरोंका ऋक्ष बिल नामक दुर्गम स्थानमें जाना।	१६७–१७८
५१	वहां वृद्धा तापसीका वानरोंसे अपना समाचार कहना।	१७०–१७१
५२	हनुमान्‌का सब समाचार कहना और स्वयं प्रभाके तपोबलसे बिलके बाहर निकलना।	१७२–१७४
५३	समयके बीत जानेसे वानरोंका अत्यन्त शोकयुक्त होना।	१७४–१७६
५४	हनुमान्‌का अङ्गदको समझाना।	१७६–१७८
५५	वानरोंका प्रायोपवेशन करना।	१७८–१८०
५६	सम्पातिसे भेंट और उसका अपने भाईके सब समाचार पूछना।	१७८–१८०
५७	वानरोंका सम्पातिको पर्वतसे उतारकर अपना सब समाचार कह सुनाना।	१८२–१८३
५८	गृध्रका वानरोंको सीताका ठिकाना बतलाना।	१८४–१८६
५९	सम्पाति का वानरोंसे बातचीत करना और कुछ अपना समाचार भी कहना।	१८६–१८८
६०	सम्पातिका वानरोंसे विस्तारपूर्वक अपना समाचार वर्णन करना।	१८९–१९०
६१	मुनिसे अपना समाचार कहना।	१९०–१९२
६२	निशाकर मुनिका सम्पातिको समझाकर वर देना।	१९२–१९३
६३	सम्पातिके पङ्ख जमना।	१९३–१९४
६४	वानरोंका समुद्रको देखकर फिर दुःखित होना।	१९६–१९६
६५	वानरोंकी अपनी-अपनी शक्ति वर्णन करना।	१९६–१९८
६६	जाम्बवान्‌का हनुमान्‌की स्तुति करना।	१९९–२०२
६७	हनुमान्-कृत अपने पराक्रमका वर्णन।	२०२–२०६

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्री ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे

किष्किन्धाकाण्डम्

प्रथमः सर्गः १

स तां पुष्करिणीं गत्वा पद्मोत्पलझषाकुलाम् । रामः सौमित्रिसहितो विललापाकुलेन्द्रियः ॥ १ ॥
तत्र दृष्ट्वैव तां हर्षादिन्द्रियाणि चकम्पिरे । स कामवशमापन्नः सौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥
सौमित्रे शोभते पम्पा वैदूर्यविमलोदका । फुल्लपद्मोत्पलवती शोभिता विविधैर्द्रुमैः ॥ ३ ॥
सौमित्रे पश्य पम्पायाः काननं शुभदर्शनम् । यत्र राजन्ति शैला वा द्रुमाः सशिखरा इव ॥ ४ ॥
मां तु शोकाभिसंतप्तमाधयः पीडयन्ति वै । भरतस्य च दुःखेन वैदेह्या हरणेन च ॥ ५ ॥
शोकार्तस्यापि मे पम्पा शोभते चित्रकानना । व्यवकीर्णा बहुविधैः पुष्पैः शीतोदका शिवा॥ ६ ॥

कमल, नील कमल और मछलियोंसे युक्त उस पम्पा-सरोवरको देखकर रामचन्द्र व्याकुल हुए अर्थात् कभी वे प्रसन्न होते और कभी दुःखी, कमल आदिके सीताके नेत्रसादृश्यसे व्याकुल होते थे, वे रामचन्द्र लक्ष्मणके साथ रहने पर भी विलाप करने लगे ॥ १ ॥ उस पम्पा-सरोवरको देखते ही हर्षके कारण रामचन्द्रकी इन्द्रियाँ विचलित हुईं, (कमल आदिके देखनेसे उन्हें सीताके नेत्र आदिका स्मरण हुआ और उन्होंने समझा कि सीता ही सामने हैं) इससे रामचन्द्र कामवश हुए अर्थात् सीताको देखनेकी प्रबल इच्छाके कारण उनके ढूँढनेके लिये अनेक प्रकारकी चेष्टा करने लगे । वे रामचन्द्र लक्ष्मणसे इस प्रकार बोले ॥ २ ॥ लक्ष्मण, यह पम्पा सुन्दर मालूम होती है, वैदूर्यके समान इसका विमल जल है, अनेक जातिके कमल इसमें खिले हैं, तथा अनेक प्रकारके वृक्षोंसे यह शोभित हो रही है ॥३॥ लक्ष्मण देखो पम्पावनको, यह कितना सुन्दर है, जहाँके लम्बे पेड़, शिखरवाले पर्वतोंके समान मालूम पड़ते हैं ॥ ४ ॥ शोकसन्तप्त मैं भरतके दुःखसे और सीताहरणसे मानसिक पीड़ाओंके कारण व्याकुल हो रहा हूँ ॥५॥ मैं शोक-पीड़ित हूँ, दुःखी हूँ, फिर भी अनेकविध वनोंके कारण यह पम्पा मुझे सुन्दर मालूम पड़ती है, इसमें अनेक प्रकारके फूल फैले हैं, इसका जल शीतल और सुन्दर है ॥ ६ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नलिनैरपि संछन्ना ह्यत्यर्थशुभदर्शना । सर्पव्यालानुचरिता मृगद्विजसमाकुला ॥ ७ ॥
अधिकं प्रविभात्येतन्नीलपीतं तु शाद्वलम् । द्रुमाणां विविधैः पुष्पैः परिस्तोमैरिवार्पितम् ॥ ८ ॥
पुष्पभारसमृद्धानि शिखराणि समन्ततः । लताभिः पुष्पिताग्राभिरुपगूढानि सर्वतः ॥ ९ ॥
सुखानिलोऽयं सौमित्रे कालः प्रचुरमन्मथः । गन्धवान्सुरभिर्मासो जातपुष्पफलद्रुमः ॥१०॥
पश्य रूपाणि सौमित्रे वनानां पुष्पशालिनाम् । सृजतां पुष्पवर्षाणि वर्षं तोयमुचामिव ॥११॥
प्रस्तरेषु च रम्येषु विविधाः काननद्रुमाः । वायुवेगप्रचलिताः पुष्पैरवकिरन्ति गाम् ॥१२॥
पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारुतः । कुसुमैः पश्य सौमित्रे क्रीडतीव समन्ततः ॥१३॥
विक्षिपन्विविधाः शाखा नगानां कुसुमोत्कटाः । मारुतश्चलितः स्थानैः षट्पदैरनुगीयते ॥१४॥
मत्तकोकिलसंनादैर्नर्तयन्निव पादपान् । शैलकंदरनिष्क्रान्तः प्रगीत इव चानिलः ॥१५॥
तेन विक्षिपतात्यर्थं पवनेन समन्ततः । अमी संसक्तशाखाग्रा ग्रथिता इव पादपाः ॥१६॥
स एव सुखसंस्पर्शो वाति चन्दनशीतलः । गन्धमभ्यवहन्पुण्यं श्रमापनयनोऽनिलः ॥१७॥
अमी पवनविक्षिप्ता विनदन्तीव पादपाः । षट्पदैरनुकूजद्भिर्वनेषु मधुगन्धिषु ॥१८॥
गिरिप्रस्थेषु रम्येषु पुष्पवद्भिर्मनोरमैः । संसक्तशिखराः शैला विराजन्ति महाद्रुमैः ॥१९॥

कमलोंसे इसका जल ढँका हुआ है। साँप तथा उस जातिके अन्य जीवोंके चलनेसे यह और भी शोभित हो रही है, यह पम्पा पशु-पक्षियोंसे भी घिरी हुई है। यह पम्पा देखनेमें बड़ी सुन्दर मालूम होती है ॥ ७ ॥ इसकी नीली और पीली घास मुझे अत्यन्त सुन्दर मालूम पड़ती है, मालूम होता है कि अनेक प्रकारके वृक्षोंके नाना पुष्पोंकी राशि एकत्र की गयी हो ॥ ८ ॥ ये वृक्षशिखाओंके अग्रभाग फूलोंसे लद गये हैं, पुष्पित अनेक लताएँ उनके चारो ओर लिपटी हुई हैं ॥ ९ ॥ लक्ष्मण, यह सुखकर हवा चल रही है, यह कामोद्दीपक समय है, सुगन्ध युक्त चैत्र मास है, वृक्षोंमें फल-फूल लग गये हैं ॥ १० ॥ लक्ष्मण, फूले हुए इस वनका सुन्दर रूप देखो, मेघके समान ये पुष्पोंकी वर्षा कर रहे हैं ॥११॥ ये वनके अनेक वृक्ष हवासे कम्पित होकर समतल पत्थरोंपर पुष्पवृष्टि करके पृथ्वीको ढँक रहे हैं ॥ १२॥ लक्ष्मण, देखो, वृक्षोंसे जो फूल गिर गये हैं, जो गिरनेवाले हैं अथवा जो अभी वृक्षोंमें लगे हुए हैं, उनसे हवा खेल रही है ॥ १३ ॥ फूलोंसे लदी हुई वृक्षोंकी शाखाओंको कँपाकर जब हवा वहाँसे चलती है, तब भ्रमर उसके पीछे गाता हुआ चलता है ॥१४॥ मस्त कोकिलोंके शब्दसे वृक्षोंको मानों नाचनेकी शिक्षा देती हुई, पर्वतकी गुफासे निकली वायु, गाती हुई सी मालूम पड़ता है ॥ १५ ॥ वायु चारो ओरसे वृक्षोंको कँपा रही है, पर इन वृक्षोंकी शाखाओंके अग्रभाग इस तरहसे मिले हुए हैं, मानों जुट गये हों, गुथे हुए हों ॥ १६ ॥ चन्दनसे शीतल इस दक्षिणी वायुका स्पर्श बड़ा ही सुखकर मालूम होता है, पवित्र गन्ध लाकर यह हवा थकावट दूर करती है ॥ १७ ॥ मधुर गन्धवाले इस बनमें भ्रमर गुंजार कर रहे हैं, मालूम होता है मानों हवासे कँपाये वृक्ष गा रहे हैं और भ्रमर उनका अनुकरण कर रहे हों ॥ १८ ॥ रम्य पर्वत-शिखरों पर उत्पन्न, फूलवाले मनोहर लम्बे वृक्षोंके कारण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुष्पसंछन्नशिखरा मारुतोत्क्षेपचञ्चलाः । अमी मधुकरोत्तंसाः प्रगीता इव पादपाः ॥२०॥
सुपुष्पिताँस्तु पश्यैतान्कर्णिकारान्समन्ततः । हाटकप्रतिसंछन्नान्नरान्पीताम्बरानिव ॥२१॥
अयं वसन्तः सौमित्रे नानाविहगनादितः । सीतया विप्रहीणस्य शोकसंदीपनो मम ॥२२॥
मां हि शोकसमाक्रान्तं संतापयति मन्मथः । हृष्टं प्रवदमानश्च समाह्वयति कोकिलः ॥२३॥
एष दात्यूहको हृष्टो रम्ये मां वननिर्झरे । प्रणदन्मन्मथाविष्टं शोचयिष्यति लक्ष्मण ॥२४॥
श्रुत्वैतस्य पुरा शब्दमाश्रमस्था मम प्रिया । मामाहूय प्रमुदिता परमं प्रत्यनन्दत ॥२५॥
एवं विचित्राः पतगा नानारावविराविणः । वृक्षगुल्मलताः पश्य संपतन्ति समन्ततः ॥२६॥
विमिश्रा विहगाः पुंभिरात्मव्यूहाभिनन्दिताः । भृङ्गराजप्रमुदिताः सौमित्रे मधुरस्वराः ॥२७॥
अस्याः कूले प्रमुदिताः सङ्घशः शकुनास्त्विह । दात्यूहरतिविक्रन्दैः पुंस्कोकिलरुतैरपि ॥२८॥
स्वनन्ति पादपाश्चेमे ममानङ्गप्रदीपकाः । अशोकस्तवकाङ्गारः षट्पदस्वननिःस्वनः ॥२९॥
मां हि पल्लवताम्रार्चिर्वसन्ताग्निः प्रधक्ष्यति । नहि तां सूक्ष्मपक्ष्माक्षीं सुकेशीं मृदुभाषिणीम्॥३०॥
अपश्यतो मे सौमित्रे जीवितेऽस्ति प्रयोजनम् । अयं हि रुचिरस्तस्याः कालो रुचिरकाननः ॥३१॥
कोकिलाकुलसीमान्तो दयिताया ममानघ । मन्मथायाससंभूतो वसन्तगुणवर्धितः ॥३२॥

पर्वत ऐसे मालूम पड़ते हैं, मानों उनके शिखर आपसमें जुटे हुए हों ॥ १९ ॥ ये वृक्ष गायकके समान मालूम पड़ते हैं। इनकी शाखाओंके अग्रभाग फूलोंसे ढँक गये हैं, ये वायुके द्वारा कम्पित हो रहे हैं और भौंरे इनकी पगड़ीके समान शोभित हो रहे हैं ॥ २० ॥ चारो ओर फैले हुए और खूब फूले हुए इन कर्णिकार नामक वृक्षोंको देखो, ये पीताम्बरधारी तथा सुवर्ण-मुकुटधारी मनुष्यके समान मालूम पड़ते हैं ॥ २१ ॥ लक्ष्मण, इस वसन्तमें अनेक पक्षी बोलते हैं और यह वसन्त सीताके विरहकालमें मेरा शोक और बढ़ा रहा है ॥ २२ ॥ शोकसे पीड़ित मुझको कामदेव सता रहा है और यह कोकिल तो मुझे प्रसन्नतापूर्वक ललकार रही है, अपनी विजयकी घोषणा कर रही है ॥ २३ ॥ इस वनैले सोतेके पास जलकुक्कुट प्रसन्न होकर बोल रहा है और कामयुक्त मुझको दुःखी बना रहा है ॥ २४ ॥ इसका शब्द सुनकर आश्रममें रहनेवाली मेरी प्रिया सीता प्रसन्न होकर मुझे बुलाती थी और बहुत प्रसन्न होती थी ॥ २५ ॥ लक्ष्मण देखो, अनेक वर्णके तथा विविध शब्द बोलनेवाले पक्षी चारो ओरसे वृक्षोंपर आ रहे हैं ॥ २६ ॥ ये स्त्री पक्षियाँ पुरुषोंके साथ मिलकर अपने दलके साथ आनन्दित हो रही हैं और भौंरेके समान मधुर बोल रही हैं ॥ २७ ॥ आनन्दित होकर अनेक पक्षी दल बाँध कर इस पम्पाके तीरपर हैं। जल कुक्कुटोंके प्रेमालाप और पुरुष कोकिलोंके शब्दसे ॥ २८ ॥ ये वृक्ष बोल रहे हैं और मेरे कामको बढ़ा रहे हैं। अशोकके गुच्छे जिसके अंगारे हैं, भौंरोंका शब्द ही जिसका शब्द है ॥ २९ ॥ नये पत्तोंकी लालिमा ही जिसकी लपट है, वह वसन्ताग्नि मुझे अवश्य जलावेगी। सूक्ष्मपक्ष्माक्षी, सुकेशी और मृदुभाषिणी ॥ ३० ॥ सीताको न देखनेसे मेरा जीवन निरर्थक है। यह वसन्तसमय सीताको बड़ा प्रिय है, क्योंकि इस समय वनकी शोभा बढ़ जाती है ॥ ३१ ॥ इस समय कोकिलोंके शब्दसे समस्त वन गूँज जाता है। कामदेवकी पीड़ासे उत्पन्न और वसन्तकी विभूतियोंसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अयं मां धक्ष्यति क्षिप्रं शोकाग्निर्नचिरादिव । अपश्यतस्तां वनितां पश्यतो रुचिरान्द्रुमान् ॥३३॥
ममायमात्मप्रभवो भूयस्त्वमुपयास्यति । अदृश्यमाना वैदेही शोकं वर्धयतीह मे ॥३४॥
दृश्यमानो वसन्तश्च स्वेदसंसर्गदूषकः । मां हि सा मृगशावाक्षीचिन्ताशोकबलात्कृतम्॥३५॥
संतापयति सौमित्रे क्रूरश्चैत्रवनानिलः । अमी मयूराः शोभन्ते प्रनृत्यन्तस्ततस्ततः ॥३६॥
स्वैः पक्षैः पवनोद्धूतैर्गवाक्षैः स्फाटिकैरिव । शिखिनीभिः परिवृताःस्त एते मदमूर्च्छिताः ॥३७॥
मन्मथाभिपरीतस्य मम मन्मथवर्धनाः । पश्य लक्ष्मण नृत्यन्तं मयूरमुपनृत्यति ॥३८॥
शिखिनी मन्मथार्तैषा भर्तारं गिरिसानुनि । तामेव मनसा रामां मयूरोऽप्यनुधावति ॥३९॥
वितत्य रुचिरौ पक्षौ रुतैरुपहसन्निव । मयूरस्य वने नूनं रक्षसा न हृता प्रिया ॥४०॥
तस्मान्नृत्यति रम्येषु वनेषु सह कान्तया । मम त्वयं विना वासः सुष्पमासे सुदुःसहः ॥४१॥
पश्य लक्ष्मण संरागस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि । अधुना शिखिनी कामाद्भर्तारमभिवर्तते ॥४२॥
ममाप्येवं विशालाक्षी जानकी जातसंभ्रमा । मदनेनाभिवर्तेत यदि नापहृता भवेत् ॥४३॥
पश्य लक्ष्मण पुष्पाणि निष्फलानि भवन्ति मे । पुष्पभारसमृद्धानां वनानां शिशिरात्यये ॥४४॥

बढ़ी हुई ॥ ३२ ॥ यह शोकाग्नि शीघ्रही मुझे जला देगी, देर न करेगी। मैं सीता को नहीं देख रहा हूँ और इन सुन्दर वृक्षोंको देख रहा हूँ ॥ ३३ ॥ इस कारण मेरा यह कामजनित शोक और अधिक बढ़ रहा है। वैदेहा भी अदृश्य होकर मेरे शोकको और बढ़ा रही है ॥ ३४ ॥ यह वसन्त सामने प्रत्यक्ष है। जो थकावटके पसीने दूर करता है। मैं इस समय चिन्ता और शोकके कारण अनेक प्रकारके कार्य कर रहा हूँ अर्थात् ज्ञानहीन हो गया हूँ। इस समय यह वसन्त और मृगशावाक्षी सीता भी मुझे दुःखित कर रही है ॥ ३५ ॥ लक्ष्मण ! यह कठोर चैत्रकी बनैली हवा मुझे और सन्तप्त कर रही है। ये मयूर इधर उधर नाचते हुए बड़े सुन्दर मालूम पड़ते हैं ॥ ३६ ॥ इनके पङ्ख वायुके झोंकेसे जब अलग कर दिये जाते हैं, तब वह स्थान स्फटिककी खिड़कीके समान मालूम होता है। ये अपनी मोरिनोंसे घिरे हुए हैं; अतएव मतवाले होकर नाच रहे हैं ॥ ३७ ॥ मैं तो पहलेसे काम-पीड़ित था ही, इन मयूरोंके इस दृश्यको देखनेसे मेरी पीड़ा और बढ़ रही है ! लक्ष्मण, देखो नाचते हुए मयूरोंके पास यह मयूरी जाकर नाचती है ॥ ३८ ॥ पर्वतके शिखरपर नाचते हुए पति के पास जाकर कामपीड़ित यह मयूरी नाच रही है। मयूर भी मन ही मन अपनी प्रियतमाके पास जानेकी इच्छा करता है। ॥ ३९ ॥ मयूरकी स्त्रीको वनसे राक्षसने हरण नहीं किया है, इस कारण वे अपने दोनों पाँख फैलाकर अपनी बोलीमें मानों मेरा उपहास कर रहे हैं ॥ ४० ॥ उसकी प्रिया हरी नहीं गयी, इसलिए वह अपनी प्रियतमाके साथ रमणीय वनमें नाच रहा है। इस वसन्तमें प्रियतमाके बिना मेरा रहना कठिन है ॥ ४१ ॥ लक्ष्मण ! देखो, पक्षियोंमें भी वह अद्भुत प्रेम देखा जाता है। यह मयूरी प्रेमसे अपने पति मयूरका अनुवर्तन कर रही है, आज यदि विशालाक्षी जानकी यहाँ होती, तो अत्यन्त हर्षके साथ मेरे प्रति आदरभाव रखती हुई मेरे पास आती ॥ ४२, ४३ ॥ वसन्तमें वन फूलों से भर गए हैं। पर वे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रुचिराण्यपि पुष्पाणि पादपानामतिश्रिया । निष्फलानि महीं यान्ति समं मधुकरोत्करैः ॥४५॥
नदन्ति कामं शकुना मुदिताः सङ्घशः कलम् । आह्वयन्त इवान्योन्यं कामोन्मादकरा मम ॥४६॥
वसन्तो यदि तत्रापि यत्र मे वसति प्रिया । नूनं परवशा सीता सापि शोचत्यहं यथा ॥४७॥
नूनं न तु वसन्तस्तं देशं स्पृशति यत्र सा । कथं ह्यसितपद्माक्षी वर्तयेत्सा मया विना ॥४८॥
अथवा वर्तते तत्र वसन्तो यत्र मे प्रिया । किं करिष्यति सुश्रोणी सा तु निर्भर्त्सिता परैः॥४९॥
श्यामा पद्मपलाशाक्षी मृदुभाषा च मे प्रिया । नूनं वसन्तमासाद्य परित्यक्ष्यति जीवितम् ॥५०॥
दृढं हि हृदये बुद्धिर्मम संपरिवर्तते । नालं वर्तयितुं सीता साध्वीमद्विरहं गता ॥५१॥
मयि भावो हि वैदेह्यास्तत्त्वतो विनिवेशितः । ममापि भावः सीतायां सर्वथा विनिवेशितः ॥५२॥
एष पुष्पवहो वायुः सुखस्पर्शो हिमावहः । तां विचिन्तयतः कान्तां पावकप्रतिमो मम ॥५३॥
सदा सुखमहं मन्ये यं पुरा सह सीतया । मारुतः स विना सीतां शोकसंजननो मम ॥५४॥
तां विनाथ विहङ्गोऽसौ पक्षी प्रणदितस्तदा । वायसः पादपगतः प्रहृष्टमभिकूजति ॥५५॥
एष वै तत्र वैदेह्या विहगः प्रतिहारकः । पक्षी मां तु विशालाक्ष्याः समीपमुपनेष्यति ॥५६॥

सब फूल मेरे लिए आज निष्फल हो रहे हैं ॥ ४४ ॥ अत्यन्त सुन्दर भी ये फूल निष्फल होनेके कारण भौरोंके साथ जमीन पर गिर रहे हैं ॥ ४५ ॥ ये पक्षी दलबद्ध होकर मधुर स्वरमें बोल रहे हैं, मानों ये आपसमें एक दूसरे को बुला रहे हैं । ये भी मेरे कामको बढ़ा रहे हैं ॥४६॥ जिस स्थान पर मेरी प्रिया सीता पराधीन होकर इस समय रहती होगी, यदि वहाँ भी वसन्त होगा, वह भी वैसा ही सोचती होगी, जैसा कि मैं इस समय सोच रहा हूँ ॥ ४७ ॥ सीता जहाँ वर्त्तमान है वहाँ वसन्तके चिन्ह प्रकट नहीं हुए हैं, ऐसा निश्चित रूपसे कहा जा सकता है, क्योंकि वसन्तके आविर्भाव होनेपर नील-कमलनयनी सीता मेरे बिना कैसे रह सकती थी ॥४८॥ अथवा जहाँ मेरी प्रिया सीता वर्तमान है, वहाँ भी वसन्त हो होगा, परन्तु मेरी प्रिया सीता शत्रुओंके हाथमें पड़ जानेसे क्या कर सकती है ॥४९॥ श्यामा कमलनयनी मृदुभाषिणी, मेरी प्रिया सीता वसन्तके आनेसे अवश्य ही अपने प्राण छोड़ देगी ॥५०॥ मेरा तो यह दृढ़ निश्चय है कि मेरे विरह होनेपर साध्वी सीता अच्छी तरह नहीं रह सकती ॥ ५१ ॥ मेरा यथार्थ प्रेम सीतामें है और सीताका यथार्थ प्रेम मुझपर है ॥५२॥ सुगन्धित, शीतल और सुखकारी यह वायु सीताको ढूँढ़नेके समय मुझे अग्निके समान मालूम हो रहा है ॥ ५३ ॥ जिस वायुको सीताके साथ रहनेके समय मैं सुखकारी समझता था, आज वही वायु सीताके न रहनेपर मेरे लिए दुःखदायी हो रहा है ॥५४॥ यह काक-पक्षी उस समय (सीताके संयोग समयमें) बोलता था अर्थात् वियोगकी सूचना देता था । आज वही पक्षी सीताके न रहनेपर पेड़पर बैठकर प्रसन्नतापूर्वक बोल रहा है । अर्थात् सीताके संयोग होनेकी सूचना देता है ॥ ५५ ॥ यही पक्षी सीताका हरण करानेवाला है, इसीके अशुभ सूचक शब्द होनेपर सीताका हरण हुआ था । आज यही पक्षी मुझे सीताके पास पहुँचावेगा । अर्थात् इसके अशुभ शब्दसे सीता हरी गयी थीं और आज इसके शुभ शब्दसे सीताकी प्राप्ति होगी ॥ ५६ ॥ लक्ष्मण, वनमें पक्षियोंके शब्द सुनो ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पश्य लक्ष्मण संनादं वने मदविवर्धनम् । पुष्पिताग्रेषु वृक्षेषु द्विजानामवकूजताम् ॥५७॥
विक्षिप्तां पवनेनैतामसौ तिलकमञ्जरीम् । षट्पदः सहसाभ्येति मदोद्धूतामिव प्रियाम्॥५८॥
कामिनामयमत्यन्तमशोकः शोकवर्धनः । स्तबकैः पवनोत्क्षिप्तैस्तर्जयन्निव मां स्थितः ॥५९॥
अमी लक्ष्मण दृश्यन्ते चूताः कुसुमशालिनः । विभ्रमोत्सिक्तमनसः साङ्गरागा नरा इव ॥६०॥
सौमित्रे पश्य पम्पायाश्चित्रासु वनराजिषु । किंनरा नरशार्दूल विचरन्ति यतस्ततः ॥६१॥
इमानि शुभगन्धीनि पश्य लक्ष्मण सर्वशः । नलिनानि प्रकाशन्ते जले तरुणसूर्यवत् ॥६२॥
एषा प्रसन्नसलिला पद्मनीलोत्पलायुता । हंसकारण्डवाकीर्णा पम्पा सौगन्धिकायुता ॥६३॥
जले तरुणसूर्याभैः षट्पदाहतकेसरैः । पङ्कजैः शोभते पम्पा समन्तादभिसंवृता ॥६४॥
चक्रवाकयुता नित्यं चित्रप्रस्थवनान्तरा । मातङ्गमृगयूथैश्च शोभते सलिलार्थिभिः ॥६५॥
पवनाहतवेगाभिरूर्मिभिर्विमलेऽम्भसि । पङ्कजानि विराजन्ते ताड्यमानानि लक्ष्मण ॥६६॥
पद्मपत्रविशालाक्षीं सततं प्रियपङ्कजाम् । अपश्यतो मे वैदेहीं जीवितं नाभिरोचते ॥६७॥
अहो कामस्य वामत्वं यो गतामपि दुर्लभाम् । स्मारयिष्यति कल्याणीं कल्याणतरवादिनीम्॥६८॥
शक्यो धारयितुं कामो भवेदभ्यागतो मया । यदि भूयो वसन्तो मां न हन्यात्पुष्पितद्रुमः ॥६९॥

जिनके सुननेसे मनुष्य मत्त हो जाता है। ये पक्षी पुष्पित वृक्षोंपर बोल रहे हैं ॥ ५७ ॥ वायुके द्वारा कँपायी गयी इस अशोक मञ्जरीके पास भ्रमर बड़ी शीघ्रतासे आ रहा है, जैसे कोई मद-विह्वल पुरुष प्रियतमाके पास जाता हो ॥ ५८ ॥ यह अशोक, कामियोंका अत्यन्त शोक बढ़ानेवाला है। वायुके द्वारा बिखेरे गए गुच्छोंसे ये मानों मुझे धमका रहा है ॥ ५९ ॥ लक्ष्मण, ये आम्र वृक्ष हैं, इनमें फूल लगे हुए हैं। ये अंगराग धारण किये हुए शृंगारी मनुष्यकी तरह मालूम पड़ते हैं ॥ ६० ॥ लक्ष्मण, पम्पाके विविध वनराजियोंमें इधर उधर घूमते हुए इन किन्नरोंको देखो ॥ ६१ ॥ लक्ष्मण, ये सुन्दर गंधवाले लाल कमल जलमें तरुण सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ६२ ॥ यह पम्पा है, इसका स्वच्छ जल है। कमल और नील-कमल खिले हुए हैं। हंस और कारण्डव से यह युक्त है। सौगन्धिक नामक कमलकी जातिके पुष्प भी हैं ॥६३॥ तरुण सूर्यके समान और भ्रमरोंके द्वारा कम्पित केसरोंवाले कमलोंसे इस पम्पाका जल व्याप्त हो गया है अर्थात् जलमें केसर फैल गया है ॥६४॥ यहाँ चक्रवाक सदा रहते हैं। इसके वनोंमें बड़े बड़े सुन्दर स्थान हैं। हाथियों और हरिणोंका झुण्ड जल पीनेके लिए यहाँ आता है ॥ ६५ ॥ लक्ष्मण, वायुके आघातसे पम्पाके विमल-जलमें जो तरंगे उठती हैं, उनसे कमल कम्पित हो जाते हैं, मानों वे ताड़ित हो रहे हों। वे बड़े सुन्दर मालूम पड़ते हैं ॥ ६६ ॥ कमलनयनी और कमलोंसे प्रेम करनेवाली सीताको न देखनेके कारण मैं अपना जीवन धारण करना ठीक नहीं समझता ॥ ६७ ॥ कामकी कुटिलता तो देखो, जो कल्याणी सीता, हमारे लिए दुर्लभ हो गयी है, उसी सुन्दर वचन बोलनेवाली सीताका आज यह स्मरण करा रहा है ॥६८॥ पुष्पित-द्रुम (फूले वृक्षोंवाला) यह वसन्त यदि मेरा घात न करता, तो मैं अपने अतिथि कामको धारण कर लेता अर्थात् सीताके वियोगको वसन्त और अधिक असह्य बना रहा है ॥६९॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यानि स्म रमणीयानि तया सह भवन्ति मे । तान्येवारमणीयानि जायन्ते मे तया विना ॥७०॥
पद्मकोशपलाशानि द्रष्टुं दृष्टिर्हि मन्यते । सीताया नेत्रकोशाभ्यां सदृशानीति लक्ष्मण ॥७१॥
पद्मकेसरसंसृष्टो वृक्षान्तरविनिःसृतः । निःश्वास इव सीताया वाति वायुर्मनोहरः ॥७२॥
सौमित्रे पश्य पम्पाया दक्षिणे गिरिसानुषु । पुष्पितां कर्णिकारस्य यष्टिं परमशोभिताम् ॥७३॥
अधिकं शैलराजोऽयं धातुभिस्तु विभूषितः । विचित्रं सृजते रेणुं वायुवेगविघट्टितम् ॥७४॥
गिरिप्रस्था तु सौमित्रे सर्वतः संप्रपुष्पितैः । निष्पत्रैः सर्वतो रम्यैः प्रदीप्ता इव किंशुकैः ॥७५॥
पम्पातीरुहाश्चेमे संसिक्ता मधुगन्धिनः । मालतीमल्लिकापद्मकरवीराश्च पुष्पिताः ॥७६॥
केतक्यः सिन्दुवाराश्च वासन्त्यश्च सुपुष्पिताः । मातुलिङ्गाश्च पूर्णाश्च कुन्दगुल्माश्च सर्वशः ॥७७॥
चिरिविल्वा मधूकाश्च बञ्जुला बकुलास्तथा । चम्पकास्तिलकाश्चैव नागवृक्षाश्च पुष्पिताः ॥७८॥
पद्मकाश्चैव शोभन्ते नीलाशोकाश्च पुष्पिताः । लोध्राश्च गिरिपृष्ठेषु सिंहकेसरपिञ्जराः ॥७९॥
अङ्कोलाश्च कुरण्टाश्च चूर्णकाः पारिभद्रकाः । चूताः पाटलयश्चापि कोविदाराश्च पुष्पिताः ॥८०॥
मुचुकुन्दार्जुनाश्चैव दृश्यन्ते गिरिसानुषु । केतकोद्दालकाश्चैव शिरीषाः शिंशपा धवाः ॥८१॥
शाल्मल्यः किंशुकाश्चैव रक्ताः कुरबकास्तथा । तिनिशा नक्तमालाश्च चन्दनाःस्यन्दनास्तथा॥८२॥
हिन्तालास्तिलकाश्चैव नागवृक्षाश्च पुष्पिताः । पुष्पिताः पुष्पिताग्राभिर्लताभिःपरिवेष्टितान्॥८३॥

सीताके साथ रहनेपर जो वस्तु मेरे लिए सुन्दर थीं, रमणीय थीं, वे ही आज सीताके न रहने पर अरमणीय और असुन्दर हो रही हैं ॥ ७० ॥ कमलकोषके पत्तोंको देखनेकी मेरी इच्छा होती है, क्योंकि वे सीता के नेत्रकोषके समान हैं ॥ ७१ ॥ कमल-केसरसे मिला हुआ और दो वृक्षोंके बीचसे निकला हुआ, मनोहर वायु सीताके निश्वासके समान बह रहा है ॥ ७२ ॥ लक्ष्मण, देखो, पम्पाके दक्षिण गिरि शिखरपर कर्णकारकी लता फूली हुई है। यह देखनेमें बड़ी सुन्दर मालूम पड़ती है ॥७३॥ अनेक धातुओंसे विभूषित यह शैलराज वायु के आघात लगनेसे अनेक प्रकारकी धूलकी सृष्टि करता है ॥ ७४ ॥ सौमित्रे ! ये पहाड़ी प्रदेश पुष्पित पत्रहीन और रमणीय पलाश वृक्षोंसे जलते हुएके समान मालूम पड़ते हैं ॥ ७५ ॥ ये पम्पा तीरके वृक्ष, पम्पाके जलसे सींचे गए और बढ़े हुए हैं ये बड़े सुगन्धित हैं। मालती, मल्लिका, कमल और करवीर इस समय फूल रहे हैं ॥ ७६ ॥ केतकी, सिन्दुवार और वासन्ती भी फूली हुई हैं। मातुलिंग और गन्धसे पूर्ण कुन्द तथा गुल्म भी चारो ओर फूले हुए हैं। चिरविल्व, मधूक, बंजुल, बकुल, चम्पक, तिलक, नागवृक्ष, पद्मक, नीलासोप, फूले हुए हैं। पर्वतों पर सिंहकेशरके समान लोध भी फूले हुए हैं। अंकोल, कुरण्ट, चूर्णक, पारिभद्रक, आम, पाटली, और कोविदार भी फूले हुए हैं। पर्वत-शिखर पर मुचकुन्द और अर्जुन भी दीख पड़ते हैं। केतक, उद्दालक, सिरीष, शिंशिपा, धव, शाल्मली, किंशुक, रक्तकुरवक, तिनिस, नक्तमाल, चन्दन, स्यन्दन, हिन्ताल, तिलक, नागवृक्ष ये सब वृक्ष स्वयं पुष्पित हो रहे हैं और पुष्पित लताओंसे परिवेष्टित हो रहे हैं ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ सौमित्रे, पम्पा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्रुमान्पश्येह सौमित्रे पम्पाया रुचिरान्बहुन् । वातविक्षिप्तविटपान्यथासन्नान्द्रुमानिमान् ॥८४॥
लताः समनुवर्तन्ते मत्ता इव वरस्त्रियः । पादपात्पादपं गच्छञ्शैलाच्छैलं वनाद्वनम् ॥८५॥
वाति नैकरसास्वादसंमोदित इवानिलः । केचित्पर्याप्तकुसुमाः पादपा मधुगन्धिनः ॥८६॥
केचिन्मुकुलसंवीताः श्यामवर्णा इवाबभुः । इदं मृष्टमिदं स्वादु प्रफुल्लमिदमित्यपि ॥८७॥
रागरक्तो मधुकरः कुसुमेष्वेव लीयते । निलीय पुनरुत्पत्य सहसान्यत्र गच्छति
मधुलुब्धो मधुकरः पम्पातीरद्रुमेष्वसौ ॥८८॥
इयं कुसुमसंघातैरुपास्तीर्णा सुखाकृता । स्वयं निपतितैर्भूमिः शयनप्रस्तरैरिव ॥८९॥
विविधा विविधैः पुष्पैस्तैरेव नगसानुषु । विस्तीर्णाःपीतरक्ताभाःसौमित्रे प्रस्तराःकृताः॥९०॥
हिमान्ते पश्य सौमित्रे वृक्षाणां पुष्पसंभवम् । पुष्पमासे हि तरवः संघर्षादिव पुष्पिताः ॥९१॥
आह्वयन्त इवान्योन्यं नगाः षट्पदनादिताः । कुसुमोत्तंसविटपाः शोभन्ते बहु लक्ष्मण ॥९२॥
एष कारण्डवः पक्षी विगाह्य सलिलं शुभम् । रमते कान्तया सार्धं काममुद्दीपयन्निव ॥९३॥
मन्दाकिन्यास्तु यदिदं रूपमेतन्मनोहरम् । स्थाने जगति विख्याता गुणास्तस्या मनोरमाः॥९४॥
यदि दृश्येत सा साध्वी यदि चेह वसेमहि । स्पृहयेयं न शक्राय नायोध्यायै रघूत्तम ॥९५॥

के सुन्दर अनेक वृक्षोंको देखो, ये बिल्कुल ही पास हैं। वायुके द्वारा इनकी शाखाएँ कँपायी जा रही है ॥८४॥ ये लताएँ श्रेष्ठ स्त्रियोंके समान वृक्षोंका अनुवर्तन कर रही हैं। इस वृक्षसे उस वृक्षपर, इस पर्वतसे उस पर्वतपर, इस वनसे उस वनमें अनेक रसोंके आस्वादनसे आनन्दित वायु बह रहा है। कई वृक्षोंमें पर्याप्त पुष्प लगे हुए हैं और वे बड़े ही सुगन्धित हैं। कई वृक्षोंमें केवल कोढ़ियाँ ही लगी हुई हैं, जिनसे वे वृक्ष हरे मालूम होते हैं। यह मधुर है, यह स्वादु है, यह विकसित है, इस प्रकार प्रेममत्त भ्रमर पुष्पोंमें लीन हो जाता है और शीघ्र ही वहाँसे निकल कर कहीं चला जाता है। मधु-लोभी भ्रमर इस प्रकार पम्पा तीरके वृक्षों पर क्रीड़ा कर रहा है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ इस भूमिको स्वयं गिरे हुए पुष्पोंने ढँक लिया है। जिससे यह सुखकारी शय्याके समान हो गयी है ॥ ८९ ॥ सौमित्रे, अनेक प्रकारके उन्हीं पुष्पोंके द्वारा पर्वत शिखरके पत्थर भी अनेक प्रकारके बना दिए गए हैं। कहीं लाल पुष्पोंसे लाल और पीले पुष्पोंसे पीले पत्थर बना दिए गए हैं ॥ ९० ॥ सौमित्रे, वसन्तमें वृक्षोंकी यह पुष्पसमृद्धि देखो, इस ऋतुमें परस्पर संघर्षसे कितने पुष्प उत्पन्न होते हैं ॥ ९१ ॥ ये पर्वत भ्रमरोंके झंकारसे मानो आपसमें एक दूसरेको बुला रहे हैं। इन वृक्षोंकी शाखाओंमें फूल लगे हुए हैं, जो टोपी के समान शोभते हैं ॥ ९२ ॥ यह कारण्डव पक्षी जलमें स्नान करके अपनी कान्ताके साथ विहार कर रहा है और मेरे कामको बढ़ा रहा है ॥ ९३ ॥ गंगाके समान इस पम्पासरोवरका भी रूप बड़ा ही मनोहर है। अतएव गंगाके गुणोंकी जगत्में जो इतनी प्रसिद्धि है, वह उचित ही है ॥ ९४ ॥ यदि साध्वी सीताके साथ मैं यहाँ निवास कर पाता तो, हे रघुश्रेष्ठ लक्ष्मण, न मैं इन्द्रके पदकी कामना करता और न अयोध्याके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न ह्येवं रमणीयेषु शाद्वलेषु तया सह । रमतो मे भवेच्चिन्ता न स्पृहान्येषु वा भवेत् ॥९६॥
अमी हि विविधैः पुष्पैस्तरवो विविधच्छदाः । काननेऽस्मिन्विना कान्तां चिन्तामुत्पादयन्ति मे॥९७॥
पश्य शीतजलां चेमां सौमित्रे पुष्करायुताम् । चक्रवाकानुचरितां कारण्डवनिषेविताम् ॥९८॥
प्लवैः क्रौञ्चैश्च संपूर्णां महामृगनिषेवितताम् । अधिकं शोभते पम्पा विकूजद्भिर्विहंगमैः ॥९९॥
दीपयन्तीव मे कामं विविधा मुदिता द्विजाः । श्यामां चन्द्रमुखीं स्मृत्वा प्रियां पद्मनिभेक्षणाम् ।
पश्य सानुषु चित्रेषु मृगीभिः सहितान्मृगान्॥१००॥
मां पुनर्मृगशावाक्ष्या वैदेह्या विरहीकृतम् । व्यथयन्तीव मे चित्तं संचरन्तस्ततस्ततः ॥१०१॥
अस्मिन्सानुनि रम्ये हि मत्तद्विजगणाकुले । पश्येयं यदि तां कान्तां ततः स्वस्ति भवेन्मम ॥१०२॥
जीवेयं खलु सौमित्रे मया सह सुमध्यमा । सेवेत यदि वैदेही पम्पायाः पवनं शुभम् ॥१०३॥
पद्मसौगन्धिकवहं शिवं शोकविनाशनम् । धन्या लक्ष्मण सेवन्ते पम्पाया वनमारुतम् ॥१०४॥
श्यामा पद्मपलाशाक्षी प्रिया विरहिता मया । कथं धारयति प्राणान्निवशा जनकात्मजा ॥१०५॥
किं नु वक्ष्यामि धर्मज्ञं राजानं सत्यवादिनम् । जनकं पृष्टसीतं तं कुशलं जनसंसदि ॥१०६॥
या मामनुगता मन्दं पित्रा प्रस्थापितं वनम् । सीता धर्मं समास्थाय क्व नु सा वर्तते प्रिया ॥१०७॥
तया विहीनः कृपणः कथं लक्ष्मण धारये । या मामनुगता राज्याद्भ्रष्टं विहतचेतसम् ॥१०८॥

राज्य की ॥ ९५ ॥ इन रमणीय घासवाले मैदानोंमें सीताके साथ विहार करते समय न तो मुझे किसी बातकी चिन्ता होती है और न किसी बातकी इच्छा ही ॥ ९६ ॥ ये अनेक प्रकारके पत्तोंवाले वृक्ष, अनेक प्रकारके पुष्पोंके द्वारा इस वनमें सीताके बिना मुझे चिन्तित बना देते हैं ॥ ९७ ॥ सौमित्रे, शीतल जलवाले इस पम्पा सरोवरको देखो । इसमें चारो ओर कमल खिले हुए हैं । चक्रवाक और कारण्डव इसके तीरको कभी नहीं छोड़ते । प्लव और क्रौंच यहाँ भरे रहते हैं । और भी अनेक प्रकारके पशु यहाँ रहते हैं । पक्षियोंके शब्दसे पम्पाकी शोभा और बढ़जाती है ॥ ९८,९९ ॥ ये सब प्रसन्न अनेकविध पक्षी चन्द्रमुखी कमल-नयनी प्रियतमा सीताका स्मरण कराके मेरा काम बढ़ाते हैं । पर्वत-शिखरपर मृगीके साथ विचरनेवाले मृगोंको देखो ॥ १०० ॥ मृगनेत्रा वैदेहीसे विरहित होनेपर इधर-उधर भ्रमण करनेवाले ये मृगा मुझे व्यथित करते हैं ॥ १०१ ॥ इस रमणीय पर्वत-शिखरपर, जहाँ मतवाले पक्षी विचर रहे हैं, यदि मैं अपनी प्रिया सीताको देख पाता तो मेरी तृप्ति होती ॥ १०२ ॥ सौमित्रे, यदि सुन्दरी सीता मेरे साथ इस पम्पाकी मनोहर वायुका सेवन करती तो जीवन धारण कर सकता ॥ १०३ ॥ कमलकी गन्धके साथ बहनेवाली, थकावट दूर करनेवाली, पम्पाकी इस जंगली वायुका जो सेवन करते हैं वे धन्य हैं ॥ १०४ ॥ पद्मनेत्रा, प्रियतमा सीता मेरे बिना अपने प्राणोंका धारण किस प्रकार करती होगी ? ॥ १०५ ॥ धर्मज्ञ, सत्यवादी राजा जनककी सभामें जब सीताके कुशल मुझसे पूछेंगे, तब मैं उनसे क्या कहूँगा ॥१०६॥ पिताके द्वारा वन भेजे जानेपर भी जिसने मुझ अभागेका त्याग नहीं किया, वह धर्मपालन करनेवाली सीता इस समय कहाँ होगी ? ॥ १०७ ॥ लक्ष्मण, उसके बिना मैं विचारा, प्राण कैसे धारण करूँ । जिसने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तच्चार्वञ्चितपद्माक्षं सुगन्धि शुभमव्रणम् । अपश्यतो मुखं तस्याः सीदतीव मतिर्मम ॥१०९॥
स्मितहास्यान्तरयुतं गुणवन्मधुरं हितम् । वैदेह्या वाक्यमतुलं कदा श्रोष्यामि लक्ष्मण ॥११०॥
प्राप्य दुःखं वने श्यामा मां मन्मथविकर्शितम् । नष्टदुःखेव हृष्टेव साध्वी साध्वभ्यभाषत ॥१११॥
किंनु वक्ष्याम्ययोध्यायां कौसल्यांहिनृपात्मज।क्कसा स्नुषेति पृच्छन्तीं कथं चापि मनस्विनीम्॥११२॥
गच्छ लक्ष्मण पश्य त्वं भरतं भ्रातृवत्सलम् । नह्यहं जीवितुं शक्तस्तामृते जनकात्मजाम् ॥११३॥
इति रामं महात्मानं विलपन्तमनाथवत् । उवाच लक्ष्मणो भ्राता वचनं युक्तमव्ययम् ॥११४॥
संस्तम्भ राम भद्रं ते मा शुचः पुरुषोत्तम । नेदृशानां मतिर्मन्दा भवत्यकलुषात्मनाम् ॥११५॥
स्मृत्वा वियोगजं दुःखं त्यज स्नेहं प्रिये जने । अतिस्नेहपरिष्वङ्गाद्वर्तिरार्द्रापि दह्यते ॥११६॥
यदि गच्छति पातालं ततोऽभ्यधिकमेव वा । सर्वथा रावणस्तात न भविष्यति राघव ॥११७॥
प्रवृत्तिर्लभ्यतां तावत्तस्य पापस्य रक्षसः । ततो हास्यति वा सीतां निधनं वा गमिष्यति ॥११८॥
यदि याति दितेर्गर्भं रावणः सह सीतया । तत्राप्येनं हनिष्यामि न चेद्दास्यति मैथिलीम् ॥११९॥

सदा हमारा साथ दिया, राज्य-भ्रष्ट होनेकी व्याकुलताके समय भी जिसने साथ नहीं छोड़ा ॥१०८॥ सुन्दर कमलके समान आँखोंवाला, सुगन्धित, मनोहर, चिक्कन, उस सीताका मुख बिना देखे मेरी बुद्धि विकल हो रही है ॥ १०९ ॥ लक्ष्मण ! मैं वैदेहीका अतुलनीय हितकारी और मधुर वचन कब सुनूँगा, जिसमें कभी मुस्कुराहट और कभी हँसी होती है और जिसमें अनेक गुण रहते हैं ॥ ११० ॥ वनके दुःखोंसे दुःखित होनेपर भी यदि साध्वी सीता मुझे इस समय काम-पीड़ित दशामें देखती, तो उसके सब दुःख नष्ट हो जाते और प्रसन्नके समान वह मुझसे बातें करती अर्थात् मेरा दुःख घटानेके लिए बाहरी प्रसन्नता प्रकट करती ॥ १११ ॥ राजपुत्र लक्ष्मण ! अयोध्यामें कौशल्यासे मैं क्या कहूँगा, जब कि मनस्विनी कौशल्या मुझसे पूछेगीं कि वह मेरी पतोहू कहाँ है ॥ ११२ ॥ लक्ष्मण ! तुम जाओ और भ्रातृ-प्रेमी भरतको देखो। सीताके बिना जीनेकी शक्ति मुझमें नहीं हैं ॥ ११३ ॥ महात्मा राम इस प्रकार अनाथके समान विलाप कर रहे हैं, यह देखकर भाई लक्ष्मण उचित और विकार-रहित वचन बोले ॥ ११४ ॥ पुरुषोत्तम राम, शोक न कीजिए अपनेको सम्भालिए। आपके समान पुण्यात्माओंकी इच्छा निष्फल नहीं होती ॥ ११५ ॥ संयोगमें वियोग है और वियोग दुःखदायी है—यह समझकर प्रियजन-विषयक स्नेह का त्याग कीजिए। अर्थात् उसे मात्रासे अधिक न बढ़ने दीजिए, क्योंकि अधिक स्नेहके कारण गीली बत्ती भी जल जाती है। (स्नेहका अर्थ तेल भी समझना चाहिए) ॥ ११६ ॥ यदि पातालमें अथवा उससे भी अधिक दूर कहीं रावण रहता हो तो भाई, अब वह जी न सकेगा, यह निश्चित है ॥ ११७ ॥ उस पापी राक्षसका पहले पता लगाना चाहिए, तब या तो वह सीताको ही देगा या प्राण त्याग करेगा ॥ ११८ ॥ यदि रावण सीताके साथ अपनी माता दितिके गर्भमें पुनः प्रवेश करे, तो मैं वहाँ भी उसे अवश्य ही मारूँगा, यदि वह सीताको न लौटा देगा ॥ ११९ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वास्थ्यं भद्र भजस्वार्य त्यज्यतांकृपणा मतिः। अर्थो हि नष्टकार्यार्थैर्यत्नेनाधिगम्यते ॥१२०॥
उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात्परं बलम्। सोत्साहस्य हि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम्॥१२१॥
उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु। उत्साहमात्रमाश्रित्य प्रतिलप्स्याम जानकीम्॥१२२॥
त्यज्यतां कामवृत्तत्वं शोकं संन्यस्य पृष्ठतः। महात्मानं कृतात्मानमात्मानं नावबुध्यसे ॥१२३॥
एवं संबोधितस्तेन शोकोपहतचेतनः। त्यज्य शोकं च मोहं च रामो धैर्यमुपागमत् ॥१२४॥
सोऽभ्यतिक्रामदव्यग्रस्तामचिन्त्यपराक्रमः। रामः पम्पां सुरुचिरां रम्यां पारिप्लवद्रुमाम् ॥१२५॥

निरीक्षमाणःसहसा महात्मा सर्ववनं निर्झरकंदरं च।
उद्विग्नचेताःसहलक्ष्मणेन विचार्य दुःखोपहतःप्रतस्थे ॥१२६॥
तंमत्तमातङ्गविलासगामी गच्छन्तमव्यग्रमनामहात्म।
सलक्ष्मणो राघवमिष्टचेष्टो ररक्ष धर्मेण बलेन चैव ॥१२७॥
तावृष्यमूकस्य समीपचारी चरन्ददर्शाद्भुतदर्शनीयौ।
शाखामृगाणामधिपस्तरस्वी वितत्रसे नैवविचष्ट चेष्टम्॥१२८॥
स तौ महात्मागजमन्दगामी शाखामृगस्तत्र चरंश्चरन्तौ।
दृष्ट्वा विषादं परमं जगाम चिन्तापरीतो भयभारभग्नः ॥१२९॥

आर्य, आप स्वस्थ हो जाँय, धैर्य धारण करें। इस कायरताका त्याग करें। आप उद्योग करें, क्योंकि उद्योगके अभावमें अर्थसिद्धि नहीं होती। जिनके उद्योग और धन नष्ट हो जाते हैं, वे अपने नष्ट धन को पुनः नहीं पा सकते ॥ १२० ॥ आर्य ! उत्साहमें बड़ा बल है। उत्साहसे अधिक कोई बल नहीं है। जो लोग उत्साही हैं, उनके लिए संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ १२१ ॥ उत्साही पुरुष दुष्कर कामोंमें भी घबड़ाते नहीं। उत्साहकी ही सहायतासे हमलोग जानकीको पा सकेंगे ॥ १२२ ॥ आप इस कामपरतन्त्रताका त्याग करें। शोक भूल जाँय। आप अपने शिक्षित और धीर मनको इस समयमें भूल गये हैं ॥ १२३ ॥ लक्ष्मणके इस प्रकार समझानेपर रामचन्द्रने शोकके कारण उत्पन्न अपने चित्तकी विकलता दूर की। मोहको उन्होंने हटाया और धैर्य धारण किया ॥ १२४ ॥ अचिन्त्यपराक्रम रामचन्द्र विकलताका त्यागकर उस पम्पासे आगे बढ़े, जहाँके वृक्ष वायुसे हटा दिए गए थे, अतएव जहाँकी शोभा अधिक बढ़ गयी थी ॥ १२५ ॥ उद्विग्नचित्त और दुःखी महात्मा राम विचार कर, अर्थात् सीताको ढूँढ़ना चाहिए यह समझकर, समस्त वन, निर्झर, कन्दरा आदिको देखते हुए चले ॥ १२६ ॥ जाते हुए उन रामको, मतवाले हाथीके समान सुन्दर चलनेवाले, धर्मात्मा और बलवान तथा अपने इष्ट रामचन्द्रके लिए सब प्रकारका उद्योग करनेवाले लक्ष्मणने सम्भाला ॥ १२७ ॥ ऋष्यमूक पर्वतके समीप भ्रमण करनेवाले, अतुलनीय सुन्दर इन राम और लक्ष्मणको वानरोंके अधिपति सुग्रीवने देखा। वह डर गया, अतएव वह इनके प्रति कोई अपना कर्तव्य निश्चित न कर सका ॥ १२८ ॥ हाथीके समान मन्द गमन करनेवाले इनको देखकर वानरोंका स्वामी बहुत दुखी हुआ। वह चिन्तित हो गया और उसका उत्साह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तमाश्रमं पुण्यसुखं शरण्यं सदैव शाखामृगसेवितान्तम् ।
त्रस्ताश्च दृष्ट्वा हरयो विजग्मुर्महौजसौ राघवलक्ष्मणौ तौ ॥१३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २

तौ तु दृष्ट्वा महात्मानौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । वरायुधधरौ वीरौ सुग्रीवः शङ्कितोऽभवत् ॥ १ ॥
उद्विग्नहृदयः सर्वा दिशः समवलोकयन् । न व्यतिष्ठत कस्मिंश्चिद्देशे वानरपुंगवः ॥ २ ॥
नैव चक्रे मनः स्थातुं वीक्ष्यमाणौ महाबलौ । कपेः परमभीतस्य चित्तं व्यवससाद ह ॥ ३ ॥
चिन्तयित्वा स धर्मात्मा विमृश्य गुरुलाघवम् । सुग्रीवः परमोद्विग्नः सर्वैस्तैर्वानरैः सह ॥ ४ ॥
ततः स सचिवेभ्यस्तु सुग्रीवः प्लवगाधिपः । शशंस परमोद्विग्नः पश्यंस्तौ रामलक्ष्मणौ ॥ ५ ॥
एतौ वनमिदं दुर्गं वालिप्रणिहितौ ध्रुवम् । छद्मना चीरवसनौ प्रचरन्ताविहागतौ ॥ ६ ॥
ततः सुग्रीवसचिवा दृष्ट्वा परमधन्विनौ । जग्मुर्गिरितटात्तस्मादन्यच्छिखरमुत्तमम् ॥ ७ ॥
ते क्षिप्रमभिगम्याथ यूथपा यूथपर्षभम् । हरयो वानरश्रेष्ठं परिवार्योपतस्थिरे ॥ ८ ॥

जाता रहा ॥ १२९ ॥ वह मतंगका आश्रम पवित्र और सुखकारी था । मुनियोंको शरण देनेवाला था, और सदासे वहाँ वानर रहते चले आये थे । पराक्रमी रामलक्ष्मणको देखकर अन्य वानर भी भयभीत होकर आश्रममें गये ॥ १३० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका पहला सर्ग समाप्त ।

विशाल शरीर उन दोनों भाई राम और लक्ष्मणको देखकर सुग्रीव घबड़ा गया, क्योंकि वे वीरके समान मालूम होते थे और श्रेष्ठ अस्त्र धारण किये हुए थे ॥ १ ॥ उसका हृदय उद्विग्न हो गया । वह चारो दिशाओंको देखने लगा । कहीं एक स्थानपर वह स्थिर न रह सका ॥ २ ॥ महाबली राम और लक्ष्मणको देखकर सुग्रीव निश्चिन्त होकर एक स्थानपर बैठ न सका, क्योंकि वह बहुत ही डर गया था, और उसका चित्त बहुत ही दुःखित हो गया था ॥ ३ ॥ धर्मात्मा सुग्रीवने अपने मन्त्रियोंके साथ हानि-लाभका विचार किया । इसी आश्रममें रहना चाहिए या यहाँसे भाग जाना चाहिए । क्या करनेसे लाभ होगा और क्या करनेसे हानि आदि बातोंका विचार करके उन समस्त वानरोंके साथ वह बहुत ही चिन्तित हुआ ॥४॥ वानराधिपति सुग्रीवने अपने सचिवोंसे बड़े उद्वेगके साथ कहा ॥ ५ ॥ निश्चय ये दोनों बालिके भेजनेसे इस दुर्गम वनमें आये हैं । छलसे अपनेको छिपानेके लिए इन लोगोंने यह मुनिवेष धारण किया है ॥ ६ ॥ तदनन्तर, इन परम धनुर्धारी वीरोंको देखकर सुग्रीवके सचिव उस पर्वतसे दूसरे पर्वतके शिखरपर चले गये ॥ ७ ॥ वे सब वानर सचिव वहाँसे शीघ्र ही जाकर वानराधिपति सुग्रीवको चारो ओरसे घेरकर बैठ गए ॥ ८ ॥ वे सभी वानर भयभीत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमेकायनगताः प्लवमाना गिरेर्गिरिम् । प्रकम्पयन्तो वेगेन गिरीणां शिखराणि च ॥ ९ ॥
ततः शाखामृगाः सर्वे प्लवमाना महाबलाः । बभञ्जुश्च नगांस्तत्र पुष्पितान्दुर्गमाश्रितान् ॥१०॥
आप्लवन्तो हरिवराः सर्वतस्तं महागिरिम् । मृगमार्जारशार्दूलाँस्त्रासयन्तो ययुस्तदा ॥११॥
ततः सुग्रीवसचिवाः पर्वतेन्द्रे समाहिताः । संगम्य कपिमुख्येन सर्वे प्राञ्जलयः स्थिता ॥१२॥
ततस्तु भयसंत्रस्तं वालिकिल्विषशङ्कितम् । उवाच हनुमान्वाक्यं सुग्रीवं वाक्यकोविदः ॥१३॥
संभ्रमस्त्यज्यतामेष सर्वैर्वालिकृते महान् । मलयोऽयं गिरिवरो भयं नेहास्ति वालिनः ॥१४॥
यस्मादुद्विग्नचेतास्त्वं विद्रुतो हरिपुङ्गव । तं क्रूरदर्शनं क्रूरं नेह पश्यामि वालिनम् ॥१५॥
यस्मात्तव भयं सौम्यं पूर्वजात्पापकर्मणः । स नेह वाली दुष्टात्मा न ते पश्याम्यहं भयम् ॥१६॥
अहो शाखामृगत्वं ते व्यक्तमेव प्लवङ्गम । लघुचित्ततयाऽऽत्मानं न स्थापयसि यो मतौ॥१७॥
बुद्धिविज्ञानसंपन्न इङ्गितैः सर्वमाचर । नह्यबुद्धिं गतो राजा सर्वभूतानि शास्ति हि ॥१८॥
सुग्रीवस्तु शुभं वाक्यं श्रुत्वा सर्वे हनूमतः । ततः शुभतरं वाक्यं हनूमन्तमुवाच ह ॥१९॥
दीर्घबाहू विशालाक्षौ शरचापासिधारिणौ । कस्य न स्याद्भयं दृष्ट्वा ह्येतौ सुरसुतोपमौ ॥२०॥
वालिप्रणिहितावेव शङ्केऽहं पुरुषोत्तमौ । राजानो बहुमित्राश्च विश्वासो नात्र हि क्षमः ॥२१॥

हो गये थे । अतएव सभी एक साथ इस पर्वतसे उस पर्वतपर भाग रहे थे । उनके वेगसे पर्वतोंके शिखर काँपने लगे ॥ ९ ॥ वे महाबली वानर कूदते हुए वृक्षोंको तोड़ने लगे, जो पुष्पित थे और दुर्गम स्थानमें थे ॥ १० ॥ उस महान पर्वतके चारो ओर फैल गये । मृगा, मार्जार और शार्दूलको भयभीत करते हुए वे सुग्रीवके समीप गये ॥ ११ ॥ सुग्रीवके सभी सचिव उनके समीप पहुँचकर और एकाग्रचित्त होकर उनके सामने हाथ जोड़कर बैठे ॥ १२ ॥ अनन्तर बालिके कुचक्रसे शंकित और डरे हुए सुग्रीवसे बोलनेमें चतुर हनुमान बोले ॥ १३ ॥ बालिके द्वारा अनिष्टकी आशंका आप सब लोग छोड़ दें । यह मलय पर्वत है । यहाँ वालिका भय नहीं है ॥ १४ ॥ जिससे तुम भगे थे और भयभीत हो गये थे । सौम्य, उस क्रूर कर्म करनेवाले क्रूर वालिको मैं यहाँ नहीं देखता ॥ १५ ॥ सौम्य, पापी अपने बड़े भाईके कारण तुम्हें भय है; वह दुष्ट वालि यहाँ नहीं आ सकता । अतएव तुम्हें भयभीत होनेका कोई कारण नहीं है ॥ १६ ॥ पर आश्चर्यकी बात यह है कि अज्ञानके कारण तुम बुद्धिपूर्वक विचार नहीं कर रहे हो, इस कारण तुम्हारा वानर होना सिद्ध हो रहा है । अर्थात् डरनेके कारण न होनेपर भी तुम डर रहे हो ॥ १७ ॥ बुद्धि विज्ञानसे युक्त होकर तुमको दूसरोंकी चेष्टाओंसे उनका भाव समझकर अपनी रक्षाका उपाय करना चाहिए । जो राजा बुद्धिका त्याग कर देता है, वह अपनी प्रजाका शासन नहीं कर सकता ॥ १८ ॥ सुग्रीवने हनुमानके सब सुन्दर वचन सुने । अनन्तर वे हनुमानसे और अधिक सुन्दर वचन बोले, ॥ १९ ॥ दीर्घबाहु, विशालाक्ष, धनुषबाण धारण करनेवाले, देवपुत्रोंके समान इन दोनोंको देखकर किसको भय उत्पन्न न होगा ॥ २० ॥ इन दोनों पुरुषश्रेष्ठोंको वालिने ही भेजा है, ऐसा मुझे सन्देह होरहा है; क्योंकि राजाओंके अनेक मित्र होते हैं । अतएव राजकार्यके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अरयश्च मनुष्येण विज्ञेयाश्छद्मचारिणः । विश्वस्तानामविश्वस्ताश्छिद्रेषु प्रहरन्त्यपि ॥२२॥
कृत्येषु वाली मेधावी राजानो बहुदर्शिनः । भवन्ति परहन्तारस्ते ज्ञेयाः प्राकृतैर्नरैः ॥२३॥
तौ त्वया प्राकृतेनैव गत्वा ज्ञेयौ सवङ्गम । इङ्गितानां प्रकारैश्च रूपव्याभाषणेन च ॥२४॥
लक्षयस्व तयोर्भावं प्रहृष्टमनसौ यदि । विश्वासयन्प्रशंसाभिरिङ्गितैश्च पुनः पुनः ॥२५॥
ममैवाभिमुखं स्थित्वा पृच्छ त्वं हरिपुंगव । प्रयोजनं प्रवेशस्य वनस्यास्य धनुर्धरौ ॥२६॥
शुद्धात्मानौ यदि त्वेतौ जानीहि त्वं सवङ्गम । व्याभाषितैर्वा रूपैर्वा विज्ञेया दुष्टताऽनयोः ॥२७॥
इत्येवं कपिराजेन संदिष्टो मारुतात्मजः । चकार गमने बुद्धिं यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥२८॥

तथेति संपूज्य वचस्तु तस्य कपिः सुभीतस्य दुरासदस्य ।
महानुभावो हनुमान्ययौ तदा स यत्र रामोऽतिबली सलक्ष्मणः ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

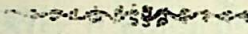

विषयमें विश्वास करना उचित नहीं ॥ २१ ॥ छिपकर विचरण करनेवाले शत्रुओंपर विशेष ध्यान रखना चाहिये; क्योंकि वे विश्वास उत्पन्न कराकर मौका पाते ही प्रहार करते हैं ॥ २२ ॥ राजा लोग अनेक उपायोंको जानते हैं। अतएव शत्रुओंका नाश करते हैं। हम लोगोंको चाहिए कि उन राजाओंसे बहुत सावधान रहें। वालि भी बड़ा बुद्धिमान है। बड़ी योग्यतासे काम करता है। अतएव हम लोगोंको उससे सावधान रहनेकी आवश्यकता है ॥ २३ ॥ अतएव हे वानर, साधारण वेषसे जाकर तुम्हें उनका पता लगाना चाहिए। इशारोंके द्वारा रूप तथा बोलनेके तरीकोंसे उनका पता लगाना चाहिए ॥ २४ ॥ उन लोगोंका अभिप्राय जानो। यदि वे तुमपर प्रसन्न मालूम पड़ें, तो मेरी प्रशंसाके द्वारा अपने लोगोंके प्रति उनका विश्वास उत्पन्न कराओ। इसके लिए इशारेसे भी काम लो ॥ २५ ॥ वानरश्रेष्ठ हनुमान, तुम मेरे ही सामने खड़े होकर उन धनुर्धारी वीरोंसे इस वनमें प्रवेश करनेका कारण पूछो ॥ २६ ॥ यदि तुम इन दोनोंको शुद्ध समझो, तब फिर भी वचनों और रूपोंके द्वारा इनके भीतरी भावोंको जाननेका प्रयत्न करो। जानो कि ये किसी दुष्टतासे तो यहाँ नहीं आये हैं ॥ २७ ॥ वानराधिपति सुग्रीवका यह सन्देश लेकर वायुपुत्र हनुमानने रामलक्ष्मणके पास जानेका निश्चय किया ॥ २८ ॥ डरे हुए सुग्रीवका वचन मानकर महानुभाव हनुमान वहाँ गये, जहाँ लक्ष्मणके साथ महाबली रामचन्द्र थे ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका दूसरा सर्ग समाप्त ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तृतीयः सर्गः ३

वचो विज्ञाय हनुमान्सुग्रीवस्य महात्मनः । पर्वतादृष्यमूकात्तु पुप्लुवे यत्र राघवौ ॥ १ ॥
कपिरूपं परित्यज्य हनुमान्मारुतात्मजः । भिक्षुरूपं ततो भेजे शठबुद्धितया कपिः ॥ २ ॥
ततश्च हनुमान्वाचा श्लक्ष्णया सुमनोज्ञया । विनीतवदुपागम्य राघवौ प्रणिपत्य च ॥ ३ ॥
आबभाषे च तौ वीरौ यथावत्प्रशशंस च । संपूज्य विधिवद्वीरौ हनुमान्वानरोत्तमः ॥ ४ ॥
उवाच कामतो वाक्यं मृदु सत्यपराक्रमौ । राजर्षिदेवप्रतिमौ तापसौ संशितव्रतौ ॥ ५ ॥
देशं कथमिमं प्राप्तौ भवन्तौ वरवर्णिनौ । त्रासयन्तौ मृगगणानन्यांश्च वनचारिणः ॥ ६ ॥
पम्पातीरुहान्वृक्षान्वीक्षमाणौ समन्ततः । इमां नदीं शुभजलां शोभयन्तौ तरस्विनौ ॥ ७ ॥
धैर्यवन्तौ सुवर्णाभौ कौ युवां चीरवाससौ । निःश्वसन्तौ वरभुजौ पीडयन्ताविमाः प्रजाः ॥ ८ ॥
सिंहविप्रेक्षितौ वीरौ महाबलपराक्रमौ । शक्रचापनिभे चापे गृहीत्वा शत्रुनाशनौ ॥ ९ ॥
श्रीमन्तौ रूपसंपन्नौ वृषभश्रेष्ठविक्रमौ । हस्तिहस्तोपमभुजौ द्युतिमन्तौ नरर्षभौ ॥१०॥
प्रभया पर्वतेन्द्रोऽसौ युवयोरवभासितः । राज्यार्हावमरप्रख्यौ कथं देशमिहागतौ ॥११॥
पद्मपत्रेक्षणौ वीरौ जटामण्डलधारिणौ । अन्योन्यसदृशौ वीरौ देवलोकादिहागतौ ॥१२॥

महात्मा सुग्रीवके वचन मानकर हनुमान ऋष्यमूक पर्वतसे जहाँ राम और लक्ष्मण थे, वहाँके लिए चले ॥ १ ॥ वायुपुत्र हनुमानने वानर रूपका त्याग करके भिक्षुरूप धारण किया; क्योंकि वानररूप बातचीत करनेके उपयोगी नहीं होता । उनपर विश्वास नहीं किया जाता ॥ २ ॥ तदनन्तर राम और लक्ष्मणके समीप नम्रतापूर्वक जाकर हनुमानने प्रणाम किया और सुन्दर शब्दोंवाले वचन बोले—वानरश्रेष्ठ हनुमानने उन वीरोंकी विधिवत् पूजाकर प्रशंसा की ॥ ३,४ ॥ अनन्तर वे सत्य-पराक्रम राजर्षि और देवताके समान उन दोनों तपस्वियोंसे अपनी इच्छापूर्वक बोले, अर्थात् सुग्रीवके कहनेके अनुसार नहीं ॥ ५ ॥ आप महानुभावोंने इस प्रदेशमें क्यों आगमन किया है ? आप लोगोंके आनेसे यहाँके पशु तथा अन्य वनचारी भयभीत होगये हैं ॥ ६ ॥ पम्पातीरके वृक्षोंको देखते हुए तथा स्वच्छसलिला इस नदीको देखते हुए, आप लोगोंने यहाँ पदार्पण किया है ॥ ७ ॥ धीर, सुवर्णके समान शरीरवाले और चीरवस्त्र धारण करनेवाले आप लोग कौन हैं ? सुन्दर भुजावाले, आप दोनोंका निश्वास देखकर यह प्रजा दुःखित होरही है । अर्थात् आपके दुःखसे वह भी दुःखित हो रही है ॥ ८ ॥ सिंहके समान देखनेवाले महाबली और पराक्रमी आप दोनों इन्द्रके धनुषके समान धनुष धारण करके इस देशमें क्यों आये हैं ? आप श्रीमान् हैं, सुन्दर हैं । वृषभके समान पराक्रमी हैं । आपके हाथ हाथीकी सूंडके समान हैं । आप दोनों नरश्रेष्ठ बुद्धिमान् हैं । आपकी प्रभासे यह पर्वत जगमगा गया है । आप दोनों देवताके समान हैं और राज्यके अधिकारी हैं । आप लोग इस देशमें क्यों आये ? ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ आप दोनों वीर, जटा धारण करनेवाले हैं कमल-पत्रके समान आपकी आँखें हैं । आप दोनोंके आकार समान हैं । क्या आपलोग देवलोकसे आये हैं ? ॥ १२ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यदृच्छयेव संप्राप्तौ चन्द्रसूर्यौ वसुंधराम् । विशालवक्षसौ वीरौ मानुषौ देवरूपिणौ ॥१३॥
सिंहस्कन्धौ महोत्साहौ समदाविव गोवृषौ । आयताश्च सुवृत्ताश्च बाहवः परिघोपमाः ॥१४॥
सर्वभूषणभूषार्हाः किमर्थं न विभूषिताः । उभौ योग्यावहं मन्ये रक्षितुं पृथिवीमिमाम् ॥१५॥
ससागरवनां कृत्स्नां विन्ध्यमेरुविभूषिताम् । इमे च धनुषी चित्रे श्लक्ष्णे चित्रानुलेपने ॥१६॥
प्रकाशेते यथेन्द्रस्य वज्रे हेमविभूषिते । संपूर्णाश्च शितैर्बाणैस्तूणाश्च शुभदर्शनाः ॥१७॥
जीवितान्तकरैर्घोरैर्ज्वलद्भिरिव पन्नगैः । महाप्रमाणौ विपुलौ तप्तहाटकभूषणौ ॥१८॥
खड्गावेतौ विराजेते निर्मुक्तभुजगाविव । एवं मां परिभाषन्तं कस्माद्वै नाभिभाषतः ॥१९॥
सुग्रीवो नाम धर्मात्मा कश्चिद्वानरपुङ्गवः । वीरो विनिकृतो भ्रात्रा जगद्भ्रमति दुःखितः ॥२०॥
प्राप्तोऽहं प्रेषितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना । राज्ञा वारमुख्यानां हनुमान्नाम वानरः ॥२१॥
युवाभ्यां सहि धर्मात्मा सुग्रीवः सख्यमिच्छति। तस्य मां सचिवं विद्धि वानरं पवनात्मजम् ॥२२॥
भिक्षुरूपप्रतिच्छन्नं सुग्रीवप्रियकारणात् । ऋष्यमूकादिह प्राप्तं कामगं कामचारिणम् ॥२३॥
एवमुक्त्वा तु हनुमांस्तौ वीरौ रामलक्ष्मणौ । वाक्यज्ञो वाक्यकुशलः पुनर्नोवाच किंचन ॥२४॥

क्या अकस्मात् चन्द्रमा और सूर्य पृथ्वीपर तो नहीं उतर आये, या चौड़ी छातीवाले मनुष्य-रूपधारी आप कोई देवता हैं ॥ १३ ॥ आपके कन्धे सिंहके समान हैं। मस्त साँड़के समान आप उत्साहित मालूम होते हैं। आपकी बाहु परिघके समान गोली और लम्बी हैं ॥ १४ ॥ आपलोग सब भूषणोंके धारण करने योग्य हैं, फिर आप लोगोंने भूषण क्यों नहीं धारण किये ? मैं तो आप दोनोंको इस समस्त पृथिवीकी रक्षा करनेके योग्य समझता हूँ ॥ १५ ॥ सागर, वन, विंध्य, मेरु आदि पर्वतोंसे युक्त, समस्त पृथिवीकी रक्षा आप लोग कर सकते हैं। आप दोनोंके धनुष चित्रोंसे युक्त हैं। बड़े चिकने तथा सुवर्ण आदि धातुओंके चित्र उनपर बनाये गये हैं ॥ १६ ॥ वे दोनों सुवर्ण-मण्डित इन्द्रके बज्रके समान शोभित होते हैं। तीखे बाणोंसे आपके तूणीर भरे हुए बड़े सुन्दर मालूम होते हैं ॥ १७ ॥ ये प्राण लेनेवाले भयानक बाण सर्पके समान भयानक और प्रज्वलशमान हैं। विशाल, मोटी और तपे सोनेसे भूषित ये आप दोनोंकी तलवारें, केंचुल छोड़े सर्पके समान शोभित हो रही हैं। मैं आप लोगोंसे इस प्रकार बातें करता हूँ, आप लोग क्यों नहीं बोलते ॥ १८ ॥ १९ ॥ वानरोंके अधिपति धर्मात्मा सुग्रीव हैं। भाईके द्वारा निकाले जाकर वे दुःखसे मारे-मारे फिरते हैं ॥ २० ॥ वानरोंके राजा उन्हीं महात्मा सुग्रीवके भेजनेसे मैं आपके समीप आया हूँ। मैं हनुमान नामक वानर हूँ ॥ २१ ॥ धर्मात्मा सुग्रीव आप दोनोंसे मैत्री करना चाहते हैं। मैं उनका सचिव हूँ और वायुका पुत्र हूँ ॥ २२ ॥ सुग्रीवके कार्य सिद्ध करनेके लिए भिक्षुका रूप धारण करके अपनेको मैंने छिपा लिया है। मैं ऋष्यमूकसे यहाँ आया हूँ। मैं इच्छानुसार रूप धारण कर सकता हूँ और इच्छानुसार जहाँ चाहे वहाँ जा सकता हूँ ॥ २३ ॥ उन दोनों वीरों राम और लक्ष्मणसे इस प्रकार कहकर वाक्य समझनेवाले तथा बोलनेमें चतुर हनुमान चुप हो गये। उन्होंने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । प्रहृष्टवदनः श्रीमान्भ्रातरं पार्श्वतः स्थितम् ॥२५॥
सचिवोऽयं कपीन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । तमेव काङ्क्षमाणस्य ममान्तिकमिहागतः ॥२६॥
तमभ्यभाष सौमित्रे सुग्रीवसचिवं कपिम् । वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्तमरिंदमम् ॥२७॥
नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः । नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥२८॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम् । बहुव्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ॥२९॥
न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा । अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित् ॥३०॥
अविस्तरमसंदिग्धमविलम्बितमव्यथम् । उरःस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमस्वरम् ॥३१॥
संस्कारक्रमसंपन्नामद्रुतामविलम्बिताम् । उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम् ॥३२॥
अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया । कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि ॥३३॥
एवंविधो यस्य दूतो न भवेत्पार्थिवस्य तु । सिद्ध्यन्ति हि कथं तस्य कार्याणां गतयोऽनघ ॥३४॥
एवंगुणगणैर्युक्ता यस्य स्युः कार्यसाधकाः । तस्यसिद्ध्यन्तिसर्वेऽर्था दूतवाक्यप्रचोदिताः ॥३५॥
एवमुक्तस्तु सौमित्रिः सुग्रीवसचिवं कपिम् । अभ्यभाषत वाक्यज्ञो वाक्यज्ञं पवनात्मजम् ॥३६॥
विदिता नौ गुणा विद्वन्सुग्रीवस्य महात्मनः । तमेव चावां मार्गावः सुग्रीवं प्लवगेश्वरम् ॥३७॥

और कुछ नहीं कहा ॥ २४ ॥ उनके ये वचन सुनकर प्रसन्नमुख श्रीमान् रामचन्द्र बगलमें बैठे भाई लक्ष्मणसे बोले ॥ २५ ॥ वानराधिपति महात्मा सुग्रीवके ये सचिव हैं और उन्हींकी इच्छासे ये हमारे पास आये हैं ॥ २६ ॥ सौमित्रे, सुग्रीवसचिव इन वानरसे तुम बातें करो । ये वचन समझने वाले हैं, शत्रुदमन करनेवाले हैं, तुम स्नेहपूर्वक इनसे मीठे वचनोंसे बातें करो ॥ २७ ॥ जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा नहीं, जिसे यजुर्वेदका ज्ञान नहीं और जो सामवेदका विद्वान् नहीं, वह ऐसी बातें नहीं कर सकता ॥ २८ ॥ निश्चय इन्होंने समस्त व्याकरण कई बार सुने हैं, क्योंकि बहुत बोलने-पर भी इन्होंने कोई गलती नहीं की है ॥ २९ ॥ मुँह, आँखें, ललाट, भौंह तथा अन्य अंगोंसे बोलनेके समय इनका कोई दोष प्रकट नहीं हुआ है ॥ ३० ॥ इन्होंने जो कुछ कहा है, संक्षेपमें कहा है । इनकी ऐसी कोई बात नहीं हुई है जिसमें सन्देह हो । रुक-रुक कर तथा शब्दोंको तोड़-मरोड़कर इन्होंने उच्चारण नहीं किया है । न तो बहुत ऊँचे और न बहुत नीचे, किन्तु मध्यम स्वरमें इन्होंने अपना अभिप्राय प्रकाशित किया है ॥ ३१ ॥ संस्कार तथा उच्चारणकी शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार किया हुआ वचन हृदयको प्रसन्न करता है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार सुन्दर वचन बोलनेवाले शुद्ध और उचित प्रकारसे बोलनेवालेके वचनसे किसका मन प्रसन्न नहीं होता । वध करनेके लिए जिसने तलवार उठाई हो, वैसा शत्रुभी ऐसे वचनोंसे प्रसन्न हो जाता है ॥ ३३ ॥ जिस राजाके ऐसा दूत न हो, उसके कार्य कैसे सिद्ध हो सकते हैं ॥ ३४ ॥ ऐसे गुणोंसे युक्त कार्य सिद्ध करनेवाले दूत जिस राजाके पास हों, उस राजाके कार्य दूतके बचनसे ही सिद्ध हो जाते हैं ॥ ३५ ॥ रामचन्द्रके द्वारा ऐसा कहे जानेपर, सुग्रीवके सचिव वचन समझनेवाले पवन-पुत्र हनुमानसे बोलनेमें चतुर लक्ष्मण बोले, ॥३६॥ विद्वन्, महात्मा सुग्रीवके गुण हम लोगोंको मालूम हैं । हम लोग भी वानराधिपति सुग्रीवको ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यथा ब्रवीषि हनुमन्सुग्रीववचनादिह । तत्तथा हि करिष्यावो वचनात्तव सत्तम ॥३८॥
तत्तस्य वाक्यं निपुणं निशम्य प्रहृष्टरूपः पवनात्मजः कपिः ।
मनः समाधाय जयोपपत्तौ सख्यं तदा कर्तुमियेष ताभ्याम् ॥३९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४

इतः प्रहृष्टो हनुमान्कृत्यवानिति तद्वचः । श्रुत्वा मधुरभावं च सुग्रीवं मनसा गतः ॥ १ ॥
भाव्यो राज्यागमस्तस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । यदयं कृत्यवान्प्राप्तः कृत्यं चैतदुपागतम् ॥ २ ॥
ततः परमसंहृष्टो हनूमान्प्लवगोत्तमः । प्रत्युवाच ततो वाक्यं रामं वाक्यविशारदम् ॥ ३ ॥
किमर्थं च वनं घोरं पम्पाकाननमण्डितम् । आगतः सानुजो दुर्गं नानाव्यालमृगायुतम् ॥ ४ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणो रामचोदितः । आचचक्षे महात्मानं रामं दशरथात्मजम् ॥ ५ ॥
राजा दशरथो नाम द्युतिमान्धर्मवत्सलः । चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मेण नित्यमेवाभिपालयन् ॥ ६ ॥
न द्वेष्टा विद्यते तस्य स तु द्वेष्टि न कंचन । स तु सर्वेषु भूतेषु पितामह इवापरः ॥ ७ ॥

ढूंढ रहे हैं ॥ ३७ ॥ हनुमन, सुग्रीवके कहनेसे जैसा तुमने कहा है, अर्थात् सुग्रीव हम लोगोंसे मैत्री करना चाहते हैं, हम लोग भी तुम्हारे कहनेसे वैसा करना चाहते हैं ॥३८॥ लक्ष्मणके ये वचन सुनकर वायु-पुत्र हनुमान बहुत प्रसन्न हुए । सुग्रीवकी जय-सिद्धिका विश्वास करके उन्होंने उन दोनोंसे मैत्री करानेका निश्चय किया ॥ ३९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका तीसरा सर्ग समाप्त ।

उनके मधुर वचन सुनकर हनुमान यह जानकर प्रसन्न हुए कि रामचन्द्रका भी कोई काम ऐसा है जिसके लिए सुग्रीवकी सहायता इन्हें अपेक्षित है । यह जानकर हनुमान मन ही मन सुग्रीवके पास पहुँचे ॥ १ ॥ महात्मा सुग्रीवको अवश्य ही राज्यकी प्राप्ति होगी, क्योंकि ये रामचन्द्र अपने किसी कामके लिए यहां आये हैं और इनका वह काम सुग्रीवके अधीन है ॥ २ ॥ परम प्रसन्न वानरश्रेष्ठ हनुमान, बोलनेमें चतुर रामचन्द्रसे पुनः बोले, ॥ ३ ॥ पम्पाके जंगलवाले इस भयानक वनमें भाईके साथ आप क्यों आये हैं ? यह वन बड़ा ही दुर्गम है और हिंस्र जन्तुओंसे परिपूर्ण है ॥ ४ ॥ हनुमानके वचन सुनकर और रामचन्द्रके द्वारा प्रेरित होकर लक्ष्मणने महात्मा रामचन्द्रकी बातें इस प्रकार कहीं ॥ ५ ॥ राजा दशरथ बड़े धर्मात्मा हैं । उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंका स्वधर्मके अनुसार पालन किया है ॥ ६ ॥ उनका कोई शत्रु नहीं है और न वे ही किसीसे शत्रुता रखते हैं । वे प्राणियोंमें पितामहके समान श्रेष्ठ हैं ॥ ७ ॥ अग्निष्टोम आदि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्तदक्षिणैः । तस्यायं पूर्वजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥ ८ ॥
शरण्यः सर्वभूतानां पितुर्निर्देशपारगः । ज्येष्ठो दशरथस्यायं पुत्राणां गुणवत्तरः ॥ ९ ॥
राजलक्षणसंयुक्तः संयुक्तो राज्यसंपदा । राज्याद्भ्रष्टो मया वस्तुं वने सार्धमिहागतः ॥१०॥
भार्यया च महाभाग सीतयानुगतो वशी । दिनक्षये महातेजाः प्रभयेव दिवाकरः ॥११॥
अहमस्यावरो भ्राता गुणैर्दास्यमुपागतः । कृतज्ञस्य बहुज्ञस्य लक्ष्मणो नाम नामतः ॥१२॥
सुखार्हस्य महार्हस्य सर्वभूतहितात्मनः । ऐश्वर्येण विहीनस्य वनवासे रतस्य च ॥१३॥
रक्षसापहृता भार्या रहिते कामरूपिणा । तच्च न ज्ञायते रक्षः पत्नी येनास्य वा हृता ॥१४॥
दनुर्नाम दितेः पुत्रः शापाद्राक्षसतां गतः । अख्यातस्तेन सुग्रीवः समर्थो वानराधिपः ॥१५॥
स ज्ञास्यति महावीर्यस्तव भार्यापहारिणम् । एवमुक्त्वा दनुः स्वर्गं भ्राजमानो दिवं गतः ॥१६॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं याथातथ्येन पृच्छतः । अहं चैव च रामश्च सुग्रीवं शरणं गतौ ॥१७॥
एष दत्त्वा च वित्तानि प्राप्य चानुत्तमं यशः । लोकनाथः पुरा भूत्वा सुग्रीवं नाथमिच्छति ॥१८॥
सीता यस्य स्नुषा चासीच्छरण्यो धर्मवत्सलः । तस्य पुत्रः शरण्यस्य सुग्रीवं शरणं गतः ॥१९॥
सर्वलोकस्य धर्मात्मा शरण्यः शरणं पुरा । गुरुर्मे राघवः सोऽयं सुग्रीवं शरणं ततः ॥२०॥

यज्ञ उन्होंने किये और खूब दक्षिणा दी । उन्हींके पुत्र ये हैं और इनका नाम राम है ॥ ८ ॥ सब प्राणियोंको शरण देनेवाले, सब पुत्रोंमें गुणी, और पिताकी आज्ञा पालन करनेवाले ये राजा दशरथके प्रथम पुत्र हैं । ॥ ९ ॥ राज्य-लक्षणोंसे युक्त, राज्य-सम्पत्तिसे युक्त, ये राज्य न मिलनेके कारण मेरे साथ यहां वनमें रहनेके लिए आये ॥१०॥ सीता नामकी स्त्री भी इनके साथ आयी, जिस प्रकार अस्तके समय प्रभा सूर्यका अनुगमन करती है ॥११॥ मैं इनका छोटा भाई हूँ । इनकी कृतज्ञता, बहुज्ञता और गुणोंके कारण मैं इनका दास हूँ । मेरा नाम लक्ष्मण है ॥१२॥ सब सुख पानेके अधिकारी, सबसे पूजा पानेके योग्य और सब प्राणियोंके हित चाहनेवाले रामचन्द्र निर्धन हो गये और वनमें रहने लगे ! ॥१३॥ इनके न रहनेपर कामरूपधारी राक्षसने इनकी स्त्रीका हरण किया है । इस स्त्री हरण करनेवालें राक्षसका पता हम लोगोंको नहीं मिलता ॥१४॥ दितिका पुत्र दनु था, जो शापसे राक्षस हो गया था । उसने कहा है कि वानराधिपति सुग्रीव समर्थ हैं ॥१५॥ महाबली सुग्रीव ही तुम्हारी भार्याके हरण करनेवालेको जान सकेगें, ऐसा कहकर प्रकाशमान दनु स्वर्ग चला गया ॥१६॥ तुम्हारे पूछनेपर जो कुछ जैसी बात थी, वह मैंने कह दी । मैं और रामचन्द्र दोनों सुग्रीवकी शरण आये हैं ॥१७॥ इन रामचन्द्रने बहुत सा धन दान किया है । उत्तम यश प्राप्त किया है । लोकस्वामी हो चुके हैं । वे ही रामचन्द्र आज दैवगतिसे सुग्रीवकी शरण जाना चाहते हैं ॥ १८ ॥ सीता जिसकी पतोहू थी, जो शरणागतोंकी रक्षा करते थे और धर्मप्रेमी थे, उन्हींके पुत्र सुग्रीवके शरण आये हैं ॥ १९ ॥ धर्मात्मा, सब लोगोंको शरण देनेवाले, मेरे बड़े भाई रामचन्द्र आज सुग्रीवकी शरण आये है ॥ २० ॥ जिसकी प्रसन्नतासे यह समस्त प्रजा प्रसन्न रहती

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यस्य प्रसादे सततं प्रसीदेयुरिमाः प्रजाः । स रामो वानरेन्द्रस्य प्रसादमभिकाङ्क्षते ॥२१॥
येन सर्वगुणोपेताः पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः । मानिताः सततं राज्ञा सदा दशरथेन वै ॥२२॥
तस्यायं पूर्वजः पुत्रस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः । सुग्रीवं वानरेन्द्रं तु रामः शरणमागतः ॥२३॥
शोकाभिभूते रामे तु शोकार्ते शरणं गते । कर्तुमर्हति सुग्रीवः प्रसादं सह यूथपैः ॥२४॥
एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं करुणं साश्रुपातनम् । हनूमान्प्रत्युवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥२५॥
ईदृशा बुद्धिसंपन्ना जितक्रोधा जितेन्द्रियाः । दृष्टव्या वानरेन्द्रेण दिष्ट्या दर्शनमागताः ॥२६॥
स हि राज्याच्च विभ्रष्टः कृतवैरश्च वालिना । हृतदारो वने त्रस्तो भ्राता विनिकृतो भृशम् ॥२७॥
करिष्यति स साहाय्यं युवयोर्भास्करात्मजः । सुग्रीवः सह चास्माभिः सीतायाः परिमार्गणे॥२८॥
इत्येवमुक्त्वा हनुमाञ्श्लक्ष्णं मधुरया गिरा । बभाषे साधु गच्छामः सुग्रीवमिति राघवम् ॥२९॥
एवं ब्रुवन्तं धर्मात्मा हनूमन्तं स लक्ष्मणः । प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं प्रोवाच राघवम् ॥३०॥
कपिः कथयते हृष्टो यथायं मारुतात्मजः । कृत्यवान्सोऽपि संप्राप्तः कृतकृत्योऽसि राघव॥३२॥
ततः स सुमहाप्राज्ञो हनूमान्मारुतात्मजः । जगामादाय तौ वीरौ हरिराजाय राघवौ ॥३३॥
भिक्षुरूपं परित्यज्य वानरं रूपमास्थितः । पृष्ठमारोप्य तौ वीरौ जगाम कपिकुञ्जरः ॥३४॥

थी, आज वही रामचन्द्र वानराधिपतिकी प्रसन्नता चाहते हैं ॥ २१ ॥ जिन राजा दशरथने सब श्रेष्ठ राजाओंको अपना सेवक बनाया और उनका जिन्होंने सदा सम्मान किया, उन्हींके त्रिलोक-विश्रुत ज्येष्ठ पुत्र, ये रामचन्द्र वानराधिपति सुग्रीवकी शरण आये हैं ॥ २२,२३ ॥ शोकको वशमें रखने वाले रामचन्द्र आज शोकसे पीड़ित हैं, शरणमें आए हुए हैं । सचिवोंके साथ सुग्रीवको इनपर प्रसन्न होना चाहिए ॥२४॥ इस प्रकार दयनीय तथा अश्रुपात पूर्वक लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर वाक्य-चतुर हनुमान इस प्रकार बोले ॥ २५ ॥ इस प्रकार बुद्धिमान्, क्रोध और इन्द्रियोंको अधीनमें रखनेवालेका दर्शन सुग्रीवको अभीष्ट था । प्रसन्नताकी बात है कि वे स्वयं उपस्थित हो गये ॥ २६ ॥ सुग्रीव भी राज्यसे हटा दिया गया है और वालिके साथ उसकी शत्रुता है । उसकी स्त्री हर ली गयी है और भाईके भयसे वह इधर-उधर भटकता फिरता है ॥ २७ ॥ सूर्यपुत्र सुग्रीव हम लोगोंके साथ सीताका पता लगानेमें अवश्य ही आपकी सहायता करेंगे ॥ २८ ॥ इस प्रकार मधुर वचनके द्वारा अपना अभिप्राय प्रकट कर हनुमानने रामचन्द्रसे कहा कि अच्छा अब हमलोग सुग्रीवके पास चलें ॥२९॥ हनुमानके ऐसा कहनेपर विधिपूर्वक लक्ष्मणने उनका अभिनन्दन किया और वे रामचन्द्रसे इस प्रकार बोले ॥३०॥ वायुपुत्र यह वानर प्रसन्न होकर जैसा कह रहा है उससे मालूम होता है कि सुग्रीवको भी आपकी सहायता अपेक्षित है । अतएव अब आपका कार्य सिद्ध होगा ॥३१॥ प्रसन्न होकर तथा साफ-साफ हनुमान ये बातें कह रहा है । अवश्य ही वायुपुत्र वीर हनुमान झूठ न बोलेगा ॥ ३२ ॥ महा बुद्धिमान् वायुपुत्र हनुमान वीर दोनों राघवोंको लेकर सुग्रीवके पास गए ॥ ३३ ॥ भिक्षुरूपका त्याग कर और वानररूप धारण करके कपिश्रेष्ठ हनुमान उन दोनोंको पीठ-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स तु विपुलयशाः कपिप्रवीरः पवनसुतः कृतकृत्यवत्प्रहृष्टः ।
गिरिवरमुरुविक्रमः प्रयातः स शुभमतिः सह रामलक्ष्मणाभ्याम् ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः ५

ऋष्यमूकात्तु हनुमान्गत्वा तं मलयं गिरिम् । आचचक्षे तदा वीरो कपिराजाय राघवौ ॥ १ ॥
अयं रामो महाप्राज्ञ संप्राप्तो दृढविक्रमः । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा रामोऽयं सत्यविक्रमः ॥ २ ॥
इक्ष्वाकूणां कुले जातो रामो दशरथात्मजः । धर्मे निगदितश्चैव पितुर्निर्देशकारकः ॥ ३ ॥
राजसूयाश्वमेधैश्च वह्निर्येनाभितर्पितः । दक्षिणाश्च तथोत्सृष्टा गावः शतसहस्रशः ॥ ४ ॥
तपसा सत्यवाक्येन वसुधा तेन पालिता । स्त्रीहेतोस्तस्य पुत्रोऽयं रामोऽरण्यं समागतः ॥ ४ ॥
तस्यास्य वसतोऽरण्ये नियतस्य महात्मनः । रावणेन हृता भार्या स त्वां शरणमागतः ॥ ६ ॥
भवता सख्यकामौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । प्रगृह्य चार्चयस्वैतौ पूजनीयतमावुभौ ॥ ७ ॥
श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं सुग्रीवो वानराधिपः । दर्शनीयतमो भूत्वा प्रीत्योवाच च राघवम् ॥ ८ ॥

पर लेकर चले ॥ ३४ ॥ महायशस्वी कपिश्रेष्ठ पवनपुत्र हनुमान कार्य सिद्ध होनेके समान प्रसन्न हुए । सुन्दर बुद्धिवाले परम पराक्रमी वे ऋष्यमूक पर्वतपर गए ॥ ३५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका चौथा सर्ग समाप्त ।

ऋष्यमूक पर्वतपर रामचन्द्र और लक्ष्मणको रखकर हनुमान मलयपर्वतपर सुग्रीवके पास गये और उनको रामलक्ष्मणका परिचय उन्होंने दिया ॥१॥ हे महाप्राज्ञ सुग्रीव ! भाई लक्ष्मणके साथ ये रामचन्द्र आए हैं । ये अजेय हैं और सत्य पालनके लिए वनमें आए हुए हैं ॥ २ ॥ इक्ष्वाकु-कुलमें उत्पन्न हुए हैं और राजा दशरथके पुत्र हैं । पिताकी प्रेरणासे धर्मपालन करनेके लिए ये वनमें आए हैं । ये पिताके आज्ञापालक हैं ॥ ३ ॥ राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंके द्वारा जिसने अग्निको प्रसन्न किया है, सैकड़ों हजारों गौ जिसने दक्षिणामें दी हैं, सावधानी और सत्यतापूर्वक जिसने पृथिवीका पालन किया है, उन्हींके पुत्र रामचन्द्र स्त्रीके कारण वनमें आए हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ महात्मा रामचन्द्र संयत होकर स्त्रीके साथ वनमें रहते थे । रावणने उनकी स्त्री हर ली । वे तुम्हारी शरण आए हैं ॥ ६ ॥ आपसे मैत्री करनेके लिए राम और लक्ष्मण दोनों भाई आए हैं । पास चलकर इनकी पूजा करो, क्योंकि ये दोनों ही पूजनीय हैं ॥ ७ ॥ हनुमानके वचन सुनकर वानराधिपति सुग्रीवने रामचन्द्रके द्वारा उत्पन्न भयका त्याग किया और उसकी शंका जाती रही । मनुष्यका रूप उसने धारण किया और बड़ा ही सुन्दर होकर रामचन्द्रके पास जाकर प्रेमपूर्वक बोला ॥ ८ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भवान्धर्मविनीतश्च सुतपाः सर्ववत्सलः । आख्याता वायुपुत्रेण तत्त्वतो मे भवद्गुणाः ॥ ९ ॥
तन्ममैवैष सत्कारो लाभश्चैवोत्तमः प्रभो । यत्त्वमिच्छसि सौहार्दं वानरेण मया सह ॥१०॥
रोचते यदि मे सख्यं बाहुरेष प्रसारितः । गृह्यतां पाणिना पाणिर्मर्यादा बध्यतां ध्रुवा ॥११॥
एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य सुभाषितम् । संप्रहृष्टमना हस्तं पीडयामास पाणिना ॥१२॥
हृष्टः सौहृदमालम्ब्य पर्यष्वजत पीडितम् । ततो हनूमान्संत्यज्य भिक्षुरूपमरिंदमः ॥१३॥
काष्ठयोः स्वेन रूपेण जनयामास पावकम् । दीप्यमानं ततो वह्निं पुष्पैरभ्यर्च्य सत्कृतम् ॥१४॥
तयोर्मध्ये तु सुप्रीतो निदधौ सुसमाहितः । ततोऽग्निं दीप्यमानं तौ चक्रतुश्च प्रदक्षिणम् ॥१५॥
सुग्रीवो राघवश्चैव वयस्यत्वमुपागतौ । ततः सुप्रीतमनसौ तावुभौ हरिराघवौ ॥१६॥
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ न तृप्तिमभिजग्मतुः । त्वं वयस्योऽसि हृद्यो मे एकं दुःखं सुखं च नौ॥१७॥
सुग्रीवो राघवं वाक्यमित्युवाच प्रहृष्टवत् । ततः सुपर्णबहुलां भङ्क्त्वा शाखां सुपुष्पिताम्॥१८॥
सालस्यास्तीर्य सुग्रीवो निषसाद स राघवः । लक्ष्मणायाथ संहृष्टो हनुमान्मारुतात्मजः ॥१९॥
शाखां चन्दनवृक्षस्य ददौ परमपुष्पिताम् । ततः प्रहृष्टः सुग्रीवः श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥२०॥
प्रत्युवाच तदा रामं हर्षव्याकुललोचनः । अहं विनिकृतो राम चरामीह भयार्दितः ॥२१॥
हृतभार्यो वने त्रस्तो दुर्गमेतदुपाश्रितः । सोऽहं त्रस्तो वने भीतो वसाम्युद्भ्रान्तचेतनः॥२२॥

आपने धर्मकी शिक्षा पायी है। आप तपस्वी और सर्वप्रिय हैं। हनुमानने आपके सब गुण मुझे बतलाए हैं ॥ ९ ॥ मुझ वानरसे आप जो मैत्री करना चाहते हैं वही मेरा सत्कार है और श्रेष्ठ लाभ है ॥ १० ॥ यदि मुझसे मैत्री चाहते हों तो यह मेरा हाथ फैला हुआ है। आप अपने हाथसे इसे पकड़ लें, जिससे कभी न टूटनेवाली मैत्री हो जाय ॥ ११ ॥ सुग्रीवका यह सुन्दर वचन सुनकर रामचन्द्र प्रसन्न हुए और उन्होंने उसका हाथ पकड़ा ॥ १२ ॥ मित्रता होनेसे प्रसन्न होकर सुग्रीवने रामचन्द्रका आलिंगन किया। अनन्तर हनुमानने भिक्षुका रूप छोड़कर अपने असली रूपसे दो लकड़ियोंको रगड़कर आग उत्पन्न की। उस जलती हुई आगकी आदरपूर्वक उन्होंने पुष्पोंसे पूजा की और सावधान होकर राम और सुग्रीवके बीचमें वह आग रख दी। राम और सुग्रीवने उस जलती आगकी प्रदक्षिणा की ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ इस प्रकार रामचन्द्र और सुग्रीव दोनों मित्र बन गए। इससे वे दोनों ही बहुत प्रसन्न हुए ॥ १६ ॥ वे परस्पर एक दूसरेको देखते हुए तृप्त नहीं होते थे। "आप मेरे मित्र हैं, मेरे हृदयके प्रिय हैं। हम दोनोंका सुख दुःख समान है।" सुग्रीवने प्रसन्नतापूर्वक रामचन्द्रसे यह कहा। अनन्तर घने पत्तों और फूलोंवाली शालवृक्षकी शाखा तोड़कर उसपर रामचन्द्र और सुग्रीव बैठे। प्रसन्न वायुपुत्र हनुमानने लक्ष्मणको भी बैठनेके लिए चन्दनकी एक डाल दी, जिसमें खूब फूल लगे हुए थे। अनन्तर सुग्रीव खूब प्रसन्न होकर मधुरवाणीके द्वारा रामचन्द्रसे बोले, हर्षसे उनकी आँखें ढँक गयी थीं। रामचन्द्र, मैं निर्वासित हूँ और डरके मारे इधर-उधर घूमा करता हूँ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ मेरी स्त्री हर ली गयी है। मैं डरा हुआ इस वनमें सदा उद्विग्न रहा करता हूँ ॥ २२ ॥ वालिने मुझे निकाल दिया है और वह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वालिना निकृतो भ्रात्रा कृतवैरश्च राघवः । वालिनो मे महाभाग भयार्तस्याभयं कुरु ॥२३॥
कर्तुमर्हसि काकुत्स्थ भयं मे न भवेद्यथा । एवमुक्तस्तु तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मवत्सलः । २४॥
प्रत्यभाषत काकुत्स्थः सुग्रीवं प्रहसन्निव । उपकारफलं मित्रं विदितं मे महाकपे ॥२५॥
वालिनं तं वधिष्यामि तव भार्यापहारिणम् । अमोघाः सूर्यसंकाशा ममेमे निचिताः शरा ॥२६॥
तस्मिन्वालिनि दुर्वृत्ते निपतिष्यन्ति वेगिताः । कङ्कपत्रप्रतिच्छन्ना महेन्द्राशनिसंनिभाः ॥२७॥
तीक्ष्णाग्रा ऋजुपर्वाणः सरोषा भुजगा इव । तमद्य वालिनं पश्य तीक्ष्णैराशीविषोपमैः ॥२८॥
शरैर्विनिहतं भूमौ प्रकीर्णमिव पर्वतम् । स तु तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्यात्मनो हितम् ॥
सुग्रीवः परमप्रीतः परमं वाक्यमब्रवीत् ॥२९॥

तव प्रसादेन नृसिंह वीर प्रियां च राज्यं च समाप्नुयामहम् ।
तथा कुरु त्वं नरदेव वैरिणं यथा न हिंस्यात्स पुनर्ममाग्रजः ॥३०॥
सीताकृपीन्द्रक्षणदाचराणां राजीवहेमज्वलनोपमानि ।
सुग्रीवरामप्रणयप्रसङ्गे वामानि नेत्राणि समं स्फुरन्ति ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

मुझसे वैर रखता है। महाभाग, मैं वालिके भयसे भयभीत हूँ। आप मुझे अभय करें ॥ २३ ॥ काकुत्स्थ, आप ऐसा करें, जिससे मेरा भय जाता रहे। तेजस्वी, धर्मवत्सल और धर्मज्ञ रामचन्द्र सुग्रीवकी ये बातें सुनकर हँसते हुए इस प्रकार बोले—मित्र, उपकारके फल मुझे मालूम हैं ॥२४॥२५॥ आपकी स्त्रीका हरण करनेवाले वालिका मैं वध करूंगा। ये मेरे सूर्यके समान चमकनेवाले और तीखे बाण निष्फल नहीं होते ॥२६॥ पापी बालि पर ये मेरे कंकपत्रसे बँधे हुए इन्द्रके वज्रके समान बाण वेगसे जाकर गिरेंगे ॥ २७ ॥ ये मेरे बाण तीखे और सीधे हैं। क्रुद्ध सर्पके समान ये बालिपर गिरेंगे। तीखे और सर्पके सदृश मेरे बाणोंके द्वारा मृत वालिको भूमिमें पड़े पर्वतके समान तुम शीघ्र ही देखोगे। अपने हितके रामचन्द्रके ये वचन सुनकर सुग्रीव बहुत प्रसन्न हुआ और बोला ॥२८॥२९॥ हे पुरुषोत्तम, आपकी कृपासे मैं अपनी स्त्री और राज्य पा जाऊँगा। नरदेव, वैरी मेरे बड़े भाईको आप ऐसा कर दीजिए जिससे वह मुझसे द्वेष रखना छोड़ दे ॥ ३० ॥ सुग्रीव और रामचन्द्रमें जिस समय मैत्री हो रही थी उसी समय सीता, वालि और राक्षसोंके वामनेत्र फड़के। कमलके समान सीताके नेत्र, सुवर्णके समान वालिके नेत्र और आगके समान राक्षसोंके नेत्र थे (स्त्रीके लिए बांईं आंखका फड़कना शुभ है और पुरुषोंके लिए अशुभ। अर्थात् राम और सुग्रीवकी मैत्रीसे वालि और राक्षसोंका वध और सीताका उद्धार होगा इसकी सूचना इस नेत्र फड़कनेके द्वारा हुई) ॥३१॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका पाचवां सर्ग समाप्त ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

षष्ठः सर्गः ६

पुनरेवाब्रवीत्प्रीतो राघवं रघुनन्दनम् । अयमाख्याति ते राम सेवको मन्त्रिसत्तमः ॥ १ ॥
हनुमान्यन्निमित्तं त्वं निर्जनं वनमागतः । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वसतश्च वने तव ॥ २ ॥
रक्षसापहृता भार्या मैथिली जनकात्मजा । त्वया वियुक्ता रुदती लक्ष्मणेन च धीमता ॥ ३ ॥
अन्तरं प्रेप्सुना तेन हत्वा गृध्रं जटायुषम् । भार्यावियोगजं दुःखं प्रापितस्तेन रक्षसा ॥ ४ ॥
भार्यावियोगजं दुःखं नचिरात्त्वं विमोक्ष्यसे । अहं तामानयिष्यामि नष्टां देव श्रुतीमिव ॥ ५ ॥
रसातले वा वर्तन्तीं वर्तन्तीं वा नभस्तले । अहमानीय दास्यामि तव भार्यामरिंदम ॥ ६ ॥
इदं तथ्यं मम वचस्त्वमवेहि च राघव । न शक्या सा जरयितुमपि सेन्द्रैः सुरासुरैः ॥ ७ ॥
तव भार्या महाबाहो भक्ष्यं विषकृतं यथा । त्यज शोकं महाबाहो तां कान्तामानयामि ते ॥ ८ ॥
अनुमानात्तु जानामि मैथिली सा न संशयः । ह्रियमाणा मया दृष्टा रक्षसा रौद्रकर्मणा ॥ ९ ॥
क्रोशन्ती रामरामेति लक्ष्मणेति च विस्वरम् । स्फुरन्ती रावणस्याङ्के पन्नगेन्द्रवधूर्यथा ॥१०॥
आत्मना पञ्चमं मां हि दृष्ट्वा शैलतले स्थितम् । उत्तरीयं तया त्यक्तं शुभान्याभरणानि च ॥११॥
तान्यस्माभिर्गृहीतानि निहितानि च राघव । आनयिष्याम्यहं तानि प्रत्यभिज्ञातुमर्हसि ॥१२॥
तमब्रवीत्ततो रामः सुग्रीवं प्रियवादिनम् । आनयस्व सखे शीघ्रं किमर्थं प्रविलम्बसे ॥१३॥

सुग्रीव प्रसन्न होकर रामचन्द्रसे पुनः बोला, राम इस मेरे श्रेष्ठ सचिव और सेवक हनुमानने, आप जिसके लिए इस निर्जन वनमें आए हैं, कहा है। भाई लक्ष्मणके साथ आप वनमें रहते थे ॥१॥२॥ आपकी स्त्री जनकनन्दिनी रावणने हर ली है। उस समय आप भी नहीं थे और बुद्धिमान् लक्ष्मण भी नहीं थे। इसी अवसर वृद्ध जटायुको मारकर राक्षसने आपकी स्त्री हर ली और आपको पत्नीके वियोगका दुःख पहुँचाया। शीघ्र ही आपका स्त्री-वियोगका दुःख दूर हो जायगा। मैं राक्षसोंके द्वारा हरी गई वेदवाणीके समान उन्हें लौटा ले आऊँगा ॥ ५ ॥ चाहे वे पातालमें हों या आकाशमें, वहाँसे मैं आपकी स्त्रीको ले आऊँगा ॥६॥ रामचन्द्र, आप मेरे इस वचनको सत्य समझें। इन्द्रादिक देवता तथा राक्षस कोई भी आपकी स्त्रीको छिपा नहीं सकता ॥ ७ ॥ महाबाहो, आपकी स्त्री विष-मिले अन्नके समान दूसरोंके लिए दुष्प्राप्य है। उन्हें कोई पचा नहीं सकता। आप शोकका त्याग करें। मैं उन्हें ले आऊँगा ॥ ८ ॥ अनुमानसे मैं जानता हूँ, वह सीता ही थीं। भयानक कर्म करनेवाला राक्षस उन्हें हरकर लिए जाता था ॥ ९ ॥ टूटे शब्दोंमें 'राम' 'राम' 'लक्ष्मण' कहकर वे रोती जाती थीं। रावणके गोदमें नागवधूके समान वे चमक रही थीं ॥ १० ॥ चार मन्त्रियोंके साथ मुझे पर्वतपर बैठे देख उन्होंने अपना वस्त्र और कई गहने ऊपरसे गिराये थे ॥ ११ ॥ रामचन्द्र, वे सब चीजें हम लोगोंने ले लीं और हमारे पास रक्खी हुई हैं। हम लाते हैं, आप पहचानिये ॥१२॥ प्रिय सन्देश देनेवाले सुग्रीवसे रामचन्द्र बोले—मित्र, शीघ्र लाओ, क्यों विलम्ब करते हो ॥ १३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमुक्तस्तु सुग्रीवः शैलस्य गहनां गुहाम् । प्रविवेश ततः शीघ्रं राघवप्रियकाम्यया ॥१४॥
उत्तरीयं गृहीत्वा तु स तान्याभरणानि च । इदं पश्येति रामाय दर्शयामास वानरः ॥१५॥
ततो गृहीत्वा वासस्तु शुभान्याभरणानि च । अभवद्बाष्पसंरुद्धो नीहारेणेव चन्द्रमाः ॥१६॥
सीतास्नेहप्रवृत्तेन स तु बाष्पेण दूषितः । हा प्रियेति रुदन्धैर्यमुत्सृज्य न्यपतत्क्षितौ ॥१७॥
हृदि कृत्वा स बहुशस्तमलंकारमुत्तमम् । निशश्वास भृशं सर्पो बिलस्थ इव रोषितः ॥१८॥
अविच्छिन्नाश्रुवेगस्तु सौमित्रिं प्रेक्ष्य पार्श्वतः । परिदेवयितुं दीनं रामः समुपचक्रमे ॥१९॥
पश्य लक्ष्मण वैदेह्या संत्यक्तं ह्रियमाणया । उत्तरीयमिदं भूमौ शरीराभूषणानि च ॥२०॥
शाद्वलिन्यां ध्रुवं भूम्यां सीतया ह्रियमाणया । उत्सृष्टं भूषणमिदं तथारूपं हि दृश्यते ॥२१॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् । नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ॥२२॥
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् । ततस्तु राघवो वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥२३॥
ब्रूहि सुग्रीव कं देशं ह्रियन्ती लक्षिता त्वया । रक्षसा रौद्ररूपेण मम प्राणप्रिया हृता ॥२४॥
क्व वा वसति तद्रक्षो महद्व्यसनदं मम । यन्निमित्तमहं सर्वान्नाशयिष्यामि राक्षसान् ॥२५॥
हरता मैथिलीं येन मां च रोषयता ध्रुवम् । आत्मनो जीवितान्ताय मृत्युद्वारमपावृतम् ॥२६॥

रामचन्द्रके ऐसा कहने पर पर्वतकी छिपी कन्दरामें रामचन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए शीघ्र ही सुग्रीवने प्रवेश किया ॥ १४ ॥ चादर तथा वे गहने सुग्रीवने, यह देखिए, यह कहकर रामचन्द्रको दिखाए ॥ १५ ॥ उस वस्त्रको तथा गहनोंको लेकर रामचन्द्र रोने लगे । आँसूसे उनका मुखमण्डल छिप गया, जिस प्रकार कुहरेसे चन्द्रमा छिप जाता है ॥ १६ ॥ सीताके स्नेहसे निकले हुए आँसूसे रामचन्द्र भींग गए । हा प्रिये, कहकर रोते हुए पृथिवीपर गिर पड़े, उनका धैर्य जाता रहा ॥१७॥ उस अलंकारको कई बार हृदयमें लगाकर बिलके क्रुद्ध सर्पके समान वे बराबर निश्वास लेने लगे ॥१८॥ रामचन्द्रका अश्रुवेग रुका नहीं । लक्ष्मणको पास देखकर वे दीनतापूर्वक विलाप करने लगे ॥१९॥ लक्ष्मण, देखो हरणके समय सीताने यह चादर और शरीरके गहने फेंके थे ॥ २० ॥ सीताने अवश्य ही इन गहनोंको घासवाली जमीन पर फेंका था, यह बात इन गहनोंको देखनेसे मालूम होती है ॥ २१ ॥ रामके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण बोले, मैं केयूरों (हाथमें पहननेका गहना) और कुण्डलों (कानमें पहनेका गहना) को नहीं जानता ॥ २२ ॥ प्रतिदिन चरण-वन्दन करनेके कारण केवल नूपुरों (पैरका गहना) को ही जानता हूँ । तब रामचन्द्र सुग्रीवसे बोले ॥ २३ ॥ सुग्रीव, भयानक राक्षस मेरी प्रिया सीताको हरकर किधर ले गया—क्या तुमने देखा है ?॥२४॥ वह राक्षस कहाँ रहता है, जिसने मुझे इतना बड़ा दुःख दिया है और जिसके लिए मैं समस्त राक्षसोंका विनाश करूँगा ॥ २५ ॥ मैथिलीका हरण करके जिसने मेरा क्रोध भड़काया है, अवश्य ही उसने अपने जीवनका अन्त करनेके लिए मृत्युका द्वार खोल दिया है ॥ २६ ॥ जिस राक्षसने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मम दयिततमा हृता वनाद्रजनिचरेण विमथ्य येन सा ।
कथय मम रिपुं तमद्य वै प्लवगपते यमसंनिधिं नयामि ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामेणार्तेन वानरः । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं सबाष्पं बाष्पगद्गदः ॥ १ ॥
न जाने निलयं तस्य सर्वथा पापरक्षसः । सामर्थ्यं विक्रमं वापि दौष्कुलेयस्य वा कुलम् ॥ २ ॥
सत्यं तु प्रतिजानामि त्यज शोकमरिंदम । करिष्यामितथायत्नंयथाप्राप्स्यसिमैथिलीम् ॥ ३ ॥
रावणं सगणं हत्वा परितोष्यात्मपौरुषम् । तथास्मि कर्ता नचिराद्यथा प्रीतो भविष्यसि ॥ ४ ॥
अलं वैक्लव्यमालम्ब्य धैर्यमात्मगतं स्मर । त्वद्विधानां न सदृशमीदृशं बुद्धिलाघवम् ॥ ५ ॥
मयापि व्यसनं प्राप्तं भार्याविरहजं महत् । नाहमेवं हि शोचामि धैर्यं न च परित्यजे ॥ ६ ॥
नाहं तामनुशोचामि प्राकृतो वानरोऽपि सन् । महात्मा च विनीतश्च किं पुनर्धृतिमान्महान्॥ ७ ॥
बाष्पमापतितं धैर्यान्निगृह्णीतुं त्वमर्हसि । मर्यादां सत्त्वयुक्तानां धृतिं नोत्सृष्टुमर्हसि ॥ ८ ॥
व्यसने वार्थकृच्छ्रे वा भये वा जीवितान्तगे । विमृशंश्च स्वया बुद्ध्या धृतिमान्नावसीदति ॥ ९ ॥

छलसे मेरी प्रिया सीताका हरण किया है, वानराधिपति, उस शत्रुका पता बतलाओ, मैं उसे अभी यमराजके पास भेजता हूँ ॥ २७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका छठवां सर्ग समाप्त ॥

दुखी रामके ऐसा कहनेपर सुग्रीवकी आँखोंमें आँसू आ गए । वे हाथ जोड़कर रोते हुए रामचन्द्रजीसे बोले ॥ १ ॥ उस पापी राक्षसका घर कहाँ है यह मैं नहीं जानता, उसकी कितनी शक्ति है, कैसा पराक्रम है, और कौन कुल है, यह सब मैं नहीं जानता ॥ २ ॥ पर आपसे मैं सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे आप सीताको पावें । आप शोकका त्याग करें ॥ ३ ॥ सपरिवार रावणको मारकर तथा अपनी सेनाको सन्तुष्ट कर मैं शीघ्र ही ऐसा करूँगा जिससे आप प्रसन्न हों ॥ ४ ॥ इस दैन्यका त्याग करो और अपनी धीरताका स्मरण करो । आपके समान मनुष्योंके लिए यह बुद्धिहीनताका कार्य उचित नहीं ॥ ५ ॥ पत्नी-विरहका महान् दुःख मुझे भी प्राप्त हुआ है । पर मैं तो ऐसा शोक नहीं करता और न मैंने धीरताका ही त्याग किया है ॥ ६ ॥ साधारण वानर होकर भी मैं अपनी स्त्रीकी याद नहीं करता । फिर आपके समान महात्मा, धीर, शिक्षितके लिए क्या कहा जाय ॥ ७ ॥ ये निकलते हुए आँसू आप शीघ्र अपनी धीरतासे रोकें । सज्जनोंके द्वारा बाँधी धीरताका त्याग आप न करें ॥ ८ ॥ कष्टमें, गरीबीमें, भयमें या जीवनसंकट उपस्थित होनेपर धीरतापूर्वक जो अपनी बुद्धिसे विचार करते हैं वे दुखी नहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वालिशस्तु नरो नित्यं वैक्लव्यं योऽनुवर्तते । स मज्जत्यवशः शोके भाराक्रान्तेव नौर्जले ॥१०॥
एषोऽञ्जलिर्मया बद्धः प्रणयात्त्वां प्रसादये । पौरुषं श्रय शोकस्य नान्तरं दातुमर्हसि ॥११॥
ये शोकमनुवर्तन्ते न तेषां विद्यते सुखम् । तेजश्च क्षीयते तेषां न त्वं शोचितुमर्हसि ॥१२॥
शोकेनाभिप्रपन्नस्य जीविते चापि संशयः । स शोकं त्यज राजेन्द्र धैर्यमाश्रय केवलम् ॥१३॥
हितं वयस्यभावेन ब्रूमि नोपदिशामि ते । वयस्यतां पूजयन्मे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥१४॥
मधुरं सान्त्वितस्तेन सुग्रीवेण स राघवः । मुखमश्रुपरिक्लिन्नं वस्त्रान्तेन प्रमार्जयत् ॥१५॥
प्रकृतिस्थस्तु काकुत्स्थः सुग्रीववचनात्प्रभुः । संपरिष्वजज्य सुग्रीवमिदं वचनमब्रवीत् ॥१६॥
कर्तव्यं यद्वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च । अनुरूपं च युक्तं च कृतं सुग्रीव तत्त्वया ॥१७॥
एष च प्रकृतिस्थोऽहमनुनीतस्त्वया सखे । दुर्लभो हीदृशो बन्धुरस्मिन्काले विशेषतः ॥१८॥
किं तु यत्नस्त्वया कार्यो मैथिल्याः परिमार्गणे । राक्षसस्य च रौद्रस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥१९॥
मया च यदनुष्ठेयं विस्रब्धेन तदुच्यताम् । वर्षास्विव च सुक्षेत्रे सर्वं संपद्यते तव ॥२०॥
मया च यदिदं वाक्यमभिमानात्समीरितम् । तत्त्वया हरिशार्दूल तत्त्वमित्युपधार्यताम् ॥२१॥
अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन । एतत्ते प्रतिजानामि सत्येनैव शपाम्यहम् ॥२२॥

होते ॥ ९ ॥ वे मनुष्य मूर्ख हैं जो व्याकुल हो जाते हैं । भरी हुई नौका जिस प्रकार डूब जाती है, उसी प्रकार वे भी शोकमें डूब जाते हैं ॥ १० ॥ मैं प्रेमपूर्वक हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करता हूँ आप उद्योग करें । अपना पुरुषार्थ दिखावें । शोकका प्रभाव अपने ऊपर न होने दें ॥ ११ ॥ जो शोक करते हैं उन्हें सुख नहीं होता । उनका तेज नष्ट हो जाता है । अतएव आपको शोक न करना चाहिए ॥ १२ ॥ जो शोकके अधीन हो जाते हैं उनका जीवन भी संशयमें पड़ जाता है । अतएव आप शोकका त्याग करके बल धैर्य धारण कीजिए ॥ १३ ॥ मैंने मित्रताके भावसे यह हित बतलाया है, उपदेश नहीं दिया है । अतएव मेरी मित्रताको सम्मानित करनेके लिए आपको शोक नहीं करना चाहिए ॥ १४ ॥ नम्रतापूर्वक सुग्रीवने रामचन्द्रको समझाया । आँसूसे भरे हुए मुँहको उन्होंने कपड़ेसे पोंछा ॥ १५ ॥ सुग्रीवके समझानेसे रामचन्द्र स्वस्थ हुए और तब सुग्रीवका आलिंगन कर वे इस प्रकार बोले ॥ १६ ॥ स्नेही और हितैषी मित्रको जो करना चाहिए, हे सुग्रीव, तुमने उसीके अनुकूल सब कुछ किया है ॥१७॥ तुम्हारे समझानेसे मैं प्रकृतिस्थ हूँ । मेरा शोक जाता रहा । तुम्हारे ऐसा बन्धु, विशेषकर ऐसे समयमें, मिलना दुर्लभ है ॥ १८ ॥ जानकीको तथा क्रूर दुरात्मा राक्षस रावणको ढूँढ़नेका तुम प्रयत्न करो ॥ १९ ॥ मुझको क्या करना चाहिए, यह भी सोच विचारकर मुझसे कहो । जिस प्रकार अच्छे खेतमें वर्षाकालमें सभी चीजें उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार तुममें सभीका होना सम्भव है ॥ २० ॥ वानरश्रेष्ठ, मैंने अभिमानसे जो बातें कही हैं उन्हें तुम यथार्थ ही समझो । वे बातें डींग हाँकनेके समान अर्थहीन नहीं है ॥ २१ ॥ मैं झूठ कभी नहीं बोला और न आज ही बोलता हूँ । मैं सत्यको साक्षी देकर तुम्हारे सामने शपथ करता हूँ ॥२२॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततः प्रहृष्टः सुग्रीवो वानरैः सचिवैः सह । राघवस्य वचः श्रुत्वा प्रतिज्ञातं विशेषतः ॥२३॥
एवमेकान्तसंपृक्तौ ततस्तौ नरवानरौ । उभावन्योन्यसदृशं सुखं दुःखमभाषताम् ॥२४॥
महानुभावस्य वचो निशम्य हरिर्नृपाणामधिपस्य तस्य ।
कृतं स मेने हरिवीरमुख्यस्तदा च कार्यं हृदयेन विद्वान् ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८

परितुष्टश्च सुग्रीवस्तेन वाक्येन हर्षितः । लक्ष्मणस्याग्रजं शूरमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
सर्वथाहमनुग्राह्यो देवतानां न संशयः । उपपन्नो गुणोपेतः सखा यस्य भवान्मम ॥ २ ॥
शक्यं खलु भवेद्राम सहायेन त्वयानघ । सुरराज्यमपि प्राप्तुं स्वराज्यं किमुत प्रभो ॥ ३ ॥
सोऽहं सभाज्यो बन्धूनां सुहृदां चैव राघव । यस्याग्निसाक्षिकं मित्रं लब्धं राघवनंशजम् ॥ ४ ॥
अहमप्यनुरूपस्ते वयस्यो ज्ञास्यसे शनैः । न तु वक्तुं समर्थोऽहं त्वयि आत्मगतान्गुणान् ॥५॥
महात्मनां तु भूयिष्ठं त्वद्विधानां कृतात्मनाम् । निश्चला भवति प्रीतिर्धैर्यमात्मवतां वर ॥ ६ ॥
रजतं वा सुवर्णं वा शुभान्याभरणानि च । अविभक्तानि साधूनामवगच्छन्ति साधवः ॥ ७ ॥
आढ्यो वापि दरिद्रो वा दुःखितःसुखितोऽपि वा । निर्दोषश्च सदोषश्च वयस्यः परमा गतिः ॥ ८ ॥

रामचन्द्रके वचन, विशेषकर उनकी प्रतिज्ञा, सुनकर सुग्रीव अपने सचिवोंके साथ प्रसन्न हुआ ॥ २३ ॥ इस प्रकार एकान्तमें बैठे हुए राम और सुग्रीव दोनोंने आपस में सुख और दुःखकी बातें कीं ॥ २४ ॥ महानुभाव रामचन्द्रके वचन सुनकर वानराधिपति सुग्रीवने अपना कार्य सिद्ध समझा ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका सातवाँ सर्ग समाप्त ।

रामचन्द्रके उस वचनसे सुग्रीव सन्तुष्ट हुआ । अतएव हर्षित होकर वह रामचन्द्रसे इस प्रकार बोला ॥ १ ॥ सब गुणोंसे युक्त आप जब मेरे मित्र हुए हैं तब मैं अवश्य ही देवताओंके अनुग्रहका पात्र हूँ ॥ २ ॥ रामचन्द्र, आपके सहायक होनेसे देवताओंका भी राज्य पा सकता हूँ । अपना राज्य पाना कौन बड़ी बात है ॥ ३ ॥ बन्धुओं और मित्रोंके द्वारा मैं पूजनीय हो गया हूँ, क्योंकि रघुवंशी राजपुत्रसे अग्निसाक्षिक मेरी मित्रता हुई है ॥ ४ ॥ रामचन्द्र, मैं भी आपके योग्य ही आपका मित्र हूँ । यह बात धीरे-धीरे आपको मालूम होगी । मैं स्वयं अपने गुणोंका बखान नहीं कर सकता ॥५॥ सुन्दर स्वभाववाले स्वाधीन और निश्चल धैर्यवाले आपके समान पुरुषोंकी प्रीति, आपकी धीरताके समान निश्चल होती है ॥ ६ ॥ चाँदी सोनेके उत्तम-उत्तम गहने सज्जन मित्र आपसमें बँटे हुए नहीं समझते । एक मित्रकी चीजें दूसरे मित्रकी भी होती हैं ॥ ७ ॥ धनी हो या दरिद्र, दुखी हो या सुखी, निर्दोष हो वा सदोष, मित्र ही मित्रके लिए गति है ॥ ८ ॥ इसी कारण मित्रका ऐसा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धनत्यागः सुखत्यागो देशत्यागोऽपि वानघ । वयस्यार्थे प्रवर्तन्ते स्नेहं दृष्ट्वा तथाविधम् ॥ ९ ॥
तत्तथेत्यब्रवीद्रामः सुग्रीवं प्रियदर्शनम् । लक्ष्मणस्याग्रतो लक्ष्म्या वासवस्येव धीमतः ॥१०॥
ततो रामं स्थितं दृष्ट्वा लक्ष्मणं च महाबलम् । सुग्रीवः सर्वतश्चक्षुर्वने लोलमपातयत् ॥११॥
स ददर्श ततः सालमविदूरे हरीश्वरः । सुपुष्पमीषत्पत्राढ्यं भ्रमरैरुपशोभितम् ॥१२॥
तस्यैकांपर्णबहुलांशाखांभङ्क्त्वासुशोभिताम् । रामस्यास्तीर्य सुग्रीवो निषसाद सराघवः ॥१३॥
तावासीनौ ततो दृष्ट्वा हनूमानपि लक्ष्मणम् । शालशाखां समुत्पाट्य विनीतमुपवेशयत् ॥१४॥
सुखोपविष्टं रामं तु प्रसन्नमुदधिं यथा । सालपुष्पावसंकीर्णे तस्मिन्गिरिवरोत्तमे ॥१५॥
ततः प्रहृष्टः सुग्रीवः श्लक्ष्णया शुभया गिरा । उवाच प्रणयाद्रामं हर्षव्याकुलिताक्षरम् ॥१६॥
अहं विनिकृतो भ्रात्रा चराम्येष भयार्दितः । ऋष्यमूकं गिरिवरं हृतभार्यः सुदुःखितः ॥१७॥
सोऽहं त्रस्तो भये मग्नो वने संभ्रान्तचेतनः । वालिना निकृतो भ्रात्रा कृतवैरश्च राघव ॥१८॥
वालिनो मे भयार्तस्य सर्वलोकाभयंकर । ममापि त्वमनाथस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥१९॥
एवमुक्तस्तु तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मवत्सलः । प्रत्युवाच स काकुत्स्थः सुग्रीवं प्रहसन्निव ॥२०॥
उपकारफलं मित्रमपकारोऽरिलक्षणम् । अद्यैव तं वधिष्यामि तव भार्यापहारिणम् ॥२१॥
इमे हि मे महाभाग पत्रिणस्तिग्मतेजसः । कार्तिकेयवनोद्भूताः शरा हेमविभूषिताः ॥२२॥

उत्कट प्रेम देखकर उसके लिए मित्र धनत्याग, सुखत्याग तथा देशत्याग भी करता है ॥ ९ ॥ कान्तिमें इन्द्रके सामन लक्ष्मणके सामने प्रियदर्शन सुग्रीवसे रामचन्द्रने कहा—बिलकुल ठीक कह रहे हो ॥ १० ॥ महाबली राम और लक्ष्मण दोनों बैठे हुए हैं यह देखकर सुग्रीवने अपनी चंचल दृष्टि वनमें चारों ओर डाली ॥ ११ ॥ वानराधिपति सुग्रीवने पास ही एक शाल-वृक्ष देखा, जिसकी शाखामें खूब पुष्प लगे हुए थे, पत्ते थोड़े थे और उसपर भ्रमर गूँज रहे थे ॥ १२ ॥ उस वृक्षकी बहुत पत्तोंवाली एक सुन्दर शाखा उन्होंने तोड़ी । उसे बिछाकर रामचन्द्रके साथ सुग्रीव उसपर बैठे ॥ १३ ॥ उन दोनोंको बैठे देखकर हनुमान्ने भी शालवृक्षकी एक शाखा तोड़ी और विनयपूर्वक उन्होंने उसपर लक्ष्मणको बैठाया ॥ १४ ॥ शालपुष्पसे भरे हुए सुन्दर पर्वतपर प्रसन्न समुद्रके समान रामचन्द्र सुखपूर्वक बैठे ॥ १५ ॥ प्रसन्न होकर सुग्रीव मधुर और सुन्दर बचन रामचन्द्रसे प्रेमपूर्वक बोले, हर्षके मारे उनके मुँहसे स्पष्ट अक्षर नहीं निकलते थे ॥ १६ ॥ भाईने मुझे निकाल दिया है । मैं भयसे ऋष्यमूक पर्वतपर इधर-उधर रहता हूँ । मेरी स्त्री हरी गई है और मैं बहुत दुखी हूँ ॥ १७ ॥ रामचन्द्र, मैं शंकित, भयभीत और व्याकुल होकर वनमें रहता हूँ । मेरे भाई वालिने मुझे निकाल दिया है और वह मुझसे वैर रखता है ॥ १८ ॥ आप सबके भय दूर करनेवाले हैं । मैं वालिसे भयभीत हूँ । कृपाकर मुझपर अनुग्रह कीजिए ॥ १९ ॥ तेजस्वी धर्मज्ञ और धर्मवत्सल रामचन्द्र सुग्रीवके ऐसा कहनेपर हँसते हुए बोले ॥ २० ॥ उपकार करना मित्रका और अपकार करना शत्रुका लक्षण है । तुम्हारी स्त्रीके हरनेवालेका मैं आज ही वध करूँगा ॥ २१ ॥ महाभाग, ये मेरे बाण जो सोनेसे मढ़े गए हैं बड़े तेजस्वी हैं और ये कार्त्तिकेय वनके हैं ॥ २२ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कङ्कपत्रपरिच्छन्ना महेन्द्राशनिसंनिभाः । सुपर्वाणः सुतीक्ष्णाग्राः सरोषा भुजगा इव ॥२३॥
वालिसंज्ञममित्रं ते भ्रातरं कृतकिल्बिषम् । शरैर्विनिहतं पश्य विकीर्णमिव पर्वतम् ॥२४॥
राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनीपतिः । प्रहर्षमतुलं लेभे साधु साध्विति चाब्रवीत् ॥२५॥
राम शोकाभिभूतोऽहं शोकार्तानां भवान्गतिः । वयस्य इति कृत्वा हि त्वय्यहं परिदेवये ॥२६॥
त्वं हि पाणिप्रदानेन वयस्यो मेऽग्निसाक्षिकम् । कृतः प्राणैर्बहुमतः सत्येन च शपाम्यहम् ॥२७॥
वयस्य इति कृत्वा च विस्रब्धः प्रवदाम्यहम् । दुःखमन्तर्गतं तन्मे मनो हरति नित्यशः ॥२८॥
एतावदुक्त्वा वचनं बाष्पदूषितलोचनः । बाष्पदूषितयावाचानोच्चैःशक्नोतिभाषितुम्॥२९॥
बाष्पवेगं तु सहसा नदीवेगमिवागतम् । धारयामास धैर्येण सुग्रीवो रामसंनिधौ ॥३०॥
स निगृह्य तु तं बाष्पं प्रमृज्य नयने शुभे । विनिःश्वस्यचतेजस्वी राघवंपुनरूचिवान् ॥३१॥
पुराहं वालिना राम राज्यात्स्वादवरोपितः । परुषाणिच संश्राव्य निर्धूतोऽस्मि बलीयसा ॥३२॥
हृता भार्याच मे तेन प्राणेभ्योऽपि गरीयसी । सुहृदश्च मदीया ये संयता बन्धनेषु ते ॥३३॥
यत्नवांश्च स दुष्टात्मा मद्विनाशाय राघव । बहुशस्तत्प्रयुक्ताश्च वानरा निहता मया ॥३४॥
शङ्कया त्वेतयाहं च दृष्ट्वा त्वामपि राघव । नोपसर्पाम्यहं भीतो भये सर्वे हि बिभ्यति ॥३५॥
केवलं हि सहाया मे हनुमत्प्रमुखास्त्विमे । अतोऽहंधारयाम्यद्यप्राणान्कृच्छ्रगतोऽपिसन्॥३६॥

कंकपत्रसे युक्त इन्द्रके वज्रके समान तीखे और सीधे हैं। इसलिए क्रुद्ध सर्पके समान हैं ॥ २३ ॥ वालि नामक अपने शत्रुको, जो तुम्हारा भाई है, जो तुम्हारे प्रति पाप कर चुका है, मेरे बाणोंसे टूटे पर्वतके समान उसे मरा हुआ तुम अभी देखो ॥ २४ ॥ रामचन्द्रके वचन सुनकर सेनापति सुग्रीव बहुत प्रसन्न हुआ और साधु-साधु कहने लगा ॥ २५ ॥ राम मैं बहुत ही शोकपीड़ित हूँ। आप शोकार्तोंकी गति हैं, रक्षक हैं और मेरे मित्र भी हैं। इसलिए मैं अपने दुःख आपको बतलाता हूँ ॥२६॥ आपने हाथ पकड़कर और अग्निको साक्षी बनाकर मुझसे मैत्री की है; अतएव आप मुझे प्राणसे भी बढ़कर प्रिय हैं। यह बात मैं शपथपूर्वक कहता हूँ ॥ २७ ॥ आप मित्र हैं इसलिए विश्वास-पूर्वक जो भीतरी दुःख मुझे सदा दुःखित करता है वह कहता हूँ ॥ २८ ॥ इतना कहनेपर सुग्रीवकी आँखें आँसूसे भर गईं। वे जोरसे बोल नहीं सके ॥ २९ ॥ नदीके वेगके समान आए हुए आँसुओंको रामचन्द्रजीके समीप सुग्रीवने बड़ी धीरतासे रोका ॥ ३० ॥ आँसूको रोककर दोनों आँखोंको पोछ-कर तथा निश्वास लेकर तेजस्वी सुग्रीव रामचन्द्रसे पुनः बोले ॥ ३१ ॥ रामचन्द्र, पहले वालिने मुझे अपने राज्यसे हटा दिया। मुझे गालियाँ दीं और तिरस्कार किया क्योंकि वह बलवान् था ॥ ३२ ॥ प्राणोंसे भी प्रिय मेरी स्त्री उसने हर ली। मेरे मित्रोंको उसने कैद कर लिया ॥ ३३ ॥ रामचन्द्र, मेरे नाशके लिये वह दुष्ट प्रयत्न करता रहता है। बहुतसे वानर उसके भेजे आए जिन्हें मैंने मार डाला ॥ ३४ ॥ रामचन्द्र, इसी भयसे आपके पास भी मैं पहले नहीं जा सका, क्योंकि भयसे सभी डरते हैं ॥ ३५ ॥ केवल हनुमान् आदि कई वानर मेरे सहायक हैं, अतएव इस कष्टमें भी मैं प्राण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एते हि कपयः स्निग्धा मां रक्षन्ति समन्ततः । सहगच्छन्तिगन्तव्ये नित्यं तिष्ठन्ति चास्थिते॥३७॥
संक्षेपस्त्वेष मे राम किमुक्त्वा विस्तरं हि ते । स मे ज्येष्ठो रिपुर्भ्राता वाली विश्रुतपौरुषः ॥३८॥
तद्विनाशेऽपि मे दुःखं प्रमृष्टं स्यादनन्तरम् । सुखं मे जीवितं चैव तद्विनाशनिबन्धनम् ॥३९॥
एष मे राम शोकान्तः शोकार्तेन निवेदितः । दुःखितःसुखितोवापिसख्युर्नित्यंसखागतिः॥४०॥
श्रुत्वैतच्च वचो रामः सुग्रीवमिदमब्रवीत् । किंनिमित्तमभूद्वैरं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥४१॥
सुखं हि कारणं श्रुत्वा वैरस्य तव वानर । आनन्तर्याद्विधास्यामि संप्रधार्य बलाबलम् ॥४२॥
बलवान्हि ममामर्षः श्रुत्वा त्वामवमानितम् । वर्धते हृदयोत्कम्पी प्रावृड्वेग इवाम्भसः ॥४३॥
हृष्टः कथय विस्रब्धो यावदारोप्यते धनुः । सृष्टश्च हि मया बाणो निरस्तश्च रिपुस्तव ॥४४॥
एवमुक्तस्तु सुग्रीवः काकुत्स्थेन महात्मना । प्रहर्षमतुलं लेभे चतुर्भिः सह वानरैः ॥४५॥
ततः प्रहृष्टवदनः सुग्रीवो लक्ष्मणाग्रजे । वैरस्य कारणं तत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

धारण किए हुए हूँ ॥ ३६ ॥ ये वानर मुझपर प्रेम रखनेवाले और मेरे रक्षक हैं। जहाँ जाना होता है, वहाँ साथ जाते हैं और जहाँ रहना होता है वहाँ साथ रहते हैं ॥ ३७ ॥ राम, संक्षेपसे यह बात मैंने आपसे कही। विस्तारसे लाभ क्या ? वह मेरा ज्येष्ठ भाई वालि जिसका पराक्रम प्रसिद्ध है, मेरा शत्रु है ॥ ३८ ॥ उसके विनाशके अनन्तर ही मेरा दुःख दूर हो सकता है। मेरा जीवन और मेरा सुख उसीके विनाश के ही अधीन है ॥३९॥ राम, दुखी या सुखी मित्र ही मित्रकी गति है, इसलिए शोकपीड़ित मैंने अपने शोक नष्ट करनेके उपाय आपको बतला दिए ॥ ४० ॥ ये वचन सुनकर रामचन्द्र सुग्रीवसे बोले, किस कारण यह तुम्हारा वैर हुआ मैं सुनना चाहता हूँ ॥४१॥ तुम्हारे वैरका कारण सुनकर और तुम दोनोंमें कौन प्रबल है और कौन निर्बल यह जाननेके अनन्तर ही मैं तुम्हें सुखी बनानेका प्रयत्न करूँगा ॥ ४२ ॥ तुम्हारे अपमानकी बात सुनकर बरसाती जलके वेगके समान, हृदयको कँपा देनेवाला मेरा क्रोध बहुत बढ़ रहा है ॥ ४३ ॥ जब तक मैं धनुष चढ़ाता हूँ तब तक प्रसन्नतापूर्वक सब कहो। जहाँ मैं बाण छोड़ूँगा, तुम्हारा शत्रु नष्ट हो जायगा ॥ ४४ ॥ महात्मा रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर सुग्रीव चारों वानरोंके साथ बहुत प्रसन्न हुए ॥ ४५ ॥ अनन्तर प्रसन्न होकर वैरका असली कारण सुग्रीव रामचन्द्रसे कहने लगे ॥ ४६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण किष्किन्धाकाण्डका आठवाँ सर्ग समाप्त ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नवमः सर्गः ९

वाली नाम मम भ्राता ज्येष्ठः शत्रुनिषूदनः । पितुर्बहुमतो नित्यं मम चापि तथा पुरा ॥ १ ॥
पितर्युपरते तस्मिञ्ज्येष्ठोऽयमिति मन्त्रिभिः । कपीनामीश्वरो राज्ये कृतः परमसंमतः ॥ २ ॥
राज्यं प्रशासतस्तस्य पितृपैतामहं महत् । अहं सर्वेषु कालेषु प्रणतः प्रेष्यवत् स्थितः ॥ ३ ॥
मायावी नाम तेजस्वी पूर्वजो दुन्दुभेः सुतः । तेन तस्य महद्वैरं वालिनः स्त्रीकृतं पुरा ॥ ४ ॥
स तु सुप्ते जने रात्रौ किष्किन्धाद्वारमागतः । नर्दति स्म सुसंरब्धो वालिनं चाह्वयद्रणे ॥ ५ ॥
प्रसुप्तस्तु मम भ्राता नर्दतो भैरवस्वनम् । श्रुत्वा न ममृषे वाली निष्पपात जवात्तदा ॥ ६ ॥
स तु वै निःसृतः क्रोधात्तं हन्तुमसुरोत्तमम् । वार्यमाणस्ततः स्त्रीभिर्मया च प्रणतात्मना ॥ ७ ॥
स तु निर्धूय ताः सर्वा निजगाम महाबलः । ततोऽहमपि सौहार्दान्निःसृतो वालिना सह ॥ ८ ॥
स तु मे भ्रातरं दृष्ट्वा मां च दूरादवस्थितम् । असुरो जातसंत्रासः प्रदुद्राव तदा भृशम् ॥ ९ ॥
तस्मिन्द्रवति संत्रस्ते ह्यावां द्रुततरं गतौ । प्रकाशोऽपि कृतो मार्गश्चन्द्रेणोद्गच्छतातदा ॥१०॥
स तृणैरावृतं दुर्गं धरण्या विवरं महत् । प्रविवेशासुरो वेगादावामासाद्य विष्ठितौ ॥११॥
तं प्रविष्टं रिपुं दृष्ट्वा बिलं रोषवशं गतः । मामुवाच ततो वाली वचनं क्षुभितेन्द्रियः ॥१२॥
इह तिष्ठाद्य सुग्रीव बिलद्वारि समाहितः । यावदत्र प्रविश्याहं निहन्मि समरे रिपुम् ॥१३॥

वालि मेरा बड़ा भाई है । पिताका और मेरा पहले बड़ा प्रिय था ॥ १ ॥ पिताके मरनेपर वह बड़ा है, इसलिए सर्व सम्मतिसे मंत्रियोंने वानर-राज्यपर उसका अभिषेक किया ॥ २ ॥ पिता पितामहसे आया हुआ उस राज्यका शासन वालि करने लगा और मैं उसके अनुगत भृत्यके समान रहने लगा ॥ ३ ॥ दुन्दुभीका बड़ा भाई मायावी बड़ा ही तेजस्वी था । उसका स्त्रीके कारण वालिसे वैर हो गया था ॥ ४ ॥ रात्रिमें सबके सो जानेपर वह किष्किन्धाके द्वारपर आया और क्रोध-पूर्वक गर्जने लगा तथा युद्धके लिए वालिको ललकारने लगा ॥ ५ ॥ मेरा भाई सो रहा था । उसका भयानक शब्द सुनकर उसने क्षमा न की, किन्तु शीघ्रतापूर्वक बाहर निकल आया ॥ ६ ॥ क्रोधपूर्वक उस राक्षसको मारनेके लिए वालि घरसे बाहर निकला । स्त्रियोंने रोका और नम्रतापूर्वक मैंने भी रोका ॥७॥ महाबलि वालि उन स्त्रियोंको हटाकर चला गया । तब मैं भी प्रेमके कारण वालिके साथ बाहर निकला ॥ ८ ॥ वह राक्षस मेरे भाईको देखकर तथा दूर से मुझे आते देख डरा और जोरसे भगा ॥९॥ डरकर भागते हुए उस राक्षसका हम दोनों भाइयोंने पीछा किया । उसी समय क्रुद्ध होकर चन्द्रमाने भी मार्ग प्रकाशित कर दिया ॥ १० ॥ पृथिवीमें एक बड़ा दुर्गम बिल था । उसका मुँह घाससे छिपा हुआ था । उसीमें वह बड़े वेगसे घुस गया और हम दोनों वहीं ठहर गए ॥ ११ ॥ शत्रु बिलमें घुस गया—यह देखकर वालि बहुत क्रुद्ध हुआ और वह मुझसे बोला, उस समय उसकी समस्त इन्द्रियाँ क्षुभित हो गई थीं ॥ १२ ॥ सुग्रीव, इस बिलके द्वारपर सावधान होकर तुम ठहरो । मैं इस बिलमें घुसकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मया त्वेतद्वचः श्रुत्वा याचितः स परंतपः । शापयित्वा स मां पद्भ्यां प्रविवेश बिलं ततः ॥१४॥
तस्य प्रविष्टस्य बिलं साग्रः संवत्सरो गतः । स्थितस्य च बिलद्वारि स कालो व्यत्यवर्तत ॥१५॥
अहं तु नष्टं तं ज्ञात्वा स्नेहादागतसंभ्रमः । भ्रातरं न प्रपश्यामि पापशङ्कि च मे मनः ॥१६॥
अथ दीर्घस्य कालस्य बिलात्तस्माद्विनिःसृतम् । सफेनं रुधिरं दृष्ट्वा ततोऽहं भ्रशदुःखितः ॥१७॥
नर्दतामसुराणां च ध्वनिर्मे श्रोत्रमागतः । न रतस्य च संग्रामे क्रोशतोऽपि स्वनो गुरोः ॥१८॥
अहं त्ववगतो बुद्ध्या चिह्नैस्तैर्भ्रातरं हतम् । पिधाय च बिलद्वारं शिलया गिरिमात्रया ॥१९॥
शोकार्तश्चोदकं कृत्वा किष्किन्धामागतः सखे । गूहमानस्य मे तत्त्वं यत्नतो मन्त्रिभिः श्रुतम् ॥२०॥
ततोऽहं तैः समागम्य समेतैरभिषेचितः । राज्यं प्रशासतस्तस्य न्यायतो मम राघव ॥२१॥
आजगाम रिपुं हत्वा दानवं स तु वानरः । अभिषिक्तं तु मां दृष्ट्वा क्रोधात्संरक्तलोचनः ॥२२॥
मदीयान्मन्त्रिणो बद्ध्वा परुषं वाक्यमब्रवीत् । निग्रहे च समर्थस्य तं पापं प्रति राघव ॥२३॥
न प्रावर्तत मे बुद्धिर्भ्रातृगौरवयन्त्रिता । हत्वा शत्रुं स मे भ्राता प्रविवेश पुरं तदा ॥२४॥
मानयंस्तं महात्मानं यथावच्चाभिवादयम् । उक्ताश्च नाशिषस्तेन प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥२५॥
नत्वा पादावहं तस्य मुकुटेनास्पृशं प्रभो । अपि वाली मम क्रोधान्न प्रसादं चकार सः ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

शत्रुको युद्धमें मारता हूँ ॥ १३ ॥ उसके ये वचन सुनकर साथ चलनेकी मैंने भी प्रार्थना की, पर अपने चरणोंकी शपथ लेकर स्वयं बिलमें चला गया ॥ १४ ॥ बिलमें गए उसे एक वर्षसे अधिक हो गया । इतना समय वहीं रहकर मैंने बिताया ॥ १५ ॥ मैंने समझा कि बालि नष्ट हो गया । स्नेहके कारण मैं घबड़ा गया । एक वर्ष तक भाईको न देखनेसे मेरे मनमें अनिष्टकी शंका हुई ॥ १६ ॥ अनन्तर बहुत दिनोंके बाद उस बिलसे फेनके साथ रुधिरकी धार निकली । जिसे देखकर मैं बहुत दुःखी हुआ ॥१७॥ राक्षसोंके गर्जनका शब्द भी सुनाई पड़ा । युद्ध करनेवाले अपने बड़े भाईका कोई भी शब्द सुनाई न पड़ा ॥ १८ ॥ मैंने इन लक्षणोंसे सोच विचार कर अपने भाईका मारा जाना ही निश्चित किया और पर्वतके समान एक पत्थरसे बिलका द्वार रोक दिया ॥ १९ ॥ मित्र, दुःखसे पीड़ित होकर भाईको जल देकर मैं किष्किन्धा लौट आया । मैं मंत्रियोंसे यथार्थ बात छिपाता रहा, पर उन-लोगोंने जान लिया ॥ २० ॥ अनन्तर सबने मिलकर मेरा अभिषेक किया और मैं न्यायपूर्वक राज्य करने लगा ॥ २१ ॥ शत्रु राक्षसको मारकर बालि लौट आया । मुझको राजा देखकर उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गईं ॥ २२ ॥ मेरे मन्त्रियोंको बाँधकर उनके प्रति उसने कठोर शब्द कहे । यद्यपि मैं अपने मंत्रियोंके प्रति बुरा बर्ताव करनेका उस पापीको बदला दे सकता था, तथापि भाईके प्रति सम्मान होनेके कारण मेरी इच्छा ही नहीं हुई । शत्रुको मारकर मेरा भाई नगरमें आया ॥ २३॥२४॥ मैंने महात्मा बालिका सम्मान किया और प्रणाम करके मैंने मुकुटसे उसके चरणोंका स्पर्श किया; पर बालिका क्रोध दूर न हुआ, वह मुझपर प्रसन्न न हुआ ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण किष्किन्धाकाण्ड का नवां सर्ग समाप्त ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दशमः सर्गः १०

ततः क्रोधसमाविष्टं संरब्धं तमुपागतम् । अहं प्रसादयांचक्रे भ्रातरं हितकाम्यया ॥ १ ॥
दिष्ट्यासि कुशली प्राप्तो निहतश्च त्वया रिपुः । अनाथस्य हि मे नाथस्त्वमेको नाथ नन्दन ॥ २ ॥
इदं बहुशलाकं ते पूर्णचन्द्रमिवोदितम् । छत्रं सवालव्यजनं प्रतीच्छस्व मया धृतम् ॥ ३ ॥
आर्तस्तस्य बिलद्वारि स्थितः संवत्सरं नृप । दृष्ट्वा च शोणितं द्वारि बिलाच्चापि समुत्थितम् ॥ ४ ॥
शोकसंविग्नहृदयो भृशं व्याकुलितेन्द्रियः । अपिधाय बिलद्वारं शैलशृङ्गेण तत्तदा ॥ ५ ॥
तस्मादेशादपाक्रम्य किष्किन्धां प्राविशं पुनः । विषादात्त्विह मां दृष्ट्वा पौरैर्मन्त्रिभिरेव च ॥ ६ ॥
अभिषिक्तो न कामेन तन्मे क्षन्तुं त्वमर्हसि । त्वमेव राजा मानार्हः सदा चाहं यथा पुरा ॥ ७ ॥
राजभावे नियोगोऽयं मम त्वद्विरहात्कृतः । सामात्यपौरनगरं स्थितं निहतकण्टकम् ॥ ८ ॥
न्यासभूतमिदं राज्यं तव निर्यातयाम्यहम् । मा च रोषं कृथाः सौम्य मम शत्रुनिषूदन ॥ ९ ॥
याचे त्वां शिरसा राजन्मया बद्धोऽयमञ्जलिः । बलादस्मिन्समागम्य मन्त्रिभिः पुरवासिभिः ॥ १० ॥
राजभावे नियुक्तोऽहं शून्यदेशजिगीषया । स्निग्धमेवं ब्रुवाणं मां स विनिर्भर्त्स्य वानरः ॥ ११ ॥
धिक्त्वामिति च मामुक्त्वा बहु तत्तदुवाच ह । प्रकृतीश्च समानीय मन्त्रिणश्चैव संमतान् ॥ १२ ॥
मामाह सुहृदां मध्ये वाक्यं परमगर्हितम् । विदितं वो मया रात्रौ मायावी स महासुरः ॥ १३ ॥

अपने कल्याणके लिए मैंने अपने क्रुद्ध भाईको प्रसन्न करना चाहा । मैंने आए हुए भाईसे कहा ॥ १ ॥ प्रसन्नताकी बात है कि कुशलपूर्वक आप लौट आए । अपने शत्रुको मारा । मुझ अनाथके आपही स्वामी हैं ॥ २ ॥ बहुत कमानियोंवाला पूर्ण चन्द्रमाके समान शोभमान यह छत्र और चँवर आप लीजिए, जिनको मैंने ले रखा है ॥ ३ ॥ महराज, मैं उस बिलके द्वारपर एक वर्ष तक दुःखित होकर रहा । बिलके द्वारसे निकले रुधिरको मैंने देखा ॥ ४ ॥ इससे मेरा शोक बहुत बढ़ गया । इन्द्रियाँ व्याकुल हो गईं और पर्वतके पत्थरसे मैंने उस बिलके द्वारको रोक दिया ॥ ५ ॥ वहाँसे लौटकर मैं किष्किन्धा आया । मुझको दुःखी देखकर पुरवासी और मंत्रियोंने मुझको राजसिंहासनपर बैठा दिया ॥ ६ ॥ मैंने अपनी इच्छासे यह पद नहीं लिया है । सम्माननीय आपही राजा हैं । मैं जैसे पहले रहता था वैसेही रहूँगा ॥ ७ ॥ आपके न रहनेके कारण इन लोगोंने मुझे राजा बना दिया था । शत्रुहीन, सचिव, प्रजा आदिसे युक्त आपका राज्य थाती रूपसे मेरे पास था । मैं वह लौटा रहा हूँ । सौम्य, आप क्रोध न करें ॥ ८, ९ ॥ हाथ जोड़कर तथा सिर झुकाकर मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ । मंत्रियों और पुरवासियोंने बलपूर्वक मुझे राजा बनाया है । सो भी इसलिए कि शून्य राज्य देखकर शत्रु आक्रमण न करें । प्रेमपूर्वक मेरे ऐसा कहनेपर डाँटकर वह वानर बोला, ॥ १०, ११ ॥ तुमको धिक्कार है—ऐसा मुझसे कहकर प्रजा और माननीय मंत्रियोंको भी उसने अनेक कटु वचन कहे ॥ १२ ॥ मित्रोंके बीचमें मुझे उसने अनेक निन्दित शब्द कहे । उसने कहा कि आप लोगोंको मालूम है कि एक रातको मायावी नामका राक्षस आया था ॥ १३ ॥ उसने क्रोध करके युद्धके लिए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मां समाह्वयत क्रुद्धो युद्धाकाङ्क्षी तदा पुरा । तस्य तद्वाषितं श्रुत्वा निःसृतोऽहं नृपालयात्॥१४॥
अनुयातश्च मां तूर्णमयं भ्राता सुदारुणः । स तु दृष्ट्वैव मां रात्रौ सद्वितीयं महाबलः ॥१५॥
प्राद्रवद्भयसंत्रस्तो वीक्ष्यावां समुपागतौ । अभिद्रुतस्तु वेगेन विवेश स महाबिलम् ॥१६॥
तं प्रविष्टं विदित्वा तु सुघोरं सुमहद्बिलम् । अयमुक्तोऽथ मे भ्राता मया तु क्रूरदर्शनः॥१७॥
अहत्वा नास्ति मे शक्तिः प्रतिगन्तुमितः पुरीम् । बिलद्वारि प्रतीक्ष त्वं यावदेनं निहन्म्यहम्॥१८॥
स्थितोऽयमिति मत्वाहं प्रविष्टस्तु दुरासदम् । तं मे मार्गयतस्तत्र गतः संवत्सरस्तदा ॥१९॥
स तु दृष्टो मया शत्रुरनिर्वेद्याद्भयावहः । निहतश्च मया सद्यः स सर्वैः सह बन्धुभिः॥२०॥
तस्यैव च प्रवृत्तेन रुधिरौघेण तद्बिलम् । पूर्णमासीद्दुराक्रामं स्तनतस्तस्य भूतले ॥२१॥
सूदयित्वा तु तं शत्रुं विक्रान्तं तमहं सुखम् । निष्क्रामं नेह पश्यामि बिलस्य पिहितं मुखम्॥२२॥
विक्रोशमानस्य तु मे सुग्रीवेति पुनः पुनः । यतः प्रतिवचो नास्ति ततोऽहं भृशदुःखितः॥२३॥
पादप्रहारैस्तु मया बहुभिः परिपातितम् । ततोऽहं तेन निष्क्रम्य यथापुरमुपागतः ॥२४॥
तत्रानेनास्मि संरुद्धो राज्यं मृगयतात्मनः । सुग्रीवेण नृशंसेन विस्मृत्य भ्रातृसौहृदम्॥२५॥
एवमुक्त्वा तु मां तत्र वस्त्रेणैकेन वानरः । तदा निर्वासयामास वाली विगतसाध्वसः॥२६॥
तेनाहमपविद्धश्च हृतदारश्च राघव । तद्भयाच्च महीं सर्वां क्रान्तवान्सवनार्णवाम् ॥२७॥

मुझे बुलाया। उसकी ललकार सुनकर मैं राजभवनसे निकला ॥ १४ ॥ यह मेरा भयानक भाई भी मेरे साथ गया। एक दूसरे आदमीके साथ आते देखकर वह राक्षस भागा ॥ १५ ॥ हम लोगोंको आते देखकर भयभीत होकर वह भागा और एक बिलमें वह घुस गया ॥ १६ ॥ वह एक भयानक बहुत बड़े बिलमें घुस गया है—यह जानकर मैं अपने क्रूरदर्शन इस भाईसे बोला, ॥ १७ ॥ शत्रुको बिना मारे यहाँसे नगर लौट चलनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। जब तक मैं मारकर लौटता हूँ, तब तक बिलके द्वारपर मेरी प्रतीक्षा करो ॥ १८ ॥ यह बाहर बैठा हुआ है, यह जानकर मैं बिलमें गया और वहाँ उस राक्षसको ढूँढनेमें एक वर्ष बीत गया ॥ १९ ॥ मैंने उस भयानक शत्रुको देखा। और बान्धवोंके साथ शीघ्र ही बिना क्लेशके उसे मार डाला ॥ २० ॥ वह पृथिवीपर गिरकर गरज रहा था। उसके मुँहसे रुधिरकी धार निकली और वह बिल भर गया जिससे पृथिवीपर चलना कठिन था ॥ २१ ॥ उस पराक्रमी शत्रको अनायास मारकर मैंने बिलसे निकलनेका मार्ग नहीं पाया, क्योंकि उसका मुँह बन्द था ॥ २२ ॥ 'सुग्रीव' 'सुग्रीव' बारंबार चिल्लानेपर भी मुझे कोई उत्तर नहीं मिला। इससे मैं बहुत दुःखित हुआ ॥ २३ ॥ मैंने अनेक बार पैरोंसे मारकर उस पत्थरको हटाया, फिर उस द्वारसे निकलकर नगरमें आया ॥ २४ ॥ स्वयं राज्य चाहनेवाले क्रूर सुग्रीवने भ्रातृप्रेम भूलकर स्वयं राजा बननेके लिए मुझे वहाँ बन्द कर दिया था ॥ २५ ॥ ऐसा कहकर तथा एक वस्त्र देकर निर्भय वालिने मुझे निकाल दिया ॥ २६ ॥ उसने मुझे निकाल दिया है और मेरी स्त्री हरली है। उसके भयसे वनों और पर्वतोंवाली समस्त पृथिवी मैं घूम आया हूँ ॥ २७ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ऋष्यमूकं गिरिवरं भार्याहरणदुःखितः । प्रविष्टोऽस्मि दुराध वालिनः कारणान्तरे ॥२८॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं वैरानुकथनं महत् । अनागसा मया प्राप्तं व्यसनं पश्य राघव ॥२९॥
वालिनश्च भयात्तस्य सर्वलोकभयापह । कर्तुमर्हसि मे वीर प्रसादं तस्य निग्रहात् ॥३०॥
एवमुक्तः स तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मसंहितम् । वचनं वक्तुमारेभे सुग्रीवं प्रहसन्निव ॥३१॥
अमोघाः सूर्यसंकाशा निशिता मे शरा इमे । तस्मिन्वालिनि दुर्वृत्ते पतिष्यन्ति रुषान्विताः ॥३२॥
यावत्तं नहि पश्येयं तव भार्यापहारिणम् । तावत्स जीवेत्पापात्मा वाली चारित्रदूषकः ॥३३॥
आत्मानुमानात्पश्यामि मग्नस्त्वं शोकसागरे । त्वामहं तारयिष्यामि बाढं प्राप्स्यसि पुष्कलम्॥३४॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हर्षपौरुषवर्धनम् । सुग्रीवः परमप्रीतः सुमहद्वाक्यमब्रवीत् ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११

रामस्य वचनं श्रुत्वा हर्षपौरुषवर्धनम् । सुग्रीवः पूजयांचक्रे राघवं प्रशशंस च ॥ १ ॥
असंशयं प्रज्वलितैस्तीक्ष्णैर्मर्मातिगैः शरैः । त्वं दहेः कुपितो लोकान्युगान्त इव भास्करः ॥ २ ॥
वालिनः पौरुषं यत्तद्यच्च वीर्यं धृतिश्च या । तन्ममैकमनाः श्रुत्वा विधत्स्व यदनन्तरम् ॥ ३ ॥

भार्याके हरणसे दुःखित होकर मैं इस ऋष्यमूक पर्वतपर आया हूँ । क्योंकि कारण विशेषसे वालीका आक्रमण यहाँ नहीं हो सकता ॥ २८ ॥ यही वैरका कारण है जो मैंने आपसे कहा । रामचन्द्र, बिना अपराध ही मैंने यह दुःख पाया है ॥ २९ ॥ सबके भय दूर करनेवाले रामचन्द्र, वालिके भयसे मेरी रक्षा कीजिए । उसके अत्याचारोंसे मुझे बचाइए ॥ ३० ॥ सुग्रीवके ऐसा कहनेपर तेजस्वी और धर्मज्ञ रामचन्द्र सुग्रीवसे धर्मयुक्त वचन हँसते हुए बोले ॥ ३१ ॥ सूर्यके समान प्रकाशमान, कभी निष्फल न होनेवाले मेरे ये तीखे बाण उस पापी वालिपर क्रोधसे गिरेंगे ॥ ३२ ॥ तुम्हारी स्त्रीके हरण करनेवाले वालिको जब तक मैं नहीं देखता तब तक वह मर्यादा नष्ट करनेवाला वालि जीवे ॥ ३३ ॥ मैं अपने समान ही देख रहा हूँ कि तुम बड़े दुःखमें पड़े हुए हो । मैं तुम्हारा उद्धार करूँगा । तुम राज्य और स्त्री शीघ्रही पाओगे ॥ ३४ ॥ प्रसन्नता और पुरुषार्थ बढ़ानेवाले रामचन्द्रके वचन सुनकर सुग्रीव बहुत ही प्रसन्न हुए और वे बोले, ॥ ३५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका दसवां सर्ग समाप्त ।

रामके आनन्द तथा पुरुषार्थ बढ़ानेवाले वचन सुनकर सुग्रीवने उनकी पूजा और प्रशंसा की ॥१॥ अवश्य ही प्रलयकालीन सूर्यके समान आप क्रोध करके प्रज्वलित तीखे और मर्मभेद करनेवाले इन बाणोंसे लोकोंको जला सकते हैं ॥ २ ॥ वालिका जैसा पुरुषार्थ है, जैसा बल है, जैसा धैर्य है, वह सावधान होकर आप सुन लीजिए । उसके अनन्तर जो समझिये वह कीजिए ॥३॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समुद्रात्पश्चिमात्पूर्वं दक्षिणादपि चोत्तरम् । क्रामत्यनुदिते सूर्ये वाली व्यपगतक्लमः ॥ ४ ॥
अग्राण्यारुह्य शैलानां शिखराणि महान्त्यपि । ऊर्ध्वमुत्पात्य तरसा प्रतिगृह्णाति वीर्यवान् ॥ ५ ॥
बहवः सारवन्तश्च वनेषु विविधा द्रुमाः । वालिना तरसा भग्ना बलं प्रथयतात्मनः ॥ ६ ॥
महिषो दुंदुभिर्नाम कैलासशिखरप्रभः । बलं नागसहस्रस्य धारयामास वीर्यवान् ॥ ७ ॥
स वीर्योत्सेकदुष्टात्मा वरदानेन मोहितः । जगाम स महाकायः समुद्रं सरितां पतिम् ॥ ८ ॥
ऊर्मिमन्तमतिक्रम्य सागरं रत्नसंचयम् । मम युद्धं प्रयच्छेति तमुवाच महार्णवम् ॥ ९ ॥
ततः समुद्रो धर्मात्मा समुत्थाय महाबलः । अब्रवीद्वचनं राजन्नसुरं कालचोदितम् ॥१०॥
समर्थो नास्ति ते दातुं युद्धं युद्धविशारद । श्रूयतां त्वभिधास्यामि यस्ते युद्धं प्रदास्यति ॥११॥
शैलराजो महारण्ये तपस्विशरणं परम् । शंकरश्वशुरो नाम्ना हिमवानिति विश्रुतः ॥१२॥
महाप्रस्रवणोपेतो बहुकंदरनिर्झरः । स समर्थस्तव प्रीतिमतुलां कर्तुमर्हति ॥१३॥
तं भीतमिति विज्ञाय समुद्रमसुरोत्तम । हिमवद्वनमागम्य शरश्चापादिव च्युतः ॥१४॥
ततस्तस्य गिरेः श्वेता गजेन्द्रप्रतिमाः शिलाः । चिक्षेप बहुधा भूमौ दुंदुभिर्विननाद च ॥१५॥
ततः श्वेताम्बुदाकारः सौम्यः प्रीतिकराकृतिः । हिमवानब्रवीद्वाक्यं स्व एव शिखरे स्थितः ॥१६॥
क्लेष्टुमर्हसि मां न त्वं दुन्दुभे धर्मवत्सल । रणकर्मस्वकुशलस्तपस्विशरणो ह्यहम् ॥१७॥

पश्चिम समुद्रसे पूर्व समुद्र तक, दक्षिण समुद्रसे उत्तर समुद्र तक, सूर्योदयके पहले ही वालि बिना परिश्रमके चला जाता है और लौट आता है ॥ ४ ॥ बड़े बड़े पर्वतोंके शिखर पकड़ कर वह बली ऊपर फेंक देता है और पुनः लोक लेता है ॥ ५ ॥ अपने बलको आजमाते हुए उस वीरने अनेक मजबूत पेड़ उखाड़ दिए हैं ॥ ६ ॥ कैलाश शिखरके समान ऊँचा दुन्दुभी नामक बड़ा बली राक्षस था, वह हजार हाथियोंका बल रखता था ॥ ७ ॥ वह विशालकाय और दुष्ट अधिक बल होनेके कारण तथा वरदानसे मोहित होकर नदियोंके पति समुद्रके पास गया ॥ ८ ॥ लहरियोंवाले समुद्रमें घुसकर उसने समुद्रसे युद्ध करनेके लिए कहा ॥ ९ ॥ अनन्तर धर्मात्मा समुद्रने उठकर कालप्रेरित उस राक्षससे कहा ॥ १० ॥ हे युद्धविशारद, मैं तुमसे युद्ध करने योग्य नहीं हूँ। जो तुमसे युद्ध-कर सकता है उसका पता बतलाता हूँ ॥ ११ ॥ पर्वतराज हिमवान् बड़े प्रसिद्ध हैं, वे शंकरके श्वशुर हैं, तपस्वियोंके शरणदाता हैं और घोर जंगलमें रहते हैं ॥ १२ ॥ उनसे बहुतसे सोते और झरने निकलते हैं, उनमें बहुतसी कन्दराएँ हैं। वे ही तुमसे युद्ध करनेके योग्य हैं। वे तुमको खुश कर देंगे ॥ १३ ॥ वह राक्षस समुद्रको भयभीत जानकर धनुषसे छूटे बाणके समान श्वेत हिमवानके वनमें आया ॥ १४ ॥ हिमवान्के हाथियोंके समान श्वेतपत्थरोंको इधर उधर फेंकने लगा और गर्जन करने लगा ॥ १५ ॥ अनन्तर श्वेतमेघके आकारके समान शान्त और प्रसन्न करनेवाली आकृति धारण करके अपने शिखर परसे ही हिमवान बोले ॥ १६ ॥ हे धर्म प्रेमी दुन्दुभी, तुम मुझे क्लेश मत दो। मैं तो युद्ध-विद्यामें निपुण नहीं हूँ। मेरे यहाँ तो केवल तपस्वी रहते हैं ॥ १७ ॥ पर्वतराजकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा गिरिराजस्य धीमतः । उवाच दुन्दुभिर्वाक्यं क्रोधात्संरक्तलोचनः ॥१८॥
यदि युद्धेऽसमर्थस्त्वं मद्भयाद्वा निरुद्यमः । तमाचक्ष्व प्रदद्यान्मे यो हि युद्धं युयुत्सतः ॥१९॥
हिमवानब्रवीद्वाक्यं श्रुत्वा वाक्यविशारदः । अनुक्तपूर्वं धर्मात्मा क्रोधात्तमसुरोत्तमम् ॥२०॥
वाली नाम महाप्राज्ञ शक्रपुत्रः प्रतापवान् । अध्यास्ते वानरः श्रीमान्किष्किन्धामतुलप्रभाम्॥२१॥
स समर्थो महाप्राज्ञस्तव युद्धविशारदः । द्वन्द्वयुद्धं स दातुं ते नमुचेरिव वासवः ॥२२॥
तं शीघ्रमभिगच्छ त्वं यदि युद्धमिहेच्छसि । स हि दुर्मर्षणो नित्यं शूरः समरकर्मणि ॥२३॥
श्रुत्वा हिमवतो वाक्यं कोपाविष्टः स दुन्दुभिः । जगाम तां पुरी तस्य किष्किन्धां वालिनस्तदा॥२४॥
धारयन्माहिषं वेषं तीक्ष्णशृङ्गो भयावहः । प्रावृषीव महामेघस्तोयपूर्णो नभस्तले ॥२५॥
ततस्तु द्वारमागम्य किष्किन्धाया महाबलः । ननर्द कम्पयन्भूमिं दुन्दुभिर्दुन्दुभिर्यथा ॥२६॥
समीपजान्द्रुमान्भञ्जन्वसुधां दारयन्खुरैः । विषाणेनोल्लिखन्दर्पात्तद्द्वारं द्विरदो यथा ॥२७॥
अन्तःपुरगतो वाली श्रुत्वा शब्दममर्षणः । निष्पपात सह स्त्रीभिस्ताराभिरिव चन्द्रमाः ॥२८॥
मितं व्यक्ताक्षरपदं तमुवाच स दुन्दुभिम् । हरीणामीश्वरो वाली सर्वेषां वनचारिणाम् ॥२९॥
किमर्थं नगरद्वारमिदं रुद्ध्वा विनर्दसे । दुन्दुभे विदितो मेऽसि रक्ष प्राणान्महाबल ॥३०॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वानरेन्द्रस्य धीमतः । उवाच दुन्दुभिर्वाक्यं क्रोधात्संरक्तलोचनः ॥३१॥

यह बात सुनकर क्रोधसे आँखें लाल कर दुन्दुभी बोला ॥ १८ ॥ यदि युद्ध करनेमें तुम असमर्थ हो अथवा भयसे युद्ध करना नहीं चाहते, तो तुम उसका नाम बतलाओ जो मुझसे युद्ध कर सके ॥१९॥ उसकी बात सुनकर बोलनेमें चतुर हिमवानने क्रोध करके उस राक्षससे वह बात कही जो पहले किसीने नहीं कही थी ॥ २० ॥ इन्द्रका पुत्र बड़ा प्रतापी वालि नामका वानर मनोहर किष्किन्धा नगरमें रहता है ॥ २१ ॥ वही बुद्धिमान् तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें समर्थ हो सकेगा, जैसे नमुचिके साथ युद्धके लिए इन्द्र मिले थे ॥ २२ ॥ यदि तुम युद्ध करना चाहते हो तो शीघ्र तुम उसके पास जाओ, क्योंकि वह युद्धमें बड़ा निपुण है, किसीकी ललकार सहता ही नहीं ॥ २३ ॥ हिमवान्के वचन सुनकर वह दुन्दुभी क्रोध करके वालीकी उस किष्किन्धा नगरीकी ओर चला ॥ २४ ॥ भैंसेका उसका वेष था। उसके सींग बड़े तीखे थे। देखनेमें बड़ा भयानक था। वर्षाके समयमें जलपूर्ण आकाशस्थ मेघके समान वह मालूम पड़ता था न ॥ २५ ॥ वह दुन्दुभी किष्किन्धाके द्वारपर आकर पृथिवी कँपाता हुआ गर्जन करने लगा ॥ २६ ॥ आस पासके वृक्षोंको तोड़ने लगा। खुरोंसे पृथिवीको खुरचने लगा। सींगसे किष्किन्धाके द्वारको हाथीके समान तोड़ने लगा ॥ २७ ॥ वालिने अन्तःपुर में वे शब्द सुने। वह सहसा तारा सहित चन्द्रमाके समान स्त्रियोंके साथ बाहर निकल आया; क्योंकि किसी वीरकी ललकार वह सुन नहीं सकता था ॥ २८ ॥ वानरों तथा अन्य वनचारियोंके स्वामी वालिने दुन्दुभीसे बहुत ही संक्षेपमें कहा ॥ २९ ॥ नगरका द्वार रोककर तुम क्यों गर्ज रहे हो। महाबली दुन्दुभी मैं तुमको जानता हूँ। तुम अपने प्राणोंकी रक्षा करो ॥ ३० ॥ बुद्धिमान् वानरराजकी बात सुनकर क्रोधसे आँखें लाल कर वह बोला ॥ ३१ ॥ स्त्रियोंके पास वीरता-सूचक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न त्वं स्त्रीसंनिधौ वीर वचनं वक्तुमर्हसि । मम युद्धं प्रयच्छाद्य ततो ज्ञास्यामि ते बलम्॥३२॥
अथवा धारयिष्यामि क्रोधमद्य निशामिमाम्। गृह्यतामुदयः स्वैरं कामभोगेषु वानर ॥३३॥
दीयतां संप्रदानं च परिष्वज्य च वानरान्। सर्वशाखामृगेन्द्रस्त्वं संसाधय सुहृज्जनम् ॥३४॥
सुहृष्टां कुरु किष्किन्धां कुरुष्वात्मसमं पुरे । क्रीडस्व च समं स्त्रीभिरहं ते दर्पशासनः ॥३५॥
यो हि मत्तं प्रमत्तं वा भग्नं वा रहितं कृशम् । हन्यात्स भ्रूणहा लोके त्वद्विधं मदमोहितम् ॥३६॥
स महस्याब्रवीन्मन्दं क्रोधात्तमसुरेश्वरम् । विसृज्य ताः स्त्रियः सर्वास्तारामभृतिकास्तदा॥३७॥
मत्तोऽयमिति मामंस्था यद्यभीतोऽसि संयुगे । मदोऽयं संप्रहारेऽस्मिन्वीरपानं समर्थ्यताम् ॥३८॥
तमेवमुक्त्वा संक्रुद्धो मालामुत्क्षिप्य काञ्चनीम्। पित्रा दत्तां महेन्द्रेण युद्धाय व्यवतिष्ठत ॥३९॥
विषाणयोर्गृहीत्वा तं दुन्दुभिं गिरिसंनिभम् । अविध्यत तदा वाली विनदन्कपिकुञ्जरः ॥४०॥
वाली व्यापादयांचक्रे ननर्द च महास्वनम् । श्रोत्राभ्यामथ रक्तं तु तस्य सुस्राव पात्यतः ॥४१॥
तयोस्तु क्रोधसंरम्भात्परस्परजयैषिणोः । युद्धं समभवद्घोरं दुदुन्भेर्वालिनस्तथा ॥४२॥
अयुध्यत तदा वाली शक्रतुल्यपराक्रमः ।मुष्टिभिर्जानुभिः पद्भिः शिलाभिः पादपैस्तथा॥४३॥
परस्परं हतोस्तत्र वानरासुरयोस्तदा । आसीद्धीनोऽसुरो युद्धे शक्रसूनुर्न्यवर्धत ॥४४॥

वचन तुमको न कहने चाहिए । मेरे साथ तुम युद्ध करो, तब तुमको मैं बली समझूं ॥ ३२ ॥ अथवा आज रात भर मैं अपना क्रोध रोक रक्खूँगा । उदय होने तकका समय तुम काम भोगके लिए ले लो अर्थात् कल प्रातःकाल तककी अवधि मैं तुमको देता हूँ ॥ ३३ ॥ वानरोंको आलिंगन करके जिसको जो देना हो दो, क्योंकि तुम सब वानरोंके अधिपति हो । मित्रोंको सन्तुष्ट कर लो ॥ ३४ ॥ किष्किन्धाको अच्छी तरह देख लो । इसका राजा किसीको बना दो । स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करनी हो कर लो । यह सब सूर्योदय के पहले ही तक कर लो; क्योंकि मैं तुम्हारा गर्व चूर करनेके लिए उपस्थित हूँ ॥ ३५ ॥ जो नशा आदिसे मत्त, असावधान, भागते हुए, अस्त्र हीन और दुर्बलको मारता है तथा स्त्रियोंको साथ रहनेवाले तुम्हारे समान मनुष्यको मारता है, उसे भ्रूण-हत्याका पाप लगता है ॥ ३६ ॥ तारा आदि स्त्रियोंको हटाकर वाली उस मूर्ख राक्षससे क्रोधपूर्वक हँसकर बोला, ॥ ३७ ॥ यदि तुम युद्धमें नहीं डरते हो तो मुझे स्त्रियोंके साथ रहनेवाला मत्त मत समझो । किन्तु इस पदको तुम वीरपान समझो, अर्थात् यह स्त्रियोंका संग युद्धके पहले होनेवाले, युद्धोद्दीपक पानके समान समझो ॥ ३८ ॥ क्रोधपूर्वक उससे ऐसा कहकर अपने पिता इन्द्रकी दी हुई सोनेकी माला उतारकर वह युद्धके लिए तयार हुआ । पर्वतके समान उस दुन्दुभीके सींग पकड़कर वह उसे घुमाने लगा और गर्जन करने लगा ॥ ४० ॥ वालीने उसे पटक दिया और घोर गर्जन किया । पृथिवीपर गिराए जानेसे दुन्दुभीके कानोंसे रक्त बहने लगा ॥ ४१ ॥ क्रोधके कारण परस्पर जीतनेकी इच्छा रखनेवाले वाली और दुन्दुभी उन दोनोंका भयानक युद्ध हुआ ॥ ४२ ॥ उस समय इन्द्रके समान पराक्रमी वालीने उसकेसाथ मुक्कों, घुटनों, पैरों, पत्थरों और वृक्षोंसे युद्ध किया ॥ ४३ ॥ उस युद्धमें परस्पर प्रहार करते हुए असुरका बल कम पड़ने लगा औ वानरका बल अधिक ॥ ४४ ॥ उस प्राण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तं तु दुन्दुभिमुद्यम्य धरण्यामभ्यपातयत् । युद्धे प्राणहरे तस्मिन्निष्पिष्टो दुन्दुभिस्तदा ॥४५॥
स्रोतोभ्यो बहु रक्तं तु तस्य सुस्राव पात्यतः । पपात च महाबाहुः क्षितौ पञ्चत्वमागतः ॥४६॥
तं तोलयित्वा बाहुभ्यां गतसत्त्वमचेतनम् । चिक्षेप वेगवान्वाली वेगेनैकेन योजनम् ॥४७॥
तस्य वेगप्रविद्धस्य वक्त्रात्क्षतजबिन्दवः । प्रपेतुर्मारुतोत्क्षिप्ता मतङ्गस्याश्रमं प्रति ॥४८॥
तान्दृष्ट्वा पतितांस्तत्र मुनिः शोणितविप्रुषः । क्रुद्धस्तस्य महाभाग चिन्तयामासकोन्वयम् ॥४९॥
येनाहं सहसा स्पृष्टः शोणितेन दुरात्मना । कोऽयं दुरात्मा दुर्बुद्धिरकृतात्मा च बालिशः॥५०॥
इत्युक्त्वा स विनिष्क्रम्य ददृशे मुनिसत्तमः । महिषं पर्वताकारं गतासुं पतितं भुवि ॥५१॥
स तु विज्ञाय तपसा वानरेण कृतं हि तत् । उत्ससर्ज महाशापं क्षेप्तारं वानरं प्रति ॥५२॥
इह तेनाप्रवेष्टव्यं प्रविष्टस्य वधो भवेत् । वनं मत्संश्रयं येन दूषितं रुधिरस्रवैः ॥५३॥
क्षिपता पादपाश्चेमे संभग्नाश्चासुरीं तनुम् । समन्तादाश्रमं पूर्णं योजनं मामकं यदि ॥५४॥
आक्रमिष्यति दुर्बुद्धिर्यत्तं स नभविष्यति । ये चास्य सचिवाः केचित्संश्रिता मामकं वनम्॥५५॥
न च तैरिह वस्तव्यं श्रुत्वा यान्तु यथासुखम् । तेऽपि वा यदि तिष्ठन्ति शपिष्ये तानपिध्रुवम्॥५६॥
वनेऽस्मिन्मामके नित्यं पुत्रवत्परिरक्षिते । पत्राङ्कुरविनाशाय फलमूलाभवाय च ॥५७॥
दिवसश्चाद्य मर्यादा यं द्रष्टा श्वोऽस्मि वानरम् । बहुवर्षसहस्राणि स वै शैलो भविष्यति ॥५८॥

हरण करनेवाले युद्धमें वालीने दुन्दुभीको उठाकर पृथिवीपर पटक दिया और उसे पीस डाला ॥४५॥ गिरते समय उसकी नाक कान आदिसे बहुतसा खून बहा और वह मर गया ॥ ४६ ॥ मरे हुए उसको हाथोंसे उठाकर वालीने बड़े वेगसे एक योजनपर फेंक दिया ॥ ४७ ॥ वेगसे फेंके हुए उस दुन्दुभीके मुँहसे निकले रुधिरके विन्दु हवासे उड़कर मतंगके आश्रमपर पड़े ॥ ४८ ॥ गिरे रुधिरके विन्दुओंको देखकर मुनिने बहुत क्रोध किया । और सोचने लगे ये रुधिर-विन्दु फेंकनेवाला कौन है ॥ ४९ ॥ किस दुरात्माने रुधिरके बिन्दुसे मुझे छू दिया ? यह कौन दुरात्मा है ? यह कौन बुद्धि हीन, उन्मत्त और मूर्ख है ? ॥५०॥ ऐसा कहकर अपने आश्रमसे निकलकर मुनिने पर्वतके समान मृत और भूमिमें पड़े हुए एक भैंसेको देखा ॥ ५१ ॥ तपस्याके प्रभावसे मुनिने जाना कि यह एक वानरका किया हुआ है । अतएव फेंकनेवाले वानरको उन्होंने शाप दिया ॥ ५२ ॥ यहाँ वह नहीं आसकता । यदि आवेगा तो मर जायगा, क्योंकि मेरे रहनेके वनको रुधिरके छींटे डालकर उसने अपवित्र किया है ॥ ५३ ॥ राक्षसके शरीरको फेंकते हुए जिसने इन वृक्षोंको तोड़ा है, वह यदि मेरे आश्रमके आस पास एक योजन तक आवेगा तो अवश्य ही वह न रहेगा । अर्थात् वह नष्ट हो जायगा । उसका यदि कोई सचिव मेरे इस वनमें रहा हो तो उन्हें भी यहाँ नहीं रहना चाहिए । वे सुखपूर्वक यहाँसे चले जाँय । यदि वे नहीं जायँगे तो निश्चय उनको भी मैं शाप दूँगा ॥ ५४, ५५, ५६ ॥ इस वनकी पुत्रके समान मैंने रक्षा की है । इसके पत्ते अंकुर फल मूल आदिके नाशके लिए जो कोई यहाँ रहेगा उसको मैं अवश्य शाप दूंगा ॥५७॥ आजसे लेकर भविष्यमें वालिके पक्षवाले जिस वानरको मैं यहाँ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततस्ते वानराः श्रुत्वा गिरं मुनिसमीरिताम् । निश्चक्रमुर्वनात्तस्मात्तान्दृष्ट्वा वालिरब्रवीत् ॥५९॥
किं भवन्तः समस्ताश्च मतङ्गवनवासिनः । मत्समीपमनुप्राप्ता अपि स्वस्ति वनौकसाम् ॥६०॥
ततस्ते कारणं सर्वं तथा शापं च वालिनः । शशंसुर्वानराः सर्वे वालिने हेममालिने ॥६१॥
एतच्छ्रुत्वा तदा वाली वचनं वानरेरितम् । स महर्षिं समासाद्य याचते स्म कृताञ्जलिः ॥६२॥
महर्षिस्तमनादृत्य प्रविवेशाश्रमं प्रति । शापधारणभीतस्तु वाली विह्वलतां गतः ॥६३॥
ततः शापभयाद्भीतो ऋष्यमूकं महागिरिम् । प्रवेष्टुं नेच्छति हरिर्द्रष्टुं वापि नरेश्वर ॥६४॥
तस्याप्रवेशं ज्ञात्वाहमिदं राम महावनम् । विचरामि सहामात्यो विषादेन विवर्जितः ॥६५॥
एषोऽस्थिनिचयस्तस्य दुन्दुभेः संप्रकाशते । वीर्योत्सेकान्निरस्तस्य गिरिकूटनिभो महान् ॥६६॥
इमे च विपुलाः साला: सप्त शाखावलम्बिनः । यत्रैकं घटते वाली निष्पत्रयितुमोजसा ॥६७॥
एतदस्यासमं वीर्यं मया राम प्रकाशितम् । कथं तं वालिनं हन्तुं समरे शक्ष्यसे नृप ॥६८॥
तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं प्रहसँल्लक्ष्मणोऽब्रवीत् । कस्मिन्कर्मणि निर्वृत्ते श्रद्धेया वालिनो वधम् ॥६९॥
तमुवाचाथ सुग्रीवः सप्त सालानिमान्पुरा । एवमेकैकशो वाली विव्याधाथ स चासकृत् ॥७०॥
रामो निर्दारयेदेषां बाणेनैकेन च द्रुमम् । वालिनं निहतं मन्ये दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम् ॥७१॥

देखूँगा वह बहुत वर्षोंके लिए पत्थर हो जायगा ॥ ५८ ॥ मुनिकी कही बात सुनकर वालि पक्षके वे सब वानर उस वनसे निकल गए । उनको देखकर वालि बोला ॥ ५९ ॥ मतंग वनमें रहनेवाले आप सब वानर मेरे पास क्यों आए ? कुशल तो है ? ॥ ६० ॥ वानरोंने सब कारण तथा वालिको मुनिका दिया हुआ शाप आदि सब बातें, सोनेकी माला पहननेवाले वालिसे कहीं ॥ ६१ ॥ वानरोंकी बातें सुनकर वालि मुनिके पास गया और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा ॥ ६२ ॥ वालिकी ओर विना देखे महर्षि अपने आश्रममें चले गए और शापके भयसे वालि व्याकुल होगया ॥ ६३ ॥ शापके भयसे भीत होकर वालि न तो ऋष्यमूक पर्वतपर आता है और न उसे देखना चाहता है ॥ ६४ ॥ वह यहाँ नहीं आसकता, यही जानकर अपने सचिवोंके साथ निर्भय होकर मैं इस वनमें रहता हूँ ॥ ६५ ॥ उस दुन्दुभीकी हड्डियोंका यह ढेर है जो पर्वत-शिखरके समान मालूम होता है और अधिक बलके कारण जिसे वालिने यहाँ फेंका था ॥ ६६ ॥ ये शालके मोटे सात वृक्ष हैं जिनकी शाखायें चारो और फैली हुई हैं । एकही समय इनको हिलाकर वालि इनके पत्ते गिरा सकता है । अर्थात् वह वायुसे भी अधिक बलवान् है ॥ ६७ ॥ रामचन्द्र, यह वालिका अतुलनीय पराक्रम है जो मैंने आपको सुनाया । उस वालिको आप युद्धमें कैसे मार सकेंगे ॥ ६८ ॥ सुग्रीवके ऐसा कहनेपर हँसते हुए लक्ष्मण बोले—क्या करनेसे आपको विश्वास होगा कि रामचन्द्र वालिका बध कर सकेगें ॥ ६९ ॥ सुग्रीवने लक्ष्मणसे कहा—पहले इन शालवृक्षोंमेंके एक-एक पेड़को अनेक बार वालिने वेधा है ॥७०॥ रामचन्द्र यदि इन वृक्षोंमेंसे किसी एक वृक्षको एक बाण मारकर फाड़ दें, तब मैं समझूँ कि रामचन्द्र अपने पराक्रमसे वालिका बध कर सकेंगे ॥ ७१ ॥ मृत महिषासुरकी हड्डीको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हतस्य महिषस्यास्थि पादेनैकेन लक्ष्मण । उद्यम्य प्रक्षिपेच्चापि तरसा द्वे धनुःशते ॥७२॥
एवमुक्त्वा तु सुग्रीवो रामं रक्तान्तलोचनः । ध्यात्वा मुहूर्तं काकुत्स्थं पुनरेव वचोऽब्रवीत्॥७३॥
शूरश्च शूरमानी च प्रख्यातबलपौरुषः । बलवान्वानरो वाली संयुगेष्वपराजितः ॥७४॥
दृश्यन्ते चास्य कर्माणि दुष्कराणि सुरैरपि । यानि संचिन्त्य भीतोऽहमृष्यमूकमुपाश्रितः ॥७५॥
तमजय्यमधृष्यं च वानरेन्द्रममर्षणम् । विचिन्तयन्नमुं चापि ऋष्यमूकमसुं त्वहम् ॥७६॥
उद्विग्नः शङ्कितश्चाहं विचरामि महावने । अनुरक्तैः सहामात्यैर्हनुमत्प्रमुखैर्वरैः ॥७७॥
उपलब्धं च मे श्लाघ्यं सन्मित्रं मित्रवत्सल । त्वामहं पुरुषव्याघ्र हिमवन्तमिवाश्रितः ॥७८॥
किं तु तस्य बलज्ञोऽहं दुर्भ्रातुर्बलशालिनः । अप्रत्यक्षं तु मे वीर्यं समरे तव राघव ॥७९॥
न खल्वहं त्वां तुलये नावमन्ये न भीषये । कर्मभिस्तस्य भीमैश्च कातर्यं जनितं मम ॥८०॥
कामं राघव ते वाणी प्रमाणं धैर्यमाकृतिः । सूचयन्ति परं तेजो भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥८१॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य महात्मनः । स्मितपूर्वमतो रामः प्रत्युवाच हरिं प्रति ॥८२॥
यदि न प्रत्ययोऽस्मासु विक्रमे तव वानर । प्रत्ययं समरे श्लाघ्यमहमुत्पादयामि ते ॥८३॥
एवमुक्त्वा तु सुग्रीवं सान्त्वयँल्लक्ष्मणाग्रजः । राघवो दुन्दुभेः कायं पादाङ्गुष्ठेन लीलया ॥८४॥

एक पैरसे उठाकर दो सौ धनुषकी दूरीपर यदि रामचन्द्र फेंक दें तो मैं समझूँ कि रामचन्द्र वालिका वध कर सकेगें ॥ ७२ ॥ इस प्रकार कहकर और आँखके कोने लालकर सुग्रीवने थोड़ी देर बिचार किया और पुनः वे रामचन्द्रसे बोले ॥७३॥ वालि शूर है, और अपनेको शूर समझनेवाला है। उसके पराक्रमकी प्रसिद्धि है। वह बली है, युद्धोंमें उसका पराजय नहीं हुआ है ॥७४॥ देवताओंके उन दुष्कर कामोंको भी वह कर देता है जिन कामोंको सोचकर भयसे मैं ऋष्यमूक पर्वतपर आया हूँ ॥७५॥ न जीतने योग्य और क्षमा न करनेवाले वानरेन्द्र वालिको सोचकर मैं इस ऋष्यमूक पर्वतको नहीं छोड़ता ॥७६॥ उद्विग्न और शंकित होकर हनुमान आदि अपने श्रेष्ठ सचिवोंके साथ इसी वनमें घूमा करता हूँ ॥ ७७ ॥ हे मित्रवत्सल, अब मुझे श्लाघनीय सन्मित्र मिल गए हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ, मैंने हिमालयके समान आपका आश्रय ग्रहण किया है ॥ ७८ ॥ किन्तु उस बलवान अपने बुरे भाईका बल मैं जानता हूँ, और आपके बलका मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है ॥ ७९ ॥ मैं आपके बलकी परीक्षा नहीं करता। मैं आपका तिरस्कार नहीं करता। मैं आपको डरवाता नहीं। किन्तु वालिके भयंकर कर्मोंको देखकर मैं शंकित हो गया हूँ ॥ ८० ॥ रामचन्द्र, आपकी वाणी, आपके शरीरकी उँचाई, आपकी धीरता और आपका आकार ये सब भस्ममें छिपे आगके समान आपके तेजको सूचित करते हैं ॥८१॥ महात्मा सुग्रीवके वे वचन सुनकर रामचन्द्र हँसकर उससे ये वचन बोले ॥ ८२ ॥ यदि हमारे पराक्रमका तुम्हें विश्वास नहीं है तो युद्धमें मैं अपने पराक्रमका विश्वास करा दूँगा ॥ ८३ ॥ ऐसा कहकर सुग्रीवको धैर्य देते हुए रामचन्द्रने दुन्दुभीके शरीरको विना परिश्रम पैरके अँगूठेसे उठाकर दस योजनपर फेंक दिया। राक्षसके सूखे शरीरको बलवान रामचन्द्रने पैरके अंगूठेसे फेंक दिया। इसे देखकर सुग्रीव रामचन्द्रसे बानरोंके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तोलयित्वा महाबाहुश्चिक्षेप दशयोजनम् । असुरस्य तनुं शुष्कां पादाङ्गुष्ठेन वीर्यवान् ॥८५॥
क्षिप्तं दृष्ट्वा ततः कायं सुग्रीवः पुनरब्रवीत् । लक्ष्मणस्याग्रतो रामं तपन्तमिव भास्करम् ॥
हरीणामग्रतो वीरमिदं वचनमर्थवत् । ॥८६॥
आर्द्रः समांसः प्रत्यग्रः क्षिप्तः कायः पुरा सखे । परिश्रान्तेन मत्तेन भ्रात्रा मे वालिना तदा ॥८७॥
लघुः संप्रति निर्मांसस्तृणभूतश्च राघव । क्षिप्त एवं प्रहर्षेण भवता रघुनन्दन ॥८८॥
नात्र शक्यं बलं ज्ञातुं तव वा तस्य वाधिकम् । आर्द्रं शुष्कमिति ह्येतत्सुमहद्राघवान्तरम् ॥८९॥
स एव संशयस्तात तव तस्य च यद्बलम् । सालमेकं विनिर्भिद्य भवेद्व्यक्तिर्बलाबले ॥९०॥
कृत्वैतत्कार्मुकं सज्यं हस्तिहस्तमिवापरम् । अकर्णपूर्णमायम्य विसृजस्व महाशरम् ॥९१॥
इमं हि सालं प्रहितस्त्वया शरो न संशयोऽत्रास्ति विदारयिष्यति ।
अलं विमर्शेन मम प्रियं ध्रुवं कुरुष्व राजन्प्रतिशापितो मया ॥९२॥
यथा हि तेजःसु वरः सदा रविर्यथा हि शैलो हिमवान्महाद्रिषु ।
यथा चतुष्पत्सु च केसरी वरस्तथा नराणामसि विक्रमे वरः ॥९३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकादशः सर्गः ॥ ११॥

सामने अर्थयुक्त वचन पुनः बोला, उस समय रामचन्द्र लक्ष्मणके आगे सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ८४, ८५, ८६ ॥ मित्र, युद्धसे थके हुए मेरे भाईने जो राक्षसका शरीर फेंका था उसमें माँस था, वह गीला होनेसे भारी था और तत्कालका मरा हुआ था ॥ ८७ ॥ रामचन्द्र आप इस समय प्रसन्न हैं, आपने जो हड्डियाँ फेंकी हैं वे माँसहीन हैं अतएव घासके समान हल्की होगयी हैं ॥ ८८ ॥ इससे यह नहीं जाना जा सकता कि आपका बल अधिक है कि उसका, क्योंकि गीले और सूखेमें बड़ा भारी अन्तर होता है ॥ ८९ ॥ तात, अतएव आपके और उसके बलका सन्देह अभी दूर नहीं हुआ। यदि आप एक शालके वृक्षको भेद दें तो मुझे बलाबलका निश्चय हो जाय ॥ ९० ॥ हाथीके सूँडके समान इस धनुषपर डोरी चढ़ा दीजिए और कानतक खींचकर बाण छोड़िए ॥ ९१ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि आपका छोड़ा हुआ बाण उस शाल वृक्षको भेद देगा। विचार न कीजिए। यह मेरा प्रिय आप अवश्य करें। मैं अपनी शपथ देता हूँ ॥ ९२ ॥ जैसे तेजोमें सूर्य सर्वश्रेष्ठ है, पर्वतोंमें हिमवान् सर्वश्रेष्ठ है, पशुओंमें सिंह सर्वश्रेष्ठ है, वैसे ही मनुष्योंमें आप सबसे अधिक पराक्रमी हैं ॥९३॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्वादशः सर्गः १२

एतच्च वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य सुभाषितम् । प्रत्ययार्थं महातेजा रामो जग्राह कार्मुकम्॥ १ ॥
स गृहीत्वा धनुर्घोरं शरमेकं च मानदः । सालमुद्दिश्य चिक्षेप पूरयन्स रवैर्दिशः ॥ २ ॥
स विसृष्टो बलवता बाणः स्वर्णपरिष्कृतः । भित्त्वा तालान्गिरिप्रस्थं सप्तभूमिं विवेश ह॥ ३ ॥
सायकस्तु मुहूर्तेन तालान्भित्त्वा महाजवः । निष्पत्य च पुनस्तूणं तमेव प्रविवेश ह ॥ ४ ॥
तान्दृष्ट्वा सप्त निर्भिन्नान्सालान्वानरपुंगवः । रामस्य शरवेगेन विस्मयं परमं गतः ॥ ५ ॥
स मूर्ध्ना न्यपतद्भूमौ प्रलम्बीकृतभूषणः । सुग्रीवः परमप्रीतो राघवाय कृताञ्जलिः ॥ ६ ॥
इदं चोवाच धर्मज्ञं कर्मणा तेन हर्षितः । रामं सर्वास्त्रविदुषां श्रेष्ठं शूरमवस्थितम् ॥ ७ ॥
सेन्द्रानपि सुरान्सर्वांस्त्वं बाणैः पुरुषर्षभ । समर्थः समरे हन्तुं किं पुनर्वालिनं प्रभो ॥ ८ ॥
येन सप्त महाताला गिरिर्भूमिश्च दारिता । बाणेनैकेन काकुत्स्थ स्थाता ते को रणाग्रतः॥ ९ ॥
अद्य मे विगतः शोकः प्रीतिरद्य परा मम । सुहृदं त्वां समासाद्य महेन्द्रवरुणोपमम् ॥१०॥
तमद्यैव प्रियार्थं मे वैरिणं भ्रातृरूपिणम् । वालिनं जहि काकुत्स्थ मया बद्धोऽयमञ्जलिः॥११॥
ततो रामः परिष्वज्य सुग्रीवं प्रियदर्शनम् । प्रत्युवाच महाप्राज्ञो लक्ष्मणानुगतं वचः ॥१२॥
अस्माद्गच्छाम किष्किन्धां क्षिप्रं गच्छ त्वमग्रतः । गत्वा चाह्वय सुग्रीव वालिनं भ्रातृगन्धिनम् ॥१३॥
सर्वे ते त्वरितं गत्वा किष्किन्धां वालिनः पुरीम् । वृक्षैरात्मानमावृत्य ह्यतिष्ठन्गहने वने ॥१४॥

सुग्रीवका यह सुन्दर वचन सुनकर उसके विश्वासके लिए तेजस्वी रामचन्द्रने धनुष उठाया ॥१॥ अपना विशाल धनुष और एक बाण लेकर शाल वृक्षको लक्ष्य कर एक बाण मारा । उसके शब्दसे दिशाएँ गूँज गयीं ॥ २ ॥ बलवान् रामचन्द्रके द्वारा फेंका गया सुवर्ण-मण्डित वह बाण तालोंको भेदकर पर्वत और पृथिवीको फोड़ता हुआ पातालमें चला गया ॥ ३ ॥ रामचन्द्रका वह वेगवान् बाण एक ही मुहूर्तमें सात तालोंको भेदकर पुनः उनके तरकशमें लौट आया ॥ ४ ॥ वानरश्रेष्ठ सुग्रीव सात शाल वृक्षोंको रामचन्द्रके बाणसे फटे देखकर बहुत विस्मित हुआ ॥५॥ हाथ जोड़कर बड़ी प्रसन्नतासे सुग्रीवने रामचन्द्रको प्रणाम किया ॥ ६ ॥ इस कामसे प्रसन्न होकर सुग्रीव धर्मात्मा अस्त्र-शस्त्र जाननेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ वीर रामचन्द्रसे बोला ॥ ७ ॥ देवताओंके साथ इन्द्रको भी रणमें आप बाणोंसे मार सकते हैं, फिर वालिकी कौन बात ॥ ८ ॥ जिसने सात बड़े-बड़े शाल वृक्षोंको, पर्वत और भूमिको एक बाणसे भेद दिया, उसके सामने युद्धमें कौन ठहर सकता है ॥ ९ ॥ महेन्द्र और वरुणके समान आपको मित्र पाकर आज मेरा सब शोक दूर होगया । मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ ॥ १० ॥ रामचन्द्र, मैं हाथ जोड़ता हूँ । मेरी प्रसन्नताके लिए भाईके रूपमें मेरे शत्रुका आजही आप वध करें ॥ ११ ॥ अनन्तर देखनेमें प्रिय सुग्रीवका रामचन्द्रने आलिंगन किया और वे लक्ष्मणकी ओर देखकर बोले ॥ १२ ॥ हमलोग शीघ्र यहाँसे किष्किन्धा चलते हैं । तुम आगे चलो और भाई कहेजानेवाले वालिको बुलाओ ॥ १३ ॥ वे सब वहाँसे वालिकी नगरी किष्किन्धामें गए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुग्रीवोऽप्यनदद्घोरं वालिनो ह्वानकारणात् । गाढं परिहितो वेगान्नादैर्भिन्दन्निवाम्बरम् ॥१५॥
तं श्रुत्वा निनदं भ्रातुः क्रुद्धो वाली महाबलः । निष्पपात मुसंरब्धो भास्करोऽस्ततटादिव ॥१६॥
ततः स तुमुलं युद्धं वालिसुग्रीवयोरभूत् । गगने ग्रहयोर्घोरं बुधाङ्गारकयोरिव ॥१७॥
तलैरशनिकल्पैश्च वज्रकल्पैश्च मुष्टिभिः । जघ्नतुः समरेऽन्योन्यं भ्रातरौ क्रोधमूर्च्छितौ ॥१८॥
ततो रामो धनुष्पाणिस्तावुभौ समुदैक्षत । अन्योन्यसदृशौ वीरावुभौ देवाविवाश्विनौ ॥१९॥
यन्नावगच्छत्सुग्रीवं वालिनं वापि राघवः । ततो न कृतवान्बुद्धिं मोक्तुमन्तकरं शरम् ॥२०॥
एतस्मिन्नन्तरे भग्नः सुग्रीवस्तेन वालिना । अपश्यन्राघवं नाथमृष्यमूकं प्रदुद्रुवे ॥२१॥
क्लान्तो रुधिरसिक्ताङ्गः प्रहारैर्जर्जरीकृतः । वालिनाभिद्रुतः क्रोधात्प्रविवेश महावनम् ॥२२॥
तं प्रविष्टं वनं दृष्ट्वा वाली शापभयात्ततः । मुक्तो ह्यसि त्वमित्युक्त्वा स निवृत्तो महाबलः ॥२३॥
राघवोऽपि सह भ्रात्रा सह चैव हनूमता । तदेव वनमागच्छत्सुग्रीवो यत्र वानरः ॥२४॥
तं समीक्ष्यागतं रामं सुग्रीवः सहलक्ष्मणम् । ह्रीमान्दीनमुवाचेदं वसुधामवलोकयन् ॥२५॥
आह्वयस्वेति मामुक्त्वा दर्शयित्वा च विक्रमम् । वैरिणा घातयित्वा च किमिदानींत्वयाकृतम् ॥२६॥
तामेव वेलां वक्तव्यं त्वया राघव तत्त्वतः । वालिनं न निहन्मीति ततो नाहमितो व्रजे ॥२७॥

और गहन वनमें वृक्षोंसे अपनेको छिपाकर बैठे ॥ १४ ॥ सुग्रीव लँगोट बाँधे हुए था। वालिको बुलानेके लिए वह घोर गर्जन करने लगा। उसके शब्दसे मानों आकाश फटा पड़ता था ॥ १५ ॥ भाईका वह गर्जन सुनकर महाबली वालि क्रोध करके युद्धके लिए शीघ्र ही आ गया, मानों अस्ताचल-से सूर्य उतरा हो ॥ १६ ॥ वालि और सुग्रीवका ऐसा घोर युद्ध हुआ मानों आकाशमें बुध और मंगल ग्रहोंका भयानक युद्ध हो रहा हो ॥ १७ ॥ दोनों भाई बड़े क्रोधसे वज्रके समान हाथ और पैरोंसे तथा मुक्कों से परस्पर मारने लगे ॥ १८ ॥ धनुषधारी रामचन्द्रने इन दोनोंको देखा । दोनों वीर समान थे । अश्विनी कुमारोंके समान उनमें कुछ भी भेद नहीं मालूम पड़ता था ॥१९॥ इसमें कौन सुग्रीव है और कौन वालि है यह रामचन्द्र जान न सके। अतएव उन्होंने बाण नहीं चलाया ॥२०॥ इसी समय वालिने सुग्रीवको भगा दिया। सुग्रीव अपने स्वामी रामचन्द्रको वहाँ न देखकर ऋष्यमूककी ओर दौड़ा ॥ २१ ॥ वह थक गया था। रुधिरसे उसका समूचा शरीर भींग गया था और आघातोंसे वह व्याकुल था। वालिने क्रोध करके उसका पीछा किया और वह ऋष्यमूकके जंगलमें घुस गया ॥२२॥ सुग्रीव वनमें चला गया, यह देखकर वालिने कहा—जाओ, मैंने तुम्हें छोड़ दिया और शापके भयसे वह वहाँसे लौट आया ॥२३॥ रामचन्द्र भी भाई और हनुमानके साथ उसी वनमें लौट आए, जहाँ सुग्रीव थे ॥ २४ ॥ लक्ष्मणके साथ रामचन्द्रको आया देखकर सुग्रीव लज्जित हुआ और पृथ्वीकी ओर ताकता हुआ बोला ॥ २५ ॥ आपने वालिको बुलानेके लिए कहा, उसका वध करनेमें समर्थ अपना पराक्रम भी दिखलाया, फिर शत्रुसे आपने मुझे पिटवाया, महराज ! आपने यह क्या किया ॥ २६ ॥ रामचन्द्र, यदि उसी समय आप ठीक-ठीक कह देते कि मैं वालिको न मारूँगा तो मैं यहाँ से जाता ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्य चैवं ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । करुणं दीनया वाचा राघवः पुनरब्रवीत् ॥२८॥
सुग्रीव श्रूयतां तात क्रोधश्च व्यपनीयताम् । कारणं येन बाणोऽयं स मया न विसर्जितः॥२९॥
अलंकारेण वेषेण प्रमाणेन गतेन च । त्वं च सुग्रीव वाली च सदृशौ स्थः परस्परम् ॥३०॥
स्वरेण वर्चसा चैव प्रेक्षितेन च वानर । विक्रमेण च वाक्यैश्च व्यक्तिं वां नोपलक्षये॥३१॥
ततोऽहं रूपसादृश्यान्मोहितो वानरोत्तम । नोत्सृजामि महावेगं शरं शत्रुनिबर्हणम् ॥३२॥
जीवितान्तकरं घोरं सादृश्यात्तु विशङ्कितः । मूलघातो न नौ स्याद्धि द्वयोरिति कृतो मया॥३३॥
त्वयि वीर विपन्ने हि अज्ञानाल्लाघवान्मया । मौढ्यं च मम बाल्यं च ख्यापितं स्यात्कपीश्वर॥३४॥
दत्ताभयवधो नाम पातकं महदद्भुतम् । अहं च लक्ष्मणश्चैव सीता च वरवर्णिनी ॥३५॥
त्वदधीना वयं सर्वे वनेऽस्मिञ्शरणं भवान् । तस्माद्युध्यस्व भूयस्त्वं मा माशङ्कीश्च वानर ॥३६॥
एतन्मुहूर्ते तु मया पश्य वालिनमाहवे । निरस्तमिषुणैकेन चेष्टमानं महीतले ॥३७॥
अभिज्ञानं कुरुष्व त्वमात्मनो वानरेश्वर । येन त्वामभिजानीयां द्वन्द्वयुद्धमुपागतम् ॥३८॥
गजपुष्पीमिमां फुल्लामुत्पाट्य शुभलक्षणाम् । कुरु लक्ष्मण कण्ठेऽस्य सुग्रीवस्य महात्मनः॥३९॥
ततो गिरितटे जातामुत्पाट्य कुसुमायुताम् । लक्ष्मणो गजपुष्पीं तां तस्य कण्ठे व्यसर्जयत् ॥४०॥
स तया शुशुभे श्रीमाँल्लतया कण्ठसक्तया । मालयेव बलाकानां ससंध्य इव तोयदः ॥४१॥

नहीं ॥ २७ ॥ महात्मा सुग्रीवके इस प्रकारके दीन बचन सुनकर रामचन्द्र दयापूर्वक पुनः बोले ॥ २८ ॥ भाई सुग्रीव, क्रोध दूर करो । वह कारण सुनो जिससे मैंने अपना बाण नहीं छोड़ा ॥ २९ ॥ गहनोंसे, वेषसे, उँचाईसे तथा गमनसे तुम दोनों समान हो ॥ ३० ॥ स्वर, तेज, दृष्टि, विक्रम या वचन इनसे तुम लोगोंका भेद मुझे मालूम न पड़ा । मैं जान नहीं सका कि कौन सुग्रीव है और कौन वालि ॥ ३१ ॥ इसी रूप-सादृश्यसे मोहित होकर मैंने शत्रुसंहारकारी अपना बाण नहीं छोड़ा ॥३२॥ इसी रूप-सादृश्यकी आशंकासे मैं रुक गया । मैंने सोचा कहीं हम दोनोंके मूलका ही नाश न होजाय । कहीं गलतीसे मैं तुम्हींको मार देता तो क्या होता ॥ ३३ ॥ हे वीर, मेरे अज्ञान या जल्दीबाजीके कारण यदि तुम मारे जाते तो मेरी मूर्खता और मेरा लड़कपन ही समझा जाता ॥ ३४ ॥ जिसको अभय दिया जाय उसका वध करना बड़ा भारी पाप है । मैं, लक्ष्मण और सीता इस समय तुम्हारे अधीन हैं । इस वनमें तुम्हीं हम लोगोंके रक्षक हो । तुम शंका न करो । पुनः युद्ध करो ॥ ३५, ३६ ॥ इसी समय युद्धमें मेरे एक बाणसे वालिको पृथिवीमें लोटते हुए तुम देखोगे ॥ ३७ ॥ वालिके साथ युद्ध करते समय जिससे मैं तुम्हें पहिचान सकूँ इसका कोई चिन्ह बना लो ॥ ३८ ॥ लक्ष्मण महात्मा सुग्रीवके गलेमें सुलक्षण यह विकसित गजपुष्पी लता पहना दो ॥ ३९ ॥ अनन्तर पर्वत पर उत्पन्न फूलोंवाली गजपुष्पी लता लेकर लक्ष्मणने सुग्रीवके गलेमें पहना दी ॥ ४० ॥ उस लताके गलेमें पड़नेसे सुग्रीव बहुत ही शोभित हुए । बगुलोंकी पंक्तिसे युक्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विभ्राजमानो वपुषा रामवाक्यसमाहितः । जगाम सह रामेण किष्किन्धां पुनराप सः ॥४२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्वादशः सर्ग ॥१२॥

त्रयोदशः सर्गः १३

ऋष्यमूकात्स धर्मात्मा किष्किन्धां लक्ष्मणाग्रजः।जगाम सह सुग्रीवो वालिविक्रमपालिताम् ॥ १ ॥
समुद्यम्य महच्चापं रामः काञ्चनभूषितम् । शरांश्चादित्यसंकाशान्गृहीत्वा रणसाधकान्॥ २ ॥
अग्रतस्तु ययौ तस्य राघवस्य महात्मनः । सुग्रीवः संहतग्रीवो लक्ष्मणश्च महाबलः ॥ ३ ॥
पृष्ठतो हनुमान्वीरो नलो नीलश्च वीर्यवान् । तारश्चैव महातेजा हरियूथपयूथपः ॥ ४ ॥
ते वीक्षमाणा वृक्षांश्च पुष्पभारावलम्बिनः । प्रसन्नाम्बुवहाश्चैव सरितः सागरंगमाः ॥ ५ ॥
कंदराणि च शैलांश्च निर्दराणि गुहास्तथा । शिखराणि च मुख्यानि दरीश्च प्रियदर्शनाः॥ ६ ॥
वैदूर्यविमलैस्तोयः पद्मैश्चाकोशकुड्मलैः । शोभितान्सजलान्मार्गे तटाकांश्चावलोकयन्॥ ७ ॥
कारण्डैः सारसैर्हंसैर्वञ्जुलैर्जलकुक्कुटैः । चक्रवाकैस्तथा चान्यैः शकुनैः प्रतिनादितान्॥ ८ ॥
मृदुशष्पाङ्कुराहारान्निर्भयान्वनचारिणः ।चरतः सर्वतः पश्यन्स्थलीषु हरिणान्स्थितान्॥ ९ ॥

सायंकालीन मेघके समान वे मालूम पड़े ॥ ४१ ॥ शरीरसे सुन्दर दिखाई पड़नेवाले, रामचन्द्रके वचनोंसे सावधान होकर सुग्रीव उनके साथ चले और पुनः किष्किन्धा नगरीमें आए ॥ ४२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका बारहवाँ सर्ग समाप्त ।

वालिके पराक्रमसे पालित किष्किन्धा नगरीमें धर्मात्मा रामचन्द्र ऋष्यमूक पर्वतसे सुग्रीवके साथ आए ॥ १ ॥ रणमें सफलता देनेवाले और सूर्यके समान चमकीले बाण तथा सोना मढ़ा हुआ अपना बड़ा धनुष लेकर रामचन्द्र आगे चले ॥ २ ॥ महात्मा रामचन्द्रके पीछे सुग्रीव और महाबली लक्ष्मण चले ॥ ३ ॥ उनके पीछे वीर हनुमान, नल, नील, तार तथा अन्य महाबली वानर दल-पतियोंके सेनापति चले ॥ ४ ॥ पुष्प-भारसे नम्र वृक्षोंको और समुद्र तक जानेवाली प्रसन्न सलिला नदियोंको देखते हुए चले ॥ ५ ॥ कन्दराएँ, पर्वत, निर्झर, गुहा, मुख्य-मुख्य शिखर तथा भयानक गुफाएँ देखते हुए वे लोग चले ॥ ६ ॥ रास्तेमें उनलोगोंने जलसे पूर्ण तालाब देखे, जिनके जल वैदूर्य्यके समान विमल थे और कमलकी कोढ़ियाँ जिनमें खिली थीं ॥ ७ ॥ कारण्ड, सारस, हंस, जलकुक्कुट, चक्रवाक तथा अन्य पक्षियोंके शब्दसे वे तालाब प्रतिध्वनित होरहे थे ॥ ८ ॥ निर्भय होकर वनमें घूमनेवाले हरिणोंको मैदानमें बैठकर कोमल घास खाते उन लोगोंने देखा ॥ ९ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तटाकवैरिणश्चापि शुक्लदन्तविभूषितान् । घोरानेकचरान्वन्यान्द्विरदान्कूलघातिनः ॥१०॥
मत्तान्गिरितटोद्घुष्टान्पर्वतानिव जङ्गमान् । वानरान्द्विरदप्रख्यान्महीरेणुसमुक्षितान् ॥११॥
वने वनचरांश्चान्यान्खेचरांश्च विहङ्गमान् । पश्यन्तस्त्वरिता जग्मुः सुग्रीववशवर्तिनः ॥१२॥
तेषां तु गच्छतां तत्र त्वरितं रघुनन्दनः । द्रुमषण्डवनं दृष्ट्वा रामः सुग्रीवमब्रवीत् ॥१३॥
एष मेघ इवाकाशे वृक्षषण्डः प्रकाशते । मेघसंघातविपुलः पर्यन्तकदलीवृतः ॥१४॥
किमेतज्ज्ञातुमिच्छामि सखे कौतूहलं मम । कौतूहलापनयनं कर्तुमिच्छाम्यं त्वया ॥१५॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः । गच्छन्नेवाचचक्षेऽथ सुग्रीवस्तन्महद्वनम् ॥१६॥
एतद्राघव विस्तीर्णमाश्रमं श्रमनाशनम् । उद्यानवनसंपन्नं स्वादुमूलफलोदकम् ॥१७॥
अत्र सप्तजना नाम मुनयः शंसितव्रताः । सप्तैवासन्नधःशीर्षा नियतं जलशायिनः ॥१८॥
सप्तरात्रे कृताहारा वायुनाचलवासिनः । दिवं वर्षशतैर्याताः सप्तभिः सकलेवराः ॥१९॥
तेषामेतत्प्रभावेण द्रुमप्राकारसंवृतम् । आश्रमं सुदुराधर्षमपि सेन्द्रैः सुरासुरैः ॥२०॥
पक्षिणो वर्जयन्त्येतत्तथान्ये वनचारिणः । विशन्ति मोहाद्येऽप्यत्र न निवर्तन्ति ते पुनः ॥२१॥
विभूषणरवाश्चात्र श्रूयन्ते सकलाक्षराः । तूर्यगीतस्वनश्चापि गन्धो दिव्यश्च राघव ॥२२॥
त्रेताग्नयोऽपि दीप्यन्ते धूमो ह्येष प्रदृश्यते । वेष्टयन्निव वृक्षाग्रान्कपोताङ्गारुणो घनः ॥२३॥

सफेद दाँतवाले और अकेले चलनेवाले विशाल जंगली हाथियोंको उन लोगोंने देखा जो तालाबके घाटोंको तोड़ देते हैं ॥ १० ॥ मतवाले पर्वत तटको तोड़नेवाले जंगम पर्वतोंके समान वानरोंको उन लोगोंने देखा, जो हाथीके समान ऊँचे थे और जिनके शरीर धूलसे भरे हुए थे ॥११॥ उस वनमें अनेक वनचरों तथा आकाशमें चलनेवाले पक्षियोंको देखते हुए वे लोग शीघ्रतापूर्वक चले क्योंकि वे सुग्रीवके अधीन थे और सुग्रीवको बड़ी जल्दी थी ॥१२॥ शीघ्रतापूर्वक वहाँ जाते हुए, वृक्षोंसे घिरे बनको देखकर रामचन्द्र सुग्रीवसे बोले, ॥१३॥ अकाशमें मेघके समान वृक्षोंका समूह दिखलाई पड़ता है । इसपर मेघ फैले हुए हैं और केलेके वृक्षोंसे चारों ओरसे यह घिरा हुआ है ॥१४॥ मित्र यह क्या है ? जाननेका मुझे बड़ा कुतूहल है । मैं चाहता हूँ कि आप मेरे इस कुतूहलको दूर करें ॥१५॥ महात्मा रामचन्द्रके वचन सुनकर चलतेही चलते सुग्रीवने उस वनके सम्बन्ध में कहा ॥१६॥ रामचन्द्र थकावट दूर करनेवाला वह आश्रम बहुत लम्बा चौड़ा है, इसमें उपवन हैं और वन हैं । इसमें मीठे फल और जल हैं ॥१७॥ इसमें प्रसिद्ध व्रतधारी सप्तजन नामक सात मुनि थे, वे जलमें नीचे सिर करके रहते थे॥१८॥ सात रात बीतनेपर वे एक बार वायुका आहार करते थे और वे सात सौ वर्षोंके पश्चात् सशरीर स्वर्ग गए ॥१९॥ उन्हीं के प्रभावसे यह आश्रम वृक्षोंकी चारदिवारोंसे सुरक्षित है । इन्द्र आदि देवताभी इसपर आक्रमण नहीं कर सकते ॥२०॥ पक्षी तथा अन्य वनचारी इस आश्रममें नहीं जाते । यदि कोई मोहवश जाता भी है तो लौटकर नहीं आता ॥२१॥ यहाँ गहनों के शब्द सुनाई पड़ते हैं, स्पष्ट गाने बजानेका भी शब्द सुनाई पड़ता है ॥२२॥ अलौकिक गन्ध मालूम पड़ती है ॥२५॥ अग्निहोत्रकी तीनों अग्नियाँ यहाँ जलती हैं, जिनका कपोतके शरीरके समान यह धूम बादल होकर वृक्षोंको वेष्टित कर रहा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एते वृक्षाः प्रकाशन्ते धूमसंसक्तमस्तकाः । मेघजालप्रतिच्छन्ना वैदूर्यगिरयो यथा ॥२४॥
कुरु प्रणामं धर्मात्मंस्तेषामुद्दिश्य राघव । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा प्रयतः संहताञ्जलिः ॥२५॥
प्रणमन्ति हि ये तेषामृषीणां भावितात्मनाम् । न तेषामशुभं किंचिच्छरीरे राम विद्यते ॥२६॥
ततो रामः सह भ्रात्रा लक्ष्मणेन कृताञ्जलिः । समुद्दिश्य महात्मानस्तानृषीनभ्यवादयत् ॥२७॥
अभिवाद्य स धर्मात्मा रामो भ्रात्रा च लक्ष्मणः। सुग्रीवो वानराश्चैव जग्मुः संहृष्टमानसाः ॥२८॥
ते गत्वा दूरमध्वानं तस्मात्सप्तजनाश्रमम् ।ददृशुस्तां दुराधर्षां किष्किन्धां वालिपालिताम॥२९॥

ततस्तु रामानुजरामवानराः प्रगृह्य शस्त्राण्युदितोग्रतेजसः ।
पुरीं सुरेशात्मजवीर्यपालितां वधाय शत्रोः पुनरागतास्त्विह ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४

सर्वे ते त्वरितं गत्वा किष्किन्धां वालिनः पुरीम्। वृक्षैरात्मानमावृत्य व्यतिष्ठन्गहने वने ॥ १ ॥
विसार्य सर्वतो दृष्टिं कानने काननप्रियः । सुग्रीवो विपुलग्रीवः क्रोधमाहारयद्भृशम् ॥ २ ॥
ततस्तु निनदं घोरं कृत्वा युद्धाय चाह्वयत् । परिवारैः परिवृतो नादैर्भिन्दन्निवाम्बरम् ॥ ३ ॥

॥ २३ ॥ इन वृक्षोंके शिखर धूमसे भर गए हैं, अतएव ये उन वैदूर्य पर्वतके समान मालूम पड़ते हैं जिनके शिखर मेघों से ढँक गए हों ॥२४॥ धर्मात्मन् रामचन्द्र, भाई लक्ष्मणके साथ हाथ जोड़कर उन ऋषियोंको आप प्रणाम करें ॥२५॥ ब्रह्मज्ञानी इन ऋषियोंको जो प्रणाम करते हैं उनके शरीरका कोई अनिष्ट नहीं होता ॥२६॥ रामचन्द्रने भाई लक्ष्मणके साथ हाथ जोड़कर महात्मा ऋषियोंके प्रति सम्मान प्रकट करनेके लिए प्रणाम किया ॥२७॥ भाईके साथ प्रणाम करके धर्मात्मा रामचन्द्र, सुग्रीव तथा अन्य वानर प्रसन्नतापूर्वक चले ॥२८॥ सप्तजन मुनिसे बड़ी दूर रास्ता तय कर उन लोगोंने वालिके द्वारा रक्षित और शत्रुके प्रवेश करनेके अयोग्य किष्किन्धा नगरी देखी ॥ २९ ॥ लक्ष्मण, राम और वानर शस्त्रोंको लेकर, वालिके द्वारा पालित नगरीमें, शत्रुवधके लिए पुनः आए । उस समय उनका तेज बढ़ गया था ॥ ३० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका तेरहवाँ सर्ग समाप्त ।

शीघ्रतापूर्वक वालिकी किष्किन्धा नगरीमें जाकर और वृक्षोंकी ओटमें अपनेको छिपाकर वे सबके सब बैठ गए ॥१॥ वनसे प्रेम करनेवाले सुग्रीवने वनमें चारो ओर देखा और लम्बी गरदनवाले उन सुग्रीवने बहुत अधिक क्रोध किया ॥ २ ॥ अनन्तर अपने साथियोंके साथ सुग्रीवने घोर गर्जन करके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गर्जन्निव महामेघो वायुवेगपुरःसरः । अथ बालार्कसदृशो दृप्तसिंहगतिस्ततः ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा रामं क्रियादक्षं सुग्रीवो वाक्यमब्रवीत् । हरिवागुरया व्याप्तां तदा काञ्चनभूषणाम् ॥ ५ ॥
प्राप्ताः स्म ध्वजयन्त्राढ्यां किष्किन्धां वालिनः पुरीम्।प्रतिज्ञा या कृता वीर त्वया वालिवधे पुरा॥६॥
सफलां कुरु तां क्षिप्रं लतां काल इवागतः । एवमुक्तस्तु धर्मात्मा सुग्रीवेण स राघवः ॥ ७ ॥
तमेवोवाच वचनं सुग्रीवं शत्रुसूदनः । कृताभिज्ञानचिह्नस्त्वमनया गजसाह्वया ॥ ८ ॥
लक्ष्मणेन समुत्पाट्य एषा कण्ठे कृता तव । शोभसेऽभ्यधिकं वीर लतया कण्ठसक्तया ॥ ९ ॥
विपरीत इवाकाशे सूर्यो नक्षत्रमालया । अद्य वालिसमुत्थं ते भयं वैरं च वानर ॥१०॥
एकेनाहं प्रमोक्ष्यामि बाणमोक्षेण संयुगे । मम दर्शय सुग्रीव वैरिणं भ्रातृरूपिणम् ॥११॥
वाली विनिहतो यावद्भूमौ पांसुषु चेष्टते । यदि दृष्टिपथं प्राप्तो जीवन्स विनिवर्तते ॥१२॥
ततो दोषेण मा गच्छेत्सद्यो गर्हेच्च मां भवान् । प्रत्यक्षं सप्त ते तालाः मया बाणेन दारिताः ॥१३॥
ततो वेत्सि बलेनाद्य वालिनं निहतं रणे । अनृतं नोक्तपूर्वं मे चिरं कृच्छ्रेऽपि तिष्ठता ॥१४॥
धर्मलोभपरीतेन न च वक्ष्ये कथंचन । सफलां च करिष्यामि प्रतिज्ञां जहि संभ्रमम् ॥१५॥
प्रसूतं फलमक्षेत्रं वर्षेणेव शतक्रतुः । तदाह्वाननिमित्तं च वालिनो हेममालिनः ॥१६॥

वालिको युद्धके लिए बुलाया । उनके गर्जनसे आकाश फटता हुआ मालूम पड़ा ॥ ३ ॥ वायु वेगसे उड़नेवाले महामेघके समान गर्जता हुआ, मतवाले सिंहके समान चलनेवाला और बालसूर्यके समान तेजस्वी सुग्रीव कार्यदक्ष रामचन्द्रको देखकर बोला—वीर, हमलोग किष्किन्धा नगरीमें आ गए, जो वानरोंको फँसानेके लिए जाल है, जिसमें सोनेका काम किया गया है । ध्वजा और शतघ्नी आदि यंत्र जिसमें लगे हैं, यही वालिकी नगरी किष्किन्धा है । वालि-वधके लिए पहले आपने जो प्रतिज्ञा की है, उसे आज शीघ्र सफल कीजिए । जिस प्रकार मौसिम पुष्पित लताओंको सफल करता है । सुग्रीवके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा रामचन्द्र उससे बोले—इस नागपुष्पीके (माला) द्वारा तुम चिन्हित कर दिए गए हो, अतएव तुम पहचान लिए जाओगे ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ लक्ष्मणने उखाड़कर जो यह लता तुम्हारे गलेमें लगाई है, वीर, उससे तुम बहुत अधिक शोभते हो, जिस प्रकार आकाशमें नक्षत्रमालासे घिरा हुआ सूर्य शोभित होता है । आज वालिसे उत्पन्न वैर और भयको युद्धमें एकही बाण छोड़कर नष्ट कर दूँगा । भाईके नामसे प्रसिद्ध अपना वह शत्रु तुम मुझे दिखाओ ॥९॥१०॥ ॥११॥ वालि मारा जाकर शीघ्र ही भूमिमें लोटता दिखाई देगा । यदि वह मेरे सामने आकर जीता लौट जाय तब तुम मुझे दोषी समझो और मेरी निन्दा करो । तुम्हारे सामने ही एक बाणसे मैंने सात शाल वृक्षोंको बेधा है ॥ १२ ॥ १३ ॥ जिससे तुम वालिके वध करने योग्य मुझको बलवान् समझ सके हो । बड़े कष्टके समय भी मैं झूठ नहीं बोलता ॥ १४ ॥ धर्मके नष्ट होनेके भयसे मैं कभी झूठ बोलूँगा भी नहीं । मैं अपनी प्रतिज्ञा सफल करूँगा । तुम घबड़ाहट दूर करो ॥ १५ ॥ जिस प्रकार फल लगे हुए धानसे खेतको पानी बरसाकर इन्द्र सफल करता है ॥ १६ ॥ सुग्रीव, सोनेकी मालावाले

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुग्रीव कुरु तं शब्दं निष्पतेद्येन वानरः ।जितकाशी जयश्लाघी त्वया चाधर्षितः पुरात्॥१७॥
निष्पतिष्यत्यसङ्गेन वाली स प्रियसंयुगः । रिपूणां धर्षितं श्रुत्वा मर्षयन्ति न संयुगे ॥१८॥
जानन्तस्तु स्वकं वीर्यं स्त्रीसमक्षं विशेषतः । स तु रामवचः श्रुत्वा सुग्रीवो हेमपिङ्गलः ॥१९॥
ननर्द क्रूरनादेन विनिर्भिन्दन्निवाम्बरम् । तत्र शब्देन वित्रस्ता गावो यान्ति हतप्रभाः॥२०॥
राजदोषपरामृष्टाः कुलस्त्रिय इवाकुलाः । द्रवन्ति च मृगाः शीघ्रं भग्ना इव रणे हयाः ॥
पतन्ति च खगा भूमौ क्षीणपुण्या इव ग्रहाः ॥२१॥
ततः स जीमूतकृतप्रणादो नादं ह्यमुञ्चत्त्वरया प्रतीतः ।
सूर्यात्मजः शौर्यविवृद्धतेजाः सरित्पतिर्वानिलचञ्चलोर्मिः ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः १५

अथ तस्य निनादं तं सुग्रीवस्य महात्मनः । शुश्रावान्तःपुरगतो वाली भ्रातुरमर्षणः ॥ १ ॥
श्रुत्वा तु तस्य निनदं सर्वभूतप्रकम्पनम् । मदश्चैकपदे नष्टः क्रोधश्चापादितो महान् ॥ २ ॥

वालिको बुलानेके लिए तुम गर्जन करो, जिससे वालि चला आवे, तुम्हारा शब्द सुनकर वालि अवश्य आवेगा, क्योंकि वह विजयका इच्छुक है । पहले तुमसे उसने कभी हार भी नहीं खाई है, युद्धसे भी उसका बड़ा प्रेम है, अतएव वह बिना विलम्ब आवेगा । शत्रुओंके शब्द सुनकर वीर क्षमा नहीं करते ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ अपने पराक्रमको जाननेवाले शत्रुकी ललकारको नहीं सहते, विशेषकर स्त्रीके पास होनेपर । सुवर्णके समान पीले सुग्रीवने रामचन्द्रका वचन सुनकर आकाशको गुँजाते हुए भयानक गर्जन किया । उस शब्दसे गायें डर गयीं और घबड़ा गयीं ॥ १९ ॥ २० ॥ राजाकी ओरसे रक्षाके प्रबन्ध न होनेके कारण परपुरुषके आक्रमणसे जिस प्रकार कुलस्त्रियाँ व्याकुल हो जाती हैं उसी प्रकार गौ भी व्याकुल हुई । युद्धसे भागे हुए घोड़ोंके समान मृगा भाग गए, क्षीणपुण्य तारोंके समान पक्षी आकाशसे गिर पड़े ॥ २१ ॥ मेघका भ्रम उत्पन्न करनेवाला गर्जन सुग्रीवने शीघ्रतापूर्वक किया । उन्हें रामचन्द्रका विश्वास था । उनकी वीरता बढ़ रही थी । जिस प्रकार चंचल तरंगोंवाला समुद्र बढ़ता है ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका चौदहवाँ सर्ग समाप्त ।

क्रोधी वालिने अपने भाई सुग्रीवका वह गर्जन सुना । वालि उस समय अपने अन्तःपुरमें था । ॥ १ ॥ सब प्राणियोंको कम्पित करनेवाला वह गर्जन सुनकर वालिका नशा उतर गया और वह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततो रोषपरीताङ्गो वाली स कनकप्रभः । उपरक्त इवादित्यः सद्यो निष्प्रभतां गतः ॥ ३ ॥
वाली दंष्ट्राकरालस्तु क्रोधादीप्ताग्निलोचनः । भात्युत्पतितपद्माभः समृणाल इव ह्रदः ॥ ४ ॥
शब्दं दुर्मर्षणं श्रुत्वा निष्पपात ततो हरिः । वेगेन च पदन्यासैर्दारयन्निव मेदिनीम् ॥ ५ ॥
तं तु तारा परिष्वज्य स्नेहादर्शितसौहृदा । उवाच त्रस्तसंभ्रान्ता हितोदर्कमिदं वचः ॥ ६ ॥
साधु क्रोधमिमं वीर नदीवेगमिवागतम् । शयनादुत्थितः काल्यंत्यज शुक्तामिव स्रजम् ॥७॥
काल्यमेतेन संग्रामं करिष्यसि च वानर । वीर ते शत्रुबाहुल्यं फल्गुता वा न विद्यते ॥ ८ ॥
सहसा तव निष्क्रामो मम तावन्न रोचते । श्रूयतामभिधास्यामि यन्निमित्तं निवार्यते ॥ ९ ॥
पूर्वमापतितः क्रोधात्स त्वामाह्वयते युधि । निष्पत्य च निरस्तस्ते हन्यमानो दिशोगतः ॥१०॥
त्वया तस्य निरस्तस्य पीडितस्य विशेषतः । इहैत्य पुनराह्वानं शङ्कां जनयतीव मे ॥११॥
दर्पश्च व्यवसायश्च यादृशस्तस्य नर्दतः । निनादस्य च संरम्भो नैतदल्पं हि कारणम् ॥१२॥
नासहायमहं मन्ये सुग्रीव तमिहागतम् । अवष्टब्धसहायश्च यमाश्रित्यैष गर्जति ॥१३॥
प्रकृत्या निपुणश्चैव बुद्धिमांश्चैव वानरः । नापरीक्षितवीर्येण सुग्रीवः सख्यमेष्यति ॥१४॥
पूर्वमेव मया वीर श्रुतं कथयतो वचः । अङ्गदस्य कुमारस्य वक्ष्याम्यद्य हितं वचः ॥१५॥

बड़ा क्रोधित हुआ ॥ २ ॥ सोनेके समान पीला वालि क्रोधसे भर गया और ग्रहण लगे सूर्यके समान प्रभाहीन होगया ॥ ३ ॥ लम्बे दाँतोंके कारण उसका मुख भयानक होगया था और क्रोधसे आँखें लाल होगयी थीं। अतएव वह मृणालयुक्त उस तालाबके समान मालूम पड़ता था जिसमें लाल कमल खिले हों ॥ ४ ॥ असह्य शब्द सुनकर वालि बड़े वेगसे निकला। उसके चलनेसे पृथ्वी मानों दबी जाती है ॥ ५ ॥ स्नेहसे हितकामना प्रकट करती हुई, डरी और घबड़ायी हुई तारा वालिका आलिंगन करके हितकारी यह वचन बोली ॥ ६ ॥ वीर, नदीके वेगके समान आए हुए इस क्रोधका आप त्याग करें, जिस प्रकार रातमें भोग की हुई माला प्रातःकाल छोड़ दी जाती है। ॥ ७ ॥ वानर, कल प्रातःकाल आप युद्ध करें। यद्यपि युद्धमें कोई शत्रु तुमसे अधिक नहीं है और न तुमही किसी शत्रुसे छोटे हो ॥ ८ ॥ पर इस समय सहसा तुम्हारा जाना मुझे अच्छा नहीं जान पड़ता। जिस कारण मैं तुम्हें रोक रही हूँ वह सुनो ॥ ९ ॥ सुग्रीव क्रोध करके पहले आया था और युद्धके लिये उसने तुम्हें बुलाया था, तब जाकर तुमने उसे हराया और तुम्हारे द्वारा पीटे जानेपर भाग गया ॥ १० ॥ इस प्रकार तुम्हारे द्वारा पराजित पीड़ित होनेपर उसका पुनः यहाँ आना मुझे शंकित कर रहा है ॥ ११ ॥ अहंकार, उसका घोर युद्धके लिए उद्योग, उसके गर्जनमें भयानकता इन सबका कोई बड़ा कारण होना चाहिए ॥ १२ ॥ बिना किसीकी सहायताके सुग्रीव यहां नहीं आया है। सहायता पाकर ही वह यहाँ आकर गर्ज रहा है ॥ १३ ॥ वह स्वभावसे ही निपुण है और बुद्धिमान् है। बिना बलकी परीक्षा किये उसने किसीसे मैत्री न की होगी ॥ १४ ॥ वीर, कुमार अंगदसे मैंने पहले ही यह बात सुनी है। आज तुम्हारे कल्याणके लिए कहती हूँ ॥ १५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अङ्गदस्तु कुमारोऽयं वनान्तमुपनिर्गतः । प्रवृत्तिस्तेन कथिता चारैरासीन्निवेदिता ॥१६॥
अयोध्याधिपतेः पुत्रौ शूरौ समरदुर्जयौ । इक्ष्वाकूणां कुले जातौ प्रस्थितौ रामलक्ष्मणौ ॥१७॥
सुग्रीवप्रियकामार्थं प्राप्तौ तत्र दुरासदौ । स ते भ्रातुर्हि विख्यातः सहायो रणकर्मणि ॥१८॥
रामः परबलामर्दी युगान्ताग्निरिवोत्थितः । निवासवृक्षः साधूनामापन्नानां परा गतिः ॥१९॥
आर्तानां संश्रयश्चैव यशसश्चैकभाजनम् । ज्ञानविज्ञानसंपन्नो निदेशे निरतः पितुः ॥२०॥
धातूनामिव शैलेन्द्रो गुणानामाकरो महान् । तत्क्षमो न विरोधस्ते सह तेन महात्मना ॥२१॥
दुर्जयेनाप्रमेयेण रामेण रणकर्मसु । शूर वक्ष्यामि ते किंचिन्न चेच्छाम्यभ्यसूयितुम् ॥२२॥
श्रूयतां क्रियतां चैव तव वक्ष्यामि यद्धितम् । यौवराज्येन सुग्रीवं तूर्णं साध्वभिषेचय ॥२३॥
विग्रहं मा कृथा वीर भ्रात्रा राजन्यवीयसा । अहं हि ते क्षमं मन्ये तेन रामेण सौहृदम् ॥२४॥
सुग्रीवेण च संप्रीतिं वैरमुत्सृज्य दूरतः । लालनीयो हि ते भ्राता यवीयानेष वानरः ॥२५॥
तत्र वा सन्निहस्थो वा सर्वथा बन्धुरेव ते । नहि तेन समं बन्धुं भुवि पश्यामि कंचन ॥२६॥
दानमानादिसत्कारैः कुरुष्व प्रत्यनन्तरम् । वैरमेतत्समुत्सृज्य तव पार्श्वे स तिष्ठतु ॥२७॥
सुग्रीवो विपुलग्रीवो महाबन्धुर्मतस्तव । भ्रातृसौहृदमालम्ब्य नान्या गतिरिहास्ति ते ॥२८॥

कुमार अंगद एक दिन वनमें गए थे, वहीं दूतोंने उनसे यह बात कही थी ॥ १६ ॥ अयोध्याधिपतिके दो पुत्र जो वीर हैं। समरमें दुर्जय हैं। वे इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न राम और लक्ष्मण वनमें आए हैं ॥ १७ ॥ वे पराजित होनेके अयोग्य राम और लक्ष्मण सुग्रीवका हित करनेके लिए आए हैं। वे ही रामचन्द्र युद्धमें तुम्हारे भाईके सहायक हैं ॥ १८ ॥ रामचन्द्र शत्रु-सेनाको नष्ट करनेमें उठी हुई प्रलयकी अग्निके समान हैं। वे साधुओंके आश्रयदाता तथा पीड़ितोंके रक्षक हैं ॥ १९ ॥ वे दुखियोंके आश्रय-स्थान हैं, यशके भाजन हैं, ज्ञान-विज्ञानसे युक्त हैं तथा पिताकी आज्ञा पालनेवाले हैं ॥ २० ॥ हिमवान् जैसे धातुओंका आकर हैं वैसे ही रामचन्द्र गुणोंके आकर हैं। अतएव उन महात्माके साथ विरोध उचित नहीं ॥ २१ ॥ रणमें अजेय और यथार्थ रूप जाननेके योग्य रामचन्द्रसे तुम्हारा विरोध अच्छा नहीं। वीर, मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूँ। कृपया आप क्रोध न करें ॥ २२ ॥ सुनिए, और आपके हितकी बात जो मैं कहती हूँ उसे कीजिए। शीघ्र ही सुग्रीवका युवराज पदपर अभिषेक कराइए ॥ २३ ॥ राजन्, छोटे भाईसे विरोध मत करो। मैं तो समझती हूँ कि उन रामचन्द्रसे तुम्हें मैत्री करनी चाहिए ॥ २४ ॥ वैरको हटाकर सुग्रीवसे भी तुम्हें प्रेम करना चाहिये। वह तुम्हारा छोटा भाई है उसका आदर करना ही उचित है ॥ २५ ॥ वह यहाँ रहे चाहे ऋष्यमूक-पर रहे, तुम्हारा तो भाई ही है। उसके समान भाई पृथ्वीमें मैं दूसरा नहीं देखती ॥ २६ ॥ दान मान आदि सत्कारोंके द्वारा उसे आप अपनेमें मिला लीजिए। उससे विरोध छोड़ दीजिए। वह यहीं आपके पास रहे ॥ २७ ॥ लम्बी गर्दनवाला सुग्रीव तुम्हारा बड़ा प्रिय बन्धु है। भ्रातृ-प्रेमके अलावा इस समय तुम्हारी रक्षाका दूसरा उपाय नहीं है ॥२८॥ यदि आप मेरा प्रिय कार्य करना चाहते हों,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदि चावैषि मां हिताम् । याच्यमानः प्रियत्वेन साधुवाक्यं कुरुष्व मे ॥२९॥
प्रसीद पथ्यं शृणु जल्पितं हि मे न रोषमेवानुविधातुमर्हसि ।
क्षमो हि ते कोशलराजसूनुना न विग्रहः शक्रसमानतेजसा ॥३०॥
तदा हि तारा हितमेव वाक्यं तं वालिनं पथ्यमिदं बभाषे ।
न रोचते तद्वचनं हि तस्य कालाभिपन्नस्य विनाशकाले ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६

तामेवं ब्रुवतीं तारां ताराधिपनिभाननाम् । वाली निर्भर्त्सयामास वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥
गर्जतोऽस्य सुसंरब्धं भ्रातुः शत्रोर्विशेषतः । मर्षयिष्यामि केनापि कारणेन वरानने ॥ २ ॥
अधर्षितानां शूराणां समरेष्वनिवर्तिनाम् । धर्षणामर्षणं भीरु मरणादतिरिच्यते ॥ ३ ॥
सोढुं न च समर्थोऽहं युद्धकामस्य संयुगे । सुग्रीवस्य च संरब्धं हीनग्रीवस्य गर्जितम् ॥ ४ ॥
न च कार्यो विषादस्ते राघवं प्रति मत्कृते । धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च कथं पापं करिष्यति ॥ ५ ॥
निवर्तस्व सह स्त्रीभिः कथं भूयोऽनुगच्छसि । सौहृदं दर्शितं तावन्मयि भक्तिस्त्वया कृता ॥ ६ ॥

यदि आप मुझे अपनी हितकारिणी समझते हों तो मैं हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप मेरी बात मानें ॥ २९ ॥ प्रसन्न हूजिए, हितकारी मेरे वचन सुनिये, क्रोध करना उचित नहीं है। इन्द्र-के समान तेजस्वी रामचन्द्रसे विरोध करना अनुचित है ॥ ३० ॥ ताराने ये हितकारी वचन वालिसे कहे, पर उसे ये अच्छे न लगे। क्योंकि उसका विनाशकाल उपस्थित था। उसपर मृत्युकी छाया पड़ चुकी थी ॥ ३१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका पन्द्रहवां सर्ग समाप्त ।

चन्द्रमुखी ताराकी ये बातें सुनकर वालिने उसे फटकारा और वह इस प्रकार बोला ॥ १ ॥ गर्जते हुए, विशेषकर शत्रु भाईका गर्व किस प्रकार मैं सह सकता हूँ ? ॥ २ ॥ जो कभी पराजित नहीं हुआ, जो युद्धमें पीछे नहीं मुड़ा, ऐसे वीरके लिए शत्रुकी ललकार सहना मृत्युसे भी दुखदायी है ॥३॥ उस हीनग्रीव सुग्रीवका गर्जन और गर्व, जो मुझसे युद्ध करना चाहता है, सहन करनेमें असमर्थ हूँ ॥ ४ ॥ रामचन्द्रकी ओर देखकर तुम्हें मेरे लिए विषाद नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे धर्मज्ञ और कृतज्ञ हैं, वे पाप क्यों करेंगे ? ॥ ५ ॥ स्त्रियोंके साथ तुम लौट जाओ। क्यों तुम पुनः मेरे पीछे आ रही हो ? तुमने अपना प्रेम दिखलाया और भक्ति भी ॥ ६ ॥ तुम घबड़ाहट छोड़ दो।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रतियोत्स्याम्यहं गत्वा सुग्रीवं जहि संभ्रमम् । दर्पं चास्य विनेष्यामि न च प्राणैर्वियोक्ष्यते ॥ ७ ॥
अहंह्याजिस्थितस्यास्य करिष्यामि यदीप्सितम्। वृक्षैर्मुष्टिप्रहारैश्च पीडितः प्रतियास्यति ॥ ८ ॥
न मे गर्वितमायस्तं सहिष्यति दुरात्मवान् । कृतं तारे सहायत्वं दर्शितं सौहृदं मयि ॥ ९ ॥
शपितासि मम प्राणैर्निवर्तस्व जनेन च । अलं जित्वा निवर्तिष्ये तमहं भ्रातरं रणे ॥१०॥
तं तु तारा परिष्वज्य वालिनं प्रियवादिनी । चकार रुदती मन्दं दक्षिणा सा प्रदक्षिणम् ॥११॥
ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रविद्विजयैषिणी । अन्तःपुरं सह स्त्रीभिः प्रविष्टा शोकमोहिता ॥१२॥
प्रविष्टायां तु तारायां सह स्त्रीभिः स्वमालयम् । नगर्या निर्ययौ क्रुद्धो महासर्प इव श्वसन् ॥१३॥
स निःश्वस्य महारोषो वाली परमवेगवान् । सर्वतश्चारयन्दृष्टिं शत्रुदर्शनकांक्षया ॥१४॥
स ददर्श ततः श्रीमान्सुग्रीवं हेमपिङ्गलम् । सुसंवीतमवष्टब्धं दीप्यमानमिवानलम् ॥१५॥
तं स दृष्ट्वा महाबाहुः सुग्रीव पर्यवस्थितम् । गाढं परिदधे वासो वाली परमकोपनः ॥१६॥
स वाली गाढसंवीतो मुष्टिमुद्यम्य वीर्यवान् । सुग्रीवमेवाभिमुखो ययौ योद्धुं कृतक्षणः ॥१७॥
श्लिष्टं मुष्टिं समुद्यम्य संरब्धतरमागतः । सुग्रीवोऽपि समुद्दिश्य वालिनं हेममालिनम् ॥१८॥
तं वाली क्रोधताम्राक्षं सुग्रीवं रणकोविदम् । आपतन्तं महावेगमिदं वचनमब्रवीत् ॥१९॥
एष मुष्टिर्महान्बद्धो गाढः सुनियतांगुलिः । मया वेगविमुक्तस्ते प्राणानादाय यास्यति ॥२०॥

मैं जाकर सुग्रीवसे युद्ध करूँगा पर उसके प्राण न लूँगा ॥ ७ ॥ रणक्षेत्रमें जो वह चाहेगा वही मैं करूँगा । वृक्षों और मुष्टियोंके प्रहारसे भयभीत होकर वह स्वयं भाग जायगा ॥८॥ गर्वयुक्त मेरे युद्ध-सम्बन्धी प्रयत्नोंको वह दुरात्मा नहीं सह सकेगा । तारा, तू ने, सहायता दी और अपना प्रेम भी दिखाया ॥ ९ ॥ मैं अपनी शपथ तुमको देता हूं । आदमियोंके साथ लौट जाओ । उस भाईको रणमें जीतकर मैं आता ही हूँ ॥ १० ॥ प्रियवादिनी ताराने वालिका आलिंगन करके रोते रोते उसकी प्रदक्षिणा की ॥ ११ ॥ मंत्र जाननेवाली और वालिकी विजय चाहनेवाली ताराने स्वस्त्ययन किया और शोकसे पीड़ित होकर स्त्रियोंके साथ अन्तःपुरमें चली गयी ॥ १२ ॥ स्त्रियोंके साथ अपने भवनमें ताराके जानेपर महासर्पके समान साँस छोड़ता हुआ वालि नगरीसे निकला ॥ १३ ॥ क्रोधमें भरा हुआ स्वास छोड़ता हुआ, शीघ्रताके लिये उत्कण्ठित वालि चारो ओर देखने लगा ॥ १४ ॥ उसने सुवर्णके समान पीले सुग्रीवको देखा, जो लंगोट पहने हुए था और मजबूत भूमिपर खड़ा हुआ था । वह जलते हुए अग्नि-भूमिके समान मालूम पड़ता था ॥ १५ ॥ परमक्रोधी, महाबाहु, वालिने सुग्रीवको पास ही खड़ा देखकर अपने वस्त्र बड़े मजबूतीसे बांधे ॥ १६ ॥ वस्त्र समेटकर और मुक्का तानकर वालि सुग्रीवकी ओर चला, क्योंकि उसके लिए यह युद्धरूपी उत्सव हो रहा था ॥ १७ ॥ सुग्रीव भी सोनेकी मालावाले वालिकी ओर दृढ़ मुष्टि तानकर वेगसे आया ॥ १८ ॥ रणचतुर, क्रोधसे लाल आँखोंवाले और वेगपूर्वक सामने आते हुए सुग्रीवसे वालि यह बोला ॥ १९ ॥ यह बँधी हुई मुट्ठी जिसमें ये अंगुलियां खूब गठ गयी हैं, मैं वेगसे तुमपर चलाऊँगा और ये तुम्हारे प्राण लेकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमुक्तस्तु सुग्रीवः क्रुद्धो वालिनमब्रवीत् । तव चैष हरन्प्राणान्मुष्टिः पततु मूर्धनि ॥२१॥
ताडितस्तेन तं क्रुद्धः समभिक्रम्य वेगतः । अभवच्छोणितोद्गारी सापीड इव पर्वतः ॥२२॥
सुग्रीवेण तु निश्शङ्कं सालमुत्पाट्य तेजसा । गात्रेष्वभिहतो वाली वज्रेणेव महागिरिः ॥२३॥
स तु वृक्षेण निर्भग्नः सालताडनविह्वलः । गुरुभारभराक्रान्ता नौः ससार्थेव सागरे ॥२४॥
तौ भीमबलविक्रान्तौ सुपर्णसमवेगितौ । प्रयुद्धौ घोरवपुषौ चन्द्रसूर्याविवाम्बरे ॥२५॥
परस्परमभित्रघ्नौ छिद्रान्वेषणतत्परौ । ततोऽवर्धत वाली तु बलवीर्यसमन्वितः ॥२६॥
सूर्यपुत्रो महावीर्यः सुग्रीवः परिहीयत । वालिना भग्नदर्पस्तु सुग्रीवो मन्दविक्रमः ॥२७॥
वालिनं प्रति सामर्षो दर्शयामास राघवम् । वृक्षैः सशाखैः शिखरैर्वज्रकोटिनिभैर्नखैः ॥२८॥
मुष्टिभिर्जानुभिः पद्भिर्बाहुभिश्च पुनः पुनः । तयोर्युद्धमभूद्घोरं वृत्रवासवयोरिव ॥२९॥
तौ शोणिताक्तौ युध्येतां वानरौ वनचारिणौ । मेघाविव महाशब्दैस्तर्जमानौ परस्परम् ॥३०॥
हीयमानमथापश्यत्सुग्रीवं वानरेश्वरम् । प्रेक्षमाणं दिशश्चैव राघवः स मुहुर्मुहुः ॥३१॥
ततो रामो महातेजा आर्तं दृष्ट्वा हरीश्वरम् । स शरं वीक्षते वीरो वालिनो वधकाङ्क्षया ॥३२॥
ततो धनुषि संधाय शरमाशीविषोपमम् । पूरयामास तच्चापं कालचक्रमिवान्तकः ॥३३॥

लौट आवेंगी ॥ २० ॥ वालिके कहनेपर क्रोधकर सुग्रीवने भी उससे कहा—मेरी मुट्ठी तुम्हारे माथेपर गिरे और तुम्हारे प्राण ले ले ॥२१॥ वालिके प्रहारसे क्रुद्ध होकर सुग्रीव वेगपूर्वक चला । उसके शरीरसे रुधिरकी धारा बह रही थी । वह धारा बहनेवाले पर्वतके समान मालूम होता था ॥ २२ ॥ सुग्रीवने निःशंक शाल वृक्ष उखाड़कर वालिके शरीरपर मारा, जिस प्रकार पर्वतपर वज्र मारा गया हो ॥२३॥ शालके मारनेसे वालि व्याकुल होगया । समुद्रमें बहुत भारवाली उस नौकाके समान उसकी दशा हुई जिसपर व्यापारी बैठे हों ॥२४॥ वे भयंकर बल पराक्रम रखनेवाले, गरुड़के समान वेगवान्, भयंकर शरीरवाले, दोनों युद्ध करने लगे । मानों आकाशमें चन्द्रमा और सूर्य युद्ध करते हों ॥ २५ ॥ दोनोंही अपने शत्रुको मार डालना चाहते थे । दोनोंही दूसरेकी कमजोरी ढूँढ़ रहे थे, पर वालि पराक्रममें अधिक मालूम होने लगा ॥२६॥ सूर्य-पुत्र महाबली सुग्रीवका वालिने गर्व चूर्ण कर दिया, अतएव उसका पराक्रम भी शिथिल पड़ने लगा ॥ २७ ॥ वालिके प्रति क्रोध करके सुग्रीवने रामचन्द्रको अपनी हानि दिखाई । शाखावाले वृक्षों, पर्वतके शिखरों, वज्रके समान पैने नखों, मुट्ठियों, घुटनों, पैरों और बहुओंसे उन दोनोंका भयानक युद्ध होने लगा, जिस प्रकार इन्द्र और वृत्रासुरका युद्ध हुआ था ॥ २९ ॥ वनचारी दोनों वानर रुधिरसे भींगे हुए युद्ध करने लगे । दोनों मेघोंके समान घोर शब्दसे एक दूसरेको ललकारने लगे ॥३० ॥ वानराधिपति सुग्रीव कमजोर पड़ रहा है, बराबर इधर-उधर देखता है, यह रामचन्द्रने देखा ॥३१॥ महातेजस्वी रामचन्द्र सुग्रीवको दुखी देखकर वालिके वधके लिए अपना बाण ढूँढ़ने लगे ॥ ३२ ॥ सर्पके समान बाण धनुषपर चढ़ाकर उन्होंने खींचा, जिस प्रकार यमराज कालचक्र चलाता है ॥ ३३ ॥ धनुषके शब्दसे बड़े बड़े पक्षी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्य ज्यातलघोषेण त्रस्ताः पत्ररथेश्वराः । प्रदुद्रुवुर्मृगाश्चैव युगान्त इव मोहिताः ॥३४॥
मुक्तस्तु वज्रनिर्घोषः प्रदीप्ताशनिसंनिभः । राघवेण महाबाणो वालिवक्षसि पातितः ॥३५॥
ततस्तेन महातेजा वीर्ययुक्तः कपीश्वरः । वेगेनाभिहतो वाली निपपात महीतले ॥३६॥
इन्द्रध्वज इवोद्धूतः पौर्णमास्यां महीतले । आश्वयुक्समये मासि गतसत्त्वो विचेतनः ।
वाष्पसंरुद्धकण्ठस्तु वाली चार्तस्वरः शनैः । ॥३७॥

नरोत्तमः काल इवान्तकोपमं शरोत्तमं काञ्चनरूपभासितम् ।
ससर्ज दीप्तं तममित्रमर्दनं सधूममग्निं मुखतो यथा हरः ॥३८॥
अथोक्षितः शोणिततोयविस्रवैः प्रपुष्पिताशोक इवाचलोद्गतः ।
विचेतनो वासवसूनुराहवे प्रभ्रंशितेन्द्रध्वजवत्क्षितिं गतः ॥३९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षोडशः सर्ग ॥१६॥

सप्तदशः सर्गः १७

ततः शरेणाभिहतो रामेण रणकर्कशः । पपात सहसा वाली निकृत्त इव पादपः ॥ १ ॥
स भूमौ न्यस्तसर्वाङ्गस्तप्तकाञ्चनभूषणः । अपतद्देवराजस्य मुक्तरश्मिरिव ध्वजः ॥ २ ॥
अस्मिन्निपतिते भूमौ हर्यक्षाणां गणेश्वरे । नष्टचन्द्रमिव व्योम न व्यराजत मेदिनी ॥ ३ ॥

डर गए और प्रलयकाल आया हुआ समझकर मृगा भाग गए ॥३४॥ जलते हुए वज्रके समान गर्जन करनेवाला अपना बाण रामचन्द्रने वालिके कलेजेमें मारा ॥३५॥ उस बाणके लगनेसे कपिराज बली वालि पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥३६॥ आश्विन पूर्णिमाके उठाए हुए इन्द्रध्वजके समान अचेतन होकर वालि पृथ्वीमें गिर पड़ा । उसका गला रुक गया और उसने आर्त शब्द धीरेसे कहा ॥३७॥ प्रलय-कालके समान सोने और चाँदीका बना हुआ शत्रुको नष्ट करनेवाला बाण नरश्रेष्ठ रामने चलाया । जिस प्रकार महादेवने धूमके साथ प्रदीप्त अग्निका आविष्कार किया था ॥३८॥ रुधिर और पसीनेके बहनेसे वालिका समस्त शरीर भींग गया था । अतएव पर्वत पर उत्पन्न पुष्पित अशोकके समान वह मालूम होता था । वह इन्द्रका पुत्र वालि गिराए हुए इन्द्रध्वजाके समान पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥३९॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका सोलहवाँ सर्ग समाप्तः ।

रणमें कर्कश वालि रामके बाण लगने से कटे वृक्षके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥१॥ सोनेके भूषण-वाले वालिका समस्त शरीर पृथ्वीपर पड़ा था । रस्सीके टूट जानेसे इन्द्रकी ध्वजाके समान वह पृथ्वी पर गिरा पड़ा था ॥ २ ॥ वानर और भालुके राजा वालिके पृथ्वीपर गिरनेपर चन्द्रहीन आकाशके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भूमौ निपतितस्यापि तस्य देहं महात्मनः । न श्रीर्जहाति न प्राणा न तेजो न पराक्रमः ॥ ४ ॥
शक्रदत्ता वरा माला काञ्चनी रत्नभूषिता । दधार हरिमुख्यस्य प्राणांस्तेजः श्रियं च सा ॥ ५ ॥
स तया मालया वीरो हैमया हरियूथपः । संध्यानुगतपर्यन्तः पयोधर इवाभवत् ॥ ६ ॥
तस्य माला च देहश्च मर्मघाती च यः शरः । त्रिधेव रचिता लक्ष्मीः पतितस्यापि शोभते ॥ ७ ॥
तदस्त्रं तस्य वीरस्य स्वर्गमार्गप्रभावनम् । रामबाणासनक्षिप्तमावहत्परमां गतिम् ॥ ८ ॥
तं तथा पतितं संख्ये गतार्चिषमिवानलम् । ययातिमिव पुण्यान्ते देवलोकादिह च्युतम् ॥ ९ ॥
आदित्यमिव कालेन युगान्ते भुवि पातितम् । महेन्द्रमिव दुर्धर्षमुपेन्द्रमिव दुःसहम् ॥१०॥
महेन्द्रपुत्रं पतितं वालिनं हेममालिनम् । व्यूढोरस्कं महाबाहुं दीप्तास्यं हरिलोचनम् ॥११॥
लक्ष्मणानुचरो रामो ददर्शोपससर्प च । तं तथा पतितं वीरं गतार्चिषमिवानलम् ॥१२॥
बहुमान्य च तं वीरं वीक्षमाणं शनैरिव । उपयातौ महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१३॥
तं दृष्ट्वा राघवं वाली लक्ष्मणं च महाबलम् । अब्रवीत्परुषं वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम् ॥१४॥
स भूमावल्पतेजोसुर्निहतो नष्टचेतनः । अर्थसंहितया वाचा गर्हितं रणगर्वितम् ॥१५॥
पराङ्मुखवधं कृत्वा कोऽत्र प्राप्तस्त्वया गुणः । यदहं युद्धसंरब्धस्त्वत्कृते निधनं गतः ॥१६॥

समान पृथ्वी शोभित नहीं होती थी ॥ ३ ॥ उस महात्माके शरीरको पृथ्वीपर गिरनेपर भी शोभा, प्राण, तेज और पराक्रम नहीं छोड़ते थे ॥ ४ ॥ इन्द्रकी दी हुई सोनेकी माला, जिसमें रत्न जड़े थे, वालिके प्राण, तेज, शोभा आदिकी रक्षा करती थी ॥५॥ वह वानराधिपति उस सोनेकी मालासे सन्ध्यारागरक्त मेघके समान मालूम पड़ता था ॥ ६ ॥ उस माला, शरीर और मनोभेद करनेवाले उस बाण इन तीनों की पृथ्वीमें गिरनेपर भी अलग अलग शोभा हुई ॥ ७ ॥ वह अस्त्र उस वीरको स्वर्गमें ले जानेवाला हुआ । रामके धनुषसे छूटे हुए बाणने उसको उत्तम गति दी ॥ ८ ॥ इस प्रकार गिरा हुआ वालि प्रभाहीन अग्निके समान मालूम पड़ता था । पुण्यकी समाप्ति पर देवलोकसे गिरे ययातिके समान मालूम पड़ता था ॥ ९ ॥ प्रलयकालमें कालके द्वारा पृथ्वीपर गिराए सूर्यके समान, इन्द्रके समान पराजित होनेके अयोग्य, उपेन्द्रके समान सहन करनेमें अशक्य, सोनेकी माला धारण करनेवाले इन्द्रके पुत्र वालिको रामचन्द्रने देखा । उसकी लम्बी छाती, लम्बी बाँह, चमकीला मुँह और पीली आँखे, लक्ष्मणके साथ रामचन्द्रने देखीं और वे उसके पास गए । वह उस प्रकार गिरा हुआ वीर प्रभाहीन अग्निके समान मालूम पड़ता था ॥१०, ११, १२॥ धीरेसे उसकी ओर देखकर महा-पराक्रमी राम और लक्ष्मणने उसका सम्मान किया और वे उसके पास गए ॥१३॥ वालिने बलवान् राम और लक्ष्मणको देखकर धर्मयुक्त, कठोर और विनययुक्त वचन कहे ॥१४॥ भूमिमें पड़ा हुआ चेतना और चेष्टाहीन वालि रणगर्वित रामचन्द्रसे अर्थयुक्त वचन बोला ॥१५॥ छिपकर वध करनेवाले आपने कौनसा गुण देखा जो दूसरेसे युद्ध करनेमें लगा हुआ मैं आपके कारण मारा गया ॥१६॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुलीनः सत्त्वसंपन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः । रामः करुणवेदी च प्रजानां च हिते रतः ॥१७॥
सानुक्रोशो महोत्साहः समयज्ञो दृढव्रतः । इत्येतत्सर्वभूतानि कथयन्ति यशो भुवि ॥१८॥
दमः शमः क्षमा धर्मो धृतिः सत्त्वं पराक्रमः । पार्थिवानां गुणा राजन्दण्डश्चाप्यपकारिषु ॥१९॥
तान्गुणान्संप्रधार्याहमग्र्यं चाभिजनं तव । तारया प्रतिषिद्धः सन्सुग्रीवेण समागतः ॥२०॥
न मामन्येन संरब्धं प्रमत्तं वेद्धुमर्हसि । इति ते बुद्धिरुत्पन्ना बभूवादर्शने तव ॥२१॥
स त्वां विनिहतात्मानं धर्मध्वजमधार्मिकम् । जाने पापसमाचारं तृणैः कूपमिवावृतम् ॥२२॥
सतां वेषधरं पापं प्रच्छन्नमिव पावकम् । नाहं त्वमभिजानामि धर्मच्छद्माभिसंवृतम् ॥२३॥
विषये वा पुरे वा ते यदा पापं करोम्यहम् । नचत्वामवजानेऽहं कस्मात्त्वं हंस्यकिल्बिषम्॥२४॥
फलमूलाशनं नित्यं वानरं वनगोचरम् । मामिहाप्रतियुध्यन्तमन्येन च समागतम् ॥२५॥
त्वं नराधिपतेः पुत्रः प्रतीतः प्रियदर्शनः । लिङ्गमप्यस्ति ते राजन्दृश्यते धर्मसंहितम् ॥२६॥
कः क्षत्रियकुले जातः श्रुतवान्नष्टसंशयः । धर्मलिङ्गप्रतिच्छन्नः क्रूरं कर्म समाचरेत् ॥२७॥
त्वं राघवकुले जातो धर्मवानिति विश्रुतः । अभव्यो भव्यरूपेण किमर्थं परिधावसे ॥२८॥
साम दानं क्षमा धर्मः सत्यं धृतिपराक्रमौ । पार्थिवानां गुणा राजन्दण्डश्चाप्यपकारिषु ॥२९॥
वयं वनचरा राम मृगा मूलफलाशिनः । एषा प्रकृतिरस्माकं पुरुषस्त्वं नरेश्वर ॥३०॥

कुलीन, बलवान्, तेजस्वी, चरित्रवान्, दुखियोंका दुःख जाननेवाले और प्रजाका हित करनेवाले रामचंद्र हैं ॥१७॥ रामचन्द्र दयालु, उत्साही, उचितानुचित जाननेवाले और दृढ़ संकल्प करनेवाले हैं। यह तुम्हारा यश सब प्राणी पृथ्वीमें कहते हैं ॥१८॥ दम, शम, क्षमा, धर्म, धृति, सत्व और पराक्रम ये राजाओंके गुण हैं। अपकारियोंको दण्ड देना भी राजगुण है ॥१९॥ आपके उन सद्गुणोंको तथा आपके श्रेष्ठकुलको जानकर ही ताराके निषेध करनेपर भी मैं सुग्रीवसे लड़ने आया ॥२०॥ दूसरोंसे युद्धमें लगे हुए, अतएव असावधान मुझको आप नहीं मारेंगे—यह बात आपको बिना देखे ही मैंने समझ ली थी ॥२१॥ अब मैं तुमको आत्माको हनन करनेवाला, धर्मका चिह्न धारण करनेवाला, वस्तुतः अधार्मिक और पापी समझता हूँ। तुम तृणसे ढँके कूँएके समान भयानक हो ॥२२॥ सज्जनोंका वेश धारण करनेवाले, पर पापी तुम, छिपे अग्निके समान हो। धर्मके चिह्नसे छिपे हुए तुमको मैं नहीं जान सका ॥२३॥ मैंने तुम्हारे देशमें या नगरमें कोई उपद्रव नहीं किया, मैंने तुम्हारा तिरस्कार नहीं किया, अतएव मुझ निरपराधीको तुमने क्यों मारा ? ॥२४॥ मैं वानर हूँ, वनमें रहता हूँ, सदा फल मूल खाता हूँ। मैं तुमसे युद्ध नहीं करता था, किन्तु दूसरे से युद्ध कर रहा था। फिर तुमने मुझे क्यों मारा ? ॥२५॥ आप राजाके पुत्र हैं, सर्वप्रिय प्रसिद्ध हैं। आपमें धर्मके चिह्न भी वर्तमान हैं ॥२६॥ कौन क्षत्रिय-कुलमें उत्पन्न शास्त्रवेत्ता सन्देहरहित तथा धर्मका चिह्न धारण करनेवाला ऐसा क्रूर कर्म कर सकता है ? ॥२७॥ तुम रघुवंशमें उत्पन्न हुए हो। धर्मात्माके नामसे प्रसिद्ध हो। तुम क्रूर हो, पर पृथ्वीमें सौम्य रूप धारण कर घूम रहे हो। यह क्यों ? ॥२८॥ साम, दाम, क्षमा, धर्म, सत्य, धैर्य और पराक्रम राजाओंके ये गुण हैं। अपकारियोंको दण्ड देना भी राजगुण है ॥२९॥ रामचन्द्र, हम वनवासी पशु हैं। फल

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भूमिर्हिरण्यं रूपं च निग्रहे कारणानि च । तत्र कस्ते वने लोभो मदीयेषु फलेषु वा ॥३१॥
नयश्च विनयश्चोभौ निग्रहानुग्रहावपि । राजवृत्तिरसंकीर्णा न नृपाः कामवृत्तयः ॥३२॥
त्वं तु कामप्रधानश्च कोपनश्चानवस्थितः । राजवृत्तेषु संकीर्णः शरासनपरायणः ॥३३॥
न तेऽस्त्यपचितिर्धर्मे नार्थे बुद्धिरवस्थिता । इन्द्रियैः कामवृत्तः सन्कृष्यसे मनुजेश्वर ॥३४॥
हत्वा बाणेन काकुत्स्थ मामिहानपराधिनम् । किं वक्ष्यसि सतां मध्ये कर्म कृत्वा जुगुप्सितम्॥३५॥
राजहा ब्रह्महा गोघ्नश्चोरः प्राणिवधे रतः । नास्तिकः परिवेत्ता च सर्वे निरयगामिनः ॥३६॥
सूचकश्च कदर्यश्च मित्रघ्नो गुरुतल्पगः । लोकं पापात्मनामेते गच्छन्ते नात्र संशयः ॥३७॥
अधार्यं चर्म मे सद्भी रोमाण्यस्थि च वर्जितम् । अभक्ष्याणि च मांसानि त्वद्विधैर्धर्मचारिभिः॥३८॥
पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या ब्रह्मक्षत्रेण राघव । शल्यकः श्वाविधो गोधा शशः कूर्मश्च पञ्चमः॥३९॥
चर्म चास्थि च मे राम न स्पृशन्ति मनीषिणः । अभक्ष्याणि च मांसानि सोऽहं पञ्चनखो हतः॥४०॥
तारया वाक्यमुक्तोऽहं सत्यं सर्वज्ञया हितम् । तदतिक्रम्य मोहेन कालस्य वशमागतः ॥४१॥
त्वया नाथेन काकुत्स्थ न सनाथा वसुंधरा । प्रमदा शीलसंपूर्णा पत्येव च विधर्मणा ॥४२॥
शठो नैकृतिकः क्षुद्रो मिथ्याप्रश्रितमानसः । कथं दशरथेन त्वं जातः पापो महात्मना ॥४३॥

मूल खाते हैं । यही हम लोगोंका स्वभाव है । पर महाराज आपतो पुरुष हैं ॥३०॥ पृथ्वी, सोना और रूप वधके कारण कहे गए हैं । मेरे अधीनके इस वनमें आपको किसका लोभ है ? मेरे फलोंके लिए आपको क्यों लोभ हो सकता है ? ॥३१॥ नीति और नम्रता, निग्रह और अनुग्रह ये राज-धर्म हैं और इनका उचित उपयोग करना राजाका धर्म है । राजा यथेच्छाचारी नहीं होता ॥३२॥ तुम तो अपनी इच्छाके अनुसार काम करते हो । लोभी और चंचल हो। राजधर्मका ज्ञान तुमको नहीं है । तुम्हें केवल धनुषका सहारा है ।।३३॥ धर्ममें तुम्हारी श्रद्धा नहीं है और न अर्थ ही की ओर तुम्हारा ध्यान है । तुम यथेच्छाचारी हो अतएव इन्द्रियोंके अधीन होकर काम करते हो ॥३४॥ काकुत्स्थ, अनपराधी मुझको बाणसे मारकर सज्जनोंके बीचमें क्या कहोगे ? इस निन्दित कर्मका समर्थन कैसे करोगे ?॥३५॥ राजा, ब्राह्मण और गौकी हत्या करनेवाला, चोर, प्राणिवधमें निरत, नास्तिक, और परिवेत्ता (बड़े भाईके पहले व्याह करनेवाला) ये सब नरकगामी होते हैं ॥३६॥ चुगल, लोभी, मित्रघाती और गुरु-स्त्री-गामी ये पापियोंके लोकमें जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥३७॥ आपके समान धर्मात्मा सज्जन मेरा चर्म भी तो धारण नहीं करते। बाल और हड्डियाँ भी अस्पृश्य समझी जाती हैं और मांस भी अभक्ष्य है।३८। ब्राह्मण और क्षत्रियको पञ्चनख संज्ञक इन पाँचोका ही माँस खानेका विधान है, शल्यक, श्वाविध, गोधा, शश और कूर्म ॥३९॥ मेरा चाम मेरी हड्डियाँ सज्जनोंके द्वारा अस्पृश्य समझी जाती हैं और मेरा मांस भी अभक्ष्य है, फिर भी आपने मुझ पंचनखको मारा है ॥४०॥ सचमुच सर्वज्ञ ताराने मुझे हितका उपदेश दिया था । मोहसे उसे न मानकर मैं कालवश हुआ ॥४१॥ विधर्मी पतिको पाकर शीलवती स्त्रीके समान, हे काकुत्स्थ ! तुमको स्वामी पाकर यह पृथ्वी सनाथ नहीं हुई ॥४२॥ छिपकर पाप करनेवाला, दूसरेका अपकार करनेवाला, ओछा, अपने अन्तःकरणपर अधिकार न रखनेवाला, तुम्हारे समान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

छिन्नचारित्र्यकक्ष्येण सतां धर्मातिवर्तिना । त्यक्तधर्माङ्कुशेनाहं निहतो रामहस्तिना ॥४४॥
अशुभं चाप्ययुक्तं च सतां चैव विगर्हितम् । वक्ष्यसे चेदृशं कृत्वा सद्भिः सह समागतः ॥४५॥
उदासीनेषु योऽस्मासु विक्रमोऽयं प्रकाशितः । अपकारिषु ते राम नैवं पश्यामि विक्रमम् ॥४६॥
दृश्यमानस्तु युध्येथा मया युधि नृपात्मज । अद्य वैवस्वतं देवं पश्येस्त्वं निहतो मया ॥४७॥
त्वयाऽदृश्येन तु रणे निहतोऽहं दुरासदः । प्रसुप्तः पन्नगेनेव नरः पापवशं गतः ॥४८॥
सुग्रीवप्रियकामेन यदहं निहतस्त्वया । मामेव यदि पूर्वं त्वमेतदर्थमचोदयः ।
मैथिलीमहमेकाह्ना तव चानीतवान्भवेः ॥४९॥
राक्षसं च दुरात्मानं तव भार्यापहारिणम् । कण्ठे बद्ध्वा प्रदद्यां तेऽनिहतं रावणं रणे ॥५०॥
न्यस्तां सागरतोये वा पाताले वापि मैथिलीम् । आनयेयं तवादेशाच्छ्वेतामश्वतरीमिव ॥५१॥
युक्तं यत्प्राप्नुयाद्राज्यं सुग्रीवः स्वर्गते मयि । अयुक्तं यदधर्मेण त्वयाहं निहतो रणे ॥५२॥
काममेवंविधो लोकः कालेन विनियुज्यते । क्षमं चेद्भवता प्राप्तमुत्तरं साधु चिन्त्यताम् ॥५३॥

इत्येवमुक्त्वा परिशुष्कवक्त्रः शराभिघाताद्व्यथितो महात्मा ।
समीक्ष्य रामं रविसंनिकाशं तूष्णीं बभौ वानरराजसूनुः ॥५४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सप्तदशः सर्गः ॥ ११ ॥

पापी पुत्र महाराज दशरथने कैसे उत्पन्न किया ॥४३॥ चरित्रकी मर्यादा जिसने तोड़ दी है, सज्जनोंके धर्मका जिसने उल्लंघन किया है, धर्मके अंकुशको जिसने हरा दिया है, उस राम नामक हाथीके द्वारा मैं मारा गया ॥४४॥ अमंगल, अनुचित और सज्जनोंके द्वारा निन्दित ऐसा काम करके सज्जनोंसे मिलने पर तुम क्या कहोगे।४५। उदासीनके प्रति आपने जो यह विक्रम दिखलाया है, आपका वैसा विक्रम अपकारियोंके प्रति मैं नहीं देखता ॥४६॥ राजपुत्र रणमें सामने आकर यदि तुम मुझसे युद्ध करते तो मेरे द्वारा मारे जाकर सूर्यदेवका दर्शन करते ॥४७॥ तुमने तो छिपकर युद्धमें मुझे मारा है, जिस प्रकार सोया हुआ मनुष्य साँपके द्वारा काट दिया जाता है और मर जाता है ॥४८॥ सुग्रीवके हितके लिए जो तुमने मुझे मारा है, अपना वह अभिप्राय यदि तुम मुझसे कहते तो एकही दिनमें मैं जानकीको ला देता ॥४९॥ तुम्हारी स्त्रीके हरण करनेवाले दुरात्मा राक्षस रावणका गला बाँधकर तुम्हारे सामने जीता उपस्थित कर देता ॥५०॥ समुद्रके जलमें या पातालमें भी यदि जानकी होती तो मैं ला देता, जिस प्रकार श्वेताश्वतरकी श्रुति लाई गई थी ॥५१॥ मेरे स्वर्ग जानेपर यह राज्य सुग्रीव पावेगा, यह उचित है, पर अधर्मसे मेरा वध किया यह अनुचित हुआ ॥५२॥ हमारे समान मनुष्य कालसे हटाए ही जाते हैं, अर्थात् उनकी मृत्यु होती है; पर छिपकर मारना आपके लिए उचित हो तो आप इसका उत्तर सोचें ॥५३॥ पश्चात् ऐसा कहकर सूर्यके समान तेजस्वी रामको देखकर वालि चुप हो गया। उसका मुँह सूख गया था और बाण लगनेके कारण वह व्याकुल हो रहा था ॥५४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका सत्रहवाँ सर्ग समाप्त ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अष्टादशः सर्गः १८

इत्युक्तः प्रश्रितं वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् । परुषं वालिना रामो निहतेन विचेतसा ॥ १ ॥
तं निष्प्रभमिवादित्यं मुक्ततोयमिवाम्बुदम् । उक्तवाक्यं हरिश्रेष्ठमुपशान्तमिवानलम् ॥ २ ॥
धर्मार्थगुणसंपन्नं हरीश्वरमनुत्तमम् । अधिक्षिप्तस्तदा रामः पश्चाद्वालिनमब्रवीत् ॥ ३ ॥
धर्ममर्थं च कामं च समयं चापि लौकिकम् । अविज्ञाय कथं बाल्यान्मामिहाद्य विगर्हसे ॥ ४ ॥
अपृष्ट्वा बुद्धिसंपन्नान्वृद्धानाचार्यसंमतान् । सौम्यं वानरचापल्यात्त्वां मां वक्तुमिहेच्छसि ॥ ५ ॥
इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलवनकानना । मृगपक्षिमनुष्याणां निग्रहानुग्रहेष्वपि ॥ ६ ॥
तां पालयति धर्मात्मा भरतः सत्यवानृजुः । धर्मकामार्थतत्त्वज्ञो निग्रहानुग्रहे रतः ॥ ७ ॥
नयश्च विनयश्चोभौ यस्मिन्सत्यं च सुस्थितम् । विक्रमश्च यथादृष्टः स राजा देशकालवित् ॥ ८ ॥
तस्य धर्मकृतादेशा वयमन्ये च पार्थिवाः । चरामो वसुधां कृत्स्नां धर्मसंतानमिच्छवः ॥ ९ ॥
यस्मिन्नृपतिशार्दूले भरते धर्मवत्सले । पालयत्यखिलां पृथ्वीं कश्चरेद्धर्मविप्रियम् ॥१०॥
ते वयं मार्गविभ्रष्टं स्वधर्मे परमे स्थिताः । भरताज्ञां पुरस्कृत्य चिन्तयामो यथाविधि ॥११॥
त्वं तु संक्लिष्टधर्मश्च कर्मणा च विगर्हितः । कामतन्त्रप्रधानश्च न स्थितो राजवर्त्मनि ॥१२॥
ज्येष्ठो भ्राता पिता वापि यश्च विद्यां प्रयच्छति । त्रयस्ते पितरो ज्ञेया धर्मे च पथि वर्तिनः ॥१३॥
यवीयानात्मनः पुत्रः शिष्यश्चापि गुणोदितः । पुत्रवत्ते त्रयश्चिन्त्या धर्मश्चैवात्र कारणम् ॥१४॥

बाणसे आहत अचेत वालिने रामचन्द्रसे कठोर, धर्मार्थयुक्त, हितकारी और विनीत वचन कहे ॥१॥ प्रभाहीन आदित्यके समान, जलहीन मेघके समान, बुझी अग्निके समान, श्रेष्ठ वानरेश्वरके धर्म-अर्थयुक्त वचनसे तिरस्कृत होकर रामचन्द्र उससे बोले ॥३॥ धर्म अर्थ काम और लौकिक आचारको बिना जाने लड़कपनके कारण तुम मेरी क्यों निन्दा करते हो ? ॥४॥ बुद्धिमान्, आचार्य-सम्मत वृद्धों-से बिना पूछे वानरी चंचलतासे प्रेरित होकर तुम मुझे उपदेश देना चाहते हो ? ॥५॥ पर्वत वन आदिसे युक्त यह समस्त पृथ्वी इक्ष्वाकुओं की है। अतएव पशु पक्षी तथा मनुष्यों पर दया और दण्ड देनेका उन्हें अधिकार है ॥६॥ धर्मात्मा, सत्यवादी, सरल भरत उस पृथ्वीका पालन करते हैं। धर्म, काम और अर्थके तत्त्वोंको जाननेवाले वे निग्रह, अनुग्रह भी करते हैं ॥७॥ नय, विनय, सत्य, शास्त्रानुकूल विक्रम, जिसमें हैं, वही देश-काल जाननेवाला भरत राजा है ॥८॥ हम तथा अन्य राजा लोग धर्मकी वृद्धिके लिए राजाके द्वारा धार्मिक कृत्योंको देखनेके लिए नियुक्त हुए हैं और इसी लिए समस्त पृथ्वी-का परिभ्रमण करते हैं ॥९॥ राजश्रेष्ठ, धर्मवत्सल भरतके शासनकालमें कौन धर्म-विरुद्ध काम कर सकता है ? ॥१०॥ हमलोग अपने धर्ममें स्थित होकर भरतकी आज्ञासे धर्म-विरुद्ध चलनेवालेका विधि-पूर्वक विचार करते हैं ॥११॥ तुमने धर्मका नाश किया है। तुम्हारे कर्म भी निन्दित हैं। तुम कामको पुरुषार्थ समझनेवाले हो। राजधर्मके अनुसार नहीं चलते ॥१२॥ ज्येष्ठ भाई, पिता या जो विद्या देता है, ये तीनों धर्मानुकूल चलनेवालोंके लिए पिताके समान हैं ॥१३॥ छोटा भाई, पुत्र, गुणवान् शिष्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सूक्ष्मः परमविज्ञेयः सतां धर्मः प्लवंगम । हृदिस्थः सर्वभूतानामात्मा वेद शुभाशुभम् ॥१५॥
चपलश्चपलैः सार्धं वानरैरकृतात्मभिः । जात्यन्ध इव जात्यन्धैर्मन्त्रयन्प्रेक्षसे नु किम् ॥१६॥
अहं तु व्यक्ततामस्य वचनस्य ब्रवीमि ते । नहि मां केवलं रोषात्त्वं विगर्हितुमर्हसि ॥१७॥
तदेतत्कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः । भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम्॥१८॥
अस्य त्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । रुमायां वर्तसे कामात्स्नुषायां पापकर्मकृत् ॥१९॥
तद्व्यतीतस्य ते धर्मात्कामवृत्तस्य वानर । भ्रातृभार्याभिमर्शेऽस्मिन्दण्डोऽयं प्रतिपादितः॥२०॥
नहि लोकविरुद्धस्य लोकवृत्तादपेयुषः । दण्डादन्यत्र पश्यामि निग्रहं हरियूथप ॥२१॥
न च ते मर्षये पापं क्षत्रियोऽहं कुलोद्गतः । औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाप्यनुजस्य यः॥२२॥
प्रचरेत नरः कामात्तस्य दण्डो वधः स्मृतः । भरतस्तु महीपालो वयं त्वादेशवर्तिनः ॥२३॥
त्वं च धर्मादतिक्रान्तः कथं शक्यमुपेक्षितुम् । गुरुधर्मव्यतिक्रान्तं प्राज्ञो धर्मेण पालयन् ॥२४॥
भरतः कामयुक्तानां निग्रहे पर्यवस्थितः । वयं तु भरतादेशावधिं कृत्वा हरीश्वर ।
त्वद्विधान्भिन्नमर्यादान्निग्रहीतुं व्यवस्थिताः ॥२५॥
सुग्रीवेण च मे सख्यं लक्ष्मणेन यथा तथा । दाररराज्यनिमित्तं च निःश्रेयसकरः स मे ॥२६॥
प्रतिज्ञा च मया दत्ता तदा वानरसंनिधौ । प्रतिज्ञा च कथं शक्या मद्विधेनानवेक्षितुम् ॥२७॥

ये तीनों पुत्रके समान हैं । ऐसा समझनेका भी कारण धर्म ही है ॥१४॥ हे वानर, सज्जनोंका धर्म सूक्ष्म है, अतएव दुर्ज्ञेय है; किन्तु सब प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाला आत्मा ही पाप पुण्य जान सकता है ॥१५॥ जन्मान्धके साथ बातचीत करके जन्मान्ध क्या जान सकता है, उसी प्रकार अस्वस्थचित्त चपल वानरोंके साथ बात करके तुम चपल वानर धर्मकी बात क्या जान सकते हो ? ॥१६॥ मैं अपनी इस बातको साफ साफ कहता हूँ, तुम केवल क्रोध करके मेरी निन्दा नहीं कर सकते ॥१७॥ सनातन-धर्मका त्याग कर तुम छोटे भाईकी स्त्रीका उपभोग करते हो, यही कारण है जिसके लिए मैंने तुम्हें मारा है ॥१८॥ महात्मा सुग्रीवके जीते जी उनकी स्त्री और अपनी पतोहू रुमाके साथ तुम पाप-कर्म करते हो ॥१९॥ तुम धर्मका त्यागकर स्वेच्छानुसार आचरण करते हो । भाईकी स्त्रीके उपभोगके लिए प्राणदण्डकी आज्ञा है ॥२०॥ लोक-विरुद्ध सज्जनोचित व्यवहारसे निन्दित कार्यके लिए दण्डके अलावा और कोई प्रायश्चित्त मैं नहीं देखता ॥२१॥ मैं क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुआ हूँ । मैं तुम्हारे इस पापाचरण-को नहीं सह सकता । कन्या, बहिन और छोटे भाईकी स्त्री ॥२२॥ इनके साथ जो कामका व्यवहार करता है उसका दण्ड प्राणवध है । भरत राजा हैं और हम लोग उनके आज्ञापालक हैं ॥२३॥ तुमने धर्मकी मर्यादा तोड़ी है । तुम्हें क्षमा कैसे किया जा सकता है । श्रेष्ठ धर्मका उल्लंघन करनेवालेको दण्ड देकर, धर्म-पूर्वक प्रजाका पालन करते हुए भरत यथेच्छाचारियोंको दण्ड देनेके लिए तैयार हैं और हम लोग उनकी आज्ञाके अनुसार तुम्हारे समान धर्मद्रोहियोंको दण्ड देनेके लिए उद्यत हैं ॥२४, २५॥ जिस प्रकार लक्ष्मणसे मेरी मैत्री है, सुग्रीवसे भी वैसी ही है । स्त्री और राज्य पाने पर मेरे कल्याणके लिए वे प्रतिज्ञाबद्ध हैं ॥२६॥ मैंने उनके सामने प्रतिज्ञा की है । हमारे समान मनुष्य प्रतिज्ञाकी उपेक्षा कैसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तदेभिः कारणैः सर्वैर्महद्भिर्धर्मसंश्रितैः । शासनं तव यद्युक्तं तद्भवाननुमन्यताम् ॥२८॥
सर्वथा धर्म इत्येव द्रष्टव्यस्तव निग्रहः । वयस्यस्योपकर्तव्यं धर्ममेवानुपश्यता
गृहीतौ धर्मकुशलैस्तथा तच्चरितं मया ॥२९॥
शक्यं त्वयापि तत्कार्यं धर्ममेवानुवर्तता । श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ ॥३०॥
राजभिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः । निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा॥३१॥
शासनाद्वापि मोक्षाद्वा स्तेनः पापात्प्रमुच्यते । राजा त्वशासन्पापस्य तदवाप्नोति किल्बिषम्॥३२॥
आर्येण मम मांधात्रा व्यसनं घोरमीप्सितम् । श्रमणेन कृते पापे यथा पापं कृतं त्वया ॥३३॥
अन्यैरपि कृतं पापं प्रमत्तैर्वसुधाधिपैः । प्रायश्चित्तं च कुर्वन्ति तेन तच्छाम्यते रजः ॥३४॥
तदलं परितापेन धर्मतः परिकल्पितः । वधो वानरशार्दूल न वयं स्ववशे स्थिताः ॥३५॥
शृणु चाप्यपरं भूयः कारणं हरिपुंगव । तच्छ्रुत्वा हि महद्वीर न मन्युं कर्तुमर्हसि ॥३६॥
न मे तत्र मनस्तापो न मन्युर्हरिपुंगव । वागुराभिश्च पाशैश्च कूटैश्च विविधैर्नराः ॥३७॥
प्रतिच्छन्नाश्च दृश्याश्च गृह्णन्ति सुबहून्मृगान् । प्रधावितान्वा वित्रस्तान्विस्रब्धानतिविष्ठितान्॥३८॥
प्रमत्तानप्रमत्तान्वा नरा मांसाशिनो भृशम् । विध्यन्ति विमुखांश्चापि न च दोषोऽत्र विद्यते॥३९॥
यान्ति राजर्षयश्चात्र मृगयां धर्मकोविदाः । तस्मात्त्वं निहतो युद्धे मया बाणेन वानर ।
अयुध्यन्प्रतियुध्यन्वा यस्माच्छाखामृगो ह्यसि ॥४०॥

कर सकते हैं ॥ २७ ॥ धर्मविहित इन कारणोंसे तुम्हारा जैसा शासन करना उचित था, तुम्हें जैसा दण्ड दिया जाना चाहिए था, वैसा मैंने दिया। वह शास्त्रानुकूल है, यह बात तुम भी मानो ॥२८॥ मैंने जो तुम्हें दण्ड दिया है वह केवल धर्मकी दृष्टिसे। मित्रका उपकार करना भी धर्म ही है ॥२९॥ धर्म-पालन करनेके लिए तुमको भी ऐसी बात करनी ही पड़ती। मनुने चरित्र रक्षाके दो श्लोक कहे हैं। बुद्धि-मानोंने उन्हें माना है। मैंने वही किया है ॥३०॥ मनुष्य पाप करके राजाके द्वारा उसका दण्ड भोग कर निर्मल हो जाते हैं और पुण्यात्माओंके समान स्वर्ग जाते हैं ॥३१॥ शारीरिक दण्डसे अथवा निर्वा-सनसे चोर आदि पापी पापमुक्त हो जाते हैं, राजा यदि दण्ड न दे तो वह उस पापका अपराधी होता है ॥३२॥ जैसा पाप तुमने किया है वैसा पाप करने पर, एक श्रवण (जैन वा बौद्ध सन्यासी) को मेरे पूर्वज मान्धाताने शास्त्रानुकूल कठोर दण्ड दिया था ॥३३॥ अन्य राजाओंने भी पाप करनेपर लोगों को दण्ड दिये हैं और उन लोगोंने प्रायश्चित भी किए हैं, जिनसे उनके पाप दूर हुए हैं ॥३४॥ अतएव वानरराज, पश्चा-त्ताप न करो। तुम्हारा वध शास्त्रकी आज्ञासे धर्मरक्षाके लिए हुआ है; क्योंकि हम लोग अपने अधीन नहीं हैं ॥३५॥ वानरश्रेष्ठ, अब दूसरा भी कार्य सुनो, जिसके सुननेसे तुम्हारा क्रोध दूर हो सकेगा ॥३६॥ तुमको छिपकर जो मैंने मारा है उसके विषयमें न तो मुझे पश्चात्ताप है और न किसी प्रकारका दुःख है ॥३७॥ जाल, पाश तथा अनेक प्रकारके छलसे छिपकर या प्रत्यक्ष होकर मनुष्य पक्षियों और मृगों-को मारते हैं। वे दौड़ते हों, डरे हों, चुपचाप बैठे हों अथवा अनेक पालित मृगोंसे लड़ाई करते हों ।३८। मांस खानेवाले मनुष्य प्रमत्त, अप्रमत्त अथवा भागते हुए मृगोंका वध करते हैं और इसमें कोई दोष

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दुर्लभस्य च धर्मस्य जीवितस्य शुभस्य च । राजानो वानरश्रेष्ठ प्रदातारो न संशयः ॥४१॥
तान्न हिंस्यान्न चाक्रोशेन्नाक्षिपेन्नाप्रियं वदेत् । देवा मानुषरूपेण चरन्त्येते महीतले ॥४२॥
त्वं तु धर्ममविज्ञाय केवलं रोषमास्थितः । विदूषयसि मां धर्मे पितृपैतामहे स्थितम् ॥४३॥
एवमुक्तस्तु रामेण वाली प्रव्यथितो भृशम् । न दोषं राघवे दध्यौ धर्मेऽधिगतनिश्चयः ॥४४॥
प्रत्युवाच ततो रामं प्राञ्जलिर्वानरेश्वरः । यत्त्वमात्थ नरश्रेष्ठ तत्तथैव न संशयः ॥४५॥
प्रतिवक्तुं प्रकृष्टे हि नापकृष्टस्तु शक्नुयात् । यदयुक्तं मया पूर्वं प्रमादाद्वाक्यमप्रियम् ॥४६॥
तत्रापि खलु मां दोषं कर्तुं वार्हसि राघव । त्वं हि दृष्टार्थतत्त्वज्ञः प्रजानां च हिते रतः ।
कार्यकारणसिद्धौ च प्रसन्ना बुद्धिरव्यया ॥४७॥
मामप्यवगतं धर्माद्व्यतिक्रान्तपुरस्कृतम् । धर्मसंहितया वाचा धर्मज्ञ परिपालय ॥४८॥
बाष्पसंरुद्धकण्ठस्तु वाली सार्तरवः शनैः । उवाच रामं संप्रेक्ष्य पङ्कलग्न इव द्विपः ॥४९॥
न चात्मानमहं शोचे न तारां नापि बान्धवान् । यथा पुत्रं गुणज्येष्ठमङ्गदं कनकाङ्गदम् ॥५०॥
स ममादर्शनाद्दीनो बाल्यात्प्रभृति लालितः । तटाक इव पीताम्बुरुदशोषं गमिष्यति ॥५१॥
बालश्चाकृतबुद्धिश्च एकपुत्रश्च मे प्रियः । तारेयो राम भवता रक्षणीयो महाबलः ॥५२॥

नहीं समझा जाता ॥३९॥ राजर्षि लोग भी आखेट करने जाते हैं, इस कारण मैंने भी युद्धमें तुम्हें मारा है। चाहे तुम मुझसे लड़ते थे या नहीं लड़ते थे, क्योंकि तुम वानर हो ॥४०॥ दुर्लभ धन जीवन और कल्याणके देनेवाले राजा ही होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥४१॥ राजाओंकी हिंसा न करे, उनकी निन्दा न करे, उनका तिरस्कार न करे, उनके प्रतिकूल न बोले, क्योंकि राजा देवता हैं, मनुष्यरूप धरकर पृथिवीमें विचरते हैं ॥४२॥ तुम्हें तो धर्मका ज्ञान नहीं है, क्रोधके वशवर्ती होकर पिता पितामहसे चले आते हुए धर्मका पालन करनेवाले मेरा तिरस्कार कर रहे हो ॥४३॥ रामके ऐसा कहनेपर वालि बहुत व्यथित हुआ, धर्मके विषयमें उसको निश्चय हो गया; अतएव उसने रामचन्द्रको दोषी नहीं समझा ॥४४॥ वानरराज वालिने हाथ जोड़कर कहा—नरश्रेष्ठ, आप जो कह रहे हैं वह ठीक है ॥४५॥ श्रेष्ठ मनुष्यके सामने छोटा मनुष्य बोल नहीं सकता। पहले अज्ञानवश जो अप्रिय वचन मैंने कहे हैं उसमें भी आप मेरा दोष न समझिएगा। आप तो तत्त्वोंके यथार्थ ज्ञाता हैं। प्रजाके हितकारी हैं। कार्य कारणके जाननेमें आपकी बुद्धि निर्मल है ॥४७॥ सबसे बड़ा धर्मत्यागी मैं भी आपके यहाँ आया हूँ। हे धर्मज्ञ, धर्मयुक्त वचनसे आप मेरी रक्षा करें ॥४८॥ वालिका गला रुक गया, पांकमें फँसे हाथीके समान बड़े कष्टसे रामकी ओर देखकर वह बोला ॥४९॥ अपने लिए, ताराके लिए तथा बान्धवोंके लिए मुझे शोक नहीं है। मुझे शोक है सुवर्णका अंगद (हाथका एक गहना) पहननेवाले गुणवान् अंगदके लिए ॥५०॥ बाल्यावस्थासे ही वह मेरे द्वारा लालित पालित हुआ है। अब मुझे न देखकर वह अवश्य ही दुखित होगा। जलके उपयोग करनेसे जिस प्रकार तालाब सूख जाता है उसी प्रकार वह भी सूख जायगा ॥५१॥ वह अभी बालक है, अल्प बुद्धि है और ताराका प्रधान पुत्र है। अतएव आप उसकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुग्रीवे चाङ्गदे चैव विधत्स्व मतिमुत्तमाम् । त्वं हि गोप्ता च शास्ता च कार्याकार्यविधौ स्थितः५३॥
या ते नरपते वृत्तिर्भरते लक्ष्मणे च या । सुग्रीवे चाङ्गदे राजंस्तां चिन्तयितुमर्हसि ॥५४॥
मद्दोषकृतदोषां तां यथा तारां तपस्विनीम् । सुग्रीवो नावमन्येत तथावस्थातुमर्हसि ॥५५॥
त्वया ह्यनुगृहीतेन शक्यं राज्यमुपासितुम् । त्वद्वशे वर्तमानेन तव चित्तानुवर्तिना ॥५६॥
शक्यं दिवं चार्जयितुं वसुधां चापि शासितुम् । त्वत्तोऽहं वधमाकाङ्क्षन्वार्यमाणोऽपि तारया५७॥
सुग्रीवेण सह भ्रात्रा द्वन्द्वयुद्धमुपागतः । इत्युक्त्वा वानरो रामं विरराम हरीश्वरः ॥५८॥
स तमाश्वासयद्रामो वालिनं व्यक्तदर्शनम् । साधुसंमतया वाचा धर्मतत्त्वार्थयुक्तया ॥५९॥
न वयं भवता चिन्त्या नाप्यात्मा हरिसत्तम । वयं भवद्विशेषेण धर्मतः कृतनिश्चयाः ॥६०॥
दण्ड्ये यः पातयेद्दण्डं दण्ड्यो यश्चापि दण्ड्यते । कार्यकारणसिद्धार्थावुभौ तौ नावसीदतः ॥६१॥
तद्भवान्दण्डसंयोगादस्माद्विगतकल्मषः । गतः स्वां प्रकृतिं धर्म्यां दण्डदिष्टेन वर्त्मना ॥६२॥
त्यज शोकं च मोहं च भयं च हृदये स्थितम् । त्वया विधानं हर्यग्र्य न शक्यमतिवर्तितुम् ॥६३॥
यथा त्वय्यङ्गदो नित्यं वर्तते वानरेश्वर । तथा वर्तेत सुग्रीवे मयि चापि न संशयः ॥६४॥

स तस्य वाक्यं मधुरं महात्मनः समाहितं धर्मपथानुवर्तितम् ।
निशम्य रामस्य रणावमर्दिनो वचः सुयुक्तं निजगाद वानरः ॥६५॥

रक्षा कीजिएगा ॥५२॥ सुग्रीव और अंगदके विषयमें आप समान भाव रक्खें, क्योंकि आप रक्षक हैं, शासक हैं, कर्तव्याकर्तव्यका ज्ञान रखनेवाले हैं ॥५३॥ राजन्, भरत और लक्ष्मणमें जो आपके भाव हैं, वे ही सुग्रीव और अंगदमें भी आप रक्खें ॥५४॥ मेरे दोषसे दोषिणी विचारी ताराका सुग्रीव तिरस्कार न करे इसकी व्यवस्था आप कीजिएगा ॥५५॥ आपके अनुग्रहसे, आपके वशमें रहनेसे तथा आपकी इच्छाके अनुकूल चलनेसे सुग्रीव राज्य कर सकेगा ॥५६॥ आपकी अनुकूलतासे स्वर्ग और पृथ्वीका राज्य प्राप्त हो सकता है। आपके द्वारा अपने वधकी इच्छासे ही तारा द्वारा रोके जाने पर भी सुग्रीवसे युद्ध करनेके लिए आया। रामसे ऐसा कहकर बालि चुप हो गया ॥॥५७,५८॥ रामचन्द्रने सौम्य होकर सज्जनोचित तथा धर्मकी यथार्थ व्याख्याके द्वारा वालिको समझाया ॥५९॥ आपको हम लोगोंके लिये चिन्तित नहीं होना चाहिए, अपने लिए भी चिन्तित नहीं होना चाहिए, क्योंकि आपके प्रति प्रेमके कारण हम लोगोंने, आपके कहनेके अनुसार पहलेसे ही निश्चय कर रक्खा है ॥६०॥ जो राजा दण्डनीयको दण्ड देता है और जो दण्डनीय दण्ड पाता है, कार्य कारणके सिद्ध होनेसे, ये दोनों दुखी नहीं होते ॥६१॥ इस कारण दण्ड पानेसे आपका पाप दूर हो गया, और दण्डके बतलाए मार्गके द्वारा आपने अपनी धार्मिक गति पाई ॥६२॥ शोक, मोह तथा हृदयके भयका त्याग कीजिए। हे वानरश्रेष्ठ, आप प्रारब्धको उलट नहीं सकते ॥६३॥ हे वानरेश्वर, अंगद आपके साथ जैसा व्यवहार करता था, वह सुग्रीवके साथ तथा मेरे साथ भी वैसा ही व्यवहार करेगा, इसमें सन्देह नहीं ॥६४॥ महात्मा रामचंद्रका धर्मानुमोदित मधुर वचन सुनकर वालि उचित वचन बोला ॥६५॥ शरके आघातसे बेहोश मैंने जो बातें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शराभितप्तेन विचेतसा मया प्रभाषितस्त्वं यदजानता विभो ।
इदं महेन्द्रोपमभीमविक्रम प्रसादितस्त्वं क्षम मे हरीश्वर ॥६६॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डेऽष्टादशः सर्गः ।

एकोनविंशः सर्गः १९

स वानरमहाराजः शयानः शरपीडितः । प्रत्युक्तो हेतुमद्वाक्यैर्नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥
अश्मभिः परिभिन्नाङ्गः पादपैराहतो भृशम् । रामबाणेन चाक्रान्तो जीवितान्ते मुमोह सः ॥ २ ॥
तं भार्या बाणमोक्षेण रामदत्तेन संयुगे । हतं प्लवगशार्दूलं तारा शुश्राव वालिनम् ॥ ३ ॥
सा सपुत्राऽप्रियं श्रुत्वा वधं भर्तुः सुदारुणम् । निष्पपात भृशं तस्मादुद्विग्ना गिरिकंदरात् ॥ ४ ॥
ये त्वङ्गदपरीवारा वानरा हि महाबलाः । ते सकार्मुकमालोक्य रामं त्रस्ताः प्रदुद्रुवुः ॥ ५ ॥
सा ददर्श ततस्तस्तान्हरीनापततो द्रुतम् । यूथादेव परिभ्रष्टान्मृगान्निहतयूथपान् ॥ ६ ॥
तानुवाच समासाद्य दुःखितान्दुःखिता सती । रामवित्रासितान्सर्वाननुबद्धानिवेषुभिः ॥ ७ ॥
वानरा राजसिंहस्य यस्य यूयं पुरःसराः । तं विहाय सुवित्रस्ताः कस्माद्द्रवत दुर्गताः ॥ ८ ॥
राज्यहेतोः स चेद्भ्राता भ्रात्रा क्रूरेण पातितः । रामेण प्रहृतैर्दूरान्मार्गणैर्दूरपातिभिः ॥ ९ ॥
कपिपत्न्या वचः श्रुत्वा कपयः कामरूपिणः । प्राप्तकालमविश्लिष्टमूचुर्वचनमङ्गनाम् ॥१०॥

कही हैं, हे इन्द्रतुल्य, हे भीम विक्रम, मेरे ऊपर प्रसन्न होकर उनके लिए आप मुझे क्षमा करें ॥६६॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका अठारहवाँ सर्ग समाप्त ।

शरसे पीड़ित वानरराज वालि जमीनमें पड़ा हुआ था । हेतुयुक्त वचनोंसे रामचन्द्रके द्वारा उत्तर पाकर पुनः उसने कुछ प्रत्युत्तर न दिया ॥१॥ पत्थरोंसे उसके अंग कट गए थे, वृक्षोंके आघातसे कुचल गए थे, रामचन्द्रके बाणसे वह भिदा था, अतएव प्राणान्तके समय वह मूर्छित हो गया ॥२॥ रामचन्द्रके बाणसे युद्धमें वालि मारा गया—यह खबर उसकी स्त्री ताराने सुनी ॥३॥ पतिका भयंकर और अप्रिय वधका समाचार सुनकर, पुत्रके साथ वह उस पर्वतकी कन्दरासे निकली ॥४॥ जो महाबली वानर अंगदके रक्षक थे, वे रामचन्द्रको धनुष लिए देखकर डर गए और भाग गए ॥५॥ ताराने डरकर शीघ्रतापूर्वक लौटे हुए वानरोंको देखा । यूथपतिके मारे जानेपर यूथसे निकलकर भागे हुए मृगोंके समान उसने देखा ॥६॥ बाणसे विंधनेके समान रामसे डरे हुए उन दुखी वानरोंके पास जाकर तारा दुखसे बोली ॥७॥ हे वानरो, जिस श्रेष्ठ राजाके आगे आप चलते थे, उसको छोड़कर डरेहुए आपलोग क्यों भाग रहे हैं ? ॥८॥ क्रूर भाईने यदि राज्यके लिए दूर जानेवाले बाणोंसे रामचन्द्र द्वारा उस वीरको मरवा दिया है तो इससे आप लोग क्यों डरते हैं ? ॥९॥ वालिकी स्त्री ताराकी बात सुनकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जीवपुत्रे निवर्तस्व पुत्रं रक्षस्व चाङ्गदम् । अन्तको राम रूपेण हत्वा नयति वालिनम् ॥११॥
क्षिप्तान्वृक्षान्समाविध्य विपुलाश्च तथा शिलाः। वाली वज्रसमैर्बाणैर्वज्रेणेव निपातितः ॥१२॥
अभिभूतमिदं सर्वं विद्रुतं वानरं बलम् । अस्मिन्स वगशार्दूले हते शक्रसमप्रभे ॥१३॥
रक्ष्यतां नगरी शूरैरङ्गदश्चाभिषिच्यताम् । पदस्थं वालिनः पुत्रं भजिष्यन्ति सवङ्गमाः॥१४॥
अथवा रुचितं स्थानमिह ते रुचिरानने । आविशन्ति च दुर्गाणि क्षिप्रमद्यैव वानराः ॥१५॥
अभार्याः सहभार्याश्च सन्त्यत्र वनचारिणः । लुब्धेभ्यो विप्रलब्धेभ्यस्तेभ्योनः सुमहद्भयम्॥१६॥
अल्पान्तरगतानां तु श्रुत्वा वचनमङ्गना । आत्मनः प्रतिरूपं सा बभाषे चारुहासिनी ॥१७॥
पुत्रेण मम किं कार्यं राज्येनापि किमात्मना । कपिसिंहे महाभागे तस्मिन्भर्तरि नश्यति ॥१८॥
पादमूलं गमिष्यामि तस्यैवाहं महात्मनः । योऽसौ रामप्रयुक्तेन शरेण विनिपातितः ॥१९॥
एवमुक्त्वा प्रदुद्राव रुदती शोकमूर्छिता । शिरश्चोरश्च बाहुभ्यां दुःखेन समभिघ्नती ॥२०॥
सा व्रजन्ती ददर्शाथ पतिं निपतितं भुवि । हन्तारं वानरेन्द्राणां समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥२१॥
क्षेप्तारं पर्वतेन्द्राणां वज्राणामिव वासवम् । महावातसमाविष्टं महामेघौघनिःस्वनम् ॥२२॥
शक्रतुल्यपराक्रान्तं वृष्ट्वेवोपरतं घनम् । नर्दन्तं नर्दतां भीमं शूरं शूरेण पातितम् ॥२३॥
शार्दूलेनामिषस्यार्थे मृगराजमिवाहतम् ॥

इच्छानुसार रूप धरनेवाले वे वानर समयोचित और स्पष्ट वचन उनसे बोले ॥१०॥ हे जीवितपुत्रे, लौट चलो, अपने पुत्र अंगदकी रक्षा करो । रामका रूप धरकर यमराज वालिको ले जा रहा है ॥११॥ वालिके फेंके वृक्षों और बड़े-बड़े पत्थरोंको हटाकर वज्रके समान बाणसे शीघ्रही उसने वालिको गिरा दिया ॥१२॥ इन्द्रके समान हमारे वानरराजके मारे जानेपर यह हमारी समस्त सेना पराजित हो गई और इधर-उधर भाग गई ॥१३॥ वीरोंके द्वारा नगरीकी रक्षा करो । अंगदका राज्याभिषेक करो । राज्यारूढ़ वालिके पुत्रके अधीन रहेंगे ॥१४॥ हे सुमुखि, यद्यपि आपको यह स्थान पसंद है, पर सुग्रीव पक्षके वानर अब शीघ्र ही हमलोगोंके किलेमें प्रवेश करेंगे ॥ १५ ॥ व्याहे, अनव्याहे, सुग्रीव पक्षके अनेक वानर इस किलेमें आवेंगे । जो लोग राज्य चाहनेवाले थे, और जिन्हें हम लोगोंने सर्वदा सफल होनेसे वंचित किया था, उनसे हमलोगोंको बड़ा भय है ॥९६॥ पास आए हुए अथवा रास्तेमें मिले हुए उन वानरोंसे तारा अपने अनुकूल वचन बोली ॥१७॥ कपिश्रेष्ठ पतिके मारे जानेपर अब हमें पुत्रसे, राज्यसे और स्वयं अपनेसे क्या काम ॥१८॥ जो वे रामचन्द्रके छोड़े बाणसे गिराए गए हैं, उन्हीं महात्माके चरणोंमें मैं जाऊँगी ॥१९॥ दुखसे सिर और छाती अपने हाथोंसे पीटती हुई, शोकसे पीड़ित, रोती हुई तारा पतिकी ओर चली ॥२०॥ युद्धसे न मुड़नेवाले दानवोंके हन्ता वालिको जमीनमें पड़ा हुआ जाते जाते ताराने देखा ॥२१॥ इन्द्र जिस प्रकार वज्रको फेंकता है, उसी प्रकार जो पर्वतों को फेंकता था, जिसका जोश वायुके समान था और शब्द मेघके समान था, ॥२२॥ जो इन्द्रके समान पराक्रमी था वही जल बरसाकर गर्जनेवाले मेघके समान गर्जन करनेवाले वानरोंमें श्रेष्ठ वीर बालि, वीरके द्वारा मारा गया, जिस प्रकार मोटे मृगको बाघ मांसके लिए मारता है ॥२३॥ सबसे पूजित,

अर्चितं सर्वलोकस्य सपताकं सवेदिकम् । नागहेतोः सुपर्णेन चैत्यमुन्मथितं यथा ॥२४॥
अवष्टभ्यावतिष्ठन्तं ददर्श धनुरूर्जितम् । रामं रामानुजं चैव भर्तुश्चैव तथानुजम् ॥२५॥
तानतीत्य समासाद्य भर्तारं निहतं रणे । समीक्ष्य व्यथिता भूमौ संभ्रान्ता निपपात ह ॥२६॥
सुप्तेव पुनरुत्थाय आर्यपुत्रेति वादिनी । रुरोद सा पतिं दृष्ट्वा संवीतं मृत्युदामभिः ॥२७॥
तामवेक्ष्य तु सुग्रीवः क्रोशन्तीं कुररीमिव । विषादमगमत्कष्टं दृष्ट्वा चाङ्गदमातरम् ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदि काव्ये किष्किन्धाकाण्ड एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः २०

रामचापविसृष्टेन शरेणान्तकरेण तम् । दृष्ट्वा विनिहतं भूमौ तारा ताराधिपानना ॥ १ ॥
सा समासाद्य भर्तारं पर्यष्वजत भामिनी । इषुणाभिहतं दृष्ट्वा वालिनं कुञ्जरोपमम् ॥ २ ॥
वानरं पर्वतेन्द्राभं शोकसंतप्तमानसा । तारा तरुमिवोन्मूलं पर्यदेवयतातुरा ॥ ३ ॥
रणे दारुणविक्रान्त प्रवीर प्लवतां वर । किमिदानीं पुरोभागामद्य त्वं नाभिभाषसे ॥ ४ ॥
उत्तिष्ठ हरिशार्दूल भजस्व शयनोत्तमम् । नैवंविधाः शेरते हि भूमौ नृपतिसत्तमाः ॥ ५ ॥
अतीव खलु ते कान्ता वसुधा वसुधाधिप । गतासुरपि तां गात्रैर्मा विहाय निषेवसे ॥ ६ ॥
व्यक्तमद्य त्वया वीर धर्मतः संप्रवर्तता । किष्किन्धेव पुरी रम्या स्वर्गमार्गे विनिर्मिता ॥ ७ ॥

पताका और वेदिकासे युक्त देवालयको सर्पके लिए जैसे गरुड़ तोड़ फोड़ देता है उसी तरह रामने वालिको मारा है ॥२४॥ ताराने विशाल धनुष लेकर बैठे हुए रामचंद्र लक्ष्मण तथा सुग्रीवको देखा ॥२५॥ उनसे आगे बढ़कर रणमें मारे गए अपने पतिके पास पहुँची । उन्हें देखकर दुःखित और उद्विग्न होकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥२६॥ सोकर उठीहुईके समान वह 'आर्यपुत्र', कहकर मृत्युपाशसे बँधे पतिको देखकर रोने लगी ॥२७॥ कुररीके समान रोती हुई ताराको देखकर तथा अंगदको आया देख कर सुग्रीव दुखी हुआ ॥२८॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त ।

रामके छोड़े हुए मारक बाणसे मारे गए अपने पतिको पाकर चंद्रमुखी ताराने आलिंगन किया। हाथीके समान बड़े और पर्वतके समान वालिको बाणसे मारा हुआ देखकर ताराका मन शोकसे संतप्त हो गया और वह आतुर होकर उखड़े वृक्षके समान वालिको पड़ा देखकर रोने लगी ॥१, २, ३॥ हे वानरश्रेष्ठ वीर, रणमें घोर पराक्रम करनेवाले, आज तुम मुझको अपराधिनी समझकर नहीं बोल रहे हो क्या ? ॥४॥ वानरश्रेष्ठ, उठो, अच्छे बिछौनेपर सोओ । आपके समान राजा पृथ्वीपर नहीं सोते ॥५॥ हे वसुधाधिप, पृथ्वी आपको बहुत प्यारी है अतएव मरनेपर मुझे छोड़कर शरीरसे पृथ्वी पर आप पड़े हुए हैं ॥६॥ वीर, धर्मपूर्वक युद्ध करके तुमने अवश्यमेव किष्किन्धाके समान ही स्वर्गमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यान्यस्माभिस्त्वया सार्धं वनेषु मधुगन्धिषु । विहृतानि त्वया काले तेषामुपरमः कृतः ॥ ८ ॥
निरानन्दा निराशाहं निमग्ना शोकसागरे । त्वयि पञ्चत्वमापन्ने महायूथपयूथपे ॥ ९ ॥
हृदयं सुस्थितं मह्यं दृष्ट्वा निपतितं भुवि । यन्न शोकाभिसंतप्तं स्फुटतेऽद्य सहस्रधा ॥१०॥
सुग्रीवस्य त्वया भार्या हृता सा च विवासितः । यत्तत्तस्य त्वया व्युष्टिः प्राप्तेयं लवगाधिप ॥११॥
निःश्रेयसपरा मोहात्त्वया चाहं विगर्हिता । यैषाब्रुवं हितं वाक्यं वानरेन्द्र हितैषिणी ॥१२॥
रूपयौवनदृप्तानां दक्षिणानां च मानद । नूनमप्सरसामार्य चित्तानि प्रमथिष्यसि ॥१३॥
कालो निःसंशयो नूनं जीवितान्तकरस्तव । बलाद्येनावपन्नोऽसि सुग्रीवस्यावशो वशी ॥१४॥
अस्थाने वालिनं हत्वा युध्यमानं परेण च । न संतप्यति काकुत्स्थः कृत्वाकर्म सुगर्हितम्॥१५॥
वैधव्यं शोकसंतापं कृपणाकृपणा सती । अदुःखोपचिता पूर्वं वर्तयिष्याम्यनाथवत् ॥१६॥
लालितश्चाङ्गदो वीरः सुकुमारः सुखोचितः । वत्स्यते कामवस्थां मे पितृव्ये क्रोधमूर्च्छिते ॥१७॥
कुरुष्व पितरं पुत्र सुदृष्टं धर्मवत्सलम् । दुर्लभं दर्शनं तस्य तव वत्स भविष्यति ॥१८॥
समाश्वासय पुत्रं त्वं संदेशं संदिशस्व मे । मूर्ध्नि चैनं समाघ्राय प्रवासं प्रस्थितो ह्यसि ॥१९॥
रामेण हि महत्कर्म कृतं त्वामभिनिघ्नता । आनृण्यं तु गतं तस्य सुग्रीवस्य प्रतिश्रवे ॥२०॥
सकामो भव सुग्रीव रुमां त्वं प्रतिपत्स्यसे । भुङ्क्ष्व राज्यमनुद्विग्नः शस्तो भ्राता रिपुस्तव॥२१॥

रमणीय नगरी बना ली है ॥७॥ तुम्हारे साथ उत्तम गन्धवाले वनोंमें हम लोगोंने जो विहार किए हैं उनको तुमने समाप्त कर दिया ॥८॥ बड़े बड़े यूथपतियोंके स्वामी आपके मरनेपर मेरा आनन्द नष्ट हो गया। मेरी आशा जाती रही। मैं शोक-समुद्रमें डूब गई। मेरा मन बड़ा ही दृढ़ है, जो आपको पृथ्वीमें पड़ा देखकर भी शोकतप्त होकर हजारों टुकड़ेमें नहीं फट जाता ॥१०॥ सुग्रीवकी स्त्री आपने हर ली, उसे निकाल दिया, हे वानरराज, उसीका आपने यह फल पाया है ॥११॥ तुम्हारे कल्याणकी इच्छासे हित चाहनेवाली मैंने जो बातें कहीं, मोहवश आपने उसका तिरस्कार किया ॥१२॥ रूप यौवनसे गर्वीली चतुर अप्सराओंका मन तुम अवश्य ही हरण करोगे ॥१३॥ यह काल अवश्य ही आपका मृत्युकाल था, जिसने स्वाधीनता होनेपर भी आपको सुग्रीवके अधीन किया ॥१४॥ दूसरेसे युद्ध करते हुए, वालिको मारकर रामचन्द्र क्या पश्चात्ताप नहीं करते ? यह निन्दित काम करके वे जो पश्चात्ताप नहीं करते यह अनुचित है ! ॥१५॥ पहले मैंने दुख नहीं देखा, कष्ट नहीं सहे, अब मैं अनाथके समान दुखदायी वैधव्यके दुख दीनतापूर्वक सहूँगी ॥१६॥ सुकुमार अंगदका मैंने बहुत लालन किया है। अब चाचाके क्रोधसे इसकी कैसी अवस्था होगी ? ॥१७॥ पुत्र, धर्मवत्सल पिताको खूब देख लो। बेटा, उनका दर्शन अब दुर्लभ होगा ॥१८॥ आप अपने पुत्रको आश्वासन दीजिए। आप पुत्रका शिर सूँघ कर इसको आश्वासन दीजिए और मेरे लिए संदेश दीजिए; क्योंकि आपतो प्रवासमें जा रहे हैं ॥१९॥ रामचन्द्रने सुग्रीवसे जो प्रतिज्ञा की थी उसका ऋण आपको मारकर उन्होंने चुका दिया। रामचन्द्रने यह बहुत बड़ा काम किया ॥२०॥ हे सुग्रीव, तुम्हारा भाई मारा गया। स्वस्थ होकर राज्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किं मामेवं प्रलपतीं प्रियां त्वं नाभिभाषसे । इमाः पश्य वरा वध्वो भार्यास्ते वानरेश्वर ॥२२॥
तस्या विलपितं श्रुत्वा वानर्याः सर्वतश्च ताः । परिगृह्याङ्गदं दीना दुःखार्ताः प्रतिचुक्रुशुः ॥२३॥
किमङ्गदं साङ्गदवीरबाहो विहाय यातोऽसि चिरं प्रवासम् ।
न युक्तमेवं गुणसन्निकृष्टं विहाय पुत्रं प्रियचारुवेषम् ॥२४॥
यद्यप्रियं किंचिदसंप्रधार्य कृतं मया स्यात्तव दीर्घबाहो ।
क्षमस्व मे तद्धरिवंशनाथ व्रजामि मूर्ध्ना तव वीर पादौ ॥२५॥
तथा तु तारा करुणं रुदन्ती भर्तुः समीपे सह वानरीभिः ।
व्यवस्यत प्रायमनिन्द्यवर्णा उपोपवेष्टुं भुवि यत्र वाली ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः २१

ततो निपतितां तारां च्युतां तारामिवाम्बरात् । शनैराश्वासयामास हनुमान्हरियूथपः ॥ १ ॥
गुणदोषकृतं जन्तुः स्वकर्मफलहेतुकम् । अव्यग्रस्तदवाप्नोति सर्वं प्रेत्य शुभाशुभम् ॥ २ ॥
शोच्याशोचसि कं शोच्यं दीनं दीनानुकम्पसे । कश्च कस्यानुशोच्योऽस्ति देहेऽस्मिन्बुद्बुदोपमे ॥३॥

भोग करो । क्षमा भी तुम्हें मिलेगी । तुम सफल मनोरथ हो ॥२१॥ इस प्रकार विलाप करती हुई अपनी प्रियासे आप क्यों नहीं बोलते ? वानरेश्वर, आप अपनी अनेक इन सुंदरी स्त्रियोंको देखें ॥२२॥ तारा का विलाप सुनकर, और अंगदको साथ लेकर वे सब विलाप करने लगीं ॥२३॥ हे वीरोंको हनन करने-वाले वीर, अंगदको छोड़कर इतना लम्बा प्रवास आपने क्यों किया ? गुणी और सुन्दर पुत्रको छोड़-कर आपका जाना उचित नहीं हैं॥२४॥ हे दीर्घबाहो, मेरे द्वारा किए गए, किसी अप्रिय कार्यको देखकर यदि आपने प्रवास किया हो तो मुझे क्षमा करें। मैं मस्तकसे आपके पैरोंपर पड़ती हूँ ॥२५॥ वान-रियोंके साथ, पतिके पास, इस प्रकार दीनतापूर्वक विलाप करती हुई ताराने भूमिपतित वालिके पास प्रयोपवेशन करना निश्चित किया । (बिना खाए प्राण त्याग करनेको प्रायोपवेशन कहते हैं) ॥२६॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका बीसवां सर्ग समाप्त ।

आकाशसे गिरी ताराके समान तारा पृथिवीपर गिर गई, यह देखकर हनुमान धीरे-धीरे उसे समझाने लगे ॥१॥ मनुष्य अच्छे और बुरे कर्मोंका फल सुख और दुख दूसरे लोकमें जाकर भी भोगता है ॥२॥ पाप कर्मोंसे बढ़ी हुई तुम स्वयं शोचनीय हो, फिर दूसरेके लिए तुम शोक क्या करोगी । तुम कर्मफलोंके कारण स्वयं दुखिनी हो फिर किसी दुखी पर तुम क्या दया करोगी । यह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अंगदस्तु कुमारो ऽयं द्रष्टव्यो जीवपुत्रया । आयत्यां च विधेयानि समर्थान्यस्य चिन्तय ॥ ४ ॥
जानस्यनियतामेवं भूतानामागतिं गतिम् । तस्माच्छुभं हि कर्तव्यं पण्डितेनेह लौकिकम् ॥ ५ ॥
यस्मिन्हरिसहस्राणि शतानि नियुतानि च । वर्तयन्ति कृताशानि सोऽयं दिष्टान्तमागतः ॥ ६ ॥
यदयं न्यायदृष्टार्थः सामदानक्षमापरः । गतो धर्मजितां भूमिं नैनं शोचितुमर्हसि ॥ ७ ॥
सर्वे च हरिशार्दूलाः पुत्रश्चायं तवाङ्गदः । हर्यृक्षपतिराज्यं च त्वत्सनाथमनिन्दते ॥ ८ ॥
ताविमौ शोकसंतप्तौ शनैः प्रेरय भामिनि । त्वया परिगृहीतोऽयमङ्गदः शास्तु मेदिनीम्॥ ९ ॥
संततिश्च यथा दृष्टा कृत्यं यच्चापि सांप्रतम् । राज्ञस्तत्क्रियतां सर्वमेष कालस्य निश्चयः ॥१०॥
संस्कार्यो हरिराजस्तु अङ्गदश्चाभिषिच्यताम् । सिंहासनगतं पुत्रं पश्यन्ती शान्तिमेष्यसि ॥११॥
सा तस्य वचनं श्रुत्वा भर्तृव्यसनपीडिता । अब्रवीदुत्तरं तारा हनूमन्तमवस्थितम् ॥१२॥
अङ्गदप्रतिरूपाणां पुत्राणामेकतः शतम् । हतस्याप्यस्य वीरस्य गात्रसंश्लेषणं वरम् ॥१३॥
न चाहं हरिराज्यस्य प्रभवाम्यङ्गदस्य वा । पितृव्यस्तस्य सुग्रीवः सर्वकार्येष्वनन्तरः ॥१४॥
न ह्येषा बुद्धिरास्थेया हनूमन्नङ्गदं प्रति । पिता हि बन्धुः पुत्रस्य न माता हरिसत्तम ॥१५॥

शरीर बुद्बुदके समान है । कौन किसको सोचेगा ॥३॥ तुम्हारा पुत्र जीवित है । कुमार अंगदका तुम्हें पालन करना चाहिए । आगेके लिए इसकी भलाईके जो काम हैं वे ही तुम्हें करने चाहिए । उन्हींका तुम विचार करो ॥४॥ प्राणियोंका जीवन मरण अनिश्चित है, इस कारण तुम्हारी समान बुद्धिमती-को पारलौकिक, शुभकर्म ही करने चाहिए, लौकिक नहीं ॥५॥ जिसके अधीन हजारों करोड़ वानर रहते थे और अपने निर्वाहकी आशा रखते थे, वही आज अपनी आयुकी अवधि पूरा कर चुका । अपने किए पुण्योंका फल भोगनेके लिए चला गया ॥६॥ नीतिके अनुसार जिसने राज्य का पालन किया है । साम, दाम, और क्षमासे व्यवहार किया है वह धर्मात्माओंके लोकमें गया । उसके लिए तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए ॥७॥ ये सब श्रेष्ठ वानर तथा तुम्हारा पुत्र यह अंगद तुम्हारे अधीन हैं । वानरों और भालुओंका यह राज्य भी तुम्हारे ही आधीन है, अर्थात् तुम अनाथ नहीं हो ॥८॥ महारानी, शोक और सन्तापको आप धीरे धीरे कम करें। आपके आधीन रहकर अंगद पृथिवीका पालन करे ॥९॥ इस समय पुत्रके लिए शास्त्रोंमें जो कर्तव्य बतलाया गया है और राजा वालिके लिए जो कार्य करना उचित है, इस समय वही सब कीजिए । वही वर्तमान समयके लिए उचित है ॥१०॥ वानर राजाका अन्तिम संस्कार कीजिए। अंगदका अभिषेक कीजिए। पुत्रको राजसिंहासनपर देखकर आपको शान्ति मिलेगी ॥११॥ पतिवियोगसे पीड़ित तारा ये वचन सुनकर पास बैठे हनुमानसे बोली ॥१२॥ अंगदके समान सौ सुपुत्र एक ओर और मृत इस वीरका आलिंगन एक ओर । इन दोनोंमें इस वीरका आलिंगन ही मेरे लिए श्रेष्ठ है ॥१३॥ मैं वानर-राज्यका प्रभु नहीं हो सकती और न अंगद ही । इसके चाचा इसके सब कार्योंमें समर्थ हैं । वे ही इसके नजदीकी भी हैं ॥१४॥ वानरश्रेष्ठ हनुमान, अंगदके विषय-में तुम लोगोंको यह न समझना चाहिए कि पिता ही पुत्रका बन्धु है, माता नहीं ॥१५॥ वानर राजा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहि मम हरिराजसंश्रयात्क्षमतरमस्ति परत्र चेह वा ।
अभिमुखहतवीरसेवितं शयनमिदं मम सेवितुं क्षमम् ॥१६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः २२

वीक्षमाणस्तु मन्दासुः सर्वतो मन्दमुच्छ्वसन् । आदावेव तु सुग्रीवं ददर्शानुजमग्रतः ॥ १ ॥
तं प्राप्तविजयं वाली सुग्रीवं प्लवगेश्वरम् । आभाष्य व्यक्तया वाचा सस्नेहमिदमब्रवीत् ॥२॥
सुग्रीव दोषेण न मां गन्तुमर्हसि किल्बिषात् । कृष्यमाणं भविष्येण बुद्धिमोहेन मां बलात् ॥ ३ ॥
युगपद्विहितं तात न मन्ये सुखमावयोः । सौहार्दं भ्रातृयुक्तं हि तदिदं जातमन्यथा ॥ ४ ॥
प्रतिपद्य त्वमद्यैव राज्यमेषां वनौकसाम् । मामप्यद्यैव गच्छन्तं विद्धि वैवस्वतक्षयम् ॥ ५ ॥
जीवितं च हि राज्यं च श्रियं च विपुलां तथा । प्रजहाम्येषु वै तूर्णमहं चागर्हितं यशः ॥ ६ ॥
अस्यां त्वहमवस्थायां वीर वक्ष्यामि यद्वचः । यद्यप्यसुकरं राजन्कर्तुमेव त्वमर्हसि ॥ ७ ॥
सुखार्हं सुखसंवृद्धं बालमेनमबालिशम् । बाष्पपूर्णमुखं पश्य भूमौ पतितमङ्गदम् ॥ ८ ॥
मम प्राणैः प्रियतरं पुत्रं पुत्रमिवौरसम् । मया हीनमहीनार्थं सर्वतः परिपालय ॥ ९ ॥

वालिके निवास स्थानके अतिरिक्त मेरे लिए इस लोक तथा परलोकमें सुखकर कोई स्थान नहीं है। सामने मरा हुआ यह वीर जिस आसनपर सो रहा है वही मेरे योग्य है ॥ १६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका इक्कीसवाँ सर्ग समाप्त ।

वालि शिथिल हो गया था। धीरे-धीरे स्वास ले रहा था और चारो ओर देख रहा था। उसने सबसे पहले अपने छोटे भाई सुग्रीवको सामने देखा ॥१॥ विजयी वानरेश्वर सुग्रीवको स्पष्ट शब्दोंमें सम्बोधित करके स्नेहपूर्वक वह बोला ॥ २ ॥ सुग्रीव, पूर्व जन्मके पापोंके कारण तथा भावीवश दुर्बुद्धिसे जो मैंने तुम्हारे प्रति व्यवहार किया है, उसके लिए तुम मुझे दोषी न समझना ॥३॥ तात, हम दोनोंको एक साथ भ्रातृ-प्रेम और राज्य-सुख नहीं था, इसीलिए यह विपरीत घटना हुई ॥४॥ मैं आज ही यमपुर जा रहा हूँ, यह तुम समझो। अतएव इन वानरोंका राज्य तुम आज ही ग्रहण करो ॥५॥ मैं जीवन, राज्य, विपुल-सम्पत्ति तथा अनिन्दित यश इन सबका आज ही त्याग करता हूँ ॥६॥ वीर, इस अवस्थामें जो वचन मैं कहूँगा, यद्यपि उसका करना कठिन है, तथापि तुम अवश्य ही वह करना ॥७॥ सुख पानेके योग्य, सुखसे पले हुए, इस बुद्धिमान् बालक अंगदको देखो, यह भूमिमें पड़ा है और रो रहा है ॥८॥ प्राणोंसे भी प्रिय मेरे इस पुत्रको तुम अपने निजी पुत्रके समान समझना। इसकी इच्छाएँ पूरी कर सब प्रकार इसका पालन करो ॥९॥ तुम भी मेरे समान इसके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्वमप्यस्य पिता दाता परित्राता च सर्वशः । भयेष्वभयदश्चैव यथाहं प्लवगेश्वर ॥१०॥
एष तारात्मजः श्रीमांस्त्वया तुल्यपराक्रमः । रक्षसां च वधे तेषामग्रतस्ते भविष्यति ॥११॥
अनुरूपाणि कर्माणि विक्रम्य बलवान्रणे । करिष्यत्येष तारेयस्तेजस्वी तरुणोऽङ्गदः ॥१२॥
सुषेणदुहिता चेयमर्थसूक्ष्मविनिश्चये । औत्पातिके च विविधे सर्वतः परिनिष्ठिता ॥१३॥
यदेषा साध्विति ब्रूयात्कार्यं तन्मुक्तसंशयम् । नहि तारामतं किंचिदन्यथा परिवर्तते ॥१४॥
राघवस्य च ते कार्यं कर्तव्यमविशङ्कया । स्यादधर्मो ह्यकरणे त्वां च हिंस्यादमानितः ॥१५॥
इमां च मालामाधत्स्व दिव्यां सुग्रीव काञ्चनीम्। उदारा श्रीः स्थिता ह्यस्यां संप्रजह्यान्मृते मयि॥१६॥
इत्येवमुक्तः सुग्रीवो वालिना भ्रातृसौहृदात् । हर्षं त्यक्त्वा पुनर्दीनो ग्रहग्रस्त इवोडुराट् ॥१७॥
तद्वालिवचनाच्छान्तः कुर्वन्युक्तमतन्द्रितः । जग्राह सोऽभ्यनुज्ञातो मालां तां चैव काञ्चनीम् ॥१८॥
तां मालां काञ्चनीं दत्त्वा दृष्ट्वा चैवात्मजं स्थितम्। संसिद्धः प्रेत्यभावाय स्नेहादङ्गदमब्रवीत् ॥१९॥
देशकालौ भजस्वाद्य क्षममाणः प्रियाप्रिये । सुखदुःखसहः काले सुग्रीववशगो भव ॥२०॥
यथा हि त्वं महाबाहो लालितः सततं मया । न तथा वर्तमानं त्वां सुग्रीवो बहु मन्यते ॥२१॥
नास्यामित्रैर्गतं गच्छेर्मा शत्रुभिररिंदम । भर्तुरर्थपरो दान्तः सुग्रीववशगो भव ॥२२॥
न चातिप्रणयः कार्यः कर्तव्योऽप्रणयश्च ते । उभयं हि महादोषं तस्मादन्तरदृग्भव ॥२३॥

पिता, दाता, रक्षक और भयके समय अभय देनेवाले होओ ॥१०॥ यह ताराका श्रीमान् पुत्र तुम्हारे समान पराक्रमी है। राक्षसोंके वधके समय यह तुम्हारे आगे-आगे रहेगा ॥११॥ बली और तेजस्वी ताराका यह जवान पुत्र अंगद रणमें जाकर मेरे समान काम करेगा। १२॥ सुषेणकी कन्या यह तारा सूक्ष्म विषयोंके निर्णय करने तथा नाना प्रकारके उत्पातसूचक चिन्होंको जाननेमें अत्यन्त निपुण है ॥१३॥ जिस कामके लिए यह अच्छा कह दे, अवश्य ही वह काम सिद्ध होता है। ताराकी सम्मति कभी विपरीत नहीं होती ॥१४॥ रामचन्द्रके कार्योंको भी तुम निशंक होकर करना। नहीं करोगे तो पाप होगा और तिरस्कृत होनेपर रामचन्द्र तुम्हें मार भी डालेंगे ॥१५॥ सुग्रीव, यह दिव्य सोनेकी माला लो, इसमें प्रशस्त विजयलक्ष्मी वर्तमान है। मेरे मरनेपर इसकी श्री नष्ट हो जायगी, अतएव इसे तुम धारण करो ॥१६॥ भ्रातृ-प्रेमसे वालिने सुग्रीवसे ये बातें कहीं। उसकी प्रसन्नता जाती रही। राहु-ग्रस्त चन्द्रमाके समान वह मलिन हो गया ॥१७॥ वालिके वचनोंसे उसका वैर शान्त हो गया। तत्पर होकर उचित कार्य वह करने लगा। भाईकी आज्ञासे सोनेकी माला उसने ले ली ॥१८॥ सोनेकी माला देकर मरनेके लिए निश्चय करके सामने खड़े अंगदसे वालि स्नेहपूर्वक बोला ॥१९॥ देश-कालको समझो, इष्ट अनिष्टको तथा समयपर सुख दुःखको सहो और सुग्रीवके अधीन रहो ॥२०॥ जिस प्रकार मैंने तुम्हारा लालन किया है, उस प्रकार रहनेसे सुग्रीव तुम्हारा आदर नहीं करेगा। सुग्रीवके शत्रुओंके साथीसे मित्रता मत करो। शत्रुओंसे भी मित्रता मत करो ॥२१॥ स्वामीके हितका साधन करो और जिते-न्द्रिय बनो। सुग्रीवके अधीन रहो ॥२२॥ बहुत प्रेम या बिलकुल प्रेमका अभाव न करो; क्योंकि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इत्युक्त्वाथ विवृत्ताक्षः शरसंपीडितो भृशम् । विवृतैर्दशनैर्भीमैर्बभूवोत्क्रान्तजीवितः ॥२४॥
ततो विचुक्रुशुस्तत्र वानरा हतयूथपाः । परिदेवयमानास्ते सर्वे प्लवगसत्तमाः ॥२०॥
किष्किन्धा ह्यद्य शून्या च स्वर्गते वानरेश्वरे । उद्यानानि च शून्यानि पर्वताः काननानि च॥२६॥
हते प्लवगशार्दूले निष्प्रभा वानराः कृताः । येन दत्तं महद्युद्धं गन्धर्वस्य महात्मनः ॥२७॥
गोलभस्य महाबाहोर्दश वर्षाणि पञ्च च । नैव रात्रौ न दिवसे तद्युद्धमुपशाम्यति ॥२८॥
ततः षोडशमे वर्षे गोलभो विनिपातितः । तं हत्वा दुर्विनीतंतु वाली दंष्ट्राकरालवान् ।
सर्वाभयंकरोऽस्माकं कथमेष निपातितः ॥२९॥

हते तु वीरे प्लवगाधिपे तदा वनेचरास्तत्र न शर्म लेभिरे ।
वनेचराः सिंहयुते महावने यथा हि गावो निहते गवां पतौ ॥३०॥
ततस्तु तारा व्यसनार्णवप्लुता मृतस्य भर्तुर्वदनं समीक्ष्य सा ।
जगाम भूमिं परिरभ्य वालिनं महाद्रुमं छिन्नमिवाश्रिता लता ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्वाविंशः सर्गः ॥२२॥

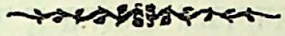

इन दोनोंमें दोष है । अतएव मध्य भावसे रहो ॥२३॥ इतना कहकर शरके आघातसे व्यथित वालिने आंखें खोल दीं । भयानक दांतवाला उसका मुँह खुल गया और उसके प्राण निकल गए ॥२४॥ यूथपतिके मारे जानेसे सभी श्रेष्ठ वानर रो रोकर वहां विलाप करने लगे ॥२५॥ वानराधिपतिके आज स्वर्ग जानेसे किष्किन्धा शून्य हो गई। उद्यान, पर्वत और वन शून्य हो गए ॥२६॥ वानराधिपतिके मारे जानेसे वानरोंकी शोभा जाती रही । उसने महात्मा गन्धर्वके साथ बड़ा भारी युद्ध किया था ॥२७॥ वह गोलभ नामक गन्धर्वके साथका युद्ध पन्द्रह वर्षों तक हुआ था । दिन और रातमें कभी उस युद्धकी समाप्ति न होती थी ॥२८॥ सोलहवें वर्षमें गोलभ गिराया गया । उस दिन भयानक दाढ़वाले उस दुर्विनीतको मारकर हमलोगोंका अभय किया था । वह वालि कैसे मारा गया ॥२९॥ वानराधिपति वीर वालिके मारे जाने पर वनचारी वानरोंको सुख नहीं हुआ, जिस प्रकार गौओंके स्वामीके मारे जाने पर सिंहयुक्त महावनमें गौओंको सुख नहीं होता ॥३०॥ दुःखसमुद्रमें मग्न तारा पतिका मुँह देखकर वालिको आलिंगन करके कटे वृक्षमें लिपटी लताके समान भूमिपर गिर पड़ी ॥६१॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका बाईसवाँ सर्ग समाप्त ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्रयोविंशः सर्गः २३

ततः समुपजिघ्रन्ती कपिराजस्य तन्मुखम् । पतिं लोकश्रुता तारा मृतं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
शेषे त्वं विषमे दुःखमकृत्वा वचनं मम । उपलोपचिते वीर सुदुःखे वसुधातले ॥ २ ॥
मत्तः प्रियतरा नूनं वानरेन्द्र मही तव । शेषे हि तां परिष्वज्य मां च न प्रतिभाषसे ॥ ३ ॥
सुग्रीवस्य वशं प्राप्तो विधिरेष भवत्यहो । सुग्रीव एव विक्रान्तो वीर साहसिकप्रिय ॥ ४ ॥
ऋक्षवानरमुख्यास्त्वां बलिनं पर्युपासते । तेषां विलपितं कृच्छ्रमङ्गदस्य च शोचतः ॥ ५ ॥
मम चेमा गिरः श्रुत्वा किं त्वं न प्रतिबुध्यसे । इदं तद्वीरशयनं तत्र शेषे हतो युधि ॥ ६ ॥
शायिता निहता यत्र त्वयैव रिपवः पुरा । विशुद्धसत्त्वाभिजन प्रिययुद्ध मम प्रिय ॥ ७ ॥
मामनाथां विहायैकां गतस्त्वमसि मानद । शूराय न प्रदातव्या कन्या खलु विपश्चिता ॥ ८ ॥
शूरभार्यां हतां पश्य सद्यो मां विधवां कृताम्। अवभग्नश्च मे मानो भग्ना मे शाश्वती गतिः ॥ ९ ॥
अगाधे च निमग्नास्मि विपुले शोकसागरे । अश्मसारमयं नूनमिदं मे हृदयं दृढम् ॥१०॥
भर्तारं निहतं दृष्ट्वा यन्नाद्य शतधा कृतम् । सुहृच्चैव च भर्ता च प्रकृत्या च मम प्रियः ॥११॥
प्रहारे च पराक्रान्तः शूरः पञ्चत्वमागतः । पतिहीना तु या नारी कामं भवतु पुत्रिणी ॥१२॥

कपिराजका मुँह सूँघती हुई लोक-प्रसिद्ध तारा मृत-पतिसे यह बोली ॥१॥ पथरीली और दुख देनेवाली, इस ऊबड़ खाबड़ पृथ्वीपर तुम मेरी बात न मानकर इस समय सो रहे हो ॥२॥ वानरेन्द्र, यह पृथ्वी तुम्हें मुझसे भी अधिक प्रिय है, ऐसा मालूम होता है; क्योंकि तुम मुझे छोड़कर उसपर सो रहे हो और मुझसे बातें भी नहीं करते ॥३॥ ऐ साहसिक कार्योंसे प्रेम रखनेवाले वीर, भाग्यने सुग्रीवका साथ दिया। अर्थात् भाग्यरूपी रामचन्द्र सुग्रीवके पक्षमें हुए। अतएव इस समय सुग्रीव ही पराक्रमी हुए ॥४॥ जो श्रेष्ठ भालु और वानर, तुम्हारी उपासना करते थे उनका तथा दुखी अंगदका विलाप सुनकर तथा मेरे इन वचनोंको सुनकर तुम क्यों नहीं जागते ? यह वीर शयन है अर्थात् वीरों-के सोनेकी शय्या है, जहाँ मारे जाकर तुम सो रहे हो ॥५, ६॥ हे मेरे प्रिय, हे युद्धसे प्रेम करनेवाले, हे कपटरहित पुरुषोंका साथ करनेवाले जिस शय्यापर पहले तुमने शत्रुओंको शयन कराया है, आज उसपर तुम स्वयं सो रहे हो ॥७॥ हे मानद, मुझे अकेली और अनाथ छोड़कर चले गए। अतएव विद्वान्को चाहिए कि वे वीरको कन्यादान न करें ॥८॥ वीरोंकी स्त्री मरी हुई ही है। देखो, मैं आजही विधवा हो गई। मेरा सत्कार नष्ट हो गया और मेरा सुख जाता रहा ॥ ९ ॥ अगाध और विशाल शोक-सागरमें मैं डूब रही हूँ। अवश्यही मेरा यह हृदय पत्थरका बना हुआ बड़ाही कठोर है ॥ १० ॥ जो ऐसे पतिको मृत देखकर आज सैकड़ों टुकड़े नहीं हो जाता। जो स्वभावसे ही मेरे मित्र और प्रिय थे ॥११॥ शत्रुओंपर पराक्रमपूर्वक प्रहार करनेवाला वीर आज मर गया। पति-हीन स्त्री, भलेही पुत्रवती हो, भलेही धनधान्यसे पूरी हो, विद्वान् उसे विधवा कहते हैं। लाहके रंगे अपने बिछौनेके समान अपने शरीरसे निकले रुधिर पर तुम इस समय सो रहे हो। धूल और लोहूसे तुम्हारा समस्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धनधान्यसमृद्धापि विधवेत्युच्यते बुधैः । स्वगात्रप्रभवे वीर शेषे रुधिरमण्डले ॥१३॥
कृमिरागपरिस्तोमे स्वक्रीये शयने यथा । रेणुशोणितसंवीतं गात्रं तव समन्ततः ॥१४॥
परिरब्धुं न शक्नोमि भुजाभ्यां प्लवगर्षभ । कृतकृत्योऽद्य सुग्रीवो वैरेऽस्मिन्नतिदारुणे ॥१५॥
यस्य रामविमुक्तेन हृतमेकेषुणा भयम् । शरेण हृदि लग्नेन गात्रसंस्पर्शने तव ॥१६॥
वार्यामि त्वां निरीक्षन्ती त्वयि पञ्चत्वमागते । उद्धरेदं शरं नीलस्तस्य गात्रगतं तदा ॥१७॥
गिरिगह्वरसंलीनं दीप्तमाशीविषं यथा । तस्य निष्कृष्यमाणस्य बाणस्यापि बभौ द्युतिः॥१८॥
अस्तमस्तकसंनद्धरश्मेर्दिनकरादिव । पेतुः क्षतजधारास्तु व्रणेभ्यस्तस्य सर्वशः ॥१९॥
ताम्रगैरिकसंपृक्ता धारा इव धराधरात् । अवकीर्णं विमार्जन्ती भर्तारं रणरेणुना ॥२०॥
अस्त्रैर्नयनजैः शूरं सिषेचास्त्रसमाहतम् । रुधिरोक्षितसर्वाङ्गं दृष्ट्वा विनिहतं पतिम् ॥२१॥
उवाच तारा पिङ्गाक्षं पुत्रमङ्गदमङ्गना । अवस्थां पश्चिमां पश्य पितुः पुत्र सुदारुणाम् ॥२२॥
संप्रसक्तस्य वैरस्य गतोऽन्तः पापकर्मणा । बालसूर्योज्ज्वलतनुं प्रयातं यमसादनम् ॥२३॥
अभिवादय राजानं पितरं पुत्र मानदम् । एवमुक्तः समुत्थाय जग्राह चरणौ पितुः ॥२४॥
भुजाभ्यां पीनवृत्ताभ्यामङ्गदोऽहमिति ब्रुवन् । अभिवादयमानं त्वामङ्गदं त्वं यथा पुरा ॥२५॥
दीर्घायुर्भव पुत्रेति किमर्थं नाभिभाषसे । अहं पुत्रसहाया त्वामुपासे गतचेतनम् ।
सिंहेन पातितं सद्यो गौः सवत्सेव गोवृषम् ॥२६॥
इष्ट्वा सङ्ग्रामयज्ञेन रामप्रहरणाम्भसा । तस्मिन्नवभृथे स्नातः कथं पत्न्या मया विना ॥२७॥

शरीर सना हुआ है ॥१२,१३,१४॥ मैं अपनी भुजाओंसे तुम्हारा आलिंगन नहीं कर सकती। इस भयानक वैरमें सुग्रीवही कृतकृत्य हुआ ॥१५॥ जिसके भयको रामके छोड़े एक बाणने दूर करा दिया, हृदयमें लगे बाणके कारण तुम्हारे गात्रस्पर्श करनेसे रोकी जाती हूँ ॥१६॥ तुम्हारे मरने पर मैं तुम्हें देख रही हूँ, पर तुम्हारा गात्रस्पर्श नहीं कर सकती। उस समय नील नामक वानरने वालिके शरीरसे वह बाण निकाल लिया ॥१७॥ निकालते समय उस बाणकी वैसी ही शोभा हुई जैसी गुप्त गुफासे निकलते हुए सूर्यकी होती है॥१८॥ अस्ताचलके शिखर पर ठहरे सूर्यकी निकलने वाली किरणोंके समान वालिके बाणके रूधिरकी धारा निकली ॥१९॥ मानों पर्वतसे लाल गेरु-युक्त धारा निकल रही हो ॥२०॥ रणकी धूलसे भरे हुए पतिको पोंछती हुई, अस्त्रसे आहत और रुधिरसे सर्वांगसिक्त मृत पतिको आँसूओंसे सिक्त करने लगी ॥२१॥ तारा पीली आंखवाले पुत्र अंगदसे बोली—पुत्र, पिताकी यह भयानक अन्तिम अवस्था देखो ॥२२॥ प्राक्तन, पापके कारण उत्पन्न वैरका आज अन्त हो गया। बालसूर्यके समान प्रकाशमान शरीर आज यमराजके यहां चला गया ॥२३॥ पुत्र, राजा अपने पिताको प्रणाम करो। ऐसा कहने-पर उसने पिताके चरण पकड़े ॥२४॥ मोटी और गोली भुजाओंसे चरण पकड़कर, मैं अंगद हूँ ऐसा कहते हुए, प्रणाम किया, जब अंगद आपको पहले प्रणाम करता था तब, आर्य पुत्र, दीर्घायु हों ऐसा कहते थे, आज वैसा क्यों नहीं कहते ? मैं पुत्रके साथ आपके शवके समीप हूँ। जिस प्रकार सिंहके मारे सांढ़के पास बच्छेके साथ गौ रहती है ॥२५,२६॥ तुमने संग्राम-यज्ञ किया, उसमें रामके अस्त्र-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

या दत्ता देवराजेन तव तुष्टेन संयुगे । शातकौम्भीं प्रियांमालांतांतेपश्यामिनेहकिम्॥२८॥
राज्यश्रीर्न जहाति त्वां गतासुमपि मानद । सूर्यस्यावर्तमानस्य शैलराजमिव प्रभा ॥२९॥
न मे वचः पथ्यमिदं त्वया कृतं न चास्मि शक्ता हि निवारणे तव ।
हता सपुत्रास्मि हतेन संयुगे सह त्वया श्रीर्विजहाति मामपि ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥२३॥

चतुर्विंशः सर्गः २४

तामाशु वेगेन दुरासदेन त्वभिप्लुतां शोकमहार्णवेन ।
पश्यंस्तदा वाल्यनुजस्तरस्वी भ्रातुर्वधेनाप्रतिमेन तेपे ॥ १ ॥
स बाष्पपूर्णेन मुखेन पश्यन्क्षणेन निर्विण्णमना मनस्वी ।
जगाम रामस्य शनैः समीपं भृत्यैर्वृतः संपरिदूयमानः ॥ २ ॥
स तं समासाद्य गृहीतचापमुदात्तमाशीविषतुल्यबाणम् ।
यशस्विनं लक्षणलक्षिताङ्गमवस्थितं राघवमित्युवाच ॥ ३ ॥
यथा प्रतिज्ञातमिदं नरेन्द्र कृतं त्वया दृष्टफलं च कर्म ।
ममाद्य भोगेषु नरेन्द्रसूनो मनो निवृत्तं हतजीवितेन ॥ ४ ॥

रूपी जलसे मुझे छोड़कर अकेले स्नान क्यों किया ॥२७॥ इन्द्रने युद्धमें प्रसन्न होकर तुम्हें जो सोनेकी माला दी, उसे मैं नहीं देख रही हूँ ॥२८॥ मानद, मरनेपर भी राज्यलक्ष्मी तुम्हारा त्याग नहीं करती। जिस प्रकार परिभ्रमण करनेवाले सूर्यकी प्रभा मेरुपर्वतका त्याग नहीं करती ॥२९॥ तुमने मेरा 'हितकारी' वचन नहीं माना और मैं भी तुम्हें रोक नहीं सकी। रणमें तुम्हारे मारे जानेसे पुत्रके साथ मैं भी मारी गई। तुम्हारे साथही मुझे और पुत्रको राजलक्ष्मीने छोड़ दिया ॥३०॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका तेईसवां सर्ग समाप्त

ताराको वेगके साथ शोक-समुद्रमें डूबी हुई देखकर वालिका छोटा भाई अति वेगवान् सुग्रीव अप्रतिम भाईके वधसे दुखी हुआ ॥१॥ आंसूसे उसका मुँह भर गया। ताराको देखकर खिन्न होकर भीतरसे दुखी होता हुआ, अपने भृत्योंके साथ धीरे-धीरे रामचन्द्रके समीप गया ॥ २ ॥ रामचन्द्र धनुष और सर्पके समान बाण लिए हुए थे। सब लक्षणोंसे लक्षित उदास यशस्वी और बैठे हुए रामचन्द्रसे सुग्रीव बोला, ॥३॥ नरेन्द्र, आपने जैसी प्रतिज्ञा की थी, वह पूरी की और उसका फल भी देखा गया। अर्थात् आपने वालिको मारा और मुझे राज्य मिला। परन्तु राजपुत्र आज इस निन्दित जीवनके भोगोंसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अस्यां महिष्यां तु भृशं रुदत्यां पुरेऽतिविक्रोशति दुःखतप्ते ।
हते नृपे संशयितेऽङ्गदे च न राम राज्ये रमते मनो मे ॥ ५ ॥
क्रोधादमर्षादतिविप्रधर्षाद्भ्रातुर्वधो मेऽनुमतः पुरस्तात् ।
हते त्विदानीं हरियूथपेऽस्मिन्सुतीक्ष्णमिक्ष्वाकुवर प्रतप्ये ॥ ६ ॥
श्रेयोऽद्य मन्ये मम शैलमुख्ये तस्मिन्हि वासश्चिरमृष्यमूके ।
यथा तथा वर्तयतः स्वबुद्ध्या नेमं निहत्य त्रिदिवस्य लाभः ॥ ७ ॥
न त्वा जिघांसामि चरेति यन्मामयं महात्मा मतिमानुवाच ।
तस्यैव तद्राम वचोऽनुरूपमिदं वचः कर्म च मेऽनुरूपम् ॥ ८ ॥
भ्राता कथं नाम महागुणस्य भ्रातुर्वधं राम विरोचयेत ।
राज्यस्य दुःखस्य च वीर सारं विचिन्तयन्कामपुरस्कृतोऽपि ॥९॥
वधोहिमेमतोनासीत्स्वप्राहात्म्यव्यतिक्रमात् । ममासीद्बुद्धिदौरात्म्यात्प्राणहारी व्यतिक्रमः॥१०॥
द्रुमशाखाबभ्नोऽहं मुहूर्तं परिनिष्टनन् । सान्त्वयित्वा त्वनेनोक्तो न पुनः कर्तुमर्हसि॥११॥
भ्रातृत्वमार्यभावश्च धर्मश्चानेन रक्षितः । मया क्रोधश्च कामश्च कपित्वं च प्रदर्शितम् ॥१२॥
अचिन्तनीयं परिवर्जनीयमनीप्सनीयं स्वनवेक्षणीयम् ।
प्राप्तोऽस्मि पाप्मानमिदं वयस्य भ्रातुर्वधात्त्वाष्ट्रवधादिवेन्द्रः ॥१३॥

मेरा मन हट गया ॥ ४॥ इस महारानीके अधिक रोनेसे, पुरवासियोंके विलापसे और अंगदके जीवन-संशय उपस्थित होनेसे अब मेरा मन राज्यमें नहीं लगता ॥ ५ ॥ क्रोधसे भाईके दुःसह तिरस्कारसे पहले मैं इनका वध चाहता था, पर अब उनके मारे जानेपर मैं बहुत अधिक दुखी हो रहा हूँ ॥६॥ आज मैं पर्वतश्रेष्ठ ऋष्यमूक पर्वत परही सदा निवास करना अच्छा समझता हूँ । मैं किसी प्रकार अपना काम चला लेता । भाईको मारनेसे मुझे स्वर्ग नहीं मिलेगा ॥ ७ ॥ बुद्धिमान् महात्मा वालिने जो मुझसे कहा कि मैं तुमको मारना नहीं चाहता, तुम यहांसे चले जाओ, हे राम, यह काम इन्हींके अनुरूप है और मैंने जो उनका वध कराया यह मेरे अनुरूप है ॥ ८ ॥ अत्यन्त स्वार्थी भाई भी, राज्यके सुख तथा भ्रातृ-वधके अनन्तर होनेवाले दुख—इन दोनोंका तारतम्य विचार कर भाईका वध करना कभी न चाहेगा ॥९॥ वालि मेरा वध करना नहीं चाहता था, क्योंकि उसे अपने गौरवमें कलंक लगनेका भय था । और दुर्जनताके कारण मैं भाईका प्राण लेना चाहता था ॥१०॥ जब उसने वृक्षकी शाखासे मुझे मारा और थोड़ी देर तक दीनतापूर्वक मैं तुम्हें पुकारने लगा । उस समय वालिने मुझे समझाकर कहा था, 'फिर' तुम ऐसा न करना ॥११॥ वालिने भ्रातृत्व, अपनी महत्ता और धर्मकी रक्षा की और मैंने क्रोध, स्वार्थ तथा अपना वानरी चांचल्य दिखलाया है ॥१२॥ अचिन्तनीय सज्जनोंके द्वारा त्याज्य अनीप्सित तथा न देखने योग्य जो मैंने भाईके वधसे यह पाप किया है वह त्वाष्ट्रके वधसे इन्द्रके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पाप्यानमिन्द्रस्य मही जलं च वृक्षाश्च कामं जगृहुः स्त्रियश्च ।
को नाम पाप्मानमिमं सहेत शाखामृगस्य प्रतिपत्तुमिच्छेत् ॥१४॥
नार्हामि संमानमिमं प्रजानां न यौवराज्यं कुत एव राज्यम् ।
अधर्मयुक्तं कुलनाशयुक्तमेवंविधं राघव कर्म कृत्वा ॥१५॥
पापस्य कर्तास्मि विगर्हितस्य क्षुद्रस्य लोकापकृतस्य लोके ।
शोको महान्मामभिवर्ततेऽयं वृष्टेर्यथा निम्नमिवाम्बुवेगः ॥१६॥
सोदर्यघातापरगात्रबालः संतापहस्ताक्षिशिरोविषाणः ।
एनोमयो मामभिहन्ति हस्ती दृप्तो नदीकूलमिव प्रवृद्धः ॥१७॥
अंहो बतेदं नृवराविषह्यं निवर्तते मे हृदि साधु वृत्तम् ।
अग्नौ विवर्णं परितप्यमानं किट्टं यथा राघव जातरूपम् ॥१८॥
महाबलानां हरियूथपानामिदं कुलं राघव मन्निमित्तम् ।
अस्याङ्गदस्यापि च शोकतापादर्धस्थितप्राणमितीव मन्ये ॥१९॥
सुतः सुलभ्यः सुजनः सुवश्यः कुतस्तु पुत्रः सदृशोऽङ्गदेन ।
न चापि विद्येत स वीर देशो यस्मिन्भवेत्सोदरसंनिकर्षः ॥२०॥
अद्याङ्गदो वीरवरो न जीवेज्जीवेत माता परिपालनार्थम् ।
विना तु पुत्रं परितापदीना सा नैव जीवेदिति निश्चितं मे ॥२१॥

पापके समान है ॥१३॥ इन्द्रके पापको पृथिवी जल, वृक्ष तथा स्त्रियोंने इच्छापूर्वक बाँट लिया था, पर मुझ वानरके किए इस पापको कौन लेना चाहेगा ॥१४॥ अधर्म-युक्त तथा कुलनाशी ऐसा कर्म करके, हे रामचन्द्र, प्रजाओंका यह सम्मान मैं नहीं चाहता। युवराज बनना भी नहीं चाहता। राज्य लेना तो चाहता ही नहीं ॥१५॥ निन्दित, छोटे आदमियोंके योग्य तथा लोकोपकारी पाप मैंने किया है। जिस प्रकार वृष्टिकी जलधारा नीचेकी ओर जाती है, उसी प्रकार यह महान् शोक मेरे यहाँ आता है ॥१६॥ यह पाप-रूपी मतवाला हाथी नदी-तीरके समान मुझे आघात पहुँचा रहा है। भाईका वधही इसकी पूँछके बाल हैं और अनेक प्रकारके संताप इसकी सूँड़, आंख, कान, मस्तक तथा दांत हैं ॥१७॥ हे नरश्रेष्ठ, इस असह्य पापसे मेरे हृदयकी सज्जनता नष्ट हो रही है, जिस प्रकार अग्निमें तपाए जानेपर कुत्सित मल सोनेका साथ छोड़ देता है। अर्थात् बलवान् अधर्मका साथ दुर्बल उत्तम छोड़ देता और बलवान उत्तमका साथ दुर्बल अधम छोड़ देता है ॥१७॥ हे राजा, महाबली वानर राजाओंका यह कुल शोकतापके कारण अंगदका भी आधाही प्राण मैं समझता हूँ और इसका कारण मैंही हूँ ॥१९॥ पुत्र मिल सकता है, वह सज्जन और वशमें रहनेवाला भी हो सकता है; पर अंगदके समान पुत्र कहां मिलेगा। वीर, वह देश भी नहीं है जहां जानेसे भाईका साक्षात्कार हो ॥२०॥ वीरवर, अंगद शायद न जीवे। वह यदि जीता तो उसका पालन करनेके लिए उसकी माता भी जीती। पुत्रके बिना अत्यन्त खेदसे क्षीण होकर तारा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सोऽहं प्रवेक्ष्याम्यतिदीप्तमग्निं भ्रात्रा च पुत्रेण च सख्यमिच्छन् ।
इमे विचेष्यन्ति हरिप्रवीराः सीतां निदेशे परिवर्तमानाः ॥२२॥
कृत्स्नं तु ते सेत्स्यति कार्यमेतन्मय्यप्यतीते मनुजेन्द्रपुत्र ।
कुलस्य हन्तारमजीवनार्हं रामानुजानीहि कृतागसं माम् ॥२३॥
इत्येवमार्तस्य रघुप्रवीरः श्रुत्वा वचो वालिजघन्यजस्य ।
संजातबाष्पः परवीरहन्ता रामो मुहूर्तं विमना बभूव ॥२४॥
तस्मिन्क्षणेऽभीक्ष्णमवेक्षमाणः क्षितिक्षमावान्भुवनस्य गोप्ता ।
रामो रुदन्तीं व्यसने निमग्नां समुत्सुकः सोऽथ ददर्श ताराम् ॥२५॥
तां चारुनेत्रां कपिसिंहनाथां पतिं समाश्लिष्य तदा शयानाम् ।
उत्थापयामासुरदीनसत्त्वां मन्त्रिप्रधानाः कपिराजपत्नीम् ॥२६॥
सा विस्फुरन्ती परिरभ्यमाणा भर्तुः समीपादपनीयमाना ।
ददर्श रामं शरचापपाणिं स्वतेजसा सूर्यमिव ज्वलन्तम् ॥२७॥
सुसंवृतं पार्थिवलक्षणैश्च तं चारुनेत्रं मृगशावनेत्रा ।
अदृष्टपूर्वं पुरुषप्रधानमयं स काकुत्स्थ इति प्रजज्ञे ॥२८॥
तस्येन्द्रकल्पस्य दुरासदस्य महानुभावस्य समीपमार्या ।
आर्तातितूर्णं व्यसने प्रपन्ना जगाम तारा परिविह्वलन्ती ॥२९॥
तं सा समासाद्य विशुद्धसत्त्वं शोकेन संभ्रान्तशरीरभावा ।
मनस्विनी वाक्यमुवाच तारा रामं रणोत्कर्षणलब्धलक्ष्यम् ॥३०॥

जी न सकेगी यह मेरा निश्चय है ॥२१॥ अब मैं भाई और पुत्रके सदृश होनेके लिए अर्थात् मरनेके लिए जलती हुई आगमें प्रवेश करूंगा। ये वानर वीर घूमकर सीताका पता लगावेंगें ॥२२॥ हे राजपुत्र राम, मेरे मरनेपर भी आपके समस्त कार्य सिद्ध हों। कुलके नाश करनेवाले, जीनेके अयोग्य, अपराधी मुझको मरनेकी आज्ञा दें ॥२३॥ इस प्रकार वालिके छोटे भाई दुःखी सुग्रीवके वचन सुनकर रामचन्द्रकी आंखोंमें आंसू आगए। शत्रुहन्ता रामचन्द्र थोड़ी देरके लिए उदास हो गए ॥२४॥ उस समय पृथिवीके समान क्षमा वाले और संसारके रक्षक रामचन्द्रने बार-बार देखते हुए दुखमें मग्न ताराको देखा ॥२५॥ सुन्दर आंखों-वाली कपिराजकी पत्नी तारा मृत पतिका आलिंगन कर पड़ी थी। प्रधान मन्त्रियोंने उसको वहांसे उठाया ॥२६॥ पतिका आलिंगन करके सोती हुई, धीरे-धीरे कांपती हुई पतिके समीपसे हटाई जानेपर धनुषबाणधारी रामचन्द्रको ताराने देखा जो अपने सूर्यके समान प्रकाशसे प्रकाशित हो रहे थे ॥२७॥ राजलक्षणोंसे युक्त, सुन्दर नेत्रवाले, पहले न देखे हुए एक श्रेष्ठ पुरुषको देखकर ताराने समझा कि यही रामचन्द्र हैं ॥२८॥ इन्द्रके समान पराजित होनेके अयोग्य महानुभाव रामचन्द्रके पास अति दुखित चल सकनेमें असमर्थ, घोर विपत्तिमें फंसी हुई तारा धीरे धीरे गई ॥२९॥ तारा शोकके कारण अपने शरीरका भान भूल गई थी। मनस्विनी वह, शुद्ध सत्व रणनिपुणताके कारण लक्ष्य वेधनेमें चतुर रामसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च जितेन्द्रियश्चोत्तमधर्मकश्च ।
अक्षीणकीर्तिश्च विचक्षणश्च क्षितिक्षमावान्क्षतजोपमाक्षः ॥३१॥
त्वमात्तबाणासनबाणपाणिर्महाबलः संहननोपपन्नः ।
मनुष्यदेहाभ्युदयं विहाय दिव्येन देहाभ्युदयेन युक्तः ॥३२॥
येनैव बाणेन हतः प्रियो मे तेनैव बाणेन हि मां जहीहि ।
हता गमिष्यामि समीपमस्य न मां विना वीर रमेत वाली ॥३३॥
स्वर्गेऽपि पद्मामलपत्रनेत्र समेत्य संप्रेक्ष्य च मामपश्यन् ।
न ह्येष उच्चावचताम्रचूडा विचित्रवेषाप्सरसोऽभिजिष्यत् ॥३४॥
स्वर्गेऽपि शोकं च विवर्णतां च मया विना प्राप्स्यति वीर वाली ।
रम्ये नगेन्द्रस्य तटावकाशे विदेहकन्यारहितो यथा त्वम् ॥३५॥
त्वं वेत्थ तावद्वनिताविहीनः प्राप्नोति दुःखं पुरुषः कुमारः ।
तत्त्वं प्रजानञ्जहि मां न वाली दुःखं ममादर्शनजं भजेत ॥३६॥
यद्यापि मन्येत भवान्महात्मा स्त्रीघातदोषस्तु भवेन्न मह्यम् ।
आत्मेयमस्येति हि मां जहि त्वं न स्त्रीवधः स्यान्मनुजेन्द्रपुत्र ॥३७॥
शास्त्रप्रयोगाद्विविधाच्च वेदादनन्यरूपाः पुरुषस्य दाराः ।
दारप्रदानाद्धि न दानमन्यत्प्रदृश्यते ज्ञानवतां हि लोके ॥३८॥

बोली, ॥३०॥ आपका प्रभाव परिमित नहीं है । आपको कोई परास्त नहीं कर सकता । आप श्रेष्ठ धर्मके पालक हैं, आपकी कीर्ति कभी लुप्त नहीं होती । आप निपुण हैं । पृथिवीके समान क्षमावान हैं, आपकी आंखे लाल हैं ॥३१॥ आपने हाथोंमें धनुष-बाण धारण किया है । आप महाबली है । आपका शरीर गठा हुआ है । मनुष्य शरीरसे मिलनेवाले सुखोंके अतिरिक्त दिव्य देहके प्राप्त सुखोंसे आप युक्त हैं ॥३२॥ जिस बाणसे आपने मेरे प्रियको मारा है, उसी बाणसे मुझे भी मारिए । मैं मरकर उसके समीप जाऊँगी । वीर, मेरे बिना वालि प्रसन्न न होगा ॥३३॥ हे निर्मल कमलपत्रके समान नेत्रवाले राम, स्वर्गमें भी वह अप्सराओंके साथ मिलेगा और देखेगा । वहां मुझे न देखकर, ऊँची नीची लाल चोटी वाली तथा विचित्र वेष धारण करनेवाली अप्सराओंसे प्रसन्न न होगा ॥३४॥ वालि स्वर्गमें भी मेरे बिना दुखी और उदासीन होगा, जिस प्रकार ऋष्यमूक पर्वत के लम्बे मैदानमें सीताके बिना तुम दुखी होते हो ॥३५॥ स्त्रीके बिना युवा पुरुष जितना दुख पाता है यह तुम्हें मालूम है । इस बातको जानकर तुम मुझे मारो, जिससे मेरे न देखनेका दुख वालिको न हो ॥३६॥ यदि, महात्मा ! आप यह समझते हों कि मुझे स्त्री-वधका पाप लगेगा तो यह (मैं) वालिकी आत्मा है यह समझकर मारिए । इस प्रकार आपको स्त्री वधका पाप नहीं होगा ॥३७॥ शास्त्रीय प्रयोगोंमें, वैदिक कार्योंमें, तथा श्रुतियोंमें स्त्रियां पुरुषसे अभिन्न कही गई हैं । लोकमें ज्ञानियोंके लिए स्त्रीदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है ॥३८॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्वं चापि मां तस्य मम प्रियस्य प्रदास्यसे धर्ममवेक्ष्य वीर ।
अनेन दानेन न लप्स्यसे त्वमधर्मयोगं मम वीर घातात् ॥३९॥
आर्ताप्रनाथामपनीयमानामेवंगतां नार्हसि मामहन्तुम् ।
अहं हि मातङ्गविलासगामिना प्लवंगमानामृषभेण धीमता ॥४०॥
विना वरार्होत्तमहेममालिना चिरं न शक्ष्यामि नरेन्द्र जीवितुम् ।
इत्येवमुक्तस्तु विभुर्महात्मा तारां समाश्वास्य हितं बभाषे ॥४१॥
मा वीरभार्ये विमतिं कुरुष्व लोको हि सर्वो विहितो विधात्रा ।
तं चैव सर्वं सुखदुःखयोगं लोकोऽब्रवीत्तेन कृतं विधात्रा ॥४२॥
त्रयोऽपि लोका विहितं विधानं नातिक्रमन्ते वशगा हि तस्य ।
प्रीतिं परां प्राप्स्यसि तां तथैव पुत्रश्च ते प्राप्स्यति यौवराज्यम् ॥४३॥
धात्रा विधानं विहितं तथैव न शूरपत्न्यः परिदेवयन्ति ।
आश्वासिता तेन महात्मना तु प्रभावयुक्तेन परंतपेन ।
सा वीरपत्नी ध्वनता मुखेन सुवेषरूपा विरराम तारा ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः ॥२४॥

हे वीर, धर्म समझकर यदि तुम मुझे वालिको प्रदान करोगे तो इस दानसे मेरे वधका पाप तुमको न होगा ॥३९॥ दुःखिनी, अनाथा पतिके आलिंगनसे हटाई गई मेरा वध तुम्हें अवश्य करना चाहिए। रामचन्द्र, मतवाले हाथीके समान चलनेवाले वानरोंके राजा और श्रेष्ठ सुवर्णकी माला धारण करने वाले वालिके विना मैं बहुत दिनों तक जी नहीं सकती। ताराके ऐसे कहने पर महात्मा रामने ताराको आश्वासन देकर उसको हितका उपदेश दिया ॥४०,४१॥ हे वीर-पत्नि, तुम मृत्युकी कामना मत करो। सबको विधाताने बनाया है और उसी विधाताने सबके साथ सुख दुखका संयोग कर दिया है—ऐसा वेदका उपदेश है। तीनों लोकके निवासी निश्चित विधानका अतिक्रमण नहीं कर सकते क्योंकि सभी उसके अधीन हैं। तुम्हारा पुत्र युवराज होगा और तुम पहलेहीके समान अत्यन्त प्रसन्न होओगी ॥४२,४३॥ विधाताका ऐसाही विधान है। वीरोंकी स्त्रियां रोती नहीं। प्रभावशाली, परन्तप महात्मा रामचन्द्रके समझाने पर वीर-पत्नी ताराने विलाप करना छोड़ दिया। उसके हृदयमें शान्ति हुई जो मुखकी सुन्दरताके रूपसे प्रकाशित हुई ॥४४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका चौबीसवाँ सर्ग समाप्त।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चविंशः सर्गः २५

स सुग्रीवं च तारां च सांगदां सहलक्ष्मणः । समानशोकःकाकुत्स्थः सान्त्वयन्निदमब्रवीत्॥ १ ॥
न शोकपरितापेन श्रेयसा युज्यते मृतः । यदत्रानन्तरं कार्यं तत्समाधातुमर्हथ ॥ २ ॥
लोकवृत्तमनुष्ठेयं कृतं वो बाष्पमोक्षणम् । न कालादुत्तरं किंचित्परं कर्म उपासितुम् ॥ ३ ॥
नियतिः कारणं लोके नियतिः कर्मसाधनम् । नियतिः सर्वभूतानां नियोगेष्विह कारणम्॥ ४ ॥
न कर्ता कस्यचित्कश्चिन्नियोगे नापि चेश्वरः । स्वभावे वर्तते लोकस्तस्य कालः परायणम्॥ ५ ॥
न कालः कालमत्येति न कालः परिहीयते । स्वभावं च समासाद्य न किंचिदतिवर्तते ॥ ६ ॥
न कालस्यास्ति बन्धुत्वं न हेतुर्न पराक्रमः । न मित्रज्ञातिसंबन्धः कारणं नात्मनोऽवशः ॥ ७ ॥
किं तु कालपरीणामो द्रष्टव्यः साधु पश्यता । धर्मश्चार्थश्च कामश्च कालक्रमसमाहिताः ॥ ८ ॥
इतः स्वां प्रकृतिं वाली गतः प्राप्तः क्रियाफलम् । सामदानार्थसंयोगैः पवित्रं प्लवगेश्वरः ॥ ९ ॥
स्वधर्मस्य च संयोगाज्जितस्तेन महात्मना । स्वर्गः परिगृहीतश्च प्राणानपरिरक्षता ॥१०॥
एषा वै नियतिः श्रेष्ठा यां गतो हरियूथपः । तदलं परितापेन प्राप्तकालमुपास्यताम् ॥११॥
वचनान्ते तु रामस्य लक्ष्मणः परवीरहा । अवदत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं गतचेतसम् ॥१२॥

सुग्रीव, तारा और अंगदको समझाते हुए रामचन्द्र बोले, रामचन्द्र और लक्ष्मण भी उन्हींके समान दुखी थे ॥ १ ॥ दुख शोक करनेसे मृतका कल्याण नहीं होता । आगेका जो कर्तव्य है वह तुमको करना चाहिए ॥ २ ॥ जैसा लौकिक व्यवहार है वह तुमलोगोंको करना चाहिए । अब रोना व्यर्थ है । मरणके बाद कोई उपाय नहीं रह जाता, जिससे मरनेवाला लौटे ॥ ३ ॥ नियति (काल-कृत व्यवस्था) कारण है, सब कर्मोंमें करनेवाली नियति ही है । कार्यसिद्धिका कारण भी नियति है ॥४॥ कोई मनुष्य कोई काम करनेमें स्वाधीन नहीं है और न वह किसीको किसी काममें लगा देनेमें ही समर्थ है ॥ ५ ॥ मनुष्य अपने स्वभावके अधीन है और वह स्वभाव कालके अधीन है । कालरूपी भगवान् भी अपनी बनाई व्यवस्थाके विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते और वह काल किसी प्रकार भी नष्ट नहीं होता । स्वभावके अनुसार ही सब काम होता है, उसके विपरीत कुछ काम नहीं होता ॥ ६ ॥ कालका कोई मित्र नहीं है । अपनी व्यवस्था उलटनेका कोई कारण भी नहीं है । उसके विरुद्ध कोई पराक्रम भी किसी काम नहीं आता । अधिक मित्रों और जातियोंसे भी रक्षा नहीं होती । ईश्वर जीवके अधीन नहीं है ॥ ७ ॥ तत्वज्ञानियोंको सावधानीसे कालका परिणाम देखना चाहिए । धर्म, अर्थ और काम कालके अनुसारही होते हैं ॥ ८ ॥ अपने किए साम, दाम आदिके उचित समयमें अनुष्ठान करनेके कारण वानरराज वालि पवित्र क्रियाफल अर्थात् स्वर्गको गया, वही उसका स्वभाव था ॥ ९ ॥ अपने धर्मके कारण उस महात्माने स्वर्ग जीत लिया है और प्राण-त्याग करके उसको पाया है ॥१०॥ यह उत्तम नियति थी जिसको वानर-राज वालिने पाया है । अतएव उसके लिए शोक करना व्यर्थ है । अब आगेका कर्तव्य किया जाना चाहिए ॥११॥ रामचन्द्रके बोलनेपर शत्रुहन्ता लक्ष्मण अचेत सुग्रीवसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुरु त्वमस्य सुग्रीव प्रेतकार्यमनन्तरम् । ताराङ्गदाभ्यां सहितो वालिनो दहनं प्रति ॥१३॥
समाज्ञापय काष्ठानि शुष्काणि च बहूनि च ।चन्दनानि च दिव्यानि वालिसंस्कारकारणात्॥१४॥
समाश्वासय दीनं त्वमङ्गदं दीनचेतसम् । मा भूर्बालिशबुद्धिस्त्वं त्वदधीनमिदं पुरम् ॥१५॥
अङ्गदस्त्वानयेन्माल्यं वस्त्राणि विविधानि च । घृतं तैलमथो गन्धान्यच्चात्र समनन्तरम् ॥१६॥
त्वं तार शिबिकां शीघ्रमादायागच्छ संभ्रमात् । त्वरा गुणवती युक्ता ह्यस्मिन्काले विशेषतः ॥१७॥
सज्जीभवन्तु लवगाः शिबिकावाहनोचिताः । समर्था वलिनश्चैव निर्हरिष्यन्ति वालिनम् ॥१८॥
एवमुक्त्वा तु सुग्रीवं सुमित्रानन्दवर्धनः । तस्थौ भ्रातृसमीपस्थो लक्ष्मणः परवीरहा ॥१९॥
लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा तारः संभ्रान्तमानसः । प्रविवेश गुहां शीघ्रं शिबिकासक्तमानसः ॥२०॥
आदाय शिबिकां तारः स तु पर्यापतत्पुनः । वानरैरुह्यमानां तां शूरैरुद्वहनोचितैः ॥२१॥
दिव्यां भद्रासनयुतां शिबिकां स्यन्दनोपमाम्। पक्षिकर्मभिराचित्रां द्रुमकर्मविभूषिताम् ॥२२॥
आचितां चित्रपत्तीभिः सुनिविष्टां समन्ततः । विमानमिव सिद्धानां जालवातायनायुताम्॥२३॥
सुनियुक्तांविशालांच सुकृतांशिल्पिभिःकृताम्। दारुपर्वतकोपेतां चारुकर्मपरिष्कृताम् ॥२४॥
वराभरणहारैश्च चित्रमाल्योपशोभिताम् । गुहागहनसंच्छन्नां रक्तचन्दनभूषिताम् ॥२५॥
पुष्पाढ्यैः समभिच्छन्नां पद्ममालाभिरेव च । तरुणादित्यवर्णाभिर्भ्राजमानाभिरावृताम् ॥२६॥

विनीत वाक्य बोले, ॥१२॥ सुग्रीव, वालिका तारा अंगदके साथ तुम अन्तिम संस्कार करो । इनके दाहकी व्यवस्था करो ॥१३॥ वालिके संस्कारके लिए चन्दन तथा अन्य दिव्य वृक्षोंके सूखे काठ लानेकी आज्ञा दो ॥१४॥ दुखी अंगदको समझाओ । तुम बुद्धिहीन न बनो, क्योंकि यह नगर इस समय तुम्हारेही अधीन है ॥१५॥ माला, अनेक प्रकारके वस्त्र, घृत, तैल, सुगन्धित वस्तुएँ तथा अन्य जिन जिन चीजोंकी आवश्यकता हो उन्हें अंगद शीघ्र ले आवें ॥१६॥ तार (सुग्रीवके सचिवका नाम), शीघ्र एक पालकी लेकर आओ । इस समय शीघ्रता आवश्यक है । जितनी शीघ्रता की जाय वही अच्छा ॥१७॥ सवारी ले चलनेके योग्य वानर तयार हो जाँय । वालिको स्मशानमें ले जानेवाले वानरोंको बलवान् होना चाहिए ॥१८॥ सुग्रीवसे ऐसा कहकर सुमित्राके पुत्र, शत्रुहन्ता लक्ष्मण अपने भाईके पास जाकर बैठ गए ॥१९॥ लक्ष्मणके वचन सुनकर तार नामका वानर शीघ्रतापूर्वक पालकी लानेके लिए गुहामें गया ॥२०॥ पालकी ढोनेमें समर्थ, बलवान् वानरों के द्वारा पालकी लिवा कर वह शीघ्रही लौट आया ॥२१॥ उस पालकीमें राजाके बैठनेके योग्य आसन बना था । वह रथके समान था । उसमें पक्षियों और वृक्षोंके चित्र बने हुए थे ॥२२॥ उसपर पैदल सिपाहियोंके चित्र बने हुए थे । बहुतही सुन्दर वह बनी थी । सिद्धोंके विमानके समान उसमें खिड़कियां थीं, जो जालसे छिपी हुई थीं ॥२३॥ वह बहुत मजबूत थी । कारीगरोंने बहुत बड़ी बनाई थी । अतएव बहुत अच्छी थी । लकड़ीके छोटे छोटे पर्वत तथा और कारीगरीके चित्र उसमें बने थे । ॥२४॥ उत्तम आभरण और हार उसमें रक्खे थे । अनेक प्रकारकी मालाओंके उसमें चित्र बने हुए थे । गुहा और वनके भी चित्र उसपर थे और रक्त चन्दनसे शोभित की गई थी ॥२५॥ उसपर बहुत पुष्पसे रक्खे गए थे । कमलकी मालाएँ जो तरुण सूर्यके समान वर्णवाली और उज्वल थीं पालकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ईदृशीं शिबिकां दृष्ट्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । क्षिप्रं विनीयतां वाली प्रेतकार्यं विधीयताम् ॥२७॥
ततो वालिनमुद्यम्य सुग्रीवः शिबिकां तदा । आरोपयत विक्रोशन्नङ्गदेन सहैव तु ॥२८॥
आरोप्य शिबिकां चैव वालिनं गतजीवितम् । अलंकारैश्च विविधैर्माल्यैर्वस्त्रैश्च भूषितम् ॥२९॥
आज्ञापयत्तदा राजा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः । और्ध्वदेहिकमार्यस्य क्रियतामनुकूलतः ॥३०॥
विश्राणयन्तो रत्नानि विविधानि बहूनि च । अग्रतः प्लवगा यान्तु शिबिका तदनन्तरम् ॥३१॥
राज्ञामृद्धिविशेषा हि दृश्यन्ते भुवि यादृशाः । तादृशैरिह कुर्वन्तु वानरा भर्तृसत्क्रियाम् ॥३२॥
तादृशं वालिनः क्षिप्रं प्राकुर्वन्नौर्ध्वदेहिकम् । अङ्गदं परिरभ्याशु तारप्रभृतयस्तथा ॥३३॥
क्रोशन्तः प्रययुः सर्वे वानरा हतबान्धवाः । ततः प्रणिहिताः सर्वा वानर्योऽस्य वशानुगाः॥३४॥
चुक्रुशुर्वीर वीरेति भूयः क्रोशन्ति ताः प्रियम् । ताराप्रभृतयः सर्वा वानर्यो हतबान्धवाः ॥३५॥
अनुजग्मुश्च भर्तारं क्रोशन्त्यः करुणस्वनाः । तासां रुदितशब्देन वानरीणां वनान्तरे ॥३६॥
वनानि गिरयश्चैव विक्रोशन्तीव सर्वतः । पुलिने गिरिनद्यास्तु विविक्ते जलसंवृते ॥३७॥
चितां चक्रुः सुबहवो वानरा वनचारिणः । अवरोप्य ततः स्कन्धाच्छिबिकां वानरोत्तमाः॥३८॥
तस्थुरेकान्तमाश्रित्य सर्वे शोकपरायणाः । ततस्तारा पतिं दृष्ट्वा शिबिकातलशायिनम् ॥३९॥
आरोप्याङ्के शिरस्तस्य विललाप सुदुःखिता । हा वानरमहाराज हा नाथ मम वत्सल ॥४०॥
हा महार्ह महाबाहो हा मम प्रिय पश्य माम् । जनं न पश्यसीमं त्वं कस्माच्छोकाभिपीडितम्॥४१॥

के चारो ओर लटकाई गई थीं ॥२६॥ ऐसी पालकी देखकर रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा कि वालिको शीघ्र ही यहाँसे ले जाँय और इसका अन्तिम संस्कार करें ॥२७॥ इसके अनन्तर अंगदके साथ हाथोंसे वालिको उठाकर रोते हुए सुग्रीवने पालकी पर रक्खे ॥२८॥ अनेक अलंकारों, मालाओं और वस्त्रोंसे वालिका शव शोभित किया गया ॥२९॥ तब वानरोंके राजा सुग्रीवने आज्ञा दी कि आर्यका अन्तिम संस्कार नदीके तीरपर किया जाय ॥३०॥ विविध रत्नोंको लुटाते हुए वानर आगे जाँय और उनके पीछे पालकी जाय ॥३१॥ राजाओंका चिता-संस्कार जिस धूमधामसे होता है उसी प्रकार आर्य वालिका संस्कार होना चाहिए ॥३२॥ तार आदि वानरोंने अंगदको लेकर राजाओंके समान वालिका अन्तिम संस्कार करना प्रारम्भ किया ॥३३॥ हतबन्धु सभी वानर रोते हुए चले। उनके पीछे वालिकी वशवर्तिनी स्त्रियाँ चलीं और तारा आदि सब वानरियाँ प्रिय वालिके पास 'वीर' 'वीर' कहकर अधिक विलाप करने लगीं ॥३४,३५॥ करुण स्वरमें रोती हुई पतिके साथ साथ चलीं। उन वानरियोंके रोनेके शब्दसे वनकी भूमि, वन और पर्वत मानों रोने लगे। जलपूर्ण पहाड़ी नदीके तीरपर एकान्त स्थानमें वनचारी अनेक वानरोंने मिलकर चिता बनाई। और कन्धेसे पालकी नीचे उतारी ॥३६,३७,३८॥ वे सब एकान्त स्थानमें जाकर बैठ गए। वे सबके सब दुखी थे। पालकीपर पड़े पतिको देखकर ताराने उसका सिर गोदमें ले लिया और वह दुखसे विलाप करने लगी। हा वानर, महाराज, हा मेरे प्रिय, ॥३९,४०॥ हा उत्तम भोग भोगनेके योग्य महाबाहो, हा मेरे प्रिय, मुझे देखो। शोक-पीड़ित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रहृष्टमिह ते वक्त्रं गतासोरपि मानद । अस्तार्कसमवर्णं च दृश्यते जीवतो यथा ॥४२॥
एष त्वां रामरूपेण कालः कर्षति वानर । येन स्म विधवाः सर्वाः कृता एकेषुणा रणे ॥४३॥
इमास्तास्तव राजेन्द्र वानर्योऽप्लवगास्तव । पादैर्विकृष्टमध्वानमागताः किं न बुध्यसे ॥४४॥
तवेष्टा ननु चैवेमा भार्याश्चन्द्रनिभाननाः । इदानीं नेक्षसे कस्मात्सुग्रीवं प्लवगेश्वर ॥४५॥
एते हि सचिवा राजंस्तारप्रभृतयस्तव । पुरवासिजनश्चायं परिवार्य विषीदति ॥४६॥
विसर्जयैनान्सचिवान्यथापुरमरिंदम । ततः क्रीडामहे सर्वा वनेषु मदनोत्कटाः ॥४७॥
एवं विलपतीं तारां पतिशोकपरीवृताम् । उत्थापयन्ति स्म तदा वानर्यः शोककर्शिताः ॥४८॥
सुग्रीवेण ततः सार्धं सोऽङ्गदः पितरं रुदन् । चितामारोपयामास शोकेनाभिप्लुतेन्द्रियः ॥४९॥
ततोऽग्निं विधिवद्दत्त्वा सोऽपसव्यं चकार ह । पितरं दीर्घमध्वानं प्रस्थितं व्याकुलेन्द्रियः ॥५०॥
संस्कृत्य वालिनं तं तु विधिवत्प्लवगर्षभाः । आजग्मुरुदकं कर्तुं नदीं शुभजलां शिवाम् ॥५१॥
ततस्ते सहितास्तत्र अंगदं स्थाप्य चाग्रतः । सुग्रीवतारासहिताः सिषिचुर्वानरा जलम् ॥५२॥
सुग्रीवेणेव दीनेन दीनो भूत्वा महाबलः । समानशोकः काकुत्स्थः प्रेतकार्याण्यकारयत्॥५३॥
ततोऽथ तं वालिनमग्र्यपौरुषं प्रकाशमिक्ष्वाकुवरेषुणा हतम् ।
प्रदीप्य दीप्ताग्निसमौजसं तदा सलक्ष्मणं राममुपेयिवान्हरिः ॥५४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥२५॥

इस प्राणीको क्यों नहीं देखते ॥४१॥ प्राणोंके चले जाने परभी हे मानद, तुम्हारा मुँह प्रसन्न दीख पड़ता है । अस्त होते हुए सूर्यके समान तुम्हारे मुँहकी शोभा है । जैसी शोभा जीवित कालमें थी ॥४२॥ हे वानर, यह काल रामका रूप धरकर उठा ले गया, जिसके एक बाणसे हम सब लोग विधवा हो गईं ॥४३॥ हे राजेन्द्र, ये आपकी वानरियाँ, जिन्हें चलनेका अभ्यास नहीं हैं वे, पैरोंसे चलकर इतनी दूर आई हैं । क्या आपको यह मालूम नहीं है ॥४४॥ चन्द्रमुखी ये सब स्त्रियाँ आपकी प्यारा हैं । हे वानरराज, आप सुग्रीवकी ओर इस समय क्यों नहीं देखते ॥४५॥ राजन् तार, आदि ये सब सचिव तथा ये सब पुरवासी आपके चारो ओर खड़े शोक कर रहें हैं ॥४६॥ जिस प्रकार पहले इन सचिवोंको जानेकी आप आज्ञा देते थे उसी प्रकार आज भी आज्ञा दें । तब हमलोग इस वनमें क्रीड़ा करें ॥४७॥ इस प्रकार पतिशोकसे व्याकुल विलाप करती हुई ताराको शोकपीड़ित वानरियोंने उठाया ॥४८॥ शोकसे पीड़ित रोते हुए अंगदने सुग्रीवके साथ पिताको चितापर रक्खा ॥४९॥ पिता लम्बी यात्राके लिए प्रस्थित हुआ है—यह जानकर अंगद व्याकुल हुआ । इसकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं । उसने विधिपूर्वक चितामें आग लगाई और बाईं ओरसे चिताकी प्रदक्षिणा की ॥५०॥ सब वानर विधिपूर्वक वालिका संस्कार करके स्वच्छ जलवाली नदीके तीरपर प्रेतको जल देनेके लिए आए ॥५१॥ उन सब वानरोंने मिलकर सुग्रीव ताराके साथ अंगदको आगे करके तर्पण किया ॥५२॥ सुग्रीवके दुखसे दुखी महाबली रामचन्द्रने सब प्रेत कार्य करवाए । रामचन्द्र भी सुग्रीवके समानही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

षड्विंशः सर्गः २६

ततः शोकाभिसंतप्तं सुग्रीवं क्लिन्नवाससम् । शाखामृगमहामात्राः परिवार्योपतस्थिरे ॥ १ ॥
अभिगम्य महाबाहुं राममक्लिष्टकारिणम् । स्थिताः प्राञ्जलयः सर्वे पितामहमिवर्षयः ॥ २ ॥
ततः काञ्चनशैलाभस्तरुणार्कनिभाननः । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं हनुमान्मारुतात्मजः ॥ ३ ॥
भवत्प्रसादात्काकुत्स्थ पितृपैतामहं महत् । वानराणां सुदंष्ट्राणां संपन्नबलशालिनाम् ॥ ४ ॥
महात्मानां सुदुष्प्रापं प्राप्तं राज्यमिदं प्रभो । भवता समनुज्ञातः प्रविश्य नगरं शुभम् ॥ ५ ॥
संविधास्यति कार्याणि सर्वाणि ससुहृद्गणः । स्नातोऽयं विविधैर्गन्धैरौषधैश्च यथाविधि ॥ ६ ॥
अर्चयिष्यति माल्यैश्च रत्नैश्च त्वां विशेषतः । इमां गिरिगुहां रम्यामभिगन्तुं त्वमर्हसि ॥ ७ ॥
कुरुष्व स्वामिसंबन्धं वानरान्संप्रहर्षय । एवमुक्तो हनुमता राघवः परवीरहा ॥ ८ ॥
प्रत्युवाच हनूमन्तं बुद्धिमान्वाक्यकोविदः । चतुर्दश समाः सौम्य ग्रामं वा यदि वा पुरम् ॥ ९ ॥
न प्रवेक्ष्यामि हनुमन्पितुर्निर्देशपारगः । सुसमृद्धां गुहां दिव्यां सुग्रीवो वानरर्षभः ॥१०॥
प्रविष्टो विधिवद्वीरः क्षिप्रं राज्येऽभिषिच्यताम् । एवमुक्त्वा हनूमन्तं रामः सुग्रीवमब्रवीत् ॥११॥
वृत्तज्ञो वृत्तसंपन्नमुदारबलविक्रमम् । इममप्यङ्गदं वीरं यौवराज्येऽभिषेचय ॥१२॥

दुखी थे ॥५३॥ अनन्तर रामचन्द्रके बाणसे मारे गए प्रसिद्ध पराक्रमी वालिको जला कर प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी लक्ष्मणके साथ बैठे हुए रामचन्द्रके समीप सुग्रीव आया ॥५४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका पचीसवाँ सर्ग समाप्त ।

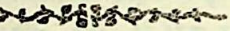

भीगे वस्त्र पहने हुए शोकतप्त सुग्रीवके साथ प्रधान प्रधान वानर चले ॥१॥ पुण्यकर्मा महाबाहु रामचन्द्रके पास जाकर हाथ जोड़कर खड़े हो गए, जैसे ब्रह्माके पास ऋषि खड़े होते हैं ॥ २ ॥ अनन्तर सुवर्णपर्वतके समान विशाल तरुण सूर्यके समान मुखवाले वायुपुत्र हनुमान हाथ जोड़कर बोले ॥ ३ ॥ रामचन्द्र तीखे दाँतवाले बलशाली महात्मा वानरोंका पिता पितामहोंसे चला आया हुआ यह विशाल राज्य आपकी कृपासे प्राप्त हुआ । आपकी आज्ञासे नगरमें जाकर अपने मित्रोंके साथ समस्त कार्योंको ये करेंगें । अनेक प्रकारकी सुगन्धित औषधियों से विधिपूर्वक ये स्नान करेंगे । मालाओं और रत्नोंसे विशेषकर आपकी पूजा करेगें । आप कृपाकर पर्वतकी इस रमणीय गुहामें चलें ॥४,५,६,७॥ सुग्रीवको स्वामी बनाकर आप वानरोंको प्रसन्न करें । शत्रुहन्ता रामचन्द्र हनुमानके ऐसा कहनेपर बोले ॥ ८ ॥ बुद्धिमान्, बोलनेमें निपुण रामचन्द्रने हनुमानसे कहा—वीर, चौदह वर्षों तक ग्राममें या नगरमें पिताकी आज्ञाके कारण मैं प्रवेश नहीं करूँगा । वानरश्रेष्ठ सुग्रीव इस सजी हुई गुफामें जाय । तुम लोग इनका अभिषेक करो । हनुमानसे ऐसा कहकर रामचन्द्र सुग्रीवसे बोले ॥९,१०,११॥ सुग्रीव, तुम लोकव्यवहार जाननेवाले हो । यह अंगद चरित्रवान् है, बली और पराक्रमी है । इसका यौवराज्यके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्येष्ठस्य हि सुतो ज्येष्ठः सदृशो विक्रमेण च । अङ्गदोऽयमदीनात्मा यौवराज्यस्य भाजनम्॥१३॥
पूर्वोयं वार्षिको मासः श्रावणः सलिलागमः ।प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासा वार्षिकसंज्ञिताः॥१४॥
नायमुद्योगसमयः प्रविश त्वं पुरीं शुभाम् । अस्मिन्वत्स्याम्यहं सौम्य पर्वते सहलक्ष्मणः॥१५॥
इयं गिरिगुहा रम्या विशाला युक्तमारुता । प्रभूतसलिला सौम्य प्रभूतकमलोत्पला ॥१६॥
कार्तिके समनुप्राप्ते त्वं रावणवधे यतः । एष नः समयः सौम्य प्रविश त्वं स्वमालयम् ॥१७॥
अभिषिञ्चस्व राज्ये च सुहृदः संप्रहर्षय । इति रामाभ्यनुज्ञातः सुग्रीवो वानरर्षभः ॥१८॥
प्रविवेश पुरीं रम्यां किष्किन्धां वालिपालिताम्। तं वानरसहस्राणि प्रविष्टं वानरेश्वरम् ॥१९॥
अभिवार्य प्रविष्टानि सर्वतः प्लवगेश्वरम् । ततः प्रकृतयः सर्वा दृष्ट्वा हरिगणेश्वरम् ॥२०॥
प्रणम्य मूर्ध्ना पतिता वसुधायां समाहिताः ।सुग्रीवःप्रकृतीःसर्वाःसंभाष्योत्थाप्य वीर्यवान्॥२१॥
भ्रातुरन्तःपुरं सौम्यं प्रविवेश महाबलः । प्रविष्टं भीमविक्रान्तं सुग्रीवं वानरर्षभम् ॥२२॥
अभ्यषिञ्चन्त सुहृदः सहस्राक्षमिवामराः । तस्य पाण्डुरमाजह्रुश्छत्रं हेमपरिष्कृतम् ॥२३॥
शुक्ले च वालव्यजने हेमदण्डे यशस्करे । तथा रत्नानि सर्वाणि सर्वबीजौषधानि च ॥२४॥
सक्षीराणां च वृक्षाणां प्ररोहान्कुसुमानि च । शुक्लानि चैव वस्त्राणि श्वेतं चैवानुलेपनम् ॥२५॥
सुगन्धीनि च माल्यानि स्थलजान्यम्बुजानि च।चन्दनानि च दिव्यानि गन्धांश्च विविधान्बहून्॥२६॥
अक्षतं जातरूपं च प्रियङ्गुमधुसर्पिषी । दधि चर्म च वैयाघ्रं परार्ध्यौ चाप्युपानहौ ॥२७॥

पदपर तुम अभिषेक करो ॥१२॥ यह तुम्हारे बड़े भाईका बड़ा पुत्र है और पराक्रममें अपने पिताके समान है । इसकी आत्मा श्रेष्ठ है, अतएव यह युवराज होनेके योग्य है ॥१३॥ सौम्य, चौमासा आगया, जिसका पहला महीना यह श्रावण है, जब कि बरसात होती है ॥१४॥ यह किसी प्रकारके उद्योग करनेका समय नहीं है । अतएव तुम अपनी नगरीमें जाओ । मैं इस पर्वतपर लक्ष्मणके साथ रहूँगा ॥१५॥ यह पर्वतकी गुफा रमणीय है और बड़ी है । इसमें हवा भी आती है । यहाँ काफी जल है और कमल आदि भी हैं ॥१६॥ कार्तिक प्रारम्भ होनेपर तुम रावण-वधके लिए प्रयत्न करना । यही हमलोगोंका निश्चय है । इस समय अपने घर जाओ ॥१७॥ तुम राज्यपर अपना अभिषेक कराओ और मित्र वानरोंको प्रसन्न करो । रामकी आज्ञा पाकर वानरश्रेष्ठ सुग्रीव, वालिपालित रमणीय किष्किन्धा नगरीमें गए । वानरेश्वर, सुग्रीवके साथ-साथ हजारों वानरोंने उनको चारो ओरसे घेरकर नगरमें प्रवेश किया । वानरराज सुग्रीवको देखकर प्रजाओंने पृथ्वीमें सिर रखकर उन्हें प्रणाम किया। बलवान सुग्रीवने सब प्रजाओंसे कुशल प्रश्न पूछा ॥१८,१९,२०,२१॥ सुग्रीवने वालिके महलमें प्रवेश किया । परम पराक्रमी वानरश्रेष्ठ सुग्रीवके महलमें आनेपर मित्रोंने उनका अभिषेक किया, जिस प्रकार देवताओंने इन्द्रका अभिषेक किया था । सोनेका काम किया हुआ पीला छत्र उनपर किया गया ॥२२,२३॥ श्वेत, सोनेके दंडेवाले दो चंवर, सब रत्न, सब बीजौषधियाँ, दूधवाले वृक्षोंके अंकुर और फूल, श्वेत वस्त्र और श्वेत अनुलेपन, सुगंधित स्थल और जलके पुष्पोंकी मालाएँ, दिव्य चन्दन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समालम्भनमादाय गोरोचनं मनःशिलाम् । आजग्मुस्तत्र मुदिता वराः कन्याश्च षोडश ॥२८॥
ततस्ते वानरश्रेष्ठमभिषेक्तुं यथाविधि । रत्नैर्वस्त्रैश्च भक्ष्यैश्च तोषयित्वा द्विजर्षभान् ॥२९॥
ततः कुशपरिस्तीर्णं समिद्धं जातवेदसम् । मन्त्रपूतेन हविषा हुत्वा मन्त्रविदो जनाः ॥३०॥
ततो हेमप्रतिष्ठाने वरास्तरणसंवृते । प्रासादशिखरे रम्ये चित्रमाल्योपशोभिते ॥३१॥
प्राङ्मुखं विधिवन्मन्त्रैः स्थापयित्वा वरासने । नदीनदेभ्यः संहृत्य तीर्थेभ्यश्च समन्ततः ॥३२॥
आहृत्य च समुद्रेभ्यः सर्वेभ्यो वानरर्षभाः । अपः कनककुम्भेषु निधाय विमलं जलम् ॥३३॥
शुभैर्ऋषभशृङ्गैश्च कलशैश्चैव काञ्चनैः । शास्त्रदृष्टेन विधिना महर्षिविहितेन च ॥३४॥
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः । मैन्दश्च द्विविदश्चैव हनूमाञ्जाम्बवांस्तथा ॥३५॥
अभ्यषिञ्चत सुग्रीवं प्रसन्नेन सुगन्धिना । सलिलेन सहस्राक्षं वसवो वासवं यथा ॥३६॥
अभिषिक्ते तु सुग्रीवे सर्वे वानरपुंगवाः । प्रचुक्रुशुर्महात्मानो हृष्टाः शतसहस्रशः ॥३७॥
रामस्य तु वचः कुर्वन्सुग्रीवो वानरेश्वरः । अङ्गदं संपरिष्वज्य यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥३८॥
अङ्गदे चाभिषिक्ते तु सानुक्रोशाः प्लवंगमाः । साधु साध्विति सुग्रीवं महात्मानोह्यपूजयन् ॥३९॥
रामं चैव महात्मानं लक्ष्मणं च पुनः पुनः । प्रीताश्च तुष्टुवुः सर्वे तादृशे तत्र वर्तिनि ॥४०॥
हृष्टपुष्टजनाकीर्णा पताकाध्वजशोभिता । बभूव नगरी रम्या किष्किन्धा गिरिगह्वरे ॥४१॥

तथा और अनेक प्रकारकी सुगन्धियाँ, अक्षत, सोना, कांगुन, मधु, घी, दही, बाघका चर्म, मूल्यवान जूते, अनुलेपन, गोरोचन और मैनसिल आदि वस्तुएँ सुग्रीवके पास लायी गयीं । प्रसन्न और सुन्दरी सोलह कन्याएँ भी वहाँ आयीं ॥२४,२५,२६,२७,२८॥ अनन्तर विधिपूर्वक वानरश्रेष्ठ सुग्रीवका अभिषेक करनेके लिए रत्न, वस्त्र तथा भोजनसे श्रेष्ठब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया गया ॥२९॥ वेदीपर कुश बिछाए गए, उसपर जलती हुई आगमें मंत्रसे पवित्र हविका मंत्र जाननेवाले मनुष्योंने हवन किया ॥३०॥ चित्र और मालाओंसे शोभित रमणीय कोठेपर सुन्दर आसनपर जिसके पाए सोनेके बने हुए थे, और जिसपर अच्छा बिछौना बिछा हुआ था, मंत्रोके द्वारा विधिवत् पूर्व मुँह करके सुग्रीव बैठाये गए । नदी नदोंसे तथा सब तीर्थोंसे सब समुद्रोंसे लाया हुआ जल सोनेके घड़ोंमें रखा गया । मंगलमय, ऋषभकी सिंगों और सोनेके घड़ोंसे शास्त्रविधिके अनुसार और महर्षियोंकी आज्ञाके अनुसार गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान और जाम्बवान्ने स्वच्छ और सुगन्धित जलसे सुग्रीवका अभिषेक किया, जिस प्रकार आठ वसुओंने इन्द्रका अभिषेक किया था ॥३१,३२,३३,३४,३५,३६॥ सुग्रीवका अभिषेक होनेपर सैकड़ों हजारों प्रधान प्रधान वानर किल-किल करके अपनी प्रसन्नता प्रकाशित करने लगे ॥३७॥ रामचन्द्रके कहनेके अनुसार सुग्रीवने अंगदका आलिंगन करके युवराजके पदपर अभिषिक्त किया ॥३८॥ अंगदका अभिषेक होने पर दयालु महात्मा वानरोंने साधु साधु कहकर सुग्रीवकी प्रशंसाकी ॥३९॥ उस अभिषेकके समय प्रसन्न होकर राम और लक्ष्मणकी बार-बार वानरोंने प्रशंसा की ॥४०॥ गिरि गह्वरमें वर्तमान किष्किन्धा नगरी प्रसन्न मनुष्योंसे परिपूर्ण तथा, ध्वजा-पताकासे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निवेद्य रामाय तदा महात्मने महाभिषेकं कपिवाहिनीपतिः ।
रुमां च भार्यामुपलभ्य वीर्यवानवाप राज्यं त्रिदशाधिपो यथा ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाडे षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः २७

अभिषिक्ते तु सुग्रीवे प्रविष्टे वानरे गुहाम् । आजगाम सह भ्रात्रा रामः प्रस्रवणं गिरिम् ॥ १ ॥
शार्दूलमृगसंघुष्टं सिंहैर्भीमरवैर्वृतम् । नानागुल्मलतागूढं बहुपादपसंकुलम् ॥ २ ॥
ऋक्षवानरगोपुच्छैर्मार्जारैश्च निषेवितम् । मेघराशिनिभं शैलं नित्यं शुचिकरं शिवम् ॥ ३ ॥
तस्य शैलस्य शिखरे महतीमायतां गुहाम् । प्रत्यगृह्णत वासार्थं रामः सौमित्रिणा सह ॥ ४ ॥
कृत्वा च समयं रामः सुग्रीवेण सहानघः । कालयुक्तं महद्वाक्यमुवाच रघुनन्दनः ॥ ५ ॥
विनीतं भ्रातरं भ्राता लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् । इयं गिरिगुहा रम्या विशाला युक्तमारुता ॥ ६ ॥
अस्यां वत्स्याव सौमित्रे वर्षरात्रमरिंदम । गिरिशृङ्गमिदं रम्यमुत्तमं पार्थिवात्मज ॥ ७ ॥
श्वेताभिःकृष्णताम्राभिःशिलाभिरुपशोभितम्। नानाधातुसमाकीर्णं नदीदर्दुरसंयुतम् ॥ ८ ॥
विविधैर्वृक्षखण्डैश्च चारुचित्रलतायुतम् । नानाविहगसंघुष्टं मयूरवरनादितम् ॥ ९ ॥

शोभित होनेके कारण रमणीय मालूम हुई ॥४१॥ वानरराज सुग्रीवने महात्मा रामचन्द्रको अभिषेककी बात बतलायी । अपनी भार्या रुमा पाकर राज्य पाया, जिस प्रकार इन्द्रने पाया था ॥४२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धा काण्डका छब्बीसवां सर्ग समाप्त ।

अभिषेक होने पर और वानर सुग्रीवके गुहामें जाने पर रामचन्द्र भाईके साथ प्रस्रवण पर्वत पर आए ॥ १ ॥ बाघ और मृग वहाँ बोलते थे । भयंकर शब्द करनेवाले सिंह विचरते थे । अनेक लताओंसे युक्त बहुतसे वृक्ष वहां थे ॥ २ ॥ भालु, वानर, गोपुच्छ और बिलार आदि वहां रहते थे । मेघराशिके समान वह पर्वत पवित्र करनेवाला और मंगलमय था ॥ ३ ॥ उसी पर्वतके शिखरपर एक बड़ी गुहा, लक्ष्मणके साथ रहनेके लिए रामचन्द्रने ली ॥४॥ निष्पाप रामने सुग्रीवके साथ अवधिका निश्चय कर लिया था । समयानुसार वे बोले ॥ ५ ॥ विनीत भाई लक्ष्मणसे उन्होंने कहा—यह पर्वतकी गुहा रमणीय और बड़ी है । यहां हवा आती है ॥६॥ वर्षाकी रातमें हमलोग यहीं निवास करेंगे । राजपुत्र, यह गिरिशिखर बड़ा सुन्दर और रमणीय है ॥ ७ ॥ श्वेत, काले और लाल पत्थर यहां है । इस पर्वतपर अनेक प्रकारकी धातुएँ हैं । नदी और मेढ़क भी हैं ॥८॥ अनेक प्रकारके वृक्ष-समूह यहां हैं । चित्र विचित्र लताएँ हैं । अनेक प्रकारके पक्षी यहां गूँजते हैं । मयूरोंका भी शब्द सुन पड़ता है ॥ ९ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मालतीकुन्दगुल्मैश्च सिन्दुवारैः शिरीषकैः । कदम्बार्जुनसर्जैश्च पुष्पितैरुपशोभितम् ॥१०॥
इयं च नलिनी रम्या फुल्लपङ्कजमण्डिता । नातिदूरे गुहाया नौ भविष्यति नृपात्मज ॥११॥
प्रागुदक्प्रवणे देशे गुहा साधु भविष्यति । पश्चाच्चैवोन्नता सौम्य निवातेयं भविष्यति ॥१२॥
गुहाद्वारे च सौमित्रे शिला समतला शिवा । कृष्णा चैवायता चैव भिन्नाञ्जनचयोपमा ॥१३॥
गिरिशृङ्गमिदं तात पश्य चोत्तरतः शुभम् । भिन्नाञ्जनचयाकारमम्भोधरमिवोदितम् ॥१४॥
दक्षिणस्यामपि दिशि स्थितं श्वेतमिवाम्बरम् । कैलासशिखरप्रख्यं नानाधातुविराजितम् ॥१५॥
प्राचीनवाहिनीं चैव नदीं भृशमकर्दमाम् । गुहायाः परतः पश्य त्रिकूटे जाह्नवीमिव ॥१६॥
चन्दनैस्तिलकैः सालैस्तमालैरतिमुक्तकैः । पद्मकैः सरलैश्चैव अशोकैश्चैव शोभिताम् ॥१७॥
वानीरैस्तिमिदैश्चैव बकुलैः केतकैरपि । हिन्तालैस्तिनिशैर्नीपैर्वेतसैः कृतमालकैः ॥१८॥
तीरजैः शोभिता भाति नानारूपैस्ततस्ततः । वसनाभरणोपेता प्रमदेवाभ्यलंकृता ॥१९॥
शतशः पक्षिसङ्घैश्च नानानादविनादिता । एकैकमनुरक्तैश्च चक्रवाकैरलंकृता ॥२०॥
पुलिनैरतिरम्यैश्च हंससारससेविता । प्रहसन्त्येव भात्येषा नानारत्नसमन्विता ॥२१॥
क्वचिन्नीलोत्पलैश्छन्नाभातिरक्तोत्पलैःक्वचित् । क्वचिदाभाति शुक्लैश्च दिव्यैः कुमुदकुड्मलैः ॥२२॥
परिप्लवशतैर्जुष्टा वर्हिक्रौञ्चविनादिता । रमणीया नदी सौम्या मुनिसङ्घनिषेविता ॥२३॥

मालती, कुन्द, गुल्म, शृंगवार, सिरिस, कदम्ब, अर्जुन ये वृक्ष फूले हुए हैं, और इनसे इस पर्वतकी शोभा बढ़ रही है ॥१०॥ इस छोटे तालाबमें कमल खिले हुए हैं। यह हम लोगोंकी गुहासे बहुत दूर नहीं है ॥११॥ ईशान कोणमें नीची जगह होनेके कारण हम लोगोंकी यह गुहा बड़ी अच्छी है। पीछेसे ऊँची होनेके कारण, इसमें बरसाती हवा भी नहीं जा सकेगी ॥१२॥ लक्ष्मण, गुहाके द्वारपर समतल काली और लम्बी शिला है, जो अंजन-समूहके समान मालूम पड़ती है ॥१३॥ यह गिरिशिखर उत्तरकी ओर कितना सुन्दर मालूम पड़ता है। यह काले मेघके समान उठा हुआ दीखपड़ता है ॥१४॥ दक्षिण दिशामें भी श्वेत वस्त्रके समान, कैलाश शिखरके समान, नाना धातुओंसे शोभित शिखर है ॥१५॥ त्रिकूटपर बहनेवाली गंगाके समान गुहाके उस ओर बहनेवाली नदीको देखो। इसमें कीचड़ नहीं है ॥१६॥ चन्दन, तिलक, शाल, तमाल, अतिमुक्तक, पद्मक, सरल और अशोक वृक्षोंसे यह नदी शोभित है। वानीर, तिमिद, बकुल, केतक, हिन्ताल, तिनिस, कदम्ब और वेतस इन वृक्षोंकी माला नदीने धारण की है। तीरमें उत्पन्न अनेक वृक्षोंसे जहाँ तहाँ यह नदी शोभित होती है। वस्त्रालंकारादिसे युक्त स्त्रीके समान यह मालूम पड़ती है ॥१७,१८,१९॥ सैकड़ों पक्षि-समूहोंसे और परस्पर अनुरक्त चकवोंसे यह नदी अलंकृत है। यहां अनेक प्रकारके शब्द होते हैं। इसके तट रमणीय हैं। इसमें हंस, सारस आदि पक्षी हैं। अनेक रत्नोंसे युक्त यह नदी मालूम पड़ी है ॥२०,२१॥ कहीं यह नदी नीलकमलसे ढंकी हुई है, कहीं लाल कमलसे और कहीं सफेद कमलसे और कहीं कहीं कुमुदकी कोढ़ियोंसे ही सुशोभित है। ॥२२॥ जलपर चलनेवाले परिप्लव नामक सैकड़ों पक्षी यहां वर्तमान हैं। मयूर और क्रौंच इस नदीको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पश्य चन्दनवृक्षाणां पङ्क्तीः सुरुचिरा इव । ककुभानां च दृश्यन्ते मनसैवोदिताः समम् ॥२४॥
अहो सुरमणीयोऽयं देशः शत्रुनिषूदन । दृढं रंस्याव सौमित्रे साध्वत्र निवसावहे ॥२५॥
इतश्च नातिदूरे सा किष्किन्धा चित्रकानना । सुग्रीवस्य पुरी रम्या भविष्यति नृपात्मज ॥२६॥
गीतवादित्रनिर्घोषः श्रूयते जयतां वर । नदतां वानराणां च मृदङ्गाडम्बरैः सह ॥२७॥
लब्ध्वाभार्यां कपिवरः प्राप्यराज्यं सुहृद्धृतः । ध्रुवं नन्दति सुग्रीवः संप्राप्य महतीं श्रियम् ॥२८॥
इत्युक्त्वा न्यवसत्तत्र राघवः सहलक्ष्मणः । बहुदृश्यदरीकुञ्जे तस्मिन्प्रस्रवणे गिरौ ॥२९॥
सुसुखे हि बहुद्रव्ये तस्मिन्हि धरणीधरे । वसतस्तस्य रामस्य रतिरल्पापि नाभवत् ॥३०॥
हृतां हि भार्यांस्मरतःप्राणेभ्योऽपिगरीयसीम् । उदयाभ्युदितं दृष्ट्वा शशाङ्कं स विशेषतः ॥३१॥
आविशेश न तं निद्रा निशासु शयनं गतम् । तत्समुत्थेन शोकेन बाष्पोपहतचेतनम् ॥३२॥
तं शोचमानं काकुत्स्थं नित्यं शोकपरायणम् । तुल्यदुःखोऽब्रवीद्भ्राता लक्ष्मणोऽनुनयं वचः॥३३॥
अलं वीर व्यथां गत्वा न त्वं शोचितुमर्हसि । शोचतो ह्यवसीदन्ति सर्वार्था विदितं हि ते ॥३४॥
भवान्क्रियापरो लोके भवान्देवपरायणः । आस्तिको धर्मशीलश्च व्यवसायी च राघव ॥३५॥
नह्यव्यवसितः शत्रुं राक्षसं तं विशेषतः । समर्थस्त्वं रणे हन्तुं विक्रमे जिह्मकारिणम् ॥३६॥

अलंकृत किये हुए हैं। मुनियोंका समूह यहाँ रहता है। यह नदी सौम्य और रमणीय है ॥२३॥ चन्दन वृक्षोंकी सुन्दर पाँत देखो। मनोरथके साथ उत्पन्न ककुभ वृक्षोंकी पंक्ति देखो, अर्थात् ये पंक्तियाँ मनके अनुसार उत्पन्न हुई थीं ॥२४॥ हे शत्रुसूदन, यह देश बड़ा ही रमणीय है। यहाँ हम लोग खूब आनन्द करेंगे और सुखपूर्वक रहेंगे ॥२५॥ सुन्दर वनवाली सुग्रीवकी रमणीय नगरी किष्किन्धा भी यहाँसे दूर न होगी ॥२६॥ मृदंग-ध्वनिके साथ नाद करनेवाले वानरोंके गाने-बजानेका शब्द सुन पड़ता है ॥ २७ ॥ स्त्री और राज्य पाकर तथा बहुत बड़ी सम्पत्ति पाकर निश्चय सुग्रीव अपने मित्रोंके साथ आनन्द कर रहा है ॥२८॥ ऐसा कहकर लक्ष्मणके साथ उस प्रस्रवण पर्वतपर रहने लगे, जिसमें अनेक गुफाएँ तथा लतासे घिरे कुंज थे ॥२९॥ उस पर्वतपर सुखके अनेक साधन थे। फिर भी रामचन्द्र-को वहाँ रहनेमें विशेष प्रेम न हुआ ॥ ३० ॥ प्राणोंसे भी प्रिय अपनी हरी हुई स्त्रीका स्मरण करनेसे, विशेषकर संध्याके समय चन्द्रोदय होने पर, रामचन्द्रको रात्रिमें बिछौनेपर जानेपर नींद नहीं आती थी; क्योंकि सीताके वियोगदुःखसे वे अधिक रोते और अचेत हो जाते थे ॥३१, ३२॥ इस प्रकार सदा शोकमग्न रहनेवाले रामचन्द्रसे उनके समान ही दुखी भाई लक्ष्मण बोले, ॥३३॥ वीर, चित्तको चंचल करना अच्छा नहीं। आपको शोक नहीं करना चाहिए। शोक करनेवाले दुखी होते हैं, यह बात आप जानते हैं ॥३४॥ रामचन्द्र, आप उद्योग करनेवाले हैं, देवताओंमें प्रेम रखनेवाले हैं। आप ईश्वर-विश्वासी और धर्मात्मा हैं, तथा आप उद्योगसिद्ध हैं ॥३५॥ बिना उद्योग किए शत्रु राक्षसको मारनेमें आप समर्थ नहीं हो सकते; क्योंकि पराक्रमके विषयमें वे प्रायः कपट करते हैं ॥३६॥ शोक दूर कीजिए और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समुन्मूलय शोकं त्वं व्यवसायं स्थिरीकुरु। ततः सपरिवारं तं राक्षसं हन्तुमर्हसि ॥३७॥
पृथिवीमपि काकुत्स्थ ससागरवनाचलाम्। परिवर्तयितुं शक्तः किं पुनस्तं हि रावणम् ॥३८॥
शरत्कालं प्रतीक्षस्व प्रावृट्कालोऽयमागतः। ततः सराष्ट्रं सगणं रावणं तं वधिष्यसि ॥३९॥
अहं तु खलु ते वीर्यं प्रसुप्तं प्रतिबोधये। दीप्तैराहुतिभिः काले भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥४०॥
लक्ष्मणस्य हि तद्वाक्यं प्रतिपूज्य हितं शुभम्। राघवः सुहृदं स्निग्धमिदं वचनमब्रवीत् ॥४१॥
वाच्यं यदनुरक्तेन स्निग्धेन च हितेन च। सत्यविक्रमयुक्तेन तदुक्तं लक्ष्मण त्वया ॥४२॥
एष शोकः परित्यक्तः सर्वकार्यावसादकः। विक्रमेष्वप्रतिहतं तेजः प्रोत्साहयाम्यहम् ॥४३॥
शरत्कालं प्रतीक्षिष्ये स्थितोऽस्मि वचने तव। सुग्रीवस्य नदीनां च प्रसादमनुपालयन् ॥४४॥
उपकारेण वीरस्तु प्रतिकारेण युज्यते। अकृतज्ञोऽप्रतिकृतो हन्ति सत्ववतां मनः ॥४५॥

तदेव युक्तं प्रणिधाय लक्ष्मणः कृताञ्जलिस्तत्प्रतिपूज्य भाषितम्।
उवाच रामं स्वभिरामदर्शनं प्रदर्शयन्दर्शनमात्मनः शुभम् ॥४६॥
यथोक्तमेतत्तव सर्वमीप्सितं नरेन्द्र कर्ता नचिरात्तु वानरः।
शरत्प्रतीक्षः क्षमतामिमं भवाञ्जलप्रपातं रिपुनिग्रहे धृतः ॥४७॥

उद्योग करनेका निश्चय कीजिए, तभी आप परिवारके साथ राक्षसको अर्थात् रावणको मार सकेंगे ॥३७॥ आप पर्वत, वन और समुद्रके साथ इस पृथ्वीको भी उलट-पलट सकते हैं फिर रावण क्या है ? ॥३८॥ शरद् ऋतुको आने दीजिए, यह वर्षा ऋतु आ ही गई है। इसके बाद राज्य और परिवारके साथ रावणका वध कीजिएगा ॥३९॥ मैं भूले हुए आपके पराक्रमकी याद दिला रहा हूँ, जिस प्रकार भस्ममें छिपी आग आहुतिसे जगायी जाती है ॥४०॥ लक्ष्मणके हितकारी मंगल वचन सम्मानपूर्वक मानकर प्रिय मित्रसे रामचन्द्र इस प्रकार बोले ॥४१॥ अनुरागी, प्रिय और हितकारीको जो कहना चाहिए। लक्ष्मण सत्य पराक्रमी तुमने वही कहा है ॥४२॥ सब कार्योंको नष्ट करनेवाला शोक अब हमने छोड़ दिया। अब मैं पराक्रम सम्बन्धी अपने अप्रतिहत तेजका स्मरण करता हूँ ॥४३॥ मैं तुम्हारे वचनके अनुसार शरत्कालकी प्रतीक्षा करता हूँ। नदियों और सुग्रीवकी प्रसन्नता चाहता हूँ (नदियोंकी प्रसन्नताका अर्थ है उनका पार होनेके योग्य हो जाना) ॥४४॥ जिसका उपकार किया जाता है वह उपकारका बदला देता ही है अर्थात् प्रत्युपकार करता ही है। जो उपकारका बदला नहीं देता वह शास्त्रोंकी आज्ञाका उल्लंघन करता है ॥४५॥ रामचन्द्रका कहना ही उचित है। यह समझकर हाथ जोड़कर लक्ष्मणने रामचन्द्रकी बातोंकी प्रशंसा की और अपना सुंदर ज्ञान रामचन्द्रको बतलाते हुए वे उनसे बोले। रामचन्द्रको देखनेसे बड़ा हो आनन्द आता था ॥४६॥ नरेन्द्र, जैसा आपने कहा है, सुग्रीव अपने सब मनोरथोंको शीघ्र ही पूर्ण करेगा। अतएव यह बरसातका समय, शत्रुवधकी दृढ़ प्रतिज्ञा करनेवाले आपको बिताना ही पड़ेगा ॥४७॥ क्रोध हटाकर शरत्काल की प्रतीक्षा कीजिए। चार महाने मेरे साथ काटिए। सिंह-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नियम्य कोपं परिपाल्यतां शरत्क्षमस्व मासांश्चतुरो मया सह ।
वसाचलेऽस्मिन्मृगराजसेविते संवर्तयञ्शत्रुवधे समर्थः ॥४८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥२७॥

अष्टाविंशः सर्गः २८

स तदा वालिनं हत्वा सुग्रीवमभिषिच्य च । वसन्माल्यवतः पृष्ठे रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १ ॥
अयं स कालः संप्राप्तः समयोऽद्य जलागमः । संपश्य त्वं नभो मेघैः संवृतं गिरिसंनिभैः ॥ २ ॥
नवमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः । पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम् ॥ ३ ॥
शक्यमम्बरमारुह्य मेघसोपानपङ्क्तिभिः । कुटजार्जुनमालाभिरलंकर्तुं दिवाकरः ॥ ४ ॥
संध्यारागोत्थितैस्ताम्रैरन्तेष्वपि च पाण्डुभिः । स्निग्धैरभ्रपटच्छेदैर्बद्धव्रणमिवाम्बरम् ॥ ५ ॥
मन्दमारुतनिःश्वासं संध्याचन्दनरञ्जितम् । आपाण्डुजलदं भाति कामातुरमिवाम्बरम् ॥ ६ ॥
एषा घर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता । सीतेव शोकसंतप्ता मही बाष्पं विमुञ्चति ॥ ७ ॥
मेघोदरविनिर्मुक्ताः कर्पूरदलशीतलाः । शक्यमञ्जलिभिः पातुं वाताः केतकगन्धिनः ॥ ८ ॥
एष फुल्लार्जुनः शैलः केतकैरभिवासितः । सुग्रीव इव शान्तारिर्धाराभिरभिषिच्यते ॥ ९ ॥

सेवित इस पर्वतपर निवास कीजिए । यद्यपि आप सब समयमें शत्रुका वध कर सकते हैं फिर भी इस धर्मका पालन आपको करना ही चाहिए ॥४८॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका सत्ताईसवाँ सर्ग समाप्त ।

वालिको मारकर और सुग्रीवका अभिषेक कर माल्यवानपर्वत पर निवास करते हुए रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले ॥१॥ यह जल बरसनेका समय आ गया। पर्वतके समान मेघोंने आकाशको घेर लिया, तुम देखो ॥२॥ सूर्यकी किरणोंसे समुद्रका जल पीकर आकाश नौ महीने गर्भ धारण करता है और पुनः रसायन स्वरूप जल बरसाता है ॥३॥ मेघकी सीढ़ियोंसे आकाशपर चढ़कर कुटज अर्जुन आदिकी मालाएँ सूर्यको पहनायी जा सकती हैं ॥४॥ आकाश सन्ध्या रागसे युक्त, अतएव लाल और अन्त भागमें श्वेत मेघ रूपी वस्त्रके टुकड़ोंसे घाव पर पट्टी बाँधे हुए के समान मालूम पड़ता है ॥५॥ धीरे चलनेवाला वायु जिसका निश्वास है, संध्यारूपी चन्दन जिसने धारण किया है, थोड़ा पीला मेघ जिसमें वर्तमान है वह आकाश कामातुरके समान मालूम पड़ता है ॥६॥ धूपसे तपायी हुई और नए जलसे सींची गई यह पृथ्वी शोक-सन्तप्त सीताके समान बाष्प त्याग कर रही है ॥७॥ मेघके गर्भसे निकले हुए और कपूरके पत्तोंके समान शीतल, केतकी गन्धवाली वायु अंजलियोंसे पीने योग्य है ॥८॥ इस पर्वत पर अर्जुन वृक्ष फूला हुआ है और केतकसे सुवासित है । नष्टशत्रु सुग्रीवके समान यह पर्वत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मेघकृष्णाजिनधरा धारायज्ञोपवीतिनः । मारुतापूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः ॥१०॥
कशाभिरिव हैमीभिर्विद्युद्भिरभिताडितम् । अन्तस्तनितनिर्घोषं सवेदनमिवाम्बरम् ॥११॥
नीलमेघाश्रिता विद्युत्स्फुरन्ती प्रतिभाति मे । स्फुरन्ती रावणस्याङ्के वैदेहीव तपस्विनी ॥१२॥
इमास्ता मन्मथवतां हिताः प्रतिहता दिशः । अनुलिप्ता इव घनैर्नष्टग्रहनिशाकराः ॥१३॥
क्वचिद्वाष्पाभिसंरुद्धान्वर्षागमसमुत्सुकान् । कुटजान्पश्य सौमित्रे पुष्पिताग्गिरिसानुषु ॥
मम शोकाभिभूतस्य कामसंदीपनास्थितान् ॥१४॥

रजः प्रशान्तं स हिमोऽद्य वायुर्निदाघदोषप्रसराः प्रशान्ताः ।
स्थिता हि यात्रा वसुधाधिपानां प्रवासिनो यान्ति नरः स्वदेशान् ॥१५॥
संप्रस्थिता मानसवासलुब्धाः प्रियान्विताः संप्रति चक्रवाकाः ।
अभीक्ष्णवर्षोदकविक्षतेषु यानानि मार्गेषु न संपतन्ति ॥१६॥
क्वचित्प्रकाशं क्वचिदप्रकाशं नभः प्रकीर्णाम्बुधरं विभाति ।
क्वचित्क्वचित्पर्वतसंनिरुद्धं रूपं यथा शान्तमहार्णवस्य ॥ १७ ॥
व्यामिश्रितं सर्जकदम्बपुष्पैर्नवं जलं पर्वतधातुताम्रम् ।
मयूरकेकाभिरनुप्रयातं शैलापगाः शीघ्रतरं वहन्ति ॥१८॥
रसाकुलं षट्पदसंनिकाशं प्रभुज्यतेजम्बुफलं प्रकामम् ।
अनेकवर्णं पवनावधूतं भूमौ पतत्याम्रफलं विपक्वम् ॥१९॥

जल-धारासे अभिसिक्त हो रहा है ॥९॥ मेघरूपी कृष्ण मृगचर्मके धारण करनेवाले, जलधाराका यज्ञोपवीत धारण करनेवाले, वायुपूर्ण गुहावाले, इन पर्वतोंने मानों अध्ययन करना प्रारम्भ किया है ॥१०॥ विद्युतरूपी सोनेके कोड़ेसे पीटा गया और मेघके शब्दोंमें उसने आर्तनाद किया, अतएव आकाश किसी भीतरी पीड़ासे पीड़ित मालूम पड़ता है ॥११॥ नील मेघमें संयुक्त, चमकती हुई बिजली, रावणके अंकमें चमकनेवाली विचारी सीताके समान मालूम पड़ती है ॥१२॥ मेघोंसे दिशाएँ लीप दी गयी हैं। ग्रह, चन्द्रमा आदिका पता नहीं है। पूर्व पश्चिमका भेद नहीं मालूम होता। अतएव ये दिशाएँ कामियोंके लिए हितकारी हैं ॥१३॥ लक्ष्मण, पर्वत-शिखर पर फूले हुए कुटजोंको देखो। वर्षाके आगमनके लिए ये समुत्सुक हैं और वाष्पसे युक्त हैं। शोकपीड़ित मेरे कामको बढ़ानेवाले हैं ॥१४॥ धूल शान्त हो गयी। ठंढी हवा चलने लगी। गर्मीके जो दोष थे वे दूर हुए। राजाओंकी यात्रा रुक गयी। प्रवासी मनुष्य अपने-अपने घर लौटने लगे ॥१५॥ मानससरमें रहनेके लोभी चक्रवाकोंने अपनी स्त्रियोंके साथ प्रस्थान किया। अधिक वर्षाके कारण टूटे हुए मार्गोंमें रथोंका चलना बन्द हो गया ॥१६॥ आकाशमें मेघ चारो ओर बिखरे हुए हैं, जिससे कहीं प्रकाश और कहीं अप्रकाश मालूम पड़ता है, जिस प्रकार पर्वतोंसे रुके हुए शान्त समुद्रका रूप हो जाता है ॥१७॥ सर्ज और कदम्ब पुष्पोंसे मिश्रित, पर्वतकी धातुओंसे लाल, नए जलको नदियाँ शीघ्र बहा ले जाती हैं। जो जल मयूरके शब्दसे संयुक्त हुआ है ॥१८॥ रससे भरा हुआ, भँवरेके समान काला जामुनका फल खूब खाया जाता है। वायुसे गिराये

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विद्युत्पताकाः सबलाकमालाः शैलेन्द्रकूटाकृतिसंनिकाशाः ।
गर्जन्ति मेघाः समुदीर्णनादा मत्ता गजेन्द्रा इव संयुगस्थाः ॥२०॥
वर्षोदकाप्यायितशाद्वलानि प्रवृत्तनृत्तोत्सववर्हिणानि ।
वनानि निर्वृष्टबलाहकानि पश्यापराह्णेष्वधिकं विभान्ति ॥२१॥
समुद्वहन्तः सलिलातिभारं बलाकिनो वारिधरा नदन्तः ।
महत्सु शृंगेषु महीधराणां विश्रम्य विश्रम्य पुनः प्रयान्ति ॥२२॥
मेघाभिकामा परिसंपतन्ती संमोदिता भाति बलाकपंक्तिः ।
वातावधूता वरपौण्डरीकी लम्बेव माला रुचिराम्बरस्य ॥२३॥
बालेन्द्रगोपान्तरचित्रितेन विभाति भूमिर्नवशाद्वलेन ।
गात्रानुपृक्तेन शुकप्रभेण नारीव लाक्षोक्षितकम्बलेन ॥२४॥
निद्रा शनैः केशवमभ्युपैति द्रुतं नदी सागरमभ्युपैति ।
हृष्टा बलाका घनमभ्युपैति कान्ता सकामा प्रियमभ्युपैति ॥२५॥
जाता वनान्ताः शिखिसुप्रनृत्ता जाताः कदम्बाः सकदम्बशाखाः ।
जाता वृषा गोषु समानकामा जाता मही सस्यवनाभिरामा ॥२६॥
वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति ।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवंगमाः ॥२७॥

गए पक्के अनेक रंगके आमफल पृथ्वी पर गिर रहे हैं ॥१९॥ विद्युत् इनकी पताका है, बगलोंकी पंक्ति इनकी माला है। पर्वत शिखरके समान विशाल घोर गर्जन करनेवाले ये मेघ रणक्षेत्रके मतवाले हाथी के समान गर्ज रहे हैं ॥२०॥ वर्षाके जलसे जिसकी घास धो दी गयी है, जहाँ मोरोंका नाच प्रारम्भ हो गया है, मेघोंने पानी बरसा दिया है, वे वन दोपहरके बाद कैसे सुंदर मालूम होते हैं, देखो ॥२१॥ जलका बड़ा भारी भार ढोनेवाले और बगुलोंकी पंक्तिसे युक्त ये मेघ गरजते हुए, और पर्वतोंके शिखरोंपर विश्रामकर करके, आगे बढ़ते हैं ॥२२॥ मेघोंसे अनुराग रखनेवाली और आकाशमें चलनेवाली प्रसन्न वक-पंक्ति वायुसे उड़ाई श्वेत कमलकी लम्बी मालाके समान शोभती है। मानों वह आकाशकी माला ही हो ॥२३॥ इन्द्रगोपसे बीच बीचमें चित्रित नई घाससे पृथिवी उस स्त्रीके समान मालूम होती है, जिसने शुकके रंगका कम्बल शरीरपर धारण किया हो और वह कम्बल बीच बीचमें लाहके रंगसे रंगा गया हो ॥२४॥ विष्णुके पास निद्रा जाती है (चातुर्मास्यमें विष्णुके सोनेकी प्रसिद्धि है), नदी वेगसे समुद्रके पास जाती है, प्रसन्न होकर बकपंक्ति मेघोंके पास जाती है और कामिनी स्त्रियां प्रियके पास जाती हैं ॥२५॥ वनकी भूमिमें मयूरोंका नाच होने लगा। कदम्ब वृक्षकी शाखाओंमें कदम्बके फूल लग गए। बैल, गौओं के समान सकाम हुए और पृथिवी शस्योंसे रमणीय हुई ॥२६॥ नदियां बहती हैं, मेघ बरसते हैं, मतवाले हाथी गरजते हैं, वनकी भूमि शोभती है। प्रियावियोगी ध्यान करते हैं,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रहर्षिताः केतकिपुष्पगन्धमाघ्राय मत्ता वननिर्झरेषु ।
प्रपातशब्दाकुलिता गणेन्द्राः सार्धं मयूरैः समदा नदन्ति ॥२८॥
धारानिपातैरभिहन्यमानाः कदम्बशाखासु विलम्बमानाः ।
क्षणार्जितं पुष्परसावगाढं शनैर्मदं षट्चरणास्त्यजन्ति ॥२९॥
अङ्गारचूर्णोत्करसंनिकाशैः फलैः सुपर्याप्तरसैः समृद्धैः ।
जम्बूद्रुमाणां प्रविभान्ति शाखा निपीयमाना इव षट्पदौघैः ॥३०॥
तडित्पताकाभिरलंकृतानामुदीर्णगम्भीरमहारवाणाम् ।
विभान्ति रूपाणि बलाहकानां रणोत्सुकानामिव वानराणाम् ॥३१॥
मार्गानुगः शैलवनानुसारी संप्रस्थितो मेघरवं निशम्य ।
युद्धाभिकामः प्रतिनादशङ्की मत्तो गजेन्द्रः प्रतिसंनिवृत्तः ॥३२॥
क्वचित्प्रगीता इव षट्पदौघैः क्वचित्प्रनृत्ता इव नीलकण्ठैः ।
क्वचित्प्रमत्ता इव वारणेन्द्रैर्विभान्त्यनेकाश्रयिणो वनान्ताः ॥३३॥
कदम्बसर्जार्जुनकन्दलाढ्या वनान्तभूमिर्मधुवारिपूर्णा ।
मयूरमत्ताभिरुतप्रनृत्तैरापानभूमिप्रतिमा विभाति ॥३४॥
मुक्तासमाभं सलिलं पतद्भै सुनिर्मलं पत्रपुटेषु लग्नम् ।
हृष्टा विवर्णच्छदना विहंगाः सुरेन्द्रदत्तं तृषिताः पिबन्ति ॥३५॥
षट्पादतन्त्रीमधुराभिधानं प्लवंगमोदीरितकण्ठतालम् ।
आविष्कृतं मेघमृदङ्गनादैर्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम् ॥३६॥

मयूर नाचते हैं और वानर प्रसन्न होते हैं ॥२७॥ केतकी पुष्पकी गन्ध सूंघकर हर्षित, झरनेके शब्द सुननेसे चंचलचित्त मतवाले हाथी झरनेके पास मयूरोंके साथ गरज रहे हैं ॥२८॥ धाराके गिरनेसे आहत, कदम्बकी शाखामें लटकनेवाले भ्रमर पुष्परसके पीनेसे उसी समय उत्पन्न मदका त्याग कर रहे हैं ॥२९॥ कोयलेके चूर्णके समान काले रसभरे अधिक फलोंके कारण जामुन वृक्षकी शाखा ऐसी मालूम होती है, कि मानों भ्रमर लिपट कर उसे पी रहे हों ॥३०॥ बिजली-रूपी पताकासे अलंकृत, दूर तक फैलनेवाला, गम्भीर शब्द करनेवाले मेघोंका रूप युद्धोत्सुक वानरोंके समान मालूम होता है ॥३१॥ पर्वतके वनमें भ्रमण करनेवाला और युद्धकी इच्छासे मार्गमें जाता हुआ मतवाला हाथी मेघका शब्द सुनकर पीछे लौट पड़ा । उसे दूसरे हाथीके शब्दका भ्रम हो गया ॥३२॥ वनकी भूमि अनेक प्रकारकी हो गयी। भ्रमरोंके समूहोंसे कहीं गाती हुई, मयूरोंके द्वारा कहीं नाचती हुई और मतवाले हाथियोंके द्वारा प्रमत्तके समान मालूम होती थी ॥३३॥ कदम्ब, सर्ज, अर्जुन और स्थलकमलसे युक्त मीठे जलसे परिपूर्ण यह वनभूमि मयूरके मत्तशब्द और नृत्यसे मद्यपानकी भूमिके समान हो गयी है ॥३४॥ इन्द्रका दिया हुआ गिरनेवाला और पत्तोंमें लगा हुआ, मोतीके समान निर्मल जल, प्रसन्न बिखरे पंखोंवाले प्यासे पक्षी पी रहे हैं ॥३५॥ मालूम होता है कि वनमें संगीत होता हो । भ्रमरोंका शब्द सितारके गानेके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्वचित्प्रनृत्तैः क्वचिदुन्नदद्भिः क्वचिच्च वृक्षाग्रनिषण्णकायैः ।
व्यालम्बबर्हाभरणैर्मयूरैर्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम् ॥३७॥
स्वनैर्घनानां प्लवगाः प्रबुद्धा विहाय निद्रां चिरसंनिरुद्धाम् ।
अनेकरूपाकृतिवर्णनादा नवाम्बुधाराभिहता नदन्ति ॥३८॥
नद्यः समुद्वाहितचक्रवाकास्तटानि शीर्णान्यपवाहयित्वा ।
दृष्ट्वा नवप्रावृतपूर्णभोगाद्दतं स्वभर्तारमुपोपयन्ति ॥३९॥
नीलेषु नीला नववारिपूर्णा मेघेषु मेघाः प्रतिभान्ति सक्ताः ।
दवाग्निदग्धेषु दवाग्निदग्धाः शैलेषु शैला इव बद्धमूलाः ॥४०॥
प्रमत्तसंनादितबर्हिणानि सशक्रगोपाकुलशाद्वलानि ।
चरन्ति नीपार्जुनवासितानि गजाः सुरम्याणि वनान्तराणि ॥४१॥
नवाम्बुधाराहतकेसराणि ध्रुवं परिष्वज्य सरोरुहाणि ।
कदम्बपुष्पाणि सकेसराणि नवानि हृष्टा भ्रमराः पिवन्ति ॥४२॥
मत्ता गजेन्द्रा मुदिता गवेन्द्रा वनेषु विक्रान्ततरा मृगेन्द्राः ।
रम्या नगेन्द्रा निभृता नरेन्द्राः प्रक्रीडितो वारिधरैः सुरेन्द्रः ॥४३॥
मेघाः समुद्धूतसमुद्रनादा महाजलौघैर्गगनावलम्बाः ।
नदीस्तटाकानि सरांसि वापीर्महीं च कृत्स्नामपवाहयन्ति ॥४४॥

समान है, मेढ़कोंका शब्द करतल है । मेघका गर्जन मृदंगका शब्द है । इस प्रकार वनमें मानों संगीत हो रहा है ॥३६॥ कहीं नाच रहे हैं, कहीं बोल रहे हैं और कहीं वृक्षोंकी शाखा पर बैठे हुए हैं । अतएव लम्बे बर्ह (मयूरकी चोटी) वाले मयूरोंके द्वारा संगीत प्रारम्भ हुआ सा मालूम पड़ता है ॥३७॥ बहुत देरसे सोए हुए वानर, मेघोंके शब्दसे उठे । अनेक रूप, अनेक आकार, अनेक वर्ण और अनेक प्रकारके शब्द-वाले वे वानर जलधारासे आहत होकर बोल रहे हैं ॥३८॥ नदियोंने चक्रवाकको अपनेमें ले लिया है । टूटे हुए तीरको बहा दिया है । नए पाए हुए पुष्पादि उपहारोंसे जिनका भोग पूर्ण हो गया है वे नदियाँ गर्वित होकर अपने पति समुद्रके पास शीघ्रतापूर्वक जा रही हैं ॥३९॥ नीले मेघोंमें जलपूर्ण नीले मेघ मिलकर शोभित होते हैं, दावाग्निसे जले हुए पर्वतोंमें मिलनेसे मेघ दावाग्निदग्ध पर्वतके समान मालूम पड़ते हैं ॥४०॥ जिसमें मतवाले मयूर बोल रहे हैं, इन्द्रगोपसे युक्त घास है, नीप और अर्जुन वृक्षसे जो सुवासित हुई है ऐसी रमणीय वनभूमिमें मतवाले हाथी विचर रहे हैं ॥४१॥ नवीन जलधारासे जिनके केशर आहत हुए हैं, ऐसे कमल पुष्पोंको छोड़कर, भ्रमर केशरयुक्त नए कदम्ब पुष्पोंका पान करते हैं ॥४२॥ गजेन्द्र मस्त हैं, बैल प्रसन्न हैं, मृगेन्द्र वनमें पराक्रमी हैं, नगेन्द्र (पर्वत) शोभित हैं, नरेन्द्र चुप हैं, सुरेन्द्र जलधारासे क्रीड़ा कर रहे हैं ॥४३॥ आकाशमें लटकनेवाले मेघोंने समुद्रके शब्दको तिरस्कृत कर दिया है और जलके प्रवाहसे नदी तालाब सर वापी और समस्त पृथिवीको भर रहे हैं ॥४४॥ अति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वर्षप्रवेगा विपुलाः पतन्ति प्रवान्ति वाताः समुदीर्णवेगाः ।
प्रनष्टकूलाः प्रवहन्ति शीघ्रं नद्यो जलं विप्रतिपन्नमार्गाः ॥४५॥
नरैर्नरेन्द्रा इव पर्वतेन्द्राः सुरेन्द्रनीतैः पवनोपनीतैः ।
घनाम्बुकुम्भैरभिषिच्यमाना रूपं श्रियं स्वामिव दर्शयन्ति ॥४६॥
घनोपगूढं गगनं न तारा न भास्करो दर्शनमभ्युपैति ।
नवैर्जलौघैर्धरणी वितृप्ता तमोविलिप्ता न दिशः प्रकाशाः ॥४७॥
महान्ति कूटानि महीधराणां धाराविधौतान्यधिकं विभान्ति ।
महाप्रमाणैर्विपुलैः प्रपातैर्मुक्ताकलापैरिव लम्बमानैः ॥४८॥
शैलोपलप्रस्खलमानवेगाः शैलोत्तमानां विपुलाः प्रपाताः ।
गुहासु संनादितबर्हिणासु हारा विकीर्यन्त इवावभान्ति ॥४९॥
शीघ्रं प्रवेगा विपुलाः प्रपाता निर्धौतशृङ्गोपतला गिरीणाम् ।
मुक्ताकलापप्रतिमाः पतन्तो महागुहोत्सङ्गतलैर्धियन्ते ॥५०॥
सुरतामर्दविच्छिन्नाः स्वर्गस्त्रीहारमौक्तिकाः । पतन्ति चातुला दिक्षु तोयधाराः समन्ततः ॥५१॥
विलीयमानैर्विहगैर्निमीलद्भिश्च पङ्कजैः । विकसन्त्या च मालत्या गतोऽस्तं ज्ञायते रविः॥५२॥
वृत्ता यात्रा नरेन्द्राणां सेना पथ्येव वर्तते । वैराणि चैव मार्गाश्च सलिलेन समीकृताः ॥५३॥
मासि प्रौष्ठपदे ब्रह्म ब्राह्मणानां विवक्षताम् । अयमध्यायसमयः सामगानामुपस्थितः ॥५४॥

वेगसे गिरंतर पानी बरस रहा है, बड़े वेगसे हवा चल रही हैं । तटोंको तोड़कर और नियत मार्ग छोड़ कर नदियां शीघ्रतापूर्वक बह रही हैं ॥४५॥ मनुष्योंके द्वारा लाए हुए जलसे राजाके समान इन्द्रसे प्रेरित पवनसे लाए हुए मेघरूपी घड़ोंसे अभिषिक्त होनेवाले पर्वत अपना रूप और अपनी शोभा दिखा रहे हैं ॥४६॥ आकाश मेघोंसे ढँक गया है । तारा या सूर्यका दर्शन नहीं हो रहा है । नवीन जलसे पृथिवी तृप्त हो गयी है । अन्धकारसे लिपी हुई दिशाएँ साफ नहीं मालूम पड़तीं ॥४७॥ बहुत बड़े-बड़े अनेक मोतियोंके समूहके समान नीचे गिरनेवाले, झरनोंकी धारासे धोए हुए बड़े-बड़े पर्वतोंके शिखर बहुत सुन्दर मालूम पड़ते हैं ॥४८॥ पर्वतके पत्थरोंपर टकरानेसे जिनका वेग कम हो गया है, ऐसे अनेक झरने, मयूरके शब्दोंसे जो गूंज रही है ऐसी पर्वतोंकी गुहाओंमें, टूटे हारके समान फैल रहे हैं ॥४९॥ बड़े वेगवान् अनेक शिखरके पासके स्थानको धोनेवाले, मुक्ता-समूहके समान, गिरते हुए पर्वतोंके झरने, बड़ी गुहाओंके गोदमें धारण किए जाते हैं ॥५०॥ स्वर्गकी स्त्रियोंके विहारमें झटकेसे टूटा हुआ, मौक्तिक हारके समान वारिधारा चारों ओर गिरती है ॥५१॥ पक्षियोंके दिखायी न पड़नेसे, कमलोंके बन्द हो जानेसे और मालतीके विखरित हो जानेसे सूर्यका अस्त होना जाना जाता है ॥५२॥ राजाओंकी यात्रा समाप्त हो गयी, सेना रास्तेमें पड़ी है, वैर और रास्ता दोनोंको जलने बराबर कर दिया ॥५३॥ भाद्र महीनेमें वेद पढ़नेवाले साम ब्राह्मणोंके लिए यह अध्यायका समय है, अर्थात् उपाकरण-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निवृत्तकर्मायतनो नूनं संचितसञ्चयः । आषाढ़ीमभ्युपगतो भरतः कोशलाधिपः ॥५५॥
नूनमापूर्यमाणायाः सरय्वा वर्धते रयः । मां समीक्ष्य समायान्तमयोध्याया इव स्वनः॥५६॥
इमाः स्फीतगुणा वर्षाः सुग्रीवः सुखमश्नुते । विजितारिः सदारश्च राज्ये महति च स्थितः॥५७॥
अहं तु हृतदारश्च राज्याच्च महतश्च्युतः । नदीकूलमिव क्लिन्नमवसीदामि लक्ष्मण ॥५८॥
शोकश्च मम विस्तीर्णो वर्षाश्च भृशदुर्गमाः । रावणश्च महाञ्छत्रुरपारः प्रतिभाति मे ॥५९॥
अथात्रां चैव दृष्ट्वेमां मार्गांश्च भृशदुर्गमान् । प्रणते चैव सुग्रीवे न मया किंचिदीरितम् ॥६०॥
अपि चातिपरिक्लिष्टं चिरादारैः समागतम् । आत्मकार्यगरीयस्त्वाद्वक्तुं नेच्छामि वानरम्॥६१॥
स्वयमेव हि विश्रम्य ज्ञात्वा कालमुपागतम् । उपकारं च सुग्रीवो वेत्स्यते नात्र संशयः ॥६२॥
तस्मात्कालप्रतीक्षोऽहं स्थितोऽस्मि शुभलक्षण । सुग्रीवस्य नदीनां च प्रसादमभिकाङ्क्षयन ॥६३
उपकारेण वीरो हि प्रतीकारेण युज्यते । अकृतज्ञोऽप्रतिकृतो हन्ति सत्त्ववतां मनः ॥६४॥

अथैवमुक्तः प्रणिधाय लक्ष्मणः कृताञ्जलिस्तत्प्रतिपूज्य भाषितम् ।
उवाच रामं स्वभिरामदर्शनं प्रदर्शयन्दर्शनमात्मनः शुभम् ॥६५॥
यदुक्तमेतत्तव सर्वमीप्सितं नरेन्द्र कर्ता न चिराद्धरीश्वरः ।
शरत्प्रतीक्षः क्षमतामिदं भवाञ्जलप्रपातं रिपुनिग्रहे धृतः ॥६६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डेऽष्टाविंशः सर्गः ॥२८॥

काल है । सामवेदका प्रारम्भ भादोंके महीनेमें होता है ॥५४॥ घरके छाने आदिका कर्म जिसने समाप्त कर दिया है, चार महीनेका उपयोगी सामानोंका संग्रह जिसने कर लिया है, उस कौशल के राजा भरतने आषाढ़ी पूर्णिमाको किसी व्रतका अवश्यही संकल्प किया होगा ॥५५॥ भरी हुई सरयूका वेग इस समय बढ़ रहा होगा, जिस प्रकार आते हुए मुझे देखकर अयोध्यामें शब्द बढ़ेगा ॥५६॥ अनेक गुणोंवाली यह वर्षा ऋतु है । शत्रुको जीतकर स्त्री और राज्य पाकर सुग्रीव सुख कर रहा है॥५७॥ मेरी तो स्त्री हरी गई, बड़े राज्यसे मैं निर्वासित हुआ, लक्ष्मण टूटे हुए नदीके तीरके समान इस समय मैं कष्ट पा रहा हूँ ॥५८॥ मेरा शोक बढ़ा हुआ है और वर्षाके हटानेका कोई उपाय नहीं । रावण बड़ा भारी शत्रु है अतएव मेरा यह शोक अपार मालूम पड़ता है ॥५९॥ मार्ग दुर्गम है, यात्रा करनेका समय नहीं है, इसीलिए सुग्रीवके अधीन होनेपर भी मैंने कुछ नहीं कहा ॥६०॥ बहुत कष्टोंके बाद, बहुत दिनोंपर सुग्रीव स्त्रीसे मिला है और हमारा कार्य बहुत दिनोंमें सिद्ध होने वाला है, अतएव मैं इस समय सुग्रीवसे कुछ कहना नहीं चाहता ॥६१॥ विश्राम करके समय आनेपर सुग्रीव स्वयं हमारे उपकारोंको समझेगा, इसमें सन्देह नहीं ॥६२॥ हे शुभलक्षण, इस कारण कालकी प्रतीक्षा करता हुआ मैं ठहरा हूँ । नदियों और सुग्रीवकी मैं प्रसन्नता चाहता हूँ ॥६३॥ वीर उपकारका बदला अवश्य देता है, जो अकृतज्ञ होता है वह उपकारके बदले प्रत्युपकार नहीं करता । वह शास्त्रकी आज्ञाका उल्लंघन करता है ॥६४॥ रामके द्वारा ऐसा कहे जाने पर लक्ष्मणने हाथ जोड़कर उनकी बातें स्वीकार कीं और अपना मत बतलानेके लिए रामचन्द्रसे

Jangamwadi Math, Varanasi
Acc No. 1999
CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकोनत्रिंशः सर्गः २९

समीक्ष्य विमलं व्योम गतविद्युद्बलाहकम् । सारसाकुलसंघुष्टं रम्यज्योत्स्नानुलेपनम् ॥ १ ॥
समृद्धार्थं च सुग्रीवं मन्दधर्मार्थसंग्रहम् । अत्यर्थं चासतां मार्गमेकान्तगतमानसम् ॥ २ ॥
निवृत्तकार्यं सिद्धार्थं प्रमदाभिरतं सदा । प्राप्तवन्तमभिप्रेतान्सर्वानेव मनोरथान् ॥ ३ ॥
स्वां च पत्नीमभिप्रेतां तारां चापि समीप्सिताम्। विहरन्तमहोरात्रं कृतार्थं विगतज्वरम् ॥ ४ ॥
क्रीडन्तमिव देवेशं गन्धर्वाप्सरसां गणैः । मन्त्रिषु न्यस्तकार्यं च मन्त्रिणामनवेक्षकम् ॥ ५ ॥
उच्छिन्नराज्यसंदेहं कामवृत्तमिव स्थितम् । निश्चितार्थोऽर्थतत्त्वज्ञः कालधर्मविशेषवित् ॥ ६ ॥
प्रसाद्य वाक्यैर्विविधैर्हेतुमद्भिर्मनोरमैः । वाक्यविद्वाक्यतत्त्वज्ञं हरीशं मारुतात्मजः ॥ ७ ॥
हितं तथ्यं च पथ्यं च सामधर्मार्थनीतिमत् । प्रणयप्रीतिसंयुक्तं विश्वासकृतनिश्चयम् ॥ ८ ॥
हरीश्वरमुपागम्य हनूमान्वाक्यमब्रवीत् । राज्यं प्राप्तं यशश्चैव कौली श्रीरभिवर्धिता ॥ ९ ॥
मित्राणां संग्रहः शेषस्तद्भवान्कर्तुमर्हति । यो हि मित्रेषु कालज्ञः सततं साधु वर्तते ॥१०॥

वे बोले ॥६५॥ नरेन्द्र, जो आपने कहा है वह सब आपका अभीष्ट सुग्रीव शीघ्र करेगें । शरदकी प्रतीक्षा करते हुए शत्रुवधकी प्रतीज्ञा करनेवाले आपको यह बरसातका समय बिताना ही पड़ेगा ॥६६॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका अट्ठारहवां सर्ग समाप्त ।

आकाश निर्मल हो गया है, विद्युत और वक-पंक्ति हट गयी है, सारसोंका दल आकाशमें बोलने लगा है, सुन्दर प्रकाश फैल गया है; यह देखकर तथा जिसका मनोरथ पूर्ण हो गया है, धर्म और अर्थके संग्रहमें जो शिथिल हो गया है, असज्जनोंके मार्गको जिसने अच्छी तरह ग्रहण किया है, काम भोगके योग्य एकान्त स्थानको जो बहुत अधिक पसन्द करता है, जिसका वालिवधरूप कार्य समाप्त हो चुका है, राज्य प्राप्त हो गया है, ईप्सित जिसके समस्त मनोरथ सिद्ध हो गए हैं, जो स्त्रियोंमें सदा अनुरक्त रहता है, अपनी प्रिय पत्नी और ईप्सित तारा जिसको प्राप्त हुई है, जो दिन रात विहार करता है, जिसके मनमें किसी प्रकारका दुःख नहीं है, गंधर्व और अप्सराओंके साथ क्रीड़ा करनेवाले इन्द्रके समान, जो सदा क्रीड़ा करता है, जिसने मंत्रियोंको कार्य भार दे रखा है, जो उनके कामोंको स्वयं नहीं देखता, जिसके राज्यके नियम नष्ट हो गए हैं, जो यथेच्छाचारीके समान रहता है, वैसे वाक्यतत्वोंको समझनेवाले वानरराज सुग्रीवको हेतुयुक्त सुन्दर अनेक वाक्योंसे प्रसन्न करके विषयको ठीक-ठीक समझनेवाले, कर्तव्यके विषयसे सन्देह-रहित, समयको अच्छी तरह समझनेवाले, वायु-पुत्र हनुमान हितकारी, सत्य और उपकारी, साम, धर्म और नीतिसे युक्त ,नम्रता और प्रेम सहित, शास्त्रोंमें विश्वास करनेवालोंके निश्चित वचन सुग्रीवके पास जाकर बोले, आपने राज्य और यश पाया, कुलक्रमसे आयी हुई लक्ष्मीको बढ़ाया ॥१,२,३,४,५,६,७,८,९॥ पर मित्रोंका कार्य अभी बाकी है, उसे आप करें ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्य राज्यं च कीर्तिश्च प्रतापश्चापि वर्धते । यस्य कोशश्च दण्डश्च मित्राण्यात्मा च भूमिप ॥
समान्येतानि सर्वाणि स राज्यं महदश्नुते ॥११॥
तद्भवान्वृत्तसंपन्नः स्थितः पथि निरत्यये । मित्रार्थमभिनीतार्थं यथावत्कर्तुमर्हति ॥१२॥
संत्यज्य सर्वकर्माणि मित्रार्थे यो न वर्तते । संभ्रमाद्विकृतोत्साहः सोऽनर्थेनावरुध्यते ॥१३॥
यो हि कालव्यतीतेषु मित्रकार्येषु वर्तते । स कृत्वा महतोऽप्यर्थान्न मित्रार्थेन युज्यते॥१४॥
तदिदं मित्रकार्यं नः कालातीतमरिंदम । क्रियतां राघवस्यैतद्वैदेह्याः परिमार्गणम् ॥१५॥
न च कालमतीतं ते निवेदयति कालवित् । त्वरमाणोऽपि स प्राज्ञस्तव राजन्वशानुगः ॥१६॥
कुलस्य हेतुः स्फीतस्य दीर्घबन्धुश्च राघवः । अप्रमेयप्रभावश्च स्वयं चाप्रतिमो गुणैः ॥१७॥
तस्य त्वं कुरु वै कार्यं पूर्वं तेन कृतं तव । हरीश्वर कपिश्रेष्ठानाज्ञापयितुमर्हसि ॥१८॥
नहि तावद्भवेत्कालो व्यतीतश्चोदनादृते । चोदितस्य हि कार्यस्य भवेत्कालव्यतिक्रमः ॥१९॥
अकर्तुरपि कार्यस्य भवान्कर्ता हरीश्वर । किं पुनः प्रतिकर्तुस्ते राज्येन च वधेन च ॥२०॥
शक्तिमानतिविक्रान्तो वानरर्क्षगणेश्वर । कर्तुं दाशरथेः प्रीतिमाज्ञायां किं नु सज्जसे॥२१॥

अवसर जाननेवाले मित्रोके कार्यमें बहुत तत्पर रहते हैं। ॥१०॥ राजन्, जिसका, खजाना सेना, मित्र और अपना शरीर ये सब सामान समझे जाते हैं, अर्थात् इन सबका जहां परिपालन होता है वहां राज्य कीर्ति और प्रताप बढ़ते हैं ॥११॥ अतएव, सन्मार्गमें स्थित, चरित्रवान् आपको मित्रके कार्योंको अच्छी तरह सम्पन्न करना चाहिए ॥१२॥ जो सब कामोंको छोड़कर मित्रके कार्यके लिए आदरपूर्वक उद्योग नहीं करता है, उसका उत्साह नष्ट हो जाता है और वह अनर्थ पाता है ॥१३॥ समयके बीतनेपर जो मित्रके कार्यके लिए उद्योग करता है वह मित्रका बड़ा भारी कार्य करनेपर भी मित्रके लिए उसने कार्य किया है। ऐसा नहीं समझा जाता ॥१४॥ अतएव, शत्रुनाशन, हमलोगोंके मित्रके कार्यका भी समय बीत रहा है। रामचन्द्रके लिए 'सीता'का ढूँढ़ना हम लोगोंको प्रारम्भ करना चाहिए। वीर! हम लोगोंका यही कार्य है जिसके लिए समय बीत रहा है ॥१५॥ रामचन्द्र, काल जानते हैं, उन्हें जल्दी भी बहुत है; पर वे बुद्धिमान् हैं और तुम्हारे वशमें हैं, अतएव समय बीतनेकी बात उन्होंने तुमसे नहीं कहीं ॥१६॥ रामचन्द्र तुम्हारे बड़े कुलकी वृद्धिके हेतु हैं। बहुत दिनोंके लिए मित्र हैं, उनका प्रभाव अनुपम हैं, वे स्वयं भी गुणोंसे अतुलनीय हैं ॥१७॥ तुम अब उनका कार्य करो। उन्होंने तुम्हारा पहले कार्य किया हैं। हे वानरराज, अपने प्रधान वानरोंको आज्ञा दो ॥१८॥ जब तक रामचन्द्र हम लोगोंसे कुछ नहीं कहते, तब तक यदि हम लोग कार्य प्रारम्भ कर दें तो समय बीतना नहीं समझा जायगा। रामचन्द्रके कहने-पर समयका बीतना समझा जायगा ॥१९॥ वानर-राज, जिसने आपका कोई काम नहीं किया है उसका भी राज्य और धनके द्वारा आप उपकार कर सकते हैं। फिर जिसने आपका उपकार किया है उसके लिए क्या कहा जाय ॥२०॥ आप शक्तिमान् हैं, बड़े पराक्रमी हैं, फिर रामचन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कामं खलुः शरैः शक्तः सुरासुरमहोरगान् । वशे दाशरथिः कर्तुं त्वत्प्रतिज्ञामवेक्षते ॥२२॥
प्राणत्यागाविशङ्केन कृतं तेन महत्प्रियम् । तस्य मार्गाम वैदेहीं पृथिव्यामपि चाम्बरे ॥२३॥
देवदानवगन्धर्वा असुराः समरुद्गणाः । न च यक्षा भयं तस्य कुर्युः किमिव राक्षसाः ॥२४॥
तदेवं शक्तियुक्तस्य पूर्वं प्रतिकृतस्तथा । रामस्यार्हसि पिङ्गेश कर्तुं सर्वात्मना प्रियम्॥२५॥
नाधस्तादवनौ नाप्सु गतिर्नोपरि चाम्बरे । कस्यचित्सज्जतेऽस्माकं कपीश्वर तवाज्ञया ॥२६॥
तदाज्ञापय कः किं ते कुतो वापि व्यवस्यतु । हरयो ह्यप्रधृष्यास्ते सन्ति कोट्यग्रतोऽनघ ॥२७॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा काले साधु निरूपितम् । सुग्रीवः सत्त्वसंपन्नश्चकार मतिमुत्तमाम् ॥२८॥
संदिदेशातिमतिमान्नीलं नित्यकृतोद्यमम् । दिक्षु सर्वासु सर्वेषां सैन्यानामुपसंग्रहे ॥२९॥
यथा सेना समग्रा मे यूथपालाश्च सर्वशः । समागच्छन्त्यसंगेन सेनाग्रेण तथा कुरु ॥३०॥
ये त्वन्तपालाः प्लवगाः शीघ्रगा व्यवसायिनः । समानयन्तु ते शीघ्रं त्वरिताः शासनान्मम॥
स्वयं चानन्तरं कार्यं भवानेवानुपश्यतु ॥३१॥
त्रिपञ्चरात्रादूर्ध्वं यः प्राप्नुयादिह वानरः । तस्य प्राणान्तिको दण्डो नात्र कार्या विचारणा॥३२॥

वानरोंको आज्ञा देनेमें क्यों बिलम्ब करते हैं ॥२१॥ यद्यपि रामचन्द्र बाणोंके द्वारा देवता, राक्षस और रावणको अपने वशमें अनायास कर सकते हैं। फिर भी वे तुम्हारी प्रतिज्ञा देख रहे हैं। वे जानना चाहते हैं कि तुम प्रतिज्ञाका पालन करते हो कि नहीं ॥२२॥ वालि-वधके विषयमें किसी प्रकारकी शंका न करके रामचन्द्रने हम लोगोंका बड़ा उपकार किया है। हम लोगोंको भी चाहिए कि पृथिवी तथा आकाशमें भी सीताको ढूँढ़े ॥२३॥ देवता, दानव, गन्धर्व, असुर, वायु, गण और यक्ष युद्धमें उन रामचन्द्रको भयभीत नहीं कर सकते, फिर राक्षसोंकी क्या बात ॥२४॥ इस प्रकारके शक्तिमान् रामचन्द्रने पहले तुम्हारा उपकार किया है। हे कपिराज, उन रामचन्द्रका प्रिय आपको सब प्रकारसे करना चाहिए ॥२५॥ हे कपीश्वर आपकी, तथा हम लोगोंमेंके कई वानरोंकी गति पातालमें, पृथ्वीमें, जलमें और आकाशमें भी रुक नहीं सकती ॥२६॥ अतएव आप आज्ञा दें कि कौन आपकी किस आज्ञाका और कहाँसे पालन करे। करोड़से भी ऊपर आपके वानर हैं जो पराजित होनेके योग्य नहीं हैं ॥२७॥ हनुमानका ठीक समय पर कहा हुआ सुन्दर वचन सुनकर बलवान सुग्रीवने उस कार्यको सिद्ध करनेका निश्चय किया ॥२८॥ अत्यन्त बुद्धिमान सुग्रीवने सब दिशाओंमें वर्तमान सैनिकोंको एकत्र करनेके लिए सदा उद्योग में रत रहनेवाले नलको आज्ञा दी ॥२९॥ सेना-नायकोंके साथ मेरी समस्त सेना तथा यूथपाद अविलम्ब जिस प्रकार यहां आजांय वैसा तुम करो ॥३०॥ सीमा पर रहनेवाले शीघ्रगामी और उद्योगी वानर मेरी आज्ञासे शीघ्र यहाँ आवें। उनके आज्ञाका कार्य आप स्वयं निश्चित करें ॥३१॥ पन्द्रह दिनके भीतर जो वानर यहां उपस्थित नहीं होगा, उसको निश्चित प्राण दण्ड दिया जायगा और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हरींश्च वृद्धानुपयातु साङ्गदो भवान्ममाज्ञामधिकृत्य निश्चितम् ।
इति व्यवस्थां हरिपुंगवेश्वरो विधाय वेश्म प्रविवेश वीर्यवान् ॥३३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥२९॥

त्रिंशः सर्गः ३०

गृहं प्रविष्टे सुग्रीवे विमुक्ते गगने घनैः । वर्षरात्रे स्थितो रामः कामशोकाभिपीडितः ॥ १ ॥
पाण्डुरं गगनं दृष्ट्वा विमलं चन्द्रमण्डलम् । शारदीं रजनीं चैव दृष्ट्वा ज्योत्स्नानुलेपनम् ॥ २ ॥
कामवृत्तं च सुग्रीवं नष्टां च जनकात्मजाम् । दृष्ट्वा कालमतीतं च मुमोह परमातुरः ॥ ३ ॥
स तु संज्ञामुपागम्य मुहूर्तान्मतिमान्नृपः । मनःस्थामपि वैदेहीं चिन्तयामास राघवः ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा च विमलं व्योम गतविद्युद्बलाहकम् । सारसारवसंघुष्टं विललापार्तया गिरा ॥ ५ ॥
आसीनः पर्वतस्याग्रे हेमधातुविभूषिते । शारदं गगनं दृष्ट्वा जगाम मनसा प्रियाम् ॥ ६ ॥
सारसारावसंनादैः सारसारावनादिनी । याश्रमे रमते बाला साद्य मे रमते कथम् ॥ ७ ॥
पुष्पितांश्चासनान्दृष्ट्वा काञ्चनानिव निर्मलान् । कथं सा रमते बाला पश्यन्ती मामपश्यती ॥ ८ ॥

इस आज्ञा पर पुनः विचार न होगा ॥३२॥ मेरी आज्ञासे अंगदको लेकर बूढ़े वानरोंके पास आप स्वयं जांय । इस प्रकार आज्ञा देकर वानरराज सुग्रीव महलमें गया ॥३३॥

आदि काव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धा काण्डका उनतीसवां सर्ग समाप्त ।

सुग्रीवके घर जा बैठने पर एवं मेघोंसे आकाशके शून्य होने पर पर्वतपर चतुर्मास बितानेवाले रामचन्द्र, जानकीके पानेकी उत्कट इच्छा और उनके न पानेके दुःखसे अत्यन्त दुःखी हुए ॥१॥ आकाश स्वच्छ हो गया । चन्द्रमण्डल विमल हुआ । शरदकी रात्रिमें चांदनी छिटकी ॥ २ ॥ सुग्रीव काममें आसक्त हो गया । निश्चयका समय व्यतीत हो गया । यह देखकर और खोयी हुई सीताका स्मरणकर बहुत दुःखी हुए ओर बेहोश हो गए ॥३॥ थोड़ी देरमें बुद्धिमान् राजा राम होशमें आकर मनमें बसी हुई सीताका चिन्तन करने लगे ॥ ४ ॥ आकाश निर्मल हो गया है, विद्युत और बक-पंक्ति चली गयी हैं, सारस पक्षी बोल रहे हैं, यह देखकर रामचन्द्र दुःखी होकर विलाप करने लगे ॥ ५ ॥ सुवर्ण-भूषित पर्वतके शिखरपर बैठे हुए रामचन्द्र शरदकी रात्रिको देखकर मनही मन सीताके पास पहुँचे, अर्थात् उनकी चिन्ता करने लगे ॥ ६ ॥ सारसके समान बोलनेवाली बाला सीता, सारसके शब्दोंसे आश्रममें मेरे साथ क्रीड़ा करती थी । आज वह कैसे क्रीड़ा करती होगी ॥७॥ सोनेके समान चमकीले आसन वृक्षके फूलोंको देखकर और मुझको न देखकर वह सीता कैसे प्रसन्न होती होगी ॥८॥ जो मधुर बोलने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

या पुरा कलहंसानां कलेन कलभाषिणी । बुध्यते चारुसर्वाङ्गी साद्य मे रमते कथम् ॥ ९ ॥
निःस्वनं चक्रवाकानां निशम्य सहचारिणाम्। पुण्डरीकविशालाक्षी कथमेषा भविष्यति ॥ १० ॥
सरांसि सरितो वापीः काननानि वनानि च । तां विना मृगशावाक्षीं चरन्नाद्य सुखं लभे ॥ ११ ॥
अपि तां मद्वियोगाच्च सौकुमार्याच्च भामिनीम् । सुदूरं पीडयेत्कामः शरद्गुणनिरन्तरः ॥ १२ ॥
एवमादि नरश्रेष्ठो विललाप नृपात्मजः । विहंग इव सारङ्गः सलिलं त्रिदशेश्वरात् ॥ १३ ॥
ततश्चचार्य रम्येषु फलार्थी गिरिसानुषु । ददर्श पर्युपावृत्तो लक्ष्मीवांल्लक्ष्मणोऽग्रजम् ॥ १४ ॥
स चिन्तया दुःसहया परीतं विसंज्ञमेकं विजने मनस्वी ।
भ्रातुर्विषादात्त्वरितोऽतिदीनः समीक्ष्य सौमित्रिरुवाच दीनम् ॥ १५ ॥
किमार्य कामस्य वशंगतेन किमात्मपौरुष्यपराभवेन ।
अयं ह्रिया संह्रियते समाधिः किमत्र योगेन निवर्तते न ॥ १६ ॥
क्रियाभियोगं मनसः प्रसादं समाधियोगानुगतं च कालम् ।
सहायसामर्थ्यमदीनसत्त्वः स्वकर्महेतुं च कुरुष्व तात ॥ १७ ॥
न जानकी मानववंशनाथ त्वया सनाथा सुलभा परेण ।
न चाग्निचूडां ज्वलितामुपेत्य न दह्यते वीरवराह कश्चित् ॥ १८ ॥
सलक्षणं लक्ष्मणमप्रधृष्यं स्वभावजं वाक्यमुवाच रामः ।
हितं च पथ्यं च नयप्रसक्तं ससामधर्मार्थसमाहितं च ॥ १९ ॥

वाली और सर्वाङ्ग-सुन्दरी सीता कलहंसोंके शब्दसे उनको जान जाती थी, वह आज किस प्रकार क्रीड़ा करती होगी ॥९॥ स्त्रीके साथ चलनेवाले चक्रवाकोंके शब्द सुनकर कमल-विशालाक्षी सीता आज कैसे जीती होगी ॥१०॥ तालाब, नदी, वापी कानन और वनमें मैं घूमता हूँ, पर उस मृगनेत्राके बिना सुख नहीं पाता ॥११ मेरे वियोगसे तथा सुकुमारतासे शरत्कालमें बढ़ा हुआ काम उस सीताको बहुत अधिक पीड़ित करता होगा ॥१२॥ इन्द्रसे जल चाहता हुआ चातक जिस प्रकार बहुत विलाप करता है उसी प्रकार नर-श्रेष्ठ रामचन्द्रने बहुत विलाप किया ॥१३॥ रमणीय पर्वत शिखरपर फलके कष्टसे घूमकर आये हुए शोभायुक्त लक्ष्मणने अपने भाईको देखा, ॥१४॥ वे दुःसह चिन्तामें मग्न हैं, निर्जनमें, अकेले संज्ञाहीन पड़े हैं । भाईके दुःखसे अति दुखित लक्ष्मण रामचन्द्रको दुखी देखकर बोले, ॥१५॥ आर्य कामके अधीन होनेसे कौन लाभ होगा और अपने पराक्रमको भूल जानेसे क्या फल होगा ? शोकसे चित्तकी एकाग्रता नष्ट होती है । योगसे, चित्तकी एकाग्रतासे, क्या सब दुःख नष्ट नहीं होते ? ॥१६॥ शारीरिक क्रियाओंको कीजिए और प्रसन्न मन होकर धीरता और निश्चलताके साथ उद्योग कीजिए पराक्रम प्रकट करके, पुरुषार्थ वृद्धिके कारण-स्वरूप सहाय और सामर्थ्यको बढ़ानेका प्रयत्न कीजिए ॥१७॥ हे मनुकुलनाथ, आपकी जानकी दूसरेके अधीन नहीं हो सकती । जलती हुई आगके पास अगर आगके अतिरिक्त दूसरा कोई जाय तो वह जल ही जाता है ॥१८॥ लक्षणयुक्त युक्तियोंसे विचलित न होनेवाले लक्ष्मणसे रामचन्द्र बोले—जो तुमने कहा वह हितकारी, उचित और राजनीतियुक्त है । साम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निःसंशयं कार्यमवेक्षितव्यं क्रियाविशेषोऽप्यनुवर्तितव्यः ।
न तु प्रवृद्धस्य दुरासदस्य कुमार वीर्यस्य फलं च चिन्त्यम् ॥ २० ॥
अथ पद्मपलाशाक्षीं मैथिलीमनुचिन्तयन् । उवाच लक्ष्मणं रामो मुखेन परिशुष्यता ॥२१॥
तर्पयित्वा सहस्राक्षः सलिलेन वसुंधराम् । निवर्तयित्वा सस्यानि कृतकर्मा व्यवस्थितः॥२२॥
दीर्घगम्भीरनिर्घोषाः शैलद्रुमपुरोगमाः । विसृज्य सलिलं मेघाः परिशान्ता नृपात्मज ॥२३॥
नीलोत्पलदलश्यामाः श्यामीकृत्वा दिशो दश । विमदा इव मातङ्गाः शान्तवेगाः पयोधराः ॥२४॥
जलगर्भा महामेघाः कुटजार्जुनगन्धिनः । चरित्वा विरताः सौम्य वृष्टिवाताः समुद्यताः॥२५॥
घनानां वारणानां च मयूराणां च लक्ष्मण । नादः प्रस्रवणानां च प्रशान्तः सहसानघ ॥२६॥
अभिवृष्टा महामेघैर्निर्मलाश्चित्रसानवः । अनुलिप्ता इवाभान्ति गिरयश्चन्द्ररश्मिभिः ॥२७॥
शाखासु सप्तच्छदपादपानां प्रभासु तारार्कनिशाकराणाम् ।
लीलासु चैवोत्तमवारणानां श्रियं विभज्याद्य शरत्प्रवृत्ता ॥ २८ ॥
संप्रत्यनेकाश्रयचित्रशोभा लक्ष्मीः शरत्कालगुणोपपन्ना ।
सूर्यांशुहस्तप्रतिबोधितेषु पद्माकरेष्वभ्यधिकं विभाति ॥ २९ ॥
सप्तच्छदानां कुसुमोपगन्धी षट्पादवृन्दैरनुगीयमानः ।
मत्तद्विपानां पवनानुसारी दर्पं विनेष्यन्नधिकं विभाति ॥ ३० ॥

और धर्म अर्थसे भी युक्त है ॥१९॥ निःसन्देह कार्य करना चाहिए, कर्मयोगका भी अनुष्ठान करना चाहिए । कुमार, बढ़ेहुए बलवान कर्मके फलका भी विचार करना चाहिए ॥ २० ॥ कमलपत्राक्षी, सीताका ध्यान करते हुए रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले, उनका मुँह सूख रहा था ॥२१॥ इन्द्रने जलसे पृथ्वी-को तृप्त कर दिया । सस्योंको पका दिया । इस प्रकार उन्होंने अपना सब काम समाप्त कर दिया ॥२२॥ राजपुत्र, दूरतक फैलनेवाला और गम्भीर शब्द करनेवाले; वृक्ष और पर्वतोंके ऊपर चलनेवाले मेघ जल बरसा कर शान्त हो गए ॥२३॥ नीलकमलके समान श्याम मेघोंने दशों दिशाओंको श्याम बना दिया और मदहीन हाथीके समान शिथिल हो गए ॥२४॥ जलरूपी गर्भ धारण करनेवाले कुटज और अर्जुन-के गन्धसे युक्त अनेक जल बरसानेवाले वायु चारो ओर घूमकर अब शान्त हो गए ॥२५॥ मेघों, हाथियों, मयूरों और झरनोंका शब्द, हे लक्ष्मण, सहसा शान्त हो गया ॥२६॥ महामेघोंके जलसे धोए हुए अतएव निर्मल, चित्र विचित्र शिखरवाले पर्वत चन्द्रमाकी किरणोंसे लिपे हुएके समान मालूम पड़ते हैं ॥२७॥ सप्तच्छद वृक्षोंकी शाखाओंमें, तारा, सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंमें, तथा हाथियोंकी क्रीड़ा-में, शोभा बांटकर यह शरद ऋतु आयी है ॥२८॥ शरत्कालसे उत्पन्न शोभा यद्यपि अनेक वस्तुओंको शोभित कर रही है फिर भी सूर्यकी किरणोंसे विकसित कमलवनमें वह अधिक शोभित है ॥२९॥ सप्तच्छदके पुष्पोंकी गन्धसे युक्त, भ्रमरोंसे अनुगीयमान और वायुका अनुसरण करनेवाला, यह शरत्काल मतवाले हाथियोंका अहंकार दूर करता हुआ अधिक शोभता है ॥३०॥ बड़ी पाँखवाले, अपने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अभ्यागतैश्चारुविशालपक्षैः स्मरप्रियैः पद्मरजोवकीर्णैः ।
महानदीनां पुलिनोपयातैः क्रीडन्ति हंसाः सह चक्रवाकैः ॥ ३१ ॥
मदप्रगल्भेषु च वारणेषु गवां समूहेषु च दर्पितेषु ।
प्रसन्नतोयासु च निम्नगासु विभाति लक्ष्मीर्बहुधा विभक्ता ॥ ३२ ॥
नभः समीक्ष्याम्बुधरैर्विमुक्तं विमुक्तबर्हाभरणा वनेषु ।
प्रियास्वरक्ता विनिवृत्तशोभा गतोत्सवा ध्यानपरा मयूराः ॥ ३३ ॥
मनोज्ञगन्धैः प्रियकैरनल्पैः पुष्पाग्रभारावनताग्रशाखैः ।
सुवर्णगौरैर्नयनाभिरामैरुद्योतितानीव वनान्तराणि ॥ ३४ ॥
प्रियान्वितानां नलिनीप्रियाणां वनप्रियाणां कुसुमोद्धतानाम् ।
मदोत्कटानां मदलालसानां गजोत्तमानां गतयोऽद्य मन्दाः ॥ ३५ ॥
व्यक्तं नभः शस्त्रविधौतवर्णं कृशप्रवाहानि नदीजलानि ।
कह्लारशीताः पवनाः प्रवान्ति तमोविमुक्ताश्च दिशः प्रकाशाः ॥ ३६ ॥
सूर्यातपक्रामणनष्टपङ्का भूमिश्चिरोद्घाटितसान्द्ररेणुः ।
अन्योन्यवैरेण समायुतानामुद्योगकालोऽद्य नराधिपानाम् ॥ ३७ ॥
शरद्गुणाप्यायितरूपशोभाः प्रहर्षिताः पांसुसमुत्थिताङ्गाः ।
मदोत्कटाः संप्रति युद्धलुब्धा वृषा गवां मध्यगता नदन्ति ॥ ३८ ॥

घर आये हुए, कामी, कमलकी धूलसे भरे हुए, महानदीके तट पर आए हुए चक्रवाकोंके साथ हंस क्रीड़ा कर रहे हैं ॥३१॥ मतवाले हाथियोंमें गर्वित, बैलोंके समूहमें, स्वच्छ जलवाली नदियोंमें, शरत्की शोभा बहुत जगह बँट गयी है ॥३२॥ मेघोंसे त्यक्त आकाशको देखकर मयूरोंका हर्ष नष्ट हो गया। प्रियाओंके प्रति उनका अनुराग कम हो गया। बर्ह रूपी आभूषणका उनलोगोंने त्याग कर दिया; उनकी शोभा नष्ट हो गयी। वे अब वनमें रहकर ध्यान कर रहे हैं ॥३३॥ पुष्पके भारसे जिनकी शाखाओंके अग्रभाग नय गए हैं; सुन्दर गन्धवाले, सुवर्णके समान गौर, आँखोंके प्रिय अनेक असन वृक्षोंसे वनभूमि मानो प्रकाशित हो रही है ॥३४॥ प्रियाके साथ वर्तमान, कमल और वनसे प्रेम करनेवाले, सप्तच्छदके फूल सूँघनेवाले, मदके कारण उच्छृङ्खल बने हुए और मदसे प्रेम करनेवाले, हाथियोंका गमन इस समय मन्द हो गया है ॥३५॥ शानपर चढ़ी हुई तलवारके समान आकाशका वर्ण हो गया है; नदियाँ धीरे-धीरे बह रही हैं। वायु कमलसे सीत होकर बह रहा है। दिशाएँ अन्धकारके हटनेसे प्रकाशित हो गयी हैं ॥३६॥ सूर्य-तापके फैलनेसे पंक नष्ट हो गया है। भूमिने बहुत दिनों पर धूलि उत्पन्न की है। परस्पर वैर रखनेवाले, राजाओंके उद्योग करनेका यही समय है ॥३७॥ शरत्के कारण जिनके रूप और शोभाकी वृद्धि हुई है, जिनके शरीरमें धूलि लगी हुई है, वे मतवाले प्रसन्न और युद्ध करनेकी इच्छा रखनेवाले बैल गौओंके बीचमें नाद कर रहे हैं ॥३८॥ कामयुक्त, उत्कट

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समन्मथा तीव्रतरानुरागा कुलान्विता मन्दगतिः करेणूः ।
मदान्वितं संपरिवार्य यान्तं वनेषु भर्तारमनुप्रयाति ॥ ३९ ॥
त्यक्त्वा वराण्यात्मविभूषितानि वर्हाणि तीरोपगता नदीनाम् ।
निर्भर्त्स्यमाना इव सारसौघैः प्रयान्ति दीना विमना मयूराः ॥ ४० ॥
वित्रास्य कारण्डवचक्रवाकान्महारवैर्भिन्नकटा गजेन्द्राः ।
सरःसु बद्धाम्बुजभूषणेषु विक्षोभ्य विक्षोभ्य जलं पिबन्ति ॥ ४१ ॥
व्यपेतपंकासु सवालुकासु प्रसन्नतोयासु सगोकुलासु ।
ससारसारावविनादितासु नदीषु हंसा निपतन्ति हृष्टाः ॥ ४२ ॥
नदीघनप्रस्रवणोदकानामतिप्रवृद्धानिलबर्हिणानाम् ।
प्लवंगमानां च गतोत्सवानां ध्रुवं रवाः संप्रति संप्रनष्टाः ॥ ४३ ॥
अनेकवर्णाः सुविनष्टकाया नवोदितेष्वम्बुधरेषु नष्टाः ।
क्षुधार्दिता घोरविषा विलेभ्यश्चिरोषिता विप्रसरन्ति सर्पाः ॥ ४४ ॥
चञ्चच्चन्द्रकरस्पर्शहर्षोन्मीलितताराका । अहो रागवती संध्या जहातु स्वयमम्बरम् ॥४५॥
रात्रिः शशांकोदितसौम्यवक्त्रा तारागणोन्मीलितचारुनेत्रा ।
ज्योत्स्नांशुकप्रावरणा विभाति नारीव शुक्लांशुकसंवृतांगी ॥ ४६ ॥
विपक्वशालिप्रसवानि भुक्त्वा प्रहर्षिता सारसचारुपंक्तिः ।
नभः समाक्रामति शीघ्रवेगा वातावधूता ग्रथितेव माला ॥ ४७ ॥

अनुराग रखनेवाली, कुलवती, धीरे-धीरे चलनेवाली हथिनी, वनमें जाते हुए मतवाले पतिके साथ साथ, जा रही है ॥३९॥ अपने उत्तम आभूषण बर्हका त्याग करके नदी तीरपर आए हुए उदासीन मयूर सारसोंके तिरस्कारसे दुःखी होकर लौट रहे हैं ॥४०॥ मतवाले हाथी, अपने गर्जनसे कारण्डव, चक्रवाक आदिको डरवाकर विकसित कमलोंसे भूषित नदियोंका जल हिलोर कर पीते हैं ॥४१॥ पंकरहित वालुयुक्त प्रसन्नजलवाली नदियोंके तीरपर हंस प्रसन्न होकर आते हैं। वहाँ गौओंका समूह वर्तमान है और सारसोंके शब्दसे वह स्थान प्रतिध्वनित हो रहा है ॥४२॥ नदी, मेघ, झरने, जल बढ़े हुए वायु, मयूर और प्रसन्नता-रहित वानरोंका शब्द इस समय बन्द हो गया है ॥४३॥ अनेक वर्णवाले मेघके उदयसे मृतकप्रायः भूखसे पीड़ित, जहरीले साँप बिलमें बहुत दिनों तक रह कर अब बाहर निकल रहे हैं ॥४४॥ शोभमान चन्द्र-किरणोंके स्पर्शसे हर्षित, अतएव अल्पप्रकाश-विशिष्ट नक्षत्रोंवाली, यह सन्ध्या अद्भुत् रागवती (लाल रंगवाली अथवा अनुरागवाली) है, जो स्वयं अम्बर (आकाश या वस्त्र) का त्याग करती है ॥४५॥ उदित चन्द्रमा जिसका सुंदर मुँह है, तारा गण खुले नेत्र हैं, ज्योत्स्नांशुक (प्रकाशकी किरणोंको) जिसने धारण किया है, ऐसी यह रात्रि श्वेत लड़ी पहनी हुई स्त्रीके समान मालूम पड़ती है ॥४६॥ पके धानकी बालोंको खाकर प्रसन्न सारसोंकी पंक्ति बड़े बेगसे आकाशमें जाती

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुप्तैकहंसं कुमुदैरुपेतं महाह्रदस्थं सलिलं विभाति ।
घनैर्विमुक्तं निशि पूर्णचन्द्रं तारागणाकीर्णमिवान्तरिक्षम् ॥ ४८ ॥
प्रकीर्णहंसाकुलमेखलानां प्रबुद्धपद्मोत्पलमालिनीनाम् ।
वाप्युत्तमानामधिकाद्य लक्ष्मीर्वराङ्गनानामिव भूषितानाम् ॥ ४९ ॥
वेणुस्वरव्यञ्जिततूर्यमिश्रः प्रत्यूषकालेऽनिलसंप्रवृत्तः ।
संमूर्च्छितो गह्वरगोवृषाणामन्योन्यमापूरयतीव शब्दः ॥ ५० ॥
नवैर्नदीनां कुसुमप्रहासैर्व्याधूयमानैर्मृदुमारुतेन ।
धौतामलक्षौमपटप्रकाशैः कूलानि काशैरुपशोभितानि ॥ ५१ ॥
वनप्रचण्डा मधुपानशौण्डाः प्रियान्विताः षट्चरणाः प्रहृष्टाः ।
वनेषु मत्ताः पवनानुयात्रां कुर्वन्ति पद्मासनरेणुगौराः ॥ ५२ ॥
जलं प्रसन्नं कुसुमप्रहासं क्रौञ्चस्वनं शालिवनं विपक्वम् ।
मृदुश्च वायुर्विमलश्च चन्द्रः शंसन्ति वर्षव्यपनीतकालम् ॥ ५३ ॥
मीनोपसंदर्शितमेखलानां नदीवधूनां गतयोऽद्य मन्दाः ।
कान्तोपभुक्तालसगामिनीनां प्रभातकालेष्विव कामिनीनाम् ॥ ५४ ॥
सचक्रवाकानि सशैवलानि काशैर्दुकूलैरिव संवृतानि ।
सपत्ररेखाणि सरोचनानि वधूमुखानीव नदीमुखानि ॥ ५५ ॥

हैं, मानो हवासे उड़ाई गुँथी हुई माला हो ॥४७॥ बड़े तालाबका जल, जिसमें एक हंस शोभ रहा है और अनेक श्वेत कमल खिले हुए हैं, वह मेघ रहित पूर्ण चन्द्रमा तथा तारागणसे युक्त आकाशके समान मालूम होता है ॥४८॥ फैले हुए अंश, करधनीके समान मालूम होते हैं। विकसित कमलमालाके समान हो रहे हैं। ऐसी वापी भूषित सुन्दरी स्त्रियोंकी शोभा धारण करती है ॥४९॥ वंशी और वाद्यके साथ मिला हुआ, प्रातःकालमें वायुके द्वारा फैलाया हुआ गिरि-गह्वर और बैलोंका शब्द परस्पर एक दूसरेको बढ़ा रहा है॥५०॥ मन्द मारुतसे कंपाए हुए धौत श्वेत वस्त्रके तुल्य काँसोंसे, जो पुष्पके बहाने हँस रहे हैं, नदियोंके तीर पर शोभित हो रहे हैं ॥ ५१ ॥ वनमें घूमनेवाले पुष्परस पीनेसे मत्त प्रियाके साथ विचरण करनेवाले प्रमत्त भ्रमर, पद्म और असन पुष्पकी धूलिसे गौरवर्ण हुए वायुका अनुवर्तन कर रहे हैं ॥५२॥ जल प्रसन्न है, पुष्प रूपी हँसी प्रकाशित हुई है, क्रौंच बोल रहे हैं। धान पक गये हैं। कोमल वायु बह रही है। चन्द्रमा विमल हो गया। इन सबसे वर्षाके बीतनेकी सूचना होती है ॥५३॥ मछली-रूपी करधनीको जिन्होंने दिखलाया है, ऐसी नदी वधुओंकी गति आज मन्द हो गयी है, जिस प्रकार पतिके द्वारा उपभुक्त स्त्रियाँ प्रातःकाल धीरे-धीरे चलती हैं ॥५४॥ चक्रवाक, शैवाल तथा वस्त्ररूपी काससे युक्त नदीका मुहाना पत्र-रेखायुक्त और रोचनयुक्त स्त्री-मुखके समान मालूम होता है॥५५॥ बाण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रफुल्लबाणासनचित्रितेषु प्रहृष्टषट्पादनिकूजितेषु ।
गृहीतचापोद्यतदण्डचण्डः प्रचण्डचापोऽद्य वनेषु कामः ॥ ५६ ॥
लोकं सुतृप्त्या परितोपयित्वा नदीस्तटाकानि च पूरयित्वा ।
निष्पन्नसस्यां वसुधां च कृत्वा त्यक्त्वा नभस्तोयधराः प्रनष्टाः ॥ ५७ ॥
दर्शयन्ति शरन्नद्यः पुलिनानि शनैःशनैः । नवसंगमसव्रीडा जघनानीव योषितः ॥५८॥
प्रसन्नसलिलाः सौम्य कुरराभिविनादिताः । चक्रवाकगणाकीर्णा विभान्ति सलिलाशयाः ॥५९॥
अन्योन्यबद्धवैराणां जिगीषूणां नृपात्मज । उद्योगसमयः सौम्य पार्थिवानामुपस्थितः ॥६०॥
इयं सा प्रथमा यात्रा पार्थिवानां नृपात्मज । न च पश्यामि सुग्रीवमुद्योगं च तथाविधम् ॥६१॥
असनाः सप्तपर्णाश्च कोविदाराश्च पुष्पिताः । दृश्यन्ते बन्धुजीवाश्च श्यामाश्च गिरिसानुषु ॥६२॥
हंससारसचक्राह्वैः कुररैश्च समन्ततः । पुलिनान्यवकीर्णानि नदीनां पश्य लक्ष्मण ॥६३॥
चत्वारो वार्षिका मासा गता वर्षशतोपमाः । मम शोकाभितप्तस्य तथा सीतामपश्यतः ॥६४॥
चक्रवाकीव भर्तारं पृष्ठतोऽनुगता वनम् । विषमं दण्डकारण्यमुद्यानमिव चाङ्गना ॥६५॥
प्रियाविहीने दुःखार्ते हृतराज्ये विवासिते । कृपां न कुरुते राजा सुग्रीवो मयि लक्ष्मण ॥६६॥
अनाथो हृतराज्योऽयं रावणेन च धर्षितः । दीनो दूरगृहः कामी मां चैव शरणं गतः ॥६७॥
इत्येतैः कारणैः सौम्य सुग्रीवस्य दुरात्मनः । अहं वानरराजस्य परिभूतः परंतपः ॥६८॥

और असन वृक्षोंके पुष्पित होनेसे जो चित्रित हो गया है । प्रसन्न भ्रमर जिसमें गूँज रहे हैं उस वनमें विशाल धनुष धारण करनेवाला काम कामियोंको दण्ड देनेमें तीव्र क्रोधी हो रहा है ॥५६॥ सुन्दर वृष्टिसे संसार-को सन्तुष्ट करके, नदी तालाबको पूरा करके, पृथ्वीमें धान आदि उत्पन्न कराके, मेघ आकाशका त्याग करके नष्ट हो गये ॥५७॥ शरदकी नदियाँ धीरे-धीरे अपना तीर प्रकाशित कर रही हैं, जिस प्रकार नवसङ्गमके समय लज्जा रखनेवाली स्त्री जघन प्रकाशित करती है ॥५८॥ प्रसन्न जलवाले, कुररोंके शब्दसे प्रतिध्वनित, चक्रवाकोंसे युक्त जलाशय शोभित होते हैं ॥५९॥ राजपुत्र, परस्पर वैर रखनेवाले तथा अपनी विजय चाहनेवाले राजाओंका यही उद्योग काल है ॥६०॥ राजपुत्र, राजाओंकी यात्राका यही प्रधान समय है, पर सुग्रीवको नहीं देखता हूँ और न किसी प्रकारका उद्योग ही दीख पड़ता है ॥६१॥ असन, सप्तपर्ण, कोविदार पुष्पित हो गए हैं, बन्धुजीव और तमाल भी पुष्पित हो गए हैं, पर्वतके शिखर पर दीख पड़ते हैं ॥६२॥ लक्ष्मण ! देखो, हंस सारस चक्रवाक और कुरर इन सबसे नदियोंके तीर भर गए हैं ॥६३॥ शोकसे पीड़ित और सीतासे विरहित मुझे वर्षाके ये चार महीने सौ वर्षोंके समान मालूम पड़ते हैं ॥६४॥ सीता विषम दण्डकारण्य वनको उद्यान समझकर मेरे साथ चक्रवाकीके समान आयी थी ॥६५॥ लक्ष्मण, प्रियासे हीन, दुखार्त, हृतराज्य और निर्वासित मुझपर राजा सुग्रीव कृपा नहीं करते ॥६६॥ मैं अनाथ हूँ, मेरा राज्य छीन लिया गया है, रावणने मेरा तिरस्कार किया है, मैं दुखी हूँ, मेरा घर यहाँसे बहुत दूर है और मैं कामी हूँ तथा सुग्रीवकी शरण आया हूँ ॥६७॥ इन सब कारणोंसे अर्थात् ऐसी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स कालं परिसंख्याय सीतायाः परिमार्गणे । कृतार्थः समयं कृत्वा दुर्मतिर्नावबुद्ध्यते ॥६९॥
स किष्किन्धां प्रविश्य त्वं ब्रूहि वानरपुंगवम् । मूर्खं ग्राम्यसुखे सक्तं सुग्रीवं वचनान्मम ॥७०॥
अर्थिनामुपपन्नानां पूर्वं चाप्युपकारिणाम् । आशां संश्रुत्य यो हन्ति स लोके पुरुषाधमः ॥७१॥
शुभं वा यदि वा पापं यो हि वाक्यमुदीरितम् । सत्येन परिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः ॥७२॥
कृतार्था ह्यकृतार्थानां मित्राणां न भवन्ति ये । तान्मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते ॥७३॥
नूनं काञ्चनपृष्ठस्य विकृष्टस्य मया रणे । द्रष्टुमिच्छसि चापस्य रूपं विद्युद्गणोपमम् ॥७४॥
घोरं ज्यातलनिर्घोषं क्रुद्धस्य मम संयुगे । निर्घोषमिव वज्रस्य पुनः संश्रोतुमिच्छसि ॥७५॥
काममेवंगतेऽप्यस्य परिज्ञाते पराक्रमे । त्वत्सहायस्य मे वीर न चिन्ता स्यान्नृपात्मज ॥७६॥
यदर्थमयमारम्भः कृतः परपुरंजय । समयं नाभिजानाति कृतार्थः खगेश्वरः ॥७७॥
वर्षाः समयकालं तु प्रतिज्ञाय हरीश्वरः । व्यतीतांश्चतुरो मासान्विहरन्नावबुद्ध्यते ॥७८॥
सामात्यपरिषत्क्रीडन्पानमेवोपसेवते । शोकदीनेषु नास्मासु सुग्रीवः कुरुते दयाम् ॥७९॥
उच्यतां गच्छ सुग्रीवस्त्वया वीर महाबल । मम रोषस्य यद्रूपं ब्रूयाश्चैनमिदं वचः ॥८०॥
न स संकुचितः पन्था येन वाली हतो गतः । समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः ॥८१॥

बातें समझकर दुरात्मा वानर राज सुग्रीवने मेरा तिरस्कार किया है ॥६८॥ उसने सीताको ढूँढ़नेके लिए समय नियत किया था । जब उसका काम हो गया तब वह मूर्ख कुछ समझता नहीं । तुम किष्किन्धा जाकर वानरोंके राजा मूर्ख सुग्रीवसे जो स्त्री-सुखमें फँस गया है, मेरे वचन कहो ॥६९, ७०॥ आये हुए प्रार्थियोंको, तथा पहले उपकार करनेवालेको आशा पूर्ण करनेका विश्वास दिलाकर जो पराङ्मुख हो जाता है, वह नीच पुरुष है ॥७१॥ अच्छा या बुरा वह जो कुछ कह देता है, सत्यतापूर्वक उसका पालन करता है, वही पुरुष श्रेष्ठ वीर है ॥७२॥ अपना काम हो जाने पर अवशिष्टमनोरथ मित्रों-के काम जो नहीं करते उन कृतघ्नोंके मरनेपर राक्षस भी उन्हें नहीं खाते ॥७३॥ सोनेकी पीठवाले मेरे द्वारा चढ़ाए जानेवाले बाणका बिजलीके समान चमकनेवाला रूप क्या तुम देखना चाहते हो ? ॥७४॥ युद्धमें क्रोध करके खींचे गए धनुषका वज्रके समान भयानक शब्द क्या तुम पुनः सुनना चाहते हो ? ॥७५॥ राजपुत्र, वीर तुम जिसके सहायक हो ऐसे मेरे पराक्रमका ज्ञान सुग्रीवको तो हो गया है, फिर वह इतना निश्चिन्त क्यों है ? ॥७६॥ शत्रुविजयी लक्ष्मण ! जिसके लिए यह आरम्भ किया था, अर्थात् सुग्रीव-से मैत्री की था, सुग्रीव अपना कार्य सिद्ध होनेपर उस निश्चयको भूल गया ॥७७॥ वानरराज सुग्रीवने वर्षाकी समाप्ति पर सीताको ढूँढ़नेकी प्रतिज्ञा की थी, अब विहार करनेमें मस्त सुग्रीव बीते हुए इन चार महीनोंको नहीं जानता ॥७८॥ सचिव और सभाके सदस्योंके साथ क्रीड़ा करता हुआ वह मद्य पी रहा होगा । शोकसे पीड़ित हमलोगों पर सुग्रीव अब दया नहीं करता ॥७९॥ महाबल वीर, जाओ, सुग्रीवसे कहो, मेरे क्रोधका फल भी उसे बताओ ॥ ८० ॥ वह रास्ता बन्द नहीं हो गया है, जिस रास्ते मृत वालि गया है । सुग्रीव प्रतिज्ञाका पालन करो । वालिके रास्तेपर मत चलो ॥८१॥ मैंने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एक एव रणे वाली शरेण निहतो मया । त्वां तु सत्यादतिक्रान्तं हनिष्यामि सबान्धवम् ॥८२॥
यदेवं विहितं कार्यं यद्धितं पुरुषर्षभ । तत्तद्ब्रूहि नरश्रेष्ठ त्वरकालव्यतिक्रमः ॥८३॥
कुरुष्व सत्यं मम वानरेश्वर प्रतिश्रुतं धर्ममवेक्ष्य शाश्वतम् ।
मा वालिनं प्रेतगतो यमक्षये त्वमद्य पश्येर्मम चोदितः शरैः ॥८४॥
स पूर्वजं तीव्रविवृद्धकोपं लालप्यमानं प्रसमीक्ष्य दीनम् ।
चकार तीव्रां मतिमुग्रतेजा हरीश्वरे मानववंशवर्धनः ॥८५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ३१

स कामिनं दीनमदीनसत्त्वं शोकाभिपन्नं समुदीर्णकामम् ।
नरेन्द्रसूनुर्नरदेवपुत्रं रामानुजः पूर्वजमित्युवाच ॥ १ ॥
न वानरः स्थास्यति साधुवृत्ते न मन्यते कर्मफलानुषङ्गान् ।
न भोक्ष्यते वानरराज्यलक्ष्मीं तथा हि नातिक्रमतेऽस्य बुद्धिः ॥ २ ॥
मतिक्षयाद्ग्राम्यसुखेषु सक्तस्तव प्रसादात्प्रतिकारबुद्धिः ।
हतोऽग्रजं पश्यतु वीर वालिनं न राज्यमेवं विगुणस्य देयम् ॥ ३ ॥

अकेले वालिको ही बाणसे मारा है, पर प्रतिज्ञा त्याग करनेके कारण तुम्हें बन्धुओंके साथ मारूँगा ॥८२॥ पुरुषश्रेष्ठ, इस समयके लिए जो और उचित हो वह कहना और करना, शीघ्रतापूर्वक जिससे समय न बीत जाय ॥८३॥ वानरेश्वर, सनातनधर्मका विचार कर तुम अपनी प्रतिज्ञाका पालन करो। मेरे बाणोंसे पीड़ित होकर यमलोकमें वालिको मत देखो ॥८४॥ अपने बड़े भाईको अधिक कुपित देखकर दुखी और विलाप करते देखकर, सुग्रीवके प्रति उन्होंने तीव्रबुद्धि धारण की अर्थात् तीव्रतापूर्वक व्यवहार करनेका निश्चय किया ॥८४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका तीसवाँ सर्ग समाप्त ।

सीतावियोगसे पीड़ित, महापराक्रमी, पर उस समय दीन, सीताको देखनेके लिए व्याकुल बड़े भाई राजपुत्र रामचन्द्रसे, राजपुत्र लक्ष्मण इस प्रकार बोले ॥१॥ यह वानर सज्जनोंके मार्गपर स्थित नहीं रहेगा; क्योंकि इसका जो उपकार हम लोगोंने किया है उसको यह नहीं समझता। अतएव यह वानर राज्यलक्ष्मीका उपयोग न कर सकेगा; क्योंकि इसकी बुद्धि प्रेमपालन करनेमें समर्थ नहीं है ॥२॥ बुद्धि नष्ट होनेके कारण स्त्री-सुखमें आसक्त हो गया है। अब उपकारका बदला देनेकी इसकी बुद्धि नहीं है। अब यह भी मरे हुए अपने वीर भाई वालिको देखे। ऐसे गुणहीनको राज्य नहीं देना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न धारये कोपमुदीर्णवेगं निहन्मि सुग्रीवमसत्यमद्य ।
हरिप्रवीरैः सह वालिपुत्रो नरेन्द्रपुत्र्या विचयं करोतु ॥ ४ ॥
तमात्तबाणासनमुत्पतन्तं निवेदितार्थं रणचण्डकोपम् ।
उवाच रामः परवीरहन्ता स्वतीक्षितं सानुनयं च वाक्यम् ॥ ५ ॥
नहि वै त्वद्विधो लोके पापमेवं समाचरेत् । कोपमार्येण यो हन्ति स वीरः पुरुषोत्तमः ॥ ६ ॥
नेदमत्र त्वया ग्राह्यं साधुवृत्तेन लक्ष्मण । तां प्रीतिमनुवर्तस्व पूर्ववृत्तं च संगतम् ॥ ७ ॥
सामोपहितया वाचा रूक्षाणि परिवर्जयन् । वक्तुमर्हसि सुग्रीवं व्यतीतं कालपर्यये ॥ ८ ॥
सोऽग्रजेनानुशिष्टार्थो यथावत्पुरुषर्षभः । प्रतिवेश पुरीं वीरो लक्ष्मणः परवीरहा ॥ ९ ॥
ततः शुभमतिः प्राज्ञो भ्रातुः प्रियहिते रतः । लक्ष्मणः प्रतिसंरब्धो जगाम भवनं कपेः ॥१०॥
शक्रबाणासनप्रख्यं धनुः कालान्तकोपमम् । प्रगृह्य गिरिशृङ्गाभं मन्दरः सानुमानिव ॥११॥
यथोक्तकारी वचनमुत्तरं चैव सोत्तरम् । बृहस्पतिसमो बुद्ध्या मत्वा रामानुजस्तदा ॥१२॥
काम क्रोधसमुत्थेन भ्रातुः क्रोधाग्निना वृतः । प्रभञ्जन इवाप्रीतः प्रययौ लक्ष्मणस्ततः ॥१३॥
सालतालाश्वकर्णांश्च तरसा पातयन्बलात् । पर्यस्यन्गिरिकूटानि द्रुमानन्यांश्च वेगितः ॥१४॥
शिलाश्च शकलीकुर्वन्पद्भ्यां गज इवाशुगः । दूरमेकपदं त्यक्त्वा ययौ कार्यवशाद्वृतम् ॥१५॥
तामपश्यद्बलाकीर्णां हरिराजमहापुरीम् । दुर्गामिक्ष्वाकुशार्दूलः किष्किन्धां गिरिसंकटे ॥१६॥

चाहिए ॥३॥ मैं अपने बढ़े हुए क्रोधको रोक नहीं सकता। असत्यवादी सुग्रीवका वध अभी करता हूँ। वालिपुत्र अंगद प्रधान वानरोंके साथ सीताको ढूँढ़े ॥४॥ धनुष बाण लेकर वेगसे जाते हुए युद्ध-के लिए अत्यन्त क्रोधित लक्ष्मणसे रामचन्द्र नम्रतापूर्वक स्वयं निश्चित वचन बोले ॥५॥ तुम्हारे समान मनुष्यको ऐसा पाप नहीं करना चाहिए। कोपको विवेकसे जो शान्त करता है वही वीर पुरुषोत्तम कहा जाता है ॥ ६ ॥ लक्ष्मण, साधु चरित्रवाले तुमको सुग्रीवको मारनेकी बात नहीं सोचनी चाहिए। पहले जो मैत्री की है, उसका स्मरण करो ॥७॥ काल व्यतीत होनेके सम्बन्धमें कोमल वचनोंसे रुखाई दूरकर सुग्रीवसे तुम कहना ॥८॥ बड़े भाईके द्वारा यथावत् सब बातें समझकर शत्रुहन्ता वीर लक्ष्मण किष्किन्धापुरीमें गए ॥९॥ सुन्दर बुद्धिवाले, बुद्धिमान्, भाईका हित चाहनेवाले लक्ष्मण क्रोधपूर्वक सुग्रीवके घरमें गए ॥१०॥ इन्द्रके धनुषके समान यमराजसदृश धनुष लेकर लक्ष्मण, शिखरयुक्त मन्दराचल पर्वतके समान मालूम होने लगे ॥ ११ ॥ भाईकी आज्ञाके अनुसार काम करनेवाले, क्या कहना होगा, सुग्रीवका उत्तर और उसका उत्तर यह सब समझकर, बृहस्पतिके समान बुद्धिमान, सुग्रीवकी असावधानतासे उत्पन्न क्रोधाग्निसे जलते हुए, अप्रसन्न लक्ष्मण वायुके समान चले ॥ १२ ॥ ॥१३॥ वेगवान् लक्ष्मण पर्वतके बड़े-बड़े पत्थर तथा अन्य वृक्षोंको इधर-उधर फेंकते हुए चले और शाल, ताल, अश्व, कर्ण आदि वृक्षोंको बलपूर्वक तोड़ते हुए चले ॥ १४ ॥ शीघ्रगामी हाथीके समान, पैरोंसे पत्थरोंको चूर करते हुए और दूर-दूरपर पैर रखते हुए, कार्यके लिए शीघ्रतापूर्वक चले ॥१५॥ सेनासे घिरी हुई वानरराजकी वह महानगरी उन्होंने देखी। उस किष्किन्धा नगरीके चारो ओर कोट

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रोषात्प्रस्फुरमाणोष्ठः सुग्रीवं प्रति लक्ष्मणः । ददर्श वानरान्भीमान्किष्किन्धायां बहिश्चरान् ॥१७॥
तं दृष्ट्वा वानराः सर्वे लक्ष्मणं पुरुषर्षभम् । शैलशृङ्गाणि शतशः प्रवृद्धांश्च महीरुहान् ।
जगृहुः कुञ्जरप्रख्या वानराः पर्वतान्तरे ॥१८॥
तान्गृहीतमहरणान्सर्वान्दृष्ट्वा तु लक्ष्मणः । बभूव द्विगुणं क्रुद्धो वह्निन्धन इवानलः ॥१९॥
तं ते भयपरीताङ्गाः क्षुब्धं दृष्ट्वा प्लवंगमाः । कालमृत्युयुगान्ताभं शतशो विद्रुता दिशः ॥२०॥
ततः सुग्रीवभवनं प्रविश्य हरिपुङ्गवाः । क्रोधमागमनं चैव लक्ष्मणस्य न्यवेदयन् ॥२१॥
तारया सहितः कामी खलः कपिवृषस्तदा । न तेषां कपिसिंहानां शुश्राव वचनं तदा ॥२२॥
ततः सचिवसंदिष्टा हरयो रोमहर्षणाः । गिरिकुञ्जरमेघाभा नगरान्निर्ययुस्तदा ॥२३॥
नखदंष्ट्रायुधाः सर्वे वीरा विकृतदर्शनाः । सर्वे शार्दूलदंष्ट्राश्च सर्वे विवृतदर्शनाः ॥२४॥
दशनागबलाः केचित्केचिद्दशगुणोत्तराः । केचिन्नागसहस्रस्य बभूवुस्तुल्यवर्चसः ॥२५॥
ततस्तैः कपिभिर्व्याप्तां द्रुमहस्तैर्महाबलैः । अपश्यल्लक्ष्मणःक्रुद्धःकिष्किन्धांतां दुरासदाम् ॥२६॥
ततस्ते हरयः सर्वे प्राकारपरिखान्तरात् । निष्क्रम्योदग्रसत्त्वास्तु तस्थुराविष्कृतंतदा ॥२७॥
सुग्रीवस्य प्रमादं च पूर्वजस्यार्थमात्मवान् । दृष्ट्वा क्रोधवशं वीरः पुनरेव जगाम सः ॥२८॥
स दीर्घोष्णमहोच्छ्वासः कोपसंरक्तलोचनः । बभूव नरशार्दूलः सधूम इव पावकः ॥२९॥
बाणशल्यस्फुरज्जिह्वः सायकासनभोगवान् । स्वतेजोविषसंभूतः पश्चास्य इव पन्नगः ॥३०॥

बना हुआ था और वह पर्वतोंके बीचमें थी ॥१६॥ सुग्रीवके प्रति क्रोधके कारण उनके होंठ फरक रहे थे। उन्होंने भयानक वानरोंको किष्किन्धा नगरीके बाहर देखा ॥१७॥ पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणको देखकर वे वानर पर्वतशिखरपर, ऊँचे वृक्षोंपर तथा पर्वतके भीतर चले गये। वे हाथीके समान विशालशरीर थे ॥१॥ अस्त्र धारण किए अनेक वानरोंको देखकर लक्ष्मणका क्रोध और बढ़ा, जिस प्रकार अधिक लकड़ी पानेसे आग बढ़ती है ॥१९॥ भयभीत सैकड़ों वानर क्रुद्ध प्रलयकालीन मृत्युके समान लक्ष्मणको देखकर दिशाओंमें भाग गए ॥२०॥ अनन्तर कई वानरोंने सुग्रीवके घर जाकर लक्ष्मणका आना और उनका क्रोध बतलाया ॥२१॥ कामी कपिराज सुग्रीव उस समय ताराके साथ था, अतएव उसने उन प्रधान वानरोंकी बात उस समय न सुनी ॥ २२ ॥ अनन्तर सचिवोंकी आज्ञासे पर्वत, हाथी और मेघके समान बड़े बड़े वानर प्रसन्नता-पूर्वक नगरसे बाहर निकले ॥२३॥ उन सब वानरोंके नख और दांत ही अस्त्र थे। वे देखनेमें भयंकर थे। उनकी आंखें विकृत थीं। उनके दांत बाघके समान थे ॥२४॥ कई दस हाथियोंके बलवाले, कई सौ हाथियोंके बलवाले और कई हजार हाथियोंके बलवाले वानर उनमें थे ॥२५॥ अनन्तर हाथमें पेड़ लिए हुए महाबली वानरोंसे भरी हुई उस किष्किन्धानगरीको क्रुद्ध लक्ष्मणने देखा, जिसमें प्रवेश करना कठिन है ॥२६॥ शहरकी चारदिवारी और खाईके बाहर निकलकर वे बड़े बलवान् वानर सामने खड़े होगए ॥२७॥ सुग्रीवकी अनवधानता, रामचन्द्रका कार्य देखकर बली लक्ष्मण पुनः क्रोधित हुए ॥२८॥ वे बहुत गरम और लम्बी सांस लेने लगे। क्रोधसे उनकी आंखें लाल हो गयीं। नर-श्रेष्ठ लक्ष्मण धूमयुक्त अग्निके समान मालूम पड़े ॥२९॥ लक्ष्मण बड़े मुँहवाले सर्पके समान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तं दीप्तमिव कालाग्निं नागेन्द्रमिव कोपितम् । समासाद्याङ्गदस्त्रासाद्विषादमगमत्परम् ॥३१॥
सोऽङ्गदं रोषताम्राक्षः संदिदेश महायशाः । सुग्रीवः कथ्यतां वत्स ममागमनमित्युत ॥३२॥
एष रामानुजः प्राप्तस्त्वत्सकाशमरिंदम । भ्रातुर्व्यसनसंतप्तो द्वारि तिष्ठति लक्ष्मणः ॥३३॥
तस्य वाक्यं यदि रुचिः क्रियतां साधु वानर । इत्युक्त्वा शीघ्रमागच्छ वत्स वाक्यमरिंदम ॥३४॥
लक्ष्मणस्य वचःश्रुत्वा शोकाविष्टोऽङ्गदोऽब्रवीत् । पितुः समीपमागम्य सौमित्रिरयमागतः ॥३५॥

अथाङ्गदस्तस्य सुतीव्रवाचा संभ्रान्तभावः परदीनवक्त्रः ।
निर्गत्य पूर्वं नृपतेस्तरस्वी ततो रुमायाश्चरणौ ववन्दे ॥३६॥
संगृह्य पादौ पितुरुग्रतेजा जग्राह मातुः पुनरेव पादौ ।
पादौ रुमायाश्च निपीडयित्वा निवेदयामास ततस्तदर्थम् ॥३७॥

स निद्राक्रान्तसंवीतो वानरो न विबुद्धवान् । बभूव मदमत्तश्च मदनेन च मोहितः ॥३८॥
ततः किलकिलां चक्रुर्लक्ष्मणं प्रेक्ष्य वानराः । प्रसादयन्तस्तं क्रुद्धं भयमोहितचेतसः ॥३९॥
ते महौघनिभं दृष्ट्वा वज्राशनिसमस्वनम् । सिंहनादं समं चक्रुर्लक्ष्मणस्य समीपतः ॥४०॥
तेन शब्देन महता प्रत्यबुद्ध्यत वानरः । मदविह्वलताम्राक्षो व्याकुलः स्रग्विभूषणः ॥४१॥
अथाङ्गदवचः श्रुत्वा तेनैव च समागतौ । मन्त्रिणौ वानरेन्द्रस्य संमतोदारदर्शनौ ॥४२॥
प्रहस्तश्चैव प्रभावश्च मन्त्रिणावर्थधर्मयोः । वक्तुमुच्चावचं प्राप्तं लक्ष्मणं तौ शशंसतुः ॥४३॥

मालूम पड़े। बाणका अग्रभाग, लपलपाती जीभके समान था और धनुष सर्पके शरीरके समान। लक्ष्मणका तेजही विषके समान था। ॥३०॥ कालाग्निके समान ज्वलित, हाथीके समान क्रोधित उनके पास जाकर अंगद भयसे बहुत दुःखी हुआ ॥३१॥ क्रोधसे लाल आंखे करके महायशस्वी लक्ष्मणने अंगदसे यह सन्देश कहा—बच्चे! सुग्रीवसे मेरे आनेकी बात जाकर कह दे ॥३२॥ यह रामका छोटा भाई तुम्हारे पास आया हुआ है। भाईके दुखसे दुखी होकर तुम्हारे द्वारपर खड़ा है। यदि इच्छा हो तो उनके वचनका उत्तमतापूर्वक सत्कार कीजिए। वत्स, ऐसा कहकर शीघ्र मेरे पास लौट आओ ॥३३,३४॥ लक्ष्मणके वचन सुनकर अंगद दुःखी हुए और पिताके पास आकर बोले कि लक्ष्मण आये हैं ॥३५॥ लक्ष्मणके तीव्र वचनसे अंगद घबड़ा गया। उसका मुख म्लान हो गया उसने वेगपूर्वक पहले राजाके अनन्तर रुमाके चरणोंको प्रणाम किया ॥३६॥ उग्रतेजस्वी अंगदने पहले पिताके, पुनः माताके, चरण पकड़े। रुमाके चरण पकड़कर लक्ष्मणका सन्देश उन्होंने कहा ॥३७॥ पर सुग्रीव खूब निद्रित था, कामसे मोहित होकर मदमत्त था, इसलिए वह उठा नहीं ॥३८॥ इसके अनन्तर क्रुद्ध लक्ष्मणको प्रसन्न करनेके लिए भयभीत वानरोंने उन्हें देखकर 'किलकिला' शब्द किया ॥३९॥ उन वानरोंने लक्ष्मणके पासही बड़ी धाराके समान, तथा वज्र (बिजली) गर्जनके समान सिंहगर्जन किया ॥४०॥ उस बड़े शब्दसे सुग्रीव उठा। उस समय उसकी आंखें मदसे अलसायी हुई और लाल थीं वह माला पहिने हुए था और व्याकुल था ॥४१॥ वानरके कहनेसे राजाके प्रिय, देखनेमें सुन्दर दो मंत्री भी अंगदके साथही आए थे ॥४२॥ प्रहस्त और प्रभाव उनके नाम थे, अर्थ और धर्मके वे मंत्री थे। राजाको ऊँच नीच

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रसादयित्वा सुग्रीवं वचनैः सार्थनिश्चितैः । आसीनं पर्युपासीनौ यथा शक्रं मरुत्पतिम् ॥४४॥
सत्यसंधौ महाभागौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । मनुष्यभावं संप्राप्तौ राज्यार्हौ राज्यदायिनौ ॥४५॥
तयोरेको धनुष्पाणिर्द्वारि तिष्ठति लक्ष्मणः । यस्य भीताः प्रवेपन्तो नादान्मुञ्चन्ति वानराः ॥४६॥
स एष राघवभ्राता लक्ष्मणो वाक्यसारथिः । व्यवसायरथः प्राप्तस्तस्य रामस्य शासनात् ॥४७॥
अयं च तनयो राजंस्तारायाः दयितोऽङ्गदः । लक्ष्मणेन सकाशं ते प्रेषितस्त्वरयानघ ॥४८॥
सोऽयं रोषपरीताक्षो द्वारि तिष्ठति वीर्यवान् । वानरान्वानरपते चक्षुषा निर्दहन्निव ॥४९॥
तस्य मूर्ध्ना प्रणामं त्वं सपुत्रः सहबान्धवः । गच्छ शीघ्रं महाराज रोषो ह्यद्योपशाम्यताम् ॥५०॥
यथा हि रामो धर्मात्मा तत्कुरुष्व समाहितः । राजंस्तिष्ठ स्वसमये भव सत्यप्रतिश्रवः ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाडे एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ३२

अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवः सचिवैः सह । लक्ष्मणं कुपितं श्रुत्वा सुमोचासनमात्मवान् ॥ १ ॥
स च तानब्रवीद्वाक्यं निश्चित्य गुरुलाघवम् । मन्त्रज्ञान्मन्त्रकुशलो मन्त्रेषु परिनिष्ठितः ॥ २ ॥
न मे दुर्व्याहृतं किंचिन्नापि मे दुरनुष्ठितम् । लक्ष्मणो राघवभ्राता क्रुद्धः किमिति चिन्तये ॥ ३ ॥

समझाया करते थे । उन दोनोंने सुग्रीवसे लक्ष्मणके आनेकी बात कही ॥४३॥ देवराज इन्द्रके समान सुग्रीवके बैठने पर दोनों मंत्री बैठे और निश्चयार्थक वचनों द्वारा सुग्रीवको प्रसन्न कर उन लोगोंने लक्ष्मणके आनेकी बात कही ॥४४॥ महाराज राम और लक्ष्मण दोनों भाई सत्यप्रतिज्ञ हैं । इन लोगोंने मनुष्य रूप धारण किया है । ये राजा होनेके योग्य हैं । इन लोगोंने तुम्हें राज्य दिया है ॥४५॥ उनमें एक लक्ष्मण धनुष लेकर द्वार पर खड़ा है, जिससे डर कर कांपते हुए वानर चीत्कार कर रहे हैं ॥४६॥ यह वही रामचन्द्रका भाई लक्ष्मण है । रामचन्द्रके वचन इसके सारथी हैं । उद्योग इसका रथ है । रामचन्द्रकी आज्ञासे यह आया है ॥४७॥ राजन्, इस ताराके प्रियपुत्र अंगदको लक्ष्मणने तुम्हारे पास शीघ्र भेजा है ॥४८॥ वह वीर जवान क्रोधपूर्ण आंखें किये द्वार पर खड़ा है । हे वानरराज, वह आंखोंसे वानरोंको मानों जला रहा है ॥४९॥ महाराज, पुत्र और बान्धवोंके साथ जाकर शीघ्र उसे प्रणाम कीजिए, जिससे उसका क्रोध शान्त हो ॥५०॥ जिस उपायसे धर्मात्मा रामचन्द्र प्रसन्न हों वही करो । राजन् प्रतिज्ञाका पालन करो और सत्यप्रतिज्ञ होओ ॥५१॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका इकतीसवाँ सर्ग समाप्त ।

मंत्रियोंके साथ अंगदके वचन सुनकर और लक्ष्मणके क्रोधकी बात जानकर धीर सुग्रीवने आसनत्याग किया ॥१॥ उचित अनुचितका विचार कर मंत्रोंके ज्ञाता और मंत्रके प्रयोगमें निपुण सुग्रीव, मंत्र जाननेवाले मंत्रियोंसे बोले ॥२॥ मैंने कोई बुरी बात नहीं कहीं, कोई बुरा काम नहीं किया ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

असुहृद्भिर्ममामित्रैर्नित्यमन्तरदर्शिभिः । मम दोषानसंभूताञ्श्राविता राघवानुजः ॥ ४ ॥
अत्र तावदयथाबुद्धिः सर्वैरेव यथाविधि । भावस्य निश्चयस्तावद्विज्ञेयो निपुणं शनैः ॥ ५ ॥
न खल्वस्ति मम त्रासो लक्ष्मणान्नापि राघवात् । मित्रं त्वस्थानकुपितं जनयत्येव संभ्रमम् ॥ ६ ॥
सर्वथा सुकरं मित्रं दुष्करं प्रतिपालनम् । अनित्यत्वात्तु चित्तानां प्रीतिरल्पेऽपि भिद्यते ॥ ७ ॥
अतो निमित्तं त्रस्तोऽहं रामेण तु महात्मना । यन्ममोपकृतं शक्यं प्रतिकर्तुं न तन्मया ॥ ८ ॥
सुग्रीवेणैवमुक्ते तु हनुमान्हरिपुंगवः । उवाच स्वेन तर्केण मध्ये वानरमन्त्रिणाम् ॥ ९ ॥
सर्वथा नैतदाश्चर्यं यत्त्वं हरिगणेश्वर । न विस्मरस्यविस्रब्धमुपकारं कृतं शुभम् ॥१०॥
राघवेण तु वीरेण भयमुत्सृज्य दूरतः । त्वत्प्रियार्थं हतो वाली शक्रतुल्यपराक्रमः ॥११॥
सर्वथा प्रणयात्क्रुद्धो राघवो नात्र संशयः । भ्रातरं संप्रहितवाँल्लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥१२॥
त्वं प्रमत्तो न जानीषे कालं कालविदां वर । फुल्लसप्तच्छदश्यामा प्रवृत्ता तु शरच्छुभा ॥१३॥
निर्मलग्रहनक्षत्रा द्यौः प्रनष्टबलाहका । प्रसन्नाश्च दिशः सर्वाः सरितश्च सरांसि च ॥१४॥
प्राप्तमुद्योगकालं तु नावैषि हरिपुंगव । त्वं प्रमत्त इति व्यक्तं लक्ष्मणोऽयमिहागतः ॥१५॥
आर्तस्य हृतदारस्य परुषं पुरुषान्तरात् । वचनं मर्षणीयं ते राघवस्य महात्मनः ॥१६॥

रामचन्द्रके भाई लक्ष्मण क्यों मुझ पर क्रुद्ध है, यही मैं सोच रहा हूँ ॥३॥ मेरे शत्रुओंने, मेरे अपकारियोंने, सदा मेरी त्रुटियां देखकर मेरे दोष लक्ष्मण को सुनाए हैं। इस विषयमें आप सब लोगोंको मेरे जानेसे पहले अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार विधिपूर्वक लक्ष्मणके भावका निश्चय करना चाहिए। चेष्टाओंके द्वारा यह जानना चाहिए कि वे क्या चाहते हैं, और क्यों कुपित हैं ॥४,५॥ रामचन्द्रसे या लक्ष्मणसे मुझे कोई भय नहीं; पर विना कारण मित्रका कुपित हो जाना घबड़ाहट पैदा करता है ॥६॥ मित्र बनाना सरल है, उसका निबाहना कठिन है; क्योंकि चित्तका कोई ठिकाना नहीं। थोड़े कारण पर भी वह प्रीति टूट जाती है ॥७॥ इसीलिए मैं डर रहा हूँ। महात्मा रामचन्द्रने जो मेरा उपकार किया है उसका बदला देनेकी शक्ति मुझमें नहीं है ॥८॥ सुग्रीवके ऐसा कहने पर वानरश्रेष्ठ हनुमान अपनी युक्तिसे वानरोंके बीचमें बोले ॥९॥ हे वानरेश्वर, आप विश्वस्त होकर किए हुए उपकारोंको नहीं भूलते, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं, क्योंकि यह महात्माओंका स्वभाव है ॥१०॥ रामचन्द्रने भय दूर हटा कर तुम्हारा प्रिय करनेके लिए इन्द्रके समान पराक्रमी वालिको मारा है ॥११॥ सर्वथा स्नेहके कारणही रामचन्द्रने तुमपर क्रोध किया है और अपने भाई, लक्ष्मीवर्धन लक्ष्मणको तुम्हारे पास भेजा है ॥१२॥ हे कालज्ञोंमें श्रेष्ठ, असावधानीके कारण रामचन्द्रसे किए हुए काल-निश्चयको तुम भूल गए। सप्तच्छद और तमाल जब विकसित होते हैं, वह निर्मल शरद्ऋतु आगयी ॥१३॥ आकाशमें ग्रह और नक्षत्र निर्मल हो गए। बादल चले गये, दिशाएं तालाब नदियां प्रसन्न हो गयीं ॥ १४ ॥ वानरराज, यह उद्योग करनेका समय है और तुम्हें कुछ मालूम नहीं। तुम असावधान हो, इसीलिए लक्ष्मण यहां आए ॥१५॥ रामचन्द्र दुखी हैं। उनकी स्त्री हरी गयी है, अतएव महात्मा रामचन्द्रके कठोर वचन जो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कृतापराधस्य हि ते नान्यत्पश्याम्यहं क्षमम् । अन्तरेणाञ्जलिं बद्ध्वा लक्ष्मणस्य प्रसादनात् ॥१७॥
नियुक्तैर्मन्त्रिभिर्वाच्यो ह्यवश्यं पार्थिवो हितम् । इत एव भयं त्यक्त्वा ब्रवीम्यवधृतं वचः ॥१८॥
अभिक्रुद्धः समर्थो हि चापमुद्यम्य राघवः । सदेवासुरगन्धर्वं वशे स्थापयितुं जगत् ॥१९॥
न स क्षमः कोपयितुं यः प्रसाद्यः पुनर्भवेत् । पूर्वोपकारं स्मरता कृतज्ञेन विशेषतः ॥२०॥
तस्य मूर्ध्ना प्रणम्य त्वं सपुत्रः ससुहृज्जनः । राजंस्तिष्ठ स्वसमये भर्तुर्भार्येव तद्वशे ॥२१॥
न रामरामानुजशासनं त्वया कपीन्द्र युक्तं मनसाप्यपोहितुम् ।
मनो हि ते ज्ञास्यति मानुषं बलं सराघवस्यास्य सुरेन्द्रवर्चसः ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः ॥३२॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ३३

अथ प्रतिसमादिष्टो लक्ष्मणः परवीरहा । प्रविवेश गुहां रम्यां किष्किन्धां रामशासनात् ॥१॥
द्वारस्था हरयस्तत्र महाकाया महाबलाः । बभूवुर्लक्ष्मणं दृष्ट्वा सर्वे प्राञ्जलयः स्थिताः ॥ २ ॥
निःश्वसन्तं तु तं दृष्ट्वा क्रुद्धं दशरथात्मजम् । बभूवुर्हरयस्त्रस्ता न चैनं पर्यवारयन् ॥ ३ ॥
स तां रत्नमयीं दिव्यां श्रीमान्पुष्पितकाननाम् । रम्यां रत्नसमाकीर्णां ददर्श महतीं गुहाम् ॥ ४ ॥

दूसरे पुरुषके द्वारा कहे जाय तुम्हें सहना चाहिए ॥१६॥ तुमने अपराध किया है । अतएव तुम्हारे लिए हाथ जोड़कर लक्ष्मणको प्रसन्न करनेके अतिरिक्त दूसरा उपाय मैं नहीं देखता ॥१७॥ पूछे जाने पर मंत्रियोंको राजाके हितकी बात कहनी चाहिए, अतएव मैं भय छोड़कर निश्चित बात कहता हूँ ॥१८॥ क्रोध करके यदि रामचन्द्र धनुष उठावें तो देवता असुर गंधर्वके संहित इस समस्त जगतको वशमें कर सकते हैं ॥१९॥ उसको क्रोधित नहीं होने देना चाहिए जिसको पुनः प्रसन्न करना हो । तुम कृतज्ञ हो, उनके पूर्व उपकारोंको स्मरण कर तुम्हें उनका प्रसादन करनाही पड़ेगा ॥२०॥ पुत्र और मित्रोंके साथ सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम कर अपनी प्रतिज्ञा पर रहो और स्त्री जैसे पतिके अधीन रहती है, वैसेही उनके अधीन रहो ॥२१॥ हे सुग्रीव, राम और लक्ष्मणकी आज्ञाका तिरस्कार तुम्हें मनसे भी नहीं करना चाहिए । इन्द्रके समान पराक्रमी राम और लक्ष्मणके मानवीय बलको तुम्हारा मन जानताही है ॥२२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ।

अनन्तर शत्रुहन्ता लक्ष्मणने सुग्रीवके सन्देश पाने पर रामचन्द्रकी आज्ञासे किष्किन्धा नगरीमें प्रवेश किया ॥१॥ महाबली विशालकाय वानर जो द्वार पर थे वे सब लक्ष्मणको देखकर हाथ जोड़ कर खड़े हुए ॥२॥ दशरथपुत्र लक्ष्मण क्रुद्ध हैं, सांस छोड़ रहे हैं—यह देखकर बहुतसे वानर डर गये और इनके साथ साथ नहीं गए ॥३॥ लक्ष्मणने उस रमणीय बड़ी गुफाको देखा जो रत्नोंसे भरी थी,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हर्म्यप्रासादसंबाधां नानारत्नोपशोभिताम् । सर्वकामफलैर्वृक्षैः पुष्पितैरुपशोभिताम् ॥ ५ ॥
देवगन्धर्वपुत्रैश्च वानरैः कामरूपिभिः । दिव्यमाल्याम्बरधरैः शोभितां प्रियदर्शनैः ॥ ६ ॥
चन्दनागुरुपद्मानां गन्धैः सुरभिगन्धिताम् । मैरेयाणां मधूनां च संमोदितमहापथाम् ॥ ७ ॥
विन्ध्यमेरुगिरिप्रख्यैः प्रासादैर्नैकभूमिभिः । ददर्श गिरिनद्यश्च विमलास्तत्र राघवः ॥ ८ ॥
अङ्गदस्य गृहं रम्यं मैन्दस्य द्विविदस्य च । गवयस्य गवाक्षस्य गजस्य शरभस्य च ॥ ९ ॥
विद्युन्मालेश्च संपातेः सूर्याक्षस्य हनूमतः । वीरबाहोः सुबाहोश्च नलस्य च महात्मनः ॥ १० ॥
कुमुदस्य सुषेणस्य तारजाम्बवतोस्तथा । दधिवक्त्रस्य नीलस्य सुपाटलसुनेत्रयोः ॥ ११ ॥
एतेषां कपिमुख्यानां राजमार्गे महात्मनाम् । ददर्श गृहमुख्यानि महासाराणि लक्ष्मणः ॥ १२ ॥
पाण्डुराभ्रप्रकाशानि गन्धमाल्ययुतानि च । प्रभूतधनधान्यानि स्त्रीरत्नैः शोभितानि च ॥ १३ ॥
पाण्डुरेण तु शैलेन परिक्षिप्तं दुरासदम् । वानरेन्द्रगृहं रम्यं महेन्द्रसदनोपमम् ॥ १४ ॥
शुक्लैः प्रासादशिखरैः कैलासशिखरोपमैः । सर्वकामफलैर्वृक्षैः पुष्पितैरुपशोभितम् ॥ १५ ॥
महेन्द्रदत्तैः श्रीमद्भिर्नीलजीमूतसंनिभैः । दिव्यपुष्पफलैर्वृक्षैः शीतच्छायैर्मनोरमैः ॥ १६ ॥
हरिभिः संवृतद्वारं बलिभिः शस्त्रपाणिभिः । दिव्यमाल्यावृतं शुभ्रं तप्तकाञ्चनतोरणम् ॥ १७ ॥
सुग्रीवस्य गृहं रम्यं प्रविवेश महाबलः । अवार्यमाणः सौमित्रिर्महाभ्रमिव भास्करः ॥ १८ ॥

अलौकिक थी, जिसके वनमें खूब फूल लगे हुए थे ॥४॥ हर्म्य (धनियोंकी अटारी), प्रासादों (राजाओं और देवताओंकी अटारी) से सघन, विविध रत्नोंसे शोभित सदा फूलने और फलनेवाले वृक्षोंसे वह नगरी शोभित थी ॥५॥ दिव्य माला और वस्त्र धारण करनेवाले सुन्दर देवताओं, गंधर्वपुत्रों और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानरोंसे वह नगरी शोभित थी ॥६॥ चन्दन, अगरू और कमलकी गन्ध से वह गुहा सुगन्धित हो रही थी । मैरेय और मधु (मधुविशेष) से वहांके चौड़े रास्ते आमोदित थे ॥७॥ कई खण्डवाले, विंध्याचल और मेरू पर्वतके समान वहां राजाके महल थे । लक्ष्मणने निर्मल जलवाली पर्वतकी नदियां देखीं ॥८॥ अंगदका सुन्दर घर तथा मैन्द, द्विविद, गवय, गवाक्ष, गज, शरभ, विद्युन्माली, सम्पाति, सूर्याक्ष, हनुमान, वीरबाहु, सुबाहु, महात्मा नल, कुमुद, सुषेण, तार, जाम्बवान, दधिवक्त्र, नील, सुपाटल, सुनेत्र इन प्रधान वानरोंके गृह राजमार्ग पर लक्ष्मणने देखे । ये मकान बड़े पुष्ट थे ॥९,१०,११,१२॥ श्वेतमेघके समान उज्ज्वल सुगन्धित मालाओंसे युक्त, प्रभूतधन-धान्यपूर्ण, स्त्रियों और रत्नोंसे शोभित ये घर लक्ष्मणने देखे ॥१३॥ श्वेत पर्वतसे घिरा हुआ, जानेमें कठिन वानरराजका रमणीय घर लक्ष्मणने देखा । यह इन्द्रके घरके समान था ॥१४॥ कैलाशशिखरके समान श्वेत शिखरोंसे वह गृह सुशोभित था । सब कालमें फूलने और फलनेवाले वृक्षोंसे युक्त था ॥१५॥ महेन्द्रके दिए हुए, सुन्दर नीलमेघके सदृश, मनोरम, शीतल छायावाले दिव्य पुष्पफलवाले वृक्षोंसे वह गृह सुशोभित था ॥१६॥ अस्त्र हाथमें लेकर बली वानर उसके द्वार पर पहरा दे रहे थे । दिव्य मालाएँ लटकायीं गयीं थी । सोनेका तोरण बना हुआ था ॥१७॥ ऐसे सुन्दर सुग्रीवके घरमें महाबलवान लक्ष्मणने प्रवेश किया । बड़े मेघखण्डमें जिस प्रकार सूर्य प्रवेश करता है, उसी प्रकार बिना रूकावटके लक्ष्मणने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स सप्तकक्ष्या धर्मात्मा यानासनसमावृताः । ददर्श सुमहद्गुप्तं ददर्शान्तःपुरं महत् ॥१९॥
हैमराजतपर्यङ्कैर्बहुभिश्च वरासनैः । महार्हास्तरणोपेतैस्तत्र तत्र समावृतम् ॥२०॥
प्रविशन्नेव सततं शुश्राव मधुरस्वनम् । तन्त्रीगीतसमाकीर्णं समतालपदाक्षरम् ॥२१॥
बहीश्च विविधाकारा रूपयौवनगर्विताः । स्त्रियः सुग्रीवभवने ददर्श स महाबलः ॥२२॥
दृष्ट्वाभिजनसंपन्नास्तत्र माल्यकृतस्रजः । वरमाल्यकृतव्यग्रा भूषणोत्तमभूषिताः ॥२३॥
नातृप्तान्नाति चाव्यग्रान्नानुदात्तपरिच्छदान् । सुग्रीवानुचरांश्चापि लक्षयामास लक्ष्मणः ॥२४॥
नूपुराणां च काञ्चीनां निःस्वनं तथा । स निशम्य ततः श्रीमान्सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत्॥२५॥
रोषवेगप्रकुपितः श्रुत्वा चाभरणस्वनम् । चकार ज्यास्वनं वीरो दिशः शब्देन पूरयन् ॥२६॥
चारित्रेण महाबाहुरपकृष्टः स लक्ष्मणः । तस्थावेकान्तमाश्रित्य रामकोपसमन्वितः ॥२७॥
तेन चापस्वनेनाथ सुग्रीवः प्लवगाधिपः । विज्ञायागमनं त्रस्तः स चचाल वरासनात् ॥२८॥
अङ्गदेन यथा मह्यं पुरस्तात्प्रतिवेदितम् । सुव्यक्तमेष संप्राप्तः सौमित्रिर्भ्रातृवत्सलः ॥२९॥
अङ्गदेन समाख्यातो ज्यास्वनेन च वानरः । बुबुधे लक्ष्मणं प्राप्तं मुखं चास्योपशुष्यत ॥३०॥
ततस्तारां हरिश्रेष्ठः सुग्रीवः प्रियदर्शनाम् । उवाच हितमव्यग्रस्त्रासंभ्रान्तमानसः ॥३१॥
किं नु रुट्कारणं सुभ्रु प्रकृत्या मृदुमानसः । सरोष इव संप्राप्तो येनायं राघवानुजः ॥३२॥

प्रवेश किया ॥१८॥ धर्मात्मा लक्ष्मणने सात खण्ड जाकर जिनमें सवारी और आसन आदि रखे हुए थे, बहुतही गुप्त और विशाल अन्तःपुर देखा ॥१९॥ सोने और चांदियोंके पलंग, अनेक बहुमूल्य आसन, दामी बिछौने लक्ष्मणने वहाँ देखे ॥२०॥ प्रवेश करतेही लक्ष्मणने सितारके गानसे युक्त ताल आदिके सहित मधुर शब्द सुना ॥२१॥ अनेक प्रकारकी रूप-यौवनगर्वित बहुतसी स्त्रियोंको महाबली लक्ष्मणने सुग्रीवके भवनमें देखा ॥२२॥ उत्तम कुलमें उत्पन्न पुष्पोंकी माला धारण की हुई, उत्तम भूषणोंसे युक्त और उत्तम पुष्प पानेके लिए व्यग्र स्त्रियोंको देखकर लक्ष्मणने सुग्रीवके अनुचरोंको भी देखा जो न अतृप्त थे, न अव्यग्र थे और न साधारण वस्त्र आदि ही धारण किए हुए थे ॥२३,२४॥ नूपुर, और करधनीका शब्द सुनकर श्रीमान् लक्ष्मण लज्जित हुए॥२५॥ रोषके वेगसे प्रकुपित लक्ष्मणने भूषणोंके शब्द सुनकर धनुषका टंकार किया, जिससे दिशाएं गूंज गयीं ॥२६॥ चरित्रके कारण, अर्थात् स्त्रियोंके दलमें जाना उचित नहीं यह समझनेके कारण, लक्ष्मण रुक गए और रामचन्द्रके क्रोधसे युक्त वे एकान्त स्थान देखकर वहीं बैठ गए ॥२७॥ धनुषके उस शब्दसे वानरराज सुग्रीवने लक्ष्मणका आना जाना और डर कर राजासनसे उठ गया ॥२८॥ अंगदने पहले मुझसे जैसा कहा था, अवश्यही भ्रातृ-प्रेमी वह लक्ष्मण आगया ॥२९॥ अंगदके कहनेसे और धनुषके शब्दसे सुग्रीवको लक्ष्मणका आना मालूम हुआ और उसका मुँह सूख गया ॥३०॥ अनन्तर वानरराज सुग्रीव प्रिय-दर्शना तारासे बोला, भयसे उसका मन व्याकुल हो गया था। वह सावधान होकर हितकारी वचन बोला ॥३१॥ सुभ्रू, क्रोधका क्या कारण होगा। इनका तो स्वभावहीसे चित्त कोमल है। ये लक्ष्मण क्रोध करके आये हुएके समान मालूम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किं पश्यसि कुमारस्य रोषस्थानमनिन्दिते । न खल्वकारणे कोपमाहरेन्नरपुङ्गवः ॥३३॥
यद्यस्य कृतमस्माभिर्बुध्यसे किंचिदप्रियम् । तद्बुद्ध्या संप्रधार्याशु क्षिप्रमेवाभिधीयताम् ॥३४॥
अथवा स्वयमेवैनं द्रष्टुमर्हसि भामिनि । वचनैः सान्त्वयुक्तैश्च प्रसादयितुमर्हसि ॥३५॥
त्वद्दर्शने विशुद्धात्मा न स्म कोपं करिष्यति । नहि स्त्रीषु महात्मानः क्वचित्कुर्वन्ति दारुणम् ॥३६॥
त्वया सान्त्वैरुपक्रान्तं प्रसन्नेन्द्रियमानसम् । ततः कमलपत्राक्षं द्रक्ष्याम्यहमरिंदमम् ॥३७॥

सा प्रस्खलन्ती मदविह्वलाक्षी प्रलम्बकाञ्चीगुणहेमसूत्रा ।
सलक्षणा लक्ष्मणसंनिधानं जगाम तारा नमिताङ्गयष्टिः ॥३८॥
स तां समीक्ष्यैव हरीशपत्नीं तस्थावुदासीनतया महात्मा ।
अवाङ्मुखोऽभून्मनुजेन्द्रपुत्रः स्त्रीसंनिकर्षाद्विनिवृत्तकोपः ॥३९॥
सा पानयोगाच्च निवृत्तलज्जा दृष्टिप्रसादाच्च नरेन्द्रसूनोः ।
उवाच तारा प्रणयप्रगल्भं वाक्यं महार्थं परिसान्त्वरूपम् ॥४०॥
किं कोपमूलं मनुजेन्द्रपुत्र कस्ते न संतिष्ठति वाङ्निदेशे ।
कः शुष्कवृक्षं वनमापतन्तं दवाग्निमासीदति निर्विशङ्कः ॥४१॥

स तस्या वचनं श्रुत्वा सान्त्वपूर्वमशङ्कितः । भूयः प्रणयदृष्टार्थं लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥४२॥
किमयं कामवृत्तस्ते लुप्तधर्मार्थसंग्रहः । भर्ता भर्तृहिते युक्ते न चैवमवबुध्यसे ॥४३॥

पड़ते हैं ॥३२॥ हे अनिन्दिते, कुमार लक्ष्मणके क्रोधका क्या कारण हो सकता है और बिना कारण ये नर-श्रेष्ठ क्रोध भी नहीं कर सकते ॥३३॥ यदि तुम समझती हो कि हम लोगोंने इनका कोई अपराध किया है तो समझबूझ कर विचार कर शीघ्र कहो ॥३४॥ अथवा भामिनी, तुम स्वयं लक्ष्मणके पास जाओ और कोमल वचनोंके द्वारा उन्हें प्रसन्न करो ॥३५॥ तुम्हारे सामने जाने पर, विशुद्धात्मा लक्ष्मण क्रोध नहीं करेंगे क्योंकि स्त्रियों पर महात्मा क्रोध नहीं करते ॥३६॥ कोमल वचनोंके द्वारा तुम्हारे क्षमा करा देने पर और उनके प्रसन्न हो जाने पर, कमलपत्राक्षि, लक्ष्मणको मैं देखूँगा ॥३७॥ तारा लक्ष्मणके समीप गयी, उसकी करधनीके सोनेके सूत लटक गए थे । नशाके कारण आंखें घूम रही थीं । उसके सुन्दर लक्षण थे और शरीर नम्र था । वानरराजकी स्त्री ताराको देखतेही महात्मा लक्ष्मण उदासीन होनेके कारण मुँह नीचा करके बैठे । स्त्रीके पास होनेके कारण उनका क्रोध जाता रहा ॥३९॥ मद्य पीनेके कारण और राजपुत्र लक्ष्मणके प्रसन्नतासे देखनेके कारण उसकी लज्जा छूट गयी थी । वह तारा स्नेह-युक्त शान्त करनेके योग्य अर्थवान् वचन बोली ॥४०॥ राजापुत्र, क्रोधका कारण क्या है ? कौन तुम्हारी आज्ञाका पालन नहा करता ? कौन सूखे वृक्षोंवाले वनमें दावाग्नि लगाकर निर्विशंक होकर रहता है ? ॥४१॥ ताराके शान्तपूर्ण और शंकारहित वचन सुनकर लक्ष्मण स्नेहके द्वारा निश्चित अर्थ-वाले वचन बोले ॥४२॥ पतिका हित साधन करनेवाली तारा, तुम्हारा पति काममें आसक्त हो गया है; उसने धर्म और अर्थका त्यागकर दिया है । अतएव उसे क्यों नहीं समझाती ॥४३॥ वह अपने राज्यको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न चिन्तयति राज्यार्थं सोऽस्माञ्शोकपरायणान्। सामान्यपरिषत्तारे काममेवोपसेवते ॥४४॥
स मासांश्चतुरः कृत्वा प्रमाणं लवणेश्वरः। व्यतीतांस्तान्मदोदग्रो विहरन्नावबुध्यते ॥४५॥
नहि धर्मार्थसिद्ध्यर्थं पानमेव प्रशस्यते। पानादर्थश्च कामश्च धर्मश्च परिहीयते ॥४६॥
धर्मलोपो महांस्तावत्कृते ह्यप्रतिकुर्वतः। अर्थलोपश्च मित्रस्य नाशे गुणवतो महान् ॥४७॥
मित्रं ह्यर्थगुणश्रेष्ठं सत्यधर्मपरायणम्। तद्द्वयं तु परित्यक्तं न तु धर्मे व्यवस्थितम् ॥४८॥
तदेवं प्रस्तुते कार्ये कार्यमस्माभिरुत्तरम्। तत्कार्यं कार्यतत्त्वज्ञे त्वमुदाहर्तुमर्हसि ॥४९॥

सा तस्य धर्मार्थसमाधियुक्तं निशम्य वाक्यं मधुरस्वभावम्।
तारा गतार्थे मनुजेन्द्रकार्ये विश्वासयुक्तं तमुवाच भूयः ॥५०॥
न कोपकालः क्षितिपालपुत्र न चापि कोपः स्वजने विधेयः।
त्वदर्थकामस्य जनस्य तस्य प्रमादमप्यर्हसि वीर सोढुम् ॥५१॥
कोपं कथं नाम गुणप्रकृष्टः कुमार कुर्यादपकृष्टसत्त्वे।
कस्त्वद्विधः कोपवशं हि गच्छेत्सत्त्वावरुद्धस्तपसः प्रसूतिः ॥५२॥
जानामि कोपं हरिवीरबन्धोर्जानामि कार्यस्य च कालसङ्गम्।
जानामि कार्यं त्वयि यत्कृतं नस्तच्चापि जानामि यदत्र कार्यम् ॥५३॥

स्थिर करनेके लिए शोकपीड़ित हम लोगों के लिए कुछ भी विचार नहीं करता। उसके सचिव और उसकी सभा भी हम लोगोंको स्मरण नहीं करती। हे तारा, क्योंकि वह केवल काममेंही आसक्त है ॥४४॥ वानरराज सुग्रीवने चार महीनेकी अवधि दी थी। वे चार महीने बीत गये। मदमत्त वानरराज विहार कर रहा है, कुछ समझता ही नहीं ॥४५॥ धर्म और अर्थकी सिद्धिके लिए मद्यपान प्रशंसित नहीं है। मद्यपानसे अर्थ काम और धर्मका नाश होता है ॥४६॥ किए उपकारका यदि बदला न दिया जाय तो इससे धर्मका लोप होता है और गुणवान् मित्रके नाश होनेसे बहुत बड़ी अर्थकी हानि होती है ॥४७॥ मित्रके दो गुण हैं, एक तो मित्रके कार्योंको छलहीन होकर करना, दूसरा सत्य धर्म परायण होना। तुम्हारे पतिने ये दोनों गुण छोड़ दिये और धर्म भी उसने छोड़ दिया ॥ ४८ ॥ सुग्रीवने जो किया है, वह मैंने तुमसे बतलाया। अब आगेका कार्य हम लोगोंको करना है। वह कार्य कैसे उत्तम होगा, यह तुम बतलाओ, क्योंकि तुम कार्यतत्वोंको जाननेवाली हो ॥४९॥ धर्म, अर्थके निश्चयसे युक्त, मधुर स्वभावके बोधक लक्ष्मणके वचन सुनकर तारा रामचन्द्रके ज्ञातकार्यके विषयमें विश्वासपूर्वक पुनः बोली ॥५०॥ राजपुत्र, यह क्रोध करनेका समय नहीं है। अपने लोगोंपर क्रोध किया भी नहीं जाता। तुम्हारे कार्यको सिद्ध करनेकी इच्छा रखनेवाले सुग्रीवका अपराध भी तुम्हें क्षमा करना चाहिये ॥५१॥ कुमार, ऊंचे गुण-वाले, हीन बलवालोंपर क्यों क्रोध करेगें ? तुम्हारे समान मनुष्य कैसे क्रोध कर सकता है, क्योंकि विशुद्ध सत्वमय पुरुष उत्तम विचारोंके उत्पादक हैं। रामचन्द्रके कोपका कारण मैं जानती हूँ, उनके कार्यमें जो विलम्ब हुआ है, वह भी जानती हूँ। हमलोगोंका जो कार्य तुम्हारे अधीन था और जिसे तुमने किया है, वह भी जानती हूँ और इस विषयमें जो हमलोगोंका कर्तव्य है वह भी जानती हूँ ॥५२,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तचापि जानामि तथाविधं बलं नरश्रेष्ठ शरीरजस्य ।
जानामि यस्मिंश्च जनेऽवबद्धं कामेन सुग्रीवमसक्तमद्य ॥५४॥
न कामतन्त्रे तव बुद्धिरस्ति त्वं वै यथा मन्युवशं प्रपन्नः ।
न देशकालौ हि यथार्थधर्मावेक्षते कामरतिर्मनुष्यः ॥५५॥
तं कामवृत्तं मम संनिकृष्टं कामाभियोगाच्च विमुक्तलज्जम् ।
क्षमस्व तावत्परवीरहन्तस्त्वद्भ्रातरं वानरवंशनाथम् ॥५६॥
महर्षयो धर्मतपोभिरामाः कामानुकामाः प्रतिबद्धमोहाः ।
अयं प्रकृत्या चपलः कपिस्तु कथं न सज्जेत सुखेषु राजा ॥५७॥
इत्येवमुक्त्वा वचनं महार्थं सा वानरी लक्ष्मणमप्रमेयम् ।
पुनः सखेदं मदविह्वलाक्षी भर्तुर्हितं वाक्यमिदं बभाषे ॥५८॥
उद्योगस्तु चिराज्ञप्तः सुग्रीवेण नरोत्तम । कामस्यापि विधेयेन तवार्थप्रतिसाधने ॥५९॥
आगता हि महावीर्या हरयः कामरूपिणः । कोटीः शतसहस्राणि नानानगनिवासिनः ॥६०॥
तदागच्छ महाबाहो चारित्रं रक्षितं त्वया । अच्छलं मित्रभावेन सतां दारावलोकनम् ॥६१॥
तारया चाप्यनुज्ञातस्त्वरया वापि चोदितः । प्रविवेश महाबाहुरभ्यन्तरमरिंदमः ॥६२॥

५३॥ हे नरश्रेष्ठ, शरीरोत्पन्न कामदेवका बल भी मैं जानती हूँ । जिसमें कामके कारण सुग्रीव आसक्त हुआ है वह भी जानती हूँ और आज सुग्रीव आसक्तिरहित हो गया है यह भी जानती हूँ ॥५४॥ आपने क्रोध किया है, इससे मालूम होता है कि आपको कामशास्त्रका ज्ञान नहीं है । कामासक्त मनुष्य जिस प्रकार देशकालका विचार नहीं करता, उसी प्रकार अर्थ धर्मका भी विचार नहीं करता ॥५५॥ अतएव कामासक्त और मेरे समीप वर्तमान कामके आवेशसे त्यक्तलज्ज अपने भाई वानरराजको तुम क्षमा करो ॥५६॥ धर्म और तपस्यासे जो शोभित होते हैं, जिन्होंने मोहको दूर हटा दिया है, वे महर्षि भी विषयाभिलाषी होते हैं । यह राजा तो वानर है, स्वभावहीसे चंचल है । यह सुखोंमें आसक्त हो गया तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है ॥५७॥ वह वानरी अतुलनीय लक्ष्मणसे अर्थयुक्त यह वचन कहकर नशासे आँखें घुमाती हुई पतिके कल्याणके लिए दुःखपूर्वक पुनः बोली ॥५८॥ नरोत्तम, कामके अधीन होनेपर भी तुम्हारे कार्यसाधनके लिए सुग्रीवने उद्योग करनेकी आज्ञा बहुत पहले दे रखी है ॥५९॥ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले महाबली सैकड़ों, हजारों, करोड़ों वानर भिन्न-भिन्न पर्वतोंके रहनेवाले आए हैं ॥६०॥ महाबाहो, आप आइए, मित्रको समझाना चाहिए, इस मर्यादाकी आपने रक्षा की है, अथवा किसीके घरमें जाकर स्त्रियोंको देखना अनुचित है, इस कारण बाहर ही रहकर आपने मर्यादाका पालन किया है, मित्रभावसे सज्जनोंका परस्त्रीका देखना दोष नहीं समझा जाता, अतएव आप आइए ॥६१॥ ताराकी आज्ञा पानेपर और शीघ्रतापूर्वक उसके द्वारा प्रेरित होनेपर महाबाहु लक्ष्मण भीतर गए ॥६२॥ सोनेके उत्तम आसनपर जिसपर दामी बिछौने बिछे थे, सूर्यके समान सुग्रीवको बैठा,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततः सुग्रीवमासीनं काञ्चने परमासने । महार्हास्तरणोपेते ददर्शादित्यसंनिभम् ॥६३॥
दिव्याभरणचित्राङ्गं दिव्यरूपं यशस्विनम् । दिव्यमाल्याम्बरधरं महेन्द्रमिव दुर्जयम् ॥६४॥
दिव्याभरणमालाभिः प्रमदाभिः समन्ततः । संरब्धतररक्ताक्षो बभूवान्तकसंनिभः ॥६५॥
रुमां तु वीरः परिरभ्य गाढं वरासनस्थो वरहेमवर्णः ।
ददर्श सौमित्रिमदीनसत्त्वं विशालनेत्रः स विशालनेत्रम् ॥६६॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥३३॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ३४

तमप्रतिहतं क्रुद्धं प्रविष्टं पुरुषर्षभम् । सुग्रीवो लक्ष्मणं दृष्ट्वा बभूव व्यथितेन्द्रियः ॥ १ ॥
क्रुद्धं निःश्वसमानं तं प्रदीप्तमिव तेजसा । भ्रातुर्व्यसनसंतप्तं दृष्ट्वा दशरथात्मजम् ॥ २ ॥
उत्पपात हरिश्रेष्ठो हित्वा सौवर्णमासनम् । महान्महेन्द्रस्य यथा स्वलंकृत इव ध्वजः ॥ ३ ॥
उत्पतन्तमनूत्पेतू रुमाप्रभृतयः स्त्रियः । सुग्रीवं गगने पूर्णं चन्द्रं तारागणा इव ॥ ४ ॥
संरक्तनयनः श्रीमान्संचचार कृताञ्जलिः । बभूवावस्थितस्तत्र कल्पवृक्षो महानिव ॥ ५ ॥
रुमाद्वितीयं सुग्रीवं नारीमध्यगतं स्थितम् । अब्रवील्लक्ष्मणः क्रुद्धः सतारं शशिनं यथा ॥ ६ ॥
सत्त्वाभिजनसंपन्नः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः । कृतज्ञः सत्यवादी च राजा लोके महीयते ॥ ७ ॥
यस्तु राजा स्थितोऽधर्मे मित्राणामुपकारिणाम् । मिथ्या प्रतिज्ञां कुरुते को नृशंसतरस्ततः ॥ ८ ॥

लक्ष्मणने देखा ॥६३॥ दिव्य आभरणोंसे उसका शरीर चित्रित होरहा था । उसका दिव्य रूप बन गया था । इन्द्रके समान दुर्जय, यशस्वी सुग्रीव दिव्यमाल्य और वस्त्र धारण किए हुए था ॥६४॥ दिव्य आभरण और माला धारण करनेवाली स्त्रियोंसे वेष्टित सुग्रीवको यमराजके समान क्रोधित और रक्ताक्ष लक्ष्मणने देखा ॥६५॥ उत्तम सुवर्णके समान वर्णवाले, उत्तम आसनपर बैठे हुए अपनी स्त्री रुमाका आलिंगन किए हुए विशालनेत्र सुग्रीवने विशालनेत्र बली लक्ष्मणको देखा ॥६६॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका तेंतीसवाँ सर्ग समाप्त ।

बिना रोक टोकके आए हुए क्रुद्ध लक्ष्मणको देखकर सुग्रीव बहुतही दुःखी हुआ । उसकी सब इन्द्रियां व्यथित हुईं ॥१॥ क्रुद्ध निश्वास छोड़ते हुए, तेजसे जलते हुए, भाईके दुःखसे दुखी लक्ष्मणको देखकर सुग्रीव सुवर्णका आसन छोड़कर इन्द्रकी ध्वजाके समान उठा ॥२॥३॥ उसके उठनेपर रुमा आदि स्त्रियां भी उठीं, जिस प्रकार पूर्ण चन्द्रके उदित होनेपर तारा एं उदित होती हैं ॥४॥ श्रीमान् लक्ष्मण आँखें लाल किए इधर-उधर टहलने लगे । बहुत बड़े वृक्षके समान हाथ जोड़कर सुग्रीव वहीं खड़े हुए ॥५॥ तारायुक्त चन्द्रमाके समान, स्त्रियोंके बीचमें रुमाके साथ खड़े हुए सुग्रीवसे कुपित लक्ष्मण बोले, ॥६॥ बलवान् और कुलीन, दयालु, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ और सत्यवादी राजा लोकमें यश पाता है ॥७॥ जो राजा अधर्ममें स्थित है, उपकारी मित्रोंसे झूठी प्रतिज्ञाएँ करता है, उससे बढ़कर क्रूर कौन है ॥८॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं तु गवानृते। आत्मानं स्वजनं हन्ति पुरुषः पुरुषानृते ॥ ९ ॥
पूर्वं कृतार्थो मित्राणां न तत्प्रतिकरोति यः। कृतघ्नः सर्वभूतानां स वध्यः प्लवगेश्वर ॥१०॥
गीतोऽयं ब्रह्मणा श्लोकः सर्वलोकनमस्कृतः। दृष्ट्वा कृतघ्नं क्रुद्धेन तन्निबोध प्लवंगम ॥११॥
गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा। निष्कृतिर्विहितासद्भिःकृतघ्नेनास्ति निष्कृतिः॥१२॥
अनार्यस्त्वं कृतघ्नश्च मिथ्यावादी च वानर। पूर्वं कृतार्थो रामस्य न तत्प्रतिकरोषि यत् ॥१३॥
ननु नाम कृतार्थेन त्वया रामस्य वानर। सीताया मार्गणे यत्नः कर्तव्यः कृतमिच्छता ॥१४॥
स त्वं ग्राम्येषु भोगेषु सक्तो मिथ्याप्रतिश्रवः। न त्वां रामो विजानीते सर्पं मण्डूकराविणम् ॥१५॥
महाभागेन रामेण पापः करुणवेदिना। हरीणां प्रापितो राज्यं त्वं दुरात्मा महात्मना॥१६॥
कृतं चेन्नातिजानीषे राघवस्य महात्मनः। सद्यस्त्वं निशितैर्बाणैर्हतो द्रक्ष्यसि वालिनम् ॥१७॥
न स संकुचितः पन्था येन वाली हतो गतः। समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगा ॥१८॥

न नूनमिक्ष्वाकुवरस्य कार्मुकाच्छरांश्च तान्पश्यसि वज्रसंनिभान्।
ततः सुखं नाम विषेवसे सुखी न रामकार्यं मनसाप्यवेक्ष्यसे ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥३४॥

घोड़ेके विषयमें झूठ बोलनेसे सौ घोड़े मारनेका पाप होता है। गौके संबन्धमें झूठ बोलनेसे हजार गौ मारनेका पाप होता है और पुरुषके सम्बन्धमें झूट बोलनेसे मनुष्य अपना और स्वजनोंका नाश करता है ॥९॥ हे वानरराज, जो मित्रसे पहले अपना मनोरथसिद्ध करा ले और पुनः उसका बदला न चुकावे वह कृतघ्न है और सब प्राणियोंसे वध्य है ॥१०॥ सबके द्वारा पूजित ब्रह्माने यह बात कही है। तुम्हारी कृतघ्नता देखकर क्रोध करके रामचन्द्रने जो कहा है वह भी सुनो ॥११॥ गोघाती, मद्यपायी, चोर और भग्नव्रत इनका प्रायश्चित सज्जनोंने बतलाया है, पर कृतघ्नोंका प्रायश्चित नहीं होता ॥१२॥ तुम अनार्य हो, कृतघ्न हो, मिथ्यावादी हो, तुमने पहले रामचन्द्रसे अपना काम करवा लिया, और अब उसका बदला नहीं देते ॥१३॥ अतएव हे वानर, तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो गया है, तुम्हें रामचन्द्रके लिए सीताके ढूँढ़नेका यत्न करना चाहिए, उनके पहले किए उपकारोंका स्मरण करके, पर तुम प्रतिज्ञाको असत्यकर स्त्री-संगमें लिप्त हो गए। तुम मेढ़ककी बोली बोलनेवाले साँप हो, यह बात रामचन्द्रजी नहीं जानते ॥१४,१५॥ महाभाग, दयालु महात्मा रामचन्द्रने दुरात्मा और पापी तुमको वानरोंका राज्य दिया है ॥१६॥ यदि महात्मा रामचन्द्रके उपकारोंको तुम न समझोगे तो शीघ्र ही उनके तीखे बाणोंसे मारे जाकर बालिको देखोगे ॥१७॥ वह रास्ता रुक नहीं गया है, जिससे मारा हुआ बालि गया है। सुग्रीव, प्रतिज्ञाका पालन करो। बालिके रास्ते न जाओ ॥१८॥ तुम रामचन्द्रका काम मनसे भी नहीं सोचते, अतएव रामचन्द्रके धनुषके निकले वज्रके समान बाणोंको देखोगे और सुख न पाओगे ॥१९॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका चौंतीसवाँ सर्ग समाप्त।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चत्रिंशः सर्गः ३५

तथा ब्रुवाणं सौमित्रिं प्रदीप्तमिव तेजसा । अब्रवील्लक्ष्मणं तारा ताराधिपनिभानना ॥ १ ॥
नैवं लक्ष्मण वक्तव्यो नायं परुषमर्हति । हरीणामीश्वरः श्रोतुं तव वक्त्राद्विशेषतः ॥ २ ॥
नैवाकृतज्ञः सुग्रीवो न शठो नापि दारुणः । नैवानृतकथो वीर न जिह्मश्च कपीश्वरः ॥ ३ ॥
उपकारं कृतं वीरो नाप्ययं विस्मृतः कपिः । रामेण वीर सुग्रीवो यदन्यैर्दुष्करं रणे ॥ ४ ॥
रामप्रसादात्कीर्तिं च कपिराज्यं च शाश्वतम् । प्राप्तवानिह सुग्रीवो रुमां मां च परंतप ॥ ५ ॥
सुदुःखशयितः पूर्वं प्राप्येदं सुखमुत्तमम् । प्राप्तकालं न जानीते विश्वामित्रो यथा मुनिः ॥ ६ ॥
घृताच्यां किल संसक्तो दश वर्षाणि लक्ष्मण । अहो मन्यत धर्मात्मा विश्वामित्रो महामुनिः ॥ ७ ॥
स हि प्राप्तं न जानीते कालं कालविदां वरः । विश्वामित्रो महातेजाः किं पुनर्यः पृथग्जनः ॥ ८ ॥
देहधर्मगतस्यास्य परिश्रान्तस्य लक्ष्मण । अवितृप्तस्य कामेषु रामः क्षन्तुमिहार्हति ॥ ९ ॥
न च रोषवशं तात गन्तुमर्हसि लक्ष्मण । निश्चयार्थमविज्ञाय सहसा प्राकृतो यथा ॥१०॥
सत्त्वयुक्ता हि पुरुषास्त्वद्विधाः पुरुषर्षभ । अविमृश्य न रोषस्य सहसा यान्ति वश्यताम्॥११॥
प्रसादये त्वां धर्मज्ञ सुग्रीवार्थं समाहिता । महान्रोषसमुत्पन्नः संरम्भस्त्यज्यतामयम् ॥१२॥
रुमां मां चाङ्गदं राज्यं धनधान्यपशूनि च । रामप्रियार्थं सुग्रीवस्त्यजेदिति मतिर्मम ॥१३॥

तेजसे जलते हुए लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर, चन्द्रमुखीतारा लक्ष्मणसे बोली ॥१॥ लक्ष्मण ये वानरोंके राजा हैं । विशेषकर तुम्हारे समान महात्माके मुंहसे कठोर वचन ये नहीं सुन सकते ॥२॥ सुग्रीव अकृतज्ञ नहीं है, शठ नहीं है, क्रूर नहीं है, झूठ बोलनेवाले नहीं है और छली भी नहीं है ॥३॥ रामने जो उपकार किया है, जो युद्धमें दूसरोंके द्वारा दुष्कर है, सुग्रीव उसे भूल नहीं गया है ॥४॥ रामकी ही कृपासे, वानरराज सुग्रीवने कीर्ति, रुमाको और मुझको पाया है ॥५॥ पहले सुग्रीव दुखसे सो पाता था, अब उसने यह उत्तम सुख पाया इसीसे उसे समयका अन्त मालूम न हो सका, जिस प्रकार मुनि विश्वामित्रको ॥६॥ महामुनि विश्वामित्रने घृताची पर आसक्त होकर दशवर्षोंको एक दिन समझा था ॥७॥ कालज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी विश्वामित्र मुनि जब आए हुए कालको न जान सके तो साधारण मनुष्य कैसे कालको जान सकता है ॥८॥ दैहिक धर्मोंको धारण करनेवाले सुग्रीवने पहले बहुत कष्ट उठाया था, कामभोगसे इसकी तृप्ति नहीं हुई थी, अतएव उनका काममें आसक्त होना कोई अद्भुत बात नहीं है । इसके लिए रामचन्द्र सुग्रीवको अवश्य क्षमा करेगें ॥९॥ हे लक्ष्मण, यथार्थ बात न जानकर, साधारण मनुष्योंके समान तुमको क्रोध नहीं करना चाहिये । तुम्हारे समान पराक्रमी पुरुष बिना विचारे क्रोधके अधीन नहीं होते ॥१०,११॥ हेधर्मज्ञ, सावधान होकर सुग्रीवके लिए आपकोमैं प्रसन्न करती हूँ । क्रोधसे उत्पन्न इस क्षोभका आप परित्याग करें ॥१२॥ मैं तो समझती हूँ कि रामचन्द्रके कार्यके लिए सुग्रीव, सभीका मेरा, अंगदका, राज्य धन धान्य और पशु आदिका भी त्याग कर सकते हैं ॥१३॥ सुग्रीव उस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समानेष्यति सुग्रीवः सीतया सह राघवम् । शशाङ्कमिव रोहिण्या हत्वा तं राक्षसाधमम् ॥१४॥
शतकोटिसहस्राणि लङ्कायां किल रक्षसाम् । अयुतानि च षट्त्रिंशत्सहस्राणि शतानि च ॥१५॥
अहत्वा तांश्च दुर्धर्षान्राक्षसान्कामरूपिणः । अशक्यं रावणं हन्तुं येन सा मैथिली हृता ॥१६॥
ते न सक्या रणे हन्तुमसहायेन लक्ष्मण । रावणः क्रूरकर्मा च सुग्रीवेण विशेषतः ॥१७॥
एवमाख्यातवान्वाली स ह्यभिज्ञो हरीश्वरः । आगमस्तु न मे व्यक्तः श्रवात्तस्य ब्रवीम्यहम्॥१८॥
त्वत्सहायनिमित्तं हि प्रेषिता हरिपुङ्गवाः । आनेतुं वानरान्युद्धे सुबहून्हरिपुङ्गवान् ॥१९॥
तांश्च प्रतीक्षमाणोऽयं विक्रान्तान्सुमहाबलान् । राघवस्यार्थसिद्ध्यर्थं न निर्याति हरीश्वरः ॥२०॥
कृता सुसंस्था सौमित्रे सुग्रीवेण पुरा यथा । अद्य तैर्वानरैः सर्वैरागन्तव्यं महाबलैः ॥२१॥
ऋक्षकोटिसहस्राणि गोलाङ्गूलशतानि च । अद्य त्वामुपयास्यन्ति जहि कोपमरिंदम ।
कोट्योऽनेकास्तु काकुत्स्थ कपीनां दीप्ततेजसाम् ॥२२॥

तव पि मुखमिदं निरीक्ष्य कोपात्क्षतजसमे नयने निरीक्षमाणाः ।
हरिवरवनिता न यान्ति शान्तिं प्रथमभयस्य हि शङ्किताः स्म सर्वाः ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥३५॥

राक्षसाधमको मारकर चन्द्रमाके साथ रोहिणीके समान रामचन्द्रके साथ सीताको लौटा लावेगें ॥१४॥ लंकामें सौ हजार करोड़ राक्षसोंकी संख्या है इसके ऊपर छत्तीस हजार और छत्तीस सौ और राक्षस हैं ॥१५॥ कामरूपी जीतनेमें कठिन इन राक्षसोंको बिना मारे रावणका मरना असम्भव है, जिस रावणने सीताका हरण किया है ॥१६॥ लक्ष्मण इतने राक्षसोंका मारना सहायकके बिना सम्भव नहीं है । उसमें रावण बड़ा क्रूरपराक्रमी है, अतएव विशेषकर सुग्रीवकी सहायताकी अपेक्षा है ।१७॥ वानरराज बालिने राक्षसोंकी यह संख्या मुझे बतलायी थी, राक्षसोंकी इतनी संख्या कैसे हुई यह मुझे मालूम नहीं है । बालिसे जो मैंने सुना है वही कहा है ॥१८॥ आपकी सहायताके लिए प्रधान-प्रधान अनेक वानरोंको सुग्रीवने युद्धके लिए बहुतसे वानर एकत्र करनेको भेजा है ॥१९॥ पराक्रमी और बलवान् उन वानरोंकी रामचन्द्रके कार्यके लिए सुग्रीव प्रतीक्षा कर रहे हैं, इसीसे ये अभी तक बाहर नहीं निकले हैं ॥२०॥ लक्ष्मण, सुग्रीवने जैसी व्यवस्था की है उसके अनुसार वे सब महाबली वानर आज आ जायगें ॥२१॥ हजार करोड़ भालु और गोलांगुल जातिके बानर सौ करोड़ आज तुम्हारे पास जांयगे । कोपका त्याग करो । अति तेजस्वी वानर और भी कई करोड़ जांयगे ॥२२॥ क्रोधसे रुधिरके समान लाल तुम्हारे इस मुंहको देखकर वानरराजकी स्त्रियाँ शान्ति नहीं पा रही हैं, क्योंकि पहले भयसे वे शंकित हो गयी हैं ॥२३॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका पैंतीसवां सर्ग समाप्त ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

षट्त्रिंशः सर्गः ३६

इत्युक्तस्तारया वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम् । मृदुस्वभावः सौमित्रिः प्रतिजग्राह तद्वचः ॥ १ ॥
तस्मिन्प्रतिगृहीते तु वाक्ये हरिगणेश्वरः । लक्ष्मणात्सुमहत्त्रासं वस्त्रं क्लिन्नमिवात्यजत् ॥ २ ॥
ततः कण्ठगतं माल्यं चित्रं बहुगुणं महत् । चिच्छेद विमदश्चासीत्सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥ ३ ॥
स लक्ष्मणं भीमबलं सर्ववानरसत्तमः । अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवः संप्रहर्षयन् ॥ ४ ॥
प्रनष्टा श्रीश्च कीर्तिश्च कपिराज्यं च शाश्वतम् । रामप्रसादात्सौमित्रे पुनश्चाप्तमिदं मया ॥ ५ ॥
कः शक्तस्तस्य देवस्य ख्यातस्य स्वेन कर्मणा । तादृशं प्रतिकुर्वीत अंशेनापि नृपात्मज ॥ ६ ॥
सीतां प्राप्स्यति धर्मात्मा वधिष्यति च रावणम् । सहायमात्रेण मया राघवः स्वेन तेजसा ॥ ७ ॥
सहायकृत्यं किं तस्य येन सप्त महाद्रुमाः । गिरिश्च वसुधा चैव बाणेनैकेन दारिताः ॥ ८ ॥
धनुर्विस्फारमाणस्य यस्य शब्देन लक्ष्मण । सशैला कम्पिता भूमिः सहायैःकिं नु तस्य वै ॥ ९ ॥
अनुयात्रां नरेन्द्रस्य करिष्येऽहं नरर्षभ । गच्छतो रावणं हन्तुं वैरिणं सपुरःसरम् ॥१०॥
यदि किंचिदतिक्रान्तं विश्वासात्प्रणयेन वा । प्रेष्यस्य क्षमितव्यं मे न कश्चिन्नापराध्यति ॥११॥
इति तस्य ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । अभवल्लक्ष्मणः प्रीतः प्रेम्णा चेदमुवाच ह ॥१२॥
सर्वथा हि मम भ्राता सनाथो वानरेश्वर । त्वया नाथेन सुग्रीव प्रश्रितेन विशेषतः ॥१३॥
यस्ते प्रभावः सुग्रीव यच्च ते शौचमीदृशम् । अर्हस्त्वं कपिराज्यस्य श्रियं भोक्तुमनुत्तमाम्॥१४॥

नम्र और धर्म युक्त, ताराके ऐसा कहने पर मृदुस्वभाव लक्ष्मणने उसका वचन ग्रहण किया अर्थात् क्रोधका त्याग किया ॥१॥ ताराकी बात मान लेनेपर सुग्रीवने लक्ष्मणसे उत्पन्न भयका भींगे वस्त्रके समान त्याग किया ॥२॥ अनन्तर सुग्रीवने गलेमें पड़ी हुई अनेक सुगन्धित फूलोंसे बनी हुई सुन्दर माला तोड़ दी और वह सावधान हो गया ॥३॥ सब वानरोंमें श्रेष्ठ सुग्रीव महाबली लक्ष्मणको प्रसन्न करता हुआ नम्रवचन बोला, ॥४॥ लक्ष्मण, यह श्री कीर्ति तथा सनातन वानरराज्य पहले सभी नष्ट हो गए थे। रामचन्द्रकी कृपासे मैंने पुनः पाये हैं ॥५॥ अपने कर्मोंसे प्रसिद्ध उस देवताके उपकारका थोड़ा भी बदला चुकानेमें कौन समर्थ हो सकता है ॥६॥ धर्मात्मा रामचन्द्र सीताको पावेंगे, रावणका वध करेंगे, स्वयं अपने तेजसे मैं केवल सहायक रहूँगा ॥७॥ उसे सहायककी क्या आवश्यकता है, जिसने सात वृक्षोंको, पर्वत और पृथिवी को एक बाणसे भेद दिया ॥८॥ जिसके धनुषके टंकारके शब्दसे पर्वतोंके साथ पृथिवी कांप जाती है उसे सहायककी आवश्यकता है ?॥९॥ वैरी रावणको मारनेके लिए जब रामचन्द्र आगे चलने वालोंके साथ चलेंगे, उस समयमैं भी उनके पीछे पीछे जाऊंगा ॥१०॥ विश्वासके कारण अथवा स्नेहके कारण यदि इस दाससे कुछ अपराध हो गया होतो उसे आप क्षमा करें, क्योंकि दासोंसे अपराध हो ही जाते हैं ॥११॥ महात्मा सुग्रीवके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण प्रसन्न हुए और वे प्रेमपूर्वक बोले ॥१२॥ हे वानरेश्वर ! मेरे भाई नम्र तुमको नाथपाकर सर्वथा सनाथ हुए (यहां नाथका अर्थ है कार्य सिद्ध करने वाला)॥१३॥ सुग्रीव, जैसा तुम्हारा प्रताप है, जैसा तुम्हारा शुद्धमन है उससे वानरराज्यकी उत्तम लक्ष्मीका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सहायेन तु सुग्रीव त्वया रामः प्रतापवान् । वधिष्यति रणे शत्रूनचिरान्नात्र संशयः ॥१५॥
धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य सङ्ग्रामेष्वनिवर्तिनः । उपपन्नं च युक्तं च सुग्रीव तव भाषितम् ॥१६॥
दोषज्ञः प्रतिसामर्थ्ये कोऽन्यो भाषितुमर्हति । वर्जयित्वा मम ज्येष्ठं त्वां च वानरसत्तम ॥१७॥
सदृशश्चासि रामेण विक्रमेण बलेन च । सहायो दैवतैर्दत्तश्चिराय हरिपुंगव ॥१८॥
किं तु शीघ्रमितो वीर निष्क्रम त्वं मया सह । सान्त्वयस्व वयस्यं च भार्याहरणदुःखितम्॥१९॥
यच्च शोकाभिभूतस्य दृष्ट्वा रामस्य भाषितम् । मया त्वं परुषाण्युक्तस्तत्क्षमस्व सखे मम ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ३७

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना । हनूमन्तं स्थितं पार्श्वे वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥
महेन्द्रहिमवद्विन्ध्यकैलासशिखरेषु च । मन्दरे पाण्डुशिखरे पञ्चशैलेषु ये स्थिताः ॥ २ ॥
तरुणादित्यवर्णेषु भ्राजमानेषु नित्यशः । पर्वतेषु समुद्रान्ते पश्चिमस्यां तु ये दिशि ॥ ३ ॥
आदित्यभवने चैव गिरौ संध्याभ्रसंनिभे । पद्माचलवनं भीमाः संश्रिता हरिपुंगवाः ॥ ४ ॥
अञ्जनाम्बुदसंकाशाः कुञ्जरेन्द्रमहौजसः । अञ्जने पर्वते चैव ये वसन्ति सदंगमाः ॥ ५ ॥

तुम भोग करने योग्य हो ॥१४॥ प्रतापी रामचन्द्र तुमको सहायक पाकर युद्धमें शीघ्र ही रावणका वध करेंगे ॥१५॥ धर्मज्ञ, कृतज्ञ और रणसे न मुड़नेवाले आपका यह वचन सर्वथा उचित है, युक्तियुक्त है ॥१६॥ ऐसा कहनेकी शक्ति रहनेपर भी हे वानरश्रेष्ठ, मेरे बड़े भाई और आपको छोड़कर कौन विद्वान् ऐसे वचन कह सकता है ॥१७॥ विक्रम और बलसे तुम रामचन्द्रके समान हो । अतएव देवताओंने तुम्हें रामचन्द्रका सदाके लिए सहायक बनाया है ॥१८॥ वीर, अब आप शीघ्र यहांसे मेरे साथ चलें और स्त्री-हरणसे दुखी अपने मित्रको समझावें ॥१९॥ शोक-पीड़ित रामचन्द्रके वचनोंको सुनकर मैंने जो कठोर वचन आपसे कहे हैं, मित्र ! आप उन्हें क्षमा करें ॥२०॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका छत्तीसवां सर्ग समाप्त ।

महात्मा लक्ष्मणके ऐसा कहने पर पास खड़े हुए हनुमानसे सुग्रीव बोले ॥१॥ महेन्द्र, हिमवान्, विन्ध्याचल, कैलाश, मन्दरके श्वेतशिखर इन पाँचों पर्वतोंपर जो वानर रहते हों, समुद्रके उसपार सूर्य्यके समान सदा चमकने वाले पर्वतों पर जो वानर रहते हों, संध्या मेघके समान रक्तवर्ण, उदयाचल और अस्ताचल पर्वतोंपर तथा पद्माचल पर्वतोंके वनमें जो भयंकर वानर रहते हों, अंजन पर्वतपर हाथीके समान पराक्रमी और कज्जल तथा मेघके समान वर्णवालेजो वानर रहते हों, मेरुके समीपके पर्वतकी बड़ी गुफाओंमें रहनेवाले, सुवर्णके रंगवाले जो वानर रहते हों, धूम्रगिरि पर जो वानर रहते हों, महारुण पर्वतपर सूर्यके समान लालरंगवाले पराक्रमी शराब पीनेवाले जो वानर हों, विशाल सुगन्धित रमणीय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महाशैलगुहावासा वानराः कनकप्रभाः । मेरुपार्श्वगताश्चैव ये च धूम्रगिरिं श्रिताः ॥ ६ ॥
तरुणादित्यवर्णाश्च पर्वते ये महारुणे । पिबन्तो मधु मैरेयं भीमवेगाः प्लवंगमाः ॥ ७ ॥
वनेषु च सुरम्येषु सुगन्धिषु महत्सु च । तापसाश्रमरम्येषु वनान्तेषु समन्ततः ॥ ८ ॥
तांस्तांस्त्वमानय क्षिप्रं पृथिव्यां सर्ववानरान् । सामदानादिभिः कल्पैर्वानरैर्वेगवत्तरैः ॥ ९ ॥
प्रेषिताः प्रथमं ये च मयाज्ञाता महाजवाः । त्वरणार्थं तु भूयस्त्वं संप्रेषय हरीश्वरान् ॥१०॥
ये प्रसक्ताश्च कामेषु दीर्घसूत्राश्च वानराः । इहानयस्व ताञ्शीघ्रं सर्वानेव कपीश्वरान् ॥११॥
अहोभिर्दशभिर्ये च नागच्छन्ति ममाज्ञया । हन्तव्यास्ते दुरात्मानो राजशासनदूषकाः ॥१२॥
शतान्यथ सहस्राणि कोट्यश्च मम शासनात् । प्रयान्तु कपिसिंहानां निदेशे मम ये स्थिताः ॥१३॥
मेघपर्वतसंकाशाश्छादयन्त इवाम्बरम् । घोररूपाः कपिश्रेष्ठा यान्तु मच्छासनादितः॥१४॥
ते गतिज्ञा गतिं गत्वा पृथिव्यां सर्ववानराः । आनयन्तु हरीन्सर्वांस्त्वरिताः शासनान्मम ॥१५॥
तस्य वानरराजस्य श्रुत्वा वायुसुतो वचः । दिक्षु सर्वासु विक्रान्तान्प्रेषयामास वानरान्॥१६॥
ते पदं विष्णुविक्रान्तं पतत्रिज्योतिरध्वगाः । प्रयाताः प्रहिता राज्ञा हरयस्तु क्षणेन वै ॥१७॥
ते समुद्रेषु गिरिषु वनेषु च सरःसु च । वानरा वानरान्सर्वान्रामहेतोरचोदयन् ॥१८॥
मृत्युकालोपमस्याज्ञां राजराजस्य वानराः । सुग्रीवस्याययुः श्रुत्वा सुग्रीवभयशङ्किताः ॥१९॥
ततस्तेऽञ्जनसंकाशा गिरेस्तस्मान्महाबलाः । तिस्रः कोट्यः प्लवंगानां निर्ययुर्यत्र राघवः ॥२०॥

बनोंमें जो वानर रहते हों, तपस्वियोंके आश्रमसे सुन्दर वनके बीचमें जो वानर रहते हों, उन सब वानरोंको साम दाम आदि सकल उपायोंसे तुम शीघ्रले आओ ॥२,३,४,५,६,७,८,९॥ वेगवान जो दूत पहले मैंने भेजे हैं, उन्हें मैं जानता ही हूँ। शीघ्रता करनेके लिए तुम और दूत भेजो ॥१०॥ जो वानर आनन्दोपभोगमें लगे हुए हैं, तथा जिनका स्वभाव देरसे काम करनेका है, उन सब वानरोंको तुम शीघ्र यहांले आओ ॥११॥ दस दिनके भीतर जो वानर यहाँ न आ जाय, उन पापियोंको मार डालो, क्योंकि वे राजाकी आज्ञाके उल्लंघन करनेवाले हैं ॥१२॥ मेरी आज्ञा माननेवाले जो वानरश्रेष्ठ हैं उनके सौ हजार करोड़ मेरी आज्ञासे भेजे जायं ॥१३॥ मेघ और पर्वतके समान आकाशको घेर लेनेवाले, भयानक रूपवाले वानर मेरी आज्ञासे यहांसे जांय ॥१४॥ जो वानर स्थानोंको जाननेवाले हैं वे सब उन उन स्थानोंपर जांय और मेरी आज्ञासे सब वानरोंको ले आवें ॥१५॥ वानरराज सुग्रीवकी बात सुनकर वायुपुत्र हनुमानने पराक्रमी वानरोंको सब दिशाओंमें भेजा ॥१६॥ वे सब वानर राजाके द्वारा भेजे जानेपर पक्षी और प्रकाशके मार्गमें चलनेवाले, आकाशमार्गसे चले ॥१७॥ उन वानरोंने समुद्रों, पर्वतों, बनों और तालाबोंमें रहनेवाले वानरोंको रामचन्द्रके लिए चलनेको कहा ॥१८॥ मृत्युकालके समान दण्ड देनेवाले राजश्रेष्ठ सुग्रीवकी आज्ञा सुनकर, सुग्रीवके भयसे भीत सब वानर आए ॥१९॥ अनन्तर कज्जलके समानवाले उस पर्वतसे तीन करोड़ महाबलवान वानर रामचन्द्रके पास चले ॥२०॥ जिस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अस्तं गच्छति यत्रार्कस्तस्मिन्गिरिवरे रताः । संतप्तहेमवर्णाभास्तस्मात्कोट्यो दश च्युताः ॥२१॥
कैलासशिखरेभ्यश्च सिंहकेसरवर्चसाम् । ततः कोटिसहस्राणि वानराणां समागमन् ॥२२॥
फलमूलेन जीवन्तो हिमवन्तमुपाश्रिताः । तेषां कोटिसहस्राणां सहस्रं समवर्तत ॥२३॥
अङ्गारकसमानानां भीमानां भीमकर्मणाम् । विन्ध्याद्वानरकोटीनां सहस्राण्यपतन्द्रुतम् ॥२४॥
क्षीरोदवेलानिलयास्तमालवनवासिनः । नारिकेलाशनाश्चैव तेषां संख्या न विद्यते ॥२५॥
वनेभ्यो गह्वरेभ्यश्च सरिद्भ्यश्च महाबलाः । आगच्छद्वानरी सेना पिबन्तीव दिवाकरम् ॥२६॥
ये तु त्वरयितुं याता वानराः सर्ववानरान् । ते वीरा हिमवच्छैले ददृशुस्तं महाद्रुमम् ॥२७॥
तस्मिन्गिरिवरे पुण्ये यज्ञो माहेश्वरः पुरा । सर्वदेवमनस्तोषो बभूव सुमनोरमः ॥२८॥
अन्ननिस्यन्दजातानि मूलानि च फलानि च । अमृतस्वादुकल्पानि ददृशुस्तत्र वानराः ॥२९॥
तदन्नसंभवं दिव्यं फलमूलं मनोहरम् । यः कश्चित्सकृदश्नाति मासं भवति तर्पितः ॥३०॥
तानि मूलानि दिव्यानि फलानि च फलाशनाः । औषधानि च दिव्यानि जगृहुर्हरिपुंगवाः ॥३१॥
तस्माच्च यज्ञायतनात्पुष्पाणि सुरभीणि च । आनिन्युर्वानरा गत्वा सुग्रीवप्रियकारणात् ॥३२॥
ते तु सर्वे हरिवराः पृथिव्यां सर्ववानरान् । संचोदयित्वा त्वरितं यूथानां जग्मुरग्रतः ॥३३॥
ते तु तेन मुहूर्तेन कपयः शीघ्रचारिणः । किष्किन्धां त्वरया प्राप्ताः सुग्रीवो यत्र वानरः ॥३४॥
ते गृहीत्वौषधीः सर्वाः फलमूलं च वानराः । तं प्रतिग्राहयामासुर्वचनं चेदमब्रुवन् ॥३५॥

पर्वतपर सूर्य अस्त होता है वहाँ रहनेवाले, तपाए सोनेके रंगवाले दस करोड़ वानर आए ॥२१॥ कैलाश पर्वतसे सिंहके केसरके समान वर्णवाले हजार करोड़ वानर आए ॥२२॥ फलमूलसे जीकर जो वानर हिमवान पर्वतपर रहते हैं उन एक हजार करोड़में से एक हजार वानर आए ॥२३॥ लालरंगके भयानक कर्म करनेवाले और देखनेमें भी भयानक हजार करोड़ वानर विन्ध्याचल पर्वतसे शीघ्र आए ॥२४॥ क्षीरसमुद्रके तीरपर, तमालवनमें रहनेवाले और नारियल खानेवाले जो वानर आए उनकी संख्या नहीं है ॥२५॥ वनोंसे, गुहाओंसे, नदियोंसे वानरोंकी जो विशाल सेना आयी वह मानो सूर्यको पीती हुई आयी। अर्थात् उसकी उड़ाई धूलसे सूर्य छिप गया ॥२६॥ जो वानर अन्य सब वानरोंको शीघ्रता करानेके लिए भेजे गए थे, उन लोगोंने हिमवान पर्वतपर एक बड़ा वृक्ष देखा ॥२७॥ उस पवित्र पर्वत पर पहले महादेवका एक यज्ञ हुआ था। उस मनोहर यज्ञसे सब देवता प्रसन्न हुए थे ॥२८॥ अन्नके रसके उत्पन्न मूल और फल, अमृतके समान स्वादिष्ट, वानरोंने वहाँ देखे ॥२९॥ अन्नसे उत्पन्न मनोहर उस दिव्य फल मूलको जो कोई खाता है, वह एक महीने तक तृप्त रहता है। एक महीने तक उसे भूख नहीं लगती ॥३०॥ फल खानेवाले वानरोंने उन दिव्य फलों और दिव्य मूलोंको लिया ॥३१॥ उस यज्ञ स्थानसे सुग्रीवको प्रसन्न करनेके लिए सुगन्धित पुष्प भी वानर ले आए ॥३२॥ वे सब वानर पृथिवीके सब वानरोंको चलनेके लिए कहकर उनके आनेके पहले ही चले आए ॥३३॥ वे वानर भी शीघ्रतापूर्वक उसी समय किष्किन्धामें सुग्रीवके पास आए ॥३४॥ ओषधियां और फल मूल उन लोगोंने सुग्रीवको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्वे परिसृताः शैलाः सरितश्च वनानि च । पृथिव्यां वानराः सर्वेशासनादुपयान्ति ते ॥३६॥
एवं श्रुत्वा ततो हृष्टः सुग्रीवः प्लवगाधिपः । प्रतिजग्राह च प्रीतस्तेषां सर्वमुपायनम् ॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥३७॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ३८

प्रतिगृह्य च तत्सर्वमुपायनमुपाहृतम् । वानरान्सान्त्वयित्वा च सर्वानेव व्यसर्जयत् ॥ १ ॥
विसर्जयित्वा स हरीन्सहस्रान्कृतकर्मणः । मेने कृतार्थमात्मानं राघवं च महाबलम् ॥ २ ॥
स लक्ष्मणो भीमबलं सर्ववानरसत्तमम् । अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं संप्रहर्षयन् ॥ ३ ॥
किष्किन्धाया विनिष्क्राम यदि ते सौम्य रोचते । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य सुभाषितम् ॥ ४ ॥
सुग्रीवः परमप्रीतो वाक्यमेतदुवाच ह । एवं भवतु गच्छाम स्थेयं त्वच्छासने मया ॥ ५ ॥
तमेवमुक्त्वा सुग्रीवो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् । विसर्जयामास तदा ताराद्याश्चैव योषितः ॥ ६ ॥
एहीत्युच्चैर्हरिवरान्सुग्रीवः समुदाहरत् । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हरयः शीघ्रमाययुः ॥ ७ ॥
बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वे ये स्युः स्त्रीदर्शनक्षमाः । तानुवाच ततः प्राप्तान्राजार्कसदृशप्रभः ॥ ८ ॥
उपस्थापयत क्षिप्रं शिबिकां मम वानराः । श्रुत्वा तु वचनं तस्य हरयः शीघ्रविक्रमाः ॥ ९ ॥

दिये और उनसे इसप्रकार बोले ॥३५॥ सभी पर्वतों नदियों और वनोंमें हमलोग गए, पृथिवीमें जो वानर हैं वे आपकी आज्ञासे आरहे हैं ॥३६॥ वानरेश्वर सुग्रीव उनके वचन सुनकर प्रसन्न हुआ और प्रसन्नतापूर्वक उनकी दी हुई भेंटकी चीजें लीं ॥३७॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ।

उनकी भेंट लेकर तथा सत्कारकर सुग्रीवने उन सब वानरोंको बिदा किया ॥१॥ सुग्रीवने उन हजारों वानरोंको जिन्होंने समय समय पर बड़े काम किए हैं, बिदा करके अपनेको तथा रामचन्द्रको कृतार्थ समझा ॥२॥ लक्ष्मण महाबली वानरराज सुग्रीवको प्रसन्न करते हुए उनसे विनीत वचन बोले, ॥३॥ सौम्य, यदि आप उचित समझें तो किष्किन्धासे चलें । लक्ष्मणके उत्तम प्रकारसे कहे वचनको सुनकर प्रसन्न होकर सुग्रीव बोले ॥४॥ ठीक है हमलोग चलें, मुझे तो आपकी आज्ञाका पालन करना है ॥५॥ लक्ष्मणसे ऐसा कहकर सुग्रीवने तारा आदि स्त्रियोंको बिदा किया ॥६॥ 'आओ' कहकर सुग्रीवने वानरोंको बुलाया । उनके वचन सुनकर वानर शीघ्र आए ॥७॥ जो वानर रनिवासमें जा सकते थे वे हाथ जोड़कर आए । सूर्यके समान तेजवाले राजा उनसे बोले ॥८॥ वानरों, मेरी पालकी शीघ्र लाओ । सुग्रीवके वचन सुनकर शीघ्रतापूर्वक काम करनेवाले वानर सुन्दर पालकीले आए । लायी हुई पालकी देखकर 'लक्ष्मण, आप शीघ्र चढ़ें' ऐसा सुग्रीवने कहा । सूर्यके समान चमकीली सोनेकी पालकीपर लक्ष्मण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समुपस्थापयामासुः शिबिकां प्रियदर्शनाम् । तामुपस्थापितां दृष्ट्वा शिबिकां वानराधिपः ॥१०॥
लक्ष्मणारुह्यतां शीघ्रमिति सौमित्रिमब्रवीत् । इत्युक्त्वा काञ्चनं यानं सुग्रीवः सूर्यसंनिभम् ॥११॥
बहुभिर्हरिभिर्युक्तमारुरोह सलक्ष्मणः । पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ॥१२॥
शुक्लैश्च बालव्यजनैर्धूयमानैः समन्ततः । शङ्खभेरीनिनादैश्च वन्दिभिश्चाभिनन्दितः ॥१३॥
निर्ययौ प्राप्य सुग्रीवो राज्यश्रियमनुत्तमाम् । स वानरशतैस्तीक्ष्णैर्बहुभिः शस्त्रपाणिभिः॥१४॥
परिकीर्णो ययौ तत्र यत्र रामो व्यवस्थितः । स तं देशमनुप्राप्य श्रेष्ठं रामनिषेवितम् ॥१५॥
अवातरन्महातेजाः शिबिकायाः सलक्ष्मणः । आसाद्य च ततो रामं कृताञ्जलिपुटोऽभवत् ॥१६॥
कृताञ्जलौ स्थिते तस्मिन्वानराश्चाभवंस्तथा । तटाकमिव तं दृष्ट्वा रामः कुड्मलपङ्कजम् ॥१७॥
वानराणां महत्सैन्यं सुग्रीवे प्रीतिमानभूत् । पादयोः पतितं मूर्ध्ना तमुत्थाप्य हरीश्वरम् ॥१८॥
प्रेम्णा च बहुमानाच्च राघवः परिषस्वजे । परिष्वज्य च धर्मात्मा निषीदेति ततोऽब्रवीत् ॥१९॥
निषण्णं तं ततो दृष्ट्वा क्षितौ रामोऽब्रवीत्ततः । धर्ममर्थं च कामं च काले यस्तु निषेवते ॥२०॥
विभज्य सततं वीर स राजा हरिसत्तम । हित्वा धर्मं तथार्थं च कामं यस्तु निषेवते ॥२१॥
स वृक्षाग्रे यथा सुप्तः पतितः प्रतिबुध्यते । अमित्राणां वधे युक्तो मित्राणां संग्रहे रतः ॥२२॥
त्रिवर्गफलभोक्ता च राजा धर्मेण युज्यते । उद्योगसमयस्त्वेष प्राप्तः शत्रुनिषूदन ॥२३॥
संचिन्त्यतां हि पिङ्गेश हरिभिः सहमन्त्रिभिः । एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामं वचनमब्रवीत् ॥२४॥

तथा अनेक वानरोंके साथ सुग्रीव बैठे, ऊपर श्वेतछत्र लगा हुआ था ॥९,१०,११,१२॥ श्वेतचंवर चल रहे थे, शंख भेरि आदिका शब्द हो रहा था और बन्दी गुणगानकर रहे थे ॥१३॥ उत्तम राज्यकी शोभा पोकर सुग्रीव चले। सैकड़ों क्रोधी तथा शस्त्र धारण करनेवाले वानरोंके साथ सुग्रीव रामके पास चले ॥१३॥ श्रेष्ठ रामचन्द्रके रहनेके स्थान पर जाकर महातेजस्वी सुग्रीव लक्ष्मणके साथ पालकीसे उतरे। रामको पाकर उन्होंने हाथ जोड़ा ॥१४,१५,१६॥ सुग्रीवके हाथ जोड़े खड़े रहनेसे वानरोंने भी हाथ जोड़े। मुकुलित कमलोंसे युक्त तालाबके समान वानरोंकी उस बड़ी सेनाको देखकर रामचन्द्र सुग्रीव पर प्रसन्न हुए। पैरोंपर सिर रखे हुए सुग्रीवको उठाकर प्रेम और आदरसे रामचन्द्रने उनका आलिंगन किया। आलिंगन करनेके पश्चात् धर्मात्मा रामचन्द्रने कहा कि बैठो ॥१७,१८,१९॥ पृथिवीमें बैठे हुए सुग्रीवको देखकर रामचन्द्रबोले—धर्म अर्थ और कामका समय पर जो अनुष्ठान करता है, हे वानरश्रेष्ठ, इनके लिए जो समयका विभाग करता है, वही राजा है। धर्म तथा अर्थका त्याग करके जो केवल कामकी सेवा करता है वह वृक्षकी शाखापर सोए हुए के समान गिरनेपर ही समझता है। जो शत्रुओंका बध करता है, मित्रोंका संग्रह करता है वही त्रिवर्गका, धर्म अर्थ कामका, फल भोगता है और धर्मसे भी युक्त होता है। हे शत्रुसूदन! हमलोगोंके उद्योग करनेका यही समय है। अपने मंत्रियोंके साथ आप विचार करें। ऐसा कहनेपर सुग्रीव रामचन्द्रसे बोला ॥२०,२१,२२,२३,२४॥ महाबाहो, श्री कीर्ति तथा यह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रनष्टा श्रीश्च कीर्तिश्च कपिराज्यं च शाश्वतम्। त्वत्प्रसादान्महाबाहो पुनः प्राप्तमिदं मया ॥२५॥
तव देव प्रसादाच्च भ्रातुश्च जयतां वर। कृतं न प्रतिकुर्याद्यः पुरुषाणां हि दूषकः ॥२६॥
एते वानरमुख्याश्च शतशः शत्रुसूदन। प्राप्ताश्चादाय बलिनः पृथिव्यां सर्ववानरान् ॥२७॥
ऋक्षाश्च वानराः शूरा गोलाङ्गूलाश्च राघव। कान्तारवनदुर्गाणामभिज्ञा घोरदर्शनाः ॥२८॥
देवगन्धर्वपुत्राश्च वानराः कामरूपिणः। स्वैः स्वैः परिवृताः सैन्यैर्वर्तन्ते पथि राघव ॥२९॥
शतैः शतसहस्रैश्च वर्तन्ते कोटिभिस्तथा। अयुतैश्चावृता वीर शङ्कुभिश्च परंतप ॥३०॥
अर्बुदैरर्बुदशतैर्मध्यैश्चान्त्यैश्च वानराः। समुद्राश्च परार्धाश्च हरयो हरियूथपाः ॥३१॥
आगमिष्यन्ति ते राजन्महेन्द्रसमविक्रमाः। मेघपर्वतसंकाशा मेरुविन्ध्यकृतालयाः ॥३२॥
ते त्वामभिगमिष्यन्ति राक्षसं योद्धमाहवे। निहत्य रावणं युद्धे ह्यानयिष्यन्ति मैथिलीम् ॥३३॥
ततः समुद्योगमवेक्ष्य वीर्यवान्हरिप्रवीरस्य निदेशवर्तिनः।
बभूव हर्षाद्वसुधाधिपात्मजः प्रबुद्धनीलोत्पलतुल्यदर्शनः ॥३४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डेऽष्टात्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

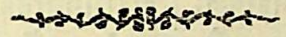

सनातन वानरराज्य नष्ट हो चुके थे। आपकी कृपासे पुनः मैंने पाये ॥२५॥ आपकी दयासे और आपके भाईकी दयासे मैंने ये सब पुनः पाये। जो किए उपकारका प्रत्युपकार नहीं करता वह मनुष्योंका धर्म-नाशक है ॥२६॥ हे शत्रुसूदन, ये सैकड़ों वानर पृथिवीके सभी वानरोंको लेकर आये हैं। हेरामचन्द्र, ये भालु, वानर तथा गोलांगुल बीहड़ वन तथा दुर्गके जाननेवाले हैं, ये बड़े भयानक और वीर हैं ॥२७, २८॥ रामचन्द्र, अपनी अपनी सेनाओंके साथ देवपुत्र और गंधर्वपुत्र वानर जो इच्छानुसार रूप धारण करते हैं, वे अभी रास्तेमें हैं ॥२९॥ किसीके साथ सौ वानर हैं, किसीके साथ सौ हजार, किसीके साथ करोड़, किसीके साथ दस हजार और किसीके साथ शंकु वानर है। (लाख करोड़को शंकु कहते हैं) ॥३०॥ किसीके साथ अर्बुद (हजारशंकु) किसीके शाथ सौ अर्बुद, किसीके साथ मध्य (अर्बुदका दस गुणा) किसीके साथ अन्त्य (मध्यका दसगुणा) और किसीके साथ समुद्र (अन्त्यका दसगुना) और किसी के साथ परार्द्ध (समुद्रका तीस गुणा) वानर हैं ॥३१॥ राजन्, मेरु और विंध्याचलमें रहनेवाले मेघके समान वर्णवाले, पर्वतके समान विशाल, इन्द्रके समान पराक्रमी ये वानर आवेगें ॥३२॥ वे रणमें राक्षससे युद्ध करनेके लिए तुम्हारे साथ जाँयगे। रावणको युद्धमें मारकर सीताको लायेंगे ॥३३॥ आज्ञामें रहनेवाले वानरराज सुग्रीवका उद्योग देखकर राजपुत्र रामचन्द्र प्रसन्नतासे विकसित नीलकमलके समान सुन्दर दिखायी पड़े ॥३४॥

आर्षकाव्य वाल्मीकीयरामायणके किष्किन्धाकाण्डका अड़तीसवां सर्ग समाप्त।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ३९

इति ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो धर्मभृतां वरः । बाहुभ्यां संपरिष्वज्य प्रत्युवाच कृताञ्जलिम् ॥१॥
यदिन्द्रो वर्षते वर्षं न तच्चित्रं भविष्यति । आदित्योऽसौ सहस्रांशुः कुर्याद्वितिमिरंनभः ॥२॥
चन्द्रमा रजनीं कुर्यात्प्रभया सौम्य निर्मलाम् । त्वद्विधो वापि मित्राणां प्रीतिं कुर्यात्परंतप ॥३॥
एवं त्वयि न तच्चित्रं भवेद्यत्सौम्य शोभनम् । जानाम्यहं त्वां सुग्रीव सततं प्रियवादिनम् ॥४॥
त्वत्सनाथः सखे संख्ये जेतास्मि सकलानरीन् । त्वमेव मे सुहृन्मित्रं साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥५॥
जहारात्मविनाशाय मैथिलीं राक्षसाधमः । वञ्चयित्वा तु पौलोमीमनुह्लादो यथा शचीम् ॥६॥
न चिरात्तं वधिष्यामि रावणं निशितैः शरैः । पौलोम्याः पितरं दृप्तं शतक्रतुरिवारिहा ॥७॥
एतस्मिन्नन्तरे चैव रजः समभिवर्तत । उष्णतीव्रां सहस्रांशोश्छादयद्गगने प्रभाम् ॥८॥
दिशः पर्याकुलाश्चासंस्तमसा तेन दूषिताः । चचाल च मही सर्वा सशैलवनकानना ॥९॥
ततो नरेन्द्रसंकाशैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्महाबलैः । कृत्स्ना संछादिता भूमिरसंख्येयैः प्लवंगमैः ॥१०॥
निमेषान्तरमात्रेण ततस्तैर्हरियूथपैः । कोटीशतपरीवारैर्वानरैर्हरियूथपैः ॥११॥
नादेयैः पार्वतेयैश्च सामुद्रैश्च महाबलैः । हरिभिर्मेघनिर्हादैरन्यैश्च वनवासिभिः ॥१२॥
तरुणादित्यवर्णैश्च शशिगौरैश्च वानरैः । पद्मकेसरवर्णैश्च श्वेतैर्हेमकृतालयैः ॥१३॥

सुग्रीव हाथ जोड़कर जब इस प्रकार कहरहे थे तब धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ रामचन्द्र उनका आलिंगन करके बोले ॥१॥ इन्द्र जो जलकी वृष्टि करते हैं इसमें कुछ आश्चर्य नहीं, हजार किरणोंवाले सूर्य आकाशको अन्धकारहीन बनाते हैं इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है ॥२॥ हेसौम्य, चन्द्रमा अपने प्रकाशसे रात्रिको निर्मल बनादे, इसमें भी कुछ आश्चर्य नहीं है। इसी प्रकार तुम्हारे समान मनुष्य यदि मित्रोंको प्रसन्न करे तो इसमें भी कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है ॥३॥ इसी प्रकार तुम्हारे द्वारा भी जो उत्तम काम होते हैं इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। सुग्रीव, मैं तुम्हें जानता हूँ। तुम सदाप्रिय बोलने वाले हो ॥४॥ सखे, युद्धमें तुम्हारे सहायक रहने परमैं समस्त शत्रुओंको जीतलूँगा। अतएव, मेरे सहृदय मित्र, तुम्हीं मेरी सहायता करना ॥५॥ राक्षसधाम रावणने अपने नाशके लिए जानकीका हरण किया, जिस प्रकार धोखा देकर अनुल्हादने शचीका हरण किया था ॥६॥ उस रावणको तीखे बाणोंसे शीघ्र ही मारूँगा। जिस प्रकार पौलोमी (शची) के अहंकारी पिताको इन्द्रने मारा था ॥७॥ इसी समय धूल उड़ी, जिसने सूर्यकी प्रखर किरणको आकाशमें ढांप लिया ॥८॥ दिशाएं अन्धकारमय हो गयीं। पृथिवी पर्वत और बनके साथ कांपने लगी ॥९॥ अनन्तर पर्वतके समान ऊंचे, तीखे दांतोंवाले, महाबली असंख्य वानरोंसे पृथिवी ढँक गयी ॥१०॥ एक ही मुहूर्तमें उन सेनापतियोंसे तथा सौसौ करोड़ सैनिकोंके सेनापतियोंसे वह भूमि भर गयी ॥११॥ नदी पर्वत समुद्रमें रहनेवाले, मेघके समान बोलनेवाले वानरों, तथा बनमें रहनेवाले वानरोंसे वहांकी भूमि भर गयी ॥१२ सूर्यके समान उज्ज्वल, चन्द्रमाके समान गौर, कमलकेशरके समान पीले और स्वेत हेमाचल पर रहनेवाले दस करोड़ वानरोंके साथ वीरशतबलि नामक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कोटीसहस्रैर्दशभिः श्रीमान्परिवृतस्तदा । वीरः शतबलिर्नाम वानरः प्रत्यदृश्यत ॥१४॥
ततः काञ्चनशैलाभस्तारायाः वीर्यवान्पिता । अनेकैर्बहुसाहस्रैः कोटिभिः प्रत्यदृश्यत ॥१५॥
तथापरेण कोटीनां सहस्रेण समन्वितः । पिता रुमायाः संप्राप्तः सुग्रीवश्वशुरो विभुः ॥१६॥
पद्मकेसरसंकाशस्तरुणार्कनिभाननः । बुद्धिमान्वानरश्रेष्ठः सर्ववानरसत्तमः ॥१७॥
अनेकैर्बहुसाहस्रैर्वानराणां समन्वितः । पिता हनुमतः श्रीमान्केसरी प्रत्यदृश्यत ॥१८॥
गोलाङ्गूलमहाराजो गवाक्षो भीमविक्रमः । वृतः कोटिसहस्रेण वानराणामदृश्यत ॥१९॥
ऋक्षाणां भीमवेगानां धूम्रः शत्रुनिबर्हणः । वृतः कोटिसहस्राभ्यां द्वाभ्यां समभिवर्तत ॥२०॥
महाबलनिभैर्घोरैः पनसो नाम यूथपः । आजगाम महावीर्यस्तिसृभिः कोटिभिर्वृतः ॥२१॥
नीलाञ्जनचयाकारो नीलो नामैष यूथपः । अदृश्यत महाकायः कोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥२२॥
ततः काञ्चनशैलाभो गवयो नाम यूथपः । आजगाम महावीर्यः कोटिभिः पञ्चभिर्वृतः ॥२३॥
दरीमुखश्च बलवान्यूथपोऽभ्याययौ तदा । वृतः कोटिसहस्रेण सुग्रीवं समवस्थितः ॥२४॥
मैन्दश्च द्विविदश्चोभावश्विपुत्रौ महाबलौ । कोटिकोटिसहस्रेण वानराणामदृश्यताम् ॥२५॥
गजश्च बलवान्वीरस्तिसृभिः कोटिभिर्वृतः । ऋक्षराजो महातेजा जाम्बवान्नाम नामतः ॥२६॥
कोटिभिर्दशभिर्व्याप्तः सुग्रीवस्य वशे स्थितः । रुमण्वान्नाम तेजस्वी विक्रान्तैर्वानरैर्वृतः ॥२७॥
आगतो बलवांस्तूर्णं कोटीशतसमावृतः । ततः कोटिसहस्राणां सहस्रेण शतेन च ॥२८॥

वानर दीख पड़ा ॥१३,१४॥ अनन्तर सुवर्ण-पर्वतके समान विशाल और बलवान् ताराका पिता कई हजार करोड़ वानरोंके साथ दिखायी पड़ा ॥१५॥ अनन्तर दूसरे हजार करोड़ वानरोंसे युक्त रुमाका पिता सुग्रीवका ससुर आया ॥१६॥ पद्म-केसरके समान रंगवाला, सूर्य्यके समान देदीप्यमान मुखवाला, बुद्धिमान और वानरोंमें श्रेष्ठ ॥१७॥ अनेक हजार वानरोंके साथ हनुमानका पिता श्रीमान् केसरी आया ॥१८॥ अनन्तर गोलांगूल जातिके वानरोंका राजा महापराक्रमी गवाक्ष हजार करोड़ वानरोंके साथ दीख पड़ा ॥१९॥ बड़े वेगवान दोहजार करोड़ भालुओंके साथ धूम्रनामक ऋक्षराज आया ॥२०॥ महाबलसे प्रकाशमान् भयानक तीन करोड़ वानरोंके साथ पनस नामका सेनापति आया ॥२१॥ नील कज्जलसमूहके आकारवाला विशालकाय नील नामक सेनापति दस करोड़ वानरोंके साथ दिखायी पड़ा ॥२२॥ यह सुवर्ण पर्वतके समान गवय नामका सेनापति है। महाबली यह पांच करोड़ वानरोंके साथ आया है ॥२३॥ दरीमुख नामका बलवान सेनापति आया, हजार करोड़ वानर उसके पास थे और वह सुग्रीवके पास आकर बैठ गया ॥२४॥ अश्वीकेपुत्र महाबली मैन्द और द्विविद नामक वानर आए जिनके साथ हजार हजार करोड़ वानर थे ॥२५॥ बलवान् गज नामक वीर आया, जिसके साथ तीन करोड़ वानर आए। महातेजस्वी जाम्बवान् नामके ऋक्षराज भी आए ॥२६॥ दस करोड़ सेना इनके साथ थी, ये सुग्रीवके अधीन थे। रुमण नामका तेजस्वी वानर आया, इसके साथ सौ करोड़ पराक्रमी वानर आए। अनन्तर लाख वानरोंके साथ गंधमादन नामका वानर आया। अनन्तर हजार पद्म और सौ शंकु

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठतोऽनुगतः प्राप्तो हरिभिर्गन्धमादनः । ततः पद्मसहस्रेण वृतः शंखुशतेन च ॥२९॥
युवराजोऽङ्गदः प्राप्तः पितुस्तुल्यपराक्रमः । ततस्ताराद्युतिस्तारो हरिभिर्भीमविक्रमैः ॥३०॥
पञ्चभिर्हरिकोटीभिर्दूरतः पर्यदृश्यत । इन्द्रजानुः कविवीरो यूथपः प्रत्यदृश्यत ॥३१॥
एकादशानां कोटीनामीश्वरस्तैश्च संवृतः । ततो रम्भस्त्वनुप्राप्तस्तरुणादित्यसंनिभः ॥३२॥
अयुतेन वृतश्चैव सहस्रेण शतेन च । ततो यूथपतिर्वीरो दुर्मुखो नाम वानरः ॥३३॥
प्रत्यदृश्यत कोटीभ्यां द्वाभ्यां परिवृतो बली । कैलासशिखराकारैर्वानरैर्भीमविक्रमैः ॥३४॥
वृतः कोटिसहस्रेण हनुमान्प्रत्यदृश्यत । नलश्चापि महावीर्यः संवृतो द्रुमवासिभिः ॥३५॥
कोटीशतेन संप्राप्तः सहस्रेण शतेन च । ततो दरीमुखः श्रीमान्कोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥३६॥
संप्राप्तोऽभिनदंस्तस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । शरभः कुमुदो वह्निर्वानरो रम्भ एव च ॥३७॥
एते चान्ये च बहवो वानराः कामरूपिणः । आवृत्य पृथिवीं सर्वां पर्वतांश्च वनानि च ॥३८॥
यूथपाः समनुप्राप्ता येषां संख्या न विद्यते । आगताश्च निविष्टाश्च पृथिव्यां सर्ववानराः ॥३९॥
आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः । अभ्यवर्तन्त सुग्रीवं सूर्यमभ्रगणा इव ॥४०॥
कुर्वाणा बहुशब्दांश्च प्रकृष्टा बाहुशालिनः । शिरोभिर्वानरेन्द्राय सुग्रीवाय न्यवेदयन् ॥४१॥
अपरे वानरश्रेष्ठाः संगम्य च यथोचितम् । सुग्रीवेण समागम्य स्थिताः प्राञ्जलयस्तदा ॥४२॥
सुग्रीवस्त्वरितो रामे सर्वांस्तांस्त्वरितांस्तदा । निवेदयित्वा धर्मज्ञः स्थितः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥४३॥

वानरोंके साथ पिताके तुल्य पराक्रमी युवराज अंगद आए। अनन्तर ताराके समान प्रकाशमान तारनामका सेनापति भीम पराक्रमी, पांच करोड़ वानरोंके साथ देखा गया। इन्द्रजानु नामका वीर सेनापति देखा गया। वह ग्यारह करोड़ वानरोंका अधिपति है, उनके साथ वह आया। अनन्तर सूर्यके समान प्रकाशमान् रम्भ नामका वानर आया। दस हजार हजार, और सौ वानरोंके साथ वह आया, अर्थात् ग्यारह हजार एक सौ वानर उसके साथ आये। अनन्तर दुर्मुख नामका वीर आया। यह बली दो करोड़ वानरोंके साथ देखा गया। कैलाशशिखरके समान आकारवाले बड़े पराक्रमी हजार करोड़ वानरोंके साथ वीर हनुमान दिखायी पड़े। पुनः नल नामक महाबली वानर सौ करोड़, हजार और सौ वानरोंके साथ आए। दरीमुख नामका सेनापति आया, जिसके साथ दस करोड़ वानर थे ॥२७,२८,२९,३०,३१,३२,३३,३४,३५, ३६॥ शरभ, कुमुद वह्नि, और रम्भ नामके वानर गरजते हुए महात्मा सुग्रीवके पास आए ॥३७॥ ये तथा और अनेक इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले अनेक वानर समस्त पर्वतों, वनों और पृथिवीसे घमकर आए ॥३८॥ इतने सेनापति आए जिनकी संख्या नहीं है। वे सब वानर आये। पृथिवीमें बैठ गये ॥ ३९ ॥ और शाखाओं पर कूदते हुए और गर्जन करते हुए वानर सुग्रीवके पास आये जैसे सूर्यके पास मेघ आते हैं ॥४०॥ बाहुमें बल रखनेवाले उन वानरोंने अनेक प्रकारके शब्द करके और सिर झुका कर अपने आनेकी सूचना सुग्रीवको दी ॥४१॥ दूसरे श्रेष्ठ वानर यथोचित सुग्रीवसे मिलकर हाथ जोड़कर बैठे ॥४२॥ सुग्रीवने शीघ्रतापूर्वक उन सबको रामके सामने उपस्थित किया और धर्मज्ञ सुग्रीव आप हाथ जोड़कर बैठ गये ॥४३॥ पर्वतके झरनोंके पास तथा सब वनोंमें वानरसेनापति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यथासुखं पर्वतनिर्झरेषु वनेषु सर्वेषु च वानरेन्द्राः ।
निवेशयित्वा विधिवद्बलानि बलं बलज्ञः प्रतिपत्तुमीष्टे ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९॥

चत्वारिंशः सर्गः ४०

अथ राजा समृद्धार्थः सुग्रीवः प्लवगेश्वरः । उवाच नरशार्दूलं रामं परबलार्दनम् ॥ १ ॥
आगता विनिविष्टाश्च बलिनः कामचारिणः । वानरेन्द्रा महेन्द्राभा ये मद्विषयवासिनः ॥ २ ॥
त इमे बहुविक्रान्तैर्बलिभिर्भीमविक्रमैः । आगता वानरा घोरा दैत्यदानवसंनिभाः ॥ ३ ॥
ख्यातकर्मापदानाश्च बलवन्तो जितक्लमाः । पराक्रमेषु विख्याता व्यवसायेषु चोत्तमाः ॥ ४ ॥
पृथिव्यम्बुचरा राम नानानगनिवासिनः । कोट्योघाश्च इमे प्राप्ता वानरास्तव किंकराः ॥ ५ ॥
निदेशवर्तिनः सर्वे सर्वे गुरुहिते स्थिताः । अभिप्रेतमनुष्ठातुं तव शक्ष्यन्त्यरिंदम ॥ ६ ॥
त इमे बहुसाहस्रैरनेकैर्बहुविक्रमैः । आगता वानरा घोरा दैत्यदानवसंनिभाः ॥ ७ ॥
यन्मन्यसे नरव्याघ्र प्राप्तकालं तदुच्यताम् । त्वत्सैन्यं त्वद्वशे युक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ८ ॥
काममेवमिदं कार्यं विदितं मम तत्त्वतः । तथापि तु यथायुक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ९ ॥
तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो दशरथात्मजः । बाहुभ्यां संपरिष्वज्य इदं वचनमब्रवीत् ॥१०॥

अपनी-अपनी सेनाको सुखपूर्वक ठहरावें और सेनाका परिचय रखनेवाला अपनी सेनाका पता लगावे ॥४४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका उनतालीसवाँ सर्ग समाप्त ।

वानरराज सुग्रीव सब सामग्रियोंको प्राप्त कर शत्रुसेनाके नाश करनेवाले नरश्रेष्ठ रामचन्द्रसे बोले, ॥१॥ इन्द्रके समान बली वानर आगए हैं । ये सब इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं । ये मेरे राज्यके रहनेवाले हैं । उचित स्थान पर ठहराए गए हैं ॥२॥ अनेक देशोंमें भ्रमण किये हुए बली और पराक्रमी ये भयानक वानर आए हैं । ये दैत्य और दानवके समान हैं ॥३॥ युद्धोंमें इनकी वीरताका परिचय मिल चुका है, ये कष्टोंको सहनेवाले हैं, पराक्रममें प्रसिद्ध हैं और उद्योग करनेमें उत्तम हैं ॥४॥ पृथिवी और जलमें चलनेवाले, अनेक पर्वतोंके रहनेवाले, करोड़ोंसे भी ऊपरके आए हुए वानर आपके सेवक हैं ॥५॥ ये सब आपकी आज्ञाके अधीन हैं । अपने स्वामीका ये हित-साधन करेंगे । आपके मनोरथ सिद्ध करनेमें ये समर्थ हैं ॥६॥ बड़े पराक्रमी, कई हजारोंकी संख्यामें इन वानरोंके साथ जो आये हैं, वे दैत्य दानवके समान भयानक हैं ॥७॥ हे नरव्याघ्र, जो इस कालके लिए आप उचित समझते हों, उसकी आज्ञा कीजिए । आपकी सेना आपके अधीन हैं आप आज्ञा दें ॥८॥ यद्यपि यह कार्य, सीताका ढूंढनेका मुझे भी अच्छी तरह मालूम है फिर भी आप जो उचित समझें, उसकी आज्ञा करें ॥९॥ सुग्रीवके ऐसा कहने पर सुग्रीवका आलिंगन कर दशरथपुत्र रामचन्द्र उनसे बोले, ॥१०॥ सौम्य, इस बातका पता लगाना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञायतां सौम्य वैदेही यदि जीवति वा न वा । स च देशो महाप्राज्ञ यस्मिन्वसति रावणः ॥११॥
अभिगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च । प्राप्तकालं विधास्यामि तस्मिन्काले सह त्वया ॥१२॥
नाहमस्मिन्प्रभुः कार्ये वानरेन्द्र न लक्ष्मणः । त्वमस्य हेतुः कार्यस्य प्रभुश्च प्लवगेश्वर ॥१३॥
त्वमेवाज्ञापय विभो मम कार्यविनिश्चयम् । त्वं हि जानासि मे कार्यं मम वीर न संशयः ॥१४॥
सुहृद्द्वितीयो विक्रान्तः प्राज्ञः कालविशेषवित् । भवानस्मद्धिते युक्तः सुहृदाप्तोऽर्थवित्तमः ॥१५॥
एवमुक्तस्तु सुग्रीवो विनतं नाम यूथपम् । अब्रवीद्रामसांनिध्ये लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥१६॥
शैलाभं मेघनिर्घोषमूर्जितं प्लवगेश्वरम् । सोमसूर्यनिभैः सार्धं वानरैर्वानरोत्तम ॥१७॥
देशकालनयैर्युक्तो विज्ञः कार्यविनिश्चये । वृतः शतसहस्रेण वानराणां तरस्विनाम् ॥१८॥
अधिगच्छ दिशं पूर्वां सशैलवनकाननाम् । तत्र सीतां च वैदेहीं निलयं रावणस्य च ॥१९॥
मार्गध्वं गिरिदुर्गेषु वनेषु च नदीषु च । नदीं भागीरथीं रम्यां सरयूं कौशिकीं तथा ॥२०॥
कालिन्दीं यमुनां रम्यां यामुनं च महागिरिम् । सरस्वतीं च सिन्धुं च शोणं मणिनिभोदकम् ॥२१॥
महीं कालमहीं चापि शैलकाननशोभिताम् । ब्रह्ममालान्विदेहांश्च मालवान्काशिकोसलान् ॥२२॥
मागधांश्च महाग्रामान्पुण्ड्रांस्त्वङ्गांस्तथैव च । भूमिं च कोशकाराणां भूमिं च रजताकराम् ॥२३॥
सर्वं च तद्विचेतव्यं मृगयद्भिस्ततस्ततः । रामस्य दयितां भार्यां सीतां दशरथस्नुषाम् ॥२४॥

चाहिए कि सीता जीती है कि नहीं, और वह देश कहां है जहां रावण रहता है ॥११॥ सीता और रावणके घरका पता लगने पर, उस समय तुम्हारे साथ जो समयानुकूल होगा उसका निश्चय किया जायगा ॥११॥ हे वानरेन्द्र, इस कार्यका मैं अथवा लक्ष्मण प्रभु नहीं हैं तुम्हीं इसके करनेवाले हो, और स्वामी भी हो ॥१३॥ कार्यका निश्चय करके, क्या करना है यह विचार कर, तुम्हीं आज्ञा दो । हे वीर तुम मेरे कार्योंको जानते हो, इसमें सन्देह नहीं ॥१४॥ आप मेरे दूसरे मित्र हैं, पराक्रमी हैं, बुद्धिमान हैं, अवसर समझनेवाले हैं, यथार्थ ज्ञान रखनेवाले हैं । आप यदि हमारे कार्यमें लगें तो कार्य सिद्ध हो ॥१५॥ रामचन्द्रके ऐसा कहने पर सुग्रीव विनत नामक सेनापतिसे राम और लक्ष्मणके समीप बोले ॥१६॥ वह विनत पर्वतके समान ऊंचा था । मेघके समान गरजता था और बड़ा वीर था । सुग्रीवने उससे कहा—हे वानरश्रेष्ठ, चन्द्र सूर्यके समान वानरोंके साथ देशकाल और नीतिके जाननेवाले सौ हजार वेगवान वानरोंके साथ तुम पूर्व दिशाकी ओर जाओ । कर्तव्य निश्चय करनेमें तुम स्वयं बुद्धिमान हो । वहां पर्वत, वन, कानन आदिमें सीताको और रावणके घरको ढूँढ़ना ॥१७,१८,१९॥ दो पर्वतोंके बीचमें, वनोंमें, नदियोंमें सीताको ढूँढ़ना । गंगा, सरजू और कौशिकी नदीको ढूँढ़ना ॥२०॥ कालिन्दी यमुना, यामुन नामक महापर्वत, सरस्वती, सिन्धु तथा मणिके समान जलवाले शोणको ढूँढना ॥२१॥ मही, कालमही दोनों नदियोंको जो वनपर्वतसे शोभित हैं ढूँढना । ब्रह्ममाला, विदेह, मालव, काशी और कोशल देशोंको भी ढूँढ़ना । बड़े बड़े गांववाले मगध, पुंड्र तथा अंग देशको ढूँढ़ना । रेशम उत्पन्न करनेवाली भूमि तथा चांदी उत्पन्न करनेवाली भूमिको देखना ॥२२,२३॥ इन सब स्थानोंमें जाकर ढूँढना । इधर उधर भी ढूँढना । रामचन्द्रकी प्रिय पत्नी और दसरथकी पतोहू सीताको ढूंढना ॥२४॥ जो पर्वत और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समुद्रमवगाढांश्च पर्वतान्पत्तनानि च । मन्दरस्य च ये कोटिं संश्रिताः केचिदालयाः ॥२५॥
कर्णप्रावरणाश्चैव तथा चाप्योष्ठकर्णकाः । घोरलोहमुखाश्चैव जवनाश्चैकपादकाः ॥२६॥
अक्षया बलवन्तश्च तथैव पुरुषादकाः । किरातास्तीक्ष्णचूडाश्च हेमाभाः प्रियदर्शनाः॥२७॥
आममीनाशनाश्चापि किराता द्वीपवासिनः । अन्तर्जलचरा घोरा नरव्याघ्रा इति स्मृताः ॥२८॥
एतेषामाश्रयाः सर्वे विचेयाः काननौकसः । गिरिभिर्ये च गम्यन्ते प्लवनेन प्लवेन च ॥२९॥
यत्नवन्तो यवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितम् । सुवर्णरूप्यकद्वीपं सुवर्णकरमण्डितम् ॥३०॥
यवद्वीपमतिक्रम्य शिशिरो नाम पर्वतः । दिवं स्पृशति शृङ्गेण देवदानवसेवितः ॥३१॥
एतेषां गिरिदुर्गेषु प्रपातेषु वनेषु च । मार्गध्वं सहिताः सर्वे रामपत्नीं यशस्विनीम् ॥३२॥
ततो रक्तजलं प्राप्य शोणाख्यं शीघ्रवाहिनम् । गत्वा पारं समुद्रस्य सिद्धचारणसेवितम् ॥३३॥
तस्य तीर्थेषु रम्येषु विचित्रेषु वनेषु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥३४॥
पर्वतप्रभवा नद्यः सुभीमबहुनिष्कुटाः । मार्गितव्या दरीमन्तः पर्वताश्च वनानि च ॥३५॥
ततः समुद्रद्वीपांश्च सुभीमान्द्रष्टुमर्हथ । ऊर्मिमन्तं महारौद्रं क्रोशन्तमनिलोद्धतम् ॥३६॥
तत्रासुरा महाकायाश्छायां गृह्णन्ति नित्यशः । ब्रह्मणा समनुज्ञाता दीर्घकालं बुभुक्षिताः ॥३७॥

नगर समुद्रमें घुस गए हैं, अथवा जो मन्दर पर्वतके शिखरपर बसे हुए हैं, वहां भी ढूँढना ॥२५॥ कानको छिपा रखनेवाले, ओंठमें जिनके कान होते हैं, जिनके मुख लोहेके होते हैं, जो एक पैरके होते भी वेगसे चलते हैं, जिनके घर नहीं होते, जो बलवान् और मनुष्योंको खानेवाले होते हैं, सूर्यके समान तीखी चोटीवाले, सोनेके रंगवाले, देखनेमें सुन्दर, कच्ची मछली खानेवाले, द्वीपमें रहनेवाले, किरातोंके यहाँ भी ढूँढना। जो जलके भीतर रहते हैं, देखनेमें भयानक हैं और नरव्याघ्र कहे जाते हैं ॥२६,२७, २८॥ जंगलोंमें इन सबके रहनेकी जगह ढूँढी जाय। पर्वतोंसे कूदकर या नौकासे जिन द्वीपोंमें जाया जाता है वहां भी ढूँढा जाय ॥२९॥ सात राज्योंसे युक्त यत्नपूर्वक यवद्वीपमें भी तुमलोग जाओ। सुवर्ण द्वीप और रूप्यकद्वीपमें भी तुमलोग जाओ, जहां सोना बनानेवाले रहते हैं ॥३०॥ यवद्वीपके आगे जानेसे शिशिर नामका पर्वत मिलता है, जो शिखरसे आकाशको छूता है, जहां देवता दानव रहते हैं ॥३१॥ इनकी गुहाओंमें, झरनोंके पास बनोंमें, यशस्विनी रामपत्नीको तुमलोग मिलकर ढूंढ़ो ॥३२॥ उसके आगे शीघ्र बहनेवाला और लाल जलवाला शोण नदके तीरपर जाकर समुद्रके पार जाना, जहां सिद्ध चारण आदि रहते हैं ॥३३॥ उसके रमणीय घाटोंमें और विचित्र वनोंमें सीता और रावणको अच्छी तरह ढूँढो। इनका पता लगाओ ॥३४॥ पर्वतसे उत्पन्न नदियां, बड़े-बड़े घरके पासके बगीचे, गुहावाले पर्वत तथा वन इनको अच्छी तरह ढूंढो ॥३५॥ अनन्तर, भयंकर समुद्रके द्वीपोंको जाकर तुम देखो। लहरोंवाला, सदा गर्जन करनेवाला, बड़ा भयानक हवासे उद्धत, इक्षुसमुद्रको देखना ॥३६॥ वहां विशाल शरीरवाले असुर सदा छाया ग्रहण करते हैं, अर्थात् छायासे छायावालेको पकड़ लेते हैं। इसके लिए उन्हें ब्रह्मासे आज्ञा मिली है। वे बहुत दिनोंके भूखे हैं ॥३७॥ अतएव काल मेघके समान बड़े-बड़े

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तं कालमेघप्रतिमं महोरगनिषेवितम् । अभिगम्य महानादं तीर्थेनैव महोदधिम् ॥३८॥
ततो रक्तजलं भीमं लोहितं नाम सागरम् । गत्वा प्रेक्ष्यथ तां चैव बृहतीं कूटशाल्मलीम् ॥३९॥
गृहं च वैनतेयस्य नानारत्नविभूषितम् । तत्र कैलाससंकाशं विहितं विश्वकर्मणा ॥४०॥
तत्र शैलनिभा भीमा मन्देहा नाम राक्षसाः । शैलशृङ्गेषु लम्बन्ते नानारूपा भयावहाः ॥४१॥
ते पतन्ति जले नित्यं सूर्यस्योदयनं प्रति । अभितप्ताः स्म सूर्येण लम्बन्ते स्म पुनःपुनः ॥४२॥
निहता ब्रह्मतेजोभिरहन्यहनि राक्षसाः । ततः पाण्डुरमेघाभं क्षीरोदं नाम सागरम् ॥४३॥
गत्वा द्रक्ष्यथ दुर्धर्षा मुक्ताहारमिवोर्मिभिः । तस्य मध्ये महाञ्श्वेतो ऋषभो नाम पर्वतः ॥४४॥
दिव्यगन्धैः कुसुमितैराचितैश्च नगैर्वृतः । सरश्च राजतः पद्मैर्जलितैर्हेमकेसरैः ॥४५॥
नाम्ना सुदर्शनं नाम राजहंसैः समाकुलम् । विबुधाश्चारणा यक्षाःकिंनराश्चाप्सरोगणाः॥४६॥
हृष्टाः समधिगच्छन्ति नलिनीं तां रिरंसवः । क्षीरोदं समतिक्रम्य तदा द्रक्ष्यथ वानराः ॥४७॥
जलोदं सागरं शीघ्रं सर्वभूतभयापहम् । तत्र तत्कोपजं तेजः कृतं हयमुखं महत् ॥४८॥
अस्याद्भुतं महावेगमोदनं सचराचरम् । तत्र विक्रोशतां नादो भूतानां सागरौकसाम् ।
श्रूयते चासमर्थानां दृष्ट्वाभूद्वडवामुखम् ॥४९॥

सर्पोंसे युक्त महागर्जन करनेवाले उस समुद्रके पास कुछ उपाय करके जाना, अर्थात् छायाग्राहीसे बचकर जाना ॥३८॥ वहांसे लोहित सागर नामक समुद्रके पास जाना, जिसका जल लाल है और जो बड़ा भयंकर है ॥३९॥ वहां जाकर उस कूट नामक बड़े सेमलके वृक्षको देखना । वहां विश्वकर्माने अनेक रत्नोंसे युक्त गरुड़के लिए घर बनाया है जो कैलाशके समान है ॥ ४० ॥ वहां पर्वतके समान बड़े-बड़े भयंकर मन्देह नामक राक्षस रहते हैं, वे अनेक प्रकारके है और बड़े भयानक हैं । वे पर्वतके शिखर पर लटकते रहते हैं ॥४१॥ सूर्यके उदय होनेके समय वे जलमें गिर जाते हैं और सूर्यकी किरणोंसे तप्त होकर पुनः पर्वत शिखर पर लटकने लगते हैं ॥४२॥ ब्रह्मतेजसे प्रतिदिन वे राक्षस निहत होते हैं । वहांसे श्वेतमेघके समान क्षीरोद समुद्र पर जाना ॥४३॥ लहरियोंसे मुक्ताहार धारण किये हुए के समान तुम उस समुद्रको देखोगे । उसके बीचमें बहुत बड़ा ऋषभ नामका एक श्वेत पर्वत है ॥४४॥ दिव्य गन्धवाले पुष्पित अनेक वृक्ष उस पर्वतपर हैं । एक तालाब भी है जिसमें चांदीके कमल खिले हुए है । और उन कमलोंके केसर सोनेके हैं ॥४५॥ उस तालाबका नाम सुदर्शन है । वहां राजहंस बहुत रहते हैं । देवता, चारण, यक्ष, किन्नर और अप्सराएं प्रसन्नतापूर्वक उस तालाबमें क्रीड़ा करनेके लिए आती हैं ॥४६॥ वानर, तुमलोग क्षीर समुद्रके आगे जानेपर सब प्राणियोंको भयंकर जलोदधि समुद्र देखोगे । जहाँ और्व ऋषिके तेजसे उत्पन्न वड़वामुख नामक महान् तेज तुम देखोगे ॥४६,४७,४८॥ इसका अद्भुतवेग प्रलयकालमें सचराचर जगतका भोजन करेगा । बड़वामुखके गिरनेके कारण, समुद्रवासी समर्थ और असमर्थ प्राणियोंने उस बड़वामुखको देखकर जो विलाप किया था उसका शब्द आज भी सुन पड़ता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वादूदस्योत्तरे तीरे योजनानि त्रयोदश । जातरूपशिलो नाम सुमहान्कनकप्रभः ॥५०॥
तत्र चन्द्रप्रतीकाशं पन्नगं धरणीधरम् । पद्मपत्रविशालाक्षं ततो द्रक्ष्यथ वानराः ॥५१॥
आसीनं पर्वतस्याग्रे सर्वदेवनमस्कृतम् । सहस्रशिरसं देवमनन्तं नीलवाससम् ॥५२॥
त्रिशिराः काञ्चनः केतुस्तालस्तस्य महात्मनः । स्थापितः पर्वतस्याग्रे विराजति सवेदिकः ॥५३॥
पूर्वस्यां दिशि निर्माणं कृतं तत्त्रिदशेश्वरैः । ततः परं हेममयः श्रीमानुदयपर्वतः ॥५४॥
तस्य कोटिर्दिवं स्पृष्ट्वा शतयोजनमायता । जातरूपमयी दिव्या विराजति सवेदिका ॥५५॥
सालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितैः । जातरूपमयैर्दिव्यैः शोभते सूर्यसंनिभैः ॥५६॥
तत्र योजनविस्तारमुच्छ्रितं दशयोजनम् । शृङ्गं सौमनसं नाम जातरूपमयं ध्रुवम् ॥५७॥
तत्र पूर्वं पदं कृत्वा पुरा विष्णुस्त्रिविक्रमे । द्वितीयं शिखरे मेरोश्चकार पुरुषोत्तमः ॥५८॥
उत्तरेण परिक्रम्य जम्बूद्वीपं दिवाकरः । दृश्यो भवति भूयिष्ठं शिखरं तन्महोच्छ्रयम् ॥५९॥
तत्र वैखानसा नाम वालखिल्या महर्षयः । प्रकाशमाना दृश्यन्ते सूर्यवर्णास्तपस्विनः ॥६०॥
अयं सुदर्शनो द्वीपः पुरो यस्य प्रकाशते । तस्मिंस्तेजश्च चक्षुश्च सर्वप्राणभृतामपि ॥६१॥
शैलस्य तस्य पृष्ठेषु कंदरेषु वनेषु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥६२॥
काञ्चनस्य च शैलस्य सूर्यस्य च महात्मनः । आविष्टा तेजसा संध्या पूर्वा रक्ता प्रकाशते ॥६३॥

है ॥४९॥ स्वादु जलवाले इस समुद्रके उत्तर तेरह योजन पर सुवर्णका एक बड़ा पर्वत है। अतएव उसकी शोभा सुवर्णके समान है ॥५०॥ हे वानरो, वहाँ चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण पृथिवीको धारण करनेवाले, कमलपत्रके समान नेत्रवाले सर्पराजको तुमलोग देखोगे ॥५१॥ वे अनन्तदेव, जिन्हें सब देवता नमस्कार करते हैं, जिनके हजार मस्तक हैं, नीला वस्त्र पहनकर पर्वतके आगे बैठे मिलेगें ॥५२॥ उस पर्वतपर अनन्तदेवकी सोनेकी ध्वजा विराजमान है, उसकी तीन शाखाएं है, उसके नीचे वेदी बनी हुई है, यह ध्वजाके रूपमें सोनेका ताल वृक्ष है ॥५३॥ देवताओंने पूर्व दिशामें उसे स्थापित किया है अर्थात् वही पूर्व दिशाकी अवधि है। उसके बाद सोनेका सुन्दर उदयाचल है ॥५४॥ उसके शिखर सौ योजन ऊंचे हैं और आकाशको छूते हैं। वह सोनेका है और उसके नीचे वेदी बनी हुई है ॥५५॥ साल, ताल, तमाल, कर्णिकार ये सब वृक्ष भी सोनेके हैं। ये फूले हुए हैं और सूर्यके समान सुंदर मालूम होते हैं ॥५६॥ वहां औमनस नामका एक शिखर है, एक योजन लम्बा है और दस योजन ऊंचा। यह सोनेका है ॥५७॥ पहले वामनावतारमें विष्णने वहां पहला पैर रखा था और दूसरा पैर मेरुके शिखरपर ॥५८॥ उत्तर ओरसे जम्बुद्वीपकी परिक्रमा करके सूर्य जब उस ऊंचे शिखर पर आते हैं तब दीख पड़ते हैं ॥५९॥ वहां हा वालखिल्य नामक वैखानस (आजावन संन्यासी) महर्षि रहते हैं। वे तपस्वी सूर्यके समान प्रकाशमान दीख पड़ते हैं ॥६०॥ यह उदयाचलके पासवाला द्वीप सुदर्शन नामका प्रकाशित हो रहा है। उसीसे सब प्राणियोंको तेज मिलता है और आंखें प्रकाश पाती हैं ॥६१॥ उस पर्वतके ऊपर, उसके कन्दरों और बनोंमें इधर-उधर सीता और रावणको ढूंढना ॥६२॥ सुवर्णपर्वत तथा महात्मा सूर्यके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वमेतत्कृतं द्वारं पृथिव्या भुवनस्य च। सूर्यस्योदयनं चैव पूर्वा ह्येषा दिगुच्यते ॥६४॥
तस्य शैलस्य पृष्ठेषु निर्झरेषु गुहासु च। रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥६५॥
ततः परमगम्या स्यादिक्पूर्वा त्रिदशावृता। रहिता चन्द्रसूर्याभ्यामदृश्या तमसावृता ॥६६॥
शैलेषु तेषु सर्वेषु कंदरेषु नदीषु च। ये च नोक्ता मयोद्देशा विचेया तेषु जानकी ॥६७॥
एतावद्वानरैः शक्यं गन्तुं वानरपुंगवाः। अभास्करममर्यादं न जानीमस्ततः परम् ॥६८॥
अभिगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च। मासे पूर्णे निवर्तध्वमुदयं प्राप्य पर्वतम् ॥६९॥
ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन्वध्यो भवेन्मम। सिद्धार्थाः संनिवर्तध्वमधिगम्य च मैथिलीम्॥७०॥
महेन्द्रकान्तां वनषण्डमण्डितां दिशं चरित्वा निपुणेन वानराः।
अवाप्य सीतां रघुवंशजप्रियां ततो निवृत्ताः सुखिनो भविष्यथ ॥७१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ४१

ततः प्रस्थाप्य सुग्रीवस्तन्महद्वानरं बलम्। दक्षिणां प्रेषयामास वानरानभिलक्षितान् ॥ १ ॥
नीलमग्निसुतं चैव हनूमन्तं च वानरम्। पितामहसुतं चैव जाम्बवन्तं महौजसम् ॥ २ ॥

प्रकाशसे पूर्वकी संध्या लाल दिखायी पड़ती है ॥६३॥ पृथिवीका सब भुवनोंका यह द्वार पहले बना, इस लिए इसका नाम पूर्व है। इसी दिशामें सूर्योदय होता है, इसलिए इसको पूर्वदिशा कहते हैं ॥६४॥ उस पर्वतके ऊपर उसके झरनों, और गुहाओंमें रावणके साथ सीताको ढूँढ़ना ॥६५॥ इसके बाद पूर्व दिशा अगम्य है। आगे देवताओंका स्थान है, उधर चन्द्र और सूर्यका प्रकाश नहीं है। अतएव सदा अन्धकार रहता है ॥६६॥ जो स्थान मैंने नहीं बतलाए हैं उन पर्वतों, गुहाओं और नदियोंमें सीताको ढूँढना ॥६७॥ हे वानरश्रेष्ठो, यहीं तक वानर जा सकते हैं, इससे बादकी भूमि सूर्यरहित है, वहां आने जानेकी कोई मर्यादा भी नहीं है, अतएव आगेकी भूमिके विषयमें मुझे कुछ मालूम नहीं है ॥६८॥ उदयपर्वत तक जाकर सीता और रावणके घरका पता लगाकर महीना पूरा होते-होते तुमलोग लौट आओ ॥६९॥ एक महीनाके आगे वहां न ठहरना। जो ठहरेगा, वह मेरा बध्य होगा। कार्य सिद्ध करके और जानकीका पता लगाकरके तुमलोग लौट आओ ॥७०॥ हे वानरो, बनसमूहसे सुशोभित इन्द्रकी प्रिय दिशा पूर्व दिशामें घूमकर रामचन्द्रकी प्रिया सीताको पाकर यदि लौटोगे तोसुख पाओगे ॥७१॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका चालीसवाँ सर्ग समाप्त।

उस बड़ी सेनाको बिदाकर पहलेसे चुने हुए वानरोंको सुग्रीवने दक्षिण दिशामें भेजा ॥१॥ नील अग्निपुत्र, हनुमान, पितामहपुत्र, महौज, जाम्बवान्, सुहोत्र, शरारि, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण, वृषभ, मयन्द, द्विविद, गन्धमादन, उल्कामुख, अंनग, हुताशनके दो पुत्र तथा अंगद प्रमुखवीरोंको जो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुहोत्रं च शरारिं च शरगुल्मं तथैव च । गजं गवाक्षं गवयं सुषेणं वृषभं तथा ॥ ३ ॥
मैन्दं च द्विविदं चैव सुषेणं गन्धमादनम् । उल्कामुखमनङ्गं च हुताशनसुतावुभौ ॥ ४ ॥
अङ्गदप्रमुखान्वीरान्वीरः कपिगणेश्वरः । वेगविक्रमसंपन्नान्संदिदेश विशेषवित् ॥ ५ ॥
तेषामग्रेसरं चैव बृहद्बलमथाङ्गदम् । विधाय हरिवीराणामादिशद्दक्षिणां दिशम् ॥ ६ ॥
ये केचन समुद्देशास्तस्यां दिशि सुदुर्गमाः । कपीशः कपिमुख्यानां स तेषां समुदाहरत् ॥ ७ ॥
सहस्रशिरसं विन्ध्यं नानाद्रुमलतायुतम् । नर्मदां च नदीं रम्यां महोरगनिषेविताम् ॥ ८ ॥
ततो गोदावरीं रम्यां कृष्णवेणीं महानदीम् । मेखलानुत्कलांश्चैव दशार्णनगराण्यपि ॥ ९ ॥
आव्रवन्तीमवन्तीं च सर्वमेवानुपश्यत । विदर्भानृष्टिकांश्चैव रम्यान्माहिषकानपि ॥१०॥
तथा मत्स्यकलिङ्गांश्च कौशिकांश्च समन्ततः । अन्वीक्ष्य दण्डकारण्यं सपर्वतनदीगुहम् ॥११॥
नदीं गोदावरीं चैव सर्वमेवानुपश्यत । तथैवान्ध्रांश्चपुण्ड्रांश्चचोलान्पाण्ड्यांश्च केरलान्॥१२॥
अयोमुखश्च गन्तव्यः पर्वतो धातुमण्डितः । विचित्रशिखरः श्रीमांश्चित्रपुष्पितकाननः ॥१३॥
सुचन्दनवनोद्देशो मार्गितव्यो महागिरिः । ततस्तामापगां दिव्यां प्रसन्नसलिलाशयाम् ॥१४॥
तत्र द्रक्ष्यथ कावेरीं विहृतामप्सरोगणैः । तस्यासीनं नगस्याग्रे मलयस्य महौजसः ॥१५॥
द्रक्ष्यथादित्यसंकाशमगस्त्यमृषिसत्तमम् । ततस्तेनाभ्यनुज्ञाताः प्रसन्नेन महात्मना ॥१६॥
ताम्रपर्णीं ग्राहजुष्टां तरिष्यथ महानदीम् । सा चन्दनवनैश्चित्रैः प्रच्छन्नद्वीपवारिणी ॥१७॥
कान्तेव युवती कान्तं समुद्रमवगाहते । ततो हेममयं दिव्यं मुक्तामणिविभूषितम् ॥१८॥

वेगवान और विक्रमवान् थे, विशेषज्ञ सुग्रीवने सन्देश दिया ॥२,३,४,५॥ अधिक बल रखनेवाले अंगद इस दलके प्रधान बनाए गए और वीर वानरोंको दक्षिण दिशामें भेजा गया ॥६॥ उस दिशामें जो दुर्गम स्थान थे, उन सबका पता और परिचय सुग्रीवने उन वानरोंको दिया ॥७॥ सहस्र शिखरवाला विंध्यपर्वत जो अनेक वृक्षों और लताओंसे युक्त है, रमणीय नर्मदानदी जिसमें बड़े बड़े सांप हैं, गोदावरी, कृष्णा, महानदी आदि नदियां, मेखल, उत्कल, दशार्ण देशके नगर, अवन्ती, विदर्भ, अष्टिक, माहिशक इन सबको ढूंढो ॥८,९,१०॥ मत्स्य कलिंग और कौशिक प्रान्तोंको अच्छी तरह ढूंढकर, पर्वत नदी और गुहाओंके साथ दण्डकारण्यको ढूंढना। आंध्र, पुण्ड्र, चोल, पाण्ड्य, तथा गोदावरी नदी आदि सबको ढूंढना ॥११,१२॥ धातुयुक्त अयोमुख नामक पर्वतपर जाना, उसके शिखर विचित्र है, उसके वनमें तरह-तरहके फूल हैं ॥१३॥ जिस पर्वतके प्रदेश चन्दनवनसे युक्त हैं उस महापर्वत मलयको ढूंढना। वहां, स्वच्छ जलवाली वह नदी जहां अप्सराएं विहार करती हैं तुमलोग देखोगे—जिसका कावेरी नाम है। उस मलयपर्वतके आगे बैठेहुए सूर्यके समान तेजस्वी श्रेष्ठ ऋषि अगस्त्यको तुमलोग देखोगे। उन महात्मासे प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा पाकर ताम्रपर्णी नदीको पार करना, इसमें मगर हैं। चन्दनवनके कारण इसके जल और स्थल छिपे हुए हैं ॥१४,१५,१६,१७॥ युवती स्त्रियां जिस प्रकार पतिके पास जाती हैं उसी प्रकार वह नदी दिव्य समुद्रके पास जाती है ॥१८॥ अनन्तर मुक्तामणि विभूषित सुव-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

युक्तं कवाटं पाण्ड्यानां गता द्रक्ष्यथ वानराः । ततः समुद्रमासाद्य संप्रधार्यार्थनिश्चयम् ॥१९॥
अगस्त्येनान्तरे तत्र सागरे विनिवेशितः । चित्रसानुनगः श्रीमान्महेन्द्रः पर्वतोत्तमः ॥२०॥
जातरूपमयः श्रीमानवगाढो महार्णवम् । नानाविधैर्नगैः फुल्लैर्लताभिश्चोपशोभितम् ॥२१॥
देवर्षियक्षप्रवरैरप्सरोभिश्च शोभितम् । सिद्धचारणसङ्घैश्च प्रकीर्णं सुमनोरमम् ॥२२॥
तमुपैति सहस्राक्षः सदा पर्वसु पर्वसु । द्वीपस्तस्यापरे पारे शतयोजनविस्तृतः ॥२३॥
अगम्यो मानुषैर्दीप्तस्तं मार्गध्वं समन्ततः । तत्र सर्वात्मना सीता मार्गितव्या विशेषतः ॥२४॥
स हि देशस्तु वध्यस्य रावणस्य दुरात्मनः । राक्षसाधिपतेर्वासः सहस्राक्षसमद्युतेः ॥२५॥
दक्षिणस्य समुद्रस्य मध्ये तस्य तु राक्षसी । अङ्गारकेति विख्याता छायामाक्षिप्य भोजनी ॥२६॥
एवं निःसंशयान्कृत्वा संशयान्नष्टसंशयाः । मृगयध्वं नरेन्द्रस्य पत्नीममिततेजसः ॥२७॥
तमतिक्रम्य लक्ष्मीवान्समुद्रे शतयोजने । गिरिः पुष्पितको नाम सिद्धचारणसेवितः ॥२८॥
चन्द्रसूर्यांशुसंकाशः सागराम्बुसमाश्रयः । भ्राजते विपुलैः शृङ्गैरम्बरं विलिखन्निव ॥२९॥
तस्यैकं काञ्चनं शृङ्गं सेवते यं दिवाकरः । न तं कृतघ्नाः पश्यन्ति न नृशंसा न नास्तिकाः ॥३०॥
प्रणम्य शिरसा शैलं तं विमार्गथ वानराः । तमतिक्रम्य दुर्धर्षं सूर्यवान्नाम पर्वतः ॥३१॥

र्णमय दिव्य पाण्ड्य राजाओंके योग्य किवाड़ (अर्थात् नगरद्वारके फाटक) तुमलोग देखोगे। पुनः समुद्रके तीर जाकर तुमलोग अपना कर्तव्य निश्चित करो अर्थात् उसको पार करनेके सम्बन्धमें विचार करो ॥१९॥ समुद्रके बीचमें अगस्त्यका स्थापित किया हुआ महेन्द्र नामक एक सुन्दर पर्वत है, जिसके शिखर चित्रित हैं ॥२०॥ सोनेका यह सुन्दर पर्वत समुद्रके जलमें है। अनेक विधि फूले वृक्षों और लताओंसे यह शोभित है। देवता, ऋषि, यक्ष और अप्सरा इनसे यह पर्वत शोभित होता रहता है। सिद्ध और चारणोंका समूह यहां भरा रहता है, अतएव यह पर्वत बड़ा सुन्दर मालूम होता है ॥२१,२२॥ उस पर्वत पर अमावास्या अमावास्याको इन्द्र आते हैं, उस समुद्रके पारमें सौ योजनका लम्बा एक द्वीप है ॥२३॥ वहां मनुष्य नहीं जा सकता। तुम लोग उसे ढूंढो, सीताको अच्छी तरह खूब ढूंढना। वही वध्य दुरात्मा रावणका देश है। इन्द्रके समान तेजवाले राक्षसाधिपतिका वही निवासस्थान है ॥२५॥ दक्षिण समुद्रके बीचमें अंगारका नामकी एक राक्षसी है, जो छायासे खींचकर खा जाती है ॥२६॥ हे संशयरहित वानरो, अपने सन्देहको अच्छी तरह दूरकर प्रचुर तेजस्वी राजा रामचन्द्रकी स्त्रीको ढूंढो ॥२७॥ उस प्रदेशसे आगे जानेपर सौ योजन विस्तीर्ण समुद्रमें सब सम्पतियोंसे युक्त सिद्ध-चारण-सेवित पुष्पितक नामका पर्वत है ॥२८॥ चन्द्रमा और सूर्यके समान वह पर्वत समुद्रमें है। अपने अनेक शिखरोंसे आकाशको छूता हुआ सा मालूम पड़ता है। उसके एक सोनेके शिखरपर सूर्य प्रतिदिन आते हैं। जो कृतघ्न हैं, क्रूर हैं और नास्तिक हैं वे उस शिखरको नहीं देख सकते ॥२९,३०॥ वानरो, उस पर्वतको सिरसे प्रणाम करके, उसके आगे बढ़ने पर सूर्यवान नामका पर्वत तुम लोगोंको मिलेगा ॥३१॥ दुर्गम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अध्वना दुर्विगाहेन योजनानि चतुर्दश । ततस्तमप्यतिक्रम्य वैद्युतो नाम पर्वतः ॥३२॥
सर्वकामफलैर्वृक्षैः सर्वकालमनोहरैः । तत्र भुक्त्वा वराहार्णि मूलानि च फलानि च ॥३३॥
मधूनि पीत्वा जुष्टानि परं गच्छत वानराः । तत्र नेत्रमनःकान्तः कुञ्जरो नाम पर्वतः ॥३४॥
अगस्त्यभवनं यत्र निर्मितं विश्वकर्मणा । तत्र योजनविस्तारमुच्छ्रितं दशयोजनम् ॥३५॥
शरणं काञ्चनं दिव्यं नानारत्नविभूषितम् । तत्र भोगवती नाम सर्पाणामालयः पुरी ॥३६॥
विशालरथ्या दुर्धर्षा सर्वतः परिरक्षिता । रक्षिता पन्नगैर्घोरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्महाविषैः ॥३७॥
सर्पराजो महाघोरो यस्यां वसति वासुकिः । निर्याय मार्गितव्या च सा च भोगवती पुरी ॥३८॥
तत्र चामन्तरोद्देशा ये केचन समावृताः । तं च देशमतिक्रम्य महानृषभसंस्थितः ॥३९॥
सर्वरत्नमयः श्रीमानृषभो नाम पर्वतः । गोशीर्षकं पद्मकं च हरिश्यामं च चन्दनम् ॥४०॥
दिव्यमुत्पद्यते यत्र तच्चैवाग्निसमप्रभम् । न तु तच्चन्दनं दृष्ट्वा स्पष्टव्यं तु कदाचन ॥४१॥
रोहिता नाम गन्धर्वा घोरं रक्षन्ति तद्वनम् । तत्र गन्धर्वपतयः पञ्च सूर्यसमप्रभाः ॥४२॥
शैलूषो ग्रामणीः शिक्षः शुको बभ्रुस्तथैव च । रविसोमाग्निवपुषां निवासः पुण्यकर्मणाम् ॥४३॥
अन्ते पृथिव्या दुर्धर्षास्ततः स्वर्गजितः स्थिताः । ततः परं न वः सेव्यः पितृलोकः सुदारुणः ॥४४॥
राजधानी यमस्यैषा कष्टेन तमसावृता । एतावदेव युष्माभिर्वीरवानरपुङ्गवाः ॥
शक्यं विचेतुं गन्तुं वा नातो गतिमतां गतिः । ॥४५॥

रास्तेसे चौदह योजन जानेपर वैद्युत नामक पर्वत मिलेगा ॥३२॥ सब कालमें फलनेवाले और सदा मनोहर वृक्षोंसे वह पर्वत युक्त है, वहां श्रेष्ठ फल मूल खाकर, प्रेमपूर्वक मधुपीकर तुम लोग आगे चलो । वहां नेत्र और मनको सुख देनेवाला कुंजर नामका पर्वत तुम लोगोंको मिलेगा । वहां विश्वकर्माने अगस्त्यके लिए घर बनाया है । इसका विस्तार एक योजन और ऊंचाई दस योजन है ॥३३॥३४॥३५॥ वहीं सर्पोंकी निवासभूमि भोगवती नामकी नगरी है । इसमें चौड़े रास्ते हैं, बाहरी प्राणीका प्रवेश करना कठिन है । चारो ओरसे रक्षित है । तीखे दांतवाले, विषैले, भयानक सर्प इसकी रक्षा कररहे हैं ॥३६,३७॥ भयानक सर्पराज वासुकि जिस नगरीमें निवास करते हैं वहां सावधानीसे जाकर ढूंढना ॥३८॥ वहां जो स्थान दूर हों या छिपे हुए हों, उनको भी अच्छी तरह ढूंढना । वहांसे आगे बढ़ने पर तुम लोगोंको ऋषभ पर्वत मिलेगा ॥३९॥ इसमें सब रत्न उत्पन्न होते हैं और यह बड़ा सुन्दर है । गोशीर्षक, पद्मक और हरिश्याम नामक दिव्य चन्दन यहां उत्पन्न होते हैं ॥४०॥ अग्निवर्णके समान ये चन्दन जहां उत्पन्न होते हैं वह ऋषभ पर्वत है । उस चन्दनको देखकर तुम लोग छूना मत ॥४१॥ रोहित नामके गंधर्व उस भयानक वनकी रक्षा करते हैं । सूर्यके समान वर्णवाले पांच गंधर्वपति, शैलूष, ग्रामणी, शिक्ष, शुक्र, और बभ्रू ये पांच पुण्यात्मा निवास करते हैं, सूर्य चन्द्रमा और अग्नि इनके शरीर हैं ॥४२,४३॥ पृथिवीके अन्तमें जाने योग्य नहीं है, वहां स्वर्गीय देवता ही रहते हैं । उसके बाद आप लोगोंके लिए अगम्य है, क्योंकि वह भयानक पितृलोक है ॥४४॥ वहां यमराजकी राजधानी है । कष्ट और अन्धकारसे वह युक्त है । हे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्वमेतत्समालोक्य यच्चान्यदपि दृश्यते । गतिं विदित्वा वैदेह्याः संनिवर्तितुमर्हथ ॥४६॥
यश्च मासान्निवृत्तोऽग्रे दृष्ट्वा सीतेति वक्ष्यति । मत्तुल्यविभवो भोगैः सुखंस विहरिष्यति ॥४७॥
ततः प्रियतरो नास्ति मम प्राणाद्विशेषतः । कृतापराधो बहुशो मम बन्धुर्भविष्यति ॥४८॥
अमितबलपराक्रमा भवन्तो विपुलगुणेषु कुलेषु च प्रसूताः ।
मनुजपतिसुतां यथा लभध्वं तदधिगुणं पुरुषार्थमारभध्वम् ॥४९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ४२

अथ प्रस्थाप्य स हरीन्सुग्रीवो दक्षिणां दिशम् । अब्रवीन्मेघसंकाशं सुषेणं नाम वानरम् ॥ १ ॥
तारायाः पितरं राजा श्वशुरं भीमविक्रमम् । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यमभिगम्य प्रणम्य च ॥ २ ॥
महर्षिपुत्रं मारीचमर्चिष्मन्तं महाकपिम् । वृतं कपिवरैः शूरैर्महेन्द्रसदृशद्युतिम् ॥ ३ ॥
बुद्धिविक्रमसंपन्नं वैनतेयसमद्युतिम् । मरीचिपुत्रान्मारीचानर्चिर्माल्यान्महाबलान् ॥ ४ ॥
ऋषिपुत्रांश्च तान्सर्वान्प्रतीचीमादिशद्दिशम् । द्वाभ्यां शतसहस्राभ्यां कपीनां कपिसत्तमाः ॥ ५ ॥
सुषेणप्रमुखा यूयं वैदेहीं परिमार्गथ । सौराष्ट्रान्सहबाह्लीकांश्चन्द्रचित्रांस्तथैव च ॥ ६ ॥

वानरश्रेष्ठ, आप लोगोंको यहीं तक जाना है । यहीं तक जाया जा सकता है और ढूंढा जा सकता है। इसके बाद हम लोगोंकी गति नहीं है ॥४५॥ यह सब देखकर और भी जो कुछ मालूम पड़े वह देखकर, जानकीका पता लगाकर तुम सब शीघ्र लौट आओ ॥४६॥ एक महीनेमें लौटकर सबसे पहले जो सीताका पता बतलायेगा, वह मेरे समान विभव और भोग पाकर सुखसे विहार करेगा ॥४७॥ उससे बढ़कर दूसरा प्रिय न होगा, वह मेरे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय होगा । यदि उसने अनेक अपराध किए हों तो भी वह मेरा मित्र होगा ॥४८॥ आपलोग बड़े पराक्रमी हैं, बड़े गुणी कुलोंमें आपका जन्म हुआ है । जिस प्रकार सीता मिलें, वैसा उद्योग आप लोग करें ॥४९॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका एकतालीसवाँ सर्ग समाप्त ।

दक्षिण दिशाकी ओर वानरोंको भेजकर मेघवर्ण सुषेण नामक वानरसे सुग्रीव बोले ॥१॥ यह ताराका पिता और सुग्रीवका श्वसुर था, यह महापराक्रमी था । सुग्रीव उसके पास गए और हाथ जोड़कर प्रणाम कर बोले ॥२॥ महर्षि मरिचिके पुत्र अर्चिस्मान नामक महाकपिसे भी, जो इन्द्रके समान तेजस्वी था, और वीर वानरोंसे युक्त था, सुग्रीव बोले ॥३॥ बुद्धि विक्रम सम्पन्न, गरुड़के समान तेजस्वी अर्चिस्मान वानरसे भी सुग्रीव बोले, प्रकाशयुक्त माला धारण किए हुए मरीचिके पुत्र मारीच नामक महाबली वानरोंसे भी सुग्रीव बोले, अन्य ऋषिपुत्रोंको भी पश्चिम दिशामें जानेकी उन्होंने आज्ञा दी । दो सौ हजार वानरोंको लेकर सुषेण आदि आप सीताको ढूंढे । सौराष्ट्र, बाह्लीक, चन्द्रचित्र आदि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्फीताञ्जनपदान्रम्यान्विपुलानि पुराणि च । पुंनागगहनं कुक्षिं बकुलोद्दालकाकुलम् ॥ ७ ॥
तथा केतकखण्डांश्च मार्गध्वं हरिपुंगवाः । प्रत्यक्स्रोतोवहाश्चैव नद्यःशीतजलाःशिवाः॥ ८ ॥
तापसानामरण्यानि कान्तारगिरयश्च ये । तत्र स्थलीर्मरुप्राया अत्युच्चशिशिराः शिलाः॥ ९ ॥
गिरिजालावृतां दुर्गां मार्गित्वा पश्चिमां दिशम् । ततः पश्चिममागम्य समुद्रं द्रष्टमर्हथ ॥१०॥
तिमिनक्राकुलजलं गत्वा द्रक्ष्यथ वानराः । ततः केतकखण्डेषु तमालगहनेषु च ॥११॥
कपयो विहरिष्यन्ति नारिकेलवनेषु च । तत्र सीतां च मार्गध्वं निलयं रावणस्य च ॥१२॥
वेलातलनिविष्टेषु पर्वतेषु वनेषु च । सुरचीपत्तनं चैव रम्यं चैव जटापुरम् ॥१३॥
अवन्तीमङ्गलेपां च तथा चालक्षितं वनम् । राष्ट्राणि च विशालानि पत्तनानि ततस्ततः ॥१४॥
सिन्धुसागरयोश्चैव संगमे तत्र पर्वतः । महान्सोमगिरिर्नाम शतशृङ्गो महाद्रुमः ॥१५॥
तत्र प्रस्थेषु रम्येषु सिंहाः पक्षगमाः स्थिताः । तिमिमत्स्यगजांश्चैव नीडान्यारोपयन्ति ते ॥१६॥
तानि नीडानि सिंहानां गिरिशृङ्गगताश्च ये । दृप्तास्पृप्ताश्च मातङ्गास्तोयदस्वननिःस्वनाः ॥१७॥
विचरन्ति विशालेऽस्मिंस्तोयपूर्णे समन्ततः । तस्य शृङ्गं दिवस्पर्शं काञ्चनं चित्रपादपम् ॥१८॥
सर्वमाशु विचेतव्यं कपिभिः कामरूपिभिः । कोटिं तत्र समुद्रस्य काञ्चनीं शतयोजनाम् ॥१९॥
दुर्दर्शां पारियात्रस्य गत्वा द्रक्ष्यथ वानराः । कोट्यस्तत्र चतुर्विंशद्गन्धर्वाणां तपस्विनाम् ॥२०॥

देशोंको आपलोग ढूँढे ॥४,५,६॥ बड़े-बड़े नगरों, बड़े-बड़े पुरों, सुपारी, बकुल और उद्दालक वृक्षोंसे युक्त कुक्षि प्रदेशको भी आप लोग ढूँढे ॥७॥ वानरो, केतकी वनोंको आप लोग ढूंढ़े, पश्चिमवाहिनी शीतलजलवाली नदियोंको आप लोग ढूंढ़े ॥८॥ तपस्वियोंके वनवाले पर्वत, निर्जल भूमि, ऊंचे और ठंढे पत्थरों पर आपलोग सीताको ढूँढ़े ॥९॥ पर्वतोंसे युक्त दुर्गम पश्चिम दिशामें आगे जाकर तुमलोग पश्चिम समुद्रको देखोगे ॥१०॥ तिमि (एक बहुत बड़ी मछली) और मगर इनसे युक्त उस समुद्रको तुमलोग देखोगे। वहां केतकी, तमाल और नारिकेलके वनमें वानर विहार करेंगे। वहां सीताको, रावणके घरको तुम लोग ढूंढों ॥११,१२॥ समुद्र-तीरके पर्वतों और वनोंमें सीताको ढूँढो। सुरचीपत्तन तथा रमणीय जटापुरमें ढूँढो ॥१३॥ अवन्ती, अंगलेपा तथा सघन वनमें सीताको ढूँढो। बड़े बड़े देश और बड़े बड़े नगरोंमें सीताको ढूंढो ॥१४॥ वहां सिंधु और सागरके संगम पर सोमगिरि नामक एक बहुत बड़ा पर्वत है, उसके सौ शृंग हैं और उस पर बड़े बड़े वृक्ष हैं ॥१५॥ उसके रमणीय पत्थरों पर सिंह नामके पक्षी हैं जो तिमि नामक मत्स्योंको और हाथियोंको अपने घोंसलेमें उठाकर पालन करनेके लिए रख देते हैं ॥१६॥ पर्वतशिखरपर सिंहपक्षियोंके घोंसलेमें जो हाथी आदि जाते हैं, वे सन्तुष्ट और गर्वित हो जाते हैं, मेघके समान गर्जन करते हैं और जलपूर्ण इस पर्वतपर भ्रमण करते हैं ॥१७॥ उस पर्वतके सोनेके शिखर आकाशको छूनेवाले हैं, वहांके वृक्ष अद्भुत हैं ॥१८॥ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानरोंको यह सब ढूँढना चाहिए। वहां समुद्रके बीचमें सौ योजन विस्तीर्ण पारियात्र पर्वतका सोनेका शृंग तुम लोग देखोगे, जिसका देखना दूसरोंके लिए कठिन है। उस पर्वतपर अग्निके समान, भयानक और पापी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वसन्त्यग्निनिकाशानां घोराणां पापकर्मणाम् । पावकार्चिःप्रतीकाशाः समवेताः समन्ततः ॥२१॥
नात्यासादयितव्यास्ते वानरैर्भीमविक्रमैः । नादेयं च फलं तस्मादेशात्किंचित्लवंगमैः ॥२२॥
दुरासदा हि ते वीराः सत्त्ववन्तो महाबलाः । फलमूलानि ते तत्र रक्षन्ते भीमविक्रमाः ॥२३॥
तत्र यत्नश्च कर्तव्यो मार्गितव्या च जानकी । नहि तेभ्यो भयं किंचित्कपित्वमनुवर्तताम् ॥२४॥
तत्र वैदूर्यवर्णाभो वज्रसंस्थानसंस्थितः । नानाद्रुमलताकीर्णो वज्रो नाम महागिरिः ॥२५॥
श्रीमान्समुदितस्तत्र योजनानां शतं समम् । गुहास्तत्र विचेतव्याः प्रयत्नेन लवंगमाः ॥२६॥
चतुर्भागे समुद्रस्य चक्रवान्नाम पर्वतः । तत्र चक्रं सहस्रारं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥२७॥
तत्र पञ्चजनं हत्वा हयग्रीवं च दानवम् । आजहार ततश्चक्रं शङ्खं च पुरुषोत्तमः ॥२८॥
तत्र सानुषु रम्येषु विशालासु गुहासु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥२९॥
योजनानि चतुःषष्टिर्वराहो नाम पर्वतः । सुवर्णशृङ्गः सुमहानगाधे वरुणालये ॥३०॥
तत्र प्राग्ज्योतिषं नाम जातरूपमयं पुरम् । तस्मिन्वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः ॥३१॥
तत्र सानुषु रम्येषु विशालासु गुहासु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥३२॥
तमतिक्रम्य शैलेन्द्रं काञ्चनान्तरदर्शनम् । पर्वतः सर्वसौवर्णो धारासस्रवणायुतः ॥३३॥
तं गजाश्च वराहाश्च सिंहव्याघ्राश्च सर्वतः । अभिगर्जन्ति सततं तेन शब्देन दर्पिताः ॥३४॥

चौबीस करोड़ तपस्वी गन्धर्व रहते हैं। अग्निकी ज्वालाके समान एकत्र होकर रहते हैं ॥२१॥ पराक्रमी वानरोंको उनके पास नहीं जाना चाहिए और उस स्थानसे कोई फल भी नहीं लेना चाहिए ॥२२॥ क्योंकि अत्यन्त वेगवान् महाबली वे गन्धर्व उस पर्वतपर फलमूलकी रक्षा करते हैं। वहां तुम लोगोंको अपना उद्योग करना चाहिए। जानकी को ढूँढना चाहिए। वानर रूपमें रहनेपर उन गंधर्वोंसे तुम लोगोंको किसी प्रकारका भय न होगा ॥२३,२४॥ वहां वैदूर्य मणिके समान वर्णवाला, हीराके समान कठिन, अनेक वृक्षों और लताओंसे युक्त वज्र नामका एक महापर्वत है। वह सुन्दर है, वह सौ योजनका है, वानरोंको प्रयत्न पूर्वक उसकी गुफाएं ढूँढनी चाहिएँ ॥२६॥ समुद्रके चौथे भागमें चकवा नामका पर्वत है जहां विश्वकर्माने हजार आरावाला चक्र बनाया था ॥२७॥ वहां पंचजन और हयग्रीव दानवको मारकर पुरुषोत्तम विष्णु चक्र और शंख वहांसे ले आए ॥२८॥ उसके शिखरोंपर विशाल गुहाओंमें, रावणके साथ वैदेही को ढूँढो ॥२९॥ अगाध समुद्रमें सोनेके शृंगवाला चौसठ योजन लम्बा वराह नामक पर्वत है ॥३०॥ वहां प्राग्ज्योतिष नामका सुवर्णका नगर है, उसमें दुष्टात्मा नरक नामका दानव रहता है ॥३१॥ उसके रमणीय शिखरों पर और विशाल गुहाओंमें रावणके साथ सीताको ढूँढो ॥३२॥ जिसके भीतर सोना दिखायी पड़ता है उस पर्वतराजसे आगे बढ़नेपर समस्त सुवर्णमय पर्वत मिलेगा। जिसमें हजारों झरने हैं ॥३३॥ उस पर्वतपर गज, सूअर, सिंह और बाघ अपने शब्दकी प्रतिध्वनिसे गर्वित होकर गर्जन करते हैं ॥३४॥ जिसमें हरे घोड़ेवाले इन्द्रका अभिषेक देवताओंने किया था वह मेघ नाम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यस्मिन्हरिहयः श्रीमान्महेन्द्रः पाकशासनः । अभिषिक्तः सुरैराजा मेघो नाम स पर्वतः ॥३५॥
तमतिक्रम्य शैलेन्द्रं महेन्द्रपरिपालितम् । षष्टिं गिरिसहस्राणि काञ्चनानि गमिष्यथ ॥३६॥
तरुणादित्यवर्णानि भ्राजमानानि सर्वशः । जातरूपमयैर्वृक्षैः शोभितानि सुपुष्पितैः ॥३७॥
तेषां मध्ये स्थितो राजा मेरुरुत्तमपर्वतः । आदित्येन प्रसन्नेन शैलो दत्तवरः पुरा ॥३८॥
तेनैवमुक्तः शैलेन्द्रः सर्व एव त्वदाश्रयाः । मत्प्रसादाद्भविष्यन्ति दिवा रात्रौ च काञ्चनाः॥३९॥
त्वयि ये चापि वत्स्यन्ति देवगन्धर्वदानवाः । ते भविष्यन्ति भक्ताश्च प्रभया काञ्चनप्रभाः॥४०॥
विश्वेदेवाश्च वसवो मरुतश्च दिवौकसः । आगत्य पश्चिमां संध्यां मेरुमुत्तमपर्वतम् ॥४१॥
आदित्यमुपतिष्ठन्ति तैश्च सूर्योऽभिपूजितः । अदृश्यः सर्वभूताना मस्तं गच्छति पर्वतम् ॥४२॥
योजनानां सहस्राणि दश तानि दिवाकरः । मुहूर्तार्धेन तं शीघ्रमभियाति शिलोच्चयम् ॥४३॥
शृङ्गे तस्य महद्दिव्यं भवनं सूर्यसंनिभम् । प्रासादगणसंबाधं विहितं विश्वकर्मणा ॥४४॥
शोभितं तरुभिश्चित्रैर्नानापक्षिसमाकुलैः । निकेतं पाशहस्तस्य वरुणस्य महात्मनः ॥४५॥
अन्तरा मेरुमस्तं च तालो दशशिरा महान् । जातरूपमयः श्रीमान्भ्राजते चित्रवेदिकः ॥४६॥
तेषु सर्वेषु दुर्गेषु सरःसु च सरित्सु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥४७॥
यत्र तिष्ठति धर्मज्ञस्तपसा स्वेन भावितः । मेरुसावर्णिरित्येष ख्यातो वै ब्रह्मणा समः ॥४८॥
प्रष्टव्यो मेरुसावर्णिर्महर्षिः सूर्यसंनिभः । प्रणम्य शिरसा भूमौ प्रवृत्तिं मैथिलीं प्रति ॥४९॥

पर्वत है ॥३५॥ इन्द्र परिपालित उस पर्वतसे आगे बढ़ने पर साठ हजार सोनेके पर्वतोंके पास आपलोग जायँगे ॥३६॥ वे पर्वत सूर्यके समान चमकीले हैं, फूले हुए सोनेके वृक्षोंसे सुशोभित हैं ॥३७॥ उन पर्वतोंके बीचमें मेरु नामका श्रेष्ठ पर्वत स्थित है जो राजा है। प्रसन्न सूर्यने उसे पहले वर दिया था ॥३८॥ पर्वतके कहने पर सूर्यने भी उससे कहा, दिन और रातमें जो कोई तुम्हारे आश्रममें रहेगा वह सुवर्णमय हो जायगा ॥३९॥ देवता गन्धर्व और दानव जो कोई तुमपर निवास करेगा, वह सुवर्णकी प्रभावाला तथा मेरा भक्त हो जायगा ॥४०॥ विश्वेदेव, वसु, मरुत आदि उस उत्तम पर्वत मेरु पर आकर सायंकालमें सूर्यका उपस्थान करते हैं ॥४१॥ उनके द्वारा पूजित होने पर सूर्यदेव, सब प्राणियोंके अदृश्य होकर अस्ताचल पर्वत पर चले जाते हैं ॥४२॥ सूर्य दसहजार योजन आधे मुहूर्तमें शीघ्र उस पर्वतपर चले जाते हैं ॥४३॥ उस पर्वतके शिखर पर सूर्यके समान उज्ज्वल विश्वकर्माका बनाया हुआ भवन है, जिसमें बहुतसी अटारियाँ हैं ॥४४॥ चित्र विचित्रके वृक्षोंसे जिन पर अनेक पक्षी रहते हैं वह गृह सुशोभित हैं ॥४५॥ पाशधारी महात्मा वरुणका वह गृह है। मेरु और अस्ताचलके बीचमें सुवर्णका एक ताल वृक्ष है, उसके दस सिर हैं। नीचे चित्रित वेदी है ॥४६॥ उन सब स्थानोंमें, तालाबोंमें, नदियोंमें, रावणके साथ सीताको ढूंढो ॥४७॥ अपनी तपस्यासे प्रकाशित धर्मज्ञ मेरुसावर्णि नामसे प्रसिद्ध जहाँ रहते हैं जो ब्रह्माके समान हैं ॥४८॥ महर्षि मेरुसावर्णिको शिरसे प्रणाम कर उनसे जानकीका पता पूछना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एतावज्जीवलोकस्य भास्करो रजनीक्षये । कृत्वा वितिमिरं सर्वमस्तं गच्छति पर्वतम् ॥५०॥
एतावद्वानरैः शक्यं गन्तुं वानरपुंगवाः । अभास्करमर्यादं न जानीमस्ततः परम् ॥५१॥
अवगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च । अस्तं पर्वतमासाद्य पूर्णे मासे निवर्तत ॥५२॥
ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन्वध्यो भवेन्मम । सहैव शूरो युष्माभिः श्वशुरो मे गमिष्यति ॥५३॥
श्रोतव्यं सर्वमेतस्य भवद्भिर्दिष्टकारिभिः । गुरुरेष महाबाहुः श्वशुरो मे महाबलः ॥५४॥
भवन्तश्चापि विक्रान्ताः प्रमाणं सर्व एव हि । प्रमाणमेनं संस्थाप्य पश्यध्वं पश्चिमां दिशम्॥५५॥
कृतकृत्या भविष्यामः कृतस्य प्रतिकर्मणा । अतोऽन्यदपि यत्कार्यं कार्यस्यास्य प्रियं भवेत् ।
संधार्य भवद्भिश्च देशकालार्थसंहितम् । ॥५६॥

ततः सुषेणप्रमुखाः प्लवंगमाः सुग्रीववाक्यं निपुणं निशम्य ।
आमन्त्र्य सर्वे प्लवगाधिपास्ते जग्मुर्दिशं तां वरुणाभिगुप्ताम् ॥५७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥४२॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ४३

ततः संदिश्य सुग्रीवः श्वशुरं पश्चिमां दिशम् । वीरं शतबलं नाम वानरं वानरेश्वरः ॥ १ ॥
उवाच राजा सर्वज्ञः सर्ववानरसत्तमः । वाक्यमात्महितं चैव रामस्य च हितं तदा ॥ २ ॥

॥४९॥ रात्रिके समाप्त होने पर प्राणियोंके लिए इतने स्थानोंका अन्धकार दूर कर सूर्य अस्ताचलको जाता है ॥५०॥ हे वानरश्रेष्ठो, यहां तकका स्थान वानरोंके जानेके योग्य है, इसके बादकी भूमि सूर्य-रहित है, वहां जानेकी भी कोई व्यवस्था नहीं है । इसके आगेकी भूमिके विषयमें मैं कुछ नहीं जानता ॥५१॥ अस्ताचल पर्वत तक जाकर सीता और रावणके घरका पता लगाकर, महीना पूरा होनेके पहले ही तुम लोग लौट आओ । महीनाके बाद जो ठहरेगा वह मेरे द्वार मारा जायगा । आप लोगोंके साथ वीर मेरे श्वसुर भी जायँगे ॥५२,५३॥ आप लोग इनकी बातें सुनिएगा । इनकी आज्ञा मानिएगा, क्योंकि महाबली ये मेरे श्वसुर आप लोगोंसे बड़े हैं ॥५४॥ आपलोग भी पराक्रमी हैं, आपलोग स्वयं व्यवस्था कर सकते हैं । संचालन करनेके लिए श्वसुरको आप लोग नियत करें और पश्चिम दिशाको देखें ॥५५॥ इस तरह उपकारका बदला देकर हम लोग कृत-कृत्य हो सकेंगे । इसके अतिरिक्त भी इस कार्यकी सिद्धिके लिए जो उचित हो वह विचारकर देशकालके अनुसार आपलोग कीजिएगा ॥५६॥ सुषेण आदि वानर सुग्रीवके वचन सुनकर, सुग्रीवकी आज्ञा लेकर सब वानरसेनापति वरुणपालित पश्चिम दिशाको गए ॥५७॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका बयालीसवाँ सर्ग समाप्त ।

सुग्रीव पश्चिम दिशाका सन्देश अपने श्वसुरको देकर शतबल नामक वानरसे बोले, ॥१॥ वह वचन रामचन्द्रका तथा अपना हितकरने वाला था ॥२॥ सौ हजार आपके सामने वानरोंको साथ लेकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वृतः शतसहस्रेण त्वद्विधानां वनौकसाम् । वैवस्वतसुतैः सार्धं प्रविष्टः सर्वमन्त्रिभिः ॥ ३ ॥
दिशं ह्युदीचीं विक्रान्तां हिमशैलावतंसिकाम् । सर्वतः परिमार्गध्वं रामपत्नीं यशस्विनीम् ॥ ४ ॥
अस्मिन्कार्ये विनिर्वृत्ते कृते दाशरथेः प्रिये । ऋणान्मुक्ता भविष्यामः कृतार्थार्थविदां वर॥ ५ ॥
कृतं हि प्रियमस्माकं राघवेण महात्मना । तस्य चेत्प्रतिकारोऽस्ति सफलं जीवितं भवेत् ॥ ६ ॥
अर्थिनः कार्यनिर्वृत्तिमकर्तुरपि यश्चरेत् । तस्य स्यात्सफलं जन्म किं पुनः पूर्वकारिणः॥ ७ ॥
एतां बुद्धिं समास्थाय दृश्यते जानकी यथा । तथा भवद्भिः कर्तव्यमस्मत्प्रियहितैषिभिः ॥ ८ ॥
अयं हि सर्वभूतानां मान्यस्तु नरसत्तमः । अस्मासु च गतः प्रीतिं रामः परपुरंजयः ॥ ९ ॥
इमानि बहुदुर्गाणि नद्यः शैलान्तराणि च । भवन्तः परिमार्गन्तु बुद्धिविक्रमसंपदा ॥१०॥
तत्र म्लेच्छान्पुलिन्दांश्च शूरसेनांस्तथैव च । प्रस्थलान्भरतांश्चैव कुरूंश्च सह मद्रकैः ॥११॥
काम्बोजयवनांश्चैव शकानां पत्तनानि च । अन्वीक्ष्य वरदांश्चैव हिमवन्तं विचिन्वथ ॥१२॥
लोध्रपद्मकखण्डेषु देवदारुवनेषु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥१३॥
ततः सोमाश्रमं गत्वा देवगन्धर्वसेवितम् । कालं नाम महासानुं पर्वतं तं गमिष्यथ ॥१४॥
महत्सु तस्य शैलेषु पर्वतेषु गुहासु च । विचिन्वत महाभागां रामपत्नीमनिन्दिताम् ॥१५॥
वमतिक्रम्य शैलेन्द्रं हेमगर्भं महागिरिम् । ततः सुदर्शनं नाम पर्वतं गन्तुमर्हथ ॥१६॥
ततो देवसखा नाम पर्वतः पतगालयः । नानापक्षिसमाकीर्णो विविधद्रुमभूषितः ॥१७॥

सूर्यपुत्र, सब मन्त्रियोंको साथ लेकर हिमालय पर्वतसे शोभित उत्तर दिशामें आप जांय और यशस्विनी रामचन्द्रकी स्त्रीको ढूँढें ॥३,४॥ इस कार्यके सिद्ध होने पर और रामचन्द्रके प्रिय कार्य करने पर हम-लोग ऋणमुक्त होंगे और कृतार्थ होगे ॥५॥ रामचन्द्रने हमलोगोंका प्रिय कार्य किया है, उसका यदि हम लोग बदला दें तो हमारा जीवन सफल हो ॥६॥ जिसने उपकार नहीं किया है, वैसे प्रार्थीका भी यदि कोई मनोरथ सिद्ध करे तो उसका जन्म सफल हो जाता है, फिर उपकार करनेवालोंकी तो बात ही क्या ॥७॥ इस विचारके अनुसार हमारा हित चाहनेवाले आप लोगोंको जानकीको ढूँढनेका प्रयत्न करना चाहिए ॥८॥ नरश्रेष्ठ रामचन्द्र सब प्राणियोंके मान्य हैं और हम लोगोंसे प्रेम रखते हैं ॥९॥ आप लोग अनेक वनोंको, नदियोंको और पर्वतोंको ढूँढे। आप लोग बुद्धिमान और पराक्रमी हैं ॥१०॥ म्लेच्छ पुलिन्द, शूरसेन, प्रस्थल, भरत, मद्रदेशके साथ कुरु, काम्बोज, यवन तथा शब्दोंके नगर, वरद देशोंको ढूंढकर हिमवान पर्वत पर ढूँढो ॥११,१२॥ लोध्र और चन्दनके बनमें तथा देवदारुके बनमें रावणके साथ सीताको ढूँढो ॥१३॥ देवता और गंधर्वसे युक्त सोमाश्रममें जाकर बड़े शिखरवाले काल नामक पर्वतपर तुम लोग जाओ ॥१४॥ उन बड़े पर्वतों पर और गुहाओंमें रामपत्निको ढूँढो ॥१५॥ उस सुवर्णगर्भ बड़े पर्वतके आगे जानेपर सुदर्शन नामके पर्वत पर तुमलोग पहुँचोगे ॥१६॥ अनन्तर देवसखा नामक पर्वत तुम लोगोंको मिलेगा, जो पक्षियोंका निवासस्थान है। जहां अनेक पक्षी भरे रहते हैं और अनेक प्रकारके वृक्ष हैं ॥१७॥ उसके सुवर्णवनमें झरनों और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्य काञ्चनखण्डेषु निर्दरेषु गुहासु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥१८॥
तमतिक्रम्य चाकाशं सर्वतः शतयोजनम् । अपर्वतनदीवृक्षं सर्वसत्त्वविवर्जितम् ॥१९॥
तत्तु शीघ्रमतिक्रम्य कान्तारं रोमहर्षणम् । कैलासं पाण्डुरं प्राप्य हृष्टा यूयं भविष्यथ ॥२०॥
तत्र पाण्डुरमेघाभं जाम्बूनदपरिष्कृतम् । कुबेरभवनं रम्यं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥२१॥
विशाला नलिनी यत्र प्रभूतकमलोत्पला । हंसकारण्डवाकीर्णा अप्सरोगणसेविता ॥२२॥
तत्र वैश्रवणो राजा सर्वलोकनमस्कृतः । धनदो रमते श्रीमान्गुह्यकैः सह यक्षराट् ॥२३॥
तस्य चन्द्रनिकाशेषु पर्वतेषु गुहासु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥२४॥
क्रौञ्चं तु गिरिमासाद्य बिलं तस्य सुदुर्गमम् । अप्रमत्तैः प्रवेष्टव्यं दुष्प्रवेशं हि तत्स्मृतम् ॥२५॥
वसन्ति हि महात्मानस्तत्र सूर्यसमप्रभाः । देवैरभ्यर्थिताः सम्यग्देवरूपा महर्षयः ॥२६॥
क्रौञ्चस्य तु गुहाश्चान्याः सानूनि शिखराणि च । दर्दराश्च नितम्बाश्च विचेतव्यास्ततस्ततः ॥२७॥
अदृक्षं कामशैलं च मानसं विहगालयम् । न गतिस्तत्र भूतानां देवानां न च रक्षसाम् ॥२८॥
स च सर्वैर्विचेतव्यः ससानुप्रस्थभूधरः । क्रौञ्चं गिरिमतिक्रम्य मैनाको नाम पर्वतः ॥२९॥
मयस्य भवनं तत्र दानवस्य स्वयंकृतम् । मैनाकस्तु विचेतव्यः ससानुप्रस्थकंदरः ॥३०॥
स्त्रीणामश्वमुखीनां तु निकेतस्तत्र तत्र तु । तं देशं समतिक्रम्य आश्रमं सिद्धसेवितम् ॥३१॥
सिद्धा वैखानसा यत्र वालखिल्याश्च तापसाः । वन्दितव्यास्ततःसिद्धास्तपसा वीतकल्मषाः॥३२॥

गुहाओंमें सीताके साथ रावणको ढूँढो ॥१८॥ वहांसे आगे बढ़ने पर सौ योजनका मैदान तुम लोगोंको मिलेगा। इसमें नदी, वृक्ष और पर्वत कुछ भी नहीं है, कोई प्राणी भी नहीं रहता ॥१९॥ भयंकर उस मैदानके पार जाने पर श्वेत कैलाश पर्वतको पाकर तुम लोग प्रसन्न होओगे ॥२०॥ वहां श्वेत-मेघके समान सोनेसे सजाया गया, विश्वकर्माने कुबेरका भवन बनाया है ॥२१॥ वहां विशाल एक तालाब है, जिसमें खूब कमल हैं, हंस आदि पक्षी वहां भरे रहते हैं। अप्सराएं उसको शोभित करती हैं ॥२२॥ वहां वैश्रवण (कुबेर) राजा, प्राणियोंके द्वारा पूजित, धनद, यक्षोंके साथ रहते हैं ॥२३॥ उस कैलाशके चन्द्र-सदृश पर्वतों पर रावणके साथ सीताको तुम लोग ढूंढो ॥२४॥ क्रौंचगिरि पर जाकर उसकी गुहामें तुम लोग जाओ। सावधान होकर जाना, क्योंकि उसमें प्रवेश करना बड़ा कठिन है ॥२५॥ वहां सूर्यके समान तेजस्वी महात्मा रहते हैं। देवता भी जिनकी पूजा करते हैं वे स्वयं देवरूप हैं ॥२६॥ क्रौंचपर्वतकी दूसरी गुहाओंको, शिखरों और छोटे छोटे शिखरों और बीचकी भूमिको अच्छी तरह तुम लोग देख कर ढूंढो ॥२७॥ इसके आगे मानसपर्वत है, जिसके देखनेसे ही मनोरथकी पूर्ति होती है, जहां पक्षी रहते हैं। वहां प्राणियों, देवों तथा राक्षसोंकी गति नहीं है, अर्थात् ये लोग वहां नहीं जा सकते ॥२८॥ तुम लोग उस पर्वतको, उसके पत्थरोंको तथा उसके पासवाले पर्वतोंको ढूँढो। क्रौंच पर्वतके आगे तुम लोगोंको मैनाक पर्वत मिलेगा ॥२९॥ स्वयं मयदानव ने वहां अपना घर बनाया हैं। वहां शिखरों, पत्थरों और कन्दराओंमें ढूँढना ॥३०॥ घोड़ेके समान मुंहवाली स्त्रियोंके भी वहां घर हैं। वहांसे आगे सिद्धोंके आश्रम हैं ॥३१॥ सिद्ध, वैखानस, वालखिल्य तपस्वी वहां रहते हैं। उन निष्पाप, सिद्ध

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रष्टव्या चापि सीतायाः प्रवृत्तिर्विनयान्वितैः । हिमपुष्करसंछन्नं तत्र वैखानसं सरः ॥३३॥
तरुणादित्यसंकाशैर्हंसैर्विचरितं शुभैः । औपवाह्यः कुबेरस्य सार्वभौम इति स्मृतः ॥३४॥
गजः पर्येति तं देशं सदा सह करेणुभिः । तत्सरः समतिक्रम्य नष्टचन्द्रदिवाकरम् ॥
अनक्षत्रगणं व्योम निष्पयोदमनादितम् । ॥३५॥
गभस्तिभिरिवार्कस्य स तु देशः प्रकाश्यते । विश्राम्यद्भिस्तपःसिद्धैर्देवकल्पैः स्वयंप्रभैः ॥३६॥
तं तु देशमतिक्रम्य शैलोदा नाम निम्नगा । उभयोस्तीरयोस्तस्याः कीचका नाम वेणवः ॥३७॥
ते नयन्ति परं तीरं सिद्धान्प्रत्यानयन्ति च । उत्तराः कुरवस्तत्र कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥
ततः काञ्चनपद्माभिः पद्मिनीभिः कृतोदकाः । ॥३८॥
नीलवैदूर्यपत्राढ्या नद्यस्तत्र सहस्रशः । रक्तोत्पलवनैश्चात्र मण्डिताश्च हिरण्मयैः ॥३९॥
तरुणादित्यसंकाशा भान्ति तत्र जलाशयाः । महार्हमणिरत्नैश्च काञ्चनप्रभकेसरैः ॥४०॥
नीलोत्पलवनैश्चित्रैः स देशः सर्वतो वृतः । निस्तुलाभिश्च मुक्ताभिर्मणिभिश्च महाधनैः ॥४१॥
उद्धूतपुलिनास्तत्र जातरूपैश्च निम्नगाः । सर्वरत्नमयैश्चित्रैरवगाढा नगोत्तमैः ॥४२॥
जातरूपमयैश्चापि हुताशनसमप्रभैः । नित्यपुष्पफलास्तत्र नगाः पत्ररथाकुलाः ॥४३॥
दिव्यगन्धरसस्पर्शाः सर्वकामान्स्रवन्ति च । नानाकाराणि वासांसि फलन्त्यन्ये नगोत्तमाः॥४४॥
मुक्तावैदूर्यचित्राणि भूषणानि तथैव च । स्त्रीणां यान्यनुरूपाणि पुरुषाणां तथैव च ॥४५॥

तपस्वियोंको तुम लोग प्रणाम करना ॥३२॥ विनीत होकर उनसे सीताका पता पूछना । वहां वैखानस नामका एक तालाब है ॥३३॥ जिसमें सोनेके कमल हैं । सूर्यके समान उज्ज्वल और सुन्दर हंस वहां विचरते हैं । कुबेरकी सवारीका सार्वभौम नामक हाथी अपनी हथिनीके साथ वहां आता है ॥३४॥ उसके आगेकी भूमि चन्द्रमा और सूर्यसे रहित है । वहांके आकाशमें न नक्षत्र हैं और न मेघ ॥३५॥ फिर भी वहां विश्राम करनेवाले तपसिद्ध स्वयं प्रभासे, प्रभावान महर्षियोंकी प्रभासे, सूर्यकी किरणोंके समान वह स्थान प्रकाशित होता है ॥३६॥ वहांसे आगे बढ़ने पर शैलोदा नामकी नदी मिलेगी, उसके दोनों तीरों पर कीचक नामके बाँस है ॥३७॥ वे बाँस आपसमें मिले हुए हैं, जिससे सिद्ध लोग नदीके इस पार उस पार आते जाते हैं । वहीं पुण्यात्माओंकी निवासभूमि उत्तर कुरुदेश है । सोनेके कमलवाले तालाबोंसे वहांवालोंको जल मिलता है ॥३८॥ वहां नील वैदूर्यसे युक्त हजारों नदियां हैं, सुवर्णमय लाल कमलोंसे जो शोभित हैं ॥३९॥ दामी मणियों और रत्नों तथा सुवर्णकेशर कमलोंसे युक्त आदित्यके समान प्रकाशमान जलाशय वहां है ॥४०॥ उस देशमें नीले कमलका वन है । गोल मोतियों, बहुमूल्य मणियोंसे युक्त, ऊँचे सुवर्णमय तीरोंसे युक्त वहांकी नदियां है ॥४१॥ अनेक रत्नोंसे युक्त बड़े बड़े पर्वत उन नदियोंमें वर्तमान हैं ॥४२॥ जो सुवर्णमय तथा अग्नितुल्य हैं, उन पर्वतों पर सदा पुष्प फल मिलते है और पक्षी रहते हैं ॥४३॥ दूसरे पर्वत दिव्य गन्ध रस और स्पर्शसे युक्त हैं, सब कामोंको सिद्ध करते हैं और अनेक प्रकारके वस्त्र उत्पन्न करते हैं ॥४४॥ मोती-वैदूर्य आदि रत्नोंसे चित्रित भूषण वे पर्वत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्वर्तुसुखसेव्यानि फलन्त्यन्ये नगोत्तमाः । महार्हमणिचित्राणि फलन्त्यन्ये नगोत्तमाः ॥४६॥
शयनानि प्रसूयन्ते चित्रास्तरणवन्ति च । मनःकान्तानि माल्यानि फलन्त्यत्रापरे द्रुमाः॥४७॥
पानानि च महार्हाणि भक्ष्याणि विविधानि च । स्त्रियश्च गुणसंपन्ना रूपयौवनलक्षिताः ॥४८॥
गन्धर्वाः किंनराः सिद्धा नागा विद्याधरास्तथा । रमन्ते सततं तत्र नारीभिर्भास्वरप्रभाः ॥४९॥
सर्वे सुकृतकर्माणः सर्वे रतिपरायणाः । सर्वे कामार्थसहिता वसन्ति सह योषितः ॥५०॥
गीतवादित्रनिर्घोषः सोत्कृष्टहसितस्वरैः । श्रूयते सततं तत्र सर्वभूतमनोरमः ५१॥
तत्र नामुदितः कश्चिन्नात्र कश्चिदसत्प्रियः । अहन्यहनि वर्धन्ते गुणास्तत्र मनोरमाः ॥५२॥
तमतिक्रम्य शैलेन्द्रमुत्तरः पयसां निधिः । तत्र सोमगिरिर्नाम मध्ये हेममयो महान् ॥५३॥
स तु देशो विसूर्योऽपि तस्य भासा प्रकाशते । सूर्यलक्ष्याभिविज्ञेयस्तपतेव विवस्वता ॥५४॥
भगवांस्तत्र विश्वात्मा शंभुरेकादशात्मकः । ब्रह्मा वसति देवेशो ब्रह्मर्षिपरिवारितः ॥५५॥
न कथंचन गन्तव्यं कुरूणामुत्तरेण वः । अन्येषामपि भूतानां नातिक्रामति वै गतिः ॥५६॥
स हि सोमगिरिर्नाम देवानामपि दुर्गमः । तमालोक्य ततः क्षिप्रमुपावर्तितुमर्हथ ॥५७॥
एतावद्वानरैः शक्यं गन्तुं वानरपुंगवाः । अभास्करममर्यादं न जानीमस्ततः परम् ॥५८॥
सर्वमेतद्विचेतव्यं यन्मया परिकीर्तितम् । यदन्यदपि नोक्तं च तत्रापि क्रियतां मतिः ॥५९॥

उत्पन्न करते हैं जो स्त्रियों और पुरुषोंके योग्य होते है ॥४५॥ कई पर्वत सब ऋतुओंमें सुखपूर्वक उपयोगमें आनेवाली वस्तु उत्पन्न करते हैं । कई पर्वत बहुमूल्य मणि आदि उत्पन्न करते हैं ॥४६॥ अच्छे बिछौनेवाले पलंग, मनको प्रिय लगने वाली मालाएँ यहांके वृक्ष उत्पन्न करते हैं ॥४७॥ बहुमूल्य पीनेकी वस्तु, अनेक प्रकारके भोजन, रूप-गुण-यौवनसे युक्त स्त्रियोंको यहांके वृक्ष उत्पन्न करते हैं ॥४८॥ गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, नाग और विद्याधर स्त्रियोंके साथ यहां सदा रमण करते हैं ॥४९॥ सभी पुण्यात्मा, सभी मनोरथयुक्त स्त्रियोंके साथ वहां रहते है और प्रेमपरायण हो जाते हैं ॥५०॥ गाने बजानेका शब्द उत्तम हँसीके साथ सबको प्रिय, यहां सदा सुनायी पड़ता है ॥५१॥ वहां कोई अप्रसन्न नहीं रहता, कोई बुरे कर्म नहीं करता, वहां दिन दिन उत्तम गुण बढ़ते हैं ॥५२॥ वहांसे आगे जाने पर उत्तम समुद्र मिलेगा, जिसके बीचमें सुवर्णमय सोमगिरि नामक पर्वत मिलेगा ॥५३॥ इन्द्रलोक, ब्रह्मलोकमें रहनेवाले देवता आकाश तक फैले हुए उस पर्वतको सदा देखते है । वह देश सूर्य-हीन है, सूर्यके न रहने पर भी उस पर्वतके प्रकाशसे सूर्यके समान प्रकाश होता है ॥५४॥ वहां, विश्वात्मा, एकादशमूर्ति भगवान शम्भु तथा ब्रह्मर्षियोंसे सेवित, देवेश ब्रह्मा निवास करते हैं ॥५५॥ उत्तर-कुरुके आगे तुम लोग किसी प्रकार नहीं जा सकते, और प्राणियोंका भी वहां जाना सम्भव नहीं है ॥५६॥ सोमगिरि पर जाना, देवताओंके लिए भी कठिन है, उस पर्वतको देखकर तुम लोग शीघ्र लौट आओ ॥५७॥ हे वानरो, यहीं तक वानर जा सकते हैं, इसके आगेकी भूमि सूर्यरहित है, अतएव वहां आने जानेकी व्यवस्था नहीं है । अतएव उसके बाद मुझे मालूम नहीं है ॥५८॥ जो मैंने बतलाया है, उन सब स्थानोंको ढूंढना, जो मैंने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततः कृतं दाशरथेर्महत्प्रियं महत्तरं चापि ततो मम प्रियम् ।
कृतं भविष्यत्यनिलानलोपमा विदेहजादर्शनजेन कर्मणा ॥६०॥
ततः कृतार्थाः सहिताः सबान्धवा मयार्चिताः सर्वगुणैर्मनोरमैः ।
चरिष्यथोर्वीं प्रति शान्तशात्रवाः सहप्रियाभूतधराः खगमाः ॥६१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥४३॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ४४

विशेषेण तु सुग्रीवो हनूमत्यर्थमुक्तवान् । स हि तस्मिन्हरिश्रेष्ठे निश्चितार्थोऽर्थसाधने ॥ १ ॥
अब्रवीच्च हनूमन्तं विक्रान्तमनिलात्मजम् । सुग्रीवः परमप्रीतः प्रभुः सर्ववनौकसाम् ॥ २ ॥
न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये । नाप्सु वा गतिसङ्गं ते पश्यामि हरिपुंगव ॥ ३ ॥
सासुराः सहगन्धर्वाः सनागनरदेवताः । विदिताः सर्वलोकास्ते ससागरधराधराः ॥ ४ ॥
गतिर्वेगश्च तेजश्च लाघवं च महाकपे । पितुस्ते सदृशं वीर मारुतस्य महौजसः ॥ ५ ॥
तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते । तद्यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवानुचिन्तय ॥ ६ ॥
त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः । देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित ॥ ७ ॥
ततः कार्यसमासङ्गमवगम्य हनूमति । विदित्वा हनुमन्तं च चिन्तयामास राघवः ॥ ८ ॥

नहीं बतलाया वहां भी प्रयत्न करना ॥५९॥ अग्नि और वायुके समान वानरो ! सीताके मिल जाने पर रामचन्द्रका और मेरा बड़ा प्रिय कार्य होगा ॥६०॥ वानरो ! रामचन्द्रका प्रिय कार्य करने पर बड़े उत्तम और मनोरम पदार्थोंसे मैं आप लोगोंको सन्तुष्ट करूंगा । आपका कोई शत्रु नहीं रह जायगा । आप स्त्रियोंके साथ मुझसे जीविका पावेगें और प्रसन्नतापूर्वक पृथिवीमें भ्रमण करेंगे ॥६१॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका तैंतालीसवां सर्ग समाप्त ।

सुग्रीव हनुमानसे सब बातें बहुत समझा कर बोले, क्योंकि सुग्रीवको विश्वास था कि हनुमान ही कार्य सिद्ध करेंगे ॥१॥ सब वानरोंके स्वामी सुग्रीव प्रसन्न होकर वायुपुत्र, पराक्रमी हनुमानसे बोले, ॥२॥ हे वानरश्रेष्ठ, पृथिवी, अन्तरिक्ष, आकाश स्वर्ग अथवा जलमें तुम्हारी गतिकी रोक नहीं है ॥३॥ असुर, गंधर्व, नाग, नर, देवता, सागर, पर्वत आदिके सब लोक तुम्हें मालूम हैं ॥४॥ गति, वेग, तेज और लघुता ये सब अपने पराक्रमी पिता वायुके समान तुममें है ॥५॥ तुम्हारे समान तेजस्वी कोई प्राणी पृथिवीमें नहीं है, इस कारण जिस प्रकार सीता मिलें, इसका निश्चय तुम्हीं करो ॥६॥ हनुमान, तुममें बल, बुद्धि, पराक्रम, देश-कालका अनुवर्तन और नीतिका ज्ञान वर्तमान है ॥७॥ कार्यसिद्धिका भार सब हनुमान पर रखा जाता है यह देखकर रामचन्द्र हनुमानके विषयमें विचार करने लगे ॥८॥ सुग्रीवका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्वथा निश्चितार्थोऽयं हनूमति हरीश्वरः । निश्चितार्थतरश्चापि हनूमान्कार्यसाधने ॥ ९ ॥
तदेव प्रस्थितस्यास्य परिज्ञातस्य कर्मभिः । भर्त्रा परिगृहीतस्य ध्रुवः कार्यफलोदयः ॥१०॥
तं समीक्ष्य महातेजा व्यवसायोत्तरं हरिम् । कृतार्थ इव संहृष्टः प्रहृष्टेन्द्रियमानसः ॥११॥
ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम् । अङ्गुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परंतपः ॥१२॥
अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा । मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नानुपश्यति ॥१३॥
व्यवसायश्च ते वीर सत्त्वयुक्तश्च विक्रमः । सुग्रीवस्य च संदेशः सिद्धिं कथयतीव मे ॥१४॥
स तद्गृह्य हरिश्रेष्ठः कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः । वन्दित्वा चरणौ चैव प्रस्थितः प्लवगर्षभः ॥१५॥

स तत्प्रकर्षन्हरिणां महद्बलं बभूव वीरः पवनात्मजः कपिः ।
गताम्बुदे व्योम्नि विशुद्धमण्डलः शशीव नक्षत्रगणोपशोभितः ॥१६॥
अतिबल बलमाश्रितस्तवाहं हरिवर विक्रम विक्रमैरनल्पैः ।
पवनसुत यथाधिगम्यते सा जनकसुता हनुमंस्तथा कुरुष्व ॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाडे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

हनुमानके विषयमें दृढ़ निश्चय है, अर्थात् हनुमान ही कार्य सिद्ध करेंगे ऐसा उनका विश्वास है, हनुमानका तो कार्य सिद्ध करनेके विषयमें और अधिक दृढ़ विश्वास है ॥९॥ इस प्रकार सुग्रीवके द्वारा भेजा जानेवाला और पहलेका परीक्षित अर्थात् इसने पहले अनेक कार्य सिद्ध किए हैं और स्वामीका इस पर विश्वास है, अतएव अवश्य ही इसके द्वारा कार्यसिद्धि होगी ॥१०॥ महा तेजस्वी रामचन्द्र कार्य सिद्ध करनेमें श्रेष्ठ हनुमानको देखकर कृतार्थ हुए । अर्थात् अपने कार्य सिद्ध होनेका उन्हें विश्वास हुआ । वे प्रसन्न हुए । उनकी इन्द्रियां तथा मन प्रसन्न हुआ ॥११॥ अन्तन्तर प्रसन्नहोकर रामचन्द्रने अपने नामके अक्षरोंसे युक्त एक अंगूठी सीताके लिए चिन्ह दिया ॥१२॥ इस चिन्हसे सीता तुमको मेरे यहांसे आया हुआ जानेगी और तुमको देखकर घबड़ाएगी नहीं ॥१३॥ वीर, तुम्हारा दृढ़ विक्रम, उद्योग और सुग्रीवका सन्देश ये तुम्हारी कार्यसिद्धि बतला रहे हैं ॥१४॥ हनुमान वह अंगूठी लेकर हाथ जोड़ कर उनके चरणोंमें प्रणाम करके प्रस्थित हुए ॥१५॥ वायुपुत्र कपि उस बहुत बड़ी सेनाको ले जाते हुए मेघ-हीन आकाश-मण्डल में, विशुद्धमण्डल नक्षत्रोंसे शोभित चन्द्रमाके समान मालूम हुए ॥१६॥ हे वायुपुत्र, अतिबली हनुमान, हम तुम्हारे बलके आश्रित हैं, सीता जिस प्रकार प्राप्त हो, वैसा बड़े पराक्रमसे युक्त होकर तुम करो ॥१७॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका चौवालीसवाँ सर्ग समाप्त ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ३७

सर्वांश्चाहूय सुग्रीवः प्लवगान्प्लवगर्षभः । समस्तांश्चाब्रवीद्राजा रामकार्यार्थसिद्धये ॥ १ ॥
एवमेतद्विचेतव्यं भवद्भिर्वानरोत्तमैः । तदुग्रशासनं भर्तुर्विज्ञाय हरिपुंगवाः ॥ २ ॥
शलभा इव संच्छाद्य मेदिनीं संप्रतस्थिरे । रामः प्रस्रवणे तस्मिन्यवसत्सहलक्ष्मणः ॥ ३ ॥
प्रतीक्षमाणस्तं मासं सीताधिगमने कृतः । उत्तरां तु दिशं रम्यां गिरिराजसमावृताम् ॥ ४ ॥
प्रतस्थे सहसा वीरो हरिः शतबलिस्तदा । पूर्वां दिशं प्रतिययौ विनतो हरियूथपः ॥ ५ ॥
ताराङ्गदादिसहितः प्लवगः पवनात्मजः । अगस्त्याचरितामाशां दक्षिणां हरियूथपः ॥ ६ ॥
पश्चिमां च दिशं घोरां सुषेणः प्लवगेश्वरः । प्रतस्थे हरिशार्दूलो दिशं वरुणपालिताम् ॥ ७ ॥
ततः सर्वा दिशो राजा चोदयित्वा यथातथम् । कपिसेनापतिर्वीरो मुमोद सुखितः सुखम् ॥ ८ ॥
एवं संचोदिताः सर्वे राज्ञा वानरयूथपाः । स्वां स्वां दिशमभिप्रेत्य त्वरिताः संप्रतस्थिरे ॥ ९ ॥
नदन्तश्चोन्नदन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः । क्ष्वेडन्तो धावमानाश्च विनदन्तो महाबलाः ॥१०॥
एवं संचोदिताः सर्वे राज्ञा वानरयूथपाः । आनयिष्यामहे सीतां हनिष्यामश्च रावणम् ॥११॥
अहमेको वधिष्यामि प्राप्तं रावणमाहवे । ततश्चोन्मथ्य सहसा हरिष्ये जनकात्मजाम् ॥१२॥
वेपमानां श्रमेणाद्य भवद्भिः स्थीयतामिति । एक एवाहरिष्यामि पातालादपि जानकीम् ॥१३॥
विधमिष्याम्यहं वृक्षान्दारयिष्याम्यहं गिरीन् । धरणीं दारयिष्यामि क्षोभयिष्यामि सागरान्॥१४॥

वानरोंके राजा सुग्रीव सब वानरोंको एकत्र करके रामचन्द्रकी कार्य-सिद्धिके लिए उनसे बोले, ॥१॥ आपलोगोंसे जैसा मैंने कहा है उसी प्रकार अपनी अपनी दिशाओंमें सीताको आप ढूंढें । स्वामीकी वह कठोर आज्ञा सुनकर वानर टिड्डी दलके समान समस्त पृथिवीमें फैल गये । और लक्ष्मणके साथ वहीं प्रस्रवण पर्वत पर, सीताका पता लगानेके लिए जो महीना निश्चित किया गया था उसकी प्रतीक्षा करते हुए, रामचन्द्र ठहरे । हिमालयसे युक्त उत्तर दिशामें वीर शतबलीने शीघ्रही प्रस्थान किया । वानर सेनापति विनत पूर्व दिशामें गया ॥२,३,४,५॥ तार, अंगद आदिके साथ वायुपुत्र हनुमान अगस्त्यकी दिशा दक्षिणमें गए ॥६॥ वरुण-पालित भयानक परिचम दिशामें, वानरश्रेष्ठ सुषेण गए ॥७॥ इस प्रकार वानरोंको सब दिशाओंमें यथायोग्य भेजकर वीर सुग्रीव प्रसन्न हुए । पहलेसे राज्य पाकर सुखी थे ही अब और सुखी हुए ॥८॥ इस प्रकार सुग्रीवकी आज्ञा पाकर वानरसेनापति अपनी अपनी दिशाकी ओर शीघ्रतापूर्वक चले ॥९॥ किल किल करते हुए, चीत्कार करते हुए, गर्जते हुए, सिंहनाद करते हुए, दौड़ते हुए, अनेक तरहकी विकृत बोली बोलते हुए सुग्रीवकी आज्ञासे सब वानरसेनापति चले । हम सीताको लावेंगे और रावणको मारेंगे, ॥१०,११॥ मैं अकेलाही युद्धमें रावणको मारूँगा, अन्य राक्षसोंको मार कर शीघ्र जानकीको ले आऊँगा, ॥१२॥ मैं अकेलाही पातालसे भी परिश्रमके कारण कांपती हुई सीताको ले आऊँगा, आप लोग यहीं ठहरें, वृक्षोंको मैं तोड़ दूंगा, पर्वतको फाड़ दूंगा, पृथिवीको फाड़

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अहं योजनसंख्यायाः प्लवेयं नात्र संशयः । शतयोजनसंख्यायाः शतं समधिकं ह्यहम् ॥१५॥
भूतले सागरे वापि शैलेषु च वनेषु च । पातालस्यापि वा मध्ये न ममाच्छिद्यते गतिः॥१६॥
इत्येकैकस्तदा तत्र वानरा बलदर्पिताः । ऊचुश्च वचनं तस्य हरिराजस्य संनिधौ ॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ४६

गतेषु वानरेन्द्रेषु रामः सुग्रीवमब्रवीत् । कथं भवान्विजानीते सर्वं वै मण्डलं भुवः ॥ १ ॥
सुग्रीवश्च ततो राममुवाच प्रणतात्मवान् । श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये विस्तरेण वचो मम ॥ २ ॥
यदा तु दुन्दुभिं नाम दानवं महिषाकृतिम् । प्रतिकालयते वाली मलयं प्रति पर्वतम् ॥ ३ ॥
तदा विवेश महिषो मलयस्य गुहां प्रति । विवेश वाली तत्रापि मलयं तज्जिघांसया ॥ ४ ॥
ततोऽहं तत्र निक्षिप्तो गुहाद्वारि विनीतवत् । न च निष्क्रामते वाली तदा संवत्सरे गते ॥ ५ ॥
ततः क्षतजवेगेन आपुपूरे तदा बिलम् । तदहं विस्मितो दृष्ट्वा भ्रातुः शोकविषार्दितः ॥ ६ ॥
अथाहं गतबुद्धिस्तु सुव्यक्तं निहतो गुरुः । शिला पर्वतसंकाशा बिलद्वारि मया कृता ॥ ७ ॥
अशक्नुवन्निष्क्रमितुं महिषो विनशिष्यति । ततोऽहमागां किष्किन्धां निराशस्तस्य जीविते॥८॥
राज्यं च सुमहत्प्राप्य तारां च रुमया सह । मित्रैश्च सहितस्तस्य वसामि विगतज्वरः ॥ ९ ॥

दूंगा और समुद्रोंको क्षुभित कर दूंगा ॥१३,१४॥ मैं सौ योजन तक कूद या तैर सकता हूँ, मैं सौ योजनसे भी अधिक कूद या तैर सकता हूँ ॥१५॥ पृथिवी, समुद्र, पर्वत, वन अथवा पातालमें भी मेरी गति नहीं रुकती—बलसे गर्वित वे एक एक वानर, सुग्रीवके पास इस प्रकार कहने लगे ॥१६॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका पैंतालीसवां सर्ग समाप्त ।

वानरोंके चले जाने पर रामचन्द्रने सुग्रीवसे कहा, आप समस्त पृथिवीमण्डलको कैसे जानते हैं ॥१॥ सुग्रीव नम्रशरीर होकर रामचन्द्रसे बोले—सब मैं विस्तार पूर्वक कहता हूँ,सुनिए॥२॥ जब भैंसेके रूपवाला दुंदुभी नाम दानवक बालि पीछा कर रहा था, उस समय वह मलयपर्वत पर गया । जब वह महिषरूपधारी मलयकी गुहामें गया, उसे मारनेके लिए वालि भी गया ॥३॥ उस समय गुहाके द्वार पर विनीतके समान मैं ठहरा रह गया । एक वर्ष बीतने पर भी वालि नहीं निकला ॥५॥ रुधिरके वेगसे वह गुफा भर गयी, उस समय विस्मित हुआ और भाईके शोकसे पीड़ित हुआ ॥६॥ मेरी बुद्धि मारी गयी, मैंने निश्चित किया कि मेरा बड़ा भाई वालि मारा गया । पर्वतके समान बड़ा पत्थर मैंने बिलके द्वार पर रख दिया ॥७॥ यह पत्थर मैंने इस विचारसे रखा कि महिष इस गुफासे निकल नहीं सकेगा और इसीमें मर जायगा । भाईके जीवनसे निराश होकर मैं किष्किन्धा लौट आया ॥८॥ बहुत बड़ा राज्य और ताराको पाकर रुमा तथा मित्रोंके साथ सुखपूर्वक मैं रहने लगा ॥९॥ वानरश्रेष्ठ वालि दानवको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आजगाम ततो वाली हत्वा तं वानरर्षभः । ततोऽहमददां राज्यं गौरवाद्भयसंवृतः ॥१०॥
स मां जिघांसुर्दुष्टात्मा वाली प्रव्यथितेन्द्रियः । परिकालयते वाली धावन्तं सचिवैः सह ॥११॥
ततोऽहं वालिना तेन सोऽनुबद्धः प्रधावितः । नदीश्च विविधाः पश्यन्वनानि नगराणि च ॥१२॥
आदर्शतलसंकाशा ततो वै पृथिवी मया । अलातचक्रप्रतिमा दृष्टा गोष्पदवत्कृता ॥१३॥
पूर्वां दिशं ततो गत्वा पश्यामि विविधान्द्रुमान् । पर्वतान्सदरीन्रम्यान्सरांसि विविधानि च ॥१४॥
उदयं तत्र पश्यामि पर्वतं धातुमण्डितम् । क्षीरोदं सागरं चैव नित्यमप्सरसालयम् ॥१५॥
परिकाल्यमानस्तु तदा वालिनाभिद्रुतो ह्यहम् । पुनरावृत्य सहसा प्रस्थितोऽहं तदा विभो ॥१६॥
दिशस्तस्यास्ततो भूयः प्रस्थितो दक्षिणां दिशम् । विन्ध्यपादपसंकीर्णां चन्दनद्रुमशोभिताम्॥१७॥
द्रुमशैलान्तरे पश्यन्भूयो दक्षिणतोऽपराम् । अपरां च दिशं प्राप्तो वालिना समभिद्रुतः ॥१८॥
स पश्यन्विविधान्देशानस्तं च गिरिसत्तमम् । प्राप्य चास्तं गिरिश्रेष्ठमुत्तरं संप्रधावितः ॥१९॥
हिमवन्तं च मेरुं च समुद्रं च तथोत्तरम् । यदा न विन्दे शरणं वालिना समभिद्रुतः ॥२०॥
ततो मां बुद्धिसंपन्नो हनुमान्वाक्यमब्रवीत् । इदानीं मे स्मृतं राजन्यथा वाली हरीश्वरः ॥२१॥
मतङ्गेन तदा शप्तो ह्यस्मिन्नाश्रममण्डले । प्रविशेद्यदि वा वाली मूर्धास्य शतधा भवेत् ॥२२॥
तत्र वासः सुखोऽस्माकं निरुद्विग्नो भविष्यति । तत्र पर्वतमासाद्य ऋष्यमूकं नृपात्मज ॥२३॥

मारकर लौट आया उसके सम्मान तथा भयसे घबड़ा कर मैंने उसे राज्य लौटा दिया ॥१०॥ पर अत्यन्त क्रोधित होकर वह दुष्टात्मा वालि मुझे मारनेके लिए सचिवोंके साथ भागे हुए मेरा पीछा करने लगा ॥११॥ नदियों, नगरों और वनोंको देखता हुआ मैं भागता गया और वालि मेरा पीछा करता रहा । १२॥ मैंने दर्पणके शीशेके समान सब पृथिवी साफ-साफ देखी । कहीं अधिक वेगके कारण जलती हुए लकड़ीके चक्रके समान मालूम हुई और कहीं गोपदके समान छोटी दीख पड़ी ॥१३॥ पहले मैं पूर्व दिशामें गया, अनेक प्रकारके वृक्ष गुफाओंके साथ अनेक पर्वत, अनेक तालाब वहाँ मैंने देखे ॥१४॥ अनेक धातुओंसे युक्त उदयपर्वतको मैंने देखा । श्रीरोद सागरको देखा जहाँ सदा अप्सराएँ रहती हैं ॥१५॥ वालि मेरे पीछे-पीछे दौड़ रहा था, इसलिए मैं और अधिक जोरसे दौड़ा । सहसा पुनः मुड़कर आगे बढ़ा ॥१६॥ उस दिशासे पुनः मैं दक्षिण दिशामें गया, उस दिशामें विन्ध्याचल पर्वतके छोटे-छोटे पर्वत हैं और चन्दनके वृक्ष हैं ॥१७॥ वृक्ष और पर्वतोंके बीचसे उस दिशाको देखता हुआ वहाँसे मैं दूसरी दिशा पश्चिम दिशामें वालिके पीछा करनेसे गया ॥१८॥ वहांके अनेक देशोंको तथा पर्वतश्रेष्ठ अस्ताचल पर्वतको देखता हुआ मैं उत्तर दिशाको गया ॥१९॥ हिमवान्, मेरु तथा उत्तर समुद्र कहीं भी वालिके पीछा करनेसे मुझे शरण न मिला, तब बुद्धिमान् हनुमानने मुझसे कहा कि इस समय मुझे याद आया, मतंग मुनिने वानर राज बालिको शाप दिया है कि इस आश्रमकी भूमिमें यदि वालि आवे तो उसका मस्तक सौ टुकड़े हो जाय ॥२०,२१,२२॥ वहीं निरुद्विग्न होकर सुखपूर्वक हमलोग रह सकेंगे । महाराज, इस पर्वत पर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न विवेश तदा वाली मतङ्गस्य भयात्तदा । एवं मया तदा राजन्प्रत्यक्षमुपलक्षितम् ॥
पृथिवीमण्डलं सर्वं गुहामस्म्यागतस्ततः । ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ४७

दर्शनार्थं तु वैदेह्याः सर्वतः कपिकुञ्जराः । व्यादिष्टा कपिराजेन यथोक्तं जग्मुरञ्जसा ॥ १ ॥
ते सरांसि सरित्कक्षानाकाशं नगराणि च । नदीदुर्गास्तथा देशान्विचिन्वन्ति समन्ततः ॥ २ ॥
सुग्रीवेण समाख्याताः सर्वे वानरयूथपाः । तत्र देशान्विचिन्वन्ति सशैलवनकाननान् ॥ ३ ॥
विचित्य दिवसं सर्वे सीताधिगमने धृताः । समायान्ति स्म मेदिन्यां निशाकालेषु वानराः॥४॥
सर्वर्तुकांश्च देशेषु वानराः सफलद्रुमान् । आसाद्य रजनीं शय्यां चक्रुः सर्वेष्वहःसु ते ॥५॥
तदहः प्रथमं कृत्वा मासे प्रस्रवणं गताः । कपिराजेन संगम्य निराशाः कपिकुञ्जराः ॥ ६ ॥
विचित्य तु दिशं पूर्वां यथोक्तां सचिवैः सह । अदृष्ट्वा विनतः सीतामाजगाम महाबलः ॥ ७ ॥
दिशमप्युत्तरां सर्वां विविच्य स महाकपिः । आगतः सह सैन्येन भीतः शतबलिस्तदा ॥ ८ ॥
सुषेणः पश्चिमामाशां विविच्य सह वानरैः । समेत्य मासे पूर्णे तु सुग्रीवमुपचक्रमे ॥ ९ ॥

आनेसे मतंगके भयसे वालि यहां नहीं आया । उसी समय मैंने समस्त पृथिवीमण्डल देखा था । उसके बाद मैं इस गुहामें आया ॥२३,२४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका छियालीसवाँ सर्ग समाप्त ।

जिन प्रधान-प्रधान वानरोंको सीताको ढूँढ़नेके लिए सुग्रीवने भिन्न-भिन्न दिशाओंमें जानेकी आज्ञा दी थी, वे सुग्रीवकी आज्ञाके अनुसार अपनी-अपनी दिशाओंमें वेगपूर्वक गए ॥१॥ वे तालाबों, नदियों, लतामण्डपों, आकाश, नगरों, नदियों, पहाड़ों तथा देशोंमें सीताको अच्छी तरह ढूँढनेका निश्चय रखनेवाले सब वानर दिनमें जहां तहां ढूंढते थे और रात्रिके समय किसी नियत स्थान पर एकत्र होते थे ॥२,३,४॥ ये वानर देशोंमें सब ऋतुमें फल देनेवाले वृक्षोंको पाकर दिनमें सफल वृक्षोंके पास जाते और रातको उन्हीं वृक्षों पर सो जाते ॥५॥ प्रस्थानके दिनसे महीना पूरा होने पर वानर सेनापति निराश होकर, प्रस्रवण पर्वतपर सुग्रीवके पास आए ॥६॥ सुग्रीवने जैसा कहा था, उसी प्रकार समस्त पूर्व दिशाको ढूँढकर महाबली विनत सीताको न देखकर लौट आए ॥७॥ शतबली भी सेनाके साथ समस्त उत्तर दिशाको ढूँढकर डरता-डरता सुग्रीवके पास आया ॥८॥ पश्चिम दिशामें सब वानरोंके साथ ढूँढ कर सुषेण भी महीना पूरा होने पर सुग्रीवके पास आ गए ॥९॥ प्रस्रवणपर्वत पर रामके साथ बैठे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तं प्रस्रवणपृष्ठस्थं समासाद्याभिवाद्य च । आसीनं सह रामेण सुग्रीवमिदमब्रुवन् ॥१०॥
विचिताः पर्वताः सर्वे वनानि गहनानि च । निम्नगाः सागरान्ताश्च सर्वे जनपदाश्च ये ॥११॥
गुहाश्च विचिताः सर्वा याश्च ते परिकीर्तिताः । विचिताश्च महागुल्मा लतावितानसन्ततीः ॥१२॥
गहनेषु च देशेषु दुर्गेषु विषमेषु च । सत्त्वान्यतिप्रमाणानि विचितानि हतानि च ॥
ये चैव गहना देशा विचितास्ते पुनः पुनः । ॥१३॥
उदारसत्त्वाभिजनो हनूमान्स मैथिलीं ज्ञास्यति वानरेन्द्रः ।
दिशं तु यामेव गता तु सीता तामास्थितो वायुसुतो हनूमान् ॥ १४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ४८

सह ताराङ्गदाभ्यां तु सहसा हनुमान्कपिः । सुग्रीवेण यथोद्दिष्टं गन्तुं देशं प्रचक्रमे ॥ १ ॥
स तु दूरमुपागम्य सर्वैस्तैः कपिसत्तमैः । ततो विचित्य विन्ध्यस्य गुहाश्च गहनानि च ॥ २ ॥
पर्वताग्रनदीदुर्गान्सरांसि विपुलद्रुमान् । वृक्षखण्डांश्च विविधान्पर्वतान्वनपादपान् ॥ ३ ॥
अन्वेषमाणास्ते सर्वे वानराः सर्वतो दिशम् । न सीतां ददृशुर्वीरा मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥ ४ ॥
ते भक्षयन्तो मूलानि फलानि विविधान्यपि । अन्वेषमाणा दुर्धर्षा न्यवसंस्तत्र तत्र हि ॥
सतु देशो दुरन्वेषो गुहागहनवान्महान् । निर्जलं निर्जनं शून्यं गहनं घोरदर्शनम् ॥ ५ ॥

हुए सुग्रीवके पास जाकर और उनको प्रणाम कर सब वानर बोले, ॥१०॥ सब पर्वत हम लोगोंने ढूँढे। वनों और नदियोंको ढूँढा, समुद्र तटके सब नगर ढूँढे, जितनी गुहाएँ आपने बतलायीं, हम लोगोंने सब ढूँढीं। लता-मण्डपोंको भी ढूँढा। वनों, देशों और कठिन स्थानोंमें भी ढूँढा। बलवान जन्तुओंको भी ढूँढा और उनमें बहुतोंको मारा भी। जो देश जानेमें दुर्गम हैं वहाँ भी हम लोगोंने बार बार ढूँढा। कुलीन और बली हनुमान ही सीताका पता लगावेंगे क्योंकि सीता जिस दिशामें गयी है उस दिशामें वायुपुत्र हनुमान गए हैं ॥११,१२,१३, १४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ।

तार और अंगदके साथ हनुमान सुग्रीवके बतलाये देशोंमें जानेके लिए शीघ्र प्रस्थित हुए ॥१॥ उन सब वानरोंके साथ बहुत दूर आकर वहाँ विंध्याचलकी गुहा और पर्वत ढूँढकर, पर्वतके उपरकी नदी, दुर्गमवन, तालाब, बड़े-बड़े वृक्षोंके समूह, अनेक पर्वत, जंगली वृक्ष आदि उन वीर वानरोंने अच्छी तरह ढूँढा। पर जनकनन्दिनी सीताका पता उन्हें नहीं मिला ॥२,३,४॥ अनेक प्रकारके फल मूलोंको खाते हुए सीताको ढूँढनेवाले, पराजित होनेके अयोग्य वे वानर जहाँ तहाँ ठहर जाते थे। जो निर्जल, निर्जन,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तादृशान्यप्यरण्यानि विचित्य भृशपीडिताः । स देशश्च दुरन्वेष्यो गुहागहनवान्महान् ॥ ६ ॥
त्यक्त्वा तु तं ततो देशं सर्वे वै हरियूथपाः । देशमन्यं दुराधर्षं विविशुश्चाकुतोभयाः ॥ ७ ॥
यत्र वन्ध्यफला वृक्षा विपुष्पाः पर्णवर्जिताः । निस्तोयाः सरितो यत्र मूलं यत्र सुदुर्लभम् ॥ ८ ॥
न सन्ति महिषा यत्र न मृगा न च हस्तिनः । शार्दूलाः पक्षिणो वापि ये चान्ये वनगोचराः ॥ ९ ॥
न चात्र वृक्षा नौषध्यो न वल्ल्यो नापि वीरुधः । स्निग्धपत्राः स्थले यत्र पद्मिन्यः फुल्लपङ्कजाः ॥१०॥
प्रेक्षणीयाः सुगन्धाश्च भ्रमरैश्च विवर्जिताः । कण्डुर्नाम महाभागः सत्यवादी तपोधनः ॥११॥
महर्षिः परमामर्षी नियमैर्दुष्प्रधर्षणः । तस्य तस्मिन्वने पुत्रो बालको दशवार्षिकः ॥१२॥
प्रनष्टो जीवितान्ताय क्रुद्धस्तेन महामुनिः । तेन धर्मात्मना शप्तं कृत्स्नं तत्र महद्वनम् ॥१३॥
अशरण्यं दुराधर्षं मृगपक्षिविवर्जितम् । तस्य ते काननान्तांस्तु गिरीणां कंदराणि च॥१४॥
प्रभवानि नदीनां च विचिन्वन्ति समाहिताः । तत्र चापि महात्मानो नापश्यञ्जनकात्मजाम्॥१५॥
हर्तारं रावणं चापि सुग्रीवप्रियकारिणः । ते प्रविश्य तु तं भीमं लतागुल्मसमावृतम् ॥१६॥
ददृशुर्भीमकर्माणमसुरं सुरनिर्भयम् । तं दृष्ट्वा वानरा घोरं स्थितं शैलमिवासुरम् ॥१७॥
गाढं परिहिताः सर्वे दृष्ट्वा तं पर्वतोपमम् । सोऽपि तान्वानरान्सर्वान्नष्टाः स्थेत्यब्रवीद्बली॥ ८॥
अभ्यधावत संक्रुद्धो मुष्टिमुद्यम्य संगतम् । तमापतन्तं सहसा वालिपुत्रोऽङ्गदस्तदा ॥१९॥

ऊजड़ और देखनेमें भयानक देश थे तथा बड़ा दुख उठाकर वैसे जंगलोंको भी वानरोंने ढूँढा जो देश ढूँढे जानेके अयोग्य थे, जहाँ बड़ी गुहाएँ और बीहड़वन थे। उन देशोंको छोड़ कर वानर आगे बढ़े ॥५,६,७॥ वह देश भी बड़ा भयानक था, वहांके वृक्षोंमें फल, फूल, पत्ते नहीं होते थे ॥८॥ नदियोंमें जल नहीं था और जहां मूल मिलना दुर्लभ था, वहां भैसें, मृगा, हाथी, बाघ, पक्षी तथा अन्य वनमें रहनेवाले पक्षीभी नहीं थे ॥९॥ वहां न वृक्ष थे न औषधियां, न लताएँ थीं और न पौधे, चिकने पत्तोंवाली और विकसित कमलिनी भी नहीं थी ॥१०॥ सुगन्धित कमल जहां नहीं है, जो स्थान भ्रमरोंसे रहित है, उस देशमें वे गये। कण्डू नामके सत्यवादी एक तपस्वी थे ॥११॥ वे महर्षि बड़े क्रोधी, नियमोंके पालन करनेसे पराजित होनेके अयोग्य थे, वे उस वनमें रहते थे। उनका दस वर्षका एक पुत्र था ॥१२॥ वह उस वनमें मर गया, इस कारण उस वनको नष्ट करनेके लिए मुनि क्रुद्ध हुए। धर्मात्मा उस मुनिने उस समस्त वनको शाप दिया ॥१३॥ रहनेके अयोग्य, प्रवेश करनेके अयोग्य, मृग पक्षियोंसे रहित, वह वन हो गया ॥१४॥ सुग्रीवके भेजे गए वानरोंने वनकी सीमाकी भूमि, पर्वतोंकी कन्दराएं, नदियोंके उत्पत्तिस्थान सावधान होकर ढूंढे, पर सीताको न पा सके ॥ १५ ॥ जानकीको हरण करनेवाले रावणका भी पता उन लोगोंको न मिला। सुग्रीवके प्रिय करनेवाले वे वानर एक लतामण्डपमें गए॥१६॥ वहाँ देवताओंसे निडर एवं भयानक असुरको, जो पर्वतके समान ऊंचा था, वानरोंने बैठा देखा ॥१७॥ पर्वतके समान उस असुरको देखकर सब वानर सावधान होगए। वानरोंको देखकर वह असुर बोला— तुम सब लोग मारे गए ॥१८॥ वह क्रोध करके मुट्ठी बाँधकर इन लोगोंकी ओर दौड़ा। उसको आते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रावणोऽयमिति ज्ञात्वा तलेनाभिजघान ह । स वालिपुत्राभिहतो वक्त्राच्छोणितमुद्वमन् ॥२०॥
असुरो न्यपतद्भूमौ पर्यस्त इव पर्वतः । ते तु तस्मिन्निरुच्छ्वासे वानरा जितकाशिनः॥२१॥
विचिन्वन्प्रायशस्तत्र सर्वे ते गिरिगह्वरम् । विचित्रं तु ततः सर्वे सर्वे ते काननौकसः ॥२२॥
अन्यदेवापरं घोरं विवशुर्गिरिगह्वरम् । ते विचित्य पुनः खिन्ना विनिष्पत्य समागताः ।
एकान्ते वृक्षमूले तु निषेदुर्दीनमानसाः । ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डेऽष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥४८॥

एकोनपञ्चाशः सर्गः ४९

अथाङ्गदस्तदा सर्वान्वानरानिदमब्रवीत् । परिश्रान्तो महाप्राज्ञः समाश्वास्य शनैर्वचः ॥१॥
वनानि गिरयो नद्यो दुर्गाणि गहनानि च । दरी गिरिगुहाश्चैव विचिताः सर्वमन्ततः ॥२॥
तत्र तत्र सहास्माभिर्जानकी न च दृश्यते । तथा रक्षोऽपहर्ता च सीतायाश्चैव दुष्कृती ॥३॥
कालश्च नो महान्यातः सुग्रीवश्चोग्रशासनः । तस्माद्भवन्तः सहिता विचिन्वन्तु समन्ततः ॥४॥
विहाय तन्द्रां शोकं च निद्रां चैव समुत्थिताम् । विचिनुध्वं तथा सीतां पश्यामो जनकात्मजाम् ॥५॥
अनिर्वेदं च दाक्ष्यं च मनसश्चापराजयम् । कार्यसिद्धिकराण्याहुस्तस्मादेतद्ब्रवीम्यहम् ॥६॥
अद्यापीदं वनं दुर्गं विचिन्वन्तु वनौकसः । खेदं त्यक्त्वा पुनः सर्वे वनमेव विचिन्वताम्॥७॥

देखकर वालिपुत्र अंगदने उसे रावण समझा और एक थप्पड़ मारा, अंगदके मारनेसे मुँहसे खून फेंकता हुआ वह असुर टूटे पर्वतके समान पृथिवीमें गिर पड़ा। उस असुरके मरनेपर जीतसे खुशी होकर उस समस्त गिरिगुहाको वानरोंने ढूँढा। उन सब वनवासी वानरोंने मिलकर उस समस्त गुहाको ढूँढा। ढूँढते-ढूँढते वे किसी दूसरी गुफामें चले गए, उसे ढूँढकर भी वे दुःखसे निकले। दुखी होकर एक वृक्षकी छायामें वे सब वानर बैठ गए ॥१९,२०,२१,२२,२३॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका अड़तालीसवाँ सर्ग समाप्त।

अनन्तर थके हुए बुद्धिमान अंगद वानरोंको दिलासा देकर धीरे-धीरे यह बोले ॥१॥ वन, पर्वत, नदी, पृथिवीकी गुफाएँ हमलोगोंने अच्छी तरह ढूँढीं ॥ २ ॥ पर उन सब स्थानोंमें कहीं भी हम लोगोंने जानकी नहीं देखी और सीताका अपहरण करनेवाला पापी राक्षस भी नहीं देखा ॥ ३ ॥ समय भी हम लोगोंका बीत गया। सुग्रीव भी बहुत कठोर शासन करनेवाला है। अतएव आप सब लोग मिलकर चारों ओर ढूँढें ॥ ४ ॥ तन्द्रा, शोक, आयी हुई निद्रा छोड़कर आप लोग इस प्रकार सीताको ढूँढें, जिससे हम लोग उन्हें देखें ॥५॥ खेदका न होना, निपुणता, तथा थकावटका न होना, इनसे कार्य सिद्ध होते हैं, इसलिए मैं आप लोगोंसे यह कह रहा हूँ ॥ ६ ॥ वानरो, इस वनको आप

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अवश्यं कुर्वतां तस्य दृश्यते कर्मणः फलम् । परं निर्वेदमगाम्य नहि नोन्मीलनं क्षमम् ॥८॥
सुग्रीवः क्रोधनो राजा तीक्ष्णदण्डश्च वानराः । भेतव्यं तस्य सततं रामस्य च महात्मनः ॥९॥
हितार्थमेतदुक्तं वः क्रियतां यदि रोचते । उच्यतां हि क्षमं यत्तत्सर्वेषामेव वानराः ॥१०॥
अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा वचनं गन्धमादनः । उवाच व्यक्तया वाचा पिपासाश्रमखिन्नया ॥११॥
सदृशं खलु वो वाक्यमङ्गदो यदुवाच ह । हितं चैवानुकूलं च क्रियतामस्य भाषितम् ॥१२॥
पुनर्मार्गामहे शैलान्कंदरांश्च शिलास्तथा । काननानि च शून्यानि गिरिप्रस्रवणानि च॥१३॥
यथोद्दिष्टानि सर्वाणि सुग्रीवेण महात्मना । विचिन्वन्तु वनं सर्वे गिरिदुर्गाणि संगताः ॥१३॥
ततः समुत्थाय पुनर्वानरास्ते महाबलाः । विन्ध्यकाननसंकीर्णां विचेरुर्दक्षिणां दिशम् ॥१५॥
ते शारदाभ्रप्रतिमं श्रीमद्रजतपर्वतम् । शृङ्गवन्तं दरीवन्तमधिरुह्य च वानराः ॥१६॥
तत्र लोध्रवनं रम्यं सप्तपर्णवनानि च । विचिन्वन्तो हरिवराः सीतादर्शनकाङ्क्षिणः॥१७॥
तस्याग्रमधिरूढास्ते श्रान्ता विपुलविक्रमाः । न पश्यन्ति स्म वैदेहीं रामस्य महिषीं प्रियाम्॥१८॥
ते तु दृष्टिगतं दृष्ट्वा तं शैलं बहुकंदरम् । अध्यारोहन्त हरयो वीक्षमाणाः समन्ततः ॥१९॥
अवरुह्य ततो भूमिं भ्रान्ता विगतचेतसः । स्थिता मुहूर्तं तत्राथ वृक्षमूलमुपाश्रिताः ॥२०॥
ते मुहूर्तं समाश्वस्ताः किंचिद्भग्नपरिश्रमाः । पुनरेवोद्यताः कृत्स्नां मार्गितुं दक्षिणां दिशम्॥२१॥

लोग फिर एक बार ढूँढें । थकावट दूरकर फिर एक बार वनको ढूँढें ॥ ७ ॥ कर्म करनेका फल अवश्य ही कर्ताको मिलता है । कार्यसे विरक्त होकर चुपचाप बैठना उचित नहीं है ॥ ८ ॥ राजा सुग्रीव क्रोधी और कठोर दण्ड देनेवाला है, उससे सदा डरना चाहिए और भगवान् रामचन्द्रसे भी डरना चाहिए ॥ ९ ॥ आप लोगोंके कल्याणके लिए मैंने ये बातें कही हैं, आप लोग यदि ठीक समझें तो करें। वानरो, जो काम सबके करने योग्य हो, वह भी आप लोग बतलावें॥१०॥ अंगदके वचन सुनकर गन्धमादन बोला—प्यास और थकावटसे वह खिन्न होगया था—उसने कहा ॥११॥ अंगदने जो कहा है, वह आप लोगोंके योग्य है। वह वचन हितकारी और अनुकूल है। अतएव आपलोग उनके कहनेके अनुसार कार्य करें ॥ १२ ॥ पर्वतों, गुहाओं, पत्थरों, वनों, निर्जन पर्वतों तथा झरनोंको हम लोग पुनः ढूँढें ॥१३॥ महात्मा सुग्रीवने जो सब बतलाया है, उन सब पर्वतों और वनोंको एक साथ हम लोग ढूँढें ॥१४॥ अनन्तर महाबली वानर, विंध्याचल पर्वतके वनसे संकीर्ण दक्षिण दिशामें भ्रमण करने लगे ॥१५॥ वे वानर शरत्के मेघके समान श्वेत रजत पर्वतपर चढ़ गए, जिसके शिखर हैं और गुहाएँ हैं ॥१६॥ सीताको देखनेकी इच्छा रखनेवाले वे वानर रमणीय लोध्रवन और सप्तपर्ण वनको ढूँढने लगे ॥१७॥ विपुल पराक्रमी, थके हुए वे वानर उस पर्वतके शिखरपर चले गए । पर रामचन्द्रकी प्रिया सीता कहीं दिखायी न पड़ीं ॥१८॥ उस पर्वतमें बहुतसी कन्दराएँ हैं यह देखकर, सामने उस पर्वतको देखकर, चारो ओर देखते हुए वानर उसपर चढ़ गए॥१९॥ बहुत थके हुए होनेसे वे वानर उस पर्वतसे नीचे उतर गये और एक वृक्षके नीचे इकट्ठे होकर थोड़ी देर वहाँ ठहरे ॥२०॥ थोड़ी देर विश्राम करनेसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हनुमत्प्रमुखास्तावत्प्रस्थिताः सवगर्षभाः । विन्ध्यमेवादितः कृत्वा विचेरुश्च समन्ततः ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मिकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥४९॥

पञ्चाशः सर्गः ५०

सह ताराङ्गदाभ्यां तु संगम्य हनुमान्कपिः । विचिनोति च विन्ध्यस्य गुहाश्च गहनानि च ॥१॥
सिंहशार्दूलजुष्टाश्च गुहाश्च परितस्तदा । विषमेषु नगेन्द्रस्य महाप्रस्रवणेषु च ॥२॥
आसेदुस्तस्य शैलस्य कोटिं दक्षिणपश्चिमाम् । तेषां तत्रैव वसतां स कालो व्यत्यवर्तत ॥३॥
स हि देशो दुरन्वेष्यो गुहागहनवान्महान् । तत्र वायुसुतः सर्वं विचिनोति स्म पर्वतम् ॥४॥
परस्परेण रहिता अन्योन्यस्याविदूरतः । गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ॥५॥
मैन्दश्च द्विविदश्चैव हनूमाञ्जाम्बवानपि । अङ्गदो युवराजश्च तारश्च वनगोचरः ॥६॥
गिरिजालावृतान्देशान्मार्गित्वादक्षिणांदिशम् । विचिन्वन्तस्ततस्तत्र ददृशुर्विवृतं विलम् ॥७॥
दुर्गमृक्षविलं नाम दानवेनाभिरक्षितम् । क्षुत्पिपासापरीतास्तु श्रान्तास्तु सलिलार्थिनः॥८॥
अवकीर्णं लतावृक्षैर्ददृशुस्ते महाविलम् । तत्र क्रौञ्चाश्चहंसाश्चसारसाश्चापिनिष्क्रमन्॥९॥
जलार्द्राश्चक्रवाकाश्च रक्ताङ्गाः पद्मरेणुभिः । ततस्तद्विलमासाद्य सुगन्धि दुरतिक्रमम् ॥१०॥
विस्मयव्यग्रमनसो बभूवुर्वानरर्षभाः । संजातपरिशङ्कास्ते तद्विलं सवगोत्तमाः ॥११॥

थकावट दूर होनेपर वे सब पुनः समूची दक्षिण दिशाको ढूँढनेके लिए तयार हुए ॥२१॥ हनुमान आदि उद्योग करनेवाले वानर प्रारम्भसे विंध्याचल पर्वतको ही चारों ओर अच्छी तरह ढूँढने लगे ॥२२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका उनचासवाँ सर्ग समाप्त ।

तार और अंगदके साथ मिलकर हनुमान विंध्याचल पर्वतकी गुहाएँ और वन ढूँढने लगे ॥१॥ सिंह और बाघकी गुहाएँ पर्वतके दुर्गम स्थानके पत्थर और बड़े-बड़े झरने उनलोगोंने ढूँढ़े ॥२॥ उस पर्वतके दक्षिणपश्चिम शिखरपर वे सब वानर बैठे । उसी समय सुग्रीवकी नियत की हुई अवधि बीत गयी ॥३॥ वह देश बहुत दुःखसे ढूंढनेके योग्य था । उसमें बड़ी बड़ी गुहाएँ और वन थे । वायुपुत्र वहाँ पर्वत-पर ढूँढने लगे ॥४॥ परस्पर अलग अलग होकर, पर अधिक दूर न जाकर, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्ध-मादन, मैंद, द्विविद, हनुमान, जाम्बवान्, युवराज अंगद, तार आदि वानरोंने, पर्वतवाले देश ढूँढकर दक्षिण दिशामें ढूँढते हुए, वहाँ एक विशाल बिल देखा । वह दुर्गम बिल एक दानवके द्वारा रक्षित था, भूख और प्याससे पीड़ित, जल चाहनेवाले, थके वानरोंने लता और वृक्षोंसे छिपा हुआ महाबिल देखा । वहाँसे क्रौंच, हंस और सारस, चक्रवाक पक्षियोंको निकलते देखा । पद्मकी धूलिसे रक्त वर्णवाले तथा जलसे भींगे हुए पक्षियोंको निकलते देखा । उस सुगन्धित और दुर्गम बिलमें जाकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अभ्यपद्यन्त संहृष्टास्तेजोवन्तो महाबलाः । नानासत्त्वसमाकीर्णं दैत्येन्द्रनिलयोपमम् ॥१२॥
दुर्दर्शमिव घोरं च दुर्विगाह्यं च सर्वशः । ततः पर्वतकूटाभो हनूमान्मारुतात्मजः ॥१३॥
अब्रवीद्वानरान्घोरान्कान्तार वन कोविदः । गिरिजालावृतान्देशान्मार्गित्वा दक्षिणांदिशम् ॥१४॥
वयं सर्वे परिश्रान्ता न च पश्याम मैथिलीम् । अस्माच्चापिबिलाद्धंसाः क्रौञ्चाश्च सह सारसैः ॥१५॥
जलार्द्राश्चक्रवाकाश्च निष्पतन्ति स्म सर्वशः । नूनं सलिलवानत्र कूपो वा यदि वा ह्रदः ॥१६॥
तथा चेमे बिलद्वारे स्निग्धास्तिष्ठन्ति पादपाः । इत्युक्तास्तद्बिलं सर्वे विविशुस्तिमिरावृतम् ॥१७॥
अचन्द्रसूर्यं हरयो ददृशू रोमहर्षणम् । निशाम्यतस्मात्सिंहांश्चतांस्तांश्चमृगपक्षिणः ॥१८॥
प्रविष्टा हरिशार्दूला बिलं तिमिरसंवृतम् । न तेषां सज्जते दृष्टिर्न तेजो न पराक्रमः ॥१९॥
वायोरिव गतिस्तेषां दृष्टिस्तमसि वर्तते । ते प्रविष्टास्तु वेगेन तद्बिलं कपिकुञ्जराः ॥२०॥
प्रकाशं चाभिरामं च ददृशुर्देशमुत्तमम् । ततस्तस्मिन्बिले भीमे नानापादपसंकुले ॥२१॥
अन्योन्यं संपरिष्वज्य जग्मुर्योजनमन्तरम् । ते नष्टसंज्ञास्तृषिताःसंभ्रान्ताःसलिलार्थिनः ॥२२॥
परिपेतुर्बिले तस्मिन्कंचित्कालमतन्द्रिताः । ते कृशा दीनवदनाः परिश्रान्ताः ललंगमाः ॥२३॥
आलोकं ददृशुर्वीरा निराशा जीविते यदा । ततस्तं देशमागम्य सौम्या वितिमिरं वनम् ॥२४॥
ददृशुः काञ्चनान्वृक्षान्दीप्तवैश्वानरप्रभान् । सालांस्तालांस्तमालांश्चपुंनागान्वञ्जुलान्धवान् २५॥

वानर विस्मयसे व्यग्रचित्त हुए। वहाँ जलकी संभावना देखकर महाबली तेजस्वी वे वानर वहाँ गये। उसमें अनेक जन्तु थे और वह बिल दानवराजके घरके समान था ॥५,६,७,८,९,१०,११,१२॥ वह देखनेमें कठोर तथा जानेमें कठोर था। अनन्तर पर्वत-शिखरके समान वायुपुत्र हनुमान, जो दुर्गम वनोंकी बात जानते हैं, वानरोंसे बोले—दक्षिण दिशाके पर्वतीय देशोंको ढूँढनेसे हम लोग थक गए हैं और सीताको भी हम लोगोंने नहीं देखा। सारसोंके साथ इस बिलसे हंस, क्रौंच, चक्रवाक आदि जलसे भींगे हुए निकले हैं, अवश्य ही यहाँ जलवाला कूँआ है या तालाब ॥१३,१४,१५,१६॥ बिलके द्वारके वृक्षभी बहुत हा हरे हैं। हनुमानके ऐसा कहनेपर वे सब उस अँधेरे बिलमें घुसे ॥१७॥ चन्द्रमा और सूर्यके प्रकाशसे रहित भयानक उस बिलमें जहाँसे सिंह तथा अन्य पशुपक्षी निकल रहे थे, वानरोंने प्रवेश किया ॥१८॥ उनकी दृष्टि, उनका तेज और पराक्रम कुछ भी नहीं रुकते थे ॥१९॥ वायुके समान उनकी गति थी और उन्हें दिखायी पड़ता था। वे वानर वेगसे उस बिलमें चले गये ॥२०॥ उस भयानक बिलमें अनेक विधि के वृक्ष, उत्तम उत्तम और रमणीय देश तथा प्रकाश वहाँ उन लोगोंने देखे ॥२१॥ जलके प्यासे, जल चाहनेवाले, विवेक-रहित, चंचल वानर परस्पर पकड़े हुए एक योजन तक उस बिलमें चले गए ॥२२॥ थोड़ी देर तक बराबर सूखे मुँह थके हुए और खिन्न वानर उस बिलमें चलते गये ॥२३॥ जब वे अपने जीवनसे निराश होगये, तब उन्हें प्रकाश दीख पड़ा। वे उस प्रकाशमय देशमें आकर अन्धकारहीन एक वन देख सके ॥२४॥ ज्वलित अग्निके समान सोनेके ताल, शाल, तमाल, पुन्नांग, बंजुल, धव, चम्पक नाग और कीर्णकार आदि वृक्ष देखे। ये सब फूले हुए थे। सुवर्णमय गुच्छे और लालकोढिंया लगी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चम्पकान्नागवृक्षांश्चकर्णिकारांश्चपुष्पितान् । स्तबकैः काञ्चनैश्चित्रै रक्तैः किसलयैस्तथा ॥२६॥
आपीडैश्च लताभिश्च हेमाभरणभूषितान् । तरुणादित्यसंकाशान्वैदूर्यमयवेदिकान् ॥२७॥
विभ्राजमानान्वपुषा पादपांश्च हिरण्मयान् । नीलवैदूर्यवर्णांश्च पद्मिनीः पतगैर्वृताः ॥२८॥
महद्भिः काञ्चनैर्वृक्षैर्वृतं बालार्कसंनिभैः । जातरूपमयैर्मत्स्यैर्महद्भिश्चाथ पङ्कजैः ॥२९॥
नलिनीस्तत्र ददृशुः प्रसन्नसलिलायुताः । काञ्चनानि विमानानि राजतानि तथैव च ॥३०॥
तपनीयगवाक्षाणि मुक्ताजालावृतानि च । हैमराजतभौमानि वैदूर्यमणिमन्ति च ॥३१॥
ददृशुस्तत्र हरयो गृहमुख्यानि सर्वशः । पुष्पितान्फलिनोवृक्षान्प्रवालमणिसंनिभान्॥३२॥
काञ्चनभ्रमरांश्चैव मधूनि च समन्ततः । मणिकाञ्चनचित्राणि शयनान्यासनानि च ॥३३॥
विविधानि विशालानि ददृशुस्ते समन्ततः । हैमराजतकांस्यानां भाजनानां च राशयः ॥३४॥
अगुरूणां च दिव्यानां चन्दनानां च संचयान् । शुचीन्यभ्यवहाराणि मूलानि च फलानि च॥३५॥
महार्हाणि च यानानि मधूनि रसवन्ति च । दिव्यानामम्बराणां च महार्हाणां च संचयान्॥३६॥
कम्बलानां च चित्राणामजिनानां च संचयान् । तत्र तत्र विचिन्वन्तो बिले तत्र महाप्रभाः ॥३७॥
ददृशुर्वानराः शूराः स्त्रियं कांचिददूरतः । तां च ते ददृशुस्तत्र चीरकृष्णाजिनाम्बराम् ॥३८॥
तापसीं नियताहारां ज्वलन्तीमिव तेजसा । विस्मिता हरयस्तत्र व्यवतिष्ठन्त सर्वशः ॥
पप्रच्छ हनुमांस्तत्र कासि त्वं कस्य वा बिलम् । ॥३९॥

हुई थीं ॥२५,२६॥ डालके ऊपरके गुच्छे और लताओंसे युक्त सुवर्णके आभूषणोंसे युक्त वैदूर्यकी वेदी वाले, शरीरसे सुन्दर चमकते हुए वृक्षोंको उन लोगोंने देखा; नील वैदूर्यके समान तालाब देखे, जहाँ अनेक पक्षी थे ॥२७, २८॥ बालसूर्यके समान सोनेके बड़े-बड़े वृक्षों, सोनेकी बड़ी-बड़ी मछलियाँ और सोनेके बड़े-बड़े कमलोंसे युक्त स्वच्छ जलवाले तालाब उनलोगोंने देखे। सोने और चाँदीके बने हुए विमान उनलोगोंने देखे ॥२९,३०॥ सोनेकी खिड़कियाँ जिनमें मोतीकी जाली लगी हुई, सोने चाँदीके घंट जिनमें वैदूर्य मणि लगी हुई थी, ऐसे उत्तम घर उन वानरोंने देखे, मूंगेके समान फल और फूल वाले वृक्ष उन लोगोंने देखे ॥३१,३२॥ सोनेके भ्रमर, मद्य, मणि और सुवर्णसे चित्रित शयन और आसन जो विशाल और अनेक थे, वानरोंने देखे। सोना चाँदी और कांसेके वर्तनोंके ढेर उन लोगोंने देखे ॥३३,३४॥ अगुरु और चन्दनकी राशि, सुन्दर भोजन, फल-मूल आदि उन लोगोंने देखे ॥३५॥ बहुमूल्य सवारी, सरस मद्य, उत्तम और बहुमूल्य वस्त्रोंकी ढेर उन लोगोंने देखी ॥३६॥ चित्रित कम्बल और चमड़ोंकी राशि उस बिलमें ढूँढते हुए वानरोंने देखी ॥ ३७ ॥ थोड़ी दूर पर वानरोंने एक स्त्री देखी, वह स्त्री काले रंगकी साड़ी पहने हुए थी। नियमित आहार करनेवाली, अपने तेजसे प्रकाशित उस तपस्विनीको देखकर, वानर विस्मित होगए ॥ ३८ ॥ हनुमानने उससे पूछा—आप कौन हैं और यह किसका बिल है ॥३९॥ पर्वतके समान हनुमानने हाथ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततो हनूमान्गिरिसंनिकाशः कृतांजलिस्तामभिवाद्य वृद्धाम् ।
पप्रच्छ का त्वं भवनं बिलं च रत्नानि चेमानि वदस्व कस्य ॥४०॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशः सर्गः ५१

इत्युक्त्वाहनुमांस्तत्र चीरकृष्णाजिनाम्बराम् । अब्रतीत्तांमहाभागां तापसीं धर्मचारिणीम् ॥ १ ॥
इदं प्रविष्टाः सहसा बिलं तिमिरसंवृतम् । क्षुत्पिपासापरिश्रान्ताःपरिखिन्नाश्च सर्वशः॥ २ ॥
महद्धरण्या विवरं प्रविष्टाः स्म पिपासिताः । इमांस्त्वेवंविधान्भावान्विविधानद्भुतोपमान्॥ ३ ॥
दृष्ट्वा वयं प्रव्यथिताः संभ्रान्ता नष्टचेतसः । कस्यैते काञ्चनावृक्षास्तरुणादित्यसंनिभाः ॥ ४ ॥
शुचीन्यभ्यवहाराणि मूलानि च फलानि च । काञ्चनानि विमानानि राजतानि गृहाणि च॥ ५ ॥
तपनीयगवाक्षाणि मणिजालावृतानि च । पुष्पिताः फलवन्तश्च पुण्याः सुरभिगन्धयः ॥ ६ ॥
इमे जाम्बूनदमयाः पादपाः कस्य तेजसा । काञ्चनानि च पद्मानि जातानि विमले जले ॥ ७ ॥
कथं मत्स्याश्च सौवर्णा दृश्यन्ते सह कच्छपैः । आत्मनस्त्वनुभावाद्वा कस्य वैतत्तपोबलम् ॥ ८ ॥
अजानतां नः सर्वेषां सर्वमाख्यातुमर्हसि । एवमुक्ता हनुमता तापसी धर्मचारिणी ॥ ९ ॥
प्रत्युवाच हनूमन्तं सर्वभूतहिते रता । मयो नाम महातेजा मायावी वानरर्षभ ॥१०॥
तेनेदं निर्मितं सर्वं मायया काञ्चनं वनम् । पुरा दानवमुख्यानां विश्वकर्मा बभूव ह ॥११॥

जोड़कर उस वृद्धासे पूछा—आप कौन हैं, यह बिल और घर किसके हैं, ये रत्न किसके हैं, आप कहें ॥४०॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका पचासवां सर्ग समाप्त ।

कृष्ण मृगचर्म धारण करनेवाली उस धर्मचारिणी तपस्विनीसे ऐसा कहकर हनुमान पुनः बोले ॥१॥ भूख प्याससे थके और खिन्न हम लोग सहसा इस अंधेरे बिलमें चले आये । पृथिवीके इस बड़े बिलमें प्यासके कारण हम लोग चले आए । यहाँके अनेक पदार्थोंको हम लोग अद्भुत देखते हैं, यहाँकी चीजोंको देखकर हम लोग दुखी हुए, घबड़ा गए और हम लोगोंकी कर्तव्यबुद्धि नाती रही । सूर्य-सदृश ये सोनेके वृक्ष किसके हैं ॥२,३,४॥ शुद्ध भोजनकी वस्तुएँ, फल-मूल आदि, सोनेके विमान, चाँदीके घर, सोनेकी खिड़कियाँ, मणिकी जाली, पुष्पित और फलित सुगन्धमय ये सोनेके वृक्ष किसके तेजसे लगे हैं ? विमल जलमें सोनेके कमल किसके तेजसे हुए हैं ? कछुओंके साथ ये सोनेकी मछलियाँ क्यों हुई हैं ? ये सब आपके प्रतापसे या किसी दूसरेके तपोबलके प्रभावसे हुआ है ? हम सब लोग इस विषयमें कुछ भी नहीं जानते, अतएव हम लोगोंसे आप सब बातें कहें । हनुमानके ऐसा कहनेपर धर्मचारिणि तापसी सब प्राणियोंका हित चाहनेवाली हनुमानसे बोली—हे वानरश्रेष्ठ, महातेजस्वी मय नामका एक मायावी था ॥५,६,७,८,९,१०॥ उसीने मायासे इस समस्त वनको बनाया है । पहले दानवोंमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

येनेदं काञ्चनं दिव्यं निर्मितं भवनोत्तमम् । स तु वर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महद्वने ॥१२॥
पितामहाद्वरं लेभे सर्वमौशनसं धनम् । विधाय सर्वं बलवान्सर्वकामेश्वरस्तदा ॥१३॥
उवास सुखितः कालं कंचिदस्मिन्महावने । तमप्सरसि हेमायां सक्तं दानवपुंगवम् ॥१४॥
विक्रम्यैवाशनिं गृह्य जघानेशः पुरंदरः । इदं च ब्रह्मणा दत्तं हेमायै वनमुत्तमम् ॥१५॥
शाश्वतः कामभोगश्च गृहं चेदं हिरण्मयम् । दुहिता मेरुसावर्णेरहं तस्याः स्वयंप्रभा ॥१६॥
इदं रक्षामि भवनं हेमाया वानरोत्तम । मम प्रियसखी हेमा नृत्तगीतविशारदा ॥१७॥
तया दत्तवरा चास्मि रक्षामि भवनं महत् । किं कार्यं कस्य वा हेतोः कान्तारानि प्रपद्यथ॥१८॥
कथं चेदं वनं दुर्गं युष्माभिरुपलक्षितम् । शुचीन्यभ्यवहाराणि मूलानि च फलानि च ॥
भुक्त्वा पीत्वा च पानीयं सर्वं मे वक्तुमर्हसि । १९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशः सर्गः ५२

अथ तानब्रवीत्सर्वान्विश्रान्तान्हरियूथपान् । इदं वचनमेकाग्रा तापसी धर्मचारिणी ॥ १ ॥
वानरा यदि वः खेदः प्रनष्टः फलभक्षणात् । यदिचैतन्मयाश्राव्यंश्रोतुमिच्छामितांकथाम्॥ २ ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनूमान्मारुतात्मजः । आर्जवेन यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ३ ॥

एक विश्वकर्मा हो गए हैं ॥११॥ उन्होंने ही यह सोनेका उत्तम भवन बनाया है । हजार वर्ष तक उन्होंने बड़े वनमें घोर तपस्या की ॥१२॥ ब्रह्मासे वरमें उन्होंने शुक्राचार्यका समस्त धन (शिल्पविद्या और शिल्पकी सामग्री) पाया । इससे वे बली होकर अपनी सृष्टिके उपभोग करनेके समर्थ हुए ॥१३॥ मय ने इस वनमें कुछ दिनों तक सुखपूर्वक वास किया । पुनः वे हेमा नामकी अप्सरापर अनुरक्त हुए ॥१४॥ इन्द्रने पराक्रम करके वज्र लेकर मय को मार दिया । ब्रह्माने यह उत्तम वन हेमाको दिया ॥१५॥ यह सोनेका घर और शाश्वत कामभोग हेमाको ब्रह्माने दिया । मैं मेरु सावर्णिकी कन्या हूँ और मेरा स्वयंप्रभा नाम है ॥१६॥ मैं हेमाके इस घरकी रक्षा करती हूँ । मेरी प्रिय सखी हेमा नाचने गानेमें निपुण है ॥१७॥ मैंने हेमाको वर दिया है, इसलिये मैं उसके घरकी रक्षा करती हूँ । क्या काम है, किसलिए तुम लोग वनमें आए हो ? ॥१८॥ इस वनको तुम लोगोंने कैसे देखा—शुद्ध भोजन, फलमूल आदि खाकर तथा पानी पीकर मुझसे तुम यह सब कहो ।

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका एकावनवाँ सर्ग समाप्त ।

इन वानरोंके विश्राम कर लेने पर सावधान धर्मचारिणी वह तपस्विनी बोली ॥ १ ॥ वानरों यदि आप लोगोंकी थकावट फल खानेसे दूर हो गयी हो, यदि तुम्हारी बात मेरे सुनने लायक हो, तो तुम लोग अपनी कथा कहो । अनन्तर उसके वचन सुनकर वायुपुत्र हनुमान नम्रतापूर्वक यथार्थ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राजा सर्वस्य लोकस्य महेन्द्रवरुणोपमः । रामो दाशरथिः श्रीमान्प्रविष्टो दण्डकावनम्॥ ४ ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या सह भार्यया । यस्य भार्या जनस्थानाद्रावणेन हृता बलात् ॥ ५ ॥
वीरस्तस्य सखा राज्ञः सुग्रीवो नाम वानरः । राजा वानरमुख्यानां येन प्रस्थापिता वयम् ॥ ६ ॥
अगस्त्यचरितामाशां दक्षिणां यमरक्षिताम् । सहैभिर्वानरैर्मुख्यैरङ्गदप्रमुखैर्वयम् ॥ ७ ॥
रावणं सहिताः सर्वे राक्षसं कामरूपिणम् । सीतया सह वैदेह्या मार्गध्वमिति चोदिताः ॥ ८ ॥
विचित्य तु वनं सर्वं समुद्रं दक्षिणां दिशम् । वयं बुभुक्षिताः सर्वे वृक्षमूलमुपाश्रिताः ॥ ९ ॥
विवर्णवदनाः सर्वे सर्वे ध्यानपरायणाः । नाधिगच्छामहे पारं मग्नाश्चिन्तामहार्णवे ॥१०॥
चारयन्तस्ततश्चक्षुर्दृष्टवन्तो महद्बिलम् । लतापादपसंपन्नं तिमिरेण समावृतम् ॥११॥
अस्माद्धंसा जलक्लिन्नाः पक्षैः सलिलरेणुभिः । कुरराः सारसाश्चैव निष्पतन्ति पतत्रिणः ॥१२॥
साध्वत्र प्रविशामेति मया तूक्ताः प्लवंगमाः । तेषामपि हि सर्वेषामनुमानमुपागतम् ॥१३॥
अस्मिन्निपतिताः सर्वेऽप्यथ कार्यत्वरान्विताः। ततो गाढं निपतिता गृह्य हस्तैः परस्परम् ॥१४॥
इदं प्रविष्टाः सहसा बिलं तिमिरसंवृतम् । एतन्नः कार्यमेतेन कृत्येन वयमागताः ॥१५॥
त्वां चैवोपगताः सर्वे परिघूना बुभुक्षिताः । आतिथ्यधर्मदत्तानि मूलानि च फलानि च ॥१६॥
अस्माभिरुपयुक्तानि बुभुक्षापरिपीडितैः । यच्चया रक्षिताः सर्वे म्रियमाणा बुभुक्षया ॥१७॥

बातें कहने लगे ॥२, ३॥ सब लोगोंके राजा, इन्द्रवरुणके समान, दसरथपुत्र रामचन्द्र दण्डक वनमें आये हैं भाई लक्ष्मण, पत्नी सीताके साथ वे आये हैं ॥४॥ जनस्थानसे उनकी स्त्री सीताको रावणने बलपूर्वक हरण किया है ॥ ५ ॥ उन रामचन्द्रके मित्र सुग्रीव नामके वानरोंके राजा हैं। उन्होंने ही हम लोगोंको भेजा है ॥ ६ ॥ अगस्त्यके रहनेवाली दक्षिण दिशामें, यमराजकी रक्षित दक्षिण दिशामें, अंगद आदि प्रधान वीरोंके साथ हम लोग यहाँ आये हैं ॥ ७ ॥ तुम लोग यमपालित दक्षिण दिशामें जाकर कामरूपी राक्षस रावणको और सीताको ढूँढ़ो—इस आज्ञासे हम लोग यहाँ आये हैं ॥ ८ ॥ समस्त वनको ढूंढ़ कर, समुद्रको ढूंढ़कर हम लोग भूखे होकर वृक्षकी छायामें एकत्रित हुए। हम लोगोंका मुँह सूख गया था ॥ ९ ॥ हम लोग सोच रहे थे, चिन्ता-समुद्रमें मग्न होकर उसका पार नहीं पाते थे ॥ १० ॥ इधर उधर देखते हुए हम लोगोंने इस बड़े बिलको देखा, जो लता और वृक्षोंसे युक्त तथा अन्धकारमय था, ॥ ११ ॥ जलसे भींगे हुए, जल और धूलसे लिपटे पंखवाले हंस यहाँसे निकले, कुररी, सारस आदि पक्षी भी यहाँसे निकले ॥ १२ ॥ मैंने वानरोंसे कहा कि अच्छा हम लोग यहीं चलें। उन लोगोंने भी अनुमानसे यही बात जानी ॥ १३ ॥ कार्यकी शीघ्रता होनेके कारण हम लोग इसमें दौड़ आए। परस्पर हाथ पकड़ कर एक ही साथ हम लोग इसमें कूद पड़े ॥१४॥ इस अंधेरे बिलमें हम लोग सहसा चले आए। यही हमारा कार्य है और इसी कार्यके लिए हम लोग आए हैं ॥ १५ ॥ भूखसे पीड़ित होकर हम लोग तुम्हारे पास आये और आतिथ्य धर्मके अनुसार तुमने फल-मूल दिए ॥ १६ ॥ भूखसे पीड़ित हम लोगोंने खाए। भूखसे पीड़ित हम लोगोंके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ब्रूहि प्रत्युपकारार्थं किं ते कुर्वन्तु वानराः । एवमुक्ता तु सर्वज्ञा वानरैस्तैः स्वयंप्रभा ॥१८॥
प्रत्युवाच ततः सर्वानिदं वानरयूथपान् । सर्वेषां परितुष्टास्मि वानराणां तरस्विनाम् ॥१९॥
चरन्त्या मम धर्मेण न कार्यमिह केनचित् । एवमुक्तः शुभं वाक्यं तापस्या धर्मसंहितम् ॥२०॥
उवाच हनुमान् वाक्यं तामनिन्दितलोचनाम् । शरणं त्वां प्रपन्नाः स्मः सर्वे वै धर्मचारिणीम्॥२१॥
यः कृतः समयोऽस्माभिः सुग्रीवेण महात्मना ।स तु कालोऽत्यतिक्रान्तो विले च परिवर्तताम्॥२२॥
सा त्वमस्माद्विलादस्मानुत्तारयितुमर्हसि । तस्मात्सुग्रीववचनादतिक्रान्तान्गतायुषः ॥२३॥
त्रातुमर्हसि नः सर्वान्सुग्रीवभयशङ्कितान् । महच्च कार्यमस्माभिः कर्तव्यं धर्मचारिणि ॥२४॥
तच्चापि न कृतं कार्यमस्माभिरिहवासिभिः । एवमुक्ता हनुमता तापसी वाक्यमब्रवीत् ॥२५॥
जीवता दुष्करं मन्ये प्रविष्टेन निवर्तितुम् । तपसः सुप्रभावेण नियमोपार्जितेन च ॥२६॥
सर्वानेव विलादस्मात्तारयिष्यामि वानरान् । निमीलयत चक्षूंषि सर्वे वानरपुंगवाः ॥२७॥
नहि निष्क्रमितुं शक्यमनिमीलितलोचनैः । ततो निमीलिताः सर्वे सुकुमाराङ्गुलैः करैः॥२८॥
सहसा पिदधुर्दृष्टिं हृष्टा गमनकाङ्क्षया । वानरास्तु महात्मानो हस्तरुद्धमुखास्तदा ॥२९॥
निमेषान्तरमात्रेण विलादुत्तारितास्तया । उवाच सर्वास्तांस्तत्र तापसी धर्मचारिणी ॥३०॥
निःसृतान्विषमात्तस्मात्समाश्वास्येदमब्रवीत्। एष विन्ध्यो गिरिः श्रीमान्नानाद्रुमलतायुतः॥३१ ।

प्राणोंकी तुमने रक्षाकी ॥१७॥ बोलिए, आपके प्रत्युपकारके लिए वानर क्या करें? वानरोंके ऐसा कहने पर सर्वज्ञा स्वयंप्रभा बोली—मैं तुम सब वानरोंपर प्रसन्न हूँ ॥ १८,१९ ॥ धर्माचरण करनेके कारण मुझे किसी बातकी आवश्यकता नहीं है। तापसीके द्वारा धर्मयुक्त ऐसा वचन कहे जाने पर हनुमान उससे बोले, ॥२०॥ तुम धर्मचारिणीकी शरण हम सब आए हैं ॥२१॥ महात्मा सुग्रीवने हमलोगोंके लिए जो अवधि दी थी, वह अवधि बिलमें घूमनेके कारण बीत गई ॥२२॥ अतएव आप हमलोगोंको इस बिलसे बाहर निकाल दें। सुग्रीवके वचन उल्लंघन करनेसे हमलोगोंके प्राण संकटमें पड़ गए हैं ॥२३॥ सुग्रीवके भयसे भीत हमलोगोंके प्राणोंकी आप रक्षा करें। हे धर्मचारिणी, हमलोगोंको बहुत बड़ा काम करना है। यहाँ रह कर हमलोगोंने वह काम भी नहीं किया। हनुमानके ऐसा कहने पर तापसी बोली, ॥२४, २५॥ जीते जी यहाँसे निकलना कठिन है पर धर्मके नियमोंके पालनसे प्राप्त और तपस्याके प्रभावसे मैं सब वानरोंको इस बिलसे निकाल दूँगी। सब वानर अपनी अपनी आँखें बन्द करें ॥२६, २७॥ आँखें बन्द करनेके बिना यहाँसे निकलना कठिन है। सब वानरोंने कोमल अँगुलियों वाले हाथोंसे अपनी आँखें बन्द कीं ॥२८॥ जीनेकी इच्छा रखनेवाले सब वानरोंने अपनी आँखें बन्द कर लीं, और हाथोंसे मुँह छिपा लिया ॥२९॥ उस धर्मचारिणीने थोड़ी ही देरमें सबको बिलके बाहर कर दिया और वह धर्मचारिणी तापसी वानरोंसे बोली ॥३०॥ उस बिलसे निकले वानरोंको धैर्य देकर वह तापसी बोली—अनेक वृक्ष लताओंसे युक्त यह विंध्याचल पर्वत है ॥३१॥ यह प्रस्रवण पर्वत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एष प्रस्रवणः शैलः सागरोऽयं महोदधिः । स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि भवनं वानरर्षभाः ॥
इत्युक्त्वा तद्बिलं श्रीमत्प्रविवेश स्वयंप्रभा । ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशः सर्गः ५३

ततस्ते ददृशुर्घोरं सागरं वरुणालयम् । अपारमभिगर्जन्तं घोरैरूर्मिभिराकुलम् ॥ १ ॥
मयस्य मायाविहितं गिरिदुर्गे विचिन्वताम् । तेषां मासोऽत्यतिक्रान्तोयोराज्ञासमयःकृतः ॥ २ ॥
विन्ध्यस्य तु गिरेः पादे संप्रपुष्पितपादपे । उपविश्य महात्मानश्चिन्तामापेदिरे तदा ॥ ३ ॥
ततः पुष्पातिभाराग्रांल्लताशतसमावृतान् । द्रमान्वासन्तिकान्दृष्ट्वा बभूवुर्भयशङ्किताः ॥ ४ ॥
ते वसन्तमनुप्राप्तं प्रतिवेद्य परस्परम् । नष्टसंदेशकालार्था निपेतुर्धरणीतले ॥ ५ ॥
ततस्तान्कपिवृद्धांश्च शिष्टांश्चैव वनौकसः । वाचा मधुरयाभाष्य यथावदनुमान्य च ॥ ६ ॥
स तु सिंहवृषस्कन्धः पीनायतभुजः कपिः । युवराजो महाप्राज्ञ अङ्गदो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥
शासनात्कपिराजस्य वयं सर्वे विनिर्गताः । मासः पूर्णोबिलस्थानांहरयः किं न बुध्यत ॥ ८ ॥
वयमाश्वयुजे मासि कालसंख्याव्यवस्थिताः । प्रस्थिताः सोऽपिचातीतःकिमतःकार्यमुत्तरम् ॥ ९ ॥

है, यह महोदधि समुद्र है । तुमलोगोंका कल्याण हो । मैं घर जाती हूँ, ऐसा कहकर स्वयंप्रभा उस बिलमें चली गयी ॥३२॥

आदि काव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका बावनवाँ सर्ग समाप्त ।

वानरोंने वरुणके निवासस्थान भयानक समुद्रको देखा, जिसके पारका पता नहीं, जिसमें निरंतर बड़ी बड़ी लहरियाँ उठ रही हैं और जो गरज रही हैं ॥ १ ॥ भयकी मायासे बने बिलमें ढूँढ़नेके कारण उनकी वह अवधि बीत गयी जो राजा सुग्रीवने उन्हें दी थी ॥ २ ॥ विंध्याचलके नीचे प्रदेशमें जहाँके वृक्ष पुष्पित हुए थे बैठकर महात्मा वानर विचार करने लगे ॥ ३ ॥ जिनका अग्रभाग पुष्पोंसे झुक गया है, जो लताओंसे वेष्टित हैं, वसन्तके इन वृक्षों को देखकर वे भयभीत और चिन्तित हुए ॥४॥ वसन्त आ गया, यह परस्पर बतलाकर सुग्रीवके सन्देशके समय बीत जानेसे वे सब पृथ्वीपर गिर पड़े ॥५॥ अनन्तर उन बूढ़े सज्जनों, वानरों का सन्मान कर तथा मधुरवचनसे पूछकर सिंह और वृषके समान कन्धेवाले और मोटे व लम्बी भुजावाले महाप्राज्ञ युवराज अंगद मीठे वाक्य बोले ॥६॥ सुग्रीवकी आज्ञासे हम सब लोग बाहर निकले थे, बिल हीमें हमलोगोंका मास पूरा हो गया—क्या यह बात वानरोंको मालूम नहीं है ? ॥ ७, ८ ॥ हमलोग आश्विन महीनेमें समयकी अवधि करके चले थे, वह अवधि बीत गयी । अब हमलोगोंको क्या करना चाहिए ॥ ९ ॥ आपलोग नीतिमार्गके जाननेवाले हैं,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भवन्तः प्रत्ययं प्राप्ता नीतिमार्गविशारदाः । हितेष्वभिरता भर्तुर्निसृष्टाः सर्वकर्मसु ॥१०॥
कर्मस्वप्रतिमाः सर्वे दिक्षु विश्रुतपौरुषाः । मां पुरस्कृत्य निर्याताः पिङ्गाक्षप्रतिचोदिताः॥११॥
इदानीमकृतार्थानां मर्तव्यं नात्र संशयः । हरिराजस्य संदेशमकृत्वा कः सुखी भवेत् ॥१२॥
अस्मिन्नतीते काले तु सुग्रीवेण कृते स्वयम् । प्रायोपवेशनं युक्तं सर्वेषां च वनौकसाम् ॥१३॥
तीक्ष्णःप्रकृत्यासुग्रीवःस्वामिभावेव्यवस्थितः । न क्षमिष्यति नः सर्वानपराधकृतो गतान् ॥१४॥
अप्रवृत्तौ च सीतायाः पापमेव करिष्यति । तस्मात्क्षममिहाद्यैव गन्तुं प्रायोपवेशनम् ॥१५॥
त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च धनानि च गृहाणि च । ध्रुवं नो हिंसते राजा सर्वान्प्रतिगतानितः ॥१६॥
वधेनाप्रतिरूपेण श्रेयान्मृत्युरिहैव नः । न चाहं यौवराज्येन सुग्रीवेणाभिषेचितः ॥१७॥
नरेन्द्रेणाभिषिक्तोऽस्मि रामेणाक्लिष्टकर्मणा । स पूर्वं बद्धवैरो मां राजा दृष्ट्वा व्यतिक्रमम्॥१८॥
घातयिष्यति दण्डेन तीक्ष्णेन कृतनिश्चयः । किं मे सुहृद्भिर्व्यसनं पश्यद्भिर्जीवितान्तरे ॥
इहैव प्रायमासिष्ये पुण्ये सागररोधसि । ॥१९॥
एतच्छ्रुत्वा कुमारेण युवराजेन भाषितम् । सर्वे ते वानरश्रेष्ठाः करुणं वाक्यमब्रुवन् ॥२०॥
तीक्ष्णः प्रकृत्या सुग्रीवः प्रियारक्तश्च राघवः । समीक्ष्याकृतकार्यांस्तु तस्मिंश्च समये गते ॥२१॥
अदृष्टायां च वैदेह्यां दृष्ट्वा चैव समागतान् । राघवप्रियकामाय घातयिष्यत्यसंशयम् ॥२२॥

स्वामीके विश्वासी हैं, स्वामीके हितेच्छु हैं, उनके द्वारा सब कामोंमें अधिकारके साथ नियुक्त होते हैं ॥१०॥ आपलोग कार्यों में अनुपम हैं अर्थात् असमान है और दिशाओंमें आपके पराक्रमकी प्रसिद्धि है। पीली आँख वाले सुग्रीवकी आज्ञासे मेरी अधिनायकतामें आपलोग आये हैं ॥११॥ अब कार्य सिद्ध न होनेके कारण हमलोगोंको मरना होगा, इसमें सन्देह नहीं; क्योंकि सुग्रीवकी आज्ञाका बिना पालन किये कौन सुखी हो सकता है ॥१२॥ स्वयं सुग्रीवके किए समयके बीतजाने पर, सब वानरोंको प्रायोपवेशन (मरनेके लिए अन्न जलका त्याग) करना चाहिए ॥ १३ ॥ सुग्रीव स्वभाव ही से तीक्ष्ण है, और इस समय स्वामी है। अपराध करके जाने पर हमलोगोंको क्षमा नहीं करेगा ॥१४॥ सीताका पता न पाने पर वह हमलोगोंका वध करेगा। इस कारण यहाँ प्रायोपवेशन करना ही हमलोगोंको उचित है ॥१५॥ पुत्र, दारा, धन और गृह छोड़कर हमलोगोंको प्रायोपवेशन ही करना चाहिए। यहांसे लौटने पर राजा अवश्य ही हमलोगोंका वध करेगा ॥१६॥ अनुचित वधकी अपेक्षा यहाँ ही मर जाना हमलोगोंके लिए अच्छा है। सुग्रीवने युवराजके पद पर मेरा अभिषेक नहीं किया है ॥१७॥ धर्मात्मा राजा रामचन्द्रने मेरा अभिषेक किया है। सुग्रीव पहले ही से मुझसे वैर रखता है ॥१८॥ अपराध देखकर वह कठोर दण्ड देनेका निश्चय करेंगे। जीवननाशका समय उपस्थित होने पर मेरा दुःख देखकर भी मित्रगण क्या करेंगे ? अतएव यहीं पवित्र समुद्र तीर पर मैं प्रायोपवेशन करूँगा ॥१९॥ युवराज कुमारका यह कहना सुनकर सभी श्रेष्ठ वानर करुण वचन बोले ॥२०॥ सुग्रीव तीक्ष्ण स्वभावका है। रामचन्द्र स्त्रीके अनुरागी हैं। समय बीतने पर और बिना कार्य सिद्ध किए हमलोगोंको देखकर, सीताको न देखकर,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न क्षमं चापराद्धानां गमनं स्वामिपार्श्वतः । प्रधानभूताश्च वयं सुग्रीवस्य समागताः ॥२३॥
इहैव सीतामन्वीक्ष्य प्रवृत्तिमुपलभ्य वा । नो चेद्गच्छाम तं वीरं गमिष्यामो यमक्षयम् ॥२४॥
सर्वांगमानां तु भयार्दितानां श्रुत्वा वचस्तार इदं बभाषे ।
अलं विषादेन बिलं प्रविश्य वसाम सर्वे यदि रोचते वः ॥२५॥
इदं हि मायाविहितं सुदुर्गमं प्रभूतपुष्पोदकभोज्यपेयम् ।
इहास्ति नो नैव भयं पुरंदरान्न राघवाद्वानरराजतोऽपि वा ॥२६॥
श्रुत्वाङ्गदस्यापि वचोऽनुकूलमूचुश्च सर्वे हरयः प्रतीताः ।
यथा न हन्येम तथा विधानमसक्तमद्यैव विधीयतां नः ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशः सर्गः ५४

तथा ब्रुवति तारे तु ताराधिपतिवर्चसि । अथ मेने हृतं राज्यं हनूमानङ्गदेन तत् ॥ १ ॥
बुद्ध्या ह्यष्टाङ्गया युक्तं चतुर्बलसमन्वितम् । चतुर्दशगुणं मेने हनूमान्वालिनः सुतम् ॥ २ ॥
आपूर्यमाणं शश्वच्च तेजोबलपराक्रमैः । शशिनं शुक्लपक्षादौ वर्धमानमिव श्रिया ॥ ३ ॥

और हमलोगोंको आया देखकर, रामचन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए सुग्रीव अवश्य हमलोगोंका बध करेगा ॥२१,२२॥ अपराधियोंको स्वामीके पास जाना उचित नहीं । हमलोग सुग्रीवके प्रधान सेवक हैं। हमलोग यहाँ आये हैं ॥२३॥ सीताको देखकर अथवा उनका पता लगाकर हमलोग न गये तो अवश्य ही हमलोगोंको यमराजके यहाँ जाना होगा ॥२४॥ भयभीत वानरोंके वचन सुनकर तार नामक वानर बोला—दुःख करना व्यर्थ है, यदि तुमलोग ठीक समझो तो हम सब बिलमें चल कर रहें ॥२५॥ यह मायाके द्वारा बना हुआ है, यहाँ किसीका प्रवेश संभव नहीं। खूब जल भोजन और पान यहाँ मिलता है। यहाँ इन्द्रसे, सुग्रीवसे अथवा रामचन्द्रसे भय नहीं है ॥२६॥ अंगदके भी अनुकूल तारके वचन सुनकर सभी वानरोंने विश्वासपूर्वक कहा—जिस प्रकार हमलोग न मारे जायँ वैसा उपाय शीघ्र आज ही करना चाहिए ॥२६॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका तिरपनवाँ सर्ग समाप्त ।

तारा धिपति, चन्द्रमाके समान तेजवाले तारके ऐसा कहने पर हनुमानने अंगदके राज्यका नष्ट होना समझा ॥ १ ॥ वालिके पुत्र अंगदको हनुमान अष्टांगबुद्धिसे युक्त, चार बलसे युक्त तथा चतुर्दश गुणवाले समझते हैं। (अष्टांग बुद्धि—सुननेकी इच्छा, श्रवण, ग्रहण, धारण, ऊहापोह, अर्थ, विज्ञान और तत्वज्ञान। चार बल—साम, दाम, भेद और निग्रह। चौदह गुण—देशकालका ज्ञान, दृढ़ता, कष्टसहिष्णुता, सर्व-विज्ञानता, दक्षता, उत्साह, मन्त्रगुप्ति, एकवाक्यता, शूरता, भक्तिज्ञान, कृतज्ञता, शरणागतवत्सलता, अमर्षित्व और अचापल) ॥ २ ॥ तेज बल और पराक्रमसे शुक्लपक्षमें बढ़ने वाले चन्द्रमाके समान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बृहस्पतिसमं बुद्ध्या विक्रमे सदृशं पितुः । शुश्रूषमाणं तारस्य शुक्रस्येव पुरंदरम् ॥ ४ ॥
भर्तुरर्थे परिश्रान्तं सर्वशास्त्रविशारदः । अभिसंधातुमारेभे हनूमानङ्गदं ततः ॥ ५ ॥
स चतुर्णामुपायानां द्वितीयमुपवर्णयन् । भेदयामास तान्सर्वान्वानरान्वाक्यसंपदा ॥ ६ ॥
तेषु सर्वेषु भिन्नेषु ततोऽभीषयदङ्गदम् । भीषणैर्विविधैर्वाक्यैः कोपोपायसमन्वितैः ॥ ७ ॥
त्वं समर्थतरः पित्रा युद्धे तारेय वै ध्रुवम् । दृढं धारयितुं शक्तः कपिराज्यं यथा पिता ॥ ८ ॥
नित्यमस्थिरचित्ता हि कपयो हरिपुंगव । नाज्ञाप्यं विषहिष्यन्ति पुत्रदारं विना त्वया ॥ ९ ॥
त्वां नैते ह्यनुरज्येयुः प्रत्यक्षं प्रवदामि ते । यथायं जाम्बवान्नीलः सुहोत्रश्च महाकपिः ॥१०॥
नह्यहं ते इमे सर्वे सामदानादिभिर्गुणैः । दण्डेन न त्वया शक्याः सुग्रीवादपकर्षितुम्॥११॥
विगृह्यासनमप्याहुर्दुर्बलेन बलीयसा । आत्मरक्षाकरस्तस्मान्न विगृह्णीत दुर्बलः ॥१२॥
यां चेमां मन्यसे धात्रीमेतद्बलमिति श्रुतम् । एतल्लक्ष्मणबाणानामीषत्कार्यं विदारणम् ॥१३॥
स्वल्पं हि कृतमिन्द्रेण क्षिपता ह्यशनिं पुरा । लक्ष्मणो निशितैर्बाणैर्भिन्द्यात्पत्रपुटं यथा ॥१४॥
लक्ष्मणस्य च नाराचा बहवः सन्ति तद्विधाः । वज्राशनिसमस्पर्शा गिरीणामपि दारकाः ॥१५॥
अवस्थानं यदैव त्वमासिष्यसि परंतप । तदैव हरयः सर्वे त्यक्ष्यन्ति कृतनिश्चयाः ॥१६॥

अंगद तेज बल और पराक्रमसे पूरे हो रहे हैं । बुद्धिमें बृहस्पतिके समान, पराक्रममें पिताके समान अंगदको, जो तारके उपदेश सुन रहे हैं जैसे इन्द्रने शुक्रका उपदेश सुना था उस अंगदको, स्वामीके कार्यमें थके अंगदको, सर्वशास्त्रविशारद हनुमान अपने अनुकूल अर्थात् तारसे अलग करनेका उद्योग करने लगे ॥३,४,५॥ चार उपायोंमेंसे दूसरे उपायका वर्णन करते हुए उन सब वानरोंमें वचन द्वारा भेद उत्पन्न किया ॥ ६ ॥ वानरोंमें भेद उत्पन्न होने पर अनेक प्रकारके भयानक और दण्डसे युक्त वचनोंके द्वारा अंगदको डरवाया ॥ ७ ॥ हे तारापुत्र, तुम युद्धमें पिताके समान हो अतएव तुम समर्थ हो । पिताके समान तुम वानरराज्यको धारण कर सकते हो ॥ ८ ॥ हे वानरश्रेष्ठ, वानरोंका स्वभाव सदा चंचल होता है । ये स्त्रीपुत्रसे रहित होकर तुम्हारी आज्ञाओंको सह न सकेंगे ॥ ९ ॥ स्त्रीपुत्रको छोड़ कर ये जाम्बवान् और महाकपि सुग्रीव तुममें अनुराग नहीं कर सकेंगे । यह मैं स्पष्ट कहता हूँ ॥१०॥ मैं तथा ये सब वानर साम दाम आदि गुणोंसे तथा दण्डसे, तुम्हारे द्वारा सुग्रीवसे अलग नहीं किये जा सकते ॥११॥ दुर्बलके साथ विरोध करके बलवान् अकेला रह सकता है, दुर्बल नहीं; क्योंकि उसे आत्मरक्षाकी आवश्यकता है । अतएव दुर्बलको विरोध नहीं करना चाहिए ॥१२॥ जिस गुहाको तुम रक्षक समझते हो वह निर्भय है, वह तुमने तारसे सुना है; पर इसको तोड़ देना, लक्ष्मणके बाणोंके लिए कोई कठिन नहीं है ॥१३॥ पहले वज्र चलाकर इन्द्रने थोड़ा हा नाश किया है । लक्ष्मण तीखे बाण चलाकर सबका नाश कर देगा ॥१४॥ लक्ष्मणके बहुतसे ऐसे बाण हैं जो वज्रके समान पर्वतोंको भी तोड़नेवाले हैं ॥१५॥ हे परन्तप, जब तुम इस बिलमें रहने लगोगे, उसी समय सब वानर निश्चय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्मरन्तः पुत्रदाराणां नित्योद्विग्ना बुभुक्षिताः । खेदिता दुःखशय्याभिस्त्वांकरिष्यन्तिपृष्ठतः १७॥
स त्वं हीनः सुहृद्भिश्च हितकामैश्च बन्धुभिः । तृणादपि भृशोद्विग्नः स्पन्दमानाद्भविष्यसि ॥१८॥
अत्युग्रवेगा निशिता घोरा लक्ष्मणसायकाः । अपावृत्तं जिघांसन्तो महावेगा दुरासदाः ॥१९॥
अस्माभिस्तु गतं सार्धं विनीतवदुपस्थितम् । आनुपूर्व्यात्तु सुग्रीवो राज्येत्वांस्थापयिष्यति॥२०॥
धर्मराजः पितृव्यस्ते प्रीतिकामो दृढव्रतः । शुचिः सत्यप्रतिज्ञश्च स त्वां जातु न नाशयेत्॥२१॥
प्रियकामश्च ते मातुस्तदर्थं चास्य जीवितम् । तस्यापत्यं च नास्त्यन्यत्तस्मादङ्गद गम्यताम्॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥५४॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः ५५

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम् । स्वामिसत्कारसंयुक्तमङ्गदो वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
स्थैर्यमात्ममनःशौचमानृशंस्यमथार्जवम् । विक्रमश्चैव धैर्यं च सुग्रीवे नोपपद्यते ॥ २ ॥
भ्रातुर्ज्येष्ठस्य यो भार्यां जीवतो महिषीं प्रियाम्। धर्मेण मातरं यस्तु स्वीकरोति जुगुप्सितः ॥ ३ ॥
कथं स धर्मं जानीते येन भ्रात्रा दुरात्मना । युद्धायाभिनियुक्तेन बिलस्य पिहितं मुखम् ॥ ४ ॥
सत्यात्पाणिगृहीतश्च कृतकर्मा महायशाः । विस्मृतो राघवो येन स कस्य सुकृतं स्मरेत् ॥ ५ ॥

करके तुम्हारा त्याग कर देगें॥१६॥ इन्हें पुत्रस्त्रियोंकी याद आवेगी, सदा उद्विग्न रहेंगे, भूख तथा अन्य दुखोंके कारण खिन्न होकर तुम्हें पीछे कर देगें (अर्थात् तुमको छोड़ कर सुग्रीवके पास चले आवेंगे) ॥१७॥ वह तुम हित चाहनेवाले सुहृद् और बन्धुओंसे हीन होकर, उड़नेवाले तृणसे भी हलके हो जाओगे और सदा उद्विग्न रहोगे ॥१८॥ वेगवान् लक्ष्मणके भयानक और तीखे बाण रामकार्यसे बिमुख तुमको मारनेके लिए तयार हो जायँगे ॥१९॥ हमलोगोंके साथ जानेपर, विनयपूर्वक सुग्रीवके सामने उपस्थित होने पर, समयसे वे तुम्हें राज्य देंगे ॥२०॥ तुम्हारे चाचा धर्मात्मा हैं, तुम्हारे ऊपर प्रेम करते हैं, शुद्ध और सत्यप्रतिज्ञ हैं। वे तुम्हारा नाश कभी नहीं करेंगे ॥२१॥ तुम्हारी माताका प्रेम सुग्रीव चाहते हैं। उन्हींके लिए सुग्रीवका जीवन है। उनके दूसरा लड़का भी नहीं है। अतएव, हे अंगद, तुम चलो ॥२२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका चौवनवाँ सर्ग समाप्त ।

धर्मयुक्त, विनीत और स्वामीके सन्मानसे युक्त, हनुमानके वचन सुनकर अंगद बोले ॥१॥ स्थिरता, आत्मा और मनकी शुद्धता, दयालुता, सरलता, विक्रम और धीरता सुग्रीवमें नहीं पाये जाते ॥ २ ॥ जेठे भाईकी प्रिय स्त्रीको, जो धर्मसे माताके तुल्य है, भाईके जीतेजी जो ग्रहण करता है वह निन्दित है ॥ ३ ॥ वह कैसे धर्मका जाननेवाला कहा जायगा, जिसने, युद्धके लिए जाते हुए भाईके द्वारा बिलकी रक्षा करनेके लिए नियुक्त होकर, बिलका मुँह बन्द कर दिया ॥४॥ सत्यको साक्षी देकर, हाथ पकड़कर जिससे मैत्री की, जिसने उसका काम पहले कर दिया, उसी रामचन्द्रको जो भूल गया, वह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लक्ष्मणस्य भयेनेह नाधर्मभयभीरुणा । आदिष्टामार्गितुंसीतांधर्मस्तस्मिन्कथं भवेत् ॥ ६ ॥
तस्मिन्पापे कृतघ्ने तु स्मृतिभिन्ने चलात्मनि । आर्यः कोविश्वसेज्जातु तत्कुलीनो विशेषतः ॥ ७ ॥
राज्ये पुत्रंप्रतिष्ठाप्य सगुणो विगुणोऽपि वा । कथं शत्रुकुलीनं मां सुग्रीवो जीवयिष्यति ॥ ८ ॥
भिन्नमन्त्रोऽपराद्धश्च भिन्नशक्तिः कथं ह्यहम् । किष्किन्धां प्राप्य जीवेयमनाथ इव दुर्बलः ॥ ९ ॥
उपांशुदण्डेन हि मां बन्धनेनोपपादयेत् । शठः क्रूरो नृशंसश्च सुग्रीवो राज्यकारणात् ॥१०॥
बन्धनाच्चावसादान्मे श्रेयः प्रायोपवेशनम् । अनुजानन्तु मां सर्वे गृहं गच्छन्तु वानराः ॥११॥
अहं वः प्रतिजानामि न गमिष्याम्यहं पुरीम् । इहैव प्रायमासिष्ये श्रेयो मरणमेव मे ॥१२॥
अभिवादनपूर्वं तु राजा कुशलमेव च । अभिवादनपूर्वं तु राघवौ बलशालिनौ ॥१३॥
वाच्यस्तातो यवीयान्मे सुग्रीवो वानरेश्वरः । आरोग्यपूर्वं कुशलं वाच्या माता रुमा च मे ॥१४॥
मातरं चैव मे तारामाश्वासयितुमर्हथ । प्रकृत्या प्रियपुत्रा सा सानुक्रोशा तपस्विनी ॥१५॥
विनष्टमिह मां श्रुत्वा व्यक्तं हास्यति जीवितम् । एतावदुक्त्वा वचनं वृद्धां तानभिवाद्य च ॥१६॥
विवेश चाङ्गदो भूमौ रुदन्दर्भेषु दुर्मुखः । तस्य संविशतस्तत्र रुदन्तो वानरर्षभाः ॥१७॥
नयनेभ्यः प्रमुमुचुरुष्णं वै वारि दुःखिताः । सुग्रीवं चैव निन्दन्तः प्रशंसन्तश्च वालिनम् ॥१८॥
परिवार्याङ्गदं सर्वे व्यवसन्प्रायमासितुम् । तद्वाक्यं वालिपुत्रस्य विज्ञाय प्लवगर्षभाः ॥१९॥

धर्मका स्मरण कैसे कर सकता है ॥५॥ जिसने लक्ष्मणके भयसे, न कि धर्मके भयसे, डरकर सीताको ढूंढनेकी आज्ञा दी है, उसमें धर्म कैसे रह सकता है ॥ ६ ॥ उस पापी, कृतघ्न, स्मृतिमार्गका त्याग करनेवाले, चंचल सुग्रीवपर कौन सज्जन विश्वास कर सकता है ? विशेषतः उसके कुलका ॥ ७ ॥ वह गुणी हो या निर्गुणी, इससे क्या ? पर अपने होनेवाले पुत्रको राज्य देनेकी इच्छासे, शत्रुकुलमें उत्पन्न मुझको कैसे जीने देगा ? ॥ ८ ॥ जिसका मंत्र (आगेका कर्तव्यविषयक विचार) प्रकाशित हो गया है, जो अपराधी है, जिसकी थोड़ी शक्ति है, वह मैं किष्किन्धामें जाकर किस प्रकार जी सकूँगा, जैसे अनाथ और दुर्बल ॥ ९ ॥ क्रूर, निर्दयी सुग्रीव राज्यके कारण या तो मुझे गुप्त दण्ड दे अथवा कैद करे ॥१०॥ बन्धनके कष्टसे प्रायोपवेशन ही हमारे लिए उपयुक्त है । आपलोग मुझे आज्ञा दें, वानर अपने-अपने घर जायँ ॥११॥ मैं आपलोगोंसे प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि मैं किष्किन्धापुरीमें नहीं जाऊँगा । यहीं प्रायोपवेशन करूँगा, क्योंकि मेरा मरना ही अच्छा है ॥१२॥ मेरी ओरसे अभिवादन करके राजा सुग्रीवसे कुशल कहना, और बली राम लक्ष्मणसे भी अभिवादन करके कुशल कहना । आरोग्यपूर्वक कुशल मेरी माता रुमासे कहना ॥१३, १४॥ मेरी माता ताराको धैर्य देना, क्योंकि वह विचारी स्वभाव हीसे पुत्र पर प्रेम करनेवाली और दयालु है ॥१५॥ मुझे विनष्ट हुआ सुनकर वह अवश्य ही प्राणत्याग करेगी । इतना कह कर और वृद्धोंको प्रणाम कर उदासीन मुँह अंगद रोता हुआ भूमिमें कुशा पर बैठ गया ॥१६॥ उसके बैठने पर रोते हुए दुखी वानर नेत्रोंसे उष्ण आँसू बहाने लगे । उनलोगोंने सुग्रीव की निन्दाकी और बालिकी प्रशंसा ॥१७, १८ ॥ अंगदको चारो ओरसे घेरकर वे सब प्रायोपवेशन करनेके लिए तयार हुए । अंगदके वचन समझकर वे सब वानर जलका आचमनकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उपस्पृश्योदकं सर्वे प्राङ्मुखाः समुपाविशन् । दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु उदक्तीरं समाश्रिताः ॥२०॥
मुमूर्षवो हरिश्रेष्ठा एतत्क्षममिति स्म ह । रामस्य वनवासं च क्षयं दशरथस्य च ॥२१॥
जनस्थानवधं चैव वधं चैव जटायुषः । हरणं चैव वैदेह्या वालिनश्च वधं तथा ॥
रामकोपं च वदतां हरीणां भयमागतम् । ॥२२॥
स संविशद्भिर्बहुभिर्महीधरो महाद्रिकूटप्रतिमैः प्लवंगमैः ।
बभूव संनादितनिर्झरान्तरो भृशं नदद्भिर्जलदैरिवाम्बरम् ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥५५॥

षट्पञ्चाशः सर्गः ५६

उपविष्टास्तु ते सर्वे यस्मिन्प्रायं गिरिस्थले । हरयो गृध्रराजश्च तं देशमुपचक्रमे ॥ १ ॥
संपातिर्नाम नाम्ना तु चिरजीवी विहंगमः । भ्राता जटायुषः श्रीमान्विख्यातबलपौरुषः ॥ २ ॥
कंदरादभिनिष्क्रम्य स विन्ध्यस्य महागिरेः । उपविष्टान्हरीन्दृष्ट्वा हृष्टात्मा गिरमब्रवीत् ॥ ३ ॥
विधिः किल नरं लोके विधानेनानुवर्तते । यथायं विहितो भक्ष्यश्चिरान्मह्युपागतः ॥ ४ ॥
परम्पराणां भक्षिष्ये वानराणां मृतं मृतम् । उवाचैतद्वचः पक्षी तान्निरीक्ष्य प्लवंगमान् ॥ ५ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भक्ष्यलुब्धस्य पक्षिणः । अङ्गदः परमायस्तो हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ ६ ॥

पूरब मुँह बैठ गए ॥१९॥ समुद्रके उत्तर तटपर जाकर दक्षिणकी ओर मुंहकर रखे हुए कुश पर बैठ गये ॥२०॥ मरनेकी इच्छा रखनेवाले वानरोंने 'यह उचित है' ऐसा समझा। रामचन्द्रके वनवास, दसरथकी मृत्यु, जनस्थानका वध, जटायुका वध, सीताका हरण, बालिका वध और रामचन्द्रका कोप कहते हुए वानर भयभीत हुए ॥२१॥ पर्वतशिखरके समान बड़े-बड़े वानरोंके बैठनेसे वह पर्वत, गर्जनेवाले मेघोंसे आकाशके समान, शब्दायमान झरना वाला मालूम पड़ा ॥२२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका पचपनवाँ सर्ग समाप्त ।

पर्वतके जिस पत्थरपर वे वानर प्रायोपवेशनके लिए बैठे थे वहीं सम्पाती नामका चिरजीवी, गृधराज पक्षी आया, जिसका नाम सम्पाती था, जो जटायुका भाई था, जिसके बल और पौरुषकी प्रशंसा थी ॥१,२॥ विंध्याकी कन्दरासे निकलकर, बैठे हुए वानरोंको देखकर प्रसन्न होकर बोला ॥३॥ जिस प्रकार कर्मके अनुसार लोकमें मनुष्योंको फल मिलता है, उसी प्रकार पूर्व अर्जित कर्मसे प्राप्त यह भोजन मेरे लिए आया है ॥४॥ उन वानरोंको देखकर पक्षी बोला—जैसे जैसे वानर मरते जाँयगे, उसी क्रमके अनुसार मैं उन्हें खाऊँगा ॥५॥ भोजनलोभी उस पक्षीके वचन सुनकर उद्विग्न होकर अंगद

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पश्य सीतापदेशेन साक्षाद्वैवस्वतो यमः । इमं देशमनुप्राप्तो वानराणां विपत्तये ॥ ७ ॥
रामस्य न कृतं कार्यं न कृतं राजशासनम् । हरीणामियमज्ञाता विपत्तिः सहसागता ॥ ८ ॥
वैदेह्याः प्रियकामेन कृतं कर्म जटायुषा । गृध्रराजेन यत्तत्र श्रुतं वस्तदशेषतः ॥ ९ ॥
तथा सर्वाणि भूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि । प्रियंकुर्वन्तिरामस्यत्यक्त्वाप्राणान्यथाबलम्॥१०॥
अन्योन्यमुपकुर्वन्ति स्नेहकारुण्ययन्त्रिताः । ततस्तस्योपकारार्थं त्यज्यतात्मानमात्मना ॥११॥
प्रियं कृतं हि रामस्य धर्मज्ञेन जटायुषा । राघवार्थे परिश्रान्ता वयं संत्यक्तजीविताः ॥१२॥
कान्तारणि प्रपन्नाः स्म नच पश्याम मैथिलीम् । स सुखी गृध्रराजस्तु रावणेन हतो रणे ॥
मुक्तश्च सुग्रीवभयाद्गतश्च परमां गतिम् । ॥१३॥
जटायुषो विनाशेन राज्ञो दशरथस्य च । हरणेन च वैदेह्याः संशयं हरयो गताः ॥१४॥
रामलक्ष्मणयोर्वासमरण्ये सह सीतया । राघवस्य च बाणेन वालिनश्च तथा वधम् ॥१५॥
रामकोपादशेषाणां रक्षसां च तथा वधम् । कैकेय्या वरदानेन इदं च विकृतं कृतम् ॥१६॥

तदसुखमनुकीर्तितं वचो भुवि पतितांश्च निरीक्ष्य वानरान् ।
भृशचकितमतिर्महामतिः कृपणमुदाहृतवान्स गृध्रराजः ॥१७॥

तत्तु श्रुत्वा तथा वाक्यमङ्गदस्य मुखोद्गतम् । अब्रवीद्वचनं गृध्रस्तीक्ष्णतुण्डो महास्वनः ॥१८॥
कोऽयं गिरा घोषयति प्राणैः प्रियतरस्य मे । जटायुषो वधं भ्रातुः कम्पयन्निव मे मनः ॥१९॥

हनुमानसे बोले—देखो सीताके व्याजसे साक्षात् यमराज इस वेषमें वानरोंपर विपत्ति डालनेके लिएआए हैं ॥७॥ न तो रामका कार्य किया और न राजाकी आज्ञाका पालन; बिना जानी हुई वानरोंपर यह सहसा विपत्ति कहाँसे आयी ॥८॥ सीताका प्रिय करनेके लिए गृध्रराज जटायुने काम किया है, वह समस्त आपलोगोंने सुना है ॥९॥ पक्षियोनिमें उत्पन्न भी प्राणी रामचन्द्रका प्रिय कार्य प्राण त्यागकर करते हैं ॥१०॥ स्नेह और दयाके कारण सज्जन, परस्परका उपकार करते हैं, अतएव रामचन्द्रके उपकारके लिए स्वयं अपने, अपने शरीरका त्याग करो ॥११॥ धर्मज्ञ जटायुने रामचन्द्रका प्रिय किया। रामचन्द्रके लिए थककर हम लोग भा अब अपने प्राणोंका त्याग करें॥१२॥ वनमें हम लोग आए; पर जानकी नहीं मिली। वही गृधराज ही सुखी हैं, जो रणमें रावणके द्वारा मारा गया और सुग्रीवके भयसे छूट गया तथा जिसने उत्तम गति पायी ॥१३॥ जटायु और दसरथके मरनेसे सीताके हरणसे आज वानरोंपर यह संकट आया ॥१४॥ राम-लक्ष्मणका सीताके साथ वनवास होना, रामचन्द्रके बाणसे बालिका मरना, रामचन्द्रके कोपसे समस्त राक्षसोंका वध, कैकेयीके वरदानसे ही यह सब गड़बड़ी हुई ॥१५,१६॥ वानरोंके द्वारा कहा गया, दुखमय वह वचन सुनकर और जमीनमें पड़े वानरोंको देखकर गृध्रराज सम्पाती बहुत चकित हुआ और बुद्धिमान गृध्रराज दीनतापूर्वक बोला ॥१७॥ अंगदके मुँहसे निकले इन वचनोंको सुनकर तीक्ष्णतुण्ड, घोर शब्द करनेवाला गृध्रराज बोला ॥१८॥ यह कौन प्राणोंसे प्रिय मेरे भाई जटायुके वधकी बात कहता है और मेरा मन कँपाता है। राक्षस और गृध्रके साथ जन-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कथमासीज्जनस्थाने युद्धं राक्षसगृध्रयोः । नामधेयमिदं भ्रातुश्चिरस्याद्य मया श्रुतम् ॥२०॥
इच्छेयं गिरिदुर्गाच्च भवद्भिरवतारितुम् । यवीयसो गुणज्ञस्य श्लाघनीयस्य विक्रमैः ॥२१॥
अतिदीर्घस्य कालस्यपरितुष्टोऽस्मि कीर्तनात् । तदिच्छेयमहं श्रोतुं विनाशं वानरर्षभाः ॥२२॥
भ्रातुर्जटायुषस्तस्य जनस्थाननिवासिनः । तस्यैव च मम भ्रातुः सखा दशरथः कथम् ॥२३॥
यस्य रामः प्रियः पुत्रो ज्येष्ठो गुरुजनप्रियः । सूर्यांशुदग्धपक्षत्वान्न शक्नोमि विसर्पितुम् ॥
इच्छेयं पर्वतादस्मादवतर्तुमरिंदमाः । ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशः सर्गः ५७

शोकाद्भ्रष्टस्वरमपि श्रुत्वा वानरयूथपाः । श्रद्दधुर्नैव तद्वाक्यं कर्मणा तस्य शङ्किताः ॥ १ ॥
ते प्रायमुपविष्टास्तु दृष्ट्वा गृध्रं प्लवंगमाः । चक्रुर्बुद्धिं तदा रौद्रां सर्वान्नो भक्षयिष्यति ॥ २ ॥
सर्वथा प्रायमासीनान्यदि नो भक्षयिष्यति । कृतकृत्या भविष्यामः क्षिप्रं सिद्धिमितो गताः ॥३॥
एतां बुद्धिं ततश्चक्रुः सर्वे ते हरियूथपाः । अवतार्य गिरेः शृङ्गाद्गृ ध्रमाहाङ्गदस्तदा ॥ ४ ॥
वभूवर्क्षरजो नाम वानरेन्द्रः प्रतापवान् । ममार्यः पार्थिवः पक्षिन्धार्मिकौ तस्य चात्मजौ॥५॥
सुग्रीवश्चैव वाली च पुत्रौ घनबलावुभौ । लोके विश्रुतकर्माभूद्राजा वाली पिता मम ॥ ६ ॥

स्थानमें कैसा युद्ध था । बहुत दिनोंके बाद मैंने भाईका यह नाम सुना ॥१९,२०॥ मैं चाहता हूँ कि पर्वतके ऊपरसे आप लोग हमें उतारें । छोटे गुणज्ञ और पराक्रमसे श्लाघनीय अपने भाई जटायुके कीर्तनसे मैं प्रसन्न हूँ । अतएव मैं उनके मरनेकी बात सुनना चाहता हूँ । जनस्थान-निवासी मेरे भाई जटायु थे, उसी भाईके मित्र राजादसरथ थे, जिसके ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र हैं और जो अपने बड़ोंके प्रिय हैं । सूर्य किरणोंसे पाँखके जल जानेके कारण मैं चल नहीं सकता । मैं इस पर्वतसे उतरना चाहता हूँ ॥ २१,२२,२३,२४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका छप्पनवाँ सर्ग समाप्त ।

शोकके कारण सम्पातीका टूटा हुआ स्वर सुनकर भी वानरोंने उसके वचन पर विश्वास नहीं किया; क्योंकि उसके कर्मोंसे वे शंकित होगए थे । अर्थात् भोजन ढूँढता हुआ वह यहाँ आया था ॥१॥ प्रायोपवेशनमें बैठे हुए वे सब वानर गृध्रको देखकर "हम सब लोगोंको यह खाजायगा" ऐसा भयानक विचार उन लोगोंने किया ॥२॥ यदि प्रायोपवेशनके लिए बैठे हुए हम सबको खाजायगा तो हम लोग कृतार्थ होजायगें, क्योंकि हम लोगोंको शीघ्र ही सिद्धि मिल जायगी ॥३॥ सब वानरोंने ऐसा निश्चय करके सम्पातीको पर्वतसे उतारा । अनन्तर अंगद उससे बोले ॥४॥ हे पक्षिन्, ऋक्षरज नामके प्रतापी वानरराज हुए, वे हमारे पितामह थे । उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥५॥ सुग्रीव और बालि, ये दोनों बड़े

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राजा कृत्स्नस्य जगत इक्ष्वाकूणां महारथः । रामो दाशरथिःश्रीमान्प्रविष्टोदण्डकावनम् ॥ ७ ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या सह भार्यया । पितुर्निदेशनिरतो धर्मं पन्थानमाश्रितः ॥ ८ ॥
तस्य भार्या जनस्थानाद्रावणेन हृता बलात् । रामस्य तु पितुर्मित्रं जटायुर्नाम गृध्रराट् ॥ ९ ॥
ददर्श सीतां वैदेहीं ह्रियमाणां विहायसा । रावणं विरथं कृत्वा स्थापयित्वा च मैथिलीम् ॥
परिश्रान्तश्च वृद्धश्च रावणेन हतो रणे । ॥१०॥
एवं गृध्रो हतस्तेन रावणेन बलीयसा । संस्कृतश्चापि रामेण जगाम गतिमुत्तमाम् ॥११॥
ततो मम पितृव्येन सुग्रीवेण महात्मना । चकार राघवः सख्यं सोऽवधीत्पितरं मम ॥१२॥
मम पित्रा निरुद्धो हि सुग्रीवः सचिवैः सह । निहत्य वालिनं रामस्ततस्तमभिषेचयत् ॥१३॥
स राज्ये स्थापितस्तेन सुग्रीवो वानरेश्वरः । राजा वानरमुख्यानां तेनप्रस्थापितावयम् ॥१४॥
एवं रामप्रयुक्तास्तु मार्गमाणास्ततस्ततः । वैदेहीं नाधिगच्छामो रात्रौ सूर्यप्रभामिव ॥१५॥
ते वयं दण्डकारण्यं विचित्य सुसमाहिताः । अज्ञानात्तु प्रविष्टाः स्म धरण्या विवृतं विलम् ॥१६॥
मयस्य मायाविहितं तद्विलं च विचिन्वताम् । व्यतीतस्तत्र नो मासो यो राज्ञा समयः कृतः ॥१७॥
ते वयं कपिराजस्य सर्वे वचनकारिणः । कृतां संस्थामतिक्रान्ता भयात्प्रायमुपासिताः ॥१८॥
क्रुद्धे तस्मिंस्तु काकुत्स्थे सुग्रीवे च सलक्ष्मणे । गतानामपि सर्वेषां तत्र नो नास्ति जीवितम् ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

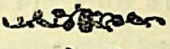

बलवान हुए, राजा बालि बहुत प्रसिद्ध हुआ । वह मेरा पिता था ॥६॥ समस्त लोकके स्वामी इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न श्रीमान् रामचन्द्र दण्डकवनमें आए ॥७॥ पिताकी आज्ञासे धर्मपालनके लिए लक्ष्मण और सीताके साथ रामचन्द्र आए । जनस्थानसे रावणने उनकी स्त्री सीताको बलपूर्वक हर लिया । रामके पिताके मित्र जटायु नामके गृध्रराज थे ॥८,९॥ उन्होंने आकाशमार्गसे सीताको हरी जाती देखा । उन्होंने रावणको रथहीन करके सीताको भूमिमें बैठाया । थके बूढ़े गृध्रराजको युद्धमें रावणने मार दिया ॥१०॥ बलवान् रावणने इस प्रकार गृध्रराजको मारा; रामचन्द्रने उनका अन्तिम संस्कार किया और उन्होंने उत्तम गति पायी ॥११॥ अनन्तर मेरे चाचा सुग्रीवने रामचन्द्रसे मित्रता की और रामचन्द्रने मेरे पिताका वध किया ॥१२॥ मेरे पिताने सचिवोंके साथ सुग्रीवको निकाल दिया था । बालिको मारकर रामचन्द्रने सुग्रीवका अभिषेक किया ॥१३॥ रामचन्द्रने सुग्रीवको राज्यपर बैठाया । वानरोंके राजा सुग्रीवने हम लोगोंको भेजा है ॥१४॥ रामकी आज्ञासे भेजे हुए हमलोग सीताको ढूँढ़ते हैं । जिस प्रकार रात्रिमें सूर्यप्रभा नहीं मिलती उसी प्रकार सीता अभी तक हमलोगोंको नहीं मिली ॥१५॥ हम लोगोंने सावधानीसे दण्डकारण्यको ढूँढ़ डाला, अनन्तर अज्ञानसे पृथिवीके एक बिलमें हम लोग चले गए ॥१६॥ मयकी मायासे बने हुए उस बिलमें ढूँढनेके कारण हम लोगोंका वह महीना बीत गया, जिसकी हम लोगोंको राजाने अवधि दी थी ॥१७॥ हम सब लोग वानरराजकी आज्ञा माननेवाले हैं । उनकी दी हुई अवधि हम लोगोंने तोड़ दी है, अतएव प्रायोपवेशन हम कर रहे हैं ॥१८॥ रामचन्द्र सुग्रीव और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अष्टपञ्चाशः सर्गः ५८

इत्युक्तः करुणं वाक्यं वानरैस्त्यक्तजीवितैः । सबाष्पो वानरान्गृध्रःप्रत्युवाच महास्वनः ॥ १ ॥
यवीयान्स मम भ्राता जटायुर्नाम वानराः । यमाख्यात हतं युद्धे रावणेन बलीयसा ॥ २ ॥
वृद्धभावादपक्षत्वाच्छृण्वंस्तदपि मर्षये । नहि मे शक्तिरस्त्यद्य भ्रातुर्वैरविमोक्षणे ॥ ३ ॥
पुरा वृत्रवधे वृत्ते स चाहं च जयैषिणौ । आदित्यमुपयातौस्वोज्वलन्तं रश्मिमालिनम् ॥ ४ ॥
आवृत्त्याकाशमार्गेण जवेन स्वर्गतौ भृशम् । मध्यं प्राप्ते तु सूर्ये तु जटायुरवसीदति ॥ ५ ॥
तमहं भ्रातरं दृष्ट्वा सूर्यरश्मिभिरर्दितम् । पक्षाभ्यां छादयामास स्नेहात्परमविह्वलम् ॥ ६ ॥
निर्दग्धपत्रः पतितो विन्ध्येऽहं वानरर्षभाः । अहमस्मिन्वसन्भ्रातुः प्रवृत्तिं नोपलक्षये ॥ ७ ॥
जटायुषस्त्वेवमुक्तो भ्रात्रा संपातिना तदा । युवराजो महाप्रज्ञः प्रत्युवाचाङ्गदस्तदा ॥ ८ ॥
जटायुषो यदि भ्राता श्रुतं ते गदितं मया । आख्याहि यदि जानासि निलयं तस्य रक्षसः ॥ ९ ॥
अदीर्घदर्शिनं तं वै रावणं राक्षसाधमम् । अन्तिके यदि वा दूरे यदि जानासि शंस नः ॥ १० ॥
ततोऽब्रवीन्महातेजा भ्राता ज्येष्ठो जटायुषः । आत्मानुरूपं वचनं वानरान्संप्रहर्षयन् ॥ ११ ॥
निर्दग्धपक्षो गृध्रोऽहं गतवीर्यः प्लवंगमाः । वाङ्मात्रेणापि रामस्य करिष्ये साह्यमुत्तमम् ॥ १२ ॥

लक्ष्मणके क्रोध करनेपर यदि हम लोग उनके समीप जांय तो हमारे प्राण नहीं बच सकते ॥ १९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त ।

इस प्रकार प्राणका भय छोड़े हुए वानरोंके दीनवचन सुनकर, आँखोंमें आँसू भरकर, गृध्रराजने जोरके शब्दोंमें उत्तर दिया ॥ १ ॥ वानरो ! बलवान रावणके द्वारा जिसे तुम लोग युद्धमें मारा गया कहते हो वह जटायु मेरा छोटा भाई था ॥ २ ॥ वृद्ध होनेके कारण, भाईके वैरका बदला लेनेकी शक्ति मुझमें नहीं है । अतएव वह अप्रिय बात सुनकर भी मैं सहता हूँ ॥ ३ ॥ पहले वृत्रासुरके वध होनेपर जयकी इच्छा रखनेवाले हम दोनों उड़कर जलते हुए सूर्यके पास पहुँचे ॥ ४ ॥ आकाशमार्गमें चक्कर काटकर वेगपूर्वक हम लोग स्वर्ग गए । बीचमें सूर्यके मिलनेसे जटायु थक गया ॥ ५ ॥ तब हमने सूर्यकी किरणोंसे पीड़ित भाईको दुखी देखकर अपनी पांखसे उसे छिपा लिया ॥ ६ ॥ वानरो, पाँखके जल जानेसे मैं इस विंध्यपर्वत पर गिर पड़ा । मैं यहीं रहता हूँ । अतएव भाईका कोई समाचार मुझे न मिल सका ॥ ७ ॥ जटायुके भाई सम्पातीके ऐसा कहने पर बुद्धिमान युवराज अंगद बोले ॥ ८ ॥ तुम यदि जटायुके भाई हो, यदि तुमने मेरी कही बात सुनी है और यदि उस राक्षसका घर तुम जानते हो तो बतलाओ ॥ ९ ॥ परिणाम न जाननेवाले उस राक्षसाधम रावणको, चाहे पास हो या दूर, तुम बतलाओ ॥ १० ॥ महा-तेजस्वी जटायुका बड़ा भाई वानरोंको प्रसन्न करता हुआ, अपने योग्य वचन बोला ॥ ११ ॥ मैं जले पाँखों-का गृध्र हूँ, बल हीन हूँ, अतएव केवल वचनके द्वारा रामचन्द्रकी मैं सहायता कर सकता हूँ ॥ १२ ॥ मैं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जानामि वारुणांल्लोकान्त्रिविष्णोस्त्रैविक्रमानपि । देवासुरविमर्दांश्च ह्यमृतस्य विमन्थन ॥१३॥
रामस्य यदिदं कार्यं कर्तव्यं प्रथमं मया । जरया च हृतं तेजः प्राणाश्च शिथिला मम ॥१४॥
तरुणी रूपसंपन्ना सर्वाभरणभूषिता । ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन दुरात्मना ॥१५॥
क्रोशन्ती रामरामेति लक्ष्मणेति च भामिनी । भूषणान्यपविध्यन्ती गात्राणि च विधुन्वती ॥१६॥
सूर्यप्रभेव शैलाग्रे तस्याः कौशेयमुत्तमम् । असिते राक्षसे भाति यथा विद्युदिवाम्बरे ॥१७॥
तां तु सीतामहं मन्ये रामस्य परिकीर्तनात् । श्रूयतां मे कथयतो निलयं तस्य रक्षसः ॥१८॥
पुत्रो विश्रवसः साक्षाद्भ्राता वैश्रवणस्य च । अध्यास्ते नगरीं लङ्कां रावणो नाम राक्षसः ॥१९॥
इतो द्वीपे समुद्रस्य संपूर्णे शतयोजने । तस्मिल्लङ्का पुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा ॥२०॥
जाम्बूनदमयैर्द्वारैश्चित्रैः काञ्चनवेदिकैः । प्रासादैर्हेमवर्णैश्च महद्भिः सुसमाकृता ॥२१॥
प्राकारेणार्कवर्णेन महता च समन्विता । तस्यां वसति वैदेही दीना कौशेयवासिनी ॥२२॥
रावणान्तःपुरे रुद्धा राक्षसीभिः सुरक्षिता । जनकस्यात्मजा राज्ञस्तस्यां द्रक्ष्यथ मैथिलीम् ॥२३॥
ज्ञानेन खलु पश्यामि दृष्ट्वा प्रत्यागमिष्यथ । आद्यः पन्थाः कुलिङ्गानां ये चान्ये धान्यजीविनः२४॥
द्वितीयो बलिभोजानां ये च वृक्षफलाशनाः । भासास्तृतीयं गच्छन्ति क्रौञ्चाश्च कुररैः सह ॥२५॥
श्येनाश्चतुर्थं गच्छन्ति गृध्रा गच्छन्ति पञ्चमम् । बलवीर्योपपन्नानां रूपयौवनशालिनाम् ॥२६॥

वरुणके लोकोंको, त्रिविक्रमके लोकोंको, देवासुर युद्धको, और अमृतके मन्थनको जानता हूँ। अर्थात् ये सब मेरे देखे हुए हैं ॥१३॥ वृद्धावस्थाने मेरे तेज हरणकर लिए, मेरे प्राण शिथिल हो गए, फिर भी रामचन्द्रका यह कार्य मुझे पहले करना चाहिए ॥१४॥ रूपवती सब आभूषणोंसे भूषित एक स्त्रीको हरकर लेजाते हुए दुरात्मा रावणको मैंने देखा है ॥१५॥ वह स्त्री 'राम' 'राम' और 'लक्ष्मण' 'लक्ष्मण' चिल्लाती थी, गहनोंको फेंकती थी और अंगोंको पटकती थी ॥१६॥ पर्वतके शिखर पर सूर्यप्रभाके समान उसका रेशमी वस्त्र काले राक्षसके साथ आकाशमें बिजलीके समान मालूम होता था ॥१७॥ रामका नाम लेनेसे मैं उस स्त्रीको सीता समझता हूँ। उस राक्षसका घर मैं बतलाता हूँ, सुनो ॥१८॥ विश्रवाका पुत्र और वैश्रवणका भाई राक्षस रावण लंकानगरीमें रहता है ॥१९॥ सौ योजनके बाद समुद्रके द्वीपमें विश्वकर्माने रमणीय लंकापुरी बनायी है ॥२०॥ लंकाके द्वार और चौतरे सोनेके बने हुऐ हैं। उसमें सोनेके बड़े बड़े महल हैं ॥२१॥ सूर्यके समान चमकीली चारदिवारी लंकाके चारों ओर है। उसमें पीताम्बरधारिणी दुखिनी सीता रहती है ॥२२॥ रावणके महलमें रखी गयी, राक्षसियोंके द्वारा सुरक्षित, राजा जनककी कन्या सीताको तुम लोग देखोगे ॥२३॥ ज्ञानसे मैं देखरहा हूँ, तुम लोग सीताको देखकर लौट आसकते हो। आकाशका पहला मार्ग कुलिंग पक्षियोंका है और अन्न खानेवाले कबूतर आदिका ॥२४॥ उससे ऊपरका मार्ग वृक्षफल खानेवाले और काक आदि पक्षियोंका है। क्रौंच, कुरर तथा भास पक्षी और ऊँचे तीसरे मार्गसे जाते हैं ॥२५॥ चौथे मार्गसे बाज और पांचवे मार्गसे गृध्र जाते हैं। बलवीर्ययुक्त रूपयौवनसे शोभित हंसोंका छठामार्ग है, इससे ऊँचेका मार्ग गरुड़का है। वानरो,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

षष्ठस्तु पन्था हंसानां वैनतेयगतिः परा । वैनतेयाच्च नो जन्म सर्वेषां वानरर्षभाः ॥२७॥
गर्हितं तु कृतं कर्म येन स्म पिशिताशिनः । प्रतिकार्यं च मे तस्य वैरं भ्रातृकृतं भवेत् ॥२८॥
इहस्थोऽहं प्रपश्यामि रावणं जानकीं तथा । अस्माकमपि सौपर्णं दिव्यं चक्षुर्बलं तथा ॥२९॥
तस्मादाहारवीर्येण निसर्गेण च वानराः । आयोजनशतात्साग्राद्वयं पश्याम नित्यशः ॥३०॥
अस्माकं विहिता वृत्तिर्निसर्गेण च दूरतः । विहिता वृक्षमूले तु वृत्तिश्चरणयोधिनाम् ॥३१॥
उपायो दृश्यतां कश्चिल्लङ्घने लवणाम्भसः । अभिगम्य तु वैदेहीं समृद्धार्था गमिष्यथ ॥३२॥
समुद्रं नेतुमिच्छामि भवद्भिर्वरुणालयम् । प्रदास्याम्युदकं भ्रातुः स्वर्गतस्य महात्मनः ॥३३॥
ततो नीत्वा तु तं देशं तीरे नदनदीपतेः । निर्दग्धपक्षं संपातिं वानरः सुमहौजसः ॥३४॥
तं पुनः प्रापयित्वा च तं देशं पतगेश्वरम् । बभूवुर्वानरा हृष्टाः प्रवृत्तिमुपलभ्य ते ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डेऽष्टपञ्चाशः सर्गः ॥५८॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९

ततस्तदमृतास्वादं गृध्रराजेन भाषितम् । निशम्य वदतो हृष्टास्ते वचः प्लवंगर्षभाः ॥ १ ॥
जाम्बवान्वानरश्रेष्ठः सह सर्वैः प्लवंगमैः । भूतलात्सहसोत्थाय ध्वराजानमब्रवीत् ॥ २ ॥
क्व सीता केन वा दृष्टा को वा हरति मैथिलीम् । तदाख्यातु भवान्सर्वं गतिर्भव वनौकसाम् ॥ ३ ॥

हम लोगोंका जन्म गरुड़से हुआ है ॥२६,२७॥ रावणने निन्दित काम किया है । भाईके बैरका बदला आप लोगोंके द्वारा चुकाया जा सकता है ॥२८॥ मैं यहींसे रावण और जानकीको देखता हूँ । हम लोगोंको भी गरुड़के समान देखनेकी शक्ति है ॥२९॥ भोजनके बलसे तथा स्वभावसे सौ योजन तथा इसके आगे तक हम लोग देख सकते हैं ॥३०॥ हम लोगोंकी वृत्ति (जीविका) दूरसे देखी वस्तुओंसे होती है और मुर्गोंकी जीविका पेड़ोंकी जड़के पाससे होती है । ऐसा ही विधान है ॥३१॥ लवणसमुद्रके पार जानेका कोई उपाय निश्चित करो । सीताके पास जाकर तुम लोग सफलमनोरथ होकर लौटोगे ॥३२॥ स्वर्गगत महात्मा भाईको मैं जल देना चाहता हूँ, अतएव मैं चाहता हूँ कि आप लोग मुझे समुद्रके तीर ले चलें ॥३३॥ पराक्रमी वानर जले पांखवाले संम्पातीको समुद्रके तीरपर लेगये और पुनः वहाँसे उनके रहनेके स्थानपर लेआए । सीताका पता पाकर वानर बहुत प्रसन्न हुए ॥३४,३५॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका अट्ठावनवाँ सर्ग समाप्त ।

अमृतके समान, गृध्रराजके वचन सुनकर वानर प्रसन्न हुए और गृध्रराजकी कही बात बारबार कहने लगे ॥१॥ पृथिवीसे सहसा उठकर वानरोंके साथ वानरश्रेष्ठ जाम्बवान् गृध्रराजके पास पहुँचे और बोले ॥२॥ सीता कहाँ है, किसने देखी है और किसने उसका हरण किया है, यह सब आप मुझसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को दाशरथिबाणानां वज्रवेगनिपातिनाम् । स्वयं लक्ष्मणमुक्तानां न चिन्तयति विक्रमम् ॥ ४ ॥
स हरीन्प्रति संमुक्तान्सीताश्रुतिसमाहितान् । पुनराश्वासयन्प्रीत इदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥
श्रूयतामिह वैदेह्या यथा मे हरणं श्रुतम् । येन चापि ममाख्यातं यत्र चायतलोचना ॥ ६ ॥
अहमस्मिन्गिरौ दुर्गे बहुयोजनमायते । चिरान्निपतितो वृद्धः क्षीणप्राणपराक्रमः ॥ ७ ॥
तं मामेवं गतं पुत्रः सुपार्श्वो नाम नामतः । आहारेण यथाकालं बिभर्ति पततां वरः ॥ ८ ॥
तीक्ष्णकामास्तु गन्धर्वास्तीक्ष्णकोपा भुजंगमाः । मृगाणां तु भयं तीक्ष्णं ततस्तीक्ष्णक्षुधा वयम् ॥ ९ ॥
स कदाचित्क्षुधार्तस्य ममाहाराभिकाङ्क्षिणः । गतः सूर्येऽहनि प्राप्तो मम पुत्रो ह्यनामिषः ॥ १० ॥
स मयाहारसंरोधात्पीडितः प्रीतिवर्धनः । अनुमान्य यथातत्त्वमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥
अहं तात यथाकालमामिषार्थी खमाप्लुतः । महेन्द्रस्य गिरेर्द्वारमावृत्य सुसमाश्रितः ॥ १२ ॥
तत्र सत्त्वसहस्राणां सागरान्तरचारिणाम् । पन्थानमेकोऽध्यवसं संनिरोद्धुमवाङ्मुखः ॥ १३ ॥
तत्र कश्चिन्मया दृष्टः सूर्योदयसमप्रभाम् । स्त्रियमादाय गच्छन्वै भिन्नाञ्जनचयोपमः ॥ १४ ॥
सोऽहमभ्यवहारार्थं तौ दृष्ट्वा कृतनिश्चयः । तेन साम्ना विनीतेन पन्थानमनुयाचितः ॥ १५ ॥
नहि सामोपपन्नानां प्रहर्ता विद्यते भुवि । नीचेष्वपि जनः कश्चित्किमङ्ग वत मद्विधः ॥ १६ ॥
स यातस्तेजसा व्योम संक्षिपन्निव वेगितः । अथाहं खेचरैर्भूतैरभिगम्य सभाजितः ॥ १७ ॥
दिष्ट्या जीवति सीतेति अब्रुवन्मां महर्षयः । कथंचित्सकलत्रोऽसौगतस्ते स्वस्त्यसंशयम् ॥ १८ ॥

कहें और वानरोंकी रक्षा करें ॥३॥ वज्रके समान स्वयं गिरनेवाले, लक्ष्मण और रामचन्द्रके बाणोंके पराक्रमको कौन याद नहीं करता है ॥४॥ सीताका पता सुननेसे सावधान और प्रसन्न वानरोंको प्रसन्नता पूर्वक पुनः विश्वास दिलाते हुए सम्पातीने ये बातें कहीं ॥५॥ सुनो, जिस प्रकार मैंने सीताके हरी जानेकी बात सुनी और जिसने कही, और जहाँ वह है ॥६॥ मैं बहुत दिनोंसे इस विशाल पर्वतपर बलहीन होकर पड़ा हूँ ॥७॥ मेरी ऐसी अवस्था होनेपर, पक्षियोंमें श्रेष्ठ पार्श्व नामक मेरा पुत्र, समय समय पर मेरा आहार देता है ॥८॥ गंधर्व बड़े कामी, सर्प बड़े क्रोधी, पशु बड़े भीरु और हम लोग बड़े भूखे होते हैं ॥९॥ मैं एक समय भूखा था, भोजन चाहता था । मेरे लिए भोजन लानेके लिए मेरा वह पुत्र गया और संध्याको बिना मांसके लौटा ॥१०॥ मैंने भोजनके लिए जब उसे डाँटा तब मुझसे क्षमा माँगकर उसने यथार्थ बातें कहीं ॥११॥ पिता, मांसके लिए यथा समय मैं आकाशमें उड़ा और महेन्द्रपर्वतके द्वारको रोककर बैठ गया ॥१२॥ सागरके हजारों प्राणियोंको रोकनेके लिए सिर नीचा किए अकेला मैं, मार्ग रोककर बैठा ॥१३॥ उस समय मैंने एक काले पुरुषको प्रातःकालीन सूर्यप्रभाके समान एक स्त्री लिए जाते देखा ॥१४॥ उन दोनोंको देखकर भोजनके लिए उन्हींको ले आनेका मैंने निश्चय किया; पर उसने नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर मार्ग देनेके लिए कहा ॥१५॥ विनयपूर्वक व्यवहार करनेवालों पर नीच मनुष्योंमें भी कोई ऐसा नहीं है जो प्रहार करे, फिर मेरे समान आदमी उसपर प्रहार कैसे करता ॥१६॥ तेजसे आकाशको प्रकाशित करता हुआ वह वेगपूर्वक चला गया । इसके अनन्तर आकाशचारी सिद्धों-ने मेरी पूजा की ॥१७॥ महर्षियोंने मुझसे कहा कि सीता जीती है, यह प्रसन्नताकी बात है । किसी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमुक्तस्ततोऽहं तैः सिद्धैः परमशोभनैः । स च मे रावणो राजा रक्षसां प्रतिवेदितः ॥१९॥
पश्यन्दाशरथेर्भार्यां रामस्य जनकात्मजाम् । भ्रष्टाभरणकौशेयां शोकवेगपराजिताम् ॥२०॥
रामलक्ष्मणयोर्नाम क्रोशन्तीं मुक्तमूर्धजाम् । एष कालात्ययस्तात इति वाक्यविदां वरः ॥२१॥
एतदर्थं समग्रं मे सुपार्श्वः प्रत्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वापि हि मे बुद्धिर्नासीत्काचित्पराक्रमे॥२२॥
अपक्षो हि कथं पक्षी कर्म किंचित्समारभेत् । यत्तु शक्यं मया कर्तुं वाग्बुद्धिगुणवर्तिना ॥२३॥
श्रूयतां तत्र वक्ष्यामि भवतां पौरुषाश्रयम् । वाङ्मतिभ्यां हि सर्वेषां करिष्यामि प्रियं हि वः॥२४॥
यद्धि दाशरथेः कार्यं मम तत्रात्र संशयः । तद्भवन्तो मतिश्रेष्ठा बलवन्तो मनस्विनः ॥२५॥
प्रहिताः कपिराजेन देवैरपि दुरासदाः । रामलक्ष्मणबाणाश्च विहिताः कङ्कपत्रिणः ॥२६॥
त्रयाणामपि लोकानां पर्याप्तास्त्राणनिग्रहे । कामं खलु दशग्रीवस्तेजोबलसमन्वितः ॥
भवतां तु समर्थानां न किंचदपि दुष्करम् । ॥२७॥
तदली कालसङ्गेन क्रियतां बुद्धिनिश्चयः । नहि कर्मसु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः॥५९॥

प्रकार स्त्रीके साथ वह चला गया। तुम्हारा कल्याण हो ॥१८॥ इस प्रकार परमशोभायमान सिद्धोंने मुझसे यह कहा, यह राक्षसोंका राजा रावण है यह भी उन लोगोंने बतलाया ॥१९॥ जनकपुत्री, रामकी स्त्री, भूषणरहित, केवल रेशमी वस्त्र पहने हुए, शोकसे पीड़ित, राम लक्ष्मणको पुकारती हुई, और खुले केशवाली सीताको देखनेके कारण मुझे इतना विलम्ब हो गया ॥२०,२१॥ यह सब बातें सुपार्श्वने कही हैं। यह सुनकर भी किसी प्रकारका उद्योग करनेकी मेरी इच्छा नहीं थी ॥२२॥ क्योंकि पक्षहीन पक्षी कोई काम कैसे कर सकता है। वचन, बुद्धि, गुणोंके द्वारा जो कुछ मैं कर सकता हूँ वह सब तुम लोगोंके पराक्रम से सिद्ध होनेके लिए कहता हूँ। सुनो, वचन और बुद्धिके द्वारा तुम लोगोंका हित मैं करूँगा ॥२३,२४॥ रामचन्द्रका जो कार्य है, वह मेराही है, इसमें सन्देह नहीं। आप लोग भी बुद्धिमान, बलवान और मनस्वी हैं ॥२५॥ सुग्रीवने आप लोगोंको भेजा है। देवता भी आप लोगोंसे पार नहीं पा सकते। कंक-पत्रवाले रामचन्द्रके बाण तीनों लोकोंकी रक्षा और उनको दण्ड देनेमें समर्थ हैं ॥२६॥ यद्यपि रावण तेज और बलसे युक्त है, फिर भी समर्थ आप लोगोंके लिए कुछ कठिन नहीं है ॥२७॥ काल-विलम्ब व्यर्थ है, अब विचार करके निश्चय करना चाहिए। आपके समान बुद्धिमान कार्यों में विलम्ब नहीं करते ॥२८॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका उनसठवाँ सर्ग समाप्त।

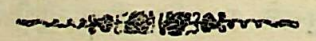

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

षष्टितमः सर्गः ६०

ततः कृतोदकं स्नातं तं गृध्रं हरियूथपाः । उपविष्टा गिरौ रम्ये परिवार्य समन्ततः ॥ १ ॥
तमङ्गदमुपासीनं तैः सर्वैर्हरिभिर्वृतम् । जनितप्रत्ययो हर्षात्संपातिः पुनरब्रवीत् ॥ २ ॥
कृत्वा निःशब्दमेकाग्राः शृण्वन्तु हरयो मम । तथ्यं सकीर्तयिष्यामि यथा जानामि मैथिलीम् ॥ ३ ॥
अस्य विन्ध्यस्य शिखरे पतितोऽस्मि पुरानघ । सूर्यतापपरीताङ्गो निर्दग्धः सूर्यरश्मिभिः ॥ ४ ॥
लब्धसंज्ञस्तु षड्रात्राद्विवशो विह्वलन्निव । वीक्षमाणो दिशः सर्वा नाभिजानामि किंचन ॥ ५ ॥
ततस्तु सागराञ्शैलान्नदीः सर्वाः सरांसि च । वनानि च प्रदेशांश्च निरीक्ष्य मतिरागता ॥ ६ ॥
हृष्टपक्षिगणाकीर्णः कंदरोदरकूटवान् । दक्षिणस्योदधेस्तीरे विन्ध्योऽयमिति निश्चितः ॥ ७ ॥
आसीच्चात्राश्रमं पुण्यं सुरैरपि सुपूजितम् । ऋषिर्निशाकरो नाम यस्मिन्नुग्रतपा भवत् ॥ ८ ॥
अष्टौ वर्षसहस्राणि तेनास्मिन्नृषिणा गिरौ । वसतो मम धर्मज्ञे स्वर्गते तु निशाकरे ॥ ९ ॥
अवतीर्य च विन्ध्याग्रात्कृच्छ्रेण विषमाच्छनैः । तीक्ष्णदर्भां वसुमतीं दुःखेन पुनरागतः ॥ १० ॥
तमृषिं द्रष्टुकामोऽस्मि दुःखेनाभ्यागतोभृशम् । जटायुषा मया चैव बहुशोऽधिगतो हि सः ॥ ११ ॥
तस्याश्रमपदाभ्याशे ववुर्वाताः सुगन्धिनः । वृक्षो नापुष्पितः कश्चिदफलो वा न दृश्यते ॥ १२ ॥
उपेत्य चाश्रमं पुण्यं वृक्षमूलमुपाश्रितः । द्रष्टुकामः प्रतीक्षे च भगवन्तं निशाकरम् ॥ १३ ॥
अथ पश्यामि दूरस्थमृषिं ज्वलिततेजसम् । कृताभिषेकं दुर्धर्षमुपावृत्तमुदङ्मुखम् ॥ १४ ॥

जल देकर और स्नान करके पर्वत पर बैठे गृध्रराजके चारों ओर वानर बैठ गए ॥१॥ सब वानरोंके साथ बैठे हुए अंगदसे प्रसन्नतापूर्वक सम्पाती पुनः बोला; सम्पातीका वानरों पर विश्वास हो गया था। चुपचाप एकाग्र होकर वानर सुनें, मैं यथार्थ बातें करता हूँ। जिस प्रकार मैं जानकीको जानता हूँ ॥२,३॥ इस विन्ध्य पर्वतके शिखर पर पहले सूर्यकी किरणोंसे जलकर मैं गिरा था ॥४॥ छः दिनोंके बाद मुझे होश हुआ। हाथ पैर अवश थे। मैं व्याकुल होकर चारों ओर दिशाएं देखने लगा, पर कुछ भी जान न सका ॥५॥ अनन्तर पर्वत, समुद्र, नदी, तालाब, वन और नगर देखने पर मुझे बुद्धि आयी ॥६॥ मैंने समझा, प्रसन्न पक्षियोंसे युक्त, कंदरा और शिखरवाला यह विन्ध्यपर्वत है, जो दक्षिण समुद्रके तीर पर है ॥७॥ यहां देवताओंसे भी पूजित एक पवित्र आश्रम था, जिसमें निशाकर नामक ऋषि बड़े उग्रतपस्वी थे ॥८॥ धर्मज्ञ निशाकरके स्वर्ग जाने पर उनके बिना रहते हुएमुझे आठ हजार वर्ष बीत गए ॥९॥ कष्टसे, विन्ध्यके विषम शिखरसे धीरे धीरे उतर कर तीखे कुशवाली पृथिवी पर मैं पुनः आया ॥१०॥ उन ऋषिको मैं देखना चाहता था, इसलिए दुखसे मैं पुनः आया; क्योंकि जटायुसे और मुझसे वे कई बार मिल चुके थे ॥११॥ उनके आश्रमके पास सुगन्धित हवा बहती थी। वहाँ कोई ऐसा वृक्ष नहीं था जो फूला फला न हो ॥१२॥ उस पवित्र आश्रममें जाकर एक वृक्षके नीचे मैं बैठ गया। भगवान निशाकरको देखनेके लिए मैं उनकी प्रतीक्षा करने लगा ॥१३॥ उन ऋषिको दूरहीसे आते हुए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तमृक्षाः सुमरा व्याघ्राः सिंहा नानासरीसृपाः। परिवार्योपगच्छन्ति दातारं प्राणिनो यथा ॥१५॥
ततः प्राप्तमृषिं ज्ञात्वा तानि सत्त्वानि वै ययुः । प्रविष्टे राजनि यथा सर्वं सामात्यकं बलम् ॥१६॥
ऋषिस्तु दृष्ट्वा मां तुष्टः प्रविष्टश्चाश्रमं पुनः । मुहूर्तमात्रान्निर्गम्य ततः कार्यमपृच्छत ॥१७॥
सौम्य वैकल्यतां दृष्ट्वा रोम्णां ते नावगम्यते । अग्निदग्धाविमौ पक्षौ प्राणाश्चापि शरीरके ॥१८॥
गृध्रौ द्वौ दृष्टपूर्वौ मे मातरिश्वसमौ जवे । गृध्राणां चैव राजानौ भ्रातरौ कामरूपिणौ ॥१९॥
ज्येष्ठोऽवितस्त्वं संपाते जटायुरनुजस्तव । मानुषं रूपमास्थाय गृहीतां चरणौ मम ॥२०॥
किं ते व्याधिसमुत्थानं पक्षयोः पतनं कथम् । दण्डो वायंधृतः केन सर्वमाख्याहि पृच्छतः ॥२१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षष्टितमः सर्गः ॥६०॥

एकषष्टितमः सर्गः ६१

ततस्तदारुणं कर्म दुष्करं सहसा कृतम् । आचचक्षे मुनेः सर्वं सूर्यानुगमनं तथा ॥ १ ॥
भगवन्व्रणयुक्तत्वाल्लज्जया चाकुलेन्द्रियः । परिश्रान्तो न शक्नोमि वचनं परिभाषितुम् ॥ २ ॥
अहं चैव जटायुश्च संघर्षाद्दर्पमोहितौ । आकाशं पतितौ दूराज्जिज्ञासन्तौ पराक्रमम् ॥ ३॥

देखा, तेजसे वह जल रहे थे । स्नान किए हुए थे, उत्तरकी ओर आ रहे थे ॥१४॥ भालू, बाघ, सिंह, रेंगकर चलनेवाले जन्तु उनके साथ साथ आते थे, जैसे दाताके साथ याचक ॥१५॥ ऋषिको आश्रम पर आया जानकर वे सब जन्तु लौट गये, जिस प्रकार राजाके महलमें जाने पर दीवान, सैनिक आदि लौट जाते हैं ॥१६॥ ऋषि मुझको देखकर प्रसन्न हुए और आश्रममें चले गए । थोड़ी देरमें लौटकर उन्होंने मुझसे कार्य पूछा ॥१७॥ सौम्य, तुम्हारे रोमकी विकृति देखनेसे तुम नहीं पहिचाने जाते । तुम्हारी पांख आगसे जल गयी है और प्राण भी जल गए हैं ॥१७॥ वेगमें वायुके समान दो गृध्र मैंने पहले देखे थे । दोनों भाई थे, इच्छानुसार रूप धर सकते थे और वे गृध्रोंके राजा थे ॥१९॥ सम्पाती तुम बड़े हो यह मैं जानता हूँ, जटायु तुम्हारा छोटा भाई है । मनुष्यका रूप धर कर तुम लोगोंने मेरे चरण ग्रहण किये थे ॥२०॥ तुम्हें क्या रोग हुआ है ? ये पांख कैसे गिर गए अथवा किसीने दण्ड दिया है, यह सब तुम मुझसे कहो ॥२१॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका साठवाँ सर्ग समाप्त ।

अनन्तर मैंने जो कठोर और दुष्कर काम (अर्थात् इन्द्रसे युद्ध) विना कारण किया था, वह बतलाया और सूर्यका पीछा करनेकी भी बात कही ॥१॥ भगवन्, घाव होनेके कारण तथा लज्जासे हमारी इन्द्रियां व्याकुल हो गयी हैं, हम थक गए हैं अतएव आपसे ठीक ठीक बातें करनेमें असमर्थ हैं ॥२॥ गर्वसे मोहित मैं और जटायु परस्पर जीतनेकी इच्छा रखते थे । बड़ी दूर तक आकाशमें हम लोग अपने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कैलासशिखरे बद्धा मुनीनामग्रतः पणम् । रविःस्यादनुयातव्यो यावदस्तंमहागिरिम् ॥ ४ ॥
अप्यावां युगपत्प्राप्तावपश्याव महीतले । रथचक्रप्रमाणानि नगराणि पृथक्पृथक् ॥ ५ ॥
क्वचिद्वादित्रघोषश्च क्वचिद्भूषणनिःस्वनः । गायन्तीःस्माङ्गना वह्वीःपश्यावो रक्तवाससः ॥६॥
तूर्णमुत्पत्य चाकाशादादित्यपदमास्थितौ । आवामालोकयावस्तद्वनं शाद्वलसंस्थितम् ॥ ७ ॥
उपलैरिव संछन्ना दृश्यते भूः शिलोच्चयैः । आपगाभिश्च संवीता सूत्रैरिव वसुंधरा ॥ ८ ॥
हिमवांश्चैव विन्ध्यश्च मेरुश्च सुमहागिरिः । भूतले संप्रकाशन्ते नागा इव जलाशये ॥ ९ ॥
तीव्रः स्वेदश्च खेदश्च भयं चासीत्तदावयोः । समाविशत मोहश्च ततो मूर्च्छा च दारुणा ॥१०॥
नच दिग्ज्ञायते याम्या न चाग्नेयी न वारुणी । युगान्ते नियतो लोको हतो दग्ध इवाग्निना ॥११॥
मनश्च मे हतं भूयश्चक्षुः प्राप्य तु संश्रयम् । यत्नेन महता ह्यस्मिन्मनः संधाय चक्षुषी ॥१२॥
यत्नेन महता भूयो भास्करः प्रतिलोकितः । तुल्यपृथ्वीप्रमाणेन भास्करः प्रतिभाति नौ ॥१३॥
जटायुर्मामनापृच्छ्य निपपात महीं ततः । तं दृष्ट्वा तूर्णमाकाशादात्मानं मुक्तवानहम् ॥१४॥
पक्षाभ्यां च मया गुप्तो जटायुर्न प्रदह्यत । प्रमादात्तत्र निर्दग्धः पतन्वायुपथादहम् ॥१५॥
आशङ्के तं निपतितं जनस्थाने जटायुषम् । अहं तु पतितो विन्ध्ये दग्धपक्षो जडीकृतः ॥१६॥

पराक्रमका पता लगानेके लिए उड़ गए ॥३॥ कैलाश पर्वत पर मुनियोंके सामने हम लोगोंने प्रण किया कि सूर्यका अस्ताचल पर्वत तक पीछा करना चाहिए ॥४॥ हम लोग एकही साथ पहुँचे । वहांसे पृथिवीके नगरोंको, रथके पहिएके समान, हमलोगोंने देखा ॥५॥ कहीं बाजेका शब्द कहीं गानेका शब्द, कहीं लाल वस्त्र पहने गाती हुई बहुत सी स्त्रियोंको हम लोगोंने देखा ॥६॥ हम लोग शीघ्र उड़कर आकाशमें सूर्यमार्ग पर चले गए । वहांसे हम लोगोंने घासका वन देखा ॥७॥ वहांसे पृथिवी पत्थरोंसे ढकी हुई मालूम पड़ती है । सूत्रके समान नदियोंसे बँधी हुई पृथिवी मालूम पड़ती है ॥८॥ हिमवान, विन्ध्याचल, मेरु आदि बड़े पर्वत तालाबमें हाथीके समान मालूम पड़ते हैं । उस समय हम दोनोंको बहुत पसीना, बहुत थकावट और भय मालूम हुआ । हम लोग मोहित होने लगे, पुनः भयानक मूर्छा आयी ॥१०॥ दक्षिण, अग्निकोण, पश्चिम आदि दिशाएं मालूम न पड़ी । प्रलयमें जिसका जलना निश्चय है उस समस्त लोकको हम लोगोंने उसी समय आगसे जले हुएके समान देखा ॥११॥ मन और आंखें सूर्यके सम्पर्कसे नष्ट हो गयीं, बड़े प्रयत्न से आंख और मनको मैंने सूर्यमें लगाया ॥१२॥ बड़े प्रयत्नसे सूर्यको मैंने पुनः देखा । पृथिवीके समान विशाल वे दीख पड़े ॥१३॥ जटायु मुझसे बिना पूछेही पृथिवी पर चला आया । उसको देखकर मैंने भी शीघ्रही अपनेको आकाशसे हटा लिया ॥१४॥ जटायुको मैंने अपने पांखोंसे छिपाया था, इस कारण उसके पांख नहीं जले । असावधानीसे मैं वहां जल गया । वायुपथसे नीचे गिरते हुए मैंने किसी प्रकार जाना कि जटायु जनस्थानमें गिरा है । मैं विन्ध्यपर्वत पर गिरा, मेरे पांख जल गए थे और मैं जड़ हो गया ॥१५,१६॥ राज्य, भाई, पांख और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राज्याच्च हीनो भ्रात्रा च पक्षाभ्यांविक्रमेण च । सर्वथा मर्तुमेवेच्छन्पतिष्ये शिखराद्गिरेः ॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठमरुदं भृशदुःखितः । अथ ध्यात्वा मुहूर्तं च भगवानिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
पक्षौ च ते प्रपक्षौ च पुनरन्यौ भविष्यतः । चक्षुषी चैव प्राणाश्च विक्रमश्च बलं च ते ॥ २ ॥
पुराणे सुमहत्कार्यं भविष्यं हि मया श्रुतम् । दृष्टं मे तपसा चैव श्रुत्वा च विदितं मम ॥ ३ ॥
राजा दशरथो नाम कश्चिदिक्ष्वाकुवर्धनः । तस्य पुत्रो महातेजा रामो नाम भविष्यति ॥ ४ ॥
अरण्यं च सह भ्रात्रा लक्ष्मणेन गमिष्यति । तस्मिन्नर्थे नियुक्तः सन्पित्रा सत्यपराक्रमः ॥ ५ ॥
नैर्ऋतो रावणोनाम तस्य भार्यां हरिष्यति । राक्षसेन्द्रो जनस्थाने अवध्यः सुरदानवैः ॥ ६ ॥
साचकामैःप्रलोभ्यन्तीभक्ष्यैर्भोज्यैश्च मैथिली । न भोक्ष्यति महाभागा दुःखमग्ना यशस्विनी ॥ ७ ॥
परमान्नं च वैदेह्या ज्ञात्वा दास्यति वासवः । यदन्नममृतप्रख्यं सुराणामपि दुर्लभम् ॥ ८ ॥
तदन्नं मैथिली प्राप्य विज्ञायेन्द्रादिदं त्विति । अग्रमुद्धृत्य रामाय भूतले निर्वपिष्यति ॥ ९ ॥
यदि जीवति मे भर्ता लक्ष्मणो वापि देवरः । देवत्वं गच्छतोर्वापि तयोरन्नमिदं त्विति ॥१०॥

पराक्रमसे हीन होकर मरनेकी ही इच्छासे मैं इस पर्वतसे गिरना चाहता हूँ । उस ऋषिसे मैंने ऐसा कहा ॥१७॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धा काण्डका एकसठवाँ सर्ग समाप्त ।

बहुतही दुखी होकर उन ऋषिश्रेष्ठसे मैंने ये बातें कहीं और रो पड़ा। थोड़ी देर ध्यान करके भगवान हमसे बोले ॥१॥ तुम्हारे बड़े और छोटे पांख पुनः उत्पन्न होंगे, पुनः तुम्हारी आंखे ठीक होगीं । प्राण, विक्रम और बल तुम्हें पुनः मिलेंगे ॥२॥ पुराणोंमें भावी अनेक कार्य मैंने सुने हैं, सुनकर जाने हैं । तपस्याके द्वारा देखे हैं ॥३॥ इक्ष्वाकुकुलमें दशरथ नामके राजा होंगे । उनके महातेजस्वी राम नामके पुत्र होंगे ॥४॥ लक्ष्मणके साथ वे वनमें जांयगें, क्योंकि वनमें जानेके लिए सत्यपराक्रम रामचन्द्रको पिताकी आज्ञा मिलेगी ॥५॥ देवता और दानवोंके द्वारा अबध्य राक्षस रावण जनस्थानमें उनकी स्त्रीका हरण करेगा ॥६॥ यशस्विनी सीताको राक्षस इच्छाकी पूर्तिके द्वारा तथा भक्ष्यभोज्य आदिके द्वारा प्रलोभित करना चाहेगा, पर वह दुखिनी कोई भोग स्वीकार न करेगी ॥७॥ यह जानकर (सीता राक्षसका अन्न नहीं खाती) इन्द्र उसके लिए पायस भेजेंगे जो अमृतके समान अन्न देवताओंके लिए भी दुर्लभ है ॥८॥ उस अन्नको पाकर, तथा इन्द्रका भेजा है, यह जानकर सीता उस अन्नको ले लेगी और उसमेंसे रामचन्द्रके लिए पृथिवी पर रख देगी ॥९॥ यदि मेरे पति जीते हैं, यदि देवर लक्ष्मण जीते हैं, यदि उन लोगोंने देवभाव भी प्राप्त कर लिया हो तो भी अन्न उन लोगोंको मिले ॥१०॥ हे विहंगम,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एष्यन्ति प्रेषितास्तत्र रामदूताः प्लवङ्गमाः । आख्येया राममहिषी त्वया तेभ्यो विहंगम ॥११॥
सर्वथा तु न गन्तव्यमीदृशः क्व गमिष्यसि । देशकालौ प्रतीक्षस्व पक्षौ त्वं प्रतिपत्स्यसे ॥१२॥
उत्सहेयमहं कर्तुमद्यैव त्वां सपक्षकम् । इहस्थस्त्वंहि लोकानां हितं कार्यं करिष्यसि॥१३॥
त्वयापि खलु तत्कार्यं तयोश्च नृपपुत्रयोः । ब्राह्मणानां गुरूणां च मुनीनां वासवस्य च॥१४॥
इच्छाम्यहमपि द्रष्टुं भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । नेच्छे चिरं धारयितुं प्राणांस्त्यक्ष्ये कलेवरम् ॥
महर्षिस्त्वब्रवीदेवं दृष्टतत्त्वार्थदर्शनः । ॥१५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३

एतैरन्यैश्च बहुभिर्वाक्यैर्वाक्यविशारदः । मां प्रशस्याभ्यनुज्ञाप्य प्रविष्टः स स्वमालयम् ॥ १ ॥
कंदरात्तु विसर्पित्वा पर्वतस्य शनैः शनैः । अहं विन्ध्यं समारुह्य भवतः प्रतिपालये ॥ २ ॥
अद्य त्वेतस्य कालस्य वर्षं साग्रशतं गतम् । देशकालप्रतीक्षोऽस्मि हृदि कृत्वा मुनेर्वचः ॥ ३ ॥
महाप्रस्थानमासाद्य स्वर्गते तु निशाकरे । मां निर्दहति संतापो वितर्कैर्बहुभिर्वृतम् ॥ ४ ॥
उदितां मरणे बुद्धिं मुनिवाक्यैर्निवर्तये । बुद्धिर्या तेन मे दत्ता प्राणानां रक्षणे मम ॥ ५ ॥

सम्पाती, भेजे हुए रामके दूत वानर आवेंगे, उनको रामचन्द्रकी महारानीका पता तुम बतलाना ॥११॥ यहांसे तुम कहीं मत जाना । इस अवस्थामें कहां जाओगे । कुछ समयकी प्रतीक्षा करो, तुम्हारे पंख तुमको मिल जायँगे ॥१२॥ तुमको आज ही सपक्ष कर देनेकी मेरी इच्छा होती है, फिर भी मैं ऐसा इसलिए नहीं करता कि यहां रह कर तुम अधिक लोक-कल्याण कर सकोगे ॥१३॥ तुम भी उन दोनों राजपुत्रोंके कार्य करना । ब्राह्मणों, गुरुओं, मुनिओं और इन्द्रके भी कार्य करना । मैं भी, दोनों भाई रामचन्द्र और लक्ष्मणको देखना चाहता हूँ । बहुत दिनों तक प्राणधारण करना नहीं चाहता । शीघ्र शरीर त्याग करूँगा । यथार्थ तत्व जाननेवाले मुनिने ऐसा कहा ॥१४,१५॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका बासठवाँ सर्ग समाप्त ।

इन तथा अन्य अनेक वाक्योंसे, वाक्यविशारद मुनि मुझे समझा कर तथा आज्ञा देकर अपने आश्रममें गए ॥१॥ उस कन्दरासे धीरे धीरे चल कर विन्ध्यपर्वत पर चढ़ कर मैं आप लोगोंकी प्रतीक्षा करने लगा ॥२॥ मुनिके वचन मनमें रखकर आज सौ वर्षोंसे भी ऊपर इस समयकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ ॥३॥ निशाकरमुनिके स्वर्गके लिए महा प्रस्थान करने पर अनेक प्रकारके तर्क-वितर्क मेरे मनमें उठा करते हैं, जिससे मैं जला करता हूँ ॥४॥ मरनेकी इच्छा उत्पन्न हुई थी, वह मैंने मुनिके वचनसे छोड़ दी । प्राणोंकी रक्षा के लिए जो बुद्धि मुनिने दी थी, उसीसे मेरे सब दुख दूर होते हैं, जैसे प्रदीप्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सा मेऽपनयते दुःखं दीप्तेवाग्निशिखा तमः । बुध्यता च मया वीर्यं रावणस्य दुरात्मनः ॥ ६ ॥
पुत्रः संतर्जितो वाग्भिर्न त्राता मैथिली कथम् । तस्या विलपितं श्रुत्वा तौ च सीतावियोजितौ॥७॥
न मे दशरथस्नेहात्पुत्रेणोत्पादितं प्रियम् । तस्य त्वेवं ब्रुवाणस्य संहतैर्वानरैः सह ॥ ८ ॥
उत्पेततुस्तदा पक्षौ समक्षं वनचारिणाम् । स दृष्ट्वा स्वां तनुं पक्षैरुद्गतैररुणच्छदैः ॥ ९ ॥
प्रहर्षमतुलं लेभे वानरांश्चेदमब्रवीत् । निशाकरस्य राजर्षेः प्रसादादमितौजसः ॥१०॥
आदित्यरश्मिनिर्दग्धौ पक्षौ पुनरुपस्थितौ । यौवने वर्तमानस्य ममासीद्यः पराक्रमः ॥११॥
तमेवाद्यावगच्छामि बलं पौरुषमेव च । सर्वथा क्रियतां यत्नः सीतामधिगमिष्यथ ॥१२॥
पक्षलाभो ममायं वः सिद्धिप्रत्ययकारकः । इत्युक्त्वा तान्हरीन्सर्वान्संपातिः पतगोत्तमः॥१३॥
उत्पपात गिरेः शृङ्गाज्जिज्ञासुः खगमो गतिम् । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रतिसंहृष्टमानसाः ॥
बभूवुर्हरिशार्दूला विक्रमाभ्युदयोन्मुखाः । ॥१४॥

अथ पवनसमानविक्रमाः प्लवगवराः प्रतिलब्धपौरुषाः ।
अभिजिदभिमुखां दिशं ययुर्जनकसुतापरिमार्गणोन्मुखाः ॥१५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

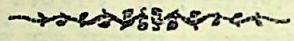

अग्निशिखासे अंधकार दूर होता है । मैंने अपने पुत्रसे कहा था कि दुरात्मा राक्षसका बल जानते हुए तुमने सीताकी रक्षा क्यों न की । सीताका विलाप सुनकर और राम लक्ष्मणको सीतासे वियुक्त जान कर मेरे पुत्रने दशरथके स्नेहके अनुरूप मेरा प्रिय नहीं किया । वानरोंके साथ इस प्रकार बात करते हुए उस वनचारी गृध्रके दोनों पांख निकल आए । वह गृध्र लाल रंगके उत्पन्न पांखोंसे युक्त अपने शरीरको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और वानरोंसे यह बोला—अमितौजस (अधिक तेजस्वी) राजर्षि निशाकरके प्रसादसे सूर्य-किरणसे जले मेरे दोनों पांख निकल आए । युवावस्थामें जो मेरा पराक्रम था वैसाही पराक्रम और बल मुझे हो गया । तुम लोग प्रयत्न करो, अवश्य ही सीताको पाओगे ॥५,६,७, ८,९,१०,११,१२॥ मेरा पांखोंका हो जाना, तुम लोगोंकी कार्यसिद्धिका विश्वास दिलानेवाला है ॥१३॥ उन वानरोंसे ऐसा कहकर पक्षिश्रेष्ठ सम्पाती उस पर्वत-शिखरसे अपने आकाशगमनकी शक्तिका निश्चय करनेके लिए उड़ा । उसके वचन सुनकर वानर बहुत प्रसन्न हुए और पराक्रम करनेके लिए उद्यत हुए ॥१४॥ पवनके समान पराक्रमी, सीताके पता पानेसे पुनः अपने अपने विक्रम प्राप्त कर सब वानर जानकीको ढूँढनेके लिए उद्यत हुए, जिस दिशामें रामचन्द्रकी विजय समाई थी उस दिशामें वे चले ॥१५॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका तिरसठवाँ सर्ग समाप्त ।

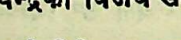

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४

आख्याता गृध्रराजेन समुत्प्लुत्य प्लवंगमाः । संगताः प्रीतिसंयुक्ता विनेदुः सिंहविक्रमाः ॥ १ ॥
संपातेर्वचनं श्रुत्वा हरयो रावणक्षयम् । हृष्टाः सागरमाजग्मुः सीतादर्शनकाङ्क्षिणः॥ २ ॥
अभिगम्य तु तं देशं ददृशुर्भीमविक्रमाः । कृत्स्नं लोकस्य महतः प्रतिबिम्बमवस्थितम् ॥ ३ ॥
दक्षिणस्य समुद्रस्य समासाद्योत्तरां दिशम् । संनिवेशं ततश्चक्रुर्हरिवीरा महाबलाः ॥ ४ ॥
प्रसुप्तमिव चान्यत्र क्रीडन्तमिव चान्यतः । क्वचित्पर्वतमात्रैश्च जलराशिभिरावृतम् ॥ ५ ॥
संकुलं दानवेन्द्रैश्च पातालतलवासिभिः । रोमहर्षकरं दृष्ट्वा विषेदुः कपिकुञ्जराः ॥ ६ ॥
आकाशमिव दुष्पारं सागरं प्रेक्ष्य वानराः । विषेदुः सहिताः सर्वे कथं कार्यमिति ब्रुवन् ॥ ७ ॥
विषण्णां वाहिनीं दृष्ट्वा सागरस्य निरीक्षणात् । आश्वासयामास हरीन्भयार्तान्हरिसत्तमः ॥ ८ ॥
न विषादे मनः कार्यं विषादो दोषवत्तरः । विषादो हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्ध इवोरगः ॥ ९ ॥
यो विषादं प्रसहते विक्रमे समुपस्थिते । तेजसा तस्य हीनस्य पुरुषार्थो न सिद्ध्यति ॥१०॥
तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामङ्गदो वानरैः सह । हरिवृद्धैः समागम्य पुनर्मन्त्रममन्त्रयत् ॥११॥
सा वानराणां ध्वजिनी परिवार्याङ्गदं बभौ । वासवं परिवार्येव मरुतां वाहिनी स्थितम् ॥१२॥
कोन्य स्तांवानरींसेनांशक्तःस्तम्भयितुं भवेत् । अन्यत्र वालितनयादन्यत्र च हनूमतः ॥१३॥
ततस्तान्हरिवृद्धांश्च तच्च सैन्यमरिंदमः । अनुमान्याङ्गदः श्रीमान्वाक्यमर्थवदब्रवीत् ॥१४॥

गृध्रराजके सीताका वृत्तान्त कहने पर सिंहके समान पराक्रमी सब वानर प्रसन्नतापूर्वक एकत्रित हुए और कूद कूद कर नाद करने लगे ॥१॥ रावणका विनाश और उसके घरका पता सम्पातीसे सुनकर सीताको देखनेकी इच्छा रखने वाले वानर प्रसन्न होकर समुद्रतीर पर आये ॥२॥ वहां आकर भीम पराक्रमी वीर वानरोंने समस्त लोकके प्रतिबिम्बके समान स्थित उस स्थानको देखा ॥३॥ दक्षिण समुद्रके उत्तर तीर पर महाबली उन वानरोंने डेरा डाला ॥४॥ कहीं सोते हुए के समान, कहीं क्रीड़ा करते हुएके समान, कहीं पर्वतके समान, जलराशि अर्थात् लहरियोंसे युक्त दानवेन्द्रों और पातालवासियोंसे भरे हुए, भयावने उस समुद्रको देखकर वानरसेनापति बहुत दुखी हुए ॥५,६॥ आकाशके समान पार करनेके अयोग्य सागरको देखकर सभी वानर बहुत दुखी हुए और आगे कैसे किया जाय इसका निश्चय वे करने लगे ॥७॥ समुद्रको देखनेसे अपनी सेनाको विषादयुक्त देखकर अंगदने सब डरे हुओंको धैर्य दिलाया ॥८॥ आप लोगोंको विषाद नहीं करना चाहिए। विषादमें बड़े बड़े दोष हैं, क्रुद्ध सर्प जैसे बालकको मारता है वैसेही विषाद पुरुषको मारता है ॥९॥ जो उद्योग करनेके समय में विषाद करता है उस तेजहीन पुरुषका मनोरथ सिद्ध नहीं होता ॥१०॥ उस रात्रिके बीतने पर वानरोंके साथ बूढ़े वानरोंके पास जाकर अंगदने पुनः सलाह की ॥११॥ वानरोंकी वह सेना अंगदको चारों ओरसे घेरकर बैठी हुई, इन्द्रको चारो ओरसे घेरकर बैठी देवसेना के समान मालूम पड़ी ॥१२॥ अंगद और हनुमानको छोड़ कर कौन दूसरा उस वानरी सेनाको वशमें रख सकता है ॥१३॥ उन वृद्ध वानरोंका तथा उस समस्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क इदानीं महातेजा लङ्घयिष्यति सागरम् । कः करिष्यति सुग्रीवं सत्यसंधमरिंदमम् ॥१५॥
को वीरो योजनशतं लङ्घयेत प्लवंगमः । इमांश्च यूथपान्सर्वान्मोचयेत्को महाभयात् ॥१६॥
कस्यप्रसादादारांश्च पुत्रांश्चैव गृहाणि च । इतो निवृत्ताःपश्येमसिद्धार्थाःसुखिनोवयम् ॥१७॥
कस्यप्रसादाद्रामं च लक्ष्मणं च महाबलम् । अभिगच्छेम संहृष्टाः सुग्रीवंच वनौकसम् ॥१८॥
यदि कश्चित्समर्थो वः सागरप्लवने हरिः । स ददात्विह नः शीघ्रं पुण्यामभयदक्षिणाम् ॥१९॥
अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा न कश्चित्किंचिदब्रवीत् । स्तिमितेवाभवत्सर्वा सा तत्र हरिवाहिनी ॥२०॥
पुनरेवाङ्गदः प्राह तान्हरीन्हरिसत्तमः । सर्वे बलवतां श्रेष्ठा भवन्तो दृढविक्रमाः ॥
व्यपदेशकुलेजाताः पूजिताश्चाप्यभीक्ष्णशः । ॥२१॥
नहि वो गमने सङ्गः कदाचित्कस्यचिद्भवेत् । ब्रुवध्वं यस्य या शक्तिः प्लवने प्लवगर्षभाः॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥६४॥

पञ्चषष्टितमः सर्गः ६५

अथाङ्गदवचः श्रुत्वा ते सर्वे वानरर्षभाः । स्वं स्वं गतौ समुत्साहमूचुस्तत्र यथाक्रमम्॥ १ ॥
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः । मैन्दश्च द्विविदश्चैव अङ्गदो जाम्बवांस्तथा ॥ २ ॥

सेनाका सम्मान करके श्रीमान अंगद अर्थयुक्त वचन बोले ॥१४॥ कौन महातेजस्वी इस समय इस महासमुद्रको पार करेगा ? कौन सुग्रीवको सत्यप्रतिज्ञ करेगा ? कौन वीर वानर सौ योजन समुद्रको लांघेगा और कौन इन यूथपतियोंको भयसे छुड़ावेगा ॥१५,१६॥ किसकी कृपासे सीताका पता लगा कर और सुखी होकर हम लोग यहांसे लौटेगें और स्त्री पुत्र तथा घर हमलोग देखेगें ॥१७॥ किसके प्रसादसे राम महाबली लक्ष्मण और सुग्रीवके पास प्रसन्नतापूर्वक जा सकेंगे ? यदि आप लोगोंमें कोई वानर समुद्र पार जानेमें समर्थ हो तो वह शीघ्र हम लोगोंको पवित्र अभयदक्षिणा दे ॥१९॥ अंगदके वचन सुनकर कोई भी कुछ न बोला। वह समस्त वानरी सेना चुप हो रही ॥२०॥ अंगद पुनः उन वानरोंसे बोले– आप सभी लोग दृढ़पराक्रमी हैं, अर्थात् किसीके द्वारा पराजित होनेके योग्य नहीं हैं । आप सभी बलवानोंमें श्रेष्ठहैं । उत्तम कुलमें आप उत्पन्न हुए हैं । समय समय पर वीरताके कारण आप लोगोंकी प्रशंसा हुई है ॥२१॥ आप लोगोंमें किसीको जानेमें किसी प्रकारकी बाधा न होगी । अतएव वानरो, जानेमें जिस वानरकी जैसी शक्ति हो वह कहे ॥२२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका चौसठवाँ सर्ग समाप्त ।

अंगदके वचन सुनकर उन सब श्रेष्ठ वानरोंने जानेमें जिसकी जितनी शक्ति है वह क्रमसे बतलायी॥१॥ गवाक्ष, गज, गवय, गन्धमादन, शरभ, मैन्द, द्विविद, अंगद और जाम्बवान इन वानरोंने अपना अपना बल

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आवभाषे गजस्तत्र प्लवेयं दशयोजनम् । गवाक्षोयोजनान्याहगमिष्यामीतिविंशतिम् ॥ ३ ॥
शरभोवानरस्तत्र वानरांस्तानुवाच ह । त्रिंशतं तु गमिष्यामि योजनानां प्लवङ्गमाः॥ ४ ॥
ऋषभो वानरस्तत्र वानरांस्तानुवाच ह । चत्वारिंशद्गमिष्यामि योजनानां न संशयः ॥ ५ ॥
वानरांस्तु महातेजा अब्रवीद्गन्धमादनः । योजनानां गमिष्यामि पञ्चाशत्तु न संशयः ॥ ६ ॥
मैन्दस्तु वानरस्तत्र वानरांस्तानुवाच ह । योजनानां परं षष्टिमहं प्लवितुमुत्सहे ॥ ७ ॥
ततस्तत्र महातेजा द्विविदः प्रत्यभाषत । गमिष्यामि न संदेहः सप्ततिं योजनान्यहम् ॥ ८ ॥
सुषेणस्तु महातेजाः सत्त्ववान्कपिसत्तमः । अशीतिं प्रतिजानेऽहं योजनानां पराक्रमे ॥ ९ ॥
तेषां कथयतां तत्र सर्वांस्तानुमान्य च । ततो वृद्धतमस्तेषां जाम्बवान्प्रत्यभाषत ॥१०॥
पूर्वमस्माकमप्यासीत्कश्चिद्गतिपराक्रमः । ते वयं वयसः पारमनुप्राप्ताः स्म सांप्रतम् ॥११॥
किं तु नैवं गते शक्यमिदं कार्यमुपेक्षितुम् । यदर्थं कपिराजश्च रामश्च कृतनिश्चयौ ॥१२॥
सांप्रतं कालमस्माकं या गतिस्तां निबोधत । नवतिं योजनानां तु गमिष्यामि न संशयः ॥१३॥
तांश्च सर्वान्हरिश्रेष्ठाञ्जाम्बवानिदमब्रवीत् । न खल्वेतावदेवासीद्गमने मे पराक्रमः ॥१४॥
मया वैरोचने यज्ञे प्रभविष्णुः सनातनः । प्रदक्षिणीकृतः पूर्वं क्रममाणस्त्रिविक्रमः ॥१५॥
स इदानीमहं वृद्धः प्लवने मन्दविक्रमः । यौवने च तदासीन्मे बलमप्रतिमं परम् ॥१६॥
संप्रत्येतावदेवाद्य शक्यं मे गमने स्वतः । नैतावता च संसिद्धिः कार्यस्यास्य भविष्यति॥१७॥
अथोत्तरमुदारार्थमब्रवीदङ्गदस्तदा । अनुमान्य तदा प्राज्ञो जाम्बवंतं महाकपिम् ॥१८॥

बतलाया ॥२॥ गजने कहा—मैं दस योजन जा सकता हूँ, गवाक्षने कहा, मैं बीस योजन जा सकता हूँ ॥३॥ शरभ नामक वानरने वानरोंसे कहा, मैं तीस योजन तक जा सकता हूँ ॥४॥ ऋषभ वानर उन वानरोंसे बोला, मैं चालीस योजन तक जाऊँगा, इसमें सन्देह नहीं ॥५॥ महातेजस्वी गन्धमादन वानरोंसे बोले कि मैं निःसन्देह पचास योजन तक चला जाऊँगा ॥६॥ मैन्दने उन वानरोंसे कहा कि साठ योजन तक मैं कूदनेका उत्साह रखता हूँ ॥७॥ महातेजस्वी द्विविदने उस पर कहा कि सत्तर योजन तक बिना सन्देह मैं जा सकूंगा ॥८॥ बलवान और तेजस्वी सुषेणने कहा कि अस्सी योजन जानेकी मैं प्रतिज्ञा करता हूँ ॥९॥ इस प्रकार कहने वाले सब वानरोंका सम्मान करके उन सबमें वृद्ध जाम्बावान वानर बोला ॥१०॥ पहले हमारा भी चलनेमें पराक्रम था, अब तो हम उमर पार कर चुके ॥११॥ पर इससे इस कार्यकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए । जिस कार्यका निश्चय सुग्रीव और रामने किया है, वह कार्य तो करनाही होगा ॥१२॥ इस समय जो मेरी गति है, वह आप लोग सुनें, नव्वे योजन तक जा सकता हूँ, इसमें सन्देह नहीं ॥१३॥ उन वानरोंसे जाम्बवानने कहा कि पहले मेरा चलनेका बल इतनाही नहीं था ॥१४॥ बलिके यज्ञमें बढ़नेवाले सनातन वामनकी, भूमि नापनेके समय, मैंने प्रदक्षिणा की थी ॥१५॥ मैं इस समय बूढ़ा हूँ, कूदनेमें मेरी गति शिथिल हो गयी है, युवावस्थामें मेरा बल अद्भुत था ॥१६॥ इस समय मैं इतनाही चल सकता हूँ । पर इतना चलनेसे तो इस कार्यकी सिद्धि न होगी ॥१७॥ इसके बाद अंगद

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अहमेतद्गमिष्यामि योजनानां शतं महत् । निवर्तने तु मे शक्तिः स्यान्न वेति न निश्चितम् ॥१९॥
तमुवाच हरिश्रेष्ठं जाम्बवान्वाक्यकोविदः । ज्ञायते गमने शक्तिस्तव हर्यृक्षसत्तमः ॥२०॥
कामं शतसहस्रं वा नह्येष विधिरुच्यते । योजनानां भवाञ्शक्तो गन्तुं प्रतिनिवर्तितुम् ॥२१॥
नहि प्रेषयिता तात स्वामी प्रेष्यः कथंचन । भवतायं जनः सर्वः प्रेष्यः प्लवगसत्तम ॥२२॥
भवान्कलत्रमस्माकं स्वामिभावे व्यवस्थितः । स्वामी कलत्रं सैन्यस्य गतिरेषा परंतप ॥२३॥
अपि वै तस्य कार्यस्य भवान्मूलमरिंदम । तस्मात्कलत्रवत्तात प्रतिपाल्यः सदा भवान् ॥२४॥
मूलमर्थस्य संरक्ष्यमेष कार्यमिदां नयः । मूले हि सतिसिद्ध्यन्तिगुणाः सर्वे फलोदयाः ॥२५॥
तद्भवानस्य कार्यस्य साधनं सत्यविक्रम । बुद्धिविक्रमसंपन्नो हेतुरत्र परंतप ॥२६॥
गुरुश्च गुरुपुत्रश्च त्वं हि नः कपिसत्तम । भवन्तमाश्रित्य वयं समर्था ह्यर्थसाधने ॥२७॥
उक्तवाक्यं महाप्राज्ञं जाम्बवन्तं महाकपिः । प्रत्युवाचोत्तरं वाक्यं वालिसूनुरथाङ्गदः ॥२८॥
यदि नाहं गमिष्यामि नान्यो वानरपुंगवः । पुनः खल्विदमस्माभिः कार्यं प्रायोपवेशनम् ॥२९॥
नह्यकृत्वा हरिपतेः संदेशं तस्य धीमतः । तत्रापि गत्वा प्राणानां न पश्ये परिरक्षणम् ॥३०॥
स हि प्रसादे चात्यर्थं कोपे च हरिरीश्वरः । अतीत्य तस्य संदेशं विनाशो गमने भवेत् ॥३१॥
तत्तथा ह्यस्य कार्यस्य न भवत्यन्यथा गतिः । तद्भवानेव दृष्टार्थः संचिन्तयितुमर्हति ॥३२॥

महाकपि जाम्बवानका सम्मान करके अर्थवान वचन बोले ॥१८॥ मैं यह सौ योजन जा सकता हूँ, लौटनेमें मेरी शक्ति होगी कि नहीं इसमें सन्देह हैं ॥१९॥ वानरश्रेष्ठ अंगदसे जाम्बवान बोले—हे वानर ऋक्षराज जानेकी आपकी शक्ति हमलोग जानते हैं ॥२०॥ सौ या हजार योजन तक आप जा सकते हैं। पर यह बात उचित नहीं है ॥२१॥ तात, प्रेषण करनेवाला स्वामी स्वयं प्रेष्य नहीं बनता। हे वानरश्रेष्ठ, ये सब लोग आपके प्रेष्य हैं ॥२२॥ स्वामिरूपसे स्थित आप हम लोगोंके कलत्र (स्त्री) हैं, अर्थात् स्त्रीके समान रक्षणीय हैं। स्वामी सेनाका कलत्र होता है अर्थात् कलत्रके समान उसकी रक्षाकी जाती है यही परम्परा है ॥२३॥ आप उस कार्यके मूल हैं, आपही पर सीतान्वेषणका भार है। अतएव आपकी रक्षा कलत्रके समान हम लोगोंको करनी चाहिए ॥२४॥ कार्यके मूलकी रक्षा करनी चाहिए, यह कार्यज्ञोंका मत है; क्योंकि मूलके रहने पर सभी उद्योग सिद्ध होते हैं, सभी गुण सफल होते हैं ॥२५॥ अतएव हे सत्यविक्रम, आप इस कार्यके साधन हैं, अर्थात् बुद्धिविक्रमसम्पन्न हेतु हैं ॥२६॥ हे कपिश्रेष्ठ, आप हम लोगोंके गुरु और गुरुपुत्र हैं। आपके आश्रयसे हम लोग कार्य सिद्ध कर सकते हैं ॥२७॥ महाप्राज्ञ जाम्बवानके ऐसा कहने पर वालिपुत्र अंगदने इस प्रकार उत्तर दिया ॥२८॥ यदि हम न जायँ और दूसरा भी कोई वानर न जाय तो पुनः हम लोगोंको वही प्रायोपवेशन करना चाहिए ॥२९॥ वानरराज सुग्रीवकी आज्ञाका बिना पालन किए यदि हम लोग वहां जायँ तो हमारे प्राणोंकी रक्षा न हो सकेगी ॥३०॥ सुग्रीव प्रसन्न होने और क्रोध करनेमें समर्थ हैं। उनकी आज्ञाका पालन न करनेसे विनाश अवश्यही होगा ॥३१॥ अतएव इस कार्यके लिए और कोई उपाय नहीं है। या तो समुद्र पार जाना होगा या

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सोऽङ्गदेन तदा वीरः प्रत्युक्तः प्लवगर्षभः । जाम्बवानुत्तमं वाक्यं प्रोवाचेदं ततोऽङ्गदम् ॥३३॥
तस्य ते वीर कार्यस्य न किंचिन्परिहास्यते । एष संचोदयाम्येनं यः कार्यं साधयष्यति ॥३४॥
ततः प्रतीतं प्लवतां वरिष्ठमेकान्तमाश्रित्य सुखोपविष्टम् ।
संचोदयामास हरिप्रवीरो हरिप्रवीरं हनुमन्तमेव ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥६५॥

षट्षष्टितमः सर्गः ६६

अनेकशतसाहस्रीं विषण्णां हरिवाहिनीम् । जाम्बवान्समुदीक्ष्यैवं हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ १ ॥
वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविदां वर । तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनूमन्किं न जल्पसि ॥ २ ॥
हनूमन्हरिराजस्य सुग्रीवस्य समो ह्यसि । समलक्ष्मणयोश्चापि तेजसा च बलेन च ॥ ३ ॥
अरिष्टनेमिनः पुत्रो वैनतेयो महाबलः । गरुत्मानिव विख्यात उत्तमः सर्वपक्षिणाम् ॥ ४ ॥
बहुशो हि मया दृष्टः सागरे स महाबलः । भुजंगानुद्धरन्पक्षी महाबाहुर्महाबलः ॥ ५ ॥
पक्षयोर्यद्बलं तस्य भुजवीर्यबलं तव । विक्रमश्चापि तेजश्च न ते तेनापहीयते ॥ ६ ॥
बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुंगव । विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न सज्जसे ॥ ७ ॥
अप्सराऽप्सरसांश्रेष्ठा विख्याता पुञ्जिकस्थला। अञ्जनेति परिख्याता पत्नी केसरिणो हरेः ॥ ८ ॥

प्राणत्याग करना होगा ॥३२॥ आप सब अर्थों के जाननेवाले हैं, आपही कोई उपाय सोचिए । अंगदके ऐसा कहने पर वीर वानरसेनापति जाम्बवान अंगदसे पुनः बोले ॥३३॥ वीर, तुम्हारे इस कार्यका कुछ बिगाड़ न होगा, मैं उसको प्रेरित करता हूँ जो इस कार्यको सिद्ध करेगा ॥३४॥ प्रख्यात, वानरोंमें श्रेष्ठ एकान्तमें सुखपूर्वक बैठे हुए हनुमानको जाम्बवानने प्रेरित किया ॥३५॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका पैंसठवां सर्ग समाप्त ।

अनेक सौ हजार वानरोंकी सेनाको विषादयुक्त देखकर जाम्बवान हनुमानसे इस प्रकार बोले, ॥१॥ वीर, सर्व शास्त्रज्ञ एकान्तमें जाकर चुपचाप क्यों बैठे हो । वानरोंका कर्तव्य क्यों नहीं बतलाते ॥२॥ हनुमान, तुम सुग्रीवके समान हो, तेज और बलसे राम-लक्ष्मणके समान हो ॥३॥ अरिष्ट-नेमीके पुत्र, महाबली वैनतेय सब पक्षियोंमें उत्तम गरुड़के समान तुम विख्यात हो ॥४॥ मैंने बहुत बार महाबाहु, महाबली, उस गरुड़ पक्षीको सागरमें सांपोंको पकड़ते देखा है ॥५॥ उसके पांखोंमें जो बल है वैसाही बल और पराक्रम तुममें हैं । पराक्रम और तेजमें तुम उससे कम नहीं हो ॥६॥ वीर, सब प्राणियोंमें बल बुद्धि तेज और पराक्रम जो है उससे तुम्हारा पराक्रम अधिक हैं । तुम अपने स्वरूपका स्मरण क्यों नहीं करते ॥७॥ अप्सराओंमें श्रेष्ठ पुञ्जिकस्थल नामकी अप्सरा अंजना नामसे प्रसिद्ध

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विख्याता त्रिषु लोकेषु रूपेणाप्रतिमा भुवि । अभिशापादभूत्तात कपित्वे कामरूपिणी ॥ ९ ॥
दुहिता वानरेन्द्रस्य कुञ्जरस्य महात्मनः । मानुषं विग्रहं कृत्वा रूपयौवनशालिनी ॥१०॥
विचित्रमाल्याभरणा कदाचित्क्षौमधारिणी । अचरत्पर्वतस्याग्रे प्रावृडम्बुदसंनिभे ॥११॥
तस्या वस्त्रं विशालाक्ष्याः पीतं रक्तदशं शुभम् । स्थितायाः पर्वतस्याग्रे मरुतोऽपहरच्छनैः ॥१२॥
स ददर्श ततस्तस्या वृत्तावूरू सुसंहतौ । स्तनौ च पीनौ सहितौ सुजातं चारु चाननम् ॥१३॥
तां बलादायतश्रोणीं तनुमध्यां यशस्विनीम् । दृष्ट्वैव शुभसर्वाङ्गीं पवनः काममोहितः ॥१४॥
स तां भुजाभ्यां दीर्घाभ्यां पर्यष्वजत मारुतः । मन्मथाविष्टसर्वाङ्गो गतात्मा तामनिन्दिताम् ॥१५॥
सा तु तत्रैव संभ्रान्ता सुव्रता वाक्यमब्रवीत् । एकपत्नीव्रतमिदं को नाशयितुमिच्छति ॥१६॥
अञ्जनाया वचः श्रुत्वा मारुतः प्रत्यभाषत । नत्वां हिंसामि सुश्रोणि मा भूत्ते मनसो भयम् ॥१७॥
मनसास्मि गतो यत्त्वां परिष्वज्य यशस्विनि । वीर्यवान्बुद्धिसंपन्नस्तव पुत्रो भविष्यति ॥१८॥
महासत्त्वो महातेजा महाबलपराक्रमः । लङ्घने प्लवने चैव भविष्यति मया समः ॥१९॥
एवमुक्ता ततस्तुष्टा जननी ते महाकपे । गुहायां त्वां महाबाहो प्रजज्ञे प्लवगर्षभ ॥२०॥
अभ्युत्थितं ततः सूर्यं बालो दृष्ट्वा महावने । फलंचेतिजिघृक्षुस्त्वमुत्पत्याभ्युत्पतोदिवम् ॥२१॥
शतानि त्रीणि गत्वाथ योजनानां महाकपे । तेजसा तस्य निर्धूतो न विषादं गतस्ततः ॥२२॥

होकर केशरी वानरकी स्त्री हुई ॥८॥ वह तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं। रूप में उसके समान कोई नहीं है ॥९॥ पर्वतके शिखर पर बैठी हुई इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली वह शापसे वानरी हुई। महात्मा वानरश्रेष्ठ कुंजरकी वह कन्या हुई। रूप यौवनसे शोभनेवाली वह कभी मनुष्यका शरीर धर कर सुन्दर माल्य, आभरण और रेशमी वस्त्र धारण करके वर्षाकालीन मेघके समान पर्वतके शिखर पर घूमती थी ॥१०,११॥ पर्वतके शिखर पर बैठी हुई उस विशालाक्षीका वस्त्र जो पीला था और जिसका कोर लाल था, वायुने धीरे धीरे खींचा ॥१२॥ वायुने उसके गठीले और गोले उरू देखे, मोटे और सटे हुए स्तन तथा सुन्दर मुंह देखा ॥१३॥ सर्वांगसुन्दरी, आयतश्रोणी, क्षीणकटि उस यशस्विनीको देखतेही वायु काममोहित हो गया ॥१४॥ उस सुन्दरीका सर्वांग काम-युक्त वायुने अपनी लम्बी भुजाओंसे, आलिंगन किया। वायुका चित्त उसमें लग गया था ॥१५॥ व्रत धारण करनेवाली वह अंजना बड़ी घबड़ायी और बोली—मेरे एक पत्नीव्रतको कौन नष्ट करना चाहता है ॥१६॥ अंजनाके वचन सुनकर वायु बोला—सुन्दरि, मैं तुम्हारे पातिव्रत्यका नाश नहीं करता, अतएव तुम डरो मत ॥१७॥ यशस्विनी, मनसे जो मैंने तुम्हारा आलिंगन किया हैं, उससे पराक्रमी और बलवान पुत्र तुम्हें उत्पन्न होगा ॥१८॥ महाबली, महापराक्रमी, महातेजस्वी, कूदने और तैरनेमें मेरे समान होगा ॥१९॥ वायुके ऐसा कहने पर तुम्हारी माता बहुत प्रसन्न हुई और उसने गुहामें तुम्हें उत्पन्न किया ॥२०॥ तुम बालक थे, महावनमें सूर्यका उदय देख कर उसे फल समझ कर लेनेके लिए कूदकर तुम आकाशमें चले गए ॥२१॥ तीन सौ योजन जाने पर और सूर्यके तपाए जाने पर भी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्वामप्युपगतं तूर्णमन्तरिक्षं महाकपे । क्षिप्तमिन्द्रेण ते वज्रं कोपाविष्टेन तेजसा ॥२३॥
तदा शैलाग्रशिखरे वामो हनुरभज्यत । ततोऽभिनामधेयं ते हनुमानिति कीर्तितम् ॥२४॥
ततस्त्वां निहतं दृष्ट्वा वायुर्गन्धवहः स्वयम् । त्रैलोक्यं भृशसंक्रुद्धो न ववौ वै प्रभञ्जनः ॥२५॥
संभ्रान्ताश्च सुराः सर्वे त्रैलोक्ये क्षुभिते सति । प्रसादयन्ति संक्रुद्धं मारुतं भुवनेश्वराः ॥२६॥
प्रसादिते च पवने ब्रह्मा तुभ्यं वरं ददौ । अशस्त्रवध्यतां तात समरे सत्यविक्रम ॥२७॥
वज्रस्य च निपातेन विरुजं त्वां समीक्ष्य च । सहस्रनेत्रः प्रीतात्मा ददौ ते वरमुत्तमम् ॥२८॥
स्वच्छन्दतश्च मरणं तव स्यादिति वै प्रभो । स त्वं केसरिणः पुत्रः क्षेत्रजो भीमविक्रमः ॥२९॥
मारुतस्यौरसः पुत्रस्तेजसा चापि तत्समः । त्वं हि वायुसुतो वत्स प्लवने चापि तत्समः ॥३०॥
वयमद्य गतप्राणा भवानस्मासु सांप्रतम् । दाक्ष्यविक्रमसंपन्नः कपिराज इवापरः ॥३१॥
त्रिविक्रमे मया तात सशैलवनकानना । त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी परिक्रान्ता प्रदक्षिणम् ॥३२॥
तदाचौषधयोऽस्माभिः संचिता देवशासनात् । निर्मथ्यममृतं याभिस्तदानीं नो महद्बलम् ॥३३॥
स इदानीमहं वृद्धः परिहीनपराक्रमः । सांप्रतं कालमस्माकं भवान्सर्वगुणान्वितः ॥३४॥
तद्विजृम्भस्व विक्रान्त प्लवतामुत्तमो ह्यसि । त्वद्वीर्यं द्रष्टुकामा हि सर्वा वानरवाहिनी ॥३५॥
उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लङ्घयस्व महार्णवम् । परा हि सर्वभूतानां हनुमन्या गतिस्तव ॥३६॥

खिन्न न हुए ॥२२॥ अन्तरिक्षमें आए तुमको देखकर क्रोध करके इन्द्रने तुम पर वज्र चलाया ॥२३॥ उससे तुम्हारा बांयां हनु (दाढ़ी) टेढ़ा हो गया । तभीसे तुम्हारा कीर्तियुक्त हनुमान नाम पड़ा ॥२४॥ "तुम मारे गए हो" यह सुनकर तुम्हारे पिता वायुने बड़े क्रुद्ध होकर तीनों लोकोंमें बहना छोड़ दिया ॥२५॥ त्रैलोक्यके क्षुभित होने पर सब देवता घबड़ा गए और क्रुद्ध वायुको वे सब मनाने लगे ॥२६॥ वायुके प्रसन्न होने पर ब्रह्माने तुम्हें वर दिया कि तुम शस्त्रोंसे युद्धमें नहीं मारे जाओगे ॥२७॥ वज्रके मारे जाने पर भी पीड़ाहीन तुमको देखकर प्रसन्न होकर इन्द्रने तुम्हें उत्तम वर दिया ॥२८॥ अपनी इच्छाके अनुसार तुम्हारी मृत्यु होगी । हनुमान, तुम केसरीके क्षेत्रज पुत्र हो और बड़े पराक्रमी हो ॥२९॥ वायुके औरस पुत्र हो और उन्हींके समान तेजस्वी हो । बेटा, तुम वायुके पुत्र हो और वायुके समान चलनेवाले हो ॥३०॥ आज हम लोगोंके प्राण जा रहे हैं और तुम दक्षतापराक्रमसे युक्त दूसरे वानरराजके समान हम लोगोंमें वर्तमान हो ॥३१॥ भाई, वामनके तीन पैरसे पृथिवी नापनेके समय मैंने इक्कीस बार वनपर्वतयुक्त इस पृथिवीकी प्रदक्षिणा की है ॥३२॥ उस समय देवताओंकी आज्ञासे ओषधियां भी हम लोगोंके पास संचित थीं, जिनके द्वारा मथन करके अमृत निकाला गया था । उस समय हम लोग बड़े बली थे ॥३३॥ इस समय मैं बूढ़ा हो गया हूँ । पराक्रमहीन हूँ । इस समय हम लोगोंमें तुम ही पराक्रमी और सब गुणोंसे युक्त हो ॥३४॥ अतएव तुम कूदो, तुम कूदने वालोंमें सबसे बड़े हो यह समूची वानरसेना तुम्हारा पराक्रम देखना चाहती है ॥३५॥ वानरश्रेष्ठ, उठो । महासमुद्रको पार करो । हनुमान, तुम जो जाओगे उससे सबका उपकार होगा ॥३६॥ सब वानर दुखी हैं । हनुमान, तुम उपेक्षा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विषण्णा हरयः सर्वे हनुमन्किं पेक्षसे । विक्रमस्व महावेग विष्णुस्त्रीन्विक्रमानिव ॥३७॥
ततः कपीनामृषभेण चोदितः प्रतीतवेगः पवनात्मजः कपिः ।
प्रहर्षयंस्तां हरिवीरवाहिनीं चकार रूपं पवनात्मजस्तदा ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः ॥६६॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७

तं दृष्ट्वा जृम्भमाणं ते क्रमितुं शतयोजनम् । वेगेनापूर्यमाणं च सहसा वानरोत्तमम् ॥ १ ॥
सहसा शोकमुत्सृज्य प्रहर्षेण समन्विताः । विनेदुस्तुष्टुवुश्चापि हनूमन्तं महाबलम् ॥ २ ॥
प्रहृष्टा विस्मिताश्चापि ते वीक्षन्ते समन्ततः । त्रिविक्रमं कृतोत्साहं नारायणमिव प्रजाः ॥ ३ ॥
संस्तूयमानो हनुमान्व्यवर्धत महाबलः । समाविद्ध्य च लाङ्गूलं हर्षाद्बलमुपेयिवान् ॥ ४ ॥
तस्य संस्तूयमानस्य वृद्धैर्वानरपुंगवैः । तेजसापूर्यमाणस्य रूपमासीदनुत्तमम् ॥ ५ ॥
यथा विजृम्भते सिंहो विवृते गिरिगह्वरे । मारुतस्यौरसः पुत्रस्तथा संप्रति जृम्भते ॥ ६ ॥
अशोभत मुखं तस्य जृम्भमाणस्य धीमतः । अम्बरीषोपमं दीप्तं विधूम इव पावकः ॥ ७ ॥
हरीणामुत्थितो मध्यात्संप्रहृष्टतनूरुहः । अभिवाद्य हरीन्वृद्धान्हनूमानिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

क्यों कर रहे हो । विष्णुने जिस प्रकार पराक्रम करके तीन पैरमें पृथिवी नापी थी, उसी प्रकार तुम भी पराक्रम करो ॥३७॥ वानरोंके स्वामीके द्वारा प्रेरित होने पर पवनपुत्र, जिनका वेग सबको मालूम है उन्होंने, वानर सेनाको प्रसन्न करते हुए समुद्र पार जानेका रूप प्रकट किया ॥३८॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका छाछठवाँ सर्ग समाप्त ।

सौ योजन जानेके लिए तैयार होते हुए तथा अपनेमें वेग भरते हुए वानरश्रेष्ठ हनुमानको देखकर सहसा शोक दूर कर वानर प्रसन्न हुए । वे 'किलकिला' शब्द और हनुमानकी प्रशंसा करने लगे ॥१,२॥ प्रसन्न और चकित होकर वे हनुमानको देखने लगे । जिस प्रकार उत्साहयुक्त वामनको प्रजाने देखा था ॥३॥ अपनी स्तुति सुनकर महाबली हनुमानने अपना शरीर बढ़ाया । पूंछ पटक कर हर्षित होकर उन्होंने बल-संचय किया ॥४॥ बूढ़े, श्रेष्ठ वानरोंके द्वारा स्तुति होने पर हनुमान तेजसे भर गये । उस समय उनका बड़ा सुन्दर रूप हुआ ॥५॥ विशाल पर्वतगुफामें, जिस प्रकार सिंह अंगड़ाई लेता है उसी प्रकार, वायुपुत्र हनुमान अंगड़ाई लेने लगे ॥६॥ अंगड़ाई लेनेके समय उस बुद्धिमानका मुख अम्बरीषके समान (सूर्य अथवा भड़साईके समान) शोभित हुआ । और धूमरहित अग्निके समान मालूम हुआ ॥७॥ वानरोंके बीचसे उठकर और बूढ़े वानरोंको प्रणाम कर हनुमान यह बोले । उनके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आरुजन्पर्वताग्राणि हुताशनसखोऽनिलः । बलवानप्रमेयश्च वायुराकाशगोचरः ॥ ९ ॥
तस्याहं शीघ्रवेगस्य शीघ्रगस्य महात्मनः । मारुतस्यौरसः पुत्रः प्लवनेनास्मि तत्समः ॥१०॥
उत्सहे य हि विस्तीर्णमालिखन्तमिवाम्बरम् । मेरुं गिरिमसंगेन परिगन्तुं सहस्रशः ॥११॥
बाहुवेगप्रणुन्नेन सागरेणाहमुत्सहे । समाप्लावयितुं लोकं सपर्वतनदीह्रदम् ॥१२॥
ममोरुजङ्घावेगेन भविष्यति समुत्थितः । समुत्थितमहाग्राहः समुद्रो वरुणालयः ॥१३॥
पन्नगाशनमाकाशे पतन्तं पक्षिसेवितम् । वैनतेयमहं शक्तः परिगन्तुं सहस्रशः ॥१४॥
उदयात्प्रस्थितं वापि ज्वलन्तं रश्मिमालिनम् । अनस्तमितमादित्यमहं गन्तुं समुत्सहे ॥१५॥
ततो भूमिमसंस्पृष्ट्वा पुनरागन्तुमुत्सहे । प्रवेगेनैव महता भीमेन प्लवगर्षभाः ॥१६॥
उत्सहेयमतिक्रान्तुं सर्वानाकाशगोचरान् । सागराञ्शोषयिष्यामि दारयिष्यामि मेदिनीम् ॥१७॥
पर्वतांश्चूर्णयिष्यामि प्लवमानः प्लवंगमः । हरिष्याम्युरुवेगेन प्लवमानो महार्णवम् ॥१८॥
लतानां विविधं पुष्पं पादपानां च सर्वशः । अनुयास्यन्ति मामद्य प्लवमानं विहायसा ॥१९॥
भविष्यति हि मे पन्थाः स्वातेः पन्था इवाम्बरे । चरन्तं घोरमाकाशमुत्पतिष्यन्तमेव च ॥२०॥
द्रक्ष्यन्ति निपतन्तं च सर्वभूतानि वानराः । महामेरुप्रतीकाशं मां द्रक्ष्यध्वं प्लवंगमाः ॥२१॥

शरीरके रोंगटें खड़े हो गए थे ॥८॥ पर्वतके शिखरोंको पीड़ित करनेवाला, अग्निका मित्र अनिल, जो बलवान और सीमा-रहित आकाशमें चलनेवाला है, उस शीघ्रवेग, शीघ्रगामी महात्मा वायुका मैं पुत्र हूँ। चलनेमें मैं उन्हींके समान हूँ ॥१०॥ यह विशाल आकाशको छूनेवाला जो मेरु पर्वत है, उस पर विना ठहरे मैं हजारों बार आ जा सकता हूँ ॥११॥ बाहुवेगसे समुद्रको प्रेरित करके पर्वतों नदियों तालाबसे युक्त इस समस्त लोकको मैं डुबा सकता हूँ ॥१२॥ यह वरुणका निवासस्थान समुद्र मेरी जंघाके बलसे अपनी मर्यादा छोड़ देगा। इसके बड़े बड़े ग्राह ऊपर उठ आवेगें ॥१३॥ सांप खानेवाले, आकाशमें उड़ने वाले, पक्षियोंके राजा गरूड़का हजारों बार मैं पीछा कर सकता हूँ अर्थात् उनके साथ साथ चल सकता हूँ ॥१४॥ उदयाचलसे चले हुए, किरणोंकी माला धारण करनेवाले, तथा जलते हुए सूर्यका, जब तक वे अस्ताचल पर पहुंचे तब तक, मैं साथ दे सकता हूँ ॥१५॥ वानरश्रेष्ठो, वेगपूर्वक समुद्रके उस पार जाकर विना भूमि छूए मैं लौट भी आ सकता हूँ ॥१६॥ सब आकाशचारियोंका पीछा कर सकता हूँ, अर्थात् वेगमें उनसे आगे बढ़ सकता हूँ। समुद्रको सोख सकता हूँ, पृथिवीको फोड़ सकता हूँ ॥१७॥ बड़े वेगसे जाते हुए मैं पर्वतोंको चूर कर दूंगा। वेग पूर्वक चलकर मैं समुद्रके पार चला जाऊँगा ॥१८॥ आकाशमें जब मैं उड़कर चलूंगा, तब अनेक लताओंके पुष्प तथा अनेक वृक्षों के पुष्प मेरे साथ साथ चलेगें (वेगके झोंकेसे मेरे साथ साथ चलेगें) ॥१९॥ इससे आकाशमार्गमें प्रस्थान करनेके समय, ऊपर उठते समय, मेरा मार्ग स्वातिके मार्गके समान होगा। (स्वातिके मार्गका नाम छायापथ है, उसमें बहुतसे नक्षत्र हैं, पुष्पोंके कारण हनुमानका पथ भी छायापथके समान मालूम पड़ेगा) ॥२०॥ जब समुद्रके उस पार मैं जाऊँगा तब सब प्राणी मुझे देखेगें। वानरो, मेरुके समान विशाल मुझको देखो ॥२१॥ आकाशको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दिवमावृत्य गच्छन्तं ग्रसमानमिवाम्बरम् । विधमिष्यामि जीमूतान्कम्पयिष्यामि पर्वतान् ॥
सागरं शोषयिष्यामि प्लवमानः समाहितः । ॥२२॥
वैनतेयस्य वा शक्तिर्मम वा मारुतस्य वा । ऋते सुपर्णराजानं मारुतं वा महाबलम् ॥
न तद्भूतं प्रपश्यामि यन्मां प्लुतमनुव्रजेत् । ॥२३॥
निमेषान्तरमात्रेण निरालम्बनमम्बरम् । सहसा निपतिष्यामि घनाद्विद्युदिवोत्थिता ॥२४॥
भविष्यति हि मे रूपं प्लवमानस्य सागरम् । विष्णोः प्रक्रममाणस्य तदा त्रीन्विक्रमानिवाः ॥२५॥
बुद्ध्या चाहं प्रपश्यामि मनश्चेष्टा च मे तथा । अहं द्रक्ष्यामि वैदेहीं प्रमोदध्वं प्लवंगमाः ॥२६॥
मारुतस्य समो वेगे गरुडस्य समो जवे । अयुतं योजनानां तु गमिष्यामीति मे मतिः ॥२७॥
वासवस्य सवज्रस्य ब्रह्मणो वा स्वयंभुवः । विक्रम्य सहसा हस्तादमृतं तदिहानये ॥२८॥
लङ्कां वापि समुत्क्षिप्य गच्छेयमिति मे मतिः । तमेवं वानरश्रेष्ठं गर्जन्तममितप्रभम् ॥२९॥
प्रहृष्टा हरयस्तात समुदैक्षन्त विस्मिताः । तच्चास्य वचनं श्रुत्वा ज्ञातीनां शोकनाशनम् ॥३०॥
उवाच परिसंहृष्टो जाम्बवान्प्लवगेश्वरः । वीरकेसरिणः पुत्र वेगवन्मारुतात्मज ॥३१॥
ज्ञातीनां विपुलः शोकस्त्वया तात प्रणाशितः । तव कल्याणरुचयः कपिमुख्याः समागताः ॥३२॥
मङ्गलान्यर्थसिद्ध्यर्थं करिष्यन्ति समाहिताः । ऋषीणां च प्रसादेन कपिवृद्धमतेन च ॥३३॥
गुरूणां च प्रसादेन संप्लव त्वं महार्णवम् । स्थास्यामश्चैकपादेन यावदागमनं तव ॥३४॥
त्वद्गतानि च सर्वेषां जीवनानि वनौकसाम् । ततश्च हरिशार्दूलस्तानुवाच वनौकसः ॥३५॥

ढककर उसे निगलते हुए के समान, मैं जाऊंगा । मेघोंको चूर कर दूंगा और पर्वतोंको कँपा दूंगा । पार करता हुआ मैं समुद्रको सोख लूंगा ॥२२॥ मेरे समान गरुड़की या वायुकी ही शक्ति है । गरुड़ और महाबली वायुको छोड़कर और किसी प्राणीको मैं नहीं देखता जो कूदने पर मेरा साथ दे सके ॥२३॥ थोड़ीही देरमें मेघस्थ विद्युतके समान इस आश्रमहीन आकाशमें मैं सहसा कूदूंगा ॥२४॥ सागरको पार करते हुए मेरा रूप तीन पैरसे नापनेवाले वामन के समान हो जायगा ॥२५॥ मैं बुद्धिसे देख रहा हूँ और वैसाही मेरे मनका उत्साह है । मैं सीताको देखूंगा । वानरो, तुम लोग प्रसन्न रहो ॥२६॥ मैं वेगमें वायु और गरुड़के समान हूँ, मैं दस हजार योजन तक जा सकता हूँ, ऐसी मेरी समझ है ॥२७॥ वज्रधारी इन्द्रके, अथवा स्वयंभू ब्रह्माके हाथसे पराक्रमपूर्वक, अमृत लेकर मैं यहां आ सकता हूँ ॥२८॥ मैं लंकाके आगे भी जा सकता हूँ अथवा लंकाको उखाड़ सकता हूँ । अमिततेज, वानरश्रेष्ठ हनुमानको वानरोंने चकित होकर देखा । वान्धवोंके शोक नष्ट करनेवाले हनुमानके वे वचन सुनकर वानराधिपति जाम्बवान् प्रसन्न होकर बोले– केशरीके पुत्र और वायुके पुत्र तुमने अपने समस्त बान्धवोंके शोक नष्ट कर दिए । सुन्दर प्रधान वानर आये हैं, सावधान होकर कार्यसिद्धिके लिए ये तुम्हारा मंगलविधान करेगें । ऋषियोंके प्रसादसे, वृद्ध वानरोंकी सलाहसे, गुरुओंकी कृपासे तुम समुद्रके पार जाओ । तुम्हारे आने तक हम लोग एक पैरसे खड़े रहेंगे ॥२९,३०,३१,३२,३३,३४॥ सब वानरोंका जीवन तुम्हारेही अधीन है । वानरश्रेष्ठ हनुमान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कोऽपि लोके न मे वेगं प्लवने धारयिष्यति । एतानीह नगस्यास्य शिलासंकटशालिनः ॥३६॥
शिखराणि महेन्द्रस्य स्थिराणि च महान्ति च । येषु वेगं गमिष्यामि महेन्द्रशिखरेष्वहम् ॥३७॥
नानाद्रुमविकीर्णेषु धातुनिष्पन्दशोभिषु । एतानि मम वेगं हि शिखराणि महान्ति च ॥३८॥
प्लवतो धारयिष्यन्ति योजनानामितः शतम् । ततस्तु मारुतप्रख्यः स हरिर्मारुतात्मजः ॥
आरुरोह नगश्रेष्ठं महेन्द्रमरिमर्दनः । ॥३९॥
वृतं नानाविधैः पुष्पैर्मृगसेवितशाद्वलम् । लताकुसुमसंबाधं नित्यपुष्पफलद्रुमम् ॥४०॥
सिंहशार्दूलसहितं मत्तमातङ्गसेवितम् । मत्तद्विजगणोद्घुष्टं सलिलोत्पीडसंकुलम् ॥४१॥
महद्भिरुच्छ्रितः शृङ्गैर्महेन्द्रस्य महाबलः । विचचार हरिश्रेष्ठो महेन्द्रसमविक्रमः ॥४२॥
बाहुभ्यां पीडितस्तेन महाशैलो महात्मना । ररास सिंहाभिहतो महान्मत्त इव द्विपः ॥४३॥
मुमोच सलिलोत्पीडान्विप्रकीर्णशिलोच्चयः । वित्रस्तमृगमातङ्गः प्रकम्पितमहाद्रुमः ॥४४॥
नानागन्धर्वमिथुनैः पानसंसर्गकर्कशैः । उत्पतद्भिर्विहंगैश्च विद्याधरगणैरपि ॥४५॥
त्यज्यमानमहासानुः संनिलीनमहोरगः । शैलशृङ्गशिलोत्पातस्तदाभूत्स महागिरिः ॥४६॥
निःश्वसद्भिस्तदा तैस्तु भुजगैरर्धनिःसृतैः । सपताक इवाभाति स तदा धरणीधरः ॥४७॥
ऋषिभिस्त्रासंसंभ्रान्तैस्त्यज्यमानः शिलोच्चयः । सीदन्महति कान्तारे सार्थहीन इवाध्वगः ॥४८॥

उनसे बोले ॥३५॥ लोकमें कोई भी उड़नेके समय मेरे वेगको धारण नहीं कर सकता ॥३६॥ ऊँचे ऊँचे पत्थरवाले, इस महेन्द्र पर्वतके शिखर बड़े बड़े हैं, इन्हीं परसे मैं कूदूँगा ॥३७॥ जिसमें चारो ओर अनेक वृक्ष हैं और पिघली हुई धातुएँ हैं । ये बड़े शिखर मेरे वेगको सह सकेंगे ॥३८॥ सौ योजन कूदनेके मेरे वेगको ये धारण कर सकेंगे । अनन्तर वायुके समान, वायुपुत्र हनुमान पर्वतश्रेष्ठ महेन्द्रपर चढ़े ॥३९॥ अनेक प्रकारके पुष्पोंसे शोभित, लताकुसुमसे युक्त, सदा फूलने फलनेवाले वृक्षोंसे युक्त, सिंह, शार्दूल, मत्त मातंगसे युक्त, मत्त पक्षियोंसे शब्दायमान, जलधारासे युक्त, बड़े शिखरोंसे विशाल, महेन्द्र पर्वतपर इन्द्रके समान पराक्रमी वानर-श्रेष्ठ हनुमान विचरण करने लगे ॥४०,४१,४२॥ महात्मा हनुमानने हाथोंसे उस पर्वतको दबाया जिससे शब्द होने लगा, जिस प्रकार सिंहके आघातसे मतवाला हाथी शब्द करता है ॥४३॥ जलकी धाराएँ उससे बह निकलीं । उसके शिखर टूट फूट गए, हाथी आदि डर गए और बड़े बड़े वृक्ष काँप गए ॥४४॥ अनेक गन्धर्व स्त्री पुरुष-जो मद्य पीनेसे कर्कश हो गए थे वे, उड़ते हुए पक्षी तथा विद्याधरोंके समूह उस पर्वतके शिखरको छोड़ने लगे । बड़े बड़े सर्प बिलमें छिप गए । उस पर्वतपर शिखरके पत्थरोंके गिरनेसे एक प्रकारका उत्पात सा मालूम हुआ । साँस छोड़ते हुए, आधे निकले सर्पोंके कारण वह पर्वत पताकायुक्त मालूम हुआ ॥४५,४६,४७॥ भयसे भीत ऋषियोंने उस पर्वतको छोड़ दिया, वीहड़ वनमें कष्ट उठाते हुए पथिक जिस प्रकार अपने साथियोंको छोड़ देते हैं ॥४८॥ वेगमें जिसने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स वेगवान्वेगसमाहितात्मा हरिप्रवीरः परवीरहन्ता ।
मनः समधाय महानुभावोमाजगाम लङ्कां मनसा मनस्वी ॥४९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥६७॥

अपना मन दृढ़ कर लिया है वह वेगवान महानुभाव, शत्रुवीरोंको हनन करनेवाले वानर-श्रेष्ठ हनुमान मनको सावधान कर मनसे लंका गए ॥४९॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका सड़सठवाँ सर्ग समाप्त ।

* किष्किन्धाकाण्ड समाप्त *

जगद्गुरु विश्वाराध्य हिन्दी ग्रन्थ ज्ञानमंदिर काशी

कुल पृष्ठ-संख्याः—
२०६+२=२०८
साधारण साइजके ४१६ पृष्ठ

Sri JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY.
Jangamwadi Math, VARANASI.
Acc· No. 1770

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri